शिक्षा आयोग की रिपोर्ट

1964-66

शिक्षा और राष्ट्रीय विकास

शिक्षा मंत्रालय
भारत सरकार

शि० मं० 19
5,000

©

PED. 428 (N)
5,000

प्रथम संस्करण (अंग्रेजी) 1966
प्रथम संस्करण (हिन्दी) 1968

मूल्य :

देश में : 10 रुपये
विदेश में : 23 शि० 4 पै० या
3.30 डालर

प्रकाशन सं० 825

राकेश प्रेस, दिल्ली में मुद्रित तथा शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, द्वारा प्रकाशित

शिक्षा आयोग की रिपोर्ट (1964-66)

शिक्षा और राष्ट्रीय विकास

शिक्षा आयोग के सदस्य

अध्यक्ष

1. प्रो० दौलतसिंह कोठारी, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली ।

सदस्य

2. श्री ए० आर० दाऊद, भूतपूर्व स्थानापन्न निदेशक, माध्यमिक शिक्षा-विस्तार कार्यक्रम निदेशालय, नई दिल्ली ।
3. मि० एच० एल० एलविन, निदेशक, इंस्टीट्यूट आफ एजूकेशन, लंदन विश्वविद्यालय, लंदन ।
4. श्री आर० ए० गोपालस्वामी, निदेशक, अनुप्रयुक्त जन-शक्ति अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली (अब अवकाश प्राप्त) ।
5. प्रो० सदातोशी ईहारा, स्कूल आव सायंस एण्ड इंजीनियरिंग, वासेडा विश्वविद्यालय, टोकियो ।
6. डॉ० वेणीशंकर झा, भूतपूर्व निदेशक, कामनवैल्थ शिक्षा संपर्क एकक, लंदन ।
7. श्री प्रेम कृपाल, शिक्षा सलाहकार और सचिव, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली ।
8. प्रो० एच० वी० माथुर, प्राध्यापक, अर्थशास्त्र और लोक प्रशासन, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (अब राजस्थान विश्वविद्यालय के उपकुलपति) ।
9. डॉ बी० पी० पाल, निदेशक, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली (अब भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के महाविदेशक और उपाध्यक्ष तथा खाद्य और कृषि मंत्रालय भारत सरकार के अतिरिक्त सचिव) ।
10. कुमारी एस० पानंदीकर, प्राध्यापक, शिक्षा विभाग, कर्नाटक विश्वविद्यालय, धारवाड़ (अब अवकाश प्राप्त) ।
11. प्रो० रॉजर रेवेल, निदेशक, सैन्टर फार पॉपुलेशन स्टडीज, हारवर्ड स्कूल आव पब्लिक हैल्थ, हारवर्ड विश्वविद्यालय, कैम्ब्रिज, यू० एस० ए० ।
12. डॉ० के० जी० सैयदैन, भारत सरकार के भूतपूर्व शिक्षा सलाहकार (अब निदेशक, शिक्षा-योजना तथा प्रशासन का एशियाई संस्थान, नई दिल्ली) ।
13. डॉ० त्रिगुणा सेन, तत्कालीन उपकुलपति, जादवपुर विश्वविद्यालय, कलकत्ता (अब शिक्षा मंत्री, भारत सरकार) ।
14. प्रो० एस० ए० शुमौविस्की, निदेशक, मैथडॉलॉजिकल डिवीजन, मिनिस्ट्री आव हायर एण्ड स्पेशल सैकेन्डरी एजुकेशन, आर० एस० एफ० एस० आर० तथा भौतिकी के प्राध्यापक, मास्को विश्वविद्यालय, मास्को ।
15. एम० जॉ तोमा, इंस्पैक्टर जनरल आव एजूकेशन, फ्रांस, यूनेस्को, पेरिस, के भूतपूर्व सहायक महानिदेशक ।

सदस्य सचिव

16. श्री जे० पी० नायक, विभागाध्यक्ष, शिक्षा योजना, प्रशासन तथा वित्त, राजनीति तथा अर्थशास्त्र गोखले संस्थान, पूना ।

संबद्ध-सचिव

17. मि० जे० एफ० मैकडूगल, सहायक निदेशक, डिपार्टमैन्ट आव स्कूल एण्ड हायर एजूकेशन, यूनेस्को, पेरिस ।

नई दिल्ली, 29 जून, 1966,
आषाढ़ 8, 1880.

प्रिय श्री चागला,

शिक्षा आयोग की रिपोर्ट प्रस्तुत करते हुए मुझे बड़ा हर्ष हो रहा है।

इस काम में आपने हमें सदा उदारता पूर्वक जो समर्थन और प्रोत्साहन दिया है उसके लिए मैं इस अवसर पर अपनी और अपने साथियों की ओर से हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करना चाहूंगा। कमीशन की नियुक्ति का अधिकांश श्रेय आपकी पहलक़दमी और सूझ-बूझ को है।

शिक्षा का हमेशा से महत्त्व रहा है, पर मानव इतिहास में शायद इतना महत्त्व कभी नहीं रहा जितना आज है। विज्ञान पर आश्रित संसार में, शिक्षा और अनुसंधान, देश की तमाम विकास-प्रक्रिया में, उसके कल्याण, प्रगति और सुरक्षा में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। विज्ञान से परिव्याप्त संसार की विशेषता यह है कि कुछ मूल दृष्टियों से यह नहीं कहा जा सकता कि घटनाक्रम का भावी रूप क्या होगा। यह स्थिति ऐसी शिक्षा नीति की आवश्यकता की ओर और भी अधिक ध्यान देने को बाध्य करती है जिसमें अन्तरंग सुनम्यता हो ताकि वह अपने आपको बदलती हुई परिस्थितियों के अनुरूप ढाल सके। आज की दुनिया में प्रयोग और आविष्कार का महत्त्व बहुत बढ़ गया है। मैं तो यहाँ तक कहूंगा कि इस समय सबसे बड़ी आवश्यकता इस बात की है कि वर्तमान पद्धति की जड़ता से पीछा छुड़ाया जाए। आज के तेजी से बदलते हुए संसार में एक बात तो निश्चित है कि कल की शिक्षा पद्धति से आज की आवश्यकताएं पूरी नहीं हो सकतीं और आज की शिक्षा पद्धति से कल की तो बिल्कुल भी पूरी नहीं होंगी।

यह कहना कठिन है—और निश्चय ही हमारे लिए भी कठिन है—कि शिक्षा पद्धति के पुनर्निर्माण में इस रिपोर्ट से किस हद तक सहायता मिल सकेगी। इस पुनर्निर्माण की आवश्यकता तात्कालिक है। फिर भी हमारा विश्वास है कि इस रिपोर्ट से मौलिक चिंतन की प्रेरणा मिलेगी और एक ऐसा ढाँचा मिल जाएगा जिसके आधार पर देश में शिक्षा-क्रांति की दिशा में कम-से-कम पहला कदम उठाया जा सके। रिपोर्ट में शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों और पहलुओं के बारे में सिफ़ारिशें की गई हैं। मेरे मन में जो मोटी बातें इस समय आ रही है वे इस प्रकार हैं :

शिक्षा के प्रायः सभी स्तरों पर सामान्य शिक्षा के अभिन्न अंगों के रूप में कार्य-अनुभव—जिसमें शारीरिक कार्य तथा उत्पादन अनुभव भी शामिल हैं—और समाज सेवा का समावेश ;

नैतिक शिक्षा पर बल और सामाजिक दायित्व की भावना का विकास। स्कूलों को यह अनुभव करना चाहिए कि किशोरों को स्कूली दुनिया से काम-काज की दुनिया और जीवन में प्रवेश के लिए सुविधाएं देने की जिम्मेवारी उनकी है ;

माध्यमिक शिक्षा को व्यवसायाश्रयी बनाना;

उच्च अध्ययन केन्द्रों को मजबूत बनाना तथा कुछ ऐसे बड़े विश्वविद्यालयों की स्थापना करना जिनका लक्ष्य उच्चतम अन्तर्राष्ट्रीय स्तर प्राप्त करना हो ;

स्कूलों के अध्यापकों के प्रशिक्षण और गुणता के स्तर पर विशेष जोर;

शिक्षा पुनर्निर्माण की योजना में कृषि-विषयक शिक्षा, कृषि अनुसंधान, और अन्य संबद्ध विज्ञानों को उच्च प्राथमिकता दी जानी चाहिए। सूझ-बूझ और उत्साह के साथ ऐसे क़दम उठाए जाने चाहिए कि काफी संख्या में प्रतिभाशाली व्यक्ति कृषि विज्ञान के क्षेत्र में उच्च अध्ययन और अनुसंधान में रुचि ले सकें ;

सभी स्तरों और क्षेत्रों में उच्च-कोटि की या मति निर्धारण करने वाली संस्थाओं का विकास करना।

रिपोर्ट बहुत बड़ी हो गई है, इसके लिए क्षमा प्रार्थी हूं। रिपोर्ट छोटी भी हो सकती थी पर तब इसमें धन और समय अधिक लगता और विलम्ब भी होता। आज की स्थिति का तकाजा है सक्रियता, और आपने सदा इसी पर जोर दिया है।

सादर,

आपका,
दौलतसिंह कोठारी

श्री० एम० सी० चागला,
शिक्षा मंत्री,
भारत सरकार,
नई दिल्ली

आ मु ख

शिक्षा आयोग भारत सरकार के 14 जुलाई, 1964 के संकल्प के द्वारा नियुक्त किया गया था। सभी स्तरों पर और पहलुओं से शिक्षा के विकास, उसके राष्ट्रीय स्वरूप, सामान्य सिद्धान्तों और नीति से संबंधित प्रश्नों पर सरकार को सलाह देना आयोग के कार्य-क्षेत्र के अन्तर्गत था।[1]

इक्कीस महीने पहले हमने अपना काम महात्मा गांधी के जन्म दिन 2 अक्तूबर, 1964 से शुरू किया। प्रारम्भ से ही हम अपने कार्य की विशालता तथा उसमें निहित कठिनाइयों के बारे में सजग थे। हमारे विचार से भारत की आर्थिक, सांस्कृतिक तथा अध्यात्मिक उन्नति और विकास से सम्बन्धित कोई भी अन्य काम इतना चुनौतीपूर्ण, संगत और तात्कालिक महत्व का नहीं हो सकता। ऐसे विशाल तथा पेचीदा काम को करने में इस बात का हमेशा डर रहता है कि कहीं उसका तरीका और सिफ़ारिशें काफी बुनियादी होने से रह न जाएं। एक और भी संभावना है कि सिफ़ारिशें राष्ट्र की क्षमता और साधन से परे हो जाएं। चूंकि शिक्षा योजनाएं लम्बी अवधि की योजनाएं होती हैं, इसलिए कठिनाइयां अधिक बढ़ जाती हैं। लम्बी अवधि की परियोजनाओं की आवश्यकताओं और साधन को भीषण अनिश्चय का सामना करना पड़ता है। हमें आशा है कि अगले बीस वर्षों में राष्ट्र के तमाम साधनों की जो कल्पना हमने की है उसके अनुपात में शिक्षा पर जो राशि लगाई जाएगी वह उचित है।

इस बात को दोहराने की आवश्यकता नहीं है कि सिफ़ारिशें आवश्यक रूप से हमारी जानकारी और अनुभव की सीमाओं की परिधि के आधार पर की गई है। इन सिफ़ारिशों का आधार हमारी निर्भीक, रचनात्मक कल्पना-शक्ति है : हम यह दावा नहीं करते कि रिपोर्ट में जो सिफ़ारिशें की गई हैं वे अनिवार्यतः सर्वोत्तम है और न हम अपनी प्रत्येक सिफ़ारिश की मान्यता की ओर से निश्चित रूप से आश्वस्त ही है। फिर, हमने जो अनेक प्रस्ताव रखे हैं अनुभव के आधार पर उनकी जांच और पुनरीक्षण आवश्यक होगा। इसीलिए हम बदलती हुई परिस्थितियों और आवश्यकताओं के आधार पर शिक्षा पद्धति की अंतरंग सुनम्यता और समंजन की आवश्यकता पर काफ़ी ज़ोर देते हैं। हां, एक बात अवश्य हैं जिसके बारे में हमारे मन में किसी प्रकार की द्विविधा और हिचक नहीं है। वह यह कि विज्ञान पर आधारित और भारतीय संस्कृति तथा मूल्यों से तालमेल रखने वाली शिक्षा पर ही उसकी नींव रखी जा सकती है—यही एक ऐसा अस्त्र है जो राष्ट्र की उन्नति, सुरक्षा और कल्याण का मूलाधार है।

भारतीय शिक्षा के आमूल पुनर्निर्माण, लगभग क्रान्ति, की आवश्यकता है। हमें प्राथमिक शिक्षा की सिद्धि के लिए उसमें मुख्य सुधार करने हैं; कार्यानुभव को सामान्य शिक्षा के अंतरंग अवयव की तरह लागू करना है; माध्यमिक शिक्षा को व्यावसायाश्रयी बनाना है; सभी स्तरों के अध्यापकों की गुणवत्ता को बढ़ाना है, काफी संख्या में अध्यापक उपलब्ध कराने हैं; निरक्षरता का उन्मूलन करना है, उच्चतर शिक्षा केन्द्रों को मजबूत बनाना है और अपने कुछ विश्वविद्यालयों में कम-से-कम उच्च अंतर्राष्ट्रीय स्तर लाने का यत्न करना हैं; अध्यापन और अनुसंधान के योग पर विशिष्ट बल देना हैं; कृषि और संबद्ध विज्ञानों के क्षेत्र में शिक्षा और अनुसंधान की ओर विशिष्ट ध्यान देना है। यह सारा संकल्प और भी बड़े पैमाने पर कार्य करने की ओर इंगित करता है। वर्तमान परिस्थिति को लेकर, लड़खड़ाते क़दमों से आगे बढ़ने में तथा विश्वविद्यालय की कमी से स्थिति और भी बिगड़ सकती है।

परिस्थिति की तात्कालिक आवश्यकता के कारण हम इस बात पर विवश थे कि जो समय-सारणी हमने रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिए बनाई थी उस पर अमल करें। ऐसा करने का तात्पर्य अध्ययन को सीमित करना था। स्थिति की जांच उतनी गहराई और सूक्ष्मदर्शिता से हम नहीं कर पाए जितनी चाहते थे। यदि हमारे पास अधिक समय होता तो रिपोर्ट छोटी और अधिक पठनीय हो सकती थी।

आयोग ने निम्नलिखित 12 कार्यदल बनाए थे

(1) स्कूली शिक्षा; (2) उच्चतर शिक्षा (3); तकनीकी

1. **विधि और आयुर्विज्ञान की शिक्षा को आयोग के कार्य-क्षेत्र के अन्तर्गत नहीं रखा गया था, परन्तु उसे 'इन समस्याओं के उन पहलुओं पर, जो उसके सर्वांगीण अन्वेषण के लिए जरूरी हों', की खोजबीन करने के लिए प्राधिकृत किया गया था।**

शिक्षा; (4) कृषि शिक्षा; (5) प्रौढ़ शिक्षा; (6) विज्ञान शिक्षा तथा अनुसंधान; (7) अध्यापक प्रशिक्षण और अध्यापक स्तर; (8) विद्यार्थी कल्याण; (9) नवीन तकनीक तथा पद्धति; (10) जनशक्ति; (11) शैक्षिक प्रशासन; (12) शैक्षिक वित्त। इनके अतिरिक्त आयोग ने सात और कर्मी-समूह स्थापित किए। (1) स्त्री शिक्षा; (2) पिछड़े वर्गों की शिक्षा; (3) स्कूल भवन निर्माण; (4) स्कूल का समुदाय से सम्बन्ध; (5) सांख्यिकी; (6) पूर्व-प्राथमिक शिक्षा; (7) स्कूल पाठ्यचर्या। कार्यदलों तथा कर्मी-समूहों ने अनेक विशिष्ट समस्याओं का विस्तृत अध्ययन किया। इन अध्ययनों में से कुछ का प्रकाशन पृथक् रूप से किया जाएगा। कार्यदलों और कर्मी-समूहों की रिपोर्टों से हमें अपने काम में बहुत सहायता मिली। इन रिपोर्टों के कारण कुछ महत्वपूर्ण मामलों की हम गहराई और विस्तार से जांच कर सके जो कि इन रिपोर्टों के बिना सम्भव नहीं थी।

हमने लगभग 100 दिन समस्त राज्यों तथा कुछ केन्द्र प्रशासित क्षेत्रों में लगाए। हम विश्वविद्यालयों, कालेजों तथा स्कूलों में गए। वहां अध्यापकों, शिक्षाविदों, प्रशासकों तथा विद्यार्थियों से चर्चा की। विद्यार्थियों के कल्याण तथा अनुशासन से सम्बन्धित व्यक्तिगत चर्चा का लाभ उठाने की दृष्टि से हमने विश्वविद्यालयों के विद्यार्थियों के प्रतिनिधियों की दो सभाएं बुलाईं। ये सभाएं हमारे लिए बहुत लाभदायक हुईं।

हमने सार्वजनिक क्षेत्र के विशिष्ट स्त्री और पुरुषों से समालाप किया। वैज्ञानिकों, उद्योगपतियों तथा विभिन्न क्षेत्रों के विद्वानों और शिक्षा के क्षेत्र में रुचि रखने वाले अन्य व्यक्तियों से भी समालाप किया। हमने कुल लगभग नौ हजार व्यक्तियों से बातचीत की। अपनी प्रश्न-सूची पर लिखित प्रमाण और ज्ञापन आमंत्रित किए। विचार-गोष्ठियां और परिषदें आयोजित कीं। अनेक क्षेत्रों में विशिष्ट अध्ययन करवाया। और कुछ क्षेत्रों में, जैसे शैक्षिक संस्थानों में प्रवेश पाने वाले विद्यार्थियों की सामाजिक, आर्थिक पृष्ठभूमि के सम्बन्ध में, विशेष जांच करवाई। स्कूल और कालिजों के कार्य के दिनों के संबंध में भी जांच करवाई। आयोग के पास इस सम्बन्ध में 2,400 से अधिक ज्ञापन और टिप्पणियां प्राप्त हुईं।

हमें बहुत से अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के शिक्षाविदों और वैज्ञानिकों के बहुमूल्य परामर्श की सुविधाएं भी प्राप्त थीं। हम प्रो० पी० एम० एस० ब्लैकेट, प्रेसीडेंट, रायल सोसायटी, ब्रिटेन; लार्ड रॉबिन्स, चेयरमैन, कमेटी आन हायर एजूकेशन (1961-63) ब्रिटेन; सर क्रिस्टोफर कावस, शिक्षा सलाहकार, मिनिस्ट्री ऑफ ओवरसीज डवैलपमैंट, ब्रिटेन; सर विलिस जैक्सन, प्रोफेसर, इलैक्ट्रिकल इंजीनियरिंग, इम्पीरियल कालेज ऑफ साइंस एंड टैक्नालॉजी, यूनिवर्सिटी ऑफ लंदन; प्रो० सी० ए० मोसर, लंदन स्कूल ऑफ इकानामिक्स; प्रोफैसर फैड्रिक सेल्ज, प्रेजीडेंट, नेशनल अकेडमी ऑफ साइंसिस सं० रा० अ०; डॉ० जेम्स ई० एलन, जूनियर, कमिश्नर, स्टेट एजूकेशन डिपार्टमेन्ट और प्रेसीडेन्ट, यूनिवर्सिटी ऑफ दी स्टेट ऑफ न्यूयार्क, सं० रा० अ०; प्रो० एडवर्ड शिल्स, यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो सं० रा० अ०; प्रो० एस० डेडीजर, यूनिवर्सिटी ऑफ लुण्ड, स्वीडन; रक्तयोर जे० कापय्य् भूतपूर्व डायरेक्टर जनरल ऑफ एजूकेशन इन फांस; प्रो० सी० ई० बीबे, हावर्ड यूनिवर्सिटी, और एकैडेमीशियन ए० डी० एलेग्जेंड्रोव, रैक्टर, यूनिवर्सिटी ऑफ लेनिनग्राद, और एकैडेमीशियन ओ० ए० ग्यूटोव, एकेडैमी ऑफ साइंसिस्, सोवियत रूस के विशेष रूप से आभारी हैं।

हमें राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति तथा प्रधान मंत्री के साथ चर्चा करने का गौरव और सुविधा भी मिली। शिक्षा मंत्री के साथ हम लोगों ने बहुत लाभदायक चर्चा की। मंत्रिमंडल के उनके कुछ सहयोगियों तथा योजना आयोग के उपाध्यक्ष, सदस्य (शिक्षा) तथा कुछ अन्य सदस्यों से भी चर्चा करने का अवसर मिला। हमारे दौरे के दौरान राज्य सरकारों के मुख्य मंत्रियों, शिक्षा मंत्रियों तथा उसके अन्य सहयोगियों ने भी हमें काफी समय दिया।

इन लोगो से हुई चर्चा हमारे लिए बहुत महत्वपूर्ण और लाभकर थी। हमने राज्य-सरकारों के शिक्षा, स्वायत्त शासन, कृषि तथा वित्त सचियों से भी चर्चा की। बहुत बड़ी संख्या में शिक्षाविदों, वैज्ञानिकों, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष, संसद सदस्यों, और विधान सभाओं के सदस्यों, उद्योगपतियों और पत्रकारों से भी हमने बहुत लाभदायक चर्चाएं कीं। इन सबके प्रति हम अत्यन्त अनुगृहीत हैं।

आयोग की स्थापना करते समय भारत सरकार ने यह निश्चय किया था कि इसके साथ अन्य देशों के विशिष्ट शिक्षाविदों और वैज्ञानिकों को संबद्ध किया जाए। प्रो० एच० एल० एलविन (ब्रिटेन) ज़ॉ० तोमा (फ्रांस), रोजर रवील (सं० रा० अ०), एम० ए० शुम्रोविस्की (सोवियत रूस) तथा सदातोषी ईहारा (जापान) ने कमीशन के पूर्णकालिक सदस्यों के रूप में काम किया। प्रो० जे० एफ० मैकडूगल (यूनेस्को सचियालय) ने संबद्ध सचिव

के रूप में आयोग के पूरे कार्यकाल में काम किया। कमीशन के भारतीय सदस्य विदेशी सदस्यों तथा सम्बन्ध सचिव के प्रति हार्दिक आभार प्रकट करना चाहेंगे। हमारे विशिष्ट ज्ञान और दूरदर्शिता में इनके सहयोग से काफी वृद्धि हुई। विदेशी सदस्यों ने आयोग के कार्य में पूरा सहयोग दिया तथा वे कमीशन के निष्कर्षों की प्रवृत्तियों से सामान्यतया सहमत थे। फिर भी जिन मामलों का सम्बन्ध भारत की समस्याओं से है उनके बारे में की गई सिफ़ारिशों की प्राथमिक जिम्मेवारी भारतीय सदस्यों की ही है।

हमारी रिपोर्ट तीन भागों में विभक्त है।

पहले भाग में एक से छह अध्याय हैं। इनमें शिक्षा पुनर्निर्माण के सामान्य पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है। यह शिक्षा के सभी स्तरों और क्षेत्रों के लिए समान हैं। इनमें शिक्षा-पद्धति के राष्ट्रीय उद्देश्यों का पुनःस्थापन, रचनाक्रम का पुनर्गठन, अध्यापकों की उन्नति, नामांकन-नीतियां और शैक्षिक सुविधाओं की समानता शामिल हैं।

दूसरे भाग में सात से सत्रह अध्याय हैं। इनमें शिक्षा के विभिन्न पक्षों और स्तरों पर प्रकाश डाला गया है। अध्याय सात से दस में स्कूली शिक्षा के कुछ पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है जैसे—विस्तार की समस्या, पाठ्य-चर्या, अध्यापन-पद्धति, पाठ्य-पुस्तकें, मूल्यांकन, प्रशासन तथा पर्यवेक्षण। अध्याय ग्यारह से तेरह में उच्चतर शिक्षा पर प्रकाश डाला गया है। अन्य बातों के अतिरिक्त इसमें प्रमुख विश्वविद्यालयों की स्थापना, गुणात्मक सुधार के कार्यक्रम, नामांकन तथा विश्वविद्यालय प्रशासन से संबंधित कार्यक्रम शामिल हैं। चौदहवें और पन्द्रहवें अध्याय में क्रमशः कृषि संबंधी शिक्षा और तकनीकी तथा व्यावसायिक शिक्षा पर प्रकाश डाला गया है। सोलहवें अध्याय में विज्ञान की शिक्षा तथा अनुसंधान के कार्यक्रमों की चर्चा हैं। सत्रहवें अध्याय में प्रौढ़ शिक्षा की समस्याएं प्रस्तुत की गई हैं।

रिपोर्ट के तीसरे भाग में सिफ़ारिशों की क्रियान्विति से संबंधित समस्याओं पर विचार किया गया है। इसमें दो अध्याय है—अठारहवें अध्याय में शैक्षिक योजना और प्रशासत और उन्नीसवें अध्याय में शैक्षिक वित्त की चर्चा है

सिफ़ारिशों का सारांश आंकड़ों तथा अन्य विवरणों सहित रिपोर्ट के अन्त में दिया गया है।

हम यह जानते हैं कि इस रिपोर्ट में जो बातें कही गई है उनमें से बहुत सी बातें पहले भी कही जा चुकी हैं। विशेष रूप से 1948-49 के विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग द्वारा।

उदाहरण के लिए इस समय इस बात को दोहराना जरूरी है कि इस आयोग ने कृषि शिक्षा की उपयोगिता और सुधार पर विशेष जोर दिया था। फिर भी इस दिशा में कोई ठोस कार्य नहीं हुआ। हमारी सबसे बड़ी आवश्यकता है कार्यशीलता। जिस कठिन समय से हम गुजर रहे हैं वह, तथा परिस्थिति की मांग, इस सहज और महत्वपूर्ण बात की ओर विशेष ध्यान देने को बाध्य करती है।

हम राज्य सरकारों के आभारी हैं जिन्होंने हमारे कार्य में मुक्त सहयोग दिया है। उन्होंने अपने यहां के व्यस्त वरिष्ठ अधिकारियों का समय दिलाया, हमारे सभी प्रश्नों का तत्काल उत्तर दिया, अपने राज्यों में होने वाली शिक्षा की प्रगति और समस्याओं पर ज्ञापन तैयार किए, अपने शिक्षा संस्थानों में जाने की सुविधा प्रदान की तथा अपने राज्यों में हमारे ठहरने का अच्छा प्रबन्ध कराया। हम वहां जितने भी समय रहे हमारा समय हर दृष्टि से सानन्द तथा सप्रयोजन सिद्ध हुआ।

हम अपने कार्यदल और कर्मी-समूह के सदस्यों तथा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के सचिव का भी आभार मानते हैं। उन्होंने जटिल समस्याओं को व्यावहारिक और वृत्तिक ढंग से सुलझाने में तत्परता और निष्ठापूर्वक हमारी सहायता की। इस दिशा में उनका सहयोग बहुमूल्य है। हम उनके भी आभारी है जिन्होंने साक्ष्य दिया, ज्ञापन भेजे, प्रश्नावली के उत्तर दिए, वादविवाद में भाग लिया, विचार गोष्ठियों और परिषदों में भाग लिया तथा हमें अपने संस्थानों में जाने की सुविधा प्रदान की।

हम उन अभिकरणों को भी धन्यवाद देते हैं जिन्होंने हमारे लिए विशेष अध्ययन और पूछताछ कराई है। शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण की राष्ट्रीय परिषद्, अनुप्रयुक्त जनशक्ति अनुसंधान संस्थान, भारतीय विधि संस्थान, शिक्षा का राजकीय संस्थान तथा विभिन्न अध्यापक संगठनों के हम विशेषरूप से आभारी हैं। उन्होंने हमारी जाँच-पड़ताल की पृष्ठभूमि तैयार की, अन्यथा कमी रह जाती।

आयोग के सचिवालय ने जो विशिष्ट जाँच-पड़ताल कराई उससे बहुत से शैक्षिक संस्थान संबद्ध थे। बहुत से अन्य संस्थानों ने अपने कर्मचारी वर्ग के अनुभव से हमें लाभ पहुंचाया तथा चर्चाएं आयोजित कर वाद-विवाद का अवसर दिया। हम इन सभी के आभारी है।

हम विश्वविद्यालय अनुदान आयोग तथा भारतीय

लोक प्रशासन संस्थान के विशेष रूप से आभारी हैं। जिन्होंने स्वयं दिक्कत उठाकर हमारे कार्यालय के लिए आवश्यक स्थान दिया।

हमें यूनेस्को, ब्रिटिश काउंसिल, यूसेड को धन्यवाद देते हुए हर्ष हो रहा है जिन्होंने अपने सदस्यों और परामर्शदाताओं की सेवाएं हमें प्रदान कीं। हम एशिया फाउनडेशन को उनकी पुस्तकों के उपहार के लिए धन्यवाद देते हैं। हमें यूनेस्को के शैक्षिक योजना के अन्तर्राष्ट्रीय संस्थान, फ्रांस, जर्मन संघीय गणराज्य और सोवियत संघ की सरकारों को भी धन्यवाद देना हैं। तुलनात्मक अध्ययन के लिए उनके यहाँ गए हमारे दल को उन्होंने वित्तीय तथा अन्य सहायता प्रदान की। निष्ठापूर्ण निस्वार्थ सेवाओं के लिए अपने सचिवालय को तथा राज्य सम्पर्क अधिकारियों को उनकी अपरिमित सहायता के लिए हम धन्यवाद देते हैं।

आभार प्रदर्शन का यह क्रम हम तब तक समाप्त नहीं कर सकते जब तक कि आयोग के सदस्य-सचिव श्री जे० पी० नायक के प्रति आभार प्रदर्शन नहीं कर लेते। शिक्षा समस्याओं तथा शिक्षा सांख्यिकी का उनका अप्रतिभ ज्ञान और उनकी अथक कार्यक्षमता से हमें निरन्तर प्रेरणा और बल मिलता रहा है। आयोग का कार्य निर्धारित अवधि में समाप्त होने का सर्वाधिक श्रेय उनको है।

हम श्री के० एफ० मैकडूगल, आयोग के संबद्ध सचिव के आभारी हैं, जिन्होंने कार्य के प्रत्येक स्तर पर हमारी सहायता की है।

विषय-सूची

आमुख

पहला खण्ड : सामान्य समस्याएं

पृष्ठ

पहला अध्याय : **शिक्षा और राष्ट्रीय लक्ष्य** 1—26

राष्ट्रीय विकास की कुछ समस्याएँ 2
शिक्षा : परिवर्तन का मुख्य साधन 4
शैक्षिक क्रान्ति 5
शिक्षा को लोगों के जीवन, आवश्यकताओं और आकांक्षाओं से संबंधित बनाना . . 6
शिक्षा और उत्पादिता 7
शिक्षा और सामाजिक तथा राष्ट्रीय एकीकरण 11
शिक्षा और आधुनिकीकरण 21
सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक मूल्य 22
एक चुनौती और एक आस्था 25

दूसरा अध्याय : **शिक्षा प्रणाली : संरचना और स्तर** 27—51

सामान्य हल 27
संरचना और अवधि 28
स्कूली शिक्षा का पुनर्गठन 33
विश्वविद्यालय स्तर का पुनर्गठन 41
सुविधाओं का उपयोगीकरण 42
गतिशील और विकासशील स्तर 46
सामान्य 49

तीसरा अध्याय : **अध्यापक की प्रतिष्ठा** 52—74

पारिश्रमिक 52
सेवा-निवृत्ति लाभ 67
कार्य और सेवा की स्थिति 69

चौथा अध्याय : **अध्यापक शिक्षण** 75—99

सामान्य 75
अध्यापक शिक्षण के अलगाव का निवारण 76
अध्यापक शिक्षण में गुणात्मक सुधार 80
प्रशिक्षणशालाओं की गुणवत्ता में सुधार 86
अध्यापकों की वृत्तिक शिक्षा का सातत्य 96
अध्यापक शिक्षण में स्तरों की रक्षा 98

पृष्ठ

पांचवां अध्याय : **नामांकन तथा जनशक्ति** 100—122

राष्ट्रीय नामांकन नीति 100
शिक्षा के विभिन्न स्तरों के लिए नामांकन नीतियां 101
अपेक्षित जनशक्ति का पूर्वानुमान 104
प्राक्कलनों की शैक्षिक कठिनाइयां 110
जनशक्ति के प्राक्कलनों का नामांकनों से संबंध 117
सामान्य 121

छठा अध्याय : **शिक्षा के अवसरों के समकरण की ओर** 123—161

पढ़ाई की फीस और दूसरे निजी खर्च 124
छात्रवृत्तियां 129
विकलांक बच्चे 139
क्षेत्रीय असंतुलन 142
लड़कियों की शिक्षा 152
अनुसूचित आदिम जातियों की शिक्षा 156

दूसरा खण्ड : विभिन्न स्तरों और विभिन्न क्षेत्रों में शिक्षा

सातवां अध्याय : **स्कूल शिक्षा : विस्तार की समस्याएं** 164—202

स्कूल शिक्षा के प्रति समेकित दृष्टिकोण 164
पूर्व प्राथमिक शिक्षा 165
प्राथमिक शिक्षा : सांविधानिक निदेशों की पूर्ति 168
प्राथमिक स्तर पर नामांकन 180
माध्यमिक शिक्षा का विस्तार (कक्षा 8 से 12) 184
स्कूलों के स्थल की योजना 195

आठवां अध्याय : **स्कूल पाठ्यचर्या** 203—250

पाठ्यचर्या के विर्माण से संबंधित आवश्यक बातें 204
पाठ्यचर्या का संगठन करना 206
भाषाएं 212
विज्ञान और गणित 219
सामाजिक अध्ययन और सामाजिक विज्ञान 223
कार्य-अनुभव 224
सामाजिक सेवा 226
शारीरिक शिक्षा 228
सामाजिक नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा 229
रचनात्मक कार्यकलाप 230
लड़के और लड़कियों के लिए पाठ्यचर्याओं में अन्तर रखना 231
नई पाठ्यचर्या और बुनियादी शिक्षा 231
अनुपूरक टिप्पणियां. 233

पृष्ठ

नौवां अध्याय : शिक्षण विधियां, मार्गदर्शन और मूल्यांकन 251—278

शिक्षण प्रणाली : खोज और प्रसारण 251
पाठ्य पुस्तकें, अध्यापक मार्गनिर्देशिका एवं शिक्षण-सामग्री 256
कक्षा का आकार 261
स्कूली इमारतें 264
स्कूल स्वास्थ्य सेवाएं 267
मार्गदर्शन और सलाह 267
प्रतिभा की खोज एवं विकास 269
पिछड़े छात्रों की शिक्षा 271
मूल्यांकन का नवीन कार्यक्रम 272

दसवां अध्याय : स्कूल शिक्षा : प्रशासन और पर्यवेक्षण 279—308

लोक शिक्षा की समान स्कूल पद्धति 280
स्कूल-सुधार के राष्ट्रव्यापी कार्यक्रम का आयोजन 290
पर्यवेक्षण : राज्य शिक्षा विभागों का पुनर्गठन : जिला स्तर 293
राज्य शिक्षा विभागों का पुनर्गठन : राज्य स्तर 299
राज्य और राष्ट्रीय शिक्षा बोर्ड 300
केन्द्र का योगदान 304
स्वतंत्र और मान्यता प्राप्त स्कूल 306

ग्यारहवां अध्याय : उच्चतर शिक्षा : उद्देश्य और सुधार 309—339

विश्वविद्यालयों के उद्देश्य 309
भारत में विश्वविद्यालय 310
कुछ समस्याएं, जिनसे जूझना है 314
बड़े विश्वविद्यालयों की स्थापना 316
अन्य विश्वविद्यालयों और सम्बद्ध विश्वविद्यालयों का सुधार 322
अध्यापन और मूल्यांकन में सुधार 325
छात्र-सेवाएं 333

बारहवां अध्याय : उच्चतर शिक्षा : नामांकन और कार्यक्रम 340—368

उच्चतर शिक्षा में सुविधाओं का विस्तार 340
चुने हुए दाखिले 347
अंश-कालिक और निज-कालिक शिक्षा 350
सम्बद्ध कालेजों की स्थिति 351
स्नातकोत्तर शिक्षा और अनुसंधान का विस्तार 352
महिलाओं के लिए उच्चतर शिक्षा 355
नए विश्वविद्यालय 357
पाठ्यक्रमों का पुनर्गठन 360
शिक्षा विषयक अनुसंधान 366

पृष्ठ

तेरहवां अध्याय : **विश्वविद्यालयों का अभिशासन** 369—397

विश्वविद्यालय स्वायत्तता 370
विश्वविद्यालयों की वित्त-व्यवस्था 376
उपकुलपति का योगदान और उसकी नियुक्ति 380
विश्वविद्यालयों के लिए विधान 382
संबद्ध कालेज 386
समन्वय तथा संवर्धनात्मक संगठन 389
अनुपूरक टिप्पणी : विश्वविद्यालय स्वायत्तता विषयक अन्तर्विश्वविद्यालय बोर्ड . . 395

चौदहवां अध्याय : **कृषि शिक्षा** 398—422

भावी कार्य 398
कृषि विश्वविद्यालय 400
कृषि विश्वविद्यालयों के बाहर कृषि की उच्चतर शिक्षा 407
कृषि पोलिटेक्निक 409
स्कूलों में कृषि शिक्षा (कक्षा 1 से 10) 410
सामान्य शिक्षा के अंग के रूप में कृषि शिक्षा 412
विस्तार-कार्यक्रम 413
जनशक्ति की आवश्यकताएं 417
अनुलग्नक : कृषि पालिटेक्निकों के लिए पाठ्यक्रम 421

पंद्रहवां अध्याय : **व्यावसायिक, तकनीकी तथा इंजीनियरी शिक्षा** . . . 423—445

भूमिका 423
स्कूल स्तर पर व्यावसायिक तथा तकनीकी शिक्षा 424
इंजीनियरी की शिक्षा 431
शिक्षा का माध्यम 438
व्यावहारिक प्रशिक्षण योजना 439
उद्योग से सहयोग 439
इंजीनियरी में वृत्तिक संस्थाएं 440
पत्राचार पाठ्यक्रम 440
व्यावसायिक, तकनीकी और इंजीनियरी शिक्षा का प्रशासन 440
अनुबंध : शिक्षा के अन्य पाठ्यक्रम 444

सोलहवां अध्याय : **विज्ञान की शिक्षा और अनुसंधान** . . . . 446—483

परिचयात्मक 446
शिक्षा तथा अनुसंधान में निवेश, और राष्ट्रीय उत्पादिता 450
विज्ञान की शिक्षा 452
वैज्ञानिक अनुसंधान 464

पृष्ठ

विश्वविद्यालयों में वैज्ञानिक अनुसंधान 468
विश्वविद्यालयों के बाहर आधारभूत अनुसंधान 476
प्रतिभाओं का प्रवासन 477
विदेशों में प्रशिक्षण के लिए शिक्षावृत्ति 479
राष्ट्रीय विज्ञान नीति 479
विज्ञान अकादेमी 481
निष्कर्ष 482

सत्रहवां अध्याय : **प्रौढ़ शिक्षा** . . . . . 484—502

प्रौढ़ शिक्षा का क्षेत्र 484
निरक्षरता का निर्मूलन 485
निरन्तर शिक्षा 494
पत्राचार पाठ्यक्रम 497
पुस्तकालय 499
प्रौढ़ शिक्षा में विश्वविद्यालयों का योगदान 500
संगठन और प्रशासन 501

तीसरा खण्ड : क्रियान्विति

अठारहवां अध्याय : **शैक्षिक योजना और प्रशासन** . . . . . 504—526

शैक्षिक योजना 504
गैर-सरकारी उद्यम का योगदान 507
स्थानीय स्वायत्त निकायों का योगदान 508
केन्द्रीय सरकार का योगदान 512
राष्ट्रीय स्तर पर शैक्षिक प्रशासन 515
राज्य स्तर पर शैक्षिक प्रशासन 518
कार्मिक 520
कार्यविधियां 525

उन्नीसवां अध्याय : **शिक्षा के लिए वित्त** . . . . . 527—555

शिक्षा का कुल व्यय (1950-65) 527
शिक्षा के व्यय का स्वरूप (1950-65) 530
शिक्षा के व्यय के स्रोत (1950-65) 536
शिक्षा के व्यय के स्रोत (1965-85) 537
शिक्षा का कुल व्यय (1965-85) 538
प्रति विद्यार्थी व्यय 543
प्रौढ़ शिक्षा 551
कुछ सामान्य विचार 552

पृष्ठ

सोत्साह और सतत क्रियान्विति की आवश्यकता . . . . . 556—558

अनुपूरक टिप्पणियां 559—587

एक. देहाती तथा नागरिक स्थानीय स्वायत्त निकायों को राज्य सरकारों द्वारा सहायता अनुदान : शिक्षा के वित्तीय आभरण के लिए केन्द्र और राज्यों के बीच सम्बन्ध . . 559

दो. स्कूल शिक्षा के विकास (1966-85) पर खर्च का अनंतिम अनुमान . . . 566

तीन. उच्चशिक्षा के विकास (1966-85) पर खर्च सम्बन्धी अनंतिम अनुमान . . 576

चार. उच्चतर शिक्षा में इकाई लागत 582

पांच. शिक्षा पर आवर्ती तथा पूंजीगत कुल प्रत्याशित खर्च का समेकित विवरण (1966-85) 587

चौथा खण्ड : अनुपूरक सामग्री

अनुपूरक टिप्पण-लेखक श्री आर० ए० गोपालस्वामी . . . . 589—654

परिशिष्ट

एक. रिपोर्ट में शामिल नामांकन सांख्यिकी पर एक विवरणात्मक टिप्पणी . . . 655

दो. शिक्षा आयोग की स्थापना के लिए भारत सरकार का संकल्प . . . 669

तीन. शिक्षा आयोग के परामर्श दाता 672

चार. कार्यदल और कर्मी-समूह 674

पांच. शिक्षा आयोग ने जिन व्यक्तियों से दिल्ली में समालाप किया उनकी सूची . . 688

छह. आयोग का सचिवालय 692

सात. राज्य सरकारों और केन्द्र प्रशासित क्षेत्रों के सम्पर्क अधिकारी . . . 693

आठ. शिक्षा आयोग से दौरों का कार्यक्रम 695

नौ. शिक्षा आयोग पर हुआ खर्च 696

सिफारिशों का सार

अध्याय एक. शिक्षा और राष्ट्रीय लक्ष्य 697

दो. शिक्षा प्रणाली : संरचना और स्तर 700

तीन. अध्यापक की प्रतिष्ठा 702

चार. अध्यापक शिक्षण 707

पांच. नामांकन तथा जनशक्ति 711

छह. शिक्षा के अवसरों के समकरण की ओर 714

सात. स्कूल शिक्षा : विस्तार की समस्याएं 719

आठ. स्कूल पाठ्यचर्या 722

नौ. शिक्षण पद्धतियां, मार्गदर्शन और मूल्यांकन 726

दस. स्कूल शिक्षा: प्रशासन और पर्यवेक्षण 730

ग्यारह. उच्चतर शिक्षा : उद्देश्य और सुधार 735

बारह. उच्चतर शिक्षा : नामांकन और कार्यक्रम 740

तेरह. विश्वविद्यालयों का अभिशासन 744

चौदह. कृषि शिक्षा 747

पृष्ठ

पंद्रह. व्यावसायिक, तकनीकी तथा इंजीनियरी शिक्षा 750
सोलह. विज्ञान की शिक्षा और अनुसंधान 753
सत्रह. प्रौढ़ शिक्षा 758
अठारह. शैक्षिक योजना और प्रशासन 760
उन्नीस. शिक्षा के लिए वित्त 766

सारणियों की सूची

संख्या	शीर्षक	पृष्ठ
2.1	विभिन्न राज्यों में स्कूली तथा कालेजी कक्षाओं का स्वरूप (1965-66) . .	29
3.1	भारत में अध्यापकों के वेतन का वार्षिक औसत	53
3.2	29 जिलों में स्कूल अध्यापकों की परिलब्धियां (1965) . . .	63
3.3	अध्यापिकाएं (1950-65)	71
4.1	प्राथमिक स्कूलों के अध्यापकों का सामान्य शिक्षण (1950-51 से 1965-66) .	89
4.2	राज्यों में प्रशिक्षित आध्यापकों की संख्या और उनका प्रतिशत अनुपात (1965-66)	91
4.3	अप्रशिक्षित अध्यापक: आयु-वर्ग के अनुसार (1965) . . .	94
5.1	औद्योगिक क्षेत्र में लगे हुए मैट्रिक, इन्टर, स्नातक तथा कुल कर्मचारी—भारत (1961)	105
5.2	औद्योगिक क्षेत्र में मैट्रिक तथा इससे अधिक योग्यता वाले कर्मचारियों की सम्भावित आवश्यकता—भारत (1960-61 से 1985-86 तक)	107
5.3	अपेक्षित कर्मचारी, उनकी मौजूदा संख्या तथा मैट्रिक या इससे अधिक योग्यता वाले व्यक्तियों के उत्पादन सम्बन्धी प्राक्कलन—भारत (1960-61 से 1985-86 तक) .	108
5.4	प्रस्तावित नामांकन (1960-61 से 1985-86 तक) . . .	109
5.5	शिक्षा-क्षेत्र में नामांकन (1960-85)	114
5.6 (क)	भारतवर्ष में कुल अनुमानित भावी रोजयार की स्थिति (1961 से 1986 तक) .	115
5.6 (ख)	कुल अनुमानित रोजगार में मैट्रिक पास या इससे अधिक योग्यता वाले लोगों का प्रतिशत (1960-61 से 1985-86 तक)	116
5.7	जापान और संयुक्त राज्य अमरीका की जनसंख्याओं में काम करने वाले व्यक्तियों के शिक्षा स्तर	117
6.1	फीसों से कुल आय (1950-51 से 1965-66 तक)	124
6.2	शिक्षा की फीसें (1960-61)	125
6.3	शिक्षा के निजी खर्च (वार्षिक) 1965-66	128
6.4	व्यावसायिक, तकनीकी और वृत्तिक संस्थाओं में 1965 में प्रविष्ट छात्रों की आर्थिक-सामाजिक अवस्थाएं	135
6.5	छात्रवृत्तियां, वृत्तिकाओं पर होने वाले व्यय के स्रोत (1960-61) . .	138
6.6	राज्यों में शैक्षिक योग्यता, प्रयत्न और सफलता (1960-61) . .	142
6.7	लड़कियों की शिक्षा	152
6.8	अनुसूचित आदिम जातियों में शिक्षा (1961)	158
7.1	भारत में प्रथम दल का आयु के अनुसार वर्गीकरण (कक्षा 1 में नामांकन) .	170

संख्या	शीर्षक	पृष्ठ
7.2	कक्षा 1-8 में नामांकन (1911-12 से 1965-66)	173
7.3	कक्षा 1-8 में अगति के सूचकांक (1965)	174
7.4	प्राथमिक स्तर पर व्यर्थता (1950-51 से 1961-62)	176
7.5	प्राथमिक शिक्षा में नामांकन	180
7.6	माध्यमिक शिक्षा में नामांकन	186
7.7	माध्यमिक स्तर पर व्यावसायिक शिक्षा	191
7.8	अवर प्राथमिक स्कूलों/सेक्शनों का आकार के अनुसार वितरण (1965)	196
7.9	उच्चतर प्राथमिक स्कूलों/सेक्शनों का आकार के अनुसार वितरण (1965)	198
7.10	हाई/उच्चतर माध्यमिक स्कूलों/सेक्शनों का वितरण आकार के अनुसार	200
7.11	व्यावसायिक स्कूलों का आकार (1961-62)	202
9.1	अवर प्राथमिक स्कूलों/सेक्शनों में अध्यापकों का वितरण : उनके द्वारा पढ़ाए जाने वाले छात्रों की संख्या के आधार पर	262
9.2	उच्चतर प्राथमिक तथा माध्यमिक स्तरों पर कक्षाओं/सेक्शनों का आकार (1965)	262
9.3	प्राथमिक स्कूलों/सेक्शनों में उनके द्वारा पढ़ाई गई कक्षाओं के अनुसार अध्यापकों का वितरण (1965)	264
10.1	प्रबंधक निकाय के प्रकार भारत में स्कूलों का विभाजन (1660-61)	280
10.2	प्रबंधक निकाय द्वारा और अन्य स्रोतों से भारत में स्कूलों पर किया गया खर्च (1960-61)	281
12.1	उच्चतर शिक्षा में नामांकन	341
12.2	विशेषज्ञों का निर्गम, प्रवेश और नामांकन	345
12.3	1975-76 और 1985-86 में उच्चतर शिक्षा में संभावित नामांकन	346
12.4	सम्बद्ध कालेजों का आकार (1964-65)	351
15.1	प्रथम डिग्री के लिए इंजीनियरी पाठ्यक्रमों की अवधि (1965-66)	432
15.2	तकनीकी संस्थाओं में अध्यापकों की कमी	435
16.1	1950 और 1963 में विज्ञान तथा शिल्पविज्ञान में प्रदान की गई उपाधियां	456
16.2	मूल वैज्ञानिक विषयों में एम० एस-सी० करने वालों की संख्या (1650 से 1963 तक)	457
16.3	भारत वर्ष के विश्वविद्यालयों में नामांकन : राज्यवार और संकायवार (1964-65)	459
16.4	अनुसधान एवं विकास पर व्यय और कुल राष्ट्रीय उत्पादन (1960)	465
16.5	अनुसंधान एवं विकास पर अनुमानित कुल व्यय और कुल राष्ट्रीय उत्पादन (1962)	466
16.6	आर्थिक खंडों द्वारा अनुसंधान एवं विकास पर कुल अनुमानित व्यय (1962)	467
16.7	अनुसंधान एवं विकास में लगी हुई अनुमानित जनशक्ति (1962)	468
16.8	वैज्ञानिक अनुसंधान के विभिन्न क्षेत्रों पर केन्द्रीय सरकार का व्यय (1963-64)	475
16.9	अनुसंधान और विकास पर राज्य सरकारों द्वारा खर्च (1963-64)	475
16.10	संयुक्त राज्य अमरीका में वैज्ञानिकों और इंजीनियरों का प्रवास	478
18.1	कुल शिक्षा संस्थाओं तथा गैर-सरकारी शिक्षा संस्थाओं का प्रतिशत अनुपात (1960-61)	507

संख्या	शीर्षक	पृष्ठ
19.1	भारत में शिक्षा का कुल व्यय (1950-51 से 1965-66)	528
19.2	भारत में शिक्षा का मदवार व्यय (1950-51 से 1965-66)	530
19.3	स्कूल और विश्वविद्यालय के स्तरों पर अप्रत्यक्ष व्यय	532
19.4	शिक्षा का स्तरवार व्यय	533
19.5	जापान में शिक्षा पर व्यय (1885-1960)	533
19.6	शिक्षा के स्तर और प्रकार के अनुसार शिक्षा के आवर्ती व्यय का प्रतिशत वितरण	534
19.7	भारत में शिक्षा के मदवार व्यय की वृद्धि (1881-1960)	535
19.8	भारत में शिक्षा का व्यय-स्रोतों के अनुसार (1950-51 से 1965-66)	536
19.9	शिक्षा का कुल व्यय (1965-1985)	539
19.10	(क) प्रतिछात्र औसत वार्षिक लागत (1950-51)	544
19.10	(ख) प्रतिछात्र औसत वार्षिक लागत (1965-66)	544
19.11	स्कूल शिक्षा का खर्च (1975-76 और 1985-86)	545
19.12	प्रति छात्र औसत वार्षिक लागत (1950-51 और 1985-86)	546
19.13	उच्चतर शिक्षा का खर्च (1975-76 से 1985-86)	549
19.14	उच्चतर शिक्षा के स्तर पर प्रतिछात्र औसत वार्षिक लागत (1950-51 से 1985-86)	549
19.15	भारत में शिक्षा का मदवार खर्च (1975-76 और 1985-86)	552
19.16	केन्द्रीय सरकार की तिधि से मदावुसार शैक्षिक खर्च (1950-51 से 1960-61)	562
19.17	तीसरी योजना में शिक्षा पर केन्द्रीय खर्च का बजट	563
19.18	केन्द्रीय और राज्य सरकार की तिधियों में से शिक्षा पर खर्च (राजस्व लेखा) (1951-52 से 1965-66)	564
19.19	स्कूल अवस्था पर छात्रवृत्तियों और वज़ीफ़ों पर अनुमानित लागत (1975-76 और 1985-86)	573
19.20	स्कूल शिक्षा का खर्च (1975-76 और 1985-86)	574
19.21	प्रतिछात्र औसत वार्षिक लागत (1950-51 से 1985-86)	575
19.22	उच्चतर शिक्षा में छात्रों के लिए छात्रवृत्तियों, वजीफ़ों की अनुमानित लागत (1975-76 और 1985-86)	579
19.23	उच्चतर शिक्षा पर खर्च (1975-76 से 1985-86)	580
19.24	प्रति छात्र औसत वार्षिक लागत (1950-51 से 1985-86)	581
19.25	विश्वविद्यालयों के लिए प्रति छात्र लागत (विश्वविद्यालय के शिक्षण विभाग, संकाय और विश्वविद्यालय के संघटक कालेज)	582
19.26	बम्बई विश्वविद्यालय	
	(क) स्नातकोत्तर विभागों (1963-64) में प्रति छात्र लागत	583
	(ख) कालेजों में प्रति छात्र लागत	584
19.27	नागपुर विश्वविद्यालय	
	(क) पूर्व स्नातक संस्थाओं में प्रतिछात्र लागत 1964-65	584
	(ख) पूर्व स्नातक और उत्तर स्नातक अनुभागों वाले कालेजों में प्रतिछात्र लागत	585
19.28	उस्मानिया विश्वविद्यालय कालेजों में प्रतिछात्र लागत (1963-54)	585
19.29	पूना विश्वविद्यालय पूर्व-स्नातक पाठ्यक्रम में प्रतिछात्र लागत	586
19.30	शिक्षा पर आवर्ती तथा पूंजीगत कुल प्रत्याशित खर्च का समेकित विवरण (1966-85)	587

चार्ट-सूची

संख्या	शीर्षक	पृष्ठ
1.	शिक्षा का स्वरूप (1965-66) राज्य	30
2.	शिक्षा का स्वरूप (1965-66) : (संघशासित प्रदेश)	31
3.	1 से 10 तक की स्कूल कक्षाओं की तुल्यता (1965-66)	38
4.	सामान्य शिक्षा के उच्चतर माध्यमिक तथा प्रथम डिग्री पाठ्यक्रमों की तुल्यता (1965-66)	39
5.	स्कूल अध्यापक: योग्यतानुसार (1950-51) और (1965-66)	90
6.	प्रशिक्षित अध्यापकों की प्रतिशतता (1960-61)	92
7.	कार्यकारी जनसंख्या का शिक्षा स्तर (भारत) 1961 तथा 1986	118
8.	शिक्षा पर व्यय प्रति व्यक्ति, 1960-61 (राज्यवार)	144
9.	अवर प्राथमिक स्तर पर नामांकन (कक्षाएं 1-5) प्रति हजार आबादी (1960-61)	145
10.	अवर प्राथसिक स्कूलों में नामांकन के अनुसार जिलों का वितरण (1960-61)	147
11.	प्रति हजार आबादी पर उच्चतर प्राथमिक स्तर पर (कक्षाएं 6-8) नामांकन (1960-61)	148
12.	उच्चतर प्राथमिक स्कूलों के नामांकन के अनुसार जिलों का वितरण (1960-1961)	150
13.	शिक्षा पर प्रति व्यक्ति व्यय के अनुसार जिलों का वितरण (1960-61)	151
14.	माध्यमिक स्कूलों में नामांकन के अनुसार जिलों का वितरण (1960-61)	154
15.	अवर प्राथमिक स्तर पर नामांकन (कक्षा 1-4)	181
16.	उच्चतर प्राथमिक स्तर पर नामांकन (कक्षा 5-8)	182
17.	अवर माध्यमिक स्तर पर नामांकन (कक्षा 8-10)	187
18.	उच्चतर माध्यमिक स्तर पर नामांकन (कक्षा 11-12)	188
19.	स्कूल नामांकन (1950-85)	190
20.	अवर प्राथमिक स्कूल/विभाग : आकार के अनुसार (1965)	197
21.	उच्चतर प्राथमिक स्कूल विभाग : आकार के अनुसार (1965)	199
22.	साध्यमिक स्कूल विभाग : आकार के अनुसार (1965)	201
23.	स्कूल में भाषाओं का अध्ययन (कक्षा 1 से 10)	216
24.	प्रति दस लाख की जनसंख्या में विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों की संख्या (1964-65)	342
25.	उच्चतर शिक्षा में प्रवेश और निर्गम	344
26.	सम्बद्ध कालेज, आकार के अनुसार (1964-65)	353
27.	प्रति व्यक्ति कुल राष्ट्रीय उत्पाद से संबद्ध अनुसंधान और विकासव्यय	453
28.	मनुष्य के मुकाबले विज्ञान में निवेश	454
29.	शिक्षा का व्यय (1950-1985)	540
30.	स्तरवार शिक्षा का खर्च 1950-85	542

पहला खण्ड

सामान्य समस्याएं

इस रिपोर्ट में शैक्षिक पुनर्निर्माण के जो कार्यक्रम दिए गए हैं वे मोटे तौर पर तीन श्रेणियों में बाँटे जा सकते हैं।

— शैक्षिक पद्धति के अंतरंग का रूपांतरण, ताकि वह राष्ट्र के जीवन, उसकी आवश्यकताओं और महत्वाकांक्षाओं से संबद्ध की जा सके;

— शिक्षा के क्षेत्र में गुणात्मक सुधार, ताकि उससे जो स्तर प्राप्त किए जाएं वे पर्याप्त हों; प्राप्त स्तर निरन्तर उन्नत होते रहें ताकि कम-से-कम कुछ पक्षों में उनकी तुलना अन्तर्राष्ट्रीय स्तरों से की जा सके; और

— जनशक्ति की आवश्यकताओं के आधार पर शैक्षिक सुविधाओं का विस्तार तथा शैक्षिक सुविधाओं की समानता पर जोर।

रिपोर्ट के इस खंड में उपर्युक्त तीन विषयों से संबंधित सामान्य पक्षों के कार्यक्रमों पर विचार किया गया है।

पहले अध्याय में कुछ ऐसे मुख्य कार्यक्रमों की चर्चा की गई है जो शिक्षा को जीवन में उतारने में सहायक होंगे तथा देशवासियों की आवश्यकताओं और महत्वाकांक्षाओं को पूरा करेंगे।

दूसरे, तीसरे और चौथे अध्याय में गुणात्मक सुधार के सामान्य पक्षों पर विचार किया गया है। दूसरे अध्याय में शैक्षिक ढांचे के पुनर्गठन तथा शिक्षा के स्तर में सुधार से संबंधित कुछ मुख्य कार्यक्रमों की चर्चा है। तीसरे अध्याय में अध्यापकों की प्रतिष्ठा बढ़ाने के कार्यक्रम हैं, जैसे, वेतन में वृद्धि, अवकाश प्राप्त करने की सुविधाएं, कार्य और सेवा की स्थिति में सुधार और वृत्तिक पदोन्नति की सुविधाएं। चौथे अध्याय में अध्यापक-शिक्षा के कार्यक्रम हैं। इनमें सेवा-पूर्व तथा अंतःसेवा के कार्यक्रम भी शामिल हैं।

पाँचवें और छठे अध्याय में विस्तार की समस्याएं तथा शैक्षिक सुविधाओं की समानता पर विचार किया गया है। पाँचवें अध्याय में अगले बीस वर्षों में राष्ट्रीय नामांकन नीति के निर्धारण के स्थूल सिद्धान्तों पर विचार किया गया है। इसमें यह भी बताया गया है कि शैक्षिक पद्धति जनशक्ति की या नौकरी की सुविधाओं के अनुसार कैसे कार्यान्वित की जा सकती है। छठे अध्याय में समकरण-कार्यक्रम, जैसे, निःशुल्क शिक्षा, लेखन सामग्री तथा पुस्तकों का वितरण, छात्र-वृत्तियां, विकलांग बच्चों की शिक्षा, शैक्षिक विकास के क्षेत्र में प्रादेशिक असंतुलन को कम करना, स्त्रियों की शिक्षा, और पिछड़े वर्गों की, विशेष रूप से आदिम जातियों की, शिक्षा पर प्रकाश डाला गया है।

पहला अध्याय

शिक्षा और राष्ट्रीय लक्ष्य

एक. राष्ट्रीय विकास की कुछ समस्याएँ—(5) **खाद्यान्न में आत्म-निर्भरता**; (6) **आर्थिक विकास और सब को रोजगार**; (7) **सामाजिक और राष्ट्रीय एकीकरण**; (8) **राजनीतिक विकास**।

दो. शिक्षा : परिवर्तन का मुख्य साधन—(12) **हमारे मानव संसाधनों का विकास**; (14) **परिवर्तन का साधन शिक्षा**।

तीन. शैक्षिक क्रांति (16-17)

चार. शिक्षा को लोगों के जीवन, आवश्यकताओं और आकांक्षाओं से संबंधित बनाना (18-20)

पाँच. शिक्षा और उत्पादिता—(23) **शिक्षा और संस्कृति के मूल अंग के रूप में विज्ञान**; (25) **कार्य-अनुभव**; (32) **व्यवसायीकरण**; (33) **विश्वविद्यालय स्तर पर कृषि और संबद्ध विज्ञानों पर जोर देते हुए वैज्ञानिक और शिल्पवैज्ञानिक शिक्षा तथा अनुसंधान में सुधार**।

छह. शिक्षा और सामाजिक तथा राष्ट्रीय एकीकरण—(36) **समान स्कूल**; (39) **सामाजिक और राष्ट्रीय सेवा**; (45) **स्कूल और कालेज में सामुदायिक जीवन** : (46) **सामुदायिक विकास के कार्यक्रमों में भाग लेना**; (49) **भाषा-नीति का विकास** (50) **आधुनिक भारतीय भाषाओं का विकास**; (51) **स्कूल और कालेज में शिक्षा का माध्यम**; (57) **अंतर्राष्ट्रीय आदान-प्रदान के साधन**; (60) **देश में ही आदान-प्रदान के साधन**; (63) **राष्ट्रीय चेतना को बढ़ावा देना**; (67) **अंतर्राष्ट्रीय सद्भावना के लिए शिक्षा**; (68) **लोकतांत्रिक मूल्य**।

सात. शिक्षा और आधुनिकीकरण—(70) **ज्ञान का विस्फोट**; (71) **जल्दी-जल्दी होनेवाला सामाजिक परिवर्तन** (72) **शीघ्र उन्नति की आवश्यकता**; (73) **आधुनिकीकरण और शिक्षा की प्रगति**।

आठ. सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक मूल्य—(74-77); (78) **धर्म-निरपेक्षता और धर्म**।

नौ. एक चुनौती और एक आस्था—(81-87)

1.01. भारत के भाग्य का निर्माण इस समय उसकी कक्षाओं में हो रहा है। हमारा विश्वास है कि यह कोई चमत्कारोक्ति नहीं है। विज्ञान और शिल्पविज्ञान पर आधारित इस दुनिया में, शिक्षा ही लोगों की खुशहाली, कल्याण और सुरक्षा के स्तर का निर्धारण करती है। हमारे स्कूलों और कालेजों से निकलने वाले विद्यार्थियों की योग्यता और संख्या पर ही राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के उस महत्वपूर्ण कार्य की सफलता निर्भर करेगी जिसका प्रमुख लक्ष्य हमारे रहन-सहन का स्तर ऊँचा उठाना है। इस बात को देखते हुए, यह जरूरी हो गया है कि—

— राष्ट्रीय विकास के समग्र कार्यक्रम में शिक्षा की भूमिका का हम फिर से मूल्यांकन करें;

— यदि शिक्षा को अपनी भूमिका निभानी है, तो शिक्षा की वर्तमान प्रणाली में जो परिवर्तन आवश्यक है, उन्हें हम पहचानें और उनके आधार पर शिक्षा के विकास का कार्यक्रम तैयार करें; और

— इस कार्यक्रम को दृढ़ संकल्प तथा शक्ति के साथ अमल में लाएं।

1.02. यह कार्य न तो अपनी तरह का अकेला ही है और न बिल्कुल नया ही। किन्तु स्वतन्त्रता की प्राप्ति के बाद से तथा राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के योजनाबद्ध विकास के तरीकों के अपनाए जाने के बाद से उसकी विशालता गम्भीरता और शीघ्र ही उसे पूरा करने की आवश्यकता, बहुत बढ़ गई है और उसमें एक नया अर्थ आ गया है तथा उसका एक नया महत्व भी हो गया है। यदि हमें राष्ट्रीय विकास की गति तेज करनी है तो शिक्षा संबंधी एक सुलझी हुई, दृढ़ और कल्पनापूर्ण नीति तथा शिक्षा में प्राण डालने, उसमें सुधार करने तथा उसका विस्तार करने के लिए दृढ़ संकल्पपूर्ण एवं प्राणमय कार्रवाई करने की इस समय बड़ी आवश्यकता है।

1.03. इस समय भारत की आबादी लगभग 50 करोड़ है और इस आबादी में से आधी की आयु 18 साल से कम है— यानी आज भारत आवश्यक रूप से युवाओं का देश है। अगले 20 वर्षों में यह आबादी 25 करोड़ और बढ़ जाने की संभावना है। देश में इस समय शिक्षा संस्थाओं की कुल संख्या 500,000 से अधिक है। शिक्षकों की संख्या भी 20 लाख से अधिक है। विद्यार्थियों की कुल संख्या, जो इस समय लगभग 7 करोड़ है, आने वाले 20 वर्षों में दुगुनी हो जाएगी : और 1985 तक वह लगभग 17 करोड़ या यूरोप की कुल आबादी के लगभग बराबर हो जाएगी। इस समस्याओं की विशालता और जटिलता का यह तकाजा है कि एक समुचित शिक्षा-नीति विकसित करने की दिशा में तेजी से कार्य किया जाए; यह स्वीकार कर लेने पर, विद्यार्थियों की इतनी बड़ी यह संख्या हमें यह प्रबल आशा बँधाती है कि राष्ट्रीय विकास में शिक्षा का महत्वपूर्ण योगदान रहेगा।

1.04 यह रिपोर्ट देश की वर्तमान शैक्षिक-स्थिति का संक्षिप्त मूल्य-निर्धारण करने और शैक्षिक विकास का एक समग्र कार्यक्रम प्रस्तुत करने से संबंधित है। किन्तु शिक्षा को सबसे अलग करके न तो विचार ही किया जा सकता है और न ही उससे संबंधित कोई योजना शून्य में बनाई जा सकती है। इसके विपरीत, उसका उपयोग तो सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिवर्तन के शक्तिशाली साधन के रूप में करना होता है और इस कारण उसका संबंध राष्ट्र की दीर्घकालिक आकांक्षाओं, राष्ट्रीय विकास के उन कार्यक्रमों जिनमें कि देश इस समय जुटा हुआ है और राष्ट्र की उन अल्पकालिक कठिन समस्याओं से जोड़ना होगा जिनका कि उसे सामना करना पड़ रहा है।

राष्ट्रीय विकास की कुछ समस्याएँ

1.05. **खाद्यान्न में आत्म-निर्भरता**— इन समस्याओं में से पहली और सबसे महत्वपूर्ण समस्या खाद्यान्न से संबंधित है। महात्मा गांधी ने यह विचार प्रकट किया था कि "यदि परमात्मा को भारत में अवतरित होना पड़े तो उसे रोटी के टुकड़े का रूप धारण करना पड़ेगा।" जनसंख्या के वर्तमान स्तर को ही यदि लें तो भी देश में खाद्यान्न की कमी है। हर पांचवे साल, हमारी जनसंख्या में इतनी वृद्धि हो जाती है कि उसके आंकड़े यूनाइटेड किंगडम की पूरी जनसंख्या से अधिक ही होते हैं। यदि हम यह मान भी लें कि प्रति एक हजार व्यक्तियों पर 40 की जो वर्तमान जन्म-दर है वह 1986 तक आधी हो जाएगी तो भी अगले बीस वर्षों में लगभग 23 करोड़ (या 1966 की जनसंख्या का 46 प्रतिशत) व्यक्ति और बढ़ जाएँगे। यदि जन्म-दर आधी नहीं हुई, तो यह वृद्धि 32 करोड़ या वर्तमान जनसंख्या की 65 प्रतिशत हो सकती है।[1] वर्तमान प्रवृत्तियों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि अगले 10-15 वर्षों में किसी भी देश के पास इतना अतिरिक्त खाद्यान्न नहीं होगा कि वह उसका निर्यात कर सके। यदि हम यह मान भी लें कि किसी के पास अतिरिक्त खाद्यान्न बच रहेगा, तो भी जिस विशाल मात्रा में हमें खाद्यान्न की आवश्यकता होगी उसका अथवा जिन खादों की हमें आवश्यकता होगी उनका आयात करने के साधन भी हमारे पास नहीं होंगे। इसलिए खाद्यान्न के मामले में आत्म-निर्भरता न केवल एक वांछनीय लक्ष्य ही बन जाती है, अपितु वह तो जीवन-मरण का एक प्रश्न भी है।

1.06. **आर्थिक विकास और सब को रोजगार**— इसी से सम्बन्धित दूसरी समस्या है लोगों की बेहद गरीबी और विशेषकर शिक्षित व्यक्तियों को बड़े पैमाने पर उचित रोजगार का न मिलना या बिल्कुल ही नहीं मिलना। भारत दुनिया के सबसे गरीब देशों में से एक है। प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय जो कि कुछ दशाब्दियों तक लगभग स्थिर रही और 1950-51 में रु० 265.5 थी, सन् 1964-65 में जाकर रु० 348·6 ही हो पाई—यानी प्रतिवर्ष उसमें 2·2 प्रतिशत (सन् 1960-61 की कीमतों के आधार पर) की ही वृद्धि हुई। राष्ट्रीय आय की वृद्धि की दर और उसका स्तर दोनों ही असंतोषजनक हैं। सबसे बड़ी खराबी तो यह है कि इस आय का वितरण भी बहुत असमान है। यह सुझाव दिया गया है कि हमारा वर्तमान लक्ष्य प्रत्येक नागरिक को प्रतिमाह रु० 35 का उपभोग सुनिश्चित कराना होना चाहिये जो कि पोषण सलाहकार समिति द्वारा सुझाए गए संतुलित भोजन के लिए पर्याप्त होगा तथा अन्य आवश्यक वस्तुओं के लिए भी उस व्यक्ति के पास कुछ बच रहेगा (सन् 1960-61 की कीमतों के आधार पर)। यह स्वयं ही कोई ऊंचा स्तर नहीं है। किन्तु इस समय तो ऊपर के केवल 20 प्रतिशत लोग ही इतना पा सकने में समर्थ हैं। सबसे नीचे 30 प्रतिशत की मासिक आय तो रु० 15 से भी कम है और इनसे भी नीचे के 10 प्रतिशत की रु० 10 से भी कम। यदि रु० 35 प्रतिमाह का यह न्यूनतम स्तर 1986 तक प्राप्त करना हो, तो तीन मोर्चों पर बहुत अधिक प्रयत्न करना पड़ेगा। पहला मोर्चा यह होगा कि हमें कम-से-कम 6 प्रतिशत प्रति वर्ष और यदि संभव

1 देखिए पूरक खंड एक, भाग पाँच में शोधपत्र सं० I, 'जनन क्षमता और शैक्षिक-विकास में परस्पर संबंध'

हो तो 7 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से आर्थिक विकास की त्वरित गति सुनिश्चित करनी होगी। दूसरे, आय का इस प्रकार समतापूर्ण वितरण करना होगा कि कुल राष्ट्रीय आय में हमारी जनसंख्या के अधिक वंचित वर्ग को तुलनात्मक रूप से और अधिक हिस्सा मिल सके। तीसरे, जनसंख्या की वृद्धि पर नियंत्रण करना होगा ताकि जन्म-दर कम से कम एक तिहाई या, और अधिक अच्छा यह होगा कि, आधी रह जाए। कम से कम इतना तो हमें करना ही होगा कि अगले बीस वर्षों में प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय दुगुनी हो जाए। इसी प्रकार, लोगों को, विशेषकर शिक्षित वर्ग को, पूरा रोजगार दिलाने के लिए भी कदम उठाने पड़ेंगे।

1.07. **सामाजिक और राष्ट्रीय एकीकरण**—इससे भी अधिक महत्वपूर्ण भूमिका शिक्षा को सामाजिक और राष्ट्रीय एकीकरण में निभानी है। भारतीय समाज में अनेक सोपान हैं, उसके अनेक स्तर बन गए हैं और उसमें नीचे से ऊपर की ओर गतिशीलता की कमी है। विभिन्न वर्गों के बीच का अन्तर, विशेषकर गरीब और अमीर वर्ग में तथा शिक्षितों और अशिक्षितों में, काफी है और वह अधिक ही होता जा रहा है। भारतीय अनेक धर्मों के मानने वाले हैं और यह तस्वीर उस अलोकतांत्रिक संस्था-जाति के कारण और भी उलझन में डालने वाली हो जाती है जो कि अब भी अपना प्रभाव बनाए हुए है और उसकी एक काफ़ी अजीब बात यह भी है कि ऐसा जान पड़ता है कि उसने स्वयं संविधान के लोकतांत्रिक तरीकों के अधीन भी अपना प्रभाव-क्षेत्र बढ़ा लिया है; परिस्थिति पहले से ही जटिल थी मगर जो घटनाएँ हुई हैं, उन्होंने एक संकट की स्थिति उत्पन्न कर दी है और उससे राष्ट्रीय एकता तथा सामाजिक उन्नति दोनों ही को खतरा उत्पन्न हो गया है। चूँकि शिक्षा की जड़ें लोगों की सांस्कृति परम्पराओं में नहीं हैं, इसलिए शिक्षित व्यक्तियों की प्रवृत्ति अपनी ही संस्कृति से दूर होते जाने की ओर हो रही है। स्थानीय, प्रादेशिक, भाषाई और अपने राज्य के प्रति प्रेम में जो वृद्धि हुई है, उसके कारण लोग भारत को भूलते जा रहे जान पड़ते हैं। जिन प्राचीन मूल्यों के कारण समाज एकता के सूत्र में बंधा जान पड़ता था, वे लुप्त हो रहे हैं और चूँकि उनके बदले में सामाजिक उत्तरदायित्व की एक नई भावना उत्पन्न करने के किसी प्रभावी कार्यक्रम का अभाव है, सामाजिक विघटन के अनेक चिन्ह हर जगह स्पष्ट दिखाई पड़ रहे हैं और बढ़ते जा रहे हैं। इनमें हड़ताल, बढ़ती हुई कानून की अवहेलना और सार्वजनिक संपत्ति के प्रति समुचित आदर का अभाव, सार्वजनिक जीवन में भ्रष्टाचार, और सांप्रदायिक तनाव एवं उपद्रव शामिल हैं। 'विद्यार्थियों में अशांति', जिसके बारे में इतना लिखा जाता है, इन लक्षणों में से केवल एक ही है और वह भी शायद एक अल्प महत्वपूर्ण लक्षण। इस पृष्ठभूमि को देखते हुए, एक एकीकृत और समतापूर्ण समाज के निर्माण का काम वास्तव में ही बहुत कठिन और चुनौतीपूर्ण है।

1.08. **राजनीतिक विकास**—राजनीतिक चुनौती के कई पहलू हैं, परन्तु उनमें से तीन महत्वपूर्ण हैं। सबसे पहले तो हमें लोकतंत्र को मज़बूत बनाना है। सभी कठिनाइयों के होते हुए भी भारतीय लोकतंत्र ने अपनी क्षमता का काफ़ी अच्छा परिचय दिया है किन्तु वह तब तक स्थायी रूप से जीवित नहीं रह सकेगा जब तक कि शिक्षित मतदाताओं और त्यागपूर्ण तथा सूक्ष्म नेतृत्व को तैयार कर तथा आत्म-नियंत्रण, सहनशीलता, पारस्परिक सद्भाव, और दूसरों के प्रति आदर जैसे आवश्यक मूल्यों—जो कि लोकतंत्र को न केवल शासन का एक प्रकार बनाते हैं बल्कि एक जीवन-शैली भी निर्मित करते हैं—की निर्मिति द्वारा उसकी जड़ें गहरी नहीं बना दी जायें। दूसरे पहलू का सम्बन्ध देश की स्वतन्त्रता की रक्षा से है। इस चुनौती को सबसे अधिक प्राथमिकता दी जानी चाहिए क्योंकि यह मानी हुई बात है कि अपने विकास से पहले अपने अस्तित्व की चिंता की जानी चाहिए। किन्तु इस चुनौती का सामना केवल बड़ी और कुशल सेना रख कर या सभी समर्थ युवकों को सैनिक सेवा का प्रशिक्षण देकर ही नहीं किया जा सकता। स्वतन्त्रता की रक्षा तो सारे राष्ट्र की समस्या है जिसमें देश का हर नागरिक खाद्यान्न और अन्य आवश्यक वस्तुओं के मामले में आत्मनिर्भरता प्राप्त करने और देश की अर्थ-व्यवस्था को सुदृढ़ बनाने तथा एक धर्म-निरपेक्ष, एकतापूर्ण और सुदृढ़ लोकतांत्रिक राज्य बनाने में अपना पूर्ण योग दे सकता है। तीसरा पहलू यह है कि साधारण लोगों में जागृति आती जा रही है जो कि सदियों तक दबे रहने के बाद, अब अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होते जा रहे हैं और शिक्षा, समानता, रहन-सहन के ऊँचे स्तर और अधिक अच्छी नागरिक सुख-सुविधाओं की मांग कर रहे हैं। 'प्रत्याशाओं के इस विस्फोट' को भी योजनाबद्ध राष्ट्रीय विकास-कार्यक्रम के द्वारा पूरा करना है।

1.09. अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से, देश को इतनी ही महत्वपूर्ण और जरूरी चुनौती का सामना करना पड़ रहा है। भारत और औद्योगिक देशों के रहन-सहन के स्तरों में जो अन्तर है, वह बहुत अधिक है। पिछले 200 वर्षों में पश्चिम में जो औद्योगिक क्रान्ति होती रही, उससे हम लगभग अछूते ही रहे। उक्त क्रान्ति से भी अत्यधिक महत्वपूर्ण कृषि-औद्योगिक क्रान्ति तो अभी हमारे देश

में शुरू होनी है। दुनिया में अब स्वचालन और साइबर-नैटिक्स पर आधारित दूसरी वैज्ञानिक औद्योगिक क्रान्ति शुरू हो रही है जो कि अपनी पूरी तेजी इस शताब्दी के अन्त से पहले दिखलाएगी, ऐसी सम्भवना है। इसके कारण मनुष्य के जीवन में क्या परिवर्तन होंगे यह कह सकना अभी कठिन है। जो भी हो, एक बात तो निश्चित है: यदि अभी से उपाय नहीं किये गए, तो इस दूसरी क्रान्ति से गुजरनेवाले औद्योगिक देशों और हमारे बीच खाई इतनी बढ़ जाएगी कि उसे पाटा नहीं जा सकेगा।

1.10. इस चुनौती का एक और पहलू भी है। यह ठीक है कि ज्ञान अन्तर्राष्ट्रीय होता है तथा उसका मुक्त रूप से आयात करने में उन बाधाओं के सिवा और कोई बाधाएँ नहीं हो सकतीं जो हमारे ही द्वारा पैदा की गई हों। किन्तु भारत इस प्रवाह-नलिका के प्राप्ति-छोर पर ही हमेशा तो नहीं रह सकता। ज्ञान की सीमाओं को बढ़ाने के लिए अनवरत जारी रहने वाले मानव-प्रयत्नों में उसे भी बराबरी का बौद्धिक और सांस्कृतिक हिस्सा बांटना ही चाहिए। इसके लिए आवश्यकता इस बात की है कि प्रतिभा का पता लगाने और उसका विकास करने का एक कार्यक्रम बड़े पैमाने पर तैयार किया जाए तथा उच्च शिक्षा के कुछ श्रेष्ठ केन्द्र बनाए जाएं जिनकी तुलना विश्व के इसी प्रकार के श्रेष्ठ केन्द्रों से भली-भाँति की जा सके।

1.11 इन समस्याओं की कठिनाई के समान ही विकट हैं स्थिति की जटिलता, चुनौती की गम्भीरता और तात्कालिकता तथा इनके हल में निहित संकटों का विस्तार। भारत की वह स्थिति जो कि उसके संघीय संविधान (जिसके अनेक घटक राज्य यूरोप के कई राष्ट्रों से बड़े हैं) बहु-दल प्रणालीवाली उसकी लोकतांत्रिक सरकार, बहु-धर्मावलम्बी उसका वह मिश्रित समाज जिसमें अत्यन्त उन्नत वर्ग भी आदिम वर्गों के साथ-साथ रहते हैं, उसकी मिश्रित अर्थव्यवस्था जिसमें आधुनिक फैक्टरियों तथा पारंपरिक कृषि दोनों ही को स्थान प्राप्त है, और उसमें अनेक भाषाओं का होना ऐसी जटिल तस्वीर प्रस्तुत करती है कि भारत लगभग एक छोटी दुनिया ही जान पड़ता है। राष्ट्रीय विकास के उसके प्रयत्नों में विश्व के हर सातवें व्यक्ति में से एक व्यक्ति के कल्याण की होड़ है और लोकतन्त्र तथा स्वतंत्र समाजों का भविष्य उस पर निर्भर करता है। भारत ने एक प्राचीन और महान् सभ्यता उत्तराधिकार में पाई है और वह मानव प्रगति में अपना योगदान आचार्य विनोबाजी के शब्दों में 'विज्ञान और आध्यत्मिकता' के युग के निर्माण के लिए प्रयत्न द्वारा कर सकता है। उसे रहन-सहन का अपना वह वर्तमान स्तर ऊंचा उठाना है, जो कि दुनिया के निम्नतम स्तरों में से है तथा यथासंभव शीघ्र ही राष्ट्र-कुल में उसे अपना उचित स्थान प्राप्त करना है। और यह कार्य अधिक से अधिक एक ही पीढ़ी के जीवनकाल में पूरा किया जाना है। स्पष्ट ही है कि इन समस्याओं का हल इस पीढ़ी के भारतीयों से बड़ी अपेक्षाएं रखता है—हमें स्पष्ट दृष्टि, गहरी सूझबूझ, सामुदायिक अनुशासन, कठोर और अविराम श्रम, तथा त्यागपूर्ण नेतृत्व की आवश्यकता है। इसके लिए उन अधिक धनी और औद्योगिक राष्ट्रों के सहयोग और सहायता की भी आवश्यकता है जिनकी भारत के लोकतांत्रिक समाजवाद में आस्था है और जिन्हें एक नई सामाजिक व्यवस्था का निर्माण करने के लिए प्रयत्नशील भारत के संघर्ष से सहानुभूति है।

शिक्षा : परिवर्तन का मुख्य साधन

1.12. **हमारे मानव संसाधनों का विकास** :— ये कठिन, जटिल, महत्वपूर्ण और शीघ्र ही हल की जाने योग्य समस्याएं एक दूसरे पर निर्भर हैं और उन्हें हल करने का सबसे प्रभावी तरीका स्पष्ट ही यह है कि सभी मोर्चे पर उन पर एक साथ आघात किया जाए। ऐसा हमें दो मुख्य कार्यक्रमों द्वारा करना पड़ेगा।

(1) **भौतिक संसाधनों का विकास**—यह कार्य कृषि के आधुनिकीकरण और तेजी से औद्योगीकरण द्वारा होगा। इसके लिए निम्नलिखित की आवश्यकता है :— विज्ञान पर आधारित शिल्पविज्ञान का अपनाया जाना, भारी पूंजी-निर्माण और धन का लगाया जाना, तथा यातायात, साख, बाजार-व्यवस्था और अन्य संस्थाओं की आवश्यक अवस्थापना की व्यवस्था, तथा

(2) **मानव संसाधनों का विकास**—यह कार्य समुचित रूप से संगठित शिक्षा-कार्यक्रम के जरिए होगा।

दूसरा कार्यक्रम, अर्थात् शिक्षा, के जरिए मानव संसाधनों का विकास दोनों ही कार्यक्रमों में से अधिक महत्वपूर्ण है। जहां भौतिक संसाधनों का विकास एक उद्देश्य के लिए साधन रूप है, वहीं मानव संसाधनों का विकास स्वयं ही एक उद्देश्य है। उसके बिना, भौतिक संसाधनों का विकास भी संभव नहीं है।

1.13. इसका कारण स्पष्ट है। देश की आकांक्षाओं की प्राप्ति में उसके समस्त जनों के ज्ञान, कौशल, हितों और मूल्यों में परिवर्तन निहित है। यह बात सामाजिक और आर्थिक सुधार के हर ऐसे कार्यक्रम के लिए मूलभूत है जिसकी आज भारत को अत्यधिक आवश्यकता है। उदाहरण के लिए, देश को खाद्यान्न के मामले में तब तक

आत्म-निर्भर बनाने की आशा नहीं की जा सकती जब तक स्वयं किसान को विज्ञान-आधारित शिक्षा के जरिए उसके युग-युगीन अपरिवर्तनवाद से निकाला नहीं जाता और वह प्रयोग करने में रुचि नहीं लेने लगता तथा उपज बढ़ाने वाले तरीकों को अपनाने के लिए तैयार नहीं हो जाता। यही बात उद्योग के संबंध में ही सही है। संबंधित अनुसंधान और कृषि, उद्योग तथा जीवन के अन्य क्षेत्रों में उसके योजनाबद्ध प्रयोग के लिए जिस कुशल जनशक्ति की आवश्यकता है, वह तभी संभव है जब कि वैज्ञानिक और शिल्प वैज्ञानिक शिक्षा का विकास किया जाए। इसी प्रकार आर्थिक विकास केवल भौतिक संसाधनों या कुशल कर्मचारियों के प्रशिक्षण से ही नहीं होने का; उसके लिए तो सारी जनसंख्या को ही जीवन विचारों और कार्य के नए तरीकों की शिक्षा देना आवश्यक है। परंपरा से ग्रस्त समाज द्वारा आर्थिक विकास की दिशा में की गई यात्रा को राबर्ट हीलब्रोनर ने "महान् आरोहण' कहा है और यह मत व्यक्त किया है कि उसकी सफलता की आवश्यक शर्त है 'बड़े पैमाने पर मानव में परिवर्तन। उसका कथन है : 'और अधिक आर्थिक विस्तार के लिए अनिवार्य पूंजी-साधन के अन्तर्भाग की केवल पूर्ति से ही परंपराओं से जकड़ा कोई भी समाज आधुनिक समाज के रूप में परिवर्तित नहीं हो सकेगा। इस रूपान्तर के लिए व्यापक सामाजिक कायापलट से कम कोई भी चीज़ पर्याप्त नहीं होगी। आदतों में आमूल परिवर्तन, समय, परिष्ठा, धन और कार्य संबंधी मूल्यों का परिवर्तनपूर्ण अनुस्थापन, तथा स्वयं दैनिक जीवन की बुनावट के ताने-बाने को मिटाना और फिर से बनाना भी आवश्यक होगा।'[1] ये विचार सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक मोर्चों की प्रगति पर भी समान रूप से लागू होते हैं।

1.14. **परिवर्तन का साधन शिक्षा**—यदि बिना किसी हिंसात्मक क्रांति (इस तरह की क्रांति की स्थिति में भी उसकी आवश्यकता होगी) के 'बड़े पैमाने पर यह परिवर्तन' करना है तो केवल एक ही साधन है जिसका प्रयोग किया जा सकता है और वह है 'शिक्षा'। अन्य बातें भी इसमें सहायता कर सकती हैं और वास्तव में, कभी-कभी तो उनका असर ऊपरी तौर पर अधिक भी जान पड़ सकता है। मगर शिक्षा की राष्ट्रीय प्रणाली ही एक ऐसा साधन है जो सभी लोगों तक पहुंच सकता है। किंतु वह जादू की ऐसी छड़ी नहीं है जिसके इशारे पर इच्छाएं सत्य हो जाएं। वह एक ऐसा कठिन साधन है जिसके प्रभावी उपयोग के लिए मनोबल, तन्मयतापूर्ण कार्य और त्याग की आवश्यकता है। किंतु वह एक ऐसा विश्वसनीय और परीक्षित साधन है जिसने विकास के लिए उनके संघर्ष में अन्य देशों का साथ दिया है। यदि हम में इच्छा और कौशल हो, तो भारत में भी वह यही काम कर दिखा सकता है।

1.15. शिक्षा के सांस्कृतिक प्रयोजनों पर यह जोर, राष्ट्रीय आकांक्षाओं की प्राप्ति या राष्ट्रीय चुनौतियों का सामना करने के लिए एक साधन के रूप में उसका उपयोग करने का यह अर्थ नहीं है कि व्यक्ति के लिए मूल्यों को कम आंका जाए। किसी भी लोकतन्त्र में, व्यक्ति स्वयं अपने में ही एक साध्य होता है और शिक्षा का प्रथम उद्देश्य उसे अपनी क्षमता का पूरा विकास करने के अधिक से अधिक अवसर प्रदान करना होता है। किंतु इस लक्ष्य का मार्ग सामाजिक पुनर्गठन और सामाजिक परिप्रेक्ष्यों पर बल देने में से होकर है। वास्तव में, हमारा देश जिस प्रकार के समाजवादी ढंग का समाज निर्मित करना चाहता है, उनमें जिन महत्वपूर्ण सिद्धान्तों पर जोर दिया जाना चाहिए उनमें से एक इस सिद्धान्त पर भी बल दिया जाना है कि व्यक्ति को सफलता तो मिलेगी किंतु व्यक्तिक या समूहगत स्वार्थ पूर्ण और संकीर्ण निष्ठा के द्वारा नहीं अपितु राष्ट्रीय विकास की सभी समष्टियों की व्यापक निष्ठाओं के प्रति सभी के उत्सर्ग द्वारा।

शैक्षिक क्रान्ति

1.16 शिक्षा, राष्ट्रीय विकास और सम्पन्नता के बीच की जिस सीधी कड़ी पर हम ने बल दिया है और जिसमें हमारी बाहरी आस्था है, वह तभी संभव है जब कि शिक्षा की राष्ट्रीय प्रणाली को गुणात्मक और परिमाणात्मक दोनों ही दृष्टियों से समुचित प्रकार से संगठित किया जाए। यह निश्छल विश्वास कि हर प्रकार की शिक्षा व्यक्ति या समाज दोनों ही के लिए आवश्यक रूप से अच्छी होती है और उसके कारण उन्नति अवश्य ही होगी, उतना ही हानिकारक हो सकता है जितना कि वह अनुपयुक्त है। परिमाणात्मक दृष्टि से, शिक्षा की योजना सामाजिक न्याय को बढ़ावा देने या उस में कमी करने की दृष्टि से की जा सकती है। इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण भरे पड़े हैं जबकि छोटे-छोटे सामाजिक समूहों तथा श्रेष्ठ लोगों ने शिक्षा का उपयोग शासन करने के अपने परमाधिकार तथा अपनी श्रेष्ठता बनाए रखने के एक साधन के रूप में तथा उस मूल्य को स्थायी बनाने के लिए किया है जिस पर कि वे आश्रित थे। इस के विपरीत, शिक्षा के कारण उस संगठन में सामाजिक और सांस्कृतिक क्रांति हुई है जिसमें शिक्षा के अवसरों की

1. राबर्ट हीलब्रोनर, दी ग्रेट असेंट, हार्पर एण्ड रो, इंकार्प०-न्यूयार्क, 1963, पृष्ठ 66

समानता है तथा शिक्षा का प्रयोग अधिकाधिक संभव प्रतिभाओं का विकास करने तथा राष्ट्रीय समस्याओं के समाधान के लिए प्रयत्नपूर्वक किया गया है। यही बात शिक्षा के गुणात्मक पहलू के लिए भी और अधिक सही है। विश्वविद्यालय शिक्षा की जो प्रणाली सक्षम व्यावसायिक जनशक्ति को बहुत अधिक अनुपात में उत्पन्न कर सकती हो, वह उत्पादिता बढ़ाने और आर्थिक विकास को आगे बढ़ाने में बहुत सहायक हो सकती है। इसके विपरीत, उच्च शिक्षा की ऐसी प्रणाली जिसका कुल परिणाम तो पहले प्रकार की शिक्षा प्रणाली के समान हो किंतु जो बिना किसी उद्देश्य के काफी बड़े अनुपात में ऐसे कला-स्नातक उत्पन्न करे जिनमें से बहुतों को रोजगार ही न मिले या जो रोजगार दिये जाने लायक न हों, सामाजिक तनाव पैदा कर सकती है और आर्थिक उन्नति को अवरुद्ध कर सकती है। समुचित पैमाने पर दी गई सही प्रकार की शिक्षा से ही राष्ट्रीय विकास हो सकता है। जब ये शर्तें पूरी नहीं हों, तब परिणाम उलटा ही संभव है।

1.17. इस दृष्टि से देखने पर, यह स्पष्ट हो जाता है कि यदि शिक्षा को लोकतांत्रिक एवं समाजवादी समाज को आधुनिक बनाने के प्रयोजनों की पूर्ति करना है, तो हमें उस वर्तमान शिक्षा-प्रणाली में, जो कि सामंती और परंपराग्रस्त समाज की सीमाओं से आबद्ध साम्राज्यवादी प्रशासन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए गठित की गई थी, लक्ष्यों, विषय-वस्तु, शिक्षा के तरीकों, कार्यक्रमों, विद्यार्थी-वर्ग की संख्या और रचना, शिक्षकों के चुनाव और उनकी व्यावसायिक तैयारी तथा शिक्षा के संगठन की दृष्टि से क्रांतिकारी परिवर्तन करने होंगे। वास्तव में, शिक्षा में एक क्रांति की आवश्यकता है जिसके परिणाम-स्वरूप हमारे द्वारा अत्यन्त वांछित सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक क्रांति होगी। हमारी इस रिपोर्ट का उद्देश्य उन महत्वपूर्ण कार्यक्रमों को सामने लाना है जो वह शैक्षिक क्रांति कर सकते हैं जिसके कि तीन मुख्य पहलू हैं :

— आंतरिक रूपांतरण, ताकि शिक्षा का संबंध राष्ट्र के जीवन, उसकी आवश्यकताओं तथा आकांक्षाओं से जुड़ सके।

— गुणात्मक सुधार, ताकि प्राप्त मानक समुचित हों, वे सदा बढ़ते रहें तथा कम-से-कम कुछ क्षेत्रों में तो उनकी अन्तर्राष्ट्रीय तुलना की जा सके; और

— शिक्षा संबंधी सुविधाओं का विस्तार जिसका आधार मोटे तौर पर जनशक्ति संबंधी आवश्यकताएं हों तथा शिक्षा संबंधी अवसरों को सबके लिए समान बनाने पर जोर देना हो।

ऊपर दिए गए कार्यक्रमों, के प्रथम वर्ग, अर्थात्, हम लोगों की आवश्यकताओं एवं आकांक्षाओं को प्रतिबिंबित करने के लिए शिक्षा-प्रणाली के रूपांतरण से यह अध्याय मुख्यतः संबंधित है।

शिक्षा को लोगों के जीवन, आवश्यकताओं और आकांक्षाओं से संबंधित बनाना

1.18. जैसा कि सुविदित ही है, शिक्षा की वर्तमान प्रणाली का जीवन से अधिकांशतः संबंध नहीं है और उसकी विषयवस्तु तथा प्रयोजनों एवं राष्ट्रीय विकास की समस्याओं तथा उसके बीच बड़ी चौड़ी खाई है। उदाहरण के लिए,

— इस शिक्षा प्रणाली में उस कृषि की सर्वाधिक महत्ता प्रतिबिंबित नहीं होती जिसकी उपेक्षा सभी अवस्थाओं पर की जाती है और जिसकी ओर देश की चोटी की प्रतिभाओं का समुचित अंश आकृष्ट नहीं होता; विश्वविद्यालयों के कृषि संकायों में भरती होने वालों की संख्या बहुत ही कम है तथा कृषि कालेज तुलनात्मक दृष्टि से कमजोर तथा अल्प-विकसित हैं :

— राष्ट्र के सामने इस समय मुख्य कार्य तेजी से आर्थिक विकास करना है। यदि यह कार्य सफलतापूर्वक किया जाना है, तो शिक्षा का संबंध उत्पादिता से होना चाहिए। वर्तमान प्रणाली इतनी शास्त्रीय है कि उससे राष्ट्रीय संपदा बढ़ाने में महत्वपूर्ण सहायता नहीं मिल सकती।

— पुनर्निर्माण की दिशा में इस समय राष्ट्र जो कार्य कर रहा है, उससे अधिकांश स्कूलों और कालेजों का कोई वास्ता नहीं है तथा उनके शिक्षक और विद्यार्थी सामान्यतः उसके प्रति किसी प्रकार से वचनबद्ध नहीं हैं। यहां तक कि वे उसके सिद्धान्तों से भी अपरिचित हैं और उन्हें उसके कार्यक्रमों में भाग लेने का मुश्किल से ही मौका मिलता है।

— सामाजिक और राष्ट्रीय एकीकरण को बढ़ावा देने तथा राष्ट्रीय चेतना बढ़ाने के लिए

सक्रिय कार्य करने की बजाय वर्तमान शिक्षा-प्रणाली की कई बातें विभाजक-प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन देती हैं; अनेक गैर-सरकारी शिक्षा-संस्थाओं में जाति के प्रति निष्ठा को बढ़ावा दिया जाता है। गरीबों और अमीरों के लिए अलग-अलग स्कूल हैं। अमीर अच्छे ढंग के उन गैर-सरकारी स्कूलों में शिक्षा पाते हैं जो फीस लेते हैं जबकि गरीब परिस्थितियों से विवश होकर, घटिया स्तर के निःशुल्क सरकारी या स्थानीय प्राधिकार के स्कूलों में पढ़ते हैं; और

— एक ऐसे समय जब कि नई उभरती पीढ़ी में नैतिक और सामाजिक उत्तरदायित्वों की भावना उत्पन्न करने की आवश्यकता सर्वोपरि है, वर्तमान शिक्षा चरित्र-निर्माण पर बल नहीं देती और नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों को बढ़ावा देने, विशेषकर ऐसी रुचियों, प्रवृत्तियों और मूल्यों को बढ़ावा देने के लिए जो कि लोकतांत्रिक और समाजवादी समाज में आवश्यक है, बहुत कम या बिल्कुल भी नहीं के बराबर प्रयत्न करती है।

1·19. इस प्रकार के अधिक उदाहरण देने की और आवश्यकता नहीं है। हमारी शिक्षा-प्रणाली में किस प्रकार के परिवर्तन की आवश्यकता है इसको सामान्यतः स्वीकार किया जाता है। हम जिस बात पर जोर देना चाहते है, वह है इसमें शीघ्रता की। जो परम्पराग्रस्त समाज अपने को आधुनिक बनाना चाहते हैं उन्हें अपनी शिक्षा-प्रणाली का विस्तार करने की अपेक्षा उसमें परिवर्तन करने होते हैं क्योंकि पारंपरिक शिक्षा-प्रणाली का जितना विस्तार होता चला जाएगा, उतना ही कठिन और व्ययसाध्य उसके स्वरूप को परिवर्तित करना हो जाएगा। यह सत्य भुला दिया गया है और पिछले कुछ वर्षों में हमने एक ऐसी प्रणाली का बहुत अधिक विस्तार कर डाला है जिसमें वे ही लक्षण अब भी विद्यमान हैं जो कि लगभग एक शताब्दी पूर्व उसके निर्माण के समय उसमें थे।

1.20. हमारी राय में, शिक्षा में परिवर्तन करने, उसे लोगों के जीवन, आवश्यकताओं और आकांक्षाओं से संबंधित करने का प्रयत्न करने और इस प्रकार उसे हमारे राष्ट्रीय लक्ष्यों की पूर्ति के लिए आवश्यक सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृति रूपान्तर का शक्तिशाली साधन बनाने से बढ़कर या उससे भी जरूरी कोई भी सुधार इस समय नहीं है। ऐसा तभी किया जा सकता है जब कि शिक्षा

— अपना संबंध उत्पादिता से जोड़ें;

— सामाजिक और राष्ट्रीय एकीकरण को मजबूत करे; सरकार के एक प्रकार के रूप में लोकतंत्र को समेकित करे तथा उसे एक जीवन-शैली के रूप में अपनाने में देश की मदद करे;

— आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में गति लाए, और

— सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों को बढ़ावा देकर चरित्र का निर्माण करने का प्रयत्न करे।

ये सभी पहलू आपस में एक-दूसरे से संबंधित है और सामाजिक परिवर्तन की जटिल प्रक्रिया में हम इनमें से एक में भी तब तक सफलता नहीं पा सकते जब तक कि हम सभी उनकी प्राप्ति के लिए प्रयत्न न करें।

शिक्षा और उत्पादिता

1·21. भारत एक ऐसे समाज से, जिसमें शिक्षा मुट्ठीभर लोगों का विशेषाधिकार है, उस प्रकार के समाज में संक्रमित हो रहा है, जिससे शिक्षा लोगों के सभी वर्गों को सुलभ कराई जा सकेगी। इस कार्यक्रम के लिए आवश्यक विशाल संसाधन तभी प्राप्त किए जा सकेंगे जबकि शिक्षा को उत्पादिता से संबंधित कर दिया जाए ताकि शिक्षा के विस्तार का परिणाम राष्ट्रीय आय में वृद्धि हो और फिर उसके फलस्वरूप शिक्षा में और भी अधिक धनराशि लगाए जाने के साधन प्राप्त हो सकें। इस प्रकार शिक्षा और उत्पादिता एक ऐसा 'उत्थानपूर्ण सर्पिल' बना सकते हैं जिसके विभिन्न भाग एक-दूसरे को गिरने नहीं देते तथा सहारा दिए रहते हैं।

1·22. शिक्षा और उत्पादिता के बीच संबंध तभी स्थापित किया जा सकता है जबकि शिक्षा के पुनर्निर्माण से संबंधित योजनाओं में निम्नलिखित कार्यक्रमों को उच्च प्राथमिकता देकर उनका विकास किया जाए :

— शिक्षा और संस्कृति के मूल अंग के रूप में विज्ञान;

— सामान्य शिक्षा के एक अभिन्न अंग के रूप में कार्य-अनुभव;

— उद्योग, कृषि और व्यापार की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए शिक्षा का व्यवसायीकरण, विशेषकर माध्यमिक स्कूल स्तर पर; और

— विश्वविद्यालय स्तर पर वैज्ञानिक और शिल्प-वैज्ञानिक शिक्षा एवं अनुसंधान में सुधार, किन्तु कृषि और संबद्ध विज्ञानों पर विशेष जोर;

1.23. **शिक्षा और संस्कृति के मूल अंग के रूप में विज्ञान**—परंपराग्रस्त और आधुनिक समाजों में एक मूल अन्तर यह होता है कि आधुनिक समाज विज्ञान-आधारित शिल्पविज्ञान का उपयोग और विकास करता है जिससे कृषि के आधुनिकीकरण और उद्योगों के विकास में सहायता मिलती है। परंपराग्रस्त समाज में, उत्पादन का आधार विज्ञान के बजाय अधिकांशतः अनुभवाश्रित ज्ञान और तरीके तथा प्रयोग और भूल सुधार होते हैं। आधुनिक समाज में, उसका मूल आधार विज्ञान होता है। शायद बिजली उद्योग ही ऐसा पहला उद्योग था जिसका आधार विज्ञान था और अब उद्योग प्रधान देशों में कृषि भी तेजी से अनुप्रवर्तित विज्ञान की एक शाखा होती जा रही है। विज्ञान और शिल्पविज्ञान में यह घनिष्ठ अन्योन्याश्रय तथा अन्तर्ग्रन्थन सामयिक विश्व की एक विशेषता है। हाल के वर्षों में, कुछ देश अपना कुल राष्ट्रीय उत्पाद बहुत तेजी से बढ़ा सके हैं क्योंकि उन्होंने मूल विज्ञान, शिल्पविज्ञान और शिक्षा में धनराशि लगाई है। हम इस समय विकास और परिवर्तन की महत्वपूर्ण अवस्था से गुजर रहे हैं और इसे देखते हुए, विज्ञान (यहाँ इसका प्रयोग उस के विशद अर्थ में किया गया है) की भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण है। विज्ञान की शिक्षा स्कूली शिक्षा का एक अभिन्न अंग बन जानी चाहिए। और अंततोगत्वा, विश्वविद्यालय स्तर पर मानविकी और सामाजिक विज्ञानों के सभी पाठ्यक्रमों में विज्ञान का थोड़ा-बहुत अध्ययन होना चाहिए तथा इसी प्रकार विज्ञान की शिक्षा की भी श्रीवृद्धि मानविकी और सामाजिक विज्ञानों के कुछ तत्व शामिल कर की जा सकती है। विज्ञान के शिक्षण में भी काफी गुणात्मक सुधार करना है ताकि इस शिक्षा के उचित लक्ष्यों और प्रयोजनों की पूर्ति हो सके, अर्थात, मूल सिद्धान्तों को उत्तरोत्तर गम्भीर रूप से समझने की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिले, समस्याओं को सुलझाने वाले विश्लेषणात्मक कौशल और उसका उपयोग भौतिक वातावरण तथा सामाजिक जीवन की समस्याओं पर प्रयोग करने की प्रवृत्ति विकसित हो एवं जिज्ञासा और प्रयोग की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन प्राप्त हो। ऐसा होने पर ही वैज्ञानिक दृष्टिकोण हमारी जीवन-शैली और संस्कृति का अंग बन सकता है।

1.24. ऊपर कही गई पिछली बात पर यहां और प्रकाश डालना आवश्यक है क्योंकि कभी-कभी उसका महत्व कम आंका जाता है। मुक्त जिज्ञासा तथा अपने सर्वोच्च कर्तव्य तथा दायित्व के रूप में सत्य के संधान के प्रति मनुष्य की वचनबद्धता को विज्ञान और दृढ़ ही बनाता है। वह मताग्रहिता के बन्धनों को शिथिल कर देता है और भय तथा अंधविश्वास, भाग्यवाद और निश्चेष्ट आत्मसमर्पण को दूर करने के लिए एक शक्तिशाली साधन का काम करता है। चूंकि वह तर्क और मुक्त जिज्ञासा पर जोर देता है, इसलिए वह उन वैचारिक तनावों को भी कम करता है जो कि मताग्रह तथा धर्मान्धता के कारण उत्पन्न होते हैं; यद्यपि विज्ञान इस समय प्रकृति का रहस्य समझने में ही लगा हुआ है, फिर भी आज उसका जो विकास हो रहा है उसकी प्रवृत्ति अधिकाधिक इस बात की ओर है कि वह मनुष्य को स्वयं अपने को समझने तथा विश्व में उसके स्थान को समझने में उसकी सहायता करे। भविष्य में हम जिन घटनाओं की आशा करते हैं, उनसे हमें यह आशा बंधती है कि केवल भौतिक ऐश्वर्य और शक्ति के पीछे भागना गौण हो जाएगा और उच्चतर मूल्य तथा व्यक्ति की पूर्णता प्रधान हो जाएंगे। विज्ञान और आध्यात्मिकता के मिश्रण से संबंधित यह कल्पना भारतीय शिक्षा के लिए विशेष-रूप से महत्वपूर्ण है।

1.25. **कार्य-अनुभव**—शिक्षा को जीवन और उत्पादिता से संबंधित करने के दूसरे कार्य क्रम के रूप में हम यह सिफारिश करते हैं कि कार्य-अनुभव को सभी प्रकार की शिक्षा, चाहे वह सामान्य हो या व्यावसायिक, के एक अभिन्न अंग के रूप में शुरू किया जाए। कार्य-अनुभव की हमारी परिभाषा यह है: स्कूल, घर, कारखाने, खेत, फैक्टरी, या अन्य किसी भी उत्पादक स्थिति में उत्पादक काम में भाग लेना। हमारी राय में, सभी प्रकार की अच्छी और उद्देश्य पूर्ण शिक्षा में कम से कम चार मूल तत्व होने चाहिए:

— 'साक्षरता' या भाषाओं, मानविकी और समाज विज्ञानों का अध्ययन।

— 'सांकिकता' या गणित और प्राकृतिक विज्ञान का अध्ययन।

— कार्य-अनुभव; और

— सामाजिक सेवा।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली में, बहुत अधिक समय पहले तत्व के अध्ययन में ही चला जाता है यद्यपि इस सीमित क्षेत्र में भी सफलता बहुत सराहनीय नहीं मिलती। जैसा कि ऊपर बताया गया है, दूसरा तत्व अब भी बहुत कमजोर है और उस पर बहुत जोर दिए जाने की आवश्यकता है। किंतु तीसरे और चौथे तत्वों का तो अभी कुछ समय

पहले तक बिल्कुल अभाव रहा है और उन्हें प्रकाश में लाने की आवश्यकता है : कार्य-अनुभव को तो मुख्यत: इसलिए कि शिक्षा को उत्पादिता से संबंधित करना है तथा सामाजिक अनुभव को सामाजिक और राष्ट्रीय एकीकरण के एक साधन के रूप में ।

1.26. कार्य-अनुभव को शिक्षा के एक अभिन्न अंग के रूप में शामिल किए जाने की आवश्यकता कुछ हद तक औपचारिक शिक्षा के स्वरूप और संगठन में ही निहित है । पारंपरिक रूप से, व्यक्ति का विकास समाज के कार्यकलापों में भाग लेकर होता था और कार्य-अनुभव उसकी शिक्षा का एक बड़ा भाग होता था । यद्यपि इस तरीके के अनेक लाभ थे, तदपि, उसकी कमजोरी यह थी कि वह आवश्यक रूप से गत्यात्मक और दूरदर्शी नहीं था तथा उसमें व्यवहार के परंपरागत प्रतिमानों को ही कायम रखने की प्रवृत्ति थी । इसके विपरीत औपचारिक शिक्षा की प्रवृत्ति बच्चे को सामुदायिक गतिविधियों में भाग लेने से अस्थायी रूप से दूर हटा लेती थी और समाज में उसकी प्रत्याशित भावी भूमिका के लिए उसे एक कृत्रिम वातावरण में प्रशिक्षित करने में प्रवृत्त होती थी । इससे कार्य की दुनिया और अध्ययन की दुनिया में एक दरार पड़ गई । यह दोष हमारी वर्तमान उस शिक्षा-प्रणाली में विशेष रूप से स्पष्ट है जो कि काम को हल्का समझने की परंपरा को दृढ़ बनाती है तथा विद्यार्थियों को, विशेषकर पहली पीढ़ी के शिक्षार्थियों को उनके घरों तथा समुदायों से अलग कर देती है । यह विचार है कि कार्य-अनुभव को शुरू करने से किसी सीमा तक ये कमजोरियां दूर हो सकेंगी और औपचारिक तथा अनौपचारिक शिक्षा-प्रणालियों के लाभ एक ही स्थान पर मिल सकेंगे ।

1.27. इस प्रकार, कार्य-अनुभव शिक्षा और कार्य के एकीकरण की एक प्रणाली है । न केवल यह संभव ही है अपितु उन आधुनिक समाजों के लिए आवश्यक भी है जो कि विज्ञान-आधारित शिल्पविज्ञान का आश्रय लेते हैं। परम्पराग्रस्त सभी समाजों में शिक्षा और कार्य में विपरीतता की सामान्यत: परिकल्पना की जाती है । इसका एक आंशिक कारण यह है कि उत्पादन के तरीके आदिकालीन होते है और उनके लिए औपचारिक शिक्षा, विशेष कौशल या उच्च बौद्धिक क्षमता की अनिवार्य रूप से आवश्यकता नहीं होती । दूसरा आंशिक कारण यह है कि कार्य सामान्यत: शारीरिक, कम पारिश्रमिकवाला, गुलामी के समान, और अधिकांशत: अशिक्षित 'निम्न' वर्गों तक ही सीमित होता है । इसके साथ ही, शिक्षा सामान्यत: उन उच्च वर्गों का विशेषाधिकार होती है जिनकी रुचि जीविका के लिए काम करने में नहीं अपितु ऐसी रुचियों को विकसित करने में होती है जो उन्हें जीवन का आनन्द लेने में सहायक हो सकें । इस प्रकार शिक्षित श्रेष्ठ जन अधिकांशत: परजीवी हो जाते हैं तथा वास्तव में उत्पादक श्रमिक—जो कि सामान्यत: कुशलता के निम्न स्तर पर होते हैं—अशिक्षित किसान और कारीगर होते हैं । इसके विपरीत, आधुनिक समाजों में उत्पादन (जिसमें कृषि भी शामिल है) के जो जटिल तरीके अपनाए जाते हैं, उनके लिए सामान्य या तकनीकी शिक्षा के उच्चतर प्रकारों और तुलनात्मक दृष्टि से बौद्धिक क्षमता के उच्चतर स्तर की आवश्यकता होती है । शिल्पविज्ञान सम्बन्धी अनुसंधान के लिए, उच्च प्रतिभा की आवश्यकता होती है तथा कार्य के निम्न स्तरों पर भी, शारीरिक शक्ति की अपेक्षा मस्तिष्क की अधिक महत्ता होती है । अपने आपको उत्पादक कार्य में लगाने से बचने की शिक्षित व्यक्तियों की पारम्परिक प्रवृत्ति लुप्त होने लगती है क्योंकि नए शिल्पविज्ञान को अपनाने के कारण किसी उद्योग या खेत पर कार्य और भी अधिक उत्पादक तथा अधिक परिश्रमिक प्राप्त करने वाला हो जाता है तथा समाज उसे हीन दृष्टि से देखना बन्द कर देता है । इस प्रकार शिक्षित व्यक्ति उत्पादन का महत्वपूर्ण साधन हो जाता है तथा अशिक्षित व्यक्ति समाज पर एक अनुत्पादक भार हो जाता है । यह प्रक्रिया यद्यपि हमारे देश में शुरू हो चुकी है, तथापि उसमें तेजी लाने की आवश्यकता है । इस कारण सभी प्रकार की शिक्षा में कार्य-अनुभव को शिक्षा के एक अभिन्न अंग के रूप में शामिल करना अत्यन्त महत्वपूर्ण हो जाता है ।

1.28. यह व्यापक रूप से स्वीकार किया गया है कि औपचारिक शिक्षा के अत्यधिक शास्त्रीय स्वरूप में इसी प्रकार कोई सुधार करने की आवश्यकना है । अधिकांश सामयिक स्कूल प्रणालियों, विशेषकर यूरोप के समाजवादी देशों की पाठ्यचर्या में जिसे विभिन्न नामों से 'शारीरिक कार्य' या 'कार्य-अनुभव' कहा जाता है, के लिए स्थान होता है । हमारे अपने देश में, बुनियादी तालीम के रूप में महात्मा गांधी ने एक क्रान्तिकारी प्रयोग शुरू किया था । कार्य-अनुभव की संकल्पना भी आवश्यक रूप से इसी प्रकार की है । उसे औद्योगीकरण के पथ पर लगा दिए गए समाज के संदर्भ में महात्मा गांधी की शिक्षा सम्बन्धी विचारधारा की फिर से की गई परिभाषा कहा जा सकता है ।

1.29. एक प्रभावकारी शैक्षिक साधन होने के अतिरिक्त, कार्य-अनुभव, हमारी राय में, कुछ अन्य महत्वपूर्ण कार्य भी कर सकता है । वह बौद्धिक और

शारीरिक कार्य के भेद और उस पर आधारित सामाजिक स्तर-निर्मिति की तीव्रता को भी कम कर सकता है; वह युवकों को कार्य की दुनिया में प्रवेश दिला सकता है तथा कार्य के साथ उनका संमजन कराके रोजगार की समस्या को और अधिक आसान बना सकता है। वह राष्ट्रीय उत्पादिता बढ़ाने में दो प्रकार से योगदान कर सकता है। एक तो, उत्पादन-प्रक्रियाओं तथा विज्ञान के उपयोग के लिए विद्यार्थियों में अन्तर्दृष्टि का विकास करने में उनकी सहायता करके तथा दूसरे, उनमें कठिन और उत्तरदायित्व-पूर्ण कार्य करने की आदत डाल कर। व्यक्ति और समुदाय के बीच सम्बन्ध को सुदृढ़ बनाकर तथा शिक्षित व्यक्तियों एवं सामान्य जनता में एक दूसरे को समझने के सूत्र उत्पन्न कर वह सामाजिक और राष्ट्रीय एकीकरण में भी सहायता कर सकता है।

1.30. कार्य-अनुभव की व्यवस्था करते समय, कार्य-क्रमों को वास्तविक दृष्टिकोण अपनाकर शिल्पविज्ञान, औद्योगीकरण तथा उत्पादक प्रक्रियाओं, जिसमें कृषि भी शामिल है, से सम्बन्धित करने का हर प्रयत्न किया जाना चाहिए। कार्य-अनुभव सम्बन्धी यह 'दूरदर्शी दृष्टिकोण' ऐसे देश के लिए महत्वपूर्ण है जिसने औद्योगीकरण का कार्यक्रम प्रारम्भ कर रखा है। इन समस्याओं पर विस्तार से अन्यत्र विचार किया जाएगा।[1]

1.31. किसी भी सुसंगठित कार्यक्रम में, कार्य-अनुभव का, कम से कम उच्चतर प्राथमिक स्तर पर, परिणाम विद्यार्थी के लिए कुछ अर्जन होना चाहिए चाहे वह नकदी हो या वस्तु के रूप में। इससे किसी सीमा तक उस खर्च की पूर्ति हो सकेगी जो कि विद्यार्थियों को अपनी शिक्षा पर या अध्ययन के समय अपने निर्वाह पर करना पड़ता है। जैसे-जैसे विद्यार्थी शिक्षा की अगली सीढ़ियां चढ़ते जाएंगे और कार्य-अनुभव को इस प्रकार संगठित करना संभव होता जाएगा कि विद्यार्थी 'कमाओ' और पढ़ो' के सिद्धान्त पर चल सकने में समर्थ हो सकेंगे, वैसे-वैसे अर्जन की यह राशि भी बढ़ती जाएगी। अन्तिम लक्ष्य उस स्थिति की ओर बढ़ना होना चाहिए जिसमें किसी भी विद्यार्थी की शिक्षा तब तक पूर्ण नहीं की जा सके, जब तक कि वह वास्तविक जीवन परिस्थितियों वाले किसी न किसी प्रकार के कार्य-अनुभव में भाग न ले और अपने निर्वाह के लिए कोई रकम, चाहे वह छोटी ही क्यों न हो, न कमा ले। ऐसा करने से विद्यार्थी में वे मूल्य विकसित करने में भी सहायता मिलेगी जो कि आर्थिक विकास को आगे बढ़ाएंगे, जैसे, उत्पादन कार्य और शारीरिक श्रम की रचना को अच्छा समझना, कठोर श्रम और मितव्ययिता के लिए तत्पर होना और उसकी क्षमता। हम मानते हैं कि यह कार्य सरल नहीं है किन्तु अन्त में जाकर इससे उचित लाभ ही होगा।

1.32. **व्यवसायीकरण**—जो दूसरा कार्यक्रम शिक्षा को उत्पादिता के निकट संपर्क में ला सकता है, वह है माध्यमिक शिक्षा को प्रबल व्यावसायिक मोड़ देना तथा विश्वविद्यालय स्तर पर कृषि और शिल्पवैज्ञानिक शिक्षा पर और अधिक जोर दिया जाना। वर्तमान भारतीय परिस्थिति में यह बात विशेष महत्व रखती है, क्योंकि जैसा कि हम पहले बता चुके हैं, अभी तक जो शिक्षा-प्रणाली चली आई है, वह युवकों को सरकारी नौकरियों एवं तथाकथित बाबूगीरी पेशों के लिए तैयार करती रही है। माध्यमिक स्कूलों के छात्रों को जीवन के विभिन्न क्षेत्रों की ओर प्रवृत्त करने के लिए व्यावहारिक विषयों को प्रारम्भ करने की सिफारिश सबसे पहले 1882 में भारतीय शिक्षा आयोग ने की थी। किन्तु इन सिफारिशों को अमल में लाने के लिए बहुत कम या बिल्कुल भी प्रयत्न नहीं किया गया और आज भी, माध्यमिक स्तर पर व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में भरती होनेवालों का प्रतिशत कुल विद्यार्थियों के मुकाबिले केवल 9 ही है जो कि दुनिया में सब से कम है। विश्वविद्यालय स्तर पर व्यावसायिक शिक्षा (कानून, डाक्टरी या शिक्षण को छोड़ कर) की पिछली शताब्दी में भी अधिकांशतः उपेक्षा ही की जाती रही। सन् 1917 में भी, कलकत्ता विश्व-विद्यालय आयोग ने इस बात की ओर संकेत किया था कि विश्वविद्यालय छात्रों में से अधिकांश—26,000 में से लगभग 22,000—'केवल साहित्यिक पाठ्यक्रम लेते हैं जो कि उन्हें प्रशासनिक, क्लर्की, शिक्षण और (अप्रत्यक्ष रूप से) वकीली पेशों के अलावा अन्य किसी पेशे के योग्य नहीं बनाते।'[2] लगभग पचास वर्ष बाद, हम यह देखते हैं कि इस स्थिति में कुल मिलाकर बहुत थोड़ा सुधार हुआ है और विश्वविद्यालय स्तर पर जितनेवि द्यार्थी भरती होते हैं, उनके अनुपात में केवल 23 प्रतिशत ही सभी प्रकार के व्यावसायिक शिक्षा के पाठ्यक्रमों में भरती होते हैं। इस संबंध में हमारे प्रस्तावों की चर्चा अन्यत्र की गई है।[3] किन्तु यहां संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि हमारी यह कल्पना है कि भविष्य में स्कूली शिक्षा की प्रवृत्ति सामान्य और व्यायसायिक शिक्षा के लाभदायक मिश्रण

1. अध्याय आठ
2. कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग की रिपोर्ट, खंड I, पृष्ठ 21
3. अध्याय सात, बारह, चौदह और पंद्रह

की ओर होगी—इस सामान्य शिक्षा में व्यवसाय-पूर्व और तकनीकी शिक्षा के कुछ तत्व होंगे और इसी प्रकार व्यावसायिक शिक्षा में भी सामान्य शिक्षा के कुछ तत्व होंगे। आनेवाले वर्षों में, हम जिस प्रकार के समाज में रह रहे होंगे, उसमें दोनों के बीच पूर्ण रूप से पार्थक्य न केवल अवांछनीय होगा अपितु असंभव भी। हमें यह भी उम्मीद है कि विश्वविद्यालय स्तर पर व्यावसायिक शिक्षा का काफी विस्तार होगा, विशेषकर कृषि और शिल्प-विज्ञान के क्षेत्रों में।

1·23. **विश्वविद्यालय स्तर पर कृषि और संबद्ध विज्ञानों पर जोर देते हुए वैज्ञानिक और शिल्प-वैज्ञानिक शिक्षा तथा अनुसंधान में सुधार**—राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के योजनाबद्ध विकास के लिए, हमें इंजीनियरी और कृषि तथा स्नातकोत्तर स्तर पर विशुद्ध विज्ञानों में भरती होनेवालों की संख्या में बड़े पैमाने पर वृद्धि करने की आवश्यकता है। इन विषयों में भरती होनेवालों की जो संख्या है उससे कई गुनी वृद्धि इसमें होनी चाहिए। हम इन विषयों पर अगले कुछ अध्यायों में विचार करेंगे।[1]

शिक्षा और सामाजिक तथा राष्ट्रीय एकीकरण

1.34. एक शक्तिशाली एकतापूर्ण देश के निर्माण के लिए, जो कि सभी प्रकार की उन्नति की पहली आवश्यक शर्त है, सामाजिक और राष्ट्रीय एकीकरण का बड़ा महत्व है। उसमें कई बातें—आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक—शामिल हैं और उसके विभिन्न पहलू आपस में एक-दूसरे से घनिष्ठ रूप से संबंधित हैं। उसके लिए आवश्यकता है :

— राष्ट्र के भविष्य में आस्था की;

— लोगों के रहन-सहन के स्तर में निरन्तर वृद्धि और बेकारी तथा देश के उन विभिन्न भागों के विकास में असमानता में कमी की, क्योंकि ये सभी बातें राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक अर्थों में अवसर की समानता की भावना को बढ़ावा देने के लिए आवश्यक हैं;

— नागरिकता के मूल्यों और दायित्वों की एक गंभीर भावना की तथा लोगों में संपूर्ण राष्ट्र के प्रति, न कि किसी वर्ग के प्रति, बढ़ते हुए निष्ठापूर्ण तादात्म्य की;

— सरकारी सेवाओं की चारित्रिक दृढ़ता पर आधारित अच्छे और निष्पक्ष प्रशासन तथा केवल कानून की दृष्टि से ही नहीं किन्तु वास्तविक रूप से समान व्यवहार के आश्वासन की; और

— राष्ट्र के विभिन्न वर्गों की संस्कृति, परंपराओं तथा जीवन-प्रकार के लिए आपसी सद्भावना और सम्मान की।

इस सामाजिक और मनोवैज्ञानिक क्रांति की संभव बनाने के लिए, इस क्षेत्र में, देश के सामने जो अल्पकालिक समस्याएं हैं उनमें, विशेषकर सामाजिक विघटन के बढ़ते हुए तथा खतरनाक लक्षणों की समस्या से, जूझने की इस समय आवश्यकता है। ये समस्याएं अपने आपको अमीर और गरीब, सुविधाप्राप्त और सुविधाहीनों, शहरी और ग्रामीण लोगों, शिक्षित और अशिक्षित व्यक्तियों के बीच चौड़ी होती जा रही खाई के रूप में अभिव्यक्त करती हैं। स्थानिक, प्रादेशिक, भाषायी, धार्मिक और अन्य वर्गगत या संकुचित निष्ठाओं के प्रभाव में राष्ट्रीय एकता की जो भावना सामान्यतः कमजोर होती जा रही है, उस में ये प्रतिबिंबित होती हैं। इन खतरनाक खाइयों को पाटने तथा राष्ट्रीय चेतना एवं एकता को मजबूत बनाने के लिए प्रभावकारी कदम उठाए जाने चाहिए।

1.35. सामाजिक और राष्ट्रीय एकीकरण एक ऐसी समस्या है जिससे कई मोर्चों पर जूझना पड़ेगा जिनमें से एक शिक्षा भी है। हमारी राय में शिक्षा उसमें निम्नलिखित द्वारा एक अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है और उसे ऐसा करना भी चाहिए :

— लोक शिक्षा की एक समान स्कूल प्रणाली प्रारंभ कर;

— सभी स्तरों पर, सामाजिक और राष्ट्रीय सेवा को शिक्षा का एक अभिन्न अंग बनाकर;

— सभी आधुनिक भारतीय भाषाओं का विकास कर तथा यथासंभव शीघ्र हिंदी को समृद्ध बनाने के लिए आवश्यक कदम उठाकर, ताकि वह संघ की राजभाषा का काम प्रभावशाली ढंग से करने में समर्थ हो सके; तथा

— राष्ट्रीय चेतना को प्रोत्साहन देकर।

हम नीचे दिए गए पैराओं में इन पर संक्षेप में विचार करेंगे।

1. अध्याय चौदह, पन्द्रह और सोलह

1.36. **समान स्कूल**—भारत में हम जिस प्रकार की स्थिति देखते हैं, उसमें यह शिक्षा-प्रणाली की जिम्मेदारी है कि वह विभिन्न सामाजिक वर्गों और समूहों को निकट लाने और इस प्रकार एक समतापूर्ण तथा एकीकृत समाज के आविर्भाव में सहायक हो। किन्तु वर्तमान में, ऐसा करने के स्थान पर, स्वयं शिक्षा ही सामाजिक अलगाव को बढ़ाने तथा वर्गगत भेदभाव को बनाए रखने एवं उन्हें और भी बढ़ाने की ओर प्रवृत्त हो रही है। प्राथमिक स्तर पर, जिन निःशुल्क स्कूलों में जनता अपने बच्चों को भेजती है, वे सरकार और स्थानीय प्राधिकरणों द्वारा चलाए जाते हैं तथा उनका स्तर सामान्यतः घटिया होता है। किंतु कुछ गैर-सरकारी स्कूल निश्चय ही अच्छे स्तर के होते हैं, किंतु, चूंकि उनमें से बहुत-से काफी फीस लेते हैं, इसलिए मध्यम और उच्च वर्ग के बच्चे ही उन में जाते हैं। माध्यमिक स्तर पर, अच्छे स्कूलों का अधिकांश अनुपात गैर-सरकारी होता है किंतु उनमें से भी बहुत-से काफी फीस लेते हैं और इस कारण वे जनता के धनी प्रतिशत को छोड़कर बाकी लोगों के वश की बात सामान्यतः नहीं होते, यद्यपि मध्यम वर्ग के कुछ माता-पिता इन स्कूलों में अपने बच्चों को भेजने के लिए बड़ा त्याग करते हैं। इस प्रकार स्वयं शिक्षा में ही अलगाव है—काफी फीस लेने वाले थोड़ी संख्या के अच्छे स्कूल जो कि उच्च वर्ग की आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं, तथा शेष जनता द्वारा लाभ लिए जानेवाले एक लोकनिधि से चलनेवाले निःशुल्क किंतु घटिया स्तर के स्कूल। सबसे बुरी बात तो यह है कि यह अलगाव बढ़ता जा रहा है और जनता तथा वर्गों के बीच की खाई को और भी चौड़ा करता जा रहा है।

1.37. वर्तमान शिक्षा-प्रणाली की यह बहुत बड़ी कमजोरियों में से एक है। सभी बच्चों या समाज के हर स्तर के सभी योग्य बच्चों को अच्छी शिक्षा सुलभ कराने के स्थान पर, अच्छी शिक्षा केवल उन मुट्ठी भर लोगों को उपलब्ध है जिनका चुनाव प्रतिभा के आधार पर नहीं, अपितु फीस चुकाने की क्षमता के आधार पर किया जाता है। इससे योग्यता का समग्र राष्ट्रीय पूल बनाने और उसकी वृद्धि करने में रुकावट आती है। इस प्रकार यह स्थिति अलोकतांत्रिक है तथा एक समतापूर्ण समाज के आदर्श से मेल नहीं खाती। साधारण जनता के बच्चों को घटिया प्रकार की शिक्षा लेने के लिए विवश होना पड़ता है और चूंकि छात्रवृत्तियों की योजना भी बहुत लम्बी-चौड़ी नहीं है, अतः कभी-कभी इन बच्चों से योग्यतम बच्चे भी इन अच्छे स्कूलों में प्रवेश पाने में असमर्थ रहते हैं, जब कि आर्थिक सुविधा-प्राप्त माता-पिता अपने बच्चों के लिए अच्छी शिक्षा 'खरीदने' में समर्थ होते हैं। यह बात न केवल गरीबों के बच्चों के लिए बुरी है अपितु अमीर और सुविधा प्राप्त वर्गों के बच्चों के लिए भी बुरी है। थोड़े समय के लिए इन्हें इससे यह सुविधा अवश्य मिल जाती है कि वे अपनी स्थिति बनाए रखें और उसे सुदृढ़ कर सकें। किंतु यह अनुभव किया जाना चाहिए कि अंततोगत्वा उनका स्वयं का हित इसी में है कि वे साधारण जनता के साथ अपने को एक करें। अपने बच्चों को अलग-अलग रख के वे गरीबों के बच्चों के जीवन और अनुभवों में शामिल होने से तथा जीवन की वास्तविकताओं के संपर्क में आने से रोकते हैं। सामाजिक संश्लेषण को कमजोर बनाने के अतिरिक्त वे अपने बच्चों की शिक्षा को भी बलहीन तथा अपूर्ण बनाते हैं।

1.38. यदि इन बुराइयों को दूर करना है और शिक्षा-प्रणाली को सामान्य राष्ट्रीय विकास तथा सामाजिक और राष्ट्रीय एकीकरण का विशेष रूप से एक शक्तिशाली साधन बनना है, तो हमें लोक-शिक्षा की ऐसी समान स्कूल पद्धति की ओर कदम बढ़ाना चाहिए

- जो जाति, संप्रदाय, समाज, धर्म, आर्थिक परिस्थिति और सामाजिक प्रतिष्ठा का विचार किए बिना सभी बच्चों को सुलभ हो ;
- जिसमें अच्छी शिक्षा का अवसर प्राप्त करना, धन या वर्ग पर निर्भर न कर प्रतिभा पर निर्भर करे ;
- जो सभी स्कूलों में एक समुचित स्तर बनाए रखेगी तथा कम से कम एक युक्तिसंगत संख्या में अच्छे स्तर की संस्थाएँ सुलभ कराएगी ;
- जिसमें पढ़ाई की कोई फीस नहीं ली जाएगी; और
- जो औसत पिता की आवश्यकताओं की पूर्ति करेगी ताकि उसे इस प्रणाली से बाहर के खर्चीले स्कूलों में अपने बच्चों को भेजने के आवश्यकता साधारणतः अनुभव नहीं होगी।

उदाहरण के लिए, इस प्रकार की शिक्षा-प्रणाली रूस में अपनाई गई है और वह उन महत्वपूर्ण कारणों में से एक है जिन्होंने उसकी उन्नति में योगदान किया है। अमेरिका, फ्रांस और स्केण्डेनेवियाई देशों जैसे अन्य राष्ट्रों में भी इस प्रकार की प्रणाली विभिन्न रूपों और विभिन्न सीमाओं तक विकसित की गई है। पारम्परिक ब्रिटिश पद्धति इससे भिन्न रही है और उसमें गैर-सरकारी प्रबन्ध के अन्तर्गत अच्छी शिक्षा अधिकांशतः उन लोगों के लिए

सुरक्षित रही जो आवश्यक फीस चुका सकने की हैसियत रखते हों। किंतु हाल ही में तथाकथित पब्लिक स्कूलों की स्वयं इंग्लैंड में ही कड़ी आलोचना हुई है और यह असंभव नहीं है कि इन स्कूलों को और अधिक लोकतांत्रिक बनाने के लिए क्रांतिकारी परिवर्तन प्रारंभ किए जाएं। कुछ इसी प्रकार की प्रणाली ब्रिटिश शासकों ने भारत में भी शुरू की थी और हम उससे इतने दिनों तक इसीलिए चिपके रहे क्योंकि वह हमारे समाज की पारंपरिक सोपानात्मक रचना के अनुरूप थी। उसका पिछला इतिहास कुछ भी हो, इस प्रणाली का उस नए लोकतांत्रिक और समाजवादी समाज में कोई मान्य स्थान नहीं हो सकता जिसका हम निर्माण करना चाहते है। हम अन्यत्र इस पर पूर्ण रूप से विचार करेंगे कि यह कार्यक्रम किस प्रकार अमल में लाया जा सकता है।

1.39. **सामाजिक और राष्ट्रीय सेवा**—जैसा कि हम पहले बता चुके हैं, वर्तमान शिक्षा प्रणाली ही शिक्षितों और अशिक्षितों तथा बुद्धिजीवी वर्ग एवं साधारण जनता के बीच निंदनीय खाई उत्पन्न करने के लिए उत्तरदायी है। बुद्धिजीवी वर्ग को वास्तव में साधारण जनता की उन्नति के लिए प्रयत्नशील सेवा-समुदाय बनना चाहिए तथा अपने ही लिए जीनेवाला और अपनी ही सुविधा-प्राप्त स्थिति को बनाए रखनेवाला परजीवी समुदाय बन जाने के प्रलोभन से बचना चाहिए। हमारे पारम्परिक 'श्रेष्ठ' जनों का कुल मिलाकर—कुछ उदारमना अपवादों को छोड़कर—साधारण जनता से निकट संपर्क नहीं था और नई शिक्षा के कारण जिस नए 'श्रेष्ठ' वर्ग का प्रादुर्भाव हुआ, वह भी उस अपवाद को छोड़कर जिसमें महात्मा गांधी के नेतृत्व में चले स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान गांधीजी काफी बड़ी संख्या में शिक्षित और यहाँ तक कि धनी व्यक्तियों को साधारण जनता एवं देश के हितों के साथ अपना हित मानने की प्रेरणा देने में समर्थ हो सके, साधारण जनता से अलग-थलग ही रहा। किंतु स्वतंत्रता की प्राप्ति के बाद, जब स्वतंत्रता संघर्ष समाप्त हो गया, उन में फिर जनता से दूर हो जाने की प्रवृत्ति दिखाई पड़ी है। यह एक बड़ा खतरा है और उसका सामना करने के लिए एक सुगठित तथा एकताबद्ध राष्ट्र के विकास की दृष्टि से उपयुक्त कार्यक्रम बनाना आवश्यक है।

1.40. इस प्रयोजन के लिए, हम सिफारिश करते है कि किसी न किसी प्रकार की सामाजिक और राष्ट्रीय सेवा सभी विद्यार्थियों के लिए अनिवार्य बना दी जाए तथा सभी स्तरों पर वह शिक्षा का एक अभिन्न अंग हो। यह सेवा चरित्र-निर्माण का साधन हो सकती है, अनुशासन में सुधार ला सकती है तथा शारीरिक श्रम की महत्ता में आस्था पैदा कर सकती है तथा सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना विकसित कर सकती है।

1.41. सामाजिक और राष्ट्रीय सेवा की व्यवस्था निम्नलिखित दो तरीकों में से किसी एक तरीके से की जा सकती है। ये कार्यक्रम शिक्षा की अवधि में यदा-कदा थोड़े समय के लिए किए जा सकते हैं या शिक्षा की वर्तमान अवधि के अतिरिक्त पूर्णकालिक सेवा के रूप में आयोजित किए जा सकते हैं। डॉ० सी० डी० देशमुख की अध्यक्षता में नियुक्त राष्ट्रीय सेवा समिति ने दूसरे प्रकार का मार्ग अपनाए जाने की सिफारिश की थी। सुझाव दिया गया था कि माध्यमिक स्कूल या विश्वविद्यालयपूर्व पाठ्यक्रम उत्तीर्ण करने वाले तथा इस के पहले कि वे किसी नौकरी में या विश्वविद्यालय में जाएँ, सभी युवकों (केवल उन्हें छोड़कर जिन्हें वैध शैक्षिक या अन्य किसी कारण से इसे देरी से करने की अनुमति दी जाए) सभी युवकों के लिए राष्ट्रीय सेवा का नौ से लेकर बारह महीनों का एक पूर्णकालिक कार्यक्रम होना चाहिए। इस कार्यक्रम में कुछ सैनिक प्रशिक्षण, सामाजिक सेवा, शारीरिक श्रम और सामान्य शिक्षा शामिल किए जाने थे। अभी तक इन सुझावों पर अमल नहीं किया गया है, और न ही जनता की प्रतिक्रिया उनके प्रति बहुत अनुकूल रही है। उसके बदले में, राष्ट्रीय संकट (1962) के समय, राष्ट्रीय कैडेट कोर की अनिवार्य योजना विश्वविद्यालय स्तर पर प्रारंभ की गई थी।

1.42. लगभग उसी समय, शिक्षा मंत्रालय ने अनेक देशों, जैसे, यूगोस्लाविया, चैकोस्लोवाकिया, जर्मनी, नार्वे, स्वीडन, इंग्लैंड, अमेरिका, जापान और फिलीपीन में राष्ट्रीय सेवा का अध्ययन प्रारम्भ कराया था। इस अध्ययन की रिपोर्ट 'युवकों के लिए राष्ट्रीय सेवा' (नेशनल सर्विस फार यूथ) के नाम से प्रकाशित हुई हैं। इस रिपोर्ट में विभिन्न देशों में राष्ट्रीय सेवा की मुख्य-मुख्य बातों पर विचार करने के अतिरिक्त इस आशय की कई सिफारिशें की गई थीं कि एक व्यवहार्य योजना बनाने के लिए भारत में क्या किया जा सकता है। उसने इस सेवा की अनिवार्य बनाना ठीक नहीं समझा था क्योंकि अनिवार्यता का न तो इन देशों में प्रयोग ही किया गया था और न ही उसे अच्छा समझा गया था। इसलिए उसने सुझाव दिया था कि शुरू में राष्ट्रीय या सामाजिक सेवा ऐच्छिक आधार पर प्रारम्भ की जाए तथा उसका जितना विस्तार किया जा सके, उतना किया जाए और उसमें इतने अच्छे और विविध कार्यक्रम हों कि युवकों के प्रति एक कल्पनापूर्ण रुख स्पष्ट झलकें। हमारा विश्वास है कि

इस अध्ययन में जो मोटी-मोटी दिशाएँ निर्धारित की गई हैं, उन पर आधारित सामाजिक या राष्ट्रीय सेवा की योजना अधिक वास्तविक और व्यावहारिक होगी।

1.43. इस प्रयोजन के लिए, शिक्षा की कुल अवधि में एक वर्ष और जोड़ देने के बजाय, अधिक उपयुक्त योजना यह होगी कि शिक्षा के अभिन्न अंग के रूप में एक ऐसा कार्यक्रम विकसित किया जाए जो कि स्कूल और कालेज में अध्ययन के विषयों के साथ ही साथ चलता रहे। यह कार्यक्रम उच्च प्राथमिक स्तर से प्रारम्भ होना चाहिए तथा विश्वविद्यालय स्तर तक जारी रहना चाहिए ताकि कच्ची उम्र से ही उचित प्रवृत्तियों का विकास हो सके तथा अंततोगत्वा हर युवक उसके फैलाव में आ सके।

1.44. यह सेवा निम्नलिखित दो मुख्य रूपों में आयोजित की जा सकती है।

— स्कूल या कालेज के क्षेत्र में ही सामुदायिक जीवन में भाग लेने में विद्यार्थियों को समर्थ बनाना तथा उसके लिए उन्हें प्रोत्साहित करना ; और

— सामुदायिक विकास और राष्ट्रीय सेवा के कार्यक्रमों में भाग लेने के अवसर प्रदान करना।

1.45. **स्कूल और कालेज में सामुदायिक जीवन**- हर शिक्षा संस्था को स्वयं अपना सुनियोजित सामाजिक जीवन कार्यक्रम विकसित करना चाहिए तथा विद्यार्थियों को उसमें भाग लेने तथा उसे आयोजित करने के पर्याप्त और संतोषजनक अवसर देना चाहिए। इस प्रकार के काम के लिए अनेक अवसर, स्वयं कक्षा में, स्कूलों और कालेजों के क्षेत्रों में ही, छात्रावास में और खेल के मैदानों में ही प्राप्त होते हैं। उदाहरण के लिए, शिक्षा संस्थाओं और उनके छात्रावासों में नौकर रखने या मज़दूर लगाने की अपेक्षा, बहुत-सा काम विद्यार्थियों से ही करवाया जा सकता है। इसका मुख्य उद्देश्य पैसा बचाना नहीं, अपितु मूल्यवान अनुभव कराना है। जापान ने अपनी राष्ट्रीय प्रणाली में इस प्रथा का उपयोग किया है और भारत में कई स्कूल भी (जिनमें सम्पन्न बच्चों के लिए स्कूल भी शामिल हैं) किसी सीमा तक यह कार्य कर रहे हैं। इस प्रकार के कार्य-अनुभव से विद्यार्थियों में काम करने की आदत पड़ेगी तथा उनमें श्रम की महत्ता की भावना जागेगी। यदि यह काम राष्ट्रव्यापी आधार पर किया जाए, तो उससे प्रासंगिक रूप से ही सही, खर्च में कुछ कमी होगी और इस बची राशि का उपयोग विद्यार्थियों को कुछ मूल सुविधाएँ देने में किया जा सकता है। बुनियादी शिक्षकों के लिए प्रशिक्षण संस्थाओं ने सामुदायिक जीवन की इस प्रकार की परम्पराओं को नौकर की सेवाओं से छुटकारा पाकर विकसित करने का किसी सीमा तक प्रयत्न किया है। हम सिफारिश करते हैं कि छात्रावास जीवन की यह पद्धति यथासंभव सभी स्कूलों और कालेजों में अपनाई जाए। सभी प्रकार की शिक्षा संस्थाओं में दैनिक जीवन और प्रशिक्षण के एक अंग के रूप में स्वयं अपनी सहायता तथा शारीरिक श्रम के शुरू किए जाने—जैसा कि प्राचीन काल के आश्रमों और अकादमियों में होता था—से अच्छे शैक्षिक परिणाम सामने आएंगे। हम अपनी शिक्षा संस्थाओं में प्राचीन काल जैसा शत-प्रतिशत वातावरण तो निर्मित नहीं कर सकते, किंतु प्राचीन अनुभव के उपयोगी तत्वों से हम निश्चय ही लाभ उठा सकते हैं।

1.46. **सामुदायिक विकास के कार्यक्रमों में भाग लेना** – शिक्षा संस्थाओं सम्बन्धी इन कार्यक्रमों के अतिरिक्त, यह भी आवश्यक है कि सामुदायिक सेवा के अर्थपूर्ण कार्यक्रमों में भाग लेना भी प्राथमिक से लेकर विश्वविद्यालय स्तर तक की सारी शिक्षा का एक अभिन्न अंग बनाया जाए। इस प्रकार के कार्यक्रमों में भाग लेने से सामाजिक सेवा के प्रति अनुकूल प्रवृत्ति निर्मित करने में सहायता मिल सकती हैं तथा शिक्षित व्यक्तियों एवं शेष जनता में निकट संपर्क स्थापित हो सकते हैं। इससे सामाजिक प्रयोजन तथा आत्म-विश्वास की भावना का निर्माण करने में सहायता मिल सकती है और विद्यार्थियों में सामुदायिक जीवन और गतिविधियों में भाग लेने की भावना उत्पन्न हो सकती है।

1.47. स्वाभाविक ही है कि इन कार्यक्रमों की आयोजना अवस्थानुसार भिन्न-भिन्न होगी :

(1) प्राथमिक स्तर पर उसका स्वरूप उपयुक्त तरीकों से समाज की सेवा करने पर बल देकर स्कूलों को समाज के निकट लाना होगा।

(2) माध्यमिक स्तर पर, इस प्रकार के कार्यक्रमों को और भी अधिक उच्चाकांक्षापूर्वक तैयार किया जा सकता है और नवयुवकों के मन पर उसका और भी अधिक असर हो सकता है। हर माध्यमिक स्कूल को चाहिए कि वह स्कूल-समाज के अच्छे सम्बन्धों को प्रोत्साहित करने तथा समाज की उपयुक्त तरीकों से सेवा करने के सावधानीपूर्वक तैयार किए गए कार्यक्रम बनाए। हम सिफारिश करते हैं कि **एक वर्ष**

में लगभग दस दिन या (अवर माध्यमिक स्तर पर कुल 30 दिन और उच्च माध्यमिक स्तर पर 20 दिन) इस प्रकार के कार्यक्रमों में पूरी तरह लगा दिये जाएँ। जहां यह संभव न हो, वहां माध्यमिक स्कूलों के विद्यार्थियों के लिए उन श्रम-सेवा-शिविरों में भाग लेना अनिवार्य होना चाहिए जो कि राज्यों के शिक्षा विभागों द्वारा जिला-आधार पर आयोजित किए जाएँ। इस कार्यक्रम की विस्तृत चर्चा अन्यत्र की गई है।[1]

(3) इसी प्रकार, कालेज के हर विद्यार्थी के लिए यह अनिवार्य होना चाहिए कि वह अपनी प्रथम उपाधि लेने से पहले एक से तीन बार में कम से कम 60 दिनों तक राष्ट्र की सेवा करे। हर कालेज को अपने लक्ष्यों, साधनों, और विद्यार्थियों की आयु तथा उनकी क्षमता के अनुसार अपना उचित कार्यक्रम तैयार करना चाहिए। श्रम और सामाजिक शिविरों तथा **राकैको (एन० सी० सी०)** में भाग लेने को इस प्रकार की सेवा का एक वैकल्पिक रूप समझा जाना चाहिए।

1.48. पिछले तीन वर्षों से जो **राकैको** कार्यक्रम विश्वविद्यालय स्तर पर अनिवार्य बना दिया गया है उसके अच्छे परिणाम सामने आए हैं। साधारण जनता और रक्षा सेवाओं के बीच निकट सम्पर्क स्थापित करके वह राष्ट्रीय विकास की संभावनाओं को और अधिक बढ़ा सकता है। इस कार्यक्रम से तथाकथित "लड़ाकू" और अन्य वर्गों में अंतर भी कम होता है तथा वह सभी वर्ग के लोगों में स्वतन्त्रता की रक्षा करने की भावना जगाता है। चूंकि यह कार्यक्रम अभी हाल ही में शुरू किया गया है, इसलिए हमारा विचार है—और **राकैको** अधिकारियों ने भी इस बात पर जोर दिया है—कि इस समय कार्यक्रम को अभी और अधिक समय तक, जैसे चौथी पंचवर्षीय योजना के अंत तक, उसके वर्तमान आधार पर ही जारी रखना चाहिए। संबंधित अधिकारियों से हम यह सिफारिश करना चाहते हैं कि वे इस कार्यक्रम को इस प्रकार आयोजित करने की संभावनाओं पर विचार करें कि इस समय के समान उसका आयोजत तीन वर्षों में नहीं बल्कि एक ऐसे ठोस और पूर्णकालिक कार्यक्रम के रूप में किया जाए जो, जैसा पहले भी कहा जा चुका है, लगभग 60 दिनों से अधिक समय तक चले और विद्यार्थी उसे अपनी सुविधानुसार एक से लेकर तीन बार में पूरा कर सकें। सामाजिक सेवा के वैकल्पिक रूप जैसे-जैसे सामने आते जाएँ, वैसे-वैसे **राकैको** ऐच्छिक बना दी जाए और यह विद्यार्थियों पर छोड़ दिया जाए कि वे **राकैको** को, चुनें या सामाजिक सेवा के किसी अन्य प्रकार को।

1.49. **भाषा-नीति का विकास**—भाषा संबंधी एक समुचित नीति के विकास से भी सामाजिक और राष्ट्रीय एकीकरण में महत्वपूर्ण सहायता मिल सकती है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद देश ने जिन अनेक कठिन समस्याओं का सामना किया है उनमें भाषा का प्रश्न एक सब से पेचीदा और काबू से बाहर का प्रश्न रहा है और वह अब भी वैसा ही बना हुआ है। अनेक कारणों से जिनमें शिक्षा, संस्कृति और राजनीति से संबंधित कारण भी शामिल हैं, इस प्रश्न का शीघ्र ही संतोषपूर्ण समाधान करना जरूरी है।

1.50. **आधुनिक भारतीय भाषाओं का विकास**—शायद इस बात पर जोर देने की आवश्यकता नहीं है कि भारतीय भाषाओं का विकास न केवल आवश्यक ही है बल्कि शीघ्र भी किया जाना चाहिए ताकि भारतीय जनता का विकास हो सके और श्रेष्ठ वर्ग तथा साधारण जनता एक दूसरे के निकट आ सकें। इस विकास से वैज्ञानिक और तकनीकी ज्ञान लोगों को उनकी अपनी भाषा में आसानी से मिल सकेगा तथा इस प्रकार उससे न केवल औद्योगीकरण में ही सहायता मिलेगी अपितु विज्ञान और वैज्ञानिक दृष्टिकोण के और अधिक विस्तार में भी सहायता मिलेगी। प्रादेशिक भाषाओं में, विशेषकर वैज्ञानिक और तकनीकी पुस्तकों तथा साहित्य के निर्माण के लिए, परिश्रम पूर्ण प्रयत्न की आवश्यकता है। इस कार्य को विश्वविद्यालयों की एक विशेष और तुरन्त पूरी की जाने योग्य जिम्मेदारी समझा जाना चाहिए। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को चाहिए कि वह इस कार्यक्रम के लिए उनका सामान्य मार्गदर्शन करे और समुचित राशि उन्हें उपलब्ध कराए।

1.51. **स्कूल और कालेज में शिक्षा का माध्यम**—आधुनिक भारतीय भाषाओं के विकास का प्रश्न शिक्षा प्रणाली में, विशेषकर विश्वविद्यालय स्तर पर उन्हें दिए जाने वाले स्थान से अविच्छिन्न रूप से जुड़ा हुआ है। जो माध्यम चुना जाए उससे विद्यार्थी सुविधापूर्वक ज्ञान का अर्जन तथा अपने विचारों की अभिव्यक्ति स्पष्टतापूर्वक कर सकें एवं सूक्ष्म और सबल तर्क उपस्थित कर सकें। इस दृष्टि से, मातृ-भाषा का दावा सबसे पहले आता है। लगभग तीस वर्ष पूर्व कलकत्ता विश्वविद्यालय

1. अध्याय आठ

का दीक्षांत भाषण देते हुए, रवींद्रनाथ टैगोर ने इस विषय संबंधी अपने विचार बड़ी स्पष्टतापूर्वक व्यक्त किए थे :

> "भारत को छोड़कर दुनियां के किसी भी देश में यह नहीं पाया जाता कि शिक्षा की भाषा विद्यार्थी की भाषा से अलग है। जापान ने जब से पाश्चात्य सभ्यता को अपनाया है, तब से अभी तक पूरे सौ वर्ष भी नहीं हुए है। शुरू में, उसे विदेशी भाषाओं में लिखी गई पाठ्यपुस्तकों का आश्रय लेना पड़ा किंतु प्रारंभ से ही उसका यह लक्ष्य रहा कि अपने ही देश की भाषा में अध्ययन के विषयों को निर्बाध रूप से पढ़ने की स्थिति तक पहुंचा जाए। चूंकि जापान ने इस प्रकार अध्ययन की इस आवश्यकता को पहचान लिया था कि यह अध्ययन उसके कुछ चुने हुए नागरिकों का ही आभूषण न बने बल्कि सभी नागरिकों को उससे शक्ति प्राप्त हो और सांस्कृतिक लाभ हो, इसी कारण इस बात को उसने सबसे अधिक महत्व दिया कि यह ज्ञान उसके सभी लोगों को प्राप्त हो। पाश्चात्य कला और विज्ञान में प्रवीणता पाने के जापान के इस प्रयत्न में खर्च की परवाह नहीं की गई थी ताकि जापान को विदेशी शक्तियों की उनकी पहले से ही चली आई लिप्सा से आत्म-रक्षा के साधन प्राप्त हो सकें तथा वह राष्ट्रों के परिवार में अपना सम्माननीय स्थान ग्रहण कर सके। वहां यह कृपणतापूर्वक मूर्खता सबसे कम की गई कि इस प्रकार का ज्ञान कठिनता से प्राप्त ही और किसी विदेशी भाषा में ही सीमित हो।"

विदेशी भाषा के माध्यम से पढ़ाई के कारण विद्यार्थी को अपने विषय पर अधिकार प्राप्त करने के स्थान पर उसे रटने में अपनी सारी ताकत लगानी पड़ती है। इसके अतिरिक्त, ठोस शिक्षा-नीति की दृष्टि से यदि देखा जाए तो स्कूली और उच्च शिक्षा का माध्यम सामान्यतः एक ही होना चाहिए। सन् 1937 से पहले कम से कम इस स्थिति में संगति थी। अंग्रेजी ही स्कूल की उच्च कक्षाओं तथा कालेज में शिक्षा का माध्यम थी। जैसा कि हमने उचित रूप से ही प्रादेशकि भाषाओं को स्कूल स्तर पर शिक्षा का माध्यम बना दिया है, अब उसी से यह परिणाम भी निकालता हैं कि उच्च स्तरों पर भी हम उनका प्रयोग धीरे-धीरे बढ़ाते जाएँ।

1.52. सामाजिक और राष्ट्रीय एकीकरण को बढ़ावा देने की दृष्टि से भी इस सुझाव का जोरदार समर्थन किया गया है। भावनात्मक एकीकरण समिति का यह मत था कि राष्ट्रीय एकीकरण की दृष्टि से, शिक्षा के निम्नतम स्तर से लेकर उच्चतम स्तर तक प्रादेशिक भाषाओं का उपयोग 'बहुत' ही महत्वपूर्ण है। इस विचार का समर्थन राष्ट्रीय एकीकरण परिषद् (जून 1962) ने भी किया जिसकी यह राय थी कि :

"शिक्षा के माध्यम में परिवर्तन किया जाना सांस्कृतिक या राजनीति भावनाओं के कारण ही इतना उचित नहीं है जितना कि विषय-वस्तु की पकड़ और उसे पूरी तरह समझ सकने में सुविधा संबंधी शिक्षाशास्त्रीय दृष्टि से है। इसके अतिरिक्त साधारण जनता, कारीगरों, तकनीकी व्यक्तियों तथा विश्वविद्यालय के लोगों के बीच यदि प्रादेशिक भाषाओं के रूप में एक अविराम संचार-साधन नहीं होगा, तो भारतीय विश्वविद्यालयों के लोग सामान्यतः ज्ञान की ओर विशेषतः विज्ञान और शिल्पविज्ञान की उन्नति में तथासंभव अपना अधिकतम योगदान नहीं कर पाएंगे। परिषद् की राय थी कि यदि विश्वविद्यालय स्तर पर शिक्षा के माध्यम के रूप में प्रादेशिक भाषाओं का उपयोग नहीं किया गया, तो देश की छिपी हुई प्रतिभाएँ भी सामने नहीं आ सकेंगी। हम इन विचारों से सामान्यतः सहमत हैं।"

1.53. कभी-कभी यह तर्क दिया जाता है कि विश्वविद्यालय स्तर पर शिक्षा का माध्यम एक ही होना चाहिए। वह फिलहाल अंग्रेजी हो तथा आगे चलकर अंत में हिंदी हो जाए। इसके लिए यह कारण दिया जाता है कि ऐसा करने से शिक्षक और विद्यार्थी देश के एक स्थान से दूसरे स्थान में जा सकेंगे, शिक्षा और व्यवसाय जगत से संबंधित व्यक्तियों तथा प्रशासन में लगे व्यक्तियों के बीच आदान-प्रदान सरल रहेगा, और विश्वविद्यालयों के बीच और अधिक बौद्धिक सहयोग संभव हो सकेगा तथा देश में एक सम्मिलित बौद्धिक जीवन के विकास में अनेक प्रकार से सहायता मिलेगी। सभी बातों पर विचार करने के बाद, हमारा झुकाव इस विचार की ओर है कि यह हल व्यवहार्य नहीं है। व्यवहार में इसका अर्थ यह होगा कि उच्च शिक्षा के क्षेत्र में केवल अंग्रेजी ही अनिश्चित काल तक शिक्षा का माध्यम बनी रहे। यह एक ऐसी बात है जिसका हम देश के व्यापक हितों में समर्थन नहीं कर सकते। आनेवाले कुछ वर्षों में, हिंदी को भारत के सभी भागों में शिक्षा का एक समान माध्यम बनाया जाना संभव नहीं है और कुछ अहिंदी क्षेत्रों में तो उसके साथ वे ही असुविधाएं होंगी जो कि किसी विदेशी भाषा को माध्यम बनाने में होती हैं तथा वहाँ उसका विरोध किए जाने की भी संभावना है। इसलिए, वर्तमान में जो प्रवृत्ति विश्वविद्यालय स्तर पर प्रादेशिक भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाने की है उसे उलटना तथा सारे देश में उच्च शिक्षा के लिए एक ही माध्यम पर जोर देना बुद्धिमानी नहीं होगी।

1.54. सारांश यह है कि :

(1) हमें यकीन हो गया है कि प्रादेशिक भाषाओं के माध्यम से शिक्षा में ही लाभ है। हम यह मानते हैं कि देश की सामान्य उन्नति तथा शिक्षा के स्तर में सुधार की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम के रूप में प्रादेशिक भाषाओं का विकास बहुत महत्वपूर्ण है। भ्रांति से बचने के लिए, हम इस बात पर भी जोर देना चाहते है कि इसका यह अर्थ भी नहीं है कि अंग्रेजी या विश्व की अन्य भाषाओं को बिल्कुल ही छोड़ दिया जाए। वास्तव में, जब हमारी शिक्षा अधिक प्रभावी और उपयोगी हो जाएगी, तब हमें इन भाषाओं से और भी लाभ होगा।

(2) इस समस्या की महत्ता को देखते हुए, हमारा यह सुझाव है कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग और विश्वविद्यालयों को सावधानीपूर्वक एक उपयुक्त एवं व्यावहारिक कार्यक्रम प्रत्येक विश्वविद्यालय अथवा कुछ विश्वविद्यालयों के समूह के लिए तैयार करना चाहिए। यह परिवर्तन यथासंभव शीघ्र ही होना चाहिए किंतु देर-से-देर लगभग दस वर्षों में तो हो ही जाना चाहिए क्योंकि जैसे-जैसे समय बीतता जाएगा, यह समस्या और भी कठिन तथा पेचीदा होती चली जाएगी। इसके लिए, भारतीय भाषाओं में आवश्यक साहित्य का एक बड़ा कार्यक्रम बनाना होगा, तथा शिक्षकों के शिक्षण और पुनर्शिक्षण के लिए समुचित व्यवस्था करना आवश्यक होगा।

(3) आवश्यकता इस बात की है कि एक स्पष्ट नीति निर्धारित की जाए, उसे सुस्पष्ट शब्दों में व्यक्त किया जाए तथा सुदृढ़, साहसपूर्ण तथा कल्पनापूर्ण कार्रवाई द्वारा उस पर अमल कराया जाए। हमें किसी तरह यों ही चलते रहने की नीति से बचना चाहिए क्योंकि वह केवल हानिकारक ही हो सकती है और न ही इस कुचक्र में फंसना चाहिए कि "माँग के अभाव में उत्पादन नहीं" तथा "उत्पादन नहीं, इसलिए मांग भी नहीं।"

(4) हम यह भी मानते हैं कि अपर्याप्त तैयारी के कारण परिवर्तन की अवधि में कहीं शिक्षा का स्तर न गिर जाए, इसके लिए संक्रमण-काल में उपयुक्त पूर्वोपाय करने होंगे। वास्तव में, परिवर्तन की वांछनीयता और सफलता का निर्णय तो उसके कारण शिक्षा में जो सुधार हो, उससे करना चाहिए। लेकिन सतर्कता को देरी या सुस्ती के बराबर नहीं बना देना चाहिए। परिवर्तन केवल तभी अर्थपूर्ण हो सकता है जब कि वह कृतसंकल्प, प्रयत्नपूर्ण तथा दृढ़ कार्रवाई की नीति का एक अंग हो।

1.55. किंतु उपर्युक्त सामान्य नियम का एक महत्वपूर्ण अपवाद होगा, अर्थात्, वे अखिल-भारतीय संस्थाएं जो काफी संख्या में देश के विभिन्न भागों के विद्यार्थियों को भरती करती है। ये संस्थाएं इस समय अंग्रेजी को शिक्षा के माध्यम के रूप में प्रयुक्त करती हैं और यह माध्यम बिना किसी परिवर्तन के फिलहाल जारी रहना चाहिए। यदि दो शर्तें पूरी होती हों, तो हिंदी को शिक्षा का माध्यम बनाने के प्रश्न पर उचित समय पर विचार किया जा सकता है। पहली शर्त तो यह है कि इस स्तर पर शिक्षा के माध्यम के रूप में हिंदी का प्रभावपूर्ण विकास हो। इस बात का निर्णय विश्वविद्यालय अनुदान आयोग तथा संबंधित संस्थाओं पर छोड़ देना चाहिए। दूसरी शर्त इतना ही महत्वपूर्ण यह राजनीतिक विचार है कि अहिंदी क्षेत्रों के विद्यार्थियों के अवसरों पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए तथा इस सुझाव को अहिंदी राज्यों का समर्थन प्राप्त होना चाहिए। इस दूसरे सिद्धांत को भारत सरकार ने इससे भी अधिक बड़े क्षेत्र अर्थात् राज्यों तथा केन्द्रीय-सरकार के बीच पत्रव्यवहार में हिंदी प्रयोग के संबंध में पहले ही स्वीकार कर लिया है।

1.56. इसके साथ ही साथ यह आवश्यक है कि प्रादेशिक भाषाओं को सम्बन्धित प्रदेशों की सरकारी भाषाएँ यथासंभव शीघ्र बनाया जाए ताकि प्रादेशिक भाषाओं के माध्यम से पढ़नेवालों को तथेन उच्च सेवाओं में जा सकने से वंचित न रहना पड़े। विश्वविद्यालय स्तर पर प्रादेशिक भाषाओं को शिक्षा का माध्यम स्वीकार किए जाने की अधिक सम्भावना उस स्थिति में होगी जब कि अधिकांशतः अंग्रेजी के ज्ञान के कारण मिलने वाली जो नौकरी अंग्रेजी के माध्यम से अध्ययन करनेवाले विद्यार्थियों को आसानी से प्राप्य है, वही उनको प्राप्त हो सकेगी जिन्होंने प्रादेशिक माध्यम से अध्ययन किया हो। हम यहाँ यह भी कहना चाहते हैं कि प्रादेशिक भाषा शब्द के साधारण अर्थ के अनुसार यद्यपि उर्दू प्रादेशिक भाषा नहीं है, फिर भी उसकी अखिल भारतीय महत्ता है क्योंकि

देश के विभिन्न भागों के कुछ वर्गों द्वारा वह बोली जाती है। उसे उसकी इस विशेषता के कारण ही नहीं अपितु इसलिए भी कि राजभाषा हिंदी से उसका निकट का संबंध है, उसे सभी स्तरों पर उचित प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए।

1.57. **अंतर्राष्ट्रीय आदान-प्रदान के साधन**— शिक्षा के माध्यम के रूप में प्रादेशिक भाषाओं को शुरू किए जाने का अर्थ यह नहीं लगाना चाहिए कि विश्वविद्यालय के लिए अंग्रेजी कम महत्वपूर्ण है। प्रथम उपाधि पाठ्यक्रम को सफलतापूर्वक पूरा करने के लिए विद्यार्थी का अंग्रेजी पर समुचित अधिकार होना चाहिए तथा उसे उचित आसानी और सुविधापूर्वक उसमें अपने विचारों को अभिव्यक्त करने की योग्यता हो तथा उसे अंग्रेजी में दिए गए व्याख्यान समझ में आने चाहिए एवं वह स्वयं अंग्रेजी में लिखे साहित्य को समझने योग्य हो। इसलिए स्कूल स्तर में ही, एक भाषा के रूप में उसके अध्ययन पर उचित जोर देना पड़ेगा। उच्च शिक्षा के लिए अंग्रेजी सबसे अधिक उपयोगी 'पुस्तकालय' भाषा तथा बाहरी दुनिया के लिए हमारी सबसे महत्वपूर्ण खिड़की होनी चाहिए। शिक्षा सम्बन्धी अनेक कारणों और व्यावहारिक प्रयोजनों के कारण अन्य विदेशी भाषाओं के अध्ययन को भी और अधिक विस्तृत पैमाने पर प्रोत्साहित करना आवश्यक है। आज की दुनियां में विज्ञान और शिल्पविज्ञान के अध्ययन के लिए रूसी भाषा का विशेष महत्व है। इसके अतिरिक्त, फ्रेंच, जर्मन, जापानी, स्पेनी तथा चीनी भाषाएँ भी आदान-प्रदान तथा ज्ञान की प्राप्ति और संस्कृति के लिए विश्व की महत्वपूर्ण भाषाएँ हैं। हमारी सिफारिश है कि सभी विश्वविद्यालयों, कुछ चुने हुए कालेजों और सावधानीपूर्वक चुने गए कुछ स्कूलों को भी इन भाषाओं की पढ़ाई की व्यवस्था करनी चाहिए। अंग्रेजी के अतिरिक्त किसी अन्य विदेशी भाषा (विशेषकर रूसी) का ज्ञान डाक्टर की उपाधि और कुछ विषयों में स्नातकोत्तर (मास्टर) उपाधि के लिए आवश्यक होना चाहिए।

1.58. देश को अधिक संख्या में व्यक्तियों के एक ऐसे छोटे समूह की आवश्यकता पड़ेगी जो महत्वपूर्ण विदेशी भाषाओं तथा उनके साहित्य की बहुत अच्छी जानकारी रखता हो। इस दृष्टि से, कुछ ऐसे स्कूलों की स्थापना करना आवश्यक होगा जो शुरू उम्र से ही उपर्युक्त महत्वपूर्ण विदेशी भाषाओं पढ़ाना तथा उन्हें शिक्षा के माध्यम के रूप में प्रयुक्त करना प्रारम्भ कर दें। इन स्कूलों में भरती चुनाव के आधार पर होनी चाहिए तथा इसके लिए छात्रवृत्तियों की समुचित व्यवस्था भी हो।

1.59. यदि विश्वविद्यालय स्तर पर, थोड़ी-सी ऐसी संस्थाएँ स्थापित की जा सकें जिनमें कुछ महत्वपूर्ण 'विश्व-भाषाएं' शिक्षा का माध्यम हों, तो यह उच्च शिक्षा के सामान्य विकास तथा अंतर्राष्ट्रीय सहयोग और सद्भाव की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम होगा। नई दिल्ली में रूसी अध्ययन संस्था (इन्स्टिट्यूट आफ रशियन स्टडीज़) की स्थापना से इस दिशा में भी श्रीगणेश हो चुका है। यह वांछनीय है कि चौथी योजना में कुछ ऐसे ही आधार पर जर्मन, फ्रेंच, स्पेनी और जापानी भाषाओं की संस्थाएँ भी स्थापित की जाएँ। रूसी के लिए भी हम और एक-दो संस्थाएँ स्थापित कर सकते हैं। ये संस्थाएँ अधिकांशतः रिहायशी ढंग की ही होंगी। यदि वे समीप के विश्वविद्यालयों की घटक संस्थाएं हो सकें, तो सुविधा होगी।

1.60. **देश में ही आदान-प्रदान के साधन**— हिंदी (या इस प्रयोजन के लिए अन्य कोई भारतीय भाषा) का बहुत विकास किया जाना चाहिए और उसे बहुत समृद्ध बनाया जाना चाहिए ताकि वह भविष्य में एक पुस्तकालय भाषा का पद पा सके, अर्थात्, एक ऐसी भाषा बन सके जो कि विश्व-ज्ञान के वर्तमान तथा तेजी से विस्तृत होते जा रहे भंडार के काफी भाग को अर्जित करने का माध्यम बन सके। अपनी भाषा-नीति निर्धारित करते समय हमें इस बात पर पूरा विचार करना होगा। जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है, इसका यह अर्थ है कि हर स्नातक के लिए एक पुस्तकालय भाषा में उचित प्रवीणता प्राप्त करना आवश्यक होगा। अधिकांश विद्यार्थियों के लिए यह भाषा अंग्रेजी होगी। इस प्रकार यह भाषा शिक्षा सम्बन्धी कार्य तथा बौद्धिक आदान–प्रदान के लिए उच्च शिक्षा के क्षेत्र में संपर्क-भाषा होगी।

1.61. किन्तु यह बात भी उतनी ही स्पष्ट है कि हमारी अधिकांश जनता के लिए अंग्रेजी सम्पर्क-भाषा नहीं हो सकती। केवल हिन्दी ही उचित समय पर यह स्थान ले सकती है और उसे यह स्थान लेना चाहिए। चूंकि वह संघ की राजभाषा है और लोगों की सम्पर्क भाषा है, इसलिए अहिन्दी क्षेत्रों में उसके प्रचार के लिए सभी उपाय किए जाने चाहिए। इस कार्यक्रम की सफलता अधिकांशतः इस बात पर निर्भर करेगी कि इन क्षेत्रों के लोग किस सीमा तक उसे अपनी इच्छा से स्वीकार करते हैं। हमें इस रुचिकर तथ्य की जानकारी मिली कि केरल विश्वविद्यालय में, जहाँ कि विद्यार्थी मलयालम के स्थान पर हिन्दी ले सकते हैं, बहुत-से विद्यार्थियों ने हिन्दी का अध्ययन करना पसन्द किया।

1. यह महत्वपूर्ण बात ध्यान देने लायक है कि यूनाइटेड किंगडम में जितने विद्यार्थी रूसी पढ़ते हैं, उनकी संख्या भारत में रूसी पढ़ने वालों से अधिक है।

हमें इस बात का भी अधिकाधिक प्रमाण मिला है कि अहिन्दी-क्षेत्र हिन्दी का अध्ययन कर रहे हैं। इस मामले से संबंधित उनके प्रयत्नों को, विशेषकर गैर-सरकारी क्षेत्र में, प्रोत्साहन मिलना चाहिए ।

1.62. यह आवश्यक है कि सभी आधुनिक भारतीय भाषाओं में अन्तर्राज्यीय आदान-प्रदान के लिए हिन्दी के अतिरिक्त अनेक साधन जुटाए जाएँ। हर भाषाई प्रदेश में, कई ऐसे व्यक्ति होने चाहिए जो अन्य सभी आधुनिक भारतीय भाषाएँ जानते हों तथा कुछ व्यक्ति ऐसे होने चाहिएँ जो उनके साहित्यों से परिचित हों तथा उनमें अपना योगदान कर सकते हों। इस प्रयोजन के लिए हमारी सिफारिश है कि स्कूलों और कॉलेजों दोनों ही में, विभिन्न आधुनिक भारतीय भाषाओं की पढ़ाई के लिए उचित व्यवस्था होनी चाहिए। इसके अतिरिक्त, हर विश्वविद्यालय में, कुछ आधुनिक भारतीय भाषाओं के अच्छे विभाग स्थापित करने के लिए कदम उठाने चाहिए । विभिन्न भाषाओं तथा उनकी भाषा-समस्याओं के तुलनात्मक अध्ययन के लिए कुछ विशेष संस्थाएँ (या उच्च केन्द्र) स्थापित करने की सलाह देना भी उपयुक्त होगा। बी० ए० और एम० ए० स्तरों पर दो आधुनिक भारतीय भाषाओं का सम्मिलित अध्ययन सम्भव होना चाहिए। स्कूलों तथा कॉलेजों से भाषा की पढ़ाई के लिए जिन द्विभाषी व्यक्तियों की आवश्यकता होगी, वे भी इस व्यवस्था से मिल जाएंगे।

1.63. **राष्ट्रीय चेतना को बढ़ावा देना**—भारत विविधताओं—विभिन्न जातियों, लोगों, समुदायों, भाषाओं, प्रदेशों तथा संस्कृतियों—का देश है। भारत में जो 'विविधता में एकता' आवश्यक रूप से है उसका विद्यार्थियों को स्वयं अनुभव कराने तथा संकीर्ण निष्ठाओं से ऊपर उठकर राष्ट्रीय एकता की भावना को बढ़ाने में स्कूल और विश्वविद्यालय क्या योगदान कर सकते है ?

1.64. यह हमारा दुर्भाग्य है कि कुल मिलाकर हमारी स्कूल प्रणाली में राष्ट्रीय एकता तथा राष्ट्रीय चेतना की भावना विकसित करने की कोई ठोस परम्परा नहीं है। ब्रिटिश राज में स्कूलों से यह आशा की जाती थी कि वे मातृभूमि के प्रति प्रेम की भावना उत्पन्न करने के बजाय ब्रिटिश शासन के प्रति निष्ठा का पाठ पढ़ाएँ। इसका परिणाम यह हुआ कि राष्ट्रीय चेतना विकसित करने का काम शिक्षा प्रणाली से बाहर विशेषकर 1900-1947 के बीच स्वतन्त्रता-संघर्ष के दौरान किया गया। उसकी नींव में फिर से जागा यह विश्वास था कि हमारी राष्ट्रीय संस्कृति और परम्पराएँ महत्वपूर्ण हैं तथा भारत की प्राचीन सफलताओं पर हमें गर्व करना चाहिए। उसने यह भी स्वीकार किया था कि भारत और पाश्चात्य जगत के बीच सांस्कृतिक आदान-प्रदान में आधुनिक विज्ञान और शिल्पविज्ञान की पाश्चात्य देन के बदले भारत भी कुछ मूल्यवान भेंट दे सकता है और पाश्चात्य की जो अच्छी बातें हैं, उन्हें अपनाते हुए भी, भारतीयों को स्वयं अपनी पारम्परिक संस्कृति की महत्वपूर्ण बातों को सुरक्षित रखने का प्रयत्न करना चाहिए। यह पुनरुत्थानवाद की दिशा में प्रयत्न नहीं था यद्यपि कुछ लोगों ने इसका यही अर्थ लगाया था। गाँधी जी के अनुसार, वह तो एक ऐसा प्रयत्न था जिसमें हम उस दशा में भी अपने पैर उखड़ने नहीं देनी चाहते थे जबकि हमारे घर की सारी खिड़कियाँ दुनिया के हर भाग की ताजी हवा के प्रवेश के लिए खुली छोड़ दी गई हों।

1.65. स्वतन्त्रता की प्राप्ति के बाद से स्थिति बहुत बदल जाती है। जिस बात ने विभिन्न तत्वों को एकता के सूत्र में बाँध रखा था, वह अब नहीं रह गई थी, और चूँकि स्कूल राष्ट्रीय चेतना की भावना जगाने और उसे सुदृढ़ बनाने में असफल रहे थे, इसलिए यह भावना भी उस नई पीढ़ी में, विशेषकर जो इस समय उभर रही है, क्षीण होती जा रही है। हाल ही के वर्षों में, हमें उसी भावना के उदय जैसी चीज 1962 में चीन के आक्रमण के समय तथा हाल ही में पाकिस्तान के संघर्ष के दौरान देखने में आई थी। स्पष्ट ही हैं कि इस प्रकार के दुर्भाग्यपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय संघर्षों को राष्ट्रीय भावना जगाने तथा उसे दृढ़ बनाने के लिए सामान्य उपाय नहीं माना जा सकता। इसका स्थायी हल यही है कि इसे शिक्षा प्रणाली की जिम्मेदारी बना दिया जाए। तथा इस प्रयोजन के लिए उसे एक प्रभावकारी माधन बनाया जाए। दुनिया में इस के बहुत प्रमाण मिलते हैं कि किसी भी जनता की उन्नति तथा उसके पुनरुत्थान एवं इसके लिए आवश्यक मनोवैज्ञानिक शक्ति उत्पन्न करने में स्कूल और विश्वविद्यालय बहुत महत्वपूर्ण और सहायक हो सकते हैं। यदि इसे सही दिशा दी जाए तो यह उपाय समस्त मानवता के प्रति उस व्यापक निष्ठा का विरोधी नहीं हो सकता है और न ही उसे होना चाहिए, जिस पर हमने भी जोर दिया है।

1.66. राष्ट्रीय चेतना को और भी गहरी बनाने के लिए विशेष रूप से दो कार्यक्रम अपनाए जा सकते हैं :

(1) हमारी सांस्कृतिक विरासत का फिर से मूल्यांकन करना तथा उसे समझना और (2) जिस भविष्य की हम कामना करते हैं, उसके प्रति दृढ़ प्रेरणापूर्ण निष्ठा का उत्पन्न किया जाना। पहले की पूर्ति भाषाओं तथा साहित्यों, दर्शन, धर्मों तथा भारतीय इतिहास के सुनि-

योजित अध्यापन तथा विद्यार्थियों को भारतीय वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला, संगीत, नृत्य और माट्य से परिचित कराके की जा सकती है। इसके अतिरिक्त, भारत के विभिन्न भागों संबंधी अध्ययन को पाठ्यचर्या में शामिल कर, जहाँ संभव हो वहाँ शिक्षकों का आदान-प्रदान कर, देश के विभिन्न भागों में स्थिति शिक्षा संस्थाओं में भाई-चारे के संबंधों को बढ़ावा देकर तथा प्रादेशिक या भाषाई बाधाओं को दूर करने की दृष्टि से अंतर्राज्यीय आधार पर छुट्टी शिविरों तथा ग्रीष्म-स्कूलों का आयोजन कर, इन भागों से संबंधित ज्ञान को और अधिक बढ़ाने एवं उन्हें समझने और सराहने की वृत्ति को प्रोत्साहित करना वांछनीय होगा। यह और भी आवश्यक होगा कि कुछ ऐसी अखिल भारतीय संस्थाएँ स्थापित की जाएँ और बनाए रखी जाएँ जो कि देश के विभिन्न भागों के विद्यार्थियों को अपने वहाँ प्रवेश दें। भविष्य में निष्ठा के लिए, नागरिकता संबंधी पाठ्यक्रम में, विद्यार्थियों को संविधान के सिद्धान्तों उसकी प्रस्तावना में उल्लिखित महान् मूल्यों, जिस लोकतांत्रिक और समाजवादी समाज का हम निर्माण करना चाहते हैं उसके स्वरूप की समझाने तथा राष्ट्रीय विकास की पंचवर्षीय योजनाओं को भली प्रकार समझाने का प्रयत्न करना होगा। शिक्षा के उच्च स्तरों पर, विद्यार्थियों को आधुनिक आंदोलनों तथा प्रवृत्तियों का मूल्यांकन करना सीखना चाहिए ताकि वे यह सीख सकें कि उनमें से किन्हें अपनी संस्कृति में आत्मसात् किया जा सकता है या किया जाना चाहिए। किंतु हमें इस बात की सावधानी बरतनी चाहिए कि सारे ही 'आधुनिक' मूल्य 'पाश्चात्य' मूल्य नहीं हैं।

1.67. **अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव के लिए शिक्षा**—जैसा कि हम पहले भी कह चुके हैं, उक्त लक्ष्य तथा 'एक ही विश्व' के लिए आवश्यक उस अंतर्राष्ट्रीय सद्भाव के विकास में कोई विरोध नहीं है जिसकी ओर हम बढ़ रहे हैं। कुल मिलाकर स्थिति यह है कि पिछले जमाने की भांति आजकल राष्ट्रीय शिक्षा प्रणालियों में प्रयुक्त पाठ्य-पुस्तकों में दूसरे देशों के बारे में असत्य या अमित्रतापूर्ण उल्लेख शायद बहुत कम होते हैं। इसके लिए आंशिक रूप से यूनेस्को को धन्यवाद दिया जाना चाहिए जिसके तत्वाधान में अनेक-देशीय या द्वि-देशीय प्रयत्न इस प्रकार की पुस्तकों में संशोधन के लिए किए गए हैं। अब जो भी कोई बुरी बात सामने आती है, वह जान-बूझ कर की गई न होकर, छूट गई होती है। फिर भी, हमें इस बात से भी सावधान रहना चाहिए क्योंकि आज्ञान भी शत्रुता से कम खतरनाक नहीं होता। मानविकी और समाज-विज्ञानों संबंधी हमारा अध्ययन इस प्रकार का होना चाहिए कि जहाँ उससे विद्यार्थियों को अच्छे और सक्रिय नागरिक बनने में सहायता मिले, वहीं उनसे उन्हें बाहरी दुनिया विशेषकर हमारे पड़ौसी और अफ्रीकी-एशियाई देशों की प्रमुख विशेषताओं को समझने तथा उनका ज्ञान प्राप्त करने में भी सहायता मिले। भारतीय संस्कृति की वह सुदृढ़ और गौरवपूर्ण परंपरा रही है कि वह अंतर्राष्ट्रीय सद्भाव दिखाए, मानव सभ्यता में विभिन्न देशों तथा जातियों द्वारा किए गए योगदान का बिना किसी पूर्वाग्रहपूर्ण मन से मूल्यांकन करे। इस प्रयोजन के लिए, यह तथ्य कि भारत अनेक जातियों वाला किंतु एक ही नागरिकता वाला देश है, वास्तव में एक लाभदायक बात सिद्ध होती है। यूनेस्को के संविधान में "मानव सभ्यता की लाभदायक विविधताओं" का उल्लेख है। यदि स्कूलों और विश्वविद्यालयों के जरिए, कोई व्यक्ति उक्त वाक्यांश के मूल रूप से सही होने की बात अपने ही संघात्मक तथा बहु-समाजयुक्त देश में सीखे, तो वह उस अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर उसे भूल जाएगा इसकी संभावना कम है जिस पर कि वह विभिन्न देशों के किंतु मानव-समाज में समागता के आधार पर सदस्यताप्राप्त लोगों से व्यवहार करेगा। आज जो आन्तरिक बाधाएँ और संदेह है, केवल उन्हें ही सामाजिक और राष्ट्रीय एकीकरण का कार्यक्रम दूर नहीं करेगा अपितु कुल मिलाकर अंतर्राष्ट्रीय संबंधों तथा अंतर्राष्ट्रीय स्थिति पर भी उसका असर पड़ेगा। जवाहरलाल नेहरू की नीति की महान् प्रेरणाओं में यह भी एक प्रेरणा थी।

1.68. **लोकतांत्रिक मूल्य**—इस प्रसंग में, ऐसे मूल्यों के विकास पर, जैसे कि मन की वैज्ञानिक प्रवृत्ति, सहनशीलता, अन्य राष्ट्रीय समूहों की संस्कृति के प्रति आदर, आदि पर भी विशेष रूप से जोर दिया जाना चाहिए ताकि हम लोकतंत्र को न केवल शासन के प्रकार के रूप में अपितु एक जीवन-शैली के रूप में भी अपना सकेंगे। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, भारत की आबादी में, ऐसे व्यक्ति शामिल हैं जिनके धर्म एवं भाषाएं भिन्न-भिन्न हैं तथा वे विभिन्न प्रजातियों, जातियों, वर्गों तथा समुदायों के हैं। ठीक ऐसी ही स्थिति में तो लोकतंत्र अपना सबसे महत्वपूर्ण योगदान कर सकता है। लोकतांत्रिक प्रवृत्तियों के स्वस्थ विकास से इस विभाजन के असर की सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक समूहों के रूप में हलका करने में सहायता मिलेगी। यह मानी हुई बात है कि काम कठिन है; यदि यह काम हो जाए तो भाषा, सांस्कृतिक स्वरूप, धर्म आदि का अंतर लाभदायक सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन के अत्यन्त समृद्ध ताने-बाने के रूप में बदल सकता है। राष्ट्रीय एकीकरण की समस्या आवश्यक रूप से इस प्रकार के अंतर में तालमेल बैठाने, जनसंख्या के विभिन्न तत्वों को शांति और

सहयोगपूर्वक जीवन-यापन करने तथा समग्र राष्ट्रीय जीवन को अपनी विभिन्न देनों के द्वारा समृद्ध बनाने की है। हमें उदारतापूर्ण सहनशीलता, आपसी आदान-प्रदान तथा इस बात को स्वीकार करने की कि लोग एक दूसरे से भिन्न हो सकते हैं, भावना उत्पन्न करनी है। यह बहुत कठोर 'जीवन-प्रयोग' है जो कि हमने शुरू किया है और यदि शिक्षित मन इस स्थिति का बुद्धिमानी और कल्पना-पूर्वक सामना न कर सके, तो कोई भी शिक्षा उपयोगी नहीं होगी।

शिक्षा और आधुनिकीकरण

1.69. हम पहले ही कह चुके हैं कि परंपराग्रस्त समाज के मुकाबिले आधुनिक समाज की सबसे बड़ी विशेषता उसके द्वारा अपनाया गया विज्ञान-आधारित शिल्पविज्ञान है। इस विज्ञान ने ही इस प्रकार के समाजों को अपना उत्पादन चमत्कारिक ढंग से बढ़ा सकने में समर्थ बनाया है। किंतु यहां इस बात का भी उल्लेख कर दिया जाए कि विज्ञान-आधारित शिल्पविज्ञान के अन्य महत्वपूर्ण परिणाम सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन पर होते हैं और उसके कारण ऐसे मूलभूत सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन आते हैं जिन्हें मोटे तौर पर 'आधुनिकीकरण' कहा जाता। शिक्षा के पुनर्निर्माण संबंधी कार्यक्रमों पर इस आधुनिकीकरण के प्रभाव पर हम संक्षेप में विचार करेंगे।

1.70. **ज्ञान का 'विस्फोट'**—पिछली कुछ दशाब्दियों में, ज्ञान का बड़ा 'विस्फोट' हुआ है। परंपराग्रस्त समाज में, ज्ञान-भंडार सीमित होता है तथा उसमें धीरे-धीरे वृद्धि होती है। इस कारण शिक्षा के मुख्य उद्देश्य का अर्थ ज्ञान को सुरक्षित रखना लगाया जाता है। इसके विपरीत, आधुनिक समाज में ज्ञान-भंडार बहुत विशाल होता है और उसमें वृद्धि की गति अनंतरूप से तीव्र होती है। आधुनिक समाज में शिक्षा का एक प्रमुख कार्य, ज्ञान में इस वृद्धि के साथ कदम मिलाकर चलना होता है। इस प्रकार के समाज में, ज्ञान अवश्यम्भावी रूप से केवल निष्क्रिय रूप से ग्रहण करते रहने की वस्तु नहीं रह जाता है, वह एक ऐसी वस्तु बन जाता है जिसे स्वयं खोजकर पाना होता है। यदि इस बात को ठीक तरह से समझा जाए तो उससे उस पारंपरिक शिक्षा में क्रांति आ जाएगी जिसमें 'जानने' का अर्थ 'मुंहजबानी जानना' हो गया है तथा जिसमें विरासत में प्राप्त सभी प्रकार के ज्ञान के प्रति आदर अध्यवसायपूर्वक उत्पन्न किया जाता है तथा जिसमें आलोचनात्मक और सर्जनात्मक शक्ति की उपेक्षा कर केवल ग्रहण-शक्ति पर ही जोर देने की प्रवृत्ति होती है। भारत में तथा भारत जैसी स्थितिवाले अन्य देशों में, इसके लिए शिक्षा के लक्ष्यों तथा तरीकों के प्रति एक नए दृष्टिकोण एवं शिक्षकों के प्रशिक्षण में परिवर्तन करना आवश्यक होगा। जब तक कि पढ़ाने और सीखने के नए तरीकों का उन्हें प्रशिक्षण नहीं दिया जाएगा, तब तक स्कूलों और कॉलेजों के विद्यार्थी नए समाज के लिए आवश्यक शिक्षा ग्रहण नहीं कर सकेंगे।

1.71. **जल्दी-जल्दी होनेवाला सामाजिक परिवर्तन**—आधुनिक समाज की एक और विशेषता यह है कि उसमें बहुत जल्दी-जल्दी लगभग आश्चर्यजनक गति से सामाजिक परिवर्तन हो रहा है। परंपराग्रस्त समाज में, यह परिवर्तन इतना धीरे-धीरे होता है कि शिक्षा-प्रणाली की अनुदारता से तुलनात्मक दृष्टि से बहुत कम हानि होती है। इसके विपरीत, आधुनिक समाज में परिवर्तन इतनी तेजी से होता है कि यदि स्कूल को महत्वपूर्ण परिवर्तनों के साथ-साथ चलना है, तो उसे सदा ही जागरूक रहना चाहिए। इसलिए ऐसी स्थिति में, एक गत्यात्मक नीति अपनाने की बहुत आवश्यकता होती है। जो शिक्षा-प्रणाली अविराम अपना नवीकरण नहीं करती रहती है, वह पुरानी पड़ जाती है तथा उन्नति में बाधक बनती है क्योंकि वह अपने फलदायक प्रयोजनों और आदर्शों तथा विकास की नई आवश्यकताओं इन दोनों के बीच गुणात्मक और परिणात्मक दोनों ही दृष्टियों से मंद गति उत्पन्न कर देती है। शिक्षा के उद्देश्य को ही दूसरे दृष्टिकोण से देखना होगा—अब शिक्षा को केवल ज्ञान प्रदान करने या केवल गढ़ी-गढ़ाई वस्तु उत्पन्न कर देने से संबंधित नहीं माना जाता बल्कि उसे जिज्ञासा उत्पन्न करने, उचित रुचि, प्रवृत्तियों और मूल्य को विकसित करने तथा स्वतंत्र अध्ययन एवं चिंतन करने के लिए आवश्यक कौशल निर्मित करने एवं स्वयं निर्णय लेने से संबंधित माना जाता है जिसके बिना लोकतांत्रिक समाज का जिम्मेवार सदस्य बनना संभव नहीं है।

1.72. **शीघ्र उन्नति की आवश्यकता**—आधुनिकीकरण के दो और पहलुओं पर जोर देना आवश्यक है। एक तो यह कि जब कोई समाज एक बार आधुनिकीकरण के कार्यक्रम पर चलने लगे, तब उससे मुख मोड़ना या उसे बीच में ही छोड़ देना उचित नहीं होता है क्योंकि उस प्रक्रिया को बीच में रोका नहीं जा सकता। इसकी प्रारंभिक अवस्थाओं में, सदियों से प्राप्त और बना रखा गया पारंपरिक संतुलन इस प्रकार के परिवर्तन के कारण बिगड़ेगा तो अवश्य ही। यद्यपि इस संतुलन में स्पष्ट ही कुछ हानि होती है तथापि स्वयं उसमें ही भक्ति के कुछ उपाय भी होते हैं। नई सामाजिक व्यवस्था का निर्माण करने के प्रयत्न के कारण स्वाभाविक रूप से ही अनेक

अप्रत्याशित सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक समस्याएं उठ खड़ी होती हैं। यदि संबंधित समस्याओं के मामले में कोई फुहड़ जोड़ लगाने का प्रयत्न करे या लड़खड़ाते कदमों से चले, या उसकी वचनबद्धता और विश्वास पूरी आस्था सहित न हो और उसमें निष्ठा की कमी हो, तो नई परिस्थिति पुरानी से भी बुरी हो सकती है। इस संक्रमणकालीन समस्याओं का केवल यही समाधान है कि तेजी से आगे बढ़ा जाए तथा आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के सारे परिणामों पर आधारित एक नया संतुलन कायम किया जाए।

1.73 **आधुनिकीकरण और शिक्षा की प्रगति**—इसलिए आधुनिकीकरण का सीधा संबंध शिक्षा में उन्नति से होगा तथा आधुनिकीकरण में जल्दी का एक सुनिश्चित तरीका यह है कि शिक्षा का विस्तार किया जाए, शिक्षित और कुशल नागरिक तैयार किए जाएं तथा एक समुचित और सक्षम बुद्धिजीवीवर्ग को प्रशिक्षित किया जाए। आज के भारतीय समाज ने महान संस्कृति उत्तराधिकार में पाई है। किंतु दुर्भाग्य यह है कि वह एक समुचित रूप से शिक्षित समाज नहीं रह गया है और जब तक वह शिक्षित नहीं हो जाता, तब तक वह अपने आपको आधुनिक नहीं बना पाएगा तथा राष्ट्रीय पुनर्निर्माण की नई चुनौतियों का उचित रूप से सामना नहीं कर सकेगा या राष्ट्र-परिवार में अपना उचित स्थान नहीं ले सकेगा। जो लोग अभी तक माध्यमिक और उच्च शिक्षा प्राप्त कर सके हैं, उनकी संख्या बहुत ही थोड़ी है—पूरी जनसंख्या के दो प्रतिशत से कम। कोई भी महत्वपूर्ण प्रभाव उत्पन्न करने के लिए यह संख्या कम-से-कम दस प्रतिशत करनी होगी। बुद्धिजीवीवर्ग की रचना में भी परिवर्तन करना होगा, उसमें योग्य व्यक्ति, पुरुष और स्त्री दोनों ही, होने चाहिए जो समाज के सभी स्तरों से संबंधित हों। कौशल और विशेष योग्यता-प्राप्ति के क्षेत्रों में भी परिवर्तन होने चाहिए। इस समय तो ये क्षेत्र बाबूगीरी-व्यवसायों तथा मानविकी के विद्यार्थियों से संबंध रखते हैं जब कि वैज्ञानिकों और तकनीकी कार्यकर्ताओं का अनुपात उसमें बहुत ही कम है। इस लक्ष्य प्राप्ति के लिए, जैसा कि हम पहले विवेचन कर चुके हैं, व्यावसायिक विषयों, विज्ञान की शिक्षा और अनुसंधान पर और अधिक जोर दिया जाना चाहिए। इस बुद्धिजीवीवर्ग की क्षमता का औसत भी बिल्कुल संतोषजनक नहीं है, मुख्यतया इसलिए कि विश्वविद्यालयों में अपर्याप्त स्तर बनाए रखे जाते हैं। यह बात भारतीय शैक्षिक जीवन और उसकी प्रतिष्ठा के लिए हानिकारक है। इस स्थिति में क्रांतिकारी परिवर्तन लाने के लिए, यह आवश्यक होगा कि देश में कुछ ऐसे 'बड़े' विश्वविद्यालय स्थापित किए जाएं जिनके स्तर दुनिया के किसी भी भाग के श्रेष्ठ विश्वविद्यालय के मुकाबले के हों तथा जिनका प्रभाव धीरे-धीरे अन्य विश्वविद्यालयों पर भी पड़ता जाए। हमारी उच्च शिक्षा[1] की प्रणाली में जिन मूल सुधारों की आवश्यकता है, उनमें से यह एक सुधार है।

सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक मूल्य

1.74. आधुनिकीकरण का यह अर्थ नहीं है—कम-से-कम हमारी राष्ट्रीय स्थिति में—कि आवश्यक नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों तथा आत्मानुशासन की भावना उत्पन्न ही नहीं की जाए या उनकी महत्ता को स्वीकार करने से इन्कार किया जाए। यदि आधुनिकीकरण को एक जीवन-शक्ति होना है, तो उसे आत्मा की शक्ति से अपनी शक्ति प्राप्त करनी चाहिए। दूसरी बातों के साथ ही साथ, आधुनिकीकरण का उद्देश्य बहुलता की अर्थ-व्यवस्था निर्मित करना है जो कि हर व्यक्ति को और भी विशद जीवन-शैली तथा अपनी पसंदगी के बहुत अधिक अवसर प्रदान करेगी। अपनी पसंद करने की इस स्वतंत्रता के जहाँ अपने लाभ हैं, वहीं उसका यह अर्थ भी है कि समाज का भविष्य अधिकाधिक इस बात पर निर्भर करेगा कि हर व्यक्ति क्या चुनता है। स्वाभाविक ही है कि उसका यह चुनाव उसकी प्रेरणा तथा मूल्यों संबंधी उसकी धारणा पर निर्भर करेगा क्योंकि वह अपने व्यक्तिगत संतोष को ही ध्यान में रख कर अपना चुनाव करेगा या फिर समाज की सेवा की भावना और सबका हित साधने की भावना से। आधुनिक समाज को इससे जो ज्ञान का विस्तार और बढ़ती हुई शक्ती मिलती है, उस का संयोग इस कारण सामाजिक उत्तरदायित्व की सुदृढ़ तथा गहरी होती हुई भावना तथा नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों के उत्सुक्तापूर्ण गुण-ग्रहण के साथ होना चाहिए। अज्ञान के साथ अच्छाई का संयोग तो व्यर्थ हो सकता है किन्तु ज्ञान के आवश्यक मूल्यों का अभाव खतरनाक हो सकता है। नई पीढ़ी में, सामाजिक और नैतिक मूल्यों के कमजोर पड़ते जाने से पाश्चात्य समाजों में अनेक गंभीर सामाजिक और नैतिक संघर्ष पैदा हो गए हैं और कुछ महान् पाश्चात्य विचारकों में तो पहले से ही यह इच्छा पैदा हो चुकी है कि विज्ञान और शिल्पविज्ञान के कारण प्राप्त ज्ञान और कौशल का संतुलन श्रेष्ठ नीतिशास्त्र तथा धर्म से सम्बन्धित मूल्यों तथा अन्तर्दृष्टि से बैठाया जाए, अर्थात्, स्व के ज्ञान, जीवन के अर्थ, एवं मानव से दूसरे मानव के सम्बन्ध तथा परम सत्य से संबंध की

1. ब्योरों के लिए देखिए अध्याय ग्यारह

खोज। जो स्थिति इस समय होती जा रही है, उसे देखते हुए हमारे लिए भी यह उतना ही महत्वपूर्ण है कि हम अपनी शिक्षा-प्रणाली को उचित रूप से मूल्योन्मुख करें।

1.75. किन मूल्यों को मन में बैठाया जाए उनकी सूची प्रस्तुत करना हमारा उद्देश्य नहीं है। हम इस बात पर जोर देना चाहते हैं कि शिक्षा के सभी स्तरों पर विद्यार्थियों के मन में उचित मूल्यों को बैठाने की ओर ध्यान देना आवश्यक है। हमें यह जानकर खुशी है कि स्वतन्त्रता की प्राप्ति के बाद से इस उत्तरदायित्व की ओर अधिक ध्यान गया है। विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (1948) ने इस के दार्शनिकि तथा व्यावहारिक दोनों ही पहलुओं पर विचार किया था और सुधार के लिए कुछ महत्वपूर्ण प्रस्ताव रखे थे। किन्तु कुछ ही संस्थाओं को छोड़ बाकी में उन पर अमल नहीं किया गया। सन् 1959 में केंद्रीय सलाहकार बोर्ड ने धार्मिक और नैतिक शिक्षण संबन्धी एक समिति (श्रीप्रकाश समिति) नियुक्त की थी। इस समिति की रिपोर्ट देश के सामने पिछले पाँच वर्षों से है किन्तु शिक्षा संस्थाओं की प्रतिचेष्टा इस संबन्ध में न तो सक्रिय रही है और न ही उत्साहपूर्ण। नई उभरती पीढ़ी पर इसका बहुत ही अवांछनीय प्रभाव पड़ रहा है। अतः यह आवश्यक और अपरिहार्य हो गया है कि शिक्षा को मूल्योन्मुख बनाने के लिए सक्रिय उपाय किए जाएँ। इस दृष्टि से हम निम्नलिखित सिफारिशें करते हैं :

(1) धार्मिक और नैतिक शिक्षण के संबंध में विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग ने जो सिफारिशें की हैं, उनके अनुसार अपने सीधे नियन्त्रण की सभी संस्थाओं में नैतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा प्रारम्भ करने के लिए केन्द्रीय और राज्य सरकारें कदम उठाएं।

(2) गैर-सरकारी प्रबन्ध की संस्थाओं से भी ऐसा ही करने की आशा की जाए।

(3) इस प्रकार के मूल्यों की शिक्षा को सामान्यतः स्कूली कार्यक्रमों का अभिन्न अंग बना देने के अतिरिक्त, इस प्रयोजन के लिए टाइम-टेबल में कुछ घण्टे अलग रखे जाएं। ये घण्टे विशेष रूप से भरती किए गए शिक्षकों द्वारा नहीं अपितु इस प्रयोजन के लिए उपयुक्त समझे गए विभिन्न समुदाओं के सामान्य शिक्षकों द्वारा लिए जाएँ। प्रशिक्षण संस्थाओं का यह एक महत्वपूर्ण लक्ष्य होना चाहिए कि वे उन्हें इस बात के लिये तैयार करें।

(4) हम यह भी सुझाव देते हैं कि तुलनात्मक धर्मों से सम्बन्धित विभागों का विशेष विषय उन तरीकों को ढूंढ निकालना चाहिए जिनके अनुसार ये मूल्य बुद्धिमानीपूर्वक तथा प्रभावपूर्ण ढंग से पढ़ाए जा सकें। उन्हें ऐसा विशेष साहित्य भी तैयार करना चाहिए जिनका उपयोग विद्यार्थी शिक्षक कर सकें।

1.76. स्कूल स्तर पर, इस प्रकार शिक्षण संबन्धी हमारे प्रस्तावों की चर्चा अन्यत्र[1] की गई है। जहाँ तक उच्च शिक्षा का प्रश्न है, हम विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग तथा श्रीप्रकाश समिति से सहमत हैं। विश्व के विभिन्न धर्मों का सामान्य अध्ययन प्रथम उपाधि पाठ्यक्रमों का एक भाग होना चाहिए तथा इस प्रयोजन के लिए एक श्रेणीकृत पाठ्य-विवरण तैयार किया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए, प्रथम वर्ष में, इसमें महान धार्मिक नेताओं के जीवन चरित्र हो सकते हैं, तो दूसरे वर्ष में विश्व के धर्म ग्रन्थों से सभी को अच्छे लगने वाले चुने हुए अंशों का अध्ययन किया जा सकता है, और तीसरे वर्ष में धर्मों के दर्शनों की मुख्य समस्याओं पर विचार किया जा सकता है। हम इस बात की महत्ता पर भी जोर देना चाहते है कि विद्यार्थियों को मौन ध्यान के लिए समूहों में इकट्ठे होने के लिए भी प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

1.77. शिक्षा के माध्यम से मूल्यों को मन में बैठाने के लिए, हमें स्वयं अपनी परंपराओं से तथा अन्य देशों की परंपराओं तथा विश्व की संस्कृतियों से मुक्त रूप से ग्रहण करना चाहिए। स्वयं भारतीय विचारधारा में ही ऐसे सूत्र हैं जो कि आधुनिक समाज को उपयुक्त नया दृष्टिकोण प्रदान कर सकते हैं और जीवन को उसके सुख-दुखों, उसकी चुनौतियों तथा सफलता सहित सहर्ष स्वीकार करने के लिए लोगों को तैयार कर सकते हैं। उनमें भी हम, सामाजिक सेवा के लिए प्रेरणा तथा भविष्य में आस्था पा सकते हैं। उदाहरण के लिए, महात्मा गांधी और कुछ अन्य विचारक महान नेताओं ने अपने आदर्शवाद तथा सामाजिक न्याय और सामाजिक पुनर्निमाण के अपने प्रबल प्रयत्नों की प्रेरणा अधिकांशतः इन्हीं साधनों से ली। अतीत की इसी प्रकार की फिर से व्याख्या तथा पुनर्मूल्यांकन की इस समय सबसे अधिक आवश्यकता है। जो भी हो, आज की दुनिया में यह विशेष रूप से महत्वपूर्ण है कि यह प्रयत्न केवल राष्ट्रीय साधनों तक ही सीमित न रह जाए। पाश्चात्य राष्ट्रों में जिन उदारताकारी शक्तियों का उदय हुआ है उनका भी आश्रय लेना होगा, जिन्होंने

1. अध्याय आठ

अन्य बातों के साथ ही साथ व्यक्ति की गरिमा, समानता और सामाजिक न्याय पर जोर दिया है। उदाहरण के लिए, फ्रांस की राज्य-क्रांति, कल्याण राज्य की संकल्पना मार्क्स का दर्शन तथा सामाजवाद का उदय। भारतीय, विशेषकर हिन्दू समाज की अतीत में एक बड़ी कमजोरी समानता और सामाजिक न्याय का अभाव रही है। इसलिए इन संतुलनकारी प्रभावों का बड़ा महत्व है। इसी प्रकार चीन, जापान या इस्लामी देशों जैसे अन्य महत्वपूर्ण राष्ट्रों और संस्कृतियों में जो भी सार की बात हो, उसे भी विवेकपूर्वक आत्मसात् करना चाहिए।

1.78. **धर्मनिरपेक्षता और धर्म**—हमारे समाज में अनेक धर्म हैं और उन्हें देखते हुए, यह आवश्यक है कि धर्म के प्रति राज्य के रुख, धार्मिक शिक्षा और धर्मनिरपेक्षता की संकल्पना की परिभाषा की जाए। धर्म-निरपेक्ष नीति अपनाने का अर्थ यह है कि राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक मामलों में, सभी नागरिकों को, वे चाहे किसी भी धर्म के माननेवाले हों, सामान अधिकार प्राप्त होंगे; किसी भी धार्मिक संप्रदाय के साथ न तो कोई पक्षपात किया जाएगा और न ही उसके साथ कोई भेद-भाव किया जाएगा, और राज्य के स्कूलों में धार्मिक सिद्धान्तों की शिक्षा नहीं दी जाएगी। किन्तु यह नीति धर्महीन या धर्म-विरोधी नहीं है; यह धर्म की महत्ता को भी कम नहीं करती है। यह प्रत्येक नागरिक को अपने धर्म को माननें तथा उपासना करने की पूरी स्वतन्त्रता देती है। वह विभिन्न धार्मिक संप्रदायों में अच्छे सम्बन्ध सुनिश्चित करने के साथ ही साथ न केवल धार्मिक सहिष्णुता को बढ़ावा देना चाहती है अपितु सभी धर्मों के लिए सक्रिय आदर को भी प्रोत्साहित करना चाहती है।

1.79. किन्तु इस प्रकार के समाज में, 'धार्मिक शिक्षा' और 'धर्मों के बारे में शिक्षा' में भेद करना पड़ता है। पहली का सम्बन्ध तो अधिकांशतः किसी धर्म विशेष के सिद्धांत एवं आचार की उसी रूप में शिक्षा देने से होता है जो कि सम्बन्धित धार्मिक संप्रदाय द्वारा परिकल्पित हो, किंतु 'धर्मों के बारे में शिक्षा' तो एक व्यापक दृष्टिकोण--आत्मा की अनंत खोज—से धर्मों तथा धार्मिक विचारधाराओं का अध्ययन है। अनेक धर्मों वाले धर्मनिरपेक्ष राज्य के लिए यह व्यवहार्य नहीं होगा कि वह किसी एक धर्म की शिक्षा दे। फिर भी, अनेक धर्मोंवाले एक लोकतांत्रिक राज्य के लिए यह आवश्यक है कि वह सभी धर्मों के सहिष्णूतापूर्ण अध्ययन को प्रोत्साहित करे ताकि उसके नागरिक एक दूसरे को और अधिक अच्छी तरह समझ सकें तथा शांतिपूर्वक साथ-साथ रह सकें। यह बात ध्यान में रखी जानी चाहिए कि स्कूलों में धार्मिक शिक्षण पर लगी रोक तथा घर के उन प्रभावों के कमजोर पड़ जाने से जो कि पुराने जमाने में इस प्रकार का शिक्षण दिया करते थे, अब जो बच्चे बड़े हो रहे हैं, उन्हें स्वयं अपने ही धर्म का कोई स्पष्ट ज्ञान नहीं होता है और न ही उन्हें अन्य धर्मों की कोई बात सीखने का अवसर मिलता है। वास्तव में, नई पीढ़ी में, इन बातों सम्बन्धी इतना सामान्य अज्ञान और गलत-फहमी है कि उससे उस लोकतंत्र के विकास के लिए बड़ा खतरा है जिसमें सहिष्णुता को एक बड़ा मूल्य समझा जाता है। हमारा यह सुझाव है कि प्रत्येक प्रमुख धर्म से सम्बन्धित चुनी हुई जानकारी देने वाला एक पाठ्यविवरण स्कूलों तथा कालेजों में प्रथम उपाधि तक प्रारम्भ किए जानेवाले नागरिकता सम्बन्धी पाठ्यक्रम या सामान्य शिक्षा के एक भाग के रूप में शामिल किया जाना चाहिए। विश्व के महान धर्म में जो मूलभूत समानताएँ हैं, तथा वे मोटे तौर पर तुलनीय जिन नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों के निर्माण पर जो बल देते हैं, उसे भी वह प्रकाश में लाए। यदि इस विषय में सम्बन्धित पाठ्यक्रम देश के सभी भागों में एक-जैसा हो, और ऐसी पाठ्यपुस्तकें ही पढ़ाई जाएँ जो प्रत्येक धर्म के उपलब्ध सक्षम तथा उपयुक्त विशेषज्ञों द्वारा राष्ट्रीय स्तर पर तैयार की गई हों, तो बहुत लाभ होगा। जब ये पाठ्क्रम तैयार कर लिए जाएँ, तब विभिन्न धर्मों के गण्यमान्य व्यक्तियों की एक छोटी-सी समिति से उसकी छानबीन यह सुनिश्चित करने के लिए करवा लेना लाभदायी होगा कि उसमें कोई ऐसी बात शामिल नहीं की गई है जिस पर कोई भी धार्मिक संप्रदाय उचित आपत्ति उठा सके।

1.80 विज्ञान के उस जीवन्त अध्ययन से, जिसमें उदार मन होने, सहिष्णुता और वस्तुनिष्ठता पर जोर दिया गया हो, अंत में जाकर विभिन्न धर्मावलंबियों में और भी अधिक धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण का विकास होगा, ठीक उसी अर्थ में जिसमें कि हम धर्मनिरपेक्ष शब्द का प्रयोग करते हैं। इस प्रक्रिया को सावधानी एवं बुद्धिमत्तापूर्वक प्रोत्साहित करने की आवश्यकता है। इसके साथ ही साथ, एक अर्थ में धर्मनिरपेक्ष और आध्यात्मिक के बीच की दीवारें टूटने लगी हैं, तथा, जो धर्मनिरपेक्ष है उसकी आध्यात्मिक जड़े हैं ऐसा जान पड़ता है। डॉ० इकबाल के शब्दों में, "आत्मा अपने विकास का अवसर भौतिक, प्रकृतिक तथा धर्मनिरपेक्ष जगत में पाती है। इसलिए जिसकी जड़ों में ही धर्मनिपेक्षता है, वह पवित्र है।" हम भविष्य में अपने विकास की जो दिशा परिकल्पित करते हैं, वह यही दिशा है। हमारा विश्वास है कि भारत को विज्ञान तथा आत्मा सम्बधी मूल्यों को निकट एवं संगति में लाने की कोशिश करनी चाहिए तथा अंत में जाकर एक ऐसे समाज के उदय के

लिए मार्ग तैयार करना चहिए जो संपूर्ण मानव की आवश्यकताओं की पूर्ति करेगा न कि उसके व्यक्तित्व के किसी खंड विशेष की।

एक चुनौती और एक आस्था

1.81. भारत अब प्राप्ति की ओर बढ़ रहा है—और इस बात का भरोसा हो रहा है कि उसमें पुनर्जागरण आ रहा है। लम्बे समय तक विदेशी शासन में रहने के बाद वह अब आजादी का उपयोग कर रहा है। गांधी और नेहरू के नेतृत्व में उसने आजादी हासिल करने के लिए जो तरीके अपनाए, वे उतने ही महान थे जितना कि उनका उद्देश्य। यह बात ऐतिहासिक महत्व का स्मृतिचिन्ह है।

1.82. राजनीतिक दृष्टि से तो भूमि स्वतन्त्र हो चुकी है किन्तु आर्थिक दृष्टि से अभी उसे एक लम्बी मंजिल तय करनी हैं। सदियों से आलस्य ओर शोषण के कारण चले आ रहे अज्ञान तथा दम विकाल देने वाली गरीबी को दूर करना आसान काम नहीं है। दुनियां में इस समय अशिक्षित लोगों की जितनी आबादी है, उससे आधी भारत में है। लगभग पाँच करोड़ लोग, जो कि कुल आबादी का दसवां हिस्सा है, रु० 120 से कम की ही वार्षिक आमदनी पर अपनी गुजर करते हैं। समस्याएं गम्भीर और बड़ी हैं। किन्तु यह चित्र का एक ही पहलू है। हाल ही के कुछ वर्षों में, औद्योगीकरण, कृषि के आधुनीकीकरण तथा लोगों को और अच्छा स्वास्थ्य एवं जीवन भोगने की दशा में बड़े कदम उठाए गए हैं।

1.83. आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का सबसे शक्तिशाली साधन विज्ञान और शिल्पविज्ञान पर आधारित शिक्षा है। विज्ञान के वर्तमान युग की एक बड़ी सीख यह है कि यदि कठोर श्रम करने का दृढ़ निश्चय और इच्छा हो, तो ऐसा कोई भी राष्ट्र आसानी से समृद्ध हो सकता है जिसकी सरकार स्थिर और प्रगतिशील हो। इसमें कोई संदेह नहीं कि आगामी वर्षों में भारत का वाणिज्य और व्यापार बढ़ेगा, सभी के लिए अधिक खाद्यान्न उपलब्ध हो सकेगा तथा अधिक शिक्षा, और अच्छा स्वास्थ्य तथा रहन-सहन का युक्तिसंगत स्तर भी सुलभ होगा; किन्तु इन भौतिक उपलब्धियों के मुकाबले भारत का योगदान कहीं और अधिक हो सकता है और होना चाहिए। उसे विज्ञान से काम लेना सीखना चाहिए किन्तु उसे यह सीखना जरूरी है कि विज्ञान उस पर हावी न हो। इस विषय में भारत की एक निराली ही स्थिति है क्योंकि उसके यहाँ अनासक्ति, अपरिग्रह, सहिष्णुता, सहज-शन्तिप्रियता और सभी जीवों के प्रति आदर की महान परम्पराएं रही हैं। अनेक बार ये बहुमूल्य बातें भुला दी जाती हैं तथा हम निराशावाद, भय, अनिष्टकथन, वैमनस्य तथा हानिकर आलोचना की मनोंवृत्ति में फिर से फंस जाने की ओर प्रवृत्त होते हैं। इस समय आवश्यकता इस बात की है कि शान्ति और स्वतन्त्रता, सत्य और करुणा के महान आदर्शों के लिए जीवित रहने के रूप में हमारा नया अभिमान और गहरी आस्था अभिव्यक्त हो।

1.84. विज्ञान पर आधारित औद्योगीकरण की ओर तेजी से बढ़ने में हमें एक सबसे बड़ी सुविधा यह है कि पिछले दो सौ वर्षों में पाश्चात्य जगत ने ज्ञान के जिस भंडार का संचय किया है, उसका हम लाभ ले सकेंगे। एक और बात हम सीख सकते हैं। पश्चिम में जो औद्योगीकरण हुआ था, उसकी कीमत कुछ मानों में पश्चिम को मानव-आत्मा का हनन कर कम नहीं चुकानी पड़ी थी।

वे दोनों ही विश्वयुद्ध जिनमें अभूतपूर्व परिमाण में नर-संहार हुआ था, आत्मा की उसी यातना के क्रूर स्मारक हैं। यदि हम अभी से सीख ले लें, तो हम अपने सांस्कृतिक और आध्यात्मिक मूल्यों के प्रति अपनी मूल बचनबद्धता को समर्थन देने में, न कि उसे कमजोर बनाने में, विज्ञान का उपयोग कर सकते हैं। प्राचीन ऋषियों ने जीवन की मूलभूत समस्याओं के प्रति जो अन्तर्दृष्टि—जो कि कुछ अर्थों में अद्वितीय तथा विश्व की घटनाओं से सम्बन्धित गहनतम अन्तर्दृष्टि का विशुद्ध सार है[1]—प्राप्त की थी, उसका फिर से अर्थ करना तथा उसे एक नए बोध-स्तर पर प्रतिष्ठित करना हमारा ध्येय और दायित्व होना चाहिए।

1.85. केनोपनिषद् का प्रारम्भिक छंद आज भी वैज्ञानिक और अन्वेषी मस्तिष्क के लिए उतना ही आह्वानकारी है जितना कि सहस्रो वर्ष पूर्व था :

केनेषितं पतति प्रेषितं मनः।
केन प्राणः प्रथमः प्रैति युक्तः।
केनेषितां वाचामिमां वदन्ति।
चक्षुः श्रोत्रं क उ देवोयुनक्ति।

"किस (शक्ति) से प्रेरित होकर यह (मन) अपने विषय की ओर जाता है? किससे प्रयुक्त होकर प्रथम प्राण (अपने पथपर) आगे बढ़ता है? किससे प्रेरित होकर मनुष्य

1 ई० श्रोडिंगर; व्हाट इज लाइफ, केम्ब्रिज विश्वविद्यालय, 1944

(अभीप्ट) वाणी बोलते हैं ? तथा वह कौन-सा देवता है जो आँख और कान को अपने काम में लगाता है ?"[1]

1.86. अणु या अहिंसा या इनसे भिन्न शब्दावली में, मनुष्य का ज्ञान और अन्तरिक्ष पर उसकी प्रभुता तथा मानव-मस्तिष्क के ही अन्दर के अन्तरिक्ष का संतुलन बिगड़ गया है। मानवता को इस असंतुलन को संतुलित करने का प्रयत्न करना है। मनुष्य ने स्वयं ही समस्यायें खड़ी कर ली हैं। उसके सामने अब यही विकल्प हैं कि वह विनाश और ध्वंस की न्यूक्लीय खाई में लुढ़कता चले या फिर यश और उपलब्धि की उन ऊंचाइयों तक अपने को ऊंचा उठाये जिनकी अभी कल्पना भी नहीं की गई है। भारत ने विश्व संस्कृति में अनेक यशस्वी योगदान किए हैं और उन सबमें श्रेष्ठ योगदान अहिंसा और करुणा की वह संकल्पना और आदर्श रहा है जिसका बुद्ध और महावीर, नानक तथा कबीर, विवेकानन्द, तथा हमारे ही युग में रमण महर्षि व गांधी ने अन्वेषण किया, उसकी व्याख्या की और उसे जिया एवं इस देश के लाखों लोगों ने उनके बाद उस पर चलने का प्रयत्न किया।

1.87. इसमें संदेह नहीं कि यूरोप का सबसे बड़ा योगदान वैज्ञानिक क्रांति है। यदि विश्वास और क्रिया के सर्जनात्मक समन्वय में विज्ञान और अहिंसा सहयोग करें, तो मानवता सप्रयोजनता, समृद्धि और आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि के एक नए स्तर को प्राप्त कर सकेगी। पश्चिम की वैज्ञानिक उपलब्धि में एक आयाम जोड़ने के लिए क्या भारत कुछ कर सकता है ? यह एक बड़ी चुनौती है और इससे भारत के स्त्री-पुरुषों, विशेषकर नवयुवकों को एक अद्वितीय अवसर मिलता है। इस प्रसंग में अधिक अच्छा होगा कि हम जवाहरलाल नेहरू का उद्धरण यहां दें :

"क्या हम विज्ञान और शिल्पविज्ञान की इस तरक्की का मेल मन और रूह की तरक्की से भी नहीं बैठा सकते ? हम विज्ञान को भी नहीं झुठला सकते हैं क्योंकि आज तो वह जिन्दगी की बुनियादी चीज है। और पिछले जमाने में भारत जिन जरूरी सिद्धान्तों पर अमल करता आ रहा है, उनको तो हम और भी कम झुठला सकते हैं। इसलिए हम अपनी पूरी ताकत और मशक्कत के साथ उद्योग-धन्धों के अपने रास्ते पर चलते रहें मगर उसके साथ ही साथ यह भी याद रखें कि सहनशीलता, दया और बुद्धिमानी के बिना भौतिक दौलत धूल और राख भी हो सकती है।"[2]

1. केनोपनिषद्-अनुवाद : श्री अरविंद, श्री अरविंद आश्रम पांडिचेरी, 1952
2. भारत और दुनियां, आजाद स्मारक व्याख्यान, 1959, भारतीय सांस्कृतिक सम्बन्ध परिषद्, नई दिल्ली, 1962

दूसरा अध्याय

शिक्षा प्रणाली : संरचना और स्तर

एक. सामान्य उपागम (2).

दो. संरचना और अवधि—(7) **संरचना और अवधि में सार्वजनिक रुचि**; (8) **उच्चतर माध्यमिक शिक्षा का स्वरूप**; (10) **स्वरूप की एकसमानता**; (12) **स्कूल पाठन अवधि को बढ़ाने की साँग**; (13) **शैक्षिक संरचना का प्रस्तावित पुनर्गठन।**

तीन. स्कूली शिक्षा का पुनर्गठन—(15) **प्रथम दस वर्ष**; (18) **उच्चतर माध्यमिक शिक्षा स्वरूप में संशोधन**; (19) **प्राथमिक अवस्था के अन्त में व्यावसायिक पाठ्यक्रम** (20) **उच्चतर माध्यमिक शिक्षा की व्यवस्था के लिए पाठ्यक्रम**; (22) **पूर्व-विश्वविद्यालय पाठ्यक्रम का स्थानान्तरण**; (25) **अवधि को बढ़ाने का कार्यक्रम**; (28) **उच्चतर माध्यमिक स्तर पर व्यावसायिकीकरण।**

चार. विश्वविद्यालय स्तर पर पुनर्गठन—(31) **पुनर्गठन के प्रस्ताव।**

पांच. सुविधाओं का उपयोगीकरण—(35) **काम करने के तथा पढ़ाई के दिन**; (36) **सोदाहरणिक शिक्षा वर्षक्रम**; (39) **दीर्घअवकाशों का उपयोग**; (41) **स्कूली घण्टे**; (42) **संस्थागत सुविधाओं का पर्याप्त उपयोगीकरण।**

छह: गतिशील तथा विकासशील स्तर—(44) **स्तरों के मूल्यांकन की कसौटी**; (46) **सिफ़ारिशें**; (48) **शिक्षा के विभिन्न स्तरों के मध्य संधि योजना**; (49) **विश्वविद्यालयों तथा कालेजों के कार्याभाग**; (50) **स्कूल संकुल।**

सात. सामान्य—(53) **शिक्षा की तीन सारणियां**; (55) **नाम-पद्धति।**

2.01. इस अध्याय में हम शैक्षिक पाठ्यक्रम की संरचना अथवा स्वरूप का सम्पूर्ण पाठ्यक्रम तथा इसकी विभिन्न अवस्थाओं का समय तथा अन्य शैक्षिक सुविधाओं के अधिक अच्छे उपयोग का समस्त अवस्थाओं में सतत वर्धमान स्तरों की आवश्यकता तथा शिक्षा के तीनों सरणियों, पूर्णकालिक, अंशकालिक तथा निजकालिक की पर्याप्त पैमाने की व्यवस्था का विवेचन करेंगे।

सामान्य उपागम

2.02. सबसे पहले हम संरचना तथा स्तर की समस्याओं के अपने हल बतलाएंगे। किसी भी शिक्षा प्रणाली में किसी भी दिए हुए समय पर उसके स्तर चार तत्वों पर निर्भर करते हैं; (1) शिक्षा सूची-स्तम्भ का विभिन्न स्तरों और अवस्थाओं में विभाजन तथा उनके परस्पर सम्बन्ध; (2) विभिन्न अवस्थाओं की सम्पूर्ण अवधि; (3) अनिवार्य अवयव, जैसें अध्यापक, पाठ्यक्रम और शिक्षा की पद्धति और मूल्यांकत-विधि, साज-सज्जा और भवनों की निर्धारित मात्रा तथा गुण; और (4) उपलब्ध सुविधाओं का उपयोग। ये समस्त तत्व परस्पर सम्बन्धित हैं लेकिन इनका महत्व समान नहीं हैं। उदाहरणार्थ संरचना, जो किसी भी शिक्षा प्रणाली का ढांचा मानी जा सकती है सबसे कम महत्व की चीज़ हैं। शिक्षा की अवधि इससे अधिक महत्व की वस्तु है, लेकिन यह तभी महत्वशाली होती है, जबकि उपलब्ध सुविधाओं का पूर्ण उपयोग हो और बिना अवधि के बढ़ाए हुए आगे सुधार की आशा न हो। विभिन्न अवयवों की गुणता और भी अधिक महत्वपूर्ण है और जिनके सुधार करने से शिक्षा के स्तरों में बिना उसकी संरचना और अवधि में परिवर्तन करने पर भी पर्याप्त सुधार हो जाए। परन्तु उपलब्ध सुविधाओं का उपयोग सम्भवतः सबसे अधिक महत्वपूर्ण तत्व है जिस पर शिक्षा के स्तर निर्भर करते हैं। किसी भी स्वयं त्वरणशील विकास के प्रक्रम के लिए सबसे प्रथम यह अनिवार्य है कि वह वर्तमान विभिन्न अवयवों की क्षमता में सुधार करे और उनकी मात्रा में तभी वृद्धि करे जब कि वह उस प्रक्रम के लिए नितांत अपेक्षित हो। मात्रा-वृद्धि की सार्थकता आगे की अवस्था में होती है।

2.03. इस प्रकरण में इस बात का उल्लेख भी रुचिकर होगा कि अभी तक स्कूल के पाठ्यक्रम की अवधि

के महत्व को अतिरंजित करने की सामान्य प्रवृत्ति रही है। इसका एक कारण है। जबकि स्कूल में दी जाने वाली ज्ञान-मात्रा बहुत अधिक नहीं थी और स्कूली कार्य की गति भी मन्द थी तथा जब स्कूल के अन्दर की अपेक्षा बाहर अधिक सीखा जाता था तब यह कल्पना करना स्वाभाविक था कि जितने ही अधिक वर्षों तक बच्चा स्कूल में पढ़ेगा उतना ही अधिक उसके ज्ञान और परिपक्वता में वृद्धि होगी। अब यह सब बदल चुका है। स्कूलों और कालेजों में ज्ञान के विस्फोट का नया दबाव पड़ा है। औपचारिक शिक्षा का योगदान अब कहीं अधिक है। इतना पहले कभी नहीं था। और शिक्षा प्रणाली की क्षमता अब अत्यन्त महत्वपूर्ण अंग हो गई हैं। मैकलप ने अमरीका में ज्ञान के उत्पादन और वितरण सम्बन्धी अपने वृहद अध्ययन (प्रिंसटन यूनीवर्सिटी प्रेस, 1962) में उल्लेख किया है कि अमरीका में शिक्षण प्रक्रम की प्रगति तेजी में आनी चाहिए। उन्होंने प्रबल रूप से यह भी तर्क दिया है कि जो शिक्षा का उद्देश्य स्कूल की 12 वर्ष की अवधि में अब तक पूरा होता है, वह 9 या 10 वर्ष में ही प्राप्त किया जा सकता है। इसका अर्थ यह हुआ कि प्रति वर्ष खरबों डालरों की बचत हो सकती है। इसके अतिरिक्त इससे विद्यार्थियों और अध्यापकों के बहुमूल्य समय की बचत होगी। समय की यह बचत इसलिए भी और अधिक महत्वपूर्ण हो गई हैं कि विश्व में तीव्र गति से बढ़ते हुए ज्ञान के विस्तार में बहुत कुछ और भी सीखना है। स्कूली पाठ्यक्रम के इस संकोचन से सन्तोषजनक काम करने की आदतों और एकाग्रीकरण तथा अनुप्रयोग की शक्तियों के बढ़ाने में सहायता मिलेगी। मैकलप ने यह भी कहा है कि स्कूली अवधि को 12 से 9 या 10 वर्ष के कर देने पर स्कूली पाठ्यक्रम में कोई कटौती नहीं होगी। कटौती के बजाय पाठ्यक्रम में और अधिक चीजों का समावेश किया जाएगा। किन्तु विद्यार्थियों को शिक्षा का प्रारंभ शीघ्रतर कराना होगा तथा उनके मस्तिष्कों को सतत विकसित करना पड़ेगा। हमको पता चला है कि न्यूयार्क शहर के कतिपय स्कूलों में स्कूली अवधि को घटाने का प्रयोग चल रहा है।

2.04. अमरीकन राष्ट्रपति के भूतपूर्व विज्ञान सलाहकार, जैरोम बी० वाइसनेर की निम्न उक्ति भी इस प्रसंग में अवलोकनीय है। वे कहते हैं :[1]

"अनेक इस बात से बहुत प्रभावित हैं कि सोवियत संघ की दशवर्षीय प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षा का चक्र यह अपेक्षित करता है कि समस्त विद्यार्थियों को पांच वर्ष भौतिकी में, छह वर्ष गणित में, तीन वर्ष जैविकी में, चार वर्ष रसायन में लगाने चाहिए तथा अंतिम दो वर्ष के पाठ्यक्रम में इन विषयों की लगभग उतनी बातें आ जाती हैं जितनी कि हमारे आर्ट्स कालेजों के प्रारंभिक पाठ्यक्रमों में। तुलना की दृष्टि से हमारी संगत स्कूली अवधि है तो दस के बजाय बारह वर्ष की किन्तु गणित और विज्ञान की 1/5 शिक्षा भी प्रदान नहीं करती। सोवियत संघ के समान प्रारंभिक वैज्ञानिक शिक्षा की प्रगाढ़ता हमारे यहां भी आवश्यक है या नहीं, सभी इसकी पुष्टि करने वाले तथ्य हमारे पास नहीं हैं, फिर भी इतना तो सुस्पष्ट है कि हमारा स्कूली कार्यक्रम इष्टतम से अभी दूर है।"

2.05. यह बात भी समझ लेनी चाहिए कि हमारे देश की शिक्षा का मुख्य स्वरूप, जो कि विदेश से लाया गया था, अभी भी एक विदेशी पौधे की प्रकृति वाला ही है। इसमें किसी भी प्रकार का क्रान्तिकारी परिवर्तन करते हुए भय या संकोच लगता है, जब तक कि वह परिवर्तन विदेशों में होने वाले तद्विषयक परिवर्तन के अनुरूप न हो। हमको अपने इस दृष्टिकोण में शीघ्र ही परिवर्तन लाना पड़ेगा और वर्तमान शिक्षा प्रणाली को अपनी मान कर चलना पड़ेगा। हमको इसमें सुधार भी अपनी निजी विचारधारा से लाना पड़ेगा जिसमें बाहर क्या हो रहा है, इससे हम अवगत रहें किन्तु उसके आधिपत्य में न रहें।

2.06. इस अध्याय में दिए जाने वाले प्रस्तावों को इन्हीं मौलिक नियमों की पृष्ठभूमि में समझना चाहिए।

संरचना और अवधि

2.07. **संरचना और अवधि में सार्वजनिक रुचि**—संरचना तथा अवधि के प्रश्न वे हैं जिन पर आयोग को अधिकतम परामर्श तथा सुझाव प्राप्त हुए हैं। ये वे प्रश्न हैं जिन पर कि शिक्षा की समस्याओं को राष्ट्रीय स्तर पर हल करने की चेष्टा करने वाले पूर्वगामी आयोगों तथा समितियों ने भी पर्याप्त ध्यान दिया हैं। शिक्षा-प्रणाली के ढांचे के विषय में सतत तथा व्यापक दिलचस्पी के दो प्रमुख कारण हैं। प्रथम तो वर्तमान विभिन्न संभ्रमकारी स्कूली तथा उच्चतर माध्यमिक शिक्षा स्वरूपों का अंत हो जाए यह सामान्य इच्छा है। दूसरे, यह सार्वजनिक धारणा है कि शिक्षा पाठ्यक्रम की समस्त अवधि तथा उसकी विभिन्न अवस्थाओं की अवधि की शिक्षा कि गुणता से प्रत्यक्ष सबंध है। हम से बार-बार यह कहा गया है कि यदि शिक्षा के स्वरूप तथा स्कूली संपूर्ण अवधि के विस्तारण में एक समानता हो जाए तो समाप्ति के

1. **डिडैलस**, 1965, पृ० 534.

स्तर में सामान्य वृद्धि होना संभव हो जायेगा। ये सब बातें अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं और सूक्ष्म परीक्षण के योग्य हैं।

2.08. **उच्चतर माध्यमिक शिक्षा का स्वरूप**— स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त शैक्षिक ढांचे को पुनर्गठित करने के लिए एक गंभीर चेष्टा की गई। आइए उसके परिणामों का भली-भांति दिग्दर्शन करें। माध्यमिक शिक्षा आयोग की रिपोर्ट के बाद यह निर्णय लिया गया कि स्कूली कक्षाओं का एक समान वेशव्यापी रूप हो जाए जिसकी संपूर्ण अवधि 11 वर्ष की हो जिसमें से 5 वर्ष अवर प्राथमिक शिक्षा के लिए, 3 वर्ष उच्चतर प्राथमिक शिक्षा के लिए तथा बाद के 3 वर्ष उच्चतर माध्यमिक शिक्षा के लिए हों। इसके अंत में तीन वर्ष का कला तथा विज्ञान की प्रथम डिग्री का पाठ्यक्रम तथा द्वितीय डिग्री का दो वर्ष का और पाठ्यक्रम रखा गया था। गत दस वर्षों में इस योजना के फलस्वरूप दो महत्वपूर्ण परिवर्तन लाने थे, प्रथम तो हाई स्कूलों को हायर सेकेण्डरी के ढांचे में परिणत करना तथा द्वितीय विश्वविद्यालयों में त्रिवर्षीय प्रथम डिग्री पाठ्यक्रम का लाना। त्रिवर्षीय प्रथम डिग्री पाठ्यक्रम तो उत्तर प्रदेश[1] तथा बम्बई विश्वविद्यालय को छोड़कर सभी जगह चालू हो गया, परन्तु हाई स्कूलों को हायर सेकेण्डरी स्कूलों में परिणत करने में उतनी सफलता नहीं मिल सकी। केन्द्रीय सहायता देने पर भी केवल 5 राज्य उक्त प्रस्ताव को कार्यान्वित कर सके हैं, शेष राज्यों ने या तो प्रस्ताव माने नहीं या पहले मान कर बाद को वे अपने निश्चयों से मुकर गए। तृतीय योजना के अंत तक केवल 25 प्रतिशत हाई स्कूल ही हायर सेकेंडरी स्कूलों में परिणत हो सके। इनमें से अनेक परिणतियां केवल विचार रूप में ही हुई, अर्थात्, उनमें अध्यापकों, पुस्तकालयों तथा प्रयोगशालाओं की अपेक्षित सुविधायें उपलब्ध न की जा सकीं। विशेषतया यह ध्यान देने योग्य बात है कि पुनर्गठन के परिणामस्वरूप स्कूल एवं कालेजी शिक्षा का एक समान कोई भी स्वरूप प्राप्त नहीं हो सका तथा इनमें अब भी उतना ही वैषम्य है जितना कि पुनर्गठन योजना के आरंभ में था। यह बात सारणी 2.1 तथा पृष्ठ 30 और 31 पर दिए गए चार्टों से भली-भांति विदित हो सकेगी।

सारणी 2.1. विभिन्न राज्यों में स्कूली तथा कॉलेजी कक्षाओं का स्वरूप (1965-66)

राज्य	अवर प्राथमिक	उच्चतर प्राथमिक	माध्यमिक	पू० वि० क० (P.U.C.)	उच्चतर माध्यमिक	प्रथम डिग्री	कुल योग
आन्ध्रप्रदेश	5	3	3	1	4	3	15
असम व नागाप्रदेश	5	3	4	1	5	3	16
बिहार, गुजरात, महाराष्ट्र जम्बू व काश्मीर	7(क)	...	4	1	...	3(ख)	15
पंजाब, राजस्थान, प० बंगाल	5	3	2	1	3	3	14
केरल	4	3	3	2	...	3	15
मध्यप्रदेश	5	3	...	...	3	3	14
मद्रास	5	3	3	1	...	3	15
मैसूर	4	3	3	1	4	3	14
उड़ीसा	5	2	4	1	...	3	15
उत्तर प्रदेश	5	3	2	...	2(ग)	2	14

(क) सम्मिलित प्राथमिक पाठ्यक्रम जिसमें कोई पृथक् मिडिल स्कूल नहीं है।

(ख) बम्बई विश्वविद्यालय में द्विवर्षीय इंटर पाठ्यक्रम तदुपरान्त द्विवर्षीय डिग्री पाठ्यक्रम है।

(ग) यह संख्या इंटर कॉलेजों की है।

टिप्पणी (1) आंकड़े प्रति अवस्था की अवधि को वर्षों की संख्या में प्रदर्शित करते हैं। कुल योग करने में (i) माध्यमिक तथा पू० वि० क० (P.U.C.) अथवा (ii) उच्चतर माध्यमिक का योग कीजिए किन्तु **दोनों** का नहीं।

(2) संघ शासित प्रदेशों में से दिल्ली, अण्डमान व निकोबार द्वीपसमूह तथा लकादीव, मिनीकाय व अमीनदीवी द्वीपसमूहों ने उच्चतर माध्यमिक स्वरूप को अपनाया है। अन्य संघ शासित प्रदेशों ने उस राज्य के स्वरूप को अपनाया है जिस के माध्यमिक बोर्ड तथा विश्वविद्यालयों से वे अपने शिक्षा कार्यक्रम का तालमेल रखते हैं। (उदाहरण स्वरूप हिमाचल प्रदेश, पंजाब का अनुसरण करता है)।

1. **केन्द्रीय विश्वविद्यालय को छोड़ कर**

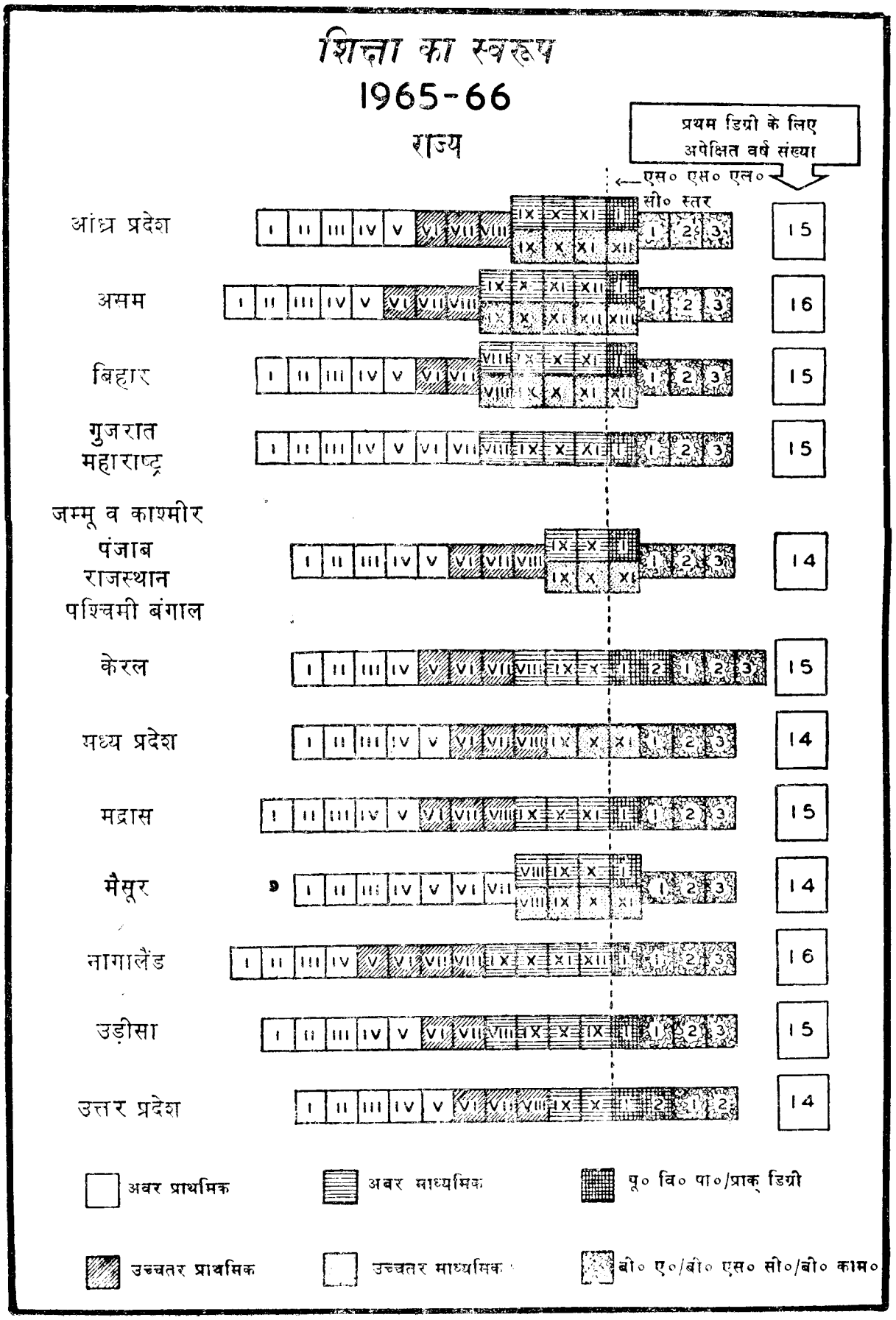
शिक्षा का स्वरूप
1965-66
राज्य
प्रथम डिग्री के लिए अपेक्षित वर्ष संख्या
एस० एस० एल०
सी० स्तर
आंध्र प्रदेश
असम
बिहार
गुजरात
महाराष्ट्र
जम्मू व काश्मीर
पंजाब
राजस्थान
पश्चिमी बंगाल
केरल
मध्य प्रदेश
मद्रास
मैसूर
नागालैंड
उड़ीसा
उत्तर प्रदेश
15
16
15
15
14
15
14
15
14
16
15
14
अवर प्राथमिक
अवर माध्यमिक
पू० वि० पा०/प्राक् डिग्री
उच्चतर प्राथमिक
उच्चतर माध्यमिक
बी० ए०/बी० एस० सी०/बी० काम०

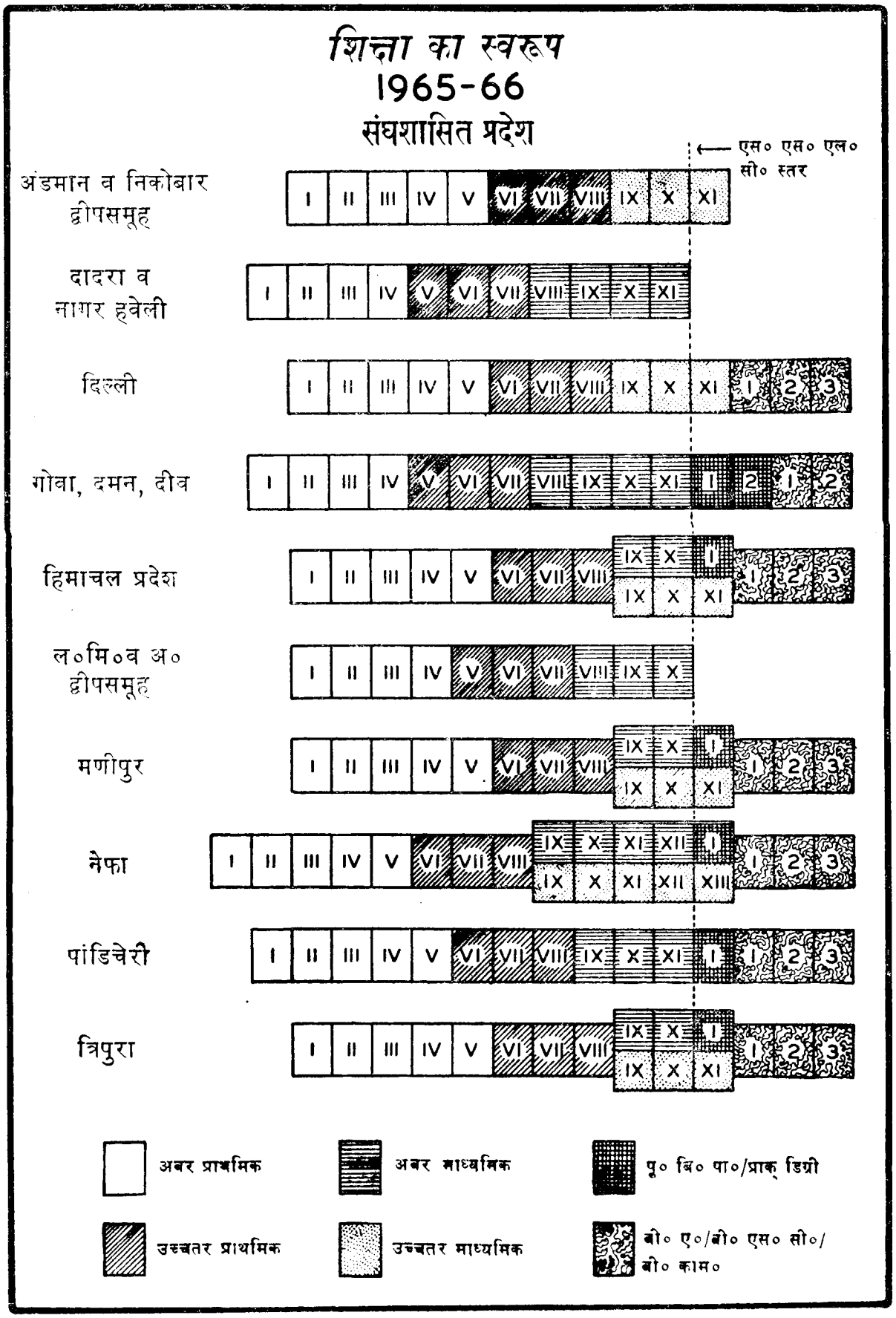
शिक्षा का स्वरूप
1965-66
संघशासित प्रदेश
← एस० एस० एल० सी० स्तर
अंडमान व निकोबार द्वीपसमूह
दादरा व नागर हवेली
दिल्ली
गोवा, दमन, दीव
हिमाचल प्रदेश
ल०मि०व अ० द्वीपसमूह
मणीपुर
नेफा
पांडिचेरी
त्रिपुरा
I II III IV V VI VII VIII IX X XI XII XIII 1 2 3
अबर प्राथमिक
अबर माध्यमिक
पू० बि० पा०/प्राक् डिग्री
उच्चतर प्राथमिक
उच्चतर माध्यमिक
बी० ए०/बी० एस० सी०/ बी० काम०

2.09. आयोग के समक्ष जिन व्यक्तियों ने अपना साक्ष्य दिया था उनमें से कतिपय का यह मत था कि उच्चतर माध्यमिक प्रणाली को पर्याप्त परीक्षण का अवसर नहीं दिया गया। उनका यह भी विश्वास था कि शिक्षा के ढांचे के बारे में जल्दी-जल्दी परिवर्तन करना अवांछनीय था, और बजाय नई प्रणालियों के परखने के क्यों न उच्चतर माध्यमिक प्रणाली को और अधिक सक्षम तौर से कार्यान्वित किया जाए। किन्तु पर्याप्त बहुमत उन व्यक्तियों का था जो कि अन्य हेतुओं के साथ-साथ निम्न हेतुओं से इस योजना के आलोचक थे :

(1) दसवीं कक्षा के उपरान्त अथवा 16वें वर्ष से पहले विशेषीकरण (Specialization) का प्रारम्भ नहीं करना चाहिए। किन्तु इस योजना में यह (कक्षा 9 के उपरान्त अथवा 13वें 14वें वर्ष में ही) कुछ जल्दी प्रारम्भ हो जाता है।

(2) उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं के त्रिवर्षीय सम्मिलित पाठ्यक्रम से अनावश्यक प्रसार तथा व्यय-वृद्धि होती है, क्योंकि बच्चे को जो कि अन्यथा कार्य की दुनियां में अथवा व्यावसायिक पाठ्यक्रम करने के लिए कक्षा 5 के उपरान्त ही उतर पड़ता, अब कक्षा 11 तक विवश होकर जाना पड़ता है।

(3) यह प्रत्याशा कि पुनर्गठन के परिणामस्वरूप स्तरों में सुधार होगा, अधिकांश रूप में अघटित ही रही। योग्यता-संपन्न अध्यापक इन उच्चतर माध्यमिक स्कूलों में अध्यापन करने को इसलिए तैयार नहीं होते कि या तो उनमें वेतन दर न्यून हैं अथवा वे न्यून न भी हों तो भी इन संस्थाओं में काम करने से उनका अपेक्षाकृत अवर स्थान ही रहता है। इसके अतिरिक्त शैक्षिक कारणों के बजाय अन्य कारणों से अनेक हाई स्कूलों का दर्जा हायर सेकंडरी स्कूलों का कर दिया गया किन्तु उनके आवास-स्थान, साजसज्जा तथा स्टॉफ की योग्यता में कोई विशेष अंतर नहीं आया।

(4) इस प्रयोग से, जिसमें वैसे ही पर्याप्त व्यय की आवश्यकता होती है, अन्य दिशाओं में व्यय की वृद्धि हुई। उदाहरण के लिए प्रत्येक इंटर कालेज को हायर सेकंडरी स्कूल में परिणित करना पड़ेगा अन्यथा उसका और अधिक व्यय वाली योजना से डिग्री कॉलेज में उत्थापन करना पड़ेगा। इसके अतिरिक्त किसी अवधि के अन्दर ही समस्त हाई स्कूलों को हायर सेकंडरी स्कूलों में परिणत करने की योजना से अवांछनीय दबाव भी पड़ेगा। गांव के छोटे-छोटे स्कूल भी, जो कि दसवीं कक्षा तक की शिक्षा के लिए अधिक लाभप्रद व सक्षम होते, उच्चतर माध्यमिक स्कूलों में बदलने पड़े जिसमें वे सक्षम हो गए और उनके व्यय में भी वृद्धि हुई।

2.10. **स्वरूप की एकसमानता**—शैक्षिक ढांचे के पुनर्गठन के सम्बन्ध में आयोग के समक्ष कई एक प्रस्ताव रखे गए। अधिकांशतः ये देश के सभी भागों के लिए एक-समान स्कूली तथा कालेजी कक्षाओं के स्वरूप का अनुमोदन करते थे। इस सम्बन्ध में भावनात्मक एकता समिति (1962) की रिपोर्ट के निम्नलिखित उद्धरण अवलोकनीय है :

"छात्र समाज के कुल मिला कर हित की दृष्टि से हम यह समझते हैं कि समस्त देश में शिक्षा का स्वरूप एक समान हो, जिससे संभ्रम का विनाश हो और उसमें समन्वय हो सके तथा स्तरों को सुरक्षित रख सकें।"

गत कुछ वर्षों में इस दृष्टिकोण को पर्याप्त बल मिला है। राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली की भावना को एकसमान शिक्षा स्वरूप के अपनाने के साथ-साथ शृंखलित किया जाने लगा है और यह धारणा उत्पन्न हो गई है कि इस प्रकार की एकसमानता स्तरों के बढ़ाने के लिए अनिवार्य है।

2.11. विभिन्न राज्यों के स्कूली शिक्षा-स्तरों के समन्वय के लिए कौन-से कदम उठावा जरूरी हैं, यह हम अन्यत्र[1] बताएंगे। लेकिन हमारा यह विश्वास नहीं है कि देश के समस्त भागों में स्कूली तथा कालेजी कक्षाओं का एकसमान स्वरूप लादा जाए। भारतीय वस्तु-स्थिति की अपनी अनेक विशेषताएँ हैं। उदाहरणार्थ, देश की विस्तीर्णता, स्थानीय अवस्थाओं और परम्पराओं की अमित विविधता इस बात को अपेक्षित करती हैं कि शैक्षिक ढांचे में कुछ लचीलापन भी हो। हम उन राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणालियों से भी अवगत हैं जिनमें शिक्षा के ढांचे की विविधता है। उदाहरण के लिए यूनाइटेड किंगडम जैसे एक छोटे से देश को ही ले लीजिए। इसमें इंगलैंड का शिक्षा स्वरूप कुछ और है (सामान्यतः 13 वर्षीय स्कूलीय शिक्षा तदुपरान्त 3 वर्ष का प्रथम डिग्री पाठ्यक्रम) और स्काटलैंड का कुछ और (12 वर्षीय स्कूली शिक्षा, तदुपरान्त चतुर्वर्षीय प्रथम डिग्री पाठ्यक्रम)। हमारे देश में, जहां विभिन्न राज्य विभिन्न स्तरों पर हों, शिक्षा का एकसमान स्वरूप पिछड़े क्षेत्रों के साधनों के बाहर और प्रगतिशील क्षेत्रों की आवश्यकता और क्षमता से निम्न कोटि का होगा, अतएव दोनों को ही अहितकारी हो सकता है।

1. अध्याय दस

2.12. **स्कूल पाठन की अवधि को बढ़ाने की मांग**—ढांचे के पुनर्गठन संबंधी प्रस्तावों में, जो कि आयोग को प्रस्तुत किए गए हैं, एक दूसरी मांग पर बल दिया है जो कि स्कूल तथा उच्च शिक्षा की अवधि को बढ़ाने के संबंध में हैं। यह मांग व्यावसायिक डिग्री, जैसे कि इंजीनियरी अथवा चिकित्सा के संबंध में नहीं है क्योंकि उनकी अवधि वैसे ही 16 वर्ष की हैं जो कि प्रायः समस्त शिक्षोन्नत देशों में उतनी ही है। यह मांग तो कला तथा विज्ञान की प्रथम डिग्री के संबंध में है जो कि मैट्रिक्युलेशन अथवा तत्सम परीक्षाओं के 4 वर्ष बाद (अथवा 11 वर्ष वाले उच्चतर माध्यमिक पाठ्यक्रम के 3 वर्ष बाद) ली जाती है। इनका मत है कि मैट्रिक्युलेशन के कम से कम 5 वर्ष बाद (अथवा उच्चतर माध्यमिक के 4 वर्ष बाद) यह प्रथम डिग्री पाठ्यक्रम संपन्न हो। यहां यह बताना भी जरूरी है कि यह मत इस विषय की अनेक विशेषज्ञ समितियों द्वारा भी प्रतिपादित किया जाता है। सन् 1919 में कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग ने प्रस्ताव किया था कि विश्वविद्यालय तथा माध्यमिक विद्यालय के मध्य विभाजन रेखा इंटरमीडिएट परीक्षा को बनाना चाहिए जो कि शिक्षा के 12वें वर्ष में संपन्न हो। इसी प्रकार विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (1948) ने सिफारिश की थी कि छात्र प्रथम डिग्री पाठ्यक्रम में तब प्रविष्ट किए जाएं जब वे अध्ययन के 12 वर्ष पहले बिता चुके हों और यह प्रथम डिग्री पाठ्यक्रम 3 वर्ष का हो। भावनात्मक एकता समिति (1962) के मत से भी स्कूली शिक्षा की 11 वर्ष की अवधि विश्वविद्यालय के प्रवेशार्थ तैयारी के लिए कम है, अतएव, इस पाठ्यक्रम की अवधि में एक वर्ष और बढ़ा देना चाहिए। राज्य शिक्षा मंत्रियों की बैठक में, जो कि 1964 में हुई थी, यह निश्चय किया गया कि डिग्री पाठ्यक्रम के पूर्व 12 वर्षीय स्कूली शिक्षा का उद्देश्य समस्त देश के सामने होना चाहिए। हम इन सिफारिशों से पूर्ण सहमत है।

2.13. **शैक्षिक संरचना का प्रस्तावित पुनर्गठन**—जिस प्रकार के पुनर्गठन का ऊपर सुझाव दिया है, जिसमें स्कूली शिक्षा की अवधि को बढ़ाना है, वह इतनी शीघ्र कार्यान्वित नहीं किया जा सकता। देश की विस्तीर्णता तथा शिक्षा-स्वरूपों की विभिन्नता इस कार्य को दुरूह बना देती हैं। साथ ही सीमित शैक्षिक साधनों पर पड़ने वाले अन्य त्वरित कार्यों की प्राथमिकता के दबावों से यह समस्या और जटिलतर हो जाती है। हमने सिफारिश की है कि यह पुनर्गठन 20 साल के क्रमिक कार्यक्रम द्वारा संपन्न हो। वर्तमान उच्चतर माध्यमिक स्वरूप को, जिसमें कक्षा 9 से ही विशेषीकरण का प्रारंभ हो जाता है, एकदम परित्याग करना हमारा इस दिशा में पहला कदम होगा। इसके स्थान पर एक नवीन उच्चतर माध्यमिक पाठ्यक्रम लाया जाएगा जो कक्षा 11 से प्रारंभ होगा। इस कदम के साथ-साथ, जो चौथी योजना की अवधि में पूर्ण हो जाएगा, इस बात का भी योजनाबद्ध प्रयत्न होगा कि पूर्व विश्वविद्यालय पाठ्यक्रमों को जो कि इस समय विश्वविद्यालयों तथा तत्संबंधी कालिजों में संपन्न होते हैं और जहां वे उच्चतर शिक्षा के स्तर को गिराते हैं, हटा कर माध्यमिक विद्यालयों में लाया जाए जहां वस्तुतः उनका ठीक स्थान है। दूसरा कदम उच्चतर माध्यमिक शिक्षा की अवधि में एक वर्ष और बढ़ाना है। इन समस्त कदमों का ब्योरेवार वर्णन इस अध्याय के एक अगले परिच्छेद में होगा।

2.14. हम एक लचीली शैक्षिक संरचना की कल्पना करते हैं जिसमें निम्नलिखित वस्तुओं का समावेश हो :

— एक वर्ष से तीन वर्ष तक की पूर्व स्कूलीय अवस्था।

— सात से आठ वर्ष तक की प्राथमिक अवस्था जिसके दो उप-भाग हों; प्रथम, चार से पांच वर्ष की अवर प्राथमिक अवस्था, द्वितीय, 3 वर्ष की उच्चतर प्राथमिक अवस्था।

— अवर माध्यमिक अथवा हाई स्कूल अवस्था जिसमें 2 या 3 वर्ष की सामान्य शिक्षा हो अथवा 1 से 3 वर्ष की व्यावसायिक शिक्षा हो।

— उच्चतर माध्यमिक अवस्था, जिसमें 2 वर्ष की सामान्य शिक्षा हो अथवा जिसमें 1 से 3 वर्ष की व्यावसायिक शिक्षा हो।

— उच्चतर शिक्षा की अवस्था, जिसमें 3 या उससे अधिक वर्षों का प्रथम डिग्री पाठ्यक्रम हो तथा जिसके उपरांत द्वितीय डिग्री अथवा शोध डिग्रियों के पाठ्यक्रम हों जिनकी विभिन्न अवधियां हों।

पूर्व प्राथमिक शिक्षा का गठन पृथक रूप से सातवें अध्याय में दिया हुआ है। यहां हम स्कूली तथा उच्चतर शिक्षा के पुनर्गठन का विशद विवेचन करेंगे।

स्कूली शिक्षा का पुनर्गठन

2.15. **प्रथम दस वर्ष**—प्राथमिक तथा माध्यमिक विद्यालय कई प्रकार के होंगे। इनमें सबसे अधिक संख्या वाला एक समुदाय अवर प्राथमिक विद्यालयों का होगा। इनसे कम संख्या—लगभग एक तिहाई—उनकी होगी जो उच्चतर प्राथमिक अवस्था की, जिसमें निम्न कक्षाएं भी

सम्मिलित होंगी, अंतिम शिक्षा प्रदान करेंगे। जब वर्तमान उच्चतर माध्यमिक शिक्षा स्वरूप का परित्याग हो जाएगा तब अधिकांश माध्यमिक विद्यालय—लगभग तीन-चौथाई—दसवीं कक्षा तक की शिक्षा की व्यवस्था करेंगे और प्रारंभ किसी निम्न कक्षा से करेंगे जिसमें उनको सुगमता हो। शेष एक-चौथाई उच्चतर माध्यमिक विद्यालय होंगे जो विश्वविद्यालय प्रवेशिका तक शिक्षा प्रदान करेंगे। वर्तमान स्थिति बिल्कुल भिन्न है जिसमें स्कूल प्रणाली के ढांचे मे पर्याप्त हेर-फेर रहता है जब तक कि अवर माध्यमिक अवस्था की सार्वजनिक परीक्षा तक न पहुंच जाएं। पृष्ठ 31 पर दिये गए चार्ट के अवलोकन से यह विदित होगा कि यह बाह्य परीक्षा। जिसको हम हाई स्कूल परीक्षा की संज्ञा देंगे, 10 या 12 वर्ष की शिक्षा के बाद हुआ करती है। दो राज्य (असम और नागालैंड) 12 वर्ष बाद परीक्षा लेते हैं; 6 राज्य (आन्ध्र प्रदेश, बिहार, गुजरात, मद्रास, महाराष्ट्र और उड़ीसा) 11 वर्ष बाद परीक्षा लेते हैं और शेष 8 राज्य (जम्मू व काश्मीर, केरल, मध्यप्रदेश[1], मैसूर, पंजाब, राजस्थान, उत्तर प्रदेश तथा पश्चिमी बंगाल) 10 वर्ष बाद परीक्षा लेते हैं। विभिन्न क्षेत्रों में होने वाली परीक्षाओं के परीक्षार्थियों द्वारा ज्ञानार्जन के स्तर में कितनी विभिन्नता रहती है इसका तुलनात्मक विधि-पूर्वक अध्ययन अभी तक नहीं किया गया है। किन्तु स्थूल रूप से यह परस्पर तुलनीय हैं और प्रशासनिक तौर पर ये सब बराबर माने जाते हैं।

2.16. चार्ट से यह पता चलेगा कि असम और नागालैंड में प्रथम दो कक्षाएं अ व ब कहलाती हैं और अग्रिम दस कक्षाएं क्रमशः एक से दस तक की कक्षाएं कही जाती हैं। चूंकि इन राज्यों की सरकारें ही इन अ और ब दो कक्षाओं को बाल कक्षाएं (इनफेंट क्लासेस) मानती हैं और अन्य दस कक्षाओं से उन्हें पृथक् रखती हैं अतः हाई स्कूल अवस्था, जिसके अंत में हाई स्कूल परीक्षा होती है, केवल दस वर्ष की ही समझनी चाहिए। 6 राज्यों में जहां 11 वर्ष का स्कूली पाठ्यक्रम होता है, कक्षा एक को पूर्व प्राथमिक कक्षा समझना ही अधिक उपयुक्त होगा, विशेषतः वहां जहां प्रवेश आयु 6 वर्ष से कम की होती है। हमारा विश्वास है कि यह पूर्व प्राथमिक कक्षा एक लाभ के रूप में है जो इन राज्यों में वर्तमान है। हमारी सिफारिश है कि वे इसे यथावत् रखें और इसके शिक्षण के अनुभवों को अनौपचारिक विधि पर ही रखें न कि औपचारिक विधि पर। साथ ही साथ इन अनुभव को नीचे के दो वर्षों तक भी जहां संभव हो ले जायें। हम यह भी सुझाव देते हैं कि अन्य 8 राज्य भी एक या दो वर्ष की पूर्व प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था कक्षा एक के नीचे करें जहां तक कि उनके आर्थिक साधन ऐसा करने में अड़चन न डालें।

2.17. हम सोचते हैं कि :

(1) स्कूली शिक्षा के 10 वर्ष, जिसमें 7 या 8 वर्ष की प्राथमिक अवस्था तथा 2 या 3 वर्ष की अवर माध्यमिक अवस्था होगी, सामान्य शिक्षा के पाठ्यक्रम की ही व्यवस्था करेंगे न कि विशेषीकरण की।

(2) प्राथमिक अवस्था के पूर्व यथासंभव 1 से 3 वर्ष की पूर्व प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था होगी।

(3) कक्षा एक की प्रवेश-आयु सामान्यतः 6+ वर्ष से कम की न होगी।

(4) प्राथमिक अवस्था के अंत में लगभग 20 प्रतिशत छात्र स्कूल प्रणाली छोड़कर कार्मिक जीवन में प्रवेश करेंगे : अन्य 20 प्रतिशत छात्र सामान्य शिक्षा को छोड़ कर एक से तीन वर्ष तक की व्यावसायिक शिक्षा में प्रवेश करेंगे और शेष 60 प्रतिशत सामान्य शिक्षा की धारा में अग्रसर रहेंगे।

(5) 10 वर्ष की स्कूल शिक्षा के अंत में बाह्य परीक्षा होगी।

(6) 10 वर्ष के अंत में होने वाली परीक्षा का स्तर उस स्तर से तुलनीय होगा जो कि पाठ्यक्रम तथा उपलब्धियां दोनों की दृष्टि से इस अवस्था के लिए राष्ट्र ने निश्चित किया हो।

(7) 10 वर्ष की स्कूली शिक्षा के उपरान्त लगभग 40 प्रतिशत छात्र स्कूल शिक्षा प्रणाली को छोड़कर कार्मिक जीवन में प्रवेश करेंगे, अन्य 30 प्रतिशत छात्र सामान्य शिक्षा को छोड़ कर 1 से 3 वर्ष की व्यावसायिक शिक्षा में पदार्पण करेंगे, शेष 30 प्रतिशत छात्र सामान्य शिक्षा की धारा में अग्रसर रहेंगे जिसकी अवधि 1 से 2 वर्ष की होगी।

2.18. **उच्चतर माध्यमिक शिक्षा-स्वरूप में संशोधन**—हम इस बात को बहुत महत्व देते हैं कि ऊपर कहे हुए पुनर्गठन के प्रस्तावों के फलस्वरूप वर्तमान उच्चतर माध्यमिक शिक्षा स्वरूप में भी आवश्यक परिवर्तन लाए जाएं :

(1) जैसा कि पहले कह चुके हैं कि स्कूली सामान्य शिक्षा के प्रवाह में, जो कक्षा 9 से प्रारंभ होता है, कक्षा 11 से पहले किसी भी प्रकार के विशेषीकरण की दिशा में प्रयत्न नहीं करना चाहिए। इसके कारण उच्चतर माध्यमिक स्कूलों के पाठ्यक्रम में पर्याप्त पुनर्गठन करना पड़ेगा।

(2) प्रत्येक माध्यमिक विद्यालय को उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में उत्थापित करना चाहिए, इस विचार का परित्याग करना पड़ेगा। देहली के समस्त हाई स्कूलों

1. **इस समय मध्य प्रदेश में, जहाँ सभी स्कूल उच्चतर माध्यमिक स्तर के हैं, यहीं परीक्षा वह ली जाती। पर 1967 से उनको आरम्भ करने का विचार है।**

को उत्थापित करना संभव हो गया क्योंकि देहली भारत की राजधानी है। मध्य प्रदेश में भी समस्त हाई स्कूलों को उच्चतर माध्यमिक स्कूलों में परिवर्तित कर दिया गया किन्तु स्तरों का बड़ा अधः पतन हुआ और दुर्वहनीय व्यय उठाना पड़ा। उस देश में जहां ग्रामीण क्षेत्रों का प्राधान्य हो, प्रत्येक हाई स्कूल को हायर सेकेंडरी स्कूल में बदलना बुद्धिमत्ता न होगी।

हम सोचते हैं कि स्थायी शिक्षा प्रणाली में दो प्रकार के माध्यमिक विद्यालय होंगे। प्रथम हाई स्कूल जिसमें उपर्युक्त 10 वर्षीय शिक्षा की व्यवस्था होगी, द्वितीय हायर सेकंडरी स्कूल, जिनमें उचित काल के अंतर्गत 12 वर्षीय शिक्षा की व्यवस्था होगी। साधनों के एकत्रीकरण और स्तरों के सफलतापूर्वक बढ़ाने की दृष्टि से केवल उन्हीं हाई स्कूलों को उत्थापित करना है जो अपेक्षाकृत अच्छे व बड़े हों। यदि केवल कुल हाई स्कूलों के पंचमांश भी हायर सेकंडरी स्कूलों में उत्थापित कर दिये जायें तो हमारी वर्तमान आवश्यकता की भली भांति पूर्ति हो जाएगी चाहे यह भी कल्पना कर लें कि भविष्य में कोई पूर्व विश्वविद्यालयी कक्षा कालेजों में न लगेगी। यह अनिवार्य रूप से अपेक्षित होगा कि वे संस्थायें बड़ी हों, केन्द्र में स्थित हों और ग्राम्य तथा नगरीय क्षेत्रों में समान रूप से वितरित हों। यह भी वांछनीय है कि वर्तमान समस्त हायर सेकंडरी स्कूलों की हैसियत की पुनः जांच की जाये और जो अत्यन्त छोटे, अलाभकर तथा हीन कोटि के हों उन्हें पुनः हाई स्कूल बना दिया जाये।

(3) अब यह नियम बना दिया जाए कि कक्षा 9 से समेकित पाठ्यक्रम प्रारम्भ नहीं होंगा। कक्षा 9 व 10 सामान्य शिक्षा के भाग होंगे और कक्षा 11 व 12 (संक्रांति काल में कक्षा 11) जो विभिन्न विषयों में विशेषीकृत अध्ययन की व्यवस्था करेंगे, स्वतन्त्ररूप से इंगलैण्ड की छठी फार्म के समान स्वतःपूर्ण इकाई बन जाएंगे।

(4) सामान्य शिक्षा की प्रथम दस वर्षों की समाप्ति पर एक बाह्य परीक्षा होगी। अतः किसी छात्र को, जो हाई स्कूल में पढ़ रहा है, दो बार बाह्य परीक्षाओं में एक-एक साल बाद बैठना पड़ेगा, अर्थात्, कक्षा 10 व 11 के अन्त में। यह कठिनाई हायर सेकंडरी पाठ्क्रम को दो साल का कर देने पर दूर हो जाएगी।

(5) वर्तमान हायर सेकंडरी स्कूलों को, जो सुसंगठित 9-11 कक्षाओं का समेकित पाठ्यक्रम रखते हैं, इसी प्रकार तब तक चलने दिया जाये यदि उनको ऐसी ही इच्छा हो, जब तक कि वे कक्षा 12 को और न बढ़ा लें। इन स्कूलों के विद्यार्थियों को कक्षा 10 के अंत में परीक्षा में बैठने को बाध्य नहीं किया जाएगा। वे कक्षा 11 की समाप्ति पर एक अंतिम परीक्षा में बैठ सकते हैं अथवा दो भागों में कर के कक्षा 10 व 11 के अंत में वे परीक्षा में बैठ सकते हैं।

2.19. **प्राथमिक अवस्था के अन्त में व्यावसायिक पाठ्यक्रम**—यह ऊपर बताया जा चुका है कि प्राथमिक अवस्था के अन्त में लगभग 20 प्रतिशत छात्र शिक्षाक्रम को छोड़ कर कार्मिक जीवन में पदार्पण करेंगे और लगभग उतने ही छात्र सामान्य शिक्षा की धारा को छोड़ कर व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में प्रविष्ट होंगे। इन छात्रों के लिए अल्पकालिक अथवा पूर्णकालिक व्यावसायिक पाठ्यक्रमों की सुविधा का प्रबन्ध होना चाहिए। इस समस्या पर अन्यत्र सविस्तार निवेचन किया जाएगा।

2.20. **उच्चतर माध्यमिक शिक्षा की व्यवस्था के लिए पाठ्यक्रम**—उच्चतर माध्यमिक अवस्था के पाठ्क्रमों के नाम, अवधि, स्थान निर्धारण तथा नियंत्रण-विधि प्रत्येक राज्य में भिन्न-भिन्न होती है। उत्तर प्रदेश में इसको इंटरमीडिएट कहते हैं और इसकी अवधि दो वर्ष की होती है। यह या तो माध्यमिक स्कूलों की अंतिम कक्षायें होती है अथवा डिग्री कालेज की प्रारम्भिक कक्षायें और उनका शैक्षिक नियंत्रण हाईस्कूल तथा इंटर-मीडिएट बोर्ड करता है। केरल में इसी पाठ्यक्रम की व्यवस्था जूनियर कालेजों में की जाती है जो या तो स्वतन्त्र होते हैं या सम्बद्ध कालेजों से सम्बद्ध रहते हैं और जिनका नियन्त्रण विश्वविद्यालय करते हैं। मध्य प्रदेश में जहां समस्त हाईस्कूलों को हायर सेकेंडरी स्कूलों में परिणत कर दिया गया है, ऐसा कोई पाठ्यक्रम इस अवस्था का नहीं है जो इन संस्थाओं के क्षेत्र से बाहर हों। जिन राज्यों में हायर सेकेंडरी प्रणाली अपना तो ली गई है किन्तु समस्त हाई स्कूलों को हायर सेकेंडरी स्कूलों में परिणत नहीं किया जा सकता है, इस अवस्था की परीक्षा का प्रबन्ध या तो 11वीं कक्षा के रूप में हायर सेकेंडरी स्कूल में ही कर दिया जाता है, या कालेजों में पूर्व-विश्व-विद्यालय पाठ्यक्रमों का प्रबन्ध कर दिया जाता है। शेष सब राज्य पूर्व-विश्वविद्यालय पाठ्यक्रम को केवल कालेजों में ही रखते हैं और उनका नियंत्रण विश्वविद्यालय करते हैं।

2.21. शैक्षिक ढांचे के प्रस्तावित पुनर्गठन के विवेचन में हम बता चुके है कि इस अवस्था पर दो सुधारों की आवश्यकता है।

— पूर्व विश्वविद्यालय पाठ्यक्रमों को विश्वविद्यालयों और कालेजों से हटा कर स्कूलों में ले जाया जाये।

— सामान्य शिक्षा के पाठ्यक्रमों को एक समान रूप से बढ़ाकर दो वर्ष का कर दिया जाये ।

हमारे विचार में इन सुधारों को कार्यान्वित करने की सरल और कुशल विधि है कि दो क्रमागत पारियों में यह किया जाये। प्रथम पारी में पूर्व विश्वविद्यालयी, इंटरमीडिएट, अथवा जूनियर कालेज पाठ्यक्रमों को उच्चतर शिक्षा के क्षेत्र से हटा कर 10 वर्ष की अवधि (1966-75) में स्कूल शिक्षा के क्षेत्र में लाया जाये। दूसरी पारी में उनका काल यथावत् बढ़ाया जाये और यह बढ़ोतरी 15 वर्ष की अवधि (1971-85) में की जाये। यह कार्य पाँचवी योजना से प्रारम्भ किया जाये।

2.22. **पूर्व विश्वविद्यालय पाठ्यक्रम का स्थानान्तरण**—हम उन समस्त पाठ्यक्रमों के उचित स्थान पर, अर्थात् स्कूलों में कार्यान्वित किये जाने पर बड़ा महत्व देते हैं जो उच्चतर माध्यमिक अवस्था के हैं। जब उच्चतर माध्यमिक पाठ्क्रम की प्रथम बार सिफारिश की गई थी, तब पूर्व विश्वविद्यालय पाठ्यक्रम की केवल संक्रान्तिकाल के लिए ही सिफारिश की गई थी। दुर्भाग्यवश, संक्रांति स्थायित्व में परिणत हो रही है। और आज भी विश्वविद्यालयों और सम्बद्ध कालेजों की 40 प्रतिशत छात्र संख्या केवल पूर्व विश्वविद्यालय पाठ्क्रम तथा इंटर वालों की है। प्रत्येक दृष्टिकोण से यह एक बुराई हैं। यह विश्वविद्यालयों और कालेजों के लिए इसलिए ठीक नहीं हैं क्योंकि उनके शक्ति-साधन उस कार्य के सम्पादन में अनुचित रूप से प्रयुक्त किये जाते हैं जो वस्तुतः माध्यमिक स्कूलों का है। यह माध्यमिक स्कूलों के लिए भी खराब है क्योंकि वे उस अवस्था से वंचित किये जाते हैं जो उनको अच्छे अध्यापक और अधिक सुविधायें दिला सकती थी। इसका परिणाम यह होता कि उनको बहुत कुछ यह काम करना पड़ता है जो प्राथमिक अवस्था में ही हो जाना चाहिए था। छात्रों के लिए भी यह खराब है क्योंकि उनको कम उम्र में विश्वविद्यालयों में जाना पड़ता है जहां उन्हें उच्चतर शिक्षा विधियों के माध्यम से पढ़ने को विवश किया। जाता है, जो उनकी क्षमता के बाहर है और जो विधियाँ अधिक पौढ़ विद्यार्थियों के ही योग्य होती हैं। अतएव हम यह सिफारिश करते हैं कि पूर्व विश्वविद्यालय पाठ्क्रम चाहे वह किसी अवधि के क्यों न हों स्कूलों को स्थानान्तरित कर दिये जाएं और इस कार्य को उच्च प्राथमिकता दी जाए। यह स्थानान्तरण देर से देर पाँचवीं योजना के अंत तक पूर्ण हो जाना चाहिए।

2.23 स्थानान्तरण के सम्बन्ध में निम्नलिखित कदम उठाने चाहिए :—

(1) समस्त पूर्व विश्वविद्यालय तथा इंटरमीडिएट पाठ्यक्रमों को विश्वविद्यालयों तथा सम्बद्ध कालेजों से हटाने का उत्तरदायित्व विश्वविद्यालय अनुदान आयोग पर छोड़ देना चाहिए, जिसे इसका एक अधिक से अधिक 10 वर्षीय क्रमिक कार्यक्रम बनाना चाहिए। प्रारंभ विश्वविद्यालयों तथा उत्तर-स्नातक विद्यालयों से करना चाहिए जिनसे कहना चाहिए कि वे इस कार्य को अपने यहां से यथाशीघ्र हटा दें। इस नीति का प्रसार फिर डिग्री कालेजों में करना चाहिए, जहाँ इस अवस्था की छात्र-संख्या को किसी समय विशेष पर स्थिर कर देना चाहिए और फिर जैसे-जैसे अवर स्नातक कक्षाओं की छात्रसंख्या में वृद्धि होने लगे उपर्युक्त छात्रसंख्या को क्षीण कर देना चाहिए। चतुर्थ योजना के बाद पूर्व विश्वविद्यालय अथवा इंटर कक्षाओं के विश्वविद्यालयों तथा सम्बद्ध कालेजों में खोलने की अनुमति नहीं देनी चाहिए। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग तथा राज्य सरकारों को इस मद में दी जाने वाली निधि में क्रमशः कमी करते रहना चाहिए और पांचवी योजना की समाप्ति तक इसको बिल्कुल खत्म कर देना चाहिए।

(2) जब यह कदम उठाये जा रहे हों, तभी कुछ चुनीदा स्कूलों में हायर सेकंडरी कक्षाएं खोल देनी चाहिए। इसके आयोजन का उत्तरदायित्व राज्य शिक्षा विभाग पर छोड़ना चाहिए जो विश्वविद्यालयों के परामर्शानुसार एक उचित कार्यक्रम बनाएं। अच्छे-अच्छे हाईस्कूलों को छांटना चाहिए और उनको पर्याप्त सहायतानुदान देना चाहिए जिससे वे अपने यहां स्वतः-पूर्ण इकाई के तौर पर हायर सेकंडरी कक्षाओं को खोलें, जिसे अन्य छोटी कक्षाओं के साथ समेकित न किया जाये जिससे कि अन्य हाईस्कूलों के छात्र भी उसमें प्रवेश पा सकें। इस प्रकार की एक योजना का मैसूर में परीक्षण किया गया और इसने ठीक कार्य किया। निर्धारित समय से एक वर्ष पूर्व छांटी हुई संस्थाओं को आवर्ती अनुदान दे देना चाहिए जिससे कि वे प्रारम्भिक आयोजन यथासमय कर सकें।

(3) अधिकांश माध्यमिक शिक्षा बोर्डों को हायर सेकंडरी अवस्था के उत्तरदायित्व को स्वीकार

करने के लिए पुनर्गठित करना पड़ेगा और कुछेक के मामलों में अधिनियम में भी संशोधन करना पड़ेगा। इसका हम सदवें अध्याय में सविस्तार वर्णन करेंगे।

2.24. स्थानान्तरण के इस कार्यक्रम में किसी भी प्रकार की उपलब्ध सुविधाओं को बेकार नहीं किया जाएगा। जिन विश्वविद्यालयों तथा संबद्ध कालेजों से यह पूर्व विश्वविद्यालयी कक्षाएँ हटाई जाएंगी, उनमें इनसे उन्मुक्त सुविधाओं को अवर स्नातक कक्षाओं की प्रवेश-संख्या को बढ़ा कर उपयोग में लाया जाएगा। स्कूल अवस्था में नवीन सुविधाओं को बढ़ाने के लिए कहीं अधिक साधनों को लगाना पड़ेगा। अनावर्ती व्यय में भी पर्याप्त वृद्धि होगी क्योंकि अधिकांश माध्यमिक स्कूल बुरी दशा में हैं। आवर्ती व्यय में भी कुल मिलाकर बढ़ोतरी ही होगी, क्योंकि स्कूलों में इन कक्षाओं के स्थानान्तरण के बाद फीस की आय में कुछ गिरावट होगी। किन्तु इन अतिरिक्त साधनों के लगाने का लाभ भी होगा जिससे अधिकांश माध्यमिक कक्षाओं की छात्र संख्या लाभान्वित होगी। समाज को माध्यमिक शिक्षा के पहिले से अधिक सुन्दर परिणाम निकलने से और भी कहीं अधिक लाभ होगा। अतएव इस यार्यक्रम में अपेक्षित व्यय की बृहत् मात्रा को वहन करने में संकोच नहीं करना चाहिए।

2.25. **अवधि को बढ़ाने का कार्यक्रम**—हमारा दूसरा यह प्रस्ताव हैं कि उत्तर प्रदेश और केरल को छोड़ कर शेष समस्त राज्यों में हायर सेकंडरी अवस्था की अवधि में दो वर्ष की वृद्धि कर देनी चाहिए और यह वृद्धि 20 वर्षीय क्रमिक कार्यक्रम के द्वारा दो पारियों में निष्पन्न करनी चाहिए। प्रथम पारी में 5 वर्ष लगेंगे, जिसमें वर्तमान सुविधाओं का पूर्ण उपयोग करना चाहिए और इस महत्वपूर्ण सुधार के लाने की अपेक्षित तैयारी करते रहना चाहिए। इस काल में भी कुछ चुनीदा हायर सेकंडरी स्कूलों को 13वीं कक्षा खोलने की अनुमति देनी चाहिए। कुछ अच्छे-अच्छे हाई स्कूलों को भी, जिनमें अपेक्षित सुविधाएँ उपलब्ध हों, दो वर्ष के हायर सेकंडरी पाठ्यक्रम को प्रारम्भ करने की अनुमति दे देनी चाहिए। यह कार्य मार्गप्रदर्शक परियोजना के रूप में होगा। दूसरी पारी 15 वर्ष की होगी। अवधि को बढ़ाने का कार्यक्रम पांचवीं योजना में शुरू करना चाहिए और आगामी दशक में उसे जोर पकड़ना चाहिए और सातवीं योजना तक उसको पूर्ण हो जाना चाहिए।

2.26. उपर्युक्त कार्यान्यवयन की प्रथम पारी की, जिसमें अवधि को बढ़ाने के वास्तविक कार्यक्रम को पाँचवी योजना तक स्थगित करना निहित है, कुछ व्याख्या अपेक्षित हैं। हस स्थगन की सिफारिश निम्न तीन हेतुओं से की गई :

(1) प्रथम हेतु प्राथमिकता का है। स्कूल अथवा उच्चतर शिक्षा के सम्बन्ध में अग्रिम पांच वर्षों में तीन विकल्प हैं। सामान्य शिक्षा का गुणगत सुधार (जिसमें अध्यापकों के वेतन व योग्यता बढ़ाने पर विशेष बल दिया है); माध्यमिक तथा उच्चतर शिक्षा का व्यावसायिकीकरण; अथवा समान्य शिक्षा की संपूर्ण अवधि में वृद्धि। हमारे विचार में प्रथम दो विकल्प अत्यधिक आवश्यक हैं और इनमें ही समस्त अतिरिक्त साधनों का अगले पांच वर्षों में लय हो जायेगा।

(2) दूसरा कारण यह है कि हम स्कूली शिक्षा के काल को बढ़ाने के पूर्व उपलब्ध काल का ही समुचित रूप से उपयोग करना चाहते हैं। हम इस बात पर जोर देंगे कि माध्यमिक शिक्षा में एक साल की क्षिप्र बढ़ोतरी से वह गुणगत सुधार नहीं हो पाएगा जब तक कि शिक्षा-संस्थाओं में कर्मठता का वातावरण न हो। इसके अतिरिक्त 'काल', प्रयोज्यों (इन पुट) में से केवल **एक** प्रयोज्य वस्तु है जो गुणगत सुधार लाती है। अन्य और अनेक प्रयोज्य हैं जो स्तर को उन्नत करते के लिए अपेक्षित हैं। उदाहरणार्थ, छात्रों का अभिप्रेरण, अध्यापकों की क्षमता, उन्नीत पाठ्यक्रम, शिक्षण और मूल्यांकन की उत्तम विधियाँ, सुधार की हुई पाठ्य-पुस्तकें तथा शिक्षण सामग्री, पर्याप्त साज-सज्जा एवं भवन तथा अन्य भौतिक वस्तुएँ। **इन** समस्त उपादानों के संचित प्रभाव के फलस्वरूप गुणगत सुधार उद्भूत होगा। यदि यह ठीक प्रकार के हैं तो अवधि की वृद्धि निश्चय ही गुणगत सुधार लाएगी किन्तु यदि वे एसे नहीं हैं तो पाठ्यक्रम में एक साल की वृद्धि से केवल एक ही परिणाम निकलेगा कि वर्तमान व्यर्थता में और वृद्धि हो जाएगी।

(3) तीसरा कारण अवधि वृद्धि के निमित्त की जाने वाली अग्रिम तैयारियों से सम्बन्धित है। विरल साधनों के व्यर्थीकरण के अतिरिक्त और कुछ नहीं होगा यदि राज्य सरकारें बिना पर्याप्त तैयारी किए इस कार्यक्रम पर लग जाएँ। इसके लिए अपेक्षित है कि : (क) राज्य

I से X तक की स्कूल कक्षाओं की तुल्यता
1965-66

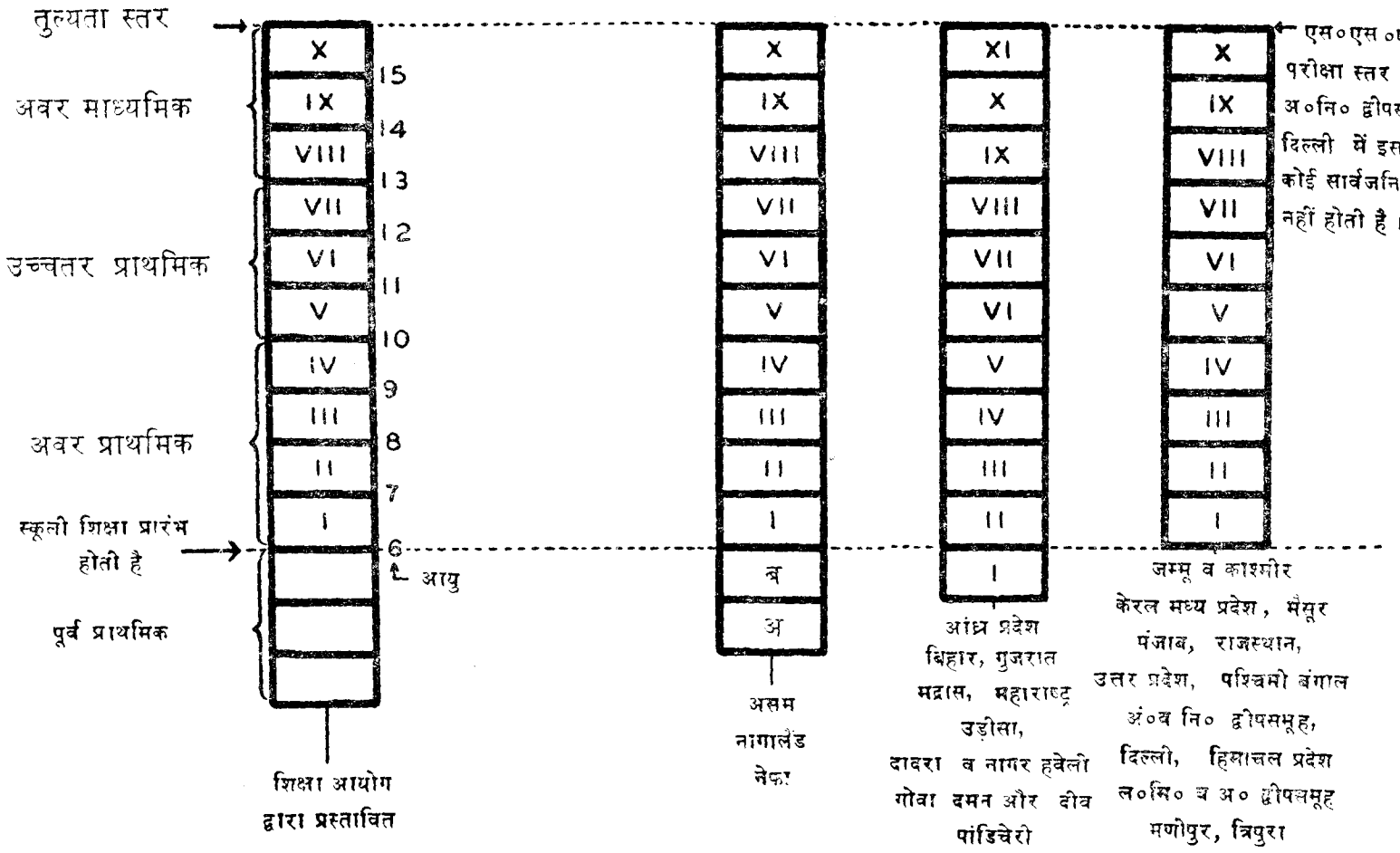

सामान्य शिक्षा के उच्चतर माध्यमिक तथा प्रथम डिग्री पाठ्यक्रमों की तुल्यता
1965-66

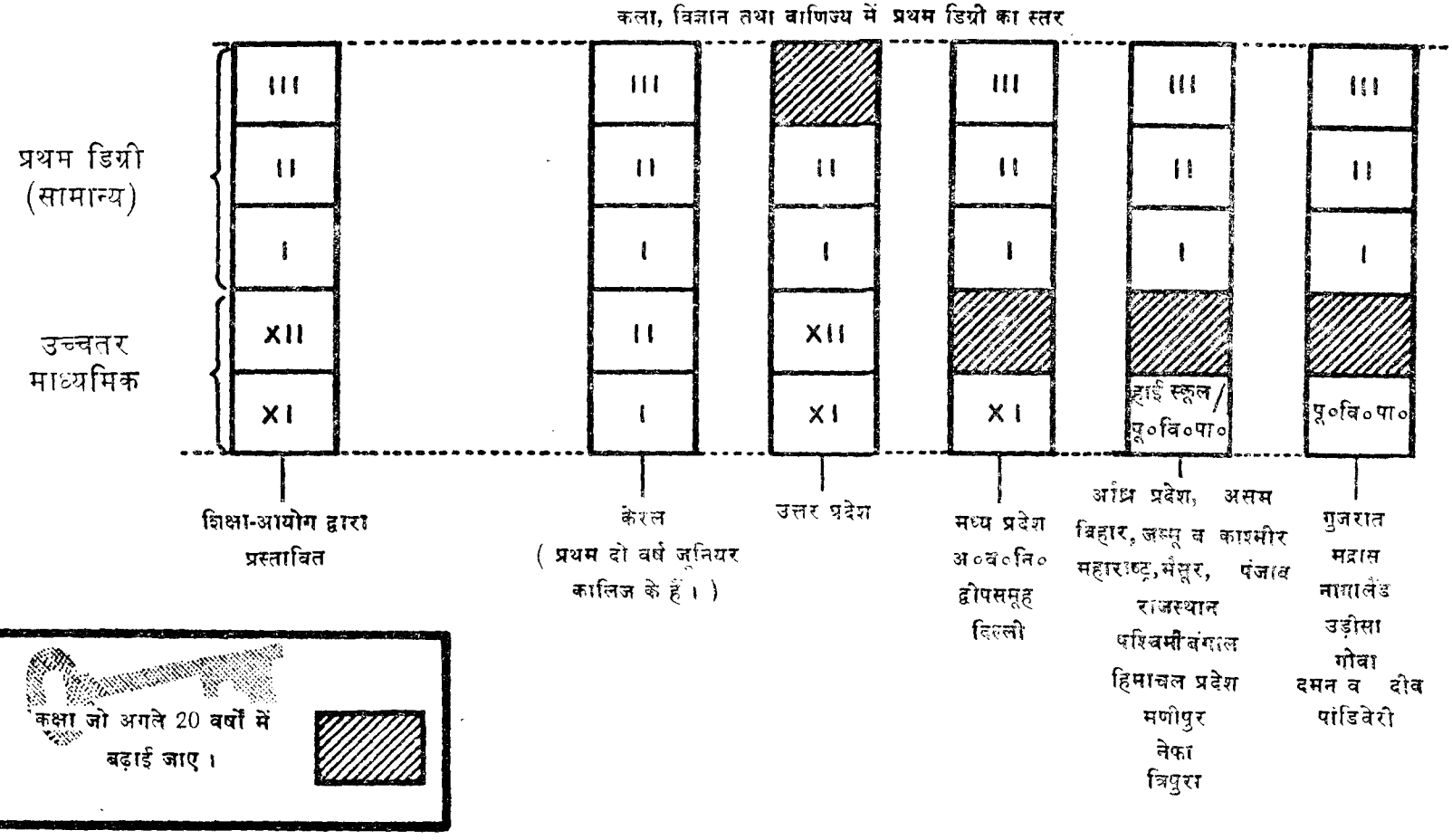

सरकारों को तभी से उत्तर स्नातक शिक्षा के प्रसार और अपेक्षित अध्यापकों को तैयार करने के लिए आवश्यक कदम उठाने चाहिए जब से वह इस प्रस्ताव को अंगीकार करे; (ख) मार्ग प्रदर्शक परियोजना के रूप में कुछ अच्छे माध्यमिक अथवा उच्चतर माध्यमिक स्कूलों को छांट लेना चाहिए और उनके लिए दो वर्ष के अथवा एक वर्ष के पाठ्यक्रम को बढ़ाने की अनुमति दे देनी चाहिए। इन पाठ्क्रमों के पूर्ण होने पर वे उचित समय पर अवर स्नातक कक्षाओं के प्रवेश योग्य हो जाएंगे। यह अमरीका के अग्रिम स्थापन कार्यक्रम (एडवांस प्लेसमेंट प्रोग्राम) के समतुल्य होगा। हमारा विचार है कि उन अनेक विद्यार्थियों के लिए भी यह पर्याप्त सहायक होगा जो बजाय अकस्मात् नवीन और अपरिचित वातावरण में जाने के अपने स्कूल के अध्यापकों तथा अपने स्कूल के वातावरण में और कुछ काल बिताना चाहते हैं।

2.27. इस सम्बन्ध में यह ज्ञात करना भी रुचिकर होगा कि यूनाइटेड किंगडम में प्रथम डिग्री पाठ्यक्रम की अवधि को बढ़ाने का ऐसा ही सुझाव समुचित विचार के उपरान्त अमान्य ठहराया गया और उसका आधार यह था कि छात्र दीर्घावकाशों का समुचित उपयोग नहीं करते। यह इस मत को और भी पुष्ट करता है कि विकासशील देशों के लिए उचित नीति यह होगी कि अवधि को तभी बढ़ायें जबकि उपलब्ध समय के उपयोगीकरण के निमित्त सभी कदम उठाए जा चुके हों। इसी हेतु हमने अवधि बढ़ाने को पाँचवीं योजना तक स्थगित करने की सिफ़ारिश की है। किन्तु जैसे ही उपयोगीकरण में सुधार हो जाए और आवश्यक तैयारियाँ हो जाएं तो यह कार्यक्रम बड़े पैमाने पर शुरू कर देना चाहिए और 1985 तक पूर्ण कर देना चाहिए।

2.28. **उच्चतर माध्यमिक अवस्था पर व्यावसायिकीकरण**—उच्चतर माध्यमिक शिक्षा के व्यवसायिकीकरण पर हमको विशेषतः जोर देना चाहिए और व्यावसायिक पाठ्यक्रमों का इतना विस्तार अवश्य होना चाहिए कि उच्चतर माध्यमिक अवस्था की छात्र संख्या के आधे भाग को समाविष्ट कर सके। एक से तीन वर्ष के शिक्षांत पाठ्यक्रम रखने चाहिए। उनमें प्राथमिक तथा पूर्व-प्राथमिक स्कूलों के अध्यापकों के प्रशिक्षण पाठ्यक्रम, औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थाओं द्वारा संचालित विविध व्यवसायों के पाठक्रयम, जिनके लिए कक्षा दस का उत्तीर्ण होना न्यूनतम योग्यता मानी जाती है, कृषि तथा उद्योग के मध्यवर्ग के कर्मचारियों के पाठ्यक्रम, समचिकित्सीय स्वास्थ्य कर्मचारियों के पाठ्यक्रम; लिपक कर्म त गृहविज्ञान के पाठ्यक्रम भी सम्मिलित होंगे। ये ही वे पाठ्यक्रम हैं जो माध्यमिक शिक्षा को मुख्यतः अंतिम बनाते हैं। इस समस्या पर अन्यत्र सविस्तार विवेचन किया गया है।[1]

2.29. उपसंहार करते हुए हम सिफारिश करते हैं कि :

(1) हायर सेकेंडरी शिक्षा की अवस्था में 2 वर्ष की वृद्धि कर दी जाए और यह शिक्षा एक मात्र स्कूलों में ही दी जाए।

(2) 20 वर्ष (1965-85) के एक क्रमिक कार्यक्रम द्वारा इस सुधार को क्रियान्वित करने के लिए कदम उठाने चाहिए।

(3) इस दिशा में हमारा पहिला कदम यह होगा कि अग्रिम दस वर्षों के अंदर उच्च प्राथमिकता के आधार पर कालेजों से पूर्व विश्वविद्यालयी पाठ्क्रमों को हटाकर स्कूलों में स्थानान्तरित कर देना चाहिए।

(4) इसके समकाल ही चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में उपलब्धि अवधि का यथासंभव श्रेष्ठतम उपयोग करें, उत्तर-स्तातक अवस्था का सुधार और प्रसार करके अध्यापकों को तैयार करें और कुछ चुनींदा माध्यमिक स्कूलों में 2 वर्ष के उच्चतर माध्यमिक पाठ्यक्रम की मार्ग प्रदर्शक परियोजना को क्रियान्वित करने का यत्न करें।

(5) पांचवीं पंचवर्षीय योजना के प्रारंभ के साथ-साथ कार्यक्रम का भी एक बड़े पैमाने पर आरम्भ कर देना चाहिए और सातवीं योजना के अंतिम वर्ष (1985-86) तक इसको पूर्ण कर देना चाहिए।

(6) उच्चतर माध्यमिक अवस्था पर विभिन्न प्रकार के व्यावसायिक पाठ्यक्रमों का प्रारम्भ से ही समावेश करने का प्रबन्ध करना चाहिए। ये पाठ्यक्रम एक से तीन वर्ष की अवधि के हो सकते हैं और वे नवयुवकों को जीविकोपार्जन के लिए तैयार करेंगे।

यहां पर प्रस्तावित परिवर्तन पृष्ठ 37 पर दिए गये चार्ट में प्रदर्शित किए गए हैं।

1. अध्याय सात, चौदह और पन्द्रह

विश्वविद्यालय स्तर पर पुनर्गठन

2.30. 1947 के पूर्व देश के समस्त भागों में शिक्षा का स्वरूप प्रायः एक समान ही था। प्रथम डिग्री का कला तथा विज्ञान का पाठ्यक्रम दो वर्ष का ही था। इसके उपरान्त दो वर्ष का द्वितीय डिग्री का पाठ्यक्रम था। किन्तु स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् अनेक परिवर्तन लाए गए। उत्तर प्रदेश और बम्बई विश्वविद्यालय को छोड़ कर, जहां अब भी इंटरमीडिएट परीक्षा के उपरान्त दो वर्ष के डिग्री पाठ्यक्रम का अनुसरण किया जा रहा है, शेष सभी राज्यों के विश्वविद्यालयों ने कला, विज्ञान तथा वाणिज्य के प्रथम डिग्री पाठ्यक्रम को बढ़ा कर तीन साल का कर दिया है। एक दो विश्वविद्यालयों ने कतिपय विषयों में चार वर्ष का आनर्स पाठ्यक्रम का भी प्रयोग किया है। पुनश्च, कला तथा विज्ञान के पाठ्यक्रमों की अपेक्षा वृत्तिक पाठ्यक्रमों की अवधि प्रायः अधिक है। कृषि तथा इंजीनियरी पाठ्यक्रम पूर्व विश्वविद्यालय पाठ्यक्रम के बाद क्रमशः 4, 5, वर्ष के होते हैं और चिकित्सा पाठ्यक्रम इससे भी लम्बे होते हैं।

2.31. **पुनर्गठन के प्रस्ताव**—चूंकि उच्चतर शिक्षा में प्रगति प्रयोग-स्वातंत्र्य के ही द्वारा होती है अतः इस विभिन्नता में भी कोई आपत्ति नहीं है। उच्चतर शिक्षा की मुख्य आलोचना पुनर्गठन के स्वरूप पर इतनी नहीं होती है जितनी कि भारतीय विश्वविद्यालयों द्वारा प्रदत्त कला, विज्ञान तथा वाणिज्य की अवर स्तर की डिग्रियां देने में। इस अवर स्तर के कारणों का विवेचन बाद के परिच्छेद में किया है। हम तो इस समय विश्वविद्यालय स्तर पर अपेक्षित ढांचे के पुनर्गठन के प्रश्न से ही संबंधित है। इस संबंध में हमारे प्रस्ताव निम्नलिखित है :

(1) प्रथम डिग्री पाठ्यक्रम की अवधि तीन वर्ष से कम नहीं होनी चाहिए। इसके अतिरिक्त उच्चतर शिक्षा के पाठ्यक्रमों में अवधि की कोई मस्ती नहीं होनी चाहिए। यह एक विश्वविद्यालय से दूसरे विश्वविद्यालय में भिन्न हो सकती है और एक ही विश्वविद्यालय में विभिन्न विषयों में भी भिन्न-भिन्न हो सकती है। द्वितीय डिग्री का पाठ्यक्रम भी 2 या 3 वर्ष का हो सकता है।

(2) कुछ विश्वविद्यालयों में कतिपय विषयों में एम० ए०/एम० एस-सी०/एम० काम० के त्रिवर्षीय पाठ्यक्रम रखने वाले उन्नत 'स्नातक स्कूल' होने चाहिए। सुगमता के लिए हम इन्हें आनर्स पाठ्यक्रम का नाम दे सकते हैं अथवा और कोई उपयुक्त नाम। यदि इनको सुसंगठित किया जाए और छात्रों के चुनाव में सावधानी बरतें तो शिक्षण फैकल्टी तथा उच्च शोधकार्य के लिए अपेक्षित कार्मिक मिल सकते हैं।

(3) कुछ चुने हुए विषयों में 4 वर्ष के विशिष्ट प्रथम डिग्री पाठ्यक्रमों का व्यवस्था का प्रारम्भ होना चाहिए। इन पाठ्यक्रमों का पहला साल वैसा ही होगा जैसा कि त्रिवर्षीय डिग्री पाठ्यक्रम की पहली साल। किन्तु पहली साल के अंत में अग्रिम त्रिवर्षीय विशिष्ट पाठ्यक्रम के लिए छात्रों का चुनाव होगा जिनको पाठ्यक्रम की समाप्ति पर विषय की प्रथम (विशिष्ट) डिग्री प्रदान की जायेगी। इस प्रयोग को सर्वप्रथम केवल विश्वविद्यालय के विभागों में तथा केवल उन्हीं विषयों में जिनमें अध्यापक और अन्य सुविधायें उपलब्ध हों, करना चाहिए। प्राप्त अनुभव के आधार पर इस प्रयोग को पुनः अन्य विषयों पर तथा उत्तर स्नातक शिक्षा कार्य करने वाले अच्छे प्रकार के संबंद्ध कालेजों में भी किया जा सकता है।

(4) उत्तर प्रदेश में उक्त प्रस्ताव में संशोधन करना पड़ेगा जहां की आसन्न समस्या कला, विज्ञान तथा वाणिज्य के प्रथम डिग्री पाठ्यक्रम में अवधि को बढ़ा कर तीन साल करना है। चूंकि इसमें अत्यधिक आर्थिक तथा कार्मिक समस्याएँ निहित हैं अतः इस कार्यक्रम को 15 से 20 साल तक प्रसृत करना हैं। स्नातक स्कूलों को तथा कुछ चुने हुए विश्वविद्यालयों को कुछ चुने हुए विषयों में चुनौती देने वाले त्रिवर्षीय पाठ्यक्रम खोल कर इसका श्रीगणेश करना चाहिए। जैसे-जैसे पुनः अध्यापक और धन राशि उपलब्ध होती जाए वैसे-वैसे अन्य अच्छे संबंध कालेजों में तथा इतर विषयों में भी कार्यक्रम को लागू कर देना चाहिए।

(5) इन नवीन लम्बे पाठ्यक्रम तथा वर्तमान कम अवधि वाले पाठ्यक्रमों के बीच उपयुक्त सेतु बनाने चाहिए।

(6) इन लम्बे तथा भारी पाठ्यक्रमों का परिशीलन

करने वाले विद्यार्थियों को कुछ प्रोत्साहन[1] भी देना चाहिए। उदाहरण के तौर पर प्रथम तथा द्वितीय डिग्री के इन लम्बे पाठ्यक्रमों के करने वालों के लिए छात्रवृत्तियों की उदार व्यवस्था होनी चाहिए। इस पाठ्यक्रम के करने वाले छात्र प्राथमिक वेतनमान में अग्रिम वार्षिक वृद्धियों के अधिकारी हों। भर्ती में उनको वरीयता प्रदान करनी चाहिए। जैसे ही अध्यापक पर्याप्त संख्या में मिलने लगें, वैसे ही अध्यापकों की भर्ती इन्हीं डिग्रियों के प्राप्तिकर्त्ताओं तक ही सीमित कर देनी चाहिए। किन्तु इस बात पर भली भांति जोर देना चाहिए कि इन पाठ्यक्रमों में प्रवेश के लिए चुनाव सख्त होना चाहिए।

2.32. जिस प्रकार हमने माध्यमिक अवस्था पर व्यावसायिकीकरण पर जोर दिया था वैसे ही विश्वविद्यालय स्तर पर भी वृत्तिक शिक्षा पर जोर देना चाहते हैं। भारतीय पृष्ठ-भूमि में यह और अत्यधिक आवश्यक है, क्योंकि यहां व्यक्तियों को मुख्यतः सफेद कालर वाली लिपिक-सेवा के लिए ही प्रशिक्षित करना उच्च शिक्षा का ध्येय माना जाता था। इस विषय पर हमारे प्रस्तावों पर अन्यत्र विवेचन किया गया है।[2]

सुविधाओं का उपयोगीकरण

2.33. उपर्युक्त संरचना और अवधिगत परिवर्तनों का मुख्य ध्येय स्तरों को उठाना है। किन्तु इस प्रसंग में यह ध्यान रखना अनिवार्य है कि :

— संरचना तथा अवधि का स्तरों के सुधार में गौण रूप से हाथ होता है।

— संरचना तथा अवधिगत प्रस्तावित परिवर्तनों का प्रभाव गुणता पर बहुत मंद पड़ेगा क्योंकि उनका पूर्ण क्रियान्वयन 20 वर्ष तक प्रसृत किया गया है।

— वर्तमान शिक्षा प्रणाली की सबसे बड़ी कमजोरी उस का ढांचा नहीं है बल्कि उसकी निश्शक्तता। हम इस वर्तमान प्रणाली से लगाए गए साधनों की तुलना में अपेक्षाकृत बहुत कम उपलब्धि कर पाते हैं। संरचना के पुनर्गठन तथा समय की वृद्धि से इस निश्शक्तता की चिकित्सा नहीं हो सकती। अतएव यह आवश्यक है कि उपलब्ध सुविधाओं के प्रगाढ़ उपयोगीकरण तथा समयातिरिक्त प्रयोज्य वस्तुओं की मात्रा तथा गुणता में सुधार विशेषतः अध्यापकों के सुधार के कार्यक्रमों संबंधी हमारी शैक्षिक पुनर्निर्माण की योजनाओं पर अधिक बल दिया जाए। इनके तुरत तथा दूरगामी परिणाम निकलेंगे।

2.34. यह प्रायः सभी मानेंगे कि हमारी शिक्षा प्रणाली की सुविधाओं का जो कि अपेक्षित से न्यून है, भली-भांति उपयोग नहीं हो रहा है। वर्तमान परिस्थितियों में भी हम स्कूली दिवस को बढ़ाकर, कार्यदिवसों की संख्या में वृद्धि करके, लम्बे अवकाशों का पूर्ण उपयोग करके तथा सामान्यतः निरन्तर कठिन परिश्रम करने का वातावरण बनाकर, स्तरों के सुधार करने की दिशा में बहुत कुछ कर सकते हैं। द्रुत राष्ट्रीय विकास की कुञ्जी समर्पण और कठिन परिश्रम ही हैं। शैक्षिक संस्थाओं को इस मामले में आगे आना चाहिए और सर्वप्रथम शिक्षा प्रणाली के लिए अपेक्षित वातावरण बनाएं।

2.35. **काम करने के तथा पढ़ाई के दिन**—इस समय प्रत्येक स्तर पर शैक्षिक संस्थाओं में काम करने के कुल दिवसों व घंटों की निर्धारित संख्या अपर्याप्त है। इससे भी बुरी बात यह है कि इन दिवसों में से भी काफी दिन अनेक कारणों से शिक्षा कार्य में नहीं लगाए जाते इसका परिणाम यह निकलता है कि पढ़ाई के उन दिनों की संख्या जिनमें पूर्णतया पढ़ाई का ही काम होता हो, बहुत ही कम रह जाती है। देश के विभिन्न भागों में स्कूलों और कालेजों में कार्य-दिवसों व घंटों की संख्या (जो राज्य शिक्षा विभागों तथा विश्वविद्यालयों द्वारा निर्धारित थे)[3] का पता चलाने के लिए आयोग द्वारा कृत अध्ययन के ब्योरे अन्यत्र दिए हुए हैं। इससे पता चलता है कि वर्ष के कुल कार्य-दिवसों की संख्या में एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में बड़ा अन्तर है। ये स्कूल स्तर पर 172 से 309 तक हैं और विश्वविद्यालय स्तर पर 120 से 240 हैं। स्कूली वर्ष से छुट्टियों की संख्या में और भी बड़ा अन्तर है। ये स्कूल स्तर पर 20 से 75 दिनों की तथा विश्वविद्यालय स्तर पर 4 से 49 दिनों की है। इसी प्रकार स्कूल स्तर पर दीर्घावकाश 36 से 84 दिनों का और विश्वविद्यालय स्तर पर 62 से 137 दिन का होता है। परीक्षा लेने में प्रयुक्त दिनों की संख्या (जिसमें परीक्षा की तैयारी की छुट्ठी भी शामिल है) 10 से 77 दिन है और

---

1. कुछ समय पहिले उत्तर प्रदेश में तीन साल का आनर्स पाठ्यक्रम भी विश्वविद्यालयों में था किन्तु यह सफल नहीं हुआ। इसके अनेक कारण थे, जिनमें एक यह भी था कि पास कोर्स की अवधि 2 वर्ष की थी और उत्तर स्नातक कक्षाओं में दोनों ही, अर्थात्, आनर्स तथा पास कोर्स वाले प्रवेश पाते थे।
2. अध्याय पाँच, बारह, चौदह और पन्द्रह।
3. अनुपूरक खंड I, भाग 5 में स्कूलों व कालेजों में काम करने के दिवस व घंटे विषय पर एक लेख देखिए।

संस्थापक दिवस तथा समाजों के वार्षिक उत्सवों के मनाने के कारण 40 से 60 दिनों तक की क्षति होती पाई गई है। ये तथ्य हमारी शिक्षा प्रणाली की कुशलता पर एक दुःखद दोषारोपण करते है तथा हमारी जैसी विकासशील अर्थ-व्यवस्था में यह व्यापक अल्प उपयोगीकरण विरल साधनों का अक्षम्य व्यर्थीकरण नहीं है तो क्या है। अतएव, हमारी सिफारिश है कि वर्ष में पढ़ाई के दिनों की संख्या स्कूलों में 234 (या 36 सप्ताह) तथा कालेजों (और पूर्व-प्राथमिक स्कूलों में) 216 (या 30 सप्ताह) कर दी जाए।

2.36. **दीर्घावकाशों का उपयोगीकरण**—इसके अतिरिक्त यह ज्ञात करना भी उपयोगी होगा कि यह सिफारिश शिक्षा वर्षक्रम के रूप में किस प्रकार प्रतिफलित होती है। इस हेतु हम नीचे एक नमूने का वर्षक्रम दे रहे हैं :

(1) स्कूलों के लिए लगभग निम्न प्रकार का वर्ष-क्रम होगा :

जुलाई 15—प्रारम्भ दिवस

(अध्यापक एक सप्ताह पूर्व स्कूल आना प्रारम्भ करेंगे जिससे वे प्रवेश व्यवस्था कर सकें तथा आगामी वर्ष की योजनाएँ बना सकें)।

15 जुलाई से 30 नवम्बर—प्रथम कार्य-सत्र

(प्रवेश कार्य में एक सप्ताह से अधिक न लगाया जाए)।

1 दिसम्बर से 15 दिसम्बर—दो सप्ताह का प्रथम दीर्घावकाश सत्र

16 दिसम्बर से 30 मई—द्वितीय कार्य सत्र

अध्यापन कार्य 15 अप्रैल तक समाप्त हो जाना चाहिए।

16 अप्रैल से 30 अप्रैल—परीक्षा की तैयारी के लिए निर्दिष्ट अध्ययन।

वार्षिक परीक्षा मई के प्रथम सप्ताह में हो और यह 7 मई तक समाप्त हो जानी चाहिए।

(यदि आवश्यक हो तो तैयारी के काल में कमी कर दी जाए)

मई का द्वितीय सप्ताह—छात्रों को एक सप्ताह का अवकाश जिसमें अध्यापक परीक्षा की कापियों को जांचें।

15 मई—परीक्षा परिणामों की घोषणा

16 मई से 30 मई—नव वर्ष के लिए मार्गप्रदर्शी कक्षाएँ

1 जून से 14 जुलाई—6 सप्ताह का द्वितीय दीर्घावकाश सत्र।

(उन छात्रों के लिए जो परीक्षा में अनुत्तीर्ण हो गए हों, दीर्घावकाश सत्र में विशिष्ट रूप से संशिक्षण कक्षाएँ खोली जाएं। जुलाई के द्वितीय सप्ताह में पुनः परीक्षा ली जाए जिसमें उत्तीर्ण छात्रों को अगली कक्षा में कर दिया जाए)

टिप्पणी—कुछ स्पष्टीकरण अपेक्षित है। दीर्घावकाश की विचारधारा को धर्म निरपेक्ष करना चाहिए, और इसे धार्मिक उत्सवों, जैसे दिवाली, बड़े दिन, पूजा आदि से विलग करना चाहिए। इनके लिए वर्ष में अनुज्ञात 10 दिनों की छुट्टियों में से छुट्टी की व्यवस्था करना चाहिए (अथवा 3-7 दिन की और बढ़ोतरी की जा सकती है जिसकी प्रथम सत्र के अव-काश में से कटौती की जा सकती है)।

कक्षा 10 व 12 में सम्मिलित होने वाले छात्रों के लिए समय-सारणी कुछ भिन्न होगी जो कि नीचे दी गयी है :

1 जुलाई से 15 नवम्बर—प्रथम कार्य-सत्र।

15 नवम्बर से 22 नवम्बर (एक सप्ताह)—प्रथम अवकाश-सत्र।

23 नवम्बर से 31 जनवरी (शिक्षण काल)—द्वितीय कार्य-सत्र।

1 फरवरी से 28 फरवरी—निर्दिष्ट तैयारी।

1 मार्च से 15 मार्च—परीक्षाएँ (15 फरवरी से 28 फरवरी तक भी रखी जा सकती है)।

30 मई से 15 जून—परीक्षा-फल की घोषणा। परीक्षा फल की घोषणा में 1·5 मास से 3·5 मास की अवधि दी जाती है। किन्तु इस अवधि को घटाने की नितान्त आवश्यकता है और यह घटा कर 2·5 मास (15 मार्च से 30 मई) से अधिक की नहीं होनी चाहिए इस बात को ध्यान में रख कर अपेक्षित कदम उठाने चाहिए।

(2) कॉलेजों और विश्वविद्यालयों के लिए समय-सारणी निम्न प्रकार की होगी :—

15 जुलाई से 30 नवम्बर—प्रथम कार्यसत्र।

1 दिसम्बर से 15 दिसम्बर—प्रथम अवकाश सत्र (2 सप्ताह)।

16 दिसम्बर से 30 अप्रैल—द्वितीय कार्य-सत्र ।

(परीक्षाएँ प्रथम अप्रैल की प्रारम्भ हों और 30 अप्रैल तक समाप्त हो जाए) ।

1 मई से 14 जुलाई—द्वितीय अवकाश-सत्र (10 सप्ताह) ।

(समस्त परीक्षाफल 30 मई तक घोषित कर दिने आए। समय कम लगने के लिए आई० आई० टी० की पद्धति अपनाई जाये अर्थात् समस्त परीक्षकों को एक केन्द्रीय स्थान पर आमंत्रित किया जाए) ।

2.37. उपर्युक्त वर्षक्रम केवल उदाहरण के रूप में है किन्तु इसको अंतिम रूप देने के लिए संबंधित अभिकरणों से परामर्श लेना होगा । हमारे विचार में यह कार्य शिक्षा मंत्रालय को राज्य-सरकारों के साथ परामर्श करके तथा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को विश्वविद्यालयों के साथ परामर्श करके करना चाहिए । हम यह अनुभव करते हैं कि जलवायु की इतनी अधिक विभिन्नता है कि स्कूल वर्ष-क्रम में एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में पर्याप्त अंतर होगा, किन्तु चाहे कोई भी वर्षक्रम अपनाया जाए, पढ़ाई के दिन स्कूलों में 234 से कम तथा कॉलेजों में 216 से कम नहीं होने चाहिए । निम्नलिखित दो सुधार करने पर यह संभव हो सकेगा :

(1) प्रथम तो अन्य छुट्टियों को, जो 35 से किसी भी हालत में कम नहीं होतीं बल्कि कुछ अधिक ही होती है, कम कर देना चाहिए । यह सार्वजनिक अनुभव है कि इनसे कोई उपयोगी काम नहीं होता बल्कि उल्टे शिक्षा संस्थाओं के काम में विघ्न उपस्थित करती हैं । हमारी सिफारिश है कि इनमें एकदम कटौती करके 10 कर दिया जाए (जिनमें 3 दिन अप्रत्याशित घटनाओं के लिए भी हैं) । हमारे मत में किसी भी धार्मिक अवकाश के दिन शिक्षा संस्था के बंद करने की जरूरत नहीं हैं और न भारतीय महापुरुषों के जन्म व मरण दिवस पर इन्हें बंद करना जरूरी है; इस अवसर को राष्ट्रीय विकास कार्य में कठिन परिश्रम करके उपयोग में लाना चाहिए ।

(2) द्वितीय समस्त कारणों से, जितमें परीक्षा भी सम्मिलित है पढ़ाई के दिनों में कटौती की एक अधिकतम संख्या सुनिश्चित होनी चाहिए जो स्कूलों में 21 तथा कालेजों में 27 होनी चाहिए ।

2.38. हमारे विचार में समस्त भारतवर्ष में एक दिन ही शिक्षा वर्ष का प्रारंभ होना चाहिए । शिक्षाशास्त्रियों से चर्चा करने के उपरांत हम यह अनुभव करते हैं कि प्रारंभ-दिवस नवम्बर मास में रखा जाए तो ऐसा करना संभव होगा । हम सिफारिश करते हैं कि शिक्षा मंत्रालय तथा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को इस विचारधारा का अनुवर्तन करना चाहिए ।

2.39. **दीर्घ अवकाशों का उपयोगीकरण**—इसके अतिरिक्त इस बात के लिए भी कदम उठाने चाहिए कि दीर्घ अवकाशों का समुचित उपयोग हो क्योंकि ये अधिकांश निष्फल बिताए जाते हैं । समुन्नत देशों में जहां, दीर्घविकाशों का हमारे यहां की अपेक्षा बहुत अच्छा उपयोग होता है, यह अनुभूत होने लगा है कि इनको कहीं और अधिक अच्छे रूप में उपयोग में लाया जा सकता है, तो हमारे जैसे देश की इतनी हैसियत कब है कि इन अवकाशों को व्यर्थ बिताया जाए । अतः हम यह अधिक अच्छा समझेंगे कि यदि उन्हें दीर्घविकाश के बजाय दीर्घविकाश-सत्र कहा जाये और इनके समुचित उपयोग के लिए समस्त आवश्यक कदम उठाए जाएँ । यही शोधकार्य में वस्तुतः अभिरुचि रखने वाले अध्यापक भी करते हैं । वे इन अवकाशों को इस प्रकार के गहन अध्ययन में लगाते हैं जिस प्रकार का अध्ययन वे सत्र-काल में नहीं कर सकते । इसी प्रकार की पद्धति व्यापक रूप से छात्रों तथा अध्यापकों द्वारा अपनाई जाए ।

2.40. यह बिल्कुल संभव है कि छात्रों के लिए रुचिकर तथा प्रतिद्वंद्विता वाले कार्यक्रमों को आयोजित किया जाये, जैसे कि :

— समाज सेवा शिविरों, एन० सी० सी० तथा कार्यानुभव में सम्मिलित होना;

— अनुपालनार्थ अर्जन;

— आगामी वर्ष के लिए स्कूल तथा कालेज पुस्तिकाओं तथा प्रयोगशालाओं की सहायता से सामान्य अध्ययन;

— व्यायाम तथा मनोरंजन के लिए लम्बी पदयात्रा, भ्रमण, पर्यटन, विशेष शौक;

— राष्ट्रनिर्माण कार्यों, में जैसे साक्षरता आन्दोलन, में सम्मिलित होना ।

इन कार्यक्रमों के लिए किसी एक अनुपात में अध्यापकों की सहायता उपलब्ध करना अनिवार्य होगा । यह या तो अतिरिक्त स्टाफ के रखने से अथवा वर्तमान स्टाफ को विहित दर से मानदेय देकर अथवा उनको अवकाश के उन

दिनों के बदले जो उन्होंने इस कार्य में लगाए हों, एवजी छुट्टी देने की व्यवस्था हो ।

2.41. **स्कूली घंटे**—केवल पढ़ाई के दिनों की संख्या बढ़ाना ही पर्याप्त नहीं होगा बल्कि उत्तम फल प्राप्त करने के लिए यह भी अनिवार्य हैं कि कार्य-दिवस के समय को भी निम्नलिखित प्रकार से बढ़ाएं :

(1) स्कूल-स्तर पर पढ़ाने के घंटे प्रतिदिन पूर्व प्राथमिक अवस्था में 4 से लेकर उच्च माध्यमिक अवस्था सें 6 तक हों । इस समय में सहपाठ्यक्रमी किवाकलापों का समय सम्मिलित नहीं है किन्तु वह समय अवश्य सम्मिलित है जिसमें छात्र स्वयं (जैसे पुस्तकालय के घंटे में) कार्य करते है, अथवा जिसमें निर्दिष्ट अध्ययन करते हैं । एक शिक्षा-वर्ष में पढ़ाने के घंटे पूर्व प्राथमिक अवस्था में लगभग 900 होने चाहिए तथा उच्चतर प्राथमिक अवस्था तथा माध्यमिक अवस्था में ये 1,000 से कम नहीं होने चाहिए और यदि स्थिति अनुकूल हो तो ये वढ़ा कर 1,100 अथवा 1,200 भी किए जा सकते हैं ।

(2) विश्वविद्यालय स्तर पर वृत्तिक पाठ्यक्रमों (इंजीनियरी, चिकित्सा तथा कृषि एवं विज्ञान) के पढ़ाई के घंटे वैसे ही अधिक होते हैं । केवल मानविकी पाठ्यक्रमों के छात्र ही पर्याप्त परिश्रम करते नहीं प्रतीत होते । इस परिस्थिति की सबसे बड़ी कमी यह है कि छात्रों को स्वयं अध्ययन करने की पर्याप्त सुविधा नहीं हैं । हमारा विश्वास हैं कि इस अवस्था में प्रति सप्ताह 15 से 20 तक संपर्क-घंटे होने चाहिए । किन्तु इसमें छात्रों को इससे दूने समय स्वाध्यान में लगना पड़ेगा, जिसका अर्थ यह होगा कि उसका कुल कार्यभार 50 से 60 घंटे प्रति सप्ताह होगा । जैसे-जैसे विद्यार्थी ऊंची कक्षा में चढ़ता जाएगा वैसे-वैसे उसके संपर्क-घंटे घटते जाएंगे और स्वाध्याय के घंटे बढ़ते जाएंगे । आजकल छात्र और अध्यापक केवल लेक्चर के समय एकत्रित होते हैं किन्तु यहां कोई व्यक्तिगत संपर्क मुश्किल से ही हो सकता हैं । इसके अतिरिक्त और कभी मिलने का कोई विधान नहीं है । अतएव अत्यन्त आवश्यक सुधार-कार्य-दिवस को लेक्चरों की संख्या के रूप में बढ़ाना नहीं हैं बल्कि इनको उल्टे कम करना और उनकी स्वाध्याय की सुविधाओं को बढ़ाना और यह सुनिश्चित करना है कि वे संतोषजनक रूप से काम करते हैं । इसे संभव करने के लिए हमारी शिक्षा-संस्थाओं में कई एक अतिरिक्त सुविधाओं की कमी की पूर्त्ति करनी होगी । एक सुपालित विस्तृत पुस्तकालय की, जिसमें पर्याप्त संख्या में अध्ययन-पीठिकाओं की व्यवस्था हो, आवश्यकता है । अध्यापकों के पास अपने पृथक कमरे हों और यदि इनकी कमी हो तो पुस्तकालय में उनकी निजी पृथक् डेस्क हो । स्वच्छ केन्टीनों की भी व्यवस्था हो जिसमें छात्रों तथा अध्यापकों को उचित मूल्य पर पर्याप्त भोजन मिले । मुख्यतः आर्थिक कठिनाइयों के कारण यह सुधार सब संस्थाओं में नहीं प्रचलित किया जा सकता । लेकिन हम यह अनुभव करते है कि इसका श्री गणेश जहां कहीं संभव हो कर देना चाहिए और जैसे जैसे साधन उपलब्ध होते जाएं प्राथमिकता के आधार पर इस कार्यक्रम का प्रसार करना चाहिए ।

2.42. **संस्थागत सुविधाओं का पर्याप्त उपयोगीकरण**—समस्या के एक और पहलू पर ध्यान देने की जरूरत है । चूंकि शैक्षिक संस्थाओं के भौतिक रूप की व्यवस्था और उसके अनुरक्षण में बहुत धन के व्यय करने की आवश्यकता होती है अतः इनका प्रतिदिन अधिकतम समय तक तथा वर्ष के समस्त दिनों में समुचित प्रशासनिक व्यवस्था के द्वारा उपयोग करें । अध्यापक तथा छात्र, जैसा कि ऊपर कहा गया हैं, अपनी अपनी निजी कार्य वेलाएं तथा अवकाश रखें । पुस्तकालय, कर्मशालाएं, प्रयोगशालाएं शिल्पशालाएं पूरे साल खुलें और यदि अधिक नहीं तो न्यूनतम घटे प्रतिदिन के हिसाव से उनका उपयोग करें । अवकाशकालीन विशेष कार्यक्रमों की संस्थागत सुविधाओं की समाज के उपयोग के लिए व्यवस्था होनी चाहिए । जैसे प्रौढ़-शिक्षा कार्यक्रम, दिवस छात्रों के लिए अस्थायी छात्रावास का कार्यक्रम, मेधावी छात्रों के लिए उन्नति कार्यक्रम एवं पिछड़े छात्रों के लिए सहायक कार्यक्रम । यहां वर्ष भर के लिए उपर्युक्त समस्त कार्यक्रमों की सूची देना आवश्यक नहीं हैं । यदि यह समझदारी पैदा हो जाएं कि शिक्षा-संस्थाएं ज्ञान के मंदिर हैं जो कभी बंद नहीं होने चाहिए और यदि सतत कार्य करने का वातावरण बन जाए तो अध्यापक, छात्र तथा स्थानीय संघटन अपने आप स्कूली सुविधाओं के महत्तम उपयोग की अनेक विधियां निकाल लेंगे । जब शैक्षिक सुनिधाओं का प्रसार करना कठिन हो और नर्तमान साधनों का भी समुचित उपयोम न होता हो तो इस प्रकार के कार्यक्रमों की ओर ध्यान देना नितान्त आवश्यक है ।

गतिशील और विकासशील स्तर

2.43. स्वातंत्र्योपरांत शिक्षा के विकास के विरुद्ध यह सार्वजनिक आलोचना की जाती है कि इस काल में शिक्षा के स्तरों में पतन हुआ है और इसके समर्थन में दो मुख्य उदाहरण दिए जाते हैं, प्रथम, सामान्य शिक्षा की अधःस्तरी संस्थाओं की संख्या में वृद्धि, तथा द्वितीय, अधःस्तरी ज्ञानार्जन व गुणार्जन किए हुए छात्रों की संख्या में वृद्धि। इनमें प्रथम अधिक चिन्ताजनक है, जो द्वितीय का प्रायः कारण भी है। हम यह स्वीकार करते हैं कि इस आलोचना में पर्याप्त बल है और हम इसकी गंभीरता को कम नहीं करना चाहते, किन्तु हम इस तस्वीर के दूसरे पहलू की ओर से भी आंखें नहीं मूंद सकते। यह स्मरण रखना होगा कि :

— अधःस्तरी ज्ञानार्जन व गुणार्जन करने वाले छात्रों की संख्या की वृद्धि का कुछ अंश प्रथम पीढ़ी के शिक्षार्थियों के कारण भी है जो स्तरों को कुछ हद तक गिराते हैं किन्तु इतनी माध्यमिक स्कूलों और कालेजों में पर्याप्त संख्या में प्रविष्टि, विशेषतया देहाती क्षेत्रों में, स्वयं प्रगति का चिन्ह है।

— अनेक विषयों के अध्यापन में गत कुछ वर्षों में सुधार हुआ है।

— अच्छी संस्थाओं तथा प्रथम कोटि के छात्रों की संख्या भी पहले की अपेक्षा अधिक है और इनकी गुणता भी सदा के समान है।

— समाज में शिक्षा की कुल मात्रा पहले से कहीं अधिक नहीं है।

कुल मिला कर स्थिति प्रकाश और अंधकार की सम्मिलित तस्वीर है जिसमें उत्थान और पतन, किन्हीं क्षेत्रों में स्तरों का सुधार तथा अन्य किन्हीं में स्तरों में का पतन, यह सब कुछ एक साथ देखने को मिलता है। जहां हम स्तरों के उत्थान की आवश्यकता का पूर्ण समर्थन करते हैं वहां गत कुछ वर्षों में शिक्षा प्रणाली द्वारा गुणतोपार्जन में सिद्धि भी प्राप्त की है, यह हम मानते हैं। इससे हमको प्रेरणा और मार्ग प्रदर्शन प्राप्त होता है जिससे हम आगामी कार्य को अधिक विश्वास के साथ कर सकेंगे।

2.44. **स्तरों के मूल्यांकन की कसौटी**—हमारे विचार में शैक्षिक पुनर्निर्माण में यह एक आधारभूत तथ्य है कि हम आज के स्तरों की तुलना भूतकाल के स्तरों से न करें और उनकी अपेक्षा वे गिर रहे हैं या उठ रहे हैं ऐसा कदापि न सोचें। इसके बजाय हम उनको तीन अन्योन्य संबंधी कसौटियों से जांचें : पर्याप्तता, गतिशीलता तथा अन्तर्राष्ट्रीय तुलनीयता। स्तरों को

— उद्दिष्ट कार्यों के अनुरूप **पर्याप्त**;

— **गतिशील**, तथा ज्ञान, कौशल एवं चरित्र की उच्चकोटि की मांगों तथा (ये मांगे वर्तमान समाज के आधुनिकीकरण के फलस्वरूप बढ़ती जा रही हैं।) के अनुरूप उत्थानशील;

— **अन्तर्राष्ट्रीय रूप से तुलनीय,** होना चाहिए। इन कसौटियों से परखने पर वर्तमान स्थिति बिलकुल असंतोषजनक है। हमारे विश्वविद्यालय माध्यमिक स्कूलों का बहुत सा काम करते हैं, और माध्यमिक स्कूल बहुत कुछ प्राथमिक स्कूलों का काम करते है। कहीं स्तरों में सुधार आया भी है, वह सुधार पर्याप्त नहीं है और यदि वर्तमान सुविधाओं का पूर्ण उपयोग किया जाता तो परिणाम कहीं अच्छे होते। प्रथम डिग्री का मुख्य उद्देश्य यह है कि वह छात्रों को ज्ञान के प्रांगण के पास लाए तथा शोध जगत के द्वार पर उन्हें खड़ा कर दे। द्वितीय डिग्री का उद्देश्य है विद्यार्थियों को विशेषीकरण के उच्च स्तर पर ले आना अथवा उन्हें शोधकार्य में दीक्षित करना। कला, विज्ञान तथा वाणिज्य की प्रथम तथा द्वितीय डिग्रियां प्रायः इस स्तर की नहीं होती। इसके अतिरिक्त हमारी डिग्रियां अंतर्राष्ट्रीय डिग्रियों से इस अर्थ में तुलनीय होनी चाहिए कि हमारे श्रेष्ठतम केन्द्रों द्वारा प्रदत्त ये डिग्रियां संसार के किसी भाग में दी जाने वाली डिग्रियों के अनुरूप ही श्रेष्ठ होनी चाहिए। किन्तु अधिकांश में हमारी कला, विज्ञान तथा द्वितीय वाणिज्य की डिग्री ही शोध जगत से छात्रों को परिचित कराती हैं अतएव वह समुन्नत देशों की प्रथम डिग्री से तुलनीय है।

2.45. उच्चतर शिक्षा के प्रारम्भिक वर्षों में इन डिग्रियों का अवर स्तर जानबूझ कर अपनाया गया था जिससे विस्तारशील प्रशासन के लिए, कला, विज्ञान तथा वाणिज्य में विश्वविद्यालय आशु प्रथम डिग्रियाँ प्रदान

करके अपेक्षित ग्रेजुएट निकाल सकें।[1] 40 वर्ष से भी पहले कलकत्ता विश्वविद्यालय ने डिग्रियों की त्रुटि को बतलाया था। किन्तु स्थिति में आज तक कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। इस बीच समुन्नत देशों ने विशेषतया द्वितीय महायुद्ध के बाद, शिक्षा में असाधारण उन्नति की। उनके और हमारे मध्य इस प्रकार अंतर और भी बढ़ गया। हमारे कला व विज्ञान के प्रथम डिग्री के गृहीताओं को पाश्चात्य देशों के महत्वपूर्ण विश्वविद्यालय अपने मैट्रिक्युलेटों के समकक्ष समझते हैं और उनको अपने प्रथम डिग्री के केवल प्रथम वर्ष के प्रवेश योग्य मानते हैं।

2.46. **सिफारिशें**—हम सिफारिश करते हैं कि शिक्षा की समस्त अवस्थाओं के स्तरों को निरन्तर बढ़ाने के लिए ढांचे के पुनर्गठन, अवधि की वृद्धि, गहन उपयोगीकरण, समयातिरिक्त अन्य प्रयोज्य वस्तुओं की गुणता व मात्रा के सुधार के विभिन्न कदम उठाने चाहिए। निम्नलिखित कार्यक्रमों को तुरन्त हाथ में लेना चाहिए:

(1) **स्कूली शिक्षा की प्रथम अवस्था की समाप्ति पर स्तर**—इस समय स्कूली शिक्षा के प्रथम दस साल के अंत में उपलब्ध स्तर बिल्कुल संतोषजनक नहीं होते। अतएव हमारी सिफारिश है कि अगले दस सालों में हमारा मुख्य प्रयत्न समस्त राज्यों व संघ-प्रशासित देशों में स्कूली शिक्षा की इस अवस्था में गुणात्मक सुधार हो जिससे कि इसकी व्यर्थता, जो इस बड़ी भयानक मात्रा में होती है, घट कर अल्पतम हो जाए। इस सम्बन्ध में हमारे प्रस्तावों पर अन्यत्र[2] विवेचन किया गया है। इस व्यर्थता में भारी कमी करके और अपेक्षाकृत अच्छी प्रयोज्य सामग्री, जैसे अध्यापक, पाठ्यक्रम, अध्यापन व मूल्यांकन-विधियां तथा सुविधा आदि को लगा कर हमारा विश्वास है कि अगले दस वर्ष में दसवें दर्जे का स्तर आज कल के उच्चतर माध्यमिक के स्तर के बराबर हो जाएगा। दूसरे शब्दों में स्कूली शिक्षा की अवधि में एक वर्ष की वृद्धि नहीं होगी बल्कि उपलब्धि में एक वर्ष की वृद्धि हो जाएगी और दस वर्ष के अंतर्गत वह सब कुछ प्राप्त कर लेंगे जो 11 वर्ष में इस समय प्राप्त होता है।

(2) **विश्वविद्यालयी अवस्था पर के स्तर**—दसवीं कक्षा के आगे, कम से कम एक वर्ष की वृद्धि का प्रस्ताव हम कर चुके हैं। यदि हम गहन उपयोग करें और अन्य प्रयोज्य वस्तुओं का भी सुधार करें तो इस अवस्था में भी उपलब्धि को एक वर्ष बढ़ा सकते हैं। इस प्रकार कुल लाभ दो वर्ष की उपलब्धि का होगा जिससे हमारी डिग्री का स्तर पर्याप्त मात्रा में बढ़ जाएगा। जब स्कूली स्तर पर उपलब्धि में एक वर्ष की बढ़ोतरी हो जायेगी तो हमारी डिग्री का स्तर तो कहीं अधिक बढ़ जाएगा। इस पृष्ठभूमि में कुछेक बड़े विश्वविद्यालयों के विकास के कार्यक्रम को अपनाने के साथ, जिसका हम अन्यत्र[3] विवेचन करेंगे, कुछेक विश्वविद्यालयों के स्तर संसार के किसी भी कोने की श्रेष्ठ संस्थाओं के स्तरों से तुलनीय हो जाएंगे।

2.47. हम पहले बता चुके हैं कि यह प्रचलित गलत धारणा है कि स्तरों के सुधार और अनुपालन के लिए स्कूल तथा उच्चतर शिक्षा का स्वरूप एक समान हो। जहाँ एक ओर हम स्वरूप की एकसमानता का विरोध करते हैं वहां दूसरी ओर स्तरों के निरन्तर बढ़ते रहने के लिए और देश के विभिन्न भागों में उनके तुलनीय रहने के लिए हम औरों की तरह चिंतित भी हैं। हमारे विचार में इस उद्देश्य की प्राप्ति अच्छी तरह तब हो सकती है जब स्कूल स्तर पर प्राथमिक, हाई स्कूल तथा हायर सेकंडरी

---

1. **यह मनोरंजक बात है कि हमारे देश में आज से एक शताब्दी पूर्व जो अर्ध डिग्री देने का प्रस्ताव अपनाया गया था वह आज कुछेक शिक्षा समुन्नत देशों में भी आदर का पात्र हो रहा है, तथापि बिलकुल भिन्न कारणों से। यूरोपीय महाद्वीप में कला, विज्ञात तथा शिल्पविज्ञाम में प्रथम डिग्री का पाठ्यक्रम 5 वर्ष का होता हैं। असेरिका में यह 4 वर्ष का तथा इंगलैंड में 3 वर्ष का होता है। द्रुतगति से बढ़ती हुई छात्र संख्या को दृष्टि में रखकर बह और अधिक माना जाने लगा है कि कुछेक अवर स्नातक पाठ्यक्रमों की अवधि को आधा कर दिया जाए और स्नातक स्तर की अर्ध-डिग्रियों की व्यवस्था की जाए। इससे पूर्ण स्नातक पाठ्यक्रमों में जाने वाले छात्रों की छटनी में सहायता मिलेगी और पूर्ण स्नातक डिग्री का स्तर बढ़ाने में और बनाये रखने में भी सहायता मिलेगी। (ओ.ई.सी.डी. विज्ञान की मंत्रिमंडलीय बैठक : फ़ंडामेंटल रिसर्च एण्ड दी पालिसीज़ आफ दी गवर्नमेंट, पेरिस, 1966)**
2. **अध्याय सात**
3. **अध्याय ग्यारह**

अवस्थाओं के राष्ट्रीय स्तरों के निश्चय पुनरीक्षण तथा मूल्यांकन के लिए राज्य स्तर तथा राष्ट्रीय स्तर पर सक्षम तथा कुशल साधन प्रणाली की रचना की जाए। हम इन समस्याओं का रिपोर्ट के अगले भाग[1] में विशद विवेचन करेंगे।

2.48. **शिक्षा की विभिन्न अवस्थाओं के मध्य सन्धि योजना**—स्तरों के बढ़ाने की और विधि यह भी है कि शिक्षा की विभिन्न अवस्थाओं के मध्य अच्छा समन्वय स्थापित किया जाए तथा शैक्षिक संस्थाओं को एकल कार्य करने के बजाय समुदायों के रूप में कार्य करने को कहा जाए। इस समय शिक्षा की विभिन्न अवस्थाओं की विभिन्न संस्थाओं के मध्य समन्वय विरल रहता है। विश्वविद्यालय के लोग स्तर-पतन के लिए माध्यमिक स्तर के लोगों को दोषी ठहराते हैं और माध्यमिक स्तर के लोग इस दोष को प्रथमिक अवस्था के लोगों पर मढ़ देते हैं। पारस्परिक आरोप-प्रत्यारोप की इस स्थिति को हम पारस्परिक सहायता में परिवर्तित करना चाहते हैं। यह तभी हो सकता है कि जब कि उच्चतर अग्रिम अवस्था पिछली अवस्था के स्तरों के सुधारने के उत्तर-दायित्व को संभाले।

2.49. **विश्वविद्यालयों तथा कालेजों के कार्य-भाग**—उदाहरण के लिए विश्वविद्यालयों तथा कालेजों को माध्यमिक स्कूलों की कार्यकुशलता को बढ़ाने में सहा-यता करनी चाहिए। नीचे कतिपय कार्यक्रम दिये जाते हैं जिनको हाथ में लिया जा सकता है।

— प्रत्येक कालेज को निकटवर्ती माध्यमिक स्कूलों से कार्यात्मक रूप से सम्बन्धित किया जा सकता है जिससे वे उनके स्तर सुधारने, पथप्रदर्शन करने और विस्तार-सेवाओं के प्रदान करने के योग्य हो सकें। कालेजों के लिए इसी के समरूप कार्यक्रम विश्वविद्यालयों द्वारा संवर्धित किये जा सकते हैं।

— विश्वविद्यालय माध्यमिक अध्यापकों की क्षमता को बढ़ाने के लिए प्राक-सेवाकालीन अथवा सेवाकालीन विशिष्ट डिप्लोमा पाठ्यक्रमों को संचालित कर सकते हैं। अच्छा हो ये पाठ्य-क्रम पत्र-व्यवहार द्वारा ही हों जिनमें अल्प-कालीन वैयक्तिक उपस्थिति ही अपेक्षित हो।

— विश्वविद्यालय प्रयोगार्थ कुछ माध्यमिक तथा प्राथमिक स्कूल चला सकते हैं जिससे वे अध्या-पन और व्यवस्थापन की उन्नत विधियों को विकसित कर सकें।

— विश्वविद्यालय तथा कालेजों के अध्यापन अपने ऊपर स्वयं यह उत्तरदायित्व ले लें कि स्कूली पाठ्यपुस्तकों का सुधार करें और उनमें उत्तम पाठ्यसामग्री प्रस्तुत करें।

— विश्वविद्यालय एवं कालेज स्कूल के कुछ विभिन्न विषयों के प्रतिभाशाली विद्यार्थियों को उपयुक्त अवस्था में, जैसे, वयोवर्ग 13-15 के मध्य छाँट लें और पथ-प्रदर्शन एवं प्रयोग-शालीय सुविधाओं के माध्यम से विशेष क्षेत्रों में उनके ज्ञान के विकास में सहायक बनें। यह कार्य नियमित स्कूल कार्य के अतिरिक्त होगा।

इन कार्यक्रमों को केवल निदर्शन के रूप में बताया गया है। एक बार जब यह सिद्धान्त स्वीकार्य हो जाए कि विश्वविद्यालयों को अवर अवस्था के स्तरों के सुधारने में सहायता प्रदान करनी चाहिए, तो और अनेक कार्यक्रमों का निकालना संभव होगा।

2.50. **स्कूल-संकुल**—ऊपर जो कुछ विश्वविद्यालय, कालेजों तथा माध्यमिक विद्यालयों के मध्य सम्बन्ध के विषय में बताया गया है, वह माध्यमिक विद्यालयों और प्राथमिक विद्यालयों के मध्य भी स्थापित हो सकता है। चतुर्थ योजना के आरम्भ में इन माध्यमिक विद्यालयों की संख्या 26,000 है जिसमें से 14,000 देहाती क्षेत्रों में हैं। इनके अतिरिक्त देहाती क्षेत्रों में 65,000 उच्चतर प्राथ-मिक विद्यालय हैं और लगभग 360,000 अवर प्राथमिक विद्यालय हैं। दूसरे शब्दों में 5 से 10 मील की त्रिज्या के अन्तर्गत एक देहाती क्षेत्र में लगभग एक माध्यमिक विद्या-लय 5 उच्चतर प्राथमिक विद्यालय और 28 अवर प्राथ-मिक विद्यालय हैं। अध्यापकों की संख्या 80 से 100 तक हो सकती है। यह काफी छोटा समुदाय है जो सुगमता से एक उपागम्य दूरी में प्रत्यक्ष सम्बन्ध में बंध कर काम कर सकते है। योजना बनाने तथा मार्ग-प्रदर्शन के लिए भी यह समुदाय सशक्त होगा क्योंकि इसमें पांच-छह प्रशिक्षित ग्रेजुएट होंगे। इसके अतिरिक्त प्रत्येक माध्यमिक स्कूल के लिए नवीन सहायक उपकरण जैसे प्रोजेक्टर, अच्छा पुस्त-कालय तथा एक अच्छी प्रयोगशाला की व्यवस्था करना सरल होगा। यह माध्यमिक स्कूल एक इकाई के रूप में

1. अध्याय दस

कार्य करेगा जो उन उपकरणों को अपने निकटवर्ती समस्त स्कूलों को कार्य के लिए उपलब्ध कर सकेगा—माध्यमिक स्कूल के चतुर्दिक स्थित यह स्कूल समुदाय शैक्षिक सुधार की एक न्यूनतम क्षमता सम्पन्न इकाई होगी और तदनुसार इसका विकास किया जाएगा।

2.51. इस कार्यक्रम के अन्तर्गत माध्यमिक तथा प्राथमिक विद्यालयों का शृंखलन दो चरणों में होगा। प्रथम चरण में प्रत्येक उच्चतर प्राथमिक विद्यालय निकटस्थ 10 अवर प्राथमिक विद्यालयों से संश्लिष्ट रहेगा, जिससे वे सब मिलकर एक शैक्षिक सुविधाओं का संकुल बना सकें। उच्चतर प्राथमिक विद्यालय के मुख्याध्यापक को अपने अधिकार क्षेत्र के अवर प्राथमिक विद्यालयों के निमित विस्तार-सेवा की व्यवस्था करनी चाहिए और यह उसका उत्तरदायित्व होगा कि वे सुचारु रूप से कार्य करें। इस उद्देश्य के लिए उसकी अध्यक्षता में एक समिति होनी चाहिए जिसके क्षेत्रगत समस्त अवर प्राथमिक विद्यालयों के मुख्याध्यापक सदस्य होंगे जो समस्त विद्यालयों के एक संकुलवत विकास और योजना कार्य के लिए उत्तरदायी होगी। द्वितीय चरण में माध्यमिक विद्यालय के मुख्याध्यापक की अध्यक्षता में एक समिति रहेगी, जिसके क्षेत्रगत समस्त उच्चतर और अवर प्राथमिक विद्यालयों के मुख्याध्यापक सदस्य होंगे जो कार्य की योजना बनाएंगी और क्षेत्रगत समस्त विद्यालयों का पथप्रदर्शन करेगी जिसके सहारे प्रत्येक उच्चतर प्राथमिक विद्यालय संकुल (अपने सहचारी अवर प्राथमिक विद्यालयों के सहित) अपने कार्य का संचालन करेगा। विद्यालयों और अध्यापकों के इस समुदाय को अपने कार्यक्रमों को बनाने की पर्याप्त स्वतंत्रता मिलनी चाहिए किन्तु वह निरीक्षक अधिकारी वर्ग के मार्ग प्रदर्शन के अनुसार ही कार्य करेंगे। इनसे इसका भी अनुरोध किया जाये वे कि स्थातीय समाजों के साथ अपने कार्य का समन्वय करें और इस साधन से भी यथासंभव सहायता लें।

2.52. इस प्रकार का संगठन शैक्षिक प्रगति करने में कई एक प्रकार से सहायक होगा। यह उस अकेलेपन को समाप्त करेगा जिसमें आजकल प्रत्येक स्कूल कार्य करता है। यह क्षेत्र के निकटवर्ती समस्त स्कूलों के समुदाय को स्तरों के सुधारने में सहकारी प्रयत्न करने योग्य बनाएगा। इससे शिक्षा विभाग को अधिकार अर्पित करते समय उनके दुष्प्रयोग की अपेक्षाकृत कम आशंका होगी और इस स्वतन्त्रता का उपयोग करने के लिए कार्यकारी स्तर पर अपेक्षित प्रतिभा-पुंज की भी व्यवस्था हो जायेगी।

सामान्य

2.53. **शिक्षा की तीन सरणियाँ**—वर्तमान शिक्षा प्रणाली की सबसे बड़ी कमजोरी यह है कि वह पूर्णकालीन पाठन पर ही एकमात्र विश्वास रखती है और शिक्षा की अन्य दो वैकल्पिक सारणियों को, अर्थात अंशकालिक शिक्षा तथा प्राइवेट अध्ययत अथवा निजकालिक शिक्षा, पर्याप्त रूप से विकसित नहीं करती। यह भी स्मरणीय है कि पूर्णकालिक शिक्षा किसी व्यक्ति के जीवन को तीन पृथक् खंडों अथवा तीन सुविभाजित अवस्थाओं में बाँट देती है : एक पूर्व स्कूलीय, अथवा जिसमें कोई औपचारिक शिक्षा अथवा कार्य नहीं होता, द्वितीय, स्कूल अवस्था, जिसमें पूर्णकालीन शिक्षा का विधान होता है किन्तु अन्य किसी कार्य का नहीं, तृतीय, स्कूलोपरान्त अवस्था, जिसमें पूर्णकालिक और कार्य किया जाता है किन्तु शिक्षा बिल्कुल नहीं। इस आधुनिकीकृत तथा आशुपरिवर्तनशील समाज में शिक्षा को एक अवसानयुक्त प्रक्रम न समझ कर उसको एक आजीवन प्रक्रम समझना चाहिए। इसका प्रारम्भ थर में ही अनौपचारिक रूप से हो जाना चाहिए तथा किसी भी ही राष्ट्रीय नीति का यह अंतिम लक्ष्य होना चाहिए कि वह प्रत्येक व्यक्ति को औपचारिक शिक्षा-प्रणाली के प्रभाव के अन्तर्गत यथाशीघ्र लाए और वह इसे इसके अन्तर्गत प्रत्यक्ष या परोक्ष रीति से आजीवन रखे। इसी प्रकार, आदमी के जीवन में कभी भी शिक्षा और कार्य के मध्य पूर्ण विभाजन नहीं होना चाहिए। 'हां' कभी किसी पर बल और कभी किसी पर बल हो सकता है। किसी कार्य का अनुभव व्यक्ति की पूर्णकालिक शिक्षा का अभिन्न अंग समझना चाहिए तथा किसी भी पूर्णकालिक कार्मिक को इतनी रुचि, अवकाश तथा साधन होने चाहिए कि वह अपनी शिक्षा को और अग्रसर कर सके। इसी प्रकार एक अवस्था से दूसरी अवस्था एक दम नहीं आनी चाहिए। उदाहरण के लिए किसी बच्चे को खेलकूद प्रधान दुनिया से औपचारिक स्कूल में भेजने के पहिले धीरे-धीरे उसकी तैयारी तथा स्कूलाभिमुखीकरण (स्कूल औरिएंटेशन) करना चाहिए। नवयुवक को भी पूर्णकालिक शिक्षा की अवस्था से एकदम पूर्णकालिक कार्य की अवस्था में जाने को विवश नहीं करना चाहिए। यह वांछनीय है कि इसके मध्य एक अंशकालिक कार्य के काल का समावेश होता चाहिए।

2.54. यदि इन उद्देश्यों को प्राप्ति करना हो तो पूर्णकालिक शिक्षा पर एक मात्र विश्वास करने की नीति का परित्याग करना होगा और प्रत्येक स्तर पर अन्य दो वैकल्पिक सरणियों, अर्थात्, अंशकालिक तथा निजकालिक शिक्षा का बड़े पैमाने पर विकास करना होगा और प्रत्येक शिक्षा के क्षेत्रक को एक ही दर्जा देना चाहिए। दूसरे प्रौढ़ शिक्षा तथा क्रमस्थायी शिक्षा पर, जो इस समय बिल्कुल उपेक्षित रहती हैं, अत्यधिक बल देना चाहिए। एक साथ दो सुधारों के करने से निम्नलिखित बातें होंगी :

— जिन व्यक्तियों ने शिक्षा की कोई एक अवस्था नहीं की है वे उसे कर सकेंगे और अग्रिम अवस्था पर यदि वे चाहें तो अग्रसर हो सकते हैं;

— प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति को बिना औपचारिक रीति से किसी शिक्षा-संस्था में प्रवेश लिए, अग्रिम शिक्षा ग्रहण करने में सहायता मिलेगी।

— प्रत्येक कर्मचारी को, और कुशल कर्मचारी बनने तथा अधिक अर्जन करने की संभाविता को बढ़ाने के लिए, ज्ञान, योग्यता तथा व्यावसायिक निपुणता बढ़ाने के योग्य बना सकेंगे;

— शिक्षित व्यक्ति को अपने ज्ञान को सबल करने तथा अपनी रुचि के क्षेत्र में नवीन ज्ञान के साथ-साथ चलने में सहायता मिलेगी। इस प्रकार के कार्यक्रमों की, जो शिक्षा समुन्नत देशों में भी विकसित हो रहे हैं, भारत जैसा निर्धन तथा अल्प विकसित देश कैसे उपेक्षा कर सकता है। ये स्कूल से जीवन में पदार्पण करने के संक्रान्ति काल को सरल बनाएंगे, राज्य में शिक्षा व्यय को कम करेंगे और ऐसे अनेक व्यक्तियों को शिक्षा के क्षेत्र में लाएँगे जो आर्थिक कारणों से ऐसा नहीं कर सकते।

2.55. **नाम-पद्धति**—इस समय शिक्षा की अवस्था तथा उपावस्थाओं को द्योतित करने वाली नाम पद्धति में संभ्रमकारिणी विभिन्नता है। हम नामपद्धति की एक समान प्रणाली की आवश्यकता को अनुभव करते हैं और अतएव हमारी सिफारिश है कि राज्य सरकारों की सहायता से भारत सरकार इसका विकास करे। जब तक वह इसको अंतिम रूप न दे दिया जाए तय तक इस रिपोर्ट में अधोलिखित नाम-पद्धिति प्रयुक्त की गई है :

शिक्षा की विभिन्न अवस्थाओं के लिए प्रयुक्त होने वाली वर्तमान तथा प्रस्तावित नाम-पद्धति

प्रस्तावित नाम-पद्धति	वर्तमान नाम-पद्धति
स्कूल-शिक्षा	
1. पूर्व प्राथमिक	1. पूर्व प्राथमिक 2. पूर्व बेसिक (बुनियादी) 3. किंडरगार्टन 4. मांटेसरी आदि
2. प्राथमिक (कक्षाएं 1-7 या 1-8)	
(क) अवर प्राथमिक कक्षायें 1-4 या 1-5	1. प्राथमिक (पंजाब आदि कतिपय राज्यों में) 2. अवर प्राथमिक (गुजरात आदि कतिपय राज्यों में) 3. जूनियर बेसिक 4. अवर आरम्भिक (मद्रास आदि कतिपय राज्य में)
(ख) उच्चतर माध्यमिक कक्षाएँ 5-8 या 6-8	1. मिडिल (पंजाब आदि कतिपय राज्यों में) 2. जूनियर हाई स्कूल (जैसे उत्तर प्रदेश में) 3. अपर प्राइमरी (गुजरात आदि कतिपय राज्यों में) 4. सीनियर बेसिक 5. हायर ऐलीमेन्टरी (मद्रास आदि कुछेक राज्यों में)
3. माध्यमिक कक्षाएं 8-12 या 9-12	हाई स्कूल, उच्चतर-माध्यमिक स्कूल
(क) अवर माध्यमिक शिक्षा कक्षाएं 8-10 या 9-10	हाई स्कूल इसमें (राजस्थान आदि की) कक्षा-11 तथा पी० यू० सी० भी सम्मिलित हैं। इसमें केरल के जूनियर कालेज भी सम्मिलित होंगे।
(ख) उच्चतर माध्यमिक शिक्षा कक्षाएँ 11-12	उत्तर प्रदेश की इंटर कक्षाएँ भी इसमें सम्मिलित होंगी। इसमें पूर्व वृत्तिक, प्री-मैडिकल तथा प्री-इंजीनियरी के सत्र भी सम्मिलित होंगे।

प्रस्तावित नाम-पद्धति		वर्तमान नाम-पद्धति
	उच्चतर शिक्षा	
4.	वृत्तिक डिग्रियां	वृत्तिक योग्यताओं की ओर अग्रसर करने वाली समस्त डिग्रियां (जैसे, एम० ए०, एम० एस-सी०, एम० काम०, बी० ई०, एम० बी०, बी० एस०; बी० टी० एल० एल० बी० एम० आदि ।)
5.	सामान्य डिग्रियां	वृत्तिक डिग्रियों के अतिरिक्त समस्त डिग्रियां
6.	अवर स्नातक	प्रथम डिग्री पर अंत होने वाले समस्त पाठ्यक्रम
7.	उत्तर स्नातक	प्रथम डिग्री के बाद के समस्त पाठ्यक्रम (जिसमें प्रथम डिग्री के उपरान्त दी जाने वाली कुछ प्रथम डिग्रियां, जैसे, बी० एड०, सम्मिलित नहीं होगी ।
	सामान्य	
	शिक्षा का स्तर	इनमें पूर्व स्कूली तथा प्राथमिक शिक्षा सम्मिलित होगी ।
	शिक्षा का द्वितीय स्तर	इसमें हाई स्कूल तथा उच्चतर माध्यमिक शिक्षा दोनों ही सम्मिलित होंगी।
	शिक्षा का तृतीय स्तर	इसमें अवर स्नातक, स्नातकोत्तर तथा शोध सम्मिलित होंगे ।

तीसरा अध्याय

अध्यापक की प्रतिष्ठा

एक : पारिश्रमिक—(3) **स्वाधीनोत्तर काल में विकास**; (7) **राष्ट्रीय वेतनमान**; (9) **समानता का सिद्धान्त**, (10) **वेतन दरों में परिवर्तनों के सामान्य सिद्धांत**; (11) **अध्यापकों के वेतनमान से सम्बन्धित सिफारिशें**; (12) **विश्वविद्यालय अवस्था पर सुधार के विशेष सुझाव**; (14) **स्कूल अवस्था वेतनमानों का सरलीकरण**; (16) **माध्यमिक पाठ्यक्रम पूरा करने वाले अध्यापकों का वेतनमान**; (17) **माध्यमिक स्कूलों के अध्यापकों का वेतनमान**; (19) **स्कूल अध्यापकों की नियुक्ति**; (20) **उन्नति की संभावनाएं**; **निर्वाह व्यय से वेतन का सम्बन्ध**; (22) **कल्याण सेवाएं**; (24) **वित्तीय अनुमान**; (28) **समस्या की तात्कालिकता और केन्द्रीय सहायता**।

दो : सेवा-निवृत्ति लाभ—(29) **समानता का सिद्धान्त**; (30) **स्कूल-अध्यापक को सेवा-निवृत्ति लाभ: अन्तरिम उपाय**; (31) **उच्चतर शिक्षा में अध्यापकों को सेवानिवृत्ति लाभ: अन्तरिम साधन**।

तीन : कार्य और सेवा की स्थिति—(33) **कार्य-स्थिति**; (34) **सेवा की शर्तों और स्थितियों में समानता**; (36) **आवास व्यवस्था**; (38) **अतिरिक्त आमदनी**; (39) **नागरिक अधिकार**; (40) **अध्यापिकाएं**; (43) **आदिवासी क्षेत्रों में अध्यापक**; (44) **अध्यापकों का संगठन**; (46) **संयुक्त अध्यापक परिषदें**; (47) **सामाजिक प्रतिष्ठा और मनोबल**; (48) **स्कूल अध्यापकों को राष्ट्रीय पुरस्कार**।

30.1. इसमें कोई संदेह नहीं कि शिक्षा के स्तर और राष्ट्रीय विकास में उसके योगदान को जितनी भी बातें प्रभावित करती हैं उनमें शिक्षकों की गुणता, क्षमता और चरित्र सबसे अधिक महत्वपूर्ण हैं। अध्यापन व्यवसाय में पर्याप्त संख्या में योग्य अध्यापकों की नियुक्ति, उनके लिए सर्वोत्तम व्यवसायिक साधनों की उपलब्धि और पूर्ण प्रभावी ढंग से काम कर सकने के लिए संतोषप्रद स्थितियां पैदा करने से अधिक महत्वपूर्ण बात दूसरी नहीं है। आगामी तीन योजनाओं में शिक्षा के अनुमानित द्रुत विकास और विशेष रूप से शिक्षा के स्तर को अधिक-से-अधिक ऊंचा उठाने तथा निरन्तर ऊंचा उठाए जाने की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए कहा जा सकता है कि आज इन समस्याओं ने अभूतपूर्व महत्व और वरीयता प्राप्त कर ली है।

3.02. इसलिए प्रस्तावित शैक्षिक योजना में नई शिक्षा-प्रणाली को सफल बनाने के लिए बहुसंख्यक मेधावी स्त्री-पुरुषों को स्कूलों और कालेजों में नियुक्ति करने के कार्यक्रम को बहुत ऊंची प्राथमिकता दी गई है। इस समय इस बात की बहुत आवश्यकता है कि शिक्षक की आर्थिक, सामाजिक और व्यावसायिक प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए निरन्तर भरपूर प्रयत्न किए जाएं ताकि योग्य युवक और युवतियां इस व्यावसाय के प्रति आकर्षित हों और उन्हें सेवा भाव से काम करने वाले उत्साही तथा संतुष्ट कार्य कर्त्ता की तरह इस व्यावसाय में रोका जा सके। वस्तुतः इस दिशा में जो आंशिक सफलता प्राप्त की जा सकती है वह शिक्षकों में बच्चों या शिक्षण के प्रति लगाव, शैक्षिक अथवा अनुसंधान कार्य में रुचि, आदर्शवाद और समाज सेवा आदि की भावनाएं जाग्रत करके ही संभव है, क्योंकि केवल इनके आधार पर शिक्षण व्यवसाय बहुत कम लोगों को आकर्षित करता है। फिर भी, इसमें कोई संदेह नहीं कि उचित पारिश्रमिक की व्यवस्था, वृत्तिक प्रगति के अवसर और कार्य एवं सेवा की उपयुक्त शर्तों की व्यवस्था, कुछ ऐसे प्रमुख कार्यक्रम हैं जिनके कारण इस व्यवसाय में लोगों की रुचि बढ़ेगी और योग्य अध्यापकों को रोका जा सकेगा। इस अध्याय में और अगले अध्याय में हम उक्त कार्यक्रमों के कुछ महत्वपूर्ण पहलुओं पर विचार करेंगे।

पारिश्रमिक

3.03. **स्वाधीनोत्तर काल में विकास**—स्वाधीनोत्तर काल में अध्यापकों के पारिश्रमिक में सभी स्तर पर सुधार करने के लगातार प्रयत्न होते रहे हैं और तत्सम्बन्धी कार्यक्रमों को सभी योजनाओं में प्रमुख स्थान मिला है परन्तु कुल मिलाकर परिणाम संतोषजनक नहीं हैं और अध्यापकों को, विशेष रूप से प्राथमिक स्कूल के अध्यापकों को, इनसे समुचित लाभ नहीं हुआ। नीचे तालिका 3.1 को देखने से यह बात स्पष्ट हो जाएगी।

सारणी 3.1. भारत में अध्यापकों के वेतन का वार्षिक औसत
(1950-51 से 1965-66)

संस्थाओं के प्रकार	अध्यापकों के वेतन का वार्षिक औसत				1965-66 में औसत वार्षिक वेतन 1950-51 की कीमतों पर
	1950-51	1955-56	1960-61	1965-66	
	में प्रचलित कीमतों के अनुसार				
(क) उच्चतर शिक्षा					
1. विश्वविद्यालय विभाग	3,759	5,456	5,475	6,500	3,939
	(100)	(145)	(146)	(173)	(105)
2. कला और विज्ञान कालेज	2,696	3,070	3,659	4,000	2,424
	(100)	(114)	(136)	(148)	(90)
3. वत्तिक कालेज	3,948	3,861	4,237	6,410	3,885
	(100)	(98)	(107)	(162)	(98)
(ख) स्कूल					
4. माध्यमिक स्कूल	1,258	1,427	1,681	1,959	1,187
	(100)	(113)	(134)	(156)	(94)
5. उच्चतर प्राथमिक स्कूल	682	809	1,058	1,228	781
	(100)	(119)	(155)	(180)	(109)
6. अवर प्राथमिक स्कूल	545	652	873	1,046	634
	(100)	(120)	(160)	(192)	(116)
7. पूर्व प्राथमिक स्कूल	914	770	925	1,083	656
	(100)	(84)	(101)	(118)	(72)
8. व्यावसायिक स्कूल	1,705	1,569	2,041	2,887	1,750
	(100)	(92)	(120)	(169)	(103)
सभी अध्यापक	769	919	1,218	1,476	895
	(100)	(120)	(158)	(192)	(116)
9. श्रमजीवियों का निर्वाह-सूचक अंक	100	95	123	165	
10. प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय (चालू कीमतों पर)	267	255	326	424	
	(100)	(96)	(122)	(159)	

स्रोत : शिक्षा मंत्रालय फार्म 'क'। 1965-66 के आंकड़े आयोग के सचिवालय में किए गए प्राक्कलन हैं।
नोट : कोष्ठक में दिये आंकड़े 1950-51=100 के आधार पर विकास के सूचक हैं।

3.04. यह दृष्टव्य है कि विभिन्न श्रेणी के अध्यापकों को मिलने वाले पारिश्रमिक में तनिक भी समानता नहीं है। प्राथमिक स्कूलों के अध्यापकों के वेतन में अपेक्षाकृत सबसे अधिक वृद्धि हुई है किन्तु 1950-51 में मिलने वाला वेतन चूंकि बहुत कम था, अतः वृद्धि आज भी संतोषपद नहीं कही जा सकती। विश्वविद्यालयों, व्यावसायिक स्कूलों और कालेजों के अध्यापकों के वेतन में हुआ सुधार भी ध्यान देने योग्य है किन्तु कला और विज्ञान के कालेजों और उच्चतर माध्यमिक स्कूलों में मिलने वाला पारिश्रमिक वास्तव में कम हो गया है। प्राथमिक स्कूलों में वेतन विभागीय नियमों पर उतना आधारित नहीं होता जितना व्यवसाय-बाजार की स्थिति पर। इसका कारण यह है कि अधिकांश पूर्व-स्कूल संस्थामों कों अनुदान नहीं मिलता और वे शहरी इलाकों में ही स्थिति हैं जहां अध्यापिकाएँ बहुत बड़ी संख्या में उपलब्ध होती हैं।

3·05. यह भी दृष्टव्य है कि इन दिनों निर्वाह खर्च

में हुई वृद्धि के कारण सभी अवस्थाओं में बढ़ा हुआ पारिश्रमिक प्रभावहीन हो गया है। विभिन्न शिक्षण-संस्थाओं में बढ़ा वेतन 18 से 92 प्रतिशत तक है जबकि निर्वाह खर्च 65 प्रतिशत बढ़ा है। केवल चार प्रकार की संस्थाओं में—व्यावसायिक स्कूल (69 प्रतिशत) विश्वविद्यालय (73 प्रतिशत) उच्चतर प्राथमिक स्कूल (80 प्रतिशत) और अवर प्राथमिक स्कूल (92 प्रतिशत)—मिलने वाला पारिश्रमिक निर्वाह खर्च में हुई वृद्धि से अधिक रहा है। पूर्व प्राथमिक स्कूलों जैसे कुछ क्षेत्रों में निर्वाह खर्च मिलने वाले वेतन से ज्यादा है। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि अध्यापकों के वेतन में सच्चे अर्थों में वृद्धि 1960-61 तक ही हुई है, और पिछले दो तीन वर्षों में तेजी से बढ़ने वाली कीमतों के कारण यह वृद्धि बिल्कुल प्रभावहीन हो गई है। हम समझते हैं कि इसके कारण अध्यापकों के मनोबल में कमी आई है। हमारे विचार में अध्यापकों के पारिश्रमिक को, विशेषकर स्कूल आधार पर, बढ़ाने की बहुत अधिक आवश्यकता है।

3.06. आयोग ने सभी राज्यों और केन्द्र प्रशासित प्रदेशों के अध्यापकों को मिलने वाले पारिश्रमिक का अध्ययन किया[1] है, जिससे दो प्रमुख दोषों का पता चला है :

(1) **अंतर्राज्यीय भिन्नता**—अध्यापकों को मिलने वाले पारिश्रमिक में, विशेषकर स्कूल आधार पर, उल्लेखनीय अन्तर है।

(2) **राज्यीय भिन्नता**—एक ही राज्य में मिलने वाले पारिश्रमिक भिन्न हैं। विश्वविद्यालय आधार पर एक संकाय का वेतन दूसरे संकाय के वेतन से भिन्न है। सम्बद्ध कालेजों में भी वही वेतन नहीं मिलता जो विश्वविद्यालयों में मिलता है। स्कूल आधार पर विभिन्न प्रबन्धों के अधीन कार्य करने वाले अध्यापकों के वेतनों में पर्याप्त अन्तर है।

इन अन्तरों को समाप्त करने की बहुत सबल मांग की गई है। इसके लिए सुझाव दिया गया है कि प्रथम प्रकार की भिन्नता को समाप्त करने या उसे कम से कम करने के लिए राष्ट्रीय वेतनमानों को स्वीकार कर लिया जाए और निर्वाह खर्च में अनिवार्य स्थानीय अन्तरों को दृष्टि में रखते हुए भत्ते दिए जाएं। दूसरा अन्तर समानता का सिद्धांत अपना कर दूर किया जा सकता है। इन दोनों सुझावों को निकट से जांचना पड़ेगा।

3.07. **राष्ट्रीय वेतनमान**—अध्यापकों के संगठनों ने एकमत होकर सभी श्रेणी के अध्यापकों के लिए राष्ट्रीय वेतनमान लागू करने की मांग का समर्थन किया है। हमें विदित हुआ है कि आजादी के बाद हुए विकास के कारण उच्च शिक्षा के क्षेत्र में इन सुझावों को आसानी से स्वीकार कर लिया गया। विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग ने सिफारिश की है कि विश्वविद्यालयों और कालिजों में उन दिनों मौजूद वेतनक्रम की भिन्नता को कम से कम किया जाए और उच्च शिक्षा के क्षेत्र में, अध्यापकों के लिए एक राष्ट्रीय स्तर का वेतनमान निश्चित करने का प्रयत्न किया जाए। इस सिफारिश को आमतौर से स्वीकार कर लिया गया है और इस पर अमल करने के लिए कार्रवाई भी आरम्भ हो गई है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग विश्वविद्यालयों और सम्बद्ध कालिजों में विभिन्न श्रेणी के अध्यापकों के लिए समान वेतनक्रम लागू करने का प्रयत्न कर रहा है। इंजीनियरी संस्थाओं में समान वेतनक्रम लागू करने की दिशा में पर्याप्त सफल प्रयत्न हो रहे हैं। यह सच है कि पिछले दस वर्षों में बहुत कुछ काम हुआ है परन्तु फिर भी उच्च स्तर पर अध्यापकों के वेतनक्रमों में उल्लेखनीय भिन्नता है। इस प्रसंग में सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि वेतनमान राष्ट्रीय स्तर पर निर्धारित करने की बात आमतौर पर स्वीकार कर ली गई है और अब केवल इस बात की आवश्यकता है कि इसके लिए एक सुनिर्धारित दिशा में अधिक दृढ़ प्रयत्न किए जाएं। यह बात अपेक्षाकृत सरल है।

3.08. स्कूल आधार पर समस्या अधिक कठिन है, क्योंकि इस आधार पर राष्ट्रीय वेतनमान लागू करने की आवश्यकता को ही चुनौती दी गई है। उदाहरण के लिए यह दलील दी गई है कि देश के एक भाग से दूसरे भाग के निर्वाह खर्च में अन्तर है इसीलिए राष्ट्रीय वेतनमान लागू करने का अर्थ भुगतान की असमानता होगा और इसके कारण निम्नस्तरीय आय वाले अध्यापकों को काफी कठिनाई का सामना करना पड़ेगा। यह भी कहा गया कि देश के एक भाग की अपेक्षा दूसरे भाग में विभिन्न श्रेणी के अध्यापकों की मांग और उपलब्धि में काफी अन्तर है। उदाहरण के लिए कुछ इलाकों में अध्यापिकाएं सहज उपलब्ध हैं किन्तु अन्य भागों में इनका पाना बहुत कठिन है। इन परिस्थितियों में यह कहा जाता है कि समान वेतनमान लागू करने के कारण इन्हें भर्ती करना, विशेषकर उन क्षेत्रों के लिए जहां इनकी बहुत आवश्यकता है, अधिक कठिन हो जाएगा। इन तर्कों में कुछ बल अवश्य है। किन्तु हमारे विचार में इनके कारण, आज विभिन्न राज्यों में

1. विस्तृत जानकारी के लिए अनुपूरक खण्ड 1, भाग चार देखिए।

स्कूलों के अध्यापकों के वेतन में मौजूद बहुत बड़ी असमानता को कम करने में सहायक न्यूनतम राष्ट्रीय वेतनमान को अपनाने की आवश्यकता अस्वीकार करने की अपेक्षा, मूल वेतन के अतिरिक्त स्थानीय भत्ता देने का प्रश्न बनता है। इसलिए हम सिफारिश करते हैं कि भारत सरकार को स्कूल के अध्यापकों के लिए न्यूनतम वेतनमान तय करना चाहिए। इसके बाद राज्य सरकारें और केन्द्र प्रशासित क्षेत्र स्थानीय परिस्थितियों को ध्यान में रख कर इनके समान अथवा इससे ऊंचा वेतनमान स्वीकार करें।

3.09. **समानता का सिद्धांत**—अन्तर-राज्य स्तर पर असमानताओं के सम्बन्ध में हम सिफारिश करते है कि विभिन्न प्रबन्धों के अधीन काम करने वाले अध्यापकों का वेतन भी समान होना चाहिए। समान योग्यता और समान दायित्व वाले सभी अध्यापकों को एक बराबर अथवा एक जैसा वेतन मिलना चाहिए तथा उनके कार्य और सेवा की स्थितियां समान होनी चाहिएं। उच्चतर और स्कूल शिक्षा से सम्बन्धित समस्या पर अलग से विचार किया जाएगा।

(1) **उच्चतर शिक्षा**—शिक्षा के उच्चतर स्तर पर भी विभिन्न श्रेणी के अध्यापकों के वेतन में बहुत अधिक असमानता है। उदाहरण के लिए विभिन्न संकायों में काम करने वाले अध्यापकों के वेतन में असमानता है। इंजीनियरी और चिकित्सा संकायों के अध्यापकों को मानवशास्त्रीय संकायों के अध्यापकों की तुलना में अधिक वेतन मिलता है। देश के विभिन्न भागों में भी विश्वविद्यालय और सम्बद्ध कालेजों के अध्यापकों के वेतन में असमानता है। कई राज्यों में सरकारी कालेजों के अध्यापकों को वही वेतन नहीं दिया जाता जो विश्वविद्यालय के अध्यापकों को मिलता है, यद्यपि सम्बद्ध कालेजों के अध्यापकों के मुकाबले में उनका वेतन अपेक्षाकृत बहुत अच्छा होता है। हम सिफारिश करते हैं कि इन अन्तरों को कम से कम किया जाए और धीरे-धीरे इन अन्तरों को समाप्त करने का यत्न हो।

(2) **स्कूल अध्यापक**—हम सिफारिश करते हैं कि स्कूल अध्यापक, जो एक ही श्रेणी के अंतर्गत आते हैं, किंतु विभिन्न प्रबन्धों के अंतर्गत कार्य करते हैं, यथा सरकार, स्थानीय निकाय, निजी संगठन, उनका वेतन एक समान होना चाहिए। मौजूदा असमानताओं की व्युत्पत्ति शुद्ध ऐतिहासिक है। ब्रिटिश शासक काल में प्रशासनिक अधि-

राज्य और अध्यापकों की श्रेणी	सरकारी संस्थाएं	गैर-सरकारी संस्थाएं
असम		
1. उच्चतर माध्यमिक स्कूल का प्रधानाध्यापक	रु० 350—1000 (प्रारम्भिक वेतन रु० 450)	रु० 25—0600 (प्रारम्भिक वेतन रु० 390)
2. हाई स्कूल का सहायक अध्यापक (प्रशिक्षित स्नातक)	रु० 250—700	रु० 125—275 (प्रारम्भिक वेतन रु० 140)
बिहार		
प्राथमिक स्कूल में मैट्रिक योग्यता प्राप्त प्रशिक्षित अध्यापक	रु० 115—200 (मंहगाई भत्ता रु० 5)	रु० 50—90 (मंहगाई भत्ता रु० 30)
उड़ीसा		
माध्यमिक स्कूल में सहायक अध्यापक (प्रशिक्षित स्नातक)	रु० 185—325	रु० 175—300
पश्चिमी बंगाल		
1. माध्यमिक स्कूल का मुख्याध्यापक	रु० 325—1000	रु० 350—525
2. माध्यमिक स्कूलों में सहायक अध्यापक एम०ए०/एम०एस-सी०/एम० काम और बी० टी०	रु० 225—475	रु० 210—450
3. माध्यमिक स्कूलों में सहायक अध्यापक-बी० ए०/बी० एस-सी० और बी० टी०	रु० 175—325	रु० 160—295

कारी सरकारी कर्मचारियों के वेतन कम नहीं करवा चाहते थे। किन्तु इसके साथ-साथ वे वेतन पर होने वाले व्यय को भी उतना नीचा रखवा चाहते थे जितना उस समय की अर्थ-व्यवस्था सहन कर सके। इसलिए स्थानीय स्वायत्त निकाय के आधीन चल रहे स्कूलों के अध्यापकों का वेतन जान-बूझकर सरकारी स्कूलों के अध्यापकों की तुलना में कुछ कम तय किया जाता था। निजी स्कूलों में काम करने वाले अध्यापकों का वेतन इससे भी कम होता था। इस नीति के दो दुःखद परिणाम हुए। सामान्यतया अध्यापकों का औसत वेतन कम हो गया क्योंकि सरकारी नौकरी में अध्यापकों की संख्या बहुत कम थी। दूसरे, उनमें एक अवांछनीय जातिवाद ने घर कर लिया। परन्तु अब समय आ गया है कि हम पुराने समय के इन भग्नावशेषों को समाप्त कर दें।

हमें इस बात की प्रसन्नता है कि इस दिशा में प्रयत्न आरम्भ हो गया हैं और काम काफी आगे बढ़ा है। देश के सात राज्यों (आन्ध्र प्रदेश, केरल, मध्य प्रदेश, मद्रास, मैसूर, पंजाब और राजस्थान) में स्कूली शिक्षा के सभी आधारों पर समानता का सिद्धांत स्वीकार कर लिया गया है। तीन राज्यों (असम, गुजरात और महाराष्ट्र) में यह बात प्राथमिक स्कूल आधार पर स्वीकार कर ली गई है लेकिन माध्यमिक स्तर पर सभी श्रेणी के अध्यापकों के लिए यह सिद्धांत नहीं माना गया है। पांच राज्यों (बिहार, जम्मू और काश्मीर, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश और पश्चिमी बगाल) में यह बात किसी आधार पर भी स्वीकार नहीं की गई है। गैर-सरकारी स्कूलों के अध्यापकों के लिए निश्चित वेतन दरें भिन्न और बहुत कम हैं। पिछले पृष्ठ की तालिका में कुछ उदाहरण दिए गए है।

इन वेतनमानों को देखने से पता चलता है कि यह अन्तर कहीं बहुत कम है और कहीं बहुत अधिक तथा स्पष्ट है।

पारिश्रमिक के इस अन्तर को बनाए रखने के पक्ष में तीन प्रमुख तर्क दिए जाते हैं। पहला तर्क तो यह है कि गैर-सरकारी स्कूलों में अध्यापक पूरी तरह शिक्षित नहीं होते और उनका चुनाव भी ठीक तरह से नहीं किया जाता। हम इस तर्क को स्वीकार नहीं कर सकते। इस आधार पर वेतन दरों में असमानता बनाए रखने के बजाए यह जरूरी है कि वेतन की दरों में समानता का सिद्धांत स्वीकार कर लिया जाए और इसके साथ-साथ सभी तरह के स्कूलों में अध्यापकों के लिए एक समान योग्यताएं निर्धारित कर दी जाएं। ऐसी ही कोई व्यवस्था इनकी भर्ती के सम्बन्ध में भी हो। दूसरा तर्क यह है कि सरकारी नौकारी में कुछ असुविधाएं हैं—जैसे स्थानान्तरण की सम्भावनाएं, आचरण और अनुशासन आदि नियमों का बन्धन। इसलिए यदि वेतन की समानता लाई गई तो ऐसा करना निजी स्कूलों के अध्यापकों के पक्ष में अधिक रहेगा। हम इस दृष्टिकोण से भी सहमत नहीं हैं। हम सरकारी स्कूलों में बार-बार होने वाले स्थानान्तरों के सुझाव का विरोध करते हैं और सिफारिश करते हैं कि इन स्कूलों के अध्यापकों को, जहां तक संभव हो, स्थानीय कर दिया जाए। सरकारी शिक्षण संस्थाओं में अध्यापकों की शैक्षणिक स्वतंत्रता पर बन्धन का हम अनुमोदन नहीं करते। आंशिक रूप में इनकी क्षतिपूर्ति के बजाय हमने शैक्षणिक स्वतंत्रता की सिफारिश की है। सरकारी और गैर-सरकारी संस्थाओं में सेवा की परिस्थितियों में अन्तर होना लाजमी है। उदाहरण के लिए निजी शिक्षण संस्थाओं में कुछ लोगों को अपेक्षाकृत अधिक संतोषजनक अनुभव प्राप्त हो सकते हैं जबकि सरकारी स्कूलों में उन्नति के अच्छे अवसर हैं। परन्तु हमने अपने प्रस्तावों में इन अन्तरों को कम से कम कर दिया है और इसलिए वेतन दरों की मौजूदा असमानता को बनाए रखने का कोई औचित्य नहीं है। तीसरा तर्क जो प्रायः दिया जाता है वह वित्तीय है। कहा जाता है कि स्थानीय स्वायत निकाय और निजी स्कूलों के अध्यापकों की वेतन दरों को सरकारी स्कूलों में अध्यापकों की वेतन दरों के बराबर लाने के लिए आवश्यक धनराशि सहज उपलब्ध नहीं है। हम इस तर्क की शक्ति को मानते हैं और सिफारिश करते हैं कि समानता के सिद्धांत को राज्यकीय नीति के रूप में तुरन्त स्वीकार कर लिया जाए और इसका पूर्ण अनुपालन एक सुनिश्चित पंचवर्षीय कार्यक्रम द्वारा किया जाना चाहिए।

3.10. **वेतन दरों में परिवर्तन के सामान्य सिद्धान्त**—अध्यापकों के वेतनमान में परिवर्तन का सुझाव देते समय हमने निम्नलिखित सिद्धान्तों को ध्यान में रखा है :

(1) विश्वविद्यालय अवस्था पर अध्यापकों के वेतन की तुलना मोटे तौर पर सरकार की वरिष्ठ सेवा में मिलने वाले वेतन से की जा सके, ताकि देश की उच्च प्रतिभा का काफी अच्छा भाग अध्यापन और अनुसंधान कार्य की ओर भी आकर्षित हो। इस संबंध में महत्वपूर्ण बात यह है कि उप-कुलपति का वेतन लगभग वही होना चाहिए जो संघीय शासन के सचिव को मिलता है। विश्वविद्यालय के प्रोफेसर का अधिकतम वेतन वही होना चाहिए जो वरिष्ठ वेतन क्रम में भारतीय प्राशासनिक सेवा (आई० ए० एस०) अधिकारी का होता है। मेधावी प्रोफेसर के उच्चतर वेतन की तुलना भारतीय

प्रशासनिक सेवा (आई० ए० एस०) के श्रेष्ठ वेतन दर (सुपर टाइम स्केल) के साथ की जाए।

(2) प्राथमिक स्कूल के अध्यापकों के वेतनमान की तुलना समान योग्यना और जिम्मेदारी वाले सरकारी कर्मचारियों के साथ को जानी चाहिए। दो वर्षीय नृत्तिक प्रशिक्षण का महत्व स्वीकार करते हुए उनका मूल वेतन अधिक होना चाहिए।

(3) चूंकि अध्यापन एक स्वीकृत वृत्ति है लिसमें निष्ठा और समर्पण को भावना समान रूप से होती है तथा सभी आधारों पर नई पीढ़ी को शिक्षित करने को ज़िम्मेवारी अध्यापक कों सौंपी जाती है, इसलिए प्राथमिक स्कूल से विश्वविद्यालय अवस्था तक उनके वेतनमान का अन्तर न्यूनतम कर दिया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए प्राथमिक, माध्यमिक और विश्वविद्यालय अवस्था पर मिलने वाला वेतन 1: 2: 3 के अनुपात में होना चाहिए। आजकल प्राथमिक अध्यापक का आरम्भिक वेतन केवल रु० 60–80 है। यह प्रोफेसर के प्रारम्भिक वेतन का बारहवां से सोलहवां भाग तक बनता है।

(4) अधिक योग्य अध्यापकों को नीचे स्तर की कक्षाओं में अध्यापन कार्य की प्रेरणा देने के लिए—क्योंकि अन्ततोगत्वा शिक्षा का ऊंचा स्तर इसी पर आधारित है—एक ऐसी बीति तय करना अनिवार्य है जिसके अधीन स्कूल के अध्यापकों का वेतन केवल उनकी योग्यता पर आधृत हो। इस बीति को पूर्व प्राथमिक, अवर प्राथमिक, उच्चतर प्राथमिक, अवर माध्यमिक या उच्चतर माध्यमिक अवस्था जहां अध्यापक सेवारत होते हैं, के बन्धनों से मुक्त समझा जाए। इस विचार को हम सिद्धांत रूप में स्वीकार करते हुए भी अनुभव करते हैं कि वित्तीय कारणों से इसे तत्काल पूरी तरह स्वीकार करना सम्भव न होगा। हमारा यह विचार है कि कम-से-कम सभी बड़े प्राथमिक स्कूलों में (जिनमें 200 छात्र पढ़ते हों) मुख्याध्यापको और सभी उच्चतर प्राथमिक स्कूलों के अध्यापक स्कूलों के प्रशिक्षित स्नातक हों। इनका वेतनमान वही होना चाहिए जो माध्यमिक स्कूलों के प्रशिक्षित स्नातक अध्यापकों को मिलता है। इसी तरह माध्यमिक स्तर के कुछ अध्यापको का वही योग्यता स्तर और वही वेतनमान होना चाहिए जो सम्बन्ध कालिजों के कनिष्ठ प्राध्यापकों का है।

(5) वेतन दरों में सुधार स्वयमेव न हो बल्कि शैक्षणिक योग्यता और कार्य-स्तर में गुणात्मक वृद्धि के आधार पर हो।

3.11. **अध्यापकों के वेतनमान से सम्बन्धित सिफारिशें**—इन सामान्य सिद्धान्तों के अनुसार हम निम्न वेतनमानों का सुझाव प्रस्तुत करते हैं।

अध्यापक	वेतन	
		रु०
1. वे अध्यापक जिन्होंने माध्यमिक पाठ्यक्रम और दो वर्षीय नृत्तिक प्रशिक्षण प्राप्त कर लिया है	प्रशिक्षित अध्यापक के लिए न्यूनतम	150
	अधिकतम वेतन (जिस पर 20 वर्ष की अवधि में पहुंचा जा सके)	250
	सेलेक्शन ग्रेड (संवर्ग के लगभग 15 प्रतिशत व्यक्तिवों के लिए)	250-300
नोट : प्राथमिक स्कूल के अध्यापक का न्यूततम वेतन जिसने माध्यमिक स्कूल पाठ्यक्रम पूरा कर लिया है तुरन्त रु० 100 कर दिया जाए और पांच नर्षों में इसे रु० 125 कर दिया जाए; इसी प्रकार उन अध्यापको का वेतन जिन्होंने 2 वर्ष का प्रशिक्षण-पाठ्यक्रम पूरा कर लिया है रु० 125 कर दिया जाए और इसे पांच वर्षों में रु० 150 तक पहुंचा दिया जाए। वांछित शैक्षणिक योग्यता प्राप्त अप्रशिक्षित अध्यापको को तब तक प्रारम्भिक वेतन पर ही कार्य करना चाहिए जब तक वे प्रशिक्षित होकर इस वेतनक्रम के पात्र तहीं बनते।		
2. स्नातक, जिन्होंने एक वर्ष का वृत्तिक प्रशिक्षण प्राप्त कर लिया है।	प्रशिक्षित स्नातकों को न्यूनतम वेतन	220
	अधिकतम वेतन (नौस वर्ष में)	400
	सेलेक्शन ग्रेड (संवर्ग में लगभग 15 प्रतिशत व्यक्ति)	400-500

अध्यापक	पारिश्रमिक
3. स्नातकोत्तर योग्यता प्राप्त माध्यमिक स्कूलों के अध्यापक	300-600

नोट : प्रशिक्षित होने के बाद उन्हें एक अतिरिक्त वेतन वृद्धि दी जाए।

4. माध्यमिक स्कूलों के प्रधान अध्यापक — स्कूल के आकार और कोटि तथा योग्यता के आधार पर ही, प्रधानाध्यापकों को, संबंद्ध कालेजों के अध्यापकों के लिए प्रस्तावित निम्नांकित वेतनक्रमों में से कोई एक मिलना चाहिए।

5. सम्बद्ध कालेजों के प्राध्यापक

प्राध्यापक	कनिष्ठ वेतनक्रम	300-25--600
	वरिष्ठ वेतनक्रम	रु० 400-30-640-40-800
	वरिष्ठ प्राध्यापक रीडर	700-40-1100
	प्रधानाचार्य 1	700-40-1100
	2	800-50-1250
	3	1000-50-1500

नोट : वरिष्ठ वेतनमान में नियुक्त प्राध्यापकों का अनुपात कनिष्ठ वेतनक्रम वाले प्राध्यापकों की अपेक्षा धीरे-धीरे बढ़ाया जाना चाहिए। पांचवी पंचवर्षीय योजना के अंत तक यह अनुपात औसतन 75 प्रतिशत के लगभग हो जाना चाहिए।

6. विश्वविद्यालय के प्राध्यापक — 400-40-800

विभागों के अध्यापक	-50-950
रीडर	700-50-1250
प्रोफेसर	1100-50-1300-60-1600

नोट : आजकल विश्वविद्यालयों में कनिष्ठ और वरिष्ठ पदों (अर्थात रीडर/प्रोफेसर) का औसत 3:1 है (इसी तुलना में सम्बद्ध कालेजों का औसत 5 : 1 है)। हमें धीरे-धीरे इसे 2 : 1 के अनुपात में लाना चाहिए।

(2) प्रोफेसर के एक तिहाई भाग को वरिष्ठ वेतनमान 1600—1800 में रखा जाना चाहिए। उच्च अध्ययन के कुछ चुने हुए केन्द्रों में विशिष्ठ योग्यता रखने वाले व्यक्तियों का विशेष वेतन मान निश्चित होना चाहिए।

टिप्पणी: (क) स्कूल के अध्यापकों के लिए उपरोक्त वेतन दरें मूल्य की वर्तमान दरों के आधार पर हैं और इसमें वर्तमान मंहगाई भत्ता भी शामिल है। समय-समय पर बढ़ने वाली कीमतों को ध्यान में रखकर वेतन-वृद्धि करनी होगी इसके मंहगाई भत्ते में समानता होनी चाहिए अर्थात् किसी एक साल में दिया जाने वाला मंहगाई भत्ता वही होना चाहिए जो समान वेतन पाने वाले सरकार कर्मचारी को मिलता है।

(ख) सभी वेतन दरों का समय-समय पर, कम से कम पांच वर्ष में एक बार तो अवश्य ही, पुनिरीक्षण होना चाहिए।

(ग) इसमें शहरों में मिलने वाला प्रतिकर निर्वाह भत्ता, मकान भत्ता या अन्य भत्ते शामिल नहीं किए गए हैं। ये भत्ते ऊपर बताए वेतनक्रम के अतिरिक्त होंगे जो समाजता के सिद्धान्त के आधार पर मिलने चाहिएं।

(घ) अध्यापकों के चुनाव के ढंग में गुणात्मक सुधार और सामान्य तथा वृत्तिक शिक्षा में सुधारों के साथ वेतन दर का अभिन्न सम्बन्ध होगा।

(ङ) उक्त वेतन दरें सभी सरकारी, स्थानीय स्वायत्त निकायों और निजी संस्थाओं के स्कूलों के स्वायत्त निकायों और निजी अध्यापकों को दी जाएंगी।

अब हम इन वेतनमानों की विस्तृत विवेचना करेंगे।

3.12. **विश्वविद्यालय अवस्था पर सुधार के विशेष सुझाव**—विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग की सिफारिशों और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा पिछले दस वर्ष में किये कार्यों के फलस्वरूप विश्वविद्यालयों के अध्यापकों के वेतन में उल्लेखनीय सुधार हुआ है। वेतनक्रम की विविधता जो पहले थी अब कम कर दी गई है और लागू की गई नयी वेतन दरें, भारत सरकार के अधीन वरिष्ठ प्रशासनिक अधिकारियों के अधिक निकट आ गई है। विश्वविद्यालयों तथा सम्बन्ध कालेजों के लिए राष्ट्रीय वेतन दरों का सुझाव दिया गया है और इन्हें सम्बद्ध संस्थाओं द्वारा बड़े रूप में स्वी-

कार किया जा रहा है। हाल ही में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की सिफारिशों पर विश्वविद्यालयों के प्राध्यापकों की वेतन दरों को, जिनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका हैं, स्वीकार करने से सम्बन्धित भारत सरकार के निर्णय का भी हम स्वागत करते हैं। अतः इस संदर्भ में दो बातें विचारणीय हैं : (क) इन प्रस्तावों को क्रियान्वित करना, और (ख) इनका सम्बन्ध अध्यापकों के गुण तथा शैक्षणिक योग्यता के साथ स्थापित करना।

3.13. इन वेतन-दरों को, विशेषकर निजी संस्थाओं में जिनकी संख्या पर्याप्त है, अतिशीघ्र लागू करने के लिए, हम सिफारिश करते हैं कि अतिरिक्त खर्च का भुगतान मिल-जुलकर किया जाना चाहिए। खर्च का 80 प्रतिशत केन्द्रीय राजस्व से और 20 प्रतिशत राज्य सरकारों द्वारा दिया जाना चाहिए। जहां तक निजी कालेजों का सम्बन्ध है उन्हें शत-प्रतिशत केन्द्रीय सहायता दी जानी चाहिए। ऐसी सहायता चौथी पंचवर्षीय योजना काल में जारी रहनी चाहिए और इस बीच, बदली हुई वेतन दरों को स्थायी रूप देने के लिए राज्य सरकारों को अनुदान के उपयुक्त तरीके खोजने चाहिए। इस सम्बन्ध में हमने अपने प्रस्तावों पर अयन्त्र विचार किया है।[1]

(1) **विश्वविद्यालयों के प्राध्यापक** : विश्वविद्यालयों में प्राध्यापकों की योग्यता और उनके चुनाव के तरीके के सम्बन्ध में हम आदर्श अधिनियम समिति की सिफारिशों से, जिन्हें हम नीचे उद्धृत कर रहे हैं, सहमत हैं :

विश्वविद्यालयों के काम का स्तर और कोटि उसके प्राध्यापकों की कोटि पर बहुत अधिक निर्भर होती है। यह बात बहुत महत्वपूर्ण है कि सम्बन्धित अधिकारियों को हर सम्भव सावधानी बरतनी चाहिए ताकि विश्वविद्यालयों में उच्चतम योग्यता रखने वाले प्राध्यापकों की ही नियुक्ति हो। इसके साथ-साथ सेवा की स्थितियां और वृत्तिक उन्नति के अवसर इस प्रकार निश्चित किए जाने चाहिएं ताकि उत्कृष्ट योग्यता प्राप्त व्यक्ति विश्वविद्यालय की सेवा में बने रहने के लिए आकर्षित किए जा सकें। अध्यापक की नियुक्ति करने का अधिकार कार्यकारी परिषद् को होना चाहिए किन्तु कार्यकारी परिषद् भी अध्यापन कार्य हित सभी नियुक्तियां उचित ढंग से संगठित चुनाव समिति की सिफारिशों के अनुसार ही करे। चुनाव समिति में उप-कुलपति और संबंधित विभागाध्यक्ष के अतिरिक्त कुछ विशेषज्ञ भी होने चाहिएं। यह संख्या नियुक्त किए जाने वाले प्राध्यापकों की श्रेणी के अनुसार कम ज्यादा हो सकती है। प्रोफ़ेसर की नियुक्त करने वाली के चुनाव समिति में बाहर से आए दो या तीन विशेषज्ञ होने चाहिएं। साथ ही उसमें कुलपति। दिग्दर्शक का एक प्रतिनिधि रखना भी उपयोगी रहेगा। चुनाव समिति के प्रतिनिधि का चयन कोर्ट (चतुःशाला) या शैक्षणिक परिषद् द्वारा नहीं किया जाना चाहिए। यह स्पष्ट कर दिया जाए कि चुनाव समिति का सुझाव कार्यकारी परिषद् द्वारा स्वीकार किया जाएगा। असामान्य स्थिति में यदि कार्यकारी परिषद्, चुनाव समिति की सिफारिशें स्वीकार करने में असमर्थ हो तो अगले वर्ष और अच्छा चुनाव करने का प्रयत्न करना चाहिए। विश्वविद्यालय की तथाकथित राजनीति या विश्वविद्यालयों के मामलों में बाहरी राजनीति का दखल केवल नियुक्ति के मामलों को लेकर ही होता है। विश्वविद्यालयों को अपने यहां नियुक्तियों की स्वतंत्रता होनी चाहिए किन्तु उन्हें सुयोग्य व्यक्ति की नियुक्ति करने के लिए दृढ़ होना चाहिए।[2]

(2) हमारा ध्यान इस तथ्य की ओर भी आकर्षित किया गया है कि अधिकांश विश्वविद्यालयों में प्रोफेसर के पद के उम्मीदवारों को चुनाव समिति के सामने साक्षात्कार के लिए बुलाया जाता है। और हर उम्मीदवार के साथ 10-15 मिनट तक साक्षात्कार किया जाता है। हमारा यह निश्चित मत है कि इतने ऊंचे पदों पर नियुक्ति के लिए साक्षात्कार करने का कोई अर्थ नहीं होता। दर असल इस व्यवस्था के कारण उक्त पद पर नियुक्ति के लिए प्रथम श्रेणी के उम्मीदवार निरुत्साही हो जाते हैं। प्रोफेसर के पद पर विषय विशेष का मूर्धन्य विद्वान नियुक्त होना चाहिए। क्षेत्र विशेष में अपने योगदान के कारण प्रोफ़ेसर उस विषय के विशेषज्ञों के लिए सुपरिचित होना चाहिए।

इस प्रकार प्रत्याशी द्वारा दी गई और उसके बारे में उपलब्ध अन्य जानकारी के आधार पर, पूरा-पूरा विचार करने के उपरान्त चुनाव समिति द्वारा उम्मीदवार चुतना सम्भव हो सकेगा। अगर जरूरत हो तो वे उम्मीदवार जिन्हें चुनाव समिति ने नियुक्ति के लिए उपयुक्त माना है, विधिवत् नियुक्ति पत्र जारी होने के पूर्व उपकुलपति द्वारा वैयक्तिक रूप से बातचीत करने के लिए बुलाए जा सकते हैं।

(3) **सम्बद्ध कालिजों के प्राध्यापक** : ऊपर बताया तरीका विश्वविद्यालय से सम्बद्ध कालेजों पर भी लागू होगा। आमतौर से, उन सरकारी कालिजों में, जहां नियु-

1. अध्याय तेरह
2. **विश्वविद्यालयों के लिए आदर्श अधिवियम समिति की रिपोर्ट, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार**, 1964 पृष्ठ 23-24

क्तियां लोक सेवा आयोग के माध्यम से होती है, यह समस्या पैदा नहीं होती। निजी सम्बद्ध कालेजों में निम्नांकित ढंग से पर्याप्त सुधार की आवश्यकता है।

(क) इन कालिजों में प्राध्यापकों की शैक्षणिक योग्यता विश्वविद्यालयों द्वारा निश्चित और वही होनी चाहिए जो विश्वविद्यालयों के विभागों में होती है।

(ख) प्रत्येक रिक्त स्थान विज्ञापित किया जाना चाहिए और विश्वविद्यालयों के लिए ऊपर बताई चुनाव समिति के समान ही एक चुनाव समिति का गठन किया जाना चाहिए।

(ग) चुनाव समिति की सलाह पर, कालेज के लिए संगठित प्रबन्ध समिति द्वारा नियुक्त की जानी चाहिए। जैसा कि आदर्श अधिनियम समिति ने सिफारिश की है, प्रबन्ध समिति एक सुसंहत निकाय होना चाहिए जिसमें 10 सदस्य हों। इस निकाय की संरचना विश्वविद्यालय द्वारा निर्धारित की जानी चाहिए। कालेज के प्रधानाचार्य को समिति का सदस्य रखा जाना चाहिए। इसके अलावा यथासम्भव, चुनाव की अपेक्षा आवर्तन के आधार पर, दो या तीन प्राध्यापकों के लिए व्यवस्था होनी चाहिए। विश्वविद्यालय द्वारा दो प्रतिनिधि मनोनीत किए जाएं जो आमतौर पर अनुभवी प्राध्यापक ही हों।[1]

(घ) अगर विश्चित शैक्षणिक योग्यता में किसी प्रकार की छूट दी जाती है तो वह एक या दो वर्ष की अवधि से अधिक समय के लिए नहीं होनी चाहिए। यदि परिस्थितियों की मांग हो कि इस तरह की छूट और अधिक समय के लिए दी जाए तो भी, अस्थाबी तौर पर दी हुई छूट को स्थायी छूट में परिवर्तित नहीं होने देना चाहिए। जब तक योग्यता प्राप्त अध्यापक न हों, किसी पाठ्यक्रम में विद्यार्थियों को भर्ती करना अनुचित हैं।[2]

(ङ) यद्यपि नियुक्त करने का अधिकार कालेज को हो किन्तु यदि उच्च योग्यताओं वाले उम्मीदवारों को अकारण अस्वीकार किया जाता है और अपेक्षाकृत कम योग्यता वाले अन्य उम्मीदवार को, चाहे उस की योग्यताओं से पद की न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाती हो, नियुक्त किया जाता है तो विश्वविद्यालय को इस बात की छूट होगी कि वह कालेज की 'मान्यता' रोक दे। कई बार ऐसी नियुक्तियां इसलिए हो जाती हैं क्योंकि प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में ये संस्थायें संकुचित साम्प्रदायिक संस्थायें होती हैं। प्रबन्ध समिति द्वारा अनुचित संरक्षण देने या बाहरी दवाब के कारण भी कभी-कभी ऐसे चुनाव कर लिए जाते हैं।[3]

(च) हम यह भी सिफ़ारिश करते हैं कि एक निजी प्रबन्ध और दूसरे निजी प्रबन्ध में अन्तर रखना वांच्छित है। जहाँ शैक्षणिक स्तर अच्छा रखा जाता हैं और संस्था-संचालन कार्य में भी प्रबन्धक अपने सामर्थ्य का परिचय देते हैं वहां उन्हें अपने कालेजों के लिए प्राध्यापकों का चुनाव करने में ज्यादा स्वतन्त्रता दी जानी चाहिए परन्तु जिन संस्थाओं का प्रबन्ध संतोषप्रद न हो वहां अधिक नियंत्रण लगाया जाना चाहिए।

3.14. **स्कूल अवस्था : वेतनमानों का सरलीकरण**—उच्चतर शिक्षा क्षेत्र की तुलना में स्कूल आधार पर अध्यापकों के पारिश्रमिक में सुधार की समस्या अधिक जटिल, कठिन और तत्कालिक है। इसकी तत्कालिता इसलिए और भी अधिक बढ़ गई है क्योंकि सरकार के हाल ही में उच्च शिक्षा के क्षेत्र में अध्यापकों के नए वेतनमान स्वीकार कर लिए हैं और इस प्रकार उनके वेतन का अन्तर जो स्कूल-अध्यापकों के वेतन की तुलना में पहले से ही ज्यादा था अब और अधिक बढ़ गया है।

3.15. हमारा पहिला सुझाव यह है कि वेतनमानों की वर्तमान असमानता को कम किया जाए और स्कूल-अध्यापकों के लिए तीन मुख्य वेतनमान निर्धारित हों :

(1) एक वेतनमान उन अध्यापकों के लिए होना चाहिए जिन्होंने माध्यमिक पाठ्क्रम पूर्ण कर लिया हैं और प्रशिक्षण भी हैं। प्राथमिक स्कूलों में ऐसे अध्यापकों की संख्या बहुत अधिक हैं।

1. **विश्वविद्यालयों के लिए आदर्श अधिनियम समिति, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार की रिपोर्ट** 1964, **पृष्ठ** 28
2. **वही, पृष्ठ** 28
3. **वही, पृष्ठ** 28।

(2) एक वेतनमान उन प्रशिक्षित स्नातकों के लिए हो जिनकी संख्या प्राथमिक आधार पर तो कम है परन्तु अवर माध्यमिक शालाओं में बहुत अधिक है।

(3) एक वेतनमान उन अध्यापकों के लिए हो जो स्नातकोत्तर योग्यता रखते हैं और जिनकी संख्या अवर माध्यमिक शालाओं में कम किन्तु उच्चतर माध्यमिक स्तर पर बहुत अधिक है।

विशेष विषय के अध्यापकों या अतिरिक्त योग्यता वाले अध्यापकों को अग्रिम वेतनवृद्धि या विशेष भत्ता देकर प्रोत्साहन दिया जा सकता है। विशेष विषयों (अर्थात ड्राइंग, दस्तकारी और शारीरिक शिक्षा आदि) के अध्यापकों का वेतनमान उक्त तीन मूलभूत वेतनमानों के साथ उचित ढंग से सम्बन्धित किया जा सकता है। पुस्तकाध्यक्ष के वेतन मान का सम्बन्ध भी अध्यापकों के वेतनमान के साथ उचित ढंग से स्थापित किया जा सकता है।

3.16 **माध्यमिक पाठ्यक्रम पूरा करने वाले अध्यापकों का वेतनमान**—इस श्रेणी के अध्यापकों के लिए हम सिफ़ारिश करते है कि:

(1) प्राथमिक आधार पर ऐसा कोई अध्यापक नहीं होना चाहिए जिसने माध्यमिक पाठ्यक्रम तक शिक्षा प्राप्त कर दो वर्ष का व्यावसायिक प्रशिक्षण पूरा न किया हो।[1]

(2) माध्यमिक स्कूल पाठ्यक्रम पूरा करने वाले अध्यापकों के बारे में हम नीचे लिखे वेतनमानों की सिफ़ारिश करते हैं।

(क) प्राथमिक स्कूल के उन अध्यापकों का न्यूनतम वेतन, जिन्होंने माध्यमिक स्तर का पाठ्यक्रम पूरा कर लिया है, रु० 100 होना चाहिए। यह न्यूनतम वेतन उन्हें तुरन्त मिल जाना चाहिए और पाँच वर्ष में इसे रु० 125 तक बढ़ा देना चाहिए।

(ख) प्राथमिक स्कूल के उन अध्यापकों का, जिन्होंने माध्यमिक स्कूल पाठ्यक्रम पूरा कर लिया है, और जो प्रशिक्षित है, न्यूनतम वेतन रु० 125 होना चाहिए और पांच वर्षों में इसे बढ़ा कर रु० 150 कर देना चाहिए।

(ग) सभी प्राथमिक स्कूल-अध्यापकों के लिए, जिन्होंने माध्यमिक स्कूल पाठ्यक्रम पूरा कर लिया है और जो प्रशिक्षित भी हैं, निम्नांकित वेतनमान जल्दी से जल्दी और हर हालत में पांचवीं पंचवर्षीय योजना के प्रथम वर्ष के पूर्व ही स्वीकार कर लिए जाने चाहिए :

प्रारम्भिक वेतन	रु० 150
20 वर्ष में अधिकतम वेतन	रु० 250
सेलेक्शन ग्रेड (संवर्ग के 15 प्रतिशत लोगों को उपलब्ध)	रु० 250 से 300

नोट :

(1) सभी सुयोग्य और प्रशिक्षित अध्यापकों को पूर्व प्राथमिक, अवर प्राथमिक और उच्चतर प्राथमिक सभी उप-अवस्थाओं पर समान वेतनमान दिया जाना चाहिए। साथ ही समानता के सिद्धान्त के आधार पर स्थानीय स्वायत्त निकाय और निजी स्कूलों के अध्यापकों को भी यह वेतन मिलना चाहिए।

(2) केवल प्राथमिक स्कूलों के योग्यता प्राप्त और प्रशिक्षित अध्यापकों के वेतनमान में मौलिक वृद्धि करनी होगी। अन्य श्रेणी के प्राथमिक अध्यापकों के वेतनमान को इसी हद तक ऊंचा करने की जरूरत नहीं है। उनके वेतनमान को नीचा रखना प्रशासनिक नीति का एक उद्देश्य होना चाहिए ताकि अध्यापकों को अपनी सामान्य और वृत्तिक योग्यता बढ़ाने के लिए प्रेरणा मिले।

(3) "प्रशिक्षित" का अर्थ है वे अध्यापक जिन्होंने दो वर्ष का वृत्तिक प्रशिक्षण प्राप्त कर लिया है।

दूसरे शब्दों में प्राथमिक अध्यापकों को पारिश्रमिक में होने वाली वृद्धि उनकी कोटि और शैक्षणिक योग्यता के साथ संलग्न होगी। प्राथमिक अध्यापक का औसत पारिश्रमिक बढ़ाने के लिए, जैसा कि आगामी अध्यायों

1. **इस नियम का एक अपवाद है। जैसा कि पहले ही कहा गया है, सभी उच्च और अवर प्राथमिक स्कूलों के मुख्याध्यापक, जहां 200 से अधिक विद्यार्थी पढ़ते हैं, प्रशिक्षित स्नातक होने चाहिए। प्रशिक्षित स्नातकों का, जो प्राथमिक अवस्था के उक्त पदों पर कार्य करते हैं, वही वेतन मिलना चाहिए जो माध्यमिक स्कूलों के प्रशिक्षित स्नातकों का मिलता है। इस पर अगली धाराओं में विचार किया जाएगा।**

में बताया गया है, एक प्रेरणात्मक कार्यक्रम को निश्चित करना होगा जिससे अध्यापक सेवाकाल में अपनी योग्यता बढ़ा सकें और आगामी दस वर्षों में सुनिश्चित कार्यक्रम के अनुसार योग्यता प्राप्त और प्रशिक्षित अध्यापकों के अतिरिक्त शेष सभी अध्यापकों को सेवा से अलग किया जा सके।

(3) इस प्रसंग में हमारा ध्यान एक असंगति की ओर भी खींचा गया है जिसे जितना शीघ्र हो सके, समाप्त कर देना चाहिए। कई राज्य, वित्तीय आधार पर ऐसे अध्यापकों की संख्या सीमित कर देते हैं, जिनका वेतनमान माध्यमिक स्कूल योग्यता प्राप्त और प्रशिक्षित अध्यापक के समान रखा गया है। शेष जगह कम वेतनमान वाले पदों पर नियुक्त उन अध्यापकों के लिए स्वीकृत होती है, जिनकी शैक्षणिक योग्यता नीचे दर्जे की होती है। योग्य और प्रशिक्षित अध्यापक उपलब्ध होने पर भी प्रायः इन पदों पर निम्न स्तर की योग्यता रखने वाले उम्मीदवारों को नियुक्त किया जाता है। यह बात बुरी है, परन्तु इससे भी बुरी बात यह है कि उक्त रिक्त स्थानों पर जिन प्रशिक्षित और योग्यता प्राप्त अध्यापकों को नियुक्त किया जाता है, उन्हें योग्यता प्राप्त एवं प्रशिक्षित अध्यापक का वेतन, जिसके वे अधिकारी हैं, नहीं दिया जाता। उन्हें उक्त पद के लिए निश्चित निम्न स्तर का वेतन ही दिया जाता है। प्राथमिक स्कूलों के अध्यापक के लिए न्यूनतम योग्यता माध्यमिक स्कूल तक शिक्षा और दो वर्ष का व्यावसायिक प्रशिक्षण, स्वीकार कर ली गई है। अतः उक्त प्रथा को, जितनी जल्दी हो सके, त्याग देना चाहिए। यह सिद्धांत स्वीकार कर लेना चाहिए कि प्रत्येक अध्यापक, जिसने माध्यमिक स्कूल पाठ्यक्रम पूरा कर लिया है, इस श्रेणी के अध्यापकों के लिए स्वीकृत वेतनमान प्राप्त करे। इसके कारण आजकल सेवारत काफी अध्यापकों के प्रति अन्याय समाप्त हो जाएगा और उन लोगों को, जो पूरी तरह शिक्षित या प्रशिक्षित नहीं हैं, शिक्षित और प्रशिक्षित बनने की प्रेरणा मिलेगी।

3.17 **माध्यमिक स्कूलों के अध्यापकों का वेतनमान**—आजकल माध्यमिक अवस्था पर अध्यापकों का वेतन अनियमित ढंग से निश्चित कर दिया जाता है और उनके पारिश्रमिक की दर से प्राथमिक स्कूल और विश्वविद्यालयों की स्थिति का स्पष्ट चित्र सामने नहीं आता। इसलिए इनका वेतनमान निश्चित करते समय सुनिश्चित सिद्धान्तों का पालन होना चाहिए। एक ओर तो माध्यमिक स्कूलों और दूसरी ओर विश्वविद्यालयों के अध्यापकों के वेतनमानों के साथ इनका सम्बन्ध जोड़ना चाहिए। इस संबंध में हमारे सुझाव इस प्रकार हैं :

(1) अवर या उच्चतर माध्यमिक स्कूलों के प्रधानाध्यापक के वेतन को सम्बद्ध कालेजों अथवा विश्वविद्यालयों के अध्यापक से साथ भी सम्बन्धित किया जाना चाहिए। स्कूल की कोटि, आकार और कार्य तथा सम्बद्ध व्यक्ति की योग्यता के आधार पर अवर माध्यमिक स्कूलों के मुख्याध्यापकों का वेतन वही होना चाहिए जो कनिष्ठ या वरिष्ठ प्राध्यापकों अथवा रीडर को मिलता है। कुछ चुनी हुई संस्थाओं में उच्चतर माध्यमिक स्कूलों के प्राधानाध्यापक को प्रोफेसरों के समकक्ष वेतन मिलना चाहिए। इसके परिणामस्वरूप स्कूलों और विश्वविद्यालयों के स्तर पर वेतनमान का अन्तर कम हो जाएगा।

(2) सामान्य शैक्षणिक योग्यता के आधार पर माध्यमिक स्कूलों के सहायक अध्यापकों को स्नातक और स्नातकोत्तर योग्यता प्राप्त अध्यापक, इन दो श्रेणियों में विभक्त करना चाहिए। इन दोनों श्रेणियों में निश्चित रूप से एक सापेक्ष औसत स्थापित किया जाना चाहिए। हम सिफ़ारिश करते हैं कि स्कूल के आकार, कार्य और कोटि के आधार पर स्नातकोत्तर योग्यता रखने वाले अध्यापकों का अनुपात 10 से 30 प्रतिशत तक घट-बढ़ सकता है। यह स्पष्ट कर दिया जाए कि "स्नातकोत्तर योग्यताएं" से हमारा तात्पर्य उसी तरह की और उसी स्तर की योग्यताओं से है जो सम्बद्ध कालेजों के कनिष्ठ प्राध्यापकों के लिए निश्चित की गई हैं। अन्य प्रकार की स्नातकोत्तर योग्यताओं वाले अध्यापकों का वेतन स्नातकों के वेतनमान में उचित ढंग से समाहित करना चाहिए।

(3) स्नातक और प्रशिक्षित अध्यापकों का न्यूनतम वेतन रु० 220 होना चाहिए जो 20 वर्ष की अवधि में बढ़कर रु० 400 तक पहुंच जाए। रु० 500 तक बढ़ने वाला एक सेलेक्शन ग्रेड भी होना चाहिए जो संवर्ग के 15 प्रतिशत व्यक्तियों को दिया जाए।

(4) उच्चतर माध्यमिक स्कूलों के स्नातकोत्तर योग्यता प्राप्त अध्यापकों को, कनिष्ठ अध्यापकों को मिलने वाला वेतन, अर्थात, रु० 300-600 मिलना चाहिए क्योंकि उनकी शैक्षणिक योग्यताएं समान होंगी। प्रशिक्षित होने पर उन्हें एक अग्रिम वेतन-वृद्धि भी दी जानी चाहिए।

(5) बी० ए०/बी० एस०-सी० या एम० ए०/एम० ए०-सी० कक्षाओं में में प्रथम या द्वितीय श्रेणी पाने वाले अध्यापकों को उक्त वेतनमान में अग्रिम वेतन-वृद्धि का लाभ देना चाहिए। जो अध्यापक एम० एड० हैं उन्हें भी एक अग्रिम वेतन वृद्धि का लाभ देना चाहिए।

(6) माध्यमिक स्कूल के सभी अध्यापकों के लिए व्यावसायिक प्रशिक्षण अनिवार्य होना चाहिए। यदि यह योग्यता प्रथम नियुक्ति के पूर्व ही प्राप्त हो गई हो तो अधिक अच्छा रहेगा। प्रथम और दूसरी श्रेणी के स्नातकों और स्नातकोत्तर योग्यता प्राप्त अध्यापकों के मामलों में कुछ छूट दी जा सकती है। वे नियुक्ति के समय अप्रशिक्षित भी हो सकते हैं किन्तु उन्हें तीन वर्ष में ही व्यावसायिक प्रशिक्षण प्राप्त कर लेना चाहिए। सभी अप्रशिक्षित अध्यापक अपने प्रारम्भिक वेतन पर ही रुके रहेंगे और व्यावसायिक प्रशिक्षण के बाद ही नियमित वेतनमान में सम्मिलित किए जा सकेंगे।

3.18. इन प्रस्तावों का प्रभाव मौजूदा परिस्थितियों के संदर्भ में समझा जा सकता है। आयोग ने (कुल 312 जिलों में से) 29 जिलों के स्कूल अध्यापकों के वेतनों का अध्ययन किया जिसके निष्कर्षों का विवरण नीचे की सारणी 3.2 में दिया है।

सारणी 3·2 — 29 जिलों में स्कूल अध्यापकों की परिलब्धियाँ (1965)

मासिक परिलब्धियाँ	अध्यापकों का प्रतिशत		
	अवर प्राथमिक	उच्चतर प्राथमिक	माध्यमिक
1	2	3	4
रु० 60 और कम	2.2	2.3	
60— 80	15.7	4.9	
81—100	29.9	14.1	4.3[1]
101—120	25.4	19.3	9.1
121—140	22.1	31.1	13.2
141—160	2.9	13.0	17.6
161—180	1.0	6.0	11.7
181—200	0.3[1]	6.5	9.7
201—220	0.3	1.2	6.5
221—240		1.0	6.3
241—260		0.5	5.2
261—280		0.2	4.7
281—300		0.1	4.4
301—320		0.1[1]	1.9
321—340			1.7
341—360			1.1
361—380			0.7
381—400			0.5
401—420			0.8
421—440			0.2
441—460			0.2
461—480			0.0
481—500			0.1
500 से ज्यादा			0.1
	(100.0)	(100.0)	(100.0)
सं०	94,434	30,624	17,707
गि०	13,29,544	4,31,158	2,49,298

1. ये आँकड़े अवर प्राथमिक स्कूल के अध्यापकों के सम्बन्ध में 'रु० 201 और इससे अधिक', उच्चतर प्राथमिक अध्यापकों के सम्बन्ध में 'रु० 301 और अधिक' तथा माध्यमिक स्कूल के अध्यापकों के सम्बन्ध में 'रु० 100 और इससे कम' पाने वालों के प्रतीक हैं।

'सं०' का अर्थ है अध्यापकों की संख्या, जिन्हें इस अध्ययन में सम्मिलित किया गया है।

'गि०' का अर्थ है सम्बन्धित श्रेणी के अध्यापकों की गिनती।

स्रोत और अन्य ब्योरे के लिए कृपया अनुपूरक खण्ड एक, भाग चार देखिए।

3.19. **स्कूल अध्यापकों की नियुक्ति**—विश्वविद्यालय अवस्था के समान ही स्कूल-अध्यापक के वेतन में होने वाले सुधार को उनकी योग्यता और भर्ती के तरीकों के साथ संलग्न किया जाना चाहिए। यह जिम्मेवारी राज्यों के शिक्षा विभागों की होगी जो स्कूल-शिक्षा मंडलों द्वारा विहित अध्यापकों की शैक्षणिक योग्यता के अनुसार इनकी भर्ती के लिए उचित ढंग तय करेंगे। स्कूल अध्यापकों की योग्यता के बारे में हमारी सिफारिशें ऊपर दी गई हैं। हमारा विश्वास है कि इनके आधार पर और स्थानीय परिप्रेक्ष्य में, राज्यों के स्कूल-शिक्षा मंडलों

द्वारा सभी सरकारी स्थानीय स्वायत्त निकाय अथवा निजी प्राथमिक और माध्यमिक स्कूलों के अध्यापकों के लिए शैक्षणिक योग्यताएँ तय हो सकेंगी। भर्ती के सम्बन्ध में हम नीचे लिखी सिफ़ारिशें करते हैं :

(1) **सरकारी स्कूल**—भर्ती के मौजूदा तरीके संतोषप्रद हैं।

(2) **स्थानीय स्वायत्त निकाय के स्कूल**—स्थानीय स्वायत्त निकाय के स्कूलों के बारे में हमने अध्याय दस में जिला स्कूल मंडलों के गठन की सिफारिश की है जो जिले के समस्त स्कूलों में अध्यापकों की नियुक्ति चुनाव समिति के माध्यम से करेगी। चुनाव समिति का गठन स्कूल मंडल के प्रतिनिधि, जिला शिक्षा-अधिकारी या उनका प्रतिनिधि और सरकार द्वारा तय दो या चार व्यक्तियों का 'पेनल' मिल कर करेंगे।

(3) जहाँ तक निजी स्कूलों का सम्बन्ध है, मौजूदा स्थिति में काफी सुधार करने की गुंजाइश है। इन संस्थाओं में भी अध्यापकों की भर्ती करने के तरीक़ों को उन्हीं आधार पर देखना होगा जिनकी सिफ़ारिश सम्बद्ध कॉलेजों के लिए पहले की जा चुकी है। राज्यों के शिक्षा विभागों से मान्यता अथवा सहायता प्राप्त प्रत्येक स्कूल की एक प्रबन्ध समिति होनी चाहिए जिसमें विभाग का एक प्रतिनिधि रखा जाए। विभाग द्वारा अध्यापकों की वे योग्यताएँ निश्चित की जानी चाहिए जो सरकारी स्कूलों के समान हों। प्रत्येक रिक्त पद को उचित ढंग से विज्ञापित किया जाना चाहिए और चुनाव समिति द्वारा पद के सभी उम्मीदवारों का साक्षात्कार किया जाए। प्रबन्ध समिति द्वारा संगठित चुनाव समिति में उस पद की महत्ता के अनुसार एक या अधिक विषय विशेषज्ञ होने चाहिए। सभी प्राप्त आवेदन-पत्रों, साक्षात्कार, और अन्तिम चुनाव की रिपोर्ट तैयार कर शिक्षा-विभाग की स्वीकृति के लिए भेजी जानी चाहिए। सम्बद्ध कॉलेजों की तरह ही, अध्यापकों की नियुक्ति का अधिकार भी स्कूलों की प्रबन्ध-समिति को होना चाहिए। जब तक अध्यापक की नियुक्ति के लिए ऊपर बताए तरीके के आधार पर चुनाव करने के बाद नियुक्ति की स्वीकृति प्राप्त नहीं कर ली जाती तब तक नव-नियुक्त अध्यापक के वेतन के लिए अनुदान नहीं दिया जाना चाहिए और स्वीकृति रोकने में किसी प्रकार का संकोच नहीं करना चाहिए। इस मामले में थोड़ी नमनीय नीति अपनाई जा सकती है, अर्थात्, अच्छे और योग्य प्रबन्धकों को इन मामलों में अधिक स्वतंत्रता देनी चाहिए, परन्तु जो निश्चित स्तर बनाए रखने में असफल रहते हैं, या अनाचार के लिए अवसर छोड़ते हैं उन्हें अपेक्षाकृत अधिक कठोरता के साथ नियंत्रित रखना चाहिए।

3.20. **उन्नति की सम्भावनाएं**—दुर्भाग्यवश अध्यापकों की उन्नति की संभावनाएं, लगभग सभी आधारों पर बहुत नगण्य हैं। वेतनमान की अपेक्षा यह पक्ष प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति को अध्यापन वृत्ति में आने से अधिक रोकता है। इसलिए शिक्षण-क्षेत्र में सभी आधारों पर उन्नति की अच्छी सम्भावनाएँ निश्चित करने के लिए कदम उठाने चाहिए। इसमें केवल शैक्षणिक योग्यता बढ़ाना ही नहीं बल्कि अच्छे अध्यापन-कार्य का पुरस्कार भी शामिल है। इस सम्बन्ध में हम निम्न सुझाव प्रस्तुत करते हैं:

(1) **स्कूल अवस्था**—(क) मुख्याध्यापक या [illegible] निरीक्षक (इन्स्पेक्टर) जैसे उच्च पदों पर, जहाँ आमतौर से प्रशिक्षित स्नातकों को नियुक्त किया जाता है, प्राथमिक स्कूलों के योग्य और प्रशिक्षित अध्यापकों की पदोन्नति पर विचार करना चाहिए। दस से पन्द्रह प्रतिशत स्थान पदोन्नति द्वारा नियुक्ति के लिए सुरक्षित रखे जाएँ।

(ख) इसी प्रकार प्रशिक्षित स्नातकों को, जिन्होंने अध्यापक के रूप में बहुत अच्छा कार्य किया है, ऐसी दस या पन्द्रह प्रतिशत जगहों पर पदोन्नति का अधिकारी समझना चाहिए, जहाँ स्नातकोत्तर योग्यता रखने वाले अध्यापकों के समान वेतन मिलता है।

(ग) स्कूल अध्यापक के लिए विश्वविद्यालय में नियुक्त हो सकने की अभिप्रेरणा और क्षमता दिखाने की संभावना हो। इस कार्य में सहयोग देने के लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग प्रकृष्ठ प्राध्यापकों को अपनी रुचि के क्षेत्र में अनुसंधान करने के लिए 'अनुदान' देने की व्यवस्था करे ताकि अध्यापक विश्वविद्यालयों में कार्य करने योग्य बन सकें।

(घ) वेतनमानों के लिए बीस वर्षों का समय बहुत लम्बी अवधि है। कोई ऐसा तरीका निकालना चाहिए जिसके अधीन प्रकृष्ठ कार्य करने वाले अध्यापक अग्रिम वेतन वृद्धि प्राप्त कर सकें। इसी प्रकार करीब पांच प्रतिशत अध्यापक दस वर्ष में, पाँच प्रतिशत पन्द्रह वर्षों में वेतनक्रम का अधिकतम प्राप्त कर सकें।

(2) **विश्वविद्यालय अवस्था**—निम्न तरीकों पर विचार किया जाए—(क) उच्च वेतनक्रम में एक तदर्थ अस्थायी पद उस प्राध्यापक या रीडर के लिए नियत हो जिसने कोई प्रकृष्ठ कार्य किया है, किन्तु उपयुक्त स्थान

रिक्त न रहने के कारण उसे साधिकार अर्जित उन्नति का अवसर नहीं दिया जा सकता। कालांतर में जब स्थायी पद रिक्त हो जाए तो उस अध्यापक को दिया जाए। इस तरह की पदोन्नति करने के पूर्व सम्बन्धित व्यक्ति के कार्य का मूल्यांकन विशेष रूप से संगठित विशेषज्ञों की समिति द्वारा करा लेना चाहिए और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की स्वीकृति प्राप्त कर लेनी चाहिए। इस तरह की व्यवस्था वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद् तथा भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् में आजकल भी चालू है।

(ख) प्रोफेसर स्तर का पद केवल एक ही तक सीमित रखने के बदले हर विभाग की आवश्यकता के अनुसार बढ़ाना चाहिए।

(ग) यदि प्रोफेसर स्तर पर प्रकृष्ठ योग्यता प्राप्त व्यक्ति की सेवाएँ जारी रखनी हैं अथवा प्राप्त करनी हैं तो विश्वविद्यालयों को यह स्वतंत्रता होनी चाहिए कि वे विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से सलाह लेकर विशेष वेतनमान रु० 1600-1800 से अधिक पारिश्रमिक दे सकें। हर स्थिति में व्यक्ति के गुणों को ध्यान में रखकर विचार किया जाना चाहिए और वेतन निश्चित करने में लचीलापन रखने की काफी छूट होनी चाहिए।

3.21. **निर्वाह व्यय से वेतन का सम्बन्ध**—बातचीत के दौरान जो दो अन्य बातें उठीं वे ध्यान देने योग्य हैं। पहली बात है बढ़ती कीमतों के साथ वेतन का सम्बन्ध। यह सुझाव दिया गया है कि जब वेतन मौजूदा कीमतों के अनुसार बढ़ा दिया जाए तो एक ऐसा स्वचालित तरीका तय कर लेना चाहिए जिससे निर्वाह व्यय की भावी गतिविधियों के साथ वेतन का स्वतः मेल बैठाया जा सके, जैसा कि औद्योगिक कामगरों से सम्बन्धित मामलों में किया जाता है। यद्यपि हम निर्वाह व्यय के साथ वेतन को संलग्न करने की आवश्यकता अनुभव करते हैं, किन्तु यह भी अनुभव करते हैं कि यह कार्य समानता के सिद्धांत के आधार पर ज्यादा अच्छी तरह हो सकता है। हमने सिफ़ारिश की है कि सभी अध्यापकों के वेतन का पांच वर्ष में पुनरावलोकन किया जाए। हमने यह भी सिफ़ारिश की है कि समानता का सिद्धांत, जिसके अधीन सभी अध्यापकों को महँगाई भत्ता दिया जाना है, सरकारी कर्मचारियों के वेतन के साथ संलगन किया जाए। इस प्रकार निर्वाह व्यय की गति के साथ वेतन और भत्ते का मेल स्थापित किया जा सकेगा।

3.22. **कल्याण सेवाएं**—अध्यापकों के लिए निःशुल्क आवास की सुविधा, बच्चों को निःशुल्क शिक्षा, निःशुल्क अथवा अनुपूरित चिकित्सा व्यवस्था जैसी कल्याण सेवा व्यवस्था के लिए बहुत से सुझाव आए हैं। यद्यपि इस तरह के सुझाव जब तक उपयुक्त वेतनमान तय न हों तब तक संक्रमणकालीन साधनों के रूप में कार्य कर सकते हैं, किन्तु हम यह नहीं मानते कि इस तरह अस्थायी लाभ प्राप्त कर समस्या का उचित हल निकाला जा सकता है। सबसे अच्छी बात तो यह होगी कि अध्यापकों को पूरी तरह वेतन दिया जाए ताकि इन विशेष लाभों की आवश्यकता ही न पड़े।

3.23. फिर भी एक महत्वपूर्ण प्रस्ताव पर विचार करना जरूरी है जिसका सम्बन्ध राज्यों और केन्द्र प्रशासित प्रदेशों के अध्यापकों के लिए कल्याण सेवाओं का सामान्य कार्यक्रम बनाने की आवश्यकता से है। इस कार्यक्रम के लिए सम्मिलित रूप से धन इकट्ठा किया जाना चाहिए। अध्यापकगण अपने वेतन का डेढ़ प्रतिशत दें और इतना ही धन राज्य से प्राप्त हो। इस प्रकार एकत्र धन का प्रबन्ध अध्यापकों तथा सरकारी प्रतिनिधियों के सहयोग से बनी समिति करें। एक समिति राज्य स्तर पर बनाई जानी चाहिए जो प्रमुख रीति-नीति तय करे और दूसरी जिला स्तर की समिति हो जो इस धन का निश्चित नीति के अनुसार परिचालन करे। जमा राशि का उपयोग पुस्तकें और अन्य आवश्यक वस्तुएं खरीदने के लिए अनुदान, यात्रा अनुदान, बच्चों की शिक्षा के लिए छात्रवृत्ति, भयंकर बीमारी अथवा विपत्ति और अन्य आकस्मिक आपदाओं के समय उचित सहायता प्रदान करने के लिए किया जा सकता है। ज्यों ही इस प्रकार के एक सामान्य कल्याण कोष की स्थापना सभी राज्यों और केन्द्र प्रशासित प्रदेशों में हो जाए, भारत सरकार द्वारा मौजूदा अध्यापक कल्याण कोष को लाभप्रद तरीके से इसमें सम्मिलित किया जा सकता है।[1]

3.24. **वित्तीय अनुमान**—वेतन वृद्धि के इन प्रस्तावों पर स्पष्ट रूप से एक आपत्ति तो वित्तीय आधार पर उठाई जा सकती है। वर्तमान शिक्षा सम्बन्धी विकास और

1. **हम सिफ़ारिश करते हैं कि इन सेवाओं का लाभ विश्वविद्यालय के अध्यापकों के लिए भी होना चाहिए। इस दृष्टि से उन्हें सभी अध्यापकों के लिए राज्य स्तरीय कार्यक्रम में सम्मिलित किया जा सकता है। विकल्प स्वरूप प्रत्येक विश्वविद्यालय भी उपर्युक्त तरीके से अपने अध्यापकों के लिए कल्याण कोष की स्थापना कर सकता है।**

भावी विस्तार के स्तर को ध्यान में रख यह तर्क दिया जा सकता है कि देश के पास इन वेतनमानों को स्वीकार करने के लिए पर्याप्त साधन नहीं हैं। हम जानते हैं कि हमारे द्वारा सुझाई वृद्धि के कारण शिक्षा पर होने वाला खर्च काफी बढ़ जाएगा किन्तु जब तक वेतन में सुझाए गए स्तर तक अथवा इससे भी अधिक अच्छे स्तर पर वृद्धि नहीं की जाती और जब तक रिक्त स्थानों की पूर्ति हित उचित पद्धति अपनाने का कार्य आरम्भ नहीं होता तथा उक्त व्यवस्था को स्थिर करने के लिए प्रयत्न नहीं होता तब तक शिक्षा के स्तर में अपेक्षित सुधार नहीं किया जा सकता। फलस्वरूप, शिक्षापद्धति का राष्ट्रीय विकास कार्य में उल्लेखनीय योगदान भी नहीं हो पाता। शिक्षा का, और इसके फलस्वरूप राष्ट्र का, भविष्य दांव पर है, अतः हमें यह कीमत अवश्य ही चुकानी पड़ेगी। हमारा विश्वास है कि हम आवश्यक धनराशि जुटा सकते हैं और हमें ऐसा करना भी चाहिए।

3.25. शिक्षा के क्षेत्र में अग्रगण्य देशों की वेतन-व्यवस्था का अध्ययन करने पर कुछ रोचक तथ्यों का पता चलता है। कुछ देशों में, उदाहरणार्थ, रूस में अध्यापन कार्य को बहुत अच्छे धन्धों में से एक माना जाता है। बहुत से देशों में शिक्षकों का वेतन अन्य व्यवसायों के वेतन की तुलना में निश्चित रूप से प्रस्तुत किया जा सकता है। विश्वविद्यालय स्तर पर मिलने वाला वेतन आमतौर से काफी ऊंचा होता है ताकि देश में उच्च प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति इस ओर आकर्षित हो सकें। विश्वविद्यालय और स्कूल के अध्यापकों के वेतनों का अन्तर बहुत कम है। उच्चतम वेतन का भी राष्ट्रीय लाभांश से पर्याप्त सम्बन्ध है और वेतन का सम्बन्ध अध्यापक की योग्यता से होता है, न कि उस संस्था से जहां वह कार्य करता है। इन्हीं कारणों से ये देश अपने यहां शिक्षा के भारी विकास कार्यक्रम का अनुमोदन कर सकते हैं और वहां प्रतिभाशाली व्यक्तियों का उचित भाग शिक्षक वृत्ति के प्रति आकर्षित रहता है।

3.26. विकासशील देशों में, जहां की सामान्य स्थिति एकदम विपरीत है, इन आधारों पर वेतन-व्यवस्था का पुनर्गठन वांछनीय नहीं है, क्योंकि

— राष्ट्रीय लाभांश की तुलना में अध्यापकों का वेतन ऊंचा है;

— अध्यापकों के वेतन की सरकारी कर्मचारियों के वेतन से कोई तुलना नहीं है क्योंकि उनका वेतन अध्यापकों के वेतन से भी ज्यादा है;

— विभिन्न स्तरों पर अध्यापकों के वेतन में बहुत अन्तर है।

इस स्थिति का मूल कारण यह है कि सरकारी सेवा में उत्कृष्ट कोटि के पदों का वेतन जनता की आर्थिक क्षमता का ध्यान रखे बिना बहुत अधिक तय कर दिया गया है। हमारे ही देश की तरह यहां भी इसका कारण मूलतः ऐतिहासिक ही है। साम्राज्यवादी शासनकाल में उत्कृष्ट कोटि के पदों का वेतन भारतवासियों के राष्ट्रीय लाभांश से सम्बन्धित न होकर इंगलैंड में मिलने वाले वेतन के संदर्भ में निश्चित किया जाता था। परिणाम-स्वरूप ऊंचे पदों पर कार्य करने वाले सरकारी कर्मचारियों का वेतन (जो अधिकतर अंग्रेज थे) भारतीय जनता की आर्थिक क्षमताओं से बहुत अधिक होता था। सरकारी सेवा के इन पदों पर जब भारतीयों की नियुक्ति की गई तब भी वेतन कम नहीं किया गया क्योंकि विदेशी अधिकारियों के वेतन में अन्तर रखना राजनैतिक इष्ट-साधन में बाधक था। इस प्रकार एक वर्ग विशेष के रूप में सरकारी कर्मचारियों का वेतन देश की आर्थिक क्षमताओं की तुलना में बहुत ऊंचे स्तर पर तय किया जाता रहा। जब तक सरकारी कर्मचारियों की संख्या सीमित रही, तब तक इस स्थिति से कोई कठिनाई नहीं पैदा हुई किन्तु शीघ्र ही, आमतौर पर सभी सामाजिक सेवा-कार्यों के विकास में, और शिक्षा के विकास-पथ में विशेष रूप से, यह एक मुख्य अड़चन बनी। समस्या का समाधान निम्न तीन उपायों द्वारा खोजने का प्रयत्न किया गया, जो स्वयं विवादास्पद थे।

1. सरकारी सेवाओं में भी अध्यापकों को अन्य श्रेणी के कर्मचारियों की तुलना में, जिनकी योग्यताएं और जिम्मेवारियां समान (अथवा कम भी) थीं, थोड़ा वेतन मिला।

2. अधिकांश शिक्षण संस्थाएं सरकारी क्षेत्र में न रखकर स्थानीय स्वायत्त निकायों और निजी क्षेत्रों में रखी गईं।

3. समानता का सिद्धांत अस्वीकार कर दिया गया और स्थानीय स्वायत्त शासन तथा निजी स्कूलों के अध्यापकों को निचली दर से वेतन दिया गया।

हमने सिफ़ारिश की है कि ऐसे भेदभावपूर्ण तरीके तुरन्त त्याग दिए जाएं। अगर यह स्वीकार कर लिया जाता है और सभी अध्यापकों को पूरी तरह और समानता

के सिद्धांत पर वेतन देना स्वीकार कर लिया जाता है तो केवल दो तरीके बचते हैं जिनके द्वारा समस्या का हल हो सकता है। या तो सभी सरकारी कर्मचारियों का वेतन कम कर दिया जाए जो तब तक नहीं हो सकता जब तक सभी प्रकार की आमदनियों का नियमन न हो, अथवा शिक्षा के विकास का कार्य सीमित कर दिया जाए। परन्तु शिक्षा का विकास सीमित करना न तो वांछनीय है और न ही सम्भव। इसलिए मूलभूत दुविधा स्पष्ट हो जाती है। सरकार अन्य सरकारी कर्मचारियों का वेतन कम करने एवं सभी प्रकार की आमदनियों को नियमित करने में असमर्थ है और अध्यापकों के साथ न्याय करने और अन्य सरकारी कर्मचारियों के समकक्ष वेतन बढ़ाने के लिए उसके पास साधन नहीं है।

3.27. इन परिस्थितियों में सभी वेतनमानों को बदला जाए। उन्हें पुरानी ऐतिहासिक परम्पराओं पर आधारित न रख कर, सेवा सम्बन्धी अपनी आवश्यकताओं और वित्तीय बोझ सहने की सामाजिक क्षमता पर आधारित करें। यही एकमात्र तर्क-सम्मत मार्ग है। इसका अर्थ होगा बहुत से वेतनक्रमों को घटाना और आमदनी के अन्य साधनों को सख्ती के साथ नीचे लाना। अगर ऐसे प्रयत्न किए जाते हैं तो अध्यापक भी अपना देय देने के लिए तैयार हैं, यद्यपि वे, जैसा कि ठीक भी है, उनके वेतन को ही निचले स्तर पर बनाए रखने के किसी भी प्रयत्न का विरोध करते हैं।

3.28. **समस्या की तात्कालिकता और केन्द्रीय सहायता** – इस विषय की चर्चा समाप्त करने के पूर्व हम दो बातों पर जोर देना चाहेंगे। पहली बात है समस्या की तात्कालिकता। स्कूल के अध्यापकों का वेतन बढ़ाने की जरूरत काफ़ी हद तक अपनी पात्रता के कारण पूरी तरह न्यायसम्मत और अत्यावश्यक है। कुछ तो शैक्षणिक विकास कार्यक्रम के कारण और कुछ निर्वाह व्यय के बढ़ जाने के कारण विश्वविद्यालयों के अध्यापकों के वेतन में हाल ही में हुए परिवर्तनों के फलस्वरूप मौजूदा असमानता बढ़ गई है, इसलिए उक्त अनिवार्यता और भी अधिक महत्वपूर्ण हो गई है। अतएव हम सिफ़ारिश करते हैं कि अध्यापकों का वेतन बढ़ाने के सम्बन्ध में हमारे प्रस्तावों पर तत्काल अमल किया जाए। दूसरी बात का सम्बन्ध केन्द्रीय सहायता से है। पहली तीन पंचवर्षीय योजनाकाल में लगभग सभी राज्यों ने अध्यापकों के वेतन कई बार बदले हैं। इस तरह के कार्यक्रमों पर होने वाले खर्च को 'योजना विनियोग' के अन्तर्गत आने के कारण किसी न किसी रूप में केन्द्रीय सहायता मिलती रही है। अध्यापकों का वेतन आजकल बहुत कम है और उसे संतोषप्रद स्तर तक ऊंचा उठाने का काम, कुछ तो प्रस्तावित वृद्धि के आकार के कारण और कुछ इस प्रकार की वृद्धि से प्रभावित व्यक्तियों की संख्या के कारण, बहुत बड़ा है। हमें ऐसा लगता है कि जब तक पर्याप्त और उदार केन्द्रीय सहायता नहीं मिलती, तब तक राज्य सरकारें इस महत्वपूर्ण समस्या को शीघ्र ही नहीं सुलझा सकेंगी। इसलिए हम सिफ़ारिश करते हैं कि केन्द्र हमारे सुझावों के अनुरूप अध्यापकों का वेतन बढ़ाने के लिए राज्यों को उदारतापूर्वक सहायता दे। यह बात विशेष महत्वपूर्ण नहीं है कि यह सहायता योजना-व्यय के अधीन दी जाती है अथवा इसके बाहर। यद्यपि हम इस मत के हैं कि इस खर्च की व्यवस्था योजना-व्यय के अधीन करने का वर्तमान तरीका जारी रखा जाए।

सेवा-निवृत्ति लाभ

3.29. **समानता का सिद्धांत**––आजकल लागू सेवा-निवृत्ति लाभ सम्बन्धी विभिन्न योजनाओं में सर्वश्रेष्ठ योजना सम्भवतः वह है जो भारत सरकार अपने कर्मचारियों को देती है। इसमें मृत्यु एवं विवृत्ति उपदान, सेवा अवधि पर आधारित पेन्शन या उपदान, और पारिवारिक पेन्शन शामिल हैं। अब राज्य सरकारें भी इसे कुछ परिवर्तनों के साथ अपने कर्मचारियों के लिए अपना रही हैं। किन्तु केन्द्रीय सरकार और राज्य-सरकारों के कर्मचारियों को मिलने वाली सुविधाओं में अंतर है। इसी तरह उक्त लाभ स्थानीय स्वायत्त निकाय तथा निजी स्कूलों के अध्यापकों को देने की योजना नहीं है।[1] हम इस विविधता में कोई औचित्य नहीं देखते और सिफ़ारिश करते हैं कि अध्यापकों को मिलने वाला सेवा-निवृत्ति लाभ समता और समानता के आधार पर निश्चित होना चाहिए। समानता के सिद्धांत का तात्पर्य है कि केन्द्र और राज्य सरकारों के सभी कर्मचारियों के सेवा-निवृत्ति लाभ समान हों। समानता के सिद्धांत का यह भी अर्थ है कि सरकारी सेवा में अध्यापकों को मिलने वाले उक्त लाभ स्थानीय स्वायत्त शासन और निजी संगठनों के स्कूलों में कार्य करने वाले अध्यापकों को भी दिए जाएं। इस प्रकार की एकरूपता लाने तथा समानता लागू करने के लिए खर्च में बहुत अधिक वृद्धि नहीं होगी। वेतन की समानता स्थापित करने की अपेक्षा इसे लागू करना आसान होगा।

1. विस्तृत जानकारी के लिए 'अध्यापकों को सेवा-निवृत्त लाभ' पर प्रस्तुत प्रबन्ध, अनुपूरक खण्ड एक, भाग चार में देखिए।

3.30. **स्कूल-अध्यापक को सेवा-निवृत्ति लाभ : अन्तरिम उपाय**—यद्यपि उक्त आदर्श की प्राप्ति के लिए प्रशासन को प्रयत्न करना चाहिए किन्तु समस्या का समाधान करने के लिए कुछ वैकल्पिक साधन अपनाने होंगे। स्कूल अध्यापकों के सम्बन्ध में हम नीचे लिखी सिफ़ारिशें करते है :

1. **सेवा-निवृत्ति की आयु**—सरकारी स्कूलों के अध्यापकों केलिए सेवा-निवृत्ति की आयु-सीमा 58 वर्ष है परन्तु कुछ स्थानों में (58 वर्ष तक बढ़ाने की व्यवस्था के साथ) 55 वर्ष है, और पश्चिम बंगाल में यह आयु-सीमा 60 वर्ष है। यही नियय स्थानीम स्वायत्त निकाय के स्कूलों में अध्यापकों पर लागू होता है। निजी स्कूलों में सेवा-निवृत्ति की आयु एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में अलग-अलग है। वह आयु-सीमा55 से 58 अथवा 60 वर्ष तक है। उड़ीसा में आयु की कोई सीमा निश्चित नहीं की गई हैं और व्यक्ति जब तक शारीरिक रूप से स्वस्थ है, कार्य कर सकता है, जब तक पेन्शन देने की उचित व्यवस्था नहीं हो जाती तब यह उचित होगा कि सेवा-निवृत्ति की आयु-सीगा बढ़ा दी जाए। हम सिफ़ारिश करते हैं कि अध्यापक के लिए सेवा-निवृत्ति की आयु-सीमा साधारशतः 60 वर्ष होनी चाहिए जिसे 65 वर्ष तक बढ़ा देने की व्यवस्था हो—बशर्ते व्यक्ति अपने कार्य को कुशलतापूर्वक करने के लिए शारीरिक रूप से स्वस्थ और मानसिक रूप से सचेत हो।

2. **सेवा-निवृत्ति लाभ**—अधिकांश राज्यों में स्कूल के अध्यापकों के लिए पेन्शन, उपदाव और पारिवारिक पेन्शन की व्यवस्था है। अन्य राज्यों में भविष्य निधि और बीमे की व्यवस्था है। केन्द्र प्रशासित प्रदेशों में आमतौर से वही सुविधाएं दी जाती है जो केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियों को मिलती हैं।

अधिकांश राज्यों के गैर-सरकारी स्कूलों में अध्यापकों के लिए केवल अंशदायी भविष्य-निधि की व्यवस्था है। कुछ दिनों से त्रि-लाभ योजना, जिसके अधीन भविष्य-निधि, पेन्शन और बीमा सुविधाओं की व्यवस्था है, लोकप्रिय हो रही है। आरम्भ में यह योजना मद्रास में आरम्भ की गई थी परन्तु अब आन्ध्र प्रदेश (बीमा सुविधा के बिना), असम, बिहार, केरल, मैसूर और उत्तरप्रदेश में भी स्वीकार कर ली गई है। केरल राज्य में गैर-सरकारी स्कूलों के अध्यापकों को सेवा-निवृत्ति की वही सुविधाएं मिलती हैं जो सरकारी स्कूलों के अध्यापकों को उपलब्ध हैं—बशर्ते वे सरकारी कर्मचारियों के लिए निश्चित आचार और अनुशासन सम्बन्धी नियमों का वरण करें और चुनाव में सम्मिलित होने के अधिकारों को त्याग दें। पश्चिम बंगाल में केवल भविष्य-निधि और उपदान की व्यवस्था है। शिक्षा मंत्रालय ने निजी स्कूलों के अध्यापकों के लिए त्रि-लाभ योजना बनाई है जिसे अब केन्द्र प्रशासित प्रदेशों में लागू किया जा रहा है।[1] इस दिशा में जितनी प्रगति हुई है उसे ध्यान में रखकर कहा जा सकता है कि राज्यों और केन्द्र प्रशासित प्रदेशों के गैर-सरकारी स्कूलों के सभी अध्यापकों के लिए अन्तरिम साधन के रूप में त्रि-लाभ योजना को अपना लेना चाहिए।

इन दिनों स्कूल अध्यापकों को उनकी भविष्य-निधि राशि पर आमतौर से चार प्रतिशत वार्षिक ब्याज दिया जाता है। यह ज्यादा होना चाहिए। इसके अतिरिक्त प्रशासन संबंधी कुछ और समस्याएं भी हैं। उच्चतर शिक्षा के सदर्भ में हम इस पर अगली धारा में सविस्तार विचार करेंगे। यही सिफ़ारिशें आवश्यक परिवर्तनों के साथ स्कूल-अध्यापकों की भविष्यनिधि के सम्बन्ध में भी लागू की जा सकती हैं।

3.31. **उच्चतर शिक्षा में अध्यापकों को सेवा-निवृत्ति लाभ : अन्तरिम साधन**—उच्चतर शिक्षा में अध्यापकों की सेवा निवृत्ति आयु 60 वर्ष है जिसे आमतौर पर 65 वर्ष तक बढ़ाने की व्यवस्था है। कुछ स्थितियों में यह आयु-सीमा 70 वर्ष तक भी बढ़ाई जा सकती है। अधिकांश विश्वविद्यालयों में अंशदायी भविष्य-निधि की ही व्यवस्था हैं। अंशदान की दर आमतौर से मूल वेतन का $8\frac{1}{3}$ प्रतिशत है। कुछ विश्वविद्यालय अध्यापकों को अपने मूल वेतन का 15 प्रतिशत तक अंशदान करने की अनुमति देते हैं। विश्वविद्यालयों का अंशदान वेतन के आधार पर 8 से 12 प्रतिशत तक होता है। कुछ विश्वविद्यालयों में भविष्य-निधि के अलावा उपदान की भी व्यवस्था है। मद्रास में त्रि-लाभ योजना विश्वविद्यालयों और कालेजों के अध्यापकों पर भी लागू की जा रही है। इस सम्बन्ध में केन्द्रीय विश्वविद्यालयों ने भी निर्णय कर लिया है और प्रस्ताव पर सविस्तार विचार हो रहा है। हम सिफारिश करते हैं कि त्रि लाभ योंजना सभी विश्वविद्यालवों और कालेजों के अध्यापकों के लिए जारी की जाए।

3.32 जहाँ भविष्य-निधि योजना लागू है—चाहे वह स्कूल अध्यापक के लिए हो अथवा कालेज के प्राध्यापक के लिए हम निम्न परिवर्तनों का सुझाव देते हैं :

(1) आजकल अध्यापक केवल स्थायी होने के उपरान्त ही भविष्यनिधि में अपना अंशदान कर सकता है। हमारे विचार से अंशदान—जो कि अनिवार्य बचत है, प्रत्येक अध्यापक द्वारा

1. **देखिए अनुपूरक खण्ड एक भाग चार।**

व्यवसाय-प्रवेश के पहले दिन से ही किया जाना चाहिए। अतः हम सिफ़ारिश करते हैं कि प्रत्येक अध्यापक को, चाहे वह स्थायी हो या अस्थायी, भविष्य-निधि में अंशदान करना चाहिए।

(2) अध्यापक की भविष्य-निधि में नियोजकों का अंशदान प्रतिमाह होना चाहिए। अंशदान सम्बन्धी मौजूदा नियम, जिसके अनुसार यदि कोई अध्यापक पाँच वर्ष की अवधि में नौकरी छोड़ देता है तो नियोजक के अंशदान का अधिकारी नहीं होगा, समाप्त किया जाना चाहिए। इससे कोई लाभ नहीं होता और प्रत्यक्ष ही यह अध्यापकों के प्रति अन्याय है।

(3) आजकल अध्यापकों की भविष्य-निधि की अंशदाग राशि का निवेश आमतौर पर डाक-घर बचत-बैंक में होता है, जहाँ प्रत्येक अध्यापक के नाम का स्वतन्त्र खाता खोला जाता है। इसका स्पष्ट रूप से प्रशासनिक लाभ तो है, किन्तु वित्तीय दृष्टि से यह बहुत ही हानि-कारक है। डाकघर में जमा रकम पर केवल चार प्रतिशत ब्याज मिलता है यद्यपि भविष्य-निधि जैसी लम्बी अवधि की बचत-योजना के ब्याज की दर छः प्रतिशत या अधिक होनी चाहिए। इस प्रकार अध्यापकों को बहुत अधिक हानि उठानी पड़ती है। इसलिए हम सिफ़ारिश करते हैं कि निवेश का अपेक्षाकृत अधिक न्यायसंगत तरीका निकालना चाहिए।

कार्य और सेवा की स्थिति

3.33 **कार्य-स्थिति**—अध्यापन और अनुसंधान जैसे रचनात्मक कार्य के लिए, कार्य की प्रेरणात्मक स्थिति और वृत्तिक प्रगति के लिए, पर्याप्त अवसरों का बहुत अधिक महत्व है। व्यवसाय के प्रति अच्छे स्तर के लोगों को आकर्षित करने और उन्हें रोके रखने में इनका महत्वपूर्ण योगदान है। शिक्षण-संस्थाओं में काम की स्थिति ऐसी होनी चाहिए जो अध्यापक की, उसकी उच्चतम कार्य-क्षमता के साथ, कार्य करने में सहायक हों। इसके लिए कक्षा में अध्यापन को अनिवार्य न्यूनतम सुविधाएं, अध्या-पन काम में सहायक उपकरण, पुस्तकालय व प्रयोगशाला की सुविधा और अध्यापक-छात्रों का उचित अनुपात बनाए रखने की व्यवस्था करनी होगी। इसमें पहल भावना प्रयोगात्मक व रचनात्मक शक्तियों को प्रोत्साहन देने और अपने पाठ्यक्रम का गठन तथा अपनी समझ के अनुसार श्रेष्ठ तरीके या तकनीक के प्रयोग की स्वतन्त्रता देने वाली रीति-नीति लागू करना भी शामिल है। काम के घंटे अन्य सरकारी कार्मचारियों के समान होने चाहिए। इसके लिए केवल कक्षा में अध्यापन-कार्य ही नहीं बल्कि इससे सम्बंधित अन्य कार्यों, जैसे, अध्ययन और तैयारी, अभ्यास पुस्तकाएं जाँचना, मूल्यांकन, सहपाठ्यचर्या और अतिरिक्त पाठ्यचर्या क्रियाएं, ट्यूटोरियल, सेमीनार और विद्यार्थियों के मार्गदर्शन की दृष्टि से अन्य कार्यक्रमों को भी ध्यान में रखना होगा। अध्यापकों को अपनी व्यव-सायिक उन्नति के लिए सेमीनार, ग्रीष्मकालीन संस्थाएं, पुस्तकों और अनुसंधान के लिए अनुदान, अध्ययन के लिए सुविधाएँ विश्राम, और शक्ति-संचयन हित अवकाश, उच्च संवर्ग में पदोन्नति आदि के पर्याप्त अवसर मिलने चाहिए। हम यह भी सिफ़ारिश करते हैं कि अध्यापकों के वेतन के अनुपात से उचित अंशदान देने पर पाँच वर्ष में एक बार भारत के किसी भी भाग में जाने के लिए रेल का रिआयती पास दिलाने के लिए एक योजना बनाई जाए।

3.34 **सेवा की शर्तों और स्थितियों में समानता**—सरकारी स्थानीय स्वायत निकाय में अध्या-पकों की सेवा सम्बन्धी शर्तें और स्थितियाँ यों तो पर्याप्त संतोषप्रद हैं, परन्तु इस सम्बन्ध में एक बहुत बुरी बात यह हैं कि इन स्कूलों में अध्यापकों की शैक्षणिक प्रगति और नागरिक स्वतंत्रता पर कठोर अंकुश रखा जाता है। आचरण और अनुशासन सम्बन्धी नियम जो अन्यत्र सर-कारी नौकरी के कर्मचारियों पर लागू होते हैं वही सर-कारी स्कूल में (और आमतौर से स्थानीय स्वायत्त निकायों में) अध्यापकों के लिए भी निश्चित होते हैं। इसका कारण समझ में नहीं आता। प्रत्येक वृत्ति में सेवा की स्थितियाँ अलग-अलग होनी चाहिएं और अध्यापकों के लिए आचरण तथा अनुशासन संबंधी नियमों में शैक्षणिक उन्नति की स्वतन्त्रता हीनी चाहिए। ताकि अध्यापक अपना काम कुशलतापूर्वक कर सकें। आचरण एवं अनुशासन सम्बन्धी नियम मुख्य रूप से विदेशी शासनकाल में बने थे। उन दिनों अध्यापकों के राजनैतिक दृष्टिकोण को नियंत्रित रखना शासन का प्रमुख उद्देश्य था। ऐसे नियम, जो बहुत समय पहले ही बेकार हो चुके हैं, दुर्भाग्यवश आज भी पूरी तर लागू हैं। इसलिए सरकारी सेवाओं में अध्या-पकों के लिए नए और भिन्न आचरण एवं अनुशासत सम्बन्धी नियम बनाने होंगे ताकि अध्यापकों को अपने वृत्तिक कुशलता बढ़ाने और प्रगति के लिए आवश्यक स्वतन्त्रता मिल सके।

3.35. जहाँ तक निजी स्कूलों का सम्बन्ध है, दो प्रकार की अठिनाइयाँ हैं। अधिकांश निजी प्रबन्धकों ने सेवा की स्थितियाँ एवं शर्तें ठीक ढंग से तय नहीं की हैं। दूसरे अवसर इन स्कूलों में अध्यापकों को अकारण औचित्य तथा न्याय की चिन्ता किए बिना, नौकरी से निकाल दिया जाता है। इनमें पहली कठिनाई का मुकाबला करने के लिए हम सिफारिश करते हैं कि समानता का सिद्धान्त अपनाया जाए और सुझाव देते हैं कि सरकारी और निजी स्कूलों के अध्यापकों के लिए सेवा-सम्बन्धी नियम और स्थिति एक जैसी होनी चाहिए। इसके कारण निजी स्कूलों के अध्यापकों को काफी राहत मिलेगी और सरकारी स्कूलों के अध्यापकों को और अधिक शैक्षणिक स्वतन्त्रता होगी। हम अनुभव करते हैं कि सामान्य सिद्धान्त के रूप में यह बात स्वीकार कर ली जाए कि किसी अध्यापक को नौकरी से तभी निकाला जाए जब इस सम्बन्ध में निश्चित तरीके अनुसार सम्बन्धित व्यक्ति को अपने बचाव का पर्याप्त अवसर दे दिया गया हो। सभी मामलों में पंच-फैसले के लिए अपील की सुविधा होनी चाहिए। इसके लिए गठित न्यायाधिकरण में अध्यापकों का प्रतिनिधि, प्रबन्धकों का प्रतिनिधि और विभागीय प्रतिनिधि होना चाहिए।

3.36. **आवास व्यवस्था**—आवास की समस्या बहुत महत्वपूर्ण है। देहाती क्षेत्र में यह कठिनाई तब बहुत अधिक होती हैं जब स्थानीय रूप से आवास की सुविधा न मिलने पर अध्यापक किसी अन्य स्थान पर रहने के लिए विवश होता है। इसके कारण उसकी कार्य-कुशलता में विघ्न पड़ता है तथा अभिभावकों से सही सम्बन्ध स्थापित करने और प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम चलाने में बाधा आती है। यदि स्थानीय रूप से अध्यापक के आवास की उचित व्यवस्था कर दी जाए तो यह और इसी प्रकार की दूसरी कठिनाइयाँ समाप्त हो जाएंगी। इसलिए हम सिफारिश करते हैं कि देहाती इलाकों में अध्यापकों के आवास की व्यवस्था करने के लिए सभी संभव प्रयत्न करने चाहिए। स्थानीय लोगों पर अध्यापकों के आवास की व्यवस्था करने की जिम्मेदारी होनी चाहिए। इस कार्यक्रम के लिए यथावश्यकता और यथासंभव सरकारी सहायता दी जानी चाहिए। देहातों के मुकाबले में शहरी इलाकों में, विशेषकर बड़े शहरों में, समस्या कभी तो आसान होती है और कभी बहुत कठिन। बड़े शहरों में मकान-निर्माण का कार्यक्रम चलाने और उचित मकान-भत्ता देने की व्यवस्था करना आवश्यक है, ताकि अध्यापक अपने लिए अच्छे आवास की व्यवस्था कर सकें। अध्यापकों के लिए सहकारी मकान निर्माण-योजना को बढ़ावा देना चाहिए और मकान बनाने के लिए अनुकूल शर्तों पर ऋण देने की व्यवस्था होनी चाहिए।

3.37. विश्वविद्यालयों और सम्बद्ध कालेजों में आवास की व्यवस्था करना आवश्यक है। यह आम अनुभव रहा है कि वे विश्वविद्यालय, जो अध्यापकों के आवास की व्यवस्था करते हैं, सुप्रसिद्ध अध्यापकों की सेवाएं प्राप्त कर लेते हैं और उन्हें अपने यहाँ रोके रखने में सफल भी होते हैं। आगामी 20 वर्षों में विश्वविद्यालयों के 50 प्रतिशत और सम्बद्ध कालेजों के 20 प्रतिशत अध्यापकों के लिए आवास की व्यवस्था करने का लक्ष्य तय किया जाना चाहिए।

3.38. **अतिरिक्त आमदनी**—वेतन के अलावा अध्यापकों की अतिरिक्त आमदनी की समस्या पर विचार करना होगा। स्कूल स्तर पर आमदनी का मुख्य स्रोत निजी रूप से पढ़ाने का काम है। यह प्रथा अधिकांश शहरी इलकों में प्रचलित है, और कई बार शिकायतें आती हैं कि बहुत से स्थानों में यह कार्य कलंक की सीमा तक पहुंच गया है। हम अनुमान करते हैं कि कुछ बच्चों को (जो होशियार हैं और परीक्षा में अच्छा स्थान पाने के लिए तैयारी करना चाहते हैं, अथवा वे बच्चे जो काफी पिछड़े हुए हैं और जिन्हें सामान्य स्तर तक पहुंचने के लिए विशेष सहायता की आवश्यकता हो) अध्यापकों से अतिरिक्त सहायता की आवश्यकता हो सकती है। हमारे विचार में इस तरह की सहायता संस्था-स्तर पर स्कूल द्वारा ही दी जानी चाहिए और इसके लिए संबंधित अध्यापकों को उचित पारिश्रमिक देना चाहिए। इस खर्च की व्यवस्था आंशिक रूप से विशेष शुल्क द्वारा एवं आंशिक रूप से स्कूल के कोष से की जानी चाहिए। विश्वविद्यालय स्तर पर अतिरिक्त आमदनी का मुख्य स्रोत सरकार अथवा उद्योगों को सलाह देने का अंशकालीन कार्य या विभाग द्वारा किया अनुसंधान-कार्य अथवा परीक्षा-पुस्तिकाओं को जांचने के लिए मिला पारिश्रमिक होता है। आमदनी के इन अतिरिक्त साधनों को अपनाने की अनुमति दी जानी चाहिए। इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि इन सुविधाओं का दुरुपयोग न किया जाए और विभाग के काम को हानि न पहुंचे। हमारे विचार में मौजूदा पद्धति, जिनके अनुसार अध्यापकों को अपनी आमदनी का एक अंश नियोजकों को देना पड़ता है, अनुचित हैं। इस तरह आमदनी का अंश देने की आवश्यकता वहां नहीं होनी चाहिए जहां अतिरिक्त आय वेतन के पचास प्रतिशत से अधिक न हो।

3.39. **नागरिक अधिकार**—अध्यापकों के नागरिक स्वातंत्र्य को हम बहुत महत्व देते हैं। हम समझते है कि अध्यापकों का सामाजिक और जन-जीवन में भाग लेना वृत्तिक और समग्र रूप से शिक्षा सेवा के हित में होगा। इस प्रकार भाग लेने से देश का सामाजिक और राजनैतिक जीवन समृद्ध होगा। अध्यापकों को सभी नागरिक अधिकारों के उपभोग की स्वतंत्रता मिलनी चाहिए। उन्हें स्थानीय, जिला, राज्य अथवा राष्ट्रीय स्तर पर राजनैतिक पद प्राप्त करने का अधिकार होना चाहिए। चुनाव में भाग लेने के लिए उन पर कोई वैधानिक प्रतिबंध नहीं होना चाहिए और जब वे ऐसा करें तो उन्हें छुट्टी पर चला जाना चाहिए और, यदि जन क्षेत्र में मिले पद के कारण कार्य के उचित सम्पादन में विघ्न आता है तो, उन्हें अध्यापन सम्बन्धी अपना दायित्व अस्थायी तौर पर त्याग देना चाहिए। राजनैतिक अथवा सामाजिक कार्यों में इस प्रकार भाग लेना पूर्ण रूप से वैयक्तिक आधार पर होना चाहिए और इस बात का पूरा ध्यान रखना चाहिए कि जिस संस्था में वह अध्यापन कार्य कर रहा हैं वह और उसके छात्र इसमें नहीं फंसें।

3.40. **अध्यापिकाएँ**—यहाँ अध्यापिकाओं की उन दो महत्वपूर्ण कोटियों के बारे में विचार करना आवश्यक हैं जिनकी अपनी विशेष समस्याएँ हैं। ये हैं देहाती क्षेत्रों की अध्यापिकाएँ और आदिवासी क्षेत्रों की अध्यापिकाएँ। पूर्व-प्राथमिक आधार पर आजकल अध्यापिकाओं की संख्या सर्वाधिक हैं। स्वाधीनता के बाद अन्य आधारों पर भी अध्यापिकाओं का अनुपात लगातार बढ़ रहा है, जैसा तालिका 3·3 में दिए आंकड़ों से स्पष्ट है :

सारणी 3.3. अध्यापिकाएँ (1950-65)

श्रेणी	1950-51	1955-56	1960-61	1965-66 अनुमान
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)
1. अवर प्राथमिक स्कूलों में अध्यापिकाएं				
अध्यापिकाओं की कुल संख्या	82,281	1.17,067	1.26,788	2,00,000
	(18)	(20)	(21)	(24)
2. उच्चतर प्राथमिक स्कूलों में अध्यापिकाएँ				
अध्यापिकाओं की कुल संख्या	12,887	23,844	83,532	1,40,000
	(18)	(19)	(32)	(37)
3. माध्यमिक स्कूलों में अध्यापिकाएं				
अध्यापिकाओं की कुल संख्या	19,982	35,085	62,347	95,000
	(19)	(23)	(27)	(28)
4. व्यावसायिक शिक्षण स्कूलों में अध्यापिकाएँ				
अध्यापिकाओं की कुल संख्या	2,131	2,966	3,948	6,200
	(23)	(22)	(17)	(17)
5. उच्चतर शिक्षण संस्थाओं में अध्यापिकाएँ (कला और विज्ञान)				
अध्यापिकाओं की कुल संख्या	1,716	3,136	5,645	8,512
	(10)	(13)	(16)	(17)
6. वृत्तिक शिक्षा के कालेजों में अध्यापिकाएँ				
अध्यापिकाओं की कुल संख्या	334	666	1.865	2,750
	(7)	(8)	(12)	(11)

स्रोत : शिखा मंत्रालय, फार्म 'क'

नोट : कोष्टक में प्रति 100 अध्यापकों की तुलना में अध्यापिकाओं की संख्या के आंकड़े दिए गए हैं।

इनसे पता चलता है कि प्राथमिक स्कूलों में अध्यापिकाओं की संख्या 82,000 से बढ़कर 2,00,000 तक पहुँच गई है अथवा 100 अध्यापकों की तुलना में 18 से 24 तक पहुंच गई हैं। उच्चतर प्राथमिक स्कूलों में, विशेषकर देहाती क्षेत्रों के स्कूलों में जहाँ अध्यापिकाओं की माँग बहुत अधिक है, इनकी संख्या 13,000 से बढ़कर 1,40,000 तक पहुंच गई है अथवा 100 अध्यापकों में 18 से बढ़कर 37 तक हो गई है। माध्यमिक स्कूलों और कला तथा विज्ञान के कालेजों में यह संख्या बहुत अधिक नहीं बढ़ी है किन्तु निरन्तर प्रगति दिखाई देती है। केवल व्यावसायिक स्कूलों और कालेजों में उनकी संख्या आज भी बहुत सीमित हैं परन्तु यह कोई अप्रत्याशित बात नहीं है।

3.41. अध्यापिकाओं की अधिकाधिक नियुक्ति पर ज़ोर देना आवश्यक है। निम्न प्राथमिक स्तर पर वे बहुत अच्छा अध्यापन कार्य करती हैं। बहुत से देहाती क्षेत्रों में तो अध्यापिकाओं की ही नियुक्ति के कारण अपेक्षाकृत अधिक छात्राएँ पढ़ने आती हैं। हमारे देश के अधिकांश देहाती क्षेत्रों में, आगामी कुछ वर्षों तक उच्चतर प्राथमिक स्कूलों में अध्यापिकाओं की नियुक्ति और लड़कियों के लिए विशेष स्कूलों की व्यवस्था करना आवश्यक रहेगा। माध्यमिक स्कूलों और कला तथा विज्ञान के कालेजों के स्तर की शिक्षा के लिए महिलाओं के लिए शिक्षण-संस्थाओं की संख्या लगातार बढ़ रही है। इनमें अध्यापन के लिए अधिकतर महिलाएं ही नियुक्त होती हैं। शेष संस्थाओं में भी, जिनमें अधिकांश मिश्रित शिक्षण संस्थाएँ हैं, छात्राएँ होती हैं। इन सभी संस्थाओं में, कम-से-कम एक महिला अध्यापक की नियुक्ति का नियम बना देना चाहिए। छात्रों की संख्या अधिक होने पर प्रति 30 छात्राओं पर एक अध्यापिका की नियुक्ति की जानी चाहिए। व्यावसायिक स्कूलों में भी छात्राओं की संख्या बढ़ रही है। इसलिए इन संस्थाओं में भी ज्यादा अध्यापिकाओं की नियुक्ति की आवश्यकता विविवाद है।

3.42. 'महिला शिक्षा की राष्ट्रीय समिति' ने इस समस्या पर सविस्तार विचार किया है और इस सम्बन्ध में बहुत से उपयोगी सुझाव दिए हैं। हम उनका पूरी तरह समर्थन करते हैं और सुविधा के लिए उनमें से कुछ महत्वपूर्ण सिफ़ारिशों को नीचे दे रहे है :

(1) शिक्षा के सभी स्तरों और सभी क्षेत्रों में अध्यापिकाओं की नियुक्ति को प्रोत्साहन दिया जाए।

(2) काफी बड़ी संख्या में अध्यापिकाओं की अंशकालिक नियुक्ति करने की व्यवस्था की जाए, ताकि विवाहित महिलाएँ अध्यापन-कार्य के साथ-साथ अपने घर-बार की भी देख-रेख कर सकें।

(3) अध्यापिकाओं के लिए विशेषकर देहाती क्षेत्रों में आवास के प्रबन्ध को उच्च प्राथमिकता देनी चाहिए।

(4) देहाती क्षेत्रों में अध्यापिकाओं की कमी को दूर करने के उद्देश्य से प्रौढ़ महिलाओं के लिए संक्षिप्त पाठ्यक्रम को, जिसे आजकल केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड चला रहा है, बढ़ावा दिया जाए। देहाती क्षेत्रों की होनहार लड़कियों को शिक्षित बनने तथा प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिए छात्रवृत्ति दी जाए ताकि वे अध्यापिकाएँ बन सकें।

(5) कई महिलाएँ वृत्तिक प्रशिक्षण तथा आगे की सामान्य शिक्षा के लिए आवश्यक अवधि में अधिक समय तक घर से दूर नहीं रह सकतीं। इनके लिए निजी रूप से अध्ययन कर सकने या पत्राचार द्वारा शिक्षण की व्यवस्था से बहुत लाभ होगा। अतएव इनके लिए उक्त सुविधाओं का विशेषरूप से प्रबन्ध होना चाहिए।

(6) जहां आवश्यक हो, देहाती क्षेत्रों में काम करने वाली अध्यापिकाओं को बिशेष भत्ता दिया जाना चाहिए।

3.43. **आदिवासी क्षेत्रों में अध्यापक**—आदिवासी क्षेत्रों में अध्यापकों की सेवाएं प्राप्त करने की भी बहुत अधिक आवश्यकता है। इन अध्यापकों को विशेष भत्ता देने की आवश्यकता है क्योंकि उन्हें बड़ी कठिन परिस्थितियों में रहना पड़ता है। उन्हें उनके वयस्क बच्चों की शिक्षा के लिए भी सहायता देनी होगी। चूंकि आदिवासी क्षेत्रों में किराए पर मकान नहीं मिलते इसलिए आवास की व्यवस्था अधिकांश अनिवार्य होती है।

आदिवासी क्षेत्रों में कार्य करने वाले अध्यापकों के विशेष प्रशिक्षण की भी आवश्यकता है। इस तरह के प्रशिक्षण में आदिवासियों की बोली या बोलियों का

अध्ययन और आदिवासियों के रीति रिवाजों की जानकारी भी शामिल होनी चाहिए । उन राज्यों में, जहां काफी बड़ी संख्या में आदिवासी हैं, ऐसी विशेष संस्थाएं स्थापित करनी होंगी जहां आदिवासी क्षेत्र में कार्य करने वाले अध्यापकों के लिए अनुस्थापक पाठ्यक्रम की व्यवस्था की जा सके । आदिवासी युवक युवतियों को भी इन क्षेत्रों में अध्यापक बनने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए ।

3.44. **अध्यापकों का संगठन**—संसार भर के अध्यापक-संगठनों ने लगभग एक ही पद्धति से प्रगति की हैं और कर रहे हैं । ये संगठन आरम्भ में भौतिक लाभ के लिए संघर्ष करने वाले 'कार्मिक संघ' के रूप में स्थापित होते है और धीरे-धीरे अपने सदस्यों के जीवन की बहुत-सी बातों में रुचि लेने लगते हैं । उदाहरण के लिए 1870 में इंगलैंड का राष्ट्रीय अध्यापक संघ अध्यापकों का वेतन बढ़ाने और कार्य की स्थिति सुधारने के लिए स्थापित हुआ था । यद्यपि यह संस्था आज भी अपने सदस्यों के भौतिक लाभ के लिए सक्रिय और उत्तरोत्तर सफलता के साथ कार्य कर रही है फिर भी तब से उसने अपना कार्य-क्षेत्र बहुत अधिक विस्तृत कर लिया है । भारत में भी शिक्षक संगठन इन्हीं स्थूल सिद्धांतों के आधार पर विकसित हो रहे हैं । आजकल इनमें अधिकांश—जैसा कि उचित भी है—अच्छा वेतन और कार्य की स्थितियों को सुधारने की दिशा में काम कर रहे हैं परन्तु कुछ संगठनों ने शैक्षणिक कार्यक्रम चालू कर दिए हैं जिनके अधीन अनुसंधान और अन्तःसेवा शिक्षा कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं तथा अध्यापकों के लिए उपयोगी साहित्य का प्रकाशन किया जा रहा है । कुल मिलाकर अध्यापकों के संगठनों को तभी बहुत-सा काम, विशेष रूप से अपने शैक्षणिक कार्यक्रमों को आगे बढ़ाने का काम करना है । यद्यपि सरकार इस तरह के कामों में सहयोग दे सकती है, किन्तु मूलतः यह स्वयं अध्यापकों का अपना काम ही है ।

3.45. अध्यापक संगठनों के कुछ कार्य इस प्रकार होंगे :

— अपने सदस्यों के, वैयक्तिक और सामूहिक रूप से सामाजिक, आर्थिक तथा वृत्तिक पक्षों को ध्यान में रखते हुए उचित प्रतिष्ठा प्राप्त कराना;

— वृत्तिक हितों की रक्षा करना और कार्य एवं सेवा की संतोषप्रद स्थितियां सुरक्षित कराना;

— पुनश्चर्या पाठ्यक्रम, सेमीनार, प्रकाशन, पुस्तकालय सेवाएं और अनुसंधान कार्य द्वारा अध्यापकों का वृत्तिक विकास करना;

— निरन्तर बदलने वाली सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थिति द्वारा प्रस्तुत चुनौती का सामना करने के लिए शैक्षणिक विकास-कार्य के लिए प्रयत्न करना;

— विषय-अध्यापकों की संस्थाएं स्थापित कर, विषय विशेष के अध्यापन कार्य को उन्नत करना;

— अध्यापकों की आचरण संबंधी वृत्तिक संहिता बनाना और यह देखना कि सदस्यगण उसका पालन करें ।

उक्त लक्ष्यों के लिए स्थापित, अध्यापकों के ज़िम्मेवार एवंप्र तिनिधि संगठनों को केन्द्रीय सरकार एवं राज्य सरकारें मान्यता प्रदान करें । इस प्रकार मान्यता प्रदान करने का अर्थ है कि उक्त संगठनों को स्कूल शिक्षा से सम्बन्धित सभी मामलों में, जिनमें अध्यापकों की सामान्य एवं वृत्तिक शिक्षा, उनका वेतन तथा कार्य व सेवा की स्थिति आदि शामिल हैं, सलाह देने का अधिकार होगा ।

3.46. **संयुक्त अध्यापक परिषद**—हाल ही में भारत सरकार द्वारा केन्द्रीय कर्मचारियों के लिए स्वीकृत संयुक्त परामर्शदात्री व्यवस्था और अनिवार्य विवाचन प्रणाली की भांति ही, प्रत्येक राज्य एवं केन्द्र प्रशासित प्रदेश में संयुक्त अध्यापक परिषद् के गठन की हम सिफ़ारिश करते हैं । इन परिषदों में अध्यापकों के संगठनों के प्रतिनिधि और शिक्षा विभाग के अधिकारी होने चाहिए । शिक्षा विभाग के सचिव इसके अध्यक्ष हों । इस परिषद् की बैठकें आवश्यकतानुसार जितनी अधिक बार बुलाई जा सकें, बुलाई जाएं, किन्तु कम से कम छह मास में बैठक अवश्य होनी चाहिए । इन परिषदों का कार्यक्षेत्र और गतिविधियों में सेवा व कार्य की स्थिति, सभी श्रेणी के अध्यापकों के लिए कल्याण कार्य और शिक्षा के विकास का सामान्य कार्यक्रम शामिल होना चाहिए ।[1] ये परिषदें परामर्शदात्री संस्थाएं होंगी किन्तु इन परिषदों में किए गए समझौते राज्यों के मंत्रिमंडल के प्राधिकार के अधीन अमल में लाए जाएंगे । वेतन और भत्ता, कार्य के घंटे तथा छुट्टी के मामले में में अगर बातचीत असफल होती है तो अनिवार्य

1. **जहाँ तक भर्ती, पदोन्नति और अनुशासन का सम्बन्ध है, परिषद् सामान्य सिद्धान्तों पर विचार-विमर्श करेगी और किसी मजी मामले को नहीं उठाएगी ।**

पंच-फैसले की व्यवस्था होनी चाहिए। संयुक्त अध्यापक परिषद् विभाग के अधिकारियों और अध्यापकों के संगठनों के प्रतिनिधियों से पर्याप्त उच्च स्तर पर बातचीत के लिए मंच तैयार करेगी। हमारा विश्वास है कि इस व्यवस्था के द्वारा अध्यापकों और राज्य-सरकारों के सम्बन्ध अच्छे होंगे और शिक्षा-कार्य में सहायता मिलेगी। इस प्रकार बहुत सी प्रशासनिक समस्याओं का भी हल किया जा सकेगा। आजकल इन समस्याओं पर शीघ्र विचार न हो पाने के कारण अध्यापकों को अनावश्यक यातनाएं व असुविधाएं होती हैं और फलस्वरूप शिक्षण-स्तर पर बुरा प्रभाव पड़ता हैं।

3.47. **सामाजिक प्रतिष्ठा और मनोबल**—शिक्षण वृत्ति की कुशलता और राष्ट्रीय विकास में सामान्य रूप से तथा शिक्षा के विकास में विशेष रूप से उसका योगदान, बहुत अधिक अंशों में, वृत्ति की सामाजिक प्रतिष्ठा और कार्यकर्ता के मनोबल पर आधारित होंगे। यह बात अन्तः-संबन्धित दो तथ्यों पर आधारित होगी : अध्यापकों की आर्थिक प्रतिष्ठा व उनके नागरिक अधिकार तथा उनकी वृत्तिक क्षमता, चरित्र एवं कार्य के प्रति समर्पण की भावना। संसार-भर में सामान्य अनुभव यह रहा है कि जैसे-जैसे अध्यापकों का पारिश्रमिक बढ़ावा गया है, इस व्यवसाय में सतत प्रगतिशील और वृत्तिक दृष्टि से अधिक प्रशिक्षित व्यक्तियों की नियुक्ति संभव हुई है। जिस अनुपात में अध्यापकों की कार्य-क्षमता, निष्ठा और समर्पण की भावना विकसित हुई, उसी अनुपात में—जैसा कि उचित भी है—सामाज द्वारा उनकी भौतिक और आर्थिक प्रतिष्ठा को स्वीकार किया गया। आगामी बीस वर्षों में हम भारत में भी इसी प्रकार के विकास की संभावनाओं को देखते हैं।

3.48. **स्कूल अध्यापकों को राष्ट्रीय पुरस्कार**—पिछले कुछ वर्षों से शिक्षा-मंत्रालय स्कूल अध्यापकों को राष्ट्रीय पुरस्कार देने की योजना चला रहा है।[1] इस योजना का मुख्य उद्देश्य, उन स्कूल अध्यापकों को जिन्होंने प्रकृष्ठ कार्य किया है, सम्मान देना और अध्यापन कार्य की प्रतिष्ठा बढ़ाना है। सामान्यतया यह योजना ठीक तरह काम कर रही है। हम योजना सम्बन्धी निम्नांकित प्रस्तावों पर शिक्षा मंत्रालय से विचार करने की प्रार्थना करेंगे। हमारे विचार से, ये प्रस्ताव योजना को अधिक प्रभावशाली बनाने में सहायक होंगे।

1. इन पुरस्कारों की संख्या आजकल थोड़ी है। हमारे विचार में पुरस्कारों की संख्या 500 होनी चाहिए। प्राथमिक अवस्था में, एकदम विभिन्न स्तर पर कार्य करने वाले अध्यापकों की योग्यिता की तुलना करना बहुत कठिन कार्य है। इसलिए हम सुझाव देते हैं कि प्रतिवर्ष प्रत्येक जिले के प्राथमिक अध्यापक के लिए एक पुरस्कार होना चाहिए। माध्यमिक स्कूलों के अध्यापकों के लिए सब मिलकर लगभग 200 पुरस्कार होने चाहिए। आजकल इन्हें राज्यों के आधार पर दिया जाता है।

2. शैक्षिक बातों के अतिरिक्त दूसरी बातें, जैसे राजनीति अथवा जातिवाद के प्रभावों को कम-से-कम करने के लिए यह उचित है कि पुरस्कार देने के लिए प्रत्येक स्तर पर बनी चुनाव समितियों को सशक्त बनाया जाए। राज्य स्तर पर बनी चुनाव समितियों में जनता पर प्रभाव रखने वाले प्रकृष्ठ स्तरीय निष्ठावान गैर-सरकारी शिक्षाविदों और अध्यापकों को, ज्यादा से ज्यादा संख्या में सम्मिलित करना चाहिए। जिला स्तर पर गठित समितियों में भी ऐसी ही व्यवस्था की जानी चाहिए।

3. पुरस्कार प्राप्त करने वाले अध्यापकों को मिलने वाला यात्रा-भत्ता वही होना चाहिए जो भारत सरकार के प्रथम श्रेणी के अधिकारी को मिलता है। दिल्ली में उनके ठहरने का प्रबन्ध सुविधाजनक और उदार होना चाहिए।

1. इसी प्रकार की योजनाएँ कुछ राज्यों में भी चल रही हैं।

चौथा अध्याय

अध्यापक शिक्षण

एक. सामान्य –(1) **महत्व**; (2) **वृत्तिक शिक्षण की वर्तमान प्रणाली के प्रमुख दोष।**

दो. अध्यापक शिक्षण के अलगाव का निवारण—(4) **विश्वविद्यालयों से**; (6) **स्कूलों से**; (10) **पारस्परिक अलगाव का निवारण**; **सर्वांगपूर्ण कॉलेज**; **पूर्व प्राथमिक और प्राथमिक अध्यापकों की प्रशिक्षणशालाओं का स्तर ऊँचा करना**; **राज्य अध्यापक शिक्षण मंडल।**

तीन. अध्यापक शिक्षण में गुणात्मक सुधार—(14) **विषयज्ञान का पुनः अनुस्थापन**; (15) **प्रशिक्षण पाठ्यक्रम की अवधि**; (18) **सामान्य और वृत्तिक शिक्षा के समन्वित पाठ्यक्रम**; (21) **वृत्तिक अध्ययन को जीवंत रूप देना**; (23) **अध्यापन और योग्यतांकन की पद्धतियों में सुधार**; (25) **छात्र अध्यापन में सुधार**; (26) **विशेष पाठ्यक्रमों और कार्यक्रमों का विकास**; (27) **पाठ्यचर्याओं में संशोधन और सुधार**; (28) **प्राथमिक अध्यापकों की वृत्तिक शिक्षा की पाठ्यचर्या**; (31) **माध्यमिक अध्यापकों की वृत्तिक शिक्षा की पाठ्यचर्या**; (33) **सामान्य प्रेक्षण**; (35) **स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम।**

चार. प्रशिक्षणशालाओं की गुणवत्ता में सुधार—(41) **माध्यमिक अध्यापकों की प्रशिक्षणशालाएँ : अध्यापक वृन्द**; (43) **छात्र**; (44) **सुविधाएँ**; (45) **प्राथमिक अध्यापकों की संस्थाओं में सुधार**; (46) **अध्यापक वृन्द**; (47) **छात्र**; (51) **सुविधाएं**; (52) **अध्यापन शुल्क**; (53) **निदर्शन या प्रयोगात्मक स्कूल**; (54) **प्रशिक्षण सुविधाओं का विस्तार—राज्यों की योजनाएं**; **सुविधाओं का विस्तार, अंशकालिक सुविधाएँ**; **पत्राचार पाठ्यक्रम**; **सायंकालिक या अंशकालिक पाठ्यक्रम**; **विद्यमान कमी का निवारण**; **संस्थाओं का आकार**; **स्थान निर्धारण।**

पांच. अध्यापकों की वृत्तिक शिक्षा का सातत्य—(55) **स्कूल की भूमिका**; (56) **अंशकालिक और पूर्णकालिक अंतःसेवा शिक्षा**; (57) **स्कूलों के अध्यापकों की अंतःसेवा शिक्षा**; (58) **उच्चतर शिक्षा के अध्यापकों का वृत्तिक प्रशिक्षण।**

छह. अध्यापन शिक्षण में स्तरों की रक्षा—(63) **राज्य और राष्ट्रीय स्तर पर संगठनों की आवश्यकता**; (64) **केन्द्र की भूमिका।**

4.01 **महत्व**—शिक्षा के गुणात्मक सुधार के लिए यह अनिवार्य है कि अध्यापकों में वृत्तिक शिक्षण का एक समुचित कार्यक्रम हो। अध्यापकों के प्रशिक्षण पर किए गए व्यय का प्रतिफल सचमुच काफी मूल्यवान होगा क्योंकि उसके परिणामस्वरूप लाखों छात्रों की शिक्षा में जितना सुधार होगा उसकी तुलना में आर्थिक व्यय की मात्रा बहुत कम होगी। बात यह है कि अध्यापक पर जब तक किन्हीं अन्य तत्वों का प्रभाव न पड़े तब तक वह अध्यापन में उन्हीं पद्धतियों का अनुसरण करता जाता है जिन का अनुसरण उसके गुरुजन किया करते थे और यों वह अध्यापन की परम्परागत प्रणाली को ही प्रश्रय देता है। परन्तु आज की परिस्थितियों में नई और प्रगतिशील पद्धतियों को अपनाने की आवश्यकता है और इसलिए अध्यापकों का परम्परा-प्रेमी दृष्टिकोण प्रगति में बाधक सिद्ध होता है। दृष्टिकोण में सुधार तभी सम्भव है अब अध्यापक को उसके व्यवसाय का शिक्षण सफल रीति से दिया जाए ताकि उसमें स्वतएव ऐसी प्रवृत्ति आ जाए कि वह शिक्षा में आवश्यक क्रान्ति ला सके और अपनी वृत्ति के भावी विकास की नींव ठीक से डाल सके। अतः स्पष्ट है कि शिक्षा के विकास में उत्कृष्ट कोटि की अध्यापक-प्रशिक्षणशालाएं बहुत बड़ा सहयोग दे सकती है।

4.02 **वृत्तिक शिक्षण की वर्तमान प्रणाली के प्रमुख दोष**—यह खेद की बात है कि स्वातंत्र्योत्तर काल में अध्यापकों की वृत्तिक शिक्षा अपेक्षाकृत रूप से उपेक्षित ही रही है। विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (1949), माध्यमिक शिक्षा आयोग (1953) और माध्यमिक स्कूलों के अध्यापकों और पाठ्यचर्याओं से सम्बन्धित अंतर्राष्ट्रीय

मडली (1954) आदि सभी ने इसके महत्व पर जोर दिया था। उधर प्रारम्भिक और माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की शिक्षा में सुधार के विषय में चर्चाविवेचन करने के लिए अनेक सैमिनार भी हुए और अध्ययन मंडलियां भी नियुक्त हुई। पर उन सब की सिफ़ारिशों का कार्यान्वय अभी नगण्य रूप में ही किया गया हैं। साधारणतया प्राथमिक और माध्यमिक स्कूलों के अध्यापकों की शिक्षणशालाएं एक ओर विश्वविद्यालयों के शैक्षिक जीवन की धारा से और दूसरी ओर स्कूलों की दैनंदिन समस्याओं से असंपृक्त रह कर ही काम करती है। थोड़े से अपवादों को छोड़ दें तो, सामान्यतः शिक्षणशालाएं मध्यम या घटिया कोटि की ही होती हैं। योग्य अध्यापक इन शालाओं में आने को उत्सुक नहीं होते; पाठ्यक्रम और कार्यक्रम अधिकतर परम्परागत होते हैं, अतः उनमें न तो सजीवता ही होती है और न वास्तविकता ही। शिक्षण के अभ्यास के लिए नीरस तकनीकें और परम्पराभुक्त पद्धतियां ही अपनाई जाती हैं; आज की आवश्यकताओं और प्रयोजनों का कुछ भी ध्यान नहीं रखा जाता। अतः अध्यापक शिक्षण में सुधार के लिए एक सर्वांगपूर्ण कार्यक्रम की तत्काल आवश्यकता है। हम इसी का विवेचन निम्नलिखित शीर्षकों के अधीन करेंगे :

— प्रशिक्षण संस्थाओं को विश्वविद्यालयों के शैक्षिक जीवन की धारा से समन्वित करके तथा एक ओर स्कूल के साथ एवं दूसरी ओर विविध स्तर के अध्यापकों का प्रशिक्षण करनेवाली अन्य संस्थाओं के साथ उनका घनिष्ठ स्तर संबंध स्थापित करके उनके अलगाव का निवारण;

— प्रशिक्षण कार्यक्रमों और प्रशिक्षण संस्थाओं में गुणात्मक सुधार;

— प्रशिक्षण सुविधाओं का विस्तार;

— सभी अध्यापकों के सतत वृत्तिक शिक्षण की समुचित व्यवस्था;

— अध्यापकों को शिक्षा के स्तर को बनाए रखने के लिए केन्द्र और राज्य सरकारों में उपयुक्त अभिकरणों का निर्माण।

अध्यापक शिक्षण के अलगाव का निवारण

4.03. हम प्रशिक्षण संस्थाओं के सम्पर्कहीन स्वरूप को समाप्त कर देना बहुत महत्वपूर्ण समझते हैं। हमारी समझ में यही एक महत्वपूर्ण सुधार है जो फलदायक हो सकता है और अध्यापक प्रशिक्षण में प्राण फूंक सकता है तथा इस प्रकार देश की लाखों-करोड़ों कक्षाओं में चल रही अध्ययन-अध्यापन की पद्धति को जीवंत बना सकता है। इस अलगाव के तीन रूप हैं :

विश्वविद्यालय के जीवन से अलगाव—आज प्राथमिक अध्यापकों की वृत्तिक शिक्षा विश्वविद्यालय का दायित्व ही नहीं समझी जाती। हां माध्यमिक अध्यापकों की वृत्तिक शिक्षा अवश्य विश्वविद्यालयों के हाथ में है पर विश्वविद्यालयों के विविध शास्त्रों के अध्यापन के क्षेत्र में वह पृथक् हो गई है और विश्वविद्यालय द्वारा बहुत कुछ उपेक्षित मानी जाती है।

स्कूलों में अलगाव—प्राथमिक और माध्यमिक, दोनों ही स्तरों पर अध्यापक शिक्षण स्कूलों तथा स्कूली शिक्षा से अलग ही गया है। वर्तमान विकासों से भी उसका कोई सम्पर्क नहीं है।

परस्पर अलगाव—विविध प्रकार की अध्यापक संस्थाओं में परस्पर भी कोई सम्पर्क नहीं होता और वे एक ही अंगी के विविध अंग नहीं प्रतीत होती।

जब तक इस सम्पर्कहीनता को समाप्त नहीं कर दिया जाएगा, तब तक अध्यापक शिक्षण में कोई महत्वपूर्ण सुधार सम्भव नहीं है।

4.04. **विश्वविद्यालयों से अलगाव का निवारण**—हमारा पहला सुझाव यह है कि शिक्षण विषय को विश्वविद्यालयों के शैक्षिक जीवन की प्रमुख धारा के मध्य स्थान मिलना चाहिए। भारत में सामान्य प्रवृत्ति शिक्षण और शिक्षाशास्त्र को एक ही मानने की रही है। इसका अध्यापन प्रायः शिक्षण संस्थाओं में ही किया जाता है और इस प्रकार के शिक्षण को केवल वे ही लोग ग्रहण करते है जो यह निश्चित कर चुकते हैं कि उन्हें अध्यापन व्यवसाय ही अपनाना है। वे भी यह शिक्षण तभी लेते हैं जब निश्चय कर चुके होते हैं। परन्तु शिक्षा की दृष्टि से विकसित देशों से स्थिति भिन्न है। वहां तो शिक्षण का विकास एक सामाजिक विज्ञान और एक पृथक् बुद्धि-सापेक्ष शास्त्र के रूप में हुआ है। वहां यह मान लिया गया है कि सामाजिक राजनीतिक और आर्थिक सभी प्रकार के परिवर्तनों का साधन शिक्षण है और इस बात की स्वीकृति का बहुत व्यापक प्रभाव हुआ है। यह प्रभाव केवल शिक्षणरूपी बौद्धिक शास्त्र के वैज्ञानिक और दार्शनिक पक्ष पर ही नहीं

पड़ा है अपितु अन्य शास्त्रों पर भी पड़ा है। यह भी ध्यान देने योग्य तथ्य है कि दार्शनिकों और समाजशास्त्रियों ने भी शिक्षण को अपने अध्ययन क्षेत्र के अन्तर्गत मानकर उसकी ओर विशेष ध्यान दिया है। अतः हमारी भी सिफ़ारिश है कि शिक्षण के वर्धमान क्षेत्र और महत्व को ध्यान में रखते हुए उसे एक विशिष्ट सामाजिक विज्ञान या स्वतन्त्र शास्त्र का पद मिलना चाहिए। हमारी यह भी सिफ़ारिश है कि पूर्व स्नातक और स्नातकोत्तर स्तर पर निम्नलिखित रीति से शिक्षण का ऐच्छिक विषय के रूप में प्रवेश होना चाहिए :

(1) पूर्व स्नातक पाठ्यक्रमों में शिक्षा से सम्बन्धित तीन प्रमुख क्षेत्रों—सामाजिक, दार्शनिक और मनोवैज्ञानिक—में, जो शिक्षा के आधार हैं, अनुस्थापन की व्यवस्था होनी चाहिए। महान् शिक्षाविशारदों की देनें, तुलनात्मक शिक्षा और सामयिक शिक्षा की कुछ समस्याएँ आदि ऐसे विषय हैं जिन्हें पाठ्यक्रम में स्थान दिया जा सकता है।[1] इनके अतिरिक्त राष्ट्रीय विकास के सभी पहलुओं और शिक्षण के बीच के सहसम्बन्ध पर भी इन पाठ्यक्रमों में पूरा जोर देने की आवश्यकता है। विषयों के चुनाव में काफी गुंजाइश छोड़नी चाहिए ताकि विद्यार्थी प्राकृतिक विज्ञानों, गणित, आचरण-विज्ञानों, अधिकांश मानव-विज्ञानों, और यहां तक कि इंजीनियरी और सामाजिक कार्य जैसे वृत्तिक पाठ्यक्रमों के विषयों के साथ भी शिक्षण-विषय को पढ़ सकें।

(2) स्नातकोत्तर स्तर पर 'शिक्षण' विषय में भी एम० ए० उपाधि की व्यवस्था होनी चाहिए और उसे प्राप्त करने के लिए किसी भी विषय में उपाधि प्राप्त व्यक्ति को दो वर्ष लगाने चाहिए। इसके अतिरिक्त स्नातकोत्तर स्तर पर यह भी छूट होनी चाहिए कि जो छात्र विज्ञानों और मानव-विज्ञानों के विस्तृत क्षेत्र में से किसी विषय विशेष को चुनें वे भी उस विषय के साथ शिक्षण का अतिरिक्त विषय भी पढ़ सकें। आरम्भ में इसे अतिरिक्त वैकल्पिक रूप में स्थान दिया जा सकता है और जो विद्यार्थी यह विषय लेने और पास होने पर अध्यापक बनने को तैयार हों उन्हें छात्रवृत्तियाँ दी जा सकती हैं।

(3) इन सभी पाठ्यक्रमों में—चाहे वे पूर्व स्नातक स्तर के हों चाहे स्नतकोत्तर स्तर के—यह आवश्यक होना चाहिए कि छात्रों को कुछ न कुछ अवधि के लिए अध्यापन का अभ्यास करना पड़े, ठीक वैसे ही जैसे विज्ञान के छात्रों को प्रयोगशाला में काम करना पड़ता है। जिस छात्र ने यह पाठ्यक्रम लिया हो उसे छात्रत्व की अवधि या ग्रीष्मावकाश संस्थाओं की अंतः सेवा शिक्षा के बाद अध्यापक बना दिया जाना चाहिए।

4.05. हमारी सिफ़ारिश है कि इस कार्यक्रम का श्रीगणेश कुछ चुने हुए विश्वविद्यालयों में वि० अ० आ० की ओर से किया जाना चाहिए और तीव्रगति से उसका व्यापक विकास किया जाना चाहिए। इस काम के लिए चुने गये प्रत्येक विश्वविद्यालय में एक विभाग, संस्थान या **शिक्षाशाला** की स्थापना की जानी चाहिए जिसका काम अन्य शास्त्रों के सहयोग से शोध और प्रशिक्षण कार्यक्रमों का विकास करना हो। इसके प्रमुख कार्य **निम्न**लिखित होने चाहिए :

- शिक्षण विषय के पूर्व स्नातक और स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम चलाना;
- पूर्व प्राथमिक, प्राथमिक और माध्यमिक आदि विविध वर्गों के अध्यापकों की वृत्तिक शिक्षा के पाठ्यक्रम चलाना;
- अध्यापन-शिक्षा की कुछ संस्थाओं में सभी स्तरों पर विस्तार-सेवाओं की व्यवस्था करना और उनके विकास में सहायता देना;
- विषय-वस्तु तथा वृत्तिक शिक्षा के ग्रीष्मावकाश-कालीन संस्थानों और अंतःसेवा कार्यक्रमों की व्यवस्था करना;
- सभी कोटियों के कुछ विद्यालयों के साथ घनिष्ट सहयोग करके इस प्रकार कार्य करना कि शिक्षा विषयक शोधकार्य की प्रगति हो और उत्तम पाठ्यक्रम तथा शिक्षणविधियों का विकास हो सके; और
- शिक्षणविषयक शोधकार्य को बढ़ावा देना, विशेषकर विविध शास्त्रों के पारस्परिक संबंधों का ध्यान रखकर।

इसके अतिरिक्त यह परम्परा भी डाली जानी चाहिए कि शिक्षण के स्कूलों में विविध शास्त्रों के विशेषज्ञ और अग्रणी माने जाने वाले प्राध्यापक भी अंशकालिक रूप से नियुक्त किए जाएं ताकि वे अपने विषय-विशेष में हुए नए विकासों को समझा सकें और यह भी बता सकें कि उन विकासों का स्कूल स्तर की शिक्षा पर क्या प्रभाव पड़ेगा। वृत्तिक शिक्षा में सुधार के लिए इस प्रकार के सम्बन्धों का अंतरंग महत्व तो है ही, पर साथ ही इसका

1. **'पूर्व-स्नातक स्तर पर ऐच्छिक विषय के रूप में शिक्षण' के सम्बन्ध में वि० अ० आ० द्वारा नियुक्त समिति, की रिपोर्ट, नई दिल्ली, 1966 देखें। हम सामान्यतः उसकी सिफ़ारिशों से सहमत हैं।**

यह भी लाभ होगा कि वृत्तिक शिक्षा का गौरव बढ़ेगा और देश के अग्रणी बुद्धिजीवी स्कूली शिक्षा में भी रुचि लेने लगेंगे।

इस कार्यक्रम के दो आनुषंगिक लाभ भी होंगे। एक तो यह कि शिक्षण विषय को अन्य अनेक विषयों के साथ पढ़ा जा सकेगा और इसे पढ़ने वाले के लिए अध्यापक ही बनना जरूरी होने की शर्त नहीं होगी। अतः बहुत से प्रतिभाशाली छात्र भी इसे पढ़ेंगे ही और यदि उनकी रुचि इस दिशा में जाग्रत हो गई तो वे शिक्षणवृत्ति भी अपना ही सकते हैं। दूसरे, शिक्षणविषय के अध्ययन में भी अन्यान्य शास्त्रों का सहयोग मिलेगा जिससे यह शास्त्र समृद्ध होगा। आज शिक्षणविषय का यह पक्ष दुर्बल है।

4.06. **स्कूलों के साथ अलगाव का निवारण** — इस सम्पर्कहीनता के निवारण के लिए प्रत्येक प्रशिक्षण संस्था के लिए यह आवश्यक होना चाहिए कि वह अपने निकटवर्ती स्कूलों और उनके अध्यापकों को यह मार्ग निर्देश करें कि वे अध्यापन कार्यक्रम कैसे बनाएं और शिक्षण की नई उपयुक्त विधियों को कैसे अपनाएं। इस प्रकार का विस्तार कार्य न केवल स्कूलों के सुधार के लिए अपितु स्वयं प्रशिक्षण कार्यक्रम के भी सुधार के लिए आवश्यक है। अतः हमारी सिफ़ारिश है कि पूर्व-प्राथमिक, प्राथमिक और माध्यमिक आदि सभी वर्गों की प्रशिक्षण-शालाओं में एक-एक विस्तार-कार्य विभाग होना चाहिए और उसे प्रशिक्षणशाला के कार्यक्रम का आवश्यक अंग माना जाना चाहिए, और उसे समग्ररूप से प्रशिक्षणशाला का ही दायित्व समझा जाना चाहिए। इस कार्य में सभी प्रशिक्षक अध्यापकों को भाग लेना चाहिए। इसे केवल समन्वेता का काम मानकर नहीं छोड़ देना चाहिए। इसी दिशा में राष्ट्रीय शिक्षा शोध-प्रशिक्षण संस्थान के माध्यमिक स्कूल विस्तार कार्यक्रम विभाग ने बहुत उत्तम अग्रनयन किया है क्योंकि उसने माध्यमिक स्तर की कोई पचास प्रतिशत अध्यापक प्रशिक्षणशालाओं में विस्तार सेवा की व्यवस्था की है। राष्ट्रीय बुनियादी शिक्षा संस्थान ने भी प्राथमिक स्तर के लिए कुछ श्रीगणेश किया है। अब आवश्यकता इस बात की है कि इस कार्यक्रम को गहन बनाया जाए और इसका इतना विस्तार किया जाए कि यह प्रत्येक प्रशिक्षणशाला तक पहुंच जाए। यह भी वांछनीय होगा कि इस प्रकार के कार्यक्रमों का नियंत्रण राज्यों को सौंपा जाए और जिस-जिस राज्य में ज्यों-ज्यों राज्य शिक्षा संस्थान स्थापित होते जाएं त्यों-त्यों उन्हें यह नियंत्रण संभला दिया जाए। राष्ट्रीय शिक्षा-शोध प्रशिक्षण संस्थान के पास तो केवल योजना के समन्वय, तत्संबंधी परामर्श, और सूचना-प्रसारण का काम होना चाहिए।

4.07. प्रशिक्षण संस्थाओं द्वारा स्कूलों के साथ सतत सम्पर्क बनाए रख सकने का एक और साधन है संस्था के स्नातक (भूतपूर्व छात्र)। अध्यापक प्रशिक्षण संस्थाओं में कर्मठ पूर्व-छात्र संघ होने चाहिए जिनमें दूर-पास के भूतपूर्व छात्र समय-समय पर मिल सकें और कालिज के अध्यापकों के साथ पारस्परिक समस्याओं पर विचार कर सकें। इन चर्चाओं से यह विदित हो पायेगा कि विविध अध्यापकों ने प्रशिक्षण काल में निर्धारित कार्यक्रमों के कियान्वयन में क्या सफलताएं प्राप्त कीं और क्या बाधाएं उपस्थित हुईं और इसलिए इन चर्चाओं से संस्था का भी लाभ होगा और उसके उन स्नातकों का भी जो आज अध्यापक हैं और इस प्रकार प्रशिक्षण-अवधि में रूपरेखा मात्र के रूप में आयोजित कार्यों के सम्यक् अनुवर्तन के लिए भी अवसर प्राप्त होंगे। यदि उसमें कोई अव्यवहारिकता या अवास्तविकता पाई जाए तो संस्था के अध्यापक अपने दृष्टिकोण को बदलने का यत्न करेंगे। यदि विफलता का कारण यह हो कि स्कूल और उसके अध्यापक-वृन्द में उत्साह और सहयोग की भावना का अभाव है तो इन बाधाओं को दूर करने का यत्न किया जा सकेगा। कालेज के अध्यापक और भूतपूर्व छात्र समय-समय पर मिलकर कार्य की प्रगति पर विचार करें और भविष्य के लिए योजना बनाएं—यह विचार ही इतना सशक्त है कि इससे विद्यार्थियों में उत्साह बना रहेगा और वे घिसी-पिटी अध्यापन पद्धति को ही अपनाए रखने के स्थान पर अपने नए विचारों और परियोजनाओं का प्रयोग करके देखने लगेंगे। अध्यापकों और छात्रों के बीच का यह घनिष्ठ सम्बन्ध निस्संदेह अध्यापक-शिक्षण को प्रगतिशील और गतिमान बना सकेगा।

4.08. इस सम्पर्कहीनता के निवारण का एक और उपाय है छात्राध्यापन को सर्वांगीण पूर्णकालिक छात्रत्व का रूप दे देना, जिसमें प्रशिक्षणार्थी अध्यापक स्कूल के पूरे काम को देख सकें और कक्षा के भीतर और बाहर के उन सभी कामों में क्रियात्मक भाग ले सकें जो अध्यापक के महत्वपूर्ण वृत्तिक क्रियाकलाप माने जाते हैं। इस प्रकार का सर्वांगीण और सफल पूर्णकालिक छात्रत्व तभी संभव है जब स्कूलों और प्रशिक्षणशालाओं के बीच व्यवस्थित सहयोग और सहकर्तृत्व की भावना हो और जब छात्राध्यापन को अध्यापक-निर्माता (अर्थात् प्रशिक्षणशालाओं) और अध्यापक-नियोक्ता (अर्थात् स्कूलों और राजकीय विभागों) दोनों ही का सम्मिलित दायित्व माना जाए। शिक्षाविभागों को चाहिए कि वे इस कार्यक्रम के

लिए चुने गये स्कूलों को विशेष मान्यता और प्रतिष्ठा देकर उनको 'सहयोगी स्कूल' का पद दें और उन्हें सामग्री और अन्य व्ययों का वहन करने के लिए (अर्थात् पर्यवेक्षक अध्यापकों के भत्तों आदि का पूरा खर्च चलाने के लिए) यथेष्ट अनुदान दें और इस प्रकार सहयोग की भावना को बढ़ावा दें। इस कार्यक्रम के विकास में 'क्षेत्रीय शिक्षण महाविद्यालयों' का अग्रणी अनुभव भी सहायक सिद्ध होगा।

4.09. स्कूलों और प्रशिक्षणशालाओं के पारस्परिक सहयोग को पूर्णकालिक छात्रत्व के कार्यक्रम से भी आगे बढ़ाया जा सकता है और उससे निस्संदेह लाभ ही होगा। वह इस प्रकार कि सहयोगी स्कूलों के ही कुछ चुने अध्यापकों को प्रशिक्षणशाला के अध्यापक पद पर समय-समय पर उपनियुक्त किया जाए और उन्हें प्रशिक्षण कालेज के सामान्य कार्यक्रमों में भाग लेने देने के सिवाय उनसे कार्य की नयी आयोजनाएं बनाने, शिक्षण विधि तैयार करने और अध्यापन में सहायक सामग्री प्रस्तुत करने के काम में भी सहयोग लिया जाए। उनसे प्रशिक्षणशाला के प्रयोगात्मक और विदर्शन स्कूलों में अध्यापक का काम भी लिया जाए और कुछ विशेष प्रसंगों में तो प्रशिक्षणशाला के अध्यापक वृन्द का काम भी कराया जाए। प्रशिक्षणशाला के अध्यापक भी यदि सहयोगी स्कूलों में कुछ अध्यापन करते रहें तो उन्हें सहयोगी स्कूलों में अध्यापन विधियों और उनके व्यावहारिक पहलुओं के विषय में सफल अनुसंधान करने का अवसर मिलेगा और इस प्रकार उन्हें लाभ ही होगा। इस उद्देश्य से उनको प्रतिवर्ष कम-से-कम एक मास के लिए या स्कूल के पाठ्यक्रम का एक अंश पूरा करने के लिए स्कूल में उपनियुक्त किया जा सकता है। यदि प्रशिक्षणशालाओं के प्रशिक्षक अपने शिक्षण-सिद्धान्तों का प्रयोग-परीक्षण करें और स्कूलों के अध्यापक अपने व्यावहारिक अनुभवों से सिद्धान्त निरूपण करें तो इससे छात्राध्यापकों को विशेष लाभ होगा और इससे अध्यापन की तकनीकों के सतत सुधार में भी सहायता मिलेगी। स्कूलों को अध्यापक-शिक्षण में शनैः शनैः भागीदार बनने का दायित्व लेना चाहिए और इसके लिए इतना ही पर्याप्त नहीं है कि वे छात्रों के अध्यापन की सुविधा दे दें, अपितु उनको चाहिए कि वृत्तिक अध्ययन और शैक्षणिक अनुसंधान में क्रियात्मक सहयोग भी दें।

4.10. **पारस्परिक अलगाव का निवारण**—आज स्थिति यह है कि स्कूली शिक्षा के विविध स्तरों के अध्यापकों और विशिष्ट विषयों के अध्यापकों को पृथक संस्थाओं में प्रशिक्षण दिया जाता है और उनके पाठ्यक्रम भी पृथक् होते हैं। पूर्व-प्राथमिक और प्राथमिक अध्यापकों की प्रशिक्षणशालाओं का स्तर, शिक्षकों के वेतन और आकस्मिक व्यय की सुविधाओं को देखते हुए, केवल अवर माध्यमिक स्कूलों के स्तर के बराबर माना जाता है। उधर, माध्यमिक अध्यापकों की प्रशिक्षणशालाओं और पूर्व-प्राथमिक तथा प्राथमिक अध्यापकों की प्रशिक्षणशालाओं के बीच भी चीन की दीवार खड़ी है। अतः यदि पूर्व-प्राथमिक और प्राथमिक अध्यापकों की प्रशिक्षणशालाओं का स्तर ऊंचा उठाकर उन्हें कालेज का स्तर दे दिया जाए और अध्यापक प्रशिक्षण के इन खंडित रूपों को समाप्त कर दिया जाए, जिनसे प्रत्येक स्तर पर दोष रह जाते हैं और पूरा ही कार्यक्रम निरर्थक हो जाता है, तो निस्संदेह यह परिवर्तन एक महत्वपूर्ण सुधार होगा।

4.11. अंतिम लक्ष्य होना चाहिए अध्यापक शिक्षण को इस प्रकार विश्वविद्यालयों के अधीन लाना कि राज्य सरकारों के शिक्षाविभागों और अध्यापकों के संगठनों के साथ उसका सतत सम्बन्ध बना रहे। हमें यह मानना ही पड़ेगा कि अभी तक माध्यमिक अध्यापकों के प्रशिक्षण के मामले में भी बहुत ही कम विश्वविद्यालयों ने क्रियात्मक रुचि ली है, यद्यपि वह प्रशिक्षण उनके अधिकार क्षेत्र में है। प्राथमिक अध्यापकों के प्रशिक्षण की ओर तो उनका ध्यान ही नहीं गया है। परन्तु फिर भी अध्यापक शिक्षा के विकास-संवर्धन से सम्बन्धित स्वतन्त्रता और स्वायत्तता की आवश्यकता को देखते हुए और साथ ही शिक्षा और विद्याविषयक कुशलता का ध्यान रखते हुए यह उचित होगा कि सभी स्तरों का अध्यापक शिक्षण विश्वविद्यालयों के क्षेत्र में ले जाया जाए।

4.12. प्राथमिक और पूर्व-प्राथमिक अध्यापकों की सभी प्रशिक्षणशालाओं को विश्वविद्यालय स्तर तक उठाना तत्काल तो असम्भव होगा क्योंकि बहुत अर्थराशि अपेक्षित होगी और योग्य अध्यापक-शिक्षकों की भी उतनी संख्या में उपलब्धि कठिन होगी। इस कार्यक्रम को अनेक वर्षों की अवधि में ही पूरा किया जा सकेगा और संक्रमण का भी उपयुक्त ध्यान रखना होगा, अतः इस कार्यक्रम के तीन पक्ष रखने होंगे—(1) सर्वांगपूर्ण कालेजों की स्थापना; (2) प्राथमिक और पूर्व-प्राथमिक अध्यापकों की सभी प्रशिक्षणशालाओं को कालेज स्तर तक उठाने का क्रमिक कार्यक्रम; (3) अध्यापक शिक्षण के राज्य मंडलों की स्थापना, जो संक्रमणकाल में विश्वविद्यालयों और प्राथमिक तथा पूर्व-प्राथमिक अध्यापकों की प्रशिक्षणशालाओं के बीच सेतु का काम कर सकें।

(1) **सर्वांगपूर्ण कालेज**—जहां भी संभव हो ऐसे कालेज स्थापित किए जाने चाहिए जो विविध शिक्षण स्तरों के और/या विविधक्षेत्रों के अध्यापकों को तैयार कर

सके। इस कोटि की कुछ संस्थाएं इस समय भी हैं और उनके काफी अच्छे परिणाम रहे हैं। आवश्यकता इस बात की है कि इस प्रकार की और अधिक संस्थाएं बनाई जाएं और माध्यमिक अध्यापकों की प्रशिक्षणशालाओं में प्राथमिक और/या पूर्व-प्राथमिक अध्यापकों के प्रशिक्षण अनुभाग जोड़े जाएं।

(2) **पूर्व-प्राथमिक और प्राथमिक अध्यापकों की प्रशिक्षणशालाओं के स्तर ऊंचे करना**—पूर्व-प्राथमिक और प्राथमिक अध्यापकों की प्रशिक्षणशालाओं, जिनमें आज अवर माध्यमिक शिक्षा स्तर पूरा किए हुए छात्र भरती होते हैं और जो अगले 10-15 वर्षों में अपने स्तर ऊंचे उठाकर केवल उच्चतर माध्यमिक स्तर की शिक्षा पूरी किए हुए लोगों को ही भरती करेंगे, के स्तर ऊंचे उठाकर कालेज स्तर तक पहुंचाए जाएं और इस काम के हेतु प्रत्येक राज्य के लिए अलग-अलग क्रमिक कार्यक्रम बनाए जाएं। इसका यह भी अर्थ है कि शिक्षकों की योग्यता और वेतन सम्बन्धित कालेजों के समान हों। छात्रों की योग्यताएं भी वैसी ही रखी जाएं और अध्यापक शिक्षण के पाठ्यक्रम और कार्यक्रम विश्वविद्यालयों के नियंत्रण में रखे जाएं। यदि इस कार्य को अग्रता दी जाए और इसके लिए आवश्यक अर्थराशि का विनिधान कर दिया जाए तो कोई 15-20 साल में यह संभव हो सकता है।

(3) **राज्य अध्यापक शिक्षण-मंडल**—संक्रमण-काल में अध्यापक शिक्षण की कुछ संस्थाएं राज्यों के विभागों के अधीन होंगी और अन्य कुछ विश्वविद्यालयों के; अतः उन दोनों प्रकार की संस्थाओं के बीच सेतु का काम करने के लिए राज्य अध्यापक शिक्षण-मंडल स्थापित किए जाएं। इन मंडलों के सदस्य विश्वविद्यालयों राज्य-शिक्षा विभागों, प्रशिक्षणशालाओं के प्रिंसिपलों, अध्यापक शिक्षकों के राष्ट्रीय संघ और अध्यापक-संगठनों के प्रतिनिधि होने चाहिए। राज्य स्तर पर अध्यापक शिक्षण के निम्नलिखित सभी पहलुओं का दायित्व उन्हीं का होना चाहिए :

(क) प्रशिक्षणशालाओं के लिए स्तर निर्धारण;

(ख) अध्यापक शिक्षण के पाठ्यक्रमों, कार्यक्रमों, परीक्षाओं, पाठ्यपुस्तक और शिक्षण संबंधी सामग्रियों में सुधार;

(ग) प्रशिक्षणशालाओं को मान्यता देने के लिए शर्तों का निर्धारण और उनके आवधिक निरीक्षणों का प्रबंध;

(घ) संस्थाओं के लिए परामर्श विषयक सेवाओं की व्यवस्था;

(ङ) इस बात का सुनिश्चयन कि निर्धारित पाठ्यक्रमों को पूरा करने वाले छात्र राज्य के स्कूल में पढ़ाने के लिए सक्षम हों; और

(च) अध्यापक-शिक्षण के गुणवत्ता मूलक और परिणाम मूलक विकास के लिए तात्कालिक और दीर्घकालिक आयोजना का निर्माण।

प्रत्येक मंडल की नियुक्ति सम्बन्धित राज्य सरकार करे और उनका एक-एक पूर्णकालिक सचिव भी हो। राज्य शिक्षण संस्थान का उसके साथ घनिष्ठ संबंध हो। इस मंडल के पास पूर्व-प्राथमिक और प्राथमिक स्तर की अध्यापक प्रशिक्षणशालाओं से सम्बन्धित शिक्षा विभाग के सभी काम आ जाने चाहिए और विश्वविद्यालयों के अधीन काम कर रही माध्यमिक प्रशिक्षणशालाओं के विषय में परामर्श देना भी उनका काम होना चाहिए।

अध्यापक शिक्षण के राज्य मंडलों की स्थापना की सिफ़ारिश कोई नयी सिफ़ारिश नहीं है। माध्यमिक शिक्षा आयोग, माध्यमिक स्कूलों के अध्यापकों और पाठ्यक्रमों से सम्बन्धित अंतर्राष्ट्रीय मंडल और अनेक सेमिनारों तथा अध्ययन दलों ने भी ऐसी सिफ़ारिशें की थीं। खेद है कि आज तक इस दिशा कोई कार्रवाई नहीं की गई। हमारी दृष्टि में यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण सिफ़ारिश है जिस पर तत्काल कार्रवाई आवश्यक है।

अध्यापक शिक्षण में गुणात्मक सुधार

4.13. हमारी अगली सिफ़ारिश यह है कि अध्यापक शिक्षण के वर्तमान कार्यक्रमों में यथेष्ठ सीमा तक गुणात्मक सुधार होना चाहिए। गुणोत्कर्ष ही अध्यापक शिक्षण कार्यक्रमों का सर्वस्व है और यदि गुणात्मक वृद्धि न हुई तो अध्यापक शिक्षण न केवल वित्त का अपव्यय सिद्ध होगा अपितु उससे शैक्षणिक स्तरों में भी सब प्रकार से ह्रास होगा। अतः गुणात्मक सुधार के कार्यक्रम को हम अधिकतम महत्व देते हैं। अध्यापक प्रशिक्षण के संप्रति चल रहे कार्यक्रम तो अधिकांशतः परंपरागत, अनुदार और स्कूलों तथा शैक्षणिक पुनर्गठन के विद्यमान कार्यक्रमों से पराङ्मुख होते हैं। सभी स्तरों और सभी पाठ्यक्रमों में पुनर्गठन अपेक्षित है और यह संभव न होगा कि हम इस समस्या के हरेक पहलू पर ब्योरेवार विचार कर सकें। फिर भी हम कुछ ऐसे मोटे-मोटे सिद्धान्तों का निर्देश कर सकते हैं जिनके आधार पर पुनर्गठन का यत्न किया जाना चाहिए। वे हैं :

— विषय-ज्ञान का पुनः अनुस्थापन;
— वृत्तिक अध्ययन को जीवंत रूप देना;
— अध्यापन और योग्यतांकन की पद्धतियों में सुधार;
— छात्राध्यापन में सुधार;
— विशेष कार्यक्रमों और पाठ्यक्रमों का विकास; और
— पाठ्यचर्याओं में संशोधन और सुधार।

4.14. **विषय-ज्ञान का पुनः अनस्थापन**—प्राथमिक और माध्यमिक दोनों ही स्तरों के प्रशिक्षण कार्यक्रमों में पाठ्यविषयों के गहन और विस्तृत अध्ययन की व्यवस्था होनी चाहिए। इस अध्ययन को कालेज स्तर पर न लिए जाने वाले विषय और अतिरिक्त ज्ञान वाले विषयों के साथ एक मानने का भ्रम नहीं होना चाहिए। यह तो एक सुनियोजित विषय-समावेशक पाठ्यक्रम होना चाहिए जिसमें मूलभूत संप्रत्यय और स्कूल पाठ्य-विवरण में उनके अनुप्रयोग का अध्ययन, और ऐसी पाठ्य-पुस्तकों तथा विकासमान सामग्रियों का अध्ययन समाविष्ट हो जिससें स्कूल स्तर के शिक्षण में सहायता मिले। प्रशिक्षण कार्यक्रमों का कोई 20 प्रतिशत समय ऐसे ही अध्ययनों में लगाना चाहिए।

4.15. **प्रशिक्षण पाठ्यक्रम की अवधि**—इससे प्रशिक्षण कार्यक्रम की अवधि का प्रश्न सामने आता है। प्राथमिक स्तर पर दो वर्षों की न्यूनतम अवधि आवश्यक है और जिन क्षेत्रों में आज केवल एक वर्ष की पाठ्यावधि हैं वहाँ भी सर्वत्र दो वर्ष की अवधि कर दी जाए तो विषय-वस्तु के आवश्यक पाठ्यक्रमों की व्यवस्था करने में कोई कठिनाई नहीं आएगी। माध्यमिक स्तर पर, जहाँ पाठ्यक्रम की अवधि केवल एक वर्ष है, यह सुझाव दिया जाता है कि अवधि बढ़ाकर दो वर्ष कर दी जाए क्योंकि तभी विद्यमान बड़े-बड़े पाठ्यक्रमों के साथ न्याय हो सकेगा और तभी प्रस्तावित विषयवस्तु का समावेश हो सकेगा। वित्तीय और व्यावसायिक दृष्टि से यह बात सहज साध्य प्रतीत नहीं होती। फिर भी इतना तो संभव है ही कि संप्रति निर्धारित अवधि में ही शिक्षावर्ष के कार्यदिनों की संख्या 180-190 से बढ़ाकर 230 तक की जाए और इस प्रकार इस अवधि का ही पूरा लाभ उठाया जाए। कुछ माध्यमिक प्रशिक्षणशालाओं में शिक्षा वर्ष की अवधि इस रूप में बढ़ाई गई है और बड़े अच्छे परिणाम दृष्टिगोचर हुए हैं। हमारी सिफ़ारिश है कि यह सुधार संप्रति विद्यमान सभी संस्थाओं में अविलंब कर दिया जाना चाहिए।

4.16. माध्यमिक अध्यापकों के विषय ज्ञान का पुनः अनुस्थापन विश्वविद्यालयों के संकाय विभागों के सहयोग से किया जाना चाहिए और जहाँ आवश्यक हो वहाँ कला और विज्ञान के विषयों में स्नातकोत्तर अध्ययन वाले कालेजों की भी सहायता ली जानी चाहिए। प्रत्येक प्रशिक्षणशाला को एक सुविस्तृत योजना बनानी चाहिए जिसमें विश्वविद्यालयों और कालेजों के सहयोग का ही नहीं अपितु उनके प्रयोगशालाओं तथा उनके पुस्तकालयों के उपयोग तक का समावेश हो। प्रोफेसरों (आचार्यों) और लैक्चरारों (व्याख्याताओं) को नए पाठ्यक्रमों का विकास और व्यवस्थापन करने में प्रशिक्षण कालेजों के अध्यापकों के साथ सहयोग करना चाहिए। प्राथमिक अध्यापकों के भी इसी प्रकार के पाठ्यक्रमों का अध्यापन स्नातकोत्तर उपाधिधारी अध्यापकों द्वारा ही किया जाना चाहिए और उन्हें कला तथा विज्ञान कालेजों के अध्यापकों का भी सहयोग प्राप्त होना चाहिए।

4.17. विषय-ज्ञान के इस पुनः अनुस्थापन का संबंधित विषय को पढ़ाने की विशेष तकनीकों और विधियों के साथ भी घनिष्ठ संबंध जोड़ा जाना चाहिए। अनुवार अध्यापन विधियों पर आधारित बने-बनाए पाठों की प्रणाली नहीं अपनाई जानी चाहिए और विषय अध्यापक को यह मार्गदर्शन प्राप्त होना चाहिए कि वह अपने अध्यापन कार्यक्रम को किस प्रकार रचनात्मक रूप देकर विकसित करे।

4.18. **सामान्य और वृत्तिक शिक्षा के समन्वित पाठ्यक्रम**—माध्यमिक अध्यापकों के स्तर पर विषयों और वृत्तिक प्रशिक्षण के बीच एक शृंखला स्थापित करने का वैकल्पिक उपाय यह है कि सामान्य और वृत्तिक शिक्षण के समकालिक और समन्वित पाठ्यक्रम रखे जाएं जैसी कि संयुक्त राज्य अमेरिका की अध्यापक शिक्षा में व्यवस्था है। पंजाब के कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय में, क्षेत्रीय शिक्षण कालेजों में और एक ग्राम संस्थान में कुछ चुने हुए विषयों के ऐसे पाठ्यक्रम रखे गए हैं। कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय में शिक्षा की कुल अवधि एक वर्ष घटा दी गई है, और इसलिए, वहां माध्यमिक स्कूल त्याग प्रमाणपत्र परीक्षा या मैट्रिक परीक्षा के बाद चार वर्ष में ही बी० एड० उपाधि प्राप्त की जा सकती है।

4.19. इन समन्वित पाठ्यक्रमों की उपयोगिता और सुसाध्यता पर बहुत अधिक संदेह प्रकट किया गया है। यह तर्क दिया गया है कि यह प्रयोग इसलिए सफल नहीं हुआ है और न होगा कि भारत का 16-17 वर्ष का नवयुवक, जिसने अभी माध्यमिक शिक्षा समाप्त की हो, सामान्यतः यह निश्चय नहीं कर चुका होता कि उसे

स्कूल का अध्यापक ही बनना है। यह तर्क भी दिया गया है कि इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि इन समन्वित पाठ्यक्रमों से शिक्षित लोग उन अध्यापकों की अपेक्षा किसी प्रकार बेहतर हैं जिन्होंने पहले उपाधि प्राप्त की और बाद में वृत्तिक शिक्षा प्राप्त की; और ऐसे पाठ्यक्रम लेनेवाले छात्रों की संख्या भी एक-सी नहीं रहती है (उन अपवादों की बात छोड़कर जहां बड़ी-बड़ी वृत्तिकाएं दी जाती हों) जो इस बात का प्रमाण है कि इस प्रयोग का कोई उज्जवल भविष्य नहीं हैं। यद्यपि हम इन तर्कों से सहमत नहीं हैं, फिर भी इतना तो मानना ही पड़ेगा कि इन समन्वित पाठ्यक्रमों को पूरी तरह विकसित कर लिया जाए तब भी माध्यमिक स्तर के शिक्षण के लिए आवश्यक प्रशिक्षित अध्यापकों की संख्या का बहुत ही कम अंश प्राप्त हों सकेगा (अनुमानों के अनुसार 5 प्रतिशत से 10 प्रतिशत के बीच) क्योंकि यह कार्य बहुत अधिक कष्टसाध्य है। हमारी धारणा हैं कि इस प्रकार के अनिश्चयात्मक प्रयोगों पर अनायश्यक जोर देना अनुचित होगा। अध्यापक शिक्षण के स्तरों को ऊंचा उठाने की दृष्टि से यही ठीक होगा कि पहली या दूसरी उपाधि के बाद वाले एक वर्ष के वृत्तिक पाठ्यक्रम के सुधार पर ही पूरा ध्यान केन्द्रित किया जाए।

4.20. यदि ये समन्वित पाठ्यक्रम भी रखने ही हों, और हम समझते हैं कि हमारी विविधतामय शिक्षा प्रणाली में उनका भी स्थान है ही, तो हमारी सिफ़ारिश यह होगी कि उनकी व्यवस्था विश्वविद्यालयों में की जानी चाहिए न कि पृथक संस्थाओं में, जैसा कि आजकल इसी उद्देश्य से स्थापित क्षेत्रीय शिक्षण कालेजों में किया जा रहा है। जहां तक अध्यापकों और साधन सामग्री पर आनेवाले व्यय का प्रश्न है ये कालेज निस्संदेह बहुत व्ययसाध्य है। उत्कृष्ट कोटि के अध्यापक उनमें जाने को तैयार नहीं होते क्योंकि उनको अपने विशिष्ट ज्ञान क्षेत्र का अध्ययन जारी रखने या अपने विषय में शोध-खोज करने के लिए वहां व्यवस्था नहीं मिलती। अतः संप्रति विद्यमान कालेजों को तो चलने दिया जाए पर इस प्रकार की संस्थाओं की संख्या और अधिक न बढ़ाई जाए। जैसी कि हमने सिफ़ारिश की है यह प्रयोग उन विश्वविद्यालयों में करके देखा जाए जिन में शिक्षा के संपुष्ट विभाग हैं या स्कूल हैं या और जो अन्य विषयों के विभागों के साथ सहयोग रखकर चल सकते हैं।

4.21. **वृत्तिक अध्ययन को जीवंत रूप देना**—इस बात पर यथेष्ट ध्यान नहीं दिया जाता कि वृत्तिक अध्ययन के पाठ्यक्रमों में बहुत कुछ ऐसी सामग्री रखी जाती है जो या तो पुरानी पड़ी हुई होती है या जिसका स्कूलों में अध्यापक के काम से कोई सम्बन्ध ही नहीं होता। ऐसी प्राणहीन सामग्री को निकाल कर ऐसी सामग्री रखी जानी चाहिए जो अध्यापक-छात्रों की निजी या वृत्तिक आवश्यकताओं के अनुरूप हों। पाठ्यक्रमों में बहुत कुछ भर देने का यत्न बंद होना चाहिए और विविध पाठ्यक्रमों के समन्वय और समेकन की आवश्यकता पर ध्यान दिया जाना चाहिए और इस बात पर भी कि समग्र पाठ्यक्रम भारतीय परिस्थितियों के अनुरूप हो।

4.22. प्रशिक्षणशालाओं में वृत्तिक शिक्षा का स्तर तुलनात्मक दृष्टि से नीचा रह जाने के प्रमुख कारण दो मूलभूत दोष हैं। पहला दोष तो यह है कि भारतीय परिस्थितियों की विशिष्ट समस्याओं पर शोध नहीं हुआ है। फल यह है कि अध्यापक-प्रशिक्षक को अपने सिद्धान्तों का स्पष्टीकरण करते समय विदेशों के ही उदाहरण प्रायः देने पड़ते हैं। अध्यापक-प्रशिक्षकों में एक यह भी प्रवृत्ति होती है कि वे सामान्य सिद्धान्तों और विस्तारों का ही अधिक विवेचन करते हैं। इसका एक स्वाभाविक कारण यह भी है कि भारतीय लेखकों द्वारा लिखित और भारत के अनुरूप शिक्षाशास्त्र और शिक्षाविज्ञान की उत्कृष्ट मौलिक पुस्तकें है ही नहीं। इस प्रकार की पुस्तकों का अभाव एक बहुत बड़ा दोष है क्योंकि प्राथमिक स्तर का अध्यापक पर्याप्त अंग्रेजी नहीं जानता और ऐसी घटिया मार्गदर्शिका का उपयोग करने के लिए बाध्य हो जाता है जो उसे परीक्षा पास करने के लिए सहायक होती हैं। इन दोषों का निराकरण अवश्य होना चाहिए और शिक्षासंम्बन्धी समस्या पर खोज तथा अंग्रेजी और आधुनिक भारतीय भाषाओं में आवश्यक शिक्षाग्रन्थों के निर्माण के कार्यक्रम बड़े पैमाने पर बनाए जाने चाहिए।

4.23. **अध्यापन और योग्यतांकन की पद्धतियों में सुधार**—प्रशिक्षणशालाओं में प्रयुक्त अध्यापन और योग्यतांकन की विधियों का भी अत्यधिक महत्व है क्योंकि छात्र-अध्यापकों के दृष्टिकोण पर औपचारिक रूप से पढ़ाई गई स्कूल शिक्षण पद्धतियों की अपेक्षा उन पद्धतियों का अधिक प्रभाव पड़ेगा जिनका प्रयोग स्वयं उनको पढ़ाते समय किया जाता है। खेद है कि इस बात का बिल्कुल ध्यान नहीं रखा जाता और प्रशिक्षणशालाओं में प्रयुक्त अध्यापन और योग्यतांकन की विधिया आज भी परंपरागत ही हैं। अतः तत्काल आमूल परिवर्तन अपेक्षित है और हम मुख्यतः ये सुझाव देंगे :

— संपर्क, अनुभव, अध्ययन और विवेचन-चर्चा के माध्यम से छात्र-अध्यापकों में प्रौढ़ता विकसित करने का यत्न किया जाना चाहिए।

इसके लिए ऐसी विधियां आवश्यक हैं जिनमें छात्रों को भाग लेना पड़े और स्वतन्त्र अध्ययन भी करना पड़े। उनकी इससे पूर्व की शिक्षा में सामान्यतः निजी अध्ययन को और स्वतन्त्र चिन्तन की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करने की गुंजाइश नहीं होती, अतः प्रशिक्षणशालाओं को ही यथासंभव यह कमी पूरी करनी होगी और उन्हें सोचने, पढ़ने, ज्ञानार्जन करने और चर्चा-विवेचन करने के अवसर देने होंगे। प्रशिक्षणशालाओं के काम में व्यक्तिगत काम, समीक्षाओं और रिपोर्टों की तैयारी, प्रसंग अध्ययन, परियोजना कार्य, चर्चा-विवेचन, सेमिनार आदि का प्रमुख स्थान होना चाहिए।

— छात्रों ने जो वृत्ति चुनी है उसकी महत्ता और संभावनाओं के प्रति छात्रों के दृष्टिकोण को अनुस्थापित करने, इस काम में निहित मानवीय तत्व का अनुभव कराने और शैक्षणिक विकास के सामाजिक महत्व पर ज़ोर देने के लिए भी यथेष्ट समय निकाला जाना चाहिए।

— उन्नत देशों में अनेक तकनीकों और पद्धतियों का बहुत तेज़ी से विकास किया जा रहा है। उनमें से कुछ हैं—कक्षाओं के अध्यापन में रेडियो, टेलीविज़न और फिल्मों का प्रयोग; कार्यक्रमबद्ध शिक्षण और भाषा की प्रयोगशालाएँ आदि। भारत में, स्कूलों में रेडियो का प्रवेश थोड़ा-बहुत होने लगा है, और आगामी वर्षों में अन्य सामग्रियों का भी अधिकाधिक प्रयोग होने लगेगा। अतः यह वांछनीय होगा कि प्रशिक्षणार्थी अध्यापको का भी उनसे परिचय करवाया जाए—पहले उनके अध्ययन-कार्यक्रमों में और फिर अध्यापन के अभ्यास में।

4.24. परीक्षा प्रणाली में भी यथेष्ट सुधार की आवश्यकता है। आज तो प्रशिक्षणशालाओं में प्रयुक्त बहिरंग परीक्षाओं की प्रणाली स्कूलों की परीक्षा प्रणाली से बहुत मिलती-जुलती है और उसमें सभी सुविदित दोष हैं। जब तक इस परीक्षा प्रणाली में सुधार नहीं किया जाता, अध्यापकों को योग्यतांकन की नई विधियों से परिचित नहीं कराया जाता और यह परिचय उनके प्रशिक्षण कार्यक्रम का अंग नहीं बनाया जाता तब तक स्कूलों के परीक्षा-विषयक सुधार सफल नहीं होंगे। अतः प्रशिक्षणशालाओं में परीक्षा के स्वरूप में सुधार करने के लिए एक व्यवस्थित प्रयत्न आवश्यक है और उसे अत्यधिक अग्रता भी देनी होगी। प्रशिक्षणार्थी के सम्पूर्ण कार्य का मूल्यांकन करने वाले आंतरिक परीक्षण करने होंगे और नियमित रूप से उन पर ज़ोर देना होगा। छोटे पैमाने पर तो ऐसा किया भी जा चुका है। यद्यपि इसके कारण एक ही विश्वविद्यालय से सम्बद्ध विविध संस्थाओं के योग्यतांकन की एकरूपता में कठिनाई आई है, पर यह भी सच है कि इससे पूरे प्रशिक्षण कार्य पर महत्वपूर्ण और अनुपम प्रभाव पड़ा है और अध्यापक के दायित्वों से सीधा सम्बन्ध रखने वाले कार्यों को प्रोत्साहन मिला है। अतः अंतरंग योग्यतांकन के प्रयोग को विस्तृत करने के लिए आवश्यक कदम उठाये जाएं और अन्तिम रूप से किए गए योग्यतांकन में भी इस अंतरंग परीक्षण को अधिक महत्वपूर्ण स्थान दिया जाए। इसके अतिरिक्त अध्यापक शिक्षकों को चाहिए कि वे छात्र-अध्यापकों से परामर्श लेते हुए उनके क्रमशः वर्धमान अभिलेख रखें। इस रीति से प्रशिक्षणार्थी जान जाएंगे कि स्वयं उन्हें अपने छात्रों के क्रमशः वर्धमान अभिलेख कैसे रखने होंगे।

4.25. **छात्र-अध्यापन में सुधार**—आज स्थिति यह है कि छात्र-अध्यापक को कुछ भिन्न पाठ पढ़ाने होते हैं जिनमें से अधिकांश का या तो पर्यवेक्षण किया ही नहीं जाता या बेढंगे तरीके से किया जाता है। दो से छह सप्ताह तक की अवधि के सतत खंड-अध्यापन की प्रणाली केवल कुछ ही संस्थाओं में अपनाई जाती है जब कि इसकी सम्यक् व्यवस्था काफी हद तक अपेक्षित है। हमारी राय है कि छात्र-अध्यापन की व्यवस्था दो स्तरों पर होनी चाहिए। पहले स्तर पर तो छात्र-अध्यापकों को स्कूल की समग्र परिस्थिति से परिचित कराया जाना चाहिए और वास्तविक अध्यापन में उसका केवल प्रवेश कराया जाना चाहिए। उसे अच्छे अध्यापन के उदाहरण देखने के अवसर मिलने चाहिए और उसे स्कूल के समग्र कार्यक्रम का भी परिचय प्राप्त होना चाहिए। उसे यह परिचय मिलना चाहिए कि स्कूल के पुस्तकालय में, वर्कशाप में, कलाकक्ष में और खेल के मैदान में कैसी व्यवस्था सुलभ है और विविध विषयों के अध्यापक, आजीविका निर्देशक और परामर्शदाता क्या भूमिका अदा करते हैं। उसे स्कूल की सभा के कार्यक्रमों का भी परिचय मिलना चाहिए और यह भी जानना चाहिए कि स्कूल में पाठ्यक्रमेतर क्रियाकलाप क्या-क्या होते हैं। उससे शिक्षण का आरम्भ पहले एक छात्र से कराया जा सकता है; तब छात्रों की एक मंडली पढ़ाने को दी जाए और इस क्रम से अंत में पूरी कक्षा की व्यवस्था करना सिखाया जाए। दूसरे स्तर के प्रशिक्षण का उद्देश्य उसे कम-से-कम आठ सप्ताह के सतत अध्यापन का अवसर देना होना चाहिए और वह भी

वास्तविक स्कूल की परिस्थितियों में, मानो कि वह एक चुने हुए स्कूल के वास्तविक अध्यापक का काम कर रहा है। पहली कोटि का अनुभव प्राप्त करा सकना तो सरल है। परन्तु वास्तव में दूसरी कोटि ही अत्यधिक महत्पूर्ण है और इसलिए हमारी सिफ़ारिश है कि समग्र अध्यापक-शिक्षण में उसे आवश्यक अंग का रूप दिया जाए और ऊपर विवेचित रूपरेखा के अनुरूप शिक्षण के सभी स्तरों पर उसकी व्यवस्था की जाए।

4.26. **विशेष पाठ्यक्रमों और कार्यक्रमों का विकास**—विशेष आवश्यकताओं के अनुरूप नए पाठ्यक्रम भी बनाए जाने चाहिए। हम पहले ही दो वर्ष के एम०ए० पाठ्यक्रमों और पूर्व-स्नातक तथा स्नातकोत्तर स्तर पर प्रवेश्य शिक्षण पाठ्यक्रमों के विषय में बता चुके है। इस समय मुख्याध्यापकों के लिए कोई विशेष पाठ्यक्रम नहीं हैं क्योंकि शिक्षण संस्था के प्रमुख पर ही बहुत कुछ आश्रित होता है। अतः मुख्याध्यापक पदों पर नियुक्त किए जाने वाले अध्यापकों के लिए छोटे आगमन पाठ्यक्रम अपेक्षित होंगे। इसी प्रकार प्राथमिक और माध्यमिक प्रशिक्षणशालाओं के अध्यापक-शिक्षकों के लिए भी विशेष पाठ्यक्रमों की उतनी ही तात्कालिक आवश्यकता है। प्राथमिक स्कूलों में, यहाँ तक कि अवर प्राथमिक स्तर के लिए भी, स्नातक अध्यापकों की संख्या बढ़ने लगी है, और इसलिए, यदि उनके हेतु किसी विशेष पाठ्यक्रम की आयोजना की जाए तो बहुत उपयोगी होगी। यह भी वांछनीय होगा कि या तो पूर्वापर स्तरों के लिए अध्यापकों को प्रशिक्षित किया जाए या इस प्रकार प्रशिक्षित किया जाए कि थोड़े और अनुस्थापन तथा प्रशिक्षण के बाद वे उच्चतर कक्षाओं को भी पढ़ाने योग्य हो जाएँ। पहली और दूसरी कक्षाओं के अध्यापन की विधि अनौपचारिक होनी चाहिए और इसके लिए प्राथमिक और पूर्व प्राथमिक स्तर के प्रशिक्षण का सम्मिलित पाठ्यक्रम रखा जाए तो उपयोगी होगा। इसी प्रकार ऐसे सम्मिलित पाठ्यक्रम भी होने चाहिए जिनसे प्राथमिक और माध्यमिक स्कूलों के अध्यापक तैयार किए जा सकें। हमारी सिफ़ारिश है कि इन पाठ्यक्रमों के और विस्तृत ब्योरे पूरी अग्रता देकर तैयार किए जाएं और यह काम राष्ट्रीय शिक्षा अनुसंधान तथा प्रशिक्षण परिषद् अध्यापक शिक्षकों के राष्ट्रीय संघ के सहयोग से करे।

4.27. **पाठ्यचर्याओं में संशोधन और सुधार**—वह समय आ गया है जब सभी स्तरों के छात्र अध्यापकों की पाठ्यचर्याओं और कार्यक्रमों पर पुनर्विचार करना होगा। यह विशेष रूप से इसलिए आवश्यक होगा कि हम स्कूल शिक्षा के विकास-विस्तार की सिफ़ारिश कर रहे हैं। विविध स्तरों की वर्तमान पाठ्यचर्या तो परंपरागत पाठ्यचर्या से ही उद्भुत हैं; बस उसमें विषयों और पाठ्यतत्वों की वृद्धि हुई है पर आंगिक एकात्मता और कार्यात्मक उपयोगिता का अभाव रहा है। अब क्योंकि विकासमान शिक्षा पद्धति के विविध दायित्वों के अनुरूप अध्यापकों को तैयार करना हमारा मूलभूत लक्ष्य है अतः इसी दृष्टि से इन पाठ्यचर्याओं का संशोधन आवश्यक है। उनमें न तो यह दोष होना चाहिए कि केवल विशेष पद्धतियों और व्यावसायिक कलाबाजी की शिक्षा दें और न यह होना चाहिए कि कुछ बहुत ऐसा सामान्य और सैद्धान्तिक उपदेश दें जो वास्तविक शिक्षण कार्य से बहुत असंबद्ध हों। अध्यापक के विविध कार्यों के आधार की ही परीक्षा की जानी चाहिए और मूलभूत विषयों में आधार भूमि बनने वाले पाठ्यक्रमों का विकास अवश्य किया जाना चाहिए।

4.28. **प्राथमिक अध्यापकों की वृत्तिक शिक्षा की पाठ्यचर्या**—इस समय यह पाठ्यचर्या दो भागों में विभक्त है। सैद्धान्तिक खंड में शिक्षण के सिद्धान्त, बाल-विकास या बाल मनोविज्ञान, अध्यापन विधियाँ, स्कूल संगठन और स्वास्थ्य शिक्षा जैसे विषय होते हैं। व्यावहारिक काम में हस्तकला, अभ्यासार्थ अध्यापन, और सामुदायिक जीवन के क्रियाकलाप सम्मिलित होते हैं। विषयों के इस वर्गीकरण में तो हमें कोई दोष नहीं दीखता। परन्तु फिर भी हमारा मत है कि सिद्धान्त विषयक अध्ययन के विविध विषयों में पढ़ाई जाने वाली सामग्री का उस काम के साथ सीधा सम्बन्ध होना चाहिए जो स्कूल में पढ़ाते समय करना है। साथ ही विविध विषयों में परस्पर सम्बन्ध समझा जाना चाहिए और उनका अध्यापन भी समन्वित रूप से होना चाहिए। हम पहले ही इस बात पर जोर दे चुके है कि विषय-वस्तु का यथेष्ट ज्ञान कराया जाना चाहिए और उसका अध्यापन की विधियों और सामग्रियों से सम्बन्ध भी जोड़ा जाना चाहिए। छात्र-अध्यापकों को स्कूल के पाठ्यविवरण के लक्ष्यों और परिणामों को समझ लेना चाहिए और इस संप्रत्यय का ऐसा उपयुक्त विकास करने की क्षमता उनमें होनी चाहिए कि वे इसे छात्रों के लिए सार्थक बना सकें।

4.29. इसके अतिरिक्त प्राथमिक छात्र-अध्यापकों की सामान्य शिक्षा के सतत कार्यक्रम की भी आवश्यकता है। उन्हें ऐसे पाठ्यक्रमों की आवश्यकता है जिनसे वे जीवन, सांस्कृतिक दाय, राष्ट्र की समस्याओं और महत्वाकांक्षाओं तथा सभ्यता के विषय में सामान्य रूप से एक समुचित परिप्रेक्ष्य बना सकें। यदि ठीक से संगठन किया जा सके तो सामुदायिक जीवन के कार्यक्रमों से दायित्व निर्वाह

की भावना, सहयोगपूर्ण जीवन की क्षमता, और समाज सेवा की कामना पैदा की जा सकती हैं। जब अध्यापक को अपने स्कूल में इन सबका संगठन करना होगा तो इनसे उसे सहायता मिलेगी।

4.30. अभ्यास के लिए शिक्षण के विषय में हम पहले ही बता चुके हैं। हम एक बार फिर बताना उचित समझते हैं कि आज के समाज में शिक्षा के लक्ष्यों को ध्यान में रखते हुए अभ्यासार्थ शिक्षण और विधियों तथा सामग्रियों के विषयक पाठ्यक्रमों में इन बातों पर जोर दिया जाना चाहिए कि छात्रों में समस्या-समाधान की क्षमता कैसे बढ़ेगी और आधारभूत तथ्यों का आत्मसात्-करण और बौद्धिक ग्रहण में आधारस्वरूप कैसे उपयोग किया जा सकेगा। सर्वप्रथम तो छात्र अध्यापकों में ही अध्यापक शिक्षकों द्वारा इन योग्यताओं का विकास किया जाना चाहिए। विधियों का अन्य कोई निदर्शन या व्याख्यापन उतना फलदायक नहीं होता जितना स्वयं सीखते समय छात्र द्वारा किया गया प्रयोग होता है।

4.31. **माध्यमिक अध्यापकों की वृत्तिक शिक्षा की पाठ्यचर्या**--आज इस स्तर के पाठ्यक्रम में ये चीजें हैं : शिक्षा की दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक और समाज वैज्ञानिक आधारभूमियों का अध्ययन, स्कूल संगठन, शिक्षण विधियाँ, अभ्यासार्थ अध्यापन और व्यावहारिक कार्य। यहां आवश्यकता इस बात की है कि अनावश्यक वस्तुओं को निकाल दिया जाए और पाठ्यक्रम की ऐसा बनाया जाए कि उसका अध्यापक के दायित्वों, भारतीय परिस्थितियों, समस्याओं और अध्ययनों से सीधा सम्बन्ध रहे। वृत्तिक और सामान्य दोनों ही तरह की शिक्षा में यह सामर्थ्य होनी चहिए कि वह छात्र को इस योग्य बना दे कि वह सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक और औद्योगिक शक्तियों के उस स्वरूप को ठीक से समझ सके जो वर्तमान भारतीय समाज को बदल रहा हैं और उन समस्याओं को भी समझ सके जो इस परिवर्तन से उत्पन्न होंगी, और वह इस परिवर्तन की दिशा और उसके लक्ष्य को निश्चित करने में शिक्षा के महत्व को भी पहचान सके। इसके अतिरिक्त इस स्तर पर छात्र अध्यापक को ये विशेष अनुभव भी प्राप्त कराए जाने चाहिए— परिलब्धि और निदान परीक्षणों का निर्माण, परिलब्धि संवर्धन कार्यक्रम, अल्पपरिलब्धि वालों के कारणों का निदान और निवारण-कार्यक्रमों का आयोजन।

4.32. इस स्तर पर अध्यापक शिक्षण के समूचे कार्यक्रम को हो सामाजिक उद्योग की-सी भावना से संगठित किए जाने की आवश्यकता है। कालेज समुदाय के विविध तत्वों के बीच पारस्परिक क्रिया-प्रतिक्रिया ऐसी होनी चाहिए कि उससे प्रत्येक का व्यक्तित्व विकसित हो सके। यह बात अन्य स्तरों की प्रशिक्षणशालाओं पर भी लागू होती है।

4.33. **सामान्य प्रेक्षण**—हम यह बात स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि हम यह आशा नहीं करते कि प्रशिक्षणशालाएं वह सब ज्ञान, कौशल और विधि सिखा ही दें जिसकी विविध कार्यक्रमों के संपादन में आवश्यकता होती है। हम इतना ऊँचा स्तर नहीं बना सकते कि ऐसा अध्यापक रूपी तैयार माल निकले कि उसे अपना दायित्व निभाने के लिए जो कुछ भी आवश्यक हो वह सब उसे प्रशिक्षणकाल में प्राप्त हो जाए। सभी प्रकार की परिस्थितियों में उपयोगी हो सकने वाले पूर्ण प्रशिक्षण की कल्पना कर सकना न तो संभव है और न वांछनीय ही। व्यवसाय जितना ही गतिशील होता है उसके पूर्णप्रशिक्षण की संभावना उतनी ही कम होती है। अध्यापक शिक्षण में महत्व इस बात का है कि अध्यापक में अंतः प्रज्ञा, बोधशक्ति, सीखने की क्षमता और प्रत्युत्पन्न मति विकसित हो जाए। जब विशेष अनुस्थापन की आवश्यकता हो तो अंतः सेवा कार्यक्रमों की व्यवस्था की जा सकती है।

4.34. प्रशिक्षणशालाओं में अनुसरणीय पाठ्यक्रम और कार्यक्रम ऐसे होने चाहिए कि शिक्षा की राष्ट्रीय पद्धति की सभी आवश्यकताओं को पूरा कर सकें। सभी स्तरों के अध्यापक शिक्षण पाठ्यक्रमों और पाठ्यचर्याओं को इस दृष्टिकोण से संशोधित करना होगा। यह काम अध्यापक शिक्षा के राज्य मंडलों का और अध्यापक शिक्षण से संबंधित वि० अ० आ० की समिति का होना चाहिए जिनकी स्थापना के विषय में हम इसी अध्याय में आगे विवेचन करेंगे। यह काम उक्त संस्थाओं के लिए बहुत महत्वपूर्ण और प्रथमसंपाद्य माना जाना चाहिए। हम यह सुझाव देना चाहेंगे कि इसके लिए भूमिका वे अग्रणी अध्यापक शिक्षक तैयार करें जो पाठ्यचर्या, कार्याविधि, क्रियाकलाप, परीक्षा आदि स्कूल सम्बन्धी समग्र प्रणाली और कार्यक्रम के विषय में की गई हमारी सिफारिशों को ध्यान में रखकर अध्यापकों के वृत्तिक शिक्षण की पाठ्यचर्या पर विचार-चर्चा करने के लिए एकत्र हों।

4.35. **स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम**—शिक्षा में स्नातकोत्तर उपाधि (मास्टर डिग्री) या दूसरी उपाधि परीक्षा के पाठ्यक्रम में सुधार की तत्काल आवश्यकता है। हम (वि० अ० आ० द्वारा नियुक्त) शिक्षा पर पुनर्विचार करनेवाली समिति से सहमत हैं, जिस ने इन पाठ्यक्रमों पर व्यवस्थित रूप से विचार किया है और बताया है कि स्नातकोत्तर उपाधि के वर्तमान पाठ्य-

क्रमों में सफल और सुविचारित विशानिर्देशन का अभाव है और उनका उपयोग केवल प्रशिक्षणशालाओं में नौकरी पाने के लिए किया जा सकता है अन्यथा तो वे व्यर्थ के अलंकार हैं। वर्तमान पाठ्यक्रमों का उच्चतर स्तर की वृत्तिक आवश्यकताओं से कोई घनिष्ट सम्बन्ध नहीं माना गया है और न उनमें वह गहनता और मूलग्राहिता है जो शैक्षणिक शास्त्र के रूप में शिक्षाविषय के लिए आवश्यक हो। उनका तो विकास बी० एड० के पाठ्यक्रम से ही किया हुआ प्रतीत होता है और उनका कोई स्पष्ट प्रयोजन नहीं दीखता।

4.36. हमारा मत है कि शिक्षा के स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम का सामान्य प्रयोजन छात्र को इस योग्य बना देना होना चाहिए कि वह विशेष ज्ञान और पहल शक्ति-सापेक्ष विशिष्ट क्षेत्र में अधिक गहन, वैज्ञानिक और विद्वत्तापूर्ण अध्ययन कर सके। स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम में ये वस्तुएँ होनी चाहिएं : (1) छात्र को शिक्षा और शैक्षणिक समस्याओं के अध्ययन के विषय में एक परिप्रेक्ष्य देना और उसे उनका अध्ययन करने के वैज्ञानिक तरीकों से परिचित कराना; (2) शैक्षणिक आयोजन और प्रशासन, अध्यापक शिक्षण, मार्गदर्शन और परामर्शदान, शैक्षणिक योग्यतांकन, या शिक्षा की मनोवैज्ञानिक आधारशिला आदि कुछ क्षेत्रों में विशेष योग्यता के पाठ्यक्रम; (3) शोध की क्रिया विधि का अध्ययन; और (4) एक लेख। पाठ्यक्रम के स्वरूप में कुछ नम्यता होनी चाहिए ताकि विविध प्रयोजन के अनुरूप चयन कर सकने की पर्याप्त गुंजाइश रहे।

4.37. अध्यापन वृत्ति के लिए शिक्षा विषय की स्नातकोत्तर उपाधि कोई आवश्यक योग्यता नहीं है और उसे प्राप्त करने का यत्न केवल विशेष योग्यता और रुचि वाले लोगों को ही करना चाहिए। इस स्तर पर शैक्षणिक योग्यता की कोटि भी उच्चतम रखने की आवश्यकता है क्योंकि इन्हीं पाठ्यक्रमों वाले छात्र अधिकतर अध्यापक प्रशिक्षक बनेंगे। अतः छात्रों, अध्यापकों और संस्थाओं, सभी का स्तर ऊँचा करना आवश्यक होगा। सर्वेक्षणों से पता चला है कि एम० एड० पाठ्यक्रम लेने वाले छात्रों का बौद्धिक और शैक्षिक स्तर ऊँचा नहीं होता। इसका कारण यह है कि एम० एड० में प्रवेश के लिए बी० एड० आवश्यक योग्यता मानी जाती है और अधिकतर प्रथम और द्वितीय श्रेणी प्राप्त स्नातक बी० एड० में जाते ही नहीं क्योंकि अध्यापन के व्यवसाय में उन्हें तरक्की के बहुत कम अवसर दीखते हैं। हमारी सिफ़ारिश है कि छात्रों का चुनाव कठोरता से किया जाना चाहिए और स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम केवल उन छात्रों को लेना चाहिए जिनकी शैक्षिक और वृत्तिक योग्यता सदा उत्कृष्ट कोटि की रही हो, अर्थात्, दोनों ही उपाधियों में कम-से-कम उच्च द्वितीय श्रेणी प्राप्त की हो। स्नातकोत्तर शिक्षा का आचार्यवृन्द भी विशेष योग्यता सम्पन्न होना चाहिए और इस प्रकार के आचार्यवृन्द को मान्यता देनेवाली विश्वविद्यालय समितियों को चुनाव करते समय योग्यता के विषय में दृढ़ रहना चाहिए और सम्बन्धित व्यक्तियों की साक्षात् परीक्षा के बाद ही मान्यता देनी चाहिए। यह स्मरण रहना चाहिए कि बी० एड० स्तर के पाठ पढ़ानेवाला प्रत्येक अध्यापक का एम० एड० स्तर के काम के लिए भी उपयुक्त होना आवश्यक नहीं है क्योंकि एम० एड० स्तर पर गहनतर ज्ञानार्जन और सतत बौद्धिक श्रम आवश्यक है। इसी प्रकार एम० एड० का भी अध्यापन सभी अध्यापक प्रशिक्षण संस्थाओं का आवश्यक अंग नहीं माना जाना चाहिए। यह अध्यापन केवल उन संस्थाओं में होना चाहिए जिनमें इस प्रयोजन के उपयुक्त योग्य आचार्य हों और अन्य आवश्यक सामग्रियां भी हों।

4.38. हमारा यह मत है कि इस पाठ्यक्रम की जो अवधि इस समय दो शैक्षिक सत्रों की है वह बहुत कम है और इतनी लम्बी नहीं है कि विषय के साथ न्याय किया जा सके, लेख भी लिखा जा सके और चर्चा-विवेचनों, अध्ययन मंडलियों, सेमिनारों आदि क्रियाकलापों की भी व्यवस्था हो सके। अतः यह वांछनीय होगा कि पाठ्य-अवधि बढ़ाकर तीन शैक्षिक सत्र कर दिए जाएं।

4.39. हमारी मान्यता है कि शैक्षिक शोध का विकास स्नातकोत्तर स्तर पर काम करने के लिए योग्य अध्यापक तैयार करने में बहुत सहायक होगा। प्रत्येक स्नातकोत्तर अध्यापक का शोधकर्ता होना आवश्यक नहीं है। पर उसे अपने विशिष्ट क्षेत्र में हो चुके शोधों के परिणाम तो ज्ञात होने ही चाहिए। हम शिक्षा विषयक शोध पर अन्यत्र विचार करेंगे।[1]

प्रशिक्षणशालाओं की गुणवत्ता में सुधार

4.40. यदि ऊपर के अध्याय खंडों में बतायी गई रीति से प्रशिक्षण कार्यक्रमों में सुधार करना है तो एक आवश्यक शर्त यह है कि प्रशिक्षणशालाओं में ही सुधार किया जाए। हम माध्यमिक अध्यापकों के प्रशिक्षण और प्राथमिक अध्यापकों के प्रशिक्षण से सम्बन्धित संस्थाओं की दोनों प्रमुख कोटियों पर विचार करेंगे और बताएंगे

1. अध्याय बारह।

कि उनके अध्यापकों, छात्रों और सुविधाओं में कैसे सुधार संभव है। यथासंशोधित रूप में ये सिफारिशें अन्य कोटि की प्रशिक्षणशालाओं पर भी लागू होंगी।

4.41. **माध्यमिक अध्यापकों की प्रशिक्षण-शालाएं : अध्यापकवृन्द**—इन संस्थाओं के अध्यापक अपने कार्य के लिए बहुत ही कम उपयुक्त होते हैं। एक सर्वेक्षण से पता चला है कि ऐसी संस्थाओं के 40 प्रतिशत अध्यापक केवल बी० ए० होते हैं और बी० एड० कर चुके होते हैं; 58 प्रतिशत ऐसे होते हैं, जिनके पास किसी विषय की एम० ए० उपाधि या एम० एड० उपाधि होती है; और केवल दो प्रतिशत ऐसे होते हैं जिनके साथ शोध उपाधि (डाक्टर) हो। हमारा मत है कि इन संस्थाओं के अध्यापकों के पास दो स्नातकोत्तर उपाधियाँ होनी चाहिए—एक किसी अध्ययन विषय की और दूसरी शिक्षा-विषय की, और डाक्टर उपाधिकारियों का भी यथेष्ठ अनुपात (कोई 10 प्रतिशत) होना चाहिए। एम० एड० स्तर पर विशेष विषय के रूप में या विशेष शिक्षा पाठ्य-क्रम के रूप में अध्यापक-शिक्षण का विषय भी उनके द्वारा पढ़ा हुआ होना चाहिए। उनके वेतनमान वे ही होने चाहिए जो कला या विज्ञान के कालेजों के लेक्चरार, रीडर, प्रोफेसर आदि के होते हैं। पर विशेष वृत्तिक प्रशिक्षण की अतिरिक्त योग्यता को ध्यान में रखकर दो अग्रिम तर-क्कियाँ दी जानी चाहिए।

4.42. हम निम्नलिखित अतिरिक्त सिफ़ारिशें भी करते हैं :

(1) इन संस्थाओं में काम करने के लिए उपयुक्त प्रशिक्षित अध्यापक तैयार करने के लिए पी-एच० डी० एम० एड० और शिक्षा के एम० ए० लोगों की संख्या में त्वरित वृद्धि की जानी चाहिए। इन पाठ्यक्रमों की ओर अच्छे छात्रों को आकृष्ठ करने के लिए यथेष्ट छात्रवृतियाँ दी जानी चाहिए और यह उन शिक्षा-स्कूलों का मुख्य दायित्व होना चाहिए जिनकी पहले सिफ़ारिश की जा चुकी है।

(2) शिक्षा में वृत्तिक योग्यता की आवश्यकता पर जोर दिया जाने के कारण ऐसे अध्यापक प्रशिक्षणशालाओं में नियुक्ति नहीं पा सकते जो अन्य विषयों में विशेष योग्यता प्राप्त हो और निःसंदेह शिक्षण स्तर ऊंचा उठाने में सहायक हो सकते हों। अतः यह आग्रह नहीं रहना चाहिए। शैक्षिण मनोविज्ञान, समाज-विज्ञान, विज्ञान और गणित जैसे विषयों के लिए इन विषयों के विशेषज्ञ नियुक्त करना ही उचित होया चाहे उनके पास वृत्तिक-प्रशिक्षण की योग्यता न हो।

(3) राजकीय संस्थाओं में अध्यापक और निरीक्षक आपस में बदले जा सकते हैं और फल यह होता है कि अयोग्य और अवांछनीय लोग प्रायः प्रशिक्षणशालाओं में नियुक्त कर दिए जाते हैं। अतः यह परम आवश्यक है कि प्रशिक्षणशालाओं के लिए केवल योग्यतम और सर्वोत्तम पात्र ही चुने जाएं।

(4) प्रशिक्षणशालाओं के अध्यापकों के अंतःसेवा प्रशिक्षणों के लिए ग्रीष्मावकाशकालीन संस्थाओं के समु-चित कार्यक्रम बनाए जाने चाहिए।

4.43. **छात्र**—यह खेद की बात है कि जो स्नातक अध्यापक इस वृत्ति को अपनाते हैं या प्रशिक्षणशाला में प्रवेश पाते है उनका विषयज्ञान बहुत बातों में हीन होता है। इसके अनेक कारण हैं :

— अनेक राज्यों में यह नियम नहीं है कि माध्य-मिक स्कूल का अध्यापक उसी विषय को पढ़ाए जिसमें उसने उपाधि प्राप्त की है, और फलतः वह ऐसे विषय भी पढ़ाता है जिन्हें उसने स्वयं केवल माध्यमिक स्तर तक पढ़ा है। दर्शन, समाज-विज्ञान या अर्थशास्त्र में उपाधि प्राप्त करने वाले अध्यापकों को प्रायः ऐसा करना पड़ता है क्योंकि ये विषय तो स्कूल की पाठ्यचर्याओं में होते ही नहीं।

— भूगोल आदि कुछ ऐसे विषय हैं जिनके अध्या-पन की सुविधाएं विश्वविद्यालयों में इतनी कम है कि इन विषयों को प्रायः ऐसे रुचि लेने वाले अध्यापक पढ़ाते हैं जो पहले स्वयं विषय को समझने का यत्न करते है और फिर अपनी समझ के अनुसार पढ़ा देते हैं।

— अध्यापन वृत्ति अपनाने वाले अनेक स्नातक भी ऐसे हैं कि उन्होंने केवल तीसरी श्रेणी प्राप्त की है और जिस विषय में उन्होंने उपाधि प्राप्त की भी है उसकी भी बहुत कम जानकारी रखते हैं।

— उच्चतर माध्यमिक स्तर के लिए स्नातकोत्तर उपाधिधारी अध्यापक यथेष्ठ संस्था में उपलब्ध नहीं हैं।

— गणित, विज्ञान और अंग्रेजी जैसे विषय पढ़ाने वाले अध्यापकों की बहुत कमी है।

विषय-ज्ञान की ये कमजोरियां उस समय विशेष बाधक सिद्ध होती हैं जब माध्यमिक स्कूलों के पाठ्यक्रमों का स्तर ऊंचा करने का विचार किया जाता है। इसका दीर्घकालिक समाधान यही है कि स्नातक स्तर पर शिक्षण कोटि में सुधार हो और अध्यापकों के वेतनों में वृद्धि की जाए ताकि सक्षम अध्यापक यथेष्ठ संख्या में प्राप्त हो

सकें। हमने यही सिफ़ारिश की है। परन्तु अंतरिम अवधि में जब कि बहुत से अपूर्ण विषय-ज्ञान वाले अध्यापक पहले से नियुक्त हैं और आगामी वर्षों में भी होंगे, यह आवश्यक है कि निम्नलिखित अतिरिक्त उपाय अपनाए जाएं :

(1) विश्वविद्यालयों को यह नियम बना लेना चाहिए कि किसी ऐसे छात्र को विषय-विशेष के अध्यापन की विशेष योग्यता प्राप्त करने के लिए भरती न करें जो प्रशिक्षण से पूर्व उस विषय में उपाधि न प्राप्त कर चुका हो या उसके समकक्ष कोई योग्यता न रखता हो। इस प्रकार सभी राज्यों और केन्द्रशासित क्षेत्रों को भी यह नियम बना लेना चाहिए कि माध्यमिक स्कूलों के अध्यापक केवल उन्हीं विषयों को पढ़ाएं जिनको उन्होंने अपनी शिक्षा या वृत्तिक शिक्षा में पढ़ा हो। कुछ राज्यों में ऐसे नियम हैं पर उन्हें सर्वत्र अपनाने की आवश्यकता है।

(2) यदि किसी अध्यापक को कोई अन्य विषय पढ़ाना भी पड़े तो ऐसा तभी करने दिया जाना चाहिए जब वह पत्राचार पाठ्यक्रम या ग्रीष्मावकाशकालीन संस्थानों के माध्यम से उस विषय का विशेष अध्ययन कर ले। स्कूली विषयों की विषय वस्तु में डिप्लोमा देने के लिए विश्वविद्यालयों को भी पत्राचार पाठ्यक्रम चालू करने चाहिए। अध्यापकों के लिए यह भी व्यवस्था होनी चाहिए कि वे प्राइवेट पढ़कर भी ये डिप्लोमा प्राप्त कर सकें। इसके अतिरिक्त, इस उद्देश्य से ग्रीष्मावकाशकालीन संस्थानों का भी विशाल कार्यक्रम बनाया जाना चाहिए।

(3) स्कूली विषयों में स्नातकोत्तर परीक्षा पास व्यक्तियों की संख्या भी बढ़ाई जानी चाहिए। विज्ञान, गणित, अंग्रेजी आदि जिन विषयों में अध्यापक कठिनाई से मिलते हैं उनके पूर्व स्नातक और स्नातकोत्तर अध्ययन के लिए उदारतापूर्वक छात्रवृत्तियों की व्यवस्था की जानी चाहिए और छात्रवृत्ति की राशि इतनी होनी चाहिए कि पढ़ाई का पूरा खर्चा चल सके। पर छात्रवृत्ति की यह शर्त होनी चाहिए कि पढ़ाई पूरी होने के बाद पांच वर्ष तक किसी माध्यमिक स्कूल में पढ़ाना आवश्यक होगा। अन्य छात्रों के लिए भी वृत्तिकाओं की यथेष्ठ व्यवस्था होनी चाहिए ताकि भरती होने वाले लगभग 25 प्रतिशत छात्रों को वृत्तिकाएं प्राप्त हो सके। इनके अतिरिक्त ऋण रूप छात्रवृत्तियों की भी यथेष्ठ संख्या में व्यवस्था होनी चाहिए। प्रशिक्षण के बाद जो व्यक्ति अध्यापक बने उन्हें उस सेवा के प्रत्येक वर्ष के बदले में दस प्रतिशत ऋण की माफी मिलनी चाहिए।

(4) माध्यमिक प्रशिक्षणशालाओं में अच्छे उपाधि-धारी छात्र (महत्वपूर्ण विषयों के प्रथम और उच्च द्वितीय श्रेणी प्राप्त छात्र) पर्याप्त संख्या में आने को तैयार नहीं होते। सर्वोत्तम प्रशिक्षणशालाओं में भी उनकी संख्या 20 प्रतिशत से अधिक नहीं होती और अधिकांश संस्थाओं में तो उनकी संख्या बहुत ही कम होती हैं। अतः प्रथम और उच्च द्वितीय श्रेणी प्राप्त छात्रों को भी आकृष्ट करने का यत्न किया जाना चाहिए और उन्हें प्रशिक्षण के कुल खर्च के बराबर छात्रवृत्तियां दी जानी चाहिए।

4.44. **सुविधाएं**—सामान्यतः 25 प्रतिशत छात्रों के लिए छात्रावास-व्यवस्था और प्रिंसिपल तथा एक अन्य अध्यापक के लिए आवास-व्यवस्था की जाती है। हमारी सिफ़ारिश है कि छात्रावास की सुविधाओं में पर्याप्त वृद्धि की जानी चाहिए और कम से कम आधे अध्यापकों के लिए भी आवास व्यवस्था की जानी चाहिए। यह उस परिस्थिति में और भी अधिक आवश्यक होगा जब विशाल संस्थाएं बनायी जाएं और वे भी देहाती क्षेत्रों में। पुस्तकालय, प्रयोगशाला, दृश्यश्रव्य साधन और वर्कशापों या शिल्पकक्षों आदि अन्य सुविधाओं की व्यवस्था आज किसी प्रकार संतोषजनक नहीं कही जा सकती। उनके सुधार के लिए गम्भीर प्रयत्न अपेक्षित होंगे।

4.45. **प्राथमिक अध्यापकों की संस्थाओं में सुधार**—प्राथमिक अध्यापकों की प्रशिक्षणशालाओं की बहुत ही दुर्दशा है और उनके शिक्षण स्तर तो माध्यमिक प्रशिक्षणशालाओं से भी अधिक गए गुजरे हैं। इस स्थिति में सुधार करने के लिए सर्वोच्च अग्रता देकर परम प्रयत्न करने की आवश्यकता है।

4.46. **अध्यापकवृन्द**—अधिकांश अध्यापक माध्यमिक स्कूलों में से ही चुनकर नियुक्त किए जाते है। स्वाभाविक है कि उनका प्रशिक्षण माध्यमिक स्कूलों की दृष्टि से हुआ होता है और परिणाम यह होता हैं कि वे प्राथमिक स्कूलों के अध्यापकों को प्रशिक्षित करने के लिए स्वयं अर्ध प्रशिक्षित होते हैं। उनके वेतन भाव माध्यमिक स्कूलों के बराबर होते हैं और प्रायः उच्चतर माध्यमिक स्कूलों के वेतनों से तो कम ही होते हैं। माध्यमिक स्कूलों के अच्छे अध्यापक प्राथमिक प्रशिक्षणशालाओं में काम करना पसन्द नहीं करते क्योंकि वहां ट्यूशन मिलने की गुंजाइश नहीं होती और काम की मात्रा भी बहुत होती हैं। इन संस्थाओं के कुछ अध्यापक निरीक्षक वर्ग में से चुने जाते हैं। उनमें भी जिन अच्छे निरीक्षकों को अपने काम में ही उन्नति के अवसर अधिक दिखाई देते हैं वे अध्यापक बनने को आकृष्ट नहीं होते। ये बाधाएं तब दूर हो जाएंगी जब संस्थाओं का स्तर कालेजों के समकक्ष कर दिया जाएगा। हमारी सिफ़ारिश है कि अध्यापकों के पास शिक्षा या किसी शास्त्रीय विषय में एम० ए० की उपाधि के साथ बी० एड० की उपाधि भी होनी चाहिए और उनके वेतनमान

कला या विज्ञान के कालेजों के अध्यापकों के समकक्ष होने चाहिए तथा साथ ही उनके वृत्तिक प्रशिक्षण का ध्यान रखकर दो अग्रिम तरक्कियां भी दी जानी चाहिए। हमारी यह भी सिफ़ारिश है कि इन प्रशिक्षणशालाओं को शिक्षकों को प्राथमिक अध्यापकों के प्रशिक्षण की विधि का यथेष्ठ प्रशिक्षण मिलना चाहिए और इस प्रशिक्षण के लिए विशेष अनुस्थापन और आगमन पाठ्यक्रमों का आयोजन किया जाना चाहिए जिसमें प्राथमिकशाला के कार्य का अनुभव भी शामिल हो। इस प्रयोजन की सिद्धि के लिए राज्य-शिक्षा संस्थानों ने जो कार्यक्रम चलाए हैं उनका हम अभिनन्दन करते हैं।

4.47. **छात्र**—माध्यमिक अध्यापकों की तुलना में प्राथमिक अध्यापकों की सामान्य शिक्षा बहुत ही कम संतोषजनक है। सारणी 4.1 और पृष्ठ 90 के चार्ट से यह स्थिति स्पष्ट होगी।

सारणी 4.1. प्राथमिक स्कूलों के अध्यापकों का सामान्य शिक्षण
(1950-51 से 1965-66)

वर्ष	स्नातक और उससे ऊपर की योग्यता वाले अध्यापक	जिन्होंने माध्यमिक शिक्षा पूरी कर ली हैं और जो अवर-स्नातक हैं	जिन्होंने माध्यमिक शिक्षा पूरी नहीं की है	सभी अध्यापक
1950-51		अवर प्राथमिक स्कूल		
पुरुष	898	44,730	4,10,009	4,55,637
	(0.2)	(9.8)	(90.0)	(100)
स्त्रियां	410	9,670	72,201	82,281
	(0.5)	(11.8)	(87.7)	(100)
कुल	1,308	54,400	4,82,210	5,37,918
	(0.3)	(10.1)	(89.6)	(100)
1965-66 (अनुमानित)				
पुरुष	7,100	4,30,650	4,12,250	8,50,000
	(0.8)	(50.7)	(48.5)	(100)
स्त्रियां	3,400	94,350	102,250	200,000
	(1.7)	(47.2)	(51.1)	(100)
कुल	10,500	5,25,000	5,14,500	10,50,000
	(1.0)	(50.0)	(49.0)	(100)
1950-51		उच्चतर प्राथमिक स्कूल		
पुरुष	3,920	31,267	37,422	72,609
	(5.4)	(43.1)	(51.5)	(100)
स्त्रियां	887	4,323	7,677	12,887
	(6.9)	(33.5)	(59.6)	(100)
कुल	4,807	35,590	45,099	85,496
	(5.6)	(41.6)	(52.8)	(100)
1965-66 (अनुमानित)				
पुरुष	23,500	2,12,200	1,44,300	3,80,000
	(6.2)	(55.8)	(38.0)	(100)
स्त्रियां	7,700	68,600	63,700	1,40,000
	(5.5)	(49.0)	(45.5)	(100)
कुल	31,200	2,80,800	2,08,400	5,20,000
	(6.0)	(54.0)	(40.0)	(100)

स्रोत : शिक्षा मंत्रालय द्वारा प्रकाशित आकड़े। 1965-66 के आँकड़े आयोग-सचिवालय में तैयार किए गए प्राक्कलनों के आधार पर दिए गए हैं।

ध्यान दें : कोष्ठकों के बीच के आँकड़े, कुल की प्रतिशतता बताते हैं।

स्कूल अध्यापक : योग्यतानुसार
1950-51 और 1965-66

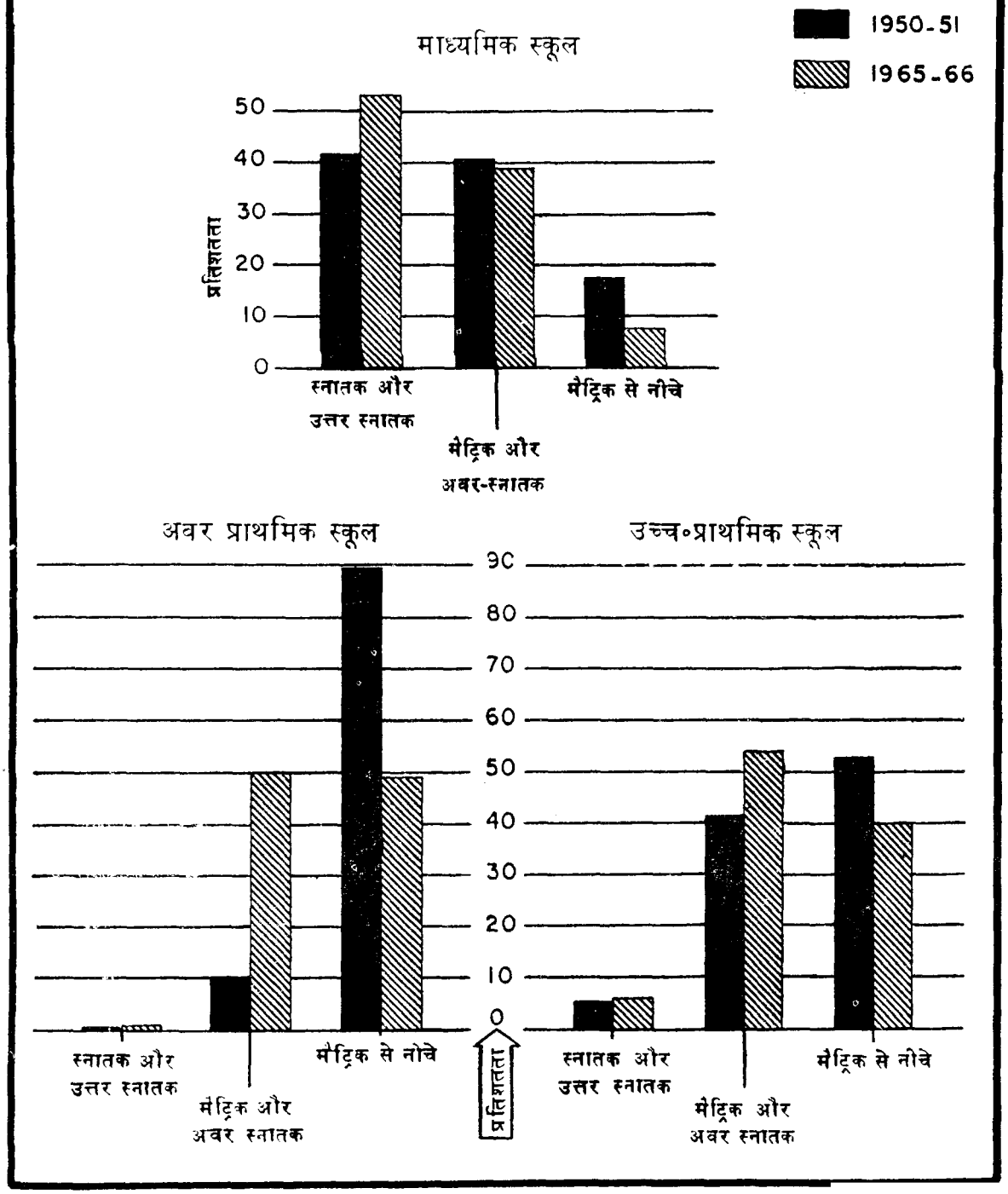

4.48. यह द्रष्टव्य है कि 1950-51 में अवर प्राथमिक स्कूलों के अध्यापकों की कुल संख्या में से केवल 10.3 प्रतिशत ही योग्यता प्राप्त (अर्थात्, स्नातक और माध्यमिक स्कूल पाठ्यक्रम पूरा किए हुए) थे और यह अनुपात 1965-66 तक ही जाकर 51 प्रतिशत हो पाया। उच्चतर प्राथमिक शालाओं में योग्यता प्राप्त अध्यापकों की संख्या 1950-51 की 47.2 प्रतिशत संख्या से बढ़कर 1065-66 तक 60 प्रतिशत हो पाई। इस प्रकार योग्यता रहित अध्यापकों की संख्या में कमी बहुत ही मंदगति से हो पा रही है। इस प्रगति को देखते हुए आज तो यही कहा जा सकता है कि प्रत्येक प्राथमिक अध्यापक को कम-से-कम दस वर्ष की सामान्य शिक्षा प्राप्त होने के लिए 20-25 वर्ष और लगेंगे।

4.49. इस मंद प्रगति के दो प्रमुख कारण हैं : एक तो यह कि नई नियुक्तियां भी केवल ऐसे योग्यता प्राप्त अध्यापकों की नहीं होतीं जो माध्यमिक स्कूल का पाठ्यक्रम पूरा कर चुके हों; जिसका कारण अंशतः तो यह है कि कुछ क्षेत्रों में (कबाइली क्षेत्रों आदि) योग्य अध्यापक मिलते ही नहीं; अंशतः सामाजिक परिस्थितियां हैं (उदाहरणार्थ, अध्यापिकाओं या पिछड़े वर्गों के अध्यापकों की नियुक्ति आवश्यक होना) और अंशतः अल्पव्यय का विचार भी, क्योंकि योग्यता रहित अध्यापक सस्ते मिल जाते है।[1] दूसरा और अधिक महत्वपूर्ण कारण यह है कि पहले से नियुक्त अध्यापकों की योग्यता में वृद्धि करने का कोई यत्न नहीं किया गया। इस दिशा में त्वरित प्रगति आवश्यक है, अतः हम निम्नलिखित सिफारिशें करते हैं :

(1) नई नियुक्तियां केवल उन्हीं लोगों की की जाएँ जो कम से कम दस वर्ष की सामान्य शिक्षा प्राप्त कर चुके हों। यदि अध्यापक प्राप्त न हों तो छूट दी जा सकती है पर केवल अध्यापिकाओं और कबाइली क्षेत्रों के अध्यापकों के प्रसंग में ही छूट दी जानी चाहिए।

(2) पत्राचार पाठ्यक्रमों की व्यवस्था करके और अध्ययन अवकाश की उदारतापूर्वक सुविधा देकर सेवाधीन योग्यता रहित अध्यापकों की योग्यतावृद्धि में सहायता देने के मामले पर विशेष जोर दिया जाना चाहिए।

4.50. प्राथमिक अध्यापकों की सामान्य शिक्षा में बहुत अधिक वैषम्य होने के कारण (विषमता यहां तक है कि एक ओर तो कुछ एम० ए०, बी० ए० भी मिल जाएंगे जबकि दूसरी ओर ऐसे भी हैं जो प्राथमिक शिक्षा प्राप्त भी नहीं हैं) मुख्यतः यह आवश्यक है कि अनेक प्रकार के पाठ्यक्रम तैयार किए जाएं और ऐसा करने में अध्यापकों की मागान्य शिक्षा के स्तरों को ध्यान में रखा जाए। आजकल तो ऐसा करने के स्थान पर बहुत भिन्न योग्यताओं वाले (जैसे मैट्रिक और केवल उच्चतर प्राथमिक योग्यता वाले) भी एक साथ एक ही कक्षा या पाठ्क्रम में भर दिए जाते हैं। यह बंद होना चाहिए।

4.51. **अन्य सुविधाएं**—बड़े नगरों में स्थित प्रशिक्षणशालाओं को छोड़ दीजिए पर अन्य सभी प्रशिक्षण-शालाओं में 80 प्रतिशत छात्रों के लिए छात्रावास की आवश्यकता होती है। इस समय अध्यापकों के लिए यथेष्ट आवास व्यवस्था नहीं की जाती। सामान्यतः तो प्रिंसिपल और एक अध्यापक के लिए व्यवस्था होती है। पुस्तकालय, प्रयोगशाला, और दृश्यश्रव्य साधनों आदि की सुविधाएं भी इस समय बहुत ही कम हैं। हमारी सिफ़ारिश है कि इन सभी मामलों में उच्च प्राथमिकता देकर यथेष्ट सुधार किया जाना चाहिए।

4.52. **अध्यापन शुल्क**—सभी प्रशिक्षणशालाओ में अध्यापन शुल्क बंद कर दिया जाना चाहिए।

4.53. **निदर्शन या प्रयोगात्मक स्कूल**—प्रत्येक प्रशिक्षणशाला का एक-एक निदर्शन और प्रयोगात्मक स्कूल होना चाहिए और उसका प्रयोग निदर्शन या विशेष अध्ययन के लिए किया जाए।

4.54. **प्रशिक्षण सुविधाओं का विस्तार**—इस समस्या का आकार विभिन्न राज्यों में बहुत भिन्न है जैसा कि सारणी 4.2 से स्पष्ट हैं।

सारणी 4.2. राज्यों में प्रशिक्षित अध्यापकों की संख्या और उनका प्रतिशत अनुपात (1965-66)

राज्य का नाम	अध्यापकों की कुल संख्या और प्रतिशत		
	माध्यमिक स्तर	उच्चतर प्राथमिक स्तर	अवर प्राथमिक स्तर
1. आंध्र प्रदेश	34,215 (82.4)	15,625 (80.5)	86,501 (90.0)

1. इस समय तो नई नियुक्तियों में 75 प्रतिशत नियुक्तियाँ योग्यता प्राप्त व्यक्तियों की ही की जाती है।

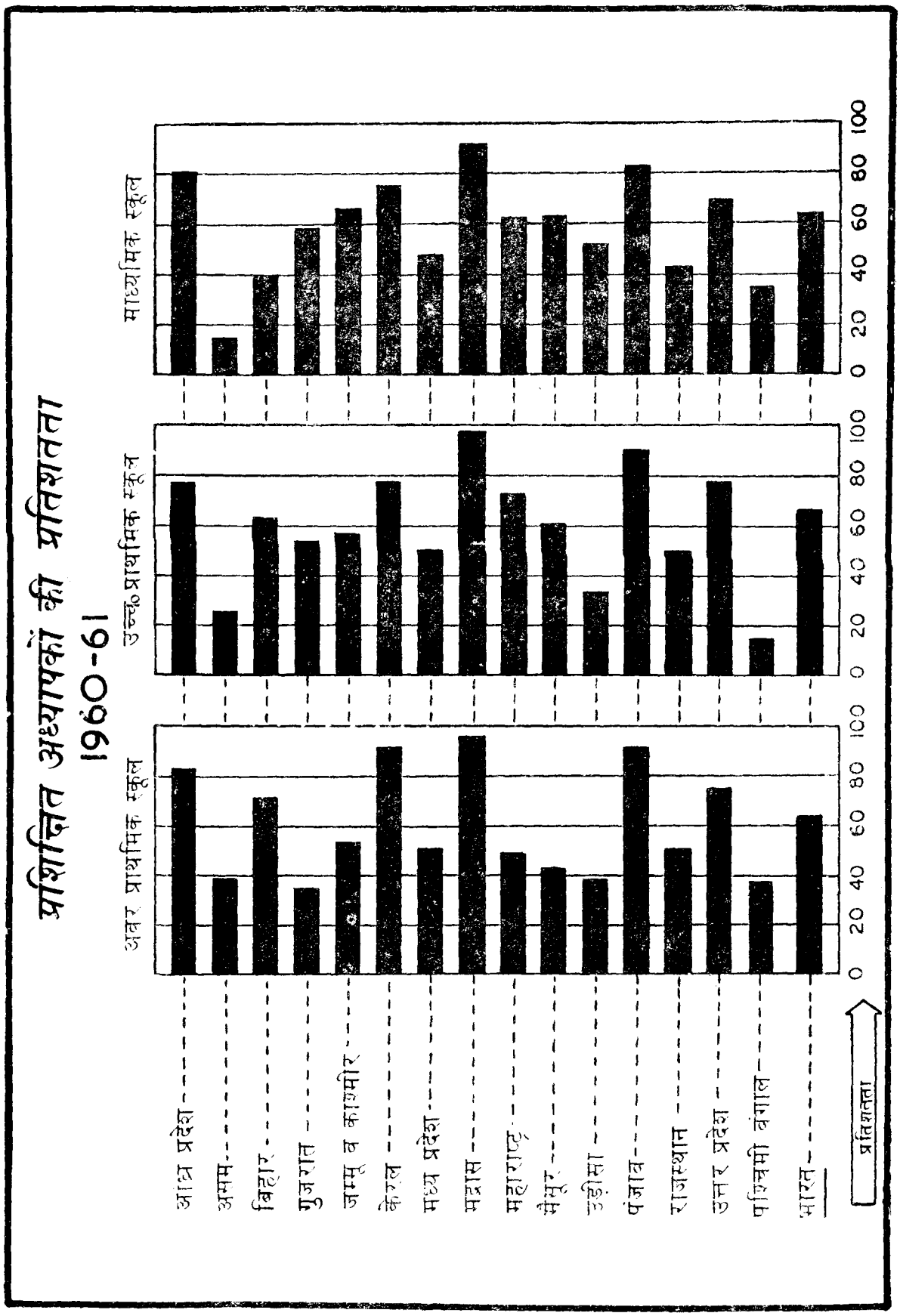
प्रशिक्षित अध्यापकों की प्रतिशतता
1960-61
अवर प्राथमिक स्कूल
उच्च० प्राथमिक स्कूल
माध्यमिक स्कूल
आंध्र प्रदेश
असम
बिहार
गुजरात
जम्मू व काश्मीर
केरल
मध्य प्रदेश
मद्रास
महाराष्ट्र
मैसूर
उड़ीसा
पंजाब
राजस्थान
उत्तर प्रदेश
पश्चिमी बंगाल
भारत
0 20 40 60 80 100
प्रतिशतता

राज्य का नाम	अध्यापकों की कुल संख्या और प्रतिशत		
	माध्यमिक स्तर	उच्चतर प्राथमिक स्तर	अवर प्राथमिक स्तर
2. असम	9,210 (18.6)	14,810 (22.4)	37,500 (55.0)
3. बिहार	24,398 (50.2)	32,918 (72.5)	99,663 (82.7)
4. गुजरात	22,290 (66.4)	83,640 (61.4)	उच्चतर प्राथमिक में शामिल
5. जम्मू और कश्मीर	4,613 क (25.6)	3,467 क (54.2)	4,874 क (54.0)
6. केरल	22,031 (89.0)	39,406 (82.7)	59,703 (93.0)
7. मध्य प्रदेश	1,97,006 (69.0)	27,961 ख (72.0)	6,79,096 (80·0)
8. मद्रास ग	48,194 ख (86.3)	59,440 ख (93.1)	76,638 ख (96.7)
9. महाराष्ट्र	48,590 (71.4)	1,51,500 (74.8)	उच्चतर प्राथमिक में शामिल
10. मैसूर	10,334 (59.5)	(91,952 (59.9)	उच्चतर प्राथमिक में शामिल
11. नागालैंड	309 (15.6)	745 (8.7)	1,764 (20.3)
12. उड़ीसा	8,461 ख (52.0)	10,322 ख (31.0)	48,339 ख (60.0)
13. पंजाब	26,234 ख (96.0)	14,911 ख (88.0)	34,863 ख (89.0)
14. राजस्थान	12,671 ख (60.0)	18,352 ख (71.0)	41.600 (75.0)
15. उत्तर प्रदेश	33,311 (81.9)	46,819 (87.1)	162,472 (73.5)
16. पश्चिम बंगाल घ	40,238 (35.6)	12,041 (16.3)	98,306 (38.3)

स्रोत : शिक्षा निदेशकों से प्राप्त ।

ध्यान दें : कोष्ठकों में दी गई संख्याएँ प्रशिक्षित अध्यापकों के प्रतिशत की द्योतक है ।

(क) 1961-62 के आँकड़े । शिक्षा आयोग को राज्य सरकारों द्वारा दिए गए ज्ञापनों में से उद्धृत ।

(ख) अनुमानित आँकड़े ।

(ग) 1964-65 के आँकड़े ।

(घ) 1963-64 के आँकड़े ।

मद्रास, केरल और पंजाब जैसे राज्यों में सभी स्तरों के लिए प्रशिक्षित अध्यापकों की संख्या काफी है और अध्यापक शिक्षण की सुविधाएँ भी पर्याप्त हैं। असम और पश्चिम बंगाल आदि अन्य राज्यों में सभी स्तरों पर प्रशिक्षित अध्यापकों का प्रतिशत बहुत कम है और प्रशिक्षण सुविधाएं अपर्याप्त है। माध्यमिक स्तर पर तो शिक्षण-विधि सभी प्रदेशों में समरूप है पर प्राथमिक स्तर पर नौ राज्यों में एक वर्ष की अवधि है, एक राज्य में डेढ़ वर्ष का क्षेत्रीय कार्य है और छह राज्यों में दो वर्षों की अवधि है।

पृष्ठ 92 के चार्ट में 1960-61 में विविध प्रशिक्षित अध्यापकों का प्रतिशत चित्रित है।

आगामी बीस वर्षों में प्रशिक्षण सुविधाओं का बड़े पैमाने पर विस्तार करना होगा क्योंकि स्कूलों में छात्रों की संख्या बहुत बढ़ जाएगी, प्राथमिक अध्यापकों की प्रशिक्षण अवधि बढ़ानी होगी और यह आवश्यक होगा कि प्रत्येक प्राथमिक और माध्यमिक स्कूल के सभी अध्यापक या तो नियुक्ति के समय ही प्रशिक्षित हों या नियुक्ति के बाद तीन वर्ष के भीतर प्रशिक्षण प्राप्त कर लें। अतः प्रत्येक राज्य के लिए यह आवश्यक होगा कि प्रशिक्षण सुविधाओं के प्रसार की आयोजना बनाएं और बनाते समय अंतः सेवा शिक्षण आदि सभी संबंधित बातों पर ध्यान दें।

इन आयोजनाओं को बनाने के लिए निम्नलिखित तथ्यों का ध्यान रखा जाना चाहिए :

(1) **सुविधाओं का विस्तार**—प्रशिक्षण की सुविधाओं के इतने अधिक विस्तार का लक्ष्य होना चाहिए कि चतुर्थ आयोजना के अंत तक इतने प्रशिक्षित अध्यापक हो जाएं कि वर्ष विशेष की आवश्यकता पूरी करने के साथ-साथ आगामी वर्ष के अतिरिक्त अध्यापकों की आवश्यकता भी पूरी हो सकें।

(2) **अंशकालिक सुविधाएं**—सम्पूर्ण प्रशिक्षण सुविधाओं का अधिकांश भाग बड़ी-बड़ी पूर्णकालिक प्रशिक्षण संस्थाओं को मिलना चाहिए। फिर भी इस कार्यक्रम की पूंजीगत लागत बहुत अधिक है, अतः यह हो सकता है कि पूर्णकालिक आधार पर आवश्यक सभी सुविधाओं की व्यवस्था सम्भव न हो। अतः यह नीति अपनाई जानी चाहिए कि पूर्णकालिक संस्थाओं की गुणवत्ता में कमी न आए और निम्नलिखित साधनों से अतिरिक्त सुविधाएं भी प्रदान की जा सकें :

सारणी 4.3. अप्रशिक्षित अध्यापक : आयु-वर्ग के अनुसार (1965)

आयु	आयु-वर्ग में अप्रशिक्षित अध्यापकों का प्रतिशत अनुपात					
	अवर प्राथमिक स्कूल		उच्चतर प्राथमिक स्कूल		माध्यमिक स्कूल	
	पुरुष	स्त्रियां	पुरुष	स्त्रियां	पुरुष	स्त्रियां
20 से नीचे	8.9	11.9	11.0	9.0	2.9	2.5
21-25	40.7	31.7	30.1	30.3	40.3	51.0
26-30	23.2	23.8	26.9	27.6	29.8	30.6
31-35	11.6	13.7	13.7	15.3	12.7	8.8
36-40	6.5	7.9	8.9	8.6	7.8	4.0
41-45	3.7	5.0	4.0	4.5	2.6	1.6
46-50	2.4	3.1	2.5	2.7	1.6	0.9
51-55	1.9	2.2	1.9	1.2	1.2	0.2
56-60	0.9	0.7	0.9	0.6	0.9	0.5
60 से ऊपर	0.2	—	0.1	0.2	0.2	—
कुल प्रतिशतता	100.0	100.0	100.0	100.0	100.0	100.0

स्रोत : राज्य सरकारों द्वारा दी गई सामग्री।

(क) पत्राचार शिक्षा—प्रत्येक राज्य में कम-से-कम एक पत्राचार शिक्षा केन्द्र हो और वह केन्द्र यथासंभव राज्य शिक्षा संस्थान में हो। यह सेवा-पूर्व प्रशिक्षण का सा काम करे और साथ ही सभी अध्यापकों के लिए अंतः सेवा शिक्षा के पाठ्यक्रमों की भी व्यवस्था करे।

(ख) सायंकालिक या अंशकालिक पाठ्यक्रम—एक लाख या उससे अधिक जनसंख्या वाले नगरों में अध्यापकों की संख्या इतनी अवश्य होगी कि अंशकालिक या सायंकालिक पाठ्यक्रमों का औचित्य सिद्ध कर सके। इन सुविधाओं से यह भी संभव होगा कि पहले से विद्यमान अशिक्षित अध्यापकों की संख्या में कमी की जा सके।

(3) **विद्यमान कमी का निवारण**—आयोजना का एक अन्य महत्वपूर्ण प्रयोजन होना चाहिए उन अध्यापकों का यथासंभव शीघ्र प्रशिक्षण जो पहले से नियुक्त हो चुके हैं पर अप्रशिक्षित हैं; यह काम यथासंभव पाँच वर्षों में पूरा हो जाना चाहिए। हमने अप्रशिक्षित अध्यापकों के वयोवर्ग के आधार पर 29 जिलों के ऐसे अध्यापकों का आयुमूलक वर्गीकरण किया है और उसके परिणाम सारणी 4.3 में द्रष्टव्य हैं।

यह द्रष्टव्य हैं कि अप्रशिक्षित अध्यापकों में से अधिकांश की आयु 30 वर्ष से कम है। 40 वर्ष से अधिक आयु के अध्यापकों की संख्या अपेक्षाकृत बहुत कम है। इसलिए यह वांछनीय है कि इन अध्यापकों के प्रशिक्षण की योजना बनाने में अंशतः अध्यापकों के वय का ध्यान रखा जाए और अंशतः उनकी सेवावधि का। इस दृष्टि से हम ये सिफ़ारिशें करते हैं :

(क) 40 वर्ष से अधिक आयु के अध्यापकों को पूर्णावधि प्रशिक्षण देना प्रायः निरर्थक-सा ही है। हमारी सिफ़ारिश है कि यदि वे कम-से-कम पाँच वर्ष नौकरी कर चुके हैं तो उनको केवल एक अल्पावधि पाठ्यक्रम काफी होगा और उसके बाद उन्हें प्रशिक्षित मान लिया जाना चाहिए।

(ख) 40 वर्ष से कम आयु के भी उन अध्यापकों को जो कम-से-कम पाँच वर्ष नौकरी कर चुके हों पूर्णावधि प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं है। यदि इसी विशेष उद्देश्य को ध्यान में रखकर कोई अल्पावधि पाठ्यक्रम बना लिया जाए तो यथेष्ट होगा।

(ग) परन्तु जिन अध्यापकों की आयु 40 वर्ष से कम है और अध्यापन अनुभव भी 5 वर्ष से कम है, उनके लिए एक या दो वर्ष का पूर्णावधि पाठ्यक्रम आवश्यक होना चाहिए। हाँ, इन अध्यापकों के लिए यह छूट होनी चाहिए कि वे चाहें तो पूर्णावधि पाठ्यक्रम लें और चाहें तो यथाव्यवस्था अंशकालिक या पत्राचार पाठ्यक्रम लें।

हमारा मत है कि इस प्रकार का एक सुनम्य कार्यक्रम बनाया जाए तो यह सम्भव होगा कि अप्रशिक्षित अध्यापकों का प्रशिक्षण कार्य शीघ्रता से सम्पन्न हो जाए।

(4) **संस्थाओं का आकार**—अल्प व्यय और कुशलता, दोनों ही दृष्टियों से वह आवश्यक होगा कि प्रशिक्षण संस्थाएं काफी बड़ी हों। प्राथमिक स्तर के लिए दो वर्ष की अवधि के पाठ्यक्रम की व्यवस्था करने वाली संस्थाओं की छात्र संख्या 240 होनी चाहिए और माध्यमिक स्तर वाली की 200 होनी चाहिए। विद्यमान संस्थाओं की छात्र संख्या इतनी करने के लिए लगभग पाँच वर्ष का एक कार्यक्रम बनाया जाना चाहिए जिसके अनुसार या तो उनका विस्तार किया जाए या एकाधिक संस्थाओं को मिलाकर बड़ा आकार दिया जाए। जो नई संस्थाएं स्थापित की जाएं उनकी छात्र संख्या 400 से कम न रखी जाए। इस समय प्राथमिक अध्यापकों के प्रशिक्षण के लिए माध्यमिक स्कूलों में लगाई गई कक्षाओं और कला तथा विज्ञान के कालेजों से सम्बन्धित अध्यापक प्रशिक्षण विभागों को समाप्त कर दिया जाना चाहिए और उनके स्थान पर बड़ी-बड़ी प्रशिक्षणशालाएं ही स्थापित की जानी चाहिए।

(5) **स्थान निर्धारण**—अध्यापकों की वर्तमान प्रशिक्षण सुविधाओं की आयोजना में अनेक तथ्यों पर ध्यान देना आवश्यक हैं। संस्थाओं, विशेषकर प्राथमिक स्तर की संस्थाओं, में से कुछ को देहाती क्षेत्रों में स्थापित करना होगा और अध्यापक छात्रों के लिए अभ्यासार्थ अध्यापन की व्यवस्था पड़ोस के स्कूलों में करनी होगी। यदि विविध प्रकार की संस्थाएं अध्यापक प्रशिक्षण का दायित्व संभाल लें तो अलगाव के निवारण में भी बहुत सहायता मिलेगी। उदाहरणार्थ यदि कोई भारतीय औद्योगिकी संस्थान अपने कार्यक्रम के अंग के रूप में एक अध्यापक प्रशिक्षण शाखा भी स्थापित कर ले तो बहुत प्रसन्नता की बात होगी। कृषि विश्वविद्यालय भी ऐसा कर सकते हैं। इस कोटि के कार्यक्रमों से अध्यापक प्रशिक्षण के कार्यक्रम को उत्तम

प्रतिष्ठा और विस्तृत आधार भूमि मिल जाएगी। इसके अतिरिक्त इस कार्यक्रम से शिक्षा भी कृषि और उद्योग की दिशा में उन्मुख हो सकेगी।

अध्यापकों का वृत्तिक शिक्षा का सातत्य

4.55. **स्कूल की भूमिका**—सभी प्रकार के व्यवसायों में यह आवश्यक है कि एक बार वृत्ति विशेष से परिचित करवाने के बाद सतत प्रशिक्षण भी चालू रहे और उसके लिए और अधिक प्रशिक्षण तथा विशेष पाठ्यक्रमों की व्यवस्था रहे। शिक्षण वृत्ति के विषय में इस प्रकार के सातत्य की और भी अधिक आवश्यकता है क्योंकि ज्ञान के सभी क्षेत्रों में त्वरित विकास हो रहा है और शिक्षा शास्त्रीय सिद्धान्तों और व्यवहारों में भी सतत-विकास हो रहा है। इस कार्यक्रम को अनेक अभिकरणों की सहायता से विकसित करना होगा। पहला अभिकरण तो स्कूल ही है जहाँ अध्यापक को अपने ही अनुभव से नई-नई बातें सीखने के अवसर मिलते हैं और साथ ही स्कूल के अन्य अनुभवी अध्यापकों से राय लेने और चर्चा करने की सुविधा प्राप्त होती है। मुख्य अध्यापक और प्रवर अध्यापकों को भी एक विशेष भूमिका वहन करनी होती है क्योंकि वे भी कार्य की आयोजना बनाकर और अध्ययन मंडल, विवेचन मंडल आदि क्रियाकलाओं के माध्यम से नए अध्यापकों का मार्ग दर्शन कर सकते हैं। इस कार्यक्रम में शिक्षाविभाग, प्रशिक्षण कालेज और अध्यापक संगठन भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकते हैं।

4.56. **अंशकालिक और पूर्णकालिक अन्तःसेवा शिक्षा**—स्कूल और अन्य अभिकरण जो भूमिका अदा कर सकते हैं उसके अतिरिक्त भी व्यवस्थित और समन्वित अंतःसेवा शिक्षा के कार्यक्रमों के बड़े पैमाने पर संगठन की आवश्यकता है ताकि प्रत्येक अध्यापक पाँच वर्ष की प्रत्येक सेवावधि के बाद दो-तीन महीने की अंतःसेवा शिक्षा प्राप्त कर सके। इन कार्यक्रमों की पाठ्यचर्या की आयोजना और संघटना व्यवस्थित रूप से की जानी चाहिए और इसके लिए सामग्री का संचय बहुत ध्यान से किया जाना चाहिए और सम्बन्धित अध्यापकों को भी समुचित रूप से अनुस्थापित किया जाना चाहिए। अच्छी पाठ्य-पुस्तकों, आधार ग्रंथों, दृश्यश्रव्य सामग्रियों और बच्चों के कामों के प्रदर्शन होने चाहिए। यह सब तभी सम्भव है जब कोई 10-15 वर्ष तक पूर्व-प्राथमिक, प्राथमिक और माध्यमिक सभी स्तरों की प्रशिक्षणशालाएं, कर्मचारियों और साधनों से इस प्रकार समन्वित की जाएं कि विस्तार कार्यों को संभाल सकें, अध्यापकों के लिए परामर्श-सेवा की व्यवस्था कर सकें और पुनश्चर्या पाठ्यक्रमों, सेमिनारों, कार्यशिविरों और ग्रीष्मावकाशकालीन संस्थानों जैसे माध्यमों से अंतःसेवा प्रशिक्षण कार्यक्रमों का संगठन कर सकें। प्रत्येक प्रशिक्षणशाला पूरे बारह मास काम करे और उनमें तदनुरूप अतिरिक्त अध्यापकों तथा सुविधाओं की व्यवस्था हो। इसके अतिरिक्त ऐसी संस्थाएं भी स्थापित की जाएं जो पूर्णकालिक और सतत आधार पर अंतः सेवा प्रशिक्षण का कार्य करें।

4.57. **स्कूलों के अध्यापकों की अन्तःसेवा शिक्षा**—प्राथमिक अध्यापकों की अंतःसेवा शिक्षा के लिए इस समय बहुत ही कम ध्यान दिया जाता है। इस कार्यक्रम पर बहुत जोर देने की आवश्यकता है। माध्यमिक अध्यापकों के प्रसंग में नवीनतम विकास है ग्रीष्मावकाश-कालीन संस्थान और उनमें अदा की गई निश्वविद्यालयों की भूमिका। इनका अध्यापक-शिक्षण के समूचे क्षेत्र पर दूरगामी प्रभाव होगा। इस कार्यक्रम के बहुत अधिक विस्तार की आवश्यकता है और इसे विश्वविद्यालयों तथा स्कूलों के वार्षिक कार्य का अभिन्न अंग बना दिया जाना चाहिए। इस प्रसंग में निम्नलिखित सुझाव दिए जा रहे हैं :

(1) दीर्घकालिक सेमिनार, पाठ्यक्रम या ग्रीष्मावकाशकालीन संस्थान के बाद व्यवस्थित अनुवर्तन की व्यवस्था आवश्यक है। प्रबन्धकों और साधनसम्पन्न कर्मचारियों को उन अध्यापकों के साथ सम्बन्ध बनाए रखना चाहिए जो कार्यक्रमों में भाग लेते है; अध्यापकों को उन नए क्रियाकलापों की सूचना देनी चाहिए जो वे आरम्भ करें तथा यह भी सूचना देनी चाहिए कि परिणाम क्या रहे और कठिनाइयाँ क्या आईं। विचारों और अनुभवों के आदान-प्रदान की सुविधा के लिए एक समाचार-पत्रक भी प्रकाशित किया जाना चाहिए।

(2) अंतःसेवा शिक्षण और स्कूली शिक्षा से सम्बन्धित अभिकरणों के बीच क्रियात्मक सहयोग और समन्वय भी होना चाहिए। यदि शिक्षा विभागों और माध्यमिक शिक्षा मंडलों का सहयोग मिला होता और पाठ्यक्रमों, पाठ्यचर्याओं और बाह्य परीक्षाओं में ऐसे सुधार किए गये होते जो प्रवृत्तियों के सूचक होते तो निस्संदेह गत तीन वर्षों में संगठित ग्रीष्मावकाशलीन संस्थानों का प्रभाव और अधिक फलदायक हुआ होता।

(3) अध्यापकों की अंतः सेवा शिक्षा को चालू रखने के लिए शिक्षा विषयक शोध का सहयोग आवश्यक है। इन शोधों के परिणाम कक्षा-ध्यापक तक पहुंचने चाहिए और उसे नए प्रयोग करने में उनसे प्रोत्साहन मिलना चाहिए। इसी प्रकार कक्षा की समस्याएं भी सफल और व्यावहारिक समाधान के लिए शोध संस्था तक पहुंचनी चाहिए। ग्रीष्मावकाशकालीन संस्थान और राज्य शिक्षा संस्थान इस उभयविध आदान-प्रदान को काफी प्रोत्साहन दे सकते हैं।

4.58. **उच्चतर शिक्षा के अध्यापकों का वृत्तिक प्रशिक्षण**—उच्चतर शिक्षा के लिए अध्यापक तैयार करना विश्वविद्यालयों का दायित्व है। और इसलिए इस विषय की सिफ़ारिशों का समावेश उच्चतर शिक्षा से सम्बन्धित अध्याय में किया गया है। यहाँ हम उनके वृत्तिक प्रशिक्षण तक ही अपना विवेचन सीमित रखेंगे।

4.59. इस समय विश्वविद्यालय के अध्यापक के वृत्तिक शिक्षण के लिए कोई व्यवस्था नहीं है। सामान्यतः यही आशा की जाती है कि लेक्चरार जिस दिन से नियुक्त हो अपने काम का पूरा बोझा, और कभी-कभी उससे भी अधिक बोझा संभाल ले। उसे अपने कार्य से परिचित कराने की और उसके प्रति उन्मुख करने की कोई व्यवस्था नहीं है। उसे अपने को परिस्थितियों के अनुरूप बनाने और अपने प्रवर साथी अध्यापकों का अध्यापन कार्य देखने का कोई अवसर नहीं दिया जाता। उसके लिए पाठ्यविवरण देखने, पाठों की आयोजना बनाने, विभागाध्यक्ष और अन्य प्रवर साथियों से परामर्श लेने या सेमिनारों और ट्यूटोरियल कक्षाओं की तकनीकें समझने के लिए अवसर ही नहीं होते। उसे कभी-कभी तो अपनी वृत्ति के स्वरूप-विन्यास का भी ज्ञान नहीं होता और वह यह भी नहीं जानता कि प्रश्न-पत्र कैसे बनाए जाते हैं और उत्तर-पुस्तकें कैसे जाँची जाती हैं। पूर्ण उपेक्षा के वातावरण से बाध्य होकर वह बेचारा इतना कर पाता है कि स्वयं उसके अध्यापक जिन विधियों को अपनाते थे उन्हीं को अपने छात्रों पर थोप देता है और उनका बिलकुल अंधानुकरण करता है। इस प्रकार भाषण देने और नोट लिखने की नीरस और सारहीन परम्परा चलती रहती है। पीढ़ी-दर-पीढ़ी यही क्रम चलता जाता है। इस कल्पना शून्य पद्धति में निहित अनंत हानि को रोका जा सकता है और रोका जाना चाहिए भी।

4.60. भारत में परम्परा यह रही है कि कालेजों के लेक्चरारों के लिए प्रशिक्षण व्यर्थ माना जाता रहा है। हाँ, ऐसे अध्यापक हैं अवश्य, जो जन्मजात अध्यापक हैं और जिनके लिए किसी प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं होती। उनमें से अनेक तीक्ष्णबुद्धि और कार्यनिष्ठ विद्वान होते हैं और उनकी विद्वत्ता के कारण छात्र उनका आदर करते है—यद्यपि यह अनुमान सदा सब प्रसंगों में सही नहीं होता—और संभव है कि वे अपने पांडित्य के बल पर अपने कार्य का सम्पादन संतोषजनक रूप से कर सकें चाहे उनको वृत्तिक दक्षता न मिली हो। परन्तु दुर्भाग्य यह है कि अधिकांश इस कोटि के नहीं होते। उनके लिए कोई उपयुक्त प्रशिक्षण या अनुस्थापन परम आवश्यक है जिससे वे अध्यापन के आरम्भ में उत्पन्न होने वाली "अध्यापन विषयक" बाधाओं का तो निवारण कर सकें ही पर साथ ही उनमें एक आत्म विश्वास भी जाग्रत हो और वे शिक्षा के उद्देश्यों और प्रयोजनों को ठीक से समझ पाएं; पाठ्य-क्रम के मध्य अपने विषय विशेष के औचित्य और उपयुक्त स्थान को जान सकें; अध्यापन-अध्ययन की नई विधियों और तकनीकों से परिचित हो जाएं और मनोविज्ञान का भी ज्ञान प्राप्त कर सकें, क्योंकि अच्छा अध्यापन बहुत कुछ उसी की जानकारी पर आश्रित है। अहम्मन्यता का तो प्रश्न ही नहीं उठना चाहिए। बहुत अधिक कौशला-पेक्षी वृत्तियों में, जिनमें शिक्षण भी एक है ही, प्रशिक्षण की योग्यता परम आवश्यक मानी जाती है।

4.61. फिर भी हम यह नहीं समझते कि कालेज के लेक्चरारों के लिए भी सर्वांगपूर्ण प्रशिक्षण कालेजों की आवश्यकता है ही यद्यपि हम इस भावना को भी निरा-धार नहीं मानते। इस समय तो हम यही सुझाव देंगे कि विश्वविद्यालय इस समस्या पर अकेले या सम्मिलित रूप से विचार करें और वर्तमान परिस्थिति का सामना करने के लिए व्यावहारिक पद्धतियां सोचें। हाल ही के वर्षों में कुछ कदम उठाए भी गए हैं। उदाहरणार्थ वि० अ० आ० ने ग्रीष्मावकाशकालीन संस्थानों की एक योजना आरम्भ की है जिनमें विविध विषयों के अध्यापकों को एक स्थान पर एकत्र किया जाता है और विद्वान प्रोफेसर आदि अपने-अपने शास्त्रों में प्राप्त हुए नए आयामों से उन्हें परि-चित कराते हैं। उनकी संख्या बढ़ती जा रही है और आशा की जाती है कि और अधिक संस्थान चलाए जाएंगे। परन्तु वे इस समस्या का संपूर्ण समाधान नहीं हैं। कुछ कालेजों में इस उद्देश्य से विशेष व्याख्यानमालाओं के भी समय-समय पर आयोजन किए गए हैं और वे आयोजन बहुत सफल सिद्ध हुए है। कुछ विश्वविद्यालयों ने इन आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए विशेष स्नात-कोत्तर डिप्लोमा भी चलाये है। पर इनसे समाधान में बहुत ऊपरी सहयोग मिला है। वास्तविक समाधान के लिए

तो बड़ी मात्रा में और अधिक कल्पना समन्वित उपाय आवश्यक हैं।

4.62. यहां कुछ सुझाव इस आशा से दिए जा रहे हैं कि विश्वविद्यालय स्वयं ही अध्यापकों के अनुस्थापन के लिए अपने-अपने कार्यक्रम बनाएंगे और बनाते समय इन सुझावों का ध्यान रखेंगे :

(1) नवनियुक्त लेक्चरारों को संस्था के वातावरण में रस-बस जाने, कार्य की परम्परा और उसके प्रतिरूप को समझने तथा अपने साथियों और छात्रों से परिचित होने के लिए कुछ समय और अवसर दिया जाए। उनसे यह आशा अवश्य की जानी चाहिए कि वे पाठ्यविवरण को ध्यान से पढ़ें, अध्यापन कार्य के लिए एक ब्योरेवार कार्यक्रम तैयार करें, अपनी भाषणमाला की योजना बनाएं पुस्तकालय का उपयोग करें और विद्यार्थियों को पढ़ने के लिए बताने को पुस्तकें छांटें। उनको चाहिए कि इन सब विषयों में अपने विभागाध्यक्षों तथा प्रवर साथियों से चर्चा-विवेचन करें और उनसे सुझाव प्राप्त करें। जो विभागाध्यक्ष यह सब करने और नए अध्यापकों के मार्गदर्शन के लिए समय देने का इच्छुक नहीं है वह अपने पद का पात्र नहीं है।

(2) उनको इस बात के लिए भी प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए कि वे अपने वरिष्ठ साथियों की कक्षा में भाषण सुनें, उनकी अध्यापन पद्धति सीखें और यह जानकारी प्राप्त करें कि वे अपने छात्रों के साथ किस प्रकार का व्यवहार करते हैं। भाषण पूरा होने पर वरिष्ठ साथी अपने कनिष्ठ साथी के साथ विधियों और तकनीकों के विषय में चर्चा करें और उन्हें अपनी सम्मति प्रकट करने और प्रश्न पूछने की मुक्त सुविधा दें। यदि ऐसा किया जाएगा तो बाद में इन कनिष्ठ साथियों की कक्षाएं देखने के लिए वरिष्ठ साथी या विभागाध्यक्ष आएंगे तो अवर अध्यापकों को बुरा नहीं लगेगा। यह सोचना गलत है कि इस प्रकार दूसरी कक्षाओं में जाना निंदनीय है और ऐसा नहीं किया जाना चाहिए। यदि कालेज समाज एक ज्ञानार्जन मेला है तो इस प्रकार एक दूसरे की कक्षा में जाना मान्य होना चाहिए।

(3) प्रत्येक विश्वविद्यालय में और, जहां संभव हो, प्रत्येक कालेज में अनुस्थापन पाठ्यक्रम होने चाहिए जिनका आयोजन सत्र के आरम्भ में कुछ सप्ताह के लिए किया जाए और कुछ पुराने और कुछ नए अध्यापक इन सत्रों में भाग लें। संस्था के सर्वोत्तम अध्यापक और संस्था के बाहर के भी कुछ उत्तम अध्यापक, नए अध्यापकों के साथ अध्यापन, शोध, अनुशासन और वृत्तिविषयक कार्य-प्रणाली के प्रमुख प्रश्नों पर चर्चा-विवेचन करें। इस प्रकार के पाठ्यक्रमों में अध्यापक सामाजिक और ज्ञानमूलक संपर्क स्थापित कर सकेंगे और नए वातावरण में अपने पैर जमा सकेंगे। वे कालेज में रस-बस से जाएंगे, उसकी कुछ परम्पराओं और आदर्श नियमावलियों को अपना लेंगे और अपनी संस्था के तथा बाहर के विख्यात अध्यापकों के सम्पर्क में आ सकेंगे। यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि इन पाठ्यक्रमों में केवल ऐसे अध्यापकों को सम्बद्ध किया जाए जिनका विद्वत्ता और चरित्र की दृष्टि से विद्वत् समाज में आदर हो और जिनका नए अध्यापकों पर सुप्रभाव पड़ने की संभावना हो।

(4) बड़े विश्वविद्यालयों या कुछ विश्वविद्यालयों के सम्मिलित समूहों के लिए यह भी सम्भव हो सकेगा कि वे अध्यापक कालेज जैसे कार्यकलाप स्थायी और सतत रूप से चालू कर सकें जिनमें विश्वविद्यालय तथा सभी सम्बद्ध कालेजों के अध्यापक अनुस्थापन, विवेचन, सेमिनार, कार्यशिविर आदि में एक साथ इकट्ठे होकर मिल सकें। जहां यह सम्भव न हो, वहां शिक्षा के उद्देश्यों, अध्यापन विधियों, विषय-वस्तु के संवर्धन आदि अध्यापकों के सम्मुख उपस्थित होने वाले मामलों पर विवेचन की सुविधाएं देने के लिए एक सम्मेलन केन्द्र आवश्यक होगा। अध्यापक कालेज या सम्मेलन केन्द्र को चाहिए कि अन्य अध्यापकों के सहयोग से समय-समय पर पुस्तिकाएं, पुस्तक सूचियां, मार्गदर्शन सामग्रियां आदि तैयार करे जिनका लाभ सब अध्यापक उठा सकें।

अध्यापक शिक्षण में स्तरों की रक्षा

4.63. **राज्य और राष्ट्रीय स्तर पर संगठनों की आवश्यकता**—प्राथमिक और माध्यमिक स्कूलों के अध्यापक तैयार करने वाली संस्थाओं में पाठ्यक्रम विविधता, कार्य की परिस्थिति, तैयार हुए अध्यापकों की गुणवत्ता आदि में अद्भुत वैचित्र्य देखने में आता है। यह खेद की बात है कि इस समय राज्यस्तर पर या राष्ट्रस्तर पर कोई ऐसे संगठन नहीं हैं जो यह सुनिश्चित करा सकें कि शिक्षा-स्तर बने रहेंगे। ऐसे संगठनों की अधिकाधिक आवश्यकता समझी जाती रही है और अनेक प्रस्ताव रखे गये हैं। एक तो यह प्रस्ताव किया गया है कि राष्ट्रीय अध्यापक प्रशिक्षण संघ को, जिसका मुख्य काम हर एक स्तर पर अध्यापक प्रशिक्षण का सुधार करना है, यह दायित्व सौंपा जाए। हम यह तो मानते हैं कि यह संघ शिक्षा स्तरों को ऊंचा उठाने में बड़ी भूमिका अदा कर सकता है और इसलिए हमने वि० अ० आ० की इस स्थायी समिति में इस संघ के प्रतिनिधित्व की भी सिफ़ारिश की है जिसके कार्य और भूमिका का उल्लेख बाद में किया जाएगा। पर फिर भी हम मानते हैं कि अकेला संघ ही यह सब काम नहीं कर

पाएगा। यह सुझाव भी आया है कि राज्य और राष्ट्र दोनों ही के स्तर पर विशेष विधिक संगठन बनाए जाने चाहिए। हम इस मत के भी पक्ष में नहीं हैं क्योंकि इस प्रकार के संगठन अध्यापकों की शिक्षा को ज्ञान के सामान्य जीवन से दूर ले जाएंगे। हमारा मत है कि जिस प्रकार उच्चतर शिक्षा के स्तरों की रक्षा का दायित्व वि. अ. आ. का है उसी प्रकार राष्ट्रीय स्तर पर अध्यापकों के स्तर की रक्षा करना भी उसी का दायित्व होना चाहिए और इस दायित्व का पालन अध्यापक प्रशिक्षण की उस स्थायी समिति के माध्यम से किया जाना चाहिए जिसका उल्लेख पैरा 4.65 में किया गया है। इससे हमारा वह मुख्य उद्देश्य सिद्ध हो जाएगा जिसके अनुसार हम उसे विश्वविद्यालयों के शैक्षणिक जीवन की प्रमुख धारा में लाना चाहते हैं। राज्य स्तर पर शिक्षा स्तरों को ऊंचा उठाने का दायित्व राज्य अध्यापक शिक्षण मंडलों का होना चाहिए जिन का विवेचन पहले किया जा चुका है। हाँ, ये मंडल वि. अ. आ. के सहयोग से काम करेंगे।

4.64. **केन्द्र की भूमिका**—क्योंकि सभी प्रकार की शिक्षा के स्तरों को ऊंचा उठाने के लिए अध्यापक शिक्षण का बड़ा महत्व है, इसलिए आवश्यक शिक्षण को सुधारने का विशेष दायित्व केन्द्र को संभाल लेना चाहिए और इसके लिए केन्द्रीय और केन्द्र प्रेरित दोनों प्रकार के क्षेत्रकों के लिए उदारतापूर्वक अर्थराशि की व्यवस्था करनी चाहिए। केन्द्रीय क्षेत्रक का विस्तार वि० अ० आ० के माध्यम से किया जा सकता है और हमारी सिफ़ारिश है कि चौथी पंचवर्षीय आयोजना में अध्यापक-शिक्षा के लिए यथेष्ठ वित्त विनिधान किया जाना चाहिए और वह अर्थ-राशि वि० अ० आ० को सौंप दी जानी चाहिए। भावी आयोजनाओं में इस प्रकार का राशि-विनिधान जारी तो रखना ही होगा, साथ ही बढ़ाना भी पड़ेगा।

4.65. इस दायित्व का समुचित पालन करने के लिए वि० अ० आ० को रा० शि० अ० प्र० प०[1] के सहयोग से, एक सम्मिलित स्थायी अध्यापक शिक्षा समिति बनानी चाहिए। इस समिति के सदस्य इस प्रकार हों :

(1) वि० अ० आ० और रा० शि० अ० प्र० प० के प्रतिनिधि;

(2) विश्वविद्यालयों के प्रतिनिधि;

(3) राज्य अध्यापक शिक्षण मंडलों के प्रतिनिधि — बारी-बारी से।

(4) स्कूल अध्यापक जिनमें कम-से-कम एक प्राथमिक अध्यापक हों।

(5) अध्यापकों के संगठनों के प्रतिनिधि;

(6) शिक्षाविद्, और

(7) राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षक संघ का एक प्रतिनिधि।

अध्यापक शिक्षण की स्थायी समिति के पास अध्यापक शिक्षा के सभी पहलुओं, जैसे पूर्व-स्नातक और स्नताकोत्तर दोनों ही स्तरों की सामान्य शिक्षा या वृत्तिक शिक्षा का काम होना चाहिए। इसके पास निम्नलिखित कामों को करने की शक्ति भी होनी चाहिए :

— प्रशिक्षण संस्थाओं और विश्वविद्यालय-विभागों के स्तरों को बढ़ाना और निर्धारित करना;

— अध्यापक शिक्षा की कोटि को सभी स्तरों पर सुधारना और उनमें समन्वय करना;

— सभी स्तरों की अध्यापक शिक्षण संस्थाओं के कार्यक्रमों, पाठ्यक्रमों, पाठ्यपुस्तकों, अध्यापकों की योग्यताओं के विषय में विश्वविद्यालयों तथा राज्य शिक्षा विभागों को परामर्श देना;

— विश्वविद्यालयों के अध्यापक कालेजों, और शिक्षा विषय के विभागों या स्कूलों के लिए अर्थराशि मंजूर करना;

— शिक्षा विषय के विश्वविद्यालय विभागों और प्रशिक्षणशालाओं में आवधिक निरीक्षणों की व्यवस्था करना; और

— विश्वविद्यालयों तथा राज्य शिक्षाविभागों के सहयोग से अध्यापक-शिक्षकों के अंतःसेवा ज्ञान संवर्धन कार्यक्रमों को विकसित और आर्थिक सुविधा सम्पन्न बनाना ताकि अध्यापकों के विषय-वस्तु ज्ञान, वृत्तिक योग्यता और कुशलता में वृद्धि हो सके।

4.66. इन कार्यक्रमों के अतिरिक्त भारत सरकार को केन्द्रप्रेरित क्षेत्रकों के लिए भी उदारतापूर्वक वित्त-व्यवस्था करनी होगी ताकि हमारी सुझाई गई पद्धति से राज्य सरकारें अध्यापक शिक्षण को विकसित कर सकें। प्राथमिक अध्यापकों की प्रशिक्षणशालाओं को विश्वविद्यालय स्तर तक पहुंचाना, सभी स्तरों की प्रशिक्षणशालाओं के सुधार का कार्यक्रम बनाना और अंतःसेवा शिक्षा की व्यवस्था करना और बड़ी बड़ी प्रशिक्षणशालाएं स्थापित करना आदि कुछ ऐसे विशेष कार्यक्रम हैं जिन पर जोर देने की आवश्यकता है।

1. राष्ट्रीय शिक्षा अनुसंधान तथा प्रशिक्षण परिषद्

पाचवां अध्याय

नामांकन तथा जनशक्ति

एक. राष्ट्रीय नामांकन नीति (1)

दो. शिक्षा के विभिन्न स्तरों के लिए नामांकन नीतियां—(3) **नागरिकों के शिक्षा-स्तर को ऊँचा उठाना;** (4) **माध्यमिक तथा उच्चतर शिक्षा की व्यवस्था;** (5) **माध्यमिक तथा उच्चतर शिक्षा की सार्वजनिक मांग;** (9) **मोग्यता पूल;** (10) **सुविधाओं की व्यवस्था करने की क्षमता;** (11) **अपेक्षित जनशक्ति;** (13) **विकास-योजना का कौशल ।**

तीन. अपेक्षित जनशक्ति का पूर्वानुमान—(14) **भा० सां० सं०—लं० स्कू० ई० के प्राक्कलन;** (15) **जनशक्ति** (1961); (17) **भविष्य में कितनी शिक्षित जनशक्ति की आवश्यकता होगी;** (21) **कर्मचारी, उतकी मौजूदा संख्या तथा शिक्षित जनशक्ति की उत्पत्ति;** (25) **नामांकन ।**

चार. प्राक्कलनों की शैक्षिक कठिनाइयां—(27) **अवर माध्यमिक शिक्षा के दाखिले;** (28) **उच्चतर माध्यमिक तथा विश्वविद्यालय स्तर की शिक्षा के दाखिले;** (32) **व्यावसायिक शिक्षा का विकास;** (40) **नामांकन तथा जनशक्ति;** (41) **कार्यकारी दल की शिक्षा के स्तर** (1961-1986) ।

पांच. जनशक्ति के प्राक्कलनों का नामांकनों से सम्बन्ध—(44) **श्री आर० ए० गोपालास्वामी के सुझाव;** (47) **जनशक्ति नियोजन की मशीनरी;** (48) **राष्ट्रीय तथा राज्य स्तरों पर जनशक्ति के प्राक्कलनों तथा शैक्षिक संस्थाओं द्वारा तैयार व्यक्तियों की संख्या के मध्य में सम्बन्ध स्थापित करना ।**

छह. सामान्य—(49) **शिक्षा तथा रोजमार;** (50) **अपेक्षाकृत विस्तृत परिप्रेक्ष्य की आवश्यकता ।**

5.01. राष्ट्रीय नामांकन नीति—हमारे मानव-संसाधन का विकास राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के महत्वपूर्ण कार्यक्रमों में से एक है और इस दृष्टि से शिक्षा के प्रसार की कोई भी सीमा निर्धारित नहीं की जा सकती । लेकिन किसी वर्ग में किसी एक समय पर शिक्षा सम्बन्धी सुविधाओं का स्वरूप, परिणाम तथा स्तर किस प्रकार का हो यह दो बातों पर निर्भर करता है । यह बात अंशतः तो साधनों के उपलब्ध होने पर और अंशतः जनता के सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन-दर्शन सिद्धान्तों पर निर्भर रहती है । गरीब और रूढ़िगत वर्ग तो सर्व-जनीन प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम तक को आगे नहीं बढ़ा पाते जबकि समृद्ध और औद्योगिक वर्ग सर्वजनीन माध्यमिक शिक्षा की व्यवस्था कर लेते हैं और यही नहीं ऐसे वर्ग उच्चतर तथा प्रौढ़ शिक्षा के विकासशील एवं विस्तृत कार्य-क्रमों की भी व्यवस्था कर लेते हैं । सामंती और अभि-जात्य वर्ग केवल थोड़े ही लोगों को शिक्षित करने पर बल देते हैं जबकि लोकतंत्रीय व समाजवादी वर्गों में सामूहिक शिक्षा और शिक्षा सम्बन्धी सुविधाओं की समान व्यवस्था पर बल दिया जाता है । अतः मानव-संसाधन के विकास की दिशा में मुख्य समस्या वस्तुतः यह है कि सर्वाधिक लाभकारी ढंग के शैक्षिक विकास के लिए उपलब्ध साधनों का अच्छे से अच्छा प्रयोग किस प्रकार किया जाए ? समाज को किस प्रकार या स्तर की शिक्षा की कितनी मात्रा के लिए प्रयत्नशील होना चाहिए और उसके वे प्रयत्न समाज के किस वर्ग के लिए होने चाहिए ?

5.02. भारत ने एक लोकतन्त्रीय तथा समाजवादी ढंग के समाज की स्थापना का संकल्प लिया है । अतः शिक्षा के विभिन्न स्तरों और क्षेत्रों में शिक्षा सम्बन्धी सुविधाओं की व्यवस्था करने की दिशा में मार्ग-दर्शन के लिए मूल सिद्धान्त इस प्रकार होने चाहिए :

— प्रत्येक बच्चे के बिना किसी शुल्क के अनि-वार्यतः कम से कम 7 वर्ष तक की प्रभावशाली सामान्य शिक्षा और यथासंभव बड़े से बड़े पैमाने पर अवर माध्यमिक शिक्षा का विस्तार होना चाहिए;

— जो उच्चत्तर माध्यमिक शिक्षा तथा विश्व-विद्यालय स्तर की शिक्षा प्राप्त करने के इच्छुक तथा योग्य हों उनके लिए ऐसी शिक्षा

की व्यवस्था करना। इस प्रकार की शिक्षा की व्यवस्था करते समय प्रशिक्षित जनशक्ति की मांग और आवश्यक स्तर बनाए रखने की आवश्यकताओं को ध्यान में रखना चाहिए। आर्थिक दृष्टि से अभावग्रस्त व्यक्तियों को समुचित आर्थिक सहायता दी जानी चाहिए;

— वृत्तिक, तकनीकी तथा व्यावसायिक शिक्षा के विकास पर बल देना चाहिए तथा कृषि व उद्योगों के विकास के लिए अपेक्षित कुशल कर्मचारी तैयार करने चाहिए;

— प्रतिभा की पहचान करनी चाहिए और उसके पूर्ण विकास में सहायता देनी चाहिए;

— सामूहिक निरक्षरता को समाप्त करना तथा प्रौढ़ व निरन्तर शिक्षा के लिए एक उपयुक्त कार्यक्रम तैयार करना चाहिए; तथा

— शिक्षा सम्बन्धी सुविधाओं की समान रूप में व्यवस्था करने के लिए निरन्तर प्रयत्न करते रहना चाहिए और शुरू-शुरू में कम-से-कम अत्यधिक स्पष्ट असमानताएं दूर की जानी चाहिए।

इस अध्याय में हम इन नीतियों के कुछ मुख्य अभिप्रेत-अर्थों के सम्बन्ध में थोड़ा विचार-विमर्श करेंगे।

शिक्षा के विभिन्न स्तरों के लिए नामांकन-नीतियां

5.03. **नागरिकों के शिक्षा स्तर को ऊंचा उठाना**—सामान्य नागरिक के शिक्षा स्तर को ऊंचा उठाने के कार्यक्रमों को अगले 20 वर्षों में सबसे अधिक प्राथमिकता दी जानी चाहिए। ऐसे कार्यक्रम सामाजिक न्याय के आधार पर भी आवश्यक हैं ताकि लोकतन्त्र का विकास हो सके और कृषि तथा उद्योग के क्षेत्रों में औसत कर्मचारी की उत्पादन-क्षमता में सुधार हो सके। संविधान के अनुच्छेद 45 के अनुसार 14 वर्ष की आयु तक के सभी बच्चों के लिए निःशुल्क और अनिवार्य तथा अच्छे ढंग की शिक्षा की व्यवस्था करना ही इन कार्यक्रमों की सबसे महत्वपूर्ण बात है। फिर भी क्योंकि इस कार्यक्रम की पूर्ति के लिए मानव तथा भौतिक संसाधन की भारी आवश्यकता होगी, अतः इस कार्यक्रम को कार्यान्वित करने के लिए इसे विभिन्न चरणों में बांटना होगा और यह विभाजन इस प्रकार किया जा सकता है :

— 1975-76 तक सभी बच्चों के लिए पांच वर्षीय और 1985-86 तक 7 वर्षीय कार्यकारी शिक्षा की व्यवस्था;

— 11-14 वर्ष के आयु-वर्ग के ऐसे सभी बच्चों के लिए जिन्होंने अबर प्राथमिक शिक्षा पूरी नहीं की हो और जो स्कूलों में अध्ययन नहीं कर रहे हों, लगभग एक वर्ष की अंशकालिक शिक्षा अनिवार्य कर दी जाए। इस प्रकार की शिक्षा का उद्देश्य इन बच्चों को काम-चलाऊ रूप से साक्षर करना और अशिक्षित प्रौढ़ों की संख्या में और आगे वृद्धि को रोकना होगा;

— और प्रौढ़ों में निरक्षरता दूर करने के प्रयत्न।

दूसरा और तीसरा कार्यक्रम अन्तःकालीन है। लेकिन पहला कार्यक्रम समस्या का एक मात्र स्थायी हल है, अतः इसी कार्यक्रम पर अधिक बल देने की आवश्यकता है। इन कार्यक्रमों पर ब्योरेवार विचार हम आगे चलकर करेंगे।[1]

5.04. **माध्यमिक तथा उच्चतर शिक्षा की व्यवस्था**—माध्यमिक तथा उच्चतर शिक्षा के सम्बन्ध में शिक्षा की मात्रा, उसके स्वरूप तथा स्तर को लेकर बहुत-सी जटिल समस्याएं सामने आती हैं। शिक्षा के प्रसार की गति कुल मिलाकर क्या हो इस बारे में स्पष्ट और सही लक्ष्यों के अभाव में कुल नामांकनों के परिणाम का निर्धारण आसान नहीं है। इसके अलावा विभिन्न व्यक्तिगत रुचियों तथा प्रशिक्षित जनशक्ति की सामाजिक आवश्यकताओं के कारण माध्यमिक तथा उच्चतर स्तर की शिक्षा को अनेकों पाठ्यक्रमों में बांटना आवश्यक होता है। यही कारण है कि प्रत्येक पाठ्यक्रम के लिए सही-सही क्या व्यवस्था की जाए इसका निश्चय करना और भी अधिक कठिन हो जाता है। दुर्भाग्य से इन समस्याओं का ज्ञान अभी भी बहुत कम लोगों को है। अतः यह आवश्यक है कि नामांकन नीति भिन्न-भिन्न प्रकार के चार तत्वों के फलमूलक समन्वय पर निर्भर होनी चाहिए। ये चार तत्व हैं : इस प्रकार की शिक्षा की सार्वजनिक मांग, योग्यता के प्राकृतिक पूल का पूर्ण विकास, कुछ खास स्तरों पर आवश्यक शैक्षिक सुविधाओं को जुटाने की समाज की क्षमता और राष्ट्रीय विकास के लिए अपेक्षित जनशक्ति।

5.05. **माध्यमिक तथा उच्चतर शिक्षा की सार्वजनिक मांग**—हाल के कुछ वर्षों में माध्यमिक तथा उच्चतर

1. अध्याय सात तथा सत्रह देखिए।

शिक्षा की मांग में ज़बरदस्त वृद्धि हुई है। इस वृद्धि के कई कारण हैं, जैसे :

— समाज में विश्वविद्यालय की किसी उपाधि का परम्परागत स्थान;

— शहरी और मध्यवर्गीय जनता में शिक्षा की बढ़ती हुई मांग। इन लोगों को यह लगने लगा है कि अच्छी शिक्षा ही वह सबसे बढ़िया और संभवतः अकेली ऐसी सम्पदा है जो वह अपने बच्चों के लिए छोड़ सकते हैं;

— शिक्षा और सरकारी सेवा के माध्यम से सामाजिक प्रगति के मार्ग पर बढ़ती हुई ग्रामीण और निम्नवर्गीय जनता में आजकल ठीक उसी तरह की जागृति हुई है जैसी कि पिछले सौ वर्षों के दौरान शहरी और मध्य-वर्गीय जनता में हुई थी;

— प्राथमिक शिक्षा के साथ जुड़े हुए पुराने 'नौकरी संबंधी मूल्यों' की समाप्ति। इसके फलस्वरूप किसी भी अच्छी नौकरी के लिए माध्यमिक शिक्षा को न्यूनतम और उच्चतर शिक्षा को इष्टतम समझा जाता है;

— नवयुवकों के लिए उपयुक्त नौकरी के अवसरों का अभाव जिसके फलस्वरूप बहुत से नवयुवकों को मजबूरन माध्यमिक या विश्वविद्यालय स्तर की शिक्षा प्राप्त करनी होती है क्योंकि उनके पास और कोई काम नहीं होता;

— राज्य सरकारों द्वारा निःशुल्क माध्यमिक शिक्षा के लिए तथा विश्वविद्यालय स्तर पर उदारता-पूर्वक फीसमाफी, वृत्तिकाओं तथा छात्र-वृत्तियों की मंजूरी के लिए किए जा रहे और अधिक प्रयत्न; तथा

— इस स्तर पर शिक्षा संस्थाओं के कई गुना हो जाने के कारण हजारों छोटे-छोटे तथा दूर-दूर बिखरे स्थानों में नवयुवक आसानी से इन शिक्षा संस्थाओं से लाभ उठा रहे हैं।

5.06. इस स्थिति का सामना दो प्रकार से किया जा सकता है। एक तो अध्यापकों तथा सुविधाओं के रूप में वास्तव में उपलब्ध साधनों की यथातथ्य स्थिति के आधार पर माध्यमिक व उच्चतर शिक्षा संबंधी सुविधाओं के विस्तार तथा इस स्तर की शिक्षा की सार्वजनिक मांग व वास्तव में की गई व्यवस्था के बीच के अन्तर को पूरा करने के लिए चुने हुए दाखिल की नीति अपनाई जा सकती है। उक्त स्थिति का सामना करने के लिए दूसरा उपाय यह हो सकता है कि खुले दाखिले की नीति अपनाई जाए तथा आवश्यक सुविधाएँ जुटाने के लिए सभी साधनों का प्रयोग किया जाए तथा इन सुविधाओं की कुशलता का इष्टतम स्तर कायम रखा जाए। लेकिन न तो मांग को ही रोका जा सका और न आवश्यक साधनों की व्यवस्था ही की जा सकी। फलस्वरूप, एक मध्यम मार्ग अपनाया गया : माध्यमिक शिक्षा की व्यवस्था 'सभी के लिए खुली' के आधार पर कर दी गई और उच्चतर शिक्षा के लिए विभिन्न क्षेत्रों में चुने हुए दाखिले तथा खुले दाखिले, दोनों ही प्रकार की नीतियां साथ-साथ अपनाई गई।

5.07. इस नीति के कई अप्रिय परिणाम निकले। क्योंकि कुल मिलाकर साधन सीमित थे और सामान्य शिक्षा के प्रसार संबंधी कार्यक्रमों में ही लगा दिए गए थे, इसलिए गुणात्मक सुधार या व्यावसायीकरण की ओर पर्याप्त ध्यान देना असम्भव हो गया। विस्तार का यह कार्यक्रम अधिकतर असमान भी रहा है क्योंकि माध्यमिक स्कूलों तथा कालेजों ने ऐसे विद्यार्थियों का नामांकन कर लिया जिनके लिए वे स्कूल सुलभ तो थे और जो शिक्षा पर होने वाला खर्चा भी वर्दाश्त कर सकते थे लेकिन इन विद्यार्थियों में शिक्षा के प्रति कटिबद्धता तथा अभिप्रेरण की प्रायः कमी ही रहती थी। इसके अलावा ये स्कूल ऐसे बहुत से प्रतिभावान छात्रों का नामांकन नहीं कर सके जो कि सामाजिक या आर्थिक कठिनाइयों के कारण अपना अध्ययन आगे जारी रखने में असमर्थ थे। अतः उक्त विस्तार का लाभ अर्द्ध-सम्पन्न वर्ग की अपेक्षा सम्पन्न वर्ग को अधिक हुआ। इसके अलावा सामान्य व व्यावसायिक शिक्षा के विकास में असन्तुलन पैदा हो गया। सामान्य शिक्षा की सुविधाएँ तो अपनी मांग से कहीं अधिक और व्यावसायिक शिक्षा की सुविधाएँ अपनी माँग से बहुत अधिक कम रह गईं। परिणाम यह हुआ कि मैट्रिक पास और कला और वाणिज्य के स्नातकों की संख्या ऐसी योग्यता वाले व्यक्तियों की मांग से बहुत अधिक हो गई और शिक्षा प्राप्त लोगों की बेरोजगारी की समस्याएं उठ खड़ी हुईं। इसके दूसरी तरफ कृषि, उद्योग या अनुसंधान के लिए प्रशिक्षित कर्मचारियों की कमी रह गई।

5.08. प्राथमिक शिक्षा के सर्वजनीन हो जाने तथा सामान्य आर्थिक परिस्थितियों में सुधार हो जाने के कारण अगले 20 वर्षों में माध्यमिक और उच्चतर शिक्षा की मांग में और भी अधिक वृद्धि होगी। ऐसी स्थिति में नामांकन

की पुरानी नीतियों को जारी रखने का सामान्य परिणाम यह होगा कि ये बुराइयाँ और भी अधिक हो जाएंगी। अतः 'चुने हुए दाखिले' की किसी निश्चित नीति को अपनाना आवश्यक है ताकि उपलब्ध सुविधाओं के अनुरूप नामांकन हों और स्तर भी कायम रखा जा सके।

5.09. **योग्यता पूल**—सभी योग्य छात्रों के लिए माध्यमिक व उच्चतर शिक्षा की व्यवस्था करना एक बहुत ऊँचा लक्ष्य है जिसे प्राप्त करने में समृद्ध जातियों तक को कठिनाई अनुभव होती है। सीमित साधनों को देखते हुए यह स्पष्ट है कि हम लोग यह लक्ष्य कम-से-कम निकट भविष्य में तो प्राप्त नहीं कर सकते। फिर भी हमारा उद्देश्य यही होना चाहिए और इसकी प्राप्ति के लिए हमें निरन्तर प्रयत्नशील रहना चाहिए। इस बीच में हमें इस नीति के एक महत्वपूर्ण आशय को तत्काल कार्यान्वित करना चाहिए और वह महत्वपूर्ण आशय यह है कि यह सुनिश्चित किया जाए कि प्राथमिक या माध्यमिक शिक्षा पूरी करने वाले सभी प्रतिभावान छात्रों (कम-से-कम सभी छात्रों में से ऊपर के 5 से 15 प्रतिशत तक) को माध्यमिक (या उच्चतर) शिक्षा संस्थाओं में आगे अध्ययन की सुविधाएं दी जाएं। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए बहुत बड़ी संख्या में छात्रवृत्तियां देना आवश्यक होगा। छात्रवृत्तियां किस आधार पर दी जाएं इसकी चर्चा आगे चलकर की गई हैं।[1]

5·10. **सविधाओं की व्यवस्था करने की क्षमता**—नामांकन सुविधाओं की योजना तैयार करते समय वास्तव में उपलब्ध साधनों और शिक्षा की आवश्यक, या जितनी मांग हो उतनी, सुविधाएं जुटाने की समाज की क्षमता को ध्यान में रखना आवश्यक है। प्रत्येक शिक्षा प्रणाली में आन्तरिक अवरोध होते हैं और इसके कारण सुविधाओं का विस्तार, विशेषकर माध्यमिक व उच्चतर शिक्षा सम्बन्धी सुविधाओं का विस्तार, रुक जाता है। ये सुविधाएं हैं सक्षम अध्यापकों, भौतिक सामग्री तथा पूंजी का उपलब्ध होना। सम्पन्न जातियों तक में इन अर्न्तव्याप्त रुकावटों के कारण सार्वजनिक माँग या योग्यता के समूचे पुल को विकसित करने के लिए सुविधाओं की आवश्यकता के अनुसार, परिमाण व गुण दोनों दृष्टियों से उक्त सभी सुविधाएं जुटाना प्रायः असम्भव हो जाता है। हमारी जैसी विकासशील अर्थ-व्यवस्था में तो यह और भी अधिक असम्भव हो जाता है। सार्वजनिक माँग के तकाजे को पूरा करने की कोशिश में प्रायः होता यह है कि स्तर गिराकर इन अवरोधों पर काबू पाया जाता है। ऐसे बहुत से उदाहरण हैं जहां अध्यापकों, आवश्यक सामान तथा उपयुक्त आर्थिक आबंटन के उपलब्ध हुए बिना ही संस्थाएं चालू कर दी जाती हैं। देश के व्यापक हितों को दृष्टि में रख कर यह आम प्रवृत्ति रोकी जानी चाहिए। यदि किसी समाज के पास माध्यमिक व उच्चतर शिक्षा सम्बन्धी समूची सार्वजनिक मांग की पूर्ति के लिए आवश्यक साधन नहीं है तो यह वस्तुतः दुर्भाग्य की बात है। साथ ही यदि इस शर्त की परवाह नहीं की गई और शिक्षा के स्तर को जोखिम में डाला गया तो स्थिति अत्यन्त दुःखपूर्ण हो जाएगी।

5·11. **अपेक्षित जनशक्ति**—नामांकन और अपेक्षित जनशक्ति के पारस्परिक सम्बन्ध की तरफ समुचित ध्यान देने पर भी हम बल देना चाहते हैं। यदि भारतवर्ष अपनी आर्थिक प्रगति के लक्ष्य प्राप्त करने का इच्छुक है तो उसके लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक प्रकार के काम के लिये उपयुक्त संख्या में शिक्षित विशेषज्ञ मिलने चाहिए। इसके विपरीत यदि किसी श्रेणी विशेष में अशिक्षित व्यक्तियों की संख्या अधिक बढ़ जाए तो इसका अर्थ यह होगा कि सीमित साधनों का प्रयोग अविवेकपूर्ण ढंग से किया गया है। इसके फलस्वरूप शिक्षित व्यक्तियों की बेरोजगारी से सम्बन्धित बहुत-सी जटिल समस्याएं भी उत्पन्न हो जाती हैं। व्यक्तिपरक दृष्टि से भी शिक्षा की शैलियों और नौकरी की सुविधाओं में कुछ-न-कुछ तालमेल होना आवश्यक है। किसी नौकरी के लिए कम या अधिक योग्य होना या किसी की योग्यताओं की माँग न होने के कारण किसी व्यक्ति को बेरोजगार रहने से अधिक निराशापूर्ण स्थिति और नहीं हो सकती। अतः हमारी यह धारणा है कि प्राथमिक स्तर से ऊपर की नामांकन पद्धति को विनियमित करने के लिए लाभदायक आधार भविष्य में अपेक्षित जनशक्ति के प्राक्कलनों द्वारा मिल सकते हैं।

5·12. माध्यमिक व उच्चतर शिक्षा सम्बन्धी सुविधाओं तथा जनशक्ति की अनुमानित आवश्यकताओं के मध्य सम्बन्ध स्थापित करने की मोटे तौर पर बताई गई इस सिफ़ारिश को कुछ सामान्य शर्तों के साथ समझना होगा। जनशक्ति के पूर्वानुमान की प्रक्रिया बिलकुल सही नहीं हो पाती क्योंकि इसमें असंख्य सूक्ष्म तत्व उलझे रहते हैं। अतः आवश्यक आँकड़ों को एकत्रित करने और पूर्वानुमान की तकनीक में सुधार लाने के सतत प्रयत्न करते रहना आयश्यक है। यह काम केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों को नियमित रूप से करते रहना चाहिए। चूंकि अपेक्षित जन-

1. अध्याय छह देखिए।

शक्ति के पूर्वानुमानों को सामान्यतः परिमाण-सूचक ढंग से प्रस्तुत किया जाता है, इसलिए, इन पूर्वानुमानों को नामांकन के सन्दर्भ में कार्यान्वित करते समय शिक्षा सम्बन्धी सुविधाओं को आवश्यकता से अधिक महत्व मिलने लगता है। अतः तैयार की गई जनशक्ति के स्तर पर अधिक बल देना इसलिए भी आवश्यक है क्योंकि उपयुक्त स्तर न बनाए रखने पर आर्थिक प्रगति में तेजी आने के स्थान पर उसमें अवरुद्धता पैदा हो जाएगी। इसके अलावा शिक्षा सम्बन्धी सुविधाओं की व्यवस्था को विनियमित करने के लिए अपेक्षित जनशक्ति की आवश्यकता ही एकमात्र आधार नहीं मानी जा सकती। इस संबंध में अंतिम निर्णय लेने से पहले अन्य सिद्धान्तों पर आधृत अन्दाजों से निकाले गए परिणामों के साथ-साथ इसके संकेतों की भी जांच करनी होगी। इन प्रतिबन्धों के लिए पर्याप्त छूट देने के बाद भी जनशक्ति की अनुमानित आवश्यकता आकार की दृष्टि से चार स्पष्ट संकेत अवश्य देती है, यथा, माध्यमिक व उच्चतर शिक्षा क्षेत्रों में आवश्यक कुल नामांकन, विभिन्न पाठ्यक्रमों में आवश्यक नामांकन, जनशक्ति की स्थिति में अभाव तथा आधिक्य तथा तत्सम्बन्धी प्राथमिकताएं।

5.13. **विकास योजना का कौशल**—पीछे किए गए विचार-विमर्श से यह स्पष्ट हो गया है कि वास्तविक साधनों के अनुसार शिक्षा सम्बन्धी सुविधाओं के विस्तार की क्षमता द्वारा विस्तार का न्यूनतम स्तर तैयार हो जाता है। यह बात भी साफ हो चुकी है कि माध्यमिक तथा उच्चतर शिक्षा की सार्वजनिक मांग तथा उपलब्ध प्रतिभा पूल को यथासम्भव अधिक से अधिक विकसित करने की आवश्यकता सामान्यतः बहुत ही ऊंचे लक्ष्य हैं जिन्हें निकट भविष्य में प्राप्त करना बहुत कठिन है। इन ऊंचे और निचले दर्जे के लक्ष्यों के बीच की खाई को अपेक्षित जनशक्ति से सम्बन्धित और शिक्षा सम्बन्धी अवसरों की समान रूप से व्यवस्था करने से सम्बन्धित प्राप्त तथ्यों द्वारा पाटा जा सकता है। इन तथ्यों से इस बात के संकेत मिलेंगे कि किन मामलों के प्रति प्राथमिकता बरती जाए, अध्ययन के कौन-से भिन्न-भिन्न पाठ्यक्रमों का विकास किया जाए, इन विभिन्न पाठ्यक्रमों में शिक्षा सम्बन्धी सुविधाओं की व्यवस्था किस सीमा तक की जाए तथा इन पाठ्यक्रमों में नामांकन का कौन-सा तरीका अपनाया जाए ताकि समाज के कम-से-कम योग्यतम छात्रों को इसमें स्थान मिल सके।

अपेक्षित जनशक्ति का पूर्वानुमान

5.14. **भा. सां. सं.—लं. स्कू. इ. के प्राक्कलन**—हमने यह सिफारिश की है कि प्राथमिक शिक्षा से ऊपर की शिक्षा सम्बन्धी सुविधाएं स्पष्टतः जनशक्ति की आवश्यकता से मेल खाती हुई होनी चाहिए। अतः अब इस अपेक्षित जनशक्ति का पूर्वानुमान तथा उसके शैक्षिक अर्थों के अध्ययन करने का काम हमारे सामने है। इस सम्बन्ध में हमारा सौभाग्य है कि दो प्राक्कलन तैयार हैं। इनमें से एक प्राक्कलन तो अनुपयुक्त जनशक्ति अनुसंधान द्वारा तैयार की गई विस्तृत खोजों की शृंखला है और दूसरा प्राक्कलन भारतीय सांख्यिकी संस्थान (भा. सां. सं.), नई दिल्ली के योजना एकक व लंदन स्कूल आफ इकानामिक्स (लं. स्कू. इ.) के उच्चतर शिक्षा के आर्थिक और सांख्यिकीय अध्ययन करने वाले एकक द्वारा योजना आयोग के परिप्रेक्ष्य योजना प्रभाग की सहायता से किए गए व्यापक अध्ययन का एक अंश है। आकार के मोटे विभाजनों के अनुसार दोनों प्राक्कलनों के परिमाण मिलते-जुलते हैं और उनके बीच के अन्तर को प्रयोग में लाई गई विभिन्न पूर्वधारणाओं द्वारा सामान्य रूप से स्पष्ट किया जा सकता है। मुख्य रूप से इस अध्याय के लिए हमने भा० सां० सं०/लं० स्कू० इ० प्राक्कलनों को माना है क्योंकि ये प्राक्कलन अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत हैं और 1986 तक के अनुमानों का इनसे पता लगता है तथा आर्थिक प्रगति[1] के उच्च लक्ष्य इनमें निहित हैं। हमारी धारणा यह है कि वास्तविकता से अधिक आंकने में अल्पानुमान की अपेक्षा कम जोखिम है। थोड़े समय के लिए कुछ फालतू प्रशिक्षित कर्मचारी बेकार रहें यह स्थिति उस स्थिति की अपेक्षा कम हानिकारक है जिसमें ऐसे प्रशिक्षित व्यक्तियों की कमी के कारण कृषि या उद्योगों की प्रगति अवरुद्ध हो जाए। जो कुछ भी हो ठीक-ठीक आँकड़े नीति के मोटे निर्देशों की अपेक्षा कम महत्वपूर्ण होते हैं। इस विषय पर दोनों प्राक्कलनों में बहुत अधिक साम्य है।

5.15. **जनशक्ति** (1961)—इस सम्बन्ध में सबसे पहले उस तरीके का संक्षिप्त विवरण देना आवश्यक है जिसके अनुसार ये प्राक्कलन तैयार किए गए है। इन प्राक्कलनों के सम्बन्ध में 1961 में देश में मौजूद प्रशिक्षित जनशक्ति की संख्या (1961 की जनगणना तथा राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के 16 वें सर्वेक्षण के विशेष सारणीयन के आधार पर निकाली गई) को प्रारम्भिक स्थिति माना गया है। मैट्रिक, इन्टर तथा डिग्री योग्यताओं सहित कर्मचारियों के सन्दर्भ में यह जनशक्ति प्रस्तुत की गई है। यह विवरण तालिका 5.1 में दर्शाया गया है।

1. अधिक जानकारी के लिए अनुपूरक खण्ड एक, भाग पांच में इस विषय से सम्बन्धित लेख देखिए।

सारणी 5.1. औद्योगिक क्षेत्र में लगे हुए मैट्रिक, इन्टर, स्नातक तथा कुल कर्मचारी—भारत (1961)

(हज़ारों में)

औद्योगिक क्षेत्र	मैट्रिक से कम	मैट्रिक पास	इन्टर पास	स्नातक	कुल कर्मचारी
1. कृषि	1,30,648	381	46	67	1,31,142
2. खनिकर्म आदि	5,143	68	5	6	5,222
3. विनिर्माण	19,377	436	89	104	20,006
4. रचना	1,911	99	30	19	2,059
5. व्यापार और वाणिज्य	7,009	452	101	92	7,654
6. परिवहन तथा संचार	2,528	318	80	93	3,019
7. सेवाएं (अन्य)	16,895	1,509	405	765	19,574
सार्वजनिक सेवाएं	3,711	722	245	296	4,974
शिक्षा सेवाएं	1,584	467	103	289	2,443
चिकित्सा तथा स्वास्थ्य सेवाएं	765	124	27	48	964
विधि सेवाएं	119	39	1	60	219
धार्मिक और कल्याण सेवाएं	1,082	38	6	26	1,152
व्यवसाय, व्यापार, श्रमिक संघ तथा सामुदायिक सेवाएं	191	37	6	7	241
मनोरंजन, व्यक्तिगत तथा अन्य सेवाएं	9,443	81	18	37	9,579
योग	1,83,511	3,262	756	1,147	1,88,676

(प्रतिशतता)

1. कृषि	99.6	0.3	—	0.1	100.0
2. खनिकर्म आदि	98.5	1.3	0·1	0.1	100.0
3. विनिर्माण	96.9	2.2	0.4	0.5	100.0
4. रचना	92.8	4.8	1.5	0.9	100.0
5. व्यापार और वाणिज्य	91.6	5.9	1.3	1.2	100.0
6. परिवहन तथा संचार	83.7	10.5	2.7	3.1	100.0
7. सेवाएं (अन्य)	86.3	7.7	2.1	3.9	100.0
योग	97.3	1.7	0.4	0.6	100.0

स्रोत—भा० सां० सं०/लं० स्कू० इ० (आइ० एस० आइ०/एल० एस० ई०) का लेख

नोट—जोड़ इसलिए मेल नहीं खाते क्योंकि आंकड़ों को शून्यांत में बदल दिया गया है।

5.16. मोटे तौर पर कहा जाए तो 52 लाख कर्मचारी ऐसे थे जिनकी योग्यता मैट्रिक या इससे अधिक थी। इस संख्या में से दो तिहाई शहरों में और शेष ग्रामीण क्षेत्रों में थे। इनमें से आधे से अधिक व्यक्ति अन्य सेवाओं (लोक प्रशासन, शिक्षा आदि आदि) में लगे हुए थे। इनमें से प्रत्येक पांच व्यक्तियों में से लगभग एक व्यक्ति (11 लाख) स्नातक भी था और ये स्नातक अधिकतर सेवा व्यवसाय में लगे हुए थे। केवल 1,00,000 व्यक्ति ही उत्पादन उद्योगों में लगे थे।

5.17. **भविष्य में कितनी शिक्षित जनशक्ति की आवश्यकता होगी**—इस संबंध में एक आवश्यक प्रश्न यह है कि भविष्य में इस संख्या में वृद्धि किस प्रकार की जाए? 1976 और 1986 में मैट्रिक पास तथा स्नातक कर्मचारी कितने होने चाहिए?—इन प्रश्नों का उत्तर देने के लिए दो मोटे तरीके अपनाए गए हैं। एक तरीका तो 'सेवाओं' के लिए है जिनमें बहुत से शिक्षित व्यक्ति लगे हुए हैं और दूसरा तरीका अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों के लिए है।

5.18. पहले हम दूसरे तरीके पर विचार करेंगे। इस संबंध में यह मान लिया गया है कि जैसे-जैसे उत्पादन-उद्योगों के प्रत्येक क्षेत्र और शाखा के निवल उत्पादन में वृद्धि होगी उसी अनुपात से शिक्षित जनशक्ति को रोजगार मिलता रहेगा। समूची तथा प्रत्येक क्षेत्र की अर्थव्यवस्था के लिए इन प्राक्कलनों में आर्थिक प्रगति के जिन लक्ष्यों को स्वीकार किया गया है वे वही हैं जो योजना आयोग के प्रपिप्रेक्ष्य योजना प्रभाग ने सुझाए हैं। 1961 से 1976 तक की अवधि से संबंधित कुल प्रगति का वार्षिक लक्ष्य 6.6 प्रतिशत और 1961 से 1986 का 7.0 प्रतिशत है। कुल मिलाकर इन लक्ष्यों के क्षेत्रीय लक्ष्यों में भिन्नता होनी स्वाभाविक ही है। 1961-76 के दौरान क्षेत्रीय लक्ष्यों में यह स्वभाविक अन्तर इस बात से स्पष्ट होता है कि इस दौरान किसी स्थिति में तो वह लक्ष्य 11.85 प्रतिशत (विद्युत की सप्लाई सहित कारखानों की स्थापनाएं) तथा 11.24 प्रतिशत (रचना) थे जबकि किसी मामले में यह लक्ष्य 3.86 प्रतिशत (कृषि) ही था। प्रत्येक क्षेत्र के उत्पादन की वृद्धि पर पृथक्-पृथक् विचार करते समय रोजगार के रूप में कर्मचारियों की व्यवस्था में परिवर्तन होता है और तेजी से बढ़ते हुए अत्यन्त तकनीकी उद्योगों के लिए शिक्षित कर्मचारियों की मांग के संबंध में पता चलता है। विकास के पूरे सामान्य वातावरण में ये उद्योग खो-से जाते हैं।

5.19. जहां तक सेवाओं का संबंध है प्रत्येक बड़ी सेवा पर पृथक् रूप से विचार किया गया है। 1961 में काम पर लगे एक चौथाई मैट्रिक पास और उतने ही स्नातक लोक-प्रशासन तथा प्रतिरक्षा सेवाओं में लगे हुए थे। ऐसा विश्वास है कि इस संख्या में प्रतिवर्ष 4 प्रतिशत की वृद्धि होगी। अध्यापकों की मांग नामांकन के प्राक्कलनों तथा शिष्य-शिक्षक से संबंधित धारणाओं व अध्यापकों की योग्यताओं के आधार पर निकाली गई हैं। चिकित्सकों की मांग में डाक्टरों, परिचारिकाओं व सहायक कर्मचारियों का अपना-अपना महत्व है। स्वीकृति लक्ष्यों के अन्तर्गत 1975-76 के दौरान एक डाक्टर प्रत्येक 3,000 व्यक्तियों के लिए होगा तथा 1985-86 के दौरान प्रत्येक 2,000 व्यक्तियों के लिए एक डाक्टर होना चाहिए। पूरी तरह प्रशिक्षित परिचारिकाओं की भी इसी संख्या का लक्ष्य मान लिया गया है। शैक्षिक तथा चिकित्सा दोनों प्रकार के कर्मचारियों से संबंधित प्राक्कलनों में बढ़ती हुई जनसंख्या का और राष्ट्रीय आय का पूरा ध्यान रखा गया है। शेष सेवाओं में से कानूनी तथा व्यापारिक सेवाएं पूरी अर्थव्यवस्था की भांति ही तेजी से विकसित हो सकती हैं। मनोरंजन व व्यक्तिगत सेवाओं के विकास की गति संभवतः कुछ धीमी होगी। शेष सेवाओं के संयुक्त प्राक्कलन में यह मान लिया गया है कि 1976 तक इनमें 3 प्रतिशत वार्षिक और उसके बाद 5 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि हो सकेगी।

5.20. इन विभिन्न गणनाओं से यह पता चलता है कि 1961 में मौजूद मैट्रिक पास कर्मचारियों की संख्या 52 लाख से बढ़कर 1976 में 166 लाख और 1986 में 326 लाख हो जानी चाहिए। इसी प्रकार 1961 में मौजूद स्नातक कर्मचारियों की संख्या 11 लाख से बढ़कर 1976 में 33 लाख और 1986 में 65 लाख हो जानी चाहिए। इस विषय से संबंधित तथा अन्य सम्बद्ध ब्योरे सारणी 5.2 में दिए गए हैं।

सारणी 5.2 औद्योगिक क्षेत्र में मैट्रिक तथा इससे अधिक योग्यता वाले कर्मचारियों की सम्भावित आवश्यकता : भारत (1960-61 से 1985-86 तक)

(हजारों में)

	1960-61 (वास्तविक)			1975-76			1985-86		
औद्योगिक क्षेत्र	मैट्रिक पास	इंटर पास	स्नातक	मैट्रिक पास	इंटर पास	स्नातक	मैट्रिक पास	इंटर पास	स्नातक
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)	(8)	(9)	(10)
1. कृषि	381	46	67	681	83	120	984	120	174
2. खनिकर्म	67	5	6	282	20	27	632	45	61
3. विनिर्माण	436	90	102	2,880	584	707	6,681	1,355	1,642
4. रचना	99	30	19	503	150	97	1,131	337	218
5. व्यापार और वाणिज्य	452	100	92	1,181	262	240	2,565	570	522
6. परिवहन तथा संचार	318	80	94	1,200	301	354	2,608	654	769
7. सेवाएं (अन्य)	1,509	404	765	4,147	1,040	1,754	6,677	1,953	3,156
सार्वजनिक सेवाएं	723	245	296	1,299	441	533	1,923	652	789
शिक्षा सेवाएं	467	102	290	2,123	463	877	3,041	668	1,728
चिकित्सा तथा स्वास्थ्य	124	27	47	379	82	175	1,139	248	360
अन्य सेवाएं	195	30	132	357	54	169	574	85	279
कुल योग	3,262	755	1,146	10,874	2,440	3,299	21,278	4,734	6,542

स्रोत : आई० एस० आई०/एल० एस० ई० का लेख

5.21. **कर्मचारी, उनकी मौजूदा संख्या तथा शिक्षित जनशक्ति की उत्पत्ति**—अभी तक ये ब्योरे कर्मचारियों की संख्या के संदर्भ में ही प्रस्तुत किए गए हैं लेकिन सभी शिक्षित व्यक्ति काम तो नहीं करते। कुछ छात्र ही बने रहते हैं, कुछ गृहणियां बन जाती हैं, और कुछ बेरोज़गार रहते हैं। मौटे तौर पर कहा जाए तो यह मान लिया गया है कि काम पर लगे हुए शिक्षित पुरुषों और स्त्रियों का अनुपात वही है जो 1961 में था। इसी आधार पर कर्मचारियों की संख्या (साथ ही प्रत्येक श्रेणी में उत्पादन) की गणना की गई थी जो तालिका 5.3 में दे दी गई हैं। इस तालिका से यह पता चलेगा कि मैट्रिक पास या इससे अधिक योग्यता वाले व्यक्तियों की कुल संख्या जो 1961 में 80 लाख थी बढ़कर 1976 में 270 लाख और 1986 में 560 लाख हो जाती है (या 1976 तक 8.3 प्रतिशत वार्षिक दर से और बाद के दस वर्षों में 7.5 प्रतिशत की दर से)। स्नातकों की कुल संख्या जो 1961 में 15 लाख थी बढ़कर 1976 में 45 लाख और 1986 में 90 लाख हो जाती है (या 7.5 प्रतिशत वार्षिक दर से सतत वृद्धि जो कि 1950 से 1959 तक 6 प्रतिशत थी)।

सारणी 5.3 अपेक्षित कर्मचारी, उनकी मौजूदा संख्या तथा मैट्रिक या इससे अधिक योग्यता वाले व्यक्तियों के उत्पादन सम्बन्धी प्राक्कलन : भारत (1960-61 से 1985-86 तक)

	हजारों में			वार्षिक वृद्धि दर		
	1961	1976	1986	1961-76	1976-86	1961-86
मैट्रिक तथा इससे अधिक योग्यता वाले						
कर्मचारी	5,164	16,612	32,554	8.1	7.0	7.7
कुल संख्या	8,227	27,339	56,223	8.3	7.5	8.0
मैट्रिक पास व्यक्तियों की व्यवस्था	623	2,324	4,779	9.2	7.5	8.5
	(6.8)	(16.4)	(27.4)	—	—	—
इन्टर पास या इससे अधिक योग्यता वाले						
कर्मचारी	1,901	5,739	11,275	7.6	7.0	7.4
कुल संख्या	2,755	8,515	17,464	7.8	7.6	7.6
इन्टर पास व्यक्तियों की व्यवस्था	240	749	1,537	7.9	7.5	7.7
	(2.8)	(5.6)	(9.1)			
स्नातक या उससे अधिक योग्यता वाले						
कर्मचारी	1,146	3,299	6,543	7.4	7.1	7.2
कुल संख्या	1,510	4,433	9,082	7.5	7.4	7.5
स्नातकों की व्यवस्था	123	377	772	7.7	7.5	7.6
	(1.5)	(3.2)	(4.9)			

स्रोत—आई० एस० आई०/एल० एस० ई० का लेख

नोट—कोष्ठकों में दिए हुए आँकड़े तदनुसार आयु-वर्गों की जनसंख्या का प्रतिशत हैं।

5.22. सामान्यतः इस प्रकार के जन-भंडार तैयार करने के लिए अपेक्षित शिक्षा प्रणाली द्वारा शिक्षित किए गए व्यक्तियों की संख्या उसी दर से बढ़नी चाहिए जितनी कि जन-भण्डार के लिए अपेक्षित हो। इस संबंध में 1976 तक मैट्रिक पास व्यक्तियों की संख्या अपवाद है, क्योंकि इस संख्या में अपेक्षित संख्या से कहीं अधिक वृद्धि हो जाएगी। 1961 में मैट्रिक पास व्यक्तियों की वास्तविक संख्या जन-भण्डार संबंधी लक्ष्यों को देखते हुए अपेक्षित संख्या से बहुत कम थी। कुछ मिलाकर मैट्रिक पास व्यक्तियों की वार्षिक वृद्धि जो कि 1961 में 6 लाख थी बढ़कर 1986 में 48 लाख हो जानी चाहिए और इसी प्रकार स्नातकों की संख्या में भी होने वाली वृद्धि 1 लाख से बढ़कर लगभग 8 लाख हो जानी चाहिए। प्रत्येक आयु-वर्ग में मैट्रिक पास व्यक्तियों का प्रतिशत 7 से बढ़कर 27 और स्नातकों का प्रतिशत 1.5 से बढ़कर लगभग 5 हो जाना चाहिए।

5.23. दूसरी तरफ, कक्षा सात पास करके मैट्रिक या स्नातक बनने वाले व्यक्तियों के अनुपात में कमी लाना आवश्यक है। ऐसा इसलिए कहा गया है क्योंकि निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा सम्बन्धी सांविधानिक निदेश को कार्यान्वित कर देने से कक्षा सात के छात्रों की संख्या में जबरदस्त वृद्धि हो गई है। यदि ये अस्थायी अनुपात (अर्थात्, कक्षा सात के छात्रों की संख्या और मैट्रिक पास करने वाले तथा स्नातकों की संख्या का प्रतिशत) सभी बच्चों के कक्ष सात पास कर लेने के बाद भी पूर्ववत बने रहे तो भी शिक्षित जनशक्ति का भण्डार अपेक्षित जनशक्ति की तुलना में अधिक हो जाएगा। इस शताब्दी के आठवें

दशक के मध्य से आगे यह स्थिति विशेष तौर पर गंभीर हो जाएगी। 1986 तक 40 लाख मैट्रिक पास और 15 लाख स्नातक फालतू हो जाएंगे।

5.24. शिक्षा के उक्त मोटे स्तरों की योग्यता वाले कर्मचारियों के इन पाठ्यक्रमों के इन प्राक्कलनों के अलावा इंजीनियरी तथा कृषि स्नातकों के लिए अलग से प्राक्कलन तैयार किए गए हैं। इन प्राक्कलनों पर आगे विचार किया जाएगा।[1] यदि इंजीनियरी और कृषि के स्नातकों के साथ-साथ चिकित्सा और शिक्षा के स्नातकों की भी गणना की जाए और यदि स्नातकों की कुल संख्या के साथ इसकी तुलना की जाए तो इसके अनुपात में वृद्धि हुई हैं। इंजीनियरी, कृषि आदि के स्नातकों का अनुपात 1961 में 33 प्रतिशत था जो 1976 में बढ़कर 43 प्रतिशत और 1986 में 46 प्रतिशत हो जाएगा। शिक्षा के निचले स्तरों पर इसी तुलना में परिवर्तन किए जाने की आवश्यकता है।

5.25. **नामांकन** — नामांकनों के अनुमानों के निश्चय में अन्ततः यह बताया गया है कि तैयार व्यक्तियों की अपेक्षित संख्या को ध्यान में रखते हुए कितने नामांकन करने होंगे। 1960-61 में किए गए नामांकनों और तैयार व्यक्तियों की संख्या के मध्य जो संबंध रहा है उसी आधार पर ये अनुमान तैयार किए गए हैं। इन्हें तैयार करते समय शिक्षा के ढांचे, पाठ्यक्रमों की अवधियां, अपव्यय आदि में संबंधित हमारी सिफारिशों के लिए छूट भी दे दी गई है। अन्तिम परिणाम तालिका 5.4 में दिए गए हैं :

सारणी 5.4. प्रस्तावित नामांकन (1990-61 से 1985-66 तक)

(हजारों में)

	1960-61		1975-76		1985-86	
	नामांकन	पास	नामांकन	पास	नामांकन	पास
मैट्रिक स्तर						
सामान्यः क्षक्षा आठ/नौ, नौ/दस, दस/ग्यारह	3,582	585	12,324	2,324	23,630	4,779
व्यावसायिक (स्कूल) [1,2]	119	48	361	135	738	278
कुल मैट्रिक पास	3,701	633	12,685	2,459	24,369	5,057
इंटर स्तर						
सामान्यः पहला और दूसरा वर्ष डिग्री पाठ्यक्रम[5]	597	208	—	—	—	—
पाठ्यक्रम						
कालेज (वृत्तिक)	80	35	—	—	—	—
कुल कालेज	677	243	2,176	749	4,460	1.537
स्कूल (व्यावसायिक)						
इंजीनियरी डिप्लोमा	46	10	297	67	573	139
अन्य	181	42	701	151	1,438	310
अध्यपकों का प्रशिक्षण [3,4] (सभी अ-स्नातक)	123	75	453	211	402	169
कुल स्कूल[1]	350	127	1,451	429	2,413	618
कुछ इन्टर पास	1,072	370	3,627	1,178	6,873	2,155
पूर्व स्नातक स्तर						
प्रथम डिग्री : पहला, दूसरा, तीसरा तथा चौथा वर्ष	822	96	—	—	—	—
वृत्तिक[3]	174	30	—	—	—	—
कुल योग	996	126	3,038	377	6,216	772
कुल योग (केवल तीसरे तथा चौथे वर्षों में हुए नामांकन)[6]	320	126	972	377	2,985	772

स्रोत : आइ०एस०आइ०/एल०एस०ई० का लेख

नोट :
(1) जनशक्ति के आंकड़ों में सम्मिलित नहीं किए गए हैं।
(2) अध्यापकों के कुछ प्रशिक्षण को जोड़कर (केवल 1960-61 से संबंधित)।
(3) केवल पहली डिग्री (अध्यापन तथा कानून की डिग्री को छोड़कर)।
(4) 1960-61 में मैट्रिक स्तर के पाठ्यक्रमों को छोड़कर।
(5) कक्षा ग्यारह और/या बारह तथा इन्टर व समान कक्षाओं में नामांकन।
(6) 1985-86 के नामांकन के आंकड़े तीन वर्षों के पाठ्यक्रम पर आधारित हैं, अतः इन आंकड़ों से तीसरे, चौथे तथा पांचवें वर्षों में हुए नामांकनों के संबंध में पता चलता है।

1. अध्याय बारह, चौदह तथा पंन्द्रह

प्राक्कलनों की शैक्षिक कठिनाइयां

5.26. राष्ट्रीय नामांकन नीति के लिए हम इन पूर्वानुमानों को मोटे तौर पर स्वीकार करते हैं, बशर्ते कि इन पूर्वानुमानों का समय-समय पर संशोधन होता रहे। इसके अलावा इन पूर्वानुमानों से भावी शैक्षिक विकास के संबंध में जिन मुख्य परिणामों का संकेत मिलता है वे इस प्रकार हैं :

— यदि शिक्षित व्यक्तियों की सामूहिक बेरोजगारी को दूर करना है तो सामान्य माध्यमिक व उच्चतर शिक्षा के अयोजनाबद्ध और अनियन्त्रित विस्तार पर रोक लगाई जानी चाहिए;

— माध्यमिक शिक्षा का व्यवसायीकरण करने के लिए और विश्वविद्यालय स्तर पर वृत्तिक शिक्षा का विकास करने के लिए विशेष और सतत प्रयत्न करने चाहिए; तथा

— राष्ट्रीय तथा राज्य दोनों स्तरों पर ऐसी उपयुक्त व्यवस्था तैयार करना जिससे अपेक्षित जनशक्ति के प्राक्कलनों तथा शिक्षा प्रणाली द्वारा तैयार व्यक्तियों की संख्या के बीच कारगर सम्बन्ध स्थापित हो सके। ऐसी व्यवस्था करने का उद्देश्य यह है कि मोटे रूप से ऐसी कुछ स्थिति हो जाएगी कि प्रत्येक काम के लिए उपयुक्त प्रशिक्षित व्यक्ति मिल सकेंगा और प्रत्येक पढ़े लिखे आदमी को उसकी योग्यता तथा वृत्तिक प्रशिक्षण के अनुसार काम मिल सकेगा।

अब हम इन परिणामों पर थोड़ा विचार करेंगे।

5.27. **अवर माध्यमिक शिक्षा के दाखिले**—माध्यमिक शिक्षा के आयोजनाबद्ध तथा अनियन्त्रित विस्तार को रोकने की दृष्टि से अपेक्षित जनशक्ति के अनुसार जितने स्थानों (सीटों) की व्यवस्था करनी होगी उन पर नियन्त्रण रखना आवश्यक है। जहाँ कहीं दाखिले के लिए उम्मीदवारों की संख्या उपलब्ध स्थानों (सीटों) से अधिक हो जाए वहाँ चुने हुए दाखिले की पद्धति अपनाई जानी चाहिए। अवर माध्यमिक स्तर सामान्य शिक्षा की इतिश्री समझा जाता है। अतः अवर माध्यमिक स्तर पर "चनाव" शब्द से यह तात्पर्य नहीं समझना चाहिए कि "योग्य" छात्रों को दाखिल करें और "अयोग्य" छात्रों को निकाल दें। इस स्तर पर चुनाव करते समय "जांच और मार्गदर्शन" करने पर अधिक और छंटाई करने पर कम बल दिया जाना चाहिए। इस समय मुख्य उद्देश्य यह होना चाहिए कि छात्र को अपने ज्ञान के स्तर तथा अपनी क्षमताओं की जानकारी हो जाए। साथ ही यह भी उद्देश्य होना चाहिए कि छात्र यह निर्णय कर सकें कि उसके अपने हित में क्या है—स्कूल छोड़कर काम धन्धे की दुनिया में पड़ जाना या किसी विशेष वृत्तिक पाठ्यक्रम में दाखिला लेना या सामान्य शिक्षा को जारी रखना ? दूसरे शब्दों में इस स्तर पर "चुनाव" शब्द का प्रयोग मुख्यतः जाँच व मार्गदर्शन सेवा की सहायता से "स्वयं अपना चुनाव करना" के अर्थों में होगा। जाँच व मार्गदर्शन की यह सेवा सभी क्षेत्रों में स्थित सभी स्कूलों में उपलब्ध होनी चाहिए भले ही किसी स्थान पर माध्यमिक शिक्षा के विस्तार की स्थिति कुछ भी क्यों न हो।[1] यदि किसी क्षेत्र विशेष में चुनाव का अपेक्षाकृत कड़ी व्यवस्था की आवश्यकता अनुभव की जाए तो इस सम्बन्ध में स्थानीय तौर पर निर्णय लिया जा सकता है। इस मामले में लिया गया निर्णय उस क्षेत्र की अपेक्षित जनशक्ति और उस क्षेत्र में शिक्षा का विस्तार कहाँ तक हो चुका है इन दो बातों के आधार पर लिया जाएगा।

5.28. **उच्चतर माध्यमिक तथा विश्वविद्यालय स्तर की शिक्षा के दाखिले**—अवर माध्यमिक स्तर के बाद चुने हुए दाखिले की प्रणाली अपरिहार्य हो जाती है। ऐसी स्थिति सीमित उपलब्ध साधनों के कारण होती है। इस दृष्टिकोण को भारी समर्थन प्राप्त हो रहा है, किन्तु कुछ सामाजिक व आर्थिक कारणों से इसका विरोध भी किया जाता है। उदाहरण के लिए इस सम्बन्ध में यह दलील दी जाती है कि यदि यह नीति अपना ली गई तो पिछड़े वर्गों, ग्रामीण क्षेत्रों तथा जो लोग विशेष सुविधा-सम्पन्न नहीं है उनके लिए पहली ही बार उच्चतर शिक्षा में दाखिला लेते समय, विश्वविद्यालय स्तर की शिक्षा में प्रवेश पाना अत्यन्त दूभर हो जाएगा। ये आशंकाएं बिल्कुल निराधार नहीं है। लेकिन इसका इलाज यह भी नहीं है कि खुले दाखिले की नीति ही जारी रखी जाए। जो लोग विशेष सुविधा सम्पन्न नहीं हैं उनका मौजूदा स्थिति में भी अनुपात बहुत थोड़ा है, हालांकि मौजूदा सुविधाओं में बिना किसी रोक-टोक के दाखिलों की व्यवस्था उपलब्ध है। यह विषमता बहुत जल्दी दूर की जा सकती है, लेकिन मौजूदा अहस्तक्षेप की नीति को ही जारी रखने से ऐसा सम्भव नहीं है। इस विषमता को दूर करने के लिए सुविधाओं की समान व्यवस्था लागू करने

1. इसके संगठन के सम्बन्ध में अध्याय दस में विस्तृत चर्चा की गई है।

के प्रभावशाली उपाय अपनाए जाने चाहिए जैसे कि "स्कूल समूहों" के आधार पर छात्रवृत्तियां मंजूर करना इस आधार पर छात्रवृत्तियां मंजूर करने की सिफारिश हमने आगे चल कर की है।[1] इसी प्रकार के काफी उपाय अपनाने पर तथा स्पष्टतः ऐसा प्रकट होने पर कि इन उपायों द्वारा उच्चतर शिक्षा संस्थाओं में पिछड़े या अर्ध-सम्पन्न लोगों के आनुपातिक नामांकन में वृद्धि हुई हैं चुनाव द्वारा किए गए दाखिलों का विरोध जल्दी ही कम हो जाएगा और कम ही क्या पूरी तरह समाप्त जैसा ही हो जाएगा। फिर भी इस बीच इन आशंकाओं का निवारण किया जाना चाहिए और यदि आवश्यक हो तो ऐसा करने के लिए सुरक्षित स्थानों (सीटों) की उपयुक्त प्रणाली भी अपनाई जानी चाहिए।

5.29. अक्सर यह दलील दी जाती है कि ऐसे सभी नवयुवकों को, जिन्होंने प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षा पूरी कर ली हो और जिन्हें नौकरी न मिल सकी हों, माध्यमिक तथा उच्चतर शिक्षा दी जानी चाहिए। इसी सम्बन्ध में यह भी कहा जाता है कि गलियों में खुला छोड़ देने की अपेक्षा ऐसे व्यक्तियों के लिए शिक्षा संस्थाएं अधिक अच्छा आश्रयस्थल होंगी। यह एक पलायनवादी विचारधारा है जो आम तौर पर प्रगतिशील तथा ऐसे समाजों में पाई जाती है जहां श्रमिकों की बहुतायत होती है। समाज के ये वर्ग शिक्षा को काम के लिए तैयार करने का साधन न समझ कर एक ऐसी वस्तु समझते हैं कि और कोई काम नहीं मिला तो शिक्षा ही प्राप्त कर ली जाए। यही कारण है कि समाज के ऐसे वर्ग अपने नवयुवकों को बहुत अधिक शिक्षा दिला देते हैं। औद्योगिक तथा समाज के ऐसे वर्गों में जहां श्रमिकों की कमी होती है नौकरी के अवसर इतने अधिक होते हैं कि बहुत से नवयुवक स्कूलों में मजबूरन अध्ययन सिर्फ इसलिए करते रहते है कि वहां अनिवार्य शिक्षा नियम लागू होते हैं। अनिवार्य आयु सीमा के पूरा होते ही छात्रों की एक बहुत बड़ी संख्या (जो 30 से 75 प्रतिशत तक होती है) स्कूल छोड़कर काम-धन्धे में लग जाती है। इस प्रकार शैक्षिक संस्थाओं के स्तरों में सुधार लाने की दिशा में सहायता मिलती है क्योंकि अनिवार्य शिक्षा के बाद व्यवस्था तो कम स्थानों (सीटों) की करनी पड़ती है और साधन कहीं अधिक होते हैं। दूसरी तरफ प्रगतिशील तथा ऐसी अर्थ-व्यवस्थाओं में जिनमें काम करने वालों की बहुतायत होती है नौकरी के अवसर इतने कम होते हैं कि शिक्षा के "अवसर मूल्य" बहुत घट गए है। ऐसी स्थिति में नवयुवक माध्यमिक स्कूलों या कालेजों में इसलिए दाखिला ले लेते हैं क्योंकि या तों उनके पास कुछ और करने को नहीं होता या उन्हें ऐसी शुभ आशा होती है कि अधिक शिक्षा प्राप्त कर लेने के बाद उन्हें कोई न कोई नौकरी आसानी से मिल सकेगी। लेकिन साधनों के सीमित होने तथा जितने स्थानों (सीटों) की व्यवस्था की जानी है उनकी संख्या अपेक्षाकृत अधिक होने के कारण माध्यमिक तथा उच्चतर शिक्षा का स्तर गिरा हुआ होता है। कुछ मामलों में तो इनके परिणाम व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन में बजाय कुछ रचनात्मक योग देने के निराशापूर्ण ही होते है। हमारा विश्वास है कि शिक्षा को नौकरी की एवज मानने की इस प्रवृत्ति को रोकने की दिशा में निश्चित प्रयत्न किए जाएं।

5.30. चुनाव द्वारा दाखिले की नीति का अधिकांश विरोध चुनाव के बेहतर तरीके अपना कर खत्म किया जा सकता है। चुनाव के सौजूदा तरीकों में परीक्षा में प्राप्त अंकों को एकमात्र आधार मानने के प्रति कड़ाई बरती जाती है। क्योंकि इस तरीके में ऊपरी तौर "औचित्य" दिखाई देता है। अतः इसे भारी समर्थन मिला हुआ है। इस तरीके में प्रशासनिक सुविधा भी है और इसे समर्थन प्राप्त होने का एक अन्य कारण यह है कि यदि अलग-अलग संस्थाओं को अपने विवेक का प्रयोग करने का अधिकार दे दिया गया तो पक्षपात, कुनबा-परस्ती, जातपात, या भ्रष्टाचार तक के फैलने का खतरा हो सकता है। फिर भी जन्मगत प्रतिभा या सम्भावी प्रगति को ध्यान में रखते हुए परीक्षा में अंकों को विश्वसनीय तरीका नहीं कहा जा सकता। सामाजिक दृष्टि से भी यह तरीका न्यायपूर्ण नहीं है क्योंकि इससे शहरी छात्र तथा सम्पन्न घरानों व अच्छे स्कूलों के छात्रों को अत्यधिक लाभ होता है। वास्तव में चुनाव के एक ऐसे विश्वसनीय तरीके की आवश्यकता है जिसमें छात्रों की पूर्व सफलताओं, जन्मगत प्रतिभा तथा सामाजिक न्याय के सिद्धान्तों के प्रति ध्यान दिया गया हो। ऐसे तरीकों को खोजने के लिए शैक्षिक अनुसंधान को बहुत तेजी से आगे बढ़ाना होगा। सौजूदा तरीकों में सुधार लाने के सुझावों पर आगे चलकर विचार किया गया है।[2]

5.31. उच्च माध्यमिक तथा विश्वविद्यालय स्तर की शिक्षा का सम्बन्ध प्रशिक्षित जनशक्ति के निर्धारित राष्ट्रीय लक्ष्यों के साथ जोड़ने के लिए दो काम करने होंगे। पहला काम तो यह है कि विश्वविद्यालय विभागों या कालेजों में पहले से ही स्थानों (सीटों) की संख्या निश्चित कर दी जाए और ऐसा करते समय अपेक्षित जनशक्ति तथा उपलब्ध साधनों को ध्यान में रखना चाहिए। दूसरा काम इन स्थानों पर दाखिले करने का है। इस सम्बन्ध में

1. **अध्याय छह**
2. **अध्याय बारह**

छात्रों की सहज प्रतिभा, शिक्षा के निचले स्तरों पर उनकी सफलताओं तथा सामाजिक न्याय के सिद्धान्तों को ध्यान में रखते हुए चुनाव द्वारा दाखिले करने की प्रणाली अपनाई जानी चाहिए। विज्ञान, शिल्प-विज्ञान, चिकित्सा तथा कृषि के पाठ्यक्रमों में तो चुनाव द्वारा दाखिले की नीति को पहले से ही बहुत हद तक लागू किया जा रहा है। यही नहीं सामान्य शिक्षा की बहुत सी ऐसी संस्थाओं में, जो आवश्यक स्तर कायम रखने की इच्छुक हैं चुनाव द्वारा दाखिले की नीति प्रयोग में लाई जा रही है। अब चुनाव के तौर-तरीकों में ऊपर बताए गए आधार पर सुधार लाना आवश्यक है। इसके अलावा अब यह सुनिश्चित करना बहुत आवश्यक हो गया है कि चुनाव द्वारा दाखिले का सिद्धान्त सभी पाठ्यक्रमों के लिए राष्ट्रीय नीति के रूप में स्वीकार किए गए। यह राष्ट्रीय नीति मानविकी तथा वाणिज्य के पाठ्यक्रमों सहित उच्चतर शिक्षा के सभी पाठ्यक्रमों व संस्थाओं तथा सम्बद्ध कालेजों में लागू की जानी आवश्यक है।

5.32. **व्यावसायिक शिक्षा का विकास**—अपेक्षित जनशक्ति के प्राक्कलन व्यावसायिक शिक्षा के विस्तार के मार्गदर्शक भी होते हैं। इंजीनियरी और कृषि में विशेष व्यावसायिक प्रशिक्षण के संबंध में हम आगे चर्चा करेंगे।[1] फिलहाल हमारा काम माध्यमिक व उच्चतर शिक्षा स्तरों पर सामान्य तथा व्यावसायिक शिक्षा के बीच पूर्ण सन्तुलन करना है।

5.33. मैट्रिक तक पूरा होने वाले अवर माध्यमिक शिक्षा स्तर के सम्बन्ध में हमें अवश्य ही यह समझ लेना चाहिए कि जनशक्ति के उपलब्ध आँकड़े व्यावसायीकरण की सीमा के संबंध में बहुत कम मार्गदर्शन करते हैं। इसका कारण यह है कि अपेक्षित जनशक्ति केवल मैट्रिक पास छात्रों की संख्या या सामान्य शिक्षा के पाठ्यक्रमों को सफलतापूर्वक पूरा कर लेने वाले छात्रों की संख्या के रूप में प्रस्तुत की जाती है। जनशक्ति के इन आँकड़ों में तकनीकी या औद्योगिक शिक्षा, कला तथा दस्तकारी में प्रशिक्षण या संगीत, नृत्य तथा अन्य ललित कलाओं को सीखने के लिए स्कूलों में मौजूद छात्रों की संख्या नहीं जोड़ी जाती। इन पाठ्यक्रमों का कहां तक विस्तार किया जाए तथा व्यावसायिक व व्यावहारिक ढंग के कौन से नए पाठ्यक्रम शुरू किए जाएं ये कुछ ऐसे प्रश्न है जिनका उत्तर और अधिक अध्ययन करने पर ही दिया जा सकता है। इस विषय से सम्बन्धित अपने सुझावों पर हमने **स्कूलों में शिक्षा** नामक अध्याय[2] में विचार किया है।

5.34. इन्टर या इसके समकक्ष स्तर पर पूरा होने वाले उच्च शिक्षा स्तर के सम्बन्ध में जनशक्ति के पूर्वानुमान काफी मार्गदर्शन करते हैं। इन पूर्वानुमानों में यह सुझाया गया है कि 1985-86 तक के कुल 6,873,000 नामांकनों में से व्यावसायिक स्कूलों में 24,13,000 तथा व्यावसायिक कालेजों में सम्भवतः 6,000,000 नामांकन हो जाने चाहिएं। यह संख्या कुल संख्या के 43 प्रतिशत के बराबर है। इस विषय पर हमारे सुझावों की चर्चा आगे[3] की गई है। हमारी राय में इस स्तर पर व्यावसायिक शिक्षा पर बल दिया जाना चाहिए। अतः यह मान लिया है कि इस स्तर के व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में नामांकनों की संख्या कुल नामांकनों की तुलना में लगभग 50 प्रतिशत होगी।

5.35. पूर्व-स्नातक स्तर पर विशेषज्ञों की आवश्यकता से सम्बन्धित पूर्वानुमानों में यह सुझाया गया है कि 1985-86 तक इंजीनियरी, कृषि तथा चिकित्सा में नामांकनों की संख्या लगभग 833,000 हो जानी चाहिए। इस संख्या में शिक्षण तथा कानून के डिग्री पाठ्यक्रमों में हुए नामांकनों की संख्या जोड़नी आवश्यक है। इस विषय से सम्बन्धित हमारे सुझावों पर आगे[4] विचार किया गया है।

5.36. जैसा कि पहले भी कहा गया है कि कुल अपेक्षित नामांकन तथा जनशक्ति के आंकड़ों के आधार पर विभिन्न क्षेत्रों के लिए निकाले गए नामांकनों के प्रतिशत पूरी तरह सही नहीं होते। जिस मुख्य सिद्धान्त पर इनकी गणना की गई है उस सिद्धान्त, अर्थात्, "टिन्बर्जन-सूत्र" पर ही अनेक प्रकार की आपत्तियां उठाई जा सकती हैं। उपलब्ध सांख्यिकीय आंकड़ों में अन्तर्याप्त जटिलताओं के कारण उक्त गणना और भी अधिक विषम हो जाती है। लेकिन इन सभी बातों को ध्यान में रखते हुए हमारा यह विश्वास है कि उक्त गणना समस्या की विशालता को देखते हुए एवं राष्ट्रीय नामांकन नीति को व्यवस्थित करने की दिशा में स्पष्ट मार्ग निर्देशन करती है। लेकिन जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है इन गणनाओं को प्राप्त अनुभवों, नए सुधरे तौर-तरीकों तथा और भी अधिक शुद्ध

1. अध्याय चौदह तथा पन्द्रह
2. अध्याय सात
3. अध्याय सात
4. अन्याय बारह, चौदह तथा पन्द्रह

आंकड़ों के उपलब्ध होने के साथ-साथ निरन्तर संशोधित करते रहना होगा ।

5.37. तीन और बातों पर भी ध्यान देना आवश्यक है । सबसे पहली बात यह है कि कितनी पूंजी की व्यवस्था सम्भव है । इन्हीं आधारों पर आंकी गई अपेक्षित जनशक्ति के पूर्वानुमानों से केवल कार्य करने वालों की अपेक्षित संख्या के परिणामसूचक मोटे संकेत मिलते हैं । ये मोटे संकेत भी शिक्षा की उपलब्धि के स्थूल स्तरों के अनुसार होते हैं । लेकिन कुशलता के निश्चित स्तरों के अनुसार विनिर्दिष्ट संख्या में कर्मचारियों की शिक्षा और प्रशिक्षण पर संभवतः इतना अधिक व्यय होगा कि हमारी अर्थव्यवस्था उसे वहन नहीं कर सकेगी । अतः अपेक्षित जनशक्ति के तैयार करने पर क्या व्यय होगा इस सम्बन्ध में निरन्तर जांच करते रहना आवश्यक है । साथ ही यह भी सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि उपयुक्त स्तर कायम रह सकें । लेकिन जब सुझावों पर होने वाला कुल व्यय उपलब्ध पूंजी से अधिक हो जाए तो ऐसी स्थिति में प्राथमिकताएं निश्चित करनी होंगी और इन प्राथमिकताओं को लागू करना होगा ।

5.38. दूसरी बात का सम्बन्ध अपेक्षित जनशक्ति के प्रशिक्षण के लिए वास्तविक साधनों के उपलब्ध होने से है । इसमें कोई संदेह नहीं कि गरीब देश में पैसे की व्यवस्था करना कठिन होता है लेकिन फिर भी अपेक्षित अध्यापकों, उपस्कर तथा इमारतों आदि जैसे साधनों की तुलना में पैसे की व्यवस्था करना अधिक आसान होता है । किसी पद का निर्माण करना तो बहुत आसान है लेकिन उस पर नियुक्ति के लिए उपयुक्त व्यक्ति ढूंढ़ने का कार्य कठिन होता है । उदाहरण के तौर पर इंजीनियरी संस्थाओं को ही लीजिए, जहाँ धन उपलब्ध होने के बावजूद भी कर्मचारियों की 30 प्रतिशत या इससे अधिक की कमी है । उपस्कर, विशेष रूप से विदेशों में तैयार किए गए उपस्कर, की सप्लाई कम होती है और इमारतों के निर्माण को मिले अनुदान अक्सर बेकार चले जाते हैं क्योंकि इस्पात और सीमेंट उपलब्ध नहीं हो पाता । अतः जनशक्ति की आवश्यकताओं के पूर्वानुमानों की निरन्तर जांच करते रहना आवश्यक है । साथ ही विस्तार के केवल उसी लक्ष्य की योजना बनाई जानी चाहिए जो उपलब्ध वास्तविक साधनों को ध्यान रखते हुए प्राप्त किया जा सके । अतः शिक्षा के लिए जिन वास्तविक साधनों का आबंटन हुआ है उन में वृद्धि करने की दिशा में भरसक प्रयत्न करना चाहिए । फिर भी यास्तविक साधन न होने पर शिक्षा के स्तर कों घटाकर शिक्षा का प्रसार करना खतरनाक होगा । ऐसी परिस्थिति में प्राथमिकताओं का कठिन चुनाव करना होगा ।

5.39. तीसरी बात सुविधाओं के प्रयोग से सम्बन्धित है । ठीक इसी प्रकार की सुविधाओं के प्रयोग की समस्या पर दूसरे अध्याय में विचार किया गया है । जब हम प्रशिक्षित जनशक्ति की संख्या में वृद्धि करने की बात सोचते हैं तो हमें यह भी देखना चाहिए कि मौजूदा प्रशिक्षित जनशक्ति का प्रयोग किस प्रकार हो रहा है । इस बात के पुष्ट प्रमाण है कि हमारी प्रशिक्षित जनशक्ति का काफी बड़ा प्रतिशत ऐसा रहता है जिसका पूरा प्रगोग नहीं हो पाता और कुछ मामलों में तो इसका प्रयोग नहीं के बराबर होता है । इस समस्या के अध्ययन के लिए सतत प्रयत्न करते रहना आवश्यक है । मौजूदा प्रशिक्षित जनशक्ति को हम जितना अधिक काम में लाएंगे उसी अनुपात में हमें तुरन्त लाभ होगा और इसके लिए हमें आगे और पूंजी लगाने की भी आवश्यकता नहीं पड़ेगी । इस प्रकार भविष्य के लिए लगाए गए पूर्वानुमान भी बदल जाएंगे । इन पूर्वानुमानों में या अपेक्षित संख्या कम कर दी जाएगी या फिर उपलब्धियों के स्तरों को और ऊंचा कर दिया जाएगा ।

5.40 **नामांकन तथा जनशक्ति**—1961 व 1986 में नामांकनों की स्थिति तथा जनशक्ति सम्बन्धी स्थिति तालिका 5.5 में दे दी गई है ।

सारणी 5.5. शिक्षा-क्षेत्र में नामांकन (1960—85)

(हजारों में)

	1960-61			1975-76			1985-86		
	लड़के	लड़कियां	जोड़	लड़के	लड़कियां	जोड़	लड़के	लड़कियां	जोड़
पूर्व प्राथमिक	5,381	3,231	8,612	5,000	5,000	10,000	5,000	5000	10,000
	(27.5)	(17.0)	(22.3)	(18.9)	(20.1)	(19.5)	(20.5)	(22.1)	(21.3)
प्राथमिक शिक्षा									
श्रेणी I से IV तक	17,170	7,826	24,996	38,066	33,484	71,550	39,509	36,730	76,239
	(74.0)	(35.0)	(54.8)	(109.7)	(68.6)	(89.7)	(110.0)	(110.0)	(110.0)
श्रेणी V से VII तक	5,587	1,876	7,463	19,774	12,620	32,394	25,214	23,500	48,714
	(35.5)	(12.5)	(24.3)	(81.9)	(55.7)	(69.2)	(90.0)	(90.0)	(90.0)
जोड़	22,757	9,702	32,459	57,840	46,104	1,03,944	64,723	60,230	1,24,953
माध्यमिक शिक्षा									
श्रेणी VIII से X तक (सामान्य)	2,876	706	3,582	8,558	3,309	11,867	13,221	6,274	19,495
	(19.9)	(5.2)	(12.8)	(38·3)	(15.6)	(27.3)	(48·3)	(24.5)	(36.8)
श्रेणी VIII से X तक (व्यावसायिक)	65	35	100	546	272	818	3,305	1,568	4,873
	(0.5)	(0.3)	(0.4)	(2.4)	(1.3)	(1.9)	(12.1)	(6.1)	(9.2)
श्रेणी XI से XII तक (सामान्य)	418	73	491	1,262	354	1,616	2,502	935	3,437
	(4.7)	(0.9)	(2.8)	(9.1)	(2.7)	(5.9)	(14.4)	(5.7)	(10.2)
श्रेणी XI से XII तक (व्यावसायिक)	299	59	358	1,089	284	1,373	2,502	934	3,436
	(3.3)	(0.7)	(2.1)	(7.9)	(2.1)	(5.1)	(14.4)	(5.7)	(10.2)
जोड़	3,658	873	5,431	11,455	4,219	15,674	21,539	9,711	31,241
उच्चतर शिक्षा									
पूर्व स्नातक (कला, विज्ञान तथा वाणिज्य)	351	83	434	1,038	312	1,350	1,589	563	2,152
	(2.8)	(0.7)	(1.8)	(5.5)	(1.7)	(3.6)	(6.4)	(2.4)	(4.5)
पूर्व स्नातक (वृत्तिक)	131	15	147	432	99	531	818	230	1,048
	(1.0)	(0.1)	(0.6)	(2.3)	(0.5)	(1.4)	(3.3)	(1.0)	(2.2)
स्नातकोत्तर (सामान्य तथा वृत्तिक)	53	11	64	257	64	321	749	211	960
	(0.5)	(0.1)	(0.3)	(1.5)	(0.4)	(1.0)	(3.2)	(1.0)	(2.1)
जोड़	535	109	645	1,727	475	2,202	3,156	1,004	4,160
कुल जोड़	32,331	13,915	46,247	76,022	55,798	1,31,820	94,409	75,945	1,70,354

नोट : कोष्ठकों में दी हुई संख्याएं तदनुसार आयुवर्गों का प्रतिशत प्रस्तुत करती है।
जोड़ इसलिए मेल नहीं खाते क्योंकि आंकड़ों को शून्यांत में बदल दिया गया है।

स्रोत : 1960-61 के लिए शिक्षा मंत्रालय का फार्म 'ए'। 1975-76 तथा 1985-86 के सम्बन्धित आंकड़ों के अनुमान शिक्षा आयोग के सचिवालय में तैयार किए गए हैं।

नोट :

(i) 1960-61 से सम्बन्धित आंकड़े वही हैं जो शिक्षा मंत्रालय द्वारा फार्म 'ए' में वास्तव में दिए गए

(शेष पृष्ठ 115 पर)

उक्त स्थिति से यह स्पष्ट होगा कि 1960-61 तथा 1685-86 के दौरान कुल नामांकन करीब चौगुने हो जाएंगे और नामांकनों की कुल संख्या 4.6 करोड़ से बढ़कर 17 करोड़ हो जाएगी। लड़कों के नामांकनों की संख्या बढ़कर लगभग तिगुनी हो जाएगी। इन नामांकनों की संख्या 3.2 करोड़ से बढ़कर 9.4 करोड़ हो जाएगी। और लड़कियों के नामांकनों की संख्या लगभग साढ़े पांच गुनी हो जाएगी। लड़कियों के नामांकनों की संख्या 1.4 करोड़ से बढ़कर 7.6 करोड़ हो जाएगी।

5.41. **कार्यकारी दल के शिक्षा स्तर** (1961 से 1986 तक)—इस अवधि के दौरान (1961 से 1986 तक) पूरे कार्यकारी-दल की शिक्षा के स्तर सारिणी 5. 6 क तथा ख में दिए गए हैं।

सारणी 5.6 (क). भारतवर्ष में कुल अनुमानित भावी रोजगार की स्थिति
(1961 से 1986 तक)

(हजारों में)

उद्योग	सभी कर्मचारी	15 वर्ष या इससे अधिक आयु के कर्मचारी		
	1960-61	1960-61	1975-76	1985-86
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)
1. कृषि	1,35,444	1,23,817	1,44,462	1,44,462
2. खनिकर्म तथा विनिर्माण	20,927	19,202	40,696	63,861
3. रचना/निर्माण	2,059	1,992	6,653	9,273
4. व्यापार और वाणिज्य	7,654	7,500	12,135	18,764
5. परिवहन तथा संचार	3,019	2,995	6,882	11,525
6. सेवाएं (अन्य)	19,572	18,697	32,906	45,210
कुल जोड़	1,88,675	1,74,203	2,43,734	2,93,095

स्रोत : आइ० एस० आइ०/एल० एस० ई० के लेख की सारिणी संख्या 13

(पृष्ठ 114 का शेष) हैं। कुछ मामलों में ये आंकड़े पहले दी हुई तालिका 5.4 में निर्दिष्ट आंकड़ों से भिन्न हैं। इनके भिन्न होने का कारण यह हैं कि सारणीकरण के लिए विभिन्न आधार अपनाए गए हैं। शिक्षा अयोग द्वारा अपनाए गए तरीकों के सम्बन्ध में रिपोर्ट के अन्त में दिए हुए नामांकन सम्बन्धी नोट को देखिए।

(ii) प्राथमिक शिक्षा स्तर के नामांकन सांविधानिक निदेश की पूर्ति की आवश्यकता पर आधारित हैं। इस नामांकनों का जनशक्ति के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। विवरण के लिए सातवां अध्याय देखिए।

(iii) अवर माध्यमिक स्तर के नामांकन जनशक्ति के प्राक्कलनों के आधार पर तैयार किए गए हैं। इस सम्बन्ध में आई० एस० आई०/एल० एस० ई० के लेख में दिए गए तथ्यों से एक फर्क रखा गया है और वह फर्क यह है कि हमने व्यावसायिक शिक्षा के नामांकन को कुल नामांकनों का 20 प्रतिशत मात्र लेने का दायित्व स्वीकार कर लिया है (इस सम्बन्ध में जनशक्ति सम्बन्धी कोई संकेत उपलब्ध नहीं हैं)।

(iv) उच्च माध्यमिक शिक्षा स्तर के नामांकन जनशक्ति के प्राक्कलनों पर आधारित हैं। ऐसा मान लिया गया है कि व्यावसायिक शिक्षा के नामांकन कुल नामांकनों का 50 प्रतिशत है। आई० एस० आई०/एल० एस० ई० के लेख के अनुसार व्यावसायिक शिक्षा के नामांकनों का प्रतिशत 43 था।

(v) पूर्व स्नातक स्तर के कुल नामांकन तथा व्यावसायिक शिक्षा के नामांकन आई० एस० आई०/एल० एस० ई० के लेख में दी हुई जनशक्ति की आवश्यकताओं पर आधारित हैं।

(vi) स्नातकोत्तर स्तर के नामांकन अलग से निकाले गए हैं। इससे सम्बन्धित ब्योरों के लिए आठवां अध्याय देखिए। आई० एस० आई०/एल० एस० ई० के लेख में शिक्षा के इस स्तर के सम्बन्ध में किसी प्रकार के पूर्वानुमान नहीं दिए गए हैं।

सारणी 5.6 (ख). कुल अनुमानित रोजगार में मैट्रिक पास या इससे अधिक योग्यता वाले लोगों का प्रतिशत (1960-61 से 1985-86 तक)

(प्रतिशत)

	1960-61			1975-76			1985-86		
	मैट्रिक पास	इंटर पास	स्नातक	मैट्रिक पास	इंटर पास	स्नातक	मैट्रिक पास	इंटर पास	स्नातक
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)	(8)	(9)	(10)
1. कृषि	0.3	..	0.1	0.5	0.1	0.1	0.7	0.1	0.1
2. खनिकर्म तथा विनिमाण	2.4	0.5	0.5	7.8	1.5	1.8	11.5	2.2	2.7
3. रचना	4.8	1.5	0.9	7.6	2.3	1.5	12.2	3.6	2.3
4. व्यापार और वाणिज्य	5.9	1.3	1.2	9.7	2.2	2.0	13.7	3.0	2.8
5. परिवहन तथा संचार	10.5	2.7	3.1	17.4	4.4	5.1	22.6	5.7	6.7
6. सेवाएं (अन्य)	7.7	2.1	3.9	12.6	3.2	5.3	14.8	3.7	7.0
जोड़	1.7	0.4	0.6	4.5	1.0	1.4	7.3	1.6	2.2

स्रोत : आइ० एस० आइ०/एल० एस० इ० के लेख की सारिणी संख्या 14

सारिणी 5.6 क तथा ख को देखने पर यह पता चलेगा कि शिक्षा का जो कुल विस्तार हमने दिखाया है उसके बावजूद भी शिक्षित और प्रशिक्षित जनशक्ति का अनुपात 1986 तक भी थोड़ा और कम ही रहेगा। हमें आशा है कि उस समय तक निरक्षरता समाप्त हो सकेगी या कम से कम कोई भी अनपढ़ कर्मचारी नहीं रहेगा। कुल कर्मचारी दल में मैट्रिक पास लोगों का अनुपात जो 1960-61 में 1.7 प्रतिशत था बढ़कर 1975-76 में 4.5 प्रतिशत हो जाएगा और 1985-86 तक तो यह अनुपात और अधिक बढ़कर 7.3 प्रतिशत हो जाएगा। इसी अवधि के दौरान कार्यकारी दल में इंटर पास लोगों का अनुपात 0.4 प्रतिशत से बढ़कर 1.6 प्रतिशत हो जाएगा और स्नातकों का अनुपात 0.6 प्रतिशत से बढ़कर 2.2 प्रतिशत हो जाएगा। शिक्षित कर्मचारियों (मैट्रिक पास या इससे अधिक योग्यता वाले) की कुल संख्या जो 1960-61 में 2.7 प्रतिशत थी बढ़कर 1985-86 में 11 प्रतिशत से ठीक ऊपर हो जाएगी। इस स्थिति को पृष्ठ 118 पर किए गए चार्ट में ग्राफ द्वारा स्पष्ट कर दिया गया है।

5.42. इस संबंध में यह भी ध्यान रखना होगा कि जिस उपलब्धि की रूप रेखा तैयार की गई है वह उपलब्धि भी औद्योगिक देशों में पहले से ही प्राप्त उपलब्धियों की तुलना में बहुत कम है। उदाहरणतः संयुक्त राज्य अमरीका तथा जापान की जनसंख्याओं का शिक्षा-स्तर सारिणी 5.7 में दिया गया है।

सारणी 5.7. जापान और संयुक्त राज्य अमरीका की जनसंख्याओं में से काम करने वाले व्यक्तियों के शिक्षा-स्तर

जापान		संयुक्त राज्य अमरीका	
जनसंख्या का गठन (15 वर्ष या इससे अधिक आयु वाले)		मार्च 1959 में मौजूद सिविलियन कर्मचारी वर्ग (18 वर्ष से 64 वर्ष तक की आयु वाले) का गठन	
जिन्होंने निम्नलिखित शिक्षा स्तर पूरा कर लिया है	**प्रतिशत**	**जिन्होंने निम्नलिखित शिक्षा स्तर पूरा कर लिया है**	**प्रतिशत**
प्रारम्भिक स्कूल (कक्षा एक से छह तक)	15.9	प्रारम्भिक : (5 वर्ष से कम आयु के)	4.7
अवर हाई स्कूल (कक्षा सात से नौ तक)	44.8	5 वर्ष से 8 वर्ष तक के बच्चे	24.2
उच्च हाई स्कूल (कक्षा दस से बारह तक)	24.7	हाई स्कूल : वर्ष एक से तीन वर्ष तक	20.3
		चार वर्ष	31.7
विश्वविद्यालय या अवर कालेज	5.2	कालेज :	
		वर्ष एक से तीन वर्ष तक	9.4
		चार वर्ष या इससे अधिक समय तक	9.7
जो स्कूलों में अध्ययन कर रहे हैं	7.3		
जिन्होंने कभी भी स्कूलों में अध्ययन नहीं किया	2.2		
स्रोत : 1960 की जनगणना		**स्रोत** : श्रमिक सांख्यिकी ब्यूरों की श्रमिक वर्गों के लिए विशेष रिपोर्ट नं० 53. पृ० ए०-6	

जनशक्ति के प्राक्कलनों का नामांकनों से संबंध

5.43. अब हम अपनी अंतिम बात पर विचार करेंगे। इस अंतिम बात का संबंध एक ऐसी प्रणाली तैयार करने से है जिससे न केवल अपेक्षित जनशक्ति से संबंधित प्राक्कलन ही तैयार होंगे वरन् इससे इन प्राक्कलनों य शिक्षा प्रणाली द्वारा तैयार व्यक्तियों की संख्या के बीच कारगर समन्वय भी स्थापित हो सकेगा।

5.44. **श्री आर० ए० गोपालास्वामी के सुझाव**— हम अपने सहयोगी श्री आर० ए० गोपालास्वामी के बहुत कृतज्ञ हैं कि उन्होंने हमारे लिए शैक्षिक उत्पादन, जनशक्ति की आवश्यकताओं और नौकरी के अवसरों के संबंध में विस्तृत अध्ययन किया हैं। अपेक्षित जनशक्ति को नामांकन नीतियों के रूप में ढालने के तरीकों के संबंध में श्री गोपालस्वामी द्वारा दिए गए सुझावों के लिए भी हम उनके कृतज्ञ हैं। हमने उनके प्रस्तावों तथा अन्य उपलब्ध सामग्री की बहुत ध्यानपूर्वक जांच कर ली हैं। इस सम्बन्ध में हम श्री गोपालास्वामी से पूरी तरह सहमत है कि उच्चतर शिक्षा के विकास को जनशक्ति की आवश्यकताओं के साथ मोटे तौर पर सम्बन्धित रखने की आवश्यकता है। इस नीति के सम्बन्ध में निम्नलिखित चार उद्देश्यों को हम स्वीकार करते हैं। इस नीति को कार्यान्वित करने में जो कठिनाइयां श्री गोपालास्वामी ने बताई हैं उनसे भी हम सहमत हैं।

पहली बात तो यह है कि उच्चतर शिक्षा प्राप्त जनशक्ति की वृद्धि को ध्यान में रखते हुए देश की वार्षिक आवश्यकताएं पहले ही निर्धारित कर देनी चाहिए। इन आवश्यताओं को निर्धारित करने में यथासंभव यथार्थता और निश्चयात्मकता बरतनी चाहिए। ऐसे प्रबन्ध किए जाने चाहिए जिससे कि निर्धारित आवश्यकताओं की पूर्ति के

कार्यकारी जनसंख्या का शिक्षा स्तर (भारत)

1961 तथा 1986

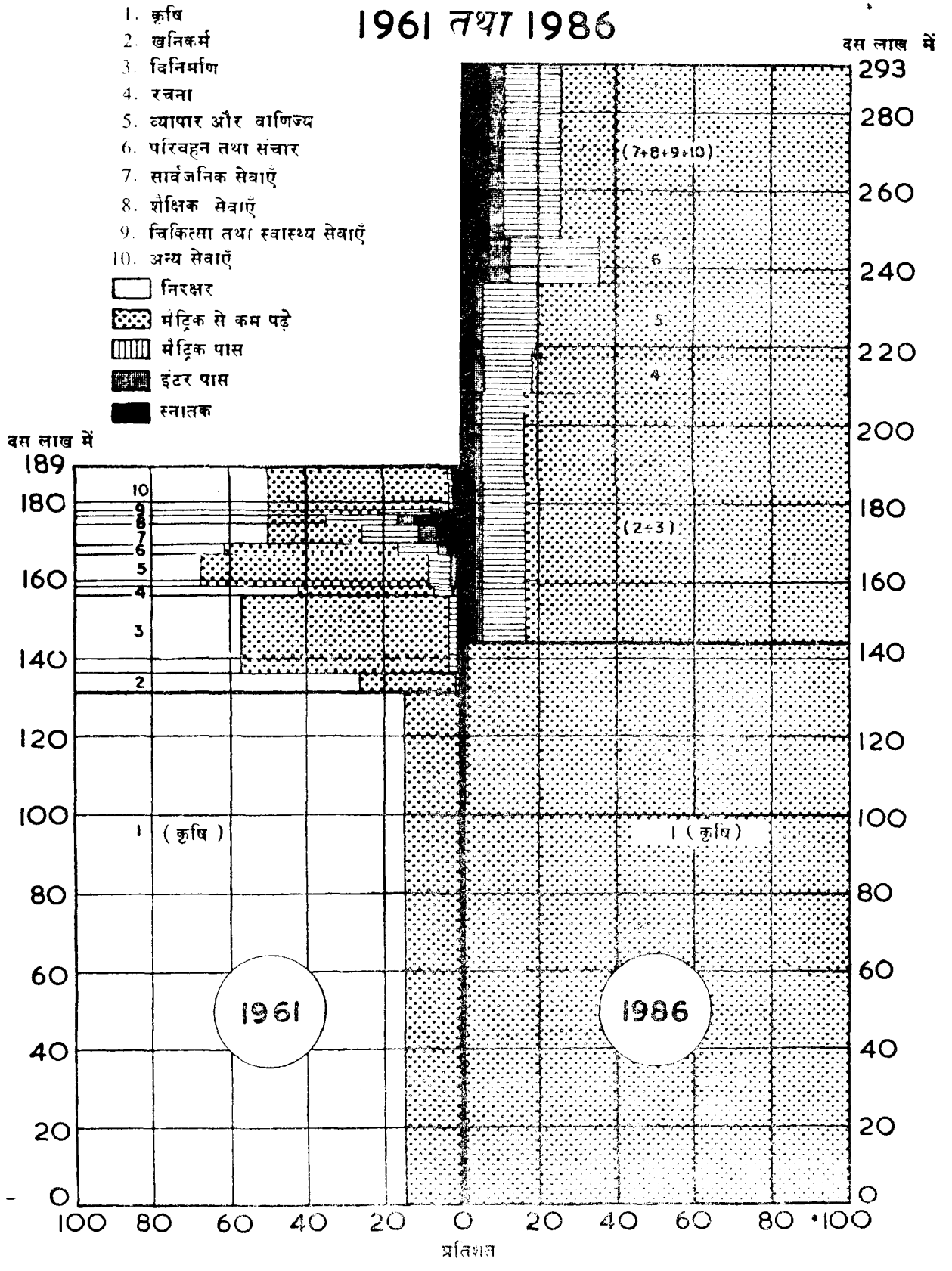

लिए देश की सभी उच्चतर शिक्षण संस्थाएं निश्चित रूप से उच्चतर शिक्षा प्राप्त जनशक्ति दलों की उपयुक्त व्यवस्था कर सकें।

दूसरी बात यह है कि ऐसी व्यवस्था की जानी चाहिए कि यह सुनिश्चित हो सके कि उच्चतर शिक्षा प्राप्त जनशक्ति दल का बेरोजगार या कम रोज़गार रहकर अपव्यय न हो। उच्चतर शिक्षा प्राप्त सभी व्यक्तियों की, जहां तक हो सके, ऐसे पदों पर ही नियुक्ति की जानी चाहिए जहां उनकी शैक्षिक योग्यता का सर्वोत्तम प्रयोग हो सके।

तीसरी बात यह है कि उच्चतर शिक्षा संस्थाओं के मौजूदा पाठ्यक्रमों का पुनरीक्षण किया जाना चाहिए। यह पुनरीक्षण करते समय उच्चतर शिक्षा प्राप्त दलों के रोज़गार के ढांचे में हो रहे परिवर्तनों को ध्यान में रखना होगा। इन पाठ्यक्रमों की रचना और विषय-वस्तु और साथ ही दाखिले की मांगों के सम्बन्ध में पुनरीक्षण किए जाने चाहिए। इस सारी प्रणाली में सुधार लाना आवश्यक है ताकि उच्चतर शिक्षा प्राप्त जनशक्ति के विभिन्न वृत्तिक वर्गों के लिए अच्छी से अच्छी शिक्षा की व्यवस्था हो सके।

चौथी बात यह है कि माध्यमिक शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों के लिए नए प्रकार के पदोन्नति विस्तार पाठ्यक्रमों का विकास किया जाना चाहिए। ये पाठ्यक्रम माध्यमिक शिक्षा प्राप्त ऐसे व्यक्तियों के लिए होने चाहिए जो पहले से ही काम धन्धे में लगे हुए है और जो पदोन्नति के योग्य पाए जाएं। ऐसा करने से उनका शैक्षिक स्तर उच्चतर शिक्षा प्राप्त जन शक्ति के स्तर के समकक्ष हो जाएगा। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अपेक्षित विशेष प्रकार की योजना तैयार करके लागू की जानी चाहिए।

5.45. उच्चतर शिक्षा में सुधार लाने के लिए क्या तरीके अपनाए जाएं, इस सम्बन्ध में श्री गोपालास्वामी ने अपने सुझावों सहित एक विस्तृत नोट हमारे सामने रखा है। श्री गोपालास्वामी का यह प्रयास उक्त चारों उद्देश्यों की पूर्ति के लिए है। हमने श्री गोपालास्वामी के इस नोट को उनके सम्पूर्ण योगदान के कार्यवृत्त के रूप में रिपोर्ट के अन्त में प्रकाशित कर दिया है। विश्वविद्यालयों तथा उच्चतर शिक्षा की अन्य संस्थाओं द्वारा तैयार किए जाने वाले व्यक्तियों की संख्या का सम्बन्ध अपेक्षित जनशक्ति के साथ जोड़ने के बारे में हमारे सुझाव आगे दिए गए हैं।

5.46. इस सम्बन्ध में एक विशेष प्रस्ताव की चर्चा करना आवश्यक है। हमारे कुछ सहयोगियों का यह मत है कि उच्चतर शिक्षा पर पड़ने वाला दबाव काफी हल्का हो सकता है यदि केन्द्रीय तथा राज्य सरकारें अपनी सभी सेवाओं के प्रथम डिग्री प्राप्त व्यक्तियों की भर्ती करने के बजाय उच्चतर माध्यमिक शिक्षा स्तर पूरा करने वाले व्यक्तियों को भर्ती करें। उनकी राय यह भी है कि ऐसा करने से सेवाओं की कुशलता अपने आप बढ़ जाएगी। चूंकि इस सम्बन्ध में श्री गोपालास्वामी के नोट में विस्तृत विवेचना की गई है अतः इसके पक्ष में या इसकी गणना सम्बन्धी बारीकियों के बारे में अधिक कुछ कहने की आवश्यकता हम नहीं समझते। फिर भी इस प्रस्ताव पर ध्यानपूर्वक विचार कर लेने के बाद हम यह अनुभव करते है कि इसे कार्यान्वित करने में नीति सम्बन्धी बहुत से महत्वपूर्ण प्रश्न सामने आएंगे, लेकिन ये हमारे कार्य क्षेत्र की चीज है। अतः इन प्रस्तावों की तरफ सम्बन्धित अधिकारियों का ध्यान आकर्षित करना ही हम पर्याप्त समझते है।

5.47. **जनशक्ति नियोजन की मशीनरी** – अब हम जनशक्ति के प्राक्कलन तैयार करने, उन्हें समय-समय पर संशोधित करने और इनका सम्बन्ध शैक्षिक संस्थाओं के नामांकनों से जोड़ने के तरीकों के बारे में अपने सुझावों पर थोड़ा विचार करेंगे। इस उद्देश्य के लिए राष्ट्रीय तथा राज्य दोनों स्तरों पर उपयुक्त तंत्र की व्यवस्था करना आवश्यक है।

(1) **राष्ट्रीय** विकास के सभी क्षेत्रों में अपेक्षित जनशक्ति के प्राक्कलनों को **राष्ट्रीय** स्तर पर तैयार करने और उन्हें निरन्तर संशोधित करते रहने का दायित्व योजना आयोग का है। योजना आयोग इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए यदि आवश्यक समझे तो एक **जनशक्ति स्थायी समिति** की स्थापना कर सकता है। इस स्थायी समिति में प्रतिरक्षा, शिक्षा, खाद्यान्न तथा कृषि, स्वास्थ्य, गृह, श्रम तथा रोजगार मंत्रालयों तथा बड़े पैमाने पर जनशक्ति को आम ढंग के रोजगारों के लिए प्रशिक्षित करने वाली अन्य संस्थाओं का प्रतिनिधित्व होगा। यही नहीं, उक्त समिति में उच्चतर शिक्षा प्राप्त जनशक्ति को सबसे अधिक संख्या में तैयार करने वाले साधन, अर्थात्, विश्वविद्यालयों की ओर से विश्वविद्यालय अनुदान आयोग व अनुप्रयुक्त जनशक्ति अनुसंधान संस्थान के प्रतिनिधियों को भी शामिल करना चाहिए। इस समिति को राज्य स्तर पर जनशक्ति नियोजन करने वाले अधिकारियों से निकट सम्पर्क रखते हुए काम करना चाहिए। शिक्षा प्रणाली द्वारा तैयार व्यक्तियों की कुल संख्या तथा विशेषज्ञों की विभिन्न श्रेणियों के लिए जनशक्ति के पूर्वानुमान तैयार करना और समय-समय पर उन्हें संशोधित करना

इस समिति की मुख्य जिम्मेदारी है। इन पूर्वानुमानों को सर्व-साधारण की जानकारी तथा ऐसे व्यक्तियों के मार्ग-दर्शन के लिए प्रकाशित करना चाहिए जिन्हें शिक्षा सम्बन्धी सुविधाओं की व्यवस्था करने के सम्बन्ध में निर्णय करने होते हैं। जनशक्ति की समस्यों और शैक्षिक नियोजन से सम्बन्धित कठिनाइयों के बारे में इस समिति को भारत सरकार तथा राज्य सरकारों के मंत्रालयों को भी सलाह देनी चाहिए।

(2) **राज्य स्तर** पर भी जनशक्ति सम्बन्धी राज्य समितियाँ स्थापित की जानी चाहिए। ये राज्य समितियाँ केन्द्र में स्थिति जनशक्ति की स्थायी समिति के नमूने पर ही स्थापित की जानी चाहिए। राज्य समितियों व स्थायी समिति के उद्देश्य और द्रायित्व एक से होने चाहिए। जन-शक्ति के विकास के सम्बन्ध में राज्य स्तर पर योजनाएं तैयार करने का दायित्व राज्य समितियों का होगा। जैसे ही व्यावहारिक हो जिला स्तर पर ऐसी ही योजनाएं तैयार की जानी चाहिए। राज्य में स्थिति विश्वविद्यालय और इस समिति के बीच निकट सम्बन्ध रहना चाहिए।

इस तंत्र की व्यवस्था हो जाने के पश्चात् राष्ट्रीय तथा राज्य स्तरों पर और जहाँ कहीं आवश्यक और सम्भव हो (उदाहरणतः, प्राथमिक स्कूलों के अध्या-पकों के लिए) जिला स्तर पर भी अपेक्षित जनशक्ति के सर्वोत्तम प्राक्कलन उपलब्ध हो सकेंगे।

5.48. **जनशक्ति के प्राक्कलनों तथा शैक्षिक संस्थाओं द्वारा तैयार व्यक्तियों की संख्या के मध्य सम्बन्ध स्थापित करना**—शिक्षा प्रणाली में भरती हुए और तैयार किए गए व्यक्तियों की संख्या तथा इन प्राक्कलनों के बीच समन्वय करना या अपेक्षित जनशक्ति के अनुरूप शैक्षिक संस्थाओं में जो सुविधाएं जुटानी पड़ती हैं उनकी योजना बनाना एक दूसरी समस्या है। यह काम राष्ट्रीय तथा राज्य दोनों स्तरों पर करना होगा।

(1) **राष्ट्रीय स्तर** : राष्ट्रीय स्तर पर यह योजना केन्द्रीय सरकार द्वारा राज्यों के परामर्श से तैयार की जानी चाहिए। यह योजना राष्ट्रीय विकास के ऐसे सभी महत्वपूर्ण क्षेत्रों के लिए होनी चाहिए जहाँ प्रशिक्षित कर्म-चारियों की गतिशीलता बहुत अधिक हो या अधिक वांछ-नीय हो। साथ ही यह योजना ऐसे स्थानों के लिए भी होनी चाहिए जहां कर्मचारियों के प्रशिक्षण के लिए संस्थाएं स्थापित करना बहुत महंगा पड़ता हो या जहाँ कहीं ऐसी संस्थाओं के लिए अपेक्षित श्रेणी के अध्यापकों की कमी हो। इसी योजना में इंजीनियरी, कृषि तथा चिकित्सा-शिक्षा और उच्चतर शिक्षा के लिए अध्यापक तैयार करने की व्यवस्था भी सम्मिलित होनी चाहिए।

(2) **राज्य स्तर** : बाकी क्षेत्रों की योजना राज्य स्तर पर राज्य सरकारों द्वारा तैयार की जानी चाहिए। उच्च स्तर की समूची जनशक्ति को प्रशिक्षित करने वाले विश्व-विद्यालयों तथा ऐसे जिला शिक्षा अधिकारियों, **जिनके** अधीन विश्वविद्यालय स्तर से नीचे की शिक्षा दी जाती है, के मध्य निकट का सम्बन्ध स्थापित होना चाहिए। साथ ही निम्नलिखित ढंग का कार्यक्रम शुरू किया जाना चाहिए :

(क) माध्यमिक तथा उच्चतर शिक्षा (उन क्षेत्रों को छोड़कर जिनकी योजना केन्द्रीय स्तर पर तैयार की जाएगी) के लिए योजना राज्य स्तर पर तैयार की जानी चाहिए।

(ख) सभी क्षेत्रों में स्कूल तथा कालेज दोनों स्तरों पर व्यावसायिक शिक्षा का प्रसार करने के काम को प्राथमिकता देनी होगी और ऐसा करते समय अपेक्षित जनशक्ति को ध्यान में रखना होगा।

(ग) फिर भी सामान्य शिक्षा के लिए (जो कुछ क्षेत्रों में अर्द्ध-विकसित तथा अन्य क्षेत्रों की आवश्यकता से अधिक विकसित हैं) नामांकनों के सम्बन्ध में समान अवसरों की नीति अपनानी पड़ेगी। यों तो इस सम्बन्ध में प्रत्येक राज्य को अपनी परिस्थितियों के अनुसार निर्णय लेने होंगे लेकिन सामान्य रूप से निम्न सुझाव दिए जा सकते हैं :

(एक) ऐसे सभी क्षेत्रों में जहाँ शिक्षा का विस्तार 1966 के राष्ट्रीय औसत विस्तार से कम हुआ हो, शिक्षा के और अधिक विस्तार की दिशा में कार्रवाई की जानी चाहिए।

(दो) ऐसे सभी क्षेत्रों में जहां शिक्षा का विस्तार 1986 में संभावित राष्ट्रीय औसत विस्तार के बराबर जैसा हो, वहाँ एक प्रतिबन्धात्मक नीति अपनाई जानी चाहिए जब तक कि उसके न अपनाने के विशेष कारण हों।

(तीन) राज्य स्तर पर समय-समय पर कौन से लक्ष्य निर्धारित किए जाएं—यह सुझाने का काम भारत सरकार का है। राज्य सरकारें जिला स्तर पर उपयुक्त लक्ष्यों का निर्धारण स्वयं कर सकती हैं।

(चार) उच्चतर शिक्षा की योजना प्रत्येक राज्य के अनुसार बनाई जानी चाहिए और इसके लिए राज्य के सभी विश्वविद्यालयों से पूछ-ताछ की जानी चाहिए। सभी विश्वविद्यालयों से यह कहा जाए कि वे अपने सभी अध्यापन विभागों व सम्बद्ध कालेजों के लिए जो सुविधाएं जुटाना चाहते हैं उनके बारे मे और इन सुविधाओं द्वारा तैयार किए जाने वाले व्यक्तियों की संख्या के सम्बन्ध में पंचवर्षीय योचनाएं तैयार करें। इन योजनाओं के अपेक्षित जनशक्ति के अनुरूप होने पर इन्हें स्वीकृति मिल सकती है। विश्वयिद्यालयों से यह कहना चाहिए कि वे कालेजों को सम्यद्ध करने की मन्जूरी देने या अपने विभागों का विस्तार करने के मामले में इन योजनाओं के अनुसार ही कार्रवाई करें।

(पांच) जिला स्तर पर भी एक ऐसे अधिकारी की नियुक्ति आवश्यक है जो समूची स्कूल-शिक्षा की योजना बना सके। इस अधिकारी को यह योंजना केन्द्र तथा राज्य सरकार द्वारा दिए गए सामान्य आदेशों के अनुरूप तैयार करनी चाहिए। इस अधिकारी के काम में सहायता देने के लिए अपेक्षित जनशक्ति आदि का स्थानीय अध्ययन करना आवश्यक हो जाएगा।

सामान्य

5.49. **शिक्षा तथा रोजगार**—मौजूदा शिक्षा प्रणाली में शिक्षा और रोजगार के बीच कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है। यही नहीं शिक्षा प्रणाली द्वारा तैयार किए गए व्यक्तियों की संख्या तथा अपेक्षित जनशक्ति या नौकरी के अवसरों के बीच गहरा सम्बन्ध स्थापित करके शिक्षा तथा रोजगार के मध्य परोक्ष सम्बन्ध स्थापित करने की कोशिश भी नहीं की गई है। ऊपर बनाई गई सिफ़ारिशों से उक्त सम्बन्ध कम से कम परोक्ष रूप में स्थापित हो सकेगा। लेकिन यह भी विचारणीय है कि क्या शिक्षा और रोजगार के मध्य सीधा सम्बन्ध स्थापित करना सम्भव है ? एक अच्छी व्यवस्था के अनुसार प्रत्येक स्नातक को डिग्री या डिप्लोमा के साथ ही नियुक्ति प्रस्ताव भी दिया जाना चाहिए। नियुक्ति का यह प्रस्ताव छात्र के लिए बाध्य रूप में नहीं होना चाहिए बल्कि व्यवस्था तो ऐसी होनी चाहिए कि सरकार की स्वीकृति से छात्र कोई भी और नियुक्ति प्रस्ताव स्वीकार कर सके। इसके अलावा नियुक्ति की अवधि छोटी भी होनी चाहिए। यह अवधि एक से तीन वर्ष तक की हो सकती है ताकि छात्र को अनावश्यक कष्ट न हो। लेकिन यदि राज्य सरकार को इस प्रकार का नियुक्ति प्रस्ताव देने के लिए बाध्य किया जा सका तो यह इस बात की सबसे अधिक विश्वसनीय गारण्टी होगी कि शिक्षा प्रणाली द्वारा तैयार किए गए व्यक्तियों की संख्या तथा नौकरी के अवसरों या अपेक्षित जनशक्ति के मध्य गहरा सम्बन्ध हो गया है। साथ ही इस प्रकार छात्रों के अभिप्रेरण में सुधार होगा; उनकी शिक्षा सोद्देश्य बन जाएगी और वे यह महसूस करेंगे कि देश को उनकी आवश्यकता है और देश उनकी बाट जोह रहा हैं। हमारी राय में यह सुधार उच्चतर शिक्षा के स्तर को ऊंचा उठाने और अनुशासन सम्बन्धी समस्याओं को कम से कम करने की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण प्रयास होगा। फिर भी हम यह मानते हैं कि मौजूदा परिस्थितियों में यह सब करना सम्भव नहीं है क्योंकि आजकल विभिन्न क्षेत्रों में तैयार व्यक्तियों की संख्या सम्भावित रोजगार अवसरों के बहुत अधिक होती है। लेकिन कुछ ही वर्षों में इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए हमें प्रयत्न करने चाहिए और कम से कम ऐसे कुछ चुने हुए क्षेत्रों मे जहाँ तैयार व्यक्तियों की संख्या बहुत अधिक नहीं है, इस दिशा में प्रयत्न तुरन्त शुरू कर देने चाहिए। एक वर्ष तक पूर्णकालिक छात्र के रूप में कार्य करने की प्रणाली जो आजकल चिकित्सा स्नातको के लिए निर्धारित है इस दिशा में एक अच्छी शुरुआत है। फिर भी आजकल इस प्रणाली का यह कह कर कुछ विरोध होने लगा हैं कि इस प्रकार की बन्दिश के कारण अकेले चिकित्सा व्यवसाय के साथ भेदभाव किया जाता है। यदि इस प्रणाली को स्नातकों की एक-एक करके सभी श्रेणियों पर लागू कर दिया जाए और यदि सभी श्रेणियों में यह प्रणाली लागू हो जाए तो इसके प्रति जो विरोध है वह समाप्त हो जाएगा और प्रणाली की कुशलता भी बेहतर हो जाएगी।

5.50. **अपेक्षाकृत विस्तृत परिप्रेक्ष्य की आवश्यकता**—जीवन की महत्वपूर्ण समस्याओं को अलग-अलग परिप्रेक्ष्य में हल नहीं किया जा सकता। शिक्षा का नियोजन भी इस सामान्य नियम का अपवाद नहीं है और हमारी राय में इस समस्या का कोई सन्तोषजनक हल नव तक नहीं ढूंढ़ा जा सकता जब तक कि अधिक व्यापक प्रश्नों को न सुलझा लिया जाए। उदाहरण के तौर पर यदि जनशक्ति नियोजन इस दृष्टि में सफल बनाना हो कि प्रत्येक काम के लिए प्रशिक्षित व्यक्ति उपलब्ध हो तथा प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति के लिए उपयुक्त काम मिले तो इसके लिए विकास की एक समेकित योजना तैयार करनी होगी। विकास की इस योजना

के तीन भाग होंगे : परिवार नियोजन, आर्थिक विकास तथा शैक्षिक पुनर्निर्माण। फिलहाल श्रमिक-दलों में (अर्थात्, ऐसे लड़के और लड़कियाँ जो 16 वर्ष या इससे अधिक आयु के हो जाने पर किसी वर्ष विशेष में श्रमिक वर्ग में शामिल हो जाते हैं) कई गम्भीर दोष या व्यवधान हैं जिनमें से कुछ नीचे दिए रहे हैं :

— इसका आकार बहुत बड़ा है जो कि कुल जन-संख्या का लगभग 2 प्रतिशत बैठता है। इस बड़े आकार का कारण ऊंची जन्म दर है।

— इसकी शैक्षिक उपलब्धियाँ भी बहुत थोड़ी हैं। इस दल के लगभग 60 प्रतिशत व्यक्ति निरक्षर हैं और लगभग 40 प्रतिशत व्यक्ति ऐसे हैं जिन्होंने प्राथमिक शिक्षा पूरी करके स्थायी साक्षरता प्राप्त कर ली हैं। बाद के 40 प्रतिशत व्यक्तियों में से लगभग 25 प्रतिशत व्यक्ति ऐसे हैं जिन्होंने पांच वर्षों से अधिक समय तक स्कूलों में अध्ययन किया है और सम्भवतः प्राथमिक पाठ्यक्रम ही पूरा किया हैं। तीन प्रतिशत व्यक्ति ऐसे है जिन्होंने माध्यमिक स्कूल तक ही शिक्षा प्राप्त की है और केवल एक या दो प्रतिशत व्यक्ति ही स्नातक हैं। इन दलों में शिक्षित व्यक्तियों का अनुपात इस क़दर कम है कि इनके आधार पर आधुनिक समाज की व्यवस्था नहीं की जा सकती है। इससे भी अधिक बुरी बात तो यह है कि इन्हें जो थोड़ी बहुत शिक्षा दी भी गई हैं वह इतनी ज्यादा किताबी है कि औद्योगीकरण के विकासशील क्षेत्रों में महत्व-पूर्ण पदों पर नियुक्ति के लिए प्रशिक्षित व्यक्ति मिल ही नहीं पाते हैं।

— आर्थिक विकास की गति विशेषतः ग्रामीण क्षेत्रों में इतनी धीमी है कि इस दल के आधे व्यक्तियों को भी अर्जक्षित काम-धन्धे नहीं मिल पाते हैं।

5.51. यदि इस स्थिति में सुधार लाना है तो निम्न-लिखित उद्देश्यों को लेकर विकास की एक समेकित योजना तैयार करनी होगी :

— 10-15 वर्षों के एक नियोजन कार्यक्रम द्वारा जन्म-दर को घटाकर कम-से-कम आधा कर देना चाहिए।

— तेजी से इस प्रकार का आर्थिक विकास किया जाए, जिससे कि इस वर्ग में शामिल होने वाले प्रत्येक नवयुवक या युवती को काम-धन्धा मिल सके।

— नौजवान लड़के और लड़कियों को ऐसी शिक्षा दी जाए कि जिस विशेष कार्य पर उन्हें लगाया जाए उससे राष्ट्रीय विकास कार्यक्रम में वास्तविक योगदान मिले।

राष्ट्रीय, राज्य और यहाँ तक कि जिला स्तर पर भी ऐसी योजनाओं की आवश्यकता है। इन योजनाओं को तैयार करने और उन्हें क्रियान्वित करने का दायित्व सर-कार—केन्द्रीय, राज्य तथा स्थानीय—पर होगा। इन योज-नाओं के केवल विस्तृत परिप्रेक्ष्य द्वारा ही शैक्षिक वियोजन की समस्या सफलतापूर्वक हल की जा सकती हैं।

छठा अध्याय

शिक्षा के अवसरों के समकरण की ओर

एक. पढ़ाई की फीस और दूसरे निजी खर्च—(8) **शिक्षा में फीसें**; (11) **प्राथमिक स्तर पर फीसें**; (12) **माध्यमिक स्तर पर फीसें**; (14) **उच्चतर शिक्षा में फीसें**; (16) **दूसरे निजी खर्च ।**

दो. छात्रवृत्तियां—(18) **पुनर्गठन का आधार**; (19) **प्राथमिक स्तर पर छात्रवृत्तियां**; (20) **माध्यमिक स्तर पर छात्रवृत्तियां**; (24) **विश्वविद्यालय स्तर पर छात्रवृत्तियां**; (25) **छात्रवृत्तियों की संख्या**; (26) **छात्रवृत्तियों की धनराशि**; (27) **राष्ट्रीय छात्रवृत्तियां**; (28) **विश्वविद्यालय छात्रवृत्तियां**; (31) **व्यावसायिक शिक्षा में छात्रवृत्तियां**; (32) **प्रवेश**; (34) **विदेशों में अध्ययन के लिए छात्रवृत्तियां**; (35) **ऋण छात्रवृत्तियां**; (39) **छात्र सहायता से सम्बन्धित कुछ सामान्य समस्याएं**; (40) **छात्रवृत्तियों का वित्तीय दायित्व ।**

तीन. विकलांग बच्चे—(43) **कार्यक्रम का क्षेत्र और आकार**; (45) **शिक्षा की वर्तमान सुविधाएं**; (46) **काम करने की एक योजना ।**

चार. क्षेत्रीय असंतुलन—(50) **राज्यों में शैक्षिक विकास के असंतुलन**; (51) **जिलों में शैक्षिक विकास के असंतुलन ।**

पांच. लड़कियों की शिक्षा—(54) **लड़कियों की शिक्षा का विकास** (1950-51 **से** 1965-66 **तक**); (55) **सिफ़ारिशें ।**

छह. अनुसूचित आदिम जातियों की शिक्षा—(59) **समस्या का रूप**; (63) **वर्तमान स्थिति**; (64) **प्राथमिक शिक्षा**; (66) **माध्यमिक शिक्षा**; (68) **उच्चतर शिक्षा**; (69) **सामान्य ।**

6.01. शिक्षा का एक महत्वपूर्ण सामाजिक उद्देश्य है अवसर की समता प्रदान करना, जिससे पिछड़े तथा दलित वर्ग और व्यक्ति शिक्षा के द्वारा अपनी स्थिति सुधार सकें। जो भी समाज सामाजिक न्याय को अपना आदर्श मानता है, और आम आदमी की हालत सुधारने तथा सारे शिक्षा पाने योग्य व्यक्तियों को शिक्षा देने को उत्सुक है, उसे यह व्यवस्था करनी ही होगी कि जनता के सब वर्गों को अवसर की अधिकाधिक समता प्राप्त होती जाए। एक समतामूलक और मानवतामूलक समाज, जिसमें कमजोर का शोषण कम-से-कम हो, बनाने का यही एक सुनिश्चित साधन है ।

6.02. शिक्षा के अवसरों की विषमताएँ कई तरीकों से पैदा होती है । जिन स्थानों पर प्राथमिक, माध्यमिक या कालेज की शिक्षा देने वाली संस्थाएं नहीं है, वहां के बच्चों को वैसा अवसर नहीं मिल पाता जैसा उन बच्चों को मिलता है जिनकी बस्तियों में ये संस्थाएं होती हैं । इस विषमता को दूर करने के लिए, मितव्ययिता और दक्षता का ध्यान रखते हुए, अधिक से अधिक स्थानों पर ये शिक्षा संस्थाएं खोली जानी चाहिए, अधिक संख्या में छात्रवृत्तियां कायम की जानी चाहिए, आवश्यक छात्रावास बनाए जाने चाहिए या आने-जाने का सुविधाजनक प्रबंध किया जाना चाहिए । कभी-कभी इस बात की ओर पूरी तरह ध्यान नहीं दिया जाता कि इस समय देश के विभिन्न भागों में शैक्षिक विकासों के भारी असंतुलन मौजूद हैं : एक राज्य और दूसरे राज्य के शैक्षिक विकासों में बड़ा अन्तर दिखाई देता है और एक जिले तथा दूसरे जिले के विकास में और भी बड़ा फ़र्क नजर आता है । ये विषमताएं हटाने के लिए विचारपूर्वक ऐसी नीतियां अपनानी होंगी जिनसे विभिन्न जिलों में शिक्षा के अवसरों और शैक्षिक विकास की समता आ सके ।

6.03. शिक्षा के अवसरों की विषमता का एक और कारण यह है कि आबादी का बहुत बड़ा हिस्सा गरीब है और बहुत थोड़ा भाग अपेक्षया धनी । किसी शिक्षा संस्था के नजदीक रहते हुए भी गरीब परिवारों के बच्चों को वह अवसर नहीं मिलता जो धनी परिवारों के बच्चों को मिल जाता है । इन विषमताओं को दूर करने के लिए फीसें धीरे-धीरे हटा देनी चाहिए और पुस्तकें, लिखने का सामान तथा दिन का भोजन और स्कूल की वर्दियां भी मुफ्त देनी चाहिए । साथ ही, छात्रवृत्तियों की संख्या बहुत अधिक बढ़ाने का कार्यक्रम बनाना आवश्यक है ।

6.04. शिक्षा की विषमता का एक और बड़ा दुःसाध्य रूप स्कूलों और कालेजों के अपने-अपने भिन्न स्तरों के कारण पैदा होता है। जब किसी विश्वविद्यालय या वृत्तिक कालेज जैसी संस्था में प्रवेश उन अंकों के आधार पर दिया जाता है जो माध्यमिक स्तर की समाप्ति पर दी गई सार्वजनिक परीक्षा में प्राप्त हुए हों—और प्रवेश आम तौर से इसी आधार पर होता है—तब देहाती क्षेत्र के साधनहीन ग्रामीण स्कूल में पढ़े छात्र के लिए और किसी अच्छे शहरी स्कूल में पढ़े छात्र के लिए यह पैमाना एक-समान नहीं रहता। इस विषमता को, कम-से-कम कुछ अंश तक, दूर करने के निमित संस्थाओं में प्रवेश या छात्रवृत्तियों का विर्णय करने के लिए चुनाव के अधिक भरोसे योग्य और समतामूलक तरीके निकालना आवश्यक है।

6.05. घरेलू वातावरणों के भिन्न-भिन्न होने के कारण भी भारी विषमताएं पैदा होती हैं। देहात के घर या शहर की गन्दी बस्तियों में रहने वाले और अनपढ़ माता-पिता की सन्तान को शिक्षा पाने का वह अवसर नहीं मिलता जो उच्चतर शिक्षा पाए हुए माता-पिता के साथ रहने वाली उनकी सन्तान को मिलता है। जाहिर है कि ये विषमताएं दूर करना सबसे कठिन है और ये जनता के रहन-सहन के स्तर में आम सुधार होने के साथ-साथ ही दूर हो सकेंगी। पर स्कूलों में गरीब वर्गों के बच्चों पर अधिक ध्यान देने, और दिन की पढ़ाई के केन्द्र या बोर्डिंग हाउस (छात्रावास) खोलने की व्यवस्था करके ये विषमताएं दूर करने की दिशा में कुछ प्रगति की जा सकती है।

6.06. शैक्षिक विषमता के दो अन्य रूपों पर भी, जो खास भारतीय परिस्थितियों की उपज है, ध्यान देने की जरूरत है। पहला तो है शिक्षा के सब स्तरों पर और क्षेत्रों में लड़कों की और लड़कियों की शिक्षा में भारी अन्तर। दूसरा है उन्नत वर्गों और पिछड़े वर्गों—अनुसूचित जातियों और अनूसूचित आदिम जातियों—के बीच शैक्षिक विकास का अन्तर, जो पहले अन्तर जितना ही बड़ा, और कभी-कभी उससे भी अधिक बड़ा होता है। लोकतन्त्र की प्रगति के लिए और सामाजिक न्याय के आधार पर भी इन समूहों के बीच शिक्षा के अवसरों की समता कायम करने के लिए विशेष प्रयत्न करना परमावश्यक है।

6.07. जीवन के अन्य सब आदर्शों की तरह शिक्षा के अवसरों की भी पूरी समता कायम करना संभाव्यतः असाध्य ही है। पर ऐसे आम मामलों में, असली सवाल पूर्णलक्ष्य की सिद्धि का नहीं होता, ज्वलन्त आस्था और हार्दिक प्रयत्नों का होता है। किसी भी अच्छी शिक्षा प्रणाली में, महत्वपूर्ण विषमताएं पैदा करने वाले कारणों को पहचानने का, और उन्हें या तो पूरी तरह दूर या कम से कम न्यूनतम कर देने के लिए उचित कदम उठाने का प्रयत्न निरन्तर होता रहना चाहिए।

इस अध्याय में हम यह विवेचन करने का यत्न करेंगे कि अगले बीस वर्षों में भारतीय शिक्षा के इस नीति को अमल में लाने के लिए हमें क्या करना चाहिए।

पढ़ाई की फीस और दूसरे निजी खर्च

6.08. **शिक्षा में फीसें**—पढ़ाई की फीसों के बारे में प्रचलित धारणा में हमारे आधुनिक शैक्षिक इतिहास में कई परिवर्तन हो गये हैं। 1854 में, वुड्स एडुकेशन डिस्पैच में, जिसने वर्तमान शिक्षा प्रणाली की नींव डाली थी, इस बात पर बल दिया गया था कि सब शिक्षा-संस्थाओं में दो कारणों से कुछ-न-कुछ फीस अवश्य ली जाए: लोग मुफ्त मिलने वाली चीज को महत्वहीन समझते हैं; और फीस देने से यह पता चलता है कि छात्र या उसका अभिभावक शिक्षा के मामले में संजीदा है। कुछ ही समय बाद इस विचार के स्थान पर फीस को स्कूल चलाने के लिए आवश्यक धन प्राप्त करने का साधन समझा जाने लगा; और 1946-47 में शिक्षा पर हुए कुल खर्च का 25.6 प्रतिशत फीसों से प्राप्त हुआ था। तब से फीसों के द्वारा खर्चा जुटाने का चलन कम होता गया है और सरकार शिक्षा का खर्च अधिकाधिक मात्रा में उठाने लगी है। यह तथ्य सारणी 6.1 में दिये आँकड़ों से स्पष्ट होता है।

सारणी 6.1. फीसों से कुल आय

(1950-51 से 1965-66 तक)

	1950-51	1955-56	1960-61	1965-66 (अनुमानित)
	रु०	रु०	रु०	रु०
1. फीसों से कुल प्राप्तियाँ (000 में)	233,272	379,033	590,258	918,077
2. वृद्धि का सूचक अंक	100	162	253	394
3. कुल शिक्षाव्यय के प्रतिशत रूप में	20.4	20.0	17.1	15.3
4. कुल शिक्षाव्यय के प्रतिशत रूप में सरकारी विधियों का अंशदान	57.1 प्रथम योजना काल	61.8 द्वितीय योजना काल	68.0 तृतीय योजना काल	71.2 सब योजनाओं का काल
5. फीसों में वृद्धि की औसत वार्षिक दर	10.2	9.3	9.2	9.6

स्रोत: शिक्षा मंत्रालय, फार्म-ए, सिवाय 1965-66 के, जिसका अनुमान आयोग के सचिवालय में तैयार किया गया है।

6.09. फीसों की राशि अलग-अलग स्तर पर, और विभिन्न प्रकार की शिक्षा-संस्थाओं में अलग-अलग है। फीस देने वाले छात्रों का प्रतिशत, फीसों की दरें, फीस लेने वाली संस्था का प्रकार और जमा की गई फीस की कुल राशि—इन सबमें बड़े अन्तर दिखाई देते हैं। 1960-61 के लिए—इसके बाद के वर्षों के आँकड़े नहीं मिलते—इन बातों से सम्बन्धित विस्तृत आँकड़े सारणी 6.2 में दिये गए हैं।

सारणी 6.2 शिक्षा की फीसें

(1960-61)

स्तर-उद्देश्य	फीसों से जमा की गई कुल रुपए 000 में	फीस देने वाले छात्रों का प्रतिशत	प्रतिछात्र जमा की गई औसत वार्षिक फीस (रु०)	इस स्तर पर किए गए कुल व्यय फीसों का प्रतिशत अंश	सब स्तरों पर जमा फीस में इस स्तर पर की जमा की गई फीस का प्रतिशत
1. पूर्व-शालाएं	2,184	77.5	23.3	37.2	0.4
2. अवर प्राथमिक स्कूल	17,169	3.9	16.4	2.3	2.9
3. उच्चतर प्राथमिक स्कूल	31,677	16.4	18.2	7.4	5.4
4. माध्यमिक स्कूल	270,394	64.8	55.6	39.2	45.8
5. अध्यापक प्रशिक्षण स्कूल	1,856	20.0	84.2	5.3	0.3
6. व्यावसायिक शिक्षा (अध्यापक प्रशिक्षण को छोड़कर) के स्कूल	13,604	72.0	65.0	17.2	2.3
7. विशेष शिक्षा के स्कूल	1,378	10.0	8.1	4.3	0.2
8. विश्वविद्यालयों के अध्यापन-विभाग	52,934	90.1	—	37.4	9.0
9. अनुसंधान संस्थाएं	375	86.3	147.1	1.4	0.1
10. ज्ञान और विज्ञान के कालेज	101,384	84.9	172.7	48.5	17.2
11. अध्यापक प्रशिक्षण कालेज	2,761	34.7	156.9	12.8	0.5
12. व्यावसायिक शिक्षा (अध्यापक प्रशिक्षण को छोड़कर) के कालेज	30,346	87.9	240.5	22.2	5.1
13. विशेष शिक्षा के कालेज	1,447	52.4	109.0	15.9	0.2
सब संस्थाएं	527,510	18.7	—	20.7	89.4
14. शिक्षा बोर्ड	23,342	—	—	96.7	3.9
15. परोक्ष व्यय	39,406	—	—	1.7	6.7
कुल योग	590,258	—	—	17.1	100.0

स्रोत : शिक्षा मंत्रालय, फार्म—ए

आँकड़ों से पता चलता है कि पूर्व-प्राथमिक शिक्षा का अधिकतर खर्च फीसों से निकलता है।[1] अवर प्राथमिक स्तर पर फीसें प्रायः नहीं हैं; पर उच्चतर प्राथमिक स्तर की शिक्षा के व्यय में उनका काफी बड़ा हिस्सा है। माध्यमिक स्तर के शिक्षा व्यय में फीसों का बहुत महत्वपूर्ण भाग है—शिक्षाक्षेत्र में जमा की गई सारी फीसों का 45·8 प्रतिशत भाग, और माध्यमिक स्कूलों के कुल व्यय का 39·2 प्रतिशत भाग इस स्तर पर फीसों से प्राप्त होता

1. **देहाती बालवाड़ियों को छोड़कर, जिनके आंकड़े यहां नहीं जोड़े गए हैं, और जो सबकी सब निःशुल्क हैं।**

है।[1] व्यावसायिक स्कूलों, विश्वविद्यालयों, ज्ञान और विज्ञान के कालेजों तथा व्यावसाकि शिक्षा के कालेजों में भी मोटे तौर से यही स्थिति है; छात्रवृत्तियों की संख्या भी अपेक्षया कम है; प्रति छात्र फीस की मात्रा बड़ी है; और फीसों से प्राप्त आय उस-उस संस्था के खर्च के बहुत बड़े अंश की पूर्ति कर देती है।

6.10. फीसों को आय का साधन मानना उचित नहीं। ये कर लगाने का बड़ा प्रतिगामी रूप है, इनका बोझ समाज के अपेक्षया निर्धन लोगों के लिए अधिक कष्टकर होता है और ये ममता-विरोधी बल बन कर प्रभाव डालती हैं। सुझाव दिए गए हैं कि फीसें माता-पिता की आमदनी और परिवार के आकार के अनुसार कम-अधिक ली जाएं। पर प्रशासन की दृष्टि से ऐसा करना सुसाध्य नहीं है, और एक ऐसे देश में, जिसकी साठ प्रतिशत जनता की आमदनी 20 रु० प्रति व्यक्ति प्रतिमास से कम है, उनसे कोई खास प्राप्ति नहीं होगी। कुल मिलाकर यह कहीं अधिक अच्छा होगा कि अभीष्ट राशि फीसों के बजाए किसी दूसरे और अधिक साम्योचित तरीके से प्राप्त की जाए। इसलिए हम यह सिफ़ारिश करते है कि देश क्रमशः उस व्यवस्था की ओर बढ़े जिसमें सारी शिक्षा निःशुल्क होनी। पर इस कार्यक्रम को लागू करने की अवधि कुछ लम्बी रखनी होगी और पढ़ाई की फीस सबसे पहले प्राथमिक स्तर से, और फिर क्रमशः एक के बाद दूसरे स्तर से हटाई जाएगी। यहाँ यह तथ्य उल्लेखनीय है कि अधिकतर देशों में स्कूल स्तर की शिक्षा बिल्कुल निःशुल्क है और सोवियत संघ में प्राथमिक स्तर से अनुसंधान उपाधि तक सारी शिक्षा निःशुल्क है।

6·11. **प्राथमिक स्तर पर फीसें**—भारत के संविधान में उपबंध है कि 14 वर्ष तक की आयु के सब बच्चों को निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा दी जाए। इस निदेशक का 'अनिवार्य' वाला अंश लागू होने में लगभग 20 वर्ष लग जाएंगे पर 'निःशुल्क' वाले अंश पर जल्दी ही अमल होना चाहिए। इसलिए, हम सिफ़ारिश करते हैं कि प्राथमिक स्तर पर पढ़ाई की सब फीसें यथाशीघ्र, और अधिक अच्छा हो कि चौथी पंचवर्षीय योजना की समाप्ति से पहले ही, हटा दी जाएं। इसका मतलब यह हुआ कि सरकारी, स्थानीय प्राधिकरणों के और सहायता-प्राप्त निजी स्कूलों में पढ़ाई की कोई फीस न रहे और निजी स्कूलों को दिए जाने वाले सहायक अनुदानों में उपयुक्त वृद्धि कर दी जाए। पर फीस लेने वाले स्वतन्त्र निजी स्कूल, जो कोई सहायता नहीं पाते, चलते रह सकते हैं।[2]

6·12. **माध्यमिक स्तर पर फीसें**—माध्यमिक स्तर पर सवाल कुछ अधिक टेढ़ा है। इस स्तर पर फीस लगाने के पक्ष में दो दलीलें पेश की गई हैं। एक दलील यह है कि अब भी माध्यमिक शिक्षा का विस्तार, अधिकतर, समाज के मध्यवर्गीय और धनिक वर्गों तक ही पहुंचा है, और फीसें हटाने का लाभ असम्पन्न वर्ग को ही अधिक पहुंचेगा। दूसरी दलील यह है कि इस स्तर पर लागू फीसों से प्राप्त धन-राशि चूंकि काफी बड़ी है, इसलिए, फीसें हटाना न तो वित्तीय दृष्टि से सम्भव है और न वांछनीय ही। हम इनमें से किसी भी दलील से सहमत नहीं हो पाते। माध्यमिक स्कूलों में फीसें ली जाने के कारण समाज के निर्धनवर्ग के बहुत से बच्चे, खासकर लड़कियाँ, शिक्षा पाने से वंचित रह जाते हैं और अगले दो दशकों में मुख्यतः इन्हीं वर्गों में माध्यमिक शिक्षा का प्रसार होना है। इस प्रकार, माध्यमिक स्तर पर फीसें हटाने का अभिप्राय उन पिछड़े और दलित वर्गों को लाभ पहुंचाना ही है जिनकी बड़ी संख्या इस समय माध्यमिक शिक्षा में प्रवेश कर रही है। यह उल्लेख कर देना भी आवश्यक है कि माध्यमिक स्तर पर फीसों से प्राप्त हुई कुल राशि तीसरी पंचवर्षीय योजना की अवधि में बहुत घट गई है। मद्रास ने माध्यमिक स्तर की समाप्ति तक सारी शिक्षा निःशुल्क कर दी है। उत्तर प्रदेश और उड़ीसा ने लड़कियों के लिए इसे निःशुल्क कर दिया है। मैसूर ने, जिसने पहले छात्रवृत्तियों का एक बड़ा कार्यक्रम शुरू किया था, अब चालू वर्ष से मद्रास का अनुसरण करने का निश्चय किया है। ज्ञात हुआ है कि आन्ध्रप्रदेश भी यही नीति अपनाने की सोच रहा है। महाराष्ट्र और गुजरात इस समय कुल छात्रों में से लगभग 85 प्रतिशत को छात्रवृत्तियाँ देते हैं। पंजाब, मध्यप्रदेश और राजस्थान में यह लड़कियों के लिए कम से कम सारे सरकारी स्कूलों में तो निःशुल्क है ही, लड़कों के लिए भी, अधिकतर, निःशुल्क ही है। देश के सभी हिस्सों में यह अनुसूचित जातियों, अनुसूचित आदिम जातियों और कुछ दूसरे पिछड़े वर्गों के लिए सदा ही निःशुल्क रही है। यदि इन सब तथ्यों पर उचित ध्यान दिया जाए तो यह प्रतीत होता है कि माध्यमिक शिक्षा की निःशुल्क व्यवस्था केवल असम, बिहार, उड़ीसा (लड़कों के लिए) उत्तर प्रदेश (लड़कों के लिए) और पश्चिमी बंगाल में ही नहीं हो सकी है। इस प्रकार माध्यमिक शिक्षा के निःशुल्क करने या ऐसा करने से होने वाली आय की कमी पूरी करने के लिए आय के अन्य स्रोत

1. 1960-61 में इस स्तर पर छात्रवृत्तियों की संख्या बहुत ही कम थी, पर उसके बाद स्थिति काफ़ी सुधर गई है।
2. ब्योरे के लिए देखिए अध्याय दस।

तलाश करने की समस्या अब उतनी बड़ी नहीं है जितनी यह पांच वर्ष पहले थी।

6.13. आयोग में एक विचार यह था कि अवर माध्यमिक शिक्षा में पढ़ाई की फीस तो सामान्यतया लागू रहनी चाहिए पर सारे जरूरतमंद छात्रों को रिआयतें और छूटें देने की पर्याप्त और उपयुक्त व्यवस्था भी होनी चाहिए। लेकिन इस प्रश्न पर सावधानी से विचार करने के बाद हमारी राय यह बनी है कि इस व्यवस्था में कोई खास अच्छाई नहीं है, और इससे कई प्रशासनिक कठिनाइयाँ पैदा होंगी। इसलिए हम यह सिफ़ारिश करते हैं कि अवर माध्यमिक शिक्षा को सारी सरकारी, स्थानीय प्राधिकरणों की तथा सहायता-प्राप्त निजी संस्थाओं में, जहाँ तक सम्भव हो, जल्दी से जल्दी निःशुल्क कर देना चाहिए, और अच्छा हो कि पाँचवीं योजना की समाप्ति से पहले ही ऐसा कर दिया जाए। जहां इस सिफ़ारिश को एक साथ लागू करना संभव न हो, वहाँ भी सारी व्यावसायिक माध्यमिक शिक्षा को निःशुल्क करके इसका आरम्भ कर देना चाहिए; और जैसे-जैसे धन की सुविधा हो वैसे-वैसे यह सिद्धान्त लड़कियों और गरीब बच्चों की शिक्षा पर लागू करते जाना चाहिए। परन्तु उच्चतर माध्यमिक शिक्षा में फीसों का सवाल विश्वविद्यालय शिक्षा की फीसों के अनुसार हल करना चाहिए जिसके बारे में हमारे प्रस्ताव पैरा 6·14 और 6·15 में दिए गए हैं।

6.14. **उच्चतर शिक्षा में फीसें**—इस समय उच्चतर शिक्षा में फीसों का महत्वपूर्ण स्थान है। सारणी 6.1 से पता चलता है कि 1960-61 में विश्वविद्यालयों में कुल व्यय का 37·4 प्रतिशत, सामान्य शिक्षा के कालेजों में 48·5 प्रतिशत, व्यावसायिक शिक्षा (अध्यापक प्रशिक्षण को छोड़कर) के कालेजों में 22.2 प्रतिशत, विशेष शिक्षा के कालेजों में 15·9 प्रतिशत, और अध्यापक प्रशिक्षण के कालिजों में 12·8 प्रतिशत फीसों से प्राप्त हुआ था। सारी उच्चतर शिक्षा को मिलाकर देखें तो उसमें कुल व्यय का 37.3 प्रतिशत फीसों से प्राप्त हुआ। यह अनुपात शिक्षा की दृष्टि से आगे बढ़े हुए और अधिक धनी देशों में मौजूद अनुपात से भी ऊंचा है। उदाहरण के लिए, संयुक्त राज्य अमरीका में उच्चतर शिक्षा की संस्थाओं की आय का केवल लगभग 25 प्रतिशत फीसों से प्राप्त होता है और ब्रिटेन में यह एक-बटा-आठ से भी कम होता हैं।

6·15. हम उच्चतर शिक्षा में सारी फीसें एकदम हटाने का प्रतिपादन नहीं करते, यद्यपि शिक्षा-नीति का अन्तिम लक्ष्य यही होना चाहिए। इस कार्यक्रम को लागू करने से पहले सारी स्कूल शिक्षा निःशुल्क करने का कार्यक्रम पूरा किया जाना चाहिए और माध्यमिक शिक्षा में पढ़ाई की फीसें हटाई जानी चाहिए। इस समय, जबकि उच्चतर शिक्षा का अधिकतर लाभ आबादी के ऊपर के पांच प्रतिशत लोग ही उठा रहे हैं, फीसें लगाने और साथ ही सारे जरूरतमंद और योग्य छात्रों के लिए बड़ी संख्या में छात्रवृत्तियों की व्यवस्था करने की नीति सारी फीसें हटा देने की नीति से अधिक अच्छी सिद्ध होगी। इसलिए, हम सिफ़ारिश करते है कि अगले दस वर्ष तक उच्चतर माध्यमिक और विश्वविद्यालय की शिक्षा में फीसों के संबंध में मुख्य प्रयत्न यह होना चाहिए कि सारे जरूरतमंद और योग्य छात्रों को निःशुल्क शिक्षा मिलने की व्यवस्था का विस्तार किया जाए। शुरू में छात्रवृत्तियों की संख्या इतनी बढ़ा देनी चाहिए कि कुल दाखिल छात्रों में से कम से कम 30 प्रतिशत को वे दी जा सकें।[1] हम उन नीतियों के भी सर्वत्र अपनाये जाने की सिफ़ारिश करते हैं, जो कुछ क्षेत्रों में पिछड़े हुए वर्गों को निःशुल्क उच्चतर शिक्षा देने के लिए अपनाई गई हैं, यथा, अनुसूचित जातियों, अनुसूचित आदिमजातियों, लड़कियों, या एक विनिर्दिष्ट राशि से कम आय वाले लोगों के बच्चों के लिए छात्रवृत्तियों की व्यवस्था। यह व्यवस्था समाज के उन निर्धन और पिछड़े वर्गों के छात्रों की सामाजिक मांग अच्छी तरह पूरी कर देगी जो इस समय माध्यमिक स्कूलों में हैं और उच्चतर शिक्षा की संस्थाओं में प्रवेश मांगने के लिए तेजी से आगे बढ़ रहे हैं। दस वर्ष बाद इस प्रश्न पर पुनर्विचार किया जा सकता है।

6.16. **दूसरे निजी खर्च**—शिक्षा में पाठ्यपुस्तकों, लिखने आदि की सामग्री, सह-पाठ्यक्रमीय क्रियाकलाप आदि के लिए आवश्यक निजी खर्चे हाल के वर्षों में बहुत बढ़ गये हैं और बहुत बार ये पढ़ाई की फीसों से कई गुने होते हैं। सच पूछिए तो जिस वित्तीय बोझ के बढ़ जाने से आज अ-साम्यमूलक प्रवृत्तियां पैदा हो रही हैं, वह पढ़ाई की फीसों का उतना नहीं जितना इन दूसरे खर्चों का है। आयोग ने स्कूल स्तर पर इन परोक्ष खर्चों की लगभग मात्रा पता लगाने के लिए एक छोटी-सी जांच-पड़ताल की थी। इस काम के लिए हमने प्रत्येक राज्य और संघीय क्षेत्र में थोड़े से स्कूल छांटे जिनमें इन खर्चों का स्तर अलग अलग था और उनसे विस्तृत जानकारी इकठ्ठी की। इसके परिणाम सारणी 6·3 में प्रस्तुत हैं।

1. **इस समय उच्चतर शिक्षा की संस्थाओं में कुल छात्र संख्या में से छात्रवृत्ति पाने वालों का अनुपात बहुत थोड़ा है—विश्वविद्यालय में 14.6 प्रतिशत, सामान्य शिक्षा के कालेजों में 15.1 प्रतिशत, व्यावसायिक शिक्षा के कालेजों में 12.1 प्रतिशत और विशेष शिक्षा के कालेजों में 47.6 प्रतिशत छात्र निःशुल्क शिक्षा पाते हैं (1960-61 के आंकड़े)।**

सारणी 6.3. शिक्षा के निजी खर्च वार्षिक (1965-66) रुपए

कक्षा	शिक्षा के कुल निजी खर्चे					
	न्यूनतम			अधिकतम		
	पाठ्यपुस्तकें	लिखने आदि का सामान	योग	पाठ्यपुस्तकें	लिखने आदि का सामान	योग
1.	0.50	0.60	1.10	17.80	12.80	30.60
2.	0.54	0.60	1.14	16.60	12.80	29.40
3.	0.69	2.11	2.80	28.51	8.33	36.84
4.	2.10	3.26	5.36	38.85	14.50	53.35
5.	3.91	2.40	6.31	36.10	14.50	50.60
6.	5.85	4.63	10.48	43.24	60.00	103.24
7.	7.29	4.88	12.17	47.09	75.00	112.09
8.	9.30	6.95	16.25	169.68	21.40	191.08
9.	11.15	7.51	18.66	192.55	70.00	262.55
10.	4.50	14.00	18.50	216.35	70.00	286.35
11.	13.75	11.25	25.00	189.65	70.00	259.65

स्रोत : स्कूलों द्वारा दी गई जानकारी। इस जांच के ब्यौरे के लिए पूरक जिल्द एक, भाग पांच में इस विषय पर लेख देखिए।

6·17. सारणी से प्रकट होता है कि माता-पिता को इस मद में बहुत भारी खर्च करना पड़ता है। परिणाम यह है कि स्कूल वर्ष के आरंभ में बहुत थोड़े बच्चों के पास पूरी पुस्तकें होती हैं; अधिकतर बच्चे स्कूल वर्ष के मध्य में या अन्तिम दिनों में ही पुस्तकें ले पाते हैं। बहुत बार ऐसा होता है कि कुछ बच्चों के पास कोई भी पुस्तक नहीं होती। इससे पढ़ाई के स्तर पर बड़ा बुरा असर पड़ता है। इसलिए हम सिफ़ारिश करते हैं कि शिक्षा के ये निजी खर्च घटाने के लिए गंभीरता से यत्न किया जाए। कई बार ये बिना विचारे, और शिक्षा की आवश्यकता के स्थान पर ऊपरी दिखावे के चक्कर में बढ़ा दिए जाते हैं। साथ ही ऐसा कार्यक्रम तुरंत बनाया जाना चाहिए जिसमें सब (या कम से कम जरूरतमंद और योग्य) छात्रों को, अगर स्टेशनरी नहीं, तो भी, कम-से-कम पाठ्यपुस्तकें तो मुफ्त (या रियायती दर पर) देने की व्यवस्था हो। यह शिक्षा के तात्विक या गुणात्मक सुधार के लिए महत्वपूर्ण कार्यक्रम होगा। कहने की जरूरत नहीं कि इसको कार्यान्वित करने की रीति शिक्षा के हर स्तर पर अलग-अलग होगी :

(1) **प्राथमिक स्तर**—प्राथमिक स्तर पर पाठ्य-पुस्तकें मुफ्त देने का कार्यक्रम तुरंत आरंभ कर देना चाहिए। इसे यथासंभव शीघ्र उच्चतर प्राथमिक स्तर तक भी बढ़ा देना चाहिए। स्कूल में एक आयोजन करके नए दाखिल होनेवाले बच्चों को पुस्तकें भेंट की जानी चाहिएं। अन्य छात्रोंको वार्षिक परीक्षा के परिणाम घोषित होते ही और लम्बी छुट्टियां शुरू होने से पहले अगले वर्ष की सारी पुस्तकें भेंट की जानी चाहिए, जिससे वे लम्बी छुट्टियों का आगे की पढ़ाई में कुछ उपयोग कर सकें।

(2) **माध्यमिक और विश्वविद्यालय स्तर**—माध्यमिक स्कूलों और उच्चतर शिक्षा की संस्थाओं में पुस्तक-बैंकों[1] का कार्यक्रम बनाना चाहिए। इसके अतिरिक्त, इन संस्थाओं के पुस्तकालयों में सब पाठ्य-पुस्तकों की बहुत-बहुत प्रतियां होनी चाहिए ताकि हर छात्र पुस्तकालय या वाचनालय में उन्हें देख सके। राज्यों के शिक्षा विभागों के पास एक ऐसी विधि होनी चाहिए जिसमें से धन देकर वे माध्यमिक स्कूलों में पुस्तक-बैंकों की स्थापना को बढ़ावा दे सकें; और ऐसा ही एक कोष विश्वविद्यालय अनुदान

1. **ब्योरे के लिए पूरक जिल्द एक, भाग पांच, में इस विषय पर विशेष लेख देखिए।**

आयोग के पास होना चाहिए जिससे वह विश्वविद्यालयों और सम्बद्ध कालेजों में पुस्तक-बैंक गठित करा सके। यह कार्यक्रम इतने बड़े पैमाने पर होना चाहिए कि माध्यमिक स्कूलों या उच्चतर शिक्षा की संस्थाओं के हर जरूरतमंद छात्र को सारी आवश्यक पाठ्यपुस्तकें स्कूल वर्ष के आरंभ में मिल सकें या वह पुस्तकालय में उन्हें देख सकें।

(3) **पुस्तकें खरीदने के लिए अनुदान**—अधिक प्रभावशाली छात्रों को पुस्तकें खरीदने के लिए अनुदान दिए जाने चाहिए। हम सिफ़ारिश करते हैं कि शिक्षा-संस्थाओं के दस प्रतिशत से अधिक छात्रों को (आवश्यक हो तो साधनों की जांच करके) पुस्तकें खरीदने के लिए थोड़ा वार्षिक अनुदान मिलना चाहिए जो जरूरी नहीं कि पाठ्यपुस्तकें ही हों। यह योजना विश्वविद्यालयों में आरंभ की जानी चाहिए और बाद में इसे सम्बद्ध कालेजों और माध्यमिक स्कूलों पर लागू करना चाहिए।

छात्रवृत्तियां

6.18. **पुनर्गठन का आधार**—पिछले कुछ वर्षों में छात्रवृत्तियों के कार्यक्रम पर बड़ा बल दिया गया है। छात्रवृत्तियों पर कुल व्यय, जो 1950-51 में 3·45 करोड़ रुपए या कुल शिक्षा व्यय का 3 प्रतिशत था, 1965-66 में बढ़कर लगभग 42 करोड़ रुपए या कुल शिक्षा व्यय का 7 प्रतिशत हो गया। पर स्थिति का ध्यान से अध्ययन करने से पता चलता है कि वर्तमान छात्रवृत्ति-कार्यक्रम को बदल कर निम्नलिखित दिशाओं में मोड़ना और बढ़ाना पड़ेगा :

— छात्रवृत्ति कार्यक्रम एक अटूट प्रक्रम है और इसे शिक्षा के सब स्तरों पर गठित करना होगा। इस समय उच्चतर शिक्षा और व्यवसायिक पाठ्यक्रमों में बहुत कुछ सुसंगठित कार्यक्रम मौजूद है, यद्यपि यहां भी अधिक विस्तार की आवश्यकता है। पर चूंकि स्कूल स्तर पर पर्याप्त कार्यक्रम नहीं है, इसलिए बहुत से प्रतिभाशाली छात्र विश्वविद्यालय के प्रवेशद्वार पर पहुंचने से पहले ही पढ़ाई छोड़ बैठते हैं। इस कारण उच्चतर शिक्षा में छात्रवृत्तियों की व्यवस्था उतनी सहायक नहीं सिद्ध होती जितनी यह वैसे हो सकती थी।

— छात्रवृत्तियां पाने के पात्र छांटने का कोई अच्छा तरीका नहीं निकाला जा सका है। इस समय अधिकतर छात्रवृत्तियां कुछ सार्वजनिक परीक्षाओं में प्राप्त अंकों के आधार पर दी जाती हैं; और चूंकि ये अच्छे खाते-पीते घरों या अच्छे शहरी स्कूलों के छात्रों को अधिक अनुकूल पड़ती हैं, इसलिए छात्रवृत्तियां उन छात्रों के लिए वस्तुतः सहायक नहीं होतीं जो प्रतिभाशाली निकल सकते हैं पर जिनकी तैयारी, अपनी कोई गलती न होते हुए भी, अपर्याप्त रही है। इसलिए छात्रवृत्तियों के पात्रों का निर्णय करने के लिए कोई अधिक उचित और सामाजिक समता को बढ़ाने वाला आधार ढूंढ़ना होगा।

— सर्वोत्तम परिणाम प्राप्त करने के लिए, छात्रवृत्ति कार्यक्रम के साथ एक स्थान दिलाने का कार्यक्रम भी होना चाहिए जिसका उद्देश्य यह हो कि छात्रवृत्ति पाने वालों को अच्छी संस्थाओं में निश्चित रूप से स्थान दिलाया जा सके और एक अगला पूरक कार्यक्रम यह होना चाहिए कि काफी ऊँचे मानदण्ड रखने वाली पर्याप्त संस्थाएं सब स्तरों पर निश्चित रूप से उपलब्ध हो सकें।

— शिक्षा के एक स्तर या उप-स्तर से दूसरे पर जाने के सब मौकों पर सावधानी से नज़र रखनी होगी ताकि यह बात निश्चित हो सके कि सारे अपेक्षया योग्य छात्र (शिक्षा के स्तर के अनुसार कुल छात्रों में से ऊपर के कम से कम 5-15 प्रतिशत) अपनी पढ़ाई आगे अवश्य जारी रखें।

— इस कार्यक्रम के लिए पर्याप्त प्रशासन-व्यवस्था करनी होगी और प्रक्रिया सम्बन्धी देरियों तथा उन दूसरी कठिनाईयों से बचने के लिए जो इस समय अनुभव की जाती हैं, कार्यक्रम का संचालन पूरी तरह विकेन्द्रित करना होगा।

इन मोटे सिद्धान्तों के अनुसार हम नीचे यह बता रहे हैं कि शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर छात्रवृत्ति कार्यक्रम किस तरीके से पुनर्गठित होने चाहिए।

6.19. **प्राथमिक स्तर पर छात्रवृत्तियाँ**—ऐसे कदम उठाये जाने चाहिए जिनसे यह निश्चित हो जाए कि अवर प्राथमिक स्तर (कक्षा चार या पांच) के अन्त में कोई भी 'होनहार' बालक स्कूल न होने या सामाजिक-आर्थिक कठिनाइयों के कारण अपनी पढ़ाई आगे जारी रखने से न रुके; और इसके लिए हर जरूरमंद छात्र को

पर्याप्त राशि की छात्रवृत्ति देने की व्यवस्था करनी होगी। इसके अतिरिक्त, एक स्थान दिलाने का कार्यक्रम बनाना और यह कोशिश करना भी वांछनीय है कि अधिक प्रतिभावना छात्रों को, जहाँ तक संभव हो वहाँ तक, इस स्तर के अच्छे स्कूलों में स्थान दिलाया जा सके। हमने यह कल्पना की हैं कि 1975-76 तक उच्चतर प्राथमिक स्तर पर स्कूल छात्रों के 2.5 प्रतिशत के लिए, और 1985-86 तक कुल छात्रों के 5 प्रतिशत के लिए छात्रवृत्तियों की व्यवस्था करने का लक्ष्य होना चाहिए।

6.20. **माध्यमिक स्तर पर छात्रवृत्तियाँ**— माध्यमिक स्तर पर दी जाने वाली छात्रवृत्तियाँ की योजनाओं का मुख्य उद्देश्य यह सुनिश्चित करना होगा कि प्राथमिक स्कूलों के बच्चों में से श्रेष्ठतम 15 प्रतिशत बच्चे माध्यमिक स्कूलों में पहुंच जाएँ और किसी भी हालत में गरीबी के कारण वे उच्चतर शिक्षा से वंचित न रहें। इस सिलसिले में हम निम्न ठोस सुझाव देना चाहते हैं :

(1) एक ज़िले या ब्लाक के आधार पर छात्रवृत्तियाँ प्रदान करने की वर्तमान प्रणाली उन छात्रों के लिए अनुचित और अन्यायपूर्ण है जिन्होंने घटिया स्कूलों में शिक्षा ग्रहण की है और इसके परिणाम स्वरूप पाठों आदि की तैयारी में घटिया स्तर प्रदर्शित किया है, जबकि इसमें उनका अपना कोई दोष नहीं है। जहां एक और यह वर्तमान प्रणाली लागू रहनी चाहिए तथा इसका विस्तार भी होना चाहिए, वहाँ दूसरी ओर इसके साथ-ही-साथ हम यह सिफ़ारिश करते हैं कि इसके सम्पूरक रूप में प्रत्येक स्कूल के सातवीं या आठवीं कक्षा के 10 प्रतिशत छात्रों को अपनी पढ़ाई आगे जारी रखने के लिए आवश्यक और यथोचित सहायता दी जानी चाहिए। इस समूची व्यवस्था का लक्ष्य 1975-76 तक कुल नामांकित छात्रों में से 5 प्रतिशत और 1985-86 तक कुल छात्रों में नामांकित से 10 प्रतिशत छात्रों को छात्रवृत्तियाँ प्रदान करना होना चाहिए।

(2) परिस्थिति की मांग को पूरा करने के लिए वर्तमान छात्रवृत्तियोजना का बहुत अधिक विस्तार करना होगा। जहाँ आवश्यक हो वहाँ छात्रावास की सुविधाएँ प्रदान की जानी चाहिए।

(3) आरम्भ में प्रत्येक सामुदायिक विकास खण्ड में एक अच्छे माध्यमिक स्कूल (जिसमें छात्रावास की सुविधाएँ भी उपलब्ध हों) का विकास करना चाहिए और लगभग 10 प्रतिशत शहरी स्कूलों को भी इसी प्रकार विकसित किया जाना चाहिए। इन स्कूलों में प्रवेश पाने का आधार मुख्यतः छात्र की योग्यता और प्रतिभा होना चाहिए तथा इन स्कूलों में प्रवेश पाने में मेधावी और छात्रवृत्तियाँ पाने वाले छात्रों की सहायतार्थ इसी स्तर पर एक समुचित स्थान निर्धारण कार्यक्रम विकसित किया जाना चाहिए। आजकल ऐसा कोई कार्यक्रम नहीं है।

6.21. इस व्यापक और सर्वतोमुखी कार्यक्रम को विकसित करने का दायित्व पूरी तरह शिक्षा विभागों के कंधों पर डालना चाहिए जो विश्वविद्यालयों के सहयोग से यह काम पूरा करें। प्रतिभाशाली छात्रों की खोज और उनकी योग्यता को विकसित करने की दृष्टि से माध्यमिक स्तर सर्वाधिक महत्वपूर्ण और निर्णायक स्तर है, लेकिन दुर्भाग्यवश सच्चाई यह है कि इस स्तर पर छात्रवृत्तियाँ देने की योजना आजकल बहुत कमज़ोर है। इसलिए इसके विकास के लिए सर्वाधिक प्राथमिकता देना आवश्यक है।

6.22. योग्य छात्रों को पहचानने के मार्ग में आने वाली विकट कठिनाइयों और ऐसा करने की किसी विश्वसनीय कसौटी या तरीकों के अभाव से हम भली भाँति परिचित हैं। इसलिए हम सिफ़ारिश करते हैं कि इस स्तर पर प्रतिभाशाली व योग्य छात्रों को पहचानने के लिए कोई समुचित तरीका खोज निकालने की दिशा में तत्काल कदम उठाए जाने चाहिए। प्रत्येक राज्य में प्राथमिक स्तर (सातवीं या आठवीं कक्षा) और अवर माध्यमिक स्तर (दसवीं कक्षा) के भी अन्त में एक 'परख-सेवा' का संगठन करना चाहिए और इस संगठन का सहयोग और सहायता सभी स्कूलों को मिलनी चाहिए। इस सेवा-संगठन का विस्तृत उल्लेख 'राज्य मूल्यांकन संगठन' नामक एक नए निकाय के अन्तर्गत अन्यत्र[1] किया गया है। अगर इसका समुचित ढंग से विकास किया जाए तो यह सेवा छात्रों और शिक्षा-संस्थाओं के लिए अत्यधिक सहायक हो सकती है। इससे वे अपने जिले, राज्य और

1. अध्याय दस।

यहाँ तक की राष्ट्र की औसत योग्यता और उपलब्धि के स्तर की तुलना में अपने कार्य-निष्पादन की स्थिति के सम्बन्ध में कुछ जानकारी प्राप्त कर सकेंगे। ऐसी जानकारियां छात्रों और अभिभावकों के लिए तो उपयोगी होंगी ही, इसके अतिरिक्त ये छात्रवृत्तियाँ प्रदान करते समय शिक्षा-विभागों के लिए भी अत्यधिक सहायक सिद्ध होंगी।

6.23. दो बातें यहां और उल्लेखनीय हैं। पहली तो यह कि प्रत्येक शिक्षा-संस्था को एक ऐसा कार्यक्रम विकसित करने के लिए सहायता दी जानी चाहिए जिससे वह अपने छात्रों में से योग्य और प्रतिभाशाली छात्रों को पहचान और छांट सके तथा उन्हें उनकी आवश्यकताओं के अनुकूल व उनके विकास में सहायक विशेष शिक्षण कार्यक्रम प्रदान कर सके। ये कार्यक्रम, जिनका स्वरूप स्तरों और शिक्षा-संस्थाओं के विभिन्न प्रकारों के अनुसार पृथक्-पृथक् होगा, अत्यधिक सावधानी से तैयार किए जाएंगे और इनके कार्यान्वयन के लिए शिक्षकों को प्रशिक्षित करना होगा। दूसरे इन सभी कार्यक्रमों में 'प्रतिभा' का परम्परागत अर्थ ही नहीं समझना चाहिए, बल्कि गणित की, शब्दों की, कला की और प्रयोगों की योग्यता को भी इसके अन्तर्गत समझना चाहिए। समानता के आधार पर सभी शिक्षा स्तरों के सभी प्रतिभाशाली छात्रों को ये छात्रवृत्तियां और प्रोत्साहन उपलब्ध होने चाहिए।

6.24. **विश्वविद्यालय-स्तर पर छात्रवृत्तियाँ**—उच्चतर-शिक्षा के स्तर पर छात्रवृत्तियाँ प्रदान करने की योजना अत्यधिक महत्वपूर्ण है। वर्तमान शिक्षावृत्ति योजना का अधिकांश भाग इस क्षेत्र को प्रदान किया जाता है और इसका भी एक बहुत बड़ा भाग भारत सरकार द्वारा दिया जाता है। हमारे विचार से इसमें निम्नांकित रूपरेखाओं के आधार पर और भी विकास करना आवश्यक है :

— छात्रवृत्तियों, छात्रों को दी जाने वाली सहायता के अन्य रूपों और छात्रवृत्तियों की राशि में वृद्धि;

— कार्यविधि में होने वाले तथा अन्य प्रकार के विलम्बों में कमी;

— छात्रवृत्ति पाने वाले छात्रों को छांटने के तरीकों में सुधार;

— विदेश में जाकर शिक्षा ग्रहण करने वाले छात्रों के लिए छात्रवृत्तियों की व्यवस्था; और

— ऋण के रूप में दी जाने वाली छात्रवृत्तियों की विस्तृत योजना।

इनके तथा इनसे सम्बन्धित अन्य विषयों के सम्बन्ध में हमारी सिफ़ारिशें निम्नांकित हैं :

6.25. **छात्रवृत्तियों की संख्या**—हमारे विचार से विश्वविद्यालय स्तर पर दी जाने वाली छात्रवृत्तियों का अन्तिम लक्ष्य, जिसे प्राप्त करने का हमें यत्न करना चाहिए, निम्नांकित हैं :

(1) पूर्व-स्नातक अवस्था में कुल छात्रों में से 1976 तक 15 प्रतिशत और 1986 तक 25 प्रतिशत छात्रों को ये छात्रवृत्तियां उपलब्ध होनी चाहिए।

(2) स्नातकोत्तर अवस्था में कुल छात्रों में से 1976 तक 25 प्रतिशत और 1986 तक 50 प्रतिशत छात्रों को ये छात्रवृत्तियां उपलब्ध होनी चाहिए।

ये लक्ष्य राष्ट्रीय औसत के रूप में किए जाने चाहिए और छात्रवृत्ति-नीति का यह ध्येय होना चाहिए कि ये छात्रवृत्तियां विभिन्न शिक्षा संस्थाओं और विभिन्न संकायों को कमो-बेश दी जाएं। उदाहरणार्थ, इन छात्रवृत्तियों का काफी बड़ा भाग विश्वविद्यालय के विभिन्न विभागों और कालेजों को उपलब्ध होना चाहिए। सम्बद्ध कालेजों को दिया जाने वाला छात्रवृत्तियों का भाग सामान्यतः कम होना चाहिए, लेकिन अच्छे कालेजों के लिए यह अनुपात अपेक्षाकृत अधिक और यहां तक कि विश्वविद्यालयों को दिए जाने वाले अनुपात के बराबर भी हो सकता है। इसी प्रकार विधि-शिक्षा की तुलना में विज्ञान-पाठ्क्रमों में अधिक छात्रवृत्तियाँ दी जानी चाहिएं। प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे अध्यापकों के लिए भी छात्रवृत्तियां प्रदान करने की नीति अधिक उदार की जा सकती है।

6.26. **छात्रवृत्तियों की धनराशि**—आजकल किसी स्तर विशेष पर दी जाने वाली छात्रवृत्तियों की राशि सभी छात्रों के लिए समान है। उदाहरण के लिए, मैट्रिकोत्तर छात्रवृत्ति पहले वर्ष में 50 रु० प्रतिमास है और इसकी राशि उस छात्र के लिए भी इतनी ही हैं जो अपने माता-पिता के साथ रहता है और अपने ही कस्बे या नगर के कालिज में पढ़ता है, और उसके लिए भी, जिसे किसी कालिज या विश्वविद्यालय में दाखिल होने के लिए अपने परिवार को छोड़कर होस्टल में रहना पड़ता है। इसी प्रकार, केन्द्रीय छात्रवृत्ति की राशि देश के सब भागों के

लिए साधारणतया एक है, चाहे वह स्थान दिल्ली जैसा कोई महानगर हो जो किसी भी नगर से अधिक महंगा है। यह जानने के लिए भी कोई जांच नहीं की जाती कि एक छात्र को होस्टलों में या पुस्तकें, उपस्कर आदि जैसी वस्तुएं खरीदने पर कितना खर्च करना पड़ता है। खर्चे कम रखने के लिए कोई गंभीर प्रयत्न नहीं किया जाता। हमने इस समस्या पर सावधानी से विचार किया है और हम निम्नलिखित सिफारिशें करते हैं :

(1) साधारणतया दो प्रकार की छात्रवृत्तियों की आवश्यकता होगी :

— उन लोगों के लिए जिन्हें होस्टलों में रहना है। इनसे शिक्षा के सब प्रत्यक्ष और परोक्ष खर्चे (अर्थात् पढ़ाई की फीस, पुस्तकें, कागज आदि) और रहन-सहन के खर्चे पूरे पड़ जाने चाहिएं;

— उन लोगों के लिए जो घर पर रहते है। इनसे मुख्यतः प्रत्यक्ष और परोक्ष खर्चे पूरे हो जाने चाहिएं।

(2) होस्टलों के खर्चों का और प्रत्यक्ष तथा परोक्ष खर्चों का भी पता लगाने के लिए लगातार जांच होती रहनी चाहिए। प्रत्येक विश्वविद्यालय को यह जांच करानी चाहिए और बीच-बीच में पुनः करानी चाहिए। प्रत्यक्ष और परोक्ष खर्चों को कम-से-कम रखने के लिए लगातार प्रयत्न होना चाहिए। हर जगह होस्टल के खर्चे बढ़ रहे हैं और बहुधा यह वृद्धि किसी उचित आधार पर नहीं हो रही है। होस्टल के खर्चों को कम से कम रखने के लिए प्रयत्न होना चाहिए। होस्टलों में 'नौकरों' की संख्या घटा देनी चाहिए और धीरे-धीरे उन्हें बिल्कुल हटा देना चाहिए। यह छात्रों की शिक्षा का ही एक भाग है कि वे अपने काम खुद करें और भोजन परोसने, बिस्तर बिछाने आदि के लिए नौकरों के लिए नौकरों के मुहताज न रहें। स्वावलम्बन या अपने काम खुद करना एक साधारण बात होनी चाहिए, विशेष नहीं। इससे छात्रवृत्तियों की राशि कम रखना और अधिक छात्रों को वित्तीय सहायता का काम पहुंचाना संभव हो सकेगा।

6.27. **राष्ट्रीय छात्रवृत्तियाँ**—विश्वविद्यालय स्तर पर दी जाने वाली अन्य छात्रवृत्तियों में एक और महत्वपूर्ण वर्ग है राष्ट्रीय छात्रवृत्तियों का। इन छात्रवृत्तियों का, जिनकी स्थापना तीसरी पंचवर्षीय योजना में की गई थी और जो योग्यता के आधार पर दी जाती हैं, सारा खर्च भारत सरकार देती है। व्यवहार में, भारत सरकार प्रत्येक राज्य सरकार को कुछ निश्चित छात्रवृत्तियाँ बाँट देती है और वे छात्रवृत्तियाँ सम्बद्ध राज्य सरकार, भारत सरकार द्वारा बनाये गए नियमों के अनुसार देती है। यह एक अच्छी योजना है और इसे जारी रखना चाहिए तथा बहुत अधिक बढ़ाना चाहिए। इस सम्बन्ध में हम निम्नलिखित सिफ़ारिशें करते हैं :

(1) **दायरा**—इस समय इस योजना के दायरे में थोड़े ही छात्र आते हैं—जिन विभिन्न परीक्षाओं के लिए छात्रवृत्तियां निश्चित हैं, उनमें बैठने वाले कुल छात्रों में से एक प्रशिक्षित से भी कम। लक्ष्य यह होना चाहिए कि 1975-76 तक इन छात्रों में से पाँच प्रतिशत और 1985-86 तक इन छात्रों में से दस प्रतिशत इस योजना के दायरे में आ जाएं।

(2) **विकेन्द्रीकरण**—इस समय चलन यह है कि शिक्षा मंत्रालय विभिन्न राज्यों के लिए आबादी के आधार पर छात्रवृत्तियाँ निश्चित कर देता है। ये छात्रवृत्तियाँ फिर राज्य में होने वाली विभिन्न परीक्षाओं के अनुसार और आगे बाँटी जाती हैं और यह सावधानी बरती जाती है कि कम-से-कम एक छात्रवृत्ति हर परीक्षा को अवश्य मिल जाए, चाहे उसमें बैठने वाले छात्रों की संख्या कुछ भी हो। ये छात्रवृत्तियाँ पाने की पात्रता रखने वाले छात्रों के नाम का राज्य शिक्षा-निदेशक यथासमय शिक्षा मंत्रालय को भेज देता है और मंत्रालय सम्बद्ध छात्रों को 'अधिकार' कार्ड भेज देता है। ये कार्ड पेश करने पर छात्रों को छात्रवृत्ति की राशि न मिलने तक फीसों की अदायगी आदि के बारे में कोई कठिनाई नहीं होती। यह प्रक्रिया कुछ समय पहले तक प्रचलित प्रक्रिया से कहीं अधिक सरल है; पर अब भी अदायगियों के बारे में विलंब और शिकायतें होती हैं और इस प्रक्रिया को और अधिक सरल करने की आवश्यकता है।

इस सम्बध में एक ठोस सुझाव यह है कि 'अधिकार' कार्ड जारी करने की शक्ति परीक्षाएं लेने वाले उन अधिकरणों को सौंप देनी चाहिए जिनके लिए राष्ट्रीय छात्रवृत्तियाँ निश्चित की गई हों। आज की तरह मंत्रालय एक राज्य की विभिन्न परीक्षाओं के लिए राष्ट्रीय छात्रवृत्तियाँ नियत कर दे। परीक्षाएं लेने वाले अधिकरणों को यह हिदायत दे दी जाए कि वे परीक्षा-परिणामों के साथ ही राष्ट्रीय छात्रवृत्तियाँ पाने के हकदार छात्रों के नाम भी

घोषित कर दें। पर साथ ही यह कह दिया जाए कि ये छात्रवृत्तियाँ तभी मिल सकेंगी यदि यथासमय जाँच करने पर छात्रवित्तीय स्थिति सम्बन्धी शर्तों को पूरा करता हो। उन्हें शिक्षा मंत्रालय के किसी अफसर द्वारा यथाविधि हस्ताक्षरित 'अधिकार' कार्ड भी अभीष्ट संख्या में दे दिए जाने चाहिए और परीक्षा लेने वाले अधिकरण के निमित्त प्रतिहस्ताक्षरित होते ही ये मान्य हो जाने चाहिए। यह भी एक नियम बना दिया जाना चाहिए कि छात्र को उसके परीक्षा-परिणाम के साथ ही अधिकार कार्ड भी दे दिया जाए।

राष्ट्रीय छात्रवृत्तियाँ पाने वाले छात्र जिन संस्थाओं में दाखिल हों, उन पर यह दायित्व होना चाहिए कि वे वित्तीय स्थिति सम्बन्धी कसौटी का सत्यापन करने के बाद उन्हें सीधे ही छात्रवृत्ति की राशि दे दें। छात्रवृत्ति की अदायगी हर महीने कर्मचारियों के वेतन के साथ कर देनी चाहिए और संस्था को यथासमय राज्य सरकार से उस धन की प्राप्ति के लिए दावा करना चाहिए। इसमें कोई कठिनाई नहीं होगी यदि 'अधिकार' कार्ड में एक छेद वाला हिस्सा हो जिसके पेश करने पर राज्यों के शिक्षानिदेशकों को स्कूल अधिकारियों को एक साल की छात्रवृत्ति अगाऊ देनी पड़े।

इस समय भारत सरकार सम्बद्ध संस्थाओं को राज्य सरकारों या राज्यों के शिक्षाविभागों द्वारा छात्रवृत्ति की राशि की अदायगी करती है। चूँकि राष्ट्रीय छात्रवृत्ति पाने वाले अधिकतर छात्र विश्वविद्यालयों या उनसे सम्बद्ध कालेजों में अध्ययन कर रहे होंगे, इसलिए हम समझते हैं कि भारत सरकार के लिए यह तरीका बहुत सरल और सुविधाजनक होगा कि वह सीधे विश्वविद्यालयों की अदायगी कर दे (और वे आवश्यक धन सम्बद्ध कालेजों को दे दें)। इस प्रक्रिया के गुण-दोषों पर विचार होना चाहिए।

हम समझते हैं कि उपर्युक्त प्रकार की प्रक्रिया अपनाने से छात्रों को इस समय अनुभव होने वाली बहुत-सी कठिनाइयाँ दूर हो जाएंगी।

(3) **छात्रवृत्ति देने का नया आधार**—विश्वविद्यालय में प्रवेश करने वालों को राष्ट्रीय छात्रवृत्तियाँ देने के लिए अपनाया जाने वाला इस समय सबसे अधिक प्रचलित तरीका यह है कि माध्यमिक पढ़ाई के अन्त में होने वाली बाहरी सार्वजनिक परीक्षा में प्राप्त अंकों के आधार पर ये दी जाती हैं और इस प्रयोजन के लिए सारे राज्य को एक इकाई माना जाता है। जैसे कि पहले कहा गया है यह पद्धति उन मेधावी छात्रों के साथ न्याय नहीं करती जिन्होंने घटिया स्कूलों में शिक्षा पायी है और इसलिए जिनकी तैयारी में बहुत कुछ कमी रह गयी है। जरूरत इस बात की है कि ऐसे मामलों में छात्रवृत्तियाँ देने के लिए अधिक समतामूलक आधार अपनाया जाए।

इस दृष्टिकोण से हमारा सुझाव यह है कि स्कूलों के दाखिलों और सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमियों के आधार पर उनको अलग-अलग 'समूहों' में रख दिया जाए और हर समूह में से सबसे अच्छे थोड़े से छात्रों को छात्रवृत्ति देने के लिए छांट लिया जाए—छात्रों की असल संख्या का फैसला इस काम के लिए उपलब्ध धन पर निर्भर होगा। संभव है कि एक समूह के सबसे अच्छे छात्र दूसरे समूह के सबसे अच्छे छात्रों के बराबर न हों। पर वे भविष्य में अच्छे निकल सकते हैं, और वे बहुत अच्छे सिद्ध होंगे बशर्ते कि उन्हें प्रविष्ट करने वाले विद्यार्थियों और कालेजों में उन पर विशेष ध्यान देने और उनकी पढ़ाई की कमियाँ पूरी करने में मदद देने के लिए विशेष प्रबन्ध किए जाएं।

आम नीति यह होनी चाहिए कि पचास प्रतिशत छात्रवृत्तियाँ स्कूल-समूहों के आधार पर दी जाएं और पचास प्रतिशत आज की तरह राज्य को इकाई मान कर।

छात्रवृत्तियां देने की इस नई पद्धति की, विशेषकर उस समय जबकि उच्चतर शिक्षा का प्रबन्ध केवल योग्यता के आधार पर होगा, हम जोरदार सिफ़ारिश करते हैं। इस समतामूलक पद्धति से सामाजिक न्याय की सिद्धि होगी और आज की अपेक्षा अधिक प्रतिभा का उपयोग किया जा सकेगा। जब माध्यमिक शिक्षा का देहाती क्षेत्रों में विस्तार हो रहा है, प्रतिवर्ष बहुत सारे माध्यमिक स्कूल खोले जा रहे हैं, और समाज के पिछड़े वर्गों के किशोर माध्यमिक और उच्चतर शिक्षा में प्रवेश कर रहे हैं, तब उच्चतर शिक्षा के द्वार पर पहुंचने वाले छात्रों की तैयारी के स्तर बहुत भिन्न-भिन्न होंगे। पर ये स्तर-भेद उनकी जन्मजात क्षमता की भिन्नता के बजाय उनकी सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमियों तथा उनके माध्यमिक स्कूलों के स्तरों की भिन्नता को प्रतिबिम्बित करते हैं। यदि उन भेदों को दूर करने के लिए उचित व्यवस्था न की गई तो भारतीय समाज का स्तरीकरण घटने के बजाय बढ़ने की प्रवृत्ति रहेगी।

6.28. **विश्वविद्यालय छात्रवृत्तियां**—इस समय पूर्व-स्नातक और स्नातकोत्तर स्तरों पर विश्वविद्यालयों द्वारा दी जाने वाली छात्रवृत्तियों की संख्या बहुत ही कम है। यह स्थिति ठीक नहीं। हम सिफ़ारिश करते हैं कि चौथी योजना के काल में ही विश्वविद्यालय छात्रवृत्तियों की एक योजना (स्कीम) चलाई जाए और इसके लिए

आवश्यक धन विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को दे दिया जाए, आयोग यह धन विश्वविद्यालयों को दे और वे इसे कालेजों को बांट दें। छात्रवृत्तियां विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की सहमति से विश्वविद्यालयों द्वारा बनाए गए नियमों का अनुसार ही जानी चाहिए; नियमों के अनुसार छात्रवृत्ति पाने वाले छात्र को छांटने का अधिकार संस्थाओं के प्रधानों को सौंप दिया जाना चाहिए। लक्ष्य यह होना चाहिए कि 1976 तक पूर्व-स्नातक स्तर पर कुल दाखिले का 10 प्रतिशत, और स्नातकोत्तर स्तर पर कुल दाखिले का 20 प्रतिशत भाग छात्रवृत्तियों के दायरे में आ जाए।

ये छात्रवृत्तियां केन्द्रीय क्षेत्र में होनी चाहिए और उनके लिए सहायक अनुदान कर भार, स्थायी आधार पर, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के द्वारा, भारत सरकार को वहन करना चाहिए।

6.29. अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिम-जातियों के लिए मैट्रिकोत्तर छात्रवृत्तियों की एक बड़ी केन्द्रीय योजना है। इस पर बाद के एक खंड में विचार किया जाएगा।

6.30. स्नातकोत्तर स्तर पर, छात्रवृत्तियां देने वाली विभिन्न संस्थाओं, उदाहरण के लिए, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यूनिवर्सिटी ग्रांट्स कमीशन), भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् (इंडियन कौंसिल फार एग्रीकल्चर रिसर्च) परमाणु ऊर्जा आयोग (एटोमिक एनर्जी कमीशन) आदि के बीच अधिक समन्वय कायम करना आवश्यक है। छात्रवृत्तियां देने वाली संस्थाओं की बहुलता स्वागतयोग्य है क्योंकि इससे छात्रवृत्तियों के लिए उपलब्ध साधन बढ़ जाते हैं। पर इससे बहुधा छात्रवृत्तियां देने की शर्तों में विषमताएं पैदा हो जाती हैं (उदाहरण के लिए छात्र-वृत्तियों की राशि, आवश्यक अर्हता आदि के मामलों में) हम समझते हैं कि यदि शिक्षा मंत्रालय में राष्ट्रीय स्तर पर एक 'स्नातकोत्तर और अनुसंधान छात्रवृत्ति विषयक स्थायी समिति' स्थापित कर दी जाए तो आवश्यक समन्वय हो जाएगा; इस समिति में सम्बद्ध मंत्रालयों के, विश्वविद्यालयों में स्नातकोत्तर और अनुसंधान कार्य के लिए छात्रवृत्तियां देने वाले अन्य संगठनों के प्रतिनिधि तथा इंटर-यूनिवर्सिटी बोर्ड का एक प्रतिनिधि होने चाहिए। इस समिति की साल में दो बैठकें हो सकती हैं जिनमें यह चालू कार्यक्रम की समीक्षा करे और ऐसे विश्चय करे जिनसे उन कार्यक्रमों में उपयुक्त समन्वय हो।

6.31. **व्यावसायिक शिक्षा में छात्रवृत्तियां**—इस समय सामान्य शिक्षा देने वाले स्कूलों और कालेजों में जितनी छात्रवृत्तियां देने की व्यवस्था है, उससे बहुत अधिक छात्रवृत्तियां व्यावसायिक (वोकेशनल) स्कूलों और वृत्तिक (प्रोफैशनल) कालिजों में देने का प्रबन्ध है। पर इनमें दो दिशाओं में और सुधार की जरूरत है: (क) प्रवेश अधिक समतामूलक नीति; और (ख) छात्रवृत्तियों की संख्या और राशि में और अधिक वृद्धि।

6.32. **प्रवेश**—आयोग ने उन छात्रों की सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमियों की एक जांच की थी[1] जो सामान्यता व्यावसायिक स्कूलों में प्रवेश लेते हैं और यह भी अध्ययन किया था कि प्रदेशों और छात्रवृत्तियों सम्बन्धी नीतियों के लिए उसको अमल में लाने के तरीके क्या हैं। इस समय इनमें से अधिकतर संस्थाएं अपनी-अपनी इच्छा के अनुसार छात्रों को प्रविष्ट करती है और इस प्रयोजन के लिए बनाए गए नियमों के अनुसार छात्रवृत्तियां देती हैं। पर इंजीनियरी और मैडिकल कालेजों जैसी संस्थाओं में प्रवेश के लिए अधिक मांग होने के कारण छात्रों को छांटने और उनके लिए कालेज निश्चित करने के लिए केन्द्रीय ऐजेंसियाँ बनाई गई हैं। भारतीय शिल्पविज्ञान संस्थान, जिनमें देश के सब भागों के छात्र आते हैं, प्रवेश के लिए राष्ट्रीय आधार पर एक सांझी प्रतियोगिता परीक्षा लेते हैं। पर चूंकि छांटने का मुख्य आधार परीक्षा के अंक होते हैं, इसलिए, अधिकतर अवस्थाओं में, इनमें से अधिक महत्वपूर्ण संस्थाओं में प्रवेश पाने वाले छात्र आमतौर से शहरी इलाकों के, अच्छे स्कूलों के और अच्छे खाते-पीते घरों के होते हैं। यह बात सारणी 6.4 से स्पष्ट हो जाएगी।

1. विवरण के लिए देखिए पूरक जिल्द, भाग एक, में 'वृत्तिक, टैकनिकल और व्यावसायिक संस्थाओं में छात्रों की सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमियां।'

सारणी 6.4. व्यावसायिक, तकनीकी और वृत्तिक संस्थाओं में 1965 में प्रविष्ट छात्रों की आर्थिक-सामाजिक अवस्थाएं

	शिल्पविज्ञान संस्थान	प्रादेशिक इंजीनियरी कालेज	इंजीनियरी कालेज	मैडिकल कालेज	कृषि कालेज	पोलिटैक्निक	आई० टी० आई०	अन्य तकनीकी संस्थाएं	योग
1. **इस जांच के दायरे में ली गई संस्थाओं की संख्या**	5	7	48	45	11	172	28	25	341
छात्र									
देहाती क्षेत्र के	12.8	41.2	34.1	31.8	59.0	44.4	58.8	31.7	42.0
शहरी क्षेत्र के	87.2	58.8	65.9	68.2	41.0	55.6	41.2	68.3	58.0
2. **माता-पिता के पेशे**									
वृत्तिक	7.2	10.9	8.7	17.1	4.9	7.7	4.2	11.3	8.3
चौकरी	61.2	37.3	34.6	32.9	27.4	32.0	18.6	38.6	32.5
कारबार	20.1	17.7	21.2	17.9	7.0	19.1	12.5	22.4	18.5
खेतिहार	4.3	23.9	22.4	21.4	58.3	28.6	43.1	16.0	27.9
अन्य	7.2	10.2	13.1	10.7	2.4	12.6	21.6	11.7	12.8
3. **माता-पिता की आय**									
150 रु० प्रतिमास से कम	6.9	32.9	38.7	30.8	58.7	55.8	83.0	27.9	50.5
151-300 रु० के बीच	13.8	25.6	29.1	23.5	26.8	25.4	15.3	37.7	25.2
301-500 रु० के बीच	20.6	23.8	19.6	19.6	10.7	11.8	1.5	20.8	13.7
500 रु० से ऊपर	58.7	17.7	12.6	26.1	3.8	7.0	0.2	13.6	10.6
छात्रों की कुल संख्या	2,574 (100)	2,425 (100)	15,144 (100)	6,118 (100)	2,818 (100)	47,900 (100)	7,399 (100)	2,980 (100)	87,358 (100)

स्रोत : संस्थाओं द्वारा दी गई जानकारी।

उपर्युक्त सामग्री से निम्नलिखित मोटे निष्कर्ष निकाले जा सकते है :

(1) **शिल्पतिज्ञान संस्थान**—इस तरह की उच्चतम संस्थाओं भारतीय शिल्पविज्ञान संस्थानों (इंडियन इंस्टीट्यूट्स आफ टैकनौलोजी) में 87.2 प्रतिशत छात्र शहरी क्षेत्रों से आए थे और उनमें से अधिकतर अच्छे खाते-पीते परिवारों के थे जिनमें से 58. 7 प्रतिशत की आय 500 रु० प्रतिमास से ऊपर थी।

(2) **प्रादेशिक इंजीनियरी कालेज और इंजीनियरी कालेज**—प्रादेशिक इंजीनियरी कालेजों में पिछड़े समूहों को टैकनौलोजी की संस्थाओं की अपेक्षा अधिक स्थान मिला है। उदाहरण के लिए, इंडियन इंस्टीट्यूट्स आफ टैकतौलोजी के 12. 8 के मुकाबले प्रादेशिक कालिजों में देहाती छात्रों का अनुपात 41. 2 प्रतिशत हो गया है, खेतिहरों का 4. 3 प्रतिशत से बढ़ कर 23.9 प्रतिशत हो गया है, और 150 रु० प्रतिमास से कम आय वालों का अनुपात 6.9 प्रतिशत से बढ़कर 32.9 प्रतिशत हो गया है। इंजीनियरी कालेजों में यह रुख और भी अधिक दिखाई देता है।

(3) **मैडिकल कालेज**—इनमें भी कुल मिलाकर स्थिति वही है जो इंजीनियरी संस्थाओं में है; पर जहां तक पिछड़े समूहों के प्रवेश का प्रश्न है, यह कहा जा सकता है कि मैडिकल कालेजों का स्थान प्रादेशिक इंजीनियरी कालेजों के और इंजीनियरी कालेजों के बीच में पड़ता है।

(4) **कृषि कालेज**—इनमें देहाती छात्रों की संख्या आधे से अधिक (59.0 प्रतिशत) है। इसी प्रकार, खेतिहर माता-पिताओं की संख्या 58.3 प्रतिशत है और निर्धन (150 रु० प्रतिमास से कम आय वाले) परिवारों के बच्चों की संख्या 58.7 प्रतिशत है।

(5) **पौलिटेकनिक**—अन्य प्रकार की इंजीनियरी संस्थाओं की अपेक्षा इन संस्थाओं में देहाती क्षेत्रों, खेतिहारों और निर्धन परिवारों का अनुपात अधिक है। यह बात खास ध्यान देने की है कि सबसे निर्धन (150 रु० प्रतिमास आय वाले) समूह के माता-पिताओं के बच्चों की संख्या 55.8 प्रतिशत तक है।

(6) **औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान**—ये निश्चित रूप से गरीब आदमी और देहाती बस्तियों की संस्थाएं हैं। कुल दाखिले में 58.8 प्रतिशत देहाती क्षेत्रों का है और सबसे कम आय वाले वर्ग के परिवारों की संख्या 83.0 प्रतिशत है।

कुल मिलाकर देखा जाए तो देहाती क्षेत्रों को, जो देश की आबादी का 80 प्रतिशत हैं, इन संस्थाओं में केवल 41.4 प्रतिशत स्थान मिलते हैं। 150 रु० प्रतिमास से कम आय वाले परिवारों को (जिनकी संख्या भी कुल आबादी में 80 प्रतिशत है) कुल उपलब्ध स्थानों में से 50.5 प्रतिशत स्थान मिलते हैं।

6.33. इसलिए व्यावसायिक शिक्षा में छात्रवृत्तियों के कार्यक्रम के बारे में हम निम्नलिखित सिफ़ारिशें करते हैं :

(1) व्यावसायिक शिक्षा की संस्थाओं और खास कर टैकनौलोजी संस्थाओं और इंजीनियरी तथा मैडिकल कालेजों में प्रवेश के बारे में भविष्य में अधिक समतामूलक अंश लाने के लिए और अधिक जोरदार प्रयत्न करने की आवश्यकता है।

(2) टैकनौलोजी संस्थाओं के लिए प्रवेश परीक्षाएं अंग्रेजी में ली जाती हैं। इससे अंग्रेजी माध्यम वाले स्कूलों से, जिनमें धनी लोगों के बच्चे पढ़ते हैं, आए छात्रों को अनुचित सुविधा मिल जाती है। हम सिफ़ारिश करते हैं कि ये प्रवेश परीक्षाएं अंग्रेजी में हों, और प्रादेशिक भाषाओं में भी हों, और प्रत्येक भाषा के छात्रवर्ग में से सर्वोत्तम छात्र, आवश्यक हो तो आबादी के अनुसार निश्चित 'कोटे' के आधार पर छांटे जाएं। इस प्रकार छांटे गए छात्रों में बहुतों का अंग्रेजी का स्तर कुछ नीचा होगा। पर यह कमी पूरी करने के लिए इंस्टीट्यूटों में इन छात्रों को इनके पहले वर्ष में अंग्रेजी का अधिक प्रशिक्षण देना चाहिए।

(3) व्यावसायिक शिक्षा की संस्थाओं में सामान्य शिक्षा की संस्थाओं की अपेक्षा बहुत अधिक छात्रवृत्तियां होनी चाहिए। स्कूल स्तर पर लगभग 30 प्रतिशत छात्रों को किसी न किसी प्रकार की छात्रवृत्ति मिल जानी चाहिए और कालेज स्तर पर 50 प्रतिशत छात्रों को छात्रवृत्तियां मिल सकती हैं।

6.34. **विदेशों में अध्ययन के लिए छात्रवृत्तियां**—हमारे सबसे अधिक प्रतिभासम्पन्न छात्रों में से कुछ को और आगे की शिक्षा के लिए या अनुसंधान के प्रशिक्षण के लिए विदेश जाने का मौका देने के वास्ते छात्रवृत्तियां देने का एक राष्ट्रीय कार्यक्रम बनाने की भी आवश्यकता है। इस प्रकार प्रशिक्षण पाए हुए नवयुवक कृषि, उद्योग, विश्वविद्यालयों और अनुसंधान केन्द्रों के निवास के लिए बड़े उपयोगी होंगे। इसलिए हम सिफारिश करते हैं कि इस काम के लिए वार्षिक 500 छात्रवृत्तियों का एक राष्ट्रीय कार्यक्रम बनाया जाना चाहिए।

6.35. **ऋण छात्रवृत्तियां**—हमारे सामने प्रस्तुत साक्ष्य में उठाया गया एक महत्वपूर्ण प्रश्न ऋण छात्रवृत्तियों के व्यापक उपयोग के बारे में है। एक विचार यह था कि उच्चतर शिक्षा के क्षेत्र में सारी छात्रवृत्तियां केवल ऋणों के रूप में दी जानी चाहिए। इस विचार के समर्थन में तीन युक्तियां दी गई थीं :

— इससे 5-10 वर्षों में एक परिक्रामी निधि बन जाएगी जिससे राज्य के राजस्व पर बोझ बहुत घट जाएगा;

— इससे व्यर्थ खर्च नहीं होगा क्योंकि छात्र केवल उतना रुपया लेंगे जितना उनके रहन-सहन के लिए आवश्यक होगा; और

— इससे नई पीढ़ी में चरित्र का निर्माण होगा और एक जिम्मेदारी तथा आत्म-सम्मान की भावना पैदा होगी।

इसके विरोध में यह युक्ति प्रस्तुत की गई थी कि ऋण छात्रवृत्तियों के कार्यक्रम में वसूली के बारे में असंख्य प्रशासनिक समस्याएं पैदा होती हैं और उन नवयुवकों की, जिन्हें अपना जीवन भारी ऋण का बोझ लिए हुए आरंभ करना होगा, बड़ी कठिनाई होगी। इसके जवाब में यह प्रस्ताव रखा गया कि भारत सरकार एक संसदीय अधिनियम के अधीन एक राष्ट्रीय छात्रवृत्ति न्यास (नेशनल स्कालरशिप फाउंडेशन) की स्थापना करे। यह प्रस्ताव यह मानकर रखा गया है कि फाउंडेशन के पास शुरू में बहुत बड़ी पूंजी निधि, जैसे 50 करोड़ रुपए या इससे अधिक, होगी। छात्रवृत्तियों पर लिया जाने वाला ब्याज न्यूनतम रखा जाएगा—केवल इतना कि उससे बट्टे खाते और प्रशासन-व्ययों की पूर्ति हो जाए। आवश्यक ऋण छात्रों को उनकी निजी जमानत मात्र पर दे दिए जाएंगे। वसूली ऋण लेने वाले की कमाई आरंभ हो जाने के एक वर्ष बाद शुरू होगी; और यदि कमाई एक नियत स्तर से

नीचे रही तो वसूली नहीं होगी। अदा की जाने वाली क़िस्तें व्यक्ति की आमदनियों के साथ-साथ बढ़ती जाएंगी। त्वरित अदायगियां करने पर बोनसों या बट्टों की भी उचित व्यवस्था होगी। और ऋणों की वसूली को आसान बनाने के लिए हर नियोक्ता पर यह जिम्मेदारी होगी कि वह ऋण-वापसी की किस्त आय-कर की भांति मूल स्रोत पर ही वेतन में से काट ले।

6.36. यद्यपि इस क़िस्म की स्कीम की अनेक विशेषताओं ने हमें आकृष्ट किया है, तो भी हम उच्चतर शिक्षा की सभी छात्र-वृत्तियों को ऋणों तक ही सीमित करने के पक्ष में नहीं हैं। अगले दस वर्ष तक ऋण-छात्रवृत्तियों का प्रस्ताव किसी भी तरह सीधी छात्रवृत्तियों से बेहतर नहीं है—दोनों ही हालतों में उनके लिए आवश्यक धन करा-धान से ही प्राप्त करना होगा। हम यह भी समझते हैं कि केवल ऋण छात्रवृत्तियों का कार्यक्रम ही यदि अपनाया जाए तो वह विषमता-कारक होगा, क्योंकि वह केवल उन छात्रों के लिए अलाभकारी होगा, जो आर्थिक दृष्टि से कठिनाई में हैं। यदि काफी मात्रा में उत्पादन का अंश उनमें न हुआ तो मानविकी के छात्रों के लिए, जिनके लिए रोजगार के अवसरों और आय के स्तर को बढ़ाने के लिए अभी बहुत कुछ करने की आवश्यकता है, यह योजना व्यवहार्य नहीं होगी। इसलिए हम ऐसा कार्यक्रम पसंद करेंगे जिसमें ऋण-छात्रवृत्तियों के कार्यक्रम के साथ ही सीधी छात्रवृत्तियों का कार्यक्रम भी सम्मिलित हो।

6.37. जैसा कि हम सोचते हैं उच्चतर शिक्षा की ऋण छात्रवृत्तियों का कार्यक्रम निम्न आधार पर गठित किया जाना चाहिए :

(1) यह कार्यक्रम सीधी छात्रवृत्तियों के कार्यक्रम का अनुपूरक होगा और सीधी छात्रवृत्तियां हमारे द्वारा सुझाए गए प्रमाण में दी जानी चाहिए।

(2) यह कार्यक्रम तत्वतः विज्ञानों और वृत्तिक पाठ्यक्रमों के छात्रों के लिए होगा, जिनके लिए रोजगार के अवसर और आय के स्तर अपेक्षया अधिक अच्छे हैं और जिनसे योजना के सफल होने की अधिक सम्भावना है। इस क्षेत्र में ऐसी ऋण-छात्रवृत्तियों की कोई उच्चतम सीमा नहीं होनी चाहिए और हरेक जरूरतमंद छात्र को वित्तीय सहायता देने का प्रयत्न किया जाना चाहिए। कुछ सीमा तक और योग्य मामलों में, यह कार्यक्रम कला-छात्रों के लिए भी होना चाहिए।

(3) यदि ऋण-छात्रवृत्ति पाने वाला कोई व्यक्ति अध्यापन की वृत्ति स्वीकार कर ले तो उसकी हर साल की सेवा पर ऋण का दसवां भाग माफ कर देना चाहिए। इससे अच्छे छात्रों को इस वृत्ति में आने के लिए प्रोत्साहन मिलेगा।

(4) ऋण-छात्रवृत्ति कार्यक्रम को सुविधा के साथ चलाने के लिए एक राष्ट्रीय ऋण-छात्रवृत्ति बोर्ड ऊपर कही गयी रीति से स्थापित किया जा सकता है।

6.38. विश्वविद्यालय स्तर पर छात्रवृत्तियों और सुस्थापन के साथ कोटि संस्थाओं के विकास का एक सम्पूरक कार्यक्रम भी चलाना होगा। यह आवश्यकता बड़े विश्वविद्यालयों, उच्चतर अध्ययन केन्द्रों और हरेक जिले में कम से कम एक अच्छे कालेज को विकसित करके पूरी की जा सकती है। इन कार्यक्रमों का विस्तृत विवेचन अन्यत्र किया गया है।[1]

6.39. छात्रों सहायता से सम्बद्ध कुछ सामान्य समस्याएं—अब हम कुछ अन्य सम्बद्ध प्रश्नों का संक्षेप में विवेचन करेंगे। इन प्रश्नों का सम्बन्ध शिक्षा के सभी स्तरों से है।

(1) **परिवहन**—परिवहन की सुविधाओं की व्यवस्था से छात्रावासों और छात्रवृत्तियों पर होने वाला खर्च कम करने में मदद मिल सकती है। हमने ग्रामीण क्षेत्रों में ऐसे स्कूल देखे हैं, जो दूर से आने वाले छात्रों को बाइसिकलें देते हैं। इस प्रकार की व्यवस्था को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए, क्योंकि इससे माध्यमिक स्कूल दूरस्थ गांवों के छात्रों की पहुंच के भीतर आ जाते हैं। जहां कहीं सम्भव हो, यही व्यवस्था अन्य किस्मों की संस्थाओं में भी की जा सकती है।

(2) **दिवस-अध्ययन केन्द्र और वास-गृह**—जिन छात्रों को घर पर अध्ययन के लिए पर्याप्त सुविधाएं नहीं हैं, उनके लिए माध्यमिक और विश्वविद्यालय स्तरों पर काफी संख्या में दिवस-अध्ययन केन्द्रों की व्यवस्था करना जरूरी है। उनके लिए वास-गृहों को व्यवस्था करना भी वांछनीय होगा, जहां वे सारे दिन बल्कि रात को भी रह सकें, किन्तु भोजन के लिए घरों को जा सकें। कुछ संस्थाओं ने एक नया तरीका अपना कर यह सुविधा प्रदान करने की कोशिश की भी है। इसके लिए उन्होंने स्कूल के घंटों से पूर्व और पश्चात् और रात में कक्षा के कमरों का रिहायश और अध्ययन के प्रयोजनों के लिए उपयोग किया है। इस प्रकार के प्रयोगों की प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

(3) **कमाओ और सीखो**—छात्रों के लिए कमाने और अपने खर्चों का कुछ भाग अदा करने के लिए आवश्यक सुविधाओं का छात्रवृत्तियों के कार्यक्रम के अनुपूरक के रूप में यथासम्भव बड़े पैमाने पर विकास किया जाना चाहिए।

1. अध्याय ग्यारह-तेरह।

(4) **लड़कियों के लिए छात्रवृत्तियां**—छात्रवृत्तियों और अन्य किस्मों की छात्र-सहायताओं में लड़कियों की आवश्यकताओं को तरजीह दी जानी चाहिए।

6.40. **छात्रवृत्तियों का वित्तीय दायित्व**—सारणी 6.5 में 1960-61 के बारे में (जिस वर्ष की इस विषय की जानकारी न्यूनतम है) दी गई जानकारी से प्रतीत होता है कि शिक्षा के विभिन्न स्तरों और विभिन्न क्षेत्रों में छात्रवृत्तियों के लिए वित्तीय व्यवस्था किस प्रकार की जाती है। सन् 1965-66 में भी वैसी ही स्थिति रहने की आशा है।

सारणी 6.5 छात्रवृत्तियों वृत्तिकाओं पर होने वाले व्यय के स्रोत (1960-61)

संख्या का प्रकार	निम्नलिखित स्रोतों की निधियों से किए गए व्यय की प्रतिशतता					निम्न स्रोतों की निधियों से छात्रवृत्तियों-वृत्तिकाओं पर किए गए कुल खर्च में से विभिन्न प्रकार की संख्याओं में छात्रवृत्तियां वृत्तिकाओं पर व्यय किया गया प्रतिशत अंश				
	केन्द्रीय सरकार	राज्य सरकारें	स्थानीय निकाय	अन्य स्रोत	कुल (000 में)	केन्द्रीय सरकार	राज्य सरकारें	स्थानीय निकाय	अन्य स्रोत	कुल
1. विश्वविद्यालय अध्यापन विभाग	41.3	38.2	...	20.5	5,871 (100)	7.7	2.5	0.3	12.5	4.5
2. अनुसंधान संस्थाएं	44.6	9.0	0.3	46.1	1,839 (100)	2.6	0.2	0.6	8.8	1.4
3. सामान्य शिक्षा के कालेज	44.2	48.2	0.3	7.3	27,248 (100)	38.4	14.9	6.6	20.8	21.0
4. वृत्तिक शिक्षा के कालेज	31.3	57.6	0.3	10.8	22,020 (100)	21.9	14.4	7.0	24.8	16.9
5. विशेष शिक्षा के कालेज	45.5	42.7	...	11.8	880 (100)	1.3	0.4	...	1.1	0.7
कुल उच्च शिक्षा	39.0	49.4	0.3	11.3	57,858	71.9	32.4	14.5	68.0	44.5
6. माध्यमिक स्कूल	12.2	81.0	0.8	6.0	26,337 (100)	10.2	24.2	21.8	16.4	20.3
7. व्यावसायिक शिक्षा के स्कूल	15.4	82.2	0.3	2.1	33,169 (100)	16.2	31.0	9.1	7.4	25.5
8. उच्चतर माध्यमिक स्कूल	3.0	89.9	4.5	2.5	7,777 (100)	0.8	7.9	34.3	2.0	6.0
9. अवर माध्यमिक स्कूल	0.4	89.0	7.1	3.5	2,831 (100)	...	2.9	19.5	1.0	2.2
10. पूर्व-प्राथमिक स्कूल	...	100.0	...	...	1 (100)	...	...	...	...	...
11. विशेष शिक्षा के स्कूल	12.6	63.2	0.4	23.8	2,037 (100)	0.8	1.5	0.8	5.1	1.5
कुल स्कूली शिक्षा	12.2	82.3	1.2	4.2	72,152 (100)	28.0	67.5	85.5	31.9	55.5
कुल योग	31,375 (24.1)	88,014 (67.7)	1,024 (0.8)	9,598 (7.4)	1,30,011 (100,0)	100.0	100.0	100.0	100.0	100.0

स्रोत : शिक्षा मंत्रालय, फार्म ए। योगफल ठीक-ठीक नहीं मिलते क्योंकि संख्याओं का पूर्णांकन कर दिया गया है।

यह देखा जा सकता है कि छात्रवृत्तियों पर होने वाले व्यय का 92 प्रतिशत भाग केन्द्र और राज्यों की सरकारों की निधियों से आता है। केन्द्रीय निधि से प्राप्त राशि कुल खर्च का करीब चौथाई भाग है। छात्रवृत्तियों पर होने वाले केन्द्रीय व्यय का स्तर प्रतिशत से अधिक भाग केवल उच्चतर शिक्षा पर ही व्यय होता हैं।

6.41. इस सम्बन्ध में हमारी सिफारिशें इस प्रकार हैं :

(1) स्कूल स्तर पर एक पर्याप्त छात्रवृत्ति कार्यक्रमों के निर्माण की जिम्मेदारी राज्य सरकारों पर होनी चाहिए। उच्चतर शिक्षा के स्तर पर यह जिम्मेदारी भारत सरकार की होवी चाहिए कि वह उच्चतर शिक्षा की सभी संस्थाओं में—चाहे वे सामान्य शिक्षा की हों या व्यावसायिक शिक्षा की—और विदेशों के अध्ययन के लिए भी छात्रवृत्तियों की पर्याप्त व्यवस्था करे। हमें यह भी विश्वास हैं कि जो राज्य सरकारें और सेवाभावी संगठन उच्चतर शिक्षा के लिए इस समय कुछ छात्रवृत्तियां दे रहे हैं, वे इसी तरह देते ही नहीं रहेंगे बल्कि अपने प्रयत्नों में वृद्धि भी करेंगे।

(2) स्कूल स्तर पर एक अच्छा छात्रवृत्ति कार्यक्रम बनाने के लिए यह जरूरी है कि चौथी योजना में इसके लिए आवश्यक धन की व्यवस्था केन्द्र-प्रेरित क्षेत्र में होनी चाहिए। पांचवीं योजना में भी यही आधार कायम रखा जा सकता है। तब राज्य सरकारें उसे अपने आप ही चलाने योग्य हो जाएंगी।

विकलांग बच्चे

6.42. अब हम विकलांग बच्चों की शिक्षा पर आते हैं। उनकी शिक्षा केवल मानवतावादी आधारों पर ही नहीं उपयोगिता के आधारों पर भी गठित करनी होगी। उचित शिक्षा आमतौर पर विकलांग पर काफी हद्द तक विजय पाने योग्य और एक उपयोगी नागरिक बनाती है। सामाजिक न्याय का भी यही तकाजा है। यह स्मरण रखना होगा कि अनिवार्य शिक्षा पर सांविधानिक निदेश में विकलांग बच्चे भी शामिल हैं। अब तक इस क्षेत्र में बहुत कम काम किया गया है; और अनेक कठिनाइयों के कारण स्थिति में बहुत अधिक सुधार निकट भविष्य में व्यवहार्य मालूम नहीं होता। फिर भी यह आवश्यक है इस दिशा में अभी से गंभीरतापूर्वक शुरुआत कर दी जाए। हमारे प्रस्तावों में एक ऐसे शक्य कार्यक्रम का संकेत देने का प्रयत्न किया गया है जिससे बाद में इस समस्या के समाधान के लिए अधिक विशाल कार्यक्रम की बुनियाद डाली जा सके। इस क्षेत्र में हम शिक्षा की दृष्टि से उन्नत देशों से बहुत कुछ सीख सकते हैं। इन देशों ने हाल के वर्षों में विज्ञान और चिकित्सा में हुई उन्नतियों के आधार पर नई विधियां और तकनीकें निकाली हैं।

6.43. **कार्यक्रमों का क्षेत्र और आकार**—एक विकलांग बच्चे के लिए शिक्षा का पहला कार्य यह है कि वह सामान्य बच्चों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बनाए गए सामाजिक-सांस्कृतिक पर्यावरण में समंजन के लिए उसे तैयार करें। इसलिए यह आवश्यक है कि विकलांग बच्चों की शिक्षा सामान्य शिक्षा प्रणाली का ही एक अविच्छेद्य अंग हो। अन्तर केवल बच्चे को पढ़ाने की विधि और बच्चे द्वारा ज्ञानप्राप्ति के लिए अपनाए गए साधनों में होगा। विधितन्त्र में इन अन्तरों का शिक्षा की विषय-वस्तु या लक्ष्यों पर कोई असर नहीं पड़ता। इसलिए इस प्रकार की शिक्षा को सुविधा की दृष्टि से 'विशेष शिक्षा' कहा गया है।

6.44. विकलांग की जनसंख्या का आकार निर्धारित करने की समस्या ने शिक्षकों, योजना-निर्माताओं और सामाजिक कार्यकर्ताओं को इस देश में ही नहीं, बहुत से आर्थिक दृष्टि से उन्नत देशों में भी परेशान किया है। उदाहरण के लिए संयुक्त राज्य अमेरिका के पास विकलांग बच्चों की सख्या का विश्वनीय अनुपात नहीं है। किन्तु उपलब्ध प्रमाण से ऐसा प्रतीत होता है कि हमारे देश में निम्नलिखित वर्गों की कुल जनसंख्या लगभग 25 लाख है।

(1) **अन्धे**—किन्तु स्वास्थ्य मंत्रालय के तत्वावधान में हाल में किए गए एक सर्वेक्षण से ऐसा मालूम होता है कि अन्धों की संख्या ही 40 लाख के करीब हो सकती है। रायल कामनवैल्थ सोसाइटी फार दी ब्लाइंड, लन्दन का भी यही अनुमान है। इनमें से स्कूल जाने लायक उम्र के बच्चों की संख्या 4,00,000 है।

(2) **बधिर**—बहरेपन के शिकार व्यक्तियों का कोई राष्ट्रीय सर्वेक्षण नहीं किया गया है। कुछ नमूने के सर्वेक्षण के आधार पर किए गए अनुमानों से प्रतीत होगा कि देश में बहरों की संख्या दस लाख और पन्द्रह लाख के बीच होगी। इनमें से स्कूल जाने लायक आयु के

बच्चों की संख्या करीब 3,00,000 होने की संभावना है।

(3) **अंग-विकृति वाले विकलांग बच्चे**—विकलांग बच्चों के इस वर्ग का भी कोई राष्ट्रीय सर्वेक्षण नहीं किया गया है। इनके सम्बन्ध में भी किए गए कुछ नमूने के सर्वेक्षणों के आधार पर ऐसा प्रतीत होगा कि अंग विकृति वाले बच्चों की संख्या इस देश में अन्धों की संख्या बराबर होगी।

(4) **मन्दबुद्धि**—मन्दबुद्धिता एक जटिल अवधारणा है जो बहुत हद तक सांस्कृतिक कारकों से प्रभावित है और उसका पता लगाने के लिए परिष्कृत मनोवैज्ञानिक परीक्षण करने पड़ते हैं। इसलिए देश में मन्दबुद्धि बच्चों की संख्या का पता लगाना कठिन है। फिर भी कुछ अपर्याप्त नमूने के सर्वेक्षणों के आधार पर किए गए अनुमानों से प्रतीत होगा कि देश में मनबुद्धि बच्चों की संख्या 14 लाख और 18 लाख के बीच होगी

स्थिति को संक्षेप में इस रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है।

वर्ग	बच्चों की अनुमानित संख्या
अन्धे	4,00,000
बधिर	3,00,000
अंग विकृति से ग्रस्त	4,00,000
मन्दबुद्धि	14,00,000
कुल योग	25,00,000

6.45. **शिक्षा की वर्तमान सुविधाएं**—उन बच्चों के लिए विद्यमान शिक्षा सुविधाओं की स्थिति इस समय यह है।

(1) **अन्धे**—इस समय अन्धों के लिए करीब 115 स्कूल या अन्य संस्थाएं हैं जिनमें 5,000 अथवा देश में अन्धे बच्चों की संख्या का 1 प्रतिशत अंश नामांकित हैं। इनमें से अधिकतर संस्थाएं प्राथमिक शिक्षा और कुछ सरल दस्तकारियों का प्रशिक्षण देती हैं। संगीत पाठ्यचर्या का अभिन्न अंग होता है। मौजूदा संस्थाओं में से अधिकतर स्वैच्छिक अभिकरणों द्वारा चलाई जा रही हैं, परन्तु राज्य सरकारें उन्हें सहायता देती हैं। केन्द्रीय सरकार ने देहरादून में अन्धों के लिए एक बड़ा राष्ट्रीय केन्द्र स्थापित किया है। इस केन्द्र में एक केन्द्रीय ब्रेल प्रेस भी है जो ब्रेल लिपि में पाठ्य पुस्तकें और अन्य पठन-सामग्री प्रकाशित करता है। केन्द्र में ब्रेल साधन बनाने के लिए एक कारखाना भी है, जो अन्धों की शिक्षा के लिए आवश्यक बुनियादी साधनों का उत्पादन करता है। अन्धों के अध्यापकों के प्रशिक्षण के लिए भारत सरकार द्वारा प्रेरित तीन केन्द्र हैं और वे हर वर्ष तीस से चालीस तक अध्यापकों को प्रशिक्षण दे सकते हैं। इसके अलावा मद्रास और आन्ध्र प्रदेश की सरकारें आवश्यकता पड़ने पर अध्यापकों के प्रशिक्षण के लिए पाठ्यक्रम चलाती हैं।

(2) **बधिर**—बधिर बच्चों के लिए स्कूलों की संख्या करीब 70 है। इनमें से अधिकतर स्कूल प्राथमिक शिक्षा और इंजीनियरी और गैर-इंजीनियरी व्यवसायों के लिए पूर्व-व्यावसायिक प्रशिक्षण देते हैं। अधिकतर स्कूल निजी संस्थाओं द्वारा चलाए जाते हैं। परन्तु राज्य सरकारें उन्हें सहायता देती है। बधिर संस्थाओं का कुल नामांकन 4,000 या ऐसे बच्चों की संख्या के 1 प्रतिशत से कुछ अधिक है। बधिरों के अध्यापकों के प्रशिक्षण के लिए करीब आधा दर्जन प्रशिक्षण केन्द्र हैं। उनमें प्रति वर्ष 50 से 60 तक अध्यापकों को प्रशिक्षण दिया जा सकता है।

(3) **अंग-विकृति वाले विकलांग बच्चे**—इन वर्ग के बच्चों की मुख्य समस्या चल-अंग की होती है और वे अक्सर सामान्य स्कूलों में पढ़ते है। इस समय ऐसे बच्चों के लिए करीब 25 संस्थाएं हैं जिनका कुल नामांकन 1,000 से अधिक नहीं है। क्योंकि अंग-विकृति वाले अधिक बच्चों की कोई विशेष शिक्षा समस्याएं नहीं है, इसलिए इस वर्ग के बच्चों के लिए विशेष रूप से प्रशिक्षित अध्यापकों की कोई आवश्यकता नहीं समझी जाती।

(4) **मन्दबुद्धि**—विशेष शिक्षा का यह पहलू जटिल है। इसलिए इसकी ओर बहुत कम ध्यान दिया गया है। मन्दबुद्धि बच्चों के लिए

करीब 27 स्कूल ही हैं जिनमें बच्चों का कुल नामांकन 2,000 से अधिक नहीं है। इनमें से एक स्कूल भारत सरकार द्वारा संचालित है। मनबुद्धि बच्चों के अध्यापकों के प्रशिक्षण के लिए इस समय दो केन्द्र चल रहे हैं जो प्रति वर्ष करीब 20 अध्यापकों को प्रशिक्षित कर सकते हैं।

इस समय विकलांग बच्चों के अन्य वर्गों की शिक्षा के लिए प्रायः कोई सुविधाएं नहीं हैं। कुछ क्षुब्ध-संवेगी बच्चों की देखभाल विभिन्न बाल अधिनियमों के अन्तर्गत स्थापित बाल-सदनों और संस्थाओं में की जाती है। किन्तु वैसे, ये सदन मुख्यतः क्षुब्ध-संवेगी बच्चों की शैक्षिक चिकित्सा के लिए ही नहीं हैं।

ऊपर के पैराग्राफों में दिए गए संक्षिप्त विवेचन से यह स्पष्ठ हैं कि मौजूदा सुविधाएं अत्यन्त अपर्याप्त हैं। कुछ मामलों में काम की बुनियाद पड़ चुकी है और कुछ में हमें शुरू से ही काम करना होगा। इस लिए विकलांग बच्चों के लिए शिक्षा सेवाओं के विकास के लिए सावधानी से तैयार की गई योजना के सहत्व पर जितना बल दिया जाए, थोड़ा है।

6.46. **काम करने के लिए एक योजना**—विकलांग बच्चों को शिक्षा की सुविधाएं प्रदान करने की दिशा में प्रगति दो मुख्य बातों से सीमित होगी : अध्यापकों की उपलब्धि और वित्तीय साधनों की प्राप्ति। इसलिए युक्तिसंगत लक्ष्य यह होगा कि सन् 1986 तक अंधे, बधिर और अंग-विकृति वाले बच्चों में से 15 प्रतिशत के लिए और मन्दबुद्धि वाले बच्चों में से 5 प्रतिशत के लिए शिक्षा की व्यवस्था कर डाली जाए। इसका अर्थ होगा विकलांग बच्चों की कुल संख्या के 10 प्रतिशत के लिए शिक्षा सुविधाओं की व्यवस्था। कार्यक्रम के अंग के रूप में यह सम्भव होना चाहिए कि हरेक जिले में विकलांग बच्चों की शिक्षा के लिए कम से कम एक अच्छी संस्था जरूर स्थापित की जाए।

6.47. यह लक्ष्य दो कार्यक्रमों को अपना कर प्राप्त किया जा सकता है—एक विशेष और दूसरे समेकित। अब तक इस देश में विशेष कार्यक्रमों का ही विकास किया गया है। इनमें विकलांग बच्चे सामान्य बच्चों से अलग कर विशेष संस्थाओं में रखे जाते हैं। किन्तु शिक्षा की दृष्टि से उन्नत देशों में अब विकलांग बच्चों को नियमित स्कूल कार्यक्रमों में ही समेकित करने पर बहुत जोर दिया जा रहा है। इसके बहुत से लाभ हैं, जिन में से दो मुख्य हैं : पहला, खर्च में कमी और दूसरा, विकलांग और सामान्य बच्चों में परस्पर एक-दूसरे को समझने और सद्भाव की वृद्धि। इसकी कुछ हानियां भी हैं। उदाहरण के लिए, बहुत से विकलांग बच्चों को सामान्य स्कूलों में रखा जाना मानसिक दृष्टि से विक्षुब्ध कर देता है। किन्तु इस समस्या को समग्र दृष्टि से देखने पर हम अनुभव करते हैं कि समेकित कार्यक्रमों के प्रयोग करके देखना अत्यन्त आवश्यक है और समेकित कार्यक्रमों में अधिक से अधिक जितने छात्रों को लाया जा सके, लाने का प्रयत्न किया जाना चाहिए।

6.48. इसके अलावा बच्चों के कुछ अन्य वर्गों के लिए, जिनकी अपनी विशिष्ट शैक्षिक आवश्यकताएं हैं, जैसे, कमजोर दृष्टि वाले, वाक्दोष वाले, वाचाघाती, क्षत मस्तिष्क वाले और क्षुब्ध-संवेगी, प्रयोगिक आधार पर सेवाओं का विकास करना वांछनीय है। जैसा कि पहले कहा गया है, इस क्षेत्र में अब तक शायद ही कोई प्रयत्न किया गया हो। अभी यह कह सकना असंभव है कि ऐसे बच्चों की संख्या कितनी होगी। यहां तक कि अध्यापकों के प्रशिक्षण की सुविधाएं भी बहुत अपर्याप्त हैं। स्वास्थ्य-मंत्रालय, बंगलौर में वाणी-उपचारकों के प्रशिक्षण के लिए एक संस्था स्थापित कर रहा है। ये वाणी-उपचारक वाक्दोष युक्त और वाचाघाती बच्चों को संभाल सकते हैं। किन्तु कमजोर दृष्टि वाले या क्षुब्ध-संवेगी और क्षत-मस्तिष्क बच्चों के लिए अध्यापकों के प्रशिक्षण की शायद ही कोई सुविधाएं हों। इसलिए हमारा सुझाव है कि अगली दो योजनाओं में एक प्रयोगिक परियोजना के रूप में कुछ केन्द्र इन वर्गों के बच्चों की सहायता के लिए स्थापित किए जाने चाहिएं। सारी समस्या पर दस वर्ष बाद पुनर्विचार किया जा सकता है।

6.49. इन कार्यक्रमों को पर्याप्त विकसित करने के लिए निम्न बातों पर ध्यान देना पड़ेगा :

(1) अध्यापकों की तैयारी पर बल और ध्यान देने की आवश्यकता होगी। यदि छात्र-अध्यापक अनुपात को 10 : 1 मान लिया जाए तो अन्धे, बहरे और मन्दबुद्धि बच्चों के लिए ही 16,500 अध्यापकों की आवश्यकता होगी। इसके लिए मौजूदा प्रशिक्षण संस्थाओं की क्षकता में काफी वृद्धि करने और नयी संस्थाएं खोलने की जरूरत पड़ेगी।

(2) यह आवश्यक है कि इस क्षेत्र में काम कर रहे विभिन्न अभिकरणों, जैसे शिक्षा-मंत्रालय, केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड, इस समस्या में दिलचस्पी लेने वाले स्वैच्छिक संगठनों और

स्वास्थ्य मंत्रालय के प्रयत्नों का समन्वय किया जाए। राज्य स्तर पर भी ऐसा ही समन्वय आवश्यक होगा।

(3) यह भी जरूरी है कि समस्या का पर्याप्त अनुसंधान किया जाए। हम सिफारिश करते हैं कि शिक्षा मंत्रालय को उसके लिए एक कार्यक्रम तैयार करना चाहिए और आवश्यक धन का आवंटन करना चाहिए। राष्ट्रीय शिक्षा अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् को विकलांग बच्चों के अध्ययन के लिए एक सैल स्थापित करना चाहिए। इस सैल का मुख्य कार्य-देश में और देश से बाहर किए जा रहे अनुसंधानों की जानकारी प्राप्त करना और अध्यापकों के उपयोग के लिए सामग्रियां तैयार करना होगा।

क्षेत्रीय असन्तुलन

6.50. **राज्यों में शिक्षा विकास के असन्तुलन**—देश के विभिन्न भागों में शैक्षिक सुविधाओं का बहुत विषम रहा है। शैक्षिक नीति के महत्वपूर्ण उद्देश्यों में से एक यह होना चाहिए कि मौजूदा असन्तुलनों को घटाकर न्यूनतम करने का प्रयत्न किया जाए। इस समस्या को स्पष्ट रूप में समझने के लिए हमने विभिन्न राज्यों और जिलों में 1960-61 में विद्यमान क्षेत्रीय असन्तुलनों का विशेष अध्ययन किया।[1] इस सम्बन्ध में इस वर्ष के बाद की जानकारी उपलब्ध नहीं है। सारणी 6.6 राज्यों में शिक्षा विकास के स्तर की कुछ विभिन्नताओं को प्रदर्शित करती है।

सारणी 6.6 राज्यों में शैक्षिक योग्यता, प्रयत्न और सफलता (1960-61)

राज्य	आय प्रति व्यक्ति	शिक्षा पर व्यय प्रति व्यक्ति	राज्य की आय में से शिक्षा पर व्यय की प्रतिशतता	निरक्षर व्यक्ति प्रति 1000 आबादी		नामांकन अनुपात						उच्च शिक्षा में नामांकन प्रति 10,000 आबादी
						कक्षाएं I-V		कक्षाएं VI-VIII		कक्षाएं IX-X		
				लड़के	लड़कियां	लड़के	लड़कियां	लड़के	लड़कियां	लड़के	लड़कियां	
1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13
	रु०	रु०	प्रति-शत			प्रति-शत	प्रति-शत	प्रति-शत	प्रति-शत	प्रति-शत		
आन्ध्र प्रदेश	287.0	7.1	2.5	698	880	84.3	52.2	26.1	7.6	14.4	2.7	16
असम	333.3	7.6	2.3	627	840	84.7	50.4	36.4	14.6	25.5	7.0	23
बिहार	220.7	4.9	2.2	702	931	76.0	24.1	29.3	3.7	21.5	1.6	20
गुजरात	393.4	9.2	2.3	589	809	90.1	52.9	36.6	15.2	19.0	6.2	24
जम्मू और कश्मीर	289.0	5.7	2.0	830	957	71.0	20.7	37.9	9.5	14.5	4.7	25
केरल	314.9	11.5	3.6	450	611	115.4	100.0	67.7	49.1	20.2	12.6	26
मध्य प्रदेश	285.4	6.2	3.2	730	933	75.0	22.4	25.6	5.4	11.2	2.0	15
मद्रास	334.1	9.4	2.8	555	818	104.8	65.9	44.4	19.1	19.5	6.3	21
महाराष्ट्र	468.5	12.4	2.6	580	832	95.1	58.4	39.2	15.3	20.3	6.7	28
मैसूर	304.7	7.5	2.5	639	858	91.9	55.3	32.3	12.5	17.4	4.8	22
उड़ीसा	276.2	4.3	1.5	653	914	89.3	39.0	16.1	2.0	7.5	0.7	8
पंजाब	451.3	9.3	2.1	670	859	65.0	34.7	44.3	12.6	19.8	4.7	31
राजस्थान	267.4	6.3	2.4	763	942	64.0	16.3	24.1	4.1	10.3	1.1	16
उत्तरप्रदेश	297.4	5.4	1.8	727	930	68.8	19.5	27.1	5.1	13.2	1.8	34
पश्चिमी बंगाल	464.6	9.8	2.1	599	830	83.7	45.9	31.3	11.5	15.1	4.3	40
अखिल भारत	334.5	7.8	2.4	655	870	82.5	41.4	33.2	11.3	16.6	4.1	25

1. विस्तृत निष्कर्ष पूरक जिल्द दो, भाग दो में दिए गए हैं।

यह देखा जा सकता है कि सबसे कम प्रति व्यक्ति आय बिहार राज्य की (रु० 220.7) और सबसे अधिक महाराष्ट्र की (रु० 468.5) है। शिक्षा पर राज्य की आय का सबसे कम प्रतिशत अंश उड़ीसा में (1.5) और सबसे अधिक प्रतिशत अंश केरल में (3.6) व्यय किया जाता है। निरक्षरता, पुरुषों और स्त्रियों दोनों में, केरल में सबसे कम (450 पुरुष और 611 स्त्रियां प्रति 1,000 आबादी) और जम्मू और कश्मीर में सबसे अधिक (830 पुरुष और 957 स्त्रियां) हैं। अवर प्राथमिक स्तर पर पर लड़कों और लड़कियों का नामांकन सबसे ज्यादा केरल में (क्रमशः 115.4 प्रतिशत और 100 प्रतिशत) और सब से कम राजस्थान में (क्रमशः 64.0 प्रतिशत और 16.3 प्रतिशत हैं)। उच्चतर प्राथमिक स्तर पर भी केरल ही सबसे आगे (लड़कों और लड़कियों के लिए क्रमशः 67.7 और 49.1 प्रतिशत) है। अन्तिम स्थान उड़ीसा का है (लड़के 16.1 प्रतिशत और लड़कियां 2.0 प्रतिशत) माध्यमिक स्तर पर लड़कों के नामांकन में असम (25.5 प्रतिशत) और लड़कियों के नामांकन के केरल (12.6 प्रतिशत) सबसे आगे है। किन्तु दोनों मामलों में उड़ीसा (लड़कों के मामले में 7.5 प्रतिशत और लड़कियों के मामले में 0.7 प्रतिशत) सबसे पीछे है। उच्चतर शिक्षा में पश्चिमी बंगाल सर्वप्रथम है। वहां हर 10,000 आबादी में से 40 व्यक्तियों का उच्चतर शिक्षा के लिए नामांकन है। उड़ीसा इस मामले में सबसे पीछे है। वहाँ 10,000 आबादी में से केवल 8 व्यक्तियों का ही उच्चतर शिक्षा के लिए नामांकन है। (पृष्ठ 144 का चार्ट भी देखिये)।

6.51. **जिलों में शैक्षिक विकास के असंतुलन**—जिला स्तर पर राज्य स्तर की अपेक्षा कहीं अधिक अन्तर है। इस सम्बन्ध में हमारे अध्ययन से निकले कुछ आश्चर्य जनक निष्कर्ष नीचे दिए जा रहे हैं :

(1) **अवर प्राथमिक (स्तर कक्षाएं 1—5)**—अवर प्राथमिक स्तर पर प्राप्य लक्ष्य है 142 व्यक्ति प्रति हजार (6-10 आयु वर्ग की कुल आबादी का 110 प्रतिशत)। किन्तु इसके विपरीत प्राप्त निष्पत्तियों में बहुत विभिन्नता दिखायी देती है। राज्य स्तर पर कुल नामांकन का परास 55 (राजस्थान) से लेकर 140 (केरल) तक, और लड़कियों के नामांकन का परास 23 (राजस्थान) से 130 (केरल) तक दिखाई देता है। सभी बच्चों का माध्य नामांकन 74 और मानक विचलन 24.6 है। लड़कियों के नामांकन का माध्य 46.7 और मानक विचलन 23.8 है। जिलों के बीच विभिन्नताएं और भी बड़ी हैं—कुल नामांकन बाड़मेर (राजस्थान) में जहाँ 21 है वहाँ क्विलोन (केरल) में वह 158 है और लड़कियों का नामांकन बाड़मेर में 5 तो क्विलोन में 151 है। प्रतिहजार आबादी में न्यूनतम और अधिकतम नामांकन वाले जिले नीचे दिये जा रहे हैं (पृ० 145 और 147 के चार्ट भी देखिए) :

न्यूनतम कुल नामांकन वाले जिले		उच्चतम कुल नामांकन वाले जिले	
जिला	नामांकन (प्रति, 1,000)	जिला	नामांकन (प्रति 1,000)
1. बाड़मेर (राजस्थान)	21	1. क्विलोन (केरल)	158
2. कुर्ग (मैसूर)	32	2. अल्लेपी (केरल)	156
3. जैसलसेर (राजस्थान)	33	3. त्रिवेन्द्रम (केरल)	148
4. जालौर (राजस्थान)	33	4. अर्णाकुलम (केरल)	147
5. गुलबर्ग (मैसूर)	35	5. कन्याकुमारी (मद्रास)	147

लड़कियों के नन्यूनतम नामांकन वाले जिले		लड़कियों के अधिकतम नामांकन वाले जिले	
जिला	नामांकन (प्रति 1,000)	जिला	नामांकन (प्रति 1,000)
1. बाड़मेर (राजस्थान)	5	1. क्विलोन (केरल)	151
2. सीधी (मध्यप्रदेश)	7	2. अल्लेप्पी (केरल)	147
3. जैसलसेर (राजस्थान)	8	3. कोट्टायम (केरल)	141
4. जालौर (राजस्थान)	8	4. कन्याकुमारी (मद्रास)	139
5. टेहरी-गढ़वाल (उत्तर प्रदेश)	8	5. मिजो (असम)	138

लक्ष्य : कुल नामांकन 142 प्रतिहजार और लड़कियों का 143 प्रति हजार।

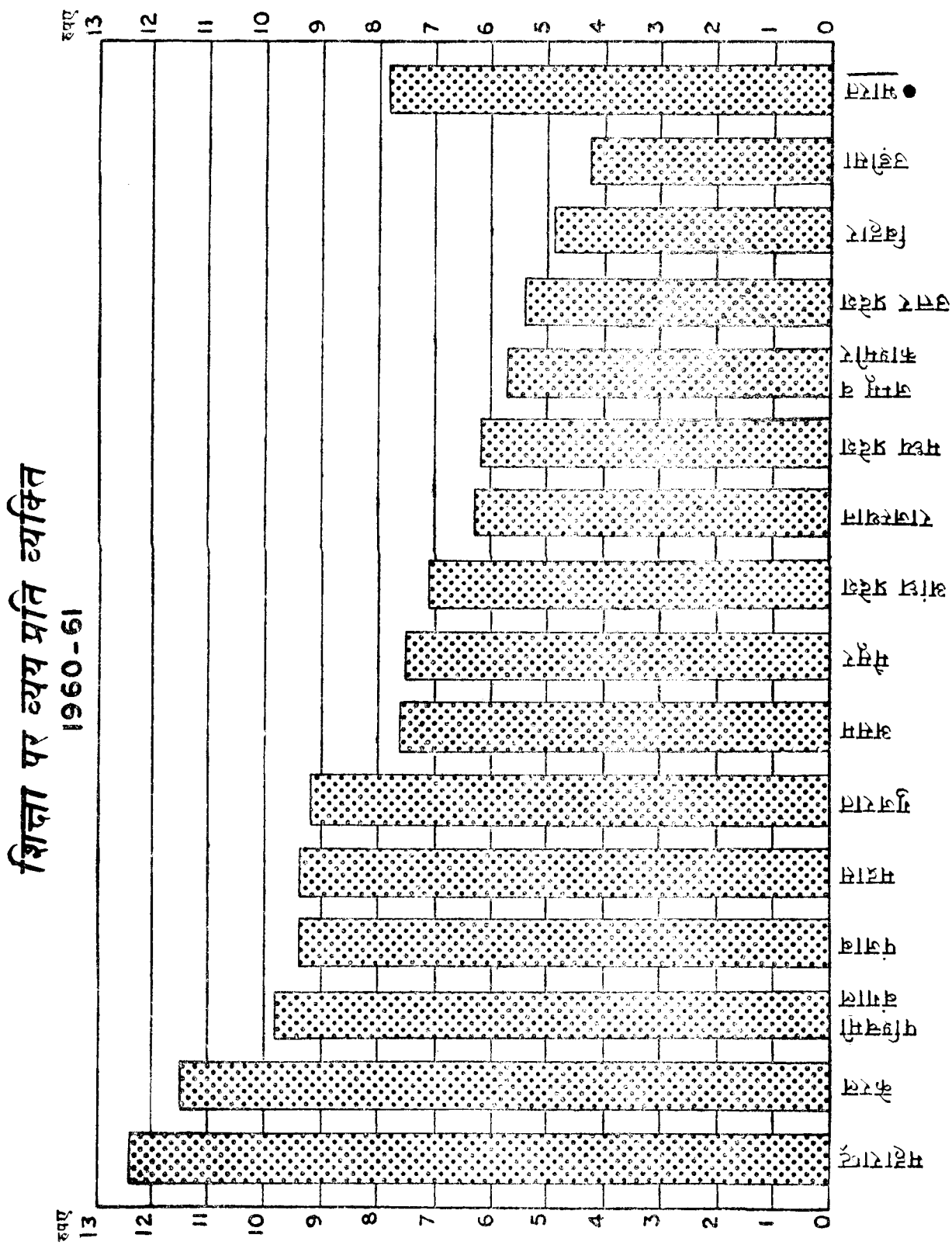
शिक्षा पर व्यय प्रति व्यक्ति
1960-61
रुपए
0 1 2 3 4 5 6 7 8 9 10 11 12 13
भारत
उड़ीसा
बिहार
उत्तर प्रदेश
जम्मू व
काश्मीर
मध्य प्रदेश
राजस्थान
आंध्र प्रदेश
मैसूर
असम
गुजरात
महाराष्ट्र
पंजाब
पश्चिमी बंगाल
केरल
मद्रास

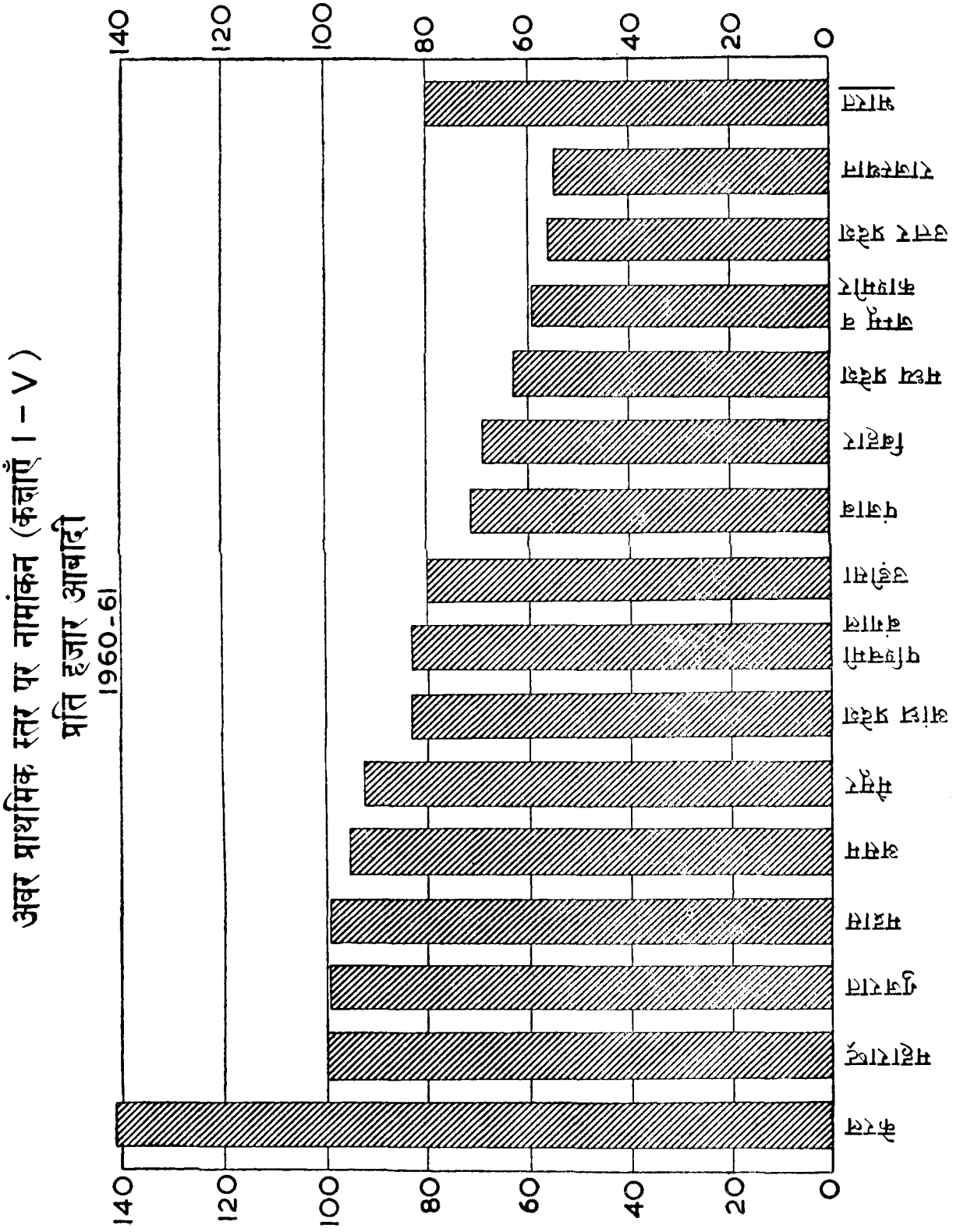
अखिल भारतीय औसत
राजस्थान
उत्तर प्रदेश
कर्नाटक
जम्मू व कश्मीर
मध्य प्रदेश
बिहार
पंजाब
उड़ीसा
केरल
पश्चिमी बंगाल
आंध्र प्रदेश
मैसूर
असम
मद्रास
गुजरात
महाराष्ट्र
केरल
अखिल भारतीय औसत
प्रति हजार आबादी
1960-61
140
120
100
80
60
40
20
0

(2) **उच्चतर प्राथमिक स्तर (कक्षाएं 6—8)**—उच्चतर प्राथमिक स्तर पर भी तस्वीर वैसी ही है, हालांकि जो काम करना अभी शेष है, वह कहीं बड़ा है। राज्य स्तर पर, सबसे अधिक कुल नामांकन केरल में (41 प्रति हजार) और न्यूनतम उड़ीसा में (5 प्रति हजार) था। लड़कियों का अधिकतम नामांकन भी केरल में (35 प्रति हजार) और न्यूनतम उड़ीसा (1 प्रतिहजार), बिहार (2 प्रति हजार) और मध्यप्रदेश, राजस्थान एवं उत्तरप्रदेश (3 प्रति हजार) में था। सभी राज्यों के लिए माध्य और मानक विचलन सब बच्चों की दृष्टि से क्रमशः 13.7 और 8.3 और लड़कियों की दृष्टि से 6.7 और 7.3 हैं। जिलों में विभिन्नताएं अधिक बड़ी हैं जो नीचे दी जा रही हैं (पृ० 148 और 150 के चार्ट भी देखिए :

न्यूनतम कुल नामांकन वाले जिले			अधिकतम कुल नामांकन वाले जिले		
	जिला	नामांकन (प्रति 1,000)		जिला	नामांकन (प्रति 1,000)
1.	कालाहांडी (उड़ीसा)	2	1.	अल्लेपी (केरल)	59
2.	कोरापुट (उड़ीसा)	2	2.	क्विलोन (केरल)	53
3.	बाड़मेर (राजस्थान)	3	3.	कोट्टायम (केरल)	48
4.	बस्तर (मध्यप्रदेश)	3	4.	त्रिवेन्द्रम (केरल)	46
5.	बोलनगीर (उड़ीसा)	3	5.	त्रिचूर (केरल)	44

लड़कियों के न्यूनतम नामांकन वाले जिले			लड़कियों के अधिकतम नामांकन वाले जिले		
	जिला	नामांकन (प्रति 1,000)		जिला	नामांकन (प्रति 1,000)
1.	सीधी (मध्यप्रदेश)	0.1	1.	अल्लेपी (केरल)	53
2.	कालाहांडी (राजस्थान)	0.2	2.	क्विलोन (केरल)	46
3.	जालोर (उड़ीसा)	0.3	3.	कोट्टायम (केरल)	45
4.	बाड़मेर (राजस्थान)	0.3	4.	त्रिवेन्द्रम (केरल)	41
5.	जैसलमेर (राजस्थान)	0·5	5.	त्रिचूर (केरल)	37

लक्ष्य : कुल नामांकन और लड़कियों का नामांकन, दोनों का 75 प्रति हजार (आयु वर्ग 11-13 के लिए 110 प्रतिशत)।

(3) **माध्यमिक शिक्षा स्तर (कक्षाएं 9—11)**—इस मामले में भी केरल ही सबसे आगे है जिसका कुल नामांकन आबादी का 11 प्रति हजार और लड़कियों का नामांकन आबादी का 8 प्रति हजार है। सबसे अन्तिम स्थान उड़ीसा का है जिसका कुल नामांकन आबादी का 2 प्रति हजार और लड़कियों का नामांकन बिल्कुल ही नगण्य है। सभी राज्यों के कुल नामांकन का माध्य 6.29 (मानक विचलन 3.5) और लड़कियों के नामांकन का माध्य 2.21 (मानक विचलन 2.8) है। ज़िला स्तर पर ये विभिन्नताएं और भी बड़ी हैं जैसा कि निम्न आंकड़ों से स्पष्ट है (पृ० 154 का चार्ट भी देखिए—

न्यूनतम कुल नामांकन वाले जिले			अधिकतम कुल नामांकन वाले जिले		
	जिला	नामांकन (प्रति, 1,000)		जिला	नामांकन (प्रति 1,000)
1.	कालाहांडी (उड़ीसा)	1	1.	बृहत्तर बम्बई (महाराष्ट्र)	23
2.	बौधी खोंडमल (उड़ीसा)	1	2.	देहरादून (उत्तरप्रदेश)	21
3.	सीधी (मध्यप्रदेश)	1	3.	कन्याकुमारी (मद्रास)	20
4.	बस्तर (मध्यप्रदेश)	1	4.	अल्लेप्पी (केरल)	18
5.	लद्दाख (जम्मू और कश्मीर)	1	5.	अम्बाला (पंजाब)	18

अवर प्राथमिक स्कूलों में नामांकन के अनुसार जिलों का वितरण
1960-61

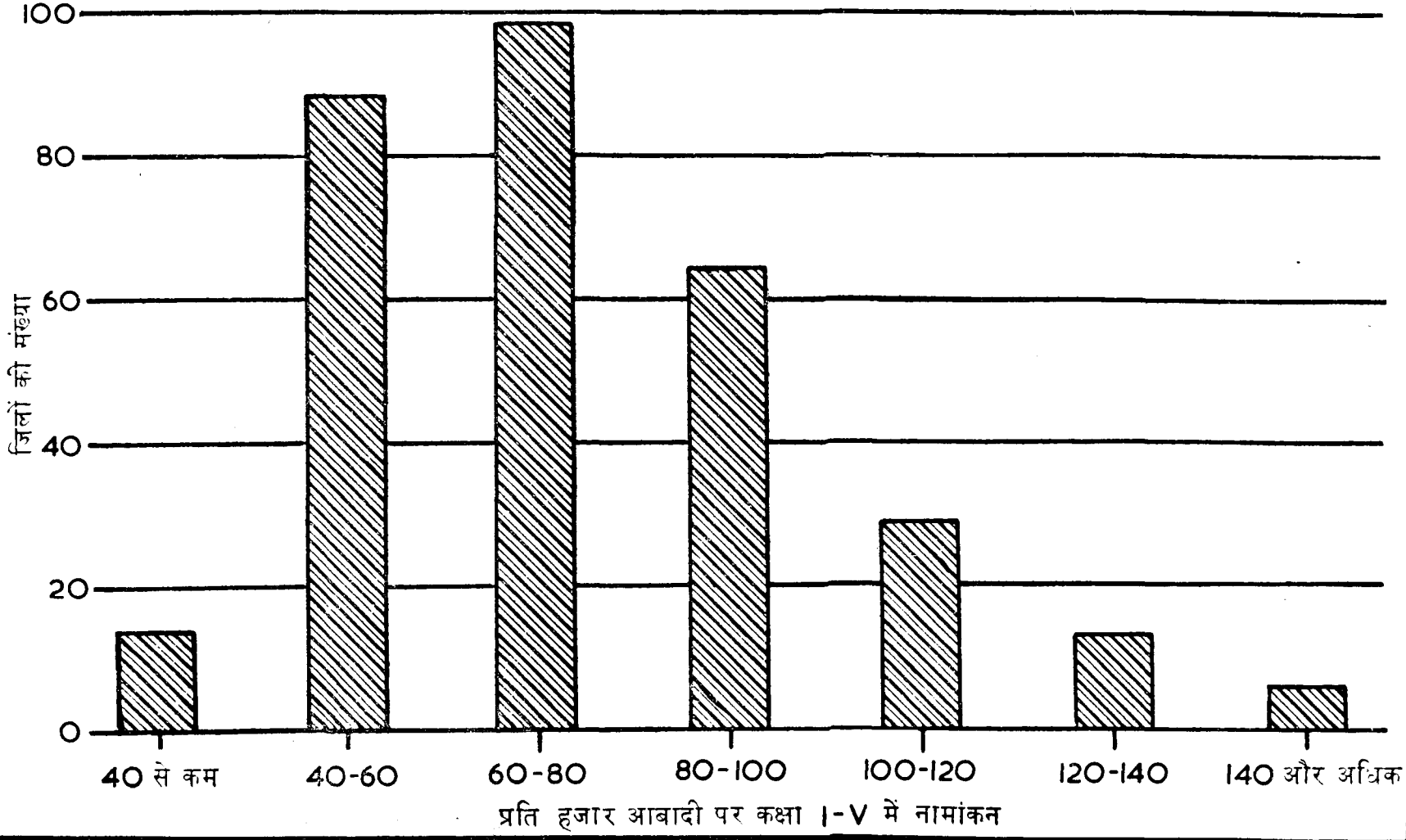

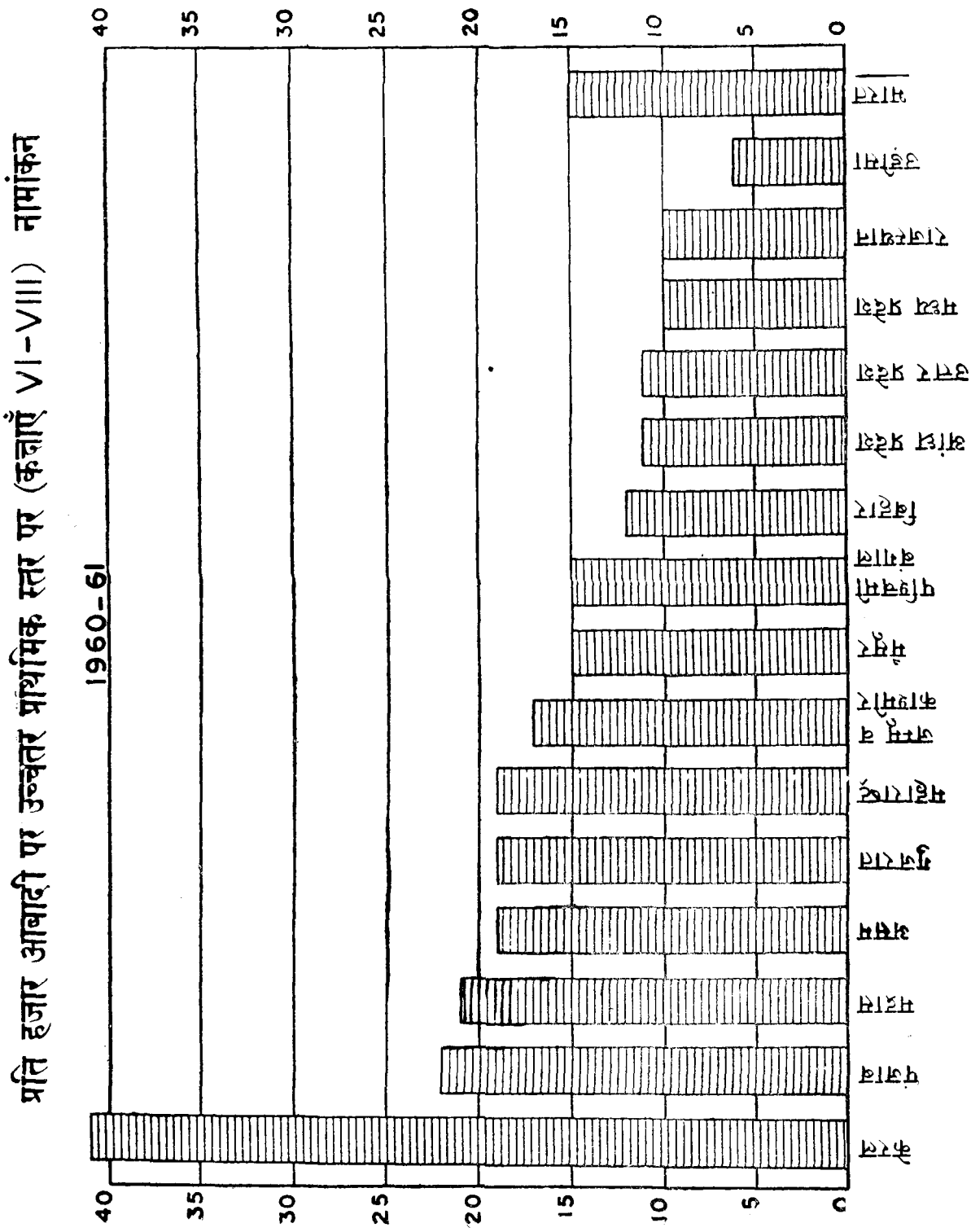
प्रति हजार आबादी पर उच्चतर प्राथमिक स्तर पर (कक्षाएँ VI–VIII) नामांकन
1960-61
0
5
10
15
20
25
30
35
40
केरल
पंजाब
मद्रास
असम
गुजरात
महाराष्ट्र
जम्मू व
कश्मीर
मैसूर
पश्चिमी
बंगाल
बिहार
आंध्र प्रदेश
उत्तर प्रदेश
मध्य प्रदेश
राजस्थान
उड़ीसा
भारत

लड़कियों के न्यूनतम नामांकन वाले जिले		लड़कियों के अधिकतम नामांकन वाले जिले	
जिला	नामांकन (प्रति 1,000)	जिला	नामांकन (प्रति 1,000)
1. लद्दाख (जम्मू और कश्मीर)	0.01	1. बृहत्तर बम्बई (महाराष्ट्र)	20
2. सीधी (मध्यप्रदेश)	0.02	2. कन्याकुमारी (मद्रास)	15
3. जालोर (राजस्थान)	0.03	3. देहरादून (उत्तरप्रदेश)	14
4. कालाहांडी (उड़ीसा)	0.06	3. मद्रास कार्पोरेशन	13
5. बाड़मेर (राजस्थान)	0.07	5. कलकत्ता कार्पोरेशन	12

लक्ष्य : (1986 के लिए) : 27 प्रति 1,000 आबादी।

(4) **शिक्षा पर व्यय (प्रत्यक्ष) आबादी के हर व्यक्ति पीछे**—प्रति व्यक्ति प्रत्यक्ष शिक्षाव्यय की दृष्टि से केरल का स्थान सबसे ऊपर (रु० 11.2) और उड़ीसा का सबसे नीचे (रु० 2.8) है। देश में 17 जिले प्रतिव्यक्ति रु० 2.00 से कम और 25 जिले प्रति व्यक्ति रु० 10 से अधिक खर्च करते हैं। शिक्षा पर प्रति व्यक्ति अधिकतम और न्यूनतम खर्च करने वाले पांच-पांच जिले नीचे दिये गये हैं—

न्यूनतम शिक्षा व्यय वाले जिले		अधिकतम शिक्षा व्यय वाले जिले	
जिला	व्यय प्रति व्यक्ति रु०	जिला	व्यय प्रतिव्यक्ति रु०
1. कालाहांडी (उड़ीसा)	1.1	1. पूना (महाराष्ट्र)	16.2
2. महेन्द्रगढ़ (पंजाब)	1.2	2. त्रिवेन्द्रम (केरल)	15.6
3. कोरापुट (उड़ीसा)	1.3	3. नागपुर	15.3
4. बोलनगीर (उड़ीसा)	1.5	4. सिहोर (मध्यप्रदेश)	14.3
5. फतहपुर (उत्तरप्रदेश)	1.5	5. त्रिचूर (केरल)	14.2

पृष्ठ 151 पर दिया गया चार्ट शिक्षा पर प्रति व्यक्ति व्यय की दृष्टि से जिलों का वितरण दिखाता है।

6.52. **सिफ़ारिशें**—शिक्षा के विकास में क्षेत्रीय असंतुलनों को कम करने के कार्यक्रम भी सामाजिक आर्थिक विकास के असंतुलनों को दूर करने के कार्यक्रमों के साथ-साथ चलाने पड़ेंगे। समस्या जटिल और कठिन है और उसका समाधान कई वर्षों में फैलाना पड़ेगा। इस रिपोर्ट में हमारा मुख्य उद्देश्य इस समस्या की ओर ध्यान आकृष्ट करना और उसके महत्व पर बल देना है। हमारी सम्मति में, यदि शिक्षा के विकास में असंतुलनों को दूर करने पर बल दिया जाये तो समस्या क समाधान काफी सरल हो जायेगा। इस दृष्टिकोण से हमारा सुझाव है कि निम्न प्रकार की कार्रयाई की जानी चाहिए :

(1) शिक्षा के विकास में विद्यमान इन अन्तरों को न तो पूरी तरह दूर किया जा सकता है और न वह वांछनीय ही है। देश के व्यापक हित में हरेक क्षेत्र यथाशक्ति प्रयत्न करने और अपनी अपनी गति से विकास करने के लिए स्वतंत्र होना चाहिए। किन्तु आवश्यकता एक संतुलन-कारी कारक की है, अर्थात् कम विकसित क्षेत्रों को कम-से-कम कुछ न्यूनतम स्तरों तक उठने में सहायता देने के लिए विमृष्ट और

उच्चतर प्राथमिक स्कूलों के नामांकन के अनुसार जिलों का वितरण
1960-61

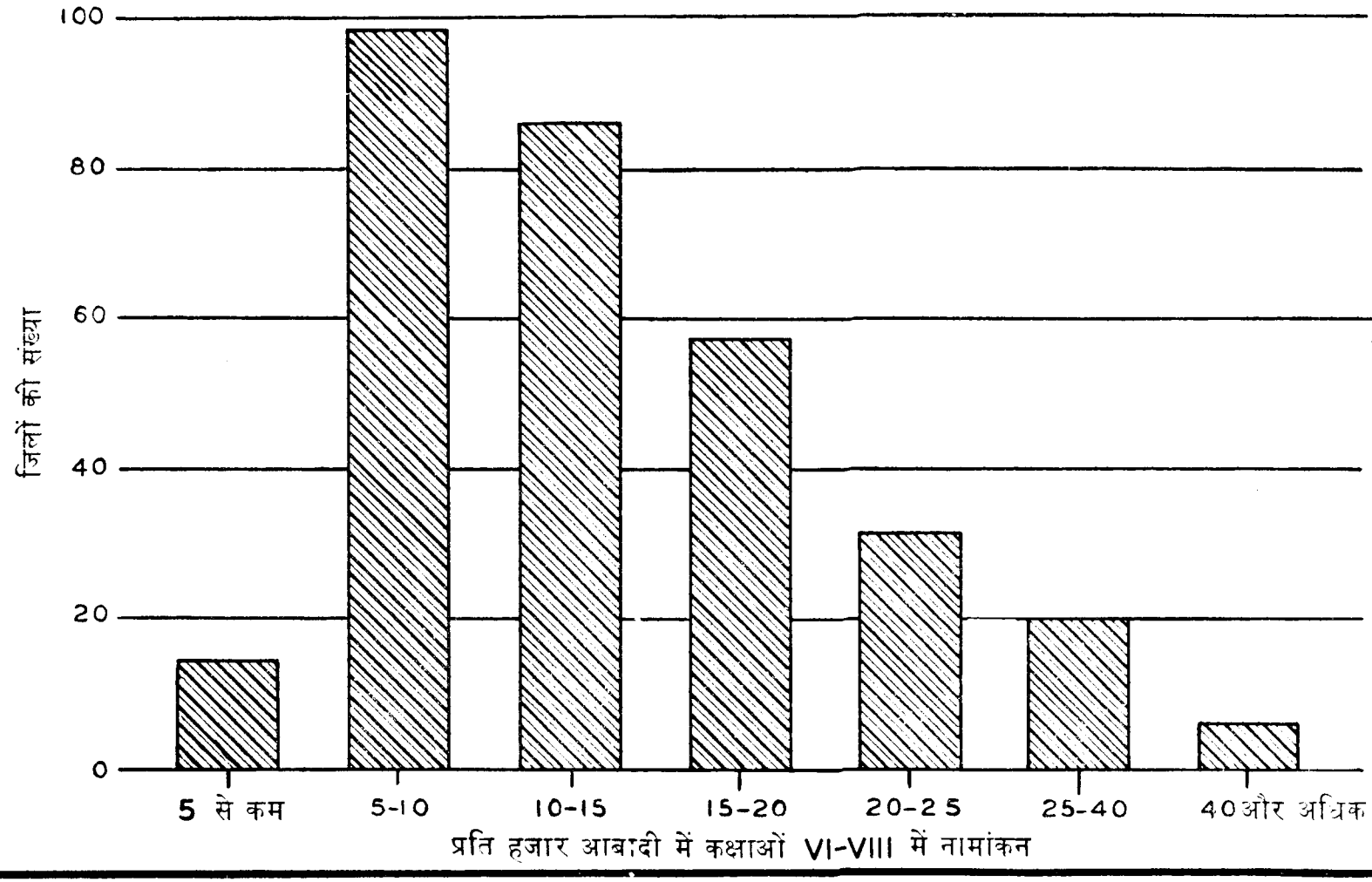

शिक्षा पर प्रति व्यक्ति व्यय के अनुसार जिलों का वितरण
1960-61

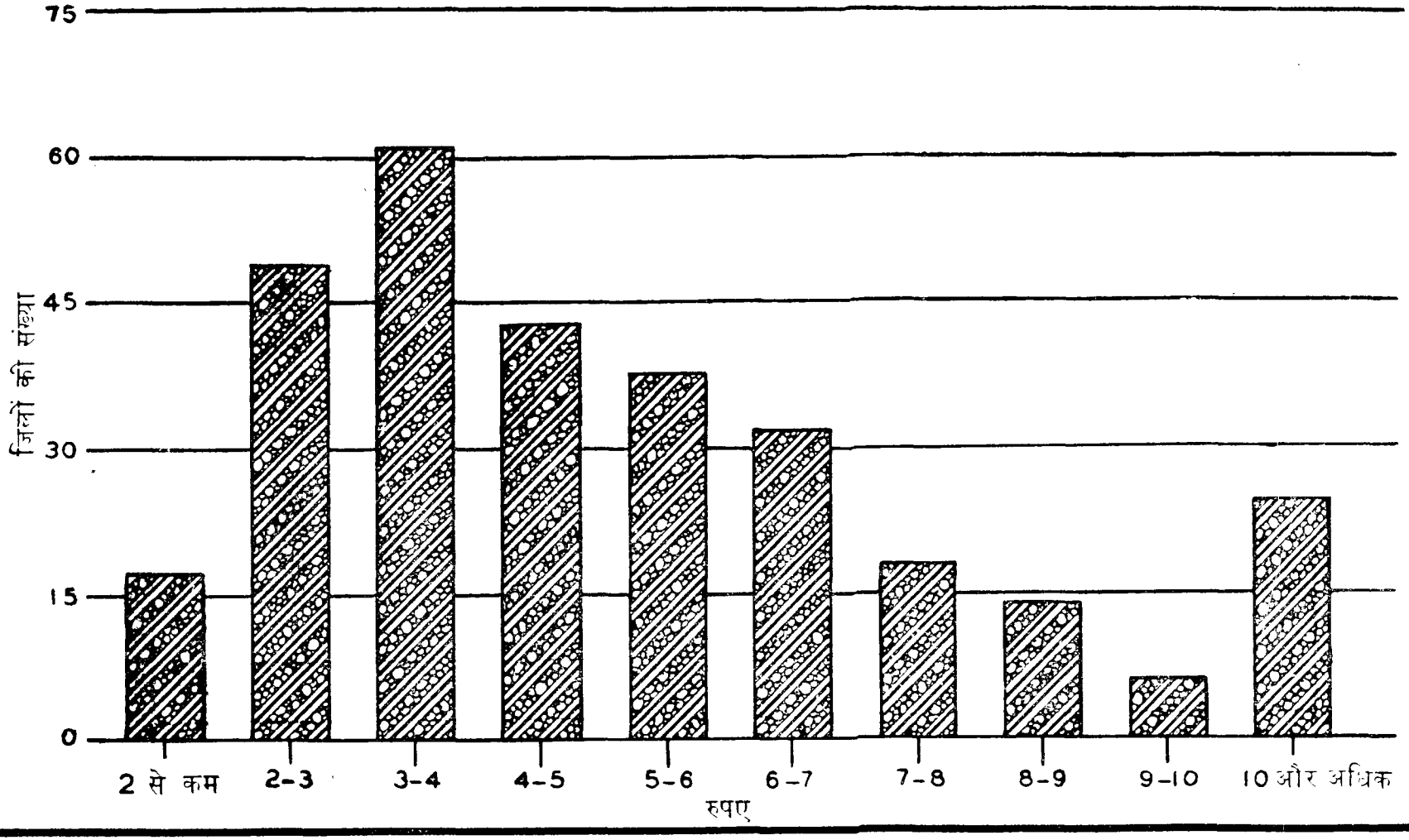

संघृत प्रयत्न किया जाना चाहिए, ताकि उनके और उन्नत क्षेत्रों के बीच का अन्तर घट कर न्यूनतम हो सके। यह 'समता लाने की नीति' है, जिसके अन्तर्गत हरेक क्षेत्र को सहायता दी जाती है, बशर्ते कि वह स्वयं भी कुछ निर्धारित न्यूनतम स्तरों तक उठने के लिए प्रयत्न करे। हमें अपने शिक्षा के सहायतानुदान मोटे तौर पर समता लाने के इस सिद्धान्त के आधार पर देने पड़ेंगे।

(2) शिक्षा योजना और विकास के लिए जिले को बुनियादी इकाई के रूप में अपनाना पड़ेगा। इस सम्बन्ध में हमारे विस्तृत प्रस्तावों का विवेचन अन्यत्र किया जाएगा।[1]

(3) राज्य स्तर पर जानबूझ कर विभिन्न जिलों में शिक्षा के विकास के समकरण की नीति अपनाई जानी चाहिए और इस उद्देश्य के लिए आवश्यक प्रशासनिक और वित्तीय उपाय बरते जाने चाहिए।

(4) राष्ट्रीय स्तर पर भारत सरकार की यह जिम्मेदारी समझी जानी चाहिए कि वह विभिन्न राज्यों में शिक्षा विकास में समता लाए। इसके लिए आवश्यक कार्यक्रम, जिनमें कम उन्नत राज्यों के लिए विशेष सहायता भी शामिल है, बनाये जाने चाहिए।

लड़कियों की शिक्षा

6.53. लड़कियों की शिक्षा का कितना महत्व है, इस पर जितना जोर दिया जाए, उतना ही थोड़ा है। हमारे मानवीय साधनों के पूर्ण विकास, घरों के सुधार और शैशव के सर्वाधिक संस्कारग्राही वर्षों में बच्चों के चरित्र के निर्माण के लिए स्त्रियों की शिक्षा पुरुषों की शिक्षा से भी ज्यादा महत्वपूर्ण है। जैसा कि पहले कहा गया है, स्त्रियों की शिक्षा प्रसवन दर को घटाने में काफी सहायता कर सकती है। आधुनिक संसार में स्त्रियों का कार्य घर और सन्तान पालन से भी कहीं दूर तक जाता है। वह अब अपने निज के पेशे अपना रही हैं और समान विकास के सभी पहलुओं के उत्तरदायित्व में पुरुषों के साथ हिस्सा बंटा रही हैं। यह दिशा है, जिसकी ओर हमें बढ़ना पड़ेगा। स्वतन्त्रता संघर्ष में भारतीय नारियां भी पुरुषों के साथ-साथ लड़ी थीं। भूख, गरीबी, अज्ञान और बीमारियों के विरुद्ध लड़ाई में भी यह समान साझेदारी जारी रखनी होगी।

6.54. **लड़कियों की शिक्षा का विकास (1950-51 से 1965-66 तक)**—पिछले डेढ़ सौ वर्षों में स्त्रियों की शिक्षा में एक असाधारण विकास हुआ है, जो आधुनिक भारत में जीवन की एक सर्वाधिक स्पष्ट विशिष्टता है, उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में लड़कियों की औपचारिक शिक्षा के लिए शायद ही कोई व्यवस्था थी। यहां तक कि वर्तमान शताब्दी के आरम्भ तक भी कुछ अधिक प्रगति नहीं हुई थी। सन् 1901 में स्त्रियों में साक्षरता की प्रतिशतता कुल 0.8 थी। स्कूलों में नामांकित (नाम लिखाने वाले) 100 लड़कों के मुकाबले में लड़कियों की संख्या प्राथमिक स्तर पर 12 और माध्यमिक स्तर पर 4 थी। उच्चतर शिक्षा में लड़कियों का कुल नामांकन 264 था (जिसमें से 76 लड़कियां मेडिकल कॉलेजों में और 11 शिक्षा कालिजों में थीं)। अगले 50 वर्षों में स्त्रियों की सामाजिक स्थिति को ऊंचा उठाने और उनकी शिक्षा का विकास करने में कहीं अधिक तीव्र प्रगति हुई और पिछले पन्द्रह वर्षों की प्रगति तो असाधारण रही हैं। यह सारणी 6.7 में दिए गए आंकड़ों से स्पष्ट हो जाएगा।

सारणी 6.7 लड़कियों की शिक्षा (1950-1965)

	1950-51	1955-56	1960-61	1965-66 (अनुमानित)
1. कक्षा 1—5 में लड़कियों का नामांकन				
(1) कुल नामांकन (000 में)	5,385	7,639	11,401	18,145
(2) हर 100 नामांकित लड़कों से पीछे लड़कियों की संख्या	39	44	48	55
(3) लड़कों के स्कूलों में लड़कियों की प्रतिशतता	74.8	79.2	82.1	85.0

(जारी)

1. अध्याय अठारह।

	1950-51	1955-56	1960-61	1965-66 (अनुमानित)
2. कक्षा 6—8 में लड़कियों का नामांकन				
(1) कुल नामांकन (000 में)	534	867	1,630	2,839
(2) हर 100 नामांकित लड़कों के पीछे लड़कियों की संख्या	21	25	32	35
(3) लड़कों के स्कूलों में लड़कियों की प्रतिशतता	26.7	51.8	68.9	78.0
3. कक्षा 9—11 में लड़कियों का नामांकन				
(1) कुल नामांकन (000 में)	163	320	541	1,069
(2) हर 100 नामांकित लड़कों के मुकाबले में लड़कियों की संख्या	15	21	23	26
(3) लड़कों के स्कूलों में लड़कियों की प्रतिशतता	21.0	29.7	36.4	40
4. विश्वविद्यालय स्तर पर (सामान्य शिक्षा) में लड़कियों का नामांकन				
(1) कुल नामांकन (000 में)	40	84	150	271
(2) हर 100 नामांकित लड़कों के मुकाबले में लड़कियों की संख्या	14	17	23	24
(3) लड़कों की संस्थाओं में लड़कियों की प्रतिशतता	56.0	53.1	50.2	48.2
5. व्यावसायिक पाठ्यक्रमों (स्कूल स्तर) में लड़कियों का नामांकन				
(1) कुल नामांकन (000 में)	41	66	86	120
(2) हह 100 नामांकित लड़कों के पीछे लड़कियों की संख्या	28	31	25	23
6. वृत्तिक पाठ्यक्रमों (कालेज स्तर) में लड़कियों का नामांकन				
(1) कुल नामांकन (000 में)	5	9	26	50
(2) हर 100 नामांकित लड़कों के पीछे लड़कियों की संख्या	5	7	11	14

स्रोत : शिक्षा मंत्रालय, फार्म ए; 1965-66 वर्ष को छोड़कर जिसके अनुमान हमने शिक्षा आयोग के सचिवालय में तैयार किए ।

इस दत्त सामग्री से कुछ दिलचस्प मुद्दे सामने आते है । लड़कियों की शिक्षा के विस्तार की गति लड़कों की शिक्षा के विस्तार की गति से अधिक तेज है जिससे कि उनके बीच का अन्तर धीरे-धीरे और स्थिरता से कम हो रहा है। अवर प्राथमिक स्तर पर 1901 में हर 100 नामांकित लड़कों के पीछे लड़कियों की संख्या 12 थी किन्तु 1950 में वह बढ़कर 39 और 1965 में 55 हो गई । माध्यमिक स्तर पर ये संख्याएं क्रमशः 1901 में 4 तथा 1950 में 15 और 1965 में 26 है । उच्चतर शिक्षा में 1901 में लड़कियों का नामांकन कुल 264 था, परन्तु 1950 में वह बढ़कर 40,000 और 1965 में 2,40,000 हो गया । मिश्रित स्कूलों में लड़कियों की शिक्षा अवर और उच्चतर

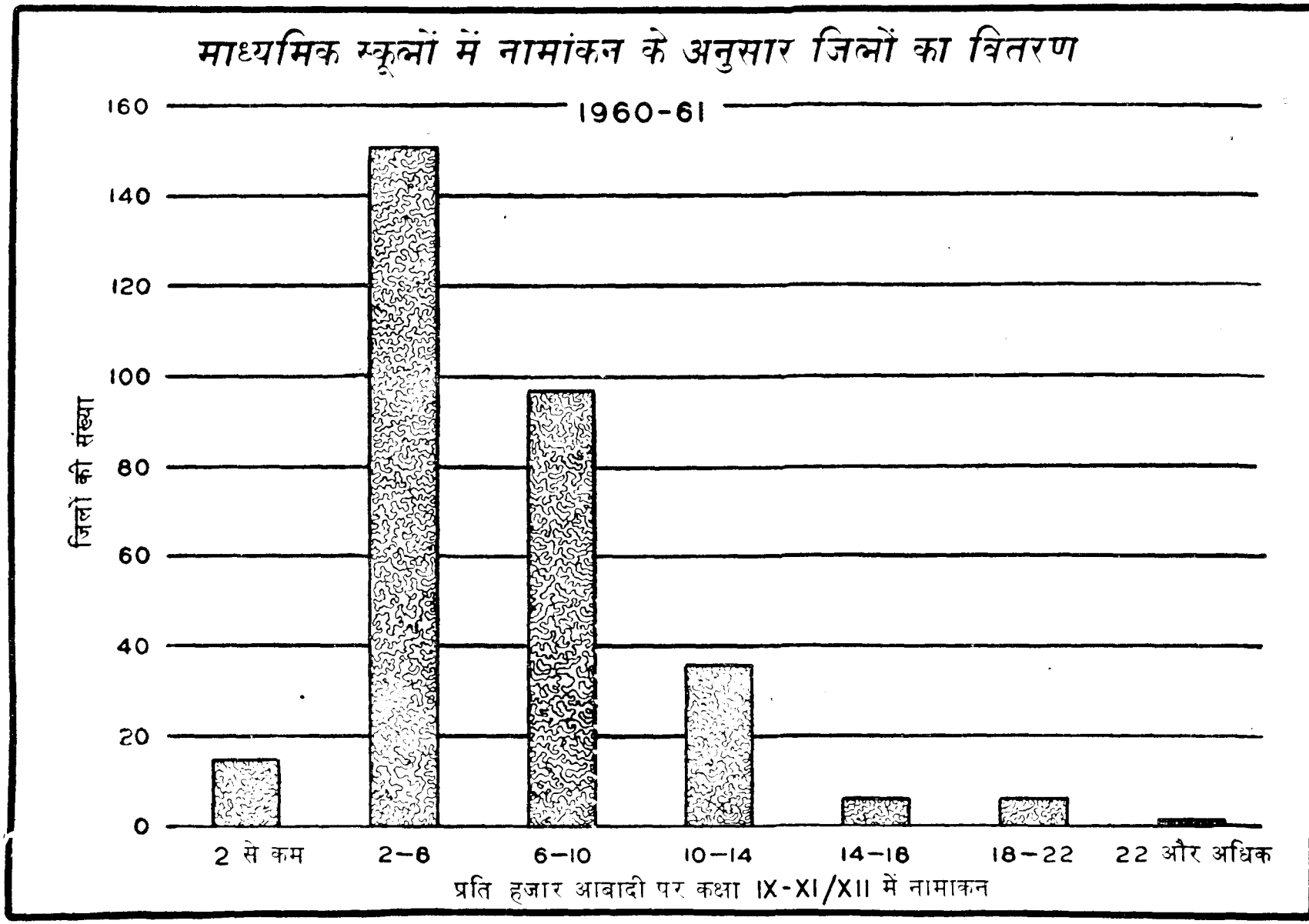
माध्यमिक स्कूलों में नामांकन के अनुसार जिलों का वितरण
1960-61
160
140
120
100
80
60
40
20
0
जिलों की संख्या
2 से कम
2–6
6–10
10–14
14–18
18–22
22 और अधिक
प्रति हजार आबादी पर कक्षा IX-XI/XII में नामाकन

प्राथमिक स्तरों पर अधिक स्वीकार की जाती है। अवर प्राथमिक स्तर पर 85 प्रतिशत नामांकित लड़कियां और उच्चतर प्राथमिक स्तर पर 78 प्रतिशत नामांकित लड़कियां मिश्रित स्कूलों में हैं। किन्तु माध्यमिक स्तर पर पहुंच कर मिश्रित स्कूलों में लड़कियों की शिक्षा का अधिक विरोध होता है। इसीलिए कुछ नामांकित लड़कियों में से 40 प्रतिशत ही मिश्रित स्कूलों में है। परन्तु विश्वविद्यालय स्तर पर यह प्रतिरोध कुछ हद तक फिर कम हो जाता है।

6.55. **सिफ़ारिशें**—स्त्रियों की शिक्षा की समस्या पर हाल के वर्षों में अनेक समितियों ने विचार किया है : श्रीमती दुर्गा बाई देशमुख की अध्यक्षता में राष्ट्रीय स्त्री शिक्षा समिति; श्रीमती हंसा मेंहता की अध्यक्षता में लड़कों और लड़कियों की पाठ्यचर्याओं के विभेदीकरण के लिए नियुक्ति समिति; और श्री एम० भक्तवत्सलम की अध्यक्षता में नियुक्त समिति, जिसने कम विकसित लड़कियों की शिक्षा वाले छः राज्यों में समस्या का अध्ययन किया। हम इन समितियों की सिफ़ारिशों का पूर्ण अनुमोदन करते है।

6.56. हमारी सम्मति में लड़कियों और स्त्रियों की शिक्षा के विकास के लिए दो प्रकार की नीति अपनानी पड़ेंगी। पहली यह कि राष्ट्रीय स्त्री शिक्षा समिति द्वारा सिफ़ारिश किए गए 'विशेष' कार्यक्रमों पर बल दिया जाए; और दूसरी यह कि सभी स्तरों पर और सभी क्षेत्रों में शिक्षा के सुधार और विस्तार के सामान्य कार्यक्रमों के अभिन्न अंग के रूप में लड़कियों की शिक्षा की ओर ध्यान दिया जाए। पहली नीति के बारे में हमारी सिफारिश है कि, जैसा कि राष्ट्रीय समिति ने कहा है, निम्न ढंग से कार्रवाई की जाए :

(1) अगले कुछ वर्षों तक स्त्रियों की शिक्षा को शिक्षा का एक मुख्य कार्यक्रम माना जाए और उसमें आने वाली कठिनाइयों का सामना करने और पुरुषों और स्त्रियों की शिक्षा के बीच के अन्तर को यथासम्भव कम से कम समय में दूर करने के लिए साहस और दृढ़ता के साथ प्रयत्न किया जाए।

(2) इस प्रयोजन के लिए विशेष योजनाएं बनाई जाएं और उनके लिए आवश्यक धन की व्यवस्था प्राथमिकता के आधार पर की जाए। और

(3) केन्द्र और राज्यों, दोनों में, लड़कियों और स्त्रियों की शिक्षा की देखभाल के लिए एक विशेष संगठन स्थापित किया जाए। यह संगठन सरकारी और गैर-सरकारी व्यक्तियों को स्त्रियों की शिक्षा के कार्यक्रमों के आयोजन और क्रियान्वय के लिए एक जगह लाए।

ये विशेष कार्यक्रम, प्रकृत्या ही, अस्थायी हैं और उन्हें तभी तक क्रियान्वित किया जाएगा, जब तक कि लड़कों और लड़कियों की शिक्षा के बीच का अन्तर लगभग मिट न जाए। किन्तु उन्हें इस नीति के दूसरे भाग, यानी सभी क्षेत्रों में लड़कियों की शिक्षा पर पर्याप्त ध्यान देने, की उपेक्षा के लिए बहाने के तौर पर इस्तेमाल नहीं किया जाना चाहिए। वास्तव में, यदि शुरू से ही ऐसा किया जाता तो विशेष कार्यक्रमों की जरूरत शायद ही पैदा होती। हमारी सम्मति में अब एक ऐसी स्थिति आ गयी है जब हमें अपनी नीति के इस पहलू को विकसित करने के लिए अधिक तीव्र प्रयत्न करने की आवश्यकता है, ताकि कुछ वर्षों के भीतर ही विशेष कार्यक्रमों की आवश्यकता समाप्त हो जाए।

6.57. घर की चहारदीवारी के बाहर स्त्रियों का कार्य आज देश के सामाजिक और आर्थिक जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग बन गया है और आगामी वर्षों में वह और बड़ा आकार धारण कर लेगा जिसका प्रभाव अधिकतर स्त्रियों पर पड़ने लगेगा। इसलिए यह आवश्यक होगा कि स्त्रियों को प्रशिक्षण और रोजगार देने की समस्याओं की ओर पर्याप्त ध्यान दिया जाए।

(1) एक महत्वपूर्ण समस्या यह है कि स्त्रियों को घर चलाने और साथ ही जीवन में एक उप-उपयुक्त पेशा अपनाने, दोनों के लायक बनाया जाए। सन् 1961 की जनगणना से पता चलता है कि इस समय दस लाख से अधिक स्त्रियां ऐसी हैं जिनकी आयु 24 वर्ष से कम है और जो मैट्रिकुलेशन तक की न्यूनतम योग्यता पाइ हुई है और फिर भी केवल गृह-पत्नियों के रूप में ही काम कर रही हैं। आने वाले दिनों में इनकी संख्या और बढ़ेगी। इन स्त्रियों को राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के कार्यक्रमों में भाग लेने के लायक बनाने के लिए अंशकालिक रोजगार के अवसर काफी बढ़ाने पड़ेंगे। इसके अलावा, जहां कहीं संभव हो, उन्हें अवैतनिक स्तर पर भी सभी प्रकार के राष्ट्र-निर्माण के क्रिया-कलापों में आकृष्ट करना होगा।

(2) साथ ही साथ पूर्णकालिक रोजगार के अवसर भी बढ़ाने पड़ेंगे। जैसे-जैसे विवाह की आयु

बढ़ेगी, वैसे-वैसे प्रायः सभी अविवाहित युवतियों के लिए पूर्णकालिक रोजगार की व्यवस्था करनी होगी। यह भी आशा की जा सकती है, जैसा कि अन्य देशों में होता है, कि एक बार जब उसके बच्चे स्कूल जाने की आयु में पहुंच जाएंगे, तब स्त्रियों को काफी समय मिलने लगेगा और उनमें पूर्णकालिक रोजगार प्राप्त कर उसे उपयोगी ढंग से व्यतीत करने की इच्छा पैदा होगी। इस इच्छा की भी सन्तोषजनक रीति से पूर्ति करनी होगी। अध्यापन, नर्सिंग, और समाज-सेवा ऐसे सुस्वीकृत क्षेत्र हैं जिनमें स्त्रियां महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकती हैं। इन क्षेत्रों में स्त्रियों के लिए अवसर काफी बढ़ाने पड़ेंगे और जीवन के प्रायः सभी क्षेत्रों में उनके लिए नए मार्ग भी खोलने पड़ेंगे।

6.58. स्त्रियों की शिक्षा के विभिन्न पहलुओं के बारे में हमारी सिफ़ारिशें इस रिपोर्ट में लड़कों की शिक्षा विषयक सिफारिशों के साथ उपयुक्त प्रसंगों में दी गयी है।

अनुसूचित आदिम जातियों की शिक्षा

6.59. **समस्या का रूप**—यह आवश्यक है कि पिछड़े वर्गों के जिनमें अनुसूचित जातियां, अनुसूचित आदिम जातियां और अननुसूचित जातियां और कुछ खानाबदोश एवं नीम-खानाबदोश समूह शामिल हैं, बच्चों की शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया जाए।

(1) जहां तक अनुसूचित जातियों का सम्बन्ध हैं, अस्पृश्यता की कठोरता कम होने में समस्या कुछ सरल हो गयी है। किन्तु इसके शीघ्र हल के लिए हम सिफ़ारिश करते हैं कि अनुसूचित जातियों की शिक्षा के लिए विद्यमान कार्यक्रम जारी रहने चाहिए और उनका विस्तार किया जाना चाहिए।

(2) जहां तक अंतिम वर्ग का सम्बन्ध हैं, यह कहा जा सकता हैं कि देश में ऐसे बहुत से खानाबदोश और नीम-खानाबदोश समूह हैं, जिनकी शिक्षा की आवश्यकताओं की अब तक प्रायः पूर्ण उपेक्षा हुई हैं। ऐसे समूहों को शिक्षा को सुविधाएं प्रदान करना आसान नहीं होगा। जहां तक सम्भव हो, ऐसे समूहों को एक ही स्थान पर अधिक स्थिर रहन-सहन के तरीके विकसित करने में सहायता दी जानी चाहिए। इसके लिए उनकी अर्थ-व्यवस्था और जीवन-पद्धति के कुछ हद तक बुनियादी पुर्नगठन की जरूरत है। इसलिए ऐसे हल निकालने के लिए, जिनसे उनकी आवश्यकताएं पूरी हों और उनका सहयोग प्राप्त किया जा सके, उनकी समस्याओं का निकट से अध्ययन किया जाना चाहिए। यद्यपि परिवर्तन की यह प्रक्रिया कई वर्षों में क्रियान्वित की जाएगी, तो भी जहां कहीं बड़े खानाबदोश समूह हों, वहां उन्हें चलते-फिरते रूप में विपणन, ऋण, स्वास्थ्य और शिक्षा की सुविधाएं दी जानी चाहिए। इसी तरह की सुविधाएं उन जातियों के लिए भी होनी चाहिएं, जो वर्ष में कई महीनों के लिए अपने घरों से प्रव्रजन कर जाती हैं।

(3) अनुसूचित जातियों की समस्या आकार में छोटी है, परन्तु फिर भी अत्यन्त कठिन है। उसके लिए अनेक वर्षों तक धैर्य से काम करने की आवश्यकता हैं। अन्ततः शावद सबसे अच्छा हल यह हैं कि ऐसे होस्टल बनाए जाएं जिनमें इन जातियों के बच्चे उचित वातावरण में रह और बढ़ सकें।

इस खंड में हम मुख्यतः अनुसूचित आदिम जातियों की शिक्षा पर विचार करेंगे, जिस पर हमारी सम्मति में विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

6.60. आदिम जातियाँ (ट्राइबल)[1] आमतौर पर वन क्षेत्रों में रहती हैं, जहां पहुंचना आसान नहीं है और जहां जीवन की परिस्थियां बहुत कष्टकर हो सकती हैं। कुछ लोग गैर-आदिमजातीय आबादी के मध्य में छोटे समूहों के रूप में रहते हैं। किन्तु अधिकतर आदिमजातीय लोग ऐसे इलाकों में रहते हैं, जहां मुख्यतः आदिमजातीय लोगों की ही आबादियां होती हैं। इनके उदाहरण हैं मध्य प्रदेश, बिहार, उड़ीसा के जिलों के समूह, असम के पहाड़ी जिले और उत्तर-पूर्वी क्षेत्र के अन्य जिले हैं।

1. **हम 'ट्राइवल' शब्द से खुश नहीं हैं। इस शब्द से कुछ ऐसी ध्वनियां निकलती हैं जिन्हें ट्राइवल लोगों द्वारा पसन्द नहीं किया जाता, और वह ठीक भी है। हमारी सिफ़ारिश है कि भारत सरकार इसकी जगह कोई दूसरा उपयुक्त शब्द हमारे इन भाइयों के लिए अपनाए। फिलहाल हमें न चाहते हुए भी इस शब्द का प्रयोग करना पड़ा है।**

6.61. जहां आदिम जातीय लोगों के छोटे-छोटे इलाके हैं, या जहां वे शेष आबादी के साथ घुले-मिले हुए हैं और उसका अपेक्षाकृत छोटा भाग हैं, वहां समस्या अपेक्षया सरल है। ऐसे मामलों में आदिम जातियों की आवश्यकताओं पर विशेष ध्यान देना पड़ेगा, ताकि वे शिक्षा विकास के लाभों में से उचित हिस्सा प्राप्त कर सकें। किन्तु जिन क्षेत्रों में आदिम जातियों की प्रधानता है, वहां स्थिति अत्यधिक चुनौती भरी हो जाती है, क्योंकि समेकित विकास के लिए एक आदर्श अवसर उपस्थित होता है, जिसका हम पहले उल्लेख कर चुके है।[1] इन सब क्षेत्रों में तीन काम सबसे प्रमुख होते हैं। ये काम हैं : पहला, संचार व्यवस्था का विकास; दूसरा, चलती खेती की मौजूदा प्रणाली को एक विकासोन्मुख कृषि अर्थ व्यवस्था में परिणत करना, जिसमें जंगलों की देखभाल, चलती खेती की सुधरी प्रणाली, जमी खेती और चारागाह, और तीसरा, एक ऐसी शिक्षा प्रणाली विकसित करना, जो उनके आर्थिक और सामाजिक विकास की योजना से सम्बद्ध हो और साथ ही इन लोगों की सांस्कृतिक और आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति करती हो।

6.62. आदिमजातीय लोगों में शिक्षा के प्रसार की समस्याओं पर हाल के वर्षों में बहुत ध्यान दिया गया है। श्री उ. न. ढेबर की अध्यक्षता में अनुसूचित क्षेत्र और अनुसूचित आदिम जाति कमीशन ने इनका विस्तार से अध्ययन किया था। योजना आयोग द्वारा नई दिल्ली में और राष्ट्रीय शिक्षा अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् द्वारा उदयपुर में आयोजित सेमिनारों में भी उन पर विचार किया गया। हम उनकी सिफ़ारिशों से मोटे तौर पर सहमत हैं।

6.63. **वर्तमान स्थिति**—अनुसूचित आदिम जातियों की शिक्षा के बारे में उपलब्ध नवीनतम आंकड़े 1960-61 के और वे सारणी 6.8 में सार रूप में दिए गए हैं। सारणी का मुख्य उद्देश्य राज्य की अनुसूचित आदिम जातियों की शिक्षा की सामान्य जनता की शिक्षा के साथ तुलना करना है उदाहरण के लिए, यदि मध्यप्रदेश में अनुसूचित आदिम-जातियों को आबादी का अनुपात 20.6 प्रतिशत है और यदि उनकी शैक्षिक प्रगति भी सामान्य आबादी की प्रगति के बराबर ही हैं तो हमें यह आशा करनी चाहिए कि उनके नामांकन की प्रतिशतता भी उतनी ही होगी। किन्तु वास्तविकता कभी ऐसी नहीं होती। कुछ मामलों में (उदाहरणार्थ असम के प्राथमिक शिक्षा के मामलों में) आदिमजातीय बच्चों का स्कूलों में नामांकन सामान्य आबादी के नामांकन से ज्यादा है,[2] जिससे पता चलता है कि आदिम जातियां औसत सामान्य आबादी से शिक्षा की दृष्टि से अधिक उन्नत है। दूसरी ओर उनके नामांकन की प्रतिशतता बहुत-से इलाकों में बहुत नीची है और उससे शिक्षा की दृष्टि से उनके पिछड़ेपन का पता चलता है।

(सारणी 6.8 अगले पृष्ठ पर देखिए)

1. अध्याय पांच।

2. इसका अर्थ यह नहीं है कि सभी आदिम जातियों समान उन्नत हैं। असम में भी, मिकिर जैसी अत्यधिक पिछड़ी आदिम जातियां भी हैं और मिज़ो जैसी शिक्षा की दृष्टि से अत्यधिक उन्नत आदिम जातियां भी।

सारणी 6.8 अनुसूचित आदिम जातियों में शिक्षा (1961)

राज्य	राज्य की कुल आबादी में अनुसूचित आदिम जातियों की आबादी की प्रतिशतता	कुल नामांकन में अनुसूचित आदिम जातियों के नामांकन की प्रतिशतता					
		अवर प्राथमिक	उच्चतर प्राथमिक	माध्यमिक	उच्चतर शिक्षा	व्यावसायिक और वृत्तिक शिक्षा	कुल योग
आंध्र प्रदेश	3.7	2.3	0.7	0.6	0.4	1.8	1.9
असम	17.4	24.0	16.2	9.3	9.8	32.9	20.9
बिहार	9.1	8.7	7.4	3.7	2.4	7.1	7.6
गुजरात	13.3	12.4	7.5	1.9	0.2	12.0	8.1
जम्मू और कश्मीर	—	—	—	—	—	—	—
केरल	1.2	0.5	0.4	0.2	—	0.1	0.4
मध्यप्रदेश	20.6	12.3	6.5	2.2	2.2	5.0	9.7
मद्रास	0.7	0.5	0.1	0.2	0.8	0.3	0.4
महाराष्ट्र	6.1	6.6	0.1	1.0	0.6	2.6	3.4
मैसूर	0.1	0.7	0.2	0.2	0.1	0.4	0.6
उड़ीसा	—	—	—	—	—	—	—
पंजाब	0.1	0.1	0.1	0.1	0.2	0.3	0.1
राजस्थान	11.5	2.3	0.9	0.6	0.5	4.5	1.9
उत्तरप्रदेश	—	—	—	—	—	—	—
पश्चिमी बंगाल	5.9	3.5	3.2	1.4	0.3	8.5	3.4

स्रोत : शिक्षा मंत्रालय फार्म ए। उड़सा के आंकड़े उपलब्ध नहीं थे। जम्मू और कश्मीर एवं उत्तरप्रदेश में अनुसूचित आदिम जातियों की जनसंख्या नगण्य थी।

ऊपर की सारणी से यह स्पष्ट हो जाएगा कि अवर प्राथमिक स्तर पर आदिम जातियों की शिक्षा कुछ ही राज्यों में अपेक्षाकृत अधिक विकसित है, जैसे असम, गुजरात या महाराष्ट्र। इस स्तर पर भी मध्यप्रदेश या राजस्थान जैसे राज्यों में स्थिति सुखद नहीं है। अवर प्राथमिक स्तर के बाद देश के सभी भागों में नामांकन में एकाएक गिरावट दिखाई देती है। इससे पता चलता है कि सारी आबादी में जितनी व्यर्थता दिखाई देती है, उससे कहीं ज्यादा व्यर्थता आदिमजातियों में है। आदिम जातीय शिक्षा में मुख्य कमजोरी वस्तुतः 11-17 आयु वर्ग में या उच्चतर प्राथमिक और अवर माध्यमिक स्तरों पर है, जहां छात्रवृत्तियों और अन्य सहायता का कार्यक्रम पर्याप्त विकसित नहीं है। इसी स्तर पर प्रतिभा या तो विलुप्त हो जाती है या अल्प विकसित रहती है, और हमारी सम्मति में इसी क्षेत्र पर भविष्य में अधिक ध्यान देना होगा। उच्चतर शिक्षा में आदिम जातीय लोगों के नामांकन में कुछ सुधार दिखायी देता है, जिसका कारण केन्द्रीय छात्रवृत्ति कार्यक्रम है। व्यासायिक शिक्षा स्पष्टतः सभी जगह आदिम जातीय लोगों में अधिक लोकप्रिय है। आदिम जातीय लोगों में इस तरह क्रियात्मक कार्यक्रमों के लिए अधिक स्वाभाविक रुझान है और उसे हर तरह का प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए।

6.64. **प्राथमिक शिक्षा**—आदिम जातीय लोगों में सभी बच्चों के लिए 1975-76 तक पांच वर्ष की प्रभावी शिक्षा की व्यवस्था करने के लिए तीव्रता से प्रयत्न करने पड़ेंगे। इसके लिए माता-पिता की शिक्षा के लिए तीव्र कार्यक्रम की आवश्यकता होगी। लड़कियों की शिक्षा को विशेष प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए और इसमें कठिनाई नहीं होगी क्योंकि आदिम जातीय जीवन पद्धति में स्त्रियों

का दर्जा अच्छा है। स्कूल के पहले दो वर्षों में शिक्षा का माध्यम आदिमजातीय भाषा होनी चाहिए और इस स्तर पर उपयोग के लिए इन भाषाओं में पुस्तकें खास तौर से तैयार की जानी चाहिए (लिपि प्रादेशिक भाषा की इस्तेमाल की जानी चाहिए)। इस काल में बच्चों को प्रादेशिक भाषा की मौखिक शिक्षा दी जानी चाहिए और इस भाषा से उनका परिचय और उस पर उन का अधिकार बढ़ाया जाना चाहिए। तीसरे वर्ष की समाप्ति तक प्रादेशिक भाषा शिक्षा का माध्यम हो जानी चाहिए। इसमें कोई कठिनाई नहीं होगी, क्योंकि बच्चे उसकी लिपि पहले ही सीख चुके होंगे और भाषा से भी परिचित हो चुकेंगे।[1]

6.65. यह आवश्यक है कि शिक्षा की सुविधाएं, जो अक्सर बहुत कम होती हैं, सुधारी जाएं। बहुत विरल आबादी वाले इलाकों में आश्रम स्कूल बड़ी संख्या में खोलने होंगे। बच्चों को स्कूलों में आकृष्ट करने और उन्हें वहीं कायम रखने के लिए स्कूलों का कामकाज और कार्यक्रम पर्यावरण के साथ समस्वर होने चाहिए। उनके अवकाश और छुट्टियाँ कृषि और वन सम्बन्धी कार्यों एवं सामाजिक उत्सवों के मौके पर होने चाहिए। बच्चों को अपने परिवारों के लिए जो कार्य करना पड़ता है उसके अनुसार ही स्कूल के घंटे होने चाहिए। इन उपायों की समग्र रूप से ग्रामीण आबादी के लिए आवश्यकता है। परन्तु आदिमजातीय लोगों की शिक्षा के लिए इनका विशेष महत्व है। इसके अलावा कार्य-अनुभव प्रणाली प्रारम्भ करने और कला की शिक्षा पर जोर देने से भी आदिमजातीय बच्चे आकृष्ट होंगे और साथ ही लोक गीतों, कथाओं और पहेलियों से भी, जो आदिमजातीय लोगों के बहुत लोकप्रिय हैं। आदिमजातीय खेल, धनुर्विद्या एवं आदिम जातीय संगीत और नृत्य भी पाठ्यचर्येतर क्रियाकलाप में शामिल किए जाने चाहिए।

6.66. **माध्यमिक शिक्षा**—जैसा कि पहले कहा गया है, आदिम जातियों में उच्चतर प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा पर अधिक ध्यान देना होगा। इसके लिए होस्टलों का कार्यक्रम अत्यन्त आवश्यक है। अधिक तीव्र-बुद्धि वाले बच्चे अवर प्राथमिक स्तर पर ही चुन लिए जाने चाहिएं और होस्टलों में भरती कर दिए जाने चाहिए इन बच्चों को वैयक्तिक निर्देशन और अतिरिक्त अध्यापन प्रदान करने के लिए सावधानी से व्यवस्था की जानी चाहिए, ताकि वे गैर-आदिमजातीय छात्रों की तुलना में अच्छा कार्य कर सकें। इस प्रकार के अतिरिक्त अध्यापन पर अतिरिक्त खर्च कम होगा : किन्तु वह होस्टलों पर इस समय किए जा रहे भारी खर्च की प्रभाविता को बहुत बढ़ा देगा। आश्रम स्कूलों की योजना इस दृष्टि से बहुत अच्छी है। उसका जितना विकास संभव हो, किया जाना चाहिए।

6.67. आदिम जातीय बच्चों को अच्छे उच्चतर प्राथमिक या माध्यमिक स्कूलों में प्रवेश पाने में कठिनाई होती है। शिक्षा-विभागों को उन्हें यह प्रवेश दिलाने के लिए विशेष प्रयत्न करने होंगे, और यदि आवश्यक हो तो, इस प्रयोजन के लिए स्कूलों को कुछ प्रलोभन भी देना होगा। जहां इस तरह के स्कूलो में प्रवेश के लिए छात्रों का अधिक तैयारी करना जरूरी है, वहां आदिम जातीय छात्रों को यह शिक्षा देने के लिए विशेष उपाय किए जाने चाहिए, ताकि उन्हें आवश्यक स्तर तक लाया जा सके। जैसा कि पहले कहा गया है, आदिम जातीय लोग व्यावसायिक पाठ्यक्रमों के शौकीन होते हैं। इसलिए उन्हें अच्छे व्यावसायिक स्कूलों, जूनियर शिल्प विद्यालयों, औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थाओं, पोलिटेकनिकों आदि में स्थान दिलाने के लिए विशेष प्रयत्न किए जाने चाहिए। अवर प्राथमिक स्तर की समाप्ति पर स्कूल छोड़ देने वाले बड़े बच्चों के लिए भी विशेष व्यावसायिक स्कूल संगठित किये जाने चाहिए।

6.68. **उच्च शिक्षा**—भारत सरकार द्वारा स्थापित छात्रवृत्ति कार्यक्रम के संचालन को दोषरहित बनाना आवश्यक है। इस सम्बन्ध में हम निम्न सिफ़ारिशें करते हैं :

(1) छात्रवृत्तियों और अन्य सहायताओं के प्रशासन को काफी विकेन्द्रित करना आवश्यक है। संस्थाओं के प्रमुखों को अपने ही अधिकार से प्रवेश के साथ ही छात्रवृत्तियां देने का अधिकार दिया जाना चाहिए। इस प्रयोजन के लिए शिक्षा-वर्ष प्रारम्भ होने से काफी पहले ही उनके नियंत्रण में आवश्यक राशि दे दी जानी चाहिए। यह राशि वृद्धि की गुंजाइश रखकर पिछले वर्ष के व्यय के आधार पर दी जानी चाहिए।

(2) कार्यक्रम का क्षेत्र विस्तृत किया जाना चाहिए, ताकि उसमें केवल धन की व्यवस्था ही शामिल न हो बल्कि आवश्यक अतिरिक्त अध्यापक सुविधाओं, प्रगति पर नजर रखने, पेशों का पहले से ही आयोजन करने और उपयुक्त संस्थाओं में स्थान दिलाने, या दूसरे शब्दों में, व्यक्तिक अनुगमन की व्यवस्थाएं भी शामिल

1. **जहां आदिम जातीय भाषा के लिए रोमन लिपि पहले से ही चल रही है, वहां वह जारी रहनी चाहिए।**

हों। इस प्रयोजन के लिए आवश्यक कर्मचारी मंडल उपलब्ध कराया जाना चाहिए।

(3) छात्रवृत्तियों के क्षेत्र में माध्यमिक स्कूल छोड़ने वाले छात्रों के लिए उपलब्ध सभी पाठ्यक्रमों का समावेश होना चाहिए। और व्यावसायिक और तकनीकी पाठ्यक्रमों को, जिनमें औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थाओं के पाठ्यक्रम भी शामिल हैं, विशेष तरजीह दी जानी चाहिए।

6.69. **सामान्य**—आदिमजातीय जीवन और शिक्षा के विकास का बुनियादी प्रश्न है सही किस्म का नेतृत्व प्रदान करने का। जो भी हो, अगले कुछ वर्षों में, यह नेतृत्व गैर-आदिमजातीय लोगों—सरकारी और गर-सरकारी—से ही प्राप्त होगा, परन्तु समस्या के अन्तिम समाधान के लिए स्वयं आदिम जातियों में ही उचित नेतृत्व का विकास करना आवश्यक है। इसलिए, इस क्षेत्र में, हमारा प्रयत्न इन दोनों लक्ष्यों की दिशा में होना चाहिए।

6.70. ऐसे गैर-आदिमजातीय व्यक्तियों की संख्या अधिक नहीं है, जो आदिम जातियों के बीच में रहना और काम करना चाहें। किन्तु कुछ व्यक्तियों और संस्थाओं ने इस कार्य का व्रत ले रखा है। उन्हें प्रोत्साहन और आवश्यक धन दिया जाना चाहिए, ताकि वे ऐसे युवकों के दल भारती और प्रशिक्षित कर सकें, जो जातियों की सेवा को अपने जीवन का मिशन बना सकें। सरकारी व्यक्तियों में सबसे बड़ी कठिनाई है निरन्तर स्थानान्तरों की। कोई भी सरकरी व्यक्ति आदिम जातीय क्षेत्र में इतने दीर्घकाल तक नहीं रहता कि वह उनकी समस्याओं को समझ सके और आदिम जातीय हितों के साथ तादात्म्य स्थापित कर सके। उनमें से बहुतों को तो आदिमजातीय भाषा का ही ज्ञान नहीं होता। अनेक आदिम जातीय क्षेत्रों में हमने अधिकारियों और आदिमजातीय लोगों के बीच घनिष्ठता का अभाव पाया, जो विकास योजनाओं के अपर्याप्त क्रियान्वय का शायद एक बड़ा कारण था। इस कठिनाई को दूर करने के लिए सभी विभागों के अफसरों में उप-काडर भी होने जरूरी हैं। इन उप-काडरों में व्यक्ति आदिम जातियों में काम करने की क्षमता और अभिरुचि के आधार पर चुने जाएंगे। जब एक अधिकारी इस काडर में चुन लिया जाये, तो प्रारम्भ में एक या दो वर्ष तक उसके काम पर नजर रखी जानी चाहिए, और यदि वह सन्तोषजनक पाया जाए तो कम से कम दस या पन्द्रह वर्ष के लिए उसे उसी में रखा और आदिमजातियों के काम करने के लिए नियुक्त किया जाना चाहिए। इस काडर के लिए विशेष भत्ते या सुविधाएं होनी चाहिएं, ताकि अधिक अच्छी किस्म के अध्यापक उसमें भरती के लिए प्रतिस्पर्धा में आने के लिए आकृष्ट हो सकें। अध्यापकों के लिए इस प्रकार के विशेष काडर बहुत आवश्यक हैं। हमने इस समस्या का अन्यत्र[1] विवेचन किया है।

6.71. स्वयं आदिम जातियों में नेतृत्व के विकास के लिए कुछ अपरम्परागत उपागम आवश्यक है। यह स्वाभाविक ही है कि आदिम जातीय युवक, जिन्होंने माध्यमिक या उच्चतर शिक्षा प्राप्त की है, अपने क्षेत्रों से बाहर रोजगार की खोज में जाएं। इसलिए, अगले कुछ वर्षों वक आदिमजातीय क्षेत्रों में ऐसे आदिमजातीय लोगों को ही काम करना पड़ेगा, जिन्होंने कम औपचारिक शिक्षा प्राप्त की है किन्तु अपने लोगों के साथ जिनका तादात्म्य अधिक गहरा और अधिक बड़ा होगा। यह जरूरी है कि ऐसे युवकों को चुनकर विशेष गठित पाठ्यक्रमों से प्रशिक्षण दिया जाए, और आदिम जातियों के उधार के लिए अपने कार्यकर्त्ताओं के रूप में इस्तेमाल किया जाए। ऐसा करते हुए, भरती के बहुत-से औपचारिक नियमों को ताक पर रख देना होगा। किन्तु आसन्न भविष्य में कुछ मूर्त्त प्रगति करने के लिए यही एकमात्र तरीका है।

6.72. विभिन्न आदिम जातियां आर्थिक और सांस्कृतिक विकास की विभिन्न अवस्थाओं में हैं। उन्होंने जो कौशल प्राप्त किये हैं और वे जो शिल्प-विज्ञान इस्तेमाल करती हैं, उनमें बहुत अंतर है। इसलिए प्रधानतः आदिमजातीय आबादी वाले क्षेत्रों में भी हरेक समूह का और उसके निवास-क्षेत्र का निकट से अध्ययन किया जाना चाहिए और जनता के निकट सहयोग में विकास के उचित पैटर्न तैयार किए जाने चाहिए। विकास के इस अभिकल्प के मुताबिक ही शिक्षा कार्यक्रम, संस्थाएं और प्राथमिकताएं प्रास्तावित की जानी चाहिए। विभिन्न आदिमजातीय क्षेत्रों में यन्त्रवत् एक ही जैसा उपागम अपनाने से वांछित उद्देश्य पूरा नहीं हो सकेगा।

6.73. आदिमजातीय शिक्षा के कार्यों और समस्याओं के साथ न्याय करने के लिए यह आवश्यक है कि केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय और पर्याप्त आदिमजातीय आबादियों वाले राज्यों के शिक्षा विभागों में ऐसे विशिष्ठ खंड या एकक हों, जिनका काम आदिमजातियों की आवश्यकताओं का अध्ययन करना और उनके कल्याण

1. अध्याय तीन।

और विकास को समुन्नत करने के लिए सर्वोत्तम समझी जाने वाली शिक्षा प्रणालियों को विकसित करने में सहायता देना हो। इन खंडों या एककों को अन्य मंत्रालयों या विभागों के साथ, जिनका इस कार्यक्रम से सम्बन्ध हो, सहयोग करते हुए काम करना चाहिए। अदिमजातीय शिक्षा के ऐसे पहलू, जिनके लिए विशेष ध्यान देने की आवश्यकता होगी, हर क्षेत्र में अलग-अलग होंगे। अतः विभिन्न सन्दर्भों में उठने वाली समस्याओं को समझने में कुछ उठा नहीं रखा जाना चाहिए।

6.74. आदिमजातीय लोगों में शिक्षा के प्रसार के बारे में सांख्यिकीय सूचना की बहुत कमी है। यह आवश्यक है कि यह जानकारी संकलित की जाये, और शिक्षा मंत्रालय ने इस प्रयोजन के लिए जो नए फार्म तैयार किए हैं, उनके जारी किये जाने का हम स्वागत करते हैं। इसके अलावा आदिम जातियों में शिक्षा प्रसार के महत्व पूर्ण पहलुओं और उनके प्रभावों के बारे में विशेष अनुसंधान करना जरूरी है। इस प्रयोजन के लिए अनुसंधान और मूल्यांकन का एक सतत कार्यक्रम बनाना होगा। यद्यपि आदिमजातीय अनुसंधान संस्थाओं को इस विषय में एक विशेष भूमिका अदा करनी है, तो भी विश्वविद्यालयों को भी इसमें सम्मिलित कर लेना वांछनीय होगा। हमारी सिफारिश है कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को चुनींदा विश्वविद्यालयों और विशेष संस्थाओं के जरिये इस प्रकार के अनुसंधान के लिए एक निधि अलग कर देनी चाहिए।

6.75. पिछड़े वर्गों की, खासकर आदिमजातीय लोगों की शिक्षा समकरण का और राष्ट्रीय एकता का एक बड़ा कार्यक्रम है। इस प्रयोजन के लिए जितना भी खर्च किया जाए, वह थोड़ा होगा।

दूसरा खण्ड

विभिन्न स्तरों और विभिन्न क्षेत्रों में शिक्षा

रिपोर्ट के इस भाग में हम शिक्षा से सम्बन्धित उन विशिष्ट समस्याओं का परीक्षण करेंगे जिनका सम्बन्ध शिक्षा के विभिन्न स्तरों और क्षेत्रों से है।

I. **अध्याय सात से दस.** इन चार अध्यायों में स्कूली शिक्षा की समस्याओं पर विचार किया गया है।

अध्याय सात में पूर्व-प्राथमिक शिक्षा तथा प्राथमिक व माध्यमिक स्तर पर शिक्षा के विस्तार के सम्बन्ध में विचार किया गया है।

अध्याय आठ में पहली कक्षा से लेकर बारहवीं कक्षा तक की स्कूली पाठ्यचर्या पर विचार किया गया है। इसमें सभी उप-अवस्थाएं, अवर और उच्चतर प्राथमिक तथा अवर और उच्चतर माध्यमिक, शामिल हैं।

अध्याय नौ में अध्यापन रीतियों, पाठ्य-पुस्तकों, अध्यापक मार्गदर्शिकाओं और पढ़ाने तथा सीखने से सम्बन्धित अन्य सामग्री, कक्षा का आकार, भौतिक सुविधाएं (विशेष रूप से भवन) मार्गदर्शन तथा परामर्श और मूल्यांकन आदि शामिल हैं।

अध्याय दस में प्रशासन और निरीक्षण सम्बन्धी समस्याओं पर विचार किया गया है। इनमें अन्य बातों के अतिरिक्त लोक शिक्षा के स्तर पर सामान्य स्कूली पद्धति, जिला स्तर पर राज्य शिक्षा विभाग का पुनर्गठन, राज्य शिक्षा संस्था, राज्य मूल्यांकन संगठन, स्कूली शिक्षा से सम्बन्धित राज्यों के बोर्ड, राष्ट्रीय स्तर तथा स्कूली शिक्षा में सुधार से सम्बन्धित केन्द्र का योगदान शामिल है।

II. **अध्याय ग्यारह से तेरह.** इन तीनों अध्यायों में विश्वविद्यालय शिक्षा की गुणात्मक और परिमाणात्मक दोनों समस्याओं पर विचार किया गया है।

अध्याय ग्यारह उच्चतर शिक्षा के सुधार से सम्बन्धित है। इसके अन्तर्गत विश्वविद्यालयीन शिक्षा के उद्देश्यों, बड़े विश्वविद्यालयों की योजना, अध्यापन पद्धति और मूल्यांकन, शिक्षा का माध्यम, विद्यार्थी सेवाएं (जिसमें विद्यार्थी अनुशासन भी शामिल हैं) आदि शामिल हैं।

अध्याय बारह में विस्तार से सम्बन्धित समस्याओं पर विचार किया गया है। इसके अन्तर्गत अगली दो दशाब्दियों में स्नातकोत्तर तथा पूर्व-स्नातक स्तर पर पूर्व अनुमानित नामांकन, योजना निर्माण और कालेजों का स्थान, नए विश्वविद्यालयों की स्थापना, प्रथम और द्वितीय डिग्री स्तर पर पाठ्यक्रमों का पुनर्गठन, क्षेत्र अध्ययन, समाज विज्ञानों का विकास, महिलाओं की शिक्षा और शैक्षिक अनुसंधान आदि विषय आते हैं।

अध्याय तेरह में विश्वविद्यालयीन प्रशासन की समस्याओं पर विचार किया गया है। अन्य बातों के अतिरिक्त इसमें विश्वविद्यलायीन स्वायत्तता, विश्वविद्यालयों और निजी कालेजों को अनुदान, उप-कुलपतियों की नियुक्ति, विश्वविद्यालयीन विधान (लैजिस्लेशन), सम्बद्ध कालेजों और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के पुनर्गठन से सम्बन्धित समस्याओं पर चर्चा की गई है।

III. **अध्याय चौदह से सोलह.** इन तीनों अध्यायों में कृषि तथा तकनीकी शिक्षा और वैज्ञानिक अनुसंधान के विकास की समस्याओं पर विचार किया गया है।

अध्याय चौदह में कृषि सम्बन्धी शिक्षा के विकास की चर्चा की गई है जिसमें कृषि विश्वविद्यालय, कृषि-पौलिटैकनिक, स्नातकोत्तर तथा पूर्व-स्नातक स्तर की कृषि-शिक्षा का विकास तथा कृषि-विस्तार जैसे विषय शामिल हैं।

अध्याय पन्द्रह में वृत्तिक, तकनीकी और इंजीनियरी शिक्षा की समस्याओं पर विचार किया गया है। स्कूली स्तर पर वृत्तिक, तकनीकी और इंजीनियरी शिक्षा के विकास द्वारा कुशल तथा अर्ध-कुशल तकनीशियनों और कामगारों का प्रशिक्षण (पूर्व स्नातक तथा स्नातकोत्तर स्तर पर), इंजीनियरों की शिक्षा और तकनीकी शिक्षा के प्रशासन का पुनर्गठन जैसे विषय अन्य विषयों के साथ इसमें शामिल हैं।

अध्याय सोलह में विश्वविद्यालय स्तर के विशेष संदर्भ में विज्ञान की शिक्षा और वैज्ञानिक अनुसंधान के विकास पर विचार किया गया है।

IV. **अध्याय सत्रह**. प्रौढ़ शिक्षा, जिसमें निरक्षरता का निरसन भी शामिल है, पत्राचार शिक्षा तथा अंशकालिक शिक्षा की सुविधाएं, पुस्तकालयों का विकास तथा विश्वविद्यालय विस्तार का संगठन आदि विषय इस अध्याय में शामिल हैं।

सातवां अध्याय

स्कूल शिक्षा : विस्तार की समस्याएं

एक. स्कूल शिक्षा के प्रति समेकित दृष्टिकोण (1)

दो. पूर्व-प्राथमिक शिक्षा—(3) **उद्देश्य**; (4) **पूर्व-प्राथमिक शिक्षा का महत्व**; (5) **पूर्व-प्राथमिक शिक्षा में ताजा विकास**; (6) **सिफ़ारिश**;

तीन. प्राथमिक शिक्षा : सांविधानी निदेशों की पूर्ति—(8) **लक्ष्य**; (12) **कार्यक्रम**; (13) **स्कूली सुविधाओं की सर्वसुलभ व्यवस्था**; (15) **छात्रों का सर्वजनीन नामांकन**; (16) **कक्षा 1 में नामांकन**; (18) **कक्षा 5 में नामांकन**; (19) **छात्रों का निर्धारित अवधि तक स्कूल में रहना**; (20) **अगति**; (21) **व्यर्थता**; (24) **कक्षा 1 में अगति और व्यर्थता**; (26) **दूसरी कक्षाओं में अगति और व्यर्थता**; (27) **आर्थिक कारण**; (28) **साक्षरता कक्षाएं**; (32) **उच्चतर प्राथमिक स्तर पर अंशकालिक शिक्षा**; (33) **शैक्षिक और सामाजिक कारण**; (34) **सामान्य विचार**।

चार. प्राथमिक स्तर पर नामांकन—(36) **लक्ष्य**; (38) **लड़कियों की शिक्षा**; (39) **आदिमजातियों की शिक्षा**; (40) **अल्पविकसित इलाकों को खास मदद**; (42) **पाठ्यचर्या को समृद्ध बनाना और गुणात्मक सुधार**।

पांच. माध्यमिक शिक्षा का विस्तार (कक्षा 8 से 12)—(43) **सामान्य सिद्धान्त**; (44) **माध्यमिक शिक्षा में नामांकन**; (47) **व्यावसायिक शिक्षा**; (49) **स्कूल स्तर पर व्यावसायिक शिक्षा के विकास के लिए केन्द्रीय अनुदान**; (50) **अंशकालिक शिक्षा**; (52) **लड़कियों की शिक्षा**।

छह. स्कूलों के लिए स्थान का आयोजन—(56) **प्राथमिक स्कूल**; (60) **माध्यमिक स्कूल**; (62) **व्यावसायिक स्कूल**।

स्कूल शिक्षा के प्रति समेकित दृष्टिकोण

7.01. हमने विधिवत् शिक्षा की पूरी अवधि को दो मुख्य स्तरों में बांटा है—स्कूल और उच्चतर—और अब तक हम स्कूल शिक्षा को एक लगातार इकाई के रूप में मानते आए हैं। इस प्रक्रिया को अपनाने के लिए कुछ स्पष्टीकरण जरूरी है। परम्परा से यह रीति चली आ रही है कि स्कूली शिक्षा की अवधि को तीन स्तरों में बांटा जाए—पूर्व प्राथमिक, प्राथमिक और माध्यमिक और हर एक की समस्याओं पर अलग-अलग चर्चा की जाए। यह रीति कई बातों पर आधारित है। पहले तो शिक्षा के तीन स्तरों को बच्चे के विकास की तीन अवस्थाओं—शैशव, बाल्यावस्था और किशोरावस्था—के तत्संवादी रखने का प्रश्न है। फिर समाज की दृष्टि से प्राथमिक शिक्षा को एक अरसे से जनसमूह के लिए अभिप्रेत शिक्षा माना जाता रहा है और माध्यमिक शिक्षा को गिने-चुने लोगों के लिए। हमारे देश में कभी-कभी सांस्कृतिक आधार पर भी यह भेद किया गया है—प्राथमिक शिक्षा को आधुनिक भारतीय भाषाओं के जरिए दी जाने वाली शिक्षा बताया गया था और माध्यमिक शिक्षा को अंग्रेजी माध्यम शिक्षा माना जाता था। हां, हाल के सालों में ये भेद या तो धुंधले पड़ गए हैं या बिल्कुल खत्म हो गए हैं। उदाहरण के लिए अब लोग ज्यादातर यह समझने लग गए हैं कि पूर्व प्राथमिक और प्राथमिक या प्राथमिक और माध्यमिक के बीच सीमा रेखाएं मनचाही हैं और बदली जा सकती हैं। उसी तरह परम्परा से चला आता हुआ यह विचार भी अब सभी लोगों का नहीं रहा कि प्राथमिक शिक्षा के अधीन बिना भेद किए सामान्य शिक्षा दी जाए और माध्यमिक शिक्षा में बच्चों की रुझान, अभिरुचि और योग्यता के अनुसार विविधता लाई जाए; और कुछ देशों में, जैसे सोवियत संघ में, स्कूल शिक्षा, प्राथमिक और माध्यमिक, का समूचा पाठ्यक्रम एक ही तरह के सिद्धान्तों पर आधारित किया गया है।

भारत में माध्यमिक शिक्षा के तात्विक विकास के साथ-साथ प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा के बीच का

यह समाजगत भेदभाव अब बिल्कुल भी मान्य नहीं रहा है कि पहली जनसमूह की जरूरतों को पूरा करती है और दूसरी विशिष्ट वर्गों की; और इसी तरह प्राथमिक को 'देशी भाषा' की शिक्षा और माध्यमिक को 'अंग्रेजी' शिक्षा मानने वाली बात भी नहीं रही है। इसलिए हमने यह ज्यादा सुविधाजनक और उपयुक्त समझा है कि पूर्व-विश्वविद्यालय की सारी शिक्षा-अवधि को एक स्तर का ही माना जाए और हमने अपने रिपोर्ट का ढांचा तदनुसार ही बनाया है। स्कूल पाठ्यचर्या के समुचित नियोजन और विकास के लिए ऐसा करने से बचा भी नहीं जा सकता। यह सच है कि इस अध्याय में, जिनमें नामांकनों (दाखिलों) की समस्या को लिया गया है, स्कूल अवधि को कई उप-स्तरों में बांटने की जरूरत को स्वीकार किया गया है, जैसे पूर्व-प्राथमिक, प्राथमिक (अवर और उच्चतर) तथा माध्यमिक (अवर और उच्चतर)। किन्तु इस रिपोर्ट में हमारा सामान्य दृष्टि-कोण यह रहा है कि विभिन्न स्तरों की समस्याओं की समानता को ज्यादा महत्व का माना जाए, उनके अन्तर को नहीं और स्कूल शिक्षा को एक समग्र इकाई माना जाए।

7.02. शैक्षिक पुनर्गठन के कुछ ऐसे सामान्य कार्यक्रमों पर, जो स्कूल स्तर को प्रभावित करते है, रिपोर्ट के प्रथम भाग में ही विचार किया जा चुका है, जैसे शिक्षा-प्रणाली के ढांचे की समस्या[1], स्कूल अध्यापकों का स्तर और शिक्षा[2], पढ़ाई की फीस खत्म करना, किताबें और अन्य सामग्री मुफ्त देना और छात्रवृत्तियां देना जैसे उपायों के जरिए स्कूल जाने वाले बच्चों के लिए शैक्षिक अवसरों को समान करना[3] आदि पर पीछे के अध्यायों में चर्चा की जा चुकी है। इस अध्याय में व अगले तीन अध्यायों में हम कुछ महत्वपूर्ण मसलों को लेंगे, जिनका सम्बन्ध खास तौर पर स्कूल स्तर से ही है। प्रस्तुत अध्याय में प्राथमिक शिक्षा के सभी पहलुओं और प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा के विस्तार की समस्याओं को लिया जाएगा। आठवें और नवें अध्यायों में पाठ्यचर्या, पाठ्यपुस्तकों, शिक्षण और अध्ययन सामग्रियों, शिक्षण और मूल्यांकन और शैक्षिक निर्देशन की नीतियों को लिया जाएगा। दसवें अध्याय में हम पर्यवेक्षण और प्रशासन सम्बन्धी कुछ महत्वपूर्ण समस्याओं की ब्योरेवार जांच करेंगे।

पूर्व-प्राथमिक शिक्षा

7.03. पूर्व-प्राथमिक शिक्षा के उद्देश्य नीचे लिखे प्रकार से विरूपित किए जा सकते हैं :

— बच्चे में अच्छी स्वस्थ आदतें डालना और व्यक्तिगत अनुकूलन के लिए जरूरी बुनियादी योग्यता पैदा करना, जैसे पोशाक, नहाने-धोने की आदतें, खाना, धोना, सफाई आदि;

— वांछनीय सामाजिक अभिवृत्तियां और शिष्टाचार विकसित करना और स्वस्थ सामूहिक भागीदारी को प्रोत्साहित करना, जिससे बच्चा दूसरों के अधिकारों और विशेषाधिकारों के प्रति सजग रह सके;

— बच्चे को अपनी अनुभूतियों और संवेगों को अभिव्यक्त करने, समझने, मानने और नियंत्रित करने में मार्गदर्शन देकर संवेगों के मामले में प्रौढ़ि को विकसित करना;

— सौन्दर्य बोध को जगाना;

— परिवेश के बारे में बौद्धिक जिज्ञासा की शुरूआत को प्रेरित करना और आस-पास की उसकी दुनियां को समझने में उसकी मदद करना और खोज, पड़ताल और प्रयोग के अवसरों के जरिए नई अभिरुचियां पल्लवित करना;

— बच्चे को आत्माभिव्यक्ति के काफी अवसर देकर आजादी और सृजनशीलता के लिए प्रोत्साहित करना;

— बच्चे में अपनी विचार और भावनाओं को धारावाहिक, शुद्ध और स्पष्ट भाषा में व्यक्त करने की योग्यता को विकसित करना;

— बच्चे में अच्छा शरीर-गठन, पर्याप्त पेशी समन्वय और बुनियादी अंगचालन-निपुणता विकसित करना।

7.04. **पूर्व-प्राथमिक शिक्षा का महत्व**—पूर्व-प्राथमिक स्कूलों की स्थापना पहले-पहल सामाजिक जरूरतें पूरी करने के लिए की गई थीं, जैसे, कामगर माताओं के बच्चों की देखभाल के लिए या शहरी परिवारों के छोटे लड़के-लड़कियों के लिए उपयुक्त परिवेश की व्यवस्था क्योंकि उनके छोटे-छोटे घर या फ्लैट बच्चों के समुचित

1. **दूसरा अध्याय।**
2. **तीसरा और चौथा अध्याय।**
3. **छठा अध्याय।**

विकास के लिए उपयुक्त नहीं। ये स्कूल गन्दी बस्तियों या गरीब परिवारों के बच्चों के असन्तोषप्रद परिवेश की कमी पूरी करने की भी कोशिश करते थे। अब हाल में इस स्तर का शैक्षिक महत्व और ज्यादा समझा जाने लगा है। आधुनिक अनुसंधानों ने यह दिखा दिया है कि बच्चे के शारीरिक, भावगत और बौद्धिक विकास की दृष्टि से तीन से दस तक के वर्ष सबसे ज्यादा महत्व के हैं। यह भी देखा गया है कि जो बच्चे पूर्व-प्राथमिक स्कूल में जाते हैं, वे प्राथमिक स्तर पर आकर ज्यादा अच्छी प्रगति करते हैं और इस तरह व्यर्थता और अगति कम करने में मदद मिलती है। इसलिए शिक्षानीति में आधुनिक प्रवृत्ति यह है कि खासकर असन्तोषप्रद घरेलू पृष्ठभूमि वाले बच्चों के बारे में पूर्व-प्राथमिक शिक्षा पर जोर दिया जाए। हमें इसी दिशा में बढ़ना चाहिए।

7.05. **पूर्व-प्राथमिक शिक्षा में ताजा विकास**—1947 से पहले पूर्व-प्राथमिक शिक्षा की ओर बहुत कम ध्यान दिया जाता था और उसे राज्य की जिम्मेवारी भी न समझा जाता था। हमारी शिक्षा के इतिहास में पहली बार केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड की भारत में युद्धोत्तर शैक्षिक विकास (1944) सम्बन्धी रिपोर्ट में इसके महत्व पर जोर दिया गया और यह सिफ़ारिश की गई कि पूर्व-प्राथमिक शिक्षा की पर्याप्त व्यवस्था राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली का एक आवश्यक अंग मानी जानी चाहिए। यह बड़ी अच्छी बात हैं कि स्वातन्त्र्योत्तर काल में पूर्व-प्राथमिक शिक्षा की लोकप्रियता तेजी से बढ़ती जा रही है। 1950-51 में पूर्व-प्राथमिक स्कूलों की संख्या कुल 303 थी जिनमें 866 अध्यापक थे और लगभग 28,000 नामांकनों की व्यवस्था। पूर्व-प्राथमिक शिक्षा पर कुल प्रत्यक्ष-खर्च लगभग 12 लाख रुपए या कुल शिक्षा व्यय का लगभग 0.1 प्रतिशत था। 1965-66 में पूर्व-प्राथमिक स्कूलों की संख्या बढ़कर 3,500 हो गई, जिनमें 6,500 अध्यापक थे और लगभग 2,50,000 नामांकनों की व्यवस्था। कुल प्रत्यक्ष खर्च भी बढ़कर 110 लाख रुपए या कुल शिक्षा 0.2 प्रतिशत हो गया।[1] ये मुख्यतः शहरी संस्थाएं हैं। देहाती इलाकों में केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड और सामुदायिक विकास प्रशासन ने स्तुत्य मार्गदर्शी काम किया है, जो कुल मिलाकर 20,000 बालवाड़ियां चलाते हैं, जिनमें कुल लगभग 6,00,000 नामांकनों की व्यवस्था है। निःसंदेह हमारे लक्ष्य की तुलना में यह निश्चय ही भारी प्रगति है।

7.06. **सिफ़ारिशें**—हालांकि हम पूर्व-प्राथमिक शिक्षा को यथासम्भव ज्यादा विस्तार से विकसित करने की जरूरत को मानते है; फिर भी इस क्षेत्र में हमारी प्रगति निश्चय ही उपलब्ध साधनों के अपर्याप्त होने से सीमित रहेगी, खासतौर पर इसलिए कि प्राथमिक शिक्षा को ज्यादा प्राथमिकता दी जानी चाहिए। फिर गुण और परिमाण के प्रतिस्पर्धी दावों के बीच भी समायोजन करना जरूरी है। कुछ शिक्षाविदों का विचार है कि पूर्व-प्राथमिक शिक्षा यथोचित प्रकार की होनी चाहिए और वे ऐसे स्तरों को बनाए रखने का आग्रह करते हैं जिनसे प्रतिछात्र लागत इस हद तक बढ़ जाती है, कि बड़े पैमाने पर विस्तार असम्भव हो जाता हैं। दूसरे लोग कम खर्चीली तकनीकें अपनाने की बात करते हैं, जिससे पूर्व-प्राथमिक शिक्षा के लाभ अपेक्षया ज्यादा बच्चों को मिल सकें। विकास के अभिकरण को लेकर भी मतभेद हैं; कुछ लोग यह चाहेंगे कि पूर्व-प्राथमिक शिक्षा की जिम्मेवारी ज्यादातर राज्य को संभालनी चाहिए, जबकि दूसरे लोग इसको मुख्यतः निजी उपक्रम के लिए छोड़ देना चाहेंगे। ऐसी परिस्थिति में हमें फलमूलक दृष्टिकोण और ऐसी नीति अपनानी होगी, जिसके अधीन प्रयोग को प्रोत्साहन मिले और विद्यमान साधनों और अभिकरणों का पूरा-पूरा उपयोग और संयोजन किया जा सके।

7.07. अगले 20 सालों में पूर्व-प्राथमिक शिक्षा के के विकास के लिए हम नीचे लिखी सिफ़ारिशें करते हैं :

(1) पूर्व-प्राथमिक शिक्षा के विकास के लिए एक राज्य-स्तर का केन्द्र होना चाहिए जो राज्य शिक्षा संस्थान में स्थित हो। इसके अलावा अगले 20 वर्षों तक फैले हुए एक अवस्थाबद्ध कार्यक्रम के अन्तर्गत हर जिले में एक पूर्व-प्राथमिक विकास केन्द्र खोला जाना चाहिए। इन केन्द्रों के मुख्य काम होंगे : इलाके में काम करने वाले पूर्व-प्राथमिक अध्यापकों के पर्यवेक्षण और मार्गदर्शन की व्यवस्था करना, पुनश्चर्या पाठ्यक्रम चलाना और उनके लिए अन्तः सेवा प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाना, स्थानिक रूप से सुलभसामग्री से शिक्षण-साधन तैयार कराने का काम हाथ में लेना, प्रायोगिक पूर्व-प्राथमिक स्कूल चलाना और बच्चों की देखभाल के बारे में जनकों की शिक्षा की व्यवस्था करना। यह भी लाभकर होगा कि वे पूर्व-प्राथमिक अध्यापकों के प्रारंभिक प्रशिक्षण कार्यक्रम भी अपने हाथ में लें।[1]

1. अधिकारिक रूप से बताई गई इन संस्थाओं के अलावा खासतौर पर देहाती इलाकों में बहुत संख्या में 'अ-मान्यता प्राप्त' स्कूल हैं, जिनके बारे में आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं।

2. ब्योरों के लिए देखिए पूरक जिल्द एक, भाग पांच (अंग्रेजी में)।

(2) पूर्व-प्राथमिक स्कुलों की स्थापना और संचालन का काम आज की तरह मुख्यतः निजी उपक्रम के लिए छोड़ा जा सकता है। राज्य समानता के आधार पर सहायक अनुदानों के जरिए मदद दे सकता हैं। तद्नुसार पिछड़े बच्चो की जरूरत पूरी करने वाले स्कूल राजकीय मदद के ज्यादा सुपात्र होंगे।

(3) खासकर पूर्व-प्राथमिक शिक्षा के विस्तार की कम खर्चीली रीतियां खोजने के बारे में प्रयोग को पूरा प्रोत्साहन देना चाहिए। हाल में मद्रास राज्य द्वारा अपनाई गई योजना की हम विशेष अनुशंसा करते है। इस योजना के अधीन एक स्थानीय महिला को थोड़े से मानदेय पर अध्यापिका के रूप में चुना जाता है, उसे एक अल्पकालिक पाठ्यक्रम के अधीन प्रशिक्षण दिया जाता है और फिर उसके काम में स्थानीय महिला मंडल द्वारा मदद दी जाती है। इस योजना की विशिष्ट बात उसका कम खर्चीला होना हैं (प्रति बच्चे प्रति वर्ष खर्च 20 रुपए से कम आता है) और यह देहाती इलाको के लिए अनुकूल और उपयुक्त हैं। यह सुचारु रूप से चलती है और सक्रिय अध्यापिकाओं के अधीन बच्चों का स्वास्थ्य ज्यादा अच्छा रहता हैं, वे ज्यादा मानसिक सचेतता दिखाते हैं और परिवेश में जीवन्त अभिरुचि लेते हैं।[1]

(4) इस तरह का दूसरा महत्वपूर्ण प्रयोग प्राथमिक स्कूलों के निकट सहयोग के साथ बच्चो के क्रीड़ा केन्द्रों की स्थापना करना है, जिसको देश के कुछ हिस्सों में सफलता के साथ चलाया गया है। ये प्राथमिक स्कूलों में खासतौर पर प्रशिक्षित अध्यापकों द्वारा चलाए जाते हैं, जिनको इसके लिए अलग भत्ता दिया जाता है या एक अलग अध्यापक द्वारा। यह कार्यक्रम रोज लगभग दो घंटे चलता है और इसमें सामूहिक संगीत, कहानी कहना और खेल-कूद शामिल हैं और वैयक्तिक स्वच्छता और स्वास्थ्य की ओर काफी ध्यान दिया जाता है। ये केन्द्र स्कूल से पूर्व की कक्षाओं के रूप में काम करते हैं और बच्चे को बचपन की खेलकूद भरी दुनिया से प्राथमिक स्कूल के औपचारिक वातावरण में जाने की अंतरिम अवधि को सहज बना देते हैं। इनके चलाने में अपेक्षया कम खर्च आता है और खासतौर पर ये पहली कक्षा में व्यर्थता और अगति कम करने के प्रयोजन से बड़े काम के रहते है। ऐसे केन्द्र जितने भी प्राथमिक स्कूलों के साथ हो सके, सम्बद्ध किए जाने चाहिए।

(5) राज्य का योगदान यह होना चाहिए कि ऐसे केन्द्रों का राज्य और जिला-स्तर पर भरण-पोषण करे, पूर्व-प्राथमिक अध्यापकों को प्रशिक्षण दे, अनुसंधान कार्य कराए, पूर्व-प्राथमिक शिक्षा के लिए जरूरी साहित्य और सामग्री तैयार कराने में मदद दे और पूर्व-प्राथमिक स्कूलों और प्रशिक्षत-संस्थाओं के पर्यवेक्षण और मार्गदर्शन की व्यवस्था करे। जैसा ऊपर सुझाया गया है उसे इस स्तर पर सहायक अनुदान देकर निजी संस्थाओं की मदद करनी चाहिए; और अपवाद स्वरूप कुछ मामलों में वह स्वयं शहरी गन्दी बस्तियों या देहाती क्षेत्रों की जरूरतों को पूरा करने के लिए या आदर्श संस्था के रूप में काम करने के लिए पूर्व-प्राथमिक स्कूल भी चला सकता है।

(6) पूर्व-प्राथमिक स्कूलों के लिए पाठ्यचर्या की बात ही क्या की जा सकती हैं; इसको कार्यकलाप का क्रम ही समझा जाना ज्यादा उचित होगा। केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड द्वारा बच्चों की देखभाल सम्बन्धी समिति (1961-62) के इस सुझाव से हम सहमत हैं कि इस कार्यक्रम में नीचे लिखे कार्यकलाप शामिल किए जाएं :

(क) खेलकूद के कार्यकलाप :

(एक) उन्मुक्त खेल, जिनमें शैक्षिक और रचनाकारी खिलौने, घरेलू खेल और दूसरे बच्चों के साथ बाहर के कार्यकलाप शामिल हैं।

(दो) पेशियों और अंगों के संचालन वाले शारीरिक कार्यकलाप;

(तीन) शारीरिक, पारिवारिक और सामाजिक परिवेश का संपर्क, परिचय, अनुकरण और अनुभव कराने वाले खेलकूद;

(चार) संगठित खेलकूद, सामूहिक कार्यकलाप और निदेशक खेल;

(पांच) खेल के मैदान के कार्यकलाप, जिनमें खेल के मैदान के उपकरणों का उपयोग किया जाए;

(ख) सरल व्यायाम, नृत्य और लययुक्त खेलों को शामिल करते हुए शारीरिक प्रशिक्षण;

(ग) शारीरिक श्रम और खेल, जैसे, बागबानी, सरल गृहकार्य और आसान सामुदायिक श्रम-प्रयासों में भाग लेना;

(घ) प्राकृतिक पदार्थों और खासतौर पर बनाए

1. व्योरों के लिए इस विषय के निबंध को देखिए जिसे पूरक जिल्द एक, भाग पांच (अंग्रेजी) में शामिल किया गया है।

गए उपकरणों का इस्तेमाल करते हुए इन्द्रिय-ज्ञान की शिक्षा,

(ङ) अंगुलियों की प्रवीणता और औजारों के उपयोग वाले हस्तकार्य और कार्यकलाप और ड्राइंग, चित्रकला, गीत, संगीत और नृत्य जैसे कार्यकलाप;

(च) भाषा ज्ञान समेत अध्ययन के कार्यकलाप; वैयक्तिक स्वच्छता और स्वास्थ्य के नियम; शारीरिक, पादप और पशु जगत से सम्पर्क रखने वाले प्रारम्भिक प्राकृतिक अध्ययन; गिनती और गणित आदि;

(छ) स्कूल में अपना काम आप करना जिससे जहां तक हो सके नौकरों और वयस्क सहायकों की जरूरत न रहे।

हमने अक्सर देखा है कि कार्यक्रम अनुल्लंघनीय और सत्तापूर्ण बन जाते हैं; बच्चों को अपना परिवेश समझने के लिए पर्याप्त अवसर नहीं दिए जाते, बच्चों की जरूरतों के बदले सामूहिक काम पर ज्यादा जोर दिया जाने लगता है और दोपहर भोजन और अल्पाहार की व्यवस्था की शैक्षिक सम्भावनाओं का पूरा-पूरा उपयोग नहीं किया जाता। इनको दूर करने के लिए यह जरूरी है कि अध्यापकों के प्रशिक्षण में सुधार किया जाए और अपने कार्यक्रम की योजना स्वयं बनाने की आजादी उनको कहीं ज्यादा दी जाए।

(7) राष्ट्रीय और राज्य दोनों ही स्तरों पर बच्चों की देखभाल और पूर्व-प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में काम करने वाले विभिन्न अभिकरणों के बीच ज्यादा ताल-मेल की जरूरत है। खासतौर पर वह जरूरी है कि राज्य शिक्षा विभाग, केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड, भारतीय बाल कल्याण परिषद् और सामुदायिक विकास प्रशासन के साथ निकट का सम्बन्ध स्थापित करें।

(8) नामांकनों के बारे में हमारा विचार है कि संभव लक्ष्य यह होगा कि 1986 तक 3 से 5 के आयुवर्ग के पांच प्रतिशत बच्चों का नामांकन किया जाए। इसका अर्थ होगा लगभग 25 लाख बच्चों का नामांकन। अगर हमारे द्वारा ऊपर सुझाई गई कम खर्चीली तकनीकों को अपनाया जाए तो ये नामांकन इससे भी ज्यादा हो सकते हैं। इसके अलावा हमने यह भी सिफ़ारिश की है कि जितने बड़े पैमाने पर संभव हो सके एक पूर्व-प्राथमिक कक्षा बढ़ाई जाए, जिसमें 5-6 आयु वर्ग के बच्चों को दाखिल किया जाएगा। हम यह पूर्वाशा करते हैं कि 1986 तक इस आयु वर्ग के लगभग 50 प्रतिशत बच्चों को लिया जा सकेगा। इसका अर्थ होगा लगभग 75 लाख बच्चों का नामांकन। इस तरह इस स्तर पर कुल नामांकन लगभग 100 लाख हो जाएगा।

प्राथमिक शिक्षा: सांविधानिक निदेशों की पूर्ति

7.08. **लक्ष्य**—अब हम शैक्षिक पुनर्निर्माण के एक अन्य बहुत ही महत्वपूर्ण कार्यक्रम की चर्चा करेंगे, अर्थात्, संविधान के अनुच्छेद 45 में निर्दिष्ट निदेशक तत्व की पूर्ति की, जिसमें कहा गया है कि राज्य को 14 वर्ष तक के सभी बच्चों की निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था करने का प्रयास करना चाहिए। इसकी पूर्ति 1960 तक हो जानी चाहिए थी। किन्तु इसमें पर्याप्य साधनों की कमी, जनसंख्या में भारी वृद्धि, लड़कियों की शिक्षा में रुकावटें, पिछड़े वर्गों के बच्चों की बहुसंख्या, लोगों की सामान्य गरीबी और जनकों की निरक्षरता और उदासीनता जैसी बड़ी-बड़ी दिक्कतों की दृष्टि में प्राथमिक शिक्षा में पर्याप्त प्रगति करना सम्भव न हुआ और संविधान के निदेश की पूर्ति न हो पाई। इसलिए, निरन्तर यह जोरदार मांग की जाती रही है कि सरकार को इसकी पूर्ति के लिए एक मास की ही अंतिम लक्ष्य तिथि निश्चित कर देनी चाहिए और इस प्रयोजन से एक ठोस कार्यक्रम बनाना चाहिए। इस मांग से हमें सहानुभूति है, और हमारा विश्वास है कि न केवल सामाजिक न्याय और लोकतन्त्र के आधार पर, बल्कि औसत कामगर की क्षमता बढ़ाने और राष्ट्रीय उत्पादकता में वृद्धि करने के लिए भी हर बच्चे के लिए निःशुल्क और सार्वजनिक शिक्षा सबसे ज्यादा अग्रता वाला शैक्षिक उद्देश्य है। फिर भी समस्या की विशालता, देश के विभिन्न भागों में प्राथमिक शिक्षा के विषम विकास[1] और इस कार्यक्रम के लिए आवश्यक विशाल वित्तीय संसाधनों की दृष्टि से हम समझते हैं कि संविधान के निदेश की पूर्ति के मोर्चे में सबसे अच्छी रणनीति यह होगी :

(1) हर राज्य और हर जिले तक में वहाँ प्राप्त किए गए विकास स्तर और स्थानीय दशाओं और समस्याओं को ध्यान में रखते हुए प्राथमिक शिक्षा के विकास के लिए एक परिप्रेक्ष्य योजना बनानी चाहिए। इस योजना का उद्देश्य होना चाहिए कि संविधान के निदेश का यथाशीघ्र पालन किया जाए;

1. इस पर 'प्रादेशिक असन्तुलन' वाले छठे अध्याय में चर्चा की जा चुकी है।

(2) हर राज्य और जिले को जितनी तेज रफ्तार से वह चल सके, आगे बढ़ने में मदद दी जानी चाहिए और किसी भी इलाके में प्रगति केवल अत्यावश्यक सुविधाओं या वित्तीय आवंटनों की कमी के कारण ही रुकने नहीं देने चाहिए; और

(3) संविधान के निदेश की यद्यपि शहरी इलाकों या अग्रवर्ती राज्यों जैसे कुछ स्थानों पर जल्दी ही यानी 1975-76 तक पूर्ति हो जाएगी, हमें देश के **सभी** इलाकों को **सभी** बच्चों की पांच वर्ष की अच्छी और प्रभावी शिक्षा की 1975-76 तक तथा सात वर्ष की शिक्षा की 1985-86 व्यवस्था तक करने में समर्थ होना चाहिए।

7.09. ऊपर प्रस्तावित लक्ष्य कुछ सहज लग सकते हैं। लेकिन ज्यादा ध्यान देने पर पता चलेगा कि वे वस्तुतः दुःसाध्य हैं और उनकी प्राप्ति के लिए राष्ट्र को पूरा-पूरा प्रयास करना होगा। उदाहरण के लिए इस स्तर पर इनके अनुसार नामांकनों में बहुत ही वृद्धि होगी—1965-66 के 5 करोड़ की जगह 1885-86 में 12.5 करोड़। अवर प्राथमिक स्तर या कक्षा 1-4 में नामांकन 1965-66 के 3.70 करोड़ से बढ़ कर 1975-76 में 7.20 करोड़ हो जाएंगे और 1985-86 में 7.6 करोड़ और इस तरह लगभग 20 साल के समय में दूने हो जाएंगे। उच्चतर प्राथमिक स्तर पर या कक्षा 5-7 में नामांकन 1965-66 के 1.3 करोड़ से बढ़कर 1975-76 में 3.2 करोड़ और 1985-86 में 4.9 करोड़ हो जाएंगे और यह वृद्धि इस अवधि से चार गुनी वृद्धि है।

7.10. पर हम नामांकनों में वृद्धि पर नहीं बल्कि इन प्रस्ताओं के दो ज्यादा महत्व के और मुश्किल पहलुओं पर जोर देना चाहेंगे। पहला तो अगति और व्यर्थता में कमी करना है। इस समय कक्षा 1 में प्रवेश लेने वाले हर 100 बच्चों में से सिर्फ आधे के लगभग कक्षा 4 तक उत्तीर्ण हो पाते हैं और सिर्फ 34 कक्षा 7 उत्तीर्ण करते हैं। अगति खास तौर पर कक्षा 1 में बहुत ही ज्यादा है। हमें इस स्थिति में सुधार करना होगा और यह आश्वस्त करना होगा कि कक्षा 1 में प्रवेश लेने वाला हर बच्चा नियमित रूप से वर्षानुवर्ष प्रगति करेगा और कक्षा 5 तक पहुंचेगा और कम-से-कम 80 प्रतिशत कक्षा 7 तक तक पहुंचेंगे। दूसरे हमें शिक्षा के गुण पर भी जोर देना होगा। आम तौर पर सभी सहमत हैं कि प्राथमिक स्कूलों में दी जानेवाली शिक्षा का स्तर सन्तोषजनक नहीं हैं और इसके अधीन साक्षरता और थोड़े-से अध्ययन-विषयों में कुछ प्रारम्भिक ज्ञान के अलावा और कुछ नहीं सिखाया जाता। आशा तो यह की जाती है कि प्राथमिक शिक्षा बच्चे के देश के जिम्मेवार और उपयोगी नागरिक के रूप में विकसित होने की नींव डाले। ऊपर प्रस्तावित लक्ष्यों की आकारगत विशालता इन दोनों बातों पर समुचित विचार करने के बाद ही ज्यादा उचित परिप्रेक्ष्य में समझ में आएगी।

7.11. एक और बात भी स्पष्ट कर दी जानी चाहिए। प्राथमिक शिक्षा के सप्तवर्षीय पाठ्यक्रम को अनिवार्य बना देने का हमारा प्रस्ताव 14 वर्ष की आयु प्राप्त कर लेने तक सभी बच्चों के लिए शिक्षा व्यवस्था करने के संविधान के निदेश के प्रतिकूल नहीं जाता। अनेक कारणों से बहुत से बच्चे कक्षा 7 को उत्तीर्ण करते-करते 14 वर्ष की आयु के हो जाते हैं। कक्षा 7 इससे पहले पास कर लेने वाले पर माध्यमिक शिक्षा के लिए चले जाने वाले बच्चों के बारे में भी कोई समस्या नहीं है। अब वहीं बच्चे बचते हैं (जिनकी संख्या इस आयु वर्ग के बच्चों की लगभग दस प्रतिशत कूती गई है), जिसकी आयु 14 वर्ष भी नहीं हो पाती और जो यथाशीघ्र कार्यक्षेत्र में प्रविष्ट हो जाना चाहते हैं। हमारा विचार है कि प्राथमिक शिक्षा का पाठ्यक्रम एक साल बढ़ाकर नहीं, बल्कि इन बच्चों की इच्छा के अल्पकालीन व्यावसायिक पाठ्यक्रमों की व्यवस्था करके उनकी जरूरतों को ज्यादा अच्छी तरह से पूरा किया जा सकेगा। ऐसी व्यवस्था हमारे प्राक्कलनों में शामिल की गई हैं।

7.12. **कार्यक्रम**—अब हमें हर बच्चे के लिए सात साल की अवधि की अच्छी सामान्य शिक्षा की व्यवस्था करने के इस कार्यक्रम की कार्यान्वित के कुछ व्यावहारिक उपायों पर विचार करना होगा। दुनिया के अग्रवर्ती देशों में अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के विकास का ध्यान से अध्ययन करने पर पता चलता हैं कि यह कार्यक्रम तीन अवस्थाओं में बँटा है, जिनमें ये बातें अपेक्षित हैं :

— हर बच्चे के घर से आसानी से पार करने योग्य दूरी पर स्कूल की व्यवस्था की जाए;

— विहित आयु के हर बच्चे का प्रचार द्वारा, समझाकर और जरूरी हो तो दंडात्मक कार्यवाही करके भी किसी स्कूल की कक्षा 1 में नामांकन किया जाए;

— हर नामांकित बच्चे को स्कूल में तब तक रोक रखा जाए, जब तक वह विहित आयु का न हो जाए या विहित पाठ्यक्रम पूरा न कर ले।

सर्वजनीन व्यवस्था, सर्वजनीन नामांकन और सर्वजनीन रूप से स्कूल में रखने की ये तीन अवस्थाएं हैं। ये आपस में एक दूसरे से सर्वथा विलग नहीं हैं और साधारणत: एक दूसरे में मिलजुल जाती हैं। साथ ही उनमें शिक्षा के गुणात्मक सुधार के कार्यक्रम की सहवर्ती कार्यान्वित का पूर्वानुमान किया जाता है, क्योंकि सर्वजनीन नामांकन या रोके रखना ज्यादातर स्कूल के आकर्षक होवे और रोक रखने की शक्ति पर निर्भर करता है। भारत में सर्वजनीन शिक्षा की प्रगति से भी इस स्थूल सामान्य प्रतिरूप का ही अनुसरण करने की प्रत्याशा की जा सकती है।

7.13. **स्कूली सुविधाओं की सर्वसुलभ व्यवस्था**—अवर प्राथमिक स्तर तक स्कूली सुविधाओं की सर्वसुलभ व्यवस्था का उद्देश्य तीसरी योजना के अन्त तक प्राय: पूरा हो गया है। प्राय: राज्यों में 300 या इससे ज्यादा जनसंख्या के गांवों में स्कूल की व्यवस्था कर दी गई है और कई इलाकों में इससे भी छोटे गांवों में स्कूल की व्यवस्था हो गई है। फिर भी उच्चतर प्राथमिक स्तर पर स्थिति अब भी सन्तोषजनक नहीं हो पाई है। समूचे देश को कुल मिलाकर लिया जाए तो देश में 78,000 ऐसे स्कूल हैं, यानी लगभग पाँच अवर प्राथमिक स्कूलों के लिए लगभग एक उच्चतर प्राथमिक स्कूल हैं, जबकि वांछनीय लक्ष्य तीन के लिए एक है। इस स्थिति में राज्य में अन्तर आ जाता है : यद्यपि कुछ राज्यों में लक्ष्य की पूर्ति पहले ही हो चुकी है, कई दूसरे राज्यों में उच्चतर प्राथमिक स्कूल का अवर प्राथमिक स्कूलों के साथ अनुपात एक के लिए दस है।

7.14. सभी स्कूलों—प्राथमिक, माध्यमिक और व्यावसायिक—की योजना और स्थल से सम्बन्धित समस्याओं की चर्चा इस अध्याय के एक आगे के अध्याय में की जाएगी। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि हर बच्चे के लिए आसानी से पहुंच सकने की दूरी पर स्कूल स्थापित करने के लिए अभी कदम उठाने होंगे। एक अध्यापक वाले स्कूलों को, जिसमें छोटे-छोटे बच्चे जाते हैं, शामिल करके अवर प्राथमिक स्कूलों की स्थापना हर बच्चे के घर से लगभग एक मील के भीतर करनी होगी। एक उच्चतर प्राथमिक स्कूलों में कम-से-कम तीन अध्यापक जरूरी होते हैं और इसकी स्थापना वित्तीय कारणों से हर छोटे गांव में नहीं की जा सकती। ऐसे स्कूलों से कई छोटे-छोटे गांव मिल बंटकर काम चलाएंगे। जिन सभी गांवों को मिलाकर स्कूल में उचित संख्या में उपस्थिति रखी जा सकती है। साथ ही चूँकि इनमें कुछ ज्यादा बच्चे पढ़ने आते हैं, यह सम्भव है कि उनकी आयोजना इस तरह बनाई जाए कि हर बच्चे के निवास से एक से तीन मील तक की दूरी पर उसके लिए एक मिडिल स्कूल हो जाए। पहले शैक्षिक सर्वेक्षण (1957) ने प्राथमित स्कूलों की योजना में बड़ी मदद की थी। अब इसे पुनरीक्षित किया जा रहा है, हमें आशा है कि इस पुनरीक्षण के फलस्वरूप इस योजना में कुछ और प्रगति की जाएगी।

7.15. **छात्रों का सर्वजनीन नामांकन**—देश के सुदूरतम हिस्सों में प्राथमिक स्कूलों की व्यवस्था करने के प्रयासों के साथ-साथ नामांकनों की संख्या बढ़ाने का कार्यक्रम भी चलना चाहिए। प्रत्यक्ष ही दो मुख्य स्थल है, जहां पर इस स्तर में नए नामांकन किए जाते हैं—कक्षा 1 और कक्षा 5। इनमें से प्रत्येक स्थल में उठने वाली समस्याएं बिलकुल ही अलग हैं और उनकी अलग-अलग जांच करनी होगी।

7.16. **कक्षा 1 में नामांकन**—कक्षा 1 में नामांकन की (जिसे शिक्षा प्रणाली का प्रथम दल कहा जा सकता हैं) समस्या बड़े महत्व की है। सभी प्रगतिशील देशों में यह प्रथम दल समरूप होता है और इनमें प्राय: प्रवेश के लिए विहित आयु के ही बच्चे होते हैं। दूसरी ओर भारत में कक्षा एक का प्रथम दल हमेशा बड़ा ही विषमरूप रहा हैं और इसकी विषमरूपता धीरे-धीरे ही कम की जा रही है। यह सारणी 7.1 से स्पष्ट हो जाएगा।

सारणी 7.1. भारत में प्रारंभिक दल का आयु के अनुसार वर्गीकरण
(कक्षा 1 में नामांकन)

आयु (वर्षों में)	1911-12		1950-51		1961-62	
	बच्चों की संख्या	कुल का प्रतिशत	बच्चों की संख्या	कुल का प्रतिशत	बच्चों की संख्या	कुल का प्रतिशत
5 से कम . .	1,25,583	4.6	98,971	1.4	162,352	1.0
5—6 . .	5,59,173	20.6	1,380,137	19.9	2,892,148	18.4 (जारी)

आयु (वर्षों में)	1911-12		1950-51		1961-62	
	बच्चों की संख्या	कुल का प्रतिशत	बच्चों की संख्या	कुल का प्रतिशत	बच्चों की संख्या	कुल का प्रतिशत
6—7 . .	667,396	24.6	22,28,860	32.1	49,93,113	31.7
7—8 . .	575,627	21.2	14,90,093	21.5	40,42,796	25.7
8—9 . .	321,675	11.8	8,81,774	12.7	1,976,637	12.5
9—10 . .	200,330	7.4	4,53,715	6.5	9,41,953	6.0
10—11 . .	117,712	4.3	2,45,143	3.5	4,64,768	3.0
11—12 . .	69,886	2.6	107,293	1.5	1,80,992	1.1
12 से ऊपर . .	79,669	2.9	62,379	0.9	91,405	0.6
कक्षा 1 में कुल नामांकन	2,717,051	100.0	6,948,365	100.0	15,746,164	100.0
आयु-वर्ग 6-7 में बच्चों की कुल प्राक्कलित संख्या	66,39,582		93,10,800		1,23,84,000	
आयु-वर्ग 6-7 के कक्षा 1 में नामांकित बच्चों का आयु-वर्ग 6-7 की कुल प्राक्कलित संख्या में प्रतिशतक		10.1		23.9		40.3

स्रोत : शिक्षा मंत्रालय द्वारा प्रकाशित वार्षिक शैक्षिक आंकड़े ।

किसी भी अच्छी प्रणाली में प्रवेश के लिए विहित 6-7 की आयु के जो बच्चे में नामांकित किए जाते हैं, वे कक्षा 1 के कुल नामांकनों का एक बड़ा हिस्सा होने चाहिए और इस आयुवर्ग के बच्चों की कुल जनसंख्या के लगभग 95 से 97 प्रतिशत तक होते चाहिए । 1961-62 में कक्षा 1 में कुल नामांकन 1.57 करोड़ थे, जबकि 6-7 वर्ष आयु के बच्चों की कुल जनसंख्या केवल 1.24 करोड़ थी । फिर भी इस आयु के कुल 50 लाख (या इस आयु की जन-संख्या के 40.3 प्रतिशत) कक्षा 1 में नामांकित हुए और वे उस कक्षा के कुल नामांकनों का 31.7 प्रतिशत ही थे । पिछले पचास साल में निःसन्देह इस स्थिति में सुधार हुआ है, जैसा कि 1911-12 के आंकड़ों की 1961-62 में तुलना करने पर पता चल जाएगा । लेकिन परिवर्तन की दर बड़ी धीमी रही है, क्योंकि समरूप दल बनाने के सचेत और निरन्तर प्रयास की कमी रही है ।

7.17. अग्रवर्ती देशों में जनकों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे कम-से-कम एक साल पहले स्कूल में पहली बार जाने वाले बच्चों के नाम पहले ही रजिस्टर में लिख दें जो विहित आयु-सीमा के भीतर आते हैं । भारत में पहले से रजिस्टर में लिखने में की कोई भी प्रणाली नहीं है । बहुत से जनक, खासकर देहाती इलाके में, अपने बच्चों की सही-सही आयु नहीं बता सकते और बहुत से मामलों में अध्यापकों से यह आशा की जाती है कि वे उसका अनुमान लगा लें । और फिर नामांकन के लिए आन्दोलन चलाए जाते है, तो सामान्य प्रवृत्ति यह रहती है कि सभी आयु के बच्चों का कक्षा 1 में नामांकन कर लिया जाए । नामांकनों का यह विषम स्वरूप कक्षा में शिक्षाशास्त्र की दृष्टि से कठिन परिस्थिति पैदा कर देता है और साथ ही अगति और व्यर्थता को बढ़ाता है । इसलिए हम नीचे लिखी सिफ़ारिशें करते हैं :

(1) सभी नए दाखिलों के लिए पहले से रजिस्टर कराने की एक प्रणाली बिकसित की जानी चाहिए । स्कूल के अध्यापकों को उन सभी बच्चों की वार्षिक गणना करनी चाहिए, जिनकी आयु विहित प्रवेश आयु से एक साल कम है और जो स्कूल में अगले साल प्रवेश लेना चाहेंगे । कुछ बड़े शहरों को छोड़कर, जहां हर साल शहर छोड़कर चले जाने वाले तथा नए आकर बसने वाले लोगो की जनसंख्या बहुत ज्यादा होती है, ऐसी जनगणवा करके पहले से नामों को रजिस्टर में लिखना बड़ा ही उपयोगी होगा और कोई अपार प्रशासनिक समस्या भी खड़ी नहीं

करेगा। पूर्व-रजिस्ट्रेशन के वर्ष में बच्चों के लिए उन खेल-केन्द्रों की व्यवस्था जितने ज्यादा स्कूलों में हो सके करने का प्रयास करना चाहिए, जिनका वर्णन पिछले पैराग्राफ 7.07 (4) में किया जा चुका है।

(2) कक्षा 1 में नए नामांकन जहां तक संभव हो प्रवेश के लिए विहित एक ही साल तक सीमित रखने चाहिए। शुरू में ज्यादा बड़े बच्चे भी जो अब तक स्कूल नहीं गए हैं, कक्षा में भारती करने होंगे, पर अगर हर साल विहित प्रवेश आयु के सभी बच्चों के नामांकन के लिए तीव्रता से प्रयत्न किए जाएं तो कक्षा 1 में प्रवेश चाहने वाले ज्यादा-जायु के बच्चों का प्रतिशतक हर साल का कम होता जाएगा और लगभग 5-10 वर्षों की अवधि में बिलकुल खत्म हो जाएगा।

7.18. **कक्षा 5 में नामांकन**—इस समय कक्षा 4 से और जो अवर प्राथमिक स्तर के आखिर में है, छात्रों के कक्षा 5 में स्थानांतरण की दर लगभग 85 प्रतिशत है। चौथी आयोजना के अंत तक यह स्थानांतरण दर बढ़ाकर 90 प्रतिशत कर देनी चाहिए, और पांचवीं आयोजना के अंत तक 100 प्रतिशत। इस प्रयोजन से यह जरूरी है कि इस समस्या को निपटाने के हेतु उपयुक्त उपाय जानने के लिए सर्वेक्षण और पड़तालें की जाएं। इस समय उपलब्ध साक्ष्य से यह पता चलता है कि स्तर पर कम नामांकन होना मुख्यतः ऐसे कारणों से है, जैसे, पड़ोस में उच्चतर प्राथमिक स्कूल का न होना, निःशुल्क शिक्षा के लिए अपर्याप्त सुविधाएं, परिवार में या परिवार के लिए काम करने की (खासकर लड़कियों के मामले में) काम करने की बच्चे की जरूरत; अपनी पुत्रियों को आगे शिक्षा दिलाने या मिले-जुले उच्चतर माध्यमिक स्कूलों में उनको भेजने में जनकों की अनिच्छा। एक निश्चित आकार के गांवों में उच्चतर प्राथमिक स्कूलों की स्थापना, जैसा कि पहले सुझाव दिया गया था, और निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा की और उच्चतर प्राथमिक स्तर पर अंशकालिक शिक्षा की व्यवस्था से इन कठिनाइयों में से पहले तीन को दूर किया जा सकेगा। आखिरी कठिनाई को कुछ इलाकों में लड़कियों के लिए अलग स्कूल खोल कर दूर किया जा सकेगा। फिर भी अधिकांश मामलों में जनकों की शिक्षा और लड़कों और लड़कियों के मिले-जुले इनक स्कूलों अनिवार्यता की बात जनकों को समझाने से इनको दूर किया जा सकेगा।

7.19. **छात्रों का निर्धारित अवधि तक स्कूल में रहना**—स्कूल में हर बच्चे का नामांकन करने के बाद यह देखना जरूरी है कि वह साल साल नियमित रूप से प्रगति करता रहे (अर्थात्, अगति न आने पाए) और वह विहित आयु और कक्षा तक अपना अध्याय पूरा किए बिना स्कूल न छोड़े (अर्थात् व्यर्थता न होने पाए) जैसा सुविदित है, हमारी प्रणाली में व्यर्थता और अगति बहुत ज्यादा हैं। इस बुराई पर पहले पहल लगभग चालीस साल पहले हारटोग समिति ने प्रकाश डाला था; और हालांकि तब से इस समस्या पर प्रायः लगातार ही चर्चा होती रही है, पर इसे कम करने के लिए बहुत थोड़ी ही प्रभावी कार्रवाई की गई है। इस समस्या पर अवधि-शृंखला पर आधारित सम्मित अध्ययन उपलब्ध नहीं हैं। पर सारणी 7.2 में, जिसमें 1911-12 से कक्षावार पंचवर्षीय नामांकन दिए गए हैं, यह बताया गया है कि यह समस्या कितनी निरन्तर रूप से बनी रही है और इसकी मात्रा कम करने में कितनी कम प्रगति हुई है।

स्कूल शिक्षा की एक अच्छी प्रणाली में विभिन्न कक्षाओं में छात्राओं का वितरण काफी एकरूप रहना चाहिए, पर हमारे देश में ऐसा नहीं है। सारणी 7.2 से यह स्पष्ट हो जाएगा कि :

— कक्षा 1 में कुल नामांकन अनुमानतः काफी ज्यादा होते हैं। यह अंशतः इस कक्षा में काफी अगति के कारण है और अंशतः इस कारण कि प्राथमिक स्तर पर कुल व्यर्थता का लगभग तिहाई से आधा तक इस कक्षा के अंत में ही घटित होता है;

— 1911-12 में कक्षा 1 में नामांकित 100 बच्चों के आगे कक्षा 4 में केवल 20 छात्र ही बचे। 1946-47 में यह अनुपात बढ़कर 39 हो गया। इससे कुछ प्रगति हुई तो लगती है, पर यह धीमी रही। फिर भी स्वाधीनता के बाद के काल में स्थिति में न केवल कोई सुधार ही नहीं हुआ, बल्कि वह कुछ सीमा तक बिगड़ ही गई, क्योंकि 1965-66 में कक्षा 1 के 100 छात्रों के आगे कक्षा 4 में केवल 37 छात्र ही ठहरे थे। इसका लक्षितार्थ स्पष्ट है : तेजी से जो विस्तार हुआ है उसने अगति और व्यर्थता की मात्रा भी कुछ बढ़ा दी है;

— 1911-12 में कक्षा 1 के 100 छात्रों के आगे कक्षा 7 में चार छात्र ठहरे थे। यह अनुपात 1946-47 में बढ़कर 15 हो गया और 1965-66 में 20। इसलिए यह समूचे काल में उच्चतर प्राथमिक शिक्षा में धीमी पर सतत प्रगति बनी रही है।

7.20. **अगति**—प्राथमिक स्तर पर कक्षा-कक्षा में अगति की मात्रा का कुछ अन्दाज करने के लिए आयोग ने 312 में से 29 जिलों में कक्षा 1 से 8 के नामांकनों के बारे में दत्तसामग्री इकट्ठी की थी। हर कक्षा के बारे में दो तरह की जानकारी इकट्ठी की गई : कुल नामांकन और कक्षा में उनके द्वारा बिताए गए कुल समय के अनुसार वर्गीकृत, अनुत्तीर्ण होकर फिर कक्षा में ही रहने वाले छात्रों की संख्या। इस जानकारी से छात्र द्वारा कक्षा में बिताया गया औसत समय जोड़ा गया और उससे एक साल ऊपर का समय—जो सामान्य समय है—उस कक्षा का उस साल का 'अगति सूचकांक' वर्णित किया गया। सारणी 7.3 में अध्ययन के अधीन आने वाले नौ के नौ राज्यों में हर कक्षा के लड़कों और लड़कियों के अगति देशनांक अलग-अलग बताए गए हैं।

सारणी 7.2. कक्षा 1—8 में नामांकन (1911-12 से 1965-66)

वर्ष	कक्षावार नामांकन (000 में)							
	I	II	III	IV	V	VI	VII	VIII
	1	2	3	4	5	6	7	8
1911-12 . . .	2,717*	1,062	757	545	324	167	119	76
	(100.0)	(39.1)	(27.9)	(20.1)	(11.9)	(6.1)	(4.4)	(2.8)
1916-17 . . .	2,933*	1,404	934	667	415	215	157	105
	(100.0)	(47.9)	(31.8)	(22.7)	(14.1)	(7.3)	(5.4)	(3·6)
1921-22 . . .	3,343	1,556	924	636	377	246	158	114
	(100.0)	(46.5)	(27.6)	(19.0)	(11.3)	(7.4)	(4.7)	(3.4)
1926-27 . . .	5,280	1,638	1,131	768	427	279	211	141
	(100.0)	(31.0)	(21.4)	(14.5)	(8.1)	(5.3)	(4.0)	(2.7)
1931-32 . . .	5,281	2,111	1,496	1,016	628	377	301	292
	(100.0)	(40.0)	(28.3)	(19.2)	(11.9)	(7.1)	(5.7)	(4.3)
1936-37 . . .	5,291	2,378	1,762	1,288	790	477	365	296
	(100.0)	(44.9)	(33.3)	(24.3)	(14.9)	(9.0)	(6.9)	(5.6)
1941-42 . . .	5,525	2,724	2,027	1,572	1,085	591	437	377
	(100.0)	(49.3)	(36.7)	(28.5)	(19.6)	(10.7)	(7.9)	(6.8)
1946-47 . . .	3,570	2,525	1,821	1,404	1,137	648	523	448
	(100.0)	(70.7)	(51.0)	(39.3)	(31.8)	(18.1)	(14.6)	(12.5)
1950-51 . . .	6.948	4.332	3,353	2,623	1,898	1,246	1,023	851
	(100.0)	(62.3)	(48.3)	(37.8)	(27.3)	(17.9)	(14.7)	(12.2)
1955-56 . . .	9,958	5,523	4,067	3,216	2.403	1,698	1,436	1,160
	(100.0)	(55.5)	(40.8)	(32.3)	(24.1)	(17.1)	(14.4)	(11.6)
1960-61 . . .	13,391	7,513	5,886	4,593	3,611	2,727	2,220	1,758
	(100.0)	(56.1)	(44.0)	(34.3)	(27.0)	(20.4)	(16.6)	(13.1)
1965-66 . . .	18,843	10,973	8,875	6,924	5,522	4,453	3,680	2,900
	(100.0)	(58.2)	(47.1)	(36.7)	(29.3)	(23.6)	(19.5)	(15.4)

*इसमें शिशु कक्षा क और ख के नामांकन शामिल हैं।

नोट : कोष्ठकों में दी गई संख्याएं हर कक्षा के नामांकन का उसी वर्ष कक्षा 1 के नामांकन में प्रतिशतता बताती हैं।

स्रोत : शिक्षा मंत्रालय की पंचवर्षीय समीक्षाएं और रिपोर्टें।

सारणी 7.3. कक्षा 1—8 में अगति के सूचकांक (1965)

राज्य	कक्षाएं I	II	III	IV	V	VI	VII	VIII
1—आन्ध्रप्रदेश								
लड़के . . .	63.4	38.4	27.9	21.0	19.6	13.3	13.7	19.8
लड़कियां . .	71.6	42.9	30.1	23.2	22.4	11.8	12.2	14.8
2—मध्यप्रदेश								
लड़के . . .	39.1	12.9	10.3	9.1	8.3	10.5	6.7	5.2
लड़कियां . .	34.7	13.8	11.3	10.3	8.3	3.4	4.0	4.3
3—महाराष्ट्र								
लड़के . . .	39.3	25.5	22.7	25.7	21.1	15.8	12.5	11.3
लड़कियां . .	52.5	35.8	33.3	38.5	23.5	17.2	12.6	7.6
4—राजस्थान								
लड़के . . .	29.5	24.0	34.6	36.8	32.7	14.1	22.8	19.0
लड़कियां . .	23.7	23.7	44.2	57.0	45.3	34.8	46.4	62.9
5—पंजाब								
लड़के . . .	24.6	13.3	10.2	6.6	7.1	13.4	12.4	9.2
लड़कियां . .	22.8	12.6	9.2	5.1	4.8	8.3	8.7	7.1
6—उत्तरप्रदेश								
लड़के . . .	27.1	14·2	9.1	6.4	4.3	4.9	6.1	12.5
लड़कियां . .	18.5	14.3	11.5	9.4	9.1	12.7	10.7	25.5
7—मैसूर								
लड़के . . .	53.2	36.6	27.2	26.4	15.0	12.7	12.6	—
लड़कियाँ . .	66.1	39.9	27.1	19.0	12.4	13.1	15.6	—
8—केरल								
लड़के . . .	27.2	26.9	26.0	29.0	27.2	26.0	24.8	—
लड़कियां . .	26.3	26.0	24.6	27.1	26.6	23.1	25.7	—
9—उड़ीसा								
लड़के . . .	43.1	33.3	33.7	30.0	15.4	9.3	21.5	12.3
लड़कियां . .	40.1	38.8	27.5	21.2	15.8	43.3	34.4	16.2
योग								
लड़के . . .	40.3	26.6	22.6	21.7	16.4	14.1	13.7	13.2
लड़कियाँ . .	47.1	33.1	26.6	25.6	19.8	17.3	17.9	16.4

स्रोत : राज्य सरकारों द्वारा भेजी गई दत्त सामग्री ।

पूर्ववर्ती सारणी से यह स्पष्ट हो जाता है कि :

— अगति सबसे ज्यादा 1 में रहती है;

— कक्षा 2 में यह काफी कम हो जाती है और फिर कक्षा 3 और 4 में काफी स्थिर रहती है;

— उच्चतर प्राथमिक स्तर पर अगति में और भी कमी आ जाती है;

— कुल मिलाकर अगति लड़कों की अपेक्षा लड़कियों में ज्यादा होती है; और

— अगति की मात्रा में इलाके-इलाके में काफी अन्तर रहता है।

7.21. **व्यर्थता**—व्यर्थता के बारे में ताजे और काफी बड़े पैमाने के अध्ययन उपलब्ध नहीं हैं। पर महाराष्ट्र राज्य के शिक्षानिदेशालय की अनुसंधान यूनिट ने पूना जिले के प्राथमिक स्कूलों में एक से दूसरी कक्षा में छात्रों के प्रवाह को मापने के लिए जो अध्ययन किया था, उससे पता चला कि यदि किसी वर्ष विशेष में कक्षा 1 से 1,000 छात्रों को लिया जाए, तो 414 कक्षा 4 पूरी किए बिना ही स्कूल छोड़कर चले जाते हैं। इस अध्ययन के वास्तविक तथ्य इस प्रकार हैं :

(1) कक्षा 1 में अपने स्कूली जीवन के पहले साल में स्कूल छोड़ दिया ··· 144

अपने स्कूली जीवन के दूसरे साल में पर अब भी कक्षा 1 में ही स्कूल छोड़ दिया ··· 27

अपने स्कूली जीवन के तीसरे साल में पर अब भी कक्षा 1 में ही स्कूल छोड़ दिया ··· 12

कक्षा 1 से छोड़ने वालों की कुल संख्या 183

(2) अपने स्कूली जीवन के दूसरे साल में कक्षा 1 उत्तीर्ण करके और कक्षा 2 में आने के बाद स्कूल छोड़ दिया ··· 67

अपने स्कूली जीवन के तीसरे कक्षा 1 से दो साल में उत्तीर्ण करके और कक्षा 2 में आने के बाद स्कूल छोड़ दिया ··· 8

अपने स्कूली जीवन के चौथे साल में कक्षा 1 तीन साल में उत्तीर्ण करके और कक्षा 2 में आने के बाद स्कूल छोड़ दिया ··· 5

अपने स्कूली जीवन के दूसरे साल में कक्षा 2 में अनुत्तीर्ण होने के बाद स्कूल छोड़ दिया ··· 25

अपने स्कूली जीवन के तीसरे साल में कक्षा 2 में अनुत्तीर्ण होने के बाद स्कूल छोड़ दिया ··· 13

कक्षा 2 छोड़ने वालों की कुल संख्या 118

(3) अपने स्कूली जीवन के तीसरे साल में कक्षा 2 में उत्तीर्ण होकर और कक्षा 3 में अनुत्तीर्ण होकर स्कूल छोड़ दिया··· 61

अपने स्कूली जीवन के चौथे साल में कक्षा 2 में उत्तीर्ण होकर और कक्षा 3 में आने के बाद स्कूल छोड़ दिया ··· 18

अपने स्कूली जीवन के तीसरे साल में कक्षा 3 में अनुत्तीर्ण होने पर स्कूल छोड़ दिया ··· 9

कक्षा 3 से छोड़ने वालों की कुल संख्या 88

(4) अपने स्कूली जीवन के चौथे साल में कक्षा 3 में उत्तीर्ण होकर और कक्षा 4 में आने के बाद स्कूल छोड़ दिया ··· 25

कक्षा 4 से छोड़ने वालों की संख्या ··· 25

कक्षा 4 पूरा करने से पहले स्कूल छोड़ने वाले सभी छात्रों का कुल जोड़ ··· 414

7.22. यह स्थिति बड़ी दुःखद है, पर समूचे देश की स्थिति से यह फिर भी अच्छी है क्योंकि जिस इलाके में अध्ययन किया गया था, वह शिक्षा की दृष्टि से काफी आगे बढ़ा हुआ है। व्यर्थता की सीमा नापने का एक स्थूल और सरल तरीका वर्षों की एक शृंखला में कक्षावार संख्या कम होते जाने का अध्ययन करना है। सारणी 7.4 में स्वाधीनता के बाद समूचे देश में इस कमी की मात्रा लड़कों और लड़कियों के लिए अलग-अलग और अवर प्राथमिक तथा उच्चतर प्राथमिक स्तरों के लिए भी अलग-अलग बताई गई है। इससे जो सामान्य चित्र

1. **इण्डियन जनरल आफ एजूकेशनल एडमिनिस्ट्रेशन एण्ड रिसर्च, शरद** 1960, **जिल्द** 1,0.2, **शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।**

उभरता है, वह पूना के अध्ययन से भी गया गुजरा है। व्यर्थता की मात्रा अवर प्राथमिक स्तर पर बहुत ही ज्यादा है—लड़कों के लिए लगभग 56 प्रतिशत और लड़कियों के लिए 62 प्रतिशत। इस व्यर्थता का लगभग दो तिहाई कक्षा 1 में होता है। साथ ही यह लड़को के मामलों में काफी निरन्तर रूप में रहा है। उच्चतर प्राथमिक स्तर पर व्यर्थता बहुत कम है—लड़कों के लिए लगभग 24 प्रतिशत और लड़कियों के लिए 34 प्रतिशत; और ज्यादा मार्के की बात यह है कि यह लगातार कम होता जा रहा है, भले ही कम होने की दर धीमी हो।

7.23. उपर्युक्त विवेचन से पता चलता है कि अगले छह सालों में प्राथमिक स्तर पर कार्यान्वित करने के लिए सबसे महत्वपूर्ण कार्यक्रम शिक्षा में गुणात्मक सुधार करना है और व्यर्थता और अगति को कम से कम करना है। वस्तुतः सार्वजनिक शिक्षा का काम तभी **शुरू हो जाता** है जब बच्चों का कक्षा 1 के लिए नामांकन किया जाता है। यह तभी **पूरा होता** है जब उनको कक्षा 7 पूरी करने तक सफलता के साथ रोक लिया जाता है। इस समूचे कार्यक्रम में कक्षा 1 में अगति और व्यर्थता को कम करना स्पष्ट ही प्रमुख बात है।

7.24. **कक्षा 1 में अगति और व्यर्थता**—कक्षा 1 में भारी मात्रा में अगति और व्यर्थता के कई कारण हैं, जिनमें ये भी शामिल है :

— छात्रों की आयु-रचना में विषमरूपता, जिसका उल्लेख पहले ही किया जा चुका है;
— कई राज्यों में यह रिवाज चालू है कि नए दाखिले स्कूल वर्ष के पहले महीने आदि में न करके पूरे साल करते रहना;
— उपस्थिति में अनियमितता;
— स्कूल में और बच्चों के पास शैक्षिक उपकरणों की कमी;
— कक्षाओं में बहुत ज्यादा भीड़-भाड़;
— अनुपयुक्त पाठ्यचर्या;
— खेलकूद में पढ़ाने की तकनीकें अपनाने में अध्यापकों की असमर्थता, जो बच्चों को रोचकता के साथ स्कूल-जीवन का अभ्यस्त बनाने में मदद दे सकती है;
— शुरू के पठनपाठन का अपर्याप्त शिक्षण;
— अपर्याप्त रूप से तैयार अध्यापक; और
— परीक्षाओं की गलत प्रणाली।

7.25. इनमें से कुछ दोषों का इलाज स्वतः स्पष्ट है; और गुणात्मक सुधारों के उन कार्यक्रमों को विकसित करके इनमें से अधिकांश को खत्म किया जा सकता है। है, जिन पर अलग से चर्चा की जा रही है। फिर भी इस सिलसिले में हम नीचे लिखे कार्यक्रमों पर जोर देना चाहेंगे।

(1) कक्षा 1 के आखीर की परीक्षा खत्म कर देनी चाहिए और पहली दो कक्षाएं (और जहां भी सम्भव हो पहली तीन या चार) एक अध्यापन इकाई मानी जानी चाहिए, जिसके भीतर हर बच्चा अपनी-अपनी चाल से प्रगति कर सकता है।

सारणी 7.4. प्राथमिक स्तर पर व्यर्थता (1949-50 से 1961-62)

कक्षा 1 से 4 (अवर प्राथमिक)

वर्ष	लड़के				लड़कियाँ			
	I	II	III	IV	I	II	III	IV
1949-50 . . .	100	—	—	—	100	—	—	—
1950-51 . . .	100	65.1	—	—	100	57.4	—	—
1951-52 . . .	100	66.0	54.4	—	100	59.6	44.5	—
1952-53 . . .	100	64.9	53.3	45.3	100	57.8	43.9	34.0
1953-54 . . .	100	65.8	54.8	46.8	100	58.7	45.6	35.2
1954-55 . . .	100	63.0	53.7	47.2	100	57.8	45.6	36.3
1955-56 . . .	100	61.8	52.7	46.7	100	58.2	45.4	36.7
1956-57 . . .	100	60.8	50.9	45.9	100	55.3	44.6	36.5
1957-58 . . .	100	61.4	50.0	42.9	100	55.0	43.0	35.2
1958-59 . . .	100	62.1	51.8	43.1	100	58.2	43.9	34.9
1959-60 . . .	—	61.2	51.2	44.3	—	56.4	45.8	35.5
1960-61 . . .	—	—	51.1	44.4	—	—	45.1	37.6
1961-62 . . .	—	—	—	44.4	—	—	—	37.5

कक्षा V—VII (उच्चतर प्राथमिक)

वर्ष	लड़के			लड़कियाँ		
	V	VI	VII	V	VI	VII
1949-50	100	—	—	100	—	—
1950-51	100	75.5	—	100	59.4	—
1951-52	100	77.5	68.5	100	60.7	49.5
1952-53	100	75.8	65.0	100	60.3	49.4
1953-54	100	74.8	65.6	100	60.3	53.1
1954-55	100	73.7	67.0	100	63.4	51.6
1955-56	100	76.4	66.8	100	65.7	55.3
1956-57	100	79.1	69.4	100	72.4	59.9
1957-58	100	77.7	69.5	100	69.0	61.8
1958-59	100	83.2	70.5	100	72.9	61.0
1959-60	100	85.9	73.3	100	81.7	61.5
1960-61	—	84.3	74.2	—	74.8	68.1
1961-62	—	—	75.6	—	—	66.2

स्रोत : शिक्षा मंत्रालय का फ़ार्म क ।

(2) जैसी पहले सिफ़ारिश की गई है, कम खर्चीली तरह की एक साल पूर्व-स्कूल शिक्षा का शुरू किया जाना ।

(3) बच्चे को रोचक तरीके से स्कूल-जीवन से परिचित बनाने के लिए खेलकूद में पढ़ाने की तकनीकें अपनाना । इस प्रयोजन से कक्षा 1 में अध्ययन के तरीके पूर्व-प्राथमिक स्तर पर प्रयुक्त तकनीकों के सांचे में ढालने चाहिए और इस कक्षा के प्रभारी अध्यापक का तदनुसार प्रशिक्षण पुनरनुस्थापन होना चाहिए ।

7.26. **दूसरी कक्षाओं में अगति और व्यर्थता**—प्राथमिक स्तर की दूसरी कक्षाओं में अगति और व्यर्थता की मात्रा अपेक्षतया कम है । इसके कारण स्थूल रूप से तीन श्रेणियों में बांटे जा सकते हैं—आर्थिक, शैक्षिक और सामाजिक । इन कारणों का निकट से विश्लेषण करने से भी इसके उपचार का पता चल जाएगा ।

7.27. **आर्थिक कारण**—इस विषय पर किए गए कुछेक अध्ययनों से यह पता चल गया है कि लगभग 65 प्रतिशत व्यर्थता गरीबी के कारण है । बच्चे को 6 और 9 वर्षों के बीच स्वेच्छा से स्कूल भेज दिया जाता है, क्योंकि इस स्तर पर वह घर पर मदद देने की जगह परेशानी ही पैदा करता है । 9-10 साल की आयु के बाद बच्चा आर्थिक दृष्टि से लाभप्रद हो जाता है, क्योंकि वह या तो घर पर काम कर सकता है या बाहर से कुछ कमा सकता है । यह खासतौर पर लड़कियों के बारे में सही है, जिनको घर पर अपनी ज्यादा काम से परेशान मां की मदद करनी होती है । इस कारण बच्चे को स्कूल से उठा लिया जाता है और वह 'व्यर्थता' का एक उदाहरण बन जाता है । इस समस्या का दीर्घकालीन समाधान तो सामान्य आर्थिक सुधार ही हो सकता है । पर तत्काल की परिस्थितियों में इस कठिनाई को दूर करने का एक ही रास्ता है कि अंशकालिक शिक्षा की व्यवस्था की जाए, जिससे बच्चे काम करने के साथ-साथ पढ़ भी सकें ।

7.28. **साक्षरता कक्षाएँ**—इस दृष्टि से हम दो कार्यक्रम सुझा रहे हैं । पहले का उद्देश्य निरक्षरों की संख्या बढ़ने से रोकना है । इस समय ऐसी बढ़ोत्तरियाँ अनेक कारणों से निरन्तर हो रही हैं । बच्चों के एक हिस्से

का स्कूलों में नामांकन ही नहीं होता, जिनका नामांकन किया भी जाता है, उनमें भी बहुत से कक्षा 4 या 5 पूरी किए बिना और कामचलाऊ रूप से स्थायी साक्षरता प्राप्त किए बिना ही स्कूल छोड़ देते हैं और कुछ तो थोड़े समय बाद फिर से निरक्षर ही हो जाते हैं। ऐसी वृद्धि रोकने और निरक्षरता कम करने में मदद देने के लिए हम यह सिफ़ारिश करते हैं कि 11-14 आयु-वर्ग के सभी बच्चों को जो स्कूल नहीं जा रहे हैं और जो शिक्षा का प्राथमिक स्तर पूरा करके कामचलाऊ रूप से साक्षर नहीं बन पाए हैं, उनसे कम से कम एक साल की 'साक्षरता कक्षाओं' में उपस्थित होने की अपेक्षा की जानी चाहिए।

7.29. देश की कुछ संस्थाओं में किए गए प्रयोगों ने यह दिखा दिया है कि यदि हम इस आयु-वर्ग के विकसित बच्चों से शुरू करें और उनके लिए अंशकालिक शिक्षा की (हफ्ते में लगभग तीन दिन हर रोज लगभग आधे से दो घण्टे तक की) व्यवस्था कर दें, तो एक साल के दौरान ही उनको कामचलाऊ रूप से साक्षर बनाया जा सकता है। ऐसी कक्षाएँ प्राथमिक कक्षा के अध्यापकों द्वारा नियमित स्कूल के घंटों के बाहर उन्हीं स्कूलों की इमारतों और सामग्री का उपयोग करते हुए आयोजित की जा सकती हैं। कक्षाओं के समय लचीले रखने होंगे। उनका निर्णय स्थानीय हालतों के अनुसार करना होगा और इस नाते बच्चों की जरूरतों का ख्याल रखना होगा कि इन कक्षाओं में उनकी उपस्थिति परिवार के लिए किए जाने वाले उनके काम में आड़े न आए। अधिकांश मामलों में उनको अंशकालिक आधार पर रोज लगभग डेढ़ घंटे सुबह या शाम को आयोजित करना होगा। लड़कियों के लिए दोपहर के बाद का कुछ समय हमेशा ज्यादा सुविधाजनक रहेगा। इस प्रयोजन से अध्यापकों को पर्याप्त रूप से पारिश्रमिक दिया जाना चाहिए। अलग पाठ्यचर्या की जरूरत नहीं; बल्कि चूँकि औसत कक्षा का आकार छोटा होगा, अध्यापकों के लिए हर बच्चे की ओर व्यक्तिगत ध्यान देना और इस समय में उनको कामचलाऊ रूप से साक्षर बना देना सम्भव होगा। इन कक्षाओं को चलाने का खर्च तुलना में कम आएगा, हर बच्चे के लिए हर साल में 40 रुपए से ज्यादा न होगा, पर इसके नतीजे बड़े सारवान् होंगे।

7.30. इस कार्यक्रम की सफलता में सन्देह करने का कोई भी कारण नहीं हो सकता और इसे राष्ट्रव्यापी आधार पर तुरन्त अपनाया जा सकता है। लेकिन अगर यह जरूरी समझा जाए, हर जिले में थोड़े समय की कुछ प्रायोगिक परियोजनाएं चलाई जा सकती हैं, जिससे योजना को राष्ट्रव्यापी आधार पर चलाने से पहले कुछ अनुभव अर्जित किया जा सके। किसी भी इलाके में पहले पहल इन कक्षाओं को स्वैच्छिक आधार पर चलाना ही वांछनीय होगा। इन कक्षाओं में उपस्थिति तभी बाध्यकर बनाई जाए जब स्थानीय जनता इसकी अवधारणा से सुपरिचित हो जाए और इस का महत्व समझने लग जाए।

7.31. यह समझ लेना महत्वपूर्ण होगा कि इस समस्या का समग्र आकार अपेक्षतया छोटा है और यह क्रमशः लुप्त होती जा रही है। इस समय 11-15 के आयु-वर्ग के बच्चों की संख्या लगभग 3.4करोड़ है। इन में से 1.1 करोड़ कक्षा 6-8 में स्कूल जा रहे हैं और लगभग 30 लाख से प्राथमिक स्तर पूरा कर लेने की उम्मीद थी, हालांकि वे इस समय कक्षाओं में उपस्थित नहीं हो रहे हैं। अब आयु-वर्ग 11-13 में 2 करोड़ बच्चे रह जाते हैं, जो 1966 में इस अनिवार्य कार्यक्रम के अन्तर्गत आएंगे। अगले दस सालों में दो चीजों के सम्पन्न होने की संभावना है। पहले तो कक्षा 5-7 में स्कूल जाने वाले बच्चों की संख्या जनसंख्या के बढ़ने की दर से कहीं ज्यादा तेजी से बढ़ती जाएगी। दूसरे चूंकि पांच साल की प्रभावी शिक्षा बच्चों को ज्यादा-ज्यादा रूप में दी जाती रहेगी, जो बच्चे काम चलाऊ रूप से साक्षर होने से पहले स्कूल छोड़ देते है, उनकी संख्या अनुदिन कम होती जाएगी और 1976 तक बिल्कुल लुप्त हो जाएगी।

7.32. **उच्चतर प्राथमिक स्तर पर अंशकालिक शिक्षा**—(1) व्यर्थता को खत्म करने के लिए दूसरा कार्यक्रम ऐसे बच्चों के लिए अंशकालिक शिक्षा की व्यवस्था करना है, जो अवर प्राथमिक स्तर पूरा कर चुके हैं और जो आगे पढ़ना चाहते हैं। पर आर्थिक कारणों से पूरे समय की पढ़ाई के आधार पर ऐसा नहीं कर सकते। ऐसे बच्चों की संख्या इस समय भी बहुत है और शिक्षा के और ज्यादा गरीब वर्गों तक पहुंचने पर यह और भी बढ़ जाएगी। ये बच्चे केवल इसी तरीके से शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं कि वह उनको अंशकालिक आधार पर मिले और नीति का यह सोचा-समझा उद्देश्य होना चाहिए कि यह शिक्षा यथासंभव ज्यादा से ज्यादा पैमाने पर दी जाए।

(2) इस अंशकालिक शिक्षा की विषय-वस्तु लचीली रखनी होगी और इसे प्राप्त करने वाले बच्चों की जरूरतों और रवैये का ध्यान रखकर तय करनी होगी। कुछ बच्चों के लिए जो इस स्तर की शिक्षा पूरी करके अगले स्तर के लिए अपनी तैयारी करना चाहते हैं, इसे पूर्ण-कालिक पाठ्यक्रमों के सांचे में ढालना होगा। पर जो ऐसा नहीं करना चाहते—और ऐसे छात्रों की संख्या बहुत ज्यादा

होगी— उनके लिए शिक्षा की विषय-वस्तु में काफी व्याव-सायिक तत्व रखना होगा और उसे इस तरह विकसित करना होगा कि वह उनकी तत्काल की जरूरतों को पूरा कर सके।

(3) शुरू-शुरू में इन कक्षाओं में उपस्थिति स्वैच्छिक होनी चाहिए। पर किसी भी इलाके में आधारभूमि तैयार होते ही बाध्यकर उपस्थिति को लागू किया जा सकता है। कुछ इलाकों में ऐसा प्रायः तुरन्त भी किया जा सकता है और पांचवी और छठी आयोजनाओं में देश के सभी हिस्सों को इसके अन्तर्गत शामिल किया जाना चाहिए।

(4) इस स्तर पर अंशकालिक शिक्षा पाने वाले छात्रों का अनुपात ठीक-ठीक तय करना सम्भव नहीं है। अपनाई जाने वाली नीति यह होनी चाहिए कि पूर्णकालिक शिक्षा चाहने वाले हर बच्चे के लिए स्थान की वैसी व्यवस्था की जाए और जो बच्चे किसी कारण से पूर्ण-कालिक पाठ्यक्रम में नहीं जा सकते उन सभी के लिए अंशकालिक शिक्षा में जगह बनाई जानी चाहिए। इस तरह अंशकालिक और पूर्णकालिक शिक्षा के अनुपात में आर्थिक कारणों से क्षेत्र-क्षेत्र में और एक ही क्षेत्र में समाज के एक वर्ग से दूसरे में अन्तर रहेगा। फिर भी वित्तीय प्राक्कलनों के प्रयोजन से हमने यह अनुमान लगाया है कि समूचे देश में अंशकालिक शिक्षा में नामांकन 1975-76 में इस स्तर के कुल नामांकनों का लगभग 10 प्रतिशत होगा और 1985-86 में लगभग 20 प्रतिशत।

7.33. **शैक्षिक और सामाजिक कारण**—अगली 30 प्रतिशत व्यर्थता के लिए उत्तरदायी शैक्षिक कारणों में में आते है : अपूर्ण स्कूलों का विद्यमान होना, जो पूरा पाठ्यक्रम नहीं पढ़ाते; अयति का ज्यादा वर्तमान होना जो बच्चों को ज्यादा देर तक स्कूल में रुके रहने से हतोत्साहित करता है; अधिकांश स्कूलों का बीरस स्वरूप और बच्चों को आकर्षित करने और रोके रखने में उनकी अक्षमता; स्कूल भोजन और स्कूल की स्वास्थ्य सेवा जैसी सहायक सेवाओं का विद्यमान न रहना; और औसत जनक या बच्चे का स्कूल में उपस्थित रहने के लाभ न समझना। इस बात पर जोर देने की जरूरत भी है कि इन सभी बीमारियों का अचूक इलाज गुणात्मक सुधार करना और साथ ही जबकों की शिक्षा का एक सघन पूरक कार्यक्रम चलाना है। लड़कियों के मामले में मुख्यतः विद्यमान सामाजिक कारण इसमें ज्यादा योगदान नहीं देते है। इनमें सगाई या शादी और बड़ी लड़कियों को स्कूलों में खासकर मिले-जुले स्कूलों में या महिला अध्या-पिकाएं न होने वाले स्कूलों में भेजने में लोगों का विरोध है। इसका इलाज स्वतः स्पष्ट है।

7.34. **सामान्य विचार**—व्यर्थता और अगति की बुराई कम करने का एक प्रभावी तरीका यह है कि हर राज्य शिक्षा विभाग हर स्कूल को एक वैयक्तिक इकाई माने और हर स्कूल हर बच्चे की ओर पूरा-पूरा ध्यान दे। विभाग को चाहिए कि वह हर कक्षा और हर स्कूल में साल-साल होने वाली व्यर्थता और अगति की मात्रा की माप करने के लिए विकसित की गई तकनीकों का इस्तेमाल करे और इस दत्तसामग्री के आधार पर इसे इस बात पर जोर देना चाहिए कि हर स्कूल इस बुराई को कम करने के लिए यथासम्भव पूरी-पूरी कोशिश करे। इसी तरह हर स्कूल को व्यक्तिगत बच्चों की ओर पूरा-पूरा ध्यान देना चाहिए। पता चला है कि एक मामूली से कार्य से जैसे किसी बच्चे के स्कूल आना बन्द कर देने पर अध्यापक द्वारा जनकों से की गई सहानुभूतिपूर्ण पूछताछ से ही व्यर्थता कम हो जाती है। इसलिए, जरूरत राष्ट्रव्यापी स्कूल सुधार कार्यक्रम की है, जिसमें व्यर्थता और अगति कम करने की ओर ज्यादा प्रमुख रूप से ध्यान दिया जाएगा। ऐसे कार्यक्रम की स्थूल रूपरेखा की अन्यत्र चर्चा की गई है।[1]

7.35. यह याद रखना होगा कि व्यर्थता और अगति सिरदर्द और बुखार की तरह अपने आप में रोग नहीं है : वे शिक्षा प्रणाली के अन्य रोगों के लक्षण ही हैं, जिनमें से प्रमुख हैं, जीवन और शिक्षा के बीच समुचित आदान-प्रदान का अभाव और छात्रों को आकर्षित करने और रोके रखने में स्कूल की अक्षमता। इनमें एक तीसरी बीमारी भी जोड़ी जा सकती है—गरीबी, जो शिक्षा प्रणाली से बाहर की चीज है। पहली दो शैक्षिक दुर्बलताओं को दूर करने के लिए अविलम्ब कार्रवाई करने की जरूरत है : तीसरी का प्रभाव तभी दूर हो सकेगा, जब देश की अर्थ-व्यवस्था में सुधार होगा। इसलिए छात्रों को सर्वजनीन रूप से रोके रखने का लक्ष्य सबसे ज्यादा कठिन है और काफी लम्बी अवधि के बाद ही इसकी पूर्ति हो सकती है। इसलिए, यह और भी जरूरी हो जाता है कि व्यर्थता कम करने के लिए तुरन्त एक सघन कार्यक्रम आयोजित किया जाए और लक्ष्य प्राप्त होने तक इसे चालू रखा जाए। शुरुआत कक्षा 1 में की जानी चाहिए, जहां चौथी आयोजना के अंत तक व्यर्थता कम करके आधी कर देने का और पांचवीं आयोजना के अन्त तक इसे न्यूनतम कर देने का लक्ष्यतय करना चाहिए। अवर प्राथमिक स्तर पर पहले

1. अध्याय दस।

दशक (1966-76) के अंत तक और उच्चतर प्राथमिक स्तर पर दूसरे दशक (1976-87) के अंत तक सारी की सारी व्यर्थता बहुत ही न्यूनतम कर दी जानी चाहिए।

प्राथमिक स्तर पर नामांकन

7.36. **लक्ष्य**—सारणी 7.5 में पहली तीन आयोजनाओं में प्राथमिक स्तर के नामांकन और यदि सांविधानिक निदेश की पूर्ति करनी है तो अगले बीस सालों में प्रत्याशित नामांकन बताए गए हैं। (पृष्ठ 181-182 के चार्ट भी देखिए)।

सारणी 7.5. प्राथमिक शिक्षा में नामांकन

स्तर/वर्ष	नामांकन (हजारों में)			तत्संवादी आयुवर्ग की जनसंख्या के प्रतिशतक के रूप में नामांकन		
	लड़के	लड़कियां	योग	लड़के	लड़कियां	योग
कक्षा 1—4						
1950-51 . .	10,102	3,549	13,651	55.0	20.1	37.8
	(4.1)	(7.2)	(4.9)			
1955-56 . .	12,369	5,011	17,380	59.5	25.0	42.6
	(6.8)	(9.3)	(7.5)			
1960-61 . .	17,170	7,826	24,996	74.0	35.0	54.8
	(14.3)	(9.9)	(8.2)			
1965-66 . .	24,536	12,554	37,090	90.2	47.6	69.2
	(7.0)	(10.2)	(8.1)			
1970-71 . .	34,447	26,850	61,297	109.8	68.6	89.7
	(2.0)	(10.4)	(5.5)			
1975-76 . .	38,066	33,484	71,550	109.7	97.2	106.4
	(1.6)	(2.8)	(2.2)			
1980-81 . .	41,173	38,515	79,688	110.8	110.7	110.8
1985-86 . .	39,509	36,730	76,239	110.0	110.0	110.0
कक्षा 5—7						
1950-51 . .	2,669	559	3,228	20.8	4.6	13.0
	(6.5)	(10.8)	(7.6)			
1955-56 . .	3,659	933	4,592	25.6	6.9	16.5
	(8.8)	(15.0)	(10.2)			
1960-61 . .	5,587	1,876	7,463	35.5	12.5	24.3
	(9.9)	(13.8)	(11.0)			
1965-66 . .	8,962	3,587	12,549	49.9	20.7	35.6
	(10.0)	(13.6)	(11.1)			
1970-71 . .	14,433	6,785	21,218	67.7	33.0	50.7
	(6.5)	(13.2)	(8.8)			
1975-76 . .	19,774	12,620	32,394	81.9	55.7	69.2
	(3.8)	(7.9)	(5.5)			
1980-81 . .	23,867	18,456	42,323	90.0	74.0	82.3
	(1.1)	(5.0)	(2.9)			
1985-86 . .	25,214	23,500	48,714	90.0	90.0	90.0

ध्यान दें : ब्योरों के लिए पूरक जिल्द एक भाग पांच देखिए।
कोष्ठकों की संख्या वार्षिक विकास की दर बताती है।

अवर प्राथमिक स्तर पर नामांकन

(कक्षा I-IV)

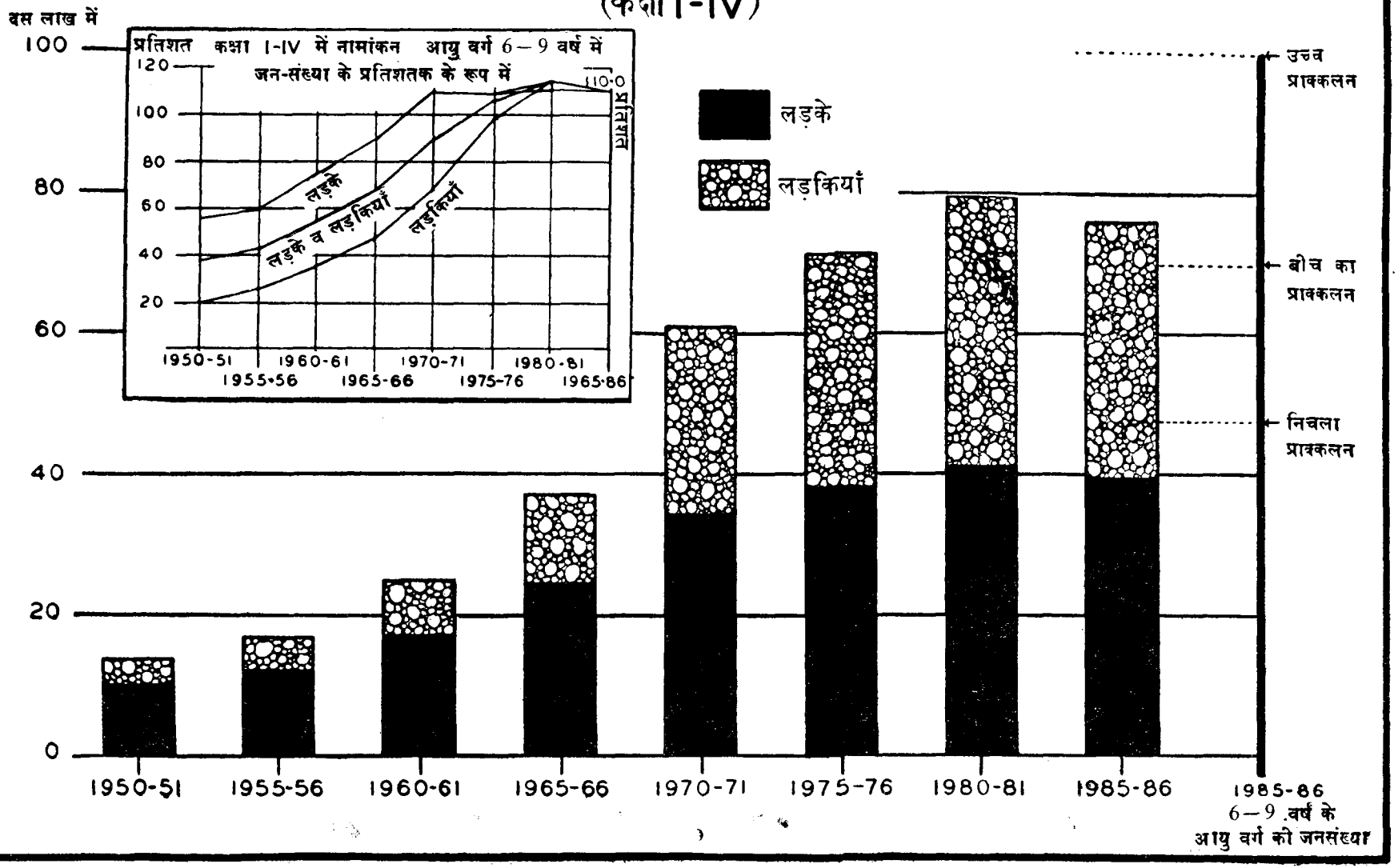

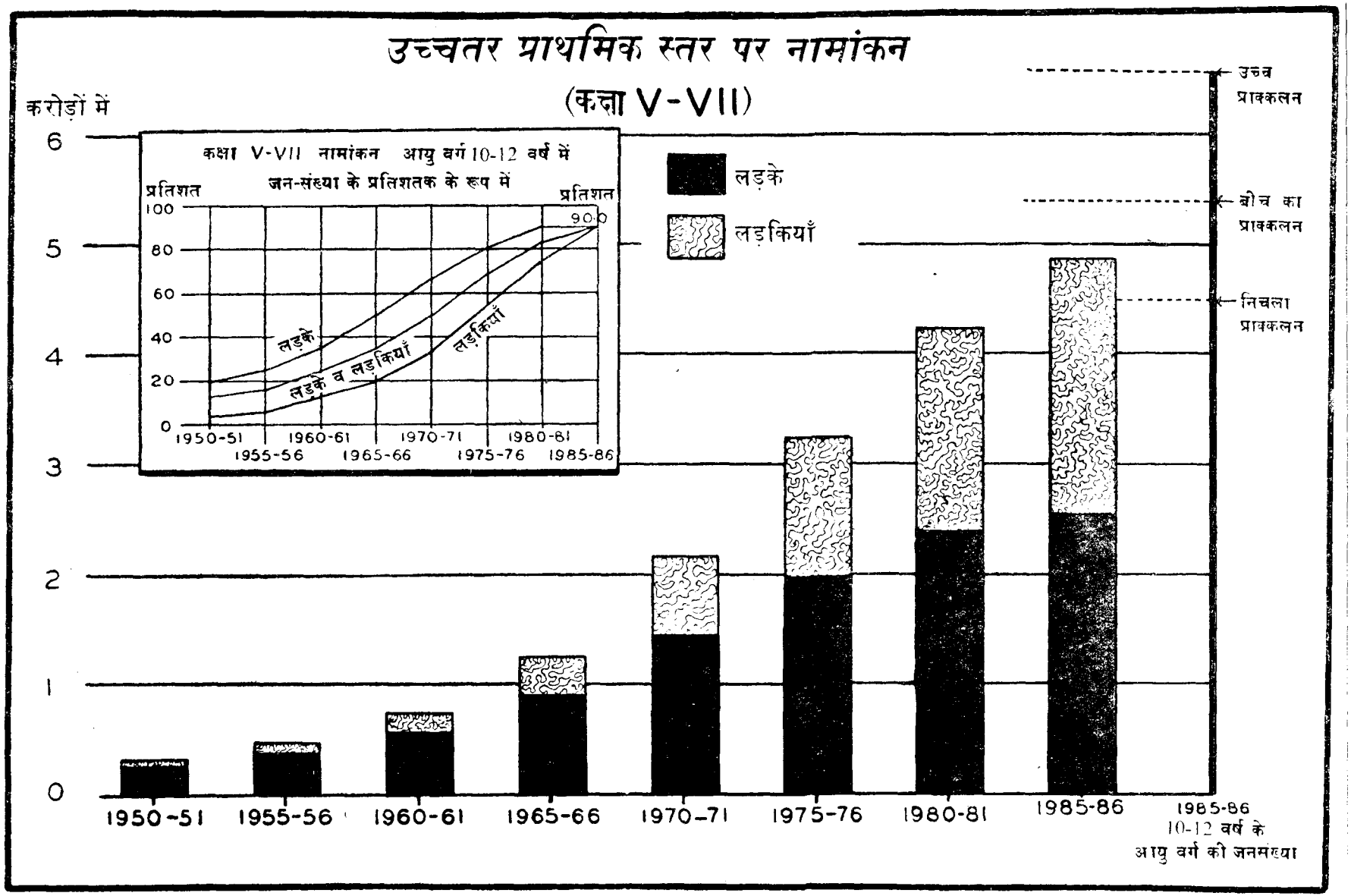
उच्चतर प्राथमिक स्तर पर नामांकन
(कक्षा V-VII)
करोड़ों में
6
5
4
3
2
1
0
कक्षा V-VII नामांकन आयु वर्ग 10-12 वर्ष में
जन-संख्या के प्रतिशतक के रूप में
प्रतिशत
100
80
60
40
20
0
प्रतिशत
90.0
लड़के
लड़के व लड़कियाँ
लड़कियाँ
1950-51
1955-56
1960-61
1965-66
1970-71
1975-76
1980-81
1985-86
लड़के
लड़कियाँ
उच्च प्राक्कलन
बीच का प्राक्कलन
निचला प्राक्कलन
1950-51
1955-56
1960-61
1965-66
1970-71
1975-76
1980-81
1985-86
1985-86
10-12 वर्ष के
आयु वर्ग की जनसंख्या

इस सारणी से यह पता चलता है कि पहली तीन योजनाओं के अवर माध्यमिक स्तर पर विस्तार तेजी से हुआ है। कुल नामांकन 1950-51 के 1.40 करोड़ से बढ़कर 1965-66 में 3.70 करोड़ हो गया, जो 15 सालों में करीब तीन गुनी वृद्धि है। इसका निहितार्थ है कि पहली योजना में औसत वार्षिक वृद्धि दर 4.9 प्रतिशत रही, दूसरी में 7.5 प्रतिशत और तीसरी में 8.2 प्रतिशत। हमें उम्मीद है कि चौथी योजना में भी रफ्तार में यही तेजी रहेगी। अगले दस सालों में जैसे-जैसे हम चरम बिन्दु तक पहुंचते जाएंगे, विस्तार की रफ्तार काफी धीमी होती जाएगी और यह पांचवीं योजना में 5.5 प्रतिशत और छठी में 2.2 प्रतिशत रह जाएगी। कुल नामांकन 1965-66 के 3.70 करोड़ से बढ़कर 1970-71 में 5.40 करोड़ 1975-76 में 7.20 करोड़ और 1980-81 में 8 करोड़ हो जाएंगे। अगली योजना में वस्तुतः नामांकन घटकर 7.60 करोड़ रह जाएंगे—जन्म दर में प्रत्याशित कमी के कारण—और यह भी कुछ सालों तक चलती रहेगी। दूसरे शब्दों में हम 1981 तक चरम शिखर को पार कर चुकेंगे। इसके बाद फिर प्रगति करना ज्यादा आसान हो जाएगा, और जैसे-जैसे विस्तार का दबाव कम हो जाएगा, वैसे-वैसे गुणात्मक सुधार की ओर ज्यादा ध्यान देना सम्भव हो जाएगा।

7.37. उच्चतर माध्यमिक स्तर पर, वस्तु स्थिति कुछ भिन्न है। यहां पर अवर माध्यमिक स्तर की तुलना में पहली तीन आयोजनाओं के दौरान विस्तार कहीं ज्यादा तेजी से हुआ है और कुल नामांकन 1950-51 के 30 लाख से बढ़कर 1965-66 में 1.30 करोड़ हो गए है—जो 15 सालों में करीब चौगुनी वृद्धि हुई है यहां पर विस्तार की तेजी प्रत्येक योजना में बढ़ती गई है, विकास की वार्षिक औसत दर पहली योजना में 7.6 प्रतिशत रही, दूसरी में 10.2 प्रतिशत और तीसरी में 11.0 प्रतिशत। अगले बीस सालों में कुल विस्तार लगभग साढ़े तीन गुना हो जाएगा और नामांकन 1965-66 के 1.30 करोड़ से बढ़कर 1975-76 में 3.20 करोड़ और 1985-86 में 4.90 करोड़ हो जाएंगे। 1976 तक विस्तार कुछ-कुछ आसान हो जाएगा, पर उसके बाद जैसे-जैसे इस चरम बिन्दु के पास आते जाएंगे, कठिनाइयां काफी बढ़ती जाएंगी। सौभाग्य से अवर प्राथमिक स्तर पर विस्तार कार्यक्रम तब तक सारतः समाप्त हो जाएगा, और तब यह ज्यादा सम्भव होगा कि साधनों को उच्चतर प्राथमिक स्तर पर काफी मात्रा में विकास के लिए संकेन्द्रित किया जाए।

7.38. **लड़कियों की शिक्षा**—विस्तार के दो कार्यक्रमों लड़कियों और आदिमजातियों की शिक्षा—की ओर विशेष ध्यान देना होगा। सारणी 7.5 से यह स्पष्ट हो जाता है कि अवर प्राथमिक स्तर पर लड़कों सम्बन्धी समस्या अब अपने हल के काफी निकट पहुंच चुकी है, क्योंकि उसका नामांकन तत्संबंधी आयु-वर्ग की जनसंख्या का लगभग 90 प्रतिशत है। पर लड़कियों का नामांकन बहुत कम है—हर नामांकित 100 लड़कों के आगे केवल 50 लड़कियां ही नामांकित होती हैं। उच्चतर प्राथमिक स्तर पर लड़कों और लड़कियों की शिक्षा का अन्तर और भी ज्यादा बढ़ जाता है—हालांकि दोनों को ही अभी काफी मंजिल तय करनी है और हर 100 नामांकित लड़कों के आगे नामांकित लड़कियों की संख्या कुल 40 ही है। वस्तुतः यह भी कहा जा सकता है कि संविधान के निदेशों की पूर्ति की समस्या अनिवार्यतः लड़कियों की शिक्षा की समस्या है। इस समस्या की ध्यान से जांच महिला शिक्षा सम्बन्धी राष्ट्रीय समिति (1958-59) ने की थी, और हम उसकी सिफ़ारिशों से पूरी तरह सहमत हैं। खास तौर पर हम इसके नीचे लिखे प्रस्तावों पर ज्यादा जोर देना चाहेंगे :

— लड़कियों की शिक्षा के बारे में परम्परागत पूर्वाग्रहों को दूर करने के लिए जनमत को शिक्षित किया जाए;

— महिला अध्यापकों की नियुक्ति की जाए;

— मिलेजुले प्राथमिक स्कूलों को लोकप्रिय बनाना और जहां भी सम्भव हो या मांग की जाए उच्चतर प्राथमिक स्तर पर लड़कियों के लिए अलग स्कूल खोलना;

— निःशुल्क पुस्तकों और लिखने की सामग्री को और जहां जरूरी हो, कपड़ों की भी व्यवस्था करना, और

— आयु वर्ग 11-13 की लड़कियों के लिए अंश-कालिक शिक्षा की व्यवस्था करना, क्योंकि इनको घर पर काम करना पड़ता है और वे पूरे समय के आधार पर स्कूलों में उपस्थित नहीं हो सकती है।

7.39. **आदिम जातियों की शिक्षा**—आदिम जातियों में शिक्षा के प्रसार की समस्या की ओर भी विशेष ध्यान देने की जरूरत है। यहां पर मुख्य दिक्कत इस प्रयोजन के अध्यापकों के मिलने की है। प्रत्यक्ष उपाय यही है कि उन लोगों के लिए अच्छे वेतनमानों और पर्याप्त आवास सुविधाओं की व्यवस्था की जाए, जो

आदिमजातियों में पढ़ाने का काम लेने को तैयार हैं। यध्यापकों को आदिमजातियों की भाषा और संस्कृति का ज्ञान होना चाहिए और उनके शिक्षण कार्यक्रम में इनके अध्ययन को भी शामिल करना चाहिए। स्कूल के कार्यक्रम को आदिमजातियों के जीवन के अनुकूल पुनः आकलिपत करना होगा। कम बसें इलाकों में जहां दिन भर के स्कूल स्थापित करना सम्भव नहीं है, बड़ी संख्या में आश्रम स्कूल स्थापित किए जाने चाहिए।

7.40. **अल्पविकसित इलाकों को खास मदद**—जैसा कि पहले बताया जा चुका है, प्राथमिक शिक्षा के विकास में इलाके-इलाके में काफी अंतर है। इसलिए पूर्ण न हुए काम का आधार विभिन्न इलाकों के बीच बड़े ही विषम रूप से बंटा हुआ है। देश के विभिन्न भागों की सामर्थ्य भी सर्वजनीन, प्राथमिक शिक्षा के कार्यक्रम को सहारा देने के लिए एक जैसी नहीं है, और इससे भी बुरी बात यह है कि ज्यादातर गरीब इलाकों पर ही अपूर्ण कार्य का सबसे ज्यादा बोझ पड़ा हुआ है। ऐसी परिस्थिति में शैक्षिक अवसरों को समान करने का महत्व और भी ज्यादा बढ़ जाता है।

7.41. विभिन्न स्तरों पर प्राथमिक शिक्षा के अवसरों को समान करने की एक प्रक्रिया चालू करनी होगी। जहां परिवार बच्चों की प्राथमिक शिक्षा के लिए जिम्मेदार होते है, वहां अमीरों और गरीबों के बच्चों के बीच असमानताएं पैदा हो जाती है। इनको स्थानीय सरकारों के स्तर पर समान किया जा सकता है, जो परिवार स्तर की असमानताओं को कम करने के लिए प्रयास कर सकती हैं। इसलिए यह जिला स्कूल बोर्डों[1] का एक उत्तरदायित्व होगा कि वे अपने-अपने इलाकों के विभिन्न शहरों और गांवों में और हर शहर या गांव के परिवारों के बीच प्राथमिक शिक्षा के अवसरों को समान बनाने की कोशिश करें। पर जिलों की आर्थिक क्षमताएं और उनके पास पूर्ण न हुए काम का बोझ भी एक जैसा नहीं है। इसलिए यह राज्य सरकार का दायित्व है कि जिलों के बीच समानता के सिद्धान्त के आधार पर सहायक अनुदान देकर असमानताएं दूर करे फिर अंततः राज्य सरकार पर भी प्राथमिक शिक्षा में अब तक हुए विकास में, पूर्ण न हुए काम की विशालता में और सर्वजनीन शिक्षा के कार्य को सहारा देने में राज्य की आर्थिक सामर्थ्य को लेकर भी वैसी ही असमानताएं विद्यमान है। इसलिए यह भारत सरकार का दायित्व है कि राज्य स्तर पर प्राथमिक शिक्षा के अवसरों को समान बनाने के लिए प्रयास करें। यह केन्द्र आयोजित खण्ड में तुलना में ज्यादा निर्धन और कम विकसित राज्यों को संविधान के निदेश की समय से पूर्ति के लिए विशेष सहायक अनुदानों की व्यवस्था करके किया जा सकता है।

7.42. **पाठ्यचर्या को समृद्ध बनाना और गुणात्मक सुधार**—प्राथमिक स्तर सुविधाओं में विस्तार और बच्चों को सर्वजनीन नामांकन तथा अनिवार्यता की अवधि तक उनको स्कूलों में रोके रखना संविधान के निदेश की पूर्ति का ही पहलू है। इनके समान महत्व का ही पहलू गुणात्मक सुधार करना है, जिससे दिया गया शिक्षण सत्-शिक्षा बन जाए और बच्चों को उपयोगी और जिम्मेवार नागरिक बनने में मदद मिले। इस दृष्टिकोण से सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण कार्यक्रम प्राथमिक अध्यापकों में गुणात्मक सुधार करता है। जिसकी अन्यत्र चर्चा की गई है।[2] दूसरा इतना ही महत्वपूर्ण कार्यक्रम प्राथमिक शिक्षा के अभिन्न अंग के रूप में कार्यगत अनुभव का सूत्रपात करना है। इसके अलावा विज्ञान और गणित की शिक्षा को सप्राण बनाना होगा। पूरी पाठ्यचर्या में आमूल परिवर्तन करके सुधार करना होगा और पढ़ाने और मूल्यांकन के आधुनिक तरीके अपनाने होंगे। अगले दो अध्यायो में कार्यक्रमों की चर्चा की जा रही है।

माध्यमिक शिक्षा का विस्तार
(कक्षा 8—12)

7.43. **सामान्य सिद्धान्त**—अब हम माध्यमिक स्तर पर माध्यमिक स्कूलों की स्थापना और उनके नामांकनों के आयोजन की चर्चा करेंगे। इन दोनों ही मामलों में अपनाई जाने वाली नीतियां प्राथमिक शिक्षा की नीतियो से भिन्न होंगी।

(1) **माध्यमिक स्कूलों की स्थापना**—शिक्षा नीति का यह एक प्रमुख उद्देश्य हैं कि प्राथमिक स्कूलों को बच्चों के घर के यथासम्भव निकट तक ले जाया जाए, भले ही इसका अर्थ छोटी-छोटी और ज्यादा खर्चीली संस्थाओं की स्थापना करना क्यों न हो। दूसरी ओर माध्यमिक स्तर पर दूरी कम अभिभावी महत्व का प्रश्न है और आग्रह अधिकतम आकार की संस्थाओं की स्थापना पर होना चाहिए जो ज्यादा बचत पूर्ण और कार्यकुशल होंगी। इस पर अगले अनुभाग में ज्यादा विस्तार से विचार विमर्श किया जा रहा है।

1. इस प्रस्ताव के ब्योरे की चर्चा अध्याय दस और अठारह में की गई है।
2. देखिए अध्याय तीन और चार।

(2) **माध्यमिक स्कूलों में नामांकन**—इसी तरह आगामी कई सालों तक राज्यों के लिए वित्तीय रूप से माध्यमिक शिक्षा को सर्वजनीन बनाना सम्भव न हो सकेगा ताकि वे अनिवार्यता के स्तर के आगे भी अपनी शिक्षा चालू रखें। इसलिए माध्यमिक शिक्षा में नामांकन की नीति के उद्देश्य की व्याख्या एक भिन्न आधार पर करनी होगी। इस सिलसिले में हम दूसरी जगह की गई[1] अपनी इन सिफारिशों की ओर ध्यान आकर्षित करते हैं :

— माध्यमिक शिक्षा में कुल नामांकन मोटे तौर पर प्रशिक्षित जनशक्ति जरूरतों के अनुसार निर्धारित किए जाने चाहिए;

— यह अत्यावश्यक है कि माध्यमिक शिक्षा को व्यवसायोन्मुख बनाया जाए और इस लक्ष्य की दिशा में काम किया जाए जहां अवर माध्यमिक स्तर पर 20 प्रतिशत नामांकन और उच्चतर माध्यमिक स्तर पर लगभग 50 प्रतिशत नामांकन व्यावसायिक शिक्षा के लिए होंगे ।

— साध्यमिक शिक्षा में अवसरों को समान बनाने पर जोर देना होगा और इस दृष्टि से इस स्तर पर छात्रवृत्तियों का एक विशाल कार्यक्रम तिकसित करना होगा, इस समय देश के विभिन्न भागों में माध्यमिक शिक्षा में विस्तार की दृष्टि से जो भारी असन्तुलन है उनको कम करने के लिए और लड़कियों, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिमजातियों में शिक्षा का प्रसार करने के लिए भी प्रयास करने की जरूरत है;

— जिन बच्चों का माध्यमिक स्तर पर आगे पढ़ने में मदद देने के लिए चुनाव करना है, उनकी योग्यता का अर्थ परम्परागत संकीर्ण रूप में उनकी बौद्धिक क्षमता से ही नहीं लगाया जाना चाहिए, पर इस धारणा को व्यापक बनाकर सब तरह की योग्यताएं उसमें शामिल की जानी चाहिए; और

— प्रतिभा की खोज और विकास के लिए सच्चाई के साथ प्रयास किया जाना चाहिए ।

7.44. **माध्यमिक शिक्षा में नामांकन**—इन मोटे-मोटे सिद्धांतों के प्रकाश में अब हम अवर माध्यमिक और उच्चतर माध्यमिक स्तरों के नामांकनों पर विचार करेंगे। इनको आगे दी गई सारिणी 7.6 में उद्धत किया गया है। इससे यह पता चलेगा कि अवर माध्यमिक स्तर पर कुल नामांकन लगभग चौगुने हो गए हैं और वे बढ़कर 1950-51 के 15 लाख के आगे 1965-66 में 61 लाख हो गए हैं। इसका अर्थ है कि औसत रूप से हर साल लगभग 10 प्रतिशत की वृद्धि हुई है और लगभग 7 साल में वे दूने हो गए हैं। अगले बीस सालों में नामांकन फिर चौगुने हो जाएंगे। और 61 लाख से बढ़कर 244 लाख हो जाएंगे। पर इसका अर्थ औसत रूप से हर साल केवल 7 प्रतिशत की ही वृद्धि होगी अर्थात् वे दस साल के समय में दूने हो पाएंगे। अगले दो दशकों में निरपेक्ष संख्या में नामांकन की वृद्धि बहुत ज्यादा है—पहली तीन आयोजनाओं से लगभग चार गुनी—पर वार्षिक विकास दर कम होकर 10 से 7 प्रतिशत रह गई है (पृष्ठ 187का चार्ट भी देखिए।)

उच्चतर माध्यमिक स्तर पर भी ऐसी ही स्थिति है। नामांकन 1950-51 के लगभग 2,82,000 से बढ़कर 1965-66 में 14 लाख हो गए हैं, जो पांचगुनी वृद्धि है। इसका मतलब है कि औसत रूप से हर साल लगभग 11.3 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। और लगभग छः साल के समय में वे दूने हो गए हैं। अगले बीस सालों में नामांकन फिर पांच गुने बढ़ जाएंगे और 14 लाख से बढ़कर 69 लाख हो जाएंगे। इस तरह निरपेक्ष संख्यामें वृद्धि पहली तीन आयोजनाओं की सम्पन्न वृद्धि से पांच गुनी होगी। पर औसत रूप से हर साल की विकास दर कम होकर 11.3 प्रतिशत से 8.3 प्रतिशत रह जाएगी और अब दूने हो जाने का समय नौ साल होगा।

यह भी देखना होगा कि उच्चतर माध्यमिक स्तर पर 1965 और 1975 के बीच वृद्धि तुलना में कम है। पर अगले दशकों में इसमें ज्यादा तेजी आ जाती है, क्योंकि इस स्तर पर [2] एक साल बढ़ा दिया गया है। (पृष्ठ 188 का चार्ट भी देखिए।)

7.45. अगले दो दशकों में माध्यमिक शिक्षा में नामांकनों की आयोजना बनाते समय दो बातों पर ध्यान रखना होगा :—

— विस्तार का दबाव कम होने की जगह बढ़ ही जाएगा, क्योंकि इस तरह के कारण पैदा हो जाएंगे, जैसे अब तक जिन देहाती इलाकों में स्कूल न था, वहां स्कूल स्थापित होना, जनता की सामान्य आर्थिक स्थिति में सुधार और समाज के सभी वर्गों में उत्तर प्रारम्भिक शिक्षा

1. **अध्याय पांच ।**
2. **ब्योरों के लिए अध्याय दो देखिए ।**

के लिए आकांक्षा का प्रसार; और

— आज की विस्तार की दर से भी स्तर इस कारण गिर गए हैं कि अध्यापक और सामग्री जैसी सुविधाओं की तुलना में नामांकन कहीं ज्यादा हुए हैं। साथ ही मैट्रिक पास लोगों में बेरोजगारी भी ज्यादा बढ़ी है। अगर यही प्रवृत्तियां चलती रहीं या बढ़ने दी गई तो स्तरों में यह गिरावट और भी बढ़ जाएगी और शिक्षित बेरोजगारी की समस्या बहुत ही गम्भीर हो जाएगी।

7.46. इसलिए यह जरूरी है कि नामांकनों को ऊपर प्रस्तावित रूप में विकसित किया जाए। इसका अर्थ है कि यह नीति अपनाई जाए: (1) माध्यमिक स्कूल सुयोजित रीति से ही स्थल चुनकर खोले जाए; (2) पर्याप्त स्तर बनाए रखे जाएं और हर माध्यमिक स्कूल के नामांकनों और दाखिलों का निर्धारण उपलब्ध स्थानों के आधार पर किया जाए तथा (3) उन स्थानों के लिए आवेदकों में से सर्वश्रेष्ठ को ही चुना जाए। इन नई नीतियों को अमल में लाने के लिए हम नीचे लिखी सिफ़ारिश करते हैं:

सारणी 7.6 माध्यमिक शिक्षा में नामांकन

स्तर/वर्ष	नामांकन 000ों में			नामांकन तत्संवादी आयुवर्ग की जनसंख्या के प्रतिशतक के रूप में		
	लड़के	लड़कियां	योग	लड़के	लड़कियां	योग
कक्षा 8—10						
1950-51 . .	1,304	204	1,508	10.9	1.8	6.5
	(8.5)	(14.8)	(9.5)			
1955-56 . .	1,965	406	2,371	14.9	3.3	9.3
	(8.4)	(12.8)	(9.2)			
1960-61 . .	2,941	741	3,682	20.4	5.4	13.1
	(9.9)	(13.9)	(10.7)			
1965-66 . .	4,707	1,420	6,127	28.7	9.1	19.1
	(6.9)	(9.7)	(7.5)			
1970-71 . .	6,559	2,259	8,818	34.2	12.2	23.4
	(6.8)	(9.7)	(7.5)			
1975-76 . .	9,104	3,581	12,685	40.8	16.9	29.1
	(6.2)	(8.2)	(6.8)			
1980-81 . .	12,256	5,285	17,541	49.1	22.6	36.3
	(6.1)	(8.1)	(6.7)			
1985-86 . .	16,526	7,842	24,368	60.4	30.6	46.0
कक्षा 11—12						
1950-51 . .	245	37	282	3.3	0.5	1.9
	(12.0)	(13.9)	(12.2)			
1955-56 . .	431	71	502	5.2	0.9	3.1
	(10.7)	(13.2)	(11.1)			
1960-61 . .	717	132	849	8.0	1.6	4.9
	(10.3)	(11.4)	(10.5)			
1965-66 . .	1,172	226	1,398	11.5	2.3	7.0
	(7.7)	(11.6)	(8.3)			
1970-71 . .	1,696	391	2,087	14.6	3.5	9.2
	(6.7)	(10.3)	(7.5)			
1975-76 . .	2,351	638	2,989	17.0	4.8	11.0
	(7.8)	(11.3)	(8.6)			
1980-81 . .	3,423	1,089	4,512	21.7	7.4	14.8
	(7.9)	(11.4)	(8.8)			
1985-86 . .	5,004	1,869	6,873	28.8	11.4	20.4

स्रोत: शिक्षा मंत्रालय फार्म क 1950-51 से 1960-61 तक के लिए। 1965-66 की दत्त सामग्री का प्राक्कलन आयोग के सचिवालय में किया गया था।

ध्यान दें: कोष्ठकों की संख्याएं संबंधित पांच साल में विकास की औसत वार्षिक दर बताती है।

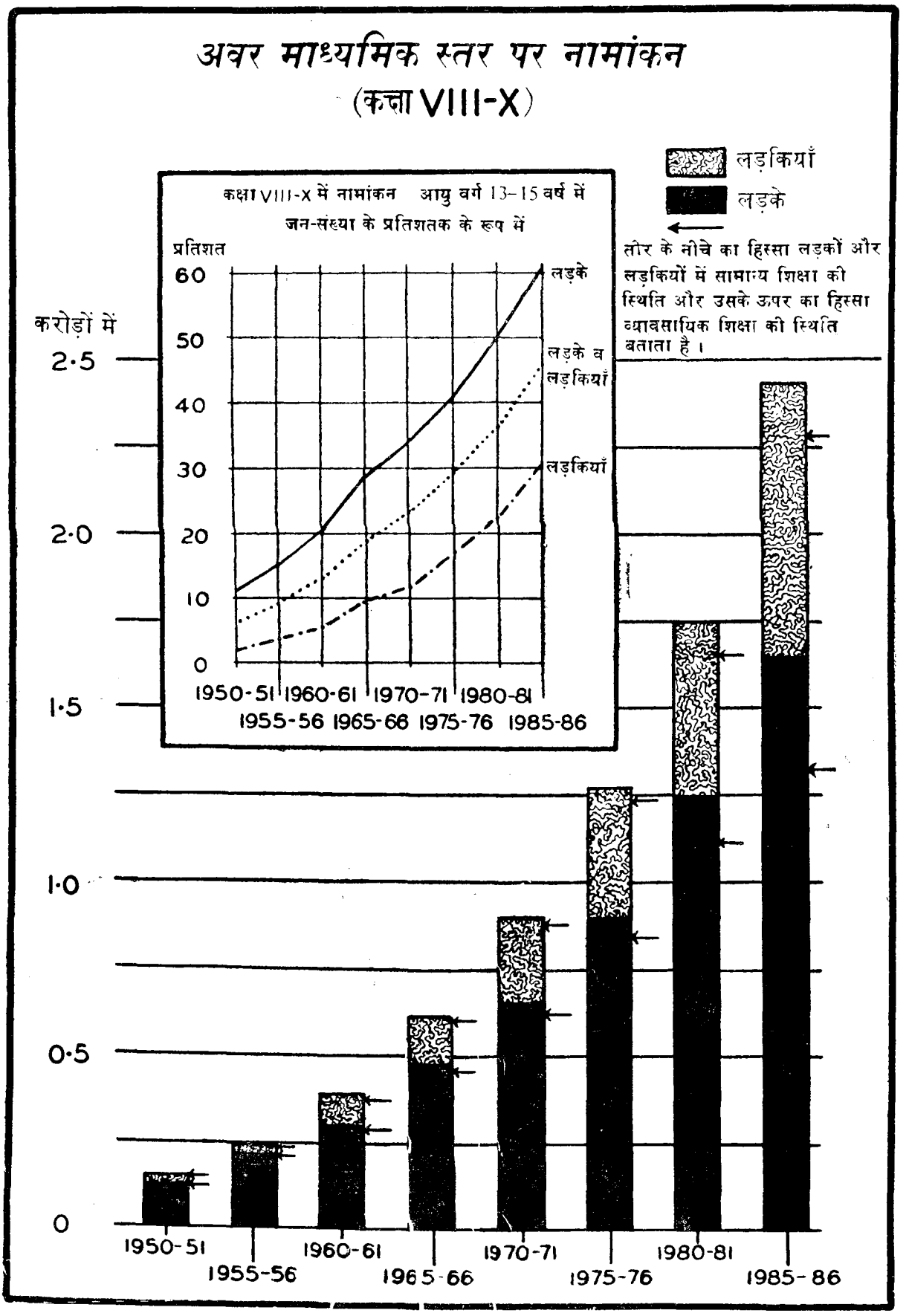
अवर माध्यमिक स्तर पर नामांकन
(कक्षा VIII-X)
लड़कियाँ
लड़के
तीर के नीचे का हिस्सा लड़कों और लड़कियों में सामान्य शिक्षा की स्थिति और उसके ऊपर का हिस्सा व्यावसायिक शिक्षा की स्थिति बताता है।
कक्षा VIII-X में नामांकन आयु वर्ग 13-15 वर्ष में जन-संख्या के प्रतिशतक के रूप में
प्रतिशत
60
50
40
30
20
10
0
लड़के
लड़के व लड़कियाँ
लड़कियाँ
1950-51 1960-61 1970-71 1980-81
1955-56 1965-66 1975-76 1985-86
करोड़ों में
2·5
2·0
1·5
1·0
0·5
0
1950-51
1955-56
1960-61
1965-66
1970-71
1975-76
1980-81
1985-86

उच्चतर माध्यमिक स्तर पर नामांकन
(कक्षा XI-XII)

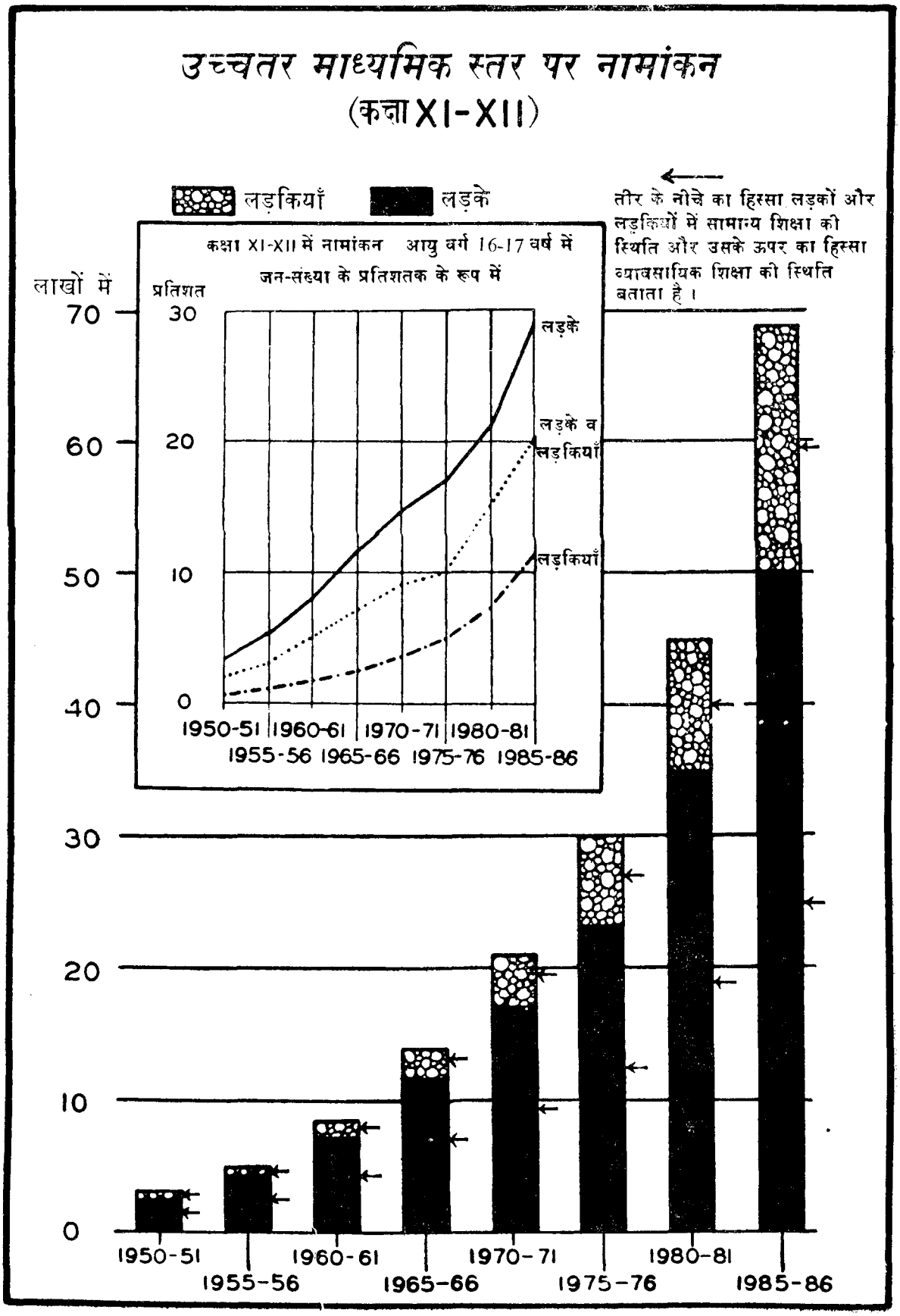

(1) विस्तार की विद्यमान और परिप्रेक्ष्य जरूरतों का ध्यान रखते हुए हर जिले के लिए अलग-अलग माध्यमिक शिक्षा के विकास की योजना बनाई जानी चाहिए। योजना में बताया जाना चाहिए कि क्या उपाय करने हैं, उनके खर्चे का मोटा अन्दाज़ देना चाहिए जितने से हर माध्यमिक स्कूल को कार्य-कुशलता के अधिकतम स्तर तक उन्नत किया जा सकेगा, किन जगहों पर नए स्कूलों की जरूरत है और किस रीति से विद्यमान स्कूलों की स्थिति के स्थान को उन इलाकों में समेकन की एक प्रक्रिया द्वारा युक्तिसंगत बनाया जा सकता है। जहां स्कूल पहले ही बहुत ज्यादा संख्या में हैं और परस्पर समावेश, दुहरा होना या अस्वस्थ शैक्षिक स्पर्धा की समस्याएं खड़ी कर रहे हैं। ऐसी योजना को तैयार और पूरा करने का काम तुरन्त ही करना चाहिए और जितनी जल्दी व्यावहारिक हो इस पर अमल शुरू हो जाना चाहिए और करीब दस साल के समय में पूरा हो जाना चाहिए। हर स्कूल को बताई गई दिशा में निश्चित समय में अपना विकास करने की पूर्व सूचना दी जानी चाहिए; और उसको जरूरी वित्तीय मदद सहायक अनुदान सम्बन्धी नियमों में जरूरत होने पर उपयुक्त संशोधन करते हुए उपलब्ध कर देनी चाहिए। उम्मीद है कि बहुत से स्कूल समय के अनुसार चलते हुए अपना सुधार कर लेंगे। जब तक वे ऐसा न कर लें, उनकी मान्यता अस्थायी तौर पर ही आगे बढ़ानी चाहिए और आगे फिर मान्यता का नवीकरण करने से पहले की गई प्रगति का मूल्यांकन करने के लिए ब्योरेवार निरीक्षण किया जाना चाहिए। अगर कोई स्कूल इन सब प्रयासों के बावजूद स्तर तक नहीं पहुंच पाता तो उसकी मान्यता वापस लेने में कोई भी हिचकिचाहट न होनी चाहिए।

(2) सभी माध्यमिक स्कूलों में पर्याप्त कर्मचारी होने चाहिए और साज-सामान होना चाहिए, जिससे वह अच्छी शिक्षा दे सकें। इस प्रयोजन से यह आश्वासन प्राप्त करना जरूरी है कि सभी नई संस्थाओं में अनिवार्यतः आवश्यक स्तर कायम रहें और आजकल अक्सर दिखाई पड़ने वाली इस प्रवृत्ति को रोका जाए कि माध्यमिक स्कूल जरूरी अध्यापकों या सुविधाओं के बिना ही स्थापित कर दिए जाते हैं। यह देखने के लिए भी कार्रवाई करनी चाहिए कि विद्यमान संस्थाओं को कम से कम विहित न्यूनतम स्तर तक क्रमशः उन्नत बना दिया जाए और कक्षा में ज्यादा भीड़भाड़ की अनुमति न दी जाए। अगर ये उपाय किए गए तो अवर प्राथमिक स्कूलों में उपलब्ध जगहों और उनमें दी जाने वाली शिक्षा के गुण का निर्धारण सम्भव हो सकेगा।

(3) हर माध्यमिक स्कूल को आवेदकों में से प्रवेश के लिए सर्वोत्तम छात्र चुनने चाहिए। जैसा पहले बताया जा चुका है,[1] अवर माध्यमिक स्तर पर चुनाव 'स्व-चयन' की तरह का होगा। फिर भी उच्चतर माध्यमिक स्तर पर चुनाव ज्यादा कठोर रखना होगा। ऐसे चुनाव के लिए मुख्य आधार सामान्यतः कक्षा 10 के अन्त में होने वाली सार्वजनिक परीक्षा में प्राप्त अंक होंगे। पर इस आधार की विश्वसनीयता का उल्लंघन खासकर किनारे के मामलों में स्कूल के अभिलेख, परीक्षा में न जांची गई खेल के मैदान में छात्रों की दक्षता और ऐसे ही दूसरे कारणों के ऊपर ध्यान देते हुए किया जा सकता है। कुछ विशेष क्षेत्रों में, जैसे, गणित या भाषाओं में विशेष प्रतिभा वाले छात्रों के मामलों को भी अपवाद माना जा सकता है, जो सब मिलाकर अच्छे अंक प्राप्त न कर पाए हों। कुल मिलाकर इस स्थल पर चुनाव के लिए अपनाए जाने वाले तरीके वैसे ही होंगे, जिनको विश्वविद्यालय स्तर पर अपनाया जाएगा।[2]

पृष्ठ-190 के चार्ट में स्कूल शिक्षा के चार प्रमुख स्तरों का 1950-51 से 1985-86 तक का चित्र प्रस्तुत किया गया है।

7.47. **व्यावसायिक शिक्षा**—अब हम माध्यमिक शिक्षा के विस्तार के कुछ महत्वपूर्ण अंगों पर विचार विमर्श करेंगे। इसमें सबसें ज्यादा महत्वपूर्ण शिक्षा का व्यवसायोन्मुख करना है, जिस पर हमने इस रिपोर्ट मे बार-बार जोर दिया है। जैसा हम नामांकनों को देख सकते हैं, माध्यमिक स्तर पर व्यावसायिक शिक्षा में वे उस रूप में होंगे, जैसे कि सारणी 7.7 में दिखाए गए हैं।

1. अध्याय पांच।
2. ब्योरों के लिए अध्याय बारह देखिए।

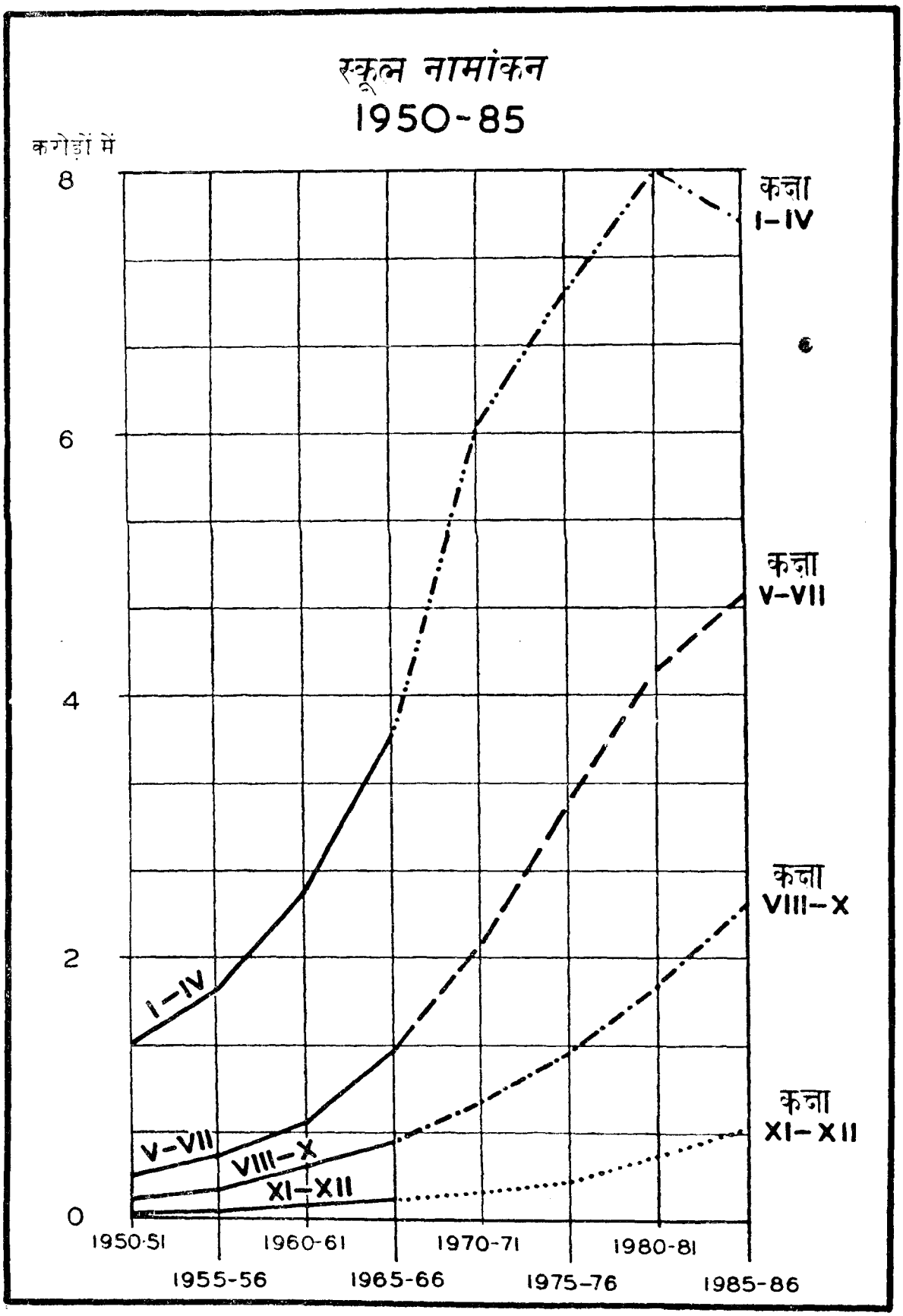
स्कूल नामांकन
1950-85
करोड़ों में
8
6
4
2
0
कक्षा I-IV
कक्षा V-VII
कक्षा VIII-X
कक्षा XI-XII
I-IV
V-VII
VIII-X
XI-XII
1950-51
1955-56
1960-61
1965-66
1970-71
1975-76
1980-81
1985-86

सारणी 7.7. माध्यमिक स्तर पर व्यावसायिक शिक्षा (सारणी 6.7 वाली को शामिल करके)

स्तर/वर्ष	व्यावसायिक शिक्षा में नामांकन (000ों में)			कुल नामांकन का व्यावसायिक शिक्षा के नामांकन में प्रतिशतक		
	लड़के	लड़कियां	योग	लड़के	लड़कियां	योग
कक्षा 8—10						
1950-51	29 (6.1)	18 (12.2)	46 (9.1)	2.2	8.8	3.1
1955-56	39 (10.8)	32 (1.8)	71 (7.1)	2.0	7.9	3.0
1960-61	65 (6.7)	35 (6.1)	100 (6.5)	2.2	4.7	2.7
1965-66	90 (19.7)	47 (19.2)	137 (19.6)	1.9	3.3	2.2
1970-71	222 (19.7)	113 (19.2)	335 (19.6)	3.4	5.0	3.8
1975-76	546 (19.7)	272 (19.2)	818 (19.6)	6.0	7.6	6.4
1980-81	1,344 (19.7)	655 (19.2)	1,999 (19.6)	11.0	12.4	11.4
1985-86	3,305	1,568	4,873	20.0	20.0	20.0
कक्षा 11—12						
1950-51	105 (11.3)	20 (11.8)	125 (11.4)	42.7	53.6	44.2
1955-56	179 (10.8)	35 (11.0)	214 (10.8)	41.6	49.6	42.7
1960-61	299 (9.8)	59 (8.1)	358 (9.5)	41.7	44.9	42.2
1965-66	477 (8.6)	87 (12.6)	564 (9.3)	40.7	38.5	40.3
1970-71	721 (8.6)	157 (12.6)	878 (9.4)	42.5	40.2	42.1
1975-76	1,089 (8.6)	284 (12.6)	1,373 (9.5)	46.3	44.5	45.9
1980-81	1,645 (8.7)	514 (12.7)	2,159 (9.7)	48.1	47.2	47.9
1985-86	2,502	934	3,436	50.0	50.0	50.0

स्रोत : 1960-61 तक की दत्त सामग्री के लिए शिक्षा मंत्रालय प्रपत्र 'क'। 1965-66 की दत्त सामग्री का प्राक्कलन आयोग के सचिवालय में तैयार किया गया।

ध्यान दें : (1) कोष्ठकों की संख्याएं सम्बन्धित पांच साल में विकास की औसत वार्षिक दर बताती हैं।
(2) जोड़ इसलिए मेल नहीं खाते क्योंकि आंकड़ों को शून्यांत में बदल दिया गया है।

यह देखा जाएगा कि :

— अवर माध्यमिक स्तर पर, व्यावसायिक शिक्षा में नामांकन 1950-51 में लगभग 3 प्रतिशत था। 1965-66 में यह कम होकर 2.2 रह गया क्योंकि सामान्य शिक्षा में बहुत तेजी से वृद्धि हुई। यह अनुमान किया जाता है कि इस स्तर पर व्यावसायिक पाठ्यक्रम अंशकालिक या पूर्णकालिक रूप से शुरू करने के लिए 1980 तक इन पाठ्यक्रमों के नामांकन बढ़ाकर कुल नामांकन के लगभग 20 प्रतिशत करने का क्रमबद्ध प्रयास किया जाएगा। इस स्तर पर किए जाने वाले काम का वह बड़ा ही चुनौती देने वाला हिस्सा है;

— उच्चतर माध्यमिक स्तर पर व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में नामांकन अब कुल नामांकनों का लगभग 40 प्रतिशत है। यहां इस बात के लिए गुंजाइश छोड़नी होगी कि इस समय सामान्य शिक्षा के पाठ्यक्रम का समय केवल एक साल है। अगर इसे दो साल तक बढ़ा दिया जाए, तो व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में नामांकनों का यह अनुपात कम होकर लगभग 20 प्रतिशत रह जाएगा। हम जो एक महत्वपूर्ण सुधार करना चाहते हैं वह यह कि उच्चतर माध्यमिक शिक्षा को व्यवसायोन्मुख बनाया जाए और इस स्तर के व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में नामांकन को बढ़ाकर कुल नामांकन का 50 प्रतिशत कर दिया जाए।

7.48. यह उद्देश्य कैसे पूरा हो और किस-किस प्रकार के व्यावसायिक शिक्षा इस स्तर पर दी जा सकती है ?

(1) **अवर माध्यमिक स्तर**—नीचे लिखे पाठ्यक्रम उन छात्रों के लिए आयोजित किए जा सकते हैं जो कक्षा 7 या 8 के अन्त तक स्कूल छोड़ देते हैं :

(क) औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों में ऐसे पाठ्यक्रम हैं, जिनमें प्राथमिक स्कूल को पूरा कर लेने वाले छात्र जा सकते हैं। यदि इन पाठ्यक्रमों में प्रवेश की आयु बढ़ाकर 14 कर दी जाए,[1] जो छात्र प्राथमिक स्कूलों को पूरा कर चुके है, उनमें से बहुत से औद्योगिक प्रशिक्षण के इन पाठ्यक्रमों में प्रवेश ले सकेंगे।

(ख) उद्योगों में नौकरी के लिए छात्रों को तैयार करने वाले तकनीकी स्कूलों में शिक्षान्त कार्यक्रमों की जो व्यवस्था है, वे इस स्तर पर व्यावसायिक पाठ्यक्रमों की दूसरी श्रेणी बन जाते हैं। इस कार्यक्रम के ब्योरों पर अन्यत्र विचार-विमर्श किया गया है।

(ग) कक्षा 7 या कक्षा 8 के बाद जो बहुत से छात्र स्कूल छोड़ देते हैं, वे घर के कारबार में लग जाएंगे और कुछ छोटे पैमाने पर अपना ही उद्योग या व्यापार शुरू करने के विचार से स्कूल छोड़ देंगे। उनको योग्यता प्राप्त करने या अपनी प्रवीणता बढ़ाने के अंशकालिक आधार पर बहुत सारे पाठ्यक्रम उपलब्ध होने चाहिए। जिस तरह के पाठ्यक्रम रखे जा सकते हैं, उनके उदाहरण चौदहवें या पन्द्रहवें अध्यायों के अनुबन्धों में दिए गए हैं। हम सिफ़ारिश करते हैं कि शिक्षा विभागों में एक विशेष अनुभाग खोला जाना चाहिए, जो ऐसे युवा व्यक्तियों से सम्पर्क रखेंगे, उनको पूर्णकालिक या अंशकालिक आधार पर उपयुक्त प्रशिक्षण अवसर प्राप्त करने में मदद देंगे और साथ ही साथ उनको कुछ सामान्य शिक्षा देने की भी व्यवस्था करेंगे।

(घ) देहाती लड़कों का बहुत बड़ा अनुपात परिवार के खेत में काम करने चला जाएगा। उनके लिए आगे शिक्षा की व्यवस्था करनी होगी, जो उनको अपने पेशे की अपनी कार्यकुशलता और सामान्य शिक्षा में समर्थ बनाएगी।

(ङ) लड़कियों का बहुत बड़ा अनुपात तो तुरन्त ही या कुछ समय के बाद स्कूल छोड़ देगा और शादी कर लेगा। उनको गृह-विज्ञान और सामान्य शिक्षा में आगे शिक्षा दी जानी चाहिए।

(2) **उच्चतर माध्यमिक स्तर**—इस स्तर पर तरह तरह के व्यावसायिक पाठ्यक्रम उपलब्ध रहेंगे।

(क) अध्याय 14 और 15 में सिफ़ारिश की गई पोलीटैकनीकों में पूर्णकालिक अध्ययन की सुविधाओं के विस्तार के अलावा हम इस स्तर पर उद्योगों में एक दिन की छुट्टी, सैंडविच

1. यह 16 थी जो अब घटाकर 15 कर दी गई है। ब्योरों के लिए अध्याय पन्द्रह देखिए।
2. वही।

या पत्राचार के पाठ्यक्रम के आधार पर व्यवस्थित किए गए अंशकालिक व्यावसायिक पाठ्यक्रमों का विकास करने का भी हमारा विचार है।

(ख) कृषि और इंजीनियरी पोलीटैकनिकों को जो रोजगार में लग गए हैं उन लोगों की प्रवीणता को उन्नत करने के लिए या जो पहले से ही योग्यता प्राप्त कर चुके हैं उतकी योग्यता बनाए रखने या उनको पुनः शिक्षित करने के लिए छोटे छोटे संक्षिप्त रूप में बनाए गए पाठ्यक्रम चलाने चाहिए;

(ग) औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों में पढ़ाए जाने वाले बहुत से पाठ्यक्रमों में प्रवेश के लिए कक्षा 10 पूरा करने की योग्यता की अपेक्षा की जाती है। हमने इन सुविधाओं का तेजी से विस्तार करने की सिफ़ारिश की है।[1]

(घ) अब तक वर्णित किए गए पाठ्यक्रमों के अलावा स्वास्थ्य, वाणिज्य, प्रशासन, छोटे पैमाने के उद्योगों और सैन्य-सेवाओं में तरह-तरह के दूसरे पाठ्यक्रम विकसित किए जावे चाहिए, जिनकी अवधि प्रमाण-पत्र या डिप्लोमा की योग्यता के लिए छः महीने से तीन साल तक की हो सकती है। ये पहले से ही रोजगार में लगे लोगों को अंशकालिक या पत्राचार के आधार पर भी पढ़ाए जा सकते हैं। अध्याय चौदह और पंन्द्रह के साथ संलग्न ऐसे पाठ्यक्रमों की सूची इन सुविधाओं के क्षेत्र का एक अन्दाज प्रस्तुत करती है, जो आयोग के ध्यान में है।

कार्यक्रम के महत्व और भारी पैमाने पर उसके चलाए जाने की दृष्टि में यह अत्यावश्यक है कि राज्य शिक्षा विभागों में शिक्षा अनुभाग खोले जाएं और उनको इस तरह के पूर्णकालिक या अंशकालिक पाठ्यक्रमों को आयोजित करने का पूरा-पूरा प्रभार सौंपा जाए। ऐसे कार्यक्रम आयोजित करने में अनुभागों को जनशक्ति की जरूरतों को ध्यान में रखना चाहिए और व्यावसायिक मार्गदर्शन के तंत्र और सामान्यतः उद्योगों और मालिकों के साथ निकट का सहयोग रखते हुए काम करना चाहिए।

7.49. **स्कूल स्तर पर व्यवसायिक शिक्षा के विकास के लिए केन्द्रीय अनुदान**—हम माध्यमिक शिक्षा के व्यवसायीकरण को बहुत महत्व देते हैं। इस प्रयोजन से हम सिफ़ारिश करते हैं कि केन्द्र सरकार राज्य सरकारों को केन्द्र आयोजित क्षेत्र में विशेष अनुदान देने की व्यवस्था करे। माध्यमिक स्कूलों में व्यवसायीकरण के लिए दिए गए अनुदानों ने ही संयुक्त राज्य अमेरिका में माध्यमिक शिक्षा के व्यवसायीकरण को प्रेरणा दी थी और यह अनुभव भारत के लिए महत्वपूर्ण पाठ देने वाला है। इस समस्या से सम्बन्धित लोगों के लिए अमेरिकी अनुभव का नीचे लिखा वर्णन रुचिकर होगा।

> व्यवसायिक शिक्षा के संघीय अनुदान 1917 के स्मिथ-ह्यूज ऐक्ट से शुरू हुए। यह कार्यकलाप शिक्षा के तथाकथित उपेक्षित क्षेत्र के विकास के लिए अभिप्रेत था। अर्थात् हाईस्कूल कार्यक्रमों को कालेज की तैयारी की ओर सुदृढ़ रूप से उन्मुख माना गया था। जिन छात्रों की आयोजनाओं में कालेज शामिल न थे, उनको उपयुक्त रोजगार की तैयारी करने के लिए बहुत थोड़ी या किसी भी क्षिक्षा की व्यवस्था न थी···स्मिथ-ह्यूज ने कृषि, गृह अर्थशास्त्र, व्यापार और उद्योग तथा वितरक पेशों के अध्यापकों के वेतन के लिए सहायक लगातार विनियोगों की व्यवस्था की···व्यावसायिक अध्यापकों को तैयार करने के लिए और संयुक्त राज्य शिक्षा कार्यालय द्वारा ऐक्ट के प्रशासन के लिए अतिरिक्त धन का विनियोग किया जाता था।
>
> 1946 के जार्ज बार्डन ऐक्ट ने व्यावसायिक शिक्षा के ऊपर बताए गए चार प्रमुख क्षेत्रों में प्रशिक्षण के लिए अतिरिक्त रकम के विनियोगों को अधिकृत किया···राज्यों द्वारा इस ऐक्ट में भाग लेने के लिए की जाने वाली अपेक्षाएं अन्ततः यहीं हैं जैसी स्मिथ-ह्यूज ऐक्ट में···
>
> आखीर में 1958 के राष्ट्रीय शिक्षा अधिनियम के शीर्षक आठ के अधीन 150 लाख डालरों को अतिरिक्तिरूप से अधिकृत किया जाता है, जिनका उपयोग विशेषरूप से सुप्रवीण तकनीकज्ञों के प्रशिक्षण क्षेत्र के व्यावसायिक स्कूलों द्वारा किया जाता है···
>
> चूंकि अनुदान कार्यक्रम का अभिप्राय कार्यकलाप को अनुप्रेरित करना रहा है, यह कहा जाएगा कि वे सफल रहे हैं। 1917 में

1. अध्याय पन्द्रह।

सरकार के सभी स्तरों द्वारा व्यावसायिक शिक्षा पर 30 लाख डालर से कुछ कम खर्च किया गया और नामांकित छात्रों की संख्या 2,00,000 से कम थी। चालीस साल बाद खर्च 17.60 करोड़ डालर हो गया और नामांकन बढ़कर 34 लाख छात्र हो गए। यह विश्वास करना मुश्किल है कि संघीय नेतृत्व न मिलने पर प्रगति इतनी ज्यादा हो पाती। इस समय संघ से मिलने वाला पैसा राज्य और स्थानीय खर्च दोनों की तुलना में दोनों को अलग-अलग लेने पर भी कम रहता है।[1]

7.50. **अंशकालिक शिक्षा**—माध्यमिक शिक्षा के विस्तार का दूसरा महत्वपूर्ण पहलू अंशकालिक शिक्षा की व्यवस्था करने की जरूरत है। इस समय यह विद्यमान नहीं है और इसको नीचे लिखी दिशा में बहुत बड़े पैमाने पर विकसित करना होगा।

(1) **अवर माध्यमिक स्तर**—हम नीचे लिखे कार्यक्रमों की कल्पना करते हैं :

(क) कुछ छात्र जिन्होंने प्राथमिक स्कूल पूरा कर लिया है और पूरे समय के आधार पर अपनी पढ़ाई आगे नहीं चला सकते, वे कक्षा 10 के आखीर में हाई स्कूल परीक्षा की तैयारी करना चाहेंगे। ऐसे छात्रों के लिए, विद्यमान रात्रि हाई स्कूलों के पूर्णकालिक पाठ्यक्रमों जैसे अंशकालिक पाठ्यक्रम भी आयोजित करने चाहिए। उम्मीद है कि ये पाठ्यक्रम बहुत कुछ पूर्णकालिक स्कूलों की इमारतों में ही चलाए जाएंगे, जिससे अंशकालिक छात्र भी वही सामग्री इस्तेमाल कर सकें। अध्यापक भी ज्यादातर उसी सूत्र से आएंगे और काम के लिए अलावा वेतन पाएंगे। सामान्यतः छात्र इन पाठ्यक्रमों को पूरा करने में कुछ ज्यादा समय लगाएंगे।

(ख) फिर भी ऊपर बताए प्रकार के पाठ्यक्रम कम ही होंगे और अंशकालिक शिक्षा का बड़ा हिस्सा व्यावसायिक प्रकार का होगा जिसकी मांग कोई कारबार वस्तुतः अपना लेने वाले और अपने पेशे को कार्यकुशलता में सुधार चाहने वाले छात्रों द्वारा की जाएगी। ये कार्यक्रम विभिन्न प्रकार के होंगे और इनकी सफलता संगठन के लचीले होने पर और छात्रों की जरूरत पूरी कर सकने की उसकी सीमा पर निर्भर रहेगी। फिर भी नीचे लिखे दो प्रकार सबसे ज्यादा महत्व के होंगे।

(एक) **कृषि के पाठ्यक्रम**—हम सिफ़ारिश करते हैं कि प्राथमिक स्कूल छोड़कर खेती को अपने व्यवसाय के रूप में अपना लेने वाले छात्रों के लिए अंशकालिक पाठ्यक्रम संगठित किए जाएं। इन कार्यक्रमों का मुख्य उद्देश्य यह होना चाहिए कि युवकों को खेती के सुधरे हुए तरीके अपनाना सिखाया जाए पर इनमें सामान्य शिक्षा का भी एक अंश शामिल होगा। उनको छात्रों की सुविधा के अनुसार व्यवस्थित किया जाए, जैसे उनको साल में दो से छः हफ्तों तक पूर्णकालिक आधार पर हफ्ते में एक या दो दिन चलाया जाए। ऐसे पाठ्यक्रम स्थापना के लिए प्रस्तावित कृषि पोलीटेकनीकों में, कृषि हाई स्कूलों में और खासतौर पर प्राथमिक विस्तार केन्द्रों में चलाए जा सकते हैं।[2] यदि इस दिशा में जीवन्त कदम उठाए जाएं तो हमारा विश्वास है कि व्यावसायिक शिक्षा का कुल का तिहाई या आधे तक का नामांकन इसी प्रकार के पाठ्यक्रमों में होगा।

(दो) **लड़कियों के लिए विशेष पाठ्यक्रम**—जो लड़कियां 14 की आयु के आस-पास प्राथमिक स्कूल छोड़ देती हैं, उनके लिए हम गृह विज्ञान या सिलाई, कला और शिल्प, मुर्गीपालन, दुग्धशाला आदि जैसे घरेलू-उद्योगों में पूर्णकालिक या अंशकालिक पाठ्यक्रमों के संगठित करने का प्रस्ताव करते हैं, जिससे वे अपनी भावी गृहिणी या मां की जिन्दगी के लिए ज्यादा अच्छी तरह से तैयार हो सकें। वे पाठ्यक्रम अल्पकालीन पूरे समय के या अंशकालिक और लम्बे अरसे तक चलने वाले हो सकते हैं और उपयोगी और लोकप्रिय बनाए जा सकते हैं।

(2) **उच्चतर माध्यमिक स्तर**—इस स्तर पर अंशकालिक शिक्षा के कार्यक्रम ज्यादा उपयोगी हैं और उनमें नीचे लिखे शामिल होंगे :

(क) ऐसे अंशकालिक पाठ्यक्रम जो पूर्णकालिक

1. **सी० एस० बेन्सन : दि इकनोमिक्स आफ पब्लिक एजूकेशन, हाउटन मिफलिन कम्पनी, न्यूयार्क,** पृष्ठ 262-63।
2. **देखिए अध्याय चौदह।**

सामान्य ढांचे पर ही चलाए जाएं. ये उन लोगों के लिए होंगे जो उच्चतर माध्यमिक शिक्षा पूरी करना चाहते हैं;

(ख) कृषि में उन लोगों के लिए अंशकालिक पाठ्यक्रम जिन्होंने कृषि को आजीविका के रूप में अपना लिया है;

(ग) उद्योगों में अंशकालिक पाठ्यक्रम उनके लिए जो उद्योग-धन्धों में लग गए हैं;

(घ) लड़कियों के लिए उसी तरह के पाठ्यक्रम जिनकी कि अवर प्राथमिक स्तर पर सिफ़ारिश की गई है, किन्तु जो छात्रों द्वारा प्राप्त ज्यादा अच्छी सामान्य शिक्षा के कारण ज्यादा ऊंचे स्तर पर चलाए जा रहे हैं; और

(ङ) स्व-नियोजित लोगों के लिए अंशकालिक पाठ्यक्रम।

7.51. अंशकालिक शिक्षा के लिए नामांकनों का जो पैमाना हमारी दृष्टि में है उसका संकेत नीचे दिया जा रहा है :

(1) **अवर माध्यमिक स्तर**—इस समय क्षधिकांश नामांकन पूरे समय के आधार पर होते हैं। बड़े शहरों में थोड़े से रात्रि हाई स्कूल हैं, जो कामगरों को अंशकालिक शिक्षा देते हैं; पर उनके नामांकन बहुत ही कम हैं। अब यह उम्मीद की जाती है कि अंशकालिक शिक्षा बड़े पैमाने पर देने की व्यवस्था की जाएगी और कुल नामांकन का पांचवां हिस्सा अंशकालिक आधार पर होगा।

(2) **उच्चतर माध्यमिक स्तर**—इस स्तर पर अपनाए जाने वाले उपाय ऊपर बताए गए उपायों जैसे ही होंगे, और हमें उम्मीद है कि कुल नामांकन का लगभग चौथाई अंशकालिक पाठ्यक्रमों या पत्राचार शिक्षा के रूप में होगा।

7.52. **लड़कियों की शिक्षा**—इन प्रस्तावों में लड़कियों में माध्यमिक शिक्षा के विस्तार पर विशेष जोर दिया गया है। सारणी 7.6 से पता चलता है कि

— अवर माध्यमिक स्तर पर लड़कियों का नामांकन लड़कों के अनुपात में 1950-51 में लगभग 1 : 6 था और अब यह 1 : 3 है। अगले बीस सालों में यह बढ़कर 1 : 2 हो जाएगा; और

— उच्चतर माध्यमिक स्तर पर लड़कियों का नामांकन लड़कों के अनुपात में 1950-51 में लगभग 1 : 6. 5 था और अब यह बढ़कर 1 : 5 है। प्रस्ताव है कि अगले बीस सालों में इसे बढ़ाकर 1 : 3 कर दिया जाए।

7.53. इतनी सीमा तक विस्तार प्राप्त करने के लिए विशेष प्रयास की जरूरत पड़ेगी। इस समस्या की राष्ट्रीय महिला शिक्षा समिति ने जांच की थी और इसकी ब्योरेवार सिफ़ारिश से हम मोटे तौर पर सहमत है। खासतौर पर हम नीचे लिखी बातों पर ध्यान दिलाना चाहेंगे :

(1) जनमत साधारणतः माध्यमिक शिक्षा स्तर पर सहशिक्षा स्वीकार करने के पक्ष में नहीं है। इसलिए लड़कियों के लिए अलग स्कूलों को खासतौर पर प्रोत्साहित करना होगा। छोटी-छोटी जगहों में जहां, पर अलग स्कूल वित्तीय कारणों से सम्भव नहीं हैं, यह नियम होना चाहिए कि जिस स्कूल में लड़कियों को प्रवेश दिया जाता हैं, उसके कर्मचारियों में कुछ महिलाएँ अवश्ग होनी चाहिए।

(2) लड़कियों के लिए होस्टलों को प्रोत्साहन देना चाहिए। जहां सम्भव हो, सहायता प्राप्त परिवहन की व्यवस्था की जा सकती हैं।

(3) इस स्तर पर जो छात्रवृत्ति कार्यक्रम विकसित किए जाएं, उनमें लड़कियों का विशेष ख्याल रखना चाहिए।

7.54. हमने इस स्तर पर लड़कियों के लिए अंशकालिक और व्यावसायिक शिक्षा के विकास पर जानबूझ कर जोर दिया है। चूंकि लड़कियां घर पर ज्यादा काम आती हैं, वे लड़कों की तुलना में स्कूल से पहले बैठा ली जाती हैं और इसलिए लड़कों की तुलना में उनके लिए अंशकालिक शिक्षा की व्यवस्था की ज्यादा जरूत है। यही बात व्यादसायिक शिक्षा के बारे में भी सच हैं। 14 वर्ष की आयु में स्कूल छोड़ देने वाली लड़कियों की काफी बड़ी संस्या को संक्षिप्त व्यावसायिक पाठ्यक्रमों से या गृह विज्ञान के पाठ्यक्रमों से लाभ पहुंचेगा, जो उनके भाबी जीवन में उनके काम आएंगे। सामान्य शिक्षा को मात्र चालू रखने की तुलना में इन पर ज्यादा जोर दिया जाना चाहिए।

स्कूलों के स्थल की योजना

7.55. प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा की सुविधाओं

में पहले बताए जा चुके पैमाने पर विस्तार का आयोजन करने में जिस एक महत्वपूर्ण समस्या का सामना करना पड़ता है, वह है स्कूलों को योजना और स्थल-चुनाव। इस मामले में एक युक्ति संगत नीति अपनाने की जरूरत स्पष्ट है : उचित स्थल चुनने से दुहरे काम और बरबादी को दूर किया जा सकेगा, और आकार का लागत और कार्यकुशलता से निकट का सम्बन्ध है। व्यावसायिक शिक्षा की संस्थाएं हमेशा ही संबंधित उद्योग के बहुत निकट स्थापित की जानी चाहिए, अन्यथा बहुत थोड़े ही उपयोग में आ सकेंगी और कुछ स्थितियों में तो नतीजे हानिकर भी होंगे। दुर्भाग्य से इस बारे में एक उचित नीति विकसित करना और अमल में लाना अब तक सम्भव नहीं हो पाया है। हमारी अनेक संस्थाओं का स्थल-चुनाव बुरा है; उनसें से बहुत सी बहुत छोटी हैं और कुछ प्रबन्ध योग्य होने की तुलना में कहीं ज्यादा बड़ी हैं। यह वांछनीय है कि शिक्षा संस्थाओं के आयोजन से संबंधित राज्य शिक्षा विभाग हर श्रेणी की शिक्षा-संस्थाओं का स्थल और आकार तय करने के लिए कुछ मार्ग-दर्शक सिद्धान्त विकसित कर लें। इस प्रयोजन से हम नीचे कुछ अस्थायी प्रस्ताव दे रहे हैं।

7.56. **प्राथमिक स्कूल**—इस स्तर पर पहुंच के भीतर होना सबसे ज्यादा महत्व की बात है और छोटे-छोटे स्कूलों को उनकी भारी लागत और कम कार्यकुशलता के बावजूद बरदाश्त करना होगा। स्कूल का अधिकतम आकार है : एक अवर प्राथमिक स्कूल के लिए—4 या 5 अध्यापक और 160 से 200 तक नामांकन, अर्थात् 4 या 5 कक्षाओं का एक स्कूल : और एक उच्चतर प्राथमिक स्कूल के लिए—7-8 कक्षाओं का एक स्कूल, हर कक्षा के लिए एक अध्यापक (मुख्य अध्यापक को छोड़ कर) और 300-400 नामांकन। जहां भी हो सके, इस आकार के (या इससे भी बड़े आकार के) स्कूल स्थापित किए जाने चाहिए। यह सभी शहरी क्षेत्रों में और 1,500 व्यक्तियों या ज्यादा आबादी वाले गांवों में किया जा सकता है। फिर भी चूंकि छोटे-छोटे गांवो की संख्या ज्यादा है, तुलना में ज्यादा लागत और कम कार्यकुशलता के बावजूद छोटे-छोटे स्कूलों की स्थापना करनी होनी। साधारण नियम यह होना चाहिए कि अवर प्राथमिक स्कूल हर बच्चे के घर से एक मील या इसके करीब दूरी के भीतर स्थापित किया जाए और उच्चतर प्राथमिक स्कूल तीन मीलों की दूरी के भीतर। 200-300 की आबादी वाले गांवों में एक अवर प्राथमिक स्कूल होना चाहिए और 700 या ऊपर की आबादी वाले गांवों में एक उच्चतर प्राथमिक स्कूल होना शाहिए। अवर प्राथमिक स्तर पर वर्तमान स्थिति सारणी 7.8 में और पृष्ठ 197 के चार्ट में दी गई हैं।

सारणी 7.8. अवर प्राथमिक स्कूलों/सैक्शनों का आकार के अनुसार वितरण (1965)

राज्य	अवर प्राथमिक स्कूलों का प्रतिशत नामांकनों सहित										
	30 से नीचे	30-49	50-69	70-99	100-139	140-179	180-239	240-319	320-399	400 और ऊपर	योग
आन्ध्र प्रदेश	6.4	20.9	19.3	21.4	15.1	7.4	4.9	2.6	1.6	0.4	100.0
केरल	0.1	0.2	0.6	2.6	25.1	19.8	19.3	12.7	6.7	12.9	100.0
मध्य प्रदेश	32.3	20.6	19.6	10.6	9.1	2.8	2.5	1.3	0.6	0.6	100.0
महाराष्ट्र	14.3	24.8	17.8	10.7	8.8	6.1	6.4	4.5	2.8	3.8	100.0
मैसूर	11.8	20.7	14.7	16.1	13.6	8.1	7.0	3.9	2.2	1.9	100.0
उड़ीसा	20.0	31.6	16.6	13.8	7.7	5.3	3.6	1.1	0.3	—	100.0
पंजाब	6.2	14.0	16.8	25.0	16.5	7.6	6.2	2.8	1.7	3.2	100.0
राजस्थान	24.0	27.3	17.5	12.3	8.8	4.1	3.2	1.5	0.6	0.7	100.0
उत्तर प्रदेश	4.2	12.5	13.5	18.8	18.5	13.0	11.5	5.7	1.5	0.8	100.0
योग—	12.7	20.4	15.9	15.1	13.2	8.0	6.9	3.9	1.9	2.0	100.0

स्रोत—दत्त सामग्री राज्य सरकारों द्वारा भेजी गई (29 जिलों के एक अध्ययन पर आधारित)।

अवर प्राथमिक स्कूल/विभाग
आकार के अनुसार, 1965

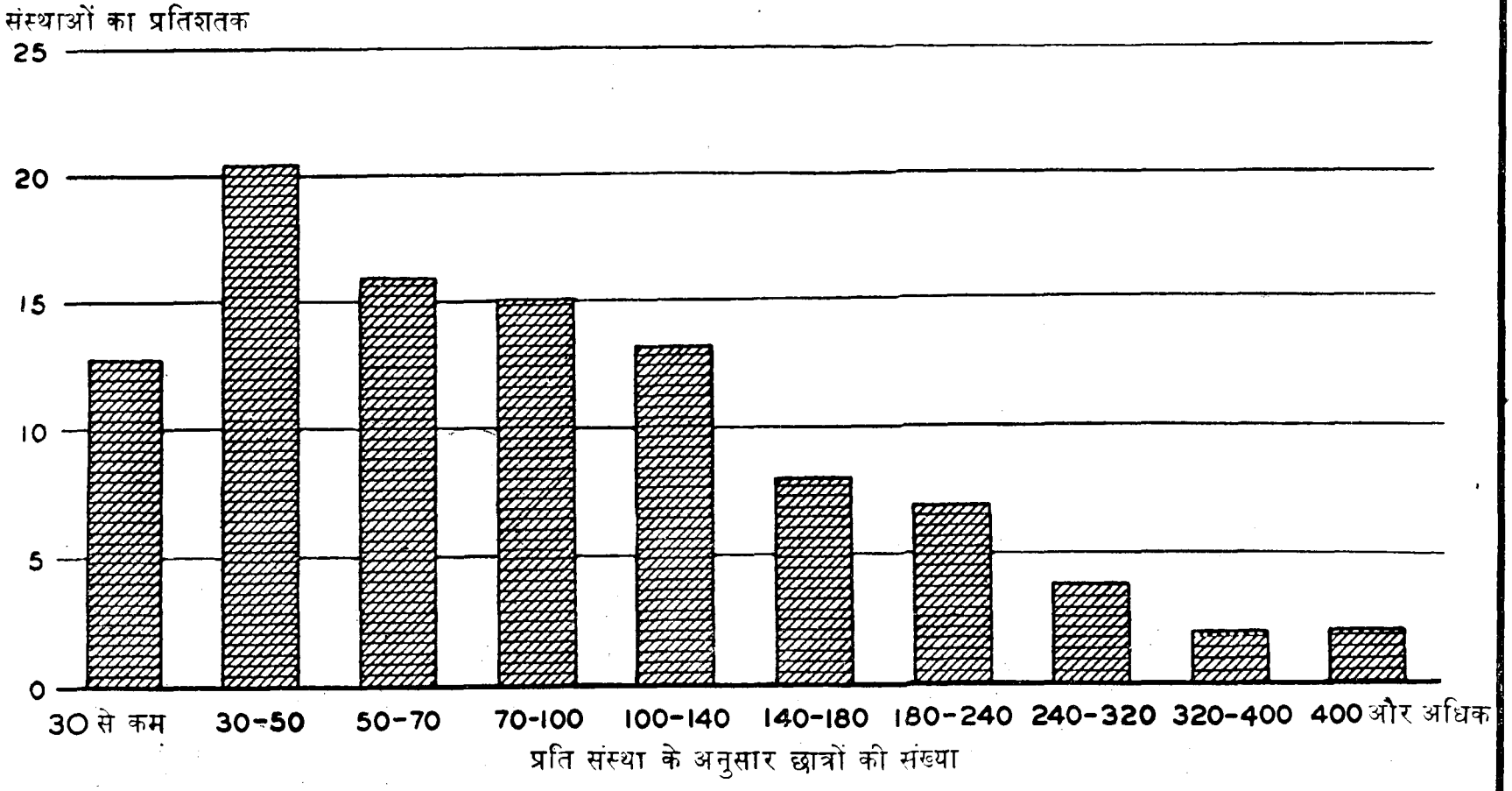

इससे पता चलता है कि सभी प्राथमिक स्कूलों के लगभग एक तिहाई में नामांकन 40 छात्र से कम है और लगभग दो-तिहाई में नामांकन 100 से कम है। केवल चौथाई के लगभग स्कूलों में नामांकन 140 या इससे ज्यादा है, जहां एक अध्यापक एक अलग कक्षा का प्रभारी बनाया जा सकता है।

7.57 इसी तरह की दत्त सामग्री उच्चतर प्राथमिक स्कूलों के लिए सारणी 7.9 में दी गई है (पृष्ठ 199 का चार्ट भी देखिए)।

सारणी 7.9. उच्चतर प्राथमिक स्कूलों/सैक्शनों का आकार के अनुसार वितरण (1965)

राज्य	उच्चतर प्राथमिक स्कूलों का प्रतिशतक नामांकनों सहित										
	20 से नीचे	20-39	40-59	60-79	80-119	120-159	160-199	200-279	280-399	400 और ऊपर	योग
आन्ध्र प्रदेश .	8.3	14.5	9.3	12.4	11.7	10.1	7.8	7.1	9.0	9.8	100.0
केरल .	—	0.5	2.6	4.9	21.3	17.6	12.4	14.9	14.3	11.5	100.0
मध्य प्रदेश .	13.9	22.6	17.5	12.8	15.7	6.8	3.8	2.9	3.1	0.9	100.0
महाराष्ट्र .	11.0	15.9	14.3	12.1	12.4	9.8	5.5	2.3	0.8	—	100.0
मैसूर .	13.8	22.8	19.5	13.3	14.3	6.1	4.4	3.6	1.7	0.5	100.0
उड़ीसा .	5.1	29.4	21.8	12.9	12.4	9.8	5.5	2.3	0.8	—	100.0
पंजाब .	1.1	4.6	16.1	10.3	10.4	15.0	16.1	16.1	5.7	4.6	100.0
राजस्थान .	2.8	6.7	14.3	15.2	23.5	12.7	9.8	6.4	4.2	4.4	100.0
उत्तर प्रदेश .	5.7	4.2	7.1	8.4	21.5	15.2	11.7	11.9	12.6	1.7	100.0
योग	9.3	15.9	14.2	11.7	15.0	10.3	7.6	7.0	5.6	3.4	100.0

स्रोत : दत्तसामग्री राज्य सरकारों द्वारा भेजी गई। इस सारणी में दिए गए नामांकन उच्चतर प्राथमिक कक्षाओं (5 से 7 या 6 से 8) के ही हैं। इनमें से अधिकांश स्कूलों में अवर प्राथमिक कक्षाएं भी हैं।

यह अनुमान किया जाता है कि उच्चतर प्राथमिक कक्षाओं में नामांकन लगभग 120 होने चाहिए जिससे एक अध्यापक बचत के साथ एक कक्षा का प्रभारी बनाया जा सकता है। इस आधार पर केवल एक तिहाई स्कूल ही ठीक उतरेंगे। यह भी अनुमान कर लिया जाए कि उच्चतर प्राथमिक कक्षाओं में नामांकन 60 होना चाहिए, तब भी 40 प्रतिशत संस्थाएं इस स्तर से भी नीचे रहेंगी।

7.58. ऊपर प्रस्तावित व्यवस्था में जो दिक्कतें हैं, हम उनको कम कह कर नहीं बता सकते। फिर भी हम समझते हैं कि ज्यादा बड़े और कार्यकुशल प्राथमिक स्कूलों की स्थापना में इस बात से सुविधा मिलेगी अगर जनता को प्राथमिक स्तर पर मिले-जुले स्कूल स्वीकार करने के लिए समझा लिया जाए और पड़ोस के गांवों को यह बताया जाए कि अपने अलग छोटे-छोटे स्कूलों का आग्रह न करके वे पड़ोस के गांवों के साथ मिलकर ज्यादा बड़ा और ज्यादा कार्यकुशल स्कूल भी स्वीकार कर लें। हम यह सिफ़ारिश करते हैं कि जनमत को इस दिशा में शिक्षित किया जाए।

7.59. छोटे-छोटे गांवों की समस्या ज्यादा गंभीर है। पहले शैक्षिक सर्वेक्षण ने—जिसका अब पुनरीक्षण हो रहा है—बताया था कि देश की 8,40,000 बस्तियों में से 2,54,000 (या 30 प्रतिशत) की आबादी 100 से कम है; 1,89,000 (या 23 प्रतिशत) की आबादी 100 और 199 के बीच में है, और 1,14,000 (या 14 प्रतिशत) की आबादी 200 और 299 के बीच में है। उनमें कुल आबादी का लगभग 25 प्रतिशत रहता है। दीर्घकालीन लक्ष्य तो यही होगा कि इन गांवों को मिला कर बड़े गांवों में बदल दिया जाए। इस बीच उनको जहां भी हो सके आपस में इकट्ठा किया जाए, जिससे स्कूलों (और अन्य समाज सेवाओं) की यथासंभव व्ययसाध्य व्यवस्था हो सके।

उच्चतर प्राथमिक स्कूल|विभाग
आकार के अनुसार, 1965

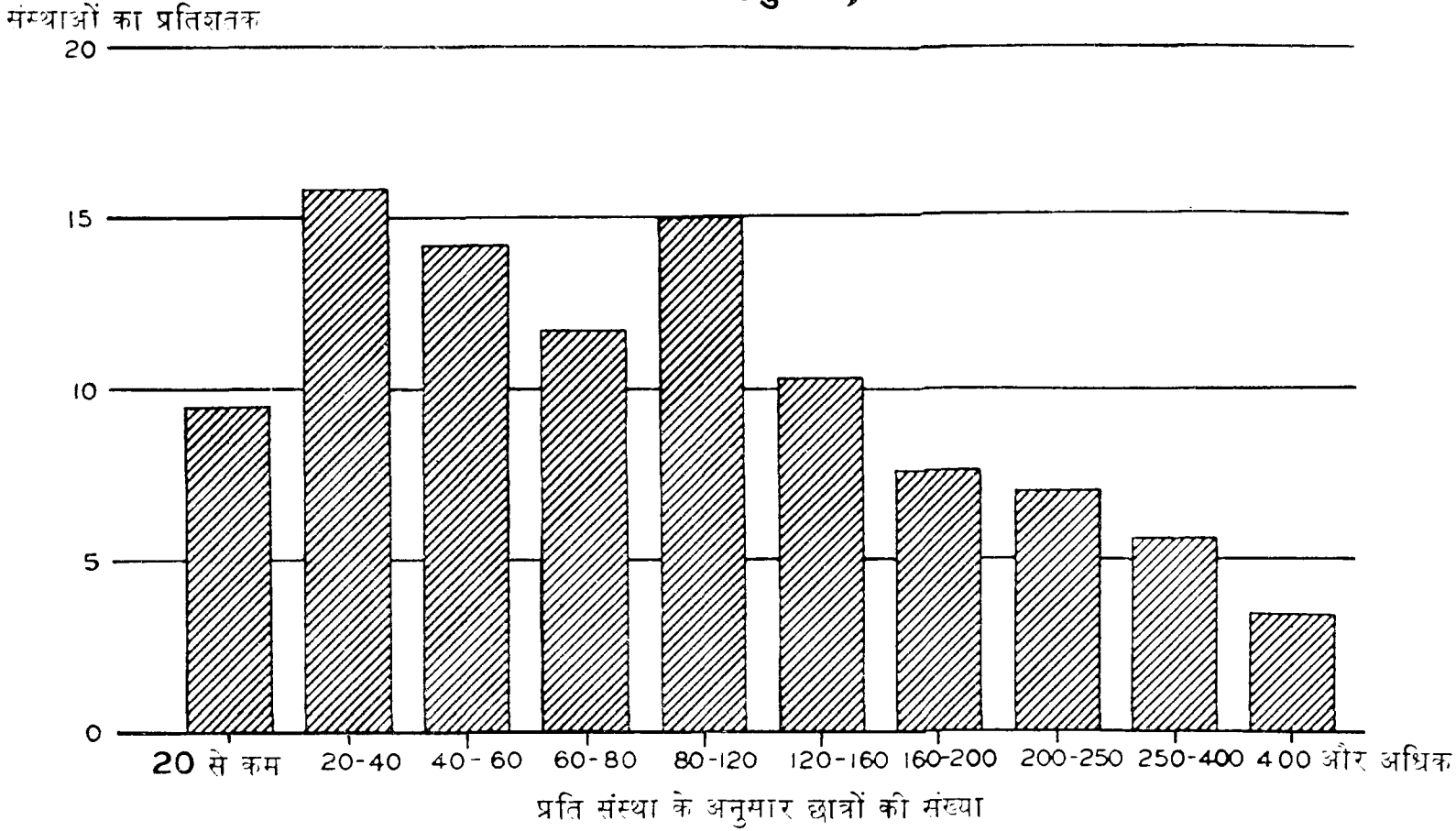

7.60. **माध्यमिक स्कूल**—माध्यमिक स्कूलों में और इससे भी ज्यादा उच्चतर शिक्षा के क्षेत्र में पहुंच के भीतर होना तुलना में एक बड़ी ही कम विचार योग्य बात रह जाती है. और जोर ऐसी आकार की संस्थाओं की स्थापना पर देना होगा, जो बचतपूर्ण भी हों और कार्य-कुशल भी। इस नीति के महत्व को नहीं समझा जा रहा है और इस समय बहुत संख्या में ऐसे छोटे-छोटे माध्यमिक स्कूल है, जिनमें कार्यकुशलता को पर्याप्त स्तर तक लाने के लिए सुधार करना बड़ा ही व्ययसाध्य और मुश्किल है। परिस्थिति वस्तुतः कितनी बिगड़ी हुई है, यह सारणी 7.10 से देखा जा सकता है, जिसमें आयोग द्वारा 29 जिलों से संगृहीत आंकड़े दिए गए हैं। (पृष्ठ 201 का चार्ट भी देखिए)।

सारणी 7.10 हाई/उच्चतर माध्यमिक स्कूलों सैक्शनों का वितरण आकार के अनुसार (1965)

राज्य	हाई/उच्चतर माध्यमिक स्कूलों का प्रतिशतक नामांकन सहित									
	100 से नीचे	100-139	140-179	180-239	240-319	320-399	400-479	480-519	520 और ऊपर	योग
आन्ध्र प्रदेश . .	41.1	15.2	8.1	9.3	7.4	6.7	6.3	0.7	5.2	100.0
केरल . .	4.5	8.3	4.5	8.3	9.6	12.8	8.4	3.2	40.4	100.0
मध्य प्रदेश . .	35.5	10.5	11.9	13.2	9.2	7.9	3.9	2.6	5.3	100.0
महाराष्ट्र . .	25.6	8.2	7.8	4.4	11.1	11.0	14.1	7.2	10.6	100.0
मैसूर . .	19.9	11.7	10.6	11.4	13.1	8.2	7.1	2.8	15.2	100.0
उड़ीसा . .	29.2	19.2	19.2	16.6	8.3	5.0	2.5	—	—	100.0
पंजाब . .	36.4	15.2	21.2	9.1	9.1	3.0	3.0	—	3.0	100.0
राजस्थान . .	45.1	21.4	8.4	9.5	7.2	2.4	—	2.4	3.6	100.0
उत्तर प्रदेश . .	21.3	11.6	5.8	13.5	11.7	10.4	3.2	0.6	21.9	100.0
योग	26.6	11.7	9.1	8.9	10.3	9.0	8.2	3.5	12.7	100.0

स्रोत : राज्य सरकारों द्वारा भेजी गई दत्तसामग्री।

अच्छी तरह से सज्जित और कार्यकुशल होने के लिए माध्यमिक स्कूल में माध्यमिक स्तर की तीनों ही कक्षाओं में कम से कम तीन डिवीजन होने चाहिए, अर्थात् कुल नौ डिवीजन और नामांकन 360 और 450 के बीच होना चाहिए। इस आकार के स्कूल के लिए 20 अध्यापकों का कर्मचारी वृन्द संभव है और प्रति छात्र लागत को अनुचित रूप से बढ़ाये बिना सभी जरूरी सुविधाओं की व्यवस्था की जा सकती है। यदि विशिष्टियां कम करके डिवीजनों की संख्या हर कक्षा में दो कर दी जाए या कुल छह डिवीजन हों – और यह न्यूनतम संभव संख्या है—तो नामांकन 240 और 300 के बीच रहेंगे। पर विद्यमान स्थितियां इन दोनों ही कसौटियों से असन्तोषजनक है। दूसरे माध्यमिक स्कूलों के लगभग 26.6 प्रतिशत में नामांकन 100 से कम है—अनुपात में केरल के 4.5 प्रतिशत से राजस्थान के 45.1 प्रतिशत तक अन्तर रहता है। लगभग 38.3 प्रतिशत में नामांकन 400 या ऊपर है। सर्वोत्तम स्थिति केरल में है जहां लगातार बस्तियों या आबादी की सघनता के कारण 52 प्रतिशत स्कूलों में नामांकन 400 या ऊपर है। सबसे निकृष्ट स्थिति संभवतः राजस्थान में है जहां केवल 15.6 प्रतिशत स्कूलों में ही नामांकन 240 या ऊपर है।

7.61. नीति का स्वरूप क्या हो, यह स्पष्ट हो जाता है। छोटी और बचतहीन संस्थाओं की बड़ी संख्या में स्थापना को धीमा करने के लिए प्रयास करना होगा। नए माध्यमिक स्कूलों की ऐसे इलाकों को छोड़ अन्यत्र स्थापना मुश्किल हो जानी चाहिए, जहां पर स्पष्ट स्थानीय जरूरत को सिद्ध किया जा सकता है और जहां नए स्कूल के उप-

माध्यमिक स्कूल / विभाग आकार के अनुसार, 1965

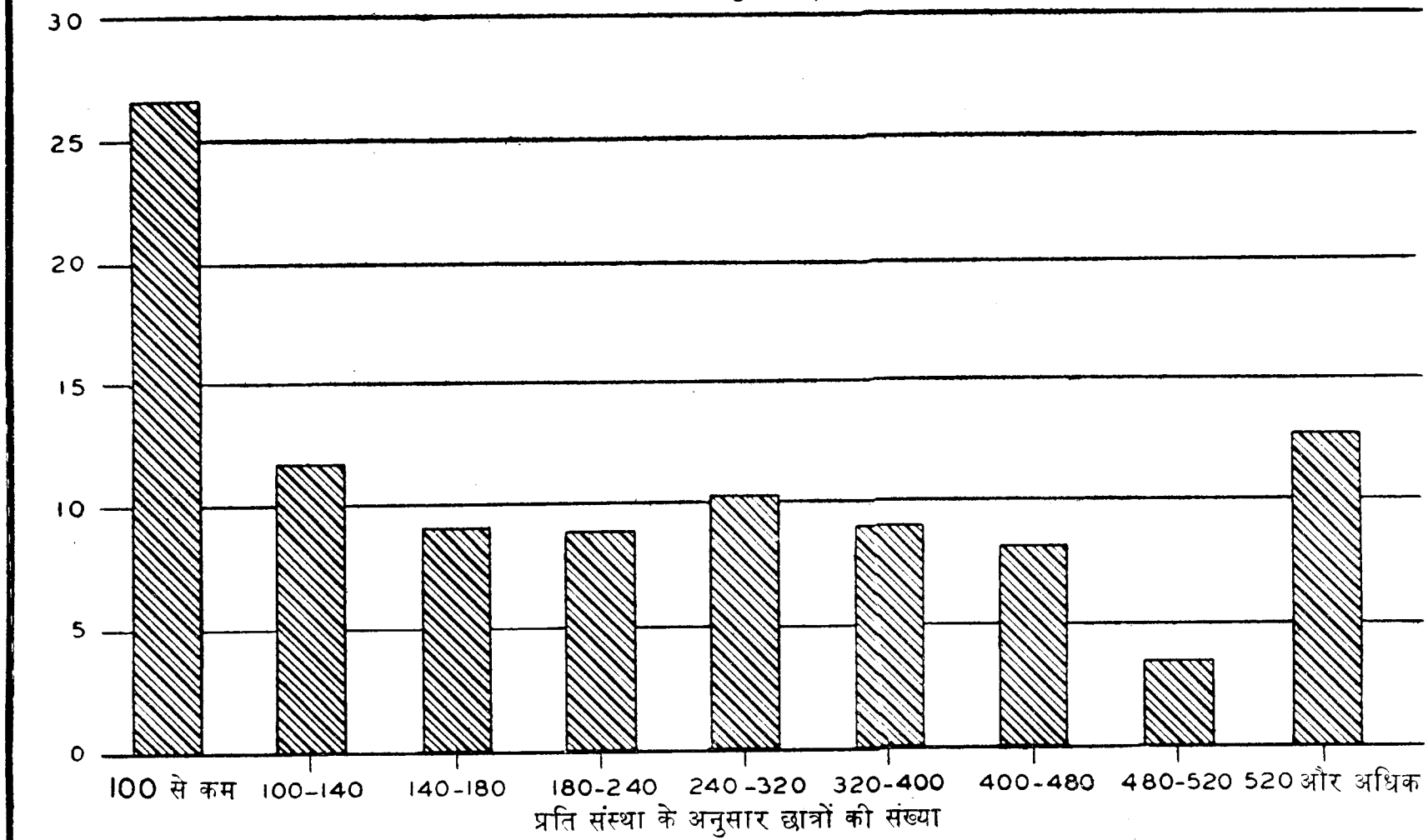

युक्त आकार में पांचेक सालों में विकसित हो जाने की युक्तिसंगत गुंजाइश है। इसे प्राप्त करने के लिए यह वांछनीय है कि मान्यता के लिए कठोर शर्तें विहित की जाएं और उनका सख्ती से पालन किया जाए। एक अच्छा कामचलाऊ नियम यह हो सकता है कि एक माध्यमिक स्कूल 5 से 7 मील के व्यास के इलाके और 10,000 से 15,000 तक की आबादी की जरूरतें पूरी करने के लिए खोला जाए और तुलना में ज्यादा दूरी पर रहने वाले छात्रों के लिए बाइसिकिल के रूप में परिवहन व्यवस्था करने का तरीका अपनाया जाए और जहां भी जरूरी हो होस्टल की सुविधाएं दी जाएं। कुछ इलाकों में माध्यमिक स्कूल इतनी ज्यादा संख्या में खुल चुके हैं कि वहां आज की अत्यन्त जरूरी और ज्वलन्त समस्या नए माध्यमिक स्कूलों की स्थापना की नहीं है, बल्कि विद्यमान स्कूलों को समेकित करने की है।

7.62. **व्यावसायिक स्कूल**—व्यावसायिक शिक्षा वाली संस्थाओं के लिए बड़ा होना जरूरी है, ताकि वे व्ययसाध्य और कार्यकुशल बनी रहें। इस बारे में विद्यमान स्थिति को (अद्यतन आंकड़े 1961-62 के हैं) सारणी 7.11 में बताया गया है।

सारणी 7.11. व्यावसायिक स्कूलों का आकार (1961-62)

संस्था का प्रकार	संस्थाओं की संख्या	कुल नामांकन	प्रति संस्था में नामांकन
1. कृषि	106	8,428	80
2. इंजीनियरी और शिल्पविज्ञान	295	86,228	292
3. चिकित्सा	177	11,257	64
4. अध्यापक प्रशिक्षण स्कूल	1,134	121,652	107
सभी व्यावसायिक स्कूल	3,849	419,043	109

स्रोत :—शिक्षा मंत्रालय, प्रपत्र 'क'

कृषि के स्कूल कार्यकुशल हो सकें, इसके लिए अपेक्षित रूप में वे बहुत छोटे हैं। चिकित्सा स्कूल भी छोटे आकार के हैं, पर शायद यह अपरिहार्य हैं, क्योंकि यह संस्थाएं ज्यादातर अस्पतालों के साथ संबद्ध हैं। प्राथमिक अध्यापकों और साथ ही माध्यमिक अध्यापकों के प्रशिक्षण स्कूल भी आकार में बहुत छोटे हैं। हम अन्यत्र यह सिफ़ारिश कर चुके है कि ऐसी संस्थाओं का न्यूनतम आकार कालेजों (एक साल का पाठ्यक्रम) के लिए लगभग 200 और स्कूलों (दो साल का पाठ्यक्रम) के लिए 400 होना चाहिए।[1] यह देखने के लिए भी ध्यान रखना होगा कि सभी व्यावसायिक स्कूल इस रूप में स्थित किए जाएं कि वे संबंधित उद्योग के पास रहें। ऐसा हमेशा नहीं हुआ हैं और हमने ऐसे उदाहरण देखे हैं जहां पोलीटेकनिक ऐसे देहाती परिवेश में खोले गए हैं जहां एक भी उद्योग नहीं हैं और कृषि संस्थाएं शहरी इलाके में खोली गई है, जहां उनके पास पर्याप्त आकार का फार्म नहीं है और न हो सकता है। इन संस्थाओं को इस प्रकार से स्थित करने से बेकार का खर्च होता है और इसे टालना चाहिए।

7.63. शिक्षा संस्थाओं के स्थल चुनाव के लिए और निश्चित क्षेत्र में जैसे काउंटी कौंसिल में पूरी स्कूल शिक्षा के विकास के लिए सावधानी से योजना तैयार करने की जरूरत को इंग्लैंड में 1940 में ही समझा गया था और इसके लिए उपयुक्त व्यवस्था 1944 के शिक्षा अधिनियम में की गई थी।[2] नतीजे बड़े अच्छे रहे हैं और यह अनुभव हमारे लिए जिला शिक्षा विकास योजनाएं तैयार करने और उपयुक्त कसौटी विकसित करने में बड़े लाभ का हो सकता है। हमें विश्वास है कि नए शिक्षा सर्वेक्षण का उपयोग ऐसी योजनाएं बनाने के लिए किया जाएगा।

1. अध्याय चार।
2. इंगलैंड और वेल्स का शिक्षा अधिनियम, 1944 की धाराएं 11-16।

आठवां अध्याय

स्कूल पाठ्यचर्या

एक. पाठ्यचर्या के निर्माण से सम्बन्धित आवश्यक बातें—(3) **पाठ्यचर्या के निर्माण के लिए आवश्यक क़दम**; (5) **उपलब्ध सुविधाओं से पाठ्यचर्या का सम्बन्ध बैठाना**; (6) **प्रायोगिक पाठ्यचर्याएं अपनाने के बारे में स्कूलों को स्वतन्त्रता**; (7) **उच्च पाठ्यचर्या को क्रमिक रूप से लागू करना**; (9) **विषय-अध्यापक संस्था**।

दो. पाठ्यचर्या का संगठन करना—(10) **पहले दस वर्षों की पाठ्यचर्या**; (11) **बहूद्देश्य स्कूलों की योजना**; (14) **विभिन्न अवस्थाओं पर उपलब्धि का स्तर**; (19) **अवर प्राथमिक अवस्था पर पाठ्यचर्या**; (21) **उच्चतर प्राथमिक अवस्था पर पाठ्यचर्या**; (23) **अवर माध्यमिक अवस्था पर पाठ्यचर्या**; (24) **उच्चतर माध्यमिक अवस्था पर पाठ्यचर्या**; (28) **उच्चतर माध्यमिक पाठ्यक्रम में विषय क्षेत्र**; (29) **विभिन्न अवस्थाओं में उच्च और समृद्धि कार्यक्रम**।

तीन. भाषाएं—(31) **त्रिभाषा-सूत्र की उत्पत्ति**; (32) **सूत्र की क्रियान्विति में कठिनाइयां**; (33) **व्यावहारिक त्रिभाषा-सूत्र का आधार**; (35) **संशोधित सूत्र से अभिप्रेत बातें**; (40) **सूत्र में विदेशी भाषाओं का स्थान**; (41) **कुमारी एस० पनन्दीकर के विचार**; (42) **विश्वविद्यालय अवस्था पर त्रिभाषा-सूत्र**; (43) **हिन्दी का अध्ययन**; (46) **अंग्रेजी का अध्ययन**; (48) **प्राचीन भाषाओं का अध्ययन**।

चार. विज्ञान और गणित—(51) **प्राथमिक स्कूलों में विज्ञान**; (57) **माध्यमिक स्कूलों में विज्ञान**; (58) **माध्यमिक स्कूलों में विज्ञान पाठ्यचर्या की विशेषताएं**; (59) **उच्चतर माध्यमिक अवस्था पर विज्ञान**; (61) **ग्रामीण और शहरी स्कूलों में विज्ञान**; (62) **गणित का अध्ययन**; (63) **विभिन्न अवस्थाओं पर गणित का पाठ्य-विवरण**; (66) **विज्ञान और गणित शिक्षण की विधियां**।

पांच. सामाजिक अध्ययन और सामाजिक विज्ञान—(67) **विभिन्न प्रकार से पाठ्यविवरण तैयार करना**; (69) **राष्ट्रीय एकता और विश्व-एकता पर बल**; (71) **सामाजिक विज्ञान का अध्ययन**।

छह. कार्य-अनुभव—(73) **विभिन्न अवस्थाओं पर कार्यक्रम**; (75) **कार्य-अनुभव और बुनियादी शिक्षा**; (78) **क्रियान्विति**।

सात. सामाजिक सेवा—(80) **स्कूल कैंपस में समुदायिक जीवन**; (81) **सामाजिक विकास में भाग लेना**; (83) **श्रम और समाज कल्याण शिविर**।

आठ. शारीरिक शिक्षा (88-93)।

नौ. नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा—(95) **परोक्ष विधियों द्वारा शिक्षा**; (97) **नैतिक मूल्यों और धर्म में सम्बन्ध**।

दस. सृजनात्मक क्रियाएं—(100) **कला शिक्षण**; (101) **सहपाठ्यचर्या क्रियाएं**।

ग्यारह. लड़कों और लड़कियों की पाठ्यचर्या में अन्तर करना (102-04)।

तेरह. नई पाठ्यचर्या और बुनियादी शिक्षा (105-09)।

पूरक टिप्पणियां (1) **कार्य-अनुभव के सामान्य कार्यक्रम**; (2) **सोवियत रूस में कार्य-अनुभव का कार्यक्रम**; (3) **कुछ चुने हुए देशों की स्कूल पाठ्यचर्या में भाषाओं का स्थान**।

8.01. आजकल दुनिया में सब जगह स्कूल पाठ्यचर्या बड़ी अनिश्चित अवस्था में है। विकसित देशों में सामान्यतः इसकी आलोचना करते हुए कहा जाता है कि यह अधूरी है और पुरानी पड़ गई है और आज की अवस्था को ध्यान में रख कर नहीं बनाई गई है। शिक्षा की दृष्टि से उन्नत अमेरिका जैसे देशों में भी, जहां कि प्रगतिशील शिक्षा के प्रभाव में बहुत पहले ही परम्परागत पाठ्यचर्या में आमूल परिवर्तन कर दिए गए थे, अनेक विद्वानों और

विश्वविद्यालयों के कार्यकर्त्ताओं द्वारा स्कूल पाठ्यक्रम को चुनौती दी जा रही है और एक नया सुधार आन्दोलन शुरू कर दिया गया है जिससे स्कूल की शिक्षा में पाठ्यचर्या-सम्बन्धी महान परिवर्तनों के आने की सम्भावना है। पाठ्यचर्या के बारे में चारों फैले इस असंतोष के अनेक कारण हैं। सबसे पहली बात यह है कि इधर कुछ वर्षों में ज्ञान के क्षेत्र में अपूर्व वृद्धि हुई है और भौतिकी, जीव-विज्ञान और सामाजिक विज्ञान की मूलभूत संकल्पनाओं (कन्सेप्शन्स) को नए रूप में प्रस्तुत किया गया है; इससे स्कूलों के वर्तमान कार्यक्रमों का अधूरापन बहुत ही स्पष्ट हो गया है। मुख्य-मुख्य विद्याओं (डिसिप्लिन्स) की दृष्टि से स्कूल और विश्वविद्यालय के बीच बड़ी खाई बनी हुई थी अब वह विज्ञान की शीघ्र प्रगति से और भी बड़ी हो गई है। दूसरी बात यह है कि साधारण माध्यमिक स्कूल में दी जाने वाली शिक्षा की प्रकृति और अवधि से सम्बन्ध में शिक्षाशास्त्री फिर से विचार कर रहे है। सामान्यतः, विशेषज्ञों की राय है कि सामान्य शिक्षा की अवधि बढ़ा दी जाए और विशेषीकरण स्कूल पाठ्यक्रम की पिछली अवस्था पर शुरू किया जाए। इसके अतिरिक्त स्कूल पाठ्यचर्या में एक ओर इतने विषय भर गए है कि अब और विषय सम्मिलित करने की गुंजाइश नहीं रह गई है और दूसरी ओर यह आवश्यक हो गया है कि अधिकाधिक महत्व के विषय सम्मिलित कर लिए जाएं; इस कारण यह अनुभव किया जा रहा है कि स्कूल-पाठ्यक्रम में बहुत सी बेकार बातें घुस आई हैं जिन्हें बिना हानि के निकाला जा सकता है। यह भी अनुभव किया जा रहा है कि अत्यावश्यक ज्ञान की शिक्षा के लिए अधिक गतिशील और उत्प्रेरक पद्धतियां विकसित की जा सकती हैं। इन सब महत्वपूर्ण कारणों से स्कूल-पाठ्यक्रम में सुधार के लिए अधिकाधिक दबाव डाला जा रहा है।

8.02. विदेशों में पाठ्यचर्याओं का अद्भुत विकास हो रहा है। इस पृष्ठभूमि में भारत की स्कूल-पाठ्यचर्या को देखने पर प्रतीत होगा कि वह बहुत ही संकुचित दृष्टि से तैयार की गई है और अधिकतर पुरानी पड़ गई है। शिक्षा एक तिहरी प्रक्रिया है जो ज्ञान देती है, योग्यता का विकास करती है और उचित रुचि, अभिवृत्ति और मूल्य सम्बन्धी भावना जाग्रत करती है। अधिकतर हमारे स्कूल और हमारे कालेज भी। इस प्रक्रिया के पहले भाग से अर्थात् ज्ञान देने से ही अपने को सम्बन्धित रखते हैं और यह कार्य भी संतोषजनक रीति से नहीं करते। पाठ्यचर्या में किताबी ज्ञान और रटने पर अधिक बल दिया जाता है, कार्य-कलापों तथा कार्य-अनुभवों की पर्याप्त व्यवस्था नहीं की जाती है और बाह्य व आन्तरिक परीक्षाओं को महत्व दिया जाता है। इसके अलावा उपयोगी कौशलों के विकास और उचित रुचियों अभिवृत्तियों और मूल्यों की भावना जगाने पर पर्याप्त बल नहीं दिया जाता है जिसके कारण पाठ्यचर्या न केवल आधुनिक ज्ञान से दूर पड़ जाती है, अपितु लोगों के जीवन से भी उसका सम्बन्ध कट जाता है। इसलिए इस बात की अत्यन्त आवश्यकता है कि स्कूल पाठ्यचर्या का स्तर ऊंचा उठाया जाए और उसमें आवश्यक सुधार किए जाएं।

पाठ्यचर्या के निर्माण से सम्बन्धित आवश्यक बातें

8.03. **पाठ्यचर्या के निर्माण के लिए आवश्यक क़दम**—पाठ्यचर्या में अब तक किए गए अधिकतर संशोधन तात्कालिक आवश्यकता को ध्यान में रख कर किए गए हैं। सामान्यतः उनसे पहले ध्यान-पूर्वक कोई अनुसंधान नहीं किया गया है, वे विशेष-ज्ञान पर पर्याप्त रूप से आधारित नहीं हैं और उनके बाद अध्ययन सामग्री की तैयारी, अध्यापकों का अनुस्थापन (ओरियंटेशन), आवश्यक वस्तुओं की सुविधा आदि आवश्यक, सहायक कदम भी नहीं उठाए गए हैं। उससे भी बुरी बात यह कि पाठ्यचर्या का निर्माण राज्य-स्तर पर किया जाता है और उसे राज्य के सभी स्कूलों के लिए समान रूप से निर्धारित कर दिया जाता है। इस तरीके को अपनाने से मुख्याध्यापकों और अध्यापकों की स्वतन्त्रता मारी जाती है और प्रायोगिक कार्य बिल्कुल असम्भव हो जाता है। इसके अतिरिक्त, इससे पाठ्यचर्या में संशोधन करना कठिन हो जाता है और वह संशोधन भी लम्बे अर्से के बाद ही हो पाता है। यह समस्या शिक्षा के क्षेत्र में सभी अवस्थाओं पर सामने आती है परन्तु स्कूल अवस्था पर यह और भी विषम बन गई है। स्कूल-शिक्षा की इसी कमी के कारण कालेजों का एक ऐसे काम के लिए समय देना पड़ता है जो उनका अपना नहीं अपितु स्कूल का कर्त्तव्य होता है। और फिर, उच्चतर शिक्षा की वस्तु तब तक गहन नहीं बनाई जा सकती जब तक स्कूल की पाठ्यचर्या का स्तर ऊंचा न कर दिया जाए और उसे छात्रों की समस्त शक्तियों को असली अर्थों में परखने वाला न बना दिया जाए।

8.04. स्कूल पाठ्यचर्या के स्तर को ऊंचा करने लिए अनेक कदम उठाने पड़ेंगे। उनमें से मुख्य-मुख्य यहां दिए जाते हैं।

(1) **पाठ्यचर्या में अनुसंधान**—पहला है, व्यवस्थित रूप से पाठ्यचर्या के सम्बन्ध में अनुसंधान करना ताकि जल्दी में, अव्यवस्थित रूप से और थोड़ा-थोड़ा करके पाठ्यचर्या में संशोधन न कर, जैसा कि प्रायः आजकल राज्यों में होता है, विशेषज्ञों की खोजों के आधार पर,

समन्वित सुधार कार्यक्रम के रूप में संशोधित किया जाए। ऐसे अनुसंधान की सुविधाएं विश्वविद्यालयों, माध्यमिक शिक्षण कालेजों, राज्य की शिक्षा संस्थाओं और राज्य के स्कूल शिक्षा बोर्डों में उपलब्ध होनी चाहिए। यदि राज्य के स्कूल-शिक्षा बोर्ड में पाठ्यचर्या के विशेषज्ञ हों जो राज्य मूल्यांकन संगठन और राज्य शिक्षा संस्थानों के निकट सहयोग में काम कर सकें तो और भी अच्छा हो।

(2) **पाठ्यपुस्तकें और शिक्षण साधन तैयार करना**—पाठ्यचर्या में सुधार के किसी भी प्रयत्न की सफलता का आधार उचित पाठ्यपुस्तकें, शिक्षक-गाइडें, और पढ़ाने और सीखने की अन्य सामग्रियां हैं। ये चीजें स्कूल के हित को ध्यान में रख कर नए कार्यक्रमों की विषय-वस्तु और उनके उद्देश्य निर्धारित करती है और शिक्षक और छात्र के वास्तविक साधन होने के कारण प्रस्तावित परिवर्तनों को सारवान बनाती हैं।

(3) **शिक्षकों की अन्तःसेवा शिक्षा**—इसके अतिरिक्त शिक्षक को नई पाठ्यचर्या की मुख्य विशेषताएं समझाना भी आवश्यक है ताकि शिक्षक की क्षमता विकसित की जा सके, शिक्षण कौशल में उन्नति लाई जा सके और आज की परिवर्तित परिस्थिति से सम्बन्धित पढ़ाने और सिखाने की प्रक्रिया की अधिक सूक्ष्मता से समझा जा सके। इसलिए शिक्षकों की संशोधित पाठ्यचर्या में अनुस्थापित (ओरियन्टेड) करने के लिए अन्तःसेवा शिक्षा का एक विस्तृत कार्यक्रम बनाया जाए जिसमें सेमिनार और पुश्चर्या-पाठ्यक्रम का भी आयोजन हो।

8.05. **उपलब्ध सुविधाओं से पाठ्यचर्या का सम्बन्ध बैठाना**—पाठ्यचर्या का शिक्षकों की कोटि, स्कूल में उपलब्ध सुविधाओं और छात्रों की सामाजिक और आर्थिक पृष्ठ भूमि के अनुकूल उनकी आवश्यकताओं से सम्बन्ध बैठाना चाहिए। इन विषयों की दृष्टि से हर संस्था में बड़ा अन्तर होता है। परिणामतः औसत स्कूल की आवश्यकता की पूर्ति के लिए बनाई गई राज्य सरकार की एकमात्र पाठ्यचर्या राष्ट्र की विभिन्न संस्थाओं के लिए बेकार सिद्ध हो जाती हैं। एक ओर वह कमजोर संस्थाओं की पहुंच के बाहर सिद्ध होती है तो दूसरी ओर अच्छी संस्थाओं के लिए उनका स्तर बहुत नीचा सिद्ध होता है। समस्या का परिहार इसमें है कि स्कूलों को अपनी ही आवश्यकता के अनुसार पाठ्यचर्याएं बनाकर प्रयोग में लाने और उन्हें उन्नत बनाने के लिए एक दूसरे से होड़ करने दिया जाए।

8.06. **प्रायोगिक पाठ्यचर्याएं अपनाने के बारे में स्कूलों को स्वतन्त्रता**—स्वतन्त्रता देने से पहले दो बातों का होना आवश्यक है। पहली बात तो यह है कि स्कूलों को प्रायोगिक पाठ्यचर्याएं परीक्षण के रूप में काम में लाने दी जाएं। सामान्य नियम यह होना चाहिए कि यदि किसी स्कूल ने पाठ्यचर्या तैयार कर विभाग की पूर्व अनुमति से उसे अपना न लिया हो तो उस स्कूल को चाहिए कि वह विभाग द्वारा विधारित सामान्य पाठ्यचर्या अपनाए। ऐसी व्यवस्था इस समय भी कुछ राज्यों में मिलती है लेकिन, वह केवल कागज पर ही है। अनेक स्कूल इस स्वतन्त्रता का लाभ उठाने की न तो हिम्मत करते हैं और न उनमें उसकी योग्यता ही हैं। और जो स्कूल पाठ्यचर्या के सम्बन्ध में साहसपूर्वक नए कदम उठाते हैं उनका उत्साह शैक्षिक-प्रशासन की कल्पना-हीनता और अस्थिर बुद्धि के कारण ठंडा पड़ जाता है। परीक्षणों को बढ़ावा देने के लिए स्कूलों में अधिक पहल शक्ति (इनिशियेटिव) और योग्यता तथा शिक्षा विभाग में अधिक उदार मनोवृत्ति होनी चाहिए। शिक्षण-प्रशिक्षण संस्थाएं जिनके अन्तर्गत नमूना-स्कूल या निदर्शन-स्कूल (डिमोस्ट्रेशन-स्कूल) चल रहे हैं इस विषय में अगुआ बन सकती हैं। यही बात विशिष्ठ विश्वविद्यालयों द्वारा प्रायोगिक स्कूलों में की जा सकती हैं। विश्वविद्यालयों को चाहिए कि वे स्कूल-शिक्षा की कोटि में सुधार करने के लिए उन स्कूलों को स्वयं चलाएं। हमने ऐसी सिफ़ारिश भी की है।

8.07. **उच्च पाठ्यचर्याओं को क्रमिक रूप से लागू करना**—इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि राज्य स्कूल शिक्षा बोर्ड उच्च पाठ्यचर्याएं बनाकर क्रमिक कार्यक्रम के रूप में अनेक वर्षों में उन्हें सभी स्कूल और विषयों में लागू करें। इस प्रयोजन के लिए बोर्ड को उच्च और साधारण दो पाठ्यचर्याएं बनानी चाहिए। सामान्य पाठ्यचर्या सभी स्कूलों के लिए समान होनी चाहिए। उच्च पाठ्यचर्या ऐसी होनी चाहिए जिसे इस समय केवल अच्छे स्कूल ही अपना सकें; लेकिन वह अब कुछ समय बाद—लगभग साल बाद—संभवतः साधारण पाठ्यचर्या बन जाएगी। उदाहरण के लिए, हमने अध्याय दो में यह सिफ़ारिश की है कि इस समय दसवीं कक्षा के अन्त में बाह्य परीक्षा में जिस स्तर तक पहुंचा जाता हैं उसे लगभग दस साल की की अवधि में क्रमशः बढ़ाया जाए और वर्तमान उच्चतर माध्यमिक स्तर पर (अर्थात् ग्यारहवीं कक्षा के अन्त में प्राप्त होने वाले स्तर पर) पहुंचाया जाए। इस सिफ़ारिश के अनुसार, कक्षा एक से दस तक की वर्तमान पाठ्यचर्या साधारण पाठ्यचर्या होगी और इन्हीं कक्षाओं के लिए प्रस्तावित पाठ्यचर्या (जिसकी विषय वस्तु उच्चतर माध्यमिक स्तर की कर दी गई है) उच्च पाठ्यचर्या होगी। यह केवल उदाहरण के लिए दिया गया है; हम इस

बात पर बल देना चाहेंगे कि उच्च पाठ्यचर्या से हमारा तात्पर्य यह नहीं है कि सामान्यतः उच्च कक्षाओं के लिए निर्धारित विषय पढ़ाए जाएं। इसका यह भी आशय हो सकता है कि किसी विषय का अध्ययन साधारण पाठ्यचर्या में जितना गहराई से हो रहा है उससे अधिक गहराई से हो।

8.08. राज्य-स्कूल शिक्षा-बोर्डों की शिक्षकों की योग्यता और क्षमता तथा आवश्यक सुविधाओं को ध्यान में रखते हुए किसी विषय में उच्च पाठ्यक्रम लागू करने की शर्तें निर्धारित कर देनी चाहिए। जो स्कूल इन शर्तों को पूरा करें उन्हें उच्च पाठ्यचर्या चालू करने की अनुमति दी जानी चाहिए। दूसरे स्कूल तो केवल साधारण पाठ्यचर्या ही चलाएंगे। उच्च पाठ्यचर्या लागू करने के लिए निम्नलिखित कदम उठाने पड़ेंगे :

— यह जरूरी नहीं है कि स्कूल सभी विषयों में उच्च पाठ्यचर्या अपनाएं। शुरू-शुरू में एक या दो विषय लिए जा सकते हैं, और फिर धीरे-धीरे सुविधा के अनुसार सुयोजित कार्यक्रम के रूप में और अधिक विषय या सारा पाठ्यक्रम समेटा जा सकता है।

— जिस स्कूल में उच्च पाठ्यचर्या अपनाई नहीं गई हो वहां अगर छात्र चाहें तो उन्हें निजी रूप से उच्च पाठ्यचर्या के लिए तैयारी करने की छूट होनी चाहिए।

— स्कूल शिक्षा बोर्ड को बाहरी परीक्षाओं में उच्च और साधारण दोनों ही पाठ्यचर्याओं में छात्रों की परीक्षा लेने की व्यवस्था करनी चाहिए।

— प्रारम्भ में जो स्कूल उच्च पाठ्यचर्या अपनाने को तैयार हों (या सहायता देने पर थोड़े ही समय में तैयार हो सकते हों) उनमें विज्ञान, गणित, भाषा जैसे, कम से कम, कुछ विषयों में उच्च पाठ्यक्रम लागू किए जा सकते हैं।

— कालान्तर में, योग्य शिक्षक उपलब्ध करा कर और आवश्यक सुविधाएं देकर अधिकाधिक स्कूलों को उच्च पाठ्यक्रम अपनाने में सहायता दी जानी चाहिए। प्रतिवर्ष इस प्रकार के 'आकांक्षी' स्कूल खोज निकालने चाहिए और उन्हें 'उच्च' पाठ्यचर्या के निर्माण के लिए आवश्यक सहायता दी जानी चाहिए। इस सहायता का एक आवश्यक अंग नए पाठ्यक्रमों के अनुसार शिक्षण देने में समर्थ शिक्षक तैयार करना है।

इस प्रकार के पाठ्यक्रम में, उत्तरोत्तर अधिकतर स्कूलों और लगभग सभी स्कूल-विषयों को सम्मिलित कर, उनमें उच्च पाठ्यक्रमों को लागू करते जाना संभव हो सकेगा। एक बार इस पाठ्यक्रम के लागू कर दिए जाने पर अनेक स्कूलों में उच्च पाठ्यक्रमों को लागू करने के बारे में स्वस्थ स्पर्धा का जन्म होगा और यह बात प्रतिष्ठा की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण होगी। यदि इस उत्साह का उचित रूप से लाभ उठाया जाए और इसे बढ़ावा दिया आए तो, कुछ समय बाद सभी संस्थाओं में पाठ्यचर्या का स्तर ऊपर उठ जाएगा और तब तक एक और उच्चतर उद्देश्य को सामने रखकर यह सारी प्रक्रिया फिर दुहराई जा सकेगी। इस प्रकार हमारे पास एक ऐसी शिक्षा प्रणाली होगी जिसमें स्वतः प्रगति करने के साधन जुटे होंगे और ये साधन स्कूल शिक्षा से सम्बन्धित सभी बातों को लगातार गंभीरतर बनाते रहेंगे।

8.09. **विषय-अध्यापक संस्था**—हम यह चाहेंगे कि राज्य-सरकारें विभिन्न स्कूल-विषयों के लिए विषय-अध्यापक-संस्थाएं बनाने के कार्य को प्रोत्साहन दें। इससे पहल शक्ति को और प्रयोग करने की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिलेगा और अधिक अच्छी शिक्षण सामग्रियों और शिक्षण तथा मूल्यांकन की सुधरी तकनीकों के प्रयोग के द्वारा पाठ्यचर्या को संशोधित और उन्नत बनाने में सहायता मिलेगी। राज्य स्कूल शिक्षा बोर्डों के माध्यम से काम करने वाले राज्य शिक्षा विभागों की यह जिम्मेदारी होनी चाहिए कि वे विषय-अध्यापक संस्था की सहायता करें ताकि विषय-अध्यापक-संस्थाएं नियतकालिक सेमिनार और सभाएं चलाया करें और अपनी ही पत्रिकाएं निकालें जिनमें से अधिकतर स्वभावतः प्रान्तीय भाषाओं में होंगी। राष्ट्रीय शिक्षा अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् को चाहिए कि वह राज्य स्तर की प्रत्येक संस्था के बीच समन्वय स्थापित करे, अखिल भारतीय विषय-अध्यापक-संस्थाएं बनाने में और भारत में सब जगह अध्यापकों के उपयोग के लिए हिन्दी और अंग्रेजी में राष्ट्रीय स्तर पर पत्रिकाएं निकालने में सहायता दे।

पाठ्यचर्या का संगठन करना

8.10. **पहले दस वर्षों की पाठ्यचर्या**—अब हम स्कूल-शिक्षा के उद्देश्यों तक पहुंचने के लिए पाठ्यचर्या के संगठन की मोटी-मोटी विशेषताओं पर विचार करेंगे। जैसा कि हमने अन्यत्र बताया है, स्कूल-शिक्षा के पहले

सात वर्षों में सबके लिए सामान्य शिक्षा का एक अविभाजित पाठ्यक्रम निर्धारित होना चाहिए। जो छात्र सातवीं कक्षा के बाद भी अपनी पढ़ाई जारी रखते हैं उनसे यह आशा की जाती है कि 20 प्रतिशत को पूर्ण-कालिक या अंश-कालिक व्यावसायिक शिक्षा दी जा सकेगी; उसके विस्तार और प्रकृति की चर्चा पिछले अध्याय में की गई हैं। हमारे विचार से बचे हुए 80 प्रतिशत छात्रों को अगले तीन वर्षों तक पाठ्यक्रम में बिना विभाजन के, सामान्य शिक्षा मिलती रहनी चाहिए; लेकिन दो स्तरों के पाठ्यक्रमों की और विविध रचनात्मक कार्यकलापों में से तथा विविध कार्य-अनुभवों में से किसी एक के चुनाव की व्यवस्था होनी चाहिए। दूसरे शब्दों में अधिकांश छात्रों के लिए पहली कक्षा से दसवीं कक्षा तक पाठ्यचर्या की एक ही अविच्छिन्न धारा चलेगी जिसकी समाप्ति पहली बाह्य या सार्वजनिक परीक्षा से होगी और इस सामान्यक्रम में किसी प्रकार का धारांकन (स्ट्रीमिंग) या विशेषीकरण नहीं होगा।

8.11. **बहूद्देश्य स्कूलों की योजना**—ध्यान देने पर यह मालूम पड़ेगा कि यह माध्यमिक शिक्षा आयोग द्वारा सिफ़ारिश की गई उच्चतर माध्यमिक शिक्षा की योजना से, जो कि पिछले दस सालों से कुछ राज्यों मे क्रियान्वित है, भिन्न हैं। इस योजना के अनुसार यह आवश्यक था कि आठवीं कक्षा की समाप्ति पर पाठ्यक्रम के विविधीकरण की और नौवीं से दसवीं तक के छात्रों के लिए विविध पाठ्यक्रमों की व्यवस्था की जाए। अनेक बहूद्देश्य उच्चतर माध्यमिक स्कूल खोले गए हैं जिनमें, अन्तिम तीन कक्षाओं में छात्रों के लिए ऐच्छिक विषयों के विभिन्न समूहों की व्यवस्था की गई है। छात्रों को उनके ऐच्छिक समूह के अनुसार वर्गों में विभक्त कर दिया जाता है और चुने हुए समूहों की दृष्टि से अगली शिक्षा के लिए मौका देने का निर्णय किया जाती है।

8.12. शिक्षा प्रणाली[1] की संरचना पर बातचीत करते हुए हमने उच्चतर माध्यमिक पद्धति की आधारभूत त्रुटियों की ओर संकेत किया था। बहूद्देश्य स्कूलों में, जिन्हें वास्तव में बहुपक्षीय स्कूल कहना चाहिए, ये त्रुटियां और भी गंभीर रूप में उपस्थित हो जाती हैं। इन स्कूलों में प्रवेश पाने वाले अधिकांश छात्रों का उद्देश्य केवल यह होता है कि आगे विश्वविद्यालय में भी अपना अध्ययन जारी रखें। परिणामतः, कला और कृषि जैसे वर्गों को और तकनीकी वर्ग को भी मुश्किल से कोई छात्र लेता है, सभी छात्र विज्ञान पाठ्यक्रम की मांग करते हैं। हमारी वर्तमान आर्थिक स्थिति में, 'सामान्य शिक्षा' के स्कूलों में, छोटे-छोटे छात्र समूहों की विशेष रुचियों की पूर्ति करने वाले बहुत से खर्चीले पाठ्यक्रमों को निर्धारित नहीं किया जा सकता। विद्यमान बहूद्देश्य स्कूलों में चुने जाने वाले विषयों के विभिन्न समूहों के विश्लेषण से पता लगेगा कि ऐसे स्कूल बहुत ही कम हैं जहां तीन विविधीकृत समूह हैं, इस प्रकार जिन अनेक मुख्य उद्देश्यों से विविधीकरण की योजना चालू की गई थी उनमें से एक उद्देश्य की अर्थात् विभिन्न रूचियों, अभिवृत्तियों और किशोर-छात्रों की रुचियों के अनुकूल विभिन्न पाठ्यक्रम की व्यवस्था करने की शर्त की पूर्ति नहीं हुई हैं।

8.13. इस योजना की एक बड़ी कमजोरी यह हैं कि विशेषीकरण बहुत जल्दी शुरू हो जाता है। हमने ऐसे स्कूल देखे हैं जहां 13 या 14 वर्ष की आयु में छात्रों को पूर्व-इन्जीनियरी या पूर्व-डाक्टरी वर्गों में बांट दिया जाता है। नौवीं कक्षा से आए छात्रों को इस प्रकार विशेषीकृत वर्गों में बांटना अनुचित है। पहले[2] हमने कहा है कि माध्यमिक शिक्षा के बारे में विश्व में सब जगह यह प्रवृत्ति है कि सामान्य शिक्षा की अवधि को बढ़ा दिया जाता है और विविधीकरण और विशेषीकरण को माध्यमिक शिक्षा की उच्च अवस्था के लिए छोड़ दिया जाता है। इसलिए हमारी सिफ़ारिश है कि गैर-व्यावसायिक स्कूलों में स्कूल शिक्षा के पहले दस वर्षों तक सामान्य शिक्षा की समान पाठ्यचर्या की व्यवस्था की जाए और पाठ्यक्रम का विविधीकरण तथा विशेषीकरण उच्चतर माध्यमिक अवस्था पर ही शुरू किया जाए।

8.14. **विभिन्न अवस्थाओं पर उपलब्धि का स्तर**—पहले दस साल की पढ़ाई में अवर प्राथमिक के चार साल, उच्च प्राथमिक के तीन साल और अवर माध्यमिक के तीन साल सम्मिलित हैं। इस दस साल की पाठ्यचर्या में अध्ययन का क्रम कहीं टूटना नहीं चाहिए। लेकिन प्रत्येक उप-अवस्था की समाप्ति पर ज्ञान की प्राप्ति का स्तर स्पष्ट कर दिया जाना चाहिए। स्कूल शिक्षा के समग्र उद्देश्य को ध्यान में रखकर ज्ञान, कौशल, योग्यता और अभिवृत्ति की दृष्टि से प्राप्ति के स्तर स्पष्ट किए जाने चाहिए।

8.15. अवर प्राथमिक अवस्था (पहली से चौथी कक्षा) तक बच्चे को पढ़ने, लिखने और गिनने जैसे सीखने के आधारभूत साधनों के बारे में शिक्षा मिलनी

1. अध्याय दो।
2. वही।

चाहिए और अपने भौतिक और सामाजिक पर्यावरणों के प्रारम्भिक अध्ययन के द्वारा उसे अपने पर्यावरण से अपने-आप को समंजित करना सीखना चाहिए। उसे ऐसे क्रिया-कलापों में भाग लेना चाहिए जो उसके निर्णात्मक और सृजनात्मक योग्यताओं को विकसित करें और उसे स्वस्थ जीवन की आदतें सिखाएं। इस अवस्था में मातृभाषा का दृढ़ आधार रखने के लिए पहले चार सालों में मातृभाषा के सिवाय और कोई भाषा नहीं सिखाई जानी चाहिए। बच्चे की वृद्धि और विकास के साथ-साथ इन कक्षाओं की पाठ्य-चर्या में भी क्रमशः विस्तार और विकास होता रहना चाहिए।

8.16. उच्चतर प्राथमिक अवस्था (पांचवीं से सातवीं कक्षा) में मातृ-भाषा के साथ दूसरी भाषा भी सिखाई जानी चाहिए, गणित में अधिक कठिन सवाल करने की योग्यता विकसित होनी चाहिए, पर्यावरण सम्बन्धी कार्य-कलापों से प्राकृतिक और भौतिक विज्ञान, इतिहास भूगोल और नागरिक ज्ञान की ओर प्रगति की जानी चाहिए, निर्माणात्मक और सृजनात्मक योग्यता, सरल कला और कौशल के अभ्यास का आधार बननी चाहिए और स्वस्थ-जीवन का अभ्यास शारीरिक शिक्षा की नींव बननी चाहिए।

8.17. माध्यमिक अवस्था पर पाठ्यचर्या से किशोर की आवश्यकताओं की पूर्ति होनी चाहिए और परिपक्वता प्राप्त होने पर जिस प्रजातंत्रात्मक समाज में उसे नागरिक के समान जीवन बिताना है उस समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति होनी चाहिए। प्रजातांत्रिक नागरिकता की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विशिष्ट कौशल, अभिवृत्तियां और चारित्रिक विशेषताएं, जैसे सुलझे विचार, अपने साथियों से अपने भावों को सरलता से व्यक्त करने की योग्यता, वैज्ञानिक अभिवृत्ति, सच्ची देशभक्ति की भावना और उत्पादक काम के मूल्य को समझने की शक्ति आदि जरूरी हैं। माध्यमिक स्कूल पाठ्यचर्या में इन आदतों, अभिवृत्तियों और योग्यताओं को पैदा करने में समर्थ शैक्षिक तत्व होने चाहिएं। किशोरावस्था में छात्र का केवल ज्ञानार्जन और बौद्धिक योग्यता की उन्नति ही नहीं होनी चाहिए अपितु उसके व्यक्तित्व के शारीरिक, भावानात्मक, सौन्दर्य-विषयक और नैतिक पहलुओं का भी पूर्णरूप से विकास होना चाहिए। इसलिए, पाठ्यचर्या में शारीरिक शिक्षा, कला-कौशल, संगीत, नृत्य जैसे विषय और नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों को शिक्षा के कार्यक्रमों की अधिक अच्छी व्यवस्था की जानी चाहिए।

8.18. मोटे तौर पर, जिन विषयों को हम पाठ्यचर्या का विषय-क्षेत्र मानते हैं उन्हें नीचे दे रहे हैं और इसके बाद प्रत्येक उपअवस्था की पाठ्यचर्या की विशेषताओं पर चर्चा करेंगे।

(1) **अवर प्राथमिक अवस्था (कक्षा एक से चार तक)**

(क) एक भाषा—मातृभाषा या प्रादेशिक भाषा।

(ख) गणित।

(ग) पर्यावरण का अध्ययन (तीसरी कक्षा और चौथी कक्षा में विज्ञान और सामाजिक अध्ययन सम्मिलित हों।)

(घ) सृजनात्मक कार्यकलाप।

(ङ) कार्य-अनुभव और सामाजिक सेवा।

(च) स्वास्थ्य-शिक्षा।

(2) **उच्चतर प्राथमिक अवस्था (कक्षा पांच से सात तक)**

(क) दो भाषाएं—(i) मातृभाषा या प्रादेशिक भाषा (ii) हिन्दी या अंग्रेजी।

टिप्पणी—एक तीसरी भाषा (अंग्रेजी, हिन्दी या प्रादेशिक भाषा) ऐच्छिक रूप में पढ़ी जा सकती है।

(ख) गणित।

(ग) विज्ञान।

(घ) सामाजिक अध्ययन (या इतिहास, भूगोल और नागरिक-शास्त्र)।

(ङ) कला।

(च) कार्य-अनुभव और सामाजिक सेवा।

(छ) शारीरिक-शिक्षा।

(ज) नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा।

(3) **अवर माध्यमिक अवस्था (कक्षा आठ से दस तक)**

(क) तीन भाषाएं—अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में तीन भाषाएं सामान्यतः ये होंगी—(i) मातृभाषा या प्रादेशिक भाषा, (ii) उच्चतर या अवर स्तर पर हिन्दी, और (iii) उच्चतर या अवर स्तर पर अंग्रेजी। हिन्दी भाषी क्षेत्रों में तीन भाषाएं ये होंगी—(i) मातृभाषा या प्रादेशिक भाषा, (ii) अंग्रेजी (या,

अगर मातृभाषा के रूप में अंग्रेजी लेली गई हो तो हिन्दी और (iii) हिन्दी को छोड़कर अन्य कोई आधुनिक भारतीय भाषा ।

(टिप्पणी—ऐच्छिक विषय के रूप में उपर्युक्त भाषाओं के अतिरिक्त एक प्राचीन भाषा भी ली जा सकती है ।)

(ख) गणित ।
(ग) विज्ञान ।
(घ) इतिहास, भूगोल और नागरिक शास्त्र ।
(ङ) कला ।
(च) कार्य-अनुभव और सामाजिक सेवा ।
(छ) शारीरिक शिक्षा ।
(ज) नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा ।

8.19. **अवर प्राथमिक अवस्था पर पाठ्यचर्या**—हम दूसरे अध्याय में सुझाव दे चुके हैं कि प्राथमिक स्कूल की पहली दो कक्षाओं का एक ही एकक के रूप में वर्गीकरण करना चाहिए और जहां भी संभव हो यही व्यवस्था तीसरी और चौथी कक्षा में भी कर दी जानी चाहिए । इन कक्षाओं के लिए प्रस्तावित पाठ्चर्या बहुत सरल है और उससे नियमित (फार्मल) विषयों का भार कम हो जाता है । सीखने के आधारभूत साधन को विकसित करने की दृष्टि से, केवल भाषा और प्रारम्भिक गणित पर विशेष जोर देना चाहिए । पर्यावरण का अध्ययन शुरू में अधिकतर अनियमित होगा और बच्चा अपने अतिनिकट के सामाजिक और नैतिक पर्यावरण को ध्यान से देखकर और जो कुछ देखा है उस पर कक्षा में बातचीत कर अपना ज्ञान बढ़ाएगा । तीसरी कक्षा में पर्यावरण के अध्ययन से चलकर सामाजिक अध्ययन और विज्ञान तक पहुंचा जाएगा । अब इन विषयों की नियमित विषय समझा जा सकता है, किन्तु केवल प्रारम्भिक रूप में । यद्यपि सारी ही शिक्षा कार्यकलाप पद्धति से दी जाएगी फिर भी सृजनात्मक आत्म-प्रकाशन के लिए संगीत, कला-कार्य, नाट्यकला और हस्तशिल्प के रूप में विशेष कार्यकलापों का संगठन करना चाहिए । स्वास्थ्य शिक्षा द्वारा अच्छी स्वास्थ्य-संबंधी आदतों के बनने पर बल दिया जाना चाहिए । कार्य-अनुभव में अधिकतर हस्तशिल्प होना चाहिए और सामाजिक सेवा में कक्षा का कमरा साफ करना, स्कूल को सजाना आदि सरल कार्यकलाप होने चाहिए ।

8.50. इस अवस्था में हम मुख्य एक पहलू पर, अर्थात्, समझकर पढ़ने पर बल देना चाहते हैं । यदि इस स्तर पर इसका समुचित आधार नहीं रखा गया तो बच्चे की भविष्य की सारी शिक्षा को अपरिहार्य हानि होगी । प्रारम्भिक पठन में अनुसंधान, भारतीय भाषाओं की ध्वन्यात्मक लिपियों से छोटे लड़कों को पठन सिखाने की उचित पद्धति का विकास, वर्गीकृत शब्दावली की तैयारी पहली कक्षा के लिए प्राइमरें और रीडरें तैयार करना और पठन-तत्परता (रीडिंग रेडिनेस) और पठनक्षमता की जांचों का विकास इत्यादि की ओर अभी तक पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया है । इन विषयों में प्राथमिक स्तर पर शिक्षक-अध्यापकों (टीचर एजुकेटर) के उचित प्रशिक्षण को संगठित करना संभव नहीं हो पाया है और सामान्यतः प्राथमिक शिक्षक पठन को परम्परागत तरीके से पढ़ाने का प्रयत्न करते हैं । इस महत्वपूर्ण क्षेत्र की अवहेलना के कारण ही आज अवर प्राथमिक अवस्था पर इतनी अगति दीख पड़ती हैं । हम सिफ़ारिश करते हैं कि इन समस्याओं के अध्ययन का कार्य गंभीरता से शुरू कर दिया जाए और देश के सभी भागों में अवर प्राथमिक अवस्था पर पठन शिक्षण के सुधार का जोरदार कार्यक्रम बनाया जाए ।

8.21. **उच्चतर प्राथमिक अवस्था पर पाठ्यचर्या**—छात्र के उच्चतर प्राथमिक अवस्था पर पहुंचने पर, पृथक्-पृथक् विषयों पर बल दिए जाने के कारण पढ़ाई अधिक व्यवस्थित हो जाएगी । पाठ्यचर्या विषय-क्षेत्र की दृष्टि से विस्तृत और विषय-वस्तु की दृष्टि से सहन बन जाएगी । शिक्षण पद्धतियां पहले की अपेक्षा अधिक प्रणाली बद्ध हो जाएंगी और प्राप्ति का स्तर अधिक विशिष्ट और स्पष्ट बन जाएगा ।

8.22. अब एक दूसरी भाषा, चाहे वह हिन्दी हो या अंग्रेजी, शुरू करनी होगी ताकि सातवीं कक्षा के अन्त तक इन सम्पर्क भाषाओं में से किसी एक का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त हो सके । यद्यपि इस अवस्था में केवल दो भाषाएं अनिवार्य होंगी, फिर भी, यदि कोई छात्र चाहे तो तीन भाषाएं भी पढ़ सकता है; ये भाषाएं प्रादेशिक भाषा, हिन्दी, और अंग्रेजी होंगी । प्रत्येक स्कूल में तीसरी भाषा के पढ़ाने की व्यवस्था अवश्य करनी होगी । गणित और विज्ञान पर पहले से अधिक बल दिया जाएगा । यदि सक्षम शिक्षक और आवश्यक सुविधाएं उपलब्ध हों तो सामाजिक अध्ययन एक ही विषय के रूप में जारी रखा जाएगा; अन्यथा इतिहास, भूगोल और नागरिक शास्त्र को अलग-अलग विधाओं के रूप में पढ़ाया जाएगा । कला और हस्तशिल्प अधिक महत्वपूर्ण बन जाएंगे । हस्तशिल्प कार्य-अनुभव के अंग रूप में रहेगा और शारीरिक शिक्षा

तथा खेलकूद का अपना-अपना स्थान होगा। छात्रों के चरित्र ढालने और उनमें दूसरों के धर्मों के प्रति सम्मान की भावना पैदा करने के उद्देश्य से नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा देनी चाहिए जिसके लिए सप्ताह में एक या दो घंटे नियत कर देने चाहिए। अवर सामाजिक सेवा के कार्यकलापों में स्थानीय सामाजिक जीवन में भाग लेना सम्मिलित होना चाहिए।

8.23. **अवर माध्यमिक अवस्था पर पाठ्यचर्या**—पाँचवी, छठी और सातवीं कक्षाओं में पढ़े गए विषयों को अवर माध्यमिक अवस्था में जारी रखा जाएगा। लेकिन छात्रों की बढ़ती हुई परिपक्वता के साथ-साथ उनकी पढ़ाई में भी कठिनाई और गंभीरता आती जानी चाहिए। इधर कुछ वर्षों में वैज्ञानिक ज्ञान, इतिहास, भूगोल और नागरिक शास्त्र में हुई अभूतपूर्व उन्नति के कारण विज्ञान का विस्तृत और गहरा ज्ञान पाना विशेष रूप से महत्वपूर्ण बन जाता है। आधुनिक अन्य विषयों के साथ सहज और आवश्यक सहसम्बन्ध रखते हुए आधुनिक समस्याएं अलग से पढ़ाई जानी चाहिए। इस अवस्था में एक तीसरी भाषा—हिन्दी, अंग्रेजी या आधुनिक भारतीय भाषा—अनिवार्य रूप से सिखाई जानी चाहिए। कार्य-अनुभव का संगठन, यथा समय, किसी खेत, वर्कशाप या अन्य उत्पादन-स्थल पर किया जाएगा; प्रतिवर्ष कुछ नियत समय के लिए लगातार सामाजिक सेवा का कार्य चलाया जाएगा, और नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा अधिक व्यवस्थित रूप से दी जाएगी।

8.24. **उच्चतर माध्यमिक अवस्था पर पाठ्यचर्या**—हाई स्कूल की परीक्षा तक के स्कूल शिक्षण के पहले दस वर्षों की समाप्ति पर, सामान्यतः, छात्र की विशेष रुचियां और योग्यताएं बन चुकती हैं और उत्तम पथ-प्रदर्शन और अच्छी सलाह देकर अपने भविष्य के पेशे और शैक्षिक मार्ग के चुनाव में उसकी मदद की जानी चाहिए। इस अवस्था में एक विस्तृत और विविधीकृत व्यावसायिक शिक्षा कार्यक्रम की व्यवस्था की जानी चाहिए। प्रस्तावित नामांकन (एनरोलमेंट) नीति के अनुसार, जिसकी चर्चा पिछले अध्याय में की गई है, आशा है, दसवीं कक्षा के बाद भी पढ़ाई जारी रखने की इच्छा वाले छात्रों में से 50 प्रतिशत छात्र पूर्णकालिक या अंशकालिक व्यावसायिक पाठ्यक्रम लेंगे और बाकी 50 प्रतिशत छात्र सामान्य शिक्षा के पाठ्यक्रम लेंगे। इनमें से सामान्य शिक्षा के पाठ्यक्रमों को विविध रूपों में प्रस्तुत किया जाएगा ताकि छात्र, विशेष अध्ययन के लिए, अवर माध्यमिक स्तर पर किए जा चुके कार्य के आधार पर किन्हीं तीन विषयों के समूह का चुनाव कर सकें। विद्यमान उच्चतर माध्यमिक योजना की तरह, नए विविधीकरण का मुख्य उद्देश्य छात्रों की विशेष शैक्षिक रुचियों के विकास के लिए शिक्षण के अन्तिम दो वर्षों में मौके देना है।

8.25. लेकिन नई योजना और पुरानी योजना में दो मूल्य अन्तर हैं। पहला यह है कि भविष्य में, सामान्यतः तकनीकी, वाणिज्यिक और कृषि सम्बन्धी पाठ्यक्रमों और शायद कला और गृह विज्ञान के पाठ्यक्रम भी विशेष व्यावसायिक स्कूलों में पढ़ाए जाएंगे; इस कारण, चुने जाने वाले विषयों के विद्यमान सात वर्ग, वास्तव में कम हो जाएंगे और केवल कला और विज्ञान वर्ग ही रह जाएंगे। दूसरा यह है कि इन दो वर्गों में भी बारीक अन्तर नहीं रह जाएगा और विद्यमान पद्धति के आधार पर बना हुआ विषयों का यह वर्गीकरण भी नहीं रह पाएगा जिसमें कि छात्र को केवल एक ही समूह में से अपने तीन विषय चुनने पड़ते हैं, (मानो कोई एक मुश्त लेन-देन हो) और उसे एक वर्ग के चुने जाने वाले विषय को दूसरे वर्ग के ऐच्छिक विषय से जोड़ने की छूट नहीं होती। यद्यपि विज्ञान में विशेष रुचि रखने वाला छात्र सामान्यतः भौतिकी, रसायन और गणित या भौतिकी, रसायन और जीव विज्ञान जैसे तीन विज्ञान विषय चुनेगा, फिर भी, यदि वह चाहे तो उसे भौतिकी और गणित के साथ मनोविज्ञान या तर्कशास्त्र जैसा विषय लेने से भी रोकना नहीं चाहिए। इसी प्रकार यद्यपि सामान्यतः कला के विशेष पाठ्यक्रम चुनने के इच्छुक छात्र को कलावर्ग में से अंग्रेजी, इतिहास और भूगोल जैसे तीन विषय चुनने की छूट होगी, फिर भी, यदि वह चाहे तो उसे अंग्रेजी और इतिहास के साथ जीव विज्ञान जैसा विषय लेने से भी नहीं रोकना चाहिए। इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि विद्यमान उच्चतर माध्यमिक योजनाओं के सम्बन्ध में प्रस्तावित परिवर्तनों से इस समय नवीं, दसवीं और ग्यारहवीं कक्षा में उपलब्ध अनेक ऐच्छिक विषय भविष्य में सीमित हो जाएंगे। फिर भी नई ग्यारहवीं और बारहवीं कक्षाओं में सीमित क्षेत्र के अन्दर ही विषयों के वर्गीकरण के मामले में अधिक स्वतन्त्रता और ढील मिल सकेगी। चूंकि उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं में दी गई शिक्षा ऐसी होगी कि बहुत से छात्र विश्वविद्यालयों में पढ़ाई जारी रखना चाहेंगे, इसलिए हमारी उपर्युक्त सिफ़ारिश के अनुसार लचीले वर्गों में रखे हुए कला और विज्ञान के विषयों से अधिकांश छात्रों की आवश्यकताओं की पूर्ति होगी।

8.26. चुने जाने वाले तीन विषयों के अतिरिक्त उच्च अध्ययन के लिए छात्र को कोई दो भाषाएं चुननी होंगी। ये भाषाएं अवर माध्यमिक अवस्था पर पढ़ी गई

तीन भाषाओं में से कोई दो हो सकती हैं। इनमें पहले ली गई भाषा से भिन्न कोई आधुनिक भारतीय भाषा या कोई प्राचीन भाषा भी सम्मिलित की जा सकती है। जहाँ तक दो अनिवार्य भाषाओं का सम्बन्ध है, अधिकांश छात्रों के लिए वे भाषाएं हिन्दी या प्रादेशिक भाषा और अंग्रेजी होंगी। लेकिन हम इस मामले में कोई विशेष वर्गीकरण की सिफ़ारिश करना नहीं चाहते। भाषाओं के चुनाव की छूट छात्र के हाथ में होनी चाहिए। परन्तु यह तय है कि यह छूट जिस उच्चतर माध्यमिक स्कूल में छात्र प्रवेश लेगा उसमें भाषा अध्ययन के लिए दी गई सुविधाओं के अनुसार निश्चित की जाएगी। दूसरे अध्याय में हमने प्रत्येक भाषा प्रदेश में वहां की प्रादेशिक भाषा से भिन्न आधुनिक भारतीय भाषा के अध्ययन को बढ़ावा देने पर बल दिया है। हमने यह भी सिफ़ारिश की है कि सावधानी से चुने गए कुछ स्कूलों में अंग्रेजी से भिन्न किसी विदेशी भाषा के, विशेषकर रूसी भाषा के अध्ययन की व्यवस्था की जानी चाहिए। उच्चतर माध्यमिक अवस्था पर कुछ अच्छे स्कूल अपने पाठ्यक्रम में इस प्रकार की व्यवस्था करना चाहेंगे; और भाषा-पाठ्यचर्या में नए मार्ग के निर्माण में सम्बन्धित इस प्रयत्न में उन्हें प्रोत्साहन देना चाहिए।

8.27. ऊपर हमने किशोरावस्था के व्यक्तित्व के शारीरिक सौन्दर्य सम्बन्धी और नैतिक पहलुओं के विकास पर ध्यान देने की आवश्यकता की ओर संकेत किया है। शायद यह आवश्यकता किशोरावस्था के प्रारम्भिक वर्षों की अपेक्षा उच्चतर माध्यमिक स्तर पर अधिक होती है। नई व्यवस्था के अनुसार पाठ्यचर्या में केवल पांच विषय रह जाते हैं और इनमें से तीन के विशेषीकृत अध्ययन के लिए अधिक समय देने और कठोर प्रयत्न करने की आवश्यकता होती है; इन कारणों से यह और भी महत्वपूर्ण बन जाता है कि पाठ्यचर्या में एक पूरक तत्व सम्मिलित कर लिया जाए जो छात्र के व्यक्तित्व के पूर्ण विकास में प्रभावी रूप से योग दे। अवर माध्यमिक अवस्था की तरह, इसमें भी कार्य-अनुभव और सामाजिक सेवा की, कला और शिल्प की, खेलकूदों के साथ-साथ शारीरिक शिक्षा की और नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों की व्यवस्था की जानी चाहिए। पाठ्यचर्या सम्बन्धी समस्याओं पर चर्चा करते हुए, किसी भी अवस्था पर, विभिन्न विषयों के लिए समय नियत करने के बारे में हमने अपने सुझाव नहीं दिए हैं। लेकिन उच्चतर माध्यमिक अवस्था में, हम इस विषय में भिन्न मार्ग अपनाना चाहते हैं। चूंकि ऐसी आशंका है कि विशेषीकरण के विषयों के लिए समय सारणी में बहुत अधिक समय नियत कर दिया जाएगा। इसलिए, हम सुझाव देते हैं कि शिक्षण-काल का लगभग आधा भाग तीन चुने जाने वाले विषयों के लिए दिया जाना चाहिए, एक चौथाई समय दो भाषाओं के लिए और बचा हुआ एक चौथाई पूरक क्रियाकलापों या उपर्युक्त विषयों के लिए नियत किया जाना चाहिए।

8.28. **उच्चतर माध्यमिक पाठ्यक्रम में विषय क्षेत्र**—विद्यमान एक साल के उच्चतर माध्यमिक पाठ्यक्रम को जल्दी ही पुनर्गठित करना पड़ेगा ताकि वह दो साल चले। नीचे, हम विषय-क्षेत्र की एक सूची दे रहे हैं जिसे, हमारे विचार से, पाठ्यचर्या का अंग होना चाहिए। लेकिन यह सूची केवल सुझाव के रूप में है। उच्चतर माध्यमिक पाठ्यचर्या के सारे प्रश्न की विश्वविद्यालयों राज्य स्कूल शिक्षा बोर्डों और राज्य शिक्षा विभागों की एक विशेषज्ञ निकाय द्वारा सावधानी से जांच करनी होगी और उसके ब्योरे तैयार करने होंगे।

(1) कोई-सी दो भाषाएं, इनमें कोई एक आधुनिक भारतीय भाषा, कोई-सी आधुनिक विदेशी भाषा और कोई-सी प्राचीन भाषा सम्मिलित होगी।

(2) निम्नलिखित विषयों में से कोई तीन विषय—

(क) एक अतिरिक्त भाषा।
(ख) इतिहास।
(ग) भूगोल।
(घ) अर्थशास्त्र।
(ङ) तर्कशास्त्र।
(च) मनोविज्ञान।
(छ) समाजविज्ञान।
(ज) कला।
(झ) भौतिकी।
(ञ) रसायन।
(ट) गणित।
(ठ) जीवविज्ञान।
(ड) भूविज्ञान।
(ढ) गृह-विज्ञान।

(3) कार्य अनुभव और सामाजिक सेवा।
(4) शारीरिक शिक्षा।
(5) कला या शिल्प।
(6) नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा।

8.29. **विभिन्न अवस्थाओं पर उच्च और समृद्धि कार्यक्रम**—पिछले पैरा में हमने सुझाव दिया है कि राज्य शिक्षा विभागों को विभिन्न स्कूल-विषयों के उच्च-पाठ्यक्रम तैयार करने चाहिए और अच्छे स्कूलों को

चाहिए कि वे शुरू में एक या दो विषयों में परिवर्तन लाएं और अपनी सुविधाओं के अनुसार थोड़ा-थोड़ा करके समस्त स्कूल पाठ्यचर्या को समेटते हुए इन पाठ्यक्रमों को अपना लें। जहां किसी स्कूल के लिए किसी विषय के उच्च पाठ्यक्रम को किसी खास कक्षा के सारे छात्रों के लिए लागू करना कठिन भी हो, वहां वह स्कूल कुछ प्रतिभाशाली छात्रों को इस प्रकार के पाठ्यक्रम का लाभ उठाने दे सकती है। दूसरे, शब्दों में किसी अच्छे स्कूल में किसी खास अवस्था पर या किसी खास कक्षा में भी दो प्रकार की पाठ्यचर्याएं चल सकती है; एक सामान्य पाठ्यचर्या, जो औसत योग्यता वाले छात्रों के लिए होगी और दूसरी उच्च पाठ्यचर्या, जो बहुत कुशाग्र छात्रों के लिए होगी। इस संदर्भ में हम निम्नलिखित सिफ़ारशें करते हैं :

(1) प्राथमिक अवस्था पर अलग से उच्च पाठ्यक्रम की व्यवस्था करना कठिन है। इसलिए प्रतिभाशाली छात्रों के लिए समृद्धि कार्यक्रम बनाए जाने चाहिए ताकि उन्हें अपने अध्ययन से अपनी समस्त बौद्धिक शक्ति को आजमाने का और आत्मतुष्टि का अनुभव हो। ऐसे कार्यक्रम पांचवीं और छठी कक्षा से शुरू हो सकते हैं। उदाहरण के लिए यह कार्यक्रस अतिरिक्त विज्ञान के रूप में हो सकता है जिसमें अधिक पढ़ना पड़े, प्रायोगिक कार्य करने पड़ें और ज्ञान को वास्तविक जीवन से सम्बद्ध करना पड़े। इसका मतलब भाषा या कला में अतिरिक्त कार्य करना भी हो सकता है जिसकी परिणति सृजनात्मक आत्माभिव्यक्ति में होगी। समृद्धि कार्यक्रम की योजना शिक्षक और छात्र दोनों मिलकर बनाएं तो अधिक अच्छा हो। पाठ्यचर्या सामग्री में इन बातों के बारे में सामान्य मार्गदर्शन कराया जा सकता है और शिक्षक को भी विशेष प्रकार की कार्य-पुस्तकों के लिए और विषय क्लबों की स्थापना के लिए अतिरिक्त सहायता की आवश्यकता हो सकती है। इस कार्यक्रम के अन्दर आने वाले कार्य स्कूल के समय के पहले या बाद में भी किए जा सकते हैं।

(2) माध्यमिक अवस्था पर हम विविधीकृत पाठ्यक्रम के पक्ष में नहीं हैं। लेकिन हमारा सुझाव है कि सामान्य और उच्च, इन दो स्तरों पर पाठ्यक्रमों का संगठन किया जाए और उन्हें आठवीं कक्षा से शुरू किया जाए। विभिन्न विषयों में उच्च पाठ्यक्रमों की व्यवस्था की जाए और उन्हें पाठ्यचर्या में ऐच्छिक आधार पर सम्मिलित किया जाए। अवर माध्यमिक कक्षाओं में प्रारम्भ में गणित, विज्ञान और भाषाओं के उच्च पाठ्यक्रम शुरू किए जाने चाहिए। लेकित उच्चतर माध्यमिक अवस्था में सभी विशेषीकृत विषयों में ऐसे पाठ्यक्रम होने चाहिए। उच्चतर माध्यमिक स्कूल की परीक्षा में बैठने वाले छात्र को सामान्यतः दो से अधिक विषयों में उच्च पाठ्यक्रम की परीक्षा नहीं देनी चाहिए। प्रत्येक परिस्थिति के अनुसार स्कूलों को उच्च पाठ्यचर्याओं के संगठन के लिए विभिन्न व्यवस्थाएं (जिन बड़े बड़े स्कूलों में कक्षाएं अनेक भागों में बंटी हों वहां) जैसे, स्कूल के घंटों में नियमित शिक्षा देना, स्कूल के घंटों के पहले या बाद शिक्षा देना और शिक्षा के मार्ग-दर्शन के छात्रों द्वारा स्वयं पढ़ना आदि, करनी होंगी।

भाषाएं

8.30. अब हम उन विभिन्न विषय-क्षेत्रों पर या शैक्षिक-क्रिया-कलापों की विशेषताओं पर विचार करेंगे जिन्हें, हमारी राय से, विभिन्न अवस्थाओं में स्कूल-पाठ्यचर्या का अंग बनाना चाहिए। हम चर्चा के लिए केवल उन्हीं पहलुओं को लेंगे जिन पर हमारे राष्ट्रीय और शैक्षिक उद्देश्यों और स्कूल-शिक्षा के विशिष्ट लक्ष्यों की दृष्टि से प्रकाश डालने की आवश्यकता है।

8.31. **त्रिभाषा-सूत्र की उत्पत्ति**—1956 में केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड ने देश की आवश्यकताओं और संविधान के तकाजों को ध्यान में रखकर भाषा-शिक्षण की कठिन समस्या की विस्तार से चर्चा की। उसने 'त्रिभाषा-सूत्र' के नाम से एक सूत्र तैयार किया। 1961 में मुख्यमंत्रियों की बैठक में इस सूत्र को थोडा सरल बनाकर अनुमोदित किया गया। यह निर्णय शैक्षिक की अपेक्षा राजनैतिक और सामाजिक कारणों से अधिक प्रभावित था। 'तीसरी भाषा हिन्दी के बदले, जो अहिन्दी-भाषी क्षेत्रों में छात्रों के लिए अनिवार्य होगी, हिन्दी क्षेत्रों में (हिन्दी और अंग्रेजी के अलावा) छात्रों को एक और भारतीय भाषा पढ़नी चाहिएं', यह सिफ़रिश कर एक तरह से सूत्र ने हिन्दी और अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में भाषाओं के अध्ययनकी दृष्टि से समानता स्थापित कर दी।

8.32. **सूत्र की क्रियान्विति में कठिनाइयां**—व्यावहारिक रूप से त्रिभाषा-सूत्र की क्रियान्विति में अनेक कठिनाइयां उपस्थित हो गई हैं और यह बहुत सफल नहीं रहा है। इस स्थिति के कई कारण हैं जिनमें से कुछ मुख्य हैं—स्कूल पाठ्यचर्या में भाषा के भारी बोझ का सामान्य विरोध; हिन्दी-क्षेत्रों में एक अतिरिक्त आधुनिक भारतीय भाषा के अध्ययन के लिए अभिप्रेरण (मोटिवेशन) का अभाव; कुछ अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में हिन्दी के अध्ययन का विरोध; और, पांच से छः साल तक (छठी कक्षा से दसवीं या ग्यारहवीं कक्षा तक) दूसरी और तीसरी भाषा

के शिक्षण के लिए होने वाला भारी खर्च और प्रयत्न। गलत योजना बनाने और आधे दिल से सूत्र को क्रियान्वित करने से स्थिति और भी बिगड़ गई। इन नई हालतों के कारण इस क्रियान्विति पर जिसे अनुत्पादक कार्यक्रम माना जाएगा, बड़े पैमाने पर संसाधनों का अपव्यय हुआ है। जहां तक तीसरी भाषा का संबंध है, जिस अवास्तविक स्थिति में अधिकांश छात्रों ने इसका अध्ययन किया, और इस प्रयोजन के लिए जिस प्रकार अपर्याप्त सुविधाओं की व्यवस्था की गई, उनके कारण बहुत से क्षेत्रों में छात्रों को नाममात्र का ही लाभ हुआ है। अब वह समय आ गया है जबकि सारी स्थिति पर पुनर्विचार करके स्कूल-स्तर पर भाषाओं के अध्ययन के सम्बन्ध में नई नीति निर्धारित की जाए। अंग्रेजी को अनिश्चित काल के लिए भारत की सहचारी राज-भाषा के रूप में मान्यता प्राप्त हो जाने से यह बात और भी आवश्यक हो गई है।

8.33. **व्यावहारिक त्रिभाषा-सूत्र का आधार**— स्कूलों के लिए व्यावहारिक त्रिभाषा-सूत्र के निर्माण में निम्नलिखित मार्गदर्शी सिद्धान्तों से सहायता मिल सकती है।

(1) हिन्दी संघ की राज-भाषा है, और आशा है कालान्तर में वह देश की जन-भाषा बन जाएगी। अन्ततोगत्वा, भाषा-पाठ्यचर्या में मातृभाषा के बाद इसका ही स्थान होगा।

(2) जब तक अंग्रेजी विश्वविद्यालय-स्तर पर शिक्षा का मुख्य माध्यम और केन्द्र तथा अनेक राज्यों में प्रशासन की भाषा बनी रहेगी तब तक उसको ऊंचा स्थान मिलता रहेगा। विश्वविद्यालयों में प्रान्तीय भाषाओं के उच्चतर शिक्षा का माध्यम बन जाने के बाद भी सभी छात्रों के लिए अंग्रेजी का व्यावहारिक ज्ञान बहुत ही उपयोगी होगा और विश्वविद्यालय में प्रवेश पाने वालों के लिए उसमें काफी योग्य होना आवश्यक होगा।

(3) स्कूल में किसी भाषा के अध्ययन में कितनी योग्यता प्राप्त की जा सकती है यह बात केवल इस पर ही निर्भर नहीं है कि कोई भाषा कितने वर्षों तक सीखी जाती है, अपितु इस पर भी निर्भर है कि छात्र के सामने क्या अभिप्रेरण है, भाषा किस अवस्था पर सीखी जा रही है, तथा उपलब्ध शिक्षक और उपस्कर और शिक्षण-पद्धतियां किस प्रकार की हैं। उचित सुविधाओं के अभाव में लम्बी अवधि तक भाषा पढ़ाने से भी अच्छे परिणाम नहीं निकलते जबकि अनुकूल परिस्थितियों के होने पर कम समय में भी अच्छे परिणाम निकल सकते हैं। यद्यपि बहुत कम आयु में ही बच्चे को दूसरी भाषा सिखाने के पक्ष में तर्क दिए जा सकते हैं, लेकिन हमारे विचार से प्राथमिक स्कूलों में लाखों छात्रों को भाषा की शिक्षा देने के लिए योग्य शिक्षकों की व्यवस्था करना बहुत दुष्कर काम होगा।

(4) तीन भाषाओं के अध्ययन को अनिवार्य बनाने के लिए अवर माध्यमिक अवस्था (कक्षा आठ से दस तक) सबसें उपयुक्त प्रतीत होती है, क्योंकि, उस अवस्था पर भाषा की शिक्षा पाने वाले छात्रों की संख्या कम होती है और बेहतर सुविधाओं और शिक्षकों का प्रबन्ध किया जा सकता है। दों नई भाषाओं के शुरू करने में समय का अन्तर रखना भी वांछनीय है ताकि उनमें से एक उच्चतर माध्यमिक अवस्था में शुरू की जाए और दूसरी पहली-अतिरिक्त-भाषा पर कुछ सीमा तक अधिकार पा लेने के बाद, अवर माध्यमिक अवस्था में जबकि पहली अतिरिक्त भाषा पर छात्र का कुछ अधिकार हो गया हो। एक अच्छे स्कूल में, तीसरी भाषा का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए जीन साल तक का अनिवार्य अध्ययन, शायद काफी होगा; लेकिन ऐच्छिक आधार पर अधिक समय तक भी इसके पढ़ने का प्रबन्ध होना चाहिए।

(5) हिन्दी या अंग्रेजी को दूसरी भाषा के रूप में अनिवार्यतः किस अवस्था से शुरू किया जाए और वह कितनी अवधि तक सिखाई जाए, यह स्थातीय अभिप्रेरण और आवश्यकता पर निर्भर करता है, और इसे प्रत्येक राज्य के विवेक पर छोड़ देना चाहिए।

(6) किसी भी अवस्था पर चार भाषाओं का अध्ययन अनिवार्य नहीं होना चाहिए, लेकिन स्वेच्छा से चार या और भी अधिक भाषाओं के अध्ययन की सुविधाएं उपलब्ध होनी चाहिए।

8.34. इन कारणों से हम एक संशोधित या क्रमिक त्रिभाषा-सूत्र की सिफ़ारिश करते हैं जिसमें निम्नलिखित भाषाएं सम्मिलित होंगी :

(1) मातृभाषा या प्रादेशिक भाषा;

(2) संघ की राजभाषा या सहचारी राजभाषा (जब तक वह रहे तब तक); और

(3) एक आधुनिक भारतीय या विदेशी भाषा जो (1) और (2) के अन्दर न आई हो और शिक्षण-माध्यम के रूप में प्रयुक्त भाषा से भिन्न हो।

8.35. **संशोधित सूत्र से अभिप्रेत बातें**—अवर प्राथमिक स्तर पर छात्र की इच्छा के अनुसार केवल एक ही भाषा—मातृभाषा या प्रादेशिक भाषा—अनिवार्य रूप से पढ़ाई जानी चाहिए। अधिकांश छात्रों के मामले में इस अवस्था पर प्रादेशिक भाषा पढ़ेंगे जो उनकी मातृ-भाषा भी होगी। कुछ भाषायी अल्पसंख्यक बच्चे भी प्रादेशिक भाषा पढ़ना चाहेंगे क्योंकि इसमें उन्हें बहुत फ़ायदे होंगे। लेकिन यह उन पर लादी नहीं जा सकती, उन्हें संविधान के अन्तर्गत यह अधिकार मिला है कि अपनी मातृ-भाषा के माध्यम से प्राथमिक शिक्षा पा सकें। इस-लिए यदि भाषायी अल्पसंख्यक बच्चे अपनी मातृभाषा के माध्यम से प्राथमिक शिक्षा पाना चाहें तो राज्य सरकारों को चाहिए कि वे उसकी व्यवस्था करें, लेकिन इस विषय में शिक्षा-संचियों की बैठक (1949) में अनुमोदित वह सामान्य शर्त लागू होगी जिसमें स्पष्ट किया गया है कि इस प्रकार के बच्चों की न्यूनतम संख्या एक कक्षा में 10 या एक स्कूल में 40 होनी चाहिए। यह वांछनीय होगा कि ऐसे बच्चों को प्रादेशिक भाषा का भी व्यावहारिक ज्ञान हो। इसलिए, तीसरी कक्षा के बाद ऐच्छिक आधार पर इसके अध्ययन की सुविधाएं देनी चाहिए। हम इस अवस्था पर भाषायी अल्पसंख्यकों के लिए प्रादेशिक भाषा को अनिवार्य बनाने के पक्ष में नहीं हैं, जैसा कि कुछ राज्यों में किया गया है। हम इस पक्ष में भी नहीं है कि अंग्रेजी को इस अवस्था में दूसरी भाषा के रूप में पढ़ाया जाए। एक अगले पैरा में इसके बारे में और चर्चा की गई है।

8.36. उच्चतर माध्यमिक अवस्था पर केवल दो भाषाएं अनिवार्य रूप से सिखाई जानी चाहिए : (1) मातृभाषा या प्रादेशिक भाषा, और (2) संघ की राज-भाषा या सहचारी राजभाषा। हिन्दी प्रदेश के लगभग सभी बच्चों के लिए और अहिन्दी क्षेत्रों में बहुसंख्यक बच्चों के लिए शायद अंग्रेजी दूसरी भाषा होगी, लेकिन अहिन्दी भाषी क्षेत्रों के बहुत से बच्चे हिन्दी लेने की इच्छा भी कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त ऐच्छिक आधार पर एक तीसरी भाषा के अध्ययन की भी व्यवस्था होनी चाहिए ताकि हिन्दी क्षेत्र के वे बच्चे जिनकी मातृभाषा हिन्दी नहीं है और अहिन्दी क्षेत्र के वे बच्चे जिन्होंने दूसरी भाषा के रूप में अंग्रेजी ली है, यदि चाहें तो संघ की राजभाषा का अध्ययन कर सकें।

8.37. अवर माध्यमिक अवस्था (आठवीं से दसवीं कक्षा) पर तीन भाषाओं का अध्ययन अनिवार्य होना चाहिए, और संघ की राजभाषा या सहचारी राजभाषा में से जो भाषा छात्र ने उच्चतर प्राथमिक अवस्था में नहीं चुनी है वह अनिवार्य होनी चाहिए। हिन्दी क्षेत्र के अधिकतर छात्र हिन्दी, अंग्रेजी और एक प्रादेशिक भाषा का अध्ययन करेंगे, जबकि अहिन्दी क्षेत्र के बहुसंख्यक छात्र प्रादेशिक भाषा, हिन्दी और अंग्रेजी सीखेंगे। हिन्दी भाषी क्षेत्रों में आधुनिक भारतीय भाषा के चुनाव के समय, उस भाषा के अध्ययन के लिए छात्र का अभिप्रेरण ही कसौटी होना चाहिए। उदाहरण के लिए, किसी राज्य के सीमा-वर्ती प्रदेशों में लोगों में सामान्यतः सीमा के पार की भाषा के सीखने में रुचि होती है और यह बखूबी अध्ययन की तीसरी भाषा हो सकती है।

8.38. यह सच है कि इस अवस्था पर पढ़ी जाने वाली भाषाओं में अंग्रेजी सबसे मुख्य पुस्तकालयी भाषा होगी, लेकिन हम समझते हैं कि रूसी, जर्मन, फ्रेंच, स्पेनिश, चीनी या जापानी जैसी अन्य मुख्य पुस्तकालयी भाषाओं के अध्ययन को प्रोत्साहन देना भी आवश्यक है। प्रत्येक राज्य के कुछ चुने हुए स्कूलों में इनके अध्ययन की व्यवस्था की जानी चाहिए और छात्रों को इन्हें लेने की छूट होनी चाहिए। ये भाषाएं या तो अंग्रेजी और हिन्दी के स्थान पर या उनके साथ-साथ पढ़ी जा सकती है। इसी प्रकार, अहिन्दी-भाषी क्षेत्रों के कुछ चुने हुए स्कूलों में हिन्दी और प्रादेशिक भाषा से भिन्न आधुनिक भारतीय भाषाओं के अध्ययन की व्यवस्था होनी चाहिए। छात्रों को इन भाषाओं के अध्ययन की उसी प्रकार छूट होनी चाहिए जैसे कि पुस्तकालयों के सम्बन्ध में पहले कह चुके हैं, अर्थात्, वे भाषाएं या तो अंग्रेजी या हिन्दी के स्थान पर पढ़ाई जाएं या उनके साथ-साथ।

8.39. उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं में जो कि मुख्य रूप से उच्च अध्ययन के लिए प्रारम्भिक तैयारी की अवस्था का काम करेंगी, केवल दो ही भाषाएं अनिवार्य रहनी चाहिए और छात्र को यह छूट होनी चाहिए कि वह पहले पढ़ी हुई तीन भाषाओं में से किन्हीं दो को चुन ले या निम्नलिखित समूहों में से किन्हीं दो भाषाओं को मिलाकर ले ले : (1) आधुनिक भारतीय भाषाएं, (2) आधुनिक विदेशी भाषाएं, (3) प्राचीन भाषाएं,—भारतीय और विदेशी। हां, यदि कोई छात्र चाहे तो एक या अधिक अतिरिक्त भाषाओं का ऐच्छिक आधार पर भी अध्ययन कर सकता है।

8.40. **इस सूत्र में राजभाषा का स्थान**—ऊपर संशोधित रूप में प्रस्तुत त्रिभाषा-सूत्र लचीला है और आशा है कि सम्बन्ध में सामान्यतः अपनाई जानेवाली कठोर नीतियों की अपेक्षा इससे लोगों की विभिन्न भाषायी आवश्यकताओं की पूर्ति अधिक अच्छी तरह हो सकेगी। उदाहरण के लिए :

(1) हमारे प्रस्ताव में हिन्दी और अंग्रेजी को अध्ययन का स्वरूप अध्ययन के वर्षों में व बताया जाकर, अध्ययन के घंटों और उपलब्धि-स्तर में दिया गया है। इनमें से प्रत्येक भाषा में उपलब्धि के दो स्तर निर्धारित होंगे---एक स्तर उनके लिए जो इस भाषा का दो साल तक अध्ययन करेंगे और दूसरा उनके लिए जो उसको छह साल तक पढ़ेंगे।

(2) अवर माध्यमिक अवस्था को समाप्त कर निकलने वाले छात्रों में से अधिकांश द्वारा पढ़ी गई तीन भाषाओं में से दो भाषाएं हिन्दी और अंग्रेजी होंगी जो इस समय देश की दो सम्पर्क भाषाएं हैं और राष्ट्रीय तथा सामाजिक एकीकरण के साधन के रूप में काम आ रही हैं। कुछ छात्रों को हिन्दी और अंग्रेजी के केवल व्यावहारिक ज्ञान की आवश्यकता होती है जबकि कुछ को अधिक क्षमता की। हमारे द्वारा प्रस्तावित लचीली पाठ्यचर्या से इन सभी अलग-अलग आवश्यकताओं की पूर्ति हो सकेगी।

(3) यद्यपि पढ़ी जाने वाली पुस्तकालयी भाषाओं में अंग्रेजी सबसे अधिक मुख्य होगी, फिर भी देश के सभी भागों में कुछ छात्र अंग्रेजी से भिन्न पुस्तकालयी भाषाओं की भी अध्ययन करेंगे।

(4) प्रत्येक भाषायी क्षेत्र में अन्य आधुनिक भारतीय भाषाओं के पढ़ने वाले भी कुछ छात्र होंगे। और इस प्रकार विचारों के परस्पर आदान-प्रदान के अनेक मार्ग खुल जाएंगे।

पृष्ठ 216 पर दिए गए चार्ट में हमारे प्रस्ताव लेखाचित्र के रूप दिखाए गए है। आशा है कि भाषा-समस्या के इस लचीले समाधान से देश में विभिन्न भाषाएं बोलने वालों के बीच अधिक अच्छा सांस्कृतिक आदान-प्रदान होगा और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर लोगों में सौहार्द बढ़ेगा।

8.41. **कुमारी एस० पनन्दीकर के विचार**— यद्यपि हमारी सहयोगी कुमारी एस० पनन्दीकर, मोटे रूप में उपर्युक्त विचार से सहमत है, फिर भी उच्चतर प्राथमिक अवस्था पर त्रिभाषा-सूत्र के बारे में अलग विचार रखती हैं। उनका कहना है :

> "आयोग के बहुसंख्यक सदस्यों ने अवर माध्यमिक अवस्था में तीन भाषाओं के अध्ययन को अनिवार्य बताया है। मेरे विचार में उससे निचली अवस्था में भी, अर्थात्, उच्चतर प्राथमिक अवस्था में भी तीन भाषाएं अनिवार्य होनी चाहिए और ये तीन भाषाएं अहिन्दी-भाषी क्षेत्रों में मातृभाषा, हिन्दी और अंग्रेजी होनी चाहिए और हिन्दी-भाषी क्षेत्रों में मातृभाषा, एक आधुनिक भारतीय भाषा और अंग्रेजी होनी चाहिए।
>
> यदि हिन्दी को संघ की राजभाषा मात्र न होकर, सारे देश में सामान्य सम्पर्क की राष्ट्रीय भाषा भी बनना है, तो शिक्षा की अनिवार्य अवस्था पर इसके पढ़ाने की व्यवस्था करना वांछनीय है ताकि जो इसका अध्ययन इस अवस्था के बाद जारी नहीं रखते उन्हें तीन साल तक इसके अध्ययन का अवसर प्राप्त हो। यही बात अंग्रेजी के बारे में कही जा सकती है; वह संघ की सहचारी भाषा होने के साथ-साथ दुनियां की भाषा है और उसके अध्ययन से व्यक्ति को आधुनिक विश्व में विकसित हो रहे ज्ञान की शब्दावली और विषय का परिचय प्राप्त होता है।
>
> भाषाओं को छोटी अवस्थाओं में सीखना चाहिए क्योंकि इससे विषय को समझने और अभिव्यक्त करने की दृष्टि से भाषा का सीखना सरल बन जाता है और विषय का स्मरण भी अधिक रहता है। यदि दो अतिरिक्त भाषाओं का अध्ययन इस अवस्था में शुरू कर दिया जाए तो संभवतः वह भारी बोझ नहीं होगा। इस आयु (11 से 14) के छात्रों में भाषाओं के अध्ययन की रुचि होती है और इससे उनको सूक्ष्मता और यथार्थता का ज्ञान होता है और उनके बौद्धिक विकास में सहायता मिलती है। कुछ लोगों को डर है कि तीन भाषाओं के अध्ययन से विषय वस्तु या ज्ञान की प्राप्ति में कमी आ जाएगी। लेकिन इस भय का कोई आधार नहीं है। इस विषय में इतनी सावधानी अवश्य रखनी होगी कि प्रत्येक भाषा के माध्यम से विभिन्न प्रकार की विषय-वस्तु का भी ज्ञान कराया जाए।
>
> अच्छा अध्यापक किसी भी भाषा के अध्ययन के लिए आवश्यक अभिप्रेरण का निर्माण सफलता से कर सकता है। जहां तक हिन्दी का प्रश्न है, अहिन्दी भाषी प्रदेशों के ग्रामीण क्षेत्रों में भी पर्याप्त अभिप्रेरण विद्यमान है। रेडियो और/या सिनेमा का इन क्षेत्रों में प्रवेश हो चुका है और उनकी हिन्दी भी इन क्षेत्रों में पहुंच चुकी है। लोग हिन्दी से संचार-माध्यम के रूपमें परिचय पा चुके हैं। यात्रा की बढ़ती सुविधाओं के कारण भी हिन्दी लोगों के जीवन का अंग बन गई है। अंग्रेजी के अध्ययन के लिए भी इन क्षेत्रों में अभिप्रेरण की कमी नहीं है। अंग्रेजी की विभिन्न

स्कूल में भाषाओं का अध्ययन
(कक्षा I-X)

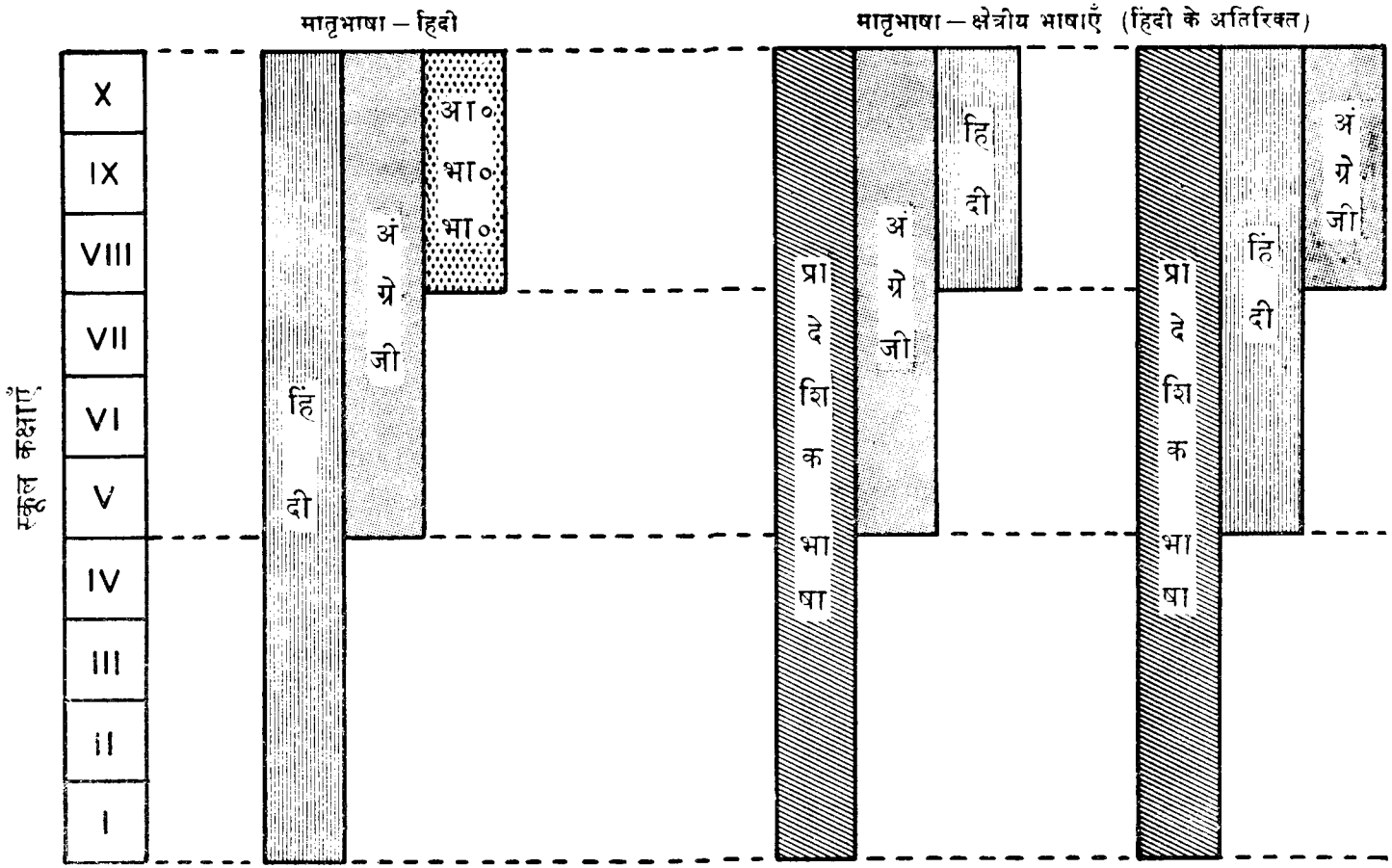

आ० भा० भा०=आधुनिक भारतीय भाषाएँ

प्रकार की चित्र-पुस्तकों, साइनबोर्डों और सूचनाओं से अंग्रेजी पढ़ने और समझने के लिए पर्याप्त उत्सुकता पैदा होती है। हिन्दी-भाषी क्षेत्री में, या तो, पड़ोसियों और मित्रों द्वारा किसी आधुनिक भारतीय भाषा का अपनी ही भाषा के रूप में प्रयोग करने के कारण या, रवीन्द्रनाथ ठाकुर जैसे लेखकों या बच्चों के लिए लिखने वाले अन्य लेखकों द्वारा उस भाषा में लिखने के कारण उस भाषा को सीखने की स्वाभाविक इच्छा हो सकती है। अहिन्दी-भाषी क्षेत्रों में हिन्दी के अध्ययन से और हिन्दी-भाषी क्षेत्रों में किसी आधुनिक भारतीय भाषा के अध्ययन से, प्रभावी रूप से पारस्परिक सौहार्द बढ़ाने और राष्ट्र को एक सूत्र में बांधने में सहायता मिलेगी। यदि भाषा-अध्ययन की व्यवस्था को किसी पर लादा गया बोझ न मानकर एक सुअवसर समझा जाए तो उसके लिए उचित वातावरण तैयार किया जा सकता है। इसका एक सुन्दर उदाहरण स्कैंडनेविया देश है जहां भाषाओं का अध्ययन बहुत जोर-शोर और उत्साह के साथ किया जाता है। बच्चे और जवान तीन-चार भाषाओं में अपनी गति के प्रति गौरव अनुभव करते हैं।

यदि दो अतिरिक्त भाषाओं का अध्ययन उच्चतर प्राथमिक अवस्था में शुरू किया जाए—यदि एक ही साल दूसरी भाषा को शुरू करना उचित न प्रतीत हो तो एक भाषा को शुद्ध बातचीत के रूप में एक साल पहले शुरू किया जा सकता है—और तीन साल तक चालू रखा जाए तो बाद की अवस्थाओं पर उनके अध्ययन के लिए दी जाने-वाली अवधि छात्रों की आवश्यकता के अनुसार कम की जा सकती है। अवर माध्यमिक अवस्था पर जब कि 14-16 आयुवर्ग वाले छात्रों के लिए प्राकृतिक और सामाजिक विज्ञान जैसे ज्ञान या वस्तु-विषय अधिक महत्वपूर्ण बन जाते है, यह वांछनीय हैं कि अनिवार्य रूप से तीसरी भाषा शुरू कर वस्तु-विषय अध्ययन में हस्तक्षेप न किया जाए।

यह बात समझ में आती है कि उच्चतर प्राथमिक अवस्था में दो अतिरिक्त भाषाओं के सिखाने के लिए उचित रूप से प्रशिक्षित शिक्षक प्राप्त करने में कुछ कठिनाई होगी। यह कठिनाई हिन्दी या आधुनिक भारतीय भाषाओं की अपेक्षा अंग्रेजी के शिक्षकों के मामले में अधिक होगी। यदि शैक्षिक रूप से और सामाजिक एकता की दृष्टि से इस अवस्था में इन भाषाओं को शुरू करना अनिवार्य समझा जाए तो अंग्रेजी, हिन्दी और आधुनिक भारतीय भाषाओं के शिक्षक तैयार करने के लिए घोर परिश्रम करना ही होगा।"

हम अपने सहयोगी से इस विषय में पूर्णतः सहमत हैं कि हिन्दी को यथाशीघ्र सारे देश की सम्पर्क भाषा के रूप में स्थान प्राप्त कर लेना चाहिए। इसलिए हमारे विचारों में अन्तर उद्देश्य के बारे में न होकर साधन के बारे में है। हमारा यह विचार है कि शिक्षा के सामान्य हित की दृष्टि से और हिन्दी को सम्पर्क भाषा के रूप में शीघ्र और प्रभावी रूप से बढ़ाने की दृष्टि से, ऊपर हमारे द्वारा सुझाया गया मार्ग, शायद, सबसे उपयुक्त और उचित है।

हम अपने सहयोगी के इस विचार से भी सहमत नहीं हैं कि शिक्षक किसी बच्चे के लिए, किसी भी स्तर पर और किसी भी परिस्थिति में किसी भी भाषा के अध्ययन के लिए अभिप्रेरण का निर्माण कर सकता है। किसी भाषा के अध्ययन के लिए अभिप्रेरण का निर्माण करना ऐसी जटिल सामाजिक समस्या है जो स्कूल के शैक्षिक कार्यक्रम की अपेक्षा स्कूल के बाहर की सामाजिक और आर्थिक बातों पर अधिक निर्भर करती है। अहिन्दी-भाषी क्षेत्रों में हिन्दी के लिए अभिप्रेरण के निर्माण के लिए हिन्दी को सामाजिक जीवन और प्रशासन में बड़ा स्थान देना होगा और हिन्दी में अच्छी पुस्तकें तैयार करनी होंगी। यदि उचित समय दिया जाए और घोर प्रयत्न किया जाए तो इस कार्य में सफलता मिल सकती है। लेकिन हिन्दी-भाषी क्षेत्रों में आधुनिक भारतीय भाषा के अध्ययन के लिए इसी प्रकार का अभिप्रेरण प्रस्तुत करना बहुत ही मुश्किल है। यदि भाषा थोपी जाए, खासकर प्राथमिक अवस्था में, तो उसका अध्ययन बच्चे के लिए भी बोझ बन सकता है; इस प्रकार थोपने से, अध्ययन के प्रति उसकी सारी अभिवृत्ति कलुषित हो सकती है और समस्त स्कूल जीवन के प्रति शत्रुता की भावना पैदा हो सकती है। इस समय हमारा मुख्य उद्देश्य शिक्षा के प्रति सारी जनता को आकृष्ट करना है; ऐसे समय उन अवांछित बातों का होना दुर्भाग्यपूर्ण ही होगा।

हम गंभीर रूप से यह अनुभव करते हैं कि प्रारम्भिक अवस्था पर तीन भाषाओं का अध्ययन बच्चे द्वारा अपनी मातृभाषा पर काबू पाने में और उसकी बौद्धिक प्रगति में काफी बाधा पहुंचाएगा। शैक्षिक दृष्टि से उन्नत देशों में भी, गंदी बस्ती के स्कूलों के बच्चों की पढ़ने की योग्यता औसत स्कूल के बच्चों की तुलना में 2-3 साल पिछड़ी हो सकती है। हमारे देश में यह हालत सम्भवतः और अधिक

खराब हो। इसलिए निकट भविष्य में, अधिकतम बल अपनी ही भाषा के अध्ययन पर दिया जाना चाहिए और अतिरिक्त भाषा के अध्ययन पर कम-से-कम बल दिया जाना चाहिए। लेकिन माध्यमिक अवस्था पर परिस्थिति में तात्विक अन्तर आ जाता है। इस समय तक छात्र शिक्षा की ओर आकृष्ट हो चुका होता है और उसमें इतनी परिपक्वता आ जाती है कि ऐसे विषयों का अध्ययन शुरू कर ले जिनके लिए बहुत प्रबल अभिप्रेरण की आवश्यकता नहीं है। इसलिए, इस अवस्था में भाषाओं का अनिवार्य अध्ययन या भाषा का अधिक भारी बोझ अपेक्षाकृत कम हानि पहुंचाएगा। इसीलिए हमने इस अवस्था पर अनिवार्यतः तीन भाषाओं के अध्ययन पर सिफ़ारिश की है।

इस संदर्भ में, अन्तर्राष्ट्रीय तुलनाएं प्रस्तुत करते समय सावधानी रखनी चाहिए। इस विषय पर एक विशेष टिप्पणी इस अध्याय[1] के अंत में दी गई है। यह देखा जा सकता है कि यद्यपि कुछ ऐसे देश हैं जहां माध्यमिक अवस्था पर दो या अधिक भाषाओं के अध्ययन की व्यवस्था की गई है, लेकिन कहीं भी प्रारम्भिक अवस्था में तीन भाषाओं का अध्ययन अनिवार्य नहीं है। इस प्रकार हम अपने शैक्षिक इतिहास में सबसे कठिन काम सबसे अधिक अनुपयुक्त समय पर करने जा रहे हैं। आज, हमने प्राथमिक शिक्षा में जिस आधारभूत प्रश्न का समाधान करना है यह है मातृभाषा को अच्छी तरह पढ़ाना और निरक्षरता समाप्त करना। और अतिरिक्त भाषाओं का अध्ययन इतना मंहगा और लोभीला है कि शिक्षा प्रणाली उसे उठाने के लिए बिलकुल तैयार नहीं है। उद्योग की दृष्टि से उन्नत देशों में भी, पहले प्राथमिक शिक्षा का पूरा पाठ्यक्रम केवल एक भाषा के अध्ययन पर आधारित रहता था। शिक्षा के विकसित होने और आर्थिक स्थिति में समृद्धि के आने के बाद ही, उन्होंने प्राथमिक अवस्था में दूसरी भाषा शुरू की। लेकिन, अनुकूलतम परिस्थिति में भी ऐसी शिक्षा प्रणाली का उदाहरण नहीं मिलेगा जिसमें प्राथमिक अवस्था पर तीन भाषाओं का अध्ययन अनिवार्यतः लागू कर दिया गया हो। हमें यह अनुभव करना चाहिए कि हम एक ऐसी चीज करने जा रहे हैं जो उच्च शैक्षिक प्रणालियों द्वारा या समृद्ध आर्थिक स्थिति द्वारा भी नहीं हुआ है और हम प्राथमिक शिक्षा की नवजात प्रणाली पर शिक्षा का निर्थरक भारी बोझ लाद कर अपनी प्रगति के मार्ग में स्वयं अलंघ्य कठिनाइयां पैदा कर रहे हैं।

8.42. **विश्वविद्यालय अवस्था पर त्रिभाषा-सूत्र**—यह सुझाव दिया गया है कि त्रिभाषा-सूत्र को विश्वविद्यालय पर भी लागू करना चाहिए। हमारे विचार से, इससे छात्रों पर भाषा का भारी बोझ बढ़ जाएगा, दुर्लभ साधनों का अपव्यय होगा और उच्चतर शिक्षा में विषय-ज्ञान के स्तर में गिरावट आ जाएगी। जैसा कि हमने पहले कहा है, उच्चतर माध्यमिक स्तर पर केवल दो भाषाओं का अध्ययन अनिवार्य होना चाहिए। उच्चतर शिक्षा में भाषा की शिक्षा अनिवार्य नहीं होनी चाहिए।

8.43. **हिन्दी का अध्ययन**—यद्यपि, हमारी सिफ़ारिश के अनुसार संशोधित त्रिभाषा-सूत्र में, स्कूल के कुछ छात्र हिन्दी को तीन साल के बाद दूसरी या तीसरी भाषा के रूप में नहीं पढ़ेंगे, फिर भी हम इस भाषा के अध्ययन के महत्व पर और ऐच्छिक रूप में इस प्रकार के अध्ययन को बढ़ावा देने के लिए राष्ट्रव्यापी कार्यक्रम संगठित करने की आवश्यकता पर अधिकतम बल देना चाहते हैं। हिन्दी के जनता में सम्पर्क भाषा होने के कारण, यह आवश्यक है कि भारत में सब जगह विचारों के पारस्परिक आदान-प्रदान के माध्यम के रूप में प्रत्येक व्यक्ति को हिन्दी का, कम से कम, कामचलाऊ ज्ञान हो ही और जिन्हें, केन्द्र में या राज्यों में, उसे राजभाषा के रूप में काम में लाना होगा वे उसमें अधिक ऊंची योग्यता हासिल करें लेकिन हमारी राय है कि यदि हिन्दी का अध्ययन अनिच्छुक जन-समुदाय पर एक निश्चित सीमा के बाद न थोपा जाए तो हिन्दी का और राष्ट्रीय एकता का अधिक हित होगा। हमें इस बात में जरा भी सन्देह नहीं है कि यदि पर्याप्त अभिप्रेरण हो तो लड़के और लड़कियें अधिक श्रम से हिन्दी पढ़ेंगे। यह अभिप्रेरण अधिकांश इस बात पर निर्भर करता है कि हिन्दी कितनी दूर तक वास्तव में प्रशासन की भाषा बनती है। इसका सम्बन्ध इस बात से भी है कि हिन्दी किस प्रकार विकसित और समृद्ध होती है जिससे अहिन्दी क्षेत्रों के लोग ज्ञान और सांस्कृतिक पोषण के लिए इसकी ओर आकृष्ट हों।

8.44. भाषाओं के अध्ययन का बोझ लिपियों की भिन्नता के कारण बढ़ जाता है। अक्सर, छात्र को न केवल तीन भाषाओं का अपितु तीन लिपियों का ज्ञान प्राप्त करना पड़ता है। यदि सभी आधुनिक भारतीय भाषाओं के लिए एक सामान्य लिपी—रोमन या देवनागरी—अपना ली जाए तो इस समस्या—और इससे सम्बन्धित अन्य अनेक समस्याओं—के समाधान में बहुत ही सुविधा होगी। दुर्भाग्य से, इस प्रश्न पर सब का मत एक नहीं है। लेकिन, हमारी राय है कि यदि हम प्रत्येक आधुनिक भारतीय भाषा के, देवनागरी और रोमन दोनों लिपियों में लिखे हुए कुछ साहित्य को तैयार करना शुरू कर दें

1. **पूरक टिप्पणी तीन देखें।**

तो अन्त में इस समस्या को सुलझाने में सुविधा होगी। यह प्रक्रिया स्कूल अवस्था पर, तीसरी भाषा के अध्ययन में शुरू की जा सकती है (स्कूल अवस्था पर तीसरी भाषा कोई आधुनिक भारतीय भाषा हुआ करती है)। छात्र जिस लिपि को—देवनागरी या रोमन को—पहले से ही जानता है उसका प्रयोग करते हुए तीसरी भाषा का अध्ययन शुरू करना उसके लिए बहुत ही सुविधाजनक होगा। उदाहरण के लिए बंगला या तमिल का अध्ययन शुरू करने वाला हिन्दी क्षेत्र का छात्र उस भाषा के लिए देवनागरी या रोमन लिपी का प्रयोग कर सकता है। अहिन्दी भाषी क्षेत्र के हिन्दी पढ़ने वाले छात्र अपनी मातृ-भाषा की लिपी वा रोमन-लिपि में हिन्दी सीखना शुरू कर सकते हैं। जब छात्र भाषा पर थोड़ा काबू पा चुका हो और उसके सामने पर्याप्त अभिप्रेरण उपस्थित हो चुका हो तब उस भाषा की वास्तविक लिपि सिखाई जा सकती है।

8.45. आजकल स्कूलों में सिखाए जाने वाले अंक प्रत्येक भाषा में अलग अलग हैं। हमारी सिफ़ारिश है कि सभी आधुनिक भारतीय भाषाएं अन्तर्राष्ट्रीय अंक अपना लें जो एक प्रकार से मूल रूपसे भारतीय ही हैं। यह सुधार बड़ा मामूली है, लेकिन इससे बड़ी सुविधा होगी।

8.46. **अंग्रेजी का अध्ययन**—चूंकि बहुत समय तक, उच्चतर शिक्षा के क्षेत्र में पुस्तकालय भाषा के रूप में अंग्रेजी की आवश्यकता बनी रहेगी, इसलिए स्कूल-अवस्था में उसकी दृढ़ नींव रखनी होगी। हमने सिफ़ारिश की है कि इसकी पढ़ाई पांचवीं कक्षा से शुरू हो, लेकिन हम यह अनुभव करते हैं कि बहुत से छात्र, विशेषकर ग्रामीण छात्र, इसे आठवीं कक्षा से पहले शुरू नहीं करेंगे। अंग्रेजी बहुत अधिक छात्रों के लिए केवल दूसरी या तीसरी भाषा होगी इस तथ्य से यह और भी आवश्यक हो जाता है कि भाषा-शिक्षण के लिए विशेषरूप से प्रशिक्षित शिक्षकों द्वारा भाषा सिखाने की प्रभावी आधुनिक पद्धतियों को निश्चित रूप से अपनाया जाए। इस सम्बन्ध में, हम इस विषय के विशेषज्ञ दल द्वारा अंग्रेजी अध्ययन के बारे में शिक्षा मंत्रालय को भेजी गई हाल ही की रिपोर्ट[1] का हवाला देना चाहते हैं। इस दल ने संरचना-विधि (स्ट्रक्चरल अप्रोच) के जो अब भारत के विभिन्न भागों में अधिकाधिक अपनाई जा रही हैं, आधार पर अंग्रेजी सिखाने का अनुमोदन किया है और सामान्य तथा उच्च दोनों ही स्तरों पर पांचवीं कक्षा से बारहवीं तक भाषा के अध्ययन के लिए विस्तृत पाठ्यविवरण का सुझाव दिया है। हम इस रिपोर्ट में दी गई अनेक उपयोगी सिफारिशों का अनुमोदन करते हैं।

8.47. उस दल ने यह भी विचार व्यक्त किया है कि तीसरी कक्षा से अंग्रेजी के अध्ययन को शुरू करने के सम्बन्ध में हाल ही में अनेक राज्यों द्वारा अपनाई गई नीति शैक्षिक रूप से अपरिपक्व है। हम इस विचार से सहमत हैं। हमारा विश्वास है कि अंग्रेजी जैसी विदेशी भाषा सीखने से पहले मातृभाषा पर पर्याप्त अधिकार हासिल कर लेना चाहिए। इसके अतिरिक्त अवर प्राथमिक कक्षाओं में जिनमें लाखों छात्रों का नामांकन होता है। अंग्रेजी के प्रभावी शिक्षण के लिए बहुत बड़ी संख्या में प्रशिक्षित अध्यापकों की आवश्यकता होगी; लेकिन वे उपलब्ध नहीं है। यदि उपलब्ध हो जाएं तो भी इसका कार्यक्रम में शिक्षा के लिए नियत की गई निधि पर बहुत बोझ पड़ेगा। हमारी राय में, यह बहुत बड़ा कार्य है और व्यर्थ में इसके पीछे पड़ने पर स्कूल अवस्था पर अंग्रेजी का स्तर उठने की बजाय गिर जाएगा। इसलिए हम सिफारिश करते है कि विदेशी भाषा के रूप में अंग्रेजी का अध्ययन कुछ-एक स्कूलों में प्रायोगिक आधार पर शुरू करने के सिवाय, पांचवीं कक्षा से पहले शुरू नहीं होना चाहिए)

8.48. **प्राचीन भाषाओं का अध्ययन**—हम प्राचीन भाषाओं के अध्ययन के महत्व को और राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली पर संस्कृत का जो विशेष दावा है उसे भी समझते हैं। लेकिन हम त्रिभाषा-सूत्र मे संस्कृत या अन्य किसी प्राचीन भाषा को सम्मिलित करने के प्रस्ताव से सहमत नहीं है। हमारी राय में इस सूत्र को आधुनिक भारतीय भाषाओं तक ही सीमित रहना चाहिए। हम मातृभाषा और संस्कृत के संयुक्त पाठ्यक्रम को अपनाने के प्रस्ताव के पक्ष में हैं। लेकिन यह बहुत लोकप्रिय प्रस्ताव नहीं है। इन परिस्थितियों में प्राचीन भाषा को स्कूल पाठ्यचर्या में केवल ऐच्छिक रूप में दिया जा सकता है। ऐसा आठवीं कक्षा मे ही किया जा सकता है।

8.49. हम संस्कृत विश्वविद्यालय के विचार का भी अनुमोदन नहीं कर सकते। इसके स्थान पर, हम सभी विश्वविद्यालयों में संस्कृत और अन्य प्राचीन भाषाओं के अध्ययन पर, और कुछ मुख्य-मुख्य विश्वविद्यालयों में इन भाषाओं के अध्ययन के उच्च केन्द्रों की स्थापना पर बल देने की सिफ़ारिश करते हैं। हम यह सुझाव भी देते हैं कि कोई नया संस्कृत विश्वविद्यालय न खोला जाए।

विज्ञान और गणित

8.50. हम इस बात पर बल देते हैं कि विज्ञान को

1. 1964 में भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय द्वारा नियुक्त अध्ययन दल की रिपोर्ट : द स्टडी आफ इंग्लिश इन इंडिया।

स्कूल पाठ्यचर्या में महत्वपूर्ण विषय बनाया जाए। इस लिए हम सिफ़ारिश करते हैं कि विज्ञान और गणित स्कूल शिक्षण के पहले दस सालों में सभी छात्रों को सामान्य शिक्षा के एक भाग के रूप में अनिवार्यतः पढ़ाए जाएं। इसके अतिरिक्त, औसत योग्यता से अधिक योग्यता वाले छात्रों के लिए, माध्यमिक अवस्था में इन विषयों में विशेष पाठ्यक्रम की व्यवस्था की जाए, ये कार्यक्रम तभी उपयोगी हो सकते हैं जब विज्ञान पाठ्यचर्याओं को पुनः संगठित कर आधुनिकतम बनाया जाए, शिक्षण पद्धति में पुनः शक्ति संचार किया जाए और विषय के शिक्षण के लिए उचित सुविधाएं दी जाएं।

8.51. **प्राथमिक स्कूलों में विज्ञान**—प्राथमिक स्कूलों में विज्ञान शिक्षण का उद्देश्य भौतिक और जैविक पर्यावरण के मुख्य-मुख्य तथ्यों, अवधारणाओं, सिद्धान्तों और प्रक्रियाओं के बारे में उचित ज्ञान पाना होना चाहिए। इन विचारों को स्पष्ट करने के लिए आगमन और निगमन दोनों पद्धतियों का उपयोग करना चाहिए। लेकिन, निगमन पद्धति पर या वैज्ञानिक पद्धति के उपयोग पर अधिक बल देना चाहिए।

8.52. अवर प्राथमिक कक्षा में, बच्चे के—सामाजिक भौतिक और जैविक—पर्यावरण पर अधिक ध्यान देना चाहिए। पहली और दूसरी कक्षा में सफाई, स्वस्थ आदतों के निर्माण, प्रेक्षण-शक्ति (पावर आफ आब्ज़र्वेशन) के विकास पर जोर देना चाहिए, इन पर पुनः तीसरी और चौथी कक्षा में बल देना चाहिए, लेकिन अध्ययन में व्यक्तिगत स्वास्थ्य और स्वच्छता को भी सम्मिलित कर लिया जाना चाहिए। बच्चे को विज्ञान के नियमित (फार्मल) क्षेत्रों से भी परिचित कराया जा सकता है, जैसे, उसके चारों ओर के पेड़-पौधे और जानवर, हवा, जिसमें वह सांस लेता है, पानी, जिसे वह पीता है, मौसम, जिससे उसका दैनिक जीवन प्रभावित होता है, पृथ्वी, जिस, पर वह रहता है, सरल मशीनें, जो उसके पर्यावरण में काम में लाई जाती हैं, उसका शरीर, जिसकी उसे चिन्ता करनी चाहिए और आकाशीय पिंड, जिन्हें वह रात में देखता है। स्कूल में बगीचा लगाने का कार्यकलाप ऐसा है जिसे विशेषकर इस अवस्था में प्रोत्साहित करना चाहिए, क्योंकि इससे छात्र को प्राकृतिक घटनाओं के बारे में प्रत्यक्ष और बहुमूल्य अनुभव मिलता है।

8.53. हम यह भी सिफ़ारिश करते हैं कि चौथी कक्षा में बच्चों को रोमन वर्णमाला भी सिखाई जानी चाहिए। यह अत्यावश्यक है, क्योंकि वैज्ञानिक नाप-तोल की इकाइयों के लिए अन्तर्राष्ट्रीय रूप से स्वीकृत प्रतीक और रासायनिक तत्वों और यौगिकों के प्रतीक रोमन वर्णमाला में ही लिखे जाते हैं। छात्र की भाषा चाहे कोई भी हो और उसमें पानी के लिए कोई भी शब्द प्रयुक्त होता हो, इसका रासायनिक प्रतीक हमेशा H_2O होता है। और यह प्रतीक से भी बढ़कर है; इससे पानी की प्रकृति पर प्रकाश पड़ता है। इसके अतिरिक्त रोमन वर्णमाला से अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर नक्शों, चार्टों और सांख्यिक सारणियों का उपयोग संभव हो जाता है। इन चीज़ों को सभी स्थानीय भाषाओं में उपलब्ध कराना कितना खर्चीला होगा और इसमें कितना समय लगेगा।

8.54. उच्चतर प्राथमिक अवस्था पर तर्कपूर्ण रीति से सोचने, परिणाम निकालने और अधिक ऊंचे स्तर के निर्णय लेने की योग्यता के साथ-साथ ज्ञान की प्राप्ति पर बल देना चाहिए। विज्ञान अब भौतिकी, रसायन, जीवविज्ञान, भूविज्ञान और खगोल विज्ञान के रूप में पढ़ाया जाना चाहिए। उच्चतर प्राथमिक अवस्था की तीन कक्षाओं में इन विषयों का विभाजन नीचे सुझाव के रूप में दिया गया है; लेकिन, छात्रों के स्तर और अन्य स्थानीय हालतों के अनुसार इनके अन्य संयुक्त रूपों की भी जांच की जा सकती है :

पांचवीं कक्षा—भौतिकी, भूविज्ञान और जीवविज्ञान।
छठी कक्षा—भौतिकी, रसायन, जीवविज्ञान।
सातवीं कक्षा—भौतिकी, जीवविज्ञान, रसायन और खगोल विज्ञान।

8.55. विज्ञान को सामान्य विज्ञान समझ कर पढ़ाना, जैसा कि पिछले दस सालों में प्रारम्भिक अवस्था में व्यापक रूप से किया जा रहा है, सफल सिद्ध नहीं हुआ है, क्योंकि इससे विज्ञान ऐसा लगने लगता है मानो न उसका कोई रूप है और न संरचना; यह तरीका विधितंत्र (मैथेडोलाजी) के विपरीत भी है। यह अनुभव किया जा रहा है कि विज्ञान शिक्षण के लिए विद्या पर आधारित पद्धति (डिसिप्लिनरी अप्रोच) अपनाना युवकों को आवश्यक वैज्ञानिक आधार देने में अधिक प्रभावी होगा। खगोल विज्ञान को शुरू करने की हम विशेष सिफ़ारिश करते हैं क्योंकि अच्छी वैज्ञानिक शिक्षा देने और विवेकपूर्ण दृष्टिकोण का विकास करने में इसका महत्वपूर्ण हाथ होता है। पांचवीं कक्षा के बाद से, रात के आकाश के प्रेक्षण की सहायता से भारतीय पंचांग का अध्ययन करना चाहिए।

8.56. प्रत्येक प्राथमिक स्कूल में नमूने, माडल, चार्ट आदि रखने के लिए एक विज्ञान कक्ष या कमरा होना

चाहिए जिसमें भंडारण की आवश्यक व्यवस्था हो। प्रत्येक उच्चतर प्राथमिक स्कूल में कम से कम एक प्रयोगशाला और भाषण-कक्ष की व्यवस्था हो।

8.57. **माध्यमिक स्कूलों में विज्ञान**—माध्यमिक अवस्था पर, मानसिक अनुशासन और उच्चतर शिक्षा की तैयारी के रूप में विज्ञान पर विशेष बल देना चाहिए। अवर माध्यमिक अवस्था पर भौतिकी, रसायन, जीवविज्ञान और भूमि-विज्ञान (अर्थ साइंसेज़) सभी छात्रों को अनिवार्यतः पढ़ाए जाने चाहिए। प्रारम्भिक अवस्था के परिचयात्मक पाठ्यक्रम पर नया ज्ञान खड़ा करते हुए छात्र को पहले की अपेक्षा अधिक विस्तृत और गहरे ज्ञान की शिक्षा देनी चाहिए। पाठ्यचर्या के निर्माण में विज्ञान की बदलती प्रकृति को एक मुख्य स्थान देना चाहिए।

8.58. **माध्यमिक स्कूलों में विज्ञान पाठ्यचर्या की विशेषताएं**—पिछली कुछ दशाब्दियों में भौतिकी का अवधारणात्मक ढांचा बिलकुल बदल गया है और यह बात हाईस्कूल की भौतिकी की पाठ्यचर्या में परिलक्षित होनी चाहिए। इसी प्रकार रसायन में अब तक जो बल तथ्यों, सूत्रों, प्रक्रियाओं और यौगिकों को रटने पर दिया जाता रहा है वह विषय में विद्यमान एकता की संकल्पना पर दिया जाना चाहिए। उद्योगों और दैनिक जीवन में विज्ञान के प्रयोग और हमारी विकासमान अर्थ-व्यवस्था में इसके बढ़ते महत्व पर प्रकाश डालना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त जीवविज्ञान के स्कूल पाठ्यक्रम के वर्तमान विषय स्वरूप की दृष्टि से परम्परागत है। जीवविज्ञान की अवधारणा के बारे में छोटे-छोटे छात्रों के दिमाग में यह बात जमा देनी चाहिए कि वह ऐसे सही और पुष्टिकरणीय प्रेक्षणों के द्वारा जांच की एक पद्धति है जिनका परिमाणात्मक और गणितीय विश्लेषण हो सकता है और जिन पर नियंत्रित प्रयोग किए जा सकते हैं। भूमि-विज्ञान माध्यमिक स्कूल से शुरू किया जाना चाहिए और भू-विज्ञान और भूगोल को एकीकृत विषय के समान पढ़ाना चाहिए। रसायन, भौतिकी और जीवन विज्ञान में भी बहुत से ऐसे क्षेत्र हैं जिनके साथ भूमि-विज्ञान के अध्ययन के कुछ विषय स्वाभाविक रूप से जोड़े जा सकते हैं।

8.59. **उच्चतर माध्यमिक अवस्था पर विज्ञान**—उच्चतर माध्यमिक अवस्था पर जहां कि अध्ययनों का विविधीकरण होगा, विज्ञान सभी छात्रों के लिए अनिवार्य नहीं होगा। जो इस विषय में विशेषीकरण की इच्छा व्यक्त करें ने विज्ञान समूह में से, जिसमें भौतिक, रसायन जीवविज्ञान, भू-विज्ञान और गणित है, तीनों ही चुने जाने वाले विषय ले सकते हैं। लेकिन जैसा कि पहले बताया गया है, हम कठोर वर्गों के पक्ष में नहीं हैं, विज्ञान की ओर झुके हुए पाठ्यक्रम में भौतिकी और रसायन जैसे दो विज्ञान-विषयों और अर्थशास्त्र जैसे एक कला-विषय के संयुक्त रूप की अव्यवस्था हो सकती है। इसी प्रकार कला का छात्र चुने जाने वाले विषयों के रूप में भौतिकी या जीव-विज्ञान या विज्ञान वर्ग में से अन्य कोई विषय ले सकता है। पाठ्यचर्या में इस प्रकार के लचीलेपन से न केवल संकुचित विशेषीकरण को रोकने में सहायता मिलती है लेकिन विज्ञान के प्रणालीबद्ध शिक्षण के लाभ को उच्चतर माध्यमिक अवस्था पर और अधिक छात्रों तक पहुंचाया जा सकता है।

8.60. हम प्रतिभाशाली छात्रों के लिए अधिक ऊंचे स्तर पर विज्ञान के पाठ्यक्रम की व्यवस्था करने की सिफ़ारिश कर चुके हैं। ऐसे पाठ्यक्रम कुछ चुने हुए स्कूलों में, जहां कि पर्याप्त शिक्षकों और प्रयोगशालाओं की सुविधाएं हैं, अवर माध्यमिक स्तर पर शुरू हो सकते हैं। यह अच्छा हो, यदि कुछ माध्यमिक स्कूल, विश्वविद्यालय फैकल्टी के पर्यवेक्षण और मार्ग-दर्शन में गतिशील स्कूल कार्यक्रम के प्रयोजन से कुछ विश्वविद्यालयों से जुड़े हुए हों। ऐसे स्कूल या तो उस क्षेत्र के अच्छे स्कूलों में से ले लिए जाएं या इस प्रयोजन के लिए विशेष रूप से स्थापित किए जाएं।

8.61. **ग्रामीण और शहरी स्कूलों में विज्ञान**—ग्रामीण क्षेत्रों के माध्यमिक स्कूलों में, कृषि-पर्यावरण से शिक्षा का सम्बन्ध ऐसे समन्वित पाठ्यक्रमों के माध्यम से स्थापित किया जा सकता है जिनसे भौतिक विज्ञान का जीवविज्ञान पर पड़ने वाला प्रभाव स्पष्ट हो। विज्ञान और शिल्पविज्ञान को भारतीय कृषि पर लागू करने की आवश्यकता को दृष्टि में, रखते हुए, यह भी वांछनीय है कि ग्रामीण माध्यमिक स्कूलों के छात्रों को वैज्ञानिक खेती के विचारों और रीतियों से तथा उससे सम्बन्धित कार्य-कलापों और कौशलों से परिचित कराया जाए। औद्योगीकृत क्षेत्रों के स्कूलों की पाठ्यचर्याओं में प्रायोगिक विज्ञान के तकनीकी और औद्योगिक पक्ष पर तथा औद्योगीकरण पर पड़ने वाले उसके प्रभाव पर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए। ग्रामीण और शहरी स्कूलों में ज्ञान की प्राप्ति का स्तर एक ही होना चाहिए और दोनों प्रकार के स्कूलों से निकलने वाले छात्रों के लिए समान रूप से उच्चतर शिक्षा की सुविधाएं उपलब्ध होनी चाहिए।

8.62. **गणित का अध्ययन**—वैज्ञानिक दृष्टि अपनाने का मुख्य लक्षण वस्तुओं को मात्रात्मक दृष्टि से अभिव्यक्त करना है। इसलिए आधुनिक शिक्षा में गणित

का स्थान अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है। भौतिक विज्ञान की प्रगति में इसका महत्वपूर्ण हाथ ही है, साथ ही जैविक विज्ञानों के विकास में भी अधिकाधिक रूप से इसका उपयोग किया जा रहा है। इस शताब्दी में स्वचालन-विज्ञान और साइबरनैटिक्स के आगमन से नई वैज्ञानिक औद्योगिक क्रान्ति का जन्म हुआ है और गणित अध्ययन पर विशेष ध्यान देना और भी अनिवार्य हो गया है। इस विषय के ज्ञान का उचित आधार स्कूलों में रखा जाना चाहिए।

8.63. **विभिन्न अवस्थाओं पर गणित का पाठ्य-विवरण**— आजकल गणित प्राथमिक अवस्थापर अंक गणित बीजगणित और ज्यामिति में विभक्त है। इस कारण, संख्याओं द्वारा आधारभूत क्रियाओं (आपरेशन्स) की शिक्षा देने में आवश्यक रूप से एक ही चीज को दुहराना पड़ता है। इसलिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि अंक गणित और बीजगणित को समन्वित कर दिया जाए और गणित के नियमों और सिद्धान्तों तथा तर्कसंगत विचार प्रणाली पर जोर दिया जाए। पाठ्यक्रम में संख्या प्रणाली का विकास संकेतन और संख्या लेखन (न्यूमरेशन और नोटेशन) प्रणालियां, समीकरण, ग्राफ और फलन (फंक्शनस) सम्मिलित किए जाने चाहिएं। इसी प्रकार, ज्यामिति के पाठ्यक्रम को भी अधिक युक्तिसंगत आधार पर संगठित करना चाहिए।

8.64. माध्यमिक और उच्चतर माध्यमिक अवस्था पर भी गणित के पाठ्यक्रमों को, जो अब परम्परागत रूप में अंकगणित, ज्यमिति और बीजगणित, त्रिकोणमिति, सांख्यिकी, कलन, और निदेशांक ज्यामिति (कोआर्डिनेट ज्यामैट्री) में विभक्त है, पुनः अनुप्राणित और आधुनिकतम बनाने की आवश्यकता है। गणित का सारा पाठ्यक्रम और बीजगणित की आधारभूत क्रियाएं प्राथमिक अवस्था के अन्त तक समाप्त की जा सकती हैं। पाठ्यचर्या से सरलीकरण गुणनखंड करना, महत्तमसमापवर्त्य, लघुत्तम समावर्तक, आदि जो विषय पुराने पड़ गए हैं उन्हें निकाल देने की भी बहुत आवश्यकता है। त्रिकोणमिति को बीजगणित के साथ जोड़ा जा सकता है और उसे अलग से पढ़ाने की आवश्यकता नहीं है। सर्वसमिकाओं (आइडैंटिटी), त्रिकोणों, ऊंचाइयों और दूरियों की क्रिया कम की जा सकती है। ज्यामिति में प्रमेयों को रटना और अभ्यासों पर जोर देना कम कर देना चाहिए। ज्यामिति पढ़ाने का तरीका बदलना चाहिए और स्वयंतथ्यमूलक (ऐक्जियोमेटिक) और व्यवस्थित रीति अपनाई जानी चाहिए।

8.65. ज्यामिति के मूल शब्दों और संख्याओं की क्रियाओं की व्याख्या करते हुए 'सेट' की भाषा का प्रयोग किया जाना चहिए। 'सेट' की भाषा के माध्यम से ही गणित बीजगणित और ज्यामिति में समन्वय स्थापित किया जा सकता है। रेखा, खंड, भुजा आदि के लिए 'स्कूल गणित अध्ययन दल' के संकेतन,[1] जिनसे भाषा में अधिक सूक्ष्मता आती है, अपनाए जा सकते हैं।

8.66. **विज्ञान और गणित शिक्षण की विधियां**— अब हम विज्ञान और गणित के शिक्षण में सुधार के कुछ विशिष्ट सुझावों, पर संक्षेप में चर्चा करते है। ऊपर कक्षा-पद्धतियों में दिए गए सुधार के सामान्य सुझावों के साथ-साथ, विज्ञान शिक्षा के स्तर को उठाने के किसी भी कार्यक्रम में इन बातों पर ध्यान देना चाहिए।

(1) भाषण एक ऐसी पद्धति है जिसे विज्ञान कक्षाओं में बार-बार काम में लाया जाता है और जहां भाषणों के बाद नाममात्र के प्रयोग भी किए जाते हैं वहां उनसे विषयवस्तु पर उचित अधिकार, वैज्ञानिक सिद्धान्तों और आंकड़ों के आधार पर समस्याओं के विश्लेषण और समाधान के लिए आवश्यक कौशल, या वैज्ञानिक जांच-पड़ताल की प्रक्रिया या भावना के प्रति उचित अभिवृत्ति के विकास में सहायता नहीं मिलती। पाठ्यपुस्तकें, शिक्षक पथ-दर्शक और शिक्षण-सामग्रियां जो प्रारम्भ से ही हर बात की छान-बीन करने के दृष्टिकोण पर जोर देती हैं, अन्य विषय के शिक्षण की अपेक्षा विज्ञान शिक्षण में प्रमुख स्थान रखते हैं।

(2) प्रारम्भिक अवस्था पर भी उद्योग, कृषि और विज्ञान के बीच विद्यमान निकट सम्बन्ध को स्पष्ट कर देना चाहिए। निदर्शन-प्रयोगों और प्रयोगशाला-जांचों में स्थानीय जन-समुदाय की कृषि-सम्बन्धी और औद्योगिक रुचि व्यक्त होनी चाहिए। इससे छात्रों की दृष्टि में विज्ञान शिक्षण अधिक वास्तविक, मनोरंजक और उपयोगी बन जाएगा।

(3) माध्यमिक अवस्था पर विज्ञान शिक्षा का विषय मुख्यतः गृह-शिल्प विज्ञान या घरों में सामान्यतः काम में आनेवाले जुगत (गैजेट) की, कृषि औजारों की और औद्योगिक उपकरणों की देखभाल और उनका अध्ययस हो सकता है। प्रकृति या मनुष्य द्वारा की गई खोजों में से अच्छे-अच्छे विषय पढ़ाकर छात्र को प्रायोगिक विज्ञान में अनुस्थापित किया जा सकता है।

(4) वर्तमान शिक्षण का एक कमजोर पहलू प्रयोग-

1. **स्कूल मैथेमेटिक्स स्टडी ग्रुप सीरिज, येल यूनिवर्सिटी प्रेस, 1960।**

शाला कार्य है। यहां सामान्यतः दृष्टिकोण किसी बात की पुष्टि करना हुआ करता है, जांच करना नहीं। लेकिन अब समस्या पता लगाने, परिकल्पना को विकसित करने और सिद्धान्त से सम्बन्धित प्रक्रियाओं और प्रयोगों को रूप देने पर जोर देना चाहिए। प्रयोगशाला कार्य पर बल देने के कारण प्रयोगशालाओं पर होने वाला खर्च काफी अधिक कर देना होगा।

(5) शिक्षण द्वारा या शिक्षक के पर्यवेक्षण में चुने हुए छात्रों द्वारा किए गए निदर्शन-प्रयोग विज्ञान शिक्षण के महत्वपूर्ण और अभिन्न अंग होने चाहिए। छात्रों के दलों या समूहों द्वारा प्रयोग करने की भी व्यवस्था होनी चाहिए।

(6) गणित के शिक्षण में आधारभूत सिद्धान्तों को समझने पर अधिक ध्यान देना चाहिए और गणितीय संगणना को यंत्रवत् सिखाने पर कम।

(7) स्कूल शिक्षा के सुधार से सम्बन्धित किसी भी कार्यक्रम में गणित शिक्षण को आधुनिक बनाना परमावश्यक है। लेकिन, नई पाठ्यचर्या और आधुनिक प्रणाली को हम अपने स्कूलों में धीरे-धीरे ही शुरू कर सकते हैं। इसकी गति इस बात पर निर्भर है कि नए गणित-शिक्षकों के प्रशिक्षण, जो गणित शिक्षक पहले से ही स्कूलों में काम कर रहे है उनके (पुनश्चर्या और पत्राचार पाठ्यक्रम के द्वारा) पुनः प्रशिक्षण और नई पाठ्यसामग्रियों को तैयार करने के लिए क्या-क्या किया जा सकता है।

(8) विज्ञान और गणित के पाठ्क्रमों में और स्कूल शिक्षा की सारी अवस्थाओं पर प्रतिभाशाली छात्रों की विशेष और विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए इस विषय के शिक्षण की पद्धतियों में हेर-फेर की पर्याप्त गुन्जाइश रखनी चाहिए।

सामाजिक अध्ययन और सामाजिक विज्ञान

8.67. **विभिन्न प्रकार से पाठ्-विवरण तैयार करना**—सामाजिक अध्ययन पढ़ाने का उद्देश्य छात्र को अपने पर्यावरण का ज्ञान, मानव सम्बन्ध को समझने की शक्ति और कुछ अभिवृत्तियों तथा मूल्यों को, जो कि लोगों, राज्य, राष्ट्र और विश्व के मामलों में बुद्धिमत्तापूर्वक भाग लेने के लिए अपरिहार्य है, प्राप्त करने में सहायता देना है। अच्छी नागरिकता और भावनात्मक एकीकरण के विकास के लिए भारत में सामाजिक अध्ययन का प्रभावी कार्यक्रम अत्यावश्यक है। सामाजिक अध्ययन-पाठ्यचर्या का संगठन अनेक प्रकार से किया जा सकता है, और संतुलित स्कूल पाठ्यचर्या में समेकित दृष्टिकोण, जो कि इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र और नागरिक शास्त्र द्वारा प्राप्त हुए ज्ञान और कौशल को एक साथ रखने का प्रयत्न करता है, तथा परम्परागत पद्धति, जिसके अनुसार विषय अलग विद्याओं के रूप में सिखाए जाते हैं, दोनों ही का अपना-अपना स्थान है।

8.68. अवर प्राथमिक स्तर पर, समेकित दृष्टिकोण वाँछनीय है। बच्चे को इतिहास, भूगोल और नागरिकशास्त्र के विविध और असम्बन्धित छोटी-छोटी सूचनाएं देने के स्थान पर सामाजिक अध्ययनों को एक समन्वयपूर्ण कार्यक्रम देना, जो मानव और उसके पर्यावरण पर आधारित हो, बेहतर होगा। प्राथमिक स्कूल की ऊंची कक्षाओं में कुछ विषयों के शिक्षण के सम्बन्ध में सामाजिक अध्ययन के विषयों को निरवयव समष्टि (इंटेग्रल होल) के रूप में संगठित किया जा सकता है, लेकिन छात्रों में धीरे-धीरे यह भावना पैदा करनी चाहिए कि इतिहास, भूगोल और नागरिक शास्त्र अलग-अलग विषय हैं। माध्यमिक स्कूलों में ये विषय अलग विद्याओं के रूप में पढ़े जाएंगे और उच्चतर माध्यमिक अवस्था पर विशेषीकृत अध्ययन के आधार बनेंगे।

8.69. **राष्ट्रीय एकता और विश्व-एकता पर बल**—स्कूल की पूरी अवधि में सामाजिक अध्ययन की पाठ्यचर्या द्वारारा ष्ट्रीय एकता और मानव की एकता पर बल दिया जाता है, लेकिन इस विषय में छात्र की आयु और समझ-शक्ति पर भी उचित ध्यान रखना चाहिए। प्राथमिक इतिहास के पाठ्यक्रम में जिन ऐतिहासिक महापुरुषों ने सुख और आनन्द की खोज में मानव की सहायता की उनकी कहानियां दी जानी चाहिएं। यहां भूतकाल के महान् भारतीयों के महान् कार्य को पहला स्थान दिया जाना चाहिए। माध्यमिक अवस्था पर यथासंभव विश्व-इतिहास के संदर्भ में भारत का इतिहास पढ़ाया जाना चाहिए। उचित स्थानों पर विश्व-संस्कृतिवों और सामाजिक विकास की प्रधान विशेषताओं से सम्बन्धित कुछ पाठों में निम्नलिखित विषय सम्मिलत कर लिए जाने चाहिए; विश्व-संस्कृति, जैसे पुराने ग्रीक और रोमन साम्राज्य, अरब और चीनी सभ्यता, यूरोप में पुनर्जागरण की मुख्य-मुख्य विशेषताएं, अन्वेषण (जैसे, छापा-मशीन और ज्ञान के प्रसार पर उसका प्रभाव) इंग्लैंड में औद्योगिक क्रान्ति, फ्रांस की राज्य-क्रान्ति, अमेरिका में स्वतन्त्रता आन्दोलन, उन्नीसवीं सदी में राष्ट्रीयता का उन्मेष, समाजवाद और मजदूर संघ का विकास, रूसी क्रान्ति और भारत में साम्राज्यवाद का उन्मूलन।

8.70. भूगोल के शिक्षण में भी, विभाजन पहलू के स्थान पर एकता लाने वाली बातों पर बल दिया जाना चाहिए और 'एक विश्व' की नई अवधारणा की ओर अधिक ध्यान आकर्षित करना चाहिए। इतिहास और भूगोल दोनों की पाठ्यचर्या में जिन देशों के बारे में अध्ययन किया जा रहा है—उनकी राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक विशेषताओं पर ही नहीं अपितु विभिन्न राष्ट्रों और महाद्वीपों के बीच सहयोग तथा परस्पर आदान-प्रदान पर भी प्रकाश डालना चाहिए। उच्च कक्षाओं के नागरिक शास्त्र के पाठ्यक्रम में संयुक्त राष्ट्र और अन्य अन्तर्राष्ट्रीय एजेंसियों का चित्रण और अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग तथा शान्ति की रक्षा में उनके महान प्रयत्नों का निष्पक्ष वर्णन होना चाहिए।

8.71. **सामाजिक विज्ञान का अध्ययन**—जैसा कि हमने ऊपर सूचित किया है उच्चतर माध्यमिक अवस्था पर सामाजिक विज्ञान का विशेष अध्ययन किया जाएगा। अब यह प्रवृत्ति बढ़ रही है कि माध्यमिक शिक्षा की पाठ्यचर्या में, कम से कम उच्चतम कक्षाओं में, सामाजिक विज्ञान और उनकी पद्धतियों का शिक्षण शुरू कर दिया जाता है। उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं के प्रस्तावित नई पाठ्यचर्या में इतिहास, भूगोल, नागरिक शास्त्र, अर्थशास्त्र और समाजशास्त्र के विशेष अध्ययन की व्यवस्था है। लेकिन वैज्ञानिक भावना और सामाजिक विज्ञान की पद्धतियों का कुछ अंश अवर कक्षाओं में भी सामाजिक अध्ययन, इतिहास, भूगोल, और नागरिक शास्त्र के शिक्षण में व्याप्त होना चाहिए।

कार्य-अनुभव

8.72. हमने दूसरे अध्याय में सिफ़ारिश की है कि कार्य-अनुभवों को, जिसमें कि छात्रों को वास्तविक जीवन से मिलती-जुलती परिस्थिति में उत्पादक-कार्य में भाग लेना पड़ता हो, सभी अवस्थाओं पर शिक्षा के अन्तिम अंग के रूप में शुरू करना चाहिए। यह वर्तमान स्कूल शिक्षा के अत्यंत शैक्षिक और पुस्तकीय जीवन के शोधक (करैक्टिव) के रूप में, जिसकी बहुत समय से आवश्यकता थी, काम करेगा। इसके शैक्षिक, सामाजिक और व्यावहारिक मूल्यों की चर्चा की जा चुकी है। अब हम कार्य-अनुभव के उन विभिन्न कार्यक्रमों के बारे में विचार करेंगे जो छात्रों की आयु और परिपक्वता को दृष्टि में रखते हुए स्कूल स्तर पर बनाए जाने हैं।

8.73. **विभिन्न अवस्थाओं पर कार्यक्रम**—प्राथमिक स्कूल की अवर कक्षाओं में कार्य-अनुभव सरल दस्तकारी के रूप में शुरू हो सकता है जिसका उद्देश्य बच्चों को अपने हाथों के प्रयोग की शिक्षा देना और इसके द्वारा उनके बौद्धिक और भावनात्मक वृद्धि में सहायता देना है। उच्च कक्षाओं में, यह कौशल का रूप ले सकता है; इससे छात्रों में यह तकनीकी विचार और रचनात्मक क्षमता का विकास होता है। यहां भी, कुछ कार्य-अनुभव वास्तविक जीवन की परिस्थितियों में, जैसे, फसल की कटाई या बुआई के समय खेत में और परिवार उत्पादन एकक में सिखाए जा सकते हैं। इस प्रकार के कार्यकलापों के लिए मिलने वाले अवसर का अधिकतम उपयोग करना चाहिए। चूंकि हमने यह प्रस्ताव रखा है कि अगले दस सालों की अवधि में, क्रमिक कार्यक्रम के रूप में प्रत्येक स्कूल से या माध्यमिक स्कूलों के समूह से एक वर्कशाप जोड़ दिया जाए, इसलिए अवर माध्यमिक अवस्था पर वर्कशाप-प्रशिक्षण के रूप में कार्य-अनुभव की शिक्षा दी जा सकती है। उच्चतर माध्यमिक अवस्था पर जबकि छात्रों के मतिष्क परिपक्व हो जाएंगे और उनकी संख्या अपेक्षाकृत कम होगी, स्कूल के वर्कशापों में और खेतों में तथा औद्योगिक या वाणिज्यिक स्थापनाओं में कार्य-अनुभव उपलब्ध करना चाहिए।

8.74. कार्य-अनुभव के कार्यक्रम में जिन कार्यकलापों की व्यवस्था कर सकते हैं, उनकी गिनती बहुत है, इसलिए सामग्रियों और प्रशिक्षित शिक्षकों की उपलब्धि के अनुसार ही वे चुने जाएंगे। शिक्षा की विभिन्न अवस्थाओं के लिए इस प्रकार के कार्यकलापों की सूची इस अध्याय के परिशिष्ठ में दी गई हैं। यह सूची सुझाव के रूप में ही हैं। वर्तमान स्थानीय स्थिति के अनुसार कार्यकलापों का चुनाव होगा। इस सूची में ऐसे कार्य-अनुभव भी सम्मिलित हैं जो लड़कियों की विशेष रुचि के हैं या ग्रामीण क्षेत्रों के स्कूलों के लिए हैं।

8.75. **कार्य-अनुभव और बुनियादी शिक्षा**—पहले हमने संकेत किया था कि कार्य-अनुभव का बुनियादी शिक्षा के आधार-भूत दर्शन से निकट सम्बन्ध है। यद्यपि बुनियादी शिक्षा द्वारा प्रस्तावित कार्यकलाप ऐसे थे जिनका सम्बन्ध देसी कौशल और ग्रामों में नौकरी की स्थिति से अधिक था, फिर भी, उसने प्राथमिक स्कूलों के सभी बच्चों के लिए कोई न कोई कार्य-अनुभव खोज निकाला ही। यह ठीक है कि व्यावहारिक दृष्टि से अब बुनियादी शिक्षा अधिकतर कुछ कौशलों तक ही

1. अध्याय के अन्त में दी गई पूरक टिप्पणी एक और दो।

सीमित रह गई है, फिर भी इस विषय में दो मत नहीं हैं कि इसने हमेशा शिक्षा को उत्पादकता से जोड़ने के महत्वपूर्ण सिद्धान्त पर बल दिया। जिस चीज की आवश्यकता है वह यह है कि जिस समाज को विज्ञान और शिल्पविज्ञान की सहायता से बदलना है, उसकी आवश्यकताओं को दृष्टि में रखकर बुनियादी लिक्षा के कार्यक्रम का पुनः अनुस्थापन किया जाए। दूसरे शब्दों में कार्य-अनुभव को नई सामाजिक व्यवस्था की प्रकृति के अनुरूप अग्रदर्शी होना चाहिए।

8.76 यहां एक-दो बातों का उल्लेख कर देना आवश्यक हैं। यद्यपि यह ठीक हैं कि ग्रामीण क्षेत्रों में उत्पादक कार्य-अनुभव, अधिकतर कृषि से सम्बन्धित होंगे परन्तु उद्योग और सरल शिल्पविज्ञान की दृष्टि से अनुस्थापित कार्यक्रम भी ग्रामीण स्कूलों की दृष्टि से काफी संख्या में होने चाहिए। ऐसे स्कूलों में जहां स्कूल वर्कशापों की व्यवस्था न हो सके, कम खर्चे पर औजारों और सामग्रियों की किटें तैयार करनी चाहिए और छात्रों को उपलब्ध कराई जानी चाहिए। इसी प्रकार शहर के जितने स्कूलों में हो सके, उतनों में बागवानी शुरू करने के लिए और शहरी छात्रों में से कम-से-कम कुछ छात्रों को खेत पर काम करने का अनुभव देने के लिए कदम उठाए जाने चाहिए।

8.77. हम यह अनुभव करते है कि प्रत्येक बच्चे के लिए अग्रदर्शी कार्य-अनुभव की व्यवस्था करना बहुत कठिन है। लेकिन कुछ चुने हुए स्कूलों में तत्काल इसे शुरू कर देना चाहिए और राज्यों को अपनी शिक्षानीति के रूप में इस उद्देश्य की घोषणा करनी चाहिए कि यथाशीघ्र कृषि और उद्योग में कार्य-अनुभव की सुविधाएं बढ़ाई जाएंगी और उन्हें उठती पीढ़ी की शिक्षा के लिए स्कूलों को उपलब्ध कराया जाएगा। परिवर्तनकालीन अवस्था में बहुसंख्यक बच्चे परम्परावत और प्रचलित उत्पादन कार्यक्रम में कार्य-अनुभव पाएंगे। इन परम्परागत कामों में भी विज्ञान और शिल्पविज्ञान से लाभ उठाने और छात्रों को पुराने कामों को और अधिक तरह करने के तरीके बताने के सम्बन्ध में सतत प्रयत्न किया जा सकता है। यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि सामान्यतः कार्य-अनुभव के कार्यक्रम में जितनी ही आधुनिकीकरण की भावना और अग्रदृष्टि होगी उतना ही कार्य-अनुभव का प्रभावी मूल्य बढ़ जाएगा।

8.78. **क्रियान्विति**—कार्य-अनुभव के कार्यक्रम को क्रियान्वित करने में हमें तीन समस्याओं के हल ढूंढ़ने पड़ेंगे : (1) क्षिक्षकों का प्रशिक्षण; (4) उपस्करों की पूर्ति और आवश्यक सुविधाओं की व्यवस्था; और (3) सभी स्कूलों में कार्यक्रम का उत्तरोत्तर विस्तार।

(1) **शिक्षकों का प्रशिक्षण**—उच्चतर प्राथमिक और माध्यमिक स्कूलों के लिए विशेष रूप से प्रशिक्षित शिक्षकों का होना आवश्यक है और इस प्रयोजन के लिए शायद विशेष-संस्थाओं की स्थापना करनी पड़े। पंजाब सरकार द्वारा शुरू की गई योजना में, जहां शिक्षकों के प्रशिक्षित करने के लिए किया गया मार्ग-दर्शन कार्य अन्य राज्यों में में भी इसी प्रकार के कार्यक्रमों का मार्ग-दर्शन कर सकता है। यह ठीक है कि हमें प्रत्येक स्कूल के लिए उचित रूप से प्रशिक्षित शिक्षकों को प्राप्त करने के विचार की ओर दृढ़ता से बढ़ना चाहिए, लेकिन अन्य स्थानों से भी शिक्षकों को अधिकाधिक संख्या में प्राप्त करना वांछनीय हो सकता है। अनेक देशों में, इन कार्यक्रमों के लिए कुशल कारीगरों और व्यावसायिक स्कूलों के स्नातकों को शिक्षकों के रूप में थोड़े समय के लिए प्रशिक्षण देकर शिक्षकों के रूप में काम पर लगा लिया जाता है। यही प्रक्रिया भारत में मिडिल और अवर माध्यमिक स्कूलों में अपनाई जा सकती है। ऐसे शिक्षक एक ही स्कूल में काम कर सकते हैं या कुछ स्कूलों के समूह के लिए अतिथि-अध्यापक के रूप में काम पर नियुक्त किए जा सकते हैं।

(2) **सुविधाएं और उपस्कर**—ग्रामीण स्कूलों में, जहां भी संभव हो, स्कूलों से फार्म लगे होने चाहिए। जहां यह संभव न हो, वहां छात्रों को निजी फार्मों पर कार्य-अनुभव की शिक्षा देने के लिए, स्थानीय लोगों की सहायता पाने का प्रयत्न करना चाहिए। इसके अतिरिक्त, सभी बड़े स्कूलों में उद्योग-अभिमुख अनुभव प्राप्त करने की व्यवस्था भी होनी चाहिए। सभी माध्यमिक स्कूलों में, चाहे वे ग्रामीण हों या शहरी, वर्कशाप होने चाहिए।

स्कूलों के लिए औजारों और सामग्रियों की सस्ती किटों के डिजाइन बनाने और उनके निर्माण में औद्योगिक संस्थाओं का सहयोग प्राप्त किया जा सकता है। इन्हें बच्चों के दल काम में ला सकते हैं और विभिन्न स्कूल-स्तरों के लिए श्रेणियों में बांटा जा सकता हैं। औजारों की मानकीकृत डिजाइनें और सरल आवश्यक उपकरण भारतीय शिल्पविज्ञान संस्थान (आई० टी० आई०), पालीटैक्निक, व्यावसायिक स्कूलों और संभवतः इंजीनियरी कालेजों को अपने प्रशिक्षण कार्यक्रमों के रूप में तैयार करने के लिए दिए जा सकते हैं।

(3) **कार्यक्रम का विकास**—योजना चालू करने से

पूर्व बहुत-सा प्रारम्भिक कार्य करना होगा और इसे अभी शुरू कर देना चाहिए। योजना के बारे में आवश्यक साहित्य तैयार कर उसे शिक्षकों और स्कूलों को देना होगा। विभाग के अधिकारियों, प्रिंसिपलों और प्रधानाध्यापकों के लिए एक छोटा अनुस्थापन पाठ्यक्रम चलाना होगा। इस कार्यक्रम के लिए आवश्यक शिक्षकों को प्रशिक्षित करने का कार्य पहले ही शुरू कर देना होगा।

यह स्पष्ट है कि यह योजना सभी स्कूलों में एक साथ शुरू नहीं की जा सकती, इसलिए क्रियान्विति के लिए एक क्रमबद्ध कार्यक्रम तैयार करना होगा। हमारा सुझाव है कि मोटे तौर पर, शिक्षा की हर अवस्था पर स्थित सभी शैक्षिक संस्थाओं में से कम से कम एक प्रतिशत में 1967-68 से शुरुआत की जाए और चौथी योजना के अन्त में यह संख्या बढ़ाकर लगभग 20 प्रतिशत कर दी जाए और पांचवीं योजना के अन्त में सभी संस्थाओं को सम्मिलित कर लिया जाए। यह भी सावधानी रखी जाए कि योजना लचीली रहे और प्राप्त अनुभव को दृष्टि में रखकर प्रतिवर्ष इसमें सुधार किए जाएं।

सामाजिक सेवा

8.79. हम यह सिफ़ारिश कर चुके हैं कि सामाजिक और राष्ट्रीय सेवा किसी न किसी रूप को सभी अवस्थाओं[1] पर शिक्षा का अभिन्न अंग बना दिया जाए। यह भी बताया गया था कि इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए (1) स्कूल जीवन में सामुदायिक जीवन के, और (2) सामुदायिक विकास तथा राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के कार्यक्रमों में विद्यार्थियों को भाग लेने देना चाहिए। इन दोनों प्रकार के कार्यक्रमों का ब्योरा नीचे दिया गया है।

8.80. **स्कूल कैम्पस में सामुदायिक जीवन**—कक्षा के कमरों, स्कूल-कैम्पस और स्कूल छात्रावासों में सामुदायिक कार्य के विभिन्न अवसर उपलब्ध हैं। यहां कुछ ऐसे कार्यकलाप दिए जा रहे हैं जिनमें आजकल अनेकों स्कूलों के छात्र भाग ले रहे हैं: स्कूल में कमरों और परिसर की सफाई करना, खेलने के मैदान को समतल करना, स्कूल का बागीचा बनाकर उसकी देखभाल करना, कक्षा के कमरों और स्कूलों को सजाना, फर्नीचर पर पालिश करना दीवारों पर सफेदी करना, खिड़कियों और दीवारों पर रोगन करना, इत्यादि। प्रत्येक स्कूल में इस प्रकार का काम सामान्य बात होना चाहिए। छात्रावासों में सामुदायिक जीवन पर विशेष रूप से बल देना चाहिए। और छात्रों की सुख-सुविधाओं की देख-रेख के लिए अनेक नौकर रखने के स्थान पर छात्र अपने कमरों की सफाई स्वयं कर सकते हैं, भोजन बनाने में सहायता दे सकते हैं और छात्रावास के अन्य आवश्यक काम कर सकते हैं। यह बताने की आवश्यकता की आवश्यकता नहीं है कि इन सब कार्यकलापों से छात्रों में शारीरिक श्रम के बारे में गौरव की भावना जाग्रत होती है।

8.81. **सामुदायिक विकास में भाग लेना**—हम पहले ही बता चुके हैं कि किस प्रकार सामुदायिक विकास और राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के कार्यक्रमों का संगठन प्रत्येक अवस्था[2] पर बदलता जाएगा। स्कूल समाज की सेवा किस प्रकार कर सकते हैं, इस दिशा में बेसिक स्कूलों ने काफी मार्गदर्शी काम किया है। प्राथमिक स्कूल इस विषय में उन स्कूलों से स्पर्धा कर सकते हैं। स्थानीय समाज के अच्छे सम्बन्ध रखने वाला, अच्छा प्रशिक्षण प्राप्त और उत्साह भरा शिक्षक सार्वजनिक स्वच्छता, ग्राम सुधार की सरल परियोजना, छोटे बच्चों की देखभाल, और बूढ़े और बीमारों की सेवा आदि उपयुक्त अवसर सरलता से खोज निकाल सकता है, जिनमें स्कूल के बच्चे समाज की सेवा कर सकते हैं। माध्यमिक स्तर पर बच्चे अधिक सयाने हो जाते हैं, इसलिए अधिक ऊंचे स्तर के समाज-सेवा सम्बन्धी कार्यक्रम संगठित करना संभव है। हमने सिफ़ारिश की है कि प्रत्येक स्कूल को अपना अलग सेवा-सम्बन्धी कार्यक्रम बनाकर उसे क्रियान्वित करना चाहिए; और सम्बन्धित विभागों और एजेन्सियों से मिलकर अनिवार्य समाज सेवा के लिए साल में 10 पूरे दिन (या अवर माध्यमिक अवस्था में 30 दिन और उच्चतर माध्यमिक अवस्था में 20 दिन) नियत कर लेने चाहिए। छात्र चाहे तो वह कार्य प्रतिवर्ष निर्धारित अवधि तक या माध्यमिक अवस्था की प्रत्येक उप-अवस्था पर कुल अवधि तक एक साथ कर सकता है। इस बड़े कार्य में सभी सम्बन्धित व्यक्तियों को विशेषकर शिक्षकों की काफी समझ-बूझ और तत्परता से काम करना होगा।

8.82. देश के सभी माध्यमिक-स्कूलों के लिए सामाजिक सेवा कार्यक्रम संगठित करना कोई सरल काम नहीं है। इसलिए, इसे थोड़ा-थोड़ा करके करना चाहिए। शुरू में, कुछ चुने हुए उच्चकोटि के स्कूलों में स्वैच्छिक आधार पर

1. अध्याय एक।
2. अध्याय एक।

राष्ट्रीय सेवा कार्यक्रम का संगठन किया जाना चाहिए। शिक्षा विभाग को सामाजिक और सामुदायिक सेवाओं की आदर्श योजनाएं तैयार करनी चाहिए। इस विषय में प्रशिक्षण स्कूलों को दूसरों का अगुआ बनना चाहिए और आसपास के स्कूलों के लिए कार्यक्रमों की सूची बनाने में सहायता करनी चाहिए। कार्यक्रमों की क्रियान्विति में ज्यों-ज्यों अनुभव बढ़ता जाए, इसका और विस्तार किया जा सकता है जिससे और अधिक स्कूल और छात्र लाभ उठा सकें।

8.83. **श्रम और सामाजिक सेवा शिविर**—यह बात ठीक है कि प्रत्येक माध्यमिक स्कूल को उपर्युक्त रीति से अपना-अपना सामाजिक सेवा-कार्यक्रम तैयार करने में सभी प्रकार से प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए, फिर भी, हम यह अनुभव करते हैं कि, बहुत से स्कूल, कम से कम थोड़े सालों तक ही सही, सेवा-कार्यक्रम तैयार नहीं कर पाएंगे। इसलिए हमारी सिफ़ारिश है कि श्रम और सामाजिक सेवा शिविर, जो (मानसून की ऋतु को छोड़कर, जबकि स्कूल से बाहर के काम नहीं किए जा सकते) सारे साल चलते रहते हैं, हर जिले में लगा करें और जिस माध्यमिक स्कूल का अपना सामाजिक कार्यक्रम न हो उसके लिए ऐसे शिविरों में भाग लेना और अपने छात्रों को इस परिपक्व और अमूल्य अनुभव का लाभ उठाने देना अनिवार्य हो। इस प्रयोजन के लिए जिला शिक्षा अधिकारी के सीधे नियंत्रण में प्रत्येक जिले में एक विशेष संगठन की स्थापना की जानी चाहिए। इस संगठन की यह जिम्मेदारी होगी कि (1) ऐसी विशिष्ठ परियोजनाएं चुनी जएं जिन पर छात्र सारे साल काम करते रहें; (2) आवश्यक सामुदायिक संपर्क की व्यवस्था की जाए; (3) निवासस्थान के प्रबन्ध में और उपकरण, बरतन, आदि की व्यवस्था में सहायता दी जाए; और (4) जहां संभव हो, शिवर के समस्त संगठन पर होने वाले खर्च के कुछ भाग की अदायगी की जाए। जिला संगठनों से परामर्श कर, शिविरों में स्वयं भाग लेने के लिए कार्यक्रम तैयार करना, छात्रों को शिविरों में से ले जाना और छात्रों को, दी गई परियोजनाओं को पूरा करने में, मार्ग दिखाना स्कूलों की जिम्मेदारी होगी।

8.84. शिविर के लिए परियोजना चुनने में बहुत सावधानी रखनी चाहिए। चुनाव के पीछे विचार यह होना चाहिए कि ऐसी परियोजनाएं चुनी जाएं जो निर्धारित समय में पूरी हो जाएं। इससे छात्रों और शिक्षकों को यह लगेगा कि वे कोई ऐसा काम कर रखे हैं जो उपयोगी हैं और समुदाय को स्थायी लाभ पहुंचाता है। इस प्रयोजन के लिए सामुदायिक विकास प्रशासन से सहयोग प्राप्त करना चाहिए और परियोजना को उस क्षेत्र की पंचवर्षीय योजना से सम्बन्धित करना चाहिए।

8.85. शिविर काल में यह आशा की जाती है कि छात्र प्रतिदिन 8 घंटे काम करेगा। शिविर की दिनचर्या इस प्रकार होगी :

2 घंटे—सवेरे अपने वैयक्तिक काम के लिए।
2 घंटे—बौद्धिक कार्य जो स्कूल के अध्ययन से सम्बन्धित न हो।
6 घंटे—शारीरिक श्रम।
2 घंटे—बौद्धिक कार्य जो स्कूल के अध्ययन से सम्बन्धित न हो।
2 घंटे—विश्राम और मनोरंजन।
2 घंटे—शाम को, अपने वैयक्तिक काम के लिए।
8 घंटे—सोना।

8.86. इस प्रयोजन के लिए आवश्यक धन का कुछ भाग स्थानीय ग्रामीण निर्माण कार्यक्रम से प्राप्त किया जा सकता है। सभी ऊपरी खर्चों की—जो बहुत होंगे—अदायगी सरकार द्वारा की जानी चाहिए। छात्रों से केवल (1) शिविर तक आने-जाने का व्यय, और (2) शिविर में किए गए भोजन का खर्च लिया जाए। छात्रों द्वारा किए गए काम के आधार पर, इनके विषय में कुछ सीमा तक सहायता दी जा सकती है। जिस छात्र की फीस आधी या पूरी माफ़ कर दी गई हो उसको शिविर में भी उसी प्रकार की छूट दी जा सकती है। छात्रों से अपने-अपने घरों से भोजन आदि वस्तुएं लाने को कहा जा सकता है। इस प्रकार खर्च की समस्या सुलझाई जा सकती है। इन सब बातों का सार यह है कि हर बार इस शिविर पर आने वाले खर्च को न्यूनतम रखने का प्रयत्न करना चाहिए। इसके अतिरिक्त, लड़के और लड़कियों के लिए अलग-अलग शिविर बनाए जाने चाहिए। लेकिन उनके कार्यक्रमों के प्रकार में कोई अन्तर रखने की आवश्यकता नहीं है।

8.87. इस योजना के लिए की जानी वाली प्रारम्भिक तैयारी उसी प्रकार की होगी जैसी कि पहले कार्य-अनुभव के बारे में कही जा चुकी है। हमारा सुझाव है कि यह योजना शुरू में लगभग पांच प्रतिशत जिलों में मार्ग-दर्शक परियोजना के रूप में शुरू की जानी चाहिए और फिर लगभग दस साल में सारे देश में चालू कर दी जानी चाहिए। प्रसंगवश यह भी कह दिया जाए कि माध्यमिक अवस्था पर इस कार्यक्रम के सर्वसामान्य बन जाने पर इसी नीति

का अनुसरण करते हुए इसे विश्वविद्यालयों पर भी लागू किया जा सकता है ।

शारीरिक शिक्षा

8.88. शारीरिक शिक्षा सम्बन्धी हाल की सरकारी योजना में यह प्रवृत्ति देखने को मिलती है कि शारीरिक शिक्षा में शरीर को स्वस्थ रखने पर ही बल दिया जा रहा है और उसके शैक्षिक मूल्य को भुलाया जा रहा है । यह स्पष्ट कर देने की आवश्यकता है कि शारीरिक शिक्षा से न केवल शारीरिक स्वास्थ्य पर ही अच्छा प्रभाव पड़ता है, बल्कि शारीरिक क्षमता, मानसिक चुस्ती, और परिश्रम, दल-भावना, नेतृत्व, नियम का अनुसरण, विजय और पराजय में समभाव जैसे कुछ उच्च गुणों के विकास में भी सहायता मिलती है । केवल निम्नलिखित सिद्धान्तों के आधार पर एक संतोषजनक शारीरिक शिक्षा कार्यक्रम तैयार किया जा सकता हैं :

(1) कार्यक्रमों में भाग लेने वालों की रुचि और क्षमता को ध्यान में रख कर, अभीष्ट परिणामों की दृष्टि से शारीरिक शिक्षा कार्यक्रम की योजना बनानी चाहिए ।

(2) इस कार्यक्रम में परम्परागत खेलों पर और शारीरिक कार्यकलापों पर, जो कि हमारे देश में विकसित हुए हैं, उचित बल दिया जाना चाहिए ;

(3) जिन कार्यकलापों को बढ़ावा दिया जा रहा है उनसे प्रत्येक बच्चे के मन में व्यक्तिगत महत्व और गर्व की भावना जागनी चाहिए ।

(4) खेल के मैदान में, और जिम्नेजियम में भी, प्राप्त अनुभवों से प्रजातंत्रात्मक सहकारिता की भावना से जिम्मेदारियों में हाथ बंटाने की समझ पैदा होनी चाहिए ।

(5) जो कार्यक्रम सामने रखे जाएं वे शिक्षा के अन्य कार्यक्रमों के पूरक हो, वे ही न हों ।

(6) कार्यक्रम हमारे वित्तीय पहुंच के बाहर न हो ।

(7) कार्यक्रम कुछ चुने हुए लोगों के न रहकर सब तक पहुंचें ।

(8) प्रतिभा और विशेष रुझान वाले छात्रों को विशेष शिक्षण और प्रशिक्षण दिया जाए ।

8.89. शारीरिक शिक्षा में विकासात्मक व्यायाम, लयपूर्ण कार्यकलाप, खेल और कूद, भ्रमण और सामूहिक कार्यकलाप सम्मिलित होने चाहिएं । इन सबके सरल और उच्च दोनों रूप हैं । प्रारम्भिक कक्षाओं में सरल कार्यकलापों को शुरू करना चाहिए और ज्यों-ज्यों लड़के और लड़कियां परिपक्व होती चली जाएं, उन्हें अधिक उच्च रूप सिखाते जाना चाहिए ।

8.90. बहुत छोटे बच्चे नियमित और शक्तिपूर्ण कार्यकलापों में भाग लेने के लिए मानसिक और शारीरिक रूप से परिपक्व नहीं होते । धीरे-धीरे उनकी समन्वय और आधारभूत गतियों की समझ विकसित की जानी चाहिए । पूर्व-प्राथमिक और शुरू की प्राथमिक अवस्थाओं पर बच्चों के पाठ्यक्रम उनके अपने चारों ओर की गतियों की नकल करने की इच्छा, उनकी खेलने की भावना, साहसिक काम करने की इच्छा और अपने साथियों से अधिक अच्छा कुछ कर दिखाने की भावना पर आधारित होनी चाहिए । यह अवस्था "गति माध्यम से शिक्षा" की सबसे अधिक महत्वपूर्ण अवस्था है । इस समय बच्चे को ठीक चलना, दौड़ना, छकाना, फेंकना, आदि आधारभूत कौशलों पर अधिकार प्राप्त कर लेना चाहिए । सहीपन और सटीकता जैसे समन्वय के ऊंचे रूप अगली अवस्था के लिए छोड़ दिए जाने चाहिए ।

8.91. बच्चे के पूर्व-किशोरावस्था में पहुंचने पर उसकी रुचियों और क्षमता में परिवर्तन आ जाता है, इस लिए शारीरिक शिक्षा में उसकी शक्ति को प्रकाश में लाने वाले कार्यकलापों, सरल दलगत खेलों और कौशल के सूक्ष्मतर रूपों के लिए स्थान होना चाहिए । माध्यमिक स्कूल के किशोर बड़ों की नकल करना चाहते हैं, उन्हें खेल कूद और व्यायाम (एथलेटिक्स) के उच्चतर रूप सिखाए जाने चाहिए । पहले प्राप्त कौशलों में मार्गदर्शन और अभ्यास से विपुणता प्राप्त कर लेनी चाहिए । यह वह आयु है जब लड़के और लड़कियां विशिष्टता पाना चाहते हैं इसलिए शारीरिक शिक्षा के पाठ्यक्रम में काम को अच्छी तरह करने कीतकनी कें सम्मिलित होनी चाहिए ।

8.92. अन्तिम दो कक्षाओं को छोड़कर प्राथमिक अवस्था की सभी कक्षाओं में लड़कों और लड़कियों के लिए एक ही पाठ्यक्रम काम में लाया जा सकता है । उसके बाद से, उनकी अलग अलग रुचियों और क्षमताओं को ध्यान में रखकर, अलग अलग पाठ्यक्रम बनाए जाने चाहिए । लड़कियां लययुक्त कार्यकलापों से आकृष्ट होंगी; बैडमिन्टन, थ्रोबाल आदि खेल, जिनमें एक दूसरे से भिड़ना नहीं पड़ता और कम श्रम करना पड़ता हैं, उन्हें पसन्द

आती हैं। अधिक शक्तिपूर्ण खेल, जैसे बास्केट बाल, नैट बाल, हाकी बाद की अवस्था में सिखाए जा सकते हैं। उच्चतर के व्यायाम के रूप भी सिखाए जा सकते है।

8.93. सभी अवस्थाओं के लिए शारीरिक शिक्षा कार्यक्रम तैयार करते समय, सुविधा, समय और शिक्षकों के सीमित होने के कारण, यही नहीं देखना चाहिए कि क्या उपयोगी है, अपितु यह भी देखना चाहिए कि क्या संभव है। इधर कुछ सालों में, शिक्षा मंत्रालय, राष्ट्रीय अनुशासन योजना और सहायक कैडेट कोर की, जिनके अनेक कार्यकलापों में समानता है, प्रार्थना पर विशेष दल द्वारा तैयार की गई राष्ट्रीय शिक्षा योजना जैसी अनेक योजनाओं में एक-दूसरे से होड़ लगी हुई थी। डा० हृदयनाथ कुँजरू की अध्यक्षता में शिक्षा मंत्रालय द्वारा नियुक्ति की गई एक विशेष समिति ने सिफ़ारिश की कि एक ऐसी सामंजस्यपूर्ण योजना तैयार की जाए जिसके पाठ्यक्रम में अन्य पाठ्यक्रमों की सारी अच्छी बातों का समावेश हो। समिति ने विभिन्न योजनाओं के उत्साही समर्थकों द्वारा पेश किए गए दावों में समझौता लाने का प्रयत्न किया और उसका परिणाम है शारीरिक शिक्षा का एक मिला-जुला कार्यक्रम जिसे नेशनल फिटनैस कोर कहा गया है। यह संभव है कि इस नई योजना की क्रियान्विति में हम शारीरिक शिक्षा के शैक्षिक प्रयोजन को भूल जाए या उसकी उपेक्षा कर दें। चूँकि समझौता-योजना की काफी टीका-टिप्पणी हुई है, इसलिए हमारा सुझाव है कि इस विषय की पुनः जाँच की जाए और ऊपर वर्णित सिद्धान्तों की सहायता से एक नया शारीरिक कार्यक्रम तैयार किया जाए।

सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा

8.94. स्कूल पाठ्यचर्या में एक गंभीर त्रुटि यह है कि उसमें सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा की व्यवस्था नहीं की गई है। अधिकांश भारतीयों के जीवन में धर्म एक बड़ी अभिप्रेरक शक्ति के रूप में विद्यमान है और चरित्र के निर्माण तथा नैतिक मूल्यों की शिक्षा से उसका आन्तरिक सम्बन्ध है। एक ऐसा राष्ट्रीय शिक्षा कार्यक्रम जो लोगों के जीवन, आवश्यकताओं और अभिलाषाओं से सम्बन्धित हो इस उपयोगी शक्ति की उपेक्षा नहीं कर सकता। इसलिए हमारी सिफ़ारिश है कि जहां-कहीं संभव हो बड़े-बड़े धर्मों के नीतिसम्बन्धी उपदेशों की सहायता से सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा देने का जागरूक और संगठित प्रयत्न किया जाए।

8.95. **परोक्ष विधि से शिक्षा**—हमारा विश्वास है कि यह शिक्षा प्रत्यक्ष और परोक्ष, सुझाव और चर्चा तथा सीख, इन दोनों विधियों से दी जानी चाहिए। हम अच्छे चरित्र के निर्माण में अप्रत्यक्ष प्रभाव को बहुत महत्व देते हैं। मूल्यों की समझ के विकास पर स्कूल के वातावरण, शिक्षकों के व्यक्तित्व और आचरण और स्कूल में दी जाने वाली सुविधाओं का बड़ा असर पड़ता है। हम इस बात पर जोर देना चाहते हैं कि मूल्यों का बोध स्कूल की सारी पाठ्यचर्या और कार्यकलापों के कार्यक्रमों में व्याप्त रहे। नैतिक शिक्षा का पाठ पढ़ाने वाले शिक्षक मात्र चरित्र निर्माण के जिम्मेदार नहीं हैं। हर शिक्षक को, चाहे वह कोई भी विषय पढ़ाता हो, आवश्यक रूप से इस जिम्मेदारी को स्वीकार करना चाहिए। उसे यह पक्का कर लेना चाहिए कि अपना विशेष विषय पढ़ाते हुए और छात्रों के सम्पर्क में आते समय, ईमानदारी और सामाजिक जिम्मेदारी जैसे आधारभूत मूल्य प्रकाश में आएं। शिक्षक को, हमेशा, अन्तर्निहित नीति को उठाकर दिखाने की आवश्यकता नहीं है; हम यह भी कह सकते हैं कि उसे ऐसा करना भी नहीं चाहिए; लेकिन यदि उसने अपने विषय की सीमा में या शिक्षक के रूप में अपने काम में निहित मूल्यों पर कभी विचार किया हो तो वे अनजाने ही उसके शिक्षण में उतर आएंगे और उसके छात्रों के मस्तिष्क पर अपना असर डालेंगे। इसके अतिरिक्त उद्देश्य की भावना से स्कूल के सभी कार्यकलाप अनुप्रेरित होने चाहिए और वह स्कूल के जीवन, स्वर और वातावरण में प्रतिबिम्बित होना चाहिए। स्कूल में छात्रों की सभा, पाठ्यचर्या और सह-पाठ्यचर्या कार्यकलाप, सभी धर्मों के धार्मिक त्यौहार मनाना, कार्य-अनुभव, दल के रूप में खेल और कूद, विषय-क्लब, सामाजिक सेवा-कार्यक्रम इन सबसे सहकारिता और पारस्परिक सम्मान, ईमानदारी और सच्चाई, अनुशासन और सामाजिक-जिम्मेदारी इत्यादि से सम्बन्धित मूल्यों की शिक्षा देने में सहायता मिलती है। इन मूल्यों का आज, जबकि युवक और युवतियाँ चरित्र-सम्बन्धी संकट मे से गुजर रहीं हैं, भारतीय समाज में विशेष महत्व है।

8.96. **नैतिक मूल्यों का प्रत्यक्ष-शिक्षण**—हम समझते हैं कि नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा देने की इस अप्रत्यक्ष विधि के अतिरिक्त, स्कूल कार्यक्रमों में प्रत्यक्ष नैतिक शिक्षा की विशेष व्यवस्था करनी भी बहुत ही आवश्यक है। हम श्री प्रकाश समिति[1] की इस

1. **धार्मिक और नैतिक शिक्षा समिति की रिपोर्ट, शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार, मई दिल्ली, 1960।**

सिफ़ारिश से सहमत हैं कि स्कूल के समय में प्रति सप्ताह एक या दो घंटे नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा के लिए नियत कर देने चाहिए। प्राथमिक स्तर पर यह शिक्षा रोचक कहानियों के माध्यम से दी जानी चाहिए; इन कहानियों में दुनिया के बड़े-बड़े धर्मों से ली गई कहानियां भी होनी चाहिए। माध्यमिक अवस्था पर जिन मूल्यों की शिक्षा देनी हो उन पर शिक्षक और छात्रों में बार-बार चर्चा होनी चाहिए। शिक्षण-पद्धति चाहे कुछ भी क्यों न हो, इसके कारण नैतिक शिक्षा न तो बाकी पाठ्यचर्या से कटकर अलग पड़ जानी चाहिए और न एक ही घंटे में सीमित रह जानी चाहिए। यदि मूल्यों को छात्र के चरित्र का अंग बनाना अभीष्ट हो तो नैतिक जीवन को सब ओर से संवारने का प्रयत्न करना चाहिए।

8.97. **नैतिक मूल्यों और धर्मों में संबंध**—जिन नैतिक मूल्यों की शिक्षा देने का प्रयत्न किया जा रहा है उनमें और बड़े-बड़े धर्मों के उपदेशों में स्वभावतः कई बातें सहसंबंधित हैं। नैतिक मूल्यों और जीवन की समस्या पर चर्चा करते समय विश्व के बड़े-बड़े धर्मों से ली गई कहानियों की चर्चा करना अत्यन्त उपयुक्त होगा। सभी धर्म ईमानदारी और सचाई, दूसरों का खयाल रखना बूढ़ों के प्रति आदर, पशुओं पर दया, दीन-दुखियों के प्रति सहानुभूति जैसे चरित्र के आधारभूत कुछ गुणों पर बल देते हैं। प्रत्येक धर्म के साहित्य में अनुयायियों को किसी नैतिक मूल्य का महत्व बताने के लिए कहानी या दृष्टान्त को मुख्य स्थान दिया जाता है। नैतिक शिक्षा के कार्यक्रम में यदि शिक्षक ठीक मौके पर ऐसी कहानियां सुनाए तो उनका बहुत ही अच्छा असर पड़ेगा; निचली कक्षाओं में तो यह बात और भी प्रभावी होगी।

8.98. बाद की अवस्थाओं में; महान धार्मिक और आध्यात्मिक नेताओं के जीवन का चित्रण करना स्वाभाविक होगा। इनमें से कुछ सामाजिक और साहित्य के अध्ययन में सम्मिलित कर लिए जा सकते हैं; लेकिन, यह अत्यावश्यक है कि कार्यक्रम में सभी मुख्य धर्म सम्मिलित कर लिए जाएं। इसी प्रकार, विभिन्न धर्मों के त्यौहार मनाने में इन धर्मों के नेताओं के जीवन के इतिहास में से खास-खास घटनाओं को सुनाने का अवसर मिलता है। माध्यमिक स्कूल के अन्तिम दो वर्षों में, बड़े-बड़े धर्मों के सारभूत उपदेशों के अध्ययन के लिए भी व्यवस्था होनी चाहिए।

रचनात्मक कार्यकलाप

8.99. इससे पहले की चर्चाओं में, हमने भाषा, विज्ञान और गणित, सामाजिक अध्ययन, कार्य-अनुभव, सामाजिक सेवा, शारीरिक शिक्षा और नैतिक तथा अध्यात्मिक मूल्यों के विषय क्षेत्रों पर ध्यान दिया है क्योंकि हम समझते हैं कि स्कूल पाठ्यचर्या में उनके पुनः अनुस्थापन की आवश्यकता है। दो और विषय-क्षेत्र—कला और सहपाठ्यचर्या कार्यकलाप—हैं, जिन पर हम संक्षेप में विचार करेंगे और उसके बाद इस चर्चा को समाप्त कर देंगे।

8.100. **कला शिक्षा**—एक ऐसे युग में जिसमें कि खोजों और अनुसंधानों को महत्व दिया जाता है, सृजनात्मक अभिव्यक्ति की शिक्षा का मूल्य और भी बढ़ जाता है। दुर्भाग्य से ललित कलाएं सामान्यतः वास्तविक शिक्षा का एक अनावश्यक और अलंकारिक अंग ही समझी जाती हैं और परीक्षा के विषय न होने के कारण उपेक्षित ही रहती हैं। संगीत और दृश्यकला के विषयों में शिक्षकों को प्रशिक्षित करने की पर्याप्त सुविधाएं उपलब्ध नहीं हैं। शिक्षा में कलाओं की उपेक्षा से शैक्षिक प्रक्रिया दुर्बल हो जाती है और सौन्दर्यमूलक रुचियों और मूल्यों में गिरावट आ जाती है। हम सिफ़ारिश करते हैं कि कला-शिक्षा की वर्तमान स्थिति के सर्वेक्षण के लिए और इसके विस्तार तथा व्यवस्थित विकास की संभावनाओं की खोज के लिए भारत सरकार एक विशेषज्ञ-समिति नियुक्त करे। इस सम्बन्ध में हम देश के सभी भागों में बाल-भवनों की स्थापना की, जिसमें स्थानीय लोगों से काफी सहायता प्राप्त की जानी चाहिए, सिफ़ारिश करते हैं।

8.101. **सह-पाठ्यचर्या कार्यकलाप**—जहां तक सह-पाठ्यचर्या कार्यकलापों का संबंध है उनमें से कुछ की ओर हम कार्य-अनुभव, सामाजिक सेवा और शारीरिक शिक्षा कार्यक्रमों की चर्चा के समय संकेत कर चुके हैं। स्कूल की निगरानी में उसके अन्दर और बाहर अनेक प्रकार के कार्यकलापों से छात्र को विभिन्न-अध्ययन अनुभव प्राप्त होते हैं; हम स्कूल पाठ्यचर्या को इन अध्ययन-अनुभवों की समष्टि समझते हैं। इस दृष्टि से पाठ्यचर्या और पाठ्यचर्येतर कार्यों में अन्तर नहीं रह जाता; तथा स्कूल-कैम्प और खेल-कूद पाठ्यचर्या कार्यकलाप या सह-पाठ्यचर्या कार्यकलाप हो जाते हैं। फिर भी विभिन्न प्रकार की हाबियां, भाषण प्रतियोगिता, नाटक जैसे कुछ इस प्रकार के कार्यकलाप भी हैं जो काम की अपेक्षा खेल की कोटि में अधिक आते हैं और जिनसे सृजनात्मक आत्म-प्रकाशन के लिए अधिक मौका मिलता है। प्रत्येक स्कूल को इस प्रकार के विभिन्न कार्यक्रमों का संगठन करना चाहिए ताकि उसका प्रत्येक छात्र अपनी रुचि और पसन्द के कार्यक्रम ले सके।

लड़के और लड़कियों के लिए पाठ्यचर्याओं में अन्तर रखना

8.102. इस चर्चा को समाप्त करने से पहले, हम स्कूल पाठ्यचर्या से सम्बन्धित दो महत्वपूर्ण प्रश्नों पर संक्षेप में कुछ कहेंगे। उनमें से पहला प्रश्न है लड़के और लड़कियों के लिए पाठ्यचर्या में अन्तर रखना, और दूसरा है बुनियादी शिक्षा।

8.103. इनमें से पहले प्रश्न की श्रीमती हंसा मेहता की अध्यक्षता में, राष्ट्रीय स्त्री शिक्षा परिषद् द्वारा नियुक्त समिति ने विशेष रूप से जांच की। इस समिति ने इस विषय में निम्नलिखित सिफ़ारिशें भेजीं।

(1) जिस प्रजातन्त्रात्मक और समाजवादी समाज की हम कल्पना करते हैं उसमें शिक्षा ऐसी वैयक्तिक क्षमताओं, अभिवृत्तियों और रुचियों से सम्बन्धित होगी जिनका यथार्थ में लिंगभेद से सम्बन्ध नहीं होता। इसलिए ऐसे समाज में लिंगभेद के आधार पर पाठ्यचर्याओं में अन्तर करने की आवश्यकता नहीं है।

(2) परिवर्तन की स्थिति में (हम ऐसी स्थिति में से ही गुजर रहे हैं) पुरुष और स्त्रियों के बीच के कुछ मनोवैज्ञानिक अन्तरों को और उन पर आधारित कुछ सामाजिक कार्यों के विभागों की वस्तुस्थिति के रूप में और लड़के तथा लड़कियों के लिए पाठ्यचर्याओं के निर्माण के लिए आधार के रूप में स्वीकार करना होगा। ऐसा करते हुए इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि कालान्तर में जो मूल्य और अभिवृत्तियां अत्यावश्यक हों उनका स्त्रियों और पुरुषों में अधिकाधिक निर्माण होता रहे और ऐसा कोई कदम न उठाया जाए जिससे विद्यमान अन्तर उसी प्रकार बने रहें या अधिक बड़े बन जाएं।

हम इन सुझावों से सहमत हैं। यह देखा जा सकता है कि हमने दसवीं तक के सभी छात्रों के लिए समान पाठ्यचर्या निर्धारित की है और केवल कार्य-अनुभव तथा भाषा में ही विकल्प के लिए स्थान रखा है। पाठ्यचर्या में सम्मिलित विषयों की पढ़ाई उच्चतर और अवर इन दो स्तरों पर की जा सकती हैं। ये विकल्प लड़के और लड़कियों के लिए समान है।

8.104. निम्नलिखित बातें ध्यान देने योग्य हैं :

(1) उच्चतर माध्यमिक अवस्था पर हमारी इस प्रस्तावित पाठ्यचर्या में गृह-विज्ञान भी एक ऐच्छिक विषय है। यह एक प्रिय विषय है लेकिन इसे लड़कियों के लिए अनिवार्य नहीं बनाना चाहिए।

(2) संगीत और ललित कला का वर्ग भी लड़कियों का प्रिय विषय है। इस समय, माध्यमिक अवस्था पर इन विषयों की पढ़ाई की बहुत ही मामूली व्यवस्था की गई है। इन विषयों को बड़े पैमाने पर सिखाने की व्यवस्था की जानी चाहिए।

(3) गणित और विज्ञान महत्वपूर्ण विषय हैं और विश्वविद्यालय की अवस्था पर उनसे सम्बन्धित विशिष्ट पाठ्यक्रमों में प्रवेश पाने के लिए काफी तैयारी होनी चाहिए। इसलिए, लड़कियों को माध्यमिक अवस्था पर गणित और विज्ञान पढ़ने के लिए प्रोत्साहन देने के सम्बन्ध में और उन विषयों की अध्यापिकाएं तैयार करने के सम्बन्ध में विशेष प्रयत्न किए जाने चाहिए।

नई पाठ्यचर्या और बुनियादी शिक्षा

8.105. महात्मा गाँधी ने 25 वर्ष से भी पहले बुनियादी शिक्षा का आन्दोलन शुरू किया था। उसमें उन्होंने राष्ट्र के लिए एक नए प्रकार की प्रारम्भिक शिक्षा का प्रस्ताव रखा था जिसका केन्द्र शारीरिक श्रम और उत्पादक-कार्य था और जिसका सामुदायिक जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध था। भारतीय शिक्षा के इतिहास में उसका महत्वपूर्ण स्थान था। वह एक ऐसी शिक्षा के प्रति क्रान्ति थी जो भारत में दसियों सालों के अंग्रेजी शासन में परम्परागत प्रणाली पर बनी थी, जो अनुत्पादक और पुस्तकीय थी और जिसमें परीक्षाएं बहुत मुख्य थीं। बुनियादी शिक्षा से राष्ट्रीय-चेतना जाग्रत हुई; हो सकता है कि उससे प्राथमिक अवस्था पर शिक्षा के रूप में कोई आमूल परिवर्तन न आया है लेकिन, इतना अवश्य है कि एक अधिक बड़े क्षेत्र में शिक्षा सम्बन्धी विचार और व्यवहार पर उसकी गहरी छाप पड़ी है। हमारा यह विश्वास है कि इस प्रणाली की मूल बातें तत्वतः ठीक हैं और थोड़े संशोधन से उन्हें हमारी शिक्षा प्रणाली की न केवल प्राथमिक अवस्था पर अपितु सारी ही अवस्थाओं पर शिक्षा का अंग बनाया जा सकता है। ये मूल बातें इस प्रकार हैं :(1) शिक्षा से उत्पादक कार्यकलाप; (2) पाठ्यचर्या का उत्पादक कार्यकलापों और भौतिक तथा सामाजिक पर्यावरण से सह-सम्बन्ध; और (3) स्कूल और स्थानीय समुदाय से घनिष्ठ सम्बन्ध।

8.106. जहां तक उत्पादक कार्य का प्रश्न है, हम यह कह चुके हैं कि हमने उसके जिस रूप का प्रस्ताव रखा है वह बुनियादी शिक्षा के उत्पादक कार्य के समान ही है। प्राथमिक अवस्था पर दोनों का रूप लगभग एक-सा है। हमने कार्य-अनुभव को माध्यमिक स्कूलों में भी सम्मिलित

करने की सिफ़ारिश की है। हमारे विचार से तो उच्चतर शिक्षा संस्थाओं और विश्वविद्यालयों में भी कार्य-अनुभव को शिक्षा के अभिन्न अंग के रूप में विकसित करने का प्रयास करना चाहिए। ये संस्थाएं ही शैक्षिक क्षेत्र में आदेश प्रस्तुत किया करती हैं और इस अवस्था पर कार्य-अनुभव को प्रभावी रूप में और बड़े पैमाने पर शुरू करने से सफलता अवश्य मिलेगी। इस दृष्टि से, हम अनुभव करते हैं कि विश्वविद्यालयों और अन्य उच्चतर शिक्षा संस्थाओं में कार्य-अनुभव के विशेष कार्यक्रम संगठित करना उपयोगी होगा। उदाहरण के लिए :

(1) जहां तक चुनी हुई विज्ञान और शिल्पविज्ञान की संस्थाओं की बात है उनमें खास-खास औद्योगिक और वैज्ञानिक परियोजनाओं पर काम शुरू करना प्रत्येक दृष्टि से बहुत उत्साह-वर्धक और लाभकारी होगा। (संस्थाओं को परियोजना की प्रत्येक अवस्था में से गुजरते हुए पूर्ण उत्पादन की अवस्था तक पहुंचना चाहिए।)

(2) कुछ स्कूलों में स्कूल और कालेज में काम आने वाले वर्कशाप सम्बन्धी और वैज्ञानिक उप-स्करों को तैयार करने का काम शुरू करना चाहिए।

(3) कुछ संस्थाएं अपने लिए और अपने आसपास के लोगों के लिए आवश्यक फर्नीचर और शिक्षण-साधन आदि के निर्माण का काम हाथ में ले सकती हैं।

8.107. हमने शिक्षा प्रणाली में यथासंभव सब जगह सह-संबंध (जो कि बुनियादी शिक्षा का दूसरा महत्वपूर्ण पहलू है) स्थापित करने का प्रयत्न किया है। बुनियादी शिक्षा का विचार रहा है कि प्राथमिक विकास वर पाठ्यचर्या की विषय-वस्तु का शिल्प-कार्य और भौतिक तथा सामाजिक पर्यावरण से यथासंभव निकट सम्बन्ध होना चाहिए। प्राथमिक अवस्था से सम्बन्धित हमारे विचार इससे बहुत मिलते-जुलते हैं। हमने सुझाव दिया हैं कि माध्यमिक अवस्था पर कार्य-अनुभव को पाठ्य-चर्या और पर्यावरण में यथा-संभव निकट सह-सम्बन्ध स्थापित कर दिया जाए। उच्चतर शिक्षा की अवस्था पर हमने इस बात पर बल दिया कि विषयों के चुनावों में अधिक छूट हो, विभिन्न विषयों के पढ़ने की सुविधा हो और शिक्षण और अनुसंधान का प्रयोजन स्थानीय, क्षेत्रीय और राष्टीय समस्या को समझना और उनका समाधान करना हो।

8.108. बुनियादी शिक्षा की तीसरी विशेषता, अर्थात स्कूल-समुदाय सम्बन्ध, पर इस अध्याय में अन्यत्र चर्चा की जा चुकी है। बुनियादी शिक्षा इस बात पर बल देती है कि स्कूल को ऐसे सजीव और क्रियाशील समुदाय के रूप में संगठित करना चाहिए जिसमें सामाजिक सांस्कृ-तिक और मनोरंजक कार्यकलापों के सजीव कार्यक्रम हों। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि प्रत्येक अच्छे स्कूल को इसी रूप में अपने सामाजिक जीवन का संगठन करना चाहिए। स्थानीय सामुदायिक जीवन में स्कूल का सक्रिय रूप से भाग लेना बच्चों को सामाजिक विचारों वाले और सहकारी छात्र बनाने में और भी महत्वपूर्ण होता है। अनेक विद्यमान बुनियादी स्कूलों ने आस-पास के इलाकों के लोगों की सेवा करने के सम्बन्ध में अत्युत्तम उदाहरण सामने रखे हैं; और जैसा कि हमने बताया है, सामुदायिक जीवन और सामाजिक सेवा में भाग लेने का यह कार्यक्रम अब सभी अवस्थाओं पर शिक्षा का अभिन्न अंग बन जाना चाहिए। हमारे माध्यमिक स्कूलों और कालेजों को तथा प्राथमिक स्कूलों को बाहर के सामुदायिक जीवन से निकट सम्बन्ध स्थापित करना चाहिए और सामाजिक कार्य और राष्ट्रीय पुनर्निर्माण में भाग लेना चाहिए ताकि छात्रों में अनुशासन की भावना जागे, वे शारीरिक श्रम का गौरव समझें और सारे समुदाय और राष्ट्र के प्रति आभारी और जिम्मेदार होना सीखें।

8.109. ऊपर की गई चर्चा से यह स्पष्ट हो जाता हैं कि हमारे विचार से, बुनियादी शिक्षा के मूल सिद्धान्त इतने महत्वपूर्ण हैं कि उनसे सभी अवस्थाओं पर हमारी शिक्षा-प्रणाली का मार्गदर्शन होना चाहिए। हमारे प्रस्ताव का सार यही है; और इस कारण हम शिक्षा की किसी एक अवस्था को बुनियादी शिक्षा कहने के पक्ष में नहीं हैं।

8.110. **उपसंहार**—हमने इस अध्याय में स्कूल-शिक्षा की विभिन्न अवस्थाओं की पाठ्यचर्या के विषयों पर चर्चा की है। इन प्रस्तावों में स्कूल की समस्त पाठ्य-चर्या के संगठन में अधिक समष्टिपूर्ण नीति अपनाने, सामान्य शिक्षा के विषयों की नई परिभाषा देने और विशेषीकरण के महत्व के बारे में नया दृष्टिकोण अपनाने पर नए रूप से बल दिया गया है। हमारा सामान्य विचार है कि विज्ञान, कार्य-अनुभव और नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों के क्षेत्र में सामान्य शिक्षा को और सशक्त बनाने की और कुछ अन्य विषयों में नए अनुस्थापन की आव-श्यकता है। दस साल तक शिक्षा सामान्य शिक्षण के रूप में दी जानी चाहिए और उसके बाद ही विशेषीकरण शुरू होना चाहिए। यह शिक्षण व्यावसायिक शिक्षा से बहुत भिन्न नहीं होना चाहिए। सफलता पाने के लिए शिक्षण-पद्धति, मूल्यांकन और मार्गदर्शन का अनुस्थापन होना आव-श्यक है। अगले अध्यायों में हम इन प्रश्नों पर विचार करेंगे।

अनुपूरक टिप्पणी-एक

कार्य-अनुभव के सामान्य कार्यक्रम

रचनात्मक कार्य-अनुभव प्रदान करने के लिए एक विविध और विशाल क्षेत्र से कामों का चुनाव किया जा सकता है। उनमें से किनको चुना जाए यह मुख्य रूप से साज-सामान और प्रशिक्षित शिक्षकों के मिलने पर निर्भर करता है। नीचे जो सूची दी गई है वह मात्र संकेतात्मक है और उसमें से क्रियाकलापों का चुनाव सामयिक स्थानीय परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए। इस सूची में लड़कियों के लिए तथा ग्रामीण क्षेत्रों के स्कूलों के लिए विशेष रुचिकर काम भी सम्मिलित हैं।

अवर प्राथमिक स्कूल

कागज काटना
गत्ता (कार्ड बोर्ड) काटना और मोड़ना
मिट्टी एवं प्लैस्टसीन के मॉडल बनाना
कताई (जहाँ के वातावरणमें यह उपयुक्त प्रतात हो)
सादी कढ़ाई
घर में या खेतों में सामान्य रूप से पौधे लगाने का कार्य
साग-सब्जियों की बाड़ी लगाना

उच्चतर प्राथमिक स्कूल

बेंत और बांस का काम
चमड़े का काम
कुम्हारी
कढ़ाई
बुनाई
मॉडल बनाना
फ्रेट कार्य
फ़ार्म पर कार्य

अवर माध्यमिक स्कूल

काष्ठशिल्प (लकड़ी का काम)
साधारण धातुशिल्प
टोकरीसाज़ी
चमड़े का काम
मृत्तिकाशिल्प
साबुन बनाना
जमड़ा बनाना
परिरक्षण
बुनाई
बिजली की मरम्मत
पाकशास्त्र
मॉडल बनाना
साधारण वैज्ञानिक साज़-सासान बनाना
कक्षा की सजावट
कालीन बनाना
जिल्दसाज़ी
लाइनोकटिंग
कपड़ा छपाई
सिलाई
खिलौने बनाना
प्रसाधन कला
लकड़ी पर नक़्क़ाशी
फ़ार्म की मशीनों का सरल ज्ञान
पशुओं की देखभाल
फ़सल की देखभाज
मिट्ठी की देखभाल
कर्मशाला अभ्यास

उच्चतर माध्यमिक स्कूल

ऊपर की सूची के अनेक काम जारी रखे जाएंगे, पर क्रमशः कर्मशाला अभ्यास पर अथवा औद्योगिक या वाणिज्यिक संस्थानों में या फ़ार्मों पर वास्तविक कार्य-अनुभव पर अधिकाधिक जोर दिया जाएगा। इन सारे क्रियाकलापों को उत्पादनमूलक बनाने का यत्न किया जाएगा काष्ठशिल्प, धातुशिल्प तथा कृषि के सम्बन्ध में उच्चतर तया अधिक श्रमसाध्य दक्षताएं प्राप्त करने पर बल दिया जाएगा।

अनुपूरक टिप्पणी-दो

सोवियत संघ में कार्य-अनुभव के सामान्य कार्यक्रम

(श्री एस० जी० शापोवालेंकों द्वारा संपादित यूनैस्को द्वारा प्रकाशित (1963) पुस्तक 'पालिटैक्निकल एजुकेशन इन दि यू. एस. एस. आर' से उद्धृत)

ग्रेड-एक में वे कागज़, पेस्टबोर्ड, कपड़ा, मृत्तिका, तथा प्लैस्टिसीन का काम करते हैं तथा पौधे उगाने से सम्बन्धित साधारण कार्य करते हैं। कागज का काम करते हुए वे आधारभूत दक्षताएं प्राप्त करते हैं, जैसे कि कागज और पेस्टबोर्ड पर निशान लगाना, मोड़ना, तह करना उन्हें कैंची, या चाकू से निशान की लकीरों के साथ-साथ काटना और गोंद लगाकर चिपकाना। यह कार्य सात वर्ष का बालक भली-भाँति कर सकता है और इसे करने के साथ-साथ वह पैंसिल, रूलर, कैंची और गोंद से सफ़ाई से काम लेकर अपने इस्तेमाल की साधारण वस्तुएं बनाना सीख लेता है (उदाहरण के लिए, गणित के अभ्यास की कापी, पुस्तक-चिन्ह, बीज के पैकेट, शब्द-सूचियों के लिए नोटबुकें, क्रिसमस-कार्ड इत्यादि)। कपड़ों का काम करते समय बालक बटन लगाने, छोटी-छोटी साधारण चीजें (पेन पोंछने का कपड़ा, रूमाल इत्यादि) सीना और अपने कपड़ों की देखभाल करना सीख लेता है। मृत्तिका और पैलैस्टिसीन काम का पर्याप्त शैक्षिक महत्व है क्योंकि इस से बालकों की प्रेक्षण-शक्ति, रचनात्मक प्रवृत्ति तथा सुरुचि का विकास होता है। माडल बनाने का काम करते हुए उनमें अंग-संचालनों के समन्वय, दक्षता, आंखों से मापने की सामर्थ्य, तथा स्थान का अन्दाज करने की योग्यता का विकास होता हैं।

स्कूल की प्रायोगिक जमीन पर विशेष क्यारियों में वे फूलों वाले पौधे उगाना सीखते हैं तथा कक्षा में व घर में दोनों ही जगह घरेलू पौधों की देखभाल से सम्बन्धित आरम्भिक व्यवहारिक दक्षताएं प्राप्त करते हैं।

ग्रेड दो में भी बालक कागज़, पेस्टबोर्ड मृत्तिका और प्लैस्टसीन का काम करते हैं और सिलाई का काम सीखना जारी रखते हैं और स्कूल के प्लाट पर भी कार्य करते हैं परन्तु अब उनका काम कुछ अधिक जटिल हो जाता है। अब बालक कागज और पेस्टबोर्ड से निशान की लाइनों के सहारे आकृतियां काटते हैं और उन्हें परस्पर गोंद से चिपकाते हैं और साथ ही सरल मापनों के लिए व अपने भीतर परिशुद्धता की इच्छा के 'क्रमशः विकास के फलस्वरूप अपने कार्य की उत्कृष्टता जांचने के लिए अंशांकित मापक (ग्रेजुएटेड रूलर) तथा समकोणक (सेट स्क्वेयर) का प्रयोग सीखते हैं।

मृत्तिका और प्लैस्टिसीन का काम करते हुए वे ग्रेड एक की भांति ही अपने भीतर अपेक्षाकृत साधारण तथा परिचित वस्तुओं की शक्लें सही-सही पहचानने और बनाने की क्षमता का विकास करते हैं। उदाहरण के लिए वे सामने रखकर (अथवा स्मरण शक्ति से) फूल और सब्जियों के माडल बनाते हैं। कपड़े का काम करते समय वे अत्यन्त साधारण और सादी बखिया करने हैं और मेज की नैपकिनों पर सीधे-सादे डिजाइन काढ़ना सीखते हैं और छोटे झोले या थैले व अन्य ऐसी वस्तुएं सीते हैं जिनमें कोई जटिलता नहीं होती। साधारण नपाई में वे फ़ीते और रूलर का प्रयोग करना भी सीखते हैं, तरह-तरह के पैटर्न तैयार करने के लिए आयताकार आकृतियां अंकित करते हैं तथा अपने कपड़ों की देखभाल करने, छोटी-मोटी मरम्मत व रफू आदि स्वयं कर लेने का उनका अभ्यास हो जाता हैं।

स्कूल की जमीन में दे दालें उगाते हैं तथा कक्षा और घर में पहले की ही तरह घरेलू पौधों की देखभाल करना और जारों, गमलों, व बक्सों में फूल उगाना जारी रखते हैं। स्कूल की जमीन पर काम करते हुए दे क्यारियाँ खोद कर उन्हें संवारते हैं, खोदी खाइयों (फरो) को सीध में लाने के लिए मार्करकॉर्ड का इस्तेमाल करते हैं जिनमें वे बीज बोते हैं और पौधों के विकास का प्रेक्षण करते हैं।

कागज और पेस्टबोर्ड के काम में प्रवीणता का विकास **ग्रेड तीन** में जारी रहता है। शिक्षार्थी रूसी भाषा, गणित तथा प्रकृति-विज्ञान की पढ़ाई के लिए आवश्यक साधारण दृश्य-साधन बनाने तथा उसकी मरम्मत करते हैं। साथ ही वे अब कागज पर अधिक सफ़ाई से निशान लगाना, रेखाएं खींचना, पेस्टबोर्ड पर कागज गोंद से चिपकाना तथा आकृति वाली गत्ते की चपटी वस्तुओं को कागज की

पट्टियों से फ्रेम करना भी सीखते हैं। वे प्रारम्भिक जिल्द-साजी, साधारण पैड, नोटबुक तथा छोटे-छोटे फाइल-केस बनाने तथा पैम्फलैट इत्यादि की जिल्दबंदी करने में दक्षता प्राप्त हैं। ग्रेड तीन में वे कपड़ों के सम्बन्ध में अपना ज्ञान पूर्ण करते हैं, सिलाई और कढ़ाई सीखना जारी रखते हैं बनियाइन और मौजे वगैरह रफू करना शुरू कर देते हैं। वे अत्यन्त सरल वस्तुएं (ऐप्रन, मिटेन दस्ताने, छोटे-छोटे थैले इत्यादि) काट कर सीना सीखते हैं और कपड़े सिलने और तैयार करने के सम्बन्ध में प्रारम्भिक योग्यता प्राप्त करने के साथ-साथ कपड़ों की मरम्मत के मामूली तरीके भी सीख लेते हैं।

स्कूल की जमीन पर वे चुकन्दर, गाजर, और उनके बीज उगाते हैं तथा स्ट्राबेरी के पौदे उगाते और उनकी देखभाल करते हैं। वे खुद ही क्यारियां संवारते हैं, सूखे, गीले तथा अंकुरित बीज बोते हैं, जड़ों वाली फसलों की काट-छांट करते हैं, चुकन्दर और पत्तागोभी के बीजों की कलमें लगाते हैं, बीज पौधों की देखभाल करते हैं, फसल में खाद देते हैं तथा पौधों के साथ साधारण प्रयोग करते हैं। जहां तक घरेलू पौधों का सम्बन्ध है, वे यह सीखते हैं किस प्रकार फूलों के बीजों के गमलों, जारों और बक्सों में बोना चाहिए।

ग्रेड चार में काम जारी रखा जाता है और कागज तथा पेस्टबोर्ड से काम लेने में प्राप्त प्रवीणता को और अधिक ठोस बनाया जाता है। बच्चे फाइलकेस तथा पैड बनाते हैं, कागज या पेस्टबोर्ड के बने हुए नक्शों, आरेखों तथा अन्य दृश्य साधनों की मरम्मत करते हैं, पेस्टबोर्ड की पीठिकाओं पर आरेख, फोटोग्राफ तथा अनुकृतियां चिपकाते हैं तथा सामान्य ज्यामितीय आकृतियों के माडल बनाते हैं।

अपनी सिलाई, कढ़ाई और बुनाई का काम वे जारी रखते है और अब वे वस्त्र तैयार करने से सम्बन्धित अधिक जटिल कार्य करते हैं। वे स्वयं अपने नाप लेकर लिखते हैं, उनका कच्चा खाका बनाते हैं, पैटर्न काटते हैं, अपने आप कपड़े की कटाई करते हैं और इस प्रकार पहली बार साधारण बनावट की वस्तुएं-सी कर तैयार करते हैं। वे कपड़ों की देखभाल व साधारण मरम्मत करना भी सीखते हैं और क्रोशिए से कमर-पेटियां और छोटे-छोटे स्कार्फ भी तैयार करते हैं। सिलाई की मशीन चलाना और इस्तरी करना भी सीखते हैं और उन्हें इस्तेमाल करते समय पालन करने योग्य सुरक्षा-सम्बन्धी बुनियादी नियमों की भी उन्हें शिक्षा दी जाती है।

ग्रेड चार में तकनीकी माडल बनाने के कार्य के पीछे उद्देश्य बालकों के मन में तकनीकी प्रवृत्ति तथा रचनात्मक शक्ति का विकास करना है। इसके अनुसार ही पाठ्य-विवरण में, बच्चों से प्रकृतिविज्ञान के प्रयोगों के लिए साधारण उपकरण तथा विभिन्न मशीनों की अनुकृतियां तैयार करवाने तथा उनकी सरल कार्य-पद्धतियों के विषय में उन्हें जानकारी देने की अवस्था की गई है।

स्कूल की जमीन पर वे आलू और मक्का उगाते हैं, व करेंट बेर की कलमें रोपना तथा पौधों की देखभाल करना सीखते हैं। कक्षा में तथा घर में वे घरेलू पौधों की कलमें लगाकर उनके प्रवर्धन के तरीके सीखते हैं। जिससे ग्रेड पांच में पहुंच कर वनस्पतिविज्ञान की व्यवस्थित की व्यवस्थित ढंग से पढ़ाई के लिए अच्छी तैयारी हो जाती है।

जूनियर ग्रेडों (एक-चार) में वे जो ज्ञान, दक्षता तथा प्रवीणता कार्य-पाठों में प्राप्त करते हैं वे बहुतकनीकी शिक्षा की दृष्टि से बहुत महत्व की हैं क्योंकि उनसे आगे के पांच-आठ ग्रेडों में शारीरिक तथा तकनीकी एवं बहुतकनीकी प्रशिक्षण के लिए ठोस पृष्ठभूमि तैयार हो जाती है। इसके अतिरिक्त छोटे बच्चों द्वारा प्राप्त ज्ञान, योग्यताओं तथा दक्षताओं से यह सम्भव हो जाता है कि वे निरन्तर अधिकाधिक सामाजिक दृष्टि से उपयोगी कार्य तथा घरेलू काम-काज स्कूल व घर में करें।

ग्रेड पांच-आठ में प्रशिक्षण : इन ग्रेडों में शारीरिक तथा तकनीकी प्रशिक्षण का उद्देश्य समान तकनीकी, कृषि सम्बन्धी तथा घरेलू ज्ञान तथा दक्षताओं की उपलब्धि कराना, शिक्षार्थियों में तकनीकी ढंग पर चिंतन तथा रचनात्मक क्षमताओं का विकास करना, उनमें सामान्य रूप से कार्य के प्रति तथा श्रम-सम्बन्धी परिस्थितियों के प्रति साम्यवादी प्रवृत्ति विकसित करना; उन्हें अपनी रुचियों की अभिव्यक्ति करने मानवीय क्रियाकलापों के विविध क्षेत्रों में अपना महत्व समझने तथा अपने भविष्य का सावधानी पूर्वक निश्चय करने में सहायता देना है।

आठ वर्षों की पढ़ाई वाले इस स्कूल के इन ग्रेडों में जो शिक्षा दी जाती है वह बहुतकनीकी प्रकृति की हैं। इसमें स्कूल की कर्मशालाओं में किया गया कार्य, व्यावहारिक तथा प्रायोगिक कृषि-कार्य तथा गृह-विज्ञान के क्रियाकलाप सम्मिलित है और प्रत्येक ग्रेड में इन पर प्रति सप्ताह तीन पीरियड होते हैं।

स्कूल कर्मशाला में शिक्षार्थी हाथ के औजारों तथा कुछ यंत्र उपकरणों की सहायता से काष्ठशिल्प तथा धातु-

शिल्प से अत्यन्त प्रवीण और जानकार हो जाते हैं। कारखानों और संयंत्रों में वैसे तो धातु के अधिकांश कार्य अनेकानेक यंत्रों की सहायता से होते हैं, किन्तु मशीन के सफल संचालन के लिए प्रत्येक उत्पादन-शाखा से किसी हद तक शारीरिक कार्य भी करने पड़ते हैं। यह शारीरिक कार्य यंत्र-संचालन के साथ-साथ इसलिए भी आवश्यक है मशीनों में एकाएक कोई खराबी न आ जाए या यंत्रों का परस्पर इस प्रकार समायोजन और संयोजन किया जाए कि वे ठीक से कार्य करें। अतः हाथ के औजारों की सहायता से धातुओं तथा काष्ठ—इन सबसे अधिक उपयोग में आने वाले पदार्थों का कार्य करने की पद्धति का अध्ययन करना और उसमें निपुणता प्राप्त करना शिक्षार्थियों की बहुतकनीकी शिक्षा तथा तकनीकी प्रशिक्षण के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है : इस प्रशिक्षण के लिए जो कार्य-विधि अपनाई जाती हैं उसके अन्तर्गत शिक्षार्थियों को विविध उपयोगी वस्तुएं बनानी पड़ती हैं जिनमें विभिन्न साज़-समाज, मॉडल मशीनों आदि की अनुकृतियां, स्कूल की कर्मशालाओं और जमीनों पर प्रयोग में आने वाले औजार और उपकरण, मार्गदर्शक क्रियाकलापों में काम आने वाली अथवा शिक्षार्थी के व्यक्तियत उपयोग में आने वाली वस्तुएं जैसे खिलौने, इत्यादि, तथा कारखानों और सामूहिक अथवा राज्य के फार्मों द्वारा दिए गए आर्डर पर बनाए जाने वाले संघटक भाग सम्मिलित हैं। ये क्रियाकलाप चुन कर एक विशेष क्रम में क्रियान्वित कराए जाते है और प्रारम्भ में सरल फिर अधिकाधिक जटिल होते जाते हैं जिससे उनके करने से शिक्षार्थी की वे दक्षताएं अधिक संगटित और विकसित होती हैं जिन्हें उन्होंने धातुशिल्प का कार्य करते हुए पहले ही प्राप्त किया था।

आठ वर्षों की पढ़ाई वाले इस स्कूल के शिक्षार्थी श्रम की प्रक्रियाओं के मशीनीकरण का भी कुछ ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं। वे आसान से आसान यंत्रों की रचना और उनकी कार्य-पद्धतियों तथा प्रयोग-विधियों की जानकारी प्राप्त करते हैं। आधुनिक उद्योग, कृषि, परिवहन तथा दैनिक जीवन में विद्युत् शक्ति के व्यापक प्रयोग को देखते हुए यह आवश्यक हो गया है कि आठ वर्ष की पढ़ाई के बाद इस स्कूल से निकलने वाला प्रत्येक विद्यार्थी रोज़मर्रा के विद्युत् उपकरणों और उपसाधनों से काम लेने के सम्बन्ध में प्रारम्भिक ज्ञान प्राप्त कर चुका हो।

कर्मशालाओं में वे अत्यन्त सरल तकनीकी रेखांकनों खाकों तथा रूपरेखाओं का अध्ययन करके उन्हें तैयार करना, तथा उनकी दत्तसामग्री के अनुसार सामग्री पर कार्य करना सीखते हैं। शिक्षा की आधारभूत पद्धति की सार्थता इसमें है कि उन वस्तुओं के रेखांकनों को सही रूप में समझा जा सके जिन्हें अभ्यास के दौरान तैयार करना है। स्कूल कर्मशाला के क्रियाकलापों की समस्त अवस्थितियों में रेखांकनों के आधार पर कार्य इस ढंग से आयोजित किया जाता है कि शिक्षार्थियों ने पहले अपनी रेखांकन, गणित तथा (ग्रेड सात तथा उसके आगे की) तकनीकी रेखांकन की शिक्षा में जो ज्ञान और दक्षता प्राप्त की हैं उसका भली-भांति उपयोग हो।

कर्मशाला में शिक्षा की अनेक पद्धतियां अपनाई जाती हैं, जैसे कि मौखिक शिक्षा (वार्ता व्याख्याएं, संलाप); प्रकृति विज्ञान की वस्तुओं, दृश्य-साधनों और उन्हें काम में लाने के तरीकों का प्रदर्शन अभ्यास; व्यक्तिगत तथा सामूहिक शिक्षण; रेखांकनों अथवा शिक्षण-चार्टों की सहायता से स्वतंत्र रूप से कार्य; ग्राफिक कार्य; द्रव्यों के गुण-धर्म तथा विशिष्टताओं, औज़ारों, घटकों और उपसाधनों की रचना, औज़ारों तथा द्रव्यों की पारस्परिक क्रिया तथा तकनीकी और टैकनालॉजी (शिल्पविज्ञान) सम्बन्धी प्रश्नों के विषय में व्यावहारिक शिक्षा देने के उद्देश्य से विशेष प्रयोगशाला कार्य; तथा संयंत्रों और कारखानों में कार्य-संगठन, उत्पादन के मशीनीकरण तथा उन अलग-अलग यंत्रों और औज़ारों तथा उपसाधनों की रचना, जिनसे शिक्षार्थी वे कार्य करते हैं, जिनमें उन्होंने स्कूल कर्मशालाओं में सीखकर निपुणता प्राप्त की है, से परिचित कराने के लिए शिक्षार्थियों की औद्योगिक उपक्रम में अध्ययन यात्राओं पर ले जाना।

ग्रेड सात और आठ में शिक्षार्थियों को उनकी क्षमता के अनुसार घटक तथा सपूर्ण वस्तुएं बनाने से सम्बन्धित कुछ निश्चित कार्य सौंप दिए जाते हैं जिन्हें उन्हें अपने काम करना होता हैं।

शिक्षार्थियों को दी गई तकनीकी तथा शिल्पविज्ञान सम्बन्धी जानकारी उनके सामान्य तकनीकी दृष्टिकोण को विकसित करती है और द्रव्यों के उपयोग में उनकी दक्षता के सही विकास की दृष्टि से अत्यन्त आवश्यक है। इसी प्रकार व्यायहारिक दक्षताओं की उपलब्धि शिक्षार्थी को शिल्पविज्ञान का महत्व अधिक गहराई से समझने तथा द्रव्यों के प्रक्रमण में यंत्र संचालन के व्यायहारिक सिद्धान्तों तथा पूंजीकृत उत्पादन की सामान्य जानकारी प्राप्त करने में समर्थ बनाती है।

शिक्षक अपनी विशिष्ट तकनीकी प्रवृति के साथ जो व्याख्याएं करता है वे शिक्षार्थियों द्वारा विभिन्न विज्ञानों के राधारभूत तत्वों के अध्ययनों से प्राप्त की गई जानकारी को आधार बना कर की जाती हैं। उदाहरण के

लिए शिक्षार्थियों ने भौतिकी में जो कुछ सीखा है उसके आधार पर उन्हें अनेक तकनीकी घटनाओं और शिल्प-विज्ञान की प्रक्रियाओं के वैज्ञानिक कारण समझाए जा सकते हैं; इसके अतिरिक्त द्रव्यों तथा यंत्र के भागों के यांत्रिक गुण-धर्म तथा यंत्रों तथा यंत्र-उपकरणों की रचना तथा संचालन एवं कार्य-पद्धतियों का अध्ययन करते समय शिक्षार्थी अपने यांत्रिकी के ज्ञान का उपयोग करते हैं।

इस प्रकार की शिक्षा की एक प्रमुख विशेषता काष्ठ-शिल्प तथा धातु-शिल्प में प्रयुक्त होने वाली प्रक्रियाओं तथा उपकरणों की परस्पर तुलना करना तथा प्रक्रमित द्रव्यों के गुणों के अनुसार उनकी समताओं और विषमताओं को स्पष्ट करना है। शिक्षार्थी क्रमशः सुनिश्चित रूप से अधिकाधिक अपने औज़ारों के सभी प्रयोग, वला-घात के सही अन्दाज़, कार्य की उपयुक्त लय तथा न्यूनतम ऊर्जा-ह्रास के साथ उत्पादकता व कारीगरी के आवश्यक प्रतिमानों की उपलब्धि के लिए आवश्यक तकनीकी तथा स्वास्थ्य सम्बन्धी कार्रवाइयों के विषय में अपना ज्ञान बढ़ाते हैं।

काष्ठ तथा धातुओं के अतिरिक्त ग्रेड सात-आठ में शिक्षार्थी प्लास्टिक और कांच जैसे द्रव्यों के विषय में भी ज्ञान प्राप्त करते हैं जो कि स्कूल के साज-सामान बनाने या कारखानों और फ़ार्मों द्वारा मांगी गई वस्तुओं के बनाने के लिए बहुत उपयोगी है।

शिक्षार्थियों के बहुतकनीकी दृष्टिकोण को व्यापक बनाने के लिए उन्हें उनके द्वारा कर्मशाला में किए गए कार्य तथा उत्पादन की दशाओं में होने वाली समान टैक्नोलॉजी-प्रक्रियाओं के बीच तथा साथ ही, हाथ से की गई मशीन तथा से की गई प्रक्रियाओं के बीच परस्पर तुलना करके समझाया जाता है और इस उद्देश्य से पाठ्य-विवरण में अध्ययन-यात्राओं, आलेखों, यंत्रों तथा उनकी कार्य-पद्धति के प्रदर्शनों की तथा फ़िल्मों और फ़िल्म-पट्टियों के दिखाए जाने की व्यवस्था की गई है। इसी लक्ष्य के साथ कुछ विशेष कार्य श्रम-विभाजन के आधार पर कार्य-संगठन करके किए जाते हैं जिससे शिक्षार्थियों को इस बात का भली-भांति अनुभव हो जाता है कि किसी औद्योगिक कारखाने में कार्य का संगठन किस प्रकार होता है।

स्कूलों की कर्मशालाएं बड़े पैमाने पर कक्षा के बाहर तकनीकी कार्य के लिए अनुकूल परिस्थितियों की व्यवस्था करती हैं: पांच-आठ ग्रेडों में अनेक स्कूल-क्लबों का संगठन किया गया है ताकि उनकी सहायता से शिक्षार्थी तकनीकी मॉडल बनाने, विद्युत इंजीनियरी तथा रेडियो इंजीनियरी के कार्य कर सकें, एवं और भी अधिक प्रगति करके बढ़ईगीरी, हल्की इंजीनियरी, काठ और धातु के साथ लेथ के काम, काष्ठ-उकेरण फ्रेट-कार्य इत्यादि में प्रवीणता प्राप्त कर सकें।

इन ग्रेडों में लड़कों और लड़कियों के लिए कर्मशाला के अलग-अलग क्रियाकलाप हैं। जहां लड़के काष्ठ और धातु दोनों कार्य लेते हैं वहां लड़कियां ग्रेड पांच में केवल काष्ठ का कार्य और ग्रेड छह-सात में केवल धातु का कार्य लेती हैं। ग्रेड आठ में वे लड़कों की अपेक्षा यांत्रिक इंजीनियरी का कार्य भी कम करती हैं परन्तु जहां तक विद्युत इंजीनियरी का प्रश्न है लड़कों और लड़कियों का पाठ्य-विवरण एक जैसा ही है।

लड़कियों की तकनीकी शिक्षा की प्रमुख विशेषता यह है कि आठवर्षीय स्कूल उन्हें इस प्रकार गृह-विज्ञान का प्रशिक्षण देता है कि वे घर की देखभाल के कार्य का ज्ञान प्राप्त करके उसमें दक्ष हो जाती हैं।

अपने गृहविज्ञान के कार्य के दौरान वे समाज-व्यवस्थाओं के अनुरूप परिवार के घरेलू कर्तव्यों से तथा स्कूल और घर में आत्मनिर्भरता से परिचित हो जाती हैं तथा घरेलू मित-व्ययिता के सिद्धान्तों का ज्ञान प्राप्त करके रोज़मर्रा के गृह-कार्य में विविध प्रकार की दक्षताएँ प्राप्त कर लेती हैं और किसी भी स्थान को अधिक सुव्यवस्थित, साफ़-सुथरा और आरामदेह बनाने की योग्यता तथा इच्छा एवं सुरुचि उनके भीतर विकसित हो जाती है।

अपने गृहविज्ञान के कार्य के दौरान वे रोजमर्रा के घरेलू कार्यों की सामाजिक व्यवस्था तथा सार्वजनिक सेवा के कम्यूनवादी रूपों, जैसे कि कम्यून आहार-गृह तथा घरेलू सेवा-केन्द्रों के कार्यों, तथा कपड़ों, अण्डरवियर तथा मोजे आदि की सिलाई-बुनाई व मरम्मत के लिए कम्यून सिलाई गृह के संगठन से परिचित हो जाती हैं और उन्हें इसका अच्छी तरह से एहसास हो जाता है कि किस प्रकार सोवियत परिवार का रोज़मर्रा का घरेलू कामकाज व्यवस्थित और सुनिश्चित ढंग से सरल किया जाता है। उन्हें विशेष रूप से श्रम बचाने के अधुनिक तरीकों तथा नई सामग्रियों, वस्त्रों, खाद्य-पदार्थों इत्यादि की जानकारी दी जाती है। परिणाम यह होता है कि वे सुव्यवस्था, मितव्ययिता, समय की पाबंदी तथा स्वच्छता के गुण सीख लेती हैं और उनमें अपने घरों और वस्त्रों को अधिक आकर्षक और उपयोगी बनाने तथा खाद्य-पदार्थों तथा अन्य वस्तुओं का किफ़ायत से उपयोग करने की योग्यता आ जाती है।

सीनियर ग्रेडों में गृहविज्ञान की पढ़ाई जूनियर ग्रेडों के कार्य-पाठों द्वारा प्राप्त ज्ञान और दक्षता पर तथा 'स्वास्थ्यरक्षा' (ग्रेड एक-तीन) के विषय पर रूसी भाषा (अथवा मातृभाषा) में पढ़ाए गए पाठों पर तथा (ग्रेड दो में) 'मानव शरीर और उसकी देखभाल' के विषय पर पढ़ाए गए प्रकृतिविज्ञान के पाठों पर आधारित होती हैं।

'कटाई और सिलाई' के विषय का अध्ययन करते हुए लड़कियों को कपड़ों की किस्मों की जानकारी हो जाती है और वे, डिजाइन और पैटर्न तैयार करके कपड़े सीने के तरीके, रफू, मरम्मत वगैरह करना तथा सिलाई की मशीन की बनावट और इस्तेमाल का तरीका सीख जाती हैं। वे कपड़ों की देखभाल, उनकी धुलाई, उन्हें इस्त्री करने और उनको अच्छी तरह इकट्ठे रखने, तथा ऊनी कपड़े साफ़ करने व संश्लिष्ट रेशों (सिंथेटिक-फ़ाइबर) वाले स्वेटर, मोजे आदि बुने हुए वस्त्रों की धुलाई से सम्बन्धित बातें भी सीख लेती हैं।

इस पाठ्य-विवरण में एक महत्वपूर्ण भाग के अन्तर्गत पाकविद्या है जिसमें आहारविद्या तथा मानव-शरीर द्वारा अपेक्षित खाद्य पदार्थों के सम्बन्ध में मूलभूत बातें तथा उनकी शिक्षा आती हैं। लड़कियां साधारण सब्ज़ियां और मांस तथा मछली की साधारण तथा पोषक चीजें पकाना, रसोई के उपकरणों, काँकरी तथा खाने की मेज़ के कपड़े इत्यादि का ठीक-ठीक इस्तेमाल तथा खाने की मेज़ पर खाना ठीक से परोसना और उचित आचरण करना सीख लेती हैं।

'गृह-कार्य' शीर्षक के अन्तर्गत व घरेलू स्वास्थ्य ज्ञान तथा स्वच्छता तथा घर की देखभाल (दैनिक, आवधिक तथा बसन्त में की जाने वाली सफाई : संवातन, प्रकाश व्यवस्था तथा ताप-व्यवस्था) के सम्बन्ध में आवश्यक बातों की व्यावहारिक जानकारी प्राप्त कर लेती हैं। इसके अतिरिक्त वे इस बात की भी शिक्षा प्राप्त कर लेती हैं कि फ़र्नीचर को किस प्रकार सजाना चाहिए तथा किस प्रकार मेज़पोश, पर्दे, कालीन, चित्र, फ़ोटोग्राफ, अनुकृति-चित्र तथा सजावटी टेपेस्ट्रियां सुसज्जित करनी चाहिए।

विविध क्षेत्रों में उनके मानसिक क्षितिज के विस्तार तथा उनके ज्ञान की वृद्धि के लिए सार्वजनिक रेस्तराओं अथवा खाद्य पदार्थ तैयार करने वाले कारखानों (कैंटीनों, यंत्रीकृत रेस्तरांओं, कैनरियों, मक्खन तैयार करने के कारखानों, बेकरियों), वस्त्र तैयार करने वाले संस्थापनों (सिलाई तथा वस्त्र निर्माण की कर्मशालाओं), अथवा घरेलू सेवा केन्द्रों की अध्ययन यात्राओं की उनके लिए व्यवस्था की जाती हैं। ये अध्ययन यात्राएं शिक्षकों द्वारा तैयार की गई एक समय-सारणी के अनुसार स्कूल की पढ़ाई के वर्षों में आयोजित की जाती हैं।

गांवों तथा शहरों के आठ वर्षीय स्कूलों के सभी विद्यार्थी कृषि तथा औद्योगिक दोनों ही प्रकार के श्रम की प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करते हैं क्योंकि बहुतकनीकी प्रशिक्षण के अनेक कार्यों में से एक कार्य कृषि-उत्पादन का ज्ञान प्राप्त करना भी है। यह कार्य जीवविज्ञान के पाठ्यक्रम से घनिष्ठ रूप से समन्वित किया जाता है तथा शिक्षा की दृष्टि से इसका अत्यधिक महत्व है। यह कार्य स्कूल की प्रायोगिक जमीन के साथ-साथ वास्तविक उत्पादन की स्थितियों में भी किया जाता है और चूंकि अधिकांशतः यह कार्य खुली जगह में होता हैं अतः यह बच्चों के शारीरिक विकास में भी सहायक होता है जिससे उनके स्वास्थ्य में सुधार होता हैं।

स्थानीय परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए स्कूल को यह अधिकार दिया गया है कि व्यावहारिक तथा प्रायोगिक कार्यों को चाहे तो स्कूल-वर्ष के दौरान सामान्य रूप से विभाजित करे अथवा उन्हें प्रथम तथा चतुर्थ तिमाहियों में विशेष रूप से करवाए। और चूंकि यह कार्य बहुत-कुछ मौसमी ढंग का है और बहुत हद तक इस पर मौसम का प्रभाव होता है, अतः इसे समय-सारणी में स्थान नहीं दिया गया है, बल्कि स्कूल निदेशक द्वारा अनुमोदित समय-सारणी के अनुसार इसे करवाया जाता है।

इस कार्य के दौरान शिक्षार्थी मुख्य-मुख्य कृषि फसलें (सब्जियां, फल और बेरियां) तथा खेत फसलें उगाने में तथा ग्रामीण क्षेत्र में, बछड़े पालने में, आधारभूत व्यावहारिक दक्षताएं प्राप्त करते हैं। साथ ही, अपनी अध्ययन-यात्राओं के दौरान वे यंत्रीकृत खेती तथा पशु-पालन का भी ज्ञान प्राप्त करते हैं।

ग्रेड दो तथा छह में कार्य अधिकांशतः स्कूल के प्लाट पर होता है। ग्रेड सात तथा आठ में (ग्रामीण स्कूलों में) शिक्षार्थी सामूहिक तथा राज्य के फार्मों तथा खेतों में काम करते हैं, जहां वे अपनी क्षमता के अनुसार समूहों में उपयुक्त कार्य करते हैं, जैसे कि पक्षी-पालन, खरगोशों व छोटे-छोटे फार्म-पशुओं की देखभाल अथवा स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार उपयुक्त क्षेत्रीय कार्य (मिट्टी की जुताई तथा बहुधा बुवाई और कटाई का

काम ग्रेड दस-ग्यारह में शिक्षार्थियों द्वारा अथवा सामुदायिक किसानों द्वारा कृषि-यंत्रों की सहायता से किया जाता है।

ऐसे नगरों के स्कूलों में जिसमें स्कूल की अपनी ज़मीन नहीं है, ग्रेड पांच-छह के व्यावहारिक तथा प्रायोगिक कार्य युवा प्रकृतिवादी केन्द्रों (यंग नैचुलिस्ट्स सेंटर) के आदर्श गृहों की ज़मीनों पर, पादप गृहों में, हरियाली न्यास (ग्रीनरी-ट्रस्ट) के अन्तर्गत आने वाली संरक्षिका, पार्कों और स्क्वेयरों में तथा विशेषज्ञता-प्राप्त उप-नगरीय कृषि उपक्रमों में कराए जाते हैं। इसके अतिरिक्त, आग्रणी (पायोनियर) कैम्पों की जमीनों को भी ग्रीष्म-काल के शैक्षिक तथा उत्पादन कार्यों के लिए बच्चों को सुलभ किया जाता है।

कृषि-उत्पादन के स्थानों की अध्ययन यात्राएं करने से बच्चों को सामूहिक तथा राज्यों के फ़ार्मों पर होने वाली खेती के यंत्रीकृत पक्ष के सम्बन्ध में अन्तर्दृष्टि प्राप्त होती है। उदाहरण के लिए ग्रेड पांच में बच्चे बिक्री के लिए सब्ज़ियां उगाने के यंत्रीकृत तरीकों का अध्ययन करते हैं, ग्रेड छह में वे बग़वानी में किए जाने वाले यांत्रिक कार्य के विषय में सीखते हैं तथा ग्रेड सात में (नगर के स्कूलों में) वे खेतों में उगाई जाने वाली फसलों की खेती तथा उसके यंत्रीकृत तरीकों और साथ ही स्टॉक-संग्रह के सिलसिले में किए जाने वाले भारी कार्यों की भी जानकारी प्राप्त करते हैं। ग्रेड आठ के पाठ्यक्रम (ग्रामीण स्कूलों में) में मिट्टी तैयार करने के उपकरणों) बीजड्रिलों) तथा अनाज-शोधकों एवं कटाई की मशीनों के सम्बन्ध में अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत अध्ययन की व्यवस्था की गई है। शिक्षार्थियों को इस प्रकार स्थानीय सामूहिक एवं राज्य के फार्मों के विषय में जानकारी होती है तथा किस ढंग से उन फ़ार्मों का विकास किया जा रहा है इसके विषय में ज्ञान प्राप्त होता है और परिणामस्वरूप स्कूल की शिक्षा समाप्त करके निकलने वाले शिक्षार्थियों को अपना भावी व्यवसाय चुनने में इससे मार्गदर्शन प्राप्त होता है।

स्कूल की आठ वर्ष की पढ़ाई के दौरान व्यावहारिक तथा प्रायोगिक कार्य के पाठ्यकम की विषय-सूची तैयार करते समय इस बात का विशेष ध्यान रखा जाता है कि शिक्षार्थियों द्वारा जीवविज्ञान के पाठों से प्राप्त अपने ज्ञान की पूरी निष्ठा के साथ उपयोग हो।

पाठ्यक्रम का पालन करते समय स्थानीय मिट्टी तथा जलवायु से सम्बन्धित परिस्थितियों का तथा सम्बन्धित क्षेत्रों की मुख्य फसलों का पर्याप्त ध्यान रखा जाता है। उदाहरण के लिए, कुछ कार्यों के स्थान पर अन्य समान कार्यों को रखा जा सकता है। उदाहरण के लिए, पाठ्यक्रम में यह सिफ़ारिश की गई है कि फलवाले वृक्ष शरद ऋतु में बोए जाएं परन्तु भारी चिकनी मिट्टी में बीज स्तरीकृत होते हैं जिसके फलस्वरूप बुवाई बसन्त में की जाती है; अथवा दक्षिणी क्षेत्रों में पौधे, कांचघरों के बजाय बीज-क्यारियों में उगाए जाते हैं।

प्रायोगिक दृष्टिकोण का महत्व विशेष रूप से है। स्कूल की जमीन पर जिन प्रयोगों से सर्वाधिक उत्पादक अथवा आर्थिक परिणाम प्राप्त हुए हों उन्हें उसी जगीन पर अगले वर्ष भी किया जाता है और फिर उन्हें सामूहिक अथवा राज्य के फार्मों पर आजमावा जाता है जहां शिक्षार्थी तथाकथित 'उत्पादक' प्रयोगों का क्रियान्वित करते है। परिणाम अच्छा होने पर उन प्रयोगों को कृषि उत्पादन में स्थान प्राप्त हो जाता है।

बहुत से आठ वर्ष की पढ़ाई वाले आम स्कूलों में अच्छी से अच्छी उपजातियां विकसित करके फलों तथा बेरियों की पौधें लगाने का एक मौलिक तरीका काम में लाना प्रारम्भ किवा गवा है। फल वाले वृक्षों, पौधों तथा की कलमें लेना तथा फलवाले वृक्षों की बढ़िया से बढ़िया सजावटी पौधों (नगर के स्कूलों में) को उगाना, करांट बेरियों तथा अस्थ मृदु फलों की बढ़िया से बढ़िया किस्मों किस्मों की कलमें रोपना और उगाना वास्तव में स्कूल के व्याव हारिक कार्य के महत्वपूर्ण अंग है।

पौधों को उगाना तथा नर्सरी उद्यान के कार्य का भी ग्रेड पांच-सात में (तथा ग्रामीण स्कूलों के आठ में भी) कृषि की शिक्षा में बड़ा महत्व है। उपर्युक्त ग्रामीण स्कूलों में शिक्षार्थी सेब के वृक्षों को उगाने का अध्ययन करते है, जबकि नगर के स्कूलों में वे कीमती जाति के वृक्षों तथा फ्लाक्स, लाइलैक, गुलाब इत्यादि बारहमासा फूलों के पौधों को उगाने की शिक्षा प्राप्त करते है। ग्रामीण स्कूलों में नर्सरी बीज-क्यारियों के लिए एक बहुत बड़े (300 से 500 वर्ग मीटर तक के) क्षेत्र कों व्यवस्था रहती है जबकि नगर के स्कूलों के द्वारा पास-पड़ोस के मकागों के बागों में नर्सरियों की स्थापना की व्यवस्था की जा सकती है।

ग्रेड पांच के व्यावहारिक कार्य का एक सामान्य रूप से महत्वपूर्ण अंग है—पादप-गृहों (ग्रीन हाउसों) में कांच के नीचे तथा गर्भ क्यारियों में सब्जी के पौधे उगाना। स्कूल के प्लॉट में पादप-गृह (ग्रीन हाउस) सुलभ होने की दशा में व्यावहारिक कार्य बसन्त के प्रारम्भ में किया जा सकता

है। सब्जियां उगाने के अतिरिक्त बच्चे पौधे रोप कर फलों के वृक्ष उगाते है, करेंट बेरी की झाड़ियां लगाते हैं, तथा व्यावहारिक अनुभव के द्वारा बीजांकुर वाले वृक्षों की कटाई-छंटाई के लिए सबसे अच्छे समय और तरीकों, करांट बेरी की झाड़ियों की कलमें लेने के सर्वोत्कृष्ट तरीकों, विभिन्न सब्जी की फसलों तथा बीजांकुर के स्टॉक में कार्बनिक तथा खनिज खाद देने के सबसे अच्छे तरीकों, तथा उनकी उचित मात्राओं, सब्जियां बोने और उनके पौधे लगाने के सबसे अच्छे मौसमों तथा सब्जियों की फसलों में दिए जाने वाले खनिज उर्वरकों की सही-सही मात्राओं के विषय में वे बहुत-सी बातें सीख लेते है। नगर के स्कूल मे बारहमासा फूलों वाले तथा सजावटी पौधों की फसल को बढ़ाने के सर्वोत्तम तरीके मालूम करने के लिए तथा उनके पोषण और पालन तथा कलम लगाने इत्यादि के सर्वोत्तम तरीकों की जानकारी प्राप्त करने के लिए प्रयोग किए जाते है।

ग्रेड छह में शिक्षार्थी रसभरियों (अथवा बड़े नगरों के स्कूलों में वृक्षों) को मूल्यवान उपजातियों की फ़सल जल्दी बढ़ाने के सम्बन्ध में प्रयोग करते हैं; सांकुर कलमें लगाने के सर्वोत्तम तरीके सीखते हैं,तथा मक्का और आलू को बोने के लिए तैयार करने के सर्वोत्तम तरीके मालूम करते है व जुताई वाली फसलों के लिए सबसे अधिक और उर्वर क्षेत्रों की जानकारी प्राप्त करते हैं और मक्का, आलू तथा द्विवर्षजीवी सब्जियों के बीज-पौधों की पैदावार बढ़ाने से सम्बन्धित उपायों और उनके परिणामों का ज्ञान प्राप्त करते हैं। ये प्रयोग, जिनका उद्देश्य बच्चों के जीव-विज्ञान सम्बन्धी ज्ञान को बढ़ाना है, प्रायोगिक जमीन के छोटे हिस्सों पर किए जाते हैं।

ग्रामीण स्कूलों मे ग्रेड सात में प्रायोगिक कार्य कृषि उत्पादन की परिस्थितियों मे किए जाते हैं। शिक्षार्थी उस जमीन पर मक्का, आलू तथा औद्योगिक फसलें उगाते हैं जो स्कूल को दे दिए जाते हैं और जो ग्रेड सात तथा आठ के शिक्षार्थिओं की संख्या के अनुसार विभाजित होते हैं। वे सामूहिक तथा राज्य के फार्मों पर फार्म-पशुओं का पालन भी करते हैं।

कार्य के मुख्य उद्देश्य तथा प्रयोगों के विषय स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार चुने जाते हैं और उन्हें पूरा करते समय भावी कृषि-विकास का ध्यान रखा जाता है।

जैसा कि पहले बताया जा चुका है नगरों के स्कूल के बच्चे नगरों में तथा श्रमिकों की एस्टेटों पर हरियाली उगाते हैं, सार्वजनिक स्कवैयरों, सड़कों इत्यादि पर लगाई गई झाड़ियों की देखभाल करते हैं तथा सामूहिक फार्मों की मुख्य सड़कों के किनारे लगाए हुए वृक्षों व गुल्मों की कतारों की देखभाल करने में सहायता करते हैं। सजावटी झाड़ियां तथा फूल वाले पौधों को उगाना, चौकों तथा स्क्वेयरों में हरियाली उगाना तथा पार्कों और संरक्षिकाओं में काम करना अत्यधिक महत्व का समझा जाता है।

व्यावहारिक कार्य में खेती के कीटाणुओं के विरुद्ध अभियान भी सम्मिलित है, जिसके अनेक रूप हैं—यांत्रिक रासायनिक तथा जीव-वैज्ञानिक। स्कूल की पढ़ाई के घण्टों में बच्चों के प्रायोगिक तथा व्यावहारिक कार्य की ओर ध्यान दिया जाता है तथा ग्रीष्म ऋतु में और उसके शैक्षणिक उत्पादन-अभ्यास के दौरान तथा उनके सामाजिक दृष्टि से उपयोगी कार्य के दौरान भी इसका विशेष ध्यान रखा जाता है। साथ ही उनके स्वास्थ्य से सम्बन्धित आवश्यक बातें और कार्य से सम्बन्धित स्वास्थ्यविज्ञान की दृष्टि से आवश्यक आदतों के प्रति जागरूकता भी उनमें उत्पन्न की जाती है।

बच्चों के कृषि-तंत्र तथा प्राणि-तंत्र ज्ञान का स्तर एक सुव्यवस्थित पद्धति पर उठाने तथा कृषि-उत्पादन के मूलभूत सिद्धान्तों के सम्बन्ध में जानकारी कराने की इन सारी व्यवस्थाओं का उन सक्षम कार्यकर्त्ताओं के प्रशिक्षण की दृष्टि से अत्यधिक महत्व है जो वर्गीकरण शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं।

सामाजिक उत्पादन अभ्यास : पढ़ाई के दौरान शिक्षार्थियों द्वारा किए गए कार्यों को एक निश्चित रूप में सामाजिक उपयोगिता की दिशा में उन्मुख किया जाता है और प्रत्येक (पांच-आठ) मे शारीरिक शिक्षा तथा तकनीकी शिक्षा की समस्या को अधिक प्रभावी ढंग से सुलझाने तथा शिक्षा तथा जीवन के बीच सामंजस्य स्थापित करने के उद्देश्य से प्रति सप्ताह दो पढ़ाई के घण्टे सामाजिक दृष्टि से उपयोगी कार्य को दिए जाते हैं। इसके अतिरिक्त स्कूल वर्ष के अन्त में बारह दिन उत्पादन-अभ्यास के लिए अलग नियत होते है—ग्रेड पांच में तीन पढ़ाई के घण्टे प्रतिदिन तथा ग्रेड छह-आठ में चार पढ़ाई के घण्टे प्रतिदिन। यह सामाजिक दृष्टि से उपयोगी कार्य स्कूलों के घण्टों के बाद किया जाता है और इसलिए इसे समय-सारणी में सम्मिलित नहीं किया गया है। इस कार्य को एक सामान्य शैक्षणिक दिशा प्रदान करना कक्षा अध्यापक (क्लास-टीचर) के हाथों में ही है जो प्रत्येक आगामी सप्ताह के लिए कार्य की योजना तैयार करता

है, जिस पर तात्कालिक अमल करने का भार अन्य शिक्षकों को कार्य की प्रकृति के अनुसार सौंपा जाता है।

नगरों के तथा गांवों के स्कूलों में सामाजिक उत्पादन अभ्यास स्कूल कर्मशालाओं में तथा स्कूल में जमीनों पर दी गई हाथ के काम की शिक्षा तथा तकनीकी शिक्षा का विस्तार-मात्र होता है जोकि वस्तुतः शिक्षार्थियों द्वारा विभिन्न ग्रेडों में प्राप्त ज्ञान तथा व्यावहारिक दक्षताओं पर आधारित होता है। इसमें स्कूल की प्रशिक्षण तथा उत्पादन-कर्मशालाओं में शिक्षार्थियों का अपनी आयु के उपयुक्त कार्य करना, अपने स्कूल तथा किण्डरगार्टन के उपयोग के लिए विभिन्न वस्तुएं बनाना तथा औद्योगिक संस्थानों द्वारा बनवाई गई वस्तुएं तैयार करना सम्मिलित हैं। कृषि में यह सब पाठ्यविवरण द्वारा निर्धारित प्रायोगिक तथा व्यावहारिक कार्य की ही शृंखला तथा विस्तार है जिससे बसंत में बुवाई के उपयुक्त समयों पर बोए गए पौधों की व्यवस्थित ढंग से देखभाल और परिरक्षण तथा कटाई के बाद पूरी फसल के सम्बन्ध में एक निश्चित तिथि तक अनुमान की व्यवस्था सम्भव होती है।

इस कार्य से सब्जी की फसलों तथा फल वाले वृक्षों की कलमें लगाने से सम्बन्धित ग्रेड पांच में किए गए प्रयोगों की तथा फलों की फसलों, मक्का, आलू तथा द्विवर्षजीवी सब्जियों के बीज-पौधों से सम्बन्धित ग्रेड छह में किए प्रयोगों की सम्पूर्ति हो जाती है तथा शिक्षार्थी स्कूल-निदेशक द्वारा तैयार की गई अनुसूची के अनुसार उपयुक्त समय पर व्यावहारिक कार्य तथा उसके संगत प्रेक्षण करते है।

ग्रामीण स्कूलों के ग्रेड सात में सामूहिक तथा राज्य के फार्मों पर मक्का तथा अन्य कृषि-फसलों की देखभाल का कार्य तथा उनसे सम्बन्धित प्रयोग कराए जाते हैं। साथ ही मुर्गीपालन, खरगोशपालन तथा फलों की पौधों की देखभाल भी स्कूल की जमीन पर करनी होती हैं। शिक्षार्थी, यह कार्य निदेशक की अनुसूची के अनुसार टोलियों में विभाजित होकर (स्कूल के घंटों में शुरू किए गए प्रयोगों को पूरा करने की आवश्यकता के विचार से) करते हैं। नगर के स्कूलों में ग्रेड सात का कार्य सामूहिक तथा राज्य के फार्म पर कृषि-फसलों की देखभाल तक सीमित रहता है या जहां कृषि-उत्पादन के क्षेत्र में इसकी व्यवस्था असम्भव हो वहां यह कार्य हरियाली न्यास (ग्रीनरी ट्रस्ट) के अन्तर्गत आने वाले पार्कों के लिए वृक्षों के पौधों तथा सजावटी फूलों के पौधों की देखभाल तक सीमित होता है।

अनुपूरक टिप्पणी-तीन

चुने हुए देशों के स्कूलों की पाठ्यचर्या में भाषाओं का स्थान

1. इस टिप्पणी का **उद्देश्य** विश्व के कुछ ऐसे देशों के स्कूलों की पाठ्यचर्या में भाषाओं के अध्ययन के स्थान के विषय में बताना है जिनकी समय-सारणियां सुलभ थीं।

2. इस सम्बन्ध में जिन स्रोतों का उपयोग किया गया वे निम्नलिखित हैं :

(1) यूनेस्को द्वारा प्रकाशित **विश्व शिक्षा सर्वेक्षण**; तथा

(2) यूनेस्को, पेरिस के कार्यालय में प्राप्त अप्रकाशित कागज-पत्रों से **कमीशन के दल द्वारा संग्रहीत दत्त सामग्री**।

(3) इस लेख में दी गई भाषाओं के अध्ययन के सम्बन्ध में स्थिति विश्वविद्यालय में प्रवेश लेने वाले विद्यार्थियों से प्रसंग में है। आमतौर पर उप-सत्रीय पाठ्यक्रमों के विद्यार्थियों की, अथवा किसी पेशे के लिए तैयारी करने वाले विद्यार्थियों की, भाषा की पढ़ाई हलकी होती है।

एक. अफगानिस्तान

अफ़ग़ानिस्तान की दो प्रमुख भाषाएं हैं—पश्तो और फ़ारसी। जिस बच्चे की मातृभाषा पश्तो होती है उसे फ़ारसी पढ़नी होती है और जिसकी मातृभाषा फारसी होती है उसे पश्तो। इसके अतिरिक्त एक विदेशी भाषा —अंग्रेजी, फ़्रैंच, या रूसी—भी पढ़नी पड़ती हैं।

बच्चा अपनी मातृभाषा की पढ़ाई ग्रेड एक में प्रारम्भ करता है। ग्रेड चार में वह द्वितीय भाषा की पढ़ाई शुरू करता है। प्राथमिक स्तर पर (एक-छह तक के ग्रेडों में) केवल दो भाषाएं ही सीखी जाती हैं। विदेशी भाषा की पढ़ाई केवल माध्यमिक स्तर पर (सात-बारह तक के ग्रैडों में)[1] ही प्रारम्भ होती हैं।

दो. आस्ट्रेलिया

प्राथमिक स्तर पर केवल अंग्रेजी भाषा ही पढ़ाई जाती है और माध्यमिक स्तर के अंत तक, अर्थात् कुल मिलाकर 12 से लेकर 13 वर्षों तक उसकी पढ़ाई जारी रहती है। इसके अतिरिक्त अधिकांश शिक्षार्थी माध्यमिक स्कूल में कम-से कम एक विदेशी भाषा, आमतौर पर फ्रैंच का अध्ययन करते हैं और अधिक योग्य विद्यार्थी चाहने पर लैटिन भी ले सकते हैं। कुछ विद्यार्थी माध्यमिक स्कूल के दूसरे वर्ष में एक कोई तीसरी भाषा भी सीखना शुरू कर देते हैं, जिसमें जर्मन आमतौर पर ज्यादा पढ़ी जाती है।

तीन. आस्ट्रिया

प्राथमिक शिक्षा या तो आठ-वर्षीय फ़ॉक्सशूल में अथवा चार वर्षीय **फॉक्सशूल** में दी जाती है जहां से शिक्षार्थी चार-वर्षीय **हापशूल** (उच्चतर प्राथमिक स्कूल) में बदली करा सकते है। शिक्षार्थी **फॉक्सशूल** की चार वर्ष की पढ़ाई करके अथवा **हापशूल** से आठ-वर्षीय आम माध्यमिक स्कूल में बदली करा सकते हैं।

जर्मन (प्रथम भाषा) की पढ़ाई ग्रेड एक में प्रारम्भ हो जाती है और स्कूल के पूरे 12 वर्षीय पाठ्यक्रम के दौरान उसकी पढ़ाई जारी रहती है। ग्रेड पांच से लेकर आठ तक (**हापशूल** में) एक कोई आधुनिक विदेशी भाषा पढाई जाती है। ग्रेड सात तथा आठ में वैकल्पिक विषय के रूप में पढ़ाई जाती है। इसके अतिरिक्त ग्रेड छह, सात तथा आठ में वैकल्पिक विषय के रूप में एस्परेंतो की पढ़ाई की भी व्यवस्था है।

माध्यमिक स्कूल के चार प्रकार हैं : **जिम्नेज़िएन, रेलजिमनेजियन, रेलशूल** तथा **फ्राएनोबरशूल**। चारों प्रकार के माध्यमिक स्कूलों में प्रारम्भ से अंत तक एक आधुनिक विदेशी भाषा अनिवार्य है, सिवाय **जिमनेजियन** के, जहां वह ग्रेड नौ से लेकर बारह तक वैकल्पिक होती है।

लैटिन की पढ़ाई आठ-वर्षीय **जिमनेजियन** तथा **रेल-जिमनेजियन** के तीसरे वर्ष से प्रारम्भ की जाती है और अंत तक बराबर पढ़ाई जाती है। ग्रीक की पढ़ाई **जिमने-जियन** के ग्रेड नौ में शुरू की जाती है। **रेलशूल** में किसी द्वितीय आधुनिक विदेशी भाषा अथवा लैटिन की पढ़ाई के साथ-साथ प्रथम आधुनिक भाषा की पढ़ाई भी चलती है।

---

1. **तुलना की सुविधा के लिए स्कूल स्तर की समस्त कक्षाएं यथास्थिति कक्षा अथवा ग्रेड एक से दस, ग्यारह, बारह इत्यादि तक सिलसिलेवार संख्यांकित की गई हैं।**

चार. ब्राज़ील

प्राथमिक शिक्षा 5 वर्षों की होती है जिसके पश्चात् चार वर्षीक जूनियर माध्यमिक स्कूल अथवा **जिनेसिया** तथा उसके बाद तीन-वर्षीय सीनियर माध्यमिक स्कूल अथवा **कालेजियो** होता है। सीनियर माध्यमिक पाठ्यक्रम में क्लासिकीय धारा तथा विज्ञान धारा के बीच विकल्प दिया जाता है।

पुर्तगाली प्रथम भाषा है, तथा सभी शिक्षार्थियों को अनिवार्य रूप से कक्षा एक से बारह तक पढ़ाई जाती है। दूसरी भाषाओं का शिक्षण जूनियर माध्यमिक स्तर पर प्रारम्भ होता है, जो इस प्रकार है :

भाषा	जूनियर माध्यमिक	सीनियर माध्यमिक	
		क्लासिकीय धारा	विज्ञान धारा
लैटिन	छह-नौ	दस-बारह	—
ग्रीक	बिलकुल नहीं	दस-बारह	—
फ्रैंच	छह-नौ	दस तथा ग्यारह	दस तथा ग्यारह
अंग्रेजी	सात-नौ	दस तथा ग्यारह	दस तथा ग्यारह
स्पेनिश	—	दस	दस

पांच. बर्मा

स्कूल-पाठ्यक्रम दस वर्ष का होता है, चार वर्ष का प्राथमिक, तीन वर्ष का जूनियर माध्यमिक तथा तीन वर्ष का सीनियर माध्यमिक। बर्मी तथा अंग्रेजी भाषाएं कक्षा एक और उसके आगे पढ़ाई जाती हैं, बर्मी प्रथम भाषा के रूप में तथा अंग्रेज़ी, द्वितीय भाषा के रूप में।

छह. कनाडा

कनाडा में स्कूल-पाठ्यक्रम सामान्यतः 8-4 के पैटर्न पर होता है जिसके पश्चात् बहुधा पूर्व-विश्वविद्यालय कक्षा होती है। वैसे अलग-अलग प्रांतों में इस पद्धति में अंतर भी मिलेगा। अंग्रेजी कक्षा एक से बारह तक पढ़ाई जाती है। प्रारम्भिक स्कूल तथा उससे आगे दूसरी भाषाओं की, वैकल्पिक रूप में पढ़ाई की व्यवस्था है। माध्यमिक स्तर पर द्वितीय भाषाओं के रूप में जिन भाषाओं की पढ़ाई की जा सकती है, उनमें फ्रैंच, लैटिन, जर्मन, इटालियन, स्पेनिश, तथा ग्रीक सम्मिलित हैं। कुछ वर्ष पूर्व तक, ग्रीक, लैटिन तथा सम्भवतः दो या दो से अधिक आधुनिक भाषाओं की पढ़ाई विश्वविद्यालय में प्रवेश के लिए अनिवार्य थी, पर इस तरह की अनिवार्यताएं धीरे-धीरे हटा दी गई हैं, यद्यपि कुछ संकायों अथवा उच्च डिग्रियों में प्रवेश के लिए एक द्वितीय भाषा जानना तो अब भी अनिवार्य है।

सात. लंका

प्राथमिक पाठ्यक्रम की अवधि छह वर्ष की है। इसके पश्चात् तीन-वर्षीय जूनियर माध्यमिक स्तर तथा दो-वर्षीय सीनियर माध्यमिक स्तर आता है। इसके भी आगे सीनियर स्कूल प्रमाण-पत्र के लिए दो-वर्षीय पाठ्यक्रम है जिसे पूरा करने पर विश्वविद्यालय में प्रवेश मिलता है।

मातृभाषा (यथास्थिति सिंहली अथवा तमिल) कक्षा एक से कक्षा ग्यारह तक (जबकि विद्यार्थी जी० सी० ई० ओ० स्तर की परीक्षा में बैठते हैं) पढ़ाई जाती है। अंग्रेजी की पढ़ाई प्राथमिक स्कूल के चौथे वर्ष में अनिवार्य रूप से प्रारम्भ की जाती है और स्कूल के अन्त तक पढ़ाई जाती है।

आठ. डेनमार्क

प्राथमिक स्तर 7 या 8 वर्षों का होता है जो दो स्तरों में विभाजित होता है, पहला स्तर (**ग्रंड्स्कोल**) 4 या 5 वर्षों का तथा दूसरा स्तर (**होवेड्स्कोल**) मिडिल स्कूल में तीन या चार वर्षों का होता है। मिडिल स्कूल के बाद शिक्षार्थी या तो (एक-वर्षीय) **रेलक्लास** में जाते हैं अथवा (तीन-वर्षीय) **जिमनेज़ी** में।

डेनिश (प्रथम भाषा) कक्षा एक से लेकर माध्यमिक स्तर के अंत तक पढ़ाई जाती है।

छठे वर्ष की कक्षा में सभी शिक्षार्थियों को अनिवार्य रूप से किसी एक आधुनिक भाषा—अंग्रेजी अथवा जर्मन—की शिक्षा दी जाती है। सातवें वर्ष की कक्षा में उन बच्चों को, जो स्कूल की राय में इनसे लाभ उठा सकते हैं, एक और विदेशी भाषा—अंग्रेजी अथवा जर्मन—की शिक्षा दी जाती है।

जिमनेज़ी में, जो कि तीन वर्ष का होता है, पढ़ाई की भिन्न-भिन्न शाखाओं की व्यवस्था की जा सकती है। भाषाओं की पढ़ाई निम्न प्रकार से होती है :

भाषा	जिमनेज़ी		
	क्लासिकीय भाषा शाखा	आधुनिक भाषा शाखा	गणित विज्ञान शाखा
डैनिश	तीनों वर्ष	तीनों वर्ष	तीनों वर्ष
फ्रैंच	,,	,,	,,
लैटिन	,,	,,	,,
ग्रीक	,,	—	—
अंग्रेजी या जर्मन	—	—	प्रथम दो वर्ष
अंग्रेजी तथा/ अथवा जर्मन	शुरू के दो वर्ष		—

ग्यारह. फ्रांस

फ्रांस में फ्रैंच भाषा कक्षा एक में मातृभाषा तथा प्रथम भाषा के रूप में प्रारम्भ की जाती है और माध्यमिक स्तर के अंत तक (कुल मिलाकर 14 वर्ष) पढ़ाई जाती है। अनिरिक्त भाषाएं केवल माध्यमिक स्तर पर प्रारम्भ की जाती हैं। माध्यमिक स्तर के प्रथम दो वर्ष (कक्षा छह तथा पांच) प्रेक्षण-चक्र के होते हैं। इसके बाद के दो वर्षों (कक्षा चार तथा तीन) की पढ़ाई के लिए तीन सेक्शन हैं—क्लासिकीय ए, क्लासिकीय बी, तथा आधुनिक। क्लासिकीय ए सेक्शन—मुख्य विषय : ग्रीक, लैटिन, व एक आधुनिक भाषा; क्लासिकीय बी सेक्शन—मुख्य विषय : लैटिन तथा दो आधुनिक भाषाएं; आधुनिक सेक्शन—मुख्य विषय : फ्रैंच का और अधिक गहन अध्ययन तथा दो अन्य आधुनिक भाषाएं।

बीसरे चक्र के दो वर्षों (कक्षा दो तथा एक) में निम्नलिखित भाषाओं की शिक्षा दी जाती है :

क्लासिकीय ए—ग्रीक, लैटिन तथा एक आधुनिक भाषा।

क्लासिकीय बी—लैटिन तथा दो आधुनिक भाषाएं।
आधुनिक—दो आधुनिक भाषाएं।

नीचे की सारणी में इन कक्षाओं में पढ़ाई जाने वाली भाषाएं दी जा रही हैं :

भाषा	क्लासिकीय ए	क्लासिकीय बी	आधुनिक
लैटिन	छह से एक[1]	छह से एक	—
ग्रीक	चार से एक	—	—
आधुनिक भाषा-1	छह से एक	छह से एक	छह-एक
आधुनिक भाषा-2	—	चार-एक	चार-एक

1. फ्रांस में माध्यमिक स्तर की कक्षाएं अवरोही क्रम में चलती हैं।

दस. जर्मन संघीय गणराज्य

जर्मन भाषा कक्षा एक से कक्षा बारह (अर्थात् **जिमनेजियन** के अंत) तक के शिक्षार्थियों को पढ़ाई जाती है। अंग्रेजी कक्षा पांच में प्रारम्भ की जाती हैं और कक्षा दस (इन्टरमीडिएट अथवा मिटेलशूल के अंत) तक अथवा कक्षा आठ या नौ (प्राथमिक स्कूल के अंत) तक उसकी पढ़ाई जारी रहती है।

जिमनेजियन के अन्तर्गत प्राथमिक स्कूल के चौथे वर्ष से प्रारम्भ होने वाला एक नौ-वर्षीय पाठ्यक्रम है जो तीन प्रकार का होता है : क्लासिकीय शैक्षिक, आधुनिक शैक्षिक तथा गणित एवं विज्ञान शैक्षिक। क्लासिकीय शैक्षिक हाई स्कूल में लैटिन की पढ़ाई 9 वर्ष की, ग्रीक की 6 वर्ष की, तथा अंग्रेजी व फ्रैंच की 7 वर्ष की होती है। आधुनिक शैक्षिक हाई स्कूल में दो आधुनिक भाषाओं तथा लैटिन की पढ़ाई होती है। प्रथम आधुनिक भाषा (आमतौर पर अंग्रेजी) की पढ़ाई अनिवार्य रूप से 9 वर्ष की होती है, जबकि द्वितीय और तृतीय विदेशी भाषाएं (जिनकी पढ़ाई क्रमशः 7 तथा 5 वर्षों की होती है) लैटिन तथा फ्रैंच (या अंग्रेजी) अथवा इसके विपरीत फ्रैंच (या अंग्रेजी) तथा लैटिन हो सकती हैं। गणित या विज्ञान के शैक्षिक हाई स्कूल में दो विदेशी भाषाओं (अंग्रेजी तथा लैटिन या फ्रैंच) की पढ़ाई की व्यवस्था है। नीचे दी गई सारणी में भाषाओं का क्लासिकीय, आधुनिक तथा गणित **जिमनेजियन** में स्थान दर्शाया गया है।

भाषाएं	क्लासिकीय जिमनेज़ियन	आधुनिक जिमनेज़ियन	गणित तथा विज्ञान जिमनेज़ियन
जर्मन	पांच-तेरह	पांच-तेरह	पांच-तेरह
प्रथम विदेशी भाषा	पांच-बारह	पांच-बारह	पांच-बारह
द्वितीय विदेशी भाषा	आठ-तेरह	बारह-बारह	सात-तेरह
तृतीय विदेशी भाषा	सात-तेरह	नौ-तेरह	नौ और दस

1. क्लासिकीय **जिमनेज़ियन** की उच्च कक्षाओं में अंग्रेजी या फ्रेंज तृतीय विदेशी भाषा के रूप में चुनी जा सकती है।

ग्यारह. इंडोनेशिया

स्कूल पाठ्यक्रम के अन्तर्गत छह कक्षाओं का प्राथमिक स्तर तथा छह कक्षाओं का माध्यमिक स्तर होता हैं जो कि तीन-तीन वर्ष के जूनियर तथा सीनियर स्तरों में विभाजित होता है।

प्रथम दो कक्षाओं में स्थानीय भाषा, (उदाहरण के

लिए जावाई भाषा) का उपयोग शिक्षा के माध्यम के रूप में किया जाता है, तथा इंडोनेशियाई भाषा की शिक्षा कक्षा तीन में प्रारम्भ की जाती है, जिसके बाद वह शिक्षा का माध्यम बन जाती है और स्थानीय भाषा एक विषय के रूप में पढ़ाई जाती है।

जूनियर हाईस्कूल में अंग्रेजी कक्षा सात में शुरू की जाती है और कक्षा बारह के अंत तक पढ़ाई जाती है। स्थानीय भाषा कक्षा ग्यारह के अंत तक ही पढ़ाई जाती है और वह भी ए धारा जिसमें भाषाओं पर अधिक समय दिया जाता है। इस धारा में, कक्षा दस तथा ग्यारह में प्राचीन जावाई भाषा की शिक्षा की भी व्यवस्था की गई है। गणित धारा में कक्षा बारह से नौ तक इंडोनेशियाई तथा अंग्रेज़ी पढ़ाने की व्यवस्था है जबकि वाणिज्य धारा के अन्तर्गत तीनों वर्षों (दस-बारह) में इंडोनेशियाई, अंग्रेज़ी तथा जर्मन या फ्रेंच की पढ़ाई सम्मिलित है।

भाषा	प्राथमिक स्कूल	जूनियर हाई स्कूल	सीनियर हाई स्कूल		
			ए धारा (भाषा)	बी धारा (गणित)	सी धारा (वाणिज्यिक)
इंडोनेशियाई	तीन-छह	सात-नौ	दस-बारह	दस-बारह	दस-बारह
स्थानीय भाषा	एक-छह	सात-नौ	दस-ग्यारह	—	—
अंग्रेजी	—	सात-नौ	दस-बारह	दस-बारह	दस-बारह
जर्मन या फ्रेंच	—	—	—	—	दस-बारह

बारह. ईरान

स्कूल-पाठ्यक्रम 12 वर्षों का होता है जिसमें 6 वर्ष का प्राथमिक स्तर तथा 6 वर्ष का माध्यमिक स्तर होता है। माध्यमिक स्तर भी प्रथम तथा द्वितीय, इन दो चक्रों में विभाजित होता है जिनमें से प्रत्येक तीन वर्ष का होता है।

फ़ारसी (प्रथम भाषा) कक्षा एक से बारह तक पढ़ाई जाती है। प्राथमिक स्तर के अंत (कक्षा छह) तक कोई दूसरी भाषा पढ़ाई नहीं जाती। कक्षा सात में अरबी प्रारम्भ की जाती है जो माध्यमिक स्तर के प्रथम चक्र के तीन वर्षों में पढ़ाई जाती है। कक्षा सात में एक विदेशी भाषा भी प्रारम्भ की जाती है जो कक्षा बारह तक पढ़ाई जाती है।

तेरह. आयरलैंड

आयरलैंड के राष्ट्रीय प्राथमिक स्कूल में आठ वर्षीय पाठ्यक्रम की व्यवस्था है, जिसकी सर्वोच्च दो कक्षाएं वस्तुतः माध्यमिक स्तर की हैं। माध्यमिक स्कूल 6 वर्षों का है और शिक्षार्थी राष्ट्रीय प्राथमिक स्कूल में कक्षा छह के बाद अथवा कक्षा आठ के बाद उचित समय पर अपनी बदली करवा सकते हैं।

आयरिश भाषा शिशु (इनफैंट) कक्षा से लेकर स्कूल पाठ्यक्रम के अंत तक पढ़ाई जाती है तथा स्कूल समापन प्रमाण-पत्र परीक्षा (लीविंग सर्टिफिकेट एक्ज़ामिनेशन) तक बराबर आयरिश भाषा पर, एक विषय के रूप में तथा शिक्षा के माध्यम के रूप में भी, अत्यधिक जोर दिया जाता है। कक्षा में तथा उसके आगे अंग्रेजी एक द्वितीय भाषा के रूप में पढ़ाई जाती है। यह शिशु (इनफैंट) कक्षा तथा कक्षा एक में भी वैकल्पिक रूप से सीखी जा सकती है।

चौदह. इज़राइल

इज़राइल में प्राथमिक स्तर 8 वर्षों का तथा माध्यमिक स्तर 4 वर्षों का होता है।

अरब स्कूलों में अरबी प्रथम भाषा होती है तथा ग्रेड एक से पढ़ाई जाती है। हिब्रू ग्रेड चार से पढ़ाई जाती है और एक विदेशी भाषा बहुधा अंग्रेजी—ग्रेड छह से पढ़ाई जाती है। तीनों ही भाषाएं माध्यमिक स्कूल स्तर के अंत तक बराबर पढ़ाई जाती हैं।

हिब्रू स्कूलों के कुछ सेक्शनों में माध्यमिक स्तर पर पढ़ाई जाने वाली भाषाएं निम्नलिखित है :

हिब्रू	. . . . नौ-बारह
प्रथम विदेशी भाषा (अंग्रेजी या फ्रेंच)	. . . नौ-बारह
द्वितीय विदेशी भाषा (अरबी या लैटिन)	. . . . दस-बारह

पंद्रह. इटली

प्राथमिक पाठ्यक्रम (**स्कुओला एलिमेंतारे**) 5 वर्षों का होता है जिसके पश्चात् तीन वर्षों का इंटरमीडिएट स्तर (**स्कुओला मीडिया**) तथा 5 वर्षों का एक उच्च माध्यमिक स्तर होता है।

इटालियन—प्रथम भाषा—कक्षा एक से पढ़ाई जाती है और कक्षा छह तक केवल वही एक भाषा पढ़ाई जाती है।

कक्षा छह से आठ तक सीखी गई भाषाओं में इटालियन तथा लैटिन और कक्षा सात से शुरू होने वाली एक विदेशी भाषा—फ्रेंच, अंग्रेजी, जर्मन या स्पेनिश सम्मिलित हैं।

उच्च माध्यमिक स्तर पर शिक्षार्थी प्रथम दो वर्षों में इटालियन, ग्रीक तथा एक विदेशी भाषा (जो कि **स्कुओला मीडिया** स्तर पर पहले से ही शुरू हो चुकी होती है) सीखते हैं। अगले तीन वर्षों में विदेशी भाषा का अध्ययन छोड़ दिया जाता है। स्कूल-स्तर पर भाषाओं की पढ़ाई का सार इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है :

इटालियन	एक-तेरह
लैटिन	छह-आठ
विदेशी भाषा	सात-नौ
ग्रीक	नौ-तेरह

सोलह. जापान

प्राथमिक स्कूल 6 वर्षों का होता है जिसके पश्चात् तीन वर्षों का अवर माध्यमिक स्कूल तथा 3 वर्षों का उच्च माध्यमिक स्कूल होता है।

जापानी भाषा कक्षा एक में तथा उसके आगे पढ़ाई जाती है। प्राथमिक स्तर पर कोई अन्य भाषा नहीं पढ़ाई जाती।

अवर माध्यमिक स्तर पर जापानी भाषा की पढ़ाई अनिवार्य विषय के रूप में जारी रहती है। कोई शिक्षार्थी यदि चाहे तो किसी विदेशी भाषा का भी अध्ययन वैकल्पिक विषय के रूप में कर सकता है।

उच्च माध्यमिक स्तर पर भी केवल जापानी भाषा "ए", जिसके लिए 9-10 क्रेडिट होते हैं, समस्त पाठ्यक्रमों में समस्त विद्यार्थियों के लिए अनिवार्य होती है, परन्तु कोई विद्यार्थी चाहे तो एकाध विदेशी भाषा तथा एक क्लासिकीय (चीनी) भाषा वैकल्पिक विषय के रूप में ले सकता है।

सत्रह. जोर्डन

स्कूल पाठ्यक्रम 12 वर्षों का होता है—6 वर्षों का प्राथमिक स्कूल, 3 वर्षों का इंटरमीडिएट स्कूल, तथा 3 वर्षों का उच्च माध्यमिक स्कूल।

प्रथम भाषा के रूप में अरबी सभी स्कूलों में कक्षा एक से पढ़ाई जाती है। केवल अंग्रेजी पढ़ाने वाले स्कूल में कक्षा चार में अंग्रेजी की पढ़ाई प्रारम्भ की जाती है। अरबी तथा अंग्रेजी दोनों ही भाषाओं की पढ़ाई माध्यमिक स्तर के अंत तक जारी रहती है। स्कूली स्तर पर कोई भी दूसरी भाषा शुरू नहीं की जाती।

अठारह. लीब्या

लीब्या में प्राथमिक शिक्षा का 6 वर्षों का पाठ्यक्रम होता है। इसके पश्चात् एक अनुवर्ती अथवा अवर माध्यमिक स्तर तीन वर्षों का तथा एक उच्च माध्यमिक स्तर तीन वर्षों का होता है।

प्राथमिक स्तर पर केवल एक ही भाषा पढ़ाई जाती है और वह है अरबी। यह कक्षा एक में प्रारम्भ होती है। प्रथम विदेशी भाषा कक्षा सात में, तथा दूसरी विदेशी भाषा कक्षा नौ में प्रारम्भ की जाती है। आमतौर पर ये विदेशी भाषाएं अंग्रेजी और फ्रेंच होती है। माध्यमिक स्कूल की समापन परीक्षा (सेकेंडरी स्कूल लीविंग एक्जामिनेशन में उत्तीर्ण होने के लिए विद्यार्थी को तीनों भाषाओं में निर्धारित न्यूनतम अंक प्राप्त करने आवश्यक हैं।

उन्नीस. मेक्सिको

मेक्सिको में प्राथमिक स्कूल का पाठ्यक्रम छह वर्षों का होता है। माध्यमिक पाठ्यक्रम 3 + 2 के दो चक्रों में, 5 वर्षों का होता है।

स्पेनिश कक्षा एक में पढ़ाई जाती है और माध्यमिक स्तर के अंत तक उसकी पढ़ाई चलती है।

कक्षा सात, अर्थात्, माध्यमिक स्तर के प्रथम वर्ष में एक विदेशी भाषा—अंग्रेजी अथवा फ्रेंच प्रारम्भ की जाती है।

बीस. नीदरलैण्ड

नीदरलैण्ड में डच भाषा कक्षा एक में पढ़ाई जाती है और कक्षा छह तक सिर्फ यही भाषा पढ़ाई जाती है। कक्षा सात तथा आठ में, जो कि **अनुवर्ती सामान्य**

प्राथमिक शिक्षा के अंग हैं, अंग्रेज़ी, फ्रेंच तथा जर्मन—इन तीन भाषाओं में से किन्हीं दो भाषाओं की वैकल्पिक रूप में अतिरिक्त पढ़ाई की जा सकती है।

जिमनेज़ियम अथवा माध्यमिक स्तर—प्राथमिक स्तर के छह वर्षों के आगे और छह वर्षों तक चलता है। पांचवें वर्ष में शिक्षार्थी सेक्शन ए तथा सेक्शन बी में बंट जाते हैं। सेक्शन ए में ग्रीक तथा लैटिन पर अधिक ज़ोर दिया जाता है तथा सेक्शन बी में विज्ञान पर अधिक जोर दिया जाता है। भाषा की पढ़ाई इस प्रकार की जाती है :

भाषाएं जिनकी पढ़ाई होती हैं	ए और बी सेक्शन
ग्रीक	सात-बारह
लैटिन	सात-बारह
डच	सात-बारह
फ्रेंच	सात-बारह
जर्मन	नौ-बारह
अंग्रेजी	सात-बारह
हिब्रू	वैकल्पिक

इक्कीस. न्यूजीलैण्ड

न्यूजीलैंड में प्राथमिक स्कूल 8 वर्षों का होता है और 5 वर्ष की आयु से शुरू होता है। प्रथम दो वर्ष शिशु-कक्षाएं होती हैं, जिसके बाद के 4 वर्ष (स्टैन्डर्ड 1-4) प्राथमिक पाठ्यक्रम के होते हैं। उसके बाद फ़ार्म एक तथा दो माध्यमिक विभाग (इंटरमीडिएट डिपार्टमेंट) अथवा माध्यमिक स्कूल (इंटरमीडिएट स्कूल) के होते हैं। उत्तर-प्राथमिक शिक्षा 5 कक्षाओं (फार्म तीन से चार) की होती है।

प्राथमिक स्तर पर केवल अंग्रेज़ी भाषा पढ़ाई जाती है जो कि माध्यमिक स्कूल के अंत तक कोर-कार्यक्रम के अंग के रूप में पढ़ाई जाती है। फ्रेंच तथा अथवा लैटिन केवल वैकल्पिक विषय के रूप में शैक्षिक अथवा सामान्य पाठ्यक्रमों में पढ़ाए जाते हैं।

बाईस. नार्वे

नार्वे में प्राथमिक पाठ्यक्रम सात वर्षों का होता है। इसके बाद एक साल का **अनुवर्ती स्कूल** अथवा 6 महीने की अवधि का एक जनता (फोक) हाई स्कूल अथवा दो या तीन वर्ष का **रेलस्कोल** होता है। एक 5 वर्षीय जिमनेज़ियम पाठ्यक्रम के द्वारा शिक्षार्थियों को विश्वविद्यालय में प्रवेश के योग्य बनाया जाता है और इसके प्रथम दो वर्षों में पाठ्यक्रम **रेलस्कोल** की तरह का ही होता है। यह एक विदेशी भाषा (अंग्रेजी) की पढ़ाई के साथ प्राथमिक स्कूल पाठ्यक्रम पर आधारित होता है।

नार्वेज़ियन (मातृभाषा तथा प्रथम भाषा) कक्षा एक से जिमनेज़ियम के अंत तक पढ़ाई जाती है। अंग्रेजी की पढ़ाई कक्षा छह और सात में की जाती है और नगर के स्कूलों में अधिकांश शिक्षार्थी इसे लेते है तथा पर्याप्त संख्या में यह ग्राम्य समुदायों में पढ़ाई जाती है।

रेलस्कोल में नार्वेज़ियन के अतिरिक्त अंग्रेज़ी और जर्मन भाषाएं प्रथम दो वर्षों में पढ़ाई जाती है।

जिमनेज़ियम में अंग्रेज़ी की पढ़ाई आधुनिक भाषाओं वाली शाखाओं के अंत तक जारी रहती है और विज्ञान-वाली शाखा में उपांत्य वर्ष के अंत तक होती है। जर्मन की पढ़ाई विज्ञान-शाखा के विद्यार्थियों द्वारा प्रथम एक वर्ष में की जाती है तथा आधुनिक भाषाओं की शाखाओं के विद्यार्थियों द्वारा दो वर्ष तक की जाती है। फ्रेंच भाषा का अध्ययन सभी विद्यार्थी पूरे तीन वर्ष तक करते है।

(देखिए सारणी)

भाषाएं जिनकी शिक्षा प्राप्त की जाती है	प्राथमिक स्कूल (एक-सात)	रेलस्कोल (एक-तीन)	जिमनेज़ियम (तीन-पांच)	
			विज्ञान शाखा	भाषाओं की शाखा
नार्वेजियन	एक-सात	एक-तीन	तीन-पांच	तीन-पांच
अंग्रेजी	छह तथा सात (वैकल्पिक)	एक तथा दो	तीन तथा चार	तीन-पांच
जर्मन	—	एक तथा दो	तीन	तीन तथा चार
फ्रेंच	—	—	तीन-पांच	तीन-पांच

तेईस. पाकिस्तान

पाकिस्तान के स्कूल पाठ्यक्रम में 5 वर्ष का प्राथमिक स्तर तथा एक 5 वर्ष का हाई स्कूल स्तर होता है और इस प्रकार कुल मिलाकर स्कूल पाठ्यक्रम 10 वर्षों का होता है, सिवाय सिंध के जहां यह 11 वर्षों का होता है।

प्राथमिक स्तर पर केवल एक भाषा, अर्थात् मातृभाषा जो उर्दू या बँगला होती है, पढ़ाई जाती है। मातृभाषा की पढ़ाई माध्यमिक स्तर के अंत तक जारी रखती है।

अंग्रेजी मिडिल स्कूल (कक्षा छह) में अनिवार्य अथवा वैकल्पिक विषय के रूप में प्रारम्भ की जाती है और कक्षा दस तक पढ़ाई जाती है। कक्षा छह-दस में एक क्लासिकीय भाषा अथवा कक्षा छह-आठ में एक आधुनिक अथवा विदेशी भाषा (फ्रेंच, फारसी, अरबी, बंगला, गुजराती, सिंधी) पढ़ाई जा सकती है।

चौबीस. फ़िलीपीन

फ़िलीपीन में स्कूल पाठ्यक्रम 6 ग्रेडों की प्रारम्भिक शिक्षा तथा 4 ग्रेडों की माध्यमिक शिक्षा को मिलाकर पूरा होता है।

अंग्रेजी तथा फ़िलीपीनी भाषाएं स्कूल पाठ्यक्रम के आदि से अन्त तक पढ़ाई जाती हैं। किसी भी अन्य भाषा के—चाहे वह क्लासिकीय हो अथवा आधुनिक—सिखाने की व्यवस्था नहीं की गई है।

पच्चीस. पोलैण्ड

प्राथमिक स्कूल सात वर्षों के पाठ्यक्रम का होता है जिसके बाद पोलिश भाषा कक्षा एक में प्रारम्भ की जाती है और कक्षा छह तक पढ़ाई जाती है। विदेशी भाषा के रूप में रूसी की पढ़ाई कक्षा पांच में प्रारम्भ की जाती है और माध्यमिक स्तर के अंत तक चलती है। एक तीसरी आधुनिक भाषा अथवा लैटिन कक्षा आठ-ग्यारह में पढ़ाई जाती है।

इसके अतिरिक्त, विदेशी भाषाएं वैकल्पिक विषयों के रूप में माध्यमिक स्तर पर पढ़ी जा सकती है।

छब्बीस. पुर्तगाल

प्राथमिक स्कूल 4 वर्षों का होता है जिसके बाद 7 वर्षों का एक माध्यमिक स्तर होता है जो तीन चक्रों (2+3+2) में विभाजित होता है।

पुर्तगाली जो कि राष्ट्रीय भाषा है कक्षा एक और उसके आगे पढ़ाई जाती है। प्राथमिक स्तर पर कोई और भाषा नहीं पढ़ाई जाती प्राथमिक स्तर पर भाषा की पढ़ाई इस प्रकार होती है :

भाषा जिसकी पढ़ाई होती है	प्रथम चक्र वाली कक्षाएं पांच तथा छह	दूसरी चक्र वाली कक्षाएं सात-नौ
पुर्तगाली	पांच तथा छह	सात-नौ
फ्रेंच	पांच तथा छह	सात-नौ
अंग्रेजी	—	सात-नौ

तीसरे चक्र में, लिए गए पाठ्यक्रम के अनुसार विषयों में परिवर्तन होता है। पुर्तगाली के अतिरिक्त लैटिन, ग्रीक, फ्रेंच, अंग्रेजी, व जर्मन भाषाएं सीमने की व्यवस्था की गई है।

सत्ताईस. स्पेन

विश्वविद्यालय में प्रवेश तक स्कूल का पाठ्यक्रम चार वर्ष के प्राथमिक स्तर, 4 वर्ष के अवर **बेकालारिएट,** तथा 2 वर्ष के उच्च **बैकालारिएट** को मिला कर पूरा होता है, जिसके बाद अंत में एक वर्ष का पूर्व-विश्वविद्यालय पाठ्यक्रम होता है।

स्पेनिश, जो कि राष्ट्रीय भाषा है, प्राथमिक स्तर पर और उसके आगे पढ़ाई जाती है **बैकालारिएट** स्तर पर भाषा का अध्ययन निम्नलिखित प्रकार से होता है :

भाषा	अवर बेकालारिएट (छह-नौ)	उच्च बेकालारिएट (दस-ग्यारह)
स्पेनिश	पांच, सात तथा नौ	ग्यारह
आधुनिक भाषा	सात तथा आठ	दस
लैटिन	सात तथा नौ	केवल साहित्य अनुभाग के लिए
ग्रीक	—	दस तथा ग्यारह

अट्ठाईस. सूडान

प्राथमिक शिक्षा 8 वर्षों की होती है, जो कि चार-चार वर्षों के दो चक्रों (प्राथमिक तथा माध्यमिक अथवा इंटरमीडिएट) में विभाजित है।

अरबी कक्षा एक में तथा उसमें आगे पढ़ाई जाती है।

अंग्रेजी प्रथम माध्यमिक (इंटरमीडिएट) वर्ष, अर्थात्, कक्षा पांच में विदेशी भाषा के रूप में प्रारम्भ की जाती है और माध्यमिक स्तरों पर शिक्षा की माध्यम भाषा बन जाती है।

माध्यमिक स्तर भी 4 वर्षों का होता है। अरबी तथा अंग्रेजी की पढ़ाई स्कूल प्रमाण-पत्र स्तर (स्कूल सार्टिफ़िकेट स्टैण्डर्ड) तक जारी रहती है।

उनतीस. स्वीडन

प्राथमिक स्कूल 7 वर्षों का होता है जो 2 वर्षीय जूनियर स्कूल (**स्मेंस्कोल**) तथा एक पांच-वर्षीय स्कूल (**फोक्सकोल**) में उप-विभाजित होता है।

अवर माध्यमिक स्कूल (**रेलस्कोल**) का 4 वर्ष का पाठ्यक्रम होता है जो कि 6 वर्षीय प्राथमिक पाठ्यक्रम के बाद होता है। इसके पश्चात् **जिमनेजियम** उच्च राज्य माध्यमिक स्कूल (अपर स्टेट सेकेन्डरी स्कूल) अथवा जूनियर कॉलेज होता हैं जिसका पाठ्यक्रम तीन वर्ष का होता है। इस प्रकार **जिमनेजियम** तक स्कूल की कुल शिक्षा 13 वर्षों की होती है।

स्वीडिश भाषा की पढ़ाई कक्षा एक से प्रारम्भ हो जाती है जो कि प्राथमिक स्तर पर तथा माध्यमिक स्कूल में आदि से अंत तक चलती है। अंग्रेजी पांचवें ग्रेड में तथा उसके आगे वैकल्पिक भाषा के रूप में पढ़ाइ जाती है। स्कूल ज़िलों (स्कूल डिस्ट्रिक्ट) के लिए यह सम्भव है कि योग्यता प्राप्त शिक्षक सुलभ न होने पर बिना अंग्रेजी का पाठ्यक्रम चुन लें, किन्तु अंग्रेजी की पढ़ाई सामान्य समझी जा सकती है।

रेलस्कोल में अंग्रेजी चारों वर्षों में, जर्मन ऊपर के तीन वर्षों में तथा फ्रेंच वैकल्पिक विषय के रूप में सर्वोच्च फार्म में, उन लोगों के द्वारा जो कि उच्च माध्यमिक (अपर सेकेण्डरी) स्कूल में जाना चाहते है, पढ़ी जा सकती है।

जिमनेजियम स्तर पर भाषा के अध्ययन में लैटिन और ग्रीक भी सम्मिलित हो सकते हैं तथा कुछ विशिष्ट क्षेत्रों में, स्पेनिश, रूसी, फ़िनिश तथा इटालियन (वैकल्पिक रूप से) भी सम्मिलित किए जा सकते हैं।

तीस. थाईलैंड

प्राथमिक स्कूल में, जो कि 4 कक्षाओं का होता है, राष्ट्रीय भाषा थाई कक्षा एक में तथा उससे आगे पढ़ाई जाती है। माध्यमिक स्तर के 6 वर्ष होते हैं। इसमें एक अवर दूसरा उच्च स्तर होता है। शिक्षार्थी प्राथमिक स्तर के बाद तीन वर्षीय प्राथमिक विस्तार स्कूल में भी पढ़ाई जारी रख सकते हैं। उच्च माध्यमिक स्तर के बाद विश्वविद्यालय में पूर्व विद्यार्थियों का एकवर्षीय पूर्व विश्वविद्यालय पाठ्यक्रम की शिक्षा प्राप्त करना आवश्यक है। प्राथमिक विस्तार स्कूल (कक्षा पांच से सात) में दो भाषाएं—थाई तथा अंग्रेज़ी पढ़ाई जाती हैं। अवर माध्यमिक तथा उच्च माध्यमिक स्तरों के साथ दोनों भाषाएं बराबर आद्योपांत पढ़ाई जाती है।

अंग्रेजी को छोड़कर अन्य विदेशी भाषाएं केवल पूर्व-विश्वविद्यालय स्तर पर प्रारम्भ की जाती हैं। ये दोनों ही अनिवार्य तथा वैकल्पिक कार्यक्रमों के अधीन पढ़ाई जाती है।

इकतीस. तुर्की

तुर्की भाषा कक्षा I से पढ़ाई जाती है और 5 वर्ष के पूरे प्राथमिक स्तर में केवल इसी भाषा की पढ़ाई होती है। माध्यमिक शिक्षा के अन्तर्गत 7 वर्ष की पढ़ाई होती है : 3 वर्ष की इंटरमीडिएट की तथा 4 वर्ष की उच्च माध्यमिक की। इंटरमीडिएट स्कूल में जाने के बाद शिक्षार्थी निम्नलिखित 3 विदेशी भाषाओं में से एक चुनते है : अंग्रेजी, फ्रेंच तथा जर्मन। एक बार जो भाषा चुन ली जाती है उसकी पढ़ाई माध्यमिक पाठ्यक्रम के अंत तक जारी रखनी पड़ती है।

बत्तीस. संयुक्त अरब गणतन्त्र

प्राथमिक स्तर पर जो कि 6 वर्षों का होता हैं अरबी की पढ़ाई कक्षा I से प्रारम्भ होकर कक्षा XII तक चलती है। प्राथमिक स्तर के दौरान कोई दूसरी भाषा नहीं पढ़ाई जाती। माध्यमिक स्तर 6 वर्षों का होता है, जिस में तीन वर्ष पूर्व माध्यमिक अथवा जूनियर हाई स्कूल के तथा 3 वर्ष वास्तविक माध्यमिक स्कूल अथवा सीनियर हाई स्कूल के होते हैं। कक्षा सात, अर्थात्, जूनियर हाई स्कूल के प्रथम वर्ष में एक विदेशी भाषा प्रारम्भ की जाती है। सीनियर हाई स्कूल में मिस्र के प्रदेश में दो विदेशी भाषाएं तथा सीरया प्रदेश में एक विदेशी भाषा प्रारम्भ की जाती है। दूसरे तथा तीसरे वर्षों में दो विदेशी भाषाएं पढ़ाई जाती हैं।

तैंतीस. यूनाइटेड किंगडम

पूरे स्कूल पाठ्यक्रम में आद्योपांत अंग्रेजी पढ़ाई जाती है। कुछ थोड़े-से प्राइवेट स्कूलों को छोड़कर प्राथमिक स्तर पर कोई दूसरी भाषा नहीं पढ़ाई जाती। ग्रामर स्कूलों में फार्म एक से पांच तक बच्चों को आमतौर पर एक आधुनिक यूरोपीय भाषा पढ़ाई जाती है जिसके बाद

जी० सी० ई० का 'ओ' स्तर आता है। इसके अतिरिक्त एक क्लासिकीय भाषा का भी अध्ययन वैकल्पिक रूप से कुछ थोड़े से विद्यार्थी कर लेते हैं। तकनीकी अथवा व्यावसायिक पाठ्यक्रमों का अध्ययन चुननेवाले विद्यार्थियों को अंग्रेज़ी के अतिरिक्त कोई दूसरी भाषा नहीं सीखनी पड़ती।

चौंतीस. सोवियत संघ

प्राथमिक स्कूल के पाठ्यक्रम के अन्तर्गत जो कि 7 वर्षों का होता है, रूसी भाषा ऐसे स्कूलों में जहां वह मातृभाषा के रूप में है, कक्षा एक और उससे आगे पढ़ाई जाती है। जिन स्कूलों में मातृभाषा रूसी नहीं है, जैसे कि उज़बेकिस्तान के स्कूलों में, जहां कि उज़बेक मातृभाषा है, अथवा उक्रेन के स्कूलों में (मातृभाषा उक्रेनी) मातृभाषा की पढ़ाई कक्षा एक से प्रारम्भ की जाती है। तथा राष्ट्रीय भाषा रूसी की पढ़ाई कक्षा दो से प्रारम्भ की जाती है। सभी स्कूलों में एक विदेशी भाषा की पढ़ाई कक्षा पांच में प्रारम्भ की जाती है।

तीनों भाषाओं की पढ़ाई माध्यमिक स्तर के अंत तक जारी रहती है।

पैंतीस. संयुक्त राज्य अमेरिका

अंग्रेज़ी की पढ़ाई स्कूल-स्तर पर (कक्षा एक-बारह तक) आद्योपांत होती है। कोई दूसरी भाषा अनिवार्य नहीं है—चाहे प्रारम्भिक स्तर पर हो अथवा माध्यमिक स्तर पर। किन्तु अनेक माध्यमिक स्कूलों में एक अतिरिक्त भाषा—आमतौर पर फ्रेंच, जर्मन, स्पैनिश इत्यादि—की 2-3 वर्षों की पढ़ाई की बहुधा सीनियर माध्यमिक स्तर पर व्यवस्था की जाती है जिसे विकल्प के रूप में अधिकांश विद्यार्थी चुनते हैं।

छत्तीस. यूगोस्लाविया

प्राथमिक शिक्षा आठ वर्षों की होती है, 4 वर्ष की जूनियर प्राथमिक शिक्षा तथा 4 वर्ष की सीनियर प्राथमिक शिक्षा।

मातृभाषा (सर्बियाई, क्रोशियाई, स्लॉव इत्यादि) कक्षा एक और उसके आगे पढ़ाई जाती है। एक विदेशी भाषा कक्षा पांच से प्रारम्भ की जाती है तथा माध्यमिक स्तर के अंत (कक्षा बारह) तक पढ़ाई जाती है।

(4 वर्षों के जिमनेज़ियम) माध्यमिक स्तर के पाठ्यक्रम में द्वितीय आधुनिक भाषा (अंग्रेज़ी, फ्रेंच, जर्मन अथवा रूसी) की पढ़ाई की जा सकती है और अन्तिम दो वर्षों में यह पढ़ाई वैकल्पिक रूप में होती है जिसके लिए छात्रों को प्रोत्साहित किया जाता है। इसके अतिरिक्त प्रथम दो वर्षों में लैटिन पढ़ाई जाती है।

नौवां अध्याय

शिक्षण विधियां, मार्ग-दर्शन और मूल्यांकन

एक. शिक्षण विधियां : खोज और प्रसारण—(2) **विचार-विमर्श का क्षेत्र;** (4) **लचीलापन और गतिशीलता;** (8) **नवीन पद्धतियों का प्रसारण ।**

दो. पाठ्यपुस्तकें, अध्यापक मार्ग-निर्देशिका और शिक्षण सामग्री—(14) **पाठ्यपुस्तकों की गुणता** (15) **पाठ्य-पुस्तकों का राजकीय उत्पादन** (18) **राष्ट्रीय स्तर पर कार्यक्रम** (20) **राज्यस्तर पर कार्यक्रम** (23) **अपेक्षित शिक्षण साधनों का विधान ।**

तीन. कक्षा का आकार—(27) **वर्तमान स्थिति** (28) **विशाल कक्षाओं को पढ़ाने की कठिनाइयां** (30) **कक्षा का अधिकतम आकार नियत करना** (32) **बहुकक्षा अध्यापन ।**

चार. स्कूली इमारतें – (34) **स्कूली इमारतों के लिए धनराशि** (36) **लागत में कमी** (37) **ग्राम्य क्षेत्रों में इमारत** (39) **शहरी क्षेत्रों में इमारतें** (40) **शीघ्रगति से निर्माण** (41) **स्कूल की इमारतों का मानकी-करण एवं निरीक्षण ।**

पांच. स्कूल स्वास्थ्य सेवाएं—(42)

छह. मार्गदर्शन और सलाह—**मार्ग-दर्शन और सलाह देना** (43) **मार्गदर्शन की सेवाओं का उद्देश्य और उनका कार्य क्षेत्र** (44) **प्राथमिक शिक्षा में मार्गदर्शन** (46) **माध्यमिक शिक्षा में मार्गदर्शन** (51) **अन्य सामान्य सुझाव ।**

सात. प्रतिभा की खोज एवं विकास—(52) **महत्व** (53) **वर्तमान स्थिति** (54) **सिफ़ारिशें** (57) **परामर्शदाता का कार्य ।**

आठ. पिछड़े छात्रों की शिक्षा—(59) **पिछड़ेपन के प्रकार** (60) **धीमे सीखने वालों की आवश्यकताओं की पूर्ति** (61) **अल्पार्जकों की समस्या ।**

नौ. मूल्यांकन का नवीन कार्यक्रम—(66) **मूल्यांकन की नवीन अवधारणा;** (67) **सुधार आन्दोलन की प्रगति;** (69) **अवर प्राथमिक स्तर पर मूल्यांकन;** (71) **उच्चतर प्राथमिक स्तर पर मूल्यांकन;** (72) **क्या प्राथमिक बाह्य परीक्षा अनिवार्य है ?** (74) **अन्तःस्कूल तुलनीयता के लिए एक सामान्य आन्तरिक परीक्षा;** (77) **बाह्य परीक्षाओं में सुधार;** (78) **असफलताओं की बड़ी संख्या;** (80) **स्कूल और बोर्ड के द्वारा दिए गए प्रमाणपत्र;** (82) **प्रयोगकर्ता स्कूलों की स्थापना;** (84) **आंतरिक मूल्यांकन की पद्धतियां;** (87) **संक्रमण काल में उच्चतर माध्यमिक परीक्षा ।**

9.01. जैसा कि हम पूर्ववर्ती अध्याय में विचार कर चुके हैं पाठ्यचर्या को सतत गहन बनाने की आवश्यकता हैं। इस आवश्यकता का शिक्षण-पद्धति और मूल्यांकन (मार्गदर्शन सहित) में निरन्तर सुधार की तत्कालिक आवश्यकता से गहरा सम्बन्ध हैं। हम इस अध्याय में इसी कार्यक्रम के कुछ महत्वपूर्ण पहलुओं पर विचार करेंगे।

शिक्षण प्रणाली : खोज और प्रसारण

9.02. **विचार-विमर्श का क्षेत्र**—पिछले कुछ वर्षों में भारतीय स्कूलों में कक्षा अध्यापन को पुनः अनुप्राणित करने की प्रविधि पर काफी ध्यान दिया गया है। बुनियादी शिक्षा का उद्देश्य प्राथमिक स्कूलों के समूचे जीवन तथा कार्यकलापों में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाना तथा बालक के शरीर, मन एवं आत्मा का उत्कृष्ट और सर्वांगीण विकास था। माध्यमिक शिक्षा आयोग ने अपनी रिपोर्ट के एक पूरे अध्याय में गतिशील शिक्षण पद्धतियों पर ही विचार किया है। इस अध्याय में उपयुक्त प्रविधियों के उद्देश्यों, विविध क्रियाशील शिक्षण-पद्धति, के मूल्यों तथा इन पद्धतियों और प्रविधियों को बुद्धि के भिन्न-भिन्न स्तरों के उपयुक्त बनाने के विभिन्न तरीकों पर विचार विमर्श किया गया है। पिछले दशक में अध्यापक को मुख्य रूप से माध्यमिक स्तर पर नई शिक्षण पद्धतियों से

परिचित कराने के लिए पुनश्चर्या पाठ्यक्रम, वर्कशाप तथा ग्रीष्मकालीन संस्थानों के माध्यम से काफी प्रयास किए गए है। शहर के स्कूलों में दृश्य-श्रव्य साधनों का प्रयोग बढ़ रहा है और दिल्ली में तो अध्यापक की सेवा के लिए अध्ययन-कक्ष में टेलीविजन भी मौजूद है : परन्तु फ़िर भी सामान्यतया यह मानना पड़ेगा कि हमारे अधिकांश स्कूलों की शिक्षण पद्धतियों पर ये क्रियाएं कोई महत्वपूर्ण प्रभाव नहीं डाल पाई। ग्रामीण क्षेत्रों में विशेषत: प्राथमिक स्कूलों की अवस्था इनसे कहीं अधिक शोचनीय है। सामान्य स्कूल में आज भी शिक्षा एक यन्त्रवत् ढर्रे पर चल रही है तथा शाब्दिकता की पुरानी कुरीति से आक्रांत है और इसलिए अब भी उतनी ही नीरस और प्रेरणाहीन है जितनी कि पहले थी।

9.03. ऐसा क्यों ? समस्या जटिल है और इसका उत्तर देना आसान नहीं है। किन्तु हमारे विचारानुसार निम्नलिखित चार मुख्य कारण उन्नति के बाधक हैं।

(1) **सामान्य अध्यापक की दुर्बलताएं :** सामान्यत: एक आम अध्यापक की योग्यता दयनीय है। उसकी सामान्य शिक्षा निम्न स्तर की है और उसकी वृत्तिक तैयारी असंतोषजनक है।

(2) **शिक्षण पद्धति के क्षेत्र में उपयुक्त शैक्षिक अनुसंधान के विकास कार्य का अभाव**— हमारी परिस्थितियों एवं आवश्यकताओं के सर्वाधिक उपयुक्त पद्धतियों को ढूँढ़ निकालने के लिए महत्वपूर्ण क्षेत्रों में कुछ भी नहीं किया गया है। उदाहरणत: देवनागरी के समान ध्वन्यात्मक लिपि में प्रारम्भिक पठन के शिक्षण की सर्वश्रेष्ठ पद्धतियों का विकास होना अभी तक बाकी है।

(3) **शिक्षा प्रणाली की अनम्यता**— श्रेष्ठतर शिक्षण-पद्धतियोंके विकास में शैक्षिक अनुसंधानो का इतना योगदान नहीं जितना कि उन साहसी प्रतिभावान अध्यापकों का है जिनमें पिटी लीक से हटकर चलने का साहस है। हमारी शैक्षिक प्रणाली का स्वरूप ऐसा नहीं कि जिससे पहलशक्ति सृजनशीलता एवं प्रयोग को एक बड़े पैमाने पर प्रोत्साहन मिले। जिसके फलस्वरूप वह समय के साथ क़दम मिला कर नहीं चल पा रही है।

(4) **नवीन और गतिशील शिक्षाप्रणाली के प्रसारण में प्रशासनिक-व्यवस्था की असफलता**—यह मान लेने पर भी कि शिक्षा की नवीन पद्धतियों की खोज कर ली गई और कुछ प्रगतिशील स्कूलों में वस्तुत: इसका समावेश कर दिया गया फिर भी यह समस्या रह जाती है कि अन्य स्कूलों में किस प्रकार ये स्वाभाविक रूप से हमारी शिक्षण प्रणाली का एक सामान्य अंग बन जाए। यह एक कठिन कार्य है और हमें अभी भी इस कार्य को सम्पन्न करने योग्य उचित प्रविधियों का पता लगाना है। इनमें से प्रथम समस्या पर हम पहले ही तीसरे और चौथे अध्याय में विचार कर चुके हैं और दूसरी समस्या पर उत्तरवर्ती अध्याय में विस्तृत रूप में विचार किया गया है।[1] यहां हमारा इरादा भिन्न-भिन्न विषयों की शिक्षण पद्धतियों की जांच करना नहीं है क्योंकि इन विषयों पर पर्याप्त शिक्षा शास्त्रीय साहित्य उपलब्ध है। हमारा यह निश्चित मत है कि हमारी शिक्षण पद्धतियों के आधुनिकीकरण की असफलता का उत्तरदायित्व उपर्युक्त तीसरे और चौथे कारणों पर है, अर्थात्, शिक्षण प्रणाली की अनम्यता तथा विदित एवं पूर्वयुक्त शिक्षण-पद्धतियों के प्रसार में प्रशासन की असफलता। हम इस अध्याय में मुख्य रूप से इन्हीं दो समस्याओं पर अपना ध्यान केन्द्रित करेंगे।

9.04. **लचीलापन और गतिशीलता**—आज आधुनिक समाज में परिवर्तन और ज्ञान-वृद्धि की अत्यधिक तेज गति के कारण शिक्षा-प्रणाली का लचीला तथा गतिशील होना आवश्यक है। इसके मूल अंगों को इतनी स्वतंत्रता हो कि शिक्षण प्रणाली के ढांचे के बंधनों से अवरुद्ध हुए बिना छात्र-विशेष अपने स्कूल में, अध्यापक अपने सह-योगियों के बीच और स्कूल (अथवा स्कूल का समूह) अन्य समरूप स्कूलो से भिन्न दिशा या गति पर आगे बढ़ सके। इस प्रक्रिया में अध्यापकों की स्वतन्त्रता सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। अध्यापक की स्वतन्त्रता एक प्रकार से स्कूल की स्वतन्त्रता की पर्यायवाची है क्योंकि छात्र अपने पढ़ाने वाले स्त्री-पुरुषों से कदाचित ही अधिक स्वतन्त्र हो सकते हैं। अतएव शैक्षिक प्रणाली के लचीलेपन एवं उसकी गति-शीलता को मूलरूप से अध्यापकों की स्वतन्त्रता के ही बराबर मानना पूर्णतया उचित ही है।

9.05. यह याद रखना चाहिए कि सब अध्यापकों और स्कूलों के एक ही ढंग पर आगे बढ़ने की स्थिति में अध्ययन कक्ष क्रियाविधि में सामूहिक उन्नति नहीं होती। एक ऐसी स्कूल प्रणाली के लिए, जिसमें अप्रशिक्षित अथवा अपर्याप्त-प्रशिक्षित अध्यापक भारी संख्या में हों, विस्तृत पाठ्य-विवरण, पाठ्य-पुस्तक, परीक्षा, बारंबार निरीक्षण एवं सुनिर्धारित नियम के एक ठोस ढांचे का होना आव-श्यक है। सृजनशीलता के अवसर की अपेक्षा सुरक्षा का इच्छुक एक औसत अध्यापक कदाचित् इस अवलंबन का

1. अध्याय बारह।

स्वागत करे। यदि विभागीय निर्देशों से आगे जाने की अनुमति, प्रोत्साहन एवं सहायता न मिले तो अच्छे से अच्छे अध्यापक भी अपंग हो सकते हैं। शैक्षिक सुधार की सफलता इसी लचीले दृष्टिकोण पर निर्भर है जिसमें अच्छे अध्यापक तथा अच्छे स्कूल को अग्रसर होने की सुविधा हो और पिछड़ी हुई संस्थाओं को सुधार की क्रमशः समाविष्ट करने के लिए आवश्यक अवलम्बन प्राप्त हो। ऐसी अवस्था में प्रशासक या निरीक्षक का कार्य बड़ा कठिन हो जाता है। वह न तो सब पर एक से प्रतिबन्ध लगाने का सरल मार्ग अपना सकता है और न ही सबको एक समान स्वतन्त्रता देने का साहस कर सकता है। हम उससे प्रत्येक स्कूल की और प्रत्येक स्कूल अध्यापक की शक्तियों एवं दुर्बलताओं के विश्लेषण की और यथासामर्थ्य प्रगति में उनकी सहायता करने की अपेक्षा करते हैं। अतएव, किसी शैक्षिक प्रणाली को लचीली एवं गतिशील बनाने के लिए एक मूलभूत शर्त यह है कि प्रशासक अपने आप में इतना सामर्थ्य विकसित करे जिससे वह स्कूल-स्कूल के बीच, अध्यापक-अध्यापक के बीच अन्तर जान सके और विकास के भिन्न-भिन्न स्तर पर स्थिति व्यक्तियों अथवा संस्थानों के लिए व्यवहार का एक अनम्यही ढंग अपनाए। केवल इसी के द्वारा अध्यापकों में पहलशक्ति, सृजनशीलता और प्रयोगशीलता का विकास हो सकता है।

9.06. इस लचीलेपन तथा गतिशीलता की अभिवृद्धि के लिए कुछ सामान्य शर्तें आवश्यक हैं। उनमें से कुछ अधिक महत्वपूर्ण शर्तें नीचे दी जा रही हैं :

(1) प्रत्येक अध्यापक अपनी अध्यापन पद्धति में साहसपूर्ण परिवर्तन लाने का प्रयास संभवतः तभी करता है जबकि वातावरण सुधारमय हो और वह अपने अल्प-योगदान को एक बृहत् सामाजिक क्रान्ति का एक अंश समझता हो।

(2) प्रयोगशील अध्यापक को स्कूल निरीक्षकों की मात्र निष्क्रिय सम्मिति से कहीं कुछ अधिक मिलना चाहिए। उसे ऐसा अनुभव हो कि शिक्षा विभाग के अधिकारी प्रयोगों के प्रति स्वयं उत्सुक हैं और कुछ कीमत चुकाने के लिए एक उचित सीमा तक असफलताओं को अंगीकार करने के लिए तत्पर हैं।

(3) निरीक्षक-गण अध्ययन-कक्ष क्रियाविधि में किसी भी सुधार के मूल आधार हैं वह सत्ता के विद्यमान एवं प्रत्यक्ष प्रतीक है। प्रारम्भ में ही उनकी सलाह ली जानी चाहिए और उन्हें यह पता होना चाहिए कि उनकी आलोचनाओं और सुझावों का कुछ मूल्य है। उन्हें ऐसा अनुभव करा दिया जाए कि प्रस्तावित परिवर्तन बहुत कुछ सीमा तक उनके अपने ही सुधार हैं। स्कूल प्रणाली उसी सीमा तक लचीली एवं गतिशील हो सकती हैं जहां तक निरीक्षण-गण होने दें। निरीक्षण अधिकारियों के लिए प्रशिक्षण का इसी कारण विशेष महत्व हो जाता है।

(4) मुख्याध्यापकों तथा वरिष्ठ अध्यापकों की सहानुभूति और सहायता कार्यक्रम के पर्याप्त आरम्भ में ही प्राप्त कर लेनी चाहिए क्योंकि कहीं ऐसा न हो कि उनके रवैये से प्रयोग और खोज करने की नवयुवकीय उमंग ठंडी पड़ जाए। परन्तु यदि वे ये अनुभव न करें कि उनकी उपेक्षा की जा रही है और यह नई प्रणाली उनपर थोपी जा रही हैं तो चाहे वे इस कार्य में भाग न भी लें, किन्तु संरक्षण तो प्रदान कर ही सकते हैं। स्कूल प्रणाली में लचीलेपन की अभिवृद्धि करने वाले किसी भी आन्दोलन के लिए अध्यापकों की संस्थाओं का समर्थन प्राप्त करना भी बहुत लाभकारी होगा। अपने प्रयोगों के प्रति सहकर्मियों के सामान्य समर्थन का विश्वास व्यक्तियों को अधिक प्रयोगशील बना देगा।

(5) अध्यापक की पृथक्ता को दूर करने वाली कोई भी चेष्टा अध्यापक में आत्मविश्वास की वृद्धि करेगी और साहसपूर्ण कार्य करने के लिए प्रेरित करेगी। स्कूल-प्रणाली में लचीलापन या गतिशीलता की वृद्धि करने वाली सम्पूर्ण पद्धतियों का सामान्य उद्देश्य अध्यापक में आन्तरिक सुरक्षा भाव की पुष्टि करना है। शिक्षण कला में वास्तविक सुधार का एकमात्र यही आधार है। कुछ पेशे ऐसे हैं जहां किसी नए उपकरण के आविष्कार तथा उसके उपयोग के आदेश मात्र से ही सामूहिक प्रगति हो सकती है। जब तक कोई अध्यापक अपने कार्य के उद्देश्य को न समझे और रूढ़ियों की सीमाओं को पार करने के लिए अपने को सुरक्षित अनुभव न कर सके तब तक किसी विशेष प्रगति की सम्भावना नहीं। व्यक्तिगत रूप से कार्य करने की अपेक्षा अध्यापक इस प्रकार के कार्य एक छोटे समूह में अधिक सरलता से कर सकता है। अमेरिका में 'सामूहिक शिक्षण' द्वारा नवीन शिक्षण प्रविधियों के सफल समावेश का कारण है कि इन नवीन पद्धतियों की आयोजना एवं सम्पादन के लिए कोई एक व्यक्ति नहीं बल्कि एक समूह उत्तरदायी है। हमारा विश्वास है कि पृथक्ता की वर्तमान प्रणाली की अपेक्षा प्रस्तावित स्कूल-संकुल[1] संगठन जिसमें अध्यापक को सहकारी समूह में कार्य करने का अवसर मिलता है, लचीलापन लाने में अधिक सहायक होगा।

(6) अध्यापक में सुरक्षा भाव अथवा स्वतन्त्रता से

1. **ब्योरों के लिए देखिए अध्याय दो।**

पढ़ाता है जिनसे वह पढ़ा है न उन तरीकों से लाभ उठाने की इच्छा को कम करने में और किसी बात का इतना गहरा प्रभाव नहीं जितना कि अध्यापक की शिक्षण-विषय सम्बन्धी अज्ञानता का है। यदि उसका ज्ञान अगले कुछ पाठों तक ही सीमित है तो वह कोई जोखिम उठाने का साहस नहीं कर सकता और वह रटने के पुराने ढंग में ही अपने को सुरक्षित समझेगा। सामान्यतः अध्यापक की सामान्य शिक्षा के स्तर की वृद्धि से यह सुनिश्चित हो जाएगा कि उनमें से कुछ अवश्य ही अधिक रोचक और अर्थपूर्ण शिक्षण-पद्धतियों को अपनाएंगे। सौभाग्य से सीमा विस्तार में अध्यापक का सीमित ज्ञान बाधक नहीं अपितु अध्यापक और छात्र के ज्ञान के बीच का भारी अन्तर है। परिणामतः नई रीतियों को समाविष्ट करने का सर्वोचित स्थान पहली और दूसरी कक्षाएं हैं। स्कूल की सबसे छोटी कक्षाओं को सुधार का प्रारम्भिक स्थान बनाने में एक और बड़ा लाभ यह है कि इसी स्तर पर बार-बार फेल होने और बीच में छोड़ देने के कारण सबसे अधिक छात्र-निष्फलता होती है।

(7) संशय की स्थिति में अध्यापक उन तरीकों से पढ़ाता है जिनसे वह पढ़ा है न कि उन तरीको से जिनसे उसे पढ़ाने के लिए कहा गया है। इसलिए यदि स्कूल प्रणाली को और लचीला तथा पद्धतियों को और अधिक रोचक एवं वैविध्यपूर्ण बनाना हो तो यह आवश्यक हैं कि कम से कम कुछ अध्यापक प्रशिक्षण संस्थाओं के सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक पाठ्यक्रमों में प्रारम्भ से ही इन विशेषताओं को जमा दिया जाए। कुछ प्रशिक्षण संस्थाओं को शिक्षा के दोनों प्राथमिक तथा माध्यमिक स्तरों पर उपयोग में आने वाली पद्धतियों तथा सामग्रियों के प्रकल्पन, परीक्षण एवं अनुकूलन का केन्द्र बनाया जाए।

(8) कोई भी अध्यापक अथवा संस्था नए प्रयोगों का समावेश सरलता से कर सकती है यदि छात्रों के अभिभावक उनके उद्देश्य से पर्याप्त रूप से परिचित हों तथा जिससे उन्हें यह भय न हो कि ये नए प्रयोग उनके बच्चों की अंतिम परीक्षा के परिणाम में बाधा डालेंगे। एक समर्थ एवं मान्य मुख्याध्यापक या अध्यापक संभवतः अपने ही प्रयत्नों से अभिभावकों को अपने मतानुकूल बना ले; किन्तु ज्यादातर शिक्षा विभाग के लिए ही यह आवश्यक होगा कि वह छात्रों के अभिभावकों को यह विश्वास दिलाने में सहायक हो कि पद्धतियों में परिवर्तन वांछित है तथा उन्हें अधिकारी वर्ग का समर्थन प्राप्त है।

(9) यदि एक प्रतिभावान नवयुवक अध्यापक को यह आशा हो कि असाधारण सेवाओं (कार्यों) के फलस्वरूप उसकी पदोन्नति हो सकती है तो नए प्रयोगों की अधिक सम्भावना होगी।

(10) यदि पुस्तकों, शिक्षण सामग्री और अन्य सेवाओं की ऐसी समुचित व्यवस्था हो जिससे कुछ बच्चे अपने कार्य का कुछ भाग अकेले या सामूहिक रूप से कर सकते हों तो निश्चय ही लचीलेपन एवं गतिशीलता में वृद्धि होगी। केवल सामग्रीहीन कमरे, एक श्यामपट्ट, एक स्तरीय पाठ्य-पुस्तक और 60 छात्रों को लेकर एक अत्यधिक कल्पनाशील अध्यापक भी कहां तक दौड़ लगा सकेगा? इसलिए, कागज तथा पुस्तकों का समुचित भंडार और विशेषकर स्कूल शिक्षा के अवर स्तरों पर साज-सामान बनाने के कुछ सरल औजार और उपादान नई पद्धतियों अपनाने की आकांक्षा रखने वाले अध्यापक के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं। यदि अल्पसामग्री वाले स्कूलों के कुछ अध्यापकों को उन्हें दी हुई किसी भी स्वतन्त्रता के उपयोग के लिए वास्तविक अवसर देना है तो यह वांछनीय होगा कि जिला अधिकारी के पास कुछ ऐसी धनराशि की व्यवस्था हो जो अधिक नियमों में न जकड़ी हो। जिसके सुविचारित उपयोग से उन स्कूलों और अध्यापकों के लिए जो नवीन पद्धतियों और अध्यापन शिक्षण स्तरों को अपनाने की विशेष इच्छा और क्षमता रखते हों, न्यूनतम सेवाएं और सुविधाएं जुटाई जा सकें। यह धनराशि इतनी अधिक नहीं हो कि प्रयोग महंगा, अवास्तविक तथा व्यापक उपयोग के अयोग्य बन जाए। बहुत सी 'प्रायोगिक परियोजनाएं' इतने विस्तृत पैमाने पर कल्पित की गई कि अध्यापकों में उनके कारण क्षोभ उत्पन्न हुआ और उनका कुल मिलाकर शिक्षा प्रणाली के लिए कोई मूल्य न रहा।

9.07. यदि उपर्युक्त उपाय प्रयोग में लाए जाएं तो स्कूलों और अध्यापकों को अपने ही बलबूते पर उद्यम करने एवं नवीन विचारों तथा प्रयोगों के करने के अवसर प्राप्त होंगे। परन्तु ये थोड़े से स्कूल और अध्यापक ही समूची शिक्षण प्रणाली में गतिशीलता लाएंगे तथा स्तर को ऊंचा उठाने नए क्षेत्रों में, प्रयत्न करने और प्रणाली को परिवर्तनशील समाज की मांग के निरन्तर अनुकूल बनाने में सहायक होंगे :

9.08. **नवीन पद्धतियों का प्रसारण**—जब तक कि साहसी अध्यापकों अथवा स्कूलों द्वारा विकसित उपयोगी क्रियाएं समूची प्रणाली में व्यापक रूप में प्रसारित नहीं की जाती तब तक स्कूल प्रणाली में लचीलेपन का स्पष्टतः कोई महत्व नहीं है। दुर्भाग्यवश शिक्षा के क्षेत्र में

यह एक स्वयं गतिशील प्रक्रिया नहीं हैं। वहां तो सफल प्रयोग प्रायः उन स्त्रियों और पुरुषों के साथ ही समाप्त हो जाते हैं जिन्होंने उनका श्रीगणेश किया तथा अधिक जीवनक्षम प्रयोगों के प्रसार की स्वाभाविक गति भी वर्षों की अपेक्षा दशकों में मापी जाती है। शिक्षा के क्षेत्र में सफलता के ठोस प्रमाण देना कठिन है। तथापि पर्याप्त रूप से उपयोगी सिद्ध हो चुकी सबल नवीन शिक्षण पद्धतियों को भी सामान्य तथा निम्न सामान्य कोटि के अध्यापक वर्ग के मनों में बैठाने एवं स्वीकृत करवाने के लिए काफी प्रशासनिक कौशल एव अथक प्रयत्नों की आवश्यकता पड़ती है। कठिनाइयां दस गुनी बढ़ जाती हैं जब अध्यापकों से आशा की जाती हैं वे पुराने लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए न केवल नवीन प्रविधियों को स्वीकार करें अपितु उन पद्धतियों को भी जिनमें शिक्षा के यथार्थ उद्देश्य की नवीन कल्पना साकार हो। यही कारण है कि मूलतः रटने की क्रिया पर आधारित स्कूल प्रणाली को बोधयुक्त क्रियाशील चिन्तन एवं समस्या-निवारण प्रधान स्कूल-प्रणाली में परिवर्तित करना एक लम्बा और भारी कार्य बन जाता है। प्रत्येक कदम कोई सुनिश्चित कदम नहीं, अपितु अंधकार में एक छलांग है और एक सामान्य अध्यापक को यदि यह कार्य सम्पन्न करना ही है तो आश्यक है उसे इस सम्बन्ध में दक्ष एवं विस्तृत सहायता तथा सहानुभूतिपूर्ण प्रेरणा (सुनने में शायद वचन-विरोध लगे) प्राप्त होनी चाहिए। यथार्थतः यही समस्या है जिसका हमने सामना करना है और दस-बीस वर्षों तक इसका हल निकाल लेना है।

9.09. यह किस प्रकार किया जा सकता है ? अध्ययनकक्ष क्रियाओं के प्रसारण से सम्बन्धित सुव्यवस्थित अनुसंधान की दिशा में शैक्षिक रूप से प्रगतिशील देशों में भी बहुत कम तथा विकासोन्मुख देशों में एकदम नहीं के बराबर प्रयास किए गए है। पाल मौर्ट तथा उनके सहयोगियों के पूर्ववर्ती अनुसंधानों से पता चलता है कि संयुक्त राज्य में किसी नवीन क्रिया के पूर्ण प्रसारण में 25 वर्ष से लेकर 40 वर्ष तक का समय लगा है। किन्तु 'भौतिक विज्ञान अध्ययन समिति' का भौतिक विज्ञान पाठ्यक्रम जैसा नया प्रयोग जो 1957 में प्रारम्भ हुआ था और संयुक्तराज्य में भौतिक विज्ञान के विद्यार्थियों में से जिसे अब लगभग 50 प्रतिशत छात्र पढ़ते हैं, शीघ्र प्रसार से यह सिद्ध कर चुका है कि कुछ अवस्थाओं में यह अवधि बहुत कम की जा सकती है। यह तथा इसी प्रकार के अन्य अनुभव इस बात की ओर संकेत करते है कि शैक्षिक प्रशासन नवीन शिक्षण तरीकों को अनेक प्रकार से प्रोत्साहित कर सकता हैं और प्रसार की गति बढ़ा सकता है। उनमें से कुछ अधिक महत्वपूर्ण निम्नलिखित हैं :

(1) स्कूल प्रणाली में लचीलापन उत्पन्न करने वाले समस्त उत्पादन न केवल एक प्रतिभाशाली अध्यापक को नव-प्रयोगों के लिए अभिप्रेरित करेंगे अपितु सामान्य अध्यापक समूह को भी उसका अनुकरण करने के लिए अधिक सुविधा प्रदान करेंगे। अधिकारियों की अनुमति मात्र से कार्य सिद्धि नहीं होगी। उन्हें और अधिक सक्रिय भूमिका निभानी होगी जिसमें दबाव की अपेक्षा अनुनय की प्रधानता हो। साथ ही साथ अध्यापकों को असंदिग्ध रूप से यह भी स्पष्ट करा दिया जाए कि शिक्षा विभाग तथा इसके अधिकारीगण कतिपय परिवर्तनों के पक्ष में हैं। इसके लिए संवेदनशीलता एवं संयम से काम लेना होगा अन्यथा कहीं ऐसा न हो कि अध्यापक नवीन पद्धतियों को शिक्षा-विभाग की आधुनिकतम सनक समझ लें और उसे बिना सोचे-समझे अमल में लाने का प्रयत्न करने लगे जो नियमित कार्य के लिए भी हानिकारक हो।

(2) अधिकांश अध्यापक नवीन पद्धतियों को अपनाने के लिए सहर्ष तत्पर हो जाएंगे यदि निर्धारित तात्कालिक लक्ष्य सीमित रखे जाएं। इससे अभिप्राय हैं कि प्रतिभावान अध्यापक या विषय-विशेषज्ञ द्वारा प्रकल्पित पद्धतियों को क्रमशः समाविष्ट किया जा सके तथा अध्यापकों के प्रत्येक वर्ग के अपेक्षित विकास-बिन्दु को उनकी योग्यता के अनुरूप घटाया-बढ़ाया जा सके।

(3) अग्रगामी स्कूलों में नवीन पद्धतियों को क्रियान्वित रूप की जानकारी के लिए अन्तःसेवा-प्रशिक्षण के पुनश्चर्या पाठ्यक्रम, वर्कशाप, निदर्शन कार्य-प्रदर्शनी एवं दीर्घावधि दर्शन यात्रा (दिनों की, घंटों की नहीं) जैसे जानेमाने साधनों को एक बड़े पैमाने पर अपनाना चाहिए। फिल्म टेप अथवा रेडियो के समझ और कौशलपूर्ण उपयोग से समस्त पाठ दूर के अकेले स्कूलों तक भी पहुंचाए जा सकते हैं। किन्तु इनका उद्देश्य छात्रों पर प्रभाव डालना न होकर अध्यापकों के सम्मुख अच्छी अध्यापन-क्रिया का आदर्श प्रस्तुत करना होना चाहिए।

(4) जिला शिक्षा अधिकारी के सामान्य निर्देशन में काम करने वाले तथा कुछ विषयों एवं कक्षा-स्तरीय प्रविधियों के विशेषज्ञ अतिथि अध्यापकों की नवीन पद्धतियों के प्रारम्भिक प्रयोगावस्थाओं की अपेक्षा उनके प्रसारण के समय कहीं अधिक आवश्यकता है।

(5) पाठ्यपुस्तक, अध्यापक मार्ग निर्देशिका तथा शिक्षण-सहायक-सामग्री जैसे शिक्षण उपकरणों में नवीन सिद्धान्तों का अवस्थापन इस सिद्धान्तों को स्वीकार करने का संभवतः शीघ्रतम तथा अधिकतम प्रभावकारी उपाय

है। निस्संदेह, थोड़े बहुत सिद्धान्त-शिक्षण की फिर भी आवश्यता रहेगी किन्तु इसका अस्तित्व प्रस्तावित क्रियाओं में होगा न कि इनसे ऊपर किसी काल्पनिक जगत में। सैद्धान्तिक शिक्षण की सीमा तथा क्रियाओं के निर्धारण के ब्यौरे की मात्रा अध्यापकों की सामान्य शिक्षा के स्तर के अनुरूप घटती-बढ़ती रहेगी। विकास के प्रारम्भिक स्तर पर तथा पिछड़े हुए स्कूलों के लिए यह आवश्यक होगा कि अध्यापक मार्ग-निर्देशिकाओं में निम्नलिखित बातों के विषय में पर्याप्त प्रकाश डाला जाए : (1) पाठ-माला की व्यवस्था; (2) उपयोग में लाई जाने वाली पद्धति; (3) तैयार की जाने वाली शिक्षण सहायक सामग्री; (4) प्रोत्साहन योग्य क्रियाकलाप; एवं (5) प्रयोग में लाने वाली मूल्यांकन प्रविधि।

9.10. पिछले पैराग्राफ़ में निर्दिष्ट प्रविधियों को हम ट्राम की पटरी के समान मान सकते हैं। इस पर चलकर सामान्य अध्यापक दृढ़ विश्वास के साथ अपना अध्यापन कार्य कर सकता है। यह पद्धति उस परम्परागत पद्धति से भिन्न है जिसमें पहले अध्यापक को सामान्य सिद्धान्तों पर भाषण दिए जाते हैं और फिर उससे आशा की जाती है कि वह केवल एक मामूली पाठ्यपुस्तक की सहायता से इन सिद्धान्तों को लागू करे और यह पाठ्यपुस्तक भी बहुधा उन सिद्धान्तों से मेल नहीं खाती। निःसन्देह प्रशासक का यह कर्त्तव्य है कि वह आम अध्यापक समुदाय के लिए कार्य संबंधी 'ट्राम लाइन' की व्यवस्था करते समय इस बात का पूरा ध्यान रखे कि कुछ साहसी अध्यापकों को निर्बाध यात्रा करने के लिए फिर भी पर्याप्त स्वतन्त्रता प्राप्त हो। इतनी सतर्कता के साथ इसमें कोई सन्देह नहीं रह जाता कि प्रगति की ये ट्राम पटरियां ही वे प्रविधियां हैं जो नवीन पद्धतियों के प्रसार में विशेष रूप से प्रभावशाली होंगी।

9.11. स्पष्ट है कि इन ट्राम पटरियों का सदा के लिए एक ही बार निर्धारण नहीं किया जा सकता। इसके निरन्तर नया करने की आवश्यकता होती है। असीम प्रयत्नों के साथ कुछ ट्राम-पटरियों का निर्धारण करने के उपरान्त ऐसा करने में कुछ वर्ष लगते हैं। प्रशासन को सामान्यतः ऐसा लगता है कि उसके द्वारा निर्धारित प्रगतिशीलता एक नवीन 'रूढ़ि' बन गई है और उसे एक बार फिर से उसका निर्धारण करना होगा और पूर्ववर्ती ट्राम लाइनों से सम्बन्ध तोड़ने के लिए फिर उसी पुराने प्रतिरोध का सामना करना पड़े, परन्तु यह एक ऐसी अपरिहार्य तथा चिरस्थायी समस्या है जिसका प्रत्येक शिक्षा-सुधारक को सामना करना पड़ता है। प्रविभाशाली अध्यापक को इन ट्राम-पटरियों से हटकर चलने की जो सुविधाएं प्रदान की गई हैं वे बाकी अध्यापकों को भी यथासमय उन पटरियों को छोड़ने में सहायता करेंगी। अधिक साहसी अध्यापक इसके बावजूद अभिनव एवं नवीन क्षेत्रों में से आगे बढ़ने का प्रयास करेंगे।

9.12. हमारी मान्यताओं का निष्कर्ष है कि केवल एक गतिशील एवं लचीली शिक्षा-प्रणाली ही अध्याकों में पहलशक्ति, प्रयोगशीलता, और सृजनशीलता को प्रोत्साहित करने की केवल आवश्यक शर्तों की पूर्ति कर सकती है और इस प्रकार शैक्षिक प्रगति की नींव डाल सकती है। हमारा दृढ़ विश्वास है कि अध्यापकों को स्वतंत्रा देने तथा उनमें विश्वास रखने के कारण इस मार्ग में जो जोखिम आएंगे वे उन पर अनुचित प्रतिबन्ध तथा अविश्नास के खतरों से अधिक नहीं हैं। अतः उन खतरों को मोल लेना श्रेयकार है। हमें चाहिए कि हम अध्यापकों को सत्ता सौंपें, उनका विश्वास करें, उनमें नेतृत्व की क्षमता को प्रोत्साहित करें और यह समझें कि प्रत्येक संस्था का अपना एक व्यक्तित्व है जिसे वह स्वतंत्रता के वातावरण में विकसित कर सके। इसके लिए हमें समस्त स्तरों पर एक ऐसे गतिशील नेतृत्व की आवश्यकता होगी जो शिक्षा को एक नया मोड़ देने के लिए और इस महान सहकारी प्रयास में प्रत्येक अध्यापक, शैक्षिक अधिकारी एवं प्रशासक को अपने श्रेष्ठतम योगदान के लिए प्रेरित करने को कृतनिश्चय हो।

पाठ्यपुस्तकें, अध्यापक मार्ग-निर्देशिकाएं एवं शिक्षण सामग्री

9.13. शिक्षा प्राप्ति उपकरण तथा परिष्कृत शिक्षण पद्धतियों के प्रसारण के प्रभावकारी उपकरण के रूप में पाठ्यपुस्तक के महत्व पर पूर्ववर्ती खण्ड में प्रकाश डाला जा चुका है। एक ऐसी पाठ्यपुस्तक जो एक सुशिक्षित एवं सुयोग्य विषय-विशेषज्ञ द्वारा लिखी गई हो और जिसके निर्माण में मुद्रण स्तर, चित्र एवं सामान्य सज्जा के प्रति समुचित सावधानी बरती गई हो, छात्रों की रुचि को जगाएगी और अध्यापक के कार्य में पर्याप्त सहायक सिद्ध होगी। इस प्रकार उच्चकोटि की पाठ्यपुस्तकों और अन्य अध्यापन सामग्रियों की व्यवस्था स्तर-उन्नयन का एक प्रभावशाली कार्यक्रम हो सकती है। इस पर बल देने की और अधिक आवश्यकता इसलिए है कि इस कार्य के लिए अपेक्षया बहुत कम साधन-विनियोजन की आवश्यकता पड़ती है। इसके अतिरिक्त, यह आवश्यक नहीं कि एक अच्छी पुस्तक की लागत बिना उचित ध्यान लिए तैयार की गई पुस्तक की लागत से अधिक हो।

9.14. **पाठ्यस्तकों की गुणता**—दुर्भाग्यवश पाठ्यपुस्तक लेखन और उत्पादन की ओर उनकी महत्ता के अनुरूप उचित ध्यात नहीं दिया गया है। अधिकांश स्कूल विषयों में विशेषकर भाषाओं में ऐसी पुस्तकों की प्रचुरता है जिनका स्वरूप एवं स्तर निम्नकोटि का है तथा जिनका उत्पादन बड़ी उपेक्षा से किया गया हैं। इस के कई कारण हैं जिनमें विम्नलिखित उल्लेखनीय हैं :

— पाठ्यपुस्तक लेखन के प्रति प्रथम श्रेणी के विद्वानों की अरुचि। फलस्वरूप इस कार्य को यथार्थतः वे व्यक्ति कर रहे हैं जो इसे करने के नितान्त अयोग्य हैं;

— पुस्तकों के चयन एवं निर्धारण में भ्रष्टाचार जों नियंत्रण के मार्ग में बाधक हैं;

— अनेकों प्रकाशकों की अनैतिक कार्यरीति,

— पाठ्यपुस्तकों की तैयारी और व्यवस्था के विषय में अनुसंधान का अभाव; तथा

— केवल अपने लाभ में रुचि रखने वाले गैर-सरकारी प्रकाशकों द्वारा पाठ्यपुस्तकों के लिए अध्यापक-मार्ग-निर्देशिका जैसी सहायक पुस्तकों के प्रकाशन के प्रति नितान्त उपेक्षा।

9.15. **पाठ्यपुस्तकों का राजकीय उत्पादन**—जैसे ही शिक्षा का प्रसार होना आरम्भ हुआ पाठ्यपुस्तक व्यवसाय एक बहुत अधिक लाभदायक क्षेत्र बन गया और उपर्युक्त प्रकार की कुरीतियां अधिकाधिक प्रकाश में आने लगीं। राज्य सरकार का ध्यान शीघ्र उनकी ओर आकर्षित किया गया और यह विश्चय किया गया कि इन कुरीतियों को दूर करने के लिए पाठ्य-पुस्तकों के उत्पादन का कार्य राज्य सरकार को करना चाहिए। इस समय अधिकतर राज्य-सरकारों ने इस नीति को अपनाया है और पाठ्यपुस्तकों के उत्पादन का कार्य अपने हाथ में ले लिया है। राज्यों ने इस उत्तरदायित्व को विभिन्न रूपों में लिया है—कुछ राज्यों ने केवल प्राथमिक स्तर के लिए थोड़ी सी पुस्तकों का उत्पादन किया है जबकि दूसरों ने साध्यमिक स्तर की समाप्ति तक समस्त पुस्तकों का उत्पादन कर दिया है। एक या दो राज्यों में तो उत्पादन ही नहीं, बल्कि पाठ्य-पुस्तकों के वितरण और विक्रय का कार्यभार भी राज्य सरकार द्वारा ले लिया गया है।

9.16. इस नीति से कुछ स्पष्ट लाभ हुए हैं। निजी मुनाफाखोरी खत्म हो गई है। दाम कम रखे गए है। वह अनाचार-वृत्ति और दुरभिसन्धि तथाकथित 'पाठ्यपुस्तक धंधेबाजी' का एक अति सामान्य अंग हुआ करती थी जब लुप्त हो गई हैं। अनेक स्थितियों में पुस्तकों की गुणता में सुधार हुआ है, फिर भी पुस्तकों का सामान्य स्तर अभी भी शोचनीय है और प्रायः यह कुछ सुसंस्थापित एवं निपुण प्रकाशकों के स्तर तक नहीं पहुंच पाता। इस असफलता का मुख्य कारण शिक्षा-विभाग है जिसने पाठ्यपुस्तक के उत्पादन का उत्तरदायित्व तो ले लिया है परन्तु जो अपने आपको इसके लिए उचित रूप से व्यवस्थित नहीं कर पाया है। बहुत समय तक पुस्तकों में संशोधन न होना मुद्रण-अशुद्धि, घटिया उत्पादन, समय पर पुस्तक न दे पाना आदि जैसे दोष जो राज्य द्वारा निर्मित पाठ्यपुस्तकों में प्रायः देखने को मिलते हैं, मुख्यतः इसी कमजोरी के कारण है। हम इन अपूर्णताओं को कम साबित करना नहीं चाहते, हमारा उद्देश्य तो केवल दो बातों पर प्रकाश डालना है : पहली बात यह कि इन अपूर्णताओं से यह निष्कर्ष नहीं निकलता कि राज्य द्वारा पाठ्यपुस्तकों का उत्पादन एक अनुचित कदम है, जैसा कि कुछ स्वार्थपरक लोग बार-बार सिद्ध करना चाहते हैं; और दूसरी बात यह है कि शिक्षा-विभागों द्वारा किए गए इस महान् शैक्षिक उत्तरदायित्व के लिए उन्हें अपने आपको समुचित रूप से व्यवस्थित करने में बिल्कुल देर नहीं करनी चाहिए।

9.17. ध्यान देने की बात है कि पाठ्यपुस्तकों के गुण-सुधार की दिशा में पाठ्यपुस्तकों का राजकीय उत्पादन केवल एक क़दम है। किन्तु अपने आप में इससे कुछ लाभ नहीं होगा यदि शीघ्र ही इस कार्य की उपयुक्त व्यवस्था करने के लिए समुचित प्रयत्न नहीं किया गया; बल्कि इससे प्रगति के अवरुद्ध होने का भी डर है। इसलिए हम सिफारिश करते हैं कि पाठ्यपुस्तक उत्पात कार्यक्रम के उचित विकास पर बल दिया जाए। इसी विचार से हमने अगले पैरों में कुछ ठोस सुझाव दिए हैं :

9.18. **राष्ट्रीय स्तर पर कार्यक्रम**—यह अत्यावश्यक हैं कि स्कूल तथा विश्वविद्यालय दोनों ही स्तरों की पाठ्यपुस्तकों तथा अन्य साहित्य के निर्माण के लिए उपलब्ध श्रेष्ठतम प्रतिभाएं जुटाई जाएं। राष्ट्रीय स्तर पर यह कार्य केवल भारत सरकार द्वारा नियुक्त अभिकरणों द्वारा ही संभव है।

(1) अमेरिका, सोवियत संघ एवं ब्रिटेन के उपयुक्त अधिकारियों के सहयोग से विश्वविद्यालय स्तर के लिए शिक्षा मंत्रालय द्वारा अल्प मूल्य वाली तथा राज्य साहाय्य प्राप्त एक पुस्तकमाला प्रकाशित की जा रहा है। यह एक उपयोगी योजना है और इसका महत्व अब

तो और भी अधिक बढ़ गया है। इसके तथा भारतीय लेखकों द्वारा लिखित पुस्तकों की योजनाओं के विस्तार एवं विकास के लिए हमें प्रबल प्रयास करना चाहिए। हम पिछली योजनाओं पर अधिक बल देते हैं। हमारी सिफ़ारिश है कि राष्ट्रीय नीति के रूप में स्नातक-पूर्व स्तर पर वृत्तिक विषयों की पुस्तकों समेत लगभग सारी पुस्तकें भारतीय लेखकों द्वारा लिखी जानी चाहिए। निःसन्देह इन पुस्तकों की तैयारी में विदेशी साधनों का अधिकतम उपयोग करना चाहिए। पांच से दस वर्षों के बीच इस लक्ष्य की पूर्ति हो जानी चाहिए।

(2) देश में उपलब्ध विद्वानों की सहायता से राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् द्वारा पाठ्यपुस्तकों के उत्पादन के प्रयत्नों का हम स्वागत करते हैं। ऐसी कुछ पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं और कुछ शीघ्र ही प्रकाशित होने वाली हैं। यह पुस्तकें राज्य सरकारों के लिए बनाई गई हैं जो इनमें परिवर्तन भी कर सकती हैं। हमें आशा है कि राज्य सरकारें अपनी पुस्तकों में गुण-सुधार के लिए इस पुरोगामी उद्यम से पूरा लाभ उठाएंगी।

(3) भारत सरकार द्वारा पाठ्यपुस्तक उत्पादन के लिए सरकारी क्षेत्र में व्यापारिक ढंग पर कार्य करने वाले स्वायत्त संगठन की स्थापना करने से राष्ट्रीय-स्तर पर पाठ्यपुस्तक एवं उससे सम्बद्ध सहायक सामग्री के उत्पादन का कार्य अधिक सुगम हो जाएगा। हमने राज्यों में भी इसी प्रकार की संस्थाओं की स्थापना की सिफ़ारिश की है। परन्तु बहुत सी पुस्तकें ऐसी हैं, विशेषकर वैज्ञानिक एवं तकनीकी क्षेत्रों में, जिनका उत्पादन केवल राष्ट्रीय स्तर पर ही हो सकता है। मूल्य में कमी करने के लिए या गुण-सुधार के लिए अथवा राष्ट्रीय एकीकरण के प्रयोजनार्थ राष्ट्रीय स्तर पर कुछ अन्य प्रकार की पुस्तकों का उत्पादन भी वांछनीय होगा। अतः हम यह महसूस करते हैं कि राष्ट्रीय स्तर पर एक ऐसे संगठन की अविलम्ब आवश्यता है। हमारी सिफ़ारिश है कि शिक्षा मंत्रालय इस योजना के ब्योरे के निर्धारण के लिए एक छोटी समिति की स्थापना करे तथा इसको मूर्तरूप देने के लिए हर आवश्यक कदम उठाए।

9.19. राष्ट्रीय स्तर पर उत्पन्न पाठ्यपुस्तकों से अन्य लाभ भी होंगे। हमारी एक सबसे बड़ी सिफ़ारिश[1] यह है कि हमें प्राथमिक, अवर माध्यमिक और उच्चतर माध्यमिक स्तर की समाप्ति पर राष्ट्रीय स्तर को प्रस्तुत करने के प्रयत्न करने चाहिए। इन स्तरों की परिभाषा और क्रियात्मक अभिपूर्ति के लिए कार्यक्रम की व्यवस्था भी राष्ट्रीय स्तर पर पाठ्यपुस्तकों के उत्पादन द्वारा अधिक सुलभ व सरल हो जाएगी। ऐसी पुस्तकें पाठ्यचर्या और पाठ्य-विवरण की अपेक्षा अधिक निश्चित रूप से प्राप्ति का प्रत्याशित स्तर प्रदर्शित करती हैं, और स्कूलों में उनका क्रियात्मक प्रयोग, स्तर को ऊंचा करने में तथा देश के विभिन्न भाग देश के स्कूलों में शिक्षण को अधिक समान बनाने का श्रेष्ठतम तरीका है। उदाहरण के लिए विज्ञान और गणित जैसे विषयों में स्थानीय विभिन्नताओं की अधिक गुंजाइश नहीं है और ऐसे विषयों में देश के समस्त भागों में सामान्य पाठ्यपुस्तकों को अपनाना न केवल सुविधापूर्ण है बल्कि अनेक दृष्टिकोणों से वांछनीय भी हैं। राष्ट्रीय एकीकरण को दृष्टिगत रखकर तैयार की गई और देश के सभी स्कूलों में प्रयुक्त नागरिक शास्त्र की सामान्य पुस्तक के विषय में भी यही बात युक्तिसंगत है। इतिहास, शिक्षण, विशेषकर सामाजिक एवं राष्ट्रीय एकीकरण की दृष्टि से, एक कठिन कार्य है। अतएव इस विषय की प्रामाणिक रूप से सुरचित पुस्तकें अध्यापक के लिए अधिक लाभकारी हो सकती हैं। आजकल, शायद ही ऐसी कोई सामान्य पुस्तक होगी जिसे भारतवर्ष में सभी विद्यार्थी पढ़ते हों। राष्ट्रीय एकीकरण में हमारी शैक्षिक प्रणाली के साधारण योगदान का यह भी एक कारण है। दूसरी ओर हमारे पास विभिन्न विषयों पर श्रेष्ठतम विद्वानों द्वारा लिखित यदि ऐसी सौ पुस्तकें भी हों, जिन्हें अनूदित किया जा सके, जो प्रत्येक स्कूल में उपलब्ध हों और प्रत्येक विद्यार्थी अपने पाठ्यक्रम के दौरान स्वाभाविक रूप से जिन्हें पढ़े तो आगामी पीढ़ी की सम्पूर्ण विचारधारा एकदम भिन्न होगी और राष्ट्रीय एकीकरण अपरिमित रूप से सशक्त होगा।

9.20. **राज्य स्तर पर कार्यक्रम**—राष्ट्रीय स्तर पर सुधार करने के प्रयत्न अभिनंदनीय तो हैं किन्तु इस महत्वपूर्ण सुधार के प्रयत्नों को केवल वहीं तक सीमित नहीं रख सकते। उनका सबसे प्रभावशाली कार्य अन्य केन्द्रों को सक्रियता की प्रेरणा प्रदान करना तथा विशेषकर राज्य स्तर पर इसी प्रकार के प्रयत्नों को बढ़ावा देना होगा। हमारी सिफ़ारिश है कि प्रत्येक राज्य में स्कूली पाठ्यपुस्तकों के उत्पादन हेतु विशेषज्ञों की समुचित संख्या वाला एक विशेषज्ञ अनुभाग बनाया जाए। उन्हें राष्ट्रीय स्तर पर किए गए कार्य का यथासंभव उपयोग करना चाहिए। किन्तु इस तथ्य से कोई छुटकर नहीं कि उन विषयों में जिनमें राष्ट्रीय पुस्तकें उपलब्ध नहीं है, प्रत्येक राज्य की कई पाठ्यपुस्तकों का निर्माण स्वयं करना पड़ेगा। इन विषयों में भी जहाँ राष्ट्रीय पुस्तकें उपलब्ध है राज्यों द्वारा स्वतन्त्र प्रयास एक दूसरे को तथा केन्द्र

1. अध्याय दस

को अनुप्राणित करेंगे। उत्तम परिणाम की आशा तभी की जा सकती है जब पाठ्यपुस्तकों के उत्पादन के लिए राष्ट्रीय एवं सभी राज्य केन्द्र सक्रिय रूप में और निकट सहयोग के साथ कार्य करें।

9.21. पाठ्यपुस्तक उत्पादन कार्यक्रमों की व्यवस्था हेतु राज्य शिक्षा-विभागों को निम्नलिखित बातें ध्यान में रखनी चाहिए।

(1) पाठ्यपुस्तकों एवं शिक्षण सामग्री के उत्पादन हेतु राज्य शिक्षा विभाग के निकट सम्पर्क से काम करने वाली एक पृथक् एजेंसी की स्थापना की जानी चाहिए। अच्छा होगा यदि यह अभिकरण (एजेंसी) स्वायत्त एवं व्यापारिक आधार पर कार्य करे। ऐसी संस्था के लिए जिस प्रकार की स्वतन्त्रता आवश्यक है, वह प्रचलित विभागीय कार्य रीति के घेरे में यदि असम्भव नहीं तो दुष्प्राप्य आवश्य है।

(2) पाठ्यपुस्तकों का उत्पाद्रन एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। उदाहरणतः पाठ्यपुस्तक के उत्पादन में एक वर्ष या उससे भी अधिक समय लग जाता है और उसके परीक्षण और संशोधन में एक और वर्ष व्यापक रूप में इसके उपयोग के एक वर्ष के भीतर ही मूल्यांकन की प्रक्रिया आरम्भ हो जानी चाहिए। इसलिए इस कार्य के लिए स्थापित्र संगठन में इन सब उपायों को क्रियान्वित करने की क्षमता होनी चाहिए। प्रत्येक पाठ्यपुस्तक में निरन्तर संशोधन करना, उसका आधुनिकतम स्वरूप बनाए रखना तथा यदि अधिक नहीं तो कम से कम पांच वर्षों में उसका पूर्णतया संशोधम करना कार्यनीति का एक निश्चित उद्देश्य होना चाहिए। पाठ्यपुस्तकों में बार-बार संशोधन की आवश्यकता स्पष्ट है, भले ही पाठ्यचर्या में कोई भी परिवर्तन न हो। यरन्तु जैसा कि पहले अध्याय में कहा है हम पाठ्यचर्या में सतत गहनता की आशा रखते हैं। वस्तुतः, पाठ्यचर्या संशोधन के कारण नहीं बल्कि उसमें परिवर्तन तथा गहनता लाने के लिए अनेक बार पाठ्यपुस्तकों में संशोधन की जरूरत पड़ सकती है।

(3) एक विषय में एक कक्षा के लिए एक ही पाठ्यपुस्तक से कोई लाभ यहीं होगा यद्यपि राष्ट्रीयकरण के वर्तमान कार्यक्रम में लगभग ऐसी ही स्थिति बनी है। कार्यनीति का यह भी एक महत्वपूर्ण उद्देश्य होना चाहिए कि प्रत्येक विषय में प्रत्येक कक्षा के लिए कम से कम 3-4 पुस्तकें हों और एक स्कूल के लिए उनमें से सबसे अधिक उपयुक्त पुस्तक का चुनाव अध्यापक पर छोड़ देना चाहिए। सब स्कूलों के लिए सामान्य पाठ्य-विवरण होने पर भी यह आवश्यक है। तथापि हम सिफ़ारिश कर चुके है कि एक से अधिक पाठ्य-विवरण होने चाहिए तथा प्रत्येक स्कूल को अपनी परिस्थितियों के सबसे अधिक अनुकूल पाठ्य-विवरण को अपनाने की स्वतन्त्रता होगी चाहिए।

(4) पुस्तकें लिखने के लिए सरकार इतना कम पारिश्रमिक देती है कि प्रायः योग्यतम विद्वान इस कार्य के लिए आकर्षित नहीं होते। यही एक बात है जिसके कारण गैर-सरकारी उद्यम उत्पाद्रित पुस्तकें प्रायः राज्य उत्पादित पाठ्य-पुस्तकों से अच्छी होती है। अतः पारिश्रमिक देने में प्रकाशकों से अधिक उदारता की नीति यरती जाए ताकि श्रेष्ठ लेखक आकवित हों।

(5) पाठ्यपुस्तकों के राजकीय उत्पादन का उद्देश्य मुनाफाखोरी नहीं होना चाहिए।[1] राजकीय उत्पादन का एकमात्र उद्देश्य श्रेष्ठ पुस्तकों की रचना तथा न्यूनतम लागत पर उन्हें बालकों को उपलब्ध कराना है। इसलिए इस सम्पूर्ण संघटन की व्यवस्था न-लाभ-न-हानि के आधार पर करनी चाहिए। राज्य उत्पादित पुस्तकों की बिक्री इतनी अधिक और निश्चित होती है कि प्रत्यक्ष रूप में कोई लाभ न लेने पर और मूल्य निर्धारण करते समय पांच पैसे से कम राशि को पांच पैसे ही मान लेने पर पर्याप्त बचत हो जाती है। यह बचत अनुसंधान कार्य एवं ऊपरी व्यवस्था के तथा अध्यापक, निर्देशिकाओं जैसी सहायक सामग्री के निर्माण के खर्चों को पूरा करने के लिए पर्याप्त है।

(6) पुस्तक लेखय के कार्य के लिए प्रत्येक सम्भव क्षेत्रों को प्रोत्साहित करना चाहिए। शिक्षा विभागों को कई अवस्थाओं में पाठ्यपुस्तक लेखन के लिए विशिष्ट व्यक्तियों को नियुक्त करना पड़ेगा। इसके अतिरिक्त उन्हें पांडुलिपित्रां तथा सुझाव आदि भी संमवाना चाहिए तथा नई प्रतिभा की खोज में सतत संलग्न रहना चाहिए। इस व्यवसाय के व्यक्तियों की एक उच्चस्तरीय समिति प्राप्त पुस्तकों अथवा सुझावों पर विचार करने के लिए बनाई जानी चाहिए। इन स्वीकृत पुस्तकों को विभागों द्वारा मान्यता मिलनी चाहिए तथा लेखकों के साथ उपयुक्त प्रबन्ध करने के बाद उन्हें प्रकाशित करना चाहिए।

(7) अध्यापकों को पाठ्यपुस्तकें लिखने के लिए विशेषरूप से प्रोत्साहित करना चाहिए। रूस में उत्कृष्ट पाठ्यपुस्तकें लिखने पर ऊंचे से ऊंचा पद भी प्राप्त होता

1. **एक राज्य में पुस्तकों के मूल्य निर्धारण में शत प्रतिशत लाभ लिया गया।**

है। हमारे विश्वविद्यालयों को भी इसी उदाहरण का अनुकरण करना चाहिए। हमारा सुझाव है कि विद्वत्सभाओं को भी उत्कृष्ट पाठ्यपुस्तकों को समुचित मान्यता देनी चाहिए।

(8) अच्छी पाठ्यपुस्तकें होना ही काफी नहीं है। अध्यापक निर्देशिकाओं तथा आय अनुदेशीय सामग्री द्वारा इनकी संपूर्ति भी होनी चाहिए। जैसा कि हम ऊपर कह आए हैं, अध्यापक निर्देशिका द्वारा अध्यापक को विस्तृत सहायता मिलनी चाहिए। अमेरिका में गणित, विज्ञान एवं सामाजिक अध्ययन में विकसित किए जाने वाले नए पाठ्यक्रमों में स्नातक अध्यापकों के लिए भी काफी विस्तृत सुझाव दिए गए हैं। मामूली शिक्षित तथा अरक्षित अध्यापक शीघ्र ही एक नीरस ढर्रे में पड़ जाता है अतएव उसके अध्यापन को अधिक रोचक तथा प्रभावपूर्ण बनाने के लिए उसे विभिन्न पद्धतियों पर काफी विस्तृत सुझावों की आवश्यकता हैं। आलेख एवं मार्गदर्शन के ऐसे विस्तृत ढांचे की सहत्यता से ही काफी अध्यापक, विशेषकर प्राथमिक स्कूल अध्यापक, घिसे-पिटे तरीकों का त्याग कर पाएंगें।

9.22. पाठ्यपुस्तक उत्पादन कार्यक्रम के वास्तव में तीन पहलू हैं :

(1) **शैक्षिक पहलू**—जिससें पाठ्यपुस्तकों की तैयारी परीक्षण एवं मूल्यांकन शामिल है;

(2) **तैयारी सम्बन्धी पहलू**—जिसमें मुद्रण एवं प्रकाशत की सभी बातें शामिल है;

(3) **वितरण सम्बन्धी पहलू**—जिसमें संग्रहण एवं बिक्री आदि शामिल हैं।

इनमें पहला सबसे अधिक महत्वपूर्ण हैं और ईमानदारी से इनका उत्तरदायित्व ऊपर बताई हुई हमारी सिफ़ारिशों के आधार पर राज्य विभागों को ग्रहण करना पड़ेगा। दूसरा पहलू विवेकाधीन है। हमें ज्ञात हुआ है कि कुछ राज्य सरकारों ने इस कार्य का प्रत्यक्ष उत्तरदायित्व ले लिया है और पृथक् पाठ्यपुस्तक के मुद्रणालयों की स्थापना कर दी है। हमें इसी दिशा में कार्य करना चाहिए। तीसरा पहलू वास्तव में संपूर्ण है और पहले दो पहलुओं से इसका घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं है। एक राज्य में जहां कि राज्य-सरकार पाठ्यपुस्तक वितरण की प्रत्यक्ष उत्तरदायी है, हमने देखा कि अनेक क्षेत्र अधिकारियों का बहुमूल्य समय बिक्री, हिसाब-किताब तथा माल की देखभाल में ही लगता था। हमारी सिफ़ारिश है कि प्रत्येक शैक्षिक संस्था (या शैक्षिक संस्थाओं के समूह) की छात्र सहकारी-संस्थाओं द्वारा इस कार्य को आगे बढ़ाना चाहिए शिक्षा विभागों को इसका उत्तरदायित्व प्रत्यक्ष ग्रहण नहीं करना चाहिए।

9.23. **अपेक्षित शिक्षण-साधनों का विधान**—शिक्षण-पद्धतियों की दृष्टि से अध्यापक की आवश्यकताओं के मूल्यांकन करने पर हम यह मानने पर विवश हैं कि हमारे अधिकांश स्कूलों में विशेषकर प्राथमिक स्तर पर आज भी एक अच्छे श्यामपट्ट, एक छोटे पुस्तकालय, आवश्यक नक्शे और चार्ट साधारण वैज्ञानिक उपकरण और आवश्यक प्रदर्शन सामग्री जैसे बुनियादी साज-सामान और शिक्षक साधनों का पूर्ण अभाव-सा ही है। शिक्षण की गुणाता में सुधार करने के लिए प्रत्येक स्कूल की इस प्रकार के बुनियादी साज-समाज एवं शिक्षण-साधनों का दिया जाना अत्यावश्यक है। इससे देश में एक वास्तविक शैक्षिक क्रान्ति होगी। हमारी सिफ़ारिश है कि प्रत्येक श्रेणी के स्कूलों के लिए न्यूनतम आवश्यक शिक्षण साधनों एवं साज-समान की सूचियां तैयार की जाएं। ये यथासंभव किफायती तथा कम खर्च वाली हों। लेकिन न्यूनतम आवश्यकताओं का एक बार निश्चय हो जाने पर हमें प्रयत्न करना होगा कि प्रत्येक स्कूल को यह साज-समाज अविलम्ब (उच्च प्राथमिकता के आधार पर) मिले। मद्रास राज्य की तरह इस कार्यक्रम के विकास के लिए स्थानीय समुदाय की सहायता जुटानी चाहिए। हम सिफ़ारिश करते हैं कि प्रत्येक स्कूल को तुरन्त एक अच्छा श्यामपट्ट दिया जाए।

9.24. प्रगतिशील देशों में आजकल उपयोग में लाई जाने वाली नवीन शिक्षण प्रविधियों को अपनाने के संबंध में हमें अनेक सुझाव मिले। इन प्रविधियों में फिल्म, रेडियो, टेप-रिकार्डर तथा अन्य दृश्य-श्रव्य साधनों का व्यापक उपयोग, खुले तथा बन्द परिपथ वाले दूरवीक्षण का समावेश, भाषा प्रयोगशालाओं की व्यवस्था, कार्यक्रमाश्रित शिक्षण पद्धति तथा साधारण और अत्यन्त परिष्कृत शिक्षण मशीनें सन्निहित है। जहां तक फिल्म, फिल्म पट्टियों तथा अन्य साधारण दृश्य-श्रव्य साधनों का सम्बन्ध है, प्रत्येक स्कूल संकुल को इनका दिया जाना सम्भव हो सकता है (और इसके द्वारा ग्राम्य-क्षेत्रों के प्रत्येक स्कूल की भी) इस सिलसिले में हम कक्षा वैज्ञानिक फिल्म अध्ययन दल की रिपोर्ट की ओर ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं जिससे हम मोटे तौर पर सहमत हैं।[1] उनकी सिफ़ारिशें दूसरे विषयों पर भी लागू हैं। इसके

1. **विवरण के लिए देखिए, पूरक खण्ड एक, भाग पांच।**

अतिरिक्त उच्च प्राथमिक एवं माध्यमिक स्कूलों को अल्पमूल्य के रेडियो सैट देने की भी व्यवस्था होनी चाहिए। हम सिफ़ारिश करते हैं कि रेडियो पाठों के उपयोग के लिए शिक्षा विभागों को आकाशवाणी के साथ मिलकर कार्य करना चाहिए। अध्यापकों के लिए और यदि सम्भव हो तो छात्रों के लिए भी मुद्रित सामग्री द्वारा इन पाठों को अनुपूरित करना चाहिए। हम यह भी सिफ़ारिश करते हैं कि अध्यापकों के लिए विशेष रूप से आकल्पित विशिष्ट रेडियो वार्ताओं का तड़के या दिन ढले प्रसारण किया जाए। इनसे उनके विषयगत ज्ञान में वृद्धि होगी और पाठ तैयारी में मार्गदर्शन मिलेगा। हमारे शैक्षिक विकास के इस स्तर पर नवीन पद्धतियों के अधिक परिष्कृत रूप सामान्यतया केवल प्रयोगिक आधार पर प्रयुक्त किए जा सकेंगे और वे भी बहुत ही थोड़े स्कूलों में। यह ध्यान रखना होगा कि समाज के तकनीकी स्तर से ऊंचे साज-सामान का उपयोग स्कूल द्वारा सम्भव नहीं। ग्राम्य-क्षेत्रों को दिए गए परिष्कृत साज-सामान की देख-भाल नहीं की जा सकती तथा शीघ्र ही वह बेकार हो जाता है। कुछ प्रगतिशील स्कूलों में भाषा प्रयोगशाला तथा योजनाबद्ध शिक्षण-सम्बन्धी सामग्री आदि जैसे साधन दिए जा सकते हैं, किन्तु ऐसी प्रविधियों का परीक्षण पहले अध्यापक की शिक्षा तथा प्रशिक्षण में किया जाना चाहिए।

9.25. हमारे स्कूलों के अधिकांश शिक्षकों को ऐसे सस्ते शिक्षण सामान पर निर्भर रहना होगा जो स्थानीय क्षेत्रों में सहज उपलब्ध है या उचित प्रोत्साहन और थोड़ी सी आर्थिक सहायता द्वारा स्वयं ही बनाया जा सकता हैं। हमारे स्कूलों में निकट भविष्य में शिक्षण-सुधार में जो कार्यक्रम सार्वाधिक सहायक होंगे वे ये है :

(1) अध्यापकों को सरल तथा कामचलाऊ शिक्षण साधनों के उपयोग तथा तैयारी का प्रशिक्षण;

(2) स्कूल द्वारा स्वयं अपेक्षित तथा पड़ोस के आम स्कूलों द्वारा अपेक्षित विज्ञान साधनों की तैयारी के लिए स्कूल वर्कशाप का तथा कार्य-अनुभव के कार्यक्रमों का उपयोग;

(3) साधारण साज-सामान का कीमतें घटाने की दृष्टि से व्यापक निर्माण तथा स्कूलों में उनका वितरण; और

(4) पड़ोस के स्कूलों का अधिक कीमती सामान मिल-जुलकर खरीदना। उदाहरणतः पास-पड़ोस के स्कूलों का एक समूह एक प्रक्षेपण यंत्र (प्रोजेक्टर) साझे में ले सकता हैं। सावधानी से तैयार की गई योजना के आधार पर एक स्कूल की अच्छी प्रोगशाला पास के अन्य स्कूलों द्वारा भी प्रयुक्त की जा सकती हैं। स्कूलों के समूह का एक गश्ती पुस्तकालय हो सकता है, आदि आदि।

कक्षा का आकार

9.26. यदि अध्यापक को नित्यचर्या के रूप में बहुत विशाल कक्षाओं को पढ़ाना पड़े तो हम सब समान्यतया इस बात पर सहमत होंगे कि शिक्षण पद्धति में विशेष सुधार की अपेक्षा करना व्यर्थ है। पिछले कुछ वर्षों में प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा के विलक्षण विस्तार से स्कूलों में काफी भीड़ हो गई है, विशेषकर उन शहरी क्षेत्रों में जहां स्कूल की इमारत को बढ़ाने अथवा कक्षाओं के नए सैक्शन खोलने के लिए जगह असानी से नहीं मिलती। कभी-कभी कक्षा का आकार असामान्य अनुपात में बढ़ जाता है। शहर में साठ छात्रों की कक्षा एक सामान्य बात है। अपने दौरे में हमने भी कुछ माध्यमिक स्कूलों में 60 और 65 छात्रों वाली कक्षाएं देखी हैं। बहुधा अध्ययत कक्ष में इतने छात्रों के लिए आसानी से जगह भी नहीं होती और इस समस्या का हल अध्यापक की कुर्सी को एक ओर ढकेल कर—अध्यापक की मेज़ के लिए जगह का तो सवाल ही नहीं—तथा आगे वाली बैंचों को श्यामपट्ट के एकदम निकट लाकर किया जाता हैं। ऐसी स्थितियो में सृजनशील अध्यापक की बात करने का कोई महत्व नहीं रह जाता।

9.27. **वर्तमान स्थिति**—सारणी 9.1 और 9.2 में विभिन्न स्कूली-अवस्थाओं पर कक्षाओं का आकार दिखाया गया है। इन सारणियों का आयोग के विशेष-अध्ययन के लिए आठ राज्यों में से चुने हुए 25 जिलो के सम्बन्ध में राज्य सरकारों द्वारा प्राप्त सूचना है।

सारणी 9.1. अवर प्राथमिक स्कूलों/शैक्षनों में अध्यापकों का वितरण उनके द्वारा पढ़ाए जाने वाले छात्रों की संख्या के आधार पर (1965)

राज्य	छात्रों को पढ़ाने वाले अध्यापकों की प्रतिशतता								
	10 से नीचे	11-19	20-29	30-39	40-49	50-59	60-69	70 और इससे अधिक	कुल
	प्रतिशत	प्रति०	प्रति०	प्रति०	प्रति०	प्रति०	प्रति०	प्रति०	प्रति०
आन्ध्र प्रदेश	0.4	6.3	18.5	24.3	21.9	12.5	6.3	9.8	100.0
केरल	0.2	1.9	31.7	30.8	11.8	4.2	3.4	16.0	100.0
मध्य प्रदेश	3.6	14.0	23.8	23.9	15.5	7.9	4.2	7.1	100.0
मैसूर	0.7	4.7	13.3	21.5	21.8	13.5	7.7	16.8	100.0
उड़ीसा	1.7	10.4	17.9	30.0	20.1	9.8	4.9	5.2	100.0
पंजाब	0.2	2.6	10.1	27.3	28.4	18.2	8.4	4.8	100.9
राजस्थान	1.0	7.0	16.6	17.1	11.7	9.2	6.2	31.2	100.0
उत्तर प्रदेश . . .	1.0	6.5	15.1	20.6	19.9	13.9	8.8	14.2	100.0
सम्पूर्ण भारत	0.9	6.1	18.7	23.8	18.6	11.1	6.5	14.3	100.0

सारणी 9.2. उच्चतर प्राथमिक तथा माध्यमिक स्तरों पर कक्षाओं/शैक्षनों का आकार (1965)

कक्षा	नामांकनों सहित कक्षाओं अनुभागों की प्रतिशतता								
	10 से नीचे	10-19	20-29	30-39	40-49	50-59	60-69	70 और उससे अधिक	कुल
	प्रतिशत	प्रतिशत	प्रतिशत	प्रतिशत	प्रतिशत	प्रतिशत	प्रतिशत	प्रतिशत	प्रतिशत
छह	9.5	17.1	20.8	23.6	15.8	5.8	2.2	5.2	100.0
सात	9.9	18.9	20.1	26.4	14.5	4.7	1.5	4.0	100.0
आठ	3.9	11.3	15.5	25.7	24.3	11.5	2.5	5.3	100.0
नौ	7.8	4.0	10.8	21.8	31.5	13.6	4.7	5.8	100.0
दस	0.7	7.4	16.3	25.9	29.9	11.0	2.8	6.0	100.0
ग्यारह	2.0	11.8	21.8	19.5	15.4	10.8	6.0	12.7	100.0
बारह	0.9	8.0	14.1	15.1	25.2	16.4	8.4	11.9	100.0

इन सारणियों से कई बातें स्पष्ट हो जाती हैं। इन्हें देखने से मालूम पड़ता है कि अवर प्राथमिक स्तर पर 11.1 प्रतिशत अध्यापक 50-59 छात्रों वाली कक्षाएं पढ़ाते हैं, 6.5 प्रतिशत अध्यापकों को 60-69 छात्रों वाली कक्षाएं और 1.43 प्रतिशत अध्यापकों को 70 और उससे भी अधिक छात्रों वाली कक्षाओं को पढ़ाना पड़ता है। निःसंदेह, इनमें से कुछ कक्षाएं एक-अध्यापक स्कूलों की है जहां एक अध्यापक को दो, तीन और कभी-कभी पांच संयुक्त कक्षाओं को भी पढ़ाना पड़ता है। इसी प्रकार, उच्चतर प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तरों की स्थिति इससे बेहतर नहीं है। 50 से 70 और इससे भी अधिक छात्रों वाली कक्षाओं को पढ़ाने का भार छठी कक्षा में 13.2 प्रतिशत, सातवीं में 10.2 प्रतिशत, आठवीं में 19.3 प्रतिशत, नौवीं में 24.1, दसवीं में 19.8, ग्यारहवीं में 29.5 तथा बारहवीं में 30.7 प्रतिशत अध्यापकों पर है। देखने में आता है कि जैसे-जैसे हम शैक्षिक सोपान पर चढ़ते हैं वैसे-वैसे इतनी विशाल कक्षाओं को पढ़ाने वाले अध्यापकों की संख्या में वृद्धि होती जाती है।

9.28. **विशाल कक्षाओं को पढ़ाने की कठिनाइयां**—पचास या इससे अधिक छात्रों की कक्षाओं में शिक्षण-पद्धति कभी सन्तोषजनक नहीं हो सकती। एक अध्यापक चाहे कितना भी सुयोग्य हो, उसके लिए संभव नहीं कि वह सब छात्रों की क्षमताओं के अधिकतम विकास के साथ-साथ कक्षा के अधिकांश छात्रों पर व्यक्तिगत रूप से ध्यान दे सके, कमजोर छात्रों की विशेष सहायता कर सके और तीव्रतर गति पर बढ़ने के लिए प्रतिभासम्पन्न छात्रों का मार्ग निर्देशन कर सके। इन परिस्थितियों में एक औसत अध्यापक रटाने की प्रक्रिया का ही सहारा लेता है। सामान्यतया गृह-कार्यों को जांचा नहीं जाता और निबन्धों पर यदाकदा सामर्थ्य होने पर ही अंक दिए जा सकेंगे। शहरी क्षेत्रों में सामान्य माध्यमिक स्कूल में शिक्षण-स्तर की गिरावट के लिए छात्रों की अतिसंख्या आंशिक रूप से उत्तरदायी है।

9.29. लेकिन हम उन शिक्षाशास्त्रियों से सहमत नहीं जिनका आग्रह है कि एक कक्षा में बीस या पच्चीस से अधिक छात्र नहीं होने चाहिए। इस प्रकार का सोचना नितान्त अवास्तविक है। वास्तव में आदर्श-कक्षा-आकार नाम की ऐसी कोई वस्तु नहीं और न ही पच्चीस या बीस की संख्या में ऐसी कोई विशेषता है। सही अर्थों में वांछित आकार से किसी कदर बड़ी कक्षाओं के बिना काफी समय तक हमारे देश का गुजारा नहीं चल सकता। शैक्षिक रूप से उन्नत कुछ देशों को भी इस समस्या का सामना करना पड़ रहा है। अध्यापकों को इस अनिवार्य परिस्थिति से समझौता कर लेना चाहिए। प्रशिक्षण संस्थाओं पर भी यह जिम्मेदारी है कि वे समस्या पर अधिक व्यावहारिक रूप से विचार करें और ऐसे तरीके निकालें जिनकी सहायता से अध्यापक सारे शिक्षा-शास्त्री सिद्धान्तों का एकदम परित्याग किए बिना इस आकार की कक्षाओं को पढ़ाएं।

9.30. **कक्षा का अधिकतम आकार नियत करना**—तथापि शिक्षण-स्तर को गहरी हानि पहुंचाए बिना एक निश्चित संख्या से आगे कक्षा-आकार में वृद्धि करना संभव नहीं। यह बात हाईस्कूल तथा उच्चतर माध्यमिक स्तरों पर विशेष रूप से लागू होती है। क्योंकि वहां वैयक्तिक विभिन्नताएं और अधिक बढ़ जाती हैं, कई अवस्थाओं में विशेष सहायता की आवश्यकता होती है और जांचने के काम में वृद्धि हो जाती है। हमारा विचार है कि स्कूली शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर छात्र-शिक्षक अनुपात निश्चित कर देना ही पर्याप्त नहीं है। छात्रों की संख्या के आधार पर अध्यापकों की संख्या निश्चित करने के लिए निस्सन्देह ऐसा अनुपात आवश्यक है। किन्तु यहां जरूरी नहीं कि इससे कक्षा-आकार नियंत्रित हो जाए। चाहे हम प्राथमिक स्तर पर एक अध्यापक का अनुपात निश्चित कर लें, फिर भी ऐसा हो सकता है कि शायद एक ही जिले में एक ओर तो एक कक्षा में दस छात्र हों और दूसरी ओर एक कक्षा में अस्सी। इसलिए यह अत्यावश्यक है कि छात्र-शिक्षक-अनुपात के अतिरिक्त एक कक्षा में छात्रों की अधिकतम संख्या भी निर्धारित की जाए और किसी भी स्थिति में वह संख्या बदलने न दी जाए। स्कूली शिक्षा के विभिन्न स्तरों के लिए हम निम्नलिखित अधिकतम संख्या की सिफ़ारिश करते हैं :

अवर प्राथमिक———50
उच्चतर प्राथमिक——45
अवर माध्यमिक, उच्चतर माध्यमिक } 40

9.31. पहली और दूसरी कक्षाओं में कक्षा-आकार एक विशेष महत्व रखता है। प्राथमिक स्तर पर आधे से अधिक नामांकन इन्हीं दो कक्षाओं में है और बहुधा वे 60 या इससे अधिक संख्या वाली कक्षाएं हैं। इन अवस्थाओं के लिए हमारी सिफ़ारिश है कि अध्यापकों की आवश्यकतानुकूल व्यवस्था की जाए और बताए गए आधार पर कक्षा-आकार घटा दिया जाए। किन्तु यदि ऐसा सम्भव न हो तो हम चाहेंगे कि कक्षा को लगभग 30-35 छात्रों वाली दो कक्षाओं में विभक्त कर दिया

जाए और उन्हें दिन में केवल तीन घंटे पढ़ाया जाए। अध्यापक से प्रतिदिन ऐसी दो कक्षा पढ़ाने की प्रार्थना की जाए। जिसके लिए उसे उपयुक्त पारिश्रमिक मिले। 70 या इससे अधिक छात्रों को इकट्ठा कर उन्हें दिन में 6 घंटे रखने की वर्तमान प्रणाली से शिक्षा की यह पद्धति कहीं अधिक अच्छी है।

9.32. **बहुकक्षा अध्यापन**—हमारे स्कूलों में से 40 प्रतिशत स्कूल एक अध्यापक स्कूल हैं और दूसरे स्कूलों में भी ऐसे बड़े स्कूलों का अनुपात थोड़ा है, जहां एक अध्यापक एक कक्षा पढ़ाता है। इसलिए हमारे आधे से अधिक अध्यापकों को एक समय में एक से अधिक कक्षा पढ़ानी पड़ती है। सारणी 9.3 से इस बात की पुष्टि होती है।

सारणी 9.3. प्राथमिक स्कूलों/सैक्शनों में उनके द्वारा पढ़ाई गई कक्षाओं के अनुसार अध्यापकों का वितरण (1965)

राज्य	एक कक्षा	दो कक्षाएं	तीन कक्षाएं	चार कक्षाएं	पांच कक्षाएं	कुल
	प्रतिशत	प्रतिशत	प्रतिशत	प्रतिशत	प्रतिशत	प्रतिशत
आन्ध्र प्रदेश	35.9	27.7	16.9	4.5	15.0	100.0
केरल	83.5	14.1	0.6	1.8	—	100.0
मध्य प्रदेश	30.5	26.1	17.4	8.5	17.5	100.0
मैसूर	50.9	21.4	3.7	24.0	—	100.0
उड़ीसा	43.0	29.6	26.2	0.7	0.5	100.0
पंजाब	46.4	26.9	14.8	1.1	10.8	100.0
राजस्थान	10.1	20.8	26.2	18.6	24.3	100.0
उत्तर प्रदेश	36.5	35.9	19.6	2.5	5.5	100.0
	43.7	25.6	14.2	8.4	8.1	100.0

स्रोत : राज्य सरकारें

टिप्पणी : यह सूचना 8 राज्यों के 25 जिलों से प्राप्त आंकड़ों पर आधारित है।

इस तरह की परिस्थिति में बहुकक्षा अध्यापन की दिशा में अनुसंधान करने की बहुत अधिक आवश्यकता है और इन परिस्थिति में प्रयोग में लाई जानेवाली विशिष्ट प्रविधियों के प्रति अध्यापकों को अभिमुख करने के लिए प्रशिक्षण संस्थाओं को विशेष प्रयोग करने होंगे।

स्कूली इमारतें

9.33. स्कूली इमारतों की वर्तमान अवस्था अति-असन्तोषजनक है। प्राथमिक स्तर पर केवल लगभग 30 प्रतिशत स्कूलों के लिए सन्तोषप्रद भवनों की व्यवस्था होना कहा जाता है। माध्यमिक स्तर पर तद्नुरूप अनुपात लगभग 50 है। इससे मालूम पड़ता है कि आगामी कुछ वर्षों में हमें कितनी ही अधबनी इमारतों को पूरा करना है। इसके अतिरिक्त शीघ्रगति से बढ़ने वाले अतिरिक्त नामांकन के लिए भी स्कूली इमारतों की व्यवस्था करनी है। इसलिए इस समस्या के तीन पहलू हैं : (1) आवश्यक धन राशि की व्यवस्था; (2) इमारतों की लागत

को न्यूनतम स्तर पर लाना; (3) एक ऐसे संगठन की प्रकल्पना जिससे वह कार्य शीघ्रता और किफायत से सम्पन्न हो।

9.34. **स्कूली इमारतों के लिए धनराशि**—हम सिफ़ारिश करते हैं कि केन्द्रीय और राज्य के बजट में स्कूली इमारतों के निर्माण के लिए दी जाने वाली रकम में वृद्धि की जाय। यह एक क्षेत्र है जिसमें स्थानीय समुदाय महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है। अतः सहायक अनुदान की ऐसी योजनाएं तैयार की जाएं जिनके अन्तर्गत स्कूली इमारतों के निर्माण के लिए बराबरी के आधार पर स्थानीय समुदाय को राज्य-सहायता उपलब्ध हो। जहां संभव हो स्कूली इमारतों के निर्माण के लिए ऋण-व्यवस्था को प्रोत्साहित किया जाए। गैर-सरकारी स्कूलों को भी स्कूली इमारतों के लिए पर्याप्त उदारतापूर्वक सहायक अनुदान एवं ऋण प्राप्त होने चाहिए।

9.35. **लागत में कमी**—केन्द्रीय तथा राज्य, दोनों ही सरकारों के लिए शिक्षा मंत्रालय, निर्माण मंत्रालय तथा योजना आयोग की ओर से कई समितियां इस प्रश्न पर विचार विमर्श कर चुकी है। इसके अतिरिक्त विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने छात्रावास, कर्मचारियों के आवास, तथा पुस्तकालय आदि के लिए विस्तृत मानक तैयार किए है और रुड़की की केन्द्रीय भवन अनुसंधान संस्था तथा भारतीय मानक संस्था ने भी इस क्षेत्र में कुछ सुझाव दिए है। इन सबका परिणाम यह हुआ कि आज लगभग सब प्रकार के स्कूल-कालेजों के लिए स्थान एवं आयोजना मानक और आदर्श नक्शे तथा लागत में कमी करने के विषय में पर्याप्त उपयुक्त सलाह उपलब्ध है। अब एक ऐसे साधन की आवश्यकता है जो इस उपलब्ध सूचना को क्रिया रूप दे सके।

9.36. परम्परागत चिर प्रतिष्ठित इमारती सामान के और आवास के अभाव के कारण बहुत-से स्कूल ऐसी इमारतों में परिचालित है जिन्हें सार्वजनिक निर्माण विभाग अस्थायी इमारतें मानता है और कुछ तो झोंपड़ियों में कार्य कर रहे है। हमारे विचार में ऐसी इमारतों और झोंपड़ियों के प्रति यह पूर्वाग्रह नितांत अनुचित है। यदि इनमें उठे हुए फर्श तथा पर्याप्त वायु संचारण के लिए ऊंची खिड़कियाँ एवं दरवाजे हों तो ये कच्ची इमारतें स्कूली इमारत के रूप में पर्याप्त उपयोगी सिद्ध होंगी। तथापि इस बात का वह गलत अर्थ न लगाया जाए कि कच्ची इमारतें सदा ही अच्छी होती है। क्योंकि वास्तव में ऐसा नहीं है, कुछ कच्ची इमारतें देखभाल की भारी लागत के कारण अन्ततः महंगी बैठती हैं। हमारा उद्देश्य तो सुनियोजित कच्ची इमारतों को अपनी शिक्षा प्रणाली का अंग मानने पर बल देना तथा इमारतों के निर्माण में आडम्बरपूर्ण प्रदर्शन की अपेक्षा सादगी एवं उपयोगिता को प्रमुखता देना है।

9.37. **ग्राम्य क्षेत्रों में इमारतें**—शहरी तथा ग्राम्य क्षेत्रों के लिये स्कूल इमारतों की समस्या पर अलग-अलग विचार विमर्श करने की आवश्यकता हैं। शहरी क्षेत्रों में जमीनों की कीमतें बहुत अधिक हैं और बहुधा पर्याप्त जमीन बिल्कुल ही उपलब्ध नहीं है। अतः नए ढंग की इमारतें आवश्यक हैं; सन्निकट वातावरण से अनुकूलता की दृष्टि से भी। दूसरी ओर ग्राम्य क्षेत्रों में जमीन सस्ती तथा सहज-सुलभ है तथा नए ढंग की इमारतें ग्राम्य वातावरण में प्रायः हास्यास्पद प्रतीत होती हैं।

9.38. हमारी सिफ़ारिश है कि स्कूली इमारतों के निर्माण के लिए स्थानीय लोगों की पहल एवं धन माल अथवा श्रम के रूप में स्थानीय योगदान को प्रोत्साहित करने के लिए हर प्रयत्न किया जाए। ऐसी विशिष्ट योजना बड़ी उपयोगी सिद्ध हो सकती है जिसके अन्तर्गत सरकार केवल पहले से तैयार ढांचे दे और कुर्सी उठाने और दीवारें भरने का कार्य स्थानीय जनता करे। शिक्षा मंत्रालय द्वारा प्रस्तावित 'न्यूक्लिअस' तरीका इस दिशा में बड़ी सहायक है और यह आमतौर पर अपनाने के लायक है।

9.39. **शहरी क्षेत्रों में इमारतें**—शहरी क्षेत्रों में शैक्षिक इमारतों के निर्माण में किफायत करने के लिए निम्नलिखित तरीके अपनाने चाहिए :

(1) **विशिष्टियों और स्थानीय सामग्री का समझ के साथ चुनाव**—जोखिम से बचने के लिए अर्से से अमल में आ रही विशिष्टियों को अपनाने की वर्तमान पद्धति द्वारा कम लागत से इमारतें खड़ी करना संभव नहीं। स्थानीय उपलब्ध सामग्री के चुनाव, सस्ते सामान के उपयोग, कुछ साज सँवार को नजरअन्दाज कर देने, तथा निर्माण में हलके स्तर से काम चला लेने से किफ़ायत की जा सकती है। तथापि सामान की उपलब्धि, जलवायु सम्बन्धी अवस्थाओं, इमारतों की सुरक्षा तथा आवर्ती अनुरक्षण व्यय के आधार पर ही इन सब बातों को अन्तिम क्रिया रूप दिया सकेगा।

(2) **निर्माण की तकनीकें**—विचारपूर्ण आयोजना और डिजाइन करने से तथाकथित 'अस्थायी' ढांचे भी स्कूलों द्वारा प्रयुक्त बहुत सी किराये की इमारतों से अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। जहां कहीं भी जलवायु तथा

अन्य स्थितियां अनुकूल हों ऐसे ढांके बनाये जाने चाहिए। यदि पक्की इमारतें नितान्त आवश्यक हैं तो हमें तैयार ढांचों, खोखली दीवारों, पहले से तैयार हिस्सों, दरवाजों और खिड़कियों के लिए प्रबलित सीमेंट (आर० सी० सी०) कंक्रीट के चौखटों और केन्द्रीय भवन अनुसंधान संस्था तथा अन्य अनुसंधान संस्थाओं द्वारा विकसित भागों के उपयोगी जैसी निर्माण के सुधरे हुए तरीकों पर अधिकाधिक काम में लाना होगा।

9.40. **शीघ्रगति से निर्माण**—स्कूली इमारतों के शीघ्र निर्माण के लिए तिम्नलिखित प्रयत्न किए जाने चाहिएं :

(1) **ग्रामीण-क्षेत्र**—ग्रामीण क्षेत्रों में स्थानीय ठेकेदार नहीं मिलते हैं शहरी क्षेत्रों के ठेकेदार ग्राम्य क्षेत्रों में काम करने के लिए आमतौर पर अधिक पैसे लेते हैं। बहुत से दूर के गांवों तक पहुंचने के लिए विभागीय साधन भी पर्याप्त नहीं हैं। इसलिए हमारी राय में गांवों की स्कूली इमारतों के निर्माण का कार्य ज्यादातर गांवों के लोगों अथवा ग्राम-पंचायतों के जरिये ही किया जाना चाहिए।

(2) **शहरी क्षेत्र**—शहरी क्षेत्रों में स्कूली इमारतों के लिए हमारी राय में नगरपालिका—स्थानीय एवं नगर निगमों अभिकरणों का पूर्ण उपयोग करना चाहिए। उनके पास आवश्यक तकनीकी कर्मचारी भी होते हैं और वे इमारतों की लागत पूरी करने में भी योगदान कर सकते हैं। यदि स्थानीय स्कूलों केलिए इमारतों की व्यवस्था का उत्तरदायित्व नगर पालिकाओं पर छोड़ दिया जाए और यदि एक उपयुक्त सहायक अनुदान प्रणाली खोज निकाली जाए तो इस क्षेत्र में प्रगति जल्दी हो जायेगी।

9.41. **स्कूली इमारतों का पर्यवेक्षण एवं मानकीकरण**—सरकारों स्कूली इमारतों के निर्माण के लिए, इसी उद्देश्य से स्वेच्छिक संगठनों की सहायता के लिए, राज्य में स्कूली इमारतों के निर्माण के सामान्य कार्यक्रम की देखरेख के लिए तथा नए और किफायती तरीकों के निरन्तर उपयोग के लिए हमारी राय में निम्नलिखित अतिरिक्त उपाय अपनाए जाने चाहिए :

(1) **शैक्षिक भवन विकास दलों की स्थापना**—प्रत्येक राज्य में सार्वजनिक निर्माण विभाग के अन्तर्गत किन्तु शिक्षा विभाग के निकट साहचर्य में काम करने वाले एक शैक्षिक भवन विकास दल की स्थापना की जाए जिसमें एक वास्तुशिल्पी, एक शिक्षाविद्, एक प्रशासनिक कर्मचारी, एक सिविल इंजीनियर तथा एक लागत-लेखाकार होना चाहिए। ये सब के सब पूरे समय के लिए कार्य करने को नियुक्त हों तथा इन्हें विशेष तकनीकी योग्यता वाले सदस्यों को सहयोजित करने का अधिकार हो। इस वर्ग का मुख्य कार्य सरकारी स्कूली इमारतों की आयोजना एवं निर्माण सुधार करना होगा। गैर-सरकारी स्कूलों को भी इनका परामर्श प्राप्त होगा चाहिए। राज्य-स्तरीय दलों के कार्य को प्रभावशाली रूप से समन्वित करने के लिए केन्द्र में भी एक भवन-विकास दल की स्थापना की जाय।

इन दलों के निम्नलिखित कार्य होंगे—(क) नवीन शैक्षिक प्रविधियों के आधार पर इमारती आवश्यकताओं का अध्ययन, (ख) निर्माताओं के सहयोग से भवन-निर्माण की नवीन प्रविधियों और नवीन विशिष्टियों का विकास, (ग) विविध प्रकार की शैक्षिक इमारतों के लिए क्रियात्मक तथा किफायती योजना चित्रों का विकास, (घ) सामान तथा मजदूरी की लागत का उचित निर्धारण, (ङ) क्षेत्रीय-परीक्षण करना (च) पूर्व प्रयुक्त योजना, चित्रों, विशिष्टियों तथा निर्माण-प्रविधियों का मूल्यांकन, (छ) देशी सामान के अधिकाधिक उपयोग के तरीकों का अध्ययन। केन्द्र स्थित वर्ग एक ऐसी पत्रिका या लाभकारी प्रकाशन कर सकता है जिसमें निर्माण की नवीनतम प्रविधियों तथा देश-विदेश में, एक अर्से से स्वीकृत इमारतों के सम्बन्ध में किए जाने वाले अनुसंधानों पर विशेषतया प्रकाश डाला गया हो। राज्य-सरकारों को यह पक्का कर लेना चाहिए कि इन विकास-दलों की सिफ़ारिशों पर अमल किया जाए। विभिन्न राज्यों में इन दलों के भली प्रकार जम जाने पर इनके "अधिकतम लागत प्रतिस्थापन और न्यूनतम स्तर" के दृढ़ ढांचे के भीतर काम करने की सम्भावना की जांच-पड़ताल की जाए।

(2) सरकारी इमारतों के निर्माण में विलम्ब से बचने के लिये सार्वजनिक निर्माण विभाग का एक विभाग का एक अलग एकक स्थापित किया जाए जो शैक्षिक भवनों के कार्यक्रम को पूरा करे।

(3) **शैक्षिक भवन निर्माण संघ की स्थापना**—शैक्षिक भवन विकास दलों के निर्माण की प्रविधियों तथा योजना चित्रों के मानकीकरण के बाद, उद्योगीकृत इमारतों से पूरा पूरा लाभ उठाने के लिए शैक्षिक भवन निर्माण संघ (इंगलैंड में 'क्लास्प' नाम से प्रसिद्ध इसी प्रकार के संघों के ढंग पर) स्थापित करने की सम्भावना पर विचार किया जाए।

(4) **मानकीकरण**—किसी विशिष्ट प्रदेश के लिए

खाकों, माप, विशिष्टियों तथा निर्माण प्रविधियों के मानकीकरण का कार्य शैक्षिक भवन विकास दल को करना चाहिए ताकि विभिन्न संघटक भागों को व्यावसायिक स्तर पर उत्पादन किया जाय। इनसे किफायत होगी तथा निर्माण कार्य में गति आएगी। भारतीय मानक संस्था जैसे संगठनों द्वारा मानकीकरण के क्षेत्र में काफी कार्य किया जा चुका है जिसके आधार पर आगे अध्ययन किया जा सकता है।

(5) **गैर सरकारी स्कूलों की इमारतें**—प्रत्येक राज्य में शैक्षिक भवन विकास दलों द्वारा तैयार किए कमखर्ची के उपायों से शैक्षिक भवनों की लागत में कमी करने के निमित्त गैर-सरकारी शैक्षिक संस्थाओं के प्रबंधकों को भी उनकी जानकारी करा देना चाहिए तथा गैर-सरकारी प्रबंधकों को इमारत के लिए दिया हुआ सहायक अनुदान आंकी गई इसी ऊपरी लागत सीमा पर आधारित हो।

स्कूल स्वास्थ्य सेवाएं

9.42. स्कूल स्वास्थ्य सेवा की व्यवस्था (जिसमें स्कूल आहार भी शामिल है) अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस समस्या पर श्रीमती रेणुका राय ने अभी हाल में ही विचार किया है। हम समिति की सिफारिशों से सामान्य रूप से सहमत हैं।

मार्गदर्शन और सलाह

9.43. **मार्गदर्शन सेवाओं का उद्देश्य और उनका कार्यक्षेत्र**—मार्गदर्शन का क्षेत्र तथा कार्य, छात्रों की केवल शैक्षिक तथा व्यावसायिक चुनाव में सहायता करने से कहीं अधिक व्यापक है। समंजन करना तथा विकास करना दोनों ही मार्गदर्शन के उद्देश्य हैं; क्योंकि मार्गदर्शन शैक्षिक संस्था की या घर की परिस्थिति के साथ ससंजन करने में छात्र की अधिक से अधिक सहायता करता है और साथ ही साथ उसके व्यक्तित्व के सभी पहलुओं के विकास में भी सहायक होता है। अतः मार्गदर्शन की शिक्षा को एक अभिन्न अंग समझना चाहिए न कि एक ऐसी विशेष मनोवैज्ञानिक या सामाजिक सेवा जो शैक्षिक उद्देश्यों तक ही सीमित है। मार्गदर्शन का सम्बन्ध केवल उनसे ही नहीं जो किसी एक या दूसरे आदर्श से च्युत हो गए अपितु सभी छात्रों से है। यह एक निरन्तर चलनेवाली प्रक्रिया भी है जिसका उद्देश्य समय-समय पर निर्णय और समंजन करने में व्यक्ति की सहायता करना है।

9.44. **प्राथमिक शिक्षा में मार्गदर्शन**—मार्गदर्शन का आरम्भ प्राथमिक स्कूल की सबसे निचली कक्षा से होना चाहिए। इसका उपयोग निम्नलिखित रूपों में किया जा सकता है : घर तथा स्कूल के बीच संतोषप्रद संक्रमण के लिए छात्रों की सहायता, मूलभूत शैक्षिक योग्यताओं को सीखने की कठिनाइयों का निदान, विशेष शिक्षा की आवश्यकता वाले छात्रों की पहचान (जैसे प्रतिभावान, पिछड़े तथा विकलांक छात्र) बीच में पढ़ाई छोड़ देने की संभावना वाले छात्रों को रोकने में सहायता, कार्यजगत के प्रति अन्तर्दृष्टि तथा कार्य के प्रति अनुकूल अभिवृत्तियों के विकास हेतु छात्रों को निर्देशन; भावी शिक्षा या प्रशिक्षण की योजनाओं में सहायता। संस्थाओं की विशाल संख्या, अध्यापकों की मामूली योग्यताओं तथा संसाधनों के अभाव के कारण प्राथमिक स्तर में मार्गदर्शन सेवा के क्षेत्र में अब तक कुछ नहीं किया गया है। इसलिए बहुत समय तक इन स्कूलों में योग्य परामर्शदाताओं की व्यवस्था के विषय में सोचना व्यर्थ होगा तथापि कुछ मार्गदर्शन कार्य सुप्रशिक्षित प्राथमिक स्कूल अध्यापकों द्वारा किए जा सकते है। बालछात्रों की कुछ मार्गदर्शन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए समुदाय के संसाधनो को भी सक्रिय बनाया जा सकता है।

9.45. प्राथमिक स्कूलों में मार्गदर्शन कार्य की शुरुआत करने के लिए कुछ सुझावों की रूपरेखा नीचे दी जाती है :

(1) प्राथमिक स्कूलों के अध्यापकों के प्रशिक्षण कार्यक्रम के अन्तर्गत अध्यापकों को साधारण नैदानिक परीक्षणों तथा वैयक्तिक भिन्नताओं और अध्ययन कक्ष क्रियाकलापों पर इन भिन्नताओं के असर से परिचित कराना चाहिए।

(2) प्रत्येक प्रशिक्षण स्कूल में कम से कम एक प्राध्यापक मार्गदर्शन सिद्धान्त तथा मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान विषय पढ़ाने वाला होना चाहिए।

(3) प्रशिक्षण संस्थाओं तथा इन संस्थाओं से सम्बद्ध स्कूलों में मार्गदर्शन सेवाओं को समाविष्ट करना चाहिए जिससे प्रशिक्षार्थियों को इनकी व्यवस्था से सम्बन्धित समस्याओं का प्रत्यक्ष ज्ञान मिले।

(4) जहां कहीं सम्भव हो प्राथमिक स्कूल अध्यापकों के लिए मार्गदर्शन के अल्प अन्तःसेवा पाठ्यक्रमों की व्यवस्था की जाए।

(5) बच्चों की व्यवसाय दीक्षा करने के लिए सरल साहित्य तैयार किया जाय और प्रादेशिक भाषाओं में उसे उपलब्ध कराया जाए।

(6) प्राथमिक स्तर की समाप्ति पर भावी शिक्षा के पाठ्यक्रमों के चुनाव में बच्चों तथा अभिभावकों की सहायता की जाय और चुनाव का आधार केवल परीक्षा-फल न हो।

9.46. **माध्यमिक शिक्षा में मार्गदर्शन**—माध्यमिक स्तर पर मार्गदर्शन का एक मुख्य कार्य किशोर छात्रों की योग्यताओं एवं रुचियों की पहचान तथा उनके विकास में सहायता करना है। मार्गदर्शन द्वारा छात्रों की निम्नलिखित सहायताएं प्राप्त होती हैं : अपनी क्षमताओं एवं सीमाओं को समझना और अपनी योग्यता के अनुकूल शैक्षिक कार्य करना; शैक्षिक तथा व्यावसायिक अवसरों तथा अपेक्षाओं के विषय में सूचना प्राप्त करना; सम्पूर्ण सम्बद्ध तथ्यों की विवेचना के आधार पर, व्यावहारिक, शैक्षिक तथा व्यावसायिक चुनावों तथा योजनाओं का तथा घर व स्कूल में अपने निजी तथा सामाजिक समंजन की समस्याओं का हल प्राप्त करना। मार्गदर्शन सेवाओं द्वारा मुख्याध्यापकों तथा अध्यापकों को भी अपने छात्रों को समझने में तथा उनके लिए प्रभावशाली रूप से शिक्षा प्राप्त करने के योग्य वातावरण की सृष्टि में सहातता मिलती है।

9.47. माध्यमिक शिक्षा आयोग की सिफ़ारिशों के आधार पर शिक्षा मंत्रालय ने माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में नवजात मार्गदर्शन आन्दोलन को तकनीकी परामर्श देने एवं उसको सहायता करने के लिए 1954 में एक केन्द्रीय शैक्षिक तथा व्यावसायिक मार्गदर्शन ब्यूरो की स्थापना की। तीसरी योजना में मार्गदर्शन को केन्द्र प्रवर्तित योजना मान लिया गया तथा राज्यों में मार्गदर्शन सेवाओं के विकास के लिए अब 13 ब्यूरो बनाए जा चुके हैं। इन केन्द्र तथा राज्यस्तरीय ब्यूरों ने मार्गदर्शन का एक सीधा-सादा कार्यक्रम विकसित किया हैं जिसके अन्तर्गत स्कूलों में प्रशिक्षित परामर्शदाताओं एवं आजीविका-निर्देशको (केरियर मास्टर) द्वारा अध्यापकों की सहायता से छात्रों का मार्गदर्शन किया जा रहा है। तीसरी योजना में मार्गदर्शन करने वाले स्कूलों की संख्या लगभग 3,000 थी जो देश के माध्यमिक स्कूलों की कुल संख्या का 13 प्रतिशत थी। और इन 3,000 स्कूलों में भी अधिक संख्या ऐसे स्कूलों की थी जहाँ केवल एक आजीविका-निर्देशक था और सूचना सेवा ही उपलब्ध थी। ऐसी बहुत ही थोड़ी संस्थाएं हैं जहाँ परीक्षण एवं सलाह सन्निहित प्रभावशाली मार्गदर्शन हेतु पूरे समय के लिए अथवा थोड़े समय के लिए काम करने वाले परामर्शदाता नियुक्त हों।

9.48. इससे स्पष्ट है कि यद्यपि मार्गदर्शन सेवाओ की व्यवस्था के लिए संगठित आन्दोलन चल रहा हैं, तथापि अब तक बड़ी मन्द प्रगति हुई है। अंततः हमारा उद्देश्य सारे माध्यमिक स्कूलों में एक प्रशिक्षित परामर्शदात के अधीन पर्याप्त मार्गदर्शन सेवाओं का समावेश हैं। किन्तु, क्योंकि इतने व्यापक पैमाने पर मार्गदर्शन के लिए धन एवं प्रशिक्षण सुविधाओं के मिलने की कोई संभावना नहीं, यह आवश्यक हो जाता हैं कि आगामी 20 वर्षों के लिए एक सीमित कार्यक्रम अपनाया जाए। अतएव हमारी निम्नलिखित सिफ़ारिशें हैं :

(1) सब माध्यमिक स्कूलों को कम से कम इतनी मार्गदर्शन सेवा अवश्य उपलब्ध हो जिसके अन्तर्गत उचित दूरी पर स्थित प्रत्येक दस स्कूलों को एक अतिथि स्कूल परामर्शदाता की सेवाएं प्राप्त हों और सामान्य मार्गदर्शन कार्यों का भार अध्यापकों पर हो।

(2) साथ ही साथ यह दिखाने के लिए कि वास्तविक मार्गदर्शन का रूप क्या है और इसके द्वारा कितनी उपलब्धि हो सकती है, उचित होगा, कि व्यापक मार्गदर्शन कार्यक्रम के लिए कुछ स्कूलों का सम्यक चयन किया जाए। अच्छा होगा कि प्रत्येक जिले में ऐसा एक स्कूल हो।

(3) राज्य मार्गदर्शन ब्यूरों में स्कूल-कार्यकर्ताओं को सलाह देने और उनके निरीक्षण के लिए आवश्यक पर्यवेक्षण अधिकारियों की नियुक्ति की जाए।

9.49. हम यह आवश्यक समझते हैं कि प्रत्येक प्रशिक्षु के उद्दिष्ट कार्यक्रम के अंग के रूप में सब माध्यमिक स्कूल अध्यापकों को मार्गदर्शन अवधारणाओं एवं सामान्य मार्गदर्शन प्रविधियों की कुछ जानकारी दी जाए। प्रत्येक प्रशिक्षण महाविद्यालय के अध्यापन वर्ग में कम से कम स्कूल परामर्शदाताओं के बराबर प्रशिक्षण प्राप्त एक व्यक्ति अवश्य होना चाहिए। प्रशिक्षण महाविद्यालय के अध्यापकों को मार्गदर्शन एवं सलाह देने के अन्तःसेवा-प्रशिक्षण की सुविधा प्राप्त हो।

9.50. मार्गदर्शन कार्यकर्त्ताओं के वृत्तिक प्रशिक्षण का समुचित प्रबन्ध किया जाना चाहिए। राज्य ब्यूरों और प्रशिक्षण महाविद्यालय, राष्ट्रीय रोजगार सेवा के व्यावसायिक मार्गदर्शन अधिकारियों के सहयोग से आजीविका-निर्देशकों के प्रशिक्षण का कार्य कर सकते हैं। विश्वविद्यालयों को लम्बी-अवधि के वृत्तिक पाठ्यक्रम आरम्भ करने चाहिए। जब तक ऐसे पाठ्यक्रम चालू न हों, यह आवश्यक हो जाता है कि पुराने राज्य-ब्यूरों

अपने पूर्व-संचालित कार्यक्रमों को जारी रखें। मार्गदर्शन कार्यकर्ताओं के प्रशिक्षण कार्यक्रम के योग्य व्यक्तियों की अति सीमित संख्या होने के कारण, प्रशिक्षण एवं अनुसंधान करने योग्य मार्गदर्शन कार्यकर्ताओं को तैयार करने के लिए राष्ट्रीय स्तर पर मार्गदर्शन के क्षेत्र में उच्चस्तरीय प्रशिक्षण कार्यक्रम आरम्भ किए जाय।

9.51. **अन्य सामान्य सुझाव**—(1) मार्गदर्शन साहित्य, व्यावसायिक सूचना-सामग्री, चलचित्र एवं फिल्म-पट्टी तथा मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के विकास कार्यक्रमों की गति बढ़ाई जाए, और इन क्षेत्रों में काम करने वाले अभिकरणों को एक दूसरे के काम की अधिकाधिक जानकारी कराने की सावधानी बरती जाए जिससे प्रयासों की द्विरावृत्ति न हो। विभिन्न प्रयासों से तालमेल समस्त मार्गदर्शन कार्यक्रमों की विशेषता होनी चाहिए।

(2) विद्यार्थियों के शौकों तथा मनोरंजन क्रियाकलापों और अंशकालिक रोजगार के अवसरों की व्यवस्था करने में स्कूलों की सहायता की जानी चाहिए। इनका इस प्रकार आयोजन किया जाय कि विद्यार्थियों को ऐसे अर्थपूर्ण अनुभव उपलब्ध हों जिनसे वे अपनी रुचियों एवं योग्यताओं की गवेषणा तथा उनके विकास करने योग्य बनें।

(3) पूर्व वर्णित मार्गदर्शन प्रशिक्षण एवं प्रसार कार्यक्रमों के अतिरिक्त, भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल शोध-कार्य पर भी बल दिया जाना चाहिए।

प्रतिभा की खोज एवं विकास

9.52. **महत्व**—आजकल राष्ट्र जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सुयोग्य एवं प्रशिक्षित जनशक्ति के अभाव का अनुभव किया जा रहा है और यही प्रगति के मार्ग में शायद सबसे बड़ी बाधाओं में से एक है। आर्थिक रूप से तो हम गरीब हैं ही, किन्तु प्रशिक्षित बुद्धि की दरिद्रता इससे कहीं अधिक है। अच्छा होगा कि यदि हम व्हाइट हैड की यह चेतावनी याद रखें कि "आधुनिक संसार का यह अनिवार्य नियम है कि कोई भी जाति यदि प्रशिक्षित बुद्धि के मूल्य को नहीं पहचानती तो उसका विनाश अवश्यम्भावी है।"

9.53. **वर्त्तमान स्थिति**—सहजबुद्धि किसी भी जनसंख्या में सामान्यतया बराबर बंटी होती है। यदि इसकी उचित खोज और इसका उचित विकास किया जाए तो हमारी विशाल जनसंख्या हमारी सबसे मूल्यवान निधि सिद्ध हो सकती है। दुर्भाग्यवश निम्नलिखित अनेक प्रतिकूल बातों के कारण उपलब्ध प्रतिभा की खोज एवं उसके विकास के लिए बहुत थोड़े प्रयत्न किए गए हैं :

— अधिकांश घरों में माता-पिता की अशिक्षा एवं दरिद्रता के वंचनात्मक प्रभाव के कारण उपलब्ध सहज प्रतिभा का पूरी तरह विकास नहीं हो पाता।

— काफी संभावी प्रतिभा स्कूल पहुंच ही नहीं पाती। प्राथमिक स्तर पर विभिन्न क्षेत्रों में ऐसे बच्चों का अनुपात 10 से 60 प्रतिशत है जिन्होंने स्कूलों में प्रवेश नहीं लिया। जो स्कूलों में दाखिल होते हैं उनमें से भी लगभग 40 प्रतिशत बच्चे पहली कक्षा में ही चले जाते हैं और समाज के लगभग 20 प्रतिशत से केवल 25 प्रतिशत बच्चे ही प्राथमिक शिक्षा पूरी कर पाते हैं। माध्यमिक शिक्षा का सौभाग्य केवल 10 प्रतिशत शीर्षस्थ परिवारों और उच्चतर शिक्षा का केवल 5 प्रतिशत शीर्षस्थ परिवारों को मिलता है।

— उस प्रतिभा को भी जो स्कूल तक पहुंच पाती है और शैक्षिक सोपान पर चढ़ने में सफल हो पाती है अपने पूर्ण विकास का अवसर नहीं मिलता क्योंकि काफी पहले से इतनी खोज नहीं की जाती और अधिकतर यह घटिया स्कूलों में शिक्षा पा रही होती है। गुणों की सर्वोत्तम निष्पत्ति के लिए, प्रतिभा को शुरू में खोज निकालना चाहिए और उसे सर्वश्रेष्ठ अध्यापकों की देखरेख में बढ़ने का अवसर मिलना चाहिए।

— अब भी हम प्रतिभा का निर्धारण परीक्षा में प्राप्त कुल अंकों के आधार पर करते हैं। यह बड़ा ही दोषपूर्ण तरीका है। अत्यन्त प्रतिभावन छात्रों की सृजनशीलता, अध्ययन कक्ष अनुवेश, पाठ्यपुस्तक तथा परीक्षा के घेरों से कहीं अधिक परे होती है। एक क्षेत्र में चमकने वाली प्रतिभा अधिकतर दूसरे अन्य क्षेत्रों में एकदम सामान्य होती है और हमारी परीक्षा-प्रणाली में तो प्रतिभा के सर्वोच्च स्थान प्राप्त करने की अपेक्षा असफल होने अथवा मामूली अंक प्राप्त करने की अधिक संभावना है। रामानुजम और टैगोर, ऐसी साधारण परीक्षाओं में भी सफल न हो सके जिनमें सामान्य

व्यक्ति बहुत सफल हुए। इसलिए हमें हर विशिष्ट प्रतिभा को ढूंढ़ने का अलग-अलग प्रयास करना होगा चाहे वह गणित, विज्ञान, साहित्य, ललितकला, खेलकूद या शिल्पविज्ञान में हो।

शायद गणित और कुछ सीमा तक विज्ञान के क्षेत्र को छोड़कर प्रतिभावान छात्रों को पहचानना कोई सरल कार्य नहीं। इसके लिए लगातार मेहनत से अनुसंधान करने की आवश्यकता है। क्योंकि प्रतिभा किसी भी देश की परम मूल्यवान निधि होती है, इसलिए इस प्रयास के लाभ भी बहुत होंगे। इसके अतिरिक्त प्रतिभा की खोज एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है और प्रत्येक स्तर पर इसके लिए प्रयास करना चाहिए। खासतौर से माध्यमिक स्तर सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। इसका उल्लेख हम पहले कर चुके हैं कि विश्वविद्यालय किस प्रकार इस स्तर पर प्रतिभावान छात्रों की पहचान और उनके विकास[1] में सहायता कर सकते हैं।

9.54. **सिफारिश**—हमने अन्यत्र अनेक सुझाव दिये हैं जो प्रतिभा की खोज एवं उसके विकास के कार्यक्रम में सहायक होंगे। प्रत्येक बच्चे के लिए पांच वर्ष तक अच्छी एवं प्रभावपूर्ण प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था से देश को प्रतिभा की खोज के लिए अधिकतम व्यापक क्षेत्र मिल जायेगा।[2] छात्रवृत्तियों में प्रस्तावित व्यापक कार्यक्रम द्वारा यह पक्का हो जाएगा कि छात्र का सम्बद्ध आयु-वर्ग में कम से कम 5 से 15 प्रतिशत शीर्षस्थ छात्र उच्चतम शिक्षा प्राप्त कर सकें।[3] उन्हें विभिन्न संस्थाओं में रखने के प्रस्तावित कार्यक्रम से उनके लिए प्रत्येक स्तर पर सर्वश्रेष्ठ संस्थाओं में अध्ययन करना भी सम्भव हो जाएगा।

9.55. इन कार्यक्रमों के अतिरिक्त प्रतिभावन छात्रों के लिए संवर्धन कार्यक्रम भी आरम्भ किए जाएं। इन कार्यक्रमों का समावेश पहले जितने स्कूलों में हो सके किया जाय किन्तु अन्त में प्रत्येक स्कूल में होना चाहिए। प्रतिभावान छात्रों द्वारा संवर्धन के अन्तर्गत निष्पादित कार्य का लेखा विशिष्ट प्रमाणपत्रों में अंकित किया जाना चाहिए जिससे कि महाविद्यालयों या उच्चतर शिक्षा की अन्य संस्थाओं को उनकी विविष्ट योग्यताओं और सिद्धियों का पता लग जाये। इस बात की सावधानी बरती जाए कि संवर्धन कार्यक्रम ऊंचे अंकों में परीक्षा पास करने की तैयारी के साधन के रूप में कहीं हीन न हो जाए। पिछले अध्याय में प्रस्तावित पाठ्यक्रम के लचीलेपन से स्कूल प्रतिभावन छात्रों के लिए संवर्द्धित अथवा उच्चतर पाठ्यक्रमों की व्यवस्था तथा अपनी गति के अनुसार उन्नति करने में उनकी सहायता कर सकेंगे। इसकी वजह से अध्यापकों को औसत तथा पिछड़े छात्रों की सहायता करने के लिए भी समय मिल जायेगा।

9.56. प्रतिभावान छात्रों के लिए या तो प्रत्येक स्कूल द्वारा पृथक् रूप से या स्कूलों के आपसी सहयोग से और या शिक्षा विभागों द्वारा विविध पाठ्येतर कार्यक्रमों की व्यवस्था की जा सकती है। उदाहरणतः

(1) एक ऐसे शैक्षिक केन्द्र में जहां अध्यापक वर्ग, पुस्तकालय, प्रयोगशाला एवं साज-सामान की विशेष सुविधा हो विभिन्न स्कूलों के शैक्षिक प्रतिभावान छात्रों के समूह के लिए पांच-छः सप्ताह के ग्रीष्मावकाश-कालीन कार्यक्रम का प्रबन्ध किया जा सकता है।

(2) प्रयोगशालाओं, संग्रहालयों तथा अन्य स्थानों के लिए सुनियोजित यात्राओं का प्रबन्ध किया जाए।

(3) प्रतिभावान छात्रों का सम्पर्क उनकी योग्यता अथवा रुचि से सम्बन्धित कार्यों में संलग्न व्यक्तियों से कराया जाय। ये व्यक्ति इन विद्यार्थियों को अपने विशेष क्षेत्रों में कार्य करने के लिए जब-तब अवसर प्रदान कर सकेंगे।

(4) ऐसे छात्रों के लिए जिनका घरेलू वातावरण समुचित विद्याभ्यास के अनुकूल न हो छात्रावासों अथवा दिवस केन्द्रों की व्यवस्था की जाय। प्रतिभावान कार्यों के विकास की योजना बनाते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि केवल उसकी बौद्धिक सामर्थ्य या विशिष्ट योग्यता का विकास ही आवश्यक नहीं है, अपितु उसके व्यक्तित्व के भावात्मक एवं सामाजिक पहलुओं तथा समाज-वांछित अभिवृद्धियों का विकास भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

9.57. **परामर्शदाता का कार्य**—प्रतिभा को विकसित करने में परामर्शदाता एक महत्वपूर्ण योगदान कर सकता है। प्रत्येक प्रतिभाशाली छात्र के विषय में विस्तृत जानकारी रखने के कारण परामर्शदाता एक ऐसी अनूठी स्थिति में होता है कि वह छात्र संवर्धन कार्यक्रम को

1. **दूसरा अध्याय।**
2. **सातवां अध्याय।**
3. **छठा अध्याय।**

सूत्रबद्ध कर सके और पाठ्यचर्या सम्बन्धी तथा पाठ्येतर आवश्यकताओं में अपेक्षित परिवर्तन सुझा सके। जहां विशेष परामर्श दाता उपलब्ध नहीं हैं वहां यह कार्य अध्यापकों को करना होगा। अतः यह आवश्यक होगा अन्तःसेवा गोष्ठियों तथाविशेष पाठ्यक्रमों द्वारा अध्यापकों को इस उत्तरदायित्व को वहन करने के लिए प्रशिक्षित किया जाए। उनके मन में यह बात जमा दी जाए कि अध्ययन कक्ष वातावरण तथा अध्यापकों की अभिवृत्ति का एक विशेष महत्त है। हमारी सामाजिक और शैक्षिक व्यवस्था में जहां शिक्षक और शिक्षार्थी के सम्बन्ध अभी तक आदेश-प्रधान हैं, कक्षा के आदर्श से होने वाली प्रत्येक लालसा एवं रुचि को दबाने की सामान्य प्रवृत्ति है। अतएव प्रतिभा के पोषण के लिये सर्व प्रथम आवश्यक कार्य यह है कि अध्यापक अध्ययन कक्ष में मुक्त अभिव्यक्ति का वातावरण उत्पन्न करे और सृजनात्मक कार्य के लिए अवसर प्रदान करे।

पिछड़े छात्रों की शिक्षा

9.58. शैक्षिक सुविधाओं के शीघ्र विस्तार के साथ-साथ स्कूलों में पिछड़े छात्रों की संख्या भी बढ़ रही है। शैक्षिक स्तर तक पहुंचने की असमर्थता के कारण अथवा अपनी आवश्यकताओं एवं रुचि से मुख्यतः असबम्द्ध शैक्षिक कार्यक्रम के प्रति उकताहट एवं कुंठा के कारण इनमें से अधिकांश छात्र एक या दूसरे स्तर पर स्कूल छोड़ देते है। इनमें से काफी कुछ छात्रों के हाईस्कूल या कालेज में प्रवेश पा लेने पर भी उनकी प्रगति का स्तर अत्यन्त शोचनीय ही रहता है।

9.59. **पिछड़ेपन के प्रकार**—पिछड़ापन निम्नलिखित एक या अक्सर मिलते-जुलते दो कारणों से होता है : (1) मानसिक अवरोध अल्पबुद्धि जो वंशागत जन्मजात कारणों या रोग अथवा चौट से पैदा होते हैं; (2) बहुधा भावात्मक अन्तर्द्वन्द्व अभिप्रेरणा का अभाव, अध्ययन की अच्छी आदतों का न होता, सांस्कृतिक वंचना एवं आर्थिक कठिनाई के कारण अपेक्षा से कम विद्यार्जन अथवा अपनी बुद्धि के अनुरूप निष्पादन में असमर्थता, विशेषतः सुसम्पन बुद्धि वाले व्यक्तियों में। शैक्षिक रूप से प्रगतिशील देशों में किए गए अध्ययनों के आधार पर यह अनुमान लगाया गया है कि 75 प्रतिशत पिछड़े छात्र जिन्हें मानसिक रूप से अक्षम कहा जाता है प्रथम वर्ग में आते हैं, और शेष 25 प्रतिशत द्वितीय वर्ग में आते हैं जिनको सामान्यतः अल्पार्जी कहा जाता हैं। जहां तक हमारा सम्बन्ध है पिछले वर्ग की संख्या स्पष्टतः कहीं अधिक होगी। इन दोनों वर्गों के छात्र अलग-अलग कारणों से सामान्य शिक्षा से लाभ उठाने में असमर्थ हैं, परिणाम स्वरूप शैक्षिक सुविधाओं तथा मानवीय साधनों का अपव्यय होता है। एक विकासशील देश इनमें से किसी एक को भी वहन करने की क्षमता नहीं रखता।

9.60. **धीमे सीखने वालों की आवश्यकताओं की पूर्ति**—मानसिक रूप से अक्षम छात्रों को सामान्यतया चार वर्गों में बांटा जा सकता है। (1) जड़मति, (2) मूढ़ (3) शिक्षण योग्य परन्तु मानसिक रूप से अधम मोरीन तथा (4) मन्दबुद्धि या धीमे सीखने वाले। पिछड़े बालकों के पहले तीन वर्गों को जिनकी बुद्धिलब्धि 75 से नीचे है साधारण कक्षाओं में औपचारिक शिक्षा से कोई लाभ प्राप्त ही हो सकता तथापि मन्दबुद्धि छात्रों की के लिए उचित व्यवस्था होनी चाहिए क्योंकि वे अपने मानसिक विकास की धीमी गति के कारण सामान्य बच्चों के साथ नहीं चल सकते। सामान्य कक्षाओं में जहां शिक्षा पारस्परिक रूप से ही सामान्य छात्रों की अनावश्यकताओं से सम्बन्धित है मन्दबुद्धि छात्रों को अत्यन्त कठिन परिस्थिति में कार्य करना पड़ता है। उन्हें कदाचित वैयक्तिक ध्यान, उपचारी सहायता और अपनी अध्ययन-गति के अनुकूल एक संशोधित पाठ्यचर्या की आवश्यकता है। जैसा कि शैक्षिक रूप से कुछ प्रगतिशील देशों में किया जा चुका है, बडे शहरों में इनके लिए विशेष स्कूलों की स्थापना सम्भव है। किन्तु अधिकतर सामान्य स्कूलों में विशेष कक्षाएं तथा जहां तक संभव हों वैयक्तिक ट्यूशन ही इसका सामान्य उपचार है। इस प्रकार का उपचार उनके उपयुक्त भावात्मक तथा सामाजिक विकास में भी लाभकारी हो सकता है।

9.61. **अल्पार्जकों की समस्या**—अल्पार्जक या कम सीख पाने वाले समूह में वे बच्चे शामिल है जो बौद्धिक रूप से मन्द नहीं हैं किन्तु जिनकी योग्यता औसत दर्जे की तो होती ही है और उच्चकोटि की हो सकती है। ऐसे बच्चों की असफलता हमारे जैसे विकासशील देश के लिए अत्यन्त चिन्ता का विषय हैं। हम उच्चतर योग्यता के क्षेत्र में संभावी जनशक्ति की इस हानि के प्रति उदासीन नहीं रह सकते। अल्पार्जक बालक के निहित योग्यता के स्तर तक न पहुंच पाने के लिए अनेक शारीरिक, बौद्धिक भावात्मक तथा परिवेशीय कारण उत्तरदायी हैं। अतएव सबसे पहले निरीक्षण तथा यदि संभव हो तो मनोवैज्ञानिक परीक्षण द्वारा इस असफलता के कारणों का निदान किया जाए। आंकड़ों के ऐसे समाकलन से स्थिति तथा उपचारी इलाज का स्वरूप समझ में आ जाएगा।

9.62. बच्चे की त्रुटियों और कठिनाइयों का एक बार पता लग जाने पर एक उपचारी कार्यक्रम बनाना

चाहिए और उसको कार्यान्वित करना चाहिए : पाठ्य-विषय अथवा विषयों में योग्यता-स्तर का उन्नयन, उसकी बुनियादी त्रुटियों का सुधार, सफलता प्राप्ति की योग्यता में आत्म-विश्वास को जमाना तथा अध्ययन में नवीन रुचि और उत्साह पैदा करना उपचारी कार्यक्रम का उद्देश्य होना चाहिए। उपचारी उपायों में यथासंभव छात्रों का अधिकाधिक भाग हो और व्यक्तिगत या छोटे-छोटे वर्गों में इनकी व्यवस्था की जाए। छात्र की प्रगति का मूल्यांकन उसके पिछले कार्य संपादन को देखते हुए करना चाहिए न कि किसी बाह्य स्तर पर। प्रारम्भिक स्तर पर पढ़ने में, वर्ण-विन्यास में तथा गिनती के कार्यों में और ऊपर स्तर पर भाषा तथा संगणनात्मक कार्यों में उपचारी कार्यक्रमों की विशेष आवश्यकता है।

9.63. क्योंकि शैक्षिक रूप से मंदबुद्धि छात्रों के कम सीख पाने का कारण उनकी अन्तर्जात निम्नमानसिक योग्यता नहीं, इसलिए उपचारी कार्यक्रमों द्वारा स्कूल-प्रणाली इन आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकती है। छात्र को सहायता की आवश्यकता एक सीमित समय के लिए और वह भी एक सीमित अध्ययन क्षेत्र में ही होती है। सप्ताह में कुछ विशिष्ट कालविधि के लिए एक या दो रुचि रखने वाले अध्यापकों को उत्तरदायित्व सौंपने से ही यह कार्य पूरा हो जाएगा। जहां बाल मार्गदर्शन निदानशाला विद्यमान हैं—यद्यपि इस समय यह सुविधा अति-सीमित है—वहां नियमित अन्तराल पर कुछ स्कूलों के लिए उच्च प्रशिक्षित कार्मिकों की सहायता प्राप्त हो जाएगी। सप्ताह में दो या तीन दिन काम करने के लिए उपचारी वर्गों की भी स्कूल समय के उपरान्त स्थापना की जा सकती है। इनमें से प्रत्येक वर्ग का एक विषय-विशेषज्ञ होगा।

9.64. पिछड़े छात्रों की शिक्षा, विशेषकर इस वर्ग की पहचान इनके विशेष दोषों के निदान तथा इनकी शिक्षा एवं भावी व्यवसाय की आयोजना में मार्गदर्शन एवं परामर्श सेवाओं का महत्वपूर्ण स्थान है। किन्तु इन सेवाओं का अभी विकास नहीं हो पाया है। अतएव स्कूल अध्यापकों से मिल सकने वाले यत्किंचित सहयोग एवं मार्गदर्शन की सहायता से ही इस कार्यक्रम को जारी रखा जाए। इन बच्चों की समस्या के प्रति सहानुभूति, समझ एवं बाल-मनोविज्ञान में दीर्घकालीन अनुभव जन्य अन्तर्दृष्टि पर आधारित समूचे स्कूल शिक्षक वर्ग का समन्वित उपागम इस कार्यक्रम की सफलता का मुख्य अंग है। साधारणतया अध्यापक को इस योग्य होना चाहिए कि वह अल्पार्जकों को कुछ सहायता दे सके। विशेष समस्याओं पर विचारार्थ अभिभावकों का सहयोग पाने के लिए अभिभावक-अध्यापक संघ गतिमान हो जाएं तथापि यह आवश्यक है कि प्रत्येक बड़े शहर में कम-से-कम एक छात्र मार्गदर्शन निदानशाला हो जिसमें कर्मचारियों की पर्याप्त व्यवस्था हो। पिछड़ेपन की गम्भीर समस्याओं के निदान एवं उनकी उपचारी सहायता के लिए इन निदानशालाओं की सलाह ली जाए।

मूल्यांकन का नवीन कार्यक्रम

9.65. भारत में परीक्षा प्रणाली की बुराइयों से प्रत्येक व्यक्तिभली-भांति परिचित है। शिक्षा के सभी स्तरों विशेषतः माध्यमिक शिक्षा पर इस प्रणाली के घातक प्रभावों की अनेक समितियों तथा आयोगों की रिपोर्टों में विवेचना की गई है। माध्यमिक शिक्षा स्तर पर इन दोषों का पर्यवेक्षण करने के बाद माध्यमिक शिक्षा आयोग ने स्कूल मूल्यांकन की पद्धतियों और बाह्य परीक्षा में सुधार करने के लिए कई ठोस सुझाव रखे। इन प्रस्तावों के परिणामस्वरूप एक परीक्षा सुधार आन्दोलन चला जिसे 1958 में भारत सरकार द्वारा स्थापित प्रशिक्षित मूल्यांकन अधिकारियों के केन्द्रीय परीक्षा एकक से और बल प्राप्त हुआ। आधुनिक मूल्यांकन संकल्पना की महत्ता पर विशेष बल नवीन सुधार आन्दोलन की प्रमुख विशिष्टता है। इस संकल्पना को पिछले कुछ वर्षों से भारत के शैक्षिक क्षेत्रों में उत्तरोत्तर अधिक मान्यता प्राप्त हो रही है।

9.66. **मूल्यांकन की नवीन अवधारणा**—यह सर्वमान्य है कि मूल्यांकन की एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है जो शिक्षा प्रणाली का एक अभिन्न अंग है। इससे छात्र की अध्ययन की आदतों पर तथा अध्यापक की शिक्षण पद्धति पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। मूल्यांकन की प्रविधियां वांछित दिशाओं में छात्र के विकास विषय में प्रमाण संग्रहित करने का साधन हैं। अतएव ये प्रविधियां प्रामाणिक, विश्वसनीय, वस्तुपरक एवं व्यावहारिक हों। क्योंकि मूल्यांकन के लिए भारत में प्रचलित सामान्य पद्धति (और प्रायः एकमात्र पद्धति ही) लिखित परीक्षा है अतएव नवीन उपागम की मान्यता का एक स्वाभाविक परिणाम, लिखित परीक्षा में ऐसा सुधार करना होगा कि यह शैक्षिक निष्पादन का एक प्रामाणिक एवं विश्वसनीय साधन बन जाय। छात्र के विकास के तथापि कई ऐसे महत्वपूर्ण पहलू हैं जो लिखित परीक्षा द्वारा नहीं मापे जा सकते। इस उद्देश्य हेतु प्रमाण संग्रह के लिए प्रेक्षण की प्रविधि मौखिक और क्रियात्मक परीक्षा जैसी अन्य पद्धति प्रकल्पित करनी होगी। इन पद्धतियों में सुधार किया जाए

तथा इन्हें छात्र के कार्य निष्पादन एवं शैक्षिक विकास के मूल्यांकन के हेतु विश्वसनीय उपकरण बनाया जाए।

9.67. **सधार आन्दोलन की प्रगति**—अपने अस्तित्व के लिए सात वर्षों में मूल्यांकय तकनीक और नवीन अवधारणा को लोकप्रिय बनाने के लिए केन्द्रीय परीक्षा यूनिट ने एक बहुमुखी अभियाय शुरू किया है। इसने विचार गोष्ठियों तथा वर्कशापों में हजारों माध्यमिक स्कूल अध्यापकों के साथ कार्य किया, प्रशिक्षण महाविद्यालयों के सैकड़ों प्राध्यापकों को नवीय प्रविधियों से परिचित कराया, परीक्षण उपकरणों के विशाल निकाय को स्थापित किवा, माध्यमिक शिक्षा के विभिन्न बोर्डों से सम्बद्ध प्रश्न-पत्र बनाने वालों को प्रशिक्षण दिया, मूल्यांकन पर अच्छे साहित्य का प्रकाशन किया और परीक्षाओं की विभिन्न व्यावहारिक समस्याओं पर अध्ययन और अन्वेषण कार्य का संपादन अथवा प्रवर्तय किया। यूनिट का कार्य विस्तृत हो जाने पर भारत सरकार ने तीसरी योजना की अवधि में विभिन्न राज्यों में मूल्यांकन एकक की स्थापना के लिए स्वीकृति दे दी है। अब तक 12 राज्य और एक संघशासित प्रदेश में राज्य मूल्यांकन एककों ने कार्य करया आरम्भ कर दिया है।

9.68. परन्तु यह कार्य अति विशाल है और स्कूली उद्देश्यों, अध्ययन अनुभवों और मूल्यांकन की विधियों पर इन नवीन उपायों का प्रभाव पड़ने में अभी काफी समय लगेगा। विभिन्न बोर्डों द्वारा किए गए प्रयत्नों के बावजूद परीक्षा के प्रमुख दोषों में कोई सुधार नहीं हुआ है। स्कूल परीक्षा का स्वरूप अधिकतर वाह्य परीक्षा के आधार पर निर्धारित किया जाता है, कम-से-कम ऊंची कक्षाओं में तो ऐसा अवश्य ही है। इन आन्तरिक परीक्षाओं में मूल्यांकन की नवीन प्रविधियां आसानी में नहीं अपनाई जाती है। इसके अतिरिक्त, सुधार की दिशा में समस्त प्रयत्न माध्यमिक शिक्षा तक ही सीमित रह गए हैं। प्राथमिक स्तर पर परीक्षाओं के सुधार की दिशा में बिलकुल ध्यान नहीं दिया गया है और विश्वविद्यालय स्तर पर भी इस क्षेत्र में प्रयास नहीं के बराबर हुआ है।

9.69. **अवर प्राथमिक स्तर पर मूल्यांकन**—अपनी मूल योग्यताओं के विष्पत्ति स्तर को उन्नत करने तथा उचित आदतों एवं अभिवृत्तियों को विकसित करये में छात्रों की सहायता करना प्राथमिक स्तर पर मूल्यांकन का एक मुख्य उद्देश्य है। इन उद्देश्यों तथा मूल्यांकन के सम्बन्ध में इनके आशयों से अध्यापकों को भली भांति अवगत करा देना चाहिए। जैसा कि हम पहले किसी अध्याय में भी सुझा चुके हैं, 1-4 कक्षाओं तक के अवर प्राथमिक स्तर को अवर्गिक एकक मानना उचित होगा क्योंकि इससे भिन्न-भिन्न पृष्ठभूमि से आए हुए छात्रों को अपनी विकास-गति के अनुसार बढ़ने में सहायता मिलेगी। किन्तु अधिकांश प्राथमिक स्कूलों में परिस्थितियां इस विधि के सामान्य अंगीकरण के अनुकूल नहीं हैं, हमारा सुझाव था कि पहली तथा दूसरी कक्षाओं को अवर्गिक एकक माना जाए और यह प्रयोग शुरू में इन कक्षाओं में किया जाए। इससे पहली कक्षा में ही छात्रों को रोकने की प्रचलित पद्धति तथा उसके कारण व्यर्थता और बीच में ही पढ़ाई छोड़ने की प्रवृत्ति समाप्त हो जाएगी। इससे पहले दो कक्षाओं के शैक्षिक कार्यक्रम को सातत्य एवं लचीलापन भी प्राप्त होगा। इस द्विवर्षीय खंड को दो वर्गों में विभाजित कर दिया जाए—एक धीमे सीखने वालों के लिए और दूसरा तीव्रगति के सीखने वालों के लिए, जिससे भिन्न-भिन्न छात्रों को अपनी योग्यता के स्तर पर चलने तथा एक एकक से दूसरे एकक में जाने का अवसर मिले। तथापि ऐसा विभाजन प्रति कक्षा में एक से अधिक सैक्शन वाले बड़े आकार के स्कूल में ही संभव हो सकेगा। पहली तथा दूसरी कक्षाओं में अवर्गिक एकक के इस प्रयोग के सफल होने पर इसे प्राथमिक स्तर की शेष कक्षाओं पर भी लागू किया जा सकता है।

9.70. वियमित प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों एवं अनुस्थापन कार्यक्रमों द्वारा अध्यापकों को इस अवर्गीय प्रणाली के लिए तैयार किया जाए तथा उनकी सहायता के लिए नैदानिक परीक्षाए तथा उपचारी सामग्री प्रदाय की जाए। अनुस्थापन कार्य राज्य शिक्षा संस्थानों द्वारा किया जा सकता है। अध्यापकों को इस स्तर पर प्रेक्षण-प्रविधियों का आयोजित एवं व्यवस्थित उपयोग करना चाहिए क्योंकि छात्र की विकास-गति के निर्धारण के लिए मूल्यांकन की केवल औपचारिक प्रविधियों की अपेक्षा ये कहीं अधिक विश्वसनीय हैं।

9.71. **उच्चतर प्राथमिक स्तर पर मूल्यांकन**—आजकल इन कक्षाओं में मूल्यांकन अधिकतर लिखित परीक्षाओं के आधार पर किया जाता है। हमारी राय में यहां भी मौखिक परीक्षाओं को उचित स्थान मिलना चाहिए और वे आन्तरिक परीक्षण का एक अंग हों। इस प्रकार के निर्धारण में अध्यापक की सहायता के लिए राज्य मूल्यांकग संगठनों द्वारा मानकित निष्पत्ति परीक्षण[1] तथा मूल्यांकन सामग्री की भरपूर व्यवस्था की जाए। इस स्तर पर, और वास्तव में सारे स्कूली स्तर पर, नैदानिक परीक्षा की आवश्यकता है। अधिकांश अवस्थाओं में इस प्रकार का परीक्षण अध्यापक रचित साधारण परीक्षाओं द्वारा किया जाएगा। संचित वृत्तकार्ड का अत्यन्त महत्वपूर्ण

1. इस कार्यक्रम की चर्चा अध्याय दस में की गई है।

स्थान है क्योंकि इसके द्वारा प्रत्येक स्तर पर छात्र की वृद्धि एवं उसके विकास, उसकी शिक्षा-विषयक एवं भावनात्मक समस्याओं, उसकी समंजन कठिनाइयों का ज्ञान होता है तथा यह पता लगता है कि उनकी समस्याओं अथवा कठिनाइयों का हल करने के लिए किन-किन दिशाओं में उपचारी कार्य किए जाएं। हमारे विचार में प्राथमिक कक्षाओं के संचित वृत्त-कार्ड अति सरल होने चाहिए जिससे प्राथमिक स्कूल अध्यापक थोड़े से प्रशिक्षण से ही उनका उपयोग करना सीख जाएं। प्रथम अवस्था में इन कार्डों का उपयोग चुने हुए स्कूलों में से लगभग 10 प्रतिशत स्कूलों की चौथी और उससे ऊपर की कक्षाओं में किया जाए। परन्तु बालक के व्यक्तित्व के कुछ महत्वपूर्ण पहलुओं के मूल्यांकन तथा वृत्तों को समुचित ढंग से रखने के लिए अधिकांश अध्यापकों के एक बार प्रशिक्षित हो जाने पर इन कार्डों का उपयोग उच्चतर प्राथमिक स्कूलों में तथा अगली बार अवर प्राथमिक स्कूलों में भी किया जाना चाहिए।

9.72. **क्या प्राथमिक बाह्य परीक्षा अनिवार्य है ?** — अनेक साक्षियों ने आयोग के सम्मुख इस बात पर बल दिया कि प्राथमिक स्तर (कक्षा सात या कक्षा आठ) की समाप्ति पर अनिवार्य रूप में छात्रों की बाह्य-परीक्षा ली जानी चाहिए। हमें यह बताया गया कि कुछ राज्यों में जहां इस स्तर के लिए बाह्य परीक्षा पहले समाप्त कर दी गई थी, इसें या तो पुनः आरम्भ कर दिया गया है वा निकट भविष्य में पुनः आरम्भ करने का विचार कर रहे हैं। यह कहा गया कि (1) इस स्तर की समाप्ति पर कुछ समान-स्तर रखने के लिए; (2) माध्यमिक स्तर पर पाठ्यक्रमों के चुनाव के आधार की व्यवस्था के लिए; तथा (3) अच्छे अध्यापन के लिए एक बाह्य परीक्षा आवश्यक है। किन्तु ये सारे तर्क यह सिद्ध नहीं करते कि सातवीं या आठवीं कक्षाओं के सब छात्रों के लिए औपचारिक ढंग की एक बाह्य परीक्षा अनिवार्य है। यद्यपि हमने अन्यत्र यह सिफारिश की है कि प्राथमिक स्तर की समाप्ति को ही उपलब्धि का प्रथम राष्ट्रीय स्तर माना जाए तब भी हम वांछनीय नहीं मानते कि एक राज्य या एक जिले के भी सारे प्राथमिक स्कूलों के छात्रों के लिए बाह्य परीक्षा के माध्यम से उपलब्धि का एक समान स्तर निर्धारित किया जाए। इसके अतिरिक्त सबके लिए अविवार्य बाह्य परीक्षा अध्यापकों को अच्छे अध्यापन के लिए प्रोत्साहित करने की अपेक्षा उन पर बँधे-बँधाये कार्यक्रमों का बोझ लाद देगी और रटने की उस प्रक्रिया को प्रोत्साहित करेगी जिस कुरीति ने हमारे स्कूलों में अध्ययन और अध्यापन की पद्धतियों को पहले से ही बुरी तरह आक्रांत कर रखा है। पुनः, क्योंकि अवर माध्यमिक स्तर पर पूर्णकालिक शिक्षा में अधिकतर विविध धारा रहित सामान्य शिक्षा की व्यवस्था होगी अतः विषय विकल्प के सम्बन्ध में दिया हुआ तर्क युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होता; तथा इस स्तर पर उपलब्ध पूर्णकालिक व्यावसायिक पाठ्यक्रमों की ओर ले जाने के हेतु, एक ऐसी परीक्षा, जो केवल बौद्धिक योग्यता एवं शैक्षिक उपलब्धि की जाँच करे, कोई विशेष उपयोगी सिद्ध नहीं होगी। अतः हमारी सिफ़ारिश है कि प्राथमिक स्कूल स्तर की समाप्ति पर कोई अनिवार्य बाह्य परीक्षा न ली जाए।

9.73. यद्यपि इस समय हम बाह्य-परीक्षा के अनिवार्य होने के पक्ष में नहीं हैं तथापि हमारा विश्वास है कि उचित स्तर बनाए रखने के लिए प्राथमिक स्कूलों में निष्पादन के स्तर का समय-समय पर निरीक्षण आवश्यक है। हमारी राय में राज्य मूल्यांकन संगठन में विशेषज्ञों द्वारा तैयार किए गए प्रामाणिक अथवा विशेष परिष्कृत परीक्षणों के आधार पर किसी निर्धारित क्षेत्र में स्कूलों के निष्पादन स्तर के मूल्यांकन के लिए जिला शिक्षा अधिकारियों द्वारा ऐसे सर्वेक्षण किए जाने चाहिएं। यह क्रियाविधि शिक्षा अधिकारियों को पिछड़े हुए स्कूलों को चुनने और निष्पादन स्तर में सुधार लाने में सहासक सिद्ध होगी। इसके द्वारा स्कूलों को उपचारी कार्य की दृष्टि से अपने छात्रों की कमजोरी का पता लगाने में सहायता मिलेगी।

9.74. **अन्तःस्कूल तुलनीयता के लिए एक सामान्य आंतरिक परीक्षा**—उपर्युक्त प्रामाणिक वा परिष्कृत परीक्षण सामग्री के उपयोग द्वारा जिला शिक्षा अधिकारी, अगर वे ऐसा चाहें तो, जिले के समस्त स्कूलों के छात्रों के लिए प्राथमिक स्तर की समाप्ति पर एक सामान्य परीक्षा की व्यवस्था कर सकते हैं। यह सार्वजनिक बाह्य परीक्षा बहुत से राज्यों में इस समय प्रचलित स्कूल प्रमाणपत्र परीक्षा से भिन्न होगी, क्योंकि यद्यपि इस परीक्षा के प्रश्नपत्र जिला अधिकारियों द्वारा अथवा राज्य मूल्यांकन संगठन द्वारा नियुक्त विशिष्ट प्राश्निकों द्वारा बनाए जाएंगे, तथापि प्रत्येक सम्मिलित स्कूल के छात्रों के निष्पादन का मूल्यांकन उसी स्कूल के अध्यापकों द्वारा किया जाएगा, किसी बाह्य परीक्षक द्वारा नहीं। प्राथमिक स्कूलों के लिए ऐसी सामान्य अंतिम परीक्षा के स्पष्टतः बहुत लाभ है। प्रश्न पत्रों में मानकित परीक्षण तथा उच्च रूप से परिष्कृत एवं वृत्तिक जाँच प्रश्न होने के कारण साधारण प्राथमिक स्कूलों द्वारा ली जाने वाली वार्षिक एवं अन्तिम परीक्षाओं के द्वारा किए गए मूल्यांकन की अपेक्षा इस प्रकार का मूल्यांकन अधिक प्रामाणिक एवं

विश्वसनीय होगा। इसके अतिरिक्त, ऐसे सामान्य परीक्षणों द्वारा जिले के निष्पादन स्तर के सम्बन्ध में अन्तःस्कूल तुलनीयता प्राप्त की जा सकती है, और जैसा कि ऊपर कह चुके हैं, यह तुलनीयता शिक्षा अधिकारियों तथा स्कूलों दोनों के लिए लाभप्रद होगी। हम इस बात पर बल देना चाहेंगे कि इस सामान्य परीक्षा के विभिन्न विषयों के प्रश्न-पत्र अल्प अवधि के हों, प्रत्येक प्रश्नपत्र एक या डेढ़ घंटे से अधिक अवधि का न हो ताकि समूची परीक्षा दो या तीन दिन में समाप्त हो जाए।

9.75. इस सुझाव का सम्पूर्ण उद्देश्य प्रचलित परीक्षा-प्रणाली को कम औपचारिक बनाकर, छात्रों के मस्तिष्क पर से उस बोझ को हल्का बना कर तथा शैक्षिक उपलब्धि के साधन के रूप में उसकी मान्यता बढ़ाकर उसमें सुधार करना है। प्राथमिक स्तर पर ऐसी उपलब्धि के सम्पूर्ण मूल्यांकन का निर्णायक स्कूल होगा। पाठ्यक्रम की समाप्ति का प्रमाण-पत्र स्कूल द्वारा दिया जाना चाहिए, किसी वाह्य अभिकरण द्वारा नहीं। इस प्रमाणपत्र के साथ सार्वजनिक अन्तिम परीक्षा के परिणाम तथा छात्र के संचित वृत्त कार्ड में अंकित उसके सम्पूर्ण वर्ष के कार्य के आंतरिक-मूल्यांकन के परिणाम का विवरण संलग्न हो।

9.76. इस सामान्य परीक्षा के अतिरिक्त प्राथमिक पाठ्यक्रम की समाप्ति पर छात्रवृत्ति वा विशेष योग्यता प्रमाण-पत्र प्रदान करने के लिए अथवा प्रतिभा पहचानने के लिए विशेष परीक्षाएं ली जा सकती हैं जिनमें छात्र स्वेच्छा से भाग ले सकें। इन परीक्षाओं में छात्र के कार्य का मूल्यांकन बाह्य परीक्षकों द्वारा किया जाना चाहिए।

9.77. **बाह्य परीक्षाओं में सुधार**—आजकल उच्चतर माध्यमिक अथवा स्कूलों में स्थित इंटरमीडियेट कक्षाओं की बाह्य परीक्षा राज्य माध्यमिक (अथवा उच्चतर माध्यमिक) शिक्षा बोर्ड द्वारा तथा पूर्व विश्वविद्यालय कक्षा की परीक्षा सम्बन्धित विश्वविद्यालय द्वारा ली जाती है। हमारी राय में सम्बद्ध महाविद्यालयों में स्थित पूर्व-विश्वविद्यालय कक्षाओं को दस वर्षीय अवस्थाबद्ध कार्यक्रम के अन्तर्गत उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं के रूप में स्कूलों में स्थानान्तरित कर दिया जाए और उच्चतर माध्यमिक पाठ्यक्रमों की अवधि 1986 की समाप्ति तक सर्वत्र दो वर्ष बढ़ा दी जाए।[1] इन कक्षाओं के एक मात्र रूप से स्कूलों में स्थित हो जाने पर ग्यारहवीं (अथवा बारहवीं) कक्षा के अन्त में तथा दसवीं कक्षा के अन्त में भी स्कूल शिक्षा बोर्ड को वाह्य परीक्षा लेनी चाहिए। संक्रमण काल में वर्तमान दुहरा नियंत्रण चलता रहेगा निम्नलिखित बातें स्कूल स्तर की सभी वाह्य परीक्षाओं पर समान रूप से लागू हैं चाहे ये परीक्षाएं आजकल बोर्डों द्वारा ली जा रही हों अथवा विश्वविद्यालयों द्वारा :

(1) वर्तमान वाह्य परीक्षा प्रणाली की अधिकांश कमजोरियां परीक्षा के लिए बनाए गए प्रश्नों तथा प्रश्न-पत्रों के दोषों के कारण हैं। प्रश्नपत्र बनाने वालों की नियुक्ति अधिकतर वरिष्ठता विषय-योग्यता एवं अध्यापन अनुभव के आधार पर की जाती हैं। उनमें से बहुत थोड़ों को ही प्रामाणिक एवं विश्वसनीय परीक्षाओं की रचना के विषय में आवश्यक जानकारी हैं। हमारी राय में बाह्य परीक्षाओं के सुधार की दिशा में किसी विशेष उन्नति की सम्भावना तभी हो सकती है जबकि (क) राज्यबोर्ड द्वारा प्रायोजित गहन-प्रशिक्षण कार्यक्रमों के माध्यम से प्रश्नपत्र बनाने वालों की प्राविधिक, योग्यता में वृद्धि की जाए; (ख) प्रश्नपत्रों का उद्देश्य ज्ञानार्जन परीक्षा की अपेक्षा ज्ञान-प्रयोग योग्यता एवं समस्या समाधान योग्यताओं के विकास की परीक्षा माना जाए; (ग) प्रश्नपत्रों के स्वरूप में सुधार किया जाए।

(2) प्रश्नों तथा प्रश्नपत्रों में सुधार के अतिरिक्त, बाह्य परीक्षा की अन्य अनेक विधियों को अधिक व्यवस्थित एवं वैज्ञानिक बनाने की आवश्यकता है। उदाहरणतः मानकीकरण किए बिना ही भिन्न-भिन्न विषयों के प्राप्तांकों को जोड़ दिया जाता है। कटौती अंक का निर्धारण, रियायती अंकों का प्रदान तथा इसी प्रकार के अन्य तरीके भी किसी युक्तिसंगत तर्क पर आधारित नहीं हैं। इन सब कारणों से परीक्षा में कम अंक प्राप्त होते हैं तथा इनकी विश्वसनीयता कम हो जाती है। यह अत्यन्तावश्यक है कि परीक्षा फलांकन के लिए वैज्ञानिक विधियां खोज निकाली जाएं जिससे परीक्षार्थी के कार्य-मूल्यांकन में ज्यादा से ज्यादा विश्वसनीयता आए।

(3) बोर्ड की परीक्षाओं में छात्रों की निरन्तर बढ़ती संख्या के कारण उत्तर-पत्रों की समुचित जांच तथा निश्चित समय के भीतर परीक्षाफलों के कुशल विधायन का कार्य दिन-प्रतिदिन कठिन होता जा रहा है। यह आवश्यक है कि इस प्रक्रिया को यांत्रिक बनाया जाए जिससे यह अधिक परिशुद्ध एवं शीघ्रगामी बन जाए।

9.78. **असफलताओं की बड़ी संख्या**—अधिकांश जनता की अत्यधिक व्यग्रता का कारण फलांकन विधियों

1. अध्याय दो।

अयुक्ति अथवा प्रशासनिक प्रक्रियाओं की असफलता नहीं अपितु स्कूल स्तर की समाप्ति पर ली जाने वाली बाह्य-परीक्षा में असफल छात्रों की विशाल संख्या है। विभिन्न बोर्ड-परीक्षाओं के विगत पांच वर्षों के परिणामों के विश्लेषण से यह ज्ञात होता है कि हाई स्कूल परीक्षा में बैठने वालों में से 55 प्रतिशत तथा उच्चतर माध्यमिक स्कूल परीक्षा में बैठने वालों में से 40 प्रतिशत छात्र प्रति वर्ष नियमित रूप से असफल होते है।[1] प्राइवेट छात्रों के विषय में तो यह संख्या 70 प्रतिशत अथवा उससे भी अधिक बढ़ गई है। असफलता का कारण प्रायः असफल छात्रों के उत्साह का कम हो जाना है। वर्ष प्रतिवर्ष वार्षिक तथा अन्य स्कूली परीक्षाओं के द्वारा की गई छंटाई के उपरान्त भी इतनी अधिक संख्या में छात्रों की असफलता हमारी शिक्षा पद्धतियों और परीक्षा प्रणाली की दुरवस्था प्रदर्शित करती हैं।

9.79. इसमें कोई सन्देह नहीं कि यदि बाह्य परीक्षा में सुधार के लिए ऊपर सुझाए गए उपायों को उचित रूप से कार्यान्वित किया जाए तो आगामी वर्षों में स्थिति में उत्तरोत्तर परिवर्तन हो जाएगा। हमारा यह भी विश्वास है कि पाठ्यचर्या अनुदेशीय सामग्री एवं शिक्षण पद्धतियों में प्रस्तावित संशोधन से परीक्षा में असफल होने वालों की संख्या कम हो जाएगी। किन्तु हम नहीं मानते कि कुछ विषयों में पास होने पर तथा अन्य विषयों में उचित श्रेणी न प्राप्त करने पर एक विद्यार्थी को एकदम असफल करार दे दिया जाए। इस बात में कोई तुक नहीं कि अपने शैक्षिक प्रयास में आंशिक रूप में सफल होने पर भी उस पर एक असफल परीक्षार्थी होने का लांछन लगा रहे।

9.80. **स्कूल और बोर्ड के द्वारा दिए गए प्रमाण-पत्र**—हमारी राय में अवर अथवा उच्चतर माध्यमिक स्तर की समाप्ति पर ली गई बाह्य परीक्षा के परिणामों के आधार पर बोर्ड द्वारा दिए गए प्रमाण-पत्र में परीक्षार्थी को केवल उत्तीर्ण विषयों में ही निष्पत्ति दिखाई जाए और ऐसा कोई उल्लेख न किया जाए कि विद्यार्थी सम्पूर्ण परीक्षा में सफल या असफल हुआ है। तथापि बोर्ड को प्रमाण-पत्र के साथ सम्पूर्ण विषयों में इसके प्राप्तांक या श्रेणी (डिविजन) का विवरण भी देना चाहिए। निष्पादन में सुधार के लिए हमारी यह भी सिफ़ारिश है कि परीक्षार्थी को, यदि वह ऐसा चाहे तो सम्पूर्ण परीक्षा अथवा अलग-अलग विषयों की परीक्षा में फिर से बैठने की अनुमति दी जाए।

9.81. अवर अथवा उच्चतर माध्यमिक स्तर के अन्त में पाठ्यक्रम की समाप्ति पर स्कूल को भी विद्यार्थी को एक प्रमाणपत्र देना चाहिए जिसमें संचित वृत्तकार्ड में अंकित आंतरिक मूल्यांकन का लेखा दिया हो। यह प्रमाणपत्र बाह्य परीक्षा के सम्बन्ध में बोर्ड द्वारा दिए गए प्रमाणपत्र से संलग्न कर दिया जाए। किन्तु हमारे विचार में दसवीं या ग्यारहवीं, बारहवीं कक्षा के सब विद्यार्थियों के लिए बाह्य परीक्षा अनिवार्य नहीं होनी चाहिए। केवल स्कूल के परिणाम-पत्र को लेकर बाह्य परीक्षा में बैठे बिना एक विद्यार्थी स्कूल छोड़ सकता है और नौकरी की तलाश कर सकता है। अथवा, इस प्रमाण-पत्र तथा स्कूल वृत्त के आधार पर किसी व्यावसायिक पाठ्यक्रम में प्रवेश पा सकता है। यह देखते हुए कि उच्चतर माध्यमिक शिक्षा तथा उच्चतर शिक्षा संस्थाओं में प्रवेश चयनात्मक होता है, इस बात का ध्यान रहे कि इन संस्थानों के नियंत्रक अधिकारी ग्राह्यता के लिए अपने ही नियम निर्धारित कर सकते हैं। इन संस्थाओं में प्रवेश पाने के इच्छुक विद्यार्थी को न केवल निर्धारित विषयों में बाह्य परीक्षण पास करना और निर्धारित श्रेणी प्राप्त करना, अपितु आवश्यकता होने पर इन संस्थाओं द्वारा निर्धारित कुछ प्रवेश परीक्षाओं में भी बैठना, पड़ सकता है।

9.82. **प्रयोगकर्ता स्कूलों की स्थापना**—स्कूल शिक्षा के ऊपर बाह्य परीक्षा के आधिपत्य को कम करने के लिए हमने ऊपर कुछ सुझाव दिए हैं। इसकी महत्ता और कम करने के लिए हमारी सिफ़ारिश है कि कुछ चुने हुए स्कूलों को दसवीं कक्षा के अन्त में स्वयं मूल्यांकन करने का और स्वयं अंतिम परीक्षा लेने का अधिकार होना चाहिए। यह परीक्षा राज्य स्कूली शिक्षा बोर्ड की परीक्षा के समकक्ष मानी जानी चाहिए। राज्य स्कूली शिक्षा बोर्ड की सिफ़ारिश के आधार पर इन सफल परीक्षार्थियों को प्रमाणपत्र प्रदान करेगा। इन स्कूलों के चयन की एक सचेत कसौटी निर्धारित करने के लिए स्कूली शिक्षा बोर्ड द्वारा एक उपसमिति नियुक्त की जानी चाहिए। ये स्कूल न केवल बाह्य परीक्षा के बन्धनों से परे हों अपितु इन्हें स्वयं अपनी पाठ्यचर्या-निर्माण, पाठ्यपुस्तक निर्धारण तथा विभागीय हस्तक्षेप के बिना अपने शैक्षिक क्रियाकलापों के संचालन का अधिकार होना चाहिए।

9.83. स्वतन्त्रता तथा शैक्षिक प्रयोग की दिशा में यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कदम है। किन्तु प्रयोगिक स्कूलों को दिए हुए अधिकारों पर समय-समय पुनर्विचार किया जाना चाहिए क्योंकि ऐसे अधिकार प्राप्त स्कूलों

1. पूरक खंड एक, भाग पांच।

को निरन्तर यह सिद्ध करना होगा कि वे इस विशेष सुविधा के योग्य हैं। तथापि हम आशा करते हैं कि कुछ स्कूलों में इस प्रयोग के सफल परीक्षण के उपरान्त अधिकाधिक स्कूल बाह्य परीक्षा के अवरोधक प्रभाव से मुक्त किए जाएंगे तथा उन्हें शिक्षा क्षेत्र में अपने निजी विचारों के विकास की स्वतंत्रता होगी।

9.84. **आन्तरिक मूल्यांकन की पद्धतियां**—अब हम आन्तरिक मूल्यांकन के प्रश्न पर दृष्टिपात करेंगे जिसका उल्लेख इस भाग में पहले ही दिया जा चुका है। पृथक् स्कूलों द्वारा किया गया आन्तरिक मूल्यांकन बड़ा महत्वपूर्ण है अतः इसको अधिक महत्व देना चाहिए। यह सर्वतोमुखी होना चाहिए और छात्र के विकास के उन सभी पहलुओं का, जो बाह्य परीक्षा द्वारा मापे जा सकते हैं तथा उन सभी व्यक्तिगत विशेषताओं, रुचियों और अभिवृत्तियों का भी जिनका बाह्य परीक्षा द्वारा मूल्यांकन नहीं किया जा सकता, मूल्यांकन करना चाहिए। मूल्यांकन को स्कूल के सम्पूर्ण शैक्षिक कार्यक्रम में सन्निहित करना चाहिए और छात्र के निष्पादन स्तर को प्रमाणित करने की अपेक्षा उनमें सुधार करने के लिए इसका प्रयोग अधिक होना चाहिए। यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि आंतरिक मूल्यांकन के सभी प्रकरणों का विशिष्ट फलांकन विधि द्वारा मूल्यांकन करने की आवश्यकता नहीं है। उनमें से कुछ प्रकरणों का मूल्यांकन विवरणात्मक ढंग से किया जा सकता है। परीक्षाफल पृथक् रखना चाहिए और कुल फलांक बनाने के लिए इसे अन्य परीक्षाफलों के साथ कृत्रिम रूप से नहीं जोड़ना चाहिए।

9.85. बाह्य परीक्षा के ढंग पर स्कूलों में ली जाने वाली परीक्षा में उसी प्रकार के सुधार किए जाएं। जहां भी उपलब्ध हो, प्रामाणिक निष्पादन-परीक्षणों का प्रयोग अधिकाधिक किया जाए। आंतरिक मूल्यांकन में सुधार करने के लिए रुचि तालिका, अभिवृत्ति परीक्षण तथा क्रमनिर्धारणमान जैसे मूल्यांकन के अन्य उपकरणों का विकास करना चाहिए; इनकी रचना विशेषज्ञ करें और ये स्कूलों को उपलब्ध हों। अन्तःसेवा के विस्तृत कार्यक्रमों द्वारा अध्यापकों को इनका उपयोग करने के लिए प्रशिक्षित करना चाहिए। दिए गए नमूनों के आधार पर सरल-परीक्षण बनाने और छात्रों के निष्पादन के मूल्यांकल के लिए उनका उपयोग करने के लिए भी अध्यापकों को प्रशिक्षित करना चाहिए।

9.86. यह हम जानते है कि आंतरिक मूल्यांकन का अभी तक संतोषजनक प्रयोग नहीं हुआ है तथा पिछड़े हुए स्कूलों ने लगातार अतिमूल्यांकन किया है। इस कारण कुछ आलोचकों ने यह सुझाव दिया है कि इस प्रणाली का एकदम परित्याग कर देना चाहिए। हम इस बात से सहमत नहीं हैं। आन्तरिक मूल्यांकन को जारी रखना और इसके महत्व पर उत्तरोत्तर बल देना आवश्यक है। इसमें सन्निहित दोषों को दूर करने के लिए हम निम्न-लिखित सिफारिशें करते हैं :

(1) आन्तरिक मूल्यांकन तथा बाह्य परीक्षा परिणामों को आपस में नहीं मिलाना चाहिए क्योंकि इन दोनों मूल्यांकनों के उद्देश्य तथा तकनीक में अन्तर होता है और विभिन्न संस्थाओं के आन्तरिक मूल्यांकन के परिणाम पूर्णतः तुलनीय नहीं होते। अतएव बाह्य तथा आन्तरिक मूल्यांकनों के परिणाम पाठ्यक्रम की समाप्ति पर दिए गए प्रमाणपत्र (पत्रों) में अलग-अलग दिखाए जाने चाहिए।

(2) स्कूलों में निरीक्षण के समय आन्तरिक मूल्यांकन के पुनर्विचार पर तथा आन्तरिक एवं बाह्य मूल्यांकनों के सहसम्बन्ध की जांच पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। निरन्तर अतिमूल्यांकन को स्कूल कार्यक्रम की दुर्बलता मानना चाहिए। स्कूलों के वर्गीकरण के लिए तथा सहायक-अनुदान के दृष्टिकोण से भी इस बात पर यथोचित ध्यान देना चाहिए। जिससे निरन्तर अति मूल्यांकन करने वाली संस्थाओं को आर्थिक एवं प्रतिष्ठा हानि होने का भय हो। सहायक अनुदान नियम ऐसे होने चाहिए जिसके अन्तर्गत शिक्षा विभाग को निरन्तर अनुत्तरदायी मूल्यांकन करने के कारण मान्यता हटा लेने का अधिकार हो।

9.87. **संक्रमण काल में उच्चतर माध्यमिक परीक्षा**—हम ऊपर सिफ़ारिश कर चुके हैं कि पहली बाह्य परीक्षा दसवीं कक्षा के अंत में या स्कूल शिक्षा के प्रथम स्तर पर तथा दूसरी बाह्य परीक्षा बारहवीं कक्षा, जो उच्चतर माध्यमिक शिक्षा का समाप्ति स्तर है, के उपरांत होनी चाहिए। वर्तमान स्थिति में उत्तर प्रदेश और केरल के अतिरिक्त अन्य सब राज्यों में ग्यारहवीं कक्षा के साथ-साथ उच्चतर माध्यमिक शिक्षा-स्तर की समाप्ति हो जाती है जिसके उपरांत उच्चतर माध्यमिक स्कूल परीक्षा होती है। जब तक पाठ्यक्रम की अवधि दो वर्ष आगे नहीं कर दी जाती यह स्थिति जारी रहेगी। अतएव संक्रमणकाल में अधिकांश विद्यार्थियों को एक साल के भीतर दसवीं तथा ग्यारहवीं कक्षा के अन्त में लगातार दो

परीक्षाओं में बैठना पड़ेगा। यह अवांछनीय है किन्तु इससे छुटकारा नहीं, विशेष कर जहां नवीं, दसवीं तथा ग्यारहवीं कक्षाओं का पाठ्यक्रम समन्वित नहीं है। पूर्व-विश्वविद्यालय पाठ्यक्रम के कालेजों से स्कूलों में स्थानान्तरित हो जाने पर यह पाठ्यक्रम समन्वित हो जाएगा।

9.88. कुछ राज्यों में पहले से समन्वित पाठ्यक्रम वाले स्कूलों की अच्छी संख्या होने के कारण हमारा यह आग्रह नहीं कि ऐसे समन्वय को तोड़ा जाए और छात्रों को एक वर्ष के भीतर ही दो सार्वजनिक परीक्षाओं में बैठने के लिए विवश किया जाए। ऐसे छात्रों के लिए एक ही सार्वजनिक परीक्षा होनी चाहिए : ग्यारहवीं कक्षा के अंत में उच्चतर माध्यमिक स्कूल परीक्षा। तथापि, हम इस सम्बन्ध में कुछ स्थानों में प्रचलित उस क्रिया-विधि की ओर ध्यान आकर्षित करना चाहेंगे जिसके अनुसार उच्चतर माध्यमिक स्कूल परक्षा की व्यवस्था दो-वर्षीय खंडों में की गई है। विषयों की परीक्षा दसवीं कक्षा की समाप्ति पर तथा ऐच्छिक विषयों की ग्यारहवीं कक्षा की समाप्ति पर होती है। यह क्रियाविधि उचित परिवर्तनों के साथ अन्य स्थानों में भी अपनाई जा सकती है। स्मरण रहे कि यह समस्या अस्थायी है, तथा स्कूलों के 10 + 2 के ढांचे में व्यस्थित हो जाने पर यह लुप्त हो जाएगी।

9.89. पूर्ववर्ती अनुच्छेदों में वर्णित व्यापक मूल्यांकन कार्यक्रम को कार्यान्वित करने के लिए राज्य एवं केन्द्रीय दोनों स्तरों पर एक सुसंगठित संगठन की आवश्यकता है। आजकल माध्यमिक स्तर पर बाह्य परीक्षा लेने वाले स्कूल शिक्षा के माध्यमिक बोर्डों को अधिक अधिकार एवं कार्य वाले स्कूली शिक्षा के राज्य बोर्डों में परिवर्तित कर दिया जाएगा। केन्द्र में स्कूली शिक्षा का एक राष्ट्रीय बोर्ड होगा जो राष्ट्रीय स्तर पर मूल्यांकन कार्यक्रमों की व्यवस्था करेगा। इन बोर्डों के गठन, अधिकार एवं कार्यों पर अगले अध्याय में विचार किया जाएगा।

दसवां अध्याय

स्कूल शिक्षा : प्रशासन और पर्यवेक्षण

एक. लोक शिक्षा की समान स्कूल-पद्धति—(3) **वर्तमान स्थिति**; (5) **लोक शिक्षा की समान स्कूल-पद्धति का निर्माण**; (6) **जिला स्कूल बोर्डों की स्थापना**; (7) **सरकारी स्कूल और स्थानीय स्वायत्त निकायों के स्कूल**; (9) **गैर-सरकारी स्कूल**; (18) **उच्च कोटि के गैर-सरकारी स्कूल**; (19) **पड़ोसी पाठशालाएं**; (21) **छात्रवृत्तियाँ**; (23) **उपसंहार**।

दो. स्कूल सुधार के राष्ट्रव्यापी कार्यक्रम का आयोजन—(25) **संस्थागत योजना तैयार करना**; (27) **सुविचारित योजना बनाना और प्रयास जारी रखना**; (28) **नम्यता और प्रयोग**; (29) **स्कूलों का वर्गीकरण**; (31) **कार्य-योजना**।

तीन. पर्यवेक्षण : राज्य शिक्षा विभागों का पुनर्गठन : जिला स्तर—(34) **जिला समितियों का पुनर्यठन और उन्हें पुनर्गठित करना**; (38) **प्रधानाध्यापक**; (39) **स्कूल-संकुलन**; (44) **तबीन पर्यवेक्षण**; (45) **प्रशासन को पर्यवेक्षण से अलग करना**; (46) **स्कूलों को मान्यता प्रदान करना**; (47) **निरीक्षण के प्रकार**; (48) **लचीला दृष्टिकोण**।

चार. राज्य शिक्षा विभागों का पुनर्गठन : राज्य स्तर—(50) **राज्य शिक्षा संस्थान**।

पांच. राज्य और राष्ट्रीय शिक्षा बोर्ड—(54) **शैक्षिक स्तर**; (57) **राज्य और राष्ट्रीय स्तर**; (59) **राज्य मूल्यांकन संगठन**; (64) **राज्य स्कूल शिक्षा बोर्ड**।

छह. केन्द्र का योगदान—(70) **राष्ट्रीय स्कूल शिक्षा बोर्ड की स्थापना**; (73) **बोर्ड का वठन और कर्तव्य**; (76) **केन्द्र प्रेरित क्षेत्र के लिए कार्यक्रम**।

सात. स्वतंत्र और मान्यता-अप्राप्त स्कूल—(77) **लोक शिक्षा की समान स्कूल-पद्धति के बाहर की शैक्षिक संस्थाएं**; (79) **स्वतंत्र स्कूल**; (80) **मान्यता-अप्राप्त संस्थाएं**।

10.01. स्कूल शिक्षा से सम्बन्धित इस अध्याय में हम पर्यवेक्षण और प्रशासन की समस्याओं का विवेचन करेंगे। हम यह विवेचन स्तर को सुधारने की समस्या पर विशेष ध्यान देते हुए करेंगे। पर्यवेक्षण और प्रशासन की सहानुभूतिपूर्ण और कल्पनाशील प्रणाली से शिक्षा-सुधार की शुरुआत की जा सकती है और साथ ही इसकी गति को बढ़ाया भी जा सकता है। इसके विपरीत कठोर नौकरशाही रवैया प्रयोग और सृजनशीलता का गला घोंट सकता है और शैक्षिक पुनर्निर्माण को प्रायः असम्भव बना सकता है।

10.02. **आवश्यक सुधार**—स्कुल शिक्षा के प्रशासन और पर्यवेक्षण में सुधार लाने के लिए अनेक दूरगामी सुधार आवश्यक होंगे। इनमें से निम्नलिखित का उल्लेख किया जा सकता है :

— वर्तमान पद्धति में स्कलों का प्रबन्ध ऐसी अनेक एजेंसियों में बंटा हुआ है जिनके कार्यों में पर्याप्त समन्वय नहीं है। इस पद्धति के स्थान पर लोक शिक्षा की समान स्कूल पद्धति विकसित की जानी चाहिए।

— विम्नलिखित तीन उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए स्कूल सुधार का एक राष्ट्रीय कार्यक्रम आरम्भ किया जाना चाहिए : (क) सभी स्कूलों को कम-से-कम एक न्यूनतम विहित स्तर पर लाना; (ख) प्रत्येक स्कूल को उसकी क्षमता के अनुसार उच्चतम स्तर तक पहुंचने में सहायता देना; (ग) अगले द्रस वर्षों में कम से कम दस प्रतिशत स्कूलों को इष्टतम स्तर पर लाना।

— जिला शिक्षा अधिकारियों के कार्यालयों में कर्मचारी आदि की संख्या में पर्याप्त वृद्धि की

जानी चाहिए और पर्यवेक्षण की वर्तमान विधियों के स्थान पर ऐसे नये तरीकों से काम लेना चाहिए जिनमें मार्गदर्शन, वस्तुपरक मूल्यांकन और विस्तार सेवाओं की व्यवस्था पर जोर दिया जाता है।

— राज्य शिक्षा संस्थानों को सुदृढ़ किया जाना चाहिए।

— स्तरों में निरन्तर सुधार करने और समय-समय पर उनका मूल्यांकन करने के लिए राज्य स्तर पर स्कूल शिक्षा बोर्डों और मूल्यांकन संगठनों की स्थापना की जानी चाहिए और साथ ही राष्ट्रीय स्तर पर भी ऐसी ही व्यवस्था होनी चाहिए।

— स्कूलों में स्तर को सुधारने में सहायता करने के लिए केन्द्रप्रेरित क्षेत्र में केन्द्रीय सरकार को एक बहुत बड़ा कार्यक्रम तैयार करना चाहिए।

हम इन मुख्य सुधारों की चर्चा ऊपर दिए गए क्रम के अनुसार करेंगे।

लोक शिक्षा की समान स्कूल पद्धति

10.03. **वर्तमान स्थिति**—इस समय स्कूलों का प्रबन्ध तीन अभिकरणों द्वारा किया जाता है—सरकार, स्थानीय स्वायत निकाय और स्वैच्छिक संगठन। इनके विषय में उपलब्ध नवीनतम आंकड़े 1960-61 के हैं जो सारणी 10.1 में दिए गए हैं।

सारणी 10.1. प्रबंधक निकाय के प्रकार अनुसार भारत में स्कूलों का विभाजन
(1960-61)

स्कूल	संस्थाओं की संख्या			
	सरकारी प्रबंध में चलने वाले	स्थानीय स्वायत्त निकायों के प्रबंध में चलने वाले	गैर-सरकारी प्रबन्ध में चलने वाले	कुल
1. पूर्व-प्राथमिक स्कूल	308 (16.2)	247 (12.9)	1,354 (70.9)	1,909 (100.0)
2. अवर प्राथमिक स्कूल	72,380 (21.9)	184,825 (55.9)	73,194 (22.2)	330,399 (100.0)
3. उच्चतर प्राथमिक स्कूल	9,695 (19.5)	26,481 (53.4)	13,486 (27.1)	49,662 (100.0)
4. माध्यमिक स्कूल	3,239 (18.8)	2,066 (12.0)	11,952 (69.2)	17,257 (100.0)
5. व्यावसायिक स्कूल	1,729 (41.7)	39 (0.9)	2,377 (57.4)	4,145 (100.0)
6. विशिष्ट स्कूल	8,766 (13.1)	5,307 (7.9)	53,011 (79.0)	67,084 (100.0)
जोड़	96,117 (20.5)	218,965 (46.5)	155,374 (33.0)	476,456 (100.0)

स्रोत : शिक्षा मंत्रालय फार्म 'ए'
ध्यान दीजिए : कोष्ठक में दिए गए आंकड़े कुल के प्रतिशत के सूचक हैं।

सारणी से स्पष्ट है कि सरकारी संस्थाओं की संख्या कुल संख्या का केवल पांचवाँ भाग है। स्थानीय स्वायत्त निकायों द्वारा संचालित संस्थाओं की संख्या सबसे अधिक हैं। इनकी संख्या कुल संख्या के आधे से कुछ ही कम है। इनमें से अधिकांश प्राथमिक स्कूल हैं। गैर-सरकारी प्रबंध में चलने वाले स्कूल कुल संख्या का लगभग एक तिहाई हैं और पूर्व-प्राथमिक तथा उत्तर-प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में इनकी बहुलता है।

10.04. जहां तक वित्त का प्रश्न है राज्य न केवल अपनी संस्थाओं का ही खर्च पूरा करता है, बल्कि स्थानीय स्वायत्त निकायों और स्वैच्छिक संगठनों के स्कूलों का खर्च भी बहुत हद तक पूरा करता है। वास्तव में यह कहा जा सकता है कि स्कूल शिक्षा पर खर्च होने वाली अधिकांश राशि राजकोष और शिक्षा शुल्क से प्राप्त होती है और स्थानीय निकायों या गैर-सरकारी स्रोतों का अंशदान बहुत थोड़ा और अपेक्षाकृत कम महत्वपूर्ण होता है।

सारणी 10.2. प्रबंधक निकाय द्वारा और अन्य स्रोतों से भारत में स्कूलों पर किया गया खर्च
(1960-61)

स्रोत	स्कूलों पर संबंधित स्रोत से किए गए कुल खर्च का प्रतिशत			
	सरकार द्वारा संचालित स्कूल	स्थानीय स्वायत्त निकायों द्वारा संचालित स्कूल	गैर-सरकारी निकायों द्वारा संचालित स्कूल	जोड़
सरकारी निधि	94.3	68.1	48.2	67.5
स्थानीय बोर्ड की निधि	0.1	26.0	1.7	9.7
शिक्षा शुल्क	5.1	4.2	36.7	16.9
अन्य स्रोत	0.5	1.7	13.4	5.9
जोड़	100.0	100.0	100.0	100.0

स्रोत : शिक्षा मंत्रालय, फार्म 'ए'

सारणी 10.2 से स्पष्ट होगा कि 1960-61 में सरकारी संस्थाओं का अधिकांश खर्च सरकारी निधि (94.3 प्रतिशत) और शिक्षा-शुल्क (5.1 प्रतिशत से पूरा) किया गया था। स्थानीय स्वायत्त निकायों को खर्च का 68.1 प्रतिशत अंश सरकारी निधि से प्राप्त हुआ था जब कि उनका अपना अंशदान केवल 26.0 प्रतिशत था। शिक्षा-शुल्क उनकी आय का बहुत मामूली जरिया था (4.2 प्रतिशत) क्योंकि अधिकांश स्कूल प्राथमिक स्कूल थे। गैर सरकारी स्कूलों में खर्च की गई कुल राशि का 48.2 प्रतिशत अश सरकारी अनुदान से और 36.6 प्रतिशत अंश शिक्षा-शुल्क से प्राप्त हुआ।[1] गैर-सरकारी स्कूलों पर खर्च की गई कुल रकम के आंठवें भाग से कुछ ही ज्यादा रकम स्वैच्छिक संगठनों ने अंशदान के रूप में दी।

1. **फीस-माफी और छात्रवृत्तियों के बदले की गई अदायगी के रूप में गैर सरकारी संस्थाओं में शिक्षा शुल्क की राशि का एक बड़ा भाग अप्रत्यक्ष रूप से स्वयं राज्य द्वारा दिया जाता है।**

10.05. **लोक शिक्षा की समान स्कूल पद्धति का निर्माण**—देश की मुख्य समस्या यह है कि लोक शिक्षा की एक ऐसी समान स्कूल पद्धति का विकास किया जाए जो देश के सभी भागों के लिए हो, जिसमें स्कूल शिक्षा की सभी अवस्थाएं सम्मिलित हों और जो सभी बालकों को समान रूप से लाभान्वित करने की दिशा में अग्रसर हों। इस पद्धति में सरकार और स्थानीय निकायों द्वारा चलाए जाने वाले सभी स्कूल तथा समस्त मान्यता-प्राप्त और सहायता-प्राप्त गैर-सरकारी स्कूल सम्मिलित होंगे। इस पद्धति को कोटि और कार्य-कुशलता की दृष्टि से एक यथेष्ट स्तर पर बनाए रखना आवश्यक होगा ताकि कोई भी व्यक्ति अपने बच्चे को इस पद्धति के बाहर किसी संस्था में जैसे स्वतन्त्र या मान्यता-अप्राप्त स्कूल में भेजने की आवश्यकता सामान्यतः अनुभव न करे। यही वह लक्ष्य हैं जिसकी प्राप्ति के लिए देश को प्रयत्न करना चाहिए। इस लक्ष्य तक शीघ्र पहुंचने के लिए अनेक कदम उठाने होंगे।

(1) पहली जरूरी बात यह है कि विभिन्न प्रबंधक संस्थाओं—सरकार, स्थानीय स्वायत्त निकाय और गैर-सरकारी संगठन—के अधीन काम करने वाले अध्यापकों के बीच इस समय जो अवांछनीय भेद है उसे दूर किया जाए। इसकी चर्चा अधिक विस्तार पूर्वक अन्यत्र[1] की गई है और हमने सिफ़ारिश की है कि :

— सभी अध्यापकों को समान अधिकार प्राप्त होने चाहिए चाहे वे किसी भी प्रबन्धक संस्था के अधीन कार्य करते हों;

— जिन अध्यापकों की योग्यताएं और उत्तर-दायित्व एक से हों उनकी पारिश्रमिक-दरें भी एक-सी होनी चाहिए;

— सभी अध्यापकों के लिए सेवानिवृत्ति-लाभों की एक-सी पद्धति होनी चाहिए;

— सेवा प्रबन्धक संस्थाओं में अध्यापकों के लिए कार्य और सेवा सम्बन्धी शर्तें एक-सी होनी चाहिए;

— विभिन्न प्रकार का संस्थाओं में अध्यापकों की नियुक्ति के तरीके भी अनिवार्यतः एक-से होने चाहिए।

(2) अंततः हमारा लक्ष्य यह होना चाहिए कि स्कूल-अवस्था में निःशुल्क शिक्षा दी जा सके। इस दृष्टि से एक अवस्था-बद्ध कार्यक्रम के अन्तर्गत शिक्षा-शुल्क को खत्म करना होगा—प्राथमिक अवस्था में चौथी योजना के अन्त तक और अवर माध्यमिक अवस्था में पांचवीं योजना के अन्त तक। इसकी चर्चा अधिक विस्तार से अन्यत्र की गई हैं।[2]

(3) स्कूल शिक्षा के क्षेत्र में स्थानीय स्वायत्त निकायों और गैर-सरकारी संगठनों के कार्यों तथा राज्य सरकारों के कार्यों में उपयुक्त तालमेल लाना चाहिए जिससे यह निश्चित हो सके कि शैक्षिक संस्थाओं के सफल संचालन के लिए जो यून्नतम परिस्थितयां आवश्यक हैं वे लोक शिक्षा की समान स्कूल पद्धति के अन्तर्गत आने बाली प्रत्येक संस्था में मौजूद हैं—चाहे शैक्षिक संस्था का प्रबंधक कोई भी हो। उदाहरण के लिए, ऐसी प्रत्येक संस्था का उसके स्थानीय समुदाय से घनिष्ठ संपर्क होना चाहिए। प्रत्येक संस्था को एक पृथक् सत्ता के रूप में स्वीकार करना चाहिए और उसे पर्याप्त स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए। योजना बनाकर प्रत्येक स्कूल का यथा सम्भव अच्छे से अच्छे ढंग से विकास करने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहना चाहिए। यह योजना प्रबंधक संस्था, माता-पिता, अध्यापकों और छात्रों तथा विभाग को मिल कर तैयार करनी चाहिए और इन सबके सहयोग और सम्मिलित प्रयास से ही योजना को कार्यरूप देना चाहिए। साथ ही प्रत्येक संस्था को यह आश्वासन दिया जाना चाहिए कि अपने छात्र-समुदाय के प्रति अपने उत्तरदायित्व को पूरे करने के लिए यथेष्ट वित्तीय सहायता दी जाएगी।

(4) गरीब और आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुए वर्गों के स्कूल तथा धनिक और सम्पन्न वर्गों के स्कूलों के बीच इस समय पार्थक्य की जो स्थिति उत्पन्न हो जाती है उसे दूर करने की दिशा में एक कदम के रूप में पड़ोसी पाठशाला योजना को अंगीकार करना चाहिए।

अन्तिम दो पहलुओं पर अब हम कुछ विस्तार से चर्चा करेंगे।

10.06. **जिला स्कूल बोर्डों की स्थापना**—शिक्षा के विकास से स्थानीय समुदाय के सम्पर्क को हम बहुत

1. अध्याय तीन।
2. अध्याय छह।

महत्व देते हैं। इसलिए हमने अन्यत्र[1] यह सिफारिश की है कि प्रत्येक जिले में "जिला स्कूल बोर्ड" नाम का एक विधिक निकाय स्थापित किया जाना चाहिए और जिले में विश्वविद्यालय स्तर से नीचे की समस्त शिक्षा का कार्य भार इसी निकाय को सौंप दिया जाना चाहिए। इस समय सरकार और स्थानीय स्वायत्त निकायों द्वारा जो स्कूल चलाए जा रहे हैं वे सबके सब इस बोर्ड के प्रत्यक्ष नियंत्रण में रहेंगे। इसके अतिरिक्त जिला शिक्षा अधिकारी की सिफारिश पर, जिसे स्कूलों का पर्यवेक्षण और निरीक्षण करने का अधिकार दिया गया है, वह बोर्ड जिले के गैर-सरकारी और सहायता प्राप्त स्कूलों को सहायता अनुदान भी देगा। समय-समय पर राज्य सरकार द्वारा दिए गए निदेश के अनुसार स्कूल शिक्षा की योजना बनाने और उसका विकास करने की जिम्मेदारी स्कूल बोर्ड पर होगी। हम पहले बता चुके हैं कि शैक्षिक विकास की दृष्टि से जिलों में परस्पर बहुत अन्तर है।[2] हमारा विश्वास है कि प्रत्येक जिले में इस प्रकार के विधिक निकाय की स्थापना कर देने से इस अन्तर को कम करने में बहुत सहायता मिलेगी प्रत्येक राज्य सरकार को अपनी स्थानीय परिस्थितियों और परम्पराओं के अनुसार ऐसे निकाय की स्थापना के लिए योजना तैयार करनी चाहिए।

1.07. **सरकारी स्कूल और स्थानीय स्वायत्त निकायों के स्कूल**— सरकार और स्थानीय स्वायत्त निकायों के प्रबन्ध में चलने वाले स्कूलों की कुछ समस्याएं ध्यान देने योग्य हैं। उदाहरण के लिए सरकारी संस्थाओं में अच्छी वित्तीय स्थिति, वेतन और सेवानिवृत्ति सम्बन्धी लाभों की अच्छी व्यवस्था, अध्यापकों के लिए नौकरी की सुरक्षा और अन्य भौतिक सुविधाओं की पर्याप्त व्यवस्था आदि कुछ विशेष सुविधाएं हैं। परन्तु इन सबके होते हुए भी अधिकांश सरकारी स्कूलों का कार्य औसत दर्जे का ही है। यद्यपि कुछ स्कूल औसत दर्जे के ऊपर भी हैं किन्तु बहुत थोड़े स्कूल उच्चतम कोटि के माने जा सकते हैं। इस स्थिति के अनेक कारण हैं। सामान्य सरकारी स्कूल अपने समुदाय से विविक्त होता है और कभी-कभी तो वह उसके प्रति उदासीन भी होता है। सेवा सम्बन्धी सुरक्षा की अतिशयता के कारण निश्चिंतता और सुस्ती का एक वातावरण बन जाता है—विशेषकर इस कारण से भी आचरण और अनुशासन सम्बन्धी नियम इस प्रकार के हैं कि योग्यता को पुरस्कृत करवा कठिन होता है और लापरवाही की सजा देना तो और भी कठिन होता है। अध्यापकों की नियुक्ति किसी संस्था-विशेष के लिए नहीं की जाती। उनकी नियुक्ति एक संवर्ग के अंग के रूप में होती है और प्रायः उनकी बदली एक संस्था से दूसरी संस्था में होती रहती है। परिणामस्वरूप किसी संस्था विशेष के प्रति उनके मन में निष्ठा-भाव बनने नहीं पाता उनको शैक्षिक स्वतंत्रता भी कम से कम मिलती है और नियम-विनियम पग-पग पर उनके लिए बाधक होते हैं। स्थानीय स्वायत्त निकायों के स्कूल भी इन असुविधाओं के शिकार हैं। उनको एक प्रतिकर लाभ अवश्य है और वह यह है कि अपने समुदाय से उनका अधिक घनिष्ठ सम्पर्क है। परन्तु वास्तव में यह लाभ न होकर एक असुविधा ही बन जाती है क्योंकि इन स्कूलों के अध्यापकों तैनाती और स्थानान्तरण के जरिए अक्सर परेशान किया जाता है और अध्यापक स्थानीय राजनीति और गुटबंदी के चक्कर में पड़ जाते हैं। इसलिए सरकार और स्थानीय स्वायत्त निकायों के स्कूलों की खामियों को दूर करने के एक कार्यक्रम की आवश्यकता है ताकि देश इन स्कूलों में अपेक्षाकृत जो बड़ी धनराशि लगाता है उसका समुचित प्रतिफल उसे मिल सके।

10.08. इसके लिए हमारी सिफारिश इस प्रकार हैं :

(1) सरकार या स्थानीय स्वायत्त निकाय के प्रत्येक स्कूल (या किसी निश्चित क्षेत्र जैसे ग्राम पंचायत या नगरपालिका के ऐसे सभी स्कूलों) की देखभाल करने के लिए एक स्कूल समिति होनी चाहिए। यह समिति स्कूलों को उनके समुदाय के अधिक निकट लाएगी। इन समितियों के आधे सदस्य उस क्षेत्र के स्थानीय स्वायत्त निकाय—ग्राम-पंचायत या नगरपालिका—द्वारा निर्वाचित किए जाएं। शेष सदस्यों का नामन जिला स्कूल बोर्डों द्वारा किया जाए और वे व्यक्ति ऐसे हों जिनकी शिक्षा के प्रति रुचि हो। दूसरे कार्यों के साथ-साथ इन समितियों के निम्नलिखित कार्य होंगे।

(क) स्कूल-भवनों, स्कूल-बगीचों, बच्चों के पार्कों और खेल के मैदानों के लिए स्थान प्राप्त करने और उनका निर्माण तथा देखभाल करने की जिम्मेदारी;

(ख) साज-सामान की व्यवस्था;

(ग) बच्चों में पुस्तक और लेखन-सामग्री का वितरण;

---

1. अध्याय अठारह।
2. अध्याय छह।

(घ) वर्दियां, छात्रवृत्तियां और पुरस्कार देना;

(ङ) क्षेत्र विशेष के भीतर अनिवार्य शिक्षा लागू करना;

(च) पाठ्येतर कार्यकलापों के आयोजन और स्कूल तथा समुदाय के बीच घनिष्ठ सम्पर्क स्थापित करने में सहायता करना;

(छ) मध्याह्न भोजन की व्यवस्था करना;

(ज) अध्यापकों के लिए आवास की व्यवस्था करना; और

(झ) सामान्य रूप से ऐसे सभी उपाय करना जो क्षेत्र विशेष की स्कूल शिक्षा को सुधारने में सहायक हों।

प्रत्येक स्कूल समिति की अपनी निधि होनी चाहिए ताकि वह अपनी जिम्मेदारियों को ठीक ढंग से निभा सके। इस निधि में जिसे **स्कूल निधि** का नाम दिया जा सकता है, निम्नलिखित रकमें सम्मिलित होंगी : (क). सम्बन्धित क्षेत्र की नगरपालिका या ग्राम पंचायत द्वारा समिति को सौंपी गई रकमें; (ख). समय-समय पर बच्चों के माता-पिता और स्थानीय जनता द्वारा स्वेच्छा से दी गई रकमें; और (ग). (क) और (ख) के अधीन स्थानीय अंशदान को प्रोत्साहन देने के लिए समीकरण के निश्चित आधार पर जिला स्कूल बोर्ड द्वारा दिया गया सहायता-अनुदान; इस आधार पर विपन्न क्षेत्रों को अधिक मात्रा में सहायता-अनुदान दिया जाएगा जबकि सम्पन्न क्षेत्रों को सहायता अनुदान कम मिलेगा या बिल्कुल नहीं मिलेगा।

स्कूलों में ऐसी सेवाओं के विकास के लिए, जो जिला स्कूल बोर्ड के विकास प्रयत्नों में सहायक हों इस निधि की सारी रकम स्थानीय रूप से उपलब्ध होनी चाहिए।

यह स्पष्ट ही है कि सभी स्कूल समितियों की कार्य-कुशलता एक सी नहीं होगी। इसलिए बनाए जाने वाले तंत्र में लचीलापन का होना आवश्यक है। जो स्कूल समितियां बहुत अच्छे ढंग से अपना काम करें उन्हें अधिक अधिकार और धन मिलना चाहिए। जो स्कूल समितियां ठीक ढंग से काम न कर रही हों उनके अधिकार कम कर दिए जाएं।

यदि इस पाठ्यक्रम का समुचित ढंग से विकास किया जाए तो इसमें स्कूलों को सुधारने के लिए स्थानीय समुदाय एक दूसरे से आगे बढ़ जाने की भावना से प्रेरित होकर कार्य करेंगे और उनके प्रयत्न जिला स्कूल बोर्ड द्वारा किए जाने वाले प्रयत्न में सहायक होंगे।

(2) अध्यापकों के स्थानान्तरण और तैनाती के सम्बन्ध में विवेक-संगत और समुपयुक्त नीतियां निर्धारित करना आवश्यक है। इस समय बदली और तैनाती की जो व्यवस्था है उससे अध्यापकों को विशेषकर स्थानीय स्वायत्त निकायों के प्राथमिक स्कूलों के अध्यपकों को बहुत परेशानी का सामना करना पड़ता है। ऐसा नियम होना चाहिए कि अध्यापक यथासंभव लम्बे-से-लम्बे अर्से तक एक ही स्कूल में रह सकें ताकि स्कूल-विशेष के प्रति उनके मन में निष्ठा-भाव उत्पन्न हो सके।

(3) सरकार और स्थानीय स्वायत्त निकायों के स्कूलों को अधिक स्वतन्त्रता देना और लालफ़ीताशाही को कम से कम करना भी बहुत आवश्यक है। गैर-सरकारी स्कूलों में भी पहले से ही पर्याप्त स्वतन्त्रता है जो उनका मुख्य अच्छा पहलू है। कोई कारण नहीं कि ऐसी स्वतंत्रता सरकारी स्कूलों में न दी जाए जहां अध्यापकों और सुविधाओं का स्तर सामान्यतः अधिक ऊंचा है और जहां स्वतंत्रता का अधिक अच्छा उपयोग किए जाने की संभावना है।

10.99. **गैर-सरकारी स्कूल**--गैर-सरकारी स्कूलों के वर्ग में भिन्न-भिन्न प्रकार के स्कूल हैं। इन्हें मुख्य रूप से तीन श्रेणियों में रखा जा सकता है : मान्यता प्राप्त और सहायता-प्राप्त संस्थाएं, मान्यता-प्राप्त किन्तु सहायता-अप्राप्त या स्वतंत्र संस्थाएं और मान्यता-अप्राप्त संस्थाएं। अन्तिम दो श्रेणियों का महत्व कम है और हम इनकी चर्चा अलग से बाद में करेंगे। परन्तु मान्यता प्राप्त और सहायता-प्राप्त संस्थाओं को उनके गैर-सरकारी प्रबन्ध के बावजूद लोकशिक्षा पद्धति का अभिन्न अंग मानना होगा। उनका अधिकांश खर्च सरकारी अनुदान और शिक्षा-शुल्क से पूरा होता है और जिन स्कूलों में शिक्षा-शुल्क माफ कर दिया गया है प्रायः उनकी आय का एक मात्र साधन सरकारी निधि ही है। इन स्कूलों के अच्छे पहलू मुख्यतः इस प्रकार हैं : स्थानीय समुदाय से दृढ़ सम्पर्क जिसकी सहायता पर वे आश्रित रहते हैं, पर्याप्त स्वतंत्रता, यद्यपि बढ़ते हुए विभागीय नियंत्रण के कारण यह स्वतंत्रता तेजी से खत्म होती जा रही है; अपनी संस्थाओं के प्रति अध्यापकों का निष्ठा-भाव जिनकी नियुक्त सरकार और स्थानीय स्वायत्त निकायों की सेवा के विपरीत संस्था-विशेष के लिए ही जाती है। इनकी

कमजोरियां मुख्यतः दो हैं : शोचनीय आर्थिक स्थिति जो अंशतः सरकारी अनुदान की अनिश्चितता के कारण है और अंशतः धन इकट्ठा करने की इनकी अपनी बढ़ती हुई योग्यता के कारण; अक्सर इनका प्रबन्ध खराब और गैर-ईमानदार व्यक्तियों के हाथ में होता है।

10.10. कोटि और कार्य-कुशलता की दृष्टि से वे संस्थाएं स्कूल रूप से दो श्रेणियों में रखी जा सकती हैं। एक में तो थोड़े से वे स्कूल आते हैं जिनकी कार्य-कुशलता बहुत उच्च स्तर की है। दूसरी श्रेणी में ऐसे स्कूल बहुत भारी संख्या में हैं जिनकी कार्यकुशलता न केवल घटिया स्तर की है, बल्कि जो अवांछनीय भी है। पहली श्रेणी की संस्थाओं को योग्य और कर्त्तव्य-परायण अध्यापक मिले हुए हैं और अब भी मिलते रहते हैं। ये अध्यापक इन संस्थाओं के प्रायः स्थायी सदस्य बन गए हैं और अक्सर संस्था का प्रबन्ध-कार्य भी इन्हीं के हाथ में होता है : परिणाम स्वरूप इन संस्थाओं ने बहुत अच्छे स्तर बना रखे हैं। दूसरी श्रेणी में ऐसी अनेक स्वेच्छिक संस्थाएं शामिल हैं जो वर्गगत विचारों से ग्रस्त हैं। अध्यापकों की नियुक्ति और स्वयं संस्थाओं के वातावरण पर बुरा असर पड़ता है। इनमें से कई संस्थाएं तो शिक्षा या समाज सेवा के उद्देश्य से चलाई ही नहीं जातीं, अपितु शोषण और अपने आदमियों को लाभ पहुंचाने के उद्देश्य से चलाई जाती हैं। ये संस्थाएं व्यापारिक कोटि की संस्थाओं की कोटि में आती हैं। इस श्रेणी की अनेक संस्थाओं में अध्यापकों की सेवा सम्बन्धी परिस्थितियां असंतोषजनक हैं। इनके लिए सेवा की बहुत कम सुरक्षा है और पेंशन की सुविधा भी नहीं है। कुछ स्कूलों में तो अंशदायी निर्वाह निधि तक की व्यवस्था नहीं है। सरकार या स्थानीय स्वायत्त निकायों के स्कूलों में समान स्तर के अध्यापकों को जो वेतन मिलते हैं उनकी अपेक्षा इन्हें सामान्यतः कम वेतन मिलता है। अनेक संस्थाओं में तो ट्रनको इतनी रकम भी नहीं मिलती जितनी कि अदायगी कागजों में दिखाई जाती है क्योंकि प्रबन्धक वर्ग जनता से वित्तीय सहायता प्राप्त करने में असमर्थ रहता है और अध्यापकों के वेतन से नाजायज तरीके से तथा आभार-प्रदर्शन किए बिना कटौती करके आनुपातिक अंशदान की उस शर्त को पूरा करने की कोशिश करता जिसे पूरा करना सहायता-अनुदान के नियमों के अनुसार उसके लिए आवश्यक होता है। यह स्वीकार करना होगा कि शिक्षा और जीवन के क्षेत्र में इन स्कूलों का योगदान नकारात्मक ही है और ये स्कूल शिक्षा के क्षेत्र में एक बहुत बड़ी समस्या बन गए हैं।

10.11. इन परिसीमाओं और खामियों के बावजूद इन संस्थाओं को लोक शिक्षा की समान स्कूल पद्धति का अभिन्न अंग मानना पड़ेगा। पर्याप्त सहायता और समुचित प्रबन्ध के द्वारा इनको सुधारना सरकार की जिम्मेदारी हैं। सरकार की की यह जिम्मेदारी इस कारण और भी बढ़ जाती है कि माध्यमिक स्कूलों के अधिकांश छात्र इन्हीं संस्थाओं में हैं। इस समस्या को सुलझाने में शिक्षा विभागों के प्रयत्न दुर्भाग्यवश बहुत सफल नहीं हुए हैं। चूंकि सहायता-अनुदान के वर्तमान नियम समानता के सिद्धान्त पर आधृत हैं, इसलिए वित्तीय सहायता के लिए सभी गैर-सरकारी स्कूलों को एक जैसा समझा जाता है। इससे अक्सर अच्छे स्कूलों की प्रगति मंद हो जाती है और खराब स्कूलों पर धन नष्ट किया जाता है। दूसरी श्रेणी की संस्थाओं में अक्सर जो कुरीतियां मिलती हैं उनको रोकने और इन संस्थाओं के अध्यापकों को सेवा सम्बन्धी सुरक्षा देने के प्रयत्नों का परिणाम बहुत हद तक व्यापक नियंत्रण के रूप में प्रकट हुआ है। यह व्यापक नियंत्रण सभी स्कूलों के लिए समान रूप से हैं। इससे इसका मूल उद्देश्य पूरा नहीं हो सका है। इसके विपरीत इसने इन संस्थानों में अनुशासन को कमजोर बना दिया है और अच्छी संस्थाओं के लिए, जिन्हें अधिक नियंत्रण के स्थान पर अधिक स्वतंत्रता की आवश्यकता है, अनावश्यक रूप से कठिनाइयां पैदा कर दी हैं। इसके अतिरिक्त सहायता-अनुदान के नियम आमतौर पर पेचीदा होते हैं और उनका प्रशासन कठिन होता है तथा सहायता-अनुदान की राशि की अपर्याप्त होती है। परिणाम स्वरूप इसमें से अधिकांश संस्थाएं बहुत असंतोषजनक स्थिति में रही है।

10.12. गैर-सरकारी सहायता-प्राप्त संस्थाओं की सहायता पर और नियंत्रण के सम्बन्ध में समान नीति के स्थान पर विवेकपूर्ण नीति अपनाने की आवश्यकता है। जिन अच्छे गैर-सरकारी स्कूलों की कार्य-कुशलता उच्च स्तर की है और जिनमें सुयोग्य और सेवा-भाव से कार्य करने वाले अध्यापक हैं उनकी विशेषता स्वीकार करनी होगी और उन्हें अधिक स्वतंत्रता तथा पर्याप्त वित्तीय सहायता देनी होगी। इस समय भी ये संस्थाएं उच्च कोटि के स्कूलों की श्रेणी में हैं और दूसरे स्कूलों के लिए अनुकरणीय हैं। लोक शिक्षा की समान स्कूल पद्धति में इन संस्थाओं को 'बीज क्षेत्र' के रूप में तेजी से और प्रभावी ढंग से विकसित किया जा सकता है। साथ ही निम्न स्तर की गैर-सरकारी संस्थाओं के बड़े समूह के लिए एक सहानुभूतिपूर्ण किन्तु सुदृढ़ नीति भी अपनानी होगी। इन्हें अपनी स्थिति सुधारने के लिए समय और सहायता दी चाहिए। हमें आशा हैं कि इनमें से बहुत से स्कूल

समयानुकूल आचरण करेंगे और अच्छे स्कूल बन जाएंगे परन्तु इससे अधिक संख्या में ऐसे स्कूल बहुत से भी होंगे जो शायद ऐसा न करें। इनके मामले में दृढ़तापूर्वक कार्रवाई करते हुए इन्हें या तो बंद कर देना चाहिए या सरकार को इन्हें अपने हाथ में ले लेना चाहिए।

10.13. दसवीं कक्षा तक शिक्षा शुल्क माफ करने की हमारी सिफ़ारिश का गैर-सरकारी स्कूलों की स्थिति पर बहुत असर पड़ेगा। इस सिफ़ारिश पर अमल करते समय शिक्षा शुल्क लेने वाले और सहायता-प्राप्त सभी गैर-सरकारी स्कूलों को यह विकल्प मिलना चाहिए कि या तो वे शिक्षा शुल्क समाप्त करके इस व्यवस्था के भीतर रहें या शिक्षा के शुल्क लेते रहें तथा स्वतंत्र बन जाएं। हमारा अनुमान है कि अधिकांश गैर-सरकारी स्कूल लोक शिक्षा की समान स्कूल पद्धति के भीतर रहना पसंद करेंगे। इसलिए अंततः केवल दो प्रकार के गैर-सरकारी स्कूल रह जाएंगे —(1) वे स्कूल जो शिक्षा शुल्क नहीं लेंगे और लोक शिक्षा की समान स्कूल पद्धति के भीतर रहेंगे तथा जिनका व्यय-भार अधिकांशतः राज्य वहन करेगा; (2) वे स्कूल जो शिक्षा शुल्क लेंगे और लोक शिक्षा की समान स्कूल पद्धति के बाहर होंगे तथा जिन्हें सरकारी निधि से कोई सहायता नहीं मिलेगी।

10.14. लोक शिक्षा की समान स्कूल पद्धति के भीतर रहने वाले स्कूलों के सम्बन्ध में अपेक्षित कार्रवाई उस कार्रवाई से भिन्न होगी जो हमने सरकार और स्थानीय स्वायत्त निकायों के स्कूलों के लिए पहले सुझाई है। सरकार और स्थानीय स्वायत्त निकायों के स्कूलों के सम्बन्ध में हमने सिफ़ारिश की है कि स्थानीय समुदाय से उनका अधिक निकट सम्पर्क होना चाहिए, उन्हें अधिक स्वतंत्रता मिलनी चाहिए और अध्यापकों के स्थानान्तरण पर नियंत्रण होना चाहिए ताकि वे एक संस्था में लम्बे अर्से तक टिक सकें। गैर-सरकारी स्कूलों में ये बातें पहले से ही मौजूद हैं। उन्हें जिस चीज की आवश्यकता है वह है अधिक वित्तीय सहायता और, कई मामलों में, अधिक अच्छा प्रबन्ध। इसके लिए हमारी सिफ़ारिशें इस प्रकार हैं :

(1) प्रत्येक गैर-सरकारी स्कूल की एक **प्रबन्ध समिति** होनी चाहिए जिसमें स्कूल को चलाने वाले स्वैच्छिक संगठन, शिक्षा विभाग और स्कूल के अध्यापकों के प्रतिनिधि होने चाहिए। सहायता-अनुदान संहिताओं में इन समितियों के गठन सम्बन्धी ब्योरे और इनके अधिकार तथा दायित्व निश्चित करने होंगे। यह बात ध्यान देने योग्य है कि प्रबन्ध समिति में सरकारी प्रतिनिधि को नामित करने का मुख्य उद्देश्य यही है कि शिक्षा में रुचि रखने वाले व्यक्तियों की सलाह और मार्गदर्शन सुलभ करा कर प्रबन्धकों की सहायता की जाए। इस व्यवस्था की सफलता इस बात पर निर्भर है कि किस प्रकार के व्यक्ति नामित किए जाते हैं। यदि इस अधिकार का प्रयोग विवेकपूर्ण ढंग से किया जाए—और ऐसा होना ही चाहिए—तो प्रबन्धक सरकार द्वारा नामित व्यक्तियों को शक्ति का स्रोत समझ कर उनका स्वागत करेंगे।

(2) गैर-सरकारी स्कूलों में अध्यापकों आदि की व्यवस्था सरकार या स्थानीय स्वायत्त निकायों के स्कूलों के लिए निर्धारित पद्धति के अनुरूप ही होनी चाहिए और इनके वेतन में भी समानता होनी चाहिए।

(3) गैर-सरकारी स्कूलों के लिए आवर्ती सहायता-अनुदान का हिसाब लगाते समय कुल खर्च को दो भागों में बांट लिया जाए—अध्यापक सम्बन्धी खर्च और अध्यापकेतर खर्च। ऊपर (2) के अन्तर्गत की गई सिफ़ारिश के कारण अध्यापक सम्बन्धी कुल खर्च का निर्धारण करने में आसानी होगी। समस्त अध्यापकेतर खर्च के लिए न्यूनतम खर्च और अधिकतम खर्च की सीमाएं निर्धारित कर दी जानी चाहिए। अधिक अच्छा हो कि अध्यापक संबंधी खर्च के प्रतिशत के रूप में ये सीमाएं निश्चित की जाएं। प्रबंधकों को अपने निर्णयानुसार यह खर्च करने की छूट होनी चाहिए। स्कूल को सहायता-अनुदान के रूप में दी जाने वाली राशि निम्नलिखित के बराबर होनी चाहिए :

(क) अध्यापक संबंधी कुल खर्च;

(ख) वास्तव में किया गया अध्यापकेतर[1] खर्च (या निर्धारित की गई अधिकतम खर्च की सीमा के अनुसार रकम—दोनों जो कम हो) इसमें **जोड़िए**;

(ग) फ़ीस माफ़ी के निर्धारित प्रतिशत का लिहाज़ करते हुए (प्रबंधक अपने साधनों से अतिरिक्त फीस माफ़ियां दे सकते हैं) "मानक दरों" के अनुसार शिक्षा शुल्क की आय सहायता-अनुदान से **घटा** ली जाए;

(घ) कुल आवर्ती खर्च का वह हिस्सा सहायता-अनुदान से **घटा** लिया जाए जो प्रबंधकों को

1. **उदाहरण के लिए गैर-सरकारी संबद्ध कालेजी के मामले में प्रबंधकों द्वारा अपनी निधि से बनवाए नए भवनों के किराए की रकम को सहायता-अनुदान के उद्देश्यों के लिए खर्च की मद में शामिल करने की अनुमति होनी चाहिए।**

अपनी निधि से (शिक्षाशुल्क से प्राप्त आय से नहीं) अंशदान के रूप में देना होगा।

टिप्पणी : (एक) अध्यापकेतर खर्च की निम्नतम और अधिकतम सीमाओं तथा प्रबंधकों के अंशदान का निर्धारण प्रत्येक प्रकार के स्कूल के लिए अलग-अलग और साथ ही उन्नत या निर्धन क्षेत्रों के लिए भी अलग-अलग किया जाना चाहिए। लड़कियों के स्कूलों के साथ भी कुछ रिआयत बरती जानी चाहिए।

जहां तक गैर-सरकारी प्रबंधकों का प्रश्न है हम माध्यमिक स्कूल के लिए 50,000 रुपए और उच्चतर माध्यमिक स्कूल के लिए 100,000 रुपए के धर्मदाय की आशा करते हैं। धर्मदाय के बनने तक प्रबंधको के अंश-दान की राश उपर्युक्त राशि के धर्मदाय के ब्याज के बराबर होनी चाहिए।

(दो) जिन स्कूलों में शिक्षाशुल्क लिया जाए उनके मामले में सहायता-अनुदान के उद्देश्यों के लिए सरकार द्वारा निर्धारित मानक शिक्षा शुल्क (वास्तविक शिक्षा शुल्क नहीं) की ही गणना की जानी चाहिए। प्रबंधकों को इस बात की छूट होनी चाहिए कि वे चाहें तो तो निर्धारित दरों से कम शिक्षा शुल्क छात्रों से लें और इस घाटे को अपने साधनों से पूरा करें। इसी प्रकार प्रबंधकों को यह छूट भी होनी चाहिए कि वे शिक्षा विभाग की अनुमति लेकर ऊंची दरों से शिक्षा शुल्क (मानक शिक्षा शुल्क से 50 प्रतिशत अधिक तक) ले सकें और इस प्रकार जो रकम प्राप्त हो उसे वे स्कूल में अतिरिक्त सुविधाओं की व्यवस्था करने या शिक्षण-स्तर को सुधारने के लिए खर्च कर सकें।

(तीन) शिक्षा-शुल्क खत्म हो जाने पर, (ग) का प्रश्न ही नहीं उठेगा। फिर भी ऐसे मामलों में हमारी सिफारिश है कि गैर-सरकारी माध्यमिक स्कूलों को यह छूट होनी चाहिए (सरकार और स्थानीय स्वायत्त निकायों के माध्यमिक स्कूलों को भी यह अधिकार दिया जाना चाहिए) कि वे शिक्षा विभाग की अनुमति लेकर अपने छात्रों से "समुन्नयन निधि" प्राप्त कर सकें किन्तु इस निधि की अधिकतम सीमा निर्धारित करना आवश्यक होगा जैसे पांच रुपए प्रति वर्ष। इस निधि का उपयोग शिक्षक स्तर को सुधारने या अतिरिक्त सुविधाओ की व्यवस्था करने के लिए किया जाए। इसका लेखा अलग से रखा जाए और शिक्षा विभाग को इसकी पड़ताल करने का अधिकार होना चाहिए परन्तु स्कूल के लिए सहायता-अनुदान निर्धारित करते समय इस निधि की गणना न की जाए।

(4) जहां तक अनावर्ती खर्च का संबंध है हमारे विचार में कुल खर्च का काफी अंश गैर-सरकारी स्कूलों के प्रबंधकों को देना चाहिए। इससिए मोटे तौर पर सहायता-अनुदान कुल अनावर्ती खर्च के 30 प्रतिशत से 50 प्रतिशत अंश तक ही सीमित रहना चाहिए। निर्धन इलाकों, लड़कियों के स्कूलों जैसे विशेष मामलों में सहायता-अनुदान का अनुपात बढ़ाया जा सकाता है। विभिन्न प्रकार की संस्थाओं के लिए भी यह अनुपात अलग-अलग होना चाहिए।

(5) ऊपर जो सूत्र सुझाया गया है वह औसत स्कूल के सहायता-अनुदान के लिए है। इस सूत्र को क्रियान्वित करते समय दो उपबंध जोड़ने होंगे :

(क) जो स्कूल स्तर बनाए रखने में स्पष्ट रूप से असफल हों जैसे काफी लम्बे अर्से तक अध्यापकों को रखने में असमर्थता, अध्यापकों से दुर्व्यवहार की शिकायतें, छात्रों में खराब अनुशासन, सार्वजनिक परीक्षाओं में उत्तीर्णता की निम्न दर—उनके सहायता-अनुदान में कटौती करने के लिए उपयुक्त व्यवस्था होनी चाहिए।

(ख) उच्च स्तर बनाए रखने और अच्छे परिणाम दिखाने वाले स्कूलों को प्रोत्साहन के रूप में ऐसे कार्यों के लिए विशेष अनुदान दिए जाने चाहिए जिन्हें वे शिक्षा विभाग के अनुमोदन से करना चाहें।

(6) पिछले अध्याय में हमने सिफारिश की है कि कुछ स्कूलों को प्रायोगिक स्कूल मान लिया जाए और उन्हें बाह्य सार्वजनिक परीक्षाओं तथा इनसे संबंधित सभी बातों से छूट दें दिया जाए। इनमें से जो स्कूल सरकारी क्षेत्र में होंगे उन्हें औसत स्कूल से भिन्न आधार पर बनाए रखने और विकसित करने के लिए यथास्थिति राज्य सर-कार या स्थानीय स्वायत्त निकाय को धन की पर्याप्त व्यवस्था करनी होगी। जो स्कूल गैर-सरकारी क्षेत्र में होंगे उनको भी विशेष आधार पर सहायता अनुदान देना होगा। उदाहरण के लिए उन्हें उदारतापूर्वक एक मुश्त अनुदान दिया जा सकता है और तीन या पाँच वर्षों के बाद इसका नवीयन किया जा सकता है। सामान्य सहायता अनुदान संहिता के सहारे इन स्कूलों का यथेष्ट विकास नहीं हो सकेगा।

10.15. हमने ऊपर सिफारिश की है कि गैर-सरकारी स्कूलों के मामले में भेदकारी नीति से काम लिया जाना चाहिए। और अच्छे स्कूलों को अधिक स्वतंत्रता और सहायता दी जानी चाहिए जबकि खराब स्कूलों पर अधिक

नियंत्रण रखा जाना चाहिए। हमने जो प्रणाली सुझाई है उसमें यह कैसे किया जा सकता है--यह बात हम उदाहरण देकर स्पष्ट करना चाहेंगे। पहली बात तो यह है कि विभिन्न संस्थाओं की प्रबंध समितियों में सरकार अपने नामित सदस्यों की संख्या अलग-अलग निश्चित कर सकती है। जो संस्थाएं बहुत उच्च कोटि की हैं और बहुत लम्बे अर्से से इसी स्थिति में हैं उनके मामले में सरकार द्वारा नामित सदस्यों की संख्या कम-से-कम रखी जा सकती है। इसके विपरीत खराब स्कूलों में जिनके बारें में प्रायः शिकायतें मिलती रहें शिक्षा विभाग द्वारा नामित सदस्यों की संख्या तब तक बढ़ाई जाती रहनी चाहिए जब तक कि ऐसे सदस्यों की संख्या अन्य सदस्यों से अधिक न हो जाए। जिस स्कूल के प्रबंधक अपने साधनों से अधिक अंशदान दें उन्हें अधिक प्रतिनिधित्व दिया जाए। ताकि गैर-सरकारी स्रोतों से अधिक धन सुलभ हो सके। दूसरी बात यह है कि जिन अच्छे स्कूलों ने अच्छी कार्य कुशलता और योजना का परिचय दिया हो उनके लिए अध्यापकेतर खर्च की अधिक ऊंची सीमा निश्चित की जा सकती है। तीसरी बात यह हैं कि जो स्कूल अच्छे परिणाम दिखाएं उनमें इस दृष्टि से अध्यापकों की अधिक अच्छी व्यवस्था की जाए कि छात्र-अध्यापक अनुपात अधिक अच्छा हो या उच्चतर श्रेणियों में पदों की संख्या अधिक हो।

10.16. सहायता-अनुदान की अनेक संहिताओं में मान्यता या सहायता के लिए यह शर्त निर्धारित की गई है कि शिक्षा-संस्थाओं का संचालन केवल ऐसी संस्थाओं को करना चाहिए जिनका उद्देश्य मुनाफा कमाना नहीं है : उदाहरण के लिए चैरिटेबिल सोसाइटीज ऐक्ट के अन्तर्गत पंजीकृत संस्थाओं या लोक न्यासों को ही शिक्षा संस्थाओं का संचालन करना चाहिए। परन्तु कुछ क्षेत्रों में इस समय भी ऐसे स्कूलों को मान्यता और सहायता प्रदान की जाती है जो निजी सम्पत्ति के रूप में चलाए जाते हैं। हमारी सिफारिश है कि अनिवार्य रूप से यह नियम होना चाहिए कि शैक्षिक संस्थाएं सहायता की पात्र तभी बन सकेंगी जब उनका संचालन ऐसी संस्थाओं द्वारा किया जाए जिनका उद्देश्य मुनाफा कमाना नहीं है।

10.17. वर्तमान सहायता अनुदान संहिताओं ने राज्य शिक्षा विभागों को यह अधिकार दिया है कि वे कुछ विशेष परिस्थितियों में मान्यता वापस ले सकते हैं। परन्तु इस सैद्धांतिक अधिकार का शायद ही कभी प्रयोग किया जाता है। इसके मुख्य कारण दो है : अध्यापकों के प्रति सहानुभूति जो इस कार्रवाई के कारण बेरोजगार हो जाएंगे और छात्रों का ख्याल जिनकी पढ़ाई में गड़बड़ी आ जाएगी। इसलिए हमारी सिफ़ारिश है कि सहायता अनुदान संहिताओं में संशोधन किए जाएं और राज्य शिक्षा विभागों को यह अधिकार दिया जाए कि वे ऐसे स्कूलों के प्रबंध को अपने हाथ में ले सकें जो निर्धारित शर्तों को पूरा न करते हों और जो अपेक्षित स्तर पर आने में निरन्तर असफल रहे हों। यह आखिरी कार्रवाई करने से पहले शिक्षा विभाग को प्रबंधकों के विरुद्ध आरोप-पत्र तैयार करना चाहिए और यथोचित नोटिस देना चाहिए। आवश्यक होने पर इस उद्देश्य के लिए विशेष रूप से स्थापित किए गए अधिकरण से अपील की जा सकती हैं। परन्तु आत्यन्तिक स्थितियों में विभाग को गैर-सरकारी स्कूलों को अपने हाथ में ले लेने का अधिकार होना चाहिए। इस उपबंध का बहुत अच्छा असर पड़ेगा और खराब गैर-सरकारी स्कूलों के स्तर को सुधारने में इससे बहुत सहायता मिलेगी।

10.18. **उच्च कोटि के गैर-सरकारी स्कूल**—एक महत्वपूर्ण तथ्य की ओर ध्यान देना आवश्यक है। इस समय बहुत से अच्छे गैर-सरकारी स्कूलों में छात्रों से शिक्षा शुल्क लिया जाता है। शिक्षा-शुल्क खत्म कर दिए जाने पर इनमें से कुछ स्कूल तो स्वतंत्र हो जाएंगे परन्तु अधिकांश स्कूल समान स्कूल पद्धति के भीतर रहने की कोशिश करेंगे। पर्याप्त सहायता-अनुदान और स्वायत्तता का आश्वासन देकर इन्हें ऐसा करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। मद्रास में जब माध्यमिक स्तर पर शिक्षा शुल्क खत्म किया गया तो इस पद्धति के भीतर रहने वाले प्रत्येक स्कूल के वर्तमान व्यय-स्तर और अध्यापकों के वेतन को संरक्षण प्रदान किया गया। इसका परिणाम बहुत अच्छा हुआ। परन्तु मद्रास की व्यवस्था में एक दोष यह है कि वर्तमान अध्यापकों के सेवा-निवृत्त हो जाने पर स्कूल का व्यय-स्तर सामान्य स्तर पर आ जाएगा। इसमें हम एक महत्वपूर्ण परिवर्तन का सुझाव देंगे। जो स्कूल वास्तव में अच्छे है उन्हें विकसित किए जाने वाले उच्च कोटि के स्कूलों के केन्द्रक के रूप में मान लिया जाए (हमारी इस सिफारिश की चर्चा आगे एक खंड में की गई है) और उन्हें सामान्य स्कूलों के उच्च स्तर के अनुरूप बनाने के बदले उच्च कोटि के स्कूलों के लिए निर्धारित उच्च स्तर के अनुरूप बनाया जाए। इससे यह निश्चित हो जाएगा कि संस्थाओं के वर्तमान स्तर पर बुरा असर नहीं पड़ेगा और कुछ मामलों में तो स्तर और भी सुधर जाएगा। प्रसंगवश, इससे समान स्कूल पद्धति के बाहर स्वतंत्र संस्था के रूप में रहने की प्रवृत्ति को दबाया भी जा सकेगा।

10.19. **पड़ोसी पाठशालाएं**—हमारे प्राथमिक और माध्यमिक स्कूलों में इस समय जो सामाजिक अलगाव की

स्थिति पैदा हो जाती है उसकी ओर हम पहले[1] ही ध्यान दिला चुके हैं। हम यह भी बता चुके हैं कि यदि शिक्षा को सामान्यतः राष्ट्रीय विकास का और विशेषतः सामाजिक तथा राष्ट्रीय एकता का शक्तिशाली साध्यम बनाना है तो इस अलगाव को दूर करना होगा। इस दृष्टि से हम सिफ़ारिश करेंगे कि पहले अवर प्राथमिक स्तर पर और फिर उच्चतर प्राथमिक स्तर पर "पड़ौसी पाठशाला" की अवधारणा को अंततः अंगीकार करना आवश्यक है। पड़ौसी पाठशाला की अवधारणा में यह भाव निहित है कि प्रत्येक स्कूल में पड़ौस के सभी बालकों का जाना आवश्यक है—चाहे वे किसी भी जाति, विश्वास, सम्प्रदाय, धर्म के हों या चाहे उनकी आर्थिक स्थिति अथवा सामाजिक हैसियत जैसी भी हो—ताकि स्कूलों में अलगाव की स्थिति बिल्कुल न रहे। सामाजिक और राष्ट्रीय एकता के अतिरिक्त इस प्रस्ताव के पक्ष में दो और महत्वपूर्ण तर्क प्रस्तुत किए जा सकते हैं। पहला तो यह कि पड़ौसी पाठशाला में बालकों को "अच्छी" शिक्षा मिलेगी क्योंकि हमारे विचार में जन-साधारण के जीवन में सहभागी बनना अच्छी शिक्षा का अत्यावश्यक अंग है। दूसरा यह कि ऐसे स्कूलों की स्थापना से सम्पन्न, प्रतिष्ठित और शक्तिशाली वर्ग लोक शिक्षा की पद्धति में रुचि लेने के लिए विवश होंगे जिससे इस पद्धति में शीघ्र ही सुधार हो सकेगा।

10.20. हमारे विचार में पड़ौसी पाठशाला की अवधारणा को दीर्घकालिक लक्ष्य के रूप में अंगीकार किया जाना चाहिए। आगामी बीस वर्षों के लिए एक सुनियोजित कार्यक्रम बनाकर इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कार्य करना चाहिए। इस सम्बन्ध में कार्य-नीति इस प्रकार होनी चाहिए।

(1) अगले दस वर्षों में दो कार्यक्रमों पर एक साथ अमल होना चाहिए। पहला कार्यक्रम तो यह होना चाहिए कि सभी प्राथमिक स्कूलों को निर्धारित किए गए एक न्यूनतम स्तर पर ले आया जाए और इनमें से लगभग दस प्रतिशत स्कूल सुधार कर उच्चतर कोटि के स्कूल बना दिए जाएँ।

(2) साथ ही चुने हुए क्षेत्रों में, जहां लोकमत इसके अनुकूल हो, पड़ौसी पाठशाला पद्धति को प्रायोगिक परियोजना के रूप में अवर प्राथमिक स्तर पर लागू कर दिया जाए।

10.21. **छात्रवृत्तियां**—सामाजिक और राष्ट्रीय एकता के ध्येय को ध्यान में रखते हुए हमारा विचार है कि देश के सब बालकों को लोकशिक्षा की समान स्कूल पद्धति के भीतर ही शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए क्योंकि नागरिक के रूप में उनके विकास में इस अनुभव का बहुत महत्व है। राष्ट्रीय हित के लिए इस प्रवृत्ति को बढ़ावा देने के विचार से हमारी सिफ़ारिश है कि स्कूल स्तर पर सरकारी छात्रवृत्तियां, अर्थात् सरकार और स्थानीय स्वायत्त निकायों द्वारा दी जाने वाली छात्रवृत्तियां लोकशिक्षा की समान स्कूल पद्धति के दायरे में आने वाले स्कूल के लिए ही होनी चाहिए। इस स्कूल में अंततः कोई शिक्षा-शुल्क नहीं लिया जाएगा और इसमें हर बालक जा सकेगा। इस व्यवस्था से किसी को कोई कष्ट नहीं होगा क्योंकि अधिकांशतः धनिक परिवार के बच्चे ही स्वतंत्र स्कूलों में जाएंगे और इन्हें ऐसी छात्रवृत्तियों की आवश्यकता नहीं होगी।

10.22. विश्वविद्यालय-स्तर पर भी इसका ध्यान रखना आवश्यक है कि लोकशिक्षा की समान स्कूल पद्धति के छात्रों को स्वतन्त्र स्कूलों से पढ़कर निकलने वाले छात्रों के मुकाबले में किसी असुविधा का सामना न करना पड़े। इसलिए हम यह सुझाव देंगे कि विश्वविद्यालय स्तर पर सरकारी निधि से दी जाने वाली 90 प्रतिशत छात्रवृत्तियां केवल उन छात्रों के लिए होनी चाहिए जिन्होंने लोक शिक्षा की समान स्कूल पद्धति के भीतर आने वाले स्कूलों में माध्यमिक शिक्षा प्राप्त की है।

10.23. **उपसंहार**—ऊपर जो सुझाव दिए गए है उनको क्रियान्वित करने से लोक शिक्षा की समान स्कूल पद्धति अस्तित्व में आ जाएगी। इस पद्धति में सरकार के स्कूल, स्थानीय स्वायत्त निकायों के स्कूल और गैर-सरकारी सहायता प्राप्त स्कूल—ये तीन प्रकार के स्कूल सम्मिलित होंगे। इस स्तर पर इन्हीं तीन प्रकार की शिक्षा-संस्थाओं की बहुलता है। इस पद्धति का वित्तीय भार वहन करने की शेष जिम्मेदारी पूर्णतः राज्य की होगी, यद्यपि स्थानीय स्वायत्त निकाय और गैर-सरकारी प्रबंधक वर्ग राज्य के प्रयत्नों में सहायता देने के लिए कुछ अपने साधन भी जुटाएंगे। इससे "जातीयता" पर आधारित वर्तमान व्यवस्था बहुत हद तक खत्म हो जाएगी और सभी स्कूलों में कई विशेषताएं समान रूप के मिल सकेंगी, जैसे, अध्यापकों के मामले में समानता; प्रवेश संबंधी एक-जैसी नीति, जिससे वर्गगत अलगाव पैदा नहीं हो सकेगा और उच्च कोटि की सभी संस्थाओं में योग्यता के आधार पर प्रवेश

1. अध्याय एक।

मिल सकेगा; स्थानीय समुदाय से सम्पर्क; और प्रयोग तथा सृजन के लिए निर्बाध वातावरण ।

स्कूल सुधार के राष्ट्रव्यापी कार्यक्रम का आयोजन

10.24. स्कूल अवस्था की शिक्षा के स्तर को सुधारने की आवश्यकता को देखते हुए हमारी सिफ़ारिश है कि एक राष्ट्रीय स्कूल सुधार कार्यक्रम आरम्भ किया जाए । इस कार्यक्रम के अन्तर्गत प्रत्येक स्कूल के लिए ऐसी परिस्थितियां पैदा की जाएं कि वह अपनी क्षमता के अनुसार अच्छे से अच्छा कार्य करने की दिशा में प्रयत्नशील हो सकें । शैक्षिक विकास का कोई भी सर्वांगीण कार्यक्रम तब तक सफलतापूर्वक क्रियान्वित नहीं किया जा सकता जब तक कि प्रत्येक शैक्षिक संस्था और **सभी** संबंधित व्यक्तियों—अध्यापक, छात्र और स्थानीय समुदाय—को कार्यक्रम में सम्मिलित न किया जाए और कार्यक्रम की क्रियान्विति में यथाशक्य योगदान देने के लिए इन्हें आवश्यक प्रेरणा न दी जाए । अनेक कारणों से इस समय ऐसी स्थिति नहीं है । इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य ऐसी ही स्थितियां उत्पन्न करना है जिनका स्तर-निर्धारण में बहुत बड़ा हाथ होता है ।

10.25. **संस्थागत योजनाएं तैयार करना**—इस उद्यम में पहला कदम यह होगा कि प्रत्येक स्कूल से एक निश्चित कालावधि के लिए अपना विकास कार्यक्रम तैयार करने को कहा जाए । हमारी योजना प्रणाली की एक एक बड़ी खामी यह है कि वह उच्चतम स्तर पर शुरू होती है और शायद ही कभी संस्थाओं के स्तर पर पहुंचती है । परिणामस्वरूप हमारे अधिकांश स्कूलों को राज्य या राष्ट्रीय स्तरों पर तैयार की गई शैक्षिक विकास योजनाओं में कोई दिलचस्पी नहीं होती । अक्सर उन्हें इन योजनाओं और राज्य तथा केन्द्रीय स्तर पर बनाई गई नीतियों तथा कार्यक्रमों की खबर तक नहीं होती । इस स्थिति को बदलना बहुत आवश्यक है । यह ठीक है कि निष्फल प्रयत्न से बचने के लिए यह आवश्यक है कि राज्य, जिला या ब्लाक स्तर के अधिकारी इन योजनाओं की तैयारी के लिए एक मोटा खाका बनाकर संस्थाओं को दें । प्रत्येक स्कूल को अपने उपलब्ध साधनों से इष्टतम उपयोग और विकास की योजना तैयार करने का अवसर प्रदान करने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए ।

10.26. ऐसी प्रत्येक योजना में संस्था विशेष में उपलब्ध भौतिक सुविधाएं बढ़ाने के प्रस्ताव सम्मिलित होंगे ही । हम यह महसूस करते हैं कि कुछ न्यूनतम आवश्यक सुविधाओं की व्यवस्था होनी ही चाहिए क्योंकि इनके अभाव में अध्यापकों के लिए कार्य करना प्रायः असंभव हो जाता है । परन्तु इस सम्बन्ध में हम दो बातों पर जोर देना चाहेंगे :

(1) पहली बात तो यह है कि प्रत्येक शिक्षा-संस्था अपने वर्तमान साधनों से ही—वे कितने ही सीमित क्यों न हों—अधिक अच्छी योजना बनाकर और अधिक परिश्रम करके अपने शिक्षा-स्तर को सुधारने की दिशा में और बहुत कुछ कर सकती है । इसलिए हमारी राय में इस आन्दोलन में भौतिक साधनों पर उतना जोर नहीं दिया जाना चाहिए जितना संबंधित व्यक्तियों को इस बात के लिए प्रेरित करने पर कि वे शिक्षा के उन्नयन के लिए मिल-जुलकर अधिकाधिक प्रयत्न करें और इस प्रकार भौतिक साधनों की कमी को पूरा करें । ऐसे अनेक कार्यक्रम हैं जिनको शैक्षिक संस्था भौतिक साधनों की कमी के बावजूद मानव प्रयत्न के बल पर अपने हाथ में ले सकती है । इनमें ये कार्यक्रम शामिल हैं : अगति और व्यर्थता को कम करना; शिक्षण प्रणालियों को सुधारना; विकास-रुद्ध छात्रों की सहायता करना; योग्य छात्रों पर विशेष ध्यान देना; पाठ्यचर्या को अधिक समृद्ध बनाना; नई कार्य-पद्धतियों का परीक्षण करना; स्कूल का शिक्षण-कार्यक्रम चलाने के समुन्नत तरीके खोजना; स्वाध्याय के कार्यक्रम के जरिए अध्यापकों की वृत्तिक कुशलता को बढ़ाना । इस प्रकार के कार्यक्रमों की योजना बनाने और उनको क्रियान्वित करने पर जोर दिया जाना चाहिए ।

(2) दूसरी बात यह है कि स्कूलों में उपलब्ध सुविधाओं को स्थानीय समुदाय के सहयोग से बढ़ाने के लिए तीव्रता से प्रयास किया जाना चाहिए । इस दिशा में मद्रास राज्य में बहुत अच्छा काम हुआ है । वहां कुछ वर्षों तक स्कूल सुधार सम्मेलनों का आयोजन किया गया है और स्कूल की सुविधाएं बढ़ाने में स्थानीय समुदाय से बड़े पैमाने पर सहायता प्राप्त की गई है । देश के सभी भागों में प्राथमिक और माध्यमिक स्तरों पर ऐसे ही कार्यक्रम चलाए जाने चाहिए ।[1]

10.27. **सुविचारित योजना बनाना और प्रयास जारी रखना**—इस प्रकार का कार्यक्रम तभी सफल हो सकता है जब सुविचारित योजना बनाई जाए और निरन्तर प्रयास किया जाए । ऐसी योजनाएं तैयार करने के

1. देखिए पूरक खंड एक, भाग पांच में इस विषय पर दिया गया लेख ।

लिए शिक्षा विभाग के सभी अधिकारियों और सभी स्कूल प्रधानाध्यापकों को प्रशिक्षण देना आवश्यक है। सफलता इस बात पर भी निर्भर होगी कि कार्यक्रम राष्ट्रीय स्तर पर या कम से कम राज्य स्तर पर चलाया जाए और इसका आयोजन केन्द्रीय स्तर पर शिक्षा मंत्रालय द्वारा तथा राज्यों में शिक्षा विभागों द्वारा किया जाए। देश के कुछ भागों में कुछ समय पहले इस प्रकार के कुछ आन्दोलन उत्साही अधिकारियों के मार्ग-दर्शन में चलाए गए थे। परन्तु उनका प्रयास अल्पकालिक और कुछ स्थानों तक ही सीमित था। प्रेरक व्यक्तित्व के साथ ही ये आन्दोलन भी समाप्त हो गए। इसलिए इस आन्दोलन को हमारी शैक्षिक योजनाओं का एक अभिन्न अंग बनाना बहुत आवश्यक है ताकि काफी लम्बे समय तक इसे निरन्तर तेज गति के साथ चलाया जा सके।

10.28. **नम्यता और प्रयोग**—इस प्रकार के कार्यक्रम की सफलता की एक और शर्त यह है कि अध्यापकों और संस्थाओं की पहल-शक्ति, सृजनशीलता और प्रयोगशीलता को बढ़ावा दिया जाए। हमारी वर्तमान शिक्षा प्रणाली का एक दोष उसकी अनम्यता है, जिसके कारण अध्यापकों और संस्थाओं को प्रयोग की स्वतन्त्रता नहीं मिलती। इस सम्बन्ध में एक ऐसे विकेन्द्रीकृत दृष्टिकोण की जरूरत है जिस से प्रत्येक संस्था को (या कम-से-कम संस्था समूह को) अपनी गति से आगे बढ़ने और नयी अवधारणाओं की परीक्षा करने का मौका मिल सके। वर्तमान व्यवस्था में यह संभव नहीं है, क्योंकि शैक्षिक योजनाएं केवल राज्य द्वारा तैयार की जाती हैं और अध्यापकों तथा संस्थाओं से सिर्फ यह आशा की जाती है कि वे इन योजनाओं के अनुसार कार्य करें। ऊपर दिए गए सुझाव के अनुसार सरकार प्रत्येक संस्था को इकाई के रूप में स्वीकार करेगी—ऐसी इकाई के रूप में जिसकी अपनी विशिष्टता है—और इसे अपनी गति के अनुसार और अपने विशिष्ट तरीके से विकसित होने में सहायता देगी। इससे अध्यापक सृजन का आनन्द अनुभव कर सकेंगे और स्तर को सुधारने के लिए अधिक तीव्रता से प्रयास करने की प्रेरणा उनको मिलेगी।[1]

10.29. **स्कूलों का वर्गीकरण**—इस कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए कुछ प्रशासनिक और वित्तीय समस्याओं पर यथेष्ट ध्यान देना होगा। इनमें से तीन की चर्चा पहले भी की जा चुकी है जो इस प्रकार हैं; अध्यापकों को काफी लम्बे अर्से तक एक ही संस्था में रखने की आवश्यकता ताकि दीर्घ-कालिक योजना बनाने और उसे क्रियान्वित करने का कार्य सम्भव हो सके; प्रत्येक संस्था और स्थानीय समुदाय के बीच गहरा संबंध स्थापित करने और संस्था को अपने कार्यक्रम स्वयं तैयार करने के लिए कुछ स्थानीय साधन और स्वतन्त्रता देने की आवश्यकता; स्कूलों के परस्पर अलगाव को दूर करने और उन्हें छोटे सहकारी समूहों[2] में कार्य करने का अवसर देने की आवश्यकता। इस प्रक्रिया में एक और कार्रवाई जो सहायक होगी वह है स्कूलों का वर्गीकरण।

10.30. इस उद्देश्य के लिए हमारी सिफ़ारिशें इस प्रकार हैं :

(1) विभिन्न प्रकार की शैक्षिक संस्थाओं के पर्यवेक्षण के लिए वैज्ञानिक मूल्यांकन-कसौटियाँ तैयार करना आवश्यक होगा। इस उद्देश्य के लिए राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद ने एक अनुसंधान-परियोजना पर कार्य आरम्भ कर दिया है। प्रत्येक राज्य को राज्य शिक्षा संस्थान के जरिए इस कार्य को आगे बढ़ाना होगा।

(2) कसौटियां दो स्तरों पर निश्चित की जानी चाहिए—न्यूतम और इष्टतम। इष्टतम स्तर "अच्छे स्कूल" की अवधारणा के अनुरूप होना चाहिए। आरम्भ में प्रत्येक राज्य अपनी परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए न्यूनतम और इष्टतम स्तरों का निर्धारण करेगा। परन्तु यथासमय राष्ट्रीय स्कूल शिक्षा बोर्ड (जिसकी स्थापना की हम सिफ़ारिश कर रहे है) इन कसौटियों को समन्वित कर राष्ट्रीय मान निश्चित कर सकेगा। समय-समय पर इन कसौटियों पर पुनर्विचार करना और उन्हें ऊंचा करना भी आवश्यक है।

(3) इस प्रकार की मूल्यांकन-कसौटियों की सहायता से और स्कूलों की कार्य-कुशलता के आधार पर स्कूलों के वर्गीकरण की एक योजना बनाई जानी चाहिए। इस वर्गीकरण के लिए जिन बातों को ध्यान में रखा जा सकता है उनमें कुछ इस प्रकार हैं : स्थानीय समुदाय से सम्बन्ध; अध्यापकों की योग्यताएं और एक ही संस्था में लम्बे समय तक उनका रखा

1. ब्योरे के लिए देखिए अध्याय नौ।
2. देखिए अध्याय दो।

जाना; अंतःसेवा प्रशिक्षण कार्यक्रम, जिनका आयोजन स्वयं स्कूल ने किया हो, या जिनमें अध्यापकों ने भाग लिया हो; स्कूल में चलाए गए विशेष कार्यक्रम जैसे प्रयोगात्सक कार्य, उच्च या समृद्ध पाठ्यचर्या, या मूल्यांकन की नई पद्धतियां; योग्य या विकास-रुद्ध छात्रों पर दिया गया ध्यान; स्कूल-अनुशासन; व्यर्थता और अगति; सार्वजनिक परीक्षाओं के परिणाम; छात्रों द्वारा प्राप्त छात्रवृत्तियां; स्कूल से पढ़कर निकले हुए पुराने छात्रों के पेशे; सह-पाठ्यचर्या कार्यों का आयोजन और इनमें स्कूल द्वारा जीते गए पुरस्कार।

(4) वर्गीकरण सहकारी स्कूलों, स्थानीय स्वायत्त निकायों के स्कूलों और गैर-सरकारी स्कूलों, अर्थात्, सभी स्कूलों पर लागू होना चाहिए: सानदंड दो स्तरों पर निश्चित किए जाएं—इष्टतम और न्यूनतम—और इस आधार पर एक त्रिसूत्री श्रेणी-क्रम में स्कूल रखे जाएं;

क-श्रेणी के स्कूल : इष्टतम स्तर के ऊपर।

ख-श्रेणी के स्कूल : न्यूनतम और इष्टतम स्तरों के बीच के औसत दर्जे के स्कूल।

ग-श्रेणी के स्कूल : न्यूनतम स्तर से नीचे।

(5) सामान्य परिपाटी यह होनी चाहिए कि निर्धारित कसौटियों के अनुसार प्रत्येक स्कूल अपने कार्य का मूल्यांकन स्वयं करे और तब शिक्षा विभाग के निरीक्षण-अधिकारी स्कूल के अध्यापकों और अधिकारियों से परामर्श करके वर्गीकरण को अन्तिस रूप दें।

10.31. **कार्य-योजना**—साधनों की कसी के कारण थोड़े समय के भीतर सभी स्कूलों को उच्च स्तर पर ले जाना सम्भव नहीं होगा। इसलिए इस सम्बन्ध में अपनाई जाने वाली विकास नीति इस प्रकार होनी चाहिए :

(1) शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर एक निश्चित न्यूनतम संख्या में "उच्च कोटि के स्कूल" बनाने के कार्य को सबसे अधिक अग्रता दी जाए : ये स्कूल गति-निर्धारक संस्थाओं का काम देंगे। वर्तमान व्यवस्था में वस्तुतः अच्छे स्कूल गिनती के हैं। कम-से-कम समय में अच्छे परिणाम निकल सकें, इसके लिए आवश्यक है कि उपलब्ध साधनों का उपयोग कुछ चुने हुए केन्द्रों में किया जाए। सभी स्कूलों को सुधारने की दिशा में हमारा पहला कदम यह होना चाहिए कि अगले दस वर्षों में कम-से-कम दस प्रतिशत प्राथमिक स्कूलों को इष्टतम स्तर पर ले जाने की कोशिश करें। माध्यमिक अवस्था के लिए हमारा लक्ष्य यह होना चाहिए कि प्रत्येक सामुदायिक विकास खंड[1] में एक अच्छा माध्यमिक स्कूल (अर्थात् इष्टतम स्तर का स्कूल) अवश्य हो।

(2) इष्टतम स्तर के स्कूल बनाने का कार्यक्रम वर्तमान अच्छे स्कूलों की संख्या बढ़ाने से आरम्भ होगा। माध्यमिक अवस्था में इनमें से अधिकांश स्कूल गैर-सरकारी क्षेत्र में हैं। जहां इनके विकास में सहायता देनी चाहिए वहां भविष्य में सरकारी क्षेत्र में भी अच्छे माध्यमिक स्कूल खोलने की कोशिश की जानी चाहिए।

(3) अवर प्राथसिक स्तर पर इन स्कूलों में अधिकांशतः पास-पड़ोस के बच्चे ही दाखिल होंगे। इसलिए यह आवश्वक है कि राज्य के सभी भागों में ये स्कूल न्यायोचित ढंग से स्थित हों और देहाती क्षेत्रों तथा शहरों की गंदी बस्तियों की आवश्यकताओं पर विशेष ध्यान दिया जाए।

(4) उच्चतर प्राथमिक और माध्यमिक स्तरों पर इन स्कूलों में दाखिला योग्यता के आधार पर मिलना चाहिए (शिक्षा-शुल्क समाप्त हो जाने पर वस्तुतः इन स्कूलों के द्वार सभी बच्चों के के लिए उन्मुक्त होंगे) ताकि समाज के सभी वर्गों के सुयोग्य बालक सर्वोत्तम उपलब्ध शिक्षा प्राप्त कर सकें। इन स्कूलों में छात्रवृत्तियों की पर्याप्त व्यवस्था होनी चाहिए। ये स्कूल भौगोलिक आधार पर न्यायोचित ढंग से स्थित होने चाहिए—एक माध्यमिक स्कूल प्रत्येक सामुदायिक विकास खंड में हो और दो या

1. शहरी क्षेत्रों में पहले से ही काफी अच्छे स्कूल मौजूद हैं, परन्तु शहरों की गन्दी बस्तियों की आवश्यकताओं पर विशेष ध्यान देना आवश्यक हो सकता है।

तीन उच्चतर प्राथमिक स्कूल इसी खंड के विभिन्न हिस्सों में हों ।

(5) कार्यक्रम में दूसरी अग्रता इस बात को दी जानी चाहिए कि कोई भी स्कूल न्यूनतम स्तर से नीचे न गिरने पाए ।

(6) जहां तक दूसरे स्कूलों का सम्बन्ध है प्रत्येक स्कूल को उसकी क्षमता के अनुसार उच्चतम स्तर प्राप्त करने में सहायता दी जानी चाहिए। सहायता की पद्धति इस प्रकार की होनी चाहिए कि आवधिक मूल्यांकन से प्रगट होने वाली कार्य-कुशलता के लिए पुरस्कार दिया जा सके । समय के साथ अधिकाधिक स्कूल ऊपर उठते जाएंगे और उच्च कोटि के स्कूल बन जाएंगे ।

10.32. गुणात्मक सुधार के कार्यक्रमों में जब तक आधारभूत दृष्टिकोण यह रहा है कि मानवीय तत्वों की क्रिया के स्थान पर भौतिक सुविधाओं की व्यवस्था पर ही जोर दिया गया है । हमने यहां राष्ट्रीय गुणात्मक सुधार कार्यक्रम का जो सुझाव दिया है उसका उद्देश्य ही इस प्रक्रिया को उलट देना और उस योगदान पर जोर देना है जो शिक्षा के गुणात्मक सुधार में अध्यापक, पर्यवेक्षक, बच्चों के माता-पिता और छात्र अपने सम्मिलित प्रयास से कर सकते हैं । हमारा विश्वास है कि यदि ऐसे कार्यक्रम का आयोजन किया जाए और अगले दस-बीस वर्षों तक इसे जारी रखा जाए तो शिक्षा का स्तर बहुत ऊंचा उठ जाएगा ।

पर्यवेक्षण : राज्य शिक्षा विभागों का पुनर्गठन : जिला स्तर

10.33. हमारे विचार में स्कूल शिक्षा मूलतः स्थानीय स्वायत्त निकाय और राज्य की साझेदारी है । हमने इसकी विस्तृत चर्चा अन्यत्र की है ।[1] हम स्थानीय स्वायत्त निकायों—जिला स्कूल बोर्डों और स्थानीय स्कूल समितियों की जिम्मेदारियों की चर्चा पहले ही कर चुके हैं । परन्तु स्कूल शिक्षा के क्षेत्र में राज्य सरकार के योगदान की चर्चा किए बिना यह चर्चा पूर्ण नहीं होगी । जैसा कि हम देख रहे हैं स्कूल शिक्षा का सम्पूर्ण भार राज्य सरकारों पर ही होगा । इसमें सन्देह नहीं कि स्थानीय स्वायत्त निकायों के लिए पहल करने के बहुत अवसर होंगे और राज्य सरकारों को नम्य नीतियां अपना कर उनका उत्साह-वर्द्धन भी करना चाहिए । परन्तु स्थूल रूप से वे राज्य सरकारों के अभिकर्ता के रूप में कार्य करेंगे और सौंपे गए अधिकारों का ही प्रयोग करेंगे । इसलिए राज्य शिक्षा विभागों को, जो शिक्षा सम्बन्धी मामलों के लिए राज्य सरकारों के मुख्य अभिकरण हैं, निम्नलिखित कार्य करने चाहिए :

— स्कूल सुधार के एक गहन कार्यक्रम का विकास करना चाहिए जिसमें पाठ्यचर्या का आवधिक पुनरीक्षण और उन्नयन; पाठ्य तुस्तकों, अध्यापक संदर्शिकाओं और अध्यापन तथा शिक्षा सम्बन्धी अन्य सामग्री का निर्माण, और अध्यापन तथा मूल्यांकन की पद्धतियों को सुधारने के कार्य शामिल होंगे;

— राज्य स्कूल शिक्षा बोर्ड और राज्य मूल्यांकन संगठन जैसी वृत्तिक संस्थाओं से परामर्श करके स्कूलों के लिए स्तर निर्धारित करना और निरीक्षणालय के जरिए इन्हें लागू करना, धन की व्यवस्था, और अपेक्षित पोषक सेवाओं का आयोजन;

— अध्यापक सुलभ कराने, उनके वेतन, सेवा-निवृत्ति लाभ और कार्य तथा सेवा सम्बन्धी शर्तें निश्चित करने, समुचित रीति से अध्यापक तैयार करने के कार्यक्रम (पूर्व-सेवा और अंतःसेवा दोनों प्रकार के कार्यक्रम) चलाने, उच्च कोटि की ऐसी प्रशिक्षण-संस्थाओं को चलाने या सहायता देने की जिम्मेदारी जो पर्याप्त संख्या में छात्रों को दाखिल करती हों और प्रशिक्षण देकर निकालती हों;

— स्कूलों के निरीक्षण और पर्यवेक्षण की पूरी जिम्मेदारी जो या तो राज्य शिक्षा विभागों के अधिकारियों के माध्यम से सीधे किया जाए या इस उद्देश्य के लिए स्थापित किए गए किसी विशेष संगठन, जैसे राज्य स्कूल शिक्षा बोर्ड के जरिए परोक्ष रूप से, अथवा दोनों के जरिए;

— एक राज्य मूल्यांकन संगठन की स्थापना और संचालन जिसका उद्देश्य राज्य के विभिन्न जिलों के बीच स्तरों का समन्वय करना और उच्चतर प्राथमिक, अवर माध्यमिक तथा उच्चतर

1. अध्याय अठारह ।

माध्यमिक अवस्थाओं की समाप्ति पर राष्ट्रीय स्तरों के विकास में सहायता देना होगा;

— स्कूल शिक्षा के प्रशासन के लिए बनाए गए स्थानीय स्वायत्त निकायों को प्रोत्साहन, मार्ग-दर्शन और सहायता देना तथा स्कूल शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर उच्च कोटि की संस्थाएं चलाने में मदद देना और निरन्तर स्तर को सुधारते रहने की खातिर स्कूलों के लिए विस्तार सेवाओं के नियमित कार्यक्रम की व्यवस्था करना;

— एक ऐसे राज्य शिक्षा संस्थान की स्थापना करना और उसे बनाए रखना जिसका मुख्य उद्देश्य अनुसंधान, प्रशिक्षण और विस्तार के समुचित कार्यक्रमों के द्वारा स्थानीय स्वायत्त निकायों को स्तर सुधारने में सहायता देना होगा;

— स्कूल अवस्था की समस्त व्यवसायिक और तकनीकी शिक्षा में समन्वय स्थापित करना और अंततः ऐसी सारी शिक्षा की जिम्मेदारी ग्रहण करना;

10.34. **जिला कार्यालयों का पुनर्गठन और उन्हें सुदृढ़ करना**—इन कार्यों को समुचित रीति से सम्पन्न करने के लिए राज्य शिक्षा विभागों के संगठन में बहुत बड़ा परिवर्तन करना आवश्यक होगा। पिछले कुछ वर्षों में स्कूल शिक्षा की सुविधाओं का विस्तार होने के परिणामस्वरूप राज्यों के शिक्षा निदेशालयों में बहुत अधिक विस्तार हुआ है। दुर्भाग्यवश बिचले स्तरों को बहुत थोड़े अधिकार सौंपे गए हैं और विशेषकर जिला कार्यालय अब भी कमजोर हैं। वास्तव में राज्यों के शिक्षा प्रशासन में कोई भी बात इतनी चौंकाने वाली नहीं है जितनी यह बात कि एक ओर तो शिक्षा विभाग के जिला अधिकारी को भारी जिम्मेदारियां सौंपी जाती हैं और उसे अत्यधिक अपर्याप्त अमला (संख्या और गुण दोनों की दृष्टि से) और अधिकार दिए जाते है। इस खाई को पाटना बहुत आवश्यक है।

10.35 जिला शिक्षा अधिकारी और उसके कार्यालय के महत्व के विषय में कुछ कहना आवश्यक प्रतीत नहीं होता। जिस प्रकार राज्य के स्तर पर शिक्षा निदेशक शिक्षा का नेतृत्व करता है उसी प्रकार जिला के स्तर पर जिला शिक्षा अधिकारी शिक्षा का नेतृत्व करता है। वह स्कूल अवस्था की शैक्षिक संस्थाओं का पर्यवेक्षण करता हैं। उसकी सहायता के लिए एक या एक से अधिक उपनिरीक्षक और अनेक सहायक या नायब उपनिरीक्षक होते है जिन पर प्राथमिक स्कूलों के निरीक्षण की जिम्मेदारी होती है। कुछ जिलों में तो वह राज्य सेवा की प्रथम श्रेणी का अधिकारी होता है किन्तु अधिकांश जिलों में उसका पद अब भी द्वितीय श्रेणी का है। हमारे विचार में ये दोनों दर्जे अपर्याप्त हैं। उसके प्रशासनिक दायित्व विभिन्न राज्यों में अलग-अलग हैं। कुछ राज्यों में वह माध्यमिक स्कूलों के लिए सहायता अनुदान की मंजूरी देने वाला अधिकारी होता है। प्रायः सभी राज्यों में वह स्कूलों को मान्यता प्रदान करने के सम्बन्ध में रिपोर्ट देने वाला अधिकारी, अध्यापकों की अपील सुनने वाले निकाय का सदस्य और सामान्यतः स्थानीय स्वायत्त निकायों के लिए अध्यापकों का चुनाव करने वाले बोर्ड का सदस्य भी होता है। परन्तु उसका मुख्य कार्य निरीक्षण और पर्यवेक्षण है जो शिक्षा प्रशासन का प्रमुख अंग है।

10.36. जैसे-जैसे समय बीतता जाएगा वैसे-वैसे जिला का महत्व और भी बढ़ता जाएगा। इस समय जिले की औसत जनसंख्या लगभग 15 लाख, प्रवेश पाने वाले छात्रों की संख्या 2 लाख, अध्यापकों की संख्या लगभग 7,000 और कुल शिक्षा-व्यय लगभग 2 करोड़ रुपए हैं। 1986 तक जिले की औसत जनसंख्या लगभग 25 लाख हो जाएगी, प्रवेश पाने वाले छात्रों की संख्या लगभग 5 लाख, अध्यापकों की संख्या लगभग 20 हजार और कुल शिक्षा-व्यय लगभग 12 करोड़ 50 लाख रुपए होगा। सब बातों पर विचार करने के बाद यही विष्कर्ष निकलता है कि शिक्षा विभाग के जिला कार्यालयों को सुदृढ़ करके, उन्हें समस्त स्कूलों की सेवा और पर्यवेक्षण का केन्द्र बनाकर और राज्य शिक्षा निदेशालयों का कार्यक्षेत्र सामान्य समन्वय और नीति-निर्माण तक सीमित रखकर ही भविष्य में विकास और सुधार का कार्य करना संभव होगा। केवल इसके द्वारा ही वर्तमान विभागीय प्रशासन की खामियां—अनम्यता, स्कूलों से दूरत्व, स्थानीय समुदाय से सम्पर्क का अभाव, सेवा के स्थान पर नियंत्रण पर जोर देना आदि को दूर किया जा सकता हैं।

10.37. जिला-स्तर पर विभागीय संगठन को सुदृढ़ करने के महत्व को देखते हुए हम निम्नलिखित सिफ़ारिशें कर रहे हैं :

(1) जिला शिक्षा अधिकारी को पर्याप्त दर्जा दिया जाना चाहिए। भारतीय शिक्षा सेवा का निर्माण हो जाने पर उसके पद को इस सेवा

में शामिल करने से यह उद्देश्य आसानी से पूरा हो सकता है।

(2) जिला-स्तर पर पर्याप्त अधिकार सौंपे जाने चाहिएं ताकि जिला कार्यालय प्रभावी रूप से और कुशलतापूर्वक कार्य कर सके। जहां तक स्कूलों का सम्बन्ध है हमारी राय में जिला कार्यालय को ही वस्तुतः निदेशालय का कार्य करना चाहिए और प्रशासनिक मामलों में स्कूलों को ऊंचे स्तरों पर जाने की आवश्यकता कम-से-कम पड़नी चाहिए।

(3) जिला-स्तर पर निरीक्षण-कर्मचारियों के सिलसिले में इस समय तीन मुख्य खामियां हैं : कर्मचारियों की संख्या अपर्याप्त है; अच्छे वेतन-मान न होने के कारण कर्मचारियों का स्तर गुणात्मक दृष्टि से अपेक्षाकृत घटिया है; विशेषज्ञता का अभाव, क्योंकि अधिकांश निरीक्षण अधिकारी 'सामान्यज्ञ' की कोटि में ही आते हैं। इन खामियों को दूर करना आवश्यक है। इसलिए हमारी सिफ़ारिश है कि वेतन-मान बढ़ाए जाएं और उच्चतर कोटि के अधिकारी रखे जाएं। हम यह सिफ़ारिश भी करेंगे कि मूल्यांकन, पाठ्यचर्या-सुधार और मार्ग-दर्शन या शारीरिक शिक्षा जैसे विशेष विषयों के जिला-स्तर पर पर्याप्त संख्या में विशेषज्ञ अधिकारी होने चाहिए। जिला-कर्मचारियों की संख्या में वृद्धि करना भी आवश्यक है ताकि सौंपे गए नए दायित्वों को वे पूरा कर सकें। विशेष रूप से प्रत्येक जिला कार्यालय में एक छोटा सा सांख्यिकी सेल खोलने की आवश्यकता है। ऐसा अमला न होने के कारण ही इस समय शिक्षा सम्बन्धी आंकड़ों के संकलन और प्रकाशन में इतना विलम्ब होता है। इसी प्रकार इस स्तर पर अधिकारीगण में समुचित अनुपात में महिलाएं भी होनी चाहिएं। लड़कियों की शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए भी इसकी विशेष आवश्यकता हैं।

10.38. **प्रधानाध्यापक**—अधिकार सौंपने का यह क्रम जिला कार्यालय पर खत्म नहीं हो जाना चाहिए। प्रधानाध्यापकों को अधिक व्यापक अधिकार और स्कूलों को अधिक स्वतंत्रता देना भी आवश्यक है। इस समय प्रधानाध्यापकों का वर्ग उपेक्षित सा है। हमने प्राधानाध्यापकों के लिए अधिक अच्छे वेतनमान और साथ ही उच्चतर अर्हताओं के सुझाव दिए हैं।[1] हमारी यह सिफ़ारिश भी है कि प्रधानाध्यापकों के लिए विशिष्ट प्रशिक्षणक्रमों का आयोजन किया जाना चाहिए। इस समय इसकी व्यवस्था नहीं है। इसमें पदोन्नति पाकर बने हुए नए प्रधानाध्यापकों के लिए संक्षिप्त परिचयात्मक पाठ्यक्रम और अन्य प्रधानाध्यापकों के लिए आवधिक पुनश्चर्या पाठ्यक्रम भी शामिल होने चाहिए। इसके अतिरिक्त इस समय प्रधानाध्यापकों को जितने अधिकार सौंपे जाते हैं। उससे अधिक अधिकार सौंपे जाने चाहिए। इस मामले में सरकारी स्कूलों को सबसे ज्यादा असुविधा होती है। उदाहरण के रूप में सरकारी स्कूलों के अध्यापकों का एक स्कूल से दूसरे स्कूल में तबादला करते समय सम्बन्धित प्रधानाध्यापकों से हमेशा सलाह नहीं ली जाती। अपने सहायकों के चुनाव में भी सामान्यतः उनकी सहायता नहीं ली जाती। अपनी संस्थाओं में अल्पकालिक रिक्त पदों पर नियुक्ति करने का अधिकार उन्हें नहीं होता, जिसके परिणामस्वरूप ये पद बहुत दिनों तक खाली रहते है। कई मामलों में तो अपने सहायकों पर नियंत्रण रखने का अधिकार भी उनको नहीं होता और यदि कोई सहायक ठीक आचरण न करे तो प्रधानाध्यापक उपयुक्त अधिकारियों से 'शिकायत' करने के अलावा कुछऔर नहीं कर सकता। यदि स्कूलों को सुधारना है तो इस स्थिति में आमूल परिवर्तन करना होगा। सामान्य सिद्धान्त ये होने चाहिए कि प्रधानाध्यापकों का चुनाव सावधानीपूर्वक किया जाए, उन्हें उपयुक्त प्रशिक्षण दिया जाए, उनका विश्वास किया जाए और उन्हें आवश्यक अधिकार दिए जाएं। दूसरे लोगों की तरह वे भी गलती कर सकते हैं। परन्तु जब तक उन्हें गलती करने की आजादी नहीं दी जाएगी तब तक स्कूल और उसके सुधार में गहरी रुचि लेना उनके लिए संभव नहीं होगा। जहां तक गैर-सरकारी स्कूलो का सम्बन्ध है शिक्षा विभाग को प्रबन्धकों से आग्रह करना चाहिए कि वे ऐसी अधिकार पर्याप्त अंशों में प्रधानाध्यापकों को सौंपे जिससे कि वे संस्था को ठीक ढंग से चला सकें।

10.39. **स्कूल संकुल**—स्कूल संकुल की अवधारणा या उस तरीके की चर्चा पहले की जा चुकी है जिसके अनुसार एक हाई स्कूल और उसके पड़ोस में स्थित तीन या चार उच्चतर प्राथमिक स्कूल और दस से बीस तक अवर

1. अध्याय तीन।

प्राथमिक स्कूल अभिन्न रूप से एक दूसरे से संयुक्त होंगे। अब हम इस बात की चर्चा करेंगे कि प्रस्तावित नए पर्यवेक्षण के अंग के रूप में ये स्कूल-संकुल किस प्रकार कार्य करेंगे। जैसा कि पहले बताया जा चुका हैं। स्कूल-संकुल के दो उद्देश्य होंगे : स्कूलों का अलगाव दूर करना और छोटे सरकारी समूहों के रूप में कार्य करने में उनकी सहायता करना; शिक्षा विभाग द्वारा अधिकार सौंपे जाने के कार्य को संभव बनाना। हम जिस स्थिति की कल्पना कर रहे हैं उसमें जिला शिक्षा अधिकारी का प्रत्येक स्कूल-संकुल से विशेष सम्पर्क होगा और यथासंभव वह इसे इकाई मानकर कार्रवाई करेगा। स्कूल-संकुल स्वयं कुछ ऐसे सौंपे गए कार्य करेगा जो अन्यथा शिक्षा विभाग के निरीक्षण-अधिकारियों द्वारा किए जाते और अपनी परिधि में आने वाले स्कूलों के सम्बन्ध में वह आवश्यक कार्रवाई करेगा। इस कार्यक्रम में स्कूलों की शक्ति बढ़ेगी, वे अधिक स्वतन्त्रता से कार्य कर सकेंगे और पद्धति को लचीला तथा गतिशील बनाने में वे सहायक होंगे। इससे विभाग को भी लाभ होगा। वह अपना ध्यान बड़ी आधारभूत समस्याओं पर केन्द्रित रख सकेगा और थोड़े से अधिकारियों से, जो अधिक योग्य होंगे, अपना कार्य चला सकेगा।

10.40. स्कूल-संकुल अपना कार्य किस प्रकार करेगा? इस व्यवस्था को प्रभावी बनाने के लिए संकुल को पर्याप्त अधिकार और दायित्व सौंपने होंगे। इन में विम्नलिखित सम्मिलित होंगे।

(1) मूल्यांकन की अधिक अच्छी पद्धतियाँ आरम्भ करने और एक कक्षा से दूसरी कक्षा में या एक स्तर के स्कूल से दूसरे स्तर के स्कूल में बालकों की उन्नति के नियमन के लिए स्कूल-संकुल का उपयोग इकाई के रूप में किया जाए।

(2) जैसा कि पहले बताया जा चुका है, ऐसी सुविधाएं और साज-सामान जो प्रत्येक स्कूल को अलग-अलग नहीं दिए जा सकते, संकुलन के सभी स्कूलों के लिए सामूहिक रूप से जुटाए जा सकते हैं। इसमें एक प्रोजेक्टर और श्रुवाह्य जनित्र शामिल हैं। ये एक स्कूल से दूसरे स्कूल में ले जाए जा सकते हैं। इसी प्रकार केन्द्रीय हाई स्कूल में अच्छी प्रयोगशाला की व्यवस्था की जा सकती है और संकुल के प्राथमिक स्कूलों के छात्र छुट्टियों में व्यावहारिक कार्य या निदर्शन के लिए वहां भेजे जा सकते हैं। केन्द्रीय हाई स्कूल में एक चल पुस्तकालय हो सकता है जहां से पुस्तकें पड़ोस के स्कूलों में भेजी जा सकती हैं। विशेष विषयों के अध्यापकों का लाभ भी अनेक स्कूल उठा सकते हैं। उदाहरण के लिए प्राथमिक स्कूलों के लिए अलग से व्यायाम शिक्षक या कला-शिक्षक रखना संभव नहीं है। परन्तु माध्यमिक स्कूलों में ऐसे अध्यापक रखे जाते हैं। सावधानी-पूर्वक योजना बनाकर इन अध्यापकों से यह कार्य भी लिया जा सकता है कि वे प्राथमिक स्कूलों के अध्यापकों का मार्ग-दर्शन करें और इन स्कूलों के छात्रों को भी अपना कुछ समय दें।

(3) सामान्यतः अध्यापकों की अंतःसेवा शिक्षा और विशेषकर कम योग्यता प्राप्त अध्यापकों का स्तर-उन्नयन स्कूल-संकुल का एक महत्त्वपूर्ण दायित्व होना चाहिए। इस उद्देश्य से अध्यापकों के उपयोग के लिए एक चल पुस्तकालय की व्यवस्था होनी चाहिए। समय-समय पर (जैसे मास में एक बार) ऐसी बैठकें बुलाई जाएं जिनमें संकुल के सभी अध्यापक सम्मिलत हों, स्कूल की समस्याओं पर विचार-विमर्श हो या किसी वार्ता अथवा फिल्म प्रदर्शन या निदर्शन-पाठ का आयोजन किया जाए। लम्बी छुट्टियों में अध्यापकों की टोलियों के लिए संक्षिप्त विशिष्ट पाठ्यक्रम भी चलाए जा सकते हैं।

(4) सामान्यतः प्रत्येक स्कूल से यह आशा की जाए कि वह अगले शिक्षा वर्ष के लिए अपने कार्य की काफी विस्तृत योजना तैयार करे। अधिक अच्छा हो कि संकुल के स्कूलों के प्रधानाध्यापक इस योजना को तैयार करें। इन्हें मिल-जुलकर विकास के सामान्य सिद्धांत निश्चित करने चाहिए। प्रत्येक स्कूल इन सिद्धान्तों के अनुसार अपना कार्यक्रम बना सकता है।

(5) प्राथमिक स्कूलों में छुट्टी पर गए हुए अध्यापकों के स्थान पर अध्यापक नियुक्त करना बहुत कठिन हैं क्योंकि प्रत्येक स्कूल आकार में इतना छोटा होता हैं कि छुट्टी रिजर्व अध्यापक की नियुक्ति संभव नहीं है। एक अध्यापक स्कूलों में विशेष रूप से ऐसा करने में कठिनाई होती है। अध्यापक के छुट्टी पर रहने के दौरान ये स्कूल बन्द रहते हैं। स्कूल-संकुल में केन्द्रीय माध्यमिक स्कूल में एक या दो छुट्टी रिज़र्व अध्यापक रखना सम्भव होगा। आवश्यकता पड़ने पर संकुल के स्कूलों में ये अध्यापक भेजे जा सकते हैं।

(6) चुने हुए स्कूल-संकुलों का उपयोग नई पाठ्य-

1. अध्याय दो।

पुस्तकों, अध्यापक संदर्शिकाओं और अध्यापन-सामग्री की परीक्षा और मूल्यांकन के लिए भी किया जा सकता है।

(7) स्कूल-संकुल को यह अधिकार भी दिया जा सकता है कि वह निर्धारित सीमाओं के भीतर और जिला शिक्षा अधिकारी के अनुमोदन की शर्त के अधीन रहते हुए सामान्य विहित पाठ्यचर्या और पाठ्य विवरण में फेर-बदल कर सकता है।

10.41. यह स्पष्ट है कि स्कूल-संकुल की कल्पना को कार्य-रूप देने के पहले अध्यापकों को सावधानी पूर्वक इसके लिए तैयार करना और आवश्यक प्रशिक्षण देना होगा। हमारी सिफ़ारिश है कि यह योजना पहले प्रत्येक राज्य के कुल चुने हुए जिलों में प्रायोगिक परियोजना के रूप में शुरू की जाए। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत पहली कार्रवाई यह की जाए कि जिले का चुनाव करते ही योजना सम्बन्धी आवश्यक साहित्य प्रादेशिक भाषाओं में तैयार कर लिया जाए और जिले के सभी स्कूलों और अध्यापकों में बांट दिया जाए। इसके बाद जिले के सभी अध्यापक और प्रधानाध्यापक टोलियों में बँटकर इस योजना पर विचार-विमर्श करें। प्रत्येक निरीक्षण-अधिकारी अपने क्षेत्र में दौरा करते समय ऐसी बैठकों का आयोजन आसानी से कर सकता हैं। विचार-विमर्श कर लेने के पश्चात योजना में आवश्यक संशोधन किया जाए और तब इसें अंतिम रूप दिया जाए। दूसरी बात यह है कि जिले के प्रत्येक स्कूल-संकुल को एक साथ सब अधिकार न सोंपे जाएं। आरम्भ में कम-से-कम अधिकार दिए जाने चाहिए। जब कार्य अच्छा हो—जैसा कि अनेक संकुलों में होगा—तब और अधिकार दिए जा सकते हैं। दूसरी ओर यदि किसी कारण-वश कोई संकुल ठीक ढंग से कार्य न करे—वस्तुत: कुछ संकुल कठिनाइयां पैदा करेंगे—तो उससे अधिकार वापस ले लेना आवश्यक भी होगा और वांछनीय भी। यदि शिक्षा अधिकारी और उसका अमला ठीक ढंग से नेतृत्व करें और इस दिशा में निरन्तर प्रयास जारी रखा जाए तो यह योजना अवश्य सफल होगी।

10.42. स्कूल-संकुल से जो बड़े लाभ होंगे वे स्पष्ट ही हैं। परन्तु मनुष्य द्वारा किए जाने वाले कार्यों की तरह इसमें कुछ खतरे भी हैं। यदि किसी एकक के प्रभावी प्रधानाध्यापक अनुदार शिक्षा-शास्त्री हों तो कल्पनाशील अध्यापक को स्कूल-संकुल पद्धति में प्रयोग करने के और भी कम अवसर मिल सकते हैं। यह ऐसा खतरा है जिसका सामना करना ही होगा। जिला शिक्षा अधिकारी का (यदि वह स्वयं अनुदार वृत्ति का नहीं है) यह कर्त्तव्य होगा कि वह अधिक उदार नीति का समर्थन करने के लिए अपने प्रभाव से काम ले। यह बात भी याद रखनी चाहिए कि प्राधानध्यापकों की किसी समिति द्वारा जिस सामूहिक सुधार का समर्थन किया जाएगा वह किसी एक उत्साही व्यक्ति या स्कूल द्वारा लाए गए सुधार की अपेक्षा अधिक निर्जीव और अनुदार लीकानुगामी होगा। इसलिए शिक्षा विभाग को यह बात स्पष्ट करनी होगी कि स्कूल-संकुल योजना का उद्देश्य केवल यह नहीं है कि किसी एकक को सामूहिक रूप से प्रयोग करने के लिए प्रोत्साहित किया जाए, बल्कि यह भी है कि एकक के भीतर व्यक्तिगत प्रयोग को भी बढ़ावा दिया जाए।

10.43. इस बात पर भी ध्यान देना आवश्यक है कि इस प्रस्ताव को कार्यान्वित करने में अतिरिक्त व्यय करना पड़ेगा। उदाहरण के लिए हम यह आशा करते है कि हाई स्कूल के प्रधानाध्यापक और अध्यापक पड़ोस के उच्चतर प्राथमिक स्कूलों में औसतन मास में एक बार और इसी प्रकार कुछ अवर प्राथमिक स्कूलों में भी जाएंगे। हम यह भी आशा करते है कि इसी तरह उच्चतर प्राथसिक स्कूलों के प्रधानाध्यापक पड़ोस के अवर प्राथमिक स्कूलों में जाएंगे। इसके लिए कुछ रुपए की अदायगी करनी होगा। अंत:सेवा शिक्षा के जो कार्यक्रम हसने सुझाए हैं उन पर भी खर्च करना आवश्यक होगा। छुट्टियों में प्राथमिक स्कूलों के छात्रों को हाई स्कूल की प्रयोगशाला में विज्ञाम पढ़ाने के लिए सम्बन्धित अध्यापकों को कुछ रकम देनी पड़ेगी। परन्तु इन सब पर अधिक रकम नहीं खर्च होगी और इसके परिणाम बहुत अच्छे निकलेंगे।

10.44. **नया पर्यवेक्षण**—पर्यवेक्षण एक दृष्टि से शिक्षा सुधार की रीढ़ की हड्डी है। दुर्भाग्यवश अधिकांश राज्यों में स्कूलों के पर्यवेक्षण का कार्यक्रम बहुत अंशों में छिन्न-भिन्न हो गया है। इसके अनेक कारण हैं जैसे :

— संस्थाओं की संख्या बहुत बढ़ गई है किन्तु इसके अनुपात में निरीक्षण अधिकारियों की संख्या नहीं बढ़ाई गई है;

— प्रशासन और पर्यवेक्षण सम्बन्धी कार्यों का भार एक ही अधिकारी पर है जिससे पर्यवेक्षण कार्य पर बुरा असर पड़ा है क्योंकि प्रशासनिक कार्यों को, जो पिछले कुछ वर्षों में बहुत बढ़ गए है, सदा ही अग्रता दी जाती है;

— जो निरीक्षण अधिकारी खंड विकास दल के सदस्य हैं उनके गैर-शैक्षिक कार्य लिए जाते हैं जिसके कारण उन्हें अपने कार्य के लिए बहुत कम समय मिलता है।

— पर्यवेक्षण की पुरानी पद्धतियां जो विकास की अपेक्षा नियंत्रण को अधिक महत्व देती है, अब तक चल रही हैं;

— निरीक्षण कर्मचारियों में पर्याप्त कार्य-कुशलता नहीं है।

स्कूल शिक्षा को सुधारने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कार्य यह है कि इन कठिवाइयों पर काबू पाया जाए और पर्यवेक्षण की नई पद्धति बनाई जाए।

10.45. **प्रशासन को पर्यवेक्षण से अलग करना**—प्रशासन को पर्यवेक्षण से अलग करने के लिए हम पहले ही एक महत्वपूर्ण सिफ़ारिश कर चुके हैं और हमने सुझाव दिया है कि जिला स्कूल बोर्ड का सम्बन्ध अधिकांशतः प्रशासन से होना चाहिए और जिला शिक्षा अधिकारी तथा उसके अमले का पर्यवेक्षण से। इन दोनों के बीच निकट सहयोग होना चाहिए। मत-भेद होने पर जिला शिक्षा अधिकारी का, जिसका दर्जा अधिक ऊंचा होगा, या शिक्षा निदेशक का निर्णय अंतिम माना जाए। इस व्यवस्था से जिला शिक्षा अधिकारी और उसका अमला मात्र पर्यवेक्षण पर, अर्थात् शिक्षण-सुधार, अध्यापकों के मार्ग-दर्शन, उनके अंतःसेवा कार्यक्रमों के आयोजन और स्कूलों में विस्तार सेवाओं की व्यवस्था पर एकाग्रता-पूर्वक ध्यान दे सकेगा।[1]

10.46. **स्कूलो को मान्यता प्रदान करना**—यह भी आवश्यक है कि स्कूलों को 'स्वतः' मान्यता प्रदान न कर दी जाए। इस समय अनेक राज्यों में ऐसे नियम या परिपाटियां हैं कि सरकार द्वारा संचालित प्रत्येक स्कूल को स्वतः मान्यता मिल जाती है। कुछ क्षेत्रों में स्थानीय स्वायत्त निकायों के स्कूलों के लिए भी ऐसे ही नियम या परिपाटियां लागू की जाती है। हमारी राय में इसका कोई औचित्य नहीं हैं। मान्यता एक विशेषाधिकार है जिसे प्राप्त करने के लिए प्रत्येक स्कूल को इसका सुपात्र बनना पड़ता है चाहे स्कूल की प्रबन्ध-संस्था कोई भी हो। हमारे प्रस्तावों के अनुसार सरकारी स्कूल नहीं रहेंगे क्योंकि ये सब जिला स्कूल बोर्ड के अधीन आ जाएंगे। हम यह चाहेंगे कि प्राइवेट स्कूल और जिला स्कूल बोर्डों के अधीन आने वाले स्थानीय स्वायत्त निकायों के सभी स्कूल शिक्षा विभाग से मान्यता के लिए आवेदन करें। शिक्षा विभाग मान्यता सम्बन्धी शर्तें निर्धारित करेगा और इन शर्तों के अनुसार गुण-दोष के आधार पर या तो मान्यता दी जाएगी या अस्वीकार की जाएगी। शिक्षा विभाग समय-समय पर मान्यता-प्राप्त स्कूलों का निरीक्षण भी करेगा ताकि स्कूलों के लिए निर्धारित स्तर कायम रहे।

10.47. **निरीक्षण के प्रकार**—इस समय पर्यवेक्षण के लिए एक ही फार्म बहुत अधिक प्रचलित है जो वार्षिक निरीक्षण के लिए तो बहुत अधिक विस्तृत है किन्तु सर्वांगीण या पंचवार्षिक निरीक्षण के लिए बहुत अपूर्ण है। हमारा सुझाव है कि भविष्य में प्रत्येक स्कूल में दो प्रकार के निरीक्षण किए जाएं, वार्षिक और त्रिवार्षिक। इन दोनों के लिए अलग-अलग फार्मों का प्रयोग किया जाए। वार्षिक निरीक्षण कमोबेश विभागीय कार्य होगा और प्राथमिक स्कूलों में यह कार्य जिला स्कूल बोर्डों के अधिकारी करेंगे तथा माध्यमिक स्कूलों में राज्य शिक्षा विभागों के अधिकारी यह कार्य करेंगे। इसके अतिरिक्त प्रत्येक स्कूल का एक त्रिवार्षिक या पंचवार्षिक निरीक्षण होगा। जहां तक प्राथमिक स्कूलों का सम्बन्ध है इसका आयोजन जिला शिक्षा अधिकारी करेगा और निरीक्षक दल में विभाग का एक निरीक्षण अधिकारी और प्राथमिक तथा माध्यमिक स्कूलों के इस उद्देश्य से चुने गए दो या तीन प्रधानाध्यापक या अध्यापक शामिल होंगे। माध्यमिक स्कूलों के मामले में निरीक्षण का आयोजन राज्य स्कूल शिक्षा बोर्ड करेगा और निरीक्षक दल में विभाग का एक अधिकारी और कुछ चुने हुए मुख्याध्यापक/शिक्षाविद/अध्यापक होंगे।

10.48. **लचीला दृष्टिकोण**—पयवेक्षण की इस नयी पद्धति की एक मुख्य विशेषता यह होगी कि विभिन्न स्कूलों के मामले में यह एक लचकदार दृष्टिकोण[2] अपनाएगी। नई पर्यवेक्षण-पद्धति के अनुसार खराब स्कूलों को सहारा और मार्ग-दर्शन दिया जाएगा, औसत दर्जे के स्कूलों को प्रगति का दिशा-निर्देश किया जाएगा और अच्छे स्कूलों को प्रयोग की स्वतन्त्रता दी जाएगी। एक स्कूल से दूसरे स्कूल में पाठ्यचर्या को निरन्तर गहरा बनाते रहने की प्रक्रिया का विस्तार करने और नयी प्रभावी शिक्षण-पद्धतियों का प्रसार करने की जिम्मेदारी भी लेनी पड़ेगी। इन महत्वपूर्ण कार्यो के सम्बन्ध में पर्यवेक्षण का क्या दायित्व है और इस दायित्व को वह किस प्रकार सफलतापूर्वक पूरा कर सकता है—इसकी चर्चा इससे पहले के दो अध्यायों में की जा चुकी है। स्कूलों के लिए मार्ग-दर्शन और विस्तार सेवाओं की व्यवस्था करने की आवश्यकता पर हम फिर जोर देंगे क्योंकि नए पर्य-

1. **जहां जिला स्कूल बोर्डों की स्थापना नहीं की गई है वहां प्रशासन और पर्यवेक्षण के लिए एक ही अधिकारी-वर्ग रखने की अपेक्षा दोनों कार्यों के लिए अधिकारियों के दो अलग-अलग वर्ग रखना अधिक लाभकर होगा।**
2. **ब्योरे के लिए अध्याय अठारह देखिए।**

वेक्षण की यह एक बड़ी जिम्मेदारी होगी। इसी दृष्टि-कोण से हमने यह सिफ़ारिश की हैं कि स्कूल सेवाओं के लिए शिक्षा-निदेशालय को नहीं, बल्कि जिला को ही मुख्य एकक बनाया जाए।

10.49. इस नए पर्यवेक्षण को अस्तित्व में लाने के लिए पर्यवेक्षण अधिकारियों के स्तर को बहुत सुधारना होगा। इस दृष्टि से तीन उपाय आवश्यक होंगे। इनमें से दो, अर्थात् निरीक्षण अधिकारियों की अर्हताएं बढ़ाने और विशेषज्ञों की नियुक्ति के विषय में पहले चर्चा की जा चुकी है। तीसरा उपाय यह है कि सभी पर्यवेक्षक और प्रशासनिक अधिकारियों के लिए अन्तःसेवा प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाए। जैसा कि हमने आगे चलकर बताया है, यह कार्य राज्य शिक्षा संस्थाओं और राष्ट्रीय शिक्षा प्रशासक स्टाफ कालेजों को करना पड़ेगा।

राज्य शिक्षा विभागों का पुनर्गठन : राज्य स्तर

10.50. **राज्य शिक्षा संस्थान**—जिला शिक्षा अधिकारी को मुख्यालय सें मुख्यतः दो जरियों में मार्ग-दर्शन और परामर्श मिलेगा। पहला है शिक्षा निदेशालय जो सभी प्रकार के प्रशासनिक और वित्तीय मामलों में उसको आवश्यक हिदायतें देगा। दूसरा है राज्य शिक्षा संस्थान जो निदेशालय का ही एक भाग है और विभाग का मुख्य शैक्षिक अंग है। जहां तक जिलों के प्रशासनिक पर्यवेक्षण का सम्बन्ध है हम पहले ही सिफ़ारिश कर चुके हैं कि जिले को व्यापक स्तर पर अधिकार सौंपे जाने चाहिएं। जहां तक जिला शिक्षा अधिकारियों को शैक्षिक मार्गदर्शन देने का प्रश्न है राज्य शिक्षा संस्थानों की स्थापना से पहले तिदेशालय सें इस कार्य के लिए कोई संगठन नहीं था। राज्य शिक्षा संस्थान अभी नए हैं और बहुत सोच-समझकर तथा बहुत सावधानी से अपना कार्य कर रहे हैं। इन संस्थानों की आवश्यकता, कार्यों और प्रस्तावित विकास के सम्बन्ध में संक्षेप में चर्चा कर देना उपयुक्त होगा।

10.51. सबने इसे अब स्वीकार कर लिया है कि शिक्षा विभाग में शिक्षा-शास्त्रीय मामलों के लिए एक उप विभाग होना चाहिए। इसमें विभिन्न विषयों के विशेषज्ञ रखे जाने चाहिए ताकि क्षेत्रीय अधिकारी, अध्यापक और प्रधानाध्यापक इनकी विशेषज्ञता से लाभ उठा सकें। इस दिशा में कुछ कार्य किए भी गए है। उदाहरण के लिए शारीरिक शिक्षा और दृश्य-श्रव्य शिक्षा के लिए विशेष निरीक्षणालय खोले गए हैं। कुछ राज्यों में विषय-निरीक्षको की नियुक्ति की गई है। अधिकांश राज्यों में राज्य अंग्रेजी संस्थान (अंग्रेजी का स्तर सुधारने के लिए), व्यावसायिक निर्देशन ब्यूरो (मार्ग-दर्शन सेवाओं की व्यवस्था और स्कूल परामर्शदाताओं के प्रशिक्षण के लिए) और मूल्यांकन एकक (परीक्षाओं में सुधार करने के लिए) हैं। हाल ही में विज्ञान संस्थान स्थापित करने के लिए भी कदम उठाए गए हैं। एक दो राज्यों में पाठ्यचर्या अनुसंधान ब्यूरो भी हैं और कुछ राज्यों में पाठ्य-पुस्तकें और शिक्षण सामग्री तैयार करने के लिए अलग से एक तंत्र की स्थापना की गई है। इसलिए राज्य शिक्षा विभागों में इन कार्यों के लिए निरीक्षणालय या ब्यूरो खोलने की आवश्यकता नहीं है। इसके विपरीत एक ऐसी स्थिति में, जिसमें कहीं-कहीं कुछ अराजकता-सी आ गई है, सामंजस्य लाने की आवश्यकता है।

10.52. केन्द्र मे स्थापित किए गए राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद के अनुरूप सर्वांगपूर्ण राज्य शिक्षा संस्थान स्थापित करने के ठोस कारण थे। राज्य स्तर पर स्थापित किए गए विभिन्न संगठनों में से प्रत्येक छोटा है और अधिक विकासक्षम नहीं है। परिणामस्वरूप ये बहुधा प्रभावहीन सिद्ध हो जाते हैं और इतने छोटे-छोटे और भिन्न-भिन्न प्रकार के संगठनों के कार्यक्रमों मे समन्वय स्थापित करना कठिन होता है। यदि इन संगठनों को राज्न शिक्षा संस्थान में मिला दिया जाए तो यह कठिनाई दूर हो सकती है। पहली तीन योजनाओं के दौरान केन्द्र में भी ऐसी ही स्थिति उत्पन्न हुई थी। शुरू मे छोटे-छोटे विशिष्ट उद्देश्यों के लिए अलग-अलग अनेक संस्थाएं स्थापित की गई थीं। चूंकि ये संस्थाएं बहुत प्रभावी सिद्ध नहीं हुईं, इसलिए इन्हें मिलाकर एक संगठन का रूप दे दिया गना जिसका नाम राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद रखा गया है। यह एक प्रगतिशील कदम था और इससे बहुत लाभ हुआ है। राज्य स्तर पर भी ऐसी ही कार्रवाई करने का समय अब आ गया है।

10.53. शिक्षा विभाग के शैक्षिक खंड में निम्नलिखित अनुभागों या कार्यक्रमों का विकास करना होगा (अधिक अच्छा हो कि यह कार्य राज्य शिक्षा संस्थान में किया जाए किन्तु आवश्यक होवे पर बाहर भी किया जा सकता है) :

(1) **विभागीय अधिकारियों की अतःसेवा शिक्षा**—विभाग के सभी अधिकारियों और सरकारी तथा गैर-सरकारी स्कूलों के अध्यापक प्रशिक्षकों के अंतःसेवा प्रशिक्षण की व्यवस्था।

(2) **अध्यापक शिक्षा में सुधार**—इस उद्देश्य के जिए पहले ही यह सुझाव दिया जा चुका है[1] कि प्रत्येक राज्य सरकार को एक राज्य अध्यापक शिक्षा बोर्ड की स्थापन करनी चाहिए जिसे राज्य शिक्षा संस्थान के साथ मिल-जुल कर अपना कार्य करना चाहिए ।

(3) **पाठ्यचर्या, पाठ्य-पुस्तकें, मार्गदर्शन और मूल्यांकन**—पाट्यचर्या, पाठ्य-पुस्तकों और मूल्यांकन के विषय में आवश्यक कार्रवाई करने के लिए एक सक्षम अभिकरण की स्थापना करना भी आवश्यक है । अधिक अच्छा हो कि इस अभिकरण का पाठ्य-पुस्तक निर्माण भाग एक स्वायत्त संगठन का रूप ग्रहण कर ले और इसे वाणिज्यक आधार पर किन्तु न-लाभ-न-हानि के सिद्धांत के अनुसार चलाया जाए ।

(4) **कार्यक्रमों से संबंधित अनुसंधान और मूल्यांकन**—इस समय यह कार्य बहुत हद तक उपेक्षित है । बिश्वविद्यालयों और प्रशिक्षण-कालेजों के सहयोग से इन कार्यक्रमों का विकास करना राज्य शिक्षा संस्थानों की जिम्मेदारी होगी ।

(5) **प्रकाशन**—इसके अन्तर्गत शैक्षिक समस्याओं पर पुस्तकें आदि प्रकाशित की जाएंगी । आधुनिक भारतीय भाषाओं में ऐसी पुस्तकों आदि का प्रकाशन व्यापक स्तर पर करना होगा।

राज्य और राष्ट्रीय शिक्षा बोर्ड

10.54. **शैक्षिक स्तर**—शैक्षिक विकास का एक मुख्य उद्देश्य स्तर में निरन्तर सुधार करते रहना है । स्कूल सुधार कार्यक्रम के अन्तर्गत इस कार्य को आरम्भ करने और चलाने के लिए यह आवश्यक है कि प्रत्याशित और संपादित शैक्षिक स्तरों को निश्चित करने और उनका पुनरीक्षण तथा मूल्यांकन करने के लिए राज्य स्तर पर पर्याप्त व्यवस्था की जाए । इस कार्य में प्रोत्साहन देने, समन्वय करने और मार्ग-दर्शन देने के लिए राष्ट्रीय स्तर पर भी एक संगठन की आवश्यकता है । अब हम इन्हीं प्रस्तावों पर विचार करेंगे ।

10.55. शैक्षिक स्तर तीन प्रकार के हैं :

— "प्रत्याशित" शैक्षिक स्तर जो विशेष शैक्षिक लक्ष्यों और विषय वस्तु के सन्दर्भ में निश्चित किए जाएं और पाठ्य-विवरणों, पाठ्य-पुस्तकों अध्यापक संदर्शिकाओं और अन्य शिक्षण-सामग्री में अधिक स्पष्टता से व्यक्त किए जाएं;

— "संपादित" शैक्षिक स्तर जो परीक्षाओं और मूल्यांकन के अन्य साधनों से प्रकट होने वाली छात्रों की सफलता के सन्दर्भ में निश्चित किए जाएं;

— "अनुकल्पित" शैक्षिक स्तर जो स्तरों में निरन्तर सुधार करने के कार्यक्रम के अंग के रूप में प्रत्याशित या सम्पादित स्तरों के सन्दर्भ में मविष्य में, जैसे, पांच या दस वर्ष आगे, निश्चित किए जाएं

10.56. राष्ट्रीय स्तर पर इन शैक्षिक स्तरों को निश्चित करने और उनको मापने की व्यवस्था कर देने से कुल मिलाकर शिक्षा-प्रणाली के स्तर को ऊंचा करने में निम्नलिखित तरीकों से बहुत सहायता मिल सकती है :

(1) प्रत्याशित और अनुकल्पित राष्ट्रीय स्तरों की सहायता से निश्चित कलावधि में शिक्षा की विभिन्न अवस्थाओं के लिए शैक्षिक उपलब्धियों के लक्ष्य निश्चित किए जा सकेंगे । इनके आधार पर राज्य सरकारें सभी स्तरों पर और विभिन्न कलावधि के लिए उपलब्धि के अपने प्रत्याशित स्तरों की रूपरेखा तैयार कर सकती हैं ।

(2) विभिन्न राज्यों की शैक्षिक उपलब्धि को समतुल्य स्तर पर लाने में राष्ट्रीय स्तर उपयोगी सिद्ध हो सकते है ।

(3) राष्ट्रीय स्तरों की रूपरेखा निश्चित करना और इनका निरन्तर पता लगाते रहना शैक्षिक योजना के लिए उपयोगी हो सकता है । विशेष रूप से एक योजना से दूसरी योजना में उच्चतर स्तर की प्राप्ति का एक अवस्था-बद्ध कार्यक्रम बनाकर राष्ट्रीय स्तर पर अनुकल्पित शैक्षिक स्तर की रूपरेखा तैयार की जा सकती है ।

1. अध्याय चार ।

(4) संपादित शैक्षिक स्तरों का मापन विभिन्न शैक्षिक अवस्थाओं और विभिन्न विषयों में छात्रों की शैक्षिक सफलता के राष्ट्रीय मान निश्चित करने में भी सहायक हो सकता है, और इस प्रकार अलग-अलग राज्यों तथा पूरे देश की शैक्षिक प्रगति का वस्तुपरक चित्र प्रस्तुत किया जा सकता है और अन्तर्राज्य तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर तुलनात्मक अध्ययन भी किया जा सकता है। मानों और प्रसरण के आधार पर संपादित स्तरों के अनुदीर्घ अध्ययन के द्वारा ही इस बात का वस्तुपरक निर्णय किया जा सकता है कि एक निश्चित कालावधि में शैक्षिक स्तर गिरे है, स्थिर रहे हैं या ऊंचे हुए हैं। एक विकासशील देश में शैक्षिक स्तरों को मापने और उनका मूल्यांकन करने के लिए ऐसी क्रिवानिधि वगनि की आवश्यकता स्पष्ट ही है।

10.57. **राज्य और राष्ट्रीय स्तर**—उपर्युक्त आधार पर कार्यक्रम की योजना तैयार करने और उसे अमल में लाने की आकश्यकता स्वीकार करने पर यह आवश्यक हो जाता है कि वे अवस्थाएं निर्धारित कर ली जाएं जिनके लिए ये स्तर निश्चित किए जाने हैं। हमारी सिफ़ारिश है कि आरम्भ में वे स्तर दो अवस्थाओं के लिए निश्चित किए जाएं—उच्चतर प्राथमिक अवस्था के अन्त में और अवर प्राथमिक अवस्था के अन्त में (या वर्तमान माध्यमिक स्कूल अंतिम परीक्षा के स्तर पर)। जब उच्चतर माध्यमिक अवस्था में दो वर्ष लगेंगे और विश्वविद्यालय में प्रवेश पाने से पहले हर जगह बारह वर्ष की स्कूल शिक्षा प्राप्त करनी होगी तो उच्चतर माध्यमिक अवस्था के अन्त में भी ये स्तर निश्चित करने होंगे।

10.58. हमारी दृष्टि में निम्नलिखित उपाय भी आवश्यक होंगे :

(1) आरम्भ में राज्य सरकारों को ही स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार ये स्तर निर्धारित करने चाहिए।

(2) राज्य सरकारें राज्य स्तर पर इन स्तरों को निश्चित करने, मापने और समय-समय पर इनका पुनरीक्षण करने के लिए उपयुक्त तंत्र की स्थापना करेगी। वे समव-समय पर इन अवस्थाओं के लिए अनुकल्पित स्तर भी निश्चित करेगी। इस तंत्र में राज्य मूल्यांकन संगठन और राज्य स्कूल शिक्षा बोर्ड शामिल होंगे।

(3) एक राष्ट्रीय स्कूल शिक्षा बोर्ड होगा जो राष्ट्रीय स्तर का समन्वय करेगा और स्तरों को निरन्तर सुधारते रहने का कार्यक्रम चलाने में राज्य संगठनों की सहायता करेगा। यह कार्य कक्षा 10 के अन्त के स्तर से आरम्भ होगा, फिर कक्षा 7/8 के अन्त के स्तर को लिया जाएगा और आखिर में कक्षा बारह के अंत का स्तर लिया जाएगा।

(4) आरम्भ में इन अवस्थाओं में से प्रत्येक के लिए निभिन्न राज्यों द्वारा निश्चित किए गए स्तरों में बहुत अन्तर हो सकता है। परन्तु जैसे-जैसे यह काम आगे बढ़ेगा वैसे-वैसे यह अन्तर कम होता जाएगा और बिभिन्न राज्यों में इन अवस्थाओं के संपादित स्तर एक दूसरे के बहुत निकट आ जाएंगे। इस सिलसिले में हम इस बात पर जोर देना चाहेंगे कि राष्ट्रीय स्तर की अवधारणा का तात्पर्य ऐसे न्यूनतम स्तर से है जिससे नीचे राज्य को गिरने नहीं दिया जाएगा। इस अवधारणा का अभिप्राय किसी ऐसी एकरूपता से नहीं है जिसे सब राज्यों को हमेशा के लिए स्वीकार करना पड़ेगा। इसके विपरीत हम यह मानकर चलते है कि प्रत्येक राज्य यथासंभव ऊंचे स्तर को अपना लक्ष्य बनाएगा और निर्धारित किए गए न्यूनतम स्तर स्वयं निरन्तर ऊपर उठते जाएंगे।

10.59. **राज्य मूल्यांकन संगठन**—इस कार्यक्रम को अमल में लाने के लिए हमारी सिफ़ारिश है कि उच्चतर शिक्षा के केन्द्रीय परीक्षण संगठन (जिसे राष्ट्रीय स्तर पर स्थापित करने की सिफ़ारिश हमने की है) की तरह का एक राज्य मूल्यांकन संगठन प्रत्येक राज्य में स्थापित किया जाना चाहिए। राज्य मूल्यांकन एककों की स्थापना के परिणामस्वरूप इस दिशा में प्रारम्भिक कार्रवाई की जा चुकी है। ये एकक कहीं तो शिक्षा विभाग में खोले गए हैं और कहीं राज्य माध्यमिक शिक्षा बोडों में। हमने देखा है कि इन दोनों स्थितियों में कठिनाइयां उपस्थित हुई है। जब इस एकक की स्थापना शिक्षा विभाग में की जाती है तो यह राज्य की परीक्षा लेने बाली सबसे महत्वपूर्ण संस्था माध्यमिक शिक्षा बोर्ड से निकट संबंध स्थापित करने में असमर्थ रहता है। दूसरी ओर जब इसकी स्थापना बोर्ड में की जाती है तो इसका संबंध स्कूल से और समस्त स्कूल-अवस्था, विशेषकर प्राथमिक स्तर के मूल्यांकन सुधार कार्यक्रम से टूटने लगता है। इसलिए, हमारे विचार में, राज्य मूल्यांकन संगठन की स्थापना एक स्वतन्त्र संस्था के रूप में की जानी चाहिए। अधिक अच्छा यह होगा कि इसका रूप एक स्वायत्त संस्था का हो। इसकी सेवाएं सभी संबंधित संस्थाओं और अधिकारियों को, अर्थात्,

माध्यमिक शिक्षा बोर्डों को, जिला शिक्षा अधिकारियों को, जिन पर प्राथमिक और माध्यमिक स्कूलों में मूल्यांकन विधियों को सुधारने का भार है, तथा स्वयं स्कूलों को सुलभ होनी चाहिए।

10.60. राज्य मूल्यांकन संगठन का मुख्य कार्य शैक्षिक स्तरों का निर्धारण करने, उनका पुनरीक्षण करने और उन्हें मापने में राज्य शिक्षा विभागों की सहायना करना होगा। इस दृष्टि से यह संगठन

— प्राथमिक और माध्यमिक स्कूलों में मूल्यांकन की प्रचलित पद्धतियों को सुधारने में जिला शिक्षा अधिकारियों की सहायता करेगा;

— राज्य स्कूल शिक्षा बोर्डों द्वारा संचालित बाह्य सार्वजनिक परीक्षाओं में सुधार करने में, विशेषकर कक्षा 10 और कक्षा 11/12 के अंत में ली जाने वाली परीक्षाओं में सुधार करने में बोर्ड की सहायता करेगा।

10.61. हम पहले इस बात की चर्चा कर चुके हैं कि प्राथमिक और माध्यमिक स्कूलों में प्रचलित मूल्यांकन-पद्धतियों में और माध्यमिक शिक्षा बोर्डों द्वारा ली जाने वाली वर्तमान बाह्य सार्वजनिक परीक्षाओं में कैसे सुधार किया जा सकता है।[1] यह मुख्यतः जिला शिक्षा अधिकारी का दायित्व होगा जिसके अमले में कम से कम मूल्यांकन का एक विशेषज्ञ अधिकारी अवश्य होगा। राज्य मूल्यांकन संगठन इन कार्यक्रमों में सहायता देने के लिए निम्न-लिखित कार्य करेगा :

— मूल्यांकन सामग्री तैयार करवा और इसका पर्याप्त स्टाक रखना तथा सभी संबंधित संस्थाओं और व्यक्तियों को ऐसी सामग्री सुलभ कराना (इस सामग्री में मानकीकृत उपलब्धि परीक्षण शामिल हैं);

— अध्यापकों के लिए मूल्यांकन की नई पद्धतियों के प्रशिक्षण की व्यवस्था करने में प्रशिक्षण-कालेजों को सहयोग देना;

— सभी निरीक्षण अधिकारियों के लिए मूल्यांकन की नई पद्धतियों कीअन्तःसेवा शिक्षा की व्यवस्था करने में राज्य शिक्षा संस्थानों को सहयोग देना;

— शिक्षा विभाग के मूल्यांकन विशेषज्ञ अधिकारियों, स्कूल के प्रधानाध्यापकों और राज्य स्कूल शिक्षा बोर्डों के परीक्षकों तथा प्रश्न-पत्र तैयार करने वालों के लिए प्रशिक्षण-क्रमों का आयोजन करना;

— स्कूल अवस्था में मूल्यांकन से संबंधित समस्याओं पर अनुसंधान करवाना।

10.62. राज्य मूल्यांकन संगठन राज्य शिक्षा विभाग को उच्चतर प्राथमिक अवस्था और अवर प्राथमिक अवस्था की पाठ्यचर्या और इनके अन्त में प्रत्याशित स्तरों के संबंध में सलाह देगा। यह शिक्षा विभाग को पाठ्यपुस्तकें और अन्य अध्यापन तथा शिक्षा सामग्री तैयार करने के मामले में भी सलाह देगा। इसके अतिरिक्त संगठन का यह सम्पूर्ण और महत्वपूर्ण दायित्व होगा कि समय-समय पर उच्चतर प्राथमिक और अवर माध्यमिक अवस्थाओं के अन्त में संपादित स्तरों को मापे और विभिन्न ब्लाकों या जिलों में जो अन्तर हो उसके स्वरूप के विषय में अपनी रिपोर्ट प्रकाशित करे। यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि संपादित स्तरों का यह आवधिक और वस्तुपरक मूल्यांकन स्तरों को निरन्तर सुधारते रहने के लिए एक महत्वपूर्ण साधन होगा।

10.63. राज्य मूल्यांकन संगठन की स्थापना राज्य सरकार की जिम्मेदारी होगी। इस संगठन का अध्यक्ष शिक्षा विभाग का ऐसा वरिष्ठ अधिकारी होगा जिसने आधुनिक मूल्यांकन-पद्धतियों का विशेष प्रशिक्षण प्राप्त किया हो। इसे अपना कार्य चलाने के लिए पर्याप्त संख्या में कर्मचारी दिए जाएंगे। संगठन की एक सलाहकार समिति होगी जिसका अध्यक्ष राज्य स्कूल शिक्षा बोर्ड का अध्यक्ष होगा और जिसमें कुछ जिला शिक्षा अधिकारी, अध्यापक (प्राथमिक और माध्यमिक स्कूलों के) और इस समस्या में रुचि लेने वाले शिक्षा शास्त्री होंगे।

10.64. **राज्य स्कूल शिक्षा बोर्ड**—हमारी सिफारिश है कि प्रत्येक राज्य में एक राज्य स्कूल शिक्षा बोर्ड की स्थापना की जानी चाहिए और इसे वर्तमान माध्यमिक शिक्षा बोर्डों और संबंधित अभिकरणों के कार्य और दायित्व अपने हाथ में लेने चाहिए। इसका एक पूर्णकालिक अध्यक्ष होना चाहिए और इसमें ऐसे विभागों (शिक्षा विभाग को छोड़कर) के प्रतिनिधि होने चाहिए जिन पर शिक्षा का भार हो (जैसे आयुर्विज्ञान, उद्योग, कृषि आदि)। साथ ही इसमें शिक्षा विभाग के कुछ

1. अध्याय नौ।

यरिष्ठ अधिकारी, विश्वविद्यालयों के प्रतिनिधि, जिला स्कूल बोर्डों के प्रतिनिधि, माध्यमिक और प्राथमिक स्कूलों के प्रधानाध्यापक और अध्यापक तथा शिक्षा-शास्त्री भी होने चाहिए। इसमें दो पूर्णकालिक सचिव होने चाहिए—एक प्रशासनिक अनुभाग के लिए, जहां परीक्षाओं से संबंधित समस्त नेमी कार्य किए जाएंगे और दूसरा शैक्षिक एकक के लिए जिसका संबंध मुख्यतः माध्यमिक स्कूलों के आवधिक निरीक्षण और राज्य मूल्यांकन संगठन के सहयोग से परीक्षा में सुधार करने से होगा। इस बोर्ड की स्थापना विधि द्वारा की जानी चाहिए और इसे पर्याप्त अधिकार और स्वतन्त्रता प्राप्त होनी चाहिए ताकि यह संतोषजनक रूप से अपना कार्य कर सके और अपनी जिम्मेदारी निभा सके। यदि इस की निधि को सरकारी राजस्व न माना जाए और सरकारी खजाने में इसे जमा न करवाया जाए (जैसा कि मैसूर में होता है), बल्कि एक पृथक निधि के रूप में इसका प्रबंध और अनुरक्षण बोर्ड द्वारा किया जाए (जैसा कि महाराष्ट्र में होता है), तो यह कार्य बहुत आसान हो जाएगा।

10.65. बोर्ड के अध्यक्ष की नियुक्ति के विषय में एक विचार किया गया था कि जन शिक्षा निदेशक को बोर्ड का पदेन अध्यक्ष होना चाहिए क्योंकि इससे बोर्ड की प्रतिष्ठा बढ़ेगी, शिक्षा विभाग के कार्य और बोर्ड के कार्य में पर्याप्त सामंजस्य आ सकेगा और बोर्ड की नीतियों को क्रियान्वित करने में बहुत सुविधा होगी। हम यह मानते हैं कि बोर्ड और शिक्षा विभाग का एक दूसरे से निकट सम्पर्क होना चाहिए किन्तु हमारे विचार में निदेशक अन्य कार्यों में इतना व्यस्त है कि वह बोर्ड के कार्य के लिए पर्याप्त समय नहीं दे सकेगा और बोर्ड के दायित्व इतने अधिक हैं कि इसके लिए एक पूर्णकालिक अधिकारी का होना आवश्यक है। इसलिए चुनाव दो प्रचलित पद्धतियों में से ही करना होगा। इनमें से प्रत्येक के पक्ष में कुछ अच्छी बातें हैं। पहला तरीका तो यह है कि शिक्षा विभाग के किसी वरिष्ठ अधिकारी को, जिसका ओहदा संयुक्त निदेशक या उपनिदेशक का हो, बोर्ड का अध्यक्ष नियुक्त किया जाए। यह तरीका अधिक प्रचलित है। दूसरा तरीका, जिससे राजस्थान में काम लिया जाता है, यह है कि अध्यक्ष गैर-सरकारी व्यक्ति होता है और उसका ओहदा उपकुलपति के समान होता है तथा उसकी नियुक्ति भी उसी रीति से की जाती है जिस रीति से उपकुलपति की नियुक्ति होती है। एक तीसरा तरीका यह भी हो सकता है कि अध्यक्ष विख्यात शिक्षा-शास्त्री और गैर-सरकारी व्यक्ति हो किन्तु नियुक्ति के बाद उसे शिक्षा विभाग में समुपयुक्त प्रतिष्ठा दी जाए। स्पष्ट ही है कि इस क्षेत्र में प्रयोग करने की गुंजाइश है और अध्यक्ष की नियुक्ति के विषय में हम किसी विशेष तरीके को अपनाने का आग्रह नहीं करेंगे। परन्तु एक बात पर हम सब सहमत हैं और वह बात यह है कि बोर्ड को शिक्षा विभाग के अभिन्न अंग के रूप में कार्य करना चाहिए। स्कूलों का स्तर तब तक नहीं सुधारेगा जब तक कि राज्य स्कूल शिक्षा बोर्ड (जो स्तर और पाठ्यचर्या निर्धारित करने और परीक्षाएं लेने के लिए अधिकार प्राप्त वृत्तिक निकाय है), राज्य शिक्षा विभाग (जिसमें निरीक्षणालय है और जो धन देता है) तथा जिला स्कूल बोर्ड (जो स्कूलों को चलाता है) मिल जुलकर काम नहीं करेंगे।

10.66. राज्य स्कूल शिक्षा बोर्ड निम्नलिखित कार्यों के लिए उत्तरदायी होगा :

(1) यह स्कूल शिक्षा संबंधी सभी मामलों में राज्य सरकार को सलाह देगा;

(2) वह प्राथमिक और माध्यमिक स्कूलों की मान्यता के लिए अध्यापक, पाठ्यचर्या, साज-सामान और अन्य शैक्षिक सुविधाओं से सम्बन्धित शर्तें निर्धारित करेगा;

(3) बोर्ड की परीक्षाओं में अपने उम्मीदवार भेजने के इच्छुक माध्यमिक स्कूलों को यह मान्यता प्रदान करेगा और ऐसे स्कूलों के आवधिक निरीक्षण की व्यवस्था भी करेगा;

(4) यह सभी स्कूल कक्षाओं—कक्षा 1 से कक्षा 12 तक के लिए पाठ्यचर्या और अपनी परीक्षाओं के लिए पाठ्य-पुस्तकें विर्धारित करेगा;

(5) यह कक्षा 10 और कक्षा 11/21 के अन्त में होने वाली परीक्षाओं और राज्य सरकार द्वारा सौंपी गई अन्य परीक्षाओं का संचालन करेगा;

(6) यह प्रतिभा-अन्वेषण, छात्रवृत्ति आदि की विशेष परीक्षाओं का संचालन करेगा।

इससे स्पष्ट होगा कि हमारे विचार में बोर्ड को पाठ्यचर्या के उद्देश्य के लिए समस्त स्कूल अवस्था का कार्यभार लेना चाहिए। इसके अनेक लाभ हैं। जहां तक स्कूलों को मान्यता प्रदान करने का प्रश्न है हमारा सुझाव हैं कि जिला शिक्षा अधिकारी प्राथमिक स्कूलो को अंतिम रूप से मान्यता प्रदान करें। माध्यमिक स्कूलों को दो स्रोतों से मान्यता प्राप्त करनी होगी—शिक्षा विभाग से और राज्य स्कूल शिक्षा बोर्ड से। शिक्षा विभाग अपने

जिला शिक्षा अधिकारियों के माध्यस से वार्षिक विरीक्षण करवाएगा। बोर्ड संस्था को पहली मान्यता प्रदान करेगा। वह संस्था के आवधिक निरीक्षण (अधिक अच्छा हो कि हर तीसरे वर्ष निरीक्षण किया जाए) की व्यवस्था भी करेगा और इसके लिए अध्यापकों का एक दल नियुक्त किया जाएगा तथा विभागीय अधिकारी भी सहयोजित किए जाएंगे। हमारे विचार में स्तर को सुधारने के लिए इस प्रकार की दुहरी जांच आवश्यक है।

10.67. बोर्ड के दायित्वों के सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण तथ्य पर अच्छी तरह विचार कर लेवा आवश्यक है। सभी वर्तमान माध्यमिक शिक्षा बोर्ड अबर माध्यमिक अवस्था (कक्षा 10) के अन्त में बाह्य सार्वजनिक परीक्षा लेते हैं। नया बोर्ड इसे जारी रखेगा। इसके अतिरिक्त बोर्ड को उच्चतर माध्यमिक अवस्था (कक्षा 11 या 12) के अन्त में सामान्य शिक्षा की परिक्षाएं भी लेनी पड़ेंगी। चूंकि उच्च माध्यमिक शिक्षा अब बहुत अंशों में व्यावसायिक शिक्षा का रूप ग्रहण कर लेगी, इसलिए यह प्रश्न उठता है कि क्या बोर्ड कों व्यावसायिक पाठ्यक्रमों की परीक्षाओं का भी संचालन करना चाहिए। इस सिलसिले में हमारे सामने दो मत रखे मए :

(1) एक मत यह था कि बोर्ड के कार्य क्षेत्र सें समस्त माध्यमिक शिक्षा—सामान्य और व्यावसायिक दोनों—आनी चाहिए और व्यावमागिक माध्यमिक शिक्षा की परिक्षाओं का संचालन भी बोर्ड को ही करना चाहिए;

(2) दूसरा मत यह था कि वोर्ड का कार्यक्षेत्र सामान्य शिक्षा तक ही सीमित रखा जाए और व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में, जो उसी विषय के उच्चतर पाठ्यक्रमों के साथ संकलित किए जाने चाहिए, परीक्षाएं लेने के लिए अलग निकाय स्थापित किए जाएं। उदाहरण के लिए राज्य अध्यापक शिक्षा बोर्ड अध्यापकों के प्रशिक्षण से संबंधित परीक्षाएं लेने के लिए अधिक अच्छा माध्यम होगा।

हमने इस समस्या पर बहुत सोच-विचार किया हैं। हमारा ख्याल है कि अंततः समस्त स्कूल शिक्षा—सामान्य और व्यावसायिक—को राज्य स्कूल शिक्षा बोर्ड जैसे एक संगठन के कार्य क्षेत्र में लाना वांछनीय होगा। परन्तु तुरन्त ऐसा करना संभव नहीं होगा। इसलिए हमारी सिफ़ारिश है कि फिलहाल विभिन्न व्यावसायिक पाठ्यक्रमों के लिए राज्य स्तर पर अलग-अलग संगठव स्थापित किए जाएं। परन्तु इन निकायों और राज्य स्कूल शिक्षा वोर्ड के बीच निकट सम्पर्क होना चाहिए और कुछ हद तक ऐसा भी होना चाहिए कि एक का सदस्य दूसरे का भी सदस्य हो।

10.68. हमारे विचार में उच्चतर माध्यमिक अवस्था के लिए भी, जो स्कूल और विश्वविद्यालव के बीच की अवस्थां है, कुछ विशेष व्यवस्था की जानी चाहिए। इसलिए हमारी सिफारिश हैं कि उच्चतर माध्यमिक अवस्था की देख रेख के लिए बोर्ड की एक विशेष समिति वियुक्त की जाए। इसके आधे सदस्य स्कूलों के प्रतिनिधि होंगे और आधे विश्वविद्यालयों के। यह समिति इसका ध्यान रखेगी कि इस अवस्था में अभीष्ट स्तर बने रहें।

10.69. इस समय राज्यों के कुछ माध्यमिक शिक्षा बोर्ड परीक्षा-फल घोषित करने सें बहुत अधिक समय लगाते हैं। इस समय को घटाकर दो मास से भी कम करना पड़ेगा। जैसा कि हम पहले वता चुके हैं सारी प्रक्रिया को यांत्रिक क्रिया का रूप देने से इस उद्देश्य को पूरा करने में सहायता मिल सकती है। दूसरी बात यह है कि परीक्षार्थियों की संख्या को ध्यान में रखते हुए एक या एक से अधिक जिलों के लिए उप-वोर्ड स्थापित करने की आवश्यकता पड़ सकती है। राज्य बोर्ड प्रश्व-पत्र आदि तैयार करेगा और उप-बोर्ड राज्य वोर्ड के अधीन परीक्षाएं लेने और कापियां जंचवाने के कार्य करेंगे।

केन्द्र का योगदान

10.70. **राष्ट्रीय स्कूल शिक्षा बोर्ड की स्थापना**—प्रत्येक राज्य का कर्तव्य होगा कि वह राष्ट्रीय स्तरों को ध्मान में रखते हुए प्राथमिक और माध्यमिक अवस्थाओं के अंत के प्रत्याशित स्तर निश्चित करे। भारत सरकार की मुख्य जिम्मेदारी यह होगा कि वह परामर्शदाता, सूचवा प्रसारण केन्द्र और समन्वयकारी अभिकरण के रूप में कार्व करे, इस विषय में अनुसंधान को वढ़ावा दे और राज्य शिक्षा विभागों के जो कर्मचारी इन कार्यक्रमों में लगे हों, उवके प्रशिक्षण में सहायता दे। यह जिम्मेदारी उस कर्तव्य और दायित्व का तार्किक परिणाम है जो उच्चतर शिक्षा के क्षेत्र में स्तरों का समन्वय करने और उन्हें बवाए रखने के लिए भारत सरकार पर आ गया है। चूँकि शिक्षा की प्रक्रिया एक सम्पूर्ण इकाई है और चूँकि स्कूल शिक्षा के निम्न स्तरों के आधार पर उच्च कोटि की विश्वविद्यालय लिक्षा का भवव निर्मित नहीं किया जा सकता, इसलिए उच्चतर शिक्षा के क्षेत्र में प्रभावी कार्य तब तक संभव नहीं है जव तक कि स्कूल स्तर पर भी ऐसे ही उपाय साथ-साथ व किए जाएं।

10.71. इस सिलसिले में हमें यह सुझाव दिया गया कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की तरह एक माध्यमिक शिक्षा आयोग की स्थापना भी की जानी चाहिए। हम इस समस्या पर काफी सोच-विचार करने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि अनेक कारणों से यह सुझाव अव्यावहारिक है। उदाहरण के लिए माध्यमिक स्कूलों की अत्यधिक संख्या ऐसी प्रशासनिक समस्याएं प्रस्तुत करती हैं जिनको सुलझाना संभव नहीं है। संविधान की दृष्टि से भी यह सुझाव मान्य नहीं है। शैक्षिक कारणों से भी यह सुझाव मान्य नहीं है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग जैसी स्वायत्त संस्था की स्थापना उच्चतर शिक्षा के क्षेत्र में तो आवश्यक है क्योंकि स्वायत्तता की समस्याओं का इससे गहरा संबंध है। परन्तु स्कूल-शिक्षा के क्षेत्र में स्तर बनाए रखने की जिम्मेदारी पूर्णतः राज्य सरकारों को ही सौंपी जानी चाहिए। इसलिए प्रस्तावित माध्यमिक शिक्षा आयोग-जैसे स्वायत्त संगठन के स्थान पर शिक्षा मंत्रालय के जरिए ही स्कूल शिक्षा के स्तर को सुधारने में राज्य सरकारों की सहायता की जाए तो अधिक अच्छा हो।

10.72. इसलिए हमारी सिफ़ारिश है कि स्कूल शिक्षा से संबंधित सभी मामलों में भारत सरकार को सलाह देने के लिए शिक्षा मंत्रालय में एक राष्ट्रीय स्कूल शिक्षा बोर्ड की स्थापना की जानी चाहिए। यह बोर्ड निम्नलिखित कार्य करेगा :

— स्कूल शिक्षा की विभिन्न अवस्थाओं के लिए प्रत्याशित और अनुकल्पित उपलब्धि-स्तर निर्धारित करेगा;

— राष्ट्रीय आवश्यकताओं और अन्तर्राष्ट्रीय प्रगति के अनुसार इन स्तरों का समय-समय पर पुनरीक्षण करेगा;

— देश के विभिन्न भागों में स्कूल शिक्षा की विभिन्न अवस्थाओं के वस्तुतः संपादित स्तरों का मूल्यांकन करेगा और यह निश्चित करेगा कि ये स्तर समनुरूप प्रत्याशित स्तरों के किस हद तक निकट है;

— मुख्यतः स्कूल अवस्था के स्तरों को समुन्नत करने के उद्देश्य से पाठ्यचर्या-सुधार, पाठ्य-पुस्तकों और अध्यापन सामग्री के निर्माण तथा मूल्यांकन का कार्यक्रम विकसित करने में राज्य सरकारों को सलाह और सहायता देगा;

— स्कूल शिक्षा के स्तर को सुधारने के लिए आवश्यक सभी कार्यक्रमों की योजना बनाने और उन्हें क्रियान्वित करने में राज्य सरकारों तथा अन्य अधिकारियों को सलाह और सहायता देगा।

10.73. **बोर्ड का गठन और कर्त्तव्य**—शिक्षा मंत्रालय से बोर्ड को संपृक्त होना चाहिए। इसका पूर्णकालिक अध्यक्ष कोई विख्यात शिक्षा-शास्त्री होना चाहिए जिसकी नियुक्ति बाहर से वृत्तिक योग्यता के आधार पर की जाए। अध्यक्ष की नियुक्ति पांच वर्ष की अवधि के लिए की जानी चाहिए। नियुक्त होने पर उसे वही हैसियत और अधिकार प्राप्त होने चाहिए जो संयुक्त शिक्षा सलाहकार को दिए जाते हैं। बोर्ड की सदस्यता इस प्रकार होनी चाहिए :

(1) अध्यक्ष;

(2) शिक्षा मंत्रालय और राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद के दो प्रतिनिधि;

(3) विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के दो प्रतिनिधि;

(4) विभिन्न राज्य स्कूल शिक्षा बोर्डों के अध्यक्ष;

(5) स्कूलों के चार वास्तविक अध्यापक, जिनमें से कम-से-कम एक प्राथमिक स्कूल अध्यापक होना चाहिए;

(6) स्कूल शिक्षा में विशेष रुचि लेने वाले तीन विश्वविद्यालय अध्यापक।

10.74. बोर्ड का एक उपयुक्त और सक्षम सचिवालय होना चाहिए। बोर्ड परामर्श दाता के रूप में कार्य करेगा और स्तरों को सुधारने से संबंधित कार्यक्रमों का विकास करने में राज्य शिक्षा विभागों का मार्ग-दर्शन करेगा। यह विश्वविद्यालय अनुदान आयोग और विश्वविद्यालयों के साथ भी सहयोग करेगा।

10.75. स्तरों के सम्बन्ध में बोर्ड के कार्य स्कूल रूप से दो प्रकार के होंगे :

— **नैदानिक**, अर्थात, सफलता को मापने में राज्य शिक्षा विभागों की सहायता करना और देश के विभिन्न भागों में संपादित शैक्षिक स्तरों का निर्देश करना;

— **विकासात्मक**, अर्थात्, पाठ्यचर्या-सुधार, पाठ्य पुस्तक निर्माण और परीक्षा सुधार जैसे कार्य-

क्रमों के जरिए स्तरों को सुधारने में सहायक कदम उठाने में राज्य सरकारों की सहायता करना ।

विकासात्मक कार्य का अधिक महत्व होना चाहिए, और हमें आशा है कि शैक्षिक प्रगति की जानकारी और राष्ट्र की आवश्यकताओं तथा विभिन्न विषयों में भारत और विदेशों में हुए नए कार्यों के निरन्तर अध्ययन के आधार पर शैक्षिक स्तरों के सुधार के एक तीव्रता में निरन्तर चलने वाले और सुविचारित तथा नियोजित कार्यक्रम बनाने के लिए जिस नेतृत्व की अत्यधिक आवश्यकता है वह बोर्ड द्वारा उपलब्ध हो सकेगा । विभिन्न विषयों में होने वाले नए कार्यों और शिक्षा प्रणाली में उनके समावेश के बीच समय का जो अन्तर है, उसे कम करने में भी बोर्ड सहायक हो सकता है । चूंकि प्रस्तावित शैक्षिक पुनर्निर्माण में एक बहुत ही महत्वपूर्ण कार्य स्तरों को समुन्नत करना है, अतः हमारी सिफ़ारिश है कि यह बोर्ड जो स्कूल अवस्था की शिक्षा के लिए एक ऊत्प्रेरक अभिकरण होगा शीघ्र ही स्थापित किया जाना चाहिए ।

10.76. **केन्द्र-प्रेरित क्षेत्र के लिए कार्यक्रम**—हमारी सिफ़ारिश यह भी है कि स्कूल शिक्षा, विशेषकर माध्यमिक शिक्षा के विकास के लिए केन्द्र प्रेरित क्षेत्र में भी काफी बड़ा कार्यक्रम होना चाहिए । इनमें से कुछ कार्यक्रमों का उल्लेख नीचे किया जा रहा है ।

(1) **व्यावसायिक शिक्षा का विकास**—जैसा कि हमने इस रिपोर्ट में बार-बार जोर दिया है, माध्यमिक शिक्षा को अधिकांशतः व्यवसाय-प्रधान बनाना आवश्यक है : यदि भारत सरकार माध्यमिक स्तर पर व्यावसायिक संस्थाएं स्थापित करने के लिए राज्य सरकारों को आनुपातिक आधार पर अनुदान दे सके तो यह कार्य जल्दी हो सकता है । इसकी चर्चा पहले की जा चुकी है ।[1]

(2) **इष्टतम स्तर के माध्यमिक स्कूल**—केन्द्र-प्रेरित क्षेत्र के अन्तर्गत सहायता देने का एक और उद्देश्य उच्च कोटि के स्कूलों की स्थापना है । इस समय भारत सरकार मुख्यतः अपने कर्मचारियों के बच्चों के लिए देश के विभिन्न भागों में अनेक माध्यमिक स्कूल खोल रही है । परन्तु कुल आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए यह कार्यक्रम पर्याप्त नहीं है । हमारे विचार में उच्च कोटि की अनेक संस्थाएं स्थापित करने में राज्य सरकारों की सहायता करना भारत सरकार की जिम्मेदारी है । हम पहले बता चुके हैं कि किस प्रकार अगले दस वर्षों में एक राष्ट्रीय स्कूल शिक्षा सुधार आंदोलन का विकास किया जाना चाहिए और यह सिफ़ारिश की है कि कम-से-कम दस प्रतिशत संस्थाओं को उच्चतर स्तर का बनाया जाए और प्रत्येक सामुदायिक विकास खंड में कम से कम एक अच्छा माध्यमिक स्कूल स्थापित किया जाए । हमारा सुझाव है कि राज्य सरकारों से इस उद्देश्य के लिए ठोस अवस्था-बद्ध कार्यक्रम बनाने का अनुरोध किया जाए और अगली दो योजनाओं में इसके लिए जितने धन की आवश्यकता हो वह केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकारें दोनों आनुपातिक आधार पर दें ।

(3) **छात्रवृत्तियां**—हम पहले ही यह सिफ़ारिश कर चुके हैं कि अगली दो योजनाओं में स्कूल अवस्था के लिए छात्रवृत्तियों के विकास का एक केन्द्र-प्रेरित कार्यक्रम चलाया जाना चाहिए ।[2]

(4) **उच्चस्तरीय परिक्षाएं**—केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड को राष्ट्रीय स्कूल शिक्षा बोड के परामर्श से स्कूल के अलग-अलग विषयों में दो स्तरों—कक्षा 10 और 12 पर उच्चस्तरीय परीक्षाओं का आयोजन करना चाहिए । इन परीक्षाओं के लिए पाठ्यचर्या राष्ट्रीय स्तरों को ध्यान में रखते हुए निर्धारित की जानी चाहिए । उदाहरण के लिए यह पाठ्यचर्या अगले पांच या दस वर्षों के लिए अनुकल्पित राष्ट्रीय स्तरों को ध्यान में रख कर या वर्तमान स्तरों के अन्तर्गत देश के कुछ सर्वोत्तम स्कूलों में संपादित स्तरों को ध्यान में रखकर निर्धारित की जानी चाहिए । गणित और विज्ञान के विषयों से इसकी शुरुआत की जा सकती है और दूसरे विषय कार्यक्रम में यथा समय सम्मिलित किए जा सकते हैं । देश के मान्यता प्राप्त स्कूलों के प्रत्येक छात्र को इन परीक्षाओं में बैठने का अधिकार होना चाहिए और प्रत्येक विषय के लिए अलग-अलग उसे अपने सफलता स्तर के विषय में प्रमाण पत्र दिया जाना चाहिए । हमारा विश्वास है कि ये परीक्षाएं धीरे-धीरे अधिक लोकप्रिय होंगी और स्तरों को समुन्नत करने में इनसे बहुत सहायता मिलेगी ।

स्वतंत्र और मान्यता प्राप्त स्कूल

10.77. **लोक शिक्षा की समान स्कूल पद्धति के बाहर की शैक्षिक संस्थाएं**—वर्तमान संविधाय के अनुसार गैर सरकारी स्कूलों को बने रहने का अधिकार है—चाहे ये राज्य द्वारा मान्यता प्राप्त अथवा सहायता

1. अध्याय सात ।
2. अध्याय छह ।

प्राप्त हों या न हों। उदाहरण के लिए संविधान के अनुच्छेद 30 में यह निश्चित किया गया है कि 'धर्म या भाषा पर आधारित सब अल्पसंख्यक वर्गों को अपनी रुचि की शिक्षा संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन का अधिकार होगा' और सहायता अनुदान संबंधी मामलो में राज्य इन संस्थाओं के विरुद्ध इस आधार पर विभेद न करेगा कि वे ऐसे अल्पसंख्यक वर्गों के प्रबंध में हैं। अनुच्छेद 28 (1) और 28 (2) में यह भाव निहित है कि अपनी रुचि की धार्मिक शिक्षा की व्यवस्था करने के लिए गैर-सरकारी शैक्षिक संस्थाएं स्थापित करने की स्वतन्त्रता सभी नागरिकों को प्राप्त होगी। अनुच्छेद 19 के खंड 'ग' और 'च' के अनुसार भी सब नागरिकों को यह अधिकार दिया गया है कि वे किसी भी उद्देश्य से गैर-सरकारी स्कूल स्थापित कर सकते हैं। इसके अंतर्गत सब नागरिकों को 'संघ बनाने' का 'और कोई वृत्ति, उप जीविका, व्यापार या कारोबार करने का' अधिकार होगा। इसमें स्पष्टतः व्यक्तियों या दलों का यह अधिकार भी सम्मिलित है कि वे अपनी रुचि की शैक्षिक संस्थाएं स्थापित कर सकते हैं और चला सकते हैं। इसलिए, संविधान के इन उपबन्धों के अधीन गैर-सरकारी स्कूल स्थापित किए जा सकते हैं और यदि ये राज्य की सहायता या मान्यता न चाहें तो इन्हें लोकशिक्षा की राष्ट्रीय प्रणाली के बाहर के स्कूल समझना पड़ेगा।

10.78 सुविधा की दृष्टि से इन संस्थाओं को दो वर्गों में बांटा जा सकता है। स्वतंत्र स्कूल और मान्यता अप्राप्त स्कूल।

10.79 **स्वतंत्र स्कूल**—स्वतंत्र स्कूलों में सामान्यतः ऊंची दरों से शिक्षा शुल्क लिया जाता हैं, अध्यापकों के वेतन-मान अधिक अच्छे हैं और शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी है। भारत की शैक्षिक संस्थाओ की कुल संख्या को देखते हुए इन स्कूलो की संख्या लगभग नगण्य है। परन्तु इनकी प्रतिष्ठा बहुत अधिक है। आंशिक रूप से इसका कारण तो इनका उच्च स्तर और परम्परा है किन्तु इसका मुख्य कारण यह है कि समाज के सबसे अधिक शक्तिशाली वर्गों के बच्चे इन स्कूलों में पढ़ते है। जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है, धनिक वर्गों को शेष समुदाय से पृथक् करने के कारण ये स्कूल सामाजिक एकीकरण के लिए बहुत बड़ी समस्या बन जाते हैं। इस बुराई को दूर करने की आंशिक व्यवस्था के रूप में भारत सरकार ने छात्रवृत्तियों का एक कार्यक्रम शुरू किया है, जिसके अंतर्गत एक राष्ट्रीय प्रतियोगिता के जरिए 200 योग्य छात्रों का चुनाव किया जाता है और इन्हें स्वतंत्र स्कूलों में पढ़ने के लिए भेजा जाता है। ऐसे छात्रों की संख्या इतनी कम है कि कोई उल्लेखनीय प्रभाव उत्पन्न नहीं होता

10.80. **मान्यता-अप्राप्त संस्थाएं**—इस वर्ग के अंतर्गत भांति-भांति के स्कूल है जिनके विषय में बहुत कम जानकारी है। उदाहरण के लिए इस वर्ग में ये स्कूल शामिल हैं : शहरी क्षेत्रों के अनेक पूर्व-स्कूल जो मान्यता नहीं चाहते; विभिन्न प्रकार की कोचिंग कक्षाएं जिनसे हानि अधिक होती है, लाभ कम; गैर-सरकारी संस्थाएं जो मान्यता प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील है, किन्तु जिनका स्तर इतना खराब है कि मान्यता प्राप्त नहीं कर सकी हैं; संस्थाएं जिनका आग्रह ऐसी धर्म-शिक्षा पर है जो संविधान के विरुद्ध है या ऐसी संस्थाएं जो कुछ विशेष जातियों या सम्प्रदायों तक सीमित हैं; ऐसी कुछ संस्थाएं जो किसी न किसी कारण से जान-बूझकर सरकारी शिक्षा-प्रणाली के बाहर रहना चाहती हैं। इनमें से कुछ का कार्य तो उपयोगी है, किन्तु शिक्षा और समाज के क्षेत्र में शेष संस्थाओं का योगदान नकारात्मक है। संविधान के उपबंधों के अनुसार ऐसे स्कूलों की स्थापना को रोकना संभव नहीं है। राज्य शिक्षा विभाग भी इन पर कोई नियंत्रण नहीं रख सकते क्योंकि ये न तो मान्यता चाहते है और न सहायता। परन्तु अब शायद समय आ गया है कि अंततः जो विनियम बनना है उसकी प्रारंभिक कार्रवाई शुरू कर दी जाए और सभी शैक्षिक संस्थाओं के लिए अनिवार्य रजिस्ट्रेशन का कानून बनाया जाए तथा गैर-रजिस्टर्ड संस्था चलाना एक अपराध माना जाए। राज्य सरकार को भी यह अधिकार प्राप्त होना चाहिए कि वह निम्नलिखित किसी एक या सभी कारणों से किसी शैक्षिक संस्था का नाम अपने रजिस्टर से काट दे : (1) स्कूल का परिसर या उसका कोई हिस्सा स्कूल के लिए अनुपयुक्त हैं; (2) स्कूल के परिसर में जितना स्थान है वह स्कूल के छात्रों की संख्या, आयु वर्ग और सेक्स को देखते हुए अपर्याप्त या अनुपयुक्त है; (3) स्कूल के छात्रों के आयु वर्ग और सेक्स को देखते हुए स्कूल में अच्छी और उचित शिक्षा की व्यवस्था नहीं है; (4) स्कूल का मालिक या कोई अध्यापक स्वतंत्र स्कूल का मालिक या अध्यापक (जैसी स्थिति हो) बनने के योग्य व्यक्ति नहीं हैं। परन्तु रजिस्टर से संस्था का नाम काटने का अंतिम निर्णय करने से पहले संस्था को नोटिस दिया जाना चाहिए, जिसमें आरोपों का स्पष्ट उल्लेख होना चाहिए और संस्था को शर्तें पूरी करने के लिए पर्याप्त समय दिया जाना चाहिए। संस्था को यह अधिकार भी होना चाहिए कि वह इस

उद्देश्य से स्थापित किए गए विशेष अधिकरण से अपील कर सके। इस मामूली कार्रवाई से इस समय की फ़ौरी जरूरत पूरी हो जाएगी। इससे जो अनुभव प्राप्त हो उसके आधार पर आगे की कार्रवाई की जा सकती है।

---

1. ऊपर जो सुझाव दिए गए हैं वे इंग्लैंड के शिक्षा अधिनियम, 1944 पर आधारित हैं।

ग्यारहवां अध्याय

उच्चतर शिक्षा : उद्देश्य और सुधार

एक. विश्वविद्यालयों के उद्देश्य (1-2)

दो. भारत में विश्वविद्यालय—(3) **ऐतिहासिक विकास :** (4) **विशेष उत्तरदायित्व;** (11) **विकास के कार्यक्रम ।**

तीन. कुछ समस्याएं जिनसे जूझना है (12-16)

चार. बड़े विश्वविद्यालयों की स्थापना । (17) **प्रस्ताव;** (26) **कियान्विति;** (28) **छात्रों की भरती;** (30) **अध्यापकों की भरती;** (31) **उच्चतर अध्ययन-केन्द्र;** (32) **सुविधाओं की व्यवस्था;** (33) **कुछ सामान्य सुझाव;** (34) **अन्य विभागों में उत्कृष्टता का विस्तार;** (35) **वित्तीय समर्थन ।**

पांच. विश्वविद्यालयों और सम्बद्ध कालेजों का सुधार—(37) **उच्चतर शिक्षा के लिए अध्यापकों की व्यवस्था;** (39) **अन्य विश्वविद्यालयों का विकास;** (40) **सम्बद्ध कालेजों का विकास ।**

छ. अध्यापन और मूल्यांकन में सुधार—(42) **अध्यापन-कार्य का सुधार;** (44) **पुस्तकालयों का विकास;** (50) **प्रयोग;** (51) **अध्यापन की पद्धतियां;** (52) **परीक्षा में सुधार;** (58) **शिक्षा का माध्यम ।**

सात. छात्र-सेवाएं—(64) **नए छात्रों का अनुस्थापन;** (65) **स्वास्थ्य-सेवाएं;** (67) **छात्रावास और दिवस अध्ययन-केन्द्र;** (69) **मार्गदर्शन और परामर्श;** (71) **छात्रों के कार्यकलाप;** (72) **कल्याण-सेवाओं का प्रबन्ध** (73) **छात्र-संघ;** (77) **छात्रानुशासन ।**

विश्वविद्यालयों के उद्देश्य

11.01. सन् 1947 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय में दीक्षान्त भाषण देते हुए पंडित जवाहरलाल नेहरू ने विश्वविद्यालय के मूल उद्देश्यों और राष्ट्र-जीवन में उसकी भूमिका का सार इन शब्दों में प्रस्तुत किया था : 'विश्वविद्यालय का अस्तित्व मानववाद के लिए, सहिष्णुता और विवेक के लिए, विचारगत साहस तथा सत्य की खोज के लिए होता है । उसका लक्ष्य यह होता है कि मानव जाति और भी उच्चतर उद्देश्यों की ओर कदम बढ़ाए । राष्ट्र का और जनता का श्रेय इसी में है कि विश्वविद्यालय अपने दायित्व का समुचित निर्वाह करते रहें ।' इन महान शब्दों में यह मूलभूत सचाई अपने आप उजागर हो उठती है कि राष्ट्र-जीवन, राष्ट्र-कल्याण और राष्ट्र-शक्ति में विश्वविद्यालयों का बहुत ही महत्वपूर्ण योगदान होता है । पर वे इस भूमिका का निर्वाह तभी कर सकते हैं जब जीवन के कुछ आधारभूत मूल्यों के प्रति उनकी अडिग-अटूट निष्ठा हो । विश्वविद्यालय अनिवार्य रूप से अध्यापकों और छात्रों की बिरादरी की तरह से होते है और वहां सभी किसी न किसी रूप में, एक दूसरे से कुछ सीखते हैं—या कम-से-कम, सीखने की कोशिश करते हैं । उनका प्रमुख लक्ष्य होता है सृष्टि के और दैहिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक सभी धरातलों पर स्वयं अपने बारे में मनुष्य के बोध को गहराई देना; समूचे समाज में इस बोध का प्रसार करना और मानव-जाति की सेवा के लिए उसका उपयोग करना । यहां विचारों को और आदर्शवाद को आश्रय मिलता है—वे अपने सभी सदस्यों से आचरण और निष्ठा के बड़े ऊंचे स्तरों की अपेक्षा करते हैं । वे सत्य और उत्कर्ष के विविध रूपों को खोज में जुटे रहते हैं—और उनकी इस खोज में सबसे अधिक आवश्यकता होती हैं साहस और निडरता की । महान विश्वविद्यालयों और भीरु लोगों का किसी भी तरह मेल नही बैठ सकता ।

11.02. यह ठीक है कि जिन आधारभूत मूल्यों के प्रति विश्वविद्यालयों की निष्ठा होती है, वे अधिकांशतः समय अथवा परिस्थितियों से विरपेक्ष होते हैं । फिर भी उनके कार्य समय-समय पर बदलते रहते हैं । आज की दुनिया बड़ी तेजी से बदलती जा रही है और इस दुनिया में विश्वविद्यालयों के कार्य-क्षेत्र और संगठन में भी गम्भीर परिवर्तन हो रहे हैं । वे द्रुत विकास की प्रक्रिया से गुजर रहे हैं । उनके परम्परागत कार्य दो हैं—अध्यापन और ज्ञान का उन्नयन । परन्तु अब विश्वविद्यालय यहीं तक

सीमित नहीं रह गए। उनके कार्य की नई दिशाएं खुल रही हैं और पुराने कार्यों को विस्तार, गंभीरता और जटिलता प्राप्त होती जा रही है। मोटे तौर पर, आज के संसार में विश्वविद्यालयों के ये कार्य कहे जा सकते हैं :

— नए ज्ञान की प्राप्ति और पोषण करना; पूरे उत्साह के साथ और निर्भय होकर सत्य के अन्वेषण में जुट पड़ना और नई आवश्यकताओं तथा नई खोजों के संदर्भ में प्राचीन ज्ञान और विश्वासों की व्याख्या करना;

— जीवन के हरेक क्षेत्र में सही क़िस्म का नेतृत्व प्रदान करना, प्रतिभावान युवक-युवतियों को पहचानना और शारीरिक स्वस्थता के एवं मानसिक शक्तियों के उन्नयन और स्वस्थ रुचियों, मनोवृत्तियों तथा नैतिक एवं बौद्धिक मूल्यों के पोषण द्वारा उनकी सम्भावनाओं के भरपूर विकास में सहायता करना;

— समाज को ऐसे सक्षम नर-नारी देना जो कृषि, कलाओं, चिकित्सा, विज्ञान और टेक्नोलोजी (शिल्प विज्ञान) में तथा अन्य विविध वृत्तियों में प्रशिक्षित हों और साथ ही सामाजिक सोद्देश्यता की भावना से अनुप्राणित संस्कृत व्यक्ति भी हों;

— शिक्षा के प्रसार द्वारा समानता और सामाजिक न्याय को बढ़ावा देना तथा सामाजिक एवं सांस्कृतिक भेदों को घटाने का प्रयत्न करना; और

— व्यक्ति और समाज में 'सत्जीवन' के विकास के लिए जिन मनोवृत्तियों और मूल्यों की आवश्यकता होती है, अध्यापकों और छात्रों में और उनके माध्यम से सम्पूर्ण समाज में उन्हीं मनोवृत्तियों-मूल्यों का संवर्धन-पोषण करना।

भारत में विश्वविद्यालय

11.03. **ऐतिहासिक विकास**— भारत के प्राचीन विश्वविद्यालय अपने समसामयिक संसार में ज्ञान के अग्रणी केन्द्र थे। अन्य देशों से छात्र और अध्येता विद्याध्ययन के लिए वहां आया करते थे। मध्यकाल के कुछ प्रसिद्ध इस्लामी ज्ञान-केन्द्रों की स्थिति भी यही थी। किन्तु दुर्भाग्य से ये परम्पराएं जीवित न रहीं। आधुनिक विश्वविद्यालयों की स्थापना, सौ वर्ष से कुछ अधिक हुए तत्कालीन लन्दन-विश्वविद्यालय की नकल पर विदेशीय संस्थाओं के रूप में हुई थी। आधुनिक विश्वविद्यालयों में सबसे पहले बम्बई, कलकत्ता और मद्रास विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई। ये तीनों ही 1857 में स्थापित हुए थे। इनके बाद 1887 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय की स्थापना हुई। इन विश्वविद्यालयों की शुरुआत विशुद्धतः परीक्षा-संस्थाओं के रूप में हुई थी। वर्तमान शताब्दी के आरम्भ तक इनका यही स्वरूप बना रहा। तभी भारतीय विश्वविद्यालय आयोग (इन्डियन युनिवर्सिटीज़ कमीशन)—1902 की नियुक्ति हुई और भारतीय विश्वविद्यालय अधिनियम (इन्डियन युनिवर्सिटीज़ ऐक्ट)—1904 पास हुआ। लार्ड कर्जन ने कहा था : "भारत कितना भिन्न है। यहाँ उस अर्थ में विश्वविद्यालय का कोई समष्टिगत अस्तित्व नहीं (जिस अर्थ में ऑक्सफ़ोर्ड या कैम्ब्रिज में है); वह भवनों का समूह नहीं—कोई स्थान-विशेष भी उसे मुश्किल से ही कहा जा सकता है। वह तो बस एक ऐसी संस्था है जो अध्ययन-क्रम को नियंत्रित करती है और सम्बद्ध कालेजों के छात्रों के लिए परीक्षा-पत्र तैयार कराती है। वे उसके अंग नहीं होते। अक्सर ऐसा होता है कि वे शहर में—कभी-कभी तो उस प्रान्त तक में—नहीं होते।"[1] शिक्षा-नीति विषयक सरकारी प्रस्ताव (1913) में और अधिक विश्वविद्यालय स्थापित करने की आवश्यकता स्वीकार की गई थी। उसमें कहा गया था : "वह दिन शायद अभी बहुत दूर है जब भारत में सम्बन्धक विश्वविद्यालयों की बिल्कुल भी आवश्यकता न रह जाएगी। परन्तु यह जरूरी है कि सम्बन्धक विश्वविद्यालयों के नियंत्रण-क्षेत्र सीमित कर दिए जाएं। इसके लिए एक तो यह आवश्यक है कि भारत के हर बड़े प्रान्त में एक अलग विश्वविद्यालय की व्यवस्था हो और दूसरे यह कि हरेक प्रान्त में नए अध्ययन एवं आवासिक विश्वविद्यालय स्थापित किए जाएं। उत्कृष्ट आधुनिक विज्ञानों के अनुसार शैक्षिक कुशलता के लिए सही रास्ता वही है।" इस नीति के फलस्वरूप 1913 और 1921 के बीच छह नए विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई। लखनऊ में (1920 में) विश्वविद्यालय की स्थापना हुई जो अध्ययन केन्द्रित, एकात्मक और अधिकांश में आवासिक था। अध्ययन-विश्वविद्यालयों की स्थापना में नई दिशाओं के उन्मेष के लिए अग्रणी भारतीयों ने जो प्रयत्न किए, उन्हें भी मान्यता प्रदान की गई। उदाहरण के लिए, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना पंडित मदन मोहन मालवीय ने की थी। 1916 में उसे नियमित कर लिया गया। इसी तरह, अलीगढ़ मुस्लिम विश्व-

1. लार्ड कर्जन इन इण्डिया — भाग दो, पृष्ठ पैंतीस।

विद्यालय को, जिसकी स्थापना सर सैयद अहमद ख़ान ने की थी, 1920 में विधिमत कर लिया गया। इसी बीच दो देशी रिसायतों ने भी अपने-अपने क्षेत्रों के लिए विश्वविद्यालय स्थापित किए—मैसूर ने 1916 में और हैदराबाद ने (उस्मानिया विश्वविद्यालय) 1918 में। उस्मानिया ने उर्दू को शिक्षा का माध्यम बनाकर इतिहास के एक नए अध्याय का सूत्रपात किया।[1] 1921 के बाद जब शिक्षा का विषय भारतीय नियंत्रण में आ गया तब विश्वविद्यालयों का विकास कहीं अधिक गति से हुआ और उसके बाद 26 वर्षों में नौ और विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद से उच्चतर शिक्षा के क्षेत्र में कहीं अधिक द्रुत गति से विस्तार हुआ हैं। विश्वविद्यालयों की संख्या 19 से बढ़कर 64 हो गई है। इनके अतिरिक्त, विश्वविद्यालय अनुदान-आयोग अधिनियम की धारा 3 के अधीन 9 संस्थाओं को 'विश्वविद्यालय मान लिया गया हैं। इनका विवरण इस अध्याय के अन्त तक की टिप्पणी में दिया गया हैं। किन्तु आज की स्थिति की जो आवश्यकताएं हैं, वे इस विस्तार से भी पूरी नहीं हुई हैं।

11.04 **विशेष उत्तरदायित्व**—हमने ऊपर विश्वविद्यालय-शिक्षा के जिन सामान्य उद्देश्यों की चर्चा की है, वे भारतीय विश्वविद्यालयों पर भी उतने ही लागू होते हैं। इसके अतिरिक्त, हमारे सामाजिक और शैक्षिक विकास की वर्तमान अवस्था में उनके कुछ विशेष दायित्व भी हैं। सब से पहली और सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि उन्हें 'राष्ट्र के अन्तःकरण' के रूप में, राष्ट्रीय जीवन पद्धति के निर्धारकों के रूप में, काम करना सीखना चाहिए। प्रबुद्ध लोकमत के अभाव में यह उत्तरदायित्व और भी बढ़ जाता है। हमारे राष्ट्रीय जीवन में—और सच तो यह है कि मानव-मात्र के जीवन में—इतनी नई-नई (और पुरानी भी) शक्तियां तथा आकर्षण सक्रिय हैं कि उनका सन्तुलन बनाए रखना बेहद नाजुक काम हो गया है, और अगर विश्वविद्यालय सामाजिक प्रक्रम के अध्ययन और मूल्यांकन में गहरी रुचि ले कर अपनी इस भूमिका का सम्यक् निर्वाह नहीं कर पाएंगे तो इस बात का पूरा-पूरा खतरा है कि हम भटक जाएं। इस प्रकार की रुचि का बड़ा महत्व है क्योंकि विश्वविद्यालय मुख्यतः समाज के आलोचनात्मक मूल्यांकन का—सहानुभूतिपूर्ण, वस्तुपरक, निर्भय मूल्यांकन का—ऐसा माध्यम है जिसपर न तो पक्षपात का संदेह किया जा सकता हैं और न जिसकी नीयत पर शक हो सकता है। अब तक भारतीय विश्वविद्यालयों ने अपने इस कर्तव्य का समुचित पालन नहीं किया है। इसका कारण या तो मानसिक जड़ता है अथवा यह कि इस भूमिका की महत्ता को सही-सही समझा नहीं जा सका या फिर यह परम्परागत विश्वास कि विद्वत्ता और शैक्षिक उत्कर्ष के अंकुर असंख्य जनसमुदाय के कोलाहल से दूर, एकान्त में ही पूरी तरह फलते-फूलते हैं। कहीं-कहीं हो सकता है ऐसा भी हुआ हो कि अधिकारी-वर्ग या प्रभावशाली निहित स्वार्थ उनके मत अथवा आलोचनाओं के प्रति सद्रस्य न रहे हों और उनकी अप्रसन्नता की आशंका बाधक बन गई हो। अपने इस कर्तव्य कर्म को सही ढंग से पूरा करने के लिए विश्वविद्यालय के अध्यापकों को अपने भीतर बौद्धिक ईमानदारी, साहस और वैज्ञानिक ज्ञान का तो पोषण-संवर्धन करना ही चाहिए, साथ ही उन्हें जनता का विश्वास भी प्राप्त करना चाहिए। जब तक उन में सामाजिक चिन्तन और प्रयत्न के स्तर पर अपनी छाप डालने की उच्चाकांक्षा न होगी, तब तक वे एक ऐसे नए समाज को ढालने में कोई मदद नहीं दे पाएंगे जो ऊंचे मूल्यों की कामना में ही अटक कर रह जाए बल्कि उन्हें अपने जीवन में उतारने के अवसर भी प्रदान करे। इस प्रयोजन की पूर्ति के लिए पहले कदम के रूप में यह आवश्यक है कि स्वयं विश्वविद्यालयों का विकास ऐसे समाजों के रूप में किया जाए जहाँ उक्त मूल्यों का समुचित सम्मान हो और इन पर आचरण किया जाए।

11.05. इस दृष्टि से, विश्वविद्यालयों को सहनशीलता के वातावरण में वैयक्तिकता, वैविध्य और विसम्मति को प्रोत्साहन देना सीखना होगा। यों विसम्मति तो अब भी है परन्तु वह प्रायः सतही या सनसनीदार किस्म की है। भारत में और विदेशों में भी वह अनेक रूपों में प्रकट हो रही है लेकिन आम प्रवृत्ति व्यवस्थानुगामी मानव उत्पन्न करने की ही है जो बौद्धिक धरातल पर सामाजिक व्यवहार और सामाजिक संस्थाओं के स्वीकृत ढांचे को चुनौती देने से डरता है और जो अक्सर बड़े लोगों के वरदहस्त की ओट पाने के लिए बहुत लालायित रहता है ताकि जीवन में उसका 'काम चलता रहे'। इस प्रकार की मनोवृत्ति से विश्वविद्यालव का कोई सरोकार नहीं होना चाहिए। उसका कास मूलतः यह नहीं है कि समाज जो चाहे वही उसे दे बल्कि यह है कि समाज को जिसकी ज़रूरत हो, वह उसे दे। स्पष्ट है कि ये दोनों सदा एक ही नहीं होतीं। विश्वविद्यालय कोई 'सामुदायिक सेवा-

1. **महर्षि अन्नासाहिब कर्वे ने एस० एन० डी० टी० भारतीय महिला विश्वविद्यालय की स्थापना 1916 में की थी और उसमें शिक्षा के माध्यमों के रूप में गुजराती और मराठी का प्रयोग होना था परन्तु यह विश्वविद्यालय बहुत बाद में जाकर निगमित हुआ।**

केन्द्र नहीं होता जो जड़भाव से लोक की मांगों को पूरा करता रहे और इस तरह अपनी बौद्धिक ईमानदारी को जोखिम में डाले, न वह कोई ऐसा एकान्त मंदिर होता है जिसमें छात्र और अध्यापक अध्यापन अथवा अनुसंधान के लिए कुछ समय तक बन्द हो कर बैठ जाएं और समाज को सुधारने के सारे दायित्व को त्याग दें। उसे तो उभयभावी स्थिति बनाए रखनी पड़ती है, प्रवृत्ति और अनासक्ति के बीच सजग सन्तुलन बनाए रखना होता है—कर्म में प्रवृत्ति और चिन्तन में अनासक्ति। उसे सदा एक सृजनात्मक **तनाव** की स्थिति में रहना होता है—वह जानता है कहां परम्परागत मूल्यों की व्याख्या अपेक्षित है, कहां आलोचना; कहां उनके उन्नयन की आवश्यकता है, कहां समर्थन की। वह न तो वर्तमान पर्यावरण और संस्थाओं के साथ अपना तादात्म्य कर सकता है, न बिना सोचे-समझे हर तरह के परिवर्तन और क्षणिक दबावों के सम्मुख घुटने टेक सकता है। उसका मतलब तो होगा दृष्टिकोण की अपनी मौलिक ईमानदारी और अपनी निर्णय-शक्ति का समर्पण कर देना। नए में जो कुछ स्वस्थ हो उसे आत्मसात करने के लिए और पुराने में जो कुछ रुग्ण हो उसे त्याग देने के लिए उसे सदा तत्पर रहना चाहिए। इस तरह के रवैये में एक चुनौती सी होती है और यह रवैया अप्रिय भी हो सकता है क्योंकि अपने व्यक्तिगत या राष्ट्रीय जीवन की अत्यन्त गतिहीन मूर्तियों को तिलांजलि देने के लिए और मन के अनेक भावात्मक अवरोधों पर विजय पाने के लिए साहस की आवश्यकता होती है। अगर मन की शक्ति में विश्वविद्यालय की आस्था हो और वह दूसरों में भी यह आस्था जगा सके तो वह इस भूमिका का सम्यक् निर्वाह कर सकता है। उसे छात्रों में ही नहीं बल्कि जनसाधारण में भी यथाशक्ति स्वतन्त्र एवं अनासक्त चिन्तन को प्रोत्साहन देना चाहिए जो निहित स्वार्थों और प्रतिष्ठित तौर-तरीकों को खुलकर चुनौती दे सके। यही एकमात्र रास्ता ऐसा है जिससे कुछ-कुछ आशा बंधती है कि आदमी समझदारी और सूझ-बूझ के साथ रह पाएगा।

11.06. भारतीय विश्वविद्यालयों का एक और विशेष उत्तरदायित्व है बहुत बड़े पैमाने पर प्रौढ़ शिक्षा के कार्यक्रम तैयार करना और उन्हें पूरा करने के लिए अंशकालिक और पत्राचार-पाठ्यक्रमों का विस्तृत ताना-बाना बुनना। विश्वविद्यालयों को अपने सभी संकायों में इन पाठ्यक्रमों की व्यवस्था करनी होगी—परीक्षाओं के लिए अध्ययनेतर तैयारी के रूप में ही नहीं बल्कि ऐसे कार्यक्रमों के रूप में जिनके अधीन जीवन के किसी भी क्षेत्र में किसी भी व्यवसाय के लोग नौकरी करते रह कर शिक्षा ग्रहण कर सकें। जनसाधारण और बुद्धिजीवियों के बीच दृष्टिकोण और आस्था की एकता उत्पन्न करने के लिए व्यापक प्रौढ़शिक्षा-कार्यक्रम भी आवश्यक हैं। विस्तार-कार्यक्रम में उन माध्य स्थित नेतृत्व-वर्गों के प्रशिक्षण की भी व्यवस्था निहित रहेगी जो आज की परिस्थितियों में भले ही विश्वविद्यालय में प्रवेश करने की स्थिति में न हों परन्तु राष्ट्रीय समस्याओं के बारे में जिनकी समझ पर और उनके साथ जिनके तादात्मय पर ही बहुत अंशों में देश का भविष्य निर्भर है और सब से अधिक आवश्यकता तो इस बात की होगी कि विश्वविद्यालय उन स्थानीय, प्रादेशिक और राष्ट्रीय समस्याओं के गम्भीर और सजग अध्ययन के माध्यम बनें जो सरकार, सरकारी और गैर-सरकारी संस्थाओं तथा उद्योग की ओर से परामर्श एवं मार्गदर्शन के लिए उनके सम्मुख न प्रस्तुत की जाएं।

11.07. वर्तमान संदर्भ में भारतीय विश्वविद्यालयों का एक और उत्तरदायित्व यह है कि स्कूलों के गुणात्मक उन्नयन के प्रयत्नों में वे उनकी भरसक सहायता करें। इस प्रयोजन की पूर्ति के लिए विश्वविद्यालयों को प्रयोगात्मक स्कूल चलाने चाहिए, विविध स्कूली विषयों में अध्यापकों के लिए उच्चतर पाठ्यक्रमों का आयोजन करना चाहिए, सभी स्तरों पर अध्यापकों के प्रशिक्षण का और अधिक दायित्व अपने ऊपर ले लेना चाहिए, अन्तःसेवा-शिक्षण के लिए ग्रीष्मकालीन संस्थानों की व्यवस्था करनी चाहिए, प्रतिभा की खोज और विकास में सहायता देनी चाहिए और नए-नए पाठ्यक्रम, पाठ्य-ग्रंथ तथा नई-नई अध्ययन-सामग्री तैयार करनी चाहिए। विस्तार और स्कूलों के सुधार के इन कार्यक्रमों का विस्तृत विवेचन अन्यत्र किया गया है[1]।

11.08. इस समय भारतीय विश्वविद्यालयों का शायद सबसे कठिन उत्तरदायित्व है परीक्षाओं को प्रमुख स्थान देने वाली अपनी पूर्ववर्ती परम्परा के भारी बोझ से मुक्ति पाना, हर दृष्टि से स्तरों को ऊंचा उठाना और अध्यापन तथा अनुसंधान का सर्वांगीण विकास करके कम-से-कम कुछ ऐसे केन्द्रों की स्थापना करना जिनकी तुलना संसार के किसी भी भाग में अपनी तरह के किसी भी केन्द्र से की जा सके। यही एक रास्ता है जिससे कम-से-कम इस देश के भीतर ही भारतीय शैक्षिक जीवन के गुरुत्वाकर्षण-केन्द्र बन सकते हैं। हमारे लिए इस विषय पर सर एरिक एशबी को उद्धृत कर देना ही शायद सब से अधिक उचित रहेगा :

1. अध्याय आठ से दस और सत्रह।

भारतीय विश्वविद्यालयों की स्थापना के एक शताब्दी बाद अब अगर हम उन पर दृष्टिपात करें तो मन में यह बात उठे बिना नहीं रहती कि उनके इर्द-गिर्द जो अनगिनत और अनूठे अवसर बिखरें पड़े हैं, उनके अनुरूप वे अप ने आपको ढाल नहीं पाए। उनके सामने जो विकट समस्याएं है उनके दबाब से वे अपना सारा उत्साह और पहल करने की सारी क्षमता खो बैठे हैं। तीन बड़े-बड़े आयोग बैठ चुके हैं किन्तु वे अभी तक अपने आपको अपने संक्षिप्त इतिहास के जाल से मुक्त नहीं कर पाए। वे भी परीक्षा-संस्थाएं हैं और उनके छात्र स्वभावतः तरीक्षा की सफलता को ही स्नातक-पूर्न जीवन का चरम लक्ष्य मानते हैं—हां, इसके कुछ उल्लेखनीय अपवाद अवश्य है। विश्वविद्यालयों की संख्या तो बढ़ती जा रही है किन्तु अन्य देशों की अपेक्षा उनके शैक्षिक स्तर ऊपर नहीं उठ रहे, और यह जो हैं सो हैं ही, इससे भी कहीं गंभीर नात यह है कि यिश्वयिद्यालय आज भी यिदेशी पौध बने हुए हैं—नए भारत से आज भी उनका सामंजस्य नहीं हो पाया जिसकी आशा राधाकृष्णन रिपोर्ट के लेखकों ने (दूसरे अध्याय में, जो बहुत ही अच्छा लिखा गया है) की थी। विदेश का प्रेक्षक अगर भारतीय बुद्धिजीवी को—जो इंग्लैंड के साथ अपने सम्पर्क के सूत्रों को कुछ ऐसी लालसा से संजोये हुए हैं मानो वही उसका अपना देश हो—सांस्कृतिक दृष्टि से विस्थापित मानता है तो उसका एक कारण यही हैं। आधुनिक भारत का नेतृत्व ऐसे राजमर्मज्ञों के हाथों में हैं जिनका बौद्धिक स्तर और किसी भी राष्ट्र के नेताओं की अपेक्षा ऊंचा है, पर इतना होते हुए भी (जैसा कि एडवर्ड शिल्स ने हाल ही में लिखा है) भारत में कोई "बौद्धिक समाज नहीं" है। इसका कारण कुछ हद तक यह हैं कि देश में सांस्कृतिक संस्थाओं के सोपान का अभाव है और इसी बात का सम्बन्ध इस तथ्य से भी है कि विश्वविद्यालयों की ओर से एशियायी संस्कृति की चुनौती का जो जवाब मिला है वह बहुत ही कमजोर है।

भारतीय समाज की चुनौती का सामना करने में विश्वविद्यालय की इस असफलता के अनेक और जटिल कारण हैं पर इसमें शक नहीं कि 1835 से 1854 के बीच के फैसले भी इन कारणों में है। विश्वयिद्यालय के अध्ययन-क्रम से पूरे पचास वर्ष तक समूचे प्राच्य ज्ञान और धर्म का बहिष्कार रखा गया और हिन्दू और मुसलमानों को ऐसे इतिहास क्षौर दर्शन का अध्ययन कराया गया जिसकी जड़ें एकान्ततः भूमध्यसागर और मसीही धर्म में फैली हुई हैं। यहां के लोगों के सामने यूरोपीय सभ्यता का परीक्षणीय अस्थिपंजर प्रस्तुत किया गया और इस बात की परवाह नहीं की गई कि उनका उन मूल्यों और मानदंडों से भी परिचय करा दिया जाए जो इन हड्डियों पर मांस-मज्जा का काम करते हैं। विश्वविद्यालय का सारा बाहरी ताम-झाम तो तैयार किया गया पर शैक्षिक समाज की जीवट और साहचर्य-भावना का उसमें प्रभाय नही रहा—भारत के विश्वविद्यालय आज भी इन अवरोधों से लड़ रहे हैं और ये ही वे अवरोध हैं जो उन्हें भारत के बौद्धिक-जीवन का केन्द्र नहीं बनने दे रहे।[1]

11.09. अब तक हमने जिन उत्तरदायित्वों की चर्चा की है उनका संबंध विशेष रूप से उच्चतर शिक्षा से है। इन्हें शिक्षा के उन सामान्य उद्देश्यों के साथ मिलाकर पढ़ना चाहिए जिनकी चर्चा हम पहले कर चुके हैं।[2] हर स्तर की शिक्षा को इन उद्देश्यों की सिद्धि में कुछ न कुछ योगदाम करना ही चाहिए। उदाहरण के लिए, भारतीय विश्वविद्यालयों को राष्ट्रीय चेतना का संवर्धन करना चाहिए। उन्हें इस तरह की व्यवस्था करनी चाहिए कि भारतीय विश्वविद्यालय से जो भी विद्यार्थी निकले उसे भारत की सांस्कृतिक दाय का, उसकी अतीत की सिद्धिनों का, कला, दर्शन, निज्ञान आदि के क्षेत्र में उसकी उपलब्धियों का थोड़ा-बहुत ज्ञान अवश्य हो। दूसरे शब्दों में, उसे यह पता होना चाहिए कि वह किस-किस चीज का उत्तराधिकारी है। यह काम शायद अच्छी तरह पहली डिग्री के स्तर पर किया जा सकता है क्योंकि इस स्तर पर उदार शिक्षा-कार्यक्रम के अंग-रूप में उसका अध्ययन किया-कराया जा सकता है। इस सिलसिले में यह बात उल्लेखनीय है कि अमरीका में विश्वविद्यालयों के सभी विद्यार्थियों को पश्चिमी सभ्यता-विषयक पाठ्यक्रम पूरा करना पड़ता है।[3]

11.10. हमारा विश्वास है कि उच्चतर शिक्षा के जिस नवीकरण की बात हमारें मन में है, उसके लिए यह अनिवार्य हैं कि विश्वविद्यालय के सभी अध्यापकों और छात्रों

1. **द बुलेटिन आफ इंटरनेशनल एसोसिएशन आफ यूनिवर्सिटीज, नवम्बर,** 1962।
2. **अध्याय एक।**
3. **रिपोर्ट आन स्टैंडर्ड यूनिवर्सिटी एजुकेशन, वि० अं० आ० नई दिल्ली,** 1953, **पृ०** 4-7.

कों विश्वविद्यालयों के इन उत्तरदायित्वों की सजग चेतना हो। हम तो यहां तक कहेंगे कि विश्वविद्यालय से सम्बन्धित हर नर-नारी के लिए यह एक चुनौती है और हमें भरोसा है वे पूरी गम्भीरता के साथ इस चुनौती को स्वीकार करेंगे।

11.11. **विकास के कार्यक्रम**—इन महत्वाकांक्षा-पूर्ण उद्देश्यों को सिद्ध कर लेना कोई आसान काम नहीं है। देश के सभी विश्वविद्यालयों में इन सपनों को साकार करने के लिए धन और जनश्रम की जितनी पूंजी की आवश्यकता होगी वह इस समय हमारे बिरते से बाहर है। इसके लिए बहुत बड़ी संख्या में सुयोग्य और समर्पित अध्यापक चाहिएं, जो मिलते नहीं। अतः आवश्यकता एक ऐसी सुचिन्तित और व्यापक योजना की है जिसका प्रसार अगले बीस वर्षों में हो और जिसका भरपूर उत्साह के साथ और अनवरत क्रियान्वय हो। और बातों के साथ-साथ इस योजना में निम्नलिखित कार्यक्रम सम्मिलित होंगे जिन्हें ऊंची प्राथमिकता दी जाएगी :

— उच्चतर शिक्षा और अनुसंधान में गुण और स्तर की दृष्टि से आमूल सुधार;

— राष्ट्रीय विकास की जनशक्तिपरक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए और कुछ हद तक, जनता की बढ़ती हुई सामाजिक महत्वाकांक्षाओं और प्रतियाशाओं की पूर्ति के लिए उच्चतर शिक्षा का विकास; और

— विश्वविद्यालय के संगठन और प्रशासन में सुधार।

प्रस्तुत अध्याय और अगले दो अध्यायों में हम क्रमशः इन समस्याओं का विवेचन करेंगे।

कुछ समस्याएं जिनसे जूझना है

11.12. भारत में आमतौर से यह धारणा पाई जाती है कि उच्चतर शिक्षा की स्थिति बहुत असन्तोषजनक है—असन्तोषजनक ही नहीं, कई दृष्टियों से तो चौंका देनेवाली है कि औसत स्तर नीचे गिरते रहे हैं और द्रुत विकास के फलस्वरूप गुणात्मकता की हानि हुई है। परीक्षाओं के परिणाम, लोक-सेवा-आयोगों की रिपोर्टें, नियोजकों के दृष्टिकोण और स्वयं अध्यापकों के निर्धारण, अनुसंधानों के परिणाम—सभी से उक्त निष्कर्ष की पुष्टि होती है। इस बात को देखते हुए कि किसी नियत अवधि से स्तरों के वस्तुपरक माप में बड़ी कठिनाइयां निहित होती हैं और अब तक स्तरों को मापने का कोई गंभीर प्रयत्न भी नहीं हुआ, निश्चित रूप से यह कह पाना तो बहुत कठिन है कि स्तर किस हद तक और किन दृष्टियों से गिरे हैं। पर हां, इतना स्पष्ट है—और इसी बात का वास्तव में महत्व है—कि शिक्षा के बहुत बड़े क्षेत्र में वस्तुतत्व और गुणवत्ता दोनों ही की दृष्टियों से वह हमारी वर्तमान आवश्यकताओं और भावी अपेक्षाओं के संदर्भ में अपर्याप्त है, और इसमें भी शक नहीं कि शिक्षा की दृष्टि से समुन्नत अन्य देशों के औसत स्तरों से हमारा स्तर नीचा है। इससे भी बुरी बात यह है कि हमारे और अन्य समुन्नत देशों के स्तरों के बीच में जो चौड़ी खाई है वह और भी चौड़ी होती चली जा रही है। परन्तु हमारे बहुत सारे शिक्षाविशेषज्ञों और राजनीतिज्ञों को इस बात का पूरा-पूरा अहसास नहीं कि कालेजों और विश्वविद्यालयों में वास्तव में जो शैक्षिक और भौतिक स्थितियां हैं, वे कितनी नाजुक है। जिन्हें स्थिति का सामान्य ज्ञान है भी, वे उस की विकटता को नहीं समझते क्योंकि इस प्रकार की स्थितियों के वे अभ्यस्त हो गये है। अतः संक्षेप में उनकी चर्चा करना अच्छा ही रहेगा।

11.13. उच्चतर शिक्षा के क्षेत्र में आजकल पूरे शिक्षा-वर्ष में जो स्थिति रहती है वह आलस्य और अतिश्रम के बीच झूलती है—पूरे वर्ष तो आलस्य का दौर रहता है और परीक्षा के समय दबाव बेहद बढ़ जाता है। कुछ अपेक्षाकृत कमजोर कालेजों में और कुछ विश्वविद्यालयों में भी अधिकतर अध्यापक यांत्रिक ढंग से और उदासीन रहकर अपना अध्यापन-कार्य करते है। जो विषय वे पढ़ाते है वे अक्सर ऐसे नहीं होते जिनसे उनका बौद्धिक लगाव हो। आमतौर से यह भी नहीं होता कि जो पाठ्यक्रम निर्धारित होना है और उन्हें पढ़ाना पड़ता है उसे तैयार करने में उनका कुछ हाथ रहता हो, न वे पढ़ाने की पद्धतियों में कोई प्रयोग ही करते हैं—इसके कुछ प्रशंसनीय अपवाद भले ही हों। ज्ञान अथवा गए सत्यों के अन्वेषण के प्रति कोई विशेष उत्साह नहीं होता क्योंकि अनुसंधान को उनके कार्य का अनिवार्य अंग नहीं माना जाता और जो अनुसंधान होता भी है वह प्रायः ऐसा नहीं होता कि मन में कुछ प्रत्यय जगाए। 'अनुसंधान-अनुप्राणित' वातावरण के अभाव में, अध्यापक-वर्ग के वे तरुण सदस्य भी जिनमें बौद्धिक महत्वकांक्षाएं होती हैं, जल्दी ही उदासीनता अथवा संशय के व्यापक वातावरण से घिर जाते है। अध्यापकों में बहुत सारे ऐसे होते हैं जिनको आर्थिक चिन्ताएं घेरे रहती हैं—विशेष रूप से कालेजों में, जहां वेतनमान बहुत कम होते हैं। वे अक्सर न तो किताबें खरीद सकते हैं, न पत्र पत्रिकाएं। काम की

भौतिक परिस्थितियां भी ऐसी होती हैं कि न तो गम्भीर, विबिघ्न अध्ययन को प्रोत्साहन मिलता है, न सहकर्मियों से बौद्धिक विमर्श की प्रेरणा मिलती है। आमतौर से, अध्यापकों के लिए एक सामान्य कक्ष होता है और वह भी इतना बड़ा नहीं होता कि उसमें संकाय के सारे सदस्य एक साथ बैठ सकें। कुछ संस्थाओं में ऐसे कुछ और भी कारण मौजूद होते हैं जो बौद्धिक सक्रियता के विकास में बाधा डालते हैं। विभागों में और कालेजों में सत्ता के सोपानिक संकेंद्रण ने, नए और पुराने अध्यापकों के बीच अविश्वास के वातावरण ने, प्रशासन-अधिकारियों के प्रति घोर अवास्था ने, पदों इत्यादि को लेकर होने वाले अशोभन संघर्षों ने और उत्कृष्टतर उपलब्धियों के व्यक्तियों के प्रति स्पर्धा-भाव, इत्यादि ने बौद्धिक जिज्ञासा और साहसिकता की भावना का गला घोंटने में योग दिया है। भारतीय शैक्षिक जीवन के अन्तर्गत कुछ छोटे-मोटे प्रशासनिक अथवा आर्थिक पुरस्कारों की भी उपलब्धि होती है और कुछ सदस्य उनके पीछे अपनी बौद्धिक साधना को तिलांजलि देकर कुचक्रों और द्वन्द्वों के फेर में पड़ जाते हैं। और इस सब के बाद यह भी होता है कि अनुसंधान दफ्तरशाही ढांचे के भीतर रहकर करना होता है, अनुसंधान को अपने से ऊपर के ऐसे लोगों के अनुमोदन का मोहताज रहना पड़ता है जो बौद्धिक दृष्टि से बहुत ही साधारण स्तर के होते हैं; विदेशों में बना हुआ साज-सामान प्राप्त करने के तरीके बेहद लटिल होते है, एक बार जो साज-सामान आ जाए उसे संभालकर रखने और यथावसर उसकी मरम्मत कराने में तथा सम्बद्ध विषयों पर काम करने वाले अनुसंधाताओं से सम्पर्क स्थापित करने में बड़ी कठिनाइयां होती हैं—इन सब बातों का प्रभाव अध्यापक के हौसले को पस्त करने वाला होता है और उनके अनुसंधान-कार्य की मात्रा एवं गुणवत्ता दोनों पर भी इसका प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता।

11.14. विद्यार्थियों के सन्दर्भ में जो स्थिति है, वह भी इससे कुछ अच्छी नहीं। आज के बहुत से विद्यार्थी ऐसे होते हैं जिनका संबंध अपेक्षाकृत अथवा सर्वथा अशिक्षित परिवारों से होता है। माध्यमिक स्तर पर उनमें से बहुतों की तैयारी ऐसी नहीं हो पाती कि वे विश्वविद्यालय के समुचित कार्य का दायित्व उठालें। स्वतंत्र अध्ययन का उनका कुछ भी अनुभव नहीं होता। उनकी जिज्ञासा-वृत्ति पैनी नहीं होती और उनके लिए ज्ञान मुख्यतः रटने का विषय होता है। आम बात यह है कि बौद्धिक मामलों पर उनका न तो कभी अपने अध्यापकों से विचार-विमर्श होता है, न अपने संगी छात्रों से। उनका मुख्य कर्तव्य तो यह समझा जाता है कि चुपचाप बैठकर नीरस व्याख्यान सुनते रहें—और सो भी आमतौर से ऐसी भाषा में दिए जाते हैं जिसे वे पूरी-पक्की तौर से समझ भी नहीं पाते। जब माध्यम कोई भारतीय भाषा होती है तो उनमें न तो उपयुक्त पाठ्यपुस्तकें मिलती हैं और न पूरक साहित्य और किसी विषय में योग्यता प्राप्त करने के लिए वे दोनों ही चीजें आवश्यक होती हैं। उनमें से अनेक ऐसे होते हैं जिनसे अंग्रेजी में पाठ्यपुस्तकें पढ़ने की अपेक्षा नहीं की जा सकती क्योंकि वह उनके लिए पठन-पाठन की भाषा नहीं बन पाती। जो अपेक्षाकृत अच्छे विद्यार्थी होते हैं उनकी क्षमताओं को भी पूरी तरह उभारा नहीं जाता क्योंकि उन्हें न तो पाठ्यचर्या में ही कुछ चीज मिलती है और न वह प्रेरणा ही मिल पाती हैं जिसका सोत प्रेरक व्यक्तित्व वाले अध्यापक होते हैं। इसके अतिरिक्त, छात्रों की एक बहुत बड़ी संख्या को अनेक प्रकार की आर्थिक चिन्ताएं घेरे रहती हैं जिनकी वजह से उनकी पढ़ाई-लिखाई पूरे मनोयोग से नहीं हो पाती।

11.15. हो सकता है यह चित्र अतिश्योक्तिपूर्ण लगे, पर है नहीं। अगर इस चित्र में कोई गलती हैं तो यही हो सकती है कि बात को दबा-घटा कर प्रस्तुत किया गया है। हां, यह सच है कि इस तिमिराच्छन्न चित्र में अपवाद स्वरूप कुछ ज्योतिबिन्दु भी हैं जिन्हें साभार स्वीकार किया जाना चाहिए। परन्तु कुल मिलाकर देखें तो शैक्षिक उत्कर्ष का आदर्श थोड़े से अध्यापकों और छात्रों तक ही सीमित है और उत्साहभंजक परिस्थितियों के दबाव के बावजूद उन्हें ही इस ज्योति को जगाए रखना है।

11.16. बड़े लम्बे अरसे से हमारे यहां इसी प्रकार की स्थिति विद्यमान रही है। नई बात है इन समस्याओं का परिमाण, नई बात है यह कि स्वातंत्र्योत्तर युग में उच्चतर शिक्षा के असाधारण द्रुत प्रसार के तथा नई प्रत्याशाओं के जाग उठने से समस्याओं ने और गंभीर रूप धारण कर लिया है। बीते हुए जमाने में बेहतर और अधिक कारगर शिक्षा की आवश्यकता इतनी उत्कटता के साथ अनुभव नहीं की गई। कारण यह था कि जब तक भारत के शासकवर्ग के उच्चतर संवर्ग देश के भीतर से ही प्राप्त नहीं हो रहे थे—या बहुत ही सीमित अंश में हो रहे थे—तब तक बुद्धिजीवियों से जिन कामों की अपेक्षा की जाती थी, उनके देखे बुद्धिजीवि-वर्ग की क्षमता और प्रभाविता का महत्व गौण ही था। पर अब तो देश की प्रगति का दायित्व सीधा हमारे ऊपर है और हम किसी भी तरह की टालमटोल से काम नहीं ले सकते। अतः शिक्षा के गुणात्मक स्वरूप का महत्व आज बहुत अधिक हो गया है। ज्यों-ज्यों ऐसे पदों और नौकरियों की संख्या बढ़ रही है

जिन पर अत्यन्त उच्च प्रशिक्षण प्राप्त लोगों की नियुक्ति होनी चाहिए, त्यों-त्यों आवश्यकता और आवश्यकता-पूर्ति की क्षमता के बीच की खाई निरन्तर चौड़ी होती जा रही है। स्पष्ट है कि यदि उच्चतर शिक्षा में आमूल सुधार नहीं होता तो हमारे प्रशासन और तकनीकी प्रगति, हमारे बौद्धिक मानदंडों एवं सामाजिक उन्नति सभी की राहों में गम्भीर बाधाएं उत्पन्न हो जाएंगी।

बड़े विश्वविद्यालयों की स्थापना

11.17. **प्रस्ताव**—उच्चतर शिक्षा में सुधार की आवश्यकता को तो सभी स्वीकार करते हैं परन्तु जब हम उपचारों पर विचार करने बैठते हैं तो अनेक कठिनाइयां उभर कर सामने आने लगती हैं। इस विषय में जो सुझाव आमतौर पर रखे गये हैं, वे प्रायः उन दोषों से किल्कुल उलटे हैं जिनकी चर्चा हम पहले कर आए हैं। उनमें प्रशासनिक उपायों द्वारा अभीष्ट सुधार करने के प्रयास निहित रहते हैं और इस बात को एकदम भुला दिया जाता हैं कि वित्त और कार्मिकों की दृष्टि से इन सुधारों के लिए साधन कितने सीमित हैं या यह कि उनकी क्रियान्विति की राह में कौन सी राजनीतिक और प्रशासनिक वर्जनाएं बाधक हो रही है। वास्तव में, अगर यह कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति न होगी कि प्रस्तावित उपचारों में से कोई तो ऐसी स्थितियों का अस्तित्व पहले से ही स्वीकार कर लेते हैं जो यदि सचमुच विद्यमान होतीं तो सुधार अनावश्यक हो जाते। अतः वह अनिवार्य हैं कि हम कोई ऐसी कार्य-पद्धति अपनाएं जो यथार्थनिष्ट भी हो और कारगर भी।

11.18. हम जो नई कार्यनीति प्रस्तानित कर रहे हैं उसके दो महत्वपूर्ण पहलू हैं। पहली आवश्यकता तो इस बात की कि दुर्लभ मानव-संसाधनों को संकलित रखा जाए और उन्हें बहुत बड़े क्षेत्र में फैलने बिखरने न दिया जाए। इस समय भी हमारे अपने विश्वविद्यालय औरकालेज कुछ ऐसे विशिष्ट भारतीय वैज्ञानिक और विद्वान पैदा करते हैं जो यदि सही स्थितिवों में शैक्षिक जीवन में प्रवेश पा सकें तो हमारे शिक्षा स्तरों के उन्नयन में बहुत बड़ा योग-दान कर सकते हैं। किन्तु हमारी निहित राष्ट्रीय क्षमता और आबादी को देखते हुए इनकी संख्या बेहद कम है। इसके अलावा यह भी दुर्भाग्य की बात हैं कि उच्च शिक्षा के समूचे क्षेत्र पर इनकी बड़ी महीन-सी पर्त है और सो भी सर्वथा अव्यवस्थित—अनियमित—नतीजा वह है कि उन्हें अपेक्षाकृत अकेले रहकर और प्रतिकूल परिस्थतियों में काम करना पड़ता हैं, अध्यापन-कार्य का भारी बोझा ढोना पड़ता है, प्रश्नहीन विद्यार्थियों की बड़ी-बड़ी कक्षाओं से पाला पड़ता है, उदासीन या बौद्धिक दृष्टि से महत्वा-कांक्षाहीन साथियों से वास्ता रहता है और ऐसी प्रशासनिक व्यवस्था में रहना पड़ता हैं जो जाने या अनजाने उच्च-स्तरीय बौद्धिक जीवन्तता और अभिप्रेरणा को प्रोत्साहित नहीं करती—बल्कि कुछ सूरतों में तो, सक्रिव रूप से, उत्साह-भंग करती हैं। जो योग्य व्यक्ति अन्यथा अपने प्रभाव का अभीष्ट विस्तार कर सकते थे, वे इस प्रकार फैल-बिखर कर प्रभावहीन हो जाते हैं—और इससे भी बुरी बात वह है कि इन परिस्थितियों में उनकी अपनी रचनात्मक शक्ति का भी ह्रास हो जाता है। दूसरी ओर, अनुभव ने यह दिखा दिया हैं कि सब से अच्छे परिणाम तब प्राप्त होते है जब, अच्छी-खासी तादाद में, उच्च सम्भावनाओं से युक्त लोग परस्पर प्रत्यक्ष बौद्धिक सम्पर्क में आते हैं और सतत विचार-विमर्श के द्वारा एक-दूसरे को अपने-अपने श्रेष्ठ रचनात्मक प्रयत्नों में प्रवृत्त होने की प्रेरणा देते हैं। यदि काम करने वाले लोग ऊंची क़िस्म के है तो इस बात में ज़मीन-आसमान का फ़र्क पड़ जाता है कि लोग अपेक्षाकृत अलग-अलग रहकर काम करते हुए अंततः पूर्ण गतिरोध को प्राप्त हो जाते हैं अथवा ऐसी सप्राण टोलियों के रूप में काम करते हैं जो स्वयं अपने भीतर निरन्तर सक्रियता भरती रहें।

11.19. हम जिस सबसे महत्वपूर्ण सुधार की कल्पना करते हैं वह वह है कि पांच या छह ऐसे विश्नविद्यालयों का विकास किया जाए जिन्हें हम "बड़े" विश्वविद्यालय कह सकें और जहां अध्यापक एवं छात्र-वर्ग दोनों की, तथा आवश्यक साज-सामान और वातावरण की, दृष्टि से ऐसी परिस्थितियां उत्पन्त की जाएं कि प्रथम श्रेणी का स्नात-कोत्तर कार्य और अनुसन्धान संभव हो सके। इन बड़े विश्वविद्यालवों के स्तर ऐसे होने चाहिए कि उनकी तुलना दुनिया के किसी भी भाग में स्थित इस स्तर की अच्छी से अच्छी संस्थाओं से की जा सके ताकि जो विद्यार्थी सचमुच प्रतिभाशाली और होनहार हो उन्हें भी स्नातकोत्तर अथना अनुसधान-प्रशिक्षण के लिए सामान्यतः विदेश जाने की जरूरत न पड़े। हमारा विचार है कि उज्जवल भविष्य की सम्भावनाओं से युक्त भारत के कुछ विश्वविद्यालयों का (और हमें आशा है कि इनमें कोई सा एक भारतीय शिल्पनिज्ञान संस्थान और एक कृषि-विश्नविद्यालय भी शामिल होगा) अगले दस वर्ष मे इस स्तर तक निकास करना निश्चित ही सम्भव है और इस काम को बहुत उच्च प्राथमिकता देकर पूरा किया जाना चाहिए।

11.20. हमने वह प्रस्ताव क्यों किया है और आज की स्थिति में हम क्यों इसे निर्णायक मानते हैं ? इस तरह

के विश्वविद्यालयों का विकास करने से कई लाभ होंगे। पहली बात तो यह है कि अपने अनुसंधान से और अपने विद्यार्थियों को जो प्रशिक्षण देंगे उसके उच्च स्तरों से वे सबको अपने अस्तित्व का बोध करा देंगे।विश्वविद्यालयों, कालेजों और उच्चतर शिक्षा की अन्य संस्थाओं के अध्यापक वर्ग के लिए जिन विशिष्ट लोगों की आवश्यकता होगी, उनका एक बहुत बड़ा हिस्सा इन्हीं विश्वविद्यालयों से प्राप्त होगा। इस प्रकार, यह प्रत्याशा की जा सकती है कि वहां से स्नातक अपने विश्वविद्यालयों से जिन स्तरों का अर्जन करेंगे, उन्हीं से उन संस्थाओं के विद्यार्थियों को अनुप्राणित कर देंगे जहां वे काम करने जाएंगे और सच्ची बौद्धिक सक्रियता का, आस्था के वैशिष्ट्य का, प्रसार करेंगे। दुर्भाग्यवश, इस समय देश में शायद ही कोई विश्वविद्यालय ऐसे हों जो भारतीय शिक्षा जगत में इस महत्वपूर्ण और उत्प्रेरक-भूमिका का निर्वाह कर रहे हों।

11.21. इन विश्वविद्यालयों का एक बहुत बड़ा लाभ यह होगा कि हम इस देश में ही प्रथम श्रेणी की ऐसी स्नातकोत्तर शिक्षा देने की स्थिति में हो जाएंगे जिसकी तुलना कार्यक्षेत्र की दृष्टि से ससुन्नत राष्ट्रों की शिक्षा से की जा सके। इन विश्वविद्यालयों में प्रशिक्षित विद्वान और वैज्ञानिक सृजनात्मकता के अपने केन्द्रों से अपना बहुत अधिक तादात्म्य अनुभव करने लगेंगे। विदेशी डिग्रियों को आज जो महत्व दिया जाता है—चाहे वे डिग्रियाँ ऊंची हो अथवा औसत या मामूली किस्म की—वह काफी हद तक कम हो जायेगा और जो लोग "विदेश होकर" नहीं आये है, वे यह महसूस नही करेंगे कि वे किसी तरह का नुकसान उठा रहे है। हम मानते है कि भारतीय वैज्ञानिकों के लिए उच्चतर प्रशिक्षण, अनुसंधान अथवा अपने विदेशी सहकर्मियों के साथ सलाह-मशविरा करने के लिए विदेश जाना फिर भी जरूरी रहेगा। इसी प्रयोजन से हमने छात्रवृत्तियों की योजना के अन्तर्गत कुछ प्रस्ताव रखे हैं। पर उस स्थिति में यहां के छात्र प्रथम श्रेणी की स्नातकोत्तर शिक्षा[1] ग्रहण करने के उद्देश्यों से विदेश नहीं जाएंगे, तब विदेश-यात्रा का मूल लक्ष्य यह होगा कि प्रथम श्रेणी के भारतीय विद्वानों को अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के विग्गज विद्वानों के साथ काम करने का अवसर मिल सके।

11.22. प्रतिभाशाली नौजवानों को देश के भीतर ही प्रथम श्रेणी की स्नातकोत्तर शिक्षा देने की इस अवधारणा का अमरीकी एकेडमी आफ साइंसिज़ के अध्यक्ष प्रो० एफ० सीज तथा (रायल सोसायटी के अध्यक्ष) प्रो० पी० एम० एस० ब्लैकेट ने बड़ा प्रबल समर्थन किया। 1964 में लीड्स विश्वविद्यालय (इंग्लैंड) में प्रो० ब्लैकेट के दीक्षान्त भाषण के कुछ अंश यहां उद्धृत करना उपयोगी होगा। उनका वक्तव्य कुछ विकासशील देशों के संदर्भ में सच हों या न हों किन्तु भारतीय परिस्थितियों में निश्चय ही उसकी संगति है :

> सभी विकासशील देशों को जल्दी से जल्दी इस बात का प्रयत्न करना चाहिए कि उनके यहां मुख्य विषयों में उच्चतर डिग्री के प्रथम श्रेणी के कार्य के लिए सुविधाएं उपलब्ध हो जाएं ताकि सामान्यतः हर विद्यार्थी उच्चतर डिग्री अपने ही देश में प्राप्त करे। यह बात बहुत ही महत्वपूर्ण प्रतीत होती है और इसके तीन कारण हैं। पहला तो यह कि इस समय उच्चतर डिग्री लेने के लिये सर्वाधिक मेधावी छात्रों को विदेश भेजने की जो व्यापक परम्परा है, उसके कारण विश्वविद्यालयों में देशी अनुसंधान-पीठों का निर्माण कठिन हो जाता है क्योंकि किसी भी विश्वविद्यालय के सृजनशील स्नातकोत्तर विभाग का प्राणतत्व होता है अनुसंधान-छात्रों का समुचित सम्भरण। इसके बाद पर्याप्त संख्या में स्नातकोत्तर छात्रों के न होने पर अच्छे अध्यापक रखना उनके लिए कठिन हो जाता है। दूसरी बात यह है कि विदेशों में अध्ययनरत छात्रों के उच्चतर डिग्रियां लेकर स्वदेश न लौटने से विकासमान देशों को प्रशिक्षित लोगों की जो क्षति होती हैं, वह क्षति घट जाएगी। तीसरे, इससे विदेशी मुद्रा की बहुत बचत होगी। यदि फीस, रहन-सहन का खर्च और किराया-भाड़ा सब जोड़ा जाए तो तीन वर्ष के पी-एच० डी० पाठ्यक्रम पर लगभग 3 हजार डालर व्यय होता है और यह विदेशी मुद्रा की प्रत्यक्ष हानि है, चाहे यह राशि राज्य की ओर से दी जाए, चाहे किसी व्यक्ति की ओर से।

11.23. इसके अतिरिक्त, ये विश्वविद्यालय भारत के शैक्षिक जीवन को अपना सच्चा स्वरूप उपलब्ध करने में

1. **इस सम्बन्ध में जो नवीनतम सूचनाएं प्राप्त हुई हैं, उनके अनुसार** 1-1-1964 **को विदेशों में अध्ययनरत भारतीय विद्यार्थियों और प्रशिक्षार्थियों की संख्या** 15,393 **थी। इनमें से** 1,353 **विद्यार्थी विविध कलाओं का अध्ययन कर रहे थे,** 1,652 **विज्ञान का,** 4191 **इंजीनियरी और शिल्पविज्ञान का तथा** 1,402 **कार्य-चिकित्सा तथा पशुचिकित्सा विज्ञान का। अमरीका में छात्रों की संख्या** 7,153 **थी, पश्चिम जर्मनी में** 4,000, **इंग्लैंड में** 2798, **कैनेडा में** 418, **फ्रांस में** 123 **और सोवियत रूप में** 76.

भी सहायता देगें। फिलहाल तो भारतीय शैक्षिक जीवन का "गुरुत्वाकर्षण-केन्द्र" भारत के बाहर हैं। कहने का मतलब यह है कि जिन क्षेत्रों को अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्रय और पोषण प्राप्त है, उनमें कार्य करने वाले हमारे विद्वानों और वैज्ञानिकों की प्रवृत्ति अब भी यह है कि अपने काम के मूल्यांकन के लिए, जिन समस्याओं का वे अध्ययन करते हैं उनके बौद्धिक आदर्शों के लिए, पठनीय पुस्तकों के संकेत लिए और अपने समझे-सराहे और स्वीकारे जाने के लिए वे विदेशों का मुँह जोहते हैं। इससे कई तरह से हमारे शैक्षिक जीवन की हानि होती है। सबसे पहली बात तो यह है कि भारतीय समस्याओं के ठोस स्वरूप पर दृष्टिपात ही नहीं किया जाता है और, विशेष रूप से, तथा इसके परिणाम स्वरूप, तकनीकों और सिद्धान्तों को भारतीय स्थिति के अनुसार ढालकर ग्रहण नहीं किया जाता। दूसरे भारतीय अध्येताओं में आत्म-गौरव की भावना कुछ घट जाती है और वे अपना सारा विश्वास और साहस खो बैठते हैं जो नई-नई बौद्धिक समस्याओं से जूझने के नए तरीके आजमाने के लिए आवश्यक होते हैं। जब ये बड़े विश्वविद्यालय, जिनकी तुलना दुनिया के किसी भी हिस्से की सर्वश्रेष्ठ संस्थाओं से की जा सकेगी, अस्तित्व में आ जाएंगे तब, हम यह आशा कर सकते हैं कि हमारे वैज्ञानिकों और विद्वानों को देश के भीतर स्थित केन्द्रों से ही प्रेरणा और मार्ग-दर्शन मिल सकेगा और उन्हें ऑक्सफोर्ड, कैम्ब्रिज, हार्वर्ड या मास्को अथवा पैरिस का मुँह नहीं जोहना पड़ेगा। यह अत्यन्त सार्थक-महत्वपूर्ण परिवर्तन होगा। एक बार प्रेरणा का 'भारतीयकरण' हो जाने पर वह निरन्तर कहीं अधिक सक्रिय रह सकेगी और उसे व्यक्तिगत सम्पर्क पर भी—जो महंगा भी बहुत पड़ता है और जिसकी आवृत्ति बेहद कम हो पाती है—उतना निर्भर नहीं रहना होगा। इसके अतिरिक्त भारतीय वातावरण में रच-पच जाने के बाद वह अधिक विश्वास के साथ उन समस्याओं की ओर उन्मुख हो सकेगी जिनके प्रति अपने वातावरण से विछिन्न होने का अनुभव किए बिना, हमारे विद्वान और वैज्ञानिक अपने आपको समर्पित कर सकते है।

11.24. इसका अर्थ यह नहीं समझा जाना चाहिए कि हम बौद्धिक बिछिन्नता या अन्ध देशप्रेम को किसी तरह का प्रोत्साहन देना चाहते है—वह रास्ता तो बौद्धिक अराजकता और सर्वनाश का रास्ता होगा। कोई भी देश सर्वथा आत्मनिर्भर नहीं हो सकता—चाहे ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में उसकी उपलब्धियां कितनी भी महान क्यों न हों। लेकिन विश्व के बौद्धिक समाज के क्रियाकलाप में एक किनारे खड़े होकर और बराबर के हिस्सेदार के रूप में भाग लेने में आकाश-पाताल का अन्तर है—एक स्थिति में तो अन्यत्र जो कुछ खोज या आविष्कार हुआ हो, हम उसका अनुसरण मात्र करते हैं या उसमें सीमान्तिक योग भर दे पाते हैं और दूसरी में सृजन एवं आदान-प्रदान के प्रक्रम में हम बराबर के साझीदार होते है। हमें दूसरी स्थिति में पहुंचने का प्रयत्न करना होगा।

11.25. इन प्रस्तावों के विरुद्ध एक आक्षेप यह हो सकता है कि ये सर्वथा लोकतन्त्रात्मक नहीं हैं—कि इन प्रस्तावों में अभिजात शिक्षा की एक ऐसी पद्धति की प्रतिष्ठा का प्रयत्न निहित है जो कुछ संस्थाओं का पोषण करेगी और अन्य संस्थाओं का क्षय। हम मानते है कि आज की स्थिति में हमारे दृष्टिकोण के अन्तर्गत विश्वविद्यालयों में कुछ भेद किया गया है। पर अभाव की अर्द्ध-व्यवस्था में यह अनिवार्य ही नहीं बल्कि अन्ततः, कम से कम समय में, सब को लाभ पहुंचाने का सबसे पक्का और व्यावहारिक रास्ता भी यही है। फिर, हमें यह भी मानना ही होगा कि उत्कर्ष की साधना में भेद-बुद्धि का उपयोग निहित भी है और आवश्यक भी। अगर हम यह न देखें कि किस व्यक्ति ने क्या हासिल करके दिखाया है और किसमें विकास की कितनी संभावनाएं हैं और सबके लिए बराबर साधन जुटाने में लगे रहें तो इसमें 'साधारणता' को बढ़ावा मिलने के अलावा और कुछ न होगा। हम अपने देश में लोकतन्त्रीय समाज-व्यवस्था स्थापित करने का प्रयत्न कर रहे हैं और यह स्पष्ट है कि सुप्रशिक्षित तथा सबल अभिप्रेरणाओं से युक्त शिक्षित वर्ग की सेवाएं उपलब्ध न हों तो लोकतन्त्र फल-फूल नहीं सकता। जब तक कोई ऐसी व्यवस्था नहीं की जाएगी कि इस तरह के लोग आज की अपेक्षा कहीं अधिक संख्या में पैदा हों, तब तक देश के विकास के हर पहलू पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना बनी रहेगी। सच तो यह है कि हम इससे भी एक कदम आगे बढ़कर यह कह सकते हैं कि हर शिक्षा-व्यवस्था में अभिजात संस्थाओं की आवश्यकता सदा ही रहती है। अमरीकी उच्चतर शिक्षा के उच्चतर स्तर का विकास इस शताब्दी के पहले चरण में अधिकांशतः शिकागो, हारवर्ड और कोलम्बिया से पी-एच० डी० प्राप्त विद्वानों ने किया था। और इस शताब्दी के पूर्वार्द्ध में ब्रिटिश उच्चतर शिक्षा के विकास का श्रेय मूलतः इस तथ्य को है कि, अभी हाल तक, नए विश्वविद्यालयों के अधिकतर विषयों के अध्यापक ऑक्सफोर्ड और कैम्ब्रिज के पूर्व छात्र हुआ करते थे और ये दोनों विश्वविद्यालय 1900 ई० तक अध्ययन के उच्च स्तरों की दृष्टि से तथा विद्वत्ता के विशिष्ट केन्द्रों के रूप में अपनी धाक जमा चुके थे।

11.26. **क्रियान्विति**—अब हमें यह सोचना चाहिए कि लगभग एक दशक के अपेक्षाकृत थोड़े अरसे में इन बड़े विश्वविद्यालयों का विकास कैसे किया जा सकता है। इस प्रयोजन के लिए नए विश्वविद्यालयों की स्थापना के विचार को तो त्याग ही देना होगा। उसमें बहुत अधिक पूंजी व्यय होगी जिसका परिहार संभव है, और इससे उच्चतर शिक्षा के सुधार का सारा प्रक्रम ही पिछड़ जाएगा। अतः इस कार्यक्रम का पहला कदम यह होगा, कि विश्विविद्यालय अनुदान आयोग बड़े विश्वविद्यालयों के रूप में विकास करने के लिए भरसक जल्दी से जल्दी, वर्तमान विश्वविद्यालयों में से लगभग छह विश्वविद्यालयों को चुन ले (जिनमें एक भारतीय शिल्प-विज्ञान संस्थान और एक कृषि विश्वविद्यालय भी शामिल हो)।

11.27. इस तरह के विकास के लिए जिस विश्वविद्यालय को चुना जाएगा उसे कई काम करने होंगे। उसे ऐसे छात्र भरती करने का प्रयत्न करना होगा जिनमें समुचित योग्यता हो और इतनी मानसिक क्षमता हो कि उन्हें जो उत्कृष्ट प्रशिक्षण दिया जाना है उसका पूरा-पूरा लाभ उठा सकें। उसे भरसक जल्दी-से-जल्दी बौद्धिक वैशिष्ट्य से सम्पन्न ऐसा अध्यापक वर्ग ला जुटाना होगा जो अभीष्ट प्रशिक्षण देने में समर्थ हो और जो अनुसंधान के क्षेत्र में बहुमूल्य योगदान कर सके। और उसे काम के लिए समुचित सुविधाएं देने और सन्तोषजनक स्थितियां उत्पन्न करने का प्रयास करना होगा। हम संक्षेप में, इन तीनों अनिवार्य स्थितियों का विवेचन करेंगे।

11.28. **छात्रों की भरती**—इस समय मोटे तौर पर स्थिति यह है कि हमारे छात्रों की भरती स्थानीय या राज्यवार आधार पर होती है और कुछ इनी-गिनी अखिल भारतीय संस्थाओं को छोड़ दें तो शेष संस्थाओं में हालत यह होती है कि उत्कृष्टतर क्षमता वाले कुछ थोड़े से छात्र ऐसे असंख्य छात्रों की बाढ़ में बहे चले जाते हैं जो गहन उच्चतर शिक्षा के लिए पूरी तरह तैयार नहीं होते। ऐसी स्थिति में, अनेक अच्छे विद्यार्थी बौद्धिक कार्य-कलाप के प्रति अपनी अभिप्रेरणा खो बैठते हैं और न तो अपनी सम्भावनाओं की ही पूरी तरह सिद्धि कर पाते हैं न एक दूसरे को समुचित प्रेरणा दे पाते हैं, जब कि एक अच्छी संस्था में सामान्यतः वैसा होना चाहिए था। न तो उनकी संख्या इतनी होती है और न शक्ति कि उदासीन अथवा निरुत्साह छात्रों को नीचे की ओर फिसलने से रोक सकें; और दूसरों को ऊपर खींचने के बजाय वे स्वयं ही समुदाय के समुद्र में डूब उठते हैं। हम जिस तरह के बड़े विश्वविद्यालयों की कल्पना कर रहे हैं उस तरह के विश्वविद्यालय में प्रकृष्ट क्षमता वाले और होनहार छात्रों का "एक महत्वपूर्ण (क्रान्तिक) समुदाय" होगा और यह तभी सम्भव होगा जब उनकी भरती अखिल भारतीय आधार पर की जाए। अतः हमारी सिफ़ारिश यह है कि सुस्थापन-कार्यक्रम से संयुक्त एक राष्ट्रीय छात्रवृत्ति-योजना लागू की जाए—ये छात्रवृत्तियां केवल बड़े विश्वविद्यालयों में या ऐसे अन्य विश्वविद्यालयों में मिलें। जहां उच्च अध्ययन के सुविकसित केन्द्र (जिनकी चर्चा हम आगे चलकर करेंगे) विद्यमान हों या उनके अनुमोदित अंगभूत सम्बद्ध कालेजों में। छात्रवृत्तियों की राशि इतनी हो कि उससे विश्वविद्यालय शिक्षा का सारा खर्चा पूरा हो जाए—जैसे पढ़ाई की फीस तथा विश्वविद्यालय की और सारी फीसें, रहन-सहन का खर्च, पाठ्य-पुस्तकों का खर्च और थोड़ा बहुत निजी खर्च भी।

11.29. हर बड़े विश्वविद्यालय में पूर्व-स्नातक अवस्था के लिए कुछ छात्रवृत्तियों की व्यवस्था होनी चाहिए। इससे उसे अपनी स्नातकोत्तर कक्षाओं के लिए काफी संख्या में प्रतिभाशाली छात्र मिल जाएंगे। इनकी सही संख्या क्या हो—इसका फैसला सारी बातों को ध्यान में रखते हुए प्रतिवर्ष विश्वविद्यालय-अनुदान आयोग के द्वारा किया जा सकता है। इन छात्रवृत्तियों में से लगभग आधी विश्वविद्यालय के क्षेत्र से बाहर के विद्यार्थियों के लिए होनी चाहिए और आधी उस क्षेत्र के भीतर के विद्यार्थियों के लिए। वक्त बचाने के लिए विश्वविद्यालयों और राज्यों के माध्यमिक शिक्षा बोर्ड द्वारा आयोजित परीक्षाओं के परिणामों का उपयोग किया जा सकता है और उनके पूरक के रूप में उन सब आंकड़ों का उपयोग किया जा सकता है जिनकी सिफ़ारिश अन्यत्र की गई है। इस तरह इस योजना की शुरुआत की जा सकती है। छात्रों का चुनाव यथाशक्ति सब राज्यों और संघ क्षेत्रों से होना चाहिए। इसके लिए आवश्यक समझा जाए तो हरेक विश्वविद्यालय अपनी विशेष परीक्षा का आयोजन कर सकता है या फिर सारे बड़े विश्वविद्यालय संयुक्त रूप से राष्ट्रीय स्तर पर एक परीक्षा आयोजित कर सकते है—जैसा कि भारतीय शिल्पविज्ञान संस्थानों के सन्दर्भ में इस समय होता है। ये छात्रवृतियां स्वातकोत्तर अवस्था में भी जारी रहनी चाहिए—वहां संख्या तो थोड़ी होती है परन्तु विभिन्न विश्वविद्यालयों के स्तरों में तालमेल बैठाने की कठिन समस्या से जूझना होता है।

11.30. **अध्यापकों की भरती**—किसी बड़े विश्वविद्यालय का निर्माण करने में, उसके अध्यापन और अनुसंधान-कार्य के लिए देश भर में प्रतिभाशाली और होनहार नौजवानों की जोरदार तलाश करनी जरूरी होगी।

हमारी सिफ़ारिश है कि हर विभाग या संकाय में एक विशेष रूप से नियुक्त कार्मिक-सलाहकार समिति हो। यह समिति विश्वविद्यालय के नियुक्ति-अधिकारियों के निकट सहयोग से काम करे और ऐसे क्षेत्रों में संकाय के सदस्यों का पता लगाए जिन में वह वैशिष्ट्य प्राप्त कर चुका हो या करना चाहता हो। उसका मुख्य उत्तरदायित्व यह होगा कि वह प्रतिभाशाली और होनहार पी-एच० डी०, एम० ए० और एम० एस० सी० ओं की—यहां तक कि हाल के मेधावी स्नातकों की भी खोज-खबर रखेगी। इस तरह की समितियों की बहुत बड़ी खूबी उनकी अनौपचारिकता में और इस बात में निहित होती है कि वे कसे-बंधे तौर-तरीकों से मुक्त होती हैं और इसकी पूरी-पक्की व्यवस्था होनी चाहिए कि इस पर कोई आंच न आए। जो भारतीय विदेशों में है उनकी सूची की उन्हें भली भांति जांच करनी चाहिए और जो उम्मीदवार स्वदेश में है उनकी भी। अध्यापक-वर्ग की खोज राज्य या प्रदेश-विशेष तक ही सीमित नहीं होनी चाहिए बल्कि यह खोज राष्ट्रव्यापी और, एक दृष्टि से, विश्वव्यापी धरातल पर होनी चाहिए। ऐसे उम्मीदवारों की नियुक्तियों का उन्हें सक्रिय प्रयत्न करना चाहिए और जहां भी आवश्यकता हो उन्हें कुछ अग्रिम वेतन-वृद्धियां भी दे देनी चाहिए। इससे भी अधिक महत्व की बात यह है कि उन्हें अनुसन्धान के अवसरों का, अध्ययन-छुट्टी के अवसरों का और वृत्तिक उत्कर्ष-सिद्धि की सम्भावनाओं का पूरा-पूरा आश्वासन दिया जाना चाहिए। नियुक्तियों और तरक्कियों में नम्यता की गुंजाइश होनी चाहिए। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को हरेक विश्वविद्यालय में एक आकस्मिकता-निधि की व्यवस्था कर देनी चाहिए जिसका उपयोग असाधरण रूप से होनहार और कृती व्यक्तियों को अधिक आकर्षक वेतन देने के लिए किया जा सके। लेकिन इस निधि का उपयोग अगर उन लोगों को पुरस्कार या तरक्कियां देने के लिए किया जाए जो अपनी सृजनात्मक शक्तियों के उच्चतम बिन्दु को पार कर चुके हों तो उसका भरपूर प्रतिरोध होना चाहिए। इसके अतिरिक्त, विश्वविद्यालय को इस बात की छूट होनी चाहिए कि अध्यक्ष की सिफ़ारिश पर वह प्राध्यापकों और रीडरों की जगहें कम कर दें और इस तरह धन की जो बचत हो उसका उपयोग, जहां भी उचित हो, अतिरिक्त प्रोफेसरों की नियुक्ति के लिए किया जाए। इस बात का भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि लोगों को आपाती आधार पर नियुक्त न किया जाए। उदाहरण के लिए, नियुक्ति-अधिकारियों को कभी इस तरह की बात नहीं कहनी चाहिए: "इस जगह को भरना तो है ही; और हमें आशा है कि इस आदमी से काम चल जाएगा।" जिस आदमी की मुख्य योग्यता सिर्फ यही हो कि वह मिल रहा है, उसकी नियुक्ति करके जगह भरने से तो अच्छा यह है कि वह जगह भरी ही न जाए या कोई अस्थायी प्रबन्ध कर लिया जाए। "प्रेरणायुक्त लोग ही—जो कक्षा में ही उभरे और पुरस्कृत हुए हों और जिनकी वहां गहरी जड़ें जम चुकी हों—हमारे (विश्वविद्यालयों और) कालेजों को नई दीप्ति दे सकते है और निश्चय ही देंगे और उस दीप्ति के आधार वे रहस्यमय क्षण होंगे जिनमें मन का मन से साक्षात्कार होता है और विद्यार्थी को सहसा अपनी बौद्धिक समृद्धि और शक्ति का अहसास हो उठता है।[1]

11.31. **उच्च अध्ययन के केन्द्र**—कुछ तो इन बड़े विश्वविद्यालयों की भूमिका के रूप में और कुछ इनके परिणामस्वरूप विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के उच्च अध्ययन-केन्द्रों की स्थापना के कार्यक्रम की नींव मजबूत करना और उसे विस्तार देना आवश्यक होगा। इसे करने का एक तरीका यह होगा कि कुछ विश्वविद्यालयों में उच्च अध्ययन केन्द्रों के "समूह" स्थापित कर दिया जाएं। वे एक दूसरे की शक्ति और समृद्धि बढ़ाएंगे और अन्तर-विद्या अनुसंधान को बढ़ावा देने में विशेष रूप से सहायक होंगे। कुछ सूरतें ऐसी भी हो सकती हैं जब केन्द्र-समूह स्थापित करना संभव न हो और एक ही केन्द्र से शुरूआत करनी पड़े। यह सच है कि इन केन्द्रों का सम्बन्ध मुख्य रूप से स्नातकोत्तर अध्यापन और अनुसंधान से होगा। पर इस बात का पूरा-पूरा ध्यान रखना होगा कि वे शेष विश्वविद्यालय से अलग-थलग न पड़ जाएं और अन्य विभागों तथा स्नातक-पूर्व स्तर के अध्यापन के प्रति उनमें विद्या-दम्भ की भावना घर न कर ले। असल में, उनका मूल प्रयोजन तो विभिन्न विभागों और समग्र विश्वविद्यालय के स्तर को ऊपर उठाने में सहायता करना ही है। हमारी सिफ़ारिश है कि अगले पांच से दस वर्ष के भीतर इस तरह के लगभग पचास केन्द्रों की स्थापना हो जाए और इनमें से कुछ केन्द्र आधुनिक भारतीय भाषाओं के हों। इनमें कम से कम एक केन्द्र ऐसा अवश्य होना चाहिए जो शिक्षा के प्रति एक अन्तर-विद्यापरक दृष्टिकोण को बढ़ावा देने पर अपना ध्यान केन्द्रित करे। इस योजना में अभी कृषि, इंजीनियरी, आयुर्विज्ञान और आधुनिक भारतीय भाषाओं का समावेश नहीं है। हमारी सिफारिश है कि योजना को विस्तार देकर इनका भी समावेश उसमें कर लिया जाना चाहिए।

11.32. **सुविधाओं की व्यवस्था**—कहने की आवश्यकता नहीं कि बड़े विश्वविद्यालयों में प्रतिभाशाली छात्रों

1. **टाइम्स एजुकेशनल एप्लीमेंट।**

और अध्यापकों का यह जो महत्वपूर्ण समुदाय एकत्र होगा, उसके लिए समुचित सुविधाओं और सन्तोषजनक परिस्थितियों की व्यवस्था करना आवश्यक होगा। यह आवश्यक नहीं कि यह कार्यक्रम महंगा ही हो—खास तौर से जबकि जोर मितव्ययिता और उपयोगिता पर होता है, चमक-दमक और ऐश-आराम पर नहीं। सच पूछें तो हमें तो यह आशा है कि इमारतों और साज-सामान पर खर्च कम करने में बड़े विश्वविद्यालय मिसाल कायम करेंगे।

11.33. **कुछ सामान्य सुझाव**—उच्च अध्ययन-केन्द्रों के चुनाव, सामयिक समीक्षण, और प्रबन्ध के बारे में हम निम्नलिखित सुझाव देना चाहेंगे :

(1) केन्द्र के प्रबन्ध की जिम्मेदारी उसके निदेशक पर होनी चाहिए और उसकी सहायता के लिए उसके सहकर्मियों की एक छोटी-सी, किन्तु प्रतिनिधि, समिति होनी चाहिए। यों कुल मिलाकर उस पर विश्वविद्यालय प्रबन्ध-परिषद् की निगरानी रहेगी ही। उक्त समिति में विभाग के सारे प्रोफेसर रहेंगे और कुछ रीडर तथा प्राध्यापक भी होंगे जिनका चुनाव अध्यापक-वर्ग द्वारा ही किया जाएगा। हमारा सुझाव है कि समिति की बैठकें वर्ष में कम-से-कम तीन बार हुआ करें और उनमें विभाग के शैक्षिक कार्यक्रम तथा अन्य सम्बद्ध मामलों पर विचार-विमर्श हो। उसकी कार्यवाही का विवरण संकाय और विद्या-परिषद् के सदस्यों के पास भेज दिया जाया करे। सच तो यह है कि इस तरह की विभागीय समितियां बनाने में सभी विभागों का फायदा होगा—चाहे उस विभाग के अन्तर्गत कोई उच्च अध्ययन-केन्द्र हो या नहीं।

(2) एक बार कहीं केन्द्र स्थापित हो जाए तो उसका मतलब यह नहीं समझना चाहिए कि वह हमेशा ही बना रहेगा—चाहे उसका काम कैसा ही क्यों न रहे। उच्च अध्ययन का केन्द्र होने का विशेषाधिकार तो मानो निरन्तर प्रयास से अर्जित करना होगा और उसके योग्य पात्र बना रहना होगा।

(3) किसी विश्वविद्यालय के किसी विभाग को जब पहले-पहल उच्च अध्ययन-केन्द्र बनाने के लिए चुना जाए तो उसकी कसौटी यह होनी चाहिए कि उसने अब तक कितना और कैसा काम किया है, अच्छे अध्ययन के लिए उसकी ख्याति होनी चाहिए, अनुसंधान के प्रति उसका योगदान होना चाहिए और उसमें भावी विकास की सम्भावनाएं होनी चाहिए। चुनाव की प्रक्रिया कुछ इस तरह की होनी चाहिए कि विश्वविद्यालयों का, और सामान्यतः समूचे शिक्षा जगत का, उसमें विश्वास जम सके।

(4) उच्च अध्ययन के प्रत्येक केन्द्र में एक विशेष अवधि के बाद—जैसे हर तीन या पांच साल के बाद—एक निरीक्षण-समिति का दौरा होना चाहिए। समिति केन्द्र की उपलब्धियों की जांच-पड़ताल और मूल्यांकन किया करे। इसमें विशिष्ट भारतीय और, जहां आवश्यक तथा सम्भव हो, विदेशी विशेषज्ञ हुआ करें। इन निरीक्षण-समितियों में उस केन्द्र के सदस्य नहीं हुआ करें जिसका दौरा किया जा रहा हो। जहां भी अपेक्षित और अभीष्ट हो समिति के सदस्यों को खुलकर और बिना संकोच के आलोचना करनी चाहिए। सबसे जरूरी बात यह है कि उन्हें इस बात पर सबसे ज्यादा ध्यान देना होगा कि वे केन्द्र में अध्यापन और अनुसंधान के उन्नयन के लिए ठोस सुझाव दे सकें।

11.34. **अन्य विभागों में उत्कृष्टता का विस्तार**—इस बारे में आवश्यक कदम उठाए जाने चाहिए कि उच्च अध्ययन-केन्द्रों के स्तरों की प्रतिष्ठा भरसक जल्दी-से-जल्दी अन्य विभागों में तथा सम्बद्ध कालेजों में भी हो जाए—बड़े विश्वविद्यालयों में भी और अन्य विश्वविद्यालयों में भी। इस प्रयोजन की सिद्धि के लिए हमारे सुझाव निम्नलिखित हैं :

(1) किसी विश्वविद्यालय में इस तरह के जो भी केन्द्र हों उन्हें चाहिए कि अन्य केन्द्रों के साथ तथा ऐसे विभागों के साथ जो उच्च अध्ययन के केन्द्र न हों निकट सहयोग रखते हुए काम करें और कुछ ऐसे कदम उठाए जाने चाहिए कि विश्वविद्यालय का सारा अध्यापक-वर्ग बौद्धिक दृष्टि से प्रभावशाली समाज के रूप में काम कर सके।

(2) बड़े विश्वविद्यालयों को चाहिए कि निरन्तर अपना उत्कृष्टता क्षेत्र बढ़ाने का प्रयत्न करते रहें। इस प्रयोजन के लिए, उनके यहां जितने

केन्द्र हों उनके अनुपात में उन्हें अनुदान दिया जा सकता हैं। इस अनुदान का उपयोग विश्वविद्यालय के अन्य विभागों को उनके स्तर तक उठाने के लिए किया जाएगा। ये अनुदान पहले-पहल पांच वर्ष के लिए "आकांक्षी केन्द्रों" को दिए जाएंगें और इनका उपयोग समुचित अध्यापको की भरती के लिए तथा साज-सामान और किताबें खरीदने के लिए किया जाएगा। प्रगति संतोषजनक रहे तो दूसरे पांच वर्ष की अवधि के लिए फिर से ये अनुदान दिए जा सकते हैं।

(3) उच्च अध्ययन-केन्द्रों को यह प्रयत्न करना होगा कि अपने सम्बद्ध कालेजों के उपयुक्त अध्यापकों को अपने काम के निकट सम्पर्क में लाएं। हमारा सुझाव है कि सम्बद्ध कालेजों के जिन अध्यापकों की योग्यता भी अधिक हो और जिन्हें दिलचस्पी भी अधिक हो उन्हें केन्द्र की अध्यापकीय एवं स्नातकोत्तर गोष्ठियों में भाग लेने का प्रोत्साहन दिया जाए[1]। यदि कालेजों के अध्यापक अनुसंधान के योग्य समझे जाएं और उनकी अनुसंधान योजनाएं स्वीकृत हो जाएं तो केन्द्र के ढांचे में रहते हुए अनुसंधान करने के अवसर उन्हे दिए जाने चाहिए। अपने कालेजों के संसाधनों की समुन्नति के लिए केन्द्र की सुविधाओं का उपयोग करने का विशेष अधिकार भी उन्हें प्राप्त होना चाहिए। उसको अध्ययन-छुट्टी की इजाजत होनी चाहिए और अगर कालेज इस स्थिति में न हो कि अध्यापक का वेतन दे सके तो इस व्यय की व्यवस्था केन्द्र की निधि से होनी चाहिये। इस बात की भी व्यवस्था होनी चाहिए कि बड़े विश्वविद्यालयों को अपने कालेजों की उन्नति के लिए विशेष रूप से नियत अनुदान मिल सकें। विश्वविद्यालय-अनुदान आयोग कालेजों के सुधार के लिए जो विधियां नियत करता है, उसी में से ये अनुदान दिए जा सकते हैं। अगर हर तरह की सहायता और मार्गप्रदर्शन के बाद भी कालेज अपने आपको सुधार न सकें और वांछित परिणाम न निकलें तो विश्वविद्यालयों को उन्हें विसम्बद्ध करने की अपनी शक्तियों के उपयोग की सम्भावना पर गंभीरतापूर्वक विचार करना चाहिए।

11.35. **वित्तीय समर्थन**—स्पष्ट है कि ऊपर बताए हुए ढंग पर इन बड़े विश्वविद्यालयों का विकास करने में पूंजीगत खर्च के तौर पर अच्छी-खासी धनराशि की व्यवस्था करनी पड़ेगी और परिचालन-व्यय भी भारी होगा। यहां आवश्यक होगा कि विकास पर जो खर्च हो—चाहे पूंजीगत, चाहे आवर्ती—उसकी जिम्मेदारी केन्द्रीय सरकार विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को सौंप दे।

अन्य विश्वविद्यालय और सम्बद्ध कालेजों का सुधार

11.36. इन बड़े विश्वविद्यालयों और उच्च अध्ययन के केन्द्रों के विकास के साथ ही साथ इस तरह के कदम भी उठाए जाने चाहिए कि उनमें जिस उत्कृष्टता का जन्म हो उसका प्रसार धीरे-धीरे अन्य विश्वविद्यालयों तथा सम्बद्ध कालेजों में भी हो जाए ताकि क्रमशः उच्चतर शिक्षा के समूचे क्षेत्र में स्तर ऊपर उठ जाएं। अब हम उच्चतर शिक्षा उन्नयन कार्यक्रम के इस दूसरे भाग का विवेचन करेंगे।

11.37. **उच्चतर शिक्षा के लिए अध्यापकों की व्यवस्था**—हम पहले कह चुके हैं कि बड़े विश्वविद्यालय अन्य विश्वविद्यालयों तथा सम्बद्ध कालेजों के विकास में एक महत्वपूर्ण योग, उनके लिए अच्छे किस्म के अध्यापकों की व्यवस्था करके, दे सकते हैं। इसके लिए अवश्यक कदम उठाते रहना जरूरी है और इस सिलसिले में हमारे प्रस्ताव ये है :

(1) बड़े विश्वविद्यालयों के प्रतिभाशाली छात्रों को यह प्रेरणा देने का भरसक प्रयत्न किया जाना चाहिए कि वे अध्यापन-वृत्ति अपनाएं और इनमें से अधिकतर को अपने कालेज और विश्वविद्यालय से इतर कालेजों और विश्वविद्यालयों में रखा जाना चाहिए ताकि वे स्तर ऊपर उठाने में सहायता दे सकें। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को इसके लिए एक राष्ट्रीय सूचना-वितरण केन्द्र बनाना चाहिए, जो इन नौजवान अध्येताओं के बारे में विश्वविद्यालयों और कालेजों को सूचना देता रहे और इन्हें खाली जगहों के बारे में जानकारी दे।

1. इन सम्बद्ध कालेजों के स्नातकोत्तर तथा तीसरे वर्ष के स्नातक-पूर्व छात्रों को भी यह विशेषाधिकार मिलना चाहिए।

(2) विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को कई छात्र-वृत्तियां देने की योजना बनानी चाहिए ताकि प्रकृष्ट योग्यता वाले लोगों को अध्यापन-वृत्ति की ओर आकर्षित किया जा सके और उनकी भरती में सुविधा हो सके। छात्रवृत्तियां तीन स्तरों पर होनी चाहिए—अध्यापक, रीडर और प्रोफेसर। ये छात्रवृत्तियां प्रकृष्ट योग्यता वाले लोगों को ही मिलनी चाहिए जो अन्यथा हमेशा के लिए इस वृत्ति को छोड़ जाएंगे। छात्रवृत्तियां देने के बाद इन लोगों को विश्व-विद्यालय के उपयुक्त विभागों में काम पर लगा दिया जाना चाहिए और एक बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि भरसक जल्दी-से-जल्दी उनकी नियुक्ति स्थायी जगहों पर कर दी जाए।

(3) विश्वविद्यालयों और सम्बद्ध कालेजों को भरसक इस बात का प्रोत्साहन मिलना चाहिए कि वे अपने नए अध्यापकों का चुनाव पहले से ही कर लें और लगभग एक वर्ष के लिए उन्हें किसी बड़े विश्वविद्यालय से सम्बद्ध कर दें। इस अरसे में वे लोग अपने तथा अपने से सम्बद्ध क्षेत्रों में कुछ विशिष्ट अध्यापकों के सम्पर्क में आएंगे, अपनी चुनी हुई वृत्ति की ओर अनुस्थापित होंगे और वहां पर अनुसन्धान की जो योजनाएं और तकनीकें अपनाई गई होंगी शायद उनका भी अध्ययन कर लेंगे।

कालान्तर में, ज्यों-ज्यों बड़े विश्वविद्यालयों और उच्च अध्ययन केन्द्रों के स्नातकों की नियुक्ति अन्य विश्व-यिद्यालयों तथा कालेजों में होती जाएगी, त्यों-त्यों वे अपने काम और विद्वत्ता की परम्परा की प्रतिष्ठा अपने कालेजों में भी करते जाएंगे और यह संभव है कि उनके विश्व-विद्यालयों से जिन नए विचारों की उद्भावना होगी, उनके प्रति वे अपेक्षाकृत अधिक ग्रहणशील होंगे और उनके साथ बौद्धिक सम्पर्क रखने की प्रवृत्ति भी उनमें अधिक होगी इस प्रकार बड़े विश्वविद्यालयों का प्रभाव धीरे-धीरे उच्चतर उठाने के अन्य क्षेत्रों में भी पड़ेगा और उससे स्तर ऊपर शिक्षा में मदद मिलेगी।

11.38. बड़े विश्वविद्यालयों के स्तरों का विस्तार करने की इस प्रक्रिया को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की ओर से बल मिलना चाहिए और इसके लिए आयोग अन्य उपायों के साथ-साथ इन उपायों से काम ले सकता है :

(1) उच्च अध्ययन-केन्द्रों में सदस्यों, आकांक्षी केन्द्रों के सदस्यों तथा अग्रणी विश्वविद्यालयों और विशिष्ट सम्बद्ध कालेजों के बीच अनुसंधान के विशेष क्षेत्रों में दृढ़ अन्तर-विश्व-विद्यालयी सम्पर्क-सूत्रों की स्थापना होनी चाहिए। इस उद्देश्य से दो-दो, तीन-तीन दिन के छोटे-छोटे सम्मेलनों को अच्छे-खासे बड़े पैमाने पर प्रोत्साहन मिलना चाहिए। इन सम्मेलनों में कार्यक्रम का मुख्य भाग यह हो कि कुछ शोध-लेख प्रस्तुत किए जाएं और आलोचनात्मक एवं रचनात्मक विचारों का विनिमय हो। इससे लिए जिस धनराशि की आवश्यकता हो उसे केन्द्रों के अनुदान में शामिल कर लिया जाना चाहिए।

(2) अन्य विश्वविद्यालयों तथा सम्बद्ध कालेजों के उदीयमान अध्येताओं और वैज्ञानिकों को निमंत्रण दिए जाने चाहिए कि वे उच्च अध्ययन के किसी केन्द्र में आकर अनुसंधान करें और गोष्ठियों का संचालन करें (एक व्यवस्था एक सत्र के लिए अथवा एक अधिवेशन के लिए हो सकती है)। इससे उन्हें तो बौद्धिक ताजगी मिलेगी और दूसरे विश्वविद्यालयों और कालेजों के अध्यापकों की इस बात की प्रेरणा मिलेगी कि वे भी इस प्रकार के निमंत्रण का वैशिष्ट्य अर्जित करें और उसके लाभ उठाएं।

11.39. **अन्य विश्वविद्यालयों का विकास**—जो बड़े विश्वविद्यालय न हों उन्हें भी, कम से कम एक-दो विभागों में, ऊंचे स्तरों की प्रतिष्ठा का प्रयत्न करना चाहिए। इसके लिए उन्हें अपने संसाधनों को उचित ढंग से केन्द्रित करना चाहिए और समर्थ अध्यापक खोजने का प्रयत्न करना चाहिए। यदि वे ऐसा कर पाएं तो उनकी योग्यता के आधार पर विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को उन्हें विशेष अनुदान देने चाहिए। जब किसी विश्वविद्यालय विभाग का स्तर इस प्रकार ऊंचा हो जाए तो उसे 'आकांक्षी केन्द्र' का दर्जा देने की बात पर विचार किया जा सकता है और अगर वह नियत शर्तों को पूरा करता हो तो शुरू-शुरू में पांच वर्ष के लिए उसे वित्तीय सहायता दी जा सकती है। अगर उस विभाग की प्रगति असन्तोषजनक रहे तो क्रमशः उसका विकास उच्च अध्ययन

के पूर्ण केन्द्र के रूप में किया जा सकता है। हमें आशा है कि यह प्रक्रम शुरू हो जाए तो शताब्दी के अन्त तक काफी सारे विश्वविद्यालयों को अच्छे-खासे ऊंचे स्तर तक उठाना सम्भव हो सकेगा।

11.40. **सम्बद्ध कालेजों का विकास**—हमें यह मानना ही पड़ेगा कि सामान्यतः अधिकतर सम्बद्ध कालेजों में प्रथम डिग्री के कार्य तथा अन्य स्नातकोत्तर कार्य का स्तर उस शिक्षा के बराबर नहीं हो सकता जो विश्वविद्यालय के विभागों में दी जाती है। आमतौर पर विश्वविद्यालय विभागों में कालेज की अपेक्षा अध्यापन और अनुसंधान का अधिक संतुलित समन्वय होता है, अधिक अच्छे अध्यापक होते है, अधिक योग्यता वाले छात्र होते हैं और उन के पास कहीं अधिक संसाधन होते हैं।

11.41. पर इसके साथ ही यह बात भी सच है कि कुछ बहुत पुराने कालेज ऐसे हैं जिनका काम गुण और परिमाण दोनों की दृष्टि से किसी भी तरह किसी अच्छे विश्वविद्यालय से कम नहीं रहा और आज भी नहीं है। ऐसी संस्थाओं को प्रोत्साहित करना शिक्षा-नीति का एक उद्देश्य होना चाहिए। बड़े विश्वविद्यालयों को, विशेष रूप से, हर तरह उनकी सहायता करनी चाहिए। उनके बहुत सारे अध्यापक उन्हीं विश्वविद्यालयों में से आएंगे और वे अनिवार्यतः स्तर ऊपर उठाने की एक स्वस्थ प्रतियोगिता में जुट जाएंगे। इस प्रक्रम में सहायता पहुंचाने के लिए हम निम्नलिखित सिफ़ारिशें करते हैं।

(1) सम्बद्ध कालेजों का वर्गीकरण उनके काम के स्तर के अनुसार होना चाहिए। उदाहरण के लिए, इसकी कसौटी में और बातों के साथ-साथ ये बातें भी शामिल हो सकती हैं :

- अध्यापकों की संख्या और स्तर;
- छात्रों की संख्या और उनका सामान्य स्तर;
- अनुसंधान-कार्य का परिमाण;
- पुस्तकालय-सुविधाएं;
- विज्ञान के छात्रों के लिए प्रयोगशाला की सुविधाएं;
- छात्रानुशासन का स्तर;
- राष्ट्रीय छात्रवृत्ति-परीक्षाओं में कालेज के स्नातकों की उपलब्धियां;
- अध्यापन-विधियों में नवाचार; और
- परीक्षा-फल।

ऊपर बताई हुई कसौटी को व्यावहार में लागू करने के लिए आवश्यक तकनीकों को स्पष्ट-विस्तृत रूप दे दिया जाना चाहिए और इस आधार पर कालेजों के पंचवर्षीय समीक्षण के संस्थागत संगठन की समुचित व्यवस्था हो जानी चाहिए। इस वर्गीकरण के आधार पर उन कालेजों को विशेष 'योग्यता' वाले अनुदान मिलने चाहिए जो इसके पात्र हों। उदाहरण के लिए, जिन कालेजों का दर्जा सूची में काफी ऊंचा हो और जिनकी अध्यापन-व्यवस्था तथा कार्यक्रम दिन-प्रतिदिन सुधरते जा रहे हों उन्हें कुछ फायदे मिलने चाहिए—जैसे अध्यापकों के लिए वेतन—बोनस, पुस्तकालयों—प्रयोगशालाओं के लिए अनुदान और अध्यापक तथा छात्रों के लिए आवश्यक सुविधाएं आदि; या उदाहरण के लिए, जिन कालेजों ने पांच वर्ष तक बहुत प्रभावशाली पुस्तकालय-व्यवस्था बनाए रखी हों उन्हें अपने पुस्तकालयों की और भी उन्नति के लिए समतुल्य अनुदान दिए जा सकते हैं। इसी तरह इन कालेजों को अच्छे अध्यापक नियुक्त करने और छात्रों को सुविधाएं देने के लिए पूरे-पूरे या समतुल्य अनुदान दिए जा सकते हैं जिन्होंने शिक्षा के अन्य स्तरों की रक्षा करते हुए अनुशासन को कहीं भी गम्भीर रूप से भंग नहीं होने दिया हो। हम जानते हैं कि कालेजों के इस प्रकार के वर्गीकरण और सहायक अनुदान की व्यवस्था में प्रशासनिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। अतः हमारी सिफ़ारिश है कि विश्वविद्यालय-अनुदान आयोग को विश्वविद्यालयों और राज्य-सरकारों के परामर्श से उपलब्धियों के स्तर के अनुरूप कालेजों के वर्गीकरण के इस प्रश्न की जांच करनी चाहिए और चौथी पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत कालेजों के लिए अनुदान के नियतन में उसका उपयोग करना चाहिए।

(2) अन्त में हम 'स्वायत' कालेजों के सवाल की चर्चा करना चाहेंगे। इस सवाल पर सालों से विचार हो रहा है। जब किसी विशाल विश्वविद्यालय में कोई ऐसा प्रकृष्ट कालेज हो (या बहुत अच्छे कालेजों का एक छोटा सा समुच्चय हो) जिसने अपने आप में बहुत ही स्पष्ट सुरेख सुधार की क्षमता का परिचय दिया हो तो उसे स्वायत्त दर्जा देने के सवाल पर विचार किया जाना चाहिए। इस दर्जे का मतलब यह होगा कि वह अपने दाखिले के नियम बना सकेगा, अपने पाठ्यक्रम निर्धारित कर सकेगा, अपनी परीक्षाओं की व्यवस्था कर सकेगा, आदि। मूल विश्वविद्यालय की भूमिका तब आम देखरेख और डिग्रियां प्रदान करने तक सीमित हो जाएगी। परन्तु यह विशेषाधिकार सदा-सर्वदा के लिए नहीं दिया जा सकता—उसका तो निरन्तर अर्जन करना होगा, सुपात्र बने रहना होगा। और विश्वविद्यालय को इस बात की

छूट होनी चाहिए कि स्थिति की सावधानी के साथ जांच-पड़ताल करने के बाद यदि किसी भी समय वह पाए कि कालेज के स्तर गिरते जा रहे हैं तो उसके स्वायत्त दर्जे को रद्द कर दे। हमारी सिफ़ारिश है कि विश्वविद्यालयों के संविधानों में इस प्रकार के स्वायत्त कालेजों के स्वीकार किए जाने की व्यवस्था होनी चाहिए। हमारी राय में चौथी पंचवर्षीय योजना के अन्त तक कम-से-कम पचास सर्वश्रेष्ठ कालेजों को इस श्रेणी में ले आना सम्भव होगा।

अध्यापन और मूल्यांकन में सुधार

11.42. **अध्यापन कार्य का सुधार**—उच्चतर शिक्षा के क्षेत्र में जिन सुधारों की आवश्यकता है उनमें एक सबसे महत्वपूर्ण सुधार अध्यापन और मूल्यांकन का सुधार है। इस समय इनकी जो स्थिति है, वह बेहद दुःखदायी है। अभी थोड़े ही समय पहले तक अधिकांश अध्यापन कार्य में ऐसे पाठ्यक्रम का बोलबाला रहता था जो वर्षों पुराना हुआ करता था। सच तो यह है कि कई विश्वविद्यालयों में स्थिति आज भी ज्यों की त्यों बनी हुई है। चूंकि विद्यार्थी के सारे किए-धरे का मोल पाठ्यक्रम पर आधारित एक ही बाहरी परीक्षा में आंक लिया जाता है, इसलिए बिना सोचे-समझे कुछ चुनी हुई चीजों को रट डालने पर अनुचित बल दिया जाता है। फिर, पाठ्यक्रम के चुनाव के बड़े-बड़े नियम होते हैं, कक्षाओं के भीतर औपचारिक सम्पर्क पर छात्र और अध्यापक दोनों ही आवश्यकता से अधिक समय व्यतीत करते हैं जिसका नतीजा यह होता है कि छात्रों को तो स्वतन्त्र अध्ययन का उतना मौका नहीं मिल पाता और अध्यापकों की अपना व्याख्यान तैयार करने का पर्याप्त अवसर नहीं मिलता—इस सबसे स्थिति और विकट हो गई है। अगर विश्वविद्यालय के अध्ययन में प्राण डालने हैं तो कुछ-कुछ इस तरह के परिवर्तन करने होंगे :[1]

— पाठ्यक्रमों में अधिक नम्यता रखी जाए और छात्रों को चुनाव की और अधिक स्वतन्त्रता दी जाए;

— औपचारिक शिक्षा की मात्रा में काफी कमी कर दी जाए और उसी के अनुपात के उप-शिक्षण ट्यूटोरियल कार्य, विचार-विनिमय टोलियों, गोष्ठियों और स्वतन्त्र अध्ययन के कार्यों को बढ़ावा दिया जाए; और

— अध्ययन के स्वरूप में ऐसा परिवर्तन किया जाए कि रट्टेबाजी की आदत छूटे और जिज्ञासा, समस्या-समाधान की योग्यता तथा मौलिकता को बल मिले।

11.43. पाठ्यक्रमों में अधिक नम्यता लाने की समस्या पर अगले अध्ययन में विचार किया जाएगा। जहां तक औपचारिक व्याख्यानों का प्रश्न है, हमारा सुझाव यह है कि विश्वविद्यालयों और कालेजों में औपचारिक कक्षाओं का तथा प्रयोगशालाओं में काम करने का वक्त कुछ कम कर दिया जाए। इस तरह जो वक्त बचे उसे प्रशिक्षकों के मार्गदर्शन के अनुसार स्वतन्त्र अध्ययन में लगाया जाए जिनमें विद्यार्थी स्वयं अपने काम की किताबें और प्रलेख खोजना और स्वतन्त्र रूप से उनका इस्तेमाल करना सीखें। यह आवश्यक है कि छात्रों को अध्ययन के लिए ऐसी सामग्री दी जाए जिसमें उन्हें अधिक श्रम करना पड़े, ऐसी समस्याएं हल करने के लिए दी जाएं जो कठिनतर हों—इस तरह उनकी बुद्धि को चुनौती देने का तथा उसके विस्तार का हर सम्भव प्रयत्न किया जाना चाहिए और उन्हें ऐसे विषयों के स्वतन्त्र अध्ययन के अधिकाधिक अवसर दिए जाने चाहिए जिनमें उनकी विशेष रुचि पैदा हो जाए। इसके अतिरिक्त आज हमारे विद्यार्थी जितना पढ़ते हैं उससे कहीं अधिक पढ़ने की उन्हें प्रेरणा मिलनी चाहिए—छुट्टियों के दौरान भी और अध्यापन-काल में भी। यहीं अच्छे पुस्तकालय तैयार करने के महत्व की बात सामने आती है—विश्वविद्यालयों में भी कालेजों में भी।

11.44. **पुस्तकालयों का विकास**—विश्वविद्यालयों और कालेजों में ज्यों-ज्यों विद्यार्थियों की संख्या बढ़ती गई है, त्यों-त्यों पुस्तकालय-सेवा की मांगें भी दिनों दिन बढ़ती जा रही हैं। अब पहले वाली बात रही नहीं। अब तो पुस्तकालय के कर्मचारियों को पूर्व-स्नातक, स्नातकोत्तर और अनुसंधान के सभी छात्रों की आवश्यकताएं पूरी करनी होती हैं जिनमें बड़ी विविधता होती है। यह भी समझने की बात है कि आधुनिक विश्वविद्यालय के पुस्तकालयों को बहुत-सारे विद्या-विभागों की जरूरतें पूरी करनी होती हैं और सूचक बनाने तथा सारांश-लेखन में नए-नए काम भी करने पड़ते हैं। फिर, किताबों और पत्र-पत्रिकाओं पर व्यय की आज जो स्थिति है वह भी सन्तोषजनक नहीं है। केवल चार विश्वविद्यालय ऐसे हैं जिनमें किताबों और पत्र-पत्रिकाओं

1. **विश्वविद्यालय के अध्यापकों को अध्यापन के नये और बेहतर तौर-तरीकों की ओर उन्मुख करने की आवश्यकता की चर्चा अध्याय चार में की जा चुकी है।**

पर कुल व्यय के पांच प्रतिशत से अधिक व्यय होता है, जैसा कि नीचे की तालिका में दर्शाया गया है :

कुछ व्यय का प्रतिशत अनुपात	विश्वविद्यालयों की संख्या[1]
1 प्रतिशत से कम	5
1 से 5 प्रतिशत तक	34
5 प्रतिशत और उससे अधिक	4

11.45. इस सिलसिले में हम निम्नलिखित सिफ़ारिश करना चाहते हैं :

(1) विभागाध्यक्षों और पुस्तकालय-कर्मचारियों को पूर्ण पारस्परिक सहयोग से सुदूर भविष्य की ओर दृष्टि रखते हुए पुस्तकालय के विकास की एक समेकित योजना तैयार करनी चाहिए। इस योजना में कई बातों का ध्यान रखना होगा—जैसे, छात्र-संख्या में प्रत्याशित वृद्धि कितनी होनी, अलग-अलग संकायों में छात्रों की संख्या कितनी-कितनी रहेगी, नए विषय और विशेषीकरण के क्षेत्र क्या होंगे, विशेष अनुसंधान-प्रयोगशालाएं क्या होंगी, आदि।

(2) किसी भी विश्वविद्यालय, कालेज या विभाग की स्थापना तब तक नहीं होनी चाहिए जब तक उसकी पुस्तकालय-सम्बन्धी आवश्यकताओं को—यानी उसके लिए कर्मचारियों, पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं, जगह आदि की आवश्यकताओं की पूर्ति की समुचित व्यवस्था न हो जाए। किसी विकास विभाग को जितनी हानि उसके पुस्तकालय की उपेक्षा करने से या उसे कम प्राथमिकता देने से पहुंचती है उतनी किसी भी और बात से नहीं पहुंचती। इसके विपरीत, होना तो यह चाहिए कि कालेज या विश्वविद्यालय के परिसार में पुस्तकालय एक महत्वपूर्ण आकर्षण केन्द्र हो।

(3) पुस्तकालय के अनुदानों का उपयोग योजना की पूरी अवधि में उपयुक्त अवस्थाओं में बांधकर होना चाहिए। दूसरे शब्दों में, विद्या-विभागों और पुस्तकालय के विकास का नियमित कार्यक्रम होना चाहिए—यह न हो कि बिना किसी व्यवस्था के एक साल तो उन्हें खूब पोषण दिया जाए और दूसरे साल लंघन करा दिया जाए।

(4) विश्वविद्यालय के पुस्तकालय की विकास-योजना में एक जरूरी बात यह है कि लक्ष्य किताबों की संख्या का निर्धारित किया जाए, धन राशि के व्यय का नहीं। इससे भी अधिक महत्व की बात यह है छात्र और अध्यापक पुस्तकालय का सही उपयोग करें। व्याख्यानों के पूरक रूप में उपशिक्षण-कक्षाएं हों। इसके बाद विद्यार्थी पुस्तकालय में जाए और पुस्तकालय के संदर्भपालों की सहायता से स्वयं ही विषय से सम्बन्धित सामग्री की खोज करे और अपना ज्ञानवर्धन करे। पुस्तकालय-सेवा का स्तर ऊंचा उठाने के लिए ये कदम उठाए जाएं : पुस्तकालय का कार्य-समय और कार्य-दिवस बढ़ाए जाएं, किताबें आसानी से मिल जाया करें, पुस्तकालय में कर्मचारियों की संख्या पर्याप्त हो, पाठ्यपुस्तकों की कई प्रतियां हों जो जरूरतमंद छात्रों को दी जा सकें, नई पाठ्यसामग्री दर्शाने का बेहतर तरीका हो, पुस्तक-क्लब आयोजित किए जाएं, पत्र-पत्रिकाओं तथा संदर्भ ग्रंथों और अनुसंधान ग्रंथों के लिए अलग कमरे हों आदि। हमारे यहां लोगों की पढ़ने की आदत बहुत कम है, उसे हर तरह से बल मिलना चाहिए।

(5) 'विभागीय' और 'सेमीनार' पुस्तकालयों में 'पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं का कामचलाऊ संकलन' तो होना ही चाहिए, पर इसके साथ ही केन्द्रीय पुस्तकालय को विविध विषयों के अध्येताओं के बीच पारस्परिक सम्पर्क की सुविधाएं उपस्थित करनी चाहिए और सीमान्तस्थ विषयों के अनुसंधानकर्ताओं के काम में भी सुविधाएं देनी चाहिए। अन्ततः यह भी बचत का रास्ता साबित होगा।

(6) हमारे विश्वविद्यालयों में सक्रिय अनुसंधान का उत्थान होने से प्रलेखन-कार्य और प्रलेखन-सेवा के द्वारा अनुसंधान-शक्ति के संरक्षण की आवश्यकता उत्पन्न हो गई है। अतः यह आवश्यक हो गया है कि विश्वविद्यालयों के पुस्तकालयों में प्रलेखकों की टोलियां नियुक्त की जाएं जो अनुसंधानकर्त्ताओं से उन्हीं की भाषा में बात कर सकें और जिन्हें प्रलेखन-शोध, सूचक बनाने और सारांश-लेखन का काम सौंपा जा सके। इसके लिए कुछ ऐसे प्रादेशिक केन्द्रों की स्थापना करना अभीष्ट है जिनमें प्रलेखों के फोटो प्रत्यंकन के साज-सामान मौजूद हों—जैसे माइक्रोफ़िल्म और फोटोस्टेट प्रतियां तैयार करने का।

(7) हमें इस परम्परागत दृष्टिकोण से एकदम मुक्ति पानी होगी कि पुस्तकालय रूढ़िबद्ध पर प्रायः एक बेकार साधन है। विश्वविद्यालय का पुस्तकालय-कार्यक्रम, तैयार करने में किसी निश्चित मानदंडों का उपयोग तो किया नहीं जा सकता परन्तु कुछ बातों का होना एकदम

1. जानकारी 43 विश्वविद्यालयों के संबंध में हासिल हुई।

जरूरी है—जैसे, सुयोग्य कर्मचारी, सावधानी से चुनी हुई और सुव्यवस्थित किताबों का पर्याप्त संग्रह, बैठने-पढ़ने आदि की सुचारु सुविधाएं और ऐसे प्रोफेसर-अध्यापक जो किताबों के माध्यम से पढ़ाएं।

(8) पुस्तकों के संग्रह मात्र को—अच्छी पुस्तकों के संग्रह को भी हम 'पुस्तकालय' नहीं कहते। अगर छात्रों को उत्साही अध्यापक मिल जाए जो किताबों के माध्यम से पढ़ाएं' और ऐसे पुस्तकालय-कार्यकर्त्ता मिल जाएं जो पुस्तकालय को बौद्धिक कर्मशाला में परिवर्तित कर डालने में उनके साथ सहयोग करें तो सूझ-बूझ के साथ चुनी हुई किताबों का अपेक्षाकृत छोटा-सा संग्रह भी छात्रों के जीवन में कमाल कर सकता है। अगर ऐसे कार्यकर्त्ता नहीं तो हर तरह की सुख-सुविधाओं वाली इमारत और बड़े से बड़ा ग्रंथ-संग्रह सब बेकार है। पुस्तकालय की योजना का उद्देश्य ऐसी पुस्तकों का संग्रह करना नहीं जिनका कक्षा के काम से, प्रयोगशाला के अनुसंधान से और गोष्ठी कक्षा से कोई सरोकार न हो। उसका उद्देश्य तो बल्कि यह है कि किताबों का चुनाव, उनकी व्यवस्था, किताबों तक पहुंचने की परिस्थितियां और पुस्तकालय का सारा क्रियाकलाप इस तरह आयोजित किया जाए कि शिक्षा-समाज की—अध्यापक और छात्र दोनों की—दैनिक आवश्यकताओं और काम-काज से उनका पूरा-पूरा सम्बद्ध बैठ जाए। किताबों के चुनाव को ऐसी दिशा देनी चाहिए कि उससे शिक्षा और अनुसंधान को सहायता मिले। अध्यापकों और पुस्तकालय के कार्यकर्त्ताओं को मिलकर तय करना चाहिए कि कौन-कौन सी किताबें और उनकी कितनी-कितनी प्रतियां खरीदी जाएं और वक्त-वक्त पर उन्हें मिलकर पुरानी किताबें रद्द करने का निश्चय करना चाहिए। इनमें से बहुत सी किताबों की जगह माइक्रो-फिल्में और माइक्रोकार्ड ले सकते हैं।

(9) पुस्तकालय को :

— ऐसे संसाधन उपलब्ध करने चाहिए जो विश्वविद्यालय की विशेष रुचि वाले क्षेत्रों में अनुसंधान के लिए आवश्यक हों;

— विश्वविद्यालय-अध्यापक को भरपूर सहायता देनी चाहिए ताकि वह अपने क्षेत्र की गतिविधि से परिचित रह सके;

— शिक्षा के सारे औपचारिक पाठ्यक्रमों की सफलता के लिए आवश्यक पुस्तकालय-सुविधाओं और सेवाओं की व्यवस्था करनी चाहिए;

— पुस्तकों के उस व्यापक जगत का द्वार खोलना चाहिए जिसका प्रसार किसी के अपने विशेषीकरण-क्षेत्र की सीमाओं के परे होता है; और

— पुस्तकों, छात्रों और अध्यापकों को ऐसी परिस्थितियों में एक दूसरे के समीप लाना चाहिए जिनसे स्वांतः सुखाय, आत्मान्वेषण, वैयक्तिक विकास तथा बौद्धिक जिज्ञासा पर धार धरने के लिए पढ़ने की प्रेरणा मिले।

(10) इसका सही-सही अनुमान लगाने का कोई सूत्र नहीं है कि किसी विश्वविद्यालय को अपने पुस्तकालयों पर कितनी पूंजी लगानी चाहिए। पता यह चला है कि विश्वविद्यालय के पूरे शिक्षा-व्यय के अनुपात में पुस्तकालय पर 1951-52 में 1.88 प्रतिशत व्यय होता था और 1960-61 में वह अनुपात बढ़कर 4.04 हो गया था। उस समय तक विश्वविद्यालय-अनुदान-आयोग के अनुदानों ने अपना अवसर दिखाना शुरू कर दिया था। विश्वविद्यालय शिक्षा-आयोग ने सिफारिश की थी कि पुस्तकालयों पर पूरे शिक्षा-बजट की .5 प्रतिशत रकम खर्च करना मुनासिब होगा। परन्तु यह खर्च 6.5 प्रतिशत से लेकर 1.0 प्रतिशत तक हो सकता है और यह इस बात पर निर्भर है कि पुस्तकालय विशेष के विकास की अवस्था क्या है। यह भी सुझाव दिया जा सकता है कि एक सामान्य मानदंड के रूप में विश्वविद्यालय को अपने भरती किए हुए हर विद्यार्थी के पीछे 25 रुपए और हर अध्यापक के पीछे 300 रुपए प्रतिवर्ष खर्च करना चाहिए।

---

1. 1960 से 1963 तक के वर्षों में सारे संसार में प्रतिवर्ष क्रमशः 3,60,000, 3,75,000, 3,85,000 और 4,00,000 पुस्तकें छपीं। 1966 में इस संख्या के बढ़कर 4,50,000 तक पहुँच जाने की आशा है। इनमें से अकेली अंग्रेजी भाषा की पुस्तकों की संख्या 18 प्रतिशत है। इसका मतलब यह है कि इस भाषा में ज्ञान की सभी शाखाओं से संबंधित प्रायः 80,000 पुस्तकें प्रतिवर्ष निकलती हैं। यदि हम अपने विश्वविद्यालयों और कालेजों के लिए 15 प्रतिवर्ष पुस्तकें भी मंगाये तो हमें 12,000 शोधकों की किताबें मंगानी होंगी। यदि हर किताब का औसत मूल्य 20 रुपए हो और हर किताब की 250 प्रतियां संगाई जाएं तो अनुमानित व्यय 4.80 करोड़ रुपए होगा। और उसमें अन्य सब भाषाओं की किताबों के लिए 20 लाख रुपए की भी व्यवस्था की जाए तो केवल बाहर से मंगाई हुई पुस्तकों पर हमें प्रतिवर्ष पांच करोड़ रुपए खर्च करना होगा।

(11) विश्वविद्यालय और कालेजों के पुस्तकालयों के लिए जितनी विदेशी मुद्रा आवश्यक हो उसका नियतन विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के नाम अलग से कर दिया जाना चाहिए।

11.46. सब से महत्व की बात यह है कि हर विषय के अध्ययन में मौलिक चिन्तन पर बल दिया जाए और रट्टेबाजी पर अंकुश लगाया जाए। आज ज्ञान की वृद्धि इतनी तेजी से हो रही है कि कोई विश्वविद्यालय में जो थोड़े-से तथाकथित तथ्य सीख लेता है, उनके बारे में भी यही संभावना रहती है कि वे कुछ वर्ष बाद जाकर ही उपयोगी और सच होंगे। विज्ञानों के संदर्भ में यह बात खासतौर से सच है। अभी कुछ समय पहले तक अध्यापक अपने छात्रों को नक्शा दे दिया करता था और वह जीवन भर उनके काम आता था। पर अब उसके लिए सबसे अच्छा यह है कि अपने छात्रों को विषय के मूल सिद्धान्तों का स्थायी ज्ञान करा दे ताकि जो-जो समस्याएँ उठें उनका वे स्वयं समाधान कर सकें और जिन्दगी भर सीखते रहें। इसे ही 'विश्वविद्यालय मानस' का विशिष्ट चिन्ह समझा जाना चाहिए।

11.47. आमतौर से यह होता है कि स्नातक-पूर्व कक्षाएं पढ़ाने का काम सब से अल्पवयस्क, सब से कम अनुभवी, अध्यापक को सौंपा जाता है। उनमें से कुछ का न तो बौद्धिक डीलडौल इतना होता है, न अनुभव और न संतुलन कि नवयुवक-नवयुवतियों को ज्ञान की दिशा में प्रेरित-आकर्षित कर सकें। एक तरह से देखा जाए तो इस स्तर पर सफल अध्यापन के लिए जरूरी है कि सब से अच्छे अध्यापक इधर ध्यान दें और भरपूर सहयोग दें। पर इसका मतलब यह नहीं कि सारे या बहुत से वरिष्ठ तथा प्रकृष्ट अध्यापकों को पूर्व-स्नातक कक्षाएं पढ़ाने का काम दिया जा सकता है। परन्तु इसका मतलब यह जरूर होना चाहिए कि पूर्व-स्नातक छात्रों के इस प्रकार के अध्यापकों के सम्पर्क में आने की संभावना रहे—खासतौर से तब, जब किसी नये-नये विषय का पहले-पहल प्रवर्त्तन करना हो।

11.48. अध्यापन में सुधार करने के लिए हम निम्नलिखित सुझाव देना चाहेंगे :

(1) विश्वविद्यालय-स्तर पर पढ़ाई का एक घंटा 60 मिनट से कम का नहीं होना चाहिए। इसमें से कुछ वक्त—समझ लीजिए, दस मिनट—विद्यार्थियों के सवालों के जवाब के लिए और उन्हें घर का काम देने के लिए रहना चाहिए। सामान्यतः विषयवस्तु और अभिव्यक्ति दोनों की दृष्टि से व्याख्यानों में बहुत सुधार की जरूरत है। कक्षा के काम के स्तर-निर्धारण की एक कसौटी यह है कि एक घंटे के व्याख्यान को पचाने के लिए तीन-चार घंटे पढ़ने की जरूरत होनी चाहिए।

(2) कई बार ऐसा होता है कि सत्र-काल में ही अध्यापक अपनी संस्था से लम्बे अरसे तक अनुपस्थित रहता है। इससे संस्थाओं का काम निर्विघ्न नहीं चल पाता—उसमें बाधा पड़ती है और अध्ययन के स्तर की हानि होती है। यह नियम बन जाना चाहिए कि कोई भी अध्यापक एक वर्ष में सत्र-काल के दौरान सात दिन से अधिक अपनी संस्था से अनुपस्थित नहीं रह सकता। एक ऐसी परिपाटी चल जानी चाहिए कि 'सत्र-काल' में कोई अध्यापक ऐसा काम न स्वीकारे जिससे उसके अध्यापन-कार्य में बाधा पड़े।

(3) जितनी भी नई नियुक्तियां हों, सब गर्मियों में होनी चाहिए ताकि अध्यापक शिक्षा-वर्ष के आरंभ में अपनी जगह पर आ सकें। साथ ही, अगर कोई ऐसा कारण ही न हो जो विवश कर दे तो किसी भी अध्यापक को सत्र-काल में एक संस्था छोड़कर दूसरी संस्था में नियुक्ति स्वीकार करने की इजाजत नहीं दी जानी चाहिए।

11.49. हम अच्छी तरह समझते हैं कि सब संस्थाओं में एक साथ ये परिवर्तन कर देना असम्भव होगा। अच्छे अध्यापक और अधिक सुविधाएँ मिलने पर ही ये परिवर्तन सम्भव हो सकेंगे। इनमें अधिकतर परिवर्तन ऐसे हैं जिन्हें विश्वविद्यालयों और उनके अंगभूत कालेजों में लागू करना तो अपेक्षाकृत आसान है पर सम्बद्ध कालेजों में लागू करना मुश्किल है—खास तौर से ग्रामीण क्षेत्रों के छोटे-छोटे कालेजों में। पर इतना निश्चित है कि हमें इसी दिशा में आगे बढ़ना है।

11.50. **प्रयोग**—हम प्रयोग की आवश्यकता पर सब का ध्यान केन्द्रित करना चाहेंगे। शिक्षा के अन्य क्षेत्रों में भी हम इस पर जोर दे चुके हैं। हमारी शिक्षा-प्रणाली में इस के लिए बेहद गुंजाइश है परन्तु दुर्भाग्य से इस दिशा में सचेष्ट और अनवरत प्रयत्न बहुत ही कम हुआ है। इसकी इच्छा और संकल्प जगाना तथा इसके लिए वित्तीय और शैक्षिक साधन उपलब्ध करना—दोनों ही बातें सर्वथा आवश्यक हैं। दो महत्वपूर्ण क्षेत्र ऐसे हैं जिनमें इस तरह के प्रयोग करने से अपार लाभ होंगे।

(1) इनमें से एक क्षेत्र का संबंध तो शिक्षा-व्यय में अथवा संकाय-सदस्यों की संख्या में आनुपातिक वृद्धि के बिना अधिक छात्रों की संभाल-सुधार से है। यह बात तो

किसी भी तरह स्पष्ट नहीं कि छात्रों की संख्या कम होती है तो अनिवार्यतः शिक्षा-स्तरों में सुधार होता है या अध्यापक और छात्र का कोई ऐसा सही अनुपात है जो जादू का काम करता हो। कुछ विषय ऐसे हैं जो बड़ी कक्षाओं में भी उसी खूबी से पढ़ाये जा सकते है जिस खूबी से छोटी कक्षा में। ऐसे साक्ष्य हैं जिन से पता चलता है कि बीच के मेल की कक्षाओं में, यानी जिनमें छात्र-संख्या लगभग चालीस से अस्सी के बीच में हो, कई सौ विद्यार्थियों वाली कक्षाओं के मुकाबले में कोई खास फायदा नहीं होता। इस प्रयोजन के लिए भारत भर के विशिष्ट विद्वानों के व्याख्यानों के सन्दर्भ में माइक्रोफोन और टेपरिकार्डर का उपयोग करने की बात सोची जा सकती हैं। उच्चतर शिक्षा के क्षेत्र में कई विशेषज्ञों का अब यह विचार हो गया है कि कालेज में अध्यापन-कार्य का कुछ अंश तो बड़ी-बड़ी कक्षाओं में हो और कुछ अंश पांच से लेकर बीस छात्रों तक की छोटी-छोटी टोलियों में। छात्र का कम-से-कम आधा वक्त निर्दिष्ट सामग्री की पढ़ाई पर, समस्याओं के समाधान पर और दूसरी तरह के स्वतन्त्र अध्ययन पर खर्च होना चाहिए। यह भी याद रखने की बात है कि विद्यार्थी जितना संकाय की कक्षाओं में सीखते हैं प्रायः उतना ही एक-दूसरे से भी सीखते है।

(2) एक और वांछनीय प्रयोग होगा कि पूर्व-स्नातक स्तर का थोड़ा-बहुत अध्यापन-कार्य स्नातकोत्तर छात्रों से—पहला वर्ष पार कर लेने के बाद—कराएं। इसके तीन फायदे होंगे : छात्र-अध्यापकों को अध्यापन का बहुमूल्य अनुभव प्राप्त हो जाएगा और कालेज अथवा विश्वविद्यालय-संकाय में नियुक्ति से पहले ही उनकी योग्यता आंकी जा सकेगी, कालेज-स्तर पर अध्यापकों की संख्या में इस तरह वृद्धि हो सकेगी या फिर प्रध्यापकों और रीडरों का कुछ वक्त अनुसन्धान के लिए खाली हो जाएगा। स्नातकोत्तर और अनुसन्धान-छात्रों को अध्यापन-कार्य के लिए कुछ पारिश्रमिक देना भी संभव होगा और इससे कुछ जरूरतमंद तथा योग्य विद्यार्थियों को अपनी शिक्षा जारी रखने में मदद मिलेगी।

11.51. **अध्यापन की पद्धतियाँ**—उच्चतर शिक्षा के क्षेत्र में अध्यापन-पद्धतियों की समस्या अब तक भारत में अपेक्षाकृत उपेक्षित रही है। हमारी सिफ़ारिश है कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग एक विशेष समिति नियुक्त करके इस समस्या की जांच कराए। हम यह भी सिफ़ारिश करते हैं कि शिक्षा-पीठ[1]—जिनकी स्थापना का हम प्रस्ताव कर चुके हैं—अध्यापन की पद्धतियों का विशेष अध्ययन कराएं और यह अध्ययन स्कूल-स्तर के सन्दर्भ में ही न हों बल्कि विश्वविद्यालयों और सम्बद्ध कालेजों का भी उनके विचार-क्षेत्र में समावेश रहे। इस प्रकार के अध्ययन अब अध्यापकों के लिए अनुस्थापन-पाठ्यक्रम आयोजित करने में—जिनकी हमने सिफ़ारिश की है—बहुत उपयोगी होंगे।

11.52. **परीक्षाओं में सुधार**—आज की परीक्षा-प्रणाली में वर्ष के अन्त में एक ही बाह्य-परीक्षा के द्वारा छात्रों के भविष्य का समग्र निर्णय हो जाता है—ऐसी स्थिति में वे अध्यापकों की ओर कम-से-कम ध्यान देते हैं, पूरे के पूरे शिक्षा-वर्ष में शायद ही कुछ स्वतंत्र अध्ययन करते हों और अंतिम परीक्षा के लिए ताबड़तोड़ रटाई करने में जुट जाते हैं। उच्चतर शिक्षा के क्षेत्र में कृतित्व के स्तर पर बाह्य-परीक्षा का पंगुकारी प्रभाव इतना भीषण रहा है कि किसी भी प्रकार की प्रगति के लिए परीक्षाओं में सुधार करना एकदम अनिवार्य हो गया है, और ये सुधार अध्यापन-संबंधी सुधार के साथ ही साथ लागू होने चाहिए। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने इस समस्या की महत्ता पर ठीक ही जोर दिया और कहा : "हमारा तो यह निश्चित मत है कि अगर हमें विश्व-विद्यालय-शिक्षा में केवल एक सुधार सुझाना हो तो वह सुधार परीक्षाओं का सुधार होगा।" विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के आरंभिक प्रयत्नों में से एक का वास्ता तो इसी समस्या के अध्ययन से था और उसकी विशेषज्ञ-समिति ने परीक्षा-सुधार के बारे में जो रिपोर्ट दी थी, वह एक बहुत ही उपयोगी दस्तावेज हैं पर अभी तक उस की कोई विशेष उल्लेखनीय क्रियान्विति नहीं हुई है। शिक्षा का यह ऐसा क्षेत्र है जिसके बारे में यह कहा जा सकता है कि हम समस्या से भी परिचित हैं और उसके महत्व को भी अच्छी तरह समझते हैं और कम-से-कम शुरू में, उसके समाधान की जो प्रमुख दिशाएं होंगी उन्हें भी जानते हैं, पर फिर भी किसी न किसी कारण से अब तक इसे खासे-बड़े पैमाने पर या सार्थक ढंग से क्रियान्वित करने का कोई प्रयत्न नहीं किया गया। आवश्यकता इस बात की है कि इस दिशा में सोत्साह और सतत प्रयत्न हो।

11.53. नीचे हम कुछ सिफ़ारिशें कर रहे हैं जिनसे स्थिति में सुखद परिवर्तन का सूत्रपात हो सकता है। समस्या सुलझाने का एक रास्ता तो यह हैं कि बँधे-बँधाये पाठ्यक्रम और उनके आधार पर होने वाली बाह्य परीक्षाएं एकदम बंद कर दी जाएं और उनकी जगह स्वयं अध्यापकों द्वारा आन्तरिक और सतत मूल्यांकन की प्रणाली की प्रतिष्ठा हो। भारतीय शिल्पविज्ञान संस्थानों अथवा कृषि-विश्वविद्यालयों जैसी संस्थाओं में तो यह तरीका अपनाया जा चुका है और ज्योंही आवश्यक परिस्थितियों और सुविधाओं की व्यवस्था हो सके, त्योंही अन्य संस्थाओं

1. अध्याय चार।

में यही तरीका लागू कर दिया जाना चाहिए। हमें आशा है कि जल्दी ही सारे अध्यापन-विश्वविद्यालय इस तरीके को अपना लेंगे और बड़े विश्वविद्यालय इस मामले में सब से आगे रहेंगे।

11.54. परन्तु, हम यह अच्छी तरह समझते हैं कि अभी बहुत समय तक हमें बाह्य परीक्षाओं का सहारा लेते रहना पड़ेगा। विशेष रूप से विश्वविद्यालयों में, जिनसे असमान स्तरों वाले बहुत सारे कालेज सम्बद्ध हैं। यहां हमारी रण-नीति यह होगी कि दो मोर्चों पर समस्या के ऊपर प्रहार करें : आवधिक मूल्यांकन और अधिक बार किए जाया करें ताकि सफलता की एकमात्र कसौटी के रूप में अंतिम परीक्षा को जो अनुचित महत्व दिया जाता है, वह कम हो जाए, और मूल्यांकन की तकनीकों में सुधार किया जाए। जहां तक पहले उपाय का प्रश्न है, अगर पूरे वर्ष भर उपयुक्त रीति से विद्यार्थी के काम को कसौटी पर कसा जाता है और हर सत्र के बीच और अन्त में निश्चित अवधि के पश्चात् परीक्षाएं होती रहें तो बहुत-कुछ फायदा हो सकता है। बाह्य परीक्षाओं के पूरक के रूप में, इस तरह के आवधिक मूल्यांकनों पर आधारित आन्तरिक अंकन-प्रणाली शुरू कर देनी चाहिए। इन आन्तरिक मूल्यांकनों के अंक यों ही बाह्य परीक्षाओं के अंकों के साथ नहीं जोड़ दिए जाने चाहिए बल्कि उन्हें पृथक् रखना चाहिए और जो अन्तिम प्रमाण-पत्र दिया जाये उसमें दोनों ही साथ-साथ दर्शाए जाने चाहिए। छात्र को दोनों में अलग-अलग पास होना चाहिए और दोनों में उसकी श्रेणियां भी अलग अलग बताई जानी चाहिए। हर वर्ष अलग-अलग हर संस्था के संदर्भ में बाह्य और आन्तरिक मूल्यांकन के सह-सम्बन्ध की सावधानी से समीक्षा होनी चाहिए। कालेजों के वर्गीकरण में एक आधार यह भी होना चाहिए और सहायक अनुदान से भी इसका सम्बन्ध रहना चाहिए ताकि जिन संस्थाओं में अपने छात्रों का मूल्य सदा बढ़ा-चढ़ाकर आंकने की प्रवृत्ति हो, उन्हें दर्जे और वित्तीय सहायता दोनों ही की दृष्टि से घाटा रहे। विनियमों के अन्तर्गत विश्वविद्यालय को यह भी अधिकार होना चाहिए कि जो संस्था निरन्तर गैर-जिम्मेदारी से मूल्यांकन करती रहे, उसे अपने आपसे विसम्बद्ध कर दे।

11.55. जहां तक परीक्षा की तकनीकों में सुधार करने का सवाल है, इस विषय पर जो विद्वत्तापूर्ण साहित्य उपलब्ध है उसमें हमें कुछ भी नहीं जोड़ना है।[1] हम पहले ही कह चुके है कि कमी ज्ञान की नहीं, कमी है संकल्प की, साहस की और क्रियान्विति की लगन की। हमारा सुझाव है इस विषय में निम्नलिखित उपाय किए जाएं।

(1) परीक्षा-सुधार के आंदोलन को दिशा और गति देने के लिए एक केन्द्रीय स्रोत की आवश्यकता है। इसके बिना जल्दी कोई भी प्रभावशाली प्रगति नहीं हो सकती। उदाहरण के लिए, माध्यमिक शिक्षा के राज्य-बोर्ड में अब जो गतिमत्ता दीख पड़ती है उसका श्रेय अधिकांश में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान तथा प्रशिक्षण-परिषद् (एन० सी० ई० आर० टी०) के केन्द्रीय परीक्षा-सुधार यूनिट को है। हमारी सिफ़ारिश है कि विश्वविद्यालय-अनुदान-आयोग तुरन्त ही काफी ऊंचे स्तर पर उच्चतर शिक्षा के लिए इसी तरह के परीक्षा-सुधार यूनिट की स्थापना करे जो विश्वविद्यालयों के सहयोग से काम करे। यह सुधार के एक प्रभावशाली कार्यक्रम का आरम्भ-बिन्दु बन सकता है।

(2) अगला कदम यह होना चाहिए कि कुछ विश्वविद्यालयों को बड़े पैमाने पर यह कार्यक्रम लागू करने के लिए राजी किया जाए। बड़े विश्वविद्यालयों को तो बाह्य परीक्षाओं का एकदम अन्त करके इस दिशा में नेतृत्व करना ही पड़ेगा। उनके अतिरिक्त, अन्य विश्वविद्यालयों को परीक्षाओं में सुधार करने के लिए विशेष यूनिटों की स्थापना करनी चाहिए और केन्द्रीय यूनिट के परामर्श से सुधार का कार्यक्रम तैयार करना और उसे व्यवहार-रूप में परिणत करना चाहिए।

(3) एक और जोर देने वाली जरूरी बात यह है कि विश्वविद्यालय-अध्यापकों को नई दिशाओं में प्रवृत्त किया जाए ताकि वे मूल्यांकन की नई और उन्नत तकनीकें अपनाएं। गोष्ठियों, वाद-विवादों या कर्मशालाओं के आयोजन का कार्यक्रम बनाया जाना चाहिए जिनसे सुधारों का रास्ता साफ हो। परिणाम आंकने के लिए, नए प्रयोग करने के लिए और नई योजनाएं बनाने के लिए इनका आयोजन हर वर्ष करना होगा। इस सब की जिम्मेदारी केन्द्रीय और स्थानीय परीक्षा-सुधार-यूनिटों की होगी।

हमारा विश्वास है कि अगर थोड़े-से विश्वविद्यालय भी दृढ़ता के साथ इस समस्या से जूझें और एक शुरुआत कर दें तो परीक्षा-सुधार के समूचे कार्यक्रम की गति बहुत बढ़ जाएगी।

1. **इस विषय पर डा० एच० जे० टेलर ने हमारे लिए एक विशेष लेख तैयार किया था जो पूरक खण्ड एक, भाग पांच में दे दिया गया है। मोटे तौर पर हम इस लेख में की गई सिफ़ारिशों से सहमत हैं।**

11.56. हमारी सिफ़ारिश है कि परीक्षा-फलों का श्रणीकरण या वर्गीकरण प्रायः सदा ही निरपेक्ष आधार पर किया जाए, सापेक्ष आधार पर नहीं। हमारी मौजूदा शिक्षा-प्रणाली में, उदाहरण लेकर देखें तो, गणित में अस्सी प्रतिशत अंकों का अर्थ वह नहीं होता जो इतिहास या अंग्रेजी में होता है। फिर एक वर्ष में अस्सी प्रतिशत अंकों का और दूसरे वर्ष में अस्सी प्रतिशत अंकों का भी एक ही अर्थ नहीं होता क्योंकि हो सकता है दोनों वर्ष परीक्षक अलग-अलग हों। किसी एक साल और दूसरे साल की परिस्थितियों में और भी अनेक भेद हो सकते हैं। श्रेणीकरण की प्रणाली ऐसी होनी चाहिए कि पता चल सके कि कोई छात्र अपनी कक्षा के ऊपर के बीस प्रतिशत छात्रों में आता है या नीचे के बीस प्रतिशत में। हम इस बात की सिफ़ारिश बड़े जोर से करते हैं कि परीक्षाओं और परीक्षा-फलों के वर्गीकरण की वर्तमान पद्धति चलती रहे तो भी उसके पूरकरूप में उसी प्रमाण-पत्र में छात्र के आपेक्षिक श्रेणीकरण का संकेत भी रहना चाहिए—उदाहरण के लिए, पंचांशी पैमाने पर यह काम किया जा सकती। 'क' श्रेणी का मतलब यह होगा कि छात्र ऊपर के उन बीस प्रतिशत छात्रों में है जो परीक्षा में सफल रहे हैं।

11.57. हमारी सिफ़ारिश है कि परीक्षकों को पारिश्रमिक देने की परम्परा का अन्त करने के लिए जल्दी से जल्दी क़दम उठाये जाएं। उत्तर-पुस्तिकाएं जांचना अध्यापन-कर्म का ही एक हिस्सा है और अध्यापकों को उसे अपने काम का हिस्सा समझ कर ही करने के लिए तैयार रहना चाहिए। यह भी एक कारण है कि हमने अध्यापकों के वेतन-मान में वृद्धि की सिफ़ारिश की है। परन्तु हम यह भी मानते है कि किसी अध्यापक के ऊपर इस काम का बहुत बोझ नहीं होना चाहिए। इसलिए हमारा सुझाव है कि किसी अध्यापक को एक वर्ष में 500 से अधिक उत्तर-पुस्तिकाएं नहीं जांचनी पड़नी चाहिए।

11.58. **शिक्षा का माध्यम**—उच्चतर शिक्षा के क्षेत्र में अध्यापन और मूल्यांकन की समस्या अविच्छेद्य रूप से शिक्षा और परीक्षा के माध्यम के प्रश्न के साथ जुड़ी हुई है। हम यह पहले ही कह चुके है[1] कि, हमारे देश में शिक्षा के विकास के अंग-रूप में, विश्वविद्यालय-स्तर पर प्रादेशिक भाषाओं को शिक्षा-माध्यम बनाने की दिशा में बड़ी मुस्तैदी से बढ़ना होगा, कि इस उद्देश्य के लिए सावधानी से तैयारी की जानी चाहिए, कि संक्रमण की पद्धति और समय दोनों का निर्णय विश्वविद्यालय के व्यवस्थापकों पर छोड़ना होगा। अब हम व्यावहारिक क्रियान्विति की दृष्टि से समस्या के कुछ और पहलुओं की चर्चा करेंगे :

(1) हम इस बात पर जोर देना चाहते हैं कि कक्षा के भीतर सम्प्रेषण का और परीक्षा का माध्यम सामान्यतः एक ही होना चाहिए। मौजूदा व्यवस्था के अन्तर्गत छात्रों का एक बहुत बड़ा हिस्सा प्रथम डिग्री-स्तर पर, और बाद में भी, परीक्षाओं के लिए प्रादेशिक भाषा का प्रयोग करता है, हालांकि कक्षा में शिक्षा अंग्रेजी के माध्यम से दी जाती है। शैक्षिक दृष्टि से यह व्यवस्था असन्तोषजनक है। अगर छात्र से अपनी परीक्षा में अपने आपको प्रादेशिक भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त करने की अपेक्षा की जा सकती है तो कक्षा में वैसा ही करना अध्यापक के लिए सामान्यतः कठिन नहीं होना चाहिए। सच तो यह है कि जहां-जहां विश्वविद्यालयों ने प्रादेशिक भाषाओं को शैक्षिक माध्यम बनाने का फैसला कर लिया हैं वहां-वहां वे उन्हें कक्षाओं में सम्प्रेषण के सामान्य माध्यम बनाने का भी फैसला करलें तो छात्र मूल समस्याओं और मसलों को समझेंगे भी ज्यादा अच्छी तरह और परीक्षा में भी उसकी हालत कहीं ज्यादा अच्छी रहा करेगी। परन्तु यह याद रखने की बात है कि विश्वविद्यालयों में माध्यम के रूप में अंग्रेजी छाई रहती है या नहीं, यह इस बात पर निर्भर है कि राज्यों में प्रादेशिक भाषाओं का प्रशासन-भाषाओं के रूप में कहां तक प्रयोग होता है। जब तक प्रशासन में अच्छी-अच्छी जगहें उन छात्रों को मिलती रहेंगी जिनका अंग्रेजी पर अच्छा अधिकार है, तब तक अगर अच्छे-खासे अनुपात में छात्र अंग्रेजी में ही शिक्षा ग्रहण करना पसन्द करते रहें तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं।

(2) यह ठीक है कि हमारा लक्ष्य शिक्षा के माध्यम के रूप में प्रादेशिक भाषाओं की प्रतिष्ठा करना है; पर हम इस बात पर फिर जोर देना चाहेंगे कि इसका मतलब यह नहीं कि अंग्रेजी को निरस्त कर दिया जायेगा। दरअसल, एक महत्वपूर्ण "पुस्तकालय-भाषा" के रूप में उच्चतर शिक्षा में अंग्रेजी की प्राणप्रद भूमिका रहेगी। जब तक कोई छात्र अंग्रेजी में (या किसी और पुस्तकालय-भाषा में) पर्याप्त प्रवीणता न प्राप्त कर ले तब तक उसे उपाधि के—विशेष रूप से मास्टर की उपाधि के—योग्य नहीं समझा जाना चाहिए। इसका लक्ष्य दोहरा है : उच्चतर शिक्षा के क्षेत्र में सभी अध्यापक इस अर्थ में अनिवार्यतः द्विभाषाविद् होंगे कि वे प्रादेशिक भाषा और अंग्रेजी दोनों में पढ़ा

1. अध्याय एक।

सकेंगे और सब छात्रों (विशेषतः स्नातकोत्तर छात्रों) को इस स्थिति में होना चाहिए कि वे प्रादेशिक भाषा और अंग्रेजी दोनों में व्याख्यान समझ सकें और पाठ्यसामग्री का उपयोग कर सकें।

(3) इस बात की पूरी-पूरी सावधानी बरती जानी चाहिए कि शिक्षा के माध्यमों की जटिलताओं के कारण विश्वविद्यालय में प्रवेश करने वाले छात्र की प्रगति में भरसकर कम-से-कम बाधा पड़े। छात्र के जीवन में स्कूल से कालेज में प्रवेश करने की अवस्था बहुत ही नाजुक होती है। कालेज में आने के बाद वह पाता है कि स्कूल की अपेक्षा उसकी समझने की शक्ति और मनोयोग-क्षमता पर अब कहीं अधिक तकाजे हो गये हैं। इनमें एक कठिनाई और आ जुड़ती है—यह कठिनाई शिक्षा के माध्यम के आकस्मिक परिवर्तन में निहित होती है। इस सब के फलस्वरूप यदि बहुत सारे विद्यार्थी चकित, विस्मित और किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाते हैं, और पढ़ाई के प्रति उनका सारा हौसला टूट जाता है, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। पूर्व-स्नातक पाठ्यक्रम के शुरू-शुरू में अगर कक्षा का काफी काम प्रादेशिक भाषा में किया जाए तो अच्छा रहेगा। ज्यों-ज्यों विद्यार्थी शिक्षा की सीढ़ियाँ पार करके ऊपर चढ़ता जाए और ज्यों-ज्यो अंग्रेजी पर उसका अधिकार बढ़ता जाए तथा शिक्षा-माध्यम के रूप में उसके उपयोग से उसका अधिकाधिक परिचय होता जाए, त्यों-त्यों कक्षा का अधिकाधिक कार्य अंग्रेजी में हो सकता है। स्नातकोत्तर स्तर पर, कम से कम अभी कुछ समय तक, कक्षा का अधिकतर कार्य अंग्रेजी में ही करते रहना होगा।

(4) अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा के लिए कुछ विशेष कदम उठाना आवश्यक होगा। अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में हिन्दी माध्यम से या देश के किसी भी भाग में उर्दू (जो उस अर्थ में प्रादेशिक भाषा नहीं है जिस अर्थ में अन्य आधुनिक भारतीय भाषाएं हैं) माध्यम से पढ़ाने वाले कालेजों को चलाने की अनुज्ञा ही नहीं मिलनी चाहिए, उन्हें हर तरह की प्रेरणा भी मिलनी चाहिए। जहां तक ऐसे कालेजों का सम्बन्ध है जो किसी क्षेत्र की प्रादेशिक भाषा से इतर आधुनिक भारतीय भाषाओं के माध्यम से शिक्षा देते हों, उनकी व्यवस्था करने का कोई भी दायित्व राज्य पर होना जरूरी नहीं है—हां, वहां की बात और है जहां काफी संख्या में विद्यार्थी मौजूद हों। परन्तु, अगर कोई भाषिक अल्पसंख्यकवर्ग इस तरह की संस्था चलाना चाहे तो उसे अनुज्ञा मिल जानी चाहिए और उसे मुनासिब अनुदान भी दे दिए जाने चाहिए।

(5) जैसी कि हम पहले सिफ़ारिश कर चुके हैं कि आधुनिक भारतीय भाषाओं के विकास के लिए उच्च अध्ययन केन्द्रों की स्थापना वांछनीय होगी ताकि वे उच्चतर शिक्षा की उपयुक्त माध्यम बन सकें। इन में दो केन्द्र उर्दू के होने चाहिए—एक उत्तर में और एक दक्षिण में।

11.59. हमारा यह निश्चित मत है कि विश्वविद्यालय-स्तर पर किसी भी भाषा को अध्ययन का अनिवार्य विषय नहीं बनाया जाना चाहिए परन्तु ऐच्छिक विषयों के रूप में भारत की प्राचीन और आधुनिक भाषाओं की तथा महत्वपूर्ण विदेशी भाषाओं की पढ़ाई की व्यवस्था होनी चाहिए। जैसा कि हमने अन्यत्र[1] सिफ़ारिश की है, विषयों के चुनाव के बारे में काफी नम्यता बरती जानी चाहिए। किसी भाषा के अनिवार्य अध्ययन के कारण यह हो सकता है कि विद्यार्थियों पर बहुत भारी बोझ पड़ जाने से विषयों का कोई उपयोगी संयोग अव्यवहार्य बन जाए। हमें यह देखकर परेशानी हुई कि एक बड़े विश्वविद्यालय में पूर्व-स्नातक स्तर पर कुल मिला कर शिक्षा के लिए जितना वक्त नियत था, उसमें से आधा वक्त केवल भाषाओं के अध्ययन पर लगाया जा रहा था। जाहिर है कि ऐसी परिस्थितियों में मुख्य विषयों के अध्ययन की बड़ी भारी हानि होती है और स्तर बहुत नीचे रह जाते हैं।

11.60. चूंकि किसी न किसी पुस्तकालय-भाषा पर समुचित अधिकार होना विश्वविद्यालय के हरेक छात्र के लिए अनिवार्य होता है, इसलिए हमारी सिफ़ारिश है कि विश्वविद्यालयों और कालेजों में अंग्रेजी के—और जहां आवश्यक या संभव हो, वहां अन्य पुस्तकालय-भाषाओं के भी—अध्ययन की पर्याप्त सुविधाएं दी जानी चाहिए। इस प्रयोजन के लिए हम निम्नलिखित सिफ़ारिशें करना चाहते हैं :

(1) विश्वविद्यालय और कालेजों में अंग्रेजी पढ़ाने के विशेष यूनिटों की स्थापना होनी चाहिए। इसका प्रमुख उद्देश्य यह होगा कि अध्यापन की आधुनिक तकनीकों के द्वारा, और भरसक कम-से-कम समय में, नए छात्रों को अंग्रेजी का अच्छा कामचलाऊ ज्ञान करा दें। अंग्रेजी का कामचलाऊ ज्ञान कराने के लिए पढ़ाने में और अंग्रेजी साहित्य पढ़ाने में बहुत अन्तर है और इसे समझना होगा। अतः इस यूनिट के अध्यापकों को उसी तरह के विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता होगी और उसकी दिशा कुछ-कुछ वही होगी जिस दिशा में हैदराबाद का 'सेंट्रल इंस्टिट्यूट आफ इंगलिश' काम कर रहा है। यह संस्था अपने ढंग की पहली संस्था है। फिर, यह भी ध्यान

1. अध्याय बारह।

देने की बात है कि विश्वविद्यालयों में जो छात्र आएंगे, अंग्रेजी में उनकी उपलब्धियों के स्तर भिन्न होंगे। उनमें से कुछ अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों से आए होंगे और खासे आगे होंगे। कुछ और शहरों के स्कूलों से आए होंगे जहां अंग्रेजी पढ़ाने की अपेक्षाकृत अधिक सुविधाएं होंगी। उनका औसत स्तर होगा। पर बहुत-सारे छात्र ऐसे होंगे जो ग्रामीण क्षेत्रों में या अपेक्षाकृत कमजोर स्कूलों से आए होंगे और उनका उपलब्धि स्तर काफी नीचा होगा। अंग्रेजी के किसी एक ही पाठ्यक्रम से इन छात्रों की आवश्यकताएं पूरी नहीं हो सकतीं। अतः अंग्रेजी-केन्द्रों की यह जिम्मेदारी होगी कि वे अपने अध्यापन को ऐसे व्यवस्थित करें कि विभिन्न श्रेणियों के विद्यार्थियों की आवश्यकताएं पूरी हो सकें और उन्हें भाषा पर कम-से-कम इतना अनिवार्य अधिकार प्राप्त हो जाए कि वे पुस्तकालय-भाषा के रूप में उसका समुचित उपयोग कर सकें। यों तो भरसक सभी संस्थाओं में सुविधाएं होनी चाहिए पर इस बात का फैसला करने की हर छात्र को छूट होनी चाहिए कि आवश्यकता-पूर्ति के लिए वह कौन-से पाठ्यक्रम का अध्ययन करे या अगर स्कूली स्तर पर उसकी तैयारियां समुचित रही हों तो किसी भी पाठ्यक्रम में सम्मिलित न हो।

(2) पूर्व-स्नातक स्तर पर पहले वर्ष में ऐच्छिक विषय के पाठ्यक्रम के अन्तर्गत कुछ अंग्रेजी की पढ़ाई करना श्रेयस्कर होगा। उदाहरण के लिए, अर्थशास्त्र के छात्र पहले वर्ष में अपने पाठ्यक्रम के अंग-रूप में प्रतिसप्ताह दो घंटे अंग्रेजी का अध्ययन कर सकते हैं। इस पढ़ाई का उद्देश्य यह होगा कि अंग्रेजी में जो अर्थशास्त्रीय साहित्य उपलब्ध है, उससे उनका परिचय हो जाए, कि वे अपने विषय से सम्बन्धित शब्दावली जान जाएं और इस तरह अपने विशेष क्षेत्र में अंग्रेजी की पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं को पढ़ और समझ सकें। जहां भी ऐसे पाठ्यक्रम अजमाए गए हैं, वे काफी सहायक सिद्ध हुए हैं और अंग्रेजी के सामान्य पाठ्यक्रम की अपेक्षा इस तरह के पाठ्यक्रम के द्वारा छात्र अपने क्षेत्र में पुस्तकालय-भाषा के रूप में अंग्रेजी का उपयोग करने में कहीं अधिक समर्थ हुए हैं।

(3) यह ठीक है कि अंग्रेजी हमारी सबसे महत्वपूर्ण पुस्तकालय-भाषा है परन्तु, अन्य महत्वपूर्ण पुस्तकालय भाषाओं का विकास करना भी आवश्यक है और इस बात पर अपनी इस रिपोर्ट में हमने बार-बार जोर दिया है। अतः यह आवश्यक है कि अंग्रेजी के अलावा और पुस्तकालय भाषाएं पढ़ाने पर अभी जितना ध्यान दिया जाता है उससे कहीं अधिक ध्यान दिया जाए। हम, विशेष रूप से, कहीं बड़े पैमाने पर रूसी भाषा के अध्ययन की तात्कालिक आवश्यकता पर जोर देना चाहते हैं।

11.61. बड़े विश्वविद्यालयों में, नियमतः, शिक्षा के माध्यम रूप में अंग्रेजी अपनाना आवश्यक होगा क्योंकि उनमें देश के हर कोने से छात्र और अध्यापक आएंगे। उनके अखिल भारतीय स्वरूप को सुरक्षित रखना है तो यही एक संभाव्य मार्ग है। पर यदि किसी विश्वविद्यालय में सही किस्म के अध्यापक और छात्र हों और वह किसी प्रादेशिक भाषा में यह प्रयोग करके देखना चाहे तो हमें इस पर कोई आपत्ति नहीं है। हम जानते हैं कि अखिल भारतीय आधार पर अपने अध्यापकों की नियुक्ति और छात्रों की भरती करने में उन्हें कुछ कठिनाइयां होंगी पर हमारा विश्वास है कि उन कठिनाइयों को पार किया जा सकता है।

छात्र-सेवाएं

11.62. शिक्षा की वर्तमान प्रणाली की एक बहुत बड़ी कमजोरी यह है कि उसमें छात्र-कल्याण की कोई समुचित व्यवस्था नहीं। यह उच्चतर शिक्षा का एक ऐसा पहलू है जिसमें प्राथमिकता के आधार पर सुधार करने की आवश्यकता है।

11.63. छात्र-सेवाएं केवल कल्याण-कार्य ही नहीं होतीं बल्कि वे शिक्षा का अभिन्न अंग हैं। कुछ महत्वपूर्ण सेवाएं जिन्हें इस कार्यक्रम में शामिल किया जा सकता है निम्नलिखित हैं :

- नए छात्रों का अनुस्थापन;
- स्वास्थ्य-सेवाएं;
- आवास-सुविधाएं;
- मार्गदर्शन और परामर्श, जिसमें व्यावसायिक सुस्थापन भी शामिल है;
- छात्र-कार्यकलाप; और
- वित्तीय सहायता।

छात्रवृत्तियों, किताब-बैंकों और पाठ्य-पुस्तकों के ऋण के रूप में वित्तीय सहायता की तथा छात्रों के लिए इस प्रकार की व्यवस्था की चर्चा हमने अन्यत्र[1] की है कि वे पढ़ते-पढ़ते कमा भी सकें। इस अध्याय में हमारा विचार

1. अध्याय छह।

संक्षेप में छात्र-सेवाओं के दूसरे रूपों की चर्चा करने का।

11.64. **नए छात्रों का अनुस्थापन**—कालेज या विश्वविद्यालय में प्रवेश छात्र-जीवन में एक बहुत बड़ा परिवर्तन होता है और किसी-किसी स्थिति में तो यह परिवर्तन इतना बड़ा और आकस्मिक होता है कि उसके संतुलन खो बैठने की पूरी संभावना होती है। अतः बहुत सोच-समझ कर कुछ ऐसे कदम उठाना जरूरी होता है कि स्थिति से अपना सामंजस्य करने में उसे सुभीता हो। हमारी सिफ़ारिश है कि उच्चतर शिक्षा की सभी संस्थाओं को शिक्षा वर्ष के आरम्भ में अपने नए छात्रों के लिए अनुस्थापन-कार्यक्रमों का आयोजन करना चाहिए। वरिष्ठ छात्रों का इस कार्यक्रम के साथ सक्रिय सहयोग होना चाहिए। इस प्रयोजन के लिए टोलियां बनाकर विचार-विमर्श करने का तथा वैयक्तिक गोष्ठियों का प्रबन्ध किया जा सकता है और जहां जरूरी हो निर्देशित परिसर दौरों से भी सहायता मिलेगी। किसी भी छात्र को इस बारे में कोई सन्देह नहीं रह जाना चाहिए कि उसके आवास और खान-पान का प्रबन्ध क्या हैं, उसकी कक्षाएं किस-किस दिन और कौन-कौन से समय हुआ करेंगी उसे कितनी-कितनी और कब-कब फीस देनी पड़ा करेगी, और सबसे बड़ी बात यह है कि उसे यह अच्छी तरह पता चल जाना चाहिए कि उसकी संस्थाओं की सामान्य परम्पराएं क्या हैं और उसे किन नियम-विनियमों का पालन करना होगा। हर छात्र किसी न किसी शैक्षिक सलाहकार के जिम्मे होना चाहिए जो अध्यापक-वर्ग का सदस्य होगा और कालेज के समग्र कार्यक्रमों की योजना बनाने में, उन्हें सूत्रबद्ध करने में तथा अध्ययन के आयोजन में उसकी सहायता करेगा ताकि उसे अधिक से अधिक लाभ हो सके। अध्यापन-संकाय के हर सदस्य से यह अपेक्षा की जानी चाहिए कि वह छात्रों की एक टोली के शैक्षिक सलाहकार के रूप में कार्य करेगा।

11.65. **स्वास्थ्य-सेवाएं**—छात्र स्वास्थ्य-सेवाओ की आम तौर से उपेक्षा की जाती है। शिक्षा आयोग ने इस विषय में विभिन्न विश्वविद्यालयों को एक प्रश्नावली भेजी थी और उसके जो जवाब आए हैं उनसे पता चलता है कि उनमें से शायद ही किसी ने अपने छात्रों का स्वास्थ्य-सर्वेक्षण कराया हो और ऐसे विश्वविद्यालय भी बहुत नहीं हैं जिन्होंने आगे के लिए स्वास्थ्य-सेवाओं के व्यवस्थित कार्यक्रम आयोजित किए हों। कई विश्वविद्यालयों में, पहले-पहल प्रवेश के समय भी, डाक्टरी परीक्षा नहीं होती और जहां डाक्टरी परीक्षाएं होती भी हैं यहां वे अक्सर बिना किसी उत्साह के की जाती हैं और उनके परिणामों के आधार पर बाद में किसी तरह की यथोचित कार्रवाई नहीं की जाती। विश्वविद्यालयों के छात्रों के स्वास्थ्य और शारीरिक खुशहाली पर समाज की बहुत बड़ी बाजी लगी होती है—वे उगती हुई पीढ़ी का नवनीत होते हैं (या होने चाहिए), अपने बहुत-सारे साधनों को वह उन पर लगा देता है और राष्ट्र-हितों के उन्नयन के लिए उनका मुंह जोहता है। अतः विश्वविद्यालय-स्तर पर छात्र-स्वास्थ्य-सेवाओं के आयोजन को उच्च प्राथमिकता मिलनी चाहिए।

11.66 हमारी सिफ़ारिश है कि विश्वविद्यालयों और कालेजों में समुचित स्वास्थ्य-सेवाओं के आयोजन के लिए जल्दी से जल्दी क़दम उठाए जाएं। हर विश्वविद्यालय-परिसर में और हर उस बस्ती में जहां छात्रों की बड़ी आबादी हो स्वास्थ्य केन्द्रों की स्थापना की जानी चाहिए, जहां डाक्टरी परीक्षा की, परीक्षा के बाद यथोचित उपचार की और आपात-स्थिति में देखभाल की व्यवस्था हो। छोटे-छोटे मुफ़स्सिल नगरों-कस्बों में इस काम के लिए अंशकालिक डाक्टरों की सेवाएं उपलब्ध की जानी चाहिए। हमारी यह भी सिफ़ारिश है कि छात्रों की स्वास्थ्य-शिक्षा की तथा स्वास्थ्य-सेवाओं के आयोजन में उनका सहयोग प्राप्त करने की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए—नीति-निर्माण में भी और कार्यक्रमों की क्रियान्विति में भी। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग विश्वविद्यालयों के अध्यापकों और छात्रों के लिए उसी ढंग की स्वास्थ्य-सेवाएं आयोजित करने की संभावना की जांच कर सकता है जिस ढंग की अंशदायी स्वास्थ्य सेवा भारत सरकार के कर्मचारियों के लिए आयोजित की गई हैं। शुरुआत ऐसे एक-दो विश्वविद्यालयों से की जा सकती हैं जिनमें आवासी छात्रों की संख्या बहुत हो और इस तरह जो अनुभव प्राप्त हो उसके आलोक में इस कार्यक्रम का विस्तार अन्य केन्द्रों में किया जा सकता है।

11.67. **छात्रावास और दिवस-अध्ययन-केन्द्र**—विश्वविद्यालय-स्तर पर जितने छात्र भरती होते है, उनमें से प्रायः अठारह-प्रतिशत के लिए इस समय छात्रावास की सुविधाएं प्राप्त हैं। इन के काफ़ी विस्तार की आवश्यकता है और हमारा सुझाव है कि इस बात का प्रयत्न होना चाहिए कि स्नातक-पूर्व स्तर पर कुल भरती के 25 प्रतिशत के लिए और स्नातकोत्तर स्तर पर कुल भरती के पचास प्रतिशत छात्रों के लिए छात्रावासों में स्थान होना चाहिए। कृषि, इंजीनियरी तथा चिकित्सा आदि वृत्तिक पाठ्यक्रमों में छात्रावास-सुविधाओं का पहले से ही काफ़ी विस्तार है। हम इस दृष्टिकोण से सहमत नहीं है कि इन पाठ्यक्रमों में सब छात्रों के लिए छात्रावास-सुविधाएं होनी चाहिए। हमारी राय में कलाओं और विज्ञानों के

पाठ्यक्रमों में छात्रावास-सुविधाओं की व्यवस्था पर जोर देना आवश्यक है—कम-से-कम निकट भविष्य में। इस कार्यक्रम पर ख़र्च कम-से-कम हो, इसके लिए आवश्यक है कि छात्रावासों के डिज़ाइन भरसक सादा से सादा रहें। इसके अलावा, यह भी ज़रूरी है कि छात्रावासों को चलाने पर कम-से-कम ख़र्च हो और साथ ही, इस बात की भी व्यवस्था होनी चाहिए कि छात्र अपना बहुत-सारा काम स्वयं ही किया करें।

11.68. जिन आवासी छात्रों को घर पर पर्याप्त सुविधाएं नहीं होतीं, उनके लिए बहुत बड़े पैमाने पर दिवस-अध्ययन केन्द्रों की और पुस्तकालय में बैठने की अपनी-अपनी अलग-अलग जगहों की व्यवस्था होनी चाहिए। छोटे-छोटे नगरों और बड़े-बड़े शहरों में ऐसे छात्रों की संख्या बहुत अधिक है। लक्ष्य यह रखना चाहिए कि अनिवासी छात्रों में से लगभग 25 प्रतिशत के लिए दिवस-केन्द्रों की व्यवस्था हो जाए। इन में उपदान-प्राप्त अथवा सस्ते भाव वाले कैफ़ेटेरिया होने चाहिए जो अपना काम अपने आप करने के सिद्धान्त के आधार पर चलाए जाएं।

11.69. **मार्गदर्शन और परामर्श**—उच्चतर शिक्षा की संस्थाओं में जो सुख-सुविधाएं दी जाती हैं, मार्गदर्शन और परामर्श-कार्यक्रम उनका एक अभिन्न अंग होना चाहिए। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत छात्रों को पाठ्यक्रमों के चुनाव में सहायता दी जाएगी, कोई कष्ट हो तो उसके उपचार की दिशा बताई जाएगी और भावनात्मक तथा मनोवैज्ञानिक समस्याओं के समाधान में भी सहायता दी जाएगी। प्रति हजार विद्यार्थियों के लिए कम-से-कम एक परामर्शदाता होना आश्यक है तभी यह मार्गदर्शन-सेवा कारगर हो सकती है। जहां तक छोटी संस्थाओं का प्रश्न है एक ही परामर्शदाता अंशकालिक आधार पर एक से अधिक संस्थाओं में काम कर सकता है। इस तरह की सेवा का आयोजन करने के लिए बहुत बड़ी संख्या में वृत्तिक प्रशिक्षण-प्राप्त परामर्शदाताओं की आश्यकता होगी। हमारा सुझाव है कि किसी ऐसे विश्वविद्यालय में उनके प्रशिक्षण का आयोजन किया जाना चाहिए जो इसके लिए सक्षम हो।

10.70. कई विश्वविद्यालयों में राष्ट्रीय रोजगार-सेवा के रोजगार, सूचना और मार्गदर्शन ब्यूरो तथा छात्र-सलाहकार ब्यूरो काम करते रहे हैं और उनका काम काफी उपयोगी रहा है। रोजगार, सूचना और मार्गदर्शन ब्यूरो व्यवसाय और रोजगार-बाजार की सूचनाएं एकत्र और संकलित करते रहे हैं और छात्रों को यथावश्यकता देते रहे हैं। इसके अतिरिक्त वे विभिन्न देशों की तैयारी, प्रशिक्षण-सुविधाओं शिक्षुता और छात्रवृत्ति आदि के बारे में भी सूचनाएं देते हैं। वे छात्रों को रोजगार भी दिलाते रहे हैं। सुयोग्य परामर्शदाताओं से युक्त परामर्श-सेवाओं के अभाव में वे अपने पेशों की योजना बनाने में छात्रों को सलाह और सहायता भी देते रहे हैं। छात्र-सलाहकार ब्यूरो की स्थापना शिक्षा मंत्रालय ने मूलतः विदेशों में उच्चतर शिक्षा सुविधाओं के बारे में सूचना देने के लिए की थी किन्तु अब वे यह भी सूचना देते हैं कि भारत में इसकी क्या-क्या सुविधाएं हैं। चूंकि शिक्षा और व्यवसाय-सम्बन्धी सूचनाओं का परस्पर गहरा सम्बन्ध होता है, इसलिए हमारी यह सिफ़ारिश है कि इन कार्यालयों को मिलाकर एक सूचना और रोजगार-केन्द्र बना दिया जाए तो सीधे छात्र-अधिष्ठाता (डीन) की देखरेख में काम करे।

11.71. **छात्रों के कार्यकलाप**—यह आवश्यक हैं छात्र की शक्तियों को सार्थक और चुनौती वाले कार्यों की दिशा में प्रवाहित किया जाए। यह काम कुछ हद तक तो उन पाठ्यचर्यागत कार्यक्रमों को और अधिक गति दे कर किया जा सकता है जिनकी चर्चा हम पहले कर चुके हैं। पर उतना ही काफी नहीं है। सहपाठ्यचर्या-क्रियाओं का एक समृद्ध और विविध कार्यक्रस तैयार करना भी आवश्यक हैं। इस कार्यक्रम में ये सब चीजें शामिल होंगी: व्याख्यान, वाद-विवाद, निबन्ध-प्रतियोगिताएं, सामूहिक चर्चा, सांस्कृतिक कार्यक्रम और प्रतियोगिताएं, अध्ययन-वृत्त, समाज-सेवा शिविर, एन० सी० सी० के दौरे और सैर-सपाटे, खेल-कूद और खेल-प्रतियोगिताएं, छात्र पत्रिकाओं का प्रकाशन, शैक्षिक फिल्मों के प्रदर्शन, छात्र-पुस्तकालयों का संचालन, कैंटीन और सहकारी भंडार तथा छात्रों के लिए वित्तीय और डाक्टरी सहायता से सम्बन्धित कल्याण-कार्य। अच्छी संस्थाओं में अब भी इनमें से बहुत सारे कार्य समग्र कार्यक्रम का अंग होते हैं। ऐसी संस्थाएं शिक्षात्मक प्रेरणाओं की दृष्टि से समृद्ध होती हैं और कुछ बहुमूल्य मनोदृष्टियों तथा गुणों को विकसित और प्रकट करने में सहायता देती हैं—जैसे सहकारिता, पहलकदमी, आत्मविश्वास तथा नेतृत्व शक्ति। इनका आयोजन सत्रकाल में ही नहीं, छुट्टियों में भी होना चाहिए। कुछ कार्यक्रमों के लिए तो छुट्टियां ही अधिक उपयुक्त होती हैं।

11.72. **कल्याण सेवाओं का प्रबन्ध**—छात्र-कल्याण के किसी भी प्रभावशाली कार्यक्रम के लिए उप-कुलपति अथवा प्रिंसिपल का सलाह-मशविरा, समर्थन और पहलकदमी अनिवार्य हैं। किन्तु यह कार्य इतना जटिल और बहुमुखी होता है कि छात्र-कल्याण के एक पूर्ण-कालिक अधिष्ठाता की आवश्यकता होती है जो उसकी

क्रियान्विति की देखभाल कर सके। वह चतुर और सूझ-बूझ वाला शिक्षा-विशेषज्ञ होना चाहिए जो इस काम का विशेष रूप से प्रशिक्षण प्राप्त कर चुका हो। उसका दर्जा और अधिकार भी काफी होने चाहिए ताकि छात्रों और अध्यापकों से उसे यथोचित सम्मान और सहयोग मिले। वह शैक्षिक कार्य में भी यथासम्भव भाग ले और उसे शैक्षिक समाज का ही अंग माना जाए।

11.73. **छात्र संघ**—छात्र-संघ एक ऐसा महत्वपूर्ण माध्यम होते हैं जिनके सहारे छात्र कक्षा के बाहर रह कर भी विश्वविद्यालय के जीवन में भाग ले सकते हैं। अगर उनका सही ढंग से आयोजन किया जाए तो इनसे स्व-शासन और आत्मानुशासन में सहायता मिलती है, छात्रों को अपनी शक्तियों की अभिव्यक्ति का सही मार्ग मिल जाता है और उन्हें लोकतन्त्रात्मक पद्धतियों के उपयोग का अच्छा-खासा प्रशिक्षण मिल जाता है।

11.74. हर विश्वविद्यालय को स्वयं यह तय करना चाहिए कि उसके छात्र-संघ किस तरह काम करें। इस दिशा में अनेक और विविध प्रयोगों का हम स्वागत करेंगे, किन्तु कुछ स्थूल सिद्धान्तों का हम निर्देश कर सकते हैं :

(1) छात्र-संघों की सदस्यता इस अर्थ में स्वत: सिद्ध होनी चाहिए कि हर छात्र को अपने आप उसका सदस्य समझ लिया जाना चाहिए। पर हरेक छात्र से यह अपेक्षा होनी चाहिए कि वह संस्था द्वारा आयोजित क्रियाकलाप में से कोई एक चुन ले—जैसे कला-समाज, फुटबाल-क्लब, नाटक-संघ आदि, और उसका जितना चंदा हो वह दे दे। छात्र-संघ की सदस्यता का अलग से कोई चन्दा नहीं होना चाहिए। इस तरह करने से हरेक विभाग की अपनी निधि होगी और हरेक की अलग-अलग संचालन-समितियां होंगी जो उसका काम चलाएंगी। केन्द्रीय संघ की यथावश्यक निधि हर विभागीय समिति के चंदे से बनेगी। विश्व-विद्यालय या कालेज को भी केन्द्रीय संघ तथा विभिन्न क्रियाकलापों के निमित्त सहायता देनी चाहिए।

(2) पदाधिकारियों का चुनाव सीधे छात्रों के द्वारा, जिनकी संख्या बहुत अधिक होती है, (और जिनमें बहुत-से एकदम नए-नए होते हैं) कराने के बजाय परोक्षत: विभिन्न छात्र-संस्थाओं द्वारा कराना अधिक वांछनीय हो सकता है। इस प्रकार ये संस्थाएं संघ की कार्यकारिणी में अपने चुने हुए प्रतिनिधि भेज सकती हैं।

(3) पदाधिकारियों के लिए कुछ अर्हताएं भी हो सकती हैं। उदाहरण के के लिए, जो छात्र दो या दो से अधिक वर्ष तक एक ही कक्षा में रहे हों उन्हें अनर्ह घोषित कर दिया जाना चाहिए।

(4) छात्र-संघ का सफल संचालन बहुत-कुछ अध्यापकों और छात्रों के पारस्परिक विश्वास और भरोसे पर निर्भर होता है। अत: कुछ-न-कुछ ऐसे कदम उठाए जाने चाहिएं कि संघ के कार्यकलाप में अध्यापकों का अधिकाधिक योगदान हो। हमारी पुरज़ोर सिफ़ारिश है कि विश्वविद्यालय या कालेज संघों की स्थापना की जाए जिनके सारे अध्यापक और छात्र अपने आप सदस्य बन जाएं। इन संघों की सारी समितियों में और विभिन्न क्रियाकलाप में वर्गों में अध्यापक जरूर रहने चाहिए और यह उनकी जिम्मेदारी होनी चाहिए कि चतुराई से विद्यार्थियों को सही दिशा में मार्गदर्शन करें और ऐसा करते हुए अपने बारे में अपने आप फैसला करने के उनके अधिकार पर भी कोई आंच न आने दें।

11.75. कुछ संस्थाओं में, छात्र-संघों के शैक्षिक उद्देश्यों की अच्छी तरह सिद्धि हो रही है और वे संतोषजनक ढंग से काम कर रहे हैं। परन्तु अधिकतर संस्थाओं में, विशेष रूप से इधर कुछ वर्षों में, उनकी प्रवृत्ति मजदूर-संघों के रूप में काम करने की रही है और वे यह मानकर काम करते हैं कि अध्यापकों और अधिकारियों के विरुद्ध छात्रों के हितों का प्रतिनिधित्व करते हैं। इस विचार को निश्चित रूप से और दृढ़ता के साथ दबाया जाना चाहिए। विश्वविद्यालय या कालेज बराबर वालों का शैक्षिक साहचर्य होता है जहां हर मसले पर बातचीत हो सकती है और उसका मुनासिब फैसला किया जा सकता है। हमने अध्यापकों और छात्रों की जिन मिली-जुली समितियों की सिफ़ारिश की है उनके पीछे विशेष रूप से यही दृष्टिकोण है। विद्यार्थियों की वास्तविक कठिनाइयों को अच्छी तरह समझने और उन्हें दूर करने के लिए इनका भरपूर उपयोग किया जाता चाहिए। विद्यार्थियों की यह आम शिकायत है, और शायद कुल मिलाकर ठीक भी है, कि कालेज या विश्वविद्यालय के अधिकारी उनकी इन कठिनाइयों पर या उनके प्रति होने वाले अन्याय पर तब तक कोई ध्यान नहीं देते जब तक उनके पीछे किसी-न-किसी तरह की तथाकथित "सीधी कार्रवाई" का बल नहीं होता और सच पूछा जाए तो शिक्षा-संस्था में इस सीधी कार्रवाई के लिए कोई जगह नहीं होती परन्तु जब उनका वास्ता हड़ताल या प्रदर्शन या किसी-न-किसी तरह की हिंसा से पड़ता है तो कभी-कभी वे अशोभन रीति से घुटने टेक देते हैं और इससे विद्यार्थियों के मन में एक दुर्भाग्यपूर्ण धारणा यह जम जाती है कि कि शिष्टाचरण और अनुशासन के नियम तोड़ने से फायदा ही होता है। इस तरह के प्रशासन

के बने रहने का कोई कारण नहीं है। अध्यापक-वर्ग, प्रिंसिपलों, उपकुलपतियों, सबको विद्यार्थियों के साथ अपने व्यवहार में सहानुभूति सद्भाव, पारस्परिकता और औचित्य से काम लेना सीख लेना चाहिए पर साथ ही आवश्यकता पड़ने पर अटल और अडिग बने रहने का सबक भी सीख लेना चाहिए। छात्रों और अध्यापकों को गहरी और रचनात्मक साझेदारी के सूत्र में बांधने वाली शक्ति यह है कि उनके हित एक-जैसे होते हैं, उनमें एक-दूसरे के प्रति सम्मान होता हैं और समान मूल्य-भावना होती है और वे एक ही प्रमुख उद्देश्य—ज्ञान के सम्मान और शोध—के लिए साथ-साथ सक्रिय होते हैं। जो व्यक्ति इस दर्शन के प्रति प्रतिश्रुत नहीं, या जो इसका पालग करने के लिए तैयार नहीं, उसके लिए, सच पूछा जाए तो, उच्चतर शिक्षा की किसी भी संस्था में कोई जगह नहीं होनी चाहिए।

11.76. साल में एक बार विश्वविद्यालयों और कालेजों मे छात्र-संघ के प्रतिनिधियों का सम्मेलन बुलाना उपयोगी रहेगा। यह सम्मेलन समान हित की विभिन्न समस्याओं पर विचार किया करेगा—जैसे, अनुशासन की स्थिति में सुधार व शैक्षिक उत्कृष्टता का उन्नयन। ऐसे सम्मेलन से छात्रों को यह अवसर तो मिलेगा ही कि वे अपनी पढ़ाई-लिखाई और खुशहाली से सम्बन्धित मामलों पर अपने विचार प्रकट कर सकें, साथ ही छात्र-समाज में इससे यह भी भावना जागेगी कि विश्वविद्यालय या कालेज के विकास में उनका भी योगदान है। हमारा सुझाव है कि इस तरह की वार्षिक बैठक बुलाने में और उसे आर्थिक सहायता देने में विश्वविद्यालय-अनुदान-आयोग पहल करे।

11.77. **छात्रानुशासन**—पिछले बीस-पच्चीस वर्षों में, छात्र-उद्वेग की समस्याओं, उसकी अनेक अशोभन अभिव्यक्तियों और उसके उत्तरदायी कारणों के बारे में इतना लिखा जा चुका है कि उन सब ब्योरों को दोहराना हमारें लिए आवश्यक नहीं हैं। संक्षेप में, अनेक अशोभन हड़तालें और प्रदर्शन हुए हैं—और प्रायः बिना किसी औचित्य के हुए हैं—और उनके परिणाम हुए है हिंसात्मक कार्यवाहियां, कक्षाओं और परीक्षाओं का बहिष्कार, बिना टिकट यात्रा, पुलिस के साथ मुठभेड़ें, बसों और सिनेमा-घरों को जलाया जाना—यहां तक कि कभी-कभी अध्यापकों और विश्वविद्यालय अधिकारियोंके साथ जोर जबरदस्ती की वारदातें भी हुई हैं। असभ्य व्यवहार की इन मुख्य अभिव्यक्तियों के बहुत सारे कारण हैं। उदाहरण के लिए, शिक्षित नौजवानों के सामने अपने अविश्चित भविष्य की आशंका, जिसके फलस्वरूप नैराश्यभाव का जन्म होता है और इसी भूमि पर दायित्वहीनता की भावना फलती-फूलती है; अनेक पाठ्यचर्या-कार्यक्रमों का यांत्रिक और असन्तोषजनक स्वरूप; अधिकांश संस्थाओं में पढ़ने-सीखने और पढ़ाने की सर्वथा अपर्याप्त सुविधाएं; अध्यापक-छात्र का नगण्य सम्पर्क—अनेक विद्यार्थी तो ऐसे होते हैं जो सारे के सारे स्नातक-पूर्व पाठ्यक्रम से गुजर जाते हैं और उनकी कभी नाम को भी अपने अध्यापकों से बातचीत नहीं हो पाती—अनेक अध्यापकों में क्षमता और विद्वत्ता का अभाव और छात्र समस्याओं में रुचि लेने की असमर्थता, संस्थानों के अध्यक्षों में कल्पना तथा कौशल एवं दृढ़ता के समन्वय का अभाव; कुछ कालेजों और विश्वविद्यालनों में राजनीति के उस स्वरूप की परिव्याप्ति, जिसे अध्यापक-राजनीति कहा जाता है; राजनीतिक दलों द्वारा उनके काम मे हस्तक्षेप करने का प्रबत्न; और यह भी किसी तरह कम महत्वपूर्ण नहीं—देश के सार्वजनिक जीवन की परिस्थिततियों का प्रभाव, वयस्कों मे अनुशासन के गिरते हुए स्तर उनकी और नागरिक चेतना तथा ईमानदारी का ह्रास।

11.78. यों तो इस तरह की घटनाएं और उनकी आधारभूत कारण-समष्टि पिछले कई वर्ष से उच्चतर शिक्षा का एक अंग रही है परन्तु इस समय सब से अधिक और विशेष चिन्ता की बात यह है कि स्थिति के क्रमशः और बिगड़ते जाने की प्रवृत्ति साफ झलकती हैं और इन कामों को बिना किसी तरह के पश्चात्ताप के तथा असंगत और छिछले आधारों पर करने की प्रवृत्ति दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। अगर हम यह ध्यान में रखें कि स्वतन्त्रता के फलस्वरूप नौजवानों के लिए अवसर काफी हद तक बढ़े हैं और बढ़ेंगे और साथ ही यह भी कि देश-रक्षा और आर्थिक-सांस्कृतिक विकास के क्षेत्रों में किस गम्भीर चुनौतियों का सामना कर रहा है तो यह विशेष रूप से खेदजनक प्रतीत होता हैं। ऐसी स्थिति में, समाजशास्त्रीय व्याख्याओं मात्र से काम नहीं चलता। सच तो यह है कि जब तक वे सम्भाव्य हल की ओर संकेत न करेंगे और उनके आधार पर कारगर कार्रवाई न होगी तब तक कोरी व्याख्या को भ्रान्तिवश औचित्य-प्रतिपादन समझा जा सकता है। अतः इन प्रवृत्तियों की बाढ़ को रोकने के लिए तुरन्त कदम उठाना जरूरी हैं और साथ ही हमें कुछ ऐसी व्यवस्था करनी होगी कि शिक्षा चाहे और कुछ लक्ष्य अपने सामने रखे या न रखे, उसे कम से कम यह कोशिश करनी चाहिए कि उसके माध्यम से तरुण युवक नवयुवतियां शिष्ट व्यवहार के मानदण्डों से परिचित हो जाएं और उन्हें अपने जीवन में उतारें और महत्वपूर्ण सामाजिक मूल्यों के प्रति अपने आप को ईमानदारी से समर्पित कर दें। यह भी याद रखना जरूरी है कि इस स्थिति की जिम्मेदारी किसी एक पक्ष पर नहीं—यानी जिम्मेदारी केवल विद्यार्थियों की या माता-पिता की या

अध्यापकों की अथवा राज्य-सरकारों या राजनीतिक दलों की नहीं, जिम्मेदारी सभी पक्षों की है। जिम्मेदारी तो सब की है ही और साथ ही वस्तुस्थिति में भी इसके अनेक कारण मौजूद हैं और इसका तब तक कोई कारगर हल नहीं निकल सकता जब तक रोग के लिए जिम्मेदार हर पक्ष अपने कर्तव्य का पालन न करे। अतः छात्र-उद्वेग के कुछ उपचार ऐसे हैं जो शिक्षा-पद्धति के परे चले जाते है। पर अगर हम उन उपचारों की बात छोड़ भी दें तो दो मुख्य काम ऐसे हैं जो शिक्षा-पद्धति स्वयं कर सकती है और उसे करने चाहिए :

— उन शैक्षिक कमियों को दूर करना जो इसमें योगदान करती है; और

— इस प्रकार की घटनाओं को रोकने के लिए एक समुचित सलाहकार एवं प्रशासनिक व्यवस्था की स्थापना करना।

11.79. इनमें से पहला उपाव, यानी शिक्षा-प्रक्रम का सुधार, समस्या की जान है। उच्चतर शिक्षा जिस अनुशासन का पोषण करती हैं, उसका लक्ष्य होना चाहिए आत्मानुशासन—ऐसा अनुशासव जो भीतर से उत्पन्न हो, जो मूलतः किसी बाहरी नियंत्रण पर निर्भर न हो। इसके अलावा, ऐसा अनुशासन तभी विकसित हो सकता है जब कि जीवन के गम्भीरतर लक्ष्यों के सन्धान से उसका गहरा सम्बन्ध हो और उसका जन्म विद्या के प्रति रुचि और भक्ति से होता है। दूसरे शब्दों में, निश्चित अनुशासन की प्रेरणाएं, एक तो, संस्था जो अवसर दे सकता हैं उनसे मिल सकती है और दूसरे, छात्रों से उसके जो बौद्धिक और सामाजिक तकाजे होते हैं उनसे। इसी दृष्टिकोण से हमने इस पूरी रिपोर्ट में सभी स्तरों की शिक्षा संस्थाओं में—कालेजों और विश्वविद्यालयों में भी—गुणात्मक सुधार की आवश्यकता पर जोर दिया है। इसके साथ ही हमने और अच्छे स्तर की छात्र-सेवाओं की आवश्यकता पर भी जोर दिया है। जब तक यह नहीं होता तब तक रोग जड़ से नहीं जा सकता।

11.80. जहां तक उपर्युक्त दूसरे उपाय का प्रश्न है, हम इस बात पर जोर देना चाहेंगे कि विश्वविद्यालय के समूचे जीवन को एक और अखण्ड माना जाना चाहिए और अध्यापकों, छात्रों तथा प्रशासन के बीच वर्ग-विभाजव के प्रयत्नों का निराकरण होना चाहिए। इसी दृष्टि से हमने कई महत्वपूर्ण सिफ़ारिशें की हैं—जैसे, अध्यापकों और छात्रों की संयुक्त समितियों की स्थापना, अथवा प्रिंसिपल की अध्यक्षता में केन्द्रीव समिति की स्थापना जिसके सदस्य अध्यापक और छात्र दोनों हों; जहां उचित हों, वहां विद्या-परिषद् और विद्या-सभा में छात्रों के प्रतिनिधिवों का रखा जाना। हमें वस्तुतः प्रयत्न यह करना है कि अध्यापकों और छात्रों में साहचर्यभाव जागे और उसका आधार हो पारस्परिक स्नेह-सम्मान तथा सत्य-सम्मान के प्रति, बहुमुखी उत्कर्ष के प्रति तथा सम्पूर्ण समाज के कल्याण के प्रति समान निष्ठा का भाव। यदि वह भावना उत्पन्न की जा सके तो वे बहुत-सी समस्याएं हल करना आसान हो जाएगा जिनके कारण आज हमारा शैक्षिक जीवन विशृंखलित हैं और हमें आशा है कि धीरे-धीरे ये समस्याएं स्वयं ही विलीन हो जाएंगी।

टिप्पणी

विश्वविद्यालय और कालेज

स्वतन्त्रता के वाद से उच्चतर शिक्षा के क्षेत्र में बहुत विस्तार हुआ है। 1947 में विश्वविद्यालयों की संख्या 20 थी, 1966 में वह संख्या बढ़कर 64 हो गई है। कुछ ऐसी संस्थाएं भी अब अस्तित्व में आ गई हैं जिन्हें विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम की धारा 3 के अधीन 'विश्वविद्यालय माना गया' है। सम्बद्ध विश्वविद्यालयाधीन कालेजों की संख्या 1965-66 में 2,565 थी। विश्वविद्यालयों, 'विश्वविद्यालय मावी जाने वाली संस्थाओं' और प्रत्येक विश्वविद्यालय के विश्वविद्यालयाधीन सम्बद्ध कालेजों की सूची नीचे दी जा रही है :

स्थापना-वर्ष	विश्वविद्यालव/विश्वविद्यालव मानी जाने वाली संस्था	कालेजों की संख्या
	क. विश्वविद्यालय	
1857	कलकत्ता विश्वविद्यालय	168
	बम्बई विश्वविद्यालय	58
	मद्रास विश्वविद्यालय	157
1887	इलाहाबाद विश्वविद्यालय	6
1916	बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय (वाराणसी)	18
	मैसूर विश्वविद्यालय	63
1917	पटना विश्वविद्यालय	10
1918	उस्मानिया विश्वविद्यालय (हैदराबाद)	61
1921	अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय	4
	लखनऊ विश्वविद्यालय	18

1922	दिल्ली बिश्वविद्यालय	41
1923	नागपुर विश्वविद्यालय	84
1926	आन्ध्र विश्वविद्यालय (वाल्टेयर)	61
1927	आगरा विश्वविद्यालय	143
1929	अन्नामलाई विश्वविद्यालय (अन्नामलाइनगर)	...
1937	केरल विश्वविद्यालय (त्रिवेन्द्रम)	140
1943	उत्कल विश्वविद्यालय (भुवनेश्वर)	72
1946	सागर विश्वविद्यालय	67
1947	राजस्थान विश्वविद्यालय (जयपुर)	75
	पंजाब विश्वविद्यालय (चंडीगढ़)	149
1948	गौहाटी विश्वविद्यालय	75
	जम्मू और कश्मीर विश्वविद्यालय (श्रीनगर)	34
1949	रुड़की विश्वविद्यालय	...
	पूना विश्वविद्यालय	46
	बड़ौदा विश्वविद्यालय	6
	कर्नाटक विश्वविद्यालय (धारवाड़)	53
1950	गुजरात विश्वविद्यालय (अहमदाबाद)	125
1951	एस० एन० डी० टी० महिला विश्वविद्यालय (बम्बई)	17
	विश्वभारती (शांतिनिकेतन)	8
1952	बिहार विश्वविद्यालय (मुजफ्फरपुर)	44
1954	श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय (तिरुपति)	28
1955	एस० वी० विद्यापीठ (वल्लभ विद्यानगर)	13
	जादवपुर विश्वविद्यालय (जादवपुर)	...
1956	कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय (कुरुक्षेत्र)	4
	इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय (खैरागढ़)	32
1957	विक्रम विश्वविद्यालय (उज्जैन)	39
	गोरखपुर विश्वविद्यालय	41
	जबलपुर विश्वविद्यालय	21
1958	वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय	75
	मराठवाड़ा विश्वविद्यालय (औरंगाबाद)	28
1960	उत्तर प्रदेश कृषि-विश्वविद्यालय (नैनीताल)	4
	बर्दवान विश्वविद्यालय	43
	कल्याणी विश्वविद्यालय	...
	भागलपुर विश्वविद्यालय	44
	रांची विश्वविद्यालय	35
1961	के० एस० दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय	28
1962	पंजाब कृषि-विश्वविद्यालय (लुधियाना)	5
	पंजाबी विश्वविद्यालय (पटियाला)	9
	उड़ीसा कृषि एवं शिल्पविज्ञान विश्वविद्यालय (भुवनेश्वर)	3
	उत्तर बंगाल विश्वविद्यालय (सिलीगुड़ी)	19
	रवीन्द्रभारती विश्वविद्यालय (कलकत्ता)	20
	मगध विश्वविद्यालय (गया)	34
	जोधपुर विश्वविद्यालय	2
	उदयपुर विश्वविद्यालय	11
	शिवाजी विश्वविद्यालय (कोल्हापुर)	51
1964	इंदौर विश्वविद्यालय	17
	जावाजी विश्वविद्यालय (ग्वालियर)	30
	रविशंकर विश्वविद्यालय (रायपुर)	44
	कृषि-विज्ञान विश्वविद्यालय (हेब्बल)	3
	आन्ध्र प्रदेश कृषि विश्वविद्यालय (हैदराबाद)	6
	बंगलौर विश्वविद्यालय	31
	जवाहरलाल नेहरू कृषि-विश्वविद्यालय (जबलपुर)	8
1965	डिब्रूगढ़ विश्वविद्यालय	34
1966	मदुरै विश्वविद्यालय	...
	कुल (कालेज)	2,565

ख. विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम के अधीन विश्वविद्यालय मानी गई संस्थाएँ

1958	भारतीय विज्ञान संस्थान (बंगलौर)
	भारतीय कृषि-अनुसंधान संस्थान (नई दिल्ली)
1961	इंडियन स्कूल आफ इंटरनेशनल स्टडीज (नई दिल्ली)
1963	गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय (हरिद्वार)
	जामिआ मिल्लिया इस्लामिया (नई दिल्ली)
1963	गुजरात विद्यापीठ (अहमदाबाद)
	काशी विद्यापीठ (वाराणसी)
1964	टाटा समाजविज्ञान संस्थान (बम्बई)
	बिड़ला टेक्नालाजी एवं विज्ञान संस्थान (पिलानी)

बारहवां अध्याय

उच्चतर शिक्षा : नामांकन और कार्यक्रम

एक. उच्चतर शिक्षा में सुविधाओं का विस्तार—(2) **पहली तीन योजनाओं में उच्चतर शिक्षा का विस्तार**; (5) **उच्चतर शिक्षा में नामांकन की भावी नीति।**

दो. चुने हुए दाखिले—(10) **आवश्यकता**; (12) **प्रमुख तत्व**; (13) **उपलब्ध स्थानों की संख्या का निर्धारण**; (15) **योग्यता**; (16) **चुनाव के तरीके**; (18) **दाखिलों के विश्वविद्यालय बोर्ड**; (19) **केन्द्रीय परीक्षण संगठन।**

तीन. अंश-कालिक और निज-कालिक शिक्षा—(21-22)

चार. सम्बद्ध कालेजों की स्थिति—(25) **छोटे कालेज।**

पांच. स्नातकोत्तर शिक्षा और अनुसंधान का विस्तार (27-31)

छह. महिलाओं के लिए उच्चतर शिक्षा—(32) **विस्तार की आवश्यकता**; (33) **मिश्रित या पृथक कालेज**; (34) **महिलाओं की आवश्यकता की पूर्ति की विशिष्ट दृष्टि से उच्चतर शिक्षा के पाठ्यक्रम।**

सात. नए विश्वविद्यालय—(36) **कलकत्ता विश्वविद्यालय**; (37) **सहानमरों के विश्वविद्यालय**; (38) **राज्यों और संघीय क्षेत्रों के लिए अतिरिक्त विश्वविद्यालय**; (39) **नए विश्वविद्यालय स्थापित करते समय बरती जाने वाली सावधानियां**; (40) **नए केन्द्रीय विश्वविद्यालय**; (43) **विश्वविद्यालय माने गए।**

आठ. पाठ्यक्रमों का पुनर्गठन—(45) **पहली उपाधि के लिए पाठ्यक्रम**; (47) **कला और विज्ञान में मास्टर की उपाधि के लिए पाठ्यक्रम**; (49) **अनुसन्धान उपाधियां**; (50) **अन्तर-विद्या अध्ययन**; (52) **सामाजिक विज्ञान का अध्ययन**; (47) **क्षेत्रीय अध्ययन**; (58) **मानविकी का अध्ययन।**

नौ. शैक्षिक अनुसंधान—(60-65)

12.01 इस अध्याय में हम उच्चतर शिक्षा के विस्तार से सम्बन्धित समस्याओं और सम्बद्ध प्रश्नों पर विचार करते हैं। इनमें राष्ट्रीय विकास के लिए जन-शक्ति की आवश्यकताओं की दृष्टि से विश्वविद्यालय व्यवस्था विस्तार का नियमन, विद्यार्थियों का चुनाव, नए विश्वविद्यालयों और कालेजों की स्थापना, और उच्चतर शिक्षा में नए पाठ्यक्रमों का विकास शामिल होगा। हम शैक्षिक अनुसंधान के विकास से सम्बन्धित कुछ समस्याओं पर भी विचार करना चाहते हैं।

उच्चतर शिक्षा में सुविधाओं का विस्तार

12.2. **पहली तीन योजनाओं में उच्चतर शिक्षा का विस्तार**—स्वातंत्रोयत्तर युग में शिक्षात्मक विकास का एक महत्वपूर्ण पहलू रहा है इंजीनियरी, चिकित्सा और कृषि में वृत्तिक शिक्षा का पहली एवं दूसरी उपाधियों के लिए विज्ञान के पाठ्यक्रमों का द्रुत विस्तार। पहली तीव योजनाओं के अन्तर्गत आर्थिक विकास के लिए जो कार्यक्रम हाथ में लिए गए उन्होंने इसे आवश्यक बना दिया था। मोटे तौर पर, इस विस्तार ने (यथार्थ रूपों में) उपलब्ध सुविधाओं को पछाड़ दिया है और स्तर पर प्रतिकूल प्रभाव डाला है। साथ ही पहली उपाधि के स्तर पर कलाओं और वाणिज्य के पाठ्यक्रमों में भी द्रुत विस्तार हुआ है; और इसका कारण उन संस्थाओं की नामांकन क्षमता या काम-धन्धे के उपलब्ध अवसर उतना नहीं हैं, वरन् इमका कारण हैं—सार्वजविक मांग के दबावों में भारी वृद्धि जिनके कारणों पर अन्यत्र विस्तार से विचार किया जा चुका है।[1] इस विस्तार का स्तर पर और भी प्रतिकूल प्रभाव हुआ है।

1. **अध्याय पांच।**

12.3. सारणी 12.1 में पहली तीन पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान उच्चतर शिक्षा के नामांकन दिए गए हैं।

सारणी 12.1. उच्चत्तर शिक्षा में नामांकन (1950-51 से 1965-66 तक)

(000 में)

	1950-51			1955-56			1960-61			1965-66 (अनुमानित)		
	लड़के	लड़कियां	योग	लड़के	लड़कियां	योग	लड़के	लड़कियां	योग	लड़के	लड़कियां	योग
कला, वाणिज्य और विज्ञान												
1. कला और विज्ञान में पूर्व-स्नातक पाठ्यक्रम...	153	22	175	249	46	295	313	82	396	550	147	697
2. वाणिज्य में पूर्वस्नातक पाठ्यक्रम	16	...	16	27	...	27	38	...	38	61	1	62
जोड़	169	22	191	276	46	322	351	83	434	611	148	759
स्नातकोत्तर												
3. एम० ए० और एम० एस० सी०	14	2	17	21	4	25	38	9	47	62	16	78
4. अनुसंधान	1	...	1	2	...	3	4	1	4	6	1	8
जोड़	15	2	18	23	4	28	41	10	51	69	17	86
वृत्तिक												
5. पूर्व-स्नातक	46	4	50	74	7	82	131	15	147	195	33	227
6. स्नातकोत्तर और अनुसंधान	4	...	4	6	1	7	12	1	13	20	2	22
जोड़	50	4	54	81	8	89	143	16	160	215	35	249
कुल जोड़	234	28	263	380	58	439	535	109	645	895	200	1,094
कुल नामांकन का व्यय-समूह (18-23) की जनसंख्या में प्रतिशत-फल	1.2	0.1	0.7	1.7	0.3	1.0	2.2	0.5	1.4	3.3	0.8	2.1

स्रोत : प्राप्ति स्रोतों और सारणीकरण के विवरणों के लिए कृपया परिशिष्ट एक-देखें।
...=नगण्य।

नोट : (1) पूर्णांकों में बदल देने के कारण जोड़ मेल नहीं खाते हैं।
(2) उच्चतर शिक्षा में नामांकन के राज्य-वार विभाजन के लिए पृष्ठ 342 का चार्ट देखें।

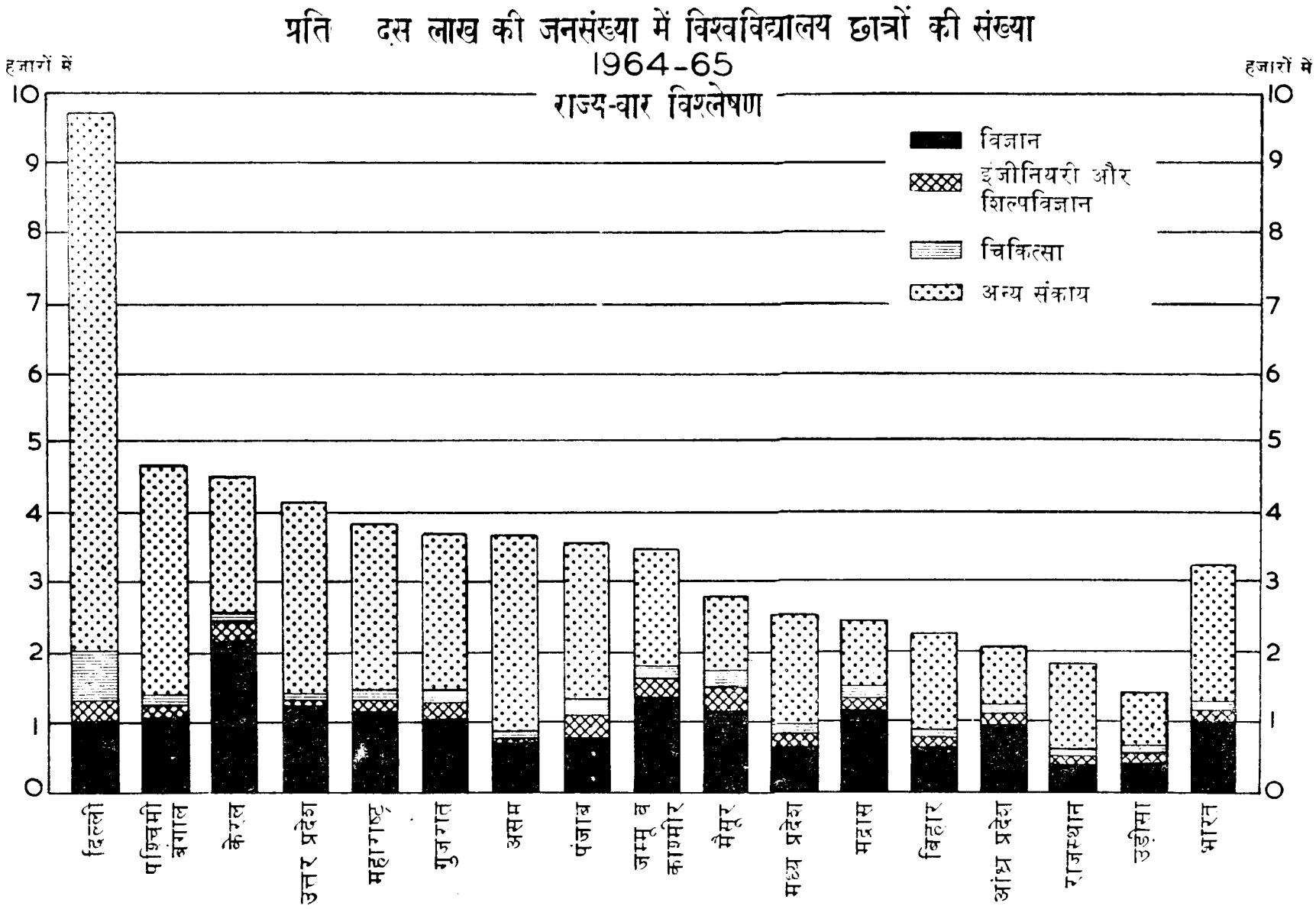
प्रति दस लाख की जनसंख्या में विश्वविद्यालय छात्रों की संख्या
1964-65
राज्य-वार विश्लेषण
हजारों में
हजारों में
विज्ञान
इंजीनियरी और शिल्पविज्ञान
चिकित्सा
अन्य संकाय
0
1
2
3
4
5
6
7
8
9
10
दिल्ली
पश्चिमी बंगाल
केरल
उत्तर प्रदेश
महाराष्ट्र
गुजरात
असम
पंजाब
जम्मू व काश्मीर
मैसूर
मध्य प्रदेश
मद्रास
बिहार
आंध्र प्रदेश
राजस्थान
उड़ीसा
भारत

इस सारणी से कुछ रोचक तथ्य प्रकट होते हैं :

(1) कला, वाणिज्य और विज्ञान के पाठ्यक्रमों में पूर्व-स्नातकीय स्तर पर नामांकन सन् 1950-51 में 191,000 से बढ़कर सन् 1965-66 में 759,000 पर पहुंच गया है, अर्थात् 9.6 प्रतिशत की औसत वार्षिक दर से वृद्धि हुई है। इस स्तर पर बालिकाओं के नामांकन में काफी उन्नति हुई है—प्रति 100 बालकों पर नामांकित बालिकाओं की संख्या 13 से बढ़कर 24 हो गई हैं।

(2) कला और विज्ञान के स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों में और अनुसंधान में कुल नामांकन सन् 1950-51 में 18,000 से बढ़कर सन् 1965-66 में 86,000 पर पहुंच गए हैं, अर्थात् 11 प्रतिशत की औसत वार्षिक दर से बढ़े हैं। इस स्तर पर भी बालिकाओं के नामांकन में काफी उन्नति हुई है—सन् 1950-51 में प्रति 100 बालकों पर 13 से बढ़कर सन् 1965-66 में में 25 पर पहुंच गया है।

(3) वृत्तिक शिक्षा में[1] नामांकन सन् 1950-51 में 54,000 से बढ़कर सन् 1965-66 में 249,000 हो गए हैं। वृद्धि की यह दर कला और विज्ञान में वृद्धि की दर से तो अधिक तेज हैं—10.7 प्रतिशत प्रतिवर्ष—पर स्नातकोत्तर स्तर से थोड़ी कम हैं।

(4) इन्जीनियरी और चिकित्सा जैसे वृत्तिक पाठ्यक्रम, जो सामान्यता ज्यादा लम्बे होते हैं और जिनसें पांच-छः साल लगाते हैं, वस्तुतः कला और विज्ञान के स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों से तुलनीय हैं। सारिणी 12.1 से देखा जा सकता हैं कि सन् 1950-51 में कला और विज्ञान के स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमो में नामांकन 18,000 था, अर्थात् उस वर्ष वृत्तिक शिक्षा के कुल नामांकन का लगभग एक तिहाई। मोटे तौर पर आलोच्य अवधि के दौरान यह अनुपात काफी स्थिर रहा है। यह तथ्य स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों में, विशेषतः विज्ञानों के पाठ्यक्रमों में वृद्धि की आवश्यकता को रेखांकित करता है।

(5) उच्चतर शिक्षा में नामांकन की समग्र दृष्टि से देखते पर हम पाते हैं कि इस अवधि में ये 263,000 से बढ़कर 1100,000 हो गए हैं। अर्थात् 10 प्रतिशत की औसत वार्षिक दर से बढ़े हैं। वृत्तिक पाठ्यक्रमों में कुल नामांकन सन् 1950-51 में 72,000 थे, अर्थात् कुल योग के 27.4 प्रतिशत। सन् 1965-66 में ये बढ़कर 335,000 हो गए अर्थात् कुल योग के 30.6 प्रतिशत।

12.04. इन आंकड़ों की आन्तरिक अथवा अन्तर्राष्ट्रीय तुलना में प्रयुक्त करते समय कुछ महत्वपूर्ण बातों पर बल दिया जाना चाहिए।

(1) **आन्तरिक तुलना**—अधिकांश देशों में पहली उपाधि के पाठ्यक्रम की अवधि लगभग वही है, चाहे उपाधि कला, विज्ञान या इन्जीनियरी की हो चाहे चिकित्सा की। अतएव भिन्न-भिन्न संकायों की उपाधियां मोटे तौर पर तुलनीय हैं। पर भारत में कला, वाणिज्य और विज्ञान की पहली उपाधि बहुत कम अवधि की होती हैं। प्रायः 'आर्धी उपाधि'[1] की भांति। अतएव इसे कृषि या इन्जीनियरी या चिकित्सा की पहली उपाधि के समकक्ष नहीं रखा जा सकता क्योंकि वह बहुत दीर्घ अवधि की होती हैं। वस्तुतः कला, वाणिज्य या विज्ञान की स्तातकोत्तर उपाधियां ही कृषि, इन्जीनियरी गा चिकित्सा की पहली उपाधियों से तुलनीय हैं।

(2) **अन्तर्राष्ट्रीय तुलना**—अन्तर्राष्ट्रीय तुलना में, कला, वाणिज्य अथवा विज्ञान की अपनी पहली उपाधियों की तुलना शिक्षा-क्षेत्र में विकसित देशों की मिलती-जुलती पहली उपाधियों से करना गलत होगा। सच तो यह है कि कला, वाणिज्य और विज्ञान की हमारी दूसरी उपाधियां और कृषि, इन्जीनियरी और चिकित्सा की हमारी पहली उपाधियाँ शिक्षा-क्षेत्र में विकसित देशों में दी जाने वाली पहली उपाधियों से तुलनीय हैं। गह पृष्ठ 344 के

1. इसमें कृषि, शिक्षक प्रशिक्षण, इंजीनियरी और शिल्पविज्ञान, कानून, चिकित्सा, पशुयिज्ञान, वन-विज्ञान के अलावा कुछ और पाठ्क्रम भी शामिल हैं। शिक्षा मन्त्रालय द्वारा प्रकाशित आंकड़ों से वाणिज्य के सारे पाठ्यक्रम 'वृत्तिक' वर्ग के अन्तर्गत रखे गए हैं। अस्तु, हमने योजना आयोग के निर्णय का अनुसरण किया है और पहली उपाधि के लिए वाणिज्य के पाठ्यकमों को सामान्य शिक्षा के अंम के रूप में ग्रहण किया है जो कला के पाठ्कमों से तुलनीय हैं। दूसरी उपाधि (एम० कॉम०) के पाठ्कम 'वृत्तिक' वर्ग में रखे गए हैं।

2. देखिए अध्याय दो।

उच्चतर शिक्षा में प्रवेश और निर्गम

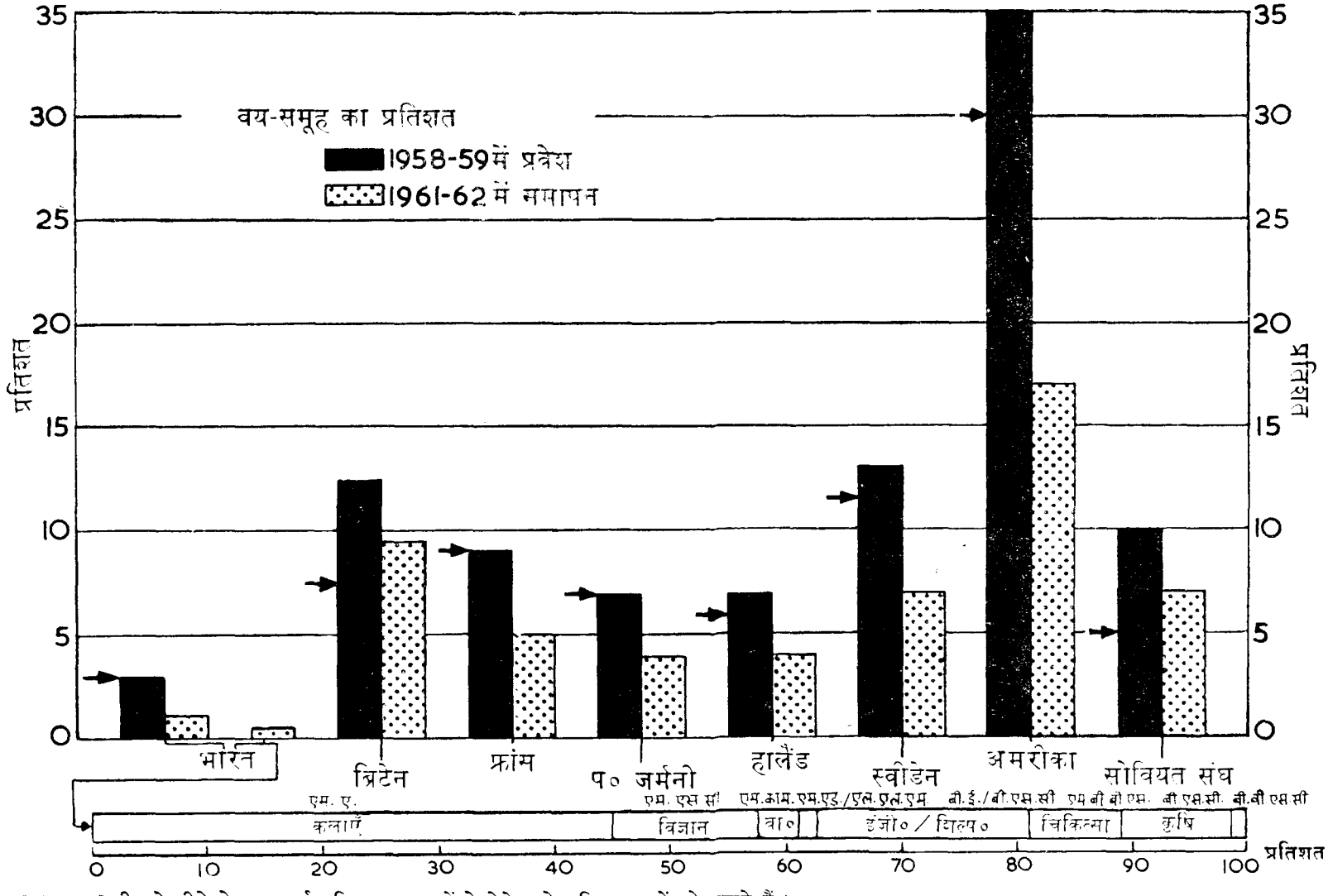

द्रष्टव्य :- 1-तीर के नीचे के भाग पूर्णकालिक पाठ्यक्रमों के लेने वाले प्रतिशत फलों को बताते हैं।

2-प्रवेश और निर्गम आंकड़े भारत के पक्ष में क्रमशः सन् 1959-60 और 1962-63 के हैं।

3-भारतेतर आंकड़े 1963 में प्रकाशित ब्रिटेन में उच्चतर शिक्षा पर रोबिन्स रिपोर्ट से लिए गए हैं।

चार्ट में प्रदर्शित किया गया है। इस तुलना से निम्नांकित निष्कर्ष विकाले जा सकते हैं जो भावी विकास के कार्यक्रमों के लिए महत्वपूर्ण है :

(क) अधिक उद्योग-प्रदान देशों का तुलना में भारत में उच्चतर शिक्षा का समग्र विस्तार अभी नितान्त नगण्य है।

(ख) इससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण बात यह है कि वृत्तिक पाठ्यक्रमों में, विशेषत: विज्ञान और कृषि में, नामांकन अपने आर्थिक विकास की आवश्यकताओं के ख्याल से अत्यन्त अपर्याप्त है।

(ग) ग्रेट ब्रिटेन और सोवियत संघ जैसे देशों की अपेक्षा उच्चतर शिक्षा की हमारी प्रणाली अधिक व्यर्थकारी है (लागत से फल का अनुपात घटकर है)।

(घ) उच्चतर शिक्षा की हमारी प्रणाली में अल्पकालिक शिक्षा अथवा पत्राचार पाठ्यक्रमों की व्यवस्था बिल्कुल ही नहीं, जबकि ग्रेट ब्रिटेन, अमरीका और सोवियत संघ जैसे समृद्ध देशों में भी इसकी व्यवस्था है।

12.05. **उच्चतर शिक्षा में नामांकन की भावी नीति**—आगामी बीस वर्षों के दौरान उच्चतर शिक्षा में नामांकन की नीति क्या हो ? हमारी सिफ़ारिश है कि उच्चतर शिक्षा में सुविधाओं के विस्तार की योजना **मोटे तौर पर** जनशक्ति की आवश्यकताओं और काम-धन्धों के अवसरों के आधार पर बनाई जानी चाहिए। इस समय मुक्त द्वार नीति के अपनाने के कारण कला और वाणिज्य के स्नातकों का अति उत्पादन हो रहा है, और फलस्वरूप उनमें बेकारी बढ़ रही है। दूसरी ओर, वृत्तिक विशेषज्ञों की कमी है, और फलस्वरूप कृषि, इन्जीनियरी, चिकित्सा आदि के वृत्तिक पाठ्यक्रमों में, और विशेषत: विज्ञान और कलाओं के स्नातकोत्तर स्तर पर सुविधाओं में वृद्धि की आवश्यकता है।

12.06. भारतीय सांख्यिकी संस्थान/लंदन स्कूल आफ इकनामिक्स के लेख [1] में इस स्तर पर प्रशिक्षित जनशक्ति के बारे में सन् 1985-86 के लिए निम्नलिखित भविष्यवाणी की है :

(1) **पूर्व-स्नातक स्तर (कला, वाणिज्य और विज्ञान)**—ये नामांकन सन् 1965-66 में 759,000 से बढ़कर सन् 1985-86 में 22,00,000 पर पहुंच जाएंगे अर्थात् 5.3 प्रतिशत की औसत दर से बढ़ेंगे।

(2) **वृत्तिक शिक्षा (कानून को छोड़कर)**—कानून को छोड़कर, पर अध्यापन को मिलाकर वृत्तिक शिक्षा के पूर्व-स्नातक स्तर में नामांकन सन् 1965-66 से 195,000 से बढ़कर 1985-86 में 972,000 हो जाएगे, अर्थात् 8.4 प्रतिशत औसत सालाना दर से बढ़ेंगे जैसा कि सारणी 12.2 में दिखाया गया है।

सारणी 12.2 विशेषज्ञों का निर्गम, प्रवेश और नामांकन

	निर्गम			प्रवेश			नामांकन		
	1960-61	1975-76	1985-86	1960-61	1975-76	1985-86	1960-61	1975-76	1985-86
इंजीनियरी पहली उपाधि	7	43	92	14	65	129	40	229	473
कृषि पहली उपाधि	3	13	42	5	23	64	12	39	115
चिकित्सा पहली उपाधि	5	16	34	6	23	43	35	125	245
शिक्षा प्रशिक्षण स्नातक	18	73	115	20	81	128	22	88	139
योग	33	145	283	45	192	364	109	481	972

1. **ब्योरे के लिए अध्याय पांच देखिए।**

(3) **स्नातकोत्तर और अनुसंधान**—आइ. एस. आई/एल. एस. ई. निबंध इस स्तर के सम्बन्ध में कोई संकेत नहीं देता। सन् 1965-66 में इस स्तर के नामांकन 108,000 थे जबकि पूर्व-स्नातक स्तर के नामांकन 986,000 (अर्थात्, लगभग 11 प्रतिशत)। हमारी सिफ़ारिश है कि यह अनुपात सन् 1986 तक लगभग 30 प्रतिशत तक उठा दिया जाए। इसका अर्थ है कि ये नामांकन सन् 1965-66 में 108,000 से बढ़कर सन् 1986 में लगभग 960,000 हो जाएगे, अर्थात् 11.5 प्रतिशत की औसत वार्षिक दर से बढ़ेंगे।

(4) **कानून**—अइ. एस. आइ/एल. एस. ई. निबंध कानूनी शिक्षा के भी कोई संकेत नहीं देता। हमने मान लिया है कि कानूनी शिक्षा में पूर्व-स्नातक स्तर पर नामांकन सन् 1965-66 में 32,000 से बढ़कर 1985-86 तक 76,000 हो जाएंगे।

12.07. इन अनुमानों के आधार पर सन् 1975-76 और सन् 1985-86 में उच्चतर शिक्षा में कुल नामांकन सारणी 12.3 के अनुसार होंगे।

सारणी 12.3. 1975-76 और 1985-86 में उच्चतर शिक्षा में संभावित नामांकन

शिक्षा का प्रकार	संभावित नामांकन (000 में)	
	1975-76	1985-86
1. पूर्व-स्नातकसामान्य)	1,350	2,152
2. पूर्व-स्नातक (वृत्तिक) आई० एस० आई०/एल० एस० ई० लेख द्वारा अनुमानित	481	972
3. कानूनी शिक्षा में पूर्व स्नातक नामांकन	50	76
जोड़ (पूर्व-स्नातक)	1,881	3,200
4. स्नातकोत्तर	321	960
जोड़ (उच्चतर शिक्षा)	2,202	4,160

यह उल्लेखनीय है कि

— पहली तीन योजनाओं में कला, वाणिज्य और विज्ञान में पूर्वस्नातक स्तर पर नामांकनों में 568,000 की वृद्धि हुई है। आगामी बीस वर्षों में उनमें 14 लाख की वृद्धि की आशा है। अस्तु, विस्तार की औसत वार्षिक दर 9.0 प्रतिशत से घट कर 5.3 प्रतिशत रह जायेगी।

— पूर्व स्नातक स्तर पर वृत्तिक शिक्षा में (कानून और शिक्षण मिलाकर) पहली तीन योजनाओं में नामांकनों में 177,000 की वृद्धि हुई; आगामी बीस वर्षों में उनमें 821,000 की वृद्धि होगी, यद्यपि वृद्धि की औसत वार्षिक दर 10.6 प्रतिशत से घटकर 7.9 प्रतिशत रह जाएगी; स्नातकोत्तर स्तर पर पहली तीन योजनाओं में नामांकनों में 86,000 की वृद्धि हुई, अगले बीस वर्षों में इनमें 852,000 की वृद्धि होगी और वृद्धि की औसत वार्षिक दर भी किंचित बढ़ानी पड़ेगी—11 प्रतिशत से 11.5 प्रतिशत।

12.08. जैसा कि पहले संकेत किया है,[1] जनशक्ति की आवश्यकताओं और नामांकनों के ये अनुमान कच्चे हैं और प्राप्त अनुभव के आलोक में लगातार संशोधित किए जाते रहेंगे। इसके अतिरिक्त, ये अनुमान सारे देश-भर के लिए है। व्यावहारिक कार्यान्वयन के लिए इन्हें राज्यों के अनुसार विभाजित करना पड़ेगा; और अन्त में मोटे तौर पर विश्वविद्यालयों के नामांकन और कार्य-फल का और समय-समय पर संशोधित इन अनुमानों का सम्बन्ध बैठाने का प्रयास करना होगा। यह कठिन काम है। पर हम आशा करते है कि योजना आयोग के सामान्य निर्देशन में वि० अ० आ० इसे पूरा करने योग्य बन सकेगा।

12.09. कला और वाणिज्य के पाठ्यक्रमों में पूर्व-स्नातक स्तर पर विस्तार की दर को कम करने की आवश्यकता पर अन्यत्र विचार किया जा चुका है।[2] इसी प्रकार, हम उत्तम कोटि की विज्ञान-शिक्षा के विस्तार की और पूर्व-स्नातक स्तर पर वृत्तिक शिक्षा, विशेषतः कृषि, इन्जीनियरी और शिक्षण की वृत्तिक शिक्षा की वृद्धि की आवश्यकता पर बल दे आए हैं।[3] तथापि इसकी व्याख्या करना भी जरूरी है कि स्नातकोत्तर स्तर पर एवं अनु-

1. **अध्याय पांच।**
2. **अध्याय पांच।**
3. **अध्याय चार, चौदह, पन्द्रह और सोलह।**

संधान में भी व्यापक विस्तार क्यों आवश्यक है। हमारे प्रस्तावों के विश्लेषण से यह प्रकट हो जाएगा कि यह पूर्णतः उचित है क्योंकि

— हमारी आशा है कि अवर माध्यमिक विद्यालयों तक के शिक्षकों का एक अनुपात मास्टर उपाधि-धारी होगा।

— हमने सिफ़ारिश की है कि प्रारम्भिक स्तर और माध्यमिक स्तर, दोनों पर सारे अध्यापक-शिक्षकों के लिए मास्टर की उपाधि न्यूनतम योग्यता मानी जाए;

— उच्चतर माध्यमिक स्तर की अवधि का समान रूप से दो वर्ष के लिए प्रलम्बन और इस स्तर पर विस्तार की संभावना के कारण स्नातकोत्तर योग्यता के अध्यापकों की बहुत बड़ी संख्या आवश्यक होगी;

— पूर्व-स्नातक और स्नातकोत्तर स्तरों पर ही व्यापक विस्तार की संभावना के कारण वर्तमान की अपेक्षा ऐसे अध्यापकों की कई गुना अधिक आवश्यकता होगी जिनके पास स्नातकोत्तर और अनुसन्धान योग्यताएं हों; और

— अनुसन्धान, कृषि, उद्योग और नौकरियों के लिए आवश्यक वृत्तिक जनों की संख्या में अत्यन्त ठोस वृद्धि जरूरी होगी।

चुने हुए दाखिले

12.10. **आवश्यकता**—पहली तीन पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत अधिकांश सम्बद्ध कालेजों में कला और वाणिज्य के पाठ्यक्रमों में मुक्त-द्वार प्रवेश की नीति चालू रही है। बहरहाल अब विस्तार की प्रक्रिया में एक ऐसी मंजिल आ पहुंची है जब उच्चतर शिक्षा की सभी संस्थाओं और क्षेत्रों में चुने हुए दाखिलों की नीति अपनानी होगी। यदि यह मान लिया जाए कि आगामी 20 वर्षों तक विस्तार की वर्तमान दर (10 प्रतिशत प्रतिवर्ष के हिसाब से) चालू रहेगी तो सन् 1985-86 तक उच्चतर शिक्षा में नामांकन 70 और 80 लाख के बीच में पहुंच जाएंगे, अर्थात् राष्ट्रीय विकास के लिए जन-शक्ति की अनुमानित आवश्यकताओं के दो गुने से भी अधिक। हमारी जैसी अर्थ-व्यवस्था में न तो इस पैमाने पर उच्चतर शिक्षा के विस्तार के लिए धन हो सकता है न उन लाखों स्नातकों की उपयुक्त धन्धों में लगाने की क्षमता ही हो सकती है जो नामांकन के इस स्तर पर प्रतिवर्ष शिक्षात्मक प्रणाली से निकल कर आया करेंगे। बचाव का एक ही रास्ता है कि उच्चतर शिक्षा में कुल नामांकनों को मोटे तौर पर जनशक्ति की आवश्यकताओं से जोड़ दिया जाए, और इन नामांकनों के और उच्चतर शिक्षा की मांग के बीच की खाई को चुने हुए दाखिलों की प्रणाली अपना कर पाटा जाए।

12.11. मुख्यतः दो कारणों—साधनों की न्यूनता और शिक्षात्मक प्रणाली के फल का जनशक्ति की आवश्यकताओं से सम्बन्ध—पर आधारित इस निष्कर्ष का शैक्षिक तर्कों से भी समर्थन किया जा सकता है। यदि दाखिले के लिए प्रतियोगिता हो और गुण के आधार पर सर्वोत्तम विद्यार्थी चुने जाएं तो उच्चतर शिक्षा का स्तर ऊंचा उठने लगेगा। हमें यह जान कर प्रसन्नता होती है कि इस सिद्धान्त के प्रति पिछला विरोध शनैः शनैः घट रहा है और सरकारी एवं गैर-सरकारी जनों से मिलकर हमने जो विचार-विमर्श किया है उससे हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि अब सार्वजनिक मत व्यापक रूप से उच्चतर शिक्षा के दाखिलों को चुनावी बनाने के पक्ष में है। अतएव यह सुधार शीघ्रातिशीघ्र लागू कर देना चाहिए।

12.12. **प्रमुख तत्व**—उच्चतर शिक्षा में चुने हुए दाखिलों के कार्यक्रम को लागू करने के लिए तीन प्रमुख तत्व आवश्यक है :

— स्तरों को पर्याप्त ऊंचाई पर बनाए रखने के लिए प्रत्येक संस्था में मौजूद अध्यापकों और सुविधाओं के विचार से उपलब्ध स्थानों का निर्धारण;

— विश्वविद्यालयों द्वारा योग्यता का निर्धारण; और

— दाखिला चाहने वाले योग्यताधारी विद्यार्थियों में से सम्बन्धित संस्था द्वारा सर्वोत्तम विद्यार्थियों का चुनाव।

12.13. **उपलब्ध स्थानों की संख्या का निर्धारण**—हमारा सुझाव है कि उपलब्ध सुविधाओं के आधार पर प्रत्येक विश्वविद्यालय पहले से ही अपने अध्यापन-विभागों में प्रत्येक पाठ्यक्रम के लिए अपने सम्बद्ध कालेजों में से प्रत्येक के लिए पृथक-पृथक रूप से भरती किए जाने वाले विद्यार्थियों की संख्या नियत कर ले। वृत्तिक और विज्ञान पाठ्यक्रमों के लिए ऐसा अब भी किया जा रहा है। पर इनमें भी शर्तों को और कसना जरूरी है।

इससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि कला और वाणिज्य के पाठ्यक्रमों में भी इसी तरह के कदम उठाए जाएं। प्रमुख कठिनाई यह है कि इस प्रयोजन के लिए कोई निरपेक्ष और विशिष्ट कसौटी का विकास नहीं किया गया है और प्रदत्त सुविधाओं के विचार से उपलब्ध स्थानों की संख्या का निर्धारण बहुत लचीला है। अतएव हमारी सिफ़ारिश है कि विश्वविद्यालयों को कला और वाणिज्य के पाठ्यक्रमों में अनुमत स्थानों की संख्या निर्धारित करने के लिए विशिष्ट मानदण्डों और कसौटियों का विकास करना चाहिए। इनके निर्धारण में, अन्य बातों के अलावा, विद्यार्थी-शिक्षक अनुपात, स्वाध्याय की सुविधा, पुस्तकालय में उपलब्ध ग्रंथ, पत्र-पत्रिकाओं की खरीद, पुस्तकालय में सीटों की संख्या, ट्यूटोरियलों (अनुशिक्षण वर्गों) की व्यवस्था आदि को भी ध्यान में रखना चाहिए। यह समस्या इतनी महत्वपूर्ण है कि वि० अ० आ० चाहे तो एक ऐसी समिति की नियुक्ति पर भी विचार कर सकता है जो इसकी विस्तार से जांच करे और अपने निष्कर्ष विश्वविद्यालयों को उपलब्ध कराए। तब आज की अपेक्षा अधिक सही रूप में उन विद्यार्थियों की संख्या का निर्धारण करना संभव हो सकेगा जो कला और वाणिज्य के पाठ्यक्रमों में दाखिला लेकर उत्तम शिक्षा पाने की आशा कर सकते हैं।

12.14. हम सारे सम्बद्ध कालेजों में और कला और वाणिज्य के पाठ्यक्रमों में स्थानों के निर्धारण पर विशेष बल देना चाहते हैं क्योंकि यही वे संस्थाएं और पाठ्यक्रम हैं जिनमें अनियंत्रित विस्तार का अधिकांश घटित होता है। यह अत्यंत आवश्यक है कि ऐसी प्रत्येक संस्था के लिए पृथक-पृथक रूप से विद्यार्थियों की प्रवेश-संख्या नियत की जाए और यह निर्धारित संख्या सम्बद्धन की शर्तों का अविच्छिन्न अंग बना दी जाए। हमें ऐसे बहुतेरे दृष्टान्त मिले हैं जब विश्वविद्यालयों ने इस दायित्व का कट्टरता से पालन नहीं किया है और यह स्तर की गिरावट के प्रमुख कारणों में रहा है।

12.15. **योग्यता**—हमने अन्यत्र यह सिफ़ारिश की कि वर्तमान परीक्षा-प्रणाली में सुधार होना चाहिए, कि उच्चतर माध्यमिक परीक्षा में किसी को भी उत्तीर्ण अथवा अनुत्तीर्ण घोषित नहीं करना चाहिए, और कि परीक्षा में बैठने वाले प्रत्येक विद्यार्थी को उसके कृतित्व का प्रमाण-पत्र दिया जाना चाहिए। अतएव विश्वविद्यालयों को समय-समय पर 'योग्यता' की शर्तों का निर्धारण करना पड़ेगा, उदाहरणार्थ, पाठ्यक्रमों में दाखिला पाने के लिए उपयुक्त शर्तों का निर्धारण। स्वभावतः ही ये शर्तें भिन्न-भिन्न विश्वविद्यालयों और भिन्न-भिन्न पाठ्यक्रमों के लिए भिन्न-भिन्न होंगी। बहरहाल इस बात का ध्यान जरूर रखना चाहिए कि इन शर्तों की परिभाषा में थोड़ा बहुत लचीलापन बना रहे ताकि वस्तुतः होनहार विद्यार्थियों में से प्रत्येक को दाखिला मिल सके।

12.16. **चुनाव के तरीके**—जब उपलब्ध स्थानों का निर्धारण हो जाए और योग्यता की शर्तें निर्धारित कर दी जाएं, तब दाखिलों के लिए चुनाव करने की बारी आएगी। हमारा अनुमान है कि ज्यों-ज्यों माध्यमिक शिक्षा का विस्तार और उसके गुण में सुधार होगा, त्यों-त्यों अधिकाधिक विद्यार्थी योग्यता प्राप्त करते जाएंगे। और दाखिले की तलाश करेंगे और अधिकांश संस्थाओं में दाखिले के प्रार्थियों की संख्या उपलब्ध स्थानों से ज्यादा होगी। बहरहाल प्रत्येक संस्था में इस स्थिति का रूप काफी भिन्न होगा। उत्तम और सुस्थापित संस्थाओं में प्रार्थियों की संख्या उपलब्ध स्थानों से कई गुना अधिक होगी जबकि अन्य संस्थाओं में प्रार्थियों की संख्या या तो सीटों की संख्या के बराबर होगी या थोड़ी-सी ज्यादा होगी। अतएव दाखिले के लिए विद्यार्थियों के चुनाव की समस्या का स्वरूप और जटिलता भिन्न-भिन्न संस्थाओं में भिन्न-भिन्न होगी। हमारी सिफ़ारिश है कि योग्य प्रार्थियों में से सर्वोत्तम विद्यार्थियों का चुनाव करने के लिए प्रत्येक संस्था को अपनी परम्पराओं और स्थानीय परिस्थितियों के आधार पर अपनी स्वतन्त्र पद्धति निश्चित कर लेनी चाहिए।

12.17. चुनाव के उत्तम और विश्वसनीय तरीकों की खोज उच्चतर शिक्षा की महत्वपूर्ण समस्याओं में है और उनको विकसित करने के लिए जोरदार अनुसंधान जरूरी है। विकसित देशों में भी अभी चुनाव की सन्तोषजनक विधियां तैयार नहीं की जा सकीं। जब तक उत्तम तरीकों की खोज चलती रहे तब तक हमें उपलब्ध अस्थायी तरीकों से काम चलाकर अपना कार्यक्रम शुरू कर देना चाहिए। हमें आशा है कि निम्नांकित सामान्य सुझाव संस्थाओं को अपने चुनाव के तरीके नियत करने में उपयोगी होंगे।

(1) इस समय साधारणतः परीक्षा के अंकों को कट्टरता से गुण की एकमात्र कसौटी और चुनाव का आधार माना जाता है। बहरहाल इस व्यवहार के लिए शैक्षिक संगीत नहीं के बराबर है। अर्जन की माप के

1. अध्याय नौ।

लिए परीक्षाके अंकों की अविश्वसनीयता सभी स्वीकार करने लगे हैं। उच्चतर शिक्षा से लाभ पाने की योग्यता के निर्धारण में उनका तथाकथित मूल्य और भी सीमित है और बहुत-सी गवेषणाएं यह सिद्ध कर चुकी हैं कि विद्यालय की अंतिम परीक्षा के अंक और कालेज में सफलता के बीच कोई उल्लेखनीय सम्बन्ध नहीं है। बहरलाल, पैमाने के छोरों पर कोई बड़ी समस्याएं खड़ी नहीं होतीं और दाखिले के लिए प्रथम अथवा उच्च द्वितीय श्रेणी के विद्यार्थी को चुन लेना या जैसे-तैसे परीक्षा पार कर लेने वाले को वर्जित कर देना आसान है। पर जैसे-जैसे हम योग्यता की सीमा-रेखा पर पहुंचने लगते हैं, तैसे-तैसे परीक्षा के अंक विश्वसनीय पथप्रदर्शक का काम करना बन्द कर देते हैं। उदाहरणार्थ, वर्तमान स्थिति, जिसमें अक्सर यह बहस छिड़ जाती है कि 39.6 प्रतिशत अंकों वाले विद्यार्थी को दाखिल किया जाय या नहीं (दाखिले के लिए निर्धारित अंक 40 प्रतिशत हैं) या कि उसे इस कालेज या संकाय में नहीं वरन् उस कालेज या संकाय में दाखिल किया जा सकता हैं, अनर्गल नहीं तो कम-से-कम हास्यास्पद अवश्य है। हमारी सिफ़ारिश है कि जब तक चुनाव के और अच्छे तरीके निश्चित नहीं होते तब तक अंतरिम तौर से दाखिलों के लिए प्रमुख आधार के रूप में परीक्षा के अंकों का उपयोग तो किया जा सकता है, परन्तु उनकी निरपेक्षता और विश्वसनीयता के अभाव को भरने के लिए यथासंभव अन्य संगत पक्षों पर भी विचार करना चाहिए और सामाजिक-आर्थिक अक्षमताओं के लिए विद्यार्थियों को उचित छूट भी देनी चाहिए, ताकि चुनाव का आंतरिक प्रतिभा से अधिक सीधा सम्बन्ध बन सके। जैसा कि ऊपर कहा गया है, यह सीधा पर स्थित विद्यार्थियों के विषय में विशेष महत्वपूर्ण है।

(2) यह वांछनीय होगा कि दाखिले के लिए विद्यार्थियों को चुनने में संस्था परीक्षा के अंक, विद्यालय में विद्यार्थी का कृतित्व, ऐसे क्षेत्रों में विद्यार्थी का कौशल जिसकी परीक्षा में जांच नहीं हुई है, और अन्य संगत पहलुओं पर भी विचार करे। यदि आवश्यकता समझी जाए तो साक्षात्कार और लिखित परीक्षा भी हो जो विशेष रूप से अध्ययन के उन क्षेत्रों में विद्यार्थी की क्षमता की परख कर सके जिनमें विद्यार्थी काम करना चाहता है। अंतिम चुनाव इस समस्त साक्ष्य के आधार पर होना चाहिए, केवल परीक्षा के अंकों से नहीं।

(3) किसी सीमित क्षेत्र में (यथा, गणित में) असाधारण पैठ वाले विद्यार्थियों के अत्यन्त अपवाद-स्वरूप प्रसंगों में यह संभव होना चाहिए कि दाखिले के लिए निर्धारित न्यूनतम आवश्यकताओं को भी ढीला किया जा सके। ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं है कि कोई-कोई मेधावान विद्यार्थी विश्वविद्यालय में प्रवेश की न्यूनतम आवश्यकताओं को पूरा करने में असमर्थ है। यदि ऐसे प्रसंगों में नियमों का कट्टरता से यंत्रवत् पालन किया गया तो बहुतेरे मेधावी छात्र विश्वविद्यालय में प्रविष्ट न हो सकेंगे, जिससे गम्भीर राष्ट्रीय क्षति की आशंका हो सकती है। अतएव, अपवाद-स्वरूप प्रसंगों में विश्वविद्यालयों को यह अधिकार होना चाहिए और उनमें इतना साहस होना चाहिए कि वे नियमों को परे हटा कर ऐसे विद्यार्थियों को दाखिला देसकें जिनकी प्रतिभा पहचान ली गई है पर जो किसी कारण से प्रवेश की आवश्यकता को पूरा करने में असमर्थ हैं। कुछ चुने हुए सम्बद्ध कालेजों को भी इस अधिकार के उपयोग का हस्तान्तरण किया जा सकता है जिन पर यह भरोसा हो कि वे स्तर को बनाए रहेंगे और अपने अधिकार का प्रयोग अंतर्दृष्टि एवं सावधानी से करेंगे।

(4) दाखिले के लिए विद्यार्थियों के चुनाव की नीति का यह प्रमुख लक्ष्य होना चाहिए कि सामाजिक न्याय की प्रतिष्ठा हो और समस्त उपलब्ध प्रतिभा को समेट लेने के लिए दूर-दूर तक जाल डाला जा सके। अतएव, यह जरूरी होगा कि उन प्रतिकूल परिस्थितियों द्वारा उत्पन्न कमियों के लिए कुछ छूट की व्यवस्था हो जिनमें ग्रामीण क्षेत्रों, शहर की गन्दगी बस्तियों और वंचित वर्गों के विद्यार्थियों को अध्ययन करना पड़ता है। इस दृष्टि से, दाखिलों के लिए—विशेष रूप से उच्च कोटि की उन संस्थाओं में दाखिलों के लिए जिनमें प्रवेश की होड़ लग जाती है—'स्कूल समूहों' के आधार पर विद्यार्थियों के चुनाव की वही पद्धति अपनाई जा सकती है जिसकी हम छात्रवृत्तियों के प्रदान के प्रसंग में पहले ही सिफ़ारिश कर आए हैं।[1]

12.18. **दाखिलों के विश्वविद्यालय बोर्ड**—इस व्यवस्था के सफल कार्यान्वयन के लिए यह आवश्यक होगा कि विद्यार्थियों के चुनाव और स्थान-निर्धारण के लिए, आवश्यकता पड़ने पर उन्हें विशेष पाठ देने के लिए और आवश्यक आर्थिक सहारा देने के लिए एक उपयुक्त और उत्तरदायी यंत्र स्थापित किया जाएं। आजकल चुनाव को सामान्यतः गम्भीर समस्या के रूप में ग्रहण नहीं किया जाता—न विश्वविद्यालय में न कालेज में। प्रत्येक शैक्षिक वर्ष के श्रीगणेश पर वह एक भागदौड़ का रूप ले लेता है

1. अध्याय छह।

और फिर भुला दिया जाता है। यह स्पष्ट है कि ऐसे खण्डित और असम्बद्ध अनुभव के आधार पर दाखिले की उत्तम नीति नहीं बनाई जा सकती। हमारी सिफ़ारिश हैं कि प्रत्येक विश्वविद्यालय में (यदि वहां अभी तक नहीं है तो) एक विश्वविद्यालय दाखिला बोर्ड गठित किया जाए जिसमें विश्वविद्यालय के अध्यापन विभागों, सम्बद्ध कालेजों और विद्यालय प्रशासन के प्रतिनिधि-गण सम्मिलित हों। इसका यह काम हो कि अध्यापन विभागों और सम्बद्ध कालेजों में दाखिलों के सारे मामलों में विश्वविद्यालय को परामर्श दे, वर्ष-प्रतिवर्ष दाखिला नीतियों के कार्यान्वित की समीक्षा करे और आवश्यकता हो तो परिवर्तनों की सिफ़ारिश करे। इस बोर्ड का यह भी दायित्व हो कि वह वार्षिक दाखिलों से सम्बन्धित विवरण इकट्ठे करे और उनका विश्लेषण करे ताकि यह पता चल सके कि दाखिलों की नीतियों के लक्ष्य वास्तव में किस सीमा तक उपलब्ध किए जा सके हैं। इसके परिणाम सार्वजनिक जानकारी के लिए प्रकाशित किए जाने चाहिए। केन्द्रीय सूचना-वितरण केन्द्र के रूप में वि० अ० आ० को भी इस क्षेत्र में गवेषणाएं करनी चाहिएं और गतिविधियों का समंजन करना चाहिए।

12.19. **केन्द्रीय-परीक्षण-संगठन**—उच्चतर शिक्षा के विभिन्न पाठ्यक्रमों के लिए उपयुक्त चुनाव पद्धतियों का विकास एक तकनीकी प्रक्रिया है और यह आवश्यक है कि एक ऐसा उपयुक्त अधिकरण उत्पन्न किया जाए जो यथासमय इसको प्रभावी रूप में सुलभा सके। हमारी सिफ़ारिश है कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग एक केन्द्रीय परीक्षण संगठन स्थापित करने के लिए अग्रसर हो जिसके निम्नांकित लक्ष्य हों :

— विश्वविद्यालय शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर और कालेजों एवं विश्वविद्यालयों द्वारा अर्पित विद्या की विभिन्न शाखाओं अथवा पाठ्यक्रमों के लिए विद्यार्थियों के चुनाव की उन्नत पद्धतियों का विकास करना;

— कालेजों एवं विश्वविद्यालयों को आवश्यक सेवाएं प्रदान करना, यथा चुनाव परीक्षणों का प्रशासन, परीक्षणों के परिणाम उपलब्ध कराना और चुनाव के परिणामों का उपयोग करने के उपाय और मार्ग सुझाना;

— विश्वविद्यालय स्तर पर चुनाव पद्धति के उन्नयन के विशेष सन्दर्भ में, विश्वविद्यालयों में परीक्षण और तत्सम्बन्धित क्षेत्रों में अनुसन्धान को अग्रसर करना;

— विद्यार्थियों के चुनाव के बारे में कालेजों, विश्वविद्यालयों और अन्य तद्रूप संगठनों को परामर्श देना;

— विद्यार्थियों के चुनाव के लिए विभिन्न विश्वविद्यालयों और कालेजों की आवश्यकताएं निर्धारित करने के लिए क्षेत्र सम्पर्क स्थापित करना और इन गतिविधियों का राष्ट्रीय स्तर पर समन्वय करना;

— अन्य देशों के तद्रूप अधिकरणों से सम्पर्क स्थापित करना; और

— चुनाव पद्धतियों के अधिकाधिक उन्नयन और उत्कर्ष हेतु, सम्बन्धित क्षेत्र की नई गतिविधियों का निरन्तर अध्ययन करना।

12.20. ऐसे संगठन द्वारा किया जाने वाला कार्य अत्यन्त कठिन होगा और अत्यन्त विस्तृत क्षेत्र में परिव्याप्त। अतएव, यह आशा करना अयथार्थवादी होगा कि यह आसन्न भविष्य में दाखिला के व्यवहारों और पद्धतियों पर कोई निश्चित प्रभाव डाल सकेगा। इसलिए, यह और भी अधिक महत्वपूर्ण है कि इसके विकास के लिए चालू योजना में ही एक कार्यक्रम तैयार कर लिया जाए। यह कार्यक्रम दो चरणों में विभाजित होना चाहिए। पहला चरण, जो लगभग तीन वर्ष का होगा, संगठन की स्थापना और थोड़े से अग्रिम अध्ययनों और प्रायोगिक कार्यक्रमों के लिए आवश्यक तैयारी में लगाया जाना चाहिए। दूसरे चरण में, जो परवर्ती तीन वर्षों तक व्याप्त होगा, हम यह आशा कर सकते हैं कि संगठन पूरी तौर पर कार्य करने लग जाए जिसके लिए उसके पास आवश्यक कर्मचारी दल, स्थान और उपकरण उपलब्ध हों। उपकरणों में एक सीक्यूरिटी प्रिन्टिंग प्रेस भी शामिल होगा।

अंशकालिक और निज-कालिक शिक्षा

12.21. आजकल, पूर्व स्नातक स्तर पर विद्यार्थी को या तो पूर्णकालिक आधार पर दाखिल होना पड़ता है या फिर शिक्षा से नितान्त वंचित रहना पड़ता है। इससे कालेजों में पूर्णकालिक स्थानों की भारी मांग उत्पन्न हो जाती है और स्तर में गिरावट आने लगती है क्योंकि आवश्यक संख्या में स्थानों की व्यवस्था के लिए साधन उपलब्ध नहीं होते। इसका एक हल तो यह है कि उपलब्ध साधनों के आधार पर पूर्ण-कालिक स्थान नितान्त सीमित रखे जाएं और जो लोग विश्वविद्यालय की उपाधि पाने के इच्छुक हैं पर नियमित पाठ्यक्रमों में दाखिला

पाने में असमर्थ हैं उनके लिए पत्राचार-पाठ्यक्रम, अंश-कालिक पाठ्यक्रम, सांध्य पाठ्यक्रम आदि स्थापित किए जाएं। यह युक्ति अमरीका, ब्रिटेन, सोवियत संघ और जापान आदि अनेक देशों में अधिकाधिक अपनाई जा रही है। हाल ही में 'प्रायोगिक परियोजना' के रूप में दिल्ली विश्वविद्यालय द्वारा चालू किए गए पत्राचार-पाठ्यक्रम उत्साहवर्धक प्रयोग सिद्ध हुए हैं और उनके परीक्षा-फल संतोषजनक रहे हैं।

12.22. हमारी सिफ़ारिश है कि सान्ध्य पाठ्यक्रम जैसे कार्यक्रमों द्वारा अंश-कालिक शिक्षा के अवसरों को और पत्राचार पठ्यक्रमों जैसे कार्यक्रमों द्वारा निज-कालिक शिक्षा के अवसरों को यथासंभव बढ़ाया चाहिए और इनमें विज्ञान और शिल्पविज्ञान के (या तो उपाधि स्तर पर या डिप्लोमा के स्तर पर) पाठ्यक्रम भी सम्मिलित होने चाहिए। इनसे उच्चतर शिक्षा के विस्तार की पूंजी-लागत घटाने में सहायता मिलेगी और, विशेषत: ज्यों-ज्यों नामांकन बढ़ते जाएंगे, त्यों-त्यों आवर्ती खर्चों को भी कम करने में मदद मिलेगी। जो लोग आगे पढ़ना चाहते हैं, पर आर्थिक कारणों से विद्यालय स्तर के अन्त में उपार्जन में लगने के लिए विवश हैं उन्हें उच्चतर शिक्षा प्रदान करने का यही एकमात्र साधन है। इस से डरने की कोई जरूरत नहीं कि उनसे स्तर में गिरावट आएगी, खास तौर में अगर पत्राचार शिक्षा पाने वाले विद्यार्थियों से छुट्टियों और अवकाश के दिनों में शैक्षिक कार्यक्रमों के आयोजन द्वारा व्यक्तिगत सम्पर्क बनाये रखने की सावधानी बरती जाए। वस्तुत: यह कहना सही होगा कि कुल मिलाकर ऐसे पाठ्य-क्रमों में स्तर ऊपर उठने लगता है क्योंकि विद्यार्थियों की अभिप्रेरणा अधिक उत्कष्ट होती है। हमारा सुझाव है कि 1986 तक उच्चतर शिक्षा के कुल नामांकन के कम से कम एक तिहाई भाग को पत्राचार पाठ्यक्रमों और सान्ध्य कालेजों की व्यवस्था द्वारा शिक्षा देना लाभकारी होगा। हमारा यह भी सुझाव है कि वि० अ० आ० अंश-कालिक शिक्षा विषयक एक स्थायी समिति स्थापित करे।

सम्बद्ध कालेजों की स्थिति

12.23. ऊपर अनुमानित पूर्व-स्नातक शिक्षा के विस्तार का अधिकांश दो उपायों से पूरा करना पड़ेगा—बर्तमान कालेजों का विस्तार और नए कालेजों की स्था-पना। कालेजों के आकार का उनके खर्च और दक्षता पर महत्वपूर्ण प्रभाव होता हैं और इसलिए यह आवश्यक है कि इस मामले में एक उपयुक्त नीति बनाई जाए।

12.24. हमारी सिफ़ारिश है कि कालेजों को सेंबद्धता प्रदान करने में विश्वविद्यालयों को नए कालेजों की स्थापना के बजाय वर्तमान कालेजों के विस्तार पर बल देना चाहिए। जब तक इसके विपरीत प्रबल कारण न हों तब तक एक कालेज में न्यूनतम नामांकन 500 होने चाहिए और यह वांछनीय हैं कि जितने कालेजों में सम्भव हो उतने कालेजों में नामांकन बढ़ाकर 1,000 या उससे भी अधिक कर दिए जाएं। नए कालेज को सम्बद्धता प्रदान करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि उसके स्थान का सोच विचार कर नियोजन किया जाए ताकि वह वर्त-मान संस्था के विकास में बाधक न हो और इस बात की समुचित संभावना हो कि वह पांच साल की अवधि के भीतर पर्याप्त आकार की संस्था का रूप ले सकेगा।

12.25. **छोटे कालेज**—वर्तमान स्थिति का एक असन्तोषजनक पहलू यह है कि ऐसे कालेजों की बहुत बड़ी संख्या है जहां नामांकन बहुत अल्प है। इस विषय में प्राप्त विवरण सारणी 12.4 में दिया गया है।

सारणी 12.4. सम्बद्ध कालेजों का आकार (1964-65)

नामांकन	परिधि में स्थित कालेजों की संख्या	कुल का प्रतिशत	परिधि में कला विज्ञान वाणिज्य के कालेजों की संख्या	प्रतिशत	परिधि में वृत्तिक कालेजों की संख्या	प्रतिशत
100 से कम	320	15.6	168	11.0	152	28.6
100 से 299 तक	602	29.2	391	25.6	211	39.5
300 से 499 तक	296	14.4	243	16.0	53	9.9
500 से 999 तक	457	22.2	373	24.5	84	15.8
1000 से 1999 तक	328	16.0	297	19.5	31	5.8
2000 से अधिक	53	2.6	51	3.4	2	0.4
जोड़	2,056	100.0	1,523	100.0	533	100.0

स्रोत : विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की रिपोर्ट, 1964-65, पृष्ठ 1

ध्यान दें : पृष्ठ 353 का चार्ट भी देखिए।

यह देखा जा सकता है कि लगभग 15.6 प्रतिशत कालेज ऐसी दुरवस्था में हैं कि उनमें 100 से भी कम विद्यार्थी है। अगर यह मान लिया जाय कि कम से कम 500 विद्यार्थियों का नामांकन नितांत अविवार्य है जिसके बिना कालेज हानिप्रद और दक्षताहीन होने लग जाता है तो लगभग 60 प्रतिशत सम्बद्ध कालेज इस स्तर से नीचे हैं।

12.26. एक सौ से कम नामांकन वाले छोटे कालेजों का हमने परीक्षण किया है। यद्यपि केवल 168 संस्थाओं के ही वितरण उपलब्ध थे तथापि उन्हीं से कुछ रोचक तथ्य प्रकट होते हैं।

(1) **आयु**—स्थापना-वर्ष के अनुसार कालेजों का वर्गीकरण निम्न प्रकार से हैं :

स्थापना का वर्ष	उक्त अवधि में स्थापित कालेजों का प्रतिशत
1947 से पूर्व	5.4
1948-57	6.5
1958	2.4
1959	7.7
1960	6.0
1961	12.5
1962	7.1
1963	16.7
1964	35.7

यह देखा जा सकता है कि इन छोटे कालेजों में से 72 प्रतिशत 1961-64 की चार वर्षीय अवधि में स्थापित किए गए। समय बीतने के साथ ये कालेज अपनी शक्ति बढ़ा पायेगें या नहीं, यह नहीं कहा जा सकता, खास तौर पर हम देखते हैं कि 1960 से पूर्व स्थापित कालेजों में से (और उनमें से कुछ तो 1947 में ही स्थापित हो चुके थे) 28 प्रतिशत की विद्यार्थी संख्या अब भी 100 से कम है।

(2) **स्थानीय बस्ती की जनसंख्या**—114 कालेजों के सम्बन्ध में उन बस्तियों की जनसंख्या के आंकड़े उपलब्ध थे जहां वे स्थित हैं। स्थिति निम्न प्रकार हैं।

बस्ती की जनसंख्या (000ों में)	कालेजों की संख्या
5 या उससे कम	6
5—10	14
10—20	21
20—40	22
40—75	20
75—100	3
100—150	4
150—200	3
200—400	10
400—800	4
800 या उससे अधिक	7
जोड़	114

यह देखा जा सकता है कि 63 कालेज अर्थात् 50 प्रतिशत कालेज ऐसे कस्बों में स्थित है जिनकी जनसंख्या 10,000 से 75,000 के बीच में है और 31 कालेज ऐसे है जो 75,000 से अधिक जनसंख्या वाले क्षेत्रों में स्थित हैं। यह बात भी महत्वपूर्ण है कि 11 छोटे कालेज 100 से भी कम नामांकन वाले हैं जो 400,000 से भी अधिक की जनसंख्या वाले शहरों में स्थित हैं। केवल 20 कालेज ऐसे है जो विरल जनसंख्या वाले क्षेत्रों में स्थित कहे जा सकते है (10,000 या उससे कम)।

(3) **पुरुष और महिला विद्यार्थियों का नामांकन**—इन कालेजों में से 36 सिर्फ पुरुष विद्यार्थियों का नामांकन करते हैं, 32 सिर्फ महिला विद्यार्थियों का। 97 कालेजों में पुरुष और महिला दोनों प्रकार के विद्यार्थियों को दाखिला मिल सकता है।

(4) **पिछड़े क्षेत्र**—इनमें से कुछ कालेज पिछड़े हुए क्षेत्रों में हैं जिनमें आदिवासियों की बड़ी संख्या है और यह समझा जा सकता है कि इन्हें विकास करने में कुछ वर्ष लग जाएंगे।

कालेजों की स्थिति का नियोजन बड़े महत्व की समस्या है। हमारी सिफारिश हैं कि वि० अ० आ० इस समस्या का अध्ययन करे, विशेष रूप से छोटे कालेजों के सन्दर्भ में, और विश्वविद्यालयों को उन उपायों का परामर्श दे जिनसे यह कमी यथासंभव दूर की जा सके।

स्नातकोत्तर शिक्षा और अनुसन्धान का विस्तार

12.27. स्नातकोत्तर और अनुसंधान कार्य का अधिकांश विश्वविद्यालयों और उनके घटक कालेजों में ही केन्द्रित करना पड़ेगा, सम्बध कालेजों में नहीं। भारतीय विश्वविद्यालय विगत काल में मुख्यतः पूर्व-स्नातक शिक्षा से संयुक्त रहे हैं और एक सीमित रूप में स्नातकोत्तर कार्य और अनुसंधान से। द्वितीय और तृतीय योजनाओं

सम्बद्ध कालेज, आकार के अनुसार, 1964-65

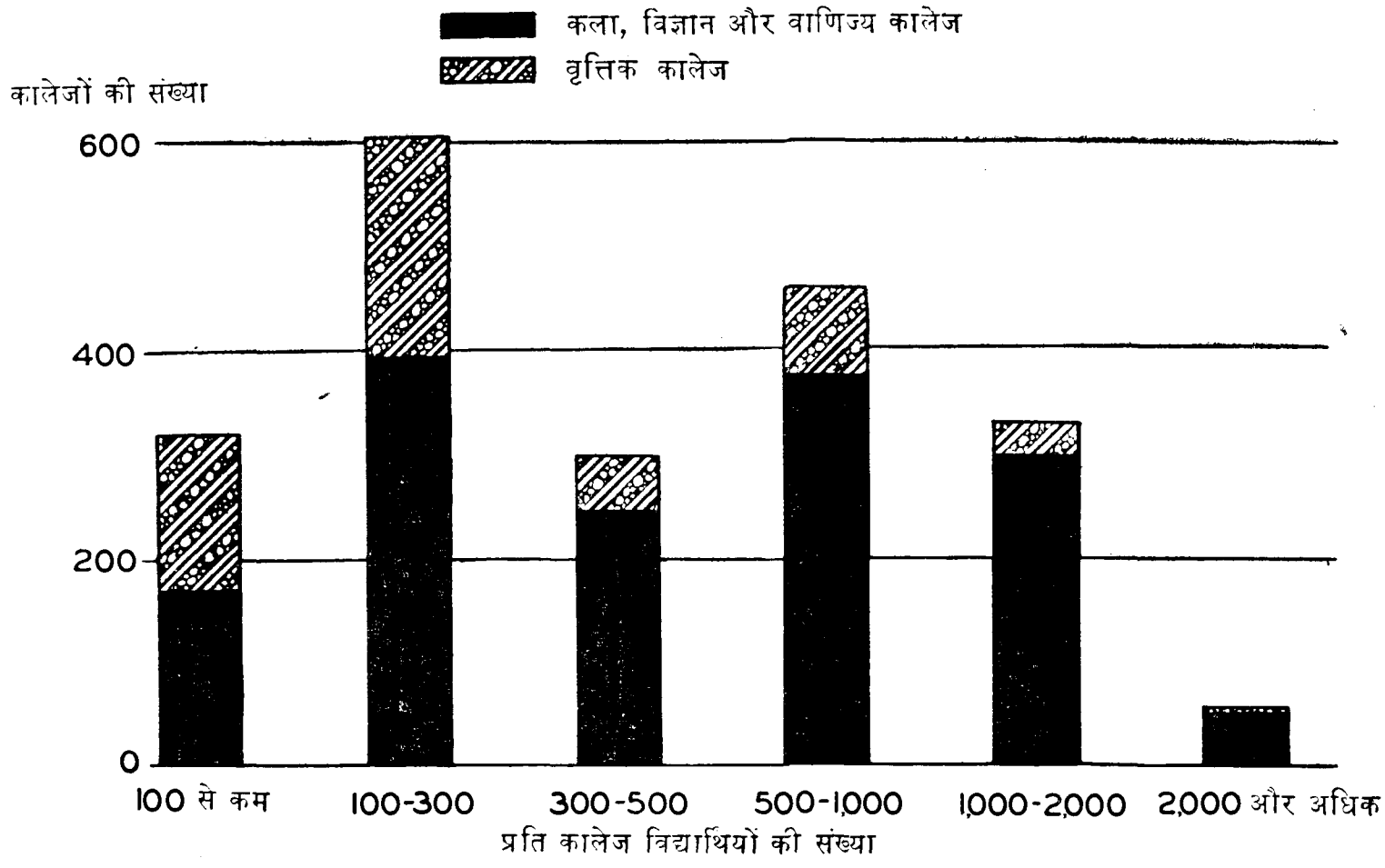

में वि० अ० आ० के पथ-प्रदर्शन के फलस्वरूप बहरहाल विश्वविद्यालयों के स्नातकोत्तर विभागों में नामांकन बहुत काफी बढ़े हैं। परन्तु अब भी, नामांकनों में कालेजों का हिस्सा अनुपात से कहीं अधिक है; विश्वविद्यालयों के अध्ययन विभागों और सम्बद्ध कालेजों के बीच एम० ए० और एम० एस-सी० विद्यार्थियों का वितरण मोटे तौर पर 4 : 3 के अनुपात में है। यह असन्तोषजनक स्थिति है क्योंकि कुछ प्रमुख कालेजों के अतिरिक्त, सम्बद्ध कालेजों में अनुसंधान की वास्तविक सुविधाएं या तो हैं ही नहीं या अत्यन्त सीमित है। तिस पर अधिकांश कालेजों में योग्य अध्यापक, पुस्तकालय, प्रयोगशाला आदि के रूप में सुविधाएं बहुत कम हैं और भरती किए गए विद्यार्थियों द्वारा प्राप्त स्तर नीचा है। हमारी सिफ़ारिश है कि स्नातकोत्तर और अनुसंधान कार्य का अधिकांश विश्वविद्यालयों या विश्वविद्यालय 'केन्द्रों' में संघटित किया जाना चाहिए जहां विश्वविद्यालय के निर्देशन में 3 या 4 स्थानीय कालेजों द्वारा सहकारी रूप से उत्तम कार्यक्रम विकसित किए जा सकें। केवल उन्हीं दीर्घ प्रतिष्ठित अत्युत्तम सम्बद्ध कालेजों को आवश्यक सुविधाएं उपलब्ध होने पर स्नातकोत्तर और अनुसंधान कार्य चलाने की अनुमति दी जानी चाहिए जिन्होंने पूर्व-स्नातक (या स्नातकोत्तर) स्तर पर प्रशंसनीय कार्य किया हो। हमारी राय में, स्नातकोत्तर और अनुसंधान कार्य के लगभग 80 प्रतिशत की जिम्मेदारी विश्वविद्यालयों और विश्वविद्यालय केन्द्रों को ओढ़नी होगी। इसको उपयुक्त सहारा देने के लिए उन्हें पूर्व-स्नातक कार्य भी हाथ में लेना पड़ेगा जो प्राथमिक रूप से मेधावी विद्यार्थियों के लिए ही होगा। यह नामांकन के लगभग 10 प्रतिशत में व्याप्त हो सकेगा। इस प्रकार विश्वविद्यालयों को विपुल अतिरिक्त दायित्व संभालना है, उनके विभागों और घटक कालेजों का नामांकन सन् 1965-66 के 2,00,000 से (पूर्व-स्नातक 1,55,000 और स्नातकोत्तर एवं अनुसंधान 45,000) सन् 1085-86 में लगभग 11,00,000 तक (पूर्व स्नातक 3,20,000 और स्नातकोत्तर 7,50,000) बढ़ाना होगा।

12.28. इस पर बल देना शायद ही आवश्यक हो कि यद्यपि विकास-संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए स्नातकोत्तर स्तर पर नामांकनों को बढ़ाना जरूरी है, तथापि यह कार्य सर्वदा भौतिक और जन-साधनों की सम्यक वृद्धि पर निर्भर होना चाहिए। अनिवार्य सुविधाओं के बिना विश्वविद्यालयों के विभाग या कालेज खोलने अथवा निम्न कोटि का स्नातकोत्तर कार्य करने वाले विभागों या कालेजों के प्रति सहिष्णुता बरतने के प्रलोभन का संवरण करना जरूरी है।

12.29. यह भी जरूरी है कि स्नातकोत्तर और अनुसंधान पाठ्यक्रमों में विद्यार्थियों के दाखिले के सम्बन्ध में कड़ी नीति बरती जाए। हमें उन विद्यार्थियों को प्रोत्साहन नहीं देना चाहिए जो सिर्फ वक्त काटने के लिए या बाद में आगे चलकर कोई धन्धा पा जाने की बाट में एम० ए० या एम० एस-सी० में आ जाते हैं। आजकल बहुतेरी संस्थाएं अक्सर इसकी अनुमति दे देती हैं; या तो भ्रान्त उदारता के वश या संख्या वृद्धि के उद्देश्य से। वे यह नहीं पहचान पातीं कि ऐसे ढंग एक तो उच्चतर शिक्षा के हितों पर कुठाराघात करते हैं और दूसरे आगे चलकर समुदाय को भी हानि पहुंचाते हैं। हमारा सुझाव है कि समस्त स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों के लिए दाखिले की कठोर परीक्षा लागू की जाए। पहली उपाधि की परीक्षा के अंकों की यांत्रिक निर्भरता से काम नहीं चलेगा। पिछले 4 या 5 वर्षों के अपने परीक्षा-फलों का विश्लेषण करने के लिए दिल्ली विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित एक प्रायोगिक परियोजना में यह ज्ञात हुआ कि बी० ए०/बी० एस-सी० में तीसरी श्रेणी प्राप्त विद्यार्थी की एम० ए०/एम० एस-सी० परीक्षा में प्रथम, द्वितीय या तृतीय श्रेणी पाने की संभावना क्रमशः 0.29, 0.29 और 0.47 है। निस्सन्देह यह सीमित गवेषण है पर यह महत्वपूर्ण संकेत अवश्य है। अतएव, यह आवश्यक है कि योग्यता-संबंधी परीक्षा में प्राप्त अंकों के अतिरिक्त विद्यार्थी के कृतित्व के समग्र लेखे पर, उसकी पाठ्यचर्येतर क्रियाओं और सह-पाठ्यचर्या क्रियाओं पर, और उच्चतर शिक्षा के लिए उसकी क्षमता अभिप्रेरणा और सामान्य उपयुक्तता पर भी ध्यान दिया जाए।

12.30. स्नातकोत्तर और अनुसन्धान कार्य के उपनिर्दिष्ट केन्द्रीकरण के ख्याल से यह जरूरी होगा कि इस स्तर पर उपयुक्त संख्या में छात्रवृत्तियां और छात्रावास सुविधाएं प्रदान की जाएं। जैसा कि पहले[1] सुझाया गया है, इस स्तर पर लगभग 50 प्रतिशत विद्यार्थियों को छात्रवृत्तियां उपलब्ध होनी चाहिए और इनके अनुषंग के रूप में ऋण-छात्रवृत्तियां। जब कोई विद्यार्थी गुण के आधार पर किसी स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम में दाखिले के लिए चुन लिया गया है, तब हमें इसका पूरा प्रयत्न करना चाहिए कि उसके अध्ययन पूरा करने के मार्ग में कोई वित्तीय कठिनाई बाधा न बने। उसे या तो छात्रवृत्ति उपलब्ध हो या ऋण-छात्रवृत्ति ताकि वह निश्चिंत होकर निश्चयपूर्वक अपने काम में लग सके।

12.31. एक बात पर हम बल देना चाहते हैं।

1. अध्याय छह।

स्नातकोत्तर शिक्षा और अनुसन्धान के विकास के लिए एवं विश्वविद्यालयों के विकास के लिए केन्द्र को विगत काल की अपेक्षा अब कहीं अधिक जिम्मेदारी ओढ़नी होगी। यह अत्यन्त उच्च प्राथमिकता का क्षेत्र है और इसका अपना बीज-मूल्य है और शिक्षा के समूचे क्षेत्र की उन्नति कर सकता है। आजकल ऐसा नहीं होता। इस स्तर पर उपलब्ध सुविधाओं का विस्तार अपर्याप्त है और उसकी गुणता में काफी उन्नति वांछनीय है। फलस्वरूप हमें कालेजों के लिए पर्याप्त संख्या में उत्तम अध्यापक नहीं मिलते। इससे पूर्व-स्नातक शिक्षा का प्रभाव हल्का पड़ जाता है और माध्यमिक विद्यालयों के लिए उत्तम अध्यापक पाने में कठिनाई होती है। इसके कारण माध्यमिक शिक्षा क्षीण हो जाती है और प्रारंभिक विद्यालयों के लिए उत्तम अध्यापक मिलने में कठिनाई होती है। इस विषम चक्र को काटने का एकमात्र उपाय यही है कि स्नातकोत्तर शिक्षा और अनुसन्धान में सुविधाएं बढ़ाई जाएं और इससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि उनकी गुणता को उन्नत किया जाए। इस उद्देश्य में हम भारत सरकार को स्नातकोत्तर शिक्षा और अनुसंधान के लिए प्रायः एकमात्र ऊत्तरदायी बनाने का उपक्रम करना चाहेंगे। इस संबंध में हम अमरीकी राष्ट्रपति की साइन्स एडवाइजरी कमिटी का उल्लेख करना चाहेंगे जिसने एटमिक एनर्जी कमीशन के वर्तमान अध्यक्ष प्रोफेसर जी० टी० सीबोर्ग की अध्यक्षता में प्रस्तुत **साइंटिफिक प्रोग्रेस, द युनिवर्सिटीज एण्ड द फेडरल गवर्नमेंट** (1960) संबंधी अपनी हाल की रिपोर्ट में कहा है कि :

> बुनियादी अनुसन्धान और स्नातक शिक्षा दोनों का सम्पूर्ण समाज के कल्याण की दृष्टि से पोषण करना चाहिए। इसी विशद अर्थ में संघीय सरकार की भूमिका अनिवार्य रूप से केन्द्रीय बन जाती है। यह सत्य जितना महत्वपूर्ण है उतना ही सरल कि संयुक्त राज्य में बुनियादी अनुसन्धान और स्नातक शिक्षा की मात्रा और गुणता पर्याप्त होंगे या अपर्याप्त यह प्रथमतः संयुक्त राज्य की सरकार पर निर्भर है। इस उत्तरदायित्व से संघीय सरकार किसी तरह नहीं बच सकती। अपने विश्वविद्यालयों को फलने-फूलने के लिए और उनके दायित्वों के पर्याप्त सम्पादन के लिए आवश्यक नीतियां और साधन या तो उसी को खोजने होंगे—या फिर कोई नहीं खोजेगा।
>
> प्रज्ञापूर्ण और सशक्त शब्द हैं ये, और ये हम पर भी उतने ही लागू होते हैं।

महिलाओं के लिए उच्चतर शिक्षा

12.32. **विस्तार की आवश्यकता**—आम तौर पर यह राय बन गई है कि उच्चतर शिक्षा के स्तर पर महिलाओं की शिक्षा पर अब विशेष ध्यान देने की जरूरत नहीं है क्योंकि महिलाएं समाज की आवश्यकता के अनुसार पर्याप्त रूप से निरन्तर बढ़ती संख्या में उसका लाभ ले रही हैं। बहरहाल, नाना वृत्तियों और धन्धों में निदेशात्मक और संगठनात्मक उत्तरदायित्वों के पद ग्रहण करने के लिए उपलब्ध शिक्षित महिलाओं की कमी कालेज और विश्वविद्यालय के स्तर पर महिलाओं की शिक्षा के विस्तार के लिए विशेष प्रयत्नों की आवश्यकता की ओर संकेत करती है। उच्चतर शिक्षा के स्तर पर पुरुष और महिला विद्यार्थियों के तुलनात्मक नामांकन के आंकड़े यह उद्घाटित करते हैं कि भारतीय विश्वविद्यालयों में कुल नामांकन में महिला विद्यार्थियों का अनुपात सन् 1955-56 में लगभग 13 प्रतिशत था, सन् 1960-61 में लगभग 17 प्रतिशत था, और सन् 1965-66 में लगभग 21 प्रतिशत। इस प्रकार एक दशाब्द में यह अनुपात 13 प्रतिशत से बढ़कर 21 प्रतिशत हो गया है और इस समय महिला विद्यार्थियों का पुरुष विद्यार्थियों से अनुपात 1 : 4 है। यह अनुपात न तो भारतीय समाज की बदलती जरूरतों के अनुकूल है न आर्थिक और सामाजिक विकास की आवश्यकताओं के अनुकूल। हम सोचते है कि इन आवश्यकताओं के खयाल से आगामी दस वर्षों में इस स्तर पर कुल नामांकन में महिला विद्यार्थियों का अनुपात बढ़कर 33 प्रतिशत हो जाना चाहिए ताकि विभिन्न क्षेत्रों में शिक्षित महिलाओं की मांग पूरी की जा सके। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए हमने अन्यत्र निम्नांकित दो कार्यक्रमों की सिफ़ारिश की है :

(1) कालेजों और विश्वविद्यालयों में उदार पैमाने पर महिला विद्यार्थियों के लिए छात्रवृत्तियों और वित्तीय सहायता का कार्यक्रम; और

(2) बड़े पैमाने पर महिला विद्यार्थियों के लिए सारी आवश्यक सुविधाओं से युक्त किफायती पर उपयुक्त छात्रावास-स्थान की व्यवस्था का कार्यक्रम। इस उद्देश्य से भारत सरकार द्वारा उदार अनुदान दिए जाने चाहिए। ये दोनों कार्यक्रम विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों की कन्याओं को उच्चतर शिक्षा से लाभ उठाने के लिए प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से आवश्यक हैं। इस समय कालेजों और विश्वविद्यालयों में शहरी क्षेत्रों की संख्या की तुलना में उनकी संख्या बहुत कम है।

12.33. **मिश्रित या पृथक कालेज**—कालेज के स्तर पर, स्थानीय ऐतिहासिक परम्पराएं और सामान्य सामाजिक पृष्ठभूमि यह निर्धारित करती हैं कि वहां

महिलाओं के लिए पृथक कालेज हों या मिश्रित कालेज। शिक्षा के स्तर के लिए सह-शिक्षा की समरूपी नीति आवश्यक नहीं है। परिस्थिति राज्य-राज्य में भिन्न हैं। महाराष्ट्र जैसे राज्य में महिला विद्यार्थी और उनके अभिभावक मिश्रित कालेज पसन्द करते हैं, और वहां पृथक कालेजों की तुलना में मिश्रित कालेजों की संख्या कहीं अधिक बड़ी है, पर मद्रास राज्य में, जो महिला शिक्षा के मामले में उतना ही अग्रसर है, महिलाओं के लिए पृथक कालेज पसन्द किए जाते हैं और उनकी संख्या बहुत अधिक है। अतएव, इस स्तर पर सह-शिक्षा सम्बन्धी नीति का निर्णय प्रत्येक राज्य की सरकार को करना होगा। प्रत्येक क्षेत्र में विद्यमान व्यवहार चालू रहने दिया जा सकता है, केवल महिलाओं के लिए ऐसे पृथक कालेज के अलावा, जो इतना छोटा हो कि आर्थिक दृष्टि से टिक न सके। मिश्रित कालेजों के अधिकारियों और कार्यकर्ताओं को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि महिला विद्यार्थियों को सह-पाठ्यचर्या और पाठ्यचर्येतर क्रियाओं में सक्रिय भाग लेने के लिए आवश्यक प्रोत्साहन और प्रेरणा अवश्य मिलती रहे। महिला कालेजों के अधिकारियों और कार्यकर्ताओं को इस बात का अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि उनके विद्यार्थी विश्वविद्यालय की सामान्य जीवन धारा से कटकर अलग न हो जाएं।

स्नातकोत्तर स्तर पर महिलाओं के लिए पृथक संस्थाओं की कोई संगति नहीं है। यहां पुरुष और महिला विद्यार्थियों को सर्वोत्तम उपलब्ध निर्देशन में मिल-जुल कर कार्य करना चाहिए।

12.34. **महिलाओं की आवश्यकताओं की पूर्ति की विशिष्ट दृष्टि से उच्चतर शिक्षा के पाठ्यक्रम**— आजकल की ही भांति महिला विद्यार्थियों को कला, मानविकी, विज्ञान और शिल्पविज्ञान के पाठ्यक्रमों में मुक्त भाव से प्रवेश मिलना चाहिए। उनके विषय चुनाव को संकीर्ण बनाना अथवा उन्हें विशिष्ट पाठ्यक्रमों को लेने के लिए विवश करना गलत होगा। कालेज अथवा विश्वविद्यालय के स्तर पर अनुसंधान या अध्यापन-चर्या का या शिल्पविज्ञान जैसी वृत्तियों का अनुशीलन करने की महत्वाकांक्षा वाली अधिक विद्या-व्यासनी कन्याओं को ऐसा करने के लिए हर प्रकार का प्रोत्साहन और प्रेरणा मिलनी चाहिए।

महिला विद्यार्थियों की विशाल संख्या के लिए यह आवश्यक है कि उच्चतर शिक्षा को ऐसी आजीविकाओं के विशिष्ट भागों से जोड़ दिया जाए जहां प्रशिक्षित और शिक्षित महिलाओं की तत्काल जरूरत है। ऐसे पाठ्यक्रमों में तकनीकी और व्यावसायिक तत्व पर बल देना जरूरी है। जिन वृत्तिक क्षेत्रों में महिलाओं की सेवा की मांग है, और जिनमें फिलहाल महिलाओं की कमी है, उनमें से कुछ ये हैं: शिक्षा (अध्यापन), समाज-कल्याण, परिचर्या, व्यायसायिक क्षेत्रों की शृंखला, जैसे पौष्टिकी, आहारिकी, संस्थागत प्रबन्ध आदि आदि। दूसरी और तीसरी पंचवर्षीय योजना के दौरान ऐसे सारे पाठ्यक्रमों पर बल दिया गया है और उनसे सम्बन्धित सुविधाएं बढ़ाई गई है। हमें विकास-सम्बन्धी आवश्यकताओं के अनुसार इन पाठ्यक्रमों के विस्तार का हरेक प्रयत्न करना चाहिए और उनके लक्ष्यों के आलोक में उनकी उन्नति करनी चाहिए।

गृह-विज्ञान 33 विश्वविद्यालयों में चालू कर दिया गया है और शनैः शनैः एक विधावुशासन के रूप में मान्यता प्राप्त करता जा रहा है। उत्तम सामान्य शिक्षा देने के अतिरिक्त गृह-विज्ञान विद्यार्थियों को वैज्ञानिक आधार पर सुसज्जित कर सकेगा ताकि वे आहारिकी, आहार-विज्ञान, परिवार-कल्याण कार्य, सामुदायिक विकास के विस्तार कार्य और कल्याण विस्तार परियोजना के वृत्तिक क्षेत्रों में, और आई० सी० एम० आर०, आइ० सी० ए० आर० एवं काउंसिल आफ चाइल्ड वेल्फेअर की परियोजनाओं के अनुसंधान-कार्य में काम कर सकें।

परिचर्या (नर्सिंग) को विश्वविद्यालयों में बी० एस-सी० स्तर पर पाठ्यक्रम के रूप में समाविष्ट कर दिया गया है ताकि उच्चतर स्तरों के लिए परिचर्या-कार्यकर्ता तैयार किए जा सकें। इसे महिलाओं के लिए पृथक कालेजों में समाविष्ट किया गया है और इस बात का हर प्रयत्न किया जा रहा है कि एक ऐसा वैज्ञानिक और वृत्तिक पाठ्यक्रम नियोजित किया जाए जिसका शैक्षिक मूल्य भी हो और जो उच्च स्तर का आवश्यक वृत्तिक प्रशिक्षण भी हो। इस पाठ्यक्रम का विस्तार वृत्ति की मांगों के अनुसार होना चाहिए।

शिक्षा को बी० ए० या बी० एस-सी० स्तर पर ऐच्छिक विषय के रूप में 11 विश्वविद्यालयों में चालू किया गया है। इनमें से प्रत्येक विश्वविद्यालय में पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं ने यह विषय अधिक लिया है। अभी तक यह पाठ्यक्रम केवल सामान्य शिक्षा-मूल्य का है और वृत्तिक तैयारी के उद्देश्य की आंशिक पूर्ति भी नहीं करता। अन्यत्र हमने सामान्य और वृत्तिक अध्यापक-शिक्षा में संवर्ती और समाकलित पाठ्यक्रमों के मूल्य का सुझाव दिया है। हम सोचते हैं कि ऐसे पाठ्यक्रम महिला विद्यार्थियों में लोकप्रिय सिद्ध होंगे। महिलाओं के लिए काम-धन्धों के कम मार्ग खुले होने के कारण वे जल्दी ही

अध्यापन वृत्ति अपनाने का निश्चय कर लेती हैं। यदि त्रिवर्षीय उपाधि पाठ्यक्रम के पहले वर्ष में एक ऐसा बुनियादी सामान्य पाठ्यक्रम रखा जाए जो शिक्षा-शास्त्र के अतिरिक्त किसी अन्य क्षेत्र की ओर भी अग्रसर करे तो वे ऐसे संवर्ती पाठ्यक्रमों का स्वागत करेंगी। हमारा सुझाव है कि हम इस उद्देश्य के लिए जो संस्थाएं पहले ही प्रस्तावित कर चुके हैं उनके अतिरिक्त संवर्ती पाठ्यक्रमों के समावेश के लिए महिलाओं के कुछ कला और विज्ञान कालेज चुन लिए जाने चाहिए और उन्हें इस उद्देश्य के लिए अतिरिक्त विशेष अनुदान दिए जाने चाहिए।

सामाजिक कार्य के पाठ्यक्रम कई विश्वविद्यालयों में हैं। यह ऐसा क्षेत्र है जिसमें सामाजिक कार्य के उन क्षेत्रों की मांगों की पूर्ति के लिए, जिनमें महिलाओं की सेवाओं की आवश्यकता होती है, विशेष पाठ्यक्रमों के रूपायन की जरूरत प्रतीत होती है। ज्यों-ज्यों महिलाओं के लिए अन्य मार्ग खुलने लगेंगे त्यों-त्यों इन क्षेत्रों में पाठ्यक्रम रूपायित करने पड़ेंगे।

तीसरी पंचवर्षीय योजना में अन्तर्राष्ट्रीय नारी संस्थान की स्थापना की व्यवस्था थी जो महिला उम्मीदवारों को संगठन, प्रशासन और प्रबन्ध कार्य में उच्चस्तरीय प्रशिक्षण दे ताकि वे दायित्व के पदों पर काम कर सकें। इन सरणियों में शिक्षित महिलाओं की आवश्यकता अनेक राष्ट्रीय योजनाओं और परियोजनाओं के कार्यान्वयन के लिए होगी, विशेष रूप से सामाजिक सेवाओं में स्वयंसेवी संगठनों की मांगें पूरी करने के लिए और औद्योगिक क्षेत्रों में महिलाओं को जो स्थान अधिकाधिक मिलते जा रहे हैं उन्हें ग्रहण करने के हेतु दक्ष व्यक्ति तैयार करने के लिए। अर्थाभाव के कारण राष्ट्रीय स्तर पर ऐसी संस्था की स्थापना अभी तक संभव नहीं हो सकी है। हमारी राय है कि तीन या चार ऐसे विश्वविद्यालयों को मिलकर, जिनमें उत्तम व्यापार-प्रशासन और प्रबन्ध-कार्य विभाग हों, ऐसे पक्ष स्थापित करने चाहिएं जो महिलाओं को उक्त उद्देश्य के लिए आवश्यक उच्चस्तरीय प्रशिक्षण दे सकें। इससे प्रशिक्षण का खर्च भी कम होगा और प्रशिक्षण अधिक प्रभावी और दक्ष भी होगा।

हम सुझाव देना चाहते हैं कि एक या दो विश्वविद्यालय महिलाओं की शिक्षा के सम्बन्ध में अनुसन्धान एकक स्थापित करें। ये एकक शिक्षित महिलाओं के अनुगामी अध्ययन के प्रश्न से जूझें, महिलाओं को उपलब्ध काम-धंधों के अवसरों के दृष्टिकोण से महिलाओं की शिक्षा पर विचार करें, और विशेषतः उच्चतर स्तर पर महिलाओं की शिक्षा का सम्यक् आयोजन निश्चित करें।

नए विश्वविद्यालय

12.35. पूर्व-स्नातक और स्नातकोत्तर स्तरों पर अनुमानित विस्तार के खयाल से कुछ नए विश्वविद्यालयों की स्थापना अवश्यंभावी है। यही नहीं, यह वांछनीय भी है, ताकि कुछ वर्तमान विश्वविद्यालयों का आकार घटाया जा सके। बड़े महानगरों में यह समस्या अभी से विकट रूप ले चुकी है और कुछ ही वर्षों के भीतर अन्य कई विश्वविद्यालयों में भी विकट हो जाएगी। बिस पर, हम सोचते हैं कि कुछ प्रसंगों में नए विश्वविद्यालयों की स्थापना द्वारा वर्तमान कालेजों का प्रशासनिक पुनस्समूहन आवश्यक हो जाएगा।

12.36. **कलकत्ता विश्वविद्यालय**—हम अपनी बात के उदाहरणस्वरूप भारत के प्राचीनतम विश्वविद्यालयों में से एक कलकत्ता विश्वविद्यालय की चर्चा कर सकते हैं जिसने देश में उच्चतर शिक्षा के विकास के लिए विगत काल में पुरोगामी और मूल्यवान सेवाएं की हैं, विशेषरूप से स्नातोत्तर अध्ययन और अनुसन्धान के क्षेत्र में। बहरहाल वर्तमान काल में इस विश्वविद्यालय में पूर्व-स्नातक संख्या तेजी से बढ़ती दिखाई पड़ती है जिसका संभालना मुश्किल हो रहा है। कलकत्ता नगर के आधा दर्जन कालेजों को लगभग 50,000 पूर्व-स्नातक विद्यार्थी संभालने पड़ते हैं। इनमें में बहुतों के पास तो अनिवार्य सुविधाओं का लेश भी नहीं है—न पर्याप्त अध्यापनकर्मी, न स्थान पुस्तकालय या प्रयोगशालाएं। कभी-कभी एक ही भवन में एक ही सामग्री से एकाधिक कालेज चलते हैं, यद्यपि अलग-अलग पारियों में, और प्रायः एक ही प्रबन्ध-निकाय उन्हें चलाता है यद्यपि उनकी संचालन परिषद् भिन्न होती है। अध्यापन और विद्या-दान अक्सर किसी कारखाने के-से परिवेश में किया जाता है; वहां अध्यापकों और विद्यार्थियों के बीच शायद ही किसी प्रकार के कोई निजी सम्पर्क हों। विश्वविद्यालय की शैक्षिक परिषदों की सदस्यता कुछ ऐसे भी जनों को मिली हुई है जो अपनी शैक्षिक उपलब्धियों और प्रशासनिक अनुभव के आधार पर विश्वविद्यालय के संचालन में रचनात्मक भूमिका निभाने की क्षमता नहीं रखते। परीक्षाओं के संचालन और परिणामों की घोषणा के बीच काल का काफी व्यवधान रहता है। इस विश्वविद्यालय को आमूल पुनर्गठन की आवश्यकता है। कुछ अग्रणी कालेजों को अध्ययन के पाठ्यक्रमों के संगठन में और परीक्षाओं के संचालन में स्वायत्तता दी दी जा सकती है। कालेजों की समस्याएं सुलझाने के लिए सम्बद्ध

कालेजों की परिषद् स्थापित करना लाभप्रद होगा। स्थिति की गम्भीरता देखते हुए यह परामर्श उपयोगी होगा कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग और भारत सरकार से सलाह-मशविरा करके राज्य की सरकार विश्वविद्यालय के मामलों की सूक्ष्म छानबीन करने के लिए एक छोटी-सी सक्षम परिषद् गठित करे ताकि वर्तमान जिस में से कोई रास्ता निकल सके।

12.37. **महानगरों के विश्वविद्यालय**—बम्बई, दिल्ली और मद्रास के नगरों में भी विद्यार्थियों की विशाल जनसंख्या केन्द्रित है, यद्यपि उनकी समस्याएं किंचित भिन्न पार्श्वभूमि में देखनी पड़ेंगी। हम दिल्ली के नगर में एक और विश्वविद्यालय की स्थापना के प्रस्ताव का स्वागत करते हैं और सिफ़ारिश करते हैं कि चौथी योजना के अन्त तक बम्बई, कलकत्ता और मद्रास के अन्य महानगरों में दो-दो विश्वविद्यालय हो जाएं जो कुछ हद तक एक-दूसरे के काम की पूर्ति कर सकें। यहीं नहीं, कुछ सुस्थापित कालेजों को स्वायत्तता के पद पर उत्तीर्ण किया जा सकता है जिन्हें शुरू में पूर्व-स्नातक स्तर पर उपाधि प्रदान करने का अधिकार दिया जा सकता है। नए विश्वविद्यालयों का गठन और उनके संगत ब्योरे स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार तय किए जाने चाहिए ताकि वे महानगर के नागरिक जीवन में जीवन्त और रचनात्मक भूमिका निभा सकें। हमारा सुझाव है कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग सम्बन्धित राज्य सरकारों से सलाह-मशविरा करके इन समस्याओं की जांच करे।

12.38. **राज्यों और संघीय क्षेत्रों के लिए अतिरिक्त विश्वविद्यालय**—अन्य राज्यों में भी अतिरिक्त विश्वविद्यालयों की जरूरत होगी। उदाहरणार्थ केरल राज्य में एक अतिरिक्त विश्वविद्यालय की प्रबल और संगत माँग उठती रही है। उड़ीसा राज्य का दावा भी संगत है। उत्तरी-पूर्वी क्षेत्र के समस्त पर्वतीय अंचल के लिए भी एक विश्वविद्यालय की स्थापना की मांग उठती रही है। यह प्रस्ताव विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा नियुक्त एक समिति द्वारा और शिक्षा मंत्रालय द्वारा अप्रैल, 1965 में स्थापित पर्वतीय अंचल के शिक्षात्मक विकास सम्बन्धी कार्य-दल द्वारा समर्थित हो चुका है। हम इस सिफ़ारिश से सहमत हैं। इस पर्वतीय अंचल के निवासी एक-सी आर्थिक असमर्थताओं के समभागी हैं और उनकी दूरी और अपेक्षया अगम्यता उनकी समस्याओं को विशेष रूप से कठिन बना देती है। इस अंचल की आर्थिक सम्भावनाओं के अन्वेषण की दिशा में अभी बहुत कुछ करना बाकी है। तिस पर, इन निवासियों की यह भावना भी सही है कि जब तक होनहार स्थानीय युवक आर्थिक और सामाजिक विकास के विभिन्न क्षेत्रों में नेतृत्व प्रदान करने के लिए प्रशिक्षित नहीं किए जाएंगे तब तक उनकी प्रगति अटकी रहेगी। वे समूचे भारत के जीवन में और पाण्डित्य एवं विद्या के वृहत्तर विश्व में अधिकाधिक समन्वित होने के लिए व्यग्र हैं। इस लक्ष्य के लिए, वे पहचान गए हैं कि एक विश्वविद्यालय की स्थापना उन मुख्य उपायों में से एक है जो इस अंचल के आर्थिक और सामाजिक विकास का पथ प्रशस्त करेंगे। उत्तरप्रदेश के पर्वतीय अंचल ने और उड़ीसा के आदिवासी भूखण्डों ने भी विश्वविद्यालयों की स्थापना की मांग की है।

12.39. **नए विश्वविद्यालय स्थापित करते समय बरती जाने वाली सावधानियां**—हम इस बात पर बल देना चाहते हैं कि कुछ हलकों में नए विश्वविद्यालयों की स्थापना पर प्रतिबन्ध लगाने का जो प्रस्ताव किया जा रहा है वह न तो वांछनीय है न व्यवहार्य। उसके बदले, आवश्यकता इस बात की है कि ऐसे अनिवार्य उपायों के ग्रहण पर ध्यान किया जाए जिनसे उनकी स्थापना असंदिग्ध रूप से स्तर में ठोस उन्नति और अनुसंधान के फल और स्तर को वृद्धि कर सके। यह संकेत कर देना भी जरूरी है कि नए विश्वविद्यालयों की स्थापना तभी संगत हो सकती है जब उसके लिए आवश्यक समर्थ जन और भौतिक सुविधाएं उपलब्ध हों और प्राप्त की जा सकें। यह संकेत करना भी जरूरी है कि ऐसी स्थिति उत्पन्न कर देना गलत होगा जिससे बौद्धिक प्रतिभा, धनराशि और प्रशासनिक योग्यता अनावश्यक रूप से बिखर जाए क्योंकि इस समय ये सब के सब विरल हैं। इस दृष्टिकोण से हम निम्नांकित सिफ़ारिशें करते हैं :

(1) जब तक विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की सहमति न प्राप्त हो जाए और जब तक धनराशि का उपयुक्त प्रावधान न कर दिया जाए तब तक कोई नया विश्वविद्यालय नहीं खोलना चाहिए।

(2) बहुत-से प्रसंगों में वास्तव में नया विश्वविद्यालय खोलने की शायद जरूरत न हो। किसी विश्वविद्यालय के तत्वावधान में एक या एकाधिक स्नातकोत्तर केन्द्रों का विकास करके उसी लक्ष्य की पूर्ति की जा सकती है। पर यह तभी हो सकता है जब कुछ स्थानीय कालेज स्नातकोत्तर अध्यापन की सुविधाएं प्रदान करने के लिए सहकारी प्रयास करें। यह व्यवस्था कुछ राज्यों में परखी जा रही है और उनके परिणाम उत्साहवर्धक हैं। विश्वविद्यालय ऐसे केन्द्रों को बल प्रदान करने में कई प्रकार से मदद दे सकता है। वह अपने अध्यापकों को इन केन्द्रों में नियत अवधियों के लिए काम करने के लिए भेज सकता है। इस काम के

लिए यदि आवश्यक हो तो वह अतिरिक्त कार्यकर्ताओं की मंजूरी दे सकता है। वह सारे कालेजों के स्नातकोत्तर विद्यार्थियों के लिए एक सामान्य पुस्तकालय स्थापित कर सकता है अथवा नई प्रयोगशालाओं का विस्तार कर सकता है। अपनी विद्यमान प्रयोगशालाओं का विस्तार कर सकता है। वह अतिरिक्त छात्रावास सुविधाओं के निर्माण में सहायता दे सकता है। संक्षेप में, इस प्रकार की व्यवस्था एक नए विश्वविद्यालय की स्थापना में आवश्यक सारे प्रशासनिक और अन्य खर्चों का समस्त भार सरकार पर डाले बिना ही विश्वविद्यालय के अधिकांश लाभ प्राप्त कर सकती है। इसके अलावा ऐसे कुछ केन्द्र कुछ काल के लिए विकासशील क्षेत्र की सारी मांगों को पूरा कर सकते हैं और इस प्रकार अन्ततः एक पूर्णाकार विश्वविद्यालय की स्थापना के लिए जमीन तैयार कर सकते हैं।

(3) हमारे अधिकांश विश्वविद्यालयों के पास बड़ी संख्या में सम्बद्ध कालेज हैं और आगे भी रहेंगे। हम सोचते हैं कि इस स्थिति में विभिन्न प्रकार के विश्वविद्यालय संगठन का कुछ परीक्षण करना लाभप्रद रहेगा। उदाहरणार्थ, वह संगठन श्रेष्ठ होगा जिसमें एक विश्वविद्यालय के पास अध्यापन विभागों की सशक्त धुरी के साथ-साथ समीपस्थ तीस-एक सम्बद्ध कालेज हों। ऐसी हालत में अध्यापन पक्ष और सम्बद्ध कालेजों में सम्यक सन्तुलन हो सकेगा और एक-दूसरे पर छाए बिना ही दोनों अपना-अपना विकास कर सकेंगे। अध्यापन विभागों की कसजोरी से या सम्बद्ध कालेजों की संख्या के घटाटोप से जब यह सन्तुलन बिगड़ जाता है तब दोनों पक्षों में तनाव उत्पन्न हो जाता है जो प्रगति का बाधक बन जाता है। ऐसी स्थिति का निवारण करना चाहिए।

(4) इस सम्बन्ध में एक प्रयोग की हम सिफ़ारिश करते हैं कि किसी एक ही राज्य के कुछ या सभी विश्वविद्यालयों को एक मंडल में सम्मिलित करके राज्य भर के सम्बद्ध कालेजों का संचालन करना चाहिए। इस संभावना का अन्वेषण विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को करना चाहिए।

(5) हर राज्य में कम से कम एक विश्वविद्यालय ऐसा हो जिसमें सम्बद्ध कालेज न हों—चाहे एकात्मक चाहे संघीय।

(6) हमने देखा है कि नए विश्वविद्यालयों की स्थापना के लिए जो तैयारी की जाती है वह अधिकतर ऊपरी और ढीली-ढाली ही होती है और अधिनियम के पारित होने एवं विद्यार्थियों को भरती करने के अर्थ में विश्वविद्यालय का काम चालू होने के बीच पर्याप्त समय नहीं रखा जाता। इस सम्बन्ध में यह प्रथा चालू करना वांछनीय होगा कि जिस स्थान में कम से कम कुछ समय तक कोई विश्वविद्यालय केन्द्र न चलता रहा हो वहां कोई नया विश्वविद्यालय स्थापित नहीं किया जाना चाहिए। साथ ही यह प्रथा भी चलानी चाहिए कि पहले उपकुलपति की नियुक्ति के और विश्वविद्यालय के काम के प्रत्यक्ष आरंभ के बीच 2-3 वर्ष का समय बीतने देना चाहिए। इस अवधि में उपकुलपति की सहायता के लिए एक योजना मंडल होना चाहिए जो विश्वविद्यालय के विकास से सम्बन्धित सारे मामलों पर विचार करे। इस सम्बन्ध में उस प्रवर्तनकारी मूल्यवान कार्य से उपयोगी दिशाएं मिल सकती हैं जो नए विश्वविद्यालय की स्थापना में ब्रिटेन में सन् 1947 से किया गया है।

(7) जो विश्वविद्यालय अब तक स्थापित हो चुके हैं और जो आगामी 20 वर्षों में स्थापित होंगे उनकी विशाल संख्या को देखते हुए विश्वविद्यालय सहकर्म और सहयोग की समस्याएं, जो विगत काल में प्रायः उपेक्षित रही हैं, अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाती हैं। राज्य के स्तर पर राज्य के सारे विश्वविद्यालयों का राज्य में सामाजिक-आर्थिक विकास की समस्याओं से सम्बन्धित अनुसंधान, प्रादेशिक भाषा का विकास, अथवा जन-शक्ति की आवश्यकताओं से उनके फल का सम्बन्ध, आदि विषयों में सहकर्म अविवार्य है। पर राष्ट्रीय स्तर पर यह सह-कर्म और भी अधिक महत्वपूर्ण है। विश्वविद्यालयों को सहकारी कार्यक्रमों में प्रादेशिक और राष्ट्रीय स्तरों पर परस्पर साथ देना चाहिए, और अपनी-अपनी उपलब्ध सुविधाओं से, विशेषतः अनुसंधान के कार्य में, परस्पर एक-दूसरे की पूर्ति करनी चाहिए। वस्तुतः शिक्षात्मक नीति का यह सतत प्रयास होना चाहिए कि सारे विश्वविद्यालयों को राष्ट्रीय संस्थाओं की भांति मान जाए और ऐसे सहयोगी और सहकारी कार्यक्रमों का गठन किया जाए जो राज्यों, प्रदेशों या भाषाओं की सीमाओं को काट सकें। ऐसे कार्यक्रमों का अग्रसरण विश्वविद्यालय अनुदान आयोग का विशेष दायित्व होना चाहिए।

12.40. **नए केन्द्रीय विश्वविद्यालय**—हमारे सामने रखे गए एक प्रस्ताव में यह सुझाव दिया गया कि हरेक राज्य में एक केन्द्रीय विश्वविद्यालय होना चाहिए। राज्य सरकारों और विश्वविद्यालयों से बातचीत करने पर हमने पाया कि इस प्रस्ताव पर दोनों ही तरह की प्रतिक्रियाएं हुई; कुछ राज्यों ने उसका स्वागत किया या तो इसलिए कि केन्द्रीय विश्वविद्यालय प्रतिष्ठा की संस्थाएं हैं या इसलिए कि इस प्रकार वे वित्तीय दायित्व से मुक्त हो

जाएंगे, पर बहुतों ने उसका विरोध किया। गंभीरता-पूर्वक विचार करने के उपरान्त हम दूसरे मत से सहमति व्यक्त करना चाहते हैं।

12.41. प्रस्ताव के समर्थन में दो प्रमुख तर्क उपस्थित किए गए हैं। एक तो यह कि इस तरह ये विश्वविद्यालय स्थानीय दाव-पेंच से बच जाएंगे जो उच्चतर शिक्षा के सम्यक विकास के प्रतिकूल हैं, और दूसरे यह कि इससे स्तर की उन्नति में सहायता मिलेगी। हमारा ख्याल है कि हम इनमें से कोई भी तर्क स्वीकार नहीं कर सकते। राज्य में एक ही विश्वविद्यालय नहीं वरन् प्रत्येक विश्वविद्यालय की स्थानीय प्रतिकूल दाव-पेंचों से रक्षा करनी है। यह तो मूलतः विश्वविद्यालय स्वायत्तता की समस्या है जिस पर अगले अध्याय में अधिक विस्तार से चर्चा की गई है। बहरहाल, हम यह संकेत करना चाहेंगे कि हमें उसकी रक्षा के लिए केन्द्रीयकरण के अलावा अन्य उपाय और मार्ग खोजने और अपनाने होंगे। न हम इस बात से ही सहमत हो सकते हैं कि केन्द्र की ओर से अधिक उदार अनुदान अनिवार्यतः स्तर की उन्नति कर पाएगा या कि यह केन्द्रीय विश्वविद्यालय अपने आप में एक बेहतर विश्वविद्यालय होगा।

12.42. इस प्रस्ताव का मुख्य उद्देश्य यह है कि राज्यों में स्थित कुछ चुने हुए विश्वविद्यालयों को केन्द्रीय धन-राशि का अधिक उदार प्रवाह मिलता रहे। हम इसकी जरूरत को स्वीकार करते हैं। पर इसके लिए प्रत्येक राज्य में एक-एक विशिष्ट विद्यालय को सदा-सर्वदा के लिए चुन लेने की बजाय यह ज्यादा अच्छा होगा कि गुणता और कृतित्व के आधार पर सारे राज्य-स्थित विश्वविद्यालयों को अधिक उदार केन्द्रीय सहायता उपलब्ध कराई जाए। एक सीमित रूप में यह अब भी हो रहा है और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग इन विश्वविद्यालयों को विकास-सम्बन्धी अनुदान देता रहता है। हमने सिफ़ारिश की है कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के हाथ में विशालतर साधन सौंपे जाएं ताकि विकास सम्बन्धी प्रयोजनों के लिए केन्द्रीय सहायता की राशि में वृद्धि की जा सके। साथ ही, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम के सुधार के विधेयक में यह प्रस्ताव भी किया गया है विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को यह अधिकार दिया जाए कि वह राज्यस्थित विश्वविद्यालयों को निर्वहण अनुदान भी दे सके। यदि इन प्रावधानों का पूरा-पूरा उपयोग किया गया तो इस प्रस्ताव के मुख्य उद्देश्य की और भी अच्छी पूर्ति हो सकेगी और उसकी हानियों से बचा जा सकेगा। इसके अतिरिक्त हमने अध्याय ग्यारह में प्रमुख विश्वविद्यालयों की स्थापना का जो प्रस्ताव किया है वह भी इस प्रस्ताव के उद्देश्यों की आंशिक पूर्ति करता है।

12.43. **विश्वविद्यालय माने गए**—पिछले कुछ वर्षों में दिल्ली की इण्डियन एग्रीकल्चरल रिसर्च इन्स्टीट्यूट और बंगलौर की इण्डियन इन्स्टीट्यूट ऑफ साइन्स जैसी हमारी कुछ उच्च स्तरीय संस्थाओं को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम की तीसरी धारा के अन्तर्गत विश्वविद्यालय मानकर विश्वविद्यालय प्रणाली के भीतर ले लिया गया है। हम इसे अभिनन्दनीय मानते हैं। हमारी शिक्षात्मक प्रणाली में ऐसी संस्थाओं की आवश्यकता है जिन्हें ऐसे शैक्षिक पद और विशेषाधिकार प्राप्त हों जो साधारणतः विश्वविद्यालयों की मिलते है पर जिनके कर्त्तव्य और क्षेत्र अधिक विशेषीकृत और सीमित हों। ऐसी संस्थाओं को अपने सीमित क्षेत्र में अध्यापन और अनुसंधान के उच्चतम स्तर का निर्वहण तो करना चाहिए पर यह आवश्यक नहीं है कि उनका संगठनात्मक स्वरूप किसी विश्वविद्यालय की अनुकृति हो। इस प्रसंग में स्वायत्त कालेजों से सम्बन्धित हमारी सिफ़ारिश कुछ काम की सिद्ध होगी। हम इस बात पर बल देना चाहेंगे कि संस्थाओं को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम के अन्तर्गत विश्वविद्यलय मानने में शिक्षात्मक मानदण्डों के प्रश्न पर अत्यंत सावधानी से ध्यान देना चाहिए। अधिनियम के अंतर्गत यह उपबंध प्रयोग और नवता को तो गुंजाइश देता है पर यह विश्वविद्यालयीय पद-गौरव प्राप्त करने के लिए सस्ती पगडंडी न बन जाए।

पाठ्यक्रमों का पुनर्गठन

12.44. अब हम उन सामान्य लीकों पर विचार करेंगे जिन पर चलकर उच्चतर शिक्षा के पाठ्यक्रमों को पुनर्गठन करना चाहिए। हम मुख्यतः उन पक्षों पर विचार करेंगे जो कला, वाणिज्य और विज्ञान के पाठ्यक्रमों पर सामान्य रूप से लागू होते हैं। कृषि, इन्जीनियरी और शिल्प-विज्ञान के पाठ्यक्रम अन्यत्र लिए गए हैं।[1]

12.45. **पहली उपाधि के लिए पाठ्यक्रम**—विद्यालय स्तर पर लिए गए विषयों और पहली उपाधि के लिए विकल्पित विषयों के बीच का सूत्र उतना कठोर नहीं होना चाहिए जितना इस समय है। यह सूत्र ही इस बात का कारण है कि विशेषीकरण अवांछनीय रूप से

1. अध्याय चौदह और पंद्रह।

जल्दी शुरू हो जाता है। उदाहरण के लिए इस समय यदि कोई विद्यार्थी एम० एस-सी० में भौतिकी लेना चाहता हैं तो उसे इसका संकल्प कक्षा नौ में ही कर लेना पड़ता है। हम सोचते हैं कि ऐसी कठोरता की कोई संगति नहीं है और कि किसी भी विद्यार्थी के लिए यह सम्भव होना चाहिए कि वह पहली उपाधि के स्तर पर ऐसे विषय भी ले सके जो उसने विद्यालय स्तर पर लिए हों या न लिए हों। इसी प्रकार पहली उपाधि के स्तर पर लिए जाने वाले विषयों में साधारणत: आज की अपेक्षा अधिक छूट होनी चाहिए, कला और विज्ञान दोनों में। विगत काल में जो विषय एक-दूसरे से बहुत दूर प्रतीत होते थे अब बहुत अधिक निकट दिखाई देते हैं और उच्चतर स्तरों पर बहुतेरी रूढ़ दीवारें टूटती जा रही हैं। अतएव, गणित और अर्थशास्त्र या दर्शन, भौतिकी या प्राणिविज्ञान के साथ रसायन, शिक्षा या अन्य किसी भी विषय के समुच्चय की अनुमति दी जा सकनी चाहिए। यह सच है कि सब मिलाकर अधिकांश विद्यार्थी उन्हीं विषयों का अध्ययन जारी रखेंगे जो उन्होंने विद्यालय स्तर पर कुछ गहराई से पढ़े थे और विषयों के अधिकांश समुच्चय रूढ़ लीकों पर ही चलेंगे। पर इस साधारण सिद्धान्त के कुछ अपवाद भी होंगे और शिक्षात्मक प्रणाली को उनके लिए प्रबन्ध करना चाहिए।

12.46. पूर्व-स्नातक स्तर पर सामान्य, विशेष और आनर्स के पाठ्यक्रमों का प्रश्न बड़े महत्व का है। हम उस पाठ्यक्रम को 'सामान्य' कहते हैं जिसमें विद्यार्थी लगभग समान गहराई के साथ तीन विषयों का अध्ययन करता है। 'विशेष' पाठ्यक्रम इससे भिन्न प्रकार का होगा और उसमें तीन विषयों के अध्यापन की व्यवस्था होगी जिनमें से एक विषय अन्य दो विषयों की अपेक्षा कहीं अधिक गहराई से पढ़ा जाएगा। 'आनर्स' पाठ्यक्रम इससे अधिक चुनौतीदार होगा और उसमें उच्चतर स्तर के अध्ययन की आवश्यकता होगी। सामान्य पाठ्यक्रम दो स्तर के होने चाहिए—पास और आनर्स। बहरहाल, विशेष पाठ्यक्रम केवल आनर्स स्तर पर ही दिए जाने चाहिए। अस्तु, साधनों की क़िफ़ायत के लिए हमारी सिफ़ारिश है कि

(1) जिन विश्वविद्यालयों के पास अत्याधिक अच्छी सुविधाएं हैं वे केवल विशेष पाठ्यक्रम और सामान्य (आनर्स) पाठ्यक्रम ही चलाएं। उनके लिए पास पाठ्यक्रम चलाने का अर्थ होगा उपलब्ध साधनों का अपर्याप्त उपयोग।

(2) सम्बद्ध कालेजों को साधारणत: यह विकल्प मिलना चाहिए कि वे अध्यापकों और सुविधाओं की उपलब्धि के अनुसार या तो पास और आनर्स दोनों में सामान्य पाठ्यक्रम चलाएं या विशेष पाठ्यक्रम चलाएं। बहरहाल खर्च में किफ़ायत करने के ख्याल से यह वांछनीय होगा कि सामान्य (आनर्स) और विशेष पाठ्यक्रमों के लिए आवश्यक न्यूनतम नामांकन निर्धारित कर दिया जाए।

12.47. **कला और विज्ञान में मास्टर की उपाधि के लिए पाठ्यक्रम**—मास्टर की उपाधि के लिए पाठ्यक्रमों के संगठन में लचीलेपन और नवता का समावेश करना अत्यंत आवश्यक है। सीमारेखा पर स्थिति विषय और अन्तर-विद्या वाले विषय तेजी से प्रमुख अध्ययन और अनुसंधान के क्षेत्र बनते जा रहे है। विश्वविद्यालय के जीवन में इन्हें सही रूप में प्रतिष्ठित करने के लिए यह आवश्यक हैं कि हमारे वर्तमान एक-विषय-पाठ्यक्रमों के अतिरिक्त ऐसे समुच्चय पाठ्यक्रमों की व्यवस्था की जाए, जैसे व्यवस्था एक प्रमुख विषय और एक या दो आनुषंगिक या सम्बन्धित विषय। उदाहरण के लिए, विश्वविद्यालय शिक्षा, समाजशास्त्र, दर्शन, मनोविज्ञान, अर्थशास्त्र, कानून और गणित आदि विषियों के बीच विभिन्न समुच्चय पाठ्यक्रमों की व्यवस्था कर सकते हैं। इसी प्रकार यह सम्भव होना चाहिए कि दो आधुनिक भारतीय भाषाओं को या भौतिकी और गणित, को, रसायन और गणित या भौतिकी को, या भौतिकी और प्राणिक-विज्ञानों को मिलाया जा सके। महत्व की बात यह है कि वर्तमान कट्टरता और एक रूपता को तोड़ा जाना चाहिए।

12.48. उच्चस्तर के विशेषीकरण या अनुसंधान की ओर ले जाने वाले मास्टर की उपाधि के पाठ्यक्रमों पर अनावश्यक बल नहीं देना चाहिए। पाठ्यक्रम का यह महत्वपूर्ण उद्देश्य तो हैं पर एकमात्र उद्देश्य नहीं। दो अन्य इतने ही संगत उद्देश्यों से पाठ्यक्रमों का रूपायन करना जरूरी हैं, अर्थात्, विद्यालयों के लिए अध्यापक तैयार करना, और उन विद्यार्थियों की मांगें पूरी करना जो इस स्तर पर भी विशद सम्बद्ध क्षेत्रों में रुचि रखते है और जो बाद में पी-एच० डी० स्तर पर विशेषीकरण का प्रयास करेंगे। अतएव स्नतकोत्तर पाठ्यचर्याएं इस प्रकार रची जानी चाहिए कि विद्यार्थी या तो आधुनिक विषयों के वैविध्य से परिचित हो या एक अथवा दो विशेष क्षेत्रों में सघन प्रशिक्षण प्राप्त करे। विशेषीकरण का प्रयास उन्हीं स्थानों में हो जहां सुविधाएं उपलब्ध हों। जहां वे उपलब्ध न हों, वहां विश्वविद्यालवों का लक्ष्य यह होना चाहिए कि एक

सामान्य बृहदाधारी पाठ्यक्रम का आयोजन किया जाए ताकि विद्यार्थी को पर्याप्त रूप से पूर्वस्नातक अध्यापन संभालने के लिए और ऐसी वृत्तियों में प्रवेश करने के लिए सुसज्जित किया जा सके जिनमें विषय के उच्च ज्ञान की आवश्यकता है। जब तक स्नातकोत्तर शिक्षा के पाठ्यक्रमों में उपस्थित वर्तमान कट्टरता नहीं घटायी जाती तब तक विद्यार्थियों की आवश्यकताओं, क्षमताओं और योग्यताओं के अनुकूल पर्याप्त व्यवस्था नहीं की जा सकती।

12.49. **अनुसंधान उपाधियां**—जैसा कि सर्वविदित है, कुछ विश्वविद्यालयों में और कुछ विषयों में अनुसंधान की उपाधियों के स्तर ऊंचे हैं और विदेशों से तुलनीय हैं। पर यही बात न तो सभी विश्वविद्यालयों के लिए कही जा सकती है न बहुत-से विषयों के लिए। विभिन्न विज्ञान विषयों में अनुसंधान-प्रसंगों का संग्रह जो अधिकांश विश्वविद्यालयों में पी-एच० डी० की उपाधि के लिए स्वीकृत कर लिया गया है, एक अजीबोगरीब भानमती का पिटारा है, और अगर उसमें से कोई अनायास किसी प्रसंग को उठाकर देखे तो हम पाएंगे कि वह अपने विषय-क्षेत्र और स्वरूप दोनों की दृष्टि से कम-से-कम दस या बीस वर्ष पिछड़ा हुआ है। इसका आंशिक कारण तो यह है कि अधिकांश विश्वविद्यालयों में विद्यार्थियों को समस्याएं **दे दी जाती है**, विद्यार्थी स्वयं अपनी योग्यता एवं कार्य के लिए उपलब्ध सुविधाओं के आधार पर उनका **चुनाव नहीं करते**। विद्यार्थियों द्वारा हल की जाने वाली समस्या का क्षेत्र और स्वरूप साधारणतः निर्देशक द्वारा निर्धारित कर दिया जाता है। यह सच है कि कम-से-कम कुछ विश्वविद्यालयों में विद्यार्थियों द्वारा ग्रहीत कुछ प्रसंग अद्यतन विज्ञान के अंग होते हैं। पर मोटे तौर पर, अन्वेषण के लिए ग्रहीत अधिकांश प्रसंग आधुनिक वस्तु या दृष्टिकोण का प्रतिबिम्ब प्रस्तुत नहीं करते। विद्यमान स्थिति की उन्नति की दृष्टि से हम निम्नांकित सिफ़ारशें करते हैं :

(1) पी-एच० डी० उपाधि के लिए विद्यार्थी को दो या तीन वर्ष तक कार्य करना चाहिए। इसका बुनियादी उद्देश्य है अनुसंधान विधितंत्र में प्रशिक्षण, वैज्ञानिक साहित्य का अभिज्ञान, समीक्षात्मक विश्लेषण करने की योजना, उपयुक्त निष्कर्ष निकालना और परिणामों को स्पष्ट, तर्कयुक्त एवं वैज्ञानिक रीति से उपस्थित करना तथा आलोचना करने एवं आलोचना स्वीकार करने के योग्य बनना। यह विद्यार्थी की वास्तविक अनुसंधान-चर्या का श्रीगणेश माना जाना चाहिए न कि उसका उत्कर्ष अथवा अन्त।

(2) बहुधा, मास्टर की उपाधि पाने वाले विद्यार्थियों की तैयारी पी-एच० डी०, उपाधि के योग्य अनुसंधान और अन्वेषण में लगने के लिए पर्याप्त नहीं होती। अतएव यह वांछनीय होगा कि पी-एच० डी० पाठ्यक्रमों में प्रवेश करने वाले प्रत्यार्थी अपना पहला वर्ष आंशिक रूप से सम्बन्धित विषय के उच्च प्रशिक्षण में बिताएं जिसमें वे उच्च प्रकृति के भाषणों और अभ्यासों में उपस्थित हों।

(3) पी-एच० डी० पाठ्यक्रमों के लिए विद्यार्थियों का चुनाव सावधानी से करना चाहिए। निर्देशकों और साथ ही सुविधाओं की क्षमता सावधानी से विहित की जानी चाहिए। किसी एक समय में एक अध्यापक द्वारा निर्देशित किए जाने वाले विद्यार्थियों की सीमा निर्धारित कर देनी चाहिए; और एक काल-सीमा होनी चाहिए जिसके भीतर विद्यार्थी से अपना शोध प्रबन्ध पेश कर देने की प्रत्याशा की जाए और इसी प्रकार उस पर विश्वविद्यालय द्वारा लिए जाने वाले निर्णय के लिए भी काल-सीमा होनी चाहिए।

(4) मूल्यांकन की पद्धतियों में सुधार होना चाहिए। जिस निर्देशक ने कार्य का निरीक्षण किया है उसे परीक्षकों के मण्डल का सदस्य तो होना चाहिए पर जब तक सारे परीक्षकों के प्रतिवेदन सर्वसम्मति से प्रस्ताव के पक्ष में न हों तब तक उपाधि प्रदान नहीं की जानी चाहिए। जहां तक संभव हो मूल्यांकन विषय-विशेष के भारतीय विशेषज्ञों द्वारा किया जाना चाहिए। उपाधि की सिफ़ारिश करने से पहले मौलिक परीक्षा अथवा शोध स्थापना की परिपुष्टि अनिवार्य मानी जानी चाहिए।

(5) समस्त पी-एच० डी० विद्यार्थियों के लिए एक अन्य विश्व भाषा, जैसे रूसी, जर्मन या फ्रेंच का अध्ययन अनिवार्य होना चाहिए। यह वांछनीय हो सकता है कि इसे मास्टर की उपाधि के कार्यक्रमों के लिए भी, कम-से-कम कुछ विषयों में, अनिवार्य करार किया जाए।

(6) यह भी वांछनीय होगा कि जिन विश्वविद्यालयों में अभी पी-एच० डी० से उच्चतर उपाधि नहीं है उनमें वह लागू की जाए। डाक्टर आफ साइन्स नामक यह उपाधि, जो उच्चतम उपाधि का प्रतिनिधित्व करती है, मुख्यतः अन्तर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक पत्रिकाओं में प्रकाशित मान्य गुण के अनुसंधान कार्य के आधार पर दी जानी चाहिए और इसका परीक्षण भारत और विदेश दोनों के वैज्ञानिकों के दल द्वारा किया जाना चाहिए। पी-एच० डी० और डी० एस-सी० की उपाधियों के प्रदान के बीच कम से कम पांच वर्षों का अन्तराल रखना वांछनीय होगा।

12.50. **अन्तर-विद्या अध्ययन**—जिन विश्वविद्यालयों में सम्बद्ध विषयों में पर्याप्त सुसज्जित विभाग हों उनमें अन्तर-विद्या अध्ययन को प्रोत्साहित करने के लिए विशेष प्रयत्न करना भी आवश्यक है। इसके लिए विषयों के नए समुच्चय, विभिन्न संस्थाओं के बीच सहयोग के नए उपाय, और कार्यकर्ताओं के नए साँचे आवश्यक होंगे। यह विस्तृत क्षेत्र है, पर दृष्टान्त के रूप में हम एक क्षेत्र का उल्लेख कर सकते हैं : शिक्षा का। इसकी समस्याओं का उनकी समस्त जटिलताओं के साथ अध्ययन करने के लिए शिक्षा, समाज शास्त्र, मनोविज्ञान, तुलनात्मक धर्म, अर्थशास्त्र, सरकारी प्रशासन और कानून के विभागों के बीच अन्तरविद्यात्मक दृष्टिकोण आवश्यक हैं। भौतिकी, रसायन अथवा इतिहास आदि विश्वविद्यालय का प्रत्येक विषय-विभाग अपने-अपने क्षेत्र में विद्यालय की पाठ्यचर्याओं की समस्याओं पर काम कर सकता है। पूर्व-स्नातक और स्नातकोत्तर, दोनों स्तरों पर शिक्षा के पाठ्यक्रम अन्य अधिकांश विषयों के साथ सम्मिलित किए जा सकते हैं। यही कारण है कि हमने पहले पहल चार या पांच बड़े विश्वविद्यालयों में शिक्षा के विद्यालयों की स्थापना पर बल दिया है। उनकी कार्य प्रणाली के अधिक ब्योरे अन्यत्र चर्चित है।[1]

12.51. इस लक्ष्य को अग्रसर करने के लिए कार्यकर्ताओं की एक विशाल योजना भी आवश्यक है। उदाहरण के लिए, जिस तरह किसी प्रशिक्षण कालेज के कार्यकर्ताओं में समाजशास्त्रियों का होना वांछनीय है उसी तरह समाजशास्त्र के विद्यालय के कार्यकर्त्ताओं में शिक्षा शास्त्रियों का होना अत्यन्त सहायक होगा। न्यूनाधिक रूप से यही परिस्थितियां अन्य विभागों पर भी लागू होती हैं।[2]

22.52. **सामाजिक विज्ञानों का अध्ययन**—मुख्यतः ऐतिहासिक कारणों से भारत के विश्वविद्यालयों और कालेजों में भाषाओं और मानविकी के अध्ययन पर अपना ध्यान केन्द्रित करने की प्रवृत्ति रही है और सामाजिक विज्ञानों का पूरा महत्व अभी पहचानना बाकी है। सामाजिक विज्ञानों एवं व्यवहार-परक विज्ञानों का अध्ययन, जो बहुधा मानविकी के वृहत्तर क्षेत्र में शामिल कर दिए जाते हैं, साधारणतः अल्प विकसित रहा है। अर्थशास्त्र ही एक ऐसा सामाजिक विज्ञान है जिस पर पर्याप्त ध्यान दिया गया है। निकटतर अतीत में राजनीतिक विज्ञान को अध्ययन के क्षेत्र के रूप में समाविष्ट किया गया है, या तो पृथक विभाग के तौर पर या इतिहास एवं अर्थशास्त्र के साथ-साथ। कुछ विश्वविद्यालयों में समाजशास्त्र और सामाजिक नृतत्वशास्त्र पढ़ाए जाते हैं और कुछ अन्य विश्वविद्यालयों में भूगोल को उच्च अध्ययन के विषय के रूप में समाविष्ट किया गया है। इस क्षेत्र में इधर कुछ वर्षों में जो विशेष और पृथक संस्थान स्थापित किए गए है वे सामाजिक विज्ञानों में रुचि की वृद्धि के साक्षी है। बहरहाल, अभी काफी काम करना बाकी है और सामाजिक विज्ञानों को मानविकी के साथ घनिष्ट रूप से संयुक्त करने, या सामाजिक विज्ञानों को मानविकी के वृहत्तर क्षेत्र में समाविष्ट करने के वर्तमान व्यवहार को ऐतिहासिक कारणों से अथवा इस आधार पर संगत ठहराया जा सकता है कि उन सबका एक ही सामान्य लक्ष्य है—मानव का अध्ययन और ज्ञान। पर अनुसन्धान के विशिष्ट लक्ष्यों और संलग्न विशेष विधियों के कारण सामाजिक विज्ञान मानविकी से अधिकाधिक दूर होते जा रहे हैं। निकट की उपलब्धियों और भावी संभावनाओं के कारण उन्हें विद्या के स्वायत्त समूह के रूप में सान्यता देना जरूरी है।

12.53. विगत चालीस वर्षों के दौरान, सामाजिक विज्ञानों में प्रकाण्ड परिवर्तन हुए हैं जो यद्यपि जन-साधारण के लिए प्राकृतिक विज्ञानों की अपेक्षा कम दर्शनीय और कम सुलभ हैं पर गहराई या विस्तार में उनसे कम नहीं हैं। सामाजिक विज्ञानों के प्रयोग से आधुनिक समाजों के आर्थिक और सामाजिक विकास में ही नहीं, शासनों की नीतियों में भी महत्वपूर्ण परिणाम घटे हैं। अतएव उन्हें

1. अध्याय चार।
2. प्राकृतिक विज्ञानों में अन्तर-विद्या अध्ययन की आवश्यकता पर अध्याय सोलह में चर्चा की गई है।

उच्चतर शिक्षा और अनुसन्धान में महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है। साथ ही, शासन, गैर-सरकारी संगठन और औद्योगिक, कृषि सम्बंधी या व्यापारिक प्रतिष्ठानों से उन्हें प्रबल प्रोत्साहन और वित्तीय सहायता मिलती है। आजकल कम-से-कम उच्चतर माध्यमिक शिक्षा की पाठ्यचर्या में सामाजिक विज्ञानों और उनकी विधियों के प्रारम्भिक तत्वों को समाविष्ट करने की प्रवृत्ति मिलती है।

12.54. हमें मानना पड़ेगा कि कतिपय विद्वानों और संस्थाओं की विलक्षण उपलब्धियों के बावजूद सामाजिक विज्ञान भारत में अभी तक अपना वह उचित स्थान और प्रतिष्ठा नहीं पा सके हैं जो उन्हें अपने विशिष्ट मूल्य के ही कारण नहीं, वरन् भारतीय समाज और भारतीय शिक्षा में उनके प्रत्यक्ष उपयोग के कारण मिलनी चाहिए :

हमारी सिफ़ारिश है कि अन्य कारणों के अतिरिक्त निम्नांकित कारणों से भारतीय विश्वविद्यालयों और अनुसंधान संस्थानों में सामाजिक विज्ञानों को महत्वपूर्ण स्थान देना चाहिए :

(1) प्राकृतिक विज्ञानों के साथ-साथ, उतनी दूर तक चाहे न सही, वैज्ञानिक दृष्टिकोण उत्पन्न करने के लिए सामाजिक विज्ञानों का उपयोग किया जा सकता है। समाजशास्त्र, सामाजिक मनोविज्ञान, अर्थशास्त्र और अन्य सामाजिक विज्ञानों का अध्ययन और अनुसन्धान सांख्यिकी और माप के अन्य यन्त्रों की सी सूक्ष्म विधियों का प्रयोग करने के कारण विद्यार्थियों और अध्यापकों दोनों में परिशुद्धता, आलोचनात्मक विश्लेषण, अन्वेषण और प्रयोग करने की वह भावना विकसित कर सकता है जिसका प्रोत्साहन और उन्नयन किसी भी उत्तम शिक्षात्मक प्रक्रिया का कर्तव्य है।

(2) सामाजिक विज्ञान आधुनिक समाज की परिस्थितियों और आवश्यकताओं के अध्ययन के अनिवार्य साधन हैं और उनकी विधियों और परिणामों के सम्यक उपयोग के बिना आर्थिक, सामाजिक, वित्तीय और जनालेखीय विकासों का या जनशक्ति की आवश्यकताओं का नियंत्रण असम्भव है। सम्यक आयोजन के लिए जो सभी देशों के लिए महत्वपूर्ण है पर भारत के लिए विशेष रूप से, यह आवश्यक है कि लोग और भी बड़ी संख्या में सामाजिक विज्ञानों का विस्तृत ज्ञान और प्रशिक्षण प्राप्त करें।

(3) ज्यों-ज्यों आधुनिक समाज अधिकाधिक उद्योग प्रधान होते जाते हैं त्यों-त्यों उन्हें इंजीनीयरी, तकनीज्ञनों और कुशल कारीगरों की ही नहीं, सुशिक्षित और प्रशिक्षित जनों की भी विशाल संख्या की आवश्यकता होती है ताकि वे शिक्षा, सरकारी प्रशासन, गैर-सरकारी प्रबन्ध, वाणिज्य, वितरण, संचारण, सूचना-सेवा आदि आदि के उस क्षेत्र को चला सकें जो बहुधा 'अर्थव्यवस्था का तीसरा क्षेत्र' कहलाता है। इन क्षेत्रों के विशेषज्ञों को सामाजिक विज्ञानों की उत्तम शिक्षा देना जरूरी है।

12.55. सामाजिक विज्ञानों के मन्द विकास के लिए कभी-कभी विज्ञान-शिक्षा पर हाल में दिए जाने वाले बल को दोषी ठहराया गया है। यह सर्वथा सही नहीं है। जैसा कि हमने इस रिपोर्ट में बल देकर कहा है, यह अत्यन्त आवश्यक है और इसे चालू रखना पड़ेगा। पर हमारे ख्याल से विश्वविद्यालय नामांकन का केवल प्रायः 30 प्रतिशत विशुद्ध विज्ञान में कार्य करेगा और इतना ही अनुपात इन्जीनियरी या चिकित्सा जैसे वृत्तिक पाठ्यक्रमों के रूप में अनुप्रयुक्त विज्ञान का। विज्ञान के नामांकनों में अति विस्तार की वर्तमान प्रवृत्ति (जिसके फलस्वरूप स्तर पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है) घटानी होगी। हमारे ख्याल से सामाजिक विज्ञानों का अध्ययन करने वाले विद्यार्थियों का अनुपात प्रायः 30 प्रतिशत हो सकता है, अर्थात्, लगभग उतना ही जितना प्राकृतिक विज्ञान पढ़ने वाले विद्यार्थियों का। इसके अलावा हमारे विचार में इन विद्याओं के बीच कोई लौह दीवार नहीं बनाई जा सकती। भविष्य में उच्चतर शिक्षा की प्रवृत्ति सबके लिए संतुलित शिक्षा प्रदान करने की ओर उन्मुख होगी, अर्थात्, यद्यपि भाषाओं और मानविकी सामाजिक विज्ञान और प्राकृतिक विज्ञान के तीन प्रमुख क्षेत्रों में से किसी एक में अपनी रुचि के अनुसार विशेष ज्ञान प्राप्त कर सकेगा पर उसे अन्य दो क्षेत्रों में भी थोड़ी-बहुत गति प्राप्त करनी होगी।

12.56. यदि सामाजिक विज्ञानों को बढ़ाना है तो दो प्रमुख कठिनाइयों पर विजय पानी होगी, अर्थात्, उन्हें पर्याप्त वित्तीय सहारा मिलना चाहिए और उपलब्ध प्रतिभा का सम्यक भाग उनकी ओर आकृष्ट होना चाहिए।[1] इस दृष्टिकोण से हमारी सिफारिश है :

1. आजकल प्रतिभावान विद्यार्थियों में से अधिकांश सर्वाधिक काम्यवृत्तियों, इन्जीनियरी और चिकित्सा, में जा रहे हैं और हमें कई विश्वविद्यालयों में बताया गया कि सामाजिक विज्ञान के पाठ्कमों में विद्यार्थियों का स्तर गिरता जा रहा है।

— सामाजिक विज्ञान पाठ्यक्रमों में छात्रवृत्तियों की उपयुक्त व्यवस्था होनी चाहिए;

— पहली उपाधि के स्तर पर विषयों का वरण लचीला होना चाहिए और विद्यार्थियों के लिए यह सम्भव होना चाहिए कि वे एक सामाजिक विज्ञान का अध्ययन किसी अन्य विषय-वर्ग के साथ कर सकें।

— सामाजिक विज्ञानों के विकास के लिए विश्व-विद्यालयों को उपलब्ध वित्तीय सहायता में यथेष्ट वृद्धि होनी चाहिए; और

— बहुत-से विश्वविद्यालयों में सामाजिक विज्ञानों के सहायक समूहों के लिए उच्च स्तरीय विद्यालयों या उच्च अध्ययन केन्द्रों का विकास करना चाहिए।

12.57. **क्षेत्र अध्ययन**—देश में उपयुक्त केन्द्रों के क्षेत्रीय अध्ययन के क्रमशः विस्तारशील कार्यक्रम के विकास के महत्व और मूल्य की चेतना बढ़ती जा रही है। भारत के बहुत से देशों के साथ घनिष्ट सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक सम्बन्ध हैं। और बड़ी संख्या में ऐसे भारतीय विद्वानों की सख्त जरूरत है जिन्हें विश्व के विशिष्ट अंचलों के जीवन, संस्थानों, संस्कृति और भाषाओं का ज्ञान हो, विशेष रूप से उन क्षेत्रों का जिनसे भारत का सीधा और अधिक आत्मीय सम्पर्क है। नई दिल्ली में सोवियत संघ सम्बन्धी अध्ययन के प्रोत्साहन के विचार से इन्स्टीट्यूट आफ रशियन स्टडीज की स्थापना इस क्षेत्र में एक अभिनन्दनीय कदम है। हैदराबाद के एमेरिकन स्टडीज रिसर्च सेण्टर में अमरीकी जीवन और सांस्कृतिक अध्ययन की सुविधाएं दी जाती हैं। नई दिल्ली की इण्डियन स्कूल आफ इन्टरनेशनल स्टडीज एक प्रवर्तक संस्था है जिसने विविध क्षेत्रों के अध्ययन के सम्बन्ध में अनेक पाठ्यक्रम चालू किये है। चीनी अध्ययन का विकास दिल्ली विश्वविद्यालय में किया जा रहा है। बहरहाल, अभी पूर्व-एशिया, दक्षिण और दक्षिण-पूर्व एशिया, पश्चिम एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमरीका जैसे बहुत-से क्षेत्र और भारत के ऐसे निकट पड़ौसी देश हैं जिन्हें हमारे शैक्षिक कार्यक्रमों में अब तक से अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए।

सक्षम कार्यकर्त्ताओं एवं विदेशी मुद्रा आदि के रूप में उपलब्ध साधनों के सीमित होने के कारण हमारा प्रयास यह होना चाहिए कि हम कतिपय चुने हुए विश्वविद्यालयों और संस्थानों में क्षेत्रीय अध्ययनों का महत्वपूर्ण और प्रभावी कार्यक्रम विकसित करें। ऐसे कार्यक्रम के लिए सम्बन्धित क्षेत्रों की भाषाओं के गहन पाठ्यक्रमों की और गहन अध्ययन के लिए चुने गए विभिन्न क्षेत्रों के सन्दर्भ में कतिपय सामाजिक विज्ञान विषयों में प्रश्नपत्रों के वैकल्पिक समूहों के समावेश की आवश्यकता होगी। कार्यक्रम के लिए घनिष्ट अन्तर-विद्या सहयोग भी आवश्यक होगा। सही क्षमताओं वाले विद्वानों को समय-समय पर विशिष्ट क्षेत्रों अथवा अंचलों की यात्राओं के लिए चुनना पड़ सकता है। यह भी जरूरी हो सकता है कि अल्प अवधियों के लिए विदेशों से चुने हुए अध्यापकों या विद्वानों को आमंत्रित किया जाए।

हमें ज्ञात हुआ है कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने विश्वविद्यालयों में क्षेत्रीय अध्ययनों के कार्यक्रम को विकसित करने के लिए एक स्थायी परामर्श समिति नियुक्त की है। हम आशा करते है कि इस महत्वपूर्ण कार्यक्रम को प्रोत्साहित करने के लिए सत्वर कदम उठाये जायेंगे। यह ऐसी आवश्यकता है जिसके हल में वर्तमान परिस्थितियों में देर नहीं होनी चाहिए।

12.58. **मानविकी का अध्ययन**—मानविकी को सबल बनाने की आवश्यकता पर जितना बल दिया जाए, थोड़ा है। इतिहास के दौरान, भारत की सभ्यता और संस्कृति ने मानवता की चिन्तन में ज्वलंत योगदान किया है और हमारे समाज के मूल्य एवं हमारे राष्ट्रीय चरित्र के उत्कृष्ट तत्व इन क्षेत्रों में किए गए सर्जनात्मक अध्ययनों में निःसृत है। यदि विज्ञान और शिल्पविज्ञान की वर्तमान भोंक में मानविकी, जो पहले से ही प्रतिभाएं एवं साधनों के अभाव से पीड़ित है, उपेक्षित हो गई तो वह दिन-विषाद का होगा। मानवतावादी अध्ययन में वित्तीय साधनों का उतना महत्व नहीं है जितना विद्वानों और अध्यापकों के गुण का और उनको प्रेरित करने वाली भावना का। मानविकी के प्रति ऐसी भावना का पोषण करना आवश्यक है। विद्या के इन क्षेत्रों की श्रेष्ठ प्रतिभा को वही मान्यता और प्रोत्साहन मिलना चाहिए जो वैज्ञानिकों और शिल्प-वैज्ञानिकों को।[1]

1. **उपयुक्त विश्वविद्यालयों में इन विद्याओं के उच्च केन्द्र विकसत किए जाने चाहिए। प्राचीन भाषाओं और साहित्यों के अध्वयन को प्रोत्साहित करसे पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए, और संस्कृत, अरबी एवं फारसी के अध्ययन में उपलब्ध अतीत के उच्चस्तर की रक्षा और वृद्धि करसी चाहिए। ऐतिहासिक अध्ययन के गुरुतर महत्व को रेखांकित करना जरूरी है; आज के युग में राष्ट्रीय एकीकरण और नवीन मानव मूल्यों के लिए प्रयत्नशील स्वतन्त्र और लोकतन्त्रीव समाज इतिहास की संगति की उपेक्षा नहीं कर सकता।**

12.59. विज्ञान शिक्षा के कार्यक्रम की चर्चा करते समय हमने अग्रणी देशों के विकास पर निर्भर रहने की अनिवार्य विवशता का उल्लेख किया है जिनकी हम दृष्ट भविष्य में होड़ नहीं कर पाएंगे। सन्तुलन बनाए रखने के लिए, हम यह सोचना चाहते हैं कि हमारे विद्वान सामाजिक और शिक्षाशास्त्रीय विज्ञान एवं मानविकी अध्ययन के क्षेत्रों में मानव ज्ञान-राशि की महत्वपूर्ण वृद्धि करेंगे क्योंकि इन क्षेत्रों में हमारी प्राचीन परम्पराएं और सामाजिक विकास द्वारा उपस्थित चुनौतियां सर्जनात्मक कार्य के लिए अद्वितीय अवसर प्रदान करती हैं।

शिक्षा विषयक अनुसन्धान

12.60. हम पहले ही सिफ़ारिश कर चुके हैं कि विश्वविद्यालय स्तर पर शिक्षा को पृथक् विद्या के रूप में माना जाना चाहिए।[1] यहां हम क्षिक्षा-विषयक अनुसन्धान के विकास से सम्बन्धित कुछ समस्याओं पर विचार करेंगे।

12.61. शिक्षा-विषयक अनुसन्धान अब भी शैशवावस्था में हैं। उसकी मात्रा अल्प हैं और उसकी गुणता मध्यम या अधम। इसके अनेक कारण हैं। इस अनुसन्धान का अधिकांश प्रशिक्षण कालेजों में आबद्ध है जिनके पास अनुसंधान की बहुत अपर्याप्त सुविधाएं हैं और उसका निर्देशन करने के लिए सक्षम जन अत्यल्प। अपने तईं स्वयं अनुसंधान करने वाले विशेषीकृत संस्थानों के अभाव से अनुसंधान का अधिकांश एम० एड० और पी-एच० डी० की विश्वविद्यालयीय उपाधियों के विद्यार्थियों द्वारा होता है। एम० एड० के शोध-निबंधों में कदाचित ही अनुसन्धान कहलाने की योग्यता होती हो, यद्यपि अनुसन्धान विधियों में विद्यार्थियों को प्रशिक्षण का अभ्यास कराने में उनका उपयोगी स्थान हैं। पी-एच० डी० स्तर पर यह कार्यक्रम विधि-तंत्र में कमजोर रहा है और इस बात से भी उसे हानि पहुंची है कि उसमें केवल वे ही विद्यार्थी दाखिल हो सकते हैं जिन्होंने बी० टी० या एम० एड० कर लिया है। शिक्षा में अनुसन्धान के विद्यार्थियों को बहुत कम छात्रवृत्तियां उपलब्ध हैं। फिर, अभी तक जो अनुसन्धान हुआ है उसका काफी भाग मानसिक परीक्षण के क्षेत्र में हुआ है और दूसरे क्षेत्रों पर बहुत थोड़ा ध्यान दिया जा सका है। प्रलेख-कार्य, संगठन, परामर्श आदि सहायक सेवाओं का विकास नहीं हो सका है। देश में एक भी ऐसी पत्रिका नहीं है जो शिक्षा-विषयक अनुसन्धान में संलग्न हो। कोई केन्द्रीय सूचना-वितरण केन्द्र नहीं बनाया गया है और बहुत से काम की द्विरावृत्ति की गई है। जो थोड़ा-बहुत अनुसन्धान हुआ भी है वह अधिकांश में अलमारियों में बन्द रह गया हैं और प्रशासन ने नीतियों के रूपायन में उसके निष्कर्षों का उपयोग नहीं किया है। शिक्षात्मक अनुसन्धान पर पांच लाख रुपये प्रतिवर्ष से भी कम का अनुमावित कुल व्यय नगण्य ही कहलाएगा।

12.62. यदि इस तस्वीर को बदलना है तो शिक्षा विषयक अनुसन्धान का विकास करने के लिए फौरन कदम उठाने पड़ेंगे और उसे शिक्षा-नीतियों के बनाने एवं शिक्षा के सधार के साथ प्रभावी ढंग से जोड़ना होगा। इस दृष्टिकोण से हम विम्नांकित सिफ़ारिशें करते हैं :

(1) राष्ट्रीय शिक्षा अनुसन्धान तथा प्रशिक्षण परिषद् (रा० शि० अ० प्र० प०) में शिक्षात्मक अनुसन्धान से संबंधित एक प्रलेख-केन्द्र और एक राष्ट्रीय सूचना-वितरण केन्द्र विकसित किया जाए। शिक्षात्मक अनुसन्धान में संलग्न एक पत्रिका चालू करने के परिषद के निर्णय का हम स्वागत करते हैं। इस केन्द्र के सहयोग से समय-समय पर अनुसन्धान कर्मियों के सम्मेलन आयोजित करने के लिए कदम उठाए जाने चाहिए ताकि उनका एकान्तवास भंग हो और शिक्षा-विषयक अनुसन्धान वृत्ति प्रतिष्ठा अर्जित कर सके।

(2) शिक्षा विषयक अनुसंधान को दलों में और अन्तर-विद्या क्षेत्रों में विकसित होना है। यद्यपि सभी प्रशिक्षण कालेजों को कुछ-न-कुछ अनुसन्धान करना ही चाहिए, तथापि शिक्षात्मक अनुसंधान को प्रशिक्षण कालेजों तक ही सीमित कर देने से उसकी वृद्धि में रुकावट आई है। हम पहले ही सिफ़ारिश कर चुके हैं कि चार या पांच विश्वविद्यालयों में शिक्षा के संस्थान स्थापित होने चाहिए।[2] इन संस्थानों का यह विशेष उत्तरदायित्व होगा कि अन्य विभागों के सहयोग से वे बड़े पैमाने पर शिक्षा-विषयक अनुसन्धान का विकास करें। अन्य विश्वविद्यालय भी अपने-अपने ढंग से विभिन्न परियोजनाएं हाथ में ले सकते हैं। हमने पाया है कि साधारणतः विश्वविद्यालय शिक्षात्मक समस्याओं के अध्ययन में, यहां तक कि उच्चतर शिक्षा से संबंधित समस्याओं के अध्ययन में भी, बहुत कम रुचि

1. अध्याय चार।
2. अध्याय चार।

ले पाए हैं। उदाहरण के लिए, समाजशास्त्र का विभाग अपने विद्यार्थी-वर्ग का सामाजिक-आर्थिक अध्ययन कर सकता है, गणित और सांख्यिकी का विभाग उनके पाठ्यक्रमों में निहित व्यर्थता और अगति का अध्ययन कर सकता है। पर कुल मिलाकर ऐसा किया नहीं जाता। हमारी सिफ़ारिश है कि विश्वविद्यालयों को अपने कार्य से संबंधित शिक्षात्मक समस्याओं में अनुसंधान चलाने का भार ग्रहण करना चाहिए और जहां-जहां संभव हो, आस-पड़ौस के माध्यमिक और प्रारंभिक विद्यालयों की समस्याओं में भी। उनके अलावा रा० शि० अ० प्र० प० और शिक्षा के राज्य-स्थित संस्थान जैसी विशिष्ट संस्थाओं को अनुसंधान के बृहद् कार्यक्रम विकसित करने होंगे।

(3) यह वांछनीय है कि शिक्षात्मक चिन्तन और अनुसन्धान के उन्नयन के लिए राष्ट्रीय विज्ञान संस्थान के ही अनुरूप प्रख्यात शिक्षाशास्त्रियों के समावेश से एक राष्ट्रीय शिक्षा अकादेमी स्थापित की जाए। यह मूलतः एक गैर-सरकारी वृत्तिक संस्था हो। पर इसे भारत सरकार से पर्याप्त वित्तीय सहारा मिलना चाहिए।

(4) यद्यपि रा० शि० अ० प्र० प० को निजी तौर पर एवं राज्य-स्थित शिक्षा संस्थानों के सहयोग से अनुसंधान करना चाहिए और एक केन्द्रीय सूचना-वितरण-केन्द्र चलाना चाहिए, तथापि हम इसकी सलाह नहीं देते कि उसे अन्य संस्थाओं को शिक्षा विषयक अनुसन्धान के लिए अनुदान वितरण करने का दायित्व सौंपा जाए, विशेषरूप से इसलिए क्योंकि हम आशा करते हैं कि विश्वविद्यालय और अन्य संस्थान इस क्षेत्र में बड़े पैमाने पर भाग लेंगे। मूलतः यह दायित्व शिक्षा मंत्रालय का है जो उसे ओढ़ लेना चाहिए। हमारी सिफ़ारिश है कि इस उद्देश्य से शिक्षा मंत्रालय में एक सशक्त शिक्षा अनुसन्धान परिषद् स्थापित की जाए। इसकी अध्यक्षता किसी विख्यात वृत्तिक शिक्षा-शास्त्री को करनी चाहिए और इसमें विश्वविद्यालयों, प्रशिक्षण कालेजों, रा० शि० अ० प्र० प०, राज्य-स्थित शिक्षा संस्थान और शिक्षा विषयक अनुसन्धान में रुचि लेने वाले संस्थानों के प्रतिनिधि और कतिपय शिक्षा-शास्त्री, शिक्षा प्रशासक एवं परियोजक समाविष्ट होने चाहिए। इसका प्रमुख कार्य यह होगा कि वह शिक्षा विषयक अनुसन्धान के लिए सौंपे गए धन-साधन का वितरण करे और सर्व सम्बद्धों की जानकारी के लिए समय-समय पर अपने विकास की समीक्षाएं प्रकाशित करे। शिक्षा मंत्रालय में इसका अपना विभाग होना चाहिए।

(5) ज्यों-ज्यों समय बीतेगा, हमारी प्रत्याशा है कि शिक्षा-विषयक अनुसन्धान अधिकाधिक परिष्कृत होता जाएगा। अतएव अनुसन्धान कार्य के लिए उत्तम विशेषीकृत प्रशिक्षण का और विवरण की तैयारी, सांख्यिकीय विश्लेषण और परामर्श की सेवाओं की व्यवस्था करने की तत्काल आवश्यकता है।

(6) राष्ट्रीय स्तर पर रा० शि० अ० प्र० प० की राज्य-स्तर पर राज्यस्थित शिक्षा संस्थानों का यह दायित्व होगा कि वे चालू विद्यालय रीतियों और शिक्षा विषयक अनुसन्धान के बीच की गहरी खाई को पाटें। उच्चतर शिक्षा के क्षेत्र में ऐसी ही भूमिका वि० अ० आ० को निभानी होगी। यह उनका काम है कि वे विश्वविद्यालयों, राज्यों के शिक्षा-विभागों, विद्यालयों और अध्यापकों के संमुख शिक्षा में नए विकास और शिक्षा विषयक अनुसन्धान के निष्कर्ष एवं अध्यापन और विद्या-ग्रहण एवं शिक्षा के संगठन में उनके महत्व को लाकर रखें।

12.63. शिक्षा विषयक अनुसन्धान में प्राथमिकताओं की समस्या जटिल है। इस रिपोर्ट के विभिन्न खण्डों में ऐसी कई समस्याओं का संकेत किया गया है जिन पर प्राथमिकता के आधार पर अनुसन्धान की आवश्यकता है। बहरहाल, यह बात लक्ष करने की है कि शिक्षा-आयोजक अथवा प्रशिक्षक की दृष्टि से राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षा विषयक अनुसन्धान को प्राथमिकताएं निम्नतर स्तरों पर अथवा अध्यापकों के दृष्टिकोण से आवश्यक प्राथमिकताओं से बहुत भिन्न हो सकती हैं। अतएव, हम यह नहीं सोचते कि प्राथमिकताओं का कोई पक्का ढांचा तैयार करने की जरूरत है। जो अधिकरण अनुसन्धान अनुदान देते हों या अनुसंधान संचालित करते हों उन्हीं पर यह भार छोड़ देना चाहिए कि वे स्वयं उन महत्वपूर्ण समस्याओं का निर्णय करें जिन पर तत्काल ध्यान देना आवश्यक है। ये निर्णय राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षा मंत्रालय-स्थित शिक्षा

अनुसन्धान परिषद् द्वारा, राज्य स्तर पर (राज्य स्थित शिक्षा संस्थानों के परामर्श से) राज्यों के शिक्षा-विभागों द्वारा और अनुसन्धान में रुचि रखने वाले विश्वविद्यालयों, प्रशिक्षण कालेजों और अध्यापकों द्वारा लिए जाएगे। इस मामले में पहल के विकेन्द्रीकरण पर बल देना होगा।

12.64. शिक्षा विषयक अनुसन्धान पर होने वाले कल खर्चे को काफी बढ़ाना होगा क्योंकि हमारा लक्ष्य यह होना चाहिए कि शिक्षा पर राजकीय खर्च का लगभग एक प्रतिशत अनुसन्धान पर खर्च हो। यह एक संकेत मात्र है क्योंकि उपयोगी रूप में इतना पुष्कल व्यय करने में कई वर्ष लगेंगे। आसन्न भविष्य के लिए यह बात ध्यान में रखना महत्वपूर्ण है कि वित्तीय सहारे की कमी के कारण शिक्षा विषयक अनुसन्धान की कोई भी उपयोगी परियोजना टाली नहीं जानी चाहिए।

12.65. यह आवश्यक है कि इस क्षेत्र में काम करने वाले शिक्षा विभागों के अधिकारियों को प्रशिक्षण कालेजों और विश्वविद्यालयों के अनुसन्धान कर्मियों से मिलाया जाए। उदाहरण के लिए, हमने जिन शिक्षा विद्यालयों की सिफारिश की है उनका यह काम होना चाहिए कि वे चुने हुए जिला शिक्षा अधिकारियों, सभी स्तरों के विद्यालयों के प्रधान अध्यापकों और अध्यापक-शिक्षकों के वार्षिक सम्मेलन करें। जहां तक संभव हो ये सम्मेलन अन्तर-राज्यीय स्वरूप के होने चाहिए। इन सम्मेलनों में एक दुतरफा प्रक्रिया चालू होगी। शिक्षा विभाग के क्षेत्र-अधिकारी शिक्षा विभाग के कार्यकर्ताओं के सम्मुख वे व्यावहारिक समस्याएं उपस्थित कर सकते हैं जिनका वे सामना कर रहे हों और जिनका उन्हें कोई समाधान न मिलता हो। अपनी ओर से शिक्षा-संस्थानों के अध्यापक विभाग के क्षेत्र-अधिकारियों को अनुसन्धान के नवीनतम निष्कर्षों से अवगत करा सकते हैं, भावी अध्ययन एवं अनवेषणों के लिए उनकी समस्याएं हाथ में ले सकते हैं। यदि हम यह चाहते हों कि शिक्षा के विकास में जो अन-गिनती समस्याएं हमारे सामने खड़ी हुई हैं उनका तेजी से सन्तोषजनक हल मिले तो हमें अनुसन्धान के साथ क्षेत्र कार्य के इस फलवान संयोग पर भविष्य में बहुत बल देना होगा।

तेरहवां अध्याय

विश्वविद्यालयों का अभिशासन

एक. विश्वविद्यालय स्वायत्तता—(3) **विश्वविद्यालय स्वायत्तता की अवधारणा;** (9) **विश्वविद्यालय की आंतरिक स्वायत्तता;** (10) **विश्वविद्यालय तंत्र के भीतर स्वायत्तता;** (11) **बाहरी एजेंसियों के संदर्भ में स्वायत्तता।**

दो. विश्वविद्यालयों की वित्तव्यवस्था—(18) **विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से राज्यीय विश्वविद्यालयों की अनुदान;** (22) **राज्य सरकारों से राज्यीय विश्वविद्यालयों को सहायक अनुदान;** (27) **विश्वविद्यालयों का वित्तीय उत्तरदायित्व।**

तीन. उपकुलपति का योगदान और उसकी नियुक्ति (32-40)।

चार. विश्वविद्यालयों के लिए विधान—(42) **कोर्ट;** (43) **कार्यकारी परिषद्;** (44) **विद्या परिषद्;** (45) **शैक्षिक योजना बोर्ड;** (46) **दीक्षांत समारोह;** (48) **सामान्य सिफ़ारिशें;** (49) **विश्वविद्यालय और अदालतें।**

पांच. संबद्ध कालेज—(52) **संबंधन;** (54) **संबद्ध कालेजों की परिषद्;** (57) **सरकारी कालेज;** (59) **गैर-सरकारी कालेज।**

छह. समन्वय तथा संवर्धनात्मक संगठन—(62) **अंतर्विश्वविद्यालय बोर्ड;** (67) **विश्वविद्यालय अनुदान आयोग।**

सात. अनुपूरक टिप्पणी—**विश्वविद्यालय स्वायत्तता विषयक अंतर्विश्वविद्यालय बोर्ड।**

13.01 आज की दुनियां में विश्वविद्यालयों को बहुत तरह के काम करने पड़ते हैं। उनमें सबसे महत्वपूर्ण काम हैं, **शिक्षण, अनुसंधान** और **विस्तार**—जिससे समाज के साथ प्रत्यक्ष संपर्क का समावेश होता है। विश्वविद्यालयों के प्रवेशार्थियों, अध्यापकों तथा आय-व्यय में निरन्तर वृद्धि हो रही है और अब उनसे नए-नए कार्य तथा कार्यक्रम पूरे करने की अपेक्षा की जाने लगी हैं। इसीलिए विश्वविद्यालयों तथा अन्य उच्चतर शिक्षा संस्थाओं के आंतरिक अभिशासन और सरकार के साथ उनके सम्बन्धों की समस्याएं उत्तरोत्तर महत्वपूर्ण तथा जटिल होती जा रही हैं। इस अध्याय में हम विश्वविद्यालयों के विधान तथा संगठन विषयक कुछ महत्वपूर्ण प्रसंगों, विश्वविद्यालयों की प्रबन्ध व्यवस्था, उनकी स्वायत्तता तथा शैक्षिक स्वाधीनता और इनसे सम्बन्धित अन्य बातों का विवेचन करेंगे।

13.02. यहां आरम्भ में ही एक बात कह देना आवश्यक है। शासन के कुछ सिद्धान्त (उदाहरणार्थ, उत्तरदायित्व की एक स्पष्ट शृंखला बनाए रखना, कार्यों तथा प्राधिकार का सौंपा जाना, क़िफ़ायत और कार्यकुशलता पर जोर देना) सभी अच्छे संगठनों पर समान रूप से लागू होते हैं। दूसरी ओर कुछ सिद्धान्त सम्बन्धित संगठन की कार्य-प्रकृति और लक्ष्यविशेष पर निर्भर रहते हैं। ज्ञान तथा अनुसंधान की साधना में लगे अध्यापक-अध्येताओं के एक समाजतुल्य होने के नाते विश्वविद्यालय का स्वरूप उसकी प्रबन्ध-व्यवस्था को, उदाहरणतः, मुनाफे पर ही नजर रखने वाले वाणिज्यिक अथवा औद्योगिक प्रतिष्ठानों के प्रबन्ध अथवा किसी सरकारी विभाग, नगर निगम या सशस्त्र सेना के किसी यूनिट के प्रशासन से मूलतः भिन्न कर देता है। दुर्भाग्य की बात है कि विश्वविद्यालय शासन से सम्बन्धित विशिष्ट समस्याओं की ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया है और हमारे देश में विश्वविद्यालयों को प्रायः सरकारी नियमों तथा परिपाटियों पर ही बहुत अधिक निर्भर रहना होता है। इसे भी बुरी बात यह है कि एक बार अपना लिए जाने वाले नियमों, क्रियाविधियों और तकनीकों को, परिवर्तित स्थितियों-परिस्थितियों के कारण पुराने पड़ जाने अथवा सम्बन्धित संस्थाओं की वास्तविक आवश्यकताओं तथा हितों की दृष्टि से असंगत हो जाने पर

मूल रूप में ही कायम रखा जाता है। नियमों की ऐसी अनम्यता प्रगति और विकास के बहुत बुरी तरह बाधक होती है। अतः यह आवश्यक है कि एक अग्रदर्शी तथा सक्रिय शैक्षिक संगठन के लिए अपेक्षित निर्णायक तंत्र की स्थापना और नीतियों, तकनीकों तथा परिपाटियों के निर्धारण के लिए संकल्पपूर्ण प्रयास किया जाए। विश्वविद्यालय की वास्तविक लक्ष्य-सिद्धि में बाधक होने वाले नियम, विनियमों तथा तकनीकों में संशोधन किया जाना चाहिए या उन्हें समाप्त कर देना चाहिए। उन्हें ऐसे कठोर शिकंजे का रूप नहीं दिया जाना चाहिए जिसमें विश्वविद्यालय के सभी क्रियाकलापों को बैठा देना अनिवार्य हो। यदि चुने हुए कुछ विश्वविद्यालयों में इस विषय की जानकारी तथा रुचि रखने वाले शैक्षिक तथा प्रशासनिक दोनों ही प्रकार के व्यक्तियों के दल मिल कर शैक्षिक शासन-प्रशासन की समस्याओं का गम्भीर अध्ययन करके वर्तमान अराजकता की-सी स्थिति में आमूल परिवर्तन करने के तरीके और उपाय सुझा सकें तो इससे वास्तव में बहुत लाभ हो सकता है। हमारी सिफ़ारिश है कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को ऐसे दलों के संगठन को बढ़ावा देना चाहिए। यदि चुने हुए कुछ विश्वविद्यालयों में संबद्ध विभाग विशेष—उदाहरणार्थ, शिक्षा, विज्ञान, लोकप्रशासन और विधि विभाग शैक्षिक प्रशासन और विश्वविद्यालय प्रबन्ध-व्यवस्था की समस्याओं का मिलकर अध्ययन कर सकें तो यह बहुत उपयोगी होगा।

विश्वविद्यालय स्वायत्तता

13.03. **विश्वविद्यालय स्वायत्तता की अवधारणा**—यहां आरम्भ में ही विश्वविद्यालय की स्वायत्तता और विश्वविद्यालय तथा कालेज के अध्यापकों की शैक्षिक स्वाधीनता में भेद समझ लेना आवश्यक है। इस स्वाधीनता का अर्थ यह है कि किसी अध्यापक से न तो यह अपेक्षा की जा सकती है और न उसे वह आदेश दिया जा सकता है कि वह छात्रों को ऐसी कोई बात पढ़ाए जो उसकी आत्मा के प्रतिकूल हो अथवा जो सत्य की उसकी अपनी धारणा से मेल न खाती हो। इस संदर्भ में हम इस बात पर जोर देना चाहते हैं कि अध्यापक स्वाधीनतापूर्वक अपने विचारों पर दृढ़ भी बने रह सकते हैं—वे विचार कितने भी क्रांतिकारी क्यों न हों—और वे कक्षा के भीतर (तथा बाहर) उन्हें व्यक्त भी कर सकते हैं, बशर्ते कि वे शिक्षण को अपने विशिष्ट विचारों के पक्षपोषण तथा प्रचार का साधन बनाए बिना किसी समस्या के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाल दें। अध्यापक को अपने अध्ययन-अनुसन्धान जारी रखने तथा उनका प्रकाशन करने और महत्वपूर्ण राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय प्रसंगों पर भाषण देने, लेख लिखने तथा तत्सम्बन्धी वादविवादों में भाग लेने की पूरी छूट होनी चाहिए। अपने कार्य, शिक्षण और अनुसंधान के सम्बन्ध में उसे सभी तरह की सुविधाएं तथा प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए, भले ही उसके विचार और दृष्टिकोण उसके वरिष्ठ सहकर्मियों और विभाग अथवा संकाय अध्यक्ष के विचारों के प्रतिकूल ही क्यों न हों।

13.04. सिद्धान्त रूप में शैक्षिक स्वाधीनता पर न कोई विशेष प्रतिबंध है, न उसे कम करना अभीष्ट है। पर हम यह चाहते हैं कि हमारे अध्यापक इस स्वाधीनता का व्यवहार रूप में अधिक तथा उत्साहपूर्वक प्रयोग करें। वस्तुतः शैक्षिक समुदाय का यह तो एक अनिवार्य दायित्व है कि वह उस पूरे-के-पूरे परिवेश की संकल्पनाओं तथा नीतियों के सूक्ष्म परीक्षण, मूल्यांकन और विकास में सक्रिय तथा निश्चयात्मक योगदान करे, जिसके साथ समाज का सम्बन्ध और लगाव है। देश में एक ऐसे बौद्धिक वातावरण के संवर्धन और विकास की दिशा में विश्वविद्यालयों को प्रधान दायित्व का निर्वाह करना है जो विद्वत्ता तथा उत्कृष्टता की प्राप्ति के लिए अनुकूल हो और जो ऐसी आलोचना को बढ़ावा दे जो निर्मम-निर्दय होकर भी अनौपचारिक और रचनात्मक हो। इन सब कामों के लिए यह आवश्यक है कि अध्यापक अपनी शैक्षिक स्वाधीनता का प्रयोग प्रचुर मात्रा में उत्साह तथा बुद्धिमत्तापूर्वक करें।

13.05. विश्वविद्यालय स्वायत्तता के समुचित क्षेत्र प्रधानतः तीन हैं :

— विद्यार्थियों का चयन;

— अध्यापकों की नियुक्ति और पदोन्नति;

— अध्ययन पाठ्यक्रमों तथा शिक्षण विधियों का निर्धारण और अनुसंधान के क्षेत्रों तथा समस्याओं का चयन।

13.06. इस स्वायत्तता का उपयोग करते समय विश्वविद्यालों को केवल एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात—सभी कार्यक्षेत्रों में सत्य के प्रति विश्वविद्यालयों की वचनबद्धता—से ही अनुशासित-नियंत्रित होना चाहिए। सत्य की पिपासा किसी न किसी मात्रा में विश्वविद्यालय के सभी सदस्यों में पैदा की जानी चाहिए और कुछ लोग तो ऐसे होने चाहिए जिन्होंने अपने को पूर्णतः सत्य के प्रति समर्पित कर दिया हो और सत्य ही जिनकी जीवन-साधना का चरम लक्ष्य बन गया हो। उसी स्थिति में यह संभव है कि विश्वविद्यालय क्रमशः केवल स्वाभिमान ही प्राप्त न करलें

समाज और सरकार का भी आदरभाव अर्जित करलें और राष्ट्रीय जीवन में समुचित योगदान कर सकें :

13.07. यहां यह समझ लेना अत्यावश्यक है कि विश्वविद्यालय स्वायत्तता की अवधारणा इसी आधारभूत विचार पर टिकी है कि इसके बिना विश्वविद्यालय शिक्षण अनुसंधान और समाज-सेवा के अपने प्रधान कार्यों का निर्वाह नहीं कर सकते और यह कि विचारों के एकमार्गीकरण और दल तथा शक्तिशाली वर्गगत दबाव से मुक्त रह सकने वाली स्वायत्तशासी संस्था ही निर्भीकतापूर्वक सत्य का संधान कर सकती है और अपने अध्यापकों तथा छात्रों में स्वतंत्र चिंतन तथा जिज्ञासा की ऐसी भावना पैदा कर सकती है जो निकटस्थ तात्कालिक हितसाधन-जन्य सीमाओं और पूर्वग्रहों से ऐसी मुक्ति पा सके जो एक स्वतंत्र समाज के विकास के नितान्त आवश्यक है। जैसा कि बर्ट्रेन्ड रसेल ने कहा है : "जहां स्वतन्त्र चिंतन का अंत हो जाता है—इसका कारण चाहे साहस की कमी हो अथवा अनुशासन का अभाव – वहीं अनुचित प्रचार और सत्तावाद के पापांकुर मुक्त भाव से पनपने लगते हैं। अतः आलोचना का अवरोध उससे कहीं अधिक गम्भीर बात है जितना बहुत से लोग समझते है। समाज में उद्देश्य की सक्रिय एकता पैदा करने के बदले वह तो पूरे समाज पर एक प्रकार की नीरस, भंगुर एकरूपता थोप देती है। खेद की बात है कि सत्ता तथा जिम्मेदारी के पदों पर आसीन व्यक्ति भी प्रायः इस सत्य का अनुभव नहीं कर पाते।"[1]

13.08. विश्वविद्यालय स्वायत्तता के प्रश्न पर विचार करते समय हमारे सामने ऐसे तीन (आंशिक रूप से परस्पर व्यापी) स्तर आते हैं जिन पर यह कार्यशील रहती हैं :

(1) विश्वविद्यालय की आंतरिक स्वायत्तता, अर्थात्, समग्र रूप से विश्वविद्यालय के संदर्भ में विभागों, कालेजों, अध्यापकों और छात्रों की स्वायत्तता;

(2) समग्रतः विश्वविद्यालय-तंत्र के सन्दर्भ में विश्वविद्यालय विशेष की स्वायत्तता, अर्थात्, किसी अन्य विश्वविद्यालय, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग और अंतर्विश्वविद्यालय बोर्ड के संदर्भ में विश्वविद्यालय विशेष की स्वायत्तता; और

(3) विश्वविद्यालय तंत्र से बाहर की एजेंसियों और प्रभावों—जिनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण है केन्द्रीय तथा राज्य सरकारें—के संदर्भ में समग्रतः विश्वविद्यालय तंत्र (जिसमें विश्वविद्यालय अनुदान आयोग और अंतर्विश्वविद्यालय बोर्ड भी शामिल हैं) की स्वायत्तता।

13.09. **विश्वविद्यालय की आंतरिक स्वायत्तता**—अलग-अलग विश्वविद्यालयों के आपसी सम्बन्धों और समग्रतः विश्वविद्यालय-तंत्र तथा बाहरी प्राधिकरणों के बीच के सम्बन्धों पर विचार करने से पहले यह उचित जान पड़ता है कि संक्षेप में यह उल्लेख कर दिया जाए कि विश्वविद्यालय की आंतरिक स्वायत्तता का आशय क्या है।

(1) यह मान लिया गया है कि विश्वविद्यालय और समाज के पारस्परिक सम्बन्ध के स्वरूप को देखते हुए विश्वविद्यालय के विभिन्न शासी निकायों में शिक्षेतर वर्ग का प्रतिनिधित्व आवश्यक भी है, उचित भी। परन्तु यदि उन निकायों के शिक्षेतर सदस्य प्रधान तथा नियंत्रक स्थिति प्राप्त कर लें तो यह बात विश्वविद्यालय स्वायतता के सिद्धान्त के प्रतिकूल होगी। अतः ऐसी प्रथाओं का विकास किया जाना चाहिए जिनसे प्राधिकार का प्रधान आकर्षण केन्द्र विश्वविद्यालय की शासन व्यवस्था की शैक्षिक शाखा ही रहे। इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखा जाना चाहिए कि सभी शैक्षिक मामलों में विद्या परिषद् को ही सर्वोच्च प्राधिकार प्राप्त हो। शिक्षेतर सदस्यों का काम तो शिक्षाविदों के सामने केवल समग्र समाज के व्यापक हितों को प्रस्तुत करना होना चाहिए, उन्हें थोपना नहीं। इस वर्ग को पूरे समाज के सामने शिक्षाविदों के विचारों तथा हितों का प्रतिनिधित्व भी करके विश्वविद्यालय का सुचारु कार्य संचालन अधिक सुगम बना देना चाहिए।

(2) यह सुनिश्चित कर लेना आवश्यक है कि विश्वविद्यालयों पर प्रशासन अथवा प्रशासकों का प्रभुत्व न हो पाए और इस दिशा में विशेष रूप से सावधान बने रहना चाहिए। प्रभुत्व यदि होना ही हो तो वह शैक्षिक वर्ग का ही होना चाहिए और प्रशासन का प्रधान कार्य होता है विश्वविद्यालय के शैक्षिक हितों का साधन।

(3) विश्वविद्यालय के अभिशासन में इस सिद्धान्त को मान्यता और मान अवश्य मिलना चाहिए कि अच्छे विचार प्रायः छोटे अधिकारियों के मस्तिष्क की ही उपज

1. बर्ट्रेन्ड रसेल, विज़डम ऑफ दि वेस्ट, डबलडे गार्डन सिटी, न्यूयार्क, 1959।

होते हैं। किन्हीं विचारों अथवा प्रस्तावों को केवल इसी लिए महत्व देने की प्रवृत्ति अच्छी नहीं है कि वे महत्व-पूर्ण स्थानों पर प्रतिष्ठित व्यक्तियों ने प्रस्तुत किए हैं। विश्वविद्यालयों में तो यह बात और भी अप्रांसगिक है क्योंकि वहां तो विचारों-प्रस्तावों की परीक्षा वस्तुनिष्ठ रीति से और आंतरिक गुणों के आधार पर ही की जानी चाहिए। जैसा कि सर एरिक एशबी ने कहा हैं : "ऊर्ध्व प्रवाह का यह सिद्धान्त किसी विश्वविद्यालय के कुशलता-पूर्ण प्रशासन और उसकी स्वायत्तता तथा स्वशासन की रक्षा के लिए परमावश्यक हैं। सभी प्रोफेसर फैसलों से पहले अपना धर्म समझ कर उसी प्रकार अपने प्राध्यापकों से सलाह नहीं लेते जिस प्रकार से समान परिस्थितियों में अपने प्रति प्रबंधक-जन से वे स्वयं अपेक्षा करते हैं। संकाय मंडल बड़े हो जाने पर कुछ गिने-चुने प्रतिष्ठित वरिष्ठ प्रोफेसरों की नियत यह हो जाती है कि वे अपने अपेक्षा-कृत कनिष्ठ सहयोगियों की ओर से प्रशासन विषयक उत्तरदायित्व स्वयं सँभाल लें। इसमें खतरा है क्योंकि शैक्षिक निकाय के अन्दर स्वशासन का सिद्धान्त कमजोर पड़ जाने से समग्रत: पूरे विश्वविद्यालय में स्वशासन बनाए रखना कठिन हो जाता है और इसके परिणाम स्वरूप आधुनिक लोकतन्त्रीय शासन में विश्वविद्यालय की स्वाय-त्तता बनाए रखना और भी कठिन हो जाता है।"[1]

(4) विश्वविद्यालय के विभाग शैक्षिक दिशा में उसके प्रधान परिचालन एकक होते हैं। हमारा विचार है कि उन्हें और अधिक प्रशासनिक तथा वित्तीय अधि-कार सौंपे जाने चाहिए। प्रत्येक विभाग की एक प्रबंध समिति होनी चाहिए जिसका सभापति विभागाध्यक्ष हो और विभाग के सभी प्रोफेसर तथा विभाग के सदस्यों द्वारा चुने गए कुछ रीडर तथा प्राध्यायक उसके सदस्य हों। प्रत्येक उप-सत्र में उस समिति की कम-से-कम एक बैठक अवश्य होनी चाहिए जिसमें विभाग के शैक्षिक कार्यक्रम, प्रयोगशालाओं तथा प्रयोगशालाओं की आवश्यकताओं और कार्यों के बंटवारे तथा अन्य संबद्ध बातों पर विचार-विनिमय किया जाए। उस बैठक की कार्यवाही संकाय और विद्या-परिषद् को भेजी जानी चाहिए। इस कार्य के लिए प्रत्येक विभाग को पर्याप्त लिपिकीय सहायता देना आवश्यक होगा। बड़े विज्ञान विभागों में प्रोफेसरों अथवा रीडरों में से एक व्यक्ति को उप-विभागाध्यक्ष नियुक्त कर देना अधिक उपयुक्त रहेगा। विभागाध्यक्ष—विश्वविद्यालय की कार्यकारी परिषद् की अनुमति से उपविभागाध्यक्ष को कुछ विशिष्ट काम सौंप देगा।

(5) कालेजों की स्वाधीनता और स्वायत्तता की मान्यता भी आवश्यक है। इस संबंध में हम जो सुझाव रख रहे हैं उनमें—कुछ शर्तों तथा सुरक्षणों के साथ—कालेजों के लिए अधिक-से-अधिक स्वाधीनता की व्यवस्था हैं जिससे अंतत: स्वायत्तशासी संस्थाओं की स्थापना हो सकेगी। इस रिपोर्ट के अन्य भाग में[2] इस विषय का विस्तृत विवेचन किया गया है।

(6) विश्वविद्यालय को एक ऐसी समेकित बिरादरी माना जाना चाहिए जिसमें अध्यापक मानो 'वरिष्ठ अध्येता' होते हैं, छात्र 'कनिष्ठ अध्येता'। प्रशासन इन दोनों की सेवा का साधन होना हैं। अध्यापकों, छात्रों अथवा प्रशासन के बीच वर्ग-विभाजन के प्रत्येक प्रयास को पनपने नहीं देना चाहिए। हमारी सिफ़ारिश है कि प्रत्येक विभाग में और प्रत्येक कालेज में अध्यापकों तथा छात्रों की संयुक्त समितियाँ स्थापित की जाएं जहां सामान्य सम-स्याओं तथा कठिनाइयों पर विचार-विमर्ष और यथासंभव उनका समाधान किया जा सके। इन समितियों के काम की पूरी जानकारी संस्था के अध्यक्ष—उपकुलपति अथवा प्रिंसिपल—को मिलती रहनी चाहिए। इनके अतिरिक्त, इस कार्य के लिए संस्था अध्यक्ष के सभापतित्व में एक केन्द्रीय समिति भी होनी चाहिए जिसमें अध्यापकों तथा छात्रों के कुछ प्रतिनिधि सदस्य रूप में शामिल हों। यदि समुचित रूप से इस तरह की व्यवस्था कर दी जाएगी तो इससे कम-से-कम ऐसी अनेक छोटी-छोटी और आसानी से हल की जा सकने वाली समस्याओं का समाधान हो सकेगा जिनकी ओर उपयुक्त समय पर पर्याप्त ध्यान न दिए जाने के कारण ऐसी कड़वाहट पैदा हो जाती है जिसके कारण आगे चलकर गंभीर रूप से अनुशासन भंग होते हैं। हम समझते हैं कि इससे अध्यापकों और छात्रों के आपसी संबंध भी अच्छे होंगे और उनके बीच विश्वास की एक नई भावना का उदय हो सकेगा।

(7) विश्वविद्यालय के शासन में भाग लेने और उसके दैनंदिन क्रियाकलाप में अपने उत्तरदायित्व का अनु-भव करने के लिए छात्रों को उत्साहित करने के एक निश्चित कदम के रूप में हमारी सिफ़ारिश है कि विद्यार्थी समाज (जिनमें पूर्व-स्नातक छात्र भी शामिल हैं) के प्रति-निधियों को विश्वविद्यालवों की कोर्टों और विद्या परिषदों का सदस्य बना लिया जाए। यूरोप तथा अन्य देशों के कुछ विश्वविद्यालयों में विद्यार्थी कार्यकारी परिषद् के भी सदस्य होते हैं।

1. **सर एरिक एशबी, टेक्नालॉजी एण्ड द ऐकेडेमिक्स, सेंट मार्बिन्स, न्यूयार्क,** 1958, पृष्ठ 196।
2. अध्याय ग्यारह।

13.10. **विश्वविद्यालय-तंत्र के भीतर स्वायत्तता**—स्वायत्तता की संकल्पना में यह बात निहित है, और वैसे भी यह अपेक्षित है, कि प्रत्येक विश्वविद्यालय को अंतर्विश्वविद्यालय बोर्ड का सदस्य बनने का स्वतः अधिकार हो। किसी एक विश्वविद्यालय द्वारा दी जाने वाली उपाधियों को भी देश के अन्य प्रत्येक विश्वविद्यालय द्वारा स्वतः मान्यता दी जानी चाहिए।[1] इसके अतिरिक्त विश्वविद्यालयों में कुछ सीमा तक कार्य-विभाजन भी आवश्यक है और यह बात अध्ययन के कुछ क्षेत्रों में अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा अधिक लागू होती है। कुछ विशिष्ट क्षेत्रों में—मिसाल के तौर पर चीनी भाषा-साहित्य के अध्ययन अथवा न्यूक्लीय भौतिकी या समुद्र विज्ञान या खभौतिकी में—जहां बहुत मंहगे उपकरणों की आवश्यकता पड़ती है या सुयोग्य व्यक्ति कम मिल पाते हैं, प्रत्येक विश्वविद्यालय शिक्षण तथा अनुसंधान के मामले में पूरी स्वायत्तता का उपयोग नहीं कर सकता। उस स्वायत्तता में विश्वविद्यालयों की पारस्परिक सहयोग-व्यवस्था के अनुसार कुछ फेर-बदल अनिवार्य हो जाता है। विश्वविद्यालय इस तरह के कार्य-विभाजन का समारंभ कर सकते है। यही एकमात्र तर्कसंगत उपाय है जिससे वे स्वेच्छया, अथवा आवश्यकतानुसार विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से सलाह लेकर, ज्ञान और विशेषज्ञता में होने वाली अभूतपूर्व वृद्धि रूपी चुनौती का सामना कर सकते हैं।

13.11. **बाहरी एजेंसियों के संदर्भ में स्वायत्तता**—विश्वविद्यालयों को यह स्वायत्तता तो मिलनी ही चाहिए परन्तु इसका रूप-निर्धारण राष्ट्र के प्रति और समग्रतः मानवमात्र के प्रति विश्वविद्यालयों के दायित्व के संदर्भ में ही किया जाना चाहिए। मिसाल के तौर पर, प्रशिक्षित जनशक्ति की राष्ट्रीय आवश्यकताओं के विश्वविद्यालयों के शिक्षण-कार्यों के प्रति कुछ निहितार्थ होते हैं और इसी तरह अनुसंधान विषयक फैसले—जो एक तरह से प्रधानतः विश्वविद्यालयों द्वारा ही किए जाते हैं—देश की आर्थिक और सामाजिक आवश्यकताओं से पृथक रह कर नहीं किए जा सकते क्योंकि उन पर उक्त आवश्यकताओं का अनिवार्यतः बहुत प्रभाव पड़ता है। ऐसे फैसले राष्ट्रीय फैसले होते हैं। जिनमें समाज के विभिन्न क्षेत्रों के प्रतियोगी दावों को परस्पर तोलना पड़ता है और जिनमें तात्कालिक आवश्यकताओं तथा दीर्घव्यापी कार्यक्रमों के बीच संतुलन करना होता है। अतः यह स्पष्ट है कि विश्वविद्यालयों की कार्यव्यवस्था एकांततः शिक्षाविदों के हाथ में नहीं सौंपी जा सकती; उन कार्यों का सामाजिक आवश्यकताओं के साथ सम्बन्ध होने के कारण उनके शासन-तन्त्र में कुछ शिक्षेतर व्यक्तियों को प्रविष्ट करना अनिवार्य हो जाता है। अतः विश्वविद्यालयों को अपने फैसलों में कुछ बाहरी शिक्षेतर एजेंसियों अथवा प्राधिकरणों को उसी तरह सहभागी बनाना होता है जिस प्रकार उन्हें इस सम्बन्ध में एक दूसरे को अथवा विश्वविद्यालय तन्त्र के भीतर के ही अन्य संगठनों—जैसे विश्वविद्यालय अनुदान आयोग और अंतर्विश्वविद्यालय बोर्ड को—सहयोगी बनाना होता है। विशेषतः ऐसी ही समस्याओं की स्थिति में विश्वविद्यालय स्वायत्तता के प्रसंगों को बहुत ही समझदारी और कल्पनाशक्ति पूर्वक हल करना पड़ता है और ऐसी प्रवृत्तियों तथा परिपाटियों का विकास करना आवश्यक हो जाता है जो विश्वविद्यालव स्वायत्तता और उसके साथ-ही-साथ समाज के समुचित दावों के प्रति न्याय कर सकें।

13.12. नीचे हम ऐसे कुछ उदाहरण दे रहे हैं जिस ढंग से इस तरह की समस्याएं हल की जा सकती हैं :

(1) विद्यार्थियों का प्रवेश स्पष्टतः विश्वविद्यालय स्वायत्तता का एक महत्वपूर्ण पहलू है। फिर भी समाज के व्यापक हितों को ध्यान में रखते हुए अनुसूचित कबीलों तथा अनुसूचित जातियों जैसे अल्पविकसित सामाजिक वर्गों के लिए कुछ स्थान सुरक्षित रखने के लिए नियम बनाने ही होंगे। यह अवश्य है कि ऐसे मामलों में भी विश्वविद्यालयों को यह छूट रहेगी कि वे व्यक्तिगत रूप से विद्यार्थियों के गुणों की परख कर लें—विश्वविद्यालय अल्पसुविधा प्राप्त वर्गों के प्रार्थियों में से बहुत अच्छे विद्यार्थी छांट सकेंगे और उन्हें, आवश्यक हो जाने पर किसी छात्र को प्रवेश देने से इन्कार करने का भी अधिकार होगा। कुछ मामलों में, विश्वविद्यालयों द्वारा चलाई जाने वाली संस्थाओं सहित अनेक शिक्षा संस्थाओं में प्रवेश देने के लिए—उदाहरणार्थ तकनीकी कालेजों के लिए जहां प्रवेश सामान्यतः चयन के आधार पर किया जाता है—एक मिलाजुला संगठन बनाना आवश्यक होगा। ऐसी व्यवस्था में विश्वविद्यालयों का सहयोग शैक्षिक एवं प्रशासनिक कारणों से उचित हैं और इसे स्वायत्तता का अतिलंघन नहीं माना जा सकता है।

(2) प्रशिक्षित जनशक्ति की राष्ट्रीय आवश्यकताओं

1. **इस विषय के विस्तृत विवेचन के लिए आगे पैरा 13.64 और 13.65 देखिए।**

के सम्बन्ध में अनेक महत्वपूर्ण समन्वयात्मक समस्याएं उठती हैं। हम पहले सिफ़ारिश कर चुके हैं। कि विभिन्न क्षेत्रों—उदाहरण के लिए कृषि, इंजीनियरी, चिकित्सा अथवा अध्यापन के लिए अपेक्षित प्रशिक्षण प्राप्त जनशक्ति के रूप में आवश्यक प्रशिक्षित स्नातकों की संख्या के अनुमान लगा लिए जाने चाहिए और उन्हीं के अनुसार विश्वविद्यालयों के विभिन्न संकायों में तैयार किए जाने वाले छात्रों की कुल संख्या निश्चित की जानी चाहिए। इसका अनिवार्य अर्थ यह होगा कि विश्वविद्यालय की विकास विषयक नीतियां भली भांति समन्वित हों जिससे कि वे प्रशिक्षित जनशक्ति विषयक संपूर्ण राष्ट्रीय आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें; और यह बात सुनिश्चित करने के लिए भी कदम उठाए जाने चाहिए कि, जहां तक पूर्वानुमान द्वारा यह सम्भव हो, किसी भी क्षेत्र में छात्र-संख्या अभीष्ट से कम या अधिक न हो। ऐसे मामलों में फैसले संयुक्त रूप से ही किए जाएंगे जो पर्याप्त विचार-विमर्श का परिणाम होंगे, क्योंकि अन्त में इन योजनाओं का कार्यान्वयन विश्वविद्यालयों के ही हाथ में होगा। अतः सरकार को अपनी बात समझाने का ही प्रयास करना चाहिए, उसे कानून के रूप में थोपने का नहीं।

(3) अनुसंधान के सम्बन्ध में भी ऐसी ही समस्याएं उठती हैं। जब यह फैसला किया जाता है कि समाज की आर्थिक आवश्यकताओं के कारण विशिष्ट समस्याओं के सम्बन्ध में व्यावहारिक अनुसंधान अभिप्रेत है (यह ऐसे फैसले हैं जो प्रधानतः विश्वविद्यालय से बाहर के लोगों द्वारा किए जाएंगे) तो विश्वविद्यालयों को भी कम-से-कम कुछ हद तक इस उत्तरदायित्व में सहभागी होना चाहिए। हां, विश्वविद्यालयों को इस बात पर जोर देने का अधिकार होगा कि उक्त कार्यों के लिए पर्याप्त साधन सुलभ किए जाएं ताकि किन्हीं अदूरदर्शितापूर्ण नीतियों पर चल कर अनुसंधान के स्तर घटाने न पड़ें।

13.13. प्रशिक्षित जनशक्ति और अनुसंधान की राष्ट्रीय आवश्यकताओं से संबद्ध मामलों में प्रत्येक विश्वविद्यालय को यह फैसला करने की छूट होनी चाहिए कि वह उसमें भाग लेगा या नहीं और यदि लेगा तो, अपने अन्य बुनियादी लक्ष्यों के अनुकूल बना रह कर, किस सीमा तक ऐसा कर सकेगा। परन्तु समग्र रूप से विश्वविद्यालय तंत्र को तो समय की चुनौती स्वीकार करनी ही होगी। इसके लिए विश्वविद्यालयों, विश्वविद्यालय के हित-प्रतिनिधियों (उदाहरणार्थ विश्वविद्यालय अनुदान आयोग और अंतर्विश्वविद्यालय बोर्ड) और सरकारी (केन्द्रीय तथा राज्य सरकारी) विभागों के प्रतिनिधियों का मिला-जुला एक उपयुक्त सलाहकार संगठन बनाया जाना चाहिए। इस संगठन के काम द्वारा ऐसी क्रिया-विधियों तथा परिपाटियों की स्थापना की जानी चाहिए जिनसे प्रशिक्षित किए जाने वाले व्यक्तियों की संख्या, अध्ययन पाठ्यक्रम और व्यावहारिक अनुसंधान की समस्याओं के सम्बन्ध में फैसले किए जा सकें। इन परिपाटियों का सबसे अधिक महत्वपूर्ण तत्व यह होना चाहिए कि सभी लोग यह समझ लें कि विश्वविद्यालयों द्वारा अपने हाथ में लिया जाने वाला प्रत्येक काम अभीष्ट स्तर का किया जाएगा और किए गए फैसलों के फलस्वरूप विश्वविद्यालयों की शिक्षण तथा अनुसंधान क्षमता में कोई कमी नहीं होने दी जाएगी। उदाहरण के लिए यदि ऊंचे स्तर के तकनीकी तथा चिकित्सा कर्मचारी तैयार करने की दृष्टि से विश्वविद्यालयों से अकस्मात अपनी छात्र संख्या बढ़ा देने के लिए कहा जाता है और इस काम के लिए पर्याप्त सुविधाएं नहीं दी जातीं तो इससे केवल विश्वविद्यालय को ही हानि नहीं होगी, बल्कि उस प्रशिक्षण का स्तर भी गिर जाएगा जो उक्त कर्मचारियों के लिए आवश्यक होगा।

13.14. हमने ऊपर जिस तरह के उदाहरण दिए हैं वे उन जायज अपेक्षाओं को जाहिर करते हैं जो विश्वविद्यालयों से की जा सकती हैं। परन्तु ऐसी कुछ अपेक्षाएं अथवा स्थितियां भी हो सकती हैं जिनमें विश्वविद्यालय स्वायतता का अनुचित रूप से हनन सन्निहित होता है। मिसाल के तौर पर यदि विश्वविद्यालयों से किसी विशेष राजनीतिक दल अथवा व्यक्ति के प्रति निष्ठावान होने का आग्रह किया जाए अथवा उन्हें इस प्रकार के दल अथवा व्यक्ति विशेष के हित-संपादन का साधन बनाने का प्रयास किया जाए तो यह गलत बात होगी। इसी तरह यह भी ठीक नहीं है—जैसाकि सार्वजानिक जीवन में महत्वपूर्ण पदों पर प्रतिष्ठित व्यक्ति और यहां तक तक कि कभी-कभी स्वयं शैक्षिक समाज के कुछ लोग किया करते हैं—कि शिक्षण अथवा अनुसंधान विषयक पदों पर नियुक्तियों के समय प्रभाव डाला जाए अथवा सामा-

1. अध्याय पांच।

न्यतः छात्रों के प्रवेश अथवा किन्हीं विशेष पाठ्यक्रमों के लिए किन्हीं विशेष छात्रों के प्रवेश के मामले में हस्तक्षेप किया जाए। इसी तरह यह भी उचित नहीं कि राज्य-सरकारें कालेजों के संबंधन जैसे शैक्षिक मामलों में विश्व-विद्यालयों को निदेश देने का प्रयास करें। हमारे देश में कुछ विश्वविद्यालयों पर जो प्रतिबंध लगाए गए हैं और इधर हाल ही में उनकी स्वायत्तता कम कर देने के जो प्रयास हुए हैं उनके कारण भी हमें खेद है। उदाहरण के लिए, बिहार के विश्वविद्यालयों को अपने अध्यापक नियुक्त करने का अधिकार नहीं है; यह काम उस राज्य का लोक सेवा आयोग करता है। इस फैसले के पीछे समु-चित कारण हो सकते हैं। फिर भी हमारा तो यही सुदृढ़ मत है कि किसी विश्वविद्यालय की कोई कमी दूर करने के लिए अपेक्षित तंत्र की रचना विश्वविद्यालय-तंत्र के भीतर ही की जानी चाहिए। स्वायत्तता के अतिलंघन के ऐसे कुछ और उदाहरण भी हैं, यद्यपि सद्बुद्धिवश आगे चलकर उनका संशोधन किया जा चुका है। मिसाल के तौर पर, कुछ समय पहले मध्यप्रदेश सरकार ने एक अध्यादेश जारी करके विश्वविद्यालय अध्यापकों की नियुक्ति का अधिकार उस राज्य के लोक सेवा आयोग को सौंप दिया था। इसी संदर्भ में उत्तरप्रदेश सरकार द्वारा जारी किए गए उस आदेश का, जिसमें इलाहाबाद और लखनऊ विश्वविद्यालयों में नियुक्त किए गए जाने वाले अध्यापकों की योग्यताओं का निर्धारण किया गया है, अथवा आंध्र-प्रदेश सरकार द्वारा अपने विश्वविद्यालय अधिनियमों में हाल ही में किए गए संशोधनों का, उल्लेख किया जा सकता है। तथापि, हमें यह देख कर प्रसन्नता है कि समग्र रूप से देश भर में इस बात का अधिकाधिक अनुभव किया जाने लगा है कि विश्वविद्यालयों के समुचित कार्यचालन के लिए, प्रभावपूर्ण विश्वविद्यालय स्वायत्तता परमावश्यक है। इस स्वायत्तता के प्रतिकूल बनाए जाने नाले कानून पिछले कुछ वर्षों में जनता द्वारा व्यक्त विचारों और अंतर्विद्यालय बोर्ड तथा विश्वविद्यालय बोर्ड तथा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा दिए गए परामर्श के परिणामस्वरूप या तो उपयुक्त रूप से संशोधित कर दिए गए है या उन्हें छोड़ ही दिया गया है। सामान्य प्रवृत्ति विश्वविद्यालय की स्वाधीनता और स्वायत्तता के समुचित क्षेत्र को स्वीकृति प्रदान करने की ही रही है। हम यहां जोर देकर यह कह देना चाहते हैं कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग का एक प्रधान कार्य हैं बिश्वविद्यालयों की स्वायत्तता का समर्थन करना और उसे पुष्ट करना और आगे आने वाले वर्षों में जैसे-जैसे विश्वविद्यालयों पर खर्च की जाने वाली सरकारी रकमों में तेजी के साथ अनिवार्य बढ़ोतरी होगी वैसे ही वैसे यह काम और भी अधिक महत्वपूर्ण, कठिन और नाजुक बनता जाएगा। ब्रिटेन में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के समक्ष विद्यमान कठिनाइयों से ऐसे सभी देश एक उपयोगी और सच्चा सबक सीख सकते हैं जिनमें कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के ढंग की ऐसी व्यवस्था है जिसमें विश्वविद्यालयों को रकमें तो उक्त आयोग की मार्फत सरकार की ओर से ही मिलती हैं परन्तु नियंत्रण सरकार का नहीं रहता।

13.15. इस सम्बन्ध में हम दो महत्वपूर्ण बातों का उल्लेख कर देना चाहते हैं :

(1) स्वतन्त्रता की भांति स्वायत्तता भी ऐसी वस्तु है जिसका मूल्य सभी सम्बन्धित पक्षों को शाश्वत चौकसी के रूप में चुकाना होता है। विश्वविद्यालयों की स्थापना कानून के मातहत की जाती है और उन्हें उतनी ही स्वायत्तता दी जा सकती है जितनी विधिसम्मत हो। इसलिए, विश्वविद्यालय स्वायत्तता का वास्तविक संरक्षक अंततः वह लोकमत होता है जो इस विश्वास को अपना आधार बनाता है कि अपने निर्भयतापूर्ण सत्य-संधान में बौद्धिक सत्यनिष्ठा बनाए रखने वाले स्वायत्त विश्वविद्यालय लोकतंत्र और स्वाधीनता के अडिग शक्ति-स्तंभ हैं। इस सम्बन्ध में सशक्त लोकमत जगाने में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, अंतर्विद्यालय बोर्ड और बौद्धिक वर्ग के लोगों को—जिनमें से अधिकतर विश्व-विद्यालयों के ही पूर्वछात्र हैं—महत्वपूर्ण योग देना है।

(2) दूसरी ओर, विश्वविद्यालयों को भी समझ लेना चाहिए कि प्रभावी स्वायत्तता 'वरदान' स्वरूप प्राप्त हो जाने की आशा विवेकसम्मत नहीं है, उन्हें तो इसे बराबर अर्जित करते रहना और अपने को उसके योग्य बनाए रखना होगा। विश्वविद्यालयों को स्वायत्तता का अधिकार सत्य के संधान और उसी की सेवा-साधना के फलस्वरूप प्राप्त होता है। इसीलिए, अपनी स्वायत्तता के प्रति किए जाने वाले विधिविरुद्ध दावों का प्रतिरोध करने की उनकी शक्तिक्षमता उतनी ही अधिक होगी जितने अधिक प्रभावशाली ढंग से वे अपने इस कर्तव्य का निर्वाह करेंगे और शिक्षेतर प्राधिकरणों द्वारा उनसे की जाने वाली वैध अपेक्षाओं को शिरोधार्य करेंगे। इसके अतिरिक्त, जैसे-जैसे वे अपने बौद्धिक तथा सार्वजनिक दायित्वों का प्रभाव-पूर्ण रीति से तथा सत्यनिष्ठा पूर्वक निर्वाह करेंगे और देश की आर्थिक तथा सामाजिक प्रगति में योग देंगे वैसे ही वैसे वे समाज और सरकार का आदर भाव अर्जित करते जाएंगे और उन पर बाहर से पड़ने वाले विधिविरुद्ध दबावों तथा अनुचित अपेक्षाओं की संभावनाएं भी कम होती जाएंगी। यह कोई ऐसा सरल काम नहीं है जो शीघ्र

ही पूरा किया जा सकता हो परन्तु यह बात जोर देकर कही जा सकती हैं कि यही वह मार्ग है जिस पर हमें बढ़ना चाहिए ।

विश्वविद्यालयों की वित्तव्यवस्था

13.16. विश्वविद्यालयों की सवायत्तता तब तक वास्तविक और प्रभावी नहीं हो सकती जब तक विश्वविद्यालयों तथा कालेजों की वित्तीय आवश्यकताएं पूरी करने के लिए समुचित व्यवस्था न करदी जाए । वैसे तो सरकारी नियन्त्रण अथवा हस्तक्षेप के बिना विश्वविद्यालयों को अभीष्ट वित्तीय साधन सुलभ करने के लिए एक स्वायत्तशासी निकाय के रूप में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की स्थापना कर दी गई है तथापि राज्यीय विश्वविद्यालयों को अपने भरण अनुदानों और तुल्य भाग के लिए सीधे राज्य सरकारों द्वारा दी जाने याली रकमों पर निर्भर रहना होता है । यह एक ऐसा महत्वपूर्ण साधन है जिससे वे सरकारें विश्वविद्यालयों की स्वावाधीनता पर रोक लगा सकती हैं और कभी-कभी वास्तव में ऐसा होता भी है । यह बात स्पष्टतः अनुचित है। हम यह सिफ़ारिश करते हैं कि विश्वविद्यालय वित्तव्यवस्था की वर्तमान पद्धति को निम्नलिखित महत्वपूर्ण सिद्धान्तों के आधार पर पुनर्गठित कर दिया जाए :

— राज्य सरकारों को विश्वविद्यालयों के साथ समझदारी और कल्पनाशीलता के साथ व्यवहार करना चाहिए और उन्हें पर्याप्त वित्तीय साधन सुलभ कर देने चाहिए ताकि वे सुयोग्यतापूर्वक अपने दायित्वों का निर्वाह कर सकें । यह भी उचित होगा कि वे इस सम्बन्ध में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से परामर्श लेते रहें ।

— वित्तीय मामलों में कुछ सुरक्षण अनिवार्य हैं और व्यव में उचित किफायत सुनिश्चित करना भी लाजमी है, तथापि यह आवश्यक है कि नियम-विनियम सरल बना दिए जाएं और उनका शीघ्रता तथा कार्यकुशलता के साथ प्रवर्तन किया जाए ।

13.17. केन्द्रीय विश्वविद्यालयों को उनके अनुदान—भरण तथा विकास दोनों प्रकार के अनुदान—विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से प्राप्त होते हैं । अतः उनके मामले में कठिनाइयां कम-से कम रह जाती हैं और वे कठिनाइयां भी कार्यविधि की खामियों से पैदा न होकर उपलब्ध रकमों की अपर्याप्तता से ही पैदा होती हैं । दूसरी ओर राज्यीय विश्वविद्यालयों के सम्बन्ध में अनेक कठिन समस्याएं पैदा हो चुकी हैं । यहां हम उन्हीं का विस्तृत विवेचन करना चाहते हैं ।

13.18. **विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से राज्यीय विश्वविद्यालयों को अनुदान**—राज्यीय विश्वविद्यालय अपने विकास अनुदान मुख्यतः विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की मार्फत प्राप्त करते हैं । इस समय संसद के सामने जो विधेयक प्रस्तुत हैं उसके अनुसार विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को अपनी ओर से राज्यीय विश्वविद्यालयों को भरण अनुदान देने का अधिकार भी मिल जाएगा । हम इस महत्वपूर्ण सुधार का स्वागत करते हैं ।

13.19. इस समय विश्वविद्यालय अनुदान आयोग एक योजनावधि की विकास प्रायोजनाओं के हेतु विश्वविद्यालयों की आवश्यकता का निर्धारण करने के लिए निरीक्षण समितियों की नियुक्ति करता है और उन समितियों द्वारा की गई सिफ़ारिशों के आधार पर सहायक अनुदानों की मंजूरी देता है । यह एक अच्छा तरीका हैं और ऐसे कुछ अपेक्षित सुधार करके जिनका वर्णन हम कुछ ही आगे कर रहे हैं यह तरीका जारी रखा जाना चाहिए । हम समझते हैं कि अनुदानों की मंजूरी में लगने वाला समय कम किया जाना सम्भव है—इस काम में कभी-कभी बहुत देर लग जाती है, विशेषतः इस स्थिति में जब अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद् से परामर्श किया जाना होता है; और रकमों को प्रदान करने के तरीकों में भी सुधार किया जा सकता है । परन्तु समग्रतः यह बातें छोटी-छोटी ही हैं और हमें विश्वास है कि इस ओर ध्यान दिया जाएगा ।

13.20. कुछ योजनाओं के लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग राज्यीय विश्वविद्यालयों को शतप्रतिशत आधार पर सहायक अनुदान देता है; परन्तु विकास की अधिकतर योजनाओं के लिए राज्य सरकारों की ओर से तुल्य अनुदान अभीष्ट होते हैं । यह अनुदान प्रायः ठीक समय पर नहीं मिलते । कुछ राज्यों में यह प्रवृत्ति भी दिखाई देती है कि वे वर्तमान संस्थाओं के स्तर सुधारने के बदले नए कालेजों—यहां तक कि नए विश्वविद्यालयों—की स्थापना के लिए रकमें अलग रख देते हैं । इन्हीं कठि-

1. **इस अध्याय के अंत में हम हाल ही में विश्वविद्यालय स्वायत्तता के विषयमें अंतर्विश्वविद्यालय बोर्ड द्वारा जारी किया गया वक्तव्य प्रकाशित कर रहे हैं । उस वक्तव्य में व्यक्त विचारों के साथ हम पूरी तरह सहमत हैं ।**

नाइयों की देखते हुए कभी-कभी यह सुझाव दिया जाता है कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को चाहिए कि वह केवल शतप्रतिशत आधार पर अनुदान दे और वह आवश्यक समझे तो उन योजनाओं की संख्या कम कर दे जिनके लिए सहायता दी जा सकती हैं। हम इस प्रस्ताव के पक्ष में नहीं हैं क्योंकि इसके परिणामस्वरूप विश्वविद्यालय शिक्षा के विकास के लिए सुलभ कुल साधनों से कमी हो जाएगी। इसका एक संभावित परिणाम यह भी हो सकता है कि कुछ राज्य सरकारों की अपने एक महत्वपूर्ण कार्य, अर्थात्, उच्चतर शिक्षा में दिलचस्पी कम हो जाए। अतः हमारा मत है कि विश्वविद्यालयों के विकास व्यय का विश्वविद्यालय अनुदान आयोग और राज्य-सरकारों के बीच कुछ बटवारा होना चाहिए। परन्तु, राज्य सरकारों द्वारा अनुभव की जा रही वित्तीय कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुए हमारा विचार है कि राज्य सरकारों से अपेक्षित रकम यथासम्भव कम कर दी जानी चाहिए।

13.21. विश्वविद्यालयों में इसलिए कठिनाइयां पैदा हुई हैं क्योंकि राज्य सरकारें उन विकास कार्यक्रमों पर होने वाले व्यय के सम्बन्ध में अपने वचन के अनुसार रकमें देने के लिए तैयार नहीं जो कार्य उक्त विश्वविद्यालयों ने विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की सहायता से आरम्भ किए हैं। कुछ मामलों में राज्य सरकारों ने यह तर्क दिया हैं कि जिस समय वे विकास-कार्यक्रम वास्तव में आरम्भ किए गए उस समय उनसे सलाह नहीं ली गई और इसलिए, उन्हें वचनबद्ध रकमें देने के लिए विवश नहीं किया जा सकता। उच्चतर शिक्षा का हित इसी में हैं कि यह समस्याएं अविलंब हल करली जाएं। अतः हमारी सिफ़ारिश है कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को चाहिए कि इस मामले में मध्यस्थता करने के लिए जल्दी कदम उठाए और उक्त विश्वविद्यालयों को उस उलझन से मुक्त करादे जो राज्य सरकारों ने अपने वचन के अनुसार व्यय के लिए रकमें न देकर पैदा कर दी है।

13.22. **राज्य सरकारों से राज्यीय विश्वविद्यालयों को सहायक अनुदान**—राज्यीय विश्वविद्यालयों को तीन बातों के लिए अपनी राज्य सरकारों से अनुदात लेने होते हैं: (1) विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा दिए जाने वाले विकास अनुदानों का तुल्य भाग; (2) विश्वविद्यालय विकास के लिए योजनेतर अनुदान; और (3) वचनबद्ध व्यय के लिए अनुदान। इनमें से पहली तो मामूली रकम होती है और हमने ऊपर वह सिफ़ारिश की है कि इसे ओर भी कम कर दिया जाना चाहिए। हम समझते हैं कि भविष्य में राज्य सरकारों को विकास कार्यों के लिए अविलंब अपना तुल्य-भाग देने में कोई कठिनाई नहीं होगी।

13.23. विश्वविद्यालय विकास के लिए दिया जाने वाला योजनेतर अनुदान और वचनाबद्ध व्यय के लिए दिए जाने वाले अनुदान मिल कर काफी बड़ी रकम बन जाते हैं और वही रकम वस्तुतः विश्वविद्यालयों के पास उपलब्ध कुल वित्तीय साधनों का प्रधान भाग होती है। इन अनुदानों से संबंधित वर्तमान क्रियाविधियाँ संतोषजनक नहीं हैं और उनके कारण अधिकतर राज्यीय विश्वविद्यालय इस समय जबरदस्त वित्तीय कठिनाइयों का सामना कर रहे हैं। इस समस्या का गंभीर अध्ययन करने के विचार से आयोग ने सभी विश्वविद्यालयों के पास यह जानने के लिए एक प्रश्नावली भेजी थी कि सहायक अनुदान की वर्तमान पद्धतियाँ क्या हैं और इस दिशा में किन कठिनाइयों का सामना किया जा रहा है। इस अध्ययन के फलस्वरूप सामने आने वाले कुछ प्रमुख निष्कर्ष इस प्रकार हैं:

(1) राज्य सरकारों द्वारा विश्वविद्यालयों को सहायक अनुदान दिए जाने की दो मुख्य पद्धतियाँ हैं: घाटा अनुदान और एकमुश्त अनुदान, जो विधिक, तदर्थ या पिछले खर्च पर (सामान्य विस्वार के लिए व्यवस्था सहित अथवा उसके बिना) आधारित हो सकता है।

(2) घाटा अनुदान पद्धति के अनुसार वार्षिक भरण अनुदान अनुमानित स्वीकृत व्यय और अनुमानित स्वीकृति आय के अंतर के आधार पर दिया जाता है और शर्त यह रहती है कि आगे के वर्षों में वास्तविक आय और लेखापरीक्षित खातों द्वारा व्यक्त वास्तविक व्यय के आधार पर इस रकम का समंजन कर लिया जाएगा। सिद्धांत रूप से इस बात में कोई आपत्ति न होने पर भी व्यवहारतः इससे अनेक समस्याएं पैदा हो जाती है। मिसाल के तौर पर यह संभव है कि राज्य सरकार अपने बजठ की स्वीकृति की सूचना विश्वविद्यालय को ठीक समय पर न दे; वास्तव में कभी-कभी तो यह सूचना तब भेजी जाती है जब उस वर्ष के छह-सात महीने बीत चुके होते हैं। कभी-कभी बजट में अचानक काठछाँट करादी जाती है जिसके कारण विश्वविद्यालय के सामने जबरदस्त कठनाइवाँ पैदा हो जाती हैं। इस तरह की व्ययस्था में विश्वविद्यालय सरकार के पूर्वानुमोदन के बिना कोई छोटा सा पद भी नहीं बना सकता और कोई भी आवर्ती खर्च—चाहे वह कितना भी कम क्यों न हो—नहीं कर सकता।

(3) एकमुश्त अनुदान की पद्धति समग्रतः अच्छी

रहती है यद्यपि इसमें भी कुछ समस्याएं उठ खड़ी होती हैं। एकश्त अनुदान के दो प्रधान तत्व हैं : (क) वह आधार जिस पर अनुदान की रकम निर्धारित की जाती है; और (ख) उस रकम पर पुनर्विचार की आनृत्ति। इनमें से पहली बात के संबंध में इस समय तीन तरीके प्रचलित हैं। पहले तरीके के अनुसार अनुदान की रकम पिछले व्यय के आधार पर निर्धारित की जाती है। इस तरीके में सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि इसमें विश्वविद्यालय के व्यय में होने वाली सामान्य वृद्धि के लिए भी व्यवस्था नहीं होती। कुछ राज्यों में एकमुश्त अनुदान में एक निश्चित प्रतिशत के आधार पर स्वतः वृद्धि कर देने की जो प्रथा प्रचलित है वह अधिक उपयोगी रहती है। परन्तु इस पद्धति में भी उस स्थिति में कठिनाइयाँ पैदा हो जाती हैं जब अनुदान की अवधि में ही अप्रत्याशित फैसले (उदाहरणार्थ, वेतनों अथवा मँहगाई भत्ते का पुनरीक्षण) करने पड़ जाते हैं। जहां तक दूसरी पद्धति का संबंध है उसके व्यवहार में उल्लेखनीय अंतर दिखाई पड़ते हैं। एकमुश्त अनुदान की रकम जब स्वयं विश्वविद्यालय अधिनियम में बता दी जाती है और उसे सांविधिक रूप दे दिया जाता है तो इस पद्धति में जड़ता आ जाती है, अनुदान वर्षों तक अपरिवर्तित बने रहते हैं और विश्वविद्यालयों का विकास रुक जाता है। सैर-सांविधिक एकमुश्त अनुदानों पर कभी-कभी प्रत्येक तीन वर्ष के बाद और कभी प्रत्येक पांच वर्ष के बाद पुनर्विचार किया जाता है। पर अधिकतर मामलों में वे रकम इससे कहीं अधिक लंबे अरसे तक अपरिवर्तित ही बनी रहती है।

13.24. उच्चतर शिक्षा के सम्यक् विकास के लिए आवश्यक है कि उन तरीकों पर विचार करके सहायक अनुदान की एक श्रेष्ठतर पद्धति की स्थापना की जाए। उसमें तीन बातें आवश्यक रूप से होनी चाहिए : एक तो यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि अनुदान देने वाला अधिकरण अत्यधिक नियंत्रण और दृढ़ता-पूर्ण दृष्टिकोण से काम न ले क्योंकि अवरोध तथा संतुलनों की पद्धति—जिसकी स्थापना अबसे भिन्न प्रकार के समय में भिन्न लक्ष्य की सिद्धि के लिए की गई थी—तेजी के साथ विकसित होती हुई विश्वविद्यालय प्रशासन तथा वित्तव्यवस्था की आवश्यकताओं के अनुकूल नहीं है। दूसरे, अनुदान प्राप्त करने वाली संस्थाओं को चाहिए कि वे सरकारी रकमें खर्च करने में अधिकतम सावधानी और किफ़ायत से काम लें। तीसरे, सहायक अनुदान की पद्धति पर्याप्त लचीली होनी चाहिए और उसमें इस बात की भी गुंजाइश रहनी चाहिए कि विश्वविद्यालय नए विचारों तथा नई परियोजनाओं के परीक्षण कर सकें। अतः हमें सहायक अनुदान की एक ऐसी पद्धति बनानी है जिसमें रकमें मुक्त रूप से सुगमतापूर्वक एक प्राधिकरण से दूसरे तक पहुँच सकें और इसके साथ-ही-साथ मितव्यय तथा कार्यकुशलता सुनिश्चित होते हुए आवश्यक अनुपात में लचीलापन भी विद्यमान रहे।

13.25. इन सामान्य सिद्धान्तों को ध्यान में रखते हुए हम सिफ़ारिश करते है कि राज्य सरकारों द्वारा विश्वविद्यालयों को दिए जाने वाले सहायक अनुदान की पद्धति को एकमुश्त अनुदानों के तरीके के आधार पर ऐसे पुनर्गठित कर दिया जाना चाहिए जिसमें निम्नलिखित बातों की व्यवस्था हो :

— थोड़ी अवधि, उदाहरणार्थ तीन से पांच वर्ष तक के लिए, आवर्ती आधार पर एक एकमुश्त अनुदान का निर्धारण;

— अनुदान की अवधि में खर्च की अवश्यम्भावी वृद्धि के लिए व्यवस्था;

— इस अवधि में अप्रत्याशित वस्तुस्थितियों के लिए विशेष अनुदानों की अदायगी;

— एक ऐसी 'साहाय्य राशि' की व्यवस्था जिसका प्रयोग विश्वविद्यालय अपने विवेकपूर्वक आजादी के साथ कर सकें। इस 'साहाय्य राशि' के एक भाग की व्यवस्था का एक उपाय यह है कि केवल 'मानक' फीसों को ही ध्यान में रखा जाए और मानक तथा वास्तविक फीसों का अंतर 'साहाय्य राशि' का एक भाग बना दिया जाए। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए हमारी सिफ़ारिश है कि अनुदान निर्धारित करते समय स्थायी निधि के ब्याज पर ध्यान नहीं दिया जाना चाहिए।

इस योजना के ब्योरे राज्य सरकारें संबद्ध विश्वविद्यालयों और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के साथ सलाह करके तैयार कर सकती हैं। हमें बताया गया है कि केंद्रीय विश्वविद्यालयों के मामले में एकमुश्त अनुदान का सिद्धांत पहले ही स्वीकार किया जा चुका है और यह संतोषजनक रीति से काम कर रहा है। यह पद्धति एक ऐसा आधार प्रदान कर सकती है जिसके अनुसार राज्य सरकारें अपना-अपना कार्य-सूत्र निर्धारित कर सकती हैं।

13.26. विश्वविद्यालय वित्तव्यवस्था पर समग्रतः

विचार किया जाना आवश्यक है और विकास-व्यय के तुल्य भाग, योजनेतर अनुदानों अथवा बचववद्ध व्यय-विषयक अनुदानों के बीच किया जाने वाला अंतर विशुद्धतः काल्पनिक और स्वेच्छा-जन्य है। क्योंकि विश्व-विद्यालयों की वित्तव्यस्था को अविलंब एक सुदृढ़ आधार प्रदान कर देना आवश्यक है अतः विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को चाहिए कि वह प्रत्येक विश्वविद्यालय की वित्तव्यवस्था का समय-समय पर पुनर्विलोकन करता रहे और इस संबंध में राज्य सरकारों तथा विश्वविद्यालयों दोनों को ही आवश्यक सलाह देता रहे।

13.27. **विश्वविद्यालयों का वित्तीय उत्तर-दायित्व**—एक महत्वपूर्ण प्रश्न है विश्वविद्यालय को सौंपी जाने वाली सरकारी रकमों के समुचित उपयोग के संबंध में विधानांग के प्रति विश्वविद्यालयों का उत्तर-दायित्व। वर्तमान स्थिति यह है कि एक दो विश्वविद्यालयों को छोड़ कर, विश्वविद्यालय अधिनियमों के अनुसार यह अपेक्षित है कि विश्यविद्यालय के खातों की लेखापरीक्षा-सरकारी लेखापरीक्षकों द्वारा कराई जाए। परन्तु प्रचलित परिपाटी के अनुसार केन्द्रीय विश्वविद्यालयों के खाते संसद के सामने अथवा राज्यीय विश्वविद्यालय के खाते राज्य विधानमण्डलों के सामने नहीं रखे जाते। संसद की लोक लेखा समिति समय-समय पर कहती रही है कि यह व्यवस्था संतोषजनक नहीं है। अपनी बयालीसवीं (1961-62) रिपोर्ट में उसने यह विचार व्यक्त किया है कि केंद्रीय विश्वविद्यालयों की वित्तीय स्वायत्तता की रक्षा के लिए उत्सुक होकर भी वह इस आशंका से सहमत होने में असमर्थ है कि यह लेखापरीक्षित रिपोर्ट संसद के सामने रखी जाने से उन विश्वविद्यालयों की वित्तीय स्वायत्तता का अतिलंघन हो जाएगा अथवा उनके वित्तीय मामले सार्वजनिक वादविवाद का विषय बन जाएंगे। समिति ने आग्रह किया हैं कि उक्त रिपोर्टें संसद के सामने रखी जाने के लिए सरकार को अविलंब कदम उठाने चाहिए और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अधिनियमों में आवश्यक व्यवस्था की जानी चाहिए।

13.28. हमने इस विषय पर गंभीर रूप से विचार किया है। हमारा मत है कि विश्वविद्यालयों को केवल प्रत्यक्ष शासकीय रोक-टोक से ही नहीं, हिसाब-किताब की प्रत्यक्ष सार्वजनिक जिम्मेदारी से भी मुक्त रखा जाना चाहिए। विश्वविद्यालयों की स्वायत्तता की रक्षा के लिए यह आवश्यक है कि उनके वित्तीय मामले सार्वजनिक वाद-विवाद के विषय अथवा दलगत राजनीति के प्रसंग नहीं बनाए जाने चाहिए और यदि उन्हें संसद के सामने रखा गया तो इस तरह की स्थिति पैदा हो सकती है। दूसरी बात यह है कि विश्वविद्यालयों पर किया जाने वाला नियंत्रण अप्रत्यक्ष तथा राष्ट्रीय जीवन में उनकी स्थिति के अनुरूप होना चाहिए। ब्रिटेन में इस विषय पर बहुत समय से वादविवाद होता रहा है कि विश्वविद्यालयों में होने वाले पूँजीगत व्यय पर पार्लमेन्ट का दृढ़ नियंत्रण होना चाहिए। परंतु सरकार का कहना यही है कि इस तरह का नियंत्रण विश्वविद्यालयों की स्वाधीनता के लिए हानिकर होगा।

13.29. केन्द्रीय विश्वविद्यालयों के अधिनियमों में यह व्यवस्था है कि उनके लेखापरीक्षित खाते भारत के राजपत्र में प्रकाशित कराए जाएं और वे लेखा परीक्षक की रिपोर्ट के साथ विजिटर को पेश किए जाएं। इस कार्यविधि से सरकार की, विश्वविद्यालयों की वित्तीय और प्रशासनात्मक स्वाधीनता में अनुचित दखल दिए बिना, विजिटर की ओर से उन विश्वविद्यालयों पर सुधारात्मक तथा निरीक्षणात्मक नियंत्रण करने का अभीष्ट अवसर प्राप्त हो जाता है। जिन राज्यीय विश्वविद्यालयों में ऐसी व्यवस्था नहीं है वहां भी इसी तरह की क्रियाविधि अपनाई जा सकती है।

13.30. विश्वविद्यालयों के खातों की लेखापरीक्षा प्रायः नियंत्रक तथा महालेखापरीक्षक करता है जिसे उल्लेखनीय बातें विधानांग तक पहुंचाने का अधिकार है। तथापि रक्षोपाय के रूप में उसे यह निदेश दिया जा सकता है कि आवश्यकता पड़ने पर वह विश्वविद्यालयों के खातों की गंभीर अनियमितताएँ ही विधानांग के सामने लाए।

13.31. यह मामला जटिल है और इसके कुछ दूर-गामी प्रभाव भी होंगे। यह अब भी सरकार और लोक-लेखा समिति के विचाराधीन है। ब्रिटेन की उच्चतर शिक्षा समिति ने इस संबंध में जो विचार व्यक्त किए हैं उन्हें यहां तनिक विस्तृत रूप से उद्धृत कर देना अप्रासंगिक न होगा :

> अब हम किंचित बारीकी वाले एक ऐसे प्रसंग पर आते हैं जिसका शैक्षिक स्वाधीनता पर उल्लेखनीय प्रभाव पड़ता है।
>
> जिस स्वीकृति (वोट) के आधार पर विश्व-विद्यालयों तथा कालेजों के लिए धन की व्यवस्था की जाती है, उसमें वर्णित शर्तों में कहा गया है कि इन संस्थाओं को अनुदान विश्वविद्यालय अनुदान समिति की सिफ़ारिशों पर दिए जाएंगे और यह प्रथा बन गई है सरकार द्वारा निर्धारित कुल रकमों का बंटन

विश्वविद्यालयों के बीच करने के लिए समिति जो सिफ़ारिशें करती है उनके विषय में सरकार न तो कोई पूछताछ करती है, न उनका विरोध ही करती है। इसके अलावा नियंत्रक तथा महालेखापरीक्षक को विश्वविद्यालयों और विश्वविद्यालय अनुदान समिति की लेखापुस्तकें देखने की सुविधा नहीं रही है। आवर्ती व्यय तो अधिकांश उन शैक्षिक वेतनों के रूप में होता है जो निर्धारित वेतनमानों के अनुसार दिए जाते हैं। लोक लेखा समिति अब तक इस आधार पर संतुष्ट रही कि आवर्ती अनुदानों के नियंत्रण के तरीके विश्वविद्यालय की स्वाधीनता बनाए रखने की आवश्यकता और सरकार तथा संसद द्वारा वित्तीय नियंत्रण किए जाने के बीच का एक तर्कसंगत मार्ग प्रदान करते हैं। परन्तु पूंजीगत व्यय के कठोर नियंत्रण के प्रश्न पर लोक लेखा समिति और सरकार के बीच बहुत समय वादविवाद चलता रहा। समिति छानबीन करने के अपने अधिकार के लिए आग्रहशील रही और सरकार यह तर्क देती रही कि इससे विश्वविद्यालयों की स्वाधीनता को क्षति पहुंचेगी। पर हाल के वर्षों में ऐसी क्रियाविधियाँ काम में लाई जाने लगी हैं जिनके अनुसार, सरकार के बिना अथवा नियंत्रक तथा महालेखापरीक्षक के अधिकारियों द्वारा किसी तरह ही छानबीन के बिना लोकलेखा समिति को यह भरोसा दिलाना संभव हो गया है कि अनुचित अथवा निरर्थक व्यय रोकने के लिए समुचित प्रबंध कर दिया गया है और इस तरह सभी संबद्ध दलों के सद्विवेक और संयताचार की एक उल्लेखनीय विजय हो गई है।

हम इस प्रभावमुक्ति को बहुत महत्व देते हैं और हमें यह देखकर प्रसन्नता है कि सरकार ने सफलतापूर्वक उसका पक्ष समर्थन किया है। किसी के दबाव में आकर हम सरकारी रकमों के प्रयोग में होने वाले अपव्यय और समुचित लेखों के अभाव की तीव्र निंदा करने से विरत नहीं हो सकते और हम इस बात को ठीक मानते हैं कि अनुदान समिति को ऐसे सुरक्षणों की व्यवस्था करने का अधिकार दिया जाना चाहिए जो इस तरह के दुरुपयोग रोकने के लिए आवश्यक हों। परन्तु यदि यह काम पूरे करने के लिए किसी मंत्रीविशेष के विभाग के स्थान पर उक्त समिति पर पूर्णतः भरोसा नहीं किया जाएगा तो एक मध्यस्थ के नाते उसके महत्व का एक उल्लेखनीय भाग विनष्ट हो जायेगा और विश्वविद्यालयों के काम में सरकार तथा संसद के हस्तक्षेप का मार्ग खुल जाएगा। अन्य देशों की यात्रा ने हमें उस ब्रिटिश पद्धति के अपरिमित महत्व के संबंध में पहले से भी अधिक आश्वस्त कर दिया है जिसके अनुसार किसी विश्वविद्यालय के व्ययविशेष का सार्वजनिक रूप से विस्तृत औचित्य-स्थापन आवश्यक नहीं है। पश्चिमी यूरोप के एक सर्वाधिक प्रसिद्ध विश्वविद्यालय के रेक्टर ने, अपने विश्वविद्यालय में प्रचलित परिपाटी से हमें अवगत कराते हुए कहा था : 'जब तक हम वित्तीय मामलों में इन नियंत्रणों के अधीन रहते हैं तब तक शैक्षिक स्वाधीनता की समस्त चर्चा एक छलनामात्र ही रहेगी।' अतः हमारी सिफ़ारिश है कि मंत्रालय के दायित्व में किसी भी तरह का परिवर्तन होने के बावजूद हिसाब की जिम्मेदारी विषयक वर्तमान नीति जारी रहनी चाहिए।

उच्चतर शिक्षा विषयक सामान्य नीति के ऐसे मामले बने रहेंगे जो सरकार तथा पर्लामेंट के चिंतनीय विषय होंगे और अनुदान समिति सिद्धांत का एक बहुत बड़ा लाभ यह कि ऐसे सभी मामलों में विशेष संस्थाओं के काम की विस्तृत छानबीन किए बिना सरकार और विश्वविद्यालयों के विचार तथा परामर्श परस्पर सार्थकता ग्रहण कर सकते है। जैसाकि अन्य स्थानों पर प्राप्त अनुभव से विदित हो चुका है, यह स्थिति उस मुक्त उद्यम और पूर्ण उत्तरदायित्व के अनुकूल नहीं पड़ती जिसकी रक्षा राष्ट्रीय हित की बात है।[1]

उपकुलपति का योगदान और उसकी नियुक्ति

13.32. उपकुलपति ही वह व्यक्ति है जिसमें शैक्षिक स्वाधीनता की भावना और विश्वविद्यालय स्वायत्तता के सिद्धांत सबसे अधिक मूर्तिमंत होते हैं। वह विद्वत्ता और सत्य की साधना के प्रति विश्वविद्यालय की वचनबद्धता का प्रतीक होता है और वही यह सुनिश्चित कर सकता है कि विश्वविद्यालय की कार्यकारी शाखा का उपयोग शैक्षिक समाज के सभी क्रियाकलापों में सहायक के रूप में किया जा रहा है। अतः उकुलपति का चयन करते समय इसी तथ्य को सर्वोपरि माना जाना चाहिए।

13.33. विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (1948-49) ने उपकुलपतियों के चयन के प्रश्न पर पर्याप्त विचार किया। आयोग ने यह प्रस्ताव ठुकरा दिया कि उपकुलपति के चयन का अधिकार विश्वविद्यालय के हाथों से छीन

1. रिपोर्ट ऑफ द कमिटि ऑन हायर एजूकेशन, यू० के०, एच० एम० एस० ओ० लंदन, 1963, पैरा 752-756।

विश्वविद्यालयों के बीच करने के लिए समिति जो सिफ़ारिशें करती है उनके विषय में सरकार न तो कोई पूछताछ करती है, न उनका विरोध ही करती है। इसके अलावा नियंत्रक तथा महालेखापरीक्षक को विश्वविद्यालयों और विश्वविद्यालय अनुदान समिति की लेखापुस्तकें देखने की सुविधा नहीं रही है। आवर्ती व्यय तो अधिकांश उन शैक्षिक वेतनों के रूप में होता है जो निर्धारित वेतनमानों के अनुसार दिए जाते हैं। लोक लेखा समिति अब तक इस आधार पर संतुष्ट रही कि आवर्ती अनुदानों के नियंत्रण के तरीके विश्वविद्यालय की स्वाधीनता बनाए रखने की आवश्यकता और सरकार तथा संसद द्वारा वित्तीय नियंत्रण किए जाने के बीच का एक तर्कसंगत मार्ग प्रदान करते हैं। परन्तु पूंजीगत व्यय के कठोर निग्रंत्रण के प्रश्न पर लोक लेखा समिति और सरकार के बीच बहुत समय वादविवाद चलता रहा। समिति छानबीन करने के अपने अधिकार के लिए आग्रहशील रही और सरकार यह तर्क देती रही कि इससे विश्व-विद्यालयों की स्वाधीनता को क्षति पहुंचेगी। पर हाल के वर्षों में ऐसी क्रियाविधियाँ काम में लाई जाने लगी हैं जिनके अनुसार, सरकार के बिना अथवा नियंत्रक तथा महालेखापरीक्षक के अधिकारियों द्वारा किसी तरह ही छानबीन के बिना लोकलेखा समिति को यह भरोसा दिलाना संभव हो गया है कि अनुचित अथवा निरर्थक व्यय रोकने के लिए समुचित प्रबंध कर दिया गया है और इस तरह सभी संबद्ध दलों के सद्विवेक और संयताचार की एक उल्लेखनीय विजय हो गई है।

हम इस प्रभावमुक्ति को बहुत महत्व देते हैं और हमें यह देखकर प्रसन्नता है कि सरकार ने सफ़लतापूर्वक उसका पक्ष समर्थन किया है। किसी के दबाव में आकर हम सरकारी रकमों के प्रयोग में होने वाले अपव्यय और समुचित लेखों के अभाव की तीव्र निंदा करने से विरत नहीं हो सकते और हम इस बात को ठीक मानते हैं कि अनुदान समिति को ऐसे सुरक्षणों की व्यवस्था करने का अधिकार दिया जाना चाहिए जो इस तरह के दुरुपयोग रोकने के लिए आवश्यक हों। परन्तु यदि यह काम पूरे करने के लिए किसी मंत्रीविशेष के विभाग के स्थान पर उक्त समिति पर पूर्णतः भरोसा नहीं किया जाएगा तो एक मध्यस्थ के नाते उसके महत्व का एक उल्लेख-नीय भाग विनष्ट हो जायेगा और विश्वविद्यालयों के काम में सरकार तथा संसद के हस्तक्षेप का मार्ग खुल जाएगा। अन्य देशों की यात्रा ने हमें उस ब्रिटिश पद्धति के अपरिमित महत्व के संबंध में पहले से भी अधिक आश्वस्त कर दिया है जिसके अनुसार किसी विश्वविद्यालय के व्ययविशेष का सार्वजनिक रूप से विस्तृत औचित्य-स्थापन आवश्यक नहीं है। पश्चिमी यूरोप के एक सर्वाधिक प्रसिद्ध विश्वविद्यालय के रेक्टर ने, अपने विश्वविद्यालय में प्रचलित परिपाटी से हमें अवगत कराते हुए कहा था : 'जब तक हम वित्तीय मामलों में इन नियंत्रणों के अधीन रहते हैं तब तक शैक्षिक स्वाधीनता की समस्त चर्चा एक छलनामात्र ही रहेगी।' अतः हमारी सिफ़ारिश है कि मंत्रालय के दायित्व में किसी भी तरह का परिवर्तन होने के बावजूद हिसाब की जिम्मेदारी विषयक वर्त-मान नीति जारी रहनी चाहिए।

उच्चतर शिक्षा विषयक सामान्य नीति के ऐसे मामले बने रहेंगे जो सरकार तथा पर्लामेंट के चिंतनीय विषय होंगे और अनुदान समिति सिद्धांत का एक बहुत बड़ा लाभ यह कि ऐसे सभी मामलों में विशेष संस्थाओं के काम की विस्तृत छानबीन किए बिना सरकार और विश्वविद्यालयों के विचार तथा परामर्श परस्पर सार्थकता ग्रहण कर सकते है। जैसाकि अन्य स्थानों पर प्राप्त अनुभव से विदित हो चुका है, यह स्थिति उस मुक्त उद्यम और पूर्ण उत्तरदायित्व के अनुकूल नहीं पड़ती जिसकी रक्षा राष्ट्रीय हित की बात है।[1]

उपकुलपति का योगदान और उसकी नियुक्ति

13.32. उपकुलपति ही वह व्यक्ति है जिसमें शैक्षिक स्वाधीनता की भावना और विश्वविद्यालय स्वायत्तता के सिद्धांत सबसे अधिक मूर्तिमंत होते हैं। वह विद्वत्ता और सत्य की साधना के प्रति विश्वविद्यालय की वचनबद्धता का प्रतीक होता है और वही यह सुनिश्चित कर सकता है कि विश्वविद्यालय की कार्यकारी शाखा का उपयोग शैक्षिक समाज के सभी क्रियाकलापों में सहायक के रूप में किया जा रहा है। अतः उकुलपति का चयन करते समय इसी तथ्य को सर्वोपरि माना जाना चाहिए।

13.33. विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (1948-49) ने उपकुलपतियों के चयन के प्रश्न पर पर्याप्त विचार किया। आयोग ने यह प्रस्ताव ठुकरा दिया कि उपकुलपति के चयन का अधिकार विश्वविद्यालय के हाथों से छीन

1. रिपोर्ट ऑफ द कमिटि ऑन हायर एजूकेशन, यू० के०, एच० एम० एस० ओ० लंदन, 1963, पैरा 752-756।

लिया जाना चाहिए क्योंकि उपकुलपति के चयन का दायित्व यदि विश्वविद्यालय पर होगा तो उसके लिए शैक्षिक समाज का आदर भाव तथा विश्वास अर्जित कर लेना सुगम होगा। आयोग ने यह विचार व्यक्त किया कि अपने उपकुलपति का बुद्धिमत्तापूर्वक चयन करना सीख लेना वस्तुतः विश्वविद्यालय के कर्तव्य का एक भाग है, और इसलिए उसे इस अधिकार से वंचित करने का अर्थ निराशाजनक ही होगा। आयोग ने सिफ़ारिश की थी कि उपकुलपति की नियुक्ति कुलपति को कार्यकारी परिषद की सलाह के आधार पर करनी चाहिए और कार्यकारी परिषद को एक ही नाम कुलपति के सामने पेश करना चाहिए। अनुपयुक्त समझने पर वह उस नाम को पुनः कार्यकारी परिषद के सामने ला सकता हैं पर उसे स्वयं इस नियुक्ति के मामले में पहल नहीं करनी चाहिए।

13.34. इस मामले पर दीर्घकालीन दृष्टि से विचार करने पर हम इस सिफ़ारिश से सहमत हैं और हमारा सुझाव हैं कि अभीष्ट स्थितियां पैदा हो जाने पर उपकुलपति का चयन अंत में संबंधित विश्वविद्यालय के हाथ में ही छोड़ दिया जाना चाहिए। परंतु अपने अनेक विश्वविद्यालयों की वर्तमान परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए हमारी यह सिफ़ारिश हैं कि फिलहाल 'दिल्ली आदर्श' या उसका ही कोई अभीष्टतः परिवर्तित रूप अपना लिया जाए। इस आदर्श के अनुसार विश्वविद्यालय का विजिटर (दिग्दर्शक) तीन व्यक्तियों के नामों में से उपकुलपति के पद के लिए किसी एक की नियुक्ति करता हैं। वे तीन नाम एक समिति प्रस्तुत करती है जिसके तीन सदस्य होते हैं। इनमें से दो सदस्य कार्यकारी परिषद द्वारा ऐसे व्यक्तियों में से मनोनीत किए गए होते हैं जो विश्वविद्यालय अथवा उसके किसी कालेज से संबंधित नहीं होते। तीसरे सदस्य को विजिटर (दिग्दर्शक) मनोनीत करता है और वही उन तीनों में से एक को समिति का सभापति नियुक्त कर देता है। इस समिति के गठन से लिए कोई एक ही तरीका निर्धारित कर देना आवश्यक नहीं है। उदाहरण के लिए, राजस्थान विश्वविद्यालय में इस समिति का एक सदस्य विश्वविद्यालय द्वारा मनोनीत होता है, एक उपकुलपति द्वारा और एक विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अध्यक्ष द्वारा। हाँ, इस संबंध सें दो महत्वपूर्ण सिद्धांतों का पालन अनिवार्य है। इनमें से एक सिद्धांत यह है कि समिति का कम-से-कम एक सदस्य विश्वविद्यालय की कार्यकारी परिषद का प्रतिनिधि होना चाहिए। इस संबंध में हम उस वर्तमान प्रतिबंध के पक्ष में नहीं हैं कि विश्वविद्यालय का प्रतिनिधि वही व्यक्ति हो जो विश्वविद्यालय से किसी भी प्रकार संबद्ध न हो। हमारी सिफ़ारिश है कि विश्वविद्यालय के वैतनिक कर्मचारियों को छोड़ कर और लोगों के बारे में यह प्रतिबंध हटा दिया जाना चाहिए। दूसरा सिद्धांत यह हैं कि समिति के सभी सदस्य ऐसे व्यक्ति हों जो अपनी श्रेष्ठता तथा सत्यनिष्ठा के लिए प्रसिद्ध हों ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि उनके द्वारा किया जाने वाला चयन दबावों, प्रच्छन्न प्रभावों अथवा अन्य किसी प्रकार के ऐसे अनुनय विनय से मुक्त रहेगा जो उस पर दुष्प्रभाव डाल सकते हैं और जो अनेक बुराइयों तथा विश्वविद्यालय में दलबंदी के विकास के कारण बन सकते हैं। हमारा यह सुझाव भी है कि चयन समिति को चाहिए कि वह अनौपचारिक रूप से विश्वविद्यालय की विशिष्ट आवश्यकताओं का पता लगा ले और उनकी ओर समुचित ध्यान दे। प्रसंगतः उसे उपकुलपति पद के लिए प्रस्तावित नामों की सूची कुलपति के सामने पेश करने के पहले अनौपचारिक रूप से स्वयं उन लोगों की सहमति भी प्राप्त कर लेनी चाहिए।

13.35. कभी-कभी यह सुझाव दिया जाता है कि विश्वविद्यालयों के संकाय-अध्यक्षों (डीनों) को बारी-बारी से लगभग दो-दो वर्ष की अवधि के लिए उपकुलपति नियुक्त कर दिया जाए। हम इस सुझाव के समर्थक नहीं हैं क्योंकि अन्य बातों के अतिरिक्त इसका फल यह होगा कि अखिल भारतीय आधार पर उपकुलपति का चयन नहीं हो पाएगा और विश्वविद्यालय के भीतर भी कुछ अवांछनीय तत्व पनपने लगेंगे। हाँ, जिन विश्वविद्यालयों में उपकुलपतियों अथवा रेक्टरों के पद विद्यमान हैं वहाँ उक्त पदों पर नियुक्ति के लिए यह तरीका अपनाया जा सकता हैं। फिर भी उपकुलपति को ऐसे किसी व्यक्ति के नाम की सिफ़ारिश **न करने** का अधिकार भी होना चाहिए जो इस कार्य के लिए अनुपयुक्त हो।

13.36. 'विश्वविद्यालय आदर्श अधिनियम' विषयक समिति ने सिफ़ारिश की है कि किसी नए विश्वविद्यालय का प्रथम उपकुलपति विज़िटर (दिग्दर्शक) कुलपति अथवा सरकार द्वारा नियुक्त किया जाना चाहिए। इस नियम में एक कमी यह है कि यदि पहला उपकुलपति नियुक्ति के कुछ ही समय बाद त्यागपत्र दे दे या मर जाए तो विश्वविद्यालय के हित को देखते हुए यह आवश्यक हो जाने पर भी विज़िटर (दिग्दर्शक) कुलपति उस पद पर किसी दूसरे व्यक्ति की नियुक्ति नहीं कर सकता। अतः हमारा सुझाव है कि किसी विश्वविद्यालय के पहले पांच वर्षों में उपकुलपति की नियुक्ति का अधिकार विज़िटर कुलपति को प्राप्त होना चाहिए।

13.37. उपकुलपति की नियुक्ति का तरीका चाहे जो

हो, उसका मुख्य लक्ष्य है सर्वश्रेष्ठ उपलब्ध व्यक्ति का चयन करना और उसे काम करने के लिए ऐसी उपयुक्त स्थितियां प्रदान करना जिनमें वह अधिकार संपन्न व्यक्तियों के आंतक अथवा अनुग्रह से मुक्त रह कर कार्य कर सकें। सामान्यतः उपकुलपति ऐसा व्यक्ति होना चाहिए जो या तो प्रख्यात शिक्षाविद हो या शिक्षा की शाखा विशेष अथवा व्यवसाय विशेष का प्रख्यात पंडित हो और जिसे प्रशासन करने का पर्याप्त अनुभव भी हो। अन्य क्षेत्रों से निवृत होने वाले व्यक्तियों को उपकुलपति बना देने के हम सामान्यतः समर्थक नहीं हैं। इस सामान्य सिफ़ारिश के अपवाद केवल ऐसे बहुत ही उल्लेखनीय व्यक्ति बनाए जा सकते हैं जिनका उक्त विश्वविद्यालयों के साथ संबंध प्रत्येक दृष्टिकोण से अभीष्ट हो और अपवाद की इस सुविधा का ऐसे लोगों को 'स्थान प्रदान करने' अथवा 'पुरस्कृत करने' का एक बहाना नहीं बनाया जाना चाहिए जो निर्धारित शर्तें पूरी नहीं करते।

13.38. उपकुलपति की कार्यावधि पांच वर्ष होनी चाहिए और आम तौर पर उसे किसी एक विश्वविद्यालय में दो कार्यावधियों से अधिक समय तक नियुक्त नहीं रखा जाना चाहिए। उपकुलपति की नियुक्ति पूर्णकालिक होती है। वह विश्वविद्यालय का सर्वोच्च कार्यकारी तथा शैक्षिक अधिकारी होता है और उसके कर्तव्य तथा उत्तरदायित्व कष्टसाध्य तथा कठोर होते हैं। उनकी पूर्ति के लिए अनवरत उद्यम, व्यक्तिगत संपर्कों तथा नेतृत्व क्षमता की आवश्यकता होती है। अतः हमारी सिफ़ारिश है कि अवैतनिक उपकुलपति नियुक्त करने की पुरानी परिपाटी समाप्त करदी जाए और उपकुलपतियों के सभी पदों को पूर्णकालिक वैतनिक नियुक्तियों का रूप दे दिया जाए। साथ ही उनकी सेवा की शर्तें और पूर्वापेक्षाओं की विद्यमानता भी गुणात्मक रीति से उन बातों से भिन्न नहीं होनी चाहिए जो प्रोफेसरों तथा विश्वविद्यालयों के अन्य कर्मचारियों पर लागू होती हैं। मिसाल के तौर पर, हम उपकुलपति के लिए मुफ्त मकान, मुफ्त बिजली और पानी आदि की व्यवस्था के पक्ष में नहीं हैं। उसके लिए फ़र्नीचरयुक्त मकान—बहुत संहगे साज-समान से सजा मकान नहीं, शैक्षिक समाज के अनुरूप स्तर के फर्नीचरयुक्त मकान—का प्रबंध विश्वविद्यालय की ओर से होना चाहिए परन्तु सामान्य दर के अनुसार उससे किराया लिया जाना चाहिए। हम यह भी सिफ़ारिश करते हैं कि उपकुलपति की निवृत्ति की आयु पैंसठ वर्ष निर्धारित कर दी जानी चाहिए।[1] अखिल भारतीय ख्याति वाले असाधारण योग्यता सम्पन्न व्यक्तियों को इस नियम का अपवाद बनाया जा सकता है परन्तु ऐसे अपवाद वास्तव में बहुत कम और ऐसे होने चाहिए जिन्हें सर्वथा स्पष्टतः उचित सिद्ध किया जा सके और ऐसे अपवाद—हम अपना कथन फिर दोहरा रहे हैं—केवल सेवा-निवृत अधिकारियों अथवा राजनीतिज्ञों अथवा अन्य संभ्रात व्यक्तियों को 'स्थान प्रदान करने' के लिए नहीं होने चाहिए। उपकुलपतियों की नियुक्ति जब प्रतिष्ठा अथवा शक्ति-परीक्षा का प्रश्न बन जाती है तब तो सारी बात ही बिगड़ जाती है।

13.39. हमारे देश में विश्वविद्यालय द्रुत विकास के दौर में से गुजर रहे हैं। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए और इसलिए भी कि विश्वविद्यालय के जीवन तथा कार्य में उपकुलपति का स्थान अत्यन्त विशेष होता है, यदि उसके निवृत्त होने से कोई एक वर्ष पहले ही उसका उत्तराधिकारी नामित किया जा सके तो इससे लाभ हो सकता है। इसका अर्थ यह होगा कि नियुक्त उपकुलपति की कार्यावधि समाप्त होने से काफी पहले ही उपकुलपति के चयन के लिए अपेक्षित क्रियाविधि आरम्भ करनी होगी। इससे नामित उपकुलपति को विश्वविद्यालय की परिस्थितियों तथा उसकी विकास योजनाओं एवं नीतियों की मोटे तौर पर जानकारी पा लेने का अवसर मिल जाएगा।

13.40. वर्तमान विश्वविद्यालय अधिनियमों की एक प्रधान कमजोरी यह है कि उपकुलपति को स्वतः पर्याप्त अधिकार प्राप्त नहीं हैं। कुछ अधिनियमों के अनुसार कार्यकारी परिषद् उसे अधिकार सौंपती है परन्तु अन्य अधिनियमों में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है। हम आदर्श अधिनियम समिति के इस कथन से सहमत हैं कि विश्वविद्यालय के सुचारु कार्य संचालन के लिए उपकुलपति को पर्याप्त अधिकार (उदाहरण के लिए, विद्यार्थियों से सम्बन्धित अनुशासनात्मक कार्रवाई करने का अधिकार) स्वतः प्राप्त होने चाहिए। कार्यकारी परिषद् द्वारा उपकुलपति को अधिकार सौंपे जाने के विषय में भी विश्वविद्यालय अधिनियमों में निश्चित व्यवस्था होनी चाहिए।

विश्वविद्यालयों के लिए विधान

13.41. विश्वविद्यालय विधान के स्वरूप का प्रभाव प्रशासन की कार्यकुशलता और लचीलेपन पर होता है। विश्वविद्यालय विधान के सम्बन्धित कुछ समस्याओं पर आदर्श अधिनियम समिति की रिपोर्ट में विचार किया गया है और उक्त समिति के प्रस्तावों का विस्तृत वर्णन करना

1. यहां यह जानना रोचक सिद्ध होगा कि फ्रैंक्स कमीशन ऑन दि यूनिवर्सिटी ऑफ ऑक्सफोर्ड ने सिफारिश की है कि उपकुलपति की कार्यावधि चार वर्ष होनी चाहिए और नियुक्ति के समय उसकी आयु इकसठ वर्ष से कम होनी चाहिए।

हमारे लिए न तो यहां सम्भव है, न आवश्यक ही है। हम केवल विश्वविद्यालय के महत्वपूर्ण प्राधिकरणों, अर्थात्, कोर्ट कार्यकारी परिषद् और विद्या परिषद्, की ओर ध्यान आकृष्ट करेंगे। उन संयुक्त विभागीय समितियों का उल्लेख हम पहले कर चुके हैं जिन्हें हम बहुत महत्वपूर्ण मानते हैं। हम एक नए प्राधिकरण, अर्थात् शैक्षिक योजना बोर्ड की भी चर्चा करेंगे जिसकी स्थापना आवश्यक है।

13.42. **कोर्ट**—कोर्ट को 'सामान्य-तत्वों' का एक ऐसा निकाय होना चाहिए जो विश्वविद्यालय की नीतियां निर्धारित करे और शैक्षिक मामलों के ब्योरों अथवा विश्वविद्यालय के दैनंदिन प्रशासन के मामले में नहीं पड़े। कोर्ट के एक सौ से अधिक सदस्य नहीं होने चाहिए, जिनमें से आधे बाहरी होने चाहिए। इन सदस्यों में पदेन सदस्य पूर्वछात्रों, विद्याप्रधान व्यवसायों तथा उद्योग के प्रतिनिधि और कार्यकारी परिषद्, विजिटर (दिग्दर्शक) और कोर्ट के प्रतिनिधि शामिल होंगे। जैसा कि हम पहले ही सुझाव दे चुके हैं, कोर्ट में छात्रों के प्रतिनिधि भी शामिल किए जा सकते हैं। उस नगर निगम अथवा नगरपालिका के प्रतिनिधि भी शामिल कर लेना उपयोगी रहता है जिसके क्षेत्राधिकार में विश्वविद्यालय स्थित हो। अन्य स्थानीय निकायों के प्रतिनिधि शामिल करने की आवश्यकता नहीं है परन्तु जब हमारे प्रस्तावित जिला स्कूल बोर्ड स्थापित हो जाएंगे तब उनके प्रतिनिधियों को कोर्ट में स्थान मिलना चाहिए। केन्द्रीय विश्वविद्यालयों की कोर्ट में संसद के और राज्यीय विश्वविद्यालयों की कोर्ट में राज्य विधान मण्डल के भी प्रतिनिधि होने चाहिए। हमारा सुझाव यह है कि विश्वविद्यालयों के अधिनियमों में कोर्ट अथवा 'सीनेट' की कुल सदस्य-संख्या ही निर्धारित होनी चाहिए, उसकी विस्तृत गठन-व्यवस्था संविधियों में वर्णित कर दी जानी चाहिए। इस तरह विश्वविद्यालय विस्तृत वैधानिक क्रियाविधियों में पड़े बिना अपने अनुभव तथा आवश्यकताओं के अनुसार कोर्ट के गठन में परिवर्तन कर सकेंगे।

13.43. **कार्यकारी परिषद्**—जैसीकि आदर्श अधिनियम समिति ने सिफ़ारिश की है, कार्यकारी परिषद् में पंद्रह से बीस तक सदस्य होने चाहिए, जिनमें से आधे आंतरिक होने चाहिए, आधे बाह्य। उपकुलपति उसका सभापति होना चाहिए और विश्वविद्यालय का प्रतिउपकुलपति अथवा रेक्टर पदेन सदस्य। मिसाल के तौर पर, कार्यकारी परिषद् में, पूर्णकालिक अध्यापकों के रूप में काम कर रहे चार संकायाध्यक्ष (डीन), कालेजों के चार प्रिंसिपल, कोर्ट द्वारा अपने ही सदस्यों में से चुने गए तीन व्यक्ति, विश्वविद्यालय के अध्यापकों द्वारा अपने में से चुने गए तीन अध्यापक और दिग्दर्शक और/अथवा कुलपति द्वारा नामित ऐसे चार व्यक्ति सम्मिलित किए जा सकते हैं जिनमें सरकार के प्रतिनिधि भी शामिल हो सकते हैं।

13.44. **विद्या परिषद्**—अध्ययन पाठ्यक्रम तथा स्तर-निर्धारण का सम्पूर्ण अधिकार विद्या परिषद् को होना चाहिए। उस परिषद् के फैसलों का अनुमोदन विश्वविद्यालय के किसी और प्राधिकरण द्वारा कराया जाना आवश्यक नहीं होना चाहिए। विश्वविद्यालयों के अधिनियमों के अनुसार सीनेट अथवा कोर्ट को शैक्षिक मामलों में दखल देने का बहुत ही कम अधिकार है। परंतु विद्या परिषद् के आवश्यक विनियम बनाने के अधिकार को दो तरीकों से कार्य रूप दिया जाता है: (1) शैक्षिक मामलों से संबंधित प्रस्ताव कभी-कभी पहले कार्यकारी परिषद् में पास कर लिए जाते हैं ताकि वे विद्या परिषद् के लिए भी बंधनकारी हो जाएँ, और (2) अधिकतर विश्वविद्यालयों में विद्या परिषद् की बैठक वर्ष में दो बार होती है अतः तुरंत विचारणीय मामलों पर प्रायः कार्यकारी परिषद् में विचार कर लिया जाता है। इस तरह की कठिनाइयाँ दूर करने के लिए आवश्यक है कि या तो विद्या परिषद् की अधिक बैठकें की जाएँ या उक्त परिषद् की ऐसी स्थायी समिति बना दी जाए जो इस तरह के मामले निपटाती रहे। जैसी कि पहले सिफ़ारिश की जा चुकी है, विद्या परिषद् में छात्रों के प्रतिनिधि भी शामिल कर लिए जाने चाहिए।

13.45. **शैक्षिक योजना बोर्ड**—विश्वविद्यालयों में, दैनंदिन प्रशासन से पृथक, एक स्थायी आयोजन एवं मूल्यांकन संगठन की स्थापना आवश्यक है। इस काम के लिए हम शैक्षिक योजना बोर्डों की नियुक्ति की सिफ़ारिश कर रहे हैं जिसके सदस्य विश्वविद्यालय के प्रतिनिधि, अन्य विश्वविद्यालयों के कुछ व्यक्ति और सार्वजनिक कार्यों के कुछ विशिष्ट तथा अनुभवी व्यक्ति होंगे। इनकी नियुक्ति कुलपति द्वारा उपकुलपति से सलाह लेकर की जानी चाहिए। दीर्घावधिक योजनाओं के बारे में विश्वविद्यालय को परामर्श देने, नए विचारों तथा नए कार्यक्रमों के लिए प्रेरित-प्रोत्साहित करने और समय-समय पर विश्वविद्यालय के काम के मूल्यांकन का भार इन लोगों पर होना चाहिए।

13.46. **दीक्षांत समारोह**—हमारे विश्वविद्यालयों तथा कालेजों में आजकल जिस तरह दीक्षांत समारोहों का आयोजन किया जाता है उसके विषय में भी हम यहाँ दो चार शब्द कहना चाहते हैं। विद्यार्थियों को उपाधियाँ सामूहिक रूप से दी जाती हैं। इस स्थिति में वे उन समारोहों में वास्तविक सहभागी होने की भावना का अनुभव नहीं कर पाते और इसीलिए वे समारोह अधिक

उपयोगी नहीं रहते । अतः दीक्षांत समारोहों के कार्यक्रम और कार्यविधि में सुधार आवश्यक जान पड़ता है । अच्छा यह हो कि अंतर्विश्वविद्यालय बोर्ड इस प्रसंग के विविध पक्षों—जिनमें शैक्षिक परिधान का प्रश्न भी शामिल है—पर विचार करने के लिए एक समिति नियुक्त कर दे । भारतीय वातावरण और जलवायु में हुड और गाउन असुविधाजनक ही नहीं, असंगत भी हैं । हम यहां यह उल्लेख करना चाहते हैं कि अनेक देशों—उदाहरणार्थ सोवियत रूस और जापान—में दीक्षांत समारोह के अवसर पर उपाधियां ग्रहण करने वाले नवस्नातकों के लिए कोई विशेष शैक्षिक परिधान पहनना अनिवार्य नहीं है ।

13.47. हम खेदपूर्वक यह उल्लेख कर रहे है कि हाल के वर्षों में दो बार सरकार ने विश्वविद्यालयों के विधान निलंबित किए । हमारा यह सुविचारित मत है कि किसी विश्वविद्यालय का विधान निलंबित कर देना अंतिम कदम है अतः यह उस समय तक नहीं उठाया जाना चाहिए जब तक सुधार का और प्रत्येक उपाय काम में लाया जा कर विफल सिद्ध न हो चुका हो । हम मानते हैं कि विश्वविद्यालय कभी-कभी उपलब्धि के प्रत्याशित स्तरों तक नहीं पहुंच पाते । परंतु ऐसी स्थितियों से बचने का उपाय तो स्वयं विश्वविद्यालय-तंत्र में ही एक ऐसे अतिरिक्त संगठन की स्थापना द्वारा किया जा सकता है जो जबरदस्त कुप्रथाओं और उनके इलाजों के बारे में कार्रवाई कर सके । जहाँ तक केन्द्रीय विश्वविद्यालयों का संबंध है, भारत के राष्ट्रपति को—जो केन्द्रीय विश्वविद्यालयों का दिग्दर्शक भी है—किसी भी केन्द्रीय विश्वविद्यालय का प्रत्यक्षतः निरीक्षण करने अथवा उसके मामलों की जाँच कराने का अधिकार है । राज्यीय विश्वविद्यालयों के संबंध में यह अधिकार प्रत्यक्षतः राज्य सरकार को प्राप्त है । यह स्थिति सुखद नहीं है और हम आदर्श अधिनियम समिति के इस विचार से सहमत हैं कि राज्यों के राज्यपाल अपने-अपने राज्य के सभी विश्वविद्यालयों के दिग्दर्शक होने चाहिए और उन्हें वैसे ही अधिकार भी प्राप्त होने चाहिए । हम यह भी सिफ़ारिश करते हैं कि यह प्रथा बना ली जानी चाहिए कि इस संबंध में अपने अधिकारों का प्रयोग करने से पहले दिग्दर्शक विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से परामर्श कर ले ।

13.48. **सामान्य सिफ़ारिशें**—भारत में इस समय विद्यमान विश्वविद्यालय विषयक अधिकांश विधान में ऊपर वर्णित सिद्धान्तों के अनुसार संशोधन आवश्यक है । इस संबंध में हमारे प्रस्ताव निम्नलिखित हैं :

(1) सभी विश्वविद्यालयों के वर्तमान विधान पर पुनर्विचार होना चाहिए और हमारी सिफ़ारिशों के अनुसार उसमें आवश्यक संशोधन किया जाना चाहिए । इस संबंध में शिक्षा मंत्रालय तथा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को पहल करनी चाहिए । इस दिशा में बनाए जाने वाले नए विधानों में भी इन्हीं सिद्धांतों को अंगीकार किया जाना चाहिए ।

(2) देश में उच्चतर शिक्षा के विकास तथा प्रगति के लिए विश्वविद्यालयों के स्वरूप तथा संगठन में कुछ हद तक वैविध्य वांछनीय है । आदर्श अधिनियम समिति की सिफ़ारिशों में विश्वविद्यालयों के संगठन के केवल अधिकतम महत्वपूर्ण पक्षों पर प्रकाश डाला गया है और वहाँ भी कभी-कभी विकल्प सुझा दिए गए हैं ताकि ऐसी प्रथा-परंपराएँ बनाए रखना संभव हो सके जो किसी विद्यमान विश्वविद्यालय में संतोषजनक सिद्ध हो चुकी हैं । जैसाकि समिति ने जोर देकर कहा है, यह बहुत आवश्यक है कि विश्वविद्यालय का विधान पर्याप्त सामान्य शब्दावली में तैयार किया जाए ताकि उसमें नवोद्भावना तथा प्रयोग-परीक्षण के लिए गुंजाइश बनी रहे ।

(3) यह आवश्यक है कि एक ऐसा उपयुक्त संगठन स्थापित कर लिया जाए जिसके माध्यम से, विश्वविद्यालयों से संबंधित विधान अधिनियमित किया जाने से पहले उसके विषय में, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, शिक्षा मंत्रालय और राज्य सरकारों के बीच त्रिपक्षीय विचार-विमर्श किया जा सके । विश्वविद्यालय शिक्षा विषयक विधेयकों के अंतिम रूप लेने से पहले ही यह काम हो जाना चाहिए । इसी तरह विधान पास करते समय केन्द्रीय सरकार को चाहिए कि वह राज्य सरकारों को अपने विचार व्यक्त करने का अवसर दे दे । इस क्रियाविधि से उस प्रकार की अनेक कठिनाइयों से बचाव हो जाएगा जो हाल ही में सामने आती रही हैं और देश में उच्चतर शिक्षा के सहज विकास में भी सहायता मिलेगी ।

इस संबंध में हम आदर्श अधिनियम समिति के निम्नलिखित विचारों का समर्थन करना चाहते हैं : "केवल विधानों से अच्छे संगठन अस्तित्व में नहीं आ जाते और लिखित विधानों को अच्छी परिपाटियों के सहारे

की आवश्यकता होती है (समिति संगठनात्मक स्वरूप में सुधार परिष्कार के लिए कुछ निदेशक सुझाव तो पेश कर रही है परन्तु उसका दृढ़ विश्वास है कि किसी विश्वविद्यालय का सम्यक् कार्य-संचालन दो आधारभूत सिद्धान्तों की सर्वांगीण स्वीकृति पर निर्भर होता है। वे सिद्धान्त हैं : (1) बाहरी नियंत्रण से विश्वविद्यालय की स्वायत्तता तथा उसके साथ-साथ लोकतंत्रीय प्रशासनिक व्यवस्था, और (2) विश्वविद्यालय की नीतियों तथा कार्यक्रमों के निर्धारण तथा कार्यान्वयन में शैक्षिक समाज का प्रभावपूर्ण सहयोग।[1]

13.49. **विश्वविद्यालय और अदालतें**—विश्वविद्यालयों के विरुद्ध अधिकाधिक संख्या में किए गए मुकदमों की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया गया था और हमने भारतीय विधि संस्थान, नई दिल्ली, के साथ मिल कर इस समस्या पर विचार किया। इस संबंध में विश्वविद्यालयों द्वारा दी गई जानकारी और उच्च न्यायालयों तथा सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए प्रकाशित फैसलों के अध्ययन से निम्नलिखित प्रवृत्तियों पर प्रकाश पड़ता है :

(1) पिछले कुछ वर्षों में विश्वविद्यालयों के विरुद्ध किए जाने वाले मुकदमों की संख्या में होने वाली उल्लेखनीय वृद्धि का प्रधान कारण है सामाजिक प्रवृत्तियों में होने वाला परिवर्तन। पहले लोग यथासंभव मुकदमेबाजी से बचा करते थे परन्तु अब लोगों का झुकाव मुकदमेबाजी की ओर ही बहुत अधिक हो गया है। विश्वविद्यालय के नियमों तथा अनुशासन की अवज्ञा करने के कारण दंडित अथवा परीक्षा में नक़ल करते पकड़ा जाने वाला विद्यार्थी किसी और उपाय का सहारा लिए बिना अदालत का द्वार खटाखटा देता है। इसी प्रकार विश्वविद्यालय के हितों के विरुद्ध काम करने अथवा कर्तव्य पालन में जबरदस्त लापरवाही करने के कारण नौकरी से अलग किया जाने वाला अध्यापक अदालत की शरण ले लेता है।

(2) अधिकतर मुकदमों में अदालतों का फैसला विश्वविद्यालयों के पक्ष में रहा है। हमने देखा कि एक विश्वविद्यालय के मामले में दायर किए गए चौंसठ मुकदमों में से केवल चार का फैसला उसके विरुद्ध रहा। अंत में फैसला विश्वविद्यालयों के पक्ष में हो जाने पर भी ऐसे मामलों में अदालतों द्वारा अनिवार्य रूप से जारी किए जाने वाले स्थगन आदेशों तथा अन्य प्रारंभिक कार्रवाइयों के कारण समय तथा धन का व्यय हुआ है और यह सब विश्वविद्यालय प्राधिकारियों के लिए क्लेश-प्रद ही सिद्ध हुआ है।

(3) कुछ मामलों के अतिरिक्त न्यायालयों की प्रवृत्ति यही रही है कि जब तक प्रत्यक्षतः कोई न्याय-भंग या असद्भाव सिद्ध न हो तब तक शिक्षा से संबंधित बातें स्वयं शिक्षा संस्थाओं द्वारा नियंत्रित होने के लिए छोड़ दी जाएं। प्रवेश, परीक्षा, विद्यार्थियों के अनुशासन और शिक्षण तथा शिक्षणेतर कर्मचारियों के नियमन तथा भरण विषयक प्रसंगों को 'शिक्षा से संबंधित बातों' के उदाहरण माना गया है। सर्वोच्च न्यायालय ने यह फैसला भी दिया है कि शिक्षा संस्थाओं के प्रशासन को किसी उद्योग के तुल्य नहीं ठहराया जा सकता और औद्योगिक विवादों का हल करते समय अपनाए जाने वाले सिद्धान्त शिक्षा संस्थाओं पर लागू नहीं किए जा सकते (दिल्ली विश्वविद्यालय बनाम रामनाथ, आल इंडिया रेडिगो, 1963)।

13.50. यह एक बहुत ही कठिन समस्या है जिसका कोई आसान हल नहीं है, फिर भी हम दो प्रधान शिफ़ारिशें कर देना चाहते है जिनसे इस दिशा में कुछ सुगमता हो सकती है :

(1) शिक्षा तंत्र का प्रयास यह होना चाहिए कि वह शिक्षा का समुचित मूल्य अनुस्थापन कर सके और वह ऐसा वातावरण तैयार कर सके जो सभी शिक्षा संस्थाओं को अध्यापकों तथा छात्रों की बिरादरियों में परिणत करने के लिए अनिवार्य हो। इसके अलावा, शिक्षा-संस्थाओं के प्रशासन के साथ अध्यापकों तथा छात्रों को संबद्ध करके उसे यथासंभव अधिक से अधिक लोकतन्त्रीय बनाने के लिए कदम उठाए जाने चाहिए ताकि अधिकतर मामलों में शिक्षा-तंत्र के भीतर ही लोगों की शिकायतें संतोषजनक रीति से दूर की जा सकें और अदालतों तक पहुँचने की प्रवृत्ति को कम किया जा सके।

(2) हमारा यह सुझाव भी है कि भारत सरकार सर्वोच्च न्यायालय से यह प्रार्थना कर सकती है कि वह विश्वविद्यालयों तथा शिक्षा-संस्थाओं के संबंध में हुए

1. **रिपोर्ट ऑफ दि कमिटी ऑन मॉडल एक्ट फॉर यूनीवर्सिटीज, मिनिस्ट्री आफ एजूकेशन, गवर्नमेंट आफ इण्डिया, नई दिल्ली,** 1964 पृ० 8।

2. **उच्च न्यायालयों तथा सर्वोच्च न्यायालय में प्रतिवेदित मुकदमों के सार के लिए पूरक खण्ड एक, भाग चार देखिए।**

मुकदमों में न्यायालय द्वारा हाल ही में दिए गए फैसलों का पुनर्विलोकन करके इस विषय में एक उपयुक्त नीति निर्धारित करने के औचित्य पर विचार करे जिससे विश्वविद्यालय स्वायत्तता और उच्चतर शिक्षा का विकास बनाए रखने में सहायता प्राप्त हो सके।

13.51. यहाँ यह उल्लेख अप्रासंगिक न होगा कि हाल ही में ब्रिटेन की प्रिवि कौंसिल ने इस प्रश्न पर विचार किया था कि किसी छात्र को किसी परीक्षा से पास या फेल करने के विषय में विश्वविद्यालय द्वारा किया गया फैसला किसी न्यायालय में वादयोग्य है या नहीं। कौंसिल ने फैसला दिया है कि अदालतों को ऐसे मामलों में न्याय निर्णय का कोई अधिकार नहीं है। एक अन्य मुकदमे (थॉम्सन बनाम लंदन विश्वविद्यालय) में यह फैसला किया गया कि परीक्षाएँ लेना और उपाधियाँ प्रदान करना ऐसे मामले है जो एकांततः विश्वविद्यालय के विजिटर (दिग्दर्शक) के क्षेत्राधिकार में आते हैं। हमारे विश्वविद्यालयों के सुचारु कार्यसंचालन के लिए भी यह अपेक्षित है कि हमारे देश में भी इसी तरह की स्वस्थ परंपराओं की स्पष्टतः स्थापना कर दी जाए।

सम्बद्ध कालेज

13.52. **संबंधन**—कालेजों को संबद्ध करना और उनके छात्रों को उपाधियाँ प्रदान करना विश्वविद्यालयों के काम का एक भाग है। इस समय प्रचलित परिपाटियों के अनुसार प्रत्येक विश्वविद्यालय संबंधन की शर्तें निर्धारित कर देता है, निरीक्षण दल भेजता है और उन दलों की रिपोर्टों के आधार पर संबंधन कर देता है।

13.53. किसी कालेज के संबंधन का मामला विश्वविद्यालय का विषय भी होता है और राज्य सरकार का भी—विश्वविद्यालय का शैक्षिक दृष्टिकोण से और सहायक अनुदान देने के नाते राज्य सरकार का वित्तीय दृष्टिकोण से। इस समय इस विषय में विश्वविद्यालयों तथा राज्य सरकारों का आपसी संबंध स्पष्टतः निरूपित नहीं है। कुछ राज्यों में विश्वविद्यालय राज्य सरकार को बताए बिना ही संबंधन कर देते हैं। कुछ अन्य राज्यों में इसे एक संयुक्त कार्य माना जाता है और अंततः राज्य सरकार संबद्ध विश्वविद्यालय की सिफ़ारिश पर संबंधन करती है। इसके अतिरिक्त, संबद्ध कालेजों को सहायक अनुदान देने वाली राज्य सरकारें सहायक अनुदान विषयक नियम बनाते अथवा उक्त अनुदान के लिए मंजूरी देते समय विश्वविद्यालय से सलाह नहीं लेती। स्पष्ट बात है कि ये दोनों काम—संबंधन और सहायक अनुदान—एक दूसरे पर निर्भर हैं और इन्हें अलग करने से कालेजों के प्रभावपूर्ण नियंत्रण में शैथिल्य आ जाता है। वर्तमान स्थिति में सुधार के लिए हम निम्नलिखित सिफ़ारिशें करते हैं।

(1) कालेजों का संबंधन एक शैक्षिक कार्य है और यह विश्वविद्यालय द्वारा ही किया जाना चाहिए। परन्तु संबंधन का अर्थ है सहावता का अधिकारी हो जाना। अतः विश्वविद्यालयों को चाहिए कि अंतिम रूप से फैसला करने से पहले वे सभी गैर-सरकारी कालेजों के बारे में राज्य सरकार से सलाह ले लें।

(2) पहली बार संबंधन करते समय केवल उस अवधि का ही उल्लेख नहीं कर दिया जाना चाहिए जिसके लिए संबंधन किया गया है, अपितु यह भी बता दिया जाना चाहिए कि वहाँ कौनसे पाठ्यक्रम चलाए जाएंगे और उस कालेज में अधिक से अधिक कितने छात्रों को प्रवेश दिया जा सकता हैं। विज्ञान के छात्रों आदि के प्रवेश के विषय में यह निश्चित कर दिया जाना चाहिए कि किस पाठ्यक्रम में कुल कितने छात्रों को प्रवेश दिया जाएगा। यदि संबंधन किन्हीं शर्तों पर किया जाए तो सतर्कतापूर्वक यह देखते रहना चाहिए कि वे शर्तें वास्तव में और समुचितरूप से पूरी की जा रही हैं या नहीं। इस दिशा में दिखाई गई शिथिलता का परिणाम प्रायः यह रहा है कि अभीष्ट से नीचे स्तर के कालेजों को संबद्ध कर दिया गया जिससे शिक्षा के स्तरों में गिरावट आगई।

(3) राज्य सरकारों को चाहिए कि वे कालेजों को सहायक अनुदान देने के काम में विश्वविद्यालयों को अधिक घनिष्ठ रूप से सम्मिलित करें। राज्य के सभी उपकुलपतियों की ऐसी एक अनौपचारिक समिति बना लेना उपयोगी होगा जो संबद्ध कालेजों को सहायक अनुदान देने के बारे में शिक्षा विभाग को सलाह देती रहे। सहायक अनुदान विषयक कानून बनाते अथवा उनमें संशोधन करते समय और सहायक अनुदान के वार्षिक बंटन करते समय इस समिति से सलाह ली जानी चाहिए। इस समिति का काम विभाग के लिए भी उपयोगी रहेगा तथा विश्वविद्यालयों के लिए भी।

13.54. **संबद्ध कालेजों की परिषद्**—हम सिफ़ारिश करते हैं कि संबंधन करने वाले प्रत्येक विश्वविद्यालय में संबद्ध कालेजों की एक परिषद् होनी चाहिए जिसमें विश्वविद्यालय तथा कालेजों के प्रतिनिधि शामिल हों। इस परिषद् में सदस्यों के रूप में उसी राज्य के अन्य

विश्वविद्यालयों तथा बाहर के भी कुछ प्रतिनिधि शामिल कर लेना उपयोगी हो सकता है। इस परिषद् का काम होगा—इन कार्यों का निर्धारण विश्वविद्यालय की संविधियों द्वारा किया जाएगा—कालेजों के संबंधन विषयक सभी मामलों में विश्वविद्यालय को सलाह देना, इस विषय में विश्वविद्यालय की नीति के कार्यान्वयन में सहायक होना, कालेजों के सम्यक् विकास में सहायता पहुँचाने की दृष्टि से उनके साथ निकट संपर्क बनाए रखना और इस बात का समय-समय पर हिसाब लगाते रहना कि कालेजों के स्तर क्रमशः ऊपर उठ रहे हैं या नहीं। यह कोई आसान काम नहीं है, और यह संतोषजनक रीति से तभी पूरा हो सकता है जब इसके लिए उच्च कर्तव्य भावना तथा शिक्षाविषयक समस्याओं की गंभीर जानकारी रखने वाले व्यक्तियों का ही चयन किया जाए।

13.55. कालेजों का सम्बन्धन करने और समय-समय पर उनका निरीक्षण करने वाले वर्तमान तंत्र को मजबूत बनाना भी जरूरी है। इस दिशा में अनेक कदम उठाए जा सकते हैं :

(1) संबंधन के लिए विश्वविद्यालयों द्वारा निर्धारित शर्तों का पुनर्विलोकन करके उसमें मोटे तौर पर इस तरीके से सुधार कर लिया जाना चाहिए जिसकी सिफ़ारिश मई, 1964 में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा आयोजित कालेजों के प्रिंसिपलों के सम्मेलन में की गई थी। हम जोर देकर कहना चाहते हैं कि उच्चतर शिक्षा में स्तर बनाए रखने का प्रधान दायित्व विश्वविद्यालयों पर ही है और जब तक उन्हें शिक्षा की कोटि के विषय में गंभीर चिंता नहीं होगी तब तक स्थिति में बहुत ही कम सुधार हो पाएगा।

(2) संबंधन को ऐसा एक विशेषाधिकार माना जाना चाहिए जिसे लगातार अर्जित करके अपने आपको उसके योग्य बनाए रखना होता है। अतः यह बात सुनिश्चित करने के लिए समय-समय पर—तीन-तीन वर्ष बाद ऐसा किया जाए तो अधिक अच्छा है—सभी कालेजों का निरीक्षण किया जाए कि वहां समुचित स्तर बने रह रहे हैं या नहीं। हमें बताया गया है कि कालेजों का यह आवधिक निरीक्षण बराबर नहीं किया जाता। एक प्रधान कठिनाई, जिसका अनुभव अधिक संख्या में संबद्ध कालेजों वाले विश्वविद्यालय विशेष रूप से करते है, यह है कि इस तरह के निरीक्षण के लिए कोई स्थायी कर्मचारी-वर्ग नहीं है, कि निरीक्षण समितियों का गठन करने के लिए अवैतनिक आधार पर उपयुक्त अध्यापकों का एक दल एकत्र कर पाना बहुत कठिन होता है और यह कि उस समय यह कठिनाई और भी बढ़ जाती है जब, जैसा कि स्पष्टतः वांछनीय है, इन समितियों के साथ विश्वविद्यालय के बाहर के कुछ लोग भी जोड़ने पड़ते हैं। हम यह नहीं मानते कि आवधिक निरीक्षण का काम पूरी तरह एक पूर्णकालिक वैतनिक कर्मचारी वर्ग को सौंप देना उचित होगा। उन लोगों के साथ अवैतनिक रूप में विश्वविद्यालय तथा कालेजों के उत्कृष्ट अध्यापकों को इस काम पर लगाना सदैव आवश्यक होगा। हमारा यह विचार अवश्य है कि यदि इस काम के लिए एक छोटा-सा कर्मचारी वर्ग बनाए रखा जाए तो इससे उस कार्यक्रम की समुचित व्यवस्था में बहुत सहायता मिलेगी। हमारी सिफ़ारिश है कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग इस प्रसंग पर विस्तार से विचार करले।

13.56. कालेजों के संबंधन और उनके आवधिक निरीक्षण विषयक वर्तमान तंत्र को मजबूत बनाने के लिए प्रत्येक उपाय तो किया ही जाना चाहिए पर इस समस्या को आवश्यकता से अधिक सरल रूप में प्रस्तुत करके वह मान लेना भ्रमपूर्ण ही होगा कि उक्त सुधार मात्र से कालेजों के स्तरों में सुधार हो जाएगा। हम यहां यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि कमजोर कालेजों की संख्या बढ़ाने वाले कारण विविध और जटिल हैं और वे हमारे समाज के सामाजिक-आर्थिक ढांचे में ही बद्धमूल हैं। उदाहरणार्थ ऐसी संस्थाएं मूलतः इन कारणों से अस्तित्व में आती हैं :

— इन विभिन्न सामाजिक-आर्थिक कारणों से, जिनका विवेचन पांचवें अध्याय में किया जा चुका है, उच्चतर शिक्षा में होने वाला द्रुत विस्तार;

— उस विस्तार के लिए समुचित व्यवस्था करने के लिए अपेक्षित साधन जुटाने में सरकार की असमर्थता;

— स्वयं विश्वविद्यालय तंत्र में ही काम करने वाले सामाजिक और राजनीतिक दबाव; और

— विश्वविद्यालय तंत्र के बाहर से पैदा होने वाले वे राजनीतिक दबाव जिसका प्रतिरोध प्रायः विश्वविद्यालय नहीं कर पाते।

यह अनुभव किया जाना आवश्यक है कि उपलब्ध सुविधाओं के अनुपात में ही कालेजों में छात्रों को प्रवेश देना वह एकमात्र बुनियादी सुधार है जिससे संबद्ध कालेजों के स्तर ऊपर उठाना संभव है। विस्तार विषयक नीतियों का निर्धारण न तो केवल कालेज करते हैं, न विश्व-

विद्यालय और न केवल विश्वविद्यालय अनुदान आयोग। उन नीतियों का निर्धारण तो केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों द्वारा राष्ट्रीय आवश्यकताओं की पूर्त्ति के लिए अपेक्षित प्रशिक्षित लोगों की कुल संख्या को ध्यान में रख कर और कृषि, उद्योग अथवा राष्ट्रीय जीवन के अन्य क्षेत्रों के विकास की योजनाओं के संदर्भ में किया जाता है। यह फैसले कर लिए जाने पर अभीष्ट साधन देना उनका दायित्व हो जाता है। आजकल हो यह रहा है कि विस्तार तो प्रतिवर्ष लगभग दस प्रतिशत तक होने दिया जा रहा है परन्तु वास्तव में इस कार्य के लिए दिए जाने वाले साधन इसके आधे के बराबर भी नहीं है। इसके परिणामस्वरूप स्तरों का उत्तरोत्तर गिरते जाना अपरिहार्य है और संवंधन विषयक तंत्र में किया जाने वाला कोई भी प्रशासनिक सुधार शिक्षाविषयक नीति की इस बुनियादी कमजोरी को दूर नहीं कर सकता।

13.57. **सरकारी कालेज**—सरकारी कालेजों का प्रवन्ध करना राज्यों के शिक्षा विभागों का एक महत्वपूर्ण दायित्व है। विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग ने सिफ़ारिश की थी कि सरकार को कोई कालेज नहीं चलाना चाहिए और सभी सरकारी कालेज सभी विश्वविद्यालयों को सौंपे जाने चाहिएं। यह सिफ़ारिश आमतौर पर मानी नहीं गई है और जहां इसे मान लिया गया है वहां भी परिणाम सर्वत्र संतोषजनक नहीं रहे हैं। इस तरह के सबसे सफल उदाहरण संभवतः विश्वविद्यालयों के मुख्यालयों में स्थित वे कालेज हैं जिनका प्रबंध उन विश्वविद्यालयों के हाथों में सौप दिया गया है और जिन्हें अंगभूत कालेज अथवा विभाग बना दिया गया है। सभी सरकारी कालेज विश्वविद्यालव को सौंप देने का काम केवल एक राज्य मैसूर में किया गया परन्तु यह परीक्षण इतना निराशाजनक रहा कि वे कालेज फिर से सरकार को ही सौंपने पड़े। समग्रतः लोगों का यह निश्चित विचार हो गया है कि राज्य सरकारों को सामान्यतः कोई कालेज नहीं चलाना चाहिए। इसके साथ ही साथ सरकारी कालेज सरकार को सौंप दिए जाने का कुछ लोगों ने इस आधार पर विरोध किया है कि इससे कालेजों को तो कुछ लाभ होता नहीं, विश्वविद्यालयों के प्रशासनिक दायित्व बढ़ जाते हैं और इससे उनके विकास में बाधा पहुंचती है। अतः यह उचित है कि इस तरह के कालेजों के प्रवन्ध के लिए कोई उपयुक्त संगठन बना लिया जाए।

13.58. हमने इस प्रसंग पर गंभीरतापूर्वक विचार कर लिया है और हम समझते हैं कि ऐसा कोई एक समाधान सुझाना उचित नहीं है जो सभी मामलों पर लागू हो सके। आवश्यक यह है कि स्थानीय परिस्थितियों तथा परम्पराओं के अनुरूप विभिन्न तरीकों को अपना कर देखा जाए। इस विषय में हम निम्नलिखित सिफ़ारिशें करना चाहते हैं :

(1) मध्यप्रदेश अथवा राजस्थान जैसे राज्यों में बहुत अधिक सरकारी कालेजों का प्रबन्ध एक पृथक् कालेज शिक्षा निदेशालय करता है। यह परिपाटी तो जारी रखी जा सकती है परन्तु यह अवश्य सुनिश्चित कर लिया जाना चाहिए कि कालेज शिक्षा निदेशालय का निदेशक विख्यात शिक्षाविद् हो। कर्मचारिवों के जल्दी-जल्दी तवादले जैसी बुराइवों को दूर करने के भी प्रयत्न होने चाहिए।

(2) किसी राज्य के सभी सरकारी कालेजों के प्रबन्ध के लिए एक ही स्वायत्तशासी संगठन की स्थापना की सम्भावनाओं पर भी विचार किया जाना चाहिए। हमारा विचार यह है कि उक्त संगठन में एक प्रबंध-मंडल होगा जिसका एक पूर्णकालिक सचिव होगा। उस राज्य के विश्वविद्यालय के सभी उपकुलपवि प्रबंधमंडल के सदस्य होमें चाहिए। उनके अतिरिक्त उनमें कुछ सरकारी प्रतिविधि और कुछ गैर-सरकारी शिक्षाविद् तथा विश्वविद्यालय अध्यापक होने चाहिए। इस तरह के संगठन से संभवतः कालेजों के प्रशासन राजनीतिक प्रभावों और विचारों से कम पराभूत रहेंगे और उन्हें अधिक शैक्षिक रूप प्राप्त हो सकेगा। इस तरह प्रासंगिक रूप से वह कठिनाई भी दूर हो जाएगी जिसकें कारण सरकारो कालेजों के कर्मचारियों को (जो राज्य सेवा के अंतर्गत आते हैं) विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा स्वीकृत वेतनमान नहीं दिए जा सकते।

(1) दिल्ली में प्रचलित तरीका इसका एक संभव विकल्प हो सकता है। इसके अनुसार प्रत्येक सरकारी कालेज को एक स्वायत्तशासी प्रबन्ध-मंडल के मातहत कर दिया गया है। इस तरीके का लाभ यह है कि कर्मचारी एक स्थान पर केन्द्रित हो जाते हैं और इस प्रकार उनमें अपनी संस्थाओं के प्रति निष्ठा का बिकास हो सकता है।

13.59. **गैर-सरकारी कालेज**—संवद्ध कालेजों में से अधिकतर गैर-सरकारी हैं और जब तक उन्हें समुचित निदेशन और पर्याप्त सहायता नहीं दी जाएगी तब तक उच्चतर शिक्षा के सामान्य स्तरों में सुधार नहीं होगा। हम समझते हैं कि उस वर्तमान नीति में बहुत अधिक परिवर्तन की आवश्यकता हैं जिसके अनुसार नियंत्रण करने और सहायक अनुदान देने के संदर्भ में सभी गैर-सरकारी संस्थाओं को समान माना जाता है। इसके बदले एक

विवेक प्रधान पद्धति आरम्भ की जानी चाहिए जिसके अनुसार अच्छी संस्थाओं को अधिक स्वाधीनता और अधिक उदारतापूर्वक सहायता दी जाती है और उन दुर्बलतर संस्थाओं के प्रति निदेशन की कठोर नीति अपनाई जाती हैं जो अधिक अनुदानों की अधिकारिणी इसलिए नहीं होतीं कि वे आत्मसुधार के प्रयास में विफल रहती हैं।

13.60. सहायक अनुदान के परिकलन और उसकी अदायगी की क्रियाविधि सरल की जानी चाहिए।

(1) अनावर्ती व्यय के लिए दिया जाने वाला सहायक अनुदान सामान्यतः कोई समस्याएं पैदा नहीं करता। इस सम्बन्ध में उचित यह है कि स्वैच्छिक अनुदानों में से तथा सरकारी सहायता के बिना बनाई गई इमारतों के प्रमाणित उचित किराए को सहायक अनुदान के प्रसंग में आवर्ती व्यय मान लिया जाए। इससे पूंजीगत खर्च के लिए रकमें एकत्र करने की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिलेगा।

(2) जहां तक आवर्ती व्यय का सम्बन्ध है, कुल खर्च को दो भागों में विभक्त कर देना उचित होगा। अध्यापकों पर होने वाला व्यय और अध्यापकेतर व्यय। इनसे पहला व्यय—जिसमें अध्यापको को देय वेतनों, भत्तों तथा वृद्धावस्था में पहुंचाए जाने वाले लाभों का समावेश होता है—सरकारी कालेजों की तुल्यता के आधार पर अथवा विश्वविद्यालय द्वारा बनाए यए नियमों के अनुसार निर्धारित किया जा सकता है। हां, अध्यापकेतर व्ययों के बारे में अक्सर कठिनाइयां पैदा हो जाती हैं। इन कठिनाइयों से बचने का तरीका यह है कि किया जाने वाला निम्नतम व्यय और किसी कालेज द्वारा किया जा सकने वाला अधिकतम स्वीकार्य व्यय निर्धारित कर दिया जाए। यह अध्यापकों पर किए जाने वाले व्यय के अनुपात के रूप में हो तो अधिक अच्छा है। इन दो सीमाओं में रह कर कालेज को उपलब्ध साधनों का यथासंभव सर्वोत्कृष्ट ढंग से उपयोग करने की पूरी छूट दे दी जानी चाहिए।

(3) सभी कालेजों में ली जानेवाली फीस राज्य-सरकार की सलाह से विश्वविद्यालयों द्वारा निर्धारित की जानी चाहिए। विश्वविद्यालय द्वारा जो निर्धारित किया जाएगा वह 'मानक' फीस की दरें होंगी (उनके साथ निःशुल्क छात्रवृत्तियों का अनुपात भी निर्धारित कर दिया जाएगा) और केवल इसी आधार पर सहायक अनुदान के संदर्भ में कालेज की फीस से होने वाली आय का परिकलन किया जाना चाहिए। परन्तु संस्था को विश्वविद्यालय की अनुमति लेकर मानक से अधिक ऊंची फीस लगाने की छूट होनी चाहिए बशर्ते कि वह एक निर्धारित उच्चतर सीमा मान लीजिए कि मानक फीस से दुगने —का अतिक्रमण न करे। संस्था को इस तरह प्राप्त होने वाली रकम विद्यार्थियों तथा अध्यापकों के लिए अतिरिक्त सुविधाएं जुटाने के लिए खर्च करने का अधिकार होना चाहिए परंतु उसका प्रयोग प्रबन्धकों का अंशदान पूरा करने के लिए नहीं होना चाहिए। कालेज को इन रकमों का एक लेखा परीक्षित विवरण पेश करना चाहिए ताकि संबद्ध प्राधिकारी इस बात के लिए आश्वत हो सके कि इन रकमों का कोई दुरुपयोग नहीं किया गया है। इस तरह वह अपेक्षित सहारा मिल जाएगा जिससे विकास के लिए अनिवार्य स्वाधीनता और लचीलापन सुविश्चित हो सकता है।

(4) कुल देय सहायक अनुदाव निम्नलिखित के बराबर होना चाहिए :

— अध्यापकों का पूरा व्यय;

— इसमें **जोड़िए** वास्तव में किए गए अध्यापकेतर व्यय अथवा उसके लिए निर्धारित रकम में से जो भी कम हो वह रकम;

— इसमें से **घटाइए** प्रबंधकों द्वारा किया जाने वाला वह अंशदान जो वे अपने निजी साधनों में से देंगे, फीस में से नहीं; और

— **घटाइए** निर्धारित निःशुल्क छात्रवृत्तियों के लिए व्यवस्था करने के उपरान्त, मानक फीस की दरों से एकत्र की जाने वाली आय।

कालेज प्रबन्धकों का अंशदान एक राज्य से दूसरे राज्य में तथा एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में भिन्न होगा। अंशदान को दर का भी प्रत्येक पांच वर्ष के बाद पुनरीक्षण किया जाना चाहिए और यह रकम राज्य सरकारों को संबद्ध विश्वविद्यालयों से सलाह लेकर निर्धारित करनी चाहिए। मानक शुल्क की दरें और शिक्षकेतर खर्चों की अधिकतम सीमा भी उसी तरह निर्धारित की जानी चाहिए। हमारा विचार है कि किसी भी कालेज के प्रबन्धकों से अंततः यह अपेक्षा की जा सकती है कि वे पांच लाख रुपए की स्थायी निधि दें और जब तक ऐसा करना सम्भव न हो तब तक इतनी रकम के ब्याज के बराबर रकम अंशदान में दें।

समन्वय तथा संवर्धनात्मक संगठन

13.61. अब हम उन एजेंसियों का उल्लेख करेंगे

जिन पर समग्रतः उच्चतर शिक्षा के संवर्धन तथा समन्वय का भार है। यह काम करने वाली दो प्रधान एजेंसियां हैं—अंतर्विश्वविद्यालय बोर्ड और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग। हम बारी बारी इन दोनों के कामों का विवेचन करेंगे और इस सम्बन्ध में कुछ उपयोगी सुधार सुझाएंगे।

13.62. **अंतर्विश्वविद्यालय बोर्ड**—इस बोर्ड की स्थापना मई, 1924 में शिमला में हुए विश्वविद्यालयों के उपकुलपतियों के प्रथम सम्मेलन में पास किए गए एक प्रस्ताव द्वारा हुई। आरम्भ में भारत, श्रीलंका और बर्मा इसके सदस्य थे। उपलब्ध जानकारी के आधार पर कहा जा सकता है कि इस समय 47 भारतीय विश्वविद्यालय, 2 श्रीलंका के विश्वविद्यालय और 5 भारतीय शिल्पविज्ञान संस्थान इस बोर्ड के सदस्य हैं। इनके अतिरिक्त विश्वविद्यालय मानी जाने वाली तीन संस्थाएं इसकी सहसदस्य हैं।

13.63. अंतर्विश्वविद्यालय बोर्ड उपकुलपतियों के पारस्परिक विचार विनिमय तथा उनके द्वारा सामान्य समस्याओं के विवेचन के लिए एक उपयुक्त मंच प्रदान करता है। विश्वविद्यालयों में कुछ स्तरों तथा आचरण-संहिता के प्रवर्तन में भी यह बोर्ड सहायक रहा है। यह एक ऐसा महत्वपूर्ण साधन है जिसके द्वारा सरकार तथा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग महत्वपूर्ण समस्याओं के संबंध में विश्वविद्यालयों के विचार जान सकते हैं। यह बोर्ड सरकार तथा जनता के सामने विश्वविद्यालयों के विचारों के प्रतिनिधित्व का भी महत्वपूर्ण कार्य संपन्न करता है। दी यूनाइटिड किंगडम कमिटि आफ वाइस चांसलर्स ने (जो कुछ सीमा तक इस बोर्ड के समान ही है) इस अन्तिम कार्य की व्याख्या इस प्रकार की है और यह व्याख्या भारतीय वस्तुस्थिति पर भी समान रूप से लागू होती है: "उन मामलों के बारे में जो विश्वविद्यालय को आंतरिक रूप से ही निपटाने होते हैं एक सामान्य नीति बनाने के लिए सिफ़ारिशें करने में पहल करने के अतिरिक्त यह एक ऐसा साधन भी हैं जिसके द्वारा विश्वविद्यालय अनुदान समिति और विश्वविद्यालयों से संपर्क रखने वाले मंत्रालय सोचे जा रहे प्रस्तावों अथवा विवेचनीय समस्याओं के विषय में विश्वविद्यालयों के विचारों की प्रतिक्रिया का पता लगा सकते हैं। ठीक इसी तरह स्वयं उपकुलपति समिति भी सामान्यतः विश्वविद्यालयों से सम्बन्धित मामलों के बारे में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अथवा अन्य निकायों से बात कर सकती है।"

13.64. हम समझते हैं कि यदि सभी सांविधिक विश्वविद्यालयों तथा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम के अंतर्गत विश्वविद्यालय मान ली जाने वाली सभी संस्थाओं के स्वतः इस बोर्ड के सदस्य बन जाने की व्यवस्था हो जाए तो ऊपर वर्णित दिशाओं में अन्तर्विश्वविद्यालय बोर्ड के काम को बल प्राप्त होगा और वह अधिक प्रभावपूर्ण हो सकेगा। इस समय यह बोर्ड की इच्छा पर निर्भर है कि वह किसी विश्वविद्यालय को अपना सदस्य बनाए या न बनाए और यह विश्वविद्यालय की इच्छा पर निर्भर है कि वह सदस्यता के लिए प्रार्थना करे या न करे। इसीलिए इस समय भारत के अनेक विश्वविद्यालय बोर्ड के सदस्य नहीं हैं। हम समझते है कि इससे इस बोर्ड की स्थिति कमजोर ही होती है। अतः हम सिफ़ारिश करते हैं कि सभी सांविधिक विश्वविद्यालय और विश्वविद्यालय मान ली जाने वाली संस्थाएं स्वतः इस बोर्ड की सदस्य बन जानी चाहिए।

13.65. इस समय प्रत्येक विश्वविद्यालय को अन्य प्रत्येक विश्वविद्यालय की प्रत्येक उपाधि अथवा डिप्लोमाओं के लिए अलग-अलग तुल्यता निर्धारित करनी पड़ती है और अंतर्विश्वविद्यालय का बोर्ड का एक काम है अन्य विश्वविद्यालयों में अपनी उपाधियों, डिप्लोमाओं तथा परीक्षाओं के लिए मान्यता प्राप्त करने में भारतीय विश्वविद्यालयों की सहायता करना। बोर्ड के यह कार्यभार स्वीकार करने में हमें कोई औचित्य दिखाई नहीं देता। इस काम में समय भी बहुत लगाना पड़ता है और कठिनाइयां भी सामने आती है। ऐसी स्थिति में तो यह परेशानियां और भी बढ़ जाती है जब कुछ विश्वविद्यालयों में मेधावी छात्रों को भी केवल इसलिए प्रवेश नहीं मिल पाता क्योंकि उनकी उपाधि को उक्त विश्वविद्यालयों द्वारा मान्यता प्राप्त नहीं होती। हमारी सिफ़ारिश है कि भारत में किसी भी विधिक विश्वविद्यालय द्वारा अथवा विश्वद्यालय मान ली जाने वाली संस्था द्वारा की गई उपाधियों तथा डिप्लोमाओं को और भी विधिक विश्वविद्यालयो तथा विश्वविद्यालय मान ली जाने वाली संस्थाओं द्वारा स्वतः मान्यता प्राप्त हो जानी चाहिए। हम यहां यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि एक प्रकार की मान्यता से संबद्ध व्यक्ति को केवल पात्रता प्राप्त होती है, विश्वविद्यालय के, किसी छात्र को प्रवेश देने या न देने के अधिकार में कोई बाधा नहीं पड़ती। भविष्य में बोर्ड की मध्यस्थता तो भारतीय विश्वविद्यालयों की उपाधियों, डिप्लोमाओं और परीक्षाओं को विदेशी विश्वविद्यालयों द्वारा मान्यता दिलाने के लिए ही कराई जानी चाहिए।

13.66. हम अंतर्विश्वविद्यालय बोर्ड के कामों में उल्लेखनीय वृद्धि की परिकल्पना कर रहे हैं। इस समय भी यह विश्वविद्यालय विषयक जानकारी देने करने वाले केन्द्र और

अंतर्विश्वविद्यालय खेलकूद के आयोजन की केन्द्रीय एजेंसी के रूप में काम कर रहा है। ये दायित्व जारी रहेंगे और इनमें विस्तार भी होना चाहिए। यह भी संभव हो जाना चाहिए कि बोर्ड विश्वविद्यालयों के लिए और उनकी ओर से कुछ परामर्श, अनुसंधान तथा सेवा-कार्यों का भार भी अपने ऊपर ले ले। उक्त कार्यों की पूर्ति के लिए आवश्यक है कि बोर्ड को वित्तीय दृष्टि से मजबूत बनाया जाए और उसे इस योग्य भी बना दिया जाए कि वह उपयुक्त संस्था में कर्मचारी वर्ग बनाए रख सके।

13.67. **विश्वविद्यालय अनुदान आयोग**—विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग की सिफ़ारिश पर संसद के एक अधिनियम द्वारा 1956 में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की स्थापना हुई थी। हाल ही में उच्चतर शिक्षा विषयक संसद-सदस्य समिति ने इस आयोग के कार्यचालन पर पुनर्विचार किया है। हम समझते है कि इसने अपने जीवन के प्रथम दस वर्षों में प्रशंसनीय कार्य किया है।

13.68. अपने वर्तमान रूप में, उच्चतर शिक्षा-तंत्र, ऐसे अनेक क्षेत्रों तथा विभागों में बंटा है, जिनके बीच पारस्परिक संपर्क और प्रभाव बहुत कम है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग का संबंध लगभग साठ विश्वविद्यालयों के साथ है और यह आयोग भारत सरकार द्वारा इस काम के लिए प्रदान की जाने वाली रकमों में से उक्त विश्वविद्यालयों की विकास अनुदान देता हैं। इनके अलावा, ऐसे कुछ कृषि विश्वविद्यालय भी हैं जो अमरीकी भू-अनुदान कालेजों की उस अवधारणा से प्रेरणा ग्रहण कर रहे हैं, जिन्होंने पिछली शताब्दी में अमरीका की व्यावसायिक शिक्षा तथा कृषि उत्पादकता में महत्वपूर्ण योगदान दिया हैं। इन कृषि विश्वविद्यालयों की उल्लेखनीय विशेषता यह है कि यहां कृषि विषयक शिक्षा, विस्तार तथा अनुसंधान को परस्पर जोड़ देने पर जोर दिया जाता है। कृषि विषयक शिक्षा और अनुसंधान को सहारा देने के विचार से इन विश्वविद्यालयों ने प्राकृतिक तथा सामाजिक विज्ञानों के विभाग भी स्थापित कर दिए हैं। इनके अतिरिक्त, गड़खपुर, कानपुर, दिल्ली, बम्बई तथा मद्रास में स्थित वे शिल्पविज्ञान संस्थान भी हैं, जिन्हें संसद के एक अधिनियम के अधीन 'राष्ट्रीय महत्व की संस्थाएं' बना दिया गया हैं और जिन्हें उपाधियां देने का अधिकार प्राप्त है। कृषि विश्वविद्यालयों तथा भारतीय उद्योग विद्या संस्थानों को केन्द्रीय सरकार से मिलनी वाली रकमें विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की मार्फत नहीं मिलतीं, क्रमशः कृषि संत्रालय और शिक्षा-मंत्रालय की मार्फत प्राप्त होती है। चिकित्सा शिक्षा के लिए केन्द्रीय सहायता स्वास्थ्य मंत्रालय देता है। यहां यह बता देना आवश्यक है कि अध्यापकों की शिक्षा का दायित्व विश्वविद्यालयों पर सीमित मात्रा में ही है। प्रभावपूर्ण समन्वय के किसी प्रयास के अभाव में यह विखंडन हमारी वर्तमान उच्चतर शिक्षा पद्धति की एक जबरदस्त कमजोरी है।

13.69. हमारा विचार यह है कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को उच्चतर शिक्षा का सर्वांगीण प्रतिनिधित्व करना चाहिए। इसकी सभी समस्याओं के साथ आयोग का संबंध होना चाहिए और उनके बारे में उचित कार्रवाई करने के लिए आयोग के पास पर्याप्त साधन भी होने चाहिए। वैसे तो यह बात अनेक कारणों से आवश्यक है पर इसका प्रधान कारण यह है कि आज की दुनिया में ज्ञान की कोई भी शाखा शैक्षिक जीवन की मुख्य धारा से पृथक रह कर पल्लवित नहीं हो सकती। कृषि, शिल्प-विज्ञान, चिकित्साविज्ञान और शिक्षण, सभी यदि इस विशाल धारा के अंग बन जाएंगे और एक दूसरे की आवश्यकताओं तथा समस्याओं के प्रति चिन्ता करने लगेंगे तो इससे इन सभी की श्रीवृद्धि होगी। शिक्षण के साथ तो इस बात का सबसे अधिक प्रत्यक्ष संबंध है, परन्तु यह अनुसंधान पर भी अधिकाधिक लागू होने लगेगी। संभवतः भविष्य में उन्हीं सीमांतों को प्रवेश स्थल बनाया जाएगा जहां विभिन्न शाखाएं मिलती हैं। यहां प्रासंगिक रूप से यह उल्लेख भी किया जा सकता है कि यह बात विश्वविद्यालव अनुदान आयोग के उस वर्तमान अधिनियम के अनुरूप है जो उच्चतर शिक्षा की सभी शाखाओं को अपने में सन्निविष्ट करने के विचार से बनाया गया है। अतः हम उच्चतर शिक्षा विषयक संसद सदस्य समिति की इस सिफ़ारिश का पूर्णतः समर्थन करते हैं कि समस्त उच्चतर शिक्षा को एक ही अभिन्न इकाई माना जाना चाहिए कि व्यावसायिक शिक्षा को सामान्य शिक्षा से पूरी तरह अलग नहीं किया जा सकता और यह कि कृषि, इंजीनियरी और चिकित्सा सहित समस्त उच्चतर शिक्षा को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की विस्तार सीमा के अंतर्गत ले आया जाना चाहिए। हमें अंततः इसी दिशा में अग्रसर होना है।[1]

13.70. हमने इस समस्या के सभी पक्षों पर विचार कर लिया है और हम इस विष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि एक दीर्घावधिक लक्ष्य होने के नाते अभीष्ट होने पर भी, एकदम यह कदम उठाना संभव नहीं होगा और फिलहाल यह अधिक उचित होगा कि कृषि, इंजीनियरी और चिकित्सा

1. विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग का भी यही विचार था।

विषयक शिक्षा के लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की तरह के अलग अलग संगठन स्थापित कर दिए जाएँ और एक ऐसा तंत्र भी स्थापित कर दिया जाए जो प्रभावशाली रीति से उनके बीच समन्वय कर सके। अतः अविलंब कार्य रूप देने के लिए हमारे प्रस्ताव निम्नलिखित हैं :

(1) यह उचित नहीं है कि सरकार सीधे विश्वविद्यालयों के साथ कार्यव्यवहार करे। सरकार और विश्वविद्यासयों के बीच ऐसे व्यक्तियों की एक समिति की विद्यमानता सदैव लाभप्रद रहती है जिनका चयन उनकी ज्ञान तथा ख्याति के आधार पर किया जाए, राजनीतिक बातों अथवा सरकारी ओहदों के आधार पर नहीं। इस तरह का संगठन सरकार तथा विश्वविद्यालयों के बीच समन्वय सुनिश्चित कर देता है, उच्चतर शिक्षा संस्थाओं के बीच सरकारी अनुदानों का बंटन करता है और फिर भी उन्हें अनुचित राजनीतिक प्रभावों से बचाए रखता है। जैसाकि ब्रिटेन की उच्चतर शिक्षा समिति की रिपोर्ट में कहा गया है: "इस तरह सरकार को एक ऐसे मिकाय की सलाह मिल जाती हैं जो सरकार द्वारा नियुक्त होने पर भी मंत्रालयीय अथवा विभागीय नियंत्रण से मुक्त रहता है और जिसमें मुख्यतः ऐसे व्यक्ति शामिल होते है जिन्हें विश्वविद्यालय के जीवन तथा उसकी प्रथा-परंपराओं की घविष्ठ जानकारी होती है। सार्वजनिक दायित्व के निर्वाह से मिल जाने वाली यह उन्मुक्ति प्रत्यक्ष मंत्रालयीय हस्तक्षेप में मिलने वाली उन्मुक्ति को और भी बल प्रदान कर देती है'' ... उदाहरणतः अलग अलग विश्वविद्यालय अपनी विस्तृत कार्यव्यवस्था में सरकार अथवा संसद के प्रत्यक्ष हस्तक्षेप से अधिकांशतया मुक्त हैं।"

(2) तकनीकी, कृषि तथा चिकित्सा विषयक शिक्षा के कार्यनिर्वाह के लिए उपर्युक्त सिद्धांत पर आधारित, विश्वविद्यालय अनुदाग आयोग की तरह के संगठनों की स्थापना की जानी चाहिए। उनकी विधि द्वारा स्थापना आवश्यक नहीं है, उन्हें स्वायत्तशासी संगठनों के रूप में स्थापित कर देने से भी हमारी उद्देश्य पूर्ति हो जाएगी। उनमें अपने-अपने क्षेत्रों के विख्यात वैज्ञानिक तथा अध्यापक शामिल होने चाहिए और वे छोटे-छोटे सुगठित निकायों के रूप में होने चाहिए ताकि उनकी बैठकें जल्दी-जल्दी बुलाई जा सकें और वे तत्परता के साथ काम कर सकें। इस तरह के संगठन का अध्यक्ष भी अपने क्षेत्र का विख्यात वैज्ञानिक अथवा विद्वान होना चाहिए। उन्हें न्यूनाधिक रूप से विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की भांति ही काम करना चाहिए, अर्थात्, संबद्ध मंत्रालयों द्वारा उन्हें एकमुश्त अनुदान दे दिए जाने चाहिए और उन्हें यह छूट होनी चाहिए कि वे विश्वविद्यालयों की आवश्यकताओं और विकास कार्यक्रमों को ध्यान में रखते हुए वह रकम उनमें बाँट दें।

(3) समन्वय की दृष्टि से, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग और प्रस्तावित विश्वविद्यालय अनुदान आयोग जैसे संगठनों के बीच पारस्परिक सदस्यता होनी चाहिए। इसके अलावा, इन चारों संगठनों के अध्यक्षों को समय-समय पर एक साथ बैठकर अपने कार्यक्रमों का पुनर्विलोकन तथा समन्वय करते रहना चाहिए।

13.71. उच्चतर शिक्षा विषयक संसद सदस्य समिति ने यह विचार व्यक्त किया है कि किसी ऐसे व्यक्ति को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग का सदस्य बनाना उचित नहीं जो पूर्वकालिक उपकुलपति के रूप में नियुक्त हो। सरकार ने यह प्रस्ताव मान लिया है और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम में आवश्यक परिवर्तन किए जा रहे है। हम इस विचार से सहमत नहीं हैं क्योंकि हम समझते हैं कि केवल उपकुलपति पद पर नियुक्त होने मात्र के कारण विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को किसी विशिष्ट व्यक्ति की सेवाओं से वंचित नहीं किया जाना चाहिए। हमारा विचार है कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग में बारह से पंद्रह तक सदस्य होने चाहिए। उनमें से एक तिहाई से अधिक सरकारी अधिकारी नहीं होने चाहिए। कम-से-कम एक तिहाई सदस्य विश्वविद्यालयों से लिए जाने चाहिए और हम तो उनमें एक उपकुलपति का समावेश भी अनुचित नहीं समझते। शेष सदस्य विख्यात शिक्षाविद् होने चाहिए। व्यक्ति-परिवर्तन अधिक मात्रा में संभव कर देने के विचार से हमारी सिफ़ारिश है कि सदस्यों की कार्याविधि वर्तमान छह वर्ष से घटा कर तीन वर्ष कर दी जाए और एक बार से अधिक उनकी कार्याविधि बढ़ाई न जाए।

13.72. विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के लिए उचित यह रहेगा कि वह ऐसी कुछ स्थायी समितियों के माध्यम से काम करने की परिपाटी बनाले जिन्हें कुछ विशिष्ट महत्वपूर्ण दायित्वों के निर्वाह के लिए स्थापित किया जाए। उदाहरण के लिए, संबद्ध कालेजों, अध्यापक-शिक्षण—जिसमें विश्वविद्यालय अध्यापकों का प्रशिक्षण तथा अनुस्थापन भी शामिल है—विश्वविद्यालय की पाठ्य-पुस्तकों की तैयारी तथा आधुनिक भारतीय भाषाओं में साहित्य के विकास और छात्र-कल्याण—जिसमें छात्रवृत्तियों

1. रिपोर्ट आफ द कमिटी ऑन हायर एजूकेशन, यू० के० एच० एम० एस० ओ०, लंदन, 1963, पैराग्राफ 728-729।

का भी समावेश है—के संबंध में स्थायी समितियाँ बनाई जा सकती हैं। प्रत्येक स्थायी समिति में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के कुछ सदस्य होने चाहिए और संबद्ध क्षेत्र के कुछ विशेषज्ञों को सहयोजित सदस्य बना लिया जाना चाहिए।

13.73. कभी-कभी यह कहा जाता है कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने अभी तक न तो विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम की धारा 13 (1) के अधीन किसी विश्वविद्यालय के किसी विभाग का विधिवत निरीक्षण किया है और न ही उसने धारा (14) के अंतर्गत प्राप्त उस अधिकार का ही प्रयोग किया है जिसके अनुसार वह अनुदान रोक सकता है। इस तरह की आलोचना को हम सर्वथा समीचीन नहीं समझते। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग निरीक्षण समितियों के माध्यम से, पाँच-पाँच वर्ष बाद विश्वविद्यालयों के निरीक्षण की व्यवस्था करता है और उन्हीं समितियों की सिफ़ारिशों के आधार पर सहायक अनुदान दिए जाते हैं। हम इस क्रियाविधि का पूरी तरह समर्थन करते हैं और सिफ़ारिश करते हैं कि इससे जल्दी-जल्दी—उदाहरणतः प्रत्येक तीन वर्ष बाद—निरीक्षण की व्यवस्था और भी वांछनीय हो सकती है। इसके अलावा, यह निरीक्षण अब से अधिक गहराई और विस्तारपूर्वक किए जाने चाहिए। निरीक्षण-समितियों के सदस्यों को केवल संबद्ध विश्वविद्यालयों के अधिकारियों तथा विभागाध्यक्षों से ही नहीं, अन्य कर्मचारियों तथा छात्रों से भी मिलना चाहिए। प्रत्येक निरीक्षण के समय संबद्ध व्यक्तियों से लिखित ज्ञापन माँग लेना भी उपयोगी सिद्ध हो सकता है। इसी तरह हम यह भी नहीं मानते कि वित्तीय मामलों में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की सतर्कता की परख इस आधार पर की जाए कि उसने कितने अनुदान रोक लिए। यह तो एक ऐसा चरम अधिकार है जिसका अनायास प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए और जिसका शिक्षा के बृहत्तर हितों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। हमारा विचार है कि इस परीक्षा का आधार उन परियोजनाओं को बनाना अधिक उचित है जिनके लिए सहायक अनुदान मंजूर किए गए हैं और जो अब तक कार्यान्वित हो चुकी हैं। इस आधार पर हमने किसी को आयोग की आलोचना करते नहीं सुना, वस्तुतः इस नाते तो इसकी प्रशंसा का ही अधिक साक्ष्य प्राप्त हुआ है।

13.74. हमें स्मरण रखना चाहिए कि विश्वविद्यालयों और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग का पारस्परिक संबंध बहुत नाजुक है और आयोग विश्वविद्यालयों के स्तर ऊपर उठाने का एक प्रभावशाली साधन तभी बन सकता है जब वह बल प्रयोग के बदले समझाने बुझाने का तरीका अपनाए। ऐसी स्थिति में यह सोचने वाले कुछ लोग बराबर विद्यमान रहेंगे कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अपने अधिकार का अभीष्ट से अधिक उपयोग कर रहा है और कुछ अन्य लोग यह मानने वाले होंगे कि वह अपने अधिकारों का अपेक्षित मात्रा से कम प्रयोग कर रहा है। प्रसंगवश हम यहाँ यह बता देना चाहते हैं कि ब्रिटेन की विश्वविद्यालय अनुदान आयोग समिति को भी इसी तरह की आलोचना का शिकार बनना पड़ा है और इस संबंध में 1957-62 की रिपोर्ट का यह अंश उद्धृत कर देना रोचक सिद्ध होगा :

> मुख्य प्रश्न यह होना चाहिए कि सरकार ने समिति को नियंत्रण का जितना अधिकार सौंपा है, इसने उसका उपयोग बहुत ही कठोर ढंग से किया है या बहुत ही सरल ढंग से। विश्वविद्यालयों के कुछ लोग— सब नहीं—यह समझते हैं कि समिति का प्रभाव बहुत जबरदस्त रहा है अथवा बहुत जबरदस्त होता जा रहा है। अन्य व्यक्ति—जिनमें से सभी लोग विश्वविद्यालयों से बाहर के नहीं हैं—यह मानते हैं कि यह प्रभाव बहुत ही कम रहा है। यह मत-संतुलन ही वस्तुतः उनकी सफलता का एक माप है।[1]

13.75. आयोग के सामने आने वाली समस्याओं की गुरुता-महत्ता को देखते हुए यह अवश्यम्भावी है कि उसे भविष्य में काफी अधिक रकमें सुलभ की जाएं ताकि वह उन समस्याओं को प्रभावशाली ढंग से सुलझा सके। आयोग द्वारा आरंभ की गई विकास-योजनाओं और हमारे द्वारा सुझाई गई विकास-योजनाओं का मूल्यांकन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि चौथी योजना के अंतर्गत दी जाने वाली रकम विश्वविद्यालयों तथा कालेजों की बुनियादी विकास विषयक आवश्यकताओं के अनुरूप नहीं होगी। इस प्रसंग का विस्तृत विवेचन हमने अन्यत्र किया है।[2]

13.76. राज्य सरकारों द्वारा, राज्यविशेष के विश्वविद्यालयों के लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अथवा समितियों की स्थापना का प्रश्न आदर्श अधिनियम समिति ने उठाया था परंतु उन्होंने इस संबंध में कोई

1. यूनीवर्सिटी डेवलेपमेंट (1957-62), एच० एम० एस० ओ०, लंदन, पृष्ठ 198।
2. अध्याय उन्नीस।

निश्चित सिफारिशें नहीं कीं। अंतर्विश्वविद्यालय बोर्ड की स्थायी समिति ने राज्यों में इस तरह की समितियों की स्थापना का इस आधार पर जबरदस्त विरोध किया है कि यदि किसी राज्य सरकार को परामर्श की आवश्यकता हो तो वह विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से सलाह ले सकती है। हम इस विचार से सहमत हैं। विश्वविद्यालयों को अनुदान देते समय वित्त और स्तर विषयक प्रश्न और किसी राज्यविशेष से बाहर के विश्वविद्यालयों के पारस्परिक सहयोग के सभी प्रश्न घनिष्ठ रूप से संबद्ध हो जाते हैं। स्तरों के समन्वय का दायित्व यदि अनेक निकायों—उदाहरणार्थ केन्द्रीय विश्वविद्यालय अनुदान आयोग तथा राज्यीय विश्वविद्यालय अनुदान आयोगों—के बीच बाँट दिया गया तो इससे अव्यवस्था पैदा हो सकती है। इस तरह विश्वविद्यालय अनुदान आयोग तथा विश्वविद्यालयों के वर्तमान सीधे संबंधों में भी आशा उत्पन्न हो जाएगी।

अनुपूरक टिप्पणी

विश्वविद्यालय स्वायत्तता विषयक अंतर्विश्वविद्यालय बोर्ड

अंतर्विश्वविद्यालय बोर्ड ने विश्वविद्यालय स्वायत्तता के प्रश्न पर और हाल ही के कुछ ऐसे विश्वविद्यालय विषयक कानूनों पर विचार किया जो उक्त स्वायत्तता के प्रतिकूल पड़ते थे और फरवरी, 1966 में मैसूर में हुई अपनी इक्तालीसवीं वार्षिक बैठक में यह प्रस्ताव पास किया :

> अंतर्विश्वालय बोर्ड विभिन्न राज्यों में हाल ही में विश्वविद्यालय अधिनियमों में किए जाने वाले संशोधनों और उनके फलस्वरूप विश्वविद्यालयों के शैक्षिक स्वाधीनता तथा उत्तरदायित्व से वंचित हो जाने के प्रति गहरी चिंता तथा व्यग्रता व्यक्त करता है।
>
> बोर्ड विशेष रूप से हाल ही में किए गए उन संशोधनों के प्रति, गहरी चिन्ता प्रकट करता है जिसके अनुसार विश्वविद्यालय के उपकुलपति के लिए सेवा की ऐसी शर्तें रख दी गई हैं जिन्हें शैक्षिक जगत अपमानजनक समझता है और जिनके आधार पर विश्वविद्यालयों का नियंत्रण ऐसे निदेशों द्वारा कराया जाना अभीष्ट है जो संभवतः राजनीतिक बातों और शैक्षिक दृष्टि से अमान्य आधारों पर दिए जाएंगे। अंतर्विश्वविद्यालय बोर्ड के मतानुसार यह बात विश्वविद्यालयों की मूल भावना के प्रतिकूल है और इसका फल यह हो सकता है कि विश्वविद्यालय अपने कार्यों का प्रभावपूर्ण रीति से निर्वाह नहीं कर पाएंगे।
>
> अंतर्विश्वविद्यालय बोर्ड का दृढ़ मत है कि केवल इसी आधार पर कि राज्य सरकार अथवा यहां तक केन्द्रीय सरकार विश्वविद्यालयों को कुछ रकम अनुदान के रूप में देती है, ऐसे परिवर्तनों को उचित नहीं ठहराया जा सकता जो विश्वविद्यालयों के गठन, कार्यसचालन तथा उनकी कार्यकुशलता में ही आमूल फेरबदल कर दें और संबद्ध विश्वविद्यालयों को शैक्षिक जगत की आंखों में तुच्छ बना दें। बोर्ड का विचार है कि विधि स्थापित विश्वविद्यालय की स्थिति व्यवहारतः विधि स्थापित राजनीतिक शासन के तुल्य ही होती है और केवल इसी बात को कि इन सरकारों के विधानांगों को कानून बनाने के कुछ अधिकार प्राप्त हैं भारतीय विश्वविद्यालयों की प्रतिष्ठा कम करने और उनका सुचारु कार्यसंचालन असंभव कर देने का आधार नहीं बनाया जाना चाहिए।
>
> अतः बोर्ड, इस दिशा में कोई और कदम उठाने से पहले, एक ऐसी समिति नियुक्त करने का संकल्प करता है जो विभिन्न विश्वविद्यालय अधिनियमों में की गई व्यवस्थाओं तथा उनमें समाविष्ठ उन नवीन बातों का पुनर्विलोकन करेगी जो शैक्षिक कार्यकुशलता तथा विश्वविद्यालयों की मान-प्रतिष्ठा के लिए घातक हैं और ऐसे तरीके तथा उपाय सुझाएगी जिससे वस्तुस्थिति में सुधार हो जाए, ताकि विश्वविद्यालयों की स्थिति के अनुरूप रहते हुए वर्तमान सरकार के साथ अच्छे सम्बन्धों की स्थापना हो सके। बोर्ड का विचार है कि जब तक किसी विश्वविद्यालय का उपकुलपति ऐसा व्यक्ति न हो जिसे अपने सहयोगियों का विश्वास तथा छात्रों का आदरभाव प्राप्त हो और जब तक सरकार के साथ सहानुभूति तथा सद्भावपूर्ण सम्बन्ध न हों तब तक कोई विश्वविद्यालय सुचारु रूप से कार्य नहीं कर सकता।

समिति के सदस्यों ने—जिनमें डा० सी० पी० रामस्वामी नायर, डा० ए० एल० सुदालियर, डा० सी० डी० देशमुख, डा० के० एल श्रीमाली और डा० बी० मलिक शामिल थे—इस सम्पूर्ण समस्या का परीक्षण किया और यह वक्तव्य जारी किया :

> इस सर्वस्वीकृत धारणा के नाते कि विश्वविद्यालय समाज को बौद्धिक नेतृत्व प्रदान करते हैं और विश्वविद्यालय सामाजिक तथा आर्थिक प्रगति की कुंजी है, यह बात अत्यंत महत्वपूर्ण है कि विश्वविद्यालयों को बाहरी दबावों से निर्विघ्न बने रह कर अपने व्यक्तित्व का विकास व उत्थान करने देने में

सहायता पहुंचाई जाए। देश की प्रगति का हित देखते हुए, विश्वविद्यालयों के कार्यसंचालन तथा विकास के लिए यथासभव अधिकतम स्वायत्तता अनिवार्य है; और, यह भी अपरिहार्य है कि इस लक्ष्य के प्रतिकूल रहने वाली प्रवृत्तियों की ओर ध्यान आकृष्ट किया जाए तथा प्रभावपूर्ण रीति से उनका विरोध किया जाए। उक्त बातों को ध्यान में रखकर समिति निम्नलिखित सिफ़ारिशें करती है :

(1) भारत का राष्ट्रपति राजस्थान विश्वविद्यालय की भांति देश के प्रत्येक विश्वविद्यालय का विजिटर (दिग्दर्शक) होना चाहिए।

(2) राज्यपालों को उनके राज्यों के विश्वविद्यालयों का कुलपति बना दिए जाने की प्रथा वैसे अच्छी मानी जा सकती है, परन्तु केवल तभी जबकि कुलपति अपनी व्यक्तिगत हैसियत से यह काम करें और राज्य सरकार से केवल उसी दशा में सलाह लें जब वे आवश्यक समझें।

(3) विधानांग चाहें तो शैक्षिक नीतिविषयक मामलों पर विचार विमर्श कर सकते है और उन्हें वास्तव में ऐसा करना भी चाहिए। परन्तु विश्वविद्यालयों के दैनंदिन कार्यकलाप में बाधक न होने के लिए यह आवश्यक है कि वे ऐसे प्रसंगों पर विचार-विनिमय न करें जो मूलतः और आमतौर से विश्वविद्यालय के अपने क्षेत्राधिकार में ही आते हों।

(4) किसी मंत्री को किसी विश्वविद्यालय में किसी पदेन पद पर प्रतिष्ठित नहीं होना चाहिए।

(5) हाल ही में बनाए गए कुछ विश्वविद्यालय अधिनियमों में विश्वविद्यालयों के नाम निदेश जारी करने अथवा उन्हें हिदायतें देने के लिए जो व्यवस्थाएं की गई हैं वे विशेष रूप से आपत्तिजनक हैं और उन्हें अवश्य निकाल दिया जाना चाहिए। इस तरह की व्यवस्थाएं अनिवार्यतः विश्वविद्यालयों की स्वायत्तता के उल्लंघनों का कारण बनती हैं। यह बात मान लेने का कोई कारण नहीं है कि विश्वविद्यालयों को हिदायतें देने वाला प्राधिकारी शैक्षिक प्रसंगों के सम्बन्ध में फैसला करने के लिए स्वयं उस विश्वविद्यालय से भी अधिक योग्य है जो कार्यात्मक दृष्टि से इन समस्याओं के समाधान के लिए सर्वोत्कृष्ट रूप से गठित होता है।

(6) उपकुलपतियों की सेवा की शर्तें अपमानजनक अथवा किसी भी प्रकार अनाकर्षक नहीं बनाई जानी चाहिए ताकि उपयुक्त व्यक्ति उपकुलपति पद स्वीकार करने से विरत न हों।

(7) विभिन्न देशों, विशेषतः इंगलैंड, की भांति हमारे देश से भी यह प्रथा बन जानी चाहिए कि न्यायांग विश्वविद्यालयों को स्वतः जन-जीवन का एक ऐसा क्षेत्र मानले जिसे अपने मामले अपने आप निपटाने की छूट होनी चाहिए।

(8) विश्वविद्यालयों की स्वायत्तता सुनिश्चित करने के लिए यह बात महत्वपूर्ण है कि वित्त आयोग प्रत्येक पांच वर्ष के उपरांत राज्यों के लिए साधन निर्धारित करते समय यथासम्भव स्पष्ट रूप से उन कारणों का भी उल्लेख करदें जिनके आधार पर एक विशेष ढंग से साधनों का बंटन किया गया हो। इस समय यह होता कि वित्त आयोग अपनी सिफ़ारिशें करते समय राज्यों को अधिक साधन सुलभ करने के लिए मंजूरी तो दे देता है परन्तु विश्वविद्यालयों के लिए अभीष्ट रकम सदैव उन्हें प्राप्त नहीं होती और इसका फल यह होता है कि पर्याप्त साधनों के अभाव में विश्वधिद्यालय प्रभावपूर्ण रीति से काम नहीं कर पाते।

(9) पिछले कुछ वर्षों में विश्वविद्यालय अधिनियमों में प्रायः संशोधन होता रहा है और यह संशोधन सदा ही शैक्षिक बातों अथवा अन्य समुचित कारणों के आधार पर ही नहीं हुआ है। अब यह आवश्यक हो गया है कि आदर्श अधिनियम समिति की रिपोर्ट को अंततः जिस रूप में अंतर्विश्वविद्यालय बोर्ड और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने स्वीकार कर लिया है उसमें की गई सिफ़ारिशों के आधार पर विश्वविद्यालय विषयक कुछ अधिनियमों में संशोधन कर दिया जाए।

संक्षेप में अंतर्विश्वविद्यालय बोर्ड सहायक हो सकने वाले प्रत्येक व्यक्ति से दो दिशाओं में सहयोग का आकांक्षी है :

(क) ऊपर वर्णित ऐसी कुछ व्यवस्थाएं रद्द कराने में जिन्हें बोर्ड विश्वविद्यालय स्वायत्तता का हनन करने वाली मानता है, उदाहरणार्थ :

(i) किसी बाहरी अधिकारी द्वारा की जानेवाली जांच के बाद उपकुलपति को हटा दिए जाने की व्यवस्था;

(ii) किसी बाहरी अधिकारी द्वारा विश्वविद्यालय के नाम निदेश जारी किए जाना;

(iii) मंत्रियों को पदेन प्रति-उपकुलपति नामित किया जाना;

(iv) उपकुलपति से सलाह लिए बिना प्रति-उपकुलपतियों की नियुक्ति कर देना।

(ख) आदर्श अधिनियम समिति की रिपोर्ट को अंततः जिस रूप में अंतर्विश्वविद्यालय बोर्ड और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने स्वीकार कर लिया है उसमें की गई सिफ़ारिशों के आधार पर वर्तमान विश्वविद्यालय अधिनियमों में संशोधन कराने में।

चौदहवां अध्याय

कृषि-शिक्षा

एक. भावी कार्य (1-6)

दो. कृषि-विश्वविद्यालय—(7) **मुख्य विशेषताएं**; (10) **क्षेत्र**; (11) **कार्य**; (12) **स्नातकोत्तर शिक्षा और अनुसंधान**; (22) **विस्तार**; (23) **पूर्व-स्नातक शिक्षण**; (28) **अध्यापक**; (30) **विद्यार्थी**; (31) **फार्म**; (32) **स्थान-बद्ध छात्र**; (33) **संख्या, आकार और संगठन**।

तीन. कृषि-विश्वविद्यालयों के बाहर कृषि की उच्चतर शिक्षा—(35) **कृषि-शिक्षा में विश्वविद्यालयों का योग-दान**; (36) **कृषि-कालेज**।

चार. कृषि पॉलिटेक्निक (38-43)

पांच. स्कूलों में कृषि-शिक्षा (कक्षा 1 से 10)—(45) **वर्तमान स्थिति**; (46-49) **सिफ़ारिशें**।

छह. सामान्य शिक्षा के अंग के रूप में कृषि-शिक्षा (50-51).

सात. विस्तार-कार्यक्रम—(52) **समस्या**; (54) **विस्तार कर्मचारियों के कौशल को बढ़ाना**; (57) **विस्तार-कार्य से संभरण सेवाओं का पृथक्करण**; (58) **प्राथमिक विस्तार केन्द्रों की स्थापना**; (65) **सफल किसानों से सम्पर्क**।

आठ. जनशक्ति की आवश्यकताएं—(68) **भा० सां० सं०/लं० स्कू० इ० लेख के प्रस्ताव**; (69) **सिफारिशें**।

नौ. भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् के कर्तव्य (70-71)

अनुलग्नक—**कृषि पॉलिटेकनिकों के पाठ्यक्रम**; (क) **कृषि पॉलिटेक्निकों में प्राप्य डिप्लोमा पाठ्यक्रम**; (ख) **कृषि पॉलिटेकनिकों में पढ़ाए जाने वाले विभिन्न विषय**; (ग) **कृषि पॉलिटेकनिकों में प्राप्य विभिन्न प्रमाण-पत्रों के लिए पाठ्यक्रमों के नमूने**।

भावी कार्य

14.01. वर्तमान घटनाओं से भारत में कृषि विकास की पिछड़ी दशा प्रकट हो गई है। यह भली भांति विदित है कि हमारा खाद्य-उत्पादन जनसंख्या की वृद्धि की तुलना में पिछड़ गया है और उसमें इतनी उन्नति भी नहीं हुई है कि प्रत्येक भारतवासी को कम-से-कम अल्पतम संतुलित आहार प्राप्त हो सके। इस समय हम अकाल से बचने के लिए अन्य देशों के अतिरिक्त उत्पादन पर निर्भर हैं। यह अवस्था स्वयं पर्याप्त चिन्ताजनक है, परन्तु वह इसलिए और भी अधिक जटिल हो गई है कि अर्धविकसित कृषि में विदेशी मुद्रा की कमी, उद्योगों के लिए आवश्यक अतिरिक्त पूँजी के अभाव और जन-साधारण में क्रय शक्ति की कमी के कारण उद्योगीकरण की गति मंद हो जाती है। यद्यपि अवस्था आज भी चिन्ताजनक है, परन्तु लगभग 10 वर्षों में जब देश की जनसंख्या 60 करोड़ से भी अधिक हो जाएगी, इसके और भी भयंकर होने की सम्भावना है क्योंकि विश्व की प्रवृत्तियों को देखते हुए उस समय हमारी कमी को पूरा करने के लिए अन्य देशों से अतिरिक्त अन्न मिलने की संभावना बहुत कम है।

14.02. अतः कृषि विकास के ध्येय सुस्पष्ट हैं। हमें आगामी पन्द्रह वर्षों में खाद्य उत्पादन को कम-से-कम दुगुना करने का प्रयत्न करना चाहिए और उसके पश्चात् भी उत्पादन को पर्याप्त वेग से निरन्तर बढ़ाते रहना चाहिए। हमें अपनी भोजन सम्बन्धी आदतों में परिवर्तन करना चाहिए, अनिश्चित मानसून और शीतकालीन वर्षा पर अपनी निर्भरता घटाना चाहिए, अपने खेतों-फार्मों, वनों और मत्स्य क्षेत्रों से प्राप्त होने वाले उत्पादों में विविधता लाना चाहिए और उनके गुणों में सुधार करना चाहिए। साथ ही हमें ग्राम सुधार के कार्यक्रम को तीव्रता से गति देना चाहिए जिससे देहाती जीवन सामंतकालीन पिछड़ेपन

को छोड़कर आधुनिक लोक समाज में रूपान्तरित हो सके।

14.03. कृषि उत्पादन और ग्रामोत्थान की समस्याओं में इन ध्येयों की सिद्धि के लिए हमें विज्ञान और शिल्प-विज्ञान की सहायता लेनी चाहिए। इस कार्य में हमें सिंचाई, उर्वरक, पेस्टनाशक, उन्नत बीज, किसानों के लिए ऋण प्राप्ति की सुविधाएं, फार्म उत्पादों के भंडारण और वितरण की संतोषजनक व्यवस्था, उन्नत संचार और परिवहन, बिजली लगाने आदि कार्यों के लिए बडे पैमाने पर पूँजी लगाने की आवश्यकता है। परन्तु यही पर्याप्त नहीं है। इन कार्यों के अतिरिक्त हमें कृषि के लिए उच्च कोटि की शिक्षा और अनुसंधान का आयोजन करना चाहिए। इनके बिना कृषि उत्पादन में आवश्यक तीव्र वृद्धि संभव नहीं है, और साथ ही लगाई गई पूँजी के डूब जाने का भय है। इसका एक उदाहरण सिंचाई के पानी का अपव्यय है, इसका यदि छोटे क्षेत्रों में गहन प्रयोग किया जाय और जल निकास की समुचित व्यवस्था हो तो कृषि उत्पादन में पर्याप्त उन्नति हो सकती है। वास्तव में कई क्षेत्रों में पूँजी का स्थान अंशतः ज्ञान द्वारा लिया जा सकता हैं।

14.04 कृषि-शिक्षा का यह कार्यक्रम तीन आधारभूत भागों में बांटा जा सकता है—**अनुसंधान**, अर्थात्, समुचित शिल्पविज्ञान या तकनालॉजी का विकास, **विस्तार** या शिल्पविज्ञान को खेती करने वाले किसानों तक पहुँचाना और अवश्यक कार्मिकों का **प्रशिक्षण**।

(1) **अनुसंधान**—इन तीनों में सबसे अधिक महत्व-पूर्ण वैज्ञानिक आधार पर नए कृषि शिल्प-विज्ञान का विकास है। पिछले सौ वर्षों में रसायनिक इंजीयियरी और यन्त्रीकरण एवं अंशतः मनुष्य के जीव-वैज्ञानिक ज्ञान में अधिक मूलभूत क्रान्ति के कारण विश्व के अनेक भागों में कृषि के तरीकों में क्रान्ति हुई है। जीवन के दो अंगों—वनस्पतियों और प्राणियों के नवीन वैज्ञानिक बोध के कारण उन्नतिशील देशों में कृषि शिल्पविज्ञान में आश्चर्य-जनक सुधार हुए हैं। रासायनिक उर्वरकों एवं मिट्टी तथा जल-विकास के आधुनिक शिल्पविज्ञान का अधि-कांशतः सीधा प्रयोग भारतीय परिस्थितियों में किया जा सकता है। पर इनमें तथा नवीन जैव शिल्पविज्ञान में स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन करना आव-श्यक है इस उद्देश्य से वनस्पति एवं प्राणि पोषाहार, आनुवंशिकी, विकृति विज्ञान, सूक्ष्म जैविकी के विभिन्न क्षेत्रों एवं अन्य विषयों में अनुप्रयुक्त अनुसंधान आवश्यक है।

(2) **विस्तार**—नए शिल्पविज्ञान का विकास तभी सार्थक हो सकता है जब किसानों को उसकी जानकारी हो और वे इस प्रकार प्रशिक्षित एवं अभिप्रेरित किए जाएं जिससे वे इन तकनीकों को ग्रहण कर उनसे अपनी उपज एवं पारिवारिक आमदनी में वृद्धि कर सकें। औसत किसान के शैक्षणिक स्तर को उन्नत करने के कर्यक्रम के अतिरिक्त यह भी आवश्यक है कि विस्तार सेवाओं को बड़े पैमाने पर संगठित किया जाए।

(3) **कार्मिकों का प्रशिक्षण**—नए शिल्पविज्ञान का विकास, किसान के लिए विस्तार सेवाओं का संगठन और कृषि-उद्योग के विशाल संकुल का विकास, इन सभी की देश को बड़ी आवश्यकता है, परन्तु ये तभी संभव होंगे जब हम सहस्रों उच्च कोटि के कृषि-विज्ञानी, इंजीनियर और इससे भी बड़ी संख्या में तकनीशियन और विस्तार कर्मचारियों को प्रशिक्षण देकर तैयार करें।

शिक्षा, अनुसंधान और विस्तार—इन तीन मूलभूत अंगों में निकट संबंध होना अत्यावश्यक है जिससे किसान से अनुसंधानकर्ता एवं विद्यालय तक और अनुसंधान प्रयोगशालाओं तथा शिक्षा विभागों से पुनः किसान तक अवच्छिन्न प्रवाह निरन्तर बना रहे।

14.05. परन्तु यदि कृषि विकास को आवश्यक तीव्र गति प्रदान करना है तो कृषि शिक्षा को सम्पूर्ण राष्ट्रीय शिक्षा-तंत्र का प्रमुख अंग बनाना पड़ेगा क्योंकि शिक्षा का उद्देश्य केवल विशेषज्ञ कार्मिकों को प्रशिक्षित करना ही नहीं है। सभी शिक्षा संस्थाओं को कृषि की दिशा में अनुस्थापित करना चाहिए। साथ ही शिक्षातंत्र का ही कर्तव्य है कि वह उन सभी कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षित करे जो कृषि विकास के लिए आवश्यक सहायक कृषि सेवाओं का भार संभालेंगे। उसे योजना बनाने वालों, प्रशासकों, वकीलों, बैंकरों, सामुदायिक नेताओं और उद्यमिकों आदि के ऊस बड़े वर्ग में जिसका कृषि समस्याओं और ग्रामीण जीवन से अप्रत्यक्ष सम्बन्ध आता है इनके बारे में जानकारी और समझ बढ़ानी चाहिए। इन्हीं वर्गों पर ही अत्यावश्यक सहायक सेवाओं जैसे, ऋण, फसल का बीमा, विपणन, मूल्य निर्धारण, वितरण और किसानों के लिए ज्यादा अच्छी परिस्थितियां बनाने और अनुप्रेरणा को देने का भार रहेगा।

14.06 उपर्युक्त आवश्यकताओं की पूर्ति शीघ्रता एवं सफलता के साथ करने के लिए यह अत्यावश्यक है कि अन्य कार्यों के साथ निम्न कार्यक्रम तैयार किए जाएं :

— अनुसंधान, प्रशिक्षण एवं विस्तार के समन्वित कार्यक्रमों को क्रियान्वित करने वाले कई कृषि विश्वविद्यालयों की स्थापना करना;

— प्रतिभावान विद्यार्थियों, अनुसंधानकर्त्ताओं और अध्यापकों को कृषि की ओर आकर्षित करना;

— उच्चतर शिक्षा की अन्य संस्थाओं और विश्वविद्यालयों में कृषि अनुसधान, प्रशिक्षण एवं विस्तार के कार्यक्रमों का विकास करना;

— कृषि कालेजों को उन्नत करना;

— कृषि के लिए आवश्यक तकनीशियनों के प्रशिक्षण के लिए कृषि पॉलिटेकनिकों की स्थापना करना;

— समग्र शिक्षा-तंत्र को कृषि तथा ग्राम-समस्याओं की ओर अभिमुख करना;

— कृषि विस्तार कार्यक्रमों का विकास करना और विशेषतः प्राथमिक विस्तार केन्द्रों की स्थापना करना और

— सफल और उन्नतिशील कृषकों को कृषि विश्वविद्यालयों, कालेजों, पॉलिटेकनिकों और प्राथमिक विस्तार केन्द्रों के घनिष्ट सम्पर्क में लाना और उन्हें समुचित प्रतिष्ठा एवं सुविधाएं प्रदान करना ।

इस अध्याय में इन कार्यक्रमों का सविस्तार विवेचन किया जाएगा ।

कृषि-विश्वविद्यालय

14.07. **मुख्य विशेषताएं**—हमारे प्रस्तावित कार्यक्रम का केन्द्र-बिन्दु प्रत्येक राज्य में ऐक कृषि विश्वविद्यालय की स्थापना है । यह कार्यक्रम नया नहीं है । वास्तव में विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग से लेकर आज तक अनेक बार सिफ़ारिशें की जा चुकी हैं कि इस प्रकार के ग्राम या कृषि विश्वविद्यालयों की स्थापना की जाए जो कृषि-विज्ञानों की ओर अभिकेन्द्रित हों और जिनमें शिक्षण, अनुसंधान और विस्तार का समन्वय हो । इन सिफ़ारिशों के फलस्वरूप कुछ कृषि विश्वविद्यालयों की स्थापना की जा चुकी है । परन्तु उनकी उन्नति बहुत संतोषदायक नहीं रही है और उनमें तथा अन्य विश्वविद्यालयों में सम्पर्क स्थापित करने का पर्याप्त प्रयत्न नहीं किया गया है । वास्तव में इनके उद्देश्य समझने में भी कुछ भ्रान्ति रही है । अतः हम बतलायेंगे कि हमारे विचार से इनमें क्या आधारभूत विशिष्टताएं होनी चाहिए और उन्हें किस प्रकार कार्य करना चाहिए ।

14.08. परम्परा के अनुसार कृषि-स्नातकों के प्रशिक्षण का उत्तरदायित्व विश्वविद्यालयों पर रहा है, जबकि अनुसंधान और विस्तार कार्य राज्यों के कृषि विभागों तथा सामुदायिक विकास प्रशासन के कार्यक्रमों के क्षेत्र में रहे है । यद्यपि कुछ कृषि कालेज राज्य सरकारों के प्रशासनिक नियन्त्रण में हैं, फिर भी उपर्युक्त कार्य अधिकांशतः स्वतन्त्र रूप से बिना किसी पारस्परिक संम्पर्क के होते रहे हैं । इस प्रकार के अलगाव के कारण इन संस्थाओं में होने वाले प्रशिक्षण एवं अनुसंधान कार्यों में गिरावट आ गई है और इन दोनों कार्यों का फार्मों की कार्य प्रणाली से नगण्य संबंध रह गया है । कृषि विश्वविद्यालयों की सबसे स्पष्ट विशेषता उनमें अनुसंधान, प्रशिक्षण और विस्तार का समन्वित कार्यक्रम है । यही वस्तु है जो कृषि-शिक्षा के मार्ग की बाधाओं को दूर करेगी ।

14.09. इसके अतिरिक्त इन कृषि-विश्वविद्यालयों में निम्नलिखित विशेषताएं होनी चाहिए :

(1) उन्हें कृषि से सम्बन्धित सभी प्रकार के ज्ञान की वृद्धि, प्रसार और व्यावहारिक प्रयोग के सभी साधनों पर ध्यान देना चाहिए । कृषि संबंधी मौलिक और अनुप्रयुक्त अनुसंधान पर भी इसी प्रकार ध्यान दिया जाना चाहिए ।

(2) देहात से सीधी संबंधित सभी सामाजिक और आर्थिक समस्याओं के अध्ययन और अनुसंधान पर बल देना उनका प्राथमिक कर्तव्य है ।

(3) ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था को भली भांति संगठित करने के लिए आवश्यक अनुप्रयुक्त विज्ञान और शिल्पविज्ञान की सभी शाखाओं के विकास और अध्यापन के लिए उन्हें प्रस्तुत रहना चाहिए ।

(4) उन्हें न केवल पूर्व स्नातक, स्नातकोत्तर और अनुसंधान करने वाले विद्यार्थियों के अध्यापन का कार्य करना चाहिए परन्तु उन्हें उन किशोरों को भी विशिष्ट तकनीकी प्रशिक्षण देने के लिए समुद्यत रहना चाहिए जो किसी उपाधि के लिए अभ्यर्थी नहीं है ।

(5) उन्हें नियमित रूप से दर्ज विद्यार्थियों के साथ-साथ प्रौढ़ शिक्षा एवं उसके निरन्तर विकास पर ध्यान देना चाहिए ।

14.10. **क्षेत्र**—इन विशिष्टताओं को ध्यान में रखते हुए यह स्पष्ट है कि कृषि-विश्वविद्यालय अपना कार्य तभी कर सकेंगे जब उनके अध्यापन और अनुसंधान क्षेत्र के अन्तर्गत अनेक शैक्षणिक एवं व्यवसायात्मक विषय रहें। आरम्भ में उन्हे अपनी शक्ति कृषि की परम्परागत विशिष्ट शाखाओं, जैसे, सस्य विज्ञान, वनस्पति आनुवंशिकी पशु-प्रजनन, पशु-पालन, पशु-चिकित्सा, शिज्ञान, वनस्पति विकृति विज्ञान, मिट्टी-विज्ञान, सूक्ष्म जैविकी, बागवानी, कीट विज्ञान, और परजीवि विज्ञान पर केन्द्रित करनी चाहिए। परन्तु समयान्तर से उन्हें नीचे लिखे सभी विषयों का पूर्ण रूप से विकास करना चाहिए :

(1) **कृवि इंजीनियरी**—सिचाई इंजीनियरी; भौमिक जल विज्ञान; भूपृष्ठ जल संभरण तन्त्रों के डिजाइन, निर्माण और देखभाल सम्बन्धी सिविल इजीनियरी; फसल तैयार करना, कूप-पंप, मोटरों और स्ट्रेनर सहित फार्म मशीनों और साज-सामान संबंधी यान्त्रिक इंजीनियरी। हमारी इंजीनियरी शिक्षा की सुस्पष्ट विफलता का उदाहरण जल साधनों के विकास कार्य में लगे इंजीनियरों में सिचाई, जल संभरण और जल निकास के लिए वनस्पति और मिट्टी की आवश्यकताओं के परिबोध का अभाव है। इस कार्य के लिए एक नए प्रकार के इंजीनियर की आवश्यकता है और उसके प्रशिक्षण में कृषि विश्वविद्यालयों, भारतीय शिल्पविज्ञान संस्थानों और अन्य विश्वविद्यालयों—इन सबको हाथ बटाना है।

(2) **मानव पोषाहार एवं खाद्य शिल्पविज्ञान के विशेषज्ञ**—वर्तमान अपर्याप्त खाद्य सामग्री के बावजूद गरीबों के आहार में बहुत कुछ सुधार किया जा सकता है—यदि उच्च कोटि के सस्ते प्रोटीन संपूरक खाद्य तैयार कर वितरित किए जाएं और जनता द्वारा स्वीकार कराए जाएं, यदि परिरक्षण की उन्नत रीतियों के प्रयोग से खाद्य को बरबादी से बचाया जाए और यदि पोषाहार की आवश्यकताओं तथा उनकी पूर्ति के साधनों का ज्ञान ग्राम्य जनता में विस्तृत रीति से प्रसारित किया जाए।

(3) **कृषि-अर्थशास्त्र**—बाजार अनुसंधान, कृषि संबंधी आंकड़ों का संग्रह और विश्लेषण, उत्पादन अर्थशास्त्र, फार्म प्रबन्ध, ग्रामीण ऋण, फसल बीमा, लागत विश्लेषण और फार्म उत्पादों के परियोजना-मूल्यांकन तथा मूल्य रचनाओं की अन्य तकनीकें।

(4) **लोक प्रशासन**—शासकीय कृषि सेवाओं का संघटन, सरकारी संस्थाओं का प्रबन्ध, स्थानीय स्वायत्त-शासन और विभिन्न शासकीय स्तरों के संबंध।

(5) **सामूहिक संचार**—प्रौढ़ शिक्षा, दृश्य-श्रव्य साधनों द्वारा अध्यापन और शिक्षा-सामग्री तैयार करना।

(6) **समाज विज्ञान, मानवविज्ञान और विधि**—ग्रामीण परम्पराओं, सामाजिक रचना तथा मूल्यों का विश्लेषण और उनका रचनात्मक सुधार; भू-धारण तथा पट्टेदारी प्रणालियों और भूमि-सुधार तथा चकबन्दी के सिद्धान्तों का विकास।

(7) **साधनों का परिरक्षण**—भूमि और जल का परिरक्षण, अपरदन (मिट्टी-कटाव) नियन्त्रण, बरोखर-प्रबन्ध, भूमि उद्धार और मिट्टी का वर्गीकरण तथा सर्वेक्षण। भारत की 32.3 करोड़ एकड़ फसली भूमि और 17.7 करोड़ जंगल भूमि के पर्याप्त भाग का दुरुपयोग होने के कारण ह्रास हुआ है और इसे रोकने के लिए शीघ्र ही उपाय किए जाने चाहिए। देश की समग्र भूमि की प्रबन्ध नीति ऐसे राष्ट्रीय भू-सर्वेक्षण और सूची निर्माण पर निर्भर है जिसमें फसल की उपज में वृद्धि, लागत और काल-अवधियों के रूप में व्यक्त मानों का प्रयोग किया जाना चाहिए।

(8) **वानिकी**—वन-प्रबन्ध और ईंधन, इमारती लकड़ी, कागज और सेलूलोस आदि वन-उत्पादों का शिल्प-विज्ञान :

(9) **मत्स्य व्यवसाय**—कृषि-ताल मत्स्य व्यवसाय; नदी और झील मत्स्य व्यवसाय; समुद्री मत्स्य व्यवसाय; मछली पकड़ने की नौकाओं और साज-समान का डिजाइन, विर्माण, देखभाल और परिचालन; मत्स्य-साधन और परिरक्षण तथा मत्स्य अर्थशास्त्र।

(10) **भूमि-विज्ञान**—भारतीय कृषि के लिए यह अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि मानसून के आरम्भ होने के समय उसकी तीव्रता और अवधि का पूर्वानुमान, विशेषतः वर्षा ऋतु के आरम्भिक छह सप्ताहों में किया जाए। ये पूर्वानुमान एक-एक दिन के लिए नहीं, परन्तु कई सप्ताहों की अवधियों के लिए और अच्छा हो यदि कई मासों के लिए किए जाएं। इस प्रकार के पूर्वानुमान करने के लिए हिन्द महासागर से मौसमविज्ञान संबंधी ठीक-ठीक आंकड़े और मानसून उत्पन्न करने वाले वायु-वैद्युत-क्षोभों का अच्छा बोध आवश्यक है। हमारे देश में आधुनिक मौसम-विज्ञान संबंधी सिद्धान्तों और प्रेक्षण पद्धतियों और पूर्वानुमान रीतियों में शिक्षित मौसम-विज्ञानियों की संख्या अपर्याप्त है। समुद्र-विज्ञानी मापों को लेने वाले और उनकी व्याख्या करने वाले योग्य मौसम विज्ञानियों का भी उतना ही अभाव है। इस अवस्था में सुधार करने के लिए अनेक

कृषि-विश्वविद्यालयों में यथासंभव शीघ्रता से भू-विज्ञान विभागों का गठन होना चाहिए। मौसम-विज्ञान और समुद्र-विज्ञान पर जोर देने के अतिरिक्त इन विभागों को भौमिक जलविज्ञान (भूमि में विद्यमान जल साधनों का पता लगाने और उनका मूल्यांकन करने का शिल्पविज्ञान) और इंजीनियरी भूविज्ञान (बांधों के स्थानों को आंकने और बड़े निर्माणों के लिए सामग्री का स्थान-निर्धारण) पर अपनी शक्ति केन्द्रित करना चाहिए।

(11) **आधारभूत विज्ञान**—सभी अनुप्रयुक्त विज्ञानों और इंजीनियरी की उपर्युक्त विशिष्ट शाखाओं के ज्ञान के लिए विद्यार्थियों को मूलभूत विज्ञानों का अच्छा आधारभूत ज्ञान होना चाहिए। कृषि-विश्वविद्यालयों को सांख्यिकी, अनुप्रयुक्त गणित, संक्रियात्मक विश्लेषण, भौतिक-रसायन, जीव-रसायन, आणविक जीव-विज्ञान, और शरीर क्रिया-विज्ञान के विभागों का विकास करना चाहिए।

(12) **मानविकी**—इसी प्रकार विज्ञानों के विद्यार्थियों को ग्रामीण समाज की परम्पराओं और मूल्यों की समझ के लिए भारतीय इतिहास और साहित्य का आधारभूत ज्ञान आवश्यक है। इसलिए यद्यपि कृषि विश्वविद्यालयों में व्यावहारिक और व्यावसायिक विषयों के संकायों का अनुपात कहीं अधिक होना चाहिए, उनमें मानविकी के भी कुछ विद्वान रहने चाहिए।

14.11. **कार्य**—कृषि-विश्वविद्यालयों के ये कार्य होंगे :

— स्नातकोत्तर स्तर पर अध्यापन और अनुसंधान; इसमें कृषि के उत्पादन, साधन और विपणन को उन्नत बनाने के उद्देश्य से किया गया अनुसंधान भी सम्मिलित है।

— पूर्व-स्नातक स्तर पर अध्यापन; और

— विस्तार।

अनुसंधान और विस्तार में कृषि-विश्वविद्यालय और राज्य कृषि विभाग के क्षेत्रों का स्पष्ट सीमांकन आवश्यक है। विश्वविद्यालयों को राज्य के सभी अनुसंधान-केन्द्रों का और यथासंभव निदर्शन फार्मों का प्रबन्ध करना चाहिए, परन्तु उन्हें विभागों के विस्तार कार्य में पूर्ण सहयोग देना चाहिए और विभागों के कार्यक्रमों से उसका समन्वय करना चाहिए।

14.12. **स्नातकोत्तर शिक्षा और अनुसंधान**—कृषि के लिए आवश्यक नेतृत्व प्रदान करने और कृषि-अध्यापन में मात्रात्मक और गुणात्मक सुधार के लिए स्नातकोत्तर कार्य के महत्व को अब सब मानते हैं। परन्तु मात्रात्मक या गुणात्मक दृष्टिकोण से वर्तमान आवश्यकताओं के अनुसार कृषि और पशु-विज्ञानों की स्नातकोत्तर शिक्षा का विकास नहीं हुआ है और अनेक महत्वपूर्ण क्षेत्रों को लगभग पूर्णतः उपेक्षित कर दिया गया है।

14.13. कृषि-विश्वविद्यालयों की स्पष्ट विशेषता स्नातकोत्तर कार्य होना चाहिए। उनके स्नातकोत्तर विभाग से ही कृषि क्षेत्र के लिए अनुसंधानकर्त्ता, विभिन्न विषयों के विशेषज्ञ और कृषि पालिटेकनिकों तथा माध्यमिक शालाओं के अध्यापक प्राप्त हो सकेंगे। अनेक प्रशासकीय अधिकारी और निश्चय ही विस्तार सेवाओं के सभी विषय-विशेषज्ञ एम० एस-सी० या पी-एच० डी० उपाधिकारी होने चाहिएं। इसी प्रकार सभी अनुसंधान संस्थानों के प्रवर वैज्ञानिकों तथा कृषि विश्वविद्यालयों और कृषि कालेजों के सभी अध्यापकों के लिए स्नातकोत्तर प्रशिक्षण आवश्यक है।

14.14. इस स्तर के विशेषज्ञ कार्मिकों की आगामी बीस वर्ष की आवश्यकताओं के अनुमान आवश्यक एवं संभव परिशुद्धता के साथ नहीं किए गए है। भारतीय सांख्यिकी संस्थान/लंदन स्कूल आफ इकनामिक्स के लेख में —जो अगले एक खण्ड में उद्धृत किया गया है—इसके कुछ आधार प्राप्त होते है, परन्तु इनकी पुनः जांच, सूक्ष्म विश्लेषण और समीक्षा होनी चाहिए। अनुसंधान और विस्तार सेवाओं के पुनर्गठन की उन्नति शिक्षण संस्थाओं और कृषि उद्योगों के विकास पर निर्भर होने के कारण ये अनुमान तब तक उपयोगी नहीं हो सकते जब तक उनका सतत पुनरीक्षण न किया जाए। परन्तु मोटे रूप से हमारा अंदाज है कि आगामी दो दशाब्दियों में हमें वर्तमान स्नाकोत्तर प्रशिक्षण प्राप्त व्यक्तियों के अतिरिक्त इसी स्तर के एक लाख व्यक्तियों (कृषि अनुसंधान 10,000; शिक्षा 35,000; कृषि और कृषि-उद्योगों का विकास 55,000) की आवश्यकता होगी। इसका अर्थ है कि हमें आगामी बीस वर्षों तक प्रतिवर्ष स्नातकोत्तर उपाधिकारी 5,000 व्यक्ति तैयार करने होंगे।

14.15. आजकल स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों में कृषि के सभी क्षेत्रों को लेकर कुल लगभग 1,3,000 विद्यार्थियों को प्रवेश मिलता है, लगभग 200 को पशु-विज्ञानों में, और अन्य क्षेत्रों, जैसे, कृषि इंजीनियरी, कृषि अर्थशास्त्र, पशु प्रजनन और अन्य विशिष्ट क्षेत्रों में विद्यार्थियों की संख्या नगण्य है। प्रतिवर्ष 5,000 स्नातकोत्तर उपाधिधारियों की की प्रत्याशित आवश्यकता की पूर्ति के लिए विद्यार्थियों के

वर्तमान प्रवेश में इसी अनुपात में वृद्धि करना आवश्यक हैं, साथ ही अब तक उपेक्षित क्षेत्रों में इससे भी अधिक विद्यार्थी लेना वांछनीय होगा ।

14.16. इससे कहीं अधिक महत्व का विषय संस्थानों के उत्पादन में गुणात्मक उन्नति करना है । अनेक वर्तमान संस्थाओं में भौतिक सुविधाओं, पर्याप्त प्रशिक्षित स्टाफ, और विशेषतः उच्च कोटि की शिक्षा के लिए आवश्यक वातावरण का अभाव है । किन्तु इस बात की पूरी सावधानी रखनी होगी कि ऊपर प्रस्तावित संख्या की वृद्धि से स्तर गिरने न पाए और इसके लिए आगे से सोच-विचार कर तैयारी की जानी चाहिए । वर्तमान संस्थाओं में स्वीकृत स्टाफ और अन्य सुविधाओं तथा साधनों को बढ़ाने के लिए तुरन्त कदम उठाना चाहिए और इस प्रकार के विस्तार के कारण यथावश्यक व्यवस्था और परिवर्तन अविलंब करना चाहिए । वास्तव में इस दृष्टि से यह अधिक उचित होगा कि आने वाले कुछ वर्षों में चालू आवश्यकताओं की तदर्थ पूर्ति के लिए अर्ध-प्रशिक्षित कार्मिक तैयार करने की अपेक्षा उनकी संख्या की कमी को बरदाश्त किया जाए । अतः हम सिफ़ारिश करते हैं कि कार्मिकों और सुविधाओं के विस्तार का कार्य केवल कुछ चुनी हुई उच्च कोटि की संस्थाओं में ही किया जाए और अन्य किसी आधार पर न किया जाए ।

14.17. प्रशिक्षण में किस प्रकार सुनिश्चित उच्च-कोटि प्राप्त की जा सकती है ? स्नातकोत्तर शिक्षा को पूर्वस्नातक शिक्षा का केवल विस्तार नहीं समझा जाना चाहिए जैसा कि देश में आमतौर पर यह विचार घर किए हुए हैं । स्नातकोत्तर स्तर पर विभिन्न विद्याओं का प्रभावी समेकन और सक्रिय अनुसंधान तथा अध्यापन का सहजीवी मिश्रण होना चाहिए । इसलिए हम सिफ़ारिश करते है कि जब तक किसी संस्था में प्रबल एवं व्यापक आधार पर बुनियादी और अनुप्रयुक्त अनुसंधान का अपना कार्यक्रम न हो और संकाय के सदस्य अनुसंधान कार्यक्रम में क्रियात्मक रूप से भाग न ले रहे हों तब तक उस संस्था को स्नातकोत्तर शिक्षा देने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए । अनुसंधान कार्य में इस प्रकार का सक्रिय भाग लेना आवश्यक है जिससे अध्यापकों का विज्ञान की नवीनतम प्रगति से सामान्यतः और अपनी विशेषज्ञता के क्षेत्र से विशेष सम्पर्क बना रहे । यह इसलिए भी आवश्यक है कि इससे विद्यार्थियों को अनुसंधान और विधितंत्र का समुचित प्रशिक्षण मिलेगा और यह हमारे स्नातकोत्तर प्रशिक्षण का अभिन्न अंग होना चाहिए । अच्छे पुस्तकालय, साज-सामान से सुसज्जित प्रयोगशालाएं और प्रयोग करने की पर्याप्त सुविधाएं भी बहुत महत्वपूर्ण हैं और कोई भी स्नानकोत्तर संस्था इनके अभाव में कार्य नहीं कर सकती ।

14.18. हम यह भी सिफ़ारिश करते हैं कि किसी संस्था को स्नातकोत्तर शिक्षा प्रारम्भ करने की अनुमति देने के पूर्व वृत्तिक व्यक्तियों के सक्षम मण्डल को संस्था की उच्चता और प्राप्य भौतिक सुविधाओं का परीक्षण करना चाहिए । केवल उन्हीं संस्थाओं को जिनमें शिक्षा और अनुसंधान की समुचित सुविधाएं हैं, स्नातकोत्तर शिक्षा के कार्यक्रम आरम्भ करने की अनुमति दी जानी चाहिए ।

14.19. कुछ केन्द्रीय अनुसंधान संस्थाएं, जैसे, भारतीय कृषि-अनुसंधान संस्थान, भारतीय पशु-अनुसंधान संस्थान और राष्ट्रीय डेरी-अनुसंधान और विभिन्न कृषि-विश्वविद्यालय स्नातकोत्तर कृषि शिक्षा के सुदृढ़ केन्द्र बनाए जा सकते हैं । इस क्षेत्र में भारतीय कृषि-अनुसंधान संस्थान अग्रगण्य स्थान प्राप्त कर ही चुका है और भारतीय पशु-अनुसंधान संस्थान तथा राष्ट्रीय डेरी-अनुसंधान संस्थान राष्ट्रीय महत्व की अनुसंधान और शिक्षण संस्थाएं हैं जिनका और भी विकास किया जा रहा है । इसके अतिरिक्त प्रत्येक कृषि विश्वविद्यालय को स्नातकोत्तर कार्य का विकास करना चाहिए और अच्छा हो वे अपने इतिहास, स्थान और रुचि के अनुसार कुछ विशेष विषयों पर अपनी शक्ति केन्द्रित करें । विभिन्न कृषि विश्वविद्यालयों में घनिष्ट सम्पर्क और पारस्परिक आदान-प्रदान की व्यवस्था करना चाहिए, और यही सम्बन्ध कृषि विश्वविद्यालयों और केन्द्रीय अनुसंधान संस्थाओं में होना चाहिए क्योंकि ये भी सक्रिय स्नातकोत्तर शिक्षा के केन्द्र है । विभिन्न संस्थाओं में अध्यापकों और विद्यार्थियों का अबाध आदान-प्रदान अत्यन्त वांछनीय है ।

14.20. हमें ज्ञात हुआ है कि कृषि अनुसंधान से सम्बन्धित प्रमुख संस्था, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, का भी पुनर्गठन इस प्रकार किया जा रहा है जिससे शिक्षण, अनुसंधान और विस्तार कार्यों में पूर्ण समेकन हो सके । चुने हुए केन्द्रीय और क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्रों को संपुष्ट करने और उपकरणों तथा स्टाफ वाले छोटे केन्द्रों को बन्द कर देश की समस्त अनुसंधान व्यवस्था को एक वैज्ञानिक आधार देने का प्रयास भी हो रहा है । सभी केन्द्रीय कृषि-अनुसंधानों को भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के अधीन रखकर एक सूत्र में बांधा जा रहा है । यह परिषद इन संस्थानों के और सामान्यतः देश के समग्र समस्याभिमुख और उत्पादनाभिमुख अनुसंधान कार्यक्रम का समन्वय करेगी । इस प्रकार के केन्द्रीय अनुसंधान संगठनों और कृषि-विश्वविद्यालयों में भी घनिष्ट

सम्बन्ध वांछनीय है। परिषद का कृषि शिक्षा, विशेषतः विश्वविद्यालयीय शिक्षा से घनिष्ट सम्बन्ध रहेगा, अतः वह इस प्रकार के समेकन कार्य में महत्वपूर्ण एवं प्रमुख भाग ले सकती हैं। पिछले कुछ वर्षों में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद ने केन्द्र एवं राज्यों के सक्रिय सहयोग से अखिल भारतीय आधार पर कुछ अत्यन्त उपयोगी और फलदायक समन्वित परियोजनाएं विकसित की हैं। ये परियोजनाएं न केवल अनुसंधान कार्य को अधिक सक्षम, तेज, और उत्पादक बनाने में अत्यन्त प्रभावी रही हैं परन्तु इनसे देश में महत्वपूर्ण अनुसंधान क्षमता का विकास हुआ है, और इससे भी अधिक महत्व की बात यह हैं कि इनके कारण देश में अनुसंधान का नेतृत्व करने वाले संवर्ग का निर्माण हुआ है। हम निश्चयपूर्वक अनुभव करते है कि यह कृषि की उच्चतर शिक्षा एवं अनुसंधान दोनों के लिए शुभ लक्षण है और इस कार्य को बड़े पैमाने पर प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए।

14.21. कुछ कृषि कालेजों और विश्वविद्यालयों में कृषि के स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों में केवल कृषि के स्नातकों को प्रवेश देने की प्रवृत्ति दिखाई देती है। हमारी सम्मति में यह नीति अत्यन्त अदूरदर्शितापूर्ण है। कृषि अनुसंधान तब तक उन्नत नहीं हो सकता जब तक कि कृषि विज्ञान से सम्बन्धित अन्य आधारभूत विद्याओं के क्षेत्र से प्रतिभावान् विद्यार्थियों को आकर्षित नहीं किया जाता। यह स्पष्ट है कि कृषि के विकास में अन्य विद्याओं, जैसे, रसायन, भौतिकी, सांख्यिकी, वनस्पतिविज्ञान, प्राणिविज्ञान आदि के स्नातक महत्वपूर्ण एवं प्रत्यक्ष योगदान कर सकते हैं। अन्य संकायों, जैसे अर्थशास्त्र, व्यवसाय-प्रशासन, इंजीनियरी आदि के स्नातकों की भी आवश्यकता पड़ेगी और वे ऐसे विषयों, जैसे, साधनों का मूल्यांकन तथा उपयोग, आर्थिक विकास, विपणन और सम्बन्धित क्षेत्रों में अनुसंधान तथा जांच में योगदान कर सकते है। इसलिए हम आजकल की प्रतिबन्धित प्रवेश की प्रवृत्ति का समर्थन करने में असमर्थ हैं, और सिफ़ारिश करते हैं कि यथासम्भव अधिकतम क्षेत्रों के प्रतिभाशाली विद्यार्थियों को आकर्षित कर कृषि अनुसंधान एवं शिक्षा के कार्य को उन्नत बनाना चाहिए।

14.22. **विस्तार**—अनुसंधान की सुविधाओं, कृषि विभागों के कार्यक्रमों और ऐसे विस्तार कार्यों का उत्तरदायित्व जो अनुसंधान से विकसित नए शिल्पविज्ञान के मूल तत्वों और उनके फार्म कार्यों में प्रयोग के बीच कड़ी का काम करते हैं, कृषि विश्वविद्यालयों को सौंपा जाना चाहिए। इस कार्य का आरंभ अनुसंधान के उत्तरदायित्व को तुरन्त, और विस्तार कार्य के उत्तरदायित्व को एक अवस्थाबद्ध कार्यक्रम के अनुसार क्रमशः विश्वविद्यालयों को सौंपकर करना चाहिए। इन कार्यक्रमों का विस्तार स्टाफ और अन्य उपलब्ध साधनों के अनुसार किया जा सकता है। अपने विस्तार कार्य में विश्वविद्यालयों को संभरण सेवाओं और कृषि विभाग के अन्य कार्यक्रमों तथा हलचलों से पूर्ण सहयोग करना चाहिए। इस विषय पर हम पुनः विचार करेंगे :

14.23. **पूर्व-स्नातक शिक्षा**—आगामी कुछ वर्षों तक कृषि विश्वविद्यालयों का मुख्य कार्य कृषि की उच्च कोटि की पूर्व-स्नातक शिक्षा देना होगा। इसलिए हम इसकी व्यवस्था[1] के विषय में विचार करेंगे। अन्य वैज्ञानिक विषयों की भांति कृषि में तीव्रता से परिवर्तन हो रहे हैं। अतः कृषि विश्वविद्यालयों के मुख्य शैक्षणिक कार्य वही होंगे जो उच्चतर शिक्षा की अन्य संस्थाओं के होते है। विद्यार्थियों को आधारभूत सिद्धान्तों का गहन ज्ञान देना, कार्य में उपस्थित होने वाली नई समस्याओं का हल निकालने की योग्यता प्रदान करना और अध्यापक के बिना जीवन भर ज्ञान प्राप्ति की योग्यता और आकांक्षा उत्पन्न करना। अन्य विश्वविद्यालयों की भांति कृषि-विश्वविद्यालयों में विद्यार्थी को अपना अधिकांश समय स्वतन्त्र अध्ययन में लगाना चाहिए और उसे यथासंभव शीघ्रातिशीघ्र अनुसंधान कार्य में प्रवेश मिलना चाहिए। विद्यालयीय औपचारिक अध्यापन का उद्देश्य विद्यार्थी को पढ़ाए जाने वाले विषय की विशिष्ट भाषा का ज्ञान, विषय के मूल सिद्धान्तों का सम्यक् ज्ञान, संबंधित साहित्य का उपयोग करने की योग्यता और क्षेत्रविशेष में ज्ञान की सीमाओं की पहचान कराना है।

14.24. पूर्व-स्नातक पाठ्यक्रम के प्रारंभिक वर्षों में विद्यार्थियों को व्याख्यानों और प्रायोगिक-कार्य के अतिरिक्त अनुशिक्षण-वर्गों (ट्यूटोरियल) या अनुदेशन-वर्गों (प्रिसेप्टोरियल) तथा व्याख्यान सामग्री की समीक्षा एवं स्पष्टीकरण में भी भाग लेना चाहिए। विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में पुस्तकों एवं पत्र-पत्रिकाओं के खरीदने एवं पुस्तकें मांगने, प्राप्त पुस्तकों को छांटने और सूचियां बनाने, विद्यार्थियों और संकाय सदस्यों को आवश्यक सामग्री प्राप्त कराने में सहायता देने, पुस्तकें देने और पुरानी पड़ती हुई और निरर्थक पुस्तकों की छंटनी आदि कार्यों के लिए आवश्यक पर्याप्त स्टाफ के निमित्त समुचित बजट की आवश्यकता होगी।

1. यह यथोचित परिवर्तन के साथ सभी विश्वविद्यालयों की पूर्व-स्नातक शिक्षा के लिए भी लागू की जा सकती है।

14.26. शिक्षा की सभी अवस्थाओं में रटने और बिना समझे याद करने की प्रवृत्ति को निरुत्साहित करने पर बल देने की आवश्यकता है; शिक्षा का उद्देश्य कुतूहल जाग्रत करना, समस्या हल करने की क्षमता का विकास करना और मौलिकता को प्रोत्साहन देना है। पाठ्यचर्यतेर कार्यों पर बल देना चाहिए; इनमें विद्यार्थी प्रतियोगताएं, पत्रकारिता और मौलिक लेखन, वाद-विवाद, व्यक्तिगत और सामूहिक खेल-कूद, और औपचारिक तथा अनौपचारिक चर्चा गोष्ठियां भी सम्मिलित हैं। इनमें से प्रत्येक कार्य के लिए एक स्वैच्छिक संकाय परामर्शदाता होना चाहिए जिसे ऐसे कार्य में अभिरुचि हो।

14.27. अन्य समितियों के निर्णयों के अनुकूल हम सिफ़ारिश करते हैं कि प्रथम उपाधि पाठ्यक्रम दशवर्षीय स्कूल-शिक्षा के उपरान्त पांच वर्ष का होना चाहिए। इसे निश्चित रूप से निर्धारित कर सकना असंभव हैं। क्योंकि पाठ्यक्रम की अवधि स्कूल शिक्षा के वर्षों पर नहीं परन्तु उपाधि-पाठ्यक्रम में प्रवेश के समय औसत विद्यार्थी की उपलब्धियों पर निर्भर है।

14.28. **अध्यापक**—कृषि विश्वविद्यालय वैज्ञानिकों और विद्वानों का समुदाय होना चाहिए जिसमें शैक्षिक विषयों के लिए सामूहिक उत्तरदायित्व और अधिकार संकाय सदस्यों पर रहते हैं। सभी विश्वविद्यालयों में प्रत्येक क्षेत्र के योग्य वैज्ञानिकों का एक ऐसा वर्ग होना चाहिए जो पाठ्यचर्या के निर्माण में, विद्यार्थियों की उन्नति के लिए विशेष उत्तरदायित्व लेने, विद्यार्थियों के निष्पादन के मानक निश्चित करने, विद्यार्थियों की जांच और मूल्यांकन करने, प्रयोगशाला, पुस्तकालय, कम्प्यूटर और क्षेत्रीय सुविधाओं के संगठन, विकास और उपयोग करने और संगोष्ठियों, सहयोगाश्रित अनुसंधान तथा अनौपचारिक संबंधों द्वारा अध्यापक और अनुसंधान कार्य में परस्पर प्रोत्साहन प्रदान करने में मिल-जुल कर काम कर सकता है। अतः इन विश्वविद्यालयों की स्थापना में सर्वप्रथम और सबसे कठिन काम इस प्रकार के वैज्ञानिकों और विद्वानों के समूह को एकत्रित करना है। इस दृष्टि से हम निम्नलिखित सिफ़ारिशें करते हैं :

(1) इन विश्वविद्यालयों की सफलता अपने स्टाफ़ सदस्यों को ऐसी आजीवन वृत्ति और समग्र वातावरण प्रदान करने की क्षमता में है जो अन्य व्यवसायों से प्रतियोगिता में अनेक योग्य व्यक्तियों को आकर्षित कर सकें। इसका संभवतः यह अर्थ है कि विश्वविद्यालय के अनेक स्टाफ सदस्यों को आवश्यकतानुसार हेरे-फेरे के साथ कक्षा में अध्यापन अथवा प्रयोगशाला में अनुसंधान या प्रायोगिक अनुसंधान केन्द्र में या ग्रामीण जनों के साथ खेतों में काम करना होगा।

(2) विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के वेतन मान जो अब संशोधित कर भारतीय शिल्पविज्ञान संस्थानों और वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद के वेतन मानों के तुल्य कर दिए गए हैं, इन विश्वविद्यालयों में भी लागू किए जाने चाहिए। इनका समय समय पर संशोधन होना चाहिए जिससे वे योग्य व्यक्तियों को आकर्षित करते रहें।

(3) संकायों के निर्माण में यह उद्देश्य रहना चाहिए कि ज्यों ही अच्छे व्यक्ति मिल सकें तुरन्त ही प्रत्येक क्षेत्र में अनेक प्रोफ़ेसर नियुक्त कर दिए जाएं। समयान्तर से प्रोफ़ेसरों, रीडरों और व्याख्याताओं की संख्या स्टाफ की आवश्यकता और गुण पर निर्भर करनी चाहिए न कि अनम्य सोपानात्मक संगठन पर।

(4) पूर्व-स्नातक अध्यापन का कार्य अंशतः वरिष्ठ प्रोफ़ेसरों द्वारा और अंशतः स्नातकोत्तर और अनुसंधान विद्यार्थियों में से लिए गए सहायकों द्वारा किया जाना चाहिए। संकाय में पदोन्नति प्रकृष्ट निष्पत्ति के आधार पर होनी चाहिए न कि वरिष्ठता के संयोगों से। पदोन्नति के लिए यद्यपि अनुसंधान कार्य में निष्पत्ति ही प्राथमिक कसौटी होनी चाहिए परन्तु उत्तम कोटि का अध्यापन भी पुरस्कृत होना चाहिए। संकाय और अनुसंधान स्टाफ सदस्यों को कुछ वर्षों की अवधि के पश्चात् नियतकालिक अवकाश दिया जाना चाहिए जिससे वे अपने अपने क्षेत्र में पुनश्चर्या द्वारा ज्ञान का नवीकरण कर सकें। संकाय सदस्यों को कम किराए पर अच्छे निवासस्थान विश्वविद्यालय क्षेत्र में या उसके समीप मिलने चाहिए। स्टाफ के बच्चों के लिए अच्छे स्कूलों की व्यवस्था होनी चाहिए।

(5) संकायों को अपने सदस्य चुनने का बहुत हद तक पूरा अधिकार होना चाहिए परन्तु नए संकाय सदस्यों के चुनाव में विश्वविद्यालय के अन्य संकायों का महत्वपूर्ण हाथ रहना चाहिए,

न कि केवल विभाग विशेष का। सहयोगी संकाय सदस्यों द्वारा निर्धारित व्यापक सीमाओं के भीतर कृषि विश्वविद्यालय के किसी भी अध्यापक को अपनी पसन्द का विषय, जैसे वह उचित समझे पढ़ाने की स्वतंत्रता होनी चाहिए। अध्यापन में ऐसी स्वतंत्रता के फल-स्वरूप अपने विद्यार्थियों के मूल्यांकन का उत्तरदायित्व मुख्यतः अध्यापक पर ही रहना चाहिए। बाह्य परीक्षाओं के महत्व को कम करना चाहिए और यथासंभव शीघ्र ही उन्हें समाप्त कर देना चाहिए। स्टाफ़ के सदस्यों को अपने समय का कुछ भाग ही व्याख्यानों, अनुशिक्षण वर्गों (ट्यूटोरियल) और अनुदेशन वर्गों (प्रिसेप्टोरियल), संगोष्ठियों या प्रयोगशाला अध्यापन में लगाना चाहिए। शेष समय उन्हें अनुसंधान कार्य, विद्यार्थियों के साथ व्यक्तिगत कार्य, सहयोगी शिक्षकों के साथ शिक्षा स्तर के सुधार, पुस्तकालय से सामग्री चयन, भौतिक सुविधाओं और अन्य सर्वहितकारी समस्याओं के लिए मिलना चाहिए।

14.29. यह स्पष्ट है कि देश में कृषि विश्वविद्यालयों का जाल बिछाने के लिए वर्तमान कृषि कालेजों और कृषि पालिटेक्निकों के स्टाफ के लिए तुरन्त ही बड़े पैमाने पर अध्यापकों के प्रशिक्षण का कार्य हाथ में लेना होगा। हम सिफारिश करते हैं कि इस कार्य के लिए, उच्च स्तर और सुविधाओं वाले पांच या छह वर्तमान केन्द्र चुने जाएं और इन केन्द्रों में प्रशिक्षणार्थ विज्ञान और कृषि के विद्यार्थियों के लिए छात्रवृत्तियां राष्ट्रीय प्रतियोगितात्मक आधार पर इस आश्वासन के साथ घोषित की जाएं कि प्रशिक्षण पूर्ण करने पर सफल विद्यार्थियों को विश्वविद्यालयों, कालेजों, पालिटेकनिकों या विस्तार कार्य में नियुक्त किया जाएगा। कुछ समय तक यह भी आवश्यक हो सकता है कि कुछ चुने हुए विद्यार्थियों को विदेश में प्रशिक्षण के लिए भेजना पड़े और कुछ विषयों में विदेशों से अध्यापकों की सेवाएं प्राप्त करनी पड़े।

14.30. **विद्यार्थी**—यह अत्यावश्यक है कि कृषि विश्वविद्यालयों में प्रतिभावान विद्यार्थियों को आकर्षित किया जाए। हम यह अनुभव करते हैं कि इस कार्य को अनेक कारक, जैसे, वेतन, प्रतिष्ठा, उन्नति के उपलब्ध मार्ग प्रभावित करेंगे। परन्तु हम इन दो उपायों की सिफ़ारिश करते हैं जो वर्तमान स्थिति को सुधारने में बहुत सहायक होंगे :

— विशेषतः संगठित अखिल भारतीय परीक्षा के आधार पर इन कृषि विश्वविद्यालयों के कम से कम 25 प्रतिशत विद्यार्थियों को छात्रवृत्तियां दी जाएं।

— कृषि स्नातकों के वर्तमान वेतन मानों को बढ़ाया और संशोधित किया जाए।

14.31. **फार्म**—यह अत्यावश्यक है कि वर्तमान शिक्षा को कृषि कार्य के वास्तविक तरीकों और परिस्थिति से संबंधित किया जाए। इस कार्य के लिए काफी बड़े आकार के (लगभग 1,000 एकड़ के और न्यूनतम 500 एकड़ जोत की भूमि वाले) सुप्रबन्ध युक्त फार्म प्रत्येक कृषि विद्यालय के साथ रहना चाहिए।

14.32. **स्थानबद्धता**—कृषि कालेजों के स्नातकों को ठोस क्रियात्मक आधार देने की निरन्तर मांग रही है, अतः अन्तिम रूप से उपाधि प्रदान करने के पूर्व राज्य या विश्वविद्यालय के एक सुप्रबन्ध युक्त निदर्शन फार्म पर विद्यार्थियों की एक वर्ष की स्थानबद्धता के लिए उचित व्यवस्था करने की संभावना पर गंभीरता के साथ विचार होना चाहिए। वर्तमान परिस्थिति में उन्हें अन्य कुछ देशों के समान उन्नतिशील कृषकों के साथ प्रशिक्षण के लिए रखना संभव नहीं है।

14.33. **संख्या, आकार और संगठन**—जैसा कि हम पहले भी कह चुके हैं प्रत्येक राज्य में कम-से-कम एक कृषि विश्वविद्यालय होना चाहिए। इनको स्थापना के लिए वर्तमान विश्वविद्यालयों को कृषि विश्वविद्यालय में रूपान्तरित करने की संभावना पर विचार किया जाना चाहिए। वर्तमान विश्वविद्यालयों के गठन के संबंध में कुछ प्रयोग किए गए हैं और वे सब एक समान नहीं हैं। यद्यपि हम प्रयोगों के पक्ष में हैं। पर यह अत्यावश्यक है कि सब कृषि विश्वविद्यालयों को—कम-से-कम उन्हें जो भविष्य में स्थापित किए जाएंगे—कुछ महत्वपूर्ण सिद्धांतों के अनुसार कार्य करना चाहिए। इनमें से सबसे महत्वपूर्ण यह है कि उन्हें यथासंभव एक-स्थानी विश्वविद्यालय होना चाहिए। जिसके साथ कोई संबद्ध कालेज नहीं रहना चाहिए। यदि विशेष और अपवादरूप कारणों से अपने स्थान से भिन्न स्थान पर विद्यमान कालेज का उत्तरदायित्व विश्वविद्यालय को लेना पड़े तो इन कालेजों को एकीकृत प्रशासन के अधीन संघटक कालेज का रूप दे देना चाहिए।

14.34. जैसा कि ऊपर कहा गया है हमें भारतीय सांख्यिकी संस्थान/लंदन स्कूल आफ इकनामिक्स के अतिरिक्त

कृषि की जनशक्ति आवश्यकताओं के संबंध में कोई परिशुद्ध प्राक्कलन प्राप्त नहीं हुए; ये प्राक्कलन बाद के एक खंड में दिए गए हैं। इनके अनुसार कृषि विश्वविद्यालयों को अनेक वर्गों के स्नातक और स्नातकोत्तर स्तर के लगभग 2,50,000 से 3,00,000 विशेषज्ञ प्रशिक्षित करने पड़ेंगे; इन विशेषज्ञों के कुछ वर्ग नीचे की सूची में दिए जाते हैं :

1. **कृषि** (जिसमें पशुपालन और पशु-चिकित्सा विज्ञान सम्मिलित है) :

विश्वविद्यालय अध्यापक और अनुसंधानकर्त्ता, पॉलिटेक्निक अध्यापक, राज्य और केन्द्रीय प्रशासन वृत्तिक स्टाफ, जिला अधिकारी और परामर्शदाता, विकास खण्ड विस्तार अधिकारी, विकास खण्ड सीमा-कार्यकर्त्ता उद्योग (स्नातक)।

2. **इंजीनियरी :**

विश्वविद्यालय और पॉलिटेकनिक अध्यापक और अनुसंधानकर्त्ता, रासायनिक इंजीनियर, सिंचाई इंजीनियर और जल वैज्ञानिक, यान्त्रिक इंजीनियर।

3. **पोषण और खाद्य शिल्पविज्ञान :**

विश्वविद्यालय और शासकीय अध्यापक और अनुसंधानकर्त्ता, उद्योग, वितरण कार्यकर्त्ता।

4. **कृषि अर्थशास्त्र** :

विश्वविद्यालय और पॉलिटेक्निक अध्यापक और अनुसंधानकर्त्ता, फार्म-ऋण विशेषज्ञ, विपणन विश्लेषक, मूल्य विश्लेषक, संक्रियात्मक विश्लेषक, फसल बीमा विशेषज्ञ।

5. **लोक-प्रशासन** :

विश्वविद्यालय अध्यापक, सरकारी कर्मचारी।

6. **लोक-संचार** :

विश्वविद्यालय अध्यापक, सरकारी कर्मचारी।

7. **समाज विज्ञान, मानव विज्ञान और विधि** :

विश्वविद्यालय और पॉलिटेक्निक अध्यापक, और अनुसंधानकर्त्ता, भू-धारण सुधार अधिकारी, ग्राम समाज विज्ञानी और मानव विज्ञानी।

8. **साधन-संरक्षण** :

विश्वविद्यालय और पॉलिटेक्निक अध्यापक, मिट्टी-सर्वेक्षण अधिकारी, अपरदन नियन्त्रण अधिकारी, भूमि और जल व्यवस्था अधिकारी।

9. **वानिकी** :

विश्वविद्यालय और पॉलिटेक्निक अध्यापक, वन प्रबन्ध अधिकारी, वन उत्पाद विशेषज्ञ।

10. **मत्स्य व्यवसाय** :

विश्वविद्यालय और पॉलिटेक्विक अध्यापक, अलवण-जल ताल-मत्स्य व्यवसाय विशेषज्ञ, नदी और झील मत्स्य व्यवसाय विशेषज्ञ, समुद्र मत्स्य व्यवसाय विशेषज्ञ, मछली पकड़ने की नौका और उपस्कर विशेषज्ञ, मत्स्य साधन और वितरण विशेषज्ञ।

11. **भूमि विज्ञान :**

विश्वविद्यालय और पॉलिटेकनिक अध्यापक, भौमिक जल और इंजीनियरी, भूविज्ञानी, मौसम विज्ञानी, भौतिक समुद्र विज्ञानी।

12. **आधारभूत विज्ञान** :

विश्वविद्यालय और पॉलिटेकनिक अध्यापक, तथा अनुसंधानकर्त्ता, शासन और उद्योग के लिए सांख्यिकीविद्, शासकीय उद्योग के लिए जीव रसायनज्ञ, शासन और उद्योग के लिए शरीर-क्रिया विज्ञानी, शासन और उद्योग के लिए रसायनज्ञ।

13. **मानविकी** :

विश्वविद्यालय अध्यापक

कृषि विश्वविद्यालयों के बाहर कृषि की उच्चतर शिक्षा

14.35. **कृषि के लिए शिक्षा में कृषि विश्वविद्यालयों का योगदान**—कृषि के लिए शिक्षा के विकास में कृषि-विश्वविद्यालय निःसंदेह प्रमुख भाग लेंगे। पर यही पर्याप्त नहीं है। हम अनुरोध करते हैं कि कृषि-शिक्षा के विकास का कार्य राष्ट्रीय विषय होना चाहिए और संपूर्ण विश्वविद्यालय-तन्त्र का उत्तरदायित्व माना जाना चाहिए। इसलिए सभी विश्वविद्यालयों को कृषि में पूर्वस्नातक और स्नातकोत्तर स्तर के उपयुक्त पाठ्यक्रमों का विकास करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। इस सम्बन्ध में हमारी सिफ़ारिशें इस प्रकार हैं :

(1) कृषि को प्रभावित करने वाली और उसके विकास में योगदान देने वाली अनेक विद्याएं हैं, उदाहरणार्थ—जीव विज्ञान, रसायन, भौतिकी, इंजीनियरी, अर्थशास्त्र, प्रशासन, समाज विज्ञान, विधि, और वाणिज्य आदि। विश्वविद्यालयों को इस बात के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए कि वे इन विषयों में,

विशेषत: उनकी कृषि के लिए अनुप्रयुक्तता को दृष्टि में रखते हुए—पूर्व-स्नातक और स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों का विकास करें।

(2) विश्वविद्यालयों को अपने कृषि संकायों को संपुष्ट करने के लिए प्रोत्साहित किया जाए। शिक्षा स्तरों को स्थिर रखने के लिए सावधानी बरतना चाहिए और जन तथा भौतिक साधनों को अति विस्तृत क्षेत्र में फैलाकर स्तरों को नहीं गिराना चाहिए। जहां पर इस प्रकार की सुविधाएं है या विश्वविद्यालयों द्वारा उनके प्राप्य होने की जानकारी है, वहां ऐसी व्यवस्था की जानी चाहिए जिससे वे समीपस्थ प्रायोगिक कृषि फार्म के साथ कार्य कर सकें और उनके संकाय सदस्य तथा विद्यार्थी विस्तार-शिक्षा और निदर्शन कार्यक्रमों में भाग ले सकें।

(3) हम यह भी सुझाव देते हैं कि कुछ कृषि विश्वविद्यालयों और भारतीय शिल्पविज्ञान संस्थानों में घनिष्ट संबंध स्थापित करने के लिए कदम उठाए जाने चाहिए। किसी एक भारतीय शिल्पविज्ञान संस्थान में कृषि संकाय के विकास की संभावना पर भी विचार करना चाहिए। विद्यार्थियों तथा स्टाफ का संगठित रूप से आदान-प्रदान भी किया जा सकता है और कोई उभयनिष्ठ अध्ययन एवं अनुसंधान कार्यक्रम भी हाथ में लिया जा सकता है। अनुसंधान के कई ऐसे क्षेत्र हैं, जैसे भूमि-उद्धार, सिंचाई और जल व्यवस्था, फसल-साधन तथा संग्रह, फार्म यन्त्रीकरण और जुताई संबंधी कार्य आदि, जिनमें इंजीनियरी और कृषि संस्थाओं में संयुक्त रूप में किए गए कार्य बहुत उपयोगी सिद्ध होंगे।

(4) यदि एक ही संगठन, अर्थात, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद को न केवल कृषि विश्वविद्यालयों में परन्तु उनके बाहर भी कृषि शिक्षा के विकास के कार्य का पर्यवेक्षण सौंपा जाय तो कृषि विश्वविद्यालयों और भारतीय शिल्पविज्ञान संस्थानों तथा अन्य विश्वविद्यालयों में कृषि शिक्षा के लिए पारस्परिक घनिष्ट सहयोग सरलता से हो सकता है। कृषि शिक्षा के विकास के लिए भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद से आर्थिक सहायता न केवल कृषि विश्वविद्यालयों को परन्तु अन्य विश्वविद्यालयों और भारतीय शिल्पविज्ञान संस्थानों को भी मिलनी चाहिए। इसी प्रकार विश्वविद्यालय अनुदान आयोग या शिल्पविज्ञान की शिक्षा के लिए हमारे द्वारा प्रस्तावित इसी प्रकार के अनुदान आयोग की आर्थिक सहायता कृषि विश्वविद्यालयों के प्राकृतिक विज्ञान या सामाजिक विज्ञान या इंजीनियरी संकायों के विकास के लिए प्राप्य होनी चाहिए। हम विश्वविद्यालय अनुदान आयोग एवं भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के घनिष्ठ सहयोग पर बल दे रहे हैं क्योंकि कृषि शिक्षा के विकास में उसका बड़ा महत्व है।

14.36. **कृषि कालेज**—कुछ कालेज जो कृषि विश्वविद्यालयों के अंग नहीं हैं। भविष्य में भी अन्य विश्वविद्यालयों से संबंधित बने रहेंगे। इनके संबंध में सामान्य नीति इस प्रकार की होनी चाहिए :

(1) नए कृषि कालेज न खोले जाएं और कृषि के के पूर्व-स्नातक और स्नातकोत्तर विद्यार्थियों का प्रशिक्षण यथासंभव कृषि विश्वविद्यालयों में ही होना चाहिए।

(2) जहां कृषि कालेज विश्वविद्यालय के संघटक कालेज हैं, संबंधित विश्वविद्यालयों को पुष्ट कृषि संकायों का विकास करने के लिए सहायता दी जानी चाहिए।

(3) प्रत्येक कृषि कालेज के पास कम से कम 200 एकड़ का सुव्यवस्थित फार्म होना चाहिए जिस पर कृषि के आधुनिक तरीकों का निदर्शन हो सके।

14.37. कुछ संबंधित कृषि कालेज विशाल संस्थाएं हैं—जैसे, कृषि कालेज, कोयम्बटूर—परन्तु अनेक कृषि, कालेज दुर्बल संस्थाएं हैं, विशेषत: उत्तर प्रदेश में। अत: इस संबंध में सुधार के लिए प्रबल नीति अपनाना आवश्यक हैं। हम सिफ़ारिश करते हैं कि

— संबंधित विश्वविद्यालयों को इन कालेजों में स्तरों को कायम रखने में उत्साह दिखाना चाहिए।

— सभी कृषि कालेजों का नियमित रूप से पंचवर्षीय निरीक्षण होना चाहिए जो भारतीय

कृषि अनुसंधान परिषद और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को संयुक्त रूप से करना चाहिए। इस प्रकार का पहला निरीक्षण तुरन्त आरम्भ होना चाहिए और एक वर्ष के भीतर पूरा होना चाहिए। विश्वविद्यालयों से अनुरोध किया जाए कि वे ऐसे कालेजों से संबंध-विच्छेद कर दें जिनमें न्यूनतम अपेक्षित साधन उपलब्ध नहीं हैं।

— कुछ कालेजों को उपाधि के स्थास में उच्च-तकनीशियन स्तर के पाठ्यक्रम चलाने वाली संस्थाओं में परिवर्तित करने की संभावना पर विचार करना चाहिए।

कृषि पॉलिटेक्निक

14.38. हमारा विश्वास है कि भारत में औद्योगिक तकनीकी शिक्षा केसमान ही कृषक को आवश्यक सहायक सेवाओं के लिए,विस्तार कार्य में सहायतार्थ, कृषि उत्पादों पर आश्रित अनेक दस्तकारियों और उद्योगों के लिए और सेवा-व्यापारों में आवश्यक सहायक सेवाओं के लिए कुशल कामगार और मध्यम स्तर के तकनीशियनों को प्रशिक्षित करने की काफी गुंजाइश है। हम सिफ़ारिश करते हैं कि मैट्रिक पास विद्यार्थियों के लिए कृषि में व्यावसायिक शिक्षा देने वाली विशिष्ट संस्थाएं स्थापित करने और उनमें लड़के-लड़कियों को बड़ी संख्या में आकर्षित करने के लिए प्रबल प्रयत्न किए जाएं। इन संस्थाओं को कृषि-पॉलिटेक्निक का नाम दिया जाए।

इस कार्यक्रम के विकास को प्राथमिकता दी जानी चाहिए इस कार्यक्रम का आरम्भ मुख्यतः ग्रामीण वातावरण में स्थित पॉलिटेकनिकों में ऐसे नए पाठ्यक्रमों को बढ़ाकर किया जा सकता है। परन्तु इन संस्थाओं के उत्तम विकास और दुर्लभ साधनों का अधिकतम उपयोग करने की दृष्टि से हम सिफ़ारिश करते हैं कि इस प्रकार के पॉलिटेक्निक विश्वविद्यालयों से सम्बन्धित होने चाहिए। हमारा उद्देश्य सभी राज्यों में इस प्रकार की विशाल संस्थाओं की स्थापना होना चाहिए। आरम्भ में ये संस्थाएं छोटी हो सकती है परन्तु विकास होने पर उनमें विद्यार्थियों की संख्या लगभग 1,000 या इससे भी अधिक होनी चाहिए। हम इस बात पर बल देते हैं कि व्यावसायिक शिक्षण में छोटी संस्थाएं किफायती नहीं होतीं और उनमें अदक्षता भी बढ़ती है।

14.39. ये संस्थाएं उन अवृत्तिक विशेषज्ञों के प्रशिक्षण का उत्तरदायित्व लेंगी जिनकी फार्म-मैकेनिक, फार्म-प्रबन्धक, प्रयोगशाला सहायक, कृषि-उद्योगों में कारीगर और तकनीशियन कृषि-ऋण और बीमासंगठनों में सहायक, विस्तार सेवा सहायक, ग्रामीण क्षेत्रों में काम करने वाले स्वयं नियोजित कारीगर और मिस्त्री, और उर्वरक तथा पैस्टनाशकों के विनिर्माताओं के क्षेत्रीय प्रतिनिधियों के रूप में आवश्यकता होती है। इन संस्थाओं को कृषकों के लिए भी अल्पकालीन गहन पाठ्यक्रम, जैसे, मधुमक्खी पालन, बीज उत्पादन आदि संगठित करना चाहिए।

14.40. पॉलिटेकनिकों को बहूद्देश्य संस्थाएं होना चाहिए जिनमें पशु-पालन, बागबानी, वानिकी, कृषि उत्पादों का साधन, फसल उत्पादन आदि के लिए आवश्यक उपर्युक्त कौशलों से सम्बन्धित अनेक स्तरों के विशिष्ठ पाठ्यक्रमों में प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। ये मुख्यतः डिप्लोमा-पाठ्यक्रम होंगे जिनके लिए प्राप्य विशेषज्ञता के अनुसार तीन वर्षों तक का पाठ्यक्रम होना चाहिए। कुछ कारीगरी पाठ्यक्रम भी संगठित किए जाने चाहिए जिनमें मैट्रिक मे कम योग्यता वाले विद्यार्थियों को प्रशिक्षण के पश्चात्प्रमाण-पत्र दिए जा सकते हैं। कुछ डिप्लोमा (प्रमाण-पत्र) पाठ्यक्रमों को सूची इस अध्याय के अन्त में दी गई है। किसी भी एक पॉलिटेक्निक के लिए इन सब विषयों का प्रशिक्षण देना सम्भव नहीं है। प्रत्येक संस्था की पाठ्यचर्या आस-पास के क्षेत्र की आवश्यकताओं के अनुसार होनी चाहिए। जैसा कि हम औद्योगिक पालिटेक्विकों के लिए सिफ़ारिश कर चुके हैं, इन पालिटेक्निकों के पाठ्यक्रम भी प्रत्यक्षतः क्रियात्मक होने चाहिए और उनके लिए निश्चित अवधि का क्रियात्मक अनुभव आवश्यक होना चाहिए। प्रत्येक पॉलिटेकनिक के साथ सुव्यवस्थित फार्म होना चाहिए जिसमें मिश्रित-कृषि की सभी शाखाओं के निदर्शन की सुविधाएं रहनी चाहिए। पॉलिटेक्निक में विज्ञान की शिक्षा के लिए सुसज्जित प्रयोगशालाएं और खाद्य तथा अन्य उत्पादों के साधन के लिए छोटे साधन संयंत्र होने चाहिए।

14.41. भली भांति स्थापित हो चुकने पर पॉलिटेक्निकों को युवक किसानों के लिए संक्षिप्त पाठ्यक्रम बनाने चाहिए। हम बल देकर कहते हैं कि लड़कियों और ग्रामीण महिलाओं के लिए विशेष लाभप्रद पाठ्यक्रम बनाने की आवश्यकता है। ऐसें पाठ्यक्रमों का विशेषतः आज की परिस्थिति में बड़ा महत्व है। लोगों की आहार सम्बन्धी आदतों को बदलने की दृष्टि से अनुप्रयुक्त पोषाहार का और डेरी तथा कुक्कुटपालन के विकास के कार्यक्रमों का, जो ग्रामीण परिवारों में अधिकांशतः महिलाओं के प्रबन्ध में होते हैं, महत्व स्पष्ट है।

14.42. आरम्भ से ही यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि पॉलिटेक्निकों में उच्चतम संभव स्तरों को प्राप्त किया जाए और फिर उन्हें स्थिर रखा जाए। यह उत्तरदायित्व मुख्यतः कृषि-विश्वविद्यालयों का रहेगा जिनसे मोटे तौर से ये पॉलिटेक्निक संबंधित रहेंगे। इसलिए विश्वविद्यालयों को चाहिए कि पॉलिटेकनिकों के संचालन के लिए उच्च कोटि के प्रशिक्षकों को भर्ती करने और प्रशिक्षण के लिए हमारे द्वारा अन्यत्र प्रस्तावित कार्यक्रम की रूपरेखा के अन्तर्गत अध्यापकों के प्रशिक्षण के कार्यक्रम को तुरन्त हाथ में लें। यह कार्य सुगमता से हो सकता है यदि इन संस्थाओं के स्टाफ के लिए समुचित योग्यताएं और आकर्षक वेतन-मान निर्धारित किए जाएं।

14.43. अन्य प्रकार की व्यावसायिक शिक्षाओं के समान ही अपवाद स्वरूप विद्यार्थी के लिए यह संभव है कि वह आगे अध्ययन कर उच्चतर शिक्षा के पाठ्यक्रमों में प्रवेश करे, परन्तु फिर भी इस बात पर बल देने की आवश्यकता है कि पाठ्यक्रम मुख्यतः शिक्षान्त प्रकृति के होने चाहिएं, जिनके पश्चात् विशिष्ट व्यवसाय में काम मिल सके इसे प्रभावी बनाने के लिए इन पॉलिटेक्निकों से उत्तीर्ण होने वाले सनद या प्रमाण-पत्र प्राप्त करने वालों के पद और वेतन-मान पर ध्यान देना आवश्यक होगा और निजी तथा राज्याधीन रोजगार देने वालों को इस बात का प्रयत्न करना होगा कि ऐसी वृत्तियां आकर्षक हों।

स्कूलों में कृषि शिक्षा
(कक्षा 1 से 10 तक)

14.44. कृषि पॉलिटेक्निक उच्चतर माध्यमिक अवस्था पर कार्य करेंगे। परन्तु हमारे सामने उठाए गए महत्वपूर्ण प्रश्नों में से एक यह भी था कि उच्चतर प्राथमिक या अवर माध्यमिक स्तर पर कृषि शिक्षा का विकास किया जाए या नहीं। हमने इस समस्या का बहुत सावधानी से परीक्षण किया हैं और इस निर्णय पर पहुंचे हैं कि कृषि की औपचारिक शिक्षा द्वारा प्राथमिक या अवर माध्यमिक स्तर पर कृषि में व्यावसायिक योग्यता का प्रशिक्षण देने के प्रयत्न विफल हुए हैं और इस प्रकार के प्रयत्न बन्द कर देने चाहिए। परन्तु इसके विपरीत सामान्यतः यह विश्वास होने के कारण कि ऐसे प्रयत्न बड़े पैमाने पर होना चाहिए, यह आवश्यक है कि समस्या पर गहराई से विचार किया जाए :

14.45. **वर्तमान स्थिति**—यह वांछनीय प्रतीत होता हैं कि आज की स्थिति में इन स्तरों पर व्यावसायिक कृषि योग्यता प्रदान करने के उद्देश्य से शिक्षा देने वाली संस्थाओं के प्रकार और उनमें दिए जाने वाले प्रशिक्षण के भेदों पर पुनर्विचार किया जाए।

(1) **प्राथमिक स्तर**—अनेक राज्यों में बुनियादी शिक्षा की अवधारणा के विकास और उसमें दस्तकारी के संबंधी प्रशिक्षण पर बल दिए जाने के कारण अवर और उच्चतर बुनियादी स्कूलों में विशेषतः उनमें जो ग्रामीण क्षेत्रों में स्थित है, कृषि का आरम्भ एक प्राथमिक दस्तकारी के रूप में किया गया है। उदाहरणार्थ, उत्तर प्रदेश में 52,654 अवर बुनियादी स्कूलों में (पांचवीं कक्षा तक) कृषि मुख्य दस्तकारी है, जबकि उच्च बुनियादी स्तर पर (आठवीं कक्षा तक) 2,538 संस्थाओं में कृषि बुनियादी दस्तकारी के रूप में सिखाई जाती है। यह ध्यान देने योग्य है कि अवर बुनियादी स्तर पर कृषि के लिए किसी पृथक शिक्षक की व्यस्था नहीं हैं जबकि उच्च बुनियादी स्तर पर एक अध्यापक (कृषि स्नातक) उपलब्ध है। गुजरात में भी ग्राम्य क्षेत्र के बुनियादी स्कूलों में कृषि प्राथमिक दस्तकारी है। महाराष्ट्र में शासन के प्रयत्नशील होने पर भी राज्य के बुनियादी स्कूलों के चतुर्थांश से भी कम में और प्राथमिक स्कूलों में 5 प्रतिशत से भी कम कृषि दस्तकारी के रूप में सिखाई गई। अन्य राज्यों में इस स्तर पर कृषि-शिक्षा का विकास कम दिखाई देता है।

(2) **अवर माध्यमिक स्तर**—इस स्तर पर विभिन्न उद्देश्यों के कारण कई प्रकार के कृषि पाठ्यक्रम पाए जाते हैं।

(क) प्रथम प्रकार में वे व्यावसायिक या कृषि स्कूल हैं जो प्राथमिक शिक्षा प्राप्त कर आने वाले विद्यार्थियों को लेते हैं और उन्हें क्रियात्मक कृषक बनाने के उद्देश्य से व्यावसायिक प्रशिक्षण प्रदान करते हैं। ये व्यावसायिक स्कूल **मांजिरी** नमूने के आधार पर बनाए गए हैं और उनमें दो वर्ष का डिप्लोमा पाठ्यक्रम है। महाराष्ट्र ने इस प्रकार के अनेक स्कूलों के लिए विशेष प्रयत्न किया है। पश्चिम महाराष्ट्र के प्रत्येक जिले में एक ऐसा स्कूल है और चौथी योजना में और भी ऐसे स्कूलों का प्रस्ताव किया गया है। इन स्कूलों में साज-सामान और स्टाफ की व्यवस्था काफी अच्छी प्रतीत होती है (कृषि में प्रशिक्षित छह अध्यापकों के साथ), और इनमें प्रवेश के लिए स्थायी मांग है; इसके मुख्य आकर्षण छात्रवृत्ति और विभाग में तत्काल नियुक्ति की संभावना है। परन्तु इन स्कूलों के कथित उद्देश्य—कृषकों के लड़कों का प्रशिक्षण जो वापिस जाकर खेती करेंगे—पूर्णतः असिद्ध रहा है।

(ख) कई स्कूलों में ऐसे कृषि-पाठ्यक्रम उपलब्ध हैं

जिनसे किसी दस्तकारी सिखाने की आवश्यकता की पूर्ति हो सकती है या मैट्रिक परीक्षा के लिए आवश्यक ऐच्छिक विषय के रूप में उसे चुना जा सकता है। यह बतलाया गया है कि कई प्रदेशों में कृषि को इतिहास या संस्कृत के वैकल्पिक विषय के रूप में रखा गया है न कि गणित या विज्ञान के वैकल्पिक विषय के रूप में। उत्तरप्रदेश में 160 हाई स्कूलों में कृषि ऐच्छिक विषय के रूप में उपलब्ध है। महाराष्ट्र में 88 (या लगभग 3 प्रतिशत) हाई स्कूलों में और मध्यप्रदेश में अनेक उच्चतर माध्यमिक स्कूलों में कृषि विषय अध्ययन के लिए प्राप्य है। गुजरात में कुछ गैर-सरकारी उत्तर-बुनियादी स्कूलों में कृषि पाठ्यक्रम रखे गए हैं।

बहूद्देश्य हाई स्कूलों में भी कृषि एक ऐच्छिक धारा के रूप में उपलब्ध है। 1960-61 में इस प्रकार के 2,000 से अधिक स्कूल थे, यद्यपि उसके पश्चात् उनकी संख्या में कोई सारभूत वृद्धि नहीं हुई है। समग्र पाठ्यचर्या कार्यक्रम एक सर्व सामान्य अन्तर्भूत कार्यक्रम पर निर्भर है जिसमें सभी धाराओं के लिए एक दस्तकारी भी सम्मिलित है। कृषि धारा में दो प्रकार के विकल्प उपलब्ध है, पहला (कालेज-पूर्व) शैक्षिक आधार युक्त जिसमें रसायन, जीव-विज्ञान या भौतिकी और गणित आवश्यक हैं और दूसरा (व्यवसाय-पूर्व) व्यावसायिक आधार युक्त जिसमें क्रियात्मक कृषि, अनुप्रयुक्त गणित और अनुप्रयुक्त विज्ञान आवश्यक है। दोनों वर्गों को कृषि का सामान्य आधारभूत पाठ्यक्रम लेना आवश्यक है जिसमें ये विषय हैं: (1) कृषि अर्थशास्त्र और ग्रामीण समाज विज्ञान; (2) वनस्पति विज्ञान और उत्पादव; (3) प्राणिविज्ञान और उत्पादव; (4) कृषि इंजीनियरी और शिल्पविज्ञान; कुल समय का लगभग आधा इस सामान्य पाठ्यक्रम में लगाया जाता है।

14.46. **सिफारिशें**—इन पाठ्यक्रमों या कार्यक्रमों में से किसी को भी आवश्यक व्यावसायिक योग्यता प्रदान करने या युवकों को प्रशिक्षित कर और उन्हें पुनः भूमि-निर्भर स्वयं खेती करने वाले कृषक बनने में सफलता नहीं मिली है। इसलिए हम सिफ़ारिश करते है कि—

(1) प्राथमिक स्कूल स्तर पर कृषि शिक्षा के समावेश से ही हमारी सम्मति में जीवन के एक भाग के रूप में कृषि के लिए प्रेम उत्पन्न करने या, जैसा कि बहुधा दावा किया जाता है, ग्रामीण लोगों के भूमि छोड़कर प्रवसन को रोकने के उद्देश्य में सफलता प्राप्त होने की संभावना नहीं है। ग्रामों से नगर की ओर जाने की प्रवृत्ति अनेक सामाजिक-आर्थिक कारकों पर निर्भर है जिनमें से शिक्षा केवल एक और वह भी गौण कारण है। ऐसे स्कूलों में आजकल दी जाने वाली शिक्षा इस प्रकार की है कि वह विद्यार्थी के लिए विरर्थक बेगार बन जाती है और फलस्वरूप अल्प-वयस्क विद्यार्थियों के मन में कृषि के लिए दृढ़ घृणा अंकित कर देती हैं। परन्तु ग्रामीण लड़के को वातावरण के अनुकूल बनाना एक भिन्न विषय है और जैसी कि हम पहले सिफ़ारिश कर चुके हैं इसे सिद्ध करने का उत्तम मार्ग समग्र शिक्षा तन्त्र को कृषि अभिमुख करना है।

(2) मोटे रूप से यही निर्णय अवर माध्यमिक स्तर के लिए भी लागू होगा। जिन लोगों के सम्पर्क में हम आए हैं उनमें से अधिकांश का मत है कि औपचारिक शिक्षा की संस्थाओं में दिया जाने वाला प्रशिक्षण व्यावसायिक योग्यता नहीं प्रदान करता। यह असंभव सा प्रतीत होता है कि कृषि जैसे विषय में व्यावसायिक योग्यता स्कूल के दो या तीन वर्षों की अवधि में प्राप्त हो सके। कृषि के लिए कठोर परिश्रम और प्रौढ़ निर्णय की आवश्यकता होती है और इस आयु-वर्ग (13+ से 16+ तक) में इस कार्य के लिए न मानसिक क्षमता रहती है न शारीरिक। हमारा यह भी विचार है कि छोटी आयु में इस प्रकार की अति विशेषज्ञता का विकास कदापि वांछनीय नहीं है। न ही हमें यह विश्वास हो सका है कि संकीर्ण व्यावसायिक प्रशिक्षण स्कूल समय का सर्वोत्तम उपयोग है। जैसा कि इस अध्याय के अनेक स्थलों पर हम स्पष्ट कर चुके हैं वैज्ञानिक ज्ञान और कौशल का बड़े पैमाने पर प्रयोग कृषि के आधुनिकीकरण का आधार है। अतः हम सिफारिश करते है कि जो समय स्कूल के लिए उपलब्ध है वह ठोस सामान्य शिक्षा देने के लिए लगाना चाहिए जिसमें गणित और विज्ञान पर मुख्यतः बल देना चाहिए। हम समझते हैं कि यह भविष्य में हमारी कृषि में आने वाले तीव्र परिवर्तनों का सामना करने की सर्वोत्तम तैयारी होगी। इन तथा अन्य कारणों से हम प्राथमिक उत्पादक की कृषि शिक्षा के लिए स्कूलों में औपचारिक पाठ्यक्रमों का समर्थन नहीं कर सके हैं।

14.47. इस संबंध में यह भी आवश्यक है कि शिक्षा मन्त्रालय के एक कार्यकारी समूह के अंतरिमकालीन प्रस्ताव का उल्लेख किया जाए जिसके अनुसार चौथी योजना में 75 करोड़ रुपये के व्यय से 4,00,000 विद्यार्थियों के लिए 2,000 जूनियर कृषि स्कूल खोलने की सिफ़ारिश की गई है। जूनियर तकनीकी स्कूलों के आभासी सादृश्य पर आधारित इन स्कूलों का आधारभूत उद्देश्य बुद्धिमान और उत्साही कृषकों के एक वर्ग का प्रशिक्षण करना है जो सुधरी हुई कृषि पद्धतियों को अपना सकें। आशा की

जाती है कि वे 'स्वयं नियोजित कृषक बनेंगे न कि मजदूरी कमाने वाले ।' हमने इस कार्यकारी समूह के संक्षिप्त प्रस्ताव का सावधानी से परीक्षण किया है परन्तु हम नहीं समझते कि यह योजना सफलता के साथ कार्यान्वित की जा सकती है या उसके कथित उद्देश्य सफल हो सकते हैं। आवश्यक भूमि और स्टाफ प्राप्त करने की कठिनाइयों के अतिरिक्त हमें यह विश्वास नहीं हो सका है कि प्रस्तावित योजना वास्तव में प्रशिक्षितों को व्यावसायिक क्षमता प्रदान करेगी । जैसा कि हम पहले कह चुके हैं यह आयु-वर्ग शारीरिक और मानसिक दृष्टि से कृषि के समान सामर्थ्य-साध्य कार्य के लिए परिपक्व नहीं होता । साथ ही कृषि धारा के बहूद्देश्य हाई स्कूलों की तुलना में, जिन्हें कार्यकारी समूह स्वयं न्यायतः विफल घोषित कर चुका है, इन स्कूलों में कृषि की प्रायोगिक कक्षाओं की वृद्धि के अतिरिक्त (और वे भी कक्षा 10 में जब विद्यार्थी की आयु केवल 14+ रहेगी) कोई पर्याप्त भेद दिखाई नहीं देता ।

14.48. हमारी सम्मति में यह आशा करना अयथार्थ-वादी बनना होगा कि अधिकांश लोगों की अपेक्षा इतनी अच्छी शिक्षा प्राप्त करने वाले व्यक्ति वर्तमान सामाजिक आर्थिक परिस्थितियों में कृषि कार्य के लिए भूमि पर बसे रहेंगे । जब तक भूमि पर निर्भर रहने की इच्छा को उन्नत आर्थिक अवसरों और आकर्षक सुख-सुविधाओं के द्वारा संपुष्ट नहीं किया जाता तब तक छात्रवृत्ति और प्रवेशार्थ अधिमान्यताओं आदि के द्वारा औपचारिक कृषि शिक्षा के लिए अभिप्रेरण उत्पन्न करने के प्रयत्न स्वयं-नियोजित कृषकों के निर्माण में सफल नहीं हो सकते । वास्तव में इस खर्चीली योजना को क्रियान्वित करने का निश्चित परिणाम यह होगा कि ये दुर्लभ साधन उन लोगों के प्रशिक्षण में व्यय होंगे जिनके अन्य वृत्तियों में जाने की संभावना है और जो लोग भूमि पर रहेंगे वे ऐसे प्रशिक्षण से वंचित रहेंगे ।

14.49. अतः हम अनुभव करते हैं कि बड़ी संख्या में जूनियर कृषि स्कूलों की स्थापना के प्रस्ताव में अनेक कठिनाइयां हैं और उनके कथित उद्देश्यों की पूर्ति होने की भी संभावना नहीं है। हम सिफ़ारिश करते हैं कि इस प्रस्ताव को रद्द कर दिया जाए । निःसंदेह विस्तार, उद्योग आदि में मध्यम स्तर के अन्य कार्यकर्ताओं की आवश्यकता होगी परन्तु ये हमारी सिफारिश के अनुसार स्थापित पॉलिटेक-निकों में अधिक उत्तमता से तैयार किए जा सकते हैं ।

सामान्य शिक्षा के अंग के रूप में कृषि शिक्षा

14.50. परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि अवर माध्यमिक अवस्था (जो मुख्यतः सामान्य शिक्षा की है) तक स्कूल प्रणाली का कृषि के विकास में कोई योगदान नहीं है । इसके विपरीत हमारा विश्वास है कि न केवल स्कूल अवस्था पर परन्तु विश्वविद्यालय अवस्था में और सभी प्रकार के अध्यापक प्रशिक्षण में विद्यार्थी को कृषि अभिमुख करना सामान्य शिक्षा का अभिन्न अंग है । देश के लिए कृषि का आर्थिक महत्व होने के कारण प्रत्येक नागरिक को, चाहे वह किसी भी स्थान का निवासी, किसी भी व्यवसाय या स्थिति का व्यक्ति क्यों न हो कृषि एवं ग्राम समस्याओं से अवगत कराना आवश्यक है और संक्षेप में उसे अपनी शिक्षा के अंग के रूप में कृषि अनु-स्थापन दिया जाना चाहिए । इसका अर्थ है कि उसे किसान की समस्याओं का ज्ञान, कृषि के लिए आवश्यक कौशलों और विज्ञान तथा शिल्पविज्ञान द्वारा अनावृत नए क्षितिजों और संभावनाओं का परिबोध होना चाहिए । इस प्रकार के सामान्य कृषि-अनुस्थापन से न केवल कृषि के लिए अभिरुचि जाग्रत होगी और परिणामस्वरूप कुछ युवाजन कृषि संबंधी वृत्तियों को अपनाएंगे परन्तु कृषि के सुधार तथा राष्ट्र की सामान्य आर्थिक उन्नति के लिए प्राथमिक उत्पादक के कल्याण का महत्व राष्ट्र के भावी नीति निर्माताओं को भली-भांति विदित हो सकेगा ।

14.51. अतः हम निम्नलिखित सिफ़ारिश करते है :

(1) सभी प्राथमिक स्कूलों को, भले ही वे शहरी क्षेत्र में विद्यमान हों, अपने कार्यक्रमों को कृषि-अनुस्थापन देना चाहिए । इस सिफ़ारिश से हमारा आशय शैक्षिक भार बढ़ाने का नहीं है । हमें पूरा विश्वास है कि इस कार्य के लिए विशेष कृषि पाठ्यक्रम की आवश्यकता नहीं है, परन्तु सामान्य विज्ञान, जीव विज्ञान, सामाजिक अध्ययन, गणित आदि के वर्तमान पाठ्यक्रमों को केवल ग्रामीण वातावरण और भारतीय समाज की समस्याओं की ओर अनुस्थापित करने की आवश्यकता है ।

(2) कृषि को कार्य अनुभव का महत्वपूर्ण अंग बनाया जा सकता है । यह कार्य-अनुभव हम समझते हैं राष्ट्रीय शिक्षा तन्त्र का एक अत्या-वश्यक भाग है । इसे तरुण-मानस के लिए उत्तेजक और उद्दीपक बनाया जा सकता है और यह विशेषतः प्रारम्भिक वर्षों में कृषि के नाम से निरर्थक भार-वहन नहीं होना चाहिए जिससे उसके मन में कृषि-जीवन के प्रति आजीवन घृणा उत्पन्न हो जाए ।

(3) इसी प्रकार कृषि-अनुस्थापन का कार्य अवर और उच्चतर माध्यमिक अवस्थाओं में भी पूर्ववत् चलता रहना चाहिए और इन अवस्थाओं में भी कृषि को कार्य-अनुभव का अंग बनाना चाहिए। विज्ञान और सामाजिक अध्ययन के पाठ्यक्रमों में कृषि और ग्रामीण समस्याओं के मूल तत्व रहने चाहिए।

(4) उपयुक्त कालेजों और विश्वविद्यालय संकायों में ऐसे स्टाफ सदस्य और अनुसंधान-छात्र होने चाहिए जो कृषि के आधुनिकीकरण के लिए अपने विशेष विषय के महत्व में रुचि रखते हैं। कालेजों और विश्वविद्यालयों के पूर्व स्नातक और स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों में भी कृषि समस्याओं की ओर अनुस्थापन को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाना चाहिए। इसे करने का एक तरीका यह होगा कि कृषि संबंधी विषयों के कुछ ऐसे प्रश्न-पत्र रखे जाएं जिन्हें विद्यार्थी स्वेच्छा से अपने पाठ्यक्रम के अन्तर्गत ले सकते हैं। इस क्षेत्र में ग्रामीण संस्थानों के अनुभव उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं और उनका पूर्ण उपयोग किया जाना चाहिए। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग और अन्य विश्वविद्यालय प्राधिकारियों को इस प्रकार का अनुस्थापन करने के लिए समुचित कदम उठाने चाहिए।

(5) इसी प्रकार का कृषि तथा ग्रामीण समस्या मूलक अनुस्थापन सभी अध्यापक प्रशिक्षण कार्यक्रमों में भी होना चाहिए।

विस्तार कार्यक्रम

14.52. **समस्या**—स्पष्टतः कृषि-शिक्षा का सबसे अधिक तात्कालिक कार्य आज सभी प्राप्य तकनीकी जानकारियों को किसानों तक पहुंचाना है जिससे वे अपनी उपज और पारिवारिक आमदनी को बढ़ा सकें। प्रथम दृष्टिपात करने पर यह कार्य अत्यन्त विकट प्रतीत होता है। भारत में 6 करोड़ कृषक परिवार हैं और इनमें से कम-से-कम 85 प्रतिशत क्रियात्मक दृष्टि से निरक्षर हैं। उन्नति का एक मार्ग यह है कि हम उन पुरोगामी और उन्नतिशील कृषकों पर अपनी शक्ति केन्द्रित करें जो संभवतः देश के कृषकों के तृतीयांश का निर्माण करते हैं और अब जिनके पास देश की आधी से अधिक भूमि का स्वामित्व है। यह मानते हुए कि इस वर्ग में भी निरक्षरता प्रचुर प्रमाण में है, कार्य का मुख्य अंग सुविधाजनक केन्द्रों में निदर्शन करना होगा। ग्राम में स्वयं कृषक द्वारा निदर्शन रेडियो प्रसारण, सरल विज्ञापन आदि ऐसी जानकारी को और आगे पहुंचा सकते हैं।

14.53. यदि वर्तमान परिस्थितियों में कृषि-विस्तार सफल करना है तो तीन मुख्य परिवर्तन आवश्यक हैं :

— प्रथम कार्य विस्तार कर्मचारियों के कौशल को उन्नत करना है। इस कार्य के लिए विस्तार कर्मचारियों के प्रशिक्षण कार्य में सुधार करना आवश्यक है जिससे इस संवर्ग में आने वाले रंगरूटों में समुचित योग्यता हो। इसके अतिरिक्त सेवा में पहिले ही विद्यमान व्यक्तियों के पुनः प्रशिक्षण के कार्यक्रम बनाने होंगे।

— दूसरा काम विस्तार के वास्तविक कार्य को कृषि विभाग से संभरण सेवाओं से पृथक् करना है। अनुभव बतलाता है कि कृषि विभाग के इन अधिकारियों को जब उनके पास ये दोनों कार्य एक साथ रहते हैं विस्तार कार्य के लिए कदाचित ही समय मिल पाता है।

— तीसरा कार्य यह है कि विस्तार कर्मचारियों को दफ्तरों के अधीन नहीं अपितु अनुसंधान केन्द्रों या निदर्शन फार्मों से संबद्ध रहना चाहिए। इस रीति से वे विस्तार कार्य को उपदेश की अपेक्षा उदाहरण से कर सकेंगे और इसलिए कृषक उनकी परामर्श देने की योग्यता में अधिक भरोसा और विश्वास कर सकेंगे।

14.54. **विस्तार कर्मचारियों के कौशल को उन्नत करना**—अब यह सभी स्वीकार करते हैं कि विस्तार कर्मचारियों के कौशल का दर्जा बढ़ाने की आवश्यकता है और कृषि मन्त्रालय ने इस कार्य के लिए कई योजनाएं बनाई हैं। ग्राम-स्तर कर्मचारी या **ग्रामसेवक** कृषि-विकास यन्त्र का बहुत महत्वपूर्ण भाग है क्योंकि वही कृषक से घनिष्ठ सम्पर्क में जाता है और कृषि विस्तार कार्य का प्रभावी होना बहुत सीमा तक उसकी कार्यक्षमता पर निर्भर है। अब साधारणतः सभी यह स्वीकारते हैं कि ग्राम-स्तर कर्मचारी देश के कृषि उत्पादन पर अभीष्ट प्रभाव नहीं डाल सका है। इसका अंशतः कारण यह है कि आरम्भिक वर्षों में उसे सामान्य विकास कर्मचारी माना जाता था और उस पर ही हर प्रकार का कृष्येतर कार्य

लादा जाता था। ग्राम-स्तर कर्मचारी में व्यावसायिक योग्यता के अभाव ने स्थिति को और भी भंयकर बना दिया है क्योंकि उसने अपना अधिक समय सामान्य विकास कार्यों में—जहां उसे अपनी अपर्याप्तता का कम अनुभव होता था—लगाना सुविधाजनक समझा। खाद्य और कृषि मन्त्रालय दो मार्गों द्वारा इस समस्या का हल निकालने का प्रस्ताव कर रहा है—(1) ग्राम-स्तर कर्मचारी को सामान्य विकास कार्य के मुख्य भाग से मुक्त कर, और (2) उसकी व्यावसायिक तथा तकनीकी योग्यता को बढ़ा कर। भविष्य में इन पदों के लिए अधिक योग्यतर व्यक्तियों, हो सके तो कृषि स्नातकों को भी विशेषत: उन जिलों के लिए जो गहन कृषि विकास के लिए चुने गए हैं, नियुक्त करने के अनेक प्रस्ताव हैं। परन्तु वर्तमान वेतन मानों और सेवा की परिस्थितियों में अच्छी योग्यता वाले व्यक्तियों की पर्याप्त संख्या की भर्ती करना और उन्हें स्थिर रखना सरल नहीं होगा। यदि ग्राम-स्तर कर्मचारियों की बड़ी आवश्यकता की पूर्ति थोड़े समय में करना है तो वर्तमान कर्मचारियों की क्षमता भी बढ़ाना पड़ेगी।

14.55. वर्तमान ग्राम-स्तर कर्मचारियों की तकनीकी योग्यता बढ़ाने की समस्या जटिल है क्योंकि उनकी संख्या बहुत बड़ी है और उन्हें दिए गए प्रशिक्षण भिन्न-भिन्न प्रकारों के हैं। इस कारण खाद्य और कृषि मन्त्रालय उनकी व्यावसायिक योग्यता में सुधार करने के लिए एक बहुशाखी योजना का प्रस्ताव कर रहा है :

(1) ऐसे ग्राम सेवक या ग्राम-स्तर कर्मचारी जो विश्वविद्यालय प्रवेश की शर्तों को पूरा करते हैं, अवस्थाबद्ध कार्यक्रम के अनुसार बी० एस सी० (ऐगरी०) उपाधि की तैयारी के लिए भेजे जाएंगे। आशा की जाती है कि ऐसे 2,500 कर्मचारी चतुर्थ योजना में कृषि उपाधि के लिए भेजे जा सकेंगे। जिन कर्मजारियों ने उच्चतर प्रशिक्षण प्राप्त किया है उन्हें अपने कार्य में स्थिर रखने की आवश्यकता भी मन्त्रालय अनुभव कर रहा है और ऐसे प्रशिक्षित व्यक्तियों को उच्चतर वेतन और अच्छी प्रत्याशाएं देने का विचार है।

(2) मन्त्रालय ग्राम सेवक प्रशिक्षण केन्द्रों को भी उन्नत करने का प्रस्ताव कर रहा है। इन केन्द्रों को उन्नत स्टाफ, उपस्कर और सुविधाएं दी जाएंगी जिससे चुने हुए ग्रामसेवकों की अपनी व्यावसायिक योग्यता एवं कार्यसाधकता बढ़ाने के लिए उच्चतर प्रशिक्षण दिया जा सकेगा। इन चुने हुए ग्राम सेवकों को एक वर्ष का उच्च पाठ्यक्रम कृषि और पशुपालन संबंधी विभिन्न विषयों में दिया जाएगा। बीस केन्द्रों को उन्नत किया जा चुका है और चौथी योजना में वर्तमान सभी 100 ग्राम सेवक प्रशिक्षण केन्द्रों को उन्नत करने के लिए 5·5 करोड़ रुपया व्यय करने का प्रस्ताव है।

(3) मन्त्रालय ग्राम सेवकों के पुनश्चर्या प्रशिक्षण कार्यक्रम को भी तीव्र करने का प्रयत्न कर रहा है। यह अन्तःसेवा प्रशिक्षण कार्यक्रम जो अब तक 20 ग्राम सेवक प्रशिक्षण केन्द्रों में चल रहा है सभी वर्तमान 100 केन्द्रों में आरम्भ किया जाएगा। इसके लिए दो मास के पुनश्चर्या पाठ्यक्रम संगठित किए जाएंगे और सभी 60,000 ग्राम सेवक चतुर्थ योजना में न्यूनतम एक बार यह प्रशिक्षण प्राप्त करेंगे। अन्तःसेवा अध्ययन दौरों के द्वारा ग्रामसेवकों को प्रशिक्षण देने के प्रस्ताव भी विचाराधीन हैं।

(4) चुने हुए ग्राम सेवकों को कुछ क्षेत्रों में विशेष ज्ञान देने के लिए खाद्य और कृषि मन्त्रालय ने एक योजना बनाई है जिसके द्वारा भूमि-संक्षरण, कृषि औजार, कुक्कुट पालन, वनस्पति रक्षा, बागवानी आदि विषयों में विशिष्ट प्रशिक्षण संगठित किए जाएंगे। इस प्रकार के 25 केन्द्र होंगे जिनमें छह सप्ताहों का प्रशिक्षण दिया जाएगा और आशा है कि चतुर्थ योजना में 15,000 ग्राम सेवक इस प्रकार का विशेष प्रशिक्षण प्राप्त कर सकेंगे।

(5) मन्त्रालय ने राज्य, प्रदेश और जिला स्तरों पर तथा ग्राम सेवक प्रशिक्षण केन्द्रों के शिक्षकों आदि को भी अन्तःसेवा पुनश्चर्या प्रशिक्षण देने की योजना बनाई है। इसके साथ ही कृषि और पशुपालन विभाग में काम करने वाले अधिकारियों की व्यावसायिक योग्यता बढ़ाने की योजना भी है।

इन सब कार्यक्रमों का अनिवार्य परिणाम कर्मचारियों को ग्राम में अपने स्थान से हटाना होगा। ऐसा करने के लिए वर्तमान ग्राम सेवकों की संख्या को प्रशिक्षणार्थ 10 प्रतिशत बढ़ाकर अतिरिक्त ग्रामसेवक रखे जाएंगे।

14.56. ग्राम सेवकों और उनके सहायक विशेषज्ञों की व्यावसायिक एवं तकनीकी योग्यता बढ़ाने के प्रयत्न का निःसंदेह बड़ा महत्व है। हमें आशा है कि मन्त्रालय के उपर्युक्त प्रस्ताव अपेक्षित उद्देश्य की सिद्धि में बहुत उपयोगी सिद्ध होंगे। स्पष्ट है कि कृषि विश्वविद्यालयों का इस कार्य में महत्वपूर्ण योगदान रहेगा और वे इस कार्य के लिए आवश्यक विशेषज्ञ प्रदान कर और यदि आवश्यक हो तो ग्राम सेवकों द्वारा पूर्व प्राप्त प्रशिक्षण और अनुभव के आधार पर उनकी तकनीकी योग्यता को समुचित स्तर तक उन्नत करने के लिए विशेष पाठ्यक्रमों की योजना करेंगे। हमारे द्वारा प्रस्तावित कृषि पॉलटेकनिकों की स्थापना होने पर वे भी सुविधानुसार कुछ विषयों में क्रियात्मक दृष्टि से विशेष प्रशिक्षण देने में महत्वपूर्ण कार्य कर सकेंगे।

14.57. **संभरण सेवाओं का विस्तार कार्य से पृथक्करण**—हमें यह भी बतलाया गया है कि संभरण सेवाओं का वास्तविक विस्तार कार्य मे पृथक्करण किया जा रहा है। हम इस कदम का स्वागत करते हैं और सिफ़ारिश करते हैं कि पृथक्करण होने पर विस्तार कार्य करने वाले भागों को कृषि विश्वविद्यालय में स्थानान्तरित कर दिया जाए, परन्तु विस्तार कार्य की सफलता के लिए कृषि विभाग की संभरण और अन्य सेवाओं तथा विस्तार कार्य में घनिष्ठतम सम्पर्क रहना चाहिए। उर्वरकों, उन्नत बीजों, अच्छी सिचाई, जल निकास के उपप्रोगों के निदर्शनों का कोई लाभ नहीं है। यदि कृषक को आवश्यक ऋण, बीमा, बीज, जल, उर्वरक और कीटनाशक, जिन पर उपर्युक्त तरीके निर्भर हैं सरलता से प्राप्त नहीं होते। विस्तार कर्मचारियों को इन कार्यों में नहीं पड़ना चाहिए क्योंकि ये कार्य उन्हें कृषि संबंधी निदर्शन कार्य से हटाकर पुनः कार्यालय के प्रशासकीय कार्य में उलझा देंगे। परन्तु उन्हे इस कार्य में लगे अपने सहयोगियों से निरन्तर घनिष्ट सम्पर्क रखना चाहिए।

14.58. **प्राथमिक विस्तार केन्द्रों की स्थापना**—परन्तु सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तन विस्तार कर्मचारियों को आधुनिक पद्धतियों से चलने वाले फार्मों पर रखना है। हमारी सम्मति में सामूहिक विकास खंड में विस्तार सेवाओं को उत्तम रूप से विकसित करने के लिए उसमें समुचित आकार के एक अच्छे फार्म की स्थापना की जाए जिसमें कृषि की उन्नत रीतियां काम में लाई जाएं और जो व्यापारिक आधार पर चलाया जाए। इस प्रकार का फार्म प्रत्येक किसान के घर से इतनी दूर हो कि वहां सरलता से पहुंचा जा सके और जहां वह उत्तम प्रकार के कृषि कार्य को सम्पन्न होते और अच्छी आमदनी देते हुए देख सकें। ऐसा फार्म स्वयं एक महत्वपूर्ण विस्तार कार्य होगा। यदि इसके साथ ही यदि इन फार्मों पर आधुनिक कृषि की रीतियों और सामूहिक संचार के तकनीक में प्रशिक्षित व्यक्ति काम करें तो विस्तार कार्य के लिए इन फार्मों का महत्व बहुत बढ़ जाएगा। इन फार्मों को हम "प्राथमिक विस्तार केन्द्र" नाम देंगे। इसे अनुसंधान केन्द्र, निदर्शन फ़ार्म, बीज फार्म का रूप दिया जा सकता है या केवल विस्तार कार्य के लिए भी स्थापित किया जा सकता है।

14.59. इसलिए हम सिफ़ारिश करते है कि प्रत्येक सामुदायिक विकास खंड में विस्तार कार्य के लिए एक प्राथमिक विस्तार केन्द्र स्थापित किया जाए। हम यह अनुभव करते हैं कि यह कार्य तुरन्त होना सम्भव नहीं है। परन्तु हमारा सुझाव है कि जहां-जहां आवश्यक भूमि और सुविधाएं प्राप्त हों, इस कार्य को प्रारम्भ किया जाए। जहां छोटे अनुसंधान केन्द्र, निदर्शन या बीज फार्म वर्तमान हों, उनका भी इस कार्य के लिए उपयोग किया जाए और इस नीति का उद्देश्य आगामी दस वर्षों में अवस्थाबद्ध कार्यक्रम द्वारा सारे सामूहिक विकास खंडों में ऐसे प्राथमिक विस्तार केन्द्रों की स्थापना होना चाहिए। प्रत्येक ग्राम के अग्रणी और प्रगतिशील किसानों को निदर्शन, जानकारी और परामर्श के लिए इन प्राथमिक विस्तार केन्द्रों में लाया जाना चाहिए। ये केन्द्र अपने सेवा क्षेत्र के सभी स्थानों से साइकिल की पहुंच के भीतर होने चाहिए। किसानों से अपेक्षित है कि वे सुविधानुसार इन स्थानों पर पहुंचे। ऐसे अवसरों पर वहां घर के भोजन की अपेक्षा किंचित अच्छा सध्याह्न भोजन उन्हें प्राप्त होना चाहिए; और इस अवसर का भी पोषाहार एवं आहार-परिवर्तन सम्बन्धी परामर्श के लिए उपयोग करना चाहिए।

14.60. ये केन्द्र युवा विद्यार्थियों को जिन्होंने स्कूल छोड़ दिया है और कृषि व्यवसाय को अपना लिया है, अंशकालीन कृषि प्रशिक्षा प्रदान करने के लिए भी काम में लाए जा सकते है। यह स्मरण रहे कि हम पहले भी इस कार्यक्रम पर बल दे चुके है।

14.61. अधिकांश स्थानों में जहां प्राथमिक विस्तार केन्द्र स्थापित किए जाएंगे एक माध्यमिक स्कूल या कम से कम उच्चतर प्राथमिक स्कूल अवश्य रहेगा। शिक्षकों को मार्मदर्शन प्रदान करने के हेतु और विद्यार्थियों को

1. अध्याय सात।

कृषि-अनुस्थापन और कार्य-अनुभव देने के लिए इन स्कूलों को प्राथमिक विस्तार केन्द्र से संबद्ध करना बहुत उपयोगी होगा। यथासंभव ऐसे हाई स्कूल कृषि के आस-पास केन्द्रित किए जाएं जैसे कि तकनीकी हाई स्कूल (जिनका अगले अध्याय में वर्णन है) शिल्पविज्ञान क्षेत्र के आसपास केन्द्रित किए जाते हैं।

14.62. इन केन्द्रों की व्यवस्था पॉलिटेकनिकों में प्रशिक्षित कुछ सनद या प्रमाण-पत्र प्राप्त सहायकों और दो या तीन कृषि स्नातकों के हाथ में रहेगी। प्रशासकीय दृष्टि से इनका संबंध कृषि विश्वविद्यालयों और पॉलिटेकनिकों से रहना चाहिए और उन्हें इन संस्थाओं के स्टाफ़ और अनुसंधान सुविधाओं से प्राप्य जानकारी और परामर्श प्राप्त करने की सुविधा रहनी चाहिए। संबंधित किसानों को नई फसलों के उपयोग, रोगों की रोकथाम आदि के संबन्ध में आवश्यक विशिष्ट परामर्श देने के लिए विश्व-विद्यालयों के अनुसंधानकर्त्ताओं की सेवाएं प्राप्त होनी चाहिए।

14.63. इस कार्य को प्रभावी रूप से करने के लिए कृषि विश्वविद्यालयों के पास पुष्ट विस्तार-विभाग होने चाहिए। इन विस्तार विभागों के लिए समस्त विश्वविद्यालय के उपयुक्त संकायों और विशेषज्ञों की सेवाएं उपलब्ध होना चाहिए। सभी संकायों और विशेषज्ञों पर विस्तार कार्य का कुछ उत्तरदायित्व रहना चाहिए। विस्तार विभाग में ऐसी कुशलता होनी चाहिए कि अनुसंधान के परिणामों को शैक्षिक सामग्री और खेती के तरीकों के रूप में किसानों तक पहुंचने के लिए प्राथमिक विस्तार केन्द्र के स्टाफ को दे सके। इन केन्द्रों की सफलता के लिए यह अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि उनके स्टाफ का क्रियात्मक ज्ञान शिक्षित किए जाने वाले किसानों की उपेक्षा उच्चतर हो और प्रत्येक केन्द्र को विश्वविद्यालय की विस्तार सेवा से भरपूर सहायता और परामर्श प्राप्त हो।

14.64. विस्तार केन्द्रों में दिए जाने वाले निदर्शनों और शिक्षण के अतिरिक्त स्टाफ सफल कृषकों के कार्य के निदर्शन के लिए अपने प्रबन्ध में संचालित दौरों की योजना कर सकते हैं।

14.65. **सफल किसानों से संपर्क**—कमीशन सिफारिश करता है कि विस्तार कार्यक्रम के संचालन और सामान्यतः कृषि शिक्षा में सफल कृषकों का अधिक उपयोग होना चाहिए। हमारा विश्वास है कि यदि शिक्षा और विस्तार अधिकारी देश के लिए की गई सफल किसानों की सेवा को मान्यता दें तो इससे उनकी प्रतिष्ठा में काफी वृद्धि होगी। यह कई रीतियों से किया जा सकता है और हम आशा करते हैं कि शिक्षा के मानकों को अधिक महत्व नहीं दिया जाएगा और क्रियात्मक किसान की महत्ता, चाहे उसके पास कोई प्रमाणपत्र या उपाधि न हो, कल्पनायुक्त रीतियो से स्वीकार की जाएगी। हम सुझाव देते हैं कि सफल किसानों को स्वयं अपने तरीकों को समझाने और निदर्शन करने का अवसर दिया जाए। कृषि विश्वविद्यालय और पॉलिटेक्निक ऐसे सफल किसानों को आमंत्रित कर उन्हें अपनी समस्याओं और सफलताओं की चर्चा स्टाफ और विद्यार्थियो से करने का अवसर दें। प्राथमिक विस्तार केन्द्र नए कृषि तरीकों की सफलता के लिए कुछ सरल पुरस्करों की व्यवस्था कर सकते हैं और अच्छे किसान के लिए लोक सम्मान जाग्रत करने के लिए ग्रामों में समुचित उत्सवों की योजना भी कर सकते हैं।

14.66. जैसा कि खाद्य और कृषि मन्त्रालय का प्रस्ताव है कि प्राथमिक विस्तार केन्द्र में पाठ्यक्रमों में भाग लेने वाले ग्रामों से आए किसानों को प्रोत्साहित किया कि वे अपने ग्रामों में कृषक-अध्ययन-गोष्ठियां आरंभ करें। कृषि विस्तार की सफलता और प्रसार मुख्यतः किसान की व्यक्तिगत सफलता पर और अपने ग्राम के अन्य किसानों द्वारा उसके तरीकों के अनुकरण पर निर्भर है। किसान के शिक्षित होने के कारण वह उस प्रसार कार्य में, एक बार रुचि जाग्रत होने पर अपने नए सफल तरीकों की चर्चा के लिए संगोष्ठियां बुलाकर सहायता प्रदान कर सकता है। वह संगोष्ठी में वार्तालाप के लिए कभी-कभी विस्तार केन्द्र के स्टाफ से भी सहायता ले सकता है। उसे विश्वविद्यालय की विस्तार सेवाओं में भी सहायता और मार्गदर्शन मिलना चाहिए। पॉलिटेक्निकों और विश्वविद्यालयों के अनुसंधान स्टाफ को भी कभी-कभी उससे भेंट करना चाहिए। ज्यों-ज्यों अधिकाधिक किसान नए तरीकों को अपनाना स्वीकार करते हैं उनका कृषि विभाग की संभरण और अन्य कार्यक्रम सेवाओं से निश्चित रूप से संपर्क होना आवश्य है।

14.67. इस अतिरिक्त, जैसा कि हम पहले सुझाव दे चुके हैं रेडियो और सिनेमा-फिल्मों का किसानों और ग्रामीण-समुदायों को शिक्षित करने के लिए अधिकतम उपयोग किया जाना चाहिए, क्योंकि इन साधनों की सफलता के लिए साक्षरता आवश्यक नहीं है। विश्वविद्यालयों और कृषि विभागों के विस्तार विभागों को आकाशवाणी के अधिकारियों से तालमेल बनाए रखना चाहिए जिससे प्राथमिक विस्तार केन्द्रो और उनकी शाखाओं द्वारा आरंभ किए गए विस्तार कार्यों के साथ-साथ संबंधित वार्ताओं का प्रसार निश्चित रूप से हो सके।

जनशक्ति की आवश्यकताएं

14.68. **भारतीय सांख्यिकी संस्था/लंदन स्कूल ऑफ इकनामिक्स लेख**—हम कृषि विकास की जन-शक्ति आवश्यकताओं का ठीक-ठीक अनुमान नहीं लगा सके हैं। यह एक ऐसा क्षेत्र है जिस पर विस्तार से विचार होना चाहिए। इस समय शासन ही प्रशिक्षित कृषि कर्मचारियों की सबसे बड़ी संख्या से काम लेता है, और यद्यपि इस क्षेत्र की आवश्यकताओं का कुछ अनुमान लगाया जा सकता है, परन्तु परिशुद्धतापूर्वक यह पूर्वानुमान लगाना असंभव है कि प्रस्तावित कृषि-उद्योगों के विकास की आवश्यकताएं क्या हैं और कितने युवक व्यावसायिक कृषि में प्रवेश करेंगे। केवल आइ० एस० आई०/एल० एस० ई०[1] में दिया गया प्राक्कलन हमारे समक्ष है। इसमें केवल प्रशिक्षित कृषि स्नातकों की आवश्यकता पर विचार किया गया है और पालिटेकनिकों से निकलने वाले डिप्लोमा प्राप्त व्यक्तियों का कोई अनुमान इसमें नहीं है। सुलभता की दृष्टि से हम उसे यहां अविकल रूप दे रहे हैं।

> आजकल कृषि स्नातक केवल तकनीकी सेवाओं में ही लिए जाते हैं; यहां भी उनकी संख्या काफी कम है। 1960-61 में इनकी संख्या लगभग 14,000 थी जो देश में विद्यमान कुल स्नातकों की संख्या के एक प्रतिशत से किंचित ही अधिक है। इनके कार्यों का ठीक-ठीक विवरण ज्ञात नहीं है, परन्तु तालिका 1 में उन पदों की आनुमानिक संख्या दी गई है जिनके लिए कृषि उपाधि आवश्यक हैं।
>
> कृषि स्नातकों की सबसे बड़ी संख्या विकास खण्डों में कृषि-विस्तार-अधिकारियों के रूप में है; भविष्य में भी खण्ड स्तर और उससे निम्न स्तरों के कार्यों में ही कृषि स्नातकों की मुख्यतः आवश्यकता होगी। गहन-कृषि जिला कार्यक्रम में भाग लेने वाले जिलों में प्रति खण्ड पांच कृषि विस्तार अधिकारी (ए० ई० ओ०) और अन्य जिलों में एक या दो से अधिक नहीं हैं। कृषि प्रशासन तथा कार्मिक और शिक्षा तथा प्रशिक्षण विषय पर चतुर्थ योजना के कार्यकारी-समूह ने सिफ़ारिश की है कि 1976 तक प्रत्येक खण्ड में पांच और 1986 तक दस कृषि-स्नातक होने चाहिए। चौथी योजना के नौकरी और प्रशिक्षण संबंधी कार्यकारी-समूह के प्रस्तावों से ये अंक मोटे रूप में मेल खाते हैं।
>
> भविष्य में नौकरियों का क्या रूप होगा यह ठीक-ठीक कहना कठिन है। इस समय लगभग 50,000 ग्राम-स्तर कर्मचारी या ग्राम सेवक हैं, अर्थात, प्रति दस गांव में एक है। इनका अधिकांश भाग मैट्रिक है और उन्हें एक या दो वर्ष का कृषि और अन्य विषयों में प्रशिक्षण दिया गया हैं। "कृषि कार्मिक समिति" (1958) ने प्रति पांच ग्रामों के लिए ग्राम-सेवक की सिफारिश की है, इसके लिए लगभग 1,00,000 कृषि स्नातकों की आवश्यकता होगी। ग्रामों में कृषि की आधुनिक रीतियों के प्रचार के लिए अन्य कई विचार प्रस्तुत किए गए हैं। उदाहरण के लिए एक सुझाव हैं कि कृषि स्नातकों को एक सीमित संख्या में (मान लीजिए एक प्रति दस गांव) भूमि देकर ग्रामों में रखा जाए जिस पर वे नए तरीकों का निदर्शन कर सकें और उन्हें अपने क्षेत्र में नई सामग्री के विक्रय का उत्तरदायित्व भी सौंपा जाए (संभवतः विक्रय की मात्रा के अनुसार कुछ बोनस की शर्त के साथ)।
>
> कृषि सेवाओं के भावी प्रतिरूप के संबंध में तो नहीं, परन्तु भविष्य में उनकी-आवश्यक संख्या के संबंध में कुछ मान्यताएं कर सकते हैं। हम यह मान सकते हैं कि 1986 तक वर्तमान 50,000 ग्रामसेवकों का दर्जा किसी न किसी-न-किसी रूप में बढ़ चुका होगा। कुछ कृषि की उपाधि प्राप्त कर लेंगे, और अन्य दूसरे प्रकार का प्रशिक्षण प्राप्त कर चुके होंगे। हम इन लोगों कों (चाहे जिस रीति से उनका दर्जा बढ़ा हो) नीचे दी गई संस्थाओं में सम्मिलित नहीं करेंगे। कृषि कार्मिक समिति से संकेत लेकर हम मान सकते हैं कि ग्राम स्तर पर इनके अतिरिक्त और 50,000 योग्यता प्राप्त कार्मिक, जो कृषि स्नातक होंगे, रहने चाहिए। इसके अतिरिक्त 50,000 कृषि स्नातक और होने चाहिए जो खण्ड, जिला और राज्य-स्तर विशेषज्ञ सेवाओं, जिला प्रायोगिक फार्मों बीज फार्मों आदि का संचालन करेंगे।
>
> नीचे के स्तरों की तुलना में अनुसंधान और अन्य तकनीकी सेवाओं की आवश्यकता कम होगी। परन्तु प्रशासन, सहयोग, और कृषि उद्योगों के क्षेत्र में आवश्यक कृषि-स्नातकों की संख्या में पर्याप्त वृद्धि की आशा की जानी चाहिए; इसका भी वहां ध्यान रखा गया है···
>
> माध्यमिक स्कूलों में (शिक्षक प्रशिक्षण सहित) कृषि स्नातकों की आवश्यकता का मात्रात्मक निर्धा-

1. **देखिए अध्याय पांच।**

रण करने के लिए कुछ व्यापक मान्यताएं करना आवश्यक है। कक्षा 8 से 12 तक के स्तर की सभी शिक्षा (विशेष और सामान्य) में हम मान सकते हैं कि कृषि और संबंधित विषयों की शिक्षा के लिए 30 घंटे के औसत सप्ताह में 2 घंटे से कुछ अधिक ही लगेंगे और इस कार्य को केवल कृषि स्नातक ही करेंगे। इस प्रकार इस स्तर के 15,00,000 अध्यापकों में से 15 में से एक (अर्थात, 1,00,000) कृषि स्नातक होने चाहिए। इस विषय पर विचार के लिए वैकल्पिक रीति में संस्थाओं को आधार माना जा सकता है। औसत माध्यमिक स्कूल में आठवीं कक्षा से ऊपर की कक्षाओं को पढ़ाने वाले अध्यापकों की संख्या 15 से अधिक होने की संभावना नहीं है। यदि इनमें से औसत एक शिक्षक कृषि स्नातक हो तो ऐसे 1,00,000 कृषि शिक्षकों की आवश्यकता होगी। हो सकता है कि कुछ स्कूलों में इनकी संख्या अधिक हो और कुछ में कोई भी ऐसा शिक्षक न हो। परन्तु प्रतीत होता है यह अल्पमत संख्या है जिसकी हमें योजना करनी है। परन्तु एक कठिन प्रश्न यह है कि कृषि स्नातकों को किस प्रकार अध्यापन कार्य की ओर आकर्षित किया जाए। सामान्यतः यह संभावना कम है कि तकनीकी दृष्टि से प्रशिक्षित व्यक्तियों की बड़ी संख्या, केवल कुछ अपवादों को छोड़कर जो अपने पूरे पाठ्यक्रम में अध्यापन की ओर ही अभिरुचि रखते रहें हैं, बच्चों को अपना विषय पढ़ाने में रुचि रखेगी। इसलिए यह उपयोगी होगा यदि हम कृषि कालेजों में अध्यापकों के प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों के विकास पर विचार करें। इन स्कूलों में जो वेतन दिए जा सकते हैं, वे भी महत्वपूर्ण होंगे।

अधिकांश किसान अपनी शिक्षा हाई स्कूल स्तर या उससे पूर्व ही समाप्त कर देंगे, परन्तु यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि ज्यों-ज्यों फार्मों की आमदनी अधिक कृषि उपज के साथ बढ़ेगी, त्यों-त्यों अधिकाधिक सफल कृषक अपने लड़कों को कृषि की शिक्षा देना चाहेंगे। इसी प्रकार से फार्म आधुनिक तरीकों द्वारा अपनी उपज बढ़ाने में तब तक असमर्थ रहेंगे जब तक किसानों की बढ़ती हुई संख्या आधुनिक तकनीकों में प्रशिक्षित नहीं होती। इस समय कृषि-स्नातक कृषकों की संख्या नगण्य हैं। भावी आवश्यकता के रूप का अनुमान लगाना सरल नहीं है, परन्तु यह विचार करना असंगत नहीं होगा कि 1986 तक 15 एकड़ से अधिक भूमि वाले किसानों की संभाव्य आमदनियां इतनी पर्याप्त अधिक होंगी कि वहां कृषि स्नातकों को प्रेरक कार्य करने के अवसर और पर्याप्त ऊंची आयें प्राप्त हो सकेंगी और आशा की जाती है कि कृषि स्नातकों की पर्याप्त संख्या उस समय कृषि कार्य में संलग्न होगी। अनुकूल आर्थिक परिस्थिति के होते हुए भी स्नातकों का कृषि में प्रवेश अवश्य ही एक धीमी प्रक्रिया है जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक स्वामित्व हस्तान्तरित होने की दर से और कृषि में विद्यमान स्नातकों के अत्यन्त स्वल्प अनुपात पर निर्भर है। इस समय 15 एकड़ या उससे अधिक क्षेत्र वाले (कुल 5 करोड़ खेतों में से) कुल 60 लाख खेत हैं। यदि हम मान लें कि प्रतिवर्ष स्वामित्व का परिवर्तन 3 प्रतिशत होता है तो लगभग 2,00,000 किसान प्रतिवर्ष ऐसे खेतों का उत्तराधिकार प्राप्त करते हैं। यह विचार युक्तियुक्त प्रतीत होता है कि 1986 तक इनमें से 50 में से 1 कृषि स्नातक होगा। उस समय तक स्थायी वेग से कृषि की उन्नति को ध्यान में रखते हुए हमारा अनुमान है कि उस समय तक कृषि में या फार्म प्रबन्ध में लगभग 50,000 स्नातक कार्य कर रहे होंगे। इस प्रकार की कोई भी संख्या अत्यन्त अटकल पच्चू हैं परन्तु फिर भी मोटे रूप से इसका पर्याप्त महत्व है।

कृषि कालेजों के अध्यापकों की आवश्यकता ध्यान में रखते हुए हम देखते हैं कि 1986 में कृषि स्नातकों की कुल आवश्यकता 3,05,000 होगी (देखिए नीचे की सारिणी 1)। इस संस्था का इंजीनियरी स्नातकों की अनुमानित आवश्यकता की हमारी संख्या 8,73,000 से भी मेल बैठता है और यह बहुत ऊंची नहीं मानी जा सकती। यह तर्क दिया जा सकता है कि जिन कार्यों के लिए हमने कृषि स्नातकों की आवश्यकता बतलाई हैं वह निम्नतर स्तर के कार्मिकों द्वारा किए जा सकते हैं। यह संभव हो सकता है, परन्तु वे तर्क जो कृषि से संबंधित कामों के बौद्धिक स्तर को निरन्तर करने के चेष्टा करते हैं बहुधा बहुत सरलता से स्वीकार कर लिए जाते हैं और उनकी परीक्षा सावधानी से की जानी चाहिए।

सारणी 1. अनुमानित नौकरियों की संख्या जिनमें कृषि उपाधि आपेक्षित है : भारत; 1961-86

	1961	1986
कृषि विकास और विस्तार	9,780	100,000
कृषि अनुसंधान	2,976	10,000
अन्य (कृषि कार्य और अध्यापन छोड़कर)	1,342	10,000
कृषि-कार्य	—	50,000
अध्यापन, माध्यमिक स्तर	—	100,009
पूर्व स्नातक और उच्चतर स्तर	1,872	35,000
योग	15,970	305,000

तालिका 2. कृषि स्नातकों का प्राक्कलन.

	1960-61	1977-76	1985-86
1. कृषि स्नातकों के कुल भडार (हजारों में)	14	94	305
2. कुल स्नातकों के भंडार का प्रतिशत	1·02	2.8	4.7
3. कृषि स्नातकों का उत्पादन (हजारों में)	3	13	42
4. कुल स्नातकों के उत्पादन का प्रतिशत	2	3	5

14.69 **सिफारिशें**—ये प्राक्कलन विशेषत: अध्यापकों और खेती करने वाले किसानों के संबंध में कुछ ऊंचे हो सकते हैं। किसी भी स्थिति में, यदि स्तरों को पर्याप्त ऊंचा तथा स्थिर रखना है तो इतने स्नातक उत्पन्न करना संभव नहीं होगा। इसलिए हम सिफ़ारिश करते हैं कि—

(1) कृषि के विकास के लिए आवश्यक जनशक्ति की आवश्यकताओं के अधिक परिशुद्ध प्राक्कजग बनाने के लिए कदम उठाए जाने चाहिए। ये स्नातकों और सनद (डिप्लोमा) प्राप्त करने वालों के लिए पृथक-पृथक बनाए जाएं तथा उनका समय-समय पर पुनरीक्षण किया जाए।

(2) अधिक परिशुद्ध प्राक्कलनों के प्राप्त होने तक यह माना जा सकता है कि 2,00,000 से अधिक कृषि स्नातक और लगभग इतने ही सनद-प्राप्त कार्मिकों की आवश्यकता अगले बीस वर्षों में होगी।

(3) अगले दल वर्षों में कृषि स्नातकों और सनद प्राप्त करने वालों की संख्या में वृद्धि करने का प्रबल प्रयत्न करना आवश्यक होगा; इस कार्य के लिए हमारा निम्नतम लक्ष्य स्नातकों और सनदधारियों की संख्या को दोगुनी करना होना चाहिए।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का योगदान

14.70. कुछ समय पूर्व एक उच्चस्तरीय विशेषज्ञ समिति की रिपोर्ट के आधार पर भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पुनर्गठन किया गया है। अभी तक कृषि अनुसंधान का उत्तरदायित्व अनेक संस्थाओं में बंटा हुआ था, अब वह भारतीय अनुसंधान परिषद के अधीन रखा गया है और परिषद का नियंत्रण तथा निदेशग एक महानिदेशक के अधीन, जो कृषि विज्ञान के विशेषज्ञ भी हैं, रखा गया है। अब अनुसंधान कार्य के लिए केन्द्रीय सहायता परिषद के द्वारा दी जाएगी। यह आयोग इन परिवर्तनों का स्वागत करता है। वास्तव में हम उस दिन की प्रतीक्षा में हैं जब भारत सरकार के अधिकांश मन्त्रालयों, में इस प्रकार की सुदृढ़ अनुसंधान परिषदें स्थापित होंगी जिनका मुख्य उद्देश्य मन्त्रालय से संबंधित क्षेत्रों में अनुसंधान को प्रोत्साहन देना होगा।

14.71. हमने सिफारिश की है कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के नमूने के संगठन कृषि, इंजीनियरी और चिकित्सा विज्ञान की शिक्षा के लिए स्थापित किए जाएं। जहां तक कृषि शिक्षा का संबंध है, हम यह समझते हैं कि यह कार्य भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद द्वारा सर्वोत्तम रीति से किया जा सकता है। परिषद अनुसंधान कार्य की वह गति दे सकती है जिसकी निकट भविष्य में आवश्यकता है और यह कृषि शिक्षा को अध्यापन, अनुसंधान और विस्तार के समन्वित आधार पर निश्चित रूप से विकसित कर सकती है। परिषद द्वारा यह कार्य प्रभावी रीति से संपन्न हो इसके लिए यह वांछनीय है कि वहं एक

1. **देखिए अध्याय तेरह :**

विशेष स्थायी समिति की स्थापना करे जो समय-समय पर अपनी बैठकें कर कृषि की उच्चतर शिक्षा और अनुसंधान संबंधी विकास कार्यों के संबंध में शीघ्रता से निर्णय ले सके। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के समान इस स्थायी समिति की अध्यक्ष राष्ट्र-प्रसिद्ध विद्वान या वैज्ञानिक होना चाहिए। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग और परिषद के कुछ सदस्य उयभस्थायी होना चाहिए। स्थायी समिति और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अध्यक्षों को बार-बार मिलते रहना चाहिए। हमें विश्वास है कि उच्चतर कृषि शिक्षा के विकास के उद्देश्य से विश्वविद्यालय अनुदान आयोग और कृषि अनुसंधान परिषद द्वारा सहयोग-पूर्ण कार्य के लिए सफल मार्ग निकाले जा सकेंगे।

अनुलग्नक

कृषि पालिटेक्निकों के लिए पाठ्यक्रम

(क) डिप्लोमा पाठ्यक्रम जो कृषि पालिटेक्निकों में लिए जा सकते हैं—(1) समन्वित कृषि (2) फार्म प्रबन्ध, (3) फसल-कर्म, (4) फसल सुधार, (5) वनस्पति रक्षा, (6) बीज उत्पादन और साधन, (7) भूमि स्वास्थ्य और उर्वरता, (8) प्रयोगशाला तकनीक, (6) कृषि उत्पादों का भंडारण, (10) फल उत्पादन (11) शाक उत्पादम, (12) बागवानी, (13) सिंचाई और जल निकास, (14) कृषि सिविल इंजीनियरी, (15) फार्म-उत्पादों के साधन, (16) बागवागी-उत्पादों के साधन, (17) फार्म-मशीन-उपयोग और देखभाल, (18) कुक्कुट पालन, (19) कुक्कुट-साधन, (20) पशु-पालन, (21) पशुधन स्वास्थ्य, (22) पशुधन-उत्पादों के साधन (23) डेरी-कर्म, (24) साधन और वितरण, (25) प्रशीतम और शीतागार, (26) वनसंवर्धन कार्य प्रणाली, (27) वन सिविल इंजीनियरी, (28) वनसंरक्षण, (29) काष्ठ शिल्पविज्ञान, (30) बढ़ईगीरी और जुड़ाई, (31) वन वृक्ष सुधार, (32) सामान्य मत्स्य ग्रहण, (33) नौपरिवहन, (34) मत्स्यग्रहण-मशीनों के संचालन और देखभाल, (35) मत्स्य उत्पाद-साधन, (36) मौसम विज्ञान, (37) संचार, (38) कृषि विस्तार, (39) शिक्षा, (40) कृषि अर्थशास्त्र, (41) ग्रामीण समाज विज्ञान, (42) रेशम उत्पादन (43) मधुमक्खी पालन (44) शूकर पालन, (45) मेष पालन, (46) ऊन शिल्प विज्ञान, (47) फार्म उत्पाद रसायन, (48) प्रयुक्त सूक्ष्म जैविकी, (49) समुद्र इजीनियरी, (50) खाद्य शिल्पविज्ञान, (51) खाद्य निरीक्षण, विश्लेषण और स्वास्थ्य विज्ञान, (52) स्वास्थ्यचर, (53) पोषाहार, (54) गृह विज्ञान ।

(ख) विभिन्न विषय जो कृषि पालिटेक्निकों में पढ़ाए जा सकते हैं—इन विषयों के समुचित समन्वय के द्वारा उपर्युक्त पाठ्यक्रमों की आवश्यकताओं की पूर्ति हो सकेगी । (1) सामान्य कृषि, (2) समन्वित कृषि, (3) भूमि स्वास्थ्य और भूमि उर्वरता, (4) क्षेत्र फसलों का उत्पादन, (5) बीज उत्पादन और साधन, (6) फसल सुधार, (7) फार्म प्रबन्ध, (8) फार्म व्यवसाय, (9) रोगों में वनस्पति रक्षा, (10) पेस्टों से वनस्पति रक्षा, (11) फफूंदनाशियों के गुण और उपयोग, (12) पेस्टनाशियों के गुण उपयोग, (13) कृषि संवेक्षण और तलेक्षण, (14) कृषि में जल का उपयोग, (15) कृषि-निर्माण कार्य, (16) भूमि उद्धार, (17) फार्म उत्पादों का साधन, (18) पशुधन का स्वास्थ्य, (19) पशुधन की देखभाल, (20) पशुधन पोषाहार, (21) पशुधन प्रजनन, (22) कुक्कुट-देखभाल, (23) कुक्कुट स्वास्थ्य, (24) कुक्कुट पोषाहार, (25) कुक्कुट सुधार, (26) शूकर पालन, (27) पशुधन उत्पादों का साधन, (28) अंडे और कुक्कुट-उत्पादों का साधन, (29) दूध और दूध-उत्पादों का साधन, (30) शूकर उत्पादों का साधन, (31) फार्म उत्पादों का रसायन, (32) रेशम उत्पादन—रेशम कीट के अंडों का उत्पादन, (33) रेशम उत्पादन—शहतूत संवर्धन, (34) रेशम उद्योग-कीट रोग, (35) रेशम उत्पादन—रेशम लपेटना और बुनना, (36) शहतूत के पेस्ट और रोग, (37) रेशम कीट सुधार, (38) प्रयुक्त सूक्ष्म जैविकी, (39) सामान्य बागवानी, (40) शाक-कृषि, (41) फल संवर्धन, (42) उद्यान-विज्ञान, (43) बागवानी, (44) भूदृश्य बागवानी, (45) वन संवर्धन-कार्य प्रणाली, (46) वन संरक्षण, (47) वानिकी सिविल इंजीनियरी, (48) वानिकी-अर्थशास्त्र, (49) वनवृक्ष सुधार, (50) सामान्य वानिकी, (51) सामान्य मत्स्य-ग्रहण, (52) समुद्र जैविकी, (53) समुद्र-विज्ञान, (54) जल यायु विज्ञान और मौसम विज्ञान, (55) मत्स्यग्रहण-नौका विर्माण और देखभाल, (56) नौपरिवहन (57) ससुद्री-विधि, (58) मत्स्य ग्रहण प्रणाली, (59) मत्स्य क्षेत्र विधि, (60) मत्स्य विनिर्माण, (61) मत्स्य सूक्ष्म जैविकी, (62) मत्स्य ग्रहण मशीनें, (63) शीतागार और प्रशीतन, (64) मत्स्य उत्पादनों का साधन, (65) बेतार संचार, (66) नौरोहन प्रणाली, (67) विद्युत् सिद्धान्त, (68) काष्ठ शिल्प विज्ञान, (69) लट्ठे बनाना और काष्ठ परिवहन, (70) फार्म मशीनों के सिद्धान्त और डिजाइन, (71) फार्म मशीनें—उपयोग और देखभाल, (72) धातु कर्म, (73) विस्तार शिक्षा, (74) शिक्षा मनोविज्ञान, (75) ग्राम संगठन, (76) ग्राम-समाज विज्ञान, (77) पाकविधि शास्त्र, (78) बेकरी और आटे के मिष्ठान्न, (79) अहारिकी (80) गृह प्रबन्ध, (81) प्रसाधन कला, (82) सुई का काम और कसीदा, (83) दर्जी

काम, (84) पोशिश, (85) बुनाई, (86) प्रयुक्त जैविकी, (87) प्रयुक्त रसायन, (88) प्रयुक्त भौतिकी, (89) प्रयुक्य गणित, (90) पारिस्थितिकी, (91) खान-पान प्रबन्ध, (92) सांख्यिकी, (93) मनुष्य स्वास्थ्य, (94) भूविज्ञान, (95) मिट्टी विज्ञान ।

(ग) प्रमाण-पत्र पाठ्यक्रम जो कृषि पालिटेक्निकों में लिए जा सकते हैं—(1) विभिन्न प्रकारों के कृषि कामगर, (2) नर्सरी सहायक, (3) माली, (4) फार्म उत्पादों का श्रेणीकरण, पैक करना, (5) खाद्य और फल उत्पाद-साधन, (6) डेरी-उत्पाद-साधन, (7) मत्स्य ग्रहण परिचालक, (8) ट्रैक्टर परिचालक, (9) नलकूप या अन्य साधनों के परिचालक, (10) कुक्कुट पालक, (11) अंडों के श्रेणीकर्ता और पैक करने वाले, (12) अंडों के साधन के लिए सहायक, (13) शूकर-पालन सहायक, (14) पशु ड्रैसर, (15) ऊन संभालने वाले और कर्तक, (16) पशुशव-उपयोग सहायक, (17) प्रयोगशाला सहायक, (18) भंडारण सहायक, (19) वानिकी सहायक ।

पन्द्रहवां अध्याय

व्यावसायिक, तकनीकी तथा इंजीनियरी शिक्षा

एक. भूमिका—(3) **स्वातंत्र्योत्तर काल में विकास ।**

दो. स्कूल स्तर पर व्यावसायिक तथा तकनीकी शिक्षा—(9) **विषय के मुख्य प्रस्ताव जिनकी पहले चर्चा की जा चुकी है**; (12) **अर्धकुशल तथा कुशल कामगरों का प्रशिक्षण**; (19) **तकनीशियन का प्रशिक्षण**; (33) **अन्य व्यावसायिक शिक्षा**; (34) **लघु-उद्योग तथा स्वयं-नियोजन के लिए शिक्षा**; (35) **अंशकालिक शिक्षा ।**

तीन. इंजीनियरों की शिक्षा—(37) **सामान्य बातें**; (39) **अवधि**; (42) **विषयवस्तु**; (49) अध्यापक; (53) **साज-सामान**; (56) **स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम**; (58) **व्यर्थता**; (59) **लागत**; (62) **जनशक्ति की अपेक्षाएँ तथा योजना**; (64) **दाखिले ।**

चार. शिक्षा का माध्यम (65).

पांच व्यावहारिक प्रशिक्षण योजना (66-69).

छह. उद्योग से सहयोग (70).

सात. इंजीनियरी में वृत्तिक संस्थाएं (72-73).

आठ. पत्राचार पाठ्यक्रम (74-75).

नौ. व्यावसायिक, तकनीकी तथा इंजीनियरी शिक्षा का प्रशासन (76-88).

भूमिका

15.01. औद्योगीकरण में सफलता काफी हद तक पर्याप्त कुशल जनशक्ति होने पर निर्भर करती है । भारत सरकार इस बात पर पहले ही जोर दे चुकी है ।

> किसी राष्ट्र का धन व समृद्धि औद्योगीकरण द्वारा उसके मानव तथा भौतिक साधनों के समुचित उपयोग पर निर्भर करता है । मनुष्य का औद्योगीकरण में उपयोग करने के लिए यह जरूरी है कि उसे विज्ञान की शिक्षा तथा तकनीकी-कौशलों का प्रशिक्षण दिया जाए । उद्योग द्वारा प्रत्येक व्यक्ति के लिए अधिक सम्पन्नता की सम्भावनाएं उत्पन्नता हो जाती है । भारत की जनशक्ति का पर्याप्त साधन प्रशिक्षित तथा शिक्षित होने पर ही आधुनिक संसार में उपयोगी सम्पत्ति बन सकता है ।[1]

आयोजकों तथा शिक्षकों का यह काम है कि वे उद्योग की आवश्यकताओं को देखते हुए पर्याप्त मात्रा में तथा अपेक्षित गुणात्मक स्तर वाले समुचित प्रशिक्षण कार्यक्रमों की व्यवस्था करें ।

15.02. इस अध्याय में उद्योग के लिए शिक्षा की कुछ प्रमुख समस्याओं पर विचार किया जाएगा; ये हैं: तकनीशियनों तथा कुशल कामगरों की पूर्ति के लिए स्कूल स्तर पर शिक्षा प्रशिक्षण की सुविधाएं; इंजीनियरों की पूर्ति के लिए उच्चतर शिक्षा; जनशक्ति की आवश्यकताएं; शिक्षा का साध्यम; उद्योग से सहयोग; पत्राचार द्वारा शिक्षा; और तकनीकी तथा इंजीनियरी शिक्षा का प्रशासन ।

15.03. **स्वातंत्र्योत्तर काल में विकास**—तकनीकी शिक्षा का विकास स्वातन्त्र्योत्तर काल की प्रमुख उपलब्धियों में से एक है। सन् 1945 में अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद की स्थापना से तथा सन् 1947 में वैज्ञानिक जनशक्ति समिति की रिपोर्ट का इस विकास पर दूरगामी प्रभाव पड़ा है । इंजीनियरी कार्मिक समिति (1956)तथा स्नातकोत्तर इंजीनियरी शिक्षा तथा अनुसंधान समिति (1961) द्वारा इसे और फढ़ावा मिला । उद्योग से सम्बन्धित तकनीकी शिक्षा के विकास की, शिक्षुतर अधिनियम (1961), कुशल कामगार स्तर पर औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थाओं और जूनियर तकनीकी स्कूलों, तथा तकनीकी स्तर पर पोलीटेकनिकों के प्रसार से, काफी

1. **वैज्ञानिक नीति प्रस्ताव, भारत सरकार**, 4 **मार्च**, 1958 ।

प्रगति हुई है। इस विकास को बढ़ाने में दूसरा प्रमुख कारण मित्र देशों तथा अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं से मिलने वाली सहायता थी। यह सहायता, वैज्ञानिक तथा तकनीकी साज-सामान, शिल्पविज्ञान की विभिन्न शाखाओं में कुशल प्रोफेसरों की सेवाओं और प्राध्यापकों के प्रशिक्षण के लिए विदेशों में दी जाने वाली सुविधाओं के रूप में मिली। इस काम के लिए विदेशी सहायता सबसे पहले 1951 में यूनेस्कों से प्राप्त हुई और उसके बाद फिर संयुक्त राज्य अमेरिका, सोवियत संघ, पश्चिमी जर्मनी, कोलम्बो योजना आदि से। शिल्पविज्ञान की सभी उच्चतर संस्थाएं इस सहायता का उपयोग कर रही हैं। इस पद्धति से अब ऐसा आधार मिल गया है जिस पर आगे बढ़ा जा सकता है। अब हमारे सामने यह समस्या है कि वह दिशा निर्णय करें जिसमें विस्तार की आवश्यकता है, मौजूदा सुविधाओं का पूरा लाभ उठाएं और प्रशिक्षण के स्तर को सुधारें।

15.04. बार-बार प्रोत्साहन दिए जाने के बावजूद अब भी यह महसूस किया जाता है कि स्कूल स्तर पर व्यावसायिक शिक्षा निम्न कोटि की शिक्षा है और केवल उन्हीं विद्यार्थियों के लिए ठीक है जो कि सामान्य शिक्षा में सफल नहीं होते। इस कारण अभिवाहक तथा विद्यार्थी सब से बाद में ही इस ओर ध्यान देते हैं। मजदूरी की विशद नीतियों व्यावसायिक निर्देशन तथा सार्वजनिक सब को शिक्षित कर सरकार तथा उद्योग दोनों के सामूहिक प्रयत्नों द्वारा कुशल शिल्पियों तथा तकनीशियनों की हैसियत तथा प्रतिष्ठा बढ़ाई जा सकती है।

15.05. ध्यान रहे कि सामान्य तथा तकनीकी क्षिक्षा को बिलकुल अलग-अलग नहीं किया जा सकता। स्कूल की सामान्य शिक्षा से बच्चों को संसार के काम और विज्ञान तथा शिल्पविज्ञान का कुछ ज्ञान हो जाना चाहिए। शिल्पविज्ञान स्वयं इतनी तेजी से बढ़ रहा है कि विज्ञान तथा मानविकी की सामान्य शिक्षा छोड़कर जो विद्यार्थी केवल थोड़ा सा विशिष्ट प्रक्षिक्षण लेगा उसे अपनी कार्य-कुशलता अविकसित प्रतीत होगी और वह आधुनिक संसार की जटिलताओं का ठीक से सामना नहीं कर सकेगा। इसलिए, यह कहा जा सकता है कि यदि सभी तरह की सामान्य शिक्षा में पूर्व-व्यावसाविक प्रकार की तकनीकी शिक्षा अवश्य होनी चाहिए, तो सभी तरह की तकनीकी शिक्षा में भी सामान्य शिक्षा का समुचित अंश होना चाहिए।

15.06. हमारे विचार से, शिक्षा प्रणाली इतनी सुव्यवस्थित नहीं है कि शिक्षित विद्यार्थी फौरन ही उद्योग में पूरी व्यावसायिक जिम्मेदारी निबाहने के योग्य बन सके। सर्वोच्च स्तर पर भी, औपचारिक प्रशिक्षण के बाद, कुछ समय तक उद्योग में ही व्यावहारिक प्रशिक्षण तथा छात्रत्व अवश्य होड़ा चाहिए। तकनीकी शिक्षा की सही प्रणाली में उद्योग तथा शिक्षा अधिकारियों के बीच सहयोग अवश्य होना चाहिए। शिक्षा संस्थाओं में दिए जाने वाले प्रशिक्षण का सीधा सम्बन्ध उत्पादन से होना चाहिए, उसका झुकाव समस्या सुलझाने की ओर होना चाहिए और उसकी दिशा वृत्तिक सम्पर्क द्वारा शिक्षा प्रणाली में बराबर सुधार किए जाने की ओर होना चाहिए। उद्योग को पाठ्यक्रमों की व्यवस्था करके, बीच-बीच में प्रशिक्षण योजनाओं में सहयोग देकर, अंश-कालिक शिक्षण के लिए स्टाफ तथा अन्य सुविधाएं देकर, शिक्षा का पाठ्यक्रम बनाने में सहयोग देकर और तकनीकी पेशों को आकर्षक बनाकर उन व्यक्तियों के निर्माण में पूरा योग देना चाहिए जो बाद में उसे संभालेंगे। तकनीकी शिक्षा या तो संस्था पर आधारित हो सकती है जहां उद्योग में पूरा प्रशिक्षण हो, और या उद्योग पर आधारित हो सकती है सकती है जहां संस्था द्वारा अंशकालिक शिक्षा या दुबारा प्रशिक्षण की व्यवस्था हो।

15.07. यहां पर एक और प्रारम्भिक विचार प्रकट करना आवश्यक प्रतीत होता है। किसी औद्योगिक पेशे के लिए शिक्षा या प्रशिक्षण केवल सार्टीफिकेट, डिप्लोमा या डिग्री लेने पर ही समाप्त नहीं हो जाता बल्कि पेशे के साथ-साथ चलता रहता है। बदलते हुए शिल्पविज्ञान को समझने के लिए समय-समय पर दुबारा शिक्षा या दुबारा प्रशिक्षण आवश्यक होता जा रहा है।

स्कूल स्तर पर व्यावसायिक तथा तकनीकी शिक्षा

15.08. आमतौर पर इस बातपर सहमति है कि कि उद्योग के लिए तकनीकी प्रशिक्षण का सम्बन्ध निम्न-स्तर की योग्यताओं से है :

- अर्धकुशल तथा कुशल कामगर (प्रथम पंक्ति के पर्यवेक्षक सहित);
- तकनीशिन (डिप्लोमा धारी)—पर्यवेक्षक और उच्चतर-तकनीशियन या शिल्पविज्ञानी दोनों;
- इंजीनियर (स्नातक);
- अनुसंधान तथा डिजाइन इंजीनियर (स्नातकोत्तर)।

अवर माध्यमिक तथा उच्चतर माध्यमिक स्तरों पर

मिलनेवाली सुविधाएं पहले दो वर्गों की शिक्षा तथा प्रशिक्षण से सम्बन्ध रखती हैं। इस खण्ड में स्नातक तथा स्नातकोत्तर स्तरों पर इंजीनियरों की शिक्षा का विवेचन करने से पहले हम कुछ विस्तार से इनकी चर्चा करेंगे।

15.09. **इस विषय के मुख्य प्रस्ताव जिनकी पहले चर्चा की जा चुकी है**—सबसे पहले, हम इस विषय पर अपने मुख्य प्रस्तावों की फिर चर्चा कर सकते हैं जिनकी विवेचना पिछले अध्यायों में की जा चुकी है। हमारी मुख्य सिफ़ारिश वह है कि सन् 1986 तक अवर माध्यमिक स्तर तक के सभी विद्यार्थियों की संख्या का 20 प्रतिशत और दसवीं कक्षा के ऊपर 50 प्रतिशत को अंशकालिक या पूर्णकालिक रूप से व्यावसायिक तथा वृत्तिक पाठ्यक्रमों[1] में लगाया जाए। विशेष रूप से 14-18 वर्ष के लड़के-लड़कियों को व्यावसायिक तथा तकनीकी पाठ्यक्रमों की ओर ले जाने के लिए मुख्यतया केन्द्रीय सरकार को ठोस प्रयत्न करना चाहिए। माता-पिता तथा बच्चों में तकनीकी शिक्षा तथा व्यावसायिक पाठ्यक्रमों के प्रति रुचि उत्पन्न करने, तकनीकी पेशों को आकर्षक बनाने तथा सम्भावनाओं के बारे में सार्वजनिक मत को जाग्रत करने के लिए सभी मन्त्रालयों तथा विभागों को सामूहिक तथा सतत प्रोग्राम चालू करना चाहिए। संयुक्त राज्य में स्मिथ-ह्यूज ऐक्ट की तरह व्यावसायिक पाठ्यक्रमों को सहायता देने की ऐसी केन्द्र की योजना से जिसमें सरकारी निधि से सीधे आर्थिक सहायता दी जा सकती हो इस प्रोग्राम को काफी बढ़ावा मिल सकता है। स्कूलों को भी बाहरी काम-काजी दुनियां के प्रति अनभिज्ञ नहीं होना चाहिए और उनको कारगर मार्गदर्शन कार्यक्रमों[2] की व्यवस्था करनी चाहिए जिन्हें जिला तथा राज्य स्तरों पर व्यावसायिक मार्गदर्शन समितियों से सहायता मिल सकती हैं। इनमें सम्बन्धित विभागों, मालिकों, और विशिष्ट उद्योग के प्रतिनिधि तथा शिक्षक होने चाहिए। इन्हें हैडमास्टरों, अध्यापकों तथा माता-पिता के लिए मार्गदर्शन तथा वृत्ति-विषयक सूचना सामग्री तैयार करनी चाहिए। व्यावसायिक मार्गदर्शन पर पाठ्यक्रम तैयार करने चाहिएं और स्कूलों तथा मालिकों के बीच कड़ी का काम करने के लिए वृत्तिक सलाहकारों का प्रबन्ध करना चाहिए।

15.10. यहां पर हम यह साफ बता देना चाहते हैं कि स्कूल स्तर पर बच्चों को व्यावसायिक शिक्षा में भेजने से हमारा क्या मतलब है। हमारे विचार से यह महत्वपूर्ण है कि इस स्तर पर यह पाठ्यक्रम समापक हों। विशेष प्रतिभा वाले बच्चों के लिए रास्ता खुला रहना चाहिए कि वह फिर से मुख्य शिक्षा प्रणाली में जाकर आगे बढ़ सके। परन्तु व्यावसायिक पाठ्यक्रमों को प्रतिभासम्पन्न बच्चों को ध्यान में रखकर ही नहीं बनाना चाहिए। उसके लिए आगे की शिक्षा का प्रबन्ध किया जा सकता है परन्तु अधिकांश बच्चों के लिए यह पाठ्यक्रम अन्तिम होना चाहिए और इसे पास करने के बाद उन्हें सीधे नौकरी मिल जानी चाहिए, साथ ही माता-पिता, बच्चों, शिक्षकों तथा मालिकों को यह मालूम होना चाहिए कि प्रशिक्षणार्थी किस प्रकार की नौकरी के योग्य बनेगा। हमारा विश्वास है कि इस सिद्धान्त का पालन न करने से, इस स्तर पर प्रशिक्षण सुविधाओं में कभी-कभी अव्यवस्था हो जाती हैं।

15.11. सामान्य शिक्षा की धारा का अनुसरण करने वाले विद्यार्थियों का अनुभव के कार्यक्रमों द्वारा कामकाजी दुनिया से अधिकाधिक परिचय होता जाएगा। तकनीकी शिक्षा, शिक्षकों के प्रशिक्षित करके और अपनी वर्कशाप में कुछ साज-सामान तथा औजार तैयार करके इसको सफल बनाने में योग दे सकती है।

15.12. **अर्धकुशल तथा कुशल कामगरों का प्रशिक्षण**—आजकल अर्धकुशल तथा कुशल कामगर मुख्य रूप से आई० टी० आई० में प्रशिक्षित किए जाते हैं। इनकी कुल संख्या 356 है और इनमें कुल 1,13,000 विद्यार्थी आ सकते है। इसके अतिरिक्त तकनीकी हाई, स्कूलों, विशेषकर पुराने बम्बई राज्य के क्षेत्रों में आने वाले ऐसे स्कूलों, जूनिकर तकनीकी स्कूलों (कुल 103 जूनियर तकनीकी स्कूल है जिनमें कुल मिलाकर 18,000 विद्यार्थी पढ़ सकते हैं), दस्तकारों के प्रशिक्षण केन्द्रों (ये सामुदायिक विकास मंत्रालय के अन्तर्गत आते है), खादी तथा ग्रामोद्योग आयोग के प्रोग्रामों, बहुत से सरकारी तथा गैर-सरकारी दस्तकारी-स्कूलों और ऐसे बहूद्देशीय स्कूलों के, जो कुशल कामगार के प्रशिक्षण के पहले व्यावसायिक शिक्षा देते हैं, तकनीकी, वाणिज्य तथा कृषि विभागों में ऐसी सुविधाएं मौजूद है। इन संस्थाओं में प्रशिक्षण के अतिरिक्त श्रमबल का कुछ अनुपात ऐसा भी है जो या तो काम करते हुए प्रशिक्षण प्राप्त करता है या परम्परागत रूप से पिता द्वारा पुत्र को दी जाने वाली

1. अध्याय आठ भी देखिए।
2. देखिए अध्याय नौ।
3. इन जोड़ों में इंजीनियरी और गैर-इंजीनियरी दोनों पाठयक्रम शामिल हैं।

शिक्षा के रूप में प्रशिक्षण प्राप्त करता है। व्यवस्थित रूप में यह शिक्षुता अधिनियम द्वारा नियंत्रित है और लगभग 1,834 कार्यशालाएं हैं जिनमें 22,000 से अधिक प्रशिक्षणार्थियों के लिए स्थान है।

15.13. चौथी योजना के प्रस्तावों में आई० टी० आई० संस्थानों की वार्षिक निर्गम क्षमता को दुगना करने की व्यवस्था है। श्रम तथा रोजगार मंत्रालय ने, विभिन्न समितियों के सहयोग से, अभी हाल ही में इन संस्थानों में पढ़ाए जाने वाले विभिन्न पाठ्यक्रमों का पाठ्य-विवरण तथा प्रशिक्षण के ढंग में सुधार किया है। अन्य बातों के अतिरिक्त, यह उन आलोचनाओं को ध्यान में रख कर किया है कि कुछ कौशलों में प्रशिक्षणार्थी अधिक निकलते है, कि दिया जाने वाला प्रशिक्षण ज्यादा व्यावहारिक नहीं होता, और यह कि उद्योग तथा प्रशिक्षण प्रोग्रामों में ज्यादा सहयोग की आवश्यकता हैं। इसके अतिरिक्त यह भी सुझाव दिया गया है कि केवल कार्य-विशिष्टियों को ही न देखकर बल्कि प्रशिक्षणार्थी के लिए कई प्रकार के कौशल और अधिक मात्रा में सामान्य शिक्षा को ध्यान में रखते हुए शिक्षा के पाठ्यक्रम में संशोधन किया जाए। 12 दस्तकारियों के लिए मैट्रिक पास और शेष 39 के लिए मिडिल स्कूल पास होना आवश्यक है। सन् 1966 से दाखिले की न्यूनतम आयु घटाकर 15 कर दी गई है।

15.14. यह ध्यान देने की बात है कि उन पाठ्यक्रमों के लिए जिनकी न्यूनतम योग्यता मिडिल पास ही है बहुत से मैट्रिक पास आवेदक भी अर्जी देते हैं और प्रवेश-प्रतियोगिता में उनके आने की सम्भावना अधिक रहती हैं। इसके कारण पूरी प्राथमिक शिक्षा के बाद ही अधिक से अधिक छात्र व्यावसायिक शिक्षा में नहीं आ पाते। हमारी सिफारिश हैं कि आई० टी० आई० संस्थानों की सुविधाओं को और अधिक बढ़ाने के बारे में छानबीन की जाए और यदि सम्भव हो तो चौथी योजना में उपलब्ध स्थानों को दुगने से भी अधिक कर दिया जाए। हम आशा करते हैं कि समय आने पर प्रवेश की न्यूनतम आयु 14 कर दी जाएगी। और साथ ही पाठ्यक्रमों में कुछ संशोधन भी कर दिया जाएगा जिससे प्राइमरी शिक्षा पूरी होने और आई० टी० आई० में प्रवेश पाने के बीच का वर्तमान अन्तर दूर हो जाए।

15.15. कुशल कामगरों के लिए दूसरी प्रकार की पूर्ण कालिक तकनीकी शिक्षा के लिए जूनियर तकनीकी स्कूल तथा इससे पहले स्थापित तकनीकी हाई स्कूल हैं। दोनों स्कूलों में ही बच्चे प्राथमिक-अवस्था के बाद जाते हैं और सामान्यतः इनमें तीन या चार साल का प्रशिक्षण होता है जिसमें सामान्य शिक्षा और वर्कशाप में काम करने के साथ-साथ तकनीकी प्रशिक्षण शामिल है। ये संस्थाएं कई तरह से सफल रही हैं। तकनीकी हाई स्कूल महाराष्ट्र और गुजरात में और जूनियर तकनीकी स्कूल मध्यप्रदेश, मद्रास और पश्चिमी बंगाल के कुछ भागों में लोकप्रिय रहे हैं। परन्तु अभी हाल ही में योजना आयोग द्वारा किए गए अध्ययन[1] से पता चलता है कि कई जूनियर तकनीकी स्कूलों में 'व्यर्थता दर' बहुत अधिक है। यह भी पता चला है कि पास होने वाले छात्रों में से काफी अनुपात ऐसा है जो रोजगार में न जाकर पोलिटेक्निक या पूर्व-विश्वविद्यालय पाठ्यक्रमों द्वारा दुबारा शिक्षा प्रणाली में प्रवेश कर लेते हैं। हमने यह भी देखा है कि कई संस्थाओं के उद्देश्य स्पष्ट नहीं हैं और कुछ संस्थाओं में निम्न प्रकार का डिप्लोमा प्रशिक्षण भी होता है। इन संस्थाओं के प्रशिक्षणार्थी आई० टी० आई० से निकले छात्रों की तुलना में नुकसान में रहते हैं क्योंकि कम वर्कशाप अभ्यास होने के कारण उन्हें शिक्षुता अधिनियम के अन्तर्गत प्रशिक्षण में प्रवेश के लिए बराबर छूट नहीं मिलती।

15.16. हमारी सिफारिश है कि जूनियर तकनीकी स्कूलों का नाम बदलकर तकनीकी हाई स्कूल कर दिया जाए ('जूनियर' शब्द से कोई मतलब सिद्ध नहीं होता है) और विद्यमान तकनीकी हाई स्कूलों के साथ-साथ उनको कुशल कामगारों के प्रशिक्षण के केन्द्र के रूप में समझना चाहिए। इनको सामान्य माध्यमिक शिक्षा का विकल्प या पोलिटेक्निक में प्रवेश के लिए और महंगे स्कूल नहीं समझना चाहिए। इसके पाठ्यक्रम स्पष्ट रूप से शिक्षान्त होने चाहिए और उपलब्ध समय का अधिक उपयोग करके शिक्षुता अधिनियम की आवश्यकताएं (इस अधिनियम की धाराओं में ऐसा परिवर्तन करना चाहिए कि इन स्कूलों से निकलने वाले छात्र भी प्रवेश पा सकें) पूरी कर लेनी चाहिए, और इन स्कूलों की शिक्षा पूरी होने पर छात्रों को दस्तकारी प्रमाण-पत्र मिलने चाहिए। इनके पाठ्यक्रम मानक रूप से तीन साल नहीं रखना चाहिए बल्कि पाठ्यक्रमों के अनुसार बदलता रहना चाहिए। साथ ही इन सभी स्कूलों प्रायोगिक कार्यों तथा अनुप्रयुक्त विज्ञान पर काफी जोर देना चाहिए। अध्याय दस[2] में

1. देखिए जूनियर तकनीकी स्कूलों का वास्तविक सर्वेक्षण, योजना आयोग, नई दिल्ली, 1964।

2. महाराष्ट्र तथा गुजरात के तकनीकी हाई स्कूलों में प्रयोग के तौर पर सामान्य तकनीकी पाठ्यक्रम के साथ-साथ उच्चतर शिक्षा की तैयारी भी चालू रह सकती है। समय पर इन प्रयोगों का सावधानी से मूल्यांकन करना चाहिए।

दिए गए प्रस्तावों के अनुसार, इनमें से कुछ संस्थाओं को स्तरीय संस्थाओं के रूप में विकसित करने के लिए चुन लेना चाहिए। हमारी सिफारिशों के अनुसार पुनर्गठित तकनीकी हाई स्कूल जिसमें वर्तमान दर से कम व्यर्थता दर हो और जिनसे सामान्य शिक्षा पर अधिक बल हो, सामान्य माध्यमिक स्कूलों के और कुशल कामगारों को तैयार करने में आई० टी० आई० के भी अच्छे विकल्प हो सकते हैं।

15.17. आई० टी० आई० तथा तकनीकी हाईस्कूल दोनों को ऐसा प्रशिक्षण देना चाहिए जिसमें उत्पादन पर बल हो और इनको उद्योग से कुछ उत्पादन कार्य लेने और अन्य शैक्षिक संस्थानों में काम आने वाले सामान तैयार करने में बढ़ावा देना चाहिए। इनकी वर्कशाप अभ्यास का पुनरीक्षण, पुनर्नवीकरण तथा आधुनिकीकरण होना चाहिए।

15.18. इन दोनों संस्थाओं के प्रशिक्षण के अतिरिक्त हमारी सिफारिश है कि पोलिटेक्निक में कुशल कामागर प्रशिक्षण पाठ्यक्रम भी चालू किए जाएं। इनमें प्रवेश के लिए कक्षा दस से कम की योग्यता होनी चाहिए। इससे उपलब्ध सुविधाओं तथा स्टाफ का तो उपयोग हो ही सकेगा, साथ ही कुछ क्षेत्रों में दूसरे प्रकार का प्रशिक्षण भी मिल सकेगा।

15.19. **तकनीशियन का प्रशिक्षण**—शिक्षा प्रणाली में माध्यमिक स्तर पर कौशल का जो दूसरा स्तर है वह मध्यवर्ती पर्यवेक्षक और तकनीशियन वर्ग है। तकनीशियन या मध्यवर्गी विशेषज्ञ संज्ञक एक ऐसा वर्ग है जिसका कार्य भारतवर्ष में बहुत कम समझा जाता है परन्तु, जैसा आगे बताया जाएगा, हमारा विचार है कि इनकी संख्या फौरन ही बढ़ाई जानी चाहिए। उदाहरण के तौर पर हम यहां संयुक्त राज्य तथा पश्चिमी यूरोप की इंजीनियरी सोसाइटियों द्वारा उसके कार्यों की दी हुई परिभाषा दुहरा रहे है :

> इंजीनियरी तकनीशियन वह व्यक्ति होता है जो उन सिद्ध की जा चुकी तकनीकों का, जो कि इंजीनियरिंग की किसी शाखा के विशेषज्ञों की समझ में आसानी से आ सकती है या उन तकनीकों को, जो वृत्तिक इंजीनियरों ने विशेष रूप से निर्धारित की हों, जिम्मेदारी से काम में ला सके।
>
> सामान्य वृत्तिक इंजीनियरिंग निर्देशन द्वारा या सुस्थापित इंजीनियरिंग तकनीकों पर चलते हुए, वह उन कर्तव्यों को निभा सके जो निम्न उदाहरणों की सूची में दिए गए हैं।
>
> अपने कई कर्तव्यों को निभाने में, कुशल शिल्पियों के काम का सक्षम पर्यवेक्षण आवश्यक होगा। काम में लाई जाने वाली तकनीकों के लिए, अर्जित अनुभव और इंजीनियरिंग की विशेष शाखा के ज्ञान के साथ-साथ सुव्यवस्थित कार्यप्रणाली के आधार पर काम का ब्यौरा तैयार करने की क्षमता का होना जरूरी है।
>
> इंजीनियरिंग तकनीशियन को ऐसी शिक्षा तथा प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है जिसे वह अपने अधीन चलने वाली संक्रिया का कारण तथा उद्देश्य समझ सके।
>
> इंजीनियरिंग तकनीशियन को मुख्य रूप से निम्न प्रकार के कार्य करने पड़ते हैं :
>
> इंजीनियरिंग संयत्र या इमारत का डिजाइन तथा विकास से संबंधित काम; इंजीनियरिंग निर्माण तथा साज-सामान को खड़ा करना, चित्र बनाना, अनुमान लगाना, निरीक्षण तथा परीक्षण करना; सर्वेक्षण उपकरणों का इस्तेमाल; इंजीनियरिंग सेवाओं को चलाना, चालू रखना तथा मरम्मत करना और उनकी गड़बड़ी ढूंढ़ निकालना। मशीनी सामग्री तथा उनके कल पुर्जों का परीक्षण, अनुसंधान और विकास संबंधी कार्य; भूमि इंजीनियरिंग; सेवाई (सर्विसिंग) उपकरण तथा उपभोक्ताओं को सलाह।

इस मुख्य वर्ग के अन्दर, तरह-तरह के कामगारों के लिए कौशल के कई स्तर आ जाते हैं जो प्रथम पंक्ति के पर्यवेक्षक या फोरमैन से लेकर उच्चतर तकनीशियन या शिल्पविज्ञानी तक होते हैं। कुशल कामगारों से पदोन्नति करके पर्यवेक्षक या फ़ोरमैन की नियुक्ति की जा तकती है और उनको तकनीशियन द्वारा प्रशिक्षण दिया जा सकता है (जैसा कि रोजगार तथा श्रम महानिदेशालय द्वारा किया जाता है)। ये तकनीशियन कई समझे-बूझे कामों में इंजीनियर की जगह काम कर सकते हैं। ये तकनीशियन या शिल्पविज्ञानी, डिजाइन, निरीक्षण, परीक्षण या संरचना खड़ी करने आदि कामों में इंजीनियर का स्थान ले सकते हैं। तकनीशियन, मुख्य रूप से, पोलीटेक्निक में तीन साल के डिप्लोमा पाठ्यक्रम के अन्तर्गत प्रशिक्षित किए जाते हैं। आजकल पोलीटेक्निकों की कुल संख्या 274 है। (लड़कियों के 17 पोलीटेक्निक इसके अतिरिक्त हैं) जब कि 1947 में यह संख्या 43 थी।

15.20. भारत में, बहुत से स्नातक इंजीनियर तकनीशियन का काम कर रहे हैं। यह उनके कौशल का दुरुपयोग हैं और इससे व्यर्थ में ही प्रशिक्षण खर्च बढ़ जाता है। अधिक उद्योग प्रधान देशों में, मध्यवर्ती तकनीशियनों के प्रशिक्षण पर काफी बल दिया जा रहा है। परन्तु दुर्भाग्यवश भारत में उनके काम और प्रतिष्ठा को उतना महत्त्व नहीं दिया जा रहा है। विदेशों की स्थिति समझने के लिए जो प्रमाण देखने को मिले हैं और आजकल भारत में रोजगार में लगे लोगों की योग्यता देखने से यह पता चलता है कि भारत में प्रशिक्षित जनशक्ति का शंकु ऊपर से काफी भारी है। यद्यपि एक उद्योग से दूसरे उद्योग में अनुपात बदलता रहता है फिर भी उन्नत उद्योग प्रधान देशों में यह अनुपात 1 : 3 या 4 अथवा 1 : 5 या 6 तक (इस अनुपात की 1956 में निकले तकनीकी शिक्षा के बारे में ब्रिटेन के श्वेत पत्र में सिफारिश की गई है) देखा गया है। भारत में यह औसत अनुपात 1 इंजीनियर और 1. 4 तकनीशियन है। यह अनुपात एक उद्योग से दूसरे उद्योग में बदलता रहता है और इसमें सर्टीफिकेट तथा डिप्लोमा प्राप्त भी शामिल हैं। चौथी-गोजना के प्रस्तावों के अनुसार, जो कि अभी अस्थायी रूप से बनाए गए हैं, यह अनुपात 1 : 1.5 तक बढ़ जाएगा। यद्यपि पोलीटेक्निकों के प्रत्येक पाठ्यक्रम को एक सामान्य अनुपात से देखना उचित न होगा, फिर भी हमारे विचार में तकनीशियन स्तर पर सुविधाएं काफी तेजी से बढ़ाई जानी चाहिए।[1] इसलिए हमारी यह जोरदार सिफारिश है कि सरकारी तथा गैर-सरकारी उद्योग तुरंत ऐसे कदम उठाएं जिससे प्रतिष्ठा तथा वेतन की दृष्टि से तकनीशियनों का पेशा आकर्षक बन सके और इस स्तर पर प्रशिक्षण सुविधाएं बढ़ाने तथा सुधारने में शिक्षा अधिकारियों के साथ सहयोग करें। हमारा तात्कालिक लक्ष्य यह होना चाहिए कि इंजीनियरों तथा तकनीशियनों का कुल अनुपात सन् 1975 तक 1 : 2.5 और सन् 1986 तक 1 : 3 या 4 तक हो जाए।

15.21. प्रशिक्षण के दोषों को दूर करने के लिए शिक्षा प्रणाली में ज़ोरदार प्रयत्न होना चाहिए। शिक्षकों तथा उद्योग से प्रायः तीन प्रकार की आलोचनाएं सुनने को मिलती है। एक तो यह है कि पोलीटेक्निक के पाठ्यक्रम हल्के इंजीनियरिंग पाठ्यक्रम ही होते हैं। दूसरे, प्रशिक्षण या तो कम प्रायोगिक होता है या उद्योग की आवश्यकताओं से मेल नहीं खाता। तीसरी आलोचना इन पाठ्यक्रमों में जाने वाले छात्रों में व्यर्थता की मात्रा से सम्बन्ध हैं। इस अन्तिम बात के बारे में भिन्न-भिन्न समय तक जो कई अध्ययन किए गए हैं उनसे पता चलना है कि डिप्लीमा पाठ्यक्रमों में कुछ व्यर्थता की दर 35.6 प्रतिशत से 50 प्रतिशत तक होती है।

15.22. इन दोषों को दूर करने के लिए फ़ौरन ही कदम उठाना चाहिए। सबसे पहले कार्य-विश्लेषण तथा तकनीशियनों की जिम्मेदारी तथा कौशल के स्तर की विशिष्टताओं को ध्यान में रखते हुए, उद्योग के सहयोग से समय-समय पर अनुसंधान किया जाना चाहिए। इनके परिणामों के आधार पर पाठ्यक्रमों में संशोधन करना चाहिए जिसका उद्देश्य निम्न कोटि का इंजीनियर बनाना नहीं बल्कि वैसा तकनीशियन बनाना है जिसकी परिभाषा हम पहले दे चुके है। क्योंकि अन्य कामगारों की तरह उद्योग अनुभव तथा विशिष्टीकरण द्वारा, तकनीशियनों के प्रशिक्षण की व्यवस्था करेगा ही, इसलिए विस्तृत कार्य-विश्लेषण के आधार पर बहुत परिष्कृत पाठ्यक्रमों की आवश्यकता नहीं है। फिर भी उद्योग के कुछ क्षेत्रों में जैसे सिविल, विद्युत्, रासायनिक, टैक्सटाइल्स, यांत्रिक तथा खनन में, सम्बद्ध कौशल के वर्गों को पहचान लेना चाहिए।

15.23. डिप्लोमा प्रशिक्षण को और अधिक प्रायोगिक बनाना दूसरा तात्कालिक सुधार होना चाहिए। यह विशेष रूप से प्रशिक्षण के अन्तिम वर्ष में औद्योगिक अनुभव शामिल करने से पूरा हो सकता हैं। यह औद्योगिक अनुभव एक परियोजना में और समस्या अभिमुख प्रकार का होना चाहिए और उद्योग की उस विशिष्टता से सम्बन्धित होना चाहिए जो पोलिटेक्निक वाले स्थान में देखी जाती है। इसका उद्देश्य पुल बनाने या सड़क बनाने (उदाहरण के तौर पर) में विशेषज्ञता प्राप्त डिप्लोमा पास उत्पन्न करना नहीं होना चाहिए बल्कि पाठ्यक्रम में सिखाए जाने वाले सिद्धांतों तथा पद्धतियों को प्रयोग में लाने के लिए प्रायोगिक अनुभव की व्यवस्था करना होना चाहिए।

15.24. इससे तो बहुत ही महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकलते है। एक तो यह कि पोलीटेक्निक औद्योगिक क्षेत्रों, औद्योगिक केन्द्रों या उद्योग के लिए विकसित किए जाने वाले क्षेत्रों के पास ही खोले जाने चाहिए। पोलीटेक्निक का स्थान

1. **उदाहरण के लिए, देखिए आई० ए० एम० आर० अध्ययन, इंजीनियरी जनशक्ति के नियोजन के साथ इंजीनियरी शिक्षा का समन्वय।**

1. **कुशल कामगारों और तकनीशियनों के अनुपात के बारे में भी यही बात लागू है।**

निर्धारण मनमाने तौर पर एक जिले में एक के हिसाब से नहीं होना चाहिए परन्तु उद्योगों के मौजूद होने तथा रोजगार क्षमता के आधार पर होना चाहिए। आजकल गांवों में बहुत से पोलीटेक्निक हैं जहां न तो कोइ उद्योग है और न होने की सम्भावना ही है। हमारे विचार में इन पोलीटेक्निकों में कृषि-उद्योग तथा विस्तार कार्यों में काम आने वाली शिल्पियों तथा तकनीशियनों के लिए कृषि से सम्बद्ध पाठ्यक्रम तैयार कर लेना चाहिए।[1]

15.25. हमारी सिफ़ारिशों की दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि पोलीटेक्निकों के अध्यापक इंजीनियरिंग कालेजों से सीधे निकले हुए लोग नहीं होने चाहिए बल्कि ऐसे व्यक्ति होने चाहिए जिन्हें शैक्षिक योग्यता के साथ-साथ अच्छा प्रायोगिक अनुभव भी हो। इस दिशा में अधिक प्रयत्न करना चाहिए कि उद्योग से अधिक से अधिक अध्यापक लिए जाएं चाहे इनमें कुछ डिप्लोमा प्राप्त ही क्यों न हों। इसके लिए शैक्षिक योग्यताओं की शिक्षित किया जाना चाहिए और वेतन निर्धारण केवल शैक्षिक योग्यता के ही आधार पर नहीं होना चाहिए। पोलीटेक्निक के स्टाफ के लिए, जिसमें हाल ही में नियुक्त हुए लोग भी शामिल हों, ग्रीष्मकालीन संस्थानों का विस्तृत प्रोग्राम बनाना चाहिए। पोलीटेक्निक के अध्यापकों के लिए प्रशिक्षण कालेजों के अलावा, शिल्पविज्ञान संस्थानों तथा क्षेत्रीय इंजीनियरिंग कालेजों में भी उनके लिए पाठ्यक्रमों की व्यवस्था करना चाहिए जहां पर प्रशिक्षणार्थी को शिक्षण अभ्यास के अनुस्थापन के साथ-साथ पर्यवेक्षित उत्पादन अनुभव और मौलिक विज्ञान विषयों के पाठ्यक्रसों को पढ़ने का अवसर मिलना चाहिए।

15.26. कहने की आवश्यकता नहीं है कि प्रत्येक पोलीटेक्निक में अच्छी वर्कशाप तथा प्रयोगशालाएं होना भी चाहिए और उनका पूरा उपयोग होना चाहिए। परन्तु अधिक से अधिक वास्तविक अवस्थाओं में प्रशिक्षण देने के लिए, हम यह सिफ़ारिश करते है कि विधार्थियों तथा स्टाफ अवकाश का उपयोग, हाथ के औजार, सरल मशीनी औज़ार, छोटे लेथ, ड्रिल मशीनों, आदि बनाने में करे। इन औज़ारों तथा मशीनों को या तो माध्यमिक स्कूलों को दिया जा सकता है या बेचा जा सकता है। बड़े शहरों में, जहां तक सम्भव हो यह कास उद्योग के सहयोग के साथ करना चाहिए।

15.27. आजकल अवर माध्यमिक स्कूलों में विज्ञान तथा गणित के शिक्षण का स्तर अच्छा न होने के कारण, पोलीटेक्निक में, विशेषकर प्रथम दो वर्षों में इन विषयों के पढ़ाए जावे पर ज़ोर देना चाहिए। इसका दीर्घकालिक उपाय तो यही है कि स्कूलों में विज्ञान की अच्छी पढ़ाई हो। परन्तु जब तक ऐसा नहीं होता पोलीटेक्निकों को कुछ सुधारात्मक उपाय करने होंगे। क्योंकि तकनीशियनों को अर्ध-प्रबंधकों का भी काम करना पड़ेगा इसलिए उनके प्रशिक्षण में प्रारम्भिक औद्योगिक मनोविज्ञान, प्रबन्धकार्य लागत तथा अनुमान तैयार करने का समावेश होना चाहिए।

15.28. जैसा कि पहले बताया जा चुका है, बहुत से तकनीशियन ऊपर आने की कोशिश करेंगे। उद्योग द्वारा उनको प्रोत्साहन मिलना चाहिए। पोलीटेक्निक भी अंशकालिक पाठ्यक्रमों की व्यवस्था कर इसमें योग दे सकते हैं यद्यपि अधिक सफलता तो उद्योग के सहयोग से होने वाले सैंडविच प्रकार के या अन्तःस्थापित पाठ्यक्रमों द्वारा ही मिल सकती है। उदाहरण के तौर पर, छः सहीने संस्थान में और छः महीने औद्योगिक प्रशिक्षण में रखे जा सकते हैं। इनसे, सिद्धांत तथा व्यवहार के बीच अच्छा संतुजन स्थापित हो जाएगा, एक साल में दो बार प्रशिक्षण हो सकेगा, काफी समय के लिए तथा बिना रुकावट के उद्योग में विद्यार्थियों का उपयोग हो सकेगा और संस्थान में पढ़ने वाली अवधि में, विधार्थियों को विधार्थी जीवन तथा कालेज की सभी सुविधाएं प्राप्त हो सकती हैं। उद्योग तथा संस्थान का अलग-अलग समय परिस्थितियों के अनुसार बदल सकता है।

15.29. जिस नए प्रकार के प्रशिक्षण का अभी सुझाव दिया गया है उसमें उद्योग से इतने अधिक सहयोग की आवश्यकता होगी जितना कि अभी तक नहीं हुआ है। इससे कुछ तो विद्यार्थियों को उपयुक्त प्रायोगिक अनुभव प्राप्त हो जाएंगे और कुछ पौजीटैक्निक में ही स्टाफ के प्रशिक्षण की व्यवस्था हो जाएगी। इसके अतिरिक्त औद्योगिक आवश्यकताओं के अनुसार अध्ययन के पाठ्यक्रम तैयार हो जाएंगे। देखा जाता है कि डिप्लोमा प्राप्त लोगों में देश के अन्दर ही अधिक गतिशीलता नहीं है और यदि स्थानीय जगहों में रोजगार नहीं मिले तो भी तकनीशियन दूसरी जगह जाने में अनिच्छा प्रकट करते हैं। इसलिए हमारे विचार से कम-से-कम चौथी तथा पांचवीं योजनाओं के दौरान पौलोटेक्निक के पाठ्यक्रम स्थानीय मांग को ध्यान में रखते हुए तैयार किए जाएं यद्यपि समस्त राष्ट्रीय आवश्यकताओं की भी अनदेखी नहीं करना चाहिए। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि शिक्षा का पाठ्यक्रम

1. देखिए अध्याय चौदह।

तैयार करते समय प्रत्येक पोलीटेक्निक के प्रिंसिपल को काफी मात्रा में छूट देनी होगी। इस पर निर्णय लेते समय उसे स्थानीय जनशक्ति की आवश्यकताओं को ध्यान में रखना होगा और उद्योग तथा राज्य जनशक्ति अधिकारी से सम्पर्क बनाकर अपने क्षेत्र के लिए कुछ पूर्वानुमान लगाना होगा।

15.30. सभी पोलीटेक्निकों में लड़कियों की विशेष रुचि के पाठ्यक्रम तैयार करने की दिशा में विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। यद्यपि बहुत से पाठ्यक्रम लड़को तथा लड़कियों दोनों के लिए रुचिकर होंगे फिर भी वाणिज्य, नौकरी पेशे तथा उद्योग में कुछ ऐसे पेशे है जो लड़कियों के लिए विशेष रूप से उपयुक्त हैं। कुछ उदाहरण ये हैं : सचिवालय कार्यप्रणाली, फार्मेसी, घरेलू सजावट, ड्रैस डिज़ाइन, व्यावसायिक कला, चिकित्सा प्रयोगशाला, शिल्पविज्ञान, पुस्तकालय विज्ञान और वास्तुकला के पाठ्यक्रम। लड़कियों के 17 पोलीटेक्निकों में इन विषयों से संबंधित पाठ्यक्रम अब भी चालू हैं परन्तु सभी पोलीटेक्निकों को सार्टिफिकेट तथा डिप्लोमा स्तर पर ये पाठ्यक्रम चालू करने के लिए और अवर माध्यमिक पाठ्यक्रम पूरा करने के वाली लड़कियों को इन पाठ्यक्रमों की ओर आकृष्ट करने के लिए सहायता दी जानी चाहिए। इन पाठ्यक्रमों के काफी लड़कियों को आकृष्ट करने के लिए कुछ समय तक लड़कियों के लिए और पोलीटेक्निक खोलने की भी आवश्यकता होगी। इन पेशों में लड़कियों को आकृष्ट करने के लिए इन पोलीटेक्निकों के प्रिंसिपलों को निर्देशन सेवाओं तथा हाई स्कूलों के प्रधानाचार्यों से सहयोग करना चाहिए।

15.31. विस्तृत तथा पुनः अनुस्थापित तकनीशियन प्रशिक्षण के उपर्युक्त प्रोग्रामों को कार्यान्वित करते समय सबसे अधिक ध्यान इस बात पर देना चाहिए कि सुविधाओं का पूरा उपयोग किया जाए। वर्तमान व्यर्थता दर 40 प्रतिशत के आस-पास है। इसको कम-से-कम करने तथा वर्तमान पोलीटेक्निकों को अधिक से अधिक इष्टतम आकार तक फैलाने के बारे में पूरा प्रयत्न करना चाहिए। ऊंची व्यर्थता तथा कम उपयोग का एक प्रमुख कारण कम स्टाफ का होना है। सन् 1965 में स्वीकृत पदों में लगभग 31 प्रतिशत भरी नहीं गई।[1] इसके अतिरिक्त कई बार स्टाफ का रूपान्तरण होता रहता है। इसका मुख्य कारण कम वेतन बताया गया है। इसमें सन्देह नहीं कि यह एक वास्तविक कारण हैं और हमारी सिफ़ारिश है कि संशोधित वेतन-क्रमों तथा सेवा की शर्तों को लागू करने के बारे में तुरन्त कदम उठाए जाएं। यह वेतनक्रम इंजीनियरिंग कालेज के स्टाफ के वेतन के समान ही होना चाहिए परन्तु केवल शैक्षिक योग्यता के आधार पर ही नहीं होना चाहिए। यह बात, समाज तथा उद्योग में तकनीशियनों की अच्छी प्रतिष्ठा हो, इस सिफारिश के अनुरूप ही होगी। हमारा विश्वास है कि अपने काम से संतोष न होने के कारण अध्यापकों की कमी रहती हैं और भर्ती के लिए ज्यादा लोग नहीं आते। हमारे विचार में, पोलीटेक्निकों के लिए उत्पादन प्रोग्रामों से, जिनका कि पहले सुझाव दिया गया है और जिनसे स्टाफ को डिजाइन पर्यवेक्षण में और भाग लेने का अवसर मिलेगा, इस रुख को बदलने में सहायता मिलेगी। इसके अलावा इससे अतिरिक्त पारिश्रमिक और प्रोत्साहन भी मिलेगा।

15.32. जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि तकनीशियनों की जिम्मेदारियों का स्तर स्तरबद्ध है और परीक्षण, अभिकल्पन, संस्थापन, अनुसंधान तथा विकास में सहयोग, विनिर्माण का पर्यवेक्षण आदि कुछ विशिष्ट तथा समझे हुए कामों में इंजीनियर के उत्तरदायित्वपूर्ण स्तर का स्थान तकनीशियन ले सकता है। कुछ देशों में इन कामों के लिए उच्चतर तकनीशियन, तकनीशियन इंजीनियर या शिल्पविज्ञानी का वर्ग है और उनको विशिष्ट प्रशिक्षण के बाद सर्टिफिकेट दिए जाते हैं। यह एक महत्वपूर्ण व्यवस्था है और उद्योगों के जटिल और परिष्कृत तथा विस्तृत होने के साथ-साथ भारत में इसकी संख्या बढ़ती जाएगी। हमारी सिफारिश है कि कुछ चुने हुए पोलीटैक्निकों में, जहाँ शिफ़ारिश के साथ ऊपर बताए कार्यों की विशिष्टयों के समय-समय पर किए गए सर्वेक्षणों के फलस्वरूप ऐसा करना वांछनीय ठहराया गया हो, या जहां पर पोलीटेक्निकों के प्रिंसिपल तथा उद्योग इस आवश्यकता का अनुभव करें, इन उच्चतर स्तरीय तकनीशियनों के प्रशिक्षण के लिए, उद्योग में कुछ वर्षों के अनुभव वाले तकनीशियनों के लिए उत्तर-डिप्लोमा पाठ्यक्रम चालू किया जाए।

15.33. **अन्य व्यावसायिक शिक्षा**—हमने उच्चतर माध्यमिक स्तर पर (कक्षा दस और कक्षा बारह) पाठ्यक्रमों को और अधिक विविध बनाने की सिफारिश की है। इसी स्तर पर पोलीटेक्निक के साथ-साथ, शिक्षा, प्रणाली में व्यावसायीकरण तथा विशिष्टीकरण का सबसे अधिक प्रयत्न किया जा सकता है। व्यापारिक, वैज्ञानिक तथा औद्योगिक विषयों में कई प्रकार के पाठ्यक्रम रखे जा सकते हैं। इन क्षेत्रों में तथा गृहविज्ञान, पोषण-विज्ञान,

1. विस्तृत विवरण के लिए, देखिए सारणी 15.2।

परिचर्या सामाजिक कार्य, आदि लड़कियों की विशेष रुचि के क्षेत्रों में सार्टिफिकेट और डिप्लोमा मिलने वाले अन्तिम पाठ्यक्रम चालू किए जा सकते हैं। ये पाठ्यक्रम एक, दो, तीन या चार वर्षों की अवधि के हो सकते हैं और स्कूलों या विशेष संस्थानों (उदाहरणार्थ, नाविकों, विस्तार कार्य कर्त्ताओं, वितरणात्मक धंधों), वाणिज्यिक-कला तथा में चलाए जा सकते हैं। यदि पाठ्यचर्या, शिक्षक अमले साज सामान, स्थल तथा सार्टीफिकेट देने आदि के बारे में उचित मान रखे जाएं तो स्थानीय प्रोत्साहन तथा प्रयोग को काफी बढ़ावा दिया जा सकता है। मालिकों के साथ मिलकर प्रशिक्षण के लिए सैंडविच पाठ्यक्रमों या कर्मचारियों की आंशिक छुट्टी (सप्ताह में 2 या 3 दिन) की व्यवस्था की जा सकती है। कक्षा सात या कक्षा दस के बाद[1] रोजगार में आने वालों के लिए सायंकालीन, पत्राचार या व्यावसायिक पाठ्यक्रम होने चाहिए।

15.34. **लघु-उद्योग तथा स्वयं-नियोजन के लिए शिक्षा**—सुसंगठित रोजगार बाजार के बढ़ने से उत्पन्न समस्याओं की गहराइयों पर विशेष रूप से शिक्षित लोगों की संख्या बढ़ जाने से उत्पन्न समस्या पर पहले विचार किया जा चुका है।[2] यहां हम केवल एक बात पर जोर देना चाहते हैं : तकनीकी तथा व्यावसायिक शिक्षा की जिम्मेदारी केवल उन लोगों को प्रशिक्षण देने की नहीं है जो रोजगार चाहेंगे, बल्कि उन लोगों की भी है जो रोजगार पैदा करेंगे। हमारे विचार से कुशल कलाकार तथा तकनीशियन स्तर के संदर्भ में यह बात विशेष रूप से लागू है। बिजली, सिंचाई तथा संचार आदि अन्य सुविधाएं गांव तक पहुंचने से नए शिल्पियों को मरम्मत का या लघु उत्पादन कार्यों के लिए नए अवसर मिलने लगेंगे। तकनीकी हाई-स्कूल, पोलीटेक्निकों तथा पिछले अध्याय में प्रस्तावित कृषि पोलीटेक्निकों से निकलने वाले लोगों को इस बात के लिए बढ़ावा देना चाहिए कि वे अपने-अपने छोटे उद्योग-धन्धे खोल लें और या स्वयं-नियोजित, सहकारिता या सामुदायिक आधार पर दूसरों के साथ मिलकर छोटी वर्कशाप, छोटे उद्योग खड़े कर लें या समुदाय की दूसरी जरूरतें पूरी करने के लिए काम जमा लें। लघु-उद्योग योजना में भी इन धंधों को बढ़ावा दिया जाता है और शिक्षा अधिकारियों की यह जिम्मेदारी है कि वे इन सम्भावनाओं की ओर विद्यार्थियों का ध्यान दिलाएं।

15.35. **अंशकालिक शिक्षा** : जो लोग रोजगार में आ चुके हैं या जो स्कूल से दसवीं कक्षा पास कर रोजगार में जाना चाहते हैं उनके लिए काम करते हुए अंशकालिक; और व्यावसायिक तथा तकनीकी प्रशिक्षण की सुविधाएं बढ़ाई जानी चाहिए। यह प्रशिक्षण अंशकालिक, शिक्षुता, कुछ अवधि की छुट्टी, पत्राचार पाठ्यक्रम, सैंडविच (अंतःस्थापित) पाठ्यक्रम या लघुसघन पाठ्यक्रमों के रूप में दिया जा सकता हैं और इसकी अवधि 6 महीने से 4 साल तक रखी जा सकती है। कक्षा दस पास करने के बाद रोजगार में आने वालों के लिए यही सिद्धांत और ज़ोरों से लागू होना चाहिए। यहां पर यह बताया जा सकता है कि इस तरह आगे शिक्षा देने वाले पाठ्यक्रमों की संख्या ब्रिटेन में 200 से अधिक है[3]। भारत में शिक्षुता पाठ्यक्रमों में नाम लिखाने वालों की संख्या को काफी बढ़ाना चाहिए।

15.36. इन प्रोग्रामों को चालू करने में जो एजेंसियां शामिल होंगी, उनमें सरकार, जिसमें सशस्त्र सेना भी आ जाती है। उद्योग शिक्षा संस्थान और वृत्तिक संगठन आते है। इन पाठ्यक्रमों से अर्धकुशल तथा कुशल कामगार के साथ-साथ पूर्णकालिक रूप से पोलीटेक्निकों में न जा सकने वाले पर्यवेक्षक कार्मिक भी तैयार होंगे। एक महत्वपूर्ण बात यह है कि दृष्टिकोण में कुछ ढील दी जानी चाहिए और स्थानीय अधिकारियों को छूट होना चाहिए कि वह ऐसों पाठ्यक्रमों को बनाए जो पढ़ाई तथा अवधि को देखते हुए स्थानीय उद्योग तथा रोजगार की आवश्यताओं को पूरा करें। इन पाठ्यक्रमों में सामान्य शिक्षा का स्तर, विद्याओं को देखते हुए तथा आने वाले विद्यार्थियों की शैक्षिक योग्यताओं के अनुसार बदलता रहेगा।

इंजीनियरी की शिक्षा

15.37. **सामान्य बातें** : यद्यपि हम संस्थागत तैयारी द्वारा भविष्य में होने वाले इंजीनियरों पर ही विचार करेंगे फिर भी हमें यह मालूम है कि देश में बहुत से काम करने वाले इंजीनियर हैं जिनके पास कई कारणों से डिग्रियां नहीं हैं और जो उद्योग में रहकर योग्यता तथा अनुभव के आधार पर आगे बढ़े हैं। इनमें से कई जिम्मेदार पदों पर हैं और बहुत ही कुशलता से अपना काम कर रहे हैं। क्योंकि औद्योगीकरण की प्रगति आधारभूत विज्ञान के अधिक अच्छी तरह समझने पर निर्भर करती हैं, इसलिए आवश्यकतावश इंजीनियरों का प्रशिक्षण

1. **पाठ्यक्रमों के बारे में सुझाव के लिए, इस अध्याय का अनुबंध देखिए।**
2. **अध्याय पांच।**
3. **प्रस्तावित पाठ्यक्रमों की सूची के लिए, इस अध्याय का अनुबंध देखिए।**

अधिक से अधिक संस्था पर आश्रित होता जाता है। ऐसा होना ठीक भी है। परन्तु यह भी समझ लेना चाहिए कि व्यावहारिक कार्यों का औद्योगीकरण की प्रगति में, विशेषकर प्रारम्भिक अवस्थाओं में, बहुत अधिक योगदान रहा है। क्योंकि प्रतिभाशाली सम्भाव्य इंजीनियरों तथा तकनीशियनों को अपनी योग्यताएँ बढ़ाने का अवसर अवश्य मिलता रहना चाहिए इसलिए उन लोगों के लिए जो और प्रशिक्षण प्राप्त करना चाहते हैं अंशकालिक, पत्राचार तथा अवकाशीय पाठ्यक्रमों की व्यापक तथा वृत्ति के जानकार लोगों द्वारा पर्यवेक्षित सुविधाएं दी जानी चाहिए।

15.38. सन् 1947 से इंजीनियरों की शिक्षा की संस्थागत सुविधाएं बहुत बढ़ गई हैं। सन् 1947 में 45 कालेजों के मुकाबले सन् 1964 में 133 कालेज थे। विस्तार के कारण गुणात्मक स्तर को बनाए रखने की कठिन समस्या उत्पन्न हो गई है और शीघ्र शिल्पवैज्ञानिक प्रगति से इंजीनियरों की शिक्षा की जांच की ज़रूरत हर साल बढ़ती जा रही है। हम इस समस्या पर कुछ महत्व-पूर्ण पहलुओं, जैसे पाठ्यक्रमों की अवधि, विषय-वस्तु, शिक्षक, व्यर्थता, लागत, साज-सामान, स्नातकोत्तर पाठ्य-क्रमों और जनशक्ति की आवश्यकताओं, के अन्तर्गत विचार-विमर्श करेंगे।

15.39. **अवधि**—पाठ्यक्रमों की अवधि और प्रवेश आवश्यकताओं के बारे में काफ़ी विभिन्नताएं पाई जाती हैं जैसा कि सारणी 15. 1 में दिखाया गया है।

सारणी 15. 1. प्रथम डिग्री के लिए इंजीनियरी पाठ्यक्रमों की अवधि (1965-66)

संस्थानों की संख्या	पाठ्यक्रमों की अवधि	न्यूनतम प्रवेश योग्यताएं
90	5 साल	उच्चत्तर माध्यमिक (या समकक्ष)
31	4 साल	आई० एस-सी०
7	3 साल	बी० एस-सी०
4	3 साल	आई० एस-सी०[1]

1. महाराष्ट्र तथा गुजरात के कुछ संस्थानों में इन पाठ्यक्रमों की व्यवस्था है।

15.40. हमारा विश्वास है कि आमतौर पर इंजीनियरी डिग्री के लिए वर्तमान उच्चतर माध्यमिक अवस्था (ग्यारह साल की स्कूली शिक्षा) या इसकी समकक्ष अवस्था के बाद पांच साल की इंजीनियरी शिक्षा ज़रूरी है। इसमें उद्योग में 'उत्पादन अनुभव' प्राप्त करने का समय भी शामिल है। इंटरमीडिए या समकक्ष अवस्था के बाद इसको चार वर्ष किया जा सकता है। परन्तु हम आई० एस-सी० के बाद 3 साल के पाठ्यक्रमों के पक्ष में बिल-कुल नहीं हैं क्योंकि पहले तो यह सम्भव ही नहीं है और यदि हो भी तो अपेक्षित स्तर तक पहुंचने में छात्रों पर काफी जोर पड़ता है। हमने सुना है कि ए०आइ०सी०टी० ई० ने इन पाठ्यक्रमों के स्थान पर दूसरे पाठ्यक्रम चालू करने का प्रस्ताव रखा है। हमारी आम सिफ़ारिश है कि निर्धारित स्तर तक जो संस्थान नहीं पहुंचते हैं उनको सुधारा जाय या तकनीशियनों के प्रशिक्षण के संस्थानों में बदल दिया जाय या फिर बन्द कर दिया जाए।

15.41. इंजीनियरी पाठ्यक्रमों, विशेष रूप से इले-क्ट्रोनिकी, यंत्र विनियोग आदि विषयों में अच्छी योग्यता वाले बी० एस-सी० के विद्यार्थियों की भर्ती का समर्थन करना चाहिए। परन्तु वर्कशाप का अनुभव न होने को पाठ्य-क्रमों में आवश्यक हेर-फेर करके पूरा कर लेना चाहिए। आमतौर पर ऐसे पाठ्यक्रमों की अवधि तीन साल होनी चाहिए। कुछ कालेजों में उत्तर बी० एस-सी० इंजीनियरी पाठ्यक्रम चालू करने की सम्भावनाओं की छानबीन की जानी चाहिए।

15.42. **विषय-वस्तु** : इस बारे में दो सामान्य बातें कहना है। एक तो यह कि उन इंजीनियरों के लिए, जो अनुसंधान तथा विकास से सम्बद्ध हैं और शिल्पवैज्ञा-निक प्रगति में भाग लेते हैं या पूर्वविचार करते हैं, बुनि-यादी विज्ञानों के शिक्षण पर और ज़ोर देने की आवश्य-कता है। हम देखते हैं कि कई इंजीनियरी कालेजों में विज्ञान-विभागों को उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाता हैं और विज्ञान विषयों के शिक्षकों का वेतन इंजीनियरी विभागों के शिक्षकों के वेतन से काफी कम होता है। हमारी सिफ़ा-रिश है कि इस असंगति को दूर करने के लिए कदम उठाए जाने चाहिए। विज्ञान तथा शिल्पविज्ञान संकाय में वेतन मान एक होना चाहिए। इसके अलावा हम यह सिफारिश करते हैं कि कुछ पद (जैसे विभाग की कुल संख्या का एक-चौथाई या एक-तिहाई) इंजीनियरी विभागों में मौलिक विज्ञान-विषयों में उपयुक्त योग्यता रखने वाले व्यक्तियों के लिए सुरक्षित रखना चाहिए। इसी प्रकार विज्ञान विभागों में उतने ही पद इंजीनियरों के लिए सुर-क्षित रखना चाहिए। इंजीनियरी विश्वविद्यालयों को इस दिशा में पहले करना चाहिए और इसके लिए विश्वविद्या-लय अनुदान आयोग से सहायता मिलनी चाहिए। इंजी-

निवरी विषयों की पढ़ाई में विज्ञान (गणित, भौतिकी, आदि।) का काफ़ी प्रयोग करना चाहिए। उपयुक्त जगहों पर इंजीनियरी पाठ्यक्रमों में बी. एस-सी. के विद्यार्थियों की भरती भी इस दिशा में सहायक सिद्ध हो सकती है।

15.43. यहां भी, यह सामान्य धारणा है, विशेष रूप से मालिकों की, कि हमारे स्नातकों को प्रायोगिक अनुभव तथा उद्योग का ज्ञान नहीं होता। अवकाश के समय में प्रायोगिक अनुभव प्राप्त करने की वर्तमान प्रणाली में कई दोष हैं। विद्यार्थी इस प्रशिक्षण को ठीक से नहीं लेते, प्रथम वर्षों में इतने अपरिपक्व होते है कि इससे लाभ नहीं उठा सकते, उनकी देखभाल ठीक से नहीं होती और सासान्यतः उनको समस्या-सुलझाने और परियोजना-अभिमुख विचारधारा वाला मार्गदर्शन नहीं मिलता। इन दोषों को दूर करने के लिए कई सुझाव दिए जा सकते हैं। पूर्णकालिक छात्रों के लिए प्रायोगिक अनुभव पाठ्यक्रम के तीसरे वर्ष तक स्थगित किया जा सकता है। ये अनुभव उद्योग के सहयोग से अच्छी तरह तैयार करना चाहिए। इनकी अच्छी तरह देखभाल होना चाहिए और पाठ्यक्रम समाप्त होने से पहले यह अनुभव पूरा हो जाना चाहिए। हमारा विश्वास है कि इंजीनियरों के लिए मज़बूत वैज्ञानिक आधार की आवश्यकता है। हमारा यह और भी दृढ़ विश्वास है (और वर्तमान आवश्यकताओं के संदर्भ में यह विशेष रूप से महत्वपूर्ण हो गया है) कि उत्पादन अनुभव पाठ्यचर्या का अखण्ड भाग होना चाहिए। सैंडविच प्रकार के या अंतःस्थापित पाठ्यक्रमों के तकनीशियनों की तरह हम इस स्तर पर भी व्यापक विस्तार की सिफ़ारिश करते है। इस दिशा में जल्द-से-जल्द शुरुआत की जानी चाहिए और उन संस्थानों को जो स्थान या अन्य कारणों से इन पाठ्यक्रमों को चलाने की स्थिति में हैं, ऐसा करने के लिए प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। उद्योग से यनिष्ठ संबंध जोड़ने और प्रशिक्षण को प्रायोगिक झुकाव देने के अतिरिक्त इस अभ्यास से और भी कई लाभ होंगे। इससे वह अवधि कम हो जाएगी जिसके पहले इंजीनियर उत्पादनशील नहीं होता। इससे छात्र पढ़ने के साथ-साथ पैसा भी कमा सकते हैं। इससे उद्योय और संस्थान पास-पास आ जाएंगे। और इससे बिना औधोगिक क्षेत्र वाले कुछ छात्र भी तकनीकी पाठ्यक्रमों में जा सकते हैं।

15.44. संस्थानों में भी कई तरह की कार्यवाही की जा सकती हैं। निर्धारित पाठ्यक्रमों और अवकाश-काल दोनों में किए जाने वाले वर्कशाप अभ्यास को उत्पादन अभिमुख बनाना चाहिए और स्टाफ तथा छात्रों को और शैक्षिक संस्थानों में काम आने वाले साज-सामान को तैयार करने के बारे में अनुसंधान करना चाहिए। परियोजना कार्य के रूप में छात्र वर्गों को उद्योग से लेकर उत्पादन समस्याएं देनी चाहिए, शिक्षकों तथा विश्वविद्यालय विभागों उद्योगों को परामर्श देने के लिए तैयार रहना चाहिए और अवकाश-काल में उद्योग में ही काम करना चाहिए। ग्रीष्मकालीन संस्थाओं की व्यवस्था करके शिक्षकों तथा उद्योग में बार-बार सम्पर्क स्थापित करना चाहिए। स्नातकोत्तर काम करने से पहले स्नातकों को कम-से-कम एक साल तक उद्योग में प्रायोगिक अनुभव होना करना चाहिए।

15.45. क्रमिक पंचवर्षीय योजनाओं में औद्योगिक विकास की आवश्यकताओं को देखने से पता चलता है कि धातुविज्ञान, रासायनिक इन्जीनियरी, ईंधन शिल्पविज्ञान, उत्पादन इंजीनियरी आदि में भारी मशीनों के निर्माण, मशीनी औजार, बिजली का साज-सामान, धातुविज्ञानसम्बन्धी काम, ऊर्वरक, रासायनिक तथा अन्य निर्मित वस्तुओं के लिए अधिक से अधिक संख्या में तकनीकी कार्मिकों की जरूरत होगी। वर्तमान इंजीनियरी कालेजों में पाठ्यक्रमों को देखने से पता चलता है कि अधिकांश कालेजों में केवल तीन मौलिक क्षेत्रों—सिविल, यांत्रिक तथा विद्युत इंजीनियरी—में ही पढ़ाई होती हैं। उद्योग द्वारा अपेक्षित विभिन्न प्रकार के इंजीनियरों तथा तकनीशियनों के साथ डिग्री और डिप्लोमा पाठ्यक्रमों को जोड़ने के लिए यह आवश्यक है कि परम्परागत नमूने कों बदला जाए और वर्तमान तथा नए संस्थानों में पाठ्यक्रमों में विभेद किया जाए जिससे कि अपेक्षित तकनीकी कार्मिक उत्पन्न किए जा सकें। विशेषज्ञ तकनीकी कार्मिकों के लिए उद्योग की बदलती हुई आवश्यकताओं के अनुसार उन विशिष्ट विषय क्षेत्रों की, जिनमें कि पाठ्यक्रम चलाए जाने हैं, बराबर समीक्षा करते रहना चाहिए।

15.46. इसके अतिरिक्त हम यह चाहते है कि शिल्पविज्ञान के कालेजों तथा संस्थानों को, भविष्य में उद्योग की आवश्यकताओं के बारे में, जनशक्ति की दृष्टि से, जिसकी आगे चर्चा की गई हैं, और प्रशिक्षण के तरीके में सहयोग की दृष्टि से, काफी ध्यान रखना चाहिए। इसको सफल बनाने के लिए पाठ्यचर्या में तीसरे साल से अनुसंधान डिजाइन परियोजना भी शामिल कर लेनी चाहिए। उद्देश्य यह होना चाहिए कि छात्रों को अनुसंधान के रीति विधानों का परिचय मिल जाए। परि-

योजना, उद्योग या सरकार द्वारा चलाई जा सकती है और स्नातकोत्तर छात्रों की सहायता से छात्र कई वर्गों में काम कर सकते हैं। इन अनुसंधान परियोजना कार्यों के लिए या तो इनाम दिए जाने चाहिए या इनका सार्वजनिक प्रदर्शन किया जा सकता है।

15.47. पाठ्यक्रमों की वर्तमान विषय वस्तु को सुधारने के इन उपायों के अलावा, पाठ्य-विवरणों के बराबर संशोधन के लिए पर्याप्त मशीनरी की आवश्यकता है। उद्योग, शिक्षक तथा अनुसंधान कार्यकर्ताओं की विशेषज्ञ समितियां बनाकर राष्ट्रीय स्तर पर सामान्य मार्गदर्शन दिया जा सकता है। इन अभ्यासों का मतलब यह नहीं हैं कि दृढ़ता से उनका पालन किया जाए। प्रोफेसरों तथा विभागों को नए दृष्टिकोण के विकास की स्वतन्त्रता के साथ पाठ्यक्रमों के निर्धारण तथा संशोधन के लिए, विश्वविद्यालय तथा कालेजों के प्रिंसिपलों की अपनी अलग मशीनरी होनी चाहिए जिसमें उद्योग और अनुसंधान कार्यकर्ता भी सहयोग दे सकते हैं।

15.48. पाठ्यचर्या की रचना में सबसे बड़ी कठिनाई यह होती है कि हम दो औद्योगिक क्रांतियों को परस्पर समाविष्ट करने की कोशिश कर रहे हैं। हमारे उद्योग का काफी बड़ा अंश परम्परागत है जिनमें वर्षों पहले विकसित प्रक्रियाएं काम में आती हैं। हमारा विचार है इस क्षेत्र में तकनीशियनों का काफी सार्थक उपयोग किया जा सकता है। इसके साथ-साथ हम नए क्षेत्रों में बढ़ रहे हैं और नवीनतर शिल्पविज्ञान तथा अनुप्रयुक्त विज्ञान पर आधारित और परिष्कृत प्रक्रियाओं को काम में ला रहे हैं। इन नई आवश्यकताओं के लिए, जिनमें कुछ का तो कई वर्ष पहले अनुमान लगा लिया गया होगा, पाठ्यक्रम बनाना होगा और जनशक्ति का अनुमान लगाना होगा। कुछ क्षेत्र ये हैं। (1) इलैक्ट्रानिक्स; (2) उपकरण शिल्पविज्ञान जिसमें स्वचलन विज्ञान भी शामिल हैं; (3) रासायनिक शिल्पविज्ञान; (4) धातुविज्ञान में विशेष मिश्र धातुओं सहित विरल पदार्थों को तैयार करना; (5) वैमानिकी तथा एस्ट्रोनौटिक्स; (6) परमाणु शक्ति उत्पादन। इन नए क्षेत्रों में शिक्षण तथा अनुसंधान सुविधाओं के लिए स्थान निर्धारण करने में राष्ट्रीय स्तर पर समन्वय की आवश्यकता है। संस्थानों को पाठ्य विषयेतर क्लबों और सोसाइटियों के विकास में प्रोत्साहन देना चाहिए जिससे विद्यार्थी इनमें तथा परम्परागत क्षेत्रों में रुचि उत्पन्न कर सके और अतिरिक्त परियोजना कार्य कर सकें।

15.49. **अध्यापक**—पाठ्यचर्या तथा अध्ययन के पाठ्यक्रमों में परिवर्तन के अतिरिक्त, इंजीनियरी छात्रों का गुणात्मक स्तर सबसे अधिक शिक्षकों के गुणात्मक स्तर से प्रभावित होता है। हम पहले ही सुझाव दे चुके है कि अध्यापकों को स्वयं उद्योग में रहकर प्रायोगिक अनुभव प्राप्त करना चाहिए। ये अनुभव छुट्टियों में काम करके, परामर्श ठेकों द्वारा, उद्योग के लिए अनुसंधान करके, और अध्ययन के पाठ्यक्रमों का विकास तथा पुनरीक्षण करने के लिए उद्योग में काम करके, प्राप्त किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त शिक्षकों के ज्ञान को बढ़ाने और उसके लगातार पुनरीक्षण के लिए दूर-दूर तक ग्रीष्मकालीन संस्थानों की व्यवस्था करनी चाहिए। इसके अलावा कई वर्षों में फैले हुए पाठ्यक्रमों द्वारा काम करने वाले इन्जीनियर भी स्नातकोत्तर योग्यता प्राप्त कर सकते हैं।

15.50. सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इस व्यवसाय को अच्छे इंजीनियरों के लिए आकर्षक बनाया जाए। यह बात कुछ हद तक काम की परिस्थितियों में सुधार और अनुसंधान, उत्पादन तथा उद्योग के साथ सहयोग की सम्भावनाओं द्वारा पूरी हो सकती है। यद्यपि उद्योग के सर्वश्रेष्ठ इन्जीनियरों का मुकाबला करना सम्भव न होगा, परन्तु फिर भी बहुत से ऊंचे इंजीनियर अपनी आजीविका में काफी अवधि तक शिक्षण तथा अनुसंधान कार्य पसन्द करेंगे। इसके लिए, वेतन मान पर्याप्त होना चाहिए।

सारणी 15. 2. तकनीकी संस्थानों में अध्यापकों की कमी

राज्य का नाम	संस्थानों की संख्या	मंजूर संख्या	31-12-63 को नियुक्त अध्यापक	31-12-63 को रिक्त स्थान	रिक्त स्थानों का प्रतिशत
		इंजीनियरी कालेज			
आन्ध्र प्रदेश	8	351	266	85	24.2
असम	2	115	54	61	53.0
बिहार	6	602	378	224	37.2
गुजरात	5	223	135	88	39.4
केरल	6	406	249	157	38.6
मद्रास	9	549	382	167	30.4
महाराष्ट्र	8	296	210	86	29.5
मध्य प्रदेश	7	459	267	192	41.8
मैसूर	8	516	352	164	46.6
उड़ीसा	2	190	90	100	52.6
पंजाब	5	68	68	0	0
राजस्थान	2	188	59	129	68.6
उत्तर प्रदेश	3	281	124	157	55.9
पश्चिमी बंगाल	11	552	292	260	47.1
दिल्ली	1	12	10	2	16.7
अखिल भारतीय	83	4,808	2,936	1,872	38.9
		पोलीटैक्निक			
आन्ध्र प्रदेश	19	570	472	98	17.2
असम	4	110	48	62	56.3
बिहार	11	282	167	115	40.8
गुजरात	11	413	325	88	21.3
जम्मू और कश्मीर	1	15	9	6	40.0
केरल	14	428	322	106	24.7
मध्य प्रदेश	13	420	231	189	45.0
महाराष्ट्र	21	568	395	173	30.4
मद्रास	25	625	446	179	28.6
मैसूर	25	536	428	108	20.1
उड़ीसा	6	144	78	66	45.8
पंजाब	10	155	72	83	53.5
राजस्थान	6	114	95	19	16.7
उत्तर प्रदेश	30	489	289	200	40.9
पश्चिमी बंगाल	21	572	367	205	35.8
केन्द्र शासित प्रदेश					
मणिपुर	1	13	8	5	38.5
त्रिपुरा	1	20	8	12	60.0
पांडिचरी	1	40	30	10	25.0
हिमाचल प्रदेश	1	15	13	2	13.3
अखिल भारतीय	221	5,529	3,803	1,726	31.2

स्रोत : दिसम्बर 1963 में शिक्षा मंत्रालय द्वारा किया गया तकनीकी शिक्षा का सर्वेक्षण

15.51. इंजीनियरी कालेजों में शिक्षकों की आज कल बहुत ही ज्यादा कमी हैं। शिक्षा मंत्रालय द्वारा किए गए सर्वेक्षण से पता चलता है कि इंजीनियरी कालेजों में कुल कमी 28.9 प्रतिशत है और पोलीटेक्निक में 31.2 प्रतिशत। कालेज स्तर पर योग्य शिक्षकों की कमी दूर करने के लिए तकनीकी शिक्षकों के प्रशिक्षण का एक प्रोग्राम चालू किया गया है। प्रशिक्षण काल में युवा स्नातक अनुभवी शिक्षकों से शिक्षा ग्रहण करते हैं, कुछ शिक्षण अनुभव भी प्राप्त करते है और प्रायोगिक अनुभव के साथ साथ मास्टर की डिग्री पाने के हकदार भी हो सकते हैं। अभी तक इस कार्यक्रम में बारह संस्थान चालू किए गए हैं। इस पाठ्यक्रम की अवधि स्नातकों के लिए तीन साल, और मास्टर की डिग्री वालों के लिए एक साल है। 1965-66 में कुल 122 व्यक्तियों ने यह पाठ्यक्रम लिया। यह संख्या अपनी आवश्यकताओं को देखते हुए बहुत थोड़ी है। शिक्षकों की सप्लाई सुधारने के लिए, एक ठोस कार्यक्रम बनाने की आवश्यकता है। हमारी सिफ़ारिश है कि शिल्पविज्ञान के संस्थान स्नातक तथा स्नातकोत्तर छात्रों के लिए बड़े पैमाने पर शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाएं और इसके लिए आवश्यक धन दिया जाए। इन सभी पाठ्यक्रमों में इंजीनियरी तथा शिल्पविज्ञान से सम्बद्ध संसार की दूसरी भाषा रूसी या जर्मन, की भी पढ़ाई शामिल होना चाहिए। इन प्रोग्रामों के अतिरिक्त हमारी सिफ़ारिश है कि उच्च अध्ययन के केन्द्रों की योजना को शिल्पविज्ञान क्षेत्र में भी लागू किया जाए और चुने हुए विषयों में अखिल भारतीय आधार पर केन्द्र खोले जाएं और इनमें इंजीनियरी कालेज के शिक्षण तथा अनुसंधान स्टाफ का प्रशिक्षण हो।

15.52. उच्चतर शिक्षा के अध्याय में संकाय के निर्माण और शिक्षकों की बौद्धिक वृद्धि तथा वृत्तिक विकास के लिए अवसर दिलाने के बारे में जो कुछ भी कहा गया हैं वह उतने ही जोर से यहां भी लागू है। संस्थानों की प्रतिष्ठा बहुत कुछ उनके विभागों तथा संकायों के गुणात्मक स्तर पर निर्भर करती है। यदि संकायों को कारगर ढंग से बनाना है तो केवल वृत्तिक कारणों को छोड़कर, सरकारी कालेजों के शिक्षकों तथा प्रिंसिपलों के स्थानान्तरण की वर्तमान पद्धति बन्द की जानी चाहिए।

15.53. **साज-सामान**—प्रयोगशाला तथा वर्कशाप की पर्याप्त सुविधाओं के बगैर मौलिक विज्ञान तथा इंजीनियरी में कारगर प्रशिक्षण नहीं दिया जा सकता। क्रियाविधि विलम्ब के कारण आजकल इनके विकास में बाधा पड़ रही है। समय पर विदेशी मुद्रा दिए जाने और जरूरी साज-सामान तथा फालतू पुर्जों के, चाहे वे आयात किए गए हों या देश में तैयार किए गए हों, जमा किए जाने पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। साज-सामान खरीदने की एक ही एजेन्सी होनी चाहिए जिससे आसानी से समन्वय हो सके। कार्य प्रवाह को देखते हुए कालेजों में साज-सामान का अधिक विवेकपूर्ण स्थान निर्धारण होना चाहिए और फालतू पुर्जों तथा सामग्री को अधिक विवेकपूर्ण ढंग से रखना चाहिए। स्थान-निर्धारण तथा कार्यप्रवाह का अध्ययन छात्रों के प्रशिक्षण का भाग होना चाहिए।

15.54. कालेज तथा पोली-टेक्निक दोनों संस्थानों में उद्योग तथा रक्षा विभाग से या तो उधार या उपहार के रूप में नए तथा पुराने साज-सामान और अपने उत्पादों के नमूने लेने का प्रयत्न करना चाहिए। हमारा विचार है कि पोलीटेक्निकों को ऐसा परिष्कृत साज-सामान, जिसका साल में कुछ ही दिनों उपयोग हो सके, नहीं लेना चाहिए।

15.55. यद्यपि हमने पोलीटेक्निक तथा कालेज दोनों स्तरों पर साज-सामान तथा फालतू पुर्जों की कमी की काफी शिकायत सुनी है परन्तु हमने यह भी देखा है कि उनको डिजाइन करने तथा बनाने की ओर बहुत कम ध्यान दिया गया है। कई जगह हमने यह सुझाव दिया है कि दोनों स्तरों पर कुछ हद तक वर्कशाप अभ्यास द्वारा शैक्षिक संस्थानों में काम आने वाला साज-सामान बनाया जा सकता है। आयात किए हुए साज-सामान के नमूनों की अलग-अलग कर स्टाफ के कुशल सदस्यों की देख-रेख में प्रोटोटाइप अनुकल्प बनाए जाने चाहिए। डिजाइन, कार्यड्राइंग तथा विशिष्टताओं को वर्कशाप में दे देना चाहिए जिससे स्टाफ़ तथा विद्यार्थी प्रायोगिक प्रशिक्षण के दौरान साज-सामान बना सके। इस शुरुआत को बढ़ावा देने के लिए अतिरिक्त अनुदान और पुरस्कार दिए जाने चाहिए।

15.56. **स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम**—सन् 1947 से इस स्तर पर मिलने वाली सुविधाओं में काफी बढ़ोत्तरी हुई है सन् 1965-66 में लगभग 2,000 नामांकन थे और 41 संस्थानों में ये सुविधाएं प्राप्त थीं। इन 41 केन्द्रों में 7 में स्नातकोत्तर डिप्लोमा या पी० एच० डी०, जिनकी विद्यार्थी क्षमता 125 है, की सुविधाएं हैं। सन् 1964 में इंजीनियरी शिल्प-विज्ञान में स्नातकोत्तरों की कुल संख्या 4,000 के आसपास थी शिक्षा मंत्रालय की योजना है कि बहुत से विषयों में मास्टर की डिग्री या स्नातकोत्तर डिप्लोमा के लिए इन केन्द्रों और आई० आई० टी० का विस्तार किया जाए।

15.57. हम पहले ही सिफ़ारिश कर चुके हैं कि

स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों में प्रवेश पाने के लिए उद्योग में कम से कम एक साल का अनुभव जरूरी होना चाहिए। इसके अलावा हम इन पाठ्यक्रमों का अवधि में, जो विशेष क्षेत्रों की आवश्यकताओं के अनुसार नहीं समझते। उद्योग, अनुसंधान संस्थाओं और प्रयोगशालाओं के सहयोग से चुने हुए संस्थानों में एक या दो साल की स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम होना चाहिए जिसके बाद निम्न विषयों में डिग्री का डिप्लोमा दिया जा सकता। ये विषय हैं : औद्योगिक इंजीनियरी तथा प्रबन्ध, प्रोटोमोबाइल इंजीनियरी, द्रवगति शिल्पविज्ञान, राकेट शिल्पविज्ञान, सामग्री विज्ञान, संक्रियात्मक अनुसंधाव, स्वचलन विज्ञान, रेडार इंजीनियरी, झलाई शिल्प विज्ञान, राजमार्ग और यातायात इंजीनियरी, जल विज्ञान, समुद्री इंजीनियरी और उपकरण शिल्पविज्ञान। स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों का अव्यवस्थित गुणन रोकना चाहिए और काफी खर्च वाले एरोनटिक्स जैसे अधिक विशेषित पाठ्यक्रमों के स्थान निर्धारण के लिए राष्ट्रीय स्तर पर विचार-विमर्श होना चाहिए।

इंजीनियरी अनुसंधान का झुकाव अधिक से अधिक उद्योग की समस्याओं की तरफ होना चाहिए और स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों में जाने वालों में अधिक से अधिक संख्या उद्योग से आने वालों की होनी चाहिए और यदि आवश्यक कई साल तक फैले हुए सत्र के उनकी पढ़ाई पूरी होनी चाहिए। अनुसंधाव के अलावा, उद्योग में डिजाइन कार्य तथा वृत्तिक विकास के आधार पर भी ठाक्टर की डिग्री दी जानी चाहिए। अनुसंधान नीति के बारे में और प्रश्नों की चर्चा अध्याय सोलह में की गई है।

15.58. **व्यर्थता**—हमने पोलीटेक्निकों में बहुत अधिक "व्यर्थतादर" के बारे में पहले भी जिक्र किया है। डिग्री स्तर पर भी उतनी ही व्यर्थता दर देखी जाती है। सन् 1959 से योजना आयोग, अनुप्रयुक्त जनशक्ति अनुसंधान संस्थान तथा अन्य संस्थाओं द्वारा इस समस्या के बारे में कई अध्ययन किए गये है। अन्तिम अध्ययन से पता चलता है कि डिग्री स्तर की कुल औसत व्यर्थता दर 20 प्रतिशत है, और कुछ शाखाओं तथा अध्ययन के कुछ वर्षों में यह 44 प्रतिशत तक पहुंच जाती है। इस स्थिति के कारण कुछ तो वित्तीय कठिनाइयां हैं और कुछ छात्रावास सुविधाओं का न होना, योग्य स्टाफ की कमी और उनका शीघ्र स्थानान्तरण पर्याप्त शैक्षिक सुविधाओं की कमी और शिक्षा के माध्यम की कठिनाइयां हैं हमने और जगह कुछ सुझाव दिए हैं जिनका पूरी तरह पालन करने से भारी लागत वाले इस क्षेत्र की व्यर्थता में कमी की जा सकती है। इसके अतिरिक्त अच्छे छात्रों का चुनाव, प्रवेश के लिए न्यूनतम शैक्षिक योग्यताओं में ढील न देना और उन छात्रों के लिए जिन्हें भाषा पर अधिकार नहीं है अंग्रेजी के प्रतिकारक पाठ्यक्रमों की व्यवस्था करना, अन्य कदम है।

15.59 **लागत**—भिन्न प्रकार के संस्थानों में डिग्री स्तर पर प्रति छात्र पूरी लागत या खर्च में काफी भेद है। आइ० आइ० टी० तथा क्षेत्रीय इंजीनियरी कालेजों में विश्वविद्यालय के इंजीनियरिंग कालेजों की अपेक्षा प्रति छात्र खर्च बहुत अधिक आता है। विश्वविद्यालय के कालेजों को प्रति छात्र अनुदान मिलने का वर्तमान तरीका जिसमें उनको आई० आई० टी० की अपेक्षा कम अनुदान मिलता है न तो यथोचित ही है और न अपेक्षित ही। विश्वविद्यालय के कालेजों में मिलने वाले प्रशिक्षण का स्तर ऊंचा किया जाना चाहिए और इससे प्रति छात्र काफी खर्च बढ़ जाएगा। विश्वविद्यालय के कालेजों में सुधार करने के लिए भी काफी अधिक अनुदान की आवश्यकता होगी। आइ० आइ० टी० में भारी खर्च केवल इसी आधार पर तर्कसंगत ठहराया जा सकता है। औद्योगिक विकास के लिए अपेक्षित महत्वपूर्ण क्षेत्रों में योग्य अनुसंधान इंजीतियर निकालें और अन्य कालेजों के लिए शिक्षकों का प्रशिक्षण करें।

15.61. हमारे देखने में आया है कि कुछ राज्यों के इंजीनियरी कालेज में सीट मिलने के लिए प्रति व्यक्ति शुल्क लगा हुआ है और इस पद्धति को समाप्त करने के बारे में कोई कदम नहीं उठाया गया है। हमारी यह जोरदार सिफारिश है कि इंजीनियरी कालेज में प्रवेश के लिए इस तरह की मांग उन संस्थाओं में प्रवेश के लिए उचित विनियम बना कर बन्द कर दी जानी चाहिए।

15.62. **जनशक्ति की अपेक्षाएं और योजना**—अगले बीस वर्षों में कुल जनशक्ति अपेक्षाओं के बारे में अध्याय में विचार विमर्श किया गया है। आयोग के सामने इंजीनियरों तथा डिप्लोमा प्राप्त लोगों के तीन अनुपात थे। एक तो शिक्षा मंत्रालय द्वारा चौथी पंचवर्षीय योजना में गणना के लिए आधार के रूप में बनाया गया है। दूसरा अनुप्रयुक्त जनशक्ति अनुसंधान संस्थान द्वारा निकाला मया है। तीसरा भारतीय सांख्यिकीय अनुसंधान के योजना एकक और लन्दन के अर्थशास्त्रीय स्कूल की उच्चतर शिक्षा पर अर्थशास्त्रीय तथा सांख्यिकीय अध्ययन एकक तथा योजना आयोग के परिप्रेक्ष्य योजना विभाग के सहयोग से बनाया गया है।[1] इन अध्ययनों की

1. **विस्तृत विवरण तथा सन् 1959-66 वर्षों में डिग्री संस्थानों में भर्ती के विस्तृत आंकड़ों के लिए इस विषय पर विशेष प्रबन्ध देखिए; पूरक खंड एक, भाग एक।**

समीक्षा के बाद आयोग का विचार है कि तकनीकी क्षेत्रों की आवश्यकताओं का पूर्वानुमान लगाने में अच्छी शुरुआत की गई है। परन्तु अनुमानों में भेद, धारण की सीमा तथा आंकड़ों की अपर्याप्तता को देखते हुए श्रम बल की शैक्षिक पृष्ठभूमि के बारे में और सही अध्ययन और राष्ट्रीय, क्षेत्रीय तथा राज्य की आवश्यकताओं को देखते हुए उद्योग की प्रत्येक शाखा में विस्तृत अध्ययन की आवश्यकता है। यह सामान्य सिफ़ारिश कुशल कामगार तथा तकनीशियन स्तर उतनी ही लागू है जितनी कि इंजीनियरी स्तर पर। इन अध्ययनों के बाद नई प्रशिक्षण सुविधाएं खोलने तथा पाठ्यक्रमों में प्रवेश की समस्या अनुमानित जनशक्ति की मांग से जोड़ी जा सकती है।

15.63. हम सिफारिश करते है कि निकट भविष्य में व्यर्थता दर दूर करने और हमारे सुझाए गए विभिन्न प्रोग्रामों द्वारा दी जाने वाली शिक्षा का स्तर सुधारने की ओर ध्यान दिया जाए। इन उपायों के साथ-साथ उपलब्ध सुविधाओं को इष्टतम आकार तक फैलावा चाहिए और रोजगार में आए लोगों के लिए अंशकालिक पाठ्यक्रम खोलना चाहिए। यह सब पूरी सावधानी के साथ और इस पूरे आश्वासन से कि न्यूनतम स्तर बनाए रक्खे जाएंगे। करना चाहिए।

15.64. **दाखिले**—सन् 1965 में शिक्षा आयोम ने वृत्तिक, तकनीकी तथा व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में प्रवेश पाने वाले विद्यार्थियों की सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि का अध्ययन किया और विभिन्न सामाजिक-आर्थिक वर्गों के समक्ष उपस्थित सम्भावनाओं में कुछ भिन्नताएं पाईं। इस अध्ययन का पूरा विवरण पूरक खण्ड[1] में दिया गया है और इस विषय में हमारी सिफारिश अध्याय छह में दी गई है। यद्यपि कम आय वाले माता-पिता के बच्चों या देहाती क्षेत्रों से आने वाले छात्रों को बराबर की सुविधाएं मिलने की दिशा में अनेक प्रकार से प्रगति हो चुकी है विभिन्न संस्थानों में छात्रों के संघटन में काफी भेद पाए गए। इस प्रकार आइ० आइ० टी० में 87.2 प्रतिशत छात्र शहरी क्षेत्रों से और केवल 12.8 प्रतिशत छात्र देहाती क्षेत्रों से आते हैं। क्षेत्रीय इंजीनियरी कालेजों तथा सरकारी और गैर-सरकारी इंजीनियरी कालेजों में कुछ अच्छी हालत है। उदाहरणार्थ, इंजीनियरी कालेजों में 38.7 प्रतिशत छात्रों के माता-पिता की मासिक आय 150 रुपए से कम थी। केवल 12.6 प्रतिशत छात्रों के मात-पिता की मासिक आय 500 रुपए से अधिक थी। इस समय इस दिशा में गम्भीरतापूर्वक प्रयत्न करने की जरूरत है कि वृत्तिक शिक्षा सभी को समान रूप से उपलब्ध हो सके। इस संदर्भ में हम शुरु में एक प्रयोगात्मक दृष्टिकोण पर जोर देंगे। वृत्तिक पाठ्यक्रमों में छात्रों को चुनने का अभी तक कोई अच्छा तरीका नहीं है। इसलिए अच्छा यह रहेगा कि चुनाव के लिए एक से अधिक मार्ग या पद्धतियां अपनाई जायं और वृत्तिक कालेजों में चुने हुए छात्रों के कार्य को देखकर उनके औचित्य की तुलना की जा सकती है। समान चुनाव पद्धतियां निम्न हो सकती हैं :

(1) **विज्ञान प्रतिभा अनुसंधान परियोजमा**—इस परियोजना में चुने हुए विद्यार्थियों को, यदि वे चाहें, तो आइ० आइ० टी० में प्रवेश मिल सकता है।

(2) **विशेष प्रवेश परीक्षाएं**—जैसा कि आजकल आइ० आइ० टी० में होती हैं।

(3) **विश्वविद्यालय परीक्षाओं का बोर्ड**—विश्वविद्यालय या माध्यमिक शिक्षा बोर्ड द्वारा ली गई परीक्षाओं के आधार पर प्रत्येक राज्य के सर्वश्रेष्ठ छात्रों में से शुरु में 1 प्रतिशत (या कम) को प्रवेश देना चाहिए।

(4) **स्कूल समूह**—अध्याय छह में वर्णन किए गए स्कूल समूह के आधार पर छात्रों को चुनने की विकेन्द्रित पद्धति।

हमारी सिफ़ारिश है कि शिक्षा-मन्त्रालय द्वारा एक समिति बैठाई जाय जो इस समय पर विचार करे और व्यावसायिक तथा वृत्तिक शिक्षा के संस्थानों में चुनाव के अच्छे तरीके सुझाएं।

शिक्षा का माध्यम

15.65. माध्यसिक तथा पोलीटेक्निक स्तर पर क्षेत्रीय भाषा शिक्षा का माध्यम होना चाहिए। हम अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद के इस फैसले से सहमत हैं कि इंजीनियरी शिक्षा का माध्यम अभी अंग्रेजी ही रहना चाहिए। इंजीनियरी शिक्षा में भारतीय भाषाओं का प्रयोग विश्वविद्यालयों में स्नातकोत्तर स्तर तक वैज्ञानिक पाठ्यक्रमों में भारतीय भाषाओं के प्रयोग के साथ-साथ होना चाहिए। अंग्रेजी हमेशा महत्वपूर्ण पुस्तकालय भाषा रहेगी और इसलिए इंजीनियरी में अध्ययन व अनुसंधान करने वलि छात्रों के लिए अन्य विश्व भाषाओं की तरह

1. पूरक खंड एक, भाग एक में इस विषय पर विशेष लेख देखिए।

अंग्रेजी का भी अच्छा ज्ञान होना चाहिए। क्षेत्रीय भाषाओं में तकनीकी विषयों पर अच्छी पाठ्य-पुस्तकें तैयार करने और विदेशी पुस्तकों तथा अन्य शिक्षण सामग्री का अनुवाद करने के लिए तेजी से कार्य आवश्यक है। आंशिक रूप से यह कार्य कई देशों के सहयोग से इंजीनियरी के मानक ग्रंथों के पुनः प्रकाशन की शिक्षा मंत्रालय की योजना के अधीन हो सकती है। इस काम के लिए विश्वविद्यालय के शिक्षकों तथा उद्योगपतियों का सहयोग प्राप्त करना चाहिए। शुरू में राष्ट्रीय स्तर पर आदर्श मानक ग्रंथ तैयार किए जा सकते हैं जिनका फिर क्षेत्रीय भाषाओं में अनुवाद किया जा सकता है। केन्द्रीय संस्था को राज्यों तथा क्षेत्रीय संस्थाओं के साथ मिलकर लेखकों का चुनाव, सामग्री तैयार करना और प्रकाशन की अच्छी व्यवस्था करना चाहिए। व्यापक उपयोग के पहले इन पुस्तकों को प्रयोग के तौर पर कुछ चुने हुए संस्थानों में पढ़ाना चाहिए। यह ध्यान रखना चाहिए की सभी राष्ट्रीय भाषाओं में समान अन्तर्राष्ट्रीय शब्दावली का ही प्रयोग हो।

व्यावहारिक प्रशिक्षण योजना

15.66. सन् 1949 से पहले, उन डिग्री या डिप्लोमा प्राप्त छात्रों के लिए जिन्होंने सैंडविच या अन्तःस्थापित पाठ्यक्रम नहीं लिए थे प्रायोगिक प्रशिक्षण या शिक्षुता की बहुत कम जगह होती थी। वैज्ञानिक जनशक्ति समिति की सिफ़ारिश पर सन् 1949 में केन्द्रीय सरकार ने स्नातकों तथा डिप्लोमा प्राप्त व्यक्तियों के लिए प्रायोगिक प्रशिक्षण वृत्तिका की योजना चलाई। इस योजना के अन्तर्गत औद्योगिक संस्थाओं, सरकार के तकनीकी विभागों और अन्य संघटनों में प्रायोगिक प्रशिक्षण के लिए स्थान निर्धारित कर दिए जाते हैं जहां प्रशिक्षणार्थी शिल्पविज्ञान के अपने विशेष क्षेत्रों में सामान्य सिद्धान्तों के प्रयोग तथा तकनीक का अध्ययन करते है।

15.67. प्रशिक्षण काल में एक स्नातक को 250 रुपए और एक डिप्लोमा प्राप्त को 150 रुपए की वृत्तिका मिलती है जिससे वे खाने रहने का खर्च चला सकें। नए लोगों के लिए विभिन्न संस्थानों में आजकल 3,000 जगह उपलब्ध हैं और बहुत सी औद्योगिक संस्थाएं प्रशिक्षणार्थी के खर्चे का कुछ अंश देती है। हम इस योजना की उपयोगिता से परिचित हैं परन्तु हमारा मत है कि योजना में कुछ पुनर्गठन की आवश्यकता है। सरकार को केवल ऐसी औद्योगिक संस्थाएं या विभाग चुनना चाहिए जहां शिक्षणार्थी को ऐसा अच्छा प्रायोगिक अनुभव मिल सके जिससे मालिकों को भी कुछ लाभ हो। प्रत्येक प्रशिक्षण केन्द्र में प्रशिक्षण प्रोग्रामों की देख-रेख के लिए एक अधीक्षक की आवश्यकता हैं। उच्च शैक्षिक योग्यता वाले छात्रों को ही इस प्रशिक्षण के लिए चुनना चाहिए। यह इसलिए और भी अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि इन्हीं प्रशिक्षणार्थियों में से बहुत से लोग तकनीकी संस्थानों में शिक्षक बन कर जाते हैं।

15.68. हमारा मत है कि ये प्रशिक्षण सुविधाएं प्रतिवर्ष कम से कम 5,000 प्रशिक्षणार्थियों को उपलब्ध होना चाहिए। हम यह समझते हैं कि इन 5,000 स्थानों से भी वर्तमान आवश्यकताएं पूरी नहीं होती हैं क्योंकि वार्षिक निर्गम बहुत ही अधिक है। परन्तु बहुत से नए स्नातकों तथा डिप्लोमा प्राप्त व्यक्तियों को फौरन ही उद्योग में नौकरी मिल जाती है और उनको काम पर ही जरूरी बातों का प्रशिक्षण मिल जाता है। सरकारी क्षेत्रों में भी बहुत सी संस्थाओं ने अपने लोगों को प्रशिक्षण देने के लिए अपने प्रायोगिक प्रशिक्षण प्रोग्राम चालू कर लिए हैं। फिर भी हम यह अनुभव करते है कि सरकारी प्रशिक्षण योजना की काफी उपयोगिता है क्योंकि यह व्यवस्थित शिक्षता द्वारा प्रशिक्षण से तकनीकी क्षमता बढ़ाने पर जोर देती है।

15.69. विचार विमर्श के दौरान यह बात हमारे ध्यान में लाई गई है कि गैर-सरकारी कुछ संस्थाएं जिन्होंने अपने शिक्षता स्कल खोल रखे हैं, इनको बन्द करने का विचार कर रही हैं क्योंकि उन्होंने अपने काम भर के इंजीनियरों तथा तकनीशियनों का प्रशिक्षण पूरा कर लिया है। हमारा सुझाव हैं कि इन स्कूलों के बन्द होने की स्थिति में, केन्द्रीय सरकार को इन्हें अपने हाथ में ले लेना चाहिए। ये स्कूल प्रायः उच्च कोटि के हैं और इनके पास प्रशिक्षण के लिए भौतिक संयंत्र और साज-सामान तो है ही परन्तु इन्होंने अनुभवी स्टाफ के साथ-साथ प्रशिक्षण की कार्यपद्धति भी विकसित कर ली हैं। विकास की ऐसी अवस्था पर हमें वह उपयोगी निधि नहीं खोनी चाहिए।

उद्योग से सहयोग

15.70. यह हमारी सिफ़ारिशों का मुख्य विषय रहा है। यूनाइटेड किंगडम जैसे कुछ देशों में हाल ही में लागू औद्योगिक विकास अधिनियम के अधीन प्रशिक्षण सुविधाएं देने के लिए उद्योग में मजदूरी बिल पर $2\frac{1}{2}$ प्रतिशत लेवी लगाई जाती है। प्रशिक्षण सुविधाओं के विकास में उद्योग तथा शिक्षा अधिकारियों के बीच सहयोग की आवश्यकता पर जोर देते हुए, हम वह अनुभव करते हैं

कि प्रारम्भ में देश में इस प्रकार का विधान लागू करने की जरूरत नहीं है। उद्योग को अपनी ओर से प्रशिक्षण योजनाएं चालू करनी चाहिए और प्रशिक्षण सुविधाएं देने वाली औद्योगिक संस्थाओं के लिए उपदान की केन्द्रीय योजना चालू की जानी चाहिए। सरकारी क्षेत्र के व्यवसायों में इस काम के लिए बजट में अलग से व्यवस्था की जानी चाहिए। प्रशिक्षणार्थी लेने वाले उद्योग या उद्योगों के समूह में उपयुक्त योग्यता वाले प्रशिक्षण अधिकारियों की नियुक्ति होनी चाहिए। इन अधिकारियों के प्रशिक्षण की व्यवस्था शिक्षा मंत्रालय को करनी चाहिए। प्रशिक्षण प्रोग्रामों की समीक्षा के लिए उद्योग तथा शिक्षा संस्थानों के प्रतिनिधियों को परस्पर नियमित रूप से मिलते रहना चाहिए।

इंजीनियरी में वृत्तिक संस्थाएं

15.71. वृत्तिक समितियां जैसे इंजीनियरों का संस्थान, एरोनाटिकल सोसायटी, टूर संचार इंजीनियरों का संस्थान इंजीनियरी के छात्रों के प्रवेश के लिए परीक्षाएं लेते हैं। सन् 1928 से ही इंजीनियरों के संस्थान ने अपना काम शुरू कर दिया था और उन व्यक्तियों के लिए, जिन्हें औपचारिक शिक्षा या प्रशिक्षण नहीं मिल पाया परन्तु शिक्षता द्वारा प्राप्त ज्ञान तथा अनुभव सेवा या किसी अन्य कारण से वे इंजीनियरी पेशे में आ गए थे सहचारी सदस्यता शुरू की। ये परीक्षाएं संबद्ध पदों पर नियुक्ति के लिए सरकार द्वारा मान्य हैं। हर साल लगभग 1,000 विद्यार्थी इन परीक्षाओं में सफल होकर पूरे इंजीनियर बन जाते हैं और हर साल इनकी संख्या बढ़ती जा रही है।

15.72. हमारे देश में जहां कि शिक्षुता की पद्धति या अंशकालिक प्रशिक्षण इतना नहीं बढ़ा है (1,00,000 पूर्णकालिक विद्यार्थियों के मुकाबले 1964 में केवल 1,000 अंशकालिक पाठ्यक्रम वा विद्यार्थी थे) इन समितियों के ऊपर छात्र के प्रायोगिक अनुभव का सही मूल्यांकन करने, उसके सैद्धान्तिक ज्ञान का पता लगाने और यह निर्णय लेने, कि वह योग्य इंजीनियर के रूप में पेशे में आ सकता है या नहीं, आदि बातों की काफी जिम्मेदारी है। स्तर को बनाए रखने के लिए पर्याप्त सावधानी जरूरी है।

15.73. हमने और जगह इस बात की सिफ़ारिश की है कि अंशकालिक रूप से तकनीकी शिक्षा देने वाले विशेष संस्थानों की संख्या बढ़ाने की जरूरत है। यह अच्छा रहेगा कि इन प्रोग्रामों के साथ वृत्तिक समितियां सम्बद्ध हों और ये इन अंशकालिक छात्रों को भी सहचारी सदस्यता दे दें। इन समितियों को एक साथ मिलकर परीक्षाएं लेना चाहिए या परीक्षाओं का स्तर देखने के बाद उनको मान्यता दे देना चाहिए।

पत्राचार पाठ्यक्रम

15.74. हमने पहले इस बात पर जोर दिया है कि सभी शिक्षा संस्थानों में शाम को, दिन की छुट्टी या अंतःस्थापित आधार पर अंशकालिक पाठ्यक्रम खोले जाएं। इसके अतिरिक्त तकनीकी शिक्षा में घर बैठे पत्राचार पाठ्यक्रमों का भी काफी उपयोग किया जा सकता है। कभी-कभी यह समझा जाता है कि तकनीकी तथा व्यावसायिक क्षेत्रों में जहां प्रयोगशाला तथा वर्कशाप में काम करने की जरूरत होती है, पत्राचार पाठ्यक्रमों का अधिक उपयोग नहीं है। बहुत से देशों, जैसे आस्ट्रेलिया, संयुक्त राष्ट्र तथा रूस, में व्यावसायिक तथा तकनीकी प्रशिक्षण के लिए पत्राचार अध्ययन का बड़े पैमाने पर उपयोग हो रहा है। स्पष्ट है कि बहुत से व्यावसायिक पाठ्यक्रमों जैसे लेखातिधि और बही खाते में वर्कशाप अभ्यास की आवश्यकता नहीं है परन्तु यहां भी अवकाश के दिनों मे पढ़ाई के कुछ घण्टे शिक्षकों मे तय किए जा सकते हैं। वर्कशाप अभ्यास तथा प्रयोगशाला प्रशिक्षण वाले क्षेत्रों में संस्थान सप्ताह के अंत तथा अवकाश की अवधि में खोले जा सकते है जिससे कि पत्राचार छात्रों को ये सुविधाएं उपलब्ध हो सकें।

15.75. व्यापक रूप से प्रयोग करने के पहले पत्राचार पाठ्यक्रमों की तैयारी तथा परीक्षण पर सबसे अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए। इसके अविरिक्त आवश्यक प्रशासनिक कदम उठाने भी ज़रूरी हैं जिससे पत्राचार पाठ्यक्रम लेने वालों को अपने अध्ययन में मार्ग-दर्शन तथा पाठ्नक्रम में अपेक्षित प्रायोगिक अनुभव के लिए तकनीकी संस्थानों में जाने की सुविधाएं मिल सकें। भारत में ऐसी योजना चलाने से पहले यह वांछनीय होगा कि प्रयोग के तौर पर इसको कुछ अच्छे संस्थानों में चलाया जाए जिससे आने वाली समस्याओं का अध्ययन कर उनका हल निकाला जा सके। इस तरह के पत्राचार प्रणिक्षण में इतनी अधिक सम्भावनाएं हैं और यदि ठीक से आयोजन किया जाए तो कुल लागत इतनी कम है कि हम सिफ़ारिश करते हैं कि इस माध्यम से कई तरह के व्यावसायिक तथा तकनीकी पाठ्यक्रमों के तैयार करने के बारे में शुरुआत की जाए।

व्यावसायिक, तकनीकी और इंजीनियरी शिक्षा का प्रशासन

15.76. काफी समय से यह देखा जा रहा है कि

डिग्री स्तर पर वृत्तिक विकास के लिए यह ज़रूरी है कि व्यक्तिगत संस्थानों के लिए जिम्मेदार व्यक्तियों पर कोई बाहरी नियंत्रण न हो और उन्हें शैक्षिक स्वतन्त्रता के वातावरण में काम करने दिया जाए। क्षेत्रीय इंजीनियरी कालेजों की स्थापना से संबंधित ज्ञापन में यह स्पष्ट कर दिया गया है कि उन कालेजों को सबसे अधिक वित्तीय तथा प्रशासनिक स्वायत्तता दी जाएगी जिससे कि उनकी स्थापना और विकास तेजी से व अच्छे ढंग से हो सके। सन् 1961 के अधिनियम में शिल्पविज्ञान के संस्थानों को भी इसी प्रकार स्वायत्तता दे दी गई है। उद्योग तथा शैक्षिक संस्थानों में सहयोग बढ़ाने, दिए जाने वाले पाठ्यक्रमों में नए दृष्टिकोण का विकास करने और अच्छी कोटि के संकाय बनाने के बारे में हमारी जो सिफ़ारिशें हैं उनसे इस स्वायत्तता तथा शैक्षिक स्वतन्त्रता की पुष्टि हो जाती है। संस्थान के अध्यक्षों के पास स्टाफ की भर्ती, रोकने, तथा पदोन्नति में और शैक्षिक मामलों में काफी सत्ता होनी चाहिए। शैक्षिक उत्कर्ष के विकास में सरकारी क्रियाविधि बाधक नहीं होनी चाहिए।

15.77. डिग्री स्तर के नीचे भी, पॉलीटेक्निकों के प्रिंसिपलों को, हमारे सुझाए गए प्रोग्रामों को चालू करने, उद्योग से अपने संबंध सुधारने और उपयुक्त प्रशिक्षण सुविधाओं का विकास करने के लिए काफी स्वतन्त्रता की आवश्यकता है। शिल्पियों के स्तर पर, विशेष रूप से राज्य के विभिन्न उत्तरदायी विभागों के बीच अधिक समन्वय की आवश्यकता है।

15.78. सभी स्तरों पर, जनशक्ति आवश्यकताओं के प्रति अधिक संवेदनशील और सुविधाओं के ठीक स्थान-निर्धारण और विभिन्न पाठ्यक्रमों में भर्ती के बारे में समय पर समंजन करने के लिए पर्याप्त आयोजन मशीनरी की आवश्यकता है। यह कार्य पहले सुझाए गए व्यावसायिक तथा शैक्षिक निर्देशन के प्रोग्रामों के साथ-साथ चलाना चाहिए।

15.79. भारत में शैक्षिक विकास की युद्धोत्तर योजना (1944) में केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड ने औद्योगिक विकास के लिए अखिल भारतीय आधार पर उच्चतर अवस्थाओं के लिए तकनीकी शिक्षा के आयोजन की आवश्यकता पर बल दिया। उसने यह टिप्पणी भी की कि वर्तमान उद्योग तथा विकास की आवश्यकताओं के अनुसार शैक्षिक सुविधाओं की व्यवस्था को बढ़ावा देने, समन्वय तथा नियन्त्रण के लिए एक अखिल भारतीय सर्वोच्च संस्था की आवश्यकता है। फलस्वरूप सन् 1945 में अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद या ए. आई. सी. टी. ई. स्थापना हुई। इसको उच्चतर तकनीकी शिक्षा के लिए सारे देश की आवश्यकताओं का सर्वेक्षण और यह सलाह देने कि किन क्षेत्रों में तकनीकी संस्थात खोले जाएं, उनमें शिल्प विज्ञान के कौन-कौन से विषय रखे जाएं और उनका क्या स्तर हो, इसका काम दिया गया।

15.80. पिछले बीस वर्षों में तकनीकी शिक्षा के विकास में केन्द्रीय सरकार का महत्वपूर्ण योग रहा है। यह क्रमिक पंचवर्षीय योजनाओं के लिए देश में तकनीकी शिक्षा के विकास की समेकित योजनाएं तैयार करती है, उच्चतर शिल्पविज्ञान संस्थान, विशिष्ट पाठ्यक्रमों के संस्थान और अखिल भारतीय महत्व के संस्थानों की स्थापना करती है; वित्तीय तथा अन्य तरीकों से राज्य सरकारों, विश्वविद्यालयों और अन्य गैर-सरकारी एजेंसियों को तकनीकी संस्थाओं की स्थापना के लिए सहायता देती है और तकनीकी शिक्षा की प्रगति की देख-रेख करती है।

15.81. ए० आई० सी० टी० ई०, जिसके केंद्रीय शिक्षा मंत्री अध्यक्ष हैं, राज्य सरकारों के मंत्री जिसके सदस्य है और शिक्षा मंत्रालय का तकनीकी विभाग जिस का सचिवालय है, आजकल केन्द्र में तकनीकी शिक्षा से संबंधित प्रशासनिक केन्द्र है।

15.82. ए० आई० सी० टी० ई० अपना कार्य एक समन्वय समिति, चार क्षेत्रीय समितियों और आठ अध्ययन बोर्डों की सहायता से करती है। समन्वय समिति परिषद की कार्यकारी समिति का कार्य करती है और क्षेत्रीय समतियों तथा अध्ययन बोर्डों के काम का समन्वय करती है। क्षेत्रीय समतिग्रों के काम है तकनीकी शिक्षा की सभी अवस्थाओं के लिए सर्वेक्षण सुविधाएं प्रदान करना, जिसमें आवश्यक हो तो नए संस्थानों की स्थापना भी शामिल है, क्षेत्र के संस्थानों को सलाह तथा मार्ग-दर्शन देना, उद्योग संस्थानों के बीच सम्पर्क स्थापित करना और प्रायोगिक प्रशिक्षण की सुविधाएं प्राप्त कराने में राज्यों तथा संस्थानों की सहायता करना। अध्ययन बोर्ड परिषद को शैक्षिक पहलुओं पर सलाह देती है। ये विभिन्न पाठ्यक्रमों को चलाने के लिए आवश्यक शैक्षिक सुविधाओं का न्यूनतम स्तर निर्धारित करते है।

15.83. शिक्षा मंत्रालय का तकनीकी विभाग, कलकत्ता, बम्बई, मद्रास और कानपुर में अपने क्षेत्रीय कार्यालयों के साथ, परिषद का सचिवालय होने के अलावा, सरकारी नीतियों तथा प्रोग्रामों को कार्यान्वित भी करता है। सचिवालय के इस दोहरे कार्य से निःसंदेह तकनीकी शिक्षा के विस्तार में काफी सहायता मिली है और डिग्री

तथा डिप्लोमा स्तर पर इंजीनियरों तथा तकनीशियनों की संख्या को बढ़ाने में परिषद का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

15.84. जबकि आइ० आई० टी० जिन्हें विश्वविद्यालय का दर्जा मिला हुआ है, क्षेत्रीय इंजीनियरी कालेजों, इंजीनियरी कालेजों, पोलीटेक्निकों, तकनीकी स्कूलों और संस्थानों, सबकी स्थापना हो गई है तो जो मुख्य काम अब पूरा करना है वह है स्तर को बनाए रखना और ऊंचा उठाना, उद्योग की बदलती हुई आवश्यकताओं के हिसाब से पाठ्यक्रमों को बनाना और फिर दुबारा बनाना और देश की जनशक्ति आवश्यकताओं का भर्ती से सम्बंध जोड़ना।

15.85. ए० आई० सी० टी० ई०, जो कि एक बड़ी संस्था है और केन्द्रीय मंत्री जिसके अध्यक्ष हैं, मुश्किल से साल में एक बार बैठती है। यहां तक कि इसकी समन्वय समिति भी जल्दी नहीं बैठती और इस प्रकार जो विर्णय लिए जाते हैं वे तकनीकी न होकर प्रशासनिक अधिक होते है। सामान्य रूप से विश्वविद्यालयों को अपने अध्ययन बोर्डों द्वारा जो काम करना चाहिए वह काम परिषद के अध्ययन बोर्ड करते हैं। यद्यपि उच्चस्तरीय नीति निर्धारित करने वाली एजेंन्सी के रूप में परिषद महत्वपूर्ण काम करती है, फिर भी, हमें लगता है कि अब समय आ गया है कि उच्चतर शिल्पविज्ञानी शिक्षा को बढ़ाने तथा प्रबन्ध करने का काम स्वयं विश्वविद्यालय तथा संस्थानों को दे दिया जाना चाहिए। और वहां प्रयोग तथा नयी पद्धति अपमाने की छूट होनी चाहिए। इसलिए हमने सिफारिश की है कि विश्वविद्यालय स्तर पर तकनीकी शिक्षा के विकास तथा स्तर बनाए रखने की जिम्मेदारी वि० अ० आ० की तरह की एक संस्था को, जो इंजीनियरी शिक्षा के लिए विशेष रूप से बनाई जाए, सौंप देना चाहिए। इसे वि० अ० आ० के साथ काम करना चाहिए और दोनों में कुछ सामान्य सदस्य होने चाहिए। फिर भी केन्द्र में समन्वय की आवश्यकता होगी और इस लिए शिक्षा मंत्रालय के अन्तर्गत, मुख्य रूप से सरकारी तथा गैर-सरकारी क्षेत्रों से लिए गए वृत्तिक व्यक्तियों तथा औद्योगिक से बनी केन्द्रीय समन्वय समिति, काम कर सकती है परन्तु प्रशासनिक काम और विश्वविद्यालय स्तर पर स्तर के समन्वत का काम वि. अ. आ. प्रकार की संस्था को सौंप देना चाहिए।

15.86. तकनीकी शिक्षा के प्रशासन में इन सामान्य सिद्धान्तों को लागू करने के लिए हम लिम्नलिखित सिफारिश करते हैं :

(1) प्रथम डिग्री तथा स्नातकोत्तर स्तरों पर उच्चतम नाम लाने के लिए और इन स्तरों पर आगे विकास में राष्ट्रीय तथा वृत्तिक दिलचस्पी रखने के लिए आवश्यक मशीनरी बनाने के लिए, हमने अध्याय तेरह में वि० अ० आ० जैसी एक संस्था बनाने की सिफ़ारिश की है। इस संस्था में यू. जी. सी., वृत्तिक संस्थाओं, उद्योग तथा संबद्ध मंत्रालयों के प्रतिनिधि होने चाहिए। इस संस्था में पूर्णकालिक अध्यक्ष होने चाहिए और इसे एकमुश्त आधार पर पैसा दिया जाना चाहिए।

(2) इंजीनियरी तथा अनुसंधान की आवश्यकताओं के बारे में अल्पकालिक तथा दीर्घकालिक प्रकार की जनशक्ति अनुमानों के विस्तृत अध्ययन तथा परिष्कार के लिए, उपयुक्त संस्था को अन्य योग्य संस्थाओं जैसे योजना आयोग और अनुप्रयुक्त जनशक्ति अनुसंधान संस्थान, के साथ पूरी तरह सहयोग करना चाहिए।

(3) शिल्पविज्ञान संस्थानों ने अधिकांशतः मिली हुई शैक्षिक स्वतन्त्रता के कारण ही तकनीकी शिक्षा में महत्वपूर्ण योगदान किया है। उनके पूरी क्षमता तक विकसित होने के लिए हम सिफारिश करते हैं कि इन तथा इन्हीं जैसे अन्य संस्थानों को, अपने व्यक्तिगत राय तथा विशेषाएं रखते हुए भी, विश्वविद्यालय का पूरा दर्जा दे दिया जाय और इनको उपयुक्त संस्था की देखरेख में रख दिया जाए।

(4) राज्य में, स्कूल, पोलीटेक्निक तथा कालेज स्तर पर प्रायोगिक प्रशिक्षण में बहुत से विभाग योग देते हैं। एक राज्य से दूसरे राज्य में भिन्न पद्धति भी अपनाई जाती है। बहुत से राज्यों में, तकनीकी शिक्षा, तकनीकी शिक्षा निदेशालय की जिम्मेदारी है और इससे इसे नई प्रेरणा और बल मिला है। हम सिफ़ारिश करते हैं कि सभी राज्यों में प्रोग्रामों में समन्वय स्थापित करने और जनशक्ति तथा योजना विभागों से तथा जिला स्तर के शासल तन्त्र से सम्पर्क स्थापित करने के लिए प्रत्येक राज्य में तकनीकी शिक्षा निदेशालय खोले जाएं। उनके पास शैक्षिक संस्थानों में काम करने के लिए स्टाफ भर्ती करने की सत्ता होना चाहिए इससे राज्य लोक सेवा आयोग द्वारा भर्ती करने

में जो क्रियाविधि सम्बन्धी विलम्ब होता है। वह दूर हो जाएगा।

(5) जहां भी क्षेत्रीय इंजीनियरी कालेजों के गवर्नरों के बोर्ड हों, उनके अध्यक्षों को प्रसिद्ध शिक्षाविदों की नामावली में से नियुक्त करना चाहिए।

(6) कालेजों के प्रिंसिपलों को वित्तीय सीमा तथा नीति सम्बन्धी निर्देशन के अन्दर रहते हुए अपने संस्थानों में शैक्षिक सुविधाओं को बढ़ाने के बारे में निर्णय लेने का अधिकार होना चाहिए। प्रिंसिपल या उसके नामित को पाठ्यक्रमों और सुविधाओं के विकास से संबंधित सभी उप-समितियों का अध्यक्ष होना चाहिए और स्टाफ की नियुक्ति के बारे में उसके पास पूरे अनुशासनिक अधिकार होना चाहिए।

अनुबंध

शिक्षा के अन्य पाठ्यक्रम

उदाहरणस्वरूप सूची

स्कूल छोड़ने वालों के लिए और आगे शिक्षा की आवश्यकता के बारे में कई अध्यायों में चर्चा की गई है। हम यहां कुछ ऐसे पाठ्यक्रमों की सूची दे रहे हैं जिनको विद्यार्थी ले सकते हैं। ये पूर्णकालिक, अंशकालिक या अन्तःस्थापित आधार पर चलाए जा सकते हैं और अध्ययन की विशेष शाखाओं तथा स्थानीय आवश्यकताओं के हिसाब से इसकी अवधि तथा विषय वस्तु में हेर फेर किया जा सकता हैं।

इस सूची को बिल्कुल उदाहरण स्वरूप ही समझना चाहिए। यहां दिए हुए पाठ्यक्रम अधिकांशतः यूनाइटेड किंगडम के प्रकाशन **शिक्षा की सांख्यिकी** 1963 (भाग दो, एच० एम० एस० ओ० 1964) में से लिए गए हैं और लघु उद्योगों तथा अखिल भारतीय खादी तथा ग्रामोद्योग संगठन के प्रकाशनों के आधार पर इनको भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल बना लिया गया हैं। इनमें विशेष कौशल, कौशल के वर्ग तथा लघु-उद्योग शामिल हैं :

एक. कृषि तथा इससे सम्बद्ध पाठ्यक्रम—(1) फार्म संघटन तथा प्रबंध; (2) वायिकी; (3) फाइबर (तन्तु या रेशा) उद्योग; (4) गुड़ तथा खण्डसारी उद्योग; (5) बागबानी; (6) कुक्कुट पालन; (7) खजूर गुड़ उद्योग; (8) कातना और बुनना; (9) ग्राम तेल उद्योग।

दो. कला और डिजाइन—(1) वास्तुकला; (2) फैशन डिजाइन; (3) फर्नीचर डिजाइन; (4) औद्योगिक डिजाइन; (5) अन्दरूनी सजावट; (6) भू-दृश्य वास्तु-कला (7) मूर्तिकला; (9) टैक्सटाइल डिजाइन।

तीन. व्यवसाय प्रशासन—(1) लेखाविधि; (2) विज्ञापन; (3) बही-खाता; (4) कम्पनी तथा सचिवालय पद्धति; (5) संपदा प्रबंध; (6) अस्पताल प्रशासन; (7) बीमा; (8) औद्योगिक फोरमैनशिप; (9) पुस्तकाध्यक्षता; (10) स्थानीय शासन तथा लोक प्रशासन; (11) विपणन; (12) प्रबंधक प्रशिक्षण; (13) दफ्तर प्रबंध; (14) कार्मिक प्रबंध; (15) बिक्रीकारी; (16) दूकान सहायक; (17) दूकान की सजावट तथा प्रदर्शन; (18) निर्माणप्रबंध।

चार. खाद्य व्यापार—(1) बेकरी तथा कंफेक्शनरी; (2) चाकलेट बनाना; (3) खाद्य निरीक्षण तथा विश्लेषण; (4) खाद्य शिल्प विज्ञान; (5) दूध का पाश्चुरीकरण; प्रक्रिया तथा वितरण; और (6) गोदाम।

पांच. स्वास्थ्य तथा कल्याण—(1) शिशु परिचर्या; (2) दन्त उपचारिका; सहायक; (3) दवा बनाने वाले सहायक; (4) डिस्फेंसिंग आप्टीशियन; (5) स्वास्थ्यचर; (6) प्रसूति-विद्या; (7) चिकित्सा-प्रयोगशाला तकनीशियन; (8) औषधि विर्माण विज्ञान; (9) मनश्चिकित्सा; (10) सार्वजनिक स्वास्थ्य निरीक्षण; और (11) वाणी उपचार।

छह. गृह-अर्थशास्त्र—(1) पाकविधि शास्त्र; (2) घरेलू विषय; (3) ड्रेस मेकिंग; (4) गृह प्रबन्ध; (5) प्रसाधन कला; (6) सिलाई और कढ़ाई; (7) दर्जीगीरी और (8) पोशिश।

सात. संगीत और ड्रामा।

आठ. प्रकृति विज्ञान/जैव विज्ञान (प्रारम्भिक)—(1) **अनुप्रयुक्त जीवविज्ञान :** (क) जीवाणु विज्ञान; (ख) जीव रसायन; (ग) वनस्पति विज्ञान; (घ) शरीर क्रिया विज्ञान; (ङ) प्राणिविज्ञान; (2) **गणित :** (क) संगणना; और (ख) सांख्यिकी; (3) **अनुप्रयुक्त भौतिकी** (4) **अन्य विज्ञान :** (क) काष्ठ शिल्पविज्ञान; और (ख) पशु-चिकित्सा विज्ञान।

नौ. मुद्रण तथा पुस्तक तैयारी—(1) पुस्तक तैयारी; (2) जिल्दसाजी; (3) इलेक्ट्रो तथा स्टीरिप्रोटाइपिंग; (4) लाइन कम्पोजीशन; (5) लिथो छपाई; (6) मोनोटाइप कम्पोजीशन; (7) फोटो एंग्रेविंग; (8) फोटो लिथोग्राफी; (9) छपाई सामान्य; और (10) वेयरहाउस प्रैक्टिकल की छपाई।

दस. थोक तथा खुदरा व्यापार—(1) पुष्प प्रदर्शन; (2) पंसारी पेशा; (3) गोश्त व्यापार और गोश्त वितरण; (4) अन्य खाद्य वितरण; (5) कागज मैकेनिडाइजिंग और (6) खुदरा प्रबन्ध तथा भण्डार रक्षण।

ग्यारह. चर्म आधारित उद्योग—(1) चमड़ा कमाने का व्यवसाय; (2) चमड़े की चीजों का निर्माण; (3) जूते व चप्पल; (4) खेल-कूद की चीजों के लिए चमड़ा; और (5) पोशिश चमड़ा।

बारह. खेल-कूद की वस्तुओं का उद्योग।

तेरह. काष्ठ आधारित उद्योग—(1) नौका निर्माण (नाव बनाना); (2) बढ़ईगीरी; (3) व्यापारिक स्तर पर दरवाजे पर खिड़कियां तैयार करना; (4) फर्नीचर; (5) हथकर्घा और उसके उपांग; (6) पैंसिल बनाना; (7) पेकिंग केसेस; (8) फोटो फ्रेम; (9) रेडियो कैबिनेट; और (10) खिलौने।

चौदह. रासायनिक उद्योग—(1) जूतों की पालिश का विनिर्माण; (2) बैकेलाईट विनिर्माण; (3) कार्बन कागज और टाइपराइटर के रिबन; (4) चारा-दाना; (5) मृत्तिका शिल्प; (6) प्रसाधन सामग्री; (7) कटलरी; (8) ड्राइंग तथा फिल्टर कागज; (9) रंगाई; (10) इलेक्ट्रोप्लेटिंग; (11) फायर ब्रिक्स; (12) सब्जी तथा फल संरक्षण; (13) खाने वाले रंग; (14) मत्स्य साधन; (15) कांच के खिलौने; (16) हाट टिप गैल्वेनाइजिंग; (17) कम तनाव वाले प्रोसिलेन इंसुलेटर्स; (18) दियासलाई; (19) दर्पण (शीशे); (20) धातु की पालिश करना; (21) नाइलन के मत्स्य-नाल; (22) प्लास्टिक्स; (23) पेरिस का प्लास्टर; (24) रंजक; (25) मोटर के टायरों की रिट्रीडिंग; (26) रबड़ कैन्वस की पारेषण पेटियां; (27) रबड़ के खिलौने; (28) लाख; (29) पत्थर के मर्तबान; (30) स्लेटें; (31) लवण काचित सीवर पाइप; (32) वैज्ञानिक काच उपकरण; (33) साबुन बनाना; (34) संश्लिष्ट वस्त्र; (35) टिन प्लेटिंग; (36) वैक्यूम फ्लास्क; (37) लिखने की स्याही बनाना; (38) पैकिंग वा जलसह कागज।

पंद्रह. सिविल इंजीनियरी—(1) भवन निर्माण; (2) ईंटों का काम; (3) बढ़ईगिरी और जुड़ाई; (4) कंक्रीट शिल्पविज्ञान; (5) लागत और अनुमान; (6) ईंटों की भट्ठी का काम; (7) ग्लेजिंग; (8) ऊष्पन तथा वातायन; (9) प्लास्टर करना; (10) प्लम्बिंग और सैनीटरी इंजीनियरिंग; (11) स्ट्रक्चरल इंजीनियरी; (12) छत की स्लेटिंग और टिलिंग; (13) सर्वेक्षण; (14) नगर आयोजन; और (15) दीवार तथा फर्श पर टाइल लगाना जिसमें मोजेइक कार्य भी शामिल हैं।

सोलह. विद्युत इंजीनियरिंग—(1) घर में बिजली लगाना; (2) घरेलू विद्युत् साधित्र; (3) विद्युत् उपसाधन; (4) बिजली के पंखे; (5) विद्युत हार्न; (6) प्रतिदीप्त ट्यूब; (7) लाउड स्पीकर; (8) मोटर बाइंडिंग; (9) रेफ्रीजेरेटर सर्विसिंग; (10 रेडियो चेसिस; (11) रेडियो और टेलीविजन सर्विसिंग (12) स्टोरेज बेटरियों का विनिर्माण; और (12) छोटे ट्रांस-फार्मर।

सत्रह. इंजीनियरी सामान्य—(1) खेती के औजार; (2) लोहारगीरी; (3) बाइसिकल के भाग; (4) बिजली के पंखे; (5) बिजली के भौंपू; (6) ड्राइंग बोर्ड और उपसाधन; (7) फिटिंग्स; (8) फाउण्ड्री; (9) हाथ के औजार; (10) ऊष्मा उपचार; (11) उपकरण इंजीनियरिंग; (12) धातु का काम; (13) मोटर गाड़ियों की सर्विसिंग; (14) मोटर गाड़ियों की रंगाई; (15) यांत्रिक खिलौने; (16) नमूना बनाना; (17) पम्प और पाइप की फिटिंग; (18) पत्थर खनन; (19) स्टील का फर्नीचर; (20) सिलाई की मशीन के एटैचमेण्ट; (21) तुलना विनिर्माण; (22) धातु की चादरों का काम; (23) पानी के मीटर; और (24) बैल्डिंग (झलाई)।

अठारह. विविध—(1) मधुमक्खी-पालन; (2) सिनेमा और फिल्म स्टुडियो कार्य; (3) इबोनी हस्त-शिल्प; (4) गोबर की गैस; (5) सोने चांदी का काम; (6) बाल बनाना और सम्बद्ध सेवाएं; (7) जेवरों का विनिर्माण; (8) लाड़ी और ड्राइक्लीनिंग का काम; (9) चूने को बनाना; (10) वाद्य तंत्र; (11) निवाड़ बनाना; (12) कुम्हारगीरी; (13) तम्बाकू की प्रोसेसिंग; (14) ऊनी वस्तुएं; (15) अन्य व्यक्तिगत सेवाएं; (16) दैनिक उपयोग में आने वाली विविध वस्तुओं का विनिर्माण।

सोलहवां अध्याय

विज्ञान की शिक्षा और अनुसंधान

एक. परिचयात्मक—(1) **महत्व**; (2) **द्रुत प्रगति-दर**; (3) **विज्ञान की शिक्षा में गुणता**; (4) **विज्ञान की शिक्षा और अनुसंधान को सुदृढ़ बनाने के लिए मुख्य उपाय और कार्यक्रम**; (5) **चुनावी दृष्टिकोण**; (6) **कुछ परिभाषाएं**; (7) **नव विकास**

दो. शिक्षा तथा अनुसंधान में निवेश, और राष्ट्रीय उत्पादिता (10-13)।

तीन. विज्ञान की शिक्षा—(18) **नामांकन का विस्तार**; **शिक्षकों का प्रबन्ध**; (24) **विज्ञान की शिक्षा में क्षेत्रीय अतुसंलन**; (25) **पाठ्यचर्या सुधार**; (28) **विज्ञान विभागों में वर्कशाप**; (29) **प्रयोग-कार्य**; (30) **अन्तर-विद्या अध्ययन**; (32) **विशेष पाठ्यक्रम**; **वैज्ञानिक विषयों में अंशकालिक पाठ्यक्रम**; (35) **नवीन शैक्षिक डिग्री**; (37) **ग्रीष्मकालीन विज्ञान संस्थान**; (38) **विज्ञान की पुस्तकें**; (39) **वैज्ञानिक शब्दावली**।

चार. वैज्ञानिक अनुसंधान—(40) **वैज्ञानिक अनुसंधान और राष्ट्रीय समृद्धि**; (41) **अनुसंधान में निवेश**।

पांच. विश्वविद्यालयों में वैज्ञानिक अनुसंधान—(47) **विश्वविद्यालयों का अनुसंधान कार्य**; (49) **शैक्षिक गति-शीलता**; (50) **टोली-भावना से कार्य**; (51) **पी-एच० डी० में नामांकन के लिए योग्यता**; (52) **गणित का स्थान**; (57) **कम्प्यूटर शिल्पविज्ञान**; (59) **साज-सामान**; (62) **विज्ञान विभागों का प्रशासन**; (65) **शुद्ध और अनुपयुक्त अनुसंधान**; (71) **विश्वविद्यालय अनुसंधान पर खर्च**।

छह. विश्वविद्यालयों के बाहर आधारभूत अनुसंधान (75-76)।

सात. प्रतिभाओं का प्रवासन (77-82)

आठ. विदेशों में प्रशिक्षण के लिए शिक्षावृत्ति (83)

नौ. राष्ट्रीय विज्ञान-नीति (84-93)

दस. विज्ञान अकादमी (94-98)

ग्यारह. निष्कर्ष (99-101)

परिचयात्मक

16.01. **महत्व**—इस रिपोर्ट में शिक्षा के पुनर्गठन के लिए अपनाए गए मूलभूत उपागम और दर्शन का आधार हमारी यह दृढ़ धारणा है कि राष्ट्र की प्रगति, सुरक्षा एवं कल्याण अनिवार्य रूप से विज्ञान तथा शिल्प-विज्ञान की शिक्षा और अनुसंधान की गुणात्मकता और विस्तार में द्रुत, योजनाबद्ध और लगातार वृद्धि पर निर्भर है। विज्ञान से मानव की भौतिक परिस्थिति में आमूल परिवर्तन हुआ है। शिल्पविज्ञान में उन्नत देशों में गत सौ वर्षों के भीतर मनुष्य की औसत आयु में एक तिहाई से अधिक वृद्धि हुई है। विज्ञान सार्वभौम होता है, इसका दिया हुआ लाभ भी सर्वभाम **हो सकता** है। इससे विपुल और विस्तृत भौतिक लाभ की प्राप्ति होती है। यहां केवल दो उदाहरण दिए जा रहे हैं : कृषि का औद्यो-गीकरण और न्यूक्लीय ऊर्जा का विमोचन; पर सभ्यता को इसकी देन कहीं अधिक है। किज्ञान बुद्धि को बंधन रहित एवं समृद्धिशील बनाता है और मावबीय भावना को विकसित करता है। इसकी मूल विशेषता है, असी-मित विकास की संभावना। विज्ञान की प्रत्येक प्रगति से प्रकृति की और गहरी जानकारी प्राप्त होती है पर साथ है अनभिज्ञता की भावना भी तीव्र होती है। **प्रकृति ज्ञान-गम्य है पर है अनंत**। यष्ठ-पाषाण काल के बाद से मनुष्य के विकास और दृष्टिकोण पर वैज्ञानिक क्रांति के बराबर और किसी भी घटना का प्रभाव नहीं पड़ा है।

16.02. **द्रुत प्रगति दर**—मनुष्य जाति की संचित तथा सहयोग क्रिया विज्ञान के रूप में प्रकट होती है। अतएव इसकी प्रगति की दर अति द्रुत होती है। अनुसंधान लेखों तथा वैज्ञानिकों एवं इंजीनियरों की संख्या अथवा ऊर्जा के उपयोग जैसे अनेक सूचकों से ज्ञात होता है कि विज्ञान तथा विज्ञान से सीधे सम्बन्धित कार्यों के **दो गुने होने की अवधि** दस से पन्द्रह वर्ष तक है। यह बिल्कुल समझ में नहीं आता कि ऐसा क्यों होता है तथा क्यों दो गुने होने की अवधि पश्चिमी यूरोप में वैज्ञानिक क्रांति के प्रारम्भ से लेकर गत तीन सौ वर्षों के बीच लगभग अपरिवर्तित रही है। दो गुने होने की अवधि दस वर्ष होने के माने हैं कि अब से एक दशक बाद नवीन ज्ञान की उपलब्ध राशि पिछली कई शताब्दियों में संचित राशि के लगभग बराबर होगी। सौ वर्ष पहले विज्ञान-पत्रिकाओं की कुल संख्या के लगभग एक हजार थी। अब यह संख्या एक लाख है।[1] आशा है कि इस शताब्दी के अन्त तक यह दस लाख तक पहुंच जाएगी। इसी प्रकार वैज्ञानिकों की संख्या प्रतिवर्ष दूनी हो जाती है। इस वृद्धि-दर का मतलब है कि किसी समय भी जीवित वैज्ञानिकों की संख्या विज्ञान की आदि से होने वाले सभी वैज्ञानिकों की लगभग 90 प्रतिशत होगी। कुछ लोगों के कथानुसार विज्ञान की प्रगति इतनी द्रुत होती है कि वैज्ञानिक लेख जब तक प्रकाशित होता है तब तक पुराना हो जाता है। विद्यार्थी की पाठ्यचर्या पूर्ण होने के पहले ही उसकी पुस्तक ज्ञान में पिछड़ जाती है। स्नातक जिस दिन डिग्री हासिल करता है उसी दिन पुराना हो जाता है, और अनुसंधान का साजसामान जब तक मिल पाता है तब तक उसकी उपयोगिता कम हो जाती है। फिर प्रगतिशील विज्ञान तथा शिल्प-विज्ञान की यह विशेषता है कि आधारभूत शोध और उसके अनुप्रयोग के समय का अन्तर लगातार कम होता जाता है। सौ वर्ष पूर्व यह अन्तर कुछ दशक के बराबर था, अब यह केवल कुछ वर्ष है। हां, यह सच है कि विज्ञान की बरघातांकी प्रगति अनिश्चित काल तक नहीं चल सकती। उदाहरणार्थ, यदि वैज्ञानिकों की संख्या में आज जैसी वृद्धि की दर सौ वर्ष और रहे तो वैज्ञानिकों की संख्या संसार की जनसंख्या के करीब-करीब बराबर हो जाएगी, जो स्पष्टतः असंभव है। अतएव, देर-सबेर प्रगति की दर धीमी अवश्य पड़ जाएगी, और शायद अन्त में जन-संख्या की वृद्धि-दर के बराबर हो जाएगी। इस अवस्था में पहुंचने के प्रारम्भिक चिह्न शायद विज्ञान में समुन्नत कुछ देशों में प्रकट भी होने लगे है। उदाहरण के लिए, संयुक्त राज्य अमेरिका और इंग्लैंड जहां अनुसंधान तथा विकास पर व्यय की दर, एक दशक से अधिक काल तक, लगभग 15 प्रतिशत थी अब पर्याप्त मात्रा में कम होती जा रही है।

16.03. **विज्ञान की शिक्षा में गुणता**—विज्ञान ने शिक्षा एवं राष्ट्रीय जीवन में उसकी भूमिका को नया आयाम प्रदान किया है, पर इन सब के लिए मुख्य बात है शिक्षा की गुणता। यदि विज्ञान का अध्यापन भी निम्नकोटि का हो और उसे भलीभांति सीखा भी न जाए तो वह वस्तुतः मस्तिष्क पर बेकार जानकारी के बोझ के समान ही होगा। यही नहीं, अपितु बिगड़ कर यह एक नए अंध-विश्वास को जन्म दे सकता है। अतएव, देश में प्रत्येक तल पर विज्ञान-शिक्षा की गुणता तथा स्तर में सुधार की नितान्त आवश्यकता है। विश्वविद्यालयों में विज्ञान और अनुसंधान को सुदृढ़ करना मूल राष्ट्रीय लक्ष्य होना चाहिए। सशक्त और प्रगतिशील विश्वविद्यालय राष्ट्र के सभी अनुसंधान और विकास के आधार होते है। विज्ञान की शिक्षा और अनुसंधान में गुणात्मकता की प्राप्ति के लिए आवश्यकता है गंभीर और अनवरत प्रयास की, जनता के पूर्ण और जोरदार समर्थन की, दृढ़ता पुर्वक उत्कृष्टता की खोज की और सर्वोपरि संकल्प, परिश्रम और समर्पण की भावना की।

16.04. **विज्ञान की शिक्षा और अनुसंधान को सुदृढ़ बनाने के मुख्य उपाय और कार्यक्रम**—हम ऐसे अनेक उपायों और कार्यक्रमों का वर्णन करेंगे जो विज्ञान और अनुसंधान को सुदृढ़ बनाने के लिए आवश्यक प्रतीत होते हैं। इनमें से कुछ नीचे दिए जा रहे हैं :

— इसकी मान्यता कि अध्यापन और अनुसंधान परस्पर सहायक कार्य है। विज्ञान में उच्च-कोटि का अध्यापन अनुसंधान के लायक वातावरण में ही सम्भव है—इसके संपोषण के लिए अनुसंधान आवश्यक है।

— आधारभूत अनुसंधान अधिकांशतः विश्वविद्यालयों में होना चाहिए। अनुसंधान कर्त्ताओं को प्रशिक्षित करना उनका मुख्य उत्तरदायित्व होना चाहिए। जब तक अनिवार्य कारण न हो, आधारभूत अनुसंधान के लिए प्रयोगशालाओं को शिक्षण से अलग नहीं स्थापित करना चाहिए।

1. **"चालू रहने वाली पत्रिकाओं" की संख्या लगभग 35,000 हैं; 15 वर्ष से अधिक चलने वाली पत्रिकाओं की संख्या केवल कुछ सैकड़ा है।**

— उच्चतर शिक्षा संस्थाओं, राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं तथा औद्योगिक एवं सरकारी वैज्ञानिक संस्थापनों। संगठनों के बीच सक्रिय सहयोग को (संयुक्त अनुसंधान परियोजना, स्नानकोत्तर तथा अनुसंधान के विद्यार्थियों का प्रशिक्षण, अध्यापकों का आदान-प्रदान आदि) प्रोत्साहन।

— उन्नत अध्ययन केन्द्र—वर्तमान केन्द्रों का विकास और नवीन केन्द्रों तथा केन्द्र गुच्छों की स्थापना; ये केन्द्र अन्य संस्थाओं को दिए जाने वाले अध्यापकों और अनुसंधानियों के मुख्य स्रोत बनें।

— पाठ्यचर्याओं का आधुनीकरण, प्रयोगिक और क्षेत्र-कार्यों पर जोर।

— स्थानीय परिस्थितियों तथा उद्योगों में विज्ञान के अनुप्रयोग के अध्ययन द्वारा उसकी शिक्षा को खूब परिपुष्ट किया जाए।

— प्रयोगशालाओं और पुस्तकालयों का सुधार।

— प्रतिभावान छात्रों पर विशेष ध्यान।

— प्रयोगशाला की कर्मशाला का तथा वैज्ञानिक उपकरणों की परिचर्या, मरम्मत और गढ़ाई के साधनों का विकास, प्रयोगशाला के शिल्पियों का प्रशिक्षण।

— अन्तर-विद्या के क्षेत्रों में तथा विशेष वैज्ञानिक एवं औद्योगिक महत्व वाले विषयों में पाठ्यक्रमों का संगठन।

— गणित विषयों का अनुसंधान के विकास पर विशेष ध्यान।

— स्नातक तथा स्नातकोत्तर शिक्षा के लिए, 'उत्कृष्ट पुस्तकों' की (राष्ट्रीय स्तर पर) रचना।

— एक प्रभावशाली निकाय की स्थापना, जो सरकार को विज्ञान सम्बन्धी नीति के बारे में सलाह दे, जिसमें अनुसंधान के विभिन्न क्षेत्रों में विधि के बंटवारा मे प्राथमिकता का निर्धारण भी हो।

— वैज्ञानिकों का राष्ट्रीय संगठन (अकादेमी), अनुसंधान तथा विज्ञान एवं शिल्प-विज्ञान के प्रकाशनों और पत्रिकाओं के स्तर को ऊंचा उठाने में इसका मुख्य हाथ, विज्ञान में अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को प्रोत्साहन; और

— विज्ञान, शिल्पविज्ञान तथा उत्पादन को दृढ़ सूत्र में बांधने के लिए जोरदार और सतत प्रयत्न। उच्च स्तरीय विज्ञान की शिक्षा एवं अनुसंधान तथा मजबूत औद्योगिक एवं कृषि आधार साथ-साथ होता है, विज्ञान-शिल्प-विज्ञान उत्पादन का प्रत्येक अंग एक दूसरे के विकास को पुष्ट तथा तीव्र बनता है।

16.05. **चुनावी दृष्टिकोण**—हमारे सामने जो चुनौति है इस रिपोर्ट द्वारा अधिक से अधिक उसका आभास उसकी आवश्यकता एवं विस्तार—दिया जा सकता है और जिन मार्गों का हमें अनुसरण करना चाहिए उनको स्थूल रूप से बताया जा सकता है। वर्तमान स्थिति में आमूल सुधार करने के लिए सबसे अधिक आवश्यकता है दृढ़ **चुनावी दृष्टिकोण** की और उत्कृष्टता के ऐसे केन्द्रों या शिविरों की स्थापना के गम्भीर प्रयत्न की जो और उत्कृष्टता-केन्द्रों के गति निर्धारक बने और उनके प्रयनक के रूप में कार्य करे। इसका तात्पर्य है कि संस्थाओं की सहायता की मात्रा को निर्धारित करने में राष्ट्रीय आवश्यकता और उनके कार्य के स्तर तथा उन्नति एवं विकास की क्षमता और संभावयता को ध्यान में रखा जाय। गरीब या अमीर कोई भी देश, अपने साधनों को ऐसी संस्थाओं पर बर्बाद्र नहीं कर सकता जो अपेक्षाकृत निम्न कोटि की हों और वैसी ही रहने के लिए कटिबद्ध हों। जब साधन अल्प यों और समस्याएं गहन तब केन्द्रित यत्न और चुनावी नीति और भी आवश्यक हो जाती है। हां इस नीति को यंत्रवत नहीं वरन् सोच-विचार कर काम में लाना चाहिए।

16.06. **कुछ परिभाषाएं**—इस अध्याय में, और साधारणतया सारी रिपोर्ट में, हमने विज्ञान और वैज्ञानिक शब्दों का प्रयोग दो अर्थों, **व्यापक** तथा **सीमित**, में किया है। ('वैज्ञानिक' शब्द का पहले पहल प्रयोग ट्रिनिटी कालेज कैम्बिज के मास्टर, विलियम व्हेवेल के द्वारा 1840 में किया गया) व्यापक अर्थ में, 'विज्ञान' के अन्तर्गत गणित तथा आधारभूत वैज्ञानिक विषयों से लेकर धातुकर्म, इंजीनियरी और कृषि[1] तक, शुद्ध और अनुप्रयुक्त वैज्ञानिक जानकारी का सम्पूर्ण विस्तार आ जाता है। अपने सीमित अर्थ में विज्ञान

1. **सोवियत संघ, रूस और यूरोप महाद्वीप में विज्ञान का प्रयोग अति विस्तृत अर्थ में होता है। इसके अन्तर्गत अर्थशास्त्र, सामाजिक विज्ञान तथा उनसे संबंधित विषय भी आ जाते हैं।**

केवल शुद्ध और आधारभूत वैज्ञानिक विषयों का, यथा भौतिकी, रसायन, जीव-विज्ञान, जीव-रसायन और भू-विज्ञान, द्योतक होता है। आधारभूत वैज्ञानिक विषयों का मुख्य उद्देश्य मूलभूत नियमों एवं संक्रियाओं का खोजना तथा प्रकृति के कार्य की जानकारी प्राप्त करना होता है। अनुप्रयुक्त विज्ञान में मानव की विविध भौतिक और सांस्कृतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए, आधारभूत विज्ञानों के अनुप्रयोग का विवेचन होता है। इसके अन्तर्गत सभी इंजिनियरी और शिल्पविज्ञान से सम्बन्धित विषय आ जाते हैं। अनुसंधान शब्द में 'शुद्ध अनुसंधान' और 'अनुप्रयुक्त अनुसंधान' दोनों ही निहित हैं। शुद्ध अनुसंधान और आधारभूत अनुसंधान समान अर्थों में प्रयोग किया जाता है। अनुप्रयुक्त अनुसंधान के अन्तर्गत 'विकास', जो अनुप्रयुक्त अनुसंधान और उत्पादन की जोड़ने की कड़ी है, नहीं आता। हमारे द्वारा प्रयुक्त अनुसंधान एवं विकास (**अ और वि**) शब्दों में आदिप्ररूपों[1] (प्रोटोटाइप) की डिजाइन करने और परखने समेत, अनुसंधान और विकास कार्यों का सम्पूर्ण विस्तार सम्मिलित हैं।

16.07. इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि शुद्ध विज्ञान एवं अनुप्रयुक्त विज्ञान, तथा आधारभूत एवं अनुप्रयुक्त अनुसंधान के बीच का अन्तर और इसी प्रकार अनुसंधान और विकास का अन्तर जो कुछ दशक पहले सुस्पष्ट था अब क्रमशः धुँधला होता जा रहा है। कुछ क्षेत्रों में तो इनमें विभेद करना भी कठिन है। सच पूछिए तो समसामयिक विज्ञान की महती शक्ति आधारभूत और अनुप्रयुक्त विज्ञानों[2] की परस्पर क्रिया और मिलन में ही है।

16.08. **नव विकास**—आगामी एक या दो दशकों में हम सचमुच देखेंगे कि आनुवंशिक कोड़ का विवरण ज्ञात हो गया है। इसके साथ ही वंशानुगत बीमारियों की चिकित्सा में द्रुत प्रगति और अन्त में मनुष्य के विकास की प्रगति पर आंशिक नियंत्रण भी हो गया है। आणविक न्यूरोलांजी में प्रगति और मस्तिष्क के प्रवर्धन की जानकारी द्वारा मनुष्य की बौद्धिक अवस्था को प्रभावित और परिवर्तित करने का साधन प्राप्त किया जा सकेगा। मानव को लेकर उड़ान न केवल चन्द्रमा पर वरन् सम्भवतः अन्य ग्रहों पर भी की जा सकेगी। पृथ्वी के बाहर जीव (कौन जाने बुद्धिमान जीव ?) की खोज जब हो जाएगी तब इसका मनुष्य के विकास और उसकी भावी नियति पर अत्यन्त गम्भीर परिणाम होगा। यह लगभग निश्चित है कि आगामी दश वर्षों में संचार-उपग्रह संसार में सर्वत्र घरेलू टेलीविजनग्राही यंत्रों में चित्र-प्रसारित कर सकेंगे, और इस प्रकार शिक्षा की क्रांतिकारी सम्भावना उन्मुक्त करेंगे। कम्प्यूटर शिल्पविज्ञान की प्रगति, साइबरनेटिक्स और स्वचलन द्वारा, मनुष्य के जीवन के कई पहलुओं में क्रांति आ सकती है। **क्वेसरों** का अध्ययन ऊर्जा उत्पादन के विश्वासातीत प्रक्रम पर प्रकाश डाल सकता है और विश्व की उत्पत्ति के संबंध में नवीन सूत्रों का पता दे सकता है। उच्च-ऊर्जा भौतिकी में नई चीजों द्वारा उप-परमाणविक कण के स्वरूप के बारे बिल्कुल नयी जानकारी प्राप्त हो सकती है। गणित के अभिगृहीतीय (एक्सियोमेटिक) आधारों पर गोडेल के युगांतरकारी कार्य द्वारा गणितीय विचार और तर्क में जो अंतर्निहित सीमा ज्ञात हुई है, उसका दार्शनिक परिणाम अति गम्भीर है।

16.09. इसमें सन्देह नहीं कि इनमें से अनेक तथा अन्य उत्तेजना पूर्ण क्षेत्रों में भारतवर्ष के योगदान का कुछ महत्व होगा, परन्तु यह निश्चित है कि भावी विज्ञान का स्वरूप, उसकी उत्कृष्टता तथा परिमाण आगामी दशकों में मुख्य रूप से उन देशों के कार्य से निर्धारित होंगे जो आम विज्ञान में अग्रणी हैं। इस साधारण तथ्य का परिणाम हमारे लिए अति गंभीर है। इसका तात्पर्य हुआ कि हमारे विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम, विशेषतया स्नातकोत्तर स्तर पर, और अनुसंधान का कार्य अधिकतर देश के बाहर वाले विकास द्वारा निर्मित तथा निर्धारित होंगे। इससे हमारी शिक्षा पद्धति में अंग्रेजी तथा संसार के अन्य भाषाओं के अध्ययन का महत्व पुष्ट होता है। हम संसार में विज्ञान तथा शिल्पविज्ञान के शीघ्रता से बढ़ते हुए भंडार से पूरा पूरा लाभ उठा सकें, इसलिए पुस्तकालय साधनों के शीघ्रतापूर्वक और बड़े पैमाने पर बढ़ाने को उच्च प्राथमिकता देना भी महत्वपूर्ण है। इसके माने हैं कि सचमुच प्रतिभावान व्यक्तियों को पहचानने में और उनकी प्रकृतिदत्त योग्यता और सृजनात्मक क्षमता को प्रस्फुटित करने में सभी संभव

---

1. 'यूनाइटेड किंगडम में अनुसंधान एवं विकास की अवस्था का नियंत्रण' की समिति (अध्यक्ष, सर सॉली जुकरमैन) की रिपोर्ट (1961) ने अ एवं वि अक्षरों के अन्तर्गत पांच किस्मों के कार्यों का अलग-अलग वर्णन किया है। ये हैं : शुद्ध आधारभूत अनुसंधान, वस्तुनिष्ठ आधारभूत अनुसंधान, अनुप्रयुक्त (परियोजना) अनुसंधान, अनुप्रयुक्त (संक्रियात्मक) अनुसंधान एवं विकास।

2. होमी जहांगीर भाभा, जे० डी० काक्रापट और पी० ए० एम० डिराक तीन चोटी के भौतिकविदों की प्रथम डिग्री इंजीनियरी की थी।

प्रोत्साहन और अवसर देने में कोई और कसर न उठा रखी जाए।

शिक्षा तथा अनुसंधान में निवेश और राष्ट्रीय उत्पादकता

16.10. एक क्षण के लिए आइए हम उच्चतर शिक्षा पर भारतवर्ष और उद्योग में उन्नत देशों के व्यय की तुलना करें। एक रोचक सांख्यिकीय तथ्य यह है कि प्रति विद्यार्थी प्रतिवर्ष उच्चतर शिक्षा पर व्यय लगभग प्रत्येक देश में, उसी कोटि का है जितना कुल राष्ट्रीय उत्पाद (कु० रा० उ०—GNP) प्रतिव्यक्ति[1]। उदाहरण के लिए, हमारे देश में प्रति विद्यार्थी प्रतिवर्ष व्यय इंगलैंड (यू० के०) में इसी व्यय के तीसवें भाग के बराबर है। वैज्ञानिक औजारों और उपकरणों की कीमत दोनों देशों में लगभग बराबर है। इसके अलावा उच्च अध्ययन और अनुसंधान के लिए आवश्यक, विशिष्ट उपकरण भारतवर्ष को अधिकतर आयात करना पड़ता है। इसके लिए विदेशी मुद्रा की आवश्यकता होती है, जिसकी बहुत कमी है। एक प्रकार से यह अनिवार्य है कि भारतीय विद्यार्थी को उपलब्ध प्रयोगशाला के साजसामानों तथा अन्य आधारभूत साधनों का (पुस्तकों और पत्रिकाओं को सम्मिलित करके) औसत स्तर उद्योग प्रधान देशों के विद्यार्थियों को उपलब्ध साधनों से अत्यन्त निम्न हो। यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि विज्ञान में उन्नत देशों में स्नातक तथा स्नातकोत्तर स्तर के शुद्ध विज्ञान के विद्यार्थी पर व्यय लगभग उतना ही पड़ता है जितना इंजीनियरी और कृषि के विद्यार्थी पर। 1663-64 में इंगलैंड (यू० के०) के विश्वविद्यालयों में प्रति विद्यार्थी खर्च था कला 501 पौंड, सामाजिक विज्ञान 465 पौंड, शुद्ध विज्ञान 757 पौंड, अनुप्रयुक्त विज्ञान 675 पौंड, कृषि 916 पौंड, और चिकित्सा 1078[2] पौंड, संयुक्त राज्य अमेरिका में यह खर्च संकाय के हिसाब से है : मानव शास्त्र 3,200 डालर, शिक्षा 3,300 डालर, सामाजिक विज्ञान 3,250 डालर, जीव विज्ञान 3,374 डालर, भौतिक विज्ञान एवं गणित 3,380 डालर, इंजीनियरी 4,020[3] डालर। भारतवर्ष में प्रति विद्यार्थी औसत खर्च शुद्ध विज्ञान में इंजीनियरी की अपेक्षा बहुत कम है। इसका कारण यह है कि साधारणतया हमारी प्रयोगशालाओं में बहुत ही कम साज-सामान है और प्रायोगिक कार्य तथा निदर्शन प्रयोगों[4] पर बहुत कम ध्यान दिया जाता है।

16.11. उद्योग प्रधान देशों में प्रति व्यक्ति कुल राष्ट्रीय उत्पाद (कु० रा० उ०) अति उच्च है अतएव वे शिक्षा और अनुसंधान में संसार के अर्ध औद्योगिक भागों की अपेक्षा कई कोटि उच्च पैमाने पर निवेश कर सकते हैं, और करते[5] हैं। अत्यधिक औद्योगिक देशों में अधिकांश वैज्ञानिकों तथा इंजीनियरों की शिक्षा एवं प्रशिक्षण अर्ध औद्योगिक देशों की अपेक्षा अति उच्च स्तर की होनी चाहिए। हमारी राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था की वर्तमान स्थिति में वैज्ञानिकों तथा इंजीनियरों के अत्यधिक भाग की शिक्षा अधिक औद्योगिक देशों के स्तर की नहीं हो सकती। परन्तु जहां तक स्नातकोत्तर अध्ययन एवं अनुसंधान और अपनी वृत्तियों में अग्रणी होने वाले लोगों के प्रशिक्षण का सम्बन्ध है, उनकी उपलब्धि का स्तर तुलना में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के समकक्ष होना चाहिए। ऐसा करने का एक ही तरीका है, उन्नत अध्ययन एवं अनुसंधान के विषयों का अत्यन्त सावधानी से चुनाव, इन पाठ्यक्रमों के लिए योग्यतम विद्यार्थियों का चुनाव, और कुछ उत्कृष्टता केन्द्रों की

1. यह सम्बन्ध अफ्रीका के उन देशों पर लागू नहीं होता जो उच्चतर शिक्षा पर प्रति विद्यार्थी उतना ही खर्च करते हैं जितना अति उद्योगीकृत देश, पर उच्चतर शिक्षा में जिनका नामांकन अनुपात से बहुत कम होता है।

2. स्रोत : प्राक्कलन समिति की पांचवी रिपोर्ट — विश्वविद्यालयों और कालेजों को अनुदान (युनाइटेड किंगडम जुलाई, 1965।)

3. राष्ट्रपति की विज्ञान सलाहकार समिति की विज्ञान एवं शिल्पविज्ञान में जनशक्ति की आवश्यकता की पूर्ति पर रिपोर्ट।

4. स्मरण रहे कि भारतीय शिक्षा आयोग (1882) की रिपोर्ट के अनुसार सरकारी कालेजों में उस समय प्रति विद्यार्थी औसत खर्च लगभग 350 रुपए प्रतिवर्ष था, जो वर्तमान मूल्यों के स्तर को ध्यान में रखकर, आजकल के खर्च से दश गुना अधिक है। प्रति विद्यार्थी खर्च की इस कमी की तुलना में उच्चतर शिक्षा में नामांकन लगभग हजार गुना बढ़ गया है।

5. उदाहरणार्थ, 1900 में संयुक्त राज्य में उच्चतर शिक्षा पर खर्च कुल राष्ट्रीय उत्पाद का 0.26 प्रतिशत था। 1960 में यह बढ़कर 1.23 प्रतिशत हो गया। उच्चतर शिक्षा पर प्रतिवर्ष प्रति छात्र व्यय जो 1930 में 574 था बढ़कर 1960 में 1,747 हो गया (आजकल की कीमतों में)। बढ़े हुए व्यय का कारण है अध्यापकों की वेतन-वृद्धि, अध्यापक-छात्र का उच्च अनुपात और साधारण साधनों में सुधार (एफ० मैचलप, 'प्रोडक्शन एण्ड डिस्ट्रिब्यूशन आफ नालेज इन यू० एस०', प्रिंस्टन विश्वविद्यालय, 1962, पृ० 78)।

स्थापना कर उनमें से प्रत्येक को एक क्रांतिक मात्रा से अधिक साधन देना। ये केन्द्र देश में वैज्ञानिक कार्य के साधारण स्तर को निर्धारित करेंगे और उत्कृष्टता के प्रवर्द्धक केन्द्रों के रूप में कार्य करेंगे।

16.12. राष्ट्रीय उत्पादकता और शिक्षा में निवेश के सम्बन्ध का कुछ और विचार करना ठीक होगा। इस अध्ययय के बाद में दी गई सारणी 16.7 देखने से प्रकट होगा कि इनमें घनिष्ट अन्योन्य सम्बन्ध अथवा युग्मन है। पृष्ठ 453 तथा 454 पर दिए गए चार्ट से यह और भी स्पष्ट हो जाता है। यह सम्बन्ध इस बात का द्योतक है कि आधुनिक संसार अनिवार्यतः विज्ञान तथा शिल्पविज्ञान पर आधारित है। परन्तु इसे साधारण कार्य कारण संबंध नहीं समझ लेना चाहिए। कोई देश शिक्षा एवं अनुसंधान में अधिक धन लगाने मात्र से स्वतः समृद्ध नहीं हो जाएगा, सच पूछिए तो इसका प्रभाव उल्टा भी हो सकता है। इस सम्बन्ध का तात्पर्य इतना ही है कि राष्ट्रीय आवश्यकता से प्रेरित उचित प्रकार की विज्ञान की शिक्षा एवं अनुसंधान उत्पादकता की वृद्धि में सहायक होंगे। उत्पादकता की वृद्धि से विज्ञान एवं अनुसंधान के लिए अधिक साधन प्राप्त होगा। इस प्रकार विज्ञान, शिल्पविज्ञान तथा उत्पादकता का (वि० शि० उ०) ऊंचा उठता हुआ वातचक्र उत्पन्न होगा।

16.13 यह दुर्भाग्य की बात है कि भारतवर्ष आज प्रति व्यक्ति कुल राष्ट्रीय उत्पाद के सोपान के ही निचले छोर पर नहीं वरन शिक्षा एवं अनुसंधान पर प्रति व्यक्ति व्यय के सोपान के भी निचले ओर पर है। भारतवर्ष में प्राथमिक से उच्चतर शिक्षा तक, तथा अनुसंधान एवं विकास पर प्रति व्यक्ति प्रतिवर्ष 15 रुपया खर्च होता है, यह कुल राष्ट्रीय उत्पाद का 3 प्रतिशत है। संयुक्त राज्य अमेरिका में कुल राष्ट्रीय उत्पाद के 10 प्रतिशत की दर से समकक्ष राशि 2,000 रुपया है। शिक्षा एवं अनुसंधान पर प्रति व्यक्ति भारतीय खर्च अत्यन्त आशावादी अनुमान से बढ़ते बढ़ते इस शताब्दी के अन्त तक 200 रु० प्रतिवर्ष (कीमतों के स्थिर रहने पर) हो सकता है। यह इतना ऊंचा होगा कि उस समय के प्रति व्यक्ति कुल राष्ट्रीय उत्पाद के दस प्रतिशत के लगभग पहुंचेगा। समकक्ष राशि संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में 10,000 रुपये से भी अधिक हो सकती है। इस प्रकार आज का बड़ा अन्तर आगामी दर्शकों में और अधिक बड़ा हो जाएगा। उस स्थिति में निहित गम्भीर परिणामों को यदि हम पहले से न जान सकें तब भी हमारे लिए मिलने वाली सीख स्पष्ट है। हमें इस बात का अधिक से अधिक प्रयत्न करना चाहिए कि अपनी वैज्ञानिक जनशक्ति के उपयोग में अति कुशल हों—यहां तक कि उद्योग में विकसित देशों से भी अधिक कुशल हों। योग्य वैज्ञानिक तथा शिल्पवैज्ञानिक जो उपलब्ध होते है उनकी संख्या सदैव सीमित होने के कारण वैकल्पिक प्रोग्रामों और कार्यक्रमों में कभी-कभी अप्रिय चुनाव करना पड़ता है। इसको टाला नहीं जा सकता—यह परिस्थिति में ही निहित है। संतोष की गुंजाइश नहीं है, पर साथ ही हमें डरने या हताश होने की जरूरत भी नहीं। द्रुत परिवर्तन और आमूल नवप्रवर्तन के युग में इस बात की चरम आवश्यकता है कि हम शिक्षा और अनुसंधान में अपनी प्राथमिकता और प्रोग्रामों का निर्धारण ठोस 'देशी' विचारों और आवश्यकताओं के आधार पर करें और दूसरे देशों के, चाहे वे अति 'उन्नत' हों, फैशन की नकल न करें। उदाहरण के लिए, यदि हम लक्ष्य बनाये कि हमारे यहां भी भौतिकी में उतने ही डाक्टर बनाये जाएं जितने आजकल संयुक्त राज्य बन रहे है; तब यह बेवकूफी होगी, केवल इसलिए नहीं कि दृष्टि भविष्य में इसकी उपलब्धी असम्भव है, बल्कि इस कारण भी कि यह हमारी आवश्यकता और अभिलाषा के अनुपयुक्त है।[1]

16.14. यदि विज्ञान की साधना पूर्ण ओज और उत्साह से करना है और इसे भारतीय पुनर्जागण में एक सबल शक्ति का रूप धारण करना है, तब इसको अपना "पोषक तत्व" हमारे सांस्कृतिक और अध्यात्मिक दाय से बचकर निकले के बजाय उसी से प्राप्त करना होगा। विज्ञान को हमारे सांस्कृतिक ताने-बाने का अभिन्न अंश होना चाहिए। यह असम्भव हैं कि जब विज्ञान देश की भूमि में जड़ पकड़ ले और बाहरी पौधा न बना रहे, सब इसके

1. **संयुक्त राज्य अमेरिका में विज्ञान और शिल्पविज्ञान में आजकल डाक्टर बनने वालों की संख्या हमारे देश में एम० एस० सी० करने वालों से अधिक है। संयुक्त राज्य में भौतिकी में नवीन पी-एच० डी० प्राप्त लोगों की संख्या** 1963 **में लगभग** 700 **थी और पी-एच० डी० भौतिकी विदों की कुल संख्या** 7,630 **आधारभूत भौतिकी के लिए कुछ सहायता के रूप में** 1963 **में** 50 **करोड़ थी। एन० ए० एस० पैनल रिपोर्ट (फिजिक्स : सर्वे एण्ड आउटलुक,** 1966) **में आग्रह किया गया है कि इसको बढ़ाकर** 1969 **तक** 1.1 **अरब डालर कर दिया जाए। संयुक्त राज्य में विज्ञान और इंजीनियरी में डाक्टर की उपाधि से विभूषित लोगों की संख्या** 1920 **में** 400 **थी;** 1960 **में यह बढ़कर** 6,600 **हो गई और** 1970 **में आशा है** 13,000 **से अधिक हो जाएगी। इसका तात्पर्य हुआ प्रति बारह वर्ष में दो गुना होना।**

विकास के स्वरूप पर उन बातों का स्पष्ट प्रभाव पड़ेगा जो हमारे आध्यात्मिक विचार और सभ्यता की विशेषता रही है। विज्ञान के फैशन को कुछ हम भी बनाएं, जिससे भारतीय आचार और मानदंड प्रतिबम्बित हों। यह याद रखना चाहिए कि विचार और सृजनात्मकता में पूर्व चेतन का भी काफी अंश होता है। पश्चिमी दुनियां (वरन उत्तरी दुनिया) में जिस प्रकार विज्ञान का विकास हुआ है वह सर्वथा ठीक नहीं है। ऐसे भी लोग है जो विज्ञान की उन्नति और सारी मानव जाति के कल्याण एवं सच्चे हितों के बीच असंतुलन के कारण गम्भीर रूप से क्षुब्ध हैं। ज्ञान और प्रज्ञा, शक्ति और दया का संतुलन बिगड़ गया है। हमारे काल के सर्वश्रेष्ठ भौतिक विज्ञानियों में से एक मैक्स बार्न ने इस भय और संशय को इस प्रकार प्रकट किया है: "हालांकि मुझे विज्ञान से प्रेम है, पर ऐसा लगता है कि इतिहास तथा परम्परा के यह इतना विरुद्ध है कि हमारी सभ्यता में खप नहीं सकता। जो भयावह राजनीतिक तथा सैनिक बातें तथा नैतिकता का पूर्ण पतन मैंने अपने जीवन में देखा है वह क्षणिक सामाजिक कमजोरी का लक्षण नहीं हो सकता, बल्कि विज्ञान की प्रगति, जो स्वयं में मानव की उत्कृष्ट बौद्धिक उपलब्धि हैं, का ही फल है। यदि यही बात हो, तो मनुष्य का स्वतन्त्र, उत्तरदायी व्यक्ति के रूप में अन्त हो जाएगा यदि मानव जाति का उन्मूलन न्यूक्लीय युद्ध द्वारा न भी हो पाया तो यह अधःपतित होकर मूर्ख, गूंगे पशु-समूह के समान उन तानाशाही के अत्याचारों को भोगेगी, जो मशीनों और इलेक्ट्रानीय कम्प्यूटरों द्वारा उन पर शासन करते हैं।"[1]

विज्ञान की शिक्षा

16.15. विज्ञान का विस्तार भयानक गति से हो रहा है। पर अभी कुछ काल पहले तक शिक्षा में उन्नत देशों में भी विज्ञान और गणित के अध्ययन को विकसित करने या उसमें नूतन पद्धति अपनाने की ओर ध्यान नहीं दिया गया था। विशेषतया स्कूल और कालेज का गणित विषय-वस्तु, पद्धति एवं दृष्टिकोण में भी बिलकुल ही पुराने ढर्रे का है। गत सौ या अधिक वर्षों में हुई गम्भीर खोजों का इसमें समावेश नहीं हुआ है। पिछले दशक में संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रीय विज्ञान प्रतिष्ठान तथा सोवियत रूस की विज्ञान एवं शिक्षा शास्त्रीय अकादेमी ने विज्ञान एवं गणित के अध्यापन में क्रान्ति लाकर मार्ग प्रदर्शन का कार्य किया है। इसमें नफील्ड विज्ञान फांउडेशन ने स्कूल स्तर के लिए पाठ्यचर्या की सामग्री विकसित करके महत्वपूर्ण योगदान दिया है। अब यह हलचल और अनेक देशों में फैल रही है। सौभाग्य से स्कूल और कालेज में विज्ञान तथा गणित के विकास के सभी प्रक्रमों में विश्वविद्यालय के शिक्षक एवं अनुसंधानकर्ता सीधे ही भाग ले रहे हैं। उदाहरण के लिए (मैसाचुसेट्स शिल्प-विज्ञान संस्थान) बोस्टन के प्रोफेसर जेरल्ड आर० जखारियास का इस क्षेत्र में योगदान सदा स्मरणीय रहेगा।

16.16. इस प्रसंग में एक महत्वपूर्ण बात यह है कि विज्ञान अधिकाधिक जटिल और अमूर्त होता जा रहा है। भौतिकी और गणित में नए विकास के कारण प्रकृति की अवधारणा और अमूर्तीकरण के लिए बिलकुल नवीन समस्याएं पैदा हो गई हैं। सैद्धान्तिक भौतिकी में इन दिनों जो प्रगति हुई है उसके संदर्भ में पी० ए० एम० डिराक का कथन है: "उसके (प्रकृति के) मूलभूत नियमों की जो तस्वीर हमारे दिमाग में है उसके अनुसार सीधे संसार का नियन्त्रण नहीं होता वरन् वे एक ऐसे उपस्तर का नियन्त्रण करते हैं जिसकी तस्वीर हमारे दिमाग में बिना अप्रासंगिक बातों के लाए नहीं बन सकती। दार्शनिक दृष्टिकोण से यह अति संतोषजनक है क्योंकि इससे इस बात की अधिकाधिक मान्यता प्रकट होती है कि निरीक्षण में परिलक्षित नियमितता स्वयं निरीक्षक द्वारा लाई गई है और प्रकृति के कार्यों में मनमानापन नहीं है, पर इससे भौतिकी के विद्यार्थी के लिए समझना और कठिन हो जाता है। जिस प्रकार संसार में आने पर प्रत्येक व्यक्ति को मूलभूत अवधारणाओं (जैसे निकटता, तादात्म) को जानना आवश्यक है, उसी प्रकार भौतिकी की नवीन अवधारणाएं अपने गुणधर्म एवं उपयोग से परिचित होने पर ही भली भांति जानी जा सके।"

16.17. ये सभी बातें विज्ञान की शिक्षा में प्रारम्भ से ही आधारभूत विषयों और वैज्ञानिक अमूर्तीकरण की प्रक्रिया को भली भांति समझने और सृजनात्मक विचार करने की आवश्यकता पर जोर देती है। इस प्रारम्भिक शिक्षा द्वारा छात्रों में शोध और सृजन करने की भावना और इस बात की चेतना उत्पन्न करनी चाहिए कि विज्ञान मुक्त-द्वार है और आज मनुष्य का सबसे बड़ा बौद्धिक उपक्रम है इससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि इस उपक्रम का स्रोत मनुष्य की उच्चतम आकांक्षा और गहनतम प्रेरणा है। यह स्पर्धा से अधिक सहयोग पर जोर देता है। विज्ञान का अध्यापन प्रत्येक स्तर पर सृजनशील होना चाहिए। इसका यह भी तात्पर्य है कि छात्रों में एकाग्रता और मनन करने का अभ्यास विकसित करना

1. बुलेटिन आफ द एटामिक साइंटिस्ट्स, फरवरी, 1966।

प्रति व्यक्ति कुल राष्ट्रीय उत्पाद से संबद्ध अनुसंधान और विकास-व्यय

1961 (या सबसे निकट के वर्ष) की कीमतों की दर से

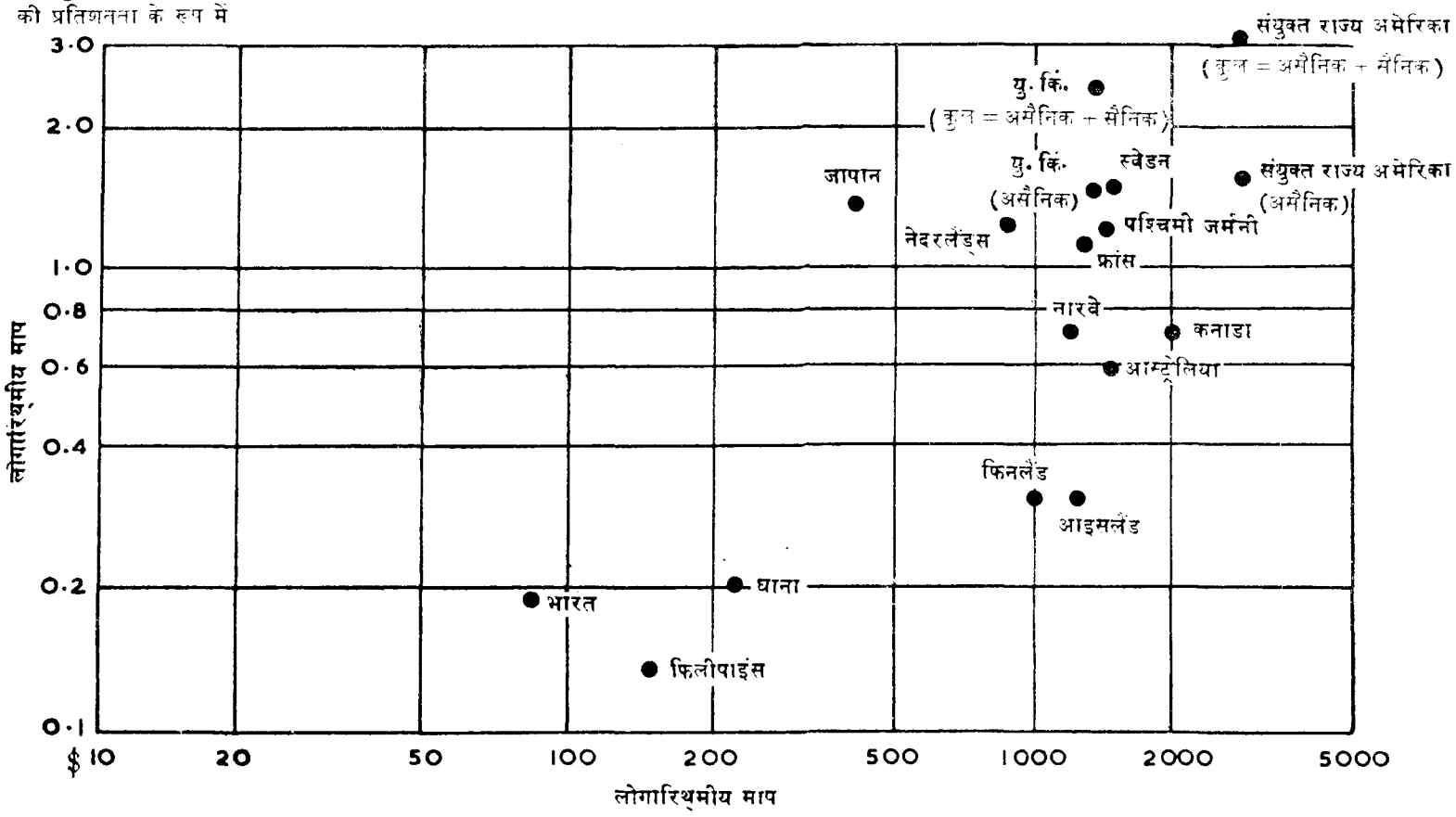

अनुसंधान और विकास के लोगारिथ्मीय माप अनुमान के वर्ष **प्रति व्यक्ति** G. N. P. (कुल राष्ट्रीय उत्पाद) **संयुक्त राष्ट्र डालरों में**

स्रोत : साइंस, इकनामिक ग्रोथ एंड गवर्नमेंट पालिसी, ओई सी डी पेरिस, 1963

(1 $ = 4·76 रुपए)

मनुष्य के मुकाबले विज्ञान में निवेश

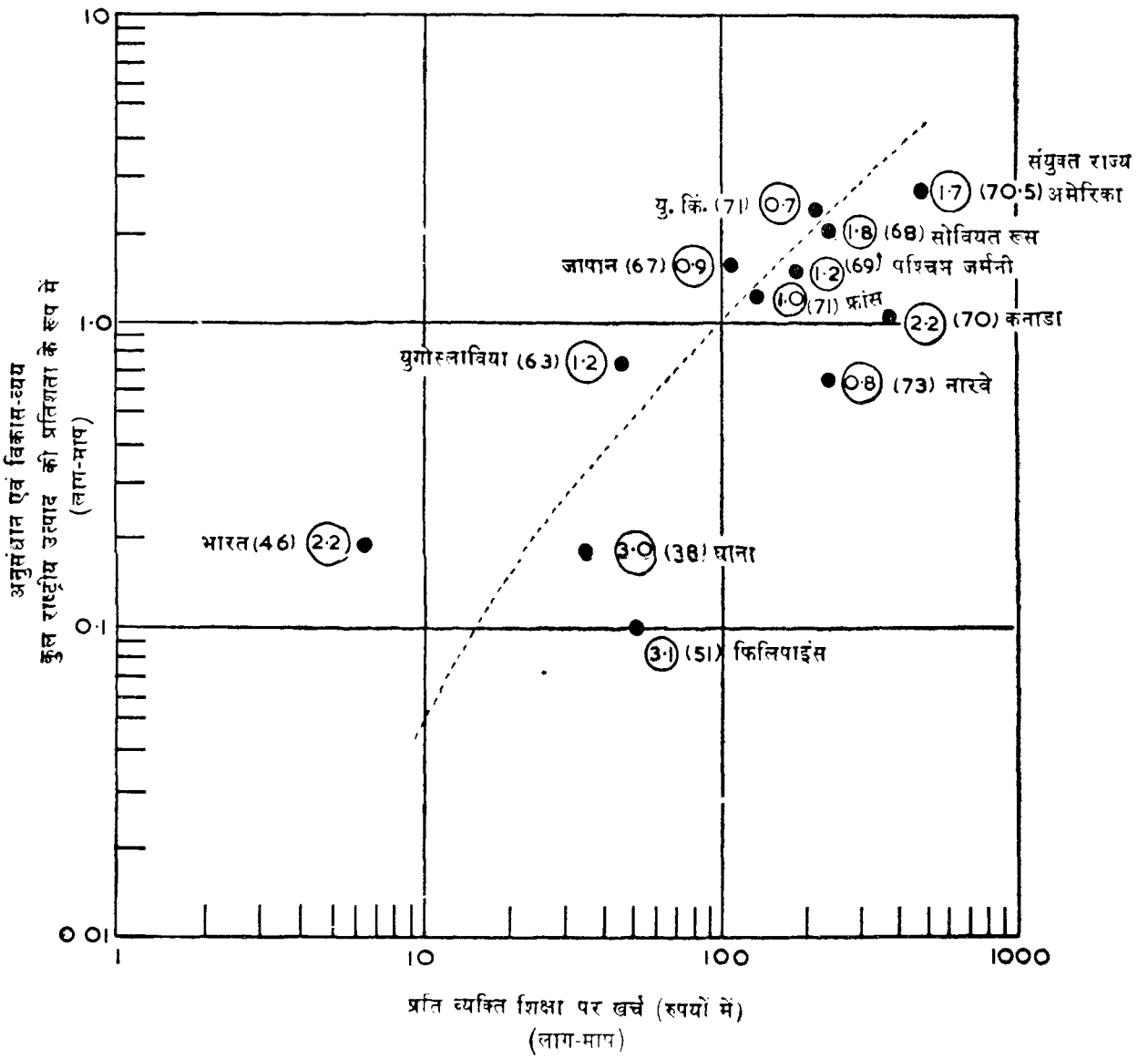

कोष्टकों में दी गई संख्या जन्म के समय जीवन-आशंसा (वर्षों में)
वृत्तों में दी हुई संख्या जनसंख्या-वृद्धि की (वर्षों में) दर प्रतिवर्ष बतलाती है (1958-61)

(टिप्पणी :— 1 $ = 4·76 रुपए)

चाहिए। यदि शिक्षा की गुणात्मकता में सुधार करना है तो असंख्य छात्रों में से प्रत्येक के लिए कुछ करना होगा। यह इस बात के महत्व पर जोर देता है कि प्रत्येक अध्यापक का व्यक्तिगत रूप से सक्रियता और नवीनकरण किया जाय। हमारी समस्याओं की गहनता सचमुच अगाध है।

10.18. **नामांकन का विस्तार : शिक्षकों का प्रबन्ध**—पिछले कुछ वर्षों से, खासकर स्वतंत्रता की प्राप्ति (1947) के बाद से, विज्ञान और शिल्पविज्ञान में स्नातक बनने वाले नवयुवकों की संख्या तेजी से बढ़ रही है।[1] यह प्रवृत्ति अभिनन्दनीय है। यह विज्ञान और विज्ञान आश्रित पाठ्यक्रमों के प्रति बढ़ती हुई जागरूकता तथा इच्छा का द्योतक है। विज्ञान तथा शिल्पविज्ञान के विद्यार्थियों को लाभदायक काम मिलने की अधिक संभावना से भी इसको प्रोत्साहन मिलता है। बी० एस-सी० डिग्री पाने वालों की संख्या 1963 में 31,638 थी, जबकि 1950 में यह केवल 9,028 थी। समकक्ष संख्याएं इंजीनियरी तथा शिल्पविज्ञान के लिए, और कृषि (पशु चिकित्सा समेत के लिए क्रमशः 9, 227 तथा 1, 660 और 4, 872 तथा 1, 100 है। इस काल में डाक्टर की उपाधि 100 से बढ़कर 540 हो गई है।

16.19. इन उपलब्धियों की तुलना अब सम्बन्धित आयुवर्ग की सम्पूर्ण जनसंख्या से कीजिए। जनशक्ति की समस्याओं की विवेचना में और अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से तुलना करने में उपलब्धियों को (और निवेशों को भी) कभी-कभी सम्बन्धित आयु वर्ग के अनुपात के रूप में देखना सहायक सिद्ध होता है। बी० एस-सी० की उपाधि प्राप्त करने की औसत आयु 20 वर्ष है। इसे माध्यक वयस समझा जाए तो वयस बंटन में एक वर्ष के लगभग इधर-उधर हो सकता है। विज्ञान के विषयों में एम० एस-सी० की उपाधि लगभग 22 वर्ष में ली जाती है और इंजीनियरी तथा शिल्पविज्ञान में प्रथम उपाधि भी उसी वय के लगभग। यह ध्यान में रखना चाहिए कि माध्यमिक शिक्षा के बाद, जहां तक पाठ्यक्रम की सारी अवधि का सम्बन्ध है, **विज्ञान में हमारी एम० एस-सी० की उपाधि और इंजीनियरी, शिल्पविज्ञान और कृषि में प्रथम उपाधि (स्नातक की उपाधि) बराबर मानना चाहिए।** डाक्टर की उपाधि लेने की औसत आयु 26 वर्ष है, परन्तु व्यय की सीमा में अन्तर स्नातक की उपाधि की अपेक्षा बहुत अधिक होगा।

16.20. सन् 1950 और 1963 में वितरित उपाधियों की ठीक संख्या सम्बन्धित आयु वर्ग के अनुपात के रूप में सारणी 16. 1. में दी गई है।

---

1. सम्भवतः भारतवर्ष में विज्ञान की शिक्षा सर्वप्रथम राजा राममोहन राय के उपक्रम से सन् 1817 में स्थापित कलकत्ता के हिन्दू कालेज में जो बाद में प्रेजिडेन्सी कालेज हो गया, प्रारम्भ की गई थी। देश में गम्भीरता पूर्वक स्नातकोत्तर शिक्षा अनुसंधान के प्रारम्भ होने में सौ वर्ष लग गए। एक विशिष्ट घटना थी सर आशुतोष मुकर्जी के नेतृत्व में कलकत्ता विश्वविद्यालय के विज्ञान कालेज की स्थापना।

पश्चिमी यूरोप में वैज्ञानिक क्रांति लगभग 300 वर्ष पहले आरम्भ हुई, पर पश्चिमी दुनिया के विश्वविद्यालय में विज्ञान को उचित स्थान मिले सौ वर्ष से कम ही हुए। 1858 में माइकेल फैरडे ने जोर देकर कहा : "ज्ञान के एक अंग के रूप में स्वमेव विशिष्ट स्थान प्राप्त करने के विज्ञान के हक को अब लोग मान्यता देने लगे हैं, (परन्तु) अब विज्ञान में विश्वविद्यालयों उपाधियों की ममीचीनता विचाराधीन हैं और बहुत से लोगों का इसके बारे में बड़ा ऊंचा ख्याल है। इनके विचार से, साहित्य से अलग स्वयं इसी के लिए, अर्थात्, मस्तिष्क की सभी शक्तियों को क्रियान्वित और विकसित करने योग्य मानव बुद्धि के लिए समुचित साधन के रूप में इसका अध्ययन किया जा सकता है।" (प्रोसीडिंग्स आफद रायल इंस्टीट्यूट, लंदन 1858)।

भारतीय शिक्षा आयोग रिपोर्ट, 1882 में लिखा है कि उस वर्ष सभी विषयों में 220 स्नातक की तथा 40 स्नातकोत्तर उपाधियां प्रदान की गई। प्रसंगवश अनुत्तीर्ण होने की दर वही थी जो आज है। यह 60 प्रतिशत थी।

भारतीय शिक्षा के अपेक्षाकृत पिछड़े होने के दुखद याददाश्त के रूप में याद रहे कि सन् 1880 में संयुक्त राज्य अमेरिका में 12,296 स्नातक की तथा प्रथम वृत्तिक उपाधियां, 879 स्नातकोत्तर या द्वितीय वृत्तिक उपाधियां, और 54 डाक्टर की या समकक्ष उपाधियां प्रदान की गई। संयुक्त राज्य की जनसंख्या 1880 में लगभग 5 करोड़ थी (एफ० माचलप, प्रोडक्शन एण्ड डिस्ट्रिब्यूशन आफ नालेज इन द युनाइटेड स्टेट्स, प्रिंसटन विश्वविद्यालय, 1962, पृ० 91)।

सारणी 16.1. 1950 और 1963 में विज्ञान तथा शिल्पविज्ञान में प्रदान की गई उपाधियां

उपाधि	प्रदान की गई उपाधियों की संख्या		सम्बन्धित आयुवर्ग की प्रतिशतता		औसत (मिश्र) वृद्धि की वार्षिक दर प्रतिशत
	1950	1963	1950	1963	
बी० एस-सी०	9,628	31,638	0.14	0.37	9.6
एम० एस-सी० (गणित के अलावा)	861	4,478	0.013	0.055	13.6
एम० ए०/एम० एस-सी० (गणित)	251	1,857	0.004	0.023	16.6
शिल्पविज्ञान इंजीनियरी तथा अन्य विषयों में स्नातक की उपाधि	1660	9217	0.026	0.11	14.1
कृषि तथा पशु-चिकित्सा में स्नातक की उपाधि	1,100	4,872	0.017	0.060	12.1
विज्ञान तथा शिल्प विज्ञान में डाक्टर की उपाधि	100	540	...	...	13.9

स्रोत : विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, यूनिवर्सिटी डेवलपमेंट इन इन्डिया 1964-65

16.21. सन् 1950 से भारतीय विश्वविद्यालयों से निकले विभिन्न विज्ञान-विषयों के एम० एस-सी० लोगों की सूची सारणी 16. 2 में दी गई है। उससे ज्ञात होगा कि हमारे देश में एम० एस-सी० करके निकलने वाले छात्रों की संख्या, संयुक्त राज्य अमेरिका से विज्ञान और शिल्प विज्ञान में **डाक्टर** की उपाधि प्राप्त करने वालों से **कम है**। संयुक्त राज्य में विज्ञान और इंजीनियरी में डाक्टर की उपाधि प्राप्त करने वालों की संख्या 1920 में 400 से बढ़कर 1960 में 6,600 हो गई है और 1970 तक इनकी संख्या 13,000 से अधिक पार कर जाने की संभावना है। इसका मतलब हुआ प्रति बारह वर्ष में दो गुना हो जाना (संयुक्त राज्य अमेरिका में विज्ञान और शिल्पविज्ञान में स्नातक होकर निकलने वालों की संख्या सम्बन्धित वयोवर्ग के चार प्रतिशत के लगभग है—दोनों क्षेत्रों में ये समान रूप से वितरित हैं। सोवियत रूस में भी लगभग यही प्रतिशतता है परन्तु इंजीनियरों की संख्या वैज्ञानिकों से बहुत अधिक है।

16.22. स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों में सुधार करने के अतिरिक्त आगामी दशकों में शीघ्रता से विस्तृत होते हुए माध्यमिक और उच्चतर शिक्षा तथा अनुसंधान और उद्योग की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विज्ञान और गणित में स्नातकोत्तर नामांकनों को **कई गुना** बढ़ाना होगा। प्रगति की वार्षिक दर हमारे अनुमान से 10 से 15 प्रतिशत है। इसका अर्थ होगा कि दो दशकों के अन्त में उनकी संख्या वर्तमान नामांकनों की लगभग दस गुनी हो जाएगी। स्तर को नीचे किए बिना ही इतने बड़े पैमाने पर विस्तार करना अत्यन्त कठिन कार्य है। इसके लिए साहस पूर्ण काम और ध्यानपूर्वक आयोजना बनाने की आवश्यकता होगी। नई प्रयोगशालाओं को निर्मित और सुसज्जित करने के लिए (विदेशी मुद्रा के अंश समेत) विपुल वित्तीय सहायता की आवश्यकता होगी तथा अध्यापकों की नियुक्ति और प्रशिक्षण के लिए सभी सम्बन्धित व्यक्तियों को अत्यन्त सक्रिय और दृढ़ प्रयत्न करना होगा। प्रतिवर्ष नए अध्यापकों की नियुक्ति की दर वर्तमान संख्या

सारणी 16. 2. मूल वैज्ञानिक विषयों में एम० एस-सी० करने वालों की संख्या (1950 से 1963 तक)

विषय	1950	1951	1952	1953	1954	1955	1956	1957	1958	1959	1960	1961	1962	1963
रसायन	283	346	353	400	482	556	597	548	724	881	1,064	1,132	1,240	1,487
गणित	121	180	233	253	399	437	475	601	572	731	687	855	1,002	1,094
भौतिकी	231	291	336	384	444	425	473	484	537	618	760	921	1,076	1,101
वनस्पति विज्ञान	82	115	137	156	172	234	270	286	265	366	418	473	553	632
प्राणि विज्ञान	115	124	159	190	195	241	257	249	263	334	434	526	567	648
भूविज्ञान	64	91	95	83	109	84	109	134	182	228	267	365	336	418
जोड़	896	1,147	1,313	1,466	1,801	1,977	2,181	2,402	2,543	3,158	3,630	4,272	4,774	5,380

टिप्पणी : 1. रसायन विज्ञान के अन्तर्गत (क) अनुप्रयुक्त रसायन (ख) वैश्लेषिक रसायन और (ग) जीव रसायन हैं।
2. गणित के अन्तर्गत खगोलविज्ञान है।
3. भौतिकी के अन्तर्गत (क) जीव-भौतिकी और (ख) मौसगविज्ञान व समुद्र-विज्ञान है
4. भूविज्ञान के अन्तर्गत (क) अनुप्रयुक्त भूविज्ञान (ख) भूभौतिकी और (ग) मृत्तिका भौतिकी है।
आधारभूत विज्ञानों की स्नातकोत्तर उपाधि लेने वालों में कुल वृद्धि 1950-55 की अवधि में 120.6 प्रतिशत, 1955-60 की अवधि में 83.6 प्रतिशत और 1960-63 की अवधि में 48.2 प्रतिशत हुई हैं। विषयवार विभाजन का विवरण नीचे दिया गया है :

विषय	पांच वर्षों की अवधि में प्रतिशत वृद्धि		
	1950-51	1955-60	1661-63
रसायन	96.5	91.4	39.9
भौतिकी	84.0	78.8	44.9
गणित	261.2	57.2	59.2
वनस्पति विज्ञान	185.4	68.6	51.2
प्राणि विज्ञान	109.6	80.1	49.3
भूविज्ञान	31.3	217.0	56.6
उपर्युक्त सभी विषय	120.6 प्र० श०	83.6 प्र० श०	48.2 प्र० श०

स्रोत : बेसिक फैक्ट्स ऐड फिगर्स, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग।

की लगभग 20 प्रतिशत होनी चाहिए ताकि बढ़ते हुए नामांकन के फलस्वरूप वर्तमान कमी और अवकाश-प्राप्ति एवं अन्य कारणों से खाली हुए स्थानों को भरा जा सके। इसके कारण उन्नत अध्ययन केन्द्रों तथा उत्कृष्ट अन्य विभागों और संस्थाओं पर विशेष उत्तरदायित्व आ पड़ता है। स्नातकोत्तर और अनुसंधान के स्तर पर उदारतापूर्वक छात्र-वृत्तियों का प्रबन्ध करके और अन्य प्रोत्साहनों द्वारा यह देखना चाहिए कि इन केन्द्रों से निकले कम से कम आधे व्यक्ति निश्चित रूप से अध्यापन कार्य करते है। हमने अन्य स्थान पर जिस शैक्षिक योजना बोर्ड[1] को प्रत्येक विश्वविद्यालय में स्थापित करने की सिफारिश की है उसका विशेष उत्तरदायित्व होना चाहिए कि वह शिक्षण-कर्मचारियों की आवश्यकता कि अग्रिम योजना बनाए। इसे सम्बन्धित उन्नत अध्ययन केन्द्रों से सम्पर्क बनाए रखना चाहिए और जहां कहीं सम्भव हो भविष्य में होने वाले कर्मचारियों को पहले से चुनकर उनके विशेष प्रशिक्षण की व्यवस्था करनी चाहिए। प्रत्येक व्यवसाय में श्रेष्ठ लोगों की कमी होती है और यह कमी विज्ञान और गणित के क्षेत्र में और अधिक है। शिखर के वृत्तिक राष्ट्र की सबसे बहुमूल्य निधि हैं और देश के सार्वाधिक हित में उनके

1. देखिए अध्याय तेरह।

उपयोग के लिए सभी सम्भव प्रयत्न किए जाने चाहिए। जिस संस्था में श्रेष्ठ अध्यापक हों उसको प्रोत्साहित करना चाहिए कि वह अल्पकालिक (कुछेक सप्ताहों से महीनों तक) विशेष पाठ्यचर्याओं का प्रम्बन्ध करे जिसमें देश के अन्य भागों से चुने हुए छात्रों को (और अध्यापकों को भी) आमंत्रित किया जाए और यह विशेष रूप से हितकर होगा यदि हमारे विश्वविद्यालयों के श्रेष्ठ अध्यापक अपने समय का कुछ भाग (वर्ष में दो-एक मास) अपने विशिष्ट क्षेत्र में रुचि लेने वाले अन्य विश्वविद्यालयों में व्यतीय करें। हमको ज्ञात हुआ है कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग में अध्यापकों के आदान-प्रदान की एक योजना है। हम सिफारिश करते हैं कि इस योजना के क्षेत्र को विस्तृत किया जाए और इसके लिए समुचित आर्थिक सहायता दी जाए।

16.23. हमने पहले किसी अध्याय में उन्नत अध्ययन केन्द्रों की धारणा एवं योजना का भरपूर समर्थन किया है। इस कार्यक्रम में यूनेस्को के माध्यम से सोवियत रूस ने बहुमूल्य सहायता दी है। कुछ केन्द्रों ने प्रशंसनीय उन्नति की है पर अनेक ऐसे हैं जिनकी अब तक की प्रगति से हम पूर्णतया संतुष्ट नहीं हैं। हमें ज्ञात हुआ है कि यह मामला विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के विशेष रूप से विचाराधीन है। यदि उन्नत अध्ययन केन्द्रों को अध्यापन तथा अनुसंधान के स्तर बनाने और भावी अध्यापकों के प्रशिक्षण का अपना उद्दिष्ट कार्य पूरा करना है, तब यह आवश्यक है कि केन्द्रों के अध्यापक वर्ग उत्कृष्टता की दृष्टि से उच्चतम हों। जहां कहीं संभव हो प्रेरणा तथा नेतृत्व प्रदान करने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय मान्यता के कुछ व्यक्तियों को शामिल करना चाहिए। दो तीन वर्ष की अनुबंधित नियुक्ति के लिए कुछ अतिथि प्रोफेसरों के पद की व्यवस्था होनी चाहिए। अतिथि प्रोफेसर के पद पर विश्वद्यालय अनुदाब आयोग द्वारा एक अखिल भारतीय समिति स्थापित करना देना विशेष रूप से अच्छा होगा। इस योजना के अन्तर्गत हम कुछ अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त भारतीय वैज्ञानिकों को, जो आजकल बाहर काम कर रहे हैं, तथा विदेशी वैज्ञानिकों को आमंत्रित कर सकते हैं। उनका वेतन-मान और रहने के स्थान समेत नौकरी संबंधित अन्य शर्तों उचित स्तर पर तय करना होगा। इस योजना के अन्तर्गत नियुक्त प्रोफेसर विश्वविद्यालयों से परासर्श करके उन्हें दिए जाने चाहिए। प्रारम्भ में गणित समेत सभी वैज्ञानिक विषयों में अतिथि प्रोफेसरों की संख्या लगभग पचास तक सीमित रहनी चाहिए।

16.24. **विज्ञान की शिक्षा में क्षेत्रीय असंतुलन**—विज्ञान की शिक्षा के विस्तार के सन्दर्भ में देश के विभिन्न राज्यों में उपलब्ध साधनों के भारी अन्तर की ओर ध्यान आकर्षित करना आवश्यक है। इस सम्बन्ध में सारणी 16.3 और पृष्ठ 342 पर दिए गए चार्ट को देखिए। उससे यह स्पष्ट होगा कि विज्ञान के पाठ्यक्रमों में नामांकन कुल जनसंख्या के प्रति एकक के रूप में दक्षिणी राज्यों में सर्वोच्च है। निम्नतम राजस्थान राज्य में है, अर्थात्, प्रति दास लाख जनसंख्या के पीछे केवल 500 है जहां कि केरल में वह 2,200 है। विज्ञान की शिक्षा में और उससे अधिक शिल्पविज्ञान में यह क्षेत्रीय असंतुलन बड़ी चिन्ता का विषय है। औद्योगिक प्रगति पर इसका सीधा प्रभाव पड़ता है। अतएव जिन राज्यों में विज्ञान तथा शिल्पविज्ञान में नामांकन अखिल भारतीय औसत से काफी नीचे है उनमें इसे ऊंचा उठाने के लिए समुचित प्रयास करना चाहिए। यह भी जरूरी है कि क्षेत्र में एक तरफ औद्योगिक तथा कृषि संबंधी विकास एवं क्षमता और दूसरी ओर विज्ञान, शिल्पविज्ञान तथा कृषि की शिक्षा के साधनों की उपलब्धि में समुचित संतुलन हो। विश्वविद्यालय जिन क्षेत्रों में स्थित हों उसके साधारण विकास में अधिकाधिक महत्वपूर्ण कार्य कर सकते हैं और करें। देश के कम विकसित भागों में जो विश्वविद्यालय हैं उनके लिए इनका विशेष महत्व है। अपने पाठ्यक्रम को, विशेषतः विज्ञान एवं शिल्पविज्ञान में ठीक से अभिविन्यस्त कर, सावधानी से अनुसंधान कार्यक्रम का चुनाव कर और क्षेत्र अध्ययन तथा विकास-कार्य पर समुचित जोर देकर विश्वविद्यालय अपने पास के क्षेत्रों के तथा साधारणतया सारे देश के आर्थिक और सांस्कृतिक विकास पर अच्छा प्रभाव डाल सकते हैं।

16.25. **पाठ्यचर्या में सुधार**—साधारण तौर से कहा जा सकता है कि पूर्वस्नातक और स्नातकोत्तर पाठ्यचर्या में क्रांतिकारी संशोधन की अति आवश्यकता है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने अपनी गणित और अन्य वैज्ञानिक विषयों की पुनरीक्षण समितियों की रिपोर्ट प्रकाशित की है। इनमें विश्वविद्यालयों द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रमों का विवरण तथा पाठ्यचर्या में सुधार के लिए विशिष्ट सिफारिशें हैं। इन रिपोर्टों में विश्वविद्यालय अनुसंधान का भी विवेचन है। हाल के यूनेस्को अध्ययन में, जैसे विश्वविद्यालयों में भौतिकी के अध्यापन के सर्वेक्षण में (सर्वे आफ टीचिंग आफ फिजिक्स एट यूनिवर्सिटीज, 1965) जो शुद्ध और अनुप्रयुक्त भौतिकी के अन्तर्राष्ट्रीय संघ के तत्वावधान में तैयार किया गया है, कुछ वैज्ञानिक दृष्टि से उन्नत देशों के विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों के स्तर और विषय वस्तु के बारे में बहुमूल्य विवरण दिया गया है।

सारणी 16.3. भारतवर्ष के विश्वविद्यालयों में नामांकन : राज्यवार और संकायवार (1964-65)

राज्य	कला	विज्ञान	वाणिज्य	शिक्षा	इंजीनियरी-शिल्पविज्ञान	औषध विज्ञान	कृषि विज्ञान	पशु चिकित्सा विज्ञान	विधि	अन्य	जोड़
आन्ध्र	18,181	37,083	5,526	1,487	6,169	6,915	1,181	626	1,291	312	78,691
	(23.1)	(47.1)	(7.0)	(1.9)	(7.8)	(8.8)	(1.5)	(0.8)	(1.6)	(0.4)	...
असम	32,667	9,464	2,367	391	967	1,117	391	246	527	...	43,197
	(67.9)	(19.6)	(4.9)	(0.8)	(2.0)	(2.4)	(0.8)	(0.5)	(1.1)	...	...
बिहार	61,253	31,670	5,774	1,042	6,632	2,941	1,089	650	2,846	6	1,13,903
	(53.8)	(27.8)	(5.1)	(0.9)	(5.8)	(2.6)	(0.9)	(0.6)	(2.5)	...	...
गुजरात	30,966	24,289	12,329	1,148	6,019	3,686	1,241	100	3,319	690	83,787
	(37.0)	(29.0)	(14.7)	(1.4)	(7.2)	(4.4)	(1.5)	(0.1)	(3.9)	(0.3)	...
जम्मू व कश्मीर	5,176	5,237	235	420	971	650	334	...	...	...	13,023
	(39.7)	(40.2)	(1.8)	(3.2)	(7.5)	(5.0)	(2.6)	...	...	...	...
केरल	28,632	40,978	3,590	2,450	4,008	2,734	284	252	524	...	83,452
	(34.3)	(49.1)	(4.3)	(2.9)	(4.8)	(3.3)	(0.4)	(0.3)	(0.6)	...	...
मध्य प्रदेश	36,696	23,226	10,833	2,326	6,062	4,202	1,356	492	312	420	89,264
	(41.0)	(26.0)	(12.1)	(2.6)	(6.8)	(4.7)	(2.1)	(0.6)	(3.5)	(0.5)	...
मद्रास	23,002	41,673	5,697	1,828	6,580	6,013	988	705	1,161	631	88,278
	(26.1)	(47.2)	(6.4)	(2.1)	(7.5)	(6.8)	(1.1)	(0.8)	(1.3)	(0.7)	...
महाराष्ट्र	59,363	51,632	29,519	3,725	5,781	6,844	3,909	361	5,050	100	1,66,334
	(35.7)	(31.1)	(17.7)	(2.2)	(3.5)	(4.1)	(2.4)	(0.2)	(3.0)	(0.1)	...
मैसूर	16,703	29,855	6,058	1,371	8,340	6,040	967	437	1,905	...	71,676
	(23.3)	(41.7)	(8.5)	(1.9)	(11.6)	(8.4)	(1.3)	(0.6)	(2.7)	...	...

उड़ीसा	11,826	8,625	786	611	1,856	1,841	970	259	428	...	27,202
	(43.5)	(31.7)	(2.9)	(2.2)	(6.8)	(6.8)	(3.6)	(1.0)	(1.5)	...	...
पंजाब	39,900	17,749	1,581	4,069	7,884	4,832	2,023	386	983	423	79,830
	(50.0)	(22.2)	(2.0)	(5.1)	(9.9)	(6.1)	(2.5)	(0.5)	(1.2)	(0.5)	...
राजस्थान	16,614	9,898	6,656	1,425	1,434	1,911	1,372	180	1,101	...	40,591
	(40.9)	(24.4)	(16.5)	(3.5)	(3.5)	(4.7)	(3.4)	(0.4)	(2.7)	...	...
उत्तरप्रदेश	1,51,335	1,01,219	24,332	4,710	7,560	5,596	27,029	864	5,230	6,247	3,34,122
	(45.3)	(30.3)	(7.3)	(1.4)	(2.3)	(1.7)	(8.1)	(0.3)	(1.5)	(1.8)	...
पश्चिम बंगाल	88,309	42,906	30,017	2,284	6,843	4,199	594	153	3,778	363	1,79,446
	(49.2)	(23.2)	(16.8)	(1.3)	(3.8)	(2.3)	(0.3)	(0.1)	(2.1)	(0.2)	...
दिल्ली	20,536	3,229	2,489	241	1,008	2,161	...	...	705	35	30,431
	(67.6)	(10.6)	(8.2)	(0.8)	(3.3)	(7.1)	...	...	(2.3)	(0.1)	...
जोड़	6,41,186	4,78,702	1,47,789	29,528	78,114	61,742	44,228	5,711	32,000	9,227	15,28,227,
	(42.0)	(31.3)	(9.7)	(1.9)	(5.1)	(4.0)	(2.9)	(0.4)	(2.1)	(0.6)	...

इसमें इंटरमीडियेट बोर्डों के नामांकन शामिल है

स्रोत : युनिवर्सिटी डेवलेपमेंट इन इंडिया, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (ये नामांकन अध्याय बारह में दिए गए नामांकनों से मेल नहीं खाते, क्योंकि दोनों का आधार भिन्न है ।

16.26. हम जीवविज्ञान और भूमि-विज्ञानों में क्षेत्र-कार्य और पर्यावरण अध्ययन के चरम महत्व पर जोर देना चाहते हैं। प्राकृतिक और अर्धप्राकृतिक पादप-संख्या के अध्ययन पर विशेष ध्यान देना चाहिए यह पादप-रोग सह और चरम-जलवायु सह कई फसलों के प्रजनन के सन्दर्भ में संगत और आवश्यक है। एक विदेशी वनस्पतिज्ञ ने हाल में भारतीय विश्वविद्यालयों को देखा और वनस्पति शास्त्र के छात्रों की संख्या पर संतोष भी व्यक्त किया, साथ ही यह भी कहा कि इनके विश्वविद्यालयों की शिक्षा में वनस्पति-शास्त्र के अधिकांश पाठ्यक्रम की विषय-वस्तु उनके लिए अनुपयोगी है। वैज्ञानिक विषयों के उद्योग और कृषि में अनुप्रयोगों को साफ साफ और जोर देकर समझाना चाहिए और छात्रों को प्राप्य स्थानीय उद्योगों और अनुभवों द्वारा उदाहरण देकर स्पष्ट करना चाहिए। हमारे देश में भू-विज्ञान सम्बन्धी शिक्षा के बारे में अक्सर आलोचना की जाती है कि उसमें पर्याप्त क्षेत्र प्रशिक्षण की कमी है। पृथ्वी के द्रव्यों, प्रक्रियाओं और ऐतिहासिक घटनाओं का निरीक्षण उनके प्राकृतिक परिवेश और क्षेत्र में करना चाहिए। गम्भीर क्षेत्र प्रशिक्षण के लिए पर्याप्त समय देना चाहिए। इसमें भूविज्ञान सम्बन्धी द्रव्यों और घटनाओं की अधिकतम विविधता होनी चाहिए। क्षेत्र प्रशिक्षण वर्ष में कम-से-कम दो महीने लगातार होना चाहिए। क्षेत्र प्रशिक्षण का संबंध राष्ट्रीय भूवैज्ञानिक सर्वेक्षण के कार्यों और प्रोग्रामों से यथासम्भव स्थापित करना चाहिए। इससे प्रशिक्षण यथार्थवत और लाभदायक होगा। संग्रहालय के संग्रहों में आम तौर पर विदेशी नमूनों का अच्छा सेट है पर अपेक्षाकृत भारतीय नमूनों का संग्रह कम है। यदि हमारे भूविज्ञान विभागों के बीच आदान-प्रदान सेवा हो तो भारतीय नमूने आसानी से तैयार किए जा सकते हैं। अधिकांश विभागों में साधारणतया भारतवर्ष के विशिष्ट प्रकार के क्षेत्रों के स्थलाकृतिक तथा भूवैज्ञानिक मानचित्र उपलब्ध नहीं हैं। भूरसायन भूभौतिकी तथा भूचुम्बकत्व और आर्थिक भूविज्ञान प्राकृतिक साधनों के शोषण के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं और भूवैज्ञानिकों के प्रशिक्षण में इन पर जोर देना चाहिए। जीव-विज्ञान के क्षेत्र में, सूक्ष्म जीवों और चिकित्सा एवं कृषि में उनके उद्दिष्ट कार्यों के अध्ययन पर साधारणतया जितना ध्यान दिया जाता है उससे कहीं अधिक देना चाहिए। विश्वविद्यालयों और कालेजों को चाहिए कि वे संग्रहालयों, लोक वनस्पति उद्यानों तथा चिड़ियाघरों और वैज्ञातिक एवं औद्योगिक संस्थओं से पूर्ण शैक्षणिक लाभ उठाएं।

16.27. यह आवश्यक है कि हमारे भौतिक विज्ञान के विभागों में प्रायोगिक और सैद्धांतिक पक्षों में समुचित संतुलन रखा जाए। उदाहरणार्थ, भौतिकी विभागों में बहुधा ढेर-सा सैद्धान्तिक काम उस क्षेत्र में प्रायोगिक कार्य को बिना बताए या सम्पर्क रखे किया जाता है। प्रायोगिक भौतिकी और रसायन के विकास पर शीघ्र विशेष ध्यान देना चाहिए। रसायन के विज्ञान में संश्लिष्ट रसायन द्रव्यों, उर्वरकों, कृषि नाशकों, प्राकृतिक उत्पादों के रसायन, पेट्रोलियन-रसायन और कृत्रिम रेशों, औषधों और रंजक द्रव्यों जैसे क्षेत्रों में अध्ययन का अधिक प्रयोग आधारित और उद्योग से घनिष्ठतया संबद्ध होना चाहिए। अत्यन्त महत्वपूर्ण अद्यतन विकास के कारण खगोल विज्ञान और खगोल भौतिकी पर विशेष ध्यान और सहायता अपेक्षित है। इस क्षेत्र में भारतवर्ष का योगदान उत्कृष्ट रहा है और मे० ना० साहा का नाम तुरन्त याद आ जाता है।

16.28. **विज्ञान के विभागों में कर्मशाला**—प्रत्येक कालेज और विश्वविद्यालय के विज्ञान विभाग में सुसज्जित कर्मशाला होनी चाहिए। छात्रों को कर्मशाला के औजारों के प्रयोग सीखने और प्रयोगशाला की आवश्यक तकनीकों और क्रियाओं से, उदाहरणार्थ काच आध्मन, धातुकर्म, बढ़ईगीरी, कुण्डली लपेटन, फोटो की तकनीक और प्रक्षेपी स्लाइडों का बनाना, टांका लगाना और झलाई, विद्युत के परिपथ बनाना और तार लगाना, और प्रयोगशालाओं में काम आने वाले यांत्रिक एवं वैद्युत उपस्करों की देखभाल आदि से परिचित होने के लिए उत्साहित करना चाहिए। उनमें से जो शिक्षक बनेंगे उन के लिए यह प्रशिक्षण रूप से उपयोगी सिद्ध होगा। इससे उनको प्रयोगशाला में साधारण सरम्मत करने और सामान्य उपकरणो के निर्माण करने तथा काम चलाऊ रचना करने में सहायता मिलेगी। कर्मशालाओं में सामान्यतया जितना काम होता है उससे बहुत अधिक से होना चाहिए। उन्हें उपयोग करने की आज्ञा उन औद्योगिक कर्मचारियों को भी देना वांछनीय होगा जो संध्याकालीन और पत्राचार पाठ्यक्रमों में नामांकित होते हैं।

16.39. **प्रायोगिक कार्य**—स्नातक और स्नातकोत्तर छात्रों में प्रायोगिक कार्य के सम्बन्ध में इस बात पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है कि प्रायोगिक कार्य की गुणता में सुधार किया जाए और सिद्धान्त की शिक्षा के साथ इसको समन्वित किया जाए। आधारभूत प्रयोगशाला तकनीक और कर्मशाला कार्यविधि में अल्पकालिक पाठ्यक्रम की व्यवस्था बड़ी लाभदायी होगी, विशेषकर स्नातकोत्तर स्तर पर। जो छात्र दक्षता के एक निश्चित स्तर प्राप्त कर लें उनको कर्मशाला प्रशिक्षण का प्रमाणपत्र दिया जा सकता है। सभी विज्ञान-विषयों के छात्रों को कुछ ज्ञान त्रुटि-सिद्धान्त,

मूलभूत सांख्यिकी-अवधारणा और प्रयोगों के सांख्यिकीय डिजाइन का होना चाहिए। यह बहुत-से लोगों की धारणा है कि आम तौर पर साल के अन्त में होनेवाली प्रयोग परीक्षाओं का कोई लाभ नहीं इनको हटा कर इनके स्थान पर पूरे शैक्षिक वर्ष में किए गए प्रयोगशाला के 'कार्य मूल्यांकन' को रखना चाहिए। जिस अध्यापक के निरीक्षण में प्रयोग किए जाए उसे चाहिए कि प्रत्येक सत्र में मूल्यांकन पूरा करके वर्ष के अन्त की (लिखित) परीक्षाओं में बैठने के लिए संतोषजनक कार्य आवश्यक होना चाहिए।

16.30. **अंत:विद्या अध्ययन**—जैसा कि पहले अध्याय बारह में बताया जा चुका हैं स्नातकोत्तर उपाधि के पाठ्यक्रमों की हमारी व्यवस्था में कुछ लचीलापन और नवीनता लाने की आवश्यकता हैं क्योंकि अनेक सीमांतक और अंत:विद्या-विषय शीघ्रता मे विकसित होकर स्वतन्त्र अध्ययन और अनुसंधान के क्षेत्र बन रहे हैं, उदाहरण के लिए गणित और भौतिकी, रसायन और भू-विज्ञान, जीव-विज्ञान और भौतिकी, गणित और अर्थशास्त्र के संश्लिष्ट पाठ्यक्रम बड़े लाभदायक और रुचिकर होंगे। ऐसे पाठ्यक्रमों की व्यवस्था सम्बन्धित विभागों को संयुक्त रूप में करना चाहिए। यह आवश्यक हैं कि वर्तमान कठोरता और विर्जीव एक रूपता तथा एक ही विश्व-विद्यालय के विभिन्न विभागों के बीच की दीवार को तोड़ा जाए।

16.31. यदि जीव विज्ञान के मुख्य विभागों में थोड़े ऐसे भौतिक वैज्ञानिक रहें (गणितज्ञों समेत) जो जीव विज्ञान सम्बन्धी घटनाओं में रुचि होने के कारण चुने गए हों, तो बड़ा अच्छा हो। भौतिक वैज्ञानिक अपने मूल विभागों से "डेप्यूटेशन" पर हो सकते है। दो विभागों के बीच संयुक्त संयुक्ति भी हो सकनी है। इसी प्रकार जीव-विज्ञान विभागों के चुने हुए आदमी भौतिक-विज्ञान के विभागों में "डेप्यूटेशन" पर रह सकते हैं। फिर विज्ञान विभाग, विशेषतया भौतिकी और गणित, अनुसंधान में रुचि रखने वाले इन्जीनियरों के घनिष्ट सम्पर्क से अत्यन्त लाभान्वित हो सकते हैं। भौतिकीविदों और इन्जीनियरों द्वारा संयुक्त रूप से दिए गए पाठ्यक्रम, जैसे, विद्युत और चुम्बकत्व में या इलेक्ट्राविकी और पदार्थ-विज्ञान में बहुत ही उत्साहवर्धक तथा प्रभावशाली हो सकते हैं। आज आवश्यकता इस बात की है कि हमारी शिक्षा प्रणाली में विज्ञान और शिल्पविज्ञान को पास पास लाया जाए। जैसा कि जे० ए० स्ट्रैटन (एम० आई० टी०, बोस्टांन के भूतपूर्व प्रधान) ने कहा है : 'विज्ञान और इन्जीनियरी के विषय में इससे बड़ा अपकार और कोई नहीं हो सकता कि एक को दूसरे के विरुद्ध उकसाया जाए और दोनों के बीच खाली डाई जाए।'

16.32. **विशेष पाठ्यक्रम**—इस बात की आवश्यकता है कि नियमित द्विवर्षीय एम० एस-सी० के पाठ्यक्रमों के अतिरिक्त एक वर्षीय या इससे भी अल्पकाल के पाठ्यक्रम उन विषयों में विशेष प्रशिक्षण के लिए रखे जाएं जो वर्तमान वैज्ञानिक, औद्योगिक तथा अन्य आवश्यकताओं के लिए जरूरी हो। इन पाठ्यक्रमों की व्यवस्था विश्व-विद्यालयों के चुने हुए विज्ञान और शिल्पविज्ञान के विभागों इन्जीनियरी और कृषि संस्थाओं या राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं द्वारा होना चाहिए। इस प्रकार के पाठ्यक्रमों के दृष्टांत स्वरूप सारणी नीचे दी जाती है :

मूल योग्यता बी० एस-सी० उपाधि	मूल योग्यता एम० एस-सी० या बी० ई० उपाधि
कृषि रसायन, प्रति-जैविकी जीवाणु-विज्ञान, जीव-रसायन तकनीक, वैद्युत रसायन, एलेक्ट्रानिकी, प्रारंभिक अनुप्रयुक्त प्रकाशिकी मत्स्य उद्योग, वन और वन उत्पाद, आनुवंशिकी, कीट एवं वाशक रोग, नियंत्रण, यंत्रण (साधारण) आइसोटोप तकवीक, प्रयोगशाला तकनीक, धातुकर्म, खनिज पूर्वेक्षण, पादप प्रजनन, प्लास्टिक प्रशीतन।	कवान्टम इलेक्ट्रानिकी, वश्लेषिक रसायनिक तकनीक, अनुप्रयुक्त यांत्रिकी, जीव-भौतिकी, कला संबद्ध विकिरण, कम्प्यूटर शिल्प विज्ञाव, रंजक द्रव्य शिल्प विज्ञान, इलेक्ट्रान सूक्ष्मदर्शिकी, प्रायोगिक मनोविज्ञान, भूरसायत, तकनीक भूभौतिकीय पूर्वेक्षण, स्वास्थ्य भौतिकी, उच्च बहुलक, विज्ञान का इतिहास, पोषण से क्रियात्मक अनुसंधान, पेट्रोलियम रसायन, परिवेशी स्वस्थता, विकिरण जीव-विज्ञान, राकेट शिल्प विज्ञान, भूकंपी अध्ययन, मृदा भौतिकी, पदार्थविज्ञान, अर्धचालक, अनुक्रमणीय प्रक्रमों की ऊष्मागतिकी।

16.33. इन पाठ्यक्रमों में भर्ती होने के लिए योग्यता पाठ्यक्रम के अनुसार बी एस-सी०, एम० एस-सी० या इन्जीनियरी की प्रथम डिग्री होनी चाहिए। जो लोग पाठ्यक्रम को सफलतापूर्वक पूरा करें उनको सार्टीफिकेट (यदि पाठ्यक्रम कुछ ही महीनों का हो) या डिप्लोमा

देना चाहिए। कुछ पाठ्यक्रम नीचे वर्णित बी० फिल० डिग्री के उपयुक्त होंगे।

16.34. **विज्ञान विषयों में अंशकालिक शिक्षा**—शिक्षा को व्यावहारिक जीवन के साथ जोड़ने वाले महत्वपूर्ण कदम के रूप में विश्वविद्यालयों और इन्जीनियरी के संस्थानों को विज्ञान और शिल्पविज्ञान में अंशकालिक शिक्षा के लिए योग्यता प्राप्त औद्योगिक कार्यकर्त्ताओं को संध्याकालीन (या प्रातःकालीन) कक्षाओं और पत्राचार पाठ्यक्रमों के लिए नामांकित करना चाहिए। सामान्य डिप्लोमा तथा डिग्री पाठ्यक्रमों के अतिरिक्त, सूक्ष्म यंत्र के मिस्त्रियों प्रयोगशाला-शिल्पियों और अन्य कुशल प्रचारकों के प्रशिक्षण के लिए विशेष पाठ्यक्रमों की व्यवस्था होनी चाहिए आजकल प्रयोगशाला मिस्त्रियों और मध्यम स्तर के शिल्पियों की पर्याप्त कमी है।

16.35. **नई शैक्षिक डिग्री**—वैज्ञानिक ज्ञान में तीव्रता से वृद्धि होने और सीमा-रेखा-विषयों के विकास को ध्यान में रखते हुए, एम० एस-सी० के बाद एक नई उपाधि आरम्भ करने की आवश्यकता[1] है। पी-एच० डी० से भिन्न, यह उपाधि मुख्यतः परीक्षा लेकर दी जानी चाहिए, हालांकि किसी लिखित पर्चे के स्थान पर इसमें एक छोटा-सा शोध-निबंध भी सम्मिलित हो सकता है। यदि ऐच्छिक रूप से इसमें शिक्षा शास्त्र का भी कुछ अंश हो तो और लाभदायक होगा। डिग्री लेने की सामान्य अवधि दो वर्ष होगी, यह विशेष अवस्थाओं में एक साल की छूट दी जा सकती है। इस अवधि को आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के समान बी० फिल० या येल विश्वविद्यालय के समान (एम० फिल०) कहा जा सकता है। पी-एच० डी० करने के लिए यह डिग्री आवश्यक नहीं समझी जानी चाहिए, यद्यपि कुछ हालतों में इस उपाधि को पहले प्राप्त करना निस्संदेह लाभदायक होगा। कुछ विभाग जो पी-एच० डी० स्तर तक की शिक्षा देने में असमर्थ हैं, छात्रों को बी० फिल० के लिए नामांकित कर सकते है और चीजों के साथ, यह भावी अध्यापकों के लिए लाभदायक प्रशिक्षण होगा। यह अनुसंधान के छात्रों के एक विश्वविद्यालय से दूसरे में जाने में भी सहायक होगा। वे बी० फिल० एक स्थान पर और डी० फिल० दूसरे स्थान पर पूरा कर सकते हैं।

16.36. विश्वविद्यालय-अनुसंधान की समस्याओं की विवेचना के पहले ग्रीष्म-कालीन विज्ञान संस्थाओं तथा एक दो अन्य सामान्य बातों का संक्षिप्त वर्णन करना ही चाहते हैं।

16. 37. **ग्रीष्मकालीन विज्ञान संस्थान**—माध्यमिक स्कूल और पूर्व स्नातक स्तरों पर विज्ञान की शिक्षा में सुधार करने के निमित्त एक विशेष रूप से संगठित कार्यक्रम का संबंध ग्रीष्म-कालीन बिज्ञान संस्थानों से है। उनका सभारम्भ 1963 में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग और राष्ट्रीय शिक्षा अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद ने यूसेड (USAID) और राष्ट्रीय विज्ञान प्रतिष्ठान की (संयुक्त राज्य) की सहायता से किया था। कार्यक्रम का उद्देश्य स्कूलों और कालेजों के अध्यापकों की विषय-वस्तु संबंधी योग्यता और वैज्ञानिक पृष्ठभूमि को क्रियाशील बनाना और विकसित करना है। विज्ञान संस्थानों की संख्या 1963 में चार से बढ़कर 1966 में अस्सी से अधिक हो गई है। अब तक 6,500 स्कूल अध्यापक और 3,500 कालेज अध्यापक संस्थानों में हो आए हैं। ग्रीष्म-कालीन संस्थानों का एक प्रभावोत्पादक पहलू यह है कि वे स्कूल एवं कालेज-अध्यापकों और विश्वविद्यालय के प्रमुख प्रोफेसरों को एक साथ सक्रिय भाग लेने के लिए एकत्र करते हैं। ग्रीष्मकालीन संस्थानों का कार्यक्रम स्कूल कालेजों की विज्ञान शिक्षा में सुधार करने की दिशा में देश के प्रयत्न का मुख्य साधन है। संयुक्त राज्य के राष्ट्रीय विज्ञान फाउंडेशन की सहायता से ग्रीष्म कालीन संस्थानों का विस्तृत अनुवर्ती कार्यक्रम विश्वविद्यालय अनुदान को आयोग और राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद के विचाराधीन है।

16.38. **विज्ञान में पुस्तकें**—यह दुर्भाग्य की बात है कि विज्ञान और शिल्पविज्ञान की पूर्व स्नातक स्तर तक की भी अधिकांश उत्कृष्ट पुस्तकें बाहर से मंगानी पड़ती है। बाहर से मंगाई गई सभी पुस्तकें उत्कृष्ट नहीं होती। विज्ञान और शिल्पविज्ञान की पुस्तकों के बड़े पैमाने पर आयात करने से केवल अधिक धन और विदेशी मुद्रा ही खर्च नहीं होती वरन् हमारे बौद्धिक साहस को भी हानि पहुंचती है। उत्तम पुस्तकों की रचना के लिए आवश्यक योग्यता और अन्य साधन देश में है, पर संभवतः जिस चीज़ की कमी है वह है दृढ़ संकल्प और योजनाबद्ध प्रयास। अन्तर विश्वविद्यालय बोर्ड और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को इस कार्य में आगे बढ़ना चाहिए, ताकि चौथी योजना के अन्त तक पूर्व स्नातक स्तर की अधिकांश पुस्तकों और स्नातकोत्तर स्तर की काफी पुस्तकों की रचना देश में ही होने लगे। यह आवश्यक है कि देश

1. **यहां जो कुछ कहा गया है वह यथोचित परिवर्तन के साथ समाज विज्ञान की डिग्रियों पर भी लागू होता है।**

की विद्युत आर वृत्ति व्यवसाय वर्ग की संस्थाएं उत्कृष्ट पुस्तकों और मोनोग्राफ की रचना में सक्रिय सहायता और प्रोत्साहन प्रदान करें और ऐसे कार्य को उच्च वृत्तिक मान्यता दें—साधारणतया इसको अनुसंधान के बराबर स्थान देना चाहिए।

16.39. **वैज्ञानिक शब्दावली**—इस सन्दर्भ में भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक और पारिभाषिक शब्दावली का उल्लेख किया जा सकता है। इन भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य और पाठ्यपुस्तकों की रचना के लिए यह शब्दावली आवश्यक है। लगभग पांच वर्ष पहले शिक्षा मंत्रालय ने स्थायी वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली आयोग की स्थापना की। आयोग वैज्ञानिक शब्दावली से संबंध रखने वाले विश्वविद्यालयों और वृत्तिक शिक्षा संस्थाओं के घनिष्ट सहयोग से काम करता है। इसने स्कूली स्तर के लिए आवश्यक मानक वैज्ञानिक शब्दावली प्रकाशित की है। कुछ वैज्ञानिक विषयों में इसने प्रथम डिग्री स्तर के उपयोग के लिए भी शब्दावलियां प्रकाशित की हैं। आयोग ने उचित और व्यावहारिक नियम का पालन कर अन्तर्राष्ट्रीय शब्दों, जैसे मात्रकों एवं रसायनिक तत्वों और यौगिकों के नाम तथा गणितीय चिह्नों और प्रतीकों के अंग्रेजी में प्रचलित रूप को लिया है। अवधारणाओं के द्योतक वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दों का हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद किया गया है। पर यथासम्भव प्रयास किया गया है कि विभिन्न भाषाओं में एक ही शब्द हो। आयोग ने भारतीय भाषाओं के संबंध में जो कुछ किया गया है वह लगभग सभी देशों की प्रामाणिक पद्धति के अनुसार है। आधुनिक अन्तर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक शब्दावली के अन्तर्गत आने वाले लाखों शब्दों का बहुत अधिक भाग रसायनिक यौगिकों और चिकित्सा शब्दों से संबंधित है। इस शब्दावली का आधार मुख्यतः एक हजार ग्रीक और लैटिन धातुएं हैं। विज्ञान, विशेष कर चिकित्सा विज्ञान के छात्रों के लिए दो सौ के लगभग अधिकतर प्रयुक्त धातुओं का लेना अति लाभदायक होगा। विज्ञान में शब्द निर्माण के लिए ये ईंट की भाँति काम में आते हैं। हमारी राय है कि इसको पाठ्यचर्या में सम्मिलित कर लेना चाहिए। एल० हागबेन लिखता है (मदर टंग) लंदन, 1964, "भावात्मकता से अलिप्त विज्ञान की भाषा का बुद्धिमता से प्रयोग करने और काम में आने वाले शब्द भंडार में वृद्धि करने के लिए हमें ग्रीक और लेटिन में प्रवीण होने की आवश्यकता नहीं, लेकिन उन दो-चार सौ ग्रीक शब्दों तथा दो-चार सौ लैटिन शब्दों की प्रचलित धातुओं को उन अर्थों के साथ जान लेना आवश्यक है जो, सर्वसम्मति से सामान्य बोलचाल की भाषा में निश्चित हो चुके है। अर्थ के साथ जानना आवश्यक है। जब तक हमें यह जानकारी नहीं होगी, तब तक हम अर्थ बताने वाले उपयोगी सूत्रों को नहीं जान पाएंगे और अर्थ हीन नए शब्दों को अपनाएंगे या बनाएंगे।

वैज्ञानिक अनुसंधान

16.40 **वैज्ञानिक अनुसंधान और राष्ट्रीय समृद्धि**—आधुनिक संसार में किसी राष्ट्र की उन्नति बौद्धिक हौसले और कल्याण के लिए वैज्ञानिक अनुसंधान आधारभूत कार्य होता है। सारणी 16.4 और 16.5 पर दृष्टिपात करने से अनुसंधान एवं विकास पर व्यय और प्रति व्यक्ति के स्तर में घनिष्ट अन्योन्यक्रिया प्रकट हो जाएगी। वाणिज्य की दृष्टि से उत्पादित ऊर्जा का जनसंख्या के प्रतिव्यक्ति द्वारा उपभोग दर्शाने वाली संख्याएं औद्योगिक विकास की अच्छी सूचक होती हैं। शिक्षा और अनुसंधान औद्योगिक विकास के फल ही नहीं वरन् बीज भी हैं। भारतवर्ष में अनुसंधान एवं विकास पर अद्यतन व्यय का स्तर प्रति व्यक्ति लगभग एक रुपया है जो कुल राष्ट्रीय उत्पादन का करीब 0.3 प्रतिशत है। इससे ज्ञात होता है कि भारतवर्ष कुल राष्ट्रीय उत्पादन का प्रतिशतता के रूप में व्यक्त अनुसधान एवं विकास अ० और वि० के प्रयत्न के अन्तर्राष्ट्रीय सोपान के लगभग निचले सिरे पर है। इसे पृष्ठ 453 पर दिए गए चार्ट में देखा जा सकता है। उच्च औद्योगीकृत और अर्ध औद्योगीकृत देशों की तुलना करने में यह याद रखना चाहिए कि दरिद्र देशों में कुल राष्ट्रीय उत्पादन मात्र निर्वाह के स्तर से बहुत अधिक ऊंचा नहीं होता; और जनता के खाना कपड़ा और मकान की निम्नतम आवश्यकता की पूर्ति के बाद जो अधिशेष रहता है वह कुल के बहुत कम भाग के बराबर होता है।

सारणी 16.4 अनुसंधान एवं विकास पर व्यय और कु० रा० उ० (1960)

देश	अनुसंधान एवं विकास पर व्यय (1960) डालर प्रति व्यक्ति कु० रा० उ० का प्रतिशत	डालर प्रति व्यक्ति	वाणिज्य की दृष्टि से उत्पादित ऊर्जा का उपयोग प्रति व्यक्ति (1960) (टन तुल्यमान कोयला)	कु० रा० उ० डालर प्रति व्यक्ति
संयुक्त राष्ट्र अमेरिका	2.8	78.4	8.0	2308.0
सोवियत संघ	2.3	36.4	2.9	——
यूनाटेड किंगडम	2.7	35.4	4.9	1146.0
फ्रांस	2.1	27.0	2.5	1026.0
स्वीडन	1.6	27.0	3.5	——
कनाडा	1.2	21.9	5.6	1408.0
प० जर्मनी	1.6	20.0	3.6	1115.0
स्विटज़र लैंड	1.3	20.0	1.9	1463.0
नेदर लैंडस	1.4	13.5	2.8	859.0
नार्वे	0.7	10.0	2.7	——
लक्ज़ेमबर्ग	0.7	9.3	—	——
न्यूज़ीलैंड	0.6	8.9	2.0	1317.0
बेलजियम	0.5	7.5	4.1	1030.0
जापान	1.6	6.2	1.3	404.0
हंगरी	1.2	—	2.5	——
पोलैंड	0.9	5.3	3.2	——
आस्ट्रेलिया	0.6	5.3	2.2	1239.0
इटली	0.3	1.8	1.2	623.0
यूगोस्लाविया	0.7	1.4	0·9	223.0
चीन	—	0.6	0.6	——
घाना	0.2	0.4	0.1	198.0
लेबनान	0.1	0.3	0.7	——
मिश्र	...	0.3	0.3	138.0
फिलिपाइन्स	0.1	0.3	0.2	200.0
भारतवर्ष	0.1	0.1	0.1	69.0
पाकिस्तान	0.1	0.1	0.1	54.0

स्रोत : अल्पविकसित देशों में अल्पविकसित विज्ञान, स्टेशन देदीजर, मिनर्वा, हेमंत, 1963

16.41. **अनुसंधान में निवेश**—जिस युग की विशेषता विज्ञान और शिल्पविज्ञान हो उसमें सभी प्रकार के मानवीय प्रयासों की करीब-करीब आवश्यक पूर्वशर्त अनुसंधान है। औद्योगिक रूप से उन्नत देशों में अनुसंधान एवं विकास में लगाई गई पूँजी और इन कार्यों में लगी जनशक्ति की वृद्धि आशातीत हुई है। यह सारणी 16.5 से प्रकट है।

सारणी 16.5. अनुसंधान एवं विकास पर अनुमानित कुछ व्यय (अ० वि० कु० व्य०) और कुल राष्ट्रीय उत्पाद (कु० रा० उ०), 1962

	संयुक्त राज्य अमेरिका	पश्चिमी यूरोप (1)	बेलजियम	फ़्रांस	जर्मन संघ गणराज्य	नेदर लैंड्स	युनाइटेड किंगडम
अ० वि० कु० व्य० राष्ट्रीय मुद्रा (दस लाख) में	17,531	—	6,625	430	4,419	860	634
अ० वि० कु० व्य० संयुक्त राष्ट्र डालर में (दस लाख, सरकारी विनिमय दर)	17,531	4,360	133	1,108	1,105	239	1,775
कु० रा० उ० राष्ट्र मुद्रा में बाजार की कीमत (2) पर (दस लाख)	5,57,590	—	6,46,200	3,56,300	3,54,500	48,090	28,566
बाजार दर पर अ० वि० कु० रा० के प्रतिशत के रूप में कु० रा० उ०	3.1	—	1.0	1.5	1.3	1.8	2.2
जन संख्या (दस लाख)	187	176	9	47	55	12	53
प्रति व्यक्ति अनुसंधान एवं विकास पर व्यय. संयुक्त राष्ट्र डालर में	93.7	24.8	14.8	23.6	20.1	20.3	35.5

1. बेलजियम, फ़्रांस, जर्मनी, नेदरलैंड्स, युनाइटेड किंगडम
2. यदि कु० रा० उ० को बाजार की कीमत के स्थान पर फैक्ट्री-लागत पर लिया जाए तो निम्नांकित अनुपात होंगे :

संयुक्त राज्य	3.5 प्रतिशत
बेलजियम	1.2 प्रतिशत
फ़्रांस	1.8 प्रतिशत
जर्मनी	1.5 प्रतिशत
नेदर लैंड्स	1.7 प्रतिशत
युनाइटेड किंगडम	2.5 प्रतिशत

स्रोत : द ओ० ई० सी० डी० आब्जर्वर, विज्ञान विशेषांक, फरवरी 1966 पृ० 11

अनुसंधान एवं विकास पर कुल व्यय कु० रा० उ० के 1 से 3 प्रतिशत के बीच है। ध्यान रहे कि कुछ देशों में अनुसंधान एवं विकास पर व्यय पिछले दशक से लगभग चार गुना बढ़ गया है। फ़्रांस ने 1962 में अनुसंधान एवं विकास पर कु० रा० उ० का 1.8 प्रतिशत खर्च किया, 1970 तक बढ़कर इसे 2.5 प्रतिशत होने की आशा है। इसी अवधि में वैज्ञानिक कार्यों और उच्चतर शिक्षा में कार्य करने वालों की संख्या के दुगनी होने की संभावना है। प्रकट है कि वृद्धि की इतनी ऊंची दर अनिश्चित काल तक नहीं रखी जा सकती। उदाहरण के

लिए, संयुक्त राज्य में पिछले दो वर्षों में अनुसंधान एवं विकास की वृद्धि-दर में पर्याप्त धीमापन आया है, परन्तु यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है कि यह केवल अस्थायी दशा है या संतुलित अवस्था के निकट (अधिकतम स्तर) पहुंचने का चिह्न। उच्चतम औद्योगीकृत देशों को भी अनुसंधान एवं विकास पर कु० रा० उ० के 5 से 10 प्रतिशत से अधिक धन की व्यवस्था करना अत्यन्त कठिन होगा।

16.42. अभी हाल ही में सी० फ्रीमैन और ए० यंग द्वारा पश्चिमी यूरोप, उत्तरी अमेरिका तथा सोवियत संघ के अनुसंधान एवं विकास की मात्रा पर एक अत्यन्त मूल्यवान अध्ययन प्रकाशित हुआ है (ओ० ई० सी० डी० पेरिस, 1965) फ्रीमैन-यंग के अध्ययन का एक विशिष्ट पहलू उन्हीं के शब्दों में "अनुसंधान विनिमय दर" का अनुमान लगाने का प्रयास है। विभिन्न देशों में साधारणतया अनुसंधान एवं विकास व्यय की जो तुलना की जाती है उसमें इस बात का ध्यान नहीं रखा जाता कि धन की कोई राशि अनुसंधान और विकास के प्रयास को जितना एक देश में उत्पन्न करती है उतना दूसरे देश में नहीं। अन्य शब्दों में 'सरकारी विनियय दर' और तथाकथित 'अनुसंधान विनिमय दर' में विशेष अन्तर हो सकता है। उपलब्ध दरों के आधार पर फ्रीमैन और यंग ठीक-ठीक आँकड़े देने में असमर्थ हैं, परन्तु उनका अन्तिम अनुमान है कि अमेरिकी अनुसंधान एवं विकास व्यय और यूरोपीय व्यय का अनुपात लगभग 1.5 : 2 है। सोवियत संघ की तुलना में अमेरिकी व्यय लगभग तीन गुना अधिक है।

16.43. यह जानना रुचि कर होगा कि (1962 में जिसके संबंध में अध्ययन किया गया है) संयुक्त राज्य में कुल अनुसंधान एवं विकास व्यय का लगभग 60 प्रतिशत सैनिक और अंतरिक्ष अनुसंधान के लिए था। इंगलैंड की समकक्ष राशि 40 प्रतिशत, पश्चिमी जर्मनी की 10 प्रतिशत और बेलजियम तथा नेदर लैंड्स की इससे भी कम थी।

16.44. हम फ्रीमैन-यंग रिपोर्ट की दो सारणियों को उद्धृत करते हैं (सारणी 16.6 और 16.7)। इससे अनुसंधान एवं विकास के संगठन और व्यवस्था की बहुमूल्य अन्दरूनी बातें ज्ञात होती है। यह रिपोर्ट एक ओर अनुसंधान एवं विकास पर राष्ट्रीय आय के प्रतिशत व्यय और दूसरी ओर कुल जनसंख्या में वैज्ञानिकों और शिल्पविज्ञानियों के प्रतिशत के पारस्परिक संबंध के महत्व पर जोर देती है। यदि उनमें से एक ऊंचा है और दूसरा नीचा तो इससे अयोग्यता और अपव्यय की ही वृद्धि होगी। अधिक विज्ञान कार्य के लिए हमें अधिक वैज्ञानिक चाहिए। अनुसंधान और शिक्षा में निवेश अविभेद्य है। उदाहरण के लिए संयुक्त राज्य अमेरिका में 1920 में अनुसंधान एवं विकास पर कुल व्यय कु० रा० उ० का 0.1 प्रतिशत था। 1940 तक बढ़कर यह 0.5 प्रतिशत हो गया। वर्तमान व्यय 3 प्रतिशत से अधिक है। 1940 में वृत्तिक दृष्टि से योग्य वैज्ञानिकों और इंजीनियरों की कुल संख्या (सभी प्रकार के कार्यों में, जिसमें अनुसंधान एवं विकास सम्मिलित है) कुल श्रमिकों की संख्या की 0.6 प्रतिशत थी। आजकल यह 1.5 प्रतिशत है जिसे 1970 तक बढ़कर 2 प्रतिशत हो जाने की आशा है। अनुसंधान एवं विकास पर भारतीय व्यय कु० रा० उ० का 0.3 प्रतिशत है, और वैज्ञानिकों तथा इंजीनियरों की कुल संख्या श्रमिकों की संख्या के एक प्रतिशत के कुल शतांश है। (योग्यता प्राप्त वैज्ञानिकों और इंजीनियरों की संख्या लाख की कोटि में है।)

सारणी 16.6. आर्थिक खंडों द्वारा अनुसंधान एवं विकास पर कुल अनुमानित व्यय (1962)
(प्रतिशत के रूप में)

	कार्य			निधि का स्रोत		
	व्यापारिक उद्यम	उच्चतर शिक्षा	सरकारी और लाभ रहित	व्यापारिक उद्यम	उच्चतर शिक्षा	सरकारी और लाभ रहित
संयुक्त राज्य	71	10	19	35	2	63
पश्चिमी यूरोप	59	12	29	43	—	57
बेलजियम	65	13	22	63	—	37
फ्रांस	48	14	38	30	—	70
पश्चिम जर्मन	61	20	19	60	—	40
नेदर लैंड्स	60	14	26	65	—	35
सं० कि०	63	5	32	36	—	64

सारणी 16.7. अनुसंधान एवं विकास में लगी हुई अनुमानित जनशक्ति (1962)

	अ० और वि० में लगे हुए वैज्ञानिक एवं इंजीनियर	अ० और वि० में लगे हुए अन्य कार्मिक	अ० और वि० में लगे कुल कार्मिक	कुल जन संख्या	कुल जन संख्या कार्य-रत (15-64) आयु	अ० और वि० कार्मिक प्रति 1000 जन संख्या के पीछे	अ० और वि० कार्मिक प्रति 1000 कार्य-रत जन संख्या के पीछे
	हजार	हजार	हजार	10 लाख	10 लाख		
	पूर्ण काल तुल्यांक						
संयुक्त राज्य	435.6	723.9	1,159.5	186.6	111.2	6.2	10.4
सोवियत संघ (1)*	416.0	623.0	1039.0	220.0	142.0	4.7	7.3
(2)	(487.0)	(985.0)	(1472.0)			(6.7)	(10.4)
पश्चिमी यूरोप	147.5	370.8	518.3	176.1	113.9	2.9	4.6
बेलजियम	8.1	12.9	21.9	9.2	6.0	2.3	3.5
फ्रांस	28.0	83.2	111.2	47.0	29.1	2.4	3.8
जर्मनी	40.1	102.1	142.2	54.7	56.7	2.6	3.9
नेदर लैंड्स	12.6	20.2	32.8	11.8	7.5	2.8	4.5
यु० कि०	58.7	152.4	211.1	53.4	34.8	4.0	6.1

*(1) 'अनुदार' अनुमान, (2) 'परियोजना' के अनुभागों को सम्मिलित करके

ध्यान दें : 15 और 64 के बीच की जनसंख्या का भाग सृजनात्मक कार्य के लिए सक्षम है, पर बहुत अधिक भाग इस अर्थ में वास्तव में काम नहीं कर रहा है।

विश्वविद्यालयों में वैज्ञानिक-अनुसंधान

16.45. अब हम विज्ञान में विश्वविद्यालय-अनुसंधान पर विचार करेंगे। यह दुर्भाग्य की बात है कि विश्वविद्यालय अनुसंधान की कुछ महत्वपूर्ण बातों के बारे में हमें शिक्षा के किसी भी अन्य अमुख पहलू से कम जानकारी है। जानकारी की यह कमी ही राष्ट्र के अनुसंधान कार्य और शिक्षा के अन्तर्गत विश्वविद्यालय अनुसंधान की अपेक्षाकृत उपेक्षा का कारण और परिणाम दोनों ही है। हम यहां इस बात पर जोर देना चाहते हैं कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अन्तर्गत, इस बात को महत्वपूर्ण स्थान मिलना चाहिए कि भारत में विश्वविद्यालय अनुसंधान की प्रगति क्या है और उसका प्रभाव समाज पर पया पड़ा। यह जानकारी यथातथ्य हो और लगातार, आधुनिकतम तरीकों से एकत्र की जाती रहे। विज्ञान तो वास्तव में सार्वभौम और राष्ट्रातीत होता है, अतएव राष्ट्रीय अनुसंधान नीति तथा शिक्षा नीति से इसके संबंध विरूपित करने में अन्य देशों, विशेषकर सोवियत रूस, संयुक्त राज्य, जापान और चीनी लोक गणराज्य के विकास का व्यवस्थित रूप से अध्ययन और तुलना आवश्यक है।

16.46. भारतीय शिक्षा और अनुसंधान की एक बड़ी कमजोरी है भारतीय अनुसंधान की समस्त गतिविधि में जो स्वयं हमारी क्षमता और आवश्यकता के अनुपात में अत्यन्त कम है, भारतीय विश्वविद्यालयों का अपेक्षाकृत कम भाग लेना। स्वतन्त्रता के पहले विश्वविद्यालय अनुसंधान के लिए साधन भी कम था और उस पर ध्यान भी कम दिया जाता था। सरकार गम्भीर रुचि नहीं लेती थी और श्रेष्ठतम वैज्ञानिकों को भी शायद ही कोई प्रोत्साहन देती थी। इन कठिनाइयों के बावजूद भारत के कुछ अनुसंधानों का स्थान संसार के विज्ञान की अग्रिम श्रेणी में है। परन्तु इससे तो विश्वविद्यालयों में साधारणतया पाई जाने वाली कमी और अनुसंधान के वातावरण का अभाव ही प्रकट होता है। अब ऐसी स्थिति आ गई है कि विश्वविद्यालयों में उन्नत अध्ययन और अनुसंधान का दृढ़ अनुमोदन एवं प्रोत्साहन हमारी राष्ट्र नीति का मूलभूत लक्ष्य होना चाहिए। देश की सभी प्रगति और विकास का यही आधार है।

16.47. **विश्वविद्यालयों का अनुसंधान कार्य**—विश्वविद्यालयों के अनुसंधान कार्य के कई महत्वपूर्ण पक्ष हैं। इसका सारे राष्ट्रीय जीवन पर जोरदार प्रभाव पड़ता है। मुख्य बातों को संक्षेप रूप से नीचे दिया गया है :

(1) **अनुसंधान-कर्त्ताओं का निर्माण**—अनुसंधान-योग्यता की पहचान का केन्द्र स्थल विश्वविद्यालय है। देश के सभी या लगभग सभी अनुसंधानकर्त्ताओं का निर्माण यहीं होता है। यही उनको आधारभूत प्रशिक्षण देता है। इस प्रकार राष्ट्रीय अनुसंधान की उत्कृष्टता बहुत हद तक विश्वविद्यालय अनुसंधान की उत्कृष्टता पर निर्भर है।

(2) **अनुसंधानकर्त्ताओं का कार्य**—शिक्षा में उन्नत देशों में (परन्तु भारत वर्ष में नहीं) मात्रा तथा विविधता दोनों ही दृष्टियों से राष्ट्रीय अनुसंधान कार्य का अधिक भाग विश्वविद्यालयों में होता है। किसी देश के विज्ञान में चोटी के विद्वान साधारणतया विश्वविद्यालय में होते है अथवा उनके निकटतम सहयोग से काम करते हैं।

(3) **अध्यापन की उत्कृष्टता**—अनुसंधान में लगे रहना सृजनशील अध्यापन और सृजनशीलता के प्रोत्साहन की पूर्व शर्त है।

(5) **अध्यापकों का निर्माण**—विश्वविद्यालयों में उनके भावी अध्यापकों तथा माध्यमिक स्कूलों के अध्यापकों का निर्माण होता है अतएव उनमें विकसित अनुसंधान के वातावरण का सीधा प्रभाव अध्यापकों के सम्पूर्ण चरित्र एवं गुणात्मकता पर पड़ता है और उनके जरिए छात्रों के विकास और पहचान पर।

(5) **नेताओं का प्रशिक्षण**—राष्ट्र के लगभग सभी क्षेत्रों में नेता और निर्णायक करीब-करीब अनन्य रूप से विश्वविद्यालयों से शिक्षा प्राप्त किए हुए हैं। अतएव विश्वविद्यालयों का एक महत्वपूर्ण काम है कि वे देश के भावी नेताओं के समक्ष आने वाली समस्याओं के समाधान में वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाने के लिए उनमें रुचि पैदा करें।

(6) **परामर्शदायी कार्य**—अपने अनुसंधान कार्य द्वारा विश्वविद्यालय के कर्मचारी अनुसंधान, उत्पादन, निर्णय आदि करने वाली संस्थाओं को सम्मति तथा परामर्श दे सकते हैं और देते भी हैं। हमारे देश में इसको खूब प्रोत्साहन मिलना चाहिए।

(7) **अनुसंधान नीति**—अधिकतर देशों में विश्वविद्यालय ही अनुसंधान नीति वाले संस्थानों को, जिनमें सरकार की उच्चतम स्तर की सम्मतिदायी समितियां भी सम्मिलित है, परामर्शदाता कर्मचारी देते हैं।

(8) **वैज्ञानिक परम्परा**—देश की वैज्ञानिक परम्परा के विकास और सुधार में तथा समाजिक दृष्टि से चैतन्य और सक्रिय वैज्ञानिक समुदाय के संगठन में विश्वविद्यालय के कर्मचारियों की मुख्य भूमिका होती है। विश्वविद्यालय के कर्मचारी यह कार्य एक दूसरे के साथ तथा विश्वविद्यालय के बाहर के वैज्ञानिकों के साथ सम्पर्क स्थापित करके तथा पत्राचार से करते हैं। व्यक्तिगत सम्पर्क एवं विद्यार्थी संस्थाओं द्वारा अध्यापक छात्रों, अर्थात्, भावी वैज्ञानिक समुदाय में वैज्ञानिक परम्परा और यथोचित व्यवहार प्रतिमान के विकास में सहायक होते हैं। विश्वविद्यालय के विभागों के कर्मचारियों एवं छात्रों की सभाएं युवकों में अनुसंधान के प्रति रुचि और सृजनशीलता बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं।

(9) **अंतर्राष्ट्रीय सम्पर्क**—विश्वविद्यालयों के वैज्ञानिकों से अधिकतर बनी राष्ट्रीय स्तर की शैक्षणिक संस्थाओं का अन्तर्राष्ट्रीय सम्पर्क और सद्भावना बढ़ाने में प्रमुख हाथ होता है, और बहुधा विज्ञान के क्षेत्र के बाहर तक उसका विस्तार हो जाता है।

(10) **सरकार और विश्वविद्यालय**——विश्वविद्यालय और सरकार के बीच स्वस्थ संबंध साधारणतया सरकार तथा विज्ञान के बीच उपयोगी एवं संतुलित सहयोग बढ़ाने में अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है।

16.48. किसी देश के महान सृजनशील वैज्ञानिक और इंजीनियर इसके अत्यन्त बहुमूल्य और दुर्लभ निधि होते हैं। उनको विकास ऐसा होना चाहिए कि जिससे अधिकतम "प्रवर्धक प्रभाव" उत्पन्न हो। चोटी के वैज्ञानिक का प्रवर्धक-प्रभाव सामान्यतया विश्वविद्यालयों में अधिकतम होता है। विश्वविद्यालय में काम करते हुए वह केवल वैज्ञानिक अनुसंधान में ही योगदान नहीं देता, वरन् नई प्रतिभा के निर्माण में भी। वह प्रेरणा के केन्द्र-बिन्दु और सृजनशील युवक वैज्ञानिकों के 'प्रवर्धन केन्द्र' के रूप में काम करता है। यह महत्वपूर्ण है कि विश्वविद्यालय के लोग, अर्थात्, अध्यापक और विद्यार्थी अधिकाधिक अनुसंधान कार्य करें और यह अधिकाधिक उत्कृष्ट हो। अंतिम लक्ष्य यह होना चाहिए की भारत में प्रत्येक विश्वविद्यालय अध्यापक अनुसंधानक बने और प्रत्येक अनुसंधानक अध्यापक बने। अध्यापन की अच्छी योग्यता के अतिरिक्त उत्कृष्ट अनुसंधान लेख का प्रकाशन विश्वविद्यालय में अध्यापकों की नौकरी में उन्नति की मूल कसौटी होनी चाहिए। स्नातक स्तर के भी प्रतिभावन विद्यार्थियों को उत्साहित करना चाहिए कि वे किसी न किसी प्रकार के अनुसंधान कार्य में भाग लें। इसमें क्षेत्र और परियोजना कार्य और सक्रियात्मक अनुसधान की तरह के अध्ययन सम्मिलित हो सकते हैं। इसके लिए छुट्टियों में विशेष प्रबन्ध किया जा सकता है। एम० एस-सी० और पी-एच० डी० के योग्य छात्रों के कुछ भाग को अपने समय का कुछ अंश अध्यापन कार्य में लगाना चाहिए, जिसमें स्नातक तथा स्नातकोत्तर छात्रों की औपचारिक पाठ्यचर्या भी शामिल हो। जहां कहीं सम्भव हो सी० एस० आई० आर०, ए०ई०सी० तथा विश्वविद्यालय तंत्र के बाहर के अन्य अनुसंधान संस्थानों के सक्रिय वैज्ञानिकों को पूर्णकाल अथवा अंशकाल, थोड़े दिन या अधिक दिन के लिए अध्यापन तथा अनुसंधान कार्य में भाग लेने के लिए आमंत्रित एवं प्रेरित किया जाए। अध्यापन अनुसंधान तथा सृजनशीलता उत्तेजित करता है। इसका अनुभव अत्यन्त उपयोगी और लाभदायक सिद्ध होता है।

16.49. **शैक्षिक गतिशीलता**—विज्ञान के क्षेत्र में स्नातकोत्तर एवं अनुसंधान स्तर पर हमारे विश्वविद्यालयों के बीच और विश्वविद्यालयों एवं राष्ट्रीय प्रयोग शालाओं और देश के अन्य अनुसंधान संस्थानों के बीच विद्यार्थियों की (और अध्यापकों को भी) गतिशीलता को पर्याप्त महत्व देते हैं। हम सिफारिश करते हैं कि चुने हुए स्नातकोत्तर विद्यार्थियों के लिए व्यवस्था होनी चाहिए कि वे अपनी पाठ्यचर्या के बीच किसी अन्य विश्वविद्यालय या संस्थान में, जो उनकी रुचि के विषय में विशिष्टता प्राप्त हों, एक या दो सत्र बिता सकें। इन विद्यार्थियों के व्यय की पूर्ति के लिए अनुदान देना चाहिए। अध्यापकों, अनुसंधानकर्त्ताओं और प्रयोगशाला शिल्पियों को विश्वविद्यालयों और अनुसंधान संस्थानों में कुछ काल रहने के लिए (कुछ हफ्ते से कुछ महीनों तक) सहायता दिए जाने की विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की योजना का पर्याप्त विस्तार होना चाहिए। यह योजना कर्मचारियों के केवल वृत्तिक उन्नति के ही लिए आवश्यक नहीं है वरन विश्वविद्यालयों और अनुसंधान संस्थानों के बीच सहयोग बढ़ाने के लिए भी।

16.50. **टोली भावना से कार्य**—विश्वविद्यालय-अनुसंधान के स्तर में सुधार के लिए यह आवश्यक है कि टोली-कार्य का विकास हो। इसकी आवश्यकता विभागों के अन्दर तथा समूचे विश्वविद्यालय तंत्र में स्वस्थ अनुसंधान वातावरण और अनुसंधानक समुदाय के विकास के लिए है। टोली कार्य वास्तविक रूप में होना चाहिए। यह टोली कार्य और अनुसंधान भावना का झूठा दिखावा होगा यदि प्रोफेसर या विभागीय अध्यक्ष, बिना अनुसंधान समस्या के हल के विषय में कुछ किए ही प्रत्येक लेख पर अपना नाम लिख दें। अभाग्यवश, भारतवर्ष में ऐसा कम नहीं होता। ऐसे भ्रामक और परजीवी "टोली-कार्य" को कठोरता से दबाना विश्वविद्यालय अनुसंधान की नीति में ही सम्मिलित होना चाहिए। फिर, विभाग के अध्यक्ष या किसी अध्यापक के तत्वाधान में अनुसंधान करने वाले विद्यार्थियों की संख्या सीमित करनी चाहिए। किसी विभाग में अनुसंधान छात्रों को केवल विभाग के अध्यक्ष या प्रोफेसरों को ही नहीं सौंपना चाहिए। यदि युवा कर्मचारी योग्य हों तो अनुसंधान के मार्ग-दर्शन और निरीक्षण के लिए उनको उत्साहित करना और साधन प्रदान करना चाहिए।

16.51. **पी-एच० डी० में नामांकन के लिए योग्यता**—पी-एच० डी० में नामांकन की योग्यता साधारणतया जितनी रखी जाती है उससे अधिक विस्तृत आधार पर और लचीली होनी चाहिए। किसी विषय के एम० एस-सी० के लिए यह संभव होना चाहिए कि वह अपने डाक्टर की उपाधि के कार्य के लिए किसी दूसरी विद्या या संकाय के विभाग में संबंधित विभाग के अध्यक्ष के अनुमोदन से नामांकन करा सके। इससे अन्तर-विद्या-क्षेत्र के विकास को सहायता मिलेगी। हमें चाहिए कि अनुसंधान की ओर झुकाव वाले इंजीनियरी के स्नातकों को सीधे गणित, भौतिकी, तथा अन्य वैज्ञानिक विषयों में पी-एच० डी० करने के लिए प्रोत्साहित करें। इनके संबंध में पी-एच० डी० कार्य करने के लिए स्नातकोत्तर उपाधि की आवश्यकता को अनिवार्य नहीं समझना चाहिए। इससे इंजी-

नियरी और शिल्पविज्ञान के अनुसंधान के लिए अधिक लोग आकर्षित होंगे।

16.52. **गणित का स्थान**—जैसा कि पहले कहा जा चुका है, विकासमान और उन्नत देशों में अन्तर अधिक होना लगभग अनिवार्य है पर बहुधा यह अन्तर कुछ अंशों में दूसरों की अपेक्षा बहुत अधिक होता है। यदि किसी विकासमान देश को अधिकतम प्रयत्न करना है और इसे लम्बे अरसे तक जारी रखना है तब इसे वैज्ञानिक उद्यम के किसी ऐसे क्षेत्र को ढूंढ़ना चाहिए जिसमें यह खूब विस्तार कर सकता हो और विश्व-व्यापी महत्व का कुछ कार्य कर सकता हो। ऐसे क्षेत्र की पहचान आसान नहीं होती। इसके लिए विपुल अंतर्दृष्टि, साहस और कल्पना की आवश्यकता है। पर किसी भी राष्ट्र के वैज्ञानिक उद्यम के सारे हौसले के लिए यह आवश्यक है। इस सम्बन्ध में जिस अध्ययन क्षेत्र का तुरन्त ध्यान आता है वह गणित है।

16.53. विज्ञान, शिक्षा और अनुसंधान के सम्बन्ध में गणित पर हमारा जोर कभी अत्यधिक नहीं माना जा सकता। हमेशा से महत्वपूर्ण होने पर भी गणित का महत्व आज से अधिक कभी नहीं रहा है। साईबरनेटिक्स और स्वचालन पर आधारित विज्ञान की नव क्रांति का, जो शताब्दी के अन्त तक पूर्ण रूप में हो जाएगी, मनुष्यों पर इतना अधिक प्रभाव होगा जितना मानव इतिहास में अब तक किसी चीज का नहीं हुआ है। साईबरनेटिक्स क्रांति द्वारा गणित को नया महत्व और नई भूमिका प्राप्त होगी। इनसे तथा अन्य कारणों से यह महत्वपूर्ण है कि आगामी दो दशकों में भारतवर्ष को गणित की दुनिया के नक्शे पर स्थान दिलाने के लिए आयोजित प्रयत्न किया जाए। अगले पांच से दस वर्ष में तीन चार विश्वविद्यालयों में गणित में अध्ययन के उन्नत केन्द्र स्थापित किए जाएं। हमारे निचार में इस प्रकार के केन्द्र के लिए स्पष्टतः मद्रास विश्वविद्यालय और रामानुजन गणित संस्थान उपयुक्त है।

16.54. हम इस बात की भी सिफ़ारिश करते हैं कि विश्वविद्यालयों में गणित के प्रमुख विभागों में से कम-से-कम एक को स्कूल और कालेज के अध्यापकों के ज्ञान और सूझ-बूझ को समुन्नत बनाने के लिए गणित में पूर्वयोजित शिक्षा की संभावना ढूंढ़ने में सक्रिय रुचि लेने के लिए उत्साहित किया जाए। इस क्षेत्र में हमारे लिए विदेशों, खासकर संयुक्त राष्ट्र में निर्मित, योजनाबद्ध पाठों का उपयोग बहुत लाभदायक हो सकता है।

16.55. हमारी राय है कि देश में गणित के विकास के लिए अति उपयोगी और सम्भावना पूर्ण प्रायोगिक परियोजना के रूप में निकट भविष्य में एक या दो विशिष्ट माध्यमिक स्कूल, गणित में असाधारण योग्यता वाले छात्रों के लिए स्थापित किए जाएं। इसे ऐसा आवास-स्कूल होना चाहिए जिसमें गणित तथा अन्य सम्बन्धित विषयों का अध्यापन होता हो और जो ऐसे विश्वविद्यालय से सम्बद्ध हो जिसमें गणित तथा भौतिक विज्ञानों के अग्रिम श्रेणी के विभाग हों। यहां प्रतिभावान युवक छात्र विश्वविद्यालय के प्रोफेसरों के घनिष्ट सम्पर्क में आएंगे और उनके द्वारा पढ़ाए जाएंगे। इससे उनको अति उत्साहवर्धक अनुभव प्राप्त होगा और उनकी सृजनात्मक योग्यता का सक्रिय रूप से प्रस्फुटन होगा।

16.56. हमने गणित का प्रस्ताव दिया है केवल इसके वास्तविक महत्व के कारण ही नहीं वरन् इसलिए भी कि गणित में प्रभावशाली युवकों को पहचानना अपेक्षाकृत दूसरे क्षेत्रों से अधिक आसान होता है। यह आम तौर पर माना है कि परीक्षा में उच्च अंक प्राप्त करने और सृजनशीलता में कोई सार्थक सह-सम्बन्ध नहीं है। सृजनशील वैज्ञानिक के विकास में जो प्रभाव महत्वपूर्ण है उनका सारांश सर जान कॉक्राफ्ट ने हाल ही में इस प्रकार दिया है :

> शैशव का वातावरण ऐसा हो जिसमें ज्ञान और बौद्धिक प्रयास को अपने आप में इतना बहुमूल्य समझा जाता हो कि कम अवस्था में ही पढ़ने और अध्ययन का दृढ़ व्यसन हो जाए।
>
> असाधारण कोटि की स्वतन्त्रता जो अन्यान्य बातों के अतिरिक्त जल्दी ही यह ज्ञान कराने में सहायक हो कि अमुक छात्र अपना कुतूहल निजी प्रयत्न से सन्तुष्ट कर सकता है।
>
> निजी साधनों और स्वयमेव सोचने की आवश्यकता पर शीघ्र निर्भरता। तीव्र प्रेरणा जो उसके अध्ययन और कार्य में एकाग्रता और बिना समय का ध्यान रखे अनवरत प्रयास को जन्म देती है।
>
> माध्यमिक स्कूल का प्रशिक्षण जिसमें मानव शास्त्रों की अपेक्षा विज्ञान पर जोर देने की प्रवृत्ति होती है।
>
> तीव्र बुद्धि पर यह आवश्यक नहीं विशेष तीव्र हो।[1]

16.57. **कम्प्यूटर शिल्पविज्ञान**—विश्वविद्यालय

1. **द स्कूल साइंस रिव्यू**, 1966, पृ० 291।

अनुदान आयोग को चुने हुए विश्वविद्यालयों में परिकलन संस्थापनों और प्रोग्राम बनाने में प्रशिक्षण की व्यवस्था करनी चाहिए। विज्ञान, गणित और सामाजिक विज्ञान में अध्ययन और अनुसंधान की आवश्यकता की पूर्ति के लिए चौथी योजना के अन्त तक काफी विश्वविद्यालयों में बुनियादी कम्प्यूटर की व्यवस्था होनी चाहिए।

साधारण उपयोग वाले कम्प्यूटर व्यापक रूप से उपलब्ध होने चाहिए पर जटिल यंत्रों का उपयोग, अन्तर संस्थान सहयोग के आधार पर किया जाना चाहिए। हमारी राय है कि विश्वविद्यालयों को कम्प्यूटर देने के लिए दस वर्षीय कार्यक्रम तैयार करने के लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग एक विशेषज्ञ समिति स्थापित करे। परिकलन सिद्धान्त, गणितीय तर्क शास्त्र और संख्यात्मक विश्लेषण के अध्ययन के लिए इस क्षेत्र में एक उन्नत केन्द्र को स्थापित करने की सम्भावना पर विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को विचार करना चाहिए।

प्रासंगिक रूप से यह बताना उचित होगा कि संयुक्त राज्य में 1964 में लगभग 15,000 इलेक्ट्रानी कम्प्यूटर थे (समतुल्य आई० बी० एम० 7,090) और उनकी संख्या 25 प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से बढ़ रही है। इनमें से लगभग 1,500 की लागत 7,50,000 डालर प्रति यंत्र है। इंग्लैंड में 1964 में, 1,000 कम्प्यूटर थे। भारतवर्ष में उनकी संख्या पचास से भी कम है।

16.58. इलेक्ट्रानिकी में हाल की प्रगति तथा कम्प्यूटरों के मूलभूत सिद्धान्त और डिजाइन के विकास ने मस्तिष्क की क्रियाविधि और तत्संबंधी समस्याओं के अध्ययन को एक नई प्रेरणा दी है। अतएव मस्तिष्क तथा मनःशारीरिक घटनाओं के अध्ययन के लिए एक दो सक्रिय केन्द्र को तत्परता से सहायता देकर विकसित करना वांछनीय होगा। इस अध्ययन में आधुनिक तकनीक का प्रयोग किया जाए और इस क्षेत्र में प्राचीन भारतीय अनुभव का, जो आज भी कई प्रकार से अत्यन्त महत्वपूर्ण है, लाभ उठाया जाए।

16.59. **साज-सामान**—वैज्ञानिक अनुसंधान अधिकाधिक जटिल, खर्चीला और आडंबरपूर्ण होता जा रहा है और इसके लिए अधिकाधिक विशिष्ट परिष्कृत और मूल्यवान साज-समान और औजारों की नई-नई आवश्यकताएं होती हैं। उदाहरण के लिए रासायनिक अनुसंधान को लीजिए। हमारे देश में शायद ही कोई प्रयोगशाला हो जिसमें द्रव्यमान स्पेक्ट्रोग्राफ, डिजिटल कम्प्यूटर, न्यूक्लीय चुम्बकीय अनुदान उपकरण (N M R) आदि आदि हों, परन्तु उन्नत देशों में इस प्रकार के यंत्र रासायनिक अनुसंधान में व्यापक रूप से उपयोग में लाए जाते हैं। संयुक्त राज्य की राष्ट्रीय विज्ञान परिषद ने हाल में अपनी एक रिपोर्ट में (केमेस्ट्री आपार्चुनिटी एण्ड नीड्स, 1965) संयुक्त राज्य अमेरिका में रसायन की अवस्था का विस्तृत सर्वेक्षण दिया है। इस रिपोर्ट से ज्ञात होता है कि संयुक्त राज्य की रासायनिक पत्रिकाओं में 1958 में प्रकाशित लेखों में से एक प्रतिशत से कम से भी न्यूक्लीय चुम्बकीय अनुनाद उपकरण (NMR) का उपयोग प्रकट होता था पर 1964 में यह प्रतिशतता 18 हो गई। डिजिटल कम्प्यूटर का अब उपयोग सब लेखों के लगभग 16 प्रतिशत में होता है। विज्ञान की प्रगति की दर और फलस्वरूप अनुसंधान के साज-समान तथा यंत्रों के अप्रचलित होने की दर इतनी तेज है कि वास्तव में कोई भी देश अपने अनुसंधान को अधिक मात्रा में विदेशों से आयात किए साज-सामान और धातु की वस्तुओं के भरोसे नहीं जारी रख सकता। प्रत्येक देश के वैज्ञानिक अनुसंधान का स्तर उसके शिल्पनिज्ञान और उद्योग के स्तर से जुड़ा रहता है।

16.60. विश्वविद्यालय के स्तर पर प्रभायी विज्ञान कार्यक्रम के लिए यह अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि अध्यापन और अनुसंधान के आवश्यक साज-सामान समय पर और पर्याप्त मात्रा में मिलें। अतएव साज-सामान की स्थानीय रचना के लिए सब प्रकार के प्रयत्न करने चाहिए और केवल वे ही चीजें आयात की जानी चाहिए जिसके उत्पादन के लिए देश में साधन और कौशल प्राप्त न हों। वर्तमान साज-सामान का उपयोग ठीक से हो इसका निश्चय करने के लिए सक्रिय कदम उठाने होंगे। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ऐसी व्यवस्था करे कि अनुसंधान का जो साज-सामान किसी विश्वविद्यालय में उपयोग में न आता हो वह किसी दूसरे को, जो उसे ठीक से काम में ला सके, दे दिया जाए। वैज्ञानिक साज-सामान की गढ़ाई और मरम्मत के साधनों को भी पर्याप्त रूप से बढ़ाना चाहिए। हमने विश्वविद्यालयों और कालेजों में सुसज्जित कर्मशाला रखने के परम महत्व पर पहले ही जोर दिया है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग और वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद को चाहिए कि वे कुछ विश्वविद्यालयों और राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं को सक्रिय रूप से प्रोत्साहन और सहायता दे ताकि वे विश्वविद्यालयों में आम उपयोग के यंत्रों के अंशांकन और मरम्मत की व्यवस्था करें। प्रयोगशाला के शिल्पियों के प्रशिक्षण को भी उच्च प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

16.61. प्रोगशाला-डिजाइन के क्षेत्र में अध्ययन और

अनुसंधान के महत्व को प्रकाश में लाना आवश्यक है। प्रत्येक संस्थान द्वारा यह काम गंभीरता से नहीं किया जा सकता; परन्तु आवश्यकता सबको है और लाभ भी सब उठाएंगे। प्रयोगशाला डिजाइन, पुस्तकालयों और शिक्षा-भवनों की समस्या आवश्यक और महत्वपूर्ण है और शैक्षिक साधनों के अत्यधिक विस्तार और सुधार की योजना के विचार से भविष्य में इसका और भी अधिक महत्व होगा। हमारी जोरदार सिफ़ारिश है कि इसके लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग या शिक्षा मंत्रालय में विशेष अनुभाग स्थापित किया जाए। इसका कार्य आवश्यकतानुसार सर्वेक्षण और अध्ययन की व्यवस्था करना, विश्वविद्यालयों और अन्य संस्थानों को तकनीकी परामर्श देना और सामान्यतया सूचना के वितरण केन्द्र का काम करना होगा।

16.62. **विज्ञान विभागों का प्रशासन**—विश्वविद्यालयों के विज्ञान विभागों को जहां कहीं हम देखने गए वहीं विभागाध्यक्षों के अधिक प्रशासनिक बोझ को देखकर चिन्ता हुई। नेमी प्रशासन और प्रयोगशाला के साज-सामान मंगाने का काम शैक्षिक कार्यों को अत्यधिक क्षति पहुंचाकर किया जाता है। यह बड़े दुख की बात है कि इस प्रकार के असृजनात्मक कार्यों में प्रथम श्रेणी के वैज्ञानिकों का बहुत सा समय नष्ट होता है। विज्ञान विभागों के प्रशासन को आमूल पुनर्गठित करने की तुरन्त आवश्यकता है। सिवाय उन बातों के जो उनके कार्यों से सीधे सम्बन्धित हों और अनिवार्य हों, विभागों पर प्रशासनिक कार्यों का बोझ नहीं लादना चाहिए। विभागाध्यक्षों के वार्षिक बजट के विनिधाव के अन्दर वैज्ञानिक साज-सामान और उपकरण मंगाने का पूर्ण अधिकार होना चाहिए। यथोचित रूप से हिसाब रखने और सामान्य प्रशासन के लिए उनको पर्याप्त सहायता मिलनी चाहिए। आंतरिक लेखा-परीक्षा की पद्धति, जो कुछ विश्वविद्यालयों में जारी की गई है, भवन निर्माण और आम समान के लिए अवश्य वांछनीय है, पर अध्यापन करने वाले विभागों के कार्य के सम्बन्ध में इसका कोई उपयोग नहीं। प्रत्युत इससे आवश्यक देर और क्षोभ होता है।

16.63. हम विज्ञान विभागों के प्रशासन के प्रश्न को इतना महत्वपूर्ण और आवश्यक समझते हैं कि अपने अत्यंत प्रसिद्ध वैज्ञानिकों में से एक द्वारा आयोग को दी गई टिप्पणी से विस्तृत उद्धरण देना चाहते हैं :

> वैज्ञानिक कार्य के अटूट प्रवाह के मार्ग में सबसे बड़ी रुकावट हैं वर्तमान क्रियाविधि, जिसके अनुसार किसी बात की मंजूरी अधिकारियों की एक शृंखला से होकर प्राप्त होती है, जिसमें लेखा कार्यालय के निरीक्षक, सहायक रजिस्ट्रार, वित्त अधिकारी तथा और भी ऊंचे अधिकारी सम्मिलित हैं। इसी प्रकार यदि किसी अनुसंधानकर्ता को प्लग-विन्दु के मरम्मत की आवश्यकता हो तो उसे असहाय की भांति कागजों के पीछे पीछे इंजीनियर और उसके नीचे के एक अधिकारी से दूसरे अधिकारी के पास जाना पड़ता है और महीनों प्रतीक्षा करनी पड़ती हैं। यह कितने दुख की बात है कि विश्वविद्यालय अपने चोटी के वैज्ञानिकों के समय का इतना मूल्य कम समझने में अशर्फियां लुटें और कोयले पर मुहर, वाली कहावत को चरितार्थ करते हैं। आजकल एक बड़े विज्ञान-विभाग का अध्यक्ष एक उत्कृष्ट लिपिक, लेखाकार और फार्मों का भरने वाला मात्र है। उनकी नियुक्ति अध्यापन और अनुसंधान कार्य के लिए होती है, पर उसके चारों ओर का संगठन ऐसा होता है कि अध्यापन और अनुसंधान दोनों ही मृतप्राय हो जाते हैं। इसके बाद भी जो लोग कुछ कर पाते हैं, वे अपनी निजी मामलों में हानि उठाकर और अपने कुटुम्बियों की उपेक्षा करके ही ऐसा करते हैं।

16.64 यदि किसी विज्ञान-विभाग को अपने साधनों से पूरा लाभ उठाना है तब विभागीय प्रशासन और निर्णय में कर्मचारियों का सहयोग आवश्यक है। किसी अन्य स्थान पर विभागीय समितियों की स्थापना की सिफ़ारिश की गई है। इनको विज्ञान विभागों में भी होना चाहिए। सामान्यतया समिति की यदि प्रतिमास नहीं तो वर्ष में कम से कम तीन-चार बार बैठक करनी चाहिए। इसका कार्य होना चाहिए उपलब्ध निधि को अध्यापन और अनुसंधान में बांटना, विशेष साज-सामान को चुनना और विद्यार्थियों का दाखिला, खास कर स्नातकोत्तर स्तरों पर। शैक्षिक कर्मचारियों के चुनाव में भी अनौपचारिक रूप से इसकी राय ली जा सकती है। कमिटियों को विश्वविद्यालय अध्यादेश या विनिमय द्वारा स्थापित करना वांछनीय होगा। इसका कार्यवृत्त उपकुलपति की जानकारी के लिए और कार्यकारणी समिति के समक्ष प्रस्तुत किया जाना चाहिए। विश्वविद्यालय विनमिय में अध्यक्ष द्वारा उपकुलपति के अनुमोदन से आवश्यकतानुसार समय-समय पर अपनी शक्ति एवं उत्तरदायित्व का प्रत्यायोजन करने का भी विधान होना चाहिए।

16.65. **शुद्ध और अनुप्रयुक्त अनुसंधान**—अब हम शुद्ध और अनुप्रयुक्त अनुसंधान के विषय पर विचार करेंगे। यह अक्सर कहा जाता है कि विश्वविद्यालयों को अनन्य रूप से केवल शुद्ध (आधारभूत) अनुसंधान करना

चाहिए और विज्ञान की सभी शाखाओं में अनुप्रयुक्त अनुसंधान एवं विकास दूसरे संस्थानों के लिए छोड़ देना चाहिए। इस धारणा का आधार विश्वविद्यालय भूमिका का और अनुसंधान का वह चित्र है जो कुछ दशक पूर्व वैज्ञानिक जगत के अल्पसंख्यक अध्यापकों में प्रचलित था। राष्ट्रीय अनुसंधान की क्षमता एवं कार्यक्रम से प्रकट है कि उद्योग प्रधान देशों में विश्वविद्यालय, अनुप्रयुक्त अनुसंधान में पर्याप्त योगदान देते हैं। उनमें से कुछ अंश तक विकास अनुसंधान में भी योगदान देते हैं। आज विज्ञान एवं शिल्पविज्ञान की प्रगति के साथ शुद्ध और अनुप्रयुक्त अनुसंधान का अन्तर अनुसंधान वैज्ञानिक और अनुसंधान इंजीनियर में अन्तर कृत्रिम हो गया हैं और कई क्षेत्रों में (जैसे इलेक्ट्रानिकी में) यह लगभग मिट गया है। एक ही व्यक्ति कभी शुद्ध अनुसंधान और कभी अनुप्रयुक्त समस्या पर कार्य कर सकता हैं। शुद्ध और अनुप्रयुक्त कार्य में अन्तर केवल प्रेरणा और लक्ष्य का होता है, तकनीक और सृजनशीलता का नहीं। शुद्ध अनुसंधान में मुख्य अभिप्राय नवीन अंतर्दृष्टि प्राप्त करने का या नूतन ज्ञान की खोज होता है, जब कि अनुप्रयुक्त कार्य का ध्येय होता है औद्योगिक विकास या उत्पादन की आवश्यकता की पूर्ति। अनुप्रयुक्त अनुसंधान को पूरा करने के लिए सामान्यतया समय-पत्रक निश्चित होता है। हम जोर देकर सिफ़ारिश करते हैं कि अनुप्रयुक्त कार्य को—जैसे महत्वपूर्ण नई तकनीकों को विकसित करना (देश के लिए नई) अथवा विशेष उपकरण का डिजाइन करना या गढ़ना—उचित मान्यता मिलनी चाहिए और इस कार्य के लिए पी-एच० डी० की उपाधि अर्जित कर सकना संभव होना चाहिए। यह बता देना भी उचित होगा कि शुद्ध विज्ञान से संबंधित अनुसंधान में योगदान का कोई मूल्य हो इसके लिए उसे अन्तर्राष्ट्रीय तुलना में खरा होना चाहिए। यह बात अनुप्रयुक्त विज्ञान के लिए उतनी ठीक नहीं। शुद्ध अनुसंधान विषयक किसी विशेष क्षेत्र में योगदान का मूल्य उस क्षेत्र में अनुसंधान को दी गई उत्तेजना में है। परन्तु अनुप्रयुक्त अनुसंधान के संदर्भ में योगदान का मूल्य यंत्र-विनियोग, प्रक्रियाओं और तकनीकों के स्थानीय विकास में होता है।

16.67. इस संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि लगभग प्रत्येक जगह शुद्ध विज्ञान को अनुप्रयुक्त अनुसंधान से अत्यधिक सम्मान प्राप्त हैं। यही नहीं, जहां विज्ञान अभी अपेक्षाकृत नवीन वस्तु है वहां यह अन्तर और अधिक है। अतएव जब तक विशेष ध्यान नहीं दिया जाएगा, शुद्ध अनुसंधान प्रबल होगा और अनुप्रयुक्त कार्य को दूर कर देगा। ऐसा ज्ञात होता है कि लगभग सदैव स्वयं अनुसंधान की (परियोजना की ओर प्रवृत्त प्रयोगशालाओं में भी) प्रवृत्ति 'अधिकाधिक शुद्धतर' होने की होती है जब तक कि सशक्त प्रतिकारी बल न हों। शिल्पविज्ञान के संस्थानों में अनुसंधान संगठित करते समय इस बात का ध्यान रखना आवश्यक हैं। इनमें अनुप्रयुक्त तथा औद्योगिक अनुसंधान पर विशेष बल देना चाहिए।

16.68. हमारे साथ हुई बात चीत में प्रोफेसर पी० एम० एस० ब्लैकेट ने भारतवर्ष के समान विकासमान देश के लिए अनुप्रयुक्त अनुसंधान के महत्व पर विशेष जोर दिया। इसका जरूर यह मतलब है कि विश्वविद्यालयों और इंजीनियरी की संस्थाओं के अनुसंधान कार्य में, जिनमें न केवल इंजीनियर ही वरन् शुद्ध विज्ञान के अन्वेक्षक भी लाभदायक कार्य कर रहे हों, निकट और घनिष्ट सहयोग हो। औद्योगिक अनुसंधान की समस्याओं को विश्वविद्यालयों और इंजीनियरी संस्थाओं और उद्योग में कार्य करने वालों को मिलकर सहकारिता के आधार पर हल करना चाहिए। विश्वविद्यालयों से उद्योग में तथा उद्योग से विश्वविद्यालयों में कर्मचारियों का आना-जाना संभव है तथा वांछनीय भी। शैक्षिक लोगों को औद्योगिक संस्थाओं में परामर्शदायी और सलाहकारी पद, यहां तक कि निर्देशकत्व भी दिया जा सकता है। पश्चिमी जर्मनी में उद्योग द्वारा कुछ विश्वविद्यालय विभागों के सहयोगी रूप से अनुसंधान संस्थाओं को स्थापित किया गया है और वे अनेक परियोजनाओं पर खूब मिलकर काम करते है। भारतवर्ष में जहां कहीं परिस्थिति और साधन इसके उपयुक्त हों वहां इसे कार्यान्वित करना उचित होगा।

16.69. सोवियत संघ में शिक्षा संस्थाएं उद्योग के साथ घनिष्ट और सक्रिय सम्पर्क रखकर काम करती हैं। शिक्षा संस्थाओं (विश्वविद्यालयों और इंजीनियरी संस्थानों) में उद्योग के लिए काफी मात्रा में आधारभूत तथा अनुप्रयुक्त अनुसंधान किया जाता है, जिसका खर्च उद्योग देता है। कुछ विशिष्ट क्षेत्रों में उच्चकोटि के औद्योगिक इंजीनियर और वैज्ञानिक अंशकालिक आधार पर शिक्षा संस्थाओं में प्रोफेसर का कार्य करते हैं। साथ ही, स्नातकोत्तर विद्यार्थियों का अपने अनुसंधान का कुछ भाग औद्योगिक ठिकानों में औद्योगिक संयंत्रों और साधनों का उपयोग करते हुए व्यतीत करना अति साधारण बात है।

16.70. अकादमीसियन पी० कैपित्जा ने हाल के एक लेख में वैज्ञानिक शोधों के उद्योग में अनुप्रयोग के लिए निम्नांकित बातों की आवश्यकता पर जोर दिया है :

उद्योग के क्षेत्र में नवीन शिल्पविज्ञान को

सीखने और अपनाने के लिए यथोचित नैतिक और भौतिक स्थितियों का आयोजन करना चाहिए। नवीन शिल्पविज्ञान को ग्रहण करने के माने हैं ऐसी चीज़ करना जिसे उद्योग ने पहले नहीं किया था। अतएव नवीन शिल्पविज्ञान का आरम्भ उद्योग के लिए शिक्षण प्रक्रिया के समान है।

नवीन शिल्पविज्ञान के अनुप्रयोग के प्रयत्न के पहले संबंधित उद्योग में पर्याप्त प्रारंभिक प्रशिक्षण होना चाहिए।

उद्योग पर अनेक धन्धों और कार्यों का अत्यधिक बोझ नहीं डालना चाहिए। केवल उचित भौतिक परिस्थितियों में ही उद्योग नवीन शिल्पविज्ञान प्रभावी ढंग से सीख सकता है।

ध्यान से बनाये गए कार्यक्रम का होना आवश्यक है। इसमें नवीन शिल्पविज्ञान के उद्योग में अनुप्रयोग करने की प्रक्रिया दी जानी चाहिए।

वैज्ञानिकों के उद्योग के साथ सहयोग करने के लिए 'नैतिक स्थितियों' की अनुकूलता अत्यंत आवश्यक है।[1]

भारतवर्ष में अब तक इस चीज का सर्वेक्षण नहीं किया गया है कि विश्वविद्यालय अनुसंधान आधारभूत, उद्देश्य पोषक आधारभूत, अनुप्रयुक्त और विकास अनुसंधान में किस प्रकार बंटा हुआ है। इस प्रकार के सर्वेक्षण का शीघ्रातिशीघ्र करना आवश्यक है। भारतीय विश्वविद्यालयों में किए गए अनुसंधान की विविध शाखाओं के सर्वेक्षण और पी-एच० डी० प्रबन्धों के इस दृष्टिकोण से विश्लेषण करके इस दिशा में प्रारम्भिक कदम उठाया जा सकता है।

16.71. **विश्वविद्यालय अनुसंधान पर खर्च**— अब हम भारतवर्ष में विश्वविद्यालय अनुसंधान के ऊपर किए गए व्यय पर विचार करेंगे। 1963-64 में (सबसे हाल के वर्ष में जिसके आंकड़े उपलब्ध है) अनुसंधान और विकास पर कुल व्यय 60 करोड़ रुपया लिया जा सकता है, अर्थात् कु० रा० उ० का 0.3 प्रतिशत। इस आंकड़ें में अनिश्चितता की पर्याप्त मात्रा है जो अंशतः अनुसंधान और विकास की परिभाषा में कुछ दुविधा होने के फलस्वरूप है। केन्द्रीय सरकार का व्यय सारणी 16.8 और राज्य सरकारों का सारणी 16.9 में दिया गया है।

सारणी 16.8. वैज्ञानिक अनुसंधान के विभिन्न क्षेत्रों पर केन्द्रीय सरकार का व्यय (1963-64)

क्रम संख्या	क्षेत्र	रुपया (दस लाख)	प्रतिशत
1	2	3	4
1.	कृषि तथा वानिकी	47.01	9.35
2.	पशुपालन, मत्स्यविज्ञान और डेरी अनुसंधान	17.95	3.57
3.	वैज्ञानिक, औद्योगिक एवं शिल्प वैज्ञानिक अनुसंधान	128.21	25.49
4.	चिकित्सा, लोक स्वास्थ्य और फोरेन्सिक विज्ञान	26.71	5.31
5.	सिंचाई और विद्युत शक्ति	18.46	3.67
6.	भूविज्ञान सर्वेक्षण	37.81	7.52
7.	परमाणु ऊर्जा	127.54	25.37
8.	अर्थशास्त्र तथा सांख्यिकी	21.43	4.26
9.	पुरातात्विक खोज और नृतत्वीय सर्वेक्षण	1.96	0.39
10.	रेलवे	8.13	1.62
11.	प्रतिरक्षा	67.60	13.44
	कुल	502.81	100.00

स्रोत : साइन्स इन इन्डिया, सी० एस० आई० आर०, नई दिल्ली, 1966।

सारणी 16.9. अनुसंधान और विकास पर राज्य सरकारों द्वारा खर्च (1963-64)

	रुपया (दस लाख)
1. कृषि और वानिकी	29.87
2. पशुपालन, मत्स्य विज्ञान और डेरी अनुसंधान	5.78
3. वैज्ञानिक, औद्योगिक तथा शिल्प-वैज्ञानिक अनुसंधान	1.32
4. चिकित्सा और लोक स्वास्थ्य	12.09
5. सिंचाई और विद्युत शक्ति	2.08
6. भूविज्ञान सर्वेक्षण	3.20
कुल	54.34

स्रोत : सारणी 16.8 का ही।

1. **कोम्सो मोल्सकाया प्रावदा, 20 जनवरी, 1966 में प्रोफेसर सी० एल० कैपित्जा के प्रकाशित लेख का अंग्रेजी रूपांतर।**

16.73. विश्वविद्यालय अनुसंधान पर खर्च का अनुमान करना कठिन है क्योंकि और चीजों के अतिरिक्त अनुसंधान के खर्च को प्रशिक्षण के खर्च से अलग करने में कठिनाई होती है । युक्तियुक्त अनुमान के रूप में हम इसे 20 करोड़ रुपया ले सकते हैं, जिसके कम होने की सम्भावना है । इस पर भी इन आंकड़ों से देश में अनुसंधान कार्य पर हो रहे खर्च के ताजे ढांचे की मूलभूत कमजोरी एकदम जाहिर हो जाती है । **विश्वविद्यालय अनुसंधान को बहुत ही कम निधि मिलती हैं और यदि इसमें आमूल परिवर्तन नहीं किया गया तो देश के सम्पूर्ण अनुसंधास प्रयत्न का भविष्य संकट में पड़ जाएगा** । संयुपत राज्य या सोवियत संघ से तुलवा अर्थहीन होगी क्योंकि प्रयत्न की मात्रा बिल्कुल भिन्न परिमाण-कोटि की है । फिर भी वह देखकर प्रसन्नता होती है कि औद्योगीकृत देश कुल अनुसंधान और विकास प्रयत्न का लगभग 10 प्रतिशत विश्वविद्यालय अनुसंधान पर खर्च करते हैं । यदि हम प्रतिरक्षा-व्यय को निकाल दें, तब अनुपात लगभग 20 प्रतिशत हो जाएगा । भारतीय राशि अत्यन्त छोटी हैं, पर यह भी परिस्थिति का सबसे महत्व-पूर्ण पक्ष नहीं है । **अधिक महत्त्व की बात यह है कि शिक्षा की दृष्टि से उन्नत सभी देशों में विश्वविद्यालय अनुसंधान पर खर्च उच्चतर शिक्षा के कुल खर्च का लगभग आधा होता है** । फिर, औसतन, विश्वविद्यालय अध्यापकों का लगभग आधा समय अनुसंधान में लगता है । अध्यापन और अनुसंधान के इसी संतुलन से विश्वविद्यालयों को बल और शक्ति प्राप्त होती है । देश में विश्वविद्यालय के कुल व्यय का जितना प्रतिशत अनुसंधान पर लगाया जाता है यह नगण्य प्राय है । इस असंतुलन को जितना शीघ्र हो सके उतना शीघ्र दूर करने का हमें प्रयत्न करना चाहिए । यह न केवल विश्वविद्यालय विज्ञान के हित में होगा वरन् देश में विज्ञान की प्रगति और जीवन-शक्ति के लिए निर्णायक भी । हमारा यह निश्चित मत है कि इस दशक के अन्त तक विश्वविद्यालय के कुल खर्च का लगभग एक चौथाई भाग अनुसंधान पर व्यय करना चाहिए ।

16.74. यह वांछनीय होगा कि आरम्भिक अवस्थाओं में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग विश्वविद्यालयों के अनुसंधान के खर्च के लिए अलग से रकम की व्यवस्था करें । इससे सम्बन्धित एक अति महत्वपूर्ण बात है विदेशी मुद्रा का प्रबन्ध । उन्नत अध्ययन केन्द्रों और प्रमुख विश्वविद्यालयों के लिए, जिनका वर्णन रिपोर्ट में अन्यत्र किया गया है, आगामी दश वर्षों में कम-से-कम 5 करोड़ डालर विदेशी मुद्रा की आवश्यकता होगी । देश में अन्य विज्ञान एवं इन्जीनियरी संस्थानों के लिए भी इतनी ही राशि की आवश्यकता होगी । सब प्रकार 10 वर्ष में 10 करोड़ डालर, अर्थात्, 1 करोड़ डालर प्रतिवर्ष हो जाएगा । रुपयों में यह 75 करोड़ प्रति वर्ष होगा । हमारे पुस्तकालयों में विज्ञान और शिल्पविज्ञान की आधारभूत पठन सामग्री का नितान्त अभाव हैं । पत्रिकाओं की संख्या अपर्याप्त है और महत्व की पत्रिकाओं की पुरानी प्रतियों की बड़ी मांग है । अतएव, केवल पुस्तकों और पत्रिकाओं पर ही एक करोड़ रुपया प्रतिवर्ष से अधिक खर्च होगा ।

विश्वविद्यालयों के बाहर आधारभूत अनुसंधान

16.75. आधारभूत अनुसंधान के क्षेत्र में एक मुख्य समस्या की ओर हम विशेष ध्यान आकर्षित करना चाहते है । आजकल देश में अनेक संस्थाएं ऐसी हैं, जिनका लगभग सारा प्रयत्न विश्वविद्यालय की क़िस्म के अनुसंधान के लिए होता है, परन्तु जो विश्वविद्यालय तंत्र के बाहर होती हैं । ये संस्थाएं लगभग अनिवार्य रूप से (व्यक्तियत उपक्रम या अन्य कारणों से) अपने वैज्ञानिकों के लिए अधिक वेतन, मंहगे साज-सामान और साधारणतया उससे भी अधिक महंगी इमारत की व्यवस्था करने में सफल होती है । जो कुछ भी हो हमारे साधनों की वर्तमान अवस्था में मूलभूत अनुसंधान की व्यवस्था अध्यापन से अलग करना बड़े दुर्भाग्य तथा अदूरदर्शिता की बात, लगभग आत्महत्या के समान, होगी । विश्वविद्यालयों का वास्तविक सामर्थ्य इसमें है कि उनमें अध्यापन और अनुसंधान संबुक्त रूप से होता हो । परन्तु इसे वे तभी प्रभावशाली ढंग से कर सकते हैं जब उनमें अनुसंधान के पर्याप्त साधन उपलब्ध कराए जाएं । अब समय आ गया है कि उन संस्थाओं को, जो विश्वविद्यालयों से अलग रहती है, पर जिनमें आधारभूत अनुसंधान[1] होता है, विश्वविद्यालय के अन्तर्गत लाया जाए या कम-से-कम उनके साथ घनिष्ट रूप से सम्बन्ध स्थापित किया जाए । यह देश में विज्ञान की उन्नति के लिए जितना आवश्यक है उतना ही उन संस्थाओं की उन्नति के लिए भी । जिन संस्थाओं में आधारभूत अनुसंधान होता है या जो विश्वविद्यालयों से अलग रहते है, उन संस्थाओं को, जो विश्वविद्यालय से अलग रहते है पर उनमें नवीन और युवक वृद्धि की आलोचनात्मक और सतत चुनौती की कमी रहती है । अतएव, वे अनुकूल परिस्थितियों में भी एक पीढ़ी से अधिक नहीं चल सकते ।

1. **ऐसे संस्थानों के उदाहरण हैं : बोस अनुसंधान संस्थान (कलकत्ता); विज्ञानों के विकास का भारतीय परिषद् (कलकत्ता) की प्रयोगशालाएं; टाटा मूलभूत अनुसंधान संस्थान (बम्बई); भौतिक अनुसंधान प्रयोगशाला (अहमदाबाद) बीरबल साहनी प्रतिष्ठान (लखनऊ); गणितीय अनुसंधान प्रतिष्ठान (मद्रास), रामन प्रतिष्ठान (बंगलौर) ।**

उसे संभालता है। यह जरूरी है कि इसे प्रत्येक विभाग का कार्य माना जाए। योजना बनाने के स्तर पर ही नहीं, कार्यान्विति के स्तरों पर भी उसके कार्यक्रम बनाने और उसका प्रसार करने में समग्र प्रशासन-तन्त्र जुटा रहे। प्रौढ़ शिक्षा के संचालन में विभागवाद के लिए कोई स्थान नहीं। हमें बताया गया है कि प्रशासनिक उदासीनता के कारण इस क्षेत्र में कार्य को बहुत हद तक हानि पहुंची है। यह ठीक है कि प्रौढ़ शिक्षा मुख्यतः शिक्षा मन्त्रालय का कार्य है, पर ऐसी कार्य विधियों को अपनाना जरूरी है जिनसे समग्र प्रशासन तन्त्र का व्यावहारिक सहयोग सुनिश्चित हो।

17.70. **स्वैच्छिक एजेन्सियां**—इन क्षेत्रों में काम करने वाली स्वैच्छिक एजेन्सियों को हर प्रकार का वित्तीय और तकनीकी प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। प्रौढ़ शिक्षा ऐसा क्षेत्र है जो स्वैच्छिक प्रयत्नों के लिए बहुत ही अनुकूल है। इसका क्षेत्र बहुत विस्तीर्ण है। इसकी सफलता में स्वैच्छिक प्रयासों का बहुत बड़ा हाथ होगा।

तीसरा खण्ड

क्रियान्विति

रिपोर्ट के इस खण्ड में क्रियान्वित से सम्बन्धित समस्याओं और कार्यक्रमों पर प्रकाश डाला गया है, और इसमें दो अध्याय हैं—अठारहवां और उन्नीसवां।

अध्याय अठारह—शैक्षिक योजना-निर्माण और प्रशासन इस अध्याय में शामिल हैं। अन्य बातों के साथ-साथ इसमें शैक्षिक योजना निर्माण, निजी उद्यम का योगदान, स्थानीय अधिकारी और भारत सरकार, राष्ट्रीय और राज्य स्तर पर शैक्षिक प्रशासन, शिक्षा मन्त्रालय तथा राज्यों के शिक्षा विभागों के अधिकारी और कार्य-विधि आदि विषय शामिल हैं।

अध्याय उन्नीस—इस अध्याय में शिक्षा पर खर्च किए जाने वाले वित्त सम्बन्धी मामलों की जांच की गई है। अन्य बातों के अतिरिक्त, स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत में शिक्षा के विकास से संबंधित कुल खर्च और आगामी 20 वर्षों में शिक्षा विकास से संबंधित वित्त के संभावित स्रोतों पर प्रकाश डाला गया है। प्राप्त स्रोतों को विभिन्न शिक्षा क्षेत्रों में बांटने—जैसा कि पहली तीन योजनाओं में किया गया और अगली दो दशाब्दियों में किए जाने की संभावना है—पर भी इसमें प्रकाश डाला गया है। इसमें शैक्षिक वित्त के विभिन्न स्रोतों की चर्चा की गई है; शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर गत पन्द्रह वर्षों में किए गए और आगामी 20 वर्षों में किए जाने वाले प्रति विद्यार्थी खर्च पर मोटे तौर से विचार किया गया है।

उन्नीसवें अध्याय के अन्त में चार महत्वपूर्ण टिप्पणियां हैं।

टिप्पणी-एक में शहरी और देहाती स्थानीय प्राधिकरणों को राज्य सरकारों की ओर से मिलने वाले अनुदान और शिक्षा के क्षेत्र में वित्तीय सहायता विषयक केन्द्र और राज्य के सम्बन्ध की चर्चा की गई है।

टिप्पणी-दो में स्कूली शिक्षा के विकास पर अस्थायी अनुमानित खर्च दिया गया है (1966-85)।

टिप्पणी-तीन में उच्चतर शिक्षा के विकास पर अस्थायी अनुमानित खर्च दिया गया है (1966-85)।

टिप्पणी-चार में शिक्षा आयोग द्वारा किए गए अध्ययन का सार-संक्षेप है। यह सार कुछ विश्वविद्यालयों और कालेजों की उच्चतर शिक्षा की इकाई लागत के आधार पर किया गया है।

अठारहवां अध्याय

शैक्षिक योजना और प्रशासन

एक. शैक्षिक योजना—(2) **मूल समस्या;** (3) **सुधार के लिए कुछ सुझाव;** (5) अग्रताओं के विभिन्न स्तर; (7) **शिक्षा की व्यवस्था करने वाली विभिन्न एजेंसियों के योगदान का पुनर्निर्धारण ।**

दो. गैर-सरकारी उद्यम का योगदान—(9) **वर्तमान स्थिति;** (11) **सिफ़ारिशें ।**

तीन. स्थानीय स्वायत्त निकायों का योगदान—(12) **वर्तमान स्थिति;** (17) **सिफारिशें;** (18) **जिला और नगरपालिका स्कूल बोर्ड ।**

चार. केन्द्रीय सरकार का योगदान—(25) **वर्तमान स्थिति;** (26) **सिफ़ारिशें;** (29) **क्या शिक्षा समवर्ती सूची में होनी चाहिए ?**

पांच. राष्ट्रीय स्तर पर शैक्षिक प्रशासन—(32) **शिक्षा मंत्रालय;** (36) **राष्ट्रीय शिक्षा अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् ।**

छह. राज्य स्तर पर शैक्षिक प्रशासन—(38) **समन्वय;** (40) **शिक्षा सचिवालय;** (42) **शिक्षा निदेशालय ।**

सात. कार्मिक—(44) **भारतीय शिक्षा सेवा;** (50) **राज्य शिक्षा सेवाएं;** (51) **शैक्षिक प्रशासकों का प्रशिक्षण;** (53) **राष्ट्रीय शिक्षा प्रशासक स्टाफ कालेज;** (54) **विभाग के कर्मचारियों की संख्या में वृद्धि करना ।**

आठ. कार्यविधियां—(55) **वर्तमान स्थिति;** (56) **नम्यता और गतिशीलता का उपक्रम;** (57) **शिक्षा अधिनियम ।**

18.01. इस अध्याय में हम शैक्षिक योजना और शैक्षिक प्रशासन के उन कतिपय प्रमुख पक्षों पर विचार करेंगे जिन पर पहले विचार नहीं किया गया है और विशेष रूप से जिनकी स्थानीय, राज्य और राष्ट्रीय स्तर की प्रशासनिक जिम्मेदारियों और व्यवस्थाओं तथा उनके पारस्परिक संबंधों का विवेचन नहीं हुआ है ।

शैक्षिक योजना

18.02. **मूल समस्या**—भारत में शैक्षिक योजना की समस्या यही है कि शिक्षा के क्षेत्र में एक राष्ट्रीय नीति का विकास करना है जब कि संविधान के अन्तर्गत, शिक्षा मुख्यतः राज्याधीन विषय है और विभिन्न स्तरों के अनेक प्राधिकारी इस क्षेत्र के सभी पक्षों पर निर्णय देते रहते है । यह कार्य सरल नहीं है और हमारे मार्गदर्शन के लिए कोई वैसा अनुभव भी नहीं है, इसलिए, अधिकांश मामलों में हमें अपनी पद्धतियां ही अपनानी होंगी । यह भी आवश्यक है कि अपनी योजना-तकनीकों की भी समीक्षा करके हम उनमें आवश्यक सुधार करें ।

18.03. **सुधार के लिए कुछ सुझाव**—विभिन्न राज्यों की तथा राष्ट्रीय स्तर की प्रथम तीन पंचवर्षीय योजनाओं की समीक्षा करने से, कुछ दिशाओं में, योजना-तकनीकों में सुधार करने की आवश्यकता स्पष्टतः प्रकट होती है । इनके विषय में नीचे चर्चा की गई है :

(1) **नामांकन और खर्च पर अत्यधिक बल**—नामांकन और खर्च के लक्ष्यों की प्राप्ति पर अत्यधिक बल दिया जाता रहा है । इसमें संदेह नहीं कि विस्तार की अत्यधिक आवश्यकता थी और इसे आगे भी चालू रखना पड़ेगा । परन्तु इस पक्ष पर आवश्यकता से अधिक बल देने का परिणाम यह होता है कि गुणता, जो एक महत्वपूर्ण पक्ष है, की अवहेलना होती है । इसी प्रकार, खर्च के लक्ष्यों पर अत्यधिक बल देने से अग्रता-निर्धारण में गड़बड़ी होती है और अक्सर अपव्यय भी होता है । अतः यह आवश्यक है कि इस समस्या पर विचार किया जाए और लक्ष्यों की, विशेषतः गुणात्मक सुधार सम्बन्धी लक्ष्यों की, विस्तृत रूपरेखा निर्धारित की जाए ।

(2) **यत्नों को केन्द्रित करने और सुविशिष्ट मार्ग**

अपनाने की आवश्यकता—पहली तीनों योजनाओं में, सामान्य नीति यह रही है कि शिक्षा के प्रत्येक क्षेत्र में और प्रत्येक कार्यक्रम के लिए कुछ-न-कुछ अवश्य किया जाए। इसका फल यह हुआ कि जो थोड़े बहुत साधन उपलब्ध थे उनका यत्किंचित् उपयोग बहुत बड़े क्षेत्र के लिए किया गया। इस नीति के कारण बहुत अपव्यय होता है, इसलिए अब महत्व इस बात का है कि कुछ ऐसे निश्चित कार्यक्रमों पर ही ध्यान केन्द्रित किया जाए, जैसे, शिक्षकों की गुणता में सुधार, कृषि-शिक्षा का विकास, सभी बच्चों के लिए अच्छी और प्रभावकारी प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था, निरक्षरता निवारण, माध्यमिक शिक्षा का व्यावसायीकरण, बड़े विश्वविद्यालयों की स्थापना, स्नातकोत्तर शिक्षा का विस्तार और सुधार, छात्रवृत्तियों की संख्या में वृद्धि और प्रत्येक शिक्षा स्तर की लगभग दस प्रतिशत संस्थाओं का अनुकूलतम स्तर में विकास।

(3) **उन कार्यक्रमों पर बल देना जिनमें प्रतिभा और परिश्रम की आवश्यकता है**—खर्च के लक्ष्यों की प्राप्ति पर बल देने का फल यह होता है कि उन कार्यक्रमों को प्राथमिकता मिल जाती है जिनमें खर्च करना आसान होता है, जैसे, भवन-निर्माण या नामांकन में विस्तार। यह दुर्भाग्यपूर्ण है, क्योंकि अनेक ऐसे कार्यक्रम हैं जिनमें अधिक धन लगाने की अपेक्षा सुनियोजित प्रयत्न, संगठन, प्रतिभा और परिश्रम ही अधिक आवश्यक होता है। ऐसे कार्यक्रमों के कुछ उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं :

- आधुनिक भारतीय भाषाओं में साहित्य-निर्माण, जो विश्वविद्यालय स्तर पर इन भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाने के लिए आवश्यक हैं;
- शैक्षिक अनुसंधान;
- परीक्षा विषयक सुधार;
- स्कूलों के लिए पाठ्यपुस्तकें और अध्ययन-अध्यापन में सहायक सामग्री तैयार करना;
- शिक्षकों और शिक्षा विभागों के अधिकारियों के लिए सेवा काल में प्रशिक्षण की व्यवस्था;
- पर्यवीक्षण की तकनीकों में सुधार;
- स्थानीय जनसमुदाय और अभिभावकों के साथ संपर्क बढ़ाना;
- होनहार छात्रों के लिए समृद्धिकरण कार्यक्रमों और मार्ग दर्शन की व्यवस्था, तथा मन्द और पिछड़े हुए छात्रों को विशेष सहायता।

इस प्रकार के अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं। सबसे अधिक ध्यान देने की बात तो यह है कि वर्तमान परिस्थिति में, जब कि वित्तीय साधन सीमित हैं, उपर्युक्त प्रकार के कार्यक्रमों पर ही अधिक बल देने की आवश्यकता है बजाय उन कार्यक्रमों के जिनमें बहुत लागत लगती हैं।

(4) **पर्याप्त मूल्यांकन और अनुसंधान की कमी**—हमारे योजना, में एक और कमजोरी यह है कि उसमें मूल्यांकन और अनुसंधान की पर्याप्त व्यवस्था नहीं है। योजना हमारे लिए अपेक्षाकृत नया काम है और हमें अपनी तकनीक स्वयं बनानी हैं, अतः यह आवश्यक है कि हमारे कार्यक्रम का निरन्तर मूल्यांकन किया जाए और अनुसंधान का गहन कार्यक्रम बनाया जाए जिससे शिक्षा पर होने वाले खर्च में कमी हो और लागत का प्रभाव बढ़े। परन्तु सामान्यतः ऐसा नहीं किया गया है। हाल ही में योजना आयोग में ऐसे मूल्यांक के कुछ प्रयत्न किए गए हैं, यथा, सी० शो० पी० पी० दलों ने तीन समस्याओं[1] का अध्ययन किया है जिन में से दो बड़ी नहीं थीं। इस विषय में हम जो सिफ़ारिश करना चाहते हैं वह यह है कि विश्वविद्यालयों, व्यावसायिक संस्थाओं, प्रशिक्षण कालेजों आदि को योजनाओं में सम्मिलित सभी बड़े-बड़े कार्यक्रमों के आवधिक मूल्यांकन में, और अन्यत्र[2] प्रस्तावित पद्धति के अनुसार बड़े पैमाने पर अनुसंधान-कार्यक्रम के विकास में लगाया जाए।

(5) **शैक्षिक योजना के वर्तमान तन्त्र की कमजोरी**—शैक्षिक योजना के वर्तमान तंत्र में ऐसी बहुत सी बातें नहीं हैं जो वांछित हैं। न तो इसमें कर्मचारियों की संख्या पर्याप्त है और न ही इसके कर्मचारी समुचित रूप से ही प्रशिक्षत है। जिला स्तर पर तो शायद ही कहीं कोई शैक्षिक योजना होती हो। शिक्षा निदेशकों के कार्यालयों में जो योजना एकक बने हुए हैं वे अपर्याप्त हैं और उन में अधिकतर ऐसे कर्मचारी हैं जिन्हें इस क्षेत्र का प्रशिक्षण नहीं मिला है। उनका कार्य प्रशासनिक तथा वित्तीय ही अधिक है और शैक्षिक तथा वित्तीय आंकड़ों का संकलन करने और उनके संबंध में रिपोर्ट देने तक ही सीमित हैं।

18.04. शैक्षिक योजना के संगठन और रीतियों में

1. **ये समस्याएं हैं : शिक्षक प्रशिक्षण, औद्योगिक कामगारों में साक्षरता और देहाती संस्थाएं।**
2. **अध्याय बारह।**

में सुधार करने और केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय, राज्य शिक्षा विभागों और जिला स्कूल बोर्डों के योजना एककों के लिए सक्षम कर्मचारियों को प्रशिक्षित करने की आवश्यकता है। शिक्षा मंत्रालय के लिए यह संभव होना चाहिए कि वह एशियाई शैक्षिक योजना संस्थान के सहयोग से विभिन्न राज्यों में शैक्षिक योजना के अध्ययन का दायित्व ले सके और भारत में जो कर्मचारी शैक्षिक योजना में लगे हैं उनको प्रशिक्षित करने के लिए गहन पाठ्यक्रम संचालित करे। यह विषय इतना अधिक महत्वपूर्ण है कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को भी शैक्षिक योजना, प्रशासन और वित्त व्यवस्था के अध्ययन के लिए उच्च केन्द्र स्थापित करने की संभावना पर विचार करना चाहिए।

18.05. **अग्रताओं के विभिन्न स्तर**—शिक्षा अवश्य ही राज्य सरकारों की जिम्मेदारी हैं तथापि यह राष्ट्रीय महत्व का विषय भी है, और शिक्षा के कुछ बड़े क्षेत्रों में राष्ट्रीय स्तर पर ही निर्णय करना होगा। इस कारण यह आवश्यक जान पड़ता है कि शिक्षा को केन्द्र और राज्यों की साझेदारी माना जाए। दूसरी ओर यह भी स्मरण रखना होगा कि शिक्षा का संबंध प्रत्येक माता-पिता और परिवार से है और उसे जन साधारण के अधिक-से-अधिक निकट संपर्क में रखना चाहिए और उसका सर्वोत्तम प्रशासन स्थानीय जनसमुदाय के द्वारा अथवा उसके घनिष्ठ सहयोग से ही संचालित हो सकता है। आशय यह है कि शैक्षिक योजना को जिला स्तर पर और इससे भी आगे, प्रत्येक संस्था के स्तर पर विकेन्द्रित करना होगा। इस प्रकार हमारे जैसे संघीय लोकतन्त्र में, शैक्षिक योजना का प्रक्रम केन्द्रीकरण और विकेन्द्रीकरण का सही सम्मिश्रण होगा, अर्थात्, कुछ उपयुक्त क्षेत्रों में तो केन्द्रीकरण करना होगा और अन्य क्षेत्रों में, विशेषतः प्रशासन में, काफी हद तक विकेन्द्रीकरण करना होगा। फिर भी इस बात का ध्यान रखना होगा कि व्यापक राष्ट्रीय योजना रूपी अंशी में उसके अंश भली भाँति समंजित हों और अनमेल तथा परस्पर विरोधी तत्व दूर हो जाएं। इस प्रयोजन के लिए, एक प्रभावशाली समन्वयकारी व्यवस्था करनी होगी। यही वह दिशा है जिस ओर प्रशासन को प्रयत्नशील और योजना को अग्रसर होना है।

18.06 इस संदर्भ में एक उपयोगी सुझाव दिया जा सकता हैं कि राष्ट्रीय, राज्य और स्थानीय स्तरों पर अग्रताओं के क्रम को स्थिर कर दिया जाए। प्रत्येक बच्चे के लिए अच्छी और प्रभावकारी प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था, माध्यमिक शिक्षा का व्यावसायीकरण, स्नातकोत्तर शिक्षा और अनुसंधान की व्यवस्था या कृषि और उद्योग की शिक्षा का प्रबंध आदि राष्ट्रीय महत्व के कार्यक्रमों को इस अर्थ में **राष्ट्रीय अग्रताएं** माना जाए कि उनके संबंध में निर्णय, राज्यों से परामर्श करके, केन्द्र द्वारा ही लिए जाने जाएंगे और एक बार निर्णय हो जाने के बाद उन पर कारगर तरीके से और उत्साह के साथ अमल करने के लिए प्रत्येक राज्य बाध्य होगा। अन्य अधिकांश मामलों में **राज्य-स्तरीय अग्रताओं** की पद्धति अपनाई जाए, यानी प्रत्येक राज्य को, अपनी स्थानीय परिस्थितियों का ध्यान रखते हुए सर्वोत्तम निर्णय लेने की छूट रहे। माध्यमिक शिक्षा को निःशुल्क कर देने जैसे मामले इसी कोटि में आएंगे। ऐसे मामलों में राष्ट्रीय स्तर पर एकरूपता लाने का प्रयत्न आवश्यक नहीं है। कुछ अन्य मामलों में, उदाहरणार्थ, स्कूलों में सुख-सुविधा देने और शिक्षकेतर व्यय का स्वरूप और मान निर्धारित करने में **स्थानीय अग्रताओं** की पद्धति अपनाई जाए। राज्य सरकारें जिला और स्कूल स्तरों पर उपयुक्त निकाय बना सकती हैं और सौंपे गए अधिकारों के अन्तर्गत स्थानीय परिस्थितियों की दृष्टि से सर्वोत्तम निर्णय लेने की स्वतन्त्रता उन्हें दे सकती है। इन मामलों में, जिलों के बीच और यहाँ तक कि स्कूलों के बीच भी, एकरूपता की आशा नहीं करनी चाहिए। राष्ट्रीय स्तर पर कुछ अनिवार्य शिक्षा-क्षेत्रों का केन्द्रीयकरण करने वाली यह पद्धति उस वर्तमान प्रवृत्ति से बहुत अच्छी रहेगी जिसके अन्तर्गत राष्ट्रीय और राज्य स्तरों पर अधिक-से-अधिक महत्वपूर्ण या साधारण निर्णय लिए जाते हैं। इस प्रवृत्ति से कभी-कभी स्थानीय उत्साह को आघात पहुंचता है और स्थानीय परिस्थितियों की अवहेलना होती है।

18.07. **शिक्षा की व्यवस्था करने वाली विभिन्न एजेंसियों के योगदान का निर्धारण**—यह भी आवश्यक है कि देश में शिक्षा की व्यवस्था करने वाली चार विभिन्न एजेंसियों के योगदान को निर्धारित कर दिया जाए। ये एजेंसियां हैं,—केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकारें, स्थानीय स्वायत्त निकाय और स्वैच्छिक संस्थाएं। इन के वर्तमान कार्यक्षेत्र बहुत सोच-विचार कर तैयार की गई योजना के फलस्वरूप निर्धारित नहीं किए गए हैं, बल्कि ऐतिहासिक परिस्थितियों के कारण अपने-आप बन गए हैं। अधिकांश ऐतिहासिक परिस्थितियां आज के संदर्भ में असंगत हो गई हैं। उदाहरण के लिए, शिक्षा से केन्द्रीय सरकार का संबंध-विच्छेद जो सन् 1921 से 1947 के बीच हमारी शैक्षिक व्यवस्था का प्रमुख अंग रहा है और इस राजनीतिक आवश्यकता के फलस्वरूप हुआ है कि (1921 में प्रान्तों में शुरू किए गए द्वैध शासन और 1937 में प्रारंभ किए गए प्रान्तीय स्वायत्त शासन के रूप में) केन्द्र में गवर्नर जनरल

के हाथ में सब प्राधिकार रखते हुए भी ब्रिटिश सरकार ने शिक्षा को भारतीय नियंत्रण में रखने का निर्णय किया था। यह परम्परा संविधान द्वारा बहुत कुछ बदल दी गई है और प्रथम तीन योजनाओं के फलस्वरूप हुए विकास के कारण इसमें और भी अधिक परिवर्तन हुआ है, फिर भी यह आज तक हावी है। भारतीय जनता को सत्ता सौंपने के कार्यक्रम के एक अंग के रूप में ब्रिटिश भारत में स्थित स्थानीय स्वायत्त निकायों को पहले प्राथमिक शिक्षा का भार सौंपा गया और आगे चलकर, उनको स्वविवेक से शैक्षिक कार्यक्रम चलाने की अनुमति दी गई थी। परन्तु देशी रियासतों में इस प्रकार की कोई राजनीतिक आवश्यकता नहीं थी अतः आमतौर पर स्थानीय निकायों को शिक्षा में सहयोजित नहीं किया गया। ब्रिटिश भारत के सभी प्रान्तों में गैर-सरकारी शिक्षा संस्थाओं ने विशेष रूप से प्राथमिकोत्तर शिक्षा में बहुत महत्वपूर्ण योग दिया कि क्योंकि वहां प्रत्यक्ष सरकारी उपक्रम सीमित था और शिक्षा संबंधी बढ़ती हुई मांग को उन्हें ही पूरा करना था। परन्तु देशी रियासतों में गैर-सरकारी उपक्रम को अधिक प्रोत्साहत नहीं दिया गया बल्कि कभी-कभी तो उसे निरुत्साहित भी किया गया। यह स्पष्ट है कि देश को शैक्षिक विकास की वृहत् आवश्यकताओं के साथ इन परम्पराओं का मेल नहीं बैठता और इन में सुधार आवश्यक है।

18.08. शैक्षिक योजना और उसकी कार्यान्विति की जटिल प्रक्रिया में राज्य सरकार का प्रमुख और महत्वपूर्ण स्थान है। उदाहरणार्थ, उन्हें सारी स्कूली शिक्षा का दायित्व लेना होगा तथापि स्थानीय निकायों के सहयोग से इस दायित्व को निभाना उनके लिए लाभकर है। स्कूलों के दैनंदिन प्रशासन को, जिसका स्थानीय जनता के साथ यथासंभव घनिष्ठतम संपर्क होना चाहिए, जिला-स्तर पर विधिवत् स्थापित स्थानीय निकायों के पर्याप्त साधनों के साथ सौंपना श्रेयस्कर होगा। दूसरी ओर, उच्चतर शिक्षा के क्षेत्र में उन्हे विश्वविद्यालयों, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग और भारत सरकार के दायित्व-निर्वाह में हाथ बंटाना चाहिए। दूसरे शब्दों में,

— स्कूल शिक्षा प्रमुखतः स्थानीय सरकार और राज्य की साझेदारी है; और

— उच्चतर शिक्षा केन्द्र तथा राज्य की साझेदारी है।

हमारी राय में, यही वह मूलभूत सिद्धात है जिसके आधार पर केन्द्रीकरण और विकेन्द्रीकरण के बीच वह सूक्ष्म सन्तुलन स्थापित हो सकता है जो हमारी योजना के लिए नितान्त आवश्यक है।

गैर-सरकारी उद्यम का योगदान

18.09. **वर्तमान स्थिति**—सर्वप्रथम हम इस बात पर विचार करेंगे कि शिक्षा के क्षेत्र में गैर-सरकारी संस्थाओं ने क्या योग दिया है। गर-सरकारी योगदान की मात्रा प्रत्येक क्षेत्र में और शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर भिन्न रही है। इस विषय में नवीनतम उपलब्ध आँकड़े 1960-61 के हैं जो नीचे दिए जा रहे है। इन से इस समस्या पर पर्याप्त प्रकाश पड़ेगा

सारणी 18.1. कुल शिक्षा संस्थाओं तथा गैर-सरकारी शिक्षा संस्थाओं का प्रतिशत अनुपात (1960-61)

	राज्य	प्रतिशत
1.	आन्ध्र प्रदेश	8.0
2.	असम	19.1
3.	बिहार	74.0
4.	गुजरात	36.0
5.	जम्मू-कश्मीर	1.7
6.	केरल	61.6
7.	मध्य प्रदेश	4.6
8.	मद्रास	33.0
9.	महाराष्ट्र	48.0
10.	मैसूर	34.3
11.	उड़ीसा	65.3
12.	पंजाब	7.4
13.	राजस्थान	3.5
14.	उत्तरप्रदेश	14.5
15.	पश्चिम बंगाल	36.3
	पूरे भारत के लिए	33.2

	स्तर या क्षेत्र	प्रतिशत
1.	पूर्व प्राथमिक	70.9
2.	अवर प्राथमिक	22.2
3.	उच्चतर प्राथमिक	27.1
4.	माध्यमिक	69.2
5.	व्यावसायिक	57.4
6.	विशेष स्कूल	79.0
7.	उच्चतर (सामान्य) शिक्षा संस्थाएं	78.8
8.	वृत्तिक शिक्षा कालेज	49.8
9.	विशेष शिक्षा कालेज	79.9
	सभी क्षेत्रों का जोड़	33.2

स्रोत : शिक्षा मंत्रालय, फार्म क,

इसमें स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं द्वारा संचालित शिक्षा संस्थाएं शामिल है।

18.10. ऊपर दी गई सारणी से पता चलता है कि स्वैच्छिक संगठनों द्वारा संचालित शिक्षा संस्थाओं का प्रतिशत :

— जम्मू-कश्मीर (1.7), राजस्थान (3.5), मध्य प्रदेश (4.6), पंजाब (7.4), आन्ध्र प्रदेश (8.0) और असम (19.1) में नीचा है,

— केरल (61.6), उड़ीसा (65.3) और बिहार (74.0) में ऊंचा है,

— प्राथमिक स्तर—अग्रर प्राथमिक (22.2) और उच्चतर प्राथमिक (27.1)—पर नीचा है;

— व्यावसायिक स्कूलों (57.4) और वृत्तिक शिक्षा कालेजों में (49.8) मध्यम है; और

— पूर्व प्राथमिक स्कूलों (70.9), माध्यमिक स्कूलों (69.2), विशेष स्कूलों (79.0), उच्चतर (सामान्य) शिक्षा संस्थाओं (78.8), और विशेष शिक्षा कालेजों (74.9) में ऊंचा है।

परम्पराओं और वर्तमान स्थिति में इतना अधिक अंतर होने के कारण यह स्पष्ट है कि देश के सभी भागों के लिए एक समान नीति नहीं अपताई जा सकती। तथ्य तो यह है कि एक ही राज्य में शिक्षा के भिन्न-भिन्न स्तरों पर और भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में अलग-अलग तीति अपनानी होगी, यहां तक कि प्रत्येक संगठन के लिए अलग नीति अपनानी होगी अतः इस विषय में हम केवल सामान्य सिद्धान्त ही बतला सकते है।

18.11 **सिफ़ारिशें**—हमारी राय में, शिक्षा के क्षेत्र में गैर-सरकारी उद्यम के भावी बोगदान के संबंध में मोटे तौर पर निम्नलिखित सिद्धांतों को अपनाना चाहिए :

(1) यह सत्य है कि कुछेक गैर-सरकारी प्रवासों वे शिक्षा के क्षेत्र में धनात्मक के बदले ऋणात्मक योग ही दिया है। साथ ही हमें यह भी स्वीकार करना होगा कि आधुनिक भारत में शिक्षा के विकास में गैर-सरकारी प्रयत्न से महत्वपूर्ण योग मिला है, अधिकांश अच्छी संस्थाएं गैर-सरकारी क्षेत्र में है, और ये आगे आने वाले वर्षों में भी शिक्षा के विकास में वह हितकारी योग दे सकती हैं। अतः राज्य को चाहिए कि शिक्षा के विकास के लिए गैर-सरकारी क्षेत्र से उसे जो भी सहायता मिले उसका वह यथासंभव पूरा उपयोग करे।

(2) आधुविकता की ओर अग्रसर होते हुए समाज की बढ़ती हुई शैक्षिक आवश्यकताएं राज्य द्वारा ही पूरी की जा सकती हैं, अतः गैर-सरकारी उद्यम पर, जो कि मूल रूप से अविश्चित है, अत्यधिक निर्भरता एक भूल होगी। चूंकि सभी आवश्यक शैक्षिक सुविधाएं देने की पूरी जिम्मेदारी राज्य ने सही तौर पर अपने ऊपर ले ली हैं, अतः गैर-सरकारी उद्यम को छोटा और सीमित कार्यक्षेत्र ही मिल सकता है।

(3) संविधान के अंतर्गत, गैर-सरकारी स्कूलों को भी चलने का अधिकार है और यदि वे राज्य से किसी प्रकार की मान्यता या सहायता न चाहते हों तो उनके कार्य में हस्तक्षेप करने की आवश्यकता बहुत कम है या बिल्कुल नहीं है। यस्तुतः हमने तो गैर-सरकारी स्कूलों के रजिस्ट्रेशन के लिए ही सुझाव दिया है।[1]

(4) जो गैर-सरकारी शिक्षा संस्थाएं राज्य से वित्तीय सहायता चाहती हैं उनकी स्थिति भिन है। अपने अधिकांश खर्च के लिए वे इस समय भी सरकार पर निर्भर हैं और यदि उनकी आयका मुख्य साधन फीस ही बंद कर दी जाए तो लोक-राजस्व पर उनकी निर्भरता बढ़ जाएगी। अतः पहले बताई गई[2] पद्धतियों के अनुसार इन्हें लोक शिक्षा-तंत्र में धीरे-धीरे समाविष्ट कर लेना चाहिए।

(5) यैर-सरकारी उद्यम की चर्चा करते समय, उनके शिक्षकों, सहायक अनुदान और नियंत्रण से संबंधित समस्याओं पर विचार करना बहुत आवश्यक है। इन पर अन्यत्र चर्चा की जा चुकी है।[3]

स्थानीय स्वायत्त निकायों का योगदान

18.12. **वर्तमान स्थिति**—जैसा कि पहले भी बताया जा चुका है, स्थानीब स्वायत्त निकायों के योगदान के विषय में दो ऐतिहासिक परम्पराएं हैं जिनमें से पहली

1. अध्याय दस।
2. अध्याय दस।
3. अध्याय तीन, चार, दस और तेरह।

है शिक्षा-कार्यों में स्थानीय स्वायत्त निकायों का सहयोग प्राप्त करना, जैसा ब्रिटिश भारत के प्रान्तों में शुरू किया गया था। दूसरी परम्परा है शिक्षा कार्यों में उनका सहयोग प्राप्त न करना जैसा, भारत की देशी रियासतों में प्रारंभ किया गया था। इस सहयोग के पक्ष और विपक्ष में बराबर दलीलें जी जाती रही हैं। यहां उनका संक्षिप्त उल्लेख ही पर्याप्त होगा। यह सर्वसम्मत है कि स्थानीय स्वायत्त निकाय स्थानीय जनता में रुचि और उत्साह उत्पन्न करने में सफल होते हैं और समस्याओं के समाधान के लिए स्थानीय जानकारी उन्हें सुलभ होती है। शिक्षा के लिए उनका वित्तीय योगदान अधिक न हो, पर नगण्य भी नहीं होता। बम्बई जैसे शहरों की सम्पन्न नगरपालिकाओं का वित्तीय योगदान तो काफी होता है। तथापि उनकी मुख्य कमजोरी यह है कि वे थोड़े-थोड़े समय के बाद शिक्षकों का स्थानान्तर और नियुक्ति करती रहती हैं जिससे शिक्षकों को परेशानी होती है और स्थानीय दलबन्दी और राजनीति में फंसी रहती हैं। यही कारण है कि लगभग सभी शिक्षक-संघों ने हमें अभ्यावेदन दिया है कि स्थानीय स्वायत्त निकायों को शिक्षा संस्थाओं का कार्यभार न दिया जाए। ज्यों-ज्यों प्राधिकार निम्नतर स्तरों पर सौंपे जाते हैं, त्यों-त्यों यह बुराई और फैलती है; उदाहरणार्थ, यह बुराई अवश्य ही अपेक्षाकृत अधिक होती है जब प्राधिकार जिला स्तर के बदले विकास-खण्ड स्तर पर सौंपे जाते हैं।

18.13. शिक्षा में स्थानीय स्वायत्त निकायों का योगदान निश्चित करने और एक समरूप राष्ट्रीय नीति को निर्धारित करने के लिए स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद दो प्रयत्न किए गए। दुर्भाग्यवश इन में सफलता नहीं मिली। आंशिक कारण यह था कि जिन दो समितियों ने इस समस्या पर विचार किया था उनकी सिफ़ारिशें कुछ हद तक परस्पर विरोधी थीं। श्री बी० जी० खेर की अध्यक्षता में संगठित समिति ने इस ब्रिटिश भारतीय दृष्टिकोण को अस्वीकार किया कि स्थानीय स्वायत्त निकायों की स्थापना और प्राथमिक शिक्षा क्षेत्र में उनका सहयोजन लोकतन्त्रात्मक स्वशासन के प्रशिक्षण के लिए आवश्यक है। उनकी सुस्पष्ट राय यह थी कि लोकतन्त्र या विकेन्द्रीकरण के लिए शिक्षा की बलि न दी जाए। समिति ने सिफ़ारिश की थी कि प्राथमिक शिक्षा संबंधी प्राधिकार स्थानीय स्वायत्त निकयों को सौंपा जाए या नहीं और यदि सौंपा जाए तो कहां तक इस बात का निर्णय केवल जन-शिक्षा के हितों को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए। यद्यपि समिति इस बात से अवगत थी कि स्थानीय स्वायत्त निकाय शिक्षा का प्रशासन बहुधा भली-भाँति नहीं करते, और विशेष रूप से यह जानती थी कि शिक्षकों को सताया जाता है, फिर भी उसने यह अनुभव किया कि ये कमजोरियां उपयुक्त उपायों से दूर की जा सकती हैं और सिफ़ारिश की कि प्राथमिक शिक्षा के प्रशासन में स्थानीय निकायों को भी सहयोजित किया जाए, परन्तु शिक्षकों के हितों की भली-भाँति रक्षा की जाए क्योंकि इसी सहयोजन से जन-शिक्षा को बढ़ावा मिलेगा और सर्वव्यापी शिक्षा का लक्ष्य निकट आएगा।

18.14. खेर समिति की सिफ़ारिशों को कार्यान्वित करने या अपनाने से पहले ही, इसी विषय पर एक दूसरी तरह की सिफ़ारिशें एक दूसरी समिति, **सामुदायिक विकास पर सी० ओ० पी० पी० दल,** ने दी। यह समिति सामुदायिक विकास कार्यक्रम और उसके भावी संगठन की यही समीक्षा करने के लिए स्वर्गीय श्री बलवंतराय मेहता की अध्यक्षता में संगठित की गई थी। इसका मत था कि विकास के क्षेत्र में रुचि और उत्साह रखने वाले स्थानीय व्यक्ति तब तक पर्याप्त रूप से सक्रिय नहीं होंगे जब तक कि देहाती क्षेत्रों में विकास कार्य के सभी पक्षों का भार उठाने के लिए समुचित स्तर पर 'एक मात्र प्रतिनिधि और सशक्त लोकतंत्रीय संस्था' स्थापित नहीं की जाएगी और उसे पर्याप्त शक्तियां और समुचित धन नहीं सौंपा जाएगा। समिति का मत था कि ऐसी संस्था को सरकार या सरकारी एजेंसियों के अत्यधिक नियन्त्रण से पंगु न बनाया जाए। उसें गलती करने और गलती करके सीखने का अधिकार दिया जाए और मार्ग दर्शन मिले ताकि वह ग़लतियां न करे। इसी मूलभूत दृष्टिकोण को सामने रखकर समिति ने सिफ़ारिश की थी कि देहाती क्षेत्रों में सबल स्थानीय निकायों की स्थापना की जाए और उन्हें प्राथमिक शिक्षा के साथ-साथ सभी विकास कार्यक्रमों को चलाने का पर्याप्त प्राधिकार दिया जाए।

18.15. इन दो समतियों की परस्पर-विरोधी सिफारिशों और इन दो भिन्न-भिन्न परम्पराओं को समेकित करने की समस्या उस समय बहुत महत्वपूर्ण हो गई जब राज्य-पुनर्गठन के फलस्वरूप तत्कालीन ब्रिटिश भारत के प्रान्त और देशी रियासतों के क्षेत्र संगठित कर दिए गए। परन्तु अब तक इस समस्या को सुलझाना और एक समरूप राष्ट्रीय नीति (या कुछ मामलों में, एक समरूप राज्य नीति) विकसित करना संभव नहीं हो सका है। वर्तमान

1. **प्राथमिक शिक्षा के प्रशासन में राज्य सरकारों और स्थानीय निकायों के पारस्परिक संबंध विषयक समिति की रिपोर्ट** 1951।

स्थिति यह है कि दोनों परम्पराओं का मिश्रण पाया जाता है और बहुधा एक ही राज्य में मिल जाता है। आन्ध्र-प्रदेश (आन्ध्र क्षेत्र), बिहार, गुजरात (बम्बई क्षेत्र), मध्य प्रदेश (महाकोशल क्षेत्र)। मद्रास (मद्रास क्षेत्र), महाराष्ट्र (बम्बई और विदर्भ क्षेत्र), मैसूर[1] (बम्बई और मद्रास क्षेत्र), और उड़ीसा (पुराने उड़ीसा प्रान्त का क्षेत्र), के शहरी क्षेत्रों में नगरपालिकाओं को शिक्षा में सहयोजित किया गया है। जम्मू और कश्मीर, केरल, मध्य प्रदेश, मैसूर, नागालैण्ड और पंजाब को छोड़कर शेष सभी राज्यों के देहाती क्षेत्रों में पंचायती राज संस्थाएं स्थापित की गई हैं और उन्हें शिक्षा का भार सौंप दिया गया है। सहयोजन की पद्धति भी सर्वत्र एक-सी नहीं है। आमतौर पर नगरपालिकाएं प्राथमिक शिक्षा की देख-रेख करती हैं तथापि स्वविवेक से वे अन्य शैक्षिक कार्यकलाप भी संचालित कर सकती हैं। कुछ राज्यों में (आन्ध्र प्रदेश और महाराष्ट्र) प्राथमिक और माध्यमिक दोनों स्तरों की शिक्षा पंचायती राज संस्थाओं को सौंपी गई हैं। शिक्षा का प्राधिकार कुछ राज्यों में (जैसे राजस्थान और मद्रास) खण्ड स्तर को और कुछ अन्य राज्यों में (महाराष्ट्र) जिला स्तर को सौंपा गया है। प्रशासन और सहायक-अनुदान की पद्धतियों में भी ऐसा ही अन्तर है।

18.16. हमारी राय हैं कि चरम लक्ष्यों और स्थानीय परिस्थितियों का ध्यान रख कर ही इन मामलों में नीति स्थिर की जानी चाहिए। शिक्षा-क्षेत्र में स्थानीय जन-समुदाय के साथ स्कूलों में घनिष्ठ संपर्क का बड़ा महत्व है और हमें इसी दिशा में अग्रसर होना चाहिए। साथ ही स्थानीय स्वायत्त निकायों के नियन्त्रण में चलने वाली शालाओं के शिक्षकों को जो कठिनाइयां होती हैं उन्हें विस्मृत नहीं किया जा सकता। कम-से-कम संक्रमण अवस्था में तो शिक्षकों के हितों की रक्षा के लिए पर्याप्त व्यवस्था करनी ही होगी। स्थानीय निकायों को अपना दायित्व समझना चाहिए और इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वे शिक्षा के ध्येय की पूर्ति में सहायक हों, बाधक नहीं। यहां हम खेर समिति के साथ सहमत होना चाहेंगे कि स्थानीय स्वायत्त निकायों को शिक्षा प्रशासन में सहयोजित करने का निर्णय राजनीतिक कारणों से नहीं बल्कि शैक्षिक कारणों से लिया जाना चाहिए और ऐसे निर्णय का वह औचित्य केवल इसी धारणा पर आश्रित होता है कि इससे शिक्षा का प्रयोजन सिद्ध होगा और सर्वव्यापी शिक्षा का लक्ष्य निकट आता जाएगा। इसी प्रकार, स्थानीय निकायों को यह सोचने का प्रोत्साहन नहीं मिलना चाहिए कि शिक्षा की व्यवस्था करना उनका अधिकार है और वे अपने बुरे प्रशासन से और अध्यापकों को तंग करके भी इस अधिकार का उपभोग कर सकते हैं। सामान्य परिपाटी यह होनी चाहिए कि किसी भी स्थानीय स्वायत्त निकाय को शिक्षा की व्यवस्था करने का अधिकार एक विशेषाधिकार के रूप में दो शर्तों के अधीन दिया जाए—शिक्षा के प्रयोजन को बढ़ावा देना और अच्छा प्रशासन—और जब भी दो में से एक शर्त का उल्लंघन हो, यह विशेषाधिकार छीन लिया जाए। जैसा कि आजकल बहुधा किया जाता है, इस बात का आग्रह करने की आवश्यकता नहीं कि सारे देश में एक साथ समरूप नीति अपनाई जाए। शिक्षा के हित की दृष्टि से यह अधिक अच्छा होगा कि स्थानीय परिस्थितियों को ध्यान में रखकर यह प्रयोग किया जाए और प्रत्येक क्षेत्र को उसके विकास के लिए सबसे उपयुक्त रीति और गति से बढ़ने दिया जाए।

18.17. **सिफ़ारिशें**—इन मोटे सिद्धांतों के परिप्रेक्ष्य में, हम सिफ़ारिश करते हैं कि शिक्षा में स्थानीय निकायों का भावी योगदान इस प्रकार निर्धारित किया जाए :

(1) चरम उद्देश्य के रूप में, यह अनिवार्य है कि स्कूल और स्थानीय जनसमुदाय शिक्षा के कार्य में घनिष्ठता से साथ-साथ रहें। इससे शिक्षा के विकास के लिए स्थानीय ज्ञान, रुचि और उत्साह का उपयोग हो सकेगा। इसके अलावा स्थानीय निकाय शिक्षा पर होने वाले कुल खर्च में पर्याप्त अंशदान कर सकते हैं।

(2) परन्तु यह उचित नहीं होगा कि इस लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण को ही लक्ष्य समझ लिया जाए और स्थानीय परिस्थितियों को ध्यान में रखे बिना ही उसे सर्वत्र और तत्काल अपनाने के लिए दबाव डाला जाए।

(3) राष्ट्रीय नीति के रूप में, सारे राज्यों का तात्कालिक लक्ष्य यह होना चाहिए कि स्थानीय जन-समुदाय को, अर्थात्, देहाती क्षेत्रों में ग्राम पंचायतों को और शहरी क्षेत्रों में नगरपालिकाओं को, उनके स्थानीय स्कूलों के साथ सहयोजित किया जाए और शिक्षकेतर सारे व्यय की व्यवस्था का दायित्व उन्हीं का रहे। इसके लिए राज्यों से वे आवश्यकतानुसार उपयुक्त सहायक अनुदान प्राप्त करें। इस विषय से संबंधित ब्योरेवार प्रस्तावों पर अन्यत्र चर्चा की गई है।[2]

1. **मैसूर सरकार में हाल में नगरपालिकाओं को इस दायित्व से मुक्त कर दिया है।**
2. **अध्याय दस।**

(4) जो चरम लक्ष्य प्राप्त करना है यह यह है कि जिला स्तर पर एक ऐसे सक्षम स्थानीय शिक्षा निकाय की स्थापना की जाए जिसे जिला स्कूल बोर्ड कहा जा सकता है (जिस शिक्षा अधिनियम की हमने सिफ़ारिश की है उसके अन्तर्गत यह बोर्ड बनाया जाएगा) और जिले में विश्वविद्यालय स्तर से नीचे की शिक्षा का भार उसे सौंपा जा सकता है। इसे राष्ट्रीय नीति के रूप में भी स्वीकार किया जाना चाहिए। इस निकाय का अधिकार-क्षेत्र पूरे जिले में व्याप्त होगा। अपवाद यह होगा कि जिले में 1,00,000 और उससे ऊपर की जनसंख्या वाली नगरपालिकाएं अपने क्षेत्रों के लिए ऐसे ही निकाय संगठित करें तो अच्छा हो। इस विषय के विस्तृत प्रस्तावों पर नीचे चर्चा की गई है।

(5) तात्कालिक से चरम उद्देश्य के संक्रमण को एक ही प्रयास में पूरा नहीं किया जा सकता, इसके लिए अनेक सुनियोजित अवस्थाएं पार करनी होंगी। इसे सभी राज्यों में एक साथ अथवा एक ही राज्य के सभी जिलों में एक साथ पूरा नहीं किया जा सकता। किस प्रकार के स्थानीय स्वायत्त निकाय स्थापित किए जाएंगे, किस स्तर पर प्राधिकार सौंपे जाएंगे, राज्य-सरकार कौन-कौन से प्राधिकार अपने पास रखेगी, सहायक अनुदान देने की क्या पद्धति होगी आदि प्रश्न इतने जटिल हैं कि प्रत्येक राज्य को स्वयं पूरे राज्य क्षेत्र के लिए ही नहीं बल्कि अपने अलग-अलग जिलों के लिए अलग-अलग निर्णय लेना होगा। अतः केन्द्र सरकार राज्य सरकारों को सलाह तो दे सकती है कि वे यथा सम्भव शीघ्र चरम उद्देश्य की ओर अग्रसर हों, तथापि प्रत्येक राज्य को समान नीतियां अपनाने के लिए दबाना गलत होगा। इस एक-रूपता में कोई अन्तर्निहित गुण भी नहीं हैं। यह समझ लेने में बेहतर प्रशासन उपलब्ध हो सकेगा कि तात्कालिक और चरम उद्देश्यों को राष्ट्रीय लक्ष्य माना जाए लेकिन तात्कालिक और चरम उद्देश्यों के बीच की संक्रमण अवस्था के ब्योरे में एकरूपता की कोई आवश्यकता नहीं है। यह राज्य सरकार पर छोड़ देना चाहिए कि वह स्थानीय परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए इन पर स्वयं निर्णय करे।

(6) शिक्षा के क्षेत्र में स्थानीय स्वायत्त निकायों का सहयोग लेते समय शिक्षकों के हित की दृष्टि से इस बात का पूरा ध्यान रखा जाना चाहिए कि शिक्षकों को सताया न जाए और वे स्थानीय गुटबंदी और राजनीति से दूर रहें। इस सम्बन्ध में अनुभव से यह आवश्यक जान पड़ा है कि शिक्षकों पर स्थानीय निकाय का नियंत्रण न रहकर, उसके प्रशासन अधिकारी का नियंत्रण रहना चाहिए (जो कि मूल रूप से शिक्षा विभाग का अधिकारी हो और जिसकी सेवाएं स्थानीय निकाय को स्थायी रूप से सौंप दी गई हों) साथ ही यह भी आवश्यक होगा कि इस जिम्मेदारी को पूरा करने के लिए उसे जिला अधिकारी के साथ घनिष्ठ रूप से सहयोजित किया जाए, और दैनंदिन प्रशासन कार्य में मार्गदर्शन के लिए और उसे सुचारु बनाने के लिए काफी ब्योरेवार नियम और विनियम बनाए जाएं।

(7) यह याद रखना आवश्यक है कि शैक्षिक प्रशासन को विकेन्द्रित करना और उसे स्थानीय स्वायत्त निकायों को सौंप देना ही पर्याप्त नहीं होगा। स्थानीय नेताओं को सही पद्धति से शिक्षित करने, कर्तव्य-पालन में जिन्हें पर्याप्त स्वतन्त्रता ऐसे प्रशिक्षित और सक्षम अधिकारियों की सेवाएं स्थानीय स्वायत्त निकायों को सुलभ करने और अपनी जिम्मेदारियां निभाने के लिए उन्हें आवश्यक साधन उपलब्ध कराने के लिए जब तक ठोस कदम न उठाए जाएंगे तब तक कार्यक्रम सफल नहीं होगा। राज्य शिक्षा विभागों के लिए यह प्रमुख कार्य होगा।

18.18. **जिला और नगरपालिका स्कूल बोर्ड**— जिला स्तर पर स्थानीय शिक्षा निकायों की आवश्यकता के सम्बन्ध में पहले ही कहा जा चुका है।[1] अब हम उनके गठन, शक्तियों और जिम्मेदारियों तथा उनकी वित्त-व्यवस्था के विषय में विस्तार से चर्चा करेंगे। जिला स्कूल बोर्ड का अधिकार-क्षेत्र जिले का समस्त क्षेत्र होना चाहिए, परन्तु जिले में जहां 1,00,000 या उससे भी अधिक जनसंख्या वाली नगरपालिकाएं हों यहां उन नगरपालिकाओं के अपने शिक्षा बोर्ड हों तो अधिक अच्छा

1. अध्याय छह और दस।

होगा। एक जिला स्कूल बोर्ड में निम्नलिखित सदस्य होने चाहिए :

(1) जिला परिषद् के प्रतिनिधि, जो परिषद द्वारा चुने गए हों;

(2) जिले की जिन नगरपालिकाओं के अलग से अपने स्कूल बोर्ड न हों उनके प्रतिनिधि, जो निर्धारित नीति से चुने गए हों;

(3) शिक्षाविद्, जो राज्य सरकारों द्वारा अनुमोदित नामिका (पेनल) में से जिला परिषद् द्वारा चुने गए हों वा राज्य सरकार द्वारा नामित किए गए हों; और

(4) पदेन सदस्य, जैसे शिक्षा, कृषि, उद्योग या ऐसे ही अन्य विभागों के अधिकारी जो व्यावसायिक स्कूलों का प्रबन्ध करते हैं।

उपर्युक्त (3) और (4) श्रेणियों के व्यक्तियों की संख्या कुल सदस्य संख्या के लगभग आधे के बराबर होनी चाहिए। राज्य सरकार का एक वरिष्ठ अधिकारी (प्रथम श्रेणी) इस बोर्ड का पूर्णकालिक सचिव होना चाहिए और इस सचिव के पास आवश्यक संख्या में प्रशासनिक और पर्यवेक्षक कर्मचारी होने चाहिए।[1]

18.19. जिले में सामान्य और व्यावसायिक दोनों प्रकार की स्कूली शिक्षा इस बोर्ड के कार्यक्षेत्र में होगी। जिले के सभी सरकारी और स्थानीय स्वायत्त निकायों के स्कूलों पर इस बोर्ड का प्रशासन होगा और राज्य सरकार द्वारा गैर-सरकारी संस्थाओं को सहायक अनुदान देने के सम्बन्ध में बनाए गए नियमों के अनुसार, जिले की सभी गैर-सरकारी संस्थाओं को सहायक अनुदान देने का कार्य भी इस बोर्ड के अधीन होगा।

18.20. राज्य सरकार द्वारा दी गई हिदायतों का पालन करते हुए जिला स्कूल बोर्ड की वह जिम्मेदारी होगी कि वह जिले के स्कूली शिक्षा के विकास की योजनाएं बनाए। इसके अलावा वह जिले में स्कूली शिक्षा का विकास करने का प्रमुख माध्यम होगा। इस कार्य के लिए उसे राज्य सरकार और राज्य शिक्षा विभाग से आवश्यक आर्थिक सहायता और मार्गदर्शन मिलेगा।

18.21. एक लाख या इससे अधिक जनसंख्या वाले बड़े नगरों में, नगरपालिका स्कूल बोर्ड ऊपर बताई गई पद्धति पर स्थापित करना ही वांछनीय होगा क्योंकि वहां यही प्रशासविक एकक कारगर सिद्ध होंगे। इस तरह सुनिश्चित, सम्पन्न और मुखर स्थानीय लोगों को इस बात का पर्याप्त अवसर मिलेगा कि वे अपने बच्चों की शिक्षा के कार्यक्रमों के विकास में प्रत्यक्ष रुचि ले सकें। इन बोर्डों का गठन, शक्तियां और जिम्मेदारियां वैसी ही होंगी जैसा कि जिला कि जिला स्कूल बोर्डों के सम्बन्ध में बताई गई हैं।

18.22. प्रत्येक स्कूल बोर्ड अपने यहां एक शिक्षा-निधि रखेगा। जिला परिषदें (या नगरपालिकाएं) स्कूल बोर्डों के बजट का अनुमोदन करेंगी। वे अपने साधनों से पैसा इकट्ठा करेंगी और स्कूल बोर्ड के खाते में जमा करा देंगी। अपने दैनंदिन प्रशासन में स्कूल बोर्ड स्वायत्त होगा। नगरपालिका स्कूल बोर्ड और उसकी नगरपालिका के बीच भी यही सम्बन्ध रखेगा।

18.23. शिक्षकों की भर्ती एक विशेष समिति द्वारा की जाएगी जिसमें बोर्ड के अध्यक्ष और सचिव तथा जिला शिक्षा अधिकारी रहेंगे। यही समिति राज्य सरकार द्वारा बनाए गए नियमों के अधीन, शिक्षकों का स्थानान्तरण करेगी। सामान्य नीति यह रहेगी कि कम-से-कम स्थानान्तरण किए जाएं और शिक्षकों को अपनी संस्थाओं के प्रति निष्ठा बढ़ाने का अवसर दिया जाए। शिक्षकों के वेतन, भत्तों और सेवा की शर्तों का नियमन राज्य सरकारें करेंगी और ये सभी जिलों में एक-सी होंगी। इन बातों से शिक्षकों में सुरक्षा की भावना बढ़ेगी। इस तथ्य से कि स्कूलों के सारे अध्यापक (केवल प्राथमिक शालाओं के नहीं, जैसा अभी है) एक साथ बोर्ड के अधीन सेवा कर रहे हैं, उन्हें अतिरिक्त बल और सुरक्षा मिलेगी।

18.24. कुल मामलों में यह लाभकर सिद्ध हो सकता है कि स्कूल बोर्डों पर एक साथ सारी प्रशासनिक जिम्मेदारियों का बोझ न डाला जाए। ऐसे मामलों में विभाग के अधिकारियों पर (विशेष रूप से कार्मिक प्रशासन पर) स्कूलों का सम्पूर्ण प्रशासन छोड़ा जा सकता है और योजना तथा विकास सम्बन्धी प्राधिकार स्कूल बोर्ड को दिए जा सकते हैं। ज्यों-ज्यों स्कूल बोर्ड को अनुभव और क्षमता प्राप्त होती जाए त्यों-त्यों उसे और अधिक प्राधिकार दिए जा सकते हैं।

केन्द्रीय सरकार का योगदान

18.25. **वर्तमान स्थिति**—संविधान के अन्तर्गत सरकार को कुछ शैक्षिक जिम्मेदारियां विशिष्ट रूप से

1. **जहां जिला परिषदें न हों वहां स्थानीय परिस्थितियों का ध्यान रखते हुए जिला स्कूल बोर्ड का गठन दूसरे ढंग से करना होगा। राज्य सरकार द्वारा नामित सदस्यों के अतिरिक्त स्थानीय हितों का प्रतिनिधित्व करने वाले अन्य व्यक्ति उसमें रखे जा सकते हैं।**

सौंपी गई हैं और संघ सरकार होने के नाते उस पर कुछ अन्य जिम्मेदारियां आ पड़ती हैं। उनमें से कुछ महत्वपूर्ण जिम्मेदारियां सातवीं अनुसूची की निम्नलिखित प्रविष्टियों में गिनाई गई हैं।

सूची-एक—संघ सूची

63. इस संविधान को प्रारम्भ करते समय काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, अलीगढ़ मुस्लिम निश्व-विद्यालय और दिल्ली विश्वविद्यालय नामों से ज्ञात संस्थाएं तथा संसद से विधि द्वारा राष्ट्रीय महत्व की घोषित कोई अन्य संस्था।

64. भारत सरकार से पूर्णतः या अंशतः वित्त-पोषित तथा संसद से विधि द्वारा राष्ट्रीय महत्व की घोषित वैज्ञानिक या शिल्पिक शिक्षा-संस्थाएं।

65. संघ अभिकरण और संस्थाएं जो—

(क) वृत्तिक, व्यावसायिक या शिल्पिक-प्रशिक्षण, जिनके अन्तर्गत आरक्षी पदाधिकारियों का का प्रशिक्षण भी है, के लिए हैं; अथवा

(ख) विशेष अध्ययनों या गवेषणा की उन्नति के लिए हैं; अथवा

(ग) अपराध के अनुसंधान या खोज के लिए वैज्ञानिक या तकनीकी सहायता के लिए हैं।

सूची-तीन—समवर्ती सूची

25. श्रमिकों का व्यावसायिक और शिल्पिक प्रशिक्षण।

इनके अतिरिक्त, भारत सरकार पर अन्य बहुत से शैक्षिक कार्यक्रमों की जिम्मेदारी भी है जिनमें से कुछ ये हैं—राष्ट्रीय योजना, अन्य देशों के साथ शैक्षिक और सांस्कृतिक सम्बन्ध; संयुक्त राष्ट्र संघ और उसकी विशिष्ट एजेंसियों, विशेष रूप से यूनेस्को के कार्य में सहभागिता, विचारों और सूचनाओं के संकलन और प्रसार के माध्यम के रूप में कार्य, संघशासित क्षेत्रों में शिक्षा की व्यवस्था; हिन्दी के प्रचार, विकास और समृद्धि के लिए कार्य; राष्ट्रीय संस्कृति की रक्षा और उन्नति जिसमें राष्ट्रीय कला को प्रश्रय देना भी शामिल है; अल्पसंख्यकों के सांस्कृतिक हितों की रक्षा; जनता के कमजोर वर्गों, जैसे अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिम-जातियों का दायित्व; उपयुक्त कार्यक्रमों के जरिये राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा देने का दायित्व, और छात्रवृत्तियां देना, विशेषरूप से विश्वविद्यालय स्तर पर।

18.26. **सिफारिशें**—हमारा विचार है कि शिक्षा शनैः शनैः राष्ट्रीय दायित्व होती जाए। हमने संगत संदर्भ में बताया है कि शिक्षा के विकास के लिए भारत सरकार को क्या करना चाहिए। उदाहरणार्थ, शैक्षिक प्रशासन के सुधार के लिए सरकार को क्या कदम उठाने चाहिए – इसकी चर्चा हम इसी अध्याय में करेंगे। इसके अलावा, निम्नलिखित विषयों पर भारत सरकार की जो जिम्मेदारियां हैं उनके विषय में हमने अन्यत्र चर्चा की है—

— शिक्षक की प्रतिष्ठा और उसके प्रशिक्षण में सुधार;[1]

— कृषि, इंजीनियरी, चिकित्सा आदि महत्वपूर्ण क्षेत्रों में जनशक्ति नियोजन;[2]

— छात्रवृत्तियों के कार्यक्रम का विकास;[3]

— राज्यों के पारस्परिक भेद को दूर करने और जनता के पिछड़े वर्गों की उन्नति करने के विशेष संदर्भ में शिक्षा के अवसरों का समायोजन;[4]

— संविधान के निदेशानुसार निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था;[5]

— माध्यमिक शिक्षा का व्यवसायीकरण;[6]

— शिक्षा के स्तर में सुधार;[7]

1. **अध्याय तीन और चार।**
2. **अध्याय पांच।**
3. **अध्याय छह।**
4. **वही।**
5. **अध्याय सात।**
6. **वही।**
7. **अध्याय दस।**

— उच्चतर शिक्षा और अनुसंधान का विकास, विशेषतः स्नातकोत्तर स्तर पर; [1]

— कृषि और उद्योग के क्षेत्र में वृत्तिक शिक्षा का विकास; [2]

— वैज्ञानिक अनुसंधान की उन्नति; [3] और

— शैक्षिक अनुसंधान की उन्नति।[4]

18.27. हमारा पक्का विश्वास है कि इस रिपोर्ट में हमने शिक्षा व्यवस्था में जिस आमूल परिवर्तन लाने की सिफ़ारिश की है वह तब तक सम्भव नहीं होगा जब तक कि (1) भारत सरकार आवश्यक प्रोत्साहन, नेतृत्व और वित्तीय सहायता नहीं देगी और (2) केन्द्र तथा राज्य दोनों स्तरों पर शैक्षिक प्रशासन पर्याप्त रूप से सशक्त न बनाया जाएगा।

(1) पहली शर्त के सम्बन्ध में हमारी सिफ़ारिश है कि केन्द्र सरकार को शैक्षिक अनुसंधान के विकास में महत्वपूर्ण योग देना चाहिए। देश के एक भाग में किए गए सत्कार्य के विषय में अन्य भागों को भी जानकारी दी जानी चाहिए। इसके लिए समन्वय और सूचना का आदान-प्रदान करने वाले केन्द्र खोले जाने चाहिए ताकि सभी क्षेत्रों में शैक्षिक चिन्तन को प्रोत्साहन मिले। इसके अतिरिक्त सत्कार्यों की समय-समय पर समीक्षा की जानी चाहिए, और केन्द्र सरकार द्वारा प्रायोगिक परियोजनाएं चलाई जानी चाहिए या चलाने के लिए सहायता दी जानी चाहिए। कुछ विशेष मामलों में, ऐसी केन्द्रीय संस्थाएं स्थापित करने की भी आवश्यकता है जो दूसरों के लिए आदर्श स्थापित कर सकें। यह तो उचित ही है कि इस प्रकार की संस्थाएं अधिकतर वैज्ञानिक और तकनीकी क्षेत्रों में स्थापित की जाएं जैसा कि पहले भी होता आया है। तथापि यह भी आवश्यक है कि केन्द्र सरकार ऐसी संस्थाएं भी स्थापित करे जिनमें शिक्षाशास्त्र और मानविकी विषयों समेत अन्य समाज विज्ञानों के शिक्षण की विशेष व्यवस्था हो। इन संस्थाओं का विश्वविद्यालयों से घनिष्ट सम्बन्ध होना चाहिए और इन्हें विश्वविद्यालय तंत्र का अभिन्न अंग होना चाहिए। इसके अतिरिक्त केन्द्र सरकार संघ शासित क्षेत्रों में, विशेषतः दिल्ली में, शिक्षा का विकास कर सकती है और इस प्रकार अन्य क्षेत्रों के लिए अग्रणी बन सकती है।

(2) जहां तक प्रशासन को सामान्य रूप से सशक्त बनाने का सम्बन्ध है, हमारे द्वारा प्रस्तावित संशोधनों के साथ, भारतीय शिक्षा सेवा का गठन इस दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम होगा। कर्मचारी कालेज के संचालन तथा ऐसे ही अन्य कार्यक्रमों द्वारा राज्य शिक्षा सेवाओं के वरिष्ठ अधिकारियों के लिए शैक्षिक प्रशासकों के सेवाकालीन प्रशिक्षण की व्यवस्था करना भी केन्द्र सरकार की ही जिम्मेदारी है। आगे चल कर इस की विस्तार से चर्चा की जाएगी। केन्द्र को विभिन्न क्षेत्रों में प्रतिभावान् व्यक्तियों की खोज करनी चाहिए और राज्य सरकारों को सभी मामलों में सलाह और सहायता देने के लिए देश के उत्तम व्यक्तियों की सेवाएं सुलभ करनी चाहिए। शिक्षक तैयार करने में भी केन्द्र सरकार का महत्वपूर्ण योग होना चाहिए, इसका उल्लेख हम पहले ही कर चुके हैं।

18.28. शिक्षा के विकास के लिए आर्थिक सहायता की व्यवस्था करना भी केन्द्र सरकार का ही कार्य है जो उतना ही महत्वपूर्ण है। यह सहायता तीन तरह से दी जाएगी :

(1) पंचवर्षीय वित्त आयोगों के माध्यम से, राज्य सरकारों को उनके प्रतिश्रुत व्यय पर दिया जाने वाला सहायक अनुदान (जिसमें राजस्व का अन्तरण भी शामिल है);

(2) योजना आयोग के माध्यम से, समग्र योजना के लिए दिए जाने वाले विकास व्यय के लिए सहायक अनुदान; और

(3) केन्द्रीय और केन्द्र प्रायोजित शिक्षा-क्षेत्रों के विस्तार पर।

पहले के सम्बन्ध में हमारे साथी प्रो० एम० वी० माथुर का मत है कि यदि वित्त आयोग को स्थायी आयोग बना दिया जाए और उसमें अधिकतर अंशकालिक सदस्य रखें जाएं तथा उसका एक छोटा और सुगठित सचिवालय हो तो यह एक बहुत बड़ा सुधार होगा। आयकर और केन्द्रीय उत्पादन कर के राजस्व का एक न्यूनतम प्रतिशत राज्यों के लिए निर्धारित किया जा सकता है और जनसंख्या के आधार पर बांटा जा सकता है। केन्द्र की ओर से राज्यों को दी जाने वाली बाक़ी निधियों के सम्बन्ध में

1. अध्याय बारह।
2. अध्याय चौदह और पन्द्रह।
3. अध्याय सोलह।
4. अध्याय बारह।

वित्त आयोग को वार्षिक समीक्षा करनी चाहिए (यह समीक्षा राज्यों के साथ वार्षिक योजना सम्बन्धी चर्चा के ठीक बाद की जा सकती है) और आवश्यकता तथा किए गए कार्यों के आधार पर, राजस्व-अन्तरण और सहायक अनुदान में आवश्यक समंजन करना चाहिए।

दूसरे के सम्बन्ध में, हम सामान्यतया राज्य-योजनाओं के अन्तर्गत शैक्षिक क्षेत्र की विशिष्ट उप-योजनाओं के लिए विधि निर्धारित करने के पक्ष में नहीं हैं। योजना आयोग के अनुमोदन के बिना शिक्षा के लिए विनिहित कुल रकम में कोई कोर-कसर नहीं होनी चाहिए। परन्तु इन सीमाओं के भीतर, राज्य सरकारों को स्वविवेक से निधियों का उपयोग करने की स्वतन्त्रता होनी चाहिए।

तीसरे को, अर्थात्, केन्द्रीय और केन्द्र-प्रायोजित शिक्षा क्षेत्रों के विस्तार को हम पर्याप्त महत्व देते हैं। इसी व्यवस्था के जरिये केन्द्र उपर्युक्त सहत्वपूर्ण शिक्षा क्षेत्रों में शैक्षिक विकास को राष्ट्रीय हित के लिए प्रोत्साहन और मार्गदर्शन दे सकेगा।

18.29. क्या शिक्षा समवर्ती सूची में होनी चाहिए ? केन्द्र सरकार के कार्यक्षेत्र के सम्बन्ध में उठाया गया एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि क्या शिक्षा को संविधान की सातवीं अनुसूची की समवर्ती सूची में शामिल किया जाए ताकि केन्द्र, विधान के जरिए शैक्षिक विकास को नियंत्रित कर सके ? श्री पी० एन० सप्रू की अध्यक्षता में उच्चतर शिक्षा के सम्बन्ध में स्थापित की गई संसद् सदस्यों की समिति ने इस पूरे प्रश्न पर विचार करके यह सिफ़ारिश की थी कि कम-से-कम उच्चतर शिक्षा को तो समवर्ती सूची में शामिल कर लेना चाहिए। हमारे पास इसी आशय के अनेक प्रस्ताव आये हैं कि शिक्षा के कुछ अन्य क्षेत्रों को, जैसे तकनीकी शिक्षा को भी समवर्ती सूची में शामिल कर लिया जाए। हमारे सहयोगी श्री प्रेम कृपाल और डा०वी०एस० भा का यह विचार है कि समस्त शिक्षा को समवर्ती सूची में शामिल किया जाए। उनकी राय है कि स्वतन्त्रता के बाद के वर्षों के अनुभव से यह पता चला हैं कि केन्द्र के पास समुचित प्राधिकार न होने के कारण, राष्ट्रीय नीतियों पर संतोषजनक ढंग से अमल नहीं किया जा सका और शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों में अनेक आयोगों और समितियों की उत्कृष्ट सिफ़ारिशें केवल कागज पर ही रहीं। शिक्षा मंत्रियों के सम्मेलनों और केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड द्वारा सर्वसम्मति से स्वीकार किए गए प्रस्तावों पर भी कोई अमल नहीं किया गया। उनका विचार है कि यद्यपि उपयुक्त परिपाटियों का अवलंबन करके और विशेष रूप से शिक्षा के राष्ट्रीय स्वरूप के प्रति नए दृष्टिकोण का विकास करके, वर्तमान सांविधानिक ढांचे के अंतर्गत अधिक कारगर अमल की थोड़ी-बहुत गुंजाइश है तथापि ये परिवर्तन न तो आसानी से हो सकेंगे और न पर्याप्त ही होंगे। अतः उनका विचार है कि शिक्षा के क्षेत्र में संघ सरकार को वैध प्राधिकार होना चाहिए और शिक्षा समवर्ती सूची में रखी जानी चाहिए। संविधान में संशोधन करने में तो समय अवश्य लगेगा, पर उस दिशा में यथासंभव शीघ्रता से उपक्रम होना चाहिए।

18.30. हमने इस समस्या पर बहुत सावधानी से विचार किया है। हम इस पक्ष में नहीं हैं कि शिक्षा को विभाजित किया जाए और एक भाग समवर्ती सूची में और दूसरा राज्य सूची में रखा जाए। किसी भी परिस्थिति में शिक्षा के सम्बन्ध में समग्र रूप से ही विचार किया जाना चाहिए। हम अपने साथियों से भी सहमत नहीं हैं। हमारा मत है कि हमारे जैसे बड़े देश के लिए, संविधाए में शिक्षा को जो स्थान दिया गया है, वही संभवतः सर्वोत्तम है क्योंकि इसमें प्रोत्साहित करने वाले किन्तु दबाव न डालने वाले केन्द्रीय नेतृत्व की व्यवस्था है। हो सकता है कि शिक्षा की समवर्ती सूची में शामिल करने से अवांछनीय केन्द्रीकरण और अधिक अनम्यता आ जाए जब कि प्रयोग की स्वतन्त्रता और लचीलेपन की सबसे अधिक आवश्यकता है। हमें विश्वास है कि वर्तमान सांविधानिक व्यवस्था में भी शिक्षा के क्षेत्र में केन्द्र-राज्य साझेदारी की पर्याप्त संभावना है और इस संबंध में अभी पूरी छानबीन नहीं की गई है। संविधान में संशोधन करने का विचार तभी किया जाए जब कि इस गुंजाइश का पूरा-पूरा उपयोग किया जा चुका हो और उसे पर्याप्त न समझा गया हो। सब बातों पर विचार करके हम सिफ़ारिश करते हैं कि शिक्षा के विकास और राष्ट्रीय शिक्षा-नीति के निर्धारण के लिए संविधान की वर्तमान व्यवस्थाओं का पूरा-पूरा उपयोग किया जाए। लगभग दस वर्ष बाद समस्या पर फिर से विचार किया जा सकता है।

राष्ट्रीय स्तर पर शैक्षिक प्रशासन

18.31. राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षा के विकास से संबंधित एजेंसियां हैं—शिक्षा मंत्रालय, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग और शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के कार्य के विषय में हम पहले ही चर्चा कर चुके हैं।[1] हमने राष्ट्रीय स्कूल शिक्षा बोर्ड की स्थापना का भी सुझाव दिया है।[2]

1. अध्याय तेरह।
2. अध्याय दस।

अब हम शिक्षा मंत्रालय और शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद के सम्बन्ध में अपने प्रस्तावों पर विचार करेंगे।

18.32. **शिक्षा मंत्रालय**—वर्तमान परिपाटी यह है कि भारत सरकार के शिक्षा सचिव का पद भारतीय सिविल सेवा या भारतीय प्रशासन सेवा से नहीं भरा जाना चाहिए बल्कि किसी प्रख्यात शिक्षाविद् को दिया जाना चाहिए जिसे भारत सरकार का शिक्षा सलाहकार और शिक्षा मंत्रालय का सचिव पदसंज्ञा दी जाती है। यह एक स्वस्थ परम्परा हैं और आगे भी चालू रहनी चाहिए। यहां यह स्पष्ट कर देना भी आवश्यक है कि यह एक 'वरण-पद' (सेलेक्शन पोस्ट) है अतः नेमी तौर पर, वर्तमान सलाहकार सेवा या प्रस्तावित भारतीय शिक्षा सेवा में से पदोन्नति करके भरी नहीं जानी चाहिए। यह एक सावधि पद होना चाहिए जिसे सर्वप्रथम छह वर्ष के लिए दिया जाए और फिर आपवादिक मामलों में ही इसकी अवधि को तीन या चार वर्ष के लिए और बढ़ाया जाए, परन्तु इससे आगे बिल्कुल न बढ़ाया जाए। इसके लिए सभी उपलब्ध व्यक्तियों में से चुनाव किया जाए, चाहे वे किसी सरकारी या गैर-सरकारी पद पर हों, भारतीय शिक्षा सेवा के हों या विश्वविद्यालय सेवा आदि के हों। इस पद के लिए सही व्यक्ति के चुनाव पर बहुत-कुछ निर्भर है, इसलिए, किसी भी सेवा के तिहित स्वार्थ को आड़े नहीं आने देना चाहिए और देश में उपलब्ध सर्वोत्तम व्यक्ति को चुनाव के उचित तंत्र के माध्यम से नियत अवधि के लिए भर्ती किया जाना चाहिए। हम यह भी कहना चाहेंगे कि शिक्षा संसार में शिक्षा मंत्रालय की वर्तमान प्रतिष्ठा अधिकांशतः इसी कारण है कि स्वातन्योत्तर काल में इसके सचिवों का चुनाव सेवाओं के बाहर से और प्रख्यात शिक्षाविदों में से किया गया।

18.33. यह अत्यन्त आवश्यक है कि प्रख्यात शिक्षाविदों, विश्वविद्यालयों और स्कूलों के उत्कृष्ट कोटि के अध्यापकों और राज्यों के शिक्षा-विभागों के प्रमुख अधिकारियों को शिक्षा मंत्रालय के कार्यों में सहयोजित किया जाए ताकि मंत्रालय आवश्यक नेतृत्व प्रदान कर सके और जनता तथा अध्यापक-समुदाय का विश्वास भी प्राप्त कर सके। अतः हम यह सिफ़ारिश करते हैं कि अतिरिक्त और संयुक्त सचिवों तथा संयुक्त शिक्षा सलाहकारों के सभी पदों को दो श्रेणियों में विभाजित कर दिया जाए :

(1) आधे पदों को अधिकारियों में से, अर्थात्, वर्तमान शिक्षा सलाहकार सेवा (या भारतीय शिक्षा सेवा, जब यह गठित हो जाए) और राज्यों के शिक्षा विभागों द्वारा स्थायी नियुक्ति के लिए दिए गए अधिकारियों में से पदोन्नति करके भरा जाए।

(2) बाकी आधे पदों को प्रख्यात भाषाविदों और विश्वविद्यालयों तथा स्कूलों के उत्कृष्ट कोटि के अध्यापकों में से चुनाव करके भरा जाए। सेवा की अवधि पांच वर्ष होनी चाहिए और उसे अधिक-से-अधिक पांच वर्ष के लिए और बढ़ाया जा सकता है।

संघ के शिक्षा मन्त्री को सलाह देने और उसके आदेशों का पालन करने के लिए सर्वोच्च अधिकारी वर्ग में शिक्षा सलाहकार और भारत सरकार का सचिव तथा सभी अतिरिक्त और संयुक्त सचिव एवं संयुक्त शिक्षा सलाहकार होंगे।

18.34. शिक्षा मंत्रालय में अनुसंधान परिषद् की स्थापना करके मूल्यांकन और अनुसंधान को बढ़ावा देने के हमारे प्रस्तावों पर बारहवें अध्याय में और इस अध्याय में पहले चर्चा की जा चुकी है। शिक्षा मंत्रालय के दो अन्य कार्यों को भी काफी सबल और विस्तृत करने की आवश्यकता है।

(1) पहला है, सूचनाओं के आदान-प्रदान का कार्य। शिक्षा मंत्रालय को शिक्षा के क्षेत्र से संबंधित सूचनाओं के लिए राष्ट्रीय आदान-प्रदान केन्द्र का कार्य करना पड़ता है। यह उसके अपने अधिकार के नाते ही नहीं अपितु योजना में महत्वपूर्ण सहायता देने की दृष्टि से भी आवश्यक है। जरूरत इस बात की है कि एक सुनियोजित कार्यक्रम के अनुसार, राज्य सरकारों से महत्वपूर्ण शैक्षिक विषयों पर जानकारी प्राप्त की जाए। उसका विश्लेषण किया जाए और सभी संबंधित व्यक्तियों और संस्थाओं की जानकारी के लिए उसे प्रकाशित किया जाए। ऐसी सामग्री नियत अवधि के बाद पुनः संकलित की जाए ताकि प्रत्येक प्रकाशन माप के तल चिह्न का काम दे सके। हम सिफ़ारिश करते हैं कि इस कार्य को समुचित परिवाप में करने के लिए एक प्रभाग खोला जाए जिसमें पर्याप्त संख्या में कर्मचारी रखे जाएं। हमारे लिए यह संभव नहीं था कि हम विभिन्न प्रकार के अपेक्षित अध्ययनों के ब्योरों की चर्चा करें। उनमें से कुछ का इस रिपोर्ट के उपयुक्त स्थलों पर उल्लेख किया जा चुका है। हमारा सुझाव है कि शिक्षा मंत्रालय इस विषय की जांच करवे और तदनुसार कार्यक्रम बनाने के लिए एक समिति नियुक्त करे।

(2) दूसरा कार्य है, एक सुयोजित सांख्यिकीय सेवा स्थापित करना जो कि शैक्षिक योजना, नीति निर्धारण

और मूल्यांकन की दृष्टि से, शिक्षा मंत्रालय की एक दूसरी बड़ी जिम्मेदारी हैं। इस सेवा के तीन मुख्य कार्य होने चाहिए--(क) शैक्षिक आधार सामग्री को संकलित और प्रकाशित करना तथा उससे निष्कर्ष निकालना, (ख) सांख्यिकीय अध्ययन, अनुसंधान और सर्वेक्षण करना, और (ग) भविष्य के लिए परियोजनाएं बनाना और पूर्वानुमान लगाना। वर्तमान सांख्यिकीय सेवा में ऐसी बहुत-सी बातें छूट गई हैं जो वांछित हैं। इस समय, केवल पहला कार्य ही सम्पन्न हो रहा है। आधारभूत सामग्री के संकलन, समाकलन और प्रकाशन में इतनी देर हो जाती है कि जब तक वह प्रकाशित रूप में उपलब्ध होती है तब तक वह योजना के लिए उपयोग की दृष्टि से लगभग पुरानी पड़ जाती है। इसके अतिरिक्त, पुरानी सामग्री से कोई उपयोगी निष्कर्ष नहीं निकाले जाते और अन्य दो कार्यों को तो पूरी तरह भुला दिया गया है। इन कार्यों को भली भांति सम्पन्न करने के लिए यह अनिवार्य है कि मंत्रालय का सांख्यिकीय अनुभाग पुनर्गठित और सशक्त किया जाए। इस दृष्टि से हम निम्नलिखित सिफ़ारिशें करते हैं :

(क) शैक्षिक आधार-सामग्री प्रकाशित करने के लिए और समय-समय पर सर्वेक्षण और अनुसंधान करने के लिए एक बृहत् योजना बनाई जानी चाहिए।

(ख) नेमी आंकड़ों को विशेष समस्याओं के अध्ययन के परिणामों के साथ मिला कर प्रकाशित करना ठीक नहीं है। अतः नेमी वार्षिक आंकड़े प्रकाशित करने की जिम्मेदारी एक विशेष एकक को सौंपी जानी चाहिए जैसा कि इस समय चल रहा है। विशेष सर्वेक्षण और अनुसंधान के लिए एक नया एकक स्थापित करना वांछनीय होगा।

(ग) इस सेवा को और अधिक कुशल बनाने के लिए यह वांछनीय होगा कि यथाशक्य यंत्रीकरण किया जाए।

(घ) सांख्यिकीय एकक को चाहिए कि वह राज्य सरकारों और विश्वविद्यालयों के सांख्यिकीय कर्मचारियों को प्रशिक्षण देने का अपना वर्तमान कार्य चालू रखे। हां, प्रशिक्षण को गुण और परिमाण दोनों ही दृष्टियों से अधिक सक्षम करने की आवश्यकता है। मंत्रालय को चाहिए कि वह भारतीय सांख्यिकी संस्थान और केन्द्रीय सांख्यिकी संगठन जैसे विशेषज्ञ विकायों द्वारा संचालित प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों में आवधिक पुनरनुस्थापन (रीओरिएण्टेशन) और प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिए अपने सांख्यिकीय कर्मचारियों को भी अवसर प्रदान करे।

(ङ) राज्यों के शिक्षा-विभागों के सांख्यिकीय एककों को भी इसी प्रकार पुनर्गठित और सशक्त करना होगा ताकि वे भी शिक्षा मंत्रालय के सांख्यिकीय एकक के लिए ऊपर बताए कार्यों को भली-भांति सम्पन्न कर सकें।

18.35. शिक्षा मंत्रालय के अनेक सलाहकार निकायों मे से सबसे महत्वपूर्ण है केन्द्रीय शिक्षा सलाहकर बोर्ड, जो 1935 से काम कर रहा है। भारत सरकार के शिक्षा मंत्री इसके अध्यक्ष और सभी राज्यों के शिक्षा मंत्री इसके सदस्य है। भारत सरकार कुछ विशेषज्ञों और विभिन्न हितों के प्रतिनिधियों को भी इस बोर्ड में सदस्य नामित करती है। इसमें योजना आयोग, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, और भारतीय अन्तर्विश्वविद्यालय बोर्ड के प्रतिनिधि भी होते हैं। हमारी सिफ़ारिश है कि इस बोर्ड को और इसकी स्थायी समितियों को कार्य की दृष्टि से सशक्त बनाया जाए।

18.36. **राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्**—इस परिषद की स्थापना सही दिशा में उठाया गया एक महत्वपूर्ण कदम है। इसका भावी विकास किन पद्धतियों पर किया जाए, इस संबंध में हम कुछ संकेत नीचे दे रहे हैं :

(1) **कार्य** : परिषद् का मुख्य कार्य राज्यों के शिक्षा विभागों के साथ मिलकर स्कूली शिक्षा को विशेष रूप से ध्यान से रखते हुए विस्तार कार्य करना है। यही एक संस्था है जो इस कार्य के लिए सबसे अधिक उपयुक्त है क्योंकि संघ के शिक्षा मंत्री इसके अध्यक्ष और सभी राज्यों के शिक्षा मंत्री इसके सदस्य हैं। अतः नीति विषयक उद्देश्य यह होना चहिए कि इस परिषद् को एक ऐसी प्रमुख तकनीकी एजेंसी रूप में विकसित किया जाए जो स्कूली शिक्षा में सुधार के लिए राष्ट्रीय स्तर पर कार्य करे और जो राष्ट्रीय स्कूल शिक्षा बोर्डों, राज्यों के शिक्षा विभागों और राज्य शिक्षा संस्थानों जैसी उनकी तकनीकी एजेंसियों के साथ मिलकर उनके माध्यम से कार्य करे।

(2) **गठन** : परिषद् का शासी निकाय अखिल भारतीय स्वरूप का होना चाहिए और उसमें गैर-सरकारी सदस्यों का बहुमत होना चाहिए। विशेषतः यह वांछनीय है कि

उसमें कम-से-कम माध्यमिक स्कूल का एक उत्कृष्ट शिक्षक हो और एक प्राथमिक शिक्षा का विशेषज्ञ जो प्राथमिक शिक्षक हो तो अच्छा।

(3) **निदेशक और संयुक्त निदेशक** : हम सिफ़ारिश करते हैं कि परिषद का अपना पूर्णकालिक निदेशक और संयुक्त निदेशक होना चाहिए। इस समय शिक्षा मंत्रालय का सचिव परिषद का निदेशक है और मंत्रालय का एक अधिकारी इसका (सामान्य रूप से अंशकालिक) संयुक्त निदेशक है। यह आदर्श व्यवस्था नहीं है। परिषद् का आकार और महत्व ऐसा है कि उसका नेतृत्व ऐसे अंशकालिक अधिकारियों के हाथ में देना गलत है जिनकी निष्ठा और प्रतिबद्धता अन्यत्र है। परिषद् का अपना एक पूर्णकालिक निदेशक होना चाहिए जो इस क्षेत्र का प्रख्यात शिक्षाविद् हो। उसका पद उपकुलपति के बराबर होना चाहिए। उसकी पदावधि पांच वर्ष की होनी चाहिए जो अधिक से अधिक पांच वर्ष और बढ़ाई जा सकती है। संयुक्त निदेशक (जिसकी सेवाएं मंत्रालय से उधार ली जा सकती हैं) प्रमुख रूप से निदेशक को सहायता देने और नेमी प्रशासन-कार्यों के भार से निदेशक को मुक्त रखने के लिए आवश्यक होगा।

(4) **क्षेत्रीय कालेज और केन्द्रीय शिक्षा संस्थान** — राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् इस समय चार प्रशिक्षण कालेज चला रही है जहां माध्यमिक स्कूलों के शिक्षकों का प्रशिक्षण होता है। इस कार्यक्रम के संबंध में हमारे विचार अन्यत्र[1] व्यक्त किए जा चुके हैं। केन्द्रीय शिक्षा संस्थान, दिल्ली का कार्यभार भी परिषद् के कंधों पर ही है। हमारा सुझाव है कि यह संस्था दिल्ली विश्वविद्यालय के अधीन कर दी जाए। हम आशा करते हैं कि दिल्ली विश्वविद्यालय हमारी सिफ़ारिशों के आधार पर एक शिक्षा-विद्यालय स्थापित करेगा और देश में अध्यापकों की शिक्षा के कार्यक्रम में सुधार कार्य को सर्वप्रथम प्रारंभ करेगा।

(5) **कार्मिक** — परिषद् की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि उसे राज्यों के शिक्षा विभागों और उनके तकनीकी स्कंधों से कहां तक मान्यता मिलती है, और यह उनकी तकनीकी समस्याओं को सुलझाने में उनको कहां तक सहायता दे सकती है। अतः यह वांछनीय होगा कि परिषद् और राज्यों के विभागों के बीच अधिकारियों का आदान-प्रदान काफी संख्या में होता रहे। राज्यों के शिक्षा विभागों के चुने हुए अधिकारियों को परिषद् में सावधि पदों पर नियुक्ति के लिए आमंत्रित करके यह किया जा सकता है। राज्य सरकारों के साथ भी कुछ ऐसी व्यवस्था की जानी चाहिए जिसके अन्तर्गत परिषद् के अधिकारी एक निश्चित अवधि के लिए राज्यों के शिक्षा विभागों में कार्य कर सकें।

(6) स्कूली शिक्षा में गुणात्मक सुधार करने के लिए परिषद् को मूल कार्य करना है। अतः यह परमावश्यक है कि उसके भूमि-क्षेत्र (केम्पस) का विकास तुरन्त किया जाए और भवन निर्माण के कार्य को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जाए। इस समय उसके विभाग और एकक शहर के दूर-दूर भागों में फैले हुए हैं। कार्यकुशलता की दृष्टि से यह ठीक नहीं है।

राज्य स्तर पर शैक्षिक प्रशासन

18.37. राज्यों के शिक्षा विभाग शैक्षिक योजनाओं को तैयार करने और कार्यान्वित करने वाली प्रधान एजेंसियां हैं। दुर्भाग्य की बात है कि सही तरीके से उनका विकास करने के लिए अभी तक पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया है। अंग्रेजी राज्यकाल में बहुत ही सीमित प्रयोजनों के लिए उनका जो ढांचा बनाया गया था उस ढांचे में आजकल कोई परिवर्तन नहीं हुआ है और वही ढांचा अब भी चल रहा है। उनकी क्रियाविधियां और कार्यक्रम अधिकतर पारम्परिक हैं और उनके अधिकारियों का दृष्टिकोण बहुधा अनम्य और रूढ़िवादी होता है। यह सत्य है कि शिक्षा विभागों में कुछ विस्तार हुआ है। परन्तु अधिकांश विस्तार पारम्परिक पद्धति पर हुआ है और उनके कार्य में कोई गुणात्मक परिवर्तन नहीं आया है। यहां तक कि संख्यात्मक विस्तार भी स्थिति की मांगों को पूरा नहीं कर सका है। शिक्षा संस्थाओं की संख्या में हुए विस्तार, उनमें भर्ती होने वाले छात्रों की संख्या या शिक्षा पर होने वाले कुल व्यय की दृष्टि से वह बहुत कम है। कुछ राज्यों में शिक्षा विभागों के कर्मचारियों की छंटनी का काम उस स्थिति में भी किया गया जब कि शैक्षिक सुविधाओं का विस्तार पूर्ण गति से हो रहा था। अपने वर्तमान रूप में राज्यों के शिक्षा विभाग इस रिपोर्ट में प्रस्तावित शैक्षिक पुनर्गठन के जटिल और कठिन कार्यक्रम को सम्पन्न करने की जिम्मेदारी लेने की स्थिति में नहीं होंगे। अतः यह आवश्यक होगा कि राज्य स्तर पर शैक्षिक प्रशासन के सुधार के कार्यक्रमों को अग्रता दी जाए। इस संबंध में मोटी-मोटी सिफ़ारिशें नीचे दी जा रही हैं।

18.38. **समन्वय**—समन्वय से बहुधा राज्य स्तर पर प्रशासनिक गतिरोध पैदा हो जाता है क्योंकि शैक्षिक

1. **अध्याय चार।**

कार्यक्रम इस समय अनेक विभागों का दायित्व है। अनेक राज्यों में, सामान्य शिक्षा का एक विभाग है जो एक शिक्षा निदेशक के अधीन है। कुछ राज्यों में, सामान्य शिक्षा ही दो भागों—कालेज शिक्षा और स्कूल शिक्षा—में, विभाजित है और दो भिन्न-भिन्न निदेशकों के अधीन रखी जाती है। कहीं-कहीं संस्कृत अथवा कला की शिक्षा के लिए अलग निदेशालय हैं। तीन राज्यों में आदिम जातियों की शिक्षा को अलग करके एक अलग विभाग के नीचे रखा गया है। सभी राज्यों में, तकनीकी शिक्षा एक अलग निदेशालय के अधीन है जो कहीं तो शिक्षा विभाग के अंतर्गत है और कहीं नहीं। कृषि-शिक्षा, आमतौर पर कृषि विभाग के अधीन है और चिकित्सा-शिक्षा चिकित्सा और स्वास्थ्य विभाग के अंतर्गत। औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान अधिकतर औद्योगिक विभाग के अधीन हैं। प्रौढ़ शिक्षा के कार्यक्रमों को कभी तो सामान्य शिक्षा के साथ और कभी सामुदायिक विकास प्रशासन के नीचे रखा जाता है। यह स्पष्टतः आवश्यक है कि शैक्षिक विकास के इन विभिन्न कार्यक्रमों में उचित समन्वय स्थापित किया जाए और उन्हें एक व्यापक योजना के अलग-अलग अंग समझा जाए।

18.39. शिक्षा के इन विविध पक्षों को एक ही विभाग की 'छत्रछाया' में रखना प्रशासनिक दृष्टि से सुकर नहीं जान पड़ता और आने वाले कुछ समय के लिए हमें इस वस्तुस्थिति को स्वीकार करना होगा कि शिक्षा का प्रशासन एक से अधिक विभागों के अधीन ही रहेगा। अतः यह वांछनीय है कि राज्य स्तर पर, शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों के कार्यों के समन्वय के लिए कोई तंत्र स्थापित किया जाए और योजना तथा विकास के प्रयोजनों के लिए स्वीकृत दृष्टिकोण अपनाया जाए। इस दृष्टि से निम्नलिखित दो उपायों पर विचार किया जा सकता है।

(1) राज्य स्तर पर विधिक शिक्षा परिषद् की स्थापना होनी चाहिए। उच्चतर शिक्षा केन्द्र, राज्य तथा विश्वविद्यालय के बीच एक साझेदारी है। उसके विकास के लिए अलग व्यवस्था करने का सुझाव पहले दिया जा चुका है, अतः इस परिषद् का कार्यक्षेत्र स्कूली शिक्षा या विश्वविद्यालय स्तर से नीचे की सारी शिक्षा तक ही सीमित रहना चाहिए। शिक्षा मंत्री इसका अध्यक्ष होना चाहिए। राज्य के विश्वविद्यालयों के प्रतिनिधि, विभिन्न शिक्षा क्षेत्रों में प्रभारी सभी निदेशक और कुछ प्रख्यात शिक्षाविद् उसके सदस्य होने चाहिए। वर्ष में तीन या चार बार इसकी बैठकें होनी चाहिए और उसका अपना सचिवालय होना चाहिए। इसका मुख्य कार्य यह होना चाहिए कि अपने आप या मांगने पर स्कूली शिक्षा के सभी मामलों में राज्य सरकार को सलाह दे और राज्यों के शैक्षिक विकास की समीक्षा करे तथा उपयुक्त एजेंसियों के जरिए, समय-समय पर, कार्यक्रमों का मूल्यांकन कराए। यह राज्य स्तर पर सबसे महत्वपूर्ण सलाहकार निकाय होना चाहिए और यदि आवश्यक हो तो यह विभिन्न शिक्षा क्षेत्रों और कार्यक्रमों के लिए स्थाई समितियां या उप-समितियां बना ले। इसकी वार्षिक रिपोर्ट, इसकी सिफ़ारिशों के साथ, राज्य विधानमंडल के सामने प्रस्तुत की जानी चाहिए।

(2) इसके अतिरिक्त, अधिकारियों के स्तर पर एक स्थाई समिति बनाना भी वांछनीय होगा। इस समिति में राज्य स्तर पर विभिन्न शिक्षा क्षेत्रों के प्रभारी अधिकारी होंगे और समय-समय पर शिक्षा सचिव की अध्यक्षता में इसकी बैठकें होंगी।

18.40. **शिक्षा सचिवालय**—इस समय सभी राज्यों में शिक्षा सचिव आमतौर पर भारतीय प्रशासन सेवा का अधिकारी होता है, सिवाय पश्चिम बंगाल के, जहां वह शिक्षा सेवा का सदस्य है। हमारी राय है कि भारत सरकार के शिक्षा सलाहकार के समान शिक्षा-सचिव भी एक प्रशासनिक अधिकारी न होकर, शिक्षाविद् होना चाहिए। अतः इस नियुक्ति को भी सांविधि पद बनाना वांछनीय होगा।

18.41. शिक्षा सचिव और शिक्षा निदेशक का पारस्परिक सम्बन्ध काफी समय से विवाद का विषय रहा है। इस विषय को सर्वप्रथम सन् 1928 में हारटोग समिति ने प्रमुखता दी थी। आम शिकायत यह रही है कि शिक्षा सचिवालय शिक्षा निदेशालय पर पूरा प्रभुत्व रखता है और विशुद्ध तकनीकी मामलों में भी हस्तक्षेप करता रहता है। यह दलील भी गई है कि इस समय प्रस्तावों की, निदेशालय और शिक्षा सचिवालय में, जो जाँच पड़ताल दो बार होती है इससे काफी देर हो जाती है। इसका जो इलाज अक्सर सुझाया जाता है यह है कि शिक्षा निदेशक सरकार का पदेन सचिव या अतिरिक्त सचिव होना चाहिए। समस्या कठिन है और इसकी जटिलता को सुलझाने का कोई आसान तरीका नहीं है। मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि शिक्षा सचिवालय का कार्य यह होना चाहिए कि वह शैक्षिक समस्याओं को प्रशासनिक और वित्तीय दृष्टिकोण से तथा विकास सम्बन्धी सरकारी नीतियों के व्यापक संदर्भ में जांचे। उसे तकनीकी मामलों में निदेशालय के विचारों को उचित महत्व देना चाहिए और निदेशक को प्रभावशाली विभागाध्यक्ष के रूप में कार्य करने में सहायता देनी चाहिए।

शिक्षा निदेशक और शिक्षा सचिव के बीच 'व्यक्तिगत समीकरण' में ही उनके सफल सम्बन्ध का रहस्य छिपा है, और जहां यह ठीक-ठीक स्थापित हो सका है, वहां परिणाम संतोषजनक रहे है।

18.42. **शिक्षा निदेशालय**—इस समय निदेशालय बहुत बड़े हो गए हैं और जिला स्तर को काफी शक्तियां नहीं सौंपी गई हैं। अतः शिक्षा निदेशक का इतना अधिक समय कार्मिक प्रशासन और तुच्छ बातों में बीत जाता है कि शैक्षिक विकास में नेतृत्व प्रदान करने की अपनी मुख्य जिम्मेदारी के लिए उसे समय नहीं मिल पाता। अतः हमने दो महत्वपूर्ण प्रस्ताव रखे हैं जिनसे विभाग की पूरी कार्यव्यवस्था में परिवर्तन आ जाएगा :

(1) जिला स्तर पर जिला स्कूल बोर्ड का गठन और विश्वविद्यालय स्तर से नीचे की सारी शिक्षा (जिसमें सभी सरकारी स्कूलों का प्रबन्ध भी शामिल है) के प्रशासन का उसे अन्तरण।

(2) जिला स्कूल निरीक्षक के कार्यालय में कर्मचारियों की संख्या में वृद्धि, ताकि वह अपने क्षेत्र में निदेशालय की लगभग सभी जिम्मेदारियों को संभाल सके।[1]

जब ये परिवर्तन कर दिए जाएंगे, तो निदेशालय एक ठोस और कार्यकुशल संगठन हो जाएगा। सामान्य समन्वय और जिला शिक्षा अधिकारियों तथा जिला स्कूल बोर्डों की देखरेख ही उसका मुख्य काम होगा तभी उसके लिए संभव होगा कि वह सप्रयोजन और गतिशील नेतृत्व के जरिए शिक्षा में प्राण फूंक सके।

कार्मिक

18.43. विश्वास सम्पादन और साहस और उत्साहपूर्ण नेतृत्व तथा मानव सम्बन्धों को भली भांति निभाने की सामर्थ्य ही प्रशासन हैं। इसके लिए ठीक प्रकार के कार्मिकों की भर्ती करने की आवश्यकता पर जितना बल दिया जाए कम है। राज्यों के शिक्षा विभागों के वर्तमान संगठन की बड़ी-बड़ी कमजोरियां अधिकतर उनके कार्मिकों से सम्बन्धित हैं। इन कमजोरियों में से कुछ ये हैं : उच्च स्तर पर अधिकारियों की कमी, विशेषज्ञ कर्मचारियों की कमी, असंतोषजनक पारिश्रमिक और सेवा की शर्तें, भर्ती के असंतोषजनक तरीके, सेवाकालीन शिक्षा के लिए अपर्याप्त व्यवस्था और कर्मचारियों की अपर्याप्त संख्या।

18.44. **भारतीय शिक्षा सेवा**—भारतीय शिक्षा सेवा का गठन सही दिशा में उठाया गया एक कदम है। यदि इसे ठीक ढंग से संगठित किया गया तो इससे शिक्षा की प्रगति में बड़ी सहायता मिलेगी। फिर भी, हम इस प्रस्ताव की कुछ बातों से खुश नहीं हैं जो इस समय भारत सरकार के विचाराधीन हैं। अतः हम इस विषय पर विस्तार से चर्चा करेंगे।

18.45. सब से पहले यह समझ लेना चाहिए कि भारतीय शिक्षा सेवा का स्वरूप भारतीय प्रशासन सेवा या अन्य केन्द्रीय सेवाओं से बहुत भिन्न होगा। पहली बात यह कि शिक्षा में, शिक्षण और अनुसंधान के लिए प्रशासन सेवक है, मालिक नहीं। दूसरे, कोई भी व्यक्ति अच्छा शैक्षिक प्रशासक तब तक नहीं बन सकता जब तक कि अच्छा शिक्षक न हो। तीसरे, इस बात की गुंजाइश सदैव रहनी चाहिए कि एक शैक्षिक प्रशासक शिक्षण या अनुसंधान कार्य के लिए वापस आ सकता है और एक शिक्षक किसी सावधि कार्य के लिए प्रशासन पक्ष में स्थानान्तरित किया जा सकता है। हमारी राय में, भारतीय शिक्षा सेवा के वर्तमान प्रस्ताव में शैक्षिक प्रशासन के इन ठोस सिद्धान्तों की अवहेलना की गई है। जैसा कि इस समय प्रस्ताव किया गया हैं, भारतीय शिक्षा सेवा के दो-तिहाई पदों पर खुली प्रतियोगिता के जरिए सीधी भर्ती की जाएगी। इस प्रकार चुने गए व्यक्तियों को आमतौर पर शिक्षण या अनुसंधान या कोई अनुभव नहीं होगा और इन क्षेत्रों में अपनी क्षमता दर्शाने का उन्हें कोई अवसर भी नहीं मिला होगा। शेष एक-तिहाई पद राज्य सेवाओं से पदोन्नति करके भरे जाएंगे और उनमें सरकारी स्कूलों और कालेजों के शिक्षक भी हो सकते हैं। परन्तु अधिकांश शिक्षक, अर्थात्, विश्वविद्यालयों के सभी शिक्षक और गैर-सरकारी स्कूलों और कालेजों के शिक्षक इस सेवा में भर्ती नहीं हो सकेंगे। शिक्षक-वर्ग पर इसका अवसादपूर्ण प्रभाव पड़ेगा और आगे चलकर उसका असर शिक्षा पर भी होगा। अतः हमारी पक्की धारणा है कि भारतीय शिक्षा सेवा में भर्ती का तरीका इस प्रकार होना चाहिए :

(1) कनिष्ठ स्तर के केवल एक-तिहाई पदों पर प्रत्यक्ष भर्ती की जाए। इस प्रकार चुने हुए लोगों को एकदम प्रशासन में न लगा दिया जाए। कम-से-कम पहले दो या तीन वर्षों तक उन्हें शिक्षण कार्य में लगाया जाए और इस दीक्षा के बाद ही उन्हें प्रशासन का कार्य सौंपा जाए।

1. अध्याय दस।

(2) शेष दो-तिहाई पदों में से कुछ तो सीधी भर्ती से और कुछ वरिष्ठ और उच्च स्तर पदोन्नति करके भरे जाएं। इन पदों में से आधे पद (यानी कुल पदों के एक-तिहाई) राज्य-सेवाओं से पदोन्नति द्वारा भरे जाएं। शेष आधे फिर सीधी भर्ती से भरे जाएं—कुछ वरिष्ठ स्तर पर और कुछ उच्च स्तर पर। इस भर्ती के लिए उपयुक्त आयु-सीमा, यानी 35 और 45 वर्ष, रखी जाए और आवेदकों के लिए यह आवश्यक हो कि उन्होंने शिक्षक के रूप में एक न्यूनतम निर्धारित अवधि तक कार्य किया हो या अनुसंधानकर्ता के रूप में विशिष्टता दिखाई हो।

(3) भारतीय शिक्षा सेवा के कुछ पद निश्चित अवधि के लिए अध्यापकों की सावधि नियुक्ति से भरे जाने चाहिए। इसी प्रकार शिक्षण और अनुसंधान क्षेत्र के कुछ पद भी भारतीय शिक्षा सेवाधीन व्यक्तियों की सावधि नियुक्ति के लिए उपलब्ध होने चाहिए।

18.46. दूसरी बात जिसकी हमने विस्तृत जांच की थी, यह है कि भारतीय शिक्षा सेवा में एक शिक्षण स्कंध (विंग) स्थापित किया जाए। वर्तमान प्रस्ताव में सरकारी कालेजों के प्रिंसिपलों के पदों को (जिन्हें शिक्षण की अपेक्षा प्रशासनिक पद अधिक माना जाता है) संवर्ग (काडर) में शामिल करने का विचार व्यक्त किया गया है। यह भी सुझाव है कि उच्चतर माध्यमिक स्कूलों के प्रिंसिपलों के कुछ पद भी संवर्ग में शामिल किए जाएं। सरकारी कालेजों का उच्चतर माध्यमिक स्कूलों के प्रिंसिपलों के कुछ पदों को संवर्ग में रखने के विचार पर कोई आपत्ति नहीं है। वस्तुतः ऐसा करना ही ठीक होगा। फिर इसके लिए शिक्षण-स्कंध स्थापित करने की आवश्यकता नहीं होगी। प्रिंसिपलों के उन पदों को निरीक्षण अधिकारियों के कुछ स्तरों के साथ परस्पर-परिवर्तनीय बनाया जा सकता है, जैसा इस समय है। तथापि ऐसा शिक्षण-स्कंध बनाने में अनेक दुर्लंघ्य बाधाएं है। यदि इसे गठित कर भी दिया जाए तो उसमें उच्च स्तर के शिक्षकों के बहुत से पद शामिल करने होंगे। यह संभव होगा क्योंकि विश्वविद्यालयों के सभी शिक्षण-पदों को और सरकारी कालेजों के अधिकांश पदों (गैर सरकारी सम्बद्ध कालेजों की चर्चा न करते हुए) को भारतीय शिक्षा सेवा से बाहर रखना होगा। इसलिए सरकारी कालेजों के प्रिंसिपलों के कुछ पदों को संवर्ग में शामिल करके शिक्षण-स्कंध बनाने के प्रयत्न से लाभ के बदले हानि होगी क्योंकि इससे पूरे शिक्षक वर्ग की मनःस्थिति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। अतः हम सिफ़ारिश करते हैं कि भारतीय शिक्षा सेवा में शिक्षण स्कंध स्थापित करने का विचार छोड़ दिया जाए और सेवा में निम्नलिखित पदों को ही शामिल किया जाए :

— निदेशकों, अतिरिक्त निदेशकों, संयुक्त निदेशकों, उपनिदेशकों आदि के पद, राज्यों के शिक्षा विभागों के जिला जिक्षा-अधिकारियों (और उनके समकक्ष अधिकारियों) के पद (जिनमें सरकारी कालेजों के प्रिंसिपलों के पद और उच्चतर माध्यमिक स्कूलों के प्रधानाध्यापकों के कुछ पद भी शामिल हैं);

— शिक्षा मंत्रालय के सभी राजपत्रित सलाहकार पद;

— राष्ट्रीय शिक्षा अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् के उपयुक्त पद;

— भारत सरकार के अन्य मंत्रालयों में शैक्षिक कार्यक्रमों से सम्बन्धित सभी पद;

— संघ-शासित क्षेत्रों के शिक्षा विभागों के उपयुक्त राजपत्रित पद; और

— केन्द्रीय स्कूलों की योजना के अंतर्गत उच्चतर माध्यमिक स्कूलों के प्रिंसिपलों के उपयुक्त पद।

18.47. भारतीय शिक्षा सेवा में एक शिक्षण-स्कंध बनाने के बदले हम यह सिफ़ारिश करते हैं कि भारतीय शिक्षा सेवा के उच्चतर वेतन मानों के बराबर के कुछ पद उचित संख्या में विश्वविद्यालयों और कालेजों में रखे जाएं। ऐसा करना शैक्षिक आधार पर भी न्यायोचित है क्योंकि शिक्षकों और अनुसंधानकर्ताओं को दिया जाने वाला पारिश्रमिक और ओहदा शैक्षिक प्रशासकों को दिए जाने वाले पारिश्रमिक और आहदे की तुलना में अधिक नहीं तो बराबर अवश्व होना चाहिए। इसका फल यह होगा कि शिक्षण अनुसंधान के क्षेत्र से निकलकर प्रतिभावान व्यक्ति प्रशासन के क्षेत्र में जाने के लिए लालायित नहीं रहेंगे।

18.48. इस बात पर भी कुछ विचार करना होगा कि भारतीय शिक्षा सेवा के सदस्यों से किन-किन भाषाओं का ज्ञान अपेक्षित हो। यह सच है कि भारतीय शिक्षा सेवा के अधिकारियों को भारतीय प्रशासन सेवा के अधिकारियों की अपेक्षा क्षेत्रीय भाषा के अधिक अच्छे ज्ञान की आवश्यकता होगी। परन्तु सेवा की उपयोगिता काफी हद

तक समाप्त हो जाएगी यदि भारतीय शिक्षा सेवा का प्रत्येक सदस्य अपने ही राज्य में नौकरी के लिए भर्ती किया जाएगा। यह परिपाटी बन जानी चाहिए कि भारतीय शिक्षा सेवा के लगभग 50 प्रतिशत अधिकारी अपने-अपने राज्य में रखे जाएंगे; साथ ही (केन्द्र में प्रतिनियुक्ति के अतिरिक्त) अन्तर्राज्य स्थानान्तर की गुन्जाइश भी रहनी चाहिए। अतः भारतीय शिक्षा सेवा के प्रत्येक सदस्य को भर्ती होने के बाद एक निश्चित अवधि के भीतर, निर्धारित स्तरों पर दो अन्य भाषाओं (हिन्दी और एक आधुनिक भारतीय भाषा जो उसकी मातृभाषा न हो) का अध्ययन करके परीक्षा पास करनी चाहिए।

18.49. हमने भारतीय शिक्षा सेवा के गठन में जिन परिवर्तनों के लिए और तदनुसार शिक्षकों और अनुसंधानकर्ताओं के पारिश्रमिक में जिस वृद्धि के लिए सिफ़ारिश की है वे बहुत महत्वपूर्ण हैं। यदि उन्हें कार्यान्वित किया जाए तो भारतीय शिक्षा सेवा से प्रशासन को बहुत बल मिलेगा और उसका शिक्षण और अनुसंधान पर कोई प्रतिकूल प्रभाव भी नहीं पड़ेगा।

18.50. **राज्य शिक्षा सेवाएं**—इस समय राज्य शिक्षा सेवाएं तीन बड़े वर्गों में विभाजित हैं—प्रथम श्रेणी, द्वितीय श्रेणी और अन्य। इन सेवाओं का पुनर्गठन करते समय निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना होगा :

(1) उच्चतर स्तरों पर यानी प्रथम और द्वितीय श्रेणी के अन्तर्गत पदों की संख्या पर्याप्त होनी चाहिए। जिला स्कूल बोर्डों के सचिव प्रथम श्रेणी में होने चाहिए। जिला शिक्षा निरीक्षकों को (जो भारतीय शिक्षा सेवा में होंगे) प्रथम श्रेणी और द्वितीय श्रेणी के अधिकारियों से पर्याप्त सहायता मिलनी चाहिए।

(2) भर्ती के तरीके में भी सुधार करना होगा। इस समय परेशानी यह है कि राज्य शिक्षा विभागों के सभी निम्न और निम्नतर स्तरों के प्रशासनिक पदों के लिए नए लोगों की भर्ती करने की प्रवृत्ति दीख रही है। एक राज्य में, सभी विभागीय पदों के लिए सारी नई भर्ती सहायक अध्यापक के स्तर पर की जाती है। ऐसे मामलों में, विश्वविद्यालय से निकला हुआ प्रतिभावान युवा स्नातक इस सेवा की ओर आकर्षित नहीं होता और सभी उच्चतर पदों पर शनैः शनैः वे ही व्यक्ति आते हैं जो निम्नतर स्तर पर भर्ती होते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि भर्ती तीन स्तरों पर की जाए : सहायक शिक्षकों के स्तर पर, द्वितीय श्रेणी के स्तर पर (50 प्रतिशत नए भर्ती होने वालों के लिए और 50 प्रतिशत पदोन्नति के लिए); और प्रथम श्रेणी के स्तर पर (75 प्रतिशत नए भर्ती होने वालों के लिए और 25 प्रतिशत पदोन्नति के लिए)। उच्चतर स्तरों पर भर्ती करते समय आयु-सीमा में उचित छूट मिलनी चाहिए, जैसा कि भारतीय शिक्षा सेवा के लिए है।

(3) स्वतन्त्रता-प्राप्ति से पूर्व, विभाग के दो मुख्य कार्य होते थे : सरकारी और गैर-सरकारी शिक्षा संस्थाओं का नियंत्रण और सहायक अनुदान वितरण। अतः विभाग के कर्मचारी वर्ग में 'सामान्यज्ञ' यानी शिक्षण शास्त्र में डिग्री-प्राप्त व्यक्ति (जैसे बी० टी० या ऐसी ही कोई डिग्री वाले) होते थे जिन्हें शिक्षण का थोड़ा-बहुत अनुभव होता था। इसमें सन्देह नहीं कि कुछ विशेष पद (जैसे दृश्य-श्रव्य शिक्षा निरीक्षक) भी होते थे, परन्तु इस कार्य के लिए कोई विशेष प्रशिक्षण नहीं होता था और उस पद पर किसी को भी नियुक्त किया जा सकता था। उससे आशा की जाती थी कि वह काम करते-करते अपना काम सीख ले। यहां तक निरीक्षण भी 'सामान्य' होते थे—तात्पर्य यह है कि स्कूल का निरीक्षण करने वाले अधिकारी से यह आशा की जाती थी कि वह सभी विषयों के शिक्षण में मार्गदर्शन करे और स्कूल जीवन के सभी पक्षों की निगरानी रखे। सामान्यतः यही परम्परा आज भी चल रही हैं। परन्तु अब इसकी उपयोगिता नहीं रही। शिक्षा विभाग का कार्य-क्षेत्र विस्तृत हो जाने और शिक्षा के सुधार के सम्बन्ध में भारी दायित्व स्वीकार कर लेने के फलस्वरूप विशेषज्ञ अधिकारियों की आवश्यकता बढ़ गई है। उदाहरणार्थ, पाठ्यचर्या-सुधार का महत्व बहुत बढ़ गया है तो भी किसी राज्य के शिक्षा विभाग में एक भी पाठ्यचर्या-विशेषज्ञ नहीं है। मूल्यांकन, पाठ्य-पुस्तकें, आदि शिक्षा के अन्य क्षेत्रों के सम्बन्ध में भी यही स्थिति है। इस समय जिन बड़े-बड़े सुधारों की आवश्यकता है, उन में से एक यह है कि विशेषज्ञ कर्मचारियों (जिनकी आवश्यकता सर्वत्र समझी गई है)

के आधार पर राज्य शिक्षा विभागों को आवश्यकतानुसार पुनर्गठित किया जाए। इससे भी अधिक आवश्यक और महत्वपूर्ण यह है कि विश्वविद्यालयों की सहायता से उनके विशिष्ट प्रशिक्षण की समुचित व्यवस्था की जाए। ये विशेषज्ञ अधिकारी (जिनमें विषय निरीक्षक भी शामिल होंगे) दो स्तरों पर, अर्थात्, निदेशालय और जिला स्तर पर नियुक्त किए जाएं।

(4) राज्य और संघ-शासित क्षेत्रों के विभागीय कर्मचारियों के वेतन में अनेक विषमताएं हैं। इन में से दो पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है :

(1) शिक्षा विभाग के प्रशासनिक स्कंध और शिक्षण-स्कंध में एक-से वेतनमान होने चाहिए या अलग-अलग ? इस समय तीन पद्धतियां प्रचलित हैं। कुछ राज्यों में वेतन-मान एक-से हैं, कुछ राज्यों में शिक्षण-स्कंध के वेतनमान अधिक ऊंचे हैं और शेष में प्रशासन-स्कंध के। आदर्श स्थिति यह होगी कि वेतनमान एक-से रखे जाएं और असुविधा, हानि या घाटे को पूरा करने के लिए शिक्षा अथवा प्रशासनिक स्कंध में भत्ते की व्यवस्था की जाए। यह भत्ता तभी तक दिया जाए जब तक प्रभावित व्यक्ति उस पद पर रहे। इस पद्धति से दोनों स्कंधों के बीच आसानी से स्थानान्तर हो सकेगा और परस्पर आवागमन में सुविधा होगी।

(2) विभागीय कर्मचारियों (प्रथम और द्वितीय श्रेणी) के वेतनमानों को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के वेतनमानों के बराबर न रखकर, अन्य विभागों के समकक्ष पदों के वेतनमानों के बराबर रखा गया है। इस कारण शिक्षण स्कंध से प्रशासनिक स्कंध में कर्मचारियों का स्थानान्तर कठिन होता है। अतः हमारी सिफ़ारिश है कि विभागीय कर्मचारियों के वेतनमान विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा विश्वविद्यालय-शिक्षकों के लिए निर्धारित वेतनमानों के बराबर रखे जाएं।

18.51. **शैक्षिक प्रशासकों का प्रशिक्षण**—शैक्षिक प्रशासकों के प्रशिक्षण की वर्तमान सुविधाएं और व्यवस्थाएं पर्याप्त नहीं हैं। प्रशासकों का सेवा-पूर्व शिक्षण न तो आवश्यक है और न सम्भव। यह सच है कि कुछ प्रशिक्षण कालेजों में और कुछ विश्वविद्यालयों के शिक्षा विभागों में, शैक्षिक प्रशासन एम० एड्० डिग्री के पाठ्यक्रम में एक वैकल्पिक विषय के रूप में पढ़ाया जाता है। इन पाठ्यक्रमों के लिए प्रवेश-संख्या बहुत सीमित होती है। ये वांछित स्तर के नहीं है क्योंकि पढ़ाने वालों का प्रशासनिक अनुभव नगण्य होता है। दूसरा कारण यह है कि भारतीय परिस्थितियों और परिपाटियों पर उपलब्ध साहित्य बहुत सीमित है। तीसरे, छात्रों के व्यावहारिक प्रशिक्षण के लिए शायद ही कोई सुविधा है। ऐसे सेवा-पूर्व प्रशिक्षण की उपयोगिता समिति हो सकती है और इसलिए शैक्षिक प्रशासकों के प्रशिक्षण के लिए अधिकतर अन्तःसेवा शिक्षा पर ही निर्भर रहना पड़ता है।

18.52. दुर्भाग्य की बात है कि इस समय किसी भी राज्य शिक्षा विभाग में ऐसे प्रशिक्षण की सुविधाएं या तो नगण्य हैं या बिल्कुल नहीं हैं। यह बड़े आश्चर्य की बात यों भी है कि शिक्षा-क्षेत्र में प्रशिक्षण की प्रभावकारिता मूलतः मान्य है। किसी शैक्षिक प्रशासक का प्रशिशण सिर्फ़ इसलिए आवश्यक नहीं होता कि उसे कठिन और जटिल कार्य करने पड़ते हैं बल्कि प्रमुखतः इसलिए कि शैक्षिक विस्तार और सुधार के आगामी दो दशकों में सम्पन्न किए जाने वाले कार्यक्रमों में शैक्षिक प्रशासन को अनुस्थापित (औरिएण्ट) करना है और उसका सहयोग लेना है। इस दृष्टि से हम निम्नलिखित सिफ़ारिशें करते है :

(1) अराजपत्रित स्तर पर, अधिकारियों की संख्या बहुत अधिक है। उनके अन्तःसेवा प्रशिक्षण की व्यवस्था राज्य स्तर पर ही करनी होगी। हम सिफ़ारिश करते हैं कि आवश्यकतानुसार विश्वविद्यालयों का सहयोग लेकर प्रशासन और निरीक्षण दोनों पक्षों के अराजपत्रित शैक्षिक कर्मचारियों की सेवाकालीन शिक्षा के कार्यक्रम का आयोजन राज्यों के शिक्षा संस्थानों को करना चाहिए। लक्ष्य यह होना चाहिए कि प्रत्येक कर्मचारी के लिए, उसकी सेवा के हर पांचवें वर्ष, दो महीने के सेवाकालीन प्रशिक्षण की व्यवस्था हो। इसके अलावा, इन संस्थानों को राजपत्रित अधिकारियों के लिए, सम्मेलन, संगोष्ठियां और कार्य-शिविर आयोजित करने चाहिए।

(2) किसी भी राज्य में राजपत्रित अधिकारियों

की संख्या इतनी अधिक नहीं है कि राज्य स्तर पर एक प्रशिक्षण संस्था न खोली जा सके। अतः हमारी सिफ़ारिश है कि शिक्षा मंत्रालय राज्यों के शिक्षा-विभागों के वरिष्ठ शैक्षिक प्रशासकों के लिए एक राष्ट्रीय स्टाफ कालेज स्थापित करे।

(3) आम तौर पर शैक्षिक प्रशासक का कार्य इतना भारी होता है कि उसे पढ़ने और अपने आप को नवीनतम शैक्षिक विचारधारा से अवगत रखने का समय नहीं मिलता। सेवाकालीन शिक्षा के ऊपर सुझाए गए कार्यक्रम इस कमी को बहुत-कुछ पूरा कर सकेंगे। इसके अलावा यह भी वांछनीय होगा कि शैक्षिक समस्याओं का विशेष अध्ययन करने के लिए कर्मचारियों को, प्रत्येक पांच वर्ष की सेवा के पीछे पूरे वेतन पर तीन महीने की छुट्टी देने की पुरानी प्रथा को फिर से प्रचलित किया जाए। इससे भी अच्छा यह होगा कि वरिष्ठ प्रशासनिक पदों के लिए छह वर्ष के बाद एक मुक्ति-वर्ष की छुट्टी देने की योजना लागू की जानी चाहिए और यदि वह चाहे तो उसे बाकी बची विशेषाधिकार छुट्टी (प्रिविलिज लीव) को भी (जो अब बहुत कुछ बेकार जाती है) इसमें जोड़ने का विकल्प देना चाहिए। इस छुट्टी के साथ केवल एक ही शर्त लगानी चाहिए कि अधिकारी को छुट्टी की अवधि के अन्त में अपने अध्ययन के सम्बन्ध में एक रिपोर्ट देनी होगी।

(4) जो अधिकारी अतःसेवा शिक्षा कार्यक्रमों के जरिये अपनी योग्यताओं में महत्वपूर्ण वृद्धि कर लें उन्हें कुछ प्रोत्साहन मिलना चाहिए।

18.53. **राष्ट्रीय शिक्षा प्रशासक स्टाफ कालेज**– हम राष्ट्रीय शिक्षा प्रशासक स्टाफ कालेज की स्थापना को बहुत महत्व देते हैं और मोटे रूप में यह बतलाना चाहते हैं कि यह किस तरीके से अपना कार्य करेगा।

(1) शिक्षा सेवा, अर्थात्, भारतीय शिक्षा सेवा और राज्य शिक्षा सेवाओं (प्रथम श्रेणी और द्वितीय श्रेणी) के सभी वरिष्ठ अधिकारियों को, प्रत्येक पांच वर्ष की सेवा में एक बार, लगभग आठ सप्ताह की अन्तःसेवा शिक्षा देने की व्यवस्था करना इस कालेज का उद्देश्य होना चाहिए।

(2) इसके पास अपने स्थायी और पूर्णकालिक कर्मचारी होने चाहिए। इसके अलावा, उसे शिक्षा मंत्रालय और शिक्षा विभागों के वरिष्ठ अधिकारियों को, साधन-कार्मिकों के रूप में सहयोजित करना चाहिए। शैक्षिक प्रशासन बिल्कुल अलग रह कर काम नहीं कर सकता, इसलिए प्रशिक्षण कार्य के लिए अन्य विभागों के सक्षम व्यक्तियों की सेवाओं का भी उपयोग करना चाहिए। इस प्रशिक्षण का एक आनुषंगिक लाभ यह भी होगा कि इस संवर्ग में भर्ती होने वाले नए व्यक्ति वरिष्ठ अधिकारियों के निकट सम्पर्क में आसकेंगे।

(3) इसमें एक अनुसंधान स्कंध भी होना चाहिए जहां शैक्षिक प्रशासन की समस्याओं का अध्ययन किया जा सके। इस विषय की देशी और विदेशी पुस्तकों का एक अच्छा पुस्तकालय भी होना चाहिए। इसके अलावा, राज्यों और संघशासित क्षेत्रों में प्रशासनिक कार्यविधियां और परिपाटियों में आदान-प्रदान केन्द्र के रूप में भी इसे कार्य करना चाहिए।

(4) प्रशिक्षण के प्रयोजन के लिए भारतीय परिस्थितियों पर बहुत कम सामग्री उपलब्ध है, इसलिए कालेज तुरन्त स्थापित होना चाहिए। अनेक व्यक्तियों के मामलों का अध्ययन (केस स्टडीज़) और ऐसी आधार-सामग्री का संकलन जिसका उपयोग प्रशिक्षण कार्यक्रमों के संचालन में किया जा सके इसका पहला काम होना चाहिए। इसमें एक-दो वर्ष तो लग ही जाएंगे। इस प्रकार की तैयारी पूरी हो जाने पर प्रशिक्षण कार्यक्रम प्रारम्भ किए जाने चाहिए।

(5) कालेज में दो तरह के पाठ्यक्रम चलाए जाने चाहिए : लम्बा पाठ्यक्रम नए भर्ती हुए लोगों के लिए, और तीन से छह सप्ताहों के छोटे पाठ्यक्रम उनके लिए जो सेवाधीन हैं।

(6) कालेज में चलाए जाने वाले प्रत्येक पाठ्यक्रम में, प्रत्येक राज्य और संघशासित क्षेत्र के कुछ अधिकारियों को शामिल किया जाना चाहिए। प्रशासनिक अनुभव का पारस्परिक आदान-प्रदान नीति विषयक लक्ष्य होना चाहिए।

(7) कालेज में समय-समय पर शैक्षिक प्रशासन सम्बन्धी विषयों पर सम्मेलन, संगोष्ठियां और कार्यशिविर आयोजित होने चाहिए।

(8) कालेज से शैक्षिक प्रशासन विषयक एक पत्रिका प्रकाशित की जानी चाहिए और एक प्रकाशन स्कंध भी होना चाहिए।

18.54. **विभाग के कर्मचारियों की संख्या में वृद्धि करना**—राज्य शिक्षा विभागों ने हमारे सम्मुख जो शिकायतें रखीं उनमें आम शिकायतें थीं : कर्मचारियों की संख्या बहुत कम है; विभागीय कर्मचारियों की संख्या में वृद्धि तभी की जाती है जब शिक्षा-संस्थाओं की संख्या बढ़ जाती है, इससे पहले नहीं, इसलिए दोनों में समगति नहीं रह पाती; शिक्षा संस्थाओं, शिक्षकों और छात्रों के अनुपात में अपेक्षित अधिकारियों की संख्या को निर्धारित करने वाले मानदण्ड, संबंधित स्थलों की दूरी, परिवहन की समस्याएं और इसी प्रकार की अन्य संगत बातें, आमतौर पर, तय नहीं की जाती और यदि सिद्धान्ततः तय की भी जाती हैं तो व्यवहार में उनका पालन नहीं किया जाता, विभागीय अमले में वृद्धि पर होने वाले खर्च को सदा निम्न प्राथमिकता दी जाती है; जब विस्तार-कार्यक्रम अनुमोदित होते हैं तो अमले में वृद्धि करने की मंजूरी अपने आप नहीं मिल जाती; जब भी शिक्षा विभाग में छंटनी होती है तो पहला असर विभागीय अमले पर पड़ता है। इनमें से बहुत सी शिकायतें सच्ची हैं। हम एक शर्त के साथ, इन सभी नीतियों को उलट देने की सिफ़ारिश करते हैं। निम्न स्तर पर अपर्याप्त वेतनमान में बहुत से अधिकारी रखने से कहीं अधिक अच्छा है कि उच्च स्तर पर कम अधिकारी रखना। प्रशासन और पर्यवेक्षण की नई तकनीकों से संबंधित हमारी सिफ़ारिशों में इसके लिए व्यवस्था है,[1] राज्य शिक्षा विभागों के प्रस्तावित पुनर्गठन में इस बात का ध्यान रखना चाहिए।

कार्य-विधियां

18.55. **वर्तमान स्थिति**—शैक्षिक प्रशासन की वर्तमान कार्यविधियां एकरूपता और अनम्यता पर दिए गए अत्यधिक बल से ग्रस्त है। प्रत्येक राज्य में, सरकारी स्कूलों के प्रधानाध्यापकों से हमें यह शिकायत सुनने को मिली है कि स्कूल के जीवन का लगभग प्रत्येक अंग विभागीय आदेशों से विनियमित होता है। गैर-सरकारी संस्थाओं के प्रबंधकों ने भी विभाग के अनम्य रवैये की और छोटे-से-छोटे ब्योरे को नियंत्रित करने के प्रयत्नों की शिकायत की। इन पुरानी पम्पराओं को बदलने की आवश्यकता पर जितना बल दिया जाए, कम है। व्यापक विभागीय संहिताओं के जरिये एकरूपता लाने और शैक्षिक प्रक्रम को विनियमित करने के प्रयत्न पर आवश्यकता से अधिक बल दिया गया है। फलस्वरूप सारे स्वातन्त्र्य और नेतृत्व को समाप्त कर दिया गया है। प्रयोगात्मकता क्षीण हो गई है। अब हमें नई प्रक्रिया प्रारम्भ करनी होगी जिसके अंतर्गत प्रशासन में लचीलापन और गतिशीलता आए। जैसा डा० जे० अल्ल्यू गार्डनर ने कहा है : "ज्यों-ज्यों विचार कम होते जाते हैं, नियम पुस्तक मोटी होती जाती है। इस तरह प्रायः प्रत्येक सुसंगठित संस्था कार्यविधियों के प्रवाल-संचय के समान हैं, जो किसी ऐसे उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए निर्धारित की गई थी जो बहुत पहले भुलाया जा चुका है। इसीलिए यह आवश्यक है कि संस्था के पास उस प्रक्रम के प्रतिरोध का साधन अवश्य होना चाहिए जिसके फलस्वरूप मनुष्य अपनी कार्यविधियों का दास बन जाता है।"

18.56. **नम्यता और गतिशीलता का उपक्रम**—शैक्षिक प्रशासन में नम्यता और गतिशीलता कैसे लाई जाए ? हमने पिछले अध्याय में इस सम्बन्ध में कई सुझाव दिए है। यहां हम कुछ सामान्य सुझावों पर बल देना चाहते हैं।"

(1) पहला है प्रशासक के रवैये में परिवर्तन। उसे उदार हृदय होना चाहिए और नई-नई बातों को जानने की इच्छा रखनी चाहिए। निरर्थक रूढ़ियों के साथ चिपके रहने की हठधर्मिता उसमें न होनी चाहिए। यही एक क्षेत्र है जहां शैक्षिक प्रशासन में अनुसंधान और शैक्षिक प्रशासकों का सेवाकालीन प्रशिक्षण एक महत्वपूर्ण योगदान कर सकता है।

(2) दूसरा सुझाव यह है कि प्रत्येक तीन से पांच वर्ष के बाद, महत्वपूर्ण प्रशासनिक परिपाटिवों की समीक्षा की जानी चाहिए ताकि आवश्यकतानुसार उनकी गली-सड़ी निरर्थक बातों को निकाला जा सके और नए सुधारों की कलम लगाई जा सके।

(3) तीसरा सुझाव यह है कि अन्तर्राज्य सम्पर्क स्थापित किया जाए और विभिन्न राज्यों में प्रचलित सभी प्रशासनिक विषयों की परिपाटियों के तुलनात्मक अध्ययन को प्रोत्साहन दिया जाए। संयुक्त राज्य अमेरिका में शैक्षिक प्रशासन के अध्ययन का विकास एक विशेष परिस्थितियों में हुआ। शिक्षा राज्य-विषय होने के कारण वहां के राज्यों में भिन्न-भिन्न प्रशासनिक परिपाटियां चल पड़ीं। इस विविधता के कारण प्रशासन के प्रत्येक पक्ष में विभिन्न परिपाटियों का तुलनात्मक अध्ययन प्रारंभ हो गया। पहले तो यह तुलना केवल उस सारणीकरण तक ही सीमित रही जिससे इन परिपाटियों के पारस्परिक अंतर का पता चलता था। परन्तु इसके बाद शीघ्र ही इन अंतरों के मूल कारणों के विषय में चर्चा होने लगी, जिन मूल सिद्धान्तों पर ये परिपाटियां आधारित थी उन

1. अध्याय दस।

पर विचार किया जाने लगा और गुण-दोषों की दृष्टि से विभिन्न परिपाटियों की तुलना की जाने लगी। आगे चलकर इसी से शैक्षिक प्रशासन शास्त्र की उत्पत्ति हुई और जब राज्यों को प्रति वर्ष तुलनात्मक अध्ययन करना पड़ा तो उन्हें इस पर चिन्तन करने और नई-नई उद्भावनाएं प्रस्तुत करने की प्रेरणा मिली। परन्तु भारत में, प्रशासनिक परिपाटियों का यह स्वस्थ और फलदायी आदान-प्रदान नहीं हुआ।[1] यहां शैक्षिक प्रशासन के क्षेत्र में शायद ही कोई तुलनात्मक अध्ययन हुआ हो। फल यह हुआ कि विभिन्न राज्यों के शिक्षा विभागों के बीच बहुत कम बौद्धिक संपर्क हो सका। हमें प्रत्येक राज्य के शिक्षा विभागों में ऐसे बहुत से अधिकारी मिले जो संयुक्त राज्य अमेरिका, ग्रेट ब्रिटेन या सोवियत संघ के बारे में बहुत-कुछ जानते हैं पर उन्हें यह मालूम नहीं कि भारत के अन्य राज्यों में हो रहा हैं। यदि समय-समय पर शैक्षिक प्रशासन के क्षेत्र में तुलनात्मक अध्ययन को प्रश्रय दिया जाए और राज्यों के शिक्षा विभागों को इस कार्य में पूरी तरह लगाया जाए तो यह दुःखद स्थिति शीघ्र ही समाप्त हो जाएगी और प्रशासनिक कुशलता बढ़ने लगेगी।

(4) परियोजना निर्माण के क्षेत्र में हमारी प्रशासनिक परिपाटियों में सुधार करने की बहुत गुंजाइश है। सशस्त्र सेनाओं और उद्योग के क्षेत्र में, कोई नया कार्यक्रम प्रारम्भ करने से पहले, वर्तमान प्रशासनिक परिपाटियों के सुव्यस्थित विश्लेषण और तैयारी की आवश्यता है। शिक्षा के क्षेत्र में अक्सर यह होता है कि आवश्यक बजट का खाका खींचकर एक या दो पृष्ठों में योजना का वर्णन कर दिया जाता है। इससे अधिक और कोई तैयारी किए बिना ही उस पर अमल चालू हो जाता है। जहां बड़ी रकमें खर्च की जानी हों, वहां परियोजना की शक्यता के अध्ययन से लेकर क्रमशः परियोजना के अमल तक के सारे विस्तार की तैयारी करना न्यायोचित है। इस प्रकार योजनाबद्ध ब्योरेवार कार्यक्रम बना लेने से साधनों का उपयोग अधिक मितव्ययता से होगा और परियोजना की प्रगति का अधिक ब्योरेवार मूल्यांकन हो सकेगा। इस तकनीकी का विकास करने और उसमें अधिकारियों को प्रशिक्षण देने की जिम्मेदारी राज्य शिक्षा संस्थानों पर और राष्ट्रीय शिक्षा प्रशासक स्टाफ कालेज पर है।

(5) प्रशासन की पारम्परिक पद्धति इस सिद्धान्त पर आधारित है कि कुछ आधिकारी रखे जाएं और उनको सहायता देने के लिए अधीक्षकों, सहायकों, और क्लर्कों की एक बड़ी फ़ौज रखी जाए। इसका कारण यह था कि इस पद्धति की ईजाद उस समय की गई थी जब कि बहुत से अधीनस्थ भारतीय कर्मचारियों की सहायता से थोड़े-से अंग्रेज अफसर प्रशासन चलाते थे। इस प्रकार की वह पद्धति के अंतर्गत, अधिकांश कार्य निम्नस्तर पर ऐसे कल्पनाहीन व्यक्ति चलाते थे जिन्हें बर्क ने "कुर्सी तोड़" कहा है। इस पद्धति की अनम्यता का एक कारण यह भी है। अतः हम सिफ़ारिश करते है कि आधुनिक "अधिकारी आश्रित पद्धति" अपनाई जाए जिसके अंतर्गत अधिकांश कार्य थोड़े से सचिवालयीन कर्मचारियों की सहायता से, अधिकारियों द्वारा अपने ही स्तर पर निपटा दिया जाता है।

18.57 **शिक्षा अधिनियम**—इस समय देश में शिक्षा विधान के भिन्न-भिन्न रूप हैं। अधिकांश राज्यों में यह अनेक विधियों के रूप में प्रचलित है और उसमें से अधिकांश अब भी कार्यकारी आदेशों के रूप में ही मिलता है। केवल केरल ही एक ऐसा राज्य है जहां शिक्षा अधिनियम बना हुआ है। अतः हम सिफ़ारिश करते हैं कि शिक्षा को सब जगह और सब शिक्षा क्षेत्रों में विधिक आधार दिया जाना चाहिए और सभी राज्यों और संघ शासित क्षेत्रों में शिक्षा अधिनियम बनाया जाना चाहिए। यह एक व्यापक और समेकनकारी अधिनियम हो जो वर्तमान विभिन्न विधियों के स्थान पर लागू हो और केवल कार्यकारी आदेशों के रूप में प्रचलित प्रशासन के महत्वपूर्ण नियमादि (जैसे सहायक अनुदान संहिता) को विधिक आधार दे।

15.58. हम यह भी सिफ़ारिश करते है कि भारत सरकार को राष्ट्रीय शिक्षा नीति के संबंध में एक वक्तव्य जारी करना चाहिए ताकि राज्य सरकारों और स्थानीय स्वायत्त निकायों को अपने-अपने क्षेत्र के लिए शैक्षिक योजनाएं बनाने और कार्यान्वित करने में मार्ग-दर्शन मिले। एक राष्ट्रीय शिक्षा अधिनियम पास करने की संभावना पर भी विचार किया जाए।

1. **एक उदाहरण पर्याप्त होगा। सहायक अनुदान की प्रणालियों का पहला तुलनात्मक अध्ययन जो कि एक महत्वपूर्ण बात है, 1882 में भारतीय शिक्षा आयोग ने किया; 1922 में रिची ने दोबारा अध्ययन किया और तब से यह नहीं किया गया।**

उन्नीसवां अध्याय

शिक्षा के लिए वित्त

एक. शिक्षा का कुल व्यय (1950-65). (2.6)

दो. शिक्षा के व्यय का स्वरूप (1950-65). (7-13).

तीन. शिक्षा के व्यय के स्रोत (1950-65). (14-17).

चार. शिक्षा के व्यय के स्रोत (1965-85) —(18) **स्थानीय स्वायत निकायों का अंशदान;** (19) **स्वैच्छिक संगठनों का अंशदान;** (20) **शिक्षा की वित्तीय व्यवस्था के संदर्भ में केन्द्र-राज्य सम्बन्ध ।**

पांच. शिक्षा का कुल व्यय (1965-85)—(22) **अगले बीस वर्षों में शिक्षा के लिए उपलब्ध हो सकने वाले साधनों का अनुमान ।**

छह प्रति विद्यार्थी व्यय—(28) **पहली तीन योजनाओं में प्रति विद्यार्थी लागत का स्वरूप;** (30) **अगले बीस वर्षों में प्रति विद्यार्थी सागत का स्वरूप;** (31) **स्कूल शिक्षा** (34) **उच्चतर शिक्षा ।**

सात. प्रौढ़ शिक्षा (37)

आठ. कुछ सामान्य विचार (39-44)

19.01. इस अध्याय में हम शिक्षा की वित्तीय व्यवस्था से सम्बन्धित कुछ प्रमुख समस्याओं पर विचार करेंगे । स्वतन्त्रता मिलने के बाद की अवधि के दौरान शिक्षा के व्यय में हुई वृद्धि और शिक्षा के वित्तीव साधनों का सर्वेक्षण इनमें विशेष रूप से शामिल हैं । साथ ही हम अगले दो दशकों में शिक्षा के लिए उपलब्ध हो सकने वाले वित्तीव साधनों के परिणाम और विभिन्न क्षेत्रों के बीच उनके उचित बंटवारे और तत्सम्बन्धी अग्रताओं के प्रश्न की भी चर्चा करेंगे । हमारे सामने सर्वाधिक महत्व के ये प्रश्न हैं :

— राष्ट्रीय लक्ष्यों की प्राप्ति और राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्था, संसक्ति और सुरक्षा के द्रुत विकास के लिए शिक्षा के सभी स्तरों पर कुल कितनी वित्तीय सहावता अपेक्षित होगी ?

— शिक्षा (अनुसंधान समेत) के भिन्न-भिन्न स्तरों या अवस्थाओं और एक ही स्तर के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों के बीच धन का वितरण करते समय कौन-सी कसौटी और मार्गदर्शक सिद्धान्त अपनाए जा सकते हैं और वे किस सीमा तक विश्वसनीय होंगे ?

— यद्यपि गुण और परिणाम एक दूसरे से अलग नहीं किए जा सकते, फिर भी कुल उपलब्ध साधनों में से कितना अंश शिक्षा की गुणवत्ता को सुधारने और उसे स्थायित्व प्रदान करने पर खर्च किया जाए और कितना अंश शिक्षा के विस्तार पर खर्च किया जाए ?

वैसे तो ये प्रश्न ऐसे हैं जिनका एकदम ठीक-ठीक उत्तर देना सम्भव नहीं है क्योंकि ये मणित या उत्पादन-इंजीनियरी के प्रश्न नहीं हैं बल्कि मानवगतिकी से सम्बन्धित समस्याएं हैं जिनके मूल में जटिल समाज-शास्त्रीय विचार निहित हैं । यह सच हैं कि जव हम मूलत: अस्पष्ट परिणामों का ठीक-ठीक मूल्यांकन करने का प्रयत्न करते हैं तो कठिनाइयां उत्पन्न हो जाती हैं लेकिन यदि सारा विश्लेपण सही परिप्रेक्ष्य में किया जाए तो हमें वहुत-सी वातों की तह तक जाने की राह मिल जाती हैं और निर्णय लेने की प्रक्रिया सरल हो जाती है ।

शिक्षा का कुल व्यय
(1950-65)

19.02. यदि हम इस चर्चा को स्वतन्त्रता मिलने बाद की अवधि के दौरान शिक्षा के कुल व्यय में होने वाली वृद्धि के तरीके पर विचार से आरम्भ करें तो अधिक सुविधाजनक रहेगा । 1946-47 में 'ब्रिटिश' भारत में शिक्षा पर कुल 57.7 करोड़ रुपवा खर्च किया गया जो जनसंख्या को देखते हुए प्रति व्यक्ति 1.8 रुपया बैठता

है। तृतीय पंचवर्षीय योजना के अंत में शिक्षा का कुल व्यय अनुमानतः 600 करोड़ रुपए था या (वर्तमान कीमतों पर) 12 रुपया प्रति व्यक्ति के आस पास था। इसका ब्योरा सारणी 19.1 में दिया गया है।

सारणी 19.1. भारत में शिक्षा का कुल व्यय (1950-51 से 1965-66)

	1950-51	1955-56	1960-61	1965-66 (प्राक्कलित)
1. शिक्षा का कुल व्यय सब स्रोतों से (रु० करोड़ों में)	1,444	1,897	3,444	6,000
2. वृद्धि का सूचकांक	100	166	301	524
3. प्रति व्यक्ति शिक्षा का व्यय (रु०)	3.2	4.8	7.8	12.1
4. वृद्धि का सूचकांक	100	150	244	378
5. कुल राष्ट्रीय आय (वर्तमान कीमतों पर) (रु० करोड़ों में)	95,300	99,800	141,400	210,000
6. वृद्धि का सूचकांक	100	105	148	220
7. प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय (वर्तमान कीमतों पर) (रु०)	266.5	255.0	325.7	424.4
8. वृद्धि का सूचकांक	100	96	122	159
9. राष्ट्रीय आय की तुलना में शिक्षा के कुल व्यय का प्रतिशत	1.2	1.9	2.4	2.9
10. वृद्धि का सूचकांक	100	158	200	242
	पहली योजना	दूसरी योजना	तीसरी योजना	तीनों योजनाएं
11. शिक्षा के कुल व्यय की औसत वार्षिक वृद्धि-दर	10.6 प्रतिशत	12.7 प्रतिशत	11.8 प्रतिशत	11.7 प्रतिशत

स्रोत : 1950-51, 1955-56 और 1960-61 के शिक्षा सम्बन्धी आंकड़े शिक्षा मंत्रालय के फार्म 'क' से लिए गए हैं। 1965-66 के आंकड़ों का अनुमान आयोग के सचिवालय द्वारा लगाया गया है। राष्ट्रीय आय के आंकड़े के. सां. सं. से लिए गए हैं (1965-66 के आंकड़े स्थूल अनुमान हैं)।

टिप्पणी : यहां शिक्षा के व्यय के जो आंकड़े दिए गए हैं उनमें निम्नलिखित व्यय शामिल नहीं हैं :

(1) विद्यार्थियों के अभिभावकों द्वारा फीस के अतिरिक्त अपने बच्चों की शिक्षा पर किया गया व्यय;

(2) 'अवसर मूल्य' जिसका अर्थ वह आमदनी है जो कि विद्यार्थी स्कूल न जाकर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से किसी उत्पादक काम में लग जाने पर अर्जित करते;

(3) मान्यता अप्राप्त संस्थाओं के व्यय के आंकड़े;

(4) सरकार के शिक्षा विभाग के निवृत्ति प्राप्त कर्मचारियों को दी जाने वाली पेन्शनों का व्यय (इसमें शिक्षक और शिक्षकेतर दोनों ही प्रकार का अमला शामिल है); और

(5) शिक्षा संस्थाएं चलाने वाली गैर-सरकारी सोसाइटियों द्वारा प्रशासन पर किया गया खर्च और अन्य विविध खर्च।

आप देखेंगे कि पहली तीन योजनाओं के दौरान :

— शिक्षा का कुल खर्च जो 1950-51 में 114.4 करोड़ रुपए था वह 1965-66 में 600 करोड़ रुपए हो गया, अर्थात् पन्द्रह वर्ष के भीतर इसमें 424 प्रतिशत की वृद्धि हुई या इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि प्रति वर्ष 11.7 प्रतिशत की संचयी दर में वृद्धि हुई। इसमें एक योजना और दूसरी योजना के बीच बहुत थोड़ा उतार-चढ़ाव रहा है—पहली योजना में यह दर 10.6 प्रतिशत थी; दूसरी योजना में बढ़कर 12.7 प्रतिशत हो गई और तीसरी योजना में घढ़कर 11.8 प्रतिशत रह गई।

— प्रति व्यक्ति शिक्षा का कुल खर्च जो पहली योजना के आरम्भ में 3.2 रुपया था, उक्त योजना के अन्त में 4.8 रुपए हो गया; दूसरी योजना के अन्त में 7.8 रुपए तक पहुंचा और तीसरी योजना के अन्त में बढ़ते-बढ़ते 12.1 रुपए हो गया—यह वृद्धि कुल मिलकर 278 प्रतिशत बैठती है;

— 1951 में शिक्षा का कुल व्यय राष्ट्रीय आय का 1.2 प्रतिशत था। पहली योजना के अन्त में यह अनुपात 1.9 प्रतिशत तक पहुंचा; दूसरी योजना के अन्त में 2.4 प्रतिशत हो गया और तीसरी योजना के अन्त में 2.9 प्रतिशत। इस प्रकार पन्द्रह वर्ष की अवधि में 142 प्रतिशत की वृद्धि हुई।

— पहली तीन योजनाओं में शिक्षा के व्यय की वृद्धि-दर (11.7 प्रतिशत) वर्तमान कीमतों पर राष्ट्रीय आय की वृद्धि-दर (5.4 प्रतिशत) की 2.2 गुना है। यह तामांकन की वृद्धि-दर की 1.6 गुना और शिक्षकों को संख्या की वृद्धि-दर की 1.7 गुना है।[1]

19.03. इस प्रसंग में तीन बातों पर जोर देना आवश्यक है। पहली यह कि पिछली सारणी में शिक्षा के कुल व्यय के जो आंकड़े दिए गए हैं वे वर्तमान कीमतों पर आधारित हैं। दुर्भाग्य से देश की शिक्षा पर किए जाने वाले व्यय को स्थिर कीमतों में परिवर्तित करने का कोई प्रयत्न अभी तक नहीं किया गया है। हमने इस दिशा में कार्य आरम्भ किया था लेकिन आवश्यक आंकड़े उपलब्ध न होने के कारण उसे पूरा न कर सके। हमारी सिफ़ारिश है कि यह काम हाथ में लिया जाए और जल्दी-से-जल्दी पूरा किया जाए। इसके लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग किसी विश्वविद्यालय से सुप्रतिष्ठित अर्थशास्त्र विभाग को वित्तीय सहायता देने पर विचार करे। हम यहां इतना ही उल्लेख करेंगे कि इस अवधि के दौरान थोक कीमतों का सूचकांक लगभग 53 प्रतिशत बढ़ा है और श्रमिक वर्ग के निर्वाह-खर्च-सूचकांक में लगभग 65 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। यद्यपि शिक्षा के कुल व्यय को स्थिर कीमतों में बदलने के लिए इन सूचकांकों को आधार नहीं बनाया जा सकता तथापि यह आवश्यक पता चलता है कि शिक्षा के कुल व्यय में जो वृद्धि हुई है उसका काफी भाग केवल कीमतों की वृद्धि का ही परिणाम है।

19.04. दूसरी बात यह है कि शिक्षा की दृष्टि से उन्नत अन्य देशों की तुलना में हमारे यहां शिक्षा पर किया जाने वाला खर्च राष्ट्रीय आय का बहुत थोड़ा अंश है। अमरीका जैसे बड़े औद्योगीकृत देश की तुलना में हमारे यहां शिक्षा पर प्रति व्यक्ति खर्च की जाने वाली निरपेक्ष रकम लगभग $\frac{1}{100}$ आती है इससे शिक्षा के स्तर और औद्योगीकरण के स्तर में घनिष्ठ अन्योन्य क्रिया और अन्तर्ग्रथन का पता चलता है। जापान, अमरीका और रूस अपने कुल राष्ट्रीय उत्पादन का 6 प्रतिशत से भी कहीं अधिक अंश शिक्षा पर खर्च करते है जो भारत के मुकाबले करीब दो गुना बैठता है। वैसे अन्तर्राष्ट्रीय तुलना करते समय एक विशेष महत्व की बात नहीं भूलनी चाहिए कि जिन देशों की राष्ट्रीय आय थोड़ी होती है उनके पास खर्च करने के लिए उपलब्ध द्रव्य भी थोड़ा ही होता है और इसीलिए एक विशेष लक्ष्य तक पहुंचने के लिए इन्हें उन देशों की

1. इस अवधि के दौरान शिक्षा संस्थाओं में कुल नामांकन जो 1950-51 में 24,287,000 था, 1965-66 में 70,292,000 हो गया। नामांकन की यह वृद्धि औसतन 7.3 प्रतिशत प्रति वर्ष बैठती है। शिक्षकों की संख्या में भी वृद्धि हुई है—1950-51 में 798,192 शिक्षक थे जबकि 1965-66 में 2,168,786 शिक्षक हो गए। इनकी वृद्धि-दर 6.9 प्रतिशत प्रति वर्ष आती है।

अपेक्षा कहीं अधिक कठिनाई अनुभव होती है जहां प्रति व्यक्ति आय अधिक है और परिणामस्वरूप खर्च के लिए उपलब्ध अधिशेष भी कहीं ज्यादा हैं। उदाहरणार्थ, भारत में जहां प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय केवल 400 रुपए के लगभग है, राष्ट्रीय आय का 3 प्रतिशत शिक्षा पर खर्च करने में उससे कहीं अधिक 'जोर' पड़ता है जितना इंग्लैंड और अमरीका को अपनी राष्ट्रीय आय के इतने ही या इससे भी कुछ अधिक अंश को खर्च करने में पड़ेगा।

19.05. तीसरी बात यह है कि शिक्षा के व्यय में जो वृद्धि हुई है वह अर्थव्यवस्था के विकास की दर से कहीं अधिक द्रुत है। शिक्षा के लिए उपलब्ध कुछ साधन दो बातों पर आधारित हैं—सामर्थ्य अथवा प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय और प्रयत्न अथवा राष्ट्रीय आय का वह अंश जो शिक्षा के लिए नियत किया गया हो। पहली तीन योजनाओं के दौरान हमारी सामर्थ्य बहुत ही धीमी गति से बढ़ी है। 1950 और 1965 के बीच कुछ राष्ट्रीय आय जो 1950-51 में 9,140 करोड़ रुपए थी, 1965-66 में बढ़कर 16,360 करोड़ रुपए तक गई (1960-61 की कीमतों के अनुसार) इसका मतलब यह है कि राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था ने केवल 4 प्रतिशत प्रतिवर्ष के हिसाब से उन्नति की ओर जनसंख्या को देखते हुए प्रतिव्यक्ति आय 256.5 रुपए से बढ़कर 330.7 रुपए हुई जिसकी वृद्धि दर केवल 1.7 प्रतिशत प्रतिवर्ष बैठती है। दुर्भाग्य से 1965-66 में सूखा पड़ गया जिससे मूलतः आवश्यक वस्तुओं के निवल राष्ट्रीय उत्पादन पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा है और ऐसी आशंका है कि 1964-65 की तुलना में इस वर्ष कुल राष्ट्रीय आय लगभग 3 प्रतिशत कम होगी। इस वर्ष को छोड़ भी दें तो 1950-51 और 1964-65 के बीच कुल राष्ट्रीय आयु में 4.5 प्रतिशत प्रतिवर्ष की ही वृद्धि हुई है और इस प्रकार प्रतिव्यक्ति आय (256.5 रुपए से बढ़कर 348.7 रुपए) केवल 2.2 प्रतिशत ही बढ़ी है। चूंकि स्थिर कीमतों पर आधारित शिक्षा के व्यय के सही-सही आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं अतः स्थिर कीमतों पर सामर्थ्य की वृद्धि-दर और प्रयत्न की वृद्धि-दर की तुलना करना सम्भव नहीं हैं। पर इस बात के काफी अप्रत्यक्ष प्रमाण उपलब्ध हैं कि स्थिर कीमतों में परिवर्तित करने पर भी शिक्षा के व्यय की वृद्धि-दर राष्ट्रीय आय की वृद्धि-दर से कहीं अधिक बैठेगी।

19.06. वर्तमान कीमतों के आधार पर कहीं अधिक यथार्थ तुलना की जा सकती है। जैसा कि सारणी 19.1 में दिखाया गया है, पहली तीन योजनाओं के दौरान राष्ट्रीय आय में 5.4 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से वृद्धि हुई है जब कि शिक्षा का व्यय 11.7 प्रतिशत की वार्षिक दर से बढ़ा है। इस प्रकार सामर्थ्य अथवा राष्ट्रीय आय की तुलना में प्रयत्न अथवा शिक्षा पर खर्च की गई राष्ट्रीय आय में दो गुनी से भी अधिक तेजी के साथ वृद्धि हुई है।

शिक्षा के व्यय का स्वरूप
(1950-65)

19.07. आइए अब हम शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों और कार्यक्रमों के बीच उपलब्ध वित्तीय साधनों के वर्तमान वितरण पर दृष्टि डालें। सारणी 19.2 में दो वर्षों के—1950-51 और 1965-66—शिक्षा के व्यय के मद्दवार आंकड़े दिए गए है।

सारी 19.2 भारत में शिक्षा का मदवार व्यय (1950-51 से 1965-66)

मद	कुल व्यय (रु० हजारों में)		स्कूल व्यय का प्रतिशत		औसत वार्षिक वृद्धि-दर
	1950-51	1965-66	1950-51	1965-66	
1	2	3	4	5	6
क. प्रत्यक्ष व्यय					
1. पूर्व-प्राथमिक स्कूल	1,198	11,000	0.1	0.2	15.9
2. अवर प्राथमिक स्कूल	3,64,843	12,20,500	31.9	20.3	8.4
3. उच्चतर प्राथमिक स्कूल	76,990	7,17,500	6.7	12.0	16.0
कुल (पहला स्तर)	4,43,031	19,49,000	38.7	32.5	10.4

(जारी)

1	2	3	4	5	6
4. माध्यमिक स्कूल	2,30,450	11,81,000	20.1	19.7	11.5
5. व्यावसायिक स्कूल	36,944	2,50,000	3.2	4.2	13.6
6. विशेष स्कूल	23,335	39,920	2.0	0.7	3.6
7. माध्यमिक इण्टर शिक्षा के बोर्ड	5,338	45,000	0.5	0.8	15.3
कुल (दूसरा स्तर)	2,96,067	15,15,920	25.9	25.3	11.5
8. विश्वविद्यालय	49,052	270,000	4.3	4.5	12.0
9. अनुसंधान संस्थान	6,256	65,000	0.5	1.1	16.9
10. कला और विज्ञान के कालेज	71,714	327,500	6.3	5.5	10.7
11. वृत्तिक शिक्षा के कालेज	42,194	350,000	3.7	5.8	15.1
12. विशेष शिक्षा के कालेज	2,224	17,500	0.2	0.3	14.7
कुल (तीसरा स्तर)	171,440	1,030,000	15.0	17.2	12.7
13. **कुल (प्रत्यक्ष)**	910,539	4,494,920	79.6	74.9	11.2
ख. अप्रत्यक्ष व्यय					
14. निर्देश और निरीक्षण	27,364	114,009	2.4	1.9	10.0
15. इमारतें	99,270	666,055	8.7	11.1	13.5
16. छात्रवृत्तियां, वृत्तिकाएं आदि	34,456	420,035	3.0	7.0	18.1
17. छात्रवास	18,264	95,463	1.6	1.6	11.7
18. विविध	53,928	209,518	4.7	3.5	9.5
19. **कुल (अप्रत्यक्ष)**	233,282	1,505,080	20.4	25.1	13.2
20. **कुल जोड़**	1,143,822	6,000,000	100.1	100.0	11.7

स्रोत : शिक्षा मंत्रालय, फार्म 'ए'

टिप्पणी—सारणी 19.2 में शिक्षा के व्यय को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दो श्रेणियों में विभाजित किया गया है। यह शिक्षा मंत्रालय द्वारा अपनाए गए वर्गीकरण के अनुसार है। लेकिन 'आवर्ती' और 'पूंजीगत' व्यय के सामान्य वर्गीकरण के साथ इस वर्गीकरण का मेल बिठाने के लिए कुछ बातें स्पष्ट करनी होंगी। 'प्रत्यक्ष' के अन्तर्गत दिखाया गया समस्त व्यय आवर्ती कोटि का है। 'अप्रत्यक्ष' के अन्तर्गत दिखाए गए व्यय की सभी मदें भी, सिवा 'इमारतों' के, आवर्ती कोटि की हैं (इस शीर्ष के अन्तर्गत इमारतों पर किया गया कुल पूंजीगत व्यय सम्मिलित है पर इसमें उनके रखरखाव का व्यय शामिल नहीं है)। छात्रवासों के शीर्ष में केवल उनके रखरखाव के खर्च ही शामिल हैं लेकिन छात्रावास की इमारतों का पूंजीगत व्यय और छात्रावासियों के खाने का खर्च शामिल नहीं है।

19.08. आप देखेंगे कि पिछली सारणी में अप्रत्यक्ष व्यय के जो आंकड़े दिए गए हैं वे भिन्न-भिन्न स्तरों या क्षेत्रों के अनुसार विभाजित नहीं हैं। इसलिए हमने नीचे लिखी धारणाओं के आधार पर इस व्यय को दो क्षेत्रों में बांट दिया—स्कूल और विश्वविद्यालय। हमने जो आंकड़े निकाले हैं वे आगे सारणी 19.3 में दिए जाते हैं।

सारणी 19.3. स्कूल और विश्वविद्यालयों के स्तरों पर अप्रत्यक्ष व्यय

	1950-51		1965-66	
	राशि (रु० 000 में)	कुल व्यय का प्रतिशत	राशि (रु० 000 में)	कुल व्यय का प्रतिशत
स्कूल शिक्षा				
1. निर्देश और निरीक्षण	27,364	2.4	1,14,009	1.9
2. इमारतें	39,708	3.5	1,33,211	2.2
3. छात्रवृत्तियां	24,705	2.2	2,10,017	3.5
4. छात्रावास	5,479	0.5	19,093	0.3
5. विविध	26,964	2.4	1,04,759	1.7
कुल	1,24,220	10.9	5,81,089	9.7
उच्चतर शिक्षा				
1. निर्देश और निरीक्षण	—	—	—	—
2. इमारतें	59,562	5.2	5,32,844	8.9
3. छात्रवृत्तियां	9,751	0.9	2,10,018	3.5
4. छात्रावास	12,785	1.1	76,370	1.3
5. विविध	26,964	2.4	1,04,759	1.7
कुल	1,09,062	9.5	9,23,991	15.4

ध्यान दें—(1) इमारतों के व्यय को सामान्य आधार पर 1950-51 में 40:60 और 1965-66 में 20:80 मान कर विभाजित किया गया है।

(2) 1950-51 के लिए छात्रवृत्तियों के व्यय के आंकड़े स्तरानुसार उपलब्ध हैं। 1965-66 के सम्बन्ध में जो आंकड़े ऊपर दिए गए हैं वे वर्तमान प्रवृत्तियों के आधार पर आयोग के सचिवालय द्वारा लगाए गए अनुमान हैं।

(3) छात्रावासों पर किया गया व्यय अधिकतर विश्वविद्यालय क्षेत्र से सम्बन्धित है। इसे प्रवृत्तियों के आधार पर 1950-51 में 30:70 और 1965-66 में 20:80 मानकर विभाजित किया गया है।

(4) विविध व्यय को तदर्थ आधार पर 50:50 के अनुपात में विभाजित किया गया है।

(5) पूर्णांकन के कारण जोड़ बराबर नहीं बैठते।

19.09. उपर्युक्त विभाजन के आधार पर शिक्षा के तीनों स्तरों के बीच व्यय उस प्रकार होगा जैसा सारणी 19.4 में दर्शाया गया है।

सारणी 19.4. शिक्षा का स्तरवार व्यय

	1950-51	1065-66
	%	%
1. पहला स्तर, अर्थात्, पूर्व-प्राथमिक, अवर प्राथमिक और उच्चतर प्राथमिक	38.7	32.5
2. दूसरा स्तर अर्थात् माध्यमिक, विशेष और व्यावसायिक स्कूल तथा माध्यमिक शिक्षा बोर्ड	25.9	25.3
3. स्कूल शिक्षा पर अप्रत्यक्ष व्यय	10.9	9.7
कुल	75.5	67.4
4. तीसरा स्तर, अर्थात्, विश्वविद्यालय, अनुसंधान संस्थाएं और सामान्य, विशेष तथा वृत्तिक शिक्षा के कालेज	15.0	17.2
5. उच्चतर शिक्षा पर अप्रत्यक्ष व्यय	9.5	15.4
कुल (विश्वविद्यालय)	24.5	32.6
	100.0	100.0

ध्यान दें—पूर्णांकन के कारण जोड़ बराबर नहीं बैठते ।

19.10. विकास की आरम्भिक अवस्थाओं में शिक्षा पर कुल व्यय प्रायः थोड़ा ही होता है और उसका भी अधिक भाग स्कूल शिक्षा पर खर्च किया जाता है । जैसे-जैसे समाज का औद्योगीकरण होता जाता है, शिक्षा पर खर्च बढ़ने लगता है और उसका अधिकाधिक भाग उच्चतर शिक्षा और अनुसंधान पर होने लगता है । सामान्यतः यही प्रवृत्ति देखने में आती है भले ही, प्राथमिक शिक्षा को सार्वभौम बनाए जाने के कारण स्कूल शिक्षा का व्यय बढ़ रहा हो, माध्यमिक शिक्षा के विस्तार (या उसे सार्वभौम बनाने) पर अधिकाधिक पैसा खर्च किया जा रहा हो, और स्कूल शिक्षा के स्तर को सुधारने पर पैसा खर्च हो रहा हो । सारणी 19.5 में जापान के शिक्षा सम्बन्धी व्यय की वृद्धि के आंकड़े दिए गए हैं जिनसे यह बात स्पष्ट हो जाएगी ।

सारणी 19.5. जापान में शिक्षा पर व्यय (1885-1960)

वर्ष	शिक्षा के स्तर के अनुसार व्यय का विभाजन (प्रतिशत)					कुल राष्ट्रीय उत्पाद का शक्षा पर व्यय होने वाला प्रतिशत	कुल राष्ट्रीय उत्पाद (करोड़ येनों में)
	प्रारम्भिक शिक्षा	माध्यमिक शिक्षा	उच्चतर शिक्षा तेरह और ऊपर	शिक्षक प्रशिक्षण	कुल		
1885	84.3	2.8	8.3	4.6	100.0	1.8	612
1890	76.9	3.1	10.9	9.1	100.0	1.0	924
1900	67.6	16.5	7.0	8.9	100.0	2.1	1,997
1910	67.4	16.7	10.0	5.9	100.0	3.0	2,888
1920	67.6	17.6	10.9	3.9	100.0	2.5	11,845
1935	61.9	18.7	16.6	2.5	100.0	3.3	15,203
1940	55.7	21.8	20.1	2.4	100.0	2.1	32,183
1950	41.8	46.2	12.0	—	100.0	4.8	3,381,500
1960	42.4	44.5	13.1	—	100.0	5.2	1,18,21,700

स्रोत : जापान का विकास और शिक्षा, शिक्षा संत्रालय, जापान, 1963, सारणियां 10 और 14.

19.11. इस सारणी से पता चलता है कि 1985 में जापान ने शिक्षा पर किए गए कुल व्यय का 84.3 प्रतिशत आरम्भिक शिक्षा पर खर्च किया था। अब यह प्रतिशत घटकर 42.4 रह गया है (जापान में आरम्भिक शिक्षा की अवधि 6 वर्ष है जब कि हमने 7 वर्ष को अवधि की सिफ़ारिश की है)। वहां का माध्यमिक शिक्षा व्यय 1885 में केवल 2.8 प्रतिशत था; अब बढ़कर 42.5 प्रतिशत हो गया है। (जापान में माध्यमिक शिक्षा 6 वर्ष तक चलती है जिसमें पहले तीन वर्ष की शिक्षा अनिवार्य है) जापान का उच्चतर शिक्षा व्यय भी बराबर बढ़ रहा है; 1885 में 8.3 प्रतिशत से बढ़कर 1960 में 13.1 प्रतिशत हो गया है।

19.12. सारणी 19.9 में अन्य देशों में शिक्षा के वह भिन्न-भिन्न स्तरों के बीच व्यय के वितरण के आंकड़े दिए गए है जिनसे वहां की स्थिति पर प्रकाश पड़ता है।

सारणी 19.6 शिक्षा के स्तर और प्रकार के अनुसार शिक्षा के आवर्ती व्यय का प्रतिशत वितरण

देश	केन्द्रीय प्रशासन	पूर्व प्राथमिक और पहला स्तर	दूसरा स्तर — कुल	दूसरा स्तर — सामान्य	दूसरा स्तर — व्यावसायिक और शिक्षक प्रशिक्षण	तीसरा स्तर	अन्य प्रकार की शिक्षा	कुल
1	2	3	4	5	6	7	8	9
ब्राज़ील	10.1	33.4	19.5	—	—	20.0	17.0	100.0
फ्रांस	1.9	48.3	29.2	18.0	11.2 (क)	8.3	12.3	100.0
जर्मनी (फे० रि०)	1.5	48.1(ख)	35.8	23.1	12.7 (क)	13.2	1.4	100.0
घाना	13.2	26.7	33.1	18.7	14.4	17.2	9.8	100.0
नाइजीरिया	9.4	53.8	29.0	12.6	16.4	5.1	2.7	100.0
पाकिस्तान	5.5	42.9	23.8	19.1	4.7	19.6	8.2	100.0
तुर्की	—	61.3	32.4	13.4	19.0	1.4	4.9	100.0
यू० के० (इंगलैंड और वेल्स)	4.1	27.1	38.8	31.5	7.3 (क)	14.1	15.9	100.0
अमरीका	—	72.4 (ग)	— (घ)	—	—	27.6	—	100.0
रूस	0.5	71.2 (ग)	— (घ)	—	—	13.3	15.0	100.0
यूगोस्लाविया (ङ)	4.5	58.3	19.3	—	—	16.1	1.8	100.0

स्रोत : आयोग के अध्ययन दल द्वारा यूनेस्को के सचिवालय, पेरिस, में उपलब्ध दस्तावेजों से संकलित।

(क) शिक्षक प्रतिक्षण का व्यय सम्मिलित नहीं है।

(ख) विशेष शिक्षा का व्यय सम्मिलित है।

(ग) शिक्षा के द्वितीय स्तर का व्यय सम्मिलित है।

(घ) पूर्व-स्कूल और शिक्षा के प्रथम स्तर के अन्तर्गत सम्मिलित।

(ङ) 1960।

19.13. इस संदर्भ में भागत की स्थिति का पता सारणी 19.7 में दिए गए आंकड़ों से चलता है।

सारणी 19.7 भारत में शिक्षा के मदवार व्यय की वृद्धि (1881-1960)

(रु० 000ों में)

	1881-82	1891-92	1901-02	1911-12	1921-22	1936-37	1946-47	1960-61
1. प्राथमिक स्कूल	7,087	9,614	11,876	20,726	50,908	81,260	184,853	734,461
	(44.0)	(31.5)	(29.6)	(26.4)	(27.7)	(29.9)	(32.1)	(21.3)
2. माध्यपिक स्कूल	3,912	9,896	12,684	20,789	48,727	81,300	170,230	11,18,336
	(24.3)	(32.4)	(31.6)	(26.5)	(26.5)	(29.9)	(29.5)	(32.5)
3. व्यावसायिक और विशेष स्कूल (प्रशिक्षण समेत)	453	1,711	2,280	5,374	13,701	18,595	34,657	1,46,088
	(2.8)	(5.6)	(5.7)	(6.8)	(7.5)	(6.8)	(6.0)	(4.3)
4. इण्टर और माध्यमिक शिक्षा बोर्ड	—	—	—	—	—	324	974	24,133
						(0.1)	(0.2)	(0.7)
कुल (स्कूल)	11,452	21,221	26,840	46,889	113,336	181,479	390,714	2,023,018
	(71.1)	(69.5)	(66.9)	(59.7)	(61.7)	(66.7)	(67.8)	(58.8)
5. विश्वविद्यालय	163	473	772	1,588	7,341	13,208	22,977	141,388
	(1.0)	(1.6)	(1.9)	(2.0)	(4.0)	(4.9)	(4.0)	(4.1)
6. कला और विज्ञान के कालेज	1,332	2,044	2,601	4,799	11,042	16,662	43,915	2,36,139
	(8.3)	(6.7)	(6.5)	(6.1)	(6.0)	(6.1)	(7.6)	(6.9)
7. वृत्तिक और विशेष कालेज	—	829	1,197	2,253	5,978	8,138	18,659	167,166
		(2.7)	(3.0)	(2.9)	(3.2)	(3.0)	(3.2)	(4.9)
कुल (विश्वविद्यालय)	1,495	3,346	4,570	8,640	24,361	38,008	85,551	544,693
	(9.3)	(11.0)	(11.4)	(11.0)	(13.2)	(14.0)	(14.8)	(15.9)
8. निदेश और निरीक्षण	1,628	2,250	2,545	4,775	9,335	11,407	18,238	70,123
	(10.1)	(7.4)	(6.3)	(6.1)	(5.1)	(4.2)	(3.2)	(2.0)
9. इमारतें	838	2,182	2,573	9,730	19,761	18,197	28,453	428,158
	(5.2)	(7.1)	(6.4)	(12.3)	(10.8)	(6.7)	(4.9)	(12.4)
10. छात्रवृत्तियां	399	727	912	1,340	3,176	(क)	(क)	200,222
	(2.5)	(2.4)	(2.3)	(1.7)	(1.7)			(5.8)
11. विधियां	298	794	2,681	7,219	13,784	22,766	53,657	171,711
	(1.8)	(2.6)	(6.7)	(9.2)	(7.5)	(8.4)	(9.3)	(5.1)
कुल (अप्रत्यक्ष)	3,163	5,953	8,711	23,064	46,056	52,370	1,00,348	870,214
	(19.6)	(19.5)	(21.7)	(29.3)	(25.1)	(19.3)	(17.4)	(25.3)
कुल जोड़	16,110	30,520	40,121	78,593	183,753	271,857	5,76,613	3,443,801
	(100.0)	(100.0)	(100.0)	(100.0)	(100.0)	(100.0)	(100.0)	(100.0)

(क) विविध के अन्तर्गत सम्मिलित।

(ख) पूर्व-प्राथमिक स्कूलों का व्यय भी सम्मिलित है।

टिप्पणी : कोष्ठकों में दिए गए आंकड़े कुल व्यय के प्रतिशत के द्योतक हैं।

हम देखते हैं कि स्वतन्त्रता से पहले लगभग 60 वर्ष तक भारत की स्थिति अपरिवर्तित-सी ही रही—स्कूल शिक्षा का प्रत्यक्ष व्यय 1981-82 में 71.1 प्रतिशत था, 1946-47 में जरा-सा घटकर 67.8 प्रतिशत हो गया। इसी अवधि में शिक्षा का व्यय 9.3 प्रतिशत से थोड़ा-सा बढ़कर 14.8 प्रतिशत हो गया। लेकिन स्वतन्त्रता मिलने के बाद स्थिति बड़ी तेजी से बदली। देश के औद्योगीकरण की दिशा में कदम उठाए जाने लगे और परिणामतः उच्चतर शिक्षा, विज्ञान और वैज्ञानिक अनुसंधान, तकनीकी और शिल्पविज्ञान आदि की शिक्षा पर अपेक्षाकृत अधिक पैसा खर्च किया जाने लगा। इस प्रकार 1965-66 तक आते-आते उच्चतर शिक्षा पर किया जाने वाला व्यय काफी बढ़ गया। जैसा कि पिछले पैरा 19.09 में दिए गए आंकड़ों से मालूम होगा, वर्तमान स्थिति यह है कि शिक्षा के कुल व्यय का लगभग एक-तिहाई भाग शिक्षा के प्रथम स्तर पर खर्च किया जा रहा है, दूसरा एक तिहाई भाग द्वितीय स्तर पर और स्कूल शिक्षा पर अप्रत्यक्ष व्यय के रूप में खर्च किया जा रहा है, और बाकी एक तिहाई उच्चतर शिक्षा पर खर्च हो रहा है।

शिक्षा के व्यय के स्रोत
(1950-65)

19.14. अब हम पहली तीन योजनाओं के दौरान शिक्षा के व्यय के स्रोतों का अध्ययन करेंगे। अनेक ऐतिहासिक कारणों से इस देश में एक बहु-स्रोत वित्तीय प्रणाली विकसित हो गई है जिसके फलस्वरूप शिक्षा के व्यय का भार अब केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकारें और स्थानीय स्वायत्त निकाय मिलकर उठा रहे हैं। इसके अलावा फीसों और 'अन्य स्रोतों' से भी पैसा आता है जिनमें धर्मदाय, दान, और जनता से प्राप्त होने वाले अन्य स्वैच्छिक अंशदान शामिल हैं। इससे यह लाभ हुआ है कि कुल मिलाकर इतने साधन जुट सके हैं जितने किसी अन्य प्रकार से संचित होने सम्भव नहीं थे। दूसरा लाभ यह हुआ कि कठिनाई के समय में यदि किसी एक स्रोत के योगदान में कमी आई तो कुछ अंश तक अन्य स्रोतों के योगदान में वृद्धि होने से वह पूरी हो गई है। सारणी 19.8 में पहली तीन योजनाओं के दौरान हर स्रोत के योगदान में हुई वृद्धि दिखाई गई है।

सारणी 19.8 भारत में शिक्षा का व्यय—स्रोतों के अनुसार (1950-51) से (1965-66)

स्रोत	1950-51	1955-56	1960-61	1965-66 (प्राक्कलित)
1. सरकारी निधियां				
(1) कुल व्यय (रु० 000 में)	6,52,678	11,72,049	23,40,914	42,71,856
(2) वृद्धि का सूचकांक	100	179	359	655
(3) शिक्षा के कुल व्यय का प्रतिशत	57.1	61.8	68.0	71.2
2. स्थानीय स्वायत्त अधिकारियों की निधियां				
(1) कुल व्यय (रु० 000 में)	1,24,987	1,63,548	2,24,914	3,78,031
(2) वृद्धि का सूचकांक	100	131	180	302
(3) शिक्षा के कुल व्यय का प्रतिशत	10.9	8.6	6.5	6.3
3. शुल्क				
(1) कुल व्यय (रु० 000 में)	233,272	379,033	590,258	918,077
(2) वृद्धि का सूचकांक	100	162	253	394
(3) शिक्षा के कुल व्यय का प्रतिशत	20.4	20.0	17.1	15.3
4. अन्य स्रोत				
(1) कुल व्यय (रु० 000 में)	132,885	181,980	287,715	432,036
(2) वृद्धि का सूचकांक	100	137	217	325
(3) शिक्षा के कुल व्यय का प्रतिशत	11.6	9.6	8.4	7.2
5. औसत वार्षिक वृद्धि दर	पहली योजना	दूसरी योजना	तीसरी योजना	तीनों योजनाएं
(1) सरकारी निधियां	12.4	14.8	12.8	13.3
(2) स्थानीय स्वायत्त अधिकारियों की निधियां	5.5	6.6	10.9	7.3
(3) शुल्क	10.3	9.2	9.2	9.6
(4) अन्य स्रोत	6.5	9.6	8.5	8.1

स्रोत: शिक्षा मंत्रालय, फार्म "ए"

इस सारणी से पता चलता है कि सबसे अधिक वृद्धि सरकारी निधियों से होने वाले व्यय में लगी हुई है (555 प्रतिशत, या 13.3 प्रतिशत औसत वार्षिक वृद्धि). ऐसा होना भी चाहिए—और अब कुल व्यय का 71.2 प्रतिशत इन निधियों से आता हैं। 1950-51 में यह योग केवल 57.1 प्रतिशत था। फल यह हुआ है कि बाकी सभी स्रोतों के योगदान का प्रतिशत गिर जाता है, हालांकि निरपेक्ष दृष्टि से इसमें भी वृद्धि हुई है। दूसरा महत्वपूर्ण स्रोत फीसों का है जिसमें 294 प्रतिशत की वृद्धि हुई है (अथवा 9.6 प्रतिशत प्रतिवर्ष); अब शिक्षा के कुल व्यय का 15.3 प्रतिशत फीसों से पूरा होता है। उसके बाद अन्य स्रोत आते हैं जिनके योगदान में 225 प्रतिशत (या 8.1 प्रतिशत प्रतिवर्ष) की वृद्धि हुई है और जो अब कुल व्यय का केवल 7.2 प्रतिशत वहन करते हैं। स्थानीय स्वायत्त निकायों के साधन लचीले नहीं हैं, विशेषकर देहाती क्षेत्रों में। इनसे कुल व्यय का केवल 6.3 प्रतिशत प्राप्त होता है। इनके योगदान में वृद्धि भी सबसे कम हुई है—केवल 202 प्रतिशत (या 7.3 प्रतिशत प्रतिवर्ष)।

शिक्षा के व्यय के स्रोत (1965-85)

19.15. आने वाले 20 वर्षों में शिक्षा के व्यय के स्रोतों के सम्बन्ध में क्या परिस्थितियां उत्पन्न होंगी? उपर्युक्त विवेचन से मालूम होता है कि सभी स्तरों पर शिक्षा की वित्तीय व्यवस्था का भार अधिकाधिक सरकारी निधियों (केन्द्र और राज्य) पर पड़ रहा है। यह प्रवृत्ति भविष्य में और भी बढ़ेगी। जैसी सिफ़ारिश हमने अन्यत्र[1] की है जब अवर माध्यमिक स्तर के अन्त तक शिक्षा निःशुल्क हो जाएगी और समाज के अपेक्षाकृत पिछड़े हुए वर्गों के लोग विश्वविद्यालयों और कालेजों में प्रवेश लेने लगेंगे और उनमें से अनेक जरूरतमंद विद्यार्थियों की फीसें उच्चतर माध्यमिक और विश्वविद्यालय की शिक्षा के दौरान माफ की जाने लगेंगी तो फीसों के रूप में प्राप्त होने वाली कुल आय काफी घट जाएगी। इसी प्रकार अन्य स्रोतों से प्राप्त होने वाली आमदनी भी शिक्षा के कुल व्यय में होने वाली वृद्धि के अनुपात में नहीं पढ़ेगी। स्थानीय स्वायत्त निकाय भी भरसक प्रयत्न करने के बावजूद कुल व्यय के बहुत ही थोड़े से अंश की व्यवस्था कर पाएंगे। इसलिए कुल मिलाकर ऐसा मालूम होता है कि केन्द्र और राज्य सरकारों को शिक्षा के कुल व्यय का लगभग 90 प्रतिशत (या इससे भी ज्यादा) भार स्वयं वहन करना होगा।

19.16. यद्यपि यह सही है कि शिक्षा को सहारा देने का अधिकांश दायित्व सरकार का होना चाहिए पर शिक्षा के समूचे वित्तीय भार को एकदम केन्द्रित कर देना भी उचित नहीं मालूम होता क्योंकि इससे स्कूल और स्थानीय स्तर की एजेन्सियों में वित्तीय मामलों को लेकर पहल की भावना बिल्कुल ही समाप्त हो जाएगी। भले ही इस प्रकार जुटाए गए द्रव्य की मात्रा अधिक न हो, पर इस प्रकार की पहल जिन प्रशासनिक व्यवस्थाओं के अन्तर्गत काम करती है या प्रोत्साहन पाती है उनका बहुत अधिक शैक्षिक महत्व है और उनसे अभिभावकों और स्थानीय तत्वों की शिक्षा के प्रति रुचि बढ़ती है और स्तरों में सुधार होता है। इसलिए हमारी सिफ़ारिश है कि स्थानीय समुदायों, स्वैच्छिक संगठनों और स्थानीय स्वायत्त निकायों से शिक्षा के विकास में अधिकाधिक योगदान लेने के प्रयत्न जारी रखे जाएं।

19.17. हम पहले ही यह सिफ़ारिश कर आए हैं कि सभी सरकारी और स्थानीय स्वायत्त निकायों के स्कूलों के साथ स्थानीय समुदायों का घनिष्ठ सम्बन्ध रखना चाहिए और शिक्षकेतर लागत के पूरे या एक अंश का वहन करने के लिए ही स्कूल में एक स्कूल निधि की स्थापना की जानी चाहिए।[2] हमने यह भी सिफ़ारिश की है कि स्कूल के सुधार के राष्ट्र व्यापी कार्यक्रम के अन्तर्गत स्कूलों में भौतिक सुविधाओं में वृद्धि करने के लिए स्थानीय समुदायों से अधिकतम सहायता ली जाए जैसी कि मद्रास राज्य में स्कूल सुधार सम्मेलन का संगठन करके ली गई है।[3] गैर-सरकारी स्कूलों के बारे में हमने सुझाव दिया है कि उनके प्रबन्धकों को आवर्ती खर्चों के एक निर्धारित प्रतिशत के अलावा सभी अनावर्ती खर्चों के काफी अंश का भार स्वयं वहन करना चाहिए।[4] इससे शिक्षा के सम्बन्ध में स्थानीय तत्वों की रुचि तो बढ़ती है ही, साथ ही समुदायों और जनता के अंशदान से शिक्षा की वित्तीय आवश्यकताओं की कुछ-न-कुछ पूर्ति भी होती है।

19.18 **स्थानीय स्वायत्त निकायों का अंशदान**—स्थानीय स्वायत्त निकाय—नगरपालिकाएं और जिला परिषद—शिक्षा के विकास में काफी योगदान दे सकेंगे। हमारी राय में अगर सहायक अनुदान की कोई उचित प्रणाली अपना ली जाए तो इन निकायों के अंश-

1. अध्याय छह।
2. अध्याय दस।
3. अध्याय दस।
4. अध्याय दस।

दान को काफी बढ़ाया जा सकता है। इस अध्याय के अन्त की अनुपूरक टिप्पणी में इस प्रकार की प्रणाली की मुख्य बातें बताई गई हैं।

19.19. **स्वैच्छिक संगठनों का अंशदान**—शिक्षा संस्थाएं चलाने वाले स्वैच्छिक संगठन भी शिक्षा के कुल व्यय में अपना अंशदान कर रहे हैं। सहायक अनुदानों की उचित नीतियां अपना कर इन्हें प्रोत्साहन दिया जा सकता है और विकास में इनका उपयोग किया जा सकता है। हमने इस रिपोर्ट में अन्यत्र स्कूल और उच्चतर शिक्षा के सन्दर्भ में इन समस्याओं पर अलग-अलग प्रकाश डाला हैं।

19.20. **शिक्षा की वित्तीय व्यवस्था के सन्दर्भ में केन्द्र-राज्य संबंध**—इस समय शिक्षा के कुल व्यय का 71 प्रतिशत केन्द्र और राज्य सरकारें आपस में मिलकर वहन करती हैं। जैसा हम ऊपर कह चुके हैं, 1985-86 तक यह भार बढ़कर 90 प्रतिशत हो जाएगा। अतः शिक्षा की वित्तीय व्यवस्था के सन्दर्भ में केन्द्र-राज्य संबंधों का बड़ा महत्व है। इस रिपोर्ट के पूर्ववर्ती अध्यायों में हमने यथास्थान इस विषय की चर्चा की है। इस अध्याय के अन्त में दी गई अनुपूरक टिप्पणी में भी इस पर संक्षेप में विचार किया गया है।

शिक्षा का कुल व्यय
(1965-85)

19.21. अब हम और भी कठिन विषय पर आते हैं, अर्थात्, अगले बीस वर्षों के दौरान शिक्षा के विकास के लिए कितने साधन उपलब्ध होने की सम्भावना है और शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों या स्तरों के बीच उनके बंटवारे की सर्वोत्तम विधि क्या हो सकती है।

19.22. **अगले बीस वर्षों में शिक्षा के लिए उपलब्ध हो सकने वाले साधनों का अनुमान**—पिछले पन्द्रह वर्षों की अपेक्षा आगामी दो दशकों में शिक्षा के विकास के क्षेत्र में अपनाए जाने वाले कार्यक्रम कहीं बड़े होंगे इसलिए शिक्षा का कुल व्यय भी बहुत अधिक बढ़ जाएगा। वह तभी सम्भव हो सकता है जब कि हमारी सामर्थ्य और हमारे प्रयत्न दोनों में वृद्धि हो। इसके लिए अगले दो दशकों में अर्थ व्यवस्था के विकास की गति को त्वरित करना होगा और उसके साथ ही जनसंख्या पर नियन्त्रण रखने के कार्यक्रम भी चलाने होंगे। इसके अतिरिक्त, शिक्षा पर खर्च किए जाने वाले द्रव्य का प्रतिशत बढ़ाने के लिए अधिकाधिक प्रयास करने आवश्यक हैं। जैसा हम पहले कह चुके हैं, इन मामलों में ठीक-ठीक आंकड़े देना कठिन है। वैसे, मोटे तौर पर हमें, आगामी बीस वर्षों में, शिक्षा के प्रति व्यक्ति व्यय का वर्तमान स्तर 12 रु० से उठाकर (स्थिर कीमतों पर) उसे चार-पांच गुने तक बढ़ाने की कोशिश करनी चाहिए। इसके लिए हम इस विषय से संबंधित तीनों चरों, अर्थात्, आर्थिक विकास (5 और 7 प्रतिशत प्रतिवर्ष के बीच घटता-बढ़ता) जनसंख्या की वृद्धि (1.5 प्रतिशत और 2.5 प्रतिशत प्रतिवर्ष के बीच घटती बढ़ती) और शिक्षा के व्यय निमित्त राष्ट्रीय आय में से निकाली गई राशि (4 से 5 प्रतिशत के बीच) के भिन्न-भिन्न पूर्वानुमानों के कई संचय तैयार कर सकते है। हमारे विचार से विकास की गति इस प्रकार होनी चाहिए :

सारणी 19.9 शिक्षा का कुल व्यय (1965-85)

	1965-66	1970-71	1975-76	1980-81	1985-86
1. 1965-66 की कीमतों पर आकलित राष्ट्रीय आय—6 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि का अनुमान करके (रु० करोड़ों में)	210,000	281,000	376,000	503,000	673,000
2. वृद्धि का सूचकांक	100	134	179	240	320
3. जनसंख्या का अनुमान (करोड़ों में)	495	560	630	695	748
4. वृद्धि का सूचकांक	100	113	127	140	151
5. प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय (रु०)	424	502	597	724	900
6. वृद्धि का सूचकांक	100	118	141	171	212
7. शिक्षा का कुल व्यय (रु० करोड़ों में) (10 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि का अनुमान करके)	6,000	9,663	15,562	25,063	40,364
8. वृद्धि का सूचकांक	100	161	259	418	673
9. राष्ट्रीय आय की तुलना में शिक्षा के कुल व्यय का प्रतिशत	2.9	3.4	4.1	5.0	6.0
10. वृद्धि का सूचकांक	100	117	141	172	207
11. शिक्षा का प्रति व्यक्ति खर्च (रु०)	12.1	17.3	24.7	36.1	4.0
12. वृद्धि का सूचकांक	100	143	204	298	44

19.23. आप देखेंगे कि हमने राष्ट्रीय आय की वृद्धि के सामले में बीच की स्थिति को अनुमान का आधार बनाया है (5 और 7 के दो अन्य अनुमानों के बीच, अर्थात्, 6 प्रतिशत प्रतिवर्ष की वृद्धि)। जनसंख्या के विकास के सम्बन्ध में भी हम मध्यम अनुमान को ही मान कर चले हैं (1.5 और 2.5 प्रतिशत प्रतिवर्ष के दो अन्य अनुमानों के बीच 1960 से 1985 की अवधि के लिए 2.1 प्रतिशत प्रतिवर्ष)। जहां तक राष्ट्रीय आय से शिक्षा के लिए नियत की गई राशि का सवाल है, हमने अधिकतम राशि यानी 6 प्रतिशत का अनुमान लगाया है (हमारे सामने 4,5 ओर 6 प्रतिशत के तीन सम्भव अनुमान थे) क्योंकि हम चाहेंगे कि शिक्षा को सर्वाधिक अग्रता दी जाए और कुल राष्ट्रीय उत्पाद का सबसे बड़ा अंश इसके लिए नियत किया जाए। इस प्रकार हमारे मध्यम अनुमान के अनुसार 1985-86 तक प्रति व्यक्ति 54 रु० शिक्षा की मद में खर्च किए जाने चाहिए। इस सिलसिले में कृपया पृष्ठ 540 पर दिया गया चार्ट भी देखें।

यहां पर उल्लेख कर देना उचित मालूम होता है कि ये अनुमान प्रति व्यक्ति लागतों के काफी विस्तृत अंतराल को ध्यान में रखकर निर्धारित किए गए हैं :

(1) यदि राष्ट्रीय आय 5 प्रतिशत प्रतिवर्ष बढ़ी, जनसंख्या 2.5 प्रतिशत प्रतिवर्ष बढ़ी और शिक्षा के लिए राष्ट्रीय आय का 4 प्रतिशत नियत किया गया तो 1985-86 में प्रति व्यक्ति शिक्षा का खर्च 27.5 रु० होगा।

शिक्षा का व्यय
1950 - 85

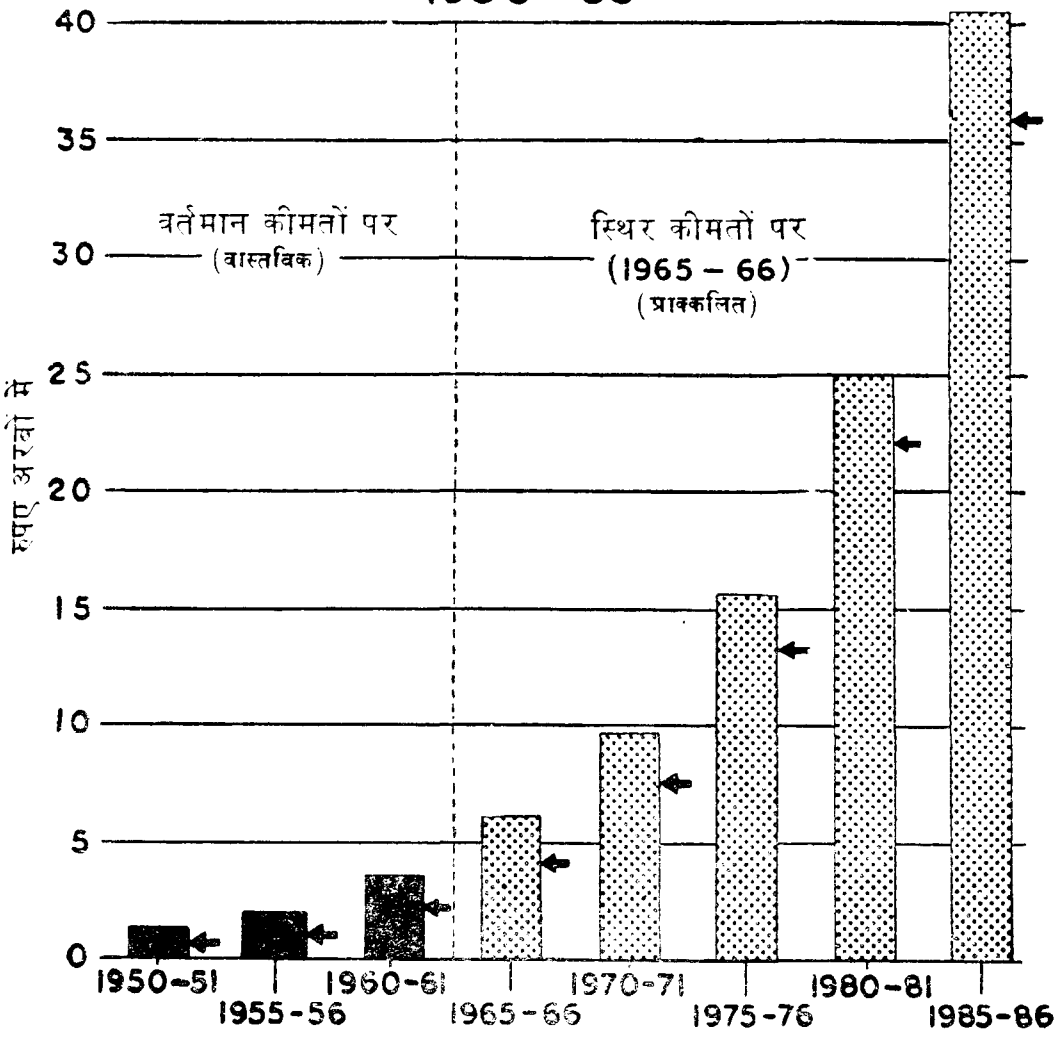

नोट :— 1. तीर (←) के नीचे का भाग सरकारी निधियों से पूरे किए गए व्यय को दिखाता है और उसके ऊपर का भाग अन्य स्रोतों से पूरे किए गए व्यय को।

2. बुंदकियों वाले बण्ड 1965-66 की कीमतों को स्थिर मानकर प्राक्कलित व्यय बताते हैं।

राष्ट्रीय आय का
शिक्षा पर व्यय होने वाला प्रतिशत

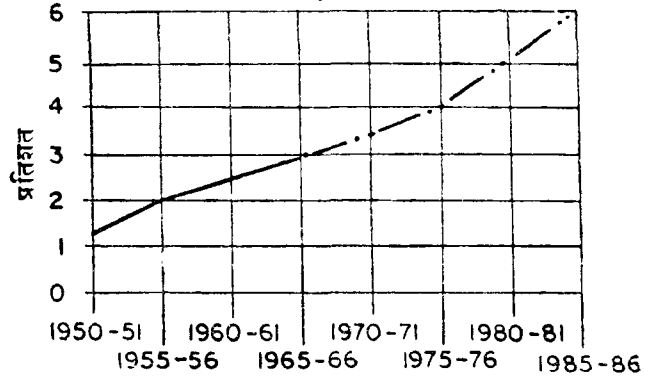

प्रति व्यक्ति शिक्षा का व्यय

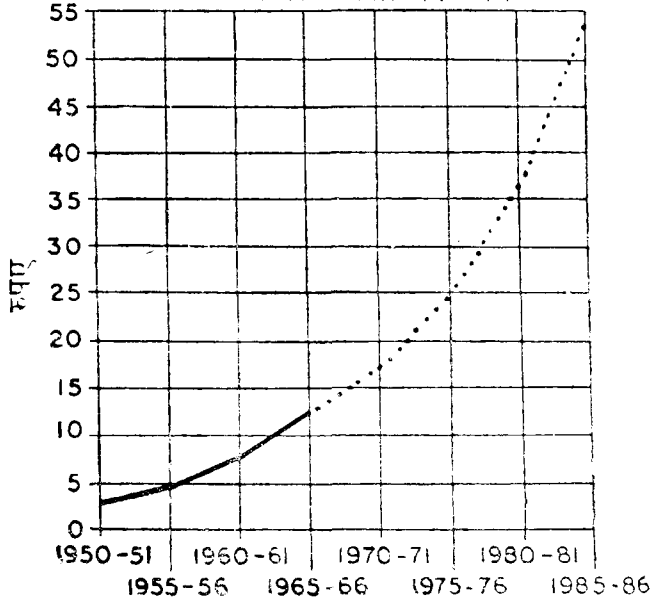

(2) यदि राष्ट्रीय आय 7 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से बढ़ी, जनसंख्या में 1.5 प्रतिशत प्रतिवर्ष की वृद्धि हुई और शिक्षा के लिए राष्ट्रीय आय का 6 प्रतिशत वियत किया गया तो 1985-86 में शिक्षा का प्रति व्यक्ति खर्च 75.1 रु० तक पहुंच जाएगा।

1986 तक कुल राष्ट्रीय उत्पाद के 6 प्रतिशत के बराबर की राशि शिक्षा पर लगाए जाने की बात अतिशयोक्तिपूर्ण लग सकती है। लेकिन हम इससे सहमत नहीं है। हाल के वर्षों में शिक्षा और राष्ट्रीय समृद्धि के बीच गहन और अभिन्न सम्बन्ध मानकर विभिन्न राष्ट्रों ने बड़ी तेजी के साथ शिक्षा पर खर्च की जाने वाली राशि में वृद्धि की है और यह प्रवृत्ति शायद आगे भी बनी रहे। इस शताब्दी के आरम्भ में अमरीका जैसे "उन्नत" देश भी शिक्षा पर अपने कुल राष्ट्रीय उत्पाद का बहुत ही थोड़ा भाग खर्च करते थे। 1966 तक अधिकांश देश अपने राष्ट्रीय उत्पाद का 10 प्रतिशत शिक्षा पर लगाने लगेंगे। यदि तब तक पूर्ण और व्यापक निःशस्त्रीकरण की बात मान ली गई, जैसी कि हम सबको आशा है, तो विकासशील देशों में शिक्षा का व्यय शायद 10 प्रतिशत से भी अधिक बढ़ जाएगा; और सच पूछिए तो ऐसे ही उपक्रम से निर्धन और धनी देशों के बीच की दुर्भाग्यपूर्ण और चिन्तनीय खाई को सहनीय सीमा तक पाटा जा सकता है।

19.24. यह सुझाया गया है कि शिक्षा के विकास के आरम्भिक चरणों में शिक्षा के व्यय में राष्ट्रीय आय की वृद्धि से लगभग दोगुनी बढ़ोत्तरी की जानी चाहिए लेकिन हमने राष्ट्रीय आय की वृद्धि दर 6 प्रतिशत मानते हुए भी शिक्षा के व्यय की वार्षिक वृद्धि का अनुमान इससे कुछ नीचा ही, अर्थात्, केवल 10 प्रतिशत रखा है। अतः यदि राष्ट्रीय आय की वृद्धि-दर अनुमानित से कुछ कम भी रहे तो कल्पित स्तरों को सामने रखकर शिक्षा के व्यय की जो योजनाएं बनाई जाएं उन्हें लागू करने में कठिनाई नहीं होनी चाहिए। यहां यह और कह दें कि ये अनुमान आमदनियों में वृद्धि होने के साथ-साथ व्यक्ति और समुदाय की उपभोग-प्रवृत्ति के प्रत्याशित स्वरूप और आर्थिक क्रिया के उच्चतर स्तरों को बनाए रखने के लिए आवश्यक शैक्षिक प्रयत्नों पर आधारित हैं।

19.25. शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों के बीच साधनों के बंटवारे का भविष्य में क्या स्वरूप होगा ? हमारे विचार में यह स्वरूप हर दशक में बदलता रहेगा।

(1) पहले दशक में स्कूल शिक्षा के लिए अधिकाधिक धन नियत करना आवश्यक है। सबसे पहले तो स्कूलों के शिक्षकों के वेतन में वृद्धि करना जरूरी है। इसके लिए बहुत अधिक धन की आवश्यता होगी, क्योंकि एक तो शिक्षकों की संख्या बहुत है और दूसरे जो वेतन-वृद्धि अविलम्ब दी जानी आवश्यक है उसकी राशि काफी अधिक होगी। दूसरी बात यह है कि हम पूर्व विश्वविद्यालय पाठ्यक्रम और इण्टर कक्षाओं को विश्वविद्यालयों से निकालकर स्कूल के स्तर में जोड़ने का प्रस्ताव दे रहे हैं। तीसरे, देश के सब बच्चों को कम-से-कम पांच साल की प्रभावी शिक्षा देने की व्यवस्था तत्काल आवश्यक है। चौथे, माध्यमिक शिक्षा का व्यवसायीकरण भी उतना ही आवश्यक है।

(2) दूसरे दशक में सात वर्ष की प्रभावी प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था करनी होगी। दूसरे, स्कूल स्तर में एक वर्ष और जोड़ने पर तथा माध्यमिक शिक्षा के व्यवसायीकरण पर जोर देना होगा। लेकिन इसके लिए उतने अधिक अतिरिक्त धन की आवश्यकता नहीं होगी जितनी पहले दशक के दौराव हुई थी। अतः हमारा ध्यान कुछ उच्चतर शिक्षा की ओर भी जाएगा।

(3) तीसरे दशक में माध्यमिक स्तर से सम्बन्धित कार्यक्रम पूरे होने को आ जाएंगे और हमारा जोर मुख्यकर उच्चतर शिक्षा और अनुसंधान के विकास पर होगा। इसके बाद शायद यही प्रवृत्ति बनी रहेगी। इस सिलसिले में पृष्ठ 442 का चार्ट दृष्टव्य है।

19.29. 1975-76 और 1985-86 में स्कूल और उच्चतर शिक्षा के लिए जितने धन की आवश्यकता होगी उसका एक कच्चा अनुमान तैयार किया गया है जो इस अध्याय के अन्त में लगी अनुपूरक टिप्पणी-एक और दो में दिया गया है। उसके अनुसार 1975-76 में स्कूल शिक्षा पर शिक्षा के कुल व्यय का लगभग 72 प्रतिशत खर्च किया जाएगा और उच्चतर शिक्षा पर लगभग 27 प्रतिशत खर्च होगा। आज तक करीब 33 प्रतिशत खर्च किया जा रहा है। वैसे, हम यह संकेत करना चाहेंगे कि उच्चतर शिक्षा के व्यय के प्रतिशत में जो गिरावट आएगी वह केवल ऊपरी होगी, वास्तविक नहीं। बात यह है कि उच्चतर माध्यमिक स्तर (पूर्व-विश्वविद्यालय पाठ्यक्रम) के खर्च का अधिकतर भाग जो 'स्कूल' की मद में दिखाया गया है, इस समय 'विश्वविद्यालय' के अंतर्गत आता है। इसे निकाल देने के बाद—जो कुल व्यय के 4 से 5 प्रतिशत के बीच है—आप देखेंगे कि स्कूल स्तर पर कुल खर्च का लगभग दो-तिहाई ही खर्च होगा जैसा पहले से होता आ रहा है। दूसरे दशक में, स्कूल शिक्षा का खर्च घटकर कुल खर्च का 65.9 प्रतिशत या लगभग दो-तिहाई रह

स्तरवार शिक्षा का खर्च

1950-85

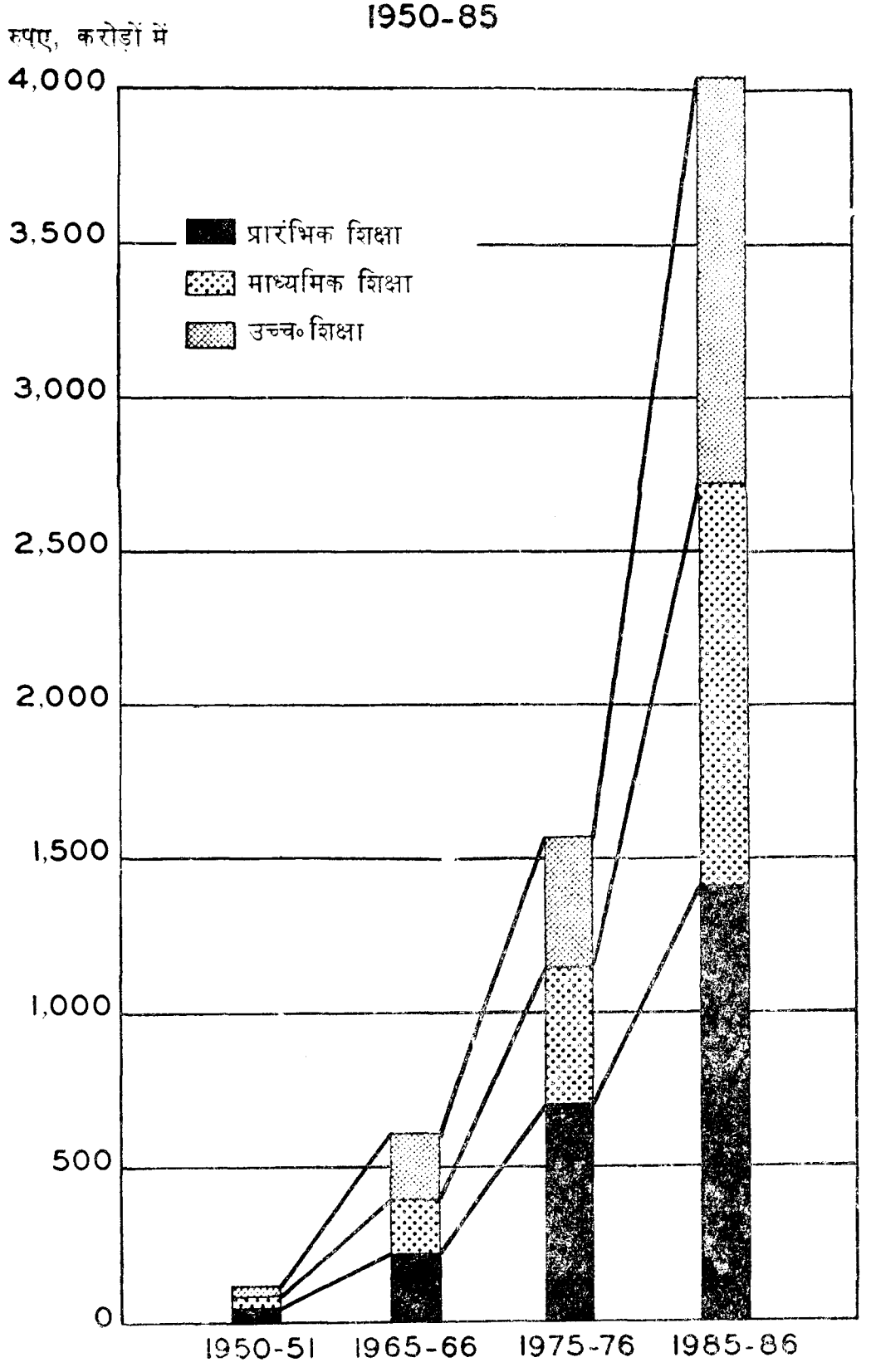

जाएगा। फलस्वरूप उच्चतर शिक्षा के लिए अधिक धन दिया जा सकेगा।

19.27. हमारे सामने यह तर्क रखा गया है कि चूंकि उच्चतर शिक्षा का अविलम्ब विकास करना आवश्यक है अतः कुछ समय के लिए प्राथमिक शिक्षा पर उतना अधिक पैसा खर्च न करके उपलब्ध साधनों का अधिक भाग माध्यमिक और उच्चतर शिक्षा पर लगाना ज्यादा ठीक होगा। इसके विपरीत अन्य लोगों का कहना है कि प्राथमिक शिक्षा का विकास जल्दी से जल्दी और हर कीमत पर किया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए, सारजेंट योजना में कुल साधनों का दो-तिहाई भाग प्राथमिक शिक्षा के लिए निर्धारित किया गया था। ये दोनों ही दृष्टिकोण आत्यंतिक हैं। यह हम मानते हैं कि उच्चतर शिक्षा का विकास करना आवश्यक है और इस निमित्त अधिक से अधिक धन की व्यवस्था की जानी चाहिए लेकिन इसके लिए वह प्राथमिक शिक्षा के व्यय में कटौती करना उचित नहीं होगा। जैसा कि हमने इस रिपोर्ट में बार-बार कहा है, सार्वभौम प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था सामाजिक न्याय और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के कायाकल्प की प्रक्रिया को तेज करने के लिए बड़ी जरूरी है। दूसरी ओर, विकास के समूचे कार्यक्रम में उच्चतर शिक्षा और अनुसंधान का विकास केन्द्रीय महत्व रखता है और उच्चतर शिक्षा के लिए पर्याप्त धन की व्यवस्था किए बगैर प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा के लिए सुयोग्य शिक्षक काफी संख्या में उपलब्ध नहीं हो सकेंगे। अतः हम शिक्षा के संतुलित विकास के पक्ष में हैं। साधनों के बंटवारे का मोटे तौर पर जो रूप हमने यहाँ सुझाया है उसे छोड़ कोई और विकल्प हमें दिखाई नहीं देता।

प्रति विद्यार्थी व्यय

19.28. **पहली तीन योजनाओं में प्रति विद्यार्थी लागत का स्वरूप**—अब हम शिक्षा के हर स्तर पर प्रति छात्र व्यय की समीक्षा करेंगे। प्रति छात्र व्यय तीनों बातों पर निर्भर हैं : एक शिक्षक का औसत वार्षिक वेतन (a); छात्र-शिक्षक अनुपात (t); और समस्त शिक्षकेतर लागतों की मद में किया गया खर्च जो एक शिक्षक के औसत वेतन के प्रतिशत के रूप में व्यक्त किया जा सके (r) प्रतीकों की सहायता से हम इसे यों व्यक्त कर सकते हैं :

$$\text{प्रति छात्र लागत} = \frac{a\,(1+r)}{(t)}$$

इसमें a = एक शिक्षक का औसत वार्षिक वेतन
r = शिक्षक के वेतन की तुलना में शिक्षकेतर लागतों का अनुपात
t = छात्र-शिक्षक अनुपात

पिछले पन्द्रह वर्षों में इन तीनों कारकों में परिवर्तन हो चुके है जिनके परिणाम स्वरूप प्रति विद्यार्थी कुल लागत (केवल प्रत्यक्ष व्यय) जो 1950 51 में 37 रु० थी, 1965-66 में बढ़कर 64 रु० (वर्तमान कीमतों के अनुसार) हो गई है अर्थात् 73 प्रतिशत बढ़ गई है। लेकिन अगर निर्वाह-खर्च की वृद्धि (जो कि लगभग 65 प्रतिशत है) को भी ध्यान में रखा जाए तो प्रति विद्यार्थी लागत में जो वास्तविक वृद्धि हुई है वह नगण्य है। इससे सम्बन्धित ब्यौरे वार आंकड़े सारणी 19.10. क और ख में दिए गए हैं।

19.29. शिक्षकों के वेतन की समस्या पर अध्याय तीन और सत्रह में पहले ही विचार किया जा चुका है। अन्य कारकों के विषय में इन आंकड़ों से कुछ महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकलते हैं :

(1) वृत्तिक कालिजों और व्यावसायिक स्कूलों को छोड़कर अन्य किसी मामले में प्रति छात्र विद्यार्थी लागत में कोई विशेष वृद्धि देखने में नहीं आती। इनमें भी, यदि कीमतों की वृद्धि को हिसाब में लिया जाए तो वस्तुतः खर्च में गिरावट ही दिखाई देगी।

(2) पूर्व-प्राथमिक स्तर पर प्रति छात्र लागत लगभग अपरिवर्तित रही है। इसका मतलब यह है कि वास्तविक अर्थ में, प्रति विद्यार्थी निवेश बहुत अधिक गिरा है।

(3) अवर प्राथमिक स्तर पर, प्रति विद्यार्थी लागत में 50 प्रतिशत वृद्धि हुई है। लेकिन स्थिर कीमतो में बदल कर देखें तो वास्तविक अर्थ में यह भी गिरावट की ही स्थिति है। शिक्षकेतर लागतों के मामले में, स्थिर कीमतों के अनुसार भी, प्रति छात्र व्यय वस्तुतः गिरा है। यही कारण है कि हमारे प्राथमिक स्कूल इतने निष्क्रिय और अनाकर्षक दिखाई देते हैं। सच पूछिए तो बहुत से प्राथमिक स्कूलों को हम शिक्षक के अलावा और कुछ देते ही नहीं। उच्चतर प्राथमिक स्तर की हालत भी ऐसी ही है।

(4) कला और विज्ञान के कालिजों में प्रति विद्यार्थी व्यय कुछ बढ़ा दिखाई देता है पर यह केवल वर्तमान कीमतों में है, वास्तविक अर्थों में तो गिरावट ही आई है।

सारणी 19.10 क. प्रति छात्र औसत वार्षिक लागत (1950-51)

संस्था का प्रकार	प्रति शिक्षक औसत वार्षिक वेतन	प्रति शिक्षक छात्रों की संख्या	शिक्षक लागत की तुलना में शिक्षकेतर लागत का प्रतिशत	प्रति छात्र औसत वार्षिक लागत		
				शिक्षक लागत की मद में	शिक्षकेतर लागत की मद में	कुल
	रु०			रु०	रु०	रु०
पूर्व-प्राथमिक स्कूल	914	25	51.3	37	19	55
अवर प्राथमिक स्कूल	545	34	24.6	16	4	20
उच्चतर प्राथमिक स्कूल	682	24	32.0	28	9	37
माध्यमिक स्कूल	1,258	25	44.8	50	23	73
व्यावसायिक शिक्षा के स्कूल	1,705	16	86.8	106	92	197
विशेष शिक्षा के स्कूल	715	13	98.5	55	54	109
विश्वविद्यालय (शिक्षण विभाग)	3,759	10	अनुपलब्ध	अनुपलब्ध	अनुपलब्ध	अनुपलब्ध
कला और विज्ञान के कालेज	2,696	20	73.7	133	98	231
वृत्तिक शिक्षा के कालेज	13,948	11	118.1	357	422	779
विशेष शिक्षा के कालेज	1,656	8	48.6	203	99	301
कुल—प्रत्यक्ष व्यय				25	12	37

टिप्पणी :पूर्णांकन के कारण जोड़ बराबर नहीं बैठते ।
स्रोत : शिक्षा मंत्रालय फार्म 'ए'

सारणी 19.10 ख. प्रति छात्र औसत वार्षिक लागत (1965-66)

संस्था का प्राकर	प्रति शिक्षक औसत वार्षिक वेतन	प्रति शिक्षक छात्रों की संख्या	शिक्षक लागत की तुलना में शिक्षकेतर लागत का प्रतिशत	प्रति छात्र औसत वार्षिक लागत		
				शिक्षक लागत की मद में	शिक्षेकतर लागत की मद में	कुल
	रु०			रु०	रु०	रु०
पूर्व-प्राथमिक स्कूल	1,000	31	56.3	35	20	55
अवर प्राथमिक स्कूल	1,046	38	11.1	27	3	30
उच्चतर प्राथमिक स्कूल	1,087	31	12.4	40	5	45
माध्यमिक स्कूल	1,959	25	37.0	78	29	107
व्यावसायिक शिक्षा के स्कूल	2,887	15	100.0	208	208	417
विशेष शिक्षा के स्कूल	991	12	66.7	81	54	135
विश्वविद्यालय (शिक्षण विभाग)	6,500	12	अनुपलब्ध	अनुपलब्ध	अनुपलब्ध	अनुपलब्ध
कला और विज्ञान के कालेज	4,000	20	63.8	200	128	328
वृत्तिक शिक्षा के कालेज	6,410	11	100.0	583	583	1,167
विशेष शिक्षा के कालेज	2,918	12	42.9	245	105	350
कुल—प्रत्यक्ष व्यय				46	18	64

टिप्पणी : पूर्णांकन के कारण जोड़ बराबर नहीं बैठते ।
स्रोत : शिक्षा मंत्रालय फार्म 'क'

19.30. **अगले बीस वर्षों में प्रति विद्यार्थी लागत का स्वरूप**—अगले बीस वर्षों में स्कूल शिक्षा के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में किए जाने वाले व्यय के कच्चे अनुमानों पर इस अध्याय के अन्त में दी गई अनुपूरक टिप्पणी-दो में विचार किया गया है। उच्चतर शिक्षा के विषय में इसी प्रकार लेकिन और भी कच्चे तौर पर एक अनुमान इस अध्याय के अन्त में दी गई अनुपूरक टिप्पणी-तीन में दिया गया है। हम यहां इन अनुमानों की प्रभावकारिता और उनकी सीमाओं की संक्षिप्त चर्चा करेंगे।

19.31. **स्कूल शिक्षा**—स्कूल शिक्षा के व्यय का अनुमान लगाना अधिक सरल है क्योंकि (1) कुल व्यय का अपेक्षाकृत अधिक अंश शिक्षक की लागत के रूप में होता है, (2) शिक्षकेतर लागतों के अनुमान ज्यादा पक्के तौर पर लगाए जा सकते हैं, (3) प्राथमिक स्तर पर पाठ्यक्रमों की विविधता नहीं होती, और (4) माध्यमिक स्तर पर भी व्यावसायिक शिक्षा में जिन विविध पाठ्यक्रमों की व्यवस्था करनी पड़ती है उनकी संख्या सीमित है और उनके व्यय में भारी घट-बढ़ नहीं है। इसलिए, ये अनुमान अधिक विश्वसनीय हैं ओर शिक्षा की नीतियां विर्धारित करते समय अधिक अच्छा मार्गदर्शन प्रदान करते हैं।

19.32. सारणी 19.11 में स्कूल शिक्षा के कुल अनुमानित व्यय के आंकड़े दिए गए हैं और सारणी 19.12 में इसे शिक्षकों के वेतन, छात्र-शिक्षक अनुपात, शिक्षकेतर व्यय और उच्च कोठि की शिक्षा संस्थाओं के रखरखाव की दृष्टि से बांटकर दिखाया गया है।

सारणी 19.11. स्कूल शिक्षा का खर्च (1975-76 और 1985-86)

	कुल खर्च (रु० 000ों में)		कुल खर्च का प्रतिशत	
	1975-76	1985-86	1975-76	1985-86
1. **आवर्ती (प्रत्यक्ष)**				
पूर्व प्राथमिक	236,956	488,531	1.5	1.2
अवर प्राथमिक	3,749,220	6,129,616	24.1	15.2
उच्चतर प्राथमिक	2,451,567	5,140,287	15.8	12.7
जोड़	6,437,743	11,758,434	41.4	29.1
अवर माध्यमिक सामान्य	2,072,510	4,490,088	13.3	11.1
व्यावसायिक	359,800	2,582,550	2.3	6.4
जोड़	2,432,310	7,072,638	15.6	17.5
उच्चतर माध्यमिकसामान्य	488,436	1,281,299	3.1	3.2
व्यावसायिक	823,900	2,362,250	5.3	5.8
जोड़	1,312,336	3,643,549	8.4	9.0
(कुल आवर्ती प्रत्यक्ष)	10,182,389	22,474,621	65.4	55.7
2. **आवर्ती (अप्रत्यक्ष)**				
निदेश और निरीक्षण	389,050	1,614,560	2.5	4.0
छात्रवृत्तियां	301,680	1,490,240	1.9	3.7
जोड़	690,730	3,104,800	4.4	7.7
3. **आवर्ती (प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष)**	10,873,119	25,579,421	69.9	63.4
4. **पूंजीगत**				
इमारतें और साज-सामान	389,050	1,008,890	2 5	2.5
कुल स्कूल शिक्षा	11,262,169	26,588,311	72.4	65.9

टिप्पणी : पूर्णांकन के कारण जोड़ बराबर नहीं बैठते।
ब्योरे के लिए, अध्याय के अन्त की अनुपूरक टिप्पणी-दो देखिए।

सारणी 19.12. प्रति छात्र औसत वार्षिक लागत (1950-51 और 1985-86)

वर्ष	प्रति शिक्षक औसत वार्षिक वेतन	प्रति शिक्षक छात्रों की संख्या	शिक्षक लागत की तुलना में शिक्षेकतर लागत का प्रतिशत	औसत वार्षिक लागत		
				शिक्षक लागत की मद में	शिक्षेकतर लागत की मद में	कुल
	रु०			रु०	रु०	रु०
	पूर्व प्राथमिक शिक्षा					
1950-51	914	25	51.3	37	19	55
1965-66	1,000	31	56.3	35	20	55
1975-76	1,800	40	50.0	50	25	74
1985-86	2,500	40	50.0	69	34	103
	अवर प्राथमिक शिक्षा					
1950-51	545	34	24.6	16	4	20
1965-66	1,046	38	11.1	27	3	30
1975-76	1,800	50	20.2	43	9	52
1985-86	2,500	45	19.6	67	13	80
	उच्चतर प्राथमिक शिक्षा					
1950-51	682	24	32.0	28	9	37
1965-66	1,087	31	12.4	40	5	45
1975-76	2,100	35	20.0	73	14	87
1985-86	2,875	35	20.0	99	20	119
	अवर माध्यमिक शिक्षा (सामान्य)					
1950-51†	1,258	25	44.8	50	23	73
1965-66†	1,959	25	37.0	78	29	107
1975-76	3,150	25	33.3	152	51	203
1985-86	4,150	25	33.3	201	67	268
	अवर माध्यमिक शिक्षा (व्यावसायिक)					
1950-51††	1,705	16	86.8	106	92	197
1965-66††	2,887	15	100.0	208	208	417
1975-76	—	—	—	—	—	500
1985-86	—	—	—	—	—	600
	उच्चतर माध्यमिक शिक्षा (सामान्य)					
1975-76	4,500	20	33.3	272	91	363
1985-86	5,500	20	33.3	333	111	444
	उच्चतर माध्यमिक शिक्षा (व्यावसायिक)					
1975-76	—	—	—	—	—	700
1985-86	—	—	—	—	—	800

† उच्च/उच्चतर माध्यमिक स्कूल।

†† सभी प्रकार के व्यावसायिक और तकनीकी स्कूल।

नोट : (1) 1950-51 और 1965-66 की लागतें वर्तमान कीमतों के अनुसार हैं तथा 1975-76 और 1985-86 की लागतें। 965-66 की कीमतों को स्थिर मानकर निकाली गई हैं।

(2) ब्यौरे के लिए, अध्याय के अन्त की अनुपूरक टिप्पणी-दो देखिए।

(3) जोड़ पूर्णांकन के कारण बराबर नहीं बैठते।

19.33. इन अनुमानों में निहित निम्नलिखित बातों की ओर हम विशेष रूप से ध्यान आकर्षित करना चाहेंगे:—

(1) **स्कूल शिक्षा का कुल व्यय**—स्कूल शिक्षा का कुल व्यय जो 1966 में 404.6 करोड़ रु० (अर्थात कुल व्यय का 67.4 प्रतिशत) है वह 1975-76 में बढ़कर 1,126.2 करोड़ रु० (अर्थात कुल व्यय का 72.4) हो जाएगा, और 1985-86 में 2,658.8 करोड़ रु० (अर्थात कुल व्यय का 65.9 प्रतिशत) होगा।

(2) **स्कूल शिक्षा पर पूंजीगत व्यय**—इस व्यय का अधिकांश आवर्ती कोटि का होगा। स्कूल शिक्षा का पूंजीगत खर्च जो 1965-66 में 13.3 करोड़ रु० (अर्थात कुल व्यय का 2.2 प्रतिशत) है, वह 1975-76 में 38.9 करोड़ रु० (अर्थात कुल व्यय का 2.5 प्रतिशत) हो जाएगा, और 1985-86 में 100.9 करोड़ रु० (अर्थात् कुल व्यय का 2.5 प्रतिशत) होगा।

(3) **पूर्व प्राथमिक शिक्षा**—शिक्षकों का औसत वार्षिक वेतन जो 1965-66 1000 रु० है, 1975-76 में बढ़कर 1,800 रु० हो जाएगा और 1985-86 में 2,500 रु० तक पहुंच जाएगा। छात्र शिक्षक अनुपात जो 1965-66 में 31 है, उसे 40 तक कर देने का प्रस्ताव है। प्रति विद्यार्थी औसत वार्षिक लागत जो 1965-66 में 55 रु० है, 1975-76 में बढ़कर 74 रु० हो जाएगी, और 1985-86 में 103 रु० तक पहुंचेगी। आप देखेंगे कि प्राथमिक स्तर की अपेक्षा पूर्व-प्राथमिक स्तर पर प्रति विद्यार्थी लागत अधिक आती है क्योंकि पूर्व प्राथमिक कक्षाओं के बच्चों को भोजन देना और उसके लिए अन्य स्वास्थ्य सेवाएं जुटाना आवश्यक है।

(4) **अवर प्राथमिक शिक्षा**—1950-51 में प्रति विद्यार्थी औसत वार्षिक लागत केवल 20 रु० थी जो 1965-66 में बढ़कर (वर्तमान कीमतों पर) 30 रु० हो गई। कीमतों में जो वृद्धि हुई है यदि उसे हिसाब में लिया जाए तो प्रति विद्यार्थी लागत वस्तुतः गिरी है। अब प्रस्ताव है कि इसमें पर्याप्त वृद्धि करके, स्थिर कीमतों पर, प्रति विद्यार्थी लागत 1975-76 में 52 रु० और 1985-86 में 80 रु० ले जाई जाए।

हम ध्यान दिला दें कि सब विद्यार्थियों को मुफ्त किताबें देना और प्राथमिक स्कूलों के आवश्यक आकस्मिक व्यय की पूर्ति करना ही इतने खर्च से सम्भव होगा। इन अनुमानों में स्कूल के भोजन, स्कूल की वर्दी या स्वास्थ्य सेवाओं के लिए कोई व्यवस्था शामिल नहीं है। शिक्षकों का औसत वार्षिक जो वेतन 1965-66 में 1046 रु० है, 1975-76 में 1800 रु० हो जाएगा और 1985-86 में 2500 रु० तक पहुंचेगा। हमारे विचार में इतना तो कम-से-कम जरूरी है ही। छात्र-शिक्षक-अनुपात जो 1965-66 में 38 है, तीन घंटे के सत्र की प्रणाली लागू करके 1975-76 में 50 तक ले जाया जाएगा। यदि प्राथमिक शिक्षकों को निर्वाह वेतन देना है तो इसके अलावा और कोई चारा दिखाई नहीं देता। यदि कक्षाओं को छोटा ही रखना है तो या तो अधिक धन उपलब्ध किया जाना चाहिए या विस्तार की गति धीमी कर देनी चाहिए।

प्रसंगवश यह उल्लेख कर दिया जाए कि अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा में कक्षा की औसत छात्र संख्या और प्रभावी जन्म-दर (अर्थात, प्रति हजार जनसंख्या में 5-6 आयु वर्ग के बच्चों की संख्या जो प्राथमिक स्कूल में प्रवेश चाहते हैं) के बीच एक निश्चित अनुपात रहता है। दूसरे शब्दों में अनिवार्य शिक्षा में कक्षा की छात्र-संख्या (यह मानते हुए कि प्राथमिक स्कूल के शिक्षक का वेतन प्रति व्यक्ति कुल राष्ट्रीय उत्पाद का 3 से 4 गुना होता है) प्रभावी जन्म-दर से प्रायः 1.5 और 2 गुने के बीच होता है। जब भारत में जन्म-दर गिरते-गिरते 15-20 तक आ जाएगी तो कक्षाओं की छात्र-संख्या को घटाकर 30 और 35 के बीच करना सरल हो जाएगा। लेकिन वर्तमान जन्म-दर के रहते कक्षाओं की छात्र-संख्या को कम करना बहुत खर्चीला बैठेगा और देश की आर्थिक सामर्थ्य के बाहर होगा।

यहां इस बात पर जोर देना आवश्यक है कि हमने कुल प्राथमिक स्कूलों के 10 प्रतिशत को इष्टतम कोटि के वर्ग में रखा है, यानी ये स्कूल ऐसे होंगे जिसमें औसत स्कूलों की अपेक्षा प्रति छात्र लागत लगभग दूनी होगी। इन स्कूलों को अपने से अगले स्तर यानी उच्चतर प्राथमिक शिक्षा की कार्य-कुशलता के अनुरूप रखा जा सकेगा और इनमें मुख्याध्यापकों के पद पर प्रशिक्षित स्नातक लगाए जा सकेंगे तथा शिक्षकेतर पदों पर खर्च करने के लिए अधिक अनुदान दिए जा सकेंगे।

(5) **उच्चतर प्राथमिक शिक्षा**—इस स्वर की स्थिति भी आम तौर पर वैसी ही है जैसी की अवर प्राथमिक स्तर की।

हमारा विचार है कि इन स्कूलों के मुख्याध्यापक प्रशिक्षित स्नातक होने चाहिए (अनुमान है कि प्रत्येक तीन शिक्षकों के पीछे एक प्रशिक्षित स्नातक होगा) और इसलिए अवर प्राथमिक स्तर की तुलना में इस स्तर पर प्रति शिक्षक औसत वार्षिक वेतन कुछ अधिक पड़ता है।

छात्र-शिक्षक अनुपात को 31 से बढ़कर 35 तक कर देने और उसी को कायम रखने का प्रस्ताव है।

प्रति छात्र लागत 45 रु० से बढ़कर 1975-76 में 87 रु० हो जाएगी और 1985-86 में 119 रु० तक पहुंच जाएगी (1965-66 की कीमतो पर)।

प्राथमिक शिक्षा की भांति इस स्तर पर भी केवल पुस्तकों के मुफ्त वितरण, और आकस्मिक व्यय की ही व्यवस्था की गई है; स्कूल के भोजन, वर्दियों और स्वास्थ्य सेवाओं के लिए व्यवस्था नहीं की गई है।

अनुमान है कि कुल नामांकन का 20 प्रतिशत अंशकालिक पाठ्यक्रमों के अन्तर्गत शिक्षा लेगा।

(6) **अवर माध्यमिक शिक्षा**—शिक्षकों का औसत वार्षिक वेतन जो 1965-66 में 1959 रु० था, 1975-76 में बढ़ाकर 3,150 रु० और 1985-86 में 4,150 रु० कर देने का प्रस्ताव है। छात्र-शिक्षक अनुपात 25 ही रहेगा—उसमें परिवर्तन करने का कोई विचार नहीं है। प्रति छात्र लागत जो 1950-51 में 73 थी और 1965-66 में बढ़कर (वर्तमान कीमतों पर) 107 रु० हो गई, स्थिर कीमतों पर, 1975-76 में 203 रु० और 1985-86 में 268 रु० तक पहुंच जाने की संभावना है।

(7) **उच्चतर माध्यमिक शिक्षा**—इस स्तर पर, शिक्षकों का औसत वार्षिक वेतन 1975-76 में 4500 रु० और 1985-86 में 5,500 रु० होगा। छात्र-शिक्षक अनुपात 20 रहने का अनुमान है। प्रति विद्यार्थी लागत बढ़ कर 1875-76 में 363 रु० और 1985-86 में 444 रु० हो जाएगी।

(8) **व्यावसायिक शिक्षा**—रिपोर्ट के संगत अध्यायों में की गई सिफ़ारिश के अनुसार, अवर माध्यमिक और उच्चतर माध्यमिक दोनों ही स्तरों पर व्यावसायिक पाठ्यक्रमों के लिए व्यवस्था की गई है। प्रति छात्र लागत का अनुमान तदर्थ आधार पर लगाया गया है। सही-सही अनुमान लगाने के लिए हर व्यावसायिक पाठ्यक्रम की लागत अलग से निकालनी होगी। पर इसके लिए आवश्यक आंकड़े हमें उपलब्ध नहीं थे।

(9) **उच्च कोटि की संस्थाएं**—अवर प्राथमिक स्तर की भांति, हर स्तर पर लगभग 10 प्रतिशत संस्थाओं को इष्टतम कार्यक्षम संस्थाओं के रूप में चलाने की व्यवस्था की गई है। दूसरे शब्दों में, यह मान लिया गया है कि हर स्तर पर लगभग 10 प्रतिशत संस्थाएं ऐसी होंगी जिनमें प्रति छात्र लागत उस स्तर के साधारण स्कूलों से लगभग दूनी होगी।

प्रति छात्र व्यय के जो स्तर हमने प्रस्तावित किए है उनसे वर्तमान स्थिति में निश्चित ही भारी सुधार होगा। लेकिन वे यथेष्ठ किसी तरह नहीं ठहराए जा सकते। वैसे, यह निश्चित है कि इससे अधिक व्यय उठाना शायद हमारी सामर्थ्य के बाहर होगा।

19.34. **उच्चतर शिक्षा**—हम यह मानते हैं कि उच्च शिक्षा के मामले में खर्च के विश्वसनीय प्राक्कलन और पूर्वानुमान लगाना और भी कठिन है। फिर भी, हमने 1965-66 की स्थिर कीमतों पर, 1975-76 और 1985-86 के लिए उच्चतर शिक्षा के कार्यक्रम की लागत के कच्चे अनुमान तैयार करने का प्रयत्न किया है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, इनके ब्योरे इस अध्याय के अन्त की अनुपूरक टिप्पणी-तीन में दिए गए हैं। इनके मुख्य-मुख्य निष्कर्ष सारणी 19.13 और 19.14 में दिए गए हैं।

सारणी 19.13. उच्चतर शिक्षा का खर्च (1975-76 से 1985-86)

शिक्षा का प्रकार	कुल खर्च (रु० 000 में)		कुल खर्च का प्रतिशत	
	1975-76	1985-86	1975-76	1985-86
1. आवर्ती (प्रत्यक्ष)				
पूर्व-स्नातक				
कला और वाणिज्य	453,516	974,963	2.9	2.4
विज्ञान और व्यावसायिक	1,439,250	3,264,000	9.2	8.1
कुल	1,892,766	4,238,963	12.2	10.5
स्नातकोत्तर				
कला और वाणिज्य	304,200	1,106,400	1.9	2.7
विज्ञान और व्यावसायिक	820,000	2,937,000	5.3	7.3
कुल	1,124,200	4,043,400	7.2	10.0
कुल (आवर्ती प्रत्यक्ष)	3,016,966	8,282,363	19.4	20.5
2. **आवर्ती (प्रत्यक्ष)**				
छात्रवृत्तियां	628,200	2,416,200	4.0	6.0
3. **कुल आवर्ती (प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष)**	3,645,166	10,698,563	23.4	26.5
4. **पूंजीगत**				
इमारतें और साज सामान	576,855	2,673,486	3.7	6.6
कुल (उच्चतर शिक्षा)	4,222,021	13,372,049	27.1	33.1

टिप्पणी : पूर्णांकन के कारण जोड़ बराबर नहीं बैठते ।

ब्योरे के लिए, अध्याय के अंत की अनुपूरक टिप्पणी-तीन देखिए ।

सारणी 19.14. उच्चतर शिक्षा के स्तर पर प्रति छात्र औसत वार्षिक लागत (1950-51 से 1985-86)

संस्था का प्रकार	प्रति शिक्षक औसत वार्षिक वेतन	प्रति शिक्षक छात्रों की संख्या	शिक्षक लागतों की तुलना में शिक्षकेतर लागतों का प्रतिशत	प्रति छात्र औसत वार्षिक लागत		
				शिक्षक लागत की मद में	शिक्षकेतर लागत की मद में	कुल
1	2	3	4	5	6	7
	रु०			रु०	रु०	रु०
पूर्व-स्नातक						
(क) कला और वाणिज्य						
1950-51†	2,696	20	73.7	133	98	231
1965-66†	4,000	20	63.8	200	128	328
1975-76	6,000	15	66.7	440	293	733
1985-86	7,500	15	66.7	550	367	917

(जारी)

1	2	3	4	5	6	7
(ख) विज्ञान और व्यावसायिक						
1950-51††	3,948	11	118.1	357	422	779
1965-66††	6,410	11	100.0	584	583	1,167
1975-76	—	—	—	—	—	1,500
1985-86	—	—	—	—	—	2,000
स्नातकोत्तर						
(क) कला और वाणिज्य						
1975-76	10,000	8	118	1,375	1,625	3,000
1985-86	12,000	8	118	1,650	19,50	3,600
(ख) विज्ञान और व्यावसायिक						
1975-76	—	—	—	—	—	5,000
1985-86	—	—	—	—	—	6,000

† कला और विज्ञान के सभी प्रकार के कालिज (इंटर से स्नातकोत्तर तक)

†† सभी प्रकार के व्यावसायिक वृत्तिक कालिज

ध्यान दें : ब्योरे के लिए, अध्याय के अन्त की अनुपूरक टिप्पणी-तीन देखिए। कुछ विश्वविद्यालयों और कालिजों में प्रति विद्यार्थी कतिपय वास्तविक लागत के आंकड़े इस अध्याय के अन्त की अनुपूरक टिप्पणी-चार में दिए गए है।

19.35. सारणी 19.14 के सम्बन्ध में क्रमवार टिप्पणी नीचे दी जा रही है। हमने यह माना है कि

(1) पूर्व-स्नातक स्तर पर 1975-76 में कुल नामांकन के लगभग 40 प्रतिशत विद्यार्थियों पर प्रति विद्यार्थी लागत (कला और वाणिज्य के पाठ्यक्रमों में) 733 रु० आएगी और शेष 60 प्रतिशत विद्यार्थियों पर प्रति विद्यार्थी लागत (कला और वाणिज्य की उच्च कोटि की संस्थाओं में विज्ञान तथा व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में) 1,500 रु० आएगी। 1985-86 में ये लागतें क्रमशः 917 रु० और 2,000 रु० होंगी। पूर्णकालिक शिक्षा में ये लागतें केवल तभी सम्भव होंगी जब कुल नामांकन का 30 प्रतिशत अंशकालिक रूप से और पत्र व्यवहार के जरिए शिक्षा ग्रहण कर रहा होगा।

(2) स्नातकोत्तर स्तर पर, 1975-76 में कुल नामांकन के लगभग 40 प्रतिशत विद्यार्थियों पर प्रति विद्यार्थी लागत (कला और वाणिज्य के पाठ्यक्रमों में) 3,000 रु० आएगी और शेष 60 प्रतिशत विद्यार्थियों पर प्रति विद्यार्थी लागत (कला और वाणिज्य की उच्च कोटि की संस्थाओं में और विज्ञान तथा व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में) 5,000 रु० आएगी। 1985-86 में ये लागतें क्रमशः 3,600 और रु० 6,000 रु० होंगी। पूर्व- स्नातक स्तर की भांति, यहां भी पूर्णकालिक स्नातकोत्तर शिक्षा में इस तरह का खर्च तभी सम्भव होगा जब नामांकन का कम-से-कम 30 प्रतिशत अंशकालिक तौर पर और पत्र-व्यवहार के जरिए शिक्षा ग्रहण कर रहा होगा।

(3) पूंजीगत खर्च के लिए, विशेषकर अगले कुछ वर्षों में, आवश्यकता से बहुत कम राशि उपलब्ध हो सकेगी। साधारणतः उच्चतर शिक्षा के कुल खर्च का लगभग 20 से 25 प्रतिशत तक इमारतों और बड़े साज-सामान के लिए उपलब्ध रहना चाहिए। इसके स्थान पर, 1975-76 में उच्चतर शिक्षा के कुल खर्च का केवल 15.8 प्रतिशत ही पूंजीगत कार्यक्रमों के लिए उपलब्ध हो सकेगा। सौभाग्यवश, 1985-86 तक स्थिति सुधर जाएगी। जबकि पूंजीगत खर्च का अनुपात बढ़कर 25 प्रतिशत हो जाए।

19.36. अच्छा स्तर कायम रखने वाली उच्चतर शिक्षा की संस्थाओं में प्रति विद्यार्थी लागत के जो कुछ आंकड़े हम एकत्र कर सके हैं उनसे सही प्रतीत होता है कि प्रति विद्यार्थी व्यय का यह स्तर आवश्यकता से काफी नीचा हैं। पूर्व-स्नातक स्तर पर, प्रति विद्यार्थी व्यय, मोटे तौर पर 1,000 रु० होना चाहिए; और यदि 10 प्रतिशत संस्थाओं में इष्टतम कार्यकुशलता कायम रखनी है, यानी प्रति छात्र दस गुनी राशि खर्च करनी है, तो पूर्व-स्नातक स्तर पर प्रति विद्यार्थी लागत 2,000 रु० पड़ेगी। इस स्तर पर पूंजीगत लागत करीब 5,000 रु० प्रति विद्यार्थी आएगी। स्नातकोत्तर स्तर पर, प्रति विद्यार्थी पूंजीगत व्यय लगभग 25,000 रु० से 30,000 रु० के बीच होना चाहिए और आवर्ती लागत प्रति विद्यार्थी 6,000 रु० से 7,000 रु० तक होनी आवश्यक है। पूर्व-स्नातक स्तर की भांति, यहां भी प्रति विद्यार्थी खर्च दूना पड़ेगा यदि 10 प्रतिशत संस्थाओं में इष्टतम कार्यकुशलता कायम रखनी है, यानी उन पर प्रति विद्यार्थी दस गुनी राशि खर्च करनी हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि यदि उच्चतर शिक्षा का स्तर पर्याप्त ऊंचा रखने के लिए प्रयत्न करते हैं और कम-से-कम कुछ संस्थाओं को अन्तराष्ट्रीय स्तरों तक ले जाना है तो इसके लिए बहुत अधिक धन जुटाना होगा। अगर यह सम्भव न हुआ तो हमें कई कठिन ससस्याओं का सामना करना पड़ेगा, जैसे :

(1) क्या उच्चतर शिक्षा के स्तर पर कुल नामांकन में कमी करना सम्भव होगा ? इस सिलसिले में कई समस्याओं पर विचार करना पड़ेगा जैसे शिक्षा संस्थाओं द्वारा तैयार किए जाने वाले विद्यार्थियों की संख्या और अपेक्षित जनशक्ति के पूर्वानुमान का समन्वय; लोक और निजी क्षेत्रों में व्यवस्था और प्रशासन में सुधार ताकि हर शिक्षित व्यक्ति का पूरा-पूरा और उचित उपयोग हो सके; शिक्षितों के बीच बेरोजगारी में कमी करना; शिक्षितों के योगदान का परिमाण बढ़ाना; वर्तमान नीतियों का पुनरावलोकन जो 'अति शिक्षा' पर आधारित है, यानी किसी को इंजीनियर बनाने की दृष्टि से शिक्षा देना और फिर उस आदमी से ऐसे काम लेना जो दर-असल मिस्त्री के योग्य है, आदि।

(2) क्या पूर्णकालिक शिक्षा में स्थान (सीटें) कम करना सम्भव होगा ताकि प्रति स्थान पहले की अपेक्षा अधिक धन व्यय करना सम्भव हो सके ? ऐसा करने के लिए अंशकालिक और पत्रव्यवहार शिक्षा का बहुत विस्तार करना होगा और कुल नामांकन के लगभग 50 प्रतिशत को इनके जरिए ही शिक्षा प्रदान करने की व्यवस्था करनी होगी, जैसे, उदाहरण के लिए, इस समय रूस में है।

(3) क्या स्तरों को न गिरने देते हुए भौतिक और वित्तीय निवेश में किफायत करना सम्भव होगा ? इसके लिए इस समय उपलब्ध सुविधाओं का अधिकतम उपयोग करना होगा यह व्यवस्था करनी होगी कि कीमती सामाव का उपयोग कई संस्थाएं मिलकर सहकारिता के आधार पर करें, और देश के अंदर ही साज-सामान तैयार किया जाए, आदि।

ये तथा ऐसी ही अन्य समस्याएं जितनी कठिन हैं उतनी ही महत्वपूर्ण भी हैं। इस समय हम स्तर गिरा कर और प्रति विद्यार्थी व्यय को घटाकर उनसे सहज ही मुंह मोड़ लेते हैं लेकिन यदि शिक्षा का स्तर उठाना है और प्रति छात्र अधिक धन व्यय करता है तो इन समस्याओं का पूरी तरह सामना करना होया और उन्हें दृढ़तापूर्वक सुलझाना होगा।

19.37. **प्रौढ़ शिक्षा**—प्रौढ़ शिक्षा के विकास (जिसमें प्रौढ़ विरक्षरता का उन्मूलन शामिल हैं) के बारे में हमारे प्रस्ताव अध्याय सत्रह में दिए गए हैं। हमारा सुझाव है कि इन कार्यक्रमों पर खर्च की जाने वाली राशि को बढ़ाकर 1975-76 में 7.8 करोड़ रुपए प्रति वर्ष (या कुल व्यय का 0.5 प्रतिशत) कर दिया जाए और 1985-86 तक और भी बढ़ाकर 40.4 करोड़ रुपए (या कुल व्यय का 1.0 प्रतिशत) कर दिया जाए।

18.38. **कुल व्यय**—सारणी 19.15 में शिक्षा के सभी स्तरों और क्षेत्रों पर 1975-76 और 1985-86 में होने वाले कुछ अनुमानित व्यय—आवर्ती और पूंजीगत—के आंकड़े दिए गए हैं।

सारणी 19.15 भारत में शिक्षा का मदवार खर्च (1975-76 और 1985-86)

मद	कुल खर्च (रु० ००० में)		कुल खर्च का प्रतिशत	
	1975-76	1985-86	1975-76	1985-86
आवर्ती				
पूर्व-प्राथमिक	236,956	488,531	1.5	1.2
अवर प्राथमिक	3,749,220	6,129,616	24.1	15.2
उच्चतर प्राथमिक	2,451,567	5,140,287	15.8	12.7
अवर माध्यमिक	2,432,310	7,072,638	15.6	17.5
उच्चतर माध्यमिक	1,312,336	3,643,549	8.4	9.0
निदेश और निरीक्षण	389,050	1,614,560	2.5	4.0
छात्रवृत्तियां	301,680	1,490,240	1.9	3.7
कुल (स्कूल)	10,873,119	25,579,421	69.9	63.4
पूर्व-स्नातक	1,892,766	4,238,963	12.2	10.5
स्नातकोत्तर	1,124,200	4,043,400	7.2	10.0
छात्रवृत्तियां	628,200	2,416,200	4.0	6.0
कुल (उच्चतर शिक्षा)	3,645,166	10,698,563	23.4	26.5
प्रौढ़ शिक्षा	77,810	403,640	0.5	1.0
कुल (आवर्ती)	14,596,095	36,681,624	93.8	90.9
पूंजीगत				
स्कूल शिक्षा	389,050	1,008,890	2.5	2.5
उच्चतर शिक्षा	576,855	2,673,486	3.7	6.6
(कुल पूंजीगत)	965,905	3,682,376	6.2	9.1
कुल जोड़	15,562,000	40,364,000	100.0	100.0

टिप्पणी : पूर्णांकन के कारण जोड़ बराबर नहीं बैठते ।

कुछ सामान्य विचार

19.39. राष्ट्रीय आय की वृद्धि या कुल राष्ट्रीय उत्पादन के शिक्षा पर खर्च किए जाने वाले अंश के बारे में चाहे जो अनुमान लगाए जाएं, पर यह स्पष्ट है कि आने वाले कुछ सालों में हम शिक्षा के लिए इतने धन की व्यवस्था नहीं कर पाएंगे जिससे हमारी शिक्षा का स्तर इतना ऊंचा हो जाए जितना कि औद्योगीकृत देशों में है। हमने यह माना है कि, स्थिर कीमतों पर, प्रति व्यक्ति शिक्षा का कुल व्यय जो 1965-66 में 12 रु० है वह बढ़ते बढ़ते 1985-86 में 31 रु० जाएगा। लेकिन फिर

भी कई औद्योगीकृत देशों में शिक्षा पर जितना पैसा खर्च किया जा रहा है उसकी तुलना में यह नगण्य होगा। उदाहरणार्थ, जापान में शिक्षा का प्रति व्यक्ति कुल व्यय 244 रु० (11,700 येन) है, फ्रांस में 295 रु० (193.63) फ्रांक), रूस में 378 रु० (45.35 रूबल), इंग्लैण्ड में 515 रु० (24.55 पौंड), और अमरीका में 1,175 रु० (156.73 डालर) है।[1] हमारे और इन देशों के शिक्षा के व्यय के स्तरों में इतना अधिक अन्तर है और रहेगा कि हम इन औद्योगीकृत देशों की तकनीकें अपना कर ही अपने देश की समस्याओं का समाधान करने की आशा नहीं कर सकते।

19.40. ऐसी हालत में हमें इष्टतम परिणाम प्राप्त करने के लिए दो उपाय करने होंगे। पहला यह कि हम कुल राष्ट्रीय उत्पाद का अधिक-से-अधिक जितना अंश शिक्षा के विकास के लिए नियत कर सकें, करने का प्रयत्न करें। चूँकि अतिरिक्त साधन प्रायः आर्थिक विकास की प्रक्रिया के जरिए ही उपलब्ध होते हैं, अतः यह आवश्यक हो जाता है कि शिक्षा ऐसी हो जिससे राष्ट्रीय उत्पादन में वृद्धि करने में सहायता मिले, भले ही इसमें कुछ समय का अंतराल आ जाए। बात यह है कि दीर्घकाल में शिक्षा कुछ सीमा तक अपनी वित्तीय आवश्यकताएं स्वयं पूरी करने लगती है क्योंकि अपेक्षाकृत अच्छी शिक्षा पाई हुई श्रमशक्ति की सहायता से पहले की तुलना में अधिक धन पैदा होता है जिससे शिक्षा में लगाने के लिए पहले की तुलना में अधिक साधन उपलब्ध हो सकते हैं।

19.41. दूसरी जरूरत इस सरल किन्तु बुनियादी बात को समझने की है कि यदि हमें एक ऐसी शिक्षा प्रणाली को जन्म देना है जो व्यक्तिगत और राष्ट्रीय आवश्यकताओं को पूरा कर सके तो परम्परागत तौर-तरीके, साधनों के अल्प उपयोग और बर्बादी को रोकना अनिवार्य है। तात्पर्य यह है कि हमें शिक्षा पर खर्च किए जाने वाले एक-एक पैसे से अधिकतम लाभ प्राप्त करना है। इसके लिए मितव्ययिता बरतनी होगी, बर्बादी को रोकना होगा और साज-सामान आदि के अधिकतम उपयोग के उपाय करने होंगे। इन पर अधिक-से-अधिक जोर दिया जाना चाहिए और बड़ी ही गंभीरता के साथ विचार किया जाना चाहिए। यह किस प्रकार किया जा सकता है इसकी चर्चा पिछले अध्यायों में यथास्थान कर दी गई है। लेकिन बात को दोहराए जाने का दोष अपने ऊपर लेकर भी हम ऐसी कुछ बातों का फिर से उल्लेख कर रहे हैं जो वित्तीय दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं :

(1) इमारतों पर यथाशक्य कम-से-कम खर्च किया जाए।

(2) बेहतर डिजाइनें बनाकर, बड़े पैमाने पर उत्पादन करके, और जहां सम्भव हो, काम चलाऊ व्यवस्था करके साज-सामान को अधिक दिनों तक उपयोग में लाया जा सकता है और इस प्रकार मद का खर्च काफी कम किया जा सकता है।

(3) उन तकनीकों को बढ़ावा दिया जाए और बड़े पैमाने पर अमल में लाया जाए जिनसे कतिपय सुविधाओं का लाभ कई स्कूल मिलकर उठा सकें (जैसे देहात के प्राथमिक स्कूलों के लिए चल-पुस्तकालय खोले जा सकते है)।

(4) जिन मामलों में साज-सामान कीमती और परिष्कृत ढंग का हो वहां उनका उपयोग डट कर और सहकारिता के आधार पर दिन के अधिक-से-अधिक समय तक और वर्ष भर लगातार किया जाना चाहिए।

(5) जहां सम्भव हो, स्कूलों की इमारतों का उपयोग दिन में अधिक-से-अधिक समय तक, और अगर जरूरत हो तो रात को भी किया जाना चाहिए।

(6) अभी कुछ साल तक कक्षाएं बड़ी और छात्र-शिक्षक अनुपात ऊंचा ही रहेगा। इस मामले में धनी देशों की बराबरी करना हमारे देश की शिक्षा के लिए अहितकर होगा। विकासशील अर्थव्यवस्था में हमें इस वस्तुस्थिति को स्वीकार करना चाहिए और उचित तकनीकें निकाल कर और कठोर परिश्रम करके परिस्थिति को अनुकूल बनाने का प्रयत्न करना चाहिए।

(7) इस समय हर स्तर पर जो भारी बर्बादी देखने में आती है वह किसी भी तरह उचित नहीं ठहराई जा सकती। हमें निश्चित राष्ट्रीय लक्ष्य मानकर इस बर्बादी को घटाना चाहिए और इस काम में हर शिक्षा संस्था को सक्रिय योगदान करने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। तभी इस समस्या का समाधान सम्भव है।

1. ये सारे आंकड़े 1962 के हैं। रुपयों में बदलते समय अवमूल्यन के बाद की विनिमय दरों का प्रयोग किया गया है।

(8) नित्य का कार्य-समय बढ़ाया जाए और वर्ष में काम के दिनों की संख्या में भी वृद्धि की जाए। अवकाशों का अधिक से अधिक उपयोग किया जाए और उन्हें 'अवकाश सत्र' कहा जाए।

(9) श्रमिकों और ऐसे लोगों की शिक्षा की बढ़ती हुई मांग को पूरा करने के लिए जिन्हें पूर्ण-कालिक संस्थाओं में स्थान देना सम्भव न हो, अंश-कालिक और निजकालिक शिक्षा की अधिकतम व्यवस्था की जाए।

(10) प्रतिभाशाली बच्चों की शिक्षा प्रबन्ध सर्वाधिक अग्रता के आधार पर किया जाना चाहिए।

(11) सभी संस्थाओं में, कम-से-कम समय में, हर दृष्टि से स्तर ऊंचा उठाने के लिए फिलहाल यह आवश्यक है कि शिक्षा के सभी स्तरों, विशेषकर माध्यमिक और उच्चतर शिक्षा, पर कुछ उत्तम केन्द्रों और उच्च कोटि की संस्थाओं का विकास करने पर धन व्यय किया जाए। इसे पर्याप्त अग्रता दी जानी चाहिए।

(12) माध्यमिक और उच्चतर शिक्षा की पूर्णकालिक संस्थाओं में स्थानों (सीटों) की संख्या निर्धारित करने समय जनशक्ति संबधी आवश्यकताओं और शिक्षा के स्तर की ऊंचा बनाए रखने की ओर ध्यान दिया जाना चाहिए; और प्रवेश के लिए समानता पर आधारित चुनाव पद्धति के जरिए नाम तय किए जाने चाहिए।

(13) शिक्षा के उन क्षेत्रों को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए जिनका व्यापक प्रभाव होता हैं, यथा स्नाकोत्तर अध्ययन अथवा अध्यापक शिक्षण; या जिसका उत्पादिता की वृद्धि के साथ सीधा संबंध होता है यथा कृषि और तकनीकी शिक्षा; या फिर जो व्यर्थता को कम करते हैं अथवा उपयोगिता बढ़ाते हैं।

(14) प्रशासनिक और वित्तीय कार्यविधियों की कठोरता के कारण बहुत-सा पैसा बेकार खर्च हो जाता है। इसे रोकने के लिए प्राधिकार लचीले और जहां तक उचित हो, विकेन्द्रित किए जाने चाहिए।

(15) ऐसे कार्यक्रमों के स्थान पर जिनमें बहुत अधिक भौतिक और वित्तीय साधन लगने की संभावना हो, ऐसे कार्यक्रमों पर ज्यादा जोर दिया जाना चाहिए जिनमें मानव प्रतिभा, निष्ठा और कठिन परिश्रम की आवश्यकता अधिक हो (जैसें, पाठ्य पुस्तकें, पढ़ाने और पढ़ने में सहायक उपकरण, अनुसंधान आदि)

(16) शिक्षा के सभी स्तरों पर इष्टतम आकार की संस्थाएं स्थापित करने पर जोर दिया जाना चाहिए क्योंकि इनमें कार्य कुशलता का स्तर ऊंचा होता है और खर्च उतना अधिक नहीं बैठता।

19.42. चूंकि एक अर्द्ध-विकसित अर्थव्यवस्था वाला देश शिक्षा पर प्रति व्यक्ति उतना पैसा खर्च नहीं कर सकता जितना कि विकसित देश करते हैं अतः भारत की शिक्षा के पुनर्निर्माण की समस्याएं हल करने के लिए कोई ऐसा ही आधार ढूंढ़ना होगा जिससे हमारी विशेष आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके। विकसित देशों ने शिक्षा की जो तकनीकें और कार्यक्रम अपनाएं हैं उनके अनुकरण मात्र से हमारा काम नहीं चलेगा। हमें अपनी समस्याओं की जटिलता और शिक्षा को जीवन से, विशेषकर उत्पादकता से, जोड़ने की जरूरत को समझना होगा और ऐसे उपाय निकालने होंगे जिनसे देश की विशिष्ट आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके। हमारा यह निश्चित मत है कि यद्यपि हमें अन्य देशों के अनुभवों से लाभ उठाने के लिए उनके यहां की शिक्षा संबंधी मुख्य घटनाओं का सावधानी पूर्वक अध्ययन करना होगा पर अपने अत्यन्त सीमित साधनों से अधिकतम लाभ प्राप्त करने के हेतु सतत और जोरदार प्रयत्न करने के लिए जिस मौलिक, दृढ़ और गम्भीर चिंतन की आवश्यकता है उसका स्थान कोई चीज़ नहीं ले सकती है।

19.43. इसके लिए हमें शिक्षा के सभी क्षेत्रों में अनुसंधान करना होगा। शैक्षिक अनुसंधान के संबंध में हमने अपने सामान्य प्रस्ताव अन्यत्र दिए हैं।[1] यहां हम केवल शिक्षा की अर्थव्यवस्था और वित्तीय प्रबन्ध की समस्याओं को लेकर अनुसंधान करने की आवश्यकता पर विशेष जोर देना चाहेंगे—इस ओर देश के अर्थशास्त्रियों और शिक्षणशास्त्रियों का ध्यान हाल ही में आकर्षित हुआ है। और बातों के साथ-साथ, शिक्षा की लागत और गुणवत्ता के परस्पर संबंध की बराबर समीक्षा करते रहना परम आवश्यक हैं। ऐसे कार्यक्रम भी अविलम्ब आरम्भ करने चाहिए जिनसे साधनों के एक निश्चित स्तर का निवेश करने से शिक्षा की गुणवत्ता में अधिकतम सुधार

1. अध्याय बारह।

किया जा सके (या एक निश्चित गुणवत्ता की प्राप्ति के लिए न्यूनतम साधनों का निवेश करना पड़े)। हमारी सिफ़ारिश है कि कुछ चुने हुए विश्वविद्यालयों में इस प्रकार के अध्ययनों की व्यवस्था करने के लिए विश्वविद्यालय अनुदान आदोग आर्थिक सहायता दे। स्कूल स्तर के लिए इस प्रकार के कार्यक्रम राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् तथा राज्यों के शिक्षा संस्थानों में चलाए जाएं।

19.44. शिक्षा के कुल खर्च के जो अनुमान इस अध्याय में पहले दिए जा चुके हैं वे निस्संदेह कच्चे अनुमान हैं। जैसा कि हमने जोर देकर कहा है, प्रति इकाई लागत और शैक्षिक उत्पादकता का अध्ययन करने के लिए व्यापक अनुसंधान चाहिए। इन अध्ययनों के प्रकाश में, अनुमानों में बराबर संशोधन करते रहना होगा। हम जानते हैं कि इन अनुमानों की दोनों दृष्टियों से आलोचना की जाएगी। एक ओर तो कुछ लोग यह कहेंगे कि शिक्षा के कुल खर्च के ये अनुमान वांछनीय स्तर से नीचे है और यदि शिक्षा की सही ढंग की तथा परिमाण की दृष्टि से उचित व्यवस्था की जानी है तो इन अनुमानों में बहुत काफी वृद्धि की जानी चाहिए। दूसरी ओर यह कहा जाएगा कि ये अनुमान जरूरत से ज्यादा ऊंचे और अवास्तविक हैं। दरअसल, जरूरी यह है कि रिपोर्ट में शिक्षा की जिस राष्ट्रीय प्रणाली की ओर इशारा किया गया है उसकी तत्काल स्थापना की जानी चाहिए और इसके लिए जितने धन की आवश्यकता है उसे जुटाने के लिए ईमानदारी से कोशिश करनी चाहिए। हां, ऐसा करते समय अनेक विकट चुनाव करने होंगे और खतरे उठाने होंगे। लेकिन विज्ञान के इस युग में, शिक्षा के मामले में निष्क्रियता और आर्थिक संकोच की नीति अपनाने से बढ़कर खतरनाक बात और कोई नहीं हो सकती।

सोत्साह और सतत क्रियान्विति की आवश्यकता

1. पिछले अठारह सालों में भारत सरकार द्वारा दो आयोग और अनेक समितियां नियुक्त की जा चुकी हैं जिन्होंने शिक्षा के भिन्न-भिन्न पहलुओं पर रिपोर्टें दी हैं। इसके अलावा राज्य सरकारों ने भी बहुत-सी समितियां नियुक्त की हैं। जिनकी रिपोटों का स्थानीय और साथ ही साथ, राष्ट्रीय महत्व भी है। बहुत-सी सलाहकार समितियां आदि ने भी शिक्षा के लगभग हर पहलू पर अनेक सिफ़ारिशें की है। इतने पर भी, स्वतन्त्रता के बाद की अवधि में शिक्षा के विकास के काम में बड़ी खामियां रही हैं। जैसा कि इस आयोग की नियुक्ति से सम्बन्धित सरकारी संकल्प में कहा गया है, 'विचार और क्रिया के बीच एक बड़ी ही चौड़ी और चिन्तनीय खाई बनी रही है और शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार लाने वाले कार्यक्रमों को यह संतोषजनक ढंग से नहीं चलाया जा सका है, हालांकि ये कार्यक्रम अच्छे थे और इन पर आम सहमति भी थी।' सच पूछिए तो समस्या के इसी पहलू पर हमें सबसे अधिक ध्यान देना है।

2. हम यह बात जोर देकर कहना चाहते हैं कि आने वाले दिनों में ऐसी नीतियां अपनाने से काम नही चलेगा जिन पर सच्चे दिल से अमल न किया जाए। देश की आर्थिक समृद्धि, उसके जीवन की सामाजिक और राष्ट्रीय संसक्ति, उसके सांस्कृतिक और आध्यात्मिक विकास का स्तर, राष्ट्रों के परिवार में उसका स्थान और मानव के जीवन में उसका योग—यह सब कुछ हमारे पुरुषों और स्त्रियों के स्तर पर निर्भर करता है जो अन्ततः इस बात पर निर्भर है कि हम उन्हें कैसी शिक्षा देते हैं। अतएव, शिक्षा का पुनर्निर्माण हमारे भविष्य के लिए अति महत्व का और तत्काल करने का काम है (इसे अधिक से अधिक एक पीढ़ी के जीवन-काल में समाप्त करना आवश्यक है)। यह असाधारण रूप से कठिन भी है क्योंकि इसे पूरा करने के लिए जन, धन और सामग्री के रूप में जो साधन उपलब्ध हैं वे बहुत ही थोड़े हैं। इस सबके बावजूद शिक्षा के विकास का काम तुरन्त हाथ में लेना आवश्यक है और उसके लिए जोरदार प्रयत्न करने हैं। हम इतिहास के एक ऐसे क्रान्तिक मोड़ पर खड़े हैं जहां हमें शिक्षा या नाश में से एक को चुनना है। यदि हमने अपनी बढ़ती हुई आवश्यकताओं और प्रबल आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए सुदृढ़, संतुलित, प्रभावी और सुविचारित शिक्षा प्रणाली की स्थापना न की तो इतिहास की प्रबल तरंगें हमारे पांव उखाड़ देंगी।

3. **सफल क्रियान्विति के लिए आवश्यक शर्तें**—इस रिपोर्ट में जो सिफ़ारिशें की गई हैं उनकी सोत्साह और सतत क्रियान्विति के लिए यह आवश्यक है कि देश के विकास की राष्ट्रीय योजनाओं में शिक्षा को जो अग्रता अब तक दी जाती रही है उससे कहीं ऊंची अग्रता दी जाए। राष्ट्रीय विकास में शिक्षा के क्रान्तिक योग के सम्बन्ध में निश्चित रूप से प्रतिबद्ध होकर ही हम भारी विकास कार्यों को पूरा करने के लिए आवश्यक मनोवैज्ञानिक वातावरण और ऊर्जा उत्पन्न कर सकते हैं। हमारे विचार में यह मुख्यतः इस बात पर निर्भर है कि हम देश के जीवन, उसकी आवश्यकताओं और आकांक्षाओं के साथ शिक्षा को कितने प्रभावकारी और सुस्पष्ट तरीके से सम्बद्ध कर पाते हैं। यह प्रमुखतः शिक्षाचार्यों का काम है। हमने इस रिपोर्ट में जगह-जगह जोर दिया है कि वांछनीय कदम तत्काल उठाए जाएं।

4. दूसरी तथा इतनी ही आवश्यक बात निष्ठा के साथ कठिन परिश्रम करने की है। आज राष्ट्र को भूख-मरी, बेकारी, बीमारी और गरीबी की चुनौतियों का जिस गम्भीरता से सामना करना पड़ रहा है उतना पहले कभी नहीं करना पड़ा। इन चुनौतियों का सामना करने में हमें जिस बात से बड़ा बल मिल सकता है वह है शिक्षा में नए सिरे से प्राण फूंकने की चेष्टा। लेकिन यह तभी सम्भव है जब हमारे पास आदर्श अध्यापकों और प्रशासकों की पूरी फौज हो। दरअसल अब हमें जीवन के सभी क्षेत्रों में और विशेषकर शिक्षा के क्षेत्र में आदर्शवाद की भारी आवश्यकता है। इसके लिए कोई योजना बनाना शायद आसान न हो लेकिन जब तक हम सही तौर पर आदर्शवाद की स्थापना नहीं कर पाते तब तक हमें अपने विकास कार्यों में काई विशेष सफलता मिलने की आशा नहीं करनी चाहिए।

5. कहने का मतलब यह है कि शिक्षा के क्षेत्र में इस समय सबसे अधिक आवश्यकता कठिन परिश्रम और निष्ठापूर्ण सेवा की है। यह बड़ी चुनौती विशेषकर विद्यार्थियों, अध्यापकों और शिक्षा-प्रशासकों के लिए है कि वे शिक्षा की एक ऐसी प्रणाली को जन्म दें जो लोगों के

जीवन, उनकी आवश्यकताओं और आकांक्षाओं के अनुरूप हो और जिसमें कार्य कुशलता के उच्चतम स्तर बनाए रखे जा सकें। देश का भविष्य इस बात पर निर्भर है कि ये लोग इस चुनौती का किस प्रकार सामना करते हैं।

6. हम इस बात पर जोर दे चुके हैं कि शैक्षिक और राष्ट्रीय पुनर्निर्माण का एक दूसरे से घनिष्ठ संबंध है। हम अपने को आज जिस दुष्चक्र में फंसा हुआ पाते हैं उससे निकलने के लिए सबसे प्रभावकारी उपाय शायद यही है कि शिक्षा के पुनर्निर्माण का कार्य बहुत बड़े पैमाने पर शुरू किया जाए। लेकिन हम यह कह देना चाहेंगे कि शिक्षा के क्षेत्र में तब तक कोई महत्वपूर्ण प्रगति सम्भव नहीं हैं जब तक कि जीवन की बुनियादी समस्याओं का पूरी तरह सामना न किया जाए और उन्हें दृढ़तापूर्वक न सुलझाया जाए। इसी से शिक्षा और राष्ट्रीय विकास के अन्तःसंम्बन्ध का पता चलता है।

7. अन्त में, हम तीन बातों पर जोर देना चाहेंगे जो स्पष्ट हुए भी प्रायः भुला दी जाती हैं।

— किसी आयोग की रिपोर्ट, कार्रवाई की जगह नहीं ले सकती। उससें तो कार्रवाई का सूत्रपात ही हो सकता है। रिपोर्ट को उठाकर रख देने या उस पर कोई कार्रवाई न करने से अच्छा यही हैं कि रिपोर्ट हो ही नहीं, क्योंकि रिपोर्ट सामने आने पर लोगों की आशाएं बंधती हैं और उनके पूरा न होने पर निराशा का वातावरण बनता है।

— इस समय के समाधान में समय का महत्व सर्वाधिक हैं। अगले कुछ दशक बड़े ही क्रान्तिक हैं और देश का भविष्य बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करता है कि आगामी लगभग दस वर्षों में शिक्षा की उन्नति के लिए हम क्या करते हैं। इस रिपोर्ट में की गई कतिपय सिफ़ारिशों पर निर्णय तत्काल किए जाने चाहिए। कार्रवाई फौरन शुरू कर दी जानी चाहिए और आने वाले वर्षों में उसे बराबर तेज करते जाना चाहिए।

— रिपोर्ट पर अमल करने की जिम्मेदारी मुख्य रूप से सरकार—केन्द्र और राज्य—की है। यदि उन्होंने इसे नहीं माना तो कोई और भी इसे नहीं मानेगा, और न ही इस जिम्मेंदारी को निभा सकेगा।

दाव इतना बड़ा है कि उसके महत्व को नकारा नहीं जा सकता। हमारा विश्वास हैं कि इस गंभीर चुनौती का समुचित ढंग से सामना किया जाएगा।

डी. एस. कोठारी
ए. आर. डेवुड
एच. आर. एलविन
आर. ए. गोपालस्वामी
वी. एस. झा
पी. एन. किरपाल
एम. वी. माथुर
वी. पी. पाल
सदातोषी इहारा
एस. पेनांढिकर
रोजर रेवेल
के. जी. सैयदैन
टी. सेन
एस. ए. शुमोवस्की
जीन टॉमस
जे. पी. नायक
जे. एफ. मैकडुगल

नई दिल्ली,
25 जून, 1966

अब जब कि आयोग का कार्य समाप्त हो चुका है, हम यह कहना चाहेंगे कि इसके साथ सम्बद्ध होना हमने बड़ा ही सम्मान पूर्ण समझा है। केवल हमारे साथी सदस्यों ने ही नहीं बल्कि आयोग के कार्य के सम्बन्ध में हम जिन-जिन लोगों के सम्पर्क में आए उनमें से हर एक ने इस आयोग में हमारे सम्मिलित होने की बात को जितनी उदार भावना से समझा और स्वागत किया उसके लिए हमारे मन में बड़ी प्रशंसा के भाव हैं। हम समझते हैं कि हमें आयोग में सम्मिलित होने के लिए निमंत्रित करके जिस प्रकार भारत ने अपनी अन्तर्राष्ट्रीय भावना का परिचय दिया है उसी प्रकार हमारे द्वारा आयोग की सदस्यता स्वीकार करना भी भारत के प्रति अन्य देशों की सद्भावना का प्रतीक माना जाएगा। हम यह जानते हैं कि रिपोर्ट की सिफ़ारिशों पर अमल करना कठिन होगा और उसके लिए बड़े संकल्प की आवश्यकता होगी; लेकिन हमें विश्वास है कि इन्हें मानने और इन पर अमल करने से भारत के लोगों की शिक्षा और उनकी समृद्धि की दिशा में निश्चित प्रगति होगी।

एच. एल. एलविन
सदातोषी इहारा
रोजर के रेवेल
एस. ए. शुमोवस्की
जीन टॉमस

अनुपूरक टिप्पणी-एक

देहाती तथा नागरिक स्थानीय प्राधिकरणों को राज्य सरकारों द्वारा सहायक अनुदान : शिक्षा के वित्तीय आभरण के लिए केन्द्र और राज्यों के बीच सम्बन्ध

1. हम यह सिफ़ारिश कर चुके हैं कि जिलों में स्कूली शिक्षा का प्रशासन ज़िला स्कूल बोर्डों को और अपेक्षाकृत बड़ी म्यूनिसिपैल्टियों में म्यूनिसिपल स्कूल बोर्डों को दे दिया जाए। हमने यह भी सुझाव दिया है कि छोटी म्यूनिसिपैल्टियों को अपने क्षेत्र में शिक्षा के प्रशासन से सम्बद्ध किया जाए और उन्हें शिक्षा पर होने वाले खर्च का कुछ भार उठाने दिया जाए। इस टिप्पणी में इस बारे में कुछ सुझाव दिए जाएंगे कि इन निकायों को शिक्षा के लिए दिए गए सहायता अनुदान का उपयोग स्थानीय धन-संग्रह को प्रोत्साहित करने के लिए किस तरह किया जाए और शिक्षा के लिए अधिक राजस्व किस प्रकार इकट्ठा किया जाए। हम प्रसंगतः यह चर्चा भी करेंगे कि शिक्षा के वित्तीय आभरण के संदर्भ में केन्द्र और राज्यों के बीच खर्च उठाने का क्या अनुपात होना चाहिए।

2. **ज़िला स्कूल बोर्डों को सहायक अनुदान**— ज़िला परिषदों को शिक्षा के लिए भूमि के लगान पर उपकर लगाने का अधिकार है। इस प्रसंग में सिफ़ारिश यह है कि राज्य जिला परिषदों के लिए इस उपकर की न्यूनतम मात्रा निश्चित कर दें और उनको यह अधिकार दे दें कि वे उसको स्वेच्छा से निर्धारित अधिकतम सीमा तक बढ़ा सकें। इस अधिकार का उपयोग करने का प्रोत्साहन देने के लिए इस बात की गारन्टी दी जाए कि इस प्रकार वे जितना धन एकत्र करेंगी उसका कुछ अनुपात सहायता अनुदान के रूप में उन्हें दिया जाएगा। महाराष्ट्र राज्य में इसी प्रकार की युक्ति अपनाई गई हैं और यह पाया गया है कि अधिकांश जिला परिषदों ने अपना उपकर काफी बढ़ा लिया है। अन्यत्र भी ऐसा ही सुपरिणाम संभव है।

3. स्थानीय निकायों को सहायता अनुदान देने की पद्धति में संशोधन की आवश्यकता हैं। इस संबंध में वर्तमान पद्धतियों के विश्लेषण करने पर। इनमें काफी अंतर पाया गया हैं। कुछ राज्यों में सहायता अनुदान घाटे की पूर्ति के लिए दिए जाते हैं। सामान्य रूप से यह अनुभव हुआ कि जो जिले राजनीतिक दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण हैं अथवा अधिक शोर मचाने वाले हैं उनको इस पद्धति के अधीन अधिकांश लाभ प्राप्त हुए हैं लेकिन गरजमंद और पिछड़े इलाके रह गए हैं। साथ ही कमखर्ची के लिए कोई प्रलोभन भी नहीं है। जब समानुपातिक अनुदान कुल खर्च के प्रतिशत के रूप में दिए जाते हैं तो अपेक्षाकृत धनी जिलों को अनुदान की बड़ी राशियां प्राप्त हो जाती है। और 'अनुमोदित' तथा स्वीकार्य सम्बन्धी अनेक समस्याएं उठ खड़ी होती हैं। एक मुश्त अनुदान धीरे-धीरे रूढ़ हो जाते हैं और खास कर ऐसी स्थितियों के लिए उपयुक्त नहीं सिद्ध होते जब खर्च तेजी से बढ़ रहे हों। इस प्रकार वर्तमान पद्धतियों पर विहंगम दृष्टि डालने के पश्चात् हमारा सुझाव है कि ज़िला परिषदों के सम्बन्ध में सहायता अनुदान की कार्यविधियों में संशोधन नीचे दी बातों के अनुसार किया जाए :

(1) अध्यापकों और सरकार द्वारा स्वीकृत अन्य प्रशासनिक तथा पर्यवेक्षी कर्मचारियों के वेतन और भत्तों के लिए सहायता अनुदान 100 प्रतिशत आधार पर होना चाहिए। अध्यापकों की वांछित संख्या की गणना के लिए कुछ आधारभूत नियम होने चाहिए (उदाहरणार्थ, कुल विद्यार्थियों की संख्या के आधार पर)। प्रशासनिक और पर्यवेक्षी कर्मचारियों की संख्या अध्यापकों के अनुपात से निश्चित की जा सकती है।

(2) शिक्षकेतर व्यय के अतिरिक्त खर्च के लिए प्रति बालक के हिसाब से एक मुश्त सहायता दी जानी चाहिए। ऐसे अनुदान का परिणाम हर वर्ग के स्कूल के लिए अलग-अलग नियत

कर दिया जाना चाहिए और इसको हर तीन पांच साल के भीतर दुहरा लेना चाहिए ।

(3) जिला परिषद द्वारा एकत्रित स्थानीय धन राशि और उस पर प्राप्त राज्य-अनुदान दोनों जिला परिषद के पास ही रखने दिए जाएं ताकि उसे आवश्यकतानुसार विकास कार्यों पर खर्च पर किया जा सके ।

(4) अनावर्ती व्यय पर सहायक अनुदान, व्यय का लगभग दो तिहाई दिया जाए तो अच्छा ।

जिला परिषदों को अनुदान प्रमुखत: शिक्षा सम्बन्धी अवसरों की प्राप्ति में समानता पाने के उद्देश्य से दिया जाए । अध्यापकों के पदों की मंजूरी देने, प्रति छात्र आवर्ती सहायक अनुदान तिश्चित करने या अनावर्ती अनुदात का अनपात निश्चित करने में इसी सिद्धान्त को दृष्टि में रखना चाहिए । इसके अलावा वित्तीय वर्ष के अन्त में सहायता अनुदाम की बाकी राशि को यथावत् रहने देना जाहिए उसे समाप्त न हो जाने दिया जाए । इससे कम खर्ची को बढ़ावा सिलता है और साधनों का उपयोग सावधानी से होता है ।

4. **नगरपालिकाओं को सहायक अनुदान**—परिमाण की दृष्टि से नगरपालिकाओं की निधियों की महत्ता ज़िला परिषदों द्वारा एकत्रित धन की अपेक्षा अधिक है । कारण यह है कि शहरी क्षेत्रों में उद्योगीकरण, शहरीकरण तथा फलस्वरूप उनका लगातार विकास होता जा रहा है । अंग्रेजों के समय में प्रांतों में 1882 से ही नगरपालिकाएं प्राथमिक शिक्षा के आभरण के लिए धन देती थीं । इस प्रकार एक परम्परा बत गई । हम देखते हैं कि बम्बई जैसी नगरपालिकाएं शिक्षा पर प्रतिवर्ष लाखों रुपए खर्च करती है । इसके विपरीत पहले की रियासतों में प्राथमिक शिक्षा नगरपालकाओं को नहीं दी गई थी और न वे इस के लिए खर्च ही करती थीं । हैदराबाद, बंगलूर या ग्वालिबर जैसी बड़ी-बड़ी नगरपालिकाएं प्राथमिक शिक्षा के लिए कुछ भी अंशदाब नहीं दे रही हैं । इसमें तुक नहीं है कि समृद्ध नागरिक क्षेत्रों पर शिक्षा की कोई जिम्मेदारी न डाली जाए । हमारी सिफ़ारिश है कि सभी नगरपालिकाओं को इस बात के लिए बाध्य किया जाना चाहिए कि वे भूमि और इमारतों पर उपकर लगाकर अपने क्षेत्रों में शिक्षा के खर्च का कुछ भाग अवश्य वहन करें । इसके लिए नागरिक क्षेत्रों में वास्तविक जायदाद के सालाबा किराय-मूल्य पर अगर कम-से-कम 2 प्रतिशत भी उपकर लगाया जाए तो शिक्षा के लिए ऐसी पर्याप्त राशि प्राप्त हो सकती है जो आगे भी बढ़ती ही जाए ।

5. स्कूल शिक्षा के लिए नगरपालिकाओं को अनुदान देने की प्रणाली निश्चित करते समय यह याद रखना आवश्यक है कि अपने धन और शिक्षा के आभरण की क्षमता की दृष्टि में नगरपालिकाओं में परस्पर बहुत अंतर है । उदाहरण के लिए शिक्षा के लिए धन एकत्र करने में 5 से 15 हजार की आबादी वाली नगरपालिकाओं की क्षमता बम्बई जैसे बड़े निगम की क्षमता की तुलना में बहुत ही सीमित होगी । इसलिए सहायता अनुदान के लिए ऐसी प्रणाली होनी चाहिए जो नगरपालिकाओं के हर वर्ग के लिए अलग-अलग हो । हमारी राय में सबसे अच्छा यह होगा कि कोई ऐसी पद्धति ग्रहण की जाए जिसके अधीन नगरपालिकाएं अपने धन के आधार पर वर्गों में बांट दी जाएं और अपेक्षाकृत धनहीन वर्ग की नगरपालिकाओं की धनी वर्ग की नगरपालिकाओं की अपेक्षा अधिक सहायता अनुदान दिया जाए । वैसे तो 1937 में ही यह सिद्धान्त तत्कालीन बम्बई राज्य की काले समिति ने निश्चित किया था और इसके अनुसार कार्य करने का काफी अनुभव गुजरात और महाराष्ट्र राज्यों को प्राप्त हो चुका है ।[1] यदि अन्य प्रदेश भी इस कार्यक्रम को ग्रहण करें तो उन्हें काफी सहायता मिल सकती है ।

6. सबसे अधिक धनी वर्ग के बड़े निगमों जैसे बम्बई, मद्रास, कलकत्ता या दिल्ली के बारे से अलग से ही 'विचार' करना उचित होगा । इस समय स्थिति में बहुत अन्तर है । बम्बई निगम के लिए राज्य सरकार जो एकमुश्त अनुदान देती है यह शिक्षा के कुल खर्च 540 लाख में से 68 लाख बैठता है । कलकत्ता में निगम लगभग 38 लाख रुपया खर्च करता है, और उसे कोई अनुदान नहीं मिलता । मद्रास में बिल्कुल यही नियम छोटी-बड़ी सभी नगरपालिकाओं के लिए लागू है । इस समय मद्रास निगम को 134 लाख के कुल खर्च पर 41 लाख का सरकारी अनुदान प्राप्त होता हैं । कई बड़े निगमों, जैसे, हैदराबाद पर शिक्षा सम्बन्धी कोई जिम्मेदारी नहीं हैं । यह वांछनीय है कि कम-से-कम प्राथमिक शिक्षा की जिम्मेदारी हर निगम उठाए और उसको आनुपातिक आधार पर, अर्थात्, निगम के साधनों के आधार पर हर निगम के लिए कुछ प्रतिशत सहायक अनुदान दिया जाए । यह सिद्धान्त उन बड़ी नगरपालिकाओं पर भी लागू हो जिनमें स्कूल बोर्ड हों । अंतर सिर्फ यह होगा कि सहायक अनुदान की प्रतिशत निगमों की तुलना में सासान्य रूप से अधिक हो ।

1. ऐसी ही सिफ़ारिश स्थानीय स्वायत्त सरकार की केन्द्रीय परिषद, 1963 द्वारा गठित मंत्री समिति ने की थी ।

7. छोटी नगरपालिकाओं का अंशदान तो और भी कम होगा। सामान्य रूप से उन पर अध्यापकेतर सभी खर्च डाल दिए जाने चाहिए (अध्यापकों का खर्च राज्य सरकार पूरा का पूरा उठाए) और इस खर्च को वे भूमि और इमारतों पर उपकर लगाकर तथा राज्य सरकार द्वारा इसके लिए दिए गए अनुदान की सहायता से पूरा करें, राज्य सरकारें यह अनुदान समीकरण के आधार पर दें।

8. **समीकरण**—यहाँ जिला परिषदों और नगरपालिकाओं को राज्य सरकार की ओर से समीकरण के आधार पर सहायता अनुदान देने की सिफ़ारिश की गई है। यहां इस समीकरण के सिद्धान्त की व्याख्या जरूरी है। इस सिद्धान्त पर अमेरिका में कई सालों से बड़ी सफलता के साथ काम हो रहा है। समीकरण का मुख्य विचार यह है कि स्थानीय प्रयत्न के फलस्वरूप स्थानीय निकाय को प्रति बालक सुनिश्चित खर्च उठाने के योग्य होना चाहिए। उदाहरणार्थ क और ख वामक दो नगरपालिकाओं के बारे में हम मान लें कि

— प्राथलिक शिक्षा में समीकरण की सीमा आवर्ती खर्च के रूप में 50 रु० प्रति बालक नियत की गई है;

— यह तय हुआ है कि हर नगरपालिका प्राथमिक शिक्षा के लिए अपने क्षेत्र में वास्तविक सम्पत्ति के सालाना किराए पर 2 प्रतिशत के हिसाब से धन देगी।

— इस दर के अनुसार क नगरपालिका में 10 रु० प्रति बालक और ख नगरपालिका में प्रति बालक के हिसाब से 20 रु० प्राप्त हुआ, तो इस परिस्थिति में राज्य सरकार की ओर से क और ख नगरपालिकाओं को प्रति बालक 40 रु० और 30 रु० के हिसाब से अनुदान मिलेगा।

9. **शिक्षा के लिए वित्त देने में केन्द्रीय सरकार का योग**—ऊपर कहा जा चुका है कि शिक्षा सम्बन्धी खर्च में 'सरकारी राशि' वर्तमान 71 प्रतिशत से बढ़ा कर लगभग 90 प्रतिशत[1] करनी होगी। इसमें केन्द्रीय और राज्य सरकार दोनों का अंशदान सम्मिलित है। इस यात को स्पष्ट करने के लिए केन्द्रीय सरकार के अंशदान की अलग से चर्चा करना आवश्यक है। शेष भाग पूरा करने की जिम्मेदारी राज्य सरकारों की होती है, अर्थात्, केन्द्रीय सरकार, स्थानीय निकाय तथा अन्य स्रोतों से प्राप्त अंशदान को छोड़कर आवश्यक धन जुटाने की जिम्मेदारी राज्य सरकारों की होती है।

10. भारत सरकार शैक्षिक कार्यों के लिए प्रांतों को 1870 (जब पहले पहल शिक्षा के विकेन्द्रीकरण के पश्चात् उन्हें अधिकर दिए गए) से 1921 तक विशेष अनुदान देती थी। ये अनुदान 1902 और 1914 के बीच बहुत बड़े थे। केन्द्रीय राजस्व की दृष्टि से यह समय आधिक्य (बूम) का था। 1921 में जब शिक्षा प्रान्तों में भारतीय नियंत्रण के अधीन कर दी गई थी तब ये अनुदान बंद कर दिए गए थे। स्वतन्त्रा के बाद की यह भी एक महत्वपूर्ण घटना है कि शिक्षा के लिए केन्द्रीय सरकार ने सहायता जारी की थी और यह सहायता पहली तीन आयोजनाओं में लगातार बढ़ती ही गई। इनके अलावा शिक्षा सम्बन्धी बहुत से प्रत्यक्ष खर्चे भी केन्द्र सरकार उठाती जा रही है। केन्द्र सरकार द्वारा दी गई इन दो प्रकार की सहायताओं पर अलग से विचार करना आवश्यक है।

11. **शिक्षा पर केन्द्र का प्रत्यक्ष खर्च**—सारणी 19.16 में 1950-51 से 1960-61 के बीच शिक्षा पर केन्द्र के प्रत्यक्ष खर्च का क्रमिक विकास दिखाया गया है; यही वह सबसे बाद की अवधि की है जिसके खर्च सम्बन्धी आंकड़े उपलब्ध हैं।

यह देखा जा सकता है कि शिक्षा पर केन्द्र का कुल खर्च 1950-51 में 350 लाख रुपए से बढ़कर 1950-61 में 2,960 लाख रु० हो गया है, अर्थात्, खर्च में वृद्धि 23.7 प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से हुई है; यह बृद्धि शिक्षा पर होने वाले कुल खर्च की तुलना में, जो प्रतिवर्ष 11.7 प्रतिशत की दर से बढ़ी है, काफी अधिक है। यह द्रष्टव्य है कि सरकार का शिक्षा सम्बन्धी अधिकांश खर्च उच्चतर शिक्षा और इमारतों तथा छात्रबृत्तियों पर होता है: ये छात्रवृत्तियां भी अधिकांशतः उच्चतर शिक्षा के लिए ही होती हैं। यह वास्तव में उच्चतर शिक्षा के क्षेत्र में समंजन स्थापित करने तथा स्तर बनाए रखने की दिशा में भारत सरकार की वैधानिक जिम्मेदारी के अनुकूल है।

1. हम आशा करते हैं कि फीस (3 प्रतिशत) स्थानीय सिकायों के अंशदान (4 प्रतिशत) और व्यक्तियों द्वारा दिए गए दान और अंशदाय (3 प्रतिशत) की सहायता से 10 प्रतिशत की बचत राशि की उपलब्धि हो सकेगी।

सारणी 19.16 केन्द्रीय सरकार की निधि से मदानुसार शैक्षिक खर्च (1950-51 से 1960-61)

संस्था का प्रकार/मद	शिक्षा पर केन्द्रीय सरकार की निधि से खर्च			
	(राशि 000 में)		केन्द्रीय सरकार की निधि से किए गए कुल खर्च के माद से लक्ष्य पर किए खर्च का प्रतिशत	
	1950-51	1960-61	1950-51	1960-61
प्रत्यक्ष खर्च				
पूर्व प्राथमिक स्कूल	—	187	—	0.1
अवर प्राथमिक स्कूल	468	17,943	1.3	6.1
उच्चतर प्राथमिक स्कूल	308	11,914	0.9	4.0
माध्यमिक स्कूल	2,229	6,412	6.3	2.2
अध्यापक प्रशिक्षण स्कूल	—	1,778	—	0.6
व्यावसायिक शिक्षा के स्कूल (अध्यापक प्रशिक्षण को छोड़ कर)	1,720	9,241	4.9	3.1
विशेष शिक्षा के स्कूल	104	1,087	0.3	0.4
उच्चतर शिक्षा के लिए विश्वविद्यालय और संस्थाएं	11,591	58,962	32.9	19.9
अध्यापक प्रशिक्षण कालेज	136	1,100	0.4	0.4
वृत्तिक शिक्षा के कालेज (अध्यापक प्रशिक्षण को छोड़कर)	7,928	30,255	22.5	10.2
विशेष शिक्षा के कालेज	127	1,378	0.4	0.5
जोड़ (प्रत्यक्ष खर्च)	24,611	140,259	69.8	47.4
परोक्ष खर्च				
निदेशन और निरीक्षण	—	6730	—	0.2
इमारतें	8278	1114470	23.5	37.7
छात्रवृत्तियां और वित्तीय रिआयतें	1769	324780	5.0	11.0
छात्रावास प्रभार	158	11060	0.4	0.4
विविध	431	98150	1.2	3.3
जोड़ (अप्रत्यक्ष खर्च)	10,636	155,519	30.2	52.6
कुल जोड़	35,247	295,778	100.0	100.0

ध्यान दें : संख्याओ के पूर्णांकन के कारण जोड़ आपस में मेल नहीं खाते ।

स्रोत : शिक्षा मंत्रालय भारत सरकार का फार्म ए

12. तीसरी योजना में शिक्षा पर केन्द्रीय खर्च 18 प्रतिशत वार्षिक के हिसाब से और भी ज्यादा बढ़ा, जैसा नीचे दिखाया गया है। विभिन्न क्षेत्रों में इस खर्च का ब्योरेवार विभाजन उपलब्ध नहीं है।

सारिणी 19.17 तीसरी योजना में शिक्षा पर केन्द्रीय खर्च का बजट

वर्ष	भारत सरकार के खर्च का बजट (राज्यों को अनुदान छोड़कर) (रु० ०००० में)
1961-62	333,428
1962-63	459,636
1963-64	428,794
1964-65	617,938
1965-66	756,194

13. आगामी दिनों में केन्द्र को केन्द्रीय क्षेत्र का विस्तार करके शिक्षा पर और अधिक वित्तीय जिम्मेदारी उठानी होगी। इस विषय पर हमारे प्रस्ताव उपर्युक्त संदर्भ में इस रिपोर्ट के अध्यायों में सविस्तार दिए गए हैं। संदर्भ रूप में यहां हम कुछ थोड़े से वे कार्यक्रम दे रहे है जो केन्द्रीय क्षेत्र में सम्मिलित किए जाने हैं।

(1) राष्ट्रीय छात्रवृत्तियों के कार्यक्रम में विस्तार।

(2) पिछड़े वर्गों के लिए छात्रवृत्तियों के कार्यक्रम में विस्तार;

(3) विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के लिए निम्नलिखित मदों पर अधिक धनराशि का वियतन;

— उच्चतर अध्ययन केन्द्र और प्रमुख विश्वविद्यालयों का विकास;

— कुछ चुने विश्वविद्यालयों में प्रशिक्षण शालाओं का विकास;

— स्नातकोत्तर शिक्षा और अनुसंधान का विकास;

— राज्य विश्वविद्यालयों के लिए अनुरक्षण अनुदान की व्यवस्था;

— केन्द्रीय परीक्षण संगठन की स्थापना; और

— आधुनिक भारतीय भाषाओं में साहित्य की वृद्धि।

(4) कृषि, इंजीतियरी और चिकित्सा की शिक्षा का विकास।

(5) शैक्षिक अनुसंधान को प्रोत्साहन।

14. **शिक्षा के लिए राज्यों को केन्द्रीय अनुदान**—वित्तीय आयोग ने राज्यों के लिए जिन केन्द्रीय अनुदानों की व्यवस्था की है यहां उसकी चर्चा नहीं की जा रही क्योंकि वे शिक्षा के लिए नियत नहीं हैं। पंचवर्षीय योजनाओं के अधीन किए हुए विकास अनुदान ही इसके लिए वियत किए गए हैं और उनके आंकड़े सारणी 19.18 में दिए गए हैं।

सारिणी 19.18 केन्द्रीय और राज्य सरकार की निधियों में से शिक्षा पर खर्च (राजस्व लेखा) (1951-52 से 1965-66)

रुपए दस लाखों में

वर्ष	शिक्षा पर राजस्व खर्च			केन्द्र, राज्य और केन्द्र शासित प्रदेशों का सम्मिलित राजस्व खर्च	केन्द्र में राज्य सरकारों को सहायता अनुदान (स्तंभ 4 में से स्तंभ 5 को घटाकर)
	केन्द्र	राज्य और केन्द्र शासित प्रदेश	जोड़ (केन्द्र और राज्य अनुदान सहित		
1	2	3	4	5	6
1951-52	40.8	602.8	643.6	641.3	2.3
1952-53	33.2	688.0	721.2	714.4	6.8
1953-54	43.0	757.5	800.5	785.8	14.7
1954-55	24.3	859.6	883.9	899.7	15.8
1955-56	142.3	1,037.9	1,180.2	1,104.3	75.9
1956-57	194.4	1,142.4	1,336.8	1,134.2	202.6
1957-68	209.8	1,304.4	1,514.2	1,477.6	36.6
1958-59	278.9	1,472.4	1,751.3	1,634.7	116.6
1959-60	366.9	1,709.0	2,075.9	1,897.0	178.9
1960-61	437.9	1,954.1	2,392.0	2,152.2	239.8
1961-62	513.3	2,344.8	2,858.1	2,604.0	254.1
1962-63	500.2	2,505.9	3,006.1	2,788.3	217.8
1963-64	570.8	2,833.3	3,404.1	3,138.1	266.0
1964-65 (पुनरीक्षित प्राक्कलन)	741.0	3,293.6	4,034.6	3,693.3	341.3
1965-66 (बजट प्रक्कलन)	880.4	3,759.8	4,640.2	4,268.2	372.0

स्रोत : इन्डियन इकोनामिक स्टैटिस्टिक्स, भाग 2, पब्लिक फाइनैन्स, वित्त मंत्रालय द्वारा प्रचारित

टिप्पणी-1. इन आंकड़ों का सम्बन्ध केवल शिक्षा मंत्रालय के शिक्षा व्यय से है और इसमें अन्य मंत्रालयों तथा विभागों द्वारा शिक्षा पर किया गया खर्च शामिल नहीं है।

2. 1954-55 के आंकड़े गलत मालूम होते हैं, ब्योरे उपलब्ध न होने के कारण ये ठीक नहीं किए जा सके।

15. **केन्द्र प्रायोजित क्षेत्र**—ये अनुदान दो वर्गों में बांटे जा सकते हैं :

(1) राज्यों की योजना में सम्मिलित स्कीमों के लिए सहायक-अनुदान;

(2) केन्द्र प्रायोजित क्षेत्र के अधीन सहायक अनुदान। हमारा इरादा प्रथम वर्ग पर विचार करने का नहीं है। इस वर्ग के अनुदान राज्यों की संपूर्ण योजनाओं पर केन्द्रीय सहायता के अंग होते हैं और उनका परिमाण तथा इनकी प्रकृति हर योजना में भिन्न-भिन्न होती है। हमारा

विशेष सम्बन्ध दूसरे वर्ग, अर्थात् केन्द्र प्रायोजित क्षेत्र के अधीन सहायक अनुदान, से हैं। यहां यह स्मरणीय है कि हम केन्द्र प्रायोजित क्षेत्र में बड़े पैमाने पर प्रसार के बारे में सिफारिश कर चुके हैं और इस क्षेत्र के अधीन हमने अनुदान के लिए जिन योजनाओं की सिफ़ारिश की है, वे निम्नलिखित है :

(1) अध्यापकों का प्रशिक्षण;

(2) माध्यमिक स्तर पर व्यावसायिक शिक्षा का प्रारम्भ;

(3) राज्य की शिक्षा संस्थाओं का विकास;

(4) बच्चों और अध्यापकों के लिए साहित्य निर्माण; और

(5) स्कूल स्तर पर अच्छी संस्थाओं का विकास।

इसी प्रकार के अन्य कार्यक्रमों का उल्लेख रिपोर्ट के विभिन्न भागों में प्रसंगानुसार किया गया है।

16. केन्द्र प्रायोजित क्षेत्र के प्रशासन से सम्बन्धित कुछ समस्याओं पर भी विचार करने की आवश्यकता है। इस प्रसंग में हमारी सिफ़ारिशें इस इस प्रकार हैं :

(1) केन्द्र प्रायोजित क्षेत्र में शामिल करने के लिए कार्यक्रमों का चुनाव करते समय राज्य सरकारों से परामर्श किया जाए।

(2) कार्यक्रमों को केन्द्रीय क्षेत्र में शामिल करने की कसौटी यह है कि वे अतीव महत्वपूर्ण और राष्ट्रीय स्तर के हों। ऐसे कार्यक्रम जिनके लिए देश के विभिन्न भागों में एक-सी नीति ग्रहण करने की हो केन्द्र प्रायोजित क्षेत्र में शामिल करने के लिए उनकी तरजीह दी जानी चाहिए।

(3) राज्यों को स्थानीय आवश्यकताएं काफी भिन्न होती हैं इसलिए केन्द्र प्रायोजित क्षेत्र में ऐसे कार्यक्रम शामिल करना वांछनीय होगा जो हर राज्य में भिन्न-भिन्न हों। इसका एक ढंग यह हो सकता है कि केन्द्र प्रायोजित क्षेत्र के अधीन कुल जितना धन उपलब्ध हो, उसको दो हिस्सों में बांट लिया जाए; उसमें से लगभग आधा उपर्युक्त राष्ट्रीय कार्यक्रमों के लिए दे दिया जाए, शेष आधा राज्य सरकारों को किसी समुचित आधार पर दिया जाए। भारत सरकार की मंजूरी से किसी भी महत्वपूर्ण अथवा स्थानीय स्थिति के अनुसार आवश्यक योजना के लिए उसका उपयोग करने की छूट राज्यों को दी जानी चाहिए।

(4) केन्द्र प्रायोजित योजनाओं को सहायता प्रायः योजना की अवधि तक मिलती रहती है। अक्सर यह सम्भव नहीं होता कि योजना के प्रारम्भ में नई प्रायोजित योजनाएं चालू की जा सकें और योजनाएं विलम्ब से चालू की जाएं तो राज्य सरकारें उन्हें लेने के लिए तत्पर नहीं होती, क्योंकि उनको पूरी वित्तीय सहायता उपलब्ध नहीं होती। इसलिए यह वांछनीय है कि केन्द्र प्रायोजित योजनाओं के लिए राज्यों को केन्द्रीय सहायता पंच-वार्षिक अवधि के लिए दी जाए न कि योजना अवधि के लिए। केन्द्र प्रायोजित क्षेत्र की कुछ महत्वपूर्ण योजनाओं के लिए केन्द्रीय सहायता अधिक समय, अर्थात्, 10 साल तक के लिए भी दी जानी चाहिए।

अनुपूरक टिप्पणी-दो

स्कूल शिक्षा के विकास (1966-85) पर खर्च का अनन्तिम अनुमान

1. इस टिप्पणी का उद्देश्य स्कूल शिक्षा पर आदर्ती और पूँजीगत खर्च का अनंतिम अनुमान प्रस्तुत करना हैं। अनुमान केवल दो वर्षों, 1975-76 और 1985-86, के लिए दिए गए हैं।

पूर्व-प्राथमिक शिक्षा

2. पूर्व-प्राथमिक शिक्षा के विकास के लिए अध्याय आठ में सविस्तार प्रस्ताव दिए गए हैं।

3. अनुमान किया जाता है कि इस स्तर पर छात्रों की संख्या इस प्रकार होनी :

(क) 1965-66 में पूर्व प्राथमिक शिक्षा में 250,000 छात्र थे। हम आशा करते हैं कि यह संख्या 1975-76 में 5 लाख और 1975-76 में 24 लाख हों जाएगी।

(ख) दूसरी श्रेणी में (उन राज्यों की कक्षा 1 में जिनमें स्कूल पाठ्यक्रम मैट्रीकुलेशन तक 11 साल का है और असम और नागालैंड की शिशु कक्षा ए और बी में) 1965-66 में छात्रों की संख्या 115 लाख थी। लेकिन इसमें 5-6 वर्ष तक में ही बच्चे शामिल नहीं हैं बल्कि पांच साल से कम के भी कुछ बच्चे शामिल है और अधिक अनुपात छह वर्ष से ऊपर के बच्चों का है। भविष्य में इस बात की चेष्टा की जानी चाहिए कि इसमें पहले से पहले से पंजीयन की प्रथा लागू की जाए, अर्थात्, इस कक्षा में सिर्फ 5 वर्ष के ही बच्चे भरती किए जाएं। साथ ही सभी बड़े बच्चे प्राथमिक स्कूल की कक्षा 1 में पहुंचा दिए जाएं। इस पद्धति से 5-6 वर्ष के अधिकाधिक बच्चे इसमें आने लगेंगे (1985-86 में 5-6 वर्ग के बच्चों के 50 प्रतिशत तक भरती करने का लक्ष्य रखा गया है।) और बड़े बच्चे कक्षा में चले जाएंगे। चूंकि दोनों पद्धतियां साथ-साथ चलेंगी हमने मान लिया है कि इस स्तर पर छात्रों की संख्या समान, अर्थात्, 1976-76 और 1685-86 दोनों में 100 लाख रहेगी। छात्रों की संख्या के ब्योरे इस प्रकार होंगे :

(000ों में)

	1965-66	1975-76	1885-86
पूर्व-प्राथमिक मुख्य आयु वर्ग 3-5	250	513	2,352
पूर्व प्राथमिक (अन्य प्रकार के); आयु-वर्ग 5-6	11,523 (इसमें बहुत से बड़ी उम्र के बच्चे हैं)	9,487 (बड़ी उम्र के भी बच्चे हैं)	7,648 (इनमें लगभग 50 प्रतिशत बच्चे 5-6 आयु वर्ग के हैं)
जोड़	11,773	10,000	10,000

4. मुख्य पूर्व प्राथमिक शिक्षा पर लागत का अनुमान इस प्रकार है :

	1975-76	1985-86
(1) एक अध्यापक का औसत वार्षिक वेतन (रु०)	1,800	2,500
(2) 10 प्रतिशत अवकाश ग्रहण लाभ जोड़कर (रु०)	180	250
कुल (अध्यापकों पर लागत)	1,980	2,750
(3) अध्यापकेतर लागत ऊपर की आधी (रु०)	990	1,375
कुल लागत रु०	2,970	4,125
(4) छात्र अध्यापक अनुपात (रु०)	40	40
(5) प्रति छात्र लागत (रु०)	74.3	103.1

5. अन्य प्रकार की पूर्व प्राथमिक शिक्षा के लिए प्रति छात्र 20 रु० 1975-76 के लिए और 30 रु० प्रति छात्र 1985-86 के लिए अनुमानित की गई है।

6. कार्यक्रम की कुल आवर्ती लागत इस प्रकार होगी :

	1975-76 (रु० 000 में)	1985-86 (रु० 000 में)
(1) राज्य स्तर के केन्द्र रु० 100,000 प्रति केन्द्र की दर से	1,600	1,600
(2) जिला स्तर के केन्द्र रु० 50,000 प्रति केन्द्र की दर से (150, 1975-76 में और 300, 1985-86 में)	7,500	15,000
(3) स्टैन्डर्ड प्रकार की पूर्व प्राथमिक शिक्षा	38,116	2,42,491
(4) अन्य प्रकार की पूर्व प्राथमिक शिक्षा	1,89,740	2,29,440
	2,36,956	4,88,531

अवर प्राथमिक शिक्षा

7. इस स्तर पर हमने 150-250 रु० के वेतन मान की सिफारिश की है जो वरण ग्रेड पर फिर 300 रु० तक है। इस वेतन मान का 1975-76 में औसत 1,800 रु० (1965-66 में 1045) और 1985-86 में 2500 होगा।

8. अध्यापकेतर खर्च 1985-86 में (जो इस समय सिर्फ 3 रु० है) प्रति छात्र बढ़ाकर 12 रु० इस प्रकार होना :

	रु०
(1) पुस्तकों तथा लेखन सामग्री की निःशुल्क पूर्ति	5
(2) साज-सामान (30 रु० प्रति छात्र के हिसाब से अनुमान से 10 साल के लिए)	3
(3) आकस्मिक खर्च	4
जोड़	12

हमने यह मान लिया है कि यह लागत 1975-76 में बढ़ाकर 8 रु० और 1985-86 में बढ़ाकर 12 रु० प्रति छात्र की जा सकेगी।

9. हमने कक्षा के लिए छात्र अध्यापक अनुपात 40 रखने का सुझाव दिया है जो अधिक-से-अधिक 50 हो सकता है। अगले दस वर्षों में कक्षाएं और बड़ी होंगी इस लिए हमारा सुझाव है कि कक्षा 1 और कक्षा 2 के लिए पढ़ाई का समय प्रति दिन 3 घंटे का रखा जाए। जैसे-जैसे अधिक साधन उपलब्ध होने लग जाए, इसे समाप्त कर

दिया जाए। फल यह होगा कि छात्र अध्यापक अनुपात 1975-76 तक 50 हो सकेगा और 1985-86 तक 45 तक घटाया जा सकेगा।

10. हमने यह भी सिफ़ारिश की है कि 10 प्रतिशत स्कूल इष्टतम स्तर के बना दिए जाएं (अर्थात्, प्रति छात्र लागत लगभग दूनी कर दी जाए)।

11. उद्देश्य यह है कि इस अवस्था पर सभी बच्चों को सर्वत्र पूरे समय की शिक्षा प्रदान की जा सके। इस आधार पर छात्रों की संख्या के ब्योरे अध्याय सात में दिए गए हैं।

12. इन मान्यताओं के आधार पर अवर प्राथमिक अवस्था में प्रति छात्र लागत इस प्रकार पड़ेगी :

	1975-76	1985-86
(1) अध्यापक का औसत वार्षिक वेतन (रु०)	1,800	2,500
(2) 10% अवकाल ग्रहण लाभ जोड़कर (रु०)	180	250
कुल जोड़ (अध्यापकों पर लागत)	1,980	2,750
(3) अध्यापकेतर लागत (1975-76 में 8 रु० प्रति छात्र और 1985-86 में 12 रु० प्रति छात्र)	400	540
कुल लागत (रु०)	2,380	3,290
(4) छात्र अध्यापक अनुपात	50	45
(5) प्रति छात्र लागत (रु०)	47.6	73.1
(6) चूंकि 10 प्रतिशत स्कूलों का स्तर ऊंचा किया जाना है (अर्थात् प्रति छात्र दो गुनी लागत) अतः लागत (रु०)	52.4	80.4

13. वैसी स्थिति में कार्यक्रम की लागत इस प्रकार होगी :

	1975-76	1985-86
(1) कुल छात्रों की संख्या (···में)	71,550	76,239
(2) प्रति छात्र लागत रु०	52.4	80.4
(3) कुल लागत (रु०)	37,49,220	61,29,616

उच्चतर प्राथमिक शिक्षा

14. हम यह आशा करते हैं कि इस अवस्था पर 1985-86 तक इस आयु वर्ग के 90 प्रतिशत के लिए सुविधाएं जुट जाएंगी। इनमें से 20 प्रतिशत बच्चों को 1975-76 और 1985-86 दोनों में अंशकालीन शिक्षा प्राप्त होगी। प्रथम दशक में अंशकालीन कक्षाएं दो प्रकार की होगी :

(1) जिन्होंने अवर प्राथमिक शिक्षा पूरी कर ली है और आगे पढ़ाई जारी रखना चाहते हैं;

(2) जो स्कूल में नहीं पढ़े हैं अथवा अवर प्राथमिक शिक्षा पूरी नहीं कर पाए हैं उनके लिए साक्षरता कक्षाएं। दूसरे दशक में प्रथम श्रेणी की अंशकालीन सुविधाएं रहेंगी लेकिन इसमें छात्रों की संख्या बढ़ेगी। इस कार्यक्रम के ब्योरे अध्याय सात में दिए गए हैं।

15. हमने नीचे लिखी बातों की पूर्व-कल्पना की है :

(1) 1975-76 में एक अध्यापक का औसत वार्षिक वेतन 2,100 रु० होगा (1,800 रु० औसत-वार्षिक वेतन में 3 प्राथमिक स्कूल अध्यापकों पर 3,000 रु० औसत वार्षिक वेतन का एक प्रशिक्षित स्नातक अध्यापक) और 1985-86 में 2,875 रु० होगा। (2,500 रु० का औसत वार्षिक वेतन के 3 प्राथमिक स्कूल अध्यापकों पर 4,000 रु० औसत वार्षिक वेतन का एक प्रशिक्षित स्नातक अध्यापक)

(2) अध्यापकेतर लागत अध्यापकीय लागत की 20 प्रतिशत होगी।

(3) दोनों वर्षों में औसत छात्र-अध्यापक अनुपात 35 रहेगा।

16. प्रति छात्र लागत इस प्रकार होगी :

	1975-76	1985-86
(1) एक अध्यापक का औसत वार्षिक वेतन (रु०)	2,100	2,875
(2) 10 प्रतिशत अवकाश ग्रहण लाभ जोड़कर (रु०)	210	288
जोड़ (अध्यापकों पर लागत) (रु०)	2,310	3,163
(3) अध्यानकेतर लागत, ऊपर का 20 प्रतिशत रु०	462	633
कुल लागत (रु०)	2,772	3,796
(4) छात्र अध्यापक अनुपात	35	35
(5) प्रति छात्र लागत (रु०)	79.2	108.5

17. चूंकि 10 प्रतिशत स्कूल इष्टतम स्तर के बनाए जाएंगे (अर्थात्, प्रति छात्र लगभग दो गुनी लागत), अतः 1975-76 में प्रति छात्र लागत 87.1 रु० और 1985-86 में 119.4 रु० पड़ेगी।

18. अंशकालीन शिक्षा के लिए हमने माना है कि प्रति छात्र प्रति वर्ष लागत 1975-76 में 30 रु० और 1985-86 में 50 रु० होगी।

19. कुल लागत इस प्रकार होगी :

	1975-76	1985-86
(1) नामांकन (000ों में)		
पूर्णकालिक	25,915	38,971
अंशकालिक	6,479	9,743
जोड़	32,394	48,714
(2) लागत (रु० 000ों में)		
पूर्णकालिक	22,57,197	46,53,137
अंशकालिक	1,94,370	4,87,150
जोड़	24,51,567	51,40,287

20. इसलिए, शिक्षा के प्रथम स्तर 1975-76 और 1985-86 में कुल अनुमानित आवर्ती खर्च इस प्रकार होगा।

	1975-76	1985-86
	(रु० 000ों में)	(रु० 000ों में)
(1) पूर्व प्राथमिक	2,36,956	4,88,531
(2) अवर प्राथमिक	37,49,220	61,29,616
(3) उच्चतर प्राथमिक	24,51,567	51,40,287
जोड़	64,37,743	1,17,58,434
(4) 1975-76 के कुल संभावित खर्च 1,55,620 लाख और 1985-86 में कुल खर्च 4,03,640 लाख की प्रतिशतता	41.4	29.1

21. दृष्टव्य है कि ऊपर प्रस्तावित लागत बहुत ही संयमित है। हमने जो छात्र-अध्यापक अनुपात सुझाया है उस पर भी बहुत से लोग आपत्ति करेंगे। मध्यान्ह भोजन, स्कूल की स्वास्थ्य सेवाएं और स्कूल की वर्दी मुफ्त देने, आदि की व्यवस्था इसमें नहीं रखी गई हैं। फिर भी इस कार्यक्रम के लिए आवश्यक लागत 1975-76 के लिए प्रस्तावित हमारे लक्ष्य से कहीं आगे पहुंच जाती हैं, यद्यपि 1985-86 में यह लागत इस सीमा तक होती है कि इसकी व्यवस्था की जा सके। स्कूल अवस्था में एक वर्ष और जोड़ देने का कार्यक्रम दूसरे दशक के लिए स्थगित कर दिया जाए इस सुझाव का यह भी एक कारण है।

अवर प्राथमिक शिक्षा

22. लागत का अनुमान लगाने के लिए हम ये पूर्व-कल्पनाएं कर लेते हैं :

(1) 1975-76 में और 1985-86 में 90 प्रतिशत अध्यापक प्रशिक्षित होंगे जिनका औसत वार्षिक वेतन क्रमश: 3,000 रु० और 4,000 रु० होगा। शेष 10 प्रतिशत अध्यापक उत्तर स्नातक योग्यता के होंगे उनका औसत वार्षिक वेतन 1975-76 में 4,500 रु० और 1985-86 में 5,500 रु० होगा।

(2) छात्र अध्यापक अनुपात 25 होगा।

(3) अध्यापकेतर खर्च अध्यापकीय खर्च के एक तिहाई होंगे।

23. इन पूर्व कल्पनाओं के आधार पर प्रति छात्र लागत इस प्रकार होगी :

	1975-76	1985-86
(1) अध्यापक का औसत वार्षिक वेतन (रु०)	3,150	4,150
(2) 10 प्रतिशत अवकाश ग्रहण लाभ जोड़कर (रु०)	315	415
जोड़ (अध्यापकीय लागत) रु०	3,465	4,565
(3) अध्यापकेतर लागत ऊपर की एक तिहाई (रु०)	1,155	1,522
कुल लागत (रु०)	4,620	6,087
(4) छात्र-अध्यापक अनुपात (रु०)	25	25
(5) प्रति छात्र लागत (रु०)	184.8	243.5

24. चूंकि इस स्तर के 10 प्रतिशत स्कूल इष्टतम स्तर के होंगे। (अर्थात्, प्रति छात्र लागत दो गुनी हो जाएगी) इस अवस्था पर प्रति छात्र औसत लागत 1975-76 में 203.3 रु० और 1985-86 में 267.9 रु० होगी।

25. हमने अध्याय आठ में सुझाव दिया है कि नामांकन का 20 प्रतिशत अंशकालिक शिक्षा प्राप्त करेगा। सामान्य शिक्षा में प्रति छात्र लागत 1975-76 में 60 रु० और 1985-86 में 80 रु० मानी गई है।

26. हमने यह भी माना है कि व्यावसायिक शिक्षा में छात्र संख्या 1975-76 तक 6.4 प्रतिशत और 1985-86 तक 20 प्रतिशत हो जाएगी तथा लागत 1975-76 में 500 रु० और 1985-86 में 600 रु० हो जाएगी।

27. व्यावसायिक शिक्षा के 20 प्रतिशत छात्र भी अंशकालीन आधार पर होंगे। इस शिक्षा में प्रति छात्र लागत 1975-76 तक 200 रु० होगी।

28. इन पूर्व-कल्पनाओं के आधार पर इस अवस्था पर शिक्षा की लागत इस प्रकार होगी।

	1975-76	1985-86
(1) छात्र संख्या (000ों में)		
सामान्य शिक्षा		
पूर्णकालिक	9,494	15,596
अंशकालिक	2,373	3,899
जोड़	11,867	19,495
व्यावसायिक शिक्षा		
पूर्णकालिक	654	3,898
अंशकालिक	164	975
जोड़	818	4,873
(2) लागत (000ों में)		
सामान्य शिक्षा		
पूर्णकालिक	19,30,130	41,78,168
अंशकालिक	1,42,380	3,11,920
जोड़	20,72,510	44,90,088
व्यावसायिक शिक्षा		
पूर्णकालिक	3,27,000	23,38,800
अंशकालिक	32,800	2,43,750
जोड़	3,59,800	25,82,550
जोड़ (अवर माध्यमिक)	24,32,310	70,27,638

उच्चतर माध्यमिक शिक्षा

29. अध्याय तीन में हमने सिफ़ारिश की है कि लगभग 1975-76 तक यह अवस्था एक वर्ष रहेगी और अगले दशक में इसे बढ़ाकर दो वर्ष कर दिया जाए। हमने अध्याय सात में यह भी सिफ़ारिश की है कि इस अवस्था में 50 प्रतिशत छात्र व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में रहने चाहिएं और कुछ छात्रों के 25 प्रतिशत अंशकालिक आधार पर रहने चाहिए।

30. हमने जिन वेतनमानों की सिफ़ारिश की है उनके आधार पर इस अवस्था पर अध्यापक का औसत वेतन वार्षिक 1975-76 में 4,000 रु० और 1985-86 में 5,500 रु० होगा।

31. अध्यापकेतर लागत अध्यापकीय लागत की एक-तिहाई होगी।

32. छात्र-अध्यापक अनुपात 20 : 1 होगा।

33. इन पूर्व-कल्पनाओं के आधार पर उच्चतर माध्यमिक शिक्षा (सामान्य) में प्रति छात्र लागत इस प्रकार होगी :

	1975-76	1985-86
(1) अध्यापक का औसत वार्षिक वेतन (रु०)	4,500	5,500
(2) 10 प्रतिशत अवकाश ग्रहण लाभ जोड़कर (रु०)	450	550
जोड़ (अध्यापकीय लागत (रु०)	4,950	6,050
(3) अध्यापकेतर लागत जोड़िए; अध्यापकीय लागत का एक तिहाई (रु०)	1,650	2,017
जोड़ (रु०)	6,600	8,067
(4) छात्र-अध्यापक अनुपात	20	20
(5) प्रति छात्र लागत (रु०)	330.0	403.4

34. चूंकि इनके दस प्रतिशत स्कूल इष्टतम स्तर के बनाए जाएंगे (अर्थात्, प्रति छात्र लागत दुगनी होगी), अत: प्रति छात्र लागत 1975-76 में 363.0 रु० और 1985-86 में 443.7 रु० होगी।

35. हमने यह भी माना है कि व्यावसायिक पाठ्यक्रम में लागत 1975-76 में 700 रु० और 1985-86 में 800 रु० होगी।

36. अंशकालिक शिक्षा (सामान्य) में लागत 1975-76 में 120 रु० और 198586 में 160 रु० होगी। व्यावसायिक पाठ्यक्रम में ये लागतें 1975-76 में 300 रु० और 1985-86 में 350 रु० मानी गई हैं।

37. इन इन पूर्व-कल्पनाओं के आधार पर इस अवस्था पर शिक्षा की लागत इस प्रकार होगी :

		1975-76	1985-86
(1) छात्र संख्या (000ों में)			
सामान्य शिक्षा			
पूर्णकालिक		1,212	2,578
अंशकालिक		404	859
	जोड़	1,616	3,437
व्यावसायिक शिक्षा			
पूर्णकालिक		10,30	2,577
अंशकालिक		343	859
	जोड़	1,373	3,436
(2) लागत (रु० 000ों में)			
सामान्य शिक्षा			
पूर्णकालिक		4,39,956	11,43,859
अंशकालिक		48,480	1,37,440
	जोड़	4,88,436	12,81,299
व्यावसायिक शिक्षा			
पूर्णकालिक		7,21,000	20,61,600
अंशकालिक		1,02,900	3,00,650
	जोड़	8,23,900	23,62,250
	कुल जोड़ (उच्चतर माध्यमिक)	13,12,336	36,43,549

स्कूल शिक्षा पर परोक्ष खर्च

38. **निदेशन और निरीक्षण**— निदेशन और निरीक्षण पर खर्च अब कुल खर्च का 1.9 प्रतिशत है। प्रशासन और पर्यवेक्षण तथा नौकरी में लगे अध्यापकों के प्रशिक्षण को मजबूत करने के लिए हमने जो सिफ़ारिशें की हैं उनकी पूर्ति के लिए हमारा प्रस्ताव है कि यह खर्च मूल खर्च का 1975-76 में 2.5 प्रतिशत और 1985-86 में 4 प्रतिशत कर दिया जाए।

39. स्कूल अवस्था पर छात्रवृत्तियों के सम्बन्ध में हमारी निम्नलिखित पूर्व-कल्पनाएं है :

(1) उच्चतर माध्यमिक अवस्था पर 1975-76 में 2.5 प्रतिशत छात्रवृत्तियां पाएंगे और 1985-86 में 5 प्रतिशत। छात्रवृत्तियों की औसत राशि 60 रु० वार्षिक होगी। अधिकांश छात्रवृत्तियां परोक्ष लागत के लिए होंगी परन्तु होस्टल के प्रभारों की व्यवस्था करने के लिए कुछ बड़ी छात्रवृत्तियां भी होंगी।

(2) सामान्य माध्यमिक शिक्षा, अवर और उच्चतर, दोनों में 1975-76 तक 5 प्रतिशत छात्र-वृत्तियां पाएंगे और 1985-86 तक 10 प्रतिशत। छात्रवृत्ति की औसत राशि 150 रु० वार्षिक होगी। जैसा कहा जा चुका है, इनमें कुछ छात्रवृत्तियां अप्रत्यक्ष व्यय के लिए तथा शेष होस्टल प्रभारों के लिए होंगी।

(3) व्यावसायिक माध्यमिक शिक्षा में 30 प्रतिशत विद्यार्थी 1975-76 तक छात्रवृत्तियां पाने लगेंगे और 1885-86 तक 50 प्रतिशत। छात्रवृत्ति की औसत राशि अवर माध्यमिक अवस्था में 300 रु० वार्षिक और उच्चतर माध्यमिक अवस्था में 400 रु० वार्षिक होगी।

40. इन पूर्व-कल्पनाओं के आधार पर छात्रवृत्ति कार्यक्रम पर लागत इस प्रकार होगी :

सारणी 19.19. स्कूल अवस्था पर छात्रवृत्तियों और वजीफों पर अनुमानित लागत (1975-76 और 1995-86)

शिक्षा का प्रकार	पूर्णकालिक पाठ्यक्रम में छात्र संख्या	छात्रवृत्तियां पाने वाले छात्रों का प्रतिशत	छात्रवृत्तियों की संख्या	छात्रवृत्तियों की औसत वार्षिक राशि	छात्रवृत्तियों पर कुल लागत
1975-76	(000ों में)		(000ों में)	रु०	(रु० 000ों में)
उच्चतर प्राथमिक	25,915	2.5	648	60	38,880
अवर माध्यमिक	9,494	5.0	475	150	71,250
सामान्य व्यावसायिक उच्चतर साध्यसिक	654	30.0	196	300	58,800
सामान्य	1,212	5.0	61	150	9,150
व्यावसायिक	1,030	30.0	309	400	123,600
जोड़	38,305		1,689		301,680
1985-86					
उच्चतर प्राथमिक अवर माध्यमिक	3,8971	5.0	1,949	60	116,940
सामान्य	15,596	10.0	1,560	150	234,000
व्यावसायिक	3,899	50.0	1,950	300	58,500
उच्चतर माध्यमिक :					
सामान्य	2,578	10.0	258	150	38,700
व्यावसायिक	2,577	50.0	1,289	400	515,600
जोड़	6,3621		7,006		1,490,240

41. **इमारतें**—हमनें इमारतों के लिए 2.5 प्रतिशत की तदर्थ व्यवस्था की है। यह वर्तमान आंबटन से कम है, हालांकि यह धनराशि निरपेक्ष रूप में काफी अधिक होगी। इससे इस बात की आवश्यकता प्रकट हो जाती है कि इमारतें पर खर्च में किफायत की जाए।

42. **कुल खर्च**—अब हम 1975-76 और 1985-86 के लिए अनुमानित आवर्ती और पूंजीगत स्कूल शिक्षा के सारे व्यय का योग कर सकते हैं। यह सारणी 19.20 में किया गया है।

43. इन अनुमानों की अंतर्हित बातें—अध्यापकों के वेतन, छात्र-अध्यापक अनुपात, अध्यापकेतर खर्च के स्तर इत्यादि (पिछले वर्षों की तुलना के साथ)—सारणी 19.21 में दी हैं।

सारणी 19.20 स्कूल शिक्षा पर खर्च (1975-76 और 1985-86)

	कुल खर्च (रु० 000 में)		कुल खर्च की प्रतिशतता	
	1975-76	1885-86	1975-76	1985-86
(1) **आवर्ती (प्रत्यक्ष)**				
पूर्व-प्राथमिक	2,36,956	4,88,531	1.5	1.2
अवर प्राथमिक	37,49,220	61,29,616	24.1	15.2
उच्चतर प्राथमिक	24,51,567	51,40,247	15.8	12.7
जोड़	64,37,743	1,17,58,434	41.4	29.1
अवर माध्यमिक :				
सामान्य	20,72,510	44,90,088	13·3	11.1
व्यावसायिक	3,59,800	25,82,550	2.3	6.4
जोड़	24,32,310	70,72,638	15.6	17.5
उच्चतर माध्यमिक :				
सामान्य	4,88,436	12,81,299	3.1	3.2
व्यावसायिक	8,23,900	23,62,250	5.3	5.8
जोड़	13,12,336	36,43,549	8.4	9.0
जोड़ (आवर्ती प्रत्यक्ष)	1,01,82,389	2,24,74,621	65.4	55.7
(2) **आवर्ती (परोक्ष)**				
निदेशक और निरीक्षण	3,89,050	16,14,560	2.5	4.0
छात्रवृत्तियां	3,01,680	14,90,240	1.9	3.7
जोड़	6,90,730	31,04,800	4.4	7.7
(3) **आवर्ती (प्रत्यक्ष और परोक्ष)**	1,08,73,119	2,55,79,421	69.9	63.4
(4) **पूंजीगत इमारतें और सामान**	3,89,050	10,08,890	2.5	2.5
(5) **जोड़ (स्कूल शिक्षा)**	1,12.62,169	2,65,88,311	72.4	65.9

ध्यान दें : अंकों के पूर्णांकन करने के कारण जोड़ नहीं मिलते।

सारणी 19.21 प्रति छात्र औसत वार्षिक लागत (1950-51 से 1985-86)

वर्ष	प्रति अध्यापक औसत वार्षिक वेतन	प्रति अध्यापक छात्र संख्या	अध्यापकेतर खर्च का अध्यापकीय खर्च से अनुपात	औसत वार्षिक लागत		
				अध्यापकीय खर्च के कारण	अध्यापकेतर खर्च के कारण	जोड़
	रु०			रु०	रु०	रु०
		पूर्व प्राथमिक शिक्षा				
1950-51	914	25	51.3	37	19	55
1965-66	1,000	31	54.3	35	35	55
1975-76	1,800	40	50.0	50	25	74
1985-86	2,500	40	50.0	69	34	103
		अवर प्राथमिक शिक्षा				
1950-51	545	34	24.6	16	4	20
1965-66	1,046	38	11:1	27	3	30
1975-76	1,800	50	20.2	43	9	52
1985-86	2,500	45	19.6	67	13	80
		उच्चतर प्राथमिक शिक्षा				
1950-51	682	24	32.0	28	9	37
1965-66	1,087	31	12.4	40	5	45
1975-76	2,100	25	20.0	73	14	87
1985-86	2,875	35	20.0	99	20	119
		अवर माध्यमिक शिक्षा (सामान्य)				
1950-51†	1,258	25	44.8	50	23	73
1965-66†	1,858	25	37.0	78	29	107
1975-76	3,150	25	33.3	152	51	203
1985-86	4,150	25	33.3	201	67	368
		अवर माध्यमिक शिक्षा (व्यावसायिक)				
1950-51††	1,705	16	86.8	106	92	197
1965-66††	2,887	15	100.0	208	208	417
1975-76	—	—	—	—	—	500
1985-86	—	—	—	—	—	600
		उच्चतर माध्यमिक शिक्षा (सामान्य)				
1975-76	4,500	20	33.3	272	91	363
1985-86	5,500	20	33.3	333	111	444
		उच्चतर माध्यमिक शिक्षा (व्यावसायिक)				
1975-76	—	—	—	—	—	700
1985-86	—	—	—	—	—	800

† हाई/उच्चतर माध्यमिक स्कूल

†† सभी प्रकार के व्यावसायिक और तकनीकी स्कूल

टिप्पणी : 1. 1950-51 और 1965-66 की लागतें वर्तमान मूल्यों के आधार पर हैं और 1975-76 और 1985-86 की लागतें 1965-66 के स्थिर मूल्यों के आधार पर।

2. अंकों के पूर्णांकन के कारण जोड़ नहीं मिलते।

अनुपूरक टिप्पणी-तीन

उच्चतर शिक्षा के विकास पर खर्च सम्बन्धी अनंतिम अनुमान (1966-85)

1 अध्याय बारह में सिफ़ारिश की गई है कि उच्चतर शिक्षा में भरती के लिए छात्रों का चुनाव होना चाहिए और जनसंख्या के अनुसार आवश्यकता देखते हुए उसका विस्तार किया जाना चाहिए। हमारी सिफ़ारिश है कि व्यावसायिक शिक्षा पर ज्यादा जोर दिया जाना चाहिए और शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार होना चाहिए। हमारी यह भी सिफ़ारिश है कि पूर्व-स्नातक तथा स्नातकोत्तर अवस्था के कुल छात्रों के 30 प्रतिशत छात्र अंशकालिक पाठ्यक्रमों में होने चाहिए।

2. **पूर्व-स्नातक शिक्षा**—हमने जिन वेतनमानों की सिफ़ारिश की हैं उनके अनुसार इस अवस्था के एक अध्यापक का औसत वार्षिक वेतन 1975-76 में 6,000 रु० और 1985-86 में 7,500 होगा। कला और विज्ञान कालेजों के समकक्ष अध्यापक का वेतन 1965-66 में 4,000 रु० था।

3. अध्यापकेत्तर खर्च अध्यापकीय लागत का दो-तिहाई होगा।

4. छात्र अध्यापक अनुपात 15 : 1 होगा।

5. इन पूर्व मान्यताओं के आधार पर पूर्व स्नातक स्तर पर (विज्ञान और व्यावसायिक पाठ्यक्रम को छोड़कर) प्रति छात्र लागत इस प्रकार होगी :

	1975-76	1985-86
(1) अध्यापक का औसत वार्षिक वेतन (रु०)	6,000	7,500
(2) 10 प्रतिशत अवकाश ग्रहण लाभ-जोड़कर (रु०)	600	750
जोड़ अध्यापकीय लागत (रु०)	6,600	8,250
(3) अध्यापक लागत की 2/3 अध्यापकेतर लागत जोड़कर (रु०)	4,400	5,500
जोड़ (रु०)	11,000	13,750
(4) छात्र-अध्यापक अनुपात	15	15
(5) प्रति छात्र लागत (रु०)	733.3	916.7

6. लागत निकालने के लिए हमारी ये पूर्व-मान्यताएं हैं—

(1) कला और वाणिज्य पाठ्क्रमों में छात्रों की संख्या कुल की 40 प्रतिशत होगी। इसमें 70 प्रतिशत पूर्णकालिक होंगे और उनकी लागत उपर्युक्त दरों से निकाली जाएगी। शेष 30 प्रतिशत अंशकालिक होंगे उनकी लागत 1975-76 में 300 रु० और 1985-86 में 400 रु० के हिसाब से होगी।

(2) कुल छात्रों का 60 प्रतिशत व्यावसायिक और विज्ञान के पाठ्यक्रमों तथा कला एवं वाणिज्य के अच्छे विद्यालयों में होगा। कला और वाणिज्य के सम्मान पाठ्यक्रमों की प्रति छात्र लागत से यह लागत दुगुनी होगी, अर्थात्, 1975-76 में प्रति छात्र 1,500 रु० और और 1985-86 प्रतिछात्र 2,000 रु० होगी। यह दृष्टव्य है कि ये औसत लागतें हैं। अच्छी तथा क्रमिक विकास वाली संस्थाओं में लागत

और आर्थिक, अर्थात्, सामान्य संस्थाओं से लगभग 10 गुनी हो सकती है।

(3) ऊपर (2) में दिए व्यावसायिक और विज्ञान पाठ्यक्रमों के लिए कुल छात्रों की संख्या में 30 प्रतिशत अंशकालिक पाठ्यक्रमों में होंगे; इनकी लागत 1975-76 में 750 रु० और 1985-86 में 1,000 रु० के हिसाब से आएगी।

7. उपर्युक्त मान्यताओं के आधार पर पूर्व-स्नातक अवस्था के कार्यक्रम की लागत 1975-76 और 1985-86 में आगे दी गई सारणी के अनुसार होगी। छात्रों की संख्या के बारे में ब्योरे अध्याय बारह में पहले ही दिए जा चुके हैं।

	1965-76	1985-86
(1) **छात्रों की संख्या** (000 में)		
कला और वाणिज्य		
पूर्णकालिक	526	896
अंशकालिक	226	384
जोड़	752	1,280
विज्ञान और व्यावसायिक शिक्षा		
पूर्णकालिक	790	1,344
अंशकालिक	339	576
जोड़	1,129	1,920
(2) **लागत** (रु० 000 में)		
कला और वाणिज्य		
पूर्णकालिक	3,85,716	8,21,363
अंशकालिक	67,800	1,53,600
जोड़	4,53,516	9,74,963
विज्ञान और व्यावसायिक शिक्षा		
पूर्णकालिक	11,85,000	26,88,000
अंशकालिक	2,54,250	5,76,000
जोड़	14,39,250	32,64,000
कुल जोड़	18,92,766	42,38,963

8. **स्नातकोत्तर शिक्षा**—स्नातकोत्तर अवस्था पर लागत निकालने का काम और भी जटिल हो जाता है क्योंकि इसमें एक पाठ्यक्रम से दूसरे पाठ्यक्रम में बीच तथा एक संख्या से दूसरी संख्या के बीच विविधता का अंतर बहुत बढ़ जाता है। इन अनुमानों के लिए हमारी मान्यताएं इस प्रकार हैं :

(1) उत्तर स्नातक अवस्था में कुल के 40 प्रतिशत छात्र कला और वाणिज्य में होंगे। इनमें से 30 प्रतिशत पत्राचार और अंशकालिक पाठ्यक्रमों में होंगे।

(2) शेष 60 प्रतिशत छात्र विज्ञान और व्याव-

सायिक पाठ्यक्रमों में होंगे। इनमें से 30 प्रतिशत पत्राचार तथा अंशकालिक पाठ्यक्रमों में होंगे।

(3) कला और वाणिज्य प्रति छात्र औसत लागत 1975-76 के लिए 3000 रु० और 1985-86 के लिए 3,600 रु० मानी गई है। अंशकालिक पाठ्यक्रमों में लागत 1975-76 के लिए 900 रु० और 1985-86 के लिए 1,200 रु० मानी गई है।

(4) विज्ञान और व्यावसायिक पाठ्क्रमों में प्रति औसत लागत 1975-76 के लिए 5,000 रु० और 1985-86 के लिए 6,000 रु० मानी गई है। अंशकालिक पाठ्यक्रमों में 1975-76 में लागत 2500 रु० और 1985-86 में 3,000 रु० मानी गई है।

9. इन पूर्व-मान्यताओं के आधार पर उच्चतर स्नातक शिक्षा पर खर्च 1975-76 और 1985-86 में आगे की सारणी के अनुसार होगा। कुल छात्रों की संख्या के ब्योरे अध्याय बारह में पहले ही दिए जा चुके हैं :

	1975-76	1985-86
कुल छात्र (000 में)		
कला और वाणिज्य		
पूर्णकालिक	90	269
अंशकालिक	38	115
जोड़	128	384
विज्ञान और व्यावसायिक शिक्षा		
पूर्णकालिक	135	403
अंशकालिक	58	173
जोड़	193	576
(2) लागत (000 में)		
कला और वाणिज्य		
पूर्णकालिक	2,70,000	9,68,400
अंशकालिक	34,200	1,38,000
जोड़	3,04,200	11,06,400
विज्ञान और व्यावसायिक शिक्षा		
पूर्णकालिक	6,75,000	24,18,000
अंशकालिक	1,45,000	5,19,000
जोड़	8,20,000	29,37,000
कुल जोड़	11,24,200	40,43,400

छात्रवृत्तियां

10. छात्रवृत्तियों की लागत निकालने के लिए हमारी मान्यताएं इस प्रकार हैं :

(1) पूर्व-स्नातक अवस्था में कला और वाणिज्य पाठ्यक्रमों में औसत छात्रवृत्ति 75 रु० प्रति मास होगी। 1975-76 में कुल पूर्णकालिक छात्रों के 15 प्रतिशत को तथा 1985-86 में 25 प्रतिशत को दी जाएगी।

(2) पूर्व-स्नातक अवस्था में विज्ञान और व्याव-

सायिक शिक्षा में औसत छात्रवृत्तिय 125 रु० प्रतिमास होगी और कुल पूर्णकालिक छात्रों के 30 प्रतिशत को 1975-76 में और 50 प्रतिशत को 1985-86 में दी जाएगी ।

(3) स्नातकोत्तर अवस्था में औसत छात्रवृत्ति 300 रु० प्रति मास होगी और 1975-76 में कुल पूर्णकालीन छात्रों के 25 प्रतिशत को तथा 1985-86 में 50 प्रतिशत दी जाएगी ।

11. इन मान्यताओं के आधार पर इस कार्यक्रम पर कुल खर्च सारणी 19.22 के अनुसार होगा :

सारणी 19.22 उच्चतर शिक्षा में छात्रों के लिए छात्रवृत्तियों वजीफों को अनुमानित लागत (1975-76 और 1985-86)

शिक्षा का प्रकार	पूर्णकालिक पाठ्यक्रम में कुल छात्र	छात्रवृत्ति पाने वाले छात्रों की प्रतिशत	छात्र-वृत्तियों की कुल संख्या	छात्रवृत्तियों का प्रतिवर्ष औसत मान	छात्रवृत्तियों पर कुल खर्च
1975-76	(000 में)	(000 में)		रु०	(000 में)
पूर्व स्नातक					
कला और वाणिज्य	526	15	79	900	71,100
विज्ञान और व्यावसायिक	790	30	237	1500	3,55,500
उत्तर स्नातक	224	25	56	3,600	2,01,600
जोड़	1,540		372		6,28,200
1985-86					
पूर्व स्नातक					
कला और वाणिज्य	896	25	224	900	2,01,600
विज्ञान और व्यावसायिक	1,344	50	672	1,500	10,05,000
उत्तर स्नातक	672	50	336	3,600	12,09,600
जोड़	2,912		1,232		24,16,200

12. ऊपर दिए गए विश्लेषण के अनुसार उच्चतर शिक्षा पर कुल लागत का अनुमान 1975-76 और 1985-86 के लिए सारणी 19.23 के अनसार होगा । अध्यापकों के औसत वार्षिक वेतन, छात्र अध्यापक अनुपात, अध्यापकेतर लागतों का स्तर तथा प्रति छात्र लागत से संबंधित विवरण सारणी 19.24 में दिए हैं :

सारणी 19.23. उच्चतर शिक्षा पर खर्च (1975-76 से 1985-86)

शिक्षा का प्रकार	कुल खर्च (००० में)		कुल खर्च का प्रतिशत	
	1975-76	1985-86	1975-76	1985-86
(1) आवर्ती (प्रत्यक्ष)				
पूर्व स्नातक				
कला और वाणिज्य . . .	4,53,516	9,74,963	2.9	2.4
विज्ञान और व्यावसायिक. . . .	14,39,250	32,64,000	9.3	8.1
जोड़ . . .	18,92,766	42,38,963	12.2	10.5
स्नातकोत्तर				
कला और वाणिज्य . . :	3,04,200	11,06,400	1.9	2.7
विज्ञान और व्यावसायिक . . .	8,20,000	29,37,000	5.3	7.3
जोड़ . . .	11,24,200	40,43,400	7.2	10.0
कुल जोड़ आवर्ती (प्रत्यक्ष) . . .	30,16,966	82,82,363	19.4	20.5
(2) **आवर्ती (परोक्ष)**				
छात्रवृत्तियां . . .	6,28,200	24,16,200	4.0	6.0
(3) **जोड़ आवर्ती**				
(प्रत्यक्ष और परोक्ष) . . .	36,45,166	1,06,98,563	23.4	26.5
(4) **पूंजीगत खर्च**				
इमारतें और सामान . . .	5,76,855	26,73,486	3.7	6.6
जोड़ उच्चतर शिक्षा . . .	42,22,021	1,33,72,049	27.1	33.1

सारणी 19.24. प्रति छात्र औसत वार्षिक लागत (1950-51 से 1985-86)

संस्था का प्रकार	प्रति अध्यापक औसत वार्षिक वेतन	प्रति अध्यापक छात्र संख्या	अध्यापकेतर खर्च का अध्यापकीय खर्च से अनुपात	प्रति छात्र औसत वार्षिक लागत		
				अध्यापकीय लागत के कारण	अध्यापकेतर खर्च के कारण	जोड़
	रु०			रु०	रु०	रु०
पूर्व स्नातक						
कला और वाणिज्य						
1950-51†	2,696	20	73.7	133	98	231
1965-66†	4,000	20	63.8	200	128	328
1975-76	6,000	15	66.7	440	293	733
1985-86	7,500	15	66.7	550	467	917
विज्ञान और व्यावसायिक						
1950-51††	3,948	11	118.1	357	422	779
1965-66††	6,410	11	100.0	583	583	1,167
1975-76	—	—	—	—	—	1,500
1985-86	—	—	—	—	—	2,000
स्नातकोत्तर						
कला और वाणिज्य						
1975-76	1,0000	8	118	1,375	1,625	3,000
1985-86	1,2000	8	118	1,650	1,950	3,600
विज्ञान और व्यावसायिक						
1075-76	—	—	—	—	—	5,000
1985-86	—	—	—	—	—	6,000

† सभी प्रकार के कला और विज्ञान के कालेज (इंटरमीडियेट और स्नातकोत्तर तक)

†† सभी प्रकार के व्यावसायिक/वृत्तिक कालेज ।

अनुपूरक टिप्पणी-चार

उच्चतर शिक्षा में इकाई लागत

उच्चतर शिक्षा में शिक्षा की सुविधाएं जुटाने में अन्य स्तर की शिक्षाओं की अपेक्षा अधिक खर्च आता है। इस प्रकार उच्चतर शिक्षा में इकाई लागत के अध्ययन की महत्ता को समझते हुए उच्चतर शिक्षा आयोग ने कुछ विश्वविद्यालयों से अपने कार्य क्षेत्र के अधीन प्रति छात्र खर्च का अध्ययन करने के लिए कहा था। आंध्र, अन्नामलय, भागलपुर, बम्बई, जीवाजी, कुरुक्षेत्र, नागपुर, उस्मानिया, पूना, राजस्थान, सरदार बल्लभभाई और उत्कल, इन बारह विश्वविद्यालयों में ऐसे अध्ययन किए गए जिन्हें दूसरी जिल्द में प्रस्तुत किया गया है।

यह अपेक्षाकृत नया क्षेत्र है और हमारे देश में अब तक ऐसा प्रणालीवद्ध कार्य नहीं हुआ है। इन अध्ययनों से कई रोचक परिणाम सामने आए हैं। ये सामान्य रूप से विविध संकायों तथा वृत्तिक शिक्षा के पूर्व-स्नातक और स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों से सम्बन्धित हैं। ये परिणाम सार रूप में 19.25 से 19.29 तक का सारणियों में दिए गए हैं। इनमें विश्वविद्यालय के शिक्षण-विभागों और विश्वविद्यालय/संघटक कालेजों और सम्बद्ध कालेजों में आने वाली लागत के ब्योरे दिए हैं।

इन विवरणों पर दृष्टि डालने से यह स्पष्ट हो जाता है कि लागतों में कितनी विविधता है। यह सही है कि कुछ विविधता तो इन अध्ययनों की पद्धति और विषय-क्षेत्र के अंतर के कारण हैं; किन्तु अधिकांश विविधता इन संस्थाओं में मिलने वाली सुविधाओं और सेवाओं के स्तर में अंतर होने के कारण होती है। पूंजीगत लागत के अलावा ये सुविधाएँ और सेवाएँ कई परिवर्तनशील तत्वों, जैसे अध्यापकों का वेतन, छात्र अध्यापक अनुपात, पुस्तकालय प्रयोगशाला सम्बन्धी तथा अन्य सुविधाओं पर भी निर्भर होती हैं।

ये अध्ययन और अधिक उपयोगी सिद्ध हों इसके लिए यह आवश्यक है कि इन्हें स्वीकृत परिभाषाओं तथा धारणाओं पर आधारित एक सर्व सामान्य पद्धति के अनुसार काम में लाया जाए। हम अनुभव करते है कि समय-समय पर इस प्रकार के अध्ययन चलाने के लिए कुछ विश्वविद्यालयों का विश्वविद्यालय अनुदान आयोग में सहायता मिलनी चाहिए।

19.25. विश्वविद्यालयों में प्रति छात्र लागत (विश्वविद्यालय के शिक्षण विभाग, संकाय और विश्वविद्यालय के संघटक कालेज)

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
	आन्ध्र	अन्नामलाय	भागलपुर	जीवाजी	कुरुक्षेत्र	नागपुर	उस्मानियां	पूना	राजस्थान	सरदार बल्लभ	उत्कल
	रु०	रु०	रु०	रु०	रु०	रु०	रु०	रु०	रु०	रु०	रु०
स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम											
कला	998	1,861	490	241	—	736	922	1,684	1,681	1,148	1,226
वाणिज्य	998	—	490	262	—	—	847	—		650	1,256
विज्ञान	—	1,851	5,011	397††	2,208	2,589	—	2,752	5,251	3,220	
सामाजिक विज्ञान	—	—	—	261	1,666	—	—	—	—	—	—
भाषाएं	—	—	—	—	1,776	—	—	—	—	—	—
वैदिक अध्ययन	—	—	—	—	2,608	—	—	—	—	—	—

(जारी)

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
इंजीनियरी		2,424	—	—	—	—	2,116†				
शिक्षा	—	8,566	—	—	—	—	—	—	—	—	—
प्राच्य अध्ययन	—	13,119	—	—	—	—	—	—	—	—	—
ललित कलाएं	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—
कृषि	—	5,432	—	—	—	—	—	—	—	—	—
कानून	—	—	—	358	—	—	—	—	966	—	—
पूर्व-स्नातक पाठ्यक्रम											
कला	—	729	409	219	1,170	—	—	—	552	308	—
वाणिज्य	—	—	—	278	—	—	—	—	—	434	—
विज्ञान	—	586	489	—	1,463	—	—	—	599	372	—
इंजीनियरी तथा टेक्नोलोजी	—	1,045	—	—	—	—	—	1,525	—	1,574	1,358
शिक्षा	—	448	—	—	—	—	—	—	—	—	—
प्राच्य	—	783	—	—	—	—	—	—	—	—	—
अध्ययन ललित	—	1,229	—	—	—	—	—	—	—	—	—
कलाएं कृषि	—	1,183	—	—	—	—	—	—	—	824	—
कानून	—	—	—	117	—	—	—	302	—	—	—

† विज्ञान और टेकनोलोजी

†† वैज्ञानिक विषयों का औसत

सारणी 19.26. बम्बई विश्वविद्यालय

(क) स्नातकोत्तर विभागों में प्रति छात्र लागत (1963-64)

विभाग	शिक्षा	अनुसंधान सहित शिक्षा
	रु०	रु०
1. अर्थशास्त्र	962	1,460
2. नागरिक शास्त्र तथा राजनीति	495	534
3. व्यसाय प्रबन्ध	1,294	1,244
4. समाजशास्त्र	613	688
5. अंग्रेजी	1,410	1,394
6. संस्कृत	2,116	2,194
7. गणित	1,550	1,519
8. अनुप्रयुक्ति मनोविज्ञान	1,926	1,816
9. सांख्यिकी	1,483	1,470
10. कानून	416	436
11. रसायनिक टेकनोलोजी	2,665	2,569

(ख) कालेजों में प्रति छात्र लागत

वर्ष	वाणिज्य	प्रशिक्षण	कानून	कला और विज्ञान	विज्ञान	इंजीनियरी	चिकित्सा	दंत विज्ञान
	रु०	रु०	रु०	रु०	रु०	रु०	रु०	रु०
1949-50	226	1,060	107	350	1,361	2,092	879	553
1950-51	212	1,063	162	272	1,858	1,000	726	888
1951-52	246	970	146	312	1,333	574	816	897
1952-53	282	972	156	310	1,291	1,077	923	913
1953-54	156	815	122	298	1,192	833	1,037	814
1954-55	171	677	149	297	—	1,260	—	—
1955-56	177	428	160	298	1,384	1,205	1,216	1,591
1956-57	148	540	162	284	1,330	1,203	1,248	1,570
1957-58	168	602	164	302	1,696	1,241	1,342	1,671
1958-59	179	707	162	285	1,603	1,314	1,725	1,485
1959-60	172	787	171	327	1,543	1,190	1,973	1,835
1960-61	253	815	166	351	1,616	1,535	2,033	2,005
1961-62	347	872	173	359	1,453	2,359	1,652	2,281
1962-63	317	744	208	384	1,643	1,316	1,693	2,782
1963-64	307	845	205	431	1,497	1,194	2,155	2,767

सारणी 19.27. नागपुर विश्वविद्यालय

(क) पूर्व-स्नातक संस्थाओं में प्रति छात्र लागत (1964-65)

संख्या	प्रति छात्र लागत
	रु०
1. कला कालेज (श्रीमती बिज़ानी एम० एम० कालेज	433
2. विज्ञान कालेज (एम० एम० विज्ञान कालेज)	450
3. टेक्नोलॉजी संस्थान (लक्ष्मीनारायण इन्स्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलोजी) (क) . . .	1857
4. कला और विज्ञान कालेज (हिस्लप कालेज) (ख)	497
5. कला, विज्ञान और वाणिज्य कालेज (धनवटे नेशनल कालेज)	222

(क) संस्थान में स्नातकोत्तर डिग्री में छात्रों की संख्या बहुत कम है, अतः इसे पूर्व-स्नातक संस्था मानना चाहिए।

(ख) कालेज में केवल एक (समाजशास्त्र) स्नातकोत्तर विभाग है; उस पर आने वाला खर्च कुल खर्च में से निकाल दिया गया है और इसे कला और विज्ञान के सम्मिलित पूर्ण स्नातक कालेज के रूप में माना गया है।

(ख) पूर्व स्नातक और उत्तर स्नातक अनुभागों वाले कालेजों में प्रति छात्र लागत (1964-65)

	संस्था	लागत प्रति छात्र
1.	**वाणिज्य कालेज**	रु०
	(जी० एस कालेज आफ कामर्स एण्ड इकोनोमिक्स नागपुर)	
	(क) पूर्व-स्नातक अनुभाग	281
	(ख) स्नातकोत्तर अनुभाग	360
2.	**कृषि कालेज**	
	(राजकीय कृषि कालेज नागपुर)	
	(क) पूर्व स्नातक	873
	(ख) स्नातकोत्तर स्नातक	1,613

सारणी 19.28. उस्मानिया विश्वविद्यालय
कालेजों में प्रति छात्र लागत (1963-64)

	कालेज	प्रति छात्र लागत
	(क) विश्वविद्यालय और उनके संघटक कालेज	
1.	विश्वविद्यालय का विज्ञान कालेज	1,027
2.	विश्वविद्यालय का कला और वाणिज्य कालेज	775
3.	ईवनिंग कालेज, सिकन्दराबाद	687
4.	निजाम कालेज	681
5.	सैफाबाद साइंस कालेज	637
6.	महिला कालेज	612
7.	आर्टस एण्ड साइंस कालेज, सिकन्दराबाद	564
8.	सिटी साइंस कालेज	453
9.	आर्ट्स एंड साइंस कालेज वारंगल	404
10.	हैदराबाद ईवनिंग कालेज	429
	(ख) प्राईवेट कालेज	
11.	श्री वेंकटेश्वर आर्ट्स एण्ड साइंस कालेज, पालेम	757
12.	हिन्दी महाविद्यालय, हैदराबाद	693
13.	आर्टस एण्ड साइंस कालेज, जाडचेरला	675
14.	उर्दू आर्टस कालेज	659
15.	अनवर उलूम कालेज, हैदराबाद	497
16.	बद्रुका कालेज आफ कामर्स (दिवसीय)	444
17.	वनिता महाविद्यालय, हैदराबाद	443
18.	आर्ट्स एण्ड साइंस कालेज, गोडवाल	440
19.	आर० बी० वी० आर० आर० वीमेन्स कालेज	382
20.	नानकराम भगवानदास साइंस कालेज	377

(जारी)

कालेज	प्रतिशत लागत
21. विवेकवर्धनी कालेज (दिवसीय)	364
22. मुमताज कालेज	358
23. सेन्ट फ्रांसिस कालेज, सिकन्दराबाद	337
24. न्यू साइंस कालेज, हैदराबाद	284
25. वद्रुका कालेज (संध्या कालीन)	221
26. विवेकवर्धनी कालेज	212
(ग) राजकीय कालेज	
27. गवर्नमेंट आर्ट्स एन्ड साइंस कालेज, आदिलाबाद	829
28. गवर्नमेंट नागार्जुन कालेज, नालगोंडा	587
29. गवर्नमेंट आर्ट्स एण्ड साइंस कालेज, सिद्दीपेट	578
30. गवर्नमेंट गिरिराज कालेज, निजामाबाद	569
31. एस० आर० एण्ड बी० जी० एम० आर० गवर्नमेंट आर्ट्स कालेज खम्माम	457
32. एस० आर० गवर्नमेंट कालेज, करीमनगर	387

सारणी 19.29. पूना विश्वविद्यालय

पूर्व-स्नातक पाठ्यक्रम में प्रति छात्र लागत

कालेज	डिग्री-पूर्व	त्रिवर्षीय डिग्री पाठ्यक्रम	चतुर्वर्षीय डिग्री पाठ्यक्रम
कला			
1. फर्ग्युसन कालेज, पूना	269	342	319
2. श्री साहू मंदिर कालेज पूना	203	256	236
3. एच० पी० टी० कालेज, नासिक	348	456	409
4. आर० बी० बोरावके कालेज श्रीरामपुर	454	587	538
विज्ञान			
1. फर्ग्युसन कालेज, पूना	352	400	380
2. एच० पी० टी० कालेज, नासिक	448	521	486
3. आर० बी० बोरावके कालेज, श्रीरामपुर	598	814	701
वाणिज्य			
1. बी० एम० कालेज आफ कामर्स	247	224	232
2. बी० वाइ० के कालेज आफ कामर्स, नासिक	323	309	314
3. सी० डी० जैन कालेज, श्रीरामपुर	365	532	444
4. श्री साहू मंदिर कालेज, पूना	222	285	249
कानून			
1. लॉ कालेज पूना	—	302	—
शिक्षा			
1. टिलक कालेज ऑफ एजूकेशन	—	725	—
इंजीनियरी			
1. कालेज ऑफ इंजीनियरिंग, पूना	—	1,525	—

अनुपूरक टप्पणी पांच

सारणी 19.30. शिक्षा पर आवर्ती तथा पूंजीगत कुल प्रत्याशित खर्च का समेकित विवरण (1966-85)

वर्ष	शिक्षा पर खर्च (रु० लाखों में)			योग का प्रतिशत	
	योग	आवर्ती	पूंजीगत	आवर्ती खर्च	पूंजीगत खर्च
	रु०	रु०	रु०	रु०	रु०
1966-67	6,690	5,909	691	89.5	10.5
1967-68	7,260	6,543	717	90.1	9.9
1968-69	7,986	7,242	744	90.7	9.3
1969-70	8,785	8,013	772	91.2	8.8
1970-71	9,664	8,893	801	91.7	8.3
1971-72	10,630	9,709	831	92.2	7.8
1972-73	11,693	10,830	863	92.6	7.4
1973-74	12,862	11,966	896	93.0	7.0
1974-75	14,184	13,218	930	93.4	6.6
1975-76	15,562	14,596	966	93.8	6.2
1976-77	17,118	16,014	1,104	93,6	6.4
1977-78	18,830	17,568	1,262	93.3	6.7
1978-79	20,713	19,271	1,442	93.3	7.0
1979-80	22,784	21,136	1,648	92.8	7.2
1980-81	25,062	28,178	1,884	92.5	7.5
1981-82	27,568	25,415	2,143	92.2	7.8
1982-83	30,325	27,864	2,461	81.9	8.1
1983-84	36,358	30,545	2,813	91.6	8.4
1984-85	33,494	33,479	3,215	91.2	8.8
1985-86	40,364	36,682	3,682	90.9	9.1
जोड़	378,006	348,131	29,875	92.1	7.9

ध्यान दें—पहले दशक में पूंजीगत खर्च अध्यापकों के वेतन बढ़ाने तथा पर्याप्त मात्रा में छात्रवृत्तियां देने की आवश्यकता के कारण सीमित है।

चौथा खण्ड

अनुपूरक सामग्री

रिपोर्ट के इस भाग में निम्नलिखित प्रलेख हैं :

1. **अनुपूरक टिप्पण**—श्री आर० ए० गोपालस्वामी ।

2. **परिशिष्ट**

एक. रिपोर्ट में शामिल नामांकन सांख्यिकी पर सविस्तार टिप्पणी ।

दो. भारत सरकार द्वारा शिक्षा आयोग के स्थापन का संकल्प ।

तीन. शिक्षा आयोग के परामर्शदाता ।

चार. कार्यदल और कर्मी-समूह ।

पांच. उन व्यक्तियों की सूची जिनसे दिल्ली में शिक्षा आयोग ने समालाप किया ।

छह. आयोग का सचिवालय ।

सात. राज्य सरकारों तथा केन्द्र प्रशासित क्षेत्रों के सम्पर्क-अधिकारियों की सूची ।

आठ. शिक्षा आयोग के दौरों का कार्यक्रम ।

नौ. शिक्षा आयोग पर हुआ व्यय ।

3. **सिफारिशों का सारांश**

अनुपूरक टिप्पण

ले० श्री आर० ए० गोपालस्वामी, सदस्य, शिक्षा आयोग

भारत सरकार और भारत की अन्य राज्य सरकारों के विचारार्थ 'जनशक्तिनि-योजित विकास और उच्चतर शिक्षा का सुधार' शीर्षक रिपोर्ट प्रस्तुत करने के उद्देश्य से ही यह टिप्पण लिखा गया है।

2. जब मैंने यह काम आरम्भ किया था तो मेरा विचार था कि सम्पूर्ण राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली के सभी स्तरों के लिए परिप्रेक्ष्य योजना-रूपरेखा तैयार की जाय और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के विकास के पूर्वानुमान से इसे सम्बद्ध किया जाय। इन पारस्परिक संबंधों के दो पहलुओं पर कार्य करने का विचार था। एक तो शिक्षित जनशक्ति की उन बढ़ती हुई मांगों के विषय में विचार करना था। जो आर्थिक विकास के कारण अपरिहार्य होंगी। दूसरा राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली के लिए स्रोतों के विनिधान में वृद्धि के संबंध में था जो कि आर्थिक विकास के परिणाम स्वरूप संभव होगी। जब इस बड़ी परियोजना पर लगभग आधा काम हुआ था, तभी मैं बीमार पड़ गया। इस लिए पहले काम कुछ समय के लिए रुक गया और फिर इसमें विलम्ब हुआ। अन्त में मैंने इस परियोजना के क्षेत्र को उच्चतर शिक्षा तक ही सीमित रखने का निर्णय किया। रिपोर्ट तैयार करके मैंने उसे आयोग के अपने साथियों के सामने विचारार्थ रखा। यह कार्य इस वर्ष अप्रैल के दूसरे सप्ताह के अन्त में सम्पन्न हुआ। परन्तु तब तक इस कार्य में बहुत विलम्ब हो चुका था। विभिन्न लोगों के विचारों को जानने और उनके निर्णयों और सिफ़ारिशों का समन्वय करने का यह बहुत सुन्दर अवसर था, परन्तु मैंने इसे खो दिया।

3. उच्चतर शिक्षा के विकास की प्रक्रिया को 'जनशक्ति नियोजित' कहा जा सकता है यदि इसके मुख्य उद्देश्यों में से एक यह हो : उच्चतर शिक्षा संस्थाओं की उत्पादन क्षमता (जो कि उच्चतर शिक्षा-प्राप्त दलों के वार्षिक विकास के आधार पर आंकी गई हों) हर वर्ष इतनी बढ़नी चाहिए कि इसका वार्षिक निकास (दलों की संख्या और उच्चतर शिक्षा-प्राप्ति के विभिन्न स्तरों पर उनका गठन) विकास शील राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के लिए अपेक्षित उच्चतर शिक्षा प्राप्ति जनशक्ति दलों का प्रथम रोजगार की वार्षिक मांग को पूरा कर सके।

4. उच्चतर शिक्षा के सुधार की प्रक्रिया को 'जनशक्ति नियोजित' कहा जा सकता है यदि इस सुधार का उद्देश्य उच्च शिक्षा की पाठ्यचर्या, उच्चतर शिक्षा संस्थाओं के प्रशासन, संगठन और पद्धति में ऐसा नियोचित परिवर्तन कर वा हो जिससे उच्चतर शिक्षा के जन शक्ति वियोजित विकास की आवश्यकाओं को अधिक से अधिक व्यावहारिक कुशलता से पूरा किया जा सके।

5. मेरा अनुभव ऐसा नहीं है कि में पाठ्यक्रम, शिक्षण पद्धति और दूसरी ऐसी बातों के संबंध में कुछ कहूं जिन्हें उच्चतर शिक्षा का 'शिल्पविज्ञान' कहा जा सकता है। इसलिए मेरी रिपोर्ट जनशक्ति नियोजित विकास, उच्चतर शिक्षा के सुधार (ऊपर दी गई व्याख्या के अनुसार) और प्रशासनिक व्यवस्था की सार्वजनिक नीति के ऐसे प्रश्नों के विवेचन तक ही सीमित है जिन पर सरकार द्वारा विर्णय किए जाएंगे।

यह रिपोर्ट एक अन्य दृष्टि से भी सीमित है। कुछ उद्देश्यों के लिए यह आवश्यक है कि परिप्रेक्ष्य योजना की अवधि सीमा बीस वर्ष से अधिक हो। ये उद्देश्य केवल शैक्षिक है। परन्तु अन्तराल बहुत लम्बा है और अगले कुछ वर्षों में सरकार कोई संक्रियात्मक निर्णय नहीं ले सकती। चूंकि मेरी रिपोर्ट का संबंध ऐसे निर्णयों से ही है, मैंने अवधि कम रखी है। यह अवधि सीमा 1975-76 के आस पास है, जो कि पांचवीं पंचवर्षीय योजना-अवधि का अन्तिम वर्ष होगा।

6. इस रिपोर्ट के क्षेत्र विस्तार के संबंध में विशेष कठिनाई हैं। यह उच्चवर शिक्षा संस्थाओं और उच्चतर शिक्षा प्रशासन तक ही सीमित नहीं है। मैंने ऐसे उद्यमों और ऐसी संस्थाओं के विषय पर भी विचार किया है जिनमें उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों को रोजगार मिलता है। इत में व्यवसाय भी शामिल है जिन्हें वे स्वयं चलाते है। यदि शैक्षिक योजना और जनशक्ति योजना में परस्पर सम्बन्ध स्थापित करने की कोई सरकारी प्रणाली अथवा सामान्य रूप से स्वीकृत प्रणाली होती तो विशेष अन्तर न पड़ता। परन्तु दुर्भाग्य से अभी तक ऐसी कोई प्रणाली नहीं है। इसीलिए, मेरे लिए यह आवश्यक हुआ कि कम-से-कम

आंशिक रूप में ऐसी प्रणाली की अवधारणात्मक रूप रेखा तैयार करूं ।

7. उपर्युक्त विचार से यह अर्थ निकाला जा सकता है कि यह हमारी प्रशासन व्यवस्था पर आक्षेप है, परन्तु मेरा अभिप्राय यह नहीं है । इसीलिए मैं यह बता देना चाहता हूं कि अभी तक अमेरिका और ब्रिटेन में भी ऐसी कोई प्रणाली नहीं है । यह सर्व विदित है कि स्वतन्त्र, प्रजातंत्रीय और अर्द्ध-संघीय नीति के ढांचे के अन्तर्गत नियोजित अर्थव्यवस्था की स्थापना करने का हमारा प्रयत्न अपने ढंग का पहला प्रयास है । इतिहास में इसका कोई उदाहरण नहीं मिलता । इस प्रयत्न के हर पहलू पर हमें इस कठिनाई का सामना करना पड़ता है कि हमारे सामने ऐसा कोई उदाहरण नहीं जिसका हम अनुसरण कर सकें । इसलिए विवश होकर हमें प्रयोग और भूल-सुधार पद्धति अपना कर अपना मार्ग ढूँढ़ना पड़ता है ।

8. उच्चतर शिक्षा की एक विशिष्ट शाखा, अर्थात्, इंजीनियरी शिक्षा के क्षेत्र में हमने न केवल अच्छी शुरुआत की है बल्कि जन शक्ति नियोजित विकास में बहुत प्रगति भी की है । इसके परिणाम स्वरूप हमारे पास प्रयोग और भूल सुधार पद्धति के अनुभवों का अमूल्य निधि है, जिस का हम लाभ उठा सकते हैं । अनुप्रयुक्त जनशक्ति अनुसंधान संस्थान में इस अनुभव का गहरा अध्ययन किया गया है । इस अध्ययन के स्वरूप और परिणामों के संबंध में संस्थान ने तीन रिपोर्टें प्रस्तुत की हैं । मैंने इन परिणामों का उपयोग किया है और उच्चतर शिक्षा के सम्पूर्ण क्षेत्र में उनको अपनाने और उनका विस्तार करने का प्रयत्न किया है । इस प्रकार उनको अपनाने और विस्तृत करने के लिए विशेष अध्ययन अपेक्षित थे । ये अध्ययन भी इसी संस्थान में किए गये ।

9. इंजीनियरी शिक्षा उच्चतर शिक्षा की ऐसी शाखा है जिसमें यह बात असंदिग्ध है कि वृद्धि की नियोजित दर अधिकतम होनी चाहिए । उपर्युक्त संस्थान में इस शाखा के संबंध में जो अध्ययन किये गये उनसे यह निष्कर्ष निकला है कि वृद्धि की दर को बढ़ाते रहने की वर्तमान नीति गलत है और इसे ठीक करना चाहिए । जनशक्ति की कमियां दो प्रकार की हैं । एक है संख्यात्मक और दूसरी गुणात्मक । परिणाम यह है कि इंजीनियरी जनशक्ति की संख्यात्मक कमी की समस्या अब नहीं रही । अब समय आ गया है जब कि संख्यात्मक क्षमता की वृद्धि की दर को बढ़ाने के बदले कम किया जाए । अब हमारे सामने गुणात्मक कमी की समस्या प्रमुख है । इस समस्या को हल करने के उद्देश्य से अपेक्षित सुधारों की योजना बनाने और कुशलता पूर्वक क्रियान्वित करने के लिए गति में परिवर्तन लाना भी आवश्यक है ।

10. जहां तक इंजीनियरी शिक्षा का संबंध है, सामान्य रूप से स्थिति के उपर्युक्त विवेचन को स्वीकार नहीं किया जाता । परन्तु यदि उच्चतर शिक्षा को समग्र देखा जाए और विशेषकर कला की शिक्षा पर विचार किया जाए तो सम्भव है इन विषयों से संबंध में इस प्रकार के विवेचन को अधिक सहमति प्राप्त हो । रिपोर्ट में इस व्यापक प्रश्न पर विस्तार से चर्चा की गई है और इसमें तर्कों के आधार पर यह विचार प्रस्तुत किया गया है कि उच्चतर शिक्षा (समग्र शिक्षा जिसमें सभी शाखाएं शामिल हैं) की वृद्धि की दर इतनी तेज है कि हमारी राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की विकसित क्षमता भी उच्चतर शिक्षित जनशक्ति की बढ़ती हुई संख्या को कुशलतापूर्वक रोजगार नहीं दे सकती । उच्चतर शिक्षा की उपयोगिता और गुणों को बनाये रखने और उनमें वृद्धि करने के लिए स्रोतों का विनिधान करने की बढ़ती हुई क्षमता भी वृद्धि की इस दर की तुलना में कम है ।

11. वास्तव में हम शिक्षा-स्फीति की प्रक्रिया में से गुज़र रहे हैं । जिन कारणों से राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में मुद्रा-स्फीति की सुपरिचित प्रक्रिया पर नियंत्रण रखा जाता है, उन्हीं कारणों से शिक्षा-स्फीति को भी नियंत्रित किया जाना चाहिए ।

इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए आवश्यक है कि उच्चतर शिक्षा की सभी शाखाओं की वृद्धि की समग्र दर की उच्चतम संख्या (लक्ष्य संख्या नहीं) निर्धारित की जाए । पर रिपोर्ट इस बात को आधार मान कर लिखी गयी है कि प्रारम्भिक कदम के रूप में इस प्रकार के निर्णय अवश्य लिए जाएंगे जिनसे बाद में उच्चतर शिक्षा की विभिन्न शाखाओं की वृद्धि की विभिन्न और अलग-अलग दरें निर्धारित की जा सकें, और उच्चतर शिक्षा प्राप्त जनशक्ति के विभिन्न व्यावसायिक वर्गों की दर से उनका परस्पर सम्बन्ध स्थापित किया जा सके । राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का बदलता हुआ स्वरूप ऐसा करने के लिए हमें बाध्य करेगा ।

12. जैसा कि पहले बताया गया है, कोई ऐसी सामान्यतया स्वीकृत प्रणाली नहीं है जिसके द्वारा शैक्षिक योजना और जनशक्ति योजना में परस्पर सम्बन्ध स्थापित किया जा सके । जो लोग साधारण रूप से ऐसी प्रणाली की आवश्यकता का अनुभव करते हैं, वे बहुधा यह मान लेते हैं कि यह एक प्रकार का आंकड़ों का खेल

हैं जिसे विशेषज्ञ आंकड़ाशास्त्री ही खेल सकते हैं। यह धारणा वास्तविकता से बहुत दूर है। इसमें संदेह नहीं कि योजना सम्बन्धी अन्य निर्णयों की तरह, शिक्षा और जनशक्ति योजना के निर्णय भी आंकड़ों का ध्यान रख कर किए जाते हैं। परन्तु वे सांख्यिकीय संगणना मात्र नहीं होते, प्रशासनिक निर्णय होते हैं। इसके दो कारण हैं। एक तो यह कि भविष्य के पूर्वानुमान के लिए हमारे आंकड़े अपूर्ण और सदोष हैं। उन्हें सुधारने में समय लगेगा। यदि इनमें सुधार कर भी लिया जाए और तकनीक का विस्तार किया जाए, तो भी भविष्य के लिए उन्हें अन्तिम नहीं माना जा सकता। दूसरे, हमारे लिए भविष्य पूर्वानुमान इसलिए आवश्यक नहीं कि भविष्य हमारे पूर्वानुमान जैसा ही हो बल्कि इसलिए कि उनमें यथासंभव परिवर्तन किए जा सकें जिस से नीति सम्बन्धी उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सके।

इसलिए, आंकड़ों और अनुसंधान में सुधार करना महत्वपूर्ण नहीं हैं (हालांकि इसकी भी आवश्यकता है) बल्कि उन प्रशासनिक संस्थाओं में सुधार करने की आवश्यकता है जो कार्यक्रम को नियोजित और क्रियान्वित करती हैं। जो भी आंकड़े उपलब्ध हैं उनका उपयोग करने और उनके आधार पर अच्छे प्रशासनिक निर्णय लेने में इन संस्थाओं को अधिकाधिक सक्षम बनाया जाना चाहिए।

इसीलिए, मैंने अपनी रिपोर्ट में वांछित प्रशासनिक व्यवस्था के विकास की आवश्यकता पर जोर दिया है।

13. रिपोर्ट को इस प्रकार क्रमबद्ध किया गया है : मुख्य सिफ़ारिशें केवल चार हैं। इनका उल्लेख पहले अध्याय में किया गया है।

अगले पांच अध्यायों में व्याख्या प्रस्तुत की गई है। आरम्भ में नई अवधारणाओं और नई शब्दावली की औपचारिक व्याख्या दी गई है और इसके बाद सिफ़ारिशों के अर्थ उद्देश्य और निहितार्थ स्पष्ट किये गये हैं। इंजीनियरी जनशक्ति विषयक जो अध्ययन किये गये थे, उनके परिणामों का सालमेल सम्पूर्ण उच्चतर शिक्षा-प्राप्त जनशक्ति और इसके मुख्य व्यावसायिक वर्गों के बारे में की गयी सिफारिशों के साथ बैठाने के लिए विशेष अध्ययन किए गए थे। इन अध्ययनों के स्वरूप और परिणामों का भी विवरण दिया गया है।

अन्तिम अध्याय में कई गौण सिफ़ारिशें की गयी हैं। जिनमें भारत सरकार और राज्य सरकारों के बीच कार्यकारी दायित्वों के विभाजन का और प्रशासनिक व्यवस्था के उत्तरोत्तर विकास का उल्लेख है।

14. चार मुख्य सिफारिशों को संक्षिप्त रूप में नीचे दिया जा रहा है :

पहली : भारत और सभी राज्य सरकारों को जनशक्ति नियोजित विकास और उच्चतर शिक्षा के सुधार से संबंधित सार्वजनिक नीति के पूर्व कथित तथ्यों और उद्देश्यों को स्वीकार करना चाहिए और औपचारिक रूप से अखिल भारतीय नीति का स्वीकृत वक्तव्य जारी करना चाहिए।

दूसरी : अखिल भारतीय नीति के जो उद्देश्य इस प्रकार निश्चित किये जाएं उन पर आधारित लक्ष्यों और सीमाओं की एक रूप रेखा तैयार की जाए उसमें उनकी संख्या निर्धारित की जाए। रिपोर्ट में इसे उच्चतर शिक्षा प्ररिप्रेक्ष्य योजना रूप रेखा कहा गया है।

तीसरी : उच्चतर शिक्षा परिप्रेक्ष्य योजना रूपरेखा को स्वीकार करने के फलस्वरूप सरकारी स्तर पर जो कार्यकारी कदम उठाए जाने हैं, उनकी जिम्मेदारी स्पष्ट रूप से बतायी और विभाजित की जानी चाहिए। इस सम्बन्ध में निश्चय किया जाना चाहिए कि भारत सरकार क्या करेगी और प्रत्येक राज्य सरकार क्या करेगी।

चौथी : उपर्युक्त करारों को संसद और राज्य विधान सभाओं में स्वीकृति के लिए प्रस्तुत किया जाना चाहिए ताकि उनके स्वीकृत स्वरूप को क्रियान्वित करने के लिए वांछित विधिक आधार की सुदृढ़ व्यवस्था की जा सके।

15. उच्चतर शिक्षा परिप्रेक्ष्य योजना रूपरेखा का मसौदा रिपोर्ट के पहले अध्ययाय के अनुबंध में दिया गया हैं। वास्तव में इसे मसौदा न कह कर मसौदे का बीज-केन्द्र कहना चाहिए। इससे पहले कि यह संक्रियात्मक बन सके, इसे न केवल अन्तिम रूप देना होगा बल्कि इसका विस्तार भी करना होगा।

रिपोर्ट में इस बात पर बार-बार जोर दिया गया है कि मसौदे में लक्ष्यों और सीमाओं के जो आंकड़े (जिन्हें 'नियंत्रांक' कहा गया है) दिए गए हैं वे सांख्यिकीय संगणना के फलस्वरूप प्राप्त किए गए ऐसे आंकड़े नहीं हैं जिन पर आगे विचार न हो सके। वे ऐसे निर्णय हैं जो मेरे विचार में ठीक हैं। स्थिति का जो सामान्य विवेचन मैंने प्रस्तुत किया है, सरकारें उसको स्वीकार करके भी लक्ष्य संबंधी भिन्न आंकड़े अपना सकती हैं। मसौदे का मुख्य उद्देश्य यह सिद्ध करना है कि जिस प्रकार के कार्यक्रम की सिफ़ारिश की गयी हैं, वह आवश्यक है और व्याव-

हारिक भी और इसीलिए उसे अपनाया जाना चाहिए। इसी कारण मसौदे में उस प्रक्रिया का सविस्तार उल्लेख है, जिसके आधार पर आंकड़े तैयार किए गए हैं।

16. टिप्पण के अन्त में मैं अनुप्रयुक्त जनशक्ति अनुसंधान संस्थान के विभिन्न अधिकारियों की सराहना करता हूं जिन्होंने बड़े उत्साह और तत्परता से कई अध्ययनों से संबंधित कार्य को सम्पन्न किया था। इस रिपोर्ट में जो आंकड़े दिए गए हैं, उनमें से अधिकांश श्री एच० एन० पण्डित और श्री क्यू० यू० खां के अध्ययनों पर आधारित हैं। श्री ए० के० दास गुप्त, श्री के० एन० सुन्दरम् और डाक्टर एस० पी० अग्रवाल ने मुझे जो सलाह और सहायता दी, उससे मुझे बहुत लाभ हुआ।

(आर० ए० गोपालस्वामी)

नई दिल्ली,
21 जून, 1966

सदस्य
शिक्षा आयोग

जनशक्ति नियोजित विकास और उच्चतर शिक्षा का सुधार

विषय सूची

		पृष्ठ
पहला अध्याय	चार विशिष्ट सिफ़ारिशों का विवरण . . .	594—597
पहले अध्याय का अनुबंध	उच्चतर शिक्षा परिप्रेक्ष्य योजना-रूपरेखा (मसौदा)	596
दूसरा अध्याय .	प्रारम्भिक विवेचन . .	598 –602
अनुभाग 1. .	उच्चतर शिक्षा की परिभाषा (पैरा 1 से 6) . .	598
अनुभाग 2. .	उच्चतर शिक्षा पाठ्यचर्याओं और उपाधियों के स्तर, उप-स्तर, प्रकार और विस्तृत वर्गीकरण (पैरा 7 से 12) .	599
अनुभाग 3. .	'जनशक्ति', 'दल' की परिभाषा और 'जनशक्ति नियोजित विकास और सुधार' की धारणा (पैरा 13 से 18) .	600
अनुभाग 4. .	'अन्तिम लक्ष्य वर्ष', 'अन्तरिम लक्ष्य वर्ष' और 'नियंत्रांक' की अवधारणा (पैरा 19 से 24) . . .	601
तीसरा अध्याय	'शिक्षा स्फीति' की समस्या—एक सांख्यिकीय अध्ययन और योजना के लिए निर्देशक सिद्धान्त. . . .	603—615
अनुभाग 1. .	प्रारम्भिक विचार (पैरा 25 से 31) . . .	603
अनुभाग 2. .	आर्थिक विकास की पूर्वकल्पना (पैरा 32 से 35) . .	604
अनुभाग 3. .	शैक्षिक दृष्टि से वर्गीकृत व्यक्ति 1960-61 (पैरा 36 से 44) . . .	606
अनुभाग 4. .	1975-76 तक प्रवृत्ति पर आधारित विकास (पैरा 45 से 52) . . .	608
अनुभाग 5. .	संभावित आपत्तियां और उनके उत्तर (पैरा 53 से 72) .	610
चौथा अध्याय .	उच्चतर शिक्षित जनशक्ति के राष्ट्रीय स्टाक में प्रस्तावित वृद्धि और उसके प्रमुख व्यावसायिक वर्ग . .	616—625
अनुभाग 1. .	रोज़गार वर्ग (पैरा 73 से 75)	616
अनुभाग 2. .	प्रमुख व्यावसायिक वर्ग (पैरा 76 से 83) . . .	616
अनुभाग 3. .	उच्चतर शिक्षित अध्यापन जनशक्ति (पैरा 84 से 87) .	619
अनुभाग 4. .	इंजीनियरी जनशक्ति (पैरा 88 से 94) . . .	620
अनुभाग 5. .	वैज्ञानिक और तकनीकी जनशक्ति (इंजीनियरी और विज्ञान अध्यापन जनशक्ति को छोड़कर) (पैरा 95 से 97) .	622
अनुभाग 6. .	लोक प्रशासकीय तथा निगमित प्रबंधक जनशक्ति (पैरा 98 से 109) . . .	623
पांचवा अध्याय .	उच्चतर शैक्षिक दलों की वार्षिक निकासी में प्रस्तावित वृद्धि तथा उसके विभिन्न स्तर और कोटियां . .	627—634
अनुभाग 1. .	प्रारम्भिक विवेचन (पैरा 110 से 112) . . .	627
अनुभाग 2. .	उच्चतर शैक्षिक दल और उच्चतर शैक्षिक जनशक्ति दल (पैरा 113 से 118) .	628
अनुभाग 3. .	राष्ट्रीय उच्चतर शैक्षिक दलों की विभिन्न कोटियां (पैरा 119 से 127) . .	629
अनुभाग 4. .	वृत्तिक विशेषीकृत शिक्षा और उपवृत्तिक विशेषीकृत शिक्षा (पैरा 128 से 132) .	633
छठा अध्याय .	उच्चतर शिक्षा संस्थाओं में छात्रों के नामांकन और नियुक्त अध्यापक की संख्या में प्रस्तावित वृद्धि और उसके प्रत्यक्ष खर्च के लिए वित्त-व्यवस्था . . .	635—641
अनुभाग 1. .	विषय प्रवेश (पैरा 133 से 134) . . .	635
अनुभाग 2. .	छात्रों के नामांकन (पैरा 135 से 142) . . .	635
अनुभाग 3. .	अध्यापकों का नियोजन (पैरा 143 से 145) . .	637
अनुभाग 4. .	प्रत्यक्ष खर्च के लिए निधि का बंटवारा (पैरा 146 से 149)	637
अनुभाग 5. .	प्रत्यक्ष खर्च के आय-स्रोत (पैरा 150 से 156) .	638
सातवां अध्याय .	भारत सरकार और प्रत्येक राज्य सरकार के कार्यकारी दायित्व के निर्धारण की प्रस्तावित योजना और उसके विधिक आधार . . .	642 – 654
अनुभाग 1. .	विषय प्रवेश (पैरा 157 से 162)	642
अनुभाग 2. .	उच्चतर शैक्षिक वित्त और प्रशासन (163 से 172) .	643
अनुभाग 3. .	उच्चतर शिक्षा प्रशासन तंत्र : इंजीनियरी और शिल्पविज्ञान शाखा (पैरा 173 से 177) .	646
अनुभाग 4. .	उच्चतर शिक्षा प्रशासन तंत्र : अन्य शाखाएं (पैरा 178 से 182) . . .	648
अनुभाग 5. .	संघीय निगमित सेवा आयोग (पैरा 183 से 188) .	649
अनुभाग 6. .	संघीय जनशक्ति प्राधिकरण और राज्य जनशक्ति प्राधिकरण (पैरा 189 से 196) .	652

जनशक्ति-नियोजित विकास और उच्चतर शिक्षा का सुधार

पहला अध्याय, चार विशिष्ट सिफ़ारिशों का विवरण

एक. जनशक्ति नियोजित विकास और उच्चतर शिक्षा के सुधार के संबंध में अखिल भारतीय नीति

यह आवश्यक है कि भारत में उच्चतर शिक्षा का विकास नियोजित ढंग से हो ताकि निम्नलिखित चार शर्तों को पूरा किया जा सके :

पहली : देश की उच्चतर शिक्षित जनशक्ति की संख्या में हर वर्ष कितनी वृद्धि की आवश्यकता है, इसका अनुमान पहले से लगाया जाना चाहिए और इस काम में यथासंभव सूक्ष्मता और यथार्थता से काम लेना चाहिए। ऐसी व्यवस्था की जानी चाहिए जिससे देश की उच्चतर शिक्षा की सभी संस्थाएं हर वर्ष उतनी संख्या में उच्च शिक्षित जनशक्ति के दल तैयार कर सकें जितनी आवश्यकता पहले आंकी गयी थी।

दूसरी : ऐसी व्यवस्था की जानी चाहिए कि उच्चतर शिक्षित जनशक्ति के दल बिना रोज़गार के न रहें या अपर्याप्त रोज़गार में समय नष्ट न करें। जहां तक हो सके उनको उन पदों पर लगाया जाना चाहिए जिनमें वे अपनी शैक्षिक योग्यता का अधिकतम उपयोग कर सकें।

तीसरी : उच्चतर शिक्षित जनशक्ति दलों के रोज़गार के स्वरूप में जो परिवर्तन हो रहे हैं, उनको ध्यान में रखते हुए, उच्चतर शिक्षा-संस्थाओं में अध्ययन के वर्तमान पाठ्यक्रमों का पुनरीक्षण किया जाना चाहिए। अध्ययन के इन पाठ्यक्रमों की रचना और विषय-वस्तु तथा प्रवेश की आवश्यकताओं का पुनरीक्षण साथ ही साथ किया जाना चाहिए। इस प्रकार पूरी प्रणाली में सुधार किया जाना चाहिए ताकि उच्चतर शिक्षित जनशक्ति के विभिन्न व्यावसायिक वर्गों को शिक्षा का यथासंभव सर्वोत्तम प्रशिक्षण देने की व्यवस्था की जा सके।

चौथी : ऐसे माध्यमिक शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों के लिए, जो पहले से रोजगार में लगे हैं और पदोन्नति के योग्य हैं, नए प्रकार के "पदोन्नति-विस्तार" पाठ्यक्रमों का विकास करने की आवश्यकता है। इससे उनका शैक्षिक स्तर उच्चतर शिक्षित जनशक्ति के बराबर हो जाएगा। इसके लिए जो विशेष व्यवस्था अपेक्षित है, उसकी रूपरेखा बनायी जानी चाहिए और उसे विकसित किया जाना चाहिए।

पांचवी : पिछले दस वर्षों में उच्चतर शिक्षित जनशक्ति के दलों की मांग हर वर्ष पहले से अधिक दर से बढ़ती रही है। परन्तु साथ ही साथ देश की उच्चतर शिक्षा संस्थाओं से हर वर्ष निकलने वाले उच्चतर शिक्षित जनशक्ति के दलों की संख्या मांग की अपेक्षा अधिक रही है। परिणामस्वरूप उच्चतर शिक्षितों के लिए रोजगार मिलने में दिनोंदिन कठिनाई बढ़ती जा रही है। देश के विभिन्न भागों में ऐसे उच्चतर शिक्षित लोगों की संख्या बहुत अधिक बढ़ गई है जो रोज़गार खोज रहे हैं। जब रोज़गार मिलना कठिन हो जाता है, तो उच्चतर शिक्षा-संस्थाओं में प्रवेश पाने की मांग का जोर और अधिक बढ़ जाता है। इस प्रकार "उच्चतर शिक्षा स्फीति की प्रक्रिया" चल रही है। स्थिति के और अधिक खराब होने की सम्भावना है क्योंकि साथ ही साथ "माध्यमिक शिक्षा-स्फीती" भी हो रही है। अब यह आवश्यक हो गया है कि बिना किसी विलम्ब के स्फीति के दबाव को नियंत्रित किया जाए। इस उद्देश्य के लिए यह आवश्यक है कि उच्चतर शिक्षा को सभी संस्थाओं में प्रवेश पाने वाले छात्रों की वृद्धि पर प्रभावकारी सरकारी नियंत्रण की प्रणाली अपनाई जाए। इस नियंत्रण के लिए यह आवश्यक है कि उच्चतर शिक्षा संस्थाओं के सभी प्रवेशार्थियों के लिए प्रतियोगिता प्रणाली अपनाई जाए, जैसी इंजीनियरी की शिक्षा संस्थाओं में प्रवेश पाने के लिए पिछले वर्षों में अपनाई गई है।

इसलिए, यह सिफ़ारिश की जाती है कि भारत सरकार और सभी राज्य सरकारें "जनशक्ति नियोजित विकास और उच्चतर शिक्षा के सुधार" से संबंधित ऐसी अखिल भारतीय नीति पर एकमत हों और उसे अपनाएं जिसमें पूर्वकथित विवेचन सम्मिलित हों।

दो. उच्चतर शिक्षा परिप्रेक्ष्य योजना-रूपरेखा

अखिल भारतीय नीति के सम्बन्ध में सहमति प्राप्त करने के बाद यह आवश्यक होगा कि इस नीति के अनुसार

"जनशक्ति नियोजित विकास और उच्चतर शिक्षा के सुधार" के लिए एक सामान्य अखिल भारतीय आधार स्थापित किया जाए। इसके लिए यह आवश्यक है कि भारत सरकार और सभी राज्य सरकारें "उच्चतर शिक्षा परिप्रेक्ष्य योजना-रूपरेखा" पर सहमत हों और उसे अपनाएं। विभिन्न प्राधिकारियों द्वारा विकास और सुधार के जो कार्यक्रम नियोजित अथवा क्रियान्वित किए जाएं, उनका उच्चतर शिक्षा परिप्रेक्ष्य योजना रूपरेखा के अनुरूप और उसकी आवश्यकताओं के अनुसार एक दूसरे के साथ समन्वय किया जाए। योजना की रूपरेखा का मसौदा तैयार कर लिया गया है और अध्याय के अनुबन्ध के रूप में दिया गया है। "अन्तरिम लक्ष्य वर्ष" और "नियंत्रांक" का उल्लेख उच्चतर शिक्षा परिप्रेक्ष्य योजना रूपरेखा में किया गया है। इसके अर्थों, उद्देश्यों और निहितार्थों की व्याख्या रिपोर्ट के बाद के अध्यायों में की गई है।

यह सिफारिश की जाती है कि भारत सरकार और सभी राज्य सरकारें सम्मिलित रूप से मसौदे पर विचार करें, इसमें निहित कार्यों का परीक्षण करें और परीक्षण के बाद जिन बातों पर मतैक्य हो उनको ध्यान में रखते हुए नियंत्रांकों को अन्तिम रूप दें और इस संबंध में निर्णय करें। विकास और सुधार के कार्यक्रम तैयार करने के लिए उच्चतर शिक्षा परिप्रेक्ष्य योजना रूपरेखा को सामान्य अखिल भारतीय आधार माना जाएगा, इस विषय पर भी सरकारों की सहमति अपेक्षित है।

तीन. भारत सरकार और हर राज्य सरकार के कार्यकारी उत्तरदायित्व के निर्देशन की योजना

विकास और सुधार के कार्यक्रम के नियोजन के लिए सामान्य अखिल भारतीय नीति और सामान्य अखिल भारतीय आधार के संबंध में सहमति हो जाने के बाद, यह निर्देशन करना आवश्यक होगा कि विकास और सुधार की विशिष्ट योजनाओं को तैयार करने और उन्हें क्रियान्वित करने के लिए भारत सरकार और हर राज्य सरकार के कार्यकारी उत्तरदायित्वों का स्वरूप और विस्तार क्या होगा। इस रिपोर्ट के अन्तिम अध्याय में इस विषय पर सुझाव दिए गए हैं कि ये निर्देश किस प्रकार दिए जाएं। **यह सिफ़ारिश की जाती है कि भारत सरकार और सभी राज्य सरकारें सम्मिलित रूप से इन सुझावों पर विचार करें, इसमें निहित कार्यों का परीक्षण करें, परीक्षण के बाद जिन बातों पर मतैक्य हो उनको ध्यान में रखते हुए भारत सरकार और हर राज्य सरकार के कार्यकारी उत्तरदायित्व के निर्देशन की योजना के संबंध में निर्णय करें और उसे अन्तिम रूप दें।**

चार. जनशक्ति नियोजित विकास और उच्चतर शिक्षा के सुधार का विधिक आधार

नई अखिल भारतीय नीति के रूप में जो सुधार किए जाएं उनके लिए विधायी स्वीकृति अपेक्षित है। योजना के क्रियान्वित करने के लिए अपेक्षित कार्यकारी उत्तर-दायित्व और प्रशासनिक व्यवस्था के लिए विधिक आधार की व्यवस्था करना भी आवश्यक होगा ताकि इस कार्य को स्थापित्व और निरंतरता प्राप्त हो सके। इन कारणों से **यह सिफारिश की जाती है कि संसद और राज्य-विधान-सभाओं में उपयुक्त अधिनियम पास किए जाएं ताकि भारत में जनशक्ति नियोजित विकास और उच्चतर शिक्षा के सुधार के लिए अंतरिम लक्ष्य वर्ष तक अपेक्षित विधिक आधार की व्यवस्था की जा सके।**

पहले अध्याय का अनुबंध

(मसौदा) उच्चतर शिक्षा परिप्रेक्ष्य योजना-रूपरेखा

भाग एक. उच्चतर शिक्षित जनशक्ति और उसके मुख्य व्यवसायिक वर्गों के राष्ट्रीय कोष का विकास

परिप्रेक्ष्य योजना की मदें		परिकलित वास्तविक आंकड़े 1960-61	अन्तरिम लक्ष्य वर्ष के नियंत्रांक
	कुल	1,432,000	4,000,000
1. उच्चतर शिक्षित जनशक्ति का राष्ट्रीय कोष	औद्योगिक रोजगार	191,000	1,100,000
	सेवा रोजगार	10,04,000	22,00,000
	कृषि-घरेलू रोजगार	1,42,000	4,00,000
	रोज़गार पाने के इच्छुक	95,000	300,000
2. उच्चतर शिक्षित जनशक्ति वर्ग	1. उच्चशिक्षित शिक्षक जनशक्ति	2,22,000	9,00,000
	2. इंजीनियरी जनशक्ति	1,30,300	7,50,000
	3. वैज्ञानिक और तकनीकी जनशक्ति (1 और 2 को छोड़कर)	1,81,000	6,50,000
	4. सार्वजनिक प्रशासनिक और निगम व्यवस्था जनशक्ति (1 से 3 को छोड़कर)	2,66,000	5,00,000
3. उच्चतर शिक्षित जनशक्ति	(1 से 4 को छोड़कर)	6,30,000	12,00,000
	कुल राष्ट्रीय कोष	14,32,000	4,00,000

(मसौदा) उच्चतर शिक्षा परिप्रेक्ष्य योजना-रूपरेखा

भाग दो. उच्चतर शैक्षिक दलों की वार्षिक संख्या की वृद्धि (वर्गों और स्तरों के अनुसार)

(संख्या हजारों में)

परिप्रेक्ष्य योजना की मदें		परिकलित वास्तविक आंकड़े 1956-57			परिकलित वास्तविक आंकड़े 1961-62			अतरिम लक्ष्य वर्ष के नियंत्रांक		
		राष्ट्रीय	प्रादेशिक	कुल	राष्ट्रीय	प्रादेशिक	कुल	राष्ट्रीय	प्रादेशिक	कुल
1		2	3	4	5	6	7	8	9	10
उच्च शिक्षित जनशक्ति दल		48.7	44.0	92.7	81.4	69.1	150.5	150.0	175.0	325.0
अतिरिक्त उच्चतर शिक्षित दल जिन्होंने उच्चतर शिक्षा में दोबारा प्रवेश पाया		—	35.0	35.0	—	60.0	60.0	—	75.0	75.0
उच्चतर शिक्षित दल		48.7	79.0	127.7	81.4	129.1	210.5	150.0	250.0	400.0
वैज्ञानिक और तकनीकी शिक्षा प्राप्त दल	अकादमिक-शिक्षा शास्त्रीय विज्ञान शिक्षा	7.4	17.0	24.4	12.1	29.2	41.3	50.0	30.0	80.0
	इन्जीनियरी शिक्षा	4.8	5.0	9.8	9.5	10.9	19.9	30.0	50.0	80.0
	विशेष वैज्ञानिक और तकनीकी शिक्षा (इन्जीनियरी शिक्षा को छोड़कर)	5.5	2.2	7.7	8.5	4.9	13.4	20.0	20.0	40.0
	कुल	17.7	24.2	41.9	30.1	44.5	74.6	80.0	120.0	200.0

(जारी)

1		2	3	4	5	6	7	8	9	10
कला शिक्षा प्राप्त दल.	अकादमिक शिक्षा									
	शास्त्रीय कला शिक्षा	23.6	44.5	68.1	41.6	69.3	110.9	50.0	100.0	150.0
	वाणिज्य, विधि, प्रशासन और विशेष कलाओं की शिक्षा	7.4	10.3	17.7	9.7	15.3	25.0	20.0	30.0	50.0
	कुल	31.0	54.8	85.8	51.3	84.6	135.9	70.0	130.0	200.0

(मसौदा) उच्चतर शिक्षा परिप्रेक्ष्य योजना-रूपरेखा

भाग तीन. उच्चतर शिक्षा संस्थाओं में छात्र-प्रवेश और अध्यापक-नियुक्ति में वृद्धि और उस पर प्रत्यक्ष खर्च की वित्तीय व्यवस्था

परिप्रेक्ष्य योजना की मदें		परिकलित वास्तविक आंकड़े 1956-57	परिकलित वास्तविक आंकड़े 1961-62	अंतरिम लक्ष्य वर्ष के नियंत्रांक
1		2	3	4
उच्चतर शिक्षा				
1. दलों की संख्या (हजारों में)	राष्ट्रीय	48.7	81.4	150.0
	प्रादेशिक	79.0	129.1	250.0
	कुल	127.7	210.5	400.0
2. छात्र-प्रवेश (हजारों में)	राष्ट्रीय	116	205	750
	प्रादेशिक	448	686	1000
	कुल	564	891	1750
3. छात्र-अध्यापक अनुपात	राष्ट्रीय	11	10	10
	प्रादेशिक	19	17	15
	कुल	17	15	12
4. अध्यापक-नियुक्ति (हजारों में)	राष्ट्रीय	11	20	75
	प्रादेशिक	23	40	66
	कुल	34	60	141
5. अध्यापकों के प्रत्यक्ष खर्च के लिए विधि (रुपया 1960-61 के मूल्यों पर स्थिर)	राष्ट्रीय	9,862	11,682	12,000
	प्रादेशिक	7,465	7,757	9,000
	कुल	8,231	9,048	10,640
6. प्रत्यक्ष खर्च के लिए निधि (रुपए करोड़ों में) (1960-61 के मूल्यों पर स्थिर)	राष्ट्रीय	11	23	90
	प्रादेशिक	17	31	60
	कुल	28	54	150

दूसरा अध्याय, प्रारम्भिक विवेचन

अनुभाग-1. उच्चतर शिक्षा की परिभाषा

1. एक ऐसा द्वाभामय क्षेत्र है जहां 'माध्यमिक शिक्षा' समाप्त होती है और 'उच्चतर शिक्षा' का आरम्भ होता है। यह आवश्यक है कि इस क्षेत्र को प्रकाशित किया जाए और माध्यमिक और उच्चतर शिक्षा के बीच स्पष्ट विभाजक रेखा खींची जाए। यह इसलिए आवश्यक है कि हम छात्रों और अध्यापकों की बहुत बड़ी संख्या के और सरकारी कोष से बड़ी-बड़ी रकमों के खर्च के अनुमान लगा रहे हैं। ये अनुमान किस विषय के सम्बन्ध में है, इस बारे में कोई गलतफहमी नहीं होनी चाहिए।

2. सबसे पहले हम यह प्रश्न लें कि शिक्षा क्या है ? इस रिपोर्ट के उद्देश्य के लिए शिक्षा का आशय है उन सब पाठ्यचर्याओं का समुच्चय जिनकी शिक्षा संस्थाओं में व्यवस्था है। शिक्षा संस्थाओं के नाम अलग-अलग हैं। शिक्षा मंत्रालय की वार्षिक सांख्यिकीय रिपोर्ट में जिन संस्थाओं का विवरण शामिल किया जाता है, उन सब संस्थाओं से हमारा सम्बन्ध है। हर पाठ्यचर्या अध्ययन और/या प्रशिक्षण का वियोजित कार्यक्रम होती है। चाहे अध्ययन हो या प्रशिक्षण, दोनों स्थितियों में (परिभाषा के अनुसार) इसे शिक्षा ही कहेंगे, यदि इसकी व्यवस्था (उपर्युक्त परिभाषा के अनुसार) किसी शिक्षा संस्था में है। शिक्षा संस्थाओं के बाहर भी अध्ययन और प्रशिक्षण के कार्यक्रमों की व्यवस्था है। इन कार्यक्रमों को 'शिक्षा' का नाम न देकर 'शिक्षु-प्रशिक्षण' या 'अन्तःसेवा प्रशिक्षण' कहा जाता है।

3. आजकल सभी विश्वविद्यालयों के डिग्री पाठ्यक्रम सामान्य रूप से उच्चतर शिक्षा का भाग माने जाते हैं। कालेजों में अन्य दो प्रकार के पाठ्यक्रम भी होते हैं जिनकी समाप्ति पर विश्वविद्यालय की डिग्री नहीं दी जाती, जैसे पूर्व-विश्वविद्यालय पाठ्यक्रम और इंटरमीडिएट पाठ्यक्रम। इनके बारे में हमारा उत्तर इस प्रकार है :

(क) पूर्व-विश्वविद्यालय पाठ्यक्रम माध्यमिक शिक्षा का भाग माना जाता है न कि उच्चतर शिक्षा का।

(ख) इंटरमीडिएट पाठ्यक्रम में दो वर्षों का कार्यक्रम होता है। पहले वर्ष का कार्यक्रम (अवर इंटरमीडिएट पाठ्यक्रम) माध्यमिक शिक्षा का भाग माना जाता है, उच्चतर शिक्षा का नहीं। दूसरे वर्ष का कार्यक्रम (वरिष्ठ इंटरमीडिएट पाठ्यक्रम) उच्चतर शिक्षा का भाग माना जाता है।

4. यहां पर हम एक नया प्रयोग करना चाहते हैं। कालेज की शिक्षा का न केवल एक द्वाभामय क्षेत्र है, बल्कि एक ऐसा क्षेत्र भी है जो स्पष्ट नहीं है। इसे आजकल 'स्कूल-स्तर की व्यावसायिक और तकनीकी शिक्षा' कहा जाता है। इसे तीन भागों में विभाजित करना होगा। एक भाग को उच्चतर शिक्षा में शामिल किया जाएगा, दूसरे को माध्यमिक शिक्षा में और तीसरे को प्रारम्भिक शिक्षा में। यहां हम केवल उस भाग को स्पष्ट करेंगे और उसकी व्यवस्था करेंगे जो उच्चतर शिक्षा में शामिल किया जाना है और उसे एक विशिष्ट नाम देंगे। जिस प्रकार की उच्चतर शिक्षा के बारे में हम विचार कर रहे हैं, उसका एक उदाहरण है पालिटेक्निकों में तीन वर्ष की तकनीकी शिक्षा का कार्यक्रम (जो अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद् द्वारा निर्धारित पाठ्यचर्या विशिष्टियों के अनुसार तैयार किया गया है) जिसकी समाप्ति पर तकनीकी शिक्षा के प्रादेशिक बोर्ड डिप्लोमा प्रदान करते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि इस प्रकार के विभिन्न पाठ्यक्रमों का विकास किया जाए और जनशक्ति नियोजित विकास और उच्चतर शिक्षा के सुधार में इनके महत्व और विशिष्टता पर जोर दिया जाए। इन पाठ्यक्रमों को 'उप-व्यावसायिक पाठ्यक्रम' कहा जा सकता है।

5. 'उप-व्यावसायिक पाठ्यक्रमों' के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए उनके निम्नलिखित लक्षणों और विशेषताओं का उल्लेख किया जा सकता है :

(क) ऐसे पाठ्यक्रमों में प्रवेश पाने के लिए, चुनाव केवल उन व्यक्तियों तक सीमित रखा जाएगा जिन्होंने सामान्य स्कूल शिक्षा (अथवा इसके बराबर का, अर्थात् 'उच्चतर माध्यमिक स्तर' के उपान्तिम वर्ष का कार्यक्रम) का 'उच्च स्तर' सफलतापूर्वक समाप्त कर लिया हो।

(ख) सामान्य स्कूल शिक्षा के 'उच्च स्तर' या इसके बराबर के स्तर की समाप्ति के बाद, इस

पाठ्यक्रम के लिए कम-से-कम तीन वर्षों तक किसी संस्था में शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए।

(ग) यह पाठ्यक्रम निर्धारित अखिल भारतीय विशिष्टयों के अनुसार होना चाहिए और इसकी समाप्ति पर सक्षम शिक्षा प्राधिकारियों द्वारा डिप्लोमा दिया जाना चाहिए।

6. अब हम इस रिपोर्ट के लिए 'उच्चतर शिक्षा' की परिभाषा इस प्रकार करेंगे :

(क) सभी विश्वविद्यालय डिग्री पाठ्यचर्याएं;

(ख) सभी उप-व्यावहारिक पाठ्यचर्याएं जिनकी समाप्ति पर डिप्लोमा दिया जाता है; तथा

(ग) उच्च (सीनियर) इंटरमीडिएट पाठ्यक्रम।

अनुभाग-2. उच्चतर शिक्षा पाठ्यचर्याओं और उपाधियों के स्तर, उपस्तर, प्रकार और विस्तृत वर्गीकरण

7. 'उच्चतर शिक्षा' की हमने जो परिभाषा की है, उसको अमेरिका, रूस, ब्रिटेन, फ्रांस, जापान वा शैक्षिक दृष्टि से विकसित विश्व का कोई अन्य देश उच्चतर शिक्षा के रूप में न तो स्वीकार करेगा और न मान्यता देगा। इसका कारण केवल यह नहीं है कि हमने अपनी परिभाषा में उप-व्यावसायिक डिप्लोमा पाठ्यक्रमों को शामिल कर लिया है, बल्कि मुख्य कारण यह है कि हमारे विश्व-विद्यालयों की कई डिग्रियों के पाठ्यक्रमों की विशिष्टियां उन देशों की विश्वविद्यालय शिक्षा (अथवा अन्य प्रकार की शिक्षा जिसे उच्चतर शिक्षा माना जाता है) की न्यून-तम आवश्यकताओं से कम हैं।

8. उपर्युक्त कथन बी० ए०/बी० एस-सी०/बी० काम० डिग्रियों पर भी लागू होता है और हमारे विश्व-विद्यालयों के वार्षिक विकास का बड़ा अनुपात इन्हीं का होता है। इन डिग्रियों को 'उच्चतर शिक्षा' के रूप में जो मान्यता प्राप्त है, उसको समाप्त नहीं किया जा सकता। परन्तु जिन विश्वविद्यालय डिग्री पाठ्यक्रमों को विश्व के विकसित देशों में 'उच्चतर शिक्षा' के रूप में मान्यता दी जाती है और जिन पाठ्यक्रमों को ऐसी मान्यता नहीं दी जाती, हमें उनके अन्तर की ओर अपना ध्यान केन्द्रित करना चाहिए। पहले प्रकार के पाठ्यक्रमों को हम 'राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा' कहेंगे और दूसरे प्रकार के पाठ्यक्रमों को प्रादेशिक उच्चतर शिक्षा'।

9. उच्चतर शिक्षा के ये दो 'स्तर' हैं। 'प्रादेशिक उच्चतर शिक्षा' के दो उप-स्तर हैं। एक तो विश्वविद्यालयों की डिग्री पाठ्यक्रमों का वर्ग है और दूसरा उप-व्याव-सायिक डिप्लोमा पाठ्यक्रमों का। इसी प्रकार 'राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा' में दो उप-स्तर हैं, एक 'उच्च' पाठ्यक्रमों का और दूसरा 'सामान्य' पाठ्यक्रमों का।

10. हमारी एम० ए०/एम० एस० सी०/एम० काम० की डिग्रियों तथा इंजीनियरी और मैडिसिन की डिग्रियों को 'राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा' में शामिल किया जा सकता है। हमारी बी० ए०/बी० एस-सी०/बी० काम० की डिग्रियों को 'प्रादेशिक उच्चतर शिक्षा' में ही सम्मिलित किया जा सकता है। उच्चतर शिक्षा के दो स्तरों के बीच एक द्वाभामय क्षेत्र भी है जिसे नीचे स्पष्ट किया गया है :

(क) सामान्य स्कूल शिक्षा के उच्च स्तर अथवा इसके बराबर के स्तर की समाप्ति के बाद जिस विश्वविद्यालय पाठ्यक्रम को चार वर्ष की अवधि के भीतर पूरा किया जा सकता है, उसे 'प्रादेशिक उच्चतर शिक्षा' के वर्ग में रखेंगे। इसी प्रकार उप-व्यावसायिक डिप्लोमा पाठ्यक्रमों को और वरिष्ठ इंटरमीडिएट पाठ्य-क्रम को भी इसी वर्ग में रखेंगे।

(ख) शेष सभी विश्वविद्यालय डिग्री पाठ्यक्रमों को 'राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा' के वर्ग में रखेंगे।

वर्तमान उच्चतर शिक्षा पाठ्यचर्याओं और उपाधियों का वर्गीकरण इसी आधार पर किया जाएगा। यह मानना पड़ेगा कि राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा (उपर्युक्त परिभाषा के अनुसार) के सामान्य पाठ्यक्रमों में कुछ ऐसे पाठ्यक्रम होंगे जो विकसित देशों की उच्चतर शिक्षा के न्यूनतम स्तर के नहीं होंगे। आशय यह है कि रोजगार की वास्त-विक आवश्यकताओं के अनुसार ऐसे पाठ्यक्रमों को स्पष्ट किया जाए तथा उनका पुनरीक्षण और परिशोधन किया जाए। **यदि रोजगार की दृष्टि से वास्तव में आवश्यक हो** तो उनके स्तर को स्वीकृत अन्तर्राष्ट्रीय स्तर तक उन्नत किया जाना चाहिए। **अन्यथा उनकी अवधि कम कर देनी चाहिए। और उनके विषयों में वास्तविक आवश्यकताओं के अनुसार परिवर्तन करना चाहिए।** दोनों स्थितियों में सीमान्त रेखा पर के इन पाठ्यक्रमों को अन्तर्राष्ट्रीय स्तरों की तुलना के अनुसार राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा अथवा प्रादेशिक उच्चतर शिक्षा के वर्गों में रखा जाएगा।

11. भारत सरकार की केन्द्रीय सांख्यिकी संस्था और श्रम मंत्रालय के रोजगार और प्रशिक्षण महानिदेशालय ने पिछले कुछ वर्षों में 'उद्योग' और 'व्यवसाय' के आधार पर वर्गीकरण करने के लिए उपयुक्त अखिल भारतीय योजनाओं का विकास किया है। ये महत्वपूर्ण योजनाएं, योजना के आवश्यक साधन हैं और इनका व्यावहारिक उपयोग इसी रूप में किया भी जाने लगा है। यह आवश्यक है कि इन साधनों की वृद्धि की जाए। **वर्गीकरण की इन दो योजनाओं के अतिरिक्त 'उच्चतर शिक्षा उपाधियों' की वर्गीकरण की मान्य अखिल भारतीय योजना होनी चाहिए।** इसके लिए शिक्षा मंत्रालय की सभी विश्वविद्यालय डिग्रियों और उच्चतर शिक्षा की अन्य मान्यता प्राप्त उपाधियों की वर्गीकृत अनुसूची बनानी चाहिए। उच्चतर शिक्षा की किसी विशिष्ट उपाधि का स्थान निर्धारित करने के लिए वर्गीकृत अनुसूची में जिस संख्या का प्रयोग किया जाए, उसे उस उपाधि की कूट संख्या भी माना जाए। सरकारी और गैर-सरकारी क्षेत्रों के संस्थानों के रोजगार संबंधी जो आवधिक आँकड़े प्राप्त हों, उनके आधार पर उच्चतर शिक्षा प्राप्त जनशक्ति का वर्गीकरण किया जा सकता है और उनकी उच्चतर शिक्षा की उपाधियों के आधार पर उनकी कूट संख्या निर्धारित की जा सकती है।

12. इस रिपोर्ट में हमने उच्चतर शिक्षा की उपाधियों के वर्गीकरण की अखिल भारतीय योजना आरम्भ करने का सुझाव दिया है। इसके लिए जिन दो स्तरों का प्रस्ताव रखा गया हैं पहले उनको विभाजित करना होगा। फिर, पहले अध्याय के अनुबंध में दी गयी उच्चतर शिक्षा परिप्रेक्ष्य योजना रूपरेखा के भाग दो में बताए उच्चतर शिक्षा के 'पांच प्रकारों' का निर्देशन करना होगा। इन पांच में से तीन प्रकार वैज्ञानिक और तकनीकी शिक्षा के होंगे और दो कला शिक्षा के। दो प्रकार की अकादमिक शास्त्रीय शिक्षा और तीन प्रकार की 'विशेष' उच्चतर शिक्षा भी इसमें शामिल है। नामों से ही मालूम हो जाएगा कि ये उच्चतर शिक्षा की उपाधियों में से कौन-सी उपाधियां इन पांच प्रकारों में से किस-किस के अन्तर्गत शामिल की जाएंगी। दो स्तरों और पांच प्रकारों से वर्गीकरण के दस मुख्य शीर्ष बन जाएंगे और इस प्रकार हर शिक्षा उपाधि की कूटसंख्या निर्धारित करने के लिए इसे पहला अंक माना जा सकता है। वर्गीकरण के सभी मुख्य शीर्षों को उप शीर्ष, गौण शीर्ष और विस्तृत शीर्ष में विभाजित किया जाना चाहिए, जैसा लोक निधि का बजट और लेखा तैयार करने वाले प्राधिकारियों द्वारा किया जाता है। उच्चतर शिक्षा-प्राप्त जनशक्ति के विस्तृत वर्गीकरण की प्रस्तावित योजना से उच्चतर शिक्षा-प्राप्त जनशक्ति के बजट और लेखे की प्रणाली आरम्भ होगी।

अनुभाग 3. 'जनशक्ति' और 'दल' की परिभाषा और 'जनशक्ति नियोजित विकास और सुधार' की अवधारणा

13. सामान्य रूप से किसी भी प्रकार के उपयोगी काम करने की मानव क्षमता के अर्थ में 'जनशक्ति' शब्द का भाववाची प्रयोग किया जा सकता है किन्तु अधिकतर इसका प्रयोग समूह वाचक नाम के रूप में किया जाता है जो उन सब मानवों के समूह का द्योतक है जिनमें ऐसी क्षमता है।

प्रायः 'जनशक्ति' शब्द का प्रयोग उसी अर्थ में किया जाता है जिस अर्थ में 'श्रमबल' का। औद्योगिक दृष्टि से विकसित देशों में इस प्रकार के प्रयोग से कोई कठिनाई नहीं होती क्योंकि 'श्रमबल' की अवधारणा उन्हीं देशों में विकसित हुई है। हमारे देश की परिस्थितियों में जनशक्ति शब्द का प्रयोग न केवल श्रमबल के लिए बल्कि गृहिणियों के लिए भी सुविधापूर्ण किया जा सकता है। क्योंकि गांवों की जो गृहिणियां 'श्रमबल' का भाग हैं और जो नहीं है, उन दोनों के बीच विभाजक रेखा खींचना बहुत कठिन है ऐसा अनुभव हुआ है। श्रमबल के आँकड़े और इस विभाजक रेखा के आधार पर निकाली गई भाग लेने वालों की तथाकथित दरें गलत सिद्ध हो सकती हैं। यदि गृहणियों को सम्मिलित किया जाए तो जनशक्ति विषयक सूचना अधिक सुगम हो जाती है और उसका उपयोग सरलता से किया जा सकता है।

सांख्यिकीय संगणना के लिए काम करने वालों की आयु की सीमाएं निर्धारित करना आवश्यक हैं। इसलिए, **इस रिपोर्ट में हम जनशक्ति की इस परिभाषा को लेकर चलते हैं, कि शिक्षा संस्थाओं में छात्रों के रूप में प्रवेश पाने वालों को छोड़कर इसमें 16 से लेकर 59 वर्ष की आय के सभी व्यक्ति शामिल हैं।**

14. यद्यपि इस रिपोर्ट का क्षेत्र उच्चतर शिक्षा और शिक्षा-प्राप्त जनशक्ति तक ही सीमित है, तथापि माध्यमिक शिक्षा और माध्यमिक शिक्षा-प्राप्त जनशक्ति का ही उल्लेख प्रायः करना पड़ा है। इसीलिए निम्नलिखित परिभाषाएं की गयी हैं :

(एक) उच्चतर शिक्षा-प्राप्त वह है जिसके पास उच्चतर शिक्षा की उपाधि हो। माध्यमिक शिक्षा प्राप्त व्यक्ति, वह है (जो उच्चतर शिक्षा-प्राप्त नहीं है पर) जिसने सामान्य स्कूल शिक्षा का उच्च स्तर अथवा उच्चतर माध्यमिक स्तर सफलता पूर्वक समाप्त कर लिया हो। 'शैक्षिक दृष्टि से वर्गीकृत व्यक्ति' से तात्पर्य उच्चतर

शिक्षा-प्राप्त अथवा माध्यमिक शिक्षा प्राप्त व्यक्ति से है ।

(दो) उच्चतर शिक्षा-प्राप्त जनशक्ति का अर्थ उच्चतर शिक्षा-प्राप्त व्यक्तियों के पूर्णयोग से है । जिनमें शिक्षा संस्थाओं के छात्र और 60 वर्ष की आयु से ऊपर के व्यक्ति सम्मिलित नहीं किए जाते । इसी प्रकार 'माध्यमिक शिक्षा-प्राप्त जनशक्ति' और 'शैक्षिक दृष्टि में वर्गीकृत जनशक्ति' माध्यमिक शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों और शैक्षिक दृष्टि से वर्गीकृत व्यक्तियों का पूर्णयोग है । इनमें भी उपर्युक्त प्रकार के लोगों को सम्मिलित नहीं किया जाता ।

15. जो व्यक्ति किसी विशेष वर्ष में उच्चतर शिक्षा की उपाधि प्राप्त करते है, उन्हें उस वर्ष के 'उच्चतर शैक्षिक दल' कहा गया है ।

किसी वर्ष के उच्चतर शिक्षा-प्राप्त दलों में कुछ ऐसे होते हैं जो उच्चतर शिक्षा के अन्य पाठ्यक्रमों में पुनः प्रवेश पा लेते हैं । वे शिक्षा संस्थाओं को छोड़ते नहीं हैं । उच्चतर शिक्षा प्राप्त उन व्यक्तियों को जो उच्चतर शिक्षा संस्थाओं को छोड़ देते हैं, उस वर्ष के उच्चतर शिक्षित जनशक्ति दल कहा गया है ।

16. उच्चतर शिक्षा के जनशक्ति नियोजित विकास की व्यवस्था करने के लिए सबसे पहले यह आवश्यक है कि उच्चतर शिक्षित जनशक्ति के 'कोष' के विकास की योजना बनाई जाए । कोष के नियोजित विकास के लिए अपेक्षित वार्षिक वृद्धियां उच्चतर शिक्षित जनशक्ति दलों की मांग पर निर्भर होंगी । इसलिए यह बहुत महत्वपूर्ण बात है कि 'दल' और 'कोष' के बीच के अन्तर को ध्यान में रखा जाए ।

17. जब हम जनशक्ति योजना के बाद शैक्षिक पर योजना पर कार्य करें तो (उपर्युक्त परिभाषा के अनुसार) 'उच्चतर शैक्षिक दल' और 'उच्चतर शिक्षित जनशक्ति दल' के बीच के अन्तर को भी ध्यान में रखना होगा ।

देश की उच्चतर शिक्षा की व्यवस्थित प्रणाली के 'कुल निकास के 'उच्चतर शैक्षिक दल' का नाम दिया गया है । प्रणाली के 'निवल निकास' को 'उच्चतर शिक्षित जनशक्ति दल' कहा गया है ।

18. उच्चतर शिक्षा का जनशक्ति नियोजित विकास वह प्रक्रिया है जिसमें उच्चतर शिक्षा संस्थाओं की उत्पादन क्षमता (जो विभिन्न स्तरों, उप-स्तरों, वर्गों और दूसरे विस्तृत वर्गीकरण के अनुसार उच्चतर शिक्षित जनशक्ति दलों की संख्या के रूप में आंकी जाती है) का हर वर्ष इस प्रकार विकास किया जाता है ताकि सम्पूर्ण राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के जनशक्ति दलों (के पहले रोजगार) की मांग की वृद्धि की दर को पूरा किया जा सके । यहां यह बता देना उचित होगा कि राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली उच्चतर शिक्षित जनशक्ति दलों की मांग का मुख्य स्रोत है और इसके साथ-साथ इस प्रकार के दलों को उपलब्ध करने का एकमात्र स्रोत है ।

उच्चतर शिक्षा के जनशक्ति नियोजित सुधार का अर्थ है विकास की उपर्युक्त प्रक्रिया के अनुसार उच्चतर शिक्षा संस्थाओं की व्यवस्था, प्रशासन, प्रबंध और परिचालन का नियोजित अनुकूलन ।

अनुभाग-4. 'अंतिम लक्ष्य वर्ष,' 'अंतरिम लक्ष्य वर्ष' और 'नियंत्रांक' की अवधारणा

19. पहले अध्याय में 'अंतरिम लक्ष्य वर्ष' का उल्लेख किया गया था । इसमें निहित है कि कोई 'अंतिम लक्ष्य वर्ष' भी होगा । यद्यपि जिस उच्चतर शिक्षा परिप्रेक्ष्य योजना-रूपरेखा का मसौदा प्रस्तुत किया गया है, यह उसका भाग नहीं है । इसका क्या अर्थ हुआ ? हमने क्रमिक पंचवर्षीय योजनाओं का काम हाथ में लिया है और तीन ऐसी योजनाएं समाप्त भी हो चुकी हैं । हम इस क्रम को जारी रखना चाहते हैं जब तक हमारी अर्थव्यवस्था विश्व के औद्योगिक दृष्टि से विकसित देशों की अर्थव्यवस्था की तुलना में पर्याप्त रूप से परिपक्व न हो जाए । विकास की इस अवस्था तक पहुंचने की स्थिति को कई विशेषताओं द्वारा प्रकट किया जा सकता है । उनमें से एक के साथ हमारा प्रत्यक्ष संबंध है और वह यह कि हमारी राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली का विकास इस प्रकार किया जाना चाहिए कि हमारे बच्चों को शिक्षा के वैसे ही अवसर प्राप्त हों जैसे अन्य देशों में आजकल सुलभ हैं । ऐसा कब होगा ? जब भी हो, जिस वर्ष ऐसी व्यवस्था होने की सम्भावना है, वह हमारा 'अंतिम लक्ष्य वर्ष' है ।

20. इस बात का निरूपण किया जा सकता है (और निरूपण किया भी गया है) कि ऊपर जिस अवस्था का उल्लेख किया गया है, उस अवस्था तक हमारी राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली का विकास चौथी, पांचवी या छठी योजना की अवधि में नहीं हो सकता । यदि एक शर्त पूरी की जाए तो सातवीं योजना की अवधि के किसी वर्ष में इस अवस्था तक पहुंचना सम्भव हो सकता है । शर्त यह है कि राष्ट्रीय जन्मदर इतनी कम हो जाए जितनी आजकल जापान की और पश्चिमी यूरोप के देशों की कुछ वर्ष पहले तक थी ।

21. परम्परा के अनुसार कोई निश्चित तारीख, जैसे 1985-86 या कोई अन्य वर्ष, न देकर हम अपनी परिप्रेक्ष्य योजना की समय-सीमा के अन्तिम वर्ष का उल्लेख इस प्रकार क्यों कर रहे हैं ; हम ऐसा इसलिए कर रहे हैं कि परम्परागत पद्धति से अपनी आशाओं की पूर्ति की ऊपरी आकर्षक रूपरेखा ही प्रस्तुत की जा सकती है यद्यपि आवश्यक कार्य के लिए वह हमारा उचित मार्गदर्शन नहीं कर सकती । इसके विपरीत, नियोजित लक्ष्यों की प्राप्ति से पहले जिन कठिनाइयों को हल करना है और इस दिशा में जो प्रयत्न अपेक्षित है, उनकी उपेक्षा करने की मानवीय प्रवृत्ति को यह दृढ़ करती है ।

22. चाहे परिप्रेक्ष्य योजना का अन्तिम वर्ष स्थिर हो अथवा वह परिवर्तनीय हो, हर सूरत में वह इतनी दूर होगा कि उसके आधार पर ऐसी परिप्रेक्ष्य योजना-रूपरेखा तैयार नहीं की जा सकती जो अगले कुछ वर्षों में विशिष्ट योजनाओं के लिए मार्गदर्शक बन सके । इस कारण हमें ऐसा विचार करना चाहिए कि परिप्रेक्ष्य योजना की पहली अवस्था की समाप्ति तिथि पर्याप्त निकट हो । इस उद्देश्य से 1975-76 को पहली अवस्था का अन्तिम वर्ष मान कर गणना की गयी है । गणना करते समय हमारी राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में सेवाओं और सामान का उत्पादन किस दर से बढ़ेगा, इस बारे में कुछ कल्पनाएं (जिनका विवेचन अगले अध्याय में किया जाएगा) की गयी हैं । यदि आर्थिक विकास के बारे में की गयी कल्पना वास्तविक रूप ले तो उच्चतर शिक्षा प्राप्त जनशक्ति में योजना के अनुसार वृद्धि होगी । यह कल्पना साकार होगी अथवा नहीं, यह अंशतः इस बात पर निर्भर है कि राष्ट्र का हर व्यक्ति अपना कर्तव्य पूरा करता हैं अथवा नहीं और कुछ इस बात पर कि दूसरे राष्ट्र क्या करते हैं । इस संदर्भ में हाल के अनुभव विशेष रूप से महत्वपूर्ण है ।

23. **इसलिए अंतरिम लक्ष्य वर्ष की व्याख्या के रूप में इस रिपोर्ट में यह कहा जाता है कि यह वह वर्ष होगा जब कृषि-उत्पादन को छोड़कर निवल घरेलू उत्पादन 17,000 करोड़ रुपये से अधिक होगा,** (1960-61 **के मूल्यों को स्थिर मानते हुए**) । यह रकम जिस आधार पर रखी गयी है, वह अगले अध्याय में बताया गया है । अनन्तिम रूप से हम यह कल्पना करते हैं कि (उपर्युक्त परिभाषा के अनुसार) अंतरिम लक्ष्य वर्ष 1975-76 होगा । परंतु हम इस संबंध में कोई पक्का वचन नहीं देते कि अंतरिम लक्ष्य वर्ष आयेगा ही क्योंकि वह औद्योगीकरण के विकास की दर पर निर्भर होगा । हाल की घटनाओं ने यह स्पष्ट कर दिया है कि कई अनियंत्रित प्रभाव कार्य करते हैं । हम हर वर्ष अपनी अर्थव्यवस्था को धीरे-धीरे विकसित करने का भरसक प्रयत्न ही कर सकते हैं । साथ-ही-साथ हमें यह भी देखना होगा कि कृषि-उत्पादन को छोड़ कर अन्य निवल उत्पादन की वृद्धि हमारे अनुमान से कम या अधिक तीव्रता से हो रही है । हमें अनुमान को आवश्यकतानुसार बदलना चाहिए और अपनी योजनाओं की गति तदनुसार बढ़ानी या घटानी चाहिए । यहां परिप्रेक्ष्य योजना-रूपरेखा में दिए गए विशिष्ट आंकड़ों की निर्भरता पर जोर देना आवश्यक है क्योंकि सामान्य मानव प्रवृत्ति के अनुसार आंकड़े याद रखे जाते हैं किन्तु उनसे संबंधित परिस्थितियों को भुला दिया जाता है ।

24. अन्त में 'नियंत्रांक' की परिभाषा के संबंध में । 'लक्ष्य' शब्द में यह भाव निहित है कि कोई ऐसी चीज जिसे प्राप्त करना कठिन है तो भी उस तक पहुंचने की योजना है । इसमें यह भाव भी है कि लक्ष्य को पार कर जाना बड़ी प्रशंसनीय बात होगी । कुछ उद्देश्यों के लिए तो यह स्थिति ठीक होगी परंतु कई दूसरे उद्देश्यों के लिए नहीं । ऐसे कार्यों में हमें नियोजित आंकड़ों की आवश्यकता है जिनको पार करने का लोभ संवरण करना होगा । उच्चतर शिक्षा के विकास का वियोजन करने में समस्या यह नहीं है कि संख्या में वृद्धि कैसे की जाए, बल्कि गुणवत्ता और उपयोगिता को बढ़ाने की समस्या है, इसी कारण हमें संख्या की अतिशीघ्र वृद्धि को रोकने का यत्न करना है जो उच्चतर शिक्षा के अनेक क्षेत्रों में आज हो रही है । इस प्रकार जहाँ कुछ मामलों में 'अन्तिम सीमा' निर्धारित करना आवश्यक है, कई अन्य मामलों में 'अधिकतम सीमा' निर्धारित करनी है । अन्तिम और अधिकतम सीमाओं को एक साथ व्यक्त करने के लिए हमने 'नियंत्रांक' का प्रयोग किया है ।

तीसरा अध्याय. 'शिक्षा स्फीति' की समस्या : एक सांख्यिकीय अध्ययन और योजना के लिए निर्देशक सिद्धान्त

अनुभाग 1. प्रारम्भिक विचार

25. यह अध्याय इस उद्देश्य से लिखा गया है कि 1960-61 और अंतरिम लक्ष्य वर्ष के बीच उच्चतर शिक्षित जनशक्ति के राष्ट्रीय कोष के नियोजित विकास के लिए 'नियंत्रांक' के अर्थों, उद्देश्यों और निहित अर्थों की व्याख्या की जाए। ये आंकड़े नीचे सारणी 1 में दिए गए हैं।

सारणी 1. उच्चतर शिक्षित जनशक्ति कोष का विकास

(संख्या लाखों में)

उच्चतर शिक्षित जनशक्ति के रोजगार संबंधी वर्ग	परिकलित वास्तविक आंकड़े (1960-61)	उच्चतर शिक्षित जवशक्ति के नियोजित विकास के (प्रस्तावित) नियंत्रांक, अंतरिम लक्ष्य वर्ष के लिए
1	2	3
औद्योगिक रोजगार	1.91	11.00
सेवा रोजगार	10.04	22.00
कृषि को छोड़कर अन्य कुल रोजगार	11.95	33.00
कृषि-गृह रोज़गार	1.42	4.00
रोज़गार के इच्छुक	0.95	3.00
कुल जनशक्ति कोष	14.32	40.00

26. ऊपर की सारणी में जो रोजगार वर्ग दिए गए हैं, उनको नीचे स्पष्ट किया नया है।

(क) 'कृषि-गृह रोजगार' का अर्थ है, कृषि में, घरेलू उद्योगों में और गृहणी के रूप में रोजगार। 'कृषि' में न केवल खेतीबाड़ी बल्कि, पशुपालन, मत्स्य पालन और शिकार भी शामिल है।

(ख) 'औद्योगिक रोजगार' का अर्थ है, खनिज निकालने में, विनिर्मित चीजों के उत्पादन में, बिजली पैदा करने और उसके वितरण में तथा इमारतें और सड़कें बनाने और दूसरे कामों में रोजगार (घरेलू उद्योगों के रोजगार को छोड़कर)। उन सब संस्थापनों के कर्मचारियों को, जिनमें इस प्रकार के उद्योगों का काम होता है, 'औद्योगिक रोजगार' में शामिल किया गया है, चाहे उनके काम का व्यावसायिक वर्गीकरण कुछ भी हो। यहां यह बता देना आवश्यक है कि उपर्युक्त परिभाषा के अनुसार औद्योगिक रोजगार में उन उद्योगों के रोजगार शामिल नहीं हैं जिन्हें 'सेवा उद्योग' कहा जाता है, जैसे परिवहन और संचार व्यवस्था।

(ग) 'सेवा रोजगार' का अर्थ है—खेती के घरेलू रोजगार अथवा औद्योगिक रोजगार को छोड़कर अन्य कोई रोजगार। इसमें सरकारी प्रशासन, वाणिज्य, परिवहन, संचार, शिक्षा, स्वास्थ्य,

कल्याण और अन्य सामाजिक, सांस्कृतिक और व्यक्तिगत सेवाओं के रोजगार शामिल हैं।

(घ) वे सब व्यक्ति जो जनशक्ति की हमारी परिभाषा में आते हैं और रोजगार के उपर्युक्त तीन वर्गों में से किसी में भी नहीं आते, उन्हें 'रोजगार इच्छुक' कहा गया है।

27. नियंत्रांक की 'तर्क संगतता' सिद्ध करने के लिए यह आवश्यक है कि आज राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली को जिन बुनियादी संस्थाओं का सामना करना पड़ रहा है, उनका विस्तृत अध्ययन किया जाए। इस समस्या का उल्लेख पहले 'शिक्षा स्फीति' के रूप में किया गया है। उच्चतर शिक्षा का अन्तर्निहित सांस्कृतिक महत्व भी होता है। निस्संदेह लोग इस बात को समझते हैं परन्तु उनके विचार में ऐसा होना स्वाभाविक है। उच्चतर शिक्षा संस्थाओं में जो छात्र प्रवेश चाहते हैं उनको (और विशेषकर माता-पिता को) उच्चतर शिक्षा के आर्थिक महत्व की ओर अधिक रुचि होती है। उच्चतर शिक्षा में प्रवेश पाने की मांग, वास्तव में 'उच्चतर शैक्षिक रोज़गार' की मांग है। इसी प्रकार माध्यमिक शिक्षा में प्रवेश की मांग, वास्तव में, उन प्रमाण पत्रों की मांग है जो उच्चतर शिक्षा में प्रवेश पाने के लिए आवश्यक योग्यता है और 'माध्यमिक शिक्षा रोज़गार' के लिए मांग है।

28. पिछले पन्द्रह वर्षों में उच्चतर शैक्षिक रोजगार और माध्यमिक शैक्षिक रोजगार की हर वर्ष इतनी अधिक मात्रा में वृद्धि हुई है जितनी पहले कभी नहीं हुई। किन्तु इसके साथ-साथ मांग उससे भी अधिक तीव्र गति से बढ़ी है। इस तीव्र गति से बढ़ती हुई मांग के अनुसार माध्यमिक स्कूलों और कालेजों में छात्रों की संख्या में हर वर्ष वृद्धि हुई है। उच्चतर शैक्षिक रोजगार और माध्यमिक शैक्षिक रोजगार की तुलना में शिक्षित जनशक्ति दलों की वार्षिक निकासी के विकास की गति अधिक तेज रही है।

29. ऐसी स्थिति में उन छात्रों के लिए उच्चतर शैक्षिक रोजगार मिलने के अवसर कम हो जाते हैं जो उच्चतर शिक्षा की उपाधियां प्राप्त कर चुके होते हैं। उनकी अधिकाधिक संख्या को माध्यमिक शैक्षिक रोजगार से संतोष करना पड़ता है। इसका सामान्य प्रभाव यह होना चाहिए कि उच्चतर शिक्षा में प्रवेश पाने की मांग का दबाव कम हो जाए। परन्तु ऐसा नहीं हुआ, बल्कि इसके बिलकुल विपरीत हुआ। माध्यमिक शैक्षिक दलों की निकासी पहले से भी तीव्र गति से हो रही है। इन दलों का पहला उद्देश्य यह है कि उच्चतर शिक्षा में प्रवेश प्राप्त किया जाए। वे माध्यमिक शैक्षिक रोजगार तभी स्वीकार करेंगे जब उन्हें यह मालूम होता है कि उच्चतर शैक्षिक दलों के साथ प्रतियोगिता होने के कारण माध्यमिक शैक्षिक रोजगार मिलने में कठिनाई है। तब उच्चतर शिक्षा में प्रवेश पाने की उनकी इच्छा और भी तीव्र हो उठती है। इस प्रकार (आवश्यक पदार्थों कि बाजार की तरह) शैक्षिक क्षेत्र में भी स्फीति चक्र चल पड़ता है।

30. स्फीति एक विश्वासघाती बीमारी है। शुरू में लोग इसे पसंद करते हैं क्योंकि इससे बहुत से लोगों को लाभ होता है और दूसरों का कोई हानि होती नहीं जान पड़ती। किन्तु जब स्फीति का दबाव अपनी जड़ें जमा लेता है, तभी इसके हानिकारक प्रभाव स्पष्ट होते है। सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था पर ऐसा ही प्रभाव पड़ा है। अब यह अनुभव होने लगा है कि यदि अर्थ-व्यवस्था को भंग किए बिना नियोजित आर्थिक विकास को बढ़ावा देना हो तो आर्थिक स्फीति को सीमित करना (यदि बिल्कुल समाप्त न करना हो) आवश्यक है। इसी प्रकार यदि जनशक्ति नियोजित विकास और उच्चतर शिक्षा के सुधार को सफल बनाना हो तो शिक्षा स्फीति को रोकना आवश्यक है। राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली को भंग होने से बचाने के लिए ऐसा करना वास्तव में आवश्यक है।

सारणी 1 में प्रस्तावित 'नियंत्रांकों' में यह बात निहित है कि संबंधित प्राधिकारी शिक्षा स्फीति की वर्तमान स्थिति का विवेचन करेंगे।

31. बाद के अनुभागों में इस विवेचन को सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है। हमने यहां न केवल उच्चतर पर शिक्षित जनशक्ति को बल्कि माध्यमिक शिक्षित जनशक्ति के राष्ट्रीय कोष का सांख्यिकी अध्ययन प्रस्तुत किया है। हमने वर्तमान प्रवृत्तियों के आधार पर कोष के भावी विकास का पूर्वानुमान लगाया है। इस विकास की तुलना माध्यमिक शैक्षिक रोजगार और उच्चतर शैक्षिक रोजगार के सम्भावी विकास से की गयी है। इस तुलना से शैक्षिक बेरोजगारी के विकास की भावी दर स्पष्ट हो जाएगी। इसलिए यह सुझाव दिया गया है कि इस प्रत्याशित विकास को रोका जाए और इसके लिए "शिक्षा स्फीति को अवश्यमेव सीमित किया जाना चाहिए।" इसके बाद उन व्यावहारिक बातों का सुझाव दिया गया है जो स्फीति को सीमित करने के लिए की जानी चाहिए।

अनुभाग 2. आर्थिक विकास की पूर्व-कल्पना

32. शैक्षिक योजना अथवा जनशक्ति योजना को एक पंचवर्षीय आयोजना की अल्पावधि में सीमित नहीं किया जा सकता। ऐसी योजना के लिए आवश्यक है कि पंचवर्षीय योजना की अवधि शुरू होने के पूर्व उन कामों के

बारे में निर्णय कर लिए जाएं जिन्हें उक्त अवधि में पूरा करना है ताकि लम्बी अवधि की (जिसमें कम-से-कम वे अगले पंचवर्षीय आयोजना की अवधि शामिल है) आवश्यकताओं को पूरा करने की तैयारी की जा सके। यह जानते हुए भी कि इतनी लम्बी अवधि तक अर्थ-व्यवस्था के विकास के सम्बन्ध में विश्वास के साथ पूर्वानुमान नहीं किया जा सकता—ऐसे निर्णय पहिले ही कर लिए जाते हैं जहां ऐसे पूर्वानुमान के लिए उपयुक्त आधार विद्यमान हों, वहां भी अर्थ-व्यवस्था को प्रभावित करने वाली ऐसी परिस्थितियों के परिवर्तन से जिन पर पहले ध्यान न दिया गया हो या न दिया जा सकता हो, सभी निर्णय गलत सिद्ध हो सकते हैं।

33. इस कठिनाई का कोई निवारण नहीं। इसे स्वीकार करना ही पड़ेगा। उपलब्ध आंकड़े चाहे कितने अपूर्ण अथवा दोषपूर्ण क्यों न हों, उनके आधार पर व्यावहारिक बुद्धि का यथासंभव सर्वोत्तम उपयोग करके भविष्य के लिए पूर्व-धारणाओं का सहारा लेना ही पड़ेगा। आर्थिक विकास के वास्तविक तथ्यों का ध्यान रखते हुए व्यावहारिक बुद्धि के आधार पर जो धारणाएं की गयी हों उन पर लगातार पुनर्विचार करना होगा। योजना तैयार करने वालों को अपनी पूर्व-धारणाओं में आवश्यकतानुसार परिवर्तन करने के लिए और इनके फलस्वरूप नियोजित कार्यक्रमों को बदलने के लिए तैयार रहना चाहिए। कार्यक्रम इस प्रकार बनाए जाएं और उन्हें क्रियान्वित करने की व्यवस्था ऐसी हो कि अपेक्षित परिवर्तनों के संबंध में बहुत सरलता से निर्णय किए जा सकें और क्रियान्विति-व्यवस्था में बाधा डाले बिना ही नियोजित कार्यक्रमों को क्रियान्वित किया जा सके। योजना और विकास की हमारी प्रशासनिक व्यवस्था अभी इतनी विकसित नहीं हुई है जितनी इन आवश्यकताओं के विचार से अपेक्षित है। हम यह मान कर चलते हैं कि नियोजित विकास के क्षेत्र में सामान्य रूप से और शिक्षा के क्षेत्र में विशेष रूप से प्रशासनिक व्यवस्था में सुधार किया जाएगा।

34. अब हम उन भावी कल्पनाओं का उल्लेख करेंगे जिनको आधार पर हमें आगे बढ़ना है। वे सारणी 2 में दी गयी हैं। इनकी विस्तृत तर्कसंगत व्याख्या के लिए अनुप्रयुक्त जनशक्ति अनुसंधान संस्थान का कार्यकारी पत्र संख्या 12/1965 देखें (कुछ समय पूर्व इनसे कहीं अधिक आशावादी धारणाएं सरकारी रूप से प्रस्तुत की गई थी परंतु उन्हें स्वीकार नहीं किया गया)। हाल के अनुभव के आधार पर यह कहा जा सकता है कि 1975-76 में अर्थ-व्यवस्था के जैसे विकास की कल्पना की गयी है, उतना विकास शायद न हो।

फिर भी हमारी धारणा है कि पूर्वानुमान बहुत गलत नहीं होगा और किसी स्थिति में 1975-76 में जैसे उत्पादन की धारणा है वह दो या तीन वर्ष बाद शुरू हो जाएगा।

सारणी 2. मौसम-समंजित निवल घरेलू उत्पादन का विकास (1960-61 के स्थिर मूल्यों पर आंकड़े करोड़ रुपयों में)

योजना का अन्तिम वर्ष		कुल निवल घरेलू उत्पादन	कृषि को छोड़कर अन्य निवल घरेलू उत्पादन	व्यवस्थित उद्योगों का निवल घरेलू उत्पादन
1955-56	(1)	11,690	5,790	930
1960-61	(2)	13,980	7,300	1,480
1965-66	(3)	17,010	9,350	2,750
1970-71	(4)	21,280	12,510	4,840
1975-76	(5)	27,370	17,330	8,370

35. **जिस वर्ष कृषि को छोड़कर अन्य निवल घरेलू उत्पादन 17,000 करोड़ रुपए से अधिक हो जाएगा (1960-61 के मूल्यों को स्थिर मानते हुए) उस वर्ष को अंतरिम लक्ष्य वर्ष कहा जाएगा।** विकास परिप्रेक्ष्य योजना-रूपरेखा संबंधी हमारे लक्ष्य और नियंत्रांक, 'अंतरिम लक्ष्य वर्ष' (उपयुक्त परिभाषा के अनुसार) से सम्बद्ध किए जाने चाहिए। हमें अपने कार्यक्रमों की योजना इस धारणा पर बनानी चाहिए कि वे 1975-76 तक, जिस 'अंतरिम लक्ष्य वर्ष' कहा गया है, समाप्त हो जाएंगे। यदि कार्यक्रम को क्रियान्वित करते समय यह जान पड़े कि अर्थ-व्यवस्था का

विकास धीमी गति से हो रहा है, तो कार्यक्रम की गति भी तदनुसार धीमी कर देनी चाहिए। यदि अर्थ-व्यवस्था के विकास की गति तीव्र हो इसकी कल्पना की जा सकती है। परन्तु संभावना नहीं है) कार्यक्रम की गति भी उसी के अनुसार बढ़ाई जा सकती है अन्यथा अनिवार्यतः विवादास्पद औचित्य के सम्बन्ध में सारणी 2 में की गई पूर्व-धारणाओं के इस व्यवस्था से हम आश्वस्त हो सकते हैं और परिप्रेक्ष्य योजना की उपयोगिता से संबंधित सभी संदेह दूर किए जा सकते है।

अनुभाग 3. शैक्षिक दृष्टि से वर्गीकृत व्यक्ति 1960-61

36. दूसरी पंचवर्षीय योजना की अवधि के अन्तिम वर्ष (1960-61) के अन्त में शैक्षिक दृष्टि से वर्गीकृत व्यक्तियों के राष्ट्रीय कोष की संख्या 82.29 लाख थी। उस समय देश भर की संख्या 4,392 लाख थी। उसकी तुलना में कोष की संख्या बहुत कम थी। जैसा कि हम देखेंगे, इस छोटी संख्या में भी शिक्षित रोजगार के इच्छुक की संख्या बहुत अधिक थी। 82.29 लाख शैक्षिक दृष्टि से वर्गीकृत व्यक्तियों में से 66.76 लाख व्यक्ति माध्यमिक शिक्षा प्राप्त थे और केवल 15.53 लाख व्यक्ति उच्चतर शिक्षित थे (ये आंकड़े उच्चतर शिक्षा की अवमूल्यित परिभाषा के अनुसार दिये गये हैं और हम उसे ही आधार मानकर चल रहे हैं।)

37. अनुमान है कि शैक्षिक दृष्टि से शिक्षित व्यक्तियों के राष्ट्रीय कोष के एक छोर पर 13.01 लाख छात्र हैं जिनका शिक्षा संस्थाओं में नाम दर्ज है और दूसरे छोर पर 60 वर्ष या अधिक आयु के 2.00 लाख व्यक्ति हैं। इन दो वर्षों के 15.01 लाख व्यक्तियों को निकाल दें तो रोज़गार के लिए 67.28 लाख व्यक्ति उपलब्ध है और ये ही शैक्षिक दृष्टि से वर्गीकृत जनशक्ति के राष्ट्रीय कोष हैं। इन में 14.32 लाख व्यक्ति उच्च शिक्षित जनशक्ति के और 52.96 लाख व्यक्ति माध्यमिक शिक्षित जनशक्ति के थे।

38. रोज़गार के इन तीन वर्गों में से अलग-अलग वर्ग के कितने व्यक्ति काम रहे थे और कितने रोज़गार के इच्छुक थे यह नीचे सारणी 3 में दिखाया गया है।

सारणी 3. शैक्षिक दृष्टि से वर्गीकृत जनशक्ति के रोजगार का स्वरूप (1960-61)

(संख्या लाखों में)

रोज़गार का वर्ग	उच्चतर शिक्षित जनशक्ति	माध्यमिक शिक्षा प्राप्त जनशक्ति	शैक्षिक दृष्टि से वर्गीकृत जनशक्ति
1	2	3	4
औद्योगिक और सेवा उद्योगों में	1.91	5.91	7.82
रोज़गार सेवाओं में	10.04	28.09	38.13
कुल	11.95	34.00	45.95
कृषि-गृह रोज़गार में	1.42	10.36	11.78
रोज़गार के इच्छुक	0.95	8.60	9.55
कुल जनशक्ति	14.32	52.96	67.2

39. सारणी 3 के आंकड़ों से रोज़गार के जिस स्वरूप का पता चलता है, वह वैसा है जिसकी सामान्य रूप से आशा की जा सकती है। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित टिप्पणियां की जाती हैं :

(क) व्यवस्थित उद्योगों का विकास तीव्र गति से होने की सम्भावना है और फलस्वरूप वे अधिकाधिक रोज़गार देने में समर्थ हो सकते हैं परन्तु यह कुछ रोज़गार काम पेक्षाकृत बहुत ही कम अंश होगा। इस प्रकार 1960-61 में जिस औद्योगिक आधार को लेकर हम चले थे वह अति क्षीण है। संगठित उद्योगों की अपेक्षा सेवाओं में उच्चतर और माध्यमिक शिक्षा प्राप्त पांच गुने अधिक व्यक्तियों को रोगज़ार मिलता है।

(ख) खेती के घरेलू रोज़गार में शैक्षिक दृष्टि से वर्गीकृत जनशक्ति का बहुत कम किन्तु बहुत

महत्वपूर्ण भाग लगा है। यद्यपि सारणी में इसका उल्लेख नहीं किया गया है, कुल संख्या का लगभग आधा भाग गृहणी कार्य में लगा है। शेष आधा भाग खेती में लगा है। घरेलू उद्योगों में काम करने वालों की संख्या बहुत ही कम है।

(ग) रोज़गार पाने के इच्छुक व्यक्तियों की संख्या लगभग 10 लाख है। यह संख्या बिल्कुल नई गणना-पद्धति से निकाली गई है और बिल्कुल भिन्न आंकड़ों के आधार पर तैयार किए गए सरकारी अनुमानों से मिलती है।

40. पढ़े-लिखे, रोज़गार के इच्छुक, व्यक्तियों की यह संख्या (10 लाख) बहुत बड़ी है। इसकी तुलना में संगठित उद्योगों और सेवा रोज़गार और शैक्षिक दृष्टि से वर्गीकृत जनशक्ति की संख्या 46 लाख है। रोज़गार में लगे लोगों की कुल संख्या (57 लाख) की तुलना में भी यह संख्या बहुत बड़ी है। यह संख्या सभी प्रकार के रोज़गार में लगे लोगों की है। इनमें कृषि, घरेलू उद्योग और गृहणी-कार्य शामिल हैं। इस सम्बन्ध में यह ध्यान रखना चाहिए कि रोज़गार के इच्छुक व्यक्ति मुख्यतः उन शिक्षित जनशक्ति दलों के हैं जो स्कूल अथवा कालेज छोड़ चुके हैं और उपयुक्त रोगज़ार की तलाश में हैं। रोज़गार के इच्छुक कुछ व्यक्तियों का होना सामान्य बात है और आवश्यक भी। साथ ही साथ यह सामान्य और आवश्यक है कि शिक्षित जनशक्ति दलों के वार्षिक निकास की वृद्धि के अनुसार रोज़गार के इच्छुक व्यक्तियों की संख्या भी हर वर्ष बढ़ती रहे। यह सामान्य और आवश्यक घटगा सामाजिक समस्या तभी बनती है जब शिक्षित जनशक्ति दलों और पढ़े-लिखे रोज़गार के इच्छुक व्यक्तियों का परस्पर अनुपात बहुत अधिक हो या बहुत तीव्रता से बढ़ने लगे। संगणगा के अगुसार **माध्यमिक शिक्षा प्राप्त रोज़गार के इच्छुक व्यक्तियों की संख्या पिछले वर्ष के माध्यमिक शिक्षा प्राप्त जनशक्ति दलों की संख्या से दुगुनी है। ऐसे उच्चतर शिक्षित व्यक्तियों की कुल संख्या, जो रोज़गार के इच्छुक हैं, पिछले वर्ष के उच्चतर शिक्षित जनशक्ति दलों की कुल संख्या से कम है।**

41. रोज़गार के इच्छुक पढ़े-लिखे व्यक्तियों और शिक्षित जनशक्ति दलों के सापेक्ष अनुपात की ऐसा मध्यांतर कहना उपयोगी और सुविधाजनक होगा जिसे स्कूल और कालेज छोड़ने और किसी प्रकार के रोज़गार में (इसमें औपचारिक शिक्षुता भी शामिल है) लग जाने के बीच 'औसत प्रतीक्षा अवधि' कहा जा सकता है। जिस छात्र ने माध्यमिक शिक्षा पूरी कर ली थी और जो उच्चतर शिक्षा प्राप्त किए बिना ही रोजगार पाने का इच्छुक था उसके लिए 1960-61 में 'औसत प्रतीक्षा अवधि' 104 सप्ताह थी। जो छात्र उच्चतर शिक्षा समाप्त करने के बाद रोज़गार पाने का इच्छुक हुआ उसके लिए यह अवधि 45 सप्ताह थी।

42. शैक्षिक रूप से वर्गीकृत जों व्यक्ति रोज़गार के इच्छुक हों, उन्हें एक वर्ष की अवधि के भीतर विभिन्न, समयों पर और स्कूल तथा कालेजों से निकलने वाले रोज़गार के इच्छुक अगले दल के आने से पहले उन्हें रोज़गार मिल जाना चाहिए। आदर्श व्यवस्था वह होगी जब 'औसत प्रतीक्षा अवधि' 26 सप्ताह से कम और 52 सप्ताह से अधिक न हो। इन सीमाओं के भीतर यदि यह अवधि लम्बी हो तो भावी मालिकों के लिए अच्छा होगा। यदि कम हो तो कर्मचारियों अथवा निजी रोज़गार में लगे व्यक्तियों के लिए अच्छा होगा। ऐसे उच्चतर शिक्षित व्यक्तियों के लिए जो रोज़गार के इच्छुक हों, 45 सप्ताह की औसत प्रतीक्षा अवधि इन्हीं सीमाओं के भीतर आती है। यह अवधि कुछ अधिक पर अत्यधिक नहीं। रोज़गार के इच्छुक माध्यमिक शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों के लिए 104 सप्ताह की औसत प्रतीक्षा अवधि बहुत अधिक है।

43. यह ध्यान रहना चाहिए कि ऊपर दी गई संस्थाए पूरे देश के लिए सार्वभौमिक औसत अवधियां हैं, इसलिए, विशेषकर उच्चतर शिक्षा प्राप्त रोज़गार के इच्छुक व्यक्तियों के लिए, अति आशावादी प्रतीत होंगी। शैक्षिक दृष्टि से वर्गीकृत जनशक्ति में बेरोज़गारी, देश के समी राज्यों और राज्यों के सभी जिलों में एक-सी गहीं है। बहुत से जिले हैं, जिनमें ऐसी कोई समस्या नहीं है। इसका असंतोषप्रद कारण यह हैं कि शैक्षिक दृष्टि से वे बहुत पिछड़े हुए हैं और वहां ऐसी समस्या उठने की संभावना ही नहीं हैं। कई ऐसे जिले भी हैं जहां ऐसी समस्या नहीं है। इसका संतोषप्रद कारण यह है कि वे आर्थिक और शैक्षिक दृष्टि से एक-सी तीव्रता से प्रगति कर रहे हैं। यदि हम दो छोरों पर स्थित इग दो प्रकार के जिलों को छोड़ दें तो बाकी के जिलों में लगभग वैसी ही स्थिति होगी जैसी पूरे देश में है। यदि केवज उन जिजों का अध्गयन किया जाए जहां व्यवस्थित उद्योग और सेवा रोज़गार की अपेक्षा शिक्षा का विकास अधिक तीव्र गति से हो रहा है, तो ज्ञात होगा कि माध्यमिक क्षिक्षा प्राप्त रोजगार के इच्छुक व्यक्तियों के लिए औसत प्रतीक्षा अवधि 104 सप्ताह की सार्वभौमिक औसत से अधिक है। रोज़गार के इच्छुक ऐसे

उच्चतर शिक्षित व्यक्तियों की स्थिति देश के कई भागों में एक समस्या बन गई है ।

44. शिक्षा के अगले विकास की योजना बनाते समय हमें इस बात पर आश्वस्त होना चाहिए कि हम शिक्षित बेरोज़गारी की इस समस्या को बढ़ाए नहीं। 'औसत प्रतीक्षा अवधि' पर आधारित रोज़गार के इच्छुक व्यक्तियों की तुलनात्मक संख्या, हमारी योजनाओं का महत्वपूर्ण 'नियंत्रांक' होगी । **देश भर में इसे पूर्व-नियोजित औसत तक रोक रखना चाहिए । देश के किसी राज्य के किसी जिले में पूर्व-नियोजित औसत से अधिक इसे बढ़ने न देना चाहिए ।** स्पष्ट है कि केवल शिक्षा संस्थाओं की चहारदीवारी के भीतर काम करके इस उद्देश्य को पूरा नहीं किया जा सकता । सरकारी विभागों, उद्यमों और संस्थाओं में भी साथ-ही-साथ काम करना होगा । (संस्थाओं में ऐसी शिक्षा संस्थाएं भी शामिल करनी होंगी जो शैक्षिक दृष्टि से वर्गीकृत अध्यापन जनशक्ति को रोज़गार देती हैं) शैक्षिक योजना और जनशक्ति योजना का समन्वय इसीलिए और इसी तरह करना आवश्यक है । जब हम 1975-76 तक के अगले वर्षों के सम्बन्ध में विचार करें और उस वर्ष तक के संभावित विकास और रोज़गार के स्वरूप का अनुमान लगाएं तो हमें इस सावधिक महत्व की आवश्यकता का ध्यान रखना चाहिए ।

अनुभाग-4. 1975-76 तक प्रवृत्ति पर आधारित विकास

45. अगले दस वर्षों में जो छात्र माध्यमिक अथवा उच्चतर शिक्षा प्राप्त कर लेंगे, वे इस समय देश के स्कूलों और कालेजों में प्रवेश पा चुके हैं। भारत सरकार का शिक्षा मंत्रालय ऐसे छात्रों की संख्या के सम्बन्ध में विस्तृत और विश्वस्त आंकड़े एकत्र और प्रकाशित करता है । पर्याप्त लम्बी अवधि के ऐसे आंकड़े उपलब्ध हैं, इसलिए वार्षिक विकास की वृद्धि से सम्बन्धित प्रवृत्तियां जानी जा सकती हैं । यदि वर्तमान प्रवृत्तियां स्थिर रहें तो उनके आधार पर भविष्य के संभरण का काफी ठीक-ठीक अनुमान लगाया जा सकता है । आवश्यक अध्ययन कर लिया गया है और शैक्षिक दृष्टि से वर्गीकृत व्यक्तियों और जनशक्ति के राष्ट्रीय कोष के सम्भावी विकास सम्बन्धी आंकड़े नीचे सारणी 4 में दिए गए हैं ।

सरणी 4. शैक्षिक दृष्टि से वर्गीकृति व्यक्तियों और जनशक्ति के राष्ट्रीय कोष का प्रवृत्ति पर आधारित विकास.

(संख्या लाखों में)

योजना का अंतिम वर्ष	शैक्षिक दृष्टि से वर्गीकृत व्यक्ति	घटाएं		शैक्षिक दृष्टि से वर्गीकृत जनशक्ति
		60 और इससे अधिक आयु के व्यक्ति	शैक्षिक संस्थाओं में प्रवेश पाने वाले छात्र	
1	2	3	4	5
1960-61 (2)	82.3	2.0	13.0	67.3
1965-66 (3)	118.9	2.9	17.0	99.0
1970-71 (4)	180.4	4.1	26.4	149.9
1975-76 (4)	276.3	6.8	40.2	229.3

46. व्यवस्थित उद्योगों और सेवाओं में शैक्षिक दृष्टि वर्गीकृत जनशक्ति के रोज़गार की संभावित वृद्धि का पूर्वानुमान लगाने के उद्देश्य से हम निम्नलिखित पूर्वधारणाएं करते हैं ।

पहली : व्यवस्थित उद्योगों में रोज़गार की वृद्धि उसी अनुपात से होगी जिस अनुपात में व्यवस्थित उद्योगों के निवल उत्पादन की वृद्धि होगी ।

दूसरी : सेवाओं में रोज़गार की वृद्धि उसी दर से होगी जिस दर से सम्पूर्ण गैर-कृषि उत्पादन (इसमें व्यवस्थित उद्योग भी शामिल हैं) की वृद्धि होती है । यह केवल सेवाओं के निवल उत्पादन की वृद्धि की दर से तीव्रहोगी । हमें इन धारणाओं के आधार पर आगे की कार्रवाई करनी होगी क्योंकि इससे अच्छा आधार अभी उपलब्ध नहीं है ।

47. परन्तु यह कठिनाई सदा नहीं रहनी चाहिए । शैक्षिक दृष्टि से वर्गीकृत रोज़गार-सारणियां प्राप्त करने के लिए हम एक सरल और व्यावहारिक कदम उठा सकते हैं और उठाना चाहिए । इन सारणियों के आधार पर शैक्षिक दृष्टि से वर्गीकृत जनशक्ति सारणियां तैयार की

जानी चाहिए और इन्हें योजना सम्बन्धी बुनियादी सूचना रूप में हर वर्ष नियमित रूप से प्रकाशित करना चाहिए। इस प्रकार उपलब्ध सूचना का सुव्यवस्थित अध्ययन करना चाहिए। इसके आधार पर शैक्षिक वर्गीकरण के मुख्य और उप शीर्षों के अन्तर्गत ही नहीं बल्कि गौण और विस्तृत शीर्षों के अन्तर्गत परिकलित वास्तविक आंकड़े और रोजगार की वृद्धि दर के पूर्वानुमान तैयार किए जाने चाहिए और प्रकाशित किए जाने चाहिए। ऐसे अध्ययन के अंग के रूप में हमें अर्थ-व्यवस्था के और रोजगार के विकास के सापेक्ष सम्बन्ध की अनुभवाश्रित धारणाओं की तदनुरूपता का परीक्षण करना चाहिए। हमें इन धारणाओं में उत्तरोत्तर ऐसा परिवर्तन और परिमार्जन करना चाहिए जैसा आवश्यक जान पड़े। यदि हम ऐसा करें तो चतुर्थ योजना अवधि की समाप्ति के पूर्व अपनी आवश्यकताओं और संभरण की प्रवृत्तियों का पूर्वानुमान लगाने की पद्धति को दोष रहित बना सकेंगे। इसके बाद संभरण और आवश्यकताओं के बीच नियोजित संतुलन स्थापित करने के सम्बन्ध में निर्णय किया जा सकता है। साथ-ही-साथ यहां यह बता देना भी उचित होगा कि इस काम के लिए आवश्यक और सक्षम संस्था, अनुप्रयुक्त जनशक्ति अनुसंधान संस्थान, स्थापित की जा चुकी है।

48. हमने जो पूर्व-धारणाएं की है उनके आधार पर आगे बढ़ते हुए 1975-76 की संभावित स्थिति के परिणाम सारणी 5 में दिए गए हैं:

सारणी 5. शैक्षिक दृष्टि से वर्गीकृत जनशक्ति के रोजगार का पूर्वानुमान (1975-76)

(संख्या लाखों में)

1		2
संगठित उद्योग	उच्चतर शिक्षित	10.8
	माध्यमिक शिक्षा प्राप्त	33.4
	कुल	44.2
सेवाएं	उच्चतर शिक्षित	23.8
	माध्यमिक शिक्षा प्राप्त	66.7
	कुल	90.5
संगठित उद्योग और सेवाएं	उच्चतर शिक्षित	34.6
	माध्यमिक शिक्षा प्राप्त	100.1
	कुल	134.7

49. सारणी 5 से पता चलता हैं कि 1975-76 में संगठित उद्योगों और सेवाओं में शैक्षिक दृष्टि से वर्गीकृत 135 लाख व्यक्तियों को (यह मानते हुए कि अर्थव्यवस्था की स्थिति वैसी ही होगी जैसा पूर्वानुमान है और अन्तिम लक्ष्य वर्ष 1975-76 के बाद नहीं होगा) रोजगार मिल सकेगा। इसका अर्थ यह होगा कि 1960-61 से 1975-76 तक तीन गुनी वृद्धि हो जाएगी। हम देख चुके हैं (देखिए सारणी 4) कि 1975-76 में शैक्षिक दृष्टि से वर्गीकृत जनशक्ति के 225 लाख व्यक्ति उपलब्ध होंगे। यदि संगठित उद्योमों और सेवाओं में 135 लाख व्यक्तियों को रोजगार मिल जाए तो शेष, अर्थात्, 94 लाख व्यक्ति खेती के घरेलू रोजगार में लगेंगे अथवा रोजगार की तलाश में होंगे।

50. कृषि और घरेलू रोजगार में कितने व्यक्तियों को संतोषजनक रोजगार मिल सकता है? 1960-61 में ऐसे व्यक्तियों की संख्या 12 लाख से कम थी जब कि संगठित उद्योगों और सेवाओं में 46 लाख लोग काम करते थे। क्या 1960-61 की अपेक्षा 1975-76 में कृषि और घरेलू उद्योग दृष्टि से वर्गीकृत लोगों को अधिक आकर्षित करेंगे। हम अनुमान कर सकते है कि शैक्षिक दृष्टि से वर्गीकृत ऐसे व्यक्तियों की संख्या, जो गृहणी के रूप में संतोषजनक ढंग से निर्वाह करेंगी, उसी तेजी से बढ़ेगी जैसी शैक्षिक दृष्टि से वर्गीकृत जनशक्ति का कुल कोष। परन्तु कृषि और घरेलू उद्योग के सम्बन्ध में ऐसा नहीं कहा जा सकता। फिर हम कल्पना करें कि 1960-61 की तुलना में 1975-76 तक कृषि और घरेलू उद्योगों में रोजगार करने

वालों की संख्या तीन गुनी हो जाएगी। इस प्रकार हम कल्पना करते हैं कि कृषि और घरेलू उद्योग में लगे व्यक्तियों की संख्या 35 लाख होगी। इस प्रकार 1975-76 में **रोजगार के इच्छुक व्यक्तियों की संख्या 59 लाख होगी।**

51. हमें ज्ञात है कि 1960-61 में रोजगार के इच्छुक व्यक्तियों की संख्या 10 लाख से कम थी। यह संख्या बहुत बड़ी थी और इसे एक सामाजिक समस्या के रूप में स्वीकार किया गया था। अब हम देखते हैं कि रोजगार में लगे व्यक्तियो की संख्या यदि 58 लाख से बढ़कर 170 लाख, अर्थात् तीन गुनी हो जाती है तो रोजगार के इच्छुक व्यक्तियों की संख्या 10 लाख से बढ़कर 59 लाख, अर्थात्, छह गुनी हो जाती है। रोजगार के इच्छुक व्यक्तियों और रोजगार में लगे व्यक्तियों का अनुपात एक और छह से बढ़ कर एक और तीन हो जाता है। 1960-61 में रोजगार के इच्छुक व्यक्तियों के लिए "औसत प्रतीक्षा अवधि" 92 सप्ताह थी परन्तु 1975-76 तक यह बढ़ कर 137 सप्ताह हो जाएगी।

52. हमें इस बात पर फिर ध्यान देना चाहिए कि 137 सप्ताह की यह "यह औसत प्रतीक्षा अवधि" सार्वभौमिक अखिल भारतीय औसत है। यह कल्पना करना वास्तविकता से बहुत दूर होगा कि 1975-76 तक शैक्षिक प्रगति और आर्थिक विकास का प्रादेशिक असंतुलन समाप्त हो जाएगा, अथवा, पर्याप्त मात्रा में कम हो हो जाएगा। इसलिए देश के विभिन्न क्षेत्रों में औसत प्रतीक्षा अवधि 137 सप्ताह से काफी लम्बी हो सकती है। इन आंकड़ों से जरा भी संदेह नहीं रह जाता कि यदि समय पर नियोजित प्रतिकारक कदम न उठाएं गए तो शिक्षा स्फीति से उत्पन्न होने वाली समस्याओं का सामना करना कठिन हो जाएगा।

अनुभाग-5. संभव आपत्तियां और उनके उत्तर

53. पिछले अनुभाग के अन्त में शिक्षा स्फीति संबंधी जो निर्णय किए गए हैं, उनके बारे में बहुतों का यह विचार हो सकता है कि वे सामान्य बुद्धि की बातों को पुष्ट करने वाले (किसी सीमा तक निरर्थक) आंकड़े है। परन्तु निस्सन्देह ऐसी पुष्टि आवश्यक है। आवश्यकता इसलिए नहीं है कि निर्णयों के औचित्य के बारे में संदेह है बल्कि इसलिए है कि ये निर्णय जिन प्रतिकारक उपायों की ओर संकेत करते हैं वे कटु सत्य है और उनका विरोध किया जा सकता है। हम पूर्वानुमान लगा सकते हैं कि विरोध करने का एक महत्वपूर्ण ढंग यह भी हो सकता है कि उन पूर्वकथित तथ्यों और तर्कों पर ही आपत्ति की जाए जिन पर ये निर्णय आधारित है। ऐसी आपत्तियों की पूर्वकल्पना करना और उनका उत्तर देना आवश्यक है।

54. सम्भव आपत्तियां इस प्रकार की जा सकती है :

(क) यह मान्य है कि सांख्यिकीय आंकड़े अपूर्ण और दोषपूर्ण हैं। इसलिए इन आंकड़ों पर आधारित निर्णयों के परिणाम स्वरूप शिक्षा प्रणाली में मुख्य परिवर्तन करना गलत होगा;

(ख) अर्थव्यवस्था के विकास और रोजगार तथा अर्थ-व्यवस्था के विकास के परस्पर संबंधों के बारे में की गई पूर्व-धारणाएं निराशापूर्ण है। प्रायोजना में दिए गए आंकड़ों की अपेक्षा रोजगार वृद्धि अधिक तीव्र गति से होगी;

(ग) यदि यह मान भी लें कि उपर्युक्त धारणाएं ठीक हैं, यह सोचना गलत है कि औद्योगिक और सेवा संस्थानों में केवल वे ही नौकरियां, जो वास्तव में उच्चतर और माध्यमिक शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों के पास थी, उन्हें मिल सकती थी। रोजगार के कई क्षेत्रों में, विशेषकर उद्योगों में, योग्यता प्राप्त जनशक्ति की बहुत कमी थी। यदि परियोजना संबंधी प्रयत्न करने से पहले इन कमियों पर ध्यान दिया जाए तो पता चलेगा कि 1975-76 में शैक्षिक दृष्टि से वर्गीकृत जो जनशक्ति उपलब्ध हो सकेगी, उसे पूरा रोजगार मिलेगा;

(घ) यह मान भी लिया जाए कि उच्चतर और माध्यमिक शिक्षा प्राप्त जनशक्ति का आधिक्य होगा, फिर भी कृषि और घरेलू उद्योग में ऐसे व्यक्तियों की बड़ी संख्या में आवश्यकता होगी। सामाजिक समस्याओं को बहुत बढ़ा चढ़ा कर बताया जा सकता है। हमें अपने काम में लगे रहना चाहिए और व्यक्तियों का जितना अतिरेक हो सके पैदा करना चाहिए।

55. उपयुक्त चार आपत्तियों में से एक को तो सरसरी तौर पर समाप्त किया जा सकता है। यदि नीतियों और योजनाओं को तब तक स्थगित रखें जब तक अपेक्षित आंकड़े पूर्ण रूप से ठीक न हो जाय, तो योजनाओं को अनिश्चित काल तक स्थगित रखना पड़ेगा। आंकड़ों को शून्य में ठीक नहीं किया जा सकता। इनको तभी ठीक किया जा सकता है जब कि इनका उपयोग नीतियां, योजनाओं और कार्यक्रमों का निर्णय करने के लिए और नियोजित कार्यक्रम को क्रियान्वित करते समय जांच करने और नियंत्रण रखने के लिए किया जाए। जिन सरकारी प्राधिकारियों पर नीतियों और योजनाओं के संबंध में

निर्णय लेने की जिम्मेदारी आती है, उनके पास इसके सिवाय कोई चारा नहीं कि वे अंत में अपनी व्यावहारिक बुद्धि के आधार पर निर्णय लें। सांख्यिकीय आंकड़ों के अनुसंधानात्मक अध्ययन आवश्यक है। जब आंकड़े दोषपूर्ण और अपूर्ण हों तो अध्ययन और अधिक आवश्यक हो जाते हैं। इन अध्ययनों के परिणाम अच्छे व्यावहारिक निर्णयों में सहायक हो सकते हैं परन्तु उनका स्थान नहीं ले सकते।

56. उपर्युक्त चार आपत्तियों में से दूसरी आपत्ति पर भी यही तर्क और भी अधिक लागू होते हैं। दस वर्ष बाद अर्थ व्यवस्था का विकास किस दर से होगा, इसके बारे में हमें विवश होकर अनुमान ही लगाना पड़ेगा ताकि अगले पांच वर्षों में व्यावहारिक काम कर सकें और ऐसे काम के सम्बन्ध में अभी तत्काल निर्णय ले सकें। हम पूर्वकल्पनाएं करनी पड़ती है। यह एक आवश्यकता है और इसके सिवाय कोई धारा नहीं। यदि पूर्व-कल्पनाओं का कोई विकल्प हो तो संबंधित प्राधिकारियों को सभी सम्बद्ध बातों पर विचार करने के बाद निर्णय लेना चाहिए। वे जो चुनाव करें, उसके परिणामों की जिम्मेदारी भी स्वीकार करें। आलोचना की जा सकती है कि हमारी कल्पनाएं बहुत आशावादी है, न कि निराशावादी।

अन्तिम आपत्ति का उत्तर भी सरलता से दिया जा सकता है। इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि यदि कृषि और घरों में रोजगार पाने वाले शैक्षिक दृष्टि से वर्गीकृत व्यक्तियों की संख्या में पर्याप्त वृद्धि हो तो अर्थ-व्यवस्था को लाभ ही होगा। परन्तु यह लाभ वास्तव में हो इसके लिए शैक्षिक पाठ्यचर्याओं का ऐसे परिणाओं में सहायक होना आवश्यक है। हमारे पास ऐसे अध्यापक होने चाहिए जो इन पाठ्यचर्याओं को पढ़ा सके छात्र ऐसे होने चाहिए जो ऐसी पाठ्यचर्याओं के महत्व को समझे और इस तरह लाभ उठाने के लिए प्रयत्नशील हो। इसमें से कोई भी बात आज नहीं मिलती हमें ऐसी स्थिति उत्पन्न करनी चाहिए और करनी पड़ेगी। परन्तु ऐसा तब तक नहीं किया जा सकता जब तक खर्च का हिसाब और संख्या का अनुमान न लगाया जाए। इसका हमारे इस निर्णय पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता कि वर्तमान मसौदा हमें किस दिशा में ले जाएगा।

58. इन चार आपत्तियों में से तीसरी आपत्ति ऐसी है। जिसमें औचित्य का तत्व है और उसका ध्यानपूर्वक अध्ययन अपेक्षित है। यह सत्य है कि अध्ययन के लिए अपेक्षित आँकड़े उपलब्ध नहीं है। जो सीमित सूचना उपलब्ध है, उसके अध्ययन का प्रयत्न किया गया है और इसके परिणाम सारणी 6 में दिए गए है।

सारणी 6. शैक्षिक दृष्टि से वर्गीकरण योग्य सूची बद्ध पदों की तुलना में शैक्षिक दृष्टि से वर्गीकृत जनशक्ति का रोजगार (1960-61)

(संख्या लाखों में)

शैक्षिक दृष्टि से वर्गीकृत जनशक्ति का रोज़गार			सूचीबद्ध पद		
1	2	4	4	5	6
1. औद्योगिक रोज़गार	उच्चतर शिक्षित जनशक्ति	1.9	1. औद्योगिक संस्थान	उच्चतर शैक्षिक पद	2.3
	माध्यमिक शिक्षित जनशक्ति	5.9		माध्यमिक शैक्षिक पद	7.5
	जोड़	7.8		**जोड़**	9.8
2. सेवा रोज़गार	उच्चतर शिक्षित जनशक्ति	10.0	2. सेवा संस्थान	उच्चतर शिक्षित पद	7.2
	माध्यमिक शिक्षित जनशक्ति	28.1		माध्यमिक शैक्षिक पद	27.1
	जोड़	38.1		**जोड़**	34.3
3. औद्योगिक तथा सेवा रोज़गार	उच्चतर शिक्षित जनशक्ति	11.9	3. औद्योगिक तथा सेवा संस्थान	उच्चतर शैक्षिक पद	9.5
	माध्यमिक शिक्षित जनशक्ति	34.0		माध्यमिक शैक्षिक पद	34.6
	जोड़	45.9		**जोड़**	44.1

59. सारणी 6 की बाईं ओर दिए गए अंक सारणी 3 से लिए गए हैं; इनकी व्याख्या की आवश्यकता नहीं है। सारणी 6 की दाईं ओर दिए गए अंक अंततः दो प्रकार के व्यावसायिक विवरणियों (रिटर्न्स) पर आधारित हैं—एक जो सितम्बर 1962 में विद्यमान समस्त सरकारी क्षेत्र के संस्थानों से सम्बन्धित है, और दूसरी, जो सितम्बर 1963 में विद्यमान उन सभी गैर-सरकारी क्षेत्र के संस्थानों से सम्बन्धित है जिन्होंने रिपोर्ट दी हैं। इन विवरणियों में दिए गए आंकड़ों का प्रयोग निम्नलिखित ढंग से किया गया है :

पहला : प्रत्येक व्यावसायिक परिवार (तीन अंकों की सांकेतिक संख्या द्वारा वर्गीकृत) का अध्ययन किया गया तथा एक तदर्थ निर्णय लिया गया कि क्या सम्बन्धित पद "शैक्षिक दृष्टि से वर्गीकरण योग्य" हैं या नहीं; यदि हैं तो वे "उच्चतर शैक्षिक पदों" में वर्गीकृत किए जा सकते हैं या "माध्यमिक शैक्षिक पदों में ।

दूसरा : इस प्रकार निश्चित किए गए शैक्षिक दृष्टि से वर्गीकरण-योग्य पदों को व्यावसायिक स्थापनों तथा सेवा-संस्थानों के लिए अलग से सूचीबद्ध किया गया। सूचीबद्ध पदों का कुल जोड़ निकाला गया, तथा 1960-61 तथा 1962-63 के बीच होने वाली अनुमानित वृद्धि को ध्यान में रखते हुए (पूर्व उल्लिखित मान्यताओं के आधार पर) दोनों सूचियों के लिए पृथक दरों पर समुचित छूट दी गई।

इस प्रकार जो अंक आए वे समस्त संस्थानों के पूर्ण-योग के "परिकलित वास्तविक आंकड़े" हुए। इनको सारणी 6 की दाईं ओर दिखाया गया है।

60. प्रारम्भ में ही यह ध्यान रखना है कि हम यहां पर ऐसे अंकों की तुलना कर रहे हैं जो न केवल परिकलन की विभिन्न पद्धतियों द्वारा निकाले गए हैं, बल्कि दो बिल्कुल भिन्न मदों से भी सम्बन्धित हैं। बाईं ओर के अंक "वर्गीकृत व्यक्तियों" से सम्बन्धित हैं। दाईं ओर के अंक "सूचीबद्ध पदों" से सम्बन्धित हैं। "उच्चतर शैक्षिक पदों की सूची में दिए गए पद ऐसे है जिनके कार्यों के लिए सामान्यतः उच्चतर शिक्षित व्यक्तियों की आवश्यकता होती है। इसका यह अनिवार्य अर्थ नहीं कि सभी उच्चतर शैक्षिक पदों पर केवल उच्चतर शिक्षित व्यक्ति ही नियुक्त होते हैं। यह भी ध्यान रहे कि सूचीबद्ध माध्यमिक शैक्षिक पदों में से कुछ पर उच्चतर शिक्षित व्यक्तियों की भी नियुक्ति सम्भव है और कुछ पर माध्यमिक शिक्षित व्यक्तियों की, और कुछ अन्य पर शैक्षिक दृष्टि से अवर्गीकृत व्यक्तियों की। एक और बात यह ध्यान देने योग्य है कि जिन संस्थाओं को घरेलू अथवा रिपोर्ट देने वाले संस्थानों के अन्तर्गत वर्गीकृत नहीं किया गया है, उनमें कुछ गैर-सरकारी रोजगार भी हैं। ऐसे गैर-सरकारी रोजगारों में लगे व्यक्तियों को सारणी 6 की बाईं ओर सम्मिलित किया है पर दाईं ओर उनका कोई प्रतिरूप नहीं है।

61. यदि हम उपर्युक्त बातें ध्यान में रखें तो सारणी 6 के दोनों ओर के अंकों में जो स्थूल साम्य दिखाई देता है वह विचाराधीन मूलभूत आँकड़ों की विश्वसनीयता का परिचायक है। अतः सारणी 6 के अंकों की तुलना के आधार पर हम निम्नलिखित निष्कर्ष निकाल सकते हैं।

पहला : शैक्षिक दृष्टि से वर्गीकृत व्यक्तियों की संख्या 46 लाख और सूचीबद्ध पदों की संख्या 44 लाख थी। दोनो में अन्तर कम है। इस अंतर को रिपोर्ट न देने वाले प्राइवेट गैर-घरेलू रोजगार के अन्तर्गत स्वीकार किया जा सकता है।

दूसरा : शैक्षिक दृष्टि से वर्गीकृत औद्योगिक रोजगार में लगे 7.8 लाख व्यक्तियों की तुलना में औद्योगिक संस्थानों में सूचीबद्ध पदों की संख्या लगभग 9.8 लाख है। ऐसा प्रतीत होता है कि (2.3 लाख में से) कम-से-कम 0.4 लाख उच्चतर शैक्षिक पदों पर माध्यमिक शिक्षित व्यक्ति काम कर रहे थे; और (7.5 लाख में से) 2.0 लाख माध्यमिक शैक्षिक पदों पर शैक्षिक दृष्टि से अवर्गीकृत व्यक्ति काम कर रहे थे। यदि रिपोर्ट न देने वाले गैर-घरेलू रोजगार को ध्यान में रखते हुए समुचित छूट दी जाए तो शैक्षित दृष्टि से अल्प योग्यता प्राप्त व्यक्तियों द्वारा भरे गए सूचीबद्ध पदो का निवल (नेट) अनुपात कहीं अधिक होगा।

तीसरा : सेवा संस्थाओं में रोजगार का स्वरूप (पैटर्न) औद्योगिक संस्थानों के रोजगार के स्वरूप से उल्टा है। सेवा संस्थानों में सूचीबद्ध पदों की संख्या 34.3 लाख थी और सेवा रोजगार में लगे शैक्षिक दृष्टि से वर्गीकृत व्यक्तियों की संख्या 38.1 लाख। ऐसा प्रतीत होता है कि (10.0 लाख में से) कम-से-कम 2.8 लाख उच्चतर शिक्षित व्यक्ति माध्यमिक शैक्षिक पदों पर काम कर रहे थे; और (28.1 लाख में से) 3.8 लाख व्यक्ति ऐसे असूचीबद्ध पदों पर काम कर रहे थे जिनके लिए माध्यमिक शैक्षिक योग्यता की आवश्यक नहीं थी। यदि रिपोर्ट न देने वाले गैर-घरेलू प्राइवेट रोजगार को ध्यान में रखते हुए समुचित छूट दी जाए तो संभव है कि शैक्षिक दृष्टि से वर्गीकृत व्यक्तियों में अल्प-रोजगार का निवल (नेट)

अनुपात कुछ कम हो; लेकिन शायद बहुत अधिक कम न हो।

62. एक बार फिर हम देखते हैं कि सांख्यिकीय आंकड़े उसी सर्वसामान्य धारणा की पुष्टि करते हैं जो औद्योगिक सेवा संस्थानों में उच्चतर तथा माध्यमिक शिक्षित जनशक्ति के वितरण के सम्बन्ध में प्रचलित है। क्या इन आंकड़ों के आधार पर यह धारणा बनाई जा सकती है कि उच्चतर और माध्यमिक शिक्षित व्यक्तियों के रोज़गार का क्षेत्र (सभी उद्योगों और सेवाओं को मिलाकर) सारणी 5 में दिखाए गए परियोजित अंकों की तुलना में 1975-76 में पर्याप्त मात्रा में बढ़ जाएगी ? यदि ऐसा हो, और यदि हम इस क्षेत्र में वृद्धि दिखा सकें, तो हमें 1975-76 में रोजगार के इच्छुक व्यक्तियों की संभाव्य (पोटेन्शियल) संख्या के प्राक्कलन से ये अंक कम कर देने होंगे। इस प्रकार उत्पन्न प्रश्न का उत्तर व्यावहारिक प्रशासकीय निर्णय का विषय है, सांख्यिकीय परिकलन का सरल विषय नहीं।

63. औद्योगिक संस्थानों में माध्यमिक शिक्षित व्यक्तिगों द्वारा भरे गए उच्चतर शैक्षिक पदों का सापेक्ष अनुपात बहुत अधिक नहीं; संभवतः यह इस तथ्य की ओर संकेत करता है कि नियोक्ता शैक्षिक दृष्टि से योग्यता प्राप्त, पर अपर्याप्त व्यावहारिक अनुभव वाले, व्यक्ति की अपेक्षा शैक्षिक दृष्टि से अल्प योग्यता प्राप्त, पर पर्याप्त व्यावहारिक अनुभव वाले, व्यक्ति को तरजीह देता है। इस विषय पर कोई धारणा बनाने से पूर्व हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि उच्चतर शिक्षित व्यक्तियों की हमारी परिभाषा के भीतर उपवृत्तिक डिप्लोमा वाले तथा विश्वविद्यालय की डिग्री वाले दोनों प्रकार के व्यक्ति सम्मलित हैं। अपनी शैक्षिक प्रणाली को औद्योगिक संस्थानों के लिए उपयुक्त जनशक्ति की व्यवस्था करने में समर्थ बनाने के लिए हमने जो प्रयत्न किए हैं वे अब भी प्रारम्भिक अवस्था में ही हैं।

64. हमारी परियोजनाओं में यह अपेक्षा की जाती है कि औद्योगिक संस्थानों में उच्चतर शिक्षित व्यक्तियों के रोजगार की तीव्र वृद्धि (1.9 लाख से 10.8 लाख) हो। यद्यपि हमारी संस्थाओं की संख्या में काफ़ी वृद्धि हुई हैं परन्तु शिक्षा-प्रणाली को औद्योगिक जरूरतों के उपयुक्त बनाने की प्रक्रिया तथा शिक्षा को संस्थागत रूप से उद्योग के साथ जोड़ने के कार्य में प्रगति नगण्य है। इसलिए 11 लाख तक के लक्ष्य तक पहुंचना भी अत्यन्त कठिन प्रतीत होता है। विशेष रूप से यह तब तक बिल्कुल संभव नहीं जब तक हम औद्योगिक रोजगार में लगे माध्यमिक शिक्षित जनशक्ति के लिए "पदोन्नति-विस्तार-शिक्षा" का विकास करने में सफल नहीं हो जाते और यह एक बिल्कुल नई चीज है जो अभी तक यहां शुरू नहीं की गई है। इसलिए यह धारणा मानकर चलना अधिक बुद्धिमानी होगी कि उच्चतर शिक्षित व्यक्तियों के लिए औद्योगिक रोजगार 1975-76 में 11 लाख से अधिक नहीं बढ़ सकते। उच्चतर शैक्षिक परिप्रेक्ष्य योजना-रूपरेखा में यही संख्या अपनाई गई है।

65. सेवा-रोजगार में उच्चतर शिक्षित जनशक्ति का अल्प-रोजगार इतनी अधिक मात्रा में है कि हमें बिना किसी परिवर्तन के 1975-76 में इसे परियोजित नहीं करना चाहिए। साथ ही इसमें बहुत अधिक कटौती करना भी बुद्धिमानी नहीं होगी क्योंकि इससे रोजगार के इच्छुक उच्चतर शिक्षित व्यक्तियों की संख्या में ही वृद्धि होगी, और इस वृद्धिको रोकना सबसे अधिक आवश्यक और महत्वपूर्ण है। इसलिए हमने उच्चतर शिक्षित व्यक्तियों के सेवा-रोजगार की प्रवृत्ति पर आधारित परियोजनाओं के बजट में नाममात्र की कटौती कर यह संख्या 24 लाख से 22 लाख कर दी है। उच्चतर शैक्षिक परिप्रेक्ष्य-योजना रूपरेखा में हमने यही संख्या ली है।

66. माध्यमिक शिक्षित जनशक्ति के लिए औद्योगिक रोजगार की प्रवृत्ति पर आधारित पूर्वानुमान 1975-76 में 33 लाख हैं (1960-61 में यह संख्या 6 लाख थी)। इस संख्या को बढ़ाने की काफी गुंजाइश है। माध्यमिक शिक्षित दल प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों तथा शिक्षुता अधिनियम के द्वारा माध्यमिक शिक्षित व्यक्तिगों को औद्योगिक रोजगार के उपयुक्त बनाने के लिए आवश्यक प्रशिक्षण देने की सुविधा उपलब्ध है। किन्तु इसमें कई व्यावहारिक कठिनाइयां है जिनका निराकरण आवश्यक है। ये कठिनाइयां शैक्षिक प्रगति और औद्योगिक विकास के क्षेत्रीय असंतुलन से बहुत सम्बन्धित है। अतिरिक्त माध्यमिक शैक्षिक दल ऐसे जिलों में पटक दिए जाते हैं जो उन जिलों से काफी दूर होते हैं जहां माध्यमिक शैक्षिक रोज़गार तीव्रता से विकसित होता रहता है। दूरी की कठिनाइयों के सिवा भाषा की कठिनाइयां भी हैं। रोज़गार के इच्छुक जो नौजवान हैं किसी हद तक इन कठिनाइयों पर विजय पा रहे हैं। उन्हें और अधिक सार्थक सहागता मिलनी चाहिए। हम यह मान कर चलते हैं कि ऐसा किया जाएगा; हम प्रवृति पर आधारित पूर्वानुमान में 7 लाख की संभावित वृद्धि की कल्पना करते हैं और 1975-76 में औद्योगिक रोज़गार में 40 लाख माध्यमिक शिक्षित जनशक्ति के लिए बजट व्यवस्था करते हैं।

जहां तक सेवा-रोज़गार में लगने वाली माध्यमिक शिक्षित जनशक्ति का प्रश्न है, प्रवृत्ति पर आधारित परि-

योजना में रोज़गार की निर्दिष्ट सीमा (लगभग 91 लाख) से अधिक की योजना करना बुद्धिमानी नहीं होगी, क्योंकि हम यह मानकर चल रहे हैं कि उच्चतर शिक्षित व्यक्तियों का लगभग वही अनुपात रहेगा जो इस समय है। हम यह भी जानते हैं कि इसमें कुछ सीमा तक पहले से ही अल्प-रोजगार है।

68. 1975-76 में शैक्षिक दृष्टि से वर्गीकृत जनशक्ति के औद्योगिक तथा सेवा रोज़गार की संभावनाओं का जो विश्लेषण हमने किया वह इसलिए कि क्या इस प्रकार के रोज़गार के लिए निर्धारित हमारे प्रवृत्ति-आधारित अंक (अर्थात्, 135 लाख) में कुछ सुधार संभव है या नहीं। हमारा उत्तर है कि हां, संभव है; लेकिन केवल आंशिक रूप से। साथ ही यदि हम इस बात पर दृढ़ रहें कि रोज़गार ढूँढ़ने वालों की संख्या को योजना से पूर्व अंक तक ही सीमित रखना है तो शैक्षिक सुविधाओं के उस विस्तार को नियंत्रित करने के सिवा कोई उपाय नहीं हैं जो मांग के फलस्वरूप बढ़ता जा रहा है। यह नियन्त्रण ऐसा हो कि शिक्षा प्राप्त कर निकलने वाले व्यक्तियों की संख्या प्रतिवर्ष उतनी ही रहे जितनी संख्या में वह रोज़गार उपलब्ध हो जिसके वे इच्छुक हों और शैक्षिक दृष्टि से उसके उपयुक्त हों। इस उद्देश्य को ध्यान में रखकर हमें शिक्षित रोज़गार ढूँढ़ने वालों की कुल संख्या के लिए तथा समस्त राष्ट्र में उपलब्ध शैक्षिक दृष्टि से वर्गीकृत जनशक्ति के लिए, 1975-76 में, एक "अधिकतम सीमा" नियोजित करनी है।

69. अंतिम कठिनाई वहां सामने आती है। जैसा पहले उल्लेख किया जा चुका है, शैक्षिक प्रगति असंतुलित है और शिक्षा स्फीति की समस्या देश के विभिन्न भागों में एक-सी नहीं है। ऐसे भी क्षेत्र हैं जहां शैक्षिक संस्थाओं की धारिता को और अधिक बढ़ाने की आवश्यकता है। ये क्षेत्र कुल राष्ट्रीय स्टॉक में वृद्धि ही करते जाएंगे। समस्या ग्रस्त क्षेत्रों का पता लगाना होगा तथा आवश्यक नियंत्रक उपाय, जो विभिन्न क्षेत्रों या स्तरों के लिए एक-से नहीं हो सकते, क्रियान्वित करने होंगे। वास्तव में क्षेत्रों में जहां दबाव अधिक है, नियंत्रण लागू करने में सब से अधिक व्यावहारिक कठिनाई होती है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि दृढ़तम संकल्प होते हुए भी पांचवीं पंचवर्षीय योजना से पूर्व की प्रवृत्ति पर आधारित विकास में कोई सुधार संभव नहीं होगा। वर्तमान प्रवृत्तियों के अनुसार पांचवीं पंचवर्षीय योजना अवधि में कुल राष्ट्रीय स्टाक की पूर्वानुमानित वृद्धि में अल्पांश से अधिक की कटौती करना भी संभव नहीं होगा।

70. इन्हीं बातों को ध्यान में रखते हुए हमें 1975-76 के दौरान शैक्षिक दृष्टि से वर्गीकृत जनशक्ति के कुल राष्ट्रीय स्टॉक के लिए एक व्यावहारिक अधिकतम सीमा (लक्ष्य नहीं) निर्धारित करनी होगी। इस अधिकतम सीमा के भीतर ही हमें उच्चतर और माध्यमिक शिक्षित जनशक्ति के कुल राष्ट्रीय स्टॉक की मात्रा और रोज़गार के मुख्य वर्गों में उनके वितरण का नियोजन करना है।

71. उपर्युक्त तथ्यों के फलस्वरूप जो स्थिति स्पष्ट होती हैं उसका विवरण सारणी 7 में दिया गया है, जिस में उच्चतर शिक्षित जनशक्ति के राष्ट्रीय स्टाक के नियोजित विकास के लिए प्रस्तावित नियंत्रांक दिखाए गए हैं।

सारणी 7. शैक्षिक दृष्टि से वर्गीकृत जनशक्ति का नियोजित विकास : "प्रस्तावित नियंत्रांक"

(संख्या लाखों में)

	परिकलित आंकड़े	वास्तविक (1990-61)		अंतरिम लक्षितवर्ष के लिए प्रस्तावित नियंत्रांक		
	उच्चतर शैक्षिक जनशक्ति	माध्यमिक शैक्षिक जनशक्ति	शैक्षिक दृष्टि से वर्गीकृत जनशक्ति	उच्चतर शैक्षिक जनशक्ति	माध्यमिक शैक्षिक जनशक्ति	शैक्षिक दृष्टि से वर्गीकृत जनशक्ति
1	2	3	4	6	6	7
राष्ट्रीय स्टॉक (**कुल**)	14.3	53.0	67.3	40.0	178.0	218.0
औद्योगिक रोज़गार	1.9	5.9	7.8	11.0	40.0	51.0
सेवा रोज़गार	10.0	28.1	38.1	22.0	69.0	91.0
औद्योगिक और सेवा रोज़गार (**कुल**)	11.9	34.0	45.9	33.0	109.0	142.0
फार्म गृह रोज़गार	1.4	10.4	11.8	4.0	47.0	51.0
रोज़गार प्राप्त (**कुल**)	13.3	44.4	57.7	37.0	156.0	193.0
रोज़गार ढूँढ़ने वाले	1.0	8.6	9.6	3.0	22.0	25.0

उपर्युक्त सारणी में उच्चतर शिक्षित जनशक्ति के जो अंक दिए गए हैं वे ही हमने उच्चतर शैक्षिक परिप्रेक्ष्य योजना-रूपरेखा में लिए हैं ।

72. इस विवेचन से योजना के लिए जो निष्कर्ष निकलते हैं वे संक्षेप में इस प्रकार हैं :

पहला : रोज़गार ढूंढ़ने वालों की संख्या की वृद्धि, और इस संख्या तथा शिक्षित जनशक्ति दलों की संख्या के बीच आनुपातिक संबंध पर निगरानी रखनी आवश्यक है । हमें यह सुनिश्चित करना होगा कि रोज़गार ढूंढ़ने वालों की संख्या पूर्व योजनाबद्ध अधिकतम सीमा अंक से अधिक न बढ़ने पाए । 1975-76 के लिए प्रस्तावित संख्या रोज़गार ढूंढ़ने वाले उच्चतर शिक्षित व्यक्तियों के लिए 3 लाख तथा रोज़गार ढूंढ़ने वाले माध्यमिक शिक्षित व्यक्तियों के लिए 22 लाख ।

दूसरा : यदि लक्ष्य प्राप्त करना है तो शैक्षिक दृष्टि से वर्गीकृत जनशक्ति के राष्ट्रीय स्टॉक के लिए एक समग्र अधिकतम सीमा होनी चाहिए । प्रस्ताव किया गया है कि 1975-76 के दौरान यह अधिकतम सीमा 218 लाख रखी जाए । इसमें उच्चतर शिक्षित जनशक्ति के लिए 40 लाख और माध्यमिक शिक्षित जनशक्ति के लिए 178 लाख की अधिकतम सीमाएं होंगी ।

तीसरा : इन अधिकतम सीमा अंकों के भीतर औद्योगिक रोज़गार की अत्यंत तीव्र वृद्धि की योजना करना आवश्यक होगा । इसके लिए न केवल शिक्षा संस्थाओं की प्रवेश क्षमता बढ़ानी होगी बल्कि शिक्षा-प्रणाली की कार्यविधि में सुधार भी करने होंगे ।

चौथा : इसके अतिरिक्त, खेती तथा घरेलू रोज़गार में लगाए जाने वाले राष्ट्रीय स्टॉक में भी पर्याप्त वृद्धि की व्यवस्था करनी होगी । प्रवृत्ति पर आधारित विकास के द्वारा यह संभावित नहीं होगा । इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए शिक्षा-प्रणाली में सुधार के विशिष्ट उपाय करने होंगे तथा इन्हें क्रियान्वित करना होगा ।

पांचवा : शैक्षिक दृष्टि से वर्गीकृत जनशक्ति के रोज़गार का सर्वाधिक महत्वपूर्ण क्षेत्र सेवा-रोज़गार होगा । हमें स्वीकार करना पड़ेगा कि सेवाओं में आजकल जो अल्प रोज़गार है उसके बने रहने की संभावना है । शिक्षा प्रणाली में सुधारों को क्रियान्वित करने की आवश्यकता है ताकि ऐसें रोज़गार के लिए सर्वथा उपयुक्त प्रशिक्षण दिया जा सके ।

चौथा अध्याय. उच्चतर शिक्षित जनशक्ति के राष्ट्रीय स्टाक में प्रस्तावित वृद्धि और उसके प्रमुख व्यावसायिक वर्ग

अनुभाग 1. रोज़गार के वर्ग

73. इस अध्याय का उद्देश्य (पिछले अध्याय के क्रम में) उच्चतर शैक्षिक परिप्रेक्ष्य-योजना रूपरेखा (मसौदा) के भाग-एक में दिए गए विवरणों के अर्थ, उद्देश्य तथा आशय की व्याख्या करना है। इस विवरण के अनुसार, उच्चतर शिक्षित जनशक्ति के राष्ट्रीय स्टाक को एक दृष्टि से 'रोज़गार वर्गों तथा एक अन्य दृष्टि से' व्यावसायिक वर्गों में विभक्त किया सकता है। पहिले प्रकार का विभाजन इस प्रकार है :

सारणी 8. उच्चतर शिक्षित जनशक्ति के राष्ट्रीय स्टॉक के रोज़गार-वर्ग

रोज़गार वर्ग	परिकलित वास्तविक आंकड़े (1960-61)		अंतरिम लक्ष्य वर्ष के तियंत्रांक		वृद्धि-तत्व कालम-4
	संख्या लाखों में	प्रतिशत	संख्या लाखों में	प्रतिशत	कालम 2
1	2	3	6	5	6
औद्योगिक रोज़गार	1.91	(13.4)	11.00	(27.5)	5.8
सेवा-रोज़गार	10.04	(70.1)	22.00	(55.0)	2.2
खेती तथा घरेलू रोज़गार	1.42	(9.9)	4.00	(10.0)	2.8
रोज़गार के इच्छुक	0.95	(6.6)	3.00	(7.5)	3.2
कुल जोड़	14.32	(100.0)	(40.00)	(100.0)	2.8

74. समग्र राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था तथा राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली के बीच समन्वय स्थापित करने की समस्या का मुख्य करण इसका उपर्युक्त सारणी की पहली प्रविष्टि से ही स्पष्ट हो जाता है। (लगभग) 15 वर्षों के दौरान, संगठित उद्योगों (अर्थात्, समस्त निर्माण तथा खनन-उद्यम-विद्युत-शक्ति, पूर्ति-उद्यम, निर्माण कार्य संबंधी परियोजनाओं तथा लोक निर्माण विभाग) में लगी उच्चतर शिक्षित जनशक्ति के राष्ट्रीय स्टॉक के सापेक्ष अनुपात में 13.4 प्रतिशत से 27.5 प्रतिशत की वृद्धि करनी होगी। जब कुल स्टाक में 26 लाख की वृद्धि (14 लाख से 40 लाख) होगी तो औद्योगिक रोज़गार में कम से कम 9 लाख (या कुल वृद्धि का लगभग एक तिहाई) की वृद्धि करनी होगी। यदि औद्योगिक रोजगार में 5.8 गुनी वृद्धि होती है तो सेवा रोज़गार में 2.2 गुनी वृद्धि होती है।

75. रोज़गार के स्वरूप में ऐसे परिवर्तन का उदाहरण अब तक नहीं मिला। सामान्यतः यह अनुभव किया जाता है कि ऐसे परिवर्तन के कारण उच्चतर शिक्षा की कुछ विशेष शाखाओं में तीव्र वृद्धि और विस्तार आवश्यक होगा। किन्तु संबंधित अधिकारी अब तक यह अनुभव नहीं करते कि इसके लिए पाठ्यचर्या की रचना और सामग्री, विद्यार्थियों को भरती करने की पद्धति, शिक्षकों की नियुक्ति तथा शिक्षा-प्रशासन के ढांचे में महत्वपूर्ण सुधार आवश्यक हैं। इसके साथ और इन सुधारों से समन्वय स्थापित करते हुए, उच्चतर शिक्षित जनशक्ति दलों को रोज़गार में रखने, उन्हें भरती करने तथा व्यावहारिक प्रशिक्षण देने के वर्तमान तरीकों में भी सुधार कियाजाना चाहिए। इसीलिए "उच्चतर शिक्षा के जनशक्ति नियोजित विकास तथा सुधार" की आवश्यकता हुई जो इस रिपोर्ट का प्रतिपाद्य विषय है।

अनुभाग 2. प्रमुख व्यावसायिक वर्ग

विस्तृत नियोजन के लिए चार "प्रमुख व्यावसायिक वर्ग" बनाए गए है। इन वर्गों का विवरण एवं परिभाषाएं इस प्रकार हैं :

1. **उच्चतर शिक्षित अध्यापन जनशक्ति**—इस

वर्ग के अन्तर्गत वे सभी व्यक्ति सम्मिलित हैं जिनके पास विश्वविद्यालय की डिग्री (या कोई उप-वृत्तिक डिप्लोमा) हो, और जो स्कूलों, कालेजों, विश्वविद्यालयों और अनुसंधान संस्थाओं में शिक्षक के रूप में कार्य करते हैं। इस वर्ग में वे व्यक्ति भी सम्मिलित हैं जो शिक्षा-संस्थाओं या शिक्षा-प्रशासन में प्रबन्धक या अन्य पदों पर काम करते हैं (जिनके लिए अध्यापन-अनुभव एक अनिवार्य योग्यता निर्धारित हो) किंतु इसमें वे व्यक्ति नहीं आते जो ऐसे शिक्षण-पदों पर काम करते हों जिनके लिए इंजीनियरी। टेक्नालाजी या चिकित्सा विज्ञान में विश्वविद्यालय की डिग्री या उप-वृत्तिक डिप्लोमा अनिवार्य योग्यता के रूप में निर्धारित हो।

2. **इंजीनियरी जनशक्ति**—इस वर्ग के अन्तर्गत वे सभी व्यक्ति सम्मिलित हैं जिनके पास इंजीनियरी में विश्वविद्यालय की डिग्री या उप-वृत्तिक उपाधि जैसे डिप्लोमा हों, भले ही उन का वास्तविक रोज़गार कुछ भी हो। विश्वविद्यालय की डिग्री वाले व्यक्तियों को वृत्तिक इंजीनियरी कहा जा सकता है, तथा डिप्लोमा जैसे उप-वृत्तिक उपाधि प्राप्त व्यक्तियों को इंजीनियरी तकनीशियन कहा जा सकता है।

3. **वैज्ञानिक और तकनीकी जनशक्ति (1 और 2 को छोड़कर)**—इस वर्ग के अन्तर्गत उच्चतर शिक्षित जनशक्ति के विम्वलिखित तीन उपवर्ग सम्मिलित हैं :

(क) **कृषि/पशु चिकित्सा विशेषज्ञ**—इस उपवर्ग के अन्तर्गत कृषि-वैज्ञानिक, मत्स्य वैज्ञानिक, पशु चिकित्सक तथा उच्चतर शिक्षा प्राप्त ऐसे सभी व्यक्ति सम्मिलित हैं जिनकी सेवाएं कृषि, पशुपालन, वानिकी (फारेस्ट्री) तथा मत्स्य उद्योग (फिशरी) को वैज्ञानिक ढंग से करने के लिए आवश्यक हैं।

(ख) **स्वास्थ्य/चिकित्सा विशेषज्ञ**—इस उपवर्ग के अन्तर्गत फिज़िशियन, सर्जन, तथा उच्चतर शिक्षा प्राप्त ऐसे सभी व्यक्ति सम्मिलित हैं जिनकी सेवाएं चिकित्सा, शल्य चिकित्सा (सर्जरी), तथा मानव स्वास्थ्य-सुरक्षा के वैज्ञानिक अभ्यास के लिए आवश्यक हैं।

(ग) **अन्य वैज्ञानिक तथा तकनीकी विशेषज्ञ**—इस उपवर्ग के अन्तर्गत ऊपर बताए व्यक्तियों को छोड़कर उच्चतर शिक्षा प्राप्त ऐसे भी सभी व्यक्ति सम्मिलित हैं जो वैज्ञानिक तथा तकनीकी सेवाओं में लगे हैं।

(घ) **लोक प्रशासकीय और निर्मामित प्रबन्धक जनशक्ति (1,2 और 3 को छोड़कर)**—इस वर्ग के अन्तर्गत निम्नलिखित प्रकार के व्यक्ति सम्मिलित हैं : (1) भारत सरकार या राज्य सरकारों की विभागीय स्थापनाओं में ऐसे पदों पर काम करने वाले सभी व्यक्ति जो अखिल भारतीय सेवा पदों, प्रथम श्रेणी पदों, या द्वितीय श्रेणी पदों के अन्तर्गत वर्गीकृत हों, शर्त यही है कि इसमें ऐसे पद सम्मिलित न किए जाएं जिन पर काम करने वाले व्यक्ति "वैज्ञानिक और तकनीकी जनशक्ति" या "इंजीनियरी जनशक्ति" या "उच्चतर शिक्षित अध्यापन जनशक्ति" के अन्तर्गत आते हों।

(2) सरकारी तथा गैर-सरकारी क्षेत्रों की समस्त निगमित संस्थापनाओं (सरकारी विभागों को छोड़कर) के पदों पर काम करने वाले व्यक्ति जिनके निर्धारित कार्य ऊपर (1) में उल्लिखित पदों और सेवाओं के समान हैं और जिनके लिए वैसी ही शैक्षित योग्यताएं आवश्यक हों।

77. नीचे सारणी 9 में इन चार प्रमुख व्यावसायिक वर्गों का स्थूल सापेक्ष आकार बनाया गया है (एक दूसरे की तुलना में तथा उच्चतर शिक्षित जनशक्ति के कुल राष्ट्रीय स्टॉक की तुलना में) प्रस्तावित वृद्धि का स्वरूप भी इसमें दर्शाया गया है।

सारणी 9. उच्चतर शिक्षित जनशक्ति के राष्ट्रीय स्टॉक के प्रमुख व्यावसायिक वर्ग

प्रमुख व्यावसायिक वर्ग	परिकलित वास्तविक आंकड़े (1960-61)		अंतरिम लक्ष्य वर्ष के लिए नियंत्रांक		वृद्धि तत्व कालम 4
	संख्या लाखों में	प्रतिशत	संख्या लाखों में	प्रतिशत	कालम 2
1	2	3	4	5	6
1. उच्चतर शिक्षित अध्यापन जनशक्ति	2.22	(15.5)	9.00	(22.5)	4.1
2. इंजीनियरी जनशक्ति	1.33	(9.3)	7.50	(18.8)	5.6
3. वैज्ञानिक और तकनीकी जनशक्ति (1 और 2 को छोड़कर)	1.81	(12.6)	6.50	(16.2)	3.6
4. लोक प्रशासकीय और निगमित प्रबन्धक जनशक्ति (1 से 3 को छोड़कर)	2.65	(18.6)	5.00	(12.5)	1.9
जोड़ (1 से 4)	8.02	(56.0)	28.00	(70.0)	3.5
राष्ट्रीय स्टॉक	14.32	(100.0)	40.00	(100.0)	2.8

78. ऊपर दिए अंकों के महत्व का मूल्यांकन करने के पूर्व सावधानी के लिए कुछ बातें स्पष्ट कर देना आवश्यक है। आधारभूत वर्ष (1960-61) के "परिकलित वास्तविक आंकड़े" ऐसे आंकड़ों पर आधारित है जो अपूर्ण और त्रुटिपूर्ण दोनों हैं। प्रस्तुत प्रयोजन के लिए ये आंकड़े उचित माने गए हैं—अर्थात् प्रयोजन यह है कि प्रत्येक वर्ग के सापेक्ष संख्यात्मक महत्व तथा भावी वृद्धि के संदर्भ में इनमें होने वाली भिन्नताओं के संबंध में एक सही परिप्रेक्ष्य प्रस्तुत किया जाए।

इंजीनियरी जनशक्ति से संबंधित आंकड़े अनुप्रयुक्त जनशक्ति अनुसंधान संस्थान द्वारा किए गए एक विस्तृत सर्वेक्षण पर आधारित हैं। अन्य वर्गों के संबंध में भी इसी प्रकार के सर्वेक्षण शुरू किए गए हैं। इन सर्वेक्षणों को भी इसी प्रकार पूरा किया जाना चाहिए जिससे संचालन के निमित्त उच्चतर शैक्षिक परिप्रेक्ष्य योजना-रूपरेखा तैयार करने के लिए एक ठोस आधार मिल सके।

79. यह पहले ही बताया जा चुका है (देखिए पैरा 47, अध्याय तीन) कि "शैक्षिक दृष्टि से वर्गीकृत रोजगार विवरण" प्राप्त करने तथा (इनके आधार पर) "शैक्षिक दृष्टि से वर्गीकृत जनशक्ति सारणियों" की एक नियमित शृंखला तैयार तथा प्रकाशित करने के लिए एक प्रणाली निश्चित करने की आवश्यकता है। ऐसी प्रणाली निश्चित करने के लिए जो प्रयास अपेक्षित है वह बहुत कठिन नहीं है। एक मार्गदर्शक प्रयास के द्वारा दिशा निर्देश हो चुका है। इस प्रयास का अनुसरण आवश्यक है तथा प्रतिवर्ष इसमें सुधार कर इसे विकसित करना भी। विश्वास है कि ऐसा ही किया जाएगा। अभी जो अंक दिए गए है उन्हें अन्तिम अनुमान समझना चाहिए। बाद में पक्के आंकड़े मिलने पर इन्हें बदल दिया जाएगा।

80. इतना मान लेने पर, यह कहा जा सकता है कि 1960-61 के दौरान उच्चतर शिक्षित जनशक्ति के राष्ट्रीय स्टॉक का 56 प्रतिशत अंश कुल मिलाकर इन चार प्रमुख व्यावसायिक वर्गों का रहा। "अंतरिम लक्ष्य वर्ष" के दौरान इसका अनुपात राष्ट्रीय स्टॉक के 70 प्रतिशत तक बढ़ने की आशा है। आधारभूत वर्ष 1960-61 में इन

चारों में लोक प्रशासकीय और निगमित प्रबंधक जनशक्ति का वर्ग सबसे बड़ा (18.6 प्रतिशत) था। किन्तु इसकी योजनावद्ध वृद्धि दर चारों में सबसे कम है, फलस्वरूप "अंतरिम लक्ष्य वर्ष" में इस वर्ग का सबसे छोटा (12.5 प्रतिशत) रह जाना संभावना है। इसके विपरीत इंजीनियरी जनशक्ति में तिगुनी वृद्धि होगी। यद्यपि आधारभूत वर्ष 1960-61 में यह चारों वर्गों में सबसे छोटा वर्ग (उस वर्ष के राष्ट्रीय स्टाक का 9.3 प्रतिशत) था, "अंतरिम लक्ष्य वर्ष" में इसके तीव्र गति से विकसित होने तथा दूसरे नंबर पर आ जाने (18.8 प्रतिशत) की आशा है। उच्चतर शिक्षित अध्यापन जनशक्ति, इंजीनियरी जनशक्ति की अपेक्षा कुछ कम तीव्र गति से विकसित होगी। आधारभूत वर्ष के दौरान यह चारों वर्गों में सबसे बड़ा था। सम्भव है "अंतरिम लक्ष्य वर्ष" में यही सबसे बड़ा वर्ग (22.5 प्रतिशत) हो। इन महत्वपूर्ण परिवर्तनों को पहले से ही सही परिप्रेक्ष्य में देख लेना आवश्यक है। इन परिवर्तनों के लिए उपयुक्त संस्था स्थापित करना तथा सही उपाय अपनाना तभी सम्भव होगा। "परिप्रेक्ष्य योजना रूपरेखा" इसीलिए आवश्यक है।

81. "जनशक्ति नियोजन" को अधिकतर केवल सांख्यिकीय परिकलन, अथवा अवाश्यकताओं की "भविष्यवाणी" माना जाता है। इस धारणा के अनुसार शैक्षिक प्राधिकारी इन "भविष्यवाणियों" का उपयोग शैक्षिक सुविधाओं के विस्तार के योजना के आधार के रूप में करते हैं। जनशक्ति नियोजन तथा शैक्षिक योजना दोनों के संबंध में यह धारणा अत्यन्त सहज और भ्रामक है। राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के सरकारी योजना की प्रणाली के विकास की प्रारम्भिक अवस्था में ऐसी सहज धारणा स्वाभाविक और कदाचित आवश्यक है। किन्तु हमारी राष्ट्रीय आर्थिक योजना प्रणाली अब उस सीमा तक विकसित हो चुकी है जहां हमें जनशक्ति योजना तथा शैक्षिक नियोजन के सही पूरे आशय को समझ लेना चाहिए। यदि शिक्षा और रोजगार के संबंध में वर्तमान स्थिति में परिवर्तन न किया गया तो मांग और पूर्ति के बारे में पूर्वानुमान लगाना निस्संदेह आवश्यक होगा। लेकिन वह पहला कदम ही होगा। इस तरह पूर्वानुमान करने के बाद 'पूर्वानुमान' के बदले 'नियंत्रांक' रखने चाहिए और केवल पूर्ति के संबंध में ही नहीं, बल्कि आवश्यकताओं के संबंध में भी ऐसा की करना चाहिए। ऐसे नियंत्रांक 'योजनागत निर्णयों' को व्यक्त करते है और नीतियों को प्रभावकारी बनाते है।

82. उपर्युक्त बातें सारणी 9 में दिए गए अंकों को ठीक-ठीक समझने के लिए आवश्यक हैं। ये अंक केवल 'पूर्वानुमान' नहीं हैं। ये 'नियंत्रांक' हैं जो उन धारणाओं के आधार पर प्रस्तावित किए गए हैं जो नीति संबंधी तथा विशिष्ट योजना संबंधी निर्णयों के परिणाम हैं। यहां इस बात पर जोर देना संगत होगा कि चार प्रमुख व्यावसायिक वर्गों के सापेक्ष संख्यात्मक महत्व के परिवर्तन की जो बात पैरा 80 में कही गई है, वह अपने आप नहीं होगा। वह तभी संभव है जब इस संबंध में सरकारी योजनागत निर्णय पहले से लिए जाएं, परिप्रेक्ष्य योजना रूपरेखा में उसे समाविष्ट किया जाए और पंचवर्षीय योजनाओं में प्रतिवर्ष उसे दृढ़ता से कार्यान्वित किया पाए।

83. यहां एक और बात उल्लेखनीय है। जब जनशक्ति का नीति-सम्मत नियोजन किया जाता है और उसे योजनागत निर्णयों में समाविष्ट किया जाता है तो ऐसे निर्णय जनशक्ति को रोजगार में लगाने वाली एजेन्सियों ('आवश्यकताओं' के स्रोत), तथा शैक्षिक प्रशिक्षण देने वाली संस्थाओं (पूर्ति के स्रोत) दोनों को समान रूप से बाध्य करेंगे। उच्चतर शिक्षित जनशक्ति नियोजन के लिए उच्चतर शिक्षा संस्थाओं में जनशक्ति को शैक्षिक प्रशिक्षण देने की जो वर्तमान प्रणाली है उसके लगभग सभी पहलुओं में परिवर्तन करना होगा। दूसरी ओर उच्चतर शिक्षित जनशक्ति दलों को भरती करने और उन्हें प्रशिक्षण तथा रोजगार देने की जो वर्तमान प्रणाली है उसमें नियोक्ताओं को परिवर्तन करना होगा। इसीलिए जितनी आवश्यकता 'विकास' की है उतनी ही 'सुधार' की भी है।

अनुभाग 3. उच्चतर शिक्षित अध्यापन जनशक्ति

84 इस समय 'उच्चतर शिक्षित अध्यापन जनशक्ति, बिना किसी मांग और पूर्ति की योजना के तैयार और प्रयुक्त की जा रही है। यह देखते हुए कि राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली इस प्रमुख व्यावसायिक वर्ग का एक साथ उत्पादक और प्रयोक्ता है, इस वर्ग में अन्य वर्गों की अपेक्षा समन्वय की समस्या अपेक्षाकृत अधिक सरल प्रतीत होती है। फिर भी यह सत्य है कि समस्त राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली (सभी कालेजों और विश्वविद्यालयों सहित) इस धारणा पर तीव्र गति से विस्तृत हो रही है कि शिक्षण सेवाओं के खुले बाजार की सामान्य स्थिति में उच्चतर शिक्षित अध्यापन जनशक्ति की मांग और पूर्ति स्वतः परस्पर समायोजित हो जाएगी। इस प्रकार का समायोजन सुनिश्चित करने के लिए न केवल योजना का अभाव है, बल्कि इस प्रकार की किसी योजना की आवश्यकता का किसी को न तो ध्यान है और न ही कोई उसे स्वीकार करता है। क्या यह शिक्षा प्रणाली का दोष नहीं है, जिसे ठीक करने की आवश्यकता है? या यह इस स्थिति का द्योतक है कि शिक्षा प्रणाली के संचालन का सबसे सुन्दर तरीका **अहस्तक्षेप** का श्रेष्य सिद्धान्त है?

85. इन प्रश्नों का उत्तर इस बात पर निर्भर है कि शिक्षा प्रणाली के संचालन में कार्य-क्षमता को कितना महत्व दिया जाता है। यह सोचना पूर्णतः संगत है कि शिक्षा को योजनाबद्ध करने का कष्ट उठाने तथा वर्तमान स्वतन्त्रता को खोने से कहीं अच्छा है कि थोड़ी बहुत अकुशलता को ही सहन किया जाए। हमारा विचार है कि जैसे-जैसे शैक्षिक विस्तार बढ़ता जाता है, यह सिद्धान्त कुछ मंहगा पड़ता जाता है। अब यह आवश्यक है कि (जैसा इंजीनियरों के लिए किया जा चुका है वैसा) नियोजन शिक्षकों के लिए शुरू किया जाए। यह सत्य है कि ऐसे डिग्री प्राप्त व्यक्तियों की संख्या बहुत अधिक है जिसमें से शिक्षक चुने जा सकते हैं। किंतु उच्चतर शिक्षित अध्यापन जनशक्ति की मांग और पूर्ति के बीच बड़ा असंतुलन है। कुछ विषयों को पढ़ाने के लिए योग्यता प्राप्त शिक्षकों की भरमार है, किन्तु कुछ विषयों मे ऐसे शिक्षकों की कमी है। बड़े-बड़े शहरों में शिक्षक प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं जब कि ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षकों को आकर्षित करने तथा उन्हें वहीं काम पर बनाए रखने में काफी गम्भीर कठिनाइयां हैं। कुछ जिलों में अन्य जिलों की अपेक्षा प्रलोभन अधिक है। यह संख्यात्मक असंतुलन है। एक अन्य समस्या भी है। देश की उपलब्ध प्रतिभा वांछित मात्रा में शिक्षण व्यवसाय की ओर आकर्षित नहीं होती। अन्य तीन व्यावसायिक वर्गों में रोजगार प्राप्त करना लोग अधिक पसन्द करते हैं। यदि इन दोषों कों दूर करना हो तो राष्ट्रीय शिक्षण व्यवस्था में रोजगार प्राप्त करने वाली उच्चतर शिक्षित अध्यापन जनशक्ति के नियोजन की प्रभावकारी प्रणाली अपनाना आवश्यक है। ऐसे नियोजन के लिए शिक्षकों की नौकरी की शर्तों में ही सुधार अपेक्षित नहीं है, बल्कि उनने शैक्षिक प्रशिक्षण की वर्तमान व्यवस्था में भी सुधार आवश्यक है।

86. हमारा विश्वास है कि यह अंतिम सुझाव भारत सरकार तथा सभी राज्य सरकारों द्वारा स्वीकार कर लिया जाएगा। वे सहमत होंगे कि उच्चतर शिक्षित अध्यापन जनशक्ति की भर्ती का तथा उसे रोजगार देने का एक नियोजित कार्यक्रम होना चाहिए, ताकि (1) देश की उपलब्ध प्रतिभा वांछित मात्रा में शिक्षण व्यवसाय की ओर आकर्षित हो; (2) ग्रामीण क्षेत्रों तथा पिछड़े जिलों में आवश्यक संख्या में शिक्षकों की व्यवस्था की जा सकें; तथा (3) विभिन्न विषयों में शिक्षकों की आवश्यकता का ध्यान रखते हुए उन विषयों में शैक्षिक प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाए। ये परिणाम तब तक सम्भव नहीं जब तक इनने लिए उपयुक्त एजेन्सियां न खोली जाएं और उन्हें विशिष्ट दायित्व न सौंपा जाए। इस प्रयोजन के लिए शिक्षा के विभिन्न स्तरों तथा विभिन्न क्षेत्रीय यूनिटों के लिए जो एजेन्सियां खोली जाएं वे उस प्रशासकीय व्यवस्था का अंग होनी चाहिए जो संबंधित स्तरों तथा क्षेत्रों के शैक्षिक विकास के लिए उत्तरदायी हो। उच्चतर शैक्षिक प्रशासन के व्यवस्था के अभिन्न अंग के रूप में, प्रत्येक एजेन्सी को अपने निर्धारित क्षेत्र की शिक्षा संस्थाओं पर नियंत्रण रखना चाहिए जिससे यह सुनिश्चित किया जा सके कि उस एजेन्सी द्वारा प्रतिवर्ष उपलब्ध अध्यापन जनशक्ति दल वस्तुतः उसी एजेन्सी की अधीनस्थ संस्थाओं में रोजगार प्राप्त करेंगे। सामान्य रूप से शिक्षाविदों तथा विशेष रूप से विश्वविद्यालय प्राधिकारियों की वर्तमान विचारधाराओं के साथ इन अपेक्षाओं का मेल कैसे बैठाया जा सकता है? स्पष्टतः यह एक नई समस्या है। परन्तु इसका समाधान न हो, ऐसी बात नहीं। इस समस्या के समाधान की पहली शर्त यह है कि सामान्य रूप से शिक्षाविदों को तथा विशेष रूप से विश्वविद्यालय प्राधिकारियों को यह समझना होगा कि इस वास्तविक समस्या को हल करने के लिए उन्हें सक्रिय सहयोग देना होगा।

87. किन विभिन्न तरीकों से इन समस्याओं का समाधान किया जा सकता है इसका इस रिपोर्ट की व्याप्ति के भीतर सविस्तर वर्णन संभव नहीं। यहां इस तथ्य की ओर प्रमुख रूप से ध्यान आकर्षित करना आवश्यक और पर्याप्त होगा कि यदि सरकारें जनशक्ति नियोजन करना चाहती हैं तो इन प्रशासकीय प्रश्नों को स्वीकार करना होगा। जनशक्ति नियोजन की आवश्यकता को 'सिद्धान्त रूप में' सामान्यतः स्वीकार करना बहुत सरल है तथापि जब ऐसे नियोजन का तात्पर्य समझलिया जाता है तभी यह स्पष्ट होता है कि यह विस्तार की एक सरल प्रक्रिया मात्र नहीं है। बल्कि इसके साथ-साथ शिक्षा संस्थाओं की वर्तमान व्यवस्था तथा कार्य पद्धति, शैक्षिक प्रकासकीय एजेन्सियों और शिक्षकों की भर्ती के वर्तमान तरीकों में भी परिवर्तन करने होंगे।

अनुभाग 4. इंजीनियरी जनशक्ति

88. पिछले पचास वर्षों में भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय ने कई शैक्षिक परियोजनाएं चलाई। इनमें से सभी योजनाओं की सफलता इस बात पर निर्भर थी कि उनके लिए राज्य सरकारों से कितना सहयोग मिलता है। इनमें से कई परियोजनाएं छोटी थीं, किन्तु दों प्रमुख महत्व की थीं। पहली—माध्यमिक स्कूलों और कालेजों के पुनर्गठन की प्रमुख योजना, जिसकी सिफ़ारिश माध्यमिक शिक्षा आयोग ने की थी। दूसरी—इंजीनियरी शिक्षा (कालेजों में डिग्री स्तर की तथा पालिटेक्निक में डिप्लोमा स्तर की) के योजनाबद्ध विकास की परियोजना। अब सामान्यतः सभी यह स्वीकार करते हैं कि पहली परि-

योजना गलत सिद्ध हुई, प्रायोजकों की आशाओं को पूरा करने में वह लगभग असमर्थ रही। इसके विपरीत दूसरी परियोजना को आशातीत सफलता मिली। शिक्षा के क्षेत्र में इसकी उपलब्धि उतनी ही बड़ी और महत्वपूर्ण है जितनी उद्योग के क्षेत्र में इस्पात कारखानों की तथा कृषि के क्षेत्र में प्रमुख सिंचाई परियोजनाओं की।

89. इन दो परियोजनाओं के परिणामों की भिन्नता के क्या कारण हैं ? अपने भावी प्रयासों के लिए यह अनुभव हमें क्या शिक्षा देता है ? इन प्रश्नों के कई उत्तर हो सकते हैं। हमारे विचार में इसका सबसे उपयुक्त उत्तर यह है कि सफल होने वाली योजना "जनशक्ति नियोजित" थी और दूसरी नहीं। इंजीनियरी शिक्षा के विकास की योजना ऐसे उपयुक्त समय पर शुरू की गई थी जब देश में औद्योगीकरण की प्रक्रिया चल रही थी और देश भर में नियोक्ताओं की ओर से इंजीनियरी स्नातकों तथा डिप्लोमा प्राप्त व्यक्तियों की तीव्र मांग हो रही थी। विद्यार्थियों ने (तथा उनके माता-पिताओं ने) इस योजना का स्वागत किया, क्योंकि उन्हें शिक्षा की एक ऐसी शाखा अधिकाधिक सुलभ हो रही थी जिसके द्वारा वे अपने लिए एक संतोषप्रद व्यवसाय चुनने में समर्थ थे। राज्य सरकारें इस अखिल भारतीय योजना में भाग लेने तथा इसे क्रियान्वित करने के लिए उत्सुक थी, क्योंकि योजना के सुपरिणाम उनके सामने स्पष्ट थे। दूसरी परियोजना को ये लाभ नहीं मिल सके। यद्यपि शिक्षा की दृष्टि से वह बिल्कुल ठीक थी पर "जनशक्ति नियोजित" नहीं थी। यह "संख्या नियंत्रित" नहीं थी। इन दो महत्वपूर्ण पूर्व अपेक्षाओं के अभाव में कोई भी शैक्षिक सुधार सफल नहीं हो सकता।

90. इंजीनियरी शिक्षा के विकास की योजना दूसरे पंचवर्षीय योजना काल में प्रभावकारी ढंग में कार्यान्वित हुई। इस प्रक्रिया का प्रथम चरण दूसरे पंचवर्षीय योजना काल में समाप्त हो गया है। दूसरे पंचवर्षीय योजना काल के प्रारम्भ (1956-57 के प्रारम्भ) में राष्ट्रीय स्टॉक के अन्तर्गत 39 हजार डिग्री प्राप्त और 51 हजार डिप्लोमा प्राप्त (या कुल मिलाकर 90 हजार) व्यक्ति थे। दूसरे पंचवर्षीय योजना काल में 58 हजार डिग्री प्राप्त और 75 हजार डिप्लोमा प्राप्त व्यक्ति (या कुल मिलाकर 133 हजार) उपलब्ध हुए। अनुमान है कि प्रस्तुत वर्ष में जब तीसरी योजना समाप्त हो रही है और चौथी प्रारम्भ हो रही है, 94 हजार डिग्री प्राप्त व्यक्ति और 134 हजार डिप्लोमा प्राप्त व्यक्ति (या कुल मिलाकर 228 हजार) उपलब्ध होंगे।

91. **इस प्रकार तीसरी पंचवर्षीय योजनाकाल में राष्ट्रीय स्टाक में जो वृद्धि हुई वह दूसरे पंचवर्षीय योजना-काल के प्रारम्भ में विद्यमान सम्पूर्ण राष्ट्रीय स्टॉक की तुलना में अधिक है।** जा सकता जब तक हम वह स्मरण न रखें कि तीसरे योजना-काल में जो वृद्धि हुई वह वस्तुतः दूसरे योजना-काल में किए गए विकास कार्यों का ही फल है। तीसरे योजना काल में शिक्षण क्षमता में और भी बड़े पैमाने पर विस्तार हुआ। उसके परिणाम सभी सामने नहीं हैं। इंजीनियरी शिक्षा की जो क्षमता हमने आज प्राप्त कर ली है, **उस क्षमता में यदि कुछ भी वृद्धि न की जाए** तो भी उसके आधार पर हम चौथी पंचवर्षीय योजना-काल के अन्त तक इंजीनियरी जनशक्ति के राष्ट्रीय स्टॉक को बढ़ा कर 447 हजार तक और पांचवें योजना-काल के अन्त तक 702 हजार तक ले जा सकते हैं।

92. तीव्र विकास के इस कार्यक्रम ने अपने उद्देश्य की प्राप्ति इतनी सफलतापूर्वक की है कि लक्ष्य को पार कर लेने का खतरा पैदा हो गया है। कुछ वर्ष पूर्व जो भारी कमी थी वही अगले कुछ वर्षों में जरूरत से ज्यादा बढ़ती में बदल जाएगी। अब इस दिशा में वृद्धि की गति को तीव्र करने की आवश्यकता नहीं। इसके विपरीत इस दिशा में और अधिक विस्तार करने की राज्य सरकारों की उत्सुक्ता को संयमित करने की आवश्यकता है। अब हमें लक्ष्य निर्धारित करने की नहीं, बल्कि 1975-76 के लिए 750 हजार की अधिकतम सीमा निर्धारित करने की आवश्यकता है।

93. यह निष्कर्ष अभी सर्व सम्मत नहीं है। सच तो यह है कि कतिपद अत्यन्त प्रभावशाली क्षेत्रों में इसका तीव्र विरोध किया गया है। यह निष्कर्ष विस्तृत अध्ययन पर आधारित है जिसके परिणाम अनुप्रयुक्त जनशक्ति अनुसंधान संस्था द्वारा हाल ही में प्रकाशित एक रिपोर्ट में पूरी व्याख्या सहित दिए गए हैं। रिपोर्ट में की गई कार्यकारी सिफ़ारिशें नीचे दी जा रही है :

> "वांछित विस्तार के स्वरूप से संबंधित इस रिपोर्ट के मुख्य निष्कर्ष को परिप्रेक्ष्य अनुसूची (मसौदा) प्रभावकारी बनाती है। सर्व प्रथम इंजीनियरी कालेजों के लिए दो वर्ष का और पालिटेक्निकों के लिए दो वर्ष का अल्प विराम होना चाहिए। इस विराम के बाद भरती की क्षमता में समान वृद्धि होनी चाहिए। इसकी गति पहिले से मंद होनी चाहिए। प्रस्ताव है कि चौथी पंचवर्षीय योजना के

मध्य वर्ष से देश के सभी इंजीनियरी कालेजों की प्रवेश क्षमता में प्रतिवर्ष 1,500 स्थानों की वृद्धि होनी चाहिए। और सभी पालिटेकनिकों की प्रवेश क्षमता में प्रतिवर्ष 3,000 स्थानों की। इन प्रस्तावों से राज्य सरकारों को निराशा होगी। आशा है, राज्य सरकारों को समझाने और संतुष्ट करने के लिए इस रिपोर्ट में दिए गए विश्लेषण केन्द्रीय सरकार पर्याप्त संतोषप्रद तथा उपयोगी पाएगी। (यहां यह बता देना होगा कि समग्र प्रवेश क्षमता की वृद्धि-दर पर जो प्रतिबंध प्रस्तावित है, वह क्षेत्रीय या विशेषज्ञता के आधार पर वांछित प्रवेश-क्षमता के पुनर्विभाजन के आड़े नहीं आएगा।

"प्रस्तावित अल्प विराम का एक उद्देश्य यह भी है कि संस्थान के विभिन्न लेखों व रिपोर्टों में (इनमें प्रथम रिपोर्ट तथा इंजीनियरी जनशक्ति सर्वेक्षण पर प्रस्तुत रिपोर्ट भी सम्मिलित है) प्रस्तावित सुधारों को क्रियान्वित करने के लिए केन्द्रीय तथा राज्य सरकारें समस्त आवश्यक प्रारम्भिक कार्रवाई कर सकें।

"सर्वप्रथम पालिटेकनिकों की वर्तमान स्थिति पर ध्यान दिया जाना चाहिए, उनमें समुचित स्टाफ तथा सुविधाओं की व्यवस्था के लिए कदम उठाने चाहिए तथा क्षति दर को नियंत्रित तथा कम करने के लिए आवश्यक अन्य सभी उपाय करने चाहिए।

"डिग्री स्तर की इंजीनियरी शिक्षा की वर्तमान 'स्तर प्रणाली' को व्यवस्थित करने और क्रमशः 'सहकारी' प्रणाली में बदलने की योजना (जैसी सिफ़ारिश प्रथम रिपोर्ट में की गई है) बनानी चाहिए तथा उसे क्रियान्वित करना चाहिए। डिप्लोमा स्तर पर पालिटेकनिक शिक्षा के संबन्ध में भी ऐसे ही सुधार के योजना बनाना और क्रियान्वित करना चाहिए।

"'प्रैक्टिकल्स' की समस्या पर भी ध्यान देना आवश्यक है। 'विस्तार' प्रणाली पर इंजीनियरी शिक्षा देने की योजनाएं बनाई जानी चाहिए और प्रारम्भ में उन्हें मार्गदर्शक रूप में ही क्रियान्वित किया जाना चाहिए। योजनाओं को चलाने का अनुभव शीघ्र प्राप्त कर लेना चाहिए। ऐसी डिप्लोमा स्तर के पर 'मैट्रिक पास शिल्पियों' की 'विस्तार' शिक्षा के लिए यह विशेषरूप से आवश्यक है। पालिटेक्निकों की बढ़ती हुई प्रवेश क्षमता के लिए विस्तार शिक्षा की ऐसी सुविधाओं की व्यवस्था को सर्वोपरि मानना चाहिए।

"इस सुधार को इन उपायों के द्वारा क्रियान्वित करना तब तक संभव न होगा जब तक इंजीनियरी जनशक्ति को रोज़गार में रखने वाली एजेन्सियां भी ऐसी ही कार्रवाई न करें और भरती, पूर्व भरती प्रशिक्षण, पदोन्नति तथा सेवागत विकास (जिसमें 'विस्तार' प्रणाली की संस्थागत शिक्षा भी सम्मिलित है) से संबंधित अपनी नीति और पद्धतियों में महत्वपूर्ण सुधार न करें। आवश्यक सुधारों के स्वरूप का वर्णन विभिन्न लेखों में विस्तार से किया जा चुका है। यहां उन्हें संक्षेप में दो अवधारणाओं में व्यक्त किया जा सकता है। पहली—इंजीनियरी जनशक्ति के "योजनाबद्ध संवर्गीकरण" की अवधारणा; दूसरी—"इंजीनियरी जनशक्ति प्रशिक्षण पूल" की अवधारणा। सिफारिश है कि चौथे पंचवर्षीय योजना-काल के समाप्त होने के पूर्व ही इन सुधारों में युक्त योजनाओं को कार्यरूप में परिणत कर देना चाहिए।"

94. इंजीनियरी शिक्षा की वर्तमान प्रणाली में सुधार के लिए अन्य रिपोर्टों में जो सिफ़ारिशें की गई हैं उनके पूर्ण दोषों की चर्चा करना इस रिपोर्ट का उद्देश्य नहीं। यहां इतना ही आग्रह प्राप्त होगा कि उत्तरदायी प्राधिकारी यह समझ लें कि अब वे एक चरण के अन्त में पहुंच गए हैं। अब उन्हें उस विकास प्रक्रिया के दूसरे चरण में प्रवेश करना है जिसका प्रारम्भ उन्होंने दूसरे योजना-काल में किया था। अब संख्यात्मक वृद्धि के बदले (जो प्रथम-चरण की सबसे प्रमुख आवश्यकता थी) गुणवत्ता और उपयोगिता के सुधार पर निश्चित रूप से बल देना चाहिए। यह ध्यान रखना चाहिए कि दूसरे चरण में सुधार की योजना बनाने और उसे क्रियान्वित करने की आवश्यकता पड़ती है जो परम्परागत प्रणाली के आधार पर की गई साधारण संख्यात्मक वृद्धि से कहीं अधिक जटिल प्रक्रिया है। प्रथम चरण के दौरान जो इंजीनियरी शैक्षिक प्रशासन व्यवस्था तदर्थ रूप से विकसित हुई है उसके पुनरावलोकन की भी आवश्यकता है। इसका पुनर्गठन करना होगा और इसे पुष्ट करना होगा ताकि यह "सुधाराभिमुख" हो सके।

अनुभाग 3. वैज्ञानिक और तकनीकी जनशक्ति (इंजीनियरी और विज्ञान अध्यापन जनशक्ति को छोड़कर)

95. जैसा उल्लेख पहले किया जा चुका है, इस वर्ग के अन्तर्गत दो भिन्न उपवर्ग ऐसे हैं जो अनुप्रयुक्त जैव विज्ञानों पर आधारित हैं। एक दूसरा उपवर्ग विभिन्न प्रकार के अनुप्रयुक्त भौतिक विज्ञानों (इंजीनियरी को

छोड़कर) पर आधारित है। इस वर्ग के दलों के शैक्षिक प्रशिक्षण की वर्तमान व्यवस्था में सुधार और विकास करने तथा उनकी सेवाओं का उपयोग करने के सम्बन्ध में कई समस्याएं हैं। इस रिपोर्ट के अन्तर्गत इन समस्याओं पर विचार नहीं किया गया है, अंशतः इसलिए कि जनशक्ति के दृष्टिकोण से अभी इनका विस्तृत अध्ययन नहीं किया गया है।

96. फिर भी कुछ सामान्य बातें यहां कही जा सकती हैं। सबसे पहले योजना और विकास की प्रशासन व्यवस्था का प्रश्न है। पिछले दस वर्षों में इंजीनियरी शिक्षा के विकास के लिए जिस प्रशासन व्यवस्था का विकास हुआ है, उसे काम चलाने के लिए आदर्श माना जा सकता है और अन्य प्रकार की विशेषीकृत उच्चतर शिक्षा के लिए सफलतापूर्वक अपनाया जा सकता है : इस व्यवस्था की मुख्य विशेषताएं ये हैं :

(1) एक अखिल भारतीय योजना, जिसमें राष्ट्रीय स्टॉक की वृद्धि के लक्ष्यों तथा उससे प्राप्त उच्च शैक्षिक प्रवेश क्षमता की वृद्धि के लक्ष्यों की व्यवस्था है।

(2) विभिन्न राज्यों में नई क्षमता के वितरण के सम्बन्ध में निर्णय करने के लिए, भारत सरकार तथा राज्य सरकारों द्वारा स्वीकार्य प्रभावकारी प्रणाली।

(3) आवर्ती तथा अनावर्ती लगातार व्यय के लिए निधि सुनिश्चित करने वाली प्रभावकारी और स्वीकार्य प्रणाली।

(4) (क) एक अखिल भारतीय विशेषीकृत उच्चतर शिक्षा परिषद, जो भारत सरकार के किसी उपयुक्त मंत्रालय के पास सम्बन्ध है और जिसकी समन्वय समितियां हैं और सुसंगठित स्थाई स्टाफ। (ख) प्रत्येक राज्य में एक विशेषीकृत उच्च शिक्षा बोर्ड जो राज्य सरकार के किसी उपयुक्त विभाग के साथ सम्बन्ध है और जिसका एक सुसंगठित स्थाई स्टाफ है।

सुझाव है कि कृषि पशु चिकित्सा तथा स्वास्थ्य चिकित्सा दोनों क्षेत्रों में उपयुक्त विशेषताओं वाली उपयुक्त प्रशासन व्यवस्था संगठित की जानी चाहिए।

97. "वैज्ञानिक और तकनीकी जनशक्ति (इंजीनियरी जनशक्ति को छोड़कर)" के तीन उपवर्गों में से एक में कृषि तथा पशु चिकित्सा विशेषज्ञों को रखा गया है। इस उपवर्ग को उपर्युक्त घरेलू खेती नामक रोजगार के वर्ग से भिन्न मानना चाहिए। इस खण्ड में सम्मिलित विशेषज्ञ वे हैं जिनका 'सेवा रोजगार' कृषि तथा शिक्षा संस्थाओं, कृषि विस्तार संस्थाओं तथा कृषि सहकारी संस्थाओं आदि के लिए आवश्यक होता है। यद्यपि कार्य की दृष्टि से ये विशेषज्ञ व्यावहारिक खेती के कार्य में लगी उच्च शिक्षित जनशक्ति से भिन्न हैं, तथापि दोनों प्रकार की जनशक्तियों के लिए शैक्षिक प्रशिक्षण की व्यवस्था एक साथ ही नियोजित की जानी चाहिए।

इस सन्दर्भ में, उप-वृत्तिक उपाधि या डिप्लोमा की संकल्पना, जिसे इस रिपोर्ट में उच्चतर शिक्षा के अभिन्न अंग के रूप में प्रस्तुत किया गया है, अत्याधिक महत्वपूर्ण हो उठती हैं। कृषि पशु चिकित्सा के क्षेत्र में भी "उप वृत्तिक डिप्लोमा पाठ्यक्रमों" को विकसित तथा संगठित करनेकी आवश्यकता है, जिससे फार्म-सेवा रोजगार के लिए आवश्यक "उप-वृत्तिक विशेषज्ञ" और उच्चतर शिक्षित कृषक उपलब्ध हो सकें।

अनुभाग 6. लोक प्रशासकीय तथा निगमित प्रबन्धक जनशक्ति

98. सामान्य धारणा यह है कि जनशक्ति नियोजन का सम्बन्ध "विशेषज्ञों से ही हैं और इनसे भिन्न अन्य व्यक्तियों को" सामान्यज्ञ "के विचित्र नाम से अभिहित किया जाता है। सामान्यज्ञ" के अन्तर्गत ऐसा हर व्यक्ति आ जाता है जिसके कार्य को "प्रशासन" या "प्रबन्ध" कहा जा सकता है। योजना के लिए इनकी गणना नहीं की जाती, उसे उच्चतर शैक्षिक स्तर पर, इंजीनियरों, डाक्टरों, वैज्ञानिकों और शिक्षकों तक ही सीमित रखा जाता है। संभवतः इसका अन्तर्निहित कारण यह हो कि कोई भी व्यक्ति प्रशासक या प्रबंधन बन सकता है तथा अपने कार्य का कुशलतापूर्वक निर्वाह करने के लिए उसे किसी विशेष योग्यता की आवश्यकता नहीं होती (वृत्तिक शैक्षिक प्रशिक्षण की तो और भी नहीं)।

99. भले ही ऐसे विचार स्पष्टतया प्रगट न किए जाते हों, पर इसमें सन्देह नहीं कि प्रबन्धक एवं प्रशासकीय जनशक्ति तैयार करने के लिए हमारी शिक्षा प्रणाली में कोई नियोजित व्यवस्था नहीं है, जैसी इंजीनियरों डाक्टरों तथा स्कूली शिक्षकों के शैक्षिक प्रशिक्षण के लिए है। हाल के वर्षों में बी० काम० की डिग्रियों की संख्या बढ़ी है और ये एक वास्तविक जरूरत को पूरा कर रही हैं, भले ही उनसे केवल उप वृत्तिक जनशक्ति ही उपलब्ध होती है और उनका उप वृत्तिक स्तर यथेष्टता की दृष्टि से आलोचना का विषय है। विशेषकर स्नातकोत्तर स्तर पर, कुछ शैक्षिक पाठ्यक्रम ऐसे अवश्य हैं जो व्यवसाय के स्तर पर

लोक प्रशासन और व्यवसाय प्रबन्ध की शिक्षा देते हैं। तथापि अभी तक इनका योगदान विशेष महत्वपूर्ण सिद्ध नहीं हुआ है और व्यावसायिक जनशक्ति के विकास के सन्दर्भ में इनकी उपयोगिता सर्वमान्य नहीं कही जा सकती।

100. क्या सचमुच इसका कोई महत्व है? सम्भवतः कई लोग (जिनमें कई लोक प्रशासक तथा निगमित प्रबन्धक होंगे) बिना संकोच इसका नकारात्मक उत्तर देंगे। वे कहेंगे कि "प्रशासन" और "प्रबंध" ऐसे विषय नहीं जो अकादमिक व्यक्ति पढ़ा सके। ये तो कलाएं है जो अभ्यास से सीखी जाती हैं। इनसे भी अधिक उग्र विचार वालों का कहना होगा, "प्रबन्धक पैदा होते हैं बनाए नहीं जाते।" जो यह समझते हैं कि कलाएं सीखी जा सकती हैं, कहेंगे कि ये केवल काम करते-करते और व्यावहारिक प्रशासकों तथा प्रबन्धकों से ही सीखी जा सकती हैं। इस विचारधारा के अनुसार शिक्षा-प्रणाली केवल दो ही प्रयोजनों के लिए आवश्यक हैं। पहला प्रबन्ध और प्रशासन के लिए चुने गए व्यक्ति का सुसंस्कृत और चरित्रवान होना (अनिवार्य नहीं तो) वांछनीय अवश्य है। ऐसे व्यक्तियों का निर्माण शिक्षा प्रणाली का पहिला प्रयोजन है। ऐसे व्यक्ति ने विश्वविद्यालय की डिग्री के पाठ्यक्रम में कौन-कौन से विषय पढ़े इसका कोई महत्व नहीं हैं क्योंकि इनमें से किसी भी विषय के विशिष्ट ज्ञान का उपयोग वह नहीं करेगा। शिक्षा-प्रणाली एक अन्य दृष्टि से भी आवश्यक एवं उपयोगी है। प्रबन्धक तथा प्रशासकीय जनशक्ति को भरती करने वाली एजेन्सियों को यह सुविधा मिल जाती है कि वे अपने काम के लिए अनेक उम्मीदवारों में से कुछ प्रतिभावान व्यक्तियों का चुनाव करने में किसी हद तक समर्थ हो पाती हैं। यदि यह सुविधा न हो तो भरती करते वाली एजेन्सियों को भूसे के ढेर में से सुई खोजना पड़े। परिणाम स्वरूप गलत चुनाव का अनुपात अधिक हो जायगा और उसी अनुपात में कार्य कुशलता में कमी आ जाएगी।

101. यदि यह व्यापक धारणा सही होती तो जनशक्ति नियोजित विकास या उच्चतर शिक्षा के सुधार का व्यवस्था में जनशक्ति के इस वर्ग को सम्मिलित करने की हमें आवश्यकता न होती। परन्तु क्या यह धारणा सही है?

हमारा विचार हैं कि बीस वर्ष पूर्व तक यह धारणा काफी ठीक कही जा सकती थी। तब से लेकर अब तक परिस्थितियां इतनी अधिक और इतनी तीव्रता से बदल चुकी हैं कि इन नई परिस्थितियों में इस धारणा को ठीक नहीं कहा जा सकता। पांच भिन्न बातों के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि प्रबन्धक-प्रशासकीय जनशक्ति का शैक्षिक प्रशिक्षण एक विशिष्ट कार्य है। इसके लिए शिक्षा-प्रणाली के अन्तर्गत व्यवस्थित प्रशिक्षण देने का समय आ गया है— यह हमें स्वीकार करना चाहिए।

102. इस सम्बन्ध में अन्यथा अपरिहार्य भ्रम को दूर कर देने के लिए हम यह उल्लेख कर देना आवश्यक समझते हैं कि हमारा तात्पर्य या सुझाव यह नहीं कि इंजीनियरों, डाक्टरों, वैज्ञानिकों तथा शिक्षकों को प्रबन्ध तथा प्रशासन पदों पर नियुक्त नहीं किया जाना चाहिए। वस्तुतः प्रबन्ध तथा प्रशासन पदों की एक पूरी शृंखला ऐसी है जिसमें इन्हीं की नियुक्ति अपेक्षित है। परिभाषा के अनुसार यहां हम सरकारी विभागों तथा नियमों के ऐसे ही पदों की चर्चा कर रहे हैं जिन पर इंजीनियरों, डाक्टरों, वैज्ञानिकों तथा शिक्षकों को छोड़कर अन्य व्यक्तियों की नियुक्ति ही होना हैं। वे पांच आधार कौन-से है" जिनको ध्यान में रखते हुए इन "अन्य व्यक्तियों को विशिष्ट प्रशिक्षण देने की आवश्यकता है? हम इस विशिष्ट शिक्षा को "प्रबन्ध-कला शिक्षा" कहेंगे।

103. सबसे पहले "भूसे के ढेर में सुई" खोजने की समस्या को लें। इसके सम्बन्ध में यह स्वीकार किया जाता है कि यह शिक्षा-प्रणाली का एक विशेष दायित्व हैं शिक्षा-प्रणाली की स्फीति के संदर्भ में विश्वविद्यालयों से निकलने वाले प्रथम डिग्री प्राप्त व्यक्तियों की संख्या इतनी अधिक बढ़ गई है कि वे स्वयं ही "घास के ढेर" हो गए हैं। विशेष रूप से बी० ए० की डिग्री (जिसकी संख्या अब भी सबसे अधिक है) अब विशिष्ट शैक्षिक उपलब्धि के रूप में अपना महत्व लगभग खो चुकी है। अतः शिक्षा प्रणाली के अन्तर्गत चुनाव की सीमा स्पष्ट करने वाली उपाधियां ऐसी होनी चाहिए जो किसी-न-किसी सीमा तक विशिष्ट हों। इसके लिए वर्तमान प्रणाली में परिवर्तन स्पष्टतः आवश्यक होगा।

104. शिक्षा-स्फीति के इसी संदर्भ में दूसरा कारण भी है। (विशेषतः शैक्षिक वर्गों में) यह धारणा व्याप्त है कि प्रशासकीय प्राधिकारियों को अपने लाभ के लिए शिक्षा-प्रणाली का उपयोग करने की जो सुविधा दी गई है वही शिक्षा-स्फीति के लिए मुख्यतः उत्तरदायी है। कुछ वर्ष पूर्व शिक्षा-मंत्रालय की यह राय थी कि लोक-सेवाओं के भरती के नियमों में आमूल परिवर्तन करके इस उलझन को दूर करना चाहिए। उच्च अधिकार-युक्त एक सीमित नियुक्त की गई थी। सीमित के अल्प संख्यक सदस्य समझते थे कि समस्या जटिल है, और उच्चतर शैक्षिक डिग्रियां देश की किसी भी प्रणाली सेवा

में भरती के लिए बिल्कुल अनावश्यक हैं । बहु-संख्यक सदस्यों की राय थी कि समस्या कहीं अधिक जटिल है । अन्ततः कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं किए गए । यह कोई आश्चर्य की बात नहीं, क्योंकि शिक्षा-स्फीति के कारण होने वाले शैक्षिक डिग्रियों के अवमूल्यन के फलस्वरूप यह और अधिक आवश्यक हो गया कि नियोक्ता प्राधिकारी भरती के लिए निर्धारित शैक्षिक योग्यताओं को यथावत् ही न रखें बल्कि उनको और बढ़ा दें; अन्यथा प्रशासन-तन्त्र की कुशलता जो कई अन्य कारणों से पहले ही खटाई में पड़ चुकी थी, और भी कम हो जाएगी । हमारे विचार में यह मांग सर्वथा अनुचित थी कि उच्चतर शिक्षा संस्थाओं की प्रवेश-संख्या के नियंत्रण से सम्बन्धित जटिल कार्यों में शैक्षिक प्राधिकारियों को मुक्त करने में सहायक होने के लिए सरकारी विभाग और निगम स्वयं अपने लिए और अधिक कठिनाइयां मोल लेते । यह उच्च शिक्षा के सुधार और विकास की समस्याओं के जनशक्ति-नियोजित समाधान के बिल्कुल विपरीत होता ।

105. किसी भी ऐसे व्यक्ति के लिए जो उच्चतर शिक्षा की गुणवत्ता और उपयोगिता में विश्वास रखता है, इसके अलावा और कोई चारा नहीं कि उच्चतर शिक्षा की प्रवेश-संस्था की वृद्धि पर सीधे नियंत्रण रखने की आवश्यकता पर जोर दें । यदि इस आवश्यकता को स्वीकार कर लिया जाय और प्रवेश-संख्या पर सीधा नियंत्रण रखने की नीति अपनाई जाए तो उस पर अमल करना उस हालत में काफी सरल होगा जब सरकारी विभागों तथा निगमों में नियुक्तियों की संख्या निश्चित कर दी जाएगी और उनके लिए लगभग वैसे विशिष्ट पाठ्यक्रम निर्धारित कर दिए जायेंगे जैसे इस समय इंजीनियरी तथा चिकित्सा के लिए आवश्यक संख्या में उपलब्ध हैं । यदि ऐसा किया जा सके तो नियोक्ताओं को आज की अपेक्षा कहीं अधिक योग्य जनशक्ति प्रदान की जा सकती है । साथ ही "सामान्य शिक्षा" के डिग्री पाठ्यक्रमों पर से भी भार हट जायगा । उन विद्यार्थियों को चुनकर जिन्हें डिग्रियों में कोई दिलचस्पी नहीं (इसके सिवा कि उनका उपयोग प्रबंध-प्रशासन रोजगार के लिए हो) इस नए पाठ्यक्रम की ओर उसी तरह उन्मुख किया जा सकेगा, जिस तरह विद्यार्थियों को इंजीनियरी तथा चिकित्सा के डिग्री पाठ्यक्रमों की ओर उन्मुख किया जाता है जो विद्यार्थी इस नए पाठ्यक्रम में प्रवेश पाने की कोशिश करते हुए असफल हो जाते हैं वे मार्ग से हट जाएंगे । इस प्रकार यह एक दूसरा प्रमुख कारण है जिसके फलस्वरूप हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि (इंजीनियरी तथा चिकित्सा डिग्री पाठ्यक्रमों की भांति) एक ऐसा प्रथम डिग्री पाठ्यक्रम शुरू करना आवश्यक है जो प्रबन्ध प्रशासन रोजगार में भरती का स्रोत स्वीकार किया जा सके । हम इस प्रथम डिग्री पाठ्यक्रम को "बेचलर डिग्री इन मेनेजीरियल आर्ट्स" (प्रबन्ध-कलाओं की स्नातक उपाधि) या बी० एम० ए० डिग्री के नाम से पुकारेंगे । हमारा यह दृष्टिकोण है कि शिक्षा स्फीति को नियंत्रित करने के लिए इस नए बी० एम० ए० डिग्री पाठ्यक्रम को शुरू करना आवश्यक है ।

106. यहां यह विचार कर लेना आवश्यक है कि उपर्युक्त इंजीनियरी तथा चिकित्सा डिग्री पाठ्यक्रमों में प्रवेश के लिए नियोजित चयन-प्रक्रिया के फलस्वरूप प्रबंध-प्रशासन रोजगार के लिए उपयुक्त उच्च प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तियों को मिलना कठिन हो रहा हैं । इसका अनिवार्यतः यह अर्थ नहीं कि यह रोजगार अब आकर्षक नहीं रह गया । नई स्थिति यह इंजीनियरी तथा चिकित्सा डिग्री पाठ्यक्रमों में चुन लिए जाने पर एक संतोषजनक व्यवसाय मिल जाने की निश्चितता हो जाती है, क्योंकि वे पाठ्यक्रम "जनशक्ति नियोजित" हैं । जो व्यक्ति इनमें नहीं चुने जाते उनके लिए भविष्य एक जुआ है । स्वभावतः इसी कारण लोगों का झुकाव इस ओर ही होता है और परिणामस्वरूप प्रतिभा का वितरण असंतुलित हो जाता है । इस असंतुलन को दूर करना आवश्यक है । इसके लिए यह सुनिश्चित करना होगा कि उच्चतर शैक्षिक तथा अन्य सभी व्यावसायिक क्षेत्रों में प्रतिभा का वितरण शिक्षा-प्रक्रिया की एक और एक ही निश्चित अवस्था में हो । इस तरह यह तीसरा कारण है जिसके फलस्वरूप हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि नई बी० एम० ए० उपाधि आवश्यक है । यह वह साधन है जिसके द्वारा उच्च शैक्षिक और व्यावसायिक क्षेत्रों के लिए उपयुक्त समझे जाने वाले प्रतिभावान् विद्यार्थी इन क्षेत्रों में इस तरह बंट जाएंगे जिससे देश को अधिकतम लाभ हो सकेगा और स्वयं विद्यार्थियों को भी अधिकतम संतोष मिलेगा ।

107. यदि इस परम्परागत धारणा को सही मान भी लें कि प्रशासन तथा प्रबन्ध के प्रयोजन के लिए इसका कोई महत्व नहीं कि किस प्रकार की विश्वविद्यालय-शिक्षा दी गई है, महत्व केवल इतना है कि अच्छी शिक्षा दी गई हो—तो भी ऊपर बताई तीन बातें चरितार्थ होंगी । योजनाबद्ध विकास की प्रक्रिया हमें उस सीमा तक ले आई है जहां यह धारणा सही सिद्ध नहीं होती । अब यह अत्यधिक वांछनीय हो गया है (यदि संभव हो) कि प्रबन्ध और प्रशासन के पदों पर भरती होने वाले प्रत्येक नए व्यक्ति को प्रजातंत्रीय राज्य की जटिल प्रणाली और उत्तरोत्तर योजनाबद्ध राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की, जिनसे

जिनसे सम्बन्धित मामलों का वह प्रबन्ध करेगा, सामान्य सूझबूझ होनी चाहिए। वह किसी भी सरकारी विभाग या निगम में कोई भी काम कर रहा हो उसे यह मालूम हो जाएगा कि हमारी नई योजना पद्धति के फलस्वरूप सभी विभागों और नियमों दिए जाने वाले कार्य एक परस्पर संबंध हो दूसरे के गए हैं। अपने देश के संविधान और कानून, हमारी राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की कार्यप्रणाली, हमारी राजनैतिक, प्रशासकीय और सांस्कृतिक संस्थाएं, और अन्ततः पंचवर्षीय योजनाओं के द्वारा विकास की हमारी नई प्रणाली के उद्देश्य और कार्य पद्धति इन सबका सम्यक् ज्ञान प्रबंधक-प्रशासन जनशक्ति के समस्त राष्ट्रीय स्टॉक के लिए एक न्यूनतम आवश्यक योग्यता हो गई है। प्रबंधक-प्रशासकीय जनशक्ति के पदों पर नियुक्त होने वाले प्रत्येक नए व्यक्ति को नई बी० एम० ए० डिग्री के द्वारा अधिकतम कुशलता के साथ इन सब आवश्यक बातों का सम्यक् मूलभूत ज्ञान देना संभव हो सकेगा। यह हमारा चौथा कारण है।

108. प्रस्तावित सुधार के पक्ष में अब हम अपने अन्तिम कारण की चर्चा करेंगे। ऐसे विशिष्ट कार्यों से युक्त प्रबन्ध-प्रशासकीय जनशक्ति के राष्ट्रीय स्टाक की स्थापना तथा इन कार्यों के संपादन के लिए राष्ट्रीय स्तर पर शैक्षिक प्रशिक्षण की एक समरूप प्रणाली से राष्ट्रीय एकता की प्रक्रियाओं को बहुत महत्वपूर्ण योग मिलेगा। सभी लोक-प्रशासक तथा सभी निगम-प्रबन्धक वे कहीं काम कर रहे हों और किसी भी कार्य में लगे हों, अपने को एक और एक ही लोकसेवा के भिन्न संवर्गों के सदस्यों के रूप में समझेंगे।

109. उपर्युक्त विवेचन को ध्यान में रखते हुए आशा आशा की जाती है कि सरकारी विभागों तथा निगमों के लिए आवश्यक प्रबंधक-प्रशासकीय जनशक्ति दलों को योजनाबद्ध शैक्षिक प्रशिक्षण देने के लिए भारत सरकार तथा राज्य सरकारें उच्चतर शिक्षा के सुधार का एक नया कार्यक्रम नियोजित और कार्यान्वित करने की आवश्यकता का अनुभव करेंगी। समझने तथा प्रचलित करने की सुविधा की दृष्टि से इस नए कार्यक्रम का नाम 'बेचलर डिग्री इन मेनेजिरियल आर्टस' (प्रबन्ध-क्लाओं की स्नातक उपाधि) (या बी० एम० ए०) सुझाया जाता है। स्पष्टतः इस कार्य के लिए एक विशेष कार्यक्रम प्रणाली की आवश्यकता होगी। पिछले दस वर्षों में इंजीनियरी शिक्षा के जनशक्ति नियोजित बिकास के लिए जिस प्रणाली का विकास किया गया है वह एक उत्कृष्ट और कारगर नमूना सिद्ध हो सकती है। इस रिपोर्ट के अन्तिम अध्याय में हम इस सुझाव पर फिर विचार करेंगे।

पांचवां अध्याय, उच्चतर शैक्षिक दलों की वार्षिक निकासी में प्रस्तावित वृद्धि तथा उसके विभिन्न स्तर और कोटियां

अनुभाग-1 प्रारम्भिक विवेचन

उच्चतर शैक्षिक जनशक्ति के राष्ट्रीय स्टॉक के सम्बन्ध में हमने जो निष्कर्ष निकाले हैं उनका संक्षेप नीचे प्रस्तुत है :

पहला : यह स्टॉक प्रतिवर्ष तीव्र गति से बढ़ रहा है। समग्र संस्थाओं के विचार से अब वृद्धि को प्रोत्साहित करने की आवश्यकता नहीं है। इसके विपरीत इसे नियंत्रित करने की जरूरत है। आधारभूत वर्ष 1960-61 में इसकी संख्या 14 लाख थी, तथा अंतरिम लक्ष्य वर्ष (1975-76) तक इस संख्या को बढ़ाकर 40 लाख करने की योजना करनी चाहिए। 40 लाख की यह संख्या "लक्ष्य' नहीं, 'अधिकतम सीमा' है। भावी वृद्धि को नियंत्रित करने का सबसे महत्वपूर्ण उपाय यह है कि "उच्च शिक्षित रोज़गार ढूंढ़ने वालों की संख्या को आवश्यकता से अधिक न बढ़ने दिया जाए।

दूसरा : उच्चतर शिक्षित जनशक्ति के इस राष्ट्रीय स्टॉक का उपयोग करने की हमारी एक प्रणाली विद्यमान है। राष्ट्रीय स्टॉक के उपयोग की यह प्रणाली विभिन्न रोज़गार वर्गों और व्यावसायिक कोटियों में इस स्टॉक के वितरण में लक्षित होती है। राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्था के योजनाबद्ध विकास के फलस्वरूप यह पैटर्न बदलता जा रहा है। भविष्य में होने वाले इन परिवर्तनों को हमें पहले से समझ लेना चाहिए और इन्हें इस प्रकार नियोजित करना चाहिए ताकि उत्तरोत्तर विकसित होने वाली अर्थ व्यवस्था तथा शिक्षा प्रणाली की जनशक्ति सम्बन्धी जरूरतों को कुशलतापूर्वक पूरा किया जा सके। इसके लिए प्रमुख रोज़गार वर्गों तथा व्यावसायिक कोटियों के सम्बन्ध में अंतरिम लक्ष्य वर्ष के लिए 'लक्ष्य' तथा 'अधिकतम सीमा' (जिन दोनों को हम 'नियंत्रांक' कहेंगे) निर्धारित करनी होगी। ये लक्ष्य और अधिकतम सीमाएं कुल राष्ट्रीय स्टॉक के लिए नियोजित अधिकतम सीमा के भीतर ही निर्धारित की जानी चाहिए।

तीसरा : उपर्युक्त लक्ष्यों और अधिकतम सीमाओं के लिए यह आवश्यक होगा कि कुछ विशेष स्तरों तथा कुछ विशेष प्रकार की उच्चतर शिक्षा में वृद्धि की दर को बढ़ाने के लिए प्रोत्साहन दिया जाए, तथा कुछ अन्य स्तरों तथा अन्य प्रकार की उच्चतर शिक्षा में वृद्धि की दर को नियंत्रित करने के विशेष उपाय किए जाएं। इसी उद्देश्य से, देश के कुछ विशिष्ट भागों में स्थित संस्थाओं की वृद्धि दर को प्रोत्साहित करने, तथा देश के कुछ अन्य भागों में स्थित संस्थाओं की वृद्धि-दर को नियंत्रित करने के लिए विशेष उपाय करने होंगे।

चौथा : आवश्यकता केवल इस बात की ही नहीं कि विद्यमान प्रणाली पर उच्चतर शिक्षा की वृद्धि की योजना की जाए, बल्कि इस बात की भी होगी कि इस व्यवस्था में महत्वपूर्ण सुधार किए जाएं ताकि प्रमुख व्यावसायिक वर्गों की विभिन्न कोटियों तथा स्तरों के लिए मांग और पूर्ति का सामंजस्य अधिकतम कुशलता से स्थापित किया जा सके। अतः उच्चतर शिक्षा का 'जनशक्ति नियोजित विकास' ही आवश्यक नहीं, 'जनशक्ति नियोजित सुधार' भी आवश्यक है।

111. शिक्षा में वृद्धि-दर को प्रोत्साहित करना (चाहे वह किसी स्तर पर, किसी प्रकार की और किसी क्षेत्र में हो) एक अत्यन्त लोकप्रिय कार्य है। सम्बन्धित सरकारों से यह आशा की जा सकती है कि वे इसे अत्यन्त उत्साह के साथ कार्यान्वित करेंगे—केवल धन का अभाव ही इसका नियंत्रक तत्व है। तथापि वृद्धि को नियंत्रण में रखने का प्रश्न इतना सहज नहीं है। इस समस्या का अभी तक कोई हल नहीं निकला है कि ऐसे नियंत्रणों को कैसे लागू किया जाए जो आवश्यक हैं, किन्तु अप्रिय हैं। सिद्धान्त रूप में इस विचार के सभी सहमत हैं कि व्यवस्था प्रणाली में सुधार करना चाहिए। इसका विरोध तब होता है जब इस विचार को कार्य रूप में परिणत करने के लिए सुधार की विशेष योजना बनाई जाती है जो कुछ विशिष्ट संस्थाओं को प्रभावित करती है। उतना विरोध इस योजना को जन्म से पूर्व ही नष्ट कर डालने के लिए काफी है। ये कुछ अनिवार्य व्यावहारिक परिसीमाएं है जिनका सामना सरकारों को शिक्षा में ही नहीं, हर क्षेत्र में करना पड़ता है। नियंत्रण तथा सुधार के ऐसे उपायों का प्रस्ताव उन्हें क्रियान्वित कर पाना सरकारों के लिए अत्यन्त कठिन हो, व्यर्थ है। साथ ही यह भी ध्यान रखना आवश्यक है कि ठीक समय पर कठिनाइयों का सामना न किया

जाए और इनका यथासंभव समाधान न किया जाए तो स्थिति और भी बिगड़ती जाएगी।

112. वस्तुतः इन्हीं बातों के कारण 'नियंत्रांक' की आवश्यकता पड़ी है जिसका वर्णन हमने उच्चतर शैक्षिक परिप्रेक्ष्य योजना रूपरेखा के खंड-दो के साथ सम्बन्ध एक विवरण में किया है। इस अध्याय का उद्देश्य इन अंकों का आशय, उद्देश्य तथा निहितार्थ स्पष्ट करना है ताकि यह निर्णय करने में सरलता हो कि जितनी मात्रा में इन अंशों द्वारा नियंत्रण अपेक्षित है वह व्यावहारिक है या नहीं। यदि प्रस्तावित अंकों के लिए ऐसे उपाय अपनाने पड़े जो बहुत कठिन जान पड़े तो कठिनाइयों को कम करने के लिए इन अंकों को आवश्यकतानुसार पुनः निर्धारित किया जा सकता है परंतु ऐसा निर्णय करने के पूर्व, नीति संबंधी निर्णयों के पूर्ण आशय को समझने तथा स्वीकार करने के लिए नियंत्रणों की एक रूपरेखा आवश्यक होती है। विचाराधीन विवरण से यह स्पष्ट होगा कि 1956-57 और 1961-62 के लिए 'परिकलित वास्तविक आंकड़े' और 'अंतरिम लक्ष्य वर्ष' के लिए 'नियंत्रांक' दिए गए है। हाल ही के पांच वर्ष की अवधि इसीलिए चुनी गई ताकि हाल की वृद्धि-दर जानी जा सके और वृद्धि की प्रस्तावित दर से उसकी तुलना की जा सके। 1961-62 तीसरे पंचवर्षीय योजना-काल का प्रथम वर्ष था। जब प्रस्तुत अध्ययन प्रारम्भ किया गया तो इसी नवीनतम वर्ष तक के शासकीय आंकड़े हमें शिक्षा मंत्रालय से प्राप्त हुए। इसीलिए, 1961-62 में समाप्त होने वाले पांच वर्ष के काल को हमने आधारभूत माना, अन्य प्रयोजनों के लिए भी 1960-61 को आधारभूत माना गया है।

अनुभाग 2. उच्चतर शैक्षिक दल और उच्चतर शैक्षिक जनशक्ति दल

113. (जैसा कि पहले स्पष्ट किया जा चुका है) किसी भी वर्ष के उच्चतर शैक्षिक दल के अन्तर्गत हम उन सभी व्यक्तियों को गिनते हैं जो उस वर्ष विश्वविद्यालय की कोई डिग्री या उप-वृत्तिक डिप्लोमा प्रारम्भ करते हैं। यह संख्या (परिकलित करने पर) 1956-57 में 1,27,700 थी और 1961-62 में बढ़कर 2,10,500 हो गई। इन पांच वर्षों में वार्षिक निकासी में 82,800 की वृद्धि हुई। औसत वार्षिक वृद्धि 16,560 हुई।

114. अंतरिम लक्ष्य वर्ष के लिए (जिसे अन्तिम रूप से हम 1975-76 निर्धारित हैं मानते) 400,000 के नियंत्रांक का प्रस्ताव हैं। 1961-62 और 1975-76 के बीच के चौदह वर्षों में वृद्धि को 189,500 तक सीमित रखना चाहिए। औसत वार्षिक 13,536 होगी। 1961-62 के पूर्व की औसत वार्षिक वृद्धि (16,560) से इसकी तुलना की जा सकती है। वार्षिक वृद्धि तीसरे योजना काल में निस्संदेह और अधिक हुई है। इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि चौथे और पांचवे योजना-काल में वृद्धि की गति काफी धीमी करनी होगी। इस प्रक्रिया की सफलता के लिए देश के कुछ भागों में विस्तार के कार्यक्रम को कुछ समय के लिए स्थगित कर देना होगा, तथा देश के कुछ अन्य भागों में विस्तार की सामान्य गति को कम करना होगा। साथ ही, देश के उन भागों में विस्तार को तीव्र करना होगा जो राष्ट्रीय औसत से काफी पीछे हैं।

115. कुछ उच्चतर शैक्षिक दल, जिन्होंने क्षेत्रीय उच्चतर शिक्षा पूरी कर ली है, प्रति वर्ष राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा में पुनः प्रवेश पा लेंगे। ये वे विद्यार्थी है जो स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों (एम० ए०, एम० एस० सी० आदि) तथा ऐसे वृत्तिक डिग्री पाठ्यक्रमों में है प्रवेश लेते हैं जिनमें प्रवेश केवल उन्हीं तक सीमित रहता है जो प्रथम डिग्रियां ले चुके हैं। यहां यह स्मरण दिला देना उचित होगा कि राष्ट्रीय उच्चतर शैक्षिक डिग्री पाठ्यक्रम के अन्तर्गत "शिक्षा शास्त्रीय" पाठ्यक्रम भी सम्मिलित है। इन्हें विभिन्न नामों (बी० टी०, बी० एड० आदि) से पुकारा जाता है। इनमें दाखिल होनें वाले व्यक्तियों का अनुपात काफी अधिक है। क्षेत्रीय उच्चतर शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा में पुनः प्रवेश करने वाले व्यक्तियो की संख्या 1956-57 में 35,000 दल (127,700 में से) थी और 1961-62 में 60,000 दल (210,500 में से) थी प्रस्ताव है कि 1975-76 के नियंत्रांक के रूप में उच्चतर शिक्षा में पुनः दाखिले होने वाले दलों की संख्या (400,000 में से) 75,000 तक सीमित की जाए।

116. पुनः प्रवेश के लिए प्रस्तावित नियंत्रांक तक संख्या सम्भवतः पहले ही पूरी हो चुकी है। संख्या को इस प्रकार सीमित करने के प्रस्ताव का अर्थ यह प्रतीत होता है कि राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा को पूर्णतः स्थगित कर दिया जाए। किन्तु बात ऐसी नहीं है, क्योंकि यह प्रस्ताव शैक्षिक सुधार नीति से संबंधित एक अन्य प्रस्तावित निर्णय से जुड़ा हुआ है। इस नीति के अनुसार (क्षेत्रीन उच्चतर शिक्षा के साधारण बी० ए०/बी० एस-सी० डिग्री पाठ्यक्रमों के साथ-साथ) अकादमिक आनर्स डिग्री पाठ्यक्रम के विकास की योजना है। यह (जैसा पिछले अध्याय में बताया जा चुका है) दो दृष्टियों से आवश्यक है। पहली यह कि विभिन्न वृतिक या व्यावसायिक प्रशिक्षण प्रदान करने वाले पाठ्यक्रमों की ओर प्रतिभाशाली विद्यार्थियों को समुचित संख्या में आकर्षित किया जा सके।

इस प्रकार उस असंतुलित वितरण ही ठीक किया जा सके जो आज दिखाई दे रहा है क्योंकि "जनशक्ति वियोजित विकास" केवल इंजीनियरी तथा चिकित्सा डिग्री पाठ्यक्रमों पर ही लागू होता है अन्य पाठ्यक्रमों पर नहीं। एक अन्य महत्वपूर्ण उद्देश्य की सिद्धि के लिए भी यह एक आवश्यक उपाय सिद्धि होगा। यह उद्देश्य है बी० ए०/बी० एस-सी० डिग्री पाठ्यक्रमों के प्रवेश पर से दबाव हटाना और शैक्षिक समीति के नियंत्रण में सहायक होना। जब इन सुधारों को सफलतापूर्वक क्रियान्वित किया जाएगा तभी हम कह सकेंगे कि राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा की हमारी डिग्रियां उसी स्तर की हैं जिस स्तर की शैक्षिक दृष्टि से विकसित संसार के अन्य देशों के विश्वविद्यालयों द्वारा प्रदान की जाने वाली प्रथम डिग्रियां हैं।

117. वृद्धि दर में प्रस्तावित प्रतिबंध का जो अभाव राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा के विस्तार की संभावना पर पड़ेगा, वह नीचे दिया जाता है।

राष्ट्रीय उच्चतर शैक्षिक उपाधियां (शिक्षाशास्त्रीय डिग्रियों सहित) प्राप्त करने वाले उच्चतर शैक्षिक दलों की कुल संख्या 1956-57 में 48,700 थी। 1961-62 में यह संख्या बढ़कर 81,400 हो गई। पांच वर्ष के दौरान 32,700 की वृद्धि हुई। औसत वार्षिक वृद्धि 6,540 हुई।

1975-76 के लिए प्रस्तावित नियंत्रांक 1,50,000 है। इसके अनुसार चौदह वर्षों के दौरान 68,600 की वृद्धि या 4,900 की औसत वार्षिक वृद्धि की गुंजाइश है। इस तरह स्पष्ट है कि प्रवेश के संबंध में प्रस्तावित प्रतिबंध का अर्थ राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा की स्थगित करना नहीं है। इसमें विस्तार की काफी गुंजाइश है, यद्यपि यह विस्तार पूर्णतः नियंत्रित होगा।

118. शिक्षा प्रणाली उच्चतर शिक्षित जनशक्ति की वृद्धि में कितना निवल योग देती है इसका माप उच्चतर शिक्षित जनशक्ति दलों की संख्या से किया जाता है, अर्थात्, उच्चतर शैक्षिक दलों की संख्या उच्चतर शिक्षा में पुनः प्रवेश का निवल (नेट)। यह संख्या 1956-57 में 92,700 थी, 1961-62 में यह 1,50,500 तक बढ़ गई। पांच वर्ष के दौरान 57,800 की वृद्धि हुई। औसत वार्षिक वृद्धि 11,560 हुई। 1975-76 के लिए प्रस्तावित नियंत्रांक 3,25,000 है। इसके अनुसार चौदह वर्षों के दौरान 1,74,500 की वृद्धि की गुंजाइश है। औसत वार्षिक वृद्धि 12,464 होगी। 12,464 तथा 11,560 की तुलना विशेष ध्यान देने योग्य है। यद्यपि राष्ट्रीय स्तर पर उच्चतर शैक्षिक दलों की वार्षिक निकासी को 1956-57 और 1961-62 (16,560) की तुलना में 1961-62 और 1975-76 (13,536) के बीच अधिक धीमी गति से बढ़ाने का प्रस्ताव है, फिर भी राष्ट्रीय स्तर पर उच्चतर शिक्षित जनशक्ति दलों की वार्षिक निकासी को अधिक तेजी से बढ़ाने की योजना है। प्रस्तावित सुधार के अनुसार अकादमिक आनर्स डिग्री पाठ्यक्रमों और राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा के वृत्तिक प्रथम डिग्री पाठ्यक्रमों का सापेक्षिक अनुपात बढ़ जाना संभव है। इस प्रकार वर्तमान एम० ए०/एम० एस-सी० डिग्री पाठ्यक्रमों की तुलना में अकादमिक आनर्स डिग्री पाठ्यक्रमों की श्रेष्ठता अनेक आधारों में स्थापित की जा सकती है।

अनुभाग 3. राष्ट्रीय उच्चतर शैक्षिक दलों की विभिन्न कोटियां

119. जैसा एक पहले अध्याय में बताया जा चुका है, हम जिसे उच्चतर शिक्षा कहते है उसे शैक्षिक दृष्टि से विकसित देशों में उच्चतर शिक्षा के रूप में स्वीकार नहीं किया जाता। इस अर्थ में, उस भाग को जो स्पष्टतः उपस्तरीय (सब-स्टैन्डर्ड) है, अब क्षेत्रीय उच्चतर शिक्षा कहा जाता है। राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा स्तरीय (स्टैन्डर्ड) है या स्तरीय बनाई जा सकती है। राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा की वार्षिक निकासी (परिकलन करने पर), 1956-57 में 48,700 थी, 1961-62 में बढ़कर 81,400 हो गई। पांच वर्ष के दौरान औसत वार्षिक वृद्धि 6,540 थी। सारणी 10 में बताया गया है कि उपर्युक्त वृद्धि राष्ट्रीय उच्चतर शैक्षिक दलों की विभिन्न कोटियों में किस प्रकार वितरित थी।

120. सारणी 10 में दिए गए आंकड़े अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं तथा इस संदर्भ में निम्नलिखत व्याख्या आवश्यक है :

सारणी 10. राष्ट्रीय उच्चतर शैक्षिक दलों की प्रेक्षित वृद्धि (1956-57 से 1961)

राष्ट्रीय उच्चतर शैक्षिक दलों की कोटियां		दलों की संख्या 1956-57	दलों की संख्या 1961-62	औसत वार्षिक वृद्धि 1956-57/1961-62
1. अकादमिक शिक्षा शास्त्रीय शैक्षिक दल	विज्ञान	7,400 (15.2)	12,100 (14.9)	940 (14.4)
	कला	23,600 (48.5)	41,600 (51.1)	3,600 (55.0)
	कुल (1)	31,000 (63.7)	53,700 (66.0)	4,540 (69.5)
2. वृत्तिक विशेषज्ञता शैक्षिक दल	इंजीनियरी	4,800 (9.8)	9,500 (11.7)	940 (14.4)
	कृषि, पशु चिकित्सा, स्वास्थ्य, चिकित्सा आदि	8,500 (11.3)	8,500 (10.4)	600 (9.2)
	वाणिज्यिक विधिक प्रशासकीय आदि	7,400 (15.2)	9,700 (11.9)	460 (7.4)
	कुल (2)	17,700 (36.3)	27,700 (34.0)	2,000 (30.0)
	कुल जोड़* (1 और 2)	48,700 (100.0)	81,400 (100.0)	6,540 (100.0)

*** कोष्ठक के भीतर के अंक, संबंधित कालम के योग के संदर्भ में प्रतिशत बताते हैं।**

(क) 1956-57 में दल-निकासी के दो-तिहाई "अकादमिक शिक्षाशास्त्रीय" थे। "वृत्तिक विशेषीकृत" दलों की संख्या एक-तिहाई से कुछ कम थी। यह प्रवृत्ति हानिकारक थी क्योंकि अन्य "अकादमिक" शिक्षा की भांति "शिक्षाशास्त्रीय" तत्व भी लक्ष्यहीन तरीके से बढ़ता गया। 1956-57 और 1961-62 के बीच वृद्धि की प्रवृत्ति और भी अधिक भयानक स्थिति की सूचक थी। पाँच वर्ष के दौरान प्रवेश क्षमता में 69.4 प्रतिशत वृद्धि "अकादमिक शिक्षाशास्त्रीय" कोटि के पाठ्यक्रमों में हुई, परिणामस्वरूप इस कोटि की निकासी का सापेक्षिक अनुपात वस्तुतः 63.7 से 66.0 प्रतिशत हुआ।

(ख) "अकादमिक शिक्षाशास्त्रीय" कोटि के अन्तर्गत 1956-57 में विज्ञान पाठ्यक्रम का प्रतिशत 15.2 और कला पाठ्यक्रम का 48.5 था। यह भी अशुभ सूचक था। लेकिन प्रवृत्ति इससे भी बुरी थी। कला पाठ्यक्रमों में नई प्रवेश-क्षमता से, जो पहले ही अधिक थी, कहीं अधिक दाखिल हुआ, फलस्वरूप अकादमिक शिक्षाशास्त्रीय विज्ञान पाठ्यक्रम के सापेक्षिक अनुपात में अधिक वृद्धि न हो सकी (प्रतिशत

15.2 से घटकर 14.9 हो गया), जबकि अकादमिक शिक्षाशास्त्रीय कला-पाठ्यक्रमों का सापेक्षिक अनुपात 48.5 प्रतिशत से बढ़कर 51.1 प्रतिशत हो गया।

(ग) "वृत्तिक विशेषज्ञता" की कोटि में केवल इंजीनियरी पाठ्यक्रमों में 9.8 से बढ़कर 11.7 प्रतिशत की वृद्धि हुई जबकि अन्य विज्ञानों पर आधारित विशेषीकृत पाठ्यक्रमों का प्रतिशत 11.3 से घटकर 10.4 हो गया। विशेषीकृत कला पाठ्यक्रम (जो विद्यार्थियों को वाणिज्य, विधि, प्रशासन आदि विशेष व्यवसाय की शिक्षा देते हैं) का प्रतिशत 15.2 से और भी अधिक घटकर 11.9 हो गया।

121. हम पहले ही देख चुके हैं कि देश में शिक्षा स्फीति के फलस्वरूप शिक्षा का अनियंत्रित विस्तार हो रहा हैं, बेरोज़गारी और अल्प-बेरोज़गारी बढ़ती जा रही है। हम अब यह भी देख पाते हैं कि उच्चतर शिक्षा की विभिन्न कोटियों की वृद्धि का झुकाव इसी प्रवृत्ति को बढ़ावा दे रहा था। अधिक उपयोगी तथा रोज़गार की दृष्टि से अधिक लाभदायक विशेषीकृत शैक्षिक पाठ्यक्रमों का महत्व कम होता जा रहा था। विज्ञान पाठ्यक्रम पिछड़ते जा रहे थे किन्तु कला पाठ्यक्रमों की वृद्धि में अतिरेक हो रहा था जबकि इन पाठ्यक्रमों से कला विषय में शिक्षक बनने के अतिरिक्त और किसी व्यवसाय का विशेष प्रशिक्षण नहीं मिलता था। जब इतनी प्रचुर मात्रा में ऐसे उच्चतर शिक्षित जनशक्ति दल तैयार और उपलब्ध किए जाएं जो कला विषयों को पढ़ाने के अतिरिक्त और कोई रोज़गार न अपना सकें, तो संस्थाएं भी स्वभावतः विज्ञान की अपेक्षा कला विषयों में विस्तार करना अधिक सरल पाएंगी। स्फीति सर्पिल की हम यह एक मुख्य विशेषता पाते हैं। **हमारे वर्तमान शिक्षा प्रशासन में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है जिसके द्वारा कोई प्राधिकारी शिक्षा संस्थाओं को इस सरल किन्तु निरर्थक मार्ग को अपनाने से रोक सके और उन्हें अधिक कठिन किन्तु अधिक उपयोगी और आवश्यक मार्ग अपनाने में सहायता दे सके।**

प्रत्येक संस्था यह निर्णय स्वयं लेती है कि वह कैसा विस्तार चाहती है और अपने प्रस्तावित निर्णय पर विश्वविद्यालय की स्वीकृति प्राप्त कर लेती है। विश्वविद्यालय प्रस्ताव को केवल शैक्षिक आधार पर जांचता है और यदि शिक्षक तथा भौतिक सुविधाएं उपलब्ध हों तो विस्तार की अनुमति दे देता है। संख्याओं को नियंत्रित करने के किसी अन्य मापदण्ड का सहारा लेने का अधिकार या दायित्व न तो विश्वविद्यालय का है और न किसी सरकारी विभाग का।

122. इस स्थिति के संबंध में केवल यह कह देना काफी नहीं कि योजना का अभाव हैं। इससे भी आगे हमें यह देखना है कि यदि योजना होती तो भी उसका कोई लाभ न होता क्योंकि ऐसा कोई अधिकारी नहीं था जो व्यवस्था पर इतना नियंत्रण रख सके जितना किसी भी योजना को क्रियान्वित करने के लिए आवश्यक है। ऐसे किसी नियंत्रण की व्यवस्था वर्तमान प्रचलित विचारधारा के बिल्कुल विपरीत होगी। विश्वविद्यालयों की "स्वयत्तता" का क्या होगा? इस प्रश्न का उत्तर एक प्रतिप्रश्न होना चाहिए: "स्वायत्तता काहे की और किस प्रयोजन के लिए?" इस देश के न्यायालय कानून को लागू करते हैं, कानून नहीं बनाते, कानून विधानसभाएं बगाती हैं। इस देश के लोक सेवा आयोग पद नहीं बनाते, पद सरकार बनाती है, आयोग इन पदों पर नियुक्ति के लिए व्यक्तियों का चुनाव करते हैं। न्यायालय स्वायत्त हैं, और लोक सेवा आयोग भी। विश्वविद्यालय न्यायालवों अथवा लोक सेवा आयोगों से अधिक स्वायत्त नहीं हो सकते। वे विधि द्वारा स्थापित संस्थाएं हैं और इनका व्यय लोक-निधि से इसलिए पूरा किया जाता है कि वे उच्चतर शिक्षित ज़नशक्ति की शैक्षिक योग्यता को लोकहित के लिए संगठित करें। यदि संबंधित विधान सभाएं शिक्षा प्रणाली के विकास और सुधार की किसी स्वीकृत योजना को क्रियान्वित करने के लिए विश्वविद्यालयों को नए कर्तव्य और दायित्व सौंपना उचित समझें तो विधान सभाओं को संतुष्ट करने वाले ढंग से नए दायित्यों का निर्वाह करने के लिए विश्वविद्यालयों को निश्चय ही सन्नद्ध रहना चाहिए।

इस रिपोर्ट में प्रस्तावित नीति को स्वीकार करने का एक आवश्यक निहितार्थ यह भी है। हमारा विश्वास है कि इस अर्थ को स्वीकार कर लिया जाएगा।

123. अब हमें यह देखना है कि अंतरिम लक्ष्य वर्ष (जिसें हमने 1975-76 माना हैं) के लिए प्रस्तावित नियंत्रांक 1956-57 और 1961-62 के बीच होने वाली वृद्धि की गलत प्रवृत्ति को ठीक करने सें कहां तक सहायक होगा। सारणी 11 में इसका वियरण देखा ज़ा सकता है।

सारणी 11. राष्ट्रीय उच्चतर शैक्षिक दलों की प्रस्तावित वृद्धि (1961-62 से 1975-76)

राष्ट्रीय उच्चतर शैक्षिक दलों की कोटि		दलों की संख्या		औसत वार्षिक वृद्धि
		परिकलित वास्तविक आंकड़े 1961-62	नियंत्रांक 1975-76	1961-62 1975-76
1		2	3	4
1. अकादमिक शिक्षा शास्त्रीय शैक्षिक दल	विज्ञान	12,100 (14.9)	30,000 (20.0)	1,279 (26.1)
	कला	41,600 (51.1)	50,000 (33.3)	600 (12.2)
	जोड़	(1) 53,7000 (66.0)	80,000 (53.3)	1,879 (38.3)
2. वृत्तिक विशेषीकृत शैक्षिक दल	इंजीनियरी	9,500 (11.7)	30,000 (23.0)	1,464 (29.9)
	कृषि, पशु चिकित्सा, स्वास्थ्य, चिकित्सा, आदि	85,00 (10.4)	20,000 (13.4)	821 (16 8)
	वाणिज्यिक विधिक,	9,700	20,000	736
	प्रशासकीय, आदि	(11.9)	(13.3)	(15.0)
	जोड़ (2)	27,700 (34.0)	70,000 (46.7)	3,021 (61.7)
	कुल जोड़† (1) और (2)	81,4000 (100.0)	150,000 (100.0)	4,900 (100.0)

† कोष्ठक के भीतर के अंक, सम्बन्धित कालम के योग के संदर्भ में प्रतिशत बताते हैं।

124. पहिले दी गई चेतावनी को हम यहां दोहरा देना चाहते हैं कि सारणी में दिए गए अंकों को अंतिम और अविवादास्पद नहीं समझना चाहिए। ये अंक अपूर्ण आंकड़ों के अपूर्ण अध्ययन के फलस्वरूप प्राप्त हुए हैं। अधिक पूर्ण आंकड़ों के उपलब्ध होने पर सम्यक अध्ययन के आधार पर इन अंकों का पुनरावलोकन तथा पुनरीक्षण किया जा सकता है। फिलहाल इन्हें किसी भी उपयुक्त आंकड़ों की तरह स्वीकार किया जा सकता है और हमारे प्रयोजन के लिए ये पर्याप्त हैं। हमारा प्रयोजन हैं कि संबंधित प्राधिकारियों को इस बात का समाधान हो जाए कि हम जिस प्रकार की परिप्रेक्ष्य योजना से परिचित हैं उससे भिन्न प्रकार की परिप्रेक्ष्य योजना आवश्यक है। साथ ही, नीति और प्रशासन के सन्दर्भ में इस प्रकार की योजना के निहित अर्थों व परिणामों से भी उन्हें अव-

गत करा देना आवश्यक है । इन बातों को ध्यान में रखकर ही सारणी 11 का अध्ययन किया जाए और उसकी तुलना सारणी 10 से की जाए ।

125. आधारभूत अवधि (1956-57 से 1961-62) में समग्र निकासी की औसत वार्षिक वृद्धि 6,540 की तुलना में परिप्रेक्ष्य योजना अवधि (1961-62 से 1975-76) में समग्र निकासी की औसत वार्षिक वृद्धि 4,900 होगी । अतः भविष्य में सीटों की संख्या में वृद्धि की अनुमति अब तक की अपेक्षा सामान्यतः अधिक कड़ाई के साथ दी जानी चाहिए ।

126. यह नियंत्रण कड़ाई से अकादमिक शिक्षा शास्त्रीय शिक्षा पर ही लागू किया जाना चाहिए । आधारभूत अवधि के 4,540 की तुलना में परिप्रेक्ष्य योजना अवधि में औसत वार्षिक वृद्धि केवल 1,879 ही हो सकती है ।

इस कोटि के अन्तर्गत विज्ञान पाठ्यक्रमों में वृद्धि अधिक होगी, अर्थात आधारभूत अवधि के दौरान 940 की औसत वार्षिक वृद्धि की तुलना में परिप्रेक्ष्य योजना अवधि में यह वृद्धि 1,279 होगी । इसके विपरीत अकादमिक शिक्षा शास्त्रीय कला पाठ्यक्रमों के क्षेत्र में नियंत्रण अत्यधिक कड़ा होना चाहिए । इसमें वृद्धि की गुंजाइश बहुत ही कम है । आधारभूत अवधि में 3,600 की औसत वार्षिक वृद्धि की तुलना में परिप्रेक्ष्य योजना अवधि में यह संख्या केवल 600 होगी । बहुत सम्भव है कि तीसरे योजना काल में अनियंत्रित वृद्धि के कारण यह गुंजाइश पहले ही समाप्त हो चुकी हो ।

इन अंकों से यह स्पष्ट होता है कि देश के कई भागों में परिप्रेक्ष्य योजना अवधि में एम० ए० डिग्री पाठ्यक्रम के विस्तार को रोकना आवश्यक है और साथ ही देश के अन्य भागों में कटौती करने तथा वृत्तिक विशेषीकृत कला पाठ्यक्रमों की ओर ध्यान खींचने की आवश्यकता है ।

127. वृत्तिक विशेषीकृत शिक्षा के संबंध में स्थिति सचमुच भिन्न है । आधारभूत अवधि में 2,000 की औसत वार्षिक वृद्धि की तुलना में परिप्रेक्ष्य योजना अवधि में हम 3,021 की वृद्धि कर सकते हैं । वृत्तिक विशेषीकृत शिक्षा की तीन विभिन्न कोटियों में से प्रत्येक में ऐसी गुंजाइश है ।

जहां तक इंजीनियरी शिक्षा का प्रश्न है, योजनाबद्ध विकास के लिए आवश्यक प्रणाली का संगठन कुशलतापूर्वक पहिले ही किया जा चुका है । इसमें सन्देह को स्थान नहीं है कि निकासी के संबंध में प्रस्तावित नियंत्रांकों द्वारा सूचित वृद्धि संभव होगी । (जैसा कि पहले बताया जा चुका है) समस्या है स्थानीय दबाव को रोकने की । इस दबाव के कारण राज्य सरकारों को पद्धति का आवश्यकतों से अधिक विस्तार करने के लिए बाध्य होना पड़ रहा है । इंजीनियरी शिक्षा प्राधिकारियों को यह किस प्रकार समझाया जाए कि रोजगार के बदलते हुए पैटर्न के संदर्भ में शैक्षिक प्रशिक्षण को अधिक अनुकूल और उपयोगी बनाने के लिए यांछित सुधारों पर ध्यान केन्द्रित करना आवश्यक है ? इंजीनियरी शिक्षा की समस्याएं विकास के दूसरे चरण की समस्याएं हैं । शिक्षा की अन्य कोटियों का पहला चरण ही अभी शुरू होना है । योजनाबद्ध विकास की व्यवस्था के लिए कोई उपयुक्त प्रणाली सामने नहीं है (कुछ हद तक चिकित्सा शिक्षा को छोड़कर) । यदि कृषि और पशु-चिकित्सा विशेषज्ञों, स्वास्थ्य विशेषज्ञों, स्कूल के शिक्षकों, कालेज के अध्यापकों, निगमित प्रबंधकों और लोक प्रशासकों के योजनाबद्ध शैक्षिक प्रशिक्षण के संबंध में प्रस्तावित नियंत्रांकों (जो लक्ष्य हैं, अधिकतम सीमाएं नहीं) पर अमल करना हो तो अभी बहुत कुछ (और बहुत जल्द) करना होगा ।

अनुभाग 4. वृत्तिक विशेषीकृत शिक्षा और उप-वृत्तिक विशेषीकृत शिक्षा

128. हमने "वृत्तिक-विशेषीकृत" शिक्षा नाम इसलिए रखा है कि कुछ अन्य ऐसे शिक्षा पाठ्यक्रमों से, जिन्हें "अकादमिक शिक्षाशास्त्रीय" कहा जाता है, इसका अन्तर स्पष्ट किया जा सके । राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा के स्तर तक यह नाम उपयुक्त है । जिन विद्यार्थियों ने वृत्तिक विशेषीकृत शिक्षा सफलतापूर्वक पूरी कर ली है और जो वैसा रोजगार पाने में सफल हो गए हैं जिनके लिए प्रशिक्षित किए थे, 'वृत्तिक' (प्रोफेशनल) जनक्ति के नाम से पुकारा जा सकता है । क्षेत्रीय उच्चतर शिक्षा के स्तर पर इन्हीं के समानान्तर पाठ्यक्रम हैं जिन्हें 'उप-वृत्तिक-विशेषीकृत' पाठ्यक्रम कहा जा सकता है । उच्चतर शिक्षा के लिए यह आवश्यक है कि दोनों स्तरों पर निकासी का एक इष्टतम अनुपात निर्धारित कर लिया जाए ।

129. जहां तक इंजीनियरी शिक्षा का संबंध है, डिग्री प्राप्त करने वाले तथा उप-वृत्तिक डिप्लोमा प्राप्त करने वाले व्यक्तियों की निकासी 1956-57 में क्रमशः 4,800 और 5,000 थी, अनुपात लगभग 1 : 1 था । 1961-62 में निकासी 9,500 और 10,400 थी । अनुपात उप-वृत्तिक डिप्लोमा वालों के पक्ष में बहुत धीरे-धीरे बढ़ रहा था । प्रस्तावित नियंत्रांक के अनुसार 1975-76 में यह निकासी डिग्री के संबंध में 30,000 तथा उप-वृत्तिक डिप्लोमा के संबंध में 50,000 होगी । डिप्लोमा वालों के

पक्ष में संख्या में स्पष्ट वृद्धि होगी तथापि अनुपात 3:5 ही रहेगा।

130. क्या योजना के लिए यह अनुपात उपयुक्त है? कई लोग निस्संकोच इसका नकारात्मक उत्तर देंगे। यांत्रिक इंजीनियरी तथा विद्युत् इंजीनियरी विशेषज्ञों के सन्दर्भ में इस विषय का काफी गहराई से अध्ययन किया गया है। इस अध्ययन के परिणाम अनुप्रयुक्त जनशक्ति अनुसंधान संस्थान द्वारा जारी की गई इंजीनियरी जनशक्ति सर्वेक्षण की दूसरी रिपोर्ट में दिए गए हैं। इस सर्वेक्षण के फलस्वरूप निम्नलिखित निष्कर्ष निकलते हैं :

पहला : इष्टतम अनुपात के संबंध में जो धारणा व्याप्त है वह उन देशों की परिस्थितियों पर आधारित है जहां उद्योगों का विकास काफी लम्बी अवधि में धीरे-धीरे हुआ और जहां कुशल कामगरों का सामान्य शैक्षिक स्तर ऊंचा है। हमारे देश की परिस्थितियां बिल्कुल उल्टी हैं। ये परिस्थितियां दूसरी योजना अवधि में सोवियत रूस की परिस्थितियों के अधिक निकट हैं। इस तुलना से ज्ञात होता है कि हमारे अनुपात हमारे देश की परिस्थितियों की दृष्टि से उपयुक्त हैं।

दूसरा : इस विषय पर बहस करने का कोई लाभ नहीं, क्योंकि पूर्ति की संरचना कई वर्षों के लिए पहले ही निर्धारित हो चुकी है। इस संरचना में कोई परिवर्तन शीघ्र कर सकने में कई व्यावहारिक बाधाएं हैं।

तीसरा : इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि नियोक्ताओं को नियंत्रांक द्वारा सूचित अनुपात में इंजीनियरी स्नातक या डिप्लोमा प्राप्त व्यक्तियों को भरती करने के लिए तैयार रहना चाहिए। साथ ही शिक्षाविदों को वर्तमान पाठ्यचर्या में परिवर्तन करने तथा वर्तमान शिक्षापद्धतियों को अनुकूल बनाने के लिए तैयार रहना चाहिए ताकि विद्यार्थियों को उस रोज़गार का अधिक उच्च प्रशिक्षण दिया जा सके जिसमें वे जाएंगे। सुधारों की इसीलिए तीव्र आवश्यकता है। अनुभव से जान पड़ता है कि सामान्यतः इंजीनियरी शिक्षाविद् इस नई आवश्यकता के प्रति अधिक जागरूक नहीं हैं। जब तक शिक्षा संस्थाओं की प्रबन्ध प्रणाली और इंजीनियरी शिक्षा प्रशासन की व्यवस्था में परिवर्तन न किए जाएं तब तक यह दोष दूर नहीं हो सकता। दूसरे चरण के कार्यों के लिए उसे व्यक्तियों की आवश्यकता है जो रोज़गार तथा सुधार को महत्व देते हों।

131. विशेषीकृत वैज्ञानिक शिक्षा (इंजीनियरी शिक्षा को छोड़कर) के संदर्भ में, वृत्तिक विशेषीकृत शिक्षा तथा उप वृत्तिक विशेषीकृत शिक्षा का अनुपात 1956-57 में 5:2 तथा 1961-62 में 17:10 था। प्रस्तावित नियंत्रांक से उप-वृत्तिक विशेषीकृत शिक्षा का अनुपात बढ़कर 1:1 हो जाएगा। यहां भी प्रश्न यह नहीं है कि आदर्श अनुपात क्या है, बल्कि यह कि यह अनुपात (व्यवहार में) कितनी शीघ्रता से बढ़ाया जा सकता है। वाणिज्यिक, विधिक, प्रशासकीय तथा अन्य विशेषीकृत कला-शिक्षा पर भी यही बात लागू होती है।

132. एक बार हम फिर इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि विकास के पहले चरण में इंजीनियरी शिक्षा का विकास अत्यन्त प्रशंसनीय है तथा शिक्षा की अन्य शाखाओं के लिए यह एक आदर्श हो सकती है। डिप्लोमा देने वाले उप-वृत्तिक पाठ्यक्रम शुरू करने तथा उसी गति तथा शक्ति के साथ संस्थागत रूप में इन्हें विकसित करने की आवश्यकता अन्य क्षेत्रों में भी है जिस गति तथा शक्ति से पिछले दस वर्षों में पालिटेक्निकों का विकास हुआ है। इस निष्कर्ष से हमारे उस सुझाव को भी पुष्टि मिलती है जिसमें हमने उच्चतर शिक्षा की परिभाषा में उप-वृत्तिक पाठ्यक्रमों को भी शामिल करने का आग्रह किया है।

छठा अध्याय. उच्चतर शिक्षा-संस्थाओं में छात्रों के नामांकन और नियुक्त अध्यापक की संख्या में प्रस्तावित वृद्धि और उसके प्रत्यक्ष खर्च के लिए वित्त-व्यवस्था

अनुभाग 1. विषय प्रवेश

133. उच्च शिक्षा के विकास की योजना बनाने के लिए हमें सबसे पहले देश के उच्चतर शिक्षा-प्राप्त व्यक्तियों की संख्या को ध्यान में रखना पड़ता है। इन उच्चतर शिक्षित व्यक्तियों की संख्या में वृद्धि की योजना हम इस आधार पर बनाते हैं कि देश को वस्तुतः ऐसे कितने व्यक्तियों की आवश्यकता होगी—(यह लक्ष्य होगा)—और उनमें से अधिक-से-अधिक कितनों का उपयोग प्रभावपूर्ण ढंग से किया जा सकता है (यह उच्चतम सीमा होगी)। जन-शक्ति के स्टाक की योजनाबद्ध वृद्धि के इन लक्ष्यों और उच्चतम सीमाओं के आधार पर हम यह अनुमान लगा सकते हैं कि शिक्षा प्राप्त जन-समुदाय की योजनाबद्ध वृद्धि का लक्ष्य और उसकी उच्चतम सीमा क्या होनी चाहिए। फिर इनके आधार पर हम उच्चतर शैक्षिक दलों की योजना-बद्ध वृद्धि के लक्ष्य और उच्चतम सीमाएं मालूम कर सकते हैं। उच्चतर शिक्षा प्राप्त जन-समुदाय के नियोजन और उच्च शैक्षिक नियोजन को आपस में जोड़ने वाली कड़ी आखिरी क़दम होगी। इस कड़ी के सामर्थ्य पर ही यह निर्भर है कि शैक्षिक विकास की कोई प्रक्रिया सक्षम शैक्षिक प्रणाली है अथवा नहीं।

नोट : इन परस्पर संबद्ध किन्तु अलग-अलग नियोजन प्रक्रियाओं की पूर्वोक्त अवधारणा पर जोर देना आवश्यक है। कारण यह है कि आजकल इसका स्पष्ट निरूपण कहीं भी नहीं किया जाता। शैक्षिक नियोजन और जनशक्ति नियोजन अलग-अलग हैं। दोनों एक-दूसरे के अंग नहीं हैं। ये एक-दूसरे की सीमा में प्रविष्ट रहते हैं। राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली समेत जनशक्ति नियोजन राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था का एक पक्ष है (वित्तीय नियोजन और सामग्री-पूर्ति नियोजन उसके दो अलग पक्ष हैं)।

134. नियोजित संख्या में शैक्षिक-दलों की पूर्ति की निश्चित व्यवस्था के लिए छात्रों की उस संख्या का हिसाब लगाना अपेक्षाकृत सरल है जिसे भरती करना होगा। इसीलिए हमें छात्रों की भरती को बढ़ाने की योजना बनानी चाहिए। इस योजना के आधार पर अध्यापकों के नियोजन की वृद्धि की योजना बनाई जा सकती है। इसी के आधार पर अन्त में निधियों के बंटवारे की वृद्धि की योजना बनाई जा सकती है। उच्चतर शिक्षा परिप्रेक्ष्य योजना-रूपरेखा के भाग-तीन का मूलाधार यही है। आकलनों का और नीति तथा प्रशासन से संबंधित समस्याओं का संक्षिप्त विवरण अगले अनुभागों में दिया गया है।

अनुभाग 2. छात्रों के नामांकन

135. हम पाठ्यचर्याओं और परीक्षाफलों की एक ऐसी मानकित वर्गीकरण योजना पर अमल कर रहे है जो सरकारी आंकड़ों के संचालन के लिए अपनाए जाने वाले परम्परागत वर्गीकरण से भिन्न हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि 1956-57 और 1961-62 (हमारी आधार अवधि के वर्ष) के वास्तविक आंकड़ों के निर्धारण के लिए विशेष संगणनाएं की जाएं। संबंधित आंकड़ों का अध्ययन करते समय इस तथ्य को ध्यान में रखना चाहिए।

136. सन् 1956-57 में राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा परीक्षाओं में उत्तीर्ण 48,700 व्यक्तियों की तुलना में, संबंधित पाठ्यचर्याओं में 1,16,000 छात्रों की संगणना की गई है। इस प्रकार उस वर्ष नामांकन और सफलता का अनुपात 2.4 : 1 रहा। सन् 1961-62 में यही संख्या क्रमशः 2,05,000 और 81,400 रही, और इनका अनुपात 2.5 : 1 रहा। अन्तरिम लक्ष्य वर्ष के नियंत्रांकों के रूप में नामांकन की संख्या 750,000 और सफलता की संख्या 150,000 रखने का विचार है। तब नामांकन और सफलता का अनुपात 5:1 हो जाएगा। नामांकन सफलता अनुपात की यह महती वृद्धि उच्चतर शैक्षिक परिप्रेक्ष्य योजना रूपरेखा का सबसे अधिक महत्वपूर्ण और विशेष लक्षण हैं। उपर्युक्त महती वृद्धि के प्रस्ताव का कारण यह है कि हमने राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा की संरचना में क्रान्तिकारी सुधार की कल्पना की है।

137. राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा की पाठ्यचर्याओं में इस समय निम्नलिखित शामिल हैं :

पहला, उच्च शिक्षाशास्त्रीय डिग्री पाठ्यक्रम—अर्थात बी० टी० या बी० एड० के डिग्री पाठ्यक्रम जिनकी सामान्य अवधि एक वर्ष होती है।

दूसरा, राष्ट्रीय अकादमिक डिग्री पाठ्यक्रम :—अर्थात एम० ए०/एम० एस-सी० डिग्री पाठ्यक्रम जिनकी सामान्य अवधि दो वर्ष होती है; और

तीसरा, वृत्तिक-विशेषज्ञता वाले डिग्री पाठ्यक्रम :—अर्थात्, (क) प्रथम डिग्री पाठ्यक्रम (उदाहरणार्थ, इंजीनियरी/चिकित्सा विज्ञान) जिन की सामान्य अवधि चार या पांच वर्ष होती है, और (ख) द्वितीय डिग्री पाठ्यक्रम (उदाहरणार्थ क़ानून) जिनकी सामान्य अवधि दो वर्ष होती है ।

इन सभी पाठ्यक्रमों का भारित औसत निकालने पर हमें राष्ट्रीय उच्चतर शैक्षिक पाठ्यचर्याओं की अवधि का औसत मालूम हो जाएगा । यह औसत संभवतः 1956-57 और 1961-62 दोनों में ही 2:1 के निकट ही होगा । नामांकन सफलता अनुपात इस औसत अवधि से कुछ अधिक रहेगा क्योंकि पढ़ाई अधूरी छोड़ देने वाले, अगली कक्षा में न चढ़ पाने वाले और नामांकन और सफलता की अवधि में नामांकन कराने वाले छात्रों की बढ़ी हुई संस्थाओं के लिए हमें कुछ न कुछ गुंजाइश रखनी होगी ।

138. अनेक ऐसे सुधार हैं जिनके बारे में हम यह कल्पना करते है कि वे परिप्रेक्ष्य योजना अवधि में कार्यान्वित किए गए होंगे और जिनके प्रभाव-स्वरूप नामांकन सफलता अनुपात बढ़ जाएगा :

पहला : उच्चतर शास्त्रीय शिक्षा के संगठन में सुधार राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा के नियोजित सुधार का अत्यावश्यक लक्षण है । हमारा विचार है कि इस सुधार से दो वर्षीय पाठ्यक्रम बनाए जाएंगे और उनमें क्षेत्रीय अकादमिक डिग्री पाठ्यक्रमों के शिक्षान्त वर्ष के बाद छात्रों को प्रवेश दिया जाएगा ।

दूसरा : वर्तमान दो-वर्षीय राष्ट्रीय अकादमिक डिग्री पाठ्यक्रमों के स्थान पर उत्तरोत्तर चार-वर्षीय अकादमिक (प्रवीण) डिग्री पाठ्यक्रमों की व्यवस्था करनी होगी । इसके अनेक कारणों की व्याख्या पहले ही की जा चुकी है ।

तीसरा : जो वृत्तिक विशेषज्ञता वाले डिग्री पाठ्यक्रम वर्तमान समय में द्वितीय डिग्री पाठ्यक्रमों के रूप में संगठित किए जाते हैं, उनके स्थान पर भी इंजीनियरी और चिकित्सा विज्ञान डिग्री पाठ्यक्रमों के ही अनुसार उत्तरोत्तर वृत्तिक विशेषज्ञता वाले (प्रथम) डिग्री पाठ्यक्रम संगठित करने होंगे । 'प्रबन्धकीय कलाओं' (मैनेजरिएल आर्ट्स) के लिए नए वृत्तिक विशेषज्ञता वाले प्रथम डिग्री पाठ्यक्रमों का संगठन करना होगा । इन सभी वृत्तिक विशेषज्ञता वाले डिग्री पाठ्यक्रमों का आपेक्षित अनुपात काफी बढ़ाना होगा ।

चौथा : उच्चतर स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम, पदोन्नति-विस्तार पाठ्यक्रम और पुनश्चर्याओं का संगठन करना होगा । लेकिन उत्तीर्ण छात्रों के नियंत्रांकों का हिसाब करते समय इन पाठ्यक्रमों की गणना नहीं की जाएगी । राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा के संबंध में इन्हीं बातों को ध्यान में रखकर राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा के अनुपात को 1975-76 में 5:1 तक बढ़ा देने का विचार किया गया है । परन्तु यह 'उच्चतम सीमा' है (जिससे आगे नहीं बढ़ना चाहिए), न कि प्राप्य लक्ष्य ।

139. अब क्षेत्रीय उच्चतर शिक्षा को लें । इसमें निम्नलिखित शामिल है : (क) वे सभी विश्वविद्यालय डिग्री पाठ्यक्रम (बी० ए०/बी० एस-सी० डिग्रियों सहित) जिनमें सामान्य हाई स्कूल शिक्षा की समाप्ति के चौथे वर्ष में डिग्री दी जाती है; (ख) सभी उप-वृत्तिक विशेषज्ञता डिप्लोमा पाठ्यक्रम; और (ग) सीनियर इंटरमीडिएट कोर्स (उसकी गणना केवल नामांकन के संबंध में है न कि सफलता के संबंध में) ।

क्षेत्रीय उच्चतर शिक्षा पाठ्यचर्याओं की इस विशिष्टता को ध्यान में रखकर यह माना जा सकता हैं कि इसकी औसत अवधि 3 वर्ष है । हम आशा कर सकते हैं कि नामांकन-सफलता अनुपात 3:1 से बहुत अधिक होगा, ताकि पढ़ाई अधूरी छोड़ने वाले, अगली कक्षा में न चढ़ पाने वाले छात्रों के लिए और नामांकन-वृद्धि के लिए गुंजाइश रहे ।

140. 1956-57 में क्षेत्रीय उच्चतर शिक्षा का नामांकन 448000 था और सफलता 79,000 थी । नामांकन सफलता अनुपात 5.7:1 था । 1961-62 में नामांकन बढ़कर 6,86,000 हो गया और बढ़कर 1,29,000 हो गई । नामांकन-सफलता अनुपात घटकर 5.3:1 हो गया । यह कमी देश के कुछ भागों में अकादमिक प्रथम डिग्री पाठ्यक्रमों के पुनर्गठन के कारण ही मुख्यतया हुई थी । सीनियर इंटरमीडिएट और पुराने दो-वर्षीय बी० ए०/बी० एस-सी०/बी० काम डिग्री पाठ्यक्रम के बीच नामांकन में जो भारी कमी आई थी वह निचले स्तर में चली गई

और हमारे विचार-क्षेत्र के बाहर हो गई । (स्मरण रहे कि उच्चतर शिक्षा के नामांकन के आंकड़ों में पूर्व-विश्वविद्यालय पाठ्यक्रमों के नामांकन और उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के अन्तिम वर्ष के नामांकन को शामिल नहीं किया जाता) ।

141. हमने अन्तरिम लक्ष्य वर्ष के नियंत्रांकों के रूप में 1,000 नामांकनों और 250 सफलताओं को रखने का विचार किया है । इस प्रकार हम नामांकन-सफलता अनुपात के 4:1 होने की कल्पना कर सकते है । इसके लिए स्पष्टतः एक सुधार कार्यक्रम बनाना आवश्यक होगा जिससे क्षेत्रीय उच्चतर शिक्षा की क्षमता बढ़ जाए । इसके परिणाम स्वरूप नामांकन-सफलता अनुपात 5.3:1 (1961-62) से घटकर 4:1 (1975-76) हो जाएगा । सीवियर इंटरमीडिएट कोर्स को तीन-वर्षीय बी० ए० । बी० एस-सी० डिग्री पाठ्यक्रम के प्रथम वर्ष के रूप में बदलना भी इन सुधारों में से एक है । यह भी आशा है कि कुछ उप-वृत्तिक डिप्लोमा पाठ्यक्रमों का नए सिरे से विकास होगा । ये उच्चतर माध्यमिक-पूर्व-विश्वविद्यालय-जूनियर इंटरमीडिएट पाठ्यक्रमों के बाद के दो-वर्षीय पाठ्यक्रमों का रूप धारण कर सकते हैं । क्षेत्रीय अकादमिक डिग्री पाठ्यक्रमों के बाद यदि कोई पुनर्गठित शिक्षाशास्त्रीय पाठ्यक्रम हो, तो उसके अन्तिम वर्ष की गणना भी राष्ट्रीय उच्च शिक्षा के अंग के रूप में की जाएगी ।

उपर्युक्त कारणों से स्पष्ट है कि नामांकन-सफलता अनुपात का योजनाबद्ध ढंग से कम करते रहना आवश्यक है और व्यावहारिक भी ।

142. (इस रिपोर्ट में परिभाषित) उच्चतर शैक्षिक पाठ्यक्रमों में प्रवेश करने वाले छात्रों की संख्या 5,64,000 (1956-57) से बढ़कर 8,91,000 (1961-62) हो गई । पांच वर्ष की अवधि में इस संख्या में 32,7,000 की वृद्धि हुई । औसत वार्षिक वृद्धि की दर 65,400 थी । हमारा विचार है कि अंतरिम लक्ष्य वर्ष के नियंत्रांक 1,750,000 रखे जाएं । इसका अर्थ होगा कि 14 वर्षों में 8,59,000 की वृद्धि अथवा 61,357 की वार्षिक वृद्धि ।

इस प्रकार यद्यपि हमें उच्चतर शिक्षा संस्थाओं में विद्यमान सीटों की संख्या पर कड़ा नियंत्रण रखना होगा, तथापि नामांकन की वार्षिक वृद्धि में कोई महत्वपूर्ण कमी नहीं आएगी । कारण यह है कि दीर्घकालीन पाठ्यक्रमों का सापेक्ष अनुपात जाएगा और उच्च स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों, पदोन्नति विस्तार पाठ्यक्रमों और पुनश्चर्याओं की संख्या भी बढ़ाई जाएगी ।

अनुभाग 3. अध्यापकों का नियोजन

143. सन् 1956-57 में उच्चतर शिक्षा पाठ्यक्रमों में 34,000 अध्यापक थे । 1961-62 में इनकी संख्या बढ़कर 60,000 हो गई । पांच वर्ष की अवधि में इसमें 26,000 की वृद्धि हुई, अर्थात् औसत वार्षिक वृद्धि 5200 रही । सन् 1975-76 के नियंत्रांकों के लिए यह विचार किया गया है कि अध्यापकों की संख्या बढ़कर 141,000 हो जाए—अर्थात् इस संख्या में 14 वर्षों में 5,785 की औसत वार्षिक वृद्धि की दर से, 81,000 की वृद्धि हो ।

यदि स्टाक के अपक्षय के लिए 2 प्रतिशत छूट रखी जाए, तो परिप्रेक्ष्य योजना अवधि में वार्षिक औसत के रूप में लगभग 7,000 नए अध्यापकों को नियुक्त करना आवश्यक होगा ।

144. इन आंकड़ों से पाठकों को गलत धारणा भी हो सकती है । अतः यह लिखना उचित होगा कि इन आंकड़ों में उच्चतर माध्यमिक शिक्षा के अन्तिम वर्ष, विश्व-विद्यालय पाठ्यक्रम और जूनियर इन्टरमीडिएट कोर्स के लिए आवश्यक अध्यापकों की संख्या शामिल नहीं की गई है । योजना के प्रयोजन के लिए इस सीमान्त रेखा के अवर-स्तर को माध्यमिक शिक्षा में शामिल और उच्चतर शिक्षा से बाहर माना गया है । उपर्युक्त नियंत्रांक स्थिर करने में यह मान लिया गया है कि प्रति-अध्यापक छात्रों की संख्या, जिसके 17 (1956-57) से घटकर 15 (1961-62) रह जाने का हिसाब लगाया गया है, 1975-76 में और भी घटकर 12 रह जाएगी । यह कभी एक महत्वपूर्ण नीति-निर्धारण का संकेत करती है ।

145. सन् 1956-57 में कुल 34 हजार अध्यापकों में से 23 हजार अध्यापक क्षेत्रीय उच्चतर शिक्षा में और 11 हजार राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा के क्षेत्र में काम कर रहे थे । 1961-62 में इनकी कुल संख्या उपर्युक्त दोनों क्षेत्र में क्रमशः 40 हजार और 21 हजार अध्यापक थे । सन् 1975-76 में इनके सापेक्ष अनुपात में महत्वपूर्ण परिवर्तन करने का विचार किया गया है । इसके अनुसार क्षेत्रीय उच्चतर शिक्षा 66 हजार और राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा में 75 हजार अध्यापक होंगे । राष्ट्रीय उच्च-तर शिक्षा में छात्र-अध्यापक नियोजित अनुपात 10:1 और क्षेत्रीय उच्चतर शिक्षा में 15:1 है ।

अनुभाग 4. प्रत्यक्ष खर्च के लिए निधि का बंटवारा

146. शैक्षिक खर्च का रूढ़िगत वर्गीकरण करते समय 'प्रत्यक्ष खर्च' और 'परोक्ष खर्च' में भिन्नता दिखाई जाती है । प्रत्यक्ष खर्च में वह पूरा आवर्ती खर्च शामिल है जिसकी गणना सभी शिक्षा संस्थान करते हैं । इसमें मुख्यतः अध्या-पकों के वेतन आदि रहते हैं, और साथ ही संस्थाओं के अनुरक्षण और प्रबन्ध के सभी साधारण आवर्ती प्रभार

भी इसमें शामिल रहते हैं। प्रत्यक्ष खर्च की परिभाषा में नीचे लिखे दो मुख्य प्रकार के व्यय शामिल नहीं किए जाते और उन्हें 'अप्रत्यक्ष खर्च' मान लिया जाता है।

(क) **अनावर्ती खर्च :** अर्थात्, भौतिक सुविधाओं के विस्तार और विकास के लिए पूंजी।

(ख) **अप्रत्यक्ष आवर्ती खर्च :** अर्थात् विशेष प्रकार का वहआवर्ती खर्च जो शिक्षा संस्थाओं के प्रबन्धकों को छोड़कर मुख्यतः अन्य प्राधिकारी करते है। इसमें निम्नलिखित शामिल हैं।

(1) छात्रवृत्तियों, छात्रावास की सुविधाओं की आर्थिक सहायता-प्राप्त व्यवस्था और छात्र-सहायता के अन्य प्रकारों पर किया जाने वाला आवर्ती खर्च;

(2) निदेशन, निरीक्षण और शिक्षा-प्रशासन के अन्य कार्यों पर किया जाने वाला आवर्ती खर्च; और

(3) ऐसे शैक्षिक और सांस्कृतिक कार्यों पर अन्य विविध आवर्ती खर्च, जो उच्चतर शिक्षा के अंग तो हैं परन्तु जिनकी व्यवस्था शिक्षा संस्थाओं या अनुसंधान संगठनों के सामान्य कार्यों के रूप में नहीं होती।

147. हमने उपर्युक्त अप्रत्यक्ष खर्च की आवश्यकताओं का अनुमान लगाने का प्रयत्न नहीं किया है। 'प्रत्यक्ष खर्च' के लिए निधि के बंटवारे की संगणना सन् 1960-61 के स्थिर मूल्यों के हिसाब से की गई है। इस हिसाब से सन् 1956-57 में कुल रकम 28 करोड़ रुपए थी जो 1961-62 में बढ़कर 54 करोड़ रुपए हो गई। 1975-76 में इसे बढ़ाकर 150 करोड़ कर देने की योजना है। इस कुल रकम में से राष्ट्रीय उच्च शिक्षा को दिया गया हिस्सा सन् 1956-57 में 11 करोड़ रुपया था जो 1961-62 में बढ़कर 23 करोड़ रुपए हो गया। सन् 1975-76 में इसे बढ़ाकर 90 करोड़ रुपए कर देने की योजना है।

148. उपर्युक्त रकमें 1960-61 के स्थिर मूल्यों के हिसाब से आंकी गई है। सन् 1956-57 के लिए ये आंकड़े उस वर्ष के वर्तमान मूल्यों पर (आठ प्रतिशत वृद्धि सहित) आधारित वास्तविक आंकड़ों के रूप में हैं। सन् 1961-62 के लिए ये आंकड़े उस वर्ष के वर्तमान मूल्यों पर (2 प्रतिशत कमी सहित) आधारित वास्तविक आंकड़ों के रूप में है। सन् 1975-76 के नियंत्रांक भी 1960-61 के स्थिर मूल्यों के हिसाब से लिखे गए हैं। चूंकि तीसरी योजना की अवधि के अन्त में मूल्य-स्तर सन् 1960-61 के मूल्य स्तर से काफी ऊंचा था, और इसकी कोई संभावना नहीं थी कि उस वर्ष का मूल्य-स्तर अंतरिम लक्ष्य वर्ष के मूल्य-स्तर के तुल्य कर दिया जाएगा, अतः वर्तमान मूल्यों के हिसाब से 1975-76 के लिए बनाए गए नियंत्रांक 90 करोड़ रुपए अवश्यमेव अधिक होने चाहिए। कितने अधिक ? सिद्धान्ततः उस ऊंची संख्या का 90 करोड़ के साथ वही अनुपात होना चाहिए जो 1960-61 और 1975-76 के बीच सामान्य मूल्य-स्तर में हुई वृद्धि का हो। व्यावहारिक रूप में ऐसी वृद्धि का पूरी मात्रा में होना उस दशा में आवश्यक नहीं होगा यदि अध्यापकों के मुआवजा भत्ते में—सामान्य मूल्य-स्तर में हुई वृद्धि आंशिक रूप में ही शामिल हो। नियंत्रांकों में (स्थिर मूल्यों के हिसाब से) उस अंश तक वृद्धि अवश्य होनी चाहिए जो मुआवजा भत्ते में शामिल कर दिया गया है। मोटे तौर पर, 1960-61 के स्थिर मूल्यों के हिसाब से निर्धारित नियंत्रांक को ही वर्तमान मूल्यों के हिसाब से निर्धारित नियंत्रांक (1960-61 के स्तर से ऊपर अतिरिक्त महंगाई भत्ता जोड़कर) मान लेना चाहिए।

149. यदि प्रत्यक्ष खर्च की कुल रकम में अध्यापकों की संख्या से भाग दिया जाए तो हमें (प्रति नियुक्त अध्यापक पर) प्रत्यक्ष खर्च की इकाई दर मालूम हो जाएगी। प्रत्यक्ष खर्च की यह इकाई दर (जो 1960-61 के स्थिर मूल्यों के हिसाब से दी गई है) 1956-57 में 8231 करोड़ रुपए थी। वही 1961-62 में बढ़कर 9048 रु. हो गई। नियंत्रांकों से ज्ञात होता है कि यह दर 10,640 रुपए तक बढ़ाई जाएगी। उद्देश्य यह है कि 1961-62 में जो वेतनमान में बहुत ही निम्न थे उनमें से कुछ को बढ़ाया जा सके।

(**नोट** : यह नहीं मानना चाहिए कि प्रत्यक्ष खर्च की इकाई दर और अध्यापकों के औसत वार्षिक देय एक ही वस्तु हैं। जैसे अध्यापकों को मिलने वाली रकम अपेक्षाकृत कम होगी। प्रत्यक्ष खर्च में अध्यापकों के वेतन आदि के साथ-साथ संस्थाओं के अनुरक्षण और प्रबन्ध के अन्य आवर्ती खर्च भी शामिल होते है।)

अनुभाग 5 : प्रत्यक्ष खर्च के आयस्रोत

150. प्रत्येक उच्चतर शिक्षा संस्था के 'प्रत्यक्ष खर्च' के आयस्रोतों का वर्गीकरण तीन मुख्य शीर्षों के अन्तर्गत किया जा सकता है : (क) संघीय लोक निधियां, (ख) राज्य लोक निधियां, और (ग) फीस और गैर-सरकारी सहायता (चन्दा आदि)। अंतिम मद में, छात्रों द्वारा दी गई सभी प्रकार की फीसों के अतिरिक्त शैक्षिक धर्मस्व,

गैर-सरकारी तदर्थ चन्दे और कुछ ऐसी अन्य विविध मदें भी शामिल हैं, जिन्हें आधिकारिक रूप में 'अन्य स्रोतों' से प्राप्त बताया गया है। सारणी 12 से एक ही बार में यह मालूम हो जाता है कि 1960-61 के आधार वर्ष में (और उससे पांच और दस वर्ष पहले) उनमें से प्रत्येक आय-स्रोत से प्रत्यक्ष खर्च वस्तुतः किस प्रकार पूरा किया गया था, और अंतरिम वर्ष में उसे किस प्रकार पूरा किया जाएगा।

सारणी 12. आयस्रोतों के हिसाब से उच्चतर शिक्षा के प्रत्यक्ष खर्च का विभाजन

	वास्तविक			अंतरिम लक्ष्य वर्ष के लिए प्रस्तावित.
	1950-51	1955-56	1960-61	
1. कुल प्रत्यक्ष खर्च (करोड़ रु०)	17.68	29.71	56.88	150.00
2. घटाइए फ़ीस और गैर-सरकारी चन्दे आदि (करोड़ रु०)	9.18	16.12	27.71	30.00
3. लोक निधियों से पूरा किया गया प्रत्यक्ष खर्च (करोड़ रु०)	1.98	3.67	9.17	60.00
संघीय लोक निधियां				
राज्य लोक निधियां	1.52	9.92	20.00	60.00
जोड़	8.50	13.59	29.17	120.00
4. लोक निधियों से पूरे किए गए प्रत्यक्ष खर्च में संघीय लोक निधियों का प्रतिशत.	23.3%	27.0%	31.4%	50.0%

टिप्पणी : सन् 1950-51, 1955-56 और 1960-61 के आंकड़े 'उच्चतर शिक्षा' के रूढ़िगत वर्गीकरण के अनुसार हैं। यह उस वर्गीकरण से कुछ अंशों में भिन्न है जिसे इस रिपोर्ट में अपनाया गया है और जो अंतरिम लक्ष्य पर लागू होता है। सन् 1050-51 और 1955-56 के आंकड़े वर्तमान मूल्यों के अनुसार हैं और अंतरिम लक्ष्य वर्ष के आंकड़े 1960-61 के स्थिर मूल्यों के अनुसार।

151. ज्ञात होगा कि अंतरिम लक्ष्य वर्ष के दौरान फीस और गैर-सरकारी अंशदान से जिस रकम की प्राप्ति की आशा की गई है (अर्थात्, 30 करोड़ रुपए) वह 1960-61 के वास्तविक आंकड़ों से कुछ ही अधिक है, और सम्भवतः तीसरी योजना की अवधि के अन्त में प्राप्त स्तर से अपेक्षाकृत कम है। इसके कारण (जिनमें कुछ महत्वपूर्ण नीति-निर्णयों से सम्बन्धित है) नीचे दिए जाते हैं :

पहला : यह सोचना अकारण नहीं है कि फीस से प्राप्त आय के आंकड़ों का एक अंश ऐसा है जो वस्तुतः लोक निधियों से प्राप्त होता है, लेकिन जिसे संस्था के खाते में फीस से प्राप्त आय के रूप में दिया जाता है। 'अन्य स्रोत' के अन्तर्गत दिखाई गई रकमों के कुछ अंश के विषय में भी यही कहा जा सकता है। इस प्रकार वास्तविक आंकड़े प्रस्तुत आंकड़ों से प्रायः कम ही रहेंगे।

दूसरा : योजना के अनुसार प्रत्यक्ष खर्च की तुलना में नामांकन में वृद्धि अपेक्षाकृत कम होगी। कारण यह हैं कि महंगे और लम्बी अवधि वाले पाठ्यक्रमों का सापेक्ष अनुमान बढ़ाने का विचार किया गया है। कुल खर्च की तुलना में फीस और गैर-सरकारी अंशदान का अनुपात काफी कम है।

तीसरा : सरकार पर निरन्तर जोर डाला जाता हैं कि फीस कम कर दी जाए। यद्यपि सिद्धान्त के आधार पर उस दबाव का प्रतिरोध कठिन नहीं होना चाहिए, तथापि व्यावहारिक दृष्टि से ऐसा नहीं है। विचार है कि प्रतियोगी प्रवेश की शर्तों के द्वारा संस्था पर पूरा नियंत्रण होना चाहिए। पर इसके साथ फीस को नियंत्रित नहीं किया जा सकता। दूसरी ओर, संस्थाओं पर पूर्ण नियंत्रण रखने के

लिए फीस के सम्बन्ध में उदारनीति बरतना, अति आवश्यक पूरक कार्य है। फिर जैसे-जैसे संख्या बढ़ेगी, गरीब छात्रों का अनुपात आज की अपेक्षा अधिक हो जाएगा। फलस्वरूप प्रति छात्र औसत वार्षिक फीस में बहुत कमी आ जाएगी। गैर-सरकारी अंशदानों के संबंध में भी यही बातें लागू होती हैं।

ऐसी परिस्थिति में प्रस्तावित रकम की अपेक्षा अधिक से अधिक फीस और गैर-सरकारी अंशदान की वसूली की योजना बनाना अविवेकपूर्ण होगा।

152. यदि प्रत्यक्ष खर्च की कुल रकम अर्थात् 150 करोड़ रु० में से फीस और गैर-सरकारी अंशदानों के रूप प्राप्त 30 करोड़ रु० घटा दिए जाएं तो 120 करोड़ रु० की पूर्ति लोक निधि से करनी होगी। दूसरा प्रश्न यह है कि योजना के अनुसार इसमें से कितना खर्च संघीय सरकार वहन करेगी और कितना सभी राज्य सरकारें? संघीय सरकार का यह हिस्सा 23.3 प्रतिशत (1950-51) से बढ़कर 27.0 प्रतिशत (1955-56) हुआ और फिर 31.4 प्रतिशत (1960-61) इस प्रवृत्ति को जारी रखते हुए, यह विचार किया गया है कि अंतरिम लक्ष्य पचास-पचास प्रतिशत विभाजन की योजना बनाई जाए। अतः 60 करोड़ रु० की व्यवस्था संघीय लोक निधियों से की जानी चाहिए और 60 करोड़ रु० की राज्यों की लोक निधि से।

153. अनेक कारणों से यह उचित होगा कि केन्द्रीय सरकार का प्रत्यक्ष खर्च का हिस्सा क्षेत्रीय उच्चतर शिक्षा की अपेक्षा राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा के लिए काफी अधिक हो। विचार किया गया है कि लोक निधि से किये जाने वाले प्रत्यक्ष खर्च की कुल रकम में से संघीय और राज्य सरकारों का सापेक्ष अनुपात राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा के लिए 3:2 हो और क्षेत्रीय उच्च शिक्षा के लिए 1:2 हो। इस आधार पर अंतरिम लक्ष्य वर्ष में 150 करोड़ रु० की पूरी रकम जिन स्रोतों से प्राप्त हो सकती है, उन्हें सारणी 13 में दिखाया गया है।

सारणी 13. अंतरिम लक्ष्य वर्ष में आय स्रोतों और स्तरों के अनुसार उच्चतर शिक्षा के प्रत्यक्ष खर्च का (प्रस्तावित) विभाजन

(करोड़ रुपयों में)

	राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा	क्षेत्रीय उच्चतर शिक्षा	जोड़
1	2	3	4
संघीय लोक निधि	45	15	60
राज्य लोक निधि	30	30	60
कुल लोक निधि	75	45	120
फीस और गैर-सरकारी अंशदान	15	15	30
कुल जोड़	90	60	150

154. स्मरण रहे कि सभी वित्तीय प्रस्ताव प्रत्यक्ष खर्च से ही संबंधित है। "अप्रत्यक्ष खर्च" के लिए कोई प्राक्कलन प्रस्तुत नहीं किया गया है। अप्रत्यक्ष खर्च की दो सबसे अधिक महत्वपूर्ण मदें "इमारतें" और "छात्र-वृत्तियां" हैं। इन दोनों मदों के खर्च का सापेक्ष अनुपात तेजी से बढ़ता रहा है। स्पष्ट है कि यह आगे भी जारी रहेगा। प्रस्तावित सुधारों की सफलता छात्रवृत्तियों की व्यवस्था पर पूर्णतः निर्भर होगी, ताकि ऐसा न हो कि जो

छात्र राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा (और क्षेत्रीय उच्चतर शिक्षा के जनशक्ति नियोजित पाठ्यक्रमों) में प्रवेश प्राप्त करे, उसे निर्धनता के कारण पढ़ाई छोड़ देनी पड़े। इसके लिए छात्र-वृत्तियों की वर्तमान व्यवस्था में महत्वपूर्ण सुधार करना होगा और "छात्रवृत्ति ऋण" प्रणाली की व्यवस्था भी करनी होगी। इस प्रणाली के सफलता से चलने पर शिक्षा और रोज़गार को आपस में सरलता पूर्वक जोड़ा जा सकेगा और उससे यह प्रणाली अधिक आसानी से सफल होगी।

155. "अप्रत्यक्ष खर्च की वह मद जिस पर आज की तुलना में अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए, "शैक्षिक प्रशासन है। उच्चतर शिक्षा के प्रशासन-संगठन को और अधिक मज़बूत बनाने की अत्यधिक आवश्यकता है, और उसके लिए अधिक वित्तीय व्यवस्था करना भी आवश्यक है।

156. हालांकि अप्रत्यक्ष खर्च की सम्भावित वृद्धि के सम्बन्ध में अनुमानित आंकड़े हमने प्रस्तुत नहीं किए हैं, फिर भी सम्बन्धित नीति के बारे में जिन दो बातों पर हमारा ध्यान गया है वे इस प्रकार हैं :

(1) यह अत्यन्त आवश्यक है कि प्रत्यक्ष खर्च की योजनाबद्ध वृद्धि के साथ ही अप्रत्यक्ष खर्च के लिए भी पर्याप्त समानान्तर व्यवस्था की जाए। इन दोनों की वृद्धि साथ-साथ और समुचित अनुपात में होनी चाहिए।

(2) संघीय सरकार को प्रत्यक्ष खर्च की अपेक्षा अप्रत्यक्ष खर्च के सम्बन्ध में अधिक जिम्मेदारी निभानी चाहिए। हमारा सुझाव है कि संघीय सरकार को राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा के अप्रत्यक्ष खर्च का 100 प्रतिशत और क्षेत्रीय उच्चतर शिक्षा के अप्रत्यक्ष खर्च का 50 प्रतिशत पूरा करना चाहिए।

सातवां अध्याय· भारत सरकार और प्रत्येक राज्य सरकार के कार्यकारी दायित्व के निर्धारण की प्रस्तावित योजना और उसके विधिक आधार

अनुभाग 1. विषय-प्रवेश

157. इस रिपोर्ट के आरम्भ में चार विशिष्ट सिफ़ारिशों का उल्लेख किया गया है। बाद के अध्यायों में इन सिफ़ारिशों के अर्थ और उद्देश्य की व्याख्या की गई है और वर्तमान नीतियों, कार्यक्रमों और संगठनों में परिवर्तन करने के सम्बन्ध में उन सिफ़ारिशों का महत्व बताया गया है। चार निश्चित सिफ़ारिशों में से एक में यह कहा गया है कि "भारत सरकार और सभी राज्य सरकारों को जनशक्ति के योजनाबद्ध विकास और उच्चतर शिक्षा के सुधार की एक अखिल भारतीय नीति के वक्तव्य पर सहमत हो जाना चाहिए और उसे स्वीकार करना चाहिए।" इस सिफ़ारिश में एक अखिल भारतीय नीति के आधार और उद्देश्यों का उल्लेख पांच शीर्षों के अन्तर्गत किया गया है। हमारा विचार है कि पिछले अध्यायों में पर्याप्त विवरण द्वारा यह स्पष्ट कर दिया गया है कि "जनशक्ति का योजनाबद्ध विकास और उच्चतर शिक्षा का सुधार" में हमारा आशय क्या है। दूसरी आवश्यकता के बारे में सभी आश्वस्त हो जाएंगे और तदनुसार इस सिफ़ारिश को स्वीकार करने और इसके बारे में एक अखिल भारतीय नीति पर सहमत हो जाने के लिए भारत सरकार और राज्य सरकारों को मनाया जा सकेगा।

158. उक्त चारों विशिष्ट सिफ़ारिशों में से दूसरी सिफ़ारिश के अंग के रूप में "उच्चतर शिक्षा परिप्रेक्ष्य योजना रूपरेखा" का मसौदा प्रस्तुत किया गया था और यह सिफ़ारिश की गई थी कि भारत सरकार और सभी राज्य सरकारें इस मसौदे पर संयुक्त रूप से विचार करें, उसमें निहित समस्याओं की जांच करें, और इसके फलस्वरूप जो भी निर्णय दोनों मिलकर करें, उसके प्रकाश में नियंत्रांकों को अन्तिम रूप दे दें और विकास और सुधार के कार्यक्रम के अखिल भारतीय आधार के रूप में उच्चतर शिक्षा परिप्रेक्ष्य योजना रूपरेखा को स्वीकार करने के लिए सहमत हो जाएं।"

159. पिछले अध्यायों में बार-बार यह कहा गया है, और अब अन्तिम रूप से एक बार फिर इस बात पर जोर दिया जाता है कि उच्चतर शिक्षा परिप्रेक्ष्य योजना-रूपरेखा के मसौदे के नियंत्रांकों के रूप में जो विशेष आंकड़े प्रस्तुत किए गए हैं उन्हें ज्यों-का-त्यों अपना लेना अनिवार्य नहीं है। मसौदे को अन्तिम रूप देते समय सभी सरकारें संयुक्त निर्णय करके उस संख्या को बदल भी सकती हैं, बशर्ते कि सभी सरकारें लक्ष्यों और उच्चतम सीमाओं की रूपरेखा की अखिल भारतीय नीति के वक्तव्य में आंकड़ों के निर्धारण की आवश्यकता को संयुक्त रूप से मान लें। हमारा विचार है कि पिछले अध्यायों में प्रस्तावित लक्ष्य और उच्चतम सीमा के अर्थ, प्रयोजनों और उनमें निहित समस्याओं की पर्याप्त व्याख्या कर दी है और उच्चतर शिक्षा परिप्रेक्ष्य योजना रूपरेखा की सिफ़ारिश को सभी संबंधित सरकारें मान लेंगी और उस पर अमल करेंगी।

160. सभी सरकारों के एक अखिल भारतीय नीति पर सहमत हो जाने के बाद और उस नीति के अनुसार विकास और सुधार के कार्यक्रम बनाने के लिए लक्ष्यों और उच्चतम सीमाओं की रूपरेखा को एक अखिल भारतीय आधार पर स्वीकार करने के बाद, यह स्पष्ट करना आवश्यक हो जाएगा कि विकास और सुधारों की योजना (प्लान) बनाने और उन पर अमल करने में भारत सरकार और हर राज्य सरकार की अपने-अपने अलग-अलग कार्यकारी दायित्व का रूप और परिमाण क्या होगा। ऐसा करना बहुत आवश्यक है, क्योंकि इसी तरह प्रत्येक सरकार अपने कार्यकारी दायित्व के क्षेत्र की वर्तमान प्रशासनिक व्यवस्था की जांच करेगी और उसमें ऐसे परिवर्तन करेगी जिनसे उसके अपने पास दायित्व को निभाने के लिए पर्याप्त साधन हो जाएं। परन्तु ये परिवर्तन सबकी सहमति से ही किए जाएंगे ताकि संघीय और राज्य संगठन परस्पर समन्वयात्मक ढंग से काम न कर सकें। इन्हीं बातों को ध्यान में रखकर इस अध्याय के अगले अनुभाग में कुछ विशेष सुझाव दिए गए हैं। अब हम अपनी चारों विशिष्ट सिफ़ारिशों में तीसरी सिफ़ारिश का पुनः उल्लेख करते हैं जिसमें यह कहा गया है कि "भारत सरकार और सभी राज्य सरकारों को इन सुझावों पर संयुक्त रूप से विचार करना चाहिए और उसके फलस्वरूप जिस निर्णय पर पहुंचे उसके आधार पर उन्हें भारत सरकार और राज्य-सरकारों के कार्यकारी दायित्व को अन्तिम रूप से निर्धारित करना चाहिए।"

161. उच्चतर शिक्षा के जनशक्ति नियोजित विकास और सुधार की समूची प्रक्रिया का आरम्भिक बिन्दु "संख्या नियंत्रण" है। राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली के अंग के

रूप में मान्यता प्राप्त प्रत्येक उच्चतर शिक्षा संस्था में नई सीटें बढ़ाने पर योजना की आवश्यकताओं के अनुसार नियंत्रण रखना होगा। प्रतियोगी प्रवेश की व्यवस्था को आरम्भ करना होगा और चयन तंत्र तथा प्रक्रिया को निर्धारित करना होगा। यह व्यवस्था किसी ऐसी नीति के आधार पर होगी जो एक-से अवसर की व्यवस्था की आवश्यकता और (साथ ही) आर्थिक और शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े जन समुदाय के लिए विशेष सहायता की व्यवस्था की आवश्यकता के साथ आर्थिक और शैक्षिक क्षमता की आवश्यकताओं का समन्वय करे। शिक्षा संस्थाओं, सरकारी विभागों और निगमों द्वारा उच्चतर शिक्षा प्राप्त समुदाय की नियुक्ति तथा उनकी भर्ती और उनके प्रशिक्षण के लिए विनियम बनाने होंगे ताकि शैक्षिक तैयारी का तालमेल नियोजन एजेन्सियों की आवश्यकताओं से किया जा सके। इन सबके लिए तथा अन्य सुधारों के लिए विधायी मंजूरी की आवश्यकता होगी। जब लोकहित की दृष्टि से आवश्यक सुधारों के लिए विधायी मंजूरी दे दी जाती है, तो यह एक सामान्य नियम ही नहीं रहता बल्कि आवश्यक हो जाता है कि उसके लिए विधि-सम्मत प्रशासनिक तंत्र की व्यवस्था की जाए। यह तब विशेष रूप से आवश्यक होता हैं जब संघ सरकार और प्रत्येक राज्य सरकार को इस तंत्र का संघटन अलग-अलग इकाइयों में करना पड़ता है और उसका संचालन इस प्रकार करना पड़ता है मानों वे अखिल भारतीय आधार पर बनाए गए एक ही संगठन के विभिन्न अंग हों। उक्त तंत्र की स्थापना के लिए अन्य देशों के तंत्रों का अनुकरण करना आवश्यक नहीं है। इस विशाल देश के वृहत् प्रशासनिक तंत्र में हमें ऐसे अनेक नमूने (मॉडल) मिल जाएंगे। आवश्यकता इस बात की है कि हम अपने प्रशासनिक संगठन की मान्यताओं को नई अवस्थाओं में लागू करें। हमने आवश्यक प्रशासनिक तंत्र के संबंध में अपने सुझाव इस अध्याय के बाद के अनुभागों में दिए हैं।

162. आम तौर पर यह माना जाता है कि शिक्षा के क्षेत्र में संविधान ने राज्यों को पूर्ण प्रभुसत्ता दे दी है, और संघ सरकार शैक्षिक कार्यों को तब तक प्रभावपूर्ण ढंग से नहीं कर सकती जब तक संविधान में संशोधन न कर दिया जाए। हमारे विचार से संघ और राज्यों की कार्यसीमा का निर्धारण करने वाले संविधान के उपबन्धों में संशोधन बिल्कुल अनावश्यक है। यह पूर्णतः संभव है कि भारत सरकार और सभी राज्य सरकारो अपने-अपने कार्यकारी उत्तरदायित्व को निर्धारित करने की किसी योजना पर परस्पर सहमत हो जाएं (एक ऐसी योजना इस रिपोर्ट में सुझाई गई है) जो संविधान में दिए गए कार्य-विभाजन के पूर्णतः अनुकूल हो। वस्तुतः आवश्यकता इस बात की है कि सभी सरकारें आवश्यकता और व्यावहारिकता की अनिवार्यता के आधार पर परस्पर करार करने के लिए द्वार खुला रखें। इस प्रकार का करार हो जाने के बाद संबंधित विधान मंडल प्रस्तावित विधि का निर्माण करके उक्त करार की पुष्टि कर देंगे। इस प्रकार वर्तमान संविधान के ढांचे के अन्तर्गत ही संघ सरकार को एक ऐसा निश्चित विधिक आधार प्राप्त हो जाएगा जिससे वह अपने कार्यों का निर्वाह कर सके। इस व्याख्या के बाद हम अब अपनी चार विशिष्ट सिफ़ारिशों में से चौथी सिफ़ारिश का पुनः उल्लेख करेंगे, जिसमें यह कहा गया है कि "संसद और राज्यों के विधान मंडलों में उपयुक्त अधिनियम बनाए जाने चाहिए ताकि अंतरिम लक्ष्य वर्ष तक जनशक्ति नियोजित विकास और भारत की उच्चतर शिक्षा के सुधार के लिए आवश्यक विधिक आधार की व्यवस्था हो जाए।" हमारी दृढ़ धारणा है कि बाद के अनुभागों में जो सुझाव दिए गए हैं वे इस सिफ़ारिश को स्वीकार करने की अनिवार्यता को सिद्ध करते हैं। साथ-साथ वे यह भी बताते हैं कि सिफ़ारिश पर अमल किस प्रकार किया जाए।

163. संविधान की सातवीं अनुसूची की संघीय सूची की मद सं० 62 और 63 में कुछ संस्थाओं के नामों का निर्देश किया गया है। इन संस्थाओं का प्रशासन संघ का कार्य है। इसी प्रकार की अन्य संस्थाओं को भी "कानून बनाकर राष्ट्रीय महत्व की संस्था घोषित किया जा सकता है।" इस घोषणा के बाद इन संस्थाओं का प्रशासन भी संघ के कार्यों में शामिल हो जाएगा। संविधान की सातवीं अनुसूची की संघीय सूची की मद सं० 64 में भी अन्य प्रकार की संस्थाओं को, अर्थात्, "उन वैज्ञानिक तथा तकनीकी शिक्षा संस्थाओं को, जिनकी वित्तीय व्यवस्था भारत सरकार आंशिक या पूर्ण रूप से करती है और जिन्हें संसद ने राष्ट्रीय महत्व की संस्था घोषित कर दिया है," ऐसी ही स्थिति प्रदान की गई है।

164. ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि संसद पहले बताई गई मदों पर कानून बनाए, ताकि उच्चतर शिक्षा की राष्ट्रीय संस्थाओं की एक विधिक अखिल भारतीय सूची निश्चित की जा सके। देश की जो भी मान्यता प्राप्त संस्था विधिक मानकों के अनुसार "राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा" प्रदान करे उसे उक्त सूची में सम्मिलित करने की पात्रता दी जानी चाहिए भले ही यह गैर सरकारी या सरकारी हो, और संघ सरकार या किसी राज्य सरकार द्वारा सहायता प्राप्त या अनुरक्षित हो या न हो।

165. विधिक सूची के तीन अलग-अलग भाग होने चाहिए। इन्हें भाग क, ख और ग कहा जा सकता है।

इनमें से प्रत्येक के लिए संघ और राज्य सरकारों के अधिकारों और कर्तव्यों का स्वरूप और उनकी सीमा का निर्धारण संसद के अधिनियम द्वारा किया जाना चाहिए। संबंधित सरकार को अपने कार्य क्षेत्र में अनुदान देने और प्रशासनिक विनियम बनाने और उन्हें लागू करने का अधिकार अधिनियम द्वारा दिया जाना चाहिए। एक विशेष भाग में शामिल की गई सभी संस्थाओं को एक-सी वित्तीय सुविधाएं पाने के योग्य मानना चाहिए और उनका दायित्व भी एक-सा होना चाहिए ताकि वे प्रशासनिक विनियमों के अनुरूप रहें। संघ सरकार का (वित्तीय और प्रशासनिक) कार्यकारी दायित्व हर भाग में अलग-अलग होगा। विधिक सूची के तीनों भागों में से प्रत्येक में शामिल की गई सभी संस्थाओं की (सीटों की संख्या के आधार पर मापित) कुल क्षमता की एक उच्चतम सीमा भी उक्त संसद-अधिवियम में निर्धारित की जानी चाहिए। सुझाव दिया गया है कि प्रत्येक भाग की उच्चतम सीमा 50,000 सीटें और सभी की कुल सीमा 1,50,000 सीटें मानी जाएं।

166. **राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा संस्थाओं की अखिल भारतीय विधिक सूची के भाग क में शामिल की गई संस्थाएं :**

(1) **वित्तीय जिम्मेदारी :** खर्च की उस समस्त राशि के लिए जो फीस और गैर-सरकारी अंशदानों से पूरी न होती हो, संघीय लोक निधि के अनुदान से पूरा करने की जिम्मेदारी संघ सरकार की होगी। राज्य सरकार की कोई वित्तीय जिम्मेदारी नहीं होगी।

(2) **प्रशासनिक विनियम बनाने और लागू करने की क्षमता और कर्तव्य :** ये पूर्णतः संघ सरकार में निहित होंगे। संघ सरकार के कार्यकारी दायित्व अविभाज्य होंगे। यदि संघ सरकार राज्य सरकार को कोई काम सौंपे तो अन्य सभी संघीय कार्यों के समान एक एजेन्सी के रूप में उसे पूरा करने का सांविधानिक दायित्व राज्य सरकार होगा।

167. **राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा संस्थाओं की अखिल भारतीय विधिक सूची के भाग ख में शामिल की गई संस्थाएं :**

(1) **वित्तीय जिम्मेदारी :** यह संघ सरकार और संबंधित राज्य सरकार के बीच इस प्रकार विभाजित होगी :

(क) संघ सरकार को चाहिए कि वह संघीय लोक निधि में से प्रत्येक संस्था को अलग-अलग वार्षिक अनुदान देने की व्यवस्था करे ताकि ये सभी खर्च पूरे हो जाएं—सम्पूर्ण अनावर्ती खर्च, छात्रवृत्तियों और छात्रों को दी जाने वाली अन्य सभी प्रकार की सहायता पर होने वाला कुछ खर्च और सभी अध्यापकों के वेतन, भत्तों और अन्य परिलब्धियों पर होने वाला कुल खर्च। उक्त प्रयोजनों पर होने वाले खर्च के मानों का विनियमन संघ सरकार करेगी।

(ख) राज्य सरकार को चाहिए कि वह राज्य लोक विधि में से संस्थाओं के उस खर्च के लिए अनुदान की व्यवस्था करे जो संस्था विशेष पर ऊपर (क) में बताए गए प्रयोजनों को छोड़कर किन्हीं अन्य प्रयोजनों पर हो और जिसे फीस और गैर-सरकारी अंशदान से पूरा न किया जा सके।

(2) **प्रशासनिक विनियम बनाने और लागू करने की क्षमता और कर्तव्य :**

(क) कार्यक्रमों का प्रशासनिक विनियमन और अध्यापकों के नियोजन का प्रशासनिक विनियमन संघ सरकार में निहित रहेगा।

(ख) अन्य सभी मामलों में (जिनमें छात्र नामांकन, वित्त प्रबंध और सामान्य प्रबंध शामिल हैं) प्रशासनिक विनियमन की क्षमता और कर्तव्य राज्य सरकार में निहित होंगे।

168. **राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा संस्थाओं की अखिल भारतीय विधिक सूची के भाग ग में शामिल की गई संस्थाएं :**

(1) **वित्तीय जिम्मेदारी :** संघ सरकार और राज्य सरकार के बीच वित्तीय जिम्मेदारी का विभाजन इस प्रकार होगा :

(क) संघ सरकार को चाहिए कि वह संघीय लोक निधि में से प्रत्येक संस्था को अलग-अलग वार्षिक अनुदान देने की व्यवस्था करे ताकि कुछ अनावर्ती खर्च और छात्रवृत्तियां तथा छात्रों को दी जाने वाली अन्य सभी प्रकार की सहायता पर होने वाला कुल खर्च पूरा हो जाए। इन प्रयोजनों पर होने वाले खर्च के मानों का विनियमन संघ सरकार करेगी। प्रत्यक्ष खर्च का कुछ भार वहन करने के विषय में कोई विधि-सम्मत वचनबद्धता

नहीं होगी तथापि आवश्यकता पड़ने पर संघ सरकार को यह अधिकार होगा कि वह व्यय-भार को बांट ले ।

(ख) राज्य सरकार को चाहिए कि वह राज्य लोक निधि में से संस्थाओं के उस खर्च के लिए अनुदान दे जो ऊपर नहीं लिखा गया है और जो फीस तथा गैर-सरकारी अंशदान से पूरा नहीं किया जा सकता है ।

(2) **प्रशासनिक विनियम बनाने और लागू करने की क्षमता और कर्तव्य** :

(क) कार्यक्रमों का प्रशासनिक विनियमन संघ सरकार में निहित होगा ।

(ख) अन्य सभी मामलों में प्रशासनिक विनियमन राज्य सरकार में निहित होगा ।

169. किसी भी उच्चतर शिक्षा संस्था को अखिल भारतीय विधिक सूची में तब तक मूलतः शामिल नहीं किया जाएगा जब तक उस संस्था का प्रबन्धक-मंडल इसके लिए आवेदन न करें और प्रशासनिक विनियमों के अनुसार काम करते रहने की स्पष्ट घोषणा न करें । अनिवार्य रूप में शामिल न किए जाने का यह उपबंध राज्य सरकार द्वारा संचालित संस्थाओं, विश्वविद्यालयों और गैर-सरकारी संस्थाओं सभी पर लागू होगा । संस्था के इस सूची में शामिल हो जाने के बाद उस पर ये विधिक उपबंध तब तक लागू रहेंगे जब तक वह संस्था सूची में शामिल रहे । संस्था स्वयं अपने निर्णय से (एक पक्षीय निर्णय लेकर) अपने दायित्व से मुक्त नहीं हो सकती । आवेदन-पत्र वापस लेने मात्र से सूची में से हटा दिए जाने का दावा नहीं किया जा सकता । तथापि संसद स्वयं अथवा आवेदन-पत्र पाने के बाद, उक्त सूची में से किसी भी संस्था को अलग कर सकती है ।

170. बी० ए०/बी० एस-सी० डिग्री पाठ्यक्रमों को छोड़कर इस रिपोर्ट में बताए गए "क्षेत्रीय उच्चतर शिक्षा" के सभी पाठ्यक्रमों को "उप-वृत्तिक विशेषज्ञता शिक्षा" का रूप समझना चाहिए। बी० ए०/बी० एस-सी० डिग्री पाठ्यक्रमों को "क्षेत्रीय अकादमिक कला/विज्ञान शिक्षा" का रूप मानना चाहिए। उप-वृत्तिक विशेषज्ञता शिक्षा में ये शामिल होंगी : (1) बी० ए०/बी० एस-सी० डिग्रियों को छोड़कर बी० काम० डिग्री और इसी प्रकार की अन्य क्षेत्रीय उच्चतर शिक्षा डिग्रियां, (2) वे डिप्लोमा पाठ्यक्रम जो आजकल पोलिटेक्निकों में चलाए जा रहे हैं, (3) कृषि, पशु चिकित्साविज्ञान, लोक स्वास्थ्य और चिकित्सा सेवाओं के तकनीशियनों की शैक्षिक तैयारी के लिए इसी प्रकार के डिप्लोमा पाठ्यक्रम, (4) अध्यापक प्रशिक्षण के लिए बनाए गए इसी प्रकार के डिप्लोमा पाठ्यक्रम, और (5) सरकारी विभागों और निगमों में लिपिकवर्गीय या अधीन पर्यवेक्षकीय पदों पर नियुक्ति के लिए उच्चतर शिक्षा-प्राप्त जन-समुदाय को नियुक्ति-पूर्व प्रशिक्षण देने और उनकी शैक्षिक तैयारी के लिए बनाए जाने वाले इसी प्रकार के डिप्लोमा पाठ्यक्रम । हम कई बार कह चुके हैं और अन्तिम रूप से बल देकर फिर कह रहे हैं कि इन सभी प्रयोजनों के लिए उप-वृत्तिक विशेषज्ञता शिक्षा का विकास करना उच्चतर शिक्षा के सुधार और जनशक्ति नियोजित विकास से संबंधित कार्यक्रम का महत्वपूर्ण अंग है । प्रत्येक राज्य सरकार को कार्यक्रमों के इस अंग पर ध्यान और शक्ति केन्द्रित करनी चाहिए ।

171. सामान्यतया संघ सरकार को "क्षेत्रीय अकादमिक कला शिक्षा" के संबंध में कोई वित्तीय या प्रशासनिक जिम्मेदारी नहीं लेनी चाहिए । यह पूरी जिम्मेदारी राज्य सरकार की ही होनी चाहिए कि वह उस स्तर पर होने वाली वृद्धि को रोके और उच्चतर शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों की बेकारी और काम की कमी के कारण होने वाली बर्बादी को न होने दे । दूसरी ओर संघ सरकार को चाहिए कि उप-वृत्तिक विशेषज्ञता शिक्षा के विकास के योजनाबद्ध कार्यक्रम बनाने और उन पर अमल करने में राज्य सरकारों की सक्रिय और कारगर सहायता करे । शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े कुछ चुने हुए राज्यों को "क्षेत्रीय अकादमिक विज्ञान शिक्षा" के विकास के लिए संघ सरकार को सहायता देनी चाहिए ।

172. उप-वृत्तिक विशेषता शिक्षा संस्थाओं में संघ सरकार या उसकी किसी मुख्य विभागीय एजेन्सी को सार्वजनिक निगमित, औद्योगिक या वाणिज्यिक उद्यमों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए स्थान नियत किया जा सकता हैं विशेषतः उन पोलिटेक्निकों में स्थान सुरक्षित रखना होगा जो संघ सरकार के सार्वजनिक, निगमित, औद्योगिक उद्यमों के आसपास स्थित हों । ऐसे मामलों में इन संस्थाओं को उसी प्रकार के प्रशासन के अन्तर्गत रखना होगा जिसके अन्तर्गत अखिल भारतीय विधिक सूची के भाग "क" में सम्मिलित संस्थाएं हैं । अन्य संस्थाओं का (इनमें विशेष मामलों में क्षेत्रीय अकादमिक विज्ञान कालेज भी शामिल हैं) प्रशासन उसी प्रकार में किया जाए जैसा हमने भाग "ख" और "ग" की संस्थाओं के लिए प्रस्तावित किया है । सम्भव है ऐसी संस्थाओं की संख्या बहुत अधिक हो, और अनेक वर्षों तक कोई निश्चित व्यवस्था न अपनाई जा सके अतः तब तक कोई तदर्थ

व्यवस्था ही करनी पड़ेगी। संभवतः इंजीनियरी और शिल्पविज्ञान को छोड़कर क्षेत्रीय उच्चतर शिक्षा में संघ सरकार द्वारा भाग लेने के लिए विधिक व्यवस्था करना उचित हो। विधिक व्यवस्था न करने पर भी, उद्देश्य यही होना चाहिए कि क्षेत्रीय उच्चतर शिक्षा की वित्तीय और प्रशासनिक जिम्मेदारी के विभाजन की पद्धति को यथासंभव राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा के ही समान रखा जाए।

अनुभाग 3. उच्चतर शिक्षा प्रशासन तन्त्र : इंजीनियरी और शिल्पविज्ञान शाखा

173. इस रिपोर्ट में हमने पहले लिखा है कि गत दशक में इंजीनियरी शिक्षा के विकास के लिए जो संगठन विकसित हुआ है उसे, आदर्श मानकर, विशिष्ट उच्चतर शिक्षा के अन्य प्रकारों के लिए भी अपनाया जा सकता हैं। इस संगठन के विशिष्ट लक्षण इस प्रकार हैं :

(1) एक अखिल भारतीय योजना जिसमें राष्ट्रीय स्टाक की वृद्धि, और उससे प्राप्त उच्चतर शिक्षा क्षमता की वृद्धि के लक्ष्य निर्धारित हों।

(2) भारत सरकार और राज्य सरकारों द्वारा परस्पर स्वीकृत एक प्रभावकारी तंत्र जिसके अनुसार विभिन्न राज्यों में नई क्षमता के विभाजन के संबंध में निर्णय किए जाएं।

(3) आवर्ती और अनावर्ती खर्च पूरा करने के लिए निधि लगातार उपलब्ध रहे—ऐसी सुदृढ़ व्यवस्था के लिए एक उसी प्रकार का प्रभावकारी तंत्र।

(4) (क) भारत सरकार के उपयुक्त मंत्रालय से संलग्न एक अखिल भारतीय विशिष्ट उच्चतर शिक्षा परिषद, जिसमें समन्वय—समितियां हों और सुगठित स्थायी कर्मचारी वर्ग भी, और

(ख) प्रत्येक राज्य में, राज्य सरकार के उपयुक्त विभाग से संलग्न विशिष्ट उच्चतर शिक्षा मंडल जिसमें सुगठित स्थायी कर्मचारीवर्ग हो।

174. हमने यह भी बताया है कि विकास का वह प्रथम चरण जिसका मुख्य कार्य शीघ्रतापूर्वक नई संस्थाएं स्थापित करना और पुरानी संस्थाओं का सुनियोजित विस्तार करना था, अब समाप्त होने वाला है। अब दूसरा चरण शुरू हो रहा है जिसमें अन्य प्रकार के तथा अधिक कठिन कार्य किए जाएंगे। हम इसी बात को दृष्टि में रखकर वर्तमान संगठन को अधिक सशक्त बनाने के लिए प्रयत्न आरंभ करने का सुझाव दे रहे हैं।

175. यह पहले भी कह दिया गया है कि "डिग्री स्तर पर मौजूदा 'मानक' प्रणाली के स्थान पर 'सहकारिता' प्रणाली की इंजीनियरी शिक्षा लाने के लिए प्रभावकारी और सुव्यवस्थित परिवर्तनों की योजना बनानी होगी और उस पर अमल करना होगा। डिप्लोमा पोलिटेकनिक शिक्षा के लिए भी ऐसे ही सुधारों की योजना बनानी होगी और उन्हें कार्यान्वित करना होगा।..... परन्तु इन उपायों की सहायता से भी यह तभी सिद्ध होगा जब इंजीनियरों को काम पर लगाने वाली संस्थाएं भी ऐसी ही कार्यवाई करें और भर्ती, नियुक्ति-पूर्व प्रशिक्षण, पदोन्नति, सेवाकालीन विकास की सुविधा और 'विस्तार प्रतिरूप' की संस्थागत शिक्षा से संबंधित अपनी नीतियों और कार्य-प्रणालियों में महत्वपूर्ण सुधार करें। वर्तमान संस्थाओं में जिस प्रकार के परिवर्तन किए जाएंगे उनका अनुमान नए कार्यों के पूर्वोक्त वर्णन से लगाया जा सकता है।"

176. आवश्यक परिवर्तन नीचे सुझाए जा रहे हैं :

एक. इस समय "अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद" नाम की एक परिषद है जिसकी एक "केन्द्रीय समन्वय समिति" है और चार "क्षेत्रीय समितियां" हैं। इनकी स्थापना संघ सरकार के कार्यकारी आदेश से की गई है। राज्य सरकार के कार्यकारी आदेश से प्रत्येक राज्य में एक तकनीकी शिक्षा मंडल बनाया गया है। इन सभी संस्थाओं के पूरे संगठन को संसद के अधिनियम के द्वारा विधिक आधार दे दिया जाना चाहिए और इनमें नाम तथा कार्यों और क्षेत्रों की सीमा इस प्रकार बदल दी जानी चाहिए :

(1) परिषद का नाम अखिल भारतीय इंजीनियरी और शिल्पविज्ञान शिक्षा परिषद होना चाहिए।

नोट : "इंजीनियरी शिक्षा" और "शिल्प-विज्ञान शिक्षा" की परिभाषा स्थिर कर देनी चाहिए। परिभाषा में "औषध-निर्माण," "वाणिज्य" और "अनुप्रयुक्त कलाएं" आदि विषयों को (जिन्हें आजकल इसमें शामिल किया जाता है) छोड़ देना चाहिए। उन सभी कलाओं की शैक्षिक तैयारी को, जो गणित और अ-जीव भौतिक विज्ञानों के सिद्धान्तों के (उत्पादन, परिवहन और संचार प्रक्रियाओं के) व्यावहारिक प्रयोग पर आधारित हैं, इसमें शामिल करना चाहिए।

(2) एक "केन्द्रीय नियोजन और वित्त समिति" और पांच "आंचलिक कार्यक्रम समितियां" होनी चाहिए। प्रत्येक आंचलिक कार्यक्रम

समिति का क्षेत्राधिकार राज्य पुनर्गठन अधिनियम के अन्तर्गत गठित पांचों अंचलों में से एक-एक पर होना चाहिए।

(3) इन पांचों आंचलिक कार्यक्रम समितियों में से प्रत्येक के अध्यक्ष को केन्द्रीय नियोजन और वित्त समिति का सदस्य भी होना चाहिए। पांचों समितियों के सभी सदस्यों को परिषद का भी सदस्य होना चाहिए। परिषद के जो सदस्य पांचों समितियों के सदस्य न हों, उन की संख्या परिषद की कुल सदस्य संख्या के दसवें भाग से अधिक नहीं होनी चाहिए।

(4) प्रत्येक राज्य क्षेत्र में एक राज्य क्षेत्रीय मण्डल होना चाहिए।

(**नोट** : आम तौर पर एक राज्य ही एक राज्य क्षेत्र होगा। परन्तु आवश्यकतानुसार एक राज्य को एक से अधिक राज्यक्षेत्रों में विभाजित किया जा सकता है)।

दो. (1) सभी विश्वविद्यालयों से संबंधित जो कार्य इस समय विश्वविद्यालय अनुदान आयोग में निहित है, और सभी शिल्पविज्ञान संस्थानों से संबंधित जो कार्य इस समय शिल्पविज्ञान संस्थान अधिनियम के अन्तर्गत स्थापित परिषद में निहित है, उन्हें नई अखिल भारतीय इंजीनियरी और शिल्पविज्ञान शिक्षा परिषद और इस परिषद की नई 'केन्द्रीय नियोजन और वित्त समिति' को सौंपकर बांट देना चाहिए। इन दोनों संस्थाओं को उन सभी इंजीनियरी शिल्पविज्ञान शिक्षा संस्थाओं का काम करना चाहिए जो राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा संस्थाओं की अखिल भारतीय विधिक सूची में शामिल है। जब ये काम परिषद को सौंप दिए जाएंगे तो विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के उपबंध संबंधित संस्थाओं पर लागू नहीं होंगे। शिल्पविज्ञान संस्थान अधिनियम के अध्याय तीन के उपबंध भी निरसित हो जाएंगे।

(2) आंचलिक कार्यक्रम समितियों और राज्य क्षेत्रीय मंडलों के कार्यों को भी निर्धारित कर देना चाहिए। वे सभी काम काम इनके हो जाने चाहिए जो क्षेत्रीय समितियां और राज्य मंडल कर रहे हैं। तथापि व्यावहारिक अनुभव के आधार पर इनमें आवश्यक परिवर्तन किए जा सकते हैं और नीचे में बताए गए नए कार्य जोड़े जा सकते हैं।

तीन. इस समय कोई ऐसी कानूनी व्यवस्था नहीं है जिसके अनुसार नियोजकों के लिए यह अनिवार्य हो जाए कि वे इंजीनियरी और शिल्पविज्ञान की शिक्षा-संस्थाओं के छात्रों को डिग्री या डिप्लोमा मिलने से पहले या बाद में, और पहली बार नौकरी शुरू करने से पहले, व्यावहारिक प्रशिक्षण की सुविधाएं देने की व्यवस्था करें। शिक्षुता अधिनियम, 1961 के उपबंध केवल उन्हीं व्यवसायों पर लागू होते हैं जो 'निर्दिष्ट व्यवसाय' के रूप में अधिसूचित हैं। स्पष्ट बताया गया है कि वे उपबंध उन ग्रेजुएट या डिप्लोमाधारी शिक्षुओं पर लागू नहीं होंगे जो सरकार द्वारा बनाई गई या अनुमोदित किसी योजना के अंतर्गत प्रशिक्षण पा रहे हों जो 'अनिर्दिष्ट व्यवसायों' के प्रशिक्षण देने के लिए बनाई गई है। संसद के उक्त नए अधिनियम में यथासंभव शिक्षुता अधिनियम, 1961 के उपबंधों के ही अनुसार उन सब प्रकार के प्रशिक्षणों के लिए व्यवस्था की जानी चाहिए जिन्हें 1961 के अधिनियम में छोड़ दिया गया है। इस अधिनियम के अन्तर्गत किए जाने वालों कामों को आंचलिक कार्यक्रम समितियों और राज्य क्षेत्रीय मंडलों के बीच बांट देना चाहिए। नए उपबंधों में यह निश्चित व्यवस्था होनी चाहिए कि किसी नियोजक के लिए प्रशिक्षणार्थियों की प्रशिक्षण सुविधाओं की व्यवस्था करना अनिवार्य हो उनकी कुल संख्या शिक्षुता अनिनियम, 1961 में बताई गई सीमा से अधिक न हो जाए।

177. पूर्वोक्त प्रस्तावों का प्रयोजन स्पष्ट है। यह उल्लेखनीय है कि किसी भी संस्था का सफलतापूर्वक चलते रहना केवल इस बात पर निर्भर नहीं कि उसकी आकारिक संरचना क्या है अपितु वह इस पर भी निर्भर है कि उसके मुख्य पदों पर नियुक्ति के लिए कैसे व्यक्तियों को चुना जाता है। इस बात को ध्यान में रखकर हम नीचे कुछ टिप्पणियां प्रस्तुत कर रहे हैं :

(1) अब तक इंजीनियरी शिक्षाविद् इस संगठन का प्रभावपूर्ण नियंत्रण करते रहे हैं। विकास के प्रथम चरण में यह उपयोगी था और उपयुक्त भी। परन्तु अब यह सुनिश्चित कर लेना आवश्यक है कि आंचलिक कार्यक्रम समितियों

का प्रभावी नियंत्रण वे सदस्य करें जो इंजीनियरी-समुदाय को नियुक्त करने वाले सरकारी विभागों और निगमित उद्यमों के प्रतिनिधि हैं। ऐसा करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि समूचे संगठन के शैक्षणिक रूप, और विशेषतः केन्द्रीय नियोजन और वित्त-समिति के कार्य, पर कोई प्रतिकूल प्रभाव न पड़े।

(2) ऐतिहासिक कारणों से सरकारी विभागों और शिक्षा-संस्थाओं के मुख्य पदों पर अधिकांशतः सिविल इंजीनियर ही काम कर रहे हैं (कारण यह है कि सिविल इंजीनियरी सबसे पुरानी है और उसका सर्वाधिक विकास हुआ है)। अतः सभी ओर—विशेषतः आंचलिक कार्यक्रम समितियों के सभी स्तरों पर—सिविल इंजीनियरी को छोड़कर अन्य शाखाओं के ऐसे वृत्तिक इंजीनियरों को प्रभावकारी प्रतिनिधित्व दिया जाना चाहिए जिन्हें औद्योगिक उत्पादन का पर्याप्त व्यावहारिक अनुभव हो।

अनुभाग 4. उच्चतर शिक्षा प्रशासन तंत्र : अन्य शाखाएं

178. प्रशासनिक प्रयोजन के लिए यह सुविधाजनक होगा कि उच्चतर शिक्षा में शामिल सभी डिग्री और डिप्लोमा पाठ्यक्रमों को उच्चतर शिक्षा की नीचे लिखी छह शाखाओं के अन्तर्गत विभाजित कर दिया जाए।

वैज्ञानिक और तकनीकी शिक्षा की शाखाएं

(1) अकादमिक-शिक्षाशास्त्रीय विज्ञान शिक्षा।
(2) इंजीनियरी और शिल्पविज्ञान शिक्षा।
(3) कृषि और पशु-चिकित्सा शिक्षा।
(4) स्वास्थ्य और चिकित्सा शिक्षा।

कला शिक्षा शाखाएं

(5) अकादमिक-शिक्षाशास्त्रीय कला शिक्षा।
(6) विशेषज्ञता कला शिक्षा।

179. नीचे जो शाखावार वर्गीकरण दिया जा रहा है वह वही है जो उच्चतर शिक्षा परिप्रेक्ष्य योजना-रूपरेखा (के मसौदे) के भाग-दो में दिया गया है। अन्तर केवल यह है कि परिप्रेक्ष्य योजना रूपरेखा में जिसे 'विशेषज्ञता प्राप्त वैज्ञानिक और तकनीकी शिक्षा' (इंजीनियरी शिक्षा को छोड़कर) कहा गया है उसे इस वर्गीकरण में तीन भागों में बांट दिया दिया गया है। इसके दो भागों को ऊपर शाखा 3 और 4 कहा गया है। शेष भाग 'शिल्पविज्ञान शिक्षा' की परिभाषा के अन्तर्गत आता है और उसे शाखा संख्या 2 से जोड़ दिया गया है। 'तकनीकी' शब्द का प्रयोग शाखा 2, 3 और 4 की शिक्षा के उपवृत्तिक स्तर का बोध कराने के लिए किया गया है। लोक प्रशासन और निगमित प्रबन्ध की शैक्षिक तैयारी को शाखा 6 में शामिल किया गया है। इसमें वाणिज्य, कानून, पत्रकारिता या किसी अन्य विशेषज्ञता-प्राप्त सांस्कृतिक या सामाजिक कला के क्षेत्र में अनिगमित नियोजन या स्व-नियोजन के लिए शैक्षिक तैयारी भी शामिल है। किन्तु इसमें ऊपर वर्णित शिल्पविज्ञानिक और तकनीकी कलाएं शामिल नहीं है।

180. पिछले अनुभाग में हमने बताया है कि शाखा 2 के उच्चतर शिक्षा प्रशासन तंत्र के संबंध में हमारे क्या विचार हैं। संघ सरकार को इस तंत्र की स्थापना और उसके प्रशासन का काम शिक्षा मंत्रालय में ही करना होगा।

हमारा सुझाव है कि शाखा 3 के उच्चतर शिक्षा प्रशासन तंत्र का गठन भी उपर्युक्त ढंग से ही किया जाए और संघ सरकार उसकी स्थापना और उसके प्रशासन का काम खाद्य और कृषि मंत्रालय में करे।

हमारा यह भी सुझाव है कि शाखा 4 के उच्चतर शिक्षा प्रशासन तंत्र का गठन भी उसी प्रकार किया जाए और उसकी स्थापना और उसके प्रशासन का काम संघ सरकार स्वास्थ्य मंत्रालय में करे।

उपर्युक्त तीनों मामलों में वित्तीय व्यवस्था स्वयं पूरी करनी चाहिए; इन शाखाओं को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के कार्य-क्षेत्र से स्पष्टतया अलग कर देना चाहिए।

181. अब हमें शाखा 1, 5, और 6 के उच्चतर शिक्षा प्रशासन तंत्र पर विचार करना है। क्या ये तीनों संगठन अलग-अलग होने चाहिएं, अथवा क्या एक को अलग रखना चाहिए और शेष दो को मिलाकर एक अलग संगठन बनाना चाहिए। इस सम्बन्ध में विभिन्न व्यक्तियों की पसन्द भिन्न-भिन्न हो सकती है। किसी भी संगठनात्मक समस्या का कोई एकमात्र मान्य निदान नहीं होता। हमें लाभ-हानि के आधार पर किसी एक विकल्प को अपनाना है। हमारा सुझाव है कि (चौथी और पांचवीं योजना की अवधि के लिए) इन तीनों शाखाओं (अर्थात्, अकादमिक शिक्षाशास्त्रीय विज्ञान, अकादमिक शिक्षाशास्त्रीय कलाओं और विशेषज्ञता कलाओं) के लिए एक ही एकीकृत संगठन बनाना सबसे अधिक उचित होगा।

182. इस संगठन का केन्द्रीभूत अंग पहले से ही

विद्यमान है—अर्थात्, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग। परन्तु वह केवल केन्द्रक (न्यूक्लियस) मात्र है। उच्चतर शिक्षा परिप्रेक्ष्य योजना-रूपरेखा (के मसौदे) के भाग-दो से ज्ञात होगा कि (यदि हम प्रतिवर्ष उत्तीर्ण दर्जों की संख्या को मापक बनाएं तो) शाखा 1, 5 और 6 से सम्बन्धित एकीकृत संगठन में अन्य तीनों संगठनों की अपेक्षा कम-से-कम दुगुना काम होगा—क्योंकि ये अन्य तीनों संगठन केवल एक विषय से सम्बन्धित होंगे। अतः यह सुनिश्चित कर देना आवश्यक होगा कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के मौजूदा संगठन में सुधार किया जाए और उसे सशक्त बनाया ताकि वह अपने कार्यों को पर्याप्त संतोषजनक और उपयुक्त ढंग से निभा सके। देश को विश्वविद्यालयों को अपना काम प्रभावकारी ढंग से पूरा करने में सहावता देने के लिए उत्साही नेतृत्व की आवश्यकता है। ऐसा होने पर ही देश में ऐसा सक्षम तंत्र स्थापित होगा जिससे सभी स्कूलों, कालेजों और विश्वविद्यालयों के लिए सभी उच्चतर शिक्षित अध्यापकों की, सभी कालेजों और विज्ञानों के सब अकादमिक अनुसंधानकर्त्ताओं की, सभी सरकारी विभागों और निगमों के सब गैर-तकनीकी प्रशासकों की, सभी वकीलों, लेखकों, पत्रकारों, और विशेषज्ञता वाली कलाओं के अन्य निजी व्यवसायिओं की, और सामान्यतया (केवल इंजीनियरी और शिल्पविज्ञान विशेषज्ञों, कृषि और पशुचिकित्सा के विशेषज्ञों और स्वास्थ्य तथा चिकित्सा विज्ञान के विशेषज्ञों को छोड़कर) देश के लिए अभीष्ट सभी अन्य उच्चतर शिक्षा प्राप्त जन-समुदाय की शैक्षिक तैयारी की व्यवस्था हो सकेगी। जिन तीन उच्चतर शिक्षा प्राप्त वर्गों को छोड़ दिया गया है उनमें से प्रत्येक वर्ग अन्य तीन विशेषतज्ञता एजेन्सियों और विशेषज्ञता वाली संस्थाओं में से किसी एक की जिम्मेदारी के अधीन रहेगा जिन्हें उनसे सहायता और मार्ग-दर्शन मिलेगा।

अनुभाग पांच. संघीय निगमित सेवा आयोग

183. अनुप्रयुक्त जनशक्ति अनुसंधान संस्थान द्वारा गतवर्ष जारी किए गए एक लेख में निम्नलिखित गद्यांश दिया गया था :

> "किसी प्रसिद्ध फ्रेंच नाटककार की रचना में एक ममोरंजक पात्र की कथा है जो अपने व्यवसाय में बुरी तरह व्यस्त रहता था और जिसने काफी उम्र बीत जाने पर निजी अध्यापक की सहायता से साहित्यिक कलाओं को सीखना शुरू किया। पढ़ाते-पढ़ाते जब उसे पद्य और गद्य का भेद बताया गया तो कहा जाता है कि वह आश्चर्य से चमत्कृत होकर कहने लगा कि 'अरे, तो मैं चालीस साल तक गद्य में बात करता रहा—और मुझे पता ही नहीं!' लगभग इसी तरह शायद भारत में कुछ ऐसे प्रशासक हों जो सेवाओं के पुनर्गठन की योजनाएं बनाते रहे हों और उन पर अमल करते रहे हों। ऐसे भी अनेक व्यक्ति होंगे जिन्होंने भर्ती के कार्यक्रमों की योजना बनाने और उन पर अमल करने के प्रयोजन से संवर्ग-सम्बन्धी परिपक्व गणनाएं की होंगी। वस्तुतः ये सभी प्रशासक 'जनशक्ति नियोजन' ही कर रहे थे—हालांकि वे भी मस्योरे जूरदैं की तरह 'अनजान' ही यह सब करते रहे।"

184. इस बात की व्याख्या कर चुकने के बाद कि "जनशक्ति-नियोजन" का वास्तविक अर्थ संगठनों के सम्मिलित समूह में नियोजित जनशक्ति की योजनाबद्ध व्यवस्था करना और उसमें समन्वय करना क्यों है, उक्त लेख में यह बताया गया है कि यह सुपरिचित प्रशासन प्रणाली सहसा नई समस्या का आकार, रूप और नाम लेकर क्यों उपस्थित हो गई है ?

> "भारत की सभी सरकारों के सभी मंत्रालयों और विभागों में अनेक नियमावलियां और विनियमावलियां हैं जिनमें सामान्यतया पूर्वोक्त सभी आवश्यक बातों का ध्यान रखा गया है। ये नियम और विनियम मूलतः ऐसी स्थिति में बनाए गए थे जिनमें यह संभावना की जाती थी कि सेवा संवर्गीय पदों की कुल संख्या या तो आपेक्षिक दृष्टि से स्थायी रहेगी या उसमें बहुत ही धीमी गति से वृद्धि होगी। परन्तु हाल के दशकों में वृद्धि की दर बढ़ गई हैं। यह महत्वपूर्ण है कि सेवा-संवर्गीय पदों का आपेक्षिक अनुपात भी स्तरों पर बदल गया है। जहां कहीं भी इन परिवर्तनों को ठीक समय पर समझ लिया गया और उन्हें स्थायी माना गया, वहां उस सेवा-संवर्ग का नियोजन नए सिरे से करके आवश्यक सुधार कर दिया गया। सेवाओं में इस प्रकार किए गए पुनर्नियोजनों पर आधारित पुनर्गठन के कारण प्रायः संवर्ग के कर्मचारियों की संख्या को बहुत अधिक बढ़ाना पड़ा है और इसके लिए तदर्थ आधार पर नई भर्ती करनी पड़ी है। इस कारण उन स्तरों का पुनरीक्षण और पुनः स्थापन करना पड़ा है जिनमें सीधे भर्ती की

गई थी। जहां से भर्ती की जानी है उन स्रोतों का विशिष्टीकरण भी करना पड़ा है।

"अनेक कारणों से कोई महत्व का पुनर्गठन या तो किया ही नहीं गया है या फिर अनेक मामलों में संतोषजनक ढंग से नहीं किया गया है। इसका प्रधान कारण यह है कि ऐसे अनेक प्रशासक विद्यमान हैं जो जानते हैं कि मौजूदा संवर्ग को किस प्रकार प्रशासित किया जाए। उनमें से बहुत कम यह जानते हैं कि ये संवर्ग मूलतः किस प्रकार बनाए गए थे या शुरू किए गए थे। एक अन्य—और शायद अधिक महत्वपूर्ण कारण यह है—कि जो लोग यह समझते हैं कि ये संवर्ग किस प्रकार बनाए जाते हैं, केवल 'स्थैतिक' संवर्ग के गठन से परिचित हैं। लेकिन देश को "गतिशील" संवर्गों की आवश्यकता है—ऐसे संवर्गों की जिनमें पुराने ढंग के संवर्गों की अपेक्षा अधिक तीव्र वृद्धि की आंतरिक व्यवस्था हो।

"हाल के वर्षों में सार्वजविक क्षेत्र में नए-नए उद्यम बड़ी तेजी से स्थापित किए जा रहे हैं और वे नाना प्रकार के, सम्मिश्रित और अपरिचित रूप धारण करते जा रहे हैं। इन उद्यमों में "गतिशील" संवर्ग बनाने की आवश्यकता है। अभी तक उनमें ये संवर्ग नहीं बनाए गए है। इस स्थल पर योजनाबद्ध संवर्गीकरण की एक बड़ी समस्या हमारे सामने आई है और उसका समाधान शीघ्र करना होगा। इस समय अनेक भ्रांतिपूर्ण अवधारणाएं इस समस्या के समाधान में बिघ्न डाल रही हैं और विलम्ब करा रही है। इन भ्रांतियों पर खुले दिल से विचार-विमर्श करना और इनका निराकरण करना आवश्यक है।"

185. यह उल्लेख करना उपयुक्त होगा कि "सार्वजनिक क्षेत्र के नए उद्यमों के निर्माण" के साथ जो मुख्य समस्या उठ खड़ी हुई हैं उसकी पूरी जानकारी बिल्कुल स्वतन्त्र रूप से—और वह भी संसद की प्राक्कलन समिति के उच्च प्राधिकार के आधार पर—प्राप्त कर ली गई है। उक्त समिति की "सार्वजनिक उद्यमों की कर्मचारी विषयक नीतियां" नामक बावनवीं रिपोर्ट में (जो मार्च, 1964 में जारी की गई थी) निम्नलिखित अंश आते हैं।

"इस बात पर जोर देना आवश्यक है कि प्रत्येक उद्यम के अपने लिखित भर्ती नियम होने चाहिए जिन्हें सब समझ सकें। यह पाया गया है कि 1948 और 1950 में स्थापित उद्यमों तक ने अपनी भर्ती नियम नहीं बनाए हैं, और संबंधित प्रशासनिक मंत्रालयों ने भी इन नियमों के बनाए जाने की ओर ध्यान नहीं दिया है···

"प्रत्येक पद पर सबसे अधिक उपयुक्त व्यक्ति को भर्ती करने के लिए मूलभूत और अत्यावश्यक शर्त यह है कि प्रत्येक प्रबन्ध-स्तर, प्रत्येक विभाग और प्रत्येक कार्य या कार्य-समूह की विशेषताओं और आवश्यकताओं का स्पष्टीकरण किया जाए और उन्हें परिभाषा बद्ध कर दिया जाए। अन्य उद्यमों ने विभिन्न कर्मचारीवर्गों के कर्तव्य और दायित्व सामान्यतया निर्धारित कर दिए है—परन्तु प्रत्येक स्तर के अधिकारी/कर्मचारी के काम की विशिष्टता का सही निर्धारण नहीं किया है···

"सार्वजनिक उद्यमों में कर्मचारी रखने और उनकी भर्ती करने की योजना ठीक समय पर नहीं बनाई जाती। ऐसी योजना बनाना आवश्यक है, क्योंकि आजकल विशेषज्ञ और तकनीकी कर्मचारियों की कमी है। फिर रिक्त पदों को विज्ञापित करने और चुने हुए व्यक्तियों को भर्ती करने के बीच बहुत सा समय बरबाद हो जाता है·····अतः उनका विचार है कि यदि प्रत्येक उद्यम अपनी आवश्यकताओं और विस्तार कार्यक्रमों की दृष्टि में रखकर वार्षिक कार्य-तालिका बना ले और भर्ती का काम ठीक समय पर शुरू कर दे तो इससे बहुत सहायता मिलेगी···

"समिति ने पाया कि पिछले तीन वर्षों में लगभग 4,857 तकनीकी प्रबन्ध कर्मचारियों ने सार्वजनिक उद्यमों को छोड़ दिया है—यदि इस प्रकार अन्यत्र जाने से उस व्यक्ति की योग्यता का अधिक उपयोग होता हो तो यह अनुमति नहीं है। अन्यथा यह बरबादी ही है—अतः इस पर विचार करना उचित होगा कि क्या सभी सार्वजनिक उद्यमों में एक जैसे पदों के लिए प्रायः एक से वेतन-मान रखना ठीक होगा या नहीं.....उन्होंने यह भी सुझाया है कि सभी उद्यमों को संवर्ग और वृत्ति विकास की योजनाएं शुरू करनी चाहिए·····समिति आशा करती है कि सरकार·····एक समान

पदों पर अन्यत्र जाने वाले कर्मचारियों की संख्या बहुत अधिक हो जाने पर रोक लगाने के लिए आवश्यक उपाय करेगी·····"

"समिति को यह देखकर खेद हुआ है कि 1948 या 1950 में स्थापित उद्यमों तक ने कोई पदोन्नति नियम नहीं बनाए हैं। इस बात पर जोर देने की आवश्यकता नहीं है कि पदोन्नतियां सम्यक् निर्धारित नियमों के अनुसार होनी चाहिए ताकि कर्मचारियों में विश्वास की भावना बनी रहे···

"इस अनुभव और कम प्रशिक्षण प्राप्त व्यक्तियों की पदोन्नति का दुष्प्रभाव उद्यमों की कार्य-क्षमता पर पड़ता है···इस तथ्य से कि सार्वजनिक उद्यम अभी तक अपने प्रबन्ध को सक्षम नहीं बना सके हैं, यह इंगित होता है कि इस पहलू पर उतना ध्यान नहीं दिया है जितना देना चाहिए था।

"निगम ने उन सभी सम्बद्ध कार्यों के हरेक वर्ग के लिए जिनके लिए एक सी मूलभूत योग्यता चाहिए, एक संवर्ग योजना बनाई है ताकि प्रत्येक पद पर सर्वोत्तम उपलब्ध उम्मीदवार को ही लगाया जाए···संवर्ग योजनाओं में उन सभी पदों की संख्या बताई जाती है जो संवर्ग में प्रत्येक स्तर पर विद्यमान हैं। उसमें एक स्तर से दूसरे स्तर पर पदोन्नति के लिए आवश्यक न्यूनतम अनुभव भी निर्धारित कर दिया जाता है···यदि ऐसी योजना चलाई जाए और साथ ही संवर्ग विशेष के सभी कर्मचारियों की नियमित ज्येष्ठता-सूची तैयार कर ली जाए तो इससे उस संवर्ग के कर्मचारियों को पूर्णतः आश्वस्त किया जा सकता है कि वे अपनी योग्यता के अनुसार नौकरी के अमुक-अमुक वर्ष में अगले ऊंचे पद और आगे उससे भी ऊंचे पद पर पदोन्नति पाने की आशा कर सकते हैं। उनकी सिफ़ारिश है कि सार्वजनिक क्षेत्र के उन सभी उद्यमों को जिनमें कर्मचारियों की संख्या पर्याप्त है··· विशेषकर अधिक यूनिटों वाले उद्यमों को··· ऐसी ही संवर्ग योजनाएं बनानी चाहिए···

"भारत की तथा विदेश-स्थिति अनेक प्रगतिशील कम्पनियों ने एक नियमित जीविका विकास योजना बनाई है ताकि कर्मचारी को उसके कार्य-काल के लिए संतोषजनक जीविका दी जाए। इसके लिए यह आवश्यक है कि कर्मचारी में नई तथा संबद्ध कार्य-कुशलता उत्पन्न करके उसके विकास के लिए लगातार प्रशिक्षण दिया जाता रहे ताकि अवसर पड़ने पर वह अधिक दायित्वपूर्ण काम भी कर सके। उनका सुझाव है ऐसी योजना को सभी सार्वजनिक उद्यमों में भी चालू करने की उपयुक्तता पर विचार किया जाना चाहिए···"

186. प्राक्कलन समिति ने योजनाबद्ध जनशक्ति प्रबन्ध के प्रत्येक पहलू का स्पष्ट और विस्तृत विवरण ही नहीं दिया है (जिस पर ध्यान दिया जाना चाहिए) उसने उस तंत्र के बारे में अपनी विशिष्ट सिफ़ारिश की है जो इस बात की व्यवस्था करेगी कि इस पर सचमुच ध्यान दिया जाए। लगभग दस वर्ष पहले प्राक्कलन समिति ने अपनी (1955-57) की रिपोर्ट में सिफ़ारिश की थी कि "सार्वजनिक उद्यमों में पदाधिकारियों को भर्ती करने के लिए एक अलग लोक सेवा आयोग बनाया जाए। सन् 1958-59 की रिपोर्ट में इस सिफ़ारिश को दोहराया गया। फिर सन् 1962-63 की रिपोर्ट में समिति ने इस प्रस्ताव की संभावित आपत्तियों का उल्लेख किया और कहा कि "यह समस्या ऐसी है जिसमें एक ओर सार्वजनिक जिम्मेदारी और नियमितता की आवश्यकताओं का और दूसरी ओर पर्याप्त व्यावसायिक और वाणिज्यिक साधीनता का परस्पर मेल बैठाना पड़ता है। उनके विचार से इसका हल यही है कि संघीय लोक सेवा आयोग की तरह सार्वजनिक उद्यमों के लिए भी यह कर्मचारी आयोग बना दिया जिसमें ऐसे व्यक्ति नियुक्त किए जाएं जिन्हें व्यावसायिक अनुभव हो और जिन्हें सरकारी क्षेत्र की आवश्यकता की जानकारी हो। अन्य कार्यों के साथ सेवा, भर्ती, पदोन्नति और कर्मचारियों सम्बन्धित अन्य नीतियों के सम्बन्ध में विभिन्न सार्वजनिक उद्यमों द्वारा बनाए गए नियमों और शर्तों की जांच उतका अनुमोदन तथा आदर्श (मॉडल) नियमों का निर्धारण भी इस आयोग के कामों में शामिल होना चाहिए। सार्वजनिक उद्यमों की विभागीय भर्ती और पदोन्नति समितियों में सहयोजित किए जाने के लिए सदस्यों को भेजने की व्यस्था भी आयोग कर सकता है—समिति की प्रार्थना है कि सरकार उपर्युक्त बातों के सम्बन्ध में यथाशीघ्र कार्रवाई करे।"

187. मार्च, 1964 में समिति ने जो रिपोर्ट जारी की उसमें इस सम्बन्ध में कहा गया है कि :

"समिति का विचार है कि उससे जिस व्यवस्था को अपनाने का सुझाव दिया है उसे अपनाने में कोई कठिनाई नहीं है। रेल, डाक तार और आर्डिनेन्स फैक्टरियों में यह सफलतापूर्वक चल

रही है। दूसरी ओर उनका यह विचार है कि ऊंचे पदों की भर्ती का केन्द्रीकरण करने से चुनाव के एक समान मानक अपनाए जा सकेंगे, दुर्लभ कर्मचारियों को प्रतियोगिता के आधार पर वेतन देने की आवश्यकता नहीं होगी, और इससे सार्वजनिक उद्यमों के समय और काम दोनों की भी बचत होगी। समिति को पूरा विश्वास है कि उक्त आयोग के जरिए कर्मचारियों की भर्ती करते समय सम्बन्धित उद्यमों के प्रतिनिधियों और बाहर के सुयोग्य विशेषज्ञों को सहयोजित किया जाएगा। किन्तु यदि केवल एक केन्द्रीय आयोग की स्थापना करना उचित न समझा जाए तो समिति का सुझाव है कि ऐसे आयोग क्षेत्रीय या हर एक उद्योग के आधार पर बनाए जाएं।"

188. उक्त सुझाव दो वर्ष से भी अधिक पहले प्रकाशित कर लिए गए थे। परन्तु अभी तक कुछ भी नहीं हुआ है। हमने प्राक्कलन समिति की रिपोर्ट के सभी सम्बन्धित प्रसंगों को ऊपर दे दिया है और (हमारा नम्र निवेदन है कि) समिति ने इस रोग का जो निदान किया है और जो उपचार बताया है हम उससे पूर्णतः सहमत हैं। इस विषय में हमारी रुचि का कारण यह है कि जब तक समिति की सिफ़ारिशों को स्वीकृत और क्रियान्वित नहीं किया जाता, तब तक उस नीति पर सफलतापूर्वक अमल नहीं किया जा सकेगा जिसकी हमने इस रिपोर्ट में सिफ़ारिश की है।

यह आवश्यक है कि प्रत्येक सरकारी विभाग और सरकारी क्षेत्र के प्रत्येक निगम में योजनाबद्ध जनशक्ति प्रबन्ध का प्रभावकारी तंत्र हो। यह भी आवश्यक है कि तंत्र एक-से सिद्धान्तों पर आधारित हों और कुछ ऐजेन्सियां (जिनकी संख्या समिति होगी) इनके प्रशासन का समन्वय करें यह इसलिए आवश्यक है ताकि (कम-से-कम राष्ट्रीय स्तर पर) उच्चतर शिक्षा प्राप्त जन-समुदाय की वार्षिक मांग का शाखावार कुल जोड़ निकाला जाए और उसका मेल उक्त समुदाय की पूर्ति से बिठाया जाए। इन्हें एक साथ एक स्थान पर जोड़ना इसलिए भी आवश्यक है ताकि परखाधीन व्यक्तियों और शिक्षुओं के लिए नियुक्ति-पूर्व प्रशिक्षण का आयोजन किया जा सके, और इस प्रशिक्षण को संस्थागत शिक्षा में किए जाने वाले सुधारों से जोड़ दिया जाए। इस दिशा में कोई भी काम तब तक शुरू नहीं किया जा सकता जब तक प्राक्कलन समिति द्वारा वर्णित स्थिति में परिवर्तन नहीं आता। इस स्थिति में तब तक कोई भी सुधार करना संभव नहीं जब तक प्राक्कलन समिति द्वारा सुझाए गए नए उपचार न किए जाएं।

अतः हम सिफ़ारिश करते हैं कि एक नया, संगठन जिसका नाम "संघीय नियमित सेवा आयोग" रखा जा सकता है—अविलम्ब स्थापित किया जाए। उसके गठन और कार्यों को उसी तरह निर्धारित कर दिया जाए। जैसा प्राक्कलन समिति ने निर्दिष्ट किया है। हमारा विचार है कि प्रारम्भ में ऐसा एक ही संगठन पर्याप्त होगा।

अनुभाग 6. संघीय जनशक्ति प्राधिकरण और राज्य जनशक्ति प्राधिकरण

189. संघ सरकार "जनशक्ति" को सरकारी को कामकाज की महत्वपूर्ण मद मानती है। इस सरकारी कामकाज को चलाने की जिम्मेदारी गृह मंत्रालय को दी गई है जो संघ सरकार की एक इकाई के रूप में इसे करता है। इस कामकाज के लिए मंत्रालय में एक निदेशक है और उसके कार्यालय के थोड़े से कर्मचारी हैं। चार वर्ष पहले इस मंत्रालय ने "अनुप्रयुक्त जनशक्ति अनुसंधान संस्थान" की स्थापना की थी और उसे जनशक्ति नियोजन की समस्याओं पर अनुसंधान करने का काम सौंपा था। यह रिपोर्ट मुख्यतया उस संस्थान के अनुसंधान के परिणामों पर आधारित है।

190. पिछले कुछ वर्षों में संघ सरकार के मंत्रालयों और विदेशी परामर्शदाताओं ने इस काम को गृह मंत्रालय को सौंपे जाने की उपयुक्तता पर संदेह प्रकट किया था। क्यों न इसे योजना आयोग के सिपुर्द कर दिया जाए जिसका काम ही योजना बनाना है? अथवा इसे श्रम और रोजगार मंत्रालय क्यों न दे दिया जाए जिसका संबंध रोजगार और प्रशिक्षण से है? अथवा क्या इसे शिक्षा मंत्रालय को ही सौंप दिया जाए, जिसका सम्बन्ध शिक्षित जनशक्ति की पूर्ति के स्रोतों से यथार्थतः है? या फिर इसे श्रम मंत्रालय को ही क्यों न दे दें जिसके अधीन सभी नए उद्यम रहेंगे—ये ही उद्यम बाद में अधिकाधिक जनशक्ति का उपयोग करते जाएंगे? अथवा इसे आर्थिक मामलों का समन्वय करने वाले मंत्रालय को ही क्यों न दे दिया जाए? ये सभी प्रश्न किसी न किसी सीमा तक तर्कसंगत अवश्य हैं। जैसा हमने पहले कहा है, किसी भी संगठन-मूलक समस्या का ऐसा कोई हल नहीं होता जो सर्वमान्य हो और जिसके विपक्ष में कोई तर्क न दिया जा सके। किन्तु यदि हम रिपोर्ट में किए गए इस दृष्टिकोण को मान

लें कि (सरकारी काम के रूप में) "जनशक्ति नियोजन" वस्तुतः गृह मंत्रालय के उन कामों का, जिन्हें वह लोक सेवाओं के संबंध में सदा करता आया है, राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था के योजनाबद्ध विकास की नई परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में विस्तार और अनुकूलन है, तो हमें कोई सन्देह नहीं है कि ये काम इस समय जिस मंत्रालय को सौंपे गए हैं उन्हें वहीं सौंपना उचित है।

191. यह मानकर कि इस रिपोर्ट के प्रारम्भ में जिस अखिल भारतीय नीति की सिफ़ारिश की गई है उसे स्वीकार कर लिया जाएगा, और संघ सरकार और राज्य सरकारों के बीच इस नीति की क्रियान्विति की कार्यकारी जिम्मेदारी के विभाजन की योजना को भी स्वीकार कर लिया जाएगा, हम विद्यमान संगठन में नीचे लिखे सुधारों की सिफ़ारिश करते हैं :

(एक) इस नीति की और उच्चतर शिक्षा परिप्रेक्ष्य योजना-रूपरेखा की (जो लक्ष्यों और उच्चतम सीमाओं की आधार है) क्रियान्विति की जिम्मेदारी गृह मंत्रालय पर होनी चाहिए। इसके लिए उक्त मंत्रालय को आवश्यक तंत्र दिया जाना चाहिए और इसे संघीय जनशक्ति प्राधिकरण का नाम दिया जा सकता है।

(दो) संघीय जनशक्ति प्राधिकरण के नीचे लिखे अंग होने चाहिए :

(1) संघीय जनशक्ति नीति समिति;
(2) संघीय जनशक्ति नियोजन मंडल; और
(3) जनशक्ति नियोजन का संघीय कार्यालय।

समिति मंत्री-स्तर की होनी चाहिए। मंडल सचिव-स्तर का होना चाहिए। कार्यालय को गृह मंत्रालय के विद्यमान जनशक्ति निदेशालय पर आधारित होने चाहिए।

(तीन) प्रत्येक राज्य को पूर्वोक्त विधि से अपना-अपना राज्य जनशक्ति प्राधिकरण बना लेना चाहिए।

(चार) अनुप्रयुक्त जनशक्ति अनुसंधान संस्थान का पुनर्गठन इस प्रकार करना चाहिए कि वह संघीय जन-शक्ति प्राधिकरण और राज्य जनशक्ति प्राधिकरणों के लिए एक सामान्य सेवा एजेन्सी का रूप धारण कर ले। इसके वर्तमान गठन में आवश्यक परिवर्तन करना चाहिए ताकि इसके प्रयोजन की पूर्वोक्त अवधारणा सिद्ध हो सके।

192. संघीय जनशक्ति प्राधिकरण और राज्य जन-शक्ति प्राधिकरणों की यह सामान्य जिम्मेदारी हो कि वे संघ तथा सभी राज्यों में उच्चतर शिक्षा के जनशक्ति-नियोजित विकास की अखिल भारतीय नीति की क्रियान्विति की प्रगति का लगातार पुनर्विलोकन करते रहें। उनके कार्यों के इस कथन की सामान्यता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना निम्नलिखित मुख्य-मुख्य कार्यक्षेत्रों का विशेष उल्लेख किया जा रहा है :

पहला : संघ तथा राज्यों के सभी सरकारी विभागों, गैर-सरकारी तथा सरकारी क्षेत्र के सभी बड़े-बड़े निगमित उद्यमों, और सभी शिक्षा-संस्थाओं में उच्चतर शिक्षा-प्राप्त जनसमुदाय के नियोजन से संबंधित जानकारी अबाध गति से निरन्तर प्राप्त होती रहे—इसके लिए प्रबंध करना चाहिए और उसे बनाए रखना चाहिए। इस जानकारी के अध्ययन की व्यवस्था की जानी चाहिए और अध्ययन के निष्कर्षों की सूचना आम जनता तथा संघीय और राज्य जनशक्ति प्राधिकरणों के उपयोग के लिए प्रस्तुत की जानी चाहिए।

दूसरा : संघीय सरकारी क्षेत्र के निगमों और सरकारी विभागों में की जाने वाली योजनाबद्ध जनशक्ति-व्यवस्था के संगठन की रूपरेखा और उसके मूल सिद्धान्तों का निर्धारण संघीय जनशक्ति प्राधिकरणों द्वारा किया जाना चाहिए। रोजगार समन्वय एजेन्सियां बनाने के लिए आवश्यक कार्रवाई करना और उनसे संबंधित नीति-विषयक प्रश्नों का समाधान करना उक्त संघीय जनशक्ति प्राधिकरण का एक महत्वपूर्ण कार्य होगा। राज्य जन-शक्ति प्राधिकरण अपने राज्य के सरकारी विभागों और सरकारी क्षेत्र के नियमों के संबंध में यही कार्य करेंगे।

तीसरा : इस बात पर लगातार नज़र रखनी चाहिए कि शिक्षा संस्थाएं उच्चतर शिक्षा प्राप्त जनसमुदाय की जो वार्षिक पूर्ति करती हैं उसकी क्या प्रगति है, और इस समुदाय को भर्ती करने, प्रशिक्षण देने और रोजगार देने के विषय में रोजगार एजेन्सियों की क्या प्रगति है। इस अध्ययन के परिणामों के आधार पर उच्चतर शिक्षा-प्राप्त जनसमुदाय के चारों मुख्य व्यवसायवर्गों के प्रत्येक वर्ग से संबंधित कार्यक्रम, तथा प्रत्येक वर्ग की प्रत्येक मुख्य शाखा से संबंधित कार्यक्रम का पुनर्विलोकन करते रहना चाहिए। पुनर्विलोकन के परिणामों के आधार पर संघीय या, यथा-स्थिति, राज्य जनशक्ति प्राधिकरण को कार्यक्रमों में आव-श्यकतानुसार परिवर्तन करने चाहिए।

193. यदि इस संगठन का विकास इन्हीं आधारों पर किया जाए तो तीन चार वर्षों में सरकारी विभागों और निगमों में योजनाबद्ध जगशक्ति व्यवस्था का आयोजन अत्यधिक कुशलतापूर्वक किया जा सकेगा और समन्वय-

कारी समितियां इस व्यवस्था का समन्वय भी अत्यधिक कुशलतापूर्वक कर सकेंगी। ऐसा होने पर प्रतिवर्ष उच्चतर शिक्षित जनसमुदाय बजट निर्धारित किया जा सकेगा और चलाया जाएगा। ऐसा हो जाने पर यह संभव होगा कि उच्चतर शिक्षाप्राप्त जनसमुदाय की वार्षिक पूर्ति और उसकी वार्षिक भर्ती; नियुक्ति-पूर्व प्रशिक्षण और प्रथम रोजगार में नियुक्ति के बीच योजनाबद्ध ढंग से मेल बैठाया जा सके, और यह मेल शाखावार हो। यह इस रिपोर्ट में संस्तुत अखिल भारतीय नीति की सफल क्रियान्विति का अन्तिम परीक्षण होगा।

194. हमारा सुझाव है कि उपर्युक्त संगठन की स्थापना के लिए संसद के अधिनियम के द्वारा विधिक व्यवस्था की जाए। इस विधिक व्यवस्था के लिए आवश्यक सांविधानिक आधार संविधान की सातवीं अनुसूची की संवर्ती सूची की निम्नलिखित मदों में है :

मद 20. आर्थिक और सामाजिक नियोजन।
मद 23. रोजगार और बेरोजगारी।
मद 26. कानूनी, डाक्टरी और अन्य पेशे।

195. उच्चतर शिक्षा प्राप्त जनशक्ति-नियोजन की (जिसमें उच्चतर शिक्षा प्राप्त जनसमुदाय के रोजगार का विनियम और अखिल भारतीय नीति के अनुसार किए जाने वाले अन्य आवश्यक संबंधित कार्य भी शामिल हैं) कायकारी जिम्मेदारी के विधिक निर्धारण के लिए हमें 'वृत्तिक जनशक्ति', 'उप-वृत्तिक जनशक्ति' और 'अन्य उच्चतर शिक्षा प्राप्त जनसमुदाय' के भेद को जानना होगा। इनमें नीचे लिखे ढंग से भेद किया जा सकता है :

(1) **वृत्तिक जनशक्ति** में (क) 'वृत्तिक पदों' पर काम करने वाले सभी योग्यता प्राप्त व्यक्ति, और (ख) ऐसे भी अन्य योग्यता प्राप्त व्यक्ति शामिल हैं जो 'वृत्तिक व्यवसायों' से जीविका अर्जित कर रहे हैं।

'वृत्तिक पद' शैक्षिक दृष्टि से वर्गीकृत वह पद है जो किसी सरकारी विभाग या किसी निगमित उद्यम या किसी संस्था के कार्यालय में रखा गया हो—बशर्ते कि सरकारी विभाग या निगमित उद्यम या संबंधित संस्था उस पद पर काम करने वाले व्यक्ति से सामान्यतया ऐसी शैक्षिक योग्यता की अपेक्षा रखती हो जिसे 'राष्ट्रीय उच्चतर शैक्षिक' स्तर की योग्यता मान लिया गया हो।

'वृत्तिक व्यवसाय' कोई भी ऐसा व्यवसाय है जिसमें जिविका अर्जित करने वाले व्यक्ति के पास 'राष्ट्रीय उच्चतर शैक्षिक' स्तर की किसी मान्यता प्राप्त शैक्षिक योग्यता का होना किसी कानून के द्वारा या उसके अंतर्गत आवश्यक योग्यता के रूप में निर्धारित हो।

(2) 'उपवृत्तिक जनशक्ति', 'उपवृत्तिक पद' और 'उपवृत्तिक व्यवसाय' की परिभाषा भी क्रमशः 'वृत्तिक जनशक्ति', वृत्तिक पद' और 'वृत्तिक व्यवसाय' के ही अनुसार की जा सकती है—परन्तु 'राष्ट्रीय उच्चतर शैक्षिक' स्थान पर 'क्षेत्रीय उच्चतर शैक्षिक' अभिव्यक्ति रखनी होगी।

196. संघीय जनशक्ति प्राधिकरण का यह अविभाज्य दायित्व होना चाहिए कि वह वृत्तिक जनशक्ति के समस्त राष्ट्रीय स्टाक के योजनाबद्ध विकास का आयोजन करे और देश भर में उसके नियोजन को नियमित करे।

राज्य जनशक्ति प्राधिकरण की यह जिम्मेदारी होनी चाहिए कि वह उप-वृत्तिक जनशक्ति के राष्ट्रीय स्टाक के राज्यगत भाग के योजनाबद्ध विकास का आयोजन करे और राज्य में उसके नियोजन को नियमित करे—केवल उसके समन्वय का संघीय जनशक्ति प्राधिकरण करेगा, ताकि अखिल भारतीय आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सके।

वृत्तिक जनशक्ति और उप-वृत्तिक जनशक्ति को छोड़कर राज्यों के उच्च शिक्षा प्राप्त जन-समुदाय से संबंधित उन कामों को करने का अविभाज्य दायित्व राज्य जनशक्ति प्राधिकरणों का होगा जिन्हें अखिल भारतीय नीति के अनुसार करना राज्य के लिए आवश्यक हो।

संघीय जनशक्ति प्राधिकरण तथा राज्य जनशक्ति प्राधिकरण को संसद के अधिनियम के द्वारा वे सभी अधिकार दिए जाने चाहिए जो निर्दिष्ट कामों को पूरा करने के लिए आवश्यक हों।

परिशिष्ट-एक

रिपोर्ट में शामिल नामांकन सांख्यिकी पर एक विवरणात्मक टिप्पणी

(सदस्य सचिव के निर्देशन में श्री डी० एल० शर्मा द्वारा तैयार की गई)

1. इस टिप्पणी का उद्देश्य रिपोर्ट में शामिल नामांकन सांख्यिकी तैयार करने का आधार बताना है।

2. शैक्षिक पद्धति का जैसा संगठन शिक्षा आयोग ने देखा और समझा है, उसका ब्योरेवार विवरण दूसरे अध्याय में दिया गया है। विभिन्न राज्यों में स्कूली स्तर पर वर्तमान ढांचे के साथ प्रस्तावित ढाँचे के जैसे समकरण का यत्न किया गया है, वह इस प्रकार है :

स्कूल स्तर (1965-66) पर कक्षा I से X तक का सम करण

शिक्षा आयोग द्वारा प्रस्तावित	समूह 'क'	समूह 'ख'	समूह 'ग'
X	X	XI	X
IX	IX	X	XI
VIII	VIII	IX	VIII
VII	VII	VIII	VII
VI	VI	VII	VI
V	V	VI	V
IV	IV	V	IV
III	III	IV	III
II	II	III	II
I	I	II	I
पूर्व प्राथमिक शिक्षा	क ख	I	
	असम नागालैंड नेफा	आंध्र प्रदेश बिहार गुजरात मद्रास महाराष्ट्र उड़ीसा दादरा और नगर हवेली गोवा, दमन और दिव पांडिचेरी	जम्मू और कश्मीर केरल मध्य-प्रदेश मैसूर पंजाब राजस्थान उत्तर-प्रदेश पश्चिम बंगाल अंडमान और निकोबार द्वीप समूह दिल्ली हिमाचल प्रदेश लक्कदीव, मिनिकाय और अमीनदीवी द्वीप समूह मणिपुर त्रिपुरा

विवरणात्मक टिप्पणी—(i) ऊपर दिए गए चार्ट में सन् 1965-66 की स्थिति दी गई है। समय-समय पर इसमें परिवर्तन होते रहे है। नामांकन की गणना करते समय वर्षों से संबद्ध स्थिति अपनाई गई है।

(ii) मध्य प्रदेश, दिल्ली और अंडमान-निकोबार द्वीप समूह में दसवी कक्षा के बाद कोई सार्वजनिक परीक्षा नहीं ली जाती। परन्तु इन क्षेत्रों में ग्यारहवी रक्षा के अन्त में उच्चतर माध्यमिक परीक्षा ली जाती है। उसमें उर्तीण होने के बाद त्रिवर्षीय डिग्री पाठ्यक्रम में प्रवेश पाने का अधिकार मिल जाता है। इस कारण हमने इन क्षेत्रों की दसवीं कक्षा को अन्य राज्यों की हाई स्कूल परीक्षा के समकक्ष माना है।

---

3. स्कूली स्तर पर, जिसका अन्त हाई स्कूल में होता है, एक समूह के राज्यों और केन्द्र प्रशासित प्रदेशों में पूर्ण शिक्षण अवधि 12 वर्ष और तीसरे समूह में दस वर्ष है।

4. इस प्रस्ताव का केन्द्र बिन्दु यह है कि हाई स्कूल स्तर की समाप्ति पर सार्वजनिक परीक्षा को (जो कुछ राज्यों में कक्षा 10 और कुछ में कक्षा 11 है) बराबर समझा जाए और इसी प्रकार स्कूली शिक्षा में नीचे की कक्षाओं को समकक्षता प्रदान की जाए। साथ ही उच्चतर शिक्षा के क्षेत्र में भी प्रत्येक ऊपर की कक्षा को समता प्रदान की जाए।

रिपोर्ट में शामिल नामांकन सांख्यिकी में स्कूल की कक्षाओं की समकक्षता नीचे दी जा रही रखी है।

आयोग की रिपोर्ट के अनुसार कक्षा	जिसके समकक्ष मानी गई है
पूर्व प्राथमिक स्तर	समूह 'क' में शिशु क और ख समूह 'ख' में कक्षा I तथा पूर्व-प्राथमिक (सारिणी में नहीं है) एक क्षेत्र के राज्यों में
कक्षा	
I	समूह 'क' और 'ग' में कक्षा I और समूह 'ख' में कक्षा II
II	समूह 'क' और 'ग' कक्षा II और समूह 'ख' में कक्षा III और इसी प्रकार आगे
X	समूह 'क' और 'ग' में कक्षा दस और समूह ख में कक्षा ग्यारह

---

5. उच्चतर शिक्षा पाठयक्रम (कला और विज्ञान) की समकक्षता अगले पृष्ठ की सारिणी में दी गई है।

उच्चतर शिक्षा में समकरण

(1965-66)

प्रथम डिग्री	III	III	A	III	III	III
	II	II	II	II	II	II
	I	I	I	I	I	I
उच्चतर माध्यमिक	XII	II	XII	क	क	क
	XI	I	XI	XI	XI/XII/ पू० वि० पा०	पू० वि० पा०
	शिक्षा आयोग द्वारा प्रस्तावित	केरल (प्रथम दो वर्ष अवर कालेजों में)	उत्तर प्रदेश	मध्य प्रदेश अंडमान विकोवार द्वीपसमूह दिल्ली	आंध्र प्रदेश असम बिहार जम्मू और कश्मीर महाराष्ट्र मैसूर पंजाब राजस्थान पश्चिम बंगाल हिमाचल प्रदेश मणिपुर नेफा त्रिपुरा	गुजरात मद्रास नागालैंड उड़ीसा गोवा, दमन और द्रिव पांडिचेरी

विवरणात्मक टिप्पणी :

(i) 'क' चिह्नित स्तंभ 1986 में जोड़े जाने वाले वर्ष को दिखाता हैं।

(ii) ऊपर दिए गए चार्ट में 1965-66 की स्थिति दी गई है। यह समय-समय पर बदलती रही है। नामांकन की गणना करते समय सबद्ध वर्ष की स्थिति को आधार माना गया है।

(iii) पू० वि० पा०—पूर्व विश्वविद्यालय पाठ्यक्रम

6. **पूर्व-प्राथमिक शिक्षा**—हमारी गणना में पूर्व प्राथमिक शिक्षा के नामांकन में नीचे दी गई तीन श्रेणियां शामिल हैं :

(1) मुख्य पूर्व-प्राथमिक कक्षाएं विशेष

(2) शिशु 'क' कक्षा

(3) शिशु 'ख' कक्षा और कक्षा 1 (जहां यह शिशु कक्षा के समकक्ष है)।

हर वर्ष की गणना में सभी राज्यों और केन्द्र प्रशासित प्रदेशों में, जिनमें ऊपर दी गई श्रेणियां थी, समकक्ष नामांकन एकत्र करके सारिणी 1 में दर्शाया गया है।

7. **सामान्य स्कूली शिक्षा (कक्षा I से X तक)**—1 से X तक की कक्षाओं के नामांकनों में, जिन्हें हमने जोड़ कर एकत्र लिखा है, ऐसे राज्यों की कक्षाएं II से XI तक शामिल हैं, जिनमें स्कूली शिक्षा की अवधि 11 वर्ष हैं। अन्य राज्यों की कक्षाएं I से X शामिल की गई हैं। पुनर्सारिणीकृत नामांकन नीचे सारणी 2 में दिए गए हैं।

सारणी 1. पूर्व-प्राथमिक शिक्षा का नामांकन (1950-51 से 1965-66 तक)

(हजारों में)

कक्षा	1950-51			1955-56			1960-61			1965-66 (प्राक्कलित)		
	लड़के	लड़कियाँ	जोड़	लड़के	लड़कियां	जोड़	लड़के	लड़कियां	जोड़	लड़के	लड़कियां	जोड़
पूर्व प्राथमिक)	15	13	28	45	31	75	97	82	179	130	120	250
शिशु 'क'	687	221	908	445	224	668	532	227	579	453	300	753
शिशु 'ख' और कक्षा 1	2,675	1,566	4,241	4,108	2,283	6,391	4,932	2,922	7,855	6,563	4,207	10,770
जोड़	3,377	1,800	5,177	4,598	2,537	7,135	5,381	3,231	8,612	7,146	4,627	11,773

* **स्रोत** : शिक्षा मंत्रालय, संबद्ध राज्यों का फार्म ए 1960-61 तक। 1965-66 के आंकड़ों का अनुमान आयोग से सचिवालय द्वारा लाया गया था।

* **नोट** : पूर्णांकन के कारण जोड़ में अन्तर हो सकता है।

सारणी 2. कक्षा 1 से X में नामांकन (1950-51) से (1965-66)

(हजारों में)

कक्षा	1950-51			1955-56			1960-61			1065-66 (प्राक्कलित)		
	लड़के	लड़कियां	जोड़	लड़के	लड़कियां	जोड़	लड़के	लड़कियां	जोड़	लड़के	लड़कियां	जोड़
I	3,750	1,466	5,216	4,808	2,137	6,945	6,401	3,127	9,521	6,057	4,827	13,884
II	2,664	909	3,603	3,149	1,295	4,443	4,383	2,026	6,409	6,246,	3,210	9,456
III	2,101	686	2,788	2,450	934	3,384	3,534	1,538	5,073	4,888	2,546	7,434
IV	1,587	458	2,045	1,963	645	2,608	2,852	1,135	3,987	4,345	1,971	6,316
1 से IV कक्षाओं का जोड़	10,102	3,549	13,651	12,369	5,011	17,380	17,170	7,826	24,996	24,536	12,554	37,090
V	1,111	244	1,355	1,470	398	1,867	2,276	814	3,090	3,666	1,550	5,216
VI	873	184	1,056	1,215	304	1,519	1,819	601	2,421	2,897	1,151	4,048
VII	686	131	816	975	232	1,206	1,491	461	1,952	2,399	886	3,285
V से VII कक्षाओं का जोड़	2,669	559	3,228	3,659	933	4,592	5,587	1,876	7,463	8,962	3,587	12,549
VIII	581	91	672	790	163	953	1,191	320	1,511	1,856	620	2,476
IX	378	54	433	630	120	751	920	220	1,140	1,494	421	1,915
X	315	41	356	505	91	596	764	166	930	1,267	332	1,599
VII से X कक्षाओं का जोड़	1.275	186	1,461	1,926	374	2,300	2,876	706	3,582	4,617	1,373	5,990
कुल जोड़	14,046	4,293	18,339	17,954	6.318	24,272	25,633	10,408	36,041	38, 115	17,514	55,629

* सारणी 2 के लिए भी यह लागू है।

9. **स्कूली स्तर पर (1065-66) में नामांकन के अनुमान का आधार**—स्कूली स्तर पर कुल नामांकन 1965-66 के लिए वही मान लिए गए जो योजना आयोग ने दिए थे। कक्षा-क्रम से इन नामांकनों को अलग करने पर यह समझा गया कि क्षति पूर्त्ति की कमी तथा स्कूल में अधिक समय तक रुकने की इच्छा के कारण उच्च कक्षाओं में 1965-66 में 1960-61 की अपेक्षा नामांकन में कुछ सुधार होने की सम्भावना है। सारिणी तीन में सन् 1950-51, 1955-56 तथा 1960-61 वर्षों में स्कूली स्तर पर प्रत्येक कक्षा में नामांकन का वास्तविक अनुपात दिखाया गया है। (यह अनुपात हमारे द्वारा अपनाई गई समग्र रूप से जोड़ने की नई पद्धति के आधार पर तय किया गया है। इसमें वे अनुमान भी दिए गए है जो हमने 1965-56 के इस अनुपात के आधार पर तय किये हैं।

सारणी 3. स्कूल स्तर पर तमाम नामांकनों से प्रत्येक कक्षा के नामांकन का अनुपात

कक्षा	1950-51		1955-56		1960-61		1965-66 (प्राक्कलित)	
	लड़के %	लड़कियां %	लड़के %	लड़कियां %	लड़के %	लड़कियां %	लड़के %	लड़कियां %
पूर्व-प्राथमिक	0.1	0.2	0.2	0.4	0.3	0.6	0.3	0.6
A	3.9	3.6	2.0	2.5	1.1	1.7	1.0	1.3
B	15.4	25.7	18.2	25.8	15.9	21.4	14.5	19.0
I	21.5	24.1	21.3	24.1	20.6	22.9	20.0	21.8
II	15.3	15.4	14.0	14.6	14.1	14.9	13.8	14.5
III.	12.1	11.3	10.9	10.5	11.4	11.3	10.8	11.5
IV.	9.1	7.5	8.7	7.3	9.2	8.3	9.6	8.9
V	6.4	4.0	6.5	4.5	7.3	6.0	8.1	7.0
VI	5.0	3.0	5.4	3.4	5.9	4.4	6.4	5.2
VII	3.9	2.1	4.3	2.6	4.8	3.4	5.3	4.0
VIII	3.3	1.5	3.5	1.8	3.8	2.3	4.1	2.8
IX	2.2	0.9	2.8	1.4	3.0	1.6	3.3	1.9
X	1.8	0.7	2.2	1.0	2.5	1.2	4.8	1.5
जोड़	100.0	100.0	100.0	100.0	100.0	100.0	100.0	100.0

स्रोत—शिक्षा मंत्रालय, राज्यों का 1960-61 तक का फार्म ए. 1965-66 के आंकड़ों का अनुसान आयोग के सचिवालय द्वारा लगाया गया है।

10. **सामान्य स्कूली शिक्षा (XI और XII कक्षाओं के लिए)**—ग्यारहवीं और बारहवीं कक्षाओं की सामान्य स्कूली शिक्षा के नामांकनों की सारिणी बनाने में निम्नांकित वर्गों को भी शामिल किया गया है :

(i) उन सभी राज्यों के उच्चतर माध्यमिक स्कूलों की ग्यारहवीं कक्षा जिन्होंने उच्चतर माध्यमिक प्रणाली अपना ली है।

(ii) पूर्व-विश्वविद्यालय कक्षा।

(iii) उत्तर प्रदेश की इंटरमीडिएट कक्षाएं (प्रथम और द्वितीय वर्ष), अलीगढ़ और बनारस विश्व-विद्यालयों के द्वितीय वर्ष को छोड़कर जहां तीन वर्षीय डिग्रीय पाठ्यक्रम अपना लिया है।

(iv) उन सभी अन्य राज्यों की इंटरमीडिएट कक्षा का प्रथम वर्ष जहां तीन वर्षीय डिग्री पाठ्क्रम अपना लिया गया है और जहां दूसरे वर्ष को स्नातक स्तर का मान लिया गया है।

संक्षेप में हमने सभी मामलों में इन्टरमीडिएट के प्रथम वर्षों को ग्यारहवीं और बारहवीं कक्षा का भाग दिखाया है। जहां तीन वर्षीय डिग्री पाठ्यक्रम अपना लिया गया है, वहां दूसरा वर्ष अवर स्नातत स्तर पर दिखाया गया है। जहां तीन वर्षीय डिग्री पाठ्यक्रम नहीं अपनाया गया है वहां दोनों वर्ष ग्यारहवीं और बारहवीं कक्षाओं के अंतर्गत दिखाए गए हैं। बम्बई नगर इसका एक मात्र अपवाद हैं। उसके लिए पृथक आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं।

इंटरमीडिएट (वाणिज्य) कक्षाएं सामान्य शिक्षा का अंग मानी गई है और तदनुरूप नामांकन ग्यारहवीं और बारहवीं कक्षाओं के अन्तर्गत दिखाए गए हैं।

इन अनुमानों के आधार नामांकन सारणी 4 में दिए गए हैं।

11. **सामान्य शिक्षा (पूर्व स्नातक स्तर)**—पुनः सारणी बनाते समय हमने पूर्व-स्नातक स्तर की सामान्य शिक्षा के नामांकनों में निम्नलिखित को भी शामिल किया है :

(i) उन सभी राज्यों की इंटरमीडिएट के दूसरे वर्ष के नामांकन जिन्होंने अब तीन वर्षीय डिग्री पाठ्यक्रम अपना लिया है।

(ii) कला और विज्ञान के लिए प्रथम डिग्री पाठ्यक्रमों के नामांकन।

(iii) वाणिज्य के लिए प्रथम डिग्री पाठ्यक्रम के नामांकन।

12. **सामान्य शिक्षा (स्नातकोत्तर तथा अनुसंधान)**—स्नातकोत्तर तथा अनुसंधान स्तर की सामान्य शिक्षा के नामांकनों के संबंध में कोई कठिनाई नहीं है। ये शिक्षा मंत्रालय के प्रकाशनों में से ले लिए गए हैं और पूर्व स्नातक स्तर पर नामांकनों के साथ-साथ सारणी 5 में दिए गए हैं।

13. **वृत्तिक विद्यालय**—वृत्तिक विद्यालयों में नामांकन मिले-जुले प्रकार के हैं। पालिटेक्निक जैसे कुछ पाठ्यक्रमों में प्रवेश केवल उन्हें दिया जाता है जो माध्यमिक विद्यालय की परीक्षा में उत्तीर्ण हों जाते हैं। अन्य पाठ्यक्रमों में, जैसे अध्यापक-प्रशिक्षण या औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों में माध्यमिक विद्यालय की अन्तिम परीक्षा में उत्तीर्ण होने वालों को भी स्थान मिल जाता है और केवल प्राथमिक विद्यालय की अन्तिम परीक्षा में उत्तीर्ण होने वालों को भी। कुछ अन्य पाठ्यक्रमों में जैसे कला और शिल्प (उदाहरणतः सिलाई) में प्रवेश लेने वालों में अधिकांश वे होते हैं जो माध्यमिक विद्यालय की अंतिम परीक्षा में उत्तीर्ण नहीं होते, यद्यपि बहुत थोड़े विद्यार्थी ऐसे भी होते हैं जो इसमें उत्तीर्ण हो चुके हों। इसलिए उन विद्यार्थियों के संबंध में जो माध्यमिक विद्यालय की अंतिम परीक्षा में उत्तीर्ण हैं और वे जो केवल प्राथमिक विद्यालय की पढ़ाई पूरी कर चुके हैं कुछ पूर्वधारणाएं करनी होंगी। हमारे पूर्वानुमान इस प्रकार हैं :

(i) **अध्यापक प्रशिक्षण** : इस नामांकनों में से 20 प्रतिशत ऐसा माना गया जिसने माध्यमिक विद्यालय की पढ़ाई पूरी नहीं की।

(ii) **कला और शिल्प** : कुल नामांकन ऐसा माना गया जिसने माध्यमिक विद्यालय की पढ़ाई पूरी नहीं की।

वृत्तिक पाठ्यक्रमों, जैसे, इंजीनियरी और शिल्पविज्ञान, चिकित्सा और पशु-चिकित्सा, कृषि और वानिकी, वाणिज्य शारीरिक शिक्षा, पुस्तकालय विज्ञान, सहकारिता, नौ-प्रशिक्षण आदि में नामांकन उच्चतर माध्यमिक स्तर या ग्यारहवीं-बारहवीं कक्षाओं के स्तर के समकक्ष माना गया। हम समझते हैं कि कृषि और चिकित्सा विद्यालयों में ऐसे विद्यार्थियों का बहुत थोड़ा अनुपात है जिन्होंने माध्यमिक स्कूल की पढ़ाई पूरी नहीं की है, फिर भी हमारी धारणा है कि उन विद्यार्थियों के नामांकन से जिन्होंने माध्यमिक स्कूल की पढ़ाई पूरी करली है और कला तथा शिल्प-पाठ्यक्रमों में प्रवेश ले लिया है, यह कमी पूरी हो जाएगी।

14. इन आधारों पर पाठ्यक्रमों के नामांकन का पुर्नसारिणीकरण सारिणी 6 में दिया गया है।

15. **विश्वविद्यालय स्तर पर व्यावसायिक शिक्षा**—विश्वविद्यालय स्तर पर व्यावसायिक शिक्षा के नामांकनों को हमने तीन भागों में बांटा है :

(i) उच्चतर माध्यमिक स्तर या ग्यारहवीं और बाहरवीं कक्षा के समकक्ष नामांकन;

(ii) प्रथम डिग्री या पूर्व-स्नातक स्तर के नामांकन;

(iii) द्वितीय डिग्री या स्नातकोत्तर स्तर के नामांकन।

उच्चतर माध्यमिक स्तर (ग्यारहवीं और बारहवीं कक्षा) के समकक्ष नामांकन

प्रशिक्षण कालेजों में नामांकनों के आंकड़ों में बी० टी० या बी० एड्० डिग्रियों की तैयारी करने वाले स्नातकों के

नामांकन उस के साथ मिले हुए हैं जो मैट्रिक पास करने के बाद एक या दो वर्ष का पाठ्यक्रम पूरा कर रहे हैं। बी० टी० और बी० एड्० कक्षा के नामांकन शिक्षा मंत्रालय के प्रकाशन 'एजुकेशन इन यूनिवर्सिटीज' में अलग से भी उपलब्ध हैं। इनको घटाने के बाद तथा तत्संबंधी तथ्यों में आवश्यक समंजन करने के बाद हमने प्रशिक्षण कालेजों में मात्र उन विद्यार्थियों के नामांकन का अनुमान दिया है जो माध्यमिक स्कूल स्तर पूरा कर चुके हैं। इन्हें उच्चतर माध्यमिक स्तर पर दिखाया गया है।

इसी तरह हमने इंटरमीडिएट विज्ञान (कृषि) के नामांकनों का अनुमान लगाया है और उन्हें स्कूली स्तर पर कक्षा ग्यारह और बारह के समकक्ष वृत्तिक शिक्षा के अन्तर्गत दिखाया है।

इसी तरह हमने इंटरमीडिएट (वाणिज्य) के नामांकन का अनुमान लगाया है, और जैसा कि पहले बताया जा चुका है, इन्हें उच्चतर माध्यमिक स्तर की सामान्य शिक्षा के अन्तर्गत दिखाया है।

उच्चतर शिक्षा के क्षेत्र में व्यावसायिक पाठ्यचर्या के बचे हुए सभी नामांकनों को दो वर्गों में विभाजित किया गया था : प्रथम डिग्री स्तर का नामांकन (या अवर स्नातक) और द्वितीय तथा अनुसंधान डिग्री स्तर का नामांकन (स्नातकोत्तर)।

16. उपर्युक्त अनुमानों के आधार पर पुनर्सारिणीकृत नामांकन सारिणी 7 में दिए गए हैं।

17. **कुल नामांकन**—संपूर्ण शैक्षिक पद्धति के कुल नामांकनों को उपर्युक्त आधार पर सारिणी 8 में पुर्नसारिणीकृत किया गया है। इस संदर्भ में निम्नलिखित बातें ध्यान देने योग्य है।

(i) अवर माध्यमिक शिक्षा के समकक्ष (VIII से X कक्षा तक) वृत्तिक शिक्षा के नामांकन सारिणी 6 के स्कूल खण्ड से लिए गए हैं।

(ii) उच्चतर माध्यमिक शिक्षा (कक्षा XI से XII) उच्चतर माध्यमिक स्तर के समकक्ष वृत्तिक शिक्षा के नामांकन सारिणी 6 और 7 से लिए गए हैं।

(iii) विशेष स्कूलों और कालेजों के नामांकनों के पुनर्सारिणीकरण का कोई यत्न नहीं किया गया हैं। इनको शिक्षा-मंत्रालय के प्रकाशनों से ज्यों का त्यों के लिया गया है।

18. **शिक्षा मंत्रालय द्वारा प्रकाशित नामांकन सांख्यिकी**—शिक्षा मंत्रालय द्वारा प्रकाशित नामांकन सांख्यिकी में स्कूल स्तर पर समकक्षता के लिए दूसरी पद्धति अपनाई गई है। उसमें सबसे निचली कक्षाओं को एक दूसरे के बराबर दिखाया गया है, जैसे असम में शिशु 'ए' के बराबर महाराष्ट्र जैसे राज्यों की कक्षा 'ए' जहां स्कूल-व्यवस्था ग्यारह वर्ष की है और उत्तर प्रदेश जैसे राज्य की पहली कक्षा जहां स्कूल-व्यवस्था 10 वर्ष की है—इन सबको एक साथ समकक्षता दी गई हैं। समकक्षता कक्षा क्रम से उत्तरोत्तर दिखाई गई है। इस तरीके में मुख्य कमी यह है कि जो कक्षाएं एक दूसरे से काफी भिन्न है उनको भी एक साथ जोड़ दिया गया है। उदाहरण के लिए उत्तर प्रदेश की कक्षा X जो मैट्रिक है, उसे बिहार की कक्षा X के साथ जो पूर्व मैट्रिक हैं, या दिल्ली की कक्षा XI जो उच्चतर माध्यमिक कक्षा है उसे महाराष्ट्र की कक्षा XI के साथ जो मैट्रिक है, जोड़ दिया गया है।

तुलना के लिए इस पद्धति के अनुसार नामांकन मारणी 9 में दिए गए हैं। देखा जा सकता है कि सारणी 8 और सारिणी 9 के नामांकनों के जोड़ मिलते हैं। किन्तु उप-स्तर के नामांकनों के जोड़ नहीं मिलते। इसके कारण पहले ही समझाए जा चुके हैं।

सारणी 4. सामान्य स्कूल शिक्षा की कक्षा 11 और 12 के लिए नामांकन (1950-51 से 1965-66)

पाठ्यक्रम के प्रकार	1950-51			1955-56			1960-61			1965-66 (प्राक्कलित)		
	लड़के	लड़कियां	जोड़	लड़के	लड़कियां	जोड़	लड़के	लड़कियां	जोड़	लड़के	लड़कियां	जोड़
कक्षा 11 और 12												
सामान्य शिक्षा	1,21,693	17,193	1,38,886	2,23,388	35,655	2,59,043	3,84,964	72,353	4,57,317	6,38,690	1,38,320	7,77,010
इण्टरमीडिएट (वाणिज्य)	18,554	58	18,612	28,242	242	28,484	33,303	405	36,708	56,745	700	57,445
कुल	1,40,247	17,251	1,57,498	2,51,630	35,897	2,87,527	4,18,267	72,758	4,91,025	6,95,435	1,39,020	8,34,455

स्रोत : शिक्षा मंत्रालय, संबद्ध राज्यों का फार्म ए

सारणी 5. पूर्व-स्नातक और स्नातकोत्तर स्तर के लिए सामान्य शिक्षा में नामांकन (1950-51 से 1965-66)

पाठ्यक्रम के प्रकार	1950-51			1955-56			1960-61			1965-66 (प्राक्कलित)		
	लड़के	लड़कियां	जोड़	लड़के	लड़कियां	जोड़	लड़के	लड़कियां	जोड़	लड़के	लड़कियां	जोड़
1. पूर्व-स्नातक स्तर का कला और विज्ञान पाठ्यक्रम	153,151	22,029	175,180	248,571	45,961	294,532	313,385	82,483	395,868	549,510	147,480	696,990
2. पूर्व-स्नातक स्तर का वाणिज्य पाठ्यक्रम	15,579	104	15,683	27,254	162	27,416	37,919	416	38,335	61,455	800	62,255
कुल (पूर्व स्नातक)	168,730	22,133	190,863	275,825	46,123	321,948	351,304	82,899	434,203	610,965	148,280	759,245
3. **स्नातकोत्तर**												
एम० ए० और एम० एस०-सी०	14,401	2,127	16,528	21,293	4,040	25,333	37,541	9,298	46,839	62,350	15,910	78,269
अनुसंधान	1,051	139	1,190	2,193	371	2,564	3,576	697	4,273	6,450	1,290	7,740
कुल (स्नातकोत्तर तथा अनुसंधान	15,452	2,266	17,718	23,486	4,411	27,897	41,117	9,995	51,112	68,800	17,200	86,000

स्रोत : शिक्षा मंत्रालय, संबद्ध राज्यों का फार्म ए

सारणी 6. व्यावसायिक स्कूलों/पाठ्यक्रमों में नामांकन (1950-51 से 1965-66)

पाठ्यक्रम के प्रकार	1950-51			1956-56			1960-61			1965-66 (प्राक्कलित)		
	लड़के	लड़कियां	जोड़	लड़के	लड़कियां	जोड़	लड़के	लड़कियां	जोड़	लड़के	लड़कियां	जोड़
अवर माध्यमिक स्तर (कक्षा 8 से 10)												
1. अध्यापक प्रशिक्षण	10,414	3,599	14,013	13,007	5,176	18,183	18,226	6,310	24,536	...	...	...
2. कला और शिल्प आदि	18,185	14,156	32,241	25,553	26,669	52,222	46,584	29,110	75,694	...	...	...
कुल	28,599	17,755	46,354	38,560	31,845	70,405	64,810	35,420	100,230	90,100	46,800	1,36,900
उच्चतर माध्यमिक स्तर (कक्षा 11 से 12)												
1. अध्यापक प्रशिक्षण	41,655	14,395	56,050	52,026	20,705	72,731	72,904	25,242	98,146	...	...	...
2. इंजीनियरी और टैकनोलॉजी	20,811	337	21,148	41,181	214	41,395	85,864	438	86,302	...	...	...
3. चिकित्सा विज्ञान तथा पशु-चिकित्सा विज्ञान	3,221	1,452	4,673	4,308	2,565	6,873	5,332	6,536	11,868	...	...	...
4. कृषि और वानिकी	1,872	9	1,881	5,332	14	5,346	7,832	74	7,906	...	...	...
5. वाणिज्य	34,206	3,280	37,486	69,241	10,326	79,567	95,790	17,034	112,824	...	...	...
6. शारीरिक शिक्षा†	1,000	300	1,300	1,871	372	2,243	2,929	515	3,444	...	...	...
7. पुस्तकालय विज्ञान	...	...	...	...	...	...	50	...	50	...	...	...
8. सहकारिता	...	...	...	...	...	...	1,656	15	6,671	...	...	...
9. नौ-प्रशिक्षण	116	...	116	1,206	...	1,206	1,561	...	1,561	...	...	...
10. अन्य विषय	...	...	...	354	...	354	770	275	1,045	...	...	...
जोड़	102,881	19,773	122,654	175,519	34,196	209,715	274,688	50,129	324,817	439,900	73,200	513,100
कुल जोड़	131,480	37,528	169,008	214,079	66,041	280,120	339,498	85,549	425,047	430,000	120,000	650,000

स्रोत : शिक्षा मंत्रालय, फार्म ए

† हमने 1950-51 के लिए अखाड़ों के नामांकन छोड़ दिए हैं क्योंकि यह गणना बाद में छोड़ दी गई।

सारणी 7. वृत्तिक पाठ्यक्रम में नामांकन (1950-51 से 1965-66)

पाठ्यक्रम का प्रकार	1950-51			1955-56			1960-61			1965-66 (प्राक्कलित)		
	लड़के	लड़कियां	जोड़	लड़के	लड़कियां	जोड़	लड़के	लड़कियां	जोड़	लड़के	लड़किया	जोड़
कृषि												
उच्चतर माध्यमिक स्तर	1,630	2	1,632	2,359	16	2,375	6,717	74	6,791	11,600	200	11,800
पूर्व स्नातक स्तर	2,579	20	2,399	3,000	15	3,015	8,627	65	8,692	14,750	150	14,900
स्नाकोत्तर तथा अनुसंधान	400	2	402	481	6	487	355	10	365	3,280	20	3,300
कुल	4,609	24	4,633	5,840	37	5,877	15,699	149	13,841	29,630	370	30,000
वाणिज्य												
उच्चतर माध्यमिक स्तर	18,554	58	19,612	28,242	242	28,484	33,303	405	33,708	56,745	700	57,445
पूर्व स्नातक स्तर	15,579	104	15,683	27,254	162	27,416	37,919	416	33,335	61,455	800	62,255
स्नातकोत्तर तथा अनुसंधान	2,047	5	2,052	3,000	18	3,018	6,226	43	6,269	9,440	60	9,500
कुल	35,180	167	36,347	58,496	422	58,918	77,448	864	78,312	127,640	1,560	129,200
अध्यापक प्रशिक्षण												
उच्चतर माध्यमिक स्तर	180	150	330	1,112	890	2,002	17,656	9,032	26,688	25,415	13,685	39,100
पूर्व स्नातक स्तर	3,399	1,586	4,885	8,500	3,288	11,788	13,500	6,000	19,500	21,500	10,500	32,000
स्नातकोत्तर तथा अनुसंधान	260	110	370	350	140	490	450	170	620	600	300	900
कुल	3,839	1,746	5,585	9,962	4,318	14,280	31,606	15,202	46,808	47,515	24,485	72,000

सोत : 1960-61 तक शिक्षा मंत्रालय का फार्म ए। 1965-66 के आंकड़े शिक्षा आयोग के सचिवालय में तैयार किए गए है।

सारणी 7. वृत्तिक पाठ्यक्रम में नामांकन (1950 और 1965-66) (जारी)

पाठ्यक्रम के प्रकार	1950-51			1955-56			1960-61			1965-66 (प्राक्कलित)		
	लड़के	लड़कियां	जोड़	लड़के	लड़कियां	जोड़	लड़के	लड़कियां	जोड़	लड़के	लड़कियां	जोड़
इंजीनियरी और टैक्नोलॉजी												
पूर्व-स्नातक स्तर	12,968	37	13,005	19,311	34	19,345	46,719	372	47,091	..	..	78,000
स्नातकोत्तर और अनुसंधान	260	3	263	509	4	513	745	2	747	..	..	2,000
कुल	13,228	40	13,268	19,820	38	19,858	47,464	374	47,838	..	..	80,000
विधि												
पूर्व स्नातक स्तर	12,936	287	13,223	19,349	331	19,680	25,400	769	26,169	30,662	1,038	31,700
स्नातकोत्तर और अनुसंधान	207	4	211	572	16	588	936	36	972	1,250	50	1,300
कुल	13,143	291	13,434	19,921	347	20,268	26,336	805	27,141	31,912	1,088	33,000
चिकित्सा विज्ञान												
पूर्व स्नातक स्तर	11,930	2,231	14,161	19,721	3,719	23,440	29,264	7,638	36,902	..	..	60,500
स्नातकोत्तर और अनुसंधान	690	110	800	1,364	268	1,632	2,900	600	3,500	..	..	4,500
कुल	12,620	2,341	14,961	21,085	3,987	25,072	32,164	8,238	40,402	..	..	65,000
पशु चिकित्सा विज्ञान												
पूर्व स्नातक स्तर	1,290	6	1,296	3,536	13	3,549	5,328	45	5,373	..	..	6,250
स्नातकोत्तर और अनुसंधान	50	..	50	100	..	100	170	2	172	..	..	250
कुल	1,340	6	1,346	3,636	13	3,649	5,498	47	5,545	..	..	6,500

सारणी 7. वृत्तिक पाठ्यक्रम में नामांकन (1950 और 196566) (समाप्त)

पाठ्यक्रम के प्रकार	1950-51			1955-56			1960-61			1965-66		
	लड़के	लड़कियां	जोड़	लड़के	लड़कियां	जोड़	लड़के	लड़कियां	जोड़	लड़के	लड़कियां	जोड़
वन विज्ञान												
पूर्व स्नातक स्तर	243	. .	243	250	. .	250	558	. .	558	600	. .	600
स्नातकोत्तर और अनुसंधान	70	. .	70	70	. .	70	125	. .	125	200	. .	200
कुल	313	. .	313	320	. .	320	683	. .	683	800	. .	800
अन्य विषय												
पूर्व स्नातक स्तर	323	53	376	656	51	707	1,944	410	2,354	. .	. .	3,250
स्नातकोत्तर और अनुसंधान	. .	. .	. .	40	5	45	145	35	180	. .	. .	250
कुल	323	53	376	696	56	752	2,089	445	2,534	. .	. .	3,500
कुल जोड़												
उच्चतर माध्यमिक स्तर	20,364	210	20,574	31,713	1,148	32,861	57,676	9,511	67,187	93,760	14,585	108,345
पूर्व स्नातक स्तर	61,247	4,224	65,471	101,577	7,613	109,190	169,259	15,715	184,974	256,040	33,415	289,455
स्नातकोत्तर तथा अनुसंधान	3,984	234	4,218	6,486	457	6,943	12,052	898	12,950	20,200	2,000	22,200
सभी स्तरों का जोड़	85,595	3,668	90,263	139,776	9,218	148,994	238,987	26,124	265,111	370,000	50,000	420,000

स्रोत : 1965-66 को छोड़कर, जिसके आंकड़े आयोग के सचिवालय में तैयार किए गए हैं, शिक्षा मंत्रालय का फार्म 'ए'

नोट : वृत्तिक शिक्षा के निचल नामांकनों के लिए इंटर वाणिज्य, और बी० कॉम० के आंकड़े, जो ऊपर के आंकड़ों में शामित हैं, शामिल न किए जाएं ।

सारणी 8. शैक्षिक पद्धति में कुल नामांकन (नई पद्धति के अनुसार पुनः सारणीबद्ध) (1950-51 से 1965-66)

(हजारों में)

शिक्षा का स्तर	1950-51			1955-56			1960-61			1965-66 प्राक्कलित		
	लड़के	लड़कियां	जोड़	लड़के	लड़कियां	जोड़	लड़के	लड़कियां	जोड़	लड़के	लड़कियां	जोड़
सामान्य शिक्षा												
1. पूर्व प्राथमिक	3,377	1,800	5,177	4,598	2,537	7,135	5,381	3,231	8,612	7,146	4,627	11,773
2. अवर प्राथमिक कक्षा 1 से 4 तक	10,102	3,549	13,651	12,369	5,011	17,380	17,170	7,826	24,996	24,536	12,554	37,090
3. उच्चतर प्राथमिक कक्षा 5 से 8	2,669	559	3,228	3,659	933	4,593	5,587	1,876	7,463	8,962	3,586	12,549
4. अवर माध्यमिक (कक्षा 8 से 10)	1,275	186	1,461	1,926	374	2,300	2,876	706	3,582	4,617	1,373	5,990
5. उच्चतर माध्यमिक (कक्षा 11 से 12)	140	17	157	252	36	288	418	73	491	695	139	834
6. पूर्व-स्नातक	169	22	191	276	46	322	351	83	434	611	148	759
7. स्नातकोत्तर और अनुसंधान	15	2	18	23	4	28	41	10	51	69	17	86
व्यावसायिक शिक्षा												
8. अवर माध्यमिक स्तर पर	29	18	46	39	32	70	65	35	100	90	47	137
9. उच्चतर माध्यमिक स्तर पर	105	20	125	179	35	214	299	59	358	477	87	564
10. वृत्तिक शिक्षा (प्रथम डिग्री)	46	4	50	74	7	82	131	15	147	195	33	227
11. वृत्तिक शिक्षा (स्नातकोत्तर तथा अनुसंधान)	4	..	4	6	1	7	12	1	13	20	2	22
विशेष शिक्षा												
12. विशेष स्कूल	132	18	150	182	33	215	162	36	297	185	40	225
13. विशेष कालेज	6	2	7	9	3	12	15	7	22	23	12	35
कुल	18,068	6,197	24,265	22,592	9,053	22,645	32,508	13,959	46,467	47,626	22,666	70,292

टिप्पणी : पूर्णांकन के कारण जोड़ नहीं मिलते हैं।

सारणी 9. प्रचलित शिक्षा पद्धति के अनुसार नामांकन (1950-51 से 1965-66)

(हजारों में)

शिक्षा का स्तर	1950-51			1955-56			1960-61			1965-66 प्राक्कलित		
	लड़के	लड़कियां	जोड़	लड़के	लड़कियां	जोड़	लड़के	लड़कियां	जोड़	लड़के	लड़कियां	जोड़
सामान्य शिक्षा												
पूर्व प्राथमिक	15	13	28	45	31	75	97	82	179	130	120	250
अवर प्राथमिक (कक्षा 1 से 4 तक)	12,294	4,961	17,256	15,706	7,058	22,764	21,002	10,380	31,383	29,185	16,430	45,615
उच्चतर प्राथमिक (कक्षा 5 से 7)	3,338	829	4,167	4,308	1,229	5,536	6,299	2,259	8,558	9,789	3,866	13,615
अवर माध्यमिक (कक्षा 8 से 10)	1,551	259	1,809	2,204	474	2,677	3,250	841	4091	5,294	1,562	6,856
उच्चतर माध्यमिक (कक्षा 11 से 12)	230	33	263	294	66	360	447	92	539	991	195	1,186
पूर्व विश्वविद्यालय/इण्टरमीडिएट†	195	26	221	342	55	396	381	77	458	621	136	757
पूर्व स्नातक	75	12	87	126	25	151	236	64	299	439	118	557
स्नातकोत्तर तथा अनुसंधान	15	2	18	23	4	28	41	10	51	69	17	86
व्यावसायिक शिक्षा (स्कूल स्तर की)	149	41	191	214	66	280	339	86	425	530	120	650
वृत्तिक शिक्षा (कालेज स्तर की)	86	5	90	140	9	149	239	26	265	370	50	420
विशेष शिक्षा (स्कूल स्तर की)	132	18	150	182	33	215	162	36	197	185	40	225
विशेष शिक्षा (कालेज स्तर की)	6	2	7	9	3	12	15	7	22	23	12	35
कुल	*18,086	*6,201	*4,287	23,592	9,053	32,645	††32,501	††13,959	††46,467	47,626	22,666	70,292

† इसमें उत्तर प्रदेश की कक्षा XI और XII के नामांकन शामिल हैं।

* इसमें अखाड़ों (व्यावसायिक शिक्षा स्कूल स्तर) में 17,965 लड़के और 3,595 लड़कियां शामिल हैं। संशोधित में इन्हें छोड़ दिया गया हैं।

†† इसमें नेफा के 6197 लड़के और 852 लड़कियां शामिल हैं और नागालैंड की गैर-मान्यता प्राप्त संस्थाओं के 2842 लड़के लड़के और 1485 लड़कियां शामिल हैं। नागालैंड की कक्षा वार संख्याएं उपलब्ध नहीं हैं।

टिप्पणी : पूर्णांकन के कारण जोड़ नहीं मिलते।

परिशिष्ट-दो

शिक्षा आयोग की स्थापना के लिए भारत सरकार का संकल्प

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद से भारत सरकार इस बात की ओर काफी ध्यान देती रही है कि देश में शिक्षा की ऐसी राष्ट्रीय पद्धति का विकास किया जाए जो बुनियादी मूल्यों पर आधारित हो, भारतीय राष्ट्र की गौरवपूर्ण परम्परा पर आश्रित हो और आधुनिक समाज की आवश्यकताओं और आकांक्षाओं से मेल खाती हो। यद्यपि इन दिशाओं में कुछ प्रयत्न किए गए फिर भी सामान्यतः शिक्षा पद्धति समय की आवश्यकताओं के अनुरूप नहीं ढाली जा सकी और राष्ट्रीय सक्रियता के इस महत्वपूर्ण क्षेत्र के अनेक खण्डों में विचार और कार्य के बीच एक बहुत बड़ी और दुखदायी खाई अब भी विद्यमान है। देश से आर्थिक और सामाजिक विकास के लिए, सच्चे प्रजातांत्रिक समाज के संगठन के लिए, भावनात्मक ऐक्य और एकता बढ़ाने के लिए, और सबसे अधिक, श्रेष्ठता और पूर्णता प्राप्ति के अनंत प्रयत्नों के लिए तथा व्यक्ति के उत्कर्ष के लिए शिक्षा के योगदान के महत्व की दृष्टि से यह आवश्यक समझा गया कि शिक्षा के सम्पूर्ण क्षेत्र का सर्वेक्षण और परीक्षण किया जाए ताकि कम-से-कम समय में ऐसी राष्ट्रीय शिक्षा पद्धति का विकास किया जा सके जो भली भांति संतुलित, सुसंबद्ध, और उपयुक्त हो तथा राष्ट्रीय जीवन के सभी क्षेत्रों को सशक्त योग दे सके।

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद राष्ट्रीय विकास का एक नया युग प्रारम्भ हुआ जिसमें धर्म-निरपेक्ष प्रजातंत्र को न केवल राज्य-प्रणाली के रूप में बल्कि जीवन-पद्धति के रूप में अपनाया गया। यह पद्धति कृषि आधुनिकीकरण, उद्योगों के त्वरित विकास, आधुनिक विज्ञान और टेक्नालॉजी के अंगीकरण और परम्परागत अध्यात्मिक मूल्यों से उनके संमठीकरण के द्वारा जनता की गरीबी दूर करने और सभी के लिए जीवन का समुचित स्तर सुनिनिश्चित करने के संकल्प पर आधारित है; ऐसे समाजवादी समाज की स्थापना जिसमें सम्पत्ति का समान वितरण सुरक्षित हो शिक्षा, रोज़गार तथा सांस्कृतिक विकास के क्षेत्र में सबको समान अवसर उपलब्ध हों। इस अनुभव के फलस्वरूप शिक्षा के विकास पर पहले से अधिक जोर दिया गया, विशेषकर विज्ञान और शिल्पविज्ञान की शिक्षा सामाजिक रूपान्तरण और आर्थिक प्रगति का सर्वाधिक सशस्त उपकरण है तथा स्वतन्त्रता, समानता और न्याय के आधार पर नई सामाजिक व्यवस्था के निर्माण का प्रयत्न तभी हो सकता है जब परम्परागत शिक्षा-पद्धति के मूलतत्त्व और व्याप्ति में क्रान्तिकारी परिवर्तन किए जाएं।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद शिक्षा के सभी क्षेत्रों में परिमाण की दृष्टि से अभूतपूर्व विकास हुआ तथापि शैक्षिक विकास के अनेक पक्षों पर अब भी पर्याप्त असंतोष है। उदाहरण के लिए यह अब तक संभव नहीं हो सका है कि 14 वर्ष तक की आयु के सभी बच्चों के लिए निःशुल्क और सर्वजनीन शिक्षा की व्यवस्था की जा सके। सामूहिक निरक्षरता की समस्या अब भी विकट है। माध्यमिक और विश्वविद्यालयी शिक्षा को उपयुक्त स्तर तक बढ़ाना भी संभव नहीं हुआ है। माध्यमिक और उच्चतर शिक्षा पाठ्यचर्याओं का बहुविधान समय के साथ मेल नहीं खाता। परिणामतः एक ओर शिक्षित बेरोजगारी की समस्या घनीभूत हो गई है और दूसरी ओर अनेक क्षेत्रों में प्रशिक्षित जन-शक्ति की कमी भी उतनी ही सघन है। अध्यापकों के पारिश्रमिक और सेवा-स्थितियों में भी बहुत सुधार करना है। अनेक महत्वपूर्ण शैक्षिक समस्याओं के विषय में तीव्र मतभेद है। संक्षेप में, शिक्षा के क्षेत्र में गुणात्मक सुधारों की परिमाणगत विस्तार के साथ संगति नहीं बैठाई जा सकी। शिक्षा की गुणता से सम्बन्धित राष्ट्रीय नीतियां और कार्यक्रम संतोषजनक रूप से कार्यान्वित नहीं किए सके यद्यपि वे सामान्यतया सर्वसम्मत थे और उनकी कल्पना सुनियोजित थी।

4. भारत सरकार इस बात पर आश्वस्त है कि शिक्षा राष्ट्रीय समृद्धि और कल्याण की कुंजी है; मानवीय साधनों के अतिरिक्त अन्यत्र लगाई पूंजी से उतना लाभ नहीं हो सकता और शिक्षा मानव-साधनों का सबसे अधिक महत्वपूर्ण अंग है। सरकार ने विज्ञान और शिल्पविज्ञान के सभी साधनों को संचालित करने का भी निर्णय किया है यह तभी संभव है जब शिक्षा का आधार सम्यक् और प्रगतिशील हो। इसी उद्देश्य से शिक्षा के निकास और वैज्ञानिक अनुसंधान में लगे सम्पूर्ण निवेश को पर्याप्त मात्रा में बढ़ाने का निर्णय भी सरकार ने किया है शिक्षा की गुणवत्ता पर व्यय के लिए राष्ट्र को सन्नद्ध रहना

होगा। सभी वर्ग के लोग शिक्षा को जो महत्व देते हैं उसे देखते हुए यह स्पष्ट है कि वे इस व्यय के लिए सहर्ष तैयार रहेंगे।

5. शिक्षा पद्धति के विभिन्न अंगों की एक दूसरे पर सशक्त प्रतिक्रिया होती है और वे एक दूसरे पर प्रभाव डालते हैं। इसलिए शैक्षिक विकास के सम्पूर्ण क्षेत्र का सर्वेक्षण आवश्यक है। कार्यक्षम माध्यमिक स्कूलों के बिना प्रगतिशील और सुदृढ़ विश्वविद्यालयों की स्थापना सम्भव नहीं और माध्यमिक स्कूलो की गुणवत्ता प्राथमिक स्कूलों संचालन पर निर्भर है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि शिक्षा पर उसके विभिन्न अंगों और स्तरों की दृष्टि से नहीं, बल्कि समग्र रूप से कल्पनात्मक दृष्टि से विचार और संक्षिप्त सर्वेक्षण किया जाए। पहले अनेक आयोगों और समितियों ने शिक्षा के सीमिति और विशिष्ट पक्षों पर ही विचार किया है। अब समग्र शिक्षा-पद्धति की व्यापक समीक्षा करने का प्रस्ताव है।

6. यद्यपि भारत के लिए शिक्षा की योजना आवश्यक रूप से भारतीय अनुभवों और परिस्थितियों से ही उद्भूत होनी चाहिए तथापि, भारत सरकार का मत है कि उत्तम शिक्षा-पद्धति की खोज के सामूहिक प्रयत्न में विश्व के अन्य भागों के ऐसे शिक्षाविदों और वैज्ञानिकों का सहयोग और अभिमत प्राप्त करना लाभदायक होगा। आज अनेक तरह से दुनिया सिमटती जा रही है और उत्तम-शिक्षा सम्पूर्ण मानव जाति का अभीष्ट है। इसलिए यह निश्चय किया गया कि आयोग के साथ सदस्य या परामर्शदाता के रूप में अन्य देशों के कुछ प्रमुख वैज्ञानिकों और शिक्षाविदों को सम्बद्ध किया जाए। यूनेस्को (संयुक्त राष्ट्र संघ का शिक्षा विज्ञान और सांस्कृतिक संगठन) के तीन सदस्य आयोग में शामिल हुए। इनके नाम हैं : मि० जीन तोमस, शिक्षा-महानिरीक्षक, फांस, जो यूनेस्को के भूतपूर्व सहायक महानिदेशक थे, प्रो० शूमोवस्की, निदेशक, मैथॉडॉलॉजिकल डिविजन, उच्च और विशिष्ट माध्यमिक शिक्षा मंत्रालय, आर०एस०एफ० एस० आर० मास्को और मास्को विश्वविद्यालय के भौतिकी के प्राध्यापक, प्रो० सदातोपी इहारा, प्राध्यापक, प्रथम संकाय विज्ञान और टैक्नालॉजी, वासेदा विश्वविद्यालय, टोकियो। ये सभी आयोग में तभी शामिल हो गए थे। आशा है कि परामर्शदाता के रूप में कुछ अन्य वैज्ञानिकों और शिक्षाविदों का सहयोग आयोग को मिलेगा। इस सम्बन्ध में कुछ अन्य विशेषज्ञों से पत्र-व्यवहार हो रहा है। विदेशी परामर्शदाताओं के अतिरिक्त नाम आने पर समय-समय पर सूचना दी जाएगी। इसके अतिरिक्त, आयोग को यह भी अधिकार दिया गया है कि वह अपनी जांच के किसी भी पक्ष पर राय लेने के लिए समय-समय पर परामर्शदाताओं को आवश्यकतानुसार आमंत्रित करे।

7. पिछले पैराग्राफों में जो उद्देश्य दिए गए हैं उनको ध्यान में रखते हुए भारत सरकार ने शिक्षा आयोग की स्थापना का निश्चय किया है। आयोग में निम्नलिखित सदस्य होंगे।

अध्यक्ष

1. प्रो० डी० एस० कोठारी, अध्यक्ष, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली।

सदस्य

2. श्री ए० आर० डावुड, भूतपूर्व निदेशक, विस्तार कार्यक्रम, माध्यमिक शिक्षा, नई दिल्ली।
3. श्री एच० एल० एल्विन, निदेशक, इंस्टीट्यूट आफ एजूकेशन, लंदन विश्वविद्यालय, लंदन।
4. श्री आर० ए० गोपालस्वामी, निदेशक, व्यावहारिक मानव शक्ति अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली।
5. डा० वी० एस० झा, भूतपूर्व निदेशक, लंदन स्थित कामन्वेल्थ एजूकेशन लियाज़ों यूनिट।
6. श्री पी० एन० कृपाल, शिक्षा सलाहकार, भारत सरकार, नई दिल्ली।
7. प्रो० एम० वी० माथुर, अर्थशास्त्र और नागरिक प्रशासन के प्रोफेसर, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर।
8. डा० वी० पी० पाल, निदेशक, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली।
9. कुमारी एस० पानंदीकर, अध्यक्ष, शिक्षा विभाग, कर्नाटक विश्वविद्यालय, धारवाड़।
10. प्रो० रोज़र रैवेल, अनुसंधान के डीन, केलिफोर्निया विश्वविद्यालय, संयुक्त राज्य अमेरिका।
11. डा० के० जी० सैयदैन, भारत सरकार के भूतपूर्व शिक्षा सलाहकार, नई दिल्ली।
12. डा० त्रिगुण सेन, रेक्टर, जादवपुर विश्वविद्यालय कलकत्ता-13।

13. श्री जीन तोमस, इंस्पेक्टर जनरल आफ एजूकेशन, फांस तथा यूनेस्को के भूतपूर्व सहायक महानिदेशक ।

14. प्रो० एस० ए० शुमोवस्की, निदेशक, मैथोडोलाजिकल डिविज़न, मिनिस्ट्री आफ हायर एण्ड स्पेशल सेकेंडरी एजूकेशन, आर० एस० एफ० एस० आर०, मास्को, तथा मास्को विश्वविद्यालय में भौतिकी के प्रोफेसर ।

15. प्रो० सदातोशी इहारा, प्रोफेसर आफ फर्स्ट फैकल्टी आफ साईंस एण्ड टैक्नोलॉजी, वासेहा विश्वविद्यालय, टोकियो ।

सदस्य सचिव

16. श्री जे० पी० नायक, अध्यक्ष, शैक्षिक योजना, प्रशासन और वित्त विभाग, गोखले इंस्टीट्यूट आफ पोलीटिक्स एण्ड इकानामिक्स, पूना ।

सहचारी-सचिव

17. श्री जे० एफ० मैक्डूगल, सहायक निदेशक, स्कूल और उच्चतर शिक्षा विभाग, यूनेस्को, पेरिस ।

8. आयोग भारत सरकार को शिक्षा के राष्ट्रीय स्वरूप और सामान्य सिद्धान्तों के साथ ही शिक्षा के सभी स्तरों और सभी पक्षों के विकास से सम्बन्धित नीतियों पर सलाह देगा । यद्यपि आयोग डाक्टरी और कानूनी शिक्षा की समस्याओं पर विचार नहीं करेगा, तथापि व्यापक परीक्षण की दृष्टि से जहां आवश्यक हो वहां इन समस्याओं के कुछ पक्षों पर भी विचार कर सकता है ।

9. आयोग अपनी अन्तिम रिपोर्ट यथासंभव शीघ्र प्रस्तुत कर देगा, पर 31 मार्च, 1966 के बाद नहीं । जिन कार्यक्रमों की कार्यान्विति तुरन्त आवश्यक होगी उनके लिए आयोग समय-समय पर अन्तरिम रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा । इनका सम्बन्ध शिक्षा की समस्याओं के सीमित पक्षों में होगा । सरकार चिन्तित है कि विशिष्ट महत्वपूर्ण मामलों पर जो सिफ़ारिशें स्वीकृत की गई हैं उनको लागू कर दिया जाए और किसी भी हालत में आयोग के कार्य की समाप्ति तक उन्हें रोक न रखा जाए । दूसरी ओर आयोग की विशेषज्ञ सलाह और मार्ग-दर्शन उन लोगों को निरन्तर मिलता रहे जिन पर शैक्षिक कार्यक्रमों और नीतियों की कार्यान्विति का दायित्व है ।

आदेश दिया जाता है कि इस संकलन की प्रतियां सभी राज्य सरकारों, केन्द्र प्रशासित प्रदेशों और भारत सरकार के सभी मंत्रालयों को भिजवा दी जाएं ।

यह भी आदेश दिया जाता है कि इस संकल्प को भारत के राजपत्र में सूचना के लिए प्रकाशित किया जाए ।

प्रेम कृपाल
सचिव
भारत सरकार

परिशिष्ट-तीन

शिक्षा आयोग के परामर्शदाता

1. डा० जेम्स० ई० एलन, जूनि०, कमिश्नर, स्टेट शिक्षा विभाग, और न्यूयार्क स्टेट के विश्वविद्यालय के प्रसिडैन्ट, न्यूयार्क, यू० एस० ए० ।

2. डा० सी० ई० बीवी, आमन्त्रित प्राध्यापक, सैन्टर फार स्टडीज़ इन एजूकेशन एंड डिवैलपमैंन्ट, ग्रैजुएट स्कूल आव एजूकेशन, हारवर्ड विश्वविद्यालय, कैम्ब्रिज, मैसेच्यूसटस, यू० एस० ए० ।

3. प्रो० पी० एम० ब्लैकेट, यू० के० की रायल सोसाइटी के अध्यक्ष, इंपीरियल कालेज आव सायंस एंड टैक्नोलाजी के भौतिकी के प्रोफेसर, लंदन विश्वविद्यालय, लंदन ।

4. रेक्त्योर जे० जे० कैपॅय्य, नैन्सी विश्वविद्यालय के प्रोफैसर और फ्रान्स के भूतपूर्व शिक्षा महानिदेशक, पेरिस ।

5. सर क्रिस्टफर कौक्स, ओवरसीज डिवैलपमैंट मंत्रालय, यू० के०, के शिक्षा सलाहकार, तथा न्यू कालेज आक्सफोर्ड के फैलो ।

6. डा० फिलिप एच० कूम्ब्ज, यूनेस्को, इन्टरनैशनल इंस्टिट्यूट फार एजूकेशनल प्लानिंग के निदेशक, पेरिस ।

7. प्रो० आंद्रे दानियेर, सैन्टर फार स्टडीज इन एजूकेशन एंड डिवेलपमैंट, ग्रैजुएट स्कूल आव एजूकेशन, हारवर्ड विश्वविद्यालय कैम्ब्रिज, मैसेच्यूसटेस, यू० एस० ए० ।

8. प्रो० एस० डेडिजर, इंस्टिट्यूट आव सौशिआलजी, लुँड विश्वविद्यालय, स्वीडन ।

9. डा० निकलस डीविट, इन्टरनेशनल सर्वे आफ एजूकेशनल डिवेलपमैंट एंड प्लानिंग के निदेशक, इंडियाना विश्वविद्यालय, ब्लूयिगटन, इंडियाना, यू० एस० ए० ।

10. डा० जान गाई फॉक्स, स्कूल आव एजूकेशन, विसकान्सन विश्वविद्यालय, मैडिसन, यू० एस० ए० ।

11. सर विलस जैक्सन, इंपीरियल कालेज आव सायंस एंड टैकनालाजी के विद्युत इंजीनियरी के प्राध्यापक और विभागाध्यक्ष, लंदन विश्वविद्यालय, लंदन ।

12. डा० जे० पाल लियोनार्ड, कोलम्बिया विश्वविद्यालय के टीचर्ज कालेज के शिक्षा के प्रोफैसर और कोलम्बिया विश्वविद्यालय के भारतीय दल के मुख्य, नई दिल्ली ।

13. डा० गौर्डन एन० मैकेन्जी, प्रोफसर, एजूकेशन टीचर्ज कालेज, कोलम्बिया विश्वविद्यालय, न्यूयार्क, यू० एस० ए० ।

14. प्रो० सी० ए० मोजर, निदेशक, यूनिट फार इकनौमिक एंड स्टैटिसटिकल स्टडीज़ आव हायर एजुकेशन, लंदन स्कूल आव इकनोमिक एंड पोलिटिकल साइंस, लंदन ।

15. प्रो० एस० ओकिटा, एक्जैक्यूटिव डायरेक्टर, जापान इकनोमिक रिसर्च सैन्टर, टोकियो, तथा इकनोमिक प्लानिंग एजेन्सी के मन्त्री के विशेष सलाहकार, जापान ।

16. प्रो० ए० आर० प्रैस्ट, प्रोफेसर आव इकनोमिक एंड पब्लिक फाइनैन्स, मैनचैस्टर विश्वविद्यालय, मैनचैस्टर, इंगलैंड ।

17. लार्ड रोबिन्स, प्रोफैसर एमरिटस, लंदन स्कूल आव इकनोमिक्स तथा चेयरमैन, फाइनैनशियल टाइम्स, लंदन। हाल में चेयरमैन आव द कमिटी आव हायर ऐजूकेशन नियुक्ति, यू० के०।

18. प्रो० एडवर्ड ए० शिल्स, प्रोफेसर आव सोशिआलजी एंड सोशल थॉट इन द कमिटी ऑव सोशल थॉट, शिकागो विश्वविद्यालय, यू० एस० और फेलो आव किंग्स कालेज, कैम्ब्रिज, यू० के०।

19. डा० फ्रेड्रिक सीट्ज, प्रैसिडैन्ट, नेशनल अकेडमी आप साइन्सेज, वांशिगंटन, यू० एस० ए०

20. प्रो० डब्ल्यू, सी० स्मिथ, प्रोफेसर आव वर्ल्ड रिलिजन, तथा सैन्टर फार द स्टडी आव रिलिजन के निदेशक, हाववर्ड विश्वविद्यालय कैम्ब्रिज मैसेसच्युट्स, यू० एस० ए०

परिशिष्ट-चार

कार्यदल और कर्मी-समूह

1. डा० वी० एस० झा, शिक्षा आयोग, नई दिल्ली। **संयोजक**
2. श्री अब्दुल कादिर, महानिदेशक, रोजगार प्रशिक्षण निदेशालय, श्रम तथा रोजगार मंत्रालय नई, दिल्ली।
3. श्री जी० के० चंदीरमानी, अतिरिक्त सचिव, शिक्षा मंत्रालय, नई दिल्ली।
4. श्री ए० आर० देशपांडे, सलाहकार (सामाजिक शिक्षा), शिक्षा मंत्रालय, नई दिल्ली।
5. श्रीमती दुर्गाबाई देशमुख, उप-कुलपति विवास, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।
6. श्रीमती वैल्दी फिशर, लिटेसी हाउस, कानपुर रोड, लखनऊ।
7. श्री के० एल० जोशी, सचिव, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली।
8. श्री डी० आर० कालिया, निदेशक, दिल्ली पब्लिक लाइब्रेरी, दिल्ली।
9. डा० टी० ए० काशी, निदेशक, राष्ट्रीय बुनियादी शिक्षा केन्द्र, 38-ए, फ्रैन्डस कालोनी (पूर्व), मथुरा रोड, नई दिल्ली।
10. श्री जे० एफ० मैक डूगल, सम्बद्ध सचिव, शिक्षा आयोग, नई दिल्ली।
11. डा० एम० एस० मेहता, उपकुलपति, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर।
12. श्रीमती ए० आर० मूरे, क्षेत्रीय सलाहकार, स्वास्थ्य शिक्षा, विश्व स्वास्थ्य संस्था हाऊस, रिंग रोड, नई दिल्ली।
13. श्री जे० पी० नायक, सदस्य सचिव, शिक्षा आयोग, नई दिल्ली।
14. डा० एम० एस० रंधावा, विशेष सचिव, कृषि तथा खाद्य मंत्रालय, (कृषि विभाग), नई दिल्ली।
15. डा० के० जी० सैयदैन, सदस्य, शिक्षा आयोग नई दिल्ली।
16. डा० ह्यूंस सिमन्स, फोर्ड फाउन्टेशन, 32, फिरोजशाह रोड, नई दिल्ली।
17. श्री सोहन सिंह, एशिया फाउन्डेशन, 29, राजपुर रोड, दिल्ली।
18. डा० एस० एम० एस० चारी, उप शिक्षा सलाहकार, शिक्षा आयोग, नई दिल्ली। **सचिव**

सदस्य

1. श्रीमती दुर्गाबाई देशमुख, उपकुलपति निवास, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली। **संयोजक**
2. श्री ए० आर०. देशपांडे, सलाहकार, (सामाजिक शिक्षा), शिक्षा मंत्रालय, नई दिल्ली।
3. डा० टी० ए० कोशी, निदेशक, राष्ट्रीय बुनियादी शिक्षा केन्द्र, नई दिल्ली।
4. श्री मुस्ताक अहमद, निदेशक, लिट्रेसी हाउस, लखनऊ।
5. श्री एच० पी० सक्सेना, सहायक निदेशक, राष्ट्रीय बुनियादी शिक्षा-केन्द्र, नई दिल्ली।

प्रौढ़ शिक्षा के क्षेत्र में विश्वविद्यालय तथा उच्च अध्ययन के संस्थानों के योगदान से सम्बन्धित उप-समूह

सदस्य

1. श्री सोहन सिंह, एशिया फाउन्डेशन, नई दिल्ली, **संयोजक**
2. श्री बशीरुद्दीन, 33-ए, कस्तूरबा गांधी मार्ग, इलाहाबाद।
3. डा० नगेन्द्र, अध्यक्ष, विश्वविद्यालय, विस्तार-वाख्यान बोर्ड, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।
4. डा० के० जी० सैयदैन, सदस्य, शिक्षा आयोग, नई दिल्ली।

5. डा० हांस सिमन्स, फोर्ड फाउन्डेशन, नई दिल्ली ।

6. श्री उमाशंकर, निदेशक, प्रौढ़ शिक्षा विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर ।

कर्मचारीवर्ग की शिक्षा का उप-समूह

सदस्य

1. डा० टी० ए० कोशी, निदेशक राष्ट्रीय बुनियादी शिक्षा केन्द्र, फ्रेन्डस कालोनी, नई दिल्ली । **संयोजक**

2. श्री अब्दुल कादिर, महानिदेशक, रोजगार प्रशिक्षण, निदेशालय, श्रम रोजगार मंत्रालय, नई दिल्ली ।

3. श्री एन० भद्रिहा, अध्यक्ष, प्रौढ़ शिक्षा परिषद, मैसूर राज्य, मैसूर ।

4. श्री एल० एस० चंद्रकांत, संयुक्त शिक्षा सलाहकार, शिक्षा मंत्रालय, नई दिल्ली ।

5. श्री चैसटल राव, सचिव, भारतीय चैम्बर्स फैडरेशन, वाणिज्य और उद्योग मंत्रालय, नई दिल्ली ।

6. श्री एस० सी० दत्ता, सचिव, भारतीय प्रौढ़ शिक्षा संघ, इन्द्रप्रस्थ एस्टेट, नई दिल्ली ।

7. श्री एस० सी० नानावाटी, निदेशक, (सामाजिक शिक्षा) खाद्य कृषि मंत्रालय, नई दिल्ली ।

8. श्री अन्नासाहब सहस्त्रबुद्धे, अध्यक्ष, देहाती-उद्योग योजना, योजना आयोग, नई दिल्ली ।

9. डा० आर० के० सिंह, निदेशक, देहाती संस्थान, बिचपुरी; आगरा उत्तर प्रदेश ।

प्रौढ़ शिक्षा के क्षेत्र में सांस्कृतिक संस्थानों के योगदान से संबंधित उप-समूह

सदस्य

1. श्री डी० आर० कालिया, निदेशक, दिल्ली पब्लिक लाइब्रेरी, दिल्ली । **संयोजक**

2. श्रीमती कमला देवी चट्टोपाध्याय, अध्यक्ष, अखिल भारतीय हस्तकला बोर्ड, विलिंगडन क्रेसैंट, नई दिल्ली ।

3. श्री जे० सी० माथुर, संयुक्त सचिव, कृषि और खाद्य मंत्रालय, नई दिल्ली ।

4. डा० ग्रेस सोरले, निदेशक, राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली ।

5. डा० मुल्कराज आनन्द, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़ ।

6. डा० एम० एस० रंधावा, विशेष सचिव, खाद्य एवं कृषि मंत्रालय, नई दिल्ली ।

2. कृषि शिक्षा का कार्यदल

1. डा० बी० पी० पाल, महानिदेशक तथा उप-प्रधान, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, सह-सचिव, खाद्य एवं कृषि मंत्रालय, नई दिल्ली । **संयोजक**

2. डा० अमीर अली, निदेशक, देहाती संस्थान जामिया मिल्लिया, जामिया नगर, नई दिल्ली ।

3. श्री अन्नत राव डीन उत्तर प्रदेश, कृषि वि० वि० पंत नगर ।

4. डा० चिन्तामणि सिंह, डीन, पशु चिकित्सा कालेज, पंजाब कृषि विश्वविद्यालय, हिसार ।

5. डा० आर० डब्लयू० कॉमिग्स, क्षेत्र निदेशक, रॉकफैलर फाउन्डेशन- कार्यक्रम भारत, 17 कौटिल्य मार्ग, चाणक्यपुरी, नई दिल्ली-2

6. प्रो० बी० एम० डांगेकर, कृषि संबंधी आर्थिक शास्त्र, उच्च अध्ययन का केन्द्र, गोखले संस्थान राजनीति तथा आर्थिक शास्त्र, पूना ।

7. डा० के० सी० कानूनगो, कृषि संबंधी अर्थशास्त्र के डिवीजन के अध्यक्ष, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली ।

8. डा० ए० बी० जोशी, डीन तथा उपनिदेशक (शिक्षा), भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली ।

9. व्यवस्थापक निदेशक, बमाना एंड फूट डेवलपमेंट कारपोरेशन, 7, फस्ट मेन रोड, सी० आई० टी० कालोनी, मद्रास ।

10. मि० जे० एफ० मैकडूगल, संबद्ध सचिव, शिक्षा आयोग नई दिल्ली ।

11. डा० एस० एन० मेहरोत्रा, उप सचिव, शिक्षा विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ ।

12. डा० एस० के० मुकर्जी, उप कृषि कमिश्नर, कृषि अनुसंधान की भारतीय परिषद, कृषि भवन, नई दिल्ली ।

13. श्री० जे० पी० नायक, सदस्य सचिव, शिक्षा आयोग, नई दिल्ली ।

14. डा० के० सी० नायक, उपकुलपति, कृषि विज्ञान विश्वविद्यालय, 9-11, मेन, 16 क्रॉस, मालेश्वरम, बंगलौर-3
15. डा० एन० के० पणिक्कर, निदेशक, भारतीय कार्यक्रम, भारतीय समुद्र अभियान, वैज्ञानिक औद्योगिक अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली।
16. श्री सी० एस० रंगनाथन, फर्टीलाइजर एसोसिएशन भारत, नई दिल्ली।
17. डा० एस० सी० वर्मा, क्षेत्र सलाहकार (कृषि) राष्ट्रीय शिक्षा अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली।
18. श्री एस० रामानुजम, सहायक शिक्षा सलाहकार, शिक्षा आयोग, नई दिल्ली। **सचिव**

3. शैक्षिक प्रशिक्षण का कार्यदल

1. श्री प्रेम कृपाल, सचिव, शिक्षा मंत्रालय तथा सदस्य शिक्षा आयोग, नई दिल्ली। **संयोजक**
2. श्री ए० सी० देवगोड़ा, विस्तार कार्यक्रम निदेशक, (माध्यमिक शिक्षा विस्तार कार्यक्रम) 7-लैंसर रोड, तीमारपुर दिल्ली-6
3. डा० वी० जगन्नाथम, प्रोफेसर आफ सोशियल एडमिनिस्ट्रेशन, इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, इन्द्रप्रस्थ एस्टेट, नई दिल्ली।
4. प्रो० एम० वी० माथुर, सदस्य, शिक्षा आयोग, नई दिल्ली।
5. डा० एस० मिश्र, निदेशक, लोक शिक्षा उड़ीसा, (अब उत्कल विश्वविद्यालय के उपकुलपति) कटक।
6. डा० एस० एन० मुकर्जी, अध्यक्ष, शैक्षिक प्रशासन विभाग, 2/6-ए, माडल टाऊन, दिल्ली-9
7. श्री जे० पी० नायक, सदस्य सचिव, शिक्षा आयोग, नई दिल्ली।
8. श्री एच० एम० पटेल, अध्यक्ष, चारोतर विद्या मंडल, वल्लभ विद्यानगर, द्वारा आनन्द, गुजरात।
9. डा० डी० एम० सेन, शिक्षा सचिव, पश्चिमी बंगाल, (अब बर्दवान विश्वविद्यालय के उपकुलपति) कलकत्ता।
10. श्री जे० डी० शर्मा, निदेशक, लोक शिक्षा, पंजाब, चंडीगढ़।
11. श्री वी० डी० शर्मा, शिक्षा सचिव, राजस्थान, जयपुर।
12. डा० रुद्र दत्त सिंह, पंचायती राज संस्थान के अनुसंधान आयोजन के अध्यक्ष, इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, इंद्रप्रस्थ एस्टेट, नई दिल्ली।
13. कुमारी एस० राजन, सहायक शिक्षा सलाहकार, शिक्षा आयोग, नई दिल्ली।

4. शैक्षिक वित्त का कार्यदल

1. प्रो० एम० वी० माथुर, सदस्य शिक्षा आयोग, नई दिल्ली। **संयोजक**
2. श्री डी० ए० दभोलकर, प्रिंसिपल, चिंतामन राव वाणिज्य कालेज, सांगली (महाराष्ट्र)।
3. डा० बी० दत्त, शिक्षा सचिव, पश्चिम बंगाल सरकार, कलकत्ता।
4. श्री आर० ए० गोपालस्वामी, सदस्य, शिक्षा आयोग, दिल्ली।
5. श्री के० एल० जोशी, सचिव विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली।
6. डा० डी० टी० लक्कड़वाल, अध्यक्ष आर्थिक अनुभाग, बम्बई विश्वविद्यालय, बम्बई।
7. डा० गौतम माथुर, अध्यक्ष आर्थिक अनुभाग, उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद।
8. डा० आत्मानन्द मिश्र, निदेशक, लोक शिक्षा, मध्य प्रदेश, भोपाल।
9. डा० सदाशिव मिश्र, निदेशक लोक शिक्षा, (अब उत्कल विश्वविद्यालय के उपकुलपति) कटक, उड़ीसा।
10. श्री जे० पी० नायक, सदस्य सचिव, शिक्षा आयोग, नई दिल्ली।
11. डा० के० ए० नकवी, दिल्ली स्कूल ऑफ इकनोमिक, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।
12. डा० प्रीतम सिंह, निदेशक, अनुप्रयुक्त आर्थिक अनुसंधान की राष्ट्रीय परिषद, नई दिल्ली।
13. श्री गुरबख्श सिंह, सहायक शिक्षा सलाहकार, शिक्षा आयोग, नई दिल्ली। **सचिव**

5. उच्चतर शिक्षा पर कार्य दल

1. डा० के० जी० सैयदैन, सदस्य, शिक्षा आयोग, नई दिल्ली। **संयोजक**
2. श्री० जे० डब्ल्यू० ऐरन, प्रिंसिपल, विलसन कालेज, बम्बई-7
3. श्री पी० के० बोस, प्रिंसिपल, बंगबासी कालेज, कलकत्ता।
4. श्री चन्द्रहासन, अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, केरल विश्वविद्यालय, एरनाकुलम।
5. डा० वी० एस० झा, सदस्य, शिक्षा आयोग, नई दिल्ली।
6. डा० ए० सी० जोशी, सलाहकार, योजना आयोग, नई दिल्ली।
7. श्री के० एल० जोशी, सचिव, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-1।
8. श्री सी० एल० कपूर, अवकाश प्राप्त शिक्षा निदेशक तथा शिक्षा सचिव, पंजाब, 1-ई/5, पटेल रोड, पटेल नगर, नई दिल्ली-12।
9. डा० डी० एस० कोठारी, अध्यक्ष, शिक्षा आयोग तथा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-1।
10. प्रो० एम० वी० माथुर, सदस्य, शिक्षा आयोग, नई दिल्ली।
11. श्री पी० जी० मावलंकर, प्रिंसिपल, एल० डी० आर्ट्स कालेज, नवरंगपुर, अहमदाबाद।
12. श्री जे० एफ० मैकडूगल, सम्बद्ध सचिव शिक्षा आयोग नई दिल्ली।
13. श्री जे० पी० नायक, सदस्य सचिव, शिक्षा आयोग, नई दिल्ली।
14. डा० पी० जे० फिलिप, संयुक्त सचिव, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, बहादुरशाह जफर-मार्ग, नई दिल्ली-1
15. श्री ए० बी० शाह, कार्यकारी सचिव, सांस्कृतिक स्वतंत्रता की भारतीय समिति, आर्मी एण्ड नेवी बिल्डिंग, 148, महात्मा गांधी रोड, बम्बई :
16. डा० हांस साइमंस, सामान्य शिक्षा के परामर्श-दाता, फोर्ड फाउंडेशन, 32 फिरोजशाह रोड, नई दिल्ली।
17. डा० अमरीक सिंह, सचिव, भारत व लंका का अंतर विश्वविद्यालय बोर्ड, 1, राउज एवेन्यू, नई दिल्ली।
18. डा० आर० के० सिंह, निदेशक, बलवंत विद्या-पीठ रूरल हायर इंस्टीट्यूट, बिचपुरी, आगरा (उत्तर प्रदेश)।
19. डा० एच० जे० टेलर, प्रिंसिपल, यूनियन क्रिश्चियन कालेज, बारापानी, शिलांग
20. (आसाम)। कुमारी एस० रहमान, सहायक शिक्षा सलाहकार, शिक्षा आयोग, नई दिल्ली। **सचिव**

विशिष्ट रूप से आमंत्रित

1. डा० सी० गिलपैट्रिक, आमंत्रित प्राध्यापक दर्शन शास्त्र, दिल्ली विश्वविद्यालय, (द रोक-फैलर फाउंडेशन), दिल्ली-7
2. डा० एम० एस० मेहता, उपकुलपति, राज-स्थान विश्वविद्यालय, जयपुर।
3. प्रो० एम० महरोत्रा, 43, लाल क्वारटर, गोविंद नगर, कानपुर-6

विश्वविद्यालय स्तर पर शैक्षिक सुविधाओं के समकरण का उप-समूह

1. डा० आर० के० सिंह, निदेशक, बलवन्त विद्यापीठ रूरल हायर इंस्टीट्यूट, पो० आ० बिचपुरी (आगरा) **(संयोजक)**
2. श्री के० एल० जोशी, सचिव, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-1
3. श्री पी० जी० मावलंकर, प्रिंसिपल, एल० डी० आर्ट्स कालेज, नवरंगपुर, अहमदाबाद-9
4. श्री जे० पी० नायक, सदस्य-सचिव, शिक्षा आयोग, नई दिल्ली।
5. श्री ए० बी० शाह, कार्यकारी सचिव, भारतीय सांस्कृतिक स्वतन्त्रता समिति, आर्मी एण्ड नेवी बिल्डिंग, 148, महात्मा गांधी रोड, बम्बइ-1

देहाती उच्चतर शिक्षा का उप-समूह

1. श्री जी० रामचन्द्रन, निदेशक, गांधीग्राम गांधीनगर, पो० आ० मदुरै (जिला मद्रास) **संयोजक**
2. डा० एच० अमीर अली, निदेशक, जामिया रूरल इंस्टीट्यूट, जामिया मिल्लिया इस्लामिया, पो० आ० जामिया नगर, नई दिल्ली-25
3. श्री० के० एल० बोडिया, निदेशक, विद्या भवन, रूरल इंस्टीट्यूट, उदयपुर (राजस्थान)।
4. डा० बी० एस० झा, सदस्य, शिक्षा आयोग, नई दिल्ली।
5. श्री जे० पी० नायक, सदस्य-सचिव, शिक्षा आयोग, नई दिल्ली।

अध्यापकों के वेतन पर उप-समूह

1. श्री० के० एल० जोशी, सचिव, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-1 **संयोजक**
2. डा० सी० गिलपैट्रिक, आमंत्रित प्राध्यापक, दर्शन शास्त्र दिल्ली विश्वविद्यालय, (दी राकफेलर फाउंडेशन) दिल्ली-7
3. श्री सी० एल० कपूर, अवकाश प्राप्त शिक्षा निदेशक, तथा शिक्षा सचिव पंजाब, I ई-5, पटेल रोड, पटेल नगर, नई दिल्ली-12
4. प्रो० एस० ए० शुमोवस्की, सदस्य, शिक्षा आयोग।

विश्वविद्यालय स्तर पर उप-समूह

1. डा० पी० जे० फिलिप, संयुक्त सचिव, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-1
2. श्री जे० डब्ल्यू ऐरन, प्रिंसिपल, विलसन कालेज, बम्बई-7
3. श्री० ए० आर० दाऊद, सदस्य, शिक्षा आयोग, नई दिल्ली।
4. डा० बी० एस० झा, सदस्य, शिक्षा आयोग, नई दिल्ली।
5. श्री एम० एन० कपूर, प्रिंसिपल, मोडर्न स्कूल, नई दिल्ली-4
6. श्री सी० एल० कपूर, अवकाश प्राप्त शिक्षा निदेशक, तथा शिक्षा सचिव, पंजाब I ई-5 पटेल रोड, पटेल नगर, नई दिल्ली-12
7. श्री ए० बी० शाह, कार्यकारी सचिव, भारतीय समिति सांस्कृतिक स्वतन्त्रता, आर्मी एण्ड नेवी बिल्डिंग, 148 महात्मा गांधी रोड, बम्बई-1

विश्वविद्यालय स्तर पर मूल्यांकन पर उप-समूह

1. डा० के० जी० सैयदैन, सदस्य, शिक्षा आयोग, नई दिल्ली। **संयोजक**
2. डा० आर० एच० दवे, उप निदेशक (परीक्षा एकक), माध्यमिक शिक्षा के लिए विस्तार कार्यक्रमों का निदेशालय, 7, लान्सर रोड तीमारपुर दिल्ली-9
3. डा० बी० एस० झा, सदस्य, शिक्षा आयोग नई दिल्ली।
4. डा० ए० सी० जोशी, सलाहकार, योजना आयोग, योजना भवन, पार्लियामेंट, स्ट्रीट, नई दिल्ली-1
5. श्री जे० पी० नायक, सदस्य-सचिव, शिक्षा आयोग, नई दिल्ली।
6. श्री शान्तिनारायण, प्रिंसिपल, हंस राज कालेज, दिल्ली।
7. श्री ईश्वरभाई पटेल, उपकुलपति सरदार वल्लभभाई विद्यापीठ, वल्लभ विद्यानगर, (बरास्ता आनन्द)
8. डा० हांस साइमन्स, सामान्य, शिक्षा के परामर्शदाता, दी फोर्ड फाउंडेशन, 32 फिरोजशाह रोड, नई दिल्ली-1
9. डा० एच० जे० डेलर, प्रिंसिपल, यूनियन क्रिश्चियन कालेज, बारापानी, शिलांग।

विश्वविद्यालय के कार्यों से सम्बन्धित उप- समूह

1. डा० सी० गिलपैट्रिक, दर्शन शास्त्र के आमंत्रित प्राध्यापक, दिल्ली विश्वविद्यालय, (दी राकफेलर फाउंडेशन) दिल्ली-7 **संयोजक**
2. डा० बी० एस० झा, सदस्य, शिक्षा आयोग नई दिल्ली।
3. मि० जे० एफ० मैकडगल, सम्बद्ध सचिव शिक्षा आयोग, नई दिल्ली।

4. डा० आर० के सिंह, निदेशक, बलवंत विद्यापीठ रूरल देहाती उच्च संस्थान, पो० आ० बिचपुरी (आगरा)

प्रवेश की नीति और अवस्तर संस्थाओं पर उप-समूह

1. डा० वी० एस० झा, सदस्य, शिक्षा आयोग, नई दिल्ली। **संयोजक**
2. डा० सी गिलपैट्रिक, दर्शन शास्त्र के आमंत्रित अध्यापक, दिल्ली विश्वविद्यालय, (दी राकफेलर फाउंडेशन), दिल्ली-7
3. श्री सी० एल० कपूर, अवकाश प्राप्त शिक्षा निदेशक तथा शिक्षा सचिव, पंजाब, 1 ई/5, पटेल रोड, पटेल नगर, नई दिल्ली-12
4. श्री जे० पी० नायक, सदस्य, सचिव, शिक्षा आयोग, नई दिल्ली।
5. डा० आर० के० सिंह, निदेशक, बलवन्त विद्यापीठ देहाती उच्च संस्थान, पो० आ० बिचपुरी (आगरा)।

6. जनशक्ति पर कार्यदल

1. श्री आर० ए० गोपालास्वामी, सदस्य, शिक्षा आयोग, नई दिल्ली। **संयोजक**
2. श्री अब्दुल कादिर, महानिदेशक, रोजगार व प्रशिक्षण, नई दिल्ली।
3. श्री के० एल० जोशी, सचिव, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-1
4. प्रो० एम० वी० माथुर, सदस्य शिक्षा आयोग, नई दिल्ली।
5. श्री जे० पी० नायक, सदस्य-सचिव, शिक्षा आयोग, नई दिल्ली।
6. श्री आर० प्रसाद, निदेशक, जन-शक्ति, गृह मंत्रालय, (अब विकास कमिश्नर, बिहार) नई दिल्ली।
7. डा० टी० सेन, सदस्य, शिक्षा आयोग, नई दिल्ली।
8. डा० एस० पी० अग्रवाल, अध्यक्ष, क्षेत्र जन शक्ति अनुभाग, अनुप्रयुक्त जन शक्ति तथा अनुसंधान संस्थान इन्द्रप्रस्थ एस्टेट. नई दिल्ली।

7. शिक्षा में तकनीक और पद्धति का कार्यदल

1. डा० वी० एस० झा, सदस्य, शिक्षा आयोग, नई दिल्ली।
2. श्री जी० के० अठाले, बाद में श्री एस० एल० अहुवालिया, निदेशक, दृश्य-श्रव्य शिक्षा का राष्ट्रीय संस्थान, इंद्रप्रस्थ एस्टेट, नई दिल्ली।
3. श्री एम० एल० भारद्वाज, निदेशक विज्ञापन तथा दृश्य-प्रचार निदेशालय, सूचना तथा प्रसार मंत्रालय, 'बी' ब्लाक, कर्जन रोड, नई दिल्ली।
4. श्री ए० आर० दाऊद, सदस्य, शिक्षा आयोग, नई दिल्ली।
5. डा० (कुमारी) एस० दत्त, रीडर शिक्षा, केन्द्रीय शिक्षा संस्थान, 33 छात्र मार्ग, दिल्ली-6
6. श्री सी० एल० कपूर, 1 ई/5 पटेल रोड पटेल नगर, नई दिल्ली-12
7. डा० एम० एस० कुलकर्णी, मनोदैहिकविद्, मनोवैज्ञानिक फाउंडेशन विभाग, 2/3, माडल टाउन दिल्ली-9
8. श्री जे० सी० माथुर, संयुक्त सचिव, खाद्य तथा कृषि मंत्रालय, (कृषि विभाग), कृषि भवन, नई दिल्ली।
9. श्री० जे० एफ० मैकडूगल, संबद्ध सांचव, शिक्षा आयोग, नई दिल्ली।
10. डा० एस० के० मित्रा, मनोवैज्ञानिक फाउन्डेशन विभाग के अध्यक्ष, 2/3, माडल टाउन, दिल्ली-9।
11. श्री जे० पी० नायक, सदस्य-सचिव, शिक्षा आयोग, नई दिल्ली।
12. डा० पाल न्यूरथ, फोर्ड फाउन्डेशन परामर्शदाता, शिक्षा टेलिविजन, 222, ज़ोरबाग, नई दिल्ली।
13. कुमारी एस० पानन्दीकर, सदस्य, शिक्षा आयोग, नई दिल्ली।
14. डा० अल्बर्ट जे० पैरेली, विशेषज्ञ, केन्द्रीय शिक्षा संस्थान, 33, छात्र मार्ग, दिल्ली-6।
15. कुमारी एस० रहमान, सहायक शिक्षा सलाहकार, शिक्षा आयोग, नई दिल्ली।

16. श्री जे० एम० उरे, बाद में श्री डी० ए० स्मिथ, मुख्य शिक्षा अधिकारी, ब्रिटिश काउंसिल, 21 जोरबाग, नई दिल्ली।

17. डा० एस० एम० एस० चारी, उप-शिक्षा सलाहकार, शिक्षा आयोग, नई दिल्ली। **सचिव**

8. वृत्तिक, व्यावसायिक और तकनीकी शिक्षा पर कार्यदल

1. डा० टी० सेन, सदस्य, शिक्षा आयोग, नई दिल्ली। **संयोजक**

2. प्रो० एस० के० बोस, निदेशक, भारतीय शिल्पविज्ञान संस्थान, पवाई, बम्बई।

3. श्री जी० के० चन्दीरमानी, अतिरिक्त सचिव, शिक्षा मंत्रालय, नई दिल्ली।

4. श्री एल० एस० चन्द्रकांत, संयुक्त शिक्षा-सलाहकार, शिक्षा मंत्रालय, नई दिल्ली।

5. डा० डी० आर० धींगरा, 3/40, विष्णुपुरी, नवाबगंज, कानपुर।

6. श्री आर० एन० डोगरा, निदेशक, भारतीय शिल्पविज्ञान संस्थान, हौसखास, नई दिल्ली।

7. प्रो० वी० जी गर्दे, प्रिंसिपल, मालवीय प्रादेशिक इंजिनियरिंग कालेज, जयपुर (राजस्थान)

8. श्री आर० ए० गोपालस्वामी, सदस्य, शिक्षा आयोग, नई दिल्ली।

9. श्री के० एल० जोशी, सचिव, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली।

10. डा० पी० के० केलकर, निदेशक, भारतीय शिल्पविज्ञान संस्थान, कानपुर।

11. श्री जे० एफ० मैकडूगल, संबद्ध सचिव, शिक्षा आयोग, नई दिल्ली।

12. कर्नल एस० जी० पैन्डसे, प्रशिक्षण निदेशक, रोजगार तथा प्रशिक्षण महानिदेशालय, नई दिल्ली।

13. श्री एस० सी० सेन, प्रिंसिपल, दिल्ली इंजीनियरिंग कालेज, दिल्ली।

14. श्री आर० के० श्रीवास्तव, उप सचिव, जनशक्ति निदेशालय, गृह-मंत्रालय नई दिल्ली।

15. डा० एच० सी० विश्वेश्वरैया, उप निदेशक, भारतीय मानक संस्था, नई दिल्ली।

16. श्री एस० वैंकटेश, उपशिक्षा सलाहकार, शिक्षा आयोग, नई दिल्ली। **सचिव**

9. वैज्ञानिक शिक्षा पर कार्यदल

1. डॉ० डी० एस० कोठारी, अध्यक्ष, शिक्षा आयोग, नई दिल्ली। **संयोजक**

2. प्रो० एस० देव, अध्यक्ष, भूगर्भ शास्त्र विभाग, जादवपुर विश्वविद्यालय, जादवपुर।

3. प्रो० बी० डी० जैन, प्राध्यापक रसायन शास्त्र, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

4. कुमारी पी० फ्लोरेन्स नाईटिंगेल, अध्यापक, वैज्ञानिक शिक्षा एकक; हैदराबाद।

5. प्रो० आर० सी० पाल, अध्यक्ष, रसायन विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़।

6. डा० आर० एन० राव, अध्यक्ष, वैज्ञानिक शिक्षा विभाग, राष्ट्रीय अनुसंधान तथा प्रशिक्षण परिषद्, एच-2/3, माडल टाउन, दिल्ली-9।

7. प्रो० टी० एस० सदाशिवन, निदेशक, वनस्पति शास्त्र के क्षेत्र में उच्च अध्ययन का केन्द्र, मद्रास विश्वविद्यालय, मद्रास।

8. डा० डी० शंकरनारायण, विकास अधिकारी, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली।

9. प्रो० शांतिनारायण, प्रिंसिपल, हंसराज कॉलेज, दिल्ली।

10. डा० ए० आर० वर्मा, निदेशक, राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला, नई दिल्ली।

11. डा० आर० डी० देशपांडे, विकास अधिकारी, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली। **सचिव**

12. श्री आई० सी० मेनन, शिक्षा अधिकारी, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली **सचिव**

10. स्कूली शिक्षा पर कार्य दल

1. श्री ए० आर० दाउद, सदस्य, शिक्षा आयोग, नई दिल्ली।

2. श्री के० एल० गुप्ता, प्रिंसिपल, एम० बी० इंटरमीडिएट कालेज, वृन्दावन।

3. डा० जी० एस० खेर, प्रिंसिपल, पूना अनाथ विद्यार्थी गृह, सदाशिव पेठ, पूना-2।
4. श्री के० कुरुवीला जेकब, प्रिंसिपल, हैदराबाद पब्लिक स्कूल, बेगमपत, हैदराबाद-16।
5. डॉ० डी० आर० मनकद, सचिव, गंगाजल विद्यापीठ, अलियाबाद, जामनगर (गुजरात)।
6. श्री पी० एन० माथुर, बनस्थली विद्यापीठ, बनस्थली (जयपुर)।
7. डॉ० (श्रीमती) आर० मुरलीधरन, रीडर मनोवैज्ञानिक फाउन्डेशन विभाग एच-2/6, मॉडल टाउन, दिल्ली-9।
8. श्री जे० पी० नायक, सदस्य-सचिव, शिक्षा आयोग, नई दिल्ली।
9. कुमारी एस० पानन्दीकर, सदस्य, शिक्षा आयोग, नई दिल्ली।
10. श्री एच० राधाकृष्ण, सचिव अखिल भारत सर्व सेवा संघ, राजघाट, वाराणसी-1।
11. डा० एस० एन० सराफ, निदेशक, शिक्षा विभाग, योजना आयोग, नई दिल्ली।
12. श्रीमती एस० दोरास्वामी, सहायक शिक्षा सलाहकार, शिक्षा आयोग, नई दिल्ली।

सचिव

माध्यमिक शिक्षा पर उप-समूह

1. श्री ए० आर० दाऊद, सदस्य, शिक्षा आयोग, नई दिल्ली। **संयोजक**
2. श्री एस० एस० देशनवी, प्रिंसिपल, एम० एच० सबू सिद्दीक पौलिटैकनीक, 8, शेफर्ड रोड, बम्बई-8।
3. श्री ए० सी०, देव गोडा, निदेशक, डैप्से, 7 लैंसर रोड, तिमारपुर, दिल्ली-6।
4. श्री ए० डिसूजा, निरीक्षक आंग्ल भारतीय स्कूल, पश्चिमी बंगाल, नया सचिवालय, 6वीं मंजिल, 1, हेस्टींग स्ट्रीट, कलकत्ता-1।
5. श्री के० एल० गुप्ता, प्रिंसिपल, एम० बी० इण्टर कालेज, वृन्दावन।
6. डा० जी० एस० खेर, प्रिंसिपल, पूना अनाथ विद्यार्थी गृह, सदाशिव पेठ, पूना-2।
7. श्री के० कुरुविला जेकब, प्रिंसिपल, हैदराबाद पब्लिक स्कूल, बेगमपत, हैदराबाद।
8. श्री पी० एन० माथुर, बनस्थली (विद्यापीठ), बनस्थली (जयपुर)।
9. श्री एस० जी० नाडगौर, हैडमास्टर, के० ई० बोर्ड हाई स्कूल, मलमाड्डी, धारवाड़।
10. श्री एस० नटराजन, एस० आई टी० यू० शिक्षा अनुसंधान परिषद्, रोबर्ट्सपेट राजा अन्नावलाईपुरम, मद्रास-28।
11. श्री एस० पी० निगम, प्रिंसिपल, गवर्नमेंट मॉडल बहुधंधी स्कूल, जबलपुर।
12. कुमारी एस० पानन्दीकर, सदस्य, शिक्षा आयोग, नई दिल्ली।
13. श्री वाजुभाई पटेल, श्री चन्दुलाल नानावाटी कन्या विनय मन्दिर, वल्लभलाई पटेल रोड, विले पारले (पश्चिम) बम्बई-56।
14. श्री नन्दकिशोर राठ, हैडमास्टर, रावेंशो कॉलिजिएट उच्चतर माध्यमिक स्कूल, कटक-2।
15. श्री सत्य प्रिय राय, अखिल भारतीय माध्यमिक अध्यापकों का फैडरेशन, 15 बंकिमचन्द्र चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्ता-12।
16. डा० एस० एन० सराफ, निदेशक, शिक्षा विभाग, योजना आयोग, नई दिल्ली।
17. श्री एच० एन० शर्मा, हैडमास्टर पट्टाचारकूची विद्यापीठ, पो० औ० पट्टाचारकूची, जिला कामरूप, असम।
18. कुमारी एस०से ठी, प्रिंसिपल, गवर्नमेंट उच्चतर माध्यमिक स्कूल, सैक्टर 4, मकान नं० 40, चण्डीगढ़।
19. श्री सी० सी० शाह, प्रिंसिपल, सार्वजनिक शिक्षा कालेज, देसाई पोल, सूरत।
20. श्री कैलाश सिंह प्रिंसिपल, डी० ए० वी० उच्चतर माध्यमिक स्कूल, मीठापुर, पटना।
21. श्री पी० एम० चेरियन तराकन, हैडमास्टर, सैण्ट जॉन माडल हाई स्कूल, त्रिवेन्द्रम।
22. श्रीमती एस० दोरास्वामी, सहायक शिक्षा आयोग, नई दिल्ली। **सचिव**

स्कूली स्तर पर मूल्यांकन सम्बन्धी उप-समूह

1. श्री ए० आर० दाऊद, सदस्य, शिक्षा आयोग नई दिल्ली ।
2. डा० आर० एच० दवे, उप निदेशक, डैप्से, 7, लैंसर रोड दिल्ली-6 ।
3. श्री वी० बी० देसाई, उप निदेशक शिक्षा (परीक्षाओं का कार्यभारी) मैसूर सरकार, मैसूर ।
4. डा० सी० डी० देशपांडे, शिक्षा निदेशक, महाराष्ट्र, पूना ।
5. श्री एल० एल० जोशी, अध्यक्ष, माध्यमिक शिक्षा मंडल राजस्थान, जयपुर ।
6. श्री जे० पी० नायक, सदस्य-सचिव, शिक्षा आयोग, नई दिल्ली ।
7. डा० एच० जे० टेलर, प्रिंसिपल, यूनियन क्रिश्चयन कॉलेज, बारापानी (शिलांग) असम ।

11. छात्र कल्याण से सम्बन्धित कार्यदल

1. श्री ए० आर० दाऊद, सदस्य, शिक्षा आयोग, नई दिल्ली । **संयोजक**
2. डॉ० वी० एस० झा, सदस्य, शिक्षा आयोग, नई दिल्ली ।
3. डॉ० डी० आर० मनकद, गंगाजल विद्यापीठ, अलीयावाद, गुजरात स्टेट ।
4. डॉ० एम० एस० मेहता, उपकुलपति, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर ।
5. डॉ० (श्रीमती) पेरीन एच० मेहता, निदेशक, शिक्षा तथा व्यावसायिक शिक्षा का ब्यूरो, रा० शै० अ० प्र० प०, नई दिल्ली ।
6. श्री जे० पी० नायक, सदस्य सचिव, शिक्षा आयोग, नई दिल्ली ।
7. डा० प्रेम पसरीचा, भारत में संयुक्त राज्य का शिक्षा प्रतिष्ठान, 12 हेली रोड, नई दिल्ली ।
8. डा० वी० रामकृष्ण, निदेशक, केन्द्रीय स्वास्थ्य शिक्षा ब्यूरो, नई दिल्ली ।
9. डा० ए० एस० रतूड़ी, विद्यार्थी-डीन बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-5 ।
10. डा० डी० एस० रेड्डी, उपकुलपति, उसमानिया विश्वविद्यालय हैदरानाद ।
11. श्री एस० एल० सरुपरिया, अनुसंधित्सु, अर्थशास्त्र विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर ।
12. डा० विक्रम सिंह, उप शिक्षा सलाहकार, शिक्षा मंत्रालय, नई दिल्ली ।
13. श्रीमती एस० दोरास्वासी, सहायक शिक्षा सलाहकार, शिक्षा आयोग नई दिल्ली । **सचिव**

विशेष रूप से आमंत्रित

1. डा० एच० एच० होएस, द्वारा-भारत में संयुक्त राज्य शिक्षा प्रतिष्ठान, 12, हेली रोड, नई दिल्ली ।
2. श्री नौहरिया राम, उप शिक्षा सलाहकार, शिक्षा मंत्रालय, नई दिल्ली ।
3. डा० ऑलिव आई० रेडिक, भारत में संयुक्त राज्य शिक्षा प्रतिष्ठान, 12, हेली रोड, नई दिल्ली ।

छात्रावास से संबंधी उप-समूह

1. डा० डी० आर० मनकद, गंगाजल विद्यापीठ, अलीआबाद, जिला जामनगर (गुजरात)
2. डा० ए० एस० रतूड़ी, विद्यार्थी डीन, बनारस विश्वविद्यालय, वाराणसी ।
3. श्री एस० एल० सरुपरिया, अनुसंधान फैलो, अर्थशास्त्र विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर ।

मार्गदर्शन और सलाह देने से संबंधित उप-समूह

1. डा० (श्रीमती) पेरिन एच० मेहता, निदेशक केन्द्रीय शिक्षा तथा व्यवसायिक सलाह ब्यूरो । नई दिल्ली ।
2. डा० प्रेम पसरीचा, भारत में संयुक्त राज्य शिक्षा प्रतिष्ठान, 12, हेली रोड, नई दिल्ली ।
3. डा० ऑलिव एल० रैडिक, भारत में संयुक्त राज्य शिक्षा प्रतिष्ठान, 12, हेली रोड, नई दिल्ली ।
4. श्रीमती एस० दोरास्वामी, सहायक शिक्षा सलाहकार, शिक्षा आयोग, नई दिल्ली ।

स्वास्थ्य सेवाओं से सम्बन्धित उप-समूह

1. श्री ए० आर० दाउद, सदस्य, शिक्षा आयोग, नई दिल्ली ।
2. डा० ए० एम० गाडे, प्रादेशिक सलाहकार, मातृ और शिशु स्वास्थ्य, विश्व स्वास्थ्य संघ, इन्द्रप्रस्थ एस्टेट, नई दिल्ली ।
3. कुमारी एफ० कोरनेगे, स्वास्थ्य शिक्षक विश्व स्वास्थ्य संघ, इन्द्रप्रस्थ एस्टेट, नई दिल्ली ।
4. डा० वी० रामकृष्ण, निदेशक, केन्द्रीय स्वास्थ्य शिक्षा ब्यूरो, नई दिल्ली ।
5. डा० डी० के० राय, चिकित्सा कार्यभार अधिकारी, विश्वविद्यालय सेवा स्वास्थ्य केन्द्र दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली ।
6. डा० (कुमारी) सेबेस्टियन, सलाहकार मातृ तथा शिशु कल्याण महानिदेशालय, स्वास्थ्य सेवा, नई दिल्ली ।
7. कुमारी के० सूद, उप सहायक महानिदेशक, स्वास्थ्य सेवा, नई दिल्ली ।
8. श्रीमती एस० दोरास्वामी, सहायक शिक्षा सलाहकार, शिक्षा आयोग नई दिल्ली ।

12. अध्यापक शिक्षा और अध्यापक हैसियत से संबंधित कार्य-दल

1. कुमारी एस० पानन्दीकर, सदस्य शिक्षा आयोग, नई दिल्ली ।
2. डा एस० पी० अग्रवाल, अनुप्रयुक्त जनशक्ति अनुसंधान संस्था, इन्द्रप्रस्था इस्टेट, नई दिल्ली ।
3. डा० रेजीनाल्ड बेल, विशेषज्ञ, अध्यापक कालेज कोलंबिया विश्वविद्यालय टीम, द्वारा अमरीकन, दूतावास, फरीदकोट हाऊस, नई दिल्ली ।
4. श्री ए० सी० देव गोडा, विदेशक, विस्तार कार्यक्रम माध्यमिक शिक्षा निदेशालय, 7,लैंसर रोड, तीमारपुर दिल्ली-6
5. डा० जी० एन० कौल, क्षेत्रीय सलाहकार, बुनियादी शिक्षा का राष्ट्रीय अनुसंधान, डी० 14/6, माडल टाउन, दिल्ली-9
6. श्री जे० पी० नायक, सदस्य-सचिव, शिक्षा आयोग, नई दिल्ली ।
7. श्री ए० नटराजन, प्रायोजना निदेशक, दक्षिण भारतीय अध्यापक संघ शिक्षा अनुसंधान परिषद, रोबर्टसनपत, राजा अन्नामलय-पुरम, मद्रास-28 ।
8. डा० के० जी० सैयदैन, सदस्य शिक्षा आयोग, नई दिल्ली ।
9. डा० सलामतुल्लाह, प्रिंसिपल, अध्यापक कालेज जामिया मिल्लिया इस्लमिया, जामियानगर, दिल्ली-25 ।
10. डा० एम० डी० पाल, उप शिक्षा सलाहकार, शिक्षा आयोग, नई दिल्ली **संयोजक**

अध्यापक-शिक्षा पर कार्यदल

1. कुमारी एस० पानन्दीकर, सदस्य, शिक्षा आयोग, नई दिल्ली । **संयोजक**
2. डा० रेजीनाल्ड बेल, विशेषज्ञ, अध्यापक कालेज कोलम्बिया विश्वविद्यालय टीम, द्वारा, अमेरिकन दूतावास, फरीदकोट हाउस, नई दिल्ली ।
3. श्रीमती नलिनी दास, प्रिंसिपल, महिला शिक्षा संस्थान, 20 बी० जजिज कोर्ट रोड, हेस्टिंग्स, हाउस, अलीपुर, कलकत्ता ।
4. श्री ए० सी० देवे गोडा, निदेशक, माध्यमिक स्कूलों के लिए विस्तार कार्यक्रम निदेशालय, 7, लैंसर रोड, तीमारपुर दिल्ली-6 ।
5. श्री द्वारका सिंह, निदेशक, राज्य शिक्षा संस्थान, बिहार पटना ।
6. श्री वी० एस० माथुर, प्रिंसिपल, राज्य शिक्षा कालेज, पटियाला ।
7. श्रीमती आई मीरी, प्रिंसिपल, स्नातकोत्तर प्रशिक्षण कालेज, असम राज्य, जोरहाट ।
8. डा० ए० मूजीब, शिक्षा विभागाध्यक्ष, अलीगढ़ विश्वविद्यालय अलीगढ़ ।
9. डा० एस० एन० मुकर्जी, प्रशासनिक शिक्षा विभागाध्यक्ष, रा० शै० अ० प्र० प० 61-ए० माडल टाउन, दिल्ली-9 ।
10. डा० (श्रीमती) चित्रा नायक, निदेशक, राज्य शिक्षा संस्थान, महाराष्ट्र, पूना-2 ।
11. श्री पी० के० राय, प्रिंसिपल, केन्द्रीय शिक्षा

संस्थान, रा० शै० अ० प्र० प० 33, छात्रा मार्ग, दिल्ली ।

12. डा० के० जी० सैयदैन सदस्य, शिक्षा आयोग, नई दिल्ली ।

13. डा० सलामतुल्लाह, प्रिंसिपल, अध्यापक कालेज जामिया मिल्लिया इस्लामिया, जामियानगर, दिल्ली-25 ।

14. डा० आर० के० सिंह, निदेशक, ग्रामीण उच्चतर संस्थान, पो० आ० बिचपुरी, आगरा ।

15. कुमारी एम० वरगेस, प्रिंसिपल, महिला कालेज, त्रिवेंद्रम ।

अध्यापक शिक्षा के मूल्यांकन पर उप-समूह

1. डा० सलामतुल्लाह, प्रिंसिपल, अध्यापक कालेज जामिया मिल्लिया इस्लामिया, जामियानगर, दिल्ली-25 । **संयोजक**

2. श्री बी० वी० बापत, प्रिंसिपल, तिलक कालेज शरीफ एलुकेशन, पूना ।

3. डा० आर० एच० दवे, उप निदेशक, माध्यमिक विस्तार कार्यक्रम, शिक्षा निदेशालय, रा० शै० अ० प्र० प०, लैंसर रोड, तीमारपुर दिल्ली-6

4. डा० के० जी० देसाई, प्रिंसिपल, ए० जी० अध्यापक कालेज, अहमदाबाद ।

5. प्रो० एच० एम० दत्त, प्राध्यापक, शिक्षा तथा निदेशक अनुसंधान स्कूल, बी० आर० प्रशिक्षण कालेज, आगरा ।

6. श्री जे० पी० नायक, सदस्य-सचिव, शिक्षा आयोग, नई दिल्ली ।

7. कुमारी एम० पानन्दीकर, सदस्य, शिक्षा आयोग, नई दिल्ली ।

8. श्री पी० डी० शर्मा, उप-प्रधानाचार्य, क्षेत्रीय शिक्षा कालेज, अजमेर ।

9. डा० वी० बी० तनेजा, प्रिंसिपल, प्रशिक्षण कालेज, कुरुक्षेत्र ।

अध्यापक प्रशिक्षण की वृहत योजना पर उप-समूह

1. श्री ए० सी० देव गोडा, निदेशक, माध्यमिक शिक्षा विस्तार कार्यक्रम निदेशालय, 7-लैंसर रोड, तीमारपुर, दिल्ली-7 । **संयोजक**

2. डा० रैगीनाल्ड बेल, विशेषज, अध्यापक कालेज, कोलम्बिया टीम, द्वारा, अमेरिकन दूतवास, फरीदकोट हाउस, नई दिल्ली ।

3. डा० जी० एस० चौरासिया, प्रिंसिपल, क्षेत्रीय शिक्षा कालेज, मैसूर (अब विशेष कार्य अधिकारी प्रशिक्षण शिक्षा कालेज एकक) मैसूर ।

4. डा० आर० सी० दास, प्रिंसिपल, क्षेत्रीय शिक्षा कालेज, भुवनेश्वर ।

5. श्री ए० आर० दाऊद, सदस्य, आयोग, शिक्षा नई दिल्ली ।

6. श्री बी० मरीराज, निदेशक, राज्य शिक्षा संस्थान, धारवाड़ (मैसूर) ।

7. कुमारी पानन्दीकर, सदस्य, शिक्षा आयोग, नई दिल्ली ।

8. श्री जी० सी० सतपाठी, संयुक्त निदेशक, जन सलाहकार उड़ीसा (कटक) ।

अध्यापकों की सेवा की शर्तों, वेतनमान तथा नियुक्ति से सम्बन्धित उप-समूह

1. कुमारी एस० पानन्दीकर, सदस्य, शिक्षा, आयोग नई दिल्ली । **संयोजक**

2. श्री पी० आदिनारायण, उप निदेशक (माध्यमिक शिक्षा) आंध्र प्रदेश, हैदराबाद-22.

3. श्री बी० आर० देसाई, प्रिंसिपल, गोकलबाई हाई स्कूल, विले पारले, बम्बई-57 ।

4. श्री ए० सी० देव गोडा, निदेशक, माध्यमिक शिक्षा विस्तार कार्यक्रम निदेशालय, रा० शै० अ० प्र० प्र०, 7 लैंसर रोड, तीमारपुर दिल्ली-6 ।

5. डा० वी० एस० झा, सदस्य, शिक्षा आयोग, नई दिल्ली ।

6. श्री जे० पी० नायक, सदस्य सचिव, शिक्षा आयोग, नई दिल्ली ।

7. श्री एस० नटराजन, परियोजना निदेशक, दक्षिण भारत अध्यापक संघ शिक्षा अनुसंधान परिषद, रोबर्टसनपत, राजा अन्नामलाई-पुरम, मद्रास-28 ।

8. श्री ए० बी० श्रीरंगा राजू, उप निदेशक लोक, शिक्षा (परीक्षाएं), बिल्डीहाल, बंगलौर ।

सांख्यिकीय गणना, वित्त और लागत एकक से संबंधित उप-समूह

1. श्री जे० पी० नायक, सदस्य-सचिव, शिक्षा आयोग, नई दिल्ली। **संयोजक**
2. डा० एस० पी० अग्रवाल, विभागाध्यक्ष, जन शक्ति क्षेत्र, अनुप्रयुक्त जनशक्ति अनुसंधान संस्थान, इन्द्रप्रस्थ एस्ट्रेट, रिंग रोड, नई दिल्ली-1
3. श्री ए० आर० दाऊद, सदस्य शिक्षा आयोग, नई दिल्ली।
4. डा० जी० एन० कौल, क्षेत्रीय सलाहकार, बुनियादी शिक्षा का राष्ट्रीय संस्थान, बी०146, माडल टाउन, दिल्ली-9।
5. श्री० एम० वी० माथुर, सदस्य, शिक्षा आयोग, नई दिल्ली।

13. शैक्षिक भवनों से संबंधित कर्मी-समूह

1. श्री ए० आर० दाऊद, सदस्य, शिक्षा आयोग, नई दिल्ली।
2. श्री आर० के० छाबड़ा, उप सचिव विश्वविद्यालय अनुदान आयोग नई दिल्ली।
3. श्री दिनेश मोहन, निदेशक, केन्द्रीय भवन निर्माण अनुसंधान संस्थान, रुड़की।
4. श्री वी० वी० दोषी, आर्कीटेक्ट, डिजाइन संगठन, अहमदाबाद।
5. श्री जे० एफ० मैकडूगल, विशेष सचिव, शिक्षा आयोग, नई दिल्ली।
6. श्री एम० एम० मिस्त्री, सहायक निदेशक, राष्ट्रीय भवन निमाण संगठन, नई दिल्ली।
7. श्री जे० पी० नायक, सदस्य-सचिव, शिक्षा आयोग, नई दिल्ली।
8. श्री एम० एच० पंड्या, आर्कीटेक्ट, केन्द्रीय भवन निर्माण अनुसंधान संस्था, रुड़की।
9. श्री सी० वी० पटेल, अध्यक्ष, राष्ट्रीय भवन निर्माण संघ, नई दिल्ली।
10. श्री एस० रहमान, आर्किटेक्ट, केन्द्रीय लोक सेवा निर्माण विभाग, नई दिल्ली।
11. श्री जे० एल सहगल, उप निदेशक, राष्ट्रीय भवन निर्माण संघ, नई दिल्ली
12. श्री टी० एस० वेदगिरि, मुख्य व्यावसायिक इंजीनियर, तथा मुख्य डिजाइन व योजना इंजीनियर, भिलाई स्ट्रील प्लाट, भिलाई।
13. डॉ० एच० सी० विश्वेश्वरैया, उप निदेशक, भारतीय मानक संस्था, नई दिल्ली।
14. लै० जनरल एच० विलियम, परामर्शदाता (निर्माण), योजना आयोग. नई दिल्ली।
15. श्री एस० वेंकटेश, उप शिक्षा सलाहकार, शिक्षा आयोग, नई दिल्ली। **सचिव**

14. पिछड़े वर्गों के लिए शिक्षा से संबंधित कर्मी-समूह

1. श्री एल० एम० श्रीकांत, आवर्सी उपाध्यक्ष भारतीय आदिम जाति सेवक संघ, ठक्कर बापा सदन, नई दिल्ली। **संयोजक**
2. श्री शशिमेरेन एयर, अतिरिक्त विकास कमिश्नर, नागालैंड, कोहिमा।
3. श्री एन० वी० बापत, सचिव, वाराणसी सेवा मंडल, माँडला (एम० पी)।
4. आचार्य एस० आर० भिसे, सचिब, आदिवासी सेवा मंडल, वोर्डी, जिला थाना, बरास्ता घोलवाड (महाराष्ट्र)।
5. श्री पी० डी० कुलकर्णी, संयुक्त निदेशक, सामाजिक योजना कल्याण, योजना आयोग, नई दिल्ली।
6. श्री जे० लकरा, अध्यक्ष, सी० एल० मिशन चर्च, रांची (विहार)।
7. श्री डी० जे० नायक, संसद सदस्य, अध्यक्ष, भील सेवा मंडल, दोहाद, जिला पंचमहास (गुजरात)।
8. श्री जे० पी० नायक, सदस्य-सचिव, शिक्षा आयोग, नई दिल्ली।
9. श्रीमती वी० राजलक्ष्मी, सचिव, कस्तूरबा गांधी राष्ट्रीय स्मारक निधि, कस्तूरबा ग्राम, जिला इंदौर (मध्य प्रदेश)।
10. श्री टी० संगन्ना, मन्त्री, देहात और आदिम-जाति कल्याण, उड़ीसा, भूवनेश्वर।
11. श्री एस० सी० सेन गुप्त, संयुक्त सचिव, सुरक्षा विभाग, नई दिल्ली।

12. श्री माणिक्य लाल वर्मा, संसद सदस्य, 156, तीर्थ एवन्यू, नई दिल्ली ।

13. श्री विमल चन्द्र, उप कमिश्नर, अनुसूचित जातियां, और अनुसूचित आदिम जातियां, गृह मंत्रालय, नई दिल्ली ।

14. श्री एन० एम० वदीवा, संसद सदस्य, सचिव, भारतीय आदि जातिय सेवक संघ, छिंदवाड़ा (मध्य प्रदेश) ।

15. श्री गुरबख्श सिंह, सहायक शिक्षा सलाहकार, शिक्षा आयोग, नई दिल्ली । **सचिव**

15. शिक्षा सांख्यिकी कर्मी समूह

1. श्री जे० पी० नायक, सदस्य-सचिव, शिक्षा आयोग, नई दिल्ली । **संयोजक**

2. डॉ० एस० पी० अग्रवाल, विभागाध्यक्ष, क्षेत्र जनशक्ति, प्रयुक्त जनशक्ति अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली ।

3. श्री आर० के० छाबड़ा, उप सचिव, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली ।

4. डा० जी० पी० खेर, सांख्यिक, योजना तथा प्रशासन का एशिया संस्थान इन्द्रप्रस्था स्टेट नई दिल्ली ।

5. श्री थी० नटराजन, उप रजिस्टार जनरल, रजिस्टार जसरल कार्यालय, नई दिल्ली ।

6. डा० एच० वैवस्टर, रा० शै० आ० प्र० प० के साथ कार्यरत कोलम्बिया विश्वविद्यालय अध्यापक कालेज टीम, नई दिल्ली ।

7. श्री गुरबख्श सिंह, सहायक शिक्षा सलाहकार, शिक्षा आयोग, नई दिल्ली । **सचिव**

16. पूर्व प्राथमिक शिक्षा से सम्बन्धित कर्मी समूह

1. कुमारी एस० पानन्दीकर, सदस्य, शिक्षा आयोग नई दिल्ली । **संयोजक**

2. श्रीमती बिलकीस गुफरन, निरीक्षण अधिकारी, केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड, पार्लियामेंट स्ट्रीट, जीवन दीप बिल्डिंग, नई दिल्ली ।

3. कुमारी एल० जैसूडियन प्रिंसिपल, वल्लार कलवी निलयम, 2, रिथर्डन रोड, वेपेरी मद्रास ।

4. श्रीमती जालिनी मोघे, प्रिंसिपल, मौन्टेसेरी प्रशिक्षण संस्थान, बाल अध्यापन मन्दिर, पैगनीस बाग, इन्दौर ।

5. श्री शेष नमले, शिशु विहार, 118, हिन्दू कालोनी, दादर, बम्बई ।

6. श्री एम० सी० नानावाटी, निदेशक, (सामाजिक शिक्षा) समुदाय विकास विभाग, कृषि सामुदायिक विकास और सहकारिता मंत्रालय, नई दिल्ली ।

7. कुमारी ए० पाकाशी प्रिंसिपल, चित्तरंतन अध्यापक प्रशिक्षण केन्द्र, 6, नाफर कुंडू रोड, कलकत्ता-26 ।

8. श्रीमती ग्रेस टकर, उपमन्त्री, शिक्षा, मैसूर विधान सभा, बंगलौर ।

9. कुमारी पी० के वरलक्ष्मी, तकनीकी अधिकारी, शिशु कल्याण की भारतीय काउंसिल, 4 राउज एवन्यू, नई दिल्ली 1 ।

10. श्री मती अमृता वर्मा, डीन गृह विज्ञान शिक्षा फैकल्टी, एम० एस० बड़ौदा विश्वविद्यालय बड़ौदा ।

11. डा० (श्रीमती) आर० मुरलीधरन, अध्यक्ष, शिशु अध्यापन एकक, एच-216, मॉडल टाउन, दिल्ली-1

सचिव

17. स्कूल-समुदाय संबंध पर कर्मी-समूह

1. श्री एल० आर० देसाई, उपकुलपति, गुजरात विश्वविद्यालय, अहमदाबाद । **संयोजक**

2. प्रो० हुलवे, देहाती जीवन विकास और अनुसंधान परियोजना, अहमदनगर कालेज, अहमदनगर ।

3. डा० वी० एम० भा, सदस्य, शिक्षा आयोग, नई दिल्ली ।

4. श्री एच० बी० मजूमदार, निदेशक, राष्ट्रीय अनुसंधान बुनियादी शिक्षा, नई दिल्ली ।

5. श्री पी० एन० माथुर, वनस्थली विद्यापीठ, वनस्थली, जयपुर ।

6. श्री जे० पी० नायक, सदस्य-सचिव शिक्षा आयोग, नई दिल्ली ।

7. श्री एम० सी० नानावाटी, निदेशक सामाजिक शिक्षा, सामुदायिक विकास विभाग, खाद्य, कृषि, समुदायिक विकास तथा सहकारिता मंत्रालय नई दिल्ली ।

8. श्री एल० राधाकृष्ण, सर्व सेवा संघ, राजघाट, बनारस ।

9. डा० के० जी० सैयदैन, सदस्य, शिक्षा का आयोग, नई दिल्ली ।

10. डा० आर० के० सिंह, निदेशक, देहाती उच्च संस्थान, बिचपुरी, आगरा ।

11. श्री एम० पी० बालकृष्णन, अनुसंधान अधिकारी, शिक्षा आयोग, नई दिल्ली । **सचिव**

18. स्कूली पाठ्यचर्या पर कर्मी-समूह

1. कुमारी एस० पानन्दीकर, सदस्य, शिक्षा आयोग, नई दिल्ली । **संयोजक**

2. श्री जे० पी० नायक. सदस्य-सचिव शिक्षा आयोग, नई दिल्ली ।

3. श्री ए० आर० दाऊद, सदस्य, शिक्षा आयोग, नई दिल्ली ।

4. श्री एल० एस० चन्द्रकांत, संयुक्त निदेशक, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान तथा प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली ।

5. डा० ए० जे० पैरली, सामाजिक अध्यापन और पाठ्यचर्या के विशेषज्ञ, भारत में कोलम्बिया विश्वविद्यालय अध्यापक कालेज टीम, रा० शै० अ० प्र० प० नई दिल्ली ।

6. प्रो० बी० घोष, निदेशक, पाठ्य-चर्या विभाग, पद्धति और पाठ्य-पुस्तक, रा० शै० अ० प्र० प० नई दिल्ली । **सचिव**

19. स्त्री शिक्षा पर कर्मी-समूह

1. डॉ० डी० एस० कोठारी, अध्यक्ष, शिक्षा आयोग, नई दिल्ली । **संयोजक**

2. श्रीमती दुर्गाबाई देशमुख, उपकुलपति निवास, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली ।

3. श्रीमती राजमल देवदास, प्रिंसिपल, गृह विज्ञान कालेज, कोयम्बटूर ।

4. श्री पी० एन० माथुर, वनस्थली विद्यापीठ वनस्थली, जयपुर ।

5. श्री जे० पी० नायक, सदस्य सचिव, शिक्षा आयोग, नई दिल्ली ।

6. कुमारी एस० पानन्दीकर, सदस्य शिक्षा आयोग, नई दिल्ली ।

7. डा० के० जी० सैयदैन, सदस्य, शिक्षा आयोग, नई दिल्ली ।

8. श्रीमती रक्षा शरण, अध्यक्ष, राष्ट्रीय काउंसिल स्त्री शिक्षा, 6, भगवान दास रोड, नई दिल्ली ।

9. डा० प्रेम लीला वी० ठकरसे उपकुलपति, एस० एन० डी० टी० महिला विश्वविद्यालय, बम्बई ।

10. कुमारी एस० राजम, सहायक शिक्षा सलाहकार, शिक्षा आयोग, नई दिल्ली । **सचिव**

परिशिष्ट-पांच

शिक्षा आयोग ने जिन व्यक्तियों से दिल्ली में समालाप किया उनकी सूची

1. आदिशेषय्या मैलकम, एस० (डॉ०) उप महानिदेशक यूनैस्को, पेरिस ।

2. **अखिल भारतीय माध्यमिक अध्यापक संघ**

   (i) श्री सत्यप्रिया राय, अध्यक्ष ।
   (ii) श्री राम प्रकाश गुप्त, महासचिव (दिल्ली) ।
   (iii) श्रीमती अनिला देवी, संयुक्त सचिव (कलकत्ता) ।
   (iv) श्री चन्द्रेश्वर प्रसाद सिंह (पटना) ।
   (v) श्री मधुसूदन नारायण लाल (उत्तर प्रदेश) ।
   (vi) श्री बी० पी० राय (बिहार) ।
   (vii) श्री एस० के० भट्टाचार्य (पश्चिम बंगाल) ।
   (viii) श्री प्राणराज शर्मा (दिल्ली) ।
   (ix) श्री आर० एस० भारद्वाज (दिल्ली)
   (x) श्रीमती ज्ञान दर्शन कौर (पंजाब) ।

3. एन्थनी, फ्रैंक, (संसद सदस्य), अखिल भारतीय आंग्ल भारतीय एसोसिएशन, बम्बई लाईफ बिल्डिंग, कनाट सर्कस, नई दिल्ली-1 ।

4. अप्पादोराई, ए. (डा०), सदस्य, संघ लोक सेवा आयोग, नई दिल्ली ।

5. असरानी, यू० ए०, अवकाश प्राप्त प्राध्यापक, बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, 52, आदर्श नगर, लखनऊ ।

6. अविनाशिलिंगम, टी० एस०, निदेशक, श्री रामकृष्ण मिशन विद्यालय, पेरियानायकनपलयम, जिला कोयम्बटूर (मद्रास) ।

7. बैरो, ए० ई० टी० संसद सदस्य, सचिव, भारतीय स्कूल प्रमाण पत्र परीक्षा काउंसिल, बी०-27, पूर्वी विजामउद्दीन (नई दिल्ली) ।

8. भूतलिंगम, एस०, सचिव, वित्त मंत्रालय, (आर्थिक मामलों का विभाग) नई दिल्ली ।

9. चागला, एम० सी० शिक्षा मंत्री, नई दिल्ली ।

10. **शिशु मार्गदर्शन स्कूल सोसायटी (प्रिंसिपल फोरम), दिल्ली ।**

प्रतिनिधि :

   (i) श्री जगत सिंह,
   (ii) श्री तेजभान सेठ,
   (iii) प्रिंसिपल एम० एल० रंगन,
   (iv) कुमारी के० सेन गुप्ता,
   (v) श्री एम० एन० कपूर,
   (vi) रैवरेन फादर टी० वी० कुन्नूनकल,

11. ओपदे, एस० डी०, सचिव, अखिल भारतीय शारीरिक शिक्षा कॉलेज, एसोसिएशन, द्वारा लक्ष्मी बाई शारीरिक शिक्षा कॉलेज, ग्वालियर ।

12. भारतीय स्कूल प्रमाण-पत्र परीक्षा परिषद् नई दिल्ली (श्री ए० ई० टी० बैरो, सचिव काउंसिल ।

13. **दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, टी० नगर, मद्रास-17**

प्रतिनिधि :

   (i) श्री डी० श्रीनिवास आयंगार,
   (ii) श्री एम० राजेश्वरैया,
   (iii) श्री जी० सुब्रह्मण्यम् ।

14. दारूवाला, जे० सी०, अवैतनिक कार्यकारी निदेशक, विश्व तनाव काउंसिल, दक्षिण-पूर्वी एशिया विभाग, 6, पतित रोड, कुमल्ल हिल, बम्बई ।

15. दास गुप्त, सुगात, गांधी अध्ययन संस्थान वाराणसी ।

16. देहेजिया, वी० टी०, अध्यक्ष, स्टेट बैंक आफ इंडिया, बम्बई ।

17. **दिल्ली-स्कूल प्रबन्धक का संगठन, बाग दीवार, दिल्ली ।**

प्रतिनिधि :

   (i) लाला सुल्तान सिंह जैन,
   (ii) श्री राम कंवर गुप्ता,
   (iii) लाला गिरधारी लाल,
   (iv) लाला केदार नाथ,
   (v) श्री आर० बी० सेठ ।

18. देसाई, मोरारजी, (संसद सदस्य), 7 त्यागराज मार्ग, नई दिल्ली-1

19. देशमुख, सी० डी० (डॉ०), उपकुलपति, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली ।

20. दिवाकर, आर० आर० (संसद सदस्य), एकमात्र ट्रस्टी लोक शिक्षण ट्रस्ट, 2, रैजिडैंसी रोड, बंगलौर-25

21. **संपादक/पत्रकार**

(i) बसु, एस० के०, संपादक, "दि हिन्दुस्तान स्टैन्डर्ड," कलकत्ता ।

(ii) डसूजा, ए० जे०, रैजिडेन्ट संपादक, "दि हितावदा," नागपुर ।

(iii) घामारे, डी० जी०, संपादक, "दि तरुण भारत" नागपुर ।

(iv) घोष, एस० एन०, संपादक, "दि पाईनीयर," लखनऊ ।

(v) गुप्ता, विश्वबन्धु, संपादक, "दी डेली तेज," पो० बा० नं० 1112, दिल्ली ।

(vi) कृपानिधि, जी० वी०, संपादक, "डैकन हेरल्ड" बंगलौर ।

(vii) मलकानी, के० पी०, संपादक, "दी औरगेनाईजर," दिल्ली ।

(viii) मेहता, के० एम०, संपादक, "संदेश," अहमदाबाद ।

(ix) मेनन, के० ए० दामोदर, "मातृभूमि," एरणाकुलम (केरल) ।

(x) नारायणन, के० पी०, संपादक, "मध्य प्रदेश क्रॉनिकल," भोपाल ।

(xi) श्याम लाल, संपादक, "दी टाइम्स आफ इंडिया," नई दिल्ली ।

(xii) थापर, राज (श्रीमती), "सेमिनार," नई दिल्ली ।

22. **दिल्ली नगर निगम की शिक्षा समिति**

प्रतिनिधि :

(i) श्री बंसी लाल चौहान, अध्यक्ष,
(ii) श्री कुलानन्द भाइक, उपाध्यक्ष,
(iii) श्री राम प्रकाश गुप्ता, सदस्य,
(iv) शांति देवी दित्त, सदस्य,
(v) श्री अकलाक़ हुसैन, सदस्य,
(vi) श्री डी० एल० शर्मा, शिक्षा अधिकारी, दिल्ली नगर निगम ।
(vii) डॉ० जे० एन० माथुर, सहायक शिक्षा अधिकारी, दिल्ली नगर निगम ।

23. **गृहस्थ जीवन संस्थान (नैतिक तथा सामाजिक स्वास्थ्य विज्ञान संगठन), नई दिल्ली ।**

प्रतिनिधि :

(i) श्रीमती शकुन्तला लाल,
(ii) श्रीमती मुकंद राव,
(iii) श्री सी० के० बसु,
(iv) श्री एच० पी० मेहता,
(v) डॉ० डब्ल्यू० माथुर,
(vi) श्री बी० के० बक्शी,

24. गाडगिल, डी० आर०, गोखले राजनीति और अर्थशास्त्र संस्थान, पूना-4 ।

25. गजेन्द्रगडकर, पी० वी०, भारत के सर्वोच्च न्यायाधीश 5, हैस्टिंग्स रोड, नई दिल्ली ।

26. घोष, ए० के०, सचिव, शिक्षा मंत्रालय, नई दिल्ली ।

27. गोविन्द दास, सेठ, (संसद सदस्य), राजा गोकुलदास महल, जबलपुर ।

28. गुप्त, पी० डी०, भूतपूर्व उपकुलपति, आगरा विश्वविद्यालय, डिलाइट, कॉटेज, मसूरी ।

29. **दिल्ली नगर निगम के प्राथमिक तथा माध्यमिक स्कूलों के हैडमास्टर**

(अगुवा श्री डी० एल० शर्मा, शिक्षा अधिकारी, दिल्ली न० नि०)

(i) अग्रवाल, सी० (श्रीमती), नगर निगम माध्यमिक स्कूल (लड़कियों) तिहार 1, दिल्ली ।

(ii) चड्ढा एस० (श्रीमती), प्रधानाचार्य, जमना बाजार 1, दिल्ली ।

(iii) हुसैन, सैयद, नगर निगम प्राथमिक स्कूल, गंज मीर खां, दिल्ली ।

(iv) मनचन्दा, संतोष (श्रीमती), प्रधानाचार्य, नगर निगम माध्यमिक स्कूल, तिहार 1, सुभाष नगर, दिल्ली ।

(v) मेहदी, एस० नासिर, नगर निगम, अवर बुनियादी स्कूल, ओखला, दिल्ली ।

(vi) शर्मा, एस० डी०, स्थानापन्न उप शिक्षा अधिकारी, दिल्ली नगर निगम ।

(vii) शर्मिष्ठा देवी (श्रीमती), नगर निगम प्राथमिक स्कूल, खत्ता हार्डिंग ब्रिज, नई दिल्ली ।

(viii) टेक चन्द, प्रधानाचार्य, नगर निगम माध्यमिक स्कूल, फैज बाजार,-1 दिल्ली ।

(ix) यादव, चन्दन सिंह, प्रधानाचार्य, नगर निगम प्राथमिक स्कूल, आर० के० पुरम, सैक्टर 4, नई दिल्ली ।

30. **इंजीनियरी संस्थान (भारत), 8 गोखले रोड कलकत्ता**

प्रतितिधि :

(i) श्री एन० एस० गोविन्द राव, अध्यक्ष ।
(ii) श्री वी० शेषाद्रि सचिव ।

31. **जमायत-ए-इस्लामी हिंद, सुईवालान, दिल्ली-6**

प्रतिनिधि :

(i) श्री सोहम्मद यूसुफ ।
(ii) श्री अफ़ज़ल हुसैन :

32. जयसिंघे, पी० एस० प्रकाशक, एशिया पब्लिसिंग हाऊस और प्रधान, भारतीय प्रकाशक संघ कालीकट स्ट्रीट, बल्लार्ड एस्टेट, बम्बई-1 ।

33. जगजीवन राम, केन्द्रीय मंत्री, श्रम तथा रोजगार, नई दिल्ली ।

34. जोसेफ, पी० एम० (डॉ०), प्रिन्सिपल, लक्ष्मीबाई शारीरिक शिक्षा कॉलेज, ग्वालियर ।

35. जोशी, ए० सी० (डॉ०) सलाहकार (शिक्षा), योजना आयोग, नई दिल्ली ।

36. जोशी, के० एल०, सचिव, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली ।

37. कबिर, हुमायुन (प्रो०) संसद सदस्य, 2 मोती लाल नेहरू प्लेस, नई दिल्ली ।

38. कबिर, शान्ति (श्रीमती), अध्यक्ष, भारत का युवक छात्रावास संगठन, 2, मोती लाल नेहरू प्लेस, नई दिल्ली ।

39. कामराज, के०, अध्यक्ष, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, 4, जन्तर मंतर रोड, नई दिल्ली ।

40. केसकर, बी० वी० (डॉ०) अध्यक्ष, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, 3, कुशक रोड, नई दिल्ली-11

41. खेरा, एस० एस० अध्यक्ष, हिंदुस्तान एरोनॉटिक्स लि०, नई दिल्ली ।

42. कृष्णा मेनन, वी० के० (संसद सदस्य), 19 तीन मूर्ति मार्ग, नई दिल्ली ।

43. कुंजरू एच० एन० पंडित, अध्यक्ष, सर्वेन्ट आफ इण्डिया सोसायटी, सप्रू हाउस, नई दिल्ली ।

44. लालबाई, कस्तूरबाई, शाहीबाग, अहमदाबाद ।

45. महाजनी, जी० एस० (डॉ०) उपकुलपति, उदयपुर विश्वविद्यालय, उदयपुर ।

46. मथियास, टी० ए० रेवरेण्ड, फादर प्रिंसिपल, सैन्ट जोसेफ कॉलेज, त्रिचवापल्ली ।

47. माथुर, एच० सी० (संसद सदस्य), 11 इलेक्ट्रिक लेन, नई दिल्ली ।

48. माथुर, जे० सी० संयुक्त सचिव, खाद्य तथा कृषि मंत्रालय, नई दिल्ली ।

49. मेहता, अशोक, उपाध्यक्ष, योजना आयोग, नई दिल्ली ।

50. मेहता बी०, मुख्य सचिव, राजस्थान सरकार, जयपुर ।

51. मेहता, बी० एच० (डॉ०), निदेशक, गोडवाना सैन्टर 84, चार बंगला, वेरसोवा (वाया अंधेरी) ।

52. **विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के सदस्य**

प्रतिनिधि :

(i) दास, एस० आर०, उपकुलपति, विश्व भारती, शान्ति निकेतन

(ii) पवाते, डी० सी० उपकुलपति, कर्नाकट विश्वद्यालय, धारवाड़

(iii) वाडिया, ए० आर० (संसद सदस्य) नई दिल्ली ।

(iv) जोशी, के० पी० (सचिव) विश्वविद्यालय आयोग ।

53. मुगाली, आर० एस० (डॉ०) प्रिंसिपस, विलिंगडन कॉलेज, मांगली ।

54. नारायण, जय प्रकाश, कादम कुआं, पटना ।

55. नारायण, श्रीमन्, नेपाल में भारती राजदूत, 3 फिरोजशाह रोड, नई दिल्ली ।

56. ओराओन, कार्तिक, उप मुख्य इंजीनियर (डिजाइंस) हैवी इंजिनियरिंग कारपरेशन, लि० रांची ।

57. पांडे, एस०डी०, सचिव, बिड़ला शिक्षा न्यास, पिलानी (राजस्थान) ।

58. पंत, के० सी० (संसद सदस्य)-सी 1135, पंडारा रोड, नई दिल्ली-11

59. प्रसाद, बी० एन० (डॉ०)-जनरल अध्यक्ष, भारतीय विज्ञान कांग्रेस, लक्ष्मी निवास, जार्ज टाउन, लखनऊ ।

60. प्रसाद, सिद्धेश्वर (संसद सदस्य), 52 साउथ एवन्यू, नई दिल्ली ।

61. पठानिया, ए० एस० (मेजर जनरल) सहानिदेशक, राष्ट्रीय अनुशासन योजना, नई दिल्ली ।

62. रामचन्द्रन, जी० सचिव, गांधी शान्ति प्रतिष्ठान, 2 जंतर मंतर रोड, नई दिल्ली ।

63. रंगनाथन, एस० आर० (डॉ०), पुस्तकालय विज्ञान के राष्ट्रीय अनुसंधान प्राध्यापक, डॉकुमैंटेशन अनुसंधान और प्रशिक्षण केन्द्र, बंगलौर ।

64. रंगनाथानन्द (स्वामी), रामकृष्ण मिशन, सांस्कृतिक संस्थान, गोल पार्क, कलकत्ता ।

65. राव, एस० मुकन्द एस० एल० सी०, बसंत लेन, मंगलौर-3

66. राव, वी० के० आर० वी० (डॉ०), सदस्य (कृषि शिक्षा, तथा अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार) योजना आयोग, नई दिल्ली ।

67. राय, रेणुका (श्रीमती), (संसद सदस्य), 187, साउथ एवन्यू, नई दिल्ली ।

68. रेड्डी, डी० एस० (डॉ०)—उपकुलपति, उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद ।

69. सहस्रबुद्धे, अन्नासाहब, अध्यक्ष, स्थाई समिति, योजना आयोग की देहाती औद्योगिक योजना समिति, नई दिल्ली ।

70. साही, आई० डी० एन०, अतिरिक्त सचिव, सामुदायिक विकास विभाग, खाद्य तथा कृषि मंत्रालय, नई दिल्ली ।

71. सप्रू, पी० एन० (संसद सदस्य), 10 फिरोजशाह रोड, नई दिल्ली ।

72. सरन, सरस्वती, सह संपादक, ट्रिब्यून, अम्बाला ।

73. सरकार, चंचल, भारतीय प्रेस संस्थान, 66, लखनऊ रोड, दिल्ली-7

74. श्याम लाल, आवासी संपादक, टाइम्स ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली ।

75. सिंह, टी० पी०, सचिव, वित्त मंत्रालय (खर्च विभाग) नई दिल्ली ।

76. सिक्येरा, टी० एन०, रेवरेन्डफादर, प्रिंसिपल, (अवकाश प्राप्त) सैन्ट जोसेफ कॉलेज, तिरुचिरापल्ली ।

77. सोंधी, जी० डी०, आई० ई० एस० (अवकाश प्राप्त) सुबाथू, शिमला हिल्स ।

78. श्री प्रकाश, विश्रांति कुटीर, राजपुर, देहरादून ।

79. **भारतीय अंतर-विश्वविद्यालय बोर्ड की स्थायी समिति**

प्रतिनिधि :

(i) सर सी० पी० रामस्वामी अय्यर—अध्यक्ष
(ii) डॉ० (श्रीमती) पी० वी० थैकरसे—सदस्य
(iii) डा० बी० मलिक—सदस्य
(iv) श्री टी० एस० अडवानी—सदस्य
(v) डॉ० जी० डी० महाजनी—सदस्य
(vi) डॉ० टी० सेन—सदस्य
(vii) प्रो० जी० डी० पारिख—सदस्य

80. सुब्रह्मण्यम्, सी० केन्द्रीय खाद्य तथा कृषि मंत्री, नई दिल्ली ।

81. ताराचन्द (डॉ०) संसद सदस्य, 8 तुगलक रोड, नई दिल्ली ।

82. त्रिलोक सिंह, सदस्य, योजना कमीशन, नई दिल्ली ।

83. थैकर, एम० एस० (प्रो०) सदस्य, योजना आयोग नई दिल्ली ।

84. विरेन्द्र सिंह (मे० ज०) महानिदेशक, राष्ट्रीय कैडिट कोर, नई दिल्ली ।

85. वाडिया, डी० एस० (डॉ०) भूविज्ञान सलाहकार, परमाणु ऊर्जा विभाग, नई दिल्ली ।

86. जहीर, एस० हुसैन (डॉ०) महानिदेशक, वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली ।

परिशिष्ट-छह

आयोग का सचिवालय

नाम	पद
1. श्री जे० पी० नायक	सदस्य सचिव—1-9-64 से ।
2. मि० जे० एफ० मैकडूगल	सह-सचिव—10-10-64 से ।
3. श्री टी० एस० भाटिया	संयुक्त सचिव—21-9-65 से
4. डॉ० एम० डी० पाल	उप-शिक्षा सलाहकार 1-9-64 से 31-3-66 ।
5. डॉ० एस० एम० एस० चारी	उप शिक्षा सलाहकार—9-3-65 से ।
6. श्री वेद प्रकाश	उप शिक्षा सलाहकार—13-9-65 से 25-1-66
7. डॉ० विक्रम सिंह	उप शिक्षा सलाहकार—25-1-66 से 24-3-66
8. श्री एस० वैंकटेश	उप शिक्षा सलाहकार—28-9-64 से ।
9. कुमारी एस० राजन	सहायक शिक्षा सलाहकार—9-10-64 से।
10. श्री गुरबख्श सिंह	सहायक शिक्षा सलाहकार—9-10-64 से।
11. कुमारी एस० रहमान	सहायक शिक्षा सलाहकार, 10-3-66 से ।
12. श्रीमती एस० दोरास्वामी	सहायक शिक्षा सलाहकार, 22-3-65 से ।
13. श्री एस० रामानुजम्	सहायक शिक्षा सलाहकार, 9-3-65 से 31-3-66
14. श्री एम० पी० बालकृष्णनन्	अनुसंधान अधिकारी, 26-11-64 से ।
15. डॉ० राजशेखरन्	पूल, अधिकारी, वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधान परिषद 21-1-65 से ।
16. श्री एस० एन० लाल	सहायक शिक्षा सलाहकार, 3-4-65 से 1-10-65
17. श्री ए० के० कश्यप	सहायक शिक्षा सलाहकार, 20-3-65 से 31-2-66
18. श्री एच० आर० गुगनानी	सहायक शिक्षा अधिकारी, 20-5-65 से 31-3-66
19. श्री पी० एन० कौ	सहायक शिक्षा अधिकारी, 1-10-65 से 32-3-66
20. श्री डी० पी० दास	अनुभाग अधिकारी, 5-4-95 से ।
21. श्री एम० के० जैन	पुस्तकाध्यक्ष, 12-4-65 से ।
आयोग में रा० शै० अ० प्र० प० अधिकारी,	
22. श्री एस० एम० दुदानी	अनुसंधान सहयोगी 1-11-64 से ।
23. श्री डी० एल० शर्मा	अनुसंधान सहयोगी 1-11-64 से ।
24. श्री एम० एल० कालरा	अनुसंधान सहयोगी 1-11-64 से ।
25. श्री आर० एस० त्रेहन	अनुसंधान सहयोगी 1-11-64 से 16-6-65
26. श्री सी० एल० कौल	अनुसंधान सहयोगी 8-9-65 से
विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के वैज्ञानिक शिक्षा के कार्यदल से संबंधित अधिकारी	
27. डॉ० आर० डी० देशपांडे	विकास अधिकारी
28. श्री आई० सी० मेनन	शिक्षा अधिकारी
अनुप्रयुक्त जनशक्ति अनुसंधान संस्था के जनशक्ति कार्यदल से संबंधित अधिकारी	
29. डॉ० एस० पी० अग्रवाल	प्रभाग अध्यक्ष, क्षेत्रीय ।

परिशिष्ट-सात

राज्य सरकारों तथा केन्द्र प्रशासित क्षेत्रों के सम्पर्क अधिकारी

आन्ध्र प्रदेश	1. श्री के० वी० रंगा रेड्डी, रीडर, राज्य शिक्षा संस्था, हैदराबाद ।
असम	2. श्री जी० सी० एस० बरुआ, अतिरिक्त जन सलाहकार निदेशक, शिलांग ।
बिहार	3. श्री संत प्रसाद, शिक्षा उप निदेशक, पटना ।
गुजरात	4. श्री वी० एच० भानोट, शिक्षा उप निदेशक, अहमदाबाद ।
जम्मू-कश्मीर	5. श्री आर० एल० बसूर, शिक्षा उप निदेशक, जम्मू तवी ।
	6. श्री जी० आर० धर, शिक्षा उप निदेशक, श्रीनगर ।
केरल	7. श्री पी० के० उमाशंकर, जन शिक्षा निदेशक त्रिवेन्द्रम ।
	8. डॉ० के० भास्करन नायक, स्नातकोत्तर शिक्षा निदेशक, त्रिवेन्द्रम ।
	9. श्री एस० राजारामन, तकनीकी शिक्षा निदेशक, त्रिवेंद्रम ।
मध्य प्रदेश	10. श्री पी० एम० कपूर, जन शिक्षा निदेशक के विज्ञान-परामर्शदाता, भोपाल ।
मद्रास	11. श्री के० मोहनारंगम, जन शिक्षा उप-निदेशक, मद्रास ।
महाराष्ट्र	12. श्री जे० ए० वकील, शिक्षा उप निदेशक, पूना ।
	13. डॉ० (श्रीमती) चित्रा नायक, निदेशक, राज्य संस्थान शिक्षा, पूना-2
मैसूर	14. श्री टी० वी० थिम्मेगौडा, संयुक्त निदेशक, शिक्षा, बंगलौर ।
नागालैण्ड	15. श्री यजेन ऐयर, शिक्षा उप निदेशक, कोहिमा ।
उड़ीसा	16. श्री एस० के० पंडा, उप निदेशक, जन शिक्षा (योजना), भुवनेश्वर ।

पंजाब	17. श्री के० एन० दत्त, संयुक्त निदेशक, जन शिक्षा (कॉलेज) चंडीगढ़।
राजस्थान	18. श्री एस० एम० एल० श्रीवास्तव, उप निदेशक, शिक्षा, (योजना और सामाजिक शिक्षा) बीकानेर।
उत्तर प्रदेश	19. डा० सी० एम० भाटिया, उप निदेशक शिक्षा, इलाहाबाद।
पश्चिम बंगाल	20. श्रीमती के० के० गुप्ता, सहायक निदेशक जन शिक्षा (ग्राम शिक्षा तथा महिला शिक्षा) कलकत्ता।
अण्डमान निकोबार व द्वीपसमूह . . .	21. श्री बी० डी० सिंह, शिक्षा अधिकारी, पोर्ट ब्लेयर।
दादरा और नगर हवेली	22. श्री एम० एस० विजलानी, शिक्षा अधिकारी, सिलवासा।
दिल्ली	23. श्री बी० एस० सहगल, उप निदेशक, शिक्षा, दिल्ली।
गोवा, दमन और दीव	24. डॉ० पी० एस० वार्डे, उप निदेशक, शिक्षा, पंजिम।
हिमाचल प्रदेश	25. श्री आर० आर० गुप्ता, उप निदेशक, शिक्षा, शिमला-4।
लक्कदीव, मीनिकोय और अमीनदीवी द्वीपसमूह . . .	26. श्री पी० एम० जोसेफ, प्रशासनिक सचिव, कोज़ीकोड।
मणिपुर	27. श्री एस० एन० कौल, शिक्षा निदेशक, इम्फाल।
उत्तर-पूर्वी सीमान्त एजेंसी	28. श्री एम० एन० वारडोलोइ, सहायक निदेशक, शिक्षा, शिलांग।
पांडिचेरी	29. श्री ए० डेविड, उप निदेशक, जन शिक्षा, पांडिचरी।
त्रिपुरा	30. श्री ए० दासगुप्ता, उप निदेशक शिक्षा, अगरतला।

परिशिष्ट-आठ

शिक्षा आयोग के दौरों का कार्यक्रम

राज्य/केन्द्र प्रशासित क्षत्र	दौरे की तारीख
I. राज्य	
1. राजस्थान	11 से 16 जनवरी, 1965
2. महाराष्ट्र	5 से 14 फरवरी, 1965
3. मैसूर	15 से 20 फरवरी, 1965
4. मध्य प्रदेश	22 से 27 मार्च, 1965
5. उत्तर प्रदेश	15 से 21 अप्रैल, 1965
6. बिहार	26 अप्रैल से 1 मई, 1965
7. पंजाब	10 से 15 मई, 1965
8. जम्मू-कश्मीर	24 मई से 13 जून 1965
9. नागालैण्ड	18 से 22 जून, 1965
10. आन्ध्र प्रदेश	28 जून से 3 जुलाई 1965
11. गुजरात	12 से 17 जुलाई, 1965
12. मद्रास	26 से 31 जुलाई, 1965
13. पश्चिम बंगाल	23 से 28 अगस्त, 1965
14. उड़ीसा	10 जनवरी, 1966
15. केरल	2 से 4 फरवरी, 1966
16. असम	6 से 8 जून, 1966
II. केन्द्र प्रशासित प्रदेश	
1. हिमाचल क्षेत्र	1 से 4 नवम्बर, 1965
2. मणिपुर	23 से 25 नवम्बर, 1965
III. केन्द्रीय विश्वविद्यालय	
1. जामिआ मिल्लिया	22 सितम्बर, 1965
2. दिल्ली विश्वविद्यालय	5 नवम्बर, 1965
3. बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय	15 से 17 नवम्बर, 1965
4. अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय	9 और 10 दिसम्बर, 1965

परिशिष्ट-नौ

शिक्षा आयोग पर हुआ खर्च

शिक्षा आयोग पर आए खर्च का ब्योरा नीचे दिया जा रहा है :

मद	1964-55	1965-66	1966-67 (30-6-1966 तक)	कुल
	रुपए	रुपए	रुपए	रुपए
1. अधिकारियों का वेतन	75,971.90	281,432.37	44,569.71	402,973.98
2. स्थापना का वेतन	17,790.00	120,550.71	31,388.89	169,699.60
3. भत्ता और मानदेय आदि	99,837.82	602,497.63	66,359.42	768,694.87
4. अन्य खर्चे	59,000.28	91,432.27	5,368.18	155,800.73
कुल जोड़	2,53,600.00	10,95,882.98	1,47,686.20	14,97,169.18

नोट : अधिकारियों के जून, 1966 के वेतन बिलों की रकम रु० 12,016.45, जो कि जुलाई, 1966 में मिल सकी, ऊपर की सारणी में नहीं दी गई हैं ।

सिफ़ारिशों का सार

पहला अध्याय. शिक्षा और राष्ट्रीय लक्ष्य

1. शिक्षा में जिस सबसे महत्वपूर्ण और जरूरी सुधार की आवश्यकता है, वह है उसका रूप बदलने की, उसे लोगों के जीवन, आवश्यकताओं तथा आकांक्षाओं से सम्बन्धित करने की और इस प्रकार उसे राष्ट्रीय लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए आवश्यक सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिवर्तन का एक शक्तिशाली साधन बनाने की, इस प्रयोजन के लिए, शिक्षा का विकास इस तरह होना चाहिए कि उत्पादिता बढ़े, सामाजिक और राष्ट्रीय एकीकरण सम्भव हो सके, आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में तेजी आए और सामाजिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्य विकसित हों। 1.20 (7)†

2. **शिक्षा और उत्पादिता**—शिक्षा का सम्बन्ध उत्पादिता से जोड़ने के लिए निम्नलिखित कार्यक्रम आवश्यक हैं :

(1) **विज्ञान की शिक्षा**—विज्ञान की शिक्षा स्कूली शिक्षा का एक अभिन्न अंग बन जाना चाहिए और अंत में जाकर वह विश्वविद्यालय स्तर पर भी सभी पाठ्यक्रमों का एक भाग बन जाए। 1.23-24 (8)

(2) **कार्य-अनुभव**—कार्य-अनुभव को सभी प्रकार की शिक्षा के एक अभिन्न अंग के रूप में प्रारम्भ किया जाए।

(3) कार्य-अनुभव को शिल्पविज्ञान तथा औद्योगीकरण की ओर उन्मुख करने तथा उत्पादक प्रक्रियाओं जिनमें कृषि भी शामिल है, में विज्ञान के उपयोग के लिए हर प्रयत्न किया जाना चाहिए। 1.25-33 (8-11)

(4) **व्यवसायीकरण**—माध्यमिक शिक्षा का अधिकाधिक तथा बड़े पैमाने पर व्यवसायीकरण होना चाहिए तथा उच्चतर शिक्षा में, कृषि और तकनीकी शिक्षा पर अधिक जोर दिया जाना चाहिए। 1.32(10-11)

3. **सामाजिक और राष्ट्रीय एकीकरण**—शिक्षा प्रणाली का एक महत्वपूर्ण लक्ष्य सामाजिक और राष्ट्रीय एकीकरण है। राष्ट्रीय चेतना और एकता को मजबूत बनाने के लिए निम्नलिखित कदम उठाए जाने चाहिए।

(1) **समान स्कूल**—लोक शिक्षा की प्रणाली के रूप में समान स्कूल प्रणाली को राष्ट्रीय लक्ष्य के रूप में अपनाया जाना चाहिए और उसे 20 वर्षों की अवधि में क्रमबद्ध कार्यक्रम के रूप में प्रभावपूर्ण ढंग से अमल में लाया जाना चाहिए। 1.36-38 (12-13)

(2) **सामाजिक और राष्ट्रीय सेवा**—सामाजिक और राष्ट्रीय सेवा सभी स्तरों पर सभी विद्यार्थियों के लिए अनिवार्य बना दी जानी चाहिए। स्कूलों और कॉलेजों में अध्ययन-विषयों के साथ इन कार्यक्रमों का आयोजन किया जाना चाहिए।

(1) प्राथमिक स्तर पर, सामाजिक सेवा के कार्यक्रम सभी स्कूलों में बुनियादी तालीम के ढंग पर चलाए जाने चाहिए।

(2) माध्यमिक स्तर पर, सामाजिक सेवा अवर माध्यमिक स्तर पर कुल 30 दिनों के लिए तथा उच्चतर माध्यमिक स्तर पर (एक वर्ष में 10 दिन) अनिवार्य होनी चाहिए। यह एक या दो बार में की जा सकती है।

(3) पूर्व-स्नातक स्तर पर, कुल 60 दिनों की (एक या दो बार में की जानेवाली) सामाजिक सेवा सभी विद्यार्थियों के लिए अनिवार्य होनी चाहिए।

(4) हर शिक्षा संस्था को स्वयं अपना ऐसा सामाजिक और सामुदायिक सेवा कार्यक्रम बनाना चाहिए जिसमें कि उसके सभी विद्यार्थी ऊपर बताई गई अवधियों के लिए उपयुक्त रीति से सम्मिलित हो सकें।

(5) एक विशेष तंत्र का संगठन कर प्रत्येक जिले में श्रम और सामाजिक सेवा शिविरों का आयोजन किया जाना चाहिए। इस प्रकार के

---

† **प्रत्येक सिफारिश के बाद दिए गए अंक निम्नलिखित को सूचित करते हैं :**

1. **अध्याय की संख्या।**
2. **पैरा की संख्या (अन्तर्राष्ट्रीय अंकों में), और**
3. **पृष्ठ की संख्या (कोष्ठकों में)**

शिविरों में भाग लेना उन सभी विद्यार्थियों के लिए अनिवार्य होना चाहिए जिनके लिए उनकी शिक्षा संस्थाओं में सामाजिक सेवा के कार्यक्रम आयोजित नहीं किए गए हों।

(6) राष्ट्रीय कैडेट कोर को उसके वर्तमान आधार पर ही चौथी पंचवर्षीय योजना के अंत तक जारी रखा जाए। संबंधित अधिकारियों को इस बात की संभावना पर विचार करना चाहिए कि यह प्रशिक्षण स्नातक-पूर्व स्तर पर लगभग 60 दिनों के अविराम कार्यक्रम के रूप में पूर्णकालिक आधार पर दिया जा सके। इसी बीच, सामाजिक सेवा के वैकल्पिक प्रकार तैयार किए जाने चाहिए तथा जैसे ही वे कार्य-रूप में आने लगें, राष्ट्रीय कैडेट कोर को ऐच्छिक बना दिया जाए। 1.39-48 (13-15)

(3) **भाषा-नीति**—एक समुचित भाषा-नीति के विकास से सामाजिक और राष्ट्रीय एकीकरण में महत्वपूर्ण सहायता मिल सकती है।

(4) स्कूल और कॉलेज स्तरों पर शिक्षा का माध्यम बनने के लिए मातृभाषा का अधिकार सब से पहले है। इसके अतिरिक्त, स्कूली और उच्चतर शिक्षा का माध्यम सामान्यतया एक ही होना चाहिए। अतएव, उच्चतर शिक्षा के लिए प्रादेशिक भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाया जाना चाहिए।

(5) विश्वविद्यालय अनुदान आयोग तथा विश्वविद्यालयों को हर विश्वविद्यालय या विश्वविद्यालयों के समूह के लिए एक कार्यक्रम इन सिफ़ारिशों को उचित रूप से अमल में लाने के लिए तैयार करना चाहिए।

(6) प्रादेशिक भाषाओं में पुस्तकें और साहित्य, विशेषकर वैज्ञानिक और तकनीकी, तैयार करने के लिए उत्साहपूर्ण कार्रवाई की आवश्यकता है। इसे विश्वविद्यालयों की जिम्मेदारी बना देना चाहिए जिसे कि वे विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की सहायता से पूरा करें।

(7) अखिल भारतीय संस्थाएं फिलहाल शिक्षा के माध्यम के रूप में अंग्रेजी का प्रयोग करती रहें। किंतु अंत में जाकर हिन्दी के उपयोग पर कुछ सुरक्षणों को ध्यान में रख यथासमय विचार किया जा सकता है।

(8) संबंधित प्रदेशों में, यथासंभव शीघ्र ही प्रादेशिक भाषाओं को प्रशासन की भाषाएं बना देना चाहिए ताकि प्रादेशिक माध्यम से पढ़ने वाले उच्च सेवाओं से वंचित न रहें।

(9) अंग्रेजी के अध्ययन-अध्यापन को स्कूल स्तर से ही बढ़ावा दिया जाता रहे। अंतर्राष्ट्रीय आदान-प्रदान की अन्य भाषाओं के अध्ययन को भी प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। रूसी के अध्ययन पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

(10) स्कूल और विश्वविद्यालय दोनों ही स्तरों पर कुछ ऐसी संस्थाएं स्थापित करना वांछनीय होगा जिनमें विश्व की कुछ महत्वपूर्ण भाषाएं शिक्षा का माध्यम हों।

(11) शैक्षिक कार्य तथा बौद्धिक आदान-प्रदान के लिए उच्चतर शिक्षा के क्षेत्र में अंग्रेजी सम्पर्क भाषा का काम करेगी। किन्तु यह भी स्पष्ट है कि अधिकांश लोगों के लिए, अंग्रेजी सम्पर्क-भाषा का काम नहीं कर सकती। केवल हिंदी यथासमय यह स्थान ले सकती है और उसे लेना चाहिए। चूंकि वह संघ की राजभाषा और लोगों की सम्पर्क भाषा है, इसलिए अहिंदी क्षेत्रों में उसके प्रसार के लिए सभी उपाय किए जाने चाहिए।

(12) यह आवश्यक है कि हिन्दी के अतिरिक्त सभी आधुनिक भारतीय भाषाओं में अन्तर्राज्य आदान-प्रदान के अनेक साधन जुटाए जाएं। हर भाषाई प्रदेश में, अनेक व्यक्ति ऐसे होने चाहिएं जिन्हें अन्य आधुनिक भारतीय भाषाओं का ज्ञान हो और कुछ ऐसे व्यक्ति होने चाहिए जो उनके साहित्य से परिचित हों और उनमें योगदान कर सकते हों। इस प्रयोजन के लिए, स्कूलों और कालेजों दोनों ही में विभिन्न आधुनिक भारतीय भाषाओं की पढ़ाई का पर्याप्त प्रबन्ध होना चाहिए। इसके अतिरिक्त हर विश्वविद्यालय में कुछ आधुनिक भारतीय भाषाओं के अच्छे विभाग स्थापित करने के लिए भी कदम उठाए जाने चाहिए। बी० ए० और एम० ए० स्तरों पर दो आधुनिक भारतीय भाषाओं को साथ-साथ ले सकना सम्भव होना चाहिए। 1.49-62 (15-19)

(13) **राष्ट्रीय चेतना को बढ़ावा देना**—स्कूल प्रणाली का एक महत्वपूर्ण लक्ष्य राष्ट्रीय चेतना को बढ़ावा देना होना चाहिए। यह कार्य हमारी सांस्कृतिक विरासत को समझने को प्रोत्साहित कर एवं उसका पुनःमूल्यांकन कर एवं जिस भविष्य की हम कामना करते है, उसमें एक प्रबल प्रेरक आस्था निर्मित कर किया जा सकता है।

(क) पहला काम भारत की भाषाओं और साहित्यों, दर्शन, धर्मों और इतिहास के अध्यापन को

सुनियोजित ढंग से प्रोत्साहित कर तथा विद्यार्थियों को भारतीय मूर्तिकला, चित्रकला, संगीत नृत्य और नाट्य का परिचय करा कर किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, यह वांछनीय होगा कि भारत के विभिन्न भागों सम्बन्धी और अधिक ज्ञान, उनको समझने तथा उनकी अच्छी बातों को ग्रहण करने को बढ़ावा देकर तथा उनसे सम्बन्धित अध्ययन को पाठ्यचर्या में शामिल कर, जहां सम्भव हो वह शिक्षकों का आदान-प्रदान कर तथा देश के विभिन्न भागों की शिक्षा संस्थाओं में भाईचारे के सम्बन्ध बढ़ाकर तथा प्रादेशिक या भाषाई बाधाओं को दूर करने की दृष्टि से अन्तर्राज्यीय आधार पर आयोजित छुट्टी शिविरों तथा ग्रीष्म स्कूलों का संगठन कर किया जा सकता है।

(ख) भविष्य में आस्था उत्पन्न करने के लिए नागरिकता सम्बन्धी पाठ्यक्रमों में संविधान के सिद्धान्तों, उसकी प्रस्तावना में उल्लिखित महान मानव मूल्यों, हम जिस प्रकार के लोकतंत्रात्मक समाजवादी समाज का निर्माण करना चाहते हैं, उसको तथा राष्ट्रीय विकास की पंचवर्षीय योजनाओं विद्यार्थियों को भली-भांति समझाने का प्रयत्न करना होगा।

(14) राष्ट्रीय चेतना को प्रोत्साहित करने तथा वह अंतर्राष्ट्रीय सद्भाव बढ़ाने में कोई विरोध नहीं है जिसे प्रोत्साहित करने के लिए शिक्षा को साथ ही साथ प्रयत्न करना चाहिए।

(15) स्कूलों और कॉलेजों सम्बन्धी शिक्षा का कार्यक्रम लोकतांत्रिक मूल्यों को मन में बैठाने की दृष्टि से अपनाया जाना चाहिए। 1.63-68 (19-21)

4. **शिक्षा और आधुनिकीकरण**—(1) आधुनिक समाज में, ज्ञान की वृद्धि बड़ी तेजी से होती है और सामाजिक परिवर्तन भी बड़ी जल्दी होता है। इस कारण शिक्षा-प्रणाली में क्रांतिकारी परिवर्तन की आवश्यकता होती है। शिक्षा की अब केवल ज्ञान प्रदान करने या किसी तैयार वस्तु का उत्पादन करने से ही सम्बन्धित मुख्यतः नहीं समझा जाता किंतु जिज्ञासा उत्पन्न करने, उचित रुचियों, प्रवृत्तियों तथा मूल्यों के विकास तथा मूल्यों के विकास तथा स्वतन्त्र अध्ययन और स्वयं विचार और निर्माण करने की क्षमता विकसित करने से मुख्यतः सम्बन्धित माना जाता है। इसके लिए अध्यापन के तरीके तथा शिक्षकों के प्रशिक्षण में भी क्रान्तिकारी परिवर्तन आवश्यक होगा।

(2) स्वयं अपने को आधुनिक बनाने के लिए, किसी भी समाज को अपने आपको शिक्षित बनाना होता है। औसत नागरिक का शैक्षिक स्तर ऊंचा उठाने के अतिरिक्त, शिक्षा को समुचित आकार और क्षमता वाला ऐसा बुद्धिजीवीवर्ग उत्पन्न करने का प्रयत्न करना चाहिए जो समाज के सभी स्तरों का हो तथा जिसकी निष्ठा तथा आकांक्षाओं की जड़ें भारतीय भूमि में हों।

1.69-73 (21-22)

5. **सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक मूल्य**—शिक्षा प्रणाली को मूलभूत सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों के विकास पर जोर देना चाहिए। इस दृष्टि से :

(क) केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों को अपने (या स्थानीय प्राधिकार के) नियंत्रण की सभी शिक्षा संस्थाओं में नैतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग तथा धार्मिक और नैतिक शिक्षण समिति की सिफ़ारिशों के अनुसार प्रारम्भ करना चाहिए।

(ख) गैर-सरकारी प्रबंध की शिक्षा संस्थाओं से भी यह आशा की जाए कि वे भी ऐसा ही करेंगी।

(ग) इस प्रकार के मूल्यों की शिक्षा को स्कूल कार्यक्रमों का सामान्यतः अभिन्न अंग बनाने के अतिरिक्त, इस प्रयोजन के लिए टाइम-टेबल में कुछ घण्टे अलग रखे जाने चाहिए। ये घंटे विशेष रूप से भरती किए गए शिक्षकों द्वारा नहीं, अपितु इस प्रयोजन के लिए उपयुक्त समझे गए सामान्य शिक्षकों द्वारा लिए जाएं और यदि वे विभिन्न समुदायों के हों, तो तो अधिक अच्छा प्रशिक्षण शिक्षकों के लक्ष्यों में से एक लक्ष्य इस प्रकार के शिक्षकों को तैयार करना भी होना चाहिए।

(घ) तुलनात्मक धर्मों संबंधी विश्वविद्यालयों के विभागों का यह खोज करना विशेष कार्य होना चाहिए कि किन तरीकों से इन मूल्यों की शिक्षा बुद्धिमत्तापूर्वक एवं प्रभावशाली ढंग से

दी जा सकती हैं और उन्हें शिक्षकों तथा विद्यार्थियों द्वारा उपयोग में लाए जाने के लिए विशेष साहित्य तैयार करना चाहिए।

6. **धर्म सम्बन्धी शिक्षा**—अनेक धर्मों वाले लोकतान्त्रिक राज्य के लिए यह आवश्यक है कि वह सभी धर्मों के सहिष्णुतापूर्ण अध्ययन को प्रोत्साहित करे ताकि उसके नागरिक एक दूसरे को और अधिक अच्छी तरह से समझ सकें तथा शांतिपूर्ण ढंग से साथ-साथ रह सकें। मुख्य धर्मों में से प्रत्येक के संबंध में भली प्रकार चुनी गई जानकारी देने वाला पाठ्यविवरण नागरिकता-पाठ्यक्रम के एक अंग के रूप में या सामान्य शिक्षा के एक भाग के रूप में स्कूलों तथा कालेजों में प्रथम उपाधि तक शामिल किया जाना चाहिए। उसमें विश्व के महान धर्मों की मूलभूत समानताओं तथा जिन कुछ तुलनीय नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों को जगाने पर वे बल देते हैं, उन पर प्रकाश डाला जाना चाहिए। इसमें बड़ी सुविधा होगी यदि देश के सभी भागों में इस विषय संबंधी एक ही पाठ्यक्रम हो तथा ऐसी समान पाठ्यपुस्तकें हों जो कि राष्ट्रीय स्तर पर हर धर्म के समक्ष और उपयुक्त विशेषज्ञ द्वारा तैयार की गई हों। 1.74-80-(22-25)

दूसरा अध्याय. शिक्षा प्रणाली, संरचना और स्तर

7. **संरचना और अवधि**—(1) किसी भी शिक्षा प्रणाली में किसी भी दिए हुए समय पर स्तर निम्न चार अनिवार्य तत्वों पर अवलम्बित होते हैं :

(क) संरचना अथवा शिक्षा सूची स्तम्भ का तीन स्तरों अथवा अवस्थाओं में विभाजन तथा उनका अन्योन्य संबंध;

(ख) विभिन्न अवस्थाओं में लगने वाला संपूर्णकाल अथवा अवधि;

(ग) अध्यापकों, पाठ्यक्रमों, अध्यापन तथा मूल्यांकन की विधियों की गुणता;

(घ) तथा उपलब्ध सुविधाओं का उपयोगीकरण, ये समस्त तत्व अन्योन्य संबंधित हैं किन्तु एक समान महत्व के नहीं हैं। यथा :

— संरचना जो किसी भी शिक्षा प्रणाली का आवश्यक अंग हैं, सबसे कम महत्व की होती है।

— शिक्षा की कुल अवधि जिसका अधिक महत्वपूर्ण कार्य भाग है, तभी सारगर्भित होती है जबकि उपलब्ध सुविधाओं का पूर्ण उपयोग कर लिया गया हो और समय बढ़ाते बिना अग्रिम सुधार की आशा न रही हो।

— प्रयोज्य वस्तुओं की गुणता कहीं और अधिक महत्वपूर्ण है और इनके सुधार के द्वारा अथवा संरचना के अक्षुण्ण रखकर और अवधि को बिना बढ़ाए हुए भी स्तरों का उठाना संभव हो जाता है।

— किन्तु संभवतः सबसे अधिक महत्वपूर्ण तत्व उपलब्ध सुविधाओं का उपयोगीकरण ही है जिससे प्रयोज्य वस्तुओं के वर्तमान स्तर से ही महत्तम प्राप्त हो सके।

(2) स्कूल स्तर पर जिन दो तुरत प्रयत्नों पर ध्यान केन्द्रित करना है वे ये हैं : उपयोगीकरण को और गहन करना और समय के अतिरिक्त अन्य प्रयोज्य वस्तुओं की गुणता में सुधार करना। इनके द्वारा हम स्कूल पाठ्यक्रम में उपलब्धि की एक वर्ष बढ़ा सकेंगे। इसके अतिरिक्त उच्चतर माध्यमिक अवस्था की अवधि बढ़ा कर दो वर्ष कर देना है जिसको एक क्रमिक कार्यक्रम के द्वारा पांचवी योजना में प्रारम्भ करके 1985 तक पूर्ण करना है।

(3) शिक्षा के नवीन ढांचे में निम्नलिखित बातों का समावेश होगा :

— एक से तीन वर्ष की पूर्व स्कूलीय शिक्षा;

— सामान्य शिक्षा की 10 वर्ष की अवधि जिसको पुनः 7 या 8 वर्ष की प्राथमिक अवस्था (अवर प्राथमिक अवस्था 4 से 5 वर्ष की तथा उच्चतर प्राथमिक अवस्था 2 से 3 वर्ष की) तथा 3 या 2 वर्ष की अवर माध्यमिक अवस्था अथवा 1 से 3 वर्ष की व्यावसायिक शिक्षा (व्यावसायिक पाठ्यक्रमों की छात्र संख्या बढ़ाकर कुल की 20 प्रतिशत कर देनी चाहिए) में उप-विभाजित किया जा सकता है;

— सामान्य शिक्षा की 2 वर्ष की अवस्था अथवा 1 से 3 वर्ष की व्यावसायिक शिक्षा (व्यावसायिक शिक्षा की छात्र संख्या का अनुपात बढ़ाकर कुल का 50 प्रतिशत कर देना चाहिए);

— उच्चतर शिक्षा की अवस्था जिसमें तीन या तीन से अधिक वर्षों के प्रथम डिग्री के पाठ्यक्रम हों जिसके अंत में द्वितीय डिग्री व अनुसंधान के विभिन्न अवधि के पाठ्यक्रम हो सकते हैं।

(4) प्रथम कक्षा की प्रवेश-आयु सामान्यतया 6 से कम न होनी चाहिए।

(5) प्रथम सार्वजनिक बाह्य परीक्षा स्कूल शिक्षा के प्रथम दस वर्षों के अंत में होनी चाहिए।

(6) स्कूलों में सामान्य शिक्षा की धारांकन प्रणाली कक्षा 9 से नहीं होनी चाहिए और कक्षा 10 तक विशेषीकरण का प्रयत्न करना चाहिए।

(7) माध्यमिक स्कूल दो प्रकार के होने चाहिए—हाई स्कूल जिनमें 10 वर्ष का पाठ्यक्रम की व्यवस्था हो और हायर सेकंडरी स्कूल जिनमें 11 या 12 वर्ष के पाठ्यक्रम की व्यवस्था हो।

(8) प्रत्येक माध्यमिक स्कूल को उच्चतर माध्यमिक स्कूल में परिवर्तित करने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए : केवल बड़े-बड़े और अधिक सक्षम स्कूलों को—जो कि कुल संख्या के एक चौथाई होने चाहिए—उत्थापित करना चाहिए। वर्तमान उच्चतर माध्यमिक स्कूलों की हैसियत का इस दृष्टि से पुनरीक्षण करना चाहिए और जो उच्चतर माध्यमिक की पदवी के योग्य न हों उनको पुनः माध्यमिक स्कूलों में परिवर्तन कर देना चाहिए।

(9) कक्षा 11 से प्रारम्भ होने वाले नवीन उच्चतर माध्यमिक पाठ्यक्रम प्रारम्भ कर देना चाहिए कक्षा 11 और 12 में (संक्रान्तिकाल में कक्षा 11 में ही) विभिन्न विषयों में विशेषीकृत पाठ्यक्रमों की व्यवस्था होनी चाहिए। जिन उच्चतर माध्यमिक स्कूलों में कक्षा 9, 10 व 11 का समेकित पाठ्यक्रम संतोषजनक रीति से चल रहे हों, वहां वह व्यवस्था जारी रखनी चाहिए जब तक कि उनमें कक्षा 12 बढ़ा न दी जाए। 2.01-21 (27-36)

8. **पूर्व विश्वविद्यालय** (P. U. C.) **पाठ्यक्रम का स्थानान्तरण**—(1) 1975-76 तक विश्वविद्यालयों और संबद्ध कालेजों से पूर्व विश्वविद्यालय पाठ्यक्रमों का उच्चतर माध्यमिक स्कूलों में स्थानान्तरण कर देना चाहिए और 1985-86 तक इसकी अवधि बढ़ाकर 2 वर्ष की कर देनी चाहिए।

(2) विश्वविद्यालयों तथा संबद्ध कालेजों से पूर्व विश्वविद्यालय पाठ्यक्रम अथवा इंटरमीडएट पाठ्यक्रमों को हटाकर स्कूलों में उनको स्थानान्तरित करने का उत्तर दायित्व विश्वविद्यालय अनुदान आयोग का है।

(3) साथ ही साथ राज्यों के शिक्षा विभागों द्वारा कुछ चुने हुए स्कूलों में उच्चतर माध्यमिक कक्षा अथवा कक्षाओं को स्वतःपूर्ण इकाइयों की भांति शुरू कर देना चाहिए और उनको पर्याप्त आवर्ती अनुदान देने चाहिए।

(4) माध्यमिक शिक्षा बोर्डों को उच्चतर माध्यमिक अवस्था के उत्तरदायित्व को स्वीकार करने के लिए पुनर्गठित करना चाहिए। 2.22-24 (36-37)

9. **उच्चतर माध्यमिक अवस्था की अवधि को बढ़ाना**—(1) वर्तमान उपलब्ध सुविधाओं के अपेक्षाकृत अच्छे उपयोगीकरण के निमित्त चतुर्थ योजना में प्रयत्न केन्द्रित करने चाहिए और कार्यक्रमों को क्रियान्वित करने के लिए आवश्यक तैयारियां करनी चाहिए तथा कुछेक चुनीदा संस्थाओं में प्रायोगिक परियोजना के रूप में अवधि बढ़ानी चाहिए।

(2) उच्चतर माध्यमिक अवस्था की अवधि को बढ़ाने का कार्यक्रम पंचम योजना में प्रारम्भ करना चाहिए तथा सप्तम योजना के अन्त तक समाप्त कर देना चाहिए। 2.25-29 (37-40)

10. **विश्वविद्यालय स्तर पर पुनर्गठन**—(1) प्रथम डिग्री की अवधि 4 वर्ष से कम नहीं होनी चाहिए। द्वितीय डिग्री की अवधि 2 से 3 वर्ष की होनी चाहिए।

(2) कुछ विश्वविद्यालय ग्रेजुएट स्कूल चलाए जिनमें कतिपय विषयों में 3 वर्ष की मास्टर्स डिग्री का पाठ्यक्रम हो।

(3) प्रथम डिग्री के तीन वर्ष के विशिष्ट पाठ्यक्रम जो वर्तमान त्रिवर्षीय प्रथम डिग्री पाठ्यक्रम के प्रथम वर्ष के अंत में प्रारम्भ होते हैं, कुछेक चुनीदा संस्थाओं में चुनीदा विषयों में प्रारम्भ कर देने चाहिए।

(4) वर्तमान पाठ्यक्रमों और नवीन लंबे पाठ्यक्रमों के मध्य उपर्युक्त सेतुओं की व्यवस्था होनी चाहिए।

(5) छात्रवृत्तियों के रूप में प्रोत्साहन भी उनको देना चाहिए जो लम्बे पाठ्यक्रम लें।

(6) उत्तर प्रदेश में प्रथम डिग्री का पाठ्यक्रम को बढ़ाने के लिए कुछ श्रेष्ठतम विश्वविद्यालयों में उपयुक्त विषयों के त्रिवर्षीय ग्रेजुएट कालेज खोलने चाहिए। अन्य कालेजों में प्रथम डिग्री पाठ्यक्रम 15-20 वर्ष के अन्दर बढ़ाकर तीन वर्ष का कर देना चाहिए।

2.30-32 (41-42)

11. **सुविधाओं का उपयोगीकरण**—(1) वर्तमान सुविधाओं के गहन उपयोगीकरण तथा पुनर्निर्माण के कार्यक्रमों पर बल देना चाहिए।

(2) स्कूलों में पढ़ाई के दिनों की संख्या बढ़ा कर 36 सप्ताह तथा कालेजों और पूर्व-प्राथमिक स्कूलों में 39 सप्ताह कर देनी चाहिए।

(3) राज्य सरकारों से परामर्श करके शिक्षा मंत्रालय को और विश्वविद्यालयों से परामर्श करके विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को मानक पंचांग बनना चाहिए। अन्य वार्षिक छुट्टियों को घटा कर 10 कर देना चाहिए। परीक्षा तथा अन्य कारणों से पढ़ाई के दिनों में स्कूलों में 21 दिन से अधिक तथा कालिजों में 27 दिन से अधिक की क्षति नहीं होनी चाहिए।

(4) अध्ययन, समाज सेवा शिविरों, उत्पादन अनुभव, साक्षरता आन्दोलन आदि में भाग लेकर दीर्घावकाशों का पूर्ण उपयोग करना चाहिए।

(5) स्कूल स्तर पर कार्य-दिवस के समय को बढ़ा देना चाहिए और विश्वविद्यालय स्तर पर स्वाध्याय की पर्याप्त सुविधाओं की व्यवस्था करनी चाहिए।

(6) सारे वर्ष पुस्तकालय, प्रयोगशालाओं, कर्मशालाएं शिल्पशालाएं आदि संस्थागत सुविधाओं के पूर्ण उपयोगीकरण के निमित्त कदम उठाने चाहिए।

2.33-42 (42-45)

12. **गतिशील तथा विकासशील स्तर**—(1) शिक्षा की समस्त अवस्थाओं के स्तरों को सतत उठाने के लिए गहन प्रयत्न करना चाहिए। स्कूली शिक्षा की प्रथम दस वर्षों में गुणात्मक सुधार होना चाहिए जिससे कि इस स्तर की व्यर्थता घट कर न्यूनतम रह जाये। दस वर्ष की अवधि में कक्षा 10 की समाप्ति पर वह स्तर हो जाए जो आजकल उच्चतर माध्यमिक पाठ्यक्रम के अन्त में होता है। इसी प्रकार विश्वविद्यालयों की डिग्रियों के स्तर को उपलब्धि की एक वर्ष बढ़ाकर उन्नत करना चाहिए।

(2) स्कूल स्तर पर राज्यों के स्तर पर तथा राष्ट्रीय स्तर पर प्राथमिक और अवर एवं उच्चतर माध्यमिक अवस्थाओं के अन्त में राष्ट्रीय स्तरों के निश्चयन, पुनरीक्षण तथा मूल्यांकन के निमित्त एक कुशल तथा सक्षम साधन-प्रणाली की व्यवस्था की जाए जिससे स्तरों में सतत सुधार जारी रहे और देश के विभिन्न भागों में वे तुलनीय रहें।

(3) स्तरों के उन्नयत के लिए यह आवश्यक है कि शिक्षा की विभिन्न अवस्थाओं में समन्वय रहे और उस अकेसेपन को नष्ट कर दिया जाये जिसमें शिक्षा-संस्थायें प्रायः काम करती हैं। इस दृष्टि से

(क) विश्वविद्यालयों और कालेजों को विभिन्न उपायों के द्वारा माध्यमिक स्कूलों की कार्यकुशलता बढ़ाने में सहायक होना चाहिए।

(ख) स्कूल-संकुल बनाने चाहिए। प्रत्येक संकुल में एक माध्यमिक स्कूल तथा उसके पड़ोस के समस्त अवर एवं उच्चतर प्राथमिक स्कूल होने चाहिए। इस प्रकार के संकुल में समस्त स्कूलों का एक सहकारी समुदाय होना चाहिए जो सुधार की चेष्टा में रत रहे।

2.43-52 (46-49)

13. **अंशकालिक शिक्षा**—शिक्षा की प्रत्येक अवस्था में तथा प्रत्येक क्षेत्रक में अंशकालिक और निजकालिक शिक्षा का विकास होना चाहिए और इनको वही पदवी दी जाए जो पूर्णकालिक शिक्षा को दी जाती है।

2.53-54 (49-50)

14. **नामपद्धति**—राज्य सरकारों के साथ परामर्श करके भारत सरकार को शिक्षा की विभिन्न अवस्थाओं तथा उपावस्थाओं के निमित्त एक समान नामपद्धति का विकास करना चाहिए। 2.55 (50-51)

तीसरा अध्याय. अध्यापक की प्रतिष्ठा

15. मेधावी व्यक्तियों को इस वृत्ति में लाने तथा अध्यापकों की आर्थिक, सामाजिक और वृत्तिक प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए साधन और सचेत प्रयत्न होने चाहिएं।

3.01-02 (52)

16. **पारिश्रमिक**—अध्यापकों के, विशेष रूप से स्कूल-अध्यापकों के पारिश्रमिक में पर्याप्त वृद्धि करने की बहुत बड़ी आवश्यकता है। 3.05 (53-54)

(1) भारत सरकार स्कूल आधार पर अध्यापकों के लिए न्यूनतम वेतनमान निश्चित करे और राज्यों तथा केन्द्र प्रशासित प्रदेश अपनी परिस्थितियों के अनुरूप समान अथवा ऊंचे वेतनमान निश्चित करें। 3.08 (54-55)

(2) विभिन्न प्रबन्धों, जैसे सरकार, स्थानीय निकाय या निजी प्रबन्धकों के अधीन कार्य कर रहे एक ही कोटि के स्कूल-अध्यापकों का वेतनमान समान हो। समानता का यह सिद्धांत शीघ्रातिशीघ्र लागू होना चाहिए और यदि आवश्यक हो तो इस सिद्धांत पर पूरी तरह अमल करने के लिए एक पंचवर्षीय कार्यक्रम बना लेना चाहिए। 3.09 (55-56)

(3) आयोग निम्न वेतनमान लागू करने का सुझाव देता है :

अध्यापक	पारिश्रमिक	रु०
1. अध्यापक जिन्होंने माध्यमिक पाठ्यक्रम और दो वर्षीय वृत्तिक प्रशिक्षण पूरा कर लिया है	प्रशिक्षित अध्यापक के लिए न्यूनतम	150
	अधिकतम वेतन (बीस वर्ष में)	250
	सेलेक्शन ग्रेड (संवर्ग के लगभग 15 प्रतिशत व्यक्तियों के लिए)	250-300

नोट : प्राथमिक अध्यापक का न्यूनतम वेतन, जिसने माध्यमिक पाठ्यक्रम पूरा कर लिया है, तुरन्त रु० 100 कर दिया जाए और पांच वर्ष में इसे 125 कर दिया जाए। इसी प्रकार उन अध्यापकों का वेतन 125 कर दिया जाए जिन्होंने दो वर्ष का प्रशिक्षणक्रम पूरा कर लिया है। इसे पांच वर्षों में 150 तक पहुंचा दिया जाए। वांछित शैक्षणिक योग्यता प्राप्त अप्रशिक्षित अध्यापकों को तब तक प्रारम्भिक वेतन पर ही कार्य करना चाहिए जब तक वे प्रशिक्षित होकर निर्धारित वेतनक्रम के पात्र नहीं बनते।

2. स्नातक जिन्होंने एक वर्ष का व्यवसायिक प्रशिक्षण प्राप्त कर लिया है।	प्रशिक्षित स्नातकों न्यूनतम वेतन	220
	अधिकतम वेतन (20 वर्ष में)	400
	सेलेक्शन ग्रेड (संवर्ग के लगभग 15 प्रतिशत व्यक्ति	400-500

नोट : अप्रशिक्षित स्नातकों को, जब तक वे प्रशिक्षण पूरा कर निर्धारित वेतनक्रम के पात्र नहीं बन जाते, आरम्भिक वेतन रु० 220 प्रतिमाह मिलता रहेगा।

अध्यापक	पारिश्रमिक	
3. स्नातकोत्तर योग्यता प्राप्त माध्यमिक स्कूलों में अध्यापक		300-600

नोट : प्रशिक्षित होने के बाद उन्हें एक अतिरिक्त वेतन-वृद्धि दी जाए।

4. माध्यमिक स्कूलों के प्रधानाध्यापक	स्कूल के आकार और कोटि के आधार पर और उनकी योग्यता के आधार पर भी, प्रधानाध्यापकों को सम्बद्ध कालेजों के अध्यापकों के लिए प्रस्तावित निम्न वेतनक्रमों में से कोई एक मिलना चाहिए।	
5. सम्बद्ध कालिजों में प्राध्यापक	प्राध्यापक	
	कनिष्ठ वेतनक्रम	300-25-600
	कनिष्ठ वेतनक्रम	400-30-640-40-800
	वरिष्ठ प्राध्यापक/रीडर	700-40-1100
	प्रधानाचार्य 1.	700-40-1100
	2.	800-50-1250
	3.	1000-50-1500

नोट : वरिष्ठ वेतनक्रम में नियुक्त प्रधानाध्यापकों का अनुपात कनिष्ठ वेतनक्रम वाले प्राध्यापकों की अपेक्षा धीरे-धीरे बढ़ाया जाना चाहिए। पांचवीं पंचवर्षीय योजना के अंत तक यह अनुपात औसतन 75 प्रतिशत के लगभग हो जाना चाहिए।

6. विश्वविद्यालय के विभागों में प्राध्यापक	प्राध्यापक	500-40-800-50-950
	रीडर	700-50-1250
	प्रोफेसर	1000-50-1300-60-1600

नोट : 1. एक तिहाई प्रोफेसरों को वरिष्ठ वेतनमान 1600-1800 में रखा जाना चाहिए। असाधारण योग्यता रखने वाले व्यक्तियों और उच्च अध्ययन के कुछ चुने हुए केन्द्रों के लिए विशेष वेतनक्रम निश्चित होने चाहिएं जो भारतीय

प्रशासनिक सेवा के अधिकारियों के लिए निश्चित सुपर-टाइम्स (श्रेष्ठ) वेतनमान के समान हों।

2. आजकल विश्वविद्यालयों में कनिष्ठ और वरिष्ठ पदों (रीडर/प्रोफेसर) का औसत 3 : 1 है परन्तु अब धीरे-धीरे इसे 2 : 1 के अनुपात में लाना चाहिए।

(क) स्कूल अध्यापकों के लिए उपरोक्त वेतन-दरें कीमतों की वर्तमान दरों के आधार पर हैं और इसमें वर्तमान महंगाई-भत्ता भी शामिल है। समय-समय पर बढ़ने वाली कीमतों को ध्यान में रखकर वेतन-वृद्धि करनी होगी।

(ख) शहरों में मिलने वाला प्रतिकर निर्वाह भत्ता, मकान-भत्ता या अन्य भत्ते शामिल नहीं किए गए हैं। ये भत्ते ऊपर बताए वेतनक्रम के अतिरिक्त होंगे जो समानता के सिद्धान्त के आधार पर मिलने चाहिएं।

(ग) अध्यापकों के चुनाव के ढंग में गुणात्मक सुधार और सामान्य तथा वृतिक शिक्षा में सुधारों के साथ वेतन-दर का अभिन्न सम्बन्ध होगा।

(घ) उक्त वेतन-दरें सभी सरकारी, स्थानीय स्वायत्त निकायों और निजी-संस्थाओं के स्कूलों के अध्यापकों को समानता के सिद्धांत के आधार पर दी जाएंगी।

17. **विश्वविद्यालय-अवस्था पर वेतन को लागू करना**—(1) सरकार ने उच्च शिक्षा क्षेत्र में कार्य करने वाले प्राध्यापकों के लिए प्रस्तावित वेतनमान स्वीकार कर लिए हैं। इन वेतनमानों को लागू करने में आने वाले अतिरिक्त खर्च के लिए केन्द्र को सहायता देनी चाहिए। यह सहायता अंशदान रूप में होनी चाहिए अर्थात् खर्च का 80 प्रतिशत केन्द्र द्वारा और 20 प्रतिशत राज्य-सरकारों के कोष से दिया जाना चाहिए। निजी स्कूलों में यह सहायता शत-प्रतिशत दी जानी चाहिए।

(2) उक्त वेतनमान लागू करने के प्रस्ताव को अध्यापकों की शैक्षणिक योग्यता तथा नियुक्ति के लिए उनके चुनाव के तरीकों में सुधार के साथ जोड़ा जाना चाहिए। इसे विश्वविद्यालय के लिए आदर्श-अधिनियम, समिति की सिफारिशों के आधार पर करना चाहिए। प्रोफेसर की नियुक्ति के लिए थोड़ा बदला हुआ तरीका सझाया गया है।

(3) सम्बद्ध कालिजों में प्राध्यापकों की शैक्षणिक योग्यताएं वही होनी चाहिएं जो विद्यालयों के अध्यापकों के लिए निश्चित हैं। इनकी नियुक्ति का तरीका भी समान होना चाहिए। निजी प्रबन्धकों द्वारा चलाए जाने वाले कालिजों के लिए कुछ अन्तर रखना चाहिए। अच्छी संस्थाओं को अपने अध्यापकों के चुनाव में अधिक स्वतंत्रता देनी चाहिए। जहां प्रबन्धकों का कार्य संतोषप्रद नहीं है वहां कठोर नियंत्रण लगाना चाहिए।

3.12-13 (58-60)

18. **स्कूल-अध्यापकों के लिए वेतनमान लागू करना**—(1) स्कूल अध्यापकों के लिए तीन प्रमुख वेतनमान स्वीकार करने चाहिए। (क) वे अध्यापक जिन्होंने माध्यमिक स्तर का अध्ययन कर लिया है और प्रशिक्षित हैं (ख) प्रशिक्षित स्नातकों के लिए (ग) स्नातकोत्तर योग्यता प्राप्त अध्यापकों के लिए।

(2) प्राथमिक अवस्था में ऐसा कोई अध्यापक नहीं होना चाहिए। जिसने माध्यमिक स्कूल पाठ्यक्रम तथा दो वर्ष का वृत्तिक प्रशिक्षण नहीं प्राप्त किया हो।

(3) उच्च प्राथमिक और अवर प्राथमिक स्कूलों, जहां 200 से या इससे अधिक बच्चे पढ़ते हैं, मुख्याध्यापक के पद पर प्रशिक्षित स्नातक नियुक्ति होने चाहिए। उनका वेतन वही होना चाहिए जो माध्यमिक स्कूल में प्रशिक्षित स्नातकों को मिलता है।

(4) निचले वेतनमान में अध्यापकों के लिए स्थान निश्चित कर उस पर कम योग्यता वाला अध्यापक नियुक्त करने अथवा योग्यता प्राप्त अध्यापक नियुक्त कर उसे कम वेतन देने की प्रवृत्ति को त्याग देना चाहिए।

(5) माध्यमिक स्कूलों के अध्यापकों के वेतन का सम्बन्ध एक ओर तो सम्बद्ध कालिजों और विश्वविद्यालयों के अध्यापकों के वेतन से होना चाहिए और दूसरी ओर प्राथमिक स्कूलों के अध्यापकों के साथ।

(6) अवर और उच्चतर माध्यमिक स्कूलों के मुख्याध्यापकों के वेतन निश्चित रूप से सम्बद्ध कालिजों या विश्वविद्यालयों के प्राध्यापकों के वेतन के साथ सम्बन्धित होने चाहिए अर्थात्, स्कूल का आकार, कार्य और गुण के आधार पर मुख्याध्यापकों का वेतन वही होना चाहिए जो प्राध्यापकों, रीडरों अथवा प्रोफेसरों को मिलता है।

(7) स्कूल के आकार, कार्य और गुणों के आधार पर अवर प्राथमिक स्कूलों में स्नातकोत्तर योग्यता प्राप्त अध्यापक का अनुपात 10 से 30 प्रतिशत तक हो।

(8) पहली या दूसरी श्रेणी में बी० ए०/बी० एस-सी० या एम० ए०/एम० एस-सी० या एम० एड० की योग्यता रखने वाले अध्यापकों को इस वेतनक्रम में अग्रिम वेतन-वृद्धि दी जानी चाहिए।

(9) सभी माध्यमिक स्कूलों के अध्यापकों के लिए वृत्तिक प्रशिक्षण अनिवार्य होना चाहिए।

(10) स्कूल शिक्षा के राज्यकीय मंडल और राज्य के शिक्षा विभाग अध्यापकों की शैक्षणिक योग्यता निश्चित करें। यह केवल सरकारी स्कूलों के लिए ही नहीं बल्कि स्थानीय स्वायत्त निकाय और निजी प्रबन्धकों द्वारा चलाए जाने वाले स्कूलों के लिए भी हो।

(11) राज्यों के शिक्षा विभागों द्वारा स्वीकृत और अनुदान प्राप्त सभी निजी स्कूलों की एक प्रबन्ध-समिति होनी चाहिए जिसमें विभाग के प्रतिनिधि रखे जाएं। विभाग सरकारी स्कूलों के अध्यापकों के समक्ष शैक्षणिक योग्यता निश्चित करें। सभी खाली जगहों को भली-भांति विज्ञापित किया जाए और उचित ढंग से बनी चुनाव-समिति द्वारा साक्षात्कार की व्यवस्था हो। नियम के बाहर नियुक्त अध्यापक के वेतन की राशि के लिए अनुदान नहीं दिया जाना चाहिए। 3.14-19 (60-64)

19. **उन्नति की संभावनाएं**—अध्यापन व्यवसाय में उन्नति की संभावनाओं के विस्तार की आवश्यकता है जिससे मेधावी लोग इस वृत्ति की ओर आकर्षित हों और काम करते रहें। इस दृष्टि से निम्न सुझाव प्रस्तुत किए जाते हैं :

(1) **स्कूल अवस्था** : शैक्षणिक योग्यता रखने वाले एवं प्रशिक्षित अध्यापकों की, मुख्याध्यापक अथवा स्कूल निरीक्षकों के पद पर पदोन्नति की संभावना होनी चाहिए।

(2) माध्यमिक स्कूलों में प्रशिक्षित स्नातक अध्यापक, जिन्होंने प्रकृष्ठ कार्य किया है, उन पर पदोन्नति के अधिकारी हैं जिनका वेतन स्नातकोत्तर योग्यता प्राप्त अध्यापकों के समान है।

(3) रुचि और क्षमता रखने वाले माध्यमिक स्कूल अध्यापकों को विश्वविद्यालय और कालिजों में अध्यापक बनने का अवसर मिलना चाहिए। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग प्रकृष्ट स्तर के अध्यापकों को तदर्थ अनुदान प्रदान करने की व्यवस्था करे ताकि वे अनुसंधान कार्य के लिए प्रेरित हों और इस प्रकार विश्वविद्यालय में नियुक्ति के पात्र बनें।

(4) प्रकृष्ट स्तरीय कार्य करने वाले अध्यापकों को अग्रिम वेतन-वृद्धि देने की व्यवस्था होनी चाहिए। सामान्य रूप से एक अध्यापक बीस वर्ष में उपने वेतनमान का अधिकतम वेतन पाने का अधिकारी बनता है। लगभग पांच प्रतिशत अध्यापकों को दस वर्षों में और अन्य पांच प्रतिशत को पन्द्रह वर्षों में वेतनमान का अधिकतम वेतन प्राप्त करने का अवसर मिल जाना चाहिए।

(5) **विश्वविद्यालय अवस्था** : प्राध्यापक अथवा रीडर के लिए, जिन्होंने प्रकृष्ट स्तरीय कार्य किया हो और उपयुक्त स्थान के अभाव में जिनकी पदोन्नति नहीं की जा सकती हो, उच्च वेतनक्रम में तदर्थ अस्थायी पद बनाए जाएं।

(6) उन विभागों में, जहां स्नातकोत्तर स्तर पर कार्य होता है, प्रोफेसर स्तर के पदों की संख्या आवश्यकता के अनुसार निश्चित की जानी चाहिए।

(7) विश्वविद्यालय द्वारा प्रकृष्ट स्तर के प्रोफेसरों को, विश्वविद्यालय अनुदान-आयोग की सलाह से, विशेष वेतनक्रम 1600-1800 से भी अधिक पारिश्रमिक देने की स्वतंत्रता होनी चाहिए। 3.20 (64-65)

20. **वेतन के साथ निर्वाह-खर्च का सम्बन्ध**—सभी अध्यापकों के वेतनमान का पांच वर्षों में एक बार पुनर्निरीक्षण होना चाहिए और उन्हें महंगाई-भत्ते के रूप में वही राशि मिलनी चाहिए जो उनके समान वेतन पाने वाले अन्य सरकारी कर्मचारियों को मिलती है। 3.21 (65)

21. **कल्याणकारी सेवाएं**—सभी राज्यों और केन्द्र प्रशासित प्रदेशों के अध्यापकों के लिए, कल्याणकार्य का एक सामान्य कार्यक्रम निश्चित किया जाए। इसके लिए धन, अंशदान के रूप में अध्यापकों से (वेतन का $1\frac{1}{2}$ प्रतिशत) और इतनी ही राशि सरकार से प्राप्त कर इकट्ठा किया जाए। एकत्र धन का प्रबन्ध अध्यापकों और सरकार के प्रतिनिधियों द्वारा मिलजुल कर किया

जाना चाहिए। इस प्रकार धनराशि एकत्र हो जाने के बाद भारत सरकार द्वारा अध्यापकों के लिए स्थापित कल्याण-कोष उपयोगी ढंग से इसमें सम्मिलित किया जा सकता है। 3.22 (65)

22. **केन्द्रीय सहायता की आवश्यकता**—अध्यापकों की वेतन-वृद्धि के लिए प्रस्तावों को तत्काल लागू करना चाहिए। इस काम के लिए राज्य-सरकारों को उदार स्तर पर केन्द्रीय सहायता उपलब्ध होनी चाहिए। 3. 28 (67)

23. **सेवा निवृत्ति की सुविधाएं**—(1) अध्यापकों को मिलने वाली सेवा-निवृत्ति सुविधाओं का समता और समानता के सिद्धान्त पर पुनर्गठन किया जाना चाहिए, अर्थात, भारत सरकार के कर्मचारियों को मिलने वाली सेवा-निवृत्ति की सुविधाएं, पहले राज्य-सरकारों के कर्मचारियों को और फिर स्थानीय स्वायत्त निकायों एवं निजी प्रबन्ध के अध्यापकों को स्वतः मिलनी चाहिए। 3.29 (67)

(2) अन्तरिम उपाय के रूप में, स्थानीय स्वायत्त निकाय और निजी स्कूलों के अध्यापकों तथा विश्वविद्यालय और कालिजों के प्राध्यापकों को त्रि-लाभ योजना का लाभ अधिक बड़े पैमाने पर देना चाहिए।

(3) स्कूलों और कालेजों के अध्यापकों की सेवा-निवृत्ति की आयु 60 वर्ष हो और आयु-सीमा को 65 वर्ष तक बढ़ाने की व्यवस्था होनी चाहिए।

(4) अध्यापकों को उनकी भविष्य-निधि पर अधिक ऊंची दर से ब्याज देना चाहिए और इस धन के निवेश का और अच्छा तरीका निकालना चाहिए। 3.30-32 (68-69)

24. **कार्य और सेवा की दशा**—(1) शिक्षण संस्थाओं में कार्य की दशा ऐसी होनी चाहिए जिससे अध्यापक अपना कार्य अधिकतम कुशलता से कर सकें।

(2) कुशलता पूर्वक कार्य करने के लिए सभी शिक्षण संस्थाओं में न्यूनतम सुविधाएं उपलब्ध होनी चाहिए।

(3) सभी अध्यापकों को वृत्तिक उन्नति के लिए पर्याप्त सुविधाएं देनी चाहिए।

(4) काम के घंटे तय करते समय, कक्षा में पढ़ाने का काम ही नहीं बल्कि अध्यापक के अन्य कार्यों पर भी ध्यान देना चाहिए।

(5) ऐसी योजना बनानी चाहिए जिसके आधीन अध्यापक पांच वर्ष में एक बार अपने वेतन के अनुपात में उचित अंशदान देकर भारत के किसी भी भाग में जाने के लिए रेल का रिआयती 'पास' प्राप्त कर सकें। 3.33 (69)

(6) सरकारी सेवा में अध्यापकों के लिए आचार और अनुशासन सम्बन्धी नए नियम बनाने चाहिए।

(7) निजी स्कूलों के अध्यापकों की सेवा-सम्बन्धी शर्तें और स्थितियां सरकारी स्कूलों के अध्यापकों के समान होनी चाहिए। 3.34 (69)

(8) अध्यापकों के लिए निवास स्थान की व्यवस्था करना बहुत महत्वपूर्ण है। इसके लिए हमारा सुझाव है कि

(क) ग्रामीण क्षेत्रों में अध्यापकों की आवास के व्यवस्था के लिए हर संभव प्रयत्न होना चाहिए और इसके लिए सरकारी अनुदान की व्यवस्था की जाए;

(ख) सभी बड़े शहरों में उचित दर से मकान-भत्ता देने और आवास के लिए मकान निर्माण का कार्यक्रम अपनाया जाए;

(ग) सहकारी मकान निर्माण-योजनाओं को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए और मकान निर्माण के लिए उदार शर्तों पर ऋण देने की व्यवस्था की जाए;

(घ) विश्वविद्यालयों और कालेजों में आवास-व्यवस्था करने के लिए लक्ष्य निर्धारित किया जाना चाहिए जिसके अधीन विश्वविद्यालय के 50 प्रतिशत और सम्बद्ध कालेजों के 20 प्रतिशत अध्यापकों के आवास की व्यवस्था की जाए। 3.36 (70)

(9) निजी रूप से पढ़ाने के कार्य को हतोत्साहित करना चाहिए और उस पर नियंत्रण लगाना चाहिए। ऐसे बच्चों को, जिन्हें आवश्यक हो, विशेष रूप से पढ़ाने का प्रबन्ध संस्थागत आधार पर करना चाहिए।

(10) विश्वविद्यालय अवस्था में अध्यापकों को अंशकालिक सलाह देने या उच्चतर वैज्ञानिक अनुसंधान-जैसाअतिरिक्त कार्य करने की अनुमति होनी चाहिए। यदि

इस अतिरिक्त कार्य के फलस्वरूप प्राप्त राशि वेतन के पचास प्रतिशत से कम है तो संस्था को कुछ भी देने की आवश्यकता नहीं है। 3.38 (70)

(11) अध्यापकों को समस्त नागरिक अधिकारों का उपभोग कर सकने की छूट हो। उन्हें स्थानीय, जिला राज्य व राष्ट्रीय स्तर के लोकाधिकारी पद प्राप्त करने की सुविधा हो। चुनाव में भाग लेने के लिए उन पर कोई प्रतिबन्ध न हो, किन्तु जब वे ऐसा करें तो उस अवधि में उन्हें छुट्टी पर चले जाना चाहिए।
3.39 (71)

25. **अध्यापिकाएं**—(1) शिक्षण की सभी अवस्थाओं और क्षेत्रों में अध्यापिकाओं की नियुक्ति को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। उन्हें अंशकालीन नियुक्ति के अवसर बड़े पैमाने पर दिए जाएं।

(2) आवास की, विशेषकर देहाती क्षेत्रों में, पर्याप्त व्यवस्था की जानी चाहिए।

(3) केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड द्वारा प्रौढ़ महिलाओं के लिए चलाया जा रहा संक्षिप्त पाठ्यक्रम बढ़ाया जाए।

(4) पत्राचार पाठ्यक्रमों द्वारा शिक्षा की अधिकाधिक सुविधाएं होनी चाहिए।

(5) देहाती क्षेत्रों में काम करने वाली अध्यापिकाओं को आवश्यकतानुसार विशेष भत्ते दिए जाएं।
3.40 (71-72)

26. **आदिवासी क्षेत्रों के लिए अध्यापक**—(1) आदिवासी क्षेत्रों में कार्य करने वाले अध्यापकों को विशेष भत्ता, उनके बच्चों की शिक्षा के लिए सहायता और आवास की सुविधा देनी चाहिए।

(2) आदिवासी क्षेत्रों में कार्य करने के लिए अध्यापकों को विशेष प्रशिक्षण देने के लिए व्यवस्था की जानी चाहिए। 3.43 (72-73)

27. **अध्यापकों के संगठन**—(1) केन्द्र और राज्य -सरकारों द्वारा अध्यापकों के उन वृत्तिक संगठनों का पुनर्गठन करना चाहिए जो वृत्तिक-उन्नति और शिक्षा के विकास के लिए कार्य करते हैं। स्कूली-शिक्षा, अध्यापकों की सामान्य और वृत्तिक शिक्षा तथा उनके वेतन और कार्य की दशा के बारे में इन संस्थाओं से सलाह लेनी चाहिए।

(2) अध्यापकों का वेतन कार्य की दशा और सेवा, तथा कल्याण सेवाओं के बारे में विचार करने के लिए संयुक्त अध्यापक परिषदों की स्थापना प्रत्येक राज्य और केन्द्र प्रशासित क्षेत्रों में होनी चाहिए। इसमें अध्यापकों संगठनों के प्रतिनिधि और राज्यों के शिक्षा विभागों के प्रतिनिधि होने चाहिए। इस प्रकार की परम्परा डालनी चाहिए कि परिषद की सर्वसम्मत सिफारिशें सरकार द्वारा मंजूर की जाएं। कुछ मामलों में जहां बातचीत द्वारा फैसला न हो सके, पंच-फैसले की व्यवस्था होनी चाहिए।
5.44 (73)

28. **राष्ट्रीय पुरस्कार**—शिक्षा-मंत्रालय निम्न सुझावों पर विचार करे

— राष्ट्रीय पुरस्कारों की संख्या बढ़ा दी जाए;
— चुनाव समितियों को सशक्त बनाया जाए; और
— पुरस्कार विजेताओं को प्रथम श्रेणी के सरकारी कर्मचारियों के समान यात्रा-भत्ता मिलना चाहिए। 3.48 (74)

चौथा अध्याय. अध्यापक शिक्षण

29. शिक्षा के गुणात्मक सुधार के लिए अध्यापकों की वृत्तिक योग्यता का बहुत अधिक महत्व है अतः इसे शिक्षा विकास की कुंजी माना जाना चाहिए और उसके लिए राज्य और राष्ट्र दोनों ही स्तरों पर यथेष्ट वित्त-व्यवस्था की जानी चाहिए। 4.01 (75)

30. **अध्यापकों के अलगाव का निवारण**—अध्यापकों की वृत्तिक योग्यता को सफल बनाने के लिए शिक्षा को एक ओर तो विश्वविद्यालयों के शैक्षिक जीवन की मुख्य धारा के और दूसरी और स्कूल-जीवन और शैक्षिक विकास की धारा के बीच सुनिश्चित स्थान मिलना चाहिए। 4.03 (76)

31. (1) अध्यापक शिक्षा का विश्वविद्यालय के जीवन से आज जो अलगाव है उसके निवारण के लिए

(क) शिक्षण का स्थान शिक्षाशास्त्र से पृथक् माना जाकर उसे एक स्वतन्त्र अध्ययन विषय माना जाना चाहिए और उसे प्रथम तथा द्वितीय उपाधि परीक्षा के विषय के रूप में मान्यता मिलनी चाहिए।

(ख) कुछ चुने हुए विश्वविद्यालयों में विश्वविद्यालयों के अन्य शास्त्रों के सहयोग से अध्यापक

शिक्षण और शिक्षा में अध्ययन तथा शोध के लिए शिक्षण स्कूलों की स्थापना की जानी चाहिए। 4.04-05 (76-78)

2. अध्यापक शिक्षण और स्कूलों के वर्तमान अलगाव का निवारण करने के लिए

(क) विस्तार कार्य प्रत्येक अध्यापक प्रशिक्षणशाला का आवश्यक कार्य माना जाना चाहिए और पूर्व-प्राथमिक, प्राथमिक, माध्यमिक, आदि सभी स्तरों से सम्बन्धित संस्थाओं में एक-एक विस्तार सेवा विभाग खोला जाना चाहिए और उसे संस्था का अभेद्य अंग माना जाना चाहिए।

(ख) सक्रिय पूर्व छात्र संघ स्थापित किए जाने चाहिए जो भूतपूर्व छात्रों और संकाय को निकट ला सकें और वे मिलकर कार्यक्रम और पाठ्यक्रम पर विवेचन कर सकें और आयोजना बना सकें;

(ग) प्रशिक्षणाधीन अध्यापकों द्वारा अभ्यासार्थ-अध्यापन की व्यवस्था कुछ ऐसे चुने हुए स्कूलों के सक्रिय सहयोग से की जानी चाहिए जिनको शिक्षा विभाग से सहयोगी स्कूल के रूप में मान्यता तथा सामग्री और पर्यवेक्षण की सुविधा के लिए विशेष अनुदान प्राप्त हों; और

(घ) सहयोगी स्कूलों के अध्यापकों की प्रशिक्षण-शालाओं में और प्रशिक्षणशालाओं के अध्यापकों की सहयोगी स्कूलों में परस्पर कुछ अवधि के लिए उपनियुक्ति करने की व्यवस्था की जानी चाहिए। 4.06-09 (78-79)

(3) विविध स्तरों की अध्यापक प्रशिक्षण संस्थाओं और शिल्प-कला, शारीरिक शिक्षा आदि विशिष्ट शिक्षा के बीच आज जो अलगाव है उसे दूर करने के लिए ठोस प्रयास किये जाने चाहिए और इसके लिए ये उपाय अपनाए जाने चाहिए :

(क) अंततः समग्र अध्यापक शिक्षण को विश्वविद्यालयों के अधीन ले आने के उद्देश्य से सभी प्रशिक्षणशालाओं को कालेज स्तर तक ऊंचा उठाने के क्रमिक कार्यक्रम कार्यान्वित किए जाएं;

(ख) प्रत्येक राज्य में योजनापूर्वक सर्वांगपूर्ण शिक्षण कालेज स्थापित किए जाएं;

(ग) प्रत्येक राज्य में एक-एक राज्य अध्यापक शिक्षण मंडल स्थापित किया जाए जो सभी स्तरों के और सभी क्षेत्रों के अध्यापक शिक्षण से सम्बन्धित सभी कामों के लिए उत्तरदायी हों। 4.10-12 (79-80)

32. **वृत्तिक शिक्षण में सुधार**- अध्यापक शिक्षण के कार्यक्रम का सार है "गुणवत्ता" और उसके अभाव में अध्यापक शिक्षण न केवल आर्थिक अपव्यय मात्र है, अपितु शिक्षा के स्तरों में भी ह्रास का ही कारण बनता है। अतः सर्वोच्च महत्व इस बात का है कि अध्यापक शिक्षण की गुणवत्ता में सुधार हो। यह काम निम्नलिखित उपायों से संभव होगा :

(1) विश्वविद्यालय विभागों या स्नातकोत्तर कालेजों के सहयोग से सुनियोजित विषय अनुस्थापनों या वस्तु समावेशी पाठ्यक्रमों की व्यवस्था करके जिससे पाठ्य विषय के मूल संप्रत्ययों, लक्ष्यों और परिणामों में सहज दृष्टि प्राप्त हो सके; 4.14-17 (81)

(2) विश्वविद्यालयों में सामान्य शिक्षण और वृत्तिक शिक्षण के समेकित पाठ्यक्रम चलाकर; 4.18-20 (81-82)

(3) वृत्तिक शिक्षा को जीवंत बनाकर और शैक्षणिक शोध के विकास के द्वारा शिक्षा को भारतीय पृष्ठभूमि पर आधारित करके; 4.21-22 (82)

(4) अध्यापन की सुधारी हुई विधियों को अपना कर जिनमें स्वतः अध्ययन और विवेचन के लिए अधिक अवकाश हो और योग्यतांकन की सुधरी हुई विधियों को अपना कर जिनमें अभ्यासार्थ-अध्यापन तथा व्यावहारिक और सत्रकार्य का सतत और अंतरंग मूल्यांकन होता रहे; 4.23-24 (82-83)

(5) अभ्यासार्थ अध्यापन में सुधार करके और उसे पूर्णकालिक छात्रत्व का सर्वांगीण कार्यक्रम बनाकर; 4.25 (83-84)

(6) विशेष पाठ्यक्रम और कार्यक्रम विकसित करके; और 4.26 (84)

(7) विकासमान शिक्षण पद्धति में विविध दायित्वों को निभाने में समर्थ अध्यापक उत्पन्न करने

के मूलभूत उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए अध्यापक शिक्षण के प्रत्येक स्तर के कार्यक्रम और पाठ्यक्रम में संशोधन करके ।

4.27-32 (84-85)

33. **प्रशिक्षण पाठ्यक्रम की अवधि**—माध्यमिक परीक्षा उत्तीर्ण प्राथमिक अध्यापकों के लिए वृत्तिक शिक्षण की अवधि दो वर्ष की होनी चाहिए। स्नातकोत्तीर्ण छात्रों के लिए अवधि एक वर्ष की होनी चाहिए पर अध्यापन के दिनों की संख्या 230 कर दी जानी चाहिए ।

4.15 (81)

34. राज्य अध्यापक शिक्षण मंडल को अध्यापक शिक्षण के कार्यक्रमों का सर्वेक्षण करना चाहिए और आवश्यक संशोधन आरम्भ कर देना चाहिए :

4.34 (85)

35. मुख्याध्यापकों और अध्यापक-शिक्षकों को अपने विशेष कार्य के प्रति अनुस्थापित करने के लिये नए वृत्तिक पाठ्यक्रम अवश्य बनाए जाने चाहिए ।

4.26 (84)

36. शिक्षण के स्नातकोत्तर वृत्तिक पाठ्यक्रम सुनम्य होने चाहिए और उनकी आयोजना ऐसी होनी चाहिए कि शिक्षण के शैक्षिक और वैज्ञानिक अध्ययन को बढ़ावा दे सकें और विशेष विषय के ज्ञान और विषय परिचय वाले विशिष्ट क्षेत्रों के लिए अध्यापक तैयार कर सकें । पाठ्यक्रम की अवधि बढ़ाकर तीन वर्ष कर दी जानी चाहिए । इस स्तर पर गुणवत्ता का ध्यान रखना परम आवश्यक हैं और इसलिए अध्यापन उन्हीं संस्थाओं में होना चाहिए जिनमें समुचित योग्यता प्राप्त अध्यापक और सुविधाएं हों । 4.35-39 (85-86)

37. **प्रशिक्षणशालाओं की गुणवत्ता में सुधार**—अध्यापकों की प्रशिक्षणशालाओं में सुधार करने के लिए निम्नलिखित रीति से तत्काल कदम उठाए जाने चाहिए :

(1) **माध्यमिक अध्यापक**—(क) माध्यमिक प्रशिक्षण कालेजों के अध्यापकों के पास दो स्नातकोत्तर उपाधियां होनी चाहिए, एक विषय विशेष की और दूसरी शिक्षा-विषय की । अध्यापकों में डाक्टर उपाधिधारियों का अनुपात भी यथेष्ट होना चाहिए । उन सभी के पास अध्यापक शिक्षण का आगमन और अनुस्थापन पाठ्यक्रम भी रहा होना चाहिए ।

(ख) मनोविज्ञान, समाज-विज्ञान, विज्ञान और गणित जैसे विषयों के योग्य विशेषज्ञ ही नियुक्त किए जाने चाहिए चाहे ऐसे विशेषज्ञ वृत्तिक प्रशिक्षण-प्राप्त न हों ।

(ग) अध्यापक वृंद के अंतःसेवा प्रशिक्षण के लिए ग्रीष्मावकाशकालीन संस्थान चलाए जाने चाहिए ।

(घ) जिस छात्र ने प्रथम उपाधि के पाठ्यक्रम या उसके समकक्ष किसी पाठ्यक्रम में कोई विषय विशेष न पढ़ा हो उसे विषय विशेष के शिक्षण का विशेष पाठ्यक्रम नहीं लेने देना चाहिए ।

(ङ) राज्यों और केन्द्र प्रशासित क्षेत्रों को यह नियम बना देना चाहिए कि माध्यमिक स्कूलों के अध्यापक सामान्यतः वे ही विषय पढ़ायें जिनको उन्होंने स्वयं विश्वविद्यालय उपाधि स्तर पर पढ़ा हो । यदि उनको अपने पढ़े हुए विषयों से अतिरिक्त विषय पढ़ने पड़ें तो उन्हें पत्राचार पाठ्यक्रम या ग्रीष्मावकाशकालीन संस्थों के उस विषय का विशेष पाठ्यक्रम पढ़ना चाहिए ।

(च) अध्यापक प्रशिक्षण संस्थाओं में प्रथम और उच्च द्वितीय श्रेणी प्राप्त छात्रों को ही भरती करने का यत्न किया जाना चाहिए और उनके लिए यथेष्ठ छात्रवृत्तियों की व्यवस्था होनी चाहिए । 4.41-44 (87-88)

(2) **प्राथमिक अध्यापक** : (क) प्राथमिक अध्यापकों को प्रशिक्षणशालाओं के अध्यापकों के पास या तो शिक्षा विषय में स्नातकोत्तर उपाधि हो या किसी अन्य विषय में स्नातकोत्तर उपाधि के अतिरिक्त बी० एड० उपाधि हो और वे प्राथमिक स्तर की अध्यापक शिक्षा के विशेष आगमन पाठ्यक्रमों में उत्तीर्ण हों ।

(ख) प्राथमिक अध्यापकों के पद पर नियुक्ति केवल दस वर्ष की पढ़ाई किए हुए लोगों की ही की जाए; हां, अध्यापिकाओं और कबाइली क्षेत्रों के प्रसंग अपवाद हो सकते हैं ।

(ग) जो प्राथमिक अध्यापक अपनी योग्यता सुधारना चाहें उनके लिए पत्राचार पाठ्यक्रम और उदारता पूर्वक अध्ययन-छुट्टी की व्यवस्था कराई जाए ।

(घ) प्राथमिक शिक्षक बनने वाले अध्यापकों के लिए विशेष पाठ्यक्रम बनाए जाएं ।

(ङ) प्राथमिक अध्यापकों के प्रशिक्षण पाठ्यक्रम की अवधि माध्यमिक स्कूल पाठ्यक्रम में उत्तीर्ण सभी लोगों के लिए एक समान दो वर्ष होनी चाहिए; भिन्न शैक्षिक योग्यताओं वाले अध्यापकों के लिए एक ही पाठ्यक्रम नहीं होना चाहिए। 4.45-50 (88-91)

(3) **सामान्य** : प्राथमिक और माध्यमिक सभी प्रशिक्षण संस्थाओं के लिए निम्नलिखित सुधार आवश्यक हैं :

(क) प्रशिक्षणशालाओं में अध्यापन शुल्क पूरी तरह समाप्त कर दिया जाए और वृत्तिकाओं तथा ऋणों के लिए भी उदारतापूर्वक व्यवस्था की जाए।

(ख) प्रत्येक प्रशिक्षणशाला के साथ एक-एक प्रयोगात्मक या निदर्शन स्कूल संबद्ध किया जाए।

(ग) प्रशिक्षणार्थियों के लिए छात्रावासों की और अध्यापकों के लिए आवासों की समुचित व्यवस्था की जाए।

(घ) इस समय अधिकांश संस्थाओं में, विशेषकर प्राथमिक स्तर पर पुस्तकालयों, प्रयोगशालाओं, कारखानों आदि का बहुत अभाव है। इस दिशा में सुधार आवश्यक है।

4.51-53 (91)

(4) **अन्य अध्यापक** : अध्यापकों की अन्य कोटियों के लिए भी इसी प्रकार के प्रशिक्षण सुधार कार्यक्रम किए जाने चाहिए। 4.40 (86-87)

38. **प्रशिक्षण सुविधाओं का विस्तार**—प्रशिक्षण सुविधाओं के विस्तार को अग्रता दी जाए। प्रयोजन यह सुनिश्चित कराना होना चाहिए कि प्राथमिक और माध्यमिक स्कूल में नियुक्त होने वाला प्रत्येक अध्यापक या तो नियुक्ति के समय पहले से ही प्रशिक्षण प्राप्त हो या अपनी नियुक्ति के बाद तीन वर्ष के भीतर प्रशिक्षण प्राप्त कर ले। इस दृष्टि से :

(1) प्रत्येक राज्य अपने क्षेत्र में प्रशिक्षण सुविधाओं के विस्तार की योजना तैयार करे ताकि जितने अध्यापकों की आवश्यकता हो उतने अध्यापक मिल जाएं और अंतःसेवा शिक्षा की जरूरत भी पूरी हो सके;

(2) विशाल स्तर पर अंशकालिक सुविधाओं और पत्राचार पाठ्यक्रमों की व्यवस्था की जाए और यह ध्यान रखा जाए कि पूर्णकालिक संस्थाओं के स्तर न बिगड़ें।

(3) रिपोर्ट में बताये गए तरीकों से शीघ्रातिशीघ्र उन अध्यापकों को प्रशिक्षण दिया जाए जो इस समय अप्रशिक्षित हैं।

(4) संस्थाएं काफी बड़ी हों और उनका स्थान निर्धारण भी योजनापूर्वक किया जाए।

4.54 (91-96)

39. **स्कूलों के अध्यापकों का अंतःसेवा शिक्षण**—(1) विश्वविद्यालयों, प्रशिक्षणशालाओं और अध्यापक संगठनों को सभी स्तरों के अध्यापकों के लिए बड़े पैमाने पर समन्वित अंतःसेवा शिक्षण कार्यक्रम बनाने चाहिए। लक्ष्य होना चाहिए कि प्रत्येक अध्यापक अपनी प्रत्येक पांच वर्ष की सेवावधि में कम-से-कम दो या तीन मास का अंतःसेवा शिक्षण पा सके।

(2) माध्यमिक स्कूलों के अध्यापकों के अंतःसेवा प्रशिक्षण के लिए चलाए जाने वाली ग्रीष्मावकाश कालीन संस्थाओं का कार्यक्रम बढ़ाया जाना चाहिए, इसका सुव्यवस्थित अनुवर्तन होना चाहिए और इसके लिए संबंधित अभिकरणों के बीच सक्रिय सहयोग होना चाहिए।

4.55-57 (96-97)

40. **उच्चतर शिक्षा के अध्यापकों का वृत्तिक प्रशिक्षण**—उच्चतर शिक्षा के अवर लेक्चरारों की वृत्तिक शिक्षा में भी कुछ अनुस्थापन आवश्यक है और इस काम के लिए भी यथेष्ट व्यवस्था की जानी चाहिए।

(2) नवनियुक्त लेक्चरारों को भी संस्था में रस-बस जाने के लिए कुछ समय मिलना चाहिए और उन्हें अच्छे अध्यापकों की कक्षाओं में जाकर भाषण सुनने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

(3) प्रत्येक विश्वविद्यालय में नए अध्यापकों के लिए नियमित अनुस्थापन पाठ्यक्रम चलाए जाने चाहिए और जहां तक सम्भव हो प्रत्येक कालेज में भी ऐसा किया जाना चाहिए।

(4) बड़े विश्वविद्यालयों में या कुछ विश्वविद्यालयों के सम्मिलित समूहों में एक-एक कालेज स्थापित करके उसमें इन पाठ्यक्रमों की स्थायी व्यवस्था की जानी चाहिए। 4.58-62 (97-98)

41. **अध्यापक शिक्षा के स्तर**—(1) अध्यापक-शिक्षण में स्तरों की रक्षा का दायित्व राष्ट्रीय स्तर पर तो वि० अ० आ० के पास होना चाहिए और राज्य-स्तर पर शिक्षा के स्तरों को ऊंचा उठाने का दायित्व राज्य अध्यापक शिक्षा मंडल का होना चाहिए।

(2) विश्वविद्यालयों में अध्यापक शिक्षण का सुधार करने के लिए चतुर्थ पंचवर्षीय आयोजना में वि० अ० आ० को यथेष्ट अर्थनिधि विनिहित की जानी चाहिए।

(3) वि० अ० आ० को रा० शै० अ० प्र० प० के सहयोग से अध्यापक शिक्षा की एक संयुक्त स्थायी समिति बनानी चाहिए। इसके सदस्य सुयोग्य शिक्षाविद् होने चाहिए और इसका दायित्व अध्यापक शिक्षण के स्तरों की रक्षा करना होना चाहिए।

(4) जो अध्यापक शिक्षण इस समय विश्वविद्यालयों के क्षेत्र से बाहर होता है उसके विकास के लिए भारत-सरकार को राज्य सरकारों की सहायता के लिए केन्द्र प्रेरित क्षेत्र में वित्तव्यवस्था करनी चाहिए। 4.63-66 (98-99)

पांचवां अध्याय. नामांकन तथा जनशक्ति

42. **राष्ट्रीय नामांकन नीति**—अगले 20 वर्षों के दौरान राष्ट्रीय नामांकन नीति के मुख्य उद्देश्य इस प्रकार होने चाहिए :

— प्रत्येक बच्चे के लिए बिना किसी शुल्क के अनिवार्यतः कम-से-कम 7 वर्ष तक की प्रभावशाली सामान्य शिक्षा और यथासंभव बड़े-से-बड़े पैमाने पर अवर माध्यमिक शिक्षा का विस्तार होना चाहिए।

— जो उच्चतर माध्यमिक शिक्षा तथा विश्वविद्यालय स्तर की शिक्षा प्राप्त करने के इच्छुक तथा योग्य हो उनके लिए ऐसी शिक्षा की व्यवस्था करना। इस प्रकार की शिक्षा की व्यवस्था करते समय प्रशिक्षित जनशक्ति की मांग और आवश्यक स्तर बनाए रखने की आवश्यकताओं को ध्यान में रखना चाहिए। आर्थिक दृष्टि से अभावग्रस्त व्यक्तियों को समुचित आर्थिक सहायता दी जानी चाहिए।

— वृत्तिक, तकनीकी तथा व्यावसायिक शिक्षा के विकास पर बल देना तथा कृषि व उद्योगों के विकास के लिए अपेक्षित कुशल कर्मचारी तैयार करने चाहिए।

— प्रतिभा की पहचान करनी चाहिए और उसके पूर्ण विकास में सहायता देनी चाहिए।

— सामूहिक निरक्षरता को समाप्त करना चाहिए तथा प्रौढ़ व निरन्तर शिक्षा के लिए एक उपयुक्त कार्यक्रम तैयार करना चाहिए, तथा

— शिक्षा सम्बन्धी सुविधाओं की समान रूप से व्यवस्था करने के लिए निरन्तर प्रयत्न करते रहना चाहिए और शुरू-शुरू में कम-से-कम अत्यधिक स्पष्ट असमानताएं दूर की जानी चाहिए। 5.02(100-101)

43. **औसत नागरिक के शिक्षा स्तर को ऊंचा उठाना**—औसत नागरिक के शिक्षा स्तर को ऊंचा उठाने से सम्बन्धित कार्यक्रमों को अधिक प्राथमिकता दी जानी चाहिए :

(1) 1975-76 तक सभी बच्चों के लिए पांच वर्षीय और 1985-86 तक सात वर्षीय कार्यकारी प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था;

(2) 11-14 वर्ष के आयु-वर्ग के ऐसे सभी बच्चों के लिए, जिन्होंने अवर प्राथमिक शिक्षा पूरी नहीं की हो, और जो स्कूलों में अध्ययन न कर रहे हों उन्हें लगभग एक वर्ष तक की अंशकालिक शिक्षा अनिवार्य कर दी जाए। इस प्रकार की शिक्षा का उद्देश्य इन बच्चों को कामचलाऊ रूप से साक्षर करना और अशिक्षित प्रौढ़ों की संख्या में और आगे वृद्धि को रोकना होगा; और

(3) प्रौढ़-निरक्षरता को दूर करने से सम्बन्धित कार्यक्रमों को तैयार करना। 5.03 (101)

44. **माध्यमिक व उच्चतर शिक्षा के लिए नामांकन नीतियां**—(1) प्राथमिक शिक्षा स्तर के पश्चात् नामांकन नीति चार तत्वों के समन्वय पर निर्भर होनी चाहिए। ये चार तत्व हैं—माध्यमिक व उच्चतर शिक्षा की सार्वजनिक मांग, योग्यता के प्राकृतिक पूल का पूर्ण विकास कुछ खास स्तरों पर आवश्यक शैक्षिक सुविधाओं को जुटाने की समाज की क्षमता और अपेक्षित जनशक्ति।

(2) पहली तीन योजनाओं के दौरान माध्यमिक तथा उच्चतर शिक्षा की सार्वजनिक मांग में ज़बरदस्त वृद्धि हुई है और यह वृद्धि भविष्य में भी जारी रहेगी। इस वृद्धि को देखते हुए लक्ष्य इतने ऊंचे बैठते हैं कि व्यक्तियों,

धन या सामग्री के रूप में देश में उपलब्ध साधनों द्वारा इन लक्ष्यों की पूर्ति संभव नहीं है। अतः इस प्रकार की शिक्षा की सार्वजनिक मांग और उपलब्ध साधनों के बीच के अन्तर को पूरा करने के लिए उच्चतर माध्यमिक तथा विश्वविद्यालय स्तर की शिक्षा के वास्ते चुनाव द्वारा दाखिल करने की नीति अपनाना आवश्यक है।

(3) सभी योग्य छात्रों के लिए माध्यमिक व उच्चतर शिक्षा की व्यवस्था करना भी एक बहुत ऊंचा लक्ष्य है। इस लक्ष्य को प्राप्त करने में अत्यन्त समृद्ध-समाज को भी कठिनाई अनुभव होती है। यह लक्ष्य कम-से-कम निकट भविष्य में तो स्पष्टतः हमारी पहुंच से बाहर की चीज है। अतः इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रहते हुए राष्ट्रीय नामांकन नीति का तात्कालिक उद्देश्य यह सुनिश्चित करना होना चाहिए कि प्राथमिक या माध्यमिक शिक्षा पूरी करने वाले सभी प्रतिभावान छात्र (सभी छात्रों का 5 से 15 प्रतिशत) आगे अध्ययन जारी रख सकें। साथ ही ऐसे छात्रों की आर्थिक कठिनाइयां उदारतापूर्वक छात्रवृत्ति देकर दूर की जानी चाहिए।

(4) सभी शिक्षा प्रणालियों में कुछ आन्तरिक अवरोध होते हैं और इसके कारण सुविधाओं का विस्तार, विशेषकर माध्यमिक व उच्चतर शिक्षा संबंधी सुविधाओं का विस्तार रुक जाता है। ये आन्तरिक अवरोध हैं : सक्षम अध्यापकों, भौतिक सामग्री तथा पूंजी का उपलब्ध होना। सार्वजनिक मांग के तकाजे को पूरा करने के लिए प्रायः इन अवरोधों को अलग रख कर शिक्षा का स्तर घटा दिया जाता है। देश के व्यापक हितों को ध्यान में रखते हुए इस प्रकार के लालच को छोड़ना होगा।

(5) शैक्षिक सुविधाओं के विस्तार की योजना तैयार करने के लिए अपेक्षित जनशक्ति का अनुमान या नौकरियों की उपलब्ध सुविधाएं एक अच्छा आधार होती हैं। इस व्यापक सिफारिश को निम्नलिखित तीन शर्तों को ध्यान में रखते हुए समझना होगा :

(क) आवश्यक आंकड़ों को एकत्रित करने की प्रणाली में तथा पूर्वानुमानों की तकनीक में सुधार लाने के सतत प्रयत्न करते रहना चाहिए। अपेक्षित जनशक्ति के प्राक्कलन निरन्तर संशोधित करते रहना चाहिए और उन्हें अद्यतन रखना चाहिए।

(ख) तैयार की गई जनशक्ति के स्तर पर पर्याप्त बल देना चाहिए।

(ग) शैक्षिक सुविधाओं के विस्तार के सम्बन्ध में निर्णय लेने के लिए अपेक्षित जनशक्ति के प्राक्कलनों को एकमात्र आधार नहीं मानना चाहिए। इस दिशा में अन्तिम निर्णय लेते समय अन्य आधारों का भी मुनासिब समन्वय किया जाना चाहिए। 5. 04-12 (101-104)

45. **विकास योजना का कौशल**—वास्तविक साधनों के अनुसार शिक्षा संबंधी सुविधाओं के विस्तार की क्षमता द्वारा विस्तार का न्यूनतम स्तर तैयार हो जाता है। माध्यमिक व उच्चतर शिक्षा की सार्वजनिक मांग या प्राकृत-प्रतिभा के उपलब्ध पूल के विकास की आवश्यकता द्वारा उच्चतम लक्ष्य स्थापित होता है। इन ऊंचे और निचले लक्ष्यों के बीच के अन्तर को दूर करने के लिए शिक्षा-प्रणाली द्वारा तैयार व्यक्तियों की संख्या का संबंध अपेक्षित जनशक्ति के साथ जोड़ा जाना चाहिए। साथ ही शैक्षिक सुविधाओं को समान रूप से उपलब्ध कराना चाहिए। इन से इस बात के संकेत मिलेंगे कि किस मामले में प्राथमिकता बरती जानी चाहिए, अध्ययन के कौन से पाठ्यक्रमों का विकास किया जाना चाहिए, इन विभिन्न पाठ्यक्रमों में शिक्षा संबंधी सुविधाओं की व्यवस्था किस सीमा तक की जानी चाहिए तथा इन पाठ्यक्रमों में किस ढंग से नामांकन किए जाएं कि सभी के लिए समान सुविधा हो जाने के पश्चात् कम से कम समाज के योग्यतम छात्रों को इसमें स्थान मिल सके। 5. 13 (104)

46 **भविष्य में कितनी शिक्षित जनशक्ति की आवश्यकता होगी : भा० सां० सं०/लं० स्कू० ई० के प्राक्कलन**—शिक्षित जनशक्ति की भावी आवश्यकता के सम्बन्ध में आई० एस० आई०/एल० एस० ई० के लेख में दिए हुए प्राक्कलनों को हम मोटे तौर पर स्वीकार करते हैं। फिर भी आगे प्राप्त होने वाले अच्छे से अच्छे आंकड़ों के लिहाज से इन प्राक्कलनों को निरंतर संशोधित करना और उन्हें अद्यतन बनाते रहना आवश्यक है। पृष्ठ 108 पर दी हुई तालिका (सारणी 5.3) से अपेक्षित कर्मचारियों के प्राक्कलनों, उनकी मौजूद संख्या तथा अगले 20 वर्षों में तैयार होने वाले शिक्षित व्यक्तियों की संख्या का पता चलता है।

47. **प्राक्कलनों की शैक्षिक कठिनाइयां** : इन प्राक्कलनों में नीति सम्बन्धी मुख्य कठिनाइयां इस प्रकार हैं।

— यदि शिक्षित व्यक्तियों की सामूहिक बेरोजगारी को दूर करना है तो सामान्य माध्यमिक तथा उच्चतर शिक्षा के अपेक्षाकृत बद्ध और अनियन्त्रित विस्तार पर रोक लग जानी चाहिए।

— माध्यमिक शिक्षा का व्यवसायीकरण करने के लिए और विश्वविद्यालय स्तर पर वृत्तिक शिक्षा का विकास करने के लिए विशेष और सतत प्रयत्न करने चाहिए;

— राष्ट्रीय तथा राज्य दोनों स्तरों पर ऐसी उपयुक्त व्यवस्था की तैयारी करनी चाहिए जिससे अपेक्षित जनशक्ति के प्राक्कलनों तथा शिक्षा प्रणाली द्वारा तैयार व्यक्तियों की संख्या के बीच कारगर सम्बन्ध स्थापित हो सकें। ऐसी व्यवस्था करने का उद्देश्य यह है कि मोटे तौर पर ऐसी कुछ स्थिति हो जाएगी कि प्रत्येक काम के लिए उपयुक्त प्रशिक्षित व्यक्ति मिल सकेगा और प्रत्येक पढ़े-लिखे आदमी को उसकी योग्यता तथा वृत्तिक प्रशिक्षण के अनुसार काम भी मिल सकेगा। 5.26 (110)

48. **नामांकन**—तैयार व्यक्तियों की संख्या, कर्मचारियों तथा उनके भण्डार से संबंधित लक्ष्यों की पूर्ति के लिए अपेक्षित नामांकनों पर इस रिपोर्ट के विभिन्न खण्डों में विचार किया गया है। 5.40 (113-115)

49. **जनशक्ति नियोजन की मशीनरी**—इस मशीनरी की पहली दो बातों पर बाद के अध्यायों में प्रसंगानुसार विचार किया गया हैं। जहां तक तीसरी बात का सम्बन्ध है निम्नलिखित सिफ़ारिशें की गई हैं :

(1) **राष्ट्रीय-स्तर** : राष्ट्रीय विकास के सभी क्षेत्रों में अपेक्षित जनशक्ति के प्राक्कलनों को राष्ट्रीय स्तर पर तैयार करने का दायित्व योजना आयोग का है। योजना आयोग इस उद्देश्य के लिए जनशक्ति सम्बन्धी एक स्थायी समिति की स्थापना करेगा। शिक्षा प्रणाली द्वारा तैयार व्यक्तियों की कुल संख्या तथा विशेषज्ञों की विभिन्न श्रेणियों के लिए जनशक्ति के पूर्वानुमान तैयार करना और समय-समय पर उन्हें संशोधित करते रहना इस समिति की मुख्य जिम्मेदारी है।

(2) **राज्य स्तर** पर भी जनशक्ति सम्बन्धी राज्य समितियां स्थापित की जानी चाहिए। ये राज्य समितियां केन्द्र में स्थित जनशक्ति की स्थाई समिति के नमूने पर ही स्थापित की जानी चाहिए। राज्य समितियों व स्थाई समिति के उद्देश्य और दायित्व एक से होने चाहिए।

50. **जनशक्ति के प्राक्कलनों तथा शैक्षिक संस्थाओं द्वारा तैयार व्यक्तियों की संख्या के मध्य सम्बन्ध स्थापित करना**—शिक्षा प्रणाली द्वारा तैयार व्यक्तिवों की संख्या और अपेक्षित जनशक्ति के मध्य सम्बन्ध स्थापित करने के लिए निम्नलिखित उपाय किए जाने चाहिए :

(1) **राष्ट्रीय स्तर** : राष्ट्रीय स्तर पर यह योजना केन्द्रीय सरकार द्वारा राज्यों के परामर्श से तैयार की जानी चाहिए। यह योजना राष्ट्रीय विकास के ऐसे सभी महत्वपूर्ण क्षेत्रों के लिए होनी चाहिए जहां प्रशिक्षित कर्मचारियों की गतिशीलता बहुत अधिक हो या अधिक वांछनीय हो। साथ ही यह योजना ऐसे स्थानों के लिए भी होनी चाहिए जहां कर्मचारियों के प्रशिक्षण के लिए संस्थाएं स्थापित करना बहुत महंगा पड़ता हो या जहां कहीं ऐसी संस्थाओं के लिए आवश्यक अच्छी श्रेणी के अध्यापकों की कमी हो।। इसी योजना में इंजीनियरी, कृषि तथा चिकित्सा-शिक्षा और उच्चतर शिक्षा के लिए अध्यापक तैयार करने की व्यवस्था भी सम्मिलित होनी चाहिए।

(2) **राज्य स्तर** : बाकी क्षेत्रों की योजना राज्य स्तर पर राज्य सरकारों द्वारा तैयार की जानी चाहिए। माध्यमिक तथा उच्चतर शिक्षा (उन क्षेत्रों को छोड़कर जिनकी योजना केन्द्रीय स्तर पर तैयार की जाएगी) की सुविधाओं की योजना भी राज्य स्तर पर तैयार की जानी चाहिए।

(3) सभी क्षेत्रों में स्कूल तथा कालेज दोनों स्तरों पर व्यावसायिक शिक्षा का प्रसार करने के काम को प्राथमिकता देनी होगी और ऐसा करते समय अपेक्षित जनशक्ति को ध्यान में रखना होगा।

(4) फिर भी सामान्य शिक्षा के लिए (जो कुछ क्षेत्रों में अर्द्ध-विकसित तथा अन्य क्षेत्रों में आवश्यकता से अधिक विकसित है) नामांकनों के सम्बन्ध में एक समान अवसरों की नीति अपनानी पड़ेगी। यों तो इस सम्बन्ध में प्रत्येक राज्य को अपनी परिस्थितियों के अनुसार निर्णय लेने होंगे लेकिन सामान्य रूप से निम्न सुझाव दिए जा सकते हैं :

(क) ऐसे सभी क्षेत्रों में जहां शिक्षा का विस्तार 1966 के राष्ट्रीय औसत विस्तार से कम हुआ हो, शिक्षा के और अधिक विस्तार की दिशा में कार्रवाई की जानी चाहिए।

(ख) ऐसे सभी क्षेत्रों में, जहां शिक्षा का विस्तार 1986 में संभावित राष्ट्रीय औसत विस्तार के लगभग बराबर हो, एक प्रतिबन्धात्मक नीति

अपनाई जानी चाहिए बशर्ते कि उसके न अपनाने के विशेष कारण मौजूद हों।

(ग) राज्य स्तर पर समय समय पर कौन से लक्ष्य निर्धारित किए जाएं—यह सुझाने का काम भारत सरकार का है। राज्य सरकारें जिला स्तर पर उपयुक्त लक्ष्यों का निर्धारण स्वयं कर सकती हैं।

(घ) उच्चतर शिक्षा की योजना प्रत्येक राज्य के अनुसार अपनाई जानी चाहिए और इसके लिए राज्य के सभी विश्वविद्यालयों से पूछताछ की जानी चाहिए। सभी विश्वविद्यालयों से यह कहा जाए कि वे अपने सभी अध्यापन विभागों व सम्बद्ध कलेजों के लिए जो सुविधाएं जुटाना चाहते हैं उनके बारे में तथा इन सुविधाओं द्वारा तैयार किए जाने वाले व्यक्तियों की संख्या के सम्बन्ध में पंचवर्षीय योजनाएं तैयार करें : इन योजनाओं के अपेक्षित जनशक्ति के अनुरूप होने पर उन्हें स्वीकृति मिल सकती है। विश्वविद्यालयों से यह कहना चाहिए कि वे सम्बद्ध कालेजों को सम्बद्ध करने की मंजूरी देने या अपने विभागों का विस्तार करने के मामले में इन योजनाओं के अनुसार ही कार्रवाई करें।

(ङ) शिक्षा स्तर पर भी एक ऐसे अधिकारी की नियुक्ति आवश्यक है जो समूची स्कूल शिक्षा की योजना बना सके। इस अधिकारी को यह योजना केन्द्र तथा राज्य सरकार द्वारा दिए गए सामान्य आदेशों के अनुरूप तैयार करनी चाहिए। इस अधिकारी के काम में सहायता देने के लिए अपेक्षित जनशक्ति का स्थानीय अध्ययन करना आवश्यक हो जाएगा।

5.43-48 (117-121)

51. **शिक्षा तथा रोजगार**—हमारा उद्देश्य यह होना चाहिए कि प्रत्येक स्नातक को डिग्री या डिप्लोमा के साथ ही नियुक्ति प्रस्ताव भी दे दिया जाए। इस दृष्टि से चिकित्सा स्नातकों के लिए निर्धारित एक वर्ष तक पूर्णकालिक छात्र के रूप में कार्य करने की जो प्रणाली है उसे स्नातकों के अन्य वर्गों में भी लागू किया जाना चाहिए।

5.49 (121)

52. **अपेक्षाकृत विस्तृत परिप्रेक्ष्य**—मानवीय साधनों के विकास की मूल समस्या केवल विस्तृत परिप्रेक्ष्य में ही सुलझाई जा सकती है। इस दृष्टि से समेकित योजनाएं तैयार करना तथा उन्हें कार्यान्वित करना आवश्यक है। इन समेकित योजनाओं के तीन उद्देश्य होंगे—यथा (1) जन्मदर को घटाकर लगभग आधा कर देना (2) रोजगार की सुविधाओं का विस्तार करना (3) ऐसी शिक्षा की व्यवस्था करना जिसके आधार पर नवयुवक विशिष्ट काम धन्धे के योग्य बन सकें। ऐसी समेकित योजनाएं राष्ट्रीय, राज्य तथा जिला स्तरों पर वांछनीय हैं।

5.50-51 (121-122)

छठा अध्याय. शिक्षा के अवसरों के समकरण की ओर

53. **शिक्षा के शुल्क**—देश को एक ऐसी स्थिति की ओर प्रगति करनी चाहिए, जहां सारी शिक्षा निःशुल्क हो जाए। इस दृष्टि से :

(1) प्राथमिक स्तर पर यथाशीघ्र सभी सरकारी, स्थानीय निकायों के स्कूलों और सहायता-प्राप्त निजी स्कूलों में पढ़ाई की फीस खत्म कर दी जाए। बेहतर यह होगा कि चौथी योजना की समाप्ति से पूर्व ही ऐसा कर दिया जाए।

(2) अवर माध्यमिक शिक्षा यथाशीघ्र—और बेहतर यह होगा कि पाँचवीं योजना की समाप्ति से पूर्व ही—समस्त सरकारी, स्थानीय निकायों की और सहायता प्राप्त निजी संस्थाओं में निःशुल्क कर दी जानी चाहिए। आवश्यकता हो तो इस प्रयोजन के लिए एक अवस्थाबद्ध कार्यक्रम बनाया जा सकता है।

(3) अगले दस वर्षों में उच्चतर माध्यमिक और विश्वविद्यालय शिक्षा में—फीसों के सम्बन्ध में यह प्रयत्न किया जाना चाहिए कि सभी गरजमंद और योग्य छात्रों को निःशुल्क शिक्षा दी जा सके। इसके पहले कदम के रूप में निःशुल्क शिक्षा पाने वाले छात्रों का अनुपात बढ़ा कर नामांकन का कम से कम 30 प्रतिशत कर दिया जाना चाहिए। 6.08-15 (124-127)

54. **अन्य निजी व्यय**—हाल के वर्षों में शिक्षा पर अन्य निजी व्यय बहुत बढ़ गये हैं और यह आवश्यक नहीं है कि वे शैक्षिक कारणों से बढ़े हों। इन व्ययों को घटाकर न्यूनतम करने के लिए प्रयत्नों की आवश्यकता है।

(1) प्राथमिक स्तर पर पाठ्य पुस्तकें और लेखन

सामग्री मुफ्त दी जानी चाहिए। स्कूलों में नए भर्ती होने वाले बच्चों का स्कूल के समारोह में स्वागत किया जाना चाहिए और इस अवसर पर उन्हें पुस्तकों का सैट भेंट किया जाना चाहिए। अन्य बच्चों को भी स्कूल की वार्षिक परीक्षाओं का परिणाम घोषित होते ही अगले वर्ष की पुस्तकों का पूरा सेट दिया जाना चाहिए। यह सैट उन्हें दीर्घ अवकाश प्रारम्भ होने से पहले ही दे दिया जाना चाहिए ताकि वे अवकाश के दिनों का उपयोग आगे की पढ़ाई के लिए कर सकें।

(2) माध्यमिक स्कूलों और उच्चतर शिक्षा की संस्थाओं में पुस्तक-बैंकों का कार्यक्रम विकसित किया जाना चाहिए। राज्यों के शिक्षा-विभागों के नियंत्रण में एक निधि होनी चाहिए जिससे वे माध्यमिक स्कूलों में पुस्तक बैंकों की स्थापना को प्रोत्साहित कर सकें। विश्वविद्यालयों और संबद्ध कालेजों में उन्हें संगठित करने के लिए ऐसी ही एक निधि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के हाथों में भी रहनी चाहिए।

(3) माध्यमिक स्कूलों और उच्चतर शिक्षा की संस्थाओं के पुस्तकालयों में पाठ्यपुस्तकों के काफी सैट होने चाहिए ताकि अध्यापक उन्हें आसानी से प्राप्त कर सकें।

(4) प्रतिभाशाली छात्रों को पुस्तकें खरीदने के लिए यह जरूरी नहीं है कि वे पाठ्यपुस्तकें हों—अनुदान दिए जाने चाहिएं। शिक्षा संस्थाओं में ऐसे छात्र ऊपर के दस प्रतिशत छात्र समझे जाने चाहिए। यह योजना विश्वविद्यालयों में प्रारम्भ होनी चाहिए और बाद में सम्बद्ध कालेजों और माध्यमिक स्कूलों में भी उसका विस्तार किया जाना चाहिए।

55. **छात्रवृत्तियां**—छात्रवृत्तियों के कार्यक्रम पर हाल के वर्षों में काफी बल दिया गया है, किन्तु उन्हें निम्न पद्धति से पुनर्गठित करने की आवश्यकता है :

(1) छात्रवृत्ति कार्यक्रम एक सतत प्रक्रिया है और शिक्षा के सभी स्तरों पर उसका गठन करना होगा। फिलहाल स्कूल स्तर पर यह कार्यक्रम कमजोर है और उसे सबल बनाना जरूरी है।

(2) छात्रवृत्तियां देने के लिए अधिक न्यायपूर्ण और अधिक समान आधार निकालने की आवश्यकता है।

(3) छात्रवृत्ति कार्यक्रम के परिणाम बेहतर हो सकते हैं, यदि उसके साथ ही हरेक स्तर पर और हरेक क्षेत्र में पर्याप्त संख्या में कोटि संस्थाएं बनाए रखने का भी कार्यक्रम हो और प्रतिभावान छात्रों को इन संस्थाओं में रखने के लिए प्रयत्न किया जाए।

(4) शिक्षा के एक स्तर या उप-स्तर से दूसरे में स्थानान्तर के सभी स्थलों पर सावधानी से नजर रखी जानी चाहिए ताकि सभी योग्य छात्रों को आगे अध्ययन का अवसर दिया जा सके।

(5) छात्रवृत्तियों, संस्थापन और कोटि संस्थाओं के संचालन के इस सम्मिलित कार्यक्रम को चलाने के लिए एक पर्याप्त मशीनरी स्थापित की जानी चाहिए।

6.18 (129)

56. शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर छात्रवृत्तियों का निम्न कार्यक्रम प्रस्तावित किया जाता है :

(1) **प्राथमिक स्तर** : इस बात के लिए कदम उठाए जाने चाहिए कि अवर प्राथमिक स्तर की समाप्ति पर किसी भी होनहार बच्चे को आगे पढ़ाई जारी रखने से रुकना न पड़े और इस उद्देश्य के लिए हर गरजमंद बच्चे को पर्याप्त राशि की छात्रवृत्ति दी जानी चाहिए। यह मान लिया गया है कि 1975-76 तक उच्चतर प्राथमिक स्तर पर नामांकित तमाम बच्चों में 2.5 प्रतिशत को और 1985-86 तक उसी नामांकन के 5 प्रतिशत बच्चों को छात्रवृत्तियां प्रदान करने का लक्ष्य बनाया जाना चाहिए। 6.19 (129-130)

(2) **माध्यमिक स्तर** : इस बात की व्यवस्था के लिए कदम उठाए जाने चाहिए कि इस आयु-समूह के चोटी के 15 प्रतिशत बच्चों को उच्चतर प्राथमिक स्तर से माध्यमिक स्तर में जाने पर छात्रवृत्तियां मिल सकें। इस उद्देश्य के लिए हरेक उच्चतर प्राथमिक स्कूल में कक्षा 7 या 8 के ऊपर के छात्रों में से 10 प्रतिशत को आवश्यक वित्तीय सहायता दी जानी चाहिए। हरेक सामुदायिक विकास खंड में कम-से-कम एक अच्छा माध्यमिक स्कूल, जिसमें रिहायश की भी पर्याप्त व्यवस्था हो, होना चाहिए और ऐसी संस्था को प्रवेश योग्यता के आधार पर विनियमित किया जाना चाहिए। 6.20-23 (130-131)

(3) हरेक स्कूल में प्रतिभाशाली छात्रों को छांटने का कार्यक्रम होना चाहिए और इन छात्रों के लिए ऐसे विशेष संवर्धन कार्यक्रम होने चाहिए जो उनकी आवश्यकताओं के अनुकूल हों और उनकी वृद्धि में योग दे सकें।

(4) **विश्वविद्यालय स्तर** : विश्वविद्यालय स्तर पर छात्रवृत्तियां देने का लक्ष्य इस प्रकार होना चाहिए :

(क) सन् 1976 तक पूर्व-स्नातक स्तर पर नामांकित छात्रों में से कम-से-कम 15 प्रतिशत के लिए, और 1986 तक 25 प्रतिशत के लिए छात्रवृत्तियों की व्यवस्था हो जानी चाहिए; और

(ख) स्नातकोत्तर अवस्था में 1976 तक नामांकन के कम-से-कम 25 प्रतिशत के लिए और 1986 तक 50 प्रतिशत के लिए छात्रवृत्तियों की व्यवस्था होनी चाहिए।

(5) छात्रवृत्तियां दो किस्मों की होनी चाहिए :

(क) उनके लिए, जिन्हें होस्टलों में रहना पड़ता है। इन छात्रवृत्तियों से शिक्षा के सभी प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष खर्च, जैसे पढ़ाई की फीस, किताबें और अन्य सामग्री आदि, पूरे होने चाहिए; और

(ख) उनके लिए जो घर पर रह सकते हैं और स्कूल या कालेज में पढ़ने आते हैं। इनसे मुख्य प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष खर्च पूरे होने चाहिए।

अवर अवस्थाओं में दूसरी किस्म की छात्रवृत्तियों की सबसे अधिक आवश्यकता होगी। जैसे-जैसे व्यक्ति शिक्षा की सीढ़ी पर ऊपर चढ़ता जाएगा वैसे-वैसे पहली किस्म की छात्रवृत्तियों का अनुपात बढ़ाते जाना होगा।

(6) शिक्षा के अप्रत्यक्ष व्ययों और रहन-सहन के व्ययों के अध्ययन के लिए कदम उठाए जाने चाहिएं ताकि उन्हें घटाकर न्यूनतम किया जा सके। खास तौर से होस्टल के खर्च कम करना जरूरी है। इसके लिए नौकरों आदि की संख्या में कमी की जानी चाहिए।

(7) छात्रवृत्तियों की राशि इस हिसाब से नियमित की जानी चाहिए कि उससे सभी खर्च पूरे हो सकें। 6.24-26 (131-132)

57. **राष्ट्रीय छात्रवृत्तियां**—(1) राष्ट्रीय छात्रवृत्तियों की योजना का विस्तार किया जाना चाहिए। लक्ष्य यह होना चाहिए कि 1975-76 तक परीक्षा पास कर निकलने वाले सभी छात्रों का ऊपर का पांच प्रतिशत और 1985-86 तक 10 प्रतिशत उसके अन्तर्गत आ जाए। इस योजना का संचालन और भी सरल और विकेन्द्रित किया जाना चाहिए। खास तौर से, इन छात्रवृत्तियों का अधिकारी होने के कार्ड जारी करने का अधिकार उन परिक्षाओं के लेने वाले अधिकारियों को दे दिया जाना चाहिए, जिन्हें पास करने पर ये छात्रवृत्तियां दी जानी हैं।

(2) इन छात्रवृत्तियों के बंटवारे में अधिक समानता का तत्व लाने के लिए यह सुझाव है कि 50 प्रतिशत छात्रवृत्तियां इस समय की भांति राज्यों के आधार पर ही बांटी जाती रहनी चाहिए : शेष 50 प्रतिशत "स्कूल-समूहों" के आधार पर बांटी जानी चाहिए। इसके लिए एक-जैसी सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि के छात्रों वाले स्कूलों के पृथक समूह बना लिए जाएं और हरेक समूह के चोटी के छात्रों को ये छात्रवृत्तियां दी जाएं। 6.27 (132-133)

58. **विश्वविद्यालय छात्रवृत्तियां**—इन छात्रवृत्तियों के अनुपूरक के तौर पर विश्वविद्यालय छात्रवृत्तियों की भी एक योजना बनाई जानी चाहिए और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की मार्फत उसे क्रियान्वित किया जाना चाहिए। लक्ष्य यह होना चाहिए कि 1976 तक पूर्व-स्नातक स्तर पर नामांकन के 10 प्रतिशत और स्नातकोत्तर स्तर पर नामांकन के 20 प्रतिशत छात्र उनके अन्तर्गत आ जाएं।

59. शिक्षा मंत्रालय में राष्ट्रीय स्तर पर स्नातकोत्तर और अनुसंधान छात्रवृत्तियों के लिए एक स्थायी समिति स्थापित की जानी चाहिए। इसमें स्नातकोत्तर स्तर पर छात्रवृत्तियां देने वाले मन्त्रालयों के प्रतिनिधि होने चाहिए और उसका मुख्य काम विभिन्न छात्रवृत्ति कार्यक्रमों को समन्वित करना होना चाहिए। 6.28-30 (133-134)

60. **व्यावसायिक शिक्षा में छात्रवृत्तियां**—व्यावसायिक शिक्षा में छात्रवृत्तियों के सम्बन्ध में निम्न सुधार जरूरी हैं :

(1) यह जरूरी है कि भरतियों में समानता का तत्व समाविष्ट करने के लिए अधिक तीव्र प्रयत्न किया जाए।

(2) भारतीय शिल्पविज्ञान संस्थानों (आई० आई० टी०) में प्रवेश के लिए परीक्षाएं अंग्रेजी और प्रादेशिक भाषाएं, दोनों में होनी चाहिए, और इन भाषाई समूह में से सर्वोत्तम छात्र, अस्थायी तौर पर आबादी के आधार पर

निर्धारित कोटे के मुताबिक, छांटे जाने चाहिए। यदि इनमें से कुछ छात्रों का अंग्रेजी का स्तर पर्याप्त ऊंचा न हो तो संस्था के पहले वर्ष में इन चुने हुए छात्रों को अंग्रेजी का ज्ञान कराने के लिए सघन प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।

(3) स्कूल स्तर पर करीब 30 प्रतिशत छात्रों को छात्रवृत्तियां दी जानी चाहिए और कालेज स्तर पर इनकी संख्या 50 प्रतिशत कर दी जानी चाहिए।

6.31-33 (134-136)

61. **विदेशों में अध्ययन के लिए छात्रवृत्तियां**—विदेशों में अध्ययन के लिए सर्वोत्तम प्रतिभाशाली छात्रों को छात्रवृत्तियां देने का एक राष्ट्रीय कार्यक्रम होना चाहिए। लगभग 500 छात्रवृत्तियां हर वर्ष दी जानी चाहिए। 6.34 (136)

62. **ऋण छात्रवृत्तियां**—ऊपर वर्णित सीधी अनुदान छात्रवृत्तियों की अनुपूर्ति के लिए ऋण छात्रवृत्तियों का एक कार्यक्रम बनाना आवश्यक है। यह कार्यक्रम निम्न आधार पर संगठित किया जाना चाहिए :

(1) यह कार्यक्रम सीधी छात्रवृत्तियों के, जो हमारे द्वारा ऊपर सुझाए गए प्रमाण में दी जानी चाहिए, अनुपूरक के रूप में बनाया जाना चाहिए।

(2) ये छात्रवृत्तियां तत्वतः विज्ञानों और वृत्तिक पाठ्यक्रमों के, जिनमें रोजगार के अवसर और आमदनियों के स्तर अपेक्षया बेहतर होते हैं और जिनसे इस योजना के सफल होने की भी सम्भावना है, छात्रों के लिए होंगी। इस क्षेत्र में इस तरह की ऋण छात्रवृत्तियों के लिए कोई ऊपरी सीमा नहीं होनी चाहिए और प्रयत्न यह किया जाना चाहिए कि हरेक गरजमन्द छात्र को वित्तीय सहायता मिल सके। एक सीमित मात्रा में और योग्य मामलों में कार्यक्रम का कला के छात्रों तक भी विस्तार किया जाना चाहिए।

(3) यदि ऋण छात्रवृत्ति का उपयोग करने वाला कोई व्यक्ति अध्यापन व्यवसाय में आ जाए तो सेवाकाल के हर वर्ष पर ऋण का दस प्रतिशत माफ कर दिया जाना चाहिए। इससे अच्छे छात्र इस व्यवसाय की ओर आकृष्ट होंगे।

(4) ऋण छात्रवृत्ति कार्यक्रम के सुविधापूर्वक संचालन के लिए एक राष्ट्रीय ऋण छात्रवृत्ति बोर्ड स्थापित किया जाना चाहिए, जैसी कि रिपोर्ट में सिफ़ारिश की गई है।

63. **अन्य प्रकार की छात्र सहायताएं**—कुछ अन्यप्रकार की छात्र-सहायताओं को भी विकसित करने की आवश्यकता है।

(1) परिवहन सुविधाएं कल्पनापूर्ण तरीके से व्यवस्थित करनी चाहिए ताकि होस्टलों और छात्रवृत्तियों पर खर्च घटाया जा सके। उदाहरण के लिए हमने ग्रामीण क्षेत्रों में ऐसे स्कूल देखे हैं, जो दूर से आने वाले छात्रों को बाइसिकलें देते हैं।

(2) दिवस-अध्ययन केन्द्र और वास गृह (ऐसे स्थान जहां छात्र दिन में, बल्कि रात में भी रह सकें, किन्तु भोजन के लिए घर जा सकें) अच्छे पैमाने पर स्थापित किए जाने चाहिए।

(3) छात्रों को कमाने और अपने शिक्षा व्यय का एक भाग अदा करने की सुविधाएं देने के तरीके विकसित किए जाने चाहिए। 6.35-37 (136-137)

64. **सामान्य**—(1) छात्रवृत्तियों के हर कार्यक्रम में छात्राओं की आवश्यकताओं को तरजीह दी जानी चाहिए।

(2) छात्रवृत्तियां देने की जिम्मेदारी का बड़ा भाग भारत सरकार को उठाना चाहिए। स्कूल स्तर पर यह जिम्मेदारी राज्य सरकारों में निहित होनी चाहिए। किन्तु स्कूल स्तर पर छात्रवृत्तियों का एक अच्छा कार्यक्रम बनाने के लिए अगली दो योजनाओं में आवश्यक निधि केन्द्र-प्रेरित क्षेत्र में दी जानी चाहिए। उसके बाद राज्य सरकारें स्वयं अपने ही धन से कार्यक्रम बना सकती हैं। 6.39-41 (137-139)

65. **विकलांग बच्चे**—विकलांग बच्चों को शिक्षा की सुविधाएं प्रदान करने में होने वाली प्रगति दो मुख्य बातों से सीमित होगी : अध्यापकों और वित्तीय साधनों का अभाव। किन्तु एक तर्कसंगत लक्ष्य यह हो सकता है कि 1986 तक अन्धे, बधिर और अंग विकृति वाले बच्चों में से लगभग 15 प्रतिशत को और मन्दबुद्धि बच्चों में से 5 प्रतिशत को शिक्षा दी जा सके। इसका अर्थ होगा विकलांग बच्चों की कुल संख्या के 10 प्रतिशत भाग को शिक्षा की सुविधाएं प्रदान करना। इस कार्यक्रम के अंग के रूप में हरेक जिले में विकलांग बच्चों की शिक्षा के लिए कम-से-कम संख्या जरूर हो।

66. शिक्षा की दृष्टि से उन्नत देशों में, अब इस बात पर बहुत जोर दिया जा रहा है कि विकलांग बच्चों को नियमित स्कूल कार्यक्रमों में ही समेकित किया जाए। हम यह अनुभव करते है कि हमारे देश में भी समेकन कार्यक्रम को आजमाने की तत्काल आवश्यकता है और समेकन कार्यक्रमों में यथासंभव अधिकतम बच्चों को लाने का हरेक प्रयत्न किया जाना चाहिए।

67. इसके अलावा बच्चों के कुछ अन्य वर्गों के लिए भी, जिनकी कुछ खास शैक्षिक आवश्यकताएं होती हैं, यानी कमजोर दृष्टि वाले, वाचाघाती, वाक्दोष युक्त, क्षत मस्तिष्क और मानसिक दृष्टि से विक्षुब्ध बच्चों के लिए, प्रायोगिक आधार पर सेवाएं विकसित करना जरूरी है।

68. विकलांग बच्चों की शिक्षा के लिए उपर्युक्त कार्यक्रमों को ठीक ढंग से विकसित करने के लिए अध्यापकों के प्रशिक्षण, इस क्षेत्र में काम करने वाले विभिन्न अभिकरणों के प्रयत्नों के समन्वय और समस्या के पर्याप्त अनुसंधान को समुन्नत करने पर जोर देना आवश्यक है।

6.42-49 (139-142)

69. **प्रादेशिक असन्तुलन**—विभिन्न राज्यों में शिक्षा के विकास में बहुत अन्तर है। जिला स्तर पर ये अन्तर और भी बड़े हो जाते हैं। इन अन्तरों को घटाकर न्यूनतम करना वांछनीय है और देश के विभिन्न राज्यों और जिलों के सामाजिक-आर्थिक विकास के असन्तुलनों को कम करने के व्यापकतर कार्यक्रमों के साथ-साथ इसके कार्यक्रमों को भी चलाना होगा। किन्तु यदि इन आधारों पर काम किया जाए तो इस जटिल समस्या का समाधान आसान हो जाएगा :

(1) शिक्षा के विकास में इन अन्तरों को बिल्कुल खत्म करना न तो संभव है और न वांछनीय। किन्तु एक सन्तुलनकारी कारक की आवश्यकता है, यानी कम उन्नत क्षेत्रों को कम-से-कम कुछ निर्धारित न्यूनतम स्तरों तक उठाने के लिए सहायता देने की आवश्यकता, जिससे कि उनके और उन्नत क्षेत्रों के बीच का अन्तर कम किया जा सके।

(2) शिक्षा के योजना और विकास के लिए जिले को बुनियादी इकाई के रूप में अपनाया जाना चाहिए।

(3) राज्य स्तर पर विभिन्न जिलों में शिक्षा के विकास के समकरण की नीति जान-बूझकर अपनाई जानी चाहिए और इसके लिए आवश्यक प्रशासनिक एवं वित्तीय उपाय किए जाने चाहिए।

(4) राष्ट्रीय स्तर पर यह भारत सरकार की जिम्मेदारी समझी जानी चाहिए कि वह विभिन्न राज्यों में शिक्षा के विकास का समकरण करे। इसके लिए आवश्यक कार्यक्रम, जिनमें कम उन्नत राज्यों को विशेष सहायता देना भी शामिल है, विकसित किए जाने चाहिए।

6.50-52 (142-152)

70. **स्त्रियों की शिक्षा**—हाल के वर्षों में स्त्रियों की शिक्षा की समस्या पर विचार करने वाली इन तीन समितियों की सिफारिशों का हम पूर्ण समर्थन करते हैं—

(क) श्रीमती दुर्गाबाई देशमुख की अध्यक्षता में स्त्रियों की शिक्षा के लिए नियुक्त राष्ट्रीय समिति; (ख) श्रीमती हंसा मेहता की अध्यक्षता में लड़कों और लड़कियों की पाठ्यचर्याओं में विभेदीकरण के बारे में नियुक्त समिति; और (ग) श्री एम० भक्तवत्सलम की अध्यक्षता में नियुक्त समिति, जिसने लड़कियों की शिक्षा की दृष्टि से कम विकसित छह राज्यों की समस्याओं का अध्ययन किया।

71. स्त्रियों की शिक्षा के बारे में नियुक्त राष्ट्रीय समिति की निम्न सिफारिशों की ओर हम विशेष रूप से ध्यान आकृष्ट करते हैं :

(1) स्त्रियों की शिक्षा को अगले कुछ वर्षों के लिए शिक्षा का एक बड़ा कार्यक्रम माना जाना चाहिए और उसमें आने वाली कठिनाइयों का सामना करने एवं पुरुषों और स्त्रियों की शिक्षा के मौजूदा अन्तर को यथाशीघ्र कम करने के लिए साहसपूर्ण प्रयत्न किया जाना चाहिए।

(2) इस प्रयोजन के लिए विशेष योजनाएं बनाई जानी चाहिए और उनके लिए आवश्यक धन प्राथमिकता के आधार पर दिया जाना चाहिए।

(3) केन्द्र में और राज्यों में, दोनों जगह लड़कियों और स्त्रियों की शिक्षा पर नजर रखने के लिए एक विशेष तन्त्र होना चाहिए। इस तन्त्र को चाहिए कि वह स्त्रियों की शिक्षा के कार्यक्रमों के आयोजन और क्रियान्वयन में सरकारी और गैर-सरकारी व्यक्तियों को एक जगह लाए।

72. इसके अलावा सभी स्तरों पर और सभी क्षेत्रों में लड़कियों की शिक्षा की ओर पर्याप्त ध्यान देना भी जरूरी है।

73. घरों की चहारदीवारियों से बाहर स्त्रियों का कार्य देश के सामाजिक और आर्थिक जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग बन गया है और आने वाले वर्षों में वह और भी महत्वपूर्ण बन जाएगा। इस दृष्टिकोण से स्त्रियों के प्रशिक्षण और रोजगार की समस्याओं पर अधिक ध्यान देना पड़ेगा। अंशकालिक रोजगार के अवसर, जिनसे स्त्रियां अपने घरों की देखभाल भी कर सकें और बाहर जीवन के लिए कोई पेशा भी अपना सकें, बड़े पैमाने पर बढ़ाने होंगे। जैसे-जैसे विवाह की आयु बढ़ती जाएगी, लगभग सभी विवाहित युवतियों के लिए पूर्णकालिक रोजगार की

व्यवस्था करनी पड़ेगी। जैसे-जैसे परिवार-नियोजन का कार्यक्रम तरक्की करता जाएगा, बड़ी उम्र की स्त्रियों को भी, जिनके बच्चे बड़े हो गए होंगे, रोजगार के अवसरों की आवश्यकता होगी। अध्यापन, नर्सिंग और समाज सेवा ऐसे सुस्वीकृत क्षेत्र है, जहां स्त्रियां उपयोगी भूमिका अदा कर सकती हैं। इसके अलावा, उनके लिए बहुत-से नए मार्ग भी खोलने होंगे। 6.53-58 (152-156)

74. **पिछड़े वर्गों की शिक्षा**—(1) अनुसूचित जातियों की शिक्षा का मौजूदा कार्यक्रम जारी रहना चाहिए और उसका विकास भी किया जाना चाहिए।

(2) खानाबदोश और नीम खानाबदोश समूहों की शैक्षिक सुविधाओं के लिए बृहत्तर प्रयत्नों की आवश्यकता है।

(3) अनुसूचित जातियों के बच्चों के लिए होस्टलों की व्यवस्था की जानी चाहिए।

75. **आदिम जातियों की शिक्षा**—आदिम जातियों की शिक्षा पर अधिक बल और ध्यान देना उचित है। इस सम्बन्ध में हम श्री उ० न० ढेबर की अध्यक्षता में अनुसूचित क्षेत्र और अनुसूचित आदिम जाति कमीशन द्वारा और योजना आयोग एवं राष्ट्रीय शिक्षा अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद द्वारा आदिम जातियों की शिक्षा और रोजगार पर विचार करने के लिए आयोजित सेमिनारों द्वारा की गयी सिफारिशों से मोटे तौर पर सहमत हैं। इस सन्दर्भ में हम निम्न कार्यक्रमों की ओर विशेष ध्यान आकृष्ट करते हैं।

(1) प्राथमिक स्तर पर सुविधाओं की व्यवस्था सुधारनी पड़ेगी और विरल आबादी वाले क्षेत्रों में आश्रम स्कूल स्थापित करने होंगे। अध्यापकों को आदिम जातीय भाषाओं का ज्ञान अवश्य होना चाहिए। स्कूल के पहले दो वर्षों में शिक्षा का माध्यम आदिम जातीय भाषा होना चाहिए और इस अवधि में बच्चों को प्रादेशिक भाषाओं की मौखिक शिक्षा दी जानी चाहिए। तीसरे वर्ष तक प्रादेशिक भाषा शिक्षा का माध्यम हो जानी चाहिए। स्कूलों के कार्यक्रम आदिम जातीय जीवन और वातावरण के अनुकूल होने चाहिए।

(2) माध्यमिक स्तर पर स्कूलों, होस्टल सुविधाओं और छात्रवृत्तियों का काफी विस्तार करना होगा।

(3) उच्चतर शिक्षा में छात्रवृत्तियों के कार्यक्रम का संचालन विकेन्द्रित करना और अधिक कुशल बनाना होगा।

(4) माध्यमिक और विश्वविद्यालय, दोनों स्तरों पर विशेष पढ़ाई की व्यवस्था करनी होगी।

(5) ऐसे व्यक्तियों के काडर बनाना जरूरी है, जो अपने आपको आदिम जातियों की सेवा में लगा सकें। शुरू की अवस्थाओं में, इन काडरों में मुख्यतः गैर-आदिम-जातीय व्यक्ति ही होंगे, किन्तु प्रयत्न स्वयं आदिम जातियों में ही ऐसे काडरों को विकसित करने का होना चाहिए। इस दृष्टिकोण से,

(क) आदिम जातीय क्षेत्रों में काम कर रहे गैर-सरकारी संगठनों को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए।

(ख) सरकारी पदों में विशेष उप-काडर बनाए जाने चाहिए, जिनका उद्देश्य आदिम जातीय क्षेत्रों में काम के लिए व्यक्तियों का चयन होना चाहिए। इन उप-काडरों की परिलब्धियां (वेतन आदि) इतनी होनी चाहिए कि वे उत्तम उपलब्ध व्यक्तियों को आकृष्ट कर सकें।

(ग) आदिम जातीय लोगों में से होनहार युवा व्यक्ति छांटे जाने चाहिए और उन्हें आदिम जातीय क्षेत्रों में काम के लिए विशेष प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। भर्ती या न्यूनतम शिक्षा की आम शर्तें इस कार्यक्रम में अक्सर हटानी पड़ेंगी। 6.59-75 (156-161)

सातवां अध्याय. स्कूल शिक्षा : विस्तार की समस्याएं

76. शिक्षा की समूची पूर्व-विश्वविद्यालय अवधि को एक लगातार इकाई मानना चाहिए। इसे पूर्व-प्राथमिक, अवर प्राथमिक और उच्चतर प्राथमिक तथा अवर और उच्चतर माध्यमिक जैसे उप-स्तरों में उपविभाजित किया जा सकता है। पर यह ध्यान रखना होगा कि विभिन्न उप स्तरों की समस्याओं में अन्तर की अपेक्षा उनकी समानता का कहीं ज्यादा महत्व है। 7.01 (147-148)

77. **पूर्व-प्राथमिक शिक्षा**—बच्चों के, खासकर असन्तोषप्रद घरेलू पृष्ठभूमि वाले बच्चों के, शारीरिक, भावात्मक और बौद्धिक विकास के लिए पूर्व-प्राथमिक शिक्षा का बहुत महत्व है। आयु-वर्ग 3 से 5 की जनसंख्या में पांच प्रतिशत का पूर्व-प्राथमिक स्कूलों में और आयु-वर्ग 5-6 के 50 प्रतिशत का पूर्व-स्कूल कक्षाओं में नामांकन 1986 तक के लिए एक युक्तिसंगत लक्ष्य होगा।

78. अगले बीस वर्ष तक पूर्व-प्राथमिक शिक्षा का विकास नीचे लिखी दिशाओं में करना चाहिए :

(1) हर राज्य शिक्षा संस्थान में पूर्व-प्राथमिक शिक्षा के लिए राज्य स्तर पर विकास केन्द्र स्थापित किए जाने चाहिए। इसके अलावा उस क्षेत्र की पूर्व-प्राथमिक शिक्षा के विकास, पर्यवेक्षण और मार्गदर्शन के लिए इन जिलों में एक जिला स्तर केन्द्र स्थापित किया जाना चाहिए।

(2) पूर्व-प्राथमिक केन्द्र स्थापित करने और चलाने की जिम्मेवारी ज्यादातर निजी उपक्रमों के ऊपर डालनी चाहिए, राज्य द्वारा समानीकरण के आधार पर सहायक अनुदान देकर मदद की जाए।

(3) पूर्व-प्राथमिक शिक्षा में प्रयोग को महत्व देना चाहिए, खास तौर पर इसके विकास के लिए कम खर्चीले तरीके निकालने के लिए। यह मद्रास के नमूने पर किया जा सकता है। विकल्प के रूप में यथासंभव ज्यादा से ज्यादा प्राथमिक स्कूलों के साथ खेल-कूद केन्द्र संलग्न कर देने चाहिए जो स्कूल से पूर्व की कक्षाओं के रूप में काम करें।

(4) राज्य को राज्य और जिला स्तर पर खेल-कूद केन्द्र बनाने चाहिए। पूर्व-प्राथमिक अध्यापकों को प्रशिक्षण देना चाहिए, पूर्व-प्राथमिक शिक्षा के बारे में अनुसंधान और साहित्य-रचना का काम कराना चाहिए, पूर्व-प्राथमिक स्कूलों और प्रशिक्षण संस्थानों का पर्यवेक्षण और मार्गदर्शन करना चाहिए, सहायक अनुदान देकर निजी अधिकरणों की मदद करनी चाहिए और आदर्श प्राथमिक स्कूल चलाने चाहिए।

(5) पूर्व-प्राथमिक स्कूलों का कार्यक्रम लचीला होना चाहिए और उसमें तरह-तरह के खेल-कूद और अध्ययन के कार्यकलाप शामिल होने चाहिए जिसके साथ संवेदनात्मक शिक्षा भी चले। 7.03-07 (165-168)

79. **प्राथमिक शिक्षा का विस्तार**—प्राथमिक शिक्षा का उद्देश्य व्यक्तियों को जिम्मेवार और उपयोगी नागरिक बनाना होना चाहिए।

चौदह साल तक की आयु के हर बच्चे के लिए निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था करने का सांविधानिक निदेश उच्चतम पूर्वता वाला शैक्षिक उद्देश्य है और देश के हर हिस्से में नीचे लिखे कार्यक्रमों का विकास करके इसकी पूर्ति की जानी चाहिए :

(1) 1975-76 तक सभी बच्चों के लिए पांच साल तक की अच्छी और प्रभावी शिक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिए।

(2) 1985-86 तक सात साल की ऐसी शिक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिए।

(3) व्यर्थता और अगति कम करने पर जोर दिया जाना चाहिए। उद्देश्य यह आश्वस्त करना होना चाहिए कि कक्षा 1 में प्रवेश लेने वाले बच्चों के 80 प्रतिशत से अन्यून सात साल के समय में कक्षा 7 में पहुंच जाएं।

(4) कक्षा 7 के अन्त तक जो बच्चे 14 साल के नहीं हो पाते और जो आगे नहीं पढ़ना चाहते, उनको 14 साल की आयु पूरी होने तक शिक्षा प्रणाली में रोक रखना चाहिए। किन्तु उनके लिए उनकी इच्छा के अल्पकालीन व्यावसायिक पाठ्यक्रमों की व्यवस्था करनी चाहिए।

(5) हर राज्य और जिले से अपने इलाके में प्राथमिक शिक्षा के विकास के लिए ऊपर बताए गए लक्ष्यों और वहां की स्थानीय हालतों के प्रकाश में परिप्रेक्ष्य योजना बनानी चाहिए। उसे अपनी पूरी मति से आगे बढ़ने के लिए पूरी-पूरी मदद दी जानी चाहिए, और यह देखने के लिए सावधानी बरतनी चाहिए कि वित्तीय साधनों के अभाव में उसकी प्रगति रुकने न दी जाए

7.08-11 (168-169)

80. **स्कूलों की सर्वसुलभ व्यवस्था**—प्राथमिक स्कूलों का विस्तार इस तरह आयोजित करना चाहिए कि हर बच्चे के घर से लगभग एक मील की दूरी के भीतर एक अवर प्राथमिक स्कूल स्थापित हो। हर बच्चे के घर से तीन मील की के दूरी के भीतर एक उच्चतर प्राथमिक स्कूल स्थित होना चाहिए। 7.13. (170)

81. **सर्वजनीन नामांकन**—नीचे लिखी बातों पर जोर देते हुए सर्वजनीन नामांकन का एक कार्यक्रम आयोजित करना चाहिए :

(1) कक्षा 1 के दल की वर्तमान विषमरूपता कम करनी चाहिए और इस कक्षा के अधिकांश छात्र 5-6 या 6-7 के आयु-वर्ग के बच्चे होने चाहिए;

(2) पूर्व रजिस्ट्रेशन की एक प्रणाली शुरू की जानी चाहिए;

(3) अवर प्राथमिक स्तर के अन्त से उच्चतर प्राथमिक स्तर तक छात्रों के स्थानान्तरण की दर (जो अब लगभग 80 प्रतिशत है) बढ़ाकर पांचवीं आयोजना के अन्त तक 100 प्रतिशत कर देनी चाहिए।

7. 15-18 (170-172)

82. **रुके रहने की सर्वजनीनता**—अगले दस साल में कार्यान्वित करने के लिए सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण कार्यक्रम प्राथमिक शिक्षा में गुणात्मक सुधार करना और व्यर्थता और अगति को घटाकर कम-से-कम कर देना है। लक्ष्य यह होना चाहिए कि 1976 तक अगति और व्यर्थता को घटाकर आधा कर दिया जाए और 1986 तक उनको प्रायः खत्म ही कर दिया जाए।

(1) अगति और व्यर्थता की दर कक्षा 1 में बहुत ज्यादा है और उनका कम करना एक प्रमुख कार्यक्रम होना चाहिए। इस प्रयोजन से जो विभिन्न उपाय किए जाने हैं, उनमें तीन बहुत ही महत्वपूर्ण हैं :

(क) कक्षा 1 और 2 (और जहां भी संभव हो कक्षा 1-4) को एक ही इकाई माना जाए;

(ख) एक साल की स्कूल-पूर्व शिक्षा शुरू की जाए; और

(ग) कक्षा 1 में खेल-कूद में पढ़ाने के तरीके अपनाए जाएं।

(2) दूसरी कक्षाओं में अगति और व्यर्थता को तरह तरह की अंशकालिक शिक्षा की व्यवस्था करके, स्कूल-सुधार का एक राष्ट्र-व्यापी कार्यक्रम अमल में लाकर और जनकों की शिक्षा का एक सघन कार्यक्रम चलाकर कम करना चाहिए।

(3) 11-14 आयु-वर्ग के सभी बच्चे जो स्कूल नहीं जाते और जिन्होंने शिक्षा का प्राथमिक स्तर पूरा नहीं किया है और जो कामचलाऊ रूप से साक्षर नहीं हो पाए हैं, उन सभी से कम-से-कम एक साल की अवधि तक साक्षरता कक्षाओं में उपस्थित होने की अपेक्षा की जानी चाहिए। कक्षाएं प्राथमिक स्कूल में छात्रों की सुविधा के अनुकूल लचीले ढंग से आयोजित की जानी चाहिए पर जब स्थानीय जनता उनकी धारणा से परिचित हो जाए, तो अनिवार्यता भी लागू की जा सकेगी।

(4) ऐसे बच्चों के लिए भी इसी तरह की अंशकालिक सुविधाओं की व्यवस्था करनी चाहिए, जो अवर प्राथमिक स्तर को पूरा कर चुके हैं और जो आगे पढ़ना चाहते हैं (उनकी संख्या कुल नामांकन की 1975-76 में 10 प्रतिशत और 1985-86 में 20 प्रतिशत हो सकती है)। पाठ्यचर्या सामान्य शिक्षा ढांचे का अनुकरण कर सकती है या स्थानीय जरूरतों के अनुसार काफी व्यावसायिक तत्व शामिल कर सकती है। 7.19-35 (170-180)

83. **लड़कियों की शिक्षा : प्राथमिक स्तर**—संविधान के निदेश की पूर्ति के लिए लड़कियों की शिक्षा की ओर विशेष ध्यान देने की जरूरत है और महिला शिक्षा संबंधी राष्ट्रीय समिति द्वारा सिफारिश किए गए उपायों के अनुसार इसमें वृद्धि लाई जा सकती है।
7.38 (183)

84. **गुणात्मक सुधार**—प्राथमिक स्तर पर सुविधाओं के विस्तार और सर्वजनीन नामांकन और रोके रखने के कार्यक्रमों के साथ-साथ गुणात्मक सुधार भी किया जाना चाहिए। 7.42 (184)

85. **माध्यमिक शिक्षा का विस्तार**—(1) अगले बीस सालों में माध्यमिक शिक्षा में नामांकन का विनियमन (क) माध्यमिक स्कूलों के स्थलों का समुचित चुनाव करके, (ख) पर्याप्त मानक बनाए रख कर और उनकी सिद्धि के लिए नामांकनों का निर्णय उपलब्ध सुविधाओं के अनुसार करते हुए, और (ग) सबसे अच्छे लड़कों को चुनकर किया जाना चाहिए।

(2) हर जिले के लिए माध्यमिक शिक्षा के विकास की एक योजना बनानी चाहिए और उसे दस साल की अवधि में कार्यान्वित करना चाहिए। सभी नई संस्थाओं में अत्यावश्यक स्तर का समाधान किया जाना चाहिए और विद्यमान संस्थाओं को न्यूनतम स्तर तक उन्नत करना चाहिए।

(3) माध्यमिक स्कूलों में प्रवेश के लिए सर्वश्रेष्ठ छात्र चुने जाने चाहिए, जिसके लिए स्व-चयन की एक प्रक्रिया अवर माध्यमिक स्तर पर अपनाई जानी चाहिए और उच्चतर माध्यमिक स्तर पर यह बाह्य परीक्षाओं के नतीजों और स्कूल के अभिलेखों के आधार पर किया जाना चाहिए। 7.43-47 (184-189)

86. **माध्यमिक शिक्षा को व्यवसायोन्मुख बनाना**—(1) माध्यमिक शिक्षा को बड़े पैमाने पर व्यवसायोन्मुख बनाना चाहिए, और व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में नामांकन बढ़ाकर 1986 तक अवर माध्यमिक स्तर पर कुल नामांकनों के 20 प्रतिशत और उच्चतर माध्यमिक स्तर पर कुल नामांकनों के 50 प्रतिशत कर देने चाहिए।

(2) इन दोनों ही स्तरों पर व्यावसयिक शिक्षा में बहुत सी अंशकालिक और पूर्णकालिक सुविधाएं मिलनी चाहिए, जिससे शहरी और देहाती क्षेत्रों में लड़कों और लड़कियों की जरूरतें पूरी हो सकें, शिक्षा विभागों में विशेष अनुभाग स्थापित किए जाने चाहिए, जो ऐसे कम

आयु के छात्रों को जो कक्षा 7 या 8 के बाद स्कूल छोड़ देते हैं, पूर्णकालिक या अंशकालिक आधार पर मदद दे और इन पाठ्यक्रमों के संगठन के पूरे-पूरे प्रभारी हों।

(3) केन्द्रीय सरकार माध्यमिक शिक्षा को व्यवसायोन्मुख बनाने के लिए राज्य सरकारों को केन्द्र प्रायोजित क्षेत्र में विशेष अनुदान देने की व्यवस्था करें।

7.47-49 (189-194)

87. **अंशकालिक शिक्षा**—अवर और उच्चतर माध्यमिक स्तरों पर सामान्य और व्यावसायिक पाठ्यक्रमों के लिए बड़े पैमाने पर अंशकालिक शिक्षा की सुविधाओं की व्यवस्था की जानी चाहिए। वांछनीय लक्ष्य कुल नामांकन का अवर माध्यमिक स्तर पर 20 प्रतिशत और उच्चतर माध्यमिक स्तर पर 25 प्रतिशत होगा। जो खेती को व्यवसाय के रूप में अपना चुके हैं, उनके लिए कृषि-पाठ्यक्रमों पर और लड़कियों के लिए गृह विज्ञान या घरेलू उद्योगों पर विशेष जोर देना होगा।

7.50-51 (194-195)

88. **लड़कियों की शिक्षा : माध्यमिक स्तर**—(1) लड़कियों की शिक्षा के विस्तार में तेजी लाने के लिए प्रयास किए जाने चाहिए, जिससे लड़कियों का लड़कों के साथ अनुपात 20 सालों में अवर माध्यमिक स्तर पर 1 : 2 और उच्चतर माध्यमिक स्तर पर 1 : 3 हो जाए।

(2) लड़कियों के स्कूल अलग स्थापित करने होस्टलों और छात्रवृत्तियों की और अंशकालिक और व्यावसायिक पाठ्यक्रमों की व्यवस्था करने पर जोर दिया जाना चाहिए।

7.52-53 (195)

89. **स्कूलों की योजना और स्थल**—(1) हर श्रेणी की नई संस्थाओं का स्थल चुनने के लिए एक राष्ट्रीय नीति अपनानी चाहिए जिससे व्यर्थता और दुहरापन रोका जा सके। दूसरे शैक्षिक सर्वेक्षण का उपयोग शिक्षा संस्थाओं के स्थलों का सावधानी से योजना बनाने के लिए किया जाना चाहिए।

(2) प्राथमिक स्तर पर मिले-जुले स्कूल स्वीकार करने और बड़े और सक्षम स्कूलों को आपस में बांटकर सभी के काम में लाए जाने के पक्ष में जनमत को शिक्षित करना चाहिए। गांवों को इस तरह वर्गीकृत करना चाहिए, जिससे प्राथमिक स्कूलों की बचतपूर्वक व्यवस्था करना सम्भव हो जाए।

(3) माध्यमिक स्तर पर छोटी और गैर-किफायती संस्थाओं की स्थापना को टालना चाहिए और विद्यमान अनार्थिक स्कूलों को मिलाकर एक कर देना चाहिए।

(4) व्यवसायिक स्कूल सम्बन्धित उद्योगों के पास स्थापित किए जाने चाहिए।

7.55-63 (195-202)

आठवां अध्याय. स्कूल पाठ्यचर्या

90. इधर कुछ वर्षों में ज्ञान की अपार उपलब्धि और विज्ञान की अनेक अवधारणाओं के आमूल परिवर्तन से वर्तमान स्कूल पाठ्यक्रमों का अधूरापन बहुत स्पष्ट हो गया है और स्कूल पाठ्यचर्या में आमूल सुधार के लिए अधिकाधिक दबाव पड़ने लगा है। स्कूल की सारी पाठ्यचर्या के संगठन के लिए एकीकृत दृष्टिकोण (यूनिफाइड अप्रोच) अपनाना चाहिए, सामान्य शिक्षा के विषय की नई परिभाषा देनी चाहिए और विशेषीकरण की अवस्था के बारे में नए दृष्टिकोण से विचार करना चाहिए।

8.01-02 (203-204)

91. **पाठ्यचर्या सम्बन्धी सुधार के लिए अत्यावश्यक बातें**—(1) विश्वविद्यालय के शिक्षा विभागों, प्रशिक्षण कालेजों, राज्य शिक्षा संस्थानों और स्कूल शिक्षा बोर्डों द्वारा हाथ में लिए गए पाठ्यचर्या के विकास के बारे में अनुसंधान; (ख) इस प्रकार के अनुसंधानों के आधार पर किए गए नियतकालिक संशोधन; (ग) पाठ्यपुस्तकों और शिक्षण-अध्ययन सामग्रियों की तैयारी; और (घ) अन्तःसेवा शिक्षा द्वारा संशोधित पाठ्यचर्याओं के सम्बन्ध में शिक्षकों का अनुस्थापन इत्यादि प्रयत्नों द्वारा स्कूल पाठ्यचर्याओं को उन्नत बनाना चाहिए।

(2) स्कूलों को अपनी सुविधाओं के अनुसार नई पाठ्यचर्याओं को बनाने या उनके बारे में प्रयोग करने की स्वतन्त्रता होनी चाहिए।

(3) राज्य स्कूल शिक्षा बोर्डों द्वारा सभी विषयों में सामान्य और उच्च पाठ्यचर्याएं बनाई जानी चाहिए और जो स्कूल विषय तथा सुविधा सम्बन्धी कुछ शर्तें पूरा करते हों उनमें वे पाठ्यचर्याएं क्रमिक रूप में शुरू की जानी चाहिए।

(4) विभिन्न स्कूल विषयों में विषय-शिक्षकसंस्थाएं बनाने से प्रयोग करने की प्रवृत्ति को और पाठ्यचर्याओं को उन्नत बनाने में प्रोत्साहन मिलेगा। राज्य शिक्षा विभागों, राज्य शिक्षा संस्थाओं और राष्ट्रीय शिक्षा अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद को चाहिए कि वह शैक्षिक क्रियाकलापों

में इन संस्थाओं को सहायता दे और उनके कार्य में समन्वय स्थापित करें। 8.03-09 (204-206)

92. **पाठ्यचर्या का संगठन**—(1) गैर-व्यावसायिक स्कूलों में स्कूल शिक्षा के पहले दस वर्षों के लिए सामान्य शिक्षा की समान पाठ्यचर्या की व्यवस्था करनी चाहिए, और विषयों का विविधीकरण और विशेषीकरण उच्चतर माध्यमिक अवस्था में ही शुरू होना चाहिए।

(2) प्रत्येक उप-अवस्था पर उपलब्धि का स्तर स्पष्ट शब्दों में सूचित किया जाना चाहिए।

(3) पाठ्यचर्या को सरल रखना चाहिए; इसके लिए अवर प्राथमिक अवस्था में नियमित विषयों का भार कम किया जाए और भाषा, प्रारम्भिक गणित और पर्यावरण विषयक अध्ययनों पर बल दिया जाए। प्रारम्भिक पठन से सम्बन्धित समस्याओं के अध्ययन और अवर प्राथमिक अवस्था पर पठन शिक्षण को सुधारने के जोरदार कार्यक्रम पर अधिक बल दिया जाना चाहिए।

(4) उच्चतर प्राथमिक अवस्था पर पाठ्यचर्या अधिक व्यापक और गहन हो जाएगी, शिक्षण-पद्धतियां अधिक प्रणालीबद्ध हो जाएंगी और ज्ञान का स्तर अधिक निश्चित हो जाएगा।

(5) अवर माध्यमिक अवस्था में विषयों के अध्ययन में अधिक कठिनाई और गहराई आ जाएगी।

(6) उच्चतर माध्यमिक अवस्था में पाठ्यक्रमों में इस प्रकार की विविधता लाई जाएगी कि छात्र किन्हीं तीन विषयों के समूह का गहरा अध्ययन कर सकेगा और विषयों के समूह बनाने में उसे काफी स्वतन्त्रता और ढील रहेगी। किशोर के समस्त व्यक्तित्व के संतुलित विकास के लिए पाठ्यचर्या में इस अवस्था पर, आधा समय चुने जाने वाले विषयों के लिए दिया जाना चाहिए, एक चौथाई समय भाषा के लिए और बचा हुआ एक चौथाई शारीरिक शिक्षा, कला और हस्तकौशल और नैतिक तथा आध्यात्मिक शिक्षा के लिए।

(7) उच्चतर प्राथमिक अवस्था पर प्रतिभाशाली छात्रों के लिए समृद्धि कार्यक्रम की व्यवस्था करनी चाहिए। यह एक अतिरिक्त भाषा या एक ही विषय में अधिक गहराई के रूप में हो सकती है।

(8) माध्यमिक स्तर पर, आठवीं कक्षा से सामान्य और उच्च दो स्तरों पर पाठ्यक्रम की व्यवस्था होनी चाहिए। इस कार्यक्रम को स्कूल के घंटों में, या पहले या बाद या स्वयं-अध्ययन के आधार पर क्रियान्वित किया जा सकता है। अवर माध्यमिक अवस्था में गणित, विज्ञान और भाषाओं के उच्च पाठ्यक्रम से और उच्चतर माध्यमिक अवस्था में विशेषीकृत सभी विषयों में उच्च पाठ्यक्रम से यह कार्यक्रम शुरू किया जा सकता है।

8.10-29 (206-212)

93. **भाषाओं का अध्ययन**—(1) स्कूल अवस्था के भाषा-अध्ययन पर पुनः विचार करने की और स्कूल अवस्था पर भाषाओं के अध्ययन के सम्बन्ध में नई नीति बनाने की आवश्यकता है।

(2) भाषा सूत्र में परिवर्तन निम्नलिखित मार्गदर्शक सिद्धान्तों के अनुसार किए जाने चाहिए।

(क) मातृभाषा के बाद संघ की राजभाषा के रूप में स्थित हिन्दी का ही स्थान आता है;

(ख) अंग्रेजी का व्यावहारिक ज्ञान छात्रों के लिए मूल्यवान बना रहेगा;

(ग) भाषा में प्राप्त की गई क्षमता उपलब्ध शिक्षकों और सुविधाओं पर उतना ही निर्भर करती है जितना कि उसके सीखने के लिए दिए जाने वाले समय की लम्बाई पर;

(घ) तीन भाषाओं को सीखने के लिए सबसे उपयुक्त व्यवस्था अवर माध्यमिक अथवा (आठवीं से दसवीं तक) है;

(ङ) दो अतिरिक्त भाषाओं को एक दूसरे के बीच थोड़े अन्तर से शुरू करना चाहिए;

(च) हिन्दी या अंग्रेजी का अध्ययन तब शुरू करना चाहिए जब उनके लिए अधिकतम अभिप्रेरणा और आवश्यकता हो; और

(छ) किसी भी अवस्था में चार भाषाओं का अध्ययन अनिवार्य नहीं करना चाहिए।

(3) इन सिद्धान्तों के अनुसार संशोधित त्रिभाषा सूत्र में ये बातें सम्मिलित होनी चाहिए, (क) मातृभाषा या प्रादेशिक भाषा; (ख) संघ की राजभाषा या संघ की सहचारी राजभाषा (जब तक वह बनी रहे); और (ग) ऐसी आधुनिक भारतीय या योरोपीय भाषा जो (क) और (ख) में सम्मिलित न की गई हो और जो शिक्षण के माध्यम के रूप में प्रयुक्त न हो।

(4) अवर प्राथमिक अवस्था में छात्र सामान्यतः

केवल एक भाषा-मातृभाषा या प्रादेशिक भाषा-का अध्ययन करेगा। उच्चतर प्राथमिक अवस्था में वह दो भाषाएं—मातृभाषा (या प्रादेशिक भाषा) और संघ की राजभाषा (या सहचारी भाषा) पढ़ेगा। अवर माध्यमिक अवस्था में वह तीन भाषाएं पढ़ेगा। मातृभाषा (या प्रादेशिक भाषा); राजभाषा या सहचारी राजभाषा; और एक आधुनिक भारतीय भाषा, और उसके लिए राजभाषा या सहचारी राजभाषा, जिसे उसने उच्चतर प्राथमिक अवस्था में नहीं पढ़ा, का अध्ययन अनिवार्य होगा। उच्चतर माध्यमिक अवस्था में केवल दो भाषाएं अनिवार्य होंगी।

(5) प्रत्येक राज्य में कुछ चुने हुए स्कूलों में अंग्रेजी से भिन्न किसी आधुनिक पुस्तकालयों भाषा के अध्ययन की सुविधाएं मिलनी चाहिए और हिन्दी तथा अंग्रेजी के स्थान पर उसके अध्ययन की छूट होनी चाहिए। इसी प्रकार के अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में कुछ चुने हुए स्कूलों में आधुनिक भारतीय भाषाओं के अध्ययन की सुविधाएं मिलनी चाहिए और उसी प्रकार अंग्रेजी या हिन्दी के स्थान पर उनके अध्ययन की छूट होनी चाहिए।

(6) अंग्रेजी और हिन्दी के अध्ययन को अध्ययन के घंटों और ज्ञान प्राप्ति के स्तर के रूप में व्यक्त किया जाना चाहिए। राजभाषा और सहचारी राजभाषा के सम्बन्ध में प्राप्ति के दो स्तर निर्धारित किए जाने चाहिए एक तीन साल के अध्ययन के लिए और दूसरा छः साल के अध्ययन के लिए।

(7) उच्चतर माध्यमिक शिक्षा में भाषा का अध्ययन अनिवार्य नहीं होना चाहिए।

(8) ऐच्छिक आधार पर हिन्दी के अध्ययन को बढ़ावा देने के लिए एक देश-व्यापी कार्यक्रम बनाना चाहिए। लेकिन अनिच्छुक लोगों पर इसे थोपना नहीं चाहिए।

(9) लिपियों की विभिन्नता के कारण भाषाओं के अध्ययन का भार अधिक हो जाता है। प्रत्येक आधुनिक भारतीय भाषाओं के कुछ साहित्य को देवनागरी और रोमन दोनों ही लिपियों में प्रस्तुत किया जाना चाहिए। सभी आधुनिक भारतीय भाषाओं को अन्तर्राष्ट्रीय अंक भी अपनाने चाहिए।

(10) अंग्रेजी का अध्ययन, सामान्यतः, पांचवीं कक्षा से पहले, जब कि मातृभाषा पर अभी पर्याप्त अधिकार प्राप्त नहीं हुआ होता, शुरू नहीं करना चाहिए। अंग्रेजी का अध्ययन पांचवीं कक्षा से पहले शुरू करना शैक्षिक दृष्टि से बुद्धिमतापूर्ण नहीं है।

(11) आठवीं कक्षा से ऐच्छिक आधार पर, प्राचीन भारतीय भाषाओं, जैसे संस्कृत या अरबी, के अध्ययन को प्रोत्साहित करना चाहिए और उस पर सभी विश्वविद्यालयों में निश्चित रूप से बल देना चाहिए। कुछ चुने हुए विश्वविद्यालयों में इन भाषाओं के उच्च अध्ययन केन्द्र स्थापित किए जाने चाहिए। कोई नया संस्कृत विश्वविद्यालय स्थापित नहीं किया जाना चाहिए।

S. 30-49 (212-219)

94. **विज्ञान और गणित अध्ययन**—स्कूल-शिक्षा के पहले दस सालों में, सभी छात्रों को, अनिवार्यतः सामान्यतः शिक्षा के रूप में विज्ञान और गणित का शिक्षण देना चाहिए।

(1) **विज्ञान का अध्ययन** : अवर प्राथमिक अवस्था में विज्ञान शिक्षण बच्चे के पर्यावरण से सम्बन्धित होना चाहिए। अन्तर्राष्ट्रीय रूप से स्वीकृत वैज्ञानिक माप-तोल के प्रतीकों को समझने और नक्शों, चार्टों और सांख्यिकीय सारणियों के उपयोग को सुगम बनाने के लिए चौथी कक्षा में रोमन वर्णमाला सिखाई जानी चाहिए।

(2) उच्चतर प्राथमिक अवस्था पर ज्ञान के अर्जन और अधिक ऊंचे स्तर पर तर्कपूर्ण रीति से सोचने, परिणाम निकालने और निर्णय लेने की क्षमता पर बल देना चाहिए। विज्ञान को सामान्य विज्ञान समझकर पढ़ाने की अपेक्षा अलग-अलग विद्याओं के रूप में पढ़ाना अधिक प्रभावी होगा।

(3) अवर प्राथमिक स्कूलों में विज्ञान-कक्षों का होना और उच्चतर प्राथमिक स्कूलों में प्रयोगशाला और भाषण कक्षों का होना न्यूनतम आवश्यकताएं हैं।

(4) अवर माध्यमिक अवस्था में विज्ञान को मानसिक अनुशासन के रूप में विकसित करना चाहिए भौतिकी, रसायन और जीवविज्ञान की नई अवधारणाओं पर तथा विज्ञान के अध्ययन में प्रायोगिक नीति पर बल देना चाहिए।

(5) शिक्षक तथा प्रयोगशाला-सम्बन्धी आवश्यक सुविधाओं से युक्त कुछ चुने हुए अवर माध्यमिक स्कूलों में प्रतिभावान् छात्रों के लिए उच्च स्तर पर विज्ञान पाठ्यक्रमों की व्यवस्था करनी चाहिए।

(6) विज्ञान को ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि से और शहरी क्षेत्रों में शिल्प-विज्ञान से सम्बन्धित कर देना

चाहिए। लेकिन दोनों तरह के स्कूलों में ज्ञान प्राप्ति का स्तर और उच्चतर शिक्षा के अवसर समान होने चाहिए।

(7) **गणित का अध्ययन** : (क) योग्यता की महत्ता और स्वचालन विज्ञान तथा साइबरनैटिक्स के आगमन के कारण विज्ञान के अध्ययन पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

(8) गणित के नियमों और सिद्धान्तों तथा तर्कपूर्ण रीति से विचार करने पर बल देते हुए, सभी अवस्थाओं में गणित की पाठ्यचर्या को आधुनिक और अद्यतन बनाने की आवश्यकता है।

(9) **विज्ञान और गणित पढ़ाने की पद्धतियां** : छानबीन दृष्टिकोण और आधारभूत सिद्धान्तों को समझने पर बल देते हुए विज्ञान और गणित शिक्षक को आधुनिक बनाना चाहिए। इस दृष्टिकोण को अपनाने के लिए शिक्षकों को मार्ग-दर्शक सामग्रियां उपलब्ध करानी चाहिए। प्रयोगशाला कार्य में बहुत अधिक सुधार की आवश्यकता है। प्रतिभाशाली छात्रों की विशेष आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पाठ्यचर्या लचीली होनी चाहिए।
8.50-66 (219-223)

95. **सामाजिक अध्ययन और सामाजिक विज्ञान**—(1) अच्छी नागरिकता और भावनात्मक एकीकरण के लिए सामाजिक अध्ययन का प्रभावी कार्यक्रम अत्यावश्यक है।

(2) पाठ्यचर्या में राष्ट्रीय एकता और मानव की एकता के विचार पर बल दिया जाना चाहिए।

(3) सभी अवस्थाओं पर सामाजिक अध्ययन के शिक्षण में वैज्ञानिक भावना और सामाजिक विज्ञानों की पद्धति व्याप्त होनी चाहिए। 8. 67-71 (223-224)

96. **कार्य-अनुभव**—(1) नई सामाजिक व्यवस्था की प्रकृति के अनुरूप, कार्य-अनुभव में दृष्टि हमेशा आगे की ओर होनी चाहिए। अवर प्राथमिक वर्गों में इसका रूप सरल दस्तकारी होगा और उच्चतर प्राथमिक स्कूलों में कौशल होगा। अवर माध्यमिक अवस्था पर यह वर्कशाप प्रशिक्षण के रूप में होगा और उच्चतर माध्यमिक अवस्था पर इसकी शिक्षा स्कूल के वर्कशाप में, खेत या वाणिज्यिक और औद्योगिक स्थापनाओं में दी जाएगी।

(2) जहां स्कूल-वर्कशापों की व्यवस्था न की जा सके, वहां कम दामों पर औजारों और सामग्रियों की उपयुक्त किटें उपलब्ध करानी चाहिए।

(3) इसकी योजना की सफलता के लिए शिक्षकों का प्रशिक्षण, वर्कशापों की व्यवस्था, स्थानीय साधनों का उपयोग और कार्यक्रम को क्रमिक रूप में शुरू करना अत्यावश्यक है। 8.72-78 (224-226)

97. **सामाजिक सेवा**—(1) विभिन्न आयुवर्ग के छात्रों को दृष्टि में रखकर सभी स्तरों पर, क्रमिक रूप में, सामाजिक सेवा और सामुदायिक विकास में भाग लेने के कार्यक्रम संगठित किए जाने चाहिए।

(2) सारे साल श्रम और सामाजिक सेवा शिविर लगाए जाने चाहिए; और इस प्रयोजन के लिए प्रति जिले में एक विशेष संगठन की स्थापना करनी चाहिए। इन शिविरों से स्कूलों में सामाजिक सेवा संगठन में सहायता मिलेगी। ऐसे कार्यक्रम प्रायोगिक परियोजना के रूप में 5 प्रतिशत जिलों में शुरू किए जाएं और धीरे-धीरे अन्य जिलों में शुरू किए जाएं। 8.79-87 (226-228)

98. **शारीरिक शिक्षा**—शारीरिक शिक्षा शरीर की स्वच्छता और क्षमता, मानसिक जागरूकता और चरित्र की विशेषताओं के विकास के लिए महत्वपूर्ण है। बच्चे के विकास और वृद्धि के कुछ आधारभूत सिद्धांतों के प्रकाश में वर्तमान शारीरिक शिक्षा कार्यक्रम की पुनः जांच करने और उसे नया रूप देने की आवश्यकता है।
8.88-93 (228-229)

99. **नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा**—(1) स्कूलों में बड़े-बड़े धर्मों की नैतिक शिक्षा की सहायता से प्रत्यक्ष और परोक्ष पद्धति द्वारा नैतिक शिक्षा देने और आध्यात्मिक मूल्यों की भावना जगाने के लिए संगठित प्रयत्न किए जाने चाहिए।

(2) नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा देने के लिए स्कूल की समय-सारणी में सप्ताह में एक या दो घंटे नियत कर देने चाहिए। विषय का शिक्षण विस्तृत रूप में होना चाहिए और बाकी पाठ्यचर्या से कटा हुआ नहीं होना चाहिए। 8.94-98 (229-230)

100. **सृजनात्मक कार्यकलाप**—(1) कला शिक्षा की वर्तमान स्थिति के सर्वेक्षण के लिए भारत सरकार को विशेषज्ञ समिति नियुक्त करनी चाहिए और इसके विस्तार और प्रणालीबद्ध विकास के लिए सभी संभव मार्ग खोजने चाहिए।

(2) स्थानीय लोगों से अधिक से अधिक सहायता प्राप्त कर देश के सभी भागों में बाल-भवनों की स्थापना करनी चाहिए।

(3) कला-शिक्षण में अनुसंधान करने के लिए चुने हुए विश्वविद्यालय-केन्द्रों में कला-विभागों की स्थापना करनी चाहिए।

(4) छात्रों की सृजनात्मक आत्माभिव्यक्ति के लिए नाना प्रकार के सहपाठ्यचर्या कार्यकलापों की व्यवस्था करनी चाहिए। 8.99-101 (230)

101. **लड़कों और लड़कियों की पाठ्यचर्या में अन्तर करना**– हंसा मेहता की इस रिपोर्ट का लिंग के आधार पर पाठ्यक्रमों में कोई अन्तर नहीं होना चाहिए, हम अनुमोदन करते हैं। गृह-विज्ञान लड़कियों के लिए ऐच्छिक रूप से पढ़ाया जाना चाहिए, अनिवार्य रूप से नहीं। संगीत और सूक्ष्म कलाओं के लिए अधिक व्यवस्था करनी चाहिए और गणित तथा विज्ञान के अध्ययन को प्रोत्साहन देना चाहिए। 8.102-104 (231)

102. **नई पाठ्यचर्या और बुनियादी शिक्षा**— बुनियादी शिक्षा के सारभूत सिद्धान्त, अर्थात् उत्पादक कार्यकलाप, पाठ्यचर्या का उत्पादक कार्यकलाप और पर्यावरण से सहसम्बन्ध और स्थानीय समुदाय से सम्पर्क इतने महत्वपूर्ण हैं कि उनसे सभी स्तर की शैक्षिक प्रणाली का मार्ग-दर्शन होना चाहिए, और यही इस रिपोर्ट में दिए गए प्रस्तावों का सार है। शिक्षा की किसी एक अवस्था को बुनियादी शिक्षा नहीं कहना चाहिए।

8.105-109 (231-232)

नवां अध्याय. शिक्षण पद्धतियां, मार्गदर्शन और मूल्यांकन

103. **शिक्षण पद्धतियां, खोज एवं प्रसरण**— पाठ्यचर्या की सतत गहनता के अनुरूप शिक्षण पद्धति तथा मूल्यांकन में भी उतना ही प्रखर सुधार होना चाहिए। वर्तमान शिक्षा प्रणाली की अनम्यता तथा स्कूलों में नवीन प्रवृत्तियों के प्रसार में प्रशासनिक असफलता आज के नीरस तथा स्फूर्तिहीन स्कूल शिक्षण के लिए मुख्य रूप से उत्तरदायी है। इन दोषों का परिहार आवश्यक है।

9.02-03 (251-252)

(1) **लचीलापन एवं गतिशीलता**—एक अच्छी शैक्षिक प्रणाली पर्याप्त गतिशील, लचीली एवं विवेकपूर्ण होनी चाहिये, जिससे संस्थाओं तथा अध्यापकों को अपने विकास के विभिन्न स्तरों के अनुकूल बढ़ने में सहायता मिल सके; अच्छे स्कूलों को सृजनशील तथा प्रायोगिक कार्यपथ पर बढ़ने की स्वतन्त्रता हो और पिछड़े हुए स्कूलों को सुरक्षा की भावना पाने में सहायता मिले।

(2) ऐसा लचीलापन एवं गतिशीलता तभी संभव है, जबकि प्रायोगरत अध्यापक को प्रशासनिक सत्ता, सुधारमय सामान्य वातावरण, संस्था के प्रमुख द्वारा प्रोत्साहन, विषय-वस्तु पर पूर्णाधिकार, प्रशिक्षण संस्थाओं, द्वारा नेतृत्व, शिक्षण सामग्री की उपलब्धि आदि का अवलम्बन प्राप्त हो।

(3) यदि नवीन विकसित क्रियाविधियों का स्कूलों में प्रसार करने में सक्षम सहायता न मिले तो स्कूल प्रणाली में लचीलापन कोई महत्व नहीं रखता। शैक्षिक प्रशासन निम्नविधियों द्वारा नवीन शिक्षण-पद्धतियों के प्रसारण को प्रोत्साहन एवं गतिवृद्धि प्रदान कर सकता है :

- अनुनय-युक्त अनुज्ञा,
- स्कूलों में समता के अनुसार नवीन पद्धतियों का क्रमशः समावेश,
- अध्यापकों के लिए आवश्यक अंतःसेवा-प्रशिक्षण,
- मार्ग दर्शन सामग्री की पर्याप्त व्यवस्था, जो कि निरन्तर संशोधित की जाए और उत्तरोत्तर अच्छी बनाई जाए।

साथ-ही-साथ प्रशासन को यह भी सावधानी बरतनी चाहिए कि कोई भी प्रगतिशील उपाय कट्टरता का रूप न धारण कर ले। 9.04-12 (252-256)

104. **पाठ्यपुस्तक, अध्यापक मार्गदर्शिका एवं सामग्रियां**—(1) उत्कृष्ट पाठ्यपुस्तकों एवं अध्ययन, अध्यापन से सम्बन्धित अन्य सामग्रियों की व्यवस्था तुलनात्मक दृष्टि से कम खर्च में शिक्षा स्तर को ऊंचा उठाने का मूलमंत्र हैं।

(2) राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् के ढंग पर श्रेष्ठतम प्रतिभाओं को जुटाकर राष्ट्रीय स्तर पर पाठ्य-पुस्तक उत्पादन का व्यापक कार्यक्रम परिचालित किया जाय। इस प्रकार की पुस्तकें प्रत्याशित स्तर की परिभाषा एवं व्यावहारिक रूप को समझाने में सहायक होंगी। इनसे राष्ट्रीय एकीकरण में भी सहायता मिलेगी।

(3) शिक्षा मंत्रालय को राष्ट्रीय स्तर पर पाठ्य-पुस्तक विशेषकर वैज्ञानिक एवं तकनीकी पुस्तकों के उत्पादन के लिए सरकारी क्षेत्र में व्यापारिक ढंग की एक स्वायत्त-संस्था स्थापित करने का प्रयत्न करना चाहिए। इस परियोजना के ब्यौरे पर विचार करने के लिये एक छोटी समिति बनाई जा सकती है।

(4) राष्ट्रीय स्तर के प्रयास में परिपोषण एवं आवर्द्धन के लिए प्रत्येक राज्य को पाठ्यपुस्तकों के निर्माण के लिए एक विशेषज्ञ-अनुभाग की स्थापना करनी चाहिए ।

(5) पाठ्यपुस्तकों की तैयारी, प्रयोगात्मक उपयोग तथा मूल्यांकन का उत्तरदायित्व राज्य शिक्षा विभागों पर होना चाहिये । अच्छा होगा यदि पाठ्यपुस्तकों का मुद्रण राज्य शिक्षा विभाग जहां तक हो सके अपने पाठ्यपुस्तक मुद्रणालय में करें । पाठ्यपुस्तकों के विक्रय एवं वितरण का भार शिक्षा विभागों को स्वयं ग्रहण न करके विद्यार्थी सहकारी संस्थाओं पर छोड़ देना चाहिए ।

(6) राज्य स्तर पर पाठ्यपुस्तकों एवं शिक्षण साधनों में उत्पादन का कार्य राज्य शिक्षा विभाग के निकट सम्पर्क में काम करने वाले स्वायत्त अभिकरण (संस्था-एजेंसी) को सौंपना श्रेयस्कर है ।

(7) इसका गठन ऐसा होना चाहिए कि पाठ्य-पुस्तकों में निरन्तर संशोधन एवं सुधार होता रहे ।

(8) स्कूलों को बहुविकल्प की सुविधा देने के लिये प्रत्येक विषय में कम से कम 3 या 4 पुस्तकें होनी चाहिएं ।

(9) लेखकों को पारिश्रमिक देने में उदारनीति अपनानी चाहिए ।

(10) पाठ्यपुस्तकों के उत्पादन की सम्पूर्ण व्यवस्था 'न लाभ न हानि' के आधार पर होनी चाहिए ।

(11) विविध स्रोतों तथा अध्यापकों से पांडुलिपियां मंगवाई जाएं तथा व्यावसायिक लोगों की एक उच्च स्तरीय समिति द्वारा उनका चयन एवं उनकी स्वीकृति हो ।

(12) अध्यापक मार्ग-निर्देशिका तथा अन्य अनुदेश-सामग्री पाठ्यपुस्तकों की पूरक हो ।

(13) प्रत्येक कोटि के स्कूलों द्वारा न्यूनतम शिक्षण साधन एवं उपकरणों की सूची बनाई जानी चाहिए तथा प्रत्येक स्कूल के लिए उच्च प्राथमिकता के आधार पर उपकरण संयोजित करने का प्रबन्ध किया जाना चाहिए ।

(14) रेडियो पाठों के उपयोग के लिए शिक्षा विभागों को आकाशवाणी के साथ मिलकर काम करना चाहिए तथा अध्यापक एवं छात्र मार्ग निर्देशन सामग्री द्वारा इन पाठों की सम्पूर्ति करना चाहिए । विशेष रूप से विशिष्ट रेडियो वार्त्ताओं का प्रातः एवं सायंकालीन प्रसारण अध्यापकों के पाठ्य-निर्माण में सहायक होगा । वर्तमान अवस्था में नवीन प्रविधियों में परिष्कृत रूप सामान्य कोटि के स्कूलों में उपयुक्त नहीं होंगे किन्तु अध्यापक प्रशिक्षण संस्थाओं में उनकी प्रायोगिक परीक्षा की जा सकती है ।

(15) सरल तथा स्थानीय तौर पर उपलब्ध अथवा कामचलाऊ शिक्षण साधनों के प्रति अध्यापकों में विश्वास उत्पन्न करना चाहिए । कीमती सामान का उपयोग पास-पड़ोस के स्कूलों को मिलकर करना चाहिए ।

9.13-25 (256-261)

105. **कक्षा-आकार** -- (1) सही अर्थों में वांछित आकार से किसी कदर बड़ी कक्षाओं के बिना काफ़ी समय तक हमारे देश का काम नहीं चल सकता तथापि अवर प्राथमिक कक्षाओं में छात्रों की प्रति कक्षा अधिकतम संख्या 50 तक, उच्चतर प्राथमिक और अवर माध्यमिक कक्षाओं में 45 तक तथा उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं में 40 तक सीमित करना आवश्यक है ।

9.26-31 (261-264)

(2) **बहुकक्षा अध्यापन**—बहुकक्षा अध्यापन की समस्याओं एवं तकनीकों के सम्बन्ध में शोध कार्य करना आवश्यक है । प्रशिक्षण संस्थाओं को अध्यापकों को इन तकनीकों से अवगत कर देना चाहिए । 9.32 (264)

106. **स्कूली इमारतें**—(1) स्कूली इमारतों की वर्तमान असंतोष जनक हालत में अर्धनिर्मित स्कूल इमारतों के शेष कार्य को निपटाने तथा नए नामांकन के लिए अतिरिक्त इमारतों की व्यवस्था करना आवश्यक है ।

9.33 (264-265)

(2) केन्द्रीय तथा राज्य बजटों में स्कूली इमारतों के निर्माण के लिए नियत की जाने वाली रकमों में वृद्धि की जाए तथा समुदाय के साधनों को बराबरी के आधार पर जुटाया जाए । 9.34 (265)

(3) **लागत में कटौती**—स्कूली इमारतों के विन्यास एवं अन्तरण के सम्बन्ध में पूर्वोपलब्ध मानकों एवं दिशा निर्देशों का उपयोग करना चाहिए ।

(4) पुरानी चाल के इमारती सामान की कमी और उसकी अधिक लागत के कारण, सुरूप एवं सुनिर्मित कच्चे ढांचों को स्कूल प्रणाली का एक अंग मान लेना चाहिए । 9.35 (265)

(5) **ग्राम्य क्षेत्रों की इमारतें**—ग्राम्य क्षेत्रों में स्कूली इमारतों के निर्माण के लिए स्थानीय पहल शक्ति एवं

योगदान को प्रोत्साहित करना चाहिए। हम शिक्षा मंत्रालय द्वारा प्रस्तावित "न्यूक्लिअस" अभिगम को सामान्य रूप से अंगीकार करने की सिफ़ारिश करते हैं।

9.37 (265)

(6) **शहरी क्षेत्रों की इमारतें**—स्थानीय उपलब्ध सामग्री का उपयोग, कुछ बारीक पूर्णताओं की उपेक्षा तथा बनावट में हलके स्तर अपनाने से इन इमारतों की लागत में किफ़ायत ला सकता है। जहां भी हो सके अस्थायी इमारतों का उपयोग करना चाहिए तथा पक्की इमारतों के लिए निर्माण की परिष्कृत प्रविधियों को ग्रहण करना चाहिए। 9.39 (265-266)

(7) **शीघ्र निर्माण**—स्कूली इमारतों के शीघ्र निर्माण के लिए ग्राम्य क्षेत्रों में निर्माण-कार्य स्थानीय समुदायी या ग्राम्य पंचायतों को तथा शहरी क्षेत्रों में नगर पालिकाओं तथा नगर निगमों को सौंप देना चाहिए।

(8) स्कूली इमारतों के निर्माण कार्यक्रम की देख-रेख एवं मार्गदर्शन तथा परिष्कृत प्रविधियों के समावेश के लिए प्रत्येक राज्य में सार्वजनिक निर्माण विभाग के अन्तर्गत एक शैक्षिक भवन विकासवर्ग की स्थापना की जाए। ये वर्ग राज्य शिक्षा विभाग के निकट साहचर्य में कार्य करें। ये वर्ग अपने क्षेत्रों में निर्माण सम्बन्धी विवरणों का मानकीकरण करेंगे ताकि उपादानों का व्यापक रूप में सामूहिक उत्पादन हो सके। राज्य स्थित वर्गों से तालमेल करने के लिए ऐसा ही एक निर्माण विकास वर्ग केन्द्र में स्थापित किया जाए।

(9) सरकारी इमारतों के निर्माण में विलम्ब से बचने के लिए शैक्षिक भवन कार्यक्रम को कार्यान्वित करने के लिए लोक निर्माण विभाग में एक पृथक एकक की स्थापना की जाए जो शैक्षिक भवन कार्यक्रम को पूरा करे। बाद में व्यायसायिक स्तर पर निर्मित भवनों के लाभों के समुपयोजन के लिए एक शैक्षिक भवन निर्माण संघ की भी स्थापना की जा सकती है।

(10) गैर-सरकारी संस्थाओं को शैक्षिक भवन विकास वर्गों द्वारा निष्पादित मितव्यय के उपायों से अवगत करा देना चाहिए तथा अपर लागत सीमा के आधार पर सहायक अनुदान देना चाहिए। 9.40 (266)

107. **मार्गदर्शन एवं परामर्श**—मार्गदर्शन एवं परामर्श की शिक्षा का एक अभिन्न अंग मानना चाहिए, जिसका सम्बन्ध प्रत्येक विद्यार्थी से हो और जिसका उद्देश्य समय-समय पर व्यक्ति को निर्णय और समंजन करने में सहायता देना हो। 9.43 (267)

(1) **प्राथमिक स्तर पर मार्गदर्शन**—मार्गदर्शन का कार्य प्राथमिक स्कूल में सबसे निचली कक्षा से ही आरम्भ कर देना चाहिए और ऐसे स्कूलों की विशाल संख्या होने के कारण कार्यक्रम का आरम्भ कुछ निम्न सरल उपायों से कर सकते हैं: (1) प्रशिक्षण पा रहे अध्यापकों को नैदानिक परीक्षण एवं वैयक्तिक विभिन्नताओं की समस्या से परिचित कराना; (2) प्राथमिक अध्यापकों के लिए अन्तःसेवा पाठ्यक्रमों की आयोजना करना; (3) वृत्ति सम्बन्धी साहित्य की रचना करना; और (4) भावी शिक्षा के चुनाव में विद्यार्थियों एवं अभिभावकों की सहायता करना। 9.44-45 (267-268)

(2) **माध्यमिक स्तर पर मार्ग-दर्शन**—माध्यमिक स्तर पर अन्य बातों के अतिरिक्त मार्गदर्शन द्वारा किशोर छात्रों की योग्यताओं एवं रुचियों की पहचान और उनके विकास में सहायता मिलनी चाहिए। हमारा चरम लक्ष्य होना चाहिए कि सब माध्यमिक स्कूलों में प्रशिक्षित परामर्शदाताओं द्वारा संचालित समुचित मार्गदर्शन सेवाओं का समावेश हो किन्तु सीमित आर्थिक एवं कार्मिक अपनाए जा सकते हैं।

(क) सब माध्यमिक स्कूलों के लिए एक ऐसा अल्पतम मार्गदर्शन कार्यक्रम बनाया जाए जिसमें प्रत्येक दस स्कूलों के ऊपर एक स्कूल जाने वाला परामर्शदाता हो तथा जिसे साधारण मार्गदर्शन कार्यों के लिए स्कूल अध्यापकों की सहायता प्राप्त हो।

(ख) व्यापक मार्गदर्शन कार्यक्रम के लिए प्रत्येक जिले में एक चुने हुए स्कूल में मार्गदर्शन कार्यक्रम हो जो दूसरों के लिए आदर्श रूप हो।

(ग) मार्गदर्शन-कार्यक्रम के लिए राज्यों के मार्गदर्शन ब्यूरो में आवश्यक पर्यवेक्षण-कर्मचारियों की व्यवस्था।

(3) पूर्व-सेवा अथवा अन्तःसेवा प्रशिक्षण द्वारा सब माध्यमिक स्कूल अध्यापकों को मार्ग-दर्शन-अवधारणाओं से परिचित कराया जाए। प्रशिक्षण संस्थाओं में इस कार्य के लिए कर्मचारियों की उपयुक्त व्यवस्था हो।

9.46-50 (268-261)

(4) **सामान्य**—राज्यों के मार्गदर्शन ब्यूरो तथा प्रशिक्षण महाविद्यालयों को चाहिए कि वे मार्गदर्शन कार्यकर्ताओं के वृत्तिक प्रशिक्षण का प्रबन्ध करें। राष्ट्रीय स्तर पर उच्च प्रशिक्षण की आयोजना हो।

(5) सहायक कार्यक्रमों के अन्तर्गत मार्गदर्शन साहित्य एवं सामग्री का उत्पादन तथा भारतीय स्थिति में मार्गदर्शन समस्याओं पर शोधकार्य की व्यवस्था होनी चाहिए। 9.51 (269)

108. **प्रतिभा की खोज एवं विकास**—(1) प्रतिभा की खोज निरन्तर जारी रहनी चाहिए। इसके लिए प्रत्येक स्तर पर प्रयास किया जाना चाहिए यद्यपि माध्यमिक स्तर सबसे अधिक महत्वपूर्ण स्तर है।

(2) अधिक और उच्च ज्ञान देने की पाठ्यचर्या के कार्यक्रमों के अतिरिक्त प्रतिभावना छात्रों के लिए ग्रीष्म-कालीन स्कूल, शैक्षिक महत्व के स्थानों की यात्रा आदि विविध पाठ्यचर्येतर कार्यक्रमों की आयोजना तथा ऐसे छात्रों के लिए जिनका घरेलू वातावरण विद्याभ्यास के लिए उपयुक्त न हो। छात्रावासों तथा दिवस अध्ययन केन्द्रों की भी व्यवस्था करनी चाहिए।

(3) प्रतिभावना बच्चों से व्यवहार करने की विशिष्ट प्रविधियों, विशेषकर उन्मुक्त अभिव्यक्ति एवं सृजनशील कार्य के उपयुक्त वातावरण के संयोजन की आवश्यकता के प्रति अध्यापकों को अनुस्थापित करना चाहिए। 9.52-57 (269-271)

109. **पिछड़ा छात्र**—शैक्षिक सुविधाओं तथा मानव-संसाधनों की व्यर्थता का कारण पिछड़े छात्रों की उपेक्षा है तथा एक विकासशील देश के लिए आवश्यक है कि ऐसी व्यर्थता न्यूनतम हो। हमें विशेषतः कम सीख पाने वालों की ओर ध्यान देना है क्योंकि इनमें बहुधा उच्च योग्यता वाली कार्यक्षम जनशक्ति निहित होती है। इसलिए दिलचस्पी रखने वाले अध्यापकों, अभिभावक अध्यापक संघों एवं उपलब्ध बाल-निर्देशन उपचारशालाओं की सहायता से अल्पार्जन के कारणों के निदान के लिए तथा स्कूली प्रणाली के अन्तर्गत उपचार-कार्यक्रमों को सूत्रित तथा कार्यान्वित करने के लिए प्रयत्न करने चाहिए। 9.58-64 (271-272)

110. **मूल्यांकन**—मूल्यांकन एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है जो शिक्षा की सम्पूर्ण प्रणाली का एक अभिन्न अंग है तथा जिसका शैक्षिक उद्देश्यों से घनिष्ठ सम्बन्ध है। यह छात्र के पढ़ने की आदतों एवं अध्यापक के पढ़ाने की पद्धतियों पर गहरा प्रभाव डालता है तथा इस प्रकार यह न केवल शैक्षिक निष्पत्ति के मापने में अपितु उसके सुधार में भी सहायक होता है।

(1) मूल्यांकन का नवीन उपागम लिखित परीक्षा को शैक्षिक निष्पत्ति का एक प्रामाणिक एवं विश्वसनीय साधन बनाने के लिए सुधार करने का और छात्रों में विकास के ऐसे महत्वपूर्ण पहलुओं को जिनका मापन लिखित परीक्षा द्वारा संभव नहीं मापने की प्रविधियों की प्रकल्पना का प्रयास करेगा। 9.65-68 (272-273)

(2) **अवर प्राथमिक स्तर पर मूल्यांकन**—इस स्तर पर मूल्यांकन के उद्देश्य छात्रों की मूलभूत योग्यताओं की उपलब्धियों में तथा उचित आदतों एवं अभिवृत्तियों के विकास में करने में सहायक होना है।

(3) पहली से चौथी कक्षाओं को एक अवग्रेड एकक मानना वांछनीय है जिससे बच्चे अपनी गति के अनुसार बढ़ सकें। जहां यह सम्भव नहीं वहां पहली तथा दूसरी कक्षाओं को दो श्रेणियों में विभाजित एक खण्ड मान लेना चाहिए—एक धीमे सीखने वालों का तथा दूसरा तीव्र गति से सीखने वालों का। इस अवर्गित प्रणाली के सम्बन्ध में अध्यापकों को समुचित प्रशिक्षण मिलना चाहिए। 9.69-70 (273)

(4) **उच्चतर प्राथमिक स्तर पर मूल्यांकन**—इस स्तर पर लिखित परीक्षाओं के अतिरिक्त आन्तरिक, मूल्यांकन के एक अंग के रूप में मौखिक परीक्षाओं को उचित स्थान दिया जाना चाहिए। नैदानिक परीक्षण अध्यापक निर्मित सामान्य परीक्षाओं द्वारा किया जाना चाहिए। संचित वृत्त-कार्ड छात्र की उन्नति एवं विकास के महत्वपूर्ण सूचक हैं तथापि इनका सरल एवं सुबोध तथा अवस्था-बद्ध समावेश होना चाहिए। 9.71 (273-274)

(5) **प्राथमिक स्तर की समाप्ति पर बाह्य परीक्षण**—यद्यपि प्राथमिक स्तर की समाप्ति पर ही उपलब्धि का प्रथम राष्ट्रीय स्तर निश्चित करना है; अनिवार्य बाह्य परीक्षण द्वारा उपलब्धि का एक अवश्य एवं एक-सा स्तर निर्धारित करना आवश्यक या वांछनीय नहीं समझा गया। यद्यपि प्राथमिक स्तर की समाप्ति पर ही उपलब्धि का प्रथम राष्ट्रीय स्तर निश्चित किया जाना है फिर भी उचित स्तर बनाये रखने के लिए ये आवश्यक है कि जिला स्कूल अधिकारी राज्य मूल्यांकन संगठनों द्वारा तैयार की हुई परिष्कृत परीक्षाओं के माध्यम से प्राथमिक स्कूलों के उपलब्धि स्तर का आवधिक सर्वेक्षण करे। 9.72-73 (274)

(6) **अन्तः स्कूल तुलनीयता के लिए एक सामान्य बाह्य परीक्षण** : जिले के शैक्षिक अधिकारी प्राथमिक स्तर की समाप्ति पर जिले के स्कूलों के लिए मानक एवं परि-

कृत परीक्षाओं के द्वारा एक सामान्य परीक्षण की व्यवस्था कर सकते हैं। यह परीक्षण स्कूल परीक्षण की अपेक्षा अधिक प्रामाणिक एवं विश्वसनीय होगा तथा निष्पादन के स्तरों की अन्तःस्कूल तुलनीयता बताएगा।

(7) स्कूल के प्राथमिक पाठ्यक्रम की समाप्ति के प्रमाणपत्र के साथ संचित वृत्त-पत्रक एवं यदि हो तो किसी सामान्य परीक्षण के परिणाम आदि का विवरण होना चाहिए।

(8) सामान्य परीक्षण के अतिरिक्त प्राथमिक पाठ्यक्रम की समाप्ति पर छात्रवृत्ति या विशेष योग्यता प्रमाण-पत्र देने तथा प्रतिभा की पहचान के लिए विशेष परीक्षाएं ली जा सकती हैं। 9.74-76 (274-275)

(9) **बाह्य परीक्षाओं में सुधार** : बाह्य परीक्षाओं में सुधार करने के लिए निम्नलिखित उपाय करने हैं : प्रश्न-पत्र बनाने वालों की योग्यता को बढ़ाना; ज्ञानार्जन के अतिरिक्त अन्य उद्देश्याभिमुख प्रश्नपत्र बनाना; प्रश्नों के स्वरूप में सुधार करना; परीक्षा फलांकन वैज्ञानिक कार्य पद्धति को अपनाना; मशीनों द्वारा उत्तर-पत्रों के नम्बर लगाना और परीक्षाफलों का विधायन करना। 9.77-79 (275-276)

(10) **बोर्ड तथा स्कूल द्वारा दिया गया प्रमाणपत्र** : राज्य स्कूल शिक्षा बोर्ड द्वारा बाह्य परीक्षण के आधार पर दिए हुए प्रमाण-पत्र में जिन विषयों में परीक्षार्थी ने परीक्षा दी केवल उनमें ही उसके निष्पादन का विवरण हो, सम्पूर्ण परीक्षा में उसकी सफलता अथवा असफलता के सम्बन्ध में कोई टिप्पणी नहीं होनी चाहिए। अपने निष्पादन में सुधार करने के लिए परीक्षार्थी को अपनी इच्छानुकूल सम्पूर्ण परीक्षा में अथवा पृथक विषयों में पुनः परीक्षा देने की अनुमति होनी चाहिए।

(11) विद्यार्थी को स्कूल द्वारा भी एक प्रमाण-पत्र दिया जाना चाहिए जिसमें संचित वृत्त-कार्ड आधार पर उसके आन्तरिक मूल्यांकन का लेखा दिया गया हो। यह प्रमाणपत्र बोर्ड द्वारा दिये गए प्रमाण-पत्र के साथ संलग्न कर देना चाहिए। 9.80-81 (276)

(12) **प्रायोगिक स्कूलों की स्थापना** : कुछ चुने हुए स्कूलों को अपने विद्यार्थियों के मूल्यांकन का तथा दसवीं कक्षा की समाप्ति पर उनकी अन्तिम परीक्षा लेने का अधिकार होना चाहिए। यह परीक्षा राज्य स्कूल शिक्षा बोर्ड के समकक्ष मानी जानी चाहिए। इन स्कूलों के सफल परीक्षार्थियों को स्कूलों की सिफारिश पर राज्य स्कूल शिक्षा बोर्ड प्रमाण-पत्र प्रदान करेगा। इन स्कूलों के चयन की कसौटी के निर्धारण के लिए राज्य शिक्षा बोर्ड द्वारा एक उपसमिति नियुक्त की जानी चाहिए। इन स्कूलों को स्वयं अपनी पाठ्यचर्या निर्माण, पाठ्यपुस्तकें निर्धारण तथा बाहरी बंधनों के बिना अपनी शैक्षिक-क्रिया-कलापों के संचालन का अधिकार होना चाहिए।

9.82-83 (276-277)

(13) **आन्तरिक मूल्यांकन की पद्धतियां** : स्कूलों द्वारा किया हुआ आन्तरिक मूल्यांकन व्यापक होना चाहिए जिसमें बाह्य परीक्षाओं द्वारा न मापे जा सकने वाले पहलुओं समेत विद्यार्थी निकाय के सम्पूर्ण पहलुओं का मूल्यांकन होना चाहिए। यह विवरणात्मक तथा अनुमान्य हो। स्कूलों द्वारा लिए जाने वाली लिखित परीक्षाओं में सुधार करना चाहिए तथा अध्यापकों को तद्नुकूल प्रशिक्षण मिलना चाहिए। आन्तरिक मूल्यांकन एवं बाह्य परीक्षा के नम्बर अलग-अलग दिखाए जाने चाहिए।

9.84-86 (277)

(14) **उच्चतर माध्यमिक परीक्षा** : संक्रमण काल में उच्चतर माध्यमिक के विद्यार्थियों को एक ही साल में क्रमानुसार दो बाह्य परीक्षाओं में बैठना पड़ेगा—एक दसवीं कक्षा के अन्त में तथा एक ग्यारहवीं कक्षा के। किन्तु नौवीं कक्षा से ग्यारहवीं कक्षा का एक समन्वित पाठ्यक्रम है वहां दसवीं कक्षा के अन्त में परीक्षा के लिए कोई आग्रह नहीं किया जाना चाहिए।

9.87-89 (277)

दसवां अध्याय. स्कूल शिक्षा : प्रशासन और पर्यवेक्षण

111. शैक्षिक सुधार का कार्य आरम्भ करने और उसकी गति को बढ़ाने के लिए पर्यवेक्षण और प्रशासन की सहानुभूतिपूर्ण और कल्पनाशील प्रणाली आवश्यक है।

10.01 (279)

112. **लोक शिक्षा की समान स्कूल पद्धति**—लोक शिक्षा की समान स्कूल पद्धति में सभी सरकारी स्कूल, स्थानीय स्वायत्त निकायों के सब स्कूल और सभी सहायता प्राप्त और गैर-सरकारी स्कूल शामिल होंगे। केवल दो प्रकार के स्कूल इसके बाहर रहेंगे स्वतन्त्र स्कूल और मान्यता अप्राप्त स्कूल।

(1) शिक्षा सम्बन्धी नीति का यह उद्देश्य होना चाहिए कि अगले बीस वर्षों की अवधि में लोक शिक्षा की समान स्कूल पद्धति का विकास किया जाए जो देश के सभी भागों को अपनी परिधि में लेले, सभी बालकों का प्रवेश

पाने का समान अधिकार देगी और अपना स्तर ऐसा बनाकर रखेगी कि एक आम आदमी अपने बच्चे को किसी स्वतन्त्र या मान्यता अप्राप्त स्कूल में भेजने की जरूरत महसूस नहीं करेगा ।

(2) लोक शिक्षा की समान स्कूल पद्धति के निर्माण के लिए निम्नलिखित उपाय आवश्यक होंगे :

(क) विभिन्न प्रबन्धक संस्थाओं के अधीन कार्य करने वाले अध्यापकों के बीच इस समय जो भेद हैं उसे खत्म कर दिया जाना चाहिए ।

(ख) एक अवस्था-बद्ध कार्यक्रम के अन्तर्गत शिक्षा खत्म कर दी जानी चाहिए । प्राथमिक स्तर पर चौथी योजना के अन्त तक और अवर माध्यमिक स्तर पर पांचवीं योजना के अन्त तक ।

(ग) विभिन्न प्रबन्धक संस्थाओं के अधीन चलने वाले स्कूलों के बीच इस समय जो भेद है उसे घटाकर कम-से-कम कर दिया जाए और अच्छी शिक्षा के लिए आवश्यक न्यूनतम अनिवार्य परिस्थितियां सभी स्कूलों में उत्पन्न की जाएं ।

(घ) पड़ोसी पाठशाला योजना अवर प्राथमिक अवस्था में अपनाई जाए ताकि सम्पन्न वर्गों के स्कूलों और निर्धन वर्गों के स्कूलों के बीच का अलगाव दूर किया जा सके । 10.02-06 (279-283)

(3) **सरकारी स्कूल और स्थानीय स्वायत्त निकायों के स्कूल** : सरकारी स्कूल और स्थानीय स्वायत्त निकायों के स्कूल सामान्यतः अपेक्षित स्तर बनाए रखने में असमर्थ रहते हैं क्योंकि इन स्कूलों के अध्यापकों में अपनी संस्था के प्रति बहुत कम निष्ठा होती है और स्थानीय समुदाय से सम्पर्क या तो नगण्य होता है या इसका अस्तित्व ही नहीं होता । निम्नलिखित उपायों से इन खामियों को दूर करना चाहिए :

(क) स्थानीय प्रतिनिधित्व से सम्पन्न एक स्कूल-समिति को सरकार या स्थानीय स्वायत्त विकाय के प्रत्येक स्कूल या क्षेत्र विशेष के स्कूल-समूह के प्रबन्ध कार्यों की देखभाल करनी चाहिए । स्कूलों में सेवाओं की व्यवस्था के लिए प्रत्येक स्कूल-समिति अपनी स्कूल-निधि का उपयोग करेगी ।

(ख) स्थानान्तरण सम्बन्धी उचित नीतियां बनाई जानी चाहिए ताकि अध्यापकों का तबादला बहुत जल्दी-जल्दी न हो ।

(ग) इन स्कूलों को अधिक स्वतन्त्रता दी जानी चाहिए । 10.07-08 (283-284)

(4) **गैर-सरकारी स्कूल** : इस बात का ध्यान रखना सरकार की जिम्मेदारी है कि गैर सरकारी सहायता प्राप्त संस्थाओं को पर्याप्त सहायता देकर संतोषजनक ढंग से चलाया जाए । शिक्षा प्रबंध संतोषजनक नहीं है उन्हें या तो सरकार को अपने हाथ में ले लेना चाहिए या बन्द कर देना चाहिए ।

(5) गैर सरकारी सहायता प्राप्त संस्थाओं की सहायता और नियंत्रण के विषय में भेदकारी नीति से काम लेने की आवश्यकता है । अधिक अच्छे स्कूलों को अधिक स्वतन्त्रता और सहायता दी जानी चाहिए जिससे कि समान स्कूल पद्धति के केन्द्रक के रूप में उनका विकास हो सके ।

(6) शिक्षा शुल्क समाप्त हो जाने पर अधिकांश गैर-सरकारी स्कूल समान स्कूल पद्धति के भीतर आ जाएंगे । निम्नलिखित तरीकों से इनके प्रबन्ध को सुदृढ़ करने के लिए

(क) प्रत्येक गैर-सरकारी स्कूल की एक प्रबंध समिति होनी चाहिए जिसमें प्रबंधक संस्था, शिक्षा विभाग और अध्यापकों के प्रतिनिधि होने चाहिए ।

(ख) इन स्कूलों में अध्यापकों की नियुक्ति आदि की पद्धति स्थूल रूप से वैसी ही होनी चाहिए जैसी सरकारी स्कूलों या स्थानीय स्वायत्त निकायों के स्कूलों में हैं ।

(ग) रिपोर्ट में बताए गए आधार पर सहायता अनुदान में सुधार किया जाना चाहिए ।

(7) यह एक अपरिवर्तनीय नियम होना चाहिए कि सहायता प्राप्त करने के योग्य बनने के लिए संस्थाओं का ऐसे निकायों द्वारा संचालन आवश्यक है जिनका उद्देश्य मुनाफा कमाना नहीं है ।

(8) सहायता अनुदान की संहिताओं में आवश्यक संशोधन कर राज्य शिक्षा विभागों को यह अधिकार दिया जाना चाहिए कि जो गैर-सरकारी स्कूल शर्तों को पूरा न करते हों और जो विहित स्तर पर आने में लगातार असफल रहे हों उन्हें वे अपने हाथ में ले सकें।

10.08-17 (283-288)

(9) **उच्च कोटि के गैर-सरकारी स्कूल** : जो अच्छे गैर सरकारी स्कूल समान स्कूल पद्धति के अन्तर्गत शिक्षा शुल्क को समाप्त कर दें उन्हें वर्तमान स्तर बनाए रखने में सहायता दी जानी चाहिए और जैसा कि रिपोर्ट में सुझाया गया है सहायता अनुदान का समायोजन साधारण स्कूलों के स्तर के आधार पर नहीं, बल्कि उच्च कोटि के स्कूलों के आधार पर किया जाना चाहिए। 10.18 (288)

(10) **पड़ोसी स्कूल** : अवर प्राथमिक अवस्था में पड़ोसी पाठशाला अवधारणा को कार्य रूप देकर स्कूलों से वर्तमान सामाजिक अलगाव को खत्म करना चाहिए। इस अवधारणा के अनुसार इलाके के स्कूल में पास-पड़ोस के सभी बालकों को पढ़ना होगा। इस योजना की क्रियान्विति बीस वर्ष की अवधि में निम्नलिखित प्रकार से की जानी चाहिए :

(क) पहले दस वर्षों में सभी प्राथमिक स्कूल न्यूनतम स्तर पर लाए जाएं और लगभग दस प्रतिशत स्कूल उच्चतर स्तर पर लाए जाएं।

(ख) साथ-साथ प्रायोगिक परियोजना के रूप में पड़ौसी पाठशाला पद्धति अवर प्राथमिक अवस्था में उन क्षेत्रों में लागू की जाए जहां लोकमत इसके पक्ष में हो। 10.19-29 (288-289)

(11) सरकार या स्थानीय स्वायत्त निकायों द्वारा दी जाने वाली स्कूल-स्तर की छात्रवृत्तियां केवल उन स्कूलों के लिए होनी चाहिए जो लोक शिक्षा की समान स्कूल पद्धति के भीतर हों ताकि बच्चों को समान स्कूल पद्धति में अध्ययन करने के लिए प्रोत्साहन मिल सके। इसी प्रकार विश्वविद्यालय-स्तर के लिए सरकारी निधि से दी जाने वाली 90 प्रतिशत छात्रवृत्तियां केवल उन छात्रों के लिए होनी चाहिए जिन्होंने समान स्कूल पद्धति के भीतर चलने वाले स्कूलों में माध्यमिक शिक्षा प्राप्त की हो। 10.21 (289)

113. **राष्ट्रीय स्कूल सुधार कार्यक्रम**—स्कूल अवस्था में शिक्षा के स्तर को सुधारने की आवश्यकता को देखते हुए एक राष्ट्रीय स्कूल सुधार कार्यक्रम का विकास किया जाना चाहिए। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत प्रत्येक स्कूल के लिए ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न की जाएं कि वह अपनी सामर्थ्य के अनुसार अच्छे से अच्छा कार्य कर सके। इस दृष्टि से निम्नलिखित कार्य किए जाने चाहिए :

(1) प्रत्येक संस्था को एक इकाई माना जाए और उसे अपनी विशिष्ट गति से विकसित होने में सहायता दी जाए। इस उद्देश्य से इसे इष्टतम उपयोग और उन्नति का अपना कार्यक्रम स्वयं बनाना चाहिए।

(2) इन योजनाओं में भौतिक साधनों में वृद्धि करने की अपेक्षा इस बात पर जोर दिया जाना चाहिए कि शिक्षा की उन्नति से अधिक से अधिक योग देने के लिए मानवीय अभिकरणों को प्रेरित किया जाए। भौतिक सुविधाएं स्थानीय समुदाय के सहयोग से बढ़ाई जानी चाहिएं।

(3) कार्यक्रम की सफलता इस बात पर निर्भर होगी कि एक निश्चित काल तक यह प्रयत्न किस हद तक जारी रहता है।

(4) प्रत्येक राज्य को स्कूलों के लिए मूल्यांकन-कसौटियां निश्चित करनी चाहिए। स्कूल इन कसौटियों का उपयोग आत्म-मूल्यांकन के लिए और निरीक्षण अधिकारी अपने वार्षिक और त्रिवार्षिक निरीक्षणों के लिए कर सकते हैं। इन कसौटियों के आधार पर एक त्रिसूत्री श्रेणीक्रम में स्कूलों का विभाजन किया जाए और मान दंड इष्टतम तथा न्यूनतम स्तरों पर निश्चित किए जाए।

(5) अगले दस वर्षों में प्रत्येक सामुदायिक विकास खंड में कम-से-कम दस प्रतिशत प्राथमिक स्कूल और एक माध्यमिक स्कूल इष्टतम स्तर का बनाया जाए। अवर प्राथमिक अवस्था में इन स्कूलों में पास-पड़ोस के बच्चे जाएंगे। उच्चतर प्राथमिक और माध्यमिक अवस्थाओं में दाखिला योग्यता के आधार पर किया जाएगा।

10.24-32 (290-293)

114. **पर्यवेक्षण : राज्य शिक्षा विभाग का पुनर्गठन**—(1) शिक्षा संबंधी मामलों में कार्रवाई करने के लिए राज्य शिक्षा विभाग मुख्य अभिकरण होगा। इसलिए निम्नलिखित उत्तरदायित्व उसी के होंगे।

— स्कूल सुधार कार्यक्रम का विकास और क्रियान्विति;

— स्तरों का निर्धारण और प्रवर्तन;

— अध्यापकों को प्रशिक्षण देना और पर्याप्त संख्या में अध्यापक तैयार करना;

— निरीक्षण और पर्यवेक्षण;

— राज्य मूल्यांकन संगठन की स्थापना और अनुरक्षण;

— उच्च कोटि की संस्थाओं को बनाए रखना और विस्तार सेवाओं की व्यवस्था करना;

— राज्य शिक्षा की संस्थान की स्थापना और अनुरक्षण;

— स्कूल अवस्था की व्यावसायिक और तकनीकी शिक्षा में समन्वय स्थापित करना और अंततः इस शिक्षा का उत्तरदायित्व ग्रहण करना।

10.33 (293-294)

(2) जिला स्तर पर विभागीय संगठन को सुदृढ़ करने के महत्व को देखते हुए—

(क) जिला शिक्षा अधिकारी के पद को प्रस्तावित भारतीय शिक्षा सेवा में शामिल करके उसे यथेष्ट प्रतिष्ठा दी जानी चाहिए;

(ख) जिला स्तर पर पर्याप्त अधिकार सौंपे जाने चाहिए;

(ग) जिला स्तर पर निरीक्षण कर्मचारियों के वेतन मान और योग्यताएं बढ़ाई जानी चाहिए;

(घ) "विशेषज्ञों" की नियुक्ति करके और एक सांख्यिकी सेल खोलकर जिला कर्मचारियों की संख्या में वृद्धि की जानी चाहिए;

(ङ) जिला कर्मचारियों में महिलाओं की नियुक्ति भी उपयुक्त अनुपात में की जानी चाहिए जिससे कि लड़कियों की शिक्षा को प्रोत्साहन मिल सके। 10.34-37 (294-295)

(3) प्रधानाध्यापकों का चुनाव बहुत सावधानी-पूर्वक किया जाना चाहिए और उन्हें विशेष प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। 10.38 (295)

115 **नए पर्यवेक्षण में स्कूल संकुल का योग**—(1) जिला शिक्षा अधिकारी प्रत्येक स्कूल-संकुल से संम्पर्क रखेगा और यथासम्भव इसे इकाई मानकर कार्रवाई करेगा। संकुल स्वयं सौंपे गए कुछ कार्य करेगा और अपने दायरे के अलग-अलग स्कूलों के सम्बन्ध में आवश्यक कार्रवाई करेगा। संकुल को पर्याप्त अधिकार और उत्तरदायित्व सौंपे जाने चाहिए जिससे कि अध्यापन और मूल्यांकन के अधिक अच्छे तरीकों से काम लिया जा सके, सुविधाएं सबको मिल सकें, अन्तःसेवा प्रशिक्षण कार्यक्रम सुविधापूर्वक चलाए जा सकें और नए कार्यक्रमों का परीक्षण किया जा सके।

(2) बड़े पैमाने पर क्रियान्वित करने से पूर्व इस योजना को प्रत्येक राज्य के कुछ चुने हुए जिलों में प्रायोगिक परियोजना के रूप में आरम्भ किया जाए।

(3) स्कूल-संकुल को केवल सामूहिक प्रयोग को ही बढ़ावा नहीं देना चाहिए, बल्कि इकाई के भीतर व्यक्तिगत प्रयोगों को भी प्रोत्साहन देना चाहिए।

10. 39-43 (295-296)

116. **नया पर्यवेक्षण**—पर्यवेक्षण एक दृष्टि से शैक्षिक सुधार की आधारशिला है। इसलिए पर्यवेक्षण-प्रणाली में नई शक्ति का संचार करना बहुत आवश्यक है।

(1) प्रशासन को पर्यवेक्षण से अलग कर दिया जाना चाहिए। जिला स्कूल बोर्ड को प्रशासन की देख-रेख करनी चाहिए और जिला शिक्षा अधिकारी का संबंध पर्यवेक्षण से होना चाहिए। परन्तु दोनों के बीच निकट सहयोग होना चाहिए।

(2) मान्यता नेमी रूप से प्रदान नहीं की जानी चाहिए। प्रत्येक स्कूल को—चाहे उसकी प्रबन्धक संस्था कोई भी हो—निरन्तर योग्यता के आधार पर मान्यता प्राप्त करनी चाहिए।

(3) प्रत्येक स्कूल में दो प्रकार के निरीक्षण किए जाने चाहिए—एक वार्षिक निरीक्षण जो प्राथमिक स्कूलों के संबंध में जिला स्कूल बोर्ड के अधिकारियों द्वारा और माध्यमिक स्कूलों के संबंध में राज्य शिक्षा विभागों के अधिकारियों द्वारा किया जाना चाहिए; और दूसरा त्रिवार्षिक या पंचवार्षिक निरीक्षण जिसका आयोजन प्राथमिक स्कूलों के संबंध में जिला शिक्षा अधिकारी द्वारा और माध्यमिक स्कूलों के संबंध में राज्य स्कूल शिक्षा बोर्डों द्वारा किया जाना चाहिए।

(4) स्कूलों में निर्देशन और विस्तार सेवाओं की व्यवस्था नयी पर्यवेक्षण प्रणाली की एक महत्वपूर्ण जिम्मेदारी होगी।

(5) सभी पर्यवेक्षण और प्रशासन अधिकारियों के लिए अन्तःसेवा प्रशिक्षण की व्यवस्था राज्य शिक्षा संस्थानों और राष्ट्रीय शिक्षा प्रशासक स्टाफ कालेज द्वारा की जानी चाहिए। 10. 44-49 (297-299)

117. **राज्य शिक्षा संस्थान**—विभागीय अधिकारियों के अन्तःसेवा प्रशिक्षण, अध्यापक शिक्षा पाठ्यचर्या और पाठ्य पुस्तकों के सुधार, निदेशन और मूल्यांकन तथा कार्यक्रम संबंधी अनुसंधान और मूल्यांकन की देख रेख करने के लिए राज्य शिक्षा संस्थानों में एक शैक्षिक खण्ड की स्थापना करना आवश्यक होगा।

10.50-53 (299-300)

118. **राज्य और राष्ट्रीय शिक्षा बोर्ड**—स्तर को निरन्तर सुधारते रहने के उद्देश्य से राज्य और राष्ट्रीय स्तरों पर उपयुक्त तन्त्र की स्थापना की जानी चाहिए।

(1) स्तर उच्चतर प्राथमिक और अवर माध्यमिक अवस्थाओं के अन्त पर निर्धारित किए जाने चाहिए और आगे चलकर जब उच्चतर माध्यमिक अवस्था दो वर्ष की हो जाए तो इस अवस्था के अन्त पर भी स्तर निर्धारित किए जाने चाहिए।

(2) ये स्तर स्थानीय परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए राज्य सरकार द्वारा निर्धारित किए जाने चाहिएं। राज्य-मूल्यांकन संगठन और राज्य स्कूल शिक्षा बोर्ड स्तरों को निर्धारित करने, मापने और समय-समय पर इनका पुनरीक्षण करने में सहायता देंगे।

(3) राष्ट्रीय स्कूल शिक्षा बोर्ड राष्ट्रीय धरातल पर स्तरों का समन्वय करेगा और इन्हें निरन्तर समुन्नत करने में राज्यों की सहायता करेगा।

(4) राष्ट्रीय स्तर केवल उस न्यूनतम स्तर का सूचक होगा जिससे कम स्तर किसी भी राज्य में नहीं होना चाहिए। ये स्तर समय-समय पर ऊंचे उठाए जाते रहेंगे।

10.54-58 (300-301)

119. **राज्य मूल्यांकन संगठन**—स्तरों को निर्धारित करने बनाए रखने और इनका पुनरीक्षण करने के कार्यक्रम में राज्य शिक्षा विभाग की सहायता करने के लिए प्रत्येक राज्य में स्वतन्त्र संस्था के रूप में मूल्यांकन संगठन की स्थापना की जानी चाहिए। अधिक अच्छा हो कि इस संगठन का रूप एक स्वायत्त संस्था का हो। इसकी सेवाएं सभी सम्बन्धित संस्थाओं आदि के लिए सुलभ होनी चाहिए।

(1) राज्य मूल्यांकन संगठन स्कूलों में प्रचलित मूल्यांकन विधियों को सुधारने में जिला शिक्षा अधिकारियों की सहायता करेगा, प्रत्याशित स्तरों के अनुकूल बनाई गई पाठ्यचर्या, पाठ्यपुस्तकों और अन्य सामग्री के निर्माण के विषय में राज्य शिक्षा विभागों को सलाह देगा और समय-समय पर सम्पादित स्तरों का अंकन करेगा।

(2) राज्य स्कूल शिक्षा बोर्ड के अध्यक्ष की अध्यक्षता में एक सलाहकार समिति राज्य मूल्यांकन संगठन की सहायता करेगी।

10.59-63 (301-302)

120. **राज्य स्कूल शिक्षा बोर्ड**—प्रत्येक राज्य में एक स्कूल शिक्षा बोर्ड की स्थापना की जानी चाहिए और वर्तमान माध्यमिक शिक्षा बोर्डों और सम्बन्धित अभिकरणों के कार्य और दायित्व इसे अपने हाथ में ले लेने चाहिएं। बोर्ड की स्थापना विधि द्वारा की जानी चाहिए और इसे संतोषजनक ढंग से अपना कार्य करने और जिम्मेदारी निभाने के लिए पर्याप्त अधिकार और स्वतंत्रता दी जानी चाहिए। यदि इसका वित्त एक अलग निधि के रूप में हो जिसका प्रबन्ध और अनुरक्षण भी बोर्ड द्वारा ही किया जाए तो बोर्ड को अपना कार्य करने में बहुत सुविधा होगी। बोर्ड को शिक्षा विभाग के एक अभिन्न अंग के रूप में कार्य करना चाहिए।

(1) जहां तक पाठ्यचर्या का संबंध है समस्त स्कूल-अवस्था का कार्यभार बोर्ड पर होगा। प्राथमिक स्कूलों को मान्यता जिला शिक्षा अधिकारी द्वारा दी जाएगी। माध्यमिक स्कूलों को मान्यता शिक्षा विभाग और राज्य शिक्षा बोर्ड दोनों मिलकर प्रदान करेंगे।

(2) अवर माध्यमिक अवस्था के अन्त में बाह्य परीक्षा लेने के अतिरिक्त बोर्ड उच्चतर माध्यमिक अवस्था के अन्त में सामान्य शिक्षा की परीक्षाएं भी लेगा।

(3) आगे चलकर समस्त स्कूल शिक्षा—सामान्य और व्यावसायिक को राज्य स्कूल शिक्षा बोर्ड जैसे एक ही संगठन के कार्य क्षेत्र में लाना वांछनीय होगा। परन्तु अभी ऐसा करना सम्भव नहीं है। इसलिए फिलहाल राज्य स्तर पर विभिन्न व्यावसायिक पाठ्यक्रमों के लिए अलग-अलग संगठन स्थापित किए जा सकते हैं। परन्तु इन निकायों और राज्य स्कूल शिक्षा बोर्ड के बीच निकट सम्पर्क होना चाहिए और कुछ हद तक ऐसा भी होना चाहिए कि एक का सदस्य दूसरे का भी सदस्य हो।

(4) माध्यमिक अवस्था की देख-रेख के लिए बोर्ड की एक विशेष समिति नियुक्त की जानी चाहिए। इसके आधे सदस्य स्कूलों के प्रतिनिधि होने चाहिएं और आधे सदस्य विश्वविद्यालयों के।

(5) परीक्षा-फल घोषित करने में जो समय लगता है उसे कम किया जाए। इस उद्देश्य के लिए (1)

प्रक्रिया को यांत्रिक रूप दिया और (2) एक या एक से अधिक जिलों के लिए परीक्षार्थियों की अपेक्षाकृत कम संख्या के लिए उप-बोर्ड स्थापित किए जाएं।

10.64-69 (302-304)

121. **केन्द्र का योग**—(1) स्कूल शिक्षा से संबंधित सभी मामलों में भारत सरकार को सलाह देने के लिए शिक्षा मंत्रालय में एक राष्ट्रीय स्कूल शिक्षा बोर्ड की स्थापना की जानी चाहिए। यह बोर्ड विभिन्न शैक्षिक अवस्थाओं के लिए प्रत्याशित स्तरों का निर्धारण करेगा, समय-समय पर इन स्तरों का पुनरीक्षण करेगा, देश के विभिन्न भागों में प्राप्त स्तरों का मूल्यांकन करेगा और पाठ्यचर्या को सुधारने तथा स्तरों को समुन्नत करने के विषय में राज्य शिक्षा विभागों का परामर्श और सहायता देगा। यह अपना कार्य विश्वविद्यालय अनुदान आयोग और विश्वविद्यालयों के निकट सहयोग से करेगा।

(2) केन्द्र प्रेरित क्षेत्र में स्कूल शिक्षा के विकास, विशेषकर व्यावसायिक संस्थाओं की स्थापना के लिए, उच्च कोटि की संस्थाओं के विकास और छात्रवृत्तियों की व्यवस्था के लिए एक विशाल कार्यक्रम चलाया जाना चाहिए।

(3) केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड को राष्ट्रीय शिक्षा बोर्ड के परामर्श से स्कूल के अलग-अलग विषयों में दो स्तरों—कक्षा X और XII—पर उच्चस्तरीय परीक्षाओं का आयोजन करना चाहिए। इन परीक्षाओं के लिए पाठ्यचर्या राष्ट्रीय स्तरों को ध्यान में रखते हुए निर्धारित की जानी चाहिए। गणित और विज्ञान के विषयों से इसकी शुरुआत की जा सकती है। देश के मान्यता प्राप्त स्कूलों के प्रत्येक छात्र को इन परीक्षाओं में बैठने का अधिकार होना चाहिए और प्रत्येक विषय के लिए अलग-अलग उसे अपने सफलता स्तर के विषय में प्रमाण-पत्र दिया जाना चाहिए। इन परीक्षाओं से स्तर को सुधारने में सहायता मिलेगी।

10.70-76 (304-306)

122. **मान्यता अप्राप्त स्कूल**——सभी शैक्षिक संस्थाओं के लिए अनिवार्य रजिस्ट्रेशन का कानून बनाना वांछनीय होगा। मैर-रजिस्टर्ड संस्था चलाना एक अपराध माना जाना चाहिए। राज्य सरकार को यह अधिकार भी प्राप्त होना चाहिए कि यदि कोई शैक्षिक संस्था निर्धारित शर्तों को पूरा न करे तो उसका नाम वह अपने रजिस्टर से काट दे। 10. 80 (307-308)

ग्यारहवां अध्याय. उच्चतर शिक्षा : उद्देश्य और सुधार

123. **विश्वविद्यालयों के उद्देश्य**—मोटे तौर पर, आज के संसार में विश्वविद्यालयों के ये कार्य कहे जा सकते हैं :

— नए ज्ञान का सन्धान और पोषण करना, पूरे उत्साह से साथ और निर्भय होकर सत्य के अन्वेषण में जुट पड़ना और नई आवश्यकताओं तथा नई खोजों के सन्दर्भ में प्राचीन ज्ञान और विश्वासों की व्याख्या करना;

— जीवन के हरेक क्षेत्र में सही किस्म का नेतृत्व प्रदान करना, प्रतिभावान युवक-युवतियों की प्रवृत्तियों को पहचानना और शारीरिक स्वस्थता के विकास, मानसिक शक्तियों के उन्नयन और स्वस्थ रुचियों, मनोवृत्तियों तथा नैतिक एवं बौद्धिक मूल्यों के पोषण द्वारा उन की संभावनाओं के भरपूर विकास में सहायता करना;

— समाज को ऐसे सक्षम नर-नारी देना जो कृषि, कलाओं, चिकित्सा- विज्ञान और शिल्पविज्ञान में तथा अन्य विविध वृत्तियों में प्रशिक्षित हों और साथ ही सामाजिक सोद्देश्यता की भावना से अनुप्राणित संस्कृत व्यक्ति भी हों;

— शिक्षा के प्रसार द्वारा समानता और सामाजिक न्याय को बढ़ाने तथा सामाजिक एवं सांस्कृतिक भेदों को घटाने का प्रयत्न करना; और

— व्यक्ति और समाज में 'सत् जीवन' के विकास के लिए जिन मनोवृत्तियों और मूल्यों की आवश्यकता होती है, अध्यापकों और छात्रों में—और उनके माध्यम से सम्पूर्ण समाज में उन्हीं मनोवृत्तियों मूल्यों का संवर्धन-पोषण करना। 11. 02 (309-310)

124. भारतीय विश्वविद्यालयों के ये कार्य तो सभी विश्वविद्यालयों के समान ही हैं पर हमारे सामाजिक—शैक्षिक विकास की वर्तमान अवस्था में उन्हें कुछ विशेष दायित्वों का भी वहन करना होगा। उदाहरणार्थ,

— उन्हें 'राष्ट्र के अन्तःकरण' के रूप में भी काम करना सीखना होगा, और इस दृष्टिकोण से

उन्हें सहनशीलता के वातावरण में वैयक्तिकता, वैविध्य और विसम्मति को प्रोत्साहन देना चाहिए;

— भारतीय विश्वविद्यालयों को बहुत—बड़े पैमाने पर प्रौढ़ शिक्षा के कार्यक्रम तैयार करने चाहिए और उन्हें पूरा करने के लिए अंशकालिक और पत्राचार पाठ्यक्रमों का विस्तृत ताना-बाना बुनना चाहिए;

— उन्हें स्कूलों के गुणात्मक उन्नयत के प्रयत्नों में उनकी भरसक सहायता करनी चाहिए;

— उन्हें अपनी उस पूर्ववर्ती परम्परा के भारी बोझ से मुक्ति पा लेनी चाहिए जो परीक्षाओं को बहुत अधिक महत्व देती है और अध्यापन एवं अनुसंधान के सर्वांगीण विकास द्वारा हर दृष्टि से स्तरों को ऊपर उठाने का प्रयत्न करना चाहिए;

— उन्हें कम-से-कम कुछ ऐसे केन्द्रों को स्थापना करनी चाहिए जिनकी तुलना संसार के किसी भी भाग में अपनी तरह के किसी भी केन्द्र से की जा सके और इस प्रकार भारतीय शैक्षिक जीवन का 'गुरुत्वाकर्षण केन्द्र' फिर से स्वदेश ले आने में सहायता करनी चाहिए।

11.04-10 (311-314)

125. इन उद्देश्यों की सिद्धि के लिए आवश्यकता है उच्च शिक्षा के विकास की एक ऐसी सुचिन्तित और व्यापक योजना की जिसका प्रसार अगले बीस वर्षों में हो। इस योजना में और बातों के साथ-साथ निम्नलिखित तीन कार्यक्रम सम्मिलित होंगे जिन्हें ऊंची प्राथमिकता दी जाएगी :

— उच्च शिक्षा और अनुसन्धान में गुण और स्तर की दृष्टि से आमूल सुधार;

— राष्ट्रीय विकास की जनशक्ति परक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए और कुछ हद तक, जनता की बढ़ती हुई सामाजिक महत्वाकांक्षाओं और प्रत्याशाओं की पूर्ति के लिए शिक्षा का विकास; और

— विश्वविद्यालय के संगठन और प्रशासन में सुधार। 11.11 (314)

126. **बड़े विश्वविद्यालय**—उच्चतर शिक्षा में सब से महत्वपूर्ण सुधार है कुछ 'बड़े विश्वविद्यालयों' का विकास जहां प्रथम श्रेणी का स्नातकोत्तर एवं अनुसंधान कार्य संभव हो सके और जिनके स्तरों की तुलना दुनिया के किसी भी भाग में स्थित अपनी तरह की अच्छी से अच्छी संस्थाओं से की जा सके। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को 'बड़े विश्वविद्यालयों' के रूप में विकास करने के लिए वर्तमान विश्वविद्यालयों में से लगभग छह विश्वविद्यालय चुन लेने चाहिए (इन में एक भारतीय टेक्नालाजी (शिल्पविज्ञान) संस्थान और एक कृषि विश्वविद्यालय भी रहे)। कार्यक्रम का आरम्भ 1966-67 में होना चाहिए।

127. प्रत्येक बड़े विश्वविद्यालय में प्रकृष्ट क्षमता वाले और होनहार छात्रों का एक 'महत्वपूर्ण (क्रान्तिक) समुदाय' होना चाहिए। इसी दृष्टि से,

(1) हर बड़े विश्वविद्यालय में पूर्वस्नातक अवस्था के लिए कुछ छात्रवृत्तियों की व्यवस्था होनी चाहिए। इससे उसे अपने स्नातकोत्तर कक्षाओं के लिए काफी संख्या में प्रतिभाशाली छात्र मिल जायेंगे। इन छात्रवृत्तियों में से लगभग आधी विश्वविद्यालय-क्षेत्र से बाहर वालों के लिए होनी चाहिए।

(2) बड़े विश्वविद्यालय के हर विभाग या संकाय में एक विशेष रूप से नियुक्त कार्मिक सलाहकार-समिति होनी चाहिए जो विश्वविद्यालय के नियुक्ति-अधिकारियों के निकट सहयोग से काम करे। अध्यापक-वर्ग की खोज राज्य या प्रदेश-विशेष तक ही समिति नहीं होनी चाहिए बल्कि यह खोज राष्ट्रव्यापी और एक दृष्टि से, विश्वव्यापी धरातल पर होनी चाहिए। जहां भी आवश्यक हो, चुने हुए उम्मीदवारों को कुछ अग्रिम वेतनवृद्धियां देना चाहिए। इससे भी अधिक महत्व की बात यह है कि उन्हें अनुसन्धान के अवसरों का अध्ययत-छुट्टी के अवसरों का और वृत्तिक उत्कर्ष-सिद्धि की सम्भावनाओं का पूरा-पूरा आश्वासन दिया जाना चाहिए। नियुक्तियों और तरक्कियों में नम्यता की गुंजाइश होनी चाहिए। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को हरेक विश्वविद्यालय में एक आकस्मिकता निधि की व्यवस्था कर देनी चाहिए जिसका उपयोग असाधारण रूप से होनहार और कृती व्यक्तियों को अधिक आकर्षक वेतन देने के लिए किया जा सकता है।

128. बड़े विश्वविद्यालयों में उच्च अध्ययन-केन्द्रों के 'समूह' स्थापित करना आवश्यक है। वे एक-दूसरे की शक्ति और समृद्धि बढ़ायेंगे और अन्तर्विद्या अनुसंधान को बढ़ावा देने में विशेष रूप से सहायक होंगे। अगले पांच से

दस वर्ष के भीतर इस तरह के लगभग पचास केन्द्रों की स्थापना हो जानी चाहिए जिनमें कुछ केन्द्र आधुनिक भारतीय भाषाओं के हों। इनमें कम-से-कम एक केन्द्र ऐसा अवश्य होना चाहिए जो शिक्षा के प्रति एक अंतर्विद्या-परक दृष्टिकोण को बढ़ावा देने पर अपना ध्यान केन्द्रित करे। अन्य महत्वपूर्ण क्षेत्र, जिनका समावेश होना है, कृषि, इंजीनियरी और आयुर्विज्ञान हैं।

129. (1) केन्द्र के प्रबंध की जिम्मेदारी उसके निदेशक पर होनी चाहिए और उसकी सहायता के लिए उसके सहकर्मियों की एक छोटी-सी किन्तु प्रतिनिधि समिति होनी चाहिए। यों कुल मिलाकर उस पर विश्वविद्यालय प्रबन्ध-परिषद् की निगरानी रहेगी ही।

(2) किसी विश्वविद्यालय के किसी विभाग को जब पहले-पहल उच्च-अध्ययन-केन्द्र बनाने के लिए चुना जाए तो उसकी कसौटी यह होनी चाहिए कि उसने अब तक कितना और कैसा काम किया है, अच्छे अध्ययन के लिए उसकी ख्याति होनी चाहिए, अनुसंधान के प्रति उसका योगदान होना चाहिए और उस में भावी विकास की संभावनाएं होनी चाहिए। चुनाव की प्रक्रिया कुछ इस स्तर की होनी चाहिए कि विश्वविद्यालयों का, और सामान्यतः समूचे शिक्षा-जगत का, उसमें विश्वास जम सके।

(3) उच्च-अध्ययन-केन्द्र होने का विशेषाधिकार निरन्तर अर्जित करना होगा और उसका पात्र बना रहना होगा। उच्च अध्ययन के प्रत्येक केन्द्र में एक विशेष अवधि के बाद—उदाहरण के लिए, हर तीन या पांच साल के बाद—एक निरीक्षण समिति का दौरा होना चाहिए जो उसकी उपलब्धियों की जांच-पड़ताल और मूल्यांकन करे। इस तरह की समितियों में विशिष्ट भारतीय, और जहां आवश्यक तथा सम्भव हो, विदेशी-विशेषज्ञ हुआ करें।

(4) विश्वविद्यालय में इस तरह के जो केन्द्र हों उन्हें चाहिए कि अन्य केन्द्रों के साथ तथा ऐसे विभागों के साथ जो उच्च अध्ययन के केन्द्र न हों, निकट सहयोग रखते हुए काम करें और कुछ ऐसे कदम उठाए जाने चाहिए कि विश्वविद्यालय का सारा अध्यापक-वर्ग बौद्धिक दृष्टि से प्रभावशाली समाज के रूप में काम कर सके।

(5) बड़े विश्वविद्यालयों को चाहिए कि निरन्तर अपना उत्कृष्टता-क्षेत्र बढ़ाने का प्रयत्न करते रहें। इस प्रयोजन के लिए, उनके यहां जितने केन्द्र हों उनके अनुपात में उन्हें अनुदान दिया जा सकता है। इस अनुदान का उपयोग विश्वविद्यालय के अन्य विभागों को उनके स्तर तक उठाने के लिए किया जाएगा :

(6) उच्च-अध्ययन-केन्द्रों को चाहिए कि अपने सम्बद्ध कालेजों के उपयुक्त प्राध्यापकों को अपने काम के निकट सम्पर्क में लाने का प्रयत्न करें।

130. बड़े विश्वविद्यालयों का आवर्ती और पूंजीगत दोनों खर्च विश्वविद्यालय अनुदान आयोग करेगा।

11.17-35 (316-322)

131 **अन्य विश्वविद्यालयों का सुधार**—बड़े विश्वविद्यालयों का उपयोग इस रूप में होना चाहिए कि वे अन्य विश्वविद्यालयों को तथा सम्बद्ध कालेजों को अच्छे अध्यापक दें। इस दृष्टि से,

(1) बड़े विश्वविद्यालयों के प्रतिभाशाली छात्रों को यह प्रेरणा देने का भरसक प्रयत्न किया जाना चाहिए कि वे अध्यापन-वृत्ति को अपनाएं और इनमें से अधिकतर को अपने कालेज और विश्वविद्यालय से इतर कालेजों और विश्वविद्यालयों में रखा जाना चाहिए ताकि वे स्तर ऊपर उठाने में सहायता दे सकें।

(2) विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को प्राध्यापक, रीडर, और प्रोफेसर—इन तीन स्तरों पर कई छात्रवृत्तियां देने की योजना चालू करनी चाहिए। ये छात्रवृत्तियां विशिष्ट योग्यता वाले लोगों को ही मिलनी चाहिए जो अन्यथा हमेशा के लिए इस वृत्ति को छोड़ जाएंगे। छात्र-वृत्तियां देने के बाद इन लोगों को विश्वविद्यालय के उपयुक्त विभागों में काम पर लगा दिया जाना चाहिए और इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि भरसक जल्दी-से-जल्दी उनकी नियुक्ति स्थायी जगहों पर कर दी जाए।

(3) विश्वविद्यालयों और सम्बद्ध कालेजों को भरसक इस बात का प्रोत्साहन मिलना चाहिए कि वे अपने नए अध्यापकों का चुनाव पहले से ही कर लें और एक नियत अवधि के लिए उन्हें किसी बड़े विश्वविद्यालय से सम्बद्ध कर दें।

(4) उच्च-अध्ययन-केन्द्रों के सदस्यों, आकांक्षी केन्द्रों के सदस्यों तथा अग्रणी विश्वविद्यालयों और विशिष्ट सम्बद्ध कालेजों के बीच अनुसंधान के विशेष क्षेत्रों से दृढ़ अन्तर-विश्वविद्यालयी सम्पर्क-सूत्रों की स्थापना होनी चाहिए।

(5) अन्य विश्वविद्यालयों तथा सम्बद्ध कालेजों के उदीयमान अध्येताओं और वैज्ञानिकों को निमंत्रण दिए जाएं कि वे उच्च अध्ययन के किसी केन्द्र में आकर अनुसन्धान करें और गोष्ठियों का संचालन करें। (यह व्यवस्था एक सत्र अथवा एक अधिवेशन के लिए हो सकती है)।

(6) अन्य विश्वविद्यालयों को पूरी-पूरी सहायता दी जानी चाहिए ताकि अपने साधनों को केन्द्रित करके कुछ चुने हुए विभागों में उत्कृष्टता की सिद्धि कर लें और अन्ततः उन्हें ऊंचा उठाकर उच्च-अध्ययन-केन्द्र के स्तर तक ले आए। 11.36-39 (322-324)

132. **सम्बद्ध कालेजों का विकास**—कुछ बहुत पुराने कालेज ऐसे हैं जिनका काम, गुण और परिणाम दोनों की दृष्टि से, किसी भी तरह किसी अच्छे विश्वविद्यालय से कम नहीं रहा और आज भी नहीं है। ऐसी संस्थाओं को प्रोत्साहित करना शिक्षा-नीति का एक उद्देश्य होना चाहिए। इस प्रकम में सहायता पहुंचाने के लिए निम्न-लिखित कदम उठाए जा सकते हैं :

(1) सम्बद्ध कालेजों का वर्गीकरण उनके काम के स्तर के अनुसार होना चाहिए और सहायता इस वर्गीकरण के अनुसार होनी चाहिए।

(2) जब किसी विशाल विश्वविद्यालय में कोई ऐसा प्रकृष्ट कालेज हो (या बहुत अच्छे कालेजों का एक छोटा-सा समुच्चय हो) जिसने अपने आप में बहुत ही स्पष्ट, सुरेख सुधार की क्षमता का परिचय दिया हो तो उसे स्वायत्त दर्जा देने के सवाल पर विचार किया जाना चाहिए। इस दर्जे का मतलब यह होगा कि वह अपने भरती के नियम बना सकेगा, अपने पाठ्यक्रम निर्धारित कर सकेगा, अपनी परीक्षाओं की व्यवस्था कर सकेगा आदि। मूल विश्वविद्यालय की भूमिका तब आम देखरेख और डिग्रियां प्रदान करने तक सीमित हो जाएगी। विश्वविद्यालयों के संविधानों में इस प्रकार के स्वायत्त कालेजों के स्वीकार किए जाने की व्यवस्था होनी चाहिए। चौथी पंचवर्षीय योजना के अन्त तक कम-से-कम पचास सर्वश्रेष्ठ कालेजों को इस श्रेणी में ले आना संभव होना चाहिए।

11.40-41 (324-325)

133. **अध्यापन और मूल्यांकन में सुधार**—(1) औपचारिक कक्षाओं का तथा प्रयोगशालाओं में काम करने का वक्त कुछ कम कर दिया जाना चाहिए। इस तरह से जो वक्त बचे उसे प्रशिक्षकों के मार्गनिर्देशन के अनुसार स्वतन्त्र अध्ययन में लगाया जाना चाहिए, निर्दिष्ट पठन-पाठन और निबन्ध-लेखन में, वैज्ञानिक और गणितीय समस्याएं हल करने में और ऐसी छोटी-छोटी अनुसंधान-परियोजनाओं में लगाया जाना चाहिए जिनमें विद्यार्थी स्वयं अपने काम की किताबें और प्रलेख खोजना और स्वतन्त्र रूप से उनका इस्तेमाल करना सीखें।

(2) विश्वविद्यालयों और कालेजों में अच्छे पुस्तकालय बनाने का भरसक प्रयत्न किया जाना चाहिए।

(3) सबसे महत्व की बात यह है कि हर विषय के अध्ययन में मौलिक चिन्तन पर बल दिया जाए और रट्टेबाजी पर अंकुश लगाया जाए।

(4) इस बात की संभावना होनी चाहिए कि स्नातक-पूर्व छात्र कभी-कभी वरिष्ठ तथा प्रकृष्ट अध्यापकों के सम्पर्क में आ सकें—खास तौर से तब जब किसी नए-नए विषय का पहले पहल प्रवर्त्तन करना हो।

(5) सामान्यतः विषय-वस्तु और गुणता दोनों की दृष्टि से व्याख्यानों में बहुत सुधार की जरूरत है। कक्षा के काम के स्तर-निर्धारण की एक कसौटी यह है कि एक घंटे के व्याख्यान को पचाने के लिए तीन-चार घंटे पढ़ने की जरूरत होनी चाहिए।

(6) यह नियम बन जाना चाहिए कि कोई भी अध्यापक एक वर्ष में 'सत्र-काल' के दौरान सात दिन से अधिक अपनी संस्था से अनुपस्थित नहीं रह सकता।

(7) जितनी भी नई नियुक्तियां हों, सब गर्मियों की छुट्टियों के दौरान होनी चाहिए ताकि अध्यापक शिक्षा-वर्ष के आरम्भ में अपनी जगह पर आ सकें। साथ ही जब तक कोई ऐसा कारण ही न हो जो विवश कर दे तो किसी भी अध्यापक को 'सत्र-काल' में एक संस्था छोड़कर दूसरी संस्था में नियुक्ति स्वीकार करने की इजाजत नहीं दी जानी चाहिए।

(8) प्रयोग की बहुत आवश्यकता है—विशेष रूप से दो महत्वपूर्ण क्षेत्रों में। इनमें से एक क्षेत्र का सम्बन्ध शिक्षा-व्यय में अथवा संकाय-सदस्यों की संख्या में आनुपातिक वृद्धि के बिना अधिक छात्रों की सँवार-सुधार से है। एक और वांछनीय प्रयोग यह होगा कि थोड़ा-बहुत अध्यापन-कार्य अनुसंधान-छात्रों से और पहला वर्ष पार कर लेने के बाद कुछ चुने हुए स्नातकोत्तर छात्रों से कराया जाए।

(9) उच्चतर शिक्षा के क्षेत्र में अध्यापन के तौर तरीकों की समस्या अब तक अपेक्षाकृत उपेक्षित रही है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को इस प्रयोजन के लिए एक विशेष समिति नियुक्त करके इसकी जांच करनी चाहिए। शिक्षा-पीठों को अध्यापन के तौर-तरीकों का विशेष अध्ययन करना चाहिए और यह अध्यापन स्कूल-स्तर के ही सन्दर्भ में न हो, विश्वविद्यालयों और सम्बद्ध कालेजों का भी उसमें समावेश होना चाहिए।

(10) सारे अध्यापन विश्वविद्यालयों में, बाह्य परीक्षाओं के स्थान पर स्वयं अध्यापकों द्वारा आन्तरिक और सतत मूल्यांकन की प्रणाली की प्रतिष्ठा होनी चाहिए।

(11) सम्बद्ध कालेजों वाले विश्वविद्यालयों में, बाह्य परीक्षा के पूरक के रूप में आन्तरिक मूल्यांकन की प्रणाली प्रतिष्ठित हो जानी चाहिए।

(12) विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को एक केन्द्रीय परीक्षा-सुधार यूनिट की स्थापना करनी चाहिए जो विश्वविद्यालयों के सहयोग से काम करे। कुछ विश्वविद्यालयों को परीक्षाओं में आमूल सुधार करने के लिए राजी किया जाना चाहिए और इसी काम के लिए इन विश्वविद्यालयों में विशेष यूनिटों की स्थापना की जानी चाहिए।

(13) गोष्ठियों, वाद-विवादों या कर्मशालाओं के बृहत् कार्यक्रम द्वारा विश्वविद्यालय अध्यापकों को नई दिशाओं में प्रवृत्त किया जाना चाहिए ताकि वे मूल्यांकन की नई और उन्नत तकनीकें अपनाएं।

(14) परीक्षकों को पारिश्रमिक देने की परम्परा का अन्त करने के लिए जल्दी-से-जल्दी कदस उठाए जाने चाहिए। इस दिशा में पहला कदम यह प्रतिबन्ध होना चाहिए कि कोई भी अध्यापक एक वर्ष में 500 से अधिक उत्तर-पुस्तिकाएं न जांचे। 11.42-57 (325-331)

134. **शिक्षा का माध्यम**—(1) दस वर्ष के एक क्रमबद्ध कार्यक्रम के अधीन विश्वविद्यालय-स्तर पर प्रादेशिक भाषाओं को शिक्षा के माध्यम के रूप में अपना लिया जाना चाहिए।

(2) स्नातक-पूर्व पाठ्यक्रम की पूर्ववर्ती अवस्था में अधिकांश शिक्षा प्रादेशिक भाषा के माध्यम से दी जा सकती है और स्नातकोत्तर अवस्था में अंग्रेजी के माध्यम से।

(3) उच्चतर शिक्षा के क्षेत्र में यथासमय सब अध्यापक भरसक ऐसे हो जाने चाहिए जो द्विभाषाविद् हों और स्नातकोत्तर छात्र ऐसे होने जो प्रादेशिक भाषा और अंग्रेजी दोनों में व्याख्यान समझ सकें और पाठ्यसामग्री का उपयोग कर सकें।

(4) अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में हिन्दी माध्यम से या देश के किसी भी ऐसे भाग में जहां उर्दू भाषी छात्रों की संख्या अच्छी-खासी हो, उर्दू के माध्यम से पढ़ाने वाले कालेज चलाने की अनुज्ञा ही नहीं मिलनी चाहिए, उन्हें हर तरह की प्रेरणा मिलनी चाहिए।

(5) तमाम आधुनिक भारतीय भाषाओं के विकास के लिए उच्च अध्ययन केन्द्रों की स्थापना होनी चाहिए। इनमें उर्दू के केन्द्र भी शामिल होने चाहिए।

(6) विश्वविद्यालय स्तर पर किसी भी भाषा को अध्ययन का अनिवार्य विषय नहीं बनाया जाना चाहिए परन्तु ऐच्छिक विषयों के रूप में भारत की प्राचीन और आधुनिक भाषाओं की पढ़ाई की व्यवस्था होनी चाहिए।

(7) विश्वविद्यालयों और कालेजों में अंग्रेजी के अध्ययन की पर्याप्त सुविधाएं होनी चाहिए। विश्वविद्यालयों में अंग्रेजी पढ़ाने के लिए विशेष यूनिटों की स्थापना होनी चाहिए जो अध्यापन की आधुनिक तकनीकों के द्वारा नए छात्रों को अंग्रेज़ी का अच्छा कामचलाऊ ज्ञान करा दें। स्नातक पाठ्यक्रम के पहले वर्ष में ऐच्छिक विषय के अन्तर्गत थोड़ी-बहुत अंग्रेजी पढ़ा देना भी श्रेयकर होगा।

(8) अंग्रेज़ी के अलावा और महत्वपूर्ण पुस्तकालय भाषाओं, विशेष रूप से रूसी भाषा, के व्यापक अध्यापन पर ज़ोर दिया जाना चाहिए। 11.58-61 (331-333)

135. **छात्र-सेवाएं**—छात्र-सेवाओं को केवल कल्याण कार्यों के रूप में ग्रहण नहीं किया जाना चाहिए। वे शिक्षा का अभिन्न अंग होती हैं। इनके अन्तर्गत नए छात्रों के अनुस्थापन का, स्वास्थ्य सेवाओं का, आवास-सुविधाओं का, मार्गदर्शन और परामर्श का, जिसमें व्यावसायिक सुस्थापन भी शामिल है, तथा छात्र-कार्यकलाप एवं वित्तीय सहायता का समावेश है।

(1) उच्चतर शिक्षा की सभी संस्थाओं को शिक्षा वर्ष के आरम्भ में अपने नए छात्रों के लिए अनुस्थापन-कार्यक्रमों का आयोजन करना चाहिए ताकि उन्हें स्थिति से अपना सामंजस्य करने में सुभीता हो। हर छात्र को किसी न किसी शैक्षिक सलाहकार के ज़िम्मे कर दिया जाना चाहिए जो उसे अपने कार्यक्रम और अध्ययन आयोजित करने में सहायता दे। अध्यापन-संकाय के हर सदस्य से यह अपेक्षा की जानी चाहिए कि वह छात्रों की एक टोली के शैक्षिक सलाहकार के रूप में कार्य करेगा।

(2) विश्वविद्यालयों और कालेजों में, उच्च प्राथमिकता के आधार पर, समुचित स्वास्थ्य-सेवाएं आयोजित करने के लिए कदम उठाए जाने चाहिए। छात्रों की स्वा-

स्थ्य-शिक्षा के लिए भी समुचित व्यवस्था होनी चाहिए। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग विश्वविद्यालय के अध्यापकों और छात्रों के उसी ढंग की स्वास्थ्य-सेवाएं आयोजित करने की संभावना पर विचार कर सकता है जिस ढंग की अंशदायी स्वास्थ्य-सेवाएं भारत सरकार के कर्मचारियों के लिए आयोजित की गई हैं।

(3) स्नातक-पूर्व स्तर पर कुल भरती के 25 प्रतिशत छात्रों के लिए और स्नातकोत्तर स्तर पर 50 प्रतिशत के लिए छात्रावास की भरसक जल्दी-से-जल्दी व्यवस्था होनी चाहिए।

(4) अनिवासी छात्रों में से लगभग 25 प्रतिशत के लिए दिवस-अध्ययन-केन्द्रों की व्यवस्था होनी चाहिए। जिनमें उपदान-प्राप्त अथवा सस्ते भाव वाले कैफेटेरिया का भी प्रबन्ध हो।

(5) प्रति एक हजार विद्यार्थियों के लिए कम-से-कम एक परामर्शदाता होना चाहिए। किसी-न-किसी विश्वविद्यालय में परामर्शदाताओं के प्रशिक्षण का भी आयोजन किया जाना चाहिए। हर विश्वविद्यालय में सीधे छात्र-अधिष्ठाता की देखरेख में एक मिला जुला सूचना और रोजगार-केन्द्र भी चालू हो जाना चाहिए।

(6) छात्रों के लिए सहपाठ्यचर्या-कार्यकलाप का एक समृद्ध एवं वैविध्यपूर्ण कार्यक्रम तैयार करना आवश्यक है और यह कार्यक्रम ऐसा होना चाहिए जिस पर सत्र-काल में ही नहीं छुट्टियों में भी अमल किया जाए।

(7) कल्याण-सेवाओं के प्रबन्ध के लिए छात्र-कल्याण का एक पूर्णकालिक अधिष्ठाता होना चाहिए।

11.62-72 (333-336)

136. **छात्र-संघ**—(1) हर विश्वविद्यालय को यह तय करना चाहिए कि उसके छात्र-संघ किस तरह काम करें क्योंकि इस क्षेत्र में यदि प्रयोग हों तो वह अच्छा ही है।

(2) छात्र-संघों की सदस्यता स्वतः सिद्ध होनी चाहिए किन्तु हर छात्र से यह अपेक्षा होनी चाहिए कि वह संघ में आयोजित कियाकलाप में से कोई एक चुन लेगा।

(3) पदाधिकारियों का चुनाव परोक्षतः विभिन्न छात्र-संस्थाओं द्वारा होना चाहिए। जो छात्र दो या दो से अधिक वर्ष तक एक ही कक्षा में रहे हों उन्हें अनर्ह करार दे दिया जाना चाहिए।

(4) अध्यापकों और छात्रों की संयुक्त समितियां स्थापित होनी चाहिए और छात्रों की वास्तविक कठिनाइयों का पता लगाने और उनका उपचार करने के लिए इन समितियों का भरपूर उपयोग किया जाना चाहिए।

(5) विश्वविद्यालयों और कालेजों के छात्र-संघों के प्रतिनिधियों की साल में एक बार बैठक बुलाने में और उसके लिए वित्तीय सहायता देने में विश्वविद्यालय-अनुदान आयोग को पहल करनी चाहिए। 11.73-76 (336-337)

137. **छात्रानुशासन**—(1) शिक्षा का लक्ष्य यह होना चाहिए कि उसके माध्यम से नवयुवक और नवयुवतियां शिष्ट व्यवहार के मानदण्डों से परिचित हो जायें और महत्वपूर्ण सामाजिक मूल्यों के प्रति अपने आपको समर्पित कर दें।

(2) अनुशासन हीनता की जिम्मेदारी किसी एक पक्ष पर नहीं, अनेकपक्षीय है और इसका तब तक कोई हल संभव नहीं जब तक हर पक्ष—छात्र, माता-पिता, अध्यापक राज्य-सरकारें और राजनीतिक दल सभी—अपने-अपने कर्त्तव्य का पालन न करें।

(3) छात्र-असन्तोष में योग देने वाली शिक्षागत कमियों को दूर करने के सच्चे प्रयत्न होने चाहिए और अनुशासन-हीनता की घटनाओं की रोकथाम के लिए एक समुचित सलाहकार एवं प्रशासनिक व्यवस्था की स्थापना होनी चाहिए।

(4) निश्चित अनुशासन की प्रेरणाएं एक तो संस्था जो अवसर देती है उनसे मिलती है और दूसरे छात्रों से उसके जो बौद्धिक-सामाजिक तकाजे होते हैं, उनसे। इसके साथ ही, छात्र-सेवाओं का और अच्छा स्तर भी आवश्यक है।

(5) विश्वविद्यालय के समग्र जीवन को एक और अखण्ड माना जाना चाहिए और अध्यापकों, छात्रों तथा प्रशासन के बीच वर्ग-विभाजन का निरीक्षण किया जाना चाहिए।

11.77-80 (337-338)

बारहवां अध्याय. उच्चतर शिक्षा : नामांकन और कार्यक्रम

138. **सुविधाओं का विस्तार**—उच्चतर शिक्षा में सुविधाओं का विस्तार मोटे तौर पर जनशक्ति की आवश्यकताओं और धन्धों के अवसरों के पारस्परिक सम्बन्ध से आयोजित करना चाहिए। वर्तमान प्रवृत्तियों के आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि पूर्व-स्नातक और स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों में नामांकन 1965-66 में लगभग 10 लाख से

बढ़ाकर 1985-86 में 40 लाख तक लाने होंगे। कृषि, इंजीनियरी या चिकित्सा जैसे वृत्तिक पाठ्यक्रमों में और स्नातकोत्तर स्तर पर सुविधाओं का विस्तार करना पड़ेगा। 12.02-09 (340-347)

139. **चुने हुए दाखिले**—क्योंकि उच्चतर शिक्षा की मांग उतनी से कहीं अधिक होगी जितनी के लिए प्रावधान किया जा सकता है या जितनी की जनशक्ति की आवश्यकताओं के आधार पर जरूरत है, अतः चुने हुए दाखिलों की कोई व्यवस्था अपनानी होगी। इस दृष्टिकोण से तीन उपाय काम में लाने होंगे।

— स्तरों की पर्याप्त ऊंचाई बनाए रखने के लिए प्रत्येक संस्था में मौजूद अध्यापकों और सुविधाओं के विचार से उपलब्ध स्थानों का निर्धारण;

— विश्वविद्यालयों द्वारा योग्यता का निर्धारण; और

— दाखिला चाहने वाले योग्यताधारी विद्यार्थियों में से सम्बन्धित संस्था द्वारा सर्वोत्तम विद्यार्थियों का चुनाव।

(1) यद्यपि जब तक चुनाव के और अच्छे तरीके तरीके निश्चित नहीं होते तब तक दाखिलों के लिए प्रमुख आधार के रूप में परीक्षा के अंकों का उपयोग चालू रह सकता हैं, तथापि उनकी निरपेक्षता और विश्वसनीयता के अभाव को यथासंभव भरने के लिए विद्यार्थियों को उनकी सामाजिक-आर्थिक अक्षमताओं के लिए उचित छूट दी जानी चाहिए ताकि चुनाव का आन्तरिक प्रतिभा से सीधा सम्बन्ध बन सके। अन्तिम चुनाव में ऐसी बातों पर भी विचार करना चाहिए, जैसे विद्यालय रेकार्ड और परीक्षा में जिनकी जांच न हुई हों उन क्षेत्रों में विद्यार्थी की क्षमता। यह सीमावर्ती मामलों में विशेष महत्वपूर्ण है। अपवाद-स्वरूप प्रसंगों में विश्वविद्यालयों को यह अधिकार होना चाहिए और उनमें इतना साहस होना चाहिए कि वे नियमों को परे हटा कर ऐसे विद्यार्थियों को दाखिला दे सकें जिनकी प्रतिभा पहचान ली गई है पर जो प्रवेश की आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर पाए हैं। उत्कृष्ट संस्थाओं के दाखिलों में यह पद्धति भी अपनायी जा सकती है जिसका प्रस्ताव छात्रवृत्तियों के प्रदान के हेतु 'स्कूल समूहों' के आधार पर विद्यार्थियों का चुनाव करने के लिए किया गया है।

(2) प्रत्येक विश्वविद्यालय में एक विश्वविद्यालय दाखिला बोर्ड गठित होना चाहिए जो दाखिलों के समस्त मामलों में विश्वविद्यालय को परामर्श दे।

(3) उच्चतर शिक्षा के विविध पाठ्यक्रमों के लिए उपयुक्त चुनाव पद्धतियों का विकास करने के लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को एक केन्द्रीय परीक्षण संगठन स्थापित करना चाहिए। 12.10-20 (347-350)

140. **अंशकालिक शिक्षा**—अंशकालिक शिक्षा (पत्राचार पाठ्यक्रम, सांध्य कालेज) के अवसरों का विपुल विस्तार करना चाहिए और उनमें विज्ञान और शिल्पविज्ञान के पाठ्यक्रम सम्मिलित होने चाहिए। 1986 तक उच्चतर शिक्षा के कुल नामांकन के लगभग एक तिहाई को पत्राचार कार्यक्रमों और सांध्य कालेजों की व्यवस्था के माध्यम से पढ़ाया जा सकता है। 12.21-22 (350-351)

141. **कालेजों का आकार**—सामान्य नीति ऐसी बड़ी संस्थाओं की स्थापना को प्रोत्साहन देने की होनी चाहिए जो अधिक दक्ष और किफायती होती प्रतीत हों। एक कालेज में सामान्यतः न्यूनतम नामांकन 500 होना चाहिए और जितने कालेजों में संभव हो उतने कालेजों में इसे बढ़ाकर 1,000 कर देना चाहिए। इस दृष्टिकोण से,

(1) वि० अ० आ० को, विशेष रूप से छोटे कालेजों के सन्दर्भ में, कालेजों के स्थानीकरण की योजना का अध्ययन करना चाहिए।

(2) कालेजों को सम्बद्ध न देने में विश्वविद्यालयों को नए कालेजों की स्थापना की बजाय विद्यमान कालेजों के विस्तार पर बल देना चाहिए।

(3) किसी नए कालेज को सम्बद्ध करने में यह सावधानी से देख लेना चाहिए कि उसकी स्थिति की योजना इस भांति बनाई जाए कि वह उसी की किसी विद्यमान संस्था की सम्यक वृद्धि में बाधक न बने। 12.23-26 (351-352)

142. **स्नातकोत्तर शिक्षा एवं अनुसंधान**—स्नातकोत्तर शिक्षा और अनुसंधान कार्य सामान्यतया या तो विश्वविद्यालयों में संगठित करना चाहिए या विश्वविद्यालय केन्द्रों में जहां, स्थानीय कालेजों के किसी समूह द्वारा उत्तम कार्यक्रम विकसित हो सके। स्नातकोत्तर स्तर पर नामांकनों की वृद्धि सर्वदा भौतिक और जन-साधनों की पर्याप्त वृद्धि पर निर्भर होनी चाहिए। दाखिले के लिए कठोर परीक्षण का आयोजन करना चाहिए और छात्रवृत्तियों की पर्याप्त संख्या (50 प्रतिशत विद्यार्थियों के

लिए) उपलब्ध होनी चाहिए और इनके पूरक रूप में ऋण-छात्रवृत्तियां होनी चाहिए। उच्चतर शिक्षा और अनुसंधान के लिए भारत सरकार को प्रायः एकान्त रूप से उत्तरदायी बना देना चाहिए। 12.27-31 (352-355)

143. **महिलाओं की शिक्षा**—(1) इस समय उच्चतर शिक्षा में महिला विद्यार्थियों का पुरुष विद्यार्थियों से अनुपात 1:4 हैं। विविध क्षेत्रों में शिक्षित महिलाओं की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए इस अनुपात को बढ़ाकर लगभग 1 : 3 कर देना चाहिए। इस उद्देश्य से, छात्रवृत्तियों और उपयुक्त किन्तु किफायती छात्रावास-स्थान का एक कार्यक्रम विकसित करना चाहिए।

(2) पूर्व-स्नातक स्तर पर, यदि स्थानीय मांग हो तो महिलाओं के लिए पृथक कालेज स्थापित किए जा सकते हैं। बहरहाल, स्नातकोत्तर स्तर पर पृथक संस्थाओं की कोई संगति नहीं है।

(3) कला, मानविकी, विज्ञान और शिल्पविज्ञान के पाठ्यक्रमों में महिला विद्यार्थियों का मुक्त प्रवेश होना चाहिए। गृह-विज्ञान, परिचर्या, शिक्षा और सामाजिक कार्य के पाठ्यक्रमों को विकसित करना जरूरी है क्योंकि ये कन्याओं में से अधिकांश को आकर्षित करते हैं। व्यापार-प्रशासन और प्रबन्धकार्य के उच्चतर प्रशिक्षण की सुविधाओं की भी व्यवस्था होनी चाहिए।

(4) विशेष रूप से महिलाओं की शिक्षा पर काम करने के लिए एक या दो विश्वविद्यालयों में अनुसन्धान एकक स्थापित किए जाने चाहिए।

12.32-34 (355-357)

144. **नए विश्वविद्यालय**—नए विश्वविद्यालयों की स्थापना अपरिहार्य है। चौथी योजना के अन्त तक, बम्बई, कलकत्ता, दिल्ली और मद्रास के महानगरों में दो-दो विश्वविद्यालय हो जाने चाहिए जो कुछ हद तक एक दूसरे के पूरक सिद्ध हों। अतिरिक्त विश्वविद्यालयों के लिए केरल और उड़ीसा की मांगें संगत हैं। उत्तर-पूर्व अंचल में एक विश्वविद्यालय की स्थापना के प्रस्तावों का उस अंचल के आर्थिक और सामाजिक विकास के अग्रसरण के प्रमुख उपाय के रूप में समर्थन किया जाना चाहिए।

145. नए विश्वविद्यालयों की स्थापना में निम्नांकित सिद्धान्तों पर दृष्टि रखनी चाहिए :

(1) किसी नए विश्वविद्यालय की स्थापना तभी संगत हो सकती है जब वह मानकों में, अनुसंधान के स्तर और फल में ठोस उन्नति की ओर ले जाए।

(2) जब तक विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की अनुमति न मिल जाए और धन राशि की समुचित व्यवस्था न हो जाए तब तक कोई नया विश्वविद्यालय चालू नहीं होना चाहिए।

(3) विश्वविद्यालय की स्थापना के पहले कदम के रूप में स्नातकोत्तर शिक्षा की सुविधाओं की व्यवस्था के लिए स्नातकोत्तर केन्द्रों द्वारा सहकारी प्रयत्न विकसित करना चाहिए। साधारणतः जिस स्थान में कुछ समय से कोई विश्वविद्यालय केन्द्र काम न करता रहा हो वहां नया विश्वविद्यालय स्थापित नहीं होना चाहिए।

(4) उत्तम विश्वविद्यालय संयठन वह हैं जहां विश्वविद्यालय के अन्तर्गत अध्यापन विभागों की सशक्त धुरी के साथ-साथ आस-पास के क्षेत्र में लगभग 30 सम्बद्ध कालेज हों।

(5) राज्य के समस्त सम्बद्ध कालेजों को संचालित करने के लिए राज्य के समस्त विश्वविद्यालयों को एक 'मण्डल' में एकत्र करने की संभावना का विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को अन्वेषण करना चाहिए।

(6) पहले उप-कुलपति की नियुक्ति और विश्व-विद्यालय के प्रत्यक्ष कार्यारम्भ के बीच दो या तीन वर्ष का समय बीत जाने देना चाहिए। इस दौरान उप-कुलपति की सहायता के लिए एक योजना बोर्ड होना चाहिए।

(7) कृतित्व और गुण के आधार पर समस्त राज्य स्थित विश्वविद्यालयों को मिलने वाली केन्द्रीय सहायता की राशि में वृद्धि के लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के हाथ में विशालतर साधन सौंपे जाने चाहिए।

12.35-43 (357-360)

146. **कलकत्ता विश्वविद्यालय**—तेज़ी से बढ़ने वाली पूर्व-स्नातक जनसंख्या से उत्पन्न कठिनाइयों का समाधान खोजने के उद्देश्य से राज्य सरकार विश्वविद्यालय अनुमान आयोग और भारत सरकार से परामर्श करके कलकत्ता विश्वविद्यालय की गतिविधि की जांच करा सकती है। 12.36 (357-358)

147. **अन्तर-विश्वविद्यालय संघटन**—प्रादेशिक और राष्ट्रीय स्तर पर विश्वविद्यालयों को मिल जुल कर सहकारी कार्यक्रम चलाने चाहिए और अपनी उपलब्ध सुविधाओं का, विशेषतः अनुसंधान की सुविधाओं का, परस्पर एक-दूसरे को लाभ देना चाहिए। विश्व-विद्यालय अनुदान आयोग का यह विशेष उत्तरदायित्व होना चाहिए कि वह ऐसे सहकारी और सहचारी कार्य-

क्रमों को प्रोत्साहन दे जो राज्य, प्रदेश एवं भाषागत दीवारों को लांघ सकें। 12.39 (358-359)

148. **पाठ्यक्रमों का पुनर्गठन**—(1) पहली उपाधि के लिए दिए जाने वाले विषयों के समुच्चय में कला और विज्ञान दोनों में आजकल की अपेक्षा अधिक लचीलापन होना चाहिए। उसे विद्यालय में पठित विषयों के साथ अनावश्यक कड़ाई से नहीं जोड़ा जाना चाहिए।

(2) पूर्व-स्नातक स्तर पर सामान्य, विशेष और आनर्स पाठ्यक्रम होने चाहिए। जिन विश्वविद्यालयों के पास बेहतर सुविधाएं हैं उनमें केवल विशेष अथवा सामान्य (आनर्स) पाठ्यक्रम रखे जाने चाहिए। सम्बद्ध कालेजों को यह विकल्प होना चाहिए कि वे या तो सामान्य—पास और आनर्स दोनों स्तरों—के पाठ्यक्रम रखें या विशेष पाठ्यक्रम। खर्चे में किफायत करने के लिए सामान्य (आनर्स) पाठ्यक्रमों और विशेष पाठ्यक्रमों के लिए न्यूनतम नामांकन निर्धारित कर देने चाहिए।

(3) मास्टर की उपाधि के पाठ्यक्रमों के संगठन में लचीलापन और नवीनता का समावेश करने की तत्काल आवश्यकता है। पाठ्यचर्याएं इस भांति तैयार की जानी चाहिए कि या तो सामान्य बृहदाधारी कार्यक्रम की व्यवस्था हो या एक या दो विशेष क्षेत्रों में गहन प्रशिक्षण की।

(4) पी-एच० डी० उपाधि के लिए विद्यार्थी से दो से लेकर तीन वर्ष तक कार्य करने की अपेक्षा होनी चाहिए और इसे उसकी अनुसंधान-चर्या का प्रारम्भ मानना चाहिए, उत्कर्ष नहीं। पी-एच० डी० पाठ्यक्रम के प्रथम वर्ष में मास्टर की उपाधि के स्तर पर तैयारी की अपर्याप्तता को पूरा करने के लिए विद्यार्थी को उच्च प्रकार के भाषणों और ट्यूटोरियलों में उपस्थित होना चाहिए।

(5) पी-एच० डी० पाठ्यक्रमों के लिए विद्यार्थियों का बड़ी सावधानी से चुनाव होना चाहिए और एक काल सीमा निर्धारित कर देनी चाहिए जिसके भीतर विद्यार्थी अपना शोध-प्रबंध अवश्य प्रेषित कर दे। एक ही समय में एक ही अध्यापक द्वारा निर्देशित विद्यार्थियों की संख्या भी सीमित कर देनी चाहिए।

(6) पी-एच० डी० उपाधि के मूल्यांकन की पद्धति में सुधार होना चाहिए, शोध-प्रबन्ध का सम्यक् प्रतिपादन उपाधि की अनिवार्य मांगों में माना जाना चाहिए।

(7) एक अन्य विश्व-भाषा का अध्ययन समस्त पी-एच० डी० विद्यार्थियों के लिए आवश्यक और कुछ विषयों में मास्टर की उपाधि के लिए अनिवार्य माना जाना चाहिए।

(8) यह वांछनीय है कि मान्य अनुसंधान कार्य के आधार पर उच्चतम अवदान के रूप में डाक्टर आफ साइन्स की उपाधि स्थापित हो।

(9) जिन विश्वविद्यालयों में सम्बन्धित विषयों के उपयुक्त रूप से सुसज्जित विभाग हों उनमें अन्तर्विद्या अध्ययन को प्रोत्साहन देने के विशेष प्रयत्न करने चाहिए। इस लक्ष्य के अग्रसरण के लिए एक बृहदाधारी स्टाफ-व्यवस्था की भी आवश्यकता है। 12.44-51 (360-363)

149. **सामाजिक विज्ञान**—भारतीय विश्वविद्यालयों और अनुसंधान संस्थानों में सामाजिक विज्ञानों को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाना चाहिए। इस दृष्टिकोण से :

— सामाजिक विज्ञान पाठ्यक्रमों में समुचित छात्र-वृत्तियां रखी जानी चाहिए;

— पहली उपाधि के स्तर पर विषयों का वरण लचीला होना चाहिए और विद्यार्थियों के लिए यह सम्भव होना चाहिए कि वे सामाजिक विज्ञान के अध्ययन को विषयों के किसी भी अन्य समूह के साथ समाविष्ट कर सकें;

— सामाजिक विज्ञान के विकास के लिए विश्वविद्यालयों को मिलने वाली वित्तीय सहायता में काफी वृद्धि होनी चाहिए; और

— कतिपय विश्वविद्यालयों में सामाजिक विज्ञानों के अनुप्रयुक्त समूहों के लिए उच्च स्तरीय विद्यालय या उच्च अध्ययन केन्द्र विकसित करने चाहिए। 12.52-56 (363-365)

150. **क्षेत्रीय अध्ययन**—कुछ चुने हुए विश्वविद्यालयों और संस्थानों में क्षेत्रीय अध्ययन का सार्थक और प्रभावी कार्यक्रम विकसित करने का प्रयास करना चाहिए। ऐसे कार्यक्रम में सम्बन्धित क्षेत्रों की भाषाओं के गहन पाठ्यक्रमों की और गहन अध्ययन के लिए चुने हुए विभिन्न क्षेत्रों के संदर्भ में कतिपय सामाजिक विज्ञान विषयों के प्रश्नपत्रों के वैकल्पिक समूहों की आवश्यकता होगी। घनिष्ठ अन्तर-विद्या सहचरण भी आवश्यक होगा। 12.57 (365)

151. **मानविकी का अध्ययन**—मानविकी को सईल बनाने की आवश्यकता पर जितना बल दिया जाए,

थोड़ा है। विज्ञान की शिक्षा में हमें अनिवार्य रूप से विवश होकर अग्रणी देशों के विकास पर निर्भर रहना होगा जिनकी हम दृष्ट भविष्य में होड़ नहीं रख पाएंगे। सन्तुलन बनाए रखने के लिए, हमारे विद्वानों को सामाजिक और शिक्षाशास्त्रीय विज्ञान और मानविकी अध्ययन के क्षेत्रों में मानव ज्ञान और अनुभव के भण्डार में सार्थक योगदान करने की चेष्टा करनी चाहिए क्योंकि हमारी प्राचीन परम्पराएं और सामाजिक विकास द्वारा प्रस्तुत वर्तमान चुनौतियां इन क्षेत्रों में सर्जनात्मक कार्य करने के अद्वितीय अवसर देती हैं। 12.58-59 (365-366)

152. **शिक्षा विषयक अनुसन्धान**—शिक्षा विषयक अनुसन्धान का विकास करने के लिए और उसे प्रभावी रूप से शिक्षा नीतियों के निर्धारित करने और शिक्षा की उन्नति से सम्बद्ध करने के लिए तत्काल कदम उठाने पड़ेंगे। इस दृष्टिकोण से, निम्नांकित कार्यक्रमों को विकसित करने की जरूरत है :

(1) रा० शै० अ० प्र० प० में शैक्षिक अनुसन्धान से सम्बन्धित एक राष्ट्रीय सूचना-वितरण-केन्द्र और एक प्रलेख-केन्द्र विकसित करना चाहिए।

(2) शिक्षा विषयक अनुसन्धान का विकास दलों में और अन्तर्विद्या क्षेत्रों में करना होगा। यद्यपि सभी प्रशिक्षण कालेजों को कुछ-न-कुछ अनुसन्धान करना चाहिए, तथापि शिक्षा विषयक अनुसन्धान को प्रशिक्षण कालेजों में आबद्ध करने से उसकी वृद्धि में रुकावट आई है। शिक्षा विद्यालयों का यह विशेष दायित्व होगा कि वे अन्य विभागों के सहयोग से बड़े पैमाने पर शिक्षा विषयक अनुसन्धान का विकास करें।

(3) शिक्षा विषयक चिन्तन और अनुसन्धान के प्रोत्साहन के लिए, मोटे तौर पर राष्ट्रीय विज्ञान संस्थान के ही अनुरूप, एक राष्ट्रीय शिक्षा अकादेमी की स्थापना करना वांछनीय है जिसमें प्रख्यात शिक्षाशास्त्री समाविष्ट हों। यह मूलतः एक गैर-सरकारी, वृत्तिक संस्था हो। पर इसे भारत सरकार से समुचित वित्तीय सहारा मिलना चाहिए।

(4) अनुसन्धान के प्रोत्साहन के लिए, शिक्षा मंत्रालय में एक शिक्षा अनुसन्धान परिषद स्थापित होना चाहिए।

(5) विवरण की तैयारी, सांख्यिकी विश्लेषण और परामर्श की सेवाओं के प्रावधान की और अनुसंधान कार्य के लिए उत्तम विशेषीकृत प्रशिक्षण की तत्काल आवश्यकता है।

(6) राष्ट्रीय स्तर पर रा० शै० अ० प्र०प० का और राज्य-स्तर पर राज्यों के शिक्षा संस्थानों का यह दायित्व होगा कि वे प्रचलित विद्यालय व्यवहारों और शैक्षिक अनुसंधान के बीच की गम्भीर खाई को पाटें। उच्चतर शिक्षा के क्षेत्र में ऐसी ही भूमिका विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को निभानी होगी।

(7) शिक्षा विषयक अनुसंधान पर होने वाले कुल खर्च में काफी वृद्धि करनी होगी। लक्ष्य यह हो कि शिक्षा पर राजकीय खर्च का लगभग एक प्रतिशत अनुसंधान पर खर्च हो। 12.60-65 (366-368)

तेरहवां अध्याय. विश्वविद्यालयों का अभिशासन

153. विश्वविद्यालयों को प्रबन्ध और संगठन विषयक ऐसी कार्यविधियां बनानी चाहिएं जो उनके विशिष्ट कार्यों तथा उद्देश्यों के अनुकूल हों। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को चाहिए कि वह विश्वविद्यालयों में, वहां की प्रबन्ध व्यवस्था और शैक्षिक प्रशासन की समस्या का अध्ययन करने के लिए, बनाए जाने वाले दलों के संगठन को बढ़ावा दे। 13.02 (369-370)

154. **विश्वविद्यालय स्वायत्तता**—विश्वविद्यालय स्वायत्तता का समुचित क्षेत्र विद्यार्थियों का चयन, अध्यापकों की नियुक्ति और पदोन्नति अध्ययन पाठ्यक्रमों तथा शिक्षण पद्धतियों के निर्धारण एवं अनुसंधन के क्षेत्रों तथा समस्याओं के चयन में सन्निहित हैं। 13.05 (370-371)

155. **विश्वविद्यालय की आंतरिक स्वायत्तता**—(1) विद्यालय निकायों में शिक्षेतर लोगों का प्रतिनिधित्व मुख्य रूप से समग्र समाज के व्यापक हितों की विश्वविद्यालय के समक्ष प्रस्तुत करने के लिए किया जाना चाहिए, उन्हें थोपने के लिए नहीं।

(2) विश्वविद्यालयों को अपने विभागों को पर्याप्त स्वायत्तता देनी चाहिए। विश्वविद्यालय के अभिशासन में इस सिद्धान्त को मान्यता और महत्व मिलना चाहिए कि अच्छे विचार प्रायः छोटे अधिकारियों के मस्तिष्क की उपज होते हैं। विभागाध्यक्ष के सभापतित्व में प्रत्येक विभाग में स्थापित की जाने वाली प्रबन्ध सीमित को और भी व्यापक प्रशासनिक और वित्तीय अधिकार सौंपे जाने चाहिए।

(3) कालेजों की स्वाधीनता और स्वायत्तता की भी उसी भावना से आदर तथा मान्यता दी जानी चाहिए जिस भावना की अपेक्षा विश्वविद्यालय इस सम्बन्ध से अपने विषय में करता है।

(4) सामान्य समस्याओं तथा कठिनाइयों पर विचार विमर्श करने के लिए प्रत्येक विभाग में और प्रत्येक कालेज में अध्यापकों तथा छात्रों की संयुक्त समितियों की और संस्था अध्यक्ष के समापतित्व में एक केन्द्रीय समिति की स्थापना होनी चाहिए। विश्वविद्यालयों की विद्या परिषद् तथा कोर्ट से भी विद्यार्थियों के प्रतिनिधियों को शामिल किया जाना चाहिए। 13.9 (371-372)

156. भारत में विश्वविद्यालय स्वायत्तता की परम्परा काफी मजबूत रही है और उचित समय पर ही इसे पुष्ट कर लिया जाना चाहिए। इसके लिए सरकार, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, अंतर्विश्वविद्यालय बोर्ड और स्वयं विश्वविद्यालयों पर विशेष जिम्मेदारियां आ जाती हैं। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित बातों पर विशेष रूप से जोर दिया जाना चाहिए।

(1) प्रशिक्षित किए जाने वाले विद्यार्थियों की संख्या अध्ययन पाठ्यक्रम और व्यावहारिक अनुसंधान के सम्बन्ध में फैसले करने के लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, अंतर्विश्वविद्यालय बोर्ड तथा सरकार के बीच विचार-विमर्श के लिए उपयुक्त संगठन का विकास किया जाना चाहिए।

(2) विश्वविद्यालय स्वायत्तता के पक्ष में सशक्त लोकमत जगाने में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, अंतर्विश्वविद्यालय बोर्ड और बौद्धिक वर्ग के लोगों को महत्वपूर्ण योग देना है।

(3) अपने बौद्धिक तथा सार्वजनिक दायित्वों का प्रभावपूर्ण रीति से निर्वाह करके विश्वविद्यालयों को लगातार अपनी स्वायत्तता अर्जित करते रहना और अपने आपको उसके योग्य बनाए रखना होगा।

13.10-15 (373-376)

157. **विश्वविद्यालयों की वित्तव्यवस्था**—(1) राज्य सरकारों को चाहिए कि वे विश्वविद्यालयों के लिए पर्याप्त वित्तीय साधन प्रदान करदें और उनके उपयोग विषयक नियमों तथा कार्यविधियों को सरल बना दें।

(2) विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को इस योग्य बना दिया जाना चाहिए कि वह राज्यीय विश्वविद्यालयों को विकास तथा भरण दोनों प्रकार के अनुदान दे सकें।

(3) विश्वविद्यालयों के विकास व्यय का विश्वविद्यालय अनुदान आयोग और राज्य सरकारों के बीच उपयुक्त रीति से बटवारा होना चाहिए।

(4) राज्य सरकारों द्वारा वचनबद्ध व्ययविषयक अनुदान न दिए जाने से कुछ विश्वविद्यालयों अनुदान आयोग को कदम उठाने चाहिए।

(5) राज्य सरकारों द्वारा विश्वविद्यालयों को सहायक अनुदान देने की पद्धति को, एकमुश्त अनुदानों की एक उपयुक्त पद्धति के आधार पर पुनर्गठित कर दिया जाना चाहिए।

(6) विश्वविद्यालय अनुदान आयोग आवधिक पुनर्विलोकन के बाद जो सलाह दे उसके आधार पर विश्वविद्यालयों की वित्तव्यवस्था को एक सुदृढ़ आधार पर खड़ा किया जाना चाहिए।

(7) विश्वविद्यालयों को **प्रत्यक्ष** सरकारी हस्तक्षेप और **प्रत्यक्ष** सार्वजनिक उत्तरदायित्व से भी मुक्त रखा जाना चाहिए। 13.16-31 (376-380)

158. **उपकुलपतियों का योगदान और उनकी नियुक्ति**—(1) उपकुलपति का चयन संबद्ध विश्वविद्यालय के हाथ में ही छोड़ दिया जाना चाहिए, परन्तु फिलहाल इस कार्य के लिए वर्तमान 'दिल्ली' आदर्श या उसका कोई अभीष्ट परिवर्तित रूप अपनाया जा सकता है। उपकुलपति का चयन करने वाली समिति के सदस्य ऐसे हों जो अपनी श्रेष्ठता तथा सत्यनिष्ठा के लिए प्रसिद्ध हों और उनमें से कोई व्यक्ति यदि विश्वविद्यालय से संबद्ध हो तो इस पर भी कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। परन्तु शर्त यह है कि वह व्यक्ति विश्वविद्यालय का वैतनिक अधिकारी न हो।

(2) किसी विश्वविद्यालय के पहले पांच वर्षों में उपकुलपति की नियुक्ति का अधिकार विजिटर (दिग्दर्शक) कुलपति को प्राप्त होना चाहिए।

(3) उपकुलपति अनिवार्यतः ऐसा व्यक्ति होना चाहिए, जो या तो प्रख्यात शिक्षाविद् हो या प्रख्यात पंडित हो और जिसे प्रशासन करने का पर्याप्त अनुभव भी हो।

(4) उपकुलपति की कार्याविधि पांच वर्ष होनी चाहिए और उसे किसी के विश्वविद्यालय में दो कार्याविधियों से अधिक समय तक नियुक्त नहीं रखा जाना चाहिए।

(5) उपकुलपतियों के सभी पदों की पूर्णकालिक तथा वैतनिक बना दिया जाना चाहिए।

(6) उपकुलपति की निवृत्ति की आयु पैंसठ वर्ष होनी चाहिए और अखिल भारतीय ख्याति वाले असाधा-

रण योग्यतासंपन्न व्यक्तियों को ही इस नियम का अपवाद बनाया जाना चाहिए ।

(7) किसी उपकुलपति के निवृत्ति होने से यथा-संभव कोई एक वर्ष पहले ही यदि उसका उत्तराधिकारी नामित किया जा सके तो इससे लाभ होगा ।

(8) विश्वविद्यालय के सुचारु कार्य संचालन के लिए उपकुलपति को पर्याप्त अधिकार स्वतः प्राप्ति होने चाहिए ।

13.32-40 (380-382)

159. **विश्वविद्यालयों के लिए विधान**—(1) कोर्ट को विश्वविद्यालय का नीति निर्धारक निकाय होना चाहिए । उसके एक सौ से अधिक सदस्य नहीं होने चाहिए जिनमें से लगभग आधे बाहरी होने चाहिए

(2) कार्यकारी परिषद् में पंद्रह से बीस तक सदस्य होने चाहिए जिनमें से आधे आंतरिक होने चाहिए, आधे बाह्य, उपकुलपति उसका सभापति होना चाहिए ।

(3) अध्ययन पाठ्यक्रम तथा स्तर निर्धारण का एक मात्र अधिकार विद्या परिषद् को होना चाहिए ।

(4) यदि विद्या परिषद् की बैठकें अधिक जल्दी-जल्दी होना संभव व हो तो तात्कालिक मामले निबटाने का भार उक्त परिषद की एक स्थायी समिति को सौंप दिया जाना चाहिए ।

(5) प्रत्येक विश्वविद्यालय में, दैनंदिन प्रशासन से पृथक स्थायी आयोजन तथा मूल्यांकन के लिए एक शिक्षा योजना बोर्ड होना चाहिए ।

(6) दीक्षांत समारोहों के कार्यक्रम और कार्यविधि के प्रश्न पर विचार करने के लिए अन्तर्विश्वविद्यालय बोर्ड को एक समिति नियुक्त कर देनी चाहिए ।

(7) राज्यों के राज्यपाल अपने-अपने राज्य के सभी विश्वविद्यालवों के विजिटर (दिग्दर्शक) होने चाहिए और उन्हें विश्वविद्यालय के मामलों में प्रत्यक्ष निरीक्षण अथवा जांच-पड़ताल का अधिकार प्राप्त होना चाहिए ।

(8) भारत में इस समय प्रचलित विश्वविद्यालय विषयक विधान पर पुनर्विचार करने और की गई सिफारिशों के अनुसार उसमें आवश्यक सुधार करने की दिशा में शिक्षा मंत्रालय तथा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को पहल करनी चाहिए ।

(9) विश्वविद्यालय का विधान पर्याप्त सामान्य शब्दावली में तैयार किया जाना चाहिए ।

(10) एक ऐसा उपयुक्त संगठन स्थापित कर लिया जाना चाहिए जिसके माध्यम से, विश्वविद्यालयों से संबंधित विधान अधिनियमित किया जाने से पहले उसके विषय में, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग शिक्षा मंत्रालय और राज्य सरकारों के बीच त्रिपक्षीय विचार विमर्श किया जा सके । 13.41-48 (382-385)

160. **विश्वविद्यालय और अदालतें**—भारत सरकार सर्वोच्च न्यायालय से एक ऐसी उपयुक्त नीति निर्धारित कर देने के लिए प्रार्थना कर सकती है जिससे विश्वविद्यालय स्वायत्तता और उच्च शिक्षा का सम्यक् विकास बनाए रखने में सहायता प्राप्त हो सके ।

13. 49-51 (385-386)

161. **सम्बद्ध कालेज**—(1) विश्वविद्यालयों को संबद्ध राज्य सरकार से परामर्श कर लेने के बाद ही कालेजों का संबंधन करना चाहिए ।

(2) राज्य के सभी उपकुलपतियों की एक ऐसी समिति बना ली जानी चाहिए जो संबद्ध कालेजों को सहायक अनुदान देने के बारे में शिक्षा विभाग को सलाह देती रहे ।

(3) कालेजों के संबंधन विषयक सभी मामलों में विश्वविद्यालय को सलाह देने के लिए, संबंधन करने वाले प्रत्येक विश्वविद्यालय में संबद्ध कालेजों की एक परिषद् होनी चाहिए ।

(4) कालेजों का संबंधन करने और समय-समय पर उनका निरीक्षण करने वाले वर्तमान तंत्र को मजबूत बनाया जाना चाहिए ।

(5) संबंधन को ऐसा एक विशेषाधिकार माना जाना चाहिए जिसे लगातार अर्जित करके अपने आपको उसके योग्य बनाए रखने की जरूरत हो ।

(6) निरीक्षण कार्यक्रम के समुचित संगठन के हेतु, संबंधन करने वाले प्रत्येक विश्वविद्यालय में एक छोटे से केन्द्रक कर्मचारी वर्ग लिए मंजूरी दे देने का प्रश्न विचारार्थ विश्वविद्यालव अनुदान आयोग को सौंपा जा सकता है ।

(7) उपलब्ध सुविधाओं के अनुपात में ही कालेजों में छात्रों को प्रवेश देना वह एकमात्र सर्वाधिक महत्वपूर्ण सुधार है जिससे संबद्ध कालिजों का स्तर ऊपर उठावा संभव है । 13. 52-60 (386-389)

162. **सरकारी कालेज**—(1) कालेजों के प्रबंध

के लिए स्थानीय परिस्थितियों तथा परंमपराओं के अनुरूप विभिन्न तरीके सोचे जा सकते हैं। उदाहरणार्थ, इस काम के लिए एक पृथक कालेज शिक्षा निदेशालय की स्थापना की जा सकती है या राज्य के सभी सरकारी कालिजों के लिए एक स्वायत्तशासी संगठन स्थापित किया जा सकता है या प्रत्येक कालेज की प्रबन्ध व्यवस्था का भार एक स्वायत्तशासी प्रबंधक मंडल को सौंपा जा सकता है। 13.57-58 (388)

163. **गैर-सरकारी कालेज**—(1) एक ऐसी नीति अपनाई जानी चाहिए जिसके अनुसार वास्तव में अच्छी गैर-सरकारी संस्थाओं को अपेक्षाकृत अधिक स्वाधीनता और सहायता दी जा सके।

(2) सहायक अनुदानों के परिकलन और उनकी अदायगी की क्रियान्वितविधि को दिए गए सुझावों के आधार पर सरल बना दिया जाना चाहिए।
13.59-60 (388-389)

164. **अन्तर्विश्वविद्यालय बोर्ड**: (1) सभी विधिक विश्वविद्यालय और विश्वविद्यालय मानी गई संस्थाएं स्वत: इस बोर्ड की सदस्य बन जानी चाहिए।

(2) भारत में किसी भी विधिक विश्वविद्यालय द्वारा अथवा विश्वविद्यालय मान ली गई संस्था द्वारा दी गई उपाधियों तथा सनदों को और सभी विधिक विश्वविद्यालयों तथा विश्वविद्यालय मान ली गई संस्थाओं द्वारा स्वत: मान्यता प्राप्त हो जानी चाहिए।

(3) अन्तर्विश्वविद्यालय बोर्ड को वित्तीय दृष्टि से मजबूत बनाया जाना चाहिए ताकि वह विश्वविद्यालयों के लिए और उनकी ओर से कुछ परामर्श, अनुसंधान तथा सेवा कार्यों का भार भी अपने ऊपर ले सकें।
13.62-66 (390-391)

165. **विश्वविद्यालय अनुदान आयोग**—(1) समस्त उच्चतर शिक्षा को एक ही अभिन्न इकाई माना जाना चाहिए और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को अन्तत: उच्चतर शिक्षा का सर्वांगीण प्रतिनिधित्व करना चाहिए। परन्तु, फिलहाल यह अधिक उचित होगा कि कृषि, इंजीनियरी और चिकित्सा विषयक शिक्षा के लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की तरह के अलग-अलग संगठन स्थापित कर दिए जाएं और एक ऐसा तन्त्र भी स्थापित कर दिया जाए जो प्रभावशाली रीति से उनके बीच समन्वय कर सके।

(2) विश्वविद्यालय अनुदान आयोग में बारह से पंद्रह तक सदस्य होने चाहिए। उनमें से एक-तिहाई से अधिक सरकारी अधिकारी नहीं होने चाहिए और कम-से-कम एक-तिहाई सदस्य विश्वविद्यालयों से लिए जाने चाहिए। उनमें एक ऐसे व्यक्ति के समावेश पर भी आपत्ति नहीं होनी चाहिए जो उपकुलपति पद पर काम कर रहा हो।

(3) विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के लिए उचित यह रहेगा कि वह ऐसी कुछ स्थायी समितियों के माध्यम से काम करने का परिपाटी बनाले जिन्हें कुछ विशिष्ट महत्वपूर्ण दायित्व के निर्वाह के लिए स्थापित किया जाए।

(4) विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा नियुक्ति निरीक्षण समितियों को प्रत्येक तीन वर्ष की अवधि के उपरान्त प्रत्येक विश्वद्यालय का निरीक्षण करना चाहिए और यह काम अधिक गहराई और विस्तार पूर्वक किया जाना चाहिए।

(5) विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को काफी धनराशि दी जानी चाहिए ताकि वह परिकल्पित दायित्वों तथा बड़ी और गंभीर समस्याओं का प्रभावशाली ढंग से समाधान करने में समर्थ हो सके।

(6) स्तरों के समन्वय का काम तब की भांति आगे भी एक ही निकाय, अर्थात्, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के हाथ में रहना चाहिए। अत: राज्यीय विश्वविद्यालय अनुदान आयोगों की स्थापना नहीं की जानी चाहिए।
13.67-76 (391-394)

चौदहवां अध्याय. कृषि शिक्षा

166. कृषि-शिक्षा का कार्यक्रम शिक्षा के तीन मूल-तत्वों—अध्यापन, अनुसंधान और विस्तार में अत्यन्त प्रभावी एवं घनिष्ट सम्बन्ध पर आधारित होना चाहिए।
14.01-06 (398-400)

167. **कृषि विश्वविद्यालय**—प्रत्येक राज्य में न्यूनतम एक कृषि विश्वविद्यालय होना चाहिए।

(1) सब कृषि विश्वविद्यालयों को चाहिए कि वे अपने अध्ययन क्षेत्र को कृषि के परम्परागत विशेष विषयों से आरम्भ कर उसे धीरे-धीरे इतना व्यापक बनाएं कि आज की आवश्यकतानुसार सभी विशेषीकृत विषय उनके क्षेत्र के अन्तर्गत आ जाएं।

(2) कृषि विश्वविद्यालयों और राज्यों के कृषि विभागों के बीच उत्तरदायित्व की सीमा स्पष्टत: निर्धारित

की जानी चाहिए। अनुसंधान, शिक्षा और विस्तार के सभी कार्यक्रमों का पूर्ण उत्तरदायित्व विश्वविद्यालयों को अपने साथ में लेना चाहिए।

(3) स्नातकोत्तर कार्य कृषि विश्वविद्यालयों की स्पष्ट विशेषता होनी चाहिए, इसके लिए उनके पास समुचित रीति से प्रतिनिधि स्टाफ होना चाहिए। स्नातकोत्तर स्तर पर विशेषतः अब तक उपेक्षित विषयों में अधिक विद्यार्थी प्रविष्ट करने चाहिए। परन्तु स्तरों को ऊंचा बनाए रखने के लिए कार्य का विस्तार प्राप्य कार्मिकों की संख्या और सुविधा पर निर्भर करना चाहिए और किसी भी संस्था को तब तक स्नातकोत्तर शिक्षा का कार्य हाथ में नहीं लेना चाहिए जब तक उसके पास शिक्षा और अनुसंधान के लिए पर्याप्त समन्वित सुविधाएं न हों।

(4) केन्द्रीय अनुसंधान संस्थाओं जैसे भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान भारतीय पशु चिकित्सा अनुसंधान संस्थान राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान और कृषि विश्वविद्यालयों को स्नातकोत्तर शिक्षा का मुख्य केन्द्र बनाया जाना चाहिए। इन संस्थाओं में परस्पर तथा इन सबका भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के साथ घनिष्ठ सहयोग रहना चाहिए।

(5) स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों में प्रवेश केवल कृषि स्नातकों तक ही सीमित नहीं रहना चाहिए। कृषि संबंधी अनुसंधान और शिक्षा की उन्नति के लिए अधिकतम व्यापक क्षेत्र की प्रतिभाओं का सदुपयोग करना चाहिए।

(6) विद्यार्थियों को स्वतन्त्र अध्ययन करने और उन्हें शीघ्रातिशीघ्र अनुसंधान क्षेत्र में प्रविष्ट कराने के लिए प्रत्येक विश्वविद्यालय में पर्याप्त स्टाफ के साथ एक सुसज्जित पुस्तकालय होना चाहिए।

(7) समन्वित और समस्या व उत्पादन-अभिमुख अनुसंधान परियोजनाएं जो हाल ही में भारतीय अनुसंधान परिषद ने बनाई हैं, और आगे विकसित की जानी चाहिए।

(8) साधारणतः प्रथम उपाधि का पाठ्यक्रम स्कूल के दस वर्ष के अध्ययन के पश्चात् पांच वर्ष का होना चाहिए।

(9) **अध्यापक** : यथासंभव अधिकतम अध्यापकों का कार्यक्रम इस प्रकार बनाया जाना चाहिए कि उन्हें कक्षा में अध्यापन का, प्रयोगशाला अनुसंधान और प्रायोगिक अनुसंधान का तथा खेतों में किसान के साथ काम करने का समन्वित अवसर मिले।

(10) विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के वेतनमान कृषि विश्वविद्यालयों में लागू होने चाहिए और सेवा की परिस्थितियों में भी सुधार होना चाहिए।

(11) किसी भी संकाय के कार्यकर्त्ताओं की संख्या आवश्यकताओं और स्टाफ की कोटि पर निर्भर होना चाहिए न कि किसी कठोर सोपानात्मक संगठन के आधार पर। संकाय के अन्तर्गत पदोन्नति केवल योग्यता एवं गुणों के आधार पर होनी चाहिए।

(12) संकायों को पर्याप्त शैक्षणिक स्वतन्त्रता होनी चाहिए।

(13) बाह्य-परीक्षाओं का महत्व घटाया जाना चाहिए और उन्हें यथासंभव शीघ्र समाप्त कर देना चाहिए।

(14) पांच या छह उच्चकोटि के केन्द्रों में तुरन्त अध्यापकों के प्रशिक्षण का कार्यक्रम बड़े पैमाने पर आरंभ होना चाहिए और इसके लिए विज्ञान और कृषि के स्नातकों को आकर्षक छात्रवृत्तियां दी जानी चाहिए।

(15) **विद्यार्थी** : दी गई छात्रवृत्तियों की संख्या कृषि विद्यालयों के विद्यार्थियों की कुल संख्या के 25 प्रतिशत से न्यून नहीं होनी चाहिए।

(16) प्रतिभावान विद्यार्थियों को आकर्षित करने के लिए कृषि स्नातकों को दिए जाने वाले वर्तमान वेतनमानों में सुधार होना चाहिए।

(17) **फार्म** : प्रत्येक विश्वविद्यालय के पास लगभग एक हजार एकड़ का सुप्रबन्ध-युक्त फार्म जिसमें न्यूनतम 500 एकड़ भूमि पर कृषि कार्य हो, रहना चाहिए।

(18) **स्थानबद्धता** : विश्वविद्यालय के सुप्रबन्धयुक्त निदर्शन फार्म पर विद्यार्थी को उपाधि देने के पूर्व एकवर्ष तक स्थानबद्ध करने की संभावना पर विचार करना चाहिए।

(19) **संख्या, आकार और संगठन** : प्रत्येक राज्य में एक कृषि विद्यालय खोलने के कार्यक्रम में वर्तमान विश्वविद्यालयों को कृषि विश्वविद्यालय में रूपान्तरित करने की संभावना का भी अध्ययन करना चाहिए।

(20) जब कि साधारणतः कुछ प्रयोग करने दिए जाएं, यह आवश्यक है कि सभी कृषि विश्वविद्यालयों को एक महत्वपूर्ण सिद्धान्तों का पालन करना चाहिए, यानी, विश्वविद्यालय का बिना किसी सम्बन्ध वाहरी कालेज के एक ही स्थान पर केन्द्रित होना। और अपवाद स्वरूप

कारणों से विश्वविद्यालय को अपने केन्द्र स्थान से बाहर के किसी कालेज का उत्तरदायित्व लेना आवश्यक हो जाए तो इन कालेजों को एकीकृत प्रशासन के साथ संघटक कालेज का रूप दे देना चाहिए।

14.07-34 (400-407)

168. **कृषि के विकास में अन्य विश्वविद्यालयों का योगदान**—(1) जो अन्य विश्वविद्यालय कृषि शिक्षा आरम्भ करना चाहें उन्हें पूरी सहायता दी जाए।

(2) कुछ भारतीय शिल्पविज्ञान संस्थानों और कृषि विद्यालयों में शैक्षिक सम्बन्धों का विकास होना चाहिए इस कार्य के अन्तर्गत उदाहरणार्थ विद्यार्थियों और स्टाफ का आदान-प्रदान तथा अध्ययन और अनुसंधान के सामान्य कार्यक्रम आ सकते हैं।

(3) एक या दो भारतीय शिल्पविज्ञान संस्थानों और अग्रगण्य विश्वविद्यालयों में कृषि संकायों का गठन करने कुछ की संभावना पर विचार करना चाहिए।

14.35 (407-408)

169. **कृषि कालेज**—(1) नए कृषि कालेज नहीं खोले जाने चाहिए और स्नातक तथा स्नातकोत्तर विद्यार्थियों का प्रशिक्षण कृषि विश्वविद्यालयों में होना चाहिए।

(2) जिस विश्वविद्यालय में कृषि कालेज संघटक कालेजों के रूप में हैं उस विश्वविद्यालय को पुष्ट कृषि संकाय के विकास के लिए सहायता मिलनी चाहिए।

(3) प्रत्येक कृषि कालेज के पास सुप्रबन्धयुक्त न्यूनतम 200 एकड़ का फ़ार्म होना चाहिए।

(4) कृषि कालेजों का पंचवर्षीय निरीक्षण भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के संयुक्त तत्वाधान में होना चाहिए, और जिन कालेजों के स्तर समुचित न पाए जाएं उनसे सम्बन्ध कर दिया जाए। कुछ कालेजों में उपाधि पाठ्यक्रम आरम्भ किए जा सकते हैं।

14.36-37 (408-409)

170. **कृषि पालिटेक्निक**—(1) उत्तर-मैट्रिक स्तर के कृषि पॉलिटेक्निकों की स्थापना को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। ये कृषि विश्वविद्यालयों से संबंधित बड़ी संस्थाएं होनी चाहिए जिनमें लगभग 1,000 विद्यार्थी रहें। तात्कालिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मुख्यतः ग्रामीण परिसर में स्थित वर्तमान पॉलिटेक्निकों में नए पाठ्यक्रमों की वृद्धि की जा सकती है।

(2) पॉलिटेक्निक बहुद्देश्य संस्थाएं होनी चाहिए जिनमें कृषि और सम्बन्धित क्षेत्रों में आवश्यक अनेक विषयों का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। जब कि इनके संगठन में पर्याप्त नम्यता हो सकती है, पाठ्यक्रमों में विशेष क्रियात्मक दृष्टिकोण रखना आवश्यक है। पाठ्यक्रम मुख्यतः शिक्षान्त प्रकृति के होने चाहिए जिसके पश्चात् विशिष्ट व्यवसाय में काम प्राप्त हो सके। साथ ही अत्यन्त प्रतिभावान विद्यार्थी को आगे की पढ़ाई द्वारा उच्चतर शिक्षा प्राप्त करने का पर्याप्त अवसर होना चाहिए। कुछ समय पश्चात् पॉलिटेक्निकों में कुछ संक्षिप्त पाठ्यक्रम, विशेषतः युवक किसानों के लिए तथा ग्रामीण लड़कियों और महिलाओं के लिए, भी रखे जाने चाहिए।

14.38-43 (409-410)

171. **स्कूलों में कृषि शिक्षा**—(1) प्राथमिक और अवर माध्यमिक स्तरों पर कृषि में व्यावसायिक योग्यता की प्राप्ति के लिए प्रशिक्षण देने के प्रयत्न विफल रहे हैं, अतः इस दिशा में और प्रयत्न बन्द कर देना चाहिए।

(2) संकीर्ण व्यावसायिक शिक्षा के स्थान पर स्कूलों को अच्छी सामान्य शिक्षा—जिसमें विज्ञान और गणित पर विशेष बल हो—देनी चाहिए। यही शिक्षा हमारी भावी कृषि में अनिवार्यतः होने वाले परिवर्तनों का सामना करने की समुचित तैयारी होगी।

(3) जूनियर कृषि स्कूलों की स्थापना के प्रस्ताव में अनेक कठिनाइयां हैं, और ये कदाचित ही अपना उद्देश्य सिद्ध कर सके अतः यह प्रस्ताव त्याज्य है।

14.44-49 (410-412)

172. **सामान्य शिक्षा के अंग के रूप में कृषि शिक्षा**—(1) सभी प्राथमिक स्कूलों में—चाहे वे नगरों में विद्यमात हों—कृषि की और अनुस्थापना को सामान्य शिक्षा का अभिन्न अंग बनाया जाना चाहिए।

(2) स्कूल अवस्था में कार्य-अनुभव को भी शिक्षा का महत्वपूर्ण अंग बनाया जाना चाहिए।

(3) कालेजों और विश्वविद्यालयों में पूर्वस्नातक और स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों के ग्रामीण और कृषि समस्याओं की ओर अनुस्थापन किया जाना चाहिए। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग और अन्य अधिकारियों को इस विषय में समुचित कदम उठाने चाहिए।

(4) इसी प्रकार कृषि और ग्राम-समस्याओं की ओर अनुस्थापन सभी अध्यापक प्रशिक्षण कार्यक्रमों में भी रहना चाहिए। 14.50 51 (412-413)

173. **विस्तार कार्यक्रम**—(1) ग्राम स्तर कर्मचारियों या ग्राम सेवकों और उनके सहायक कर्मचारियों की व्यवसायात्मक या तकनीकी योग्यता बढ़ाने के लिए कृषि विश्वविद्यालय और पॉलिटेक्निकों को चाहिए कि अपना विशेषज्ञ स्टाफ उनके लिए प्रस्तुत करें या विशेष पाठ्यक्रम संगठित कर उनकी पूरी सहायता करें।

(2) जब संभरण सेवाओं का विस्तार सेवाओं से प्रस्तावित पृथक्करण हो जाए तब विस्तार-कार्य के भाग को विश्वविद्यालयों को हस्तान्तरित कर दिया जाए, परन्तु साथ ही विस्तार कार्य, संभरण और कृषि विभाग की अन्य सेवाओं में घनिष्ट संपर्क बना रहे।

(3) ध्येय यह होना चाहिए कि विस्तार कार्य के लिए प्रत्येक सामुदायिक विकास खण्ड में एक प्राथमिक विस्तार केन्द्र स्थापित हो जो अपने सेव्य क्षेत्र से साइकिल की दौड़ के भीतर हो। यह आवश्यक है कि इन केन्द्रों का स्टाफ अपने क्रियात्मक ज्ञान में शिक्षित किए जाने वाले किसानों की अपेक्षा दक्ष हो और इस स्टाफ को विश्वविद्यालय की विस्तार सेवाओं से प्रबलतम सहायता और मार्गदर्शन प्राप्त हो।

(4) सामान्यतः कृषि संबंधी शिक्षा देने के विस्तार कार्य में सफल कृषकों का अधिकतर उपयोग किया जाना चाहिए।

(5) प्राथमिक विस्तार केन्द्रों के पाठ्यक्रमों में भाग लेने वाले किसान को प्रोत्साहित किया जाए कि वह अपने ग्राम में कृषक अध्ययन-गोष्ठी स्थापित करे।

(6) किसानों और ग्राम-समुदाय को शिक्षित करने के लिए रेडियो, सिनेमा फिल्म और अन्य दृश्य-श्रव्य सामग्री का अधिकतम उपयोग किया जाना चाहिए।

14.52-67 (413-416)

174. **जनशक्ति आवश्यकताएं**—कृषि विकास के लिए जनशक्ति आवश्यकताओं के अधिक परिशुद्ध प्राक्कलन तैयार करने चाहिए। इस बीच में आगामी दस वर्षों में स्नातकों का उत्पादन कम से कम दुगुना करने का प्रबल प्रयत्न किया जाए और इतने ही डिप्लोमाधारी तैयार किए जाएं। 14.68-69 (417-419)

175. **भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग का योगदान**—सुनिश्चित रूप से शिक्षा, अनुसन्धान और विस्तार कार्यों में समेकित दृष्टिकोण के आधार पर कृषि शिक्षा आरम्भ कराने का उत्तरदायित्व भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् को सौंपा जाना चाहिए।

(2) भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद द्वारा इस संबंध में अपना उत्तरदायित्व पूर्ण किए जाने के लिए परिषद की एक स्थायी समिति किसी लब्धप्रतिष्ठ विद्वान वैज्ञानिक की अध्यक्षता में स्थापित की जाए।

(3) उक्त स्थायी समिति के सदस्यों में कुछ सदस्य विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के भी सदस्य होने चाहिए और उन्हें चाहिए कि वे कृषि की उच्चतर शिक्षा का एक सामान्य कार्यक्रम बनाए। 14.70-71 (419-420)

पन्द्रहवां अध्याय. व्यावसायिक, तकनीकी तथा इंजीनियरी शिक्षा

176. (1) इस बात को पूरा करने के लिए कि 1986 तक अवर माध्यमिक स्तर पर छात्रों की संख्या का 20 प्रतिशत और कक्षा के आगे 50 प्रतिशत अंशकालिक या पूर्णकालिक रूप से व्यावसायिक तथा वृत्तिक पाठ्यक्रमों में जाया करे, सामूहिक तथा सतत प्रोग्राम आवश्यक है।

(2) स्कूल स्तर पर व्यावसायिक शिक्षा पाठ्यक्रम मुख्य रूप से शिक्षांत होना चाहिए, परन्तु विशेष प्रतिभाशाली बच्चों के लिए यह अवसर मिलना चाहिए कि वह मूल्य शिक्षा प्रणाली में जाकर आगे पढ़ सके।

(15.02-10 425)

177. **अर्ध-कुशल तथा कुशल कामगारों का प्रशिक्षण**—(1) भारतीय शिल्पविज्ञान संस्थानों में सुविधाओं का और विस्तार होना चाहिए, यहां तक कि चौथी योजना में कम से कम दुगनी जगह हो जानी चाहिए। पाठ्यक्रमों में कुछ हेर फेर के साथ न्यूनतम प्रवेश आयु को घटाकर 14 कर देना चाहिए।

(2) जूनीयर तकनीकी स्कूलों का नाम तकनीकी हाई स्कूल रख देना चाहिए और विद्यमान, तकनीकी हाई स्कूलों के साथ-साथ उनमें भी शिक्षित पाठ्यक्रम चालू करना चाहिए। शिक्षुता अधिनियम की आवश्यकताएं पूरी करने के लिए उपलब्ध समय का और अधिक उपयोग किया जाना चाहिए। इन पाठ्यक्रमों को चलाने में काफी स्वतन्त्रता तथा प्रयोग की छूट दे देना चाहिए।

(3) तथा तकनीकी स्कूलों का प्रशिक्षण उत्पादन-अभिमुख होना चाहिए।

(4) उपलब्ध सुविधाओं का अच्छा उपयोग करने के लिए पोलीटेक्निकों में कक्षा 10 से कम वाले छात्रों के प्रवेश के लिए कुशल कामगार प्रशिक्षण कार्यक्रम खोले जाने चाहिए।

(5) स्कूल से निकलकर रोजगार में लगने वालों के लिए व्यावसायिक तथा तकनीकी प्रशिक्षण की सुविधाओं को बढ़ाना चाहिए। ये सुविधाएं अंशकालिक, सप्ताह में कुछ दिन वाले, पत्राचार, सैंडविच या लघु-सघन पाठ्यक्रमों द्वारा बढ़ाई जा सकती है। इन पाठ्यक्रमों को चलाने में थोड़ी स्वतन्त्रता या छूट देना अच्छा रहता है।

15.12-18 (425-427)

178. **तकनीशियन प्रशिक्षण**—(1) इंजीनियरों और तकनीशियनों का समस्त अनुपात 1 : 1.4 से 1975 तक 1 : 2.5 और 1986 तक 1 : 3 या 4 तक हो जाना चाहिए।

(2) सबसे पहले कार्य-विश्लेषण तथा तकनीशियनों की जिम्मेदारी तथा कौशल के स्तर की विशिष्टताओं को ध्यान रखते हुए, उद्योग के सहयोग से समय-समय पर अनुसंधान किए जाने चाहिए। इनके परिणामों के आधार पर तकनीशियनों के प्रशिक्षण के पाठ्यक्रमों में संशोधन करना चाहिए।

(3) डिप्लोमा प्रशिक्षण में औद्योगिक अनुभव शामिल कर उसे और अधिक प्रायोगिक बनाया जाना चाहिए। यह प्राथमिक प्रशिक्षण या तो किसी परियोजना का या समस्या-अभिमुख प्रकार का होना चाहिए।

(4) पोलीटेक्निक केवल औद्योगिक क्षेत्रों में खोले जाने चाहिए। ग्रामीण क्षेत्रों में मौजूद पोलीटेक्निकों में कृषि तथा कृषि-उद्योगों से सम्बद्ध पाठ्यक्रम चालू करना चाहिए।

(5) पोलीटेक्निकों में अधिक-से-अधिक शिक्षक उद्योग से लिए जाने चाहिए और इसके लिए आवश्यक हो तो शैक्षिक योग्यताओं में ढील भी दी जा सकती है। वेतन का आधार केवल शैक्षिक योग्यता ही नहीं होना चाहिए।

(6) अधिक-से-अधिक वास्तविक अवस्थाओं में प्रशिक्षण देने के लिए, विद्यार्थियों तथा स्टाफ को अवकाश में सरल औज़ारों द्वारा उत्पादन कार्य करना चाहिए। इससे तैयार औजार या माध्यमिक स्कूलों में दिया जा सकता है या फिर बेचा जा सकता है।

(7) पोलीटेक्निकों में विशेषकर प्रथम दो वर्षों में विज्ञान तथा गणित के शिक्षण पर ज़ोर दिया जाना चाहिए। तकनीशियन के पाठ्यक्रमों में औद्योगिक मनोविज्ञान और प्रबन्ध, लायत तथा अनुमान का प्रारम्भिक ज्ञान शामिल होना चाहिए।

(8) उपयोग के सहयोग से पोलीटेक्निकों को अधिक से अधिक सैंडविच प्रकार के अथवा अंतः स्थापित पाठ्यक्रम अपनाने चाहिए।

(9) देश में डिप्लोमा प्राप्त लोगों की कम गतिशीलता या स्थानान्तरण को देखते हुए चौथी और पांचवी योजनाओं के दौरान पोलीटेक्निकों में पाठयक्रम स्थानीय आवश्यकताओं के आधार पर रखे जाएं परन्तु देश की कुल आवश्यकताओं को भी ध्यान में रखा जाए।

(10) सभी पोलीटेक्निकों में सार्टिफिकेट तथा डिप्लोमा स्तरों पर लड़कियों के लिए विशेष पाठ्यक्रम चालू किए जाएं और अवर माध्यमिक पाठ्यक्रम पूरा करने वाली लड़कियों को उसमें जाने के लिए प्रोत्साहन दिया जाए।

(11) पोलीटेक्निकों में वर्तमान ऊंची व्यर्थता दर को कम-से-कम करने के लिए सभी प्रयत्न किए जाएं और मौजूदा पोलीटेक्निकों का इष्टतम आकार तक विस्तार किया जाए।

(12) कुछ चुने हुए पोलीटेक्निकों में उद्योग में कुछ वर्ष अनुभव प्राप्त तकनीशियनों के लिए पश्च-डिप्लोमा होना चाहिए जिससे वे उच्चतर स्तर तकनीशियन बन सकें।

15.19-32 (427-430)

179. **अन्य व्यावसायिक शिक्षा**—(1) उच्चतर माध्यमिक स्तर पर (कक्षा 11 और कक्षा 12) पोलीटेक्निकों के साथ-साथ, व्यापारिक, लिपिक (क्लेरिकल), वैज्ञाविक तथा औद्योगिक और लड़कियों के लिए विशेष रुचि वाले क्षेत्रों में कई तरह के रोचक पाठ्यक्रम चालू किए जा सकते है। इसका पूरा-पूरा उपयोग किया जाना चाहिए।

(2) तकनीकी हाई स्कूलों तथा पोलीटेक्निकों से निकलने वालें विद्यार्थियों को इस बात की और बढ़ाना चाहिए कि वे अपने छोटे-छोटे उद्योग खोल लें या दूसरों के साथ मिलकर समुदाय के लिए आवश्यक सुविधाए, उद्योग तथा लघु वर्कशाप खोल लें।

15.33-36 (430-431)

180. **इंजीनियरों की शिक्षा**—(1) सभी संस्थानों को जो कि निर्धारित मान तक नहीं पहुंचते हैं, सुधारना चाहिए, तकनीशिवनों के प्रशिक्षण के संस्थानों में वदल देना चाहिए या फिर बन्द कर देना चाहिए।

(2) इंजीनियरिंग की कुछ चुनी हुई शाखाओं जैसे

इलेक्ट्रोनिक्स और यंत्रविनियोग के लिए, पाठ्यक्रमों में थोड़ा हेर-फेर करके अच्छी योग्यता वाले बी० एस-सी० के विद्यार्थियों की भरती को बढ़ावा देना चाहिए।

(3) इंजीनियरी संस्थानों में विज्ञान तथा शिल्प-विज्ञान संकाय के स्टाफ में वेतनमान की असंगति को दूर करना चाहिए। प्रत्येक संकाय में कुछ पद दूसरी संकाय के अच्छी योग्यता वाले व्यक्तियों के लिए सुरक्षित रहना चाहिए।

(4) डिग्री कक्षाओं के पूर्णकालिक विद्यार्थियों के लिए प्रायोगिक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम के तीसरे वर्ष से शुरू होना चाहिए। इसे अच्छी तरह तैयार करना चाहिए और उद्योग के सहयोग से इसका पर्यवेक्षण होना चाहिए। जहां सम्भव हो सैंडविच प्रकार के पाठ्यक्रमों को अपनाना होना चाहिए।

(5) वर्कशाप अभ्यास को और उत्पादन-अभिमुख चाहिए।

(6) बदलती हुई आवश्यकताओं के अनुसार डिग्री और डिप्लोमा पाठ्यक्रमों में विभेदीकरण करना चाहिए।

(7) शिल्पविज्ञान के कालेजों तथा संस्थानों को उद्योग की आवश्यकताओं के बारे में अधिक जागरूक बनाने के लिए सरकार या उद्योग द्वारा चलाए गए अनुसंधान डिसाइन परियोजनाओं को पाठ्यचर्या में शामिल कर लेना चाहिए।

(8) विशेषज्ञ समितियों की सहायता से पाठ्यक्रमों को बराबर संशोधित करते रहना चाहिए और उनको लागू करने में कठोरता नहीं अपनानी चाहिए।

(9) नए क्षेत्रों, जैसे इलेक्ट्रोनिक्स, उपकरण शिल्प-विज्ञान जिसमें स्वचलन विज्ञान भी शामिल है, रासायनिक शिल्पविज्ञान, वैमानिकी तथा एस्ट्रोनाटिक्स, और परमाणु शक्ति उत्पादन, में नये पाठ्यक्रमों के विकास तथा जन-शक्ति के अनुमान का पहले ही सावधानी से आयोजन कर लेना चाहिए।

(10) **शिक्षक**—शिक्षकों को उद्योग को सलाह देने की स्वतन्त्रता होना चाहिए। दूर-दूर तक ग्रीष्मकालीन संस्थान खोले जाने चाहिए।

(11) इंजीनियरी वृत्ति को आकर्षक बनाने और यह सुनिश्चित करने के लिए कि अच्छी योग्यता वाले इंजीनियर अपने जीवन की काफी अवधि तक शिक्षण तथा अनुसंधान में लगे रहें उपयुक्त वेतन मान दिए जाना चाहिए।

(12) शिल्पविज्ञान के संस्थानों में स्नातक तथा स्नातकोत्तर विद्यार्थियों के लिए बड़े पैमाने पर शिक्षक प्रशिक्षण प्रोग्राम चालू होना चाहिए। ऐसे सभी पाठ्यक्रमों में "संसार की दूसरी भाषा" जैसी रूसी या जर्मन, की पढ़ाई शामिल होंगी चाहिए। उच्चतर शिक्षा के केन्द्रों वाली योजना में शिल्पविज्ञान क्षेत्र भी शामिल कर लेना चाहिए।

(13) केवल वृत्तिक कारणों को छोड़कर सरकारी कालेजों के शिक्षकों तथा प्रिंसिपल का बार-बार स्थानान्तरण नहीं किया जाना चाहिए।

(14) **साज-सामान**—उपयुक्त समय पर विदेशी मुद्रा दिए जावे और आवश्यक साज-सामान जमा करने की ओर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए।

(15) पोलीटेक्निकों को ऐसा परिष्कृत साज-सामान जो साल में कुछ ही दिनों काम आता हो नहीं लेना चाहिए।

(16) संस्थानों को आयात किए हुए साज-सामान के स्थान पर कोई प्रतिरूप तैयार कर लेना चाहिए।

(17) **स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम**—इस पाठ्यक्रमों में प्रवेश के लिए उद्योग में कम-से-कम एक साल का अनुभव जरूरी होना चाहिए। इन पाठ्यक्रमों को चलाने में पूर्ण एकरूपता की कोशिश नहीं करना चाहिए।

(18) इस स्तर पर अनुसंधान उद्योग की समस्याओं पर केन्द्रित होना चाहिए। स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों में आने वाले छात्रों में अधिक से अधिक संख्या उद्योग से आने वालों की होनी चाहिए।

(19) पी० एच० डी० की अनुसंधान डिग्री के अलावा उद्योग में वृत्तिक विकास कार्य करने वालों को डाक्टर की नियमित डिग्री दी जानी चाहिए।

(20) पाठ्यक्रमों के अव्यवस्थित गुणन को रोकना चाहिए और अधिक विशेषित पाठ्यक्रमों का स्थान निर्धारण राष्ट्रीय स्तर पर होना चाहिए।

(21) इंजीनियरी कालेजों में सीटों के लिए प्रति-व्यक्ति शुल्क वाली पद्धति बन्द कर देना चाहिए।

181. **जनशक्ति की मांग**—(1) सभी स्तरों पर तकनीकी जनशक्ति की मांग का अनुमान लगाने के लिए और सक्रिय तथा सही अध्ययन की आवश्यकता है। नई प्रशिक्षण सुविधाएं खोलने और पाठ्यक्रमों में प्रवेश को इन पूर्वानुमानों के साथ जोड़ देना चाहिए।

(2) निकट भविष्य में, सभी स्तरों पर वर्तमान ऊंची व्यर्थता दर को हटाने और शिक्षा का स्तर सुधारने की ओर ध्यान दिया जाना चाहिए। उपलब्ध सुविधाओं को इष्टतम आकार तक फैलाना चाहिए और रोजगार में आए लोगों के लिए अंशकालिक पाठ्यक्रम शुरू किया जाना चाहिए।

(3) तकनीकी संस्थानों के विद्यार्थियों के सामाजिक आर्थिक पृष्ठभूमि में आजकल पाए जाने वाले भेद को शहरी तथा देहाती क्षेत्रों के माध्यमिक स्कूलों के शैक्षिक स्तर में समानता लाकर और ठीक प्रवेश परीक्षाएं अपना कर कम किया जा सकता है।

182. **शिक्षा का माध्यम**—माध्यमिक तथा पोली-टेक्निक अवस्थाओं में क्षेत्रीय भाषा ही शिक्षा का माध्यम होना चाहिए। उच्च स्तरों पर इसका प्रयोग विज्ञान संकायों में इसकी स्थिति के हिसाब से होना चाहिए। क्षेत्रीय भाषाओं में अच्छी तकनीकी पाठ्यपुस्तकें तैयार करने के बारे में सक्रिय कार्य की आवश्यकता है।

15.65 (438-439)

183. **प्रायोगिक प्रशिक्षण**—केन्द्रीय सरकार की प्रायोगिक प्रशिक्षण योजना में शिक्षणार्थियों तथा औद्योगिक संस्थाओं या विभागों का चुनाव सावधानी से करना चाहिए। प्रशिक्षण स्थानों की संख्या बढ़ाई जानी चाहिए। यदि किसी कारण से सरकारी क्षेत्र की कुछ संस्थाओं द्वारा चलाए गए स्कूल बन्द होने को हों तो केन्द्रीय सरकार को उन्हें अपने हाथ में ले लेना चाहिए।

184. **उद्योग से सहयोग**—प्रशिक्षण सुविधाएं देने वाली औद्योगिक संस्थाओं के लिए उपदान की केन्द्रीय योजना चालू की जानी चाहिए। इस उद्योग या उद्योगों के समूह में उपयुक्त योग्यता वाले प्रशिक्षण अधिकारियों की नियुक्ति होनी चाहिए।

185. **वृत्तिक समितियां**—वृत्तिक संस्थाओं द्वारा ली जाने वाली सभी परीक्षाओं के उपयुक्त स्तर को बनाए रखने के लिए पर्याप्त पूर्वोपाय किए जाने चाहिए। इन वृत्तिक समितियों का उच्चतर माध्यमिक स्तर (कक्षा 11 और 12), पर, कई तरह के अंशकालिक तकनीकी पाठ्यक्रमों को चलाने के निर्धारित प्रोग्रामों में, सहयोग प्राप्त करना चाहिए।

15.71-73 (440)

186. **पत्राचार पाठ्यक्रम**—पत्राचार द्वारा कई तरह के व्यावसायिक तथा तकनीकी पाठ्यक्रम चालू करने के बारे में फौरन शुरूआत की जानी चाहिए। परन्तु व्यापक रूप से इस माध्यम को अपनाने में पहले बहुत अच्छी तैयारी तथा परीक्षण करने की आवश्यकता है।

15.74-75 (440)

187. **प्रशासन**—(1) तकनीकी शिक्षा के लिए यू. जी. सी. जैसी एक संस्था होनी चाहिए। इसका अध्यक्ष पूर्णकालिक होना चाहिए और इसमें वि० अ० आ० वृत्तिक संस्थाओं, उद्योग तथा सम्बन्ध मंत्रालयों के प्रतिनिधि होने चाहिए।

(2) शिल्प विज्ञान के संस्थानों तथा ऐसे अन्य संस्थानों को अपने व्यक्तिगत नाम और विशेषताएं रखते हुए भी विश्वविद्यालय का पूरा दरजा दे देना चाहिए।

(3) स्कूली शिक्षा के बोर्डों के खण्ड के रूप में राज्य स्तर पर तकनीकी शिक्षा निदेशालय खोले जाने चाहिए। अन्य बातों के साथ इनको स्टाफ की भर्ती के पूरे अधिकार होने चाहिए जिससे कई क्रियाविधि सम्बन्धी विलम्ब दूर हो सकें।

(4) क्षेत्रीय इंजीनियरी कालेजों के गवर्नरों के बोर्डों के अध्यक्ष प्रसिद्ध शिक्षार्थियों की नामावली से लिए जाने चाहिए।

(5) कालेजों के प्रिंसिपलों को, वित्तीय सीमा तथा नीति सम्बन्धी मार्गनिर्देशन के अन्दर रखते हुए, अन्य अधिकारों के साथ अपने संस्थानों में शैक्षिक सुविधाएं बढ़ने के बारे में निर्णय लेने का पूरा अधिकार होना चाहिए।

15.76-86 (440-442)

सोलहवां अध्याय. विज्ञान की शिक्षा और अनुसंधान

188. **सामान्य सिद्धान्त**—राष्ट्र की प्रगति, कल्याण एवं सुरक्षा विज्ञान तथा शिल्पविज्ञान में शिक्षा और अनुसंधान की गुणात्मकता एवं विस्तार में द्रुत, सुयोजित और संघृत वृद्धि पर क्रांतिक रूप से निर्भर है। यह दुर्भाग्य की बात है कि आज भारतवर्ष प्रति व्यक्ति (कुल राष्ट्रीय उत्पाद) के सोपान की तथा शिक्षा एवं अनुसंधान पर प्रति व्यक्ति व्यय के सोपान की लगभग निचली सीढ़ी पर

है। उपलब्ध साधनों के सीमित होने के कारण द्रुत प्रगति के लिए निम्नलिखित उपायों की आवश्यकता होगी।

(1) दृढ़ता पूर्वक चुनावी दृष्टि (सिलेक्टिव एप्रोच) को अपनाना।

(2) स्नातकोत्तर अध्ययन एवं अनुसंधान में उपलब्धि का स्तर अन्तर्राष्ट्रीय बराबरी का होना चाहिए। इसके करने का केवल एक ही तरीका है। उन्नत अध्ययन और अनुसंधान के लिए विषयों का अत्यंत सावधानी से चुनाव, ऐसे पाठ्यक्रमों के लिए योग्यतम छात्रों का चुनाव, और थोड़े से उत्कृष्ट केन्द्रों की स्थापना करके उनमें से प्रत्येक को एक निश्चित क्रांतिक परिमाण से अधिक धन प्रदान करना।

(3) अपनी वैज्ञानिक जनशक्ति के उपयोग में हमें उच्च निपुणता प्राप्त करने की अधिक से अधिक कोशिश करनी चाहिए—निपुणता औद्योगिक रूप से विकसित देशों से भी अधिक ऊंची होनी चाहिए। हमें शिक्षा और अनुसंधान में प्राथमिकता को गंभीर 'देशी' विचार और आवश्यकताओं के आधार पर निर्धारित करना चाहिए चाहे वे अत्यन्त उन्नत हों, चाहे न हों।

(4) विज्ञान के विकास के पोषक-तत्व अपने सांस्कृतिक और आध्यात्मिक दाय से लेने चाहिए, इसकी अवहेलना नहीं करनी चाहिए।

(5) मूलभूत सिद्धान्तों और वैज्ञानिक अमूर्तकरण तथा सृजनशील विचार-पद्धति को विज्ञान की शिक्षा की आरम्भिक श्रेणी से ही भलीभांति समझने की आवश्यकता पर जोर देना चाहिए।

16.01-14 (447-452)

189. **विज्ञान की शिक्षा**—(1) स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम के स्तर में सुधार करने के अलावा, विज्ञान और गणित में स्नातकोत्तर नामांकन को आगामी दशकों में कई गुना बढ़ाने की आवश्यकता है, ताकि माध्यमिक और उच्च शिक्षा के द्रुत प्रसार तथा अनुसंधान और उद्योग की आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सके।

(2) विज्ञान और गणित में कुछ उन्नत अध्ययन केन्द्रों को विकसित करना जरूरी है। उसका अध्यापक-वर्ग ऊंची से ऊंची योग्यता का होना चाहिए और जहां कहीं सम्भव हो उसमें कुछ लोग अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा वाले होने चाहिए। कुछ अतिथि-अध्यापकों के पद होने चाहिए। जिन पर दो या तीन वर्षों के लिए अनुबंध द्वारा नियुक्ति की जा सके। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को एक अखिल भारतीय समिति बनानी चाहिए जो अतिथि अध्यापकों की नियुक्ति करे। इस योजना के अन्तर्गत कुछ अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के भारतीय वैज्ञानिक को आजकल विदेशों में काम कर रहे हैं तथा प्रसिद्ध विदेशी वैज्ञानिकों को बुलाया जा सकता है। 15.23 (458)

(3) विज्ञान-शिक्षा के विकास में क्षेत्रीय असंतुलन को कम से कम कर देना चाहिए। किसी राज्य में विज्ञान एवं शिल्प-विज्ञान के विकास और उसकी आर्थिक उन्नति की क्षमता में घनिष्ट सम्बन्ध होना चाहिए।

16.24 (458)

(4) विज्ञान की पूर्व स्नातक एवं स्नातकोत्तर पाठ्यचर्या में उग्र परिवर्तन की शीघ्र जरूरत है।

16.25 (458)

(5) हमारे विज्ञान विभागों में प्रायोगिक और सैद्धांतिक पहलुओं के बीच समुचित संतुलन रखना चाहिए। प्रायोगिक भौतिकी और रसायन के विकास पर शीघ्र विशेष ध्यान देना चाहिए। जीव विज्ञान के क्षेत्र में सूक्ष्म जीवों तथा चिकित्सा और कृषि में उनके स्थान के अध्ययन पर जितना आमतौर पर ध्यान दिया जाता है उससे और अधिक ध्यान देना चाहिए। खगोलिकी और खगोल भौतिकी पर जोर देने की आवश्यकता है।

16.26. 27 (461)

(6) प्रत्येक कालेज और विश्वविद्यालय के विज्ञान विभाग में एक सुसज्जित कर्मशाला होनी चाहिए। छात्रों को कर्मशाला के औजारों के उपयोग सीखने और प्रयोगशाला के कुछ आवश्यक तकनीकों और कार्य प्रणालियों को जानने के लिये प्रोत्साहित करना चाहिए। कर्मशालाओं में साधारणतया जितना काम होता है उसके कहीं अधिक जोर-शोर से काम होना चाहिए। संध्याकालीन और पत्राचार पाठ्यक्रमों में नामांकित औद्योगिक कार्यकर्त्ताओं को भी उनको उपयोग करने की अनुमति देना वांछनीय होगा।

16.28 (461)

(7) वैज्ञानिक विषयों के छात्रों की त्रुटि-सिद्धान्त मूलभूत सांख्यिकीय अवधारणाओं और प्रयोगों के सांख्यिकीय डिजायन का कुछ ज्ञान होना चाहिए।

(8) कक्षा-वृत्त और छात्रों द्वारा किये गये प्रयोगों

के मूल्यांकन के अतिरिक्त, वार्षिक परीक्षा के हिस्से के रूप में अन्य प्रायोगिक परीक्षाएं नहीं होनी चाहिए।

(9) मास्टर उपाधि के लिए पाठ्यक्रमों की व्यवस्था में कुछ लचीलापन और नवीनता लाने की शीघ्र आवश्यकता है। संयुक्त पाठ्यक्रम, एक मुख्य विषय और एक गौण विषय के रूप में रखना चाहिये।

16.30 (462)

(10) जीव विज्ञान के मुख्य विभागों के शिक्षक-वर्ग में यदि थोड़े से भौतिक विज्ञानी (गणितज्ञों समेत) हों जिनका चुनाव जीव-वैज्ञानिक घटनाओं में उनकी रुचि के कारण हो, तो यह बड़ा लाभदायक होगा।

(11) आज की आवश्यकता है कि हमारी शिक्षा प्रणाली में विज्ञान और शिल्पविज्ञान को एक दूसरे के और नजदीक लाया जाए।

(12) नियमित द्विवर्षीय पाठ्यक्रमों के अतिरिक्त आजकल के वैज्ञानिक, औद्योगिक और अन्य आवश्यकताओं से संबंधित विषयों में विशेष प्रशिक्षण के लिए एक वर्ष, या उससे भी कम समय के पाठ्यक्रमों की व्यवस्था करने की आवश्यकता है। इन पाठ्यक्रमों की व्यवस्था चुने हुए विश्वविद्यालयों के वैज्ञानिक एवं शिल्प वैज्ञानिक विभागो इंजीनियरी और कृषि संस्थाओं या राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं में होनी चाहिए। 16.32 (462-463)

(13) विश्वविद्यालयों और इंजीनियरी संस्थाओं को चाहिए कि वे योग्य औद्योगिक कार्यकर्त्ताओं को संध्याकालीन तथा पत्राचार पाठ्यक्रमों के लिए नामांकित करें। प्रचलित डिप्लोमा और डिग्री पाठ्यक्रमों के अतिरिक्त, सूक्ष्म यंत्रों के मेकैनिकों, प्रयोगशाला शिल्पियों और अन्य कारीगरों के प्रशिक्षण के लिए विशेष पाठ्यक्रमों की व्यवस्था करनी चाहिए। 16.34 (463)

(14) एम० एस-सी० के बाद एक नई डिग्री स्थापित करने की आवश्यकता है। इस पाठ्यक्रम में ऐच्छिक रूप में शिक्षा शास्त्र का भी कुछ अंश होना चाहिए।

16.35 (463)

(15) ग्रीष्मकालीन संस्थाओं के कार्यक्रमों द्वारा स्कूल कालेज के अध्यापक और विश्वविद्यालयों के प्रमुख प्रोफेसर एक साथ सक्रिय रूप से भाग लेने के लिए एकत्र होते हैं। विज्ञान शिक्षा की सुधार की दिशा में देश के प्रयत्न का यह एक प्रमुख साधन है। इसको जारी रखना चाहिए और विस्तार करना चाहिए। 16.37 (463)

(16) अन्तर्विश्वविद्यालय बोर्ड और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को यह देखने के लिए पहल करनी चाहिए कि चौथी योजना के अन्त तक आवश्यक पुस्तकों में से पूर्व स्नातक स्तर की अधिकांश और स्नातकोत्तर स्तर की पर्याप्त संख्या का देश में ही निर्माण हो।

16.38 (463-464)

(17) भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक शब्दावली के निर्माण का हम स्वागत करते हैं। इसे और आगे बढ़ाना चाहिये। विज्ञान के विद्यार्थियों को कुछ लेटिन की धातुओं की शिक्षा देना लाभदायक होगा क्योंकि बहुत से अन्तर्राष्ट्रीय शब्दों की रचना इन्हीं से की गई है।

16.39 (464)

190. **अनुसंधान में निवेश**—विज्ञान और शिल्पविज्ञान इस युग की विशिष्टता है; अतएव अनुसंधान मनुष्य के सभी प्रकार के प्रयत्नों के लिए लगभग आवश्यक पूर्वशर्त है। औद्योगिक रूप से विकसित देशों में, अनुसंधान एवं विकास में निवेश और इन कार्यों में लगी हुई जनशक्ति की वृद्धि आशातीत हुई हैं। अनुसंधान और विकास पर भारतीय व्यय (कुल राष्ट्रीय उत्पाद) का 0.3 प्रतिशत है और वैज्ञानिकों तथा इंजीनियरों की कुल संख्या श्रमिकों के एक प्रतिशत के केवल कुछ शतांश के बराबर है। योग्यता प्राप्त वैज्ञानिकों और इंजीनियरों की संख्या एक लाख की कोटि में है। अतएव हमें अनुसंधान और विकास के लिए अधिक जोरदार प्रयत्न करना पड़ेगा।

16.40-44 (464-468)

191. **विज्ञान में विश्वविद्यालय अनुसंधान**—भारतीय शिक्षा और अनुसंधान की एक बड़ी कमजोरी यह है कि समस्त भारतीय अनुसंधान में विश्वविद्यालयों का भाग अपेक्षाकृत बहुत कम होता है, जब कि भारतीय अनुसंधान स्वयं हमारी क्षमता और आवश्यकताओं की दृष्टि से अति न्यून है। अब ऐसी अवस्था उत्पन्न हो गई है कि विश्वविद्यालयों में उन्नत अध्ययन और अनुसंधान को आयोजित सहायता और प्रोत्साहन देना हमारी राष्ट्रीय नीति के मुख्य लक्ष्य के रूप में होना चाहिए।

16.46 (469)

(1) किसी देश के सृजनशील वैज्ञानिक और इंजीनियर इसके दुर्लभ और बहुमूल्य निधियों में से होते हैं और उनको विश्वविद्यालयों में स्थान मिलना चाहिए, जहां उनका प्रवर्धन प्रभाव साधारणतया सर्वाधिक होता है। वे केवल वैज्ञानिक अनुसंधान में ही योगदान नहीं देते वरन् नई प्रतिभा के निर्माण में भी देते हैं।

(2) यह आवश्यक है कि अधिकाधिक विश्वविद्यालय के लोग—अर्थात अध्यापक और छात्र—उच्च से उच्च कोटि का तथा अधिकाधिक अनुसंधान कार्य करें अन्तिम लक्ष्य के रूप में प्रत्येक विश्वविद्यालय अनुसन्धानक को अध्यापक और प्रत्येक अध्यापक को अनुसन्धानक होना चाहिए। 16.48 (470)

(3) अध्यापक की अच्छी योग्यता के अतिरिक्त, गुणात्मक अनुसन्धान के प्रकाशन को विश्वविद्यालय की सेवावृत्ति में अध्यापकों की उन्नति का एक प्रमुख निकष मानना चाहिए। पूर्व स्नातक स्तर पर भी प्रतिभावान छात्रों को किसी न किसी प्रकार के अनुसन्धान कार्य में भाग लेने के लिये उत्साहित करना चाहिए। 16.48 (470)

(4) जहां कहीं हो सके, वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद, परमाणु ऊर्जा आयोग तथा विश्वविद्यालय तन्त्र के बाहर के अन्य अनुसंधान संस्थाओं के सक्रिय वैज्ञानिकों को पूर्णकालिक या अंशकालिक आधार पर अथवा थोड़े दिनों या अधिक दिनों के लिए अध्यापन एवं अनुसंधान कार्य के लिए नियन्त्रित और नियुक्त करना चाहिए। 16.48 (470)

(5) ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि चुने हुए स्नातकोत्तर छात्र अपने पाठ्यक्रम के कार्य के बीच एक या दो सत्र अपनी रुचि के विषय में विशिष्ट किसी अन्य विश्वविद्यालय या संस्था में बिता सकें। 16.48 (470)

(6) अध्यापकों, अनुसंधान कर्त्ताओं और प्रयोगशाला शिल्पियों को थोड़ी अवधि (कुछ सप्ताहों से कुछ महीनों तक) के लिए विश्वविद्यालयों और अनुसंधान संस्थाओं के दर्शनार्थ सहायता देने की विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की योजना का पर्याप्त विस्तार होना चाहिए। 16.49 (470)

(7) टोली-कार्य का विकास विश्वविद्यालय की गुणात्मकता में सुधार के लिए आवश्यक है। हां इसे वास्तविक रूप से होना चाहिए। विश्वविद्यालय अनुसंधान नीति में यह भी होना चाहिए कि मिथ्या और परजीवी टोली-कार्य को दृढ़तापूर्वक समाप्त किया जाना चाहिए। 16.50 (470)

(8) विभाग के अध्यक्ष या किसी अन्य अध्यापक के निरीक्षण में अनुसंधान छात्रों की संख्या सीमित होनी चाहिए। युवा अध्यापकों को भी अनुसंधान छात्र देने चाहिए। 16.51 (470-471)

(9) पी० एच० डी० में नामांकन के लिए योग्यता बढ़ा दी जानी चाहिए। हमें अनुसंधान की ओर झुकाव वाले इंजीनियरी के स्नातकों को सीधे गणित, भौतिकी या अन्य वैज्ञानिक विषयों में पी० एचडी० लेने के लिए उत्साहित करना चाहिए। 16.51 (470-471)

192. **गणित**—आगामी दो-तीन दशकों में भारतवर्ष को 'गणित की दुनिया के नक्शे' में स्थान प्राप्त करने का आयोजित प्रयत्न करना आवश्यक है। अगले पांच से दस वर्षों में तीन या चार विश्वविद्यालयों में गणित में उन्नत अध्ययन केन्द्रों को स्थापित करना चाहिए। 16.53 (471)

(1) विश्वविद्यालयों के प्रमुख गणित-विभागों में से कम से कम एक को प्रोत्साहन देना चाहिए कि वह स्कूल और कालेज अध्यापकों के ज्ञान और समझ की वृद्धि के लिए गणित में पूर्वायोजित शिक्षा की संभावना का सक्रिय रूप से पता लगाए। 16.54 (471)

(2) असाधारण गणितीय योग्यता वाले छात्रों के लिए निकट भविष्य में एक या दो विशिष्ट माध्यमिक विद्यालय स्थापित करने चाहिए। 16.55 (471)

(3) चुने हुए विश्वविद्यालयों में परिकलन संस्थापनों और प्रोग्राम प्रशिक्षण की व्यवस्था करने के लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को विशेष प्रयत्न करना चाहिए। चौथी योजना के अन्त तक पर्याप्त विश्वविद्यालयों में आधारभूत कम्प्यूटर साधन होने चाहिए ताकि विज्ञान, गणित और सामाजिक विज्ञान में शिक्षा और अनुसंधान की आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सके। 16.57 (471-472)

(4) मस्तिष्क और मनः शारीरिक घटनाओं के आधुनिक तकनीक द्वारा अध्ययन के लिए एक या दो सक्रिय केन्द्रों को शीघ्र सहायता देना और विकसित करना वांछनीय होगा। इस क्षेत्र में पुरातन भारतीय अनुभव का भी जो आज भी कई प्रकार से अत्यन्त महत्वपूर्ण है इन्हें उपयोग करना चाहिए। 16.58 (472)

193. **साज-सामान**—(1) वर्तमान साज-सामान को दक्षतापूर्वक उपयोग में लाने के लिए उपाय ढूंढ़ना पड़ेगा। केवल वही साज-सामान आयात करना चाहिए जिसका निर्माण देश में नहीं हो सकता और जिसका आयात अनिवार्य है।

(2) विश्वविद्यालय अनुदान आयोग और वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद को कुछ विश्वविद्यालयों

और राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं को सक्रिय सहायता और प्रोत्साहन देना चाहिए। ताकि यंत्रों के अंशांकन और मरम्मत की व्यवस्था सभी विश्वविद्यालयों के लिए करें। प्रयोगशाला-शिल्पियों के प्रशिक्षण को उच्च प्राथमिकता मिलनी चाहिए।

(3) प्रयोगशाला डिज़ाइन में अध्ययन और अनुसंधान के लिए एक विशेष अनुभाग की स्थापना होनी चाहिए।

16.59-61 (472-473)

194. **विज्ञान-विभागों का प्रशासन**—विज्ञान विभागों के प्रशासन का शीघ्रतापूर्वक आमूल पुनर्गठन होना चाहिए। इसके साधनों के पूर्ण उपयोग के लिए कर्मचारियों का विभागीय प्रशासन और निर्णय से सम्बन्ध होना आवश्यक है। 16.62-64 (473)

195. **शुद्ध और अनुप्रयुक्त अनुसंधान**—(1) यह मान लेना गलत होगा कि विश्वविद्यालयों को केवल शुद्ध (आधारभूत) अनुसंधान ही करना चाहिए और विज्ञान के सभी भागों में अनुप्रयुक्त अनुसंधान एवं विकास दूसरी संस्थाओं के लिए छोड़ देना चाहिए। जैसा कि राष्ट्रीय अनुसंधान क्षमता तथा कार्यक्रम से प्रकट है, औद्योगिक देशों में विश्वविद्यालय अनुप्रयुक्त अनुसंधान में पर्याप्त योगदान देते हैं। उनमें से कुछ विकास अनुसंधान में भी थोड़ा योगदान देते हैं।

(2) आज विज्ञान और शिल्प विज्ञान की उन्नति के साथ, शुद्ध और अनुप्रयुक्त अनुसंधान का भेद, अनुसंधानी वैज्ञानिक और अनुसंधानी इंजीनियर का भेद कृत्रिम हो गया है और अनेक क्षेत्रों में (जैसे इलेक्ट्रानिक्स में) लगभग मिट गया है। अनुप्रयुक्त कार्यों को, जैसे महत्वपूर्ण नई तकनीकों को विकसित करने (देश के लिए नया) या विशिष्ट यंत्रों अथवा उपकरणों को डिज़ाइन करने या गढ़ने को उपयुक्त मान्यता प्रदान करनी चाहिए। ऐसे कार्य को पी० एचडी० की उपाधि अर्जित कर सकना सम्भव होना चाहिए।

(3) अपने ऊपर छोड़ देने से, अनुसंधान की लगभग सदा अधिकाधिक शुद्ध होने की प्रवृत्ति होती है। (परियोजना अभिविन्यस्त प्रयोगशालाओं में भी)। शिल्पविज्ञान की संस्थाओं में अनुसंधान के संगठन में इस बात का ध्यान रखना चाहिए। इनको अनुपयुक्त और औद्योगिक अनुसंधान पर विशेष जोर देना चाहिए।

(4) अभी ऐसा सर्वेक्षण नहीं किया गया है जिससे मालूम हो सके कि भारतवर्ष में विश्वविद्यालय अनुसंधान-क्षमता आधारभूत, उद्देश्य अभिविन्यस्त आधारभूत, अनुप्रयुक्त और विकास अनुसंधान के बीच किस प्रकार वितरित हैं। इस सर्वेक्षण को शीघ्रातिशीघ्र करना अति आवश्यक है।

16.65-70 (473-475)

196. **विश्वविद्यालय अनुसंधान पर व्यय**—(1) विश्वविद्यालय अनुसंधान को बहुत ही कम निधि मिलती है। यदि इसमें आमूल सुधार नहीं किया गया तो देश के सारे अनुसंधान प्रयत्न का भविष्य खतरे में पड़ जाएगा। दशक के अन्त तक, कुल विश्वविद्यालय व्यय का लगभग एक चौथाई अनुसंधान के ऊपर होना चाहिए।

(2) प्रारम्भिक अवस्थाओं में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा अनुसंधान की सहायता के लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा अनुसंधान की सहायता के लिए विश्वविद्यालयों को अलग निधि देना वांछनीय होगा।

(3) इससे सम्बन्धित एक महत्वपूर्ण बात है पर्याप्त विदेशी मुद्रा की व्यवस्था। 16.71-74 (475-476)

197. **विश्वविद्यालयों के बाहर आधारभूत अनुसंधान**—आजकल ऐसी अनेक संस्थाएं हैं जिनका लगभग सारा काम विश्वविद्यालय की तरह का अनुसंधान करना होता है, परन्तु इनका कार्य विश्वविद्यालय तंत्र के बाहर होता है। इनको विश्वविद्यालयों के अन्तर्गत लाने का या कम-से-कम उनके साथ घनिष्ट रूप से जोड़ने का गंभीर प्रयत्न किया जाना चाहिए 16.75-76 (476-477)

198. **प्रतिभा का प्रवासन**—हमें ठीक ज्ञात नहीं परन्तु विदेश जाने वालों में से काफी लोगों की प्रवृत्ति अनिश्चित काल तक वहीं ठहरने की होती है और पर्याप्त संख्या में विदेशी नागरिकता भी ग्रहण कर लेते हैं। अधिकतर प्रवसन संयुक्त राज्य अमेरिका में होता है। जो लोग भारतवर्ष से बाहर जाते हैं उनमें सभी प्रथम कोटि के वैज्ञानिक नहीं होते और न देश की आवश्यकता के लिए उसका अनिवार्य महत्व होता है फिर भी समस्या इतनी महत्वपूर्ण है कि इसका ध्यानपूर्वक और व्यवस्थित अध्ययन किया जाए। 16.77-82 (477-479)

199. **विदेश में अध्ययन के लिए शिक्षा वृत्ति**—विदेशी अभिकरणों द्वारा दी जाने वाली शिक्षा वृत्तियों के अतिरिक्त, प्रतिवर्ष सरकार द्वारा एक सीमित संख्या

में—लगभग सौ के अनुसंधान शिक्षावृत्ति विदेशों में शिक्षा और अनुसंधान के लिए दी जाने की भी वास्तविक जरूरत है। ये शिक्षावृत्तियां श्रेष्ठ योग्यता वाले व्यक्तियों को दी जानी चाहिए और उनके साथ किसी न किसी प्रकार का अनुबंध स्वदेश लौटने का होना चाहिए।

16.83 (479)

200. **राष्ट्रीय विज्ञान की नीति**—(1) उच्चतम स्तर के सरकारी अधिकारियों के लिए यह अतीव आवश्यक है कि उनको प्रमुख वैज्ञानिक समस्याओं के बारे में यथा संभव निष्पक्ष और वस्तुनिष्ठ परामर्श मिल सके। इसके लिए एक ऐसी परामर्शदायी समिति का होना जरूरी है जिसमें प्रयुक्त वैज्ञानिक अनुसंधान अभिकरणों के अध्यक्षों के अतिरिक्त ऐसे व्यक्ति हों जिनका अपनी वृत्तियों में उच्च स्थान आदर हो तथा जिनमें सर्व साधारण का विश्वास हो। इनका कुछ भाग तीस-चालीस वर्ष के प्रसिद्ध युवा वैज्ञानिकों का होना चाहिए। इन लोगों की संख्या अभिकरणों के अध्यक्षों से कम नहीं होनी चाहिए। वे विश्वविद्यालयों, अनुसंधान संस्थाओं (सरकारी या गैर-सरकारी), उद्योग अथवा जन जीवन से लिए जा सकते हैं। परामर्शदायी समिति में केवल वैज्ञानिक और शिल्प वैज्ञानिक ही न हों बल्कि अर्थशास्त्री और समाज वैज्ञानिक तथा उद्योग और प्रबन्ध के अनुभव वाले लोग भी हों। कैबिनेट की परामर्शदायी समिति का पुनर्गठन भी ऊपरिलिखित रूप के अनुसार होना चाहिए। इसे अपने कार्य के उपयुक्त प्रभावी सचिवालय और वृत्तिकों की संख्या मिलनी चाहिए। समिति की ऐसी स्थिति होनी चाहिए कि यह देश की वैज्ञानिक आवश्यकताओं का जिसमें विश्वविद्यालय भी सम्मिलित है, अनुमान लगा सके तथा वैज्ञानिक कामों के विभिन्न क्षेत्रों में निधि के बारे में सरकार को परामर्श दे सके। इसे राष्ट्रीय अनुसंधान नीति की स्थिति का बराबर पुनरीक्षण करते रहना चाहिए।

(2) जिन समितियों को वैज्ञानिक नीति को क्रियान्वित करना हो और ऐसे कार्यकारी तथा प्रबंधकारी काम करने हों जिनके लिए विविध बातों का विस्तृत और विशेषज्ञ परीक्षण आवश्यक हो उनके अध्यक्ष साधारणतया उच्च स्तर के पेशेवर वैज्ञानिक, इंजीनियर, विज्ञान प्रशासक होने चाहिए।

(3) राष्ट्रीय अनुसंधान की नीति और विश्वविद्यालयों की नीतियों का एक बड़ा काम होना चाहिए अनुसंधान के उपयुक्त वातावरण बनाना और अनुसंधान कार्य की स्वतंत्रता तथा स्वायत्तता के सभी विघ्न-बाधाओं को शीघ्र और सरकारी उपायों द्वारा दूर करना।

(4) अनुसंधान में प्राथमिकता निर्धारण करने में हमें अपने राष्ट्र की आवश्यकताओं से चलना चाहिए और अनुचित रूप से इससे नहीं प्रभावित होना चाहिए कि सम्प्रति विज्ञान में क्या फैशन है।

16.84-93 (479-481)

201. **विज्ञान अकादमी**—(1) भारतवर्ष में राष्ट्रीय अकादमी की भूमिका अंशतः विज्ञान के राष्ट्रीय संस्थान द्वारा अदा की जाती है। परन्तु यदि इस संस्थान को विज्ञान में सशक्त नेतृत्व प्रदान करना है और राष्ट्र में वैज्ञानिक कार्यों में अधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभानी है तब इसको मूलतः पुनर्गठित करने की आवश्यकता होगी।

(2) भारतवर्ष एक मात्र देश है जिसका (वैज्ञानिक संगठनों के अन्तर्राष्ट्रीय परिषद् में) प्रतिनिधित्व वृत्तिक अकादमी द्वारा न होकर सरकार द्वारा होता है। इस कार्य का उत्तरदायित्व अकादमी पर होना चाहिए।

16.94-98 (481-482)

सत्रहवां अध्याय. प्रौढ़ शिक्षा

202. **निरक्षरता का निर्मूलन**—(1) देश से निरक्षरता के यथासंभव शीघ्र उन्मूलन के लिए हर सम्भव कोशिश की जानी चाहिए और देश का चाहे कितना ही पिछड़ा हुआ भाग हो, इसके लिए 20 वर्ष से अधिक नहीं लगने चाहिए। साक्षरता का राष्ट्रीय प्रतिशत सन् 1971 तक 60 और सन् 1976 तक 80 तक बढ़ जाना चाहिए।

(2) निरक्षरता की वृद्धि को रोकने के लिए सर्वप्रथम निम्नलिखित उपाय किए जाएं :

(क) पांच वर्ष के सार्वभौमिक शालेय शिक्षण का 6-11 वर्ष के आयु-वर्ग तक विस्तार;

(ख) 11-14 वर्ष के आयु-वर्ग के उन बच्चों के लिए अंशकालिक शिक्षा की व्यवस्था जो या तो स्कूल में पढ़े ही नहीं अथवा शिक्षा पूरी करने से पहले ही स्कूल छोड़ गए;

(ग) 15-30 वर्ष के आयु-वर्ग के वयस्कों के लिए अंशकालिक सामान्य और व्यावसायिक शिक्षा की व्यवस्था।

(3) निरक्षरता को समाप्त करने की लिए चयनात्मक पद्धति और सामूहिक पद्धति की दोहरी कार्यनीति अपनाई जाए।

(4) चयनात्मक पद्धति के अन्तर्गत वयस्कों के उन विशिष्ट समूहों के लिए कार्यक्रम बनाए जाएं जिन्हें आसानी से पहचाना और नियन्त्रित किया जा सके तथा गहन साक्षरता कार्य के लिए प्रेरित किया जा सके। बड़े फार्मों और वाणिज्य, उद्योग, ठेकेदारी तथा अन्य धन्धों के सभी नियोक्ताओं को जिम्मेदार ठहराया जाए ताकि, यदि आवश्यक हो तो कानून द्वारा भी, वे अपने कर्मचारियों को नौकरी लगने के तीन वर्ष के भीतर काम के योग्य साक्षर बना दें। सरकारी क्षेत्र के बड़े औद्योगिक संयन्त्रों को इस दिशा में तत्काल कदम उठाना चाहिए और तेजी से आगे बढ़ना चाहिए। विशेषकर निरक्षर कर्मचारियों की शिक्षा की व्यवस्था प्रत्येक विकास परियोजना का अभिन्न अंग होना चाहिए। साक्षरता कार्यक्रम आर्थिक और सामाजिक विकास के लिए चलाई गई सभी सरकारी योजनाओं का अनिवार्य अंग होना चाहिए।

(5) निरक्षरता को मिटाने के लिए देश के सभी उपलब्ध शिक्षित स्त्री-पुरुषों का एक दल **सामूहिक** प्रयत्न के रूप में बनाया जाए और योजनाबद्ध साक्षरता अभियान में उसका उपयोग किया जाए। सामूहिक अभियान को संगठित करने में सभी शैक्षिक संस्थाओं के अध्यापकों और विद्यार्थियों का सक्रिय सहयोग लेना चाहिए। उच्चतर प्राथमिक, माध्यमिक, उच्चतर माध्यमिक तथा व्यावसायिक स्कूलों और विश्वविद्यालयों तथा कालेजों की पूर्व-स्नातक कक्षाओं के विद्यार्थियों के लिए वयस्कों को पढ़ाना अनिवार्य राष्ट्रीय सेवा कार्यक्रम का अंग होना चाहिए। इस अभियान में पढ़ाना और भाग लेना सभी प्रकार के स्कूलों के अध्यापकों के लिए अनिवार्य होना चाहिए। निरक्षरता समाप्त करने के लिए प्रत्येक शैक्षिक संस्था को किसी निर्दिष्ट क्षेत्र में जिम्मेदार ठहराया जाना चाहिए। विशेष रूप से स्कूलों को सामुदायिक जीवन का केन्द्र बनाना चाहिए।

(6) सावधानी से योजना बनाए बिना और तैयारी किए बिना कोई साक्षरता कार्यक्रम चालू न किया जाए। इस उद्देश्य से किए जाने वाले विविध उपायों की चर्चा इस रिपोर्ट मे की जा चुकी है।

(7) स्त्रियों में साक्षरता को बढ़ावा देने के लिए केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड द्वारा स्त्रियों के लिए प्रवर्तित संहत कार्यक्रमों को अपना लेना चाहिए। ग्रामीण स्त्रियों को पढ़ाने के लिए और स्थानीय जन-समूह के प्रौढ़ शिक्षा के आयोजन के लिए 'ग्राम बहनों' की नियुक्ति को प्रोत्साहन देना चाहिए।

(8) कार्यकुशलता और जीवन के स्तर को उन्नत करने के लिए अनुकूल वातावरण पैदा करने तथा जानकारी और कुशलता प्रदान करने के सशक्त माध्यम के रूप में सामूहिक संचार-साधनों का प्रभावकारी उपयोग किया जाना चाहिए।

(9) प्राप्त साक्षरता को कायम रखने के लिए साक्षरता अभियान के बाद उपयुक्त अनुवर्ती कार्य होना चाहिए जिसमें आगे की शिक्षा, पुस्तकालयों का उपयोग और पाठ्यसामग्री का सृजन शामिल हो।

17.7-31 (485-494)

203. **निरन्तर शिक्षा**—(1) सभी प्रकार की और सभी स्तरों की शैक्षिक संस्थाओं को प्रोत्साहन और सहायता दी जानी चाहिए ताकि वे काम के नियमित घंटों से पहले या बाद में शिक्षा पाने के इच्छुक व्यक्तियों के लिए अपने द्वार खोलें और शिक्षा-पाठ्यक्रमों की व्यवस्था करें। स्कूल और कालिज के विद्यार्थियों के समान वयस्कों को भी डिप्लोमा और डिग्रियां प्राप्त करने के अवसर मिलें इस विचार से एक समान्तर अंशकालिक शिक्षा पद्धति बनाई जानी चाहिए।

(2) ऐसे तदर्थ पाठ्यक्रमों के संगठन में शैक्षिक संस्थाओं को आगे बढ़ना चाहिए जो लोगों को अपनी समस्याएं समझने और सुलझाने में सहायक हों और उन्हें अधिक जानकारी और अनुभव प्रदान करें।

(3) कामगारों के लिए आगे की शिक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिए ताकि उनका ज्ञान और कौशल बढ़े, जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण व्यापक हो, अपने व्यवसाय के प्रति उनमें दायत्व-भाव जागृत हो और वे अपने पेशे में तरक्की कर सकें। उनके लिए विशेष अंशकालिक और सैंडविच्, पाठ्यक्रम चलाए जाए जो उन्हें क्रमशः उच्चतर पाठ्यक्रमों तक पहुंचा दें।

(4) केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड द्वारा प्रौढ़ स्त्रियों के लिए चलाई जा रही संस्थाओं और मैसूर राज्य की विद्यापीठों-जैसी विशेष संस्थाए स्थापित की जाए। वर्तमान संस्थाओं की समीक्षा जल्दी-जल्दी होनी चाहिए ताकि वे ग्रामीण समुदाय की सेवा के योग्य बनाई जा सकें।

17.32-43 (494-497)

204. **पत्राचार पाठ्यक्रम**—(1) शिक्षा को उन लोगों तक पहुंचाने के लिए, जो अंशकालिक कार्यक्रमों में दाखिल हो सकते हैं, पत्राचार पाठ्यक्रमों का व्यापक संगठन होना चाहिए।

(2) पत्राचार पाठ्यक्रम लेने वाले विद्यार्थियों को कभी-कभी अध्यापकों से मिलने के अवसर दिए जाने

चाहिए। उन्हें योग्यता-प्राप्त विद्यार्थियों का दर्जा दिया जाना चाहिये और, जहां संभव हो, कुछ कालेजों से संबद्ध किया जाना चाहिए ताकि वे पुस्तकालय और अन्य सुविधाओं का उपयोग कर सकें।

(3) रेडियो और टेलीविजन के समन्वित कार्यक्रमों का सहारा पत्राचार पाठ्यक्रमों को मिलना चाहिए।

(4) विद्यार्थियों को विश्वविद्यालयों की परीक्षाओं का तैयारी कराने तक ही पत्राचार पाठ्यक्रम समिति नहीं रखे जाने चाहिए, बल्कि उनमें कृषक, औद्योगिक और अन्य कामगारों के लिए ऐसे विशेष पाठ्यक्रमों की भी व्यवस्था होनी चाहिए जिनसे उत्पादन बढ़ाने में सहायता मिले।

(5) पत्राचार पाठ्यक्रम उन लोगों को भी उपलब्ध होने चाहिए जो सांस्कृतिक और कलात्मक विषय पढ़कर जीवन को समृद्ध बनाना चाहते हैं।

(6) स्कूलों के अध्यापकों के लिए भी पत्राचार पाठ्यक्रम विकसित किए जाने चाहिए ताकि नए ज्ञान तथा शिक्षण के नए तरीकों और तकनीकों से वे परिचित रहें।

(7) पत्राचार पाठ्यक्रम चलाने वाली एजेंसियों को मान्यता देने और उनका मूल्यांकन करने—ऐसे क्षेत्रों का पता लगाने जिनमें विभिन्न प्रकार के पत्राचार पाठ्यक्रम लाभप्रद हो सकते हैं, उपयुक्त एजेंसियों के माध्यम से इस प्रकार के पाठ्यक्रम तैयार कराने तथा मूल्यांकन और अनुसंधान को बढ़ावा देने के लिए, शिक्षा मंत्रालय को अन्य मंत्रालयों के सहयोग से गृह-अध्ययन की एक राष्ट्रीय परिषद स्थापित करनी चाहिए।

(8) देश के माध्यमिक शिक्षा बोर्डों और विश्वविद्यालयों की परीक्षाएं देने का अवसर उन्हें भी मिलना चाहिए जो किसी की सहायता के बिना अपने-आप उसके लिए तैयारी करते हैं। 17.44-56 (497-499)

205. **पुस्तकालय**—(1) देश भर में पुस्तकालयों की स्थापना के संबंध में पुस्तकालय सलाहकार समिति की सिफारिशों पर अमल किया जाना चाहिए।

(2) स्कूल के पुस्तकालयों को सार्वजनिक पुस्तकालय पद्धति के साथ समेकित किया जाना चाहिए और उनमें बच्चों और नवसाक्षरों की रुचि की पाठ्यसामग्री रखी जानी चाहिए।

(3) पुस्तकालय सक्रिय होने चाहिए ताकि वयस्क उनके प्रति आकर्षित हों और अपनी शिक्षा के लिए उनका उपयोग करें।

205. **विश्वविद्यालयों का योगदान**—(1) भारत के विश्वविद्यालयों को वयस्कों को शिक्षित करने का भारी दायित्व लेना चाहिए। पैराग्राफ 17.62 और 17.63 में कुछ महत्वपूर्ण कार्यक्रम दिए गए हैं। इन्हें विश्वविद्यालय चला सकते हैं।

(2) योजनाबद्ध प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम चलाने के लिए सक्षम संगठन बनाने की दृष्टि से प्रत्येक विश्वविद्यालय में एक प्रौढ़ शिक्षा बोर्ड स्थापित किया जाना चाहिए जिसमें प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रमों से सम्बन्धित सभी विभागों के प्रतिनिधि हों। विश्वविद्यालयों को भी प्रौढ़ शिक्षा विभाग स्थापित करने चाहिए।

(3) प्रौढ़ शिक्षा कार्य को चलाने के लिए विश्वविद्यालयों को वित्त और उपकरण की सहायता दी जानी चाहिए। 17.61-66 (500-501)

207. **संगठन और प्रशासन**—(1) एक राष्ट्रीय शिक्षा बोर्ड स्थापित किया जाना चाहिए जिसमें सभी सम्बन्धित मंत्रालयों और एजेंसियों के प्रतिनिधि हों। इस बोर्ड के कार्य पैरा 17.67 में दिए गए हैं। राज्य और जिला-स्तर पर भी इस प्रकार के निकायों की स्थापना की जानी चाहिए।

(2) प्रौढ़ शिक्षा के क्षेत्र में काम करने वाली स्वैच्छिक एजेंसियों को हर प्रकार का वित्तीय और तकनीकी प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए।

17.67-70 (501-502)

अठारहवां अध्याय. शैक्षिक योजना और प्रशासन

208. **योजना**—(1) अभी तक नामांकन और खर्च के लक्ष्यों की प्राप्ति पर आवश्यकता से अधिक बल दिया जाता रहा है इसलिए अब अधिक व्यापक दृष्टिकोण से विचार करने और मोटे-मोटे लक्ष्यों को, विशेषत: गुणात्मक सुधार सम्बन्धी लक्ष्यों को, निर्धारित करने की आवश्यकता है।

(2) अब तक सामान्य नीति यह रही है कि शिक्षा के प्रत्येक क्षेत्र में और प्रत्येक कार्यक्रम के लिये कुछ-न-कुछ अवश्य किया जाए। फल यह हुआ कि जो थोड़े-बहुत साधन उपलब्ध थे उनका बहुत बड़े क्षेत्र के लिए उपयोग किया गया : इस कारण अपव्यय हुआ। यह आवश्यक हो गया है कि कुछ महत्वपूर्ण कार्यक्रमों पर ही ध्यान केन्द्रित किया जाए।

(3) वर्तमान परिस्थिति में वित्तीय साधन सीमित हैं, अत: ऐसे कार्यक्रमों पर बल देने की आवश्यकता है जिनमें धन की अपेक्षा सुनियोजित प्रयत्न, संगठन, प्रतिभा और परिश्रम की अधिक ज़रूरत हो :

(4) योजनाओं में सम्मिलित सभी बड़े-बड़े कार्यक्रमों के आवधिक मूल्यांकन में और बड़े पैमाने पर अनुसन्धान कार्यक्रम के विकास में विश्वविद्यालयों, व्यावसायिक संस्थाओं, प्रशिक्षण कालिजों आदि को भली प्रकार लगाया जाए ।

(5) एशियाई शैक्षिक आयोजन संस्थान के सहयोग से विभिन्न राज्यों में शैक्षिक आयोजन के अध्ययन का जिम्मा शिक्षा मन्त्रालय को लेना चाहिए और विभिन्न स्तरों पर आयोजन में संलग्न कर्मचारियों को प्रशिक्षित करने के लिए गहन पाठ्यक्रम संचालित करना चाहिए ।

(6) शैक्षिक योजना, प्रशासन और वित्त-व्यवस्था के अध्ययन के लिए उच्च केन्द्र स्थापित करने की सम्भावना पर विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को विचार करना चाहिए ।

(7) उपयुक्त क्षेत्रों में केन्द्रीकरण और अन्य क्षेत्रों में, विशेषत: प्रशासन में, विकेन्द्रीकरण का सही सम्मिश्रण ही संघीय लोकतन्त्र में शैक्षिक योजना का प्रक्रम होगा। इस सन्दर्भ में एक उपयोगी सुझाव दिया जा सकता है कि राष्ट्रीय, राज्य और स्थानीय स्तरों पर अग्रताओं का क्रम अपनाया जाए ।

(8) स्कूली शिक्षा प्रमुखत: स्थानीय संस्थाओं और राज्य की साझेदारी है और उच्चतर शिक्षा केन्द्र और राज्य की साझेदारी । इसी मूलभूत सिद्धान्त के आधार पर केन्द्रीकरण और विकेन्द्रीकरण के बीच वह सूक्ष्म संतुलन स्थापित हो सकता है जो हमारे आयोजन में आवश्यक है । 18.02-08 (504-507)

209. **गैर-सरकारी उद्यम का दायित्व**—(1) शिक्षा के क्षेत्र में गैर-सरकारी उद्यम के भावी दायित्व के सम्बन्ध में मोटे तौर पर निम्नलिखित सिद्धान्तों को अपनाना चाहिए :

(क) आधुनिक भारत में शिक्षा के विकास में गैर-सरकारी उद्यम ने महत्वपूर्ण योगदान किया है, अत: शिक्षा के विकास के लिए गैर-सरकारी क्षेत्र से जो भी सहायता मिले उसका यथासम्भव पूरा-पूरा उपयोग राज्य को करना चाहिए ।

(ख) सभी आवश्यक शैक्षिक सुविधाएं देने की जिम्मेदारी राज्य ने अपने ऊपर ठीक ही ले ली है, अत: गैर सरकारी उद्यम को छोटा और सीमित कार्यक्षेत्र ही मिल सकता है ।

18. 09-11 (507-508)

210. **स्थानीय स्वायत्त निकायों का योगदान**—सामान्य परिपाटी यह होनी चाहिए कि किसी भी स्थानीय स्वायत्त निकाय को शिक्षा-प्रशासन का अधिकार एक विशेषाधिकार के रूप में इन दो शर्तों के अधीन दिया जाए—अच्छा प्रशासन और शिक्षा के प्रयोजन को बढ़ावा देना । जब भी इन शर्तों में से किसी एक का उल्लंघन हो तो यह विशेषाधिकार छीन लिया जाए । शिक्षा में स्थानीय निकायों का भावी योगदान इस प्रकार निर्धारित किया जाए :

(1) चरम उद्देश्य के रूप में यह आवश्यक है कि स्कूल और स्थानीय जनसमुदाय शिक्षा के कार्य में घनिष्ठता से साथ-साथ रहें ।

(2) परन्तु यह उचित नहीं होगा कि स्थानीय परिस्थितियों को ध्यान में रखे बिना ही इस सिद्धान्त को सर्वत्र और तत्काल अपनाने के लिए दबाव डाला जाए ।

(3) इस विषय में तात्कालिक लक्ष्य, जिसे सभी राज्यों में राष्ट्रीय नीति के रूप में अपनाया जाए, यह हो कि स्थानीय जनसमुदाय को, यानी, देहाती क्षेत्रों में ग्राम पंचायतों को और शहरी क्षेत्रों में नगरपालिकाओं को स्थानीय स्कूलों के साथ सहयोजित किया जाए और शिक्षकेतर खर्च की व्यवस्था के लिए उस पर जिम्मेदारी डाली जाए । इसके लिए वह आवश्यकतानुसार राज्यों से उपयुक्त सहायक अनुदान प्राप्त करे ।

(4) चरम लक्ष्य यह हो कि जिला स्तर पर एक ऐसे सक्षम स्थानीय शिक्षा निकाय-जिला स्कूल बोर्ड की स्थापना की जाए जिसे जिले में विश्वविद्यालय स्तर से नीचे की शिक्षा का भार सौंपा जाए । इसे राष्ट्रीय नीति के रूप में भी स्वीकार किया जाना चाहिए ।

(5) शिक्षा के क्षेत्र में स्थानीय स्वायत्त निकायों का सहयोग लेते समय शिक्षकों के हित की दृष्टि से इस बात का पूरा ध्यान रखा जाए कि शिक्षकों को सताया न जाए और वे स्थानीय गुटबन्दी और राजनीति से दूर रहें ।

211. **जिला और नगरपालिका स्कूल बोर्ड**—जिला स्कूल बोर्ड का अधिकार क्षेत्र जिले का समस्त क्षेत्र होना चाहिए तथापि जिले की बड़ी नगरपालिकाओं को अलग रखा जा सकता है। जिला परिषद्, नगरपालिकाओं शिक्षाविदों और संबंधित विभागों के प्रतिनिधि इस बोर्ड में होने चाहिए। राज्य सरकार का एक वरिष्ठ अधिकारी (प्रथम श्रेणी) इस बोर्ड का पूर्वकालिक सचिव होना चाहिए जिस के पास आवश्यक संख्या में प्रशासनिक और पर्यवेक्षक कर्मचारी हों।

(2) जिले में सामान्य और व्यावसायिक दोनों प्रकार की स्कूली शिक्षा इस बोर्ड के कार्यक्षेत्र में होनी चाहिए। जिले के सभी सरकारी और स्थानीय स्वायत्त निकायों के स्कूलों पर इस बोर्ड का प्रशासन हो और राज्य सरकार द्वारा गैर-सरकारी संस्थाओं को सहायक अनुदान देने के संबंध में बनाए गए नियमों के अनुसार, जिले की सभी गैर-सरकारी संस्थाओं को सहायक अनुदान देने का कार्य भी इस बोर्ड के अधीन रहे।

(3) जिला स्कूल बोर्ड की यह जिम्मेदारी हो कि वह जिले में स्कूली शिक्षा के विकास की योजनाएं बनाए। इसके अलावा वह जिले में स्कूली शिक्षा के विकास का प्रमुख माध्यम भी हो। इस कार्य के लिए उसे राज्य सरकार और राज्य शिक्षा विभाग से आवश्यक आर्थिक सहायता और मार्गदर्शन मिले।

(4) एक लाख या इससे अधिक जनसंख्या वाले बड़े नगरों में, ऊपर बताई गई पद्धति पर ही, नगरपालिका स्कूल बोर्ड स्थापित करना वांछनीय होगा क्योंकि वहां ऐसे प्रशासनिक एकक ही कारगर सिद्ध होंगे। इन बोर्डों का गठन, शक्तियां और जिम्मेदारियां वैसी ही होंगी जैसी कि जिला स्कूल बोर्डों के सम्बन्ध से बताई गई हैं।

(5) प्रत्येक स्कूल अपने यहां एक शिक्षा निधि रखेगा। जिला परिषदें (या नगरपालिकाएं) स्कूल बोर्डों के बजट का अनुमोदन करेंगी। वे अपने साधनों से पैसा इकट्ठा करेंगी और स्कूल बोर्ड के खाते में जमा करा देंगी। अपने दैनंदिन प्रशासन में स्कूल बोर्ड स्वायत्त होगा। नगरपालिका स्कूल बोर्ड और उसकी नगरपालिका के बीच भी यही सम्बन्ध रहेगा।

(6) राज्य सरकार द्वारा बनाए गए नियमों के अधीन रहते हुए, शिक्षकों की भर्ती और स्थानान्तरण एक विशेष समिति करेगी जिसमें बोर्ड के अध्यक्ष और सचिव तथा जिला अधिकारी रहेंगे। इस विषय में सामान्य नीति यह रहेगी कि कम से कम स्थनान्तरण किए जाएं और शिक्षकों को अपनी संस्थाओं के प्रति वफ़ादारी बढ़ाने का अवसर दिया जाए।

(7) कुछ मामलों में यह अधिक लाभकर सिद्ध हो सकता है कि स्कूल बोर्ड पर एक साथ सारी प्रशासनिक जिम्मेदारियों का बोझ न डाला जाए। स्कूल बोर्ड को ज्यों-ज्यों अधिक अनुभव और क्षमता प्राप्त होती जाए, त्यों-त्यों उसे और अधिक शक्तियां दी जाएं।

18.12-24 (508-512)

212. **केन्द्रीय सरकार का योगदान**—(1) वैज्ञानिक और तकनीकी शिक्षा-क्षेत्र की संस्थाओं के अलावा, केन्द्र के लिए यह भी आवश्यक है कि वह ऐसी संस्थाएं स्थापित करे जिनमें शिक्षाशास्त्र और मानविकी विषयों समेत अन्य समाज-विज्ञानों के शिक्षण की विशेष व्यवस्था हो। इन संस्थाओं का विश्वविद्यालयों से घनिष्ठ सम्बन्ध होना चाहिए और वे विश्वविद्यालय तंत्र का अभिन्न अंग होनी चाहिए।

(2) केन्द्र सरकार संघशासित क्षेत्रों में विशेषतः दिल्ली में, शिक्षा का विकास भी कर सकती है और इस प्रकार अन्य क्षेत्रों के लिए अग्रणी बन सकती है।

(3) केन्द्र सरकार को विभिन्न क्षेत्रों में प्रतिभावान व्यक्तियों की खोज करनी चाहिए और देश के उत्तम व्यक्तियों की सेवाएं राज्य सरकारों को, सभी मामलों में, सलाह और सहायता के लिए उपलब्ध करनी चाहिए।

(4) राज्य-योजनाओं के अन्तर्गत शैक्षिक क्षेत्र के विशिष्ट कार्यक्रमों के लिए निधि निर्धारित करने की आवश्यकता नहीं है। योजना-आयोग के अनुमोदन के बिना शिक्षा के लिए विनिहित कुल रकम में कोई फेर-बदल नहीं होनी चाहिए। परन्तु इसकी सीमाओं में रहते हुए, राज्य सरकारों को अपने विवेकानुसार निधियों का उपयोग करने की स्वतन्त्रता होनी चाहिए।

(5) केन्द्रीय और केन्द्र-प्रायोजित शिक्षा-क्षेत्रों के विस्तार को पर्याप्त महत्व देना चाहिए। इसी व्यवस्था के जरिए केन्द्र महत्वपूर्ण शिक्षा-क्षेत्रों में शैक्षिक विकास को राष्ट्रीय हित के लिए प्रोत्साहन और मार्गदर्शन दे सकेगा।

(6) शिक्षा को विभाजित करके उसका एक भाग समवर्ती सूची में और दूसरा राज्य-सूची में न रखा जाए। हमारे जैसे बड़े देश के लिए, संविधान में शिक्षा को जो स्थिति दी गई है, वही सम्भवतः सर्वोत्तम है क्योंकि इस में प्रोत्साहित करने वाले किन्तु दबाव न डालने वाले केन्द्रीय

नेतृत्व की व्यवस्था है। सबसे अधिक आवश्यकता लचीलेपन और प्रयोग की स्वतन्त्रता की है।

(7) शिक्षा के विकास और राष्ट्रीय शिक्षा नीति के निर्धारण के लिए संविधान की वर्तमान व्यवस्थाओं का पूरा-पूरा उपयोग करने का प्रयत्न किया जाना चाहिए। दस वर्ष बाद समस्या पर फिर से विचार किया जा सकता है। 18.25-30 (512-515)

213. **शिक्षा मंत्रालय**—(1) भारत सरकार के सचिव का पद एक प्रख्यात शिक्षाविद् को, जिसे "भारत सरकार का शिक्षा सलाहकार और शिक्षा मंत्रालय का सचिव" पदसंज्ञा दी जाती है, देने की परिपाटी चालू रहनी चाहिए। यह एक वरण-पद होना चाहिए और इसके लिए सरकारी, गैर-सरकारी, भारतीय शिक्षा सेवा के सदस्य और विश्वविद्यालयों के शिक्षक आदि सभी प्रकार के उपलब्ध व्यक्तियों में से उपयुक्त व्यक्ति लेना चाहिए। यह पद एक सावधि पद होना चाहिए जो पहले केवल छह वर्ष के लिए दिया जाए और आपवादिक स्थिति में ही इस अवधि को तीन या चार वर्ष के लिए और बढ़ाया जा सकता है परन्तु आगे छह वर्ष के लिए कभी नहीं बढ़ाया जा सकता।

(2) अतिरिक्त या संयुक्त सचिवों के आधे पद राज्य शिक्षा विभागों द्वारा समर्थित अधिकारियों में से पदोन्नति द्वारा भरे जाएं और बाकी आधे प्रख्यात भाषाविदों और विश्वविद्यालयों तथा स्कूलों के उत्कृष्ट कोटि के अध्यापकों में से भरे जाएं। सेवा की अवधि पांच वर्ष होनी चाहिए और उसे अधिक-से-अधिक पांच वर्ष के लिए और बढ़ाया जा सकता है।

शिक्षा मंत्रालय, सूचना आदान-प्रदान केन्द्र (क्लीयरिंग हाउस) के रूप में जो कार्य करता है उसमें काफी विस्तार करने और अधिक कर्मचारी लगाने की आवश्यकता है। पर्याप्त परिमाण में यह कार्य करने के लिए एक प्रभाग खोला जाना चाहिए जिसमें पर्याप्त संख्या में कर्मचारी हों।

(4) शिक्षा मंत्रालय एक समिति नियुक्त करके उसे विभिन्न प्रकार के अपेक्षित अध्ययनों पर विचार करने और कार्रवाई करने करने का कार्य सौंप सकता है :

(5) शैक्षिक योजना, नीतिनिर्धारण और मूल्यांकन के लिए एक सुयोजित सांख्यिकीय सेवा बनाए रखना भी शिक्षा मंत्रालय की एक बड़ी जिम्मेदारी है। इस कार्य को भली भांति सम्पन्न करने के लिए, शिक्षा मंत्रालय का सांख्यिकीय अनुभाग पुनर्गठित और सशक्त किया जाना चाहिए। राज्यों के सांख्यिकीय एककों को भी इसी प्रकार पुनर्गठित और सशक्त करना।

(6) केन्द्रीय शिक्षा सलाहकर बोर्ड को और उसकी स्थायी समितियों को कार्य की दृष्टि से सशक्त बनाया जाए। 18.31-35 (516-517)

214. **राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्** (1) परिषद् को एक ऐसी प्रमुख तकनीकी एजेंसी के रूप में विकसित किया जाना चाहिए जो स्कूली शिक्षा में सुधार के लिए राष्ट्रीय स्तर पर और राष्ट्रीय स्कूल शिक्षा बोर्डों, राज्यों के शिक्षा विभागों और राज्य शिक्षा संस्थानों जैसी तकनीकी एजेंसियों के साथ मिलकर और उनके माध्यम से कार्य करे।

(2) परिषद् के शासी-निकाय का स्वरूप अखिल भारतीय होना चाहिए और उसमें गैर-सरकारी सदस्यों का बहुमत होना चाहिए। यह वांछनीय है कि उसमें कम-से-कम माध्यमिक स्कूल का एक उत्कृष्ट शिक्षक हो। यदि वह प्राथमिक स्कूल का शिक्षक भी हो तो अधिक उपयुक्त होगा।

(3) परिषद् के निदेशक और संयुक्त निदेशक पूर्णकालिक होने चाहिए। निदेशक अपने क्षेत्र का प्रख्यात शिक्षाविद् होना चाहिए और उसका पद उपकुलपति के पद के बराबर होना चाहिए। पदावधि पांच वर्ष की होनी चाहिए जिसे अधिक-से-अधिक पांच वर्ष तक और बढ़ाया जा सकता है। संयुक्त निदेशक प्रमुख रूप से निदेशक को सहायता देने और नेमी प्रशासन कार्यों के भार से निदेशक को मुक्त रखने के लिए आवश्यक होगा।

(4) राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् के अंतर्गत जो केन्द्रीय शिक्षा संस्थान है उसे दिल्ली विश्वविद्यालय के अधीन कर दिया जाए।

(5) यह वांछनीय है कि परिषद् और राज्यों के शिक्षा विभागों के बीच अधिकारियों को परस्पर विनिमय और आदात-प्रदान पर्याप्त मात्रा में होता रहे।

(6) परिषद् के अहाते (केम्पस) का विकास तुरन्त किया जाना चाहिए और भवन निर्माण के कार्य को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जानी चाहिए। 18.36 (517-518)

215. **राज्य स्तर पर शैक्षिक प्रशासन**—(1) यह वांछनीय है कि राज्य स्तर पर शिक्षा के विभिन्न विभागों के कार्यों में समन्वय के लिए कोई तन्त्र (मशीनरी) स्थापित किया जाए और योजना तथा विकास के प्रयोजनों के लिए एकीकृत दृष्टिकोण अपनाया जाए।

(2) राज्य स्तर पर एक विधिक शिक्षा परिषद् की स्थापना होनी चाहिए। राज्य का शिक्षा मंत्री उसका अध्यक्ष होना चाहिए। राज्य के विश्वविद्यालयों के प्रतिनिधि, विभिन्न शिक्षा-क्षेत्रों के प्रभारी, सभी निदेशक और कुछ प्रख्यात शिक्षाविद् इसके सदस्य होने चाहिए। इसका मुख्य कार्य स्कूली शिक्षा के सभी मामलों में राज्य सरकार को सलाह देना, राज्य में हुए शैक्षिक विकास की समीक्षा करना तथा उपयुक्त एजेंसियों के जरिए समय-समय पर कार्यक्रमों का मूल्यांकन करना होगा। इसकी वार्षिक रिपोर्ट, इसकी सिफ़ारिशों के साथ, राज्य विधान मंडल के सामने प्रस्तुत की जानी चाहिए।

(3) अधिकारियों के स्तर पर स्थापित की जाने वाली स्थाई समिति में राज्य स्तर पर शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों के प्रभारी अधिकारी होने चाहिए। शिक्षा सचिव की अध्यक्षता में इसकी बैठकें समय-समय पर होनी चाहिए।

(4) भारत सरकार के शिक्षा सलाहकार के समान शिक्षा-सचिव भी एक प्रशासनिक अधिकारी न होकर, शिक्षाविद् होना चाहिए। इस नियुक्ति को सावधि पद बनाना वांछनीय होगा।

(5) मोटे तौर पर शिक्षा सचिवालय का यह कार्य होना चाहिए कि वह शैक्षिक समस्याओं को प्रशासनिक और वित्तीय दृष्टिकोण से तथा विकास सम्बन्धी सरकारी नीतियों के व्यापक संदर्भ में जांचे। उसे तकनीकी मामलों में निदेशालय के विचारों को उचित महत्व देना चाहिए, और निदेशक को एक प्रभावशाली विभागाध्यक्ष के रूप में कार्य करने में सहायता देनी चाहिए।

18.37-42 (518-520)

216. **भारतीय शिक्षा सेवा**—(1) भारतीय शिक्षा सेवा शिक्षण और अनुसंधान के लिए सेवक एजेंसी के समान होनी चाहिए। इस सेवा में ऐसे व्यक्ति होने चाहिए जिन्हें शिक्षा क्षेत्र का अनुभव हो और जिनके शैक्षिक प्रशासक होने और शिक्षण क्षेत्र में पुनः लौटने की संभावना हो; अध्यापक होते हुए भी उनके प्रशासन क्षेत्र में, कम-से-कम सावधि पद पर, जाने की सम्भावना तो अवश्य ही होनी चाहिए। इसमें भर्ती का तरीका इस प्रकार होना चाहिए।

(क) कनिष्ठ स्तर पर केवल एक-तिहाई पद सीधी भर्ती से भरे जाएं। इस प्रकार चुने गए लोगों को सीधे प्रशासन में न लगाया जाए। कम-से-कम पहले दो या तीन वर्षों के लिए उन्हें शिक्षण कार्य में लगाया जाए और इसे पूरा करने के बाद ही उन्हें प्रशासन कार्य सौंपा जाए।

(ख) शेष दो-तिहाई पदों में से कुछ सीधी भर्ती से और कुछ वरिष्ठ और उच्च स्तर पर पदोन्नति करके भरे जाएं।

(ग) भारतीय शिक्षा सेवा के कुछ पद निश्चित अवधि के लिए अध्यापकों की सावधि नियुक्ति से भरे जाने चाहिए। इसी प्रकार शिक्षण और अनुसंधान क्षेत्र के कुछ पद भी भारतीय शिक्षा सेवा के व्यक्तियों की सावधि नियुक्ति के लिए उपलब्ध होने चाहिए।

(2) भारतीय शिक्षा सेवा में एक शिक्षण-स्कंध बनाने में दुस्तर कठिनाइयां हैं अतः उसे बनाने का विचार छोड़ दिया जाना चाहिए। इस सेवा में केवल इन पदों को शामिल किया जाना चाहिए : राज्यों में—निदेशक और निदेशालय के अधिकारी, जिला शिक्षा अधिकारी और उच्चतर माध्यमिक स्कूलों के प्रधानाध्यापक; केन्द्र में—शिक्षा मंत्रालय, अन्य मंत्रालयों और संघशासित क्षेत्रों के शिक्षा विभागों के शैक्षिक अधिकारी।

(3) भारतीय शिक्षा सेवा के उच्चतर वेतनमानों के बराबर के कुछ पद उचित संख्या में विश्वविद्यालयों और कालेजों में भी होने चाहिए ताकि प्रतिभावान् व्यक्ति शिक्षण और अनुसंधान के क्षेत्र से निकलकर प्रशासन की ओर जाने के लिए लालायित न रहें।

(4) यह परपाटी बन जानी चाहिए कि भारतीय शिक्षा सेवा के लगभग 50 प्रतिशत अधिकारी ही उनके अपने राज्यों में रखे जाएं, और (केन्द्र में प्रतिनियुक्ति के अतिरिक्त) अन्तर्राज्य स्थानान्तरणों की भी गुंजाइश रहनी चाहिए। इसके लिए, भारतीय शिक्षा सेवा के प्रत्येक सदस्य को, भर्ती होने के बाद एक निश्चित अवधि के भीतर, दो अन्य भाषाओं (हिन्दी और एक आधुनिक भारतीय भाषा जो उसकी मातृभाषा न हो) का अध्ययन करके एक निर्धारित स्तर की परीक्षा पास करनी होगी।

18.44-49 (520-522)

217. **राज्य शिक्षा सेवा**—(1) उच्चतर स्तरों पर, यानी प्रथम वर्ग और द्वितीय वर्ग में, पदों की पर्याप्त संख्या होनी चाहिए। जिला स्कूल बोर्डों के सचिव प्रथम वर्ग में होने चाहिए। जिला शिक्षा निदेशकों को (जो भारतीय शिक्षा सेवा में होंगे) प्रथम तथा द्वितीय वर्ग के अधिकारियों से पर्याप्त सहायता मिलनी चाहिए। प्रति-

भावान् व्यक्तियों को आकर्षित करने के लिए इन तीन स्तरों पर भर्ती आवश्यक है : सहायक शिक्षकों के स्तर पर, द्वितीय वर्ग के स्तर पर (50 प्रतिशत नए भर्ती होने वालों के लिए और 50 प्रतिशत पदोन्नति के लिए), और प्रथम वर्ग के स्तर पर (70 प्रतिशत नए भर्ती होने वालों के लिए और 25 प्रतिशत पदोन्नति के लिए)।

(2) इस समय जिन बड़े-बड़े सुधारों की आवश्यकता है उनमें से एक यह है कि विशेषज्ञ कर्मचारियों के आधार पर राज्य शिक्षा विभागों को आवश्यकतानुसार पुनर्गठित किया जाए। इससे भी अधिक आवश्यक और महत्वपूर्ण यह है कि विश्वविद्यालयों की सहायता से उनके विशिष्ट प्रशिक्षण की समुचित व्यवस्था की जाए।

(3) विभागीय कर्मचारियों के वेतन की विषमताओं को कम करने के लिए और उनकी स्थानान्तरणीयता के लिए यह प्रस्ताव है कि (क) शिक्षण और प्रशासन स्कंधों में वेतनमान एक-समान होने चाहिए, और (ख) विभागीय कर्मचारियों के वेतनमान विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा विश्वविद्यालय-शिक्षकों के लिए निर्धारित वेतनमानों के बराबर होने चाहिए।

18.50 (522-523)

217. **शैक्षिक प्रशासकों का प्रशिक्षण**—(1) राज्य शिक्षा संस्थानों को, आवश्यकतानुसार, विश्वविद्यालयों के सहयोग से, प्रशासन और निरीक्षण दोनों के अराजपत्रित शैक्षिक कर्मचारियों की अंतःसेवा शिक्षा के कार्यक्रम आयोजित करने चाहिए। इसके अतिरिक्त, उन्हें राजपत्रित अधिकारियों के लिए सम्मेलन, संगोष्ठियां और कार्यशिविर आयोजित करने चाहिए।

(2) शैक्षिक समस्याओं का विशेष अध्ययन करने के लिए प्रशासकों को 'फर्लो' छुट्टी देने की पुरानी प्रथा फिर से चालू की जानी चाहिए।

(3) जो अधिकारी सेवाकालीन शिक्षा कार्यक्रमों के जरिए अपनी योग्यताओं में महत्वपूर्ण वृद्धि कर लें उन्हें कुछ प्रोत्साहन मिलना चाहिए। 18.51.52(523-524)

219. **राष्ट्रीय शिक्षा प्रशासन स्टाफ कालेज**—शिक्षा मन्त्रालय को राष्ट्रीय शिक्षा प्रशासक स्टाफ कालेज स्थापित करना चाहिए। इसमें भारतीय शिक्षा सेवा और राज्य शिक्षा सेवाओं के सभी वरिष्ठ अधिकारियों की अंतःसेवा शिक्षा की व्यवस्था होनी चाहिए : लंबा पाठ्यक्रम नए भर्ती हुए लोगों के लिए और तीन से छह सप्ताहों के छोटे पाठ्यक्रम उन अधिकारियों के लिए जो पहले से ही सेवा में हों। इसमें एक अनुसंधान स्कंध भी होना चाहिए जिसमें शैक्षिक प्रशासन की समस्याओं के अध्ययन की व्यवस्था हो और जो राज्यों और संघशासित केन्द्रों में प्रचलित प्रशासनिक क्रियाविधियों और प्रथाओं की जानकारी ले-दे सके। इसे समय-समय पर शैक्षिक प्रशासन संबंधी विषयों पर सम्मेलन, संगोष्ठियां और कार्य शिविर आयोजित करने चाहिए।

18.53 (524)

220. **शिक्षा-विभाग**—अधिकांश राज्यों की वर्तमान स्थिति यह है कि उनके शिक्षा विभाग में कर्मचारियों की बहुत कमी है क्योंकि विभागीय कर्मचारियों की संख्या में वृद्धि तब की जाती है जब शिक्षा-संस्थाओं की संख्या बढ़ जाती है, इससे पहले नहीं, आवश्यक अधिकारियों की संख्या निर्धारित करने के लिए जो मानदण्ड है, उन्हें सिद्धान्ततः मान लेने पर भी व्यवहार में उनका ध्यान नहीं रखा जाता; विभागीय कर्मचारियों की संख्या बढ़ाने पर खर्च करने की बारी बहुत बाद में आती है। हम इस एक शर्त के साथ इन सभी नीतियों को उलट देने की सिफ़ारिश करते हैं कि निम्न स्तर पर और अपर्याप्त वेतनमान में बहुत से अधिकारी रखने के बदले, उच्चस्तर पर कम अधिकारी रखना कहीं अधिक अच्छा है।

14.54 (525)

221. **कार्यविधियां**—(1) प्रशासकों के रवैये में परिवर्तन आना चाहिए, उन्हें उदार होना चाहिए। उनमें नई बातों के प्रति जिज्ञासा होनी चाहिए। उनका दृष्टिकोण रूढ़िवादी नहीं होना चाहिए क्योंकि उसके कारण पुरानी और निरर्थक रूढ़ियों से ही चिपके रहना पड़ता है।

(2) प्रत्येक तीन से पांच वर्ष के बाद महत्वपूर्ण प्रशासनिक परिपाटियों की समीक्षा करने की प्रथा डाली जानी चाहिए ताकि गली-सड़ी, निरर्थक बातों को निकाला जा सके और उनमें नए सुधारों की कलम लगाई जा सके।

(3) अन्तर्राज्य संपर्क स्थापित किया जाना चाहिए और सभी प्रशासनिक विषयों में विभिन्न राज्यों में प्रचलित परिपाटियों के तुलनात्मक अध्ययन को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। समय-समय पर शैक्षिक प्रशासन का तुलनात्मक अध्ययन किया जाना चाहिए और इसमें राज्यों के शिक्षा विभागों को भी पूरी तरह लगाना चाहिए।

(4) योजना बद्ध ब्योरेवार कार्यक्रम बनाने की तकनीक का विकास करना और उनमें अधिकारियों को प्रशिक्षित करना—राज्य शिक्षा संस्थानों और राष्ट्रीय शिक्षा प्रशासक स्टाफ़ कालेज की जिम्मेदारी है।

(5) आधुनिक 'अधिकारी-आश्रित' पद्धति अपनाई जानी चाहिए। इसके अन्तर्गत अधिकांश कार्य थोड़े से सचिवालयीन कर्मचारियों की सहायता से, अधिकारियों द्वारा अपने ही स्तर पर निपटा दिया जाता है।

18.55-56 (525-526)

222. **शिक्षा अधिनियम**—(1) शिक्षा को सर्वत्र और सभी शिक्षा क्षेत्रों में विधिक आधार दिया जाना चाहिए। सभी राज्यों और संघ शासित क्षेत्रों में शिक्षा अधिनियम बनाए जाने चाहिए। ये अधिनियम व्यापक और समेकनकारी होने चाहिए। जो वर्तमान विविधताओं के स्थान पर लागू हों और इस समय केवल कार्यकारी आदशों के रूप में प्रचलित प्रशासन के महत्वपूर्ण नियमादि (जैसे सहायक अनुदान संहिता) को विधिक आधार दें।

(2) भारत सरकार को राष्ट्रीय शिक्षा नीति के संबंध में एक वक्तव्य जारी करना चाहिए जिससे राज्य सरकारों और स्थानीय स्वायत्त निकायों को अपने-अपने क्षेत्रों के लिए शैक्षिक योजनाएं बनाने और उन्हें कार्यान्वित करने में मार्ग-दर्शन मिले।

(3) एक राष्ट्रीय शिक्षा अधिनियम पास करने की संभावना पर विचार भी होना चाहिए।

18.57-58 (526)

उन्नीसवां अध्याय. शिक्षा के लिए वित्त

223. **शिक्षा का कुल खर्च**—यदि शिक्षा का पर्याप्त विकास करना है तो अगले बीस सालों में शिक्षा का खर्च जो 1965-66 में 12 रु० प्रति व्यक्ति था, बढ़कर (स्थिर कीमतों पर) 1985-86 में 54 रु० प्रति व्यक्ति हो जाना चाहिए। इसका मतलब है कि शिक्षा का खर्च जो 1950-51 में 114.4 करोड़ रुपए था और 1965-66 में 600.0 करोड़ रु० हो गया, वह 1985-86 में और भी बढ़कर 4036.4 करोड़ रु० हो जाएगा। कुल राष्ट्रीय उत्पाद शिक्षा के लिए नियतन प्रतिशत 2965-66 में 2.9 था, 1995-86 में बढ़कर 6 तक हो जाएगा।

19.21-24 (538-541)

224. **द्रव्य का बंटवारा**—यद्यपि आगामी दो या तीन दशकों में शिक्षा के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों के बीच शिक्षा के खर्च का स्वरूप मोटे तौर पर सही होगा कि उपलब्ध साधनों का दो-तिहाई स्कूल शिक्षा पर खर्च हो और एक-तिहाई उच्चतर शिक्षा पर, किन्तु कार्यक्रमों का सापेक्ष महत्व एक दशक से दूसरे दशक में इस प्रकार बदलते रहना चाहिए—(1) 1965 से 1975 तक स्कूल शिक्षा पर अधिक धन खर्च करना चाहिए, यह इसलिए आवश्यक होगा कि (एक) स्कूलों के शिक्षकों के वेतन बढ़ाने हैं; (दो) पूर्व-विश्वविद्यालय पाठ्यक्रमों और इंटर कक्षाओं को विश्वविद्यालय से हटाकर स्कूल स्तर में ले आना है; (तीन) सब बच्चों के लिए कम-से-कम पांच साल की प्रभावकारी शिक्षा की व्यवस्था करनी है; (चार) माध्यमिक शिक्षा का व्यवसायीकरण करना है।

(2) 1975 से 1985 वाले दशक में जिन कार्यक्रमों पर जोर देना है उनमें सात वर्ष की प्राथमिय प्रभावकारी शिक्षा का व्यवसायीकरण सम्मिलित है। इस दशक में, उच्चतर शिक्षा पर जोर देना आरम्भ हो जाना चाहिए।

(3) 1985 के बाद उच्चतर शिक्षा और अनुसंधान के विकास को अपेक्षाकृत अधिक महत्व दिया जाएगा।

19.25 (541)

225. **शिक्षा के लिए धन उपलब्ध करने वाले स्रोत**—(1) यद्यपि शिक्षा के लिए अपेक्षित धन का प्रबंध अधिकतर सरकारी निधियों से होगा पर शिक्षा की वित्तीय जिम्मेदारी का पूरी तरह केन्द्रीकरण कर देना उचित नहीं है। अतः इसके लिए स्थानीय समुदायों, स्वैच्छिक संगठनों और स्थानीय स्वायत्त प्राधिकारियों से अंशदान प्राप्त करने के प्रयत्न भी किए जाने चाहिए।

(2) स्कूल में भौतिक सुविधाओं को बढ़ाने और स्कूल निधियों की स्थापना करने के लिए स्कूल सुधार सम्मेलनों को संगठित करके स्थानीय समुदायों की सहायता प्राप्त की जानी चाहिए।

(3) जिला बोर्ड के स्कूलों को वित्तीय सहायता देने के लिए जिला परिषदों को लगान पर उपकर लगाकर अतिरिक्त धन इकट्ठा करना चाहिए। राज्य को उपकर की न्यूनतम दर निर्धारित कर देनी चाहिए और जिला परिषदों को इसे एक निर्धारित अधिकतम सीमा तक बढ़ाने का अधिकार दे देना चाहिए। धन एकत्र करने के लिए प्रोत्साहन देने की दृष्टि से, सरकार को जिला परिषदों द्वारा इस प्रकार वसूल की गई राशि के अनुपात में सहायक अनुदान देना चाहिए। 19.14-20 (536-538)

226. **जिला परिषदों को सहायक अनुदान**—(1) जिला परिषदों को राज्य सरकार से मिलने वाले सहायक अनुदानों की प्रणाली में सुधार करके उसे इस प्रकार कर दिया जाए :

(क) शिक्षकों और सरकार द्वारा मंजूर अन्य प्रशासनिक और पर्यवेक्षक कर्मचारी-वर्ग के वेतन और भत्तों के

लिए 100 प्रतिशत अनुदान दिया जाय। शिक्षकों की अपेक्षित संख्या और आवश्यक प्रशासनिक तथा पर्यवेक्षक कर्मचारी-वर्ग के बारे में निश्चित नियम बना दिए जाएं;

(ख) शिक्षकेतर लागतों के लिए प्रत्येक उपस्थित विद्यार्थी के हिसाब के एकमुश्त अनुदान दिया जाए। इस अनुदान की राशि हर वर्ग के स्कूलों के लिए अलग-अलग निश्चित कर दी जाय और इसे हर 3 से 5 वर्ष के बाद संशोधित किया जाए;

(ग) जिला परिषद द्वारा स्थानीय रूप से जुटाए गए धन और सरकारी अनुदान को जिला परिषद को सौंप दिया जाए ताकि वह स्वविवेक से उसे विकास-कार्यक्रमों पर खर्च कर सके; और,

(घ) अनावर्ती खर्च के लिए सहायक अनुदान अलग से दिया जाए जो, यथासम्भव, खर्च का दो-तिहाई हो।

(2) राज्य सरकार द्वारा जिला परिषदों को दिए गए सहायक अनुदानों को निधिबद्ध करने की अनुमति होनी चाहिए ताकि वे वित्तीय वर्ष की समाप्ति पर व्यपगत न हो जाएं। (अनुपूरक टिप्पणी 1, पैरा 2, पृष्ठ 559)

227. **नगरपालिकाओं को सहायक अनुदान**—(1) नगरपालिकाओं के लिए यह आवश्यक हो कि वे शिक्षा के खर्च का कुछ भार स्वयं वहन करें। इसके लिए उन्हें भूमि और इमारतों पर उपकर लगाना चाहिए।

(2) सरकारी अनुदान पाने के विचार से, नगरपालिकाओं को उनकी आर्थिक समृद्धि के आधार पर वर्गीकृत किया जाए और अपेक्षाकृत विर्धन नगरपालिकाओं को अन्य नगरपालिकाओं की तुलना में ऊंची दर पर सहायक अनुदान दिए जाएं।

(3) सभी नगर निगमों पर अपने-अपने क्षेत्र में कम-से-कम प्राथमिक शिक्षा के खर्च की जिम्मेदारी होनी चाहिए। उन्हें सरकारी अनुदान आनुपातिक आधार पर जोर दिया जाए ताकि खर्च का कुछ अंश निगम भी अपने पास से दे। (अनुपूरक टिप्पणी I, पैरा 4, पृष्ठ 560)

228. **केन्द्र का योग**—केन्द्र और केन्द्र द्वारा प्रेरित क्षेत्रों का विस्तार करके केन्द्रीय सरकार की शिक्षा की वित्तीय जिम्मेदारी का पहले से अधिक भार उठाना चाहिए। इसमें नीचे लिखी बातें शामिल हो :

(1) विशेष महत्व के और राष्ट्रीय स्तर के कार्यक्रमों का वित्तीय भार केन्द्र सरकार पर हो।

(2) केन्द्र-प्रायोजित क्षेत्र में कुछ कार्यक्रम ऐसे हों जो हर राज्य में उनकी अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप यथोचित परिवर्तन के साथ लागू किए जा सकें।

(3) केन्द्र-प्रायोजित क्षेत्र में चलाए जाने वाले कार्यक्रमों को केन्द्रीय सहायता पांच वर्ष के लिए दी जाए जो किन्हीं किन्हीं मामलों में दस वर्ष तक जारी रखी जाए। इसका सम्बन्ध पंचवर्षीय योजना की अवधि से नहीं होना चाहिए जैसा कि इस समय है।

(अनुपूरक टिप्पणी I, पैरा 9-15, पृष्ठ 561-565)

229. **मितव्ययिता और उपयोग**—शिक्षा के लिए अधिकतम साधन जुटाने पर भी यदि परम्परागत तकनीकें, जिन्हें अपनाने के कारण भारी बरबादी होती है, जारी रहीं और अगति की स्थिति को समाप्त न किया गया तो इन साधनों से शैक्षिक पुनर्निर्माण की न्यूनतम आवश्यकताएं भी पूरी नहीं की जा सकेंगी। इसलिए ऐसे उपाय अपनाना आवश्यक होगा जिनसे अधिकतम मितव्ययिता हो सके, साधनों की बरबादी रोकी जा सके और पैसे का अच्छे से अच्छा उपयोग हो। इनमें से कुछ उपायों की चर्चा पैरा 20.44 में की जा चुकी है। वे और ऐसे अन्य सभी उपाय अपनाने चाहिए जिनसे मितव्ययिता तो हो पर कार्यकुशलता में कमी न आए। 19.41 (553-554)

230. **अनुसन्धान**—कतिपय अन्य देशों में जो अध्ययन किए गए है उनसे पता चलता है कि आर्थिक विकास के लिए शिक्षा का कितना अधिक महत्व है, लेकिन भारत में इस प्रकार के अध्ययन नहीं किए गए हैं। इस विषय के महत्व को ध्यान में रखते हुए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को कुछ विश्वविद्यालयों में इस विषय के अध्ययन को बढ़ावा देना चाहिए। 19.43 (554-555)

अनुक्रमणिका

अ

अंकन, 276
  परीक्षाएं, 276
अंग्रेजी, भाषा, 15-18, 219, 332-333, 438-439
  अध्ययन और अध्यापन, 1-18, 332-333
    इंजीनियरी शिक्षा, 438
    उच्चतर शिक्षा स्तर, 332-333
    स्कूल स्तर, 17, 219
अंडमान व निकोबार द्वीप समूह, 29, 31, 38, 39
अंतर्राष्ट्रीय सदभाव, 19, अतः **सांस्कृतिक** शिक्षा भी देखें
अंतः विश्वविद्यालय बोर्ड, 371-376, 189-392, 393-397, 463
  और दीक्षांत समारोह, 389-392
  और राज्य विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, 393
  वैज्ञानिक शिक्षा
    पाठ्य-पुस्तकें, 463
  शैक्षिक स्वायत्तता, 371-376, 194-327
  समारोह, 389-392
अंतः सांस्कृतिक शिक्षा, 23
  इस्लामी, 23
  चीनी, 23
  जापानी, 23
अंतः सेवा प्रशिक्षण—**अध्यापक** अंतः सेवा शिक्षा के अंतर्गत देखें।
अंधे, उनकी शिक्षा-देखें विशेष शिक्षा में
अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद 376, 423, 419 441-442
  इंजीनियरी शिक्षा, 432-433, 438
    अध्यापन-शिक्षा 441-442
      अध्यापन बोर्ड 441-442
      समन्वय समिति 441
    शिक्षा का माध्यम
      अंग्रेजी 438
अतिथि स्कूल परामर्श दाता, 268
अदालतें,
  और विश्वविद्यालय, 385
अध्यापक 52-74, 319-323, 328-329, 702-707 (स)*
  अध्यापक कल्याण सेवा 65, 705-706 (स)
  आवास व्यवस्था, 70
  चुनाव और नियुक्ति
    उच्चतर शिक्षा स्तर, 60-61, 322-323, 328
      सरकारी कालेज, 59-60
    बड़े विश्वविद्यालयों की योजना 319-320
    स्कूल शिक्षा स्तर, 63-64
      गैर सरकारी स्कूल, 648
      सरकारी स्कूल, 64
      स्थानीय स्वायत्त निकाय के स्कूल 64
  नागरिक अधिकार, 71
  पदोन्नति, 64-65, 705 (स)
    उच्चतर शिक्षा स्तर 64-65, 705 (स)
    स्कल स्तर, 64,705 (स)
  बड़े विश्वविद्यालय
  राष्ट्रीय पुरस्कार, 74
  विशेष शिक्षा
    अनुसूचित आदिम जाति 72-73
  वृद्धावस्था के लिए व्यवस्था 34-56, 68-69, 706 (स)
    त्रिलाभ योजना, 68
      विभिन्न राज्य 68
      समानता का सिद्धान्त, 55-57
        उच्चतर शिक्षा स्तर, 55
        स्कूल शिक्षा स्तर
          गैर सरकारी स्कूल, 55-56
          सरकारी स्कूल, 55-56
  वेतन, 54,65, 702-705 (स)
    उच्चतर शिक्षा स्तर, 58-60
    निर्वाह व्यय 65, 705 (स)
    परिवर्तन, 56-57
    राष्ट्रीय वेतनमान, 54-55
    विभिन्न देश, 66
    विभिन्न राज्य, 54-56
    स्कूल स्तर, 60-63
  सामाजिक हैसियत, 74
  सेवा-निवृत्ति की आयु, 68
    विभिन्न राज्य, 68
  सेवा की स्थिति 69, 706-707 (स)
अध्यापक अन्तः सेवा शिक्षा, 96-98, 296, 299, 624 (स)
  पाठ्यचर्या 96
  स्कूल संकुल, 294-296
अध्यापक कालेज, 79-80, 86-91, 95, 268, 709
  आकार, 95
  निदर्शम स्कूल, 91
  प्राथमिक स्तर
    अध्यापक शिक्षा, 91
      योग्यताएं, 88-89
      वेतन, 88-89
    छात्र अध्यापक, 91
      योग्यताएं, 91
  माध्यमिक स्तर
    अध्यापक शिक्षक, 87

*स का अर्थ है सिफारिशों का सार।

योग्यताएं, 87
वेतन, 87
छात्र अध्यापक, 87-88
योग्यताएं, 87
मार्गदर्शन, 268-269
स्तर ऊंचे करना, 80
स्थान निर्धारण, 95-96
अध्यापक की स्वतन्त्रता, 205-206, 252-253, 370-376
अध्यापक शिक्षक 83,88,299-300
प्राथमिक स्तर
योग्यताएं, 88-89
वेतन, 88-89
माध्यमिक स्तर
योग्यताएं, 87
वेतन, 87
शिक्षा, 83
शिक्षा, अन्तःसेवा, 299-300
अध्यापक शिक्षण, 75-99, 707-711 (स)
अध्यापन पद्धतियां, 82-83, 708 (स)
उच्चतर शिक्षा स्तर, 97-98, 710 (स)
छात्र अध्यापक, 87-88
प्राथमिक, 88-89
माध्यमिक, 87-88
दोष, 75-76
पत्राचार पाठ्यक्रम और स्कूल, 95
परीक्षाएं 82-83 303-304
पाठ्यक्रमों की अवधि 81, 709 (स)
पाठ्य-चर्या, 84-86
उच्चतर शिक्षा स्तर, 85-86
विषयवस्तु का पुनः अनुस्थापन, 81
सामान्य और वृत्तिक पाठ्यक्रमों में समन्वय, 81-82
संशोधन, 84
स्कूल स्तर
प्राथमिक स्तर, 84-85
माध्यमिक स्तर, 85
रचना, 81
विशेष पाठ्यक्रम एवं कार्यक्रम, 81-84
विश्वविद्यालय, 76-79, 707-708 (स)
विस्तार कार्य, 91-96
विस्तार सेवाएं, 77
स्कूल, 78-79, 708 (स)
स्तर 98-99, 711 (स)
संघीय भूमिका, 99
अध्यापक संगठन, 73-74
कार्य, 73-74
अध्यापक संघ, देखिए **अध्यापक** संगठन
अध्यापन सहायक उपकरण और युक्तियां, 48, 260-261, 493-494
प्रौढ़ शिक्षा, 493-494
स्कूल स्तर, 48-49, 260-261
स्कूल संकुल, 48-49
अध्यापन पद्धति, 48-49, 251-256,329
उच्चतर शिक्षा, 329-330
स्कूल शिक्षा, 48-49,250-256
और अध्यापक, 251-254
शिक्षा, 253-254
शैक्षिक स्वतंत्रता, 252-254
और अध्यापक कालेज, 253-254
और अनुसंधान, 251-252
और कक्षा का आकार, 261-264
और गतिशील शिक्षा प्रणाली, 252-254
अध्यापन माध्यम 15-11, 219,230, 231-233, 698 (स)
उच्चतर शिक्षा 15-11, 331-333
अंग्रेजी 16-18, 331-333
उर्दू 20,332
हिन्दी 16-19, 332
तकनीकी शिक्षा, 473-475, 753 (स)
स्कूल स्तर 15-18, 219
अंग्रेजी 16-18, 219
उर्दू, 20
हिन्दी, 16-19
अध्यापिकाएं, 71-72, 707 (स)
अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा (सप्त वर्षीय) 91, 101, 108, 169, 172, 181, 488, 547
छात्रों का निर्धारित अवधि तक स्कूल में रहना, 172
नामांकन,
और शैक्षिक समानता, 184
स्कूली सुविधाएं, व्यवस्था, 170
कार्यक्रम:—
नामांकन अभियान
प्रथम दल (कक्षा एक), 170-172
प्रथम दल (कक्षा पांच) 172
विशेष शिक्षा
समाज-तिरस्कृत बच्चे
आदिम जातियां 183
सर्वजनीनता के लिए लक्ष्य, 168, 180-181
स्त्री-शिक्षा, 183
अनुत्तीर्ण छात्र—**व्यर्थता** और अगति के अंतर्गत देखें
अनुपयुक्त जनशक्ति, अनुसंधान संस्थान, 104, 119, 436
इंजीनियरी शिक्षा
व्यर्थता, 436
जनशक्ति योजना, 104, 119, 436
उच्चतर शिक्षा के सम्बन्ध में
अफगानिस्तान, 242
भाषाएं
अध्ययन और अध्यापन, 242
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय 310-311
असम, 29, 30, 38, 55, 68, 126-127, 142-143, 158, 435, 459
वित्त,
व्यय, 144
उच्चतर शिक्षा,
कालेज,
संरचना, 29-31, 39

नामांकन 462
स्कूल शिक्षा,
प्राथमिक
नामांकन, 148
अध्यापक
अध्यापक शिक्षण, 91-92
संरचना, 29-31, 39
वृद्धावस्था की व्यवस्था
त्रि-लाभ योजना 68
वेतन 55
पढ़ाई की फीसें, 127
विशेष शिक्षा
समाज-प्रताड़ित बच्चे
आदिम जातियां 158
तकनीकी शिक्षा
अध्यापक 434
अहिंसा 26

अं

आंध्र-प्रदेश 29-30, 38, 39, 68, 91-98, 126, 142-143, 158, 196, 198, 200, 262, 264, 425
वित्त
व्यय 144
उच्चतर शिक्षा
कालेज
संरचना 29-31, 39
स्कूल शिक्षा
प्राथमिक 196-198, 262, 264
उच्चतर
नामांकन 148
अवर
कक्षा का आकार 261, 264
माध्यमिक
उच्चतर 200
अध्यापक शिक्षा 91-93
संरचना 28-29, 38-39
अध्यापक
वृद्धावस्था की व्यवस्था
त्रि-लाभ योजना, 68
पढ़ाई की फीसें, 126
विशेष शिक्षा
समाज-प्रताड़ित विकलांग बच्चे
आदिम जातियां, 158
तकनीकी शिक्षा
अध्यापक 434

आ

आकाशवाणी, 260-261, 416
और कृषक 416
स्कूल शिक्षा
शिक्षण-साधन, 260
आर्थिक योजना, 2-6
भारत, 3-7
रोजगार, 2
औद्योगीकरण 3-5
आत्म निर्भरता
खाद्यान्न 2
आदर्श अधिनियम समिति (1964), 59-60
उच्चतर शिक्षा स्तर
अध्यापक
चयन और नियुक्ति 59-60
आयरलैंड, 245
भाषाएं
अध्ययन और अध्यापन, 245
आश्रम स्कूल, 159
आस्ट्रेलिया 242, 440, 465
पाठ्यचर्या
भाषाएं
अध्ययन और अध्यापक 242
पत्राचार पाठ्यक्रम और स्कूल
तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा 440
वैज्ञानिक अनुसंधान
व्यय 464
आस्ट्रेलिया 242, 478
पाठ्यचर्या
भाषाएं
अध्ययन और अध्यापन 242
वैज्ञानिक अनुसंधान 478

इ

इंगलैंड, 67
प्रशासक, शैक्षिक
वेतन, 67
इंजीनियरी सोसाइटियां—पश्चिमी यूरोप व संयुक्त राज्य, 427
इंजीनियरी तकनीशियन
परिभाषाएं, 426-427
इंजीनीयरी कर्मिक समिति, (1956), 483
इंजीनियरी शिक्षा, 431-443
प्रशासन, 440-443
पाठ्यचर्या, 432-534
पाठ्यक्रमों की अवधि, 432
नामांकन, 434
साज-समान, 436
वित्त,
व्यय
प्रति छात्र लागत, 437
तथा उद्योग, 433, 439
प्रायोगिक प्रशिक्षण, 433-434
अनुसंधान, 437
छात्र-चयन, 432, 436-438
और विश्वविद्यालय परीक्षा बोर्ड
स्कूल समूह, 438
विज्ञान प्रतिभा अनुसंधान परियोजना 438
विशेष प्रवेश परीक्षाएं, 438
अध्यापक
योग्यताएं, 432

वेतन, 434
पूर्ति तथा मांग, 435-436
विभिन्न राज्य 435
शिक्षा का माध्यम, 438-439
व्यर्थता तथा अगति, 437
इन्जीनियरी शिक्षा का समन्वय, 428
इंडोनेशिया, 244
भाषाएं,
अध्ययन और अध्यापन, 244
इमारतें, स्कूली 265-266
इक़बाल (उद्धृत), 24
शिक्षा और धर्म निरपेक्षता, 24
इजरायल, 245
भाषाएं,
अध्ययन और अध्यापन, 245
इटली, 246, 464
भाषाएं
अध्ययन और अध्यापन, 264
वैज्ञानिक अनुसंधान,
व्यय, 464
प्रशिक्षण 506
इतिहास
पाठ्य-पुस्तकें, 258
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, 310-311, 374-375

ई

ईरान, 245
भाषाएं
अध्ययन और अध्यापन, 245

उ

उच्च अध्ययन के केन्द्र, 320-321, 457, 458 736-737(स)
उच्चतर शिक्षा, 6, 41, 102, 309-357
प्रशासन, 369-397
शैक्षिक स्वायत्तता, 370-375
पाठ्यचर्या के सम्बन्ध में 370
परिभाषा,
बाह्य-विश्वविद्यालय प्रणाली के सम्बन्ध में 371-375
अनुसंधान के सम्बन्ध में 374
छात्र-चयन के संबंध में, 370, 373-374
अध्यापक के संबंध में,
चयन-और नियुक्ति, 373
शिक्षण विधि के संबंध में, 370
विश्वविद्यालय के अंदर, 371
विश्वविद्यालय प्रणाली के अंदर, 371
संबंधन, 386
और राज्य सरकारें, 386
दीक्षांत समारोह, 383
विश्वविद्यालय, केन्द्रीय, 383
विश्वविद्यालय-राज्यों के 383
लक्ष्य और उद्देश्य, 6, 327-328
नामांकन, 351-355
कालेज, 351-353
संबंद्ध कालेजों की स्थिति के संबंध में 351
कालेजों के आकार के संबंध में 351-353
विश्वविद्यालय, 309, 345, 348, 352, 355
और जनशक्ति योजना, 345-348
वित्त, 376-381, 388-394
वित्तीय उत्तरदायित्व, 379
सहायक अनुदान
संघीय स्तर, 377
राज्य स्तर, 377
और संबद्ध कालेज,
राजकीय कालेज, 388
गैर-सरकारी कालेज, 388-389
और समन्वय संगठन, 389-390
अंतः विश्वविद्यालय बोर्ड, 388-390
विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, 390-393
नियम और विधान, 383-386
और जनशक्ति योजना, 389
अंशकालिक शिक्षा, 350-351
का पुनर्गठन, 41-42
स्तर, 47-48
संरचना, 33
छात्र-चयन, 347-351
चयन-संगठन, 350-351
केन्द्रीय-परीक्षण संगठन, 350
दाखिलों के विश्वविद्यालय-बोर्ड, 349-350
छात्र-कल्याण सेवाएं, 333-335
प्रशासन, 335
सामान्य शयनागार, 333
मार्गदर्शन, 333
स्वास्थ्य सेवा कार्यक्रम, 333
नए छात्रों के लिए अनुस्थापन, 333-334
छात्र-क्रियाकलाप, 333
छात्र संगठन व समाज, 335-337
पाठ्यपुस्तकें, 258
विश्वविद्यालय,
और प्रौढ़ शिक्षा, 500-501
विकास कार्यक्रम, 313-314
परीक्षाएं, 322-324, 330-331
कार्यकारिणी,
उपकुलपति, 380-383
आकार, 382
चयन और नियुक्ति, 380-382
कार्यविधि, 382
इतिहास, 310
पुस्तकालय, 326-327
बड़े विश्वविद्यालयों की योजना, 316-322
उच्च अध्ययन केन्द्र
कार्य, 320-321
आकांक्षी केन्द्र, 322
वित्त, 322
और अन्य कालेज व विश्वविद्यालय, 322-325
छात्र-चयन, 319
अध्यापक,

चयन और नियुक्ति, 319
अनुसंधान, 328-329, 366-68, 374
अध्यापन, 325
शिक्षा का माध्यम, 331-332
शिक्षा पद्धतियां, 329
स्त्री-शिक्षा, 356-357
सह-शिक्षा, 356
पाठ्यचर्या, 356-357
नामांकन, 356
उच्चतर शिक्षा समिति (ब्रिटेन), 40, 379-380, 390
उच्चतर शिक्षा,
वित्त, 379-380
संरचना और पाठ्यक्रम की अवधि, 41
विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, 392
उच्चतर शिक्षा विषयक संसद सदस्य समिति, 391-392, 515
उत्तर प्रदेश 29-30, 38-39, 41-50, 92-93, 126, 142-145, 148-149, 158, 196, 262, 264, 411, 435, 460
पाठ्यचर्या
शिल्प
कृषि, 410
वित्त
व्यय, 144
उच्चतर शिक्षा
शैक्षिक स्वतन्त्रता
अध्यापक (के प्रसंग में)
चुनाव और नियुक्ति, 375
कालेज
संरचना 29, 39, 41
नामांकन, 460
स्कूल शिक्षा
प्राथमिक स्तर
उच्चतर
नामांकन 148
अवर, 196, 262 ,264
कक्षा का आकार 261,263-264
माध्यमिक शिक्षा
पाठ्यचर्या
कृषि, 410
संरचना 29-30, 32, 38-39
अध्यापक शिक्षा 91-94
शिक्षा शुल्क 126-127
विशिष्ट शिक्षा
सामाजिक दृष्टि से पिछड़े बच्चे
अनुसूचित आदिम जातियां 157-158
तकनीकी शिक्षा
अध्यापक 424
उर्दू,
17, 310, 332
उच्च अध्ययन के केन्द्र 332
शिक्षा का माध्यम 17, 311
उस्मानिया विश्वविद्यालय 311

औ

औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान, 423, 425-426
पाठ्यचर्या, 425-426
औद्योगिक शिक्षा, 497
औद्योगिक विकास अधिनियम (यू० के०), 439
इंजीनियरी शिक्षा
और उद्योग, 439

ए

एरोनाटिकल सोसायटी, 440
एशबी, एरिक, 313, 372
उच्चतर शिक्षा
प्रशासन
विश्वविद्यालय विभाग
प्रबंध समिति, 372
लक्ष्य और उद्देश्य 313
एशियाई शैक्षिक योजना संस्थान 506
प्रशासक, शैक्षिक, 506

क

कक्षा का आकार, 261-262, 547-548
कक्षा का अधिकतम आकार, 262-263
और अध्यापन के ढंग
बहुकक्षा अध्यापन, 264,
कर्जन (लार्ड), 310
उच्चतर शिक्षा, 310
कनाडा, 243, 465
भाषाएं,
अध्ययन और अध्यापन, 243
वैज्ञानिक अनुसंधान,
व्यय, 465
कबीर, 26
कलकत्ता निमम, 560
कलकत्ता विश्वविद्यालय, 310, 357
कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग, 30, 33
स्कूल वर्ष
अवधि, 33
व्यावसायिक शिक्षा, 11
काक्राफ्ट, जान, 471
कामगारों की शिक्षा, 489, 495-496,
शिक्षा वर्षक्रम
स्कूल स्तर, 43
विश्वविद्यालय स्तर, 43-44
कार्य-अनुभव
8-13, 233-241, 412-413, 425, 697 (स). 725 (स)
कार्य-दिवस और घंटे 42-45
कार्ल मार्क्स, 30
काले समिति, (1937), 560
सहायक-अनुदान, 560
कालेज सरकारी
अध्यापक
चुनाव और नियुक्ति, 59
कुंजरू एच० एन०, 229

शारीरिक शिक्षा
पाठ्यक्रम,
समन्वित शारीरिक-शिक्षा योजना, 229
कुरुक्षेत्र विश्वविद्याय (पंजाब), 81
अध्यापक शिक्षण, 81
केन उपनिषद्, 25
केन्द्रीय परीक्षण-संगठन, 301, 350
उच्चतर शिक्षा, 301
केन्द्रीय परीक्षा-सुधार-यूनिट, 273-330
केन्द्रीय भवन अनुसंधान संस्था (रुड़की),
स्कूली इमारतें, 264
लागत, 265
तकनीकें, 265
केन्द्रीय शिक्षा संस्थान, 518
केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड, 23, 212, 495-496, 501
प्रौढ़ शिक्षा, 500
पाठ्यचर्या,
भाषाएं,
अध्ययन और अध्यापन, 212
धार्मिक और नैतिक शिक्षा, 22-23
कामगारों की शिक्षा, 495
केन्द्रीय शैक्षिक तथा व्यावसायिक मार्गदर्शन ब्यूरो, 268
केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड, 72, 166-167, 492, 496
प्रौढ़ शिक्षा
विशेष स्कूल, 497
पूर्व-प्राथमिक शिक्षा, 166-167
स्त्रियों की शिक्षा, 72, 492
अध्यापक-शिक्षण, 72
केरल 29-30, 38-39, 126, 142-143, 158, 200, 262
264, 435, 462, 526
वित्त
व्यय, 143
उच्चतर शिक्षा
कालेज,
संरचना, 29-30, 39
नामांकन, 462
नियम और विधान
शिक्षा अधिनियम, 526
स्कूली शिक्षा
प्राथमिक शिक्षा
उच्चतर
नामांकन, 148
अवर,
कक्षा का आकार, 261-264
माध्यमिक, 200
संरचना, 29-30, 38, 39
विशिष्ट शिक्षा
समाज-तिरस्कृत बच्चे
अनुसूचित आदिम जातियां, 158
तकनीकी शिक्षा
अध्यापक, 435
केरल विश्वविद्यालय, 19
हिन्दी
अध्ययन और अध्यापन, 19
केपित्जा, पी०, 474
वैज्ञानिक शिक्षा और अनुसंधान, 474
केम्ब्रिज विश्वविद्यालय, 210, 318
कोलम्बिया विश्वविद्यालय, 318
कोलम्बो योजना, 424
तकनीकी सहायता, 423
कृपाल, पी० एन०, 515
शैक्षिक प्रशासन,
समवर्ती सूची विरोध, 515
कृषि कार्मिक समिति, 417
कृषि तकनीशियन, 409
प्रशिक्षण 409
कृषि पोलिटेक्निक देखें **कृषि शिक्षा**
कृषि-विस्तार-अधिकारी 417
कृषि-विस्तार सेवाएं 413-416
और कृषक 416
अध्ययन-गोष्ठियां 416
विस्तार कर्मचारी 413
शिक्षा 413-415
ग्राम सेवक प्रशिक्षण केन्द्र 414-415
अन्तःसेवा शिक्षा 414
ग्राम स्तर कर्मचारी 413-415
और अच्छे फार्म 415
और संभरण सेवाएं 415
कृषि शिक्षा 6, 11, 194, 398-421
और विस्तार सेवाएं कार्यक्रम 413-416
और सामान्य शिक्षा 412
उच्चतर शिक्षा स्तर
कालेज 407-409
पोलिटेक्निक 409-410
पाठ्यचर्या 401-402
विश्वविद्यालय 400-407
अध्यापक
परीक्षाएं 405-406
प्रशासन 406-407
पाठ्यचर्या 409-410, 421
अनुसंधान, 399, 402-404
पुस्तकालय, 405
विद्यार्थी 406
विस्तार विभाग, 415, 416
विस्तार सेवाएं 404
निवासस्थान 405
पदोन्नति 405
वेतन 405
शिक्षा 405-406
और जनशक्ति की आवश्यकताएं 417-420
स्कूल शिक्षा स्तर 410-413
प्राथमिक 410-411
माध्यमिक 410-413
व्यावसायिक वर्ग के लिए सिफारिशें (शिक्षा-

मंत्रालय) 411-412
बहूद्देश्य उच्चतर माध्यमिक स्कूल 411

ख

खादी और ग्राम उद्योग आयोग, 425-481
खाद्य और कृषि मंत्रालय, 413, 417
कृषि विस्तार सेवाएं 413, 417
विस्तार कार्यकर्ता, 413
कृषक अध्ययन-गोष्ठियां 416
खेर समिति, 509-510
शैक्षिक प्रशासन,
प्राथमिक शिक्षा स्तर
स्वायत्त निकाय, 509-510

ग

गणित, 221-222, 470-471
पाठ्य-पुस्तकें, 258
गहन कृषि जिला कार्यक्रम, 417
गृह अध्ययन पाठ्यक्रम **पत्राचार पाठ्यक्रम** और **स्कूलों** के अंतर्गत देखें
गृह-विज्ञान, 430
गांधी, मो० क० 2, 10, 12, 24, 26, 231
पाठ्यचर्या, 231
बुनियादी शिक्षा, 10, 231,
भारतीय संस्कृति, 24
शिक्षित वर्ग और जन समूह, 12
गार्डनर, जे० डवल्यू०, 525
ग्राम बहनें 592, 496
प्रौढ़ शिक्षा 492, 496
ग्राम शिक्षण मुहिम, 489
ग्राम सेवक प्रशिक्षण केन्द्र, 436
ग्राम-स्तर कर्मचारी 413-414, 417
ग्रीनरी ट्रस्ट, 239-241
गुजरात, 29, 126, 142, 158, 435, 509
इंजीनियरी शिक्षा, 433
वित्त,
व्यय, 143
उच्चतर शिक्षा,
कालेज, 29-30, 39
नामांकन, 462
स्कूली शिक्षा
बुनियादी शिक्षा
पाठ्यचर्या
शिल्प
कृषि, 509
प्राथमिक शिक्षा,
स्वायत्त निकाय, 509
उच्चतर
नामांकव, 148
संरचना, 29-30, 36,39
पढ़ाई की फीसें, 26
विशिष्ट शिक्षा
समाज-तिरस्कृत
अनुसूचित आदिम जातियां, 158
तकनीकी शिक्षा
अध्यापक, 435
गोआ, दमन और दीव, 31, 38, 39
गोपालस्वामी, आर० ए०, 117-119, 489
उच्चतर शिक्षा के संबंध में, 581
जनशक्ति योजना,
नामांकन के संबंध में, 117-119

घ

घाना 465, 534
वैज्ञानिक अनुसंधान
व्यय, 465
शैक्षिक व्यय, 534

च

चंदा, ए० के० 493
चल पुस्तकालय,
ग्रामीण प्राथमिक स्कूल, 553-554
चीन, 465
वैज्ञानिक अनुसंधान,
व्यय, 465
चैकोस्लोवाकिया, 13
राष्ट्रीय सेवा, 13
चेरिटेबिल सोसाइटीज ऐक्ट, 288

छ

छात्र कल्याण सेवाएं 302-305
उच्चतर शिक्षा-स्तर
दिवा अध्ययन केन्द्र, 137
मार्गदर्शन और सलाह 305
स्वास्थ्य सेवाएँ 304
स्कूल स्तर
स्वास्थ्य सेवाएं 267
छात्र चयन, 102-103, 110-111, 318-319, 370, 372-373
इंजीनियरी शिक्षा, 432
उच्चतर शिक्षा, 110-111, 370,372-373
बड़े विश्वविद्यालय-योजना, 319-320
चयन विधि, 343-349
स्कूल-स्तर,
माध्यमिक, 110-111
उच्चतर, 110-111
अवर, 110
तकनीकी शिक्षा, 436
छात्रवृत्तियां, 88, 110, 129-139, 189, 306, 320
उच्चतर शिक्षा स्तर, 130-134,136-137
बड़े विश्वबिद्यालय योजना, 320
राशि, 131
ऋण छात्रवृत्तियां, 136-137
राष्ट्रीय छात्रवृत्तियां, 131-134
विश्वविद्यालय, छात्रवृत्रियां, 134
स्कूल शिक्षा स्तर, 110, 189, 306
प्राथमिक स्तर, 129
समान स्कूलों के लिए छात्रवृत्तियां, 289
माध्मकिक स्तर, 130
व्यावसायिक शिक्षा, 134, 136

छात्र संगठन और संख्याएं, 305-306
उच्चतर शिक्षा, 305-306
छात्र-सहकारिताएं, 260
पाठ्य पुस्तक वितरण, 260
छात्र-सहायता, 136
दिवा अध्ययन केन्द्र, 136
परिवहन सुविधाएं, 136
छात्रानुशासन, 337-338
उच्चतर शिक्षा स्तर
कारण, 336-337
उपचारों के मानदण्ड, 337-338

ज

जखारियास, 452
जनशक्ति राज्य समिति, 120
सगठन, 518
कार्य, 518520
जनशक्ति योजना, 100-122, 343-347, 591-658
नामांकन, 100-122
उच्चतर शिक्षा (के सम्बन्ध में) 116-120, 343-347
494-658
विकास योजना, 494-658
प्रशासन, 642-654
संघीय, 644-654
और राज्य विषयक संबंध 643, 646
शिक्षा-स्फीति, 603-615
विद्यार्थियों का नामांकन, 635-636
वित्त
व्यय (प्रत्यक्ष), 637-641
स्रोत, 638-641
संघीय, 638-641
गैर सरकारी अभिकरण, 638-641
राज्य, 638-641
पढ़ाई की फीसें, 638-641
उच्चतर शिक्षा जनशक्ति स्टाक, 614-626
और रोजगार श्रेणियां, 610
प्रमुख व्यावसायिक वर्ग, 616-626
इंजीनियरी जन-शक्ति, 617, 620-623
लोक प्रशासन जनशक्ति, 617, 622-626
वैज्ञानिक और तकनीकी जनशक्ति, 617, 626
उच्चतर शैक्षिक दल,
विभिन्न कोटियां, 629-634
और उच्चतर शैक्षिक जन-शक्ति दल, 628-629
वृत्तिक विशेषीकृत शिक्षा 632-633
उप वृत्तिक विशेषीकृत शिक्षा 632-633
जम्मू व काश्मीर, 24-30, 38, 39, 91-99, 142-143, 148, 158, 462
वित्त
व्यय, 143
उच्चतर शित्रा
कालेज
संरचना, 29-30, 39
नामांकन, 462
स्कूली शिक्षा,
प्राथमिक शिक्षा
उच्चतर
नामांकन, 148
संरचना, 29-30, 38, 39
अध्यापक शिक्षण, 91-93
जर्मनी (संघीय गणराज्य) 12, 244,481, 436, 465-468, 534, 574
शैक्षिक व्यय, 574
इंजीनियरी शिक्षा
पाठ्यचर्या, 436
भाषाएं
अध्ययन और अध्यापन, 244
राष्ट्रीय सेवा 12
वैज्ञानिक अनुसंधान
व्यय, 465-468
जनशक्ति, 468
विशिष्ट शिक्षा
समाज-तिरस्कृत
अनुसूचित आदिम जातियां, 158
जापान, 13-15, 117, 246, 384, 497, 522, 539, 552
पत्राचार पाठ्यक्रम और स्कूल, 497
शिक्षित जनशक्ति, 117
वित्त
शैक्षिक व्यय (योग), 529 533, 552
भाषाएं
अध्ययन और अध्यापन, 246
राष्ट्रीय सेवा 13-14
शिक्षा का माध्यम, 15
विश्वविद्यालय दीक्षांत समारोह, 384
जिला परिषद 512, 559
जिला स्कूल बोर्ड, 282-285, 298, 511-513
कार्य, 511-513
गठन, 512
तथा स्कूल समिति, 285
वित्त, 512
पर्यवेक्षण, 282-283, 298
शक्तियां, 512
जिला शिक्षा अधिकारी, 63, 257, 279, 294-298
कार्य,
प्रशासन, 279
पर्यवेक्षण, 297-298
शिक्षण पद्धति, 256
और 'स्कूल-संकुल', 296-297
हैसियत, 294
तथा अध्यापक,
चुनाव और नियुक्ति, 63
जीवन प्रयोग, 20-21
जूनियर तकनीकी स्कूल, 426
जूनियर तकनीकी स्कूलों का वास्तविक सर्वेक्षण (योजना आयोग), 426
जोर्डन, 246

भाषाएं
अध्ययन और अध्यापन, 246

झ

झा, पी० एस० 515
शैक्षिक प्रशासन,
समवर्ती सूची विरोध, 515

ट

टिनबर्जन सूत्र, 112
टेलीविजन, 252
अध्यापन, 252
टैगोर, रवीन्द्रनाथ, 16, 269
शिक्षा का माध्यम, 15

ड

डिराक, पी० ए० एम०
विज्ञान और अमूर्तीकरण, 452
डेनमार्क, 243, 496
भाषाएं
अध्ययन और अध्यापन, 243
लोक हाई स्कूल, 496

त

तकनीकी शिक्षा, 423-445, 750-753 (स)
और उद्योग, 424, 439-440-753
और जनशक्ति की अपेक्षाएं 437-443, 753 (स)
और व्यावसायिक संगठन 440, 753 (स)
और सामान्य शिक्षा 424
पत्राचार पाठ्यक्रम और स्कूल 440, 753 (स)
प्रशासन 440-444, 753 (स)
स्कूल स्तर 424-431
अध्यापन माध्यम 438-439
अंशकालिक शिक्षा 431
छात्रों का चुनाव 438
तकनीशियन,
व्यावहारिक प्रशिक्षण, 439
व्यर्थता और अगति 428, 430, 437
तकनीकी हाई स्कूल, 426-427
पाठ्यक्रमों की अवधि 426
पाठ्यचर्या 426-427
तकनीशियन,
प्रशिक्षण 427-430
अध्ययन के पाठ्यक्रम 427
आलोचना 428
त्रिपुरा, 31, 38, 39,435
त्रिलाभ योजना, 68-69
विभिन्न राज्य, 68
तुर्की 249, 533-534
शैक्षिक व्यय 533-534
अध्ययन और अध्यापन, 249
भाषाएं

थ

थाइलैंड, 249
भाषाएं
अध्ययन और अध्यापन, 249

द

दृश्य-श्रव्य शिक्षा 26, 264 299
विशेष निरीक्षणालय 298
दादरा व नगर हवेली, 31, 38-39
दिल्ली 29,31, 38, 39, 388, 435, 460, 488, 514
उच्चतर शिक्षा
कालेज, 29, 31, 39, 388
संरचना, 29, 31, 39
स्कूली शिक्षा
संरचना, 29, 31, 38, 39
तकनीकी शिक्षा
अध्यापक, 434
प्रौढ़ शिक्षा,
साक्षरता अंक 488
दिल्ली विश्वविद्यालय, 320, 497, 499, 518
अध्यापक शिक्षण
केन्द्रीय शिक्षा संस्थान, 518
उच्चतर शिक्षा
उच्च अध्ययन का केन्द्र, 321
कालेज,
संरचना, 29, 31, 39
प्रौढ़ शिक्षा
पत्राचार पाठ्यक्रम 497, 499
दिवस केन्द्र, 270
दीर्घावकाश, 44-45
उपयोगीकरण 44-45
देवनागरी लिपि, 252
देशमुख समिति, 13
देशी भाषा 165
द्वैध शासन प्रणाली, 506

ध

धार्मिक और नैतिक शिक्षण समिति, 22-23
धर्म निरपेक्षता, 24-25
और शिक्षा, 24-25

न

नागरिकता की शिक्षा, 20
नागालैंड, 30,38,39,93,510
नानक (गुरु), 26
नामांकन, 100-122, 164-202, 340-360
और प्रतिभासंपन्न बच्चे, 103
और वर्तमान साधन, 103
और जनशक्ति योजना, 100-122
शैक्षिक संस्थाओं द्वारा तैयार किए गए व्यक्तियों के संबंध में, 120
भा० सा० सं० लं० स्कू० इ० के प्रोक्कलन, 104-108
की शैक्षिक कठिनाइयां, 110
जनशक्ति योजना मशीनरी, 117-119, 120
छात्र-चयन, 111-112
व्यावसायीकरण, 112-113
वित्तीय कठिनाइयां 112-113
उच्चतर शिक्षा स्तर, 101-103, 340-360

राष्ट्रीय नीति 100-101
स्कूल शिक्षा स्तर, 101, 164, 202
प्राथमिक 101, 180-182
माध्यमिक 183-196
अवर, 110, 192
उच्चतर, 110-192-196
निर्माण मंत्रालय, 265
इमारतें, स्कूली
लागत, 265
नियंत्रक तथा महालेखक परीक्षक, 379
उच्चतर शिक्षा
वित्त, 379
निरन्तर शिक्षा
पाठ्यचर्या, 444-445
निरक्षरता, 485-494
साक्षररता कार्यक्रम, 485-494
और आर्थिक और सामाजिक विकास, 485
और सामूहिक संचार-साधन
दृश्य-श्रव्य साधनों का योगदान, 492
की परिभाषा, 487-488
साक्षरता के आंकड़े, 485
रेडियो, 492
टेलीविजन 492
योजना
सामूहिक पद्धति तकनीक, 489
चयनात्मक पद्धति, 489
निरीक्षक—पर्यवेक्षण और पर्यवेक्षक मैं देखें

प

पंजाब 29, 30, 92, 93, 142, 144, 196, 225, 262, 264, 435, 460, 507, 510
उच्चतर शिक्षा
कालेज
संरचना 29, 30, 39
नामांकन 460
तकनीकी शिक्षा, 435
अध्यापक, 435
वित्त
व्यय 144
स्कूल शिक्षा
प्राथमिक स्तर
उच्चतर, 149, 200
नामांकन, 148
स्थानीय स्वायत्त निकाय, 510
अवर
कक्षा का आकार 262, 264
संरचना 29, 30, 38, 39
अध्यापक शिक्षा 93, 92, 225
पाठ्यचर्या, 225
शिक्षा शुल्क 127
पत्राचार पाठ्यक्रम, 49, 88, 95, 440, 497-499
और राष्ट्रीय गृह अध्ययन परिषद, 498
और विश्वविद्यालय, 498
अध्यापक शिक्षण, 95
वित्त, 499
अध्ययन, 498
तकनीकी शिक्षा, 440
प्रौढ़ शिक्षा, 497-499
परीक्षा और मूल्यांकन 273-275, 276-277
परीक्षाएँ, 35, 272-277, 322, 324, 329-331, 347
बाह्य
स्कूल शिक्षा स्तर, 35, 272-273
प्राथमिक
अवर, 272
उच्चतर, 273-274
माध्यमिक 275-278
आंतरिक 278-279,
और प्रयोगात्मक स्कूल, 278
उच्चतर शिक्षा स्तर, 322-324, 329-331
पर्यवेक्षक—**पर्यवेक्षक और पर्यवेक्षण** के अन्तर्गत देखें
पर्यवेक्षक और पर्यवेक्षण, 252-253, 293-298, 305-307
और प्रशासन, 297-298
पर्यवेक्षक 295, 298-299
अंतः सेवा शिक्षा, 299
स्कूल स्तर
पर्यवेक्षय की कसौटी, 292
और स्तर 306-307
राज्य स्तर, 298-299
जिला स्तर, 293, 299
परमाणु ऊर्जा विभाग, 480
पश्चिमी बंगाल, 29-30, 38, 39, 55-56, 68, 142, 144, 148, 158, 426, 435, 460
उच्चतर शिक्षा
कालेज
नामांकन, 460
संरचना, 29-30, 39
वित्त
व्यय, 144
स्कूल शिक्षा
प्राथमिक स्तर
उच्चतर
नामांकन 148
संरचना 29-30, 38-39
विशिष्ट शिक्षा
सामाज-प्रताड़ित बच्चे
अनुसूचित आदिम जाति, 157-158
अध्यापक
वृहदावस्था के लिए व्यवस्था
त्रिलाभ योजना 68
सेवा निवृत्ति की आयु 68
वेतन, 55
तकनीकी शिक्षा
जूनियर स्कूल, 426
अध्यापक 435
प्रतिभा का प्रवासन, 477

प्रतिभावान बच्चे, 48-49, 103, 269-270
और परामर्शदाता, 270
संवर्धन कार्यक्रम, 270
प्रस्तावित कार्यक्रम, 270
ग्रीष्मावकास-कालीन कार्यक्रम, 270
प्रयोग और अनुसंधान—देखें **शैक्षिक** अनुसंधान
प्रयोगशाला स्कूल—देखें स्कूल, निदर्शन
प्रशासक, शैक्षिक, 523-524
प्रशिक्षण 523-524
प्रारम्भिक शिक्षा—स्कूल शिक्षा के अन्तर्गत देखें
पाठ्यचर्या, 203-262, 418, 425
इंजीनियरी शिक्षा, 432-434
उच्चतर शिक्षा
विज्ञान, 458-462
पोलिटेक्निक शिक्षा, 409-410, 421
स्कूल शिक्षा स्तर, 202-250
चुने हुए स्कूलों के लिए उच्च पाठ्यचर्या, 205-206, 211-212
पाठ्यचर्या निर्माण के लिए कदम, 204
विभिन्न देश, 9
विभिन्न विषय
रचनात्मक कार्यकलाप, 230
कला शिक्षा, 230
सह-पाठ्यचर्या कार्यकलाप, 230
भाषाएं, 212
प्राचीन, 219
विभिन्न देश, 242-250
त्रिभाषा-सूत्र, 212-218
अंग्रेजी, 219
हिन्दी, 218-219
गणित, 221-222
शारीरिक शिक्षा, 228-229
धार्मिक तथा नैतिक शिक्षा, 229-230
विज्ञान, 219-221
सामाजिक विज्ञान, 223-254
सामाजिक सेवा, 226-228
सामाजिक अध्ययन 223-224
कार्य-अनुभव, 233-241, 418, 425
के सामान्य कार्यक्रम, 233
सोवियत संघ, 234-241
में अंतर रखना, 231-232
और निर्धारित सुविधाएं, 206
और प्रायोगिक पाठ्यचर्याएं अपनाने के लिए स्वतन्त्रता, 215
का संगठन, 206-211
पहले दस वर्ष, 206
बहुद्देश्य स्कूल, 207
प्राथमिक
उच्चतर, 208-209
अवर, 208-209
माध्यमिक
उच्चतर, 210-211
अवर, 209-210
विषय-अध्यापक संस्था, 73, 206
पाठ्यचर्या अनुसंधान ब्यूरो, 299
पाठ्य-पुस्तकें 256-260, 463-464, 493-494, 726-727 (स)
उच्चतर शिक्षा स्तर, 258
प्रौढ़ शिक्षा, 494
विभिन्न विषय
इतिहास, 258
गणित, 258
विज्ञान, 258
वैज्ञानिक शिक्षण, 258, 463-464
स्कूल स्तर
और अध्यापक निर्देशिकाएं 260
और राष्ट्रीय एकीकरण, 358
पुनरीक्षण 259
बहुविकल्प, 259
राष्ट्रीय करण, 257
राज्य स्तर, 257-259
संघीय स्तर, 257-258
लेखन, 257-260
पुस्तक-क्लब, 396
पुस्तकों का चुनाव, 327
पानंदीकर, एस०, 215-216
पुस्तकालय, 45, 59, 296, 327, 404, 491-492, 499-500
और पुस्तकालय कार्यक्रम, 491-492
स्कूली शिक्षा स्तर,
पुस्तकाध्यक्ष
वेतन, 59
उच्चतर शिक्षा स्तर, 45, 403-404
लक्ष्य और उद्देश्य, 327
व्यय, 327
कार्य, 326-327
कृषि-शिक्षा, 404
प्रौढ़-शिक्षा, 499-500
स्कूल संकुल, 296
पुस्तकालय सलाहकार समिति (1957), 499
प्रौढ़ शिक्षा 484-502
और निरन्तर शिक्षा 494-497
पत्राचार पाठ्यक्रम और स्कूल, 497-499
प्रशासन, 501-502
लक्ष्य और उद्देश्य 484-485
अध्यापन सहायक उपकरण और युक्तियाँ,-497-498
और निरक्षरता 483-494
पुस्तकालय, 499-500
सायंकालीन कालेज, 495
साक्षरता कार्यक्रम
अंशकालिक शिक्षा 494-497
अध्यापकों का योगदान, 490
कालिजों का योगदान 491
पुस्तकालयों का योगदान 491

विद्यार्थियों का योगदान, 490-492
सामूहिक संचार-साधन, 490-492
स्कूलों का योगदन, 490
स्त्रियों का योगदान, 492
और विश्वविद्यालय, 500-501
और वैच्छिक एजेन्सियां, 502
नवसाक्षरों के लिए पाठ्य-पुस्तकें, 494
स्कूल, विशेष, 495-497
पूर्व-छात्र संघ, 78
अध्यापक प्रशिक्षण 78-79

फ

फ्रांस, 244, 465-469, 539, 552-553
शैक्षिक व्यय, 574, 552-551
भाषाएं
अध्यापक और अध्यापन, 243
वैज्ञानिक अनुसंधान
व्यय, 465-468
जनशक्ति, 469
फ्रांस की राज्य क्रांति, 24
फ्रीमैन और यंग की रिपोर्ट, 467
वैज्ञानिक शिक्षा और अनुसंधान, 467

ब

बंबई विश्वविद्यालय, 29, 310
माध्यमिक शिक्षा, 29
बंबई निगम, 560
बच्चों की देखभाल, 495-496
बच्चों की देखभाल संबंधी समिति,
पूर्व-प्राथमिक शिक्षा
कार्यकलाप का क्रम, 167
बर्मा, 434
भाषाएं
अध्ययन और अध्यापन, 243
बहुकक्षा अध्यापन, 264
बहुद्देश्य हाई स्कूल, 207, 411-412
कृषि, 411-412
पाठ्यचर्या, 207, 411-412
ब्लेकेट, पी० एम० एस०, 317, 474
उच्चतर शिक्षा, 317
वैज्ञानिक शिक्षा और अनुसंधान 474
बाल मार्गदर्शन निदानशाला, 272-273
ब्राजील, 243-524
शिक्षा पर व्यय, 533
भाषाएं
अध्ययन और अध्यापन, 243
बिहार, 29, 56, 68, 142, 158, 375, 435
उच्चतर शिक्षा
कालेज
संरचना 28-33, 39
विश्वविद्यालय
नामांकन 462
शैक्षिक स्वाधीनता, 375
स्कूल शिक्षा
प्राथमिक स्तर
उच्चतर
नामांकन, 148
संरचना, 28-31, 38-39
अध्यापक शिक्षण, 91-93
वृद्धावस्था की व्यवस्था
त्रि-लाभ भोजना, 68
सेवा-निवृत्ति की आयु, 68
वेतन, 55
पढ़ाई की फीसें, 127
विशेष शिक्षा
समाज-तिरस्कृत बच्चे, 157
तकनीकी शिक्षा
अध्यापक, 434
वित्त,
व्यय, 144
बुद्ध, 26
बुनियादी शिक्षा 9, 224, 351, 410
लक्ष्य और उद्देश्य, 251
पाठ्यचर्या, 224-409
शिल्प
कृषि 410
कार्य-अनुभव, 224
अध्यापक कालेज,
सामुदायिक जीवन, 9-10
बेलजियम, 465-467
वैज्ञानिक अनुसंधान
व्यय, 465-467
जनशक्ति, 468

भ

भाषा, हो०, ज०, 477
वैज्ञानिक शिक्षा और अनुसंधान, 477
भारत की जनगणना (1967, 104
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, 409, 419
भारतीय पशु-चिकित्सा अनुसंधान संस्था, 403
भारतीय बाल-कल्याण परिषद्, 168
पूर्व-प्राथमिक शिक्षा, 168
भारतीय मानक संस्था, 265, 267, 402, 407, 417-418
कृषि, 402, 407, 417-418
भवन स्कूल
लागत 265
अभिन्यास, 267
भारतीय विधि संस्थान, (नई दिल्ली) 335
भारतीय शिक्षा आयोग (1882), 10
व्यावसायिक शिक्षा, 10
भारतीय, विश्वविद्यालय अधिनियम, (1904), 310
भारतीय शिल्प विज्ञान संस्थान, 405, 436, 441-443
भारतीय विश्वविद्यालय आयोग (1902) 310
भारतीय शैक्षिक सेवा, 514, 520-521
कार्मिक चयन और नियुक्ति, 520-521
भारतीय सांख्यिकी संस्थान, 104, 436
नामांकन,

जनशक्ति आवश्यकताएं 104, 436
इंजीनियरी, 436
भावनात्मक एकता समिति, 33
राष्ट्रीय शिक्षाप्रणाली
स्कूल वर्ष
अवधि, 32
भावनात्मक एकीकरण समिति, 16
शिक्षा का माध्यम, 16
भाषाएं, 11, 15-17, 212-219, 242-260, 312-333
अध्ययन और अध्यापन, 11, 15-17
उच्चतर शिक्षा स्तर, 332-333
स्कूल शिक्षा स्तर,
विभिन्न देश, 242-250
भाषा प्रयोगशालाएं 84, 260

म

मणिपुर, 31, 37, 45, 435
मद्रास, 29, 38, 39, 68, 91-93, 126, 142-143, 15, 261, 288, 435, 510, 560
वित्त
व्यय, 143
सहायक अनुदान, 560
उच्चतर शिक्षा
कालेज,
संरचना, 29-30, 39
अध्यापक
वृद्धावस्था व्यवस्था
त्रि-लाभ योजना, 68
स्कूल शिक्षा
प्राथमिक स्तर
उच्चतर
नामांकन, 148
स्वायत्त निकाय, 510
अवर
कक्षा का आकार, 262-264
विशिष्ट कार्यक्रम, 165
माध्यमिक स्तर, 200
संरचना, 29-30, 38-39
अध्यापक शिक्षण, 99-93
अध्यापक
वृद्धावस्था व्यवस्था
त्रि-लाभ योजना, 68
पढ़ाने की फीस, 186
विशिष्ट शिक्षा
समाज-तिरस्कृत बच्चे
अनुसूचित आदिम जातियां, 158
शिक्षण साधन, 261
तकनीकी शिक्षा
जूनियर तकनीकी स्कूल, 426
अध्यापक, 451
मद्रास विश्वविद्यालय, 310
मध्य प्रदेश, 29-30, 38, 39, 91-93, 126, 142-143, 148, 200, 262, 264, 376 389, 426, 335, 462, 510
वित्त
व्यय, 142
उच्चतर शिक्षा, 176, 381
शैक्षिक स्वायत्तता
अध्यापकों के संबंध में
चयन और नियुक्ति, 376
कालेज,
संरचना, 29-30, 39
नामांकन, 462
स्कूली शिक्षा
प्राथमिक स्तर
उच्चतर
नामांकन, 14
स्वायत निकाय, 510
अवर
कक्षा का आकार, 262, 264
माध्यमिक स्तर, 200
संरचना, 29-30, 38, 39
अध्यापक-शिक्षण, 91-93
पढ़ाई की फीसें, 126
विशिष्ट शिक्षा
समाज-तिरस्कृत बच्चे
अनुसूचित आदिम जातियां, 158
तकनीकी शिक्षा
जूनियर तकनीकी स्कूल, 426
अध्यापक, 435
महाराष्ट्र, 29-30, 38-45, 8143, 144, 158, 411, 489, 623
प्रौढ़ शिक्षा, 481
बुनियादी शिक्षा
शिल्प
कृषि-411
शैक्षिक अनुसंधान
व्यर्थता और अगति, 175,176
इंजीनियरी शिक्षा, 431
वित्त
व्यय, 144
उच्चतर शिक्षा,
कालेज
संरचना, 29-30, 44
नामांकन, 462
स्कूली शिक्षा
प्राथमिक स्तर, 148, 195, 623
उच्चतर, 148
नामांकन, 148
स्थानीय स्वायत, निकाय 510
माध्यमिक स्तर, 411
पाठ्यचर्या-411
संरचना, 29-30, 38, 45
पढ़ाई की फीसें, 353
विशिष्ट शिक्षा

समाज तिरस्कृत बच्चे
अनुसूचित आदिम जातियां, 158
तकनीकी शिक्षा
अध्यापक, 435
तकनीकी हाई स्कूल, 306
महिला मंडल, 167
पूर्व प्राथमिक शिक्षा, 167
महिला शिक्षा 71, 72, 138, 152-156, 181-195, 354-357, 430-431, 718 (स), 721-732 (स)
पाठ्यचर्या, 230-232, 430
नामांकन, 152-153
उच्चतर शिक्षा स्तर, 354-357
अंशकालिक शिक्षा, 194
पोलिटेक्निक शिक्षा, 430
पाठ्यचर्या, 138
छात्रवृत्तियां, 138
स्कूल स्तर
प्राथमिक
उच्चतर
नामांकन 182
अवर
नामांकन, 181
माध्यमिक
उच्चतर
नामांकन 195
अवर
तामांकन, 1951
अध्यापिका शिक्षा, 72
अध्यापिकाएं 71-72
मांजिरी (व्यावसायिक स्कूल), 411
मार्गदर्शन—शैक्षिक मार्गदर्शत के अंतर्गत देखें
मार्गदर्शन का राज्य-ब्यूरो, 267-268
माध्यमिक शिक्षा आयोग, 32, 75, 79, 206, 251, 268, 276
माध्यमिक शिक्षा
पाठ्यचर्या
बहूद्देश्य स्कूल, 207
शैक्षिक मार्ग-दर्शन, 268
परीक्षाएं, 390
संरचना, 32
अध्यापक शिक्षा, 75
अध्यापक शिक्षा के लिए राज्य-बोर्ड, 79
शिक्षण विधियां, 251
माध्यमिक शिक्षा के मंडल,
परीक्षाएं, 274-275, 331
साध्यमिक शिक्षा-स्कूल शिक्षा के अंतर्गत देखें
माध्यमिक शिक्षा बोर्ड 36
माध्यमिक स्कूलों के अध्यापकों और पाठ्य-चर्याओं से संबंधित अंतर्राष्ट्रीय मंडली, 75, 80
अध्यापक शिक्षण, 75
राज्य अध्यापक-शिक्षण मंडल 80
माध्यमिक स्कूल विस्तार कार्यक्रम विभाग, (रा० शै० अ० प्र० प०), 78
माथुर एम० वी, 514
वित्त, 514
मालवीय, मदन मोहन (पं०) 310
मास्को विश्वविद्यालय, 318
मिश्रित शिक्षा—देखें सहशिक्षा
मुख्य मंत्री सम्मेलन, 212
पाठ्यचर्या,
त्रिभाषा-सूत्र, 212
मुख्याध्यापक प्रिंसिपल, व मुख्याध्यापक के अंतर्गत देखें
मूल्यांकन—परीक्षाओं के अंतर्गत देखिए
मैकलप, 28
स्कूल वर्ष, 28
मैक्सिको, 247
भाषाएं
अध्ययन और अध्यापन, 247
मैसूर, 29-30, 38, 45, 126, 197, 200, 262, 264, 434, 462, 510
वित्त
व्यय, 144
उच्चतर शिक्षा
कालेज
संरचना, 27-30, 45
नामांकन, 462
ग्राम्य शिक्षा
विद्यापीठ, 497
स्कूली शिक्षा
प्राथमिक स्तर
उच्चतर
नामांकन, 148
स्थानीय स्वायत विकाय, 510
अवर
कक्षा का आकार, 262, 264
माध्यमिक स्तर, 200
संरचना, 29-30, 38, 95
अध्यापक शिक्षा, 91-92
अध्यापक
वृद्धावस्था प्राविधान
त्रि-लाभ योजना, 68
पढ़ाई की फीसें, 126
तकनीकी शिक्षा
अध्यापक, 435
मोर्ट, पाल,
शिक्षण विधियां, 255

य

युवा प्रकृतिवादी केन्द्र 239,
अग्रणी कैंप, 239
यूगोस्लाविया 13, 250, 465, 534
वित्त
व्यय, 534
भाषाएं,
अध्ययन

और अध्ययन, 150
राष्ट्रीय सेवा, 13
वैज्ञानिक अनुसंधान
व्यय, 454
यूनाइटेड किंगडम (इंगलैंड) 13, 32, 35, 202, 257, 266, 379-380, 431, 447, 450, 464-468, 530, 534, 553
स्कूली इमारतें
लागत, 266
निरंतर शिक्षा, 431
शैक्षिक अनुसंधान. 447-448
शैक्षिक संरचना, 33
वित्त
व्यय, 530-536, 551-552
उच्चतर शिक्षा, 258, 318, 345
पाठ्य-पुस्तकें, 257-260
भाषाए,
अध्ययन और अध्यापन, 249-250
राष्ट्रीय सेवा, 13
स्कूल शिक्षा
भवन, 266
स्थिति, 202
शिक्षा शुल्क, 127
वैज्ञानिक शिक्षा
प्रतिछात्र व्यय, 450
वैज्ञानिक अनुसंधान,
व्यय, 464-468
मानव शक्ति, 468
यूनाइटिड किंगडम, कमिटी आफ वाइस चांसलर्स, 390
यूनाइटिड किंगडम, तकनीकी शिक्षा श्वेत-पत्र (1956) 428
यूनेस्को, 20, 424, 513
पाठ्म-पुस्तकें, 20
योजना कार्य समिति, 501, 506

र

रमण (महर्षि), 22
राज्य मंडल, अध्यापक शिक्षण के, 85, 304
अध्यापक शिक्षा,
पाठ्यचर्या, 85
परीक्षाएं, 304
राज्य मूल्यांकन एकक 272, 302
राज्य मूल्यांकन सगठन, 204, 273-275, 279, 302-303
पाठ्यचर्या
अनुसंधान, 204, 272
परीक्षाएं, 272-273
कार्य, 302-303
राज्य लोक सेवा आयोग, 375
उच्चतर शिक्षा,
अध्यापक,
चयन और नियुक्ति, 375
राज्य शिक्षा परिषद, 518-520
राज्य शिक्षा मंत्री सम्मेलन (1964), 32
स्कूल वर्ष
राज्य शिक्षा विभाग—46, 166-167, 278, 292-293, 211, 257, 259, 261, 264-266, 270, 278, 293-294, 298, 386, 518-519, 523, 526
कार्य, 293-294, 518-519, 523, 526
उच्चतर शिक्षा
प्रशासन
संबंधन, 386
कार्मिक
शिक्षा, 523
वेतन, 523
व्यावसायिक शिक्षा, 192-193
स्कूली शिक्षा
स्कूल भवन, 264-66
पाठ्यचर्या, 211
कक्षा का आकार, 260-61
वित्त,
सहायक अनुदान, 287
प्रतिभावान बच्चे, 211, 270
पूर्व प्राथमिक शिक्षा, 166-167
प्राथमिक शिक्षा,
व्यर्थता और अगति, 178
संरचना, 36
निरीक्षण, 298
स्कूलों की मान्यता, 298
शिक्षण साधन, 260
पाठ्य पुस्तकों का उत्पादन, 257, 259-260
राज्य शिक्षा-सचिवालय, 519
संगठन, 519
शिक्षा सचिव बनाम शिक्षा निदेशक, 519
राज्य शिक्षा सेवा, 522-523
कार्मिक
चयन और नियुक्ति, 522 523
राज्य शिक्षा संस्थाएं, 63, 76-78, 165, 204, 273, 294, 298-299, 524, 554-555
लक्ष्य और उद्देश्य, 294
प्रशासक
अतः सेवा शिक्षा, 524
पाठ्यचर्या
अनुसंधान, 204
प्रसार-सेवाएं, 77
कार्य, 299
उच्चतर शिक्षा स्तर
अनुसंधान, 554-555
स्कूली शिक्षा,
पूर्व प्राथमिक,
विकास केन्द्र,
कार्य, 166
प्राथमिक
परीक्षाएं, 274
अध्यापक शिक्षा, 78
अध्यापक

चयन और नियुक्ति, 63
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद 67, 69, 186, 230, 267, 404, 455, 487, 763 (स)
और केन्द्रीय शिक्षा संस्थान, 455
संगठन, 455
विधान, 455
और स्कूल शिक्षा, पाठ्यचर्या, विषय अध्यापक संघ, 186
पाठ्यपुस्तक उत्पादन, 230
शैक्षिक अनुसंधान कार्यक्रम, 487
वैज्ञानिक शिक्षा, 404
और उच्चतर शिक्षा, प्रादेशिक कालेज, 455
राबर्ट हील बोनर, 5
राधाकृष्णन रिपोर्ट, देखिए विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग
रामानुजम, 267
राव, वी० के० आर० वी० (उद्धरण)
निरक्षरता, 485
रोजगार तथा श्रम महा निदेशकलय 427, 600
जन शक्ति योजना
वर्गीकरण, 600
राष्ट्रीय और सामाजिक एकता 2-3

ल

लंका, 243
भाषाएँ
अध्ययन और अध्यापन, 243
लोकतांत्रिक मूल्य, देखें **नागरिकता** शिक्षा
लोक हाई स्कूल, 496
लंच, स्कूल, 166-167, 267
लवजेमबर्ग
वैज्ञानिक अनुसंधान
व्यय, 465
लखनऊ विश्वविद्यालय, 31, 576
शैक्षिक स्वायत्तता,
अध्यापकों के संबंध में,
चयन तथा नियुक्ति, 376
लंदन विश्वविद्यालय, 310
लंदन स्कूल आफ इकोनोमिक्स, जनशक्ति योजना, 104 402, 407, 417, 418, 436
कृषि शिक्षा
विशेषज्ञ, 402, 407, 417-418
इंजीनियरी शिक्षा, 436
लघु उद्योग योजना, 431
लीबिया,
भाषाएं,
अध्ययन और अध्यापन, 246
लेबनान, 465
वैज्ञानिक अनुसंधान,
व्यय, 465

व

व्यर्थता और अगति, 47 172-180, 274, 428, 430, 437
प्राथमिक शिक्षा
अगति
कक्षा-एक 176-177
दूसरी कक्षाएं 177-178
कारण
आर्थिक, 177
शैक्षिक और सामाजिक, 179
व्यर्थता, 172-180
कक्षा-एक, 176-177
दूसरी कक्षाओं में, 177
तकनीकी शिक्षा,
स्नातकोत्तर स्तर, 437
पोलिटेक्निकल स्कूल, 428-430
व्यावसायिक मार्गदर्शन ब्यूरो, 299
व्यावसायिक शिक्षा, 7, 10-11, 35, 40, 112, 189, 191-103, 202, 176-178, 423-431, 440-444, 721 (स)
प्रशासन 440-443
वित्त,
केन्द्रीय अनुदान, 193
उच्चतर शिक्षा स्तर, 11, 112
स्कूल स्तर
पाठ्यचर्या, 425-426
माध्यमिक, 10-11, 112-113, 191-193, 200-202, 409-411, 425-427
उच्चतर, 111-112
पाठ्यचर्या, 192-193
नामांकन, 191-192
अवर, 112
पाठ्यचर्या, 192
नामांकन, 191-192
स्कूल
कृषि, 409-411
व्यावसायिक
आकार 201-202
छात्रवृत्तियां, 134-136
छात्रों का चुनाव, 134-136
प्रशिक्षण
अर्धकुशल तथा कुशल कामगर, 425-426
तकनीशियन, 427-430
व्हाइटहेड (उद्धरण), 269
वाइसनेर, जे बी० (उद्धरण), 28
विकलांग बच्चों की शिक्षा—विशिष्ट शिक्षा के अंतर्गत देखें
विकेन्द्रीकरण शैक्षिक, 509, 510-511
वित्त, 527, 588
व्यय
शिक्षा के स्तरों से व्यय
उच्चतर शिक्षा, 548-551
अनंतिम अनुमान (1965-85), 248, 551, 576-586
कालेज, 576-577
प्रति छात्र लागत, 580-586
छात्रवृत्तियां, 580-586
विश्वविद्यालय, 577-579

स्कूली शिक्षा, 539, 543, 545-549, 566-575
अनंतिम अनुमान, (1965-85), 566-575
पूर्व प्राथमिक, 566-570
प्राथमिक
उच्चतर, 586-569
अवर, 567
माध्यमिक
अवर, 568
उच्चतर, 569-570
मदवार खर्च
अनंतिम अनुमान, 552
स्रोत के अनुसार व्यय, 536-537, 561-565
संघीय स्तर, 561-565
राज्यस्तर, 563-565
व्यय (जोड़)
अनंतिम अनुमान (1965-85), 538-541
विभिन्न देश 527
घटाने के उपाय, 553-554
विज्ञ आयोग, 514
विज्ञान अनुसंधान परिषद् 477-479
विज्ञान और धर्म, 7
विज्ञान की शिक्षा—**वैज्ञानिक शिक्षा** के अंतर्गत देखें
विज्ञान-नीति प्रस्ताव (1948) 302, 303
विज्ञान परिषद्, जापान, 481
विज्ञान-प्रयोगशालाएं, 45, 48-99
विद्या परिषद्, 371-372
विनोबा भावे (उद्धरण), 4
विवेकानंद (स्वामी), 26
विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम, 310, 392-394
विश्वविद्यालय अनुमान समिति (यू० के०), 375, 379, 390, 393
विश्वविद्यालय आदर्श अधिनियस समिति, 381-386, 393
प्रशासन
उपकुलपति
अधिकार, 382
चुनाव तथा नियुक्ति, 382
कार्य परिषद्, 382
विधि तथा विधान, 382-386
कोर्ट,385-386
राज्य विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, 393
विश्वविद्यालय कार्यकारी परिषद्, 383
विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग, 23, 33, 58-59, 75-76, 327, 380-381, 388, 400
कृषि शिक्षा, 400
उच्चतर शिक्षा
प्रशासन
कालेज, सरकारी, 388
विश्वविद्यालय,
उपकुलपति,
चुनाव और नियुक्ति, 380-381
पुस्तकालय, 325-328
नैतिक शिक्षा, 22-23
स्कूल शिक्षा
स्कूल वर्ष
अवधि, 33
अध्यापक शिक्षा, 75
वेतन, 57-58
विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, 15-17 36-44, 58-59, 64, 179, 319-324, 327-330, 334, 371-377, 378-381, 384, 387, 391-394, 419-420, 458, 471-473, 500, 555, 747-750 (स)
प्रशासन
शैक्षिक स्वतंत्रता, 370-376
प्रशासक
शिक्षा, 506
संबंधन, 387-388
कृषि शिक्षा 419-420, 750 (स)
कार्यकारिणी
उपकुलपति
चुनाव और नियुक्ति, 380-381
विधि और विधायन, 382-384
विश्वविद्यालय वर्षक्रम, 44
इमारत, स्कूली
लागत, 265
कालेजों का वर्गीकरण, 324
आलोचना, 392-394
शिक्षित जनशक्ति प्राक्कलन, 119
परीक्षाएं, 329-30
वित्त, 376-379, 554-555
स्तरीय शिक्षा कार्यक्रम 554-555
कार्य, 391-394
भारतीय भाषाएं, 15
पुस्तकालय, 327
बड़े विश्वविद्यालयों की योजना, 319-322
उच्च अध्ययन के केन्द्र, 320
छात्रवृत्तियां, 319
अध्यापक,
चुनाव और नियुक्ति, 312-320
पूर्व विश्वविद्यालय पाठ्यक्रम 36
वैज्ञानिक शिक्षा
पाठ्यचर्या, 458
वैज्ञानिक अनुसंधान
साज-सामान, 472
छात्र कल्याव सेवाएं
स्वास्थ्य सेवाएं, 334
अध्यापक
चुनाय और नियुक्ति, 322-323
पदोन्नतियां, 64-65
विनिमय, 458
वेतन, 58-59
शिक्षा का माध्यस, 17
अध्यापन की पद्धतियां, 329

विश्व शिक्षा सर्वेक्षण, 242
भाषाएं
अध्ययन और अध्यापन, 242
विश्व सम्मेलन, निरक्षरता, उन्मूलन पर (शिक्षा मंत्रियों का 1965), 487
वुड्स एडुकेशन डिस्पैच, 124
विशिष्ट शिक्षा, 49, 139-141, 156-161, 181, 271-272
बच्चों के वर्ग
मन्दबुद्धि, 139-140, 270-271
धीमे सीखने वाले, 271
अल्पार्जक, 271
अंगविकृति वाले विकलांग, 139-140
विकलांग,
अंधे, 139-140
बधिर, 138-140
समाज-तिरस्कृत, 72, 256-161, 181
अननुसूचित आदिम जातियां, 156
अनुसूचित आदिम जातियां, 156-161, 181
प्राथमिक स्तर, 158
उच्चतर शिक्षा स्तर, 159-160, 373
माध्यमिक स्तर, 158
विभिन्न राज्य, 158
वाक्दोष वाले, 141
और मार्ग-दर्शन, 272
अनुसंधान, 141
विशिष्ट स्कूल, 141-142, 271
विषय-अध्यापक-संघ, 71-72, 206-207
विषय निरीक्षक, 299
वैज्ञानिक अनुसंधान, 6, 464-467, 476-482
और प्रतिभा का प्रवासन, 477-49
और प्रतिभावन बच्चे 477-480
और बाह्य अनुसंधान प्रयोगशालाएं, 476-477
और राष्ट्रीय विज्ञान-नीति, 479-481
और विज्ञान अकादमी, 481-482
और विश्वविद्यालय, 468-470
व्यय 464-467
वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद्, 64, 409, 470, 473
वैज्ञानिक शिक्षा और अनुसंधान, 469
साज-सामान, 473
अध्यापक,
वेतन, 65
वैज्ञानिक जनशक्ति आयोग की रिपोर्ट (1947) 302-304 437-438
तकनीकी शिक्षा, 421
इंजीनियरी शिक्षा,
व्यावहारिक प्रशिक्षण योजना, 439
वैज्ञानिक शिक्षा, 6-7, 444-464, 472
साज-सामान, 472
और सामान्य नीतियां 444-452
उच्चतर शिक्षा,
और अमूर्तीकर 452-453
पाठ्यचर्या, 462
विभिन्न राज्य, 455-458
सामांकन,455-458
व्यय
प्रति विद्यार्थी खर्च,
विभिन्न देश, 450-453
और राष्ट्रीय उत्पादिकता,
का महत्व 444
और भारतीय संस्कृति, 452
प्रयोगशालाएं 445, 462
अंशकालिक शिक्षा, 463
गुणता शिक्षा कार्यक्रम, 447-450
चुनावी दृष्टिकोण, 446
क्षेत्रीय असंतुलन, 458
शब्दावली, 464
पाठ्यपुस्तकें, 463
स्कूल स्तर, 219-222
प्राथमिक, 220
पाठ्यचर्या, 220
शिक्षण विधि, 222
माध्यमिक
पाठ्यचर्या, 220-221
पाठ्य-पुस्तकें 257-258
वैज्ञानिक सलाहकार समिति, 480
और राष्ट्रीय विज्ञान-नीति 480
शाएोवेलेंको, एस० जी०, 234-241
सोवियत संघ
पोलिटेक्निक शिक्षा
कार्य-अनुभव, 234-241
श्रम और रोजगार मंत्रालय, 425, 496
औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान, 425
कामगारों की शिक्षा, 496
श्रम तथा समाज कल्याण शिविर, 14
शिकागो विश्वविद्यालव, 318
शिक्षा
प्रौढ़ शिक्षा, 484-502
कृषि, 5-6, 11, 194, 398, 422
लक्ष्य और उद्देश्य, 4-7
और रोजगार, 121
बुनियादी शिक्षा,, 9-10, 251, 410
नागरिकता, 3, 20
अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा, 90, 101, 108, 168-173 181, 183, 488
निरन्तर शिक्षा, 431, 444-445, 491-497
पाठ्यक्रम, 203, 250
शैक्षिक प्रशासन, 279-308, 369-397, 515-526
शैक्षिक मार्ग दर्शन, 267-269,335
शैक्षिक योजना, 504-515
शैक्षिक अनुसंधान, 111, 252, 269,328, 366-368, 500
इंजीनियरी शिक्षा, 431-443

नामांकन, 100-122, 164-202, 340-353
शैक्षिक समकरण, 6, 100-101, 103-104, 111, 121-161, 183
परीक्षाएं, 35, 274-278, 322-325, 329-331
वित्त, 527-587
उच्चतर शिक्षा, 101-103, 309-397
निरक्षरता, 485-494
और उद्योग, 7
अंतर्राष्ट्रीय सद्भाव 20
राष्ट्रीय एकता
सामुदायिक विकास कार्यक्रम, 14
भारतीय भाषाएं, 15-18
शिक्षा का माध्यम, 13-19
अंशकालिक शिक्षा, 78, 181, 177-179, 194-195, 429, 495-497
पोलीटेक्नीक शिक्षा, 234-241, 428-430
पूर्व-प्राथमिक शिक्षा, 165-168
प्राथमिक शिक्षा, देखें स्कूल शिक्षा
धार्मिक तथा नैतिक शिक्षा, 22, 24, 229-230
स्कूल शिक्षा, 15-19, 40, 43-49, 60-61, 90-91, 101-102, 107-108, 110-113, 158-159, 164-308, 402-412, 424-425, 488, 553-554, 566-575
वैज्ञानिक शिक्षा, 8, 11, 24, 446-464, 472-473
वैज्ञानिक अनुसंधान, 8, 476-482
धर्म निरपेक्षता, 24
सामाजिक तथा राष्ट्रीय एकीकरण, 3, 6-8
माध्यमिक शिक्षा, देखें स्कूल शिक्षा
सामाजिक-शिक्षा, 8, 20-23
सामाजिक-प्रकृति 20-23
विशिष्ट शिक्षा, 48, 139-140, 156-157, 181, 271-272
मानक, 37, 41-42, 46-48, 98-99, 300
पर्यवेक्षण तथा पर्यवेक्षक, 291-299, 306
अध्यापक शिक्षण, 75-99
अंतः सेवा-अध्यापक शिक्षण, 96-97, 296, 299-300
अध्यापक-शिक्षक, 83-88, 269
अध्यापक, 52-74, 319-324, 328
अध्याप कालेज, 80, 86-91, 96, 268
शिक्षण साधन, 48, 260-261, 494
शिक्षण माध्यम, 15-19, 319-321, 331-333
शिक्षण-विधि, 48, 251-256
तकनीकी शिक्षा, 423-445
पाठ्य-पुस्कें, 256-260
व्यावसायिक शिक्षा, 8-11, 40, 112-113, 191-193, 202,422-431
व्यर्थता और अगति, 48, 173-179
कार्य अनुभव, 8-10, 233-241, 412,425
शिक्षा निदेशालय, 299 520,
कार्य, 520
पर्यवेक्षण, 299
शिक्षा नीति विषयक सरकारी प्रस्ताव (1913), 310
उच्चतर शिक्षा, 310
शिक्षा मंत्रालय, 44, 74, 265, 267, 279, 335, 384, 436-440, 398, 499, 505, 506, 516-517, 524
प्रौढ़ शिक्षा, 494-499
पत्राचार पाठ्यक्रम और स्कूल, 499
पाठ्य पुस्तकें—नवसाक्षरो के लिए, 494
कामगारों की शिक्षा, 499
शैक्षिक प्रशासन, 279
प्रशासक
प्रशिक्षण, 505, 524
इंजीनियरी शिक्षा
जनशक्ति की अपेक्षाएं, 437
स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम, 436
छात्र-चयन, 438
अध्यापक सर्वेक्षण, 436
पाठ्य पुस्तकों का उत्पादन, 438
कार्य 516-517
सूचनाओं के आदान-प्रदान केन्द्र का कार्य, 516
सांख्यिकीय सेवा, 517
उच्चतर शिक्षा
और जनशक्ति योजना
मार्गदर्शन, 335
पाठ्य-पुस्तकें, 258
कार्मिक
चयन तथा नियुक्ति, 527
स्कूली शिक्षा
प्रशासन
स्कूल वर्षक्रम, 44
भवन, स्कूल
लागत, 265
मार्ग-दर्शन
केन्द्रीय शैक्षिक और व्यावसायिक मार्गदर्शन ब्यूरो, 268
अध्यापन
स्कूल-अध्यापकों को राष्ट्रीय पुरस्कार 74
तकनीकी शिक्षा 440-441
शिक्षा वर्षक्रम, 43-44
शिक्षा-मंत्री सम्मेलन, 214
पाठ्यचर्या,
प्रादेशिक भाषाएं, 214
शिक्षुता अधिनियम (1961), 422, 426
शैक्षिक अनुसंधान, 112, 251, 269, 328-329, 366, 368
उच्चतर शिक्षा स्तर, 328-329, 366-367
प्रलेख केन्द्र, 366
व्यय, 369
राष्ट्रीय शिक्षा अकादमी, 367
राष्ट्रीय शिक्षा अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, 366, 367
स्कूल स्तर, 111-112, 251, 269
माध्यमिक,
अध्यापन विधि, 251
मार्गदर्शन, 269

छात्र-चयन विधि, 111
शैक्षिक प्रशासन, 279-308, 369-397, 513-526
प्रशासक,
प्रशिक्षण, 523
राष्ट्रीय शिक्षा प्रशासक स्टाफ कालेज, 524
संघ स्तर, 513-518
अभिकरण,
शिक्षा मंत्रालय, 516-517
भारतीय शैक्षिक सेवा, 515, 520-522
राष्ट्रीय स्कूल शिक्षा बोर्ड, 277-278, 301-302
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् 517
समवर्ती सूची, 513-515
संघ सूची, 513
उच्चतर शिक्षा स्तर, 369-596
सुधार-विधि (सुझाई गई), 525-526
स्कूल स्तर, 279-308
सुधार-विधि (सुझाई गई)
समान स्कूल-पद्धति, 278-290
राजकीय स्कूल, 283-284
स्थानीय स्वायत्त निकायों के स्कूल, 283-284
गैर सरकारी सहायता प्राप्त स्कूल, 284
बाहरी सकान स्कूल पद्धति, 306,307
स्वतंत्र स्कूल, 307
मान्यता-अप्राप्त स्कूल, 307
उच्चकोटि का शिक्षा-कार्यक्रम, 379. 290-292
राज्य स्तर. 518-525
अभिकरण,
शिक्षा परिषद्, 518-520
शिक्षा निदेशालय, 520
शिक्षा सचिवालय, 520
राज्य शिक्षा विभाग, 518, 425
राज्य शिक्षा सेवा 522-523
तथा भारतीय शिक्षा सेवा, 520-521
कार्मिक, 520
शैक्षिक भवन निर्माण संघ, 266-267
भवन, स्कूल, 266-267
शैक्षिक मार्गदर्शन, 267-270, 335
लक्ष्य और उद्देश्य, 267
और शैक्षिक अनुसंधान, 269
उच्चतर शिक्षा स्तर, 335
स्कूल शिक्षा स्तर, 267-268
प्राथमिक, 267-268
माध्यमिक, 268
अध्यापक कालेज, 268
शैक्षिक विधि और विधान, 382-386, 526
शैक्षिक योजना, 504-515
शिक्षा प्रदायी विभिन्न अभिकरण,
संघीय, 511-514
स्वायत्त निकाय, 508-512
गैर सरकारी अभिकरण, 507-508
अग्रताओं के विभिन्न स्तर, 506
सुधार के सुझाव, 504-505, 510-515
शैक्षिक योजना बोर्ड, 457
शैक्षिक संरचना तथा अवधि, 28-45
उच्चतर शिक्षा
पुनर्गठन, 29-31, 32, 41-42
पूर्व विश्वविद्यालय पाठ्यक्रम, 36-37
नाम पद्धति, 50-51
स्कूली शिक्षा स्तर, 28-44
विभिन्न राज्य, (1965-66), 29-31, 38, 39-41
उच्चतर माध्यमिक स्वरूप, 28-29, 33
परिवर्तन (प्रस्तावित), 32-34, 36
पुनर्गठन (सुझाया गया), 32-34, 36-37
पूर्व-प्राथमिक, 33, 34
पूर्व विश्वविद्यालय, 36-77
प्राथमिक, 33, 34, 35
शैक्षिक स्तरों के लिए **स्तर** देखें

स

संघ, शैक्षिक, 440
संयुक्त अध्यापक परिषद, 73
कार्य, 73
संयुक्त अरब गणराज्य
भाषाएं,
अध्ययन और अध्यायन, 249
संयुक्त राष्ट्र संघ, 513
संयुक्त राज्य अमेरिका 13, 28, 40, 81, 116-117, 193, 203, 250, 257, 260, 318, 345, 440, 450-451, 456, 465-468, 472, 476, 497, 529-530, 534, 541, 553
अग्रिम स्थापन कार्यक्रम, 40
पत्राचार पाठ्यक्रम, और स्कूल, 497
शिक्षित जनशक्ति, 117
शैक्षिक अनुसंधान, 534
वित्त
सहायक अनुपान
समीकरण सिद्धान्त, 561
कुल शैक्षिक व्यय, 529, 541, 553
उच्चतर शिक्षा, 318, 645
राष्ट्रीय सेवा, 13
स्कूल शिक्षा
पाठ्यचर्या, 203
भाषाएं
अध्ययन और अध्यापन, 250
स्कूल वर्ष, 28
वैज्ञानिक शिक्षा, 450, 456
प्रति विद्यार्थी खर्च 450
वैज्ञानिक अनुसंधान
व्यय, 451, 465, 467, 476
मानव शक्ति, 468
अध्यापक शिक्षा, 81
अध्यापक निर्देशिकाएं 260
सामूहिक शिक्षा, 253

व्यावसायिक शिक्षा, 193
संयुक्त राज्य राष्ट्रीय विज्ञान प्रतिष्ठान 452
समकरण, शैक्षिक, 6, 100-101, 104, 110, 123-161, 183-184
विभिन्न जिले, 142, 146-154, 152-153
विभिन्न राज्य, 141-143
विषमताओं के कारण, 123-124
समरण के उपाय (प्रस्तावित)
शैक्षिक व्यय के संबंध में, 124
पढ़ाई की फीस, 124
उच्चतर शिक्षा स्तर, 127
स्कूल स्तर, 126-127
पूर्व प्राथमिक, 126
प्राथमिक, 126
माध्यमिक, 126-127
पढ़ाई के अतिरिक्त लागत, 127-128
उच्चतर शिक्षा स्तर, 128
स्कूल शिक्षा स्तर
प्राथमिक, 128
माध्यमिक, 128-129
छात्रवृत्तियां, 129-139
उच्चतर शिक्षा स्तर, 131-132
स्कूल शिक्षा स्तर
प्राथमिक, 129
माध्यमिक, 130
व्यावसायिक शिक्षा, 134-136
तथा विशिष्ट शिक्षा, 139-142, 156-161
मंदबुद्धि, 140
विकलांग, 140-142
अंधे, 140
बधिर, 140
समाज-तिरस्कृत,
अनुसूचित आदिम जातियां, 156-161
और स्त्री शिक्षा, 152-157
समाज कार्य, 430
समाज सेवा, 226-228
समान स्कूल, 10, 287-289
समूहगान, 167-168
सह शिक्षा, 195
सर्वांगपूर्ण अध्यापक कालेज, 79
सहायता अनुदान 284-289, 376-380, 389, 559-561
संहिताएँ, 289
कालेज, 376-380
गैर सरकारी, 389
और समकरण नियम, 561
स्कूल, गैर-सरकारी, 284-288
स्रोत,
संघीय स्तर, 477
राज्य स्तर, 477-380, 559-569
स्वयत्त निकाय, 559-560
नगरपालिकाएँ, 560-561
जिला परिषद, 559
विश्वविद्यालय, 377-379
सर्वोच्च न्यायालय (भारत), 385
स्काटलैंड, 32
शैक्षिक संरचना, 32
स्कूल
वर्गीकरण, 291
स्तर, 293
स्कूल गणित शिक्षा वर्ग, 222
पाठ्यचर्या
गणित, 222
स्कूल गैर मान्यता प्राप्त, 307
स्कूल निदर्शन, 91
प्रायोगिक स्कल, 277-278
पाठ्यचर्या-स्वयत्तता, 277-278
गैर-सरकारी स्कूल, 206-207
स्कूल योजना **लंच स्कूल** के अंतर्गत देखें
स्कूल वर्ष, 42-45
कार्य के दिन, 42-44
शैक्षिक कलेंडर (प्रस्तावित) 42-44
कार्य के घंटे 42, 45
स्कूल शिक्षा, 15, 18, 42, 45-47, 60, 91-92, 101-102, 107, 109, 112, 159, 164,-408, 401-412, 425-426, 488, 546, 552.
कृषि, 401-412
प्राथमिक 411-412
माध्यमिक 411-413
स्कूल भवन, 265-268
कक्षा का आकार 261-264, 556
अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा 91, 101, 107, 189, 174, 182, 184, 546
पाठ्यचर्या, 202, 250
प्राथमिक
उच्चतर, 208-209
अवर, 208-209
माध्यमिक
उच्चतर, 211-212
अवर, 210-211
शैक्षिक प्रशासन, 280-308
शैक्षिक मार्ग दर्शन, 266-267
शैक्षिक अनुसंधान, 110, 250, 269
माध्यमिक स्तर 110, 250, 269
शैक्षिक संरचना-28-29
नामांकन-101, 165, 202
प्राथमिक, 101, 168-182
माध्यमिक, 183-195
उच्चतर 109, 192-195
अवर, 199, 192
परीक्षाएं, 39, 273-276
बाह्य
प्राथमिक
उच्चतर 273-274

उच्चतर शिक्षा स्तर, 14-15
स्कूल-स्तर 14, 286-288
पाठ्यचर्या, 286-288
प्राथमिक, 14
माध्यमिक, 14
सामाजिक प्रवृत्ति, 21-22
और शिक्षा, 21-22
सामाजिक विज्ञान, 222-223
सामाजिक शिक्षा, 7, 21-22
साज सामान
इंजीनियरी, 426
वैज्ञानिक 472-473
सामान्य शिक्षा, 431
और तकनीकी शिक्षा, 431
सामुदायिक जीवन, 84
सामुदायिक विकास प्रशासन, 167-168, 226
पाठ्चर्या
शिविर परियोजना, 226
पूर्व-प्राथमिक शिक्षा, 167-168
सामुदायिक विकास विभाग, 489
साक्षरता कार्यक्रम, 488
सामूहिक शिक्षण, 253
सार्जेंट योजना,166, 543
सीज, एफ, 517
उच्चतर शिक्षा, 317
सूडन, 249-250
भाषाएँ
अध्ययन और अध्यापन—249-250
सूचना और प्रसारण समिति,
माध्यम, 499
काक्षरता कार्यक्रम,
और रेडियो, 492
सेंट्रल इंस्टिट्यूट आफ इंगलिश (हैदराबाद), 222
सैयद अहमद खां (सर), 310
सोवियत संघ (रूस) 28, 66, 234-241, 250
257-258, 345 284, 440, 468, 476, 553,
अध्यापक
वेतन, 66
उच्चतर शिक्षा, 345
दीक्षान्त समारोह, 382-384
पाठ्य-पुस्तकें 258-260
प्रौढ़ शिक्षा, 390
पाठ्यचर्या
कार्य अनुभव, 334-241
भाषाएँ
अध्ययन और अध्यापन, 250
वित्त
व्यय 530-534, 551-552
वैज्ञानिक अनुसंधान
जनशक्ति, 468
व्यय, 476, 523
व्यावसायिक और तकनीकी शिक्षा
पत्राचार पाठ्यक्रम, 440
स्कूल शिक्षा
स्कूल वर्ष, 28
सोवियत विज्ञान अकादेमी, 452

ह

हंगरी, 465
वैज्ञानिक अनुसंधान
व्यय 465
हंटर कमीशन—भारतीय शिक्षा आयोग (1882)
के अन्तर्गत देखें ।
हागलेन, एल०
वैज्ञानिक शब्दावली, 464
हारटोग, समिति, 172
प्राथमिक शिक्षा
व्यर्थता व अगति, 172
हार्वर्ड विश्वविद्यालय, 318
हिमाचल प्रदेश, 29, 31, 38, 39, 435
हिंदी, 11, 15-17, 332-513
पुस्तकालय भाषा के रूप में, 16
केरल विश्वविद्यालय, 17
सरकारी कामकाज की भाषा, 11
शिक्षा का माध्यम, 15-17, 332

Acc. No.....
Date.....
National Staff College,
for Educational Planners
and Administrators
NEW DELHI.